पुस्तक संख्या 5 खण्ड VIII -16 मई,1949 से 16 जून,1949

खण्ड VIII पुस्तक संख्या-5 दिनांक 16.05.1949 से 31.05.1949

भारतीय संविधान सभा
(भारतीय विधान परिषद)
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

खण्ड VIII
पुस्तक सं. 5

16.5.1949
से
16.6.1949

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

जैनको आर्ट इण्डिया, सरस्वती मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष

माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष

डॉ. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार

सर बी.एन. राव, *सी.आई.ई.*

सचिव

श्री एच.वी.आर. आयंगर, *सी.आई.ई., आई.सी.एस.*

संयुक्त सचिव

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव

श्री जुगल किशोर खन्ना

मार्शल

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 4. VIII.1.40
250

अंक 8
संख्या 1

सोमवार
16 मई
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा ग्रहण और रजिस्टर पर हस्ताक्षर 1
श्रीमती सरोजिनी नायडू की मृत्यु पर संवेदना 1
परिषद की कार्यवाही का कार्यक्रम 2
राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सम्बन्धी निर्णय के अनुसमर्थन के बारे में प्रस्ताव 3-60

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 16 मई, 1949

भारतीय विधान-परिषद् कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः दस बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण और रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:–

(1) माननीय श्री बिनोदानन्द झा (बिहार : जनरल)।

(2) सरदार सुचेत सिंह (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य)।

(3) श्री काका भगवंत राय (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य)।

श्रीमती सरोजिनी नायडू की मृत्यु पर संवेदना

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्यगण, श्रीमती सरोजिनी देवी के स्वर्गवास हो जाने के बाद हम इस सभा में पहली बार मिल रहे हैं। उनका जीवन देश की सेवा में समर्पित रहा था और हम जिस महान संघर्ष में से गुजरे उसमें वह जिस तरह दृढ़ रहीं वह अपने आप में एक उदाहरण है। वह वर्तमान भारत के निर्माताओं में से एक रहीं थी और उनकी मृत्यु से देश को जो हानि हुई है उसकी आसानी से पूर्ति नहीं की जा सकती है। मैं चाहता हूं कि सदस्य अपने-अपने स्थान पर एक क्षण के लिए खड़े होकर उनकी स्मृति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें।

(सभी सदस्य मौन खड़े हुए।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

परिषद् की कार्यवाही का कार्यक्रम

***अध्यक्ष:** कार्यसूची की मदों को लेने से पूर्व मैं इस अधिवेशन के कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ प्रारम्भिक टिप्पणियां करना चाहता हूं।

माननीय सदस्यों को याद होगा कि पिछले अधिवेशन में इस संविधान के प्रारूप के 67वें अनुच्छेद तक निबटा सके थे। अनुच्छेद 67 से पहले के चार अनुच्छेद बाद में विचार करने के लिए छोड़ दिये गये थे। चुनावों के संबंध में दो अन्य अनुच्छेदों को हमने निबटा दिया था। विधान-परिषद् की संचालन समिति की बैठक हाल में हुई थी और उसने निर्णय किया था कि हमें उन अन्य अनुच्छेदों को पहले लेना चाहिए जो चुनावों से सम्बन्धित हैं ताकि आगामी चुनावों के लिए तैयारी बिना व्यवधान के होती रहे। अत: मैं उन अनुच्छेदों को लेना चाहता हूं; मैं समझता हूं कि उनकी सूची माननीय सदस्यों को दे दी गई है।

इस अधिवेशन में हमें अभी बहुत काम निबटाना है। संविधान के 315 अनुच्छेदों में से हम अब तक केवल 65 अनुच्छेद निबटा पाये हैं और इनके अतिरिक्त आठ अनुसूचियां भी हैं। अत: हमें जितनी जल्दी हो सके काम निबटाना होगा। मैं यह नहीं चाहता कि जहां कहीं विचार करना आवश्यक समझा जाये वहां और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा में किसी प्रकार की कटौती की जाये। परन्तु मैं आशा करूंगा कि सदस्य अपने विचार महत्वपूर्ण बातों तक ही सीमित रखेंगे और बातों को दोहरायेंगे नहीं। यदि हम व्यावहारिक तरीके से चलते हैं तो मुझे आशा है कि हम यह काम आगामी 15 अगस्त को अपनी स्वतंत्रता की वर्षगांठ से पहले पूरा कर सकेंगे। मैं प्रयास करूंगा कि यह काम उस दिन से पहले पूरा हो जाये।

इस अधिवेशन के दौरान बैठक के समय के विषय में एक प्रश्न उठाया गया है। मुझे दो सुझाव दिये गये हैं: एक यह है कि हमें प्रात:काल बैठना चाहिए और दूसरा यह कि हमें दोपहर बाद बैठना चाहिए। इसका निर्णय सदन को करना है। इसमें मेरी व्यक्तिगत इच्छा कुछ नहीं है। जो भी निर्णय सदन करेगा मैं उसे स्वीकार करूंगा। हम प्रतिदिन लगभग चार घण्टे तक बैठेंगे। यदि हम प्रात:काल बैठते हैं तो समय प्रात: 8 बजे से दोपहर 15 बजे तक होगा और यदि हम दोपहर बाद बैठते हैं तो समय साढ़े तीन बजे से साढ़े सात बजे तक होगा। माननीय सदस्यों के विचार जानने के पश्चात् मैं आज की कार्यवाही के अन्त में बैठक के समय की घोषणा करूंगा।

अब हम कार्य-सूची को लेते हैं। पहली मद वह संकल्प हैं जिसकी सूचना माननीय पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा दी गई है।

सेठ गोविन्द दास (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इससे पहले कि आप आज अन्तिम अधिवेशन की कार्यवाही शुरू करें, मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा कि आपने इससे पहले क्या कहा है और यह पूछना चाहूंगा कि आप इस सिलसिले में क्या करने जा रहे हैं, क्योंकि उसका यही एक अवसर है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि यह प्रश्न इस समय उत्पन्न नहीं होता। जब समय आयेगा हम इस पर विचार करेंगे।

राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सम्बन्धी निर्णय के अनुसमर्थन के बारे में प्रस्ताव

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं निम्नलिखित प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''Resolved, that this Assembly do hereby ratify the declaration, agreed to by the Prime Minister of India, on the continued membership of India in the Commonwealth of Nations, as set out in the official statement issued at the conclusion of the Conference of the Commonwealth Prime Ministers in London on April 27, 1949.''
>
> ''यह निश्चय किया जाता है कि यह सभा भारत के राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के बारे में उस घोषणा का अनुसमर्थन करती है जिसके लिए भारत के प्रधानमंत्री सहमत हुए थे और जिसका उल्लेख उस सरकारी बयान में किया गया था जो 27 अप्रैल, 1949 को राष्ट्रमण्डल के प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन के समाप्त होने पर निकाला गया था।''

सभा माननीय सदस्यों को इस घोषणा की प्रतियां दे दी गई हैं, इसलिए मैं इसे फिर से नहीं पढ़ूंगा। मैं इस घोषणा की कुछ मुख्य बातें ही संक्षेप में बताऊंगा। यह चार पैराग्राफों का छोटा सा और साधारण सा दस्तावेज है। आप देखेंगे कि पहला पैराग्राफ वर्तमान कानूनी स्थिति के बारे में है। इसमें ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का और इस बात का जिक्र है कि इस राष्ट्रमण्डल के लोग साझे तौर पर ''क्राउन'' के प्रति निष्ठावान हैं। वर्तमान कानूनी स्थिति यह है।

''The Governments of the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand, South Africa, India, Pakistan and Ceylon, whose countries are united as Members of the British Commonwealth of Nations and owe a common allegiance to the Crown which is also the symbol of their free association, have considered the impending constitutional changes in India.

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

The Government of India have informed the other Governments of the Commonwealth of the intention of the Indian people that under the new Constitution which is about to be adopted India shall become a sovereign independent Republic. The Government of India have, however, declared and affirmed India's desire to continue her full membership of the Commonwealth of Nations and her acceptance of the King as the symbol of the free association of its independent member nations and as such as the Head of the Commonwealth.

The Governments of the other countries of the Commonwealth, the basis of whose membership of the Commonwealth is not hereby changed, accept and recognise India's continuing membership in accordance with the terms of this Declaration.

Accordingly, the United Kingdom, Canada, Australia, New Zealand, South Africa, India, Pakistan and Ceylon hereby declare that they remain united as free and equal members of the Commonwealth of Nations, freely co-operating in the pursuit of peace, liberty and progress.''

[''यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका की सरकारों ने, जिनके देश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के रूप में संगठित हुए हैं और ''क्राउन'' के प्रति, जो उनके स्वतंत्र साहचर्य का प्रतीक भी हैं, समान रूप से निष्ठावान हैं, भारत में निकट भविष्य में होने वाले संवैधानिक परिवर्तनों पर विचार किया है।

भारत सरकार ने राष्ट्रमंडल की अन्य सरकारों को भारतीय जनता के इस इरादे से अवगत करा दिया है कि निकट भविष्य में स्वीकृत किये जाने वाले नये संविधान के अन्तर्गत भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य का रूप ले लेगा। तथापि, भारत सरकार ने भारत की इस इच्छा की घोषणा एवं पुष्टि की है कि वह राष्ट्रमंडल का पूर्ण सदस्य बना रहेगा और इसके स्वाधीन सदस्य राष्ट्रों के स्वतंत्र साहचर्य के प्रतीक के रूप में और इस प्रकार राष्ट्रमण्डल के प्रमुख के रूप में 'सम्राट' को मान्यता देता रहेगा।

राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों की सरकारें, जिनकी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के आधार में एतद्द्वारा कोई परिवर्तन नहीं आता, इस घोषणा की शर्तों के अनुसार भारत के सदस्य बने रहने को स्वीकार करती है और इसे मान्यता देती है।

तदनुसार यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका एतद्द्वारा घोषणा करते हैं कि वे राष्ट्रमण्डल के स्वाधीन और समान सदस्यों के रूप में संगठित बने रहेंगे और शांति, स्वतंत्रता और प्रगति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्बाध रूप से सहयोग करते रहेंगे।'']

इस घोषणा के अगले पैराग्राफ में बताया गया है कि भारत सरकार ने राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों की सरकारों को बता दिया है कि भारत शीघ्र ही एक प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य बनने जा रहा है और यह कि वह राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य बने रहने का इच्छुक है और 'सम्राट' को स्वतंत्र साहचर्य के प्रतीक के रूप में मानता है, इत्यादि।

तीसरे पैराग्राफ में कहा गया है कि राष्ट्रमण्डल के अन्य देश इस स्थिति को स्वीकारते हैं और चौथे पैराग्राफ के अन्त में कहा गया है कि ये सब देश राष्ट्रमण्डल के स्वाधीन और समान सदस्यों के रूप में संगठित हैं। आप देखेंगे कि इसे पहले पैराग्राफ में तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कहा गया है जबकि बाद के पैराग्राफों में केवल राष्ट्रमण्डल कहा गया है। फिर आप देखेंगे कि पहले पैराग्राफ में तो ''क्राउन'' के प्रति निष्ठा का सवाल है, जो कि इस समय है, लेकिन बाद में यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता क्योंकि एक गणराज्य बन जाने पर भारत ''क्राउन'' के अधिकार क्षेत्र से पूरे तौर पर बाहर आ जाता है। राष्ट्रमण्डल के मामले में ''सम्राट'' का जिक्र इस साहचर्य के प्रतीक के रूप में किया गया है। आप ध्यान दें कि यह जिक्र ''सम्राट'' का है, ''क्राउन'' का नहीं। यह बात तो मामूली सी है लेकिन यह कुछ महत्व रखती है। बात यह है कि जहां तक भारतीय गणराज्य का सम्बन्ध है, जहां तक इसके संविधान और इसके कार्य संचालन का सम्बन्ध है, इसका किसी विदेशी प्राधिकारी से, किसी ''सम्राट'' से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसके किसी भी नागरिक की ''सम्राट'' के प्रति या किसी अन्य विदेशी प्राधिकारी के प्रति निष्ठावान होने की कोई बात नहीं है। तथापि, वह गणराज्य किन्हीं ऐसे अन्य देशों के साथ सम्बन्ध रख सकेगा जहां राजतंत्र हो या कोई अन्य प्रशासन व्यवस्था हो। अतः इस घोषणा में कहा गया है कि यह नया भारतीय गणराज्य पूर्णतः प्रभुसत्ता सम्पन्न है और ''सम्राट'' के प्रति इसकी कोई निष्ठा नहीं है, जैसी कि राष्ट्रमंडल के अन्य देशों की है, तिस पर भी यह इस राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य होगा और वह यह मानता है कि इस स्वतंत्र भागीदारी बल्कि यों कहिये कि साहचर्य के प्रतीक के रूप में ''सम्राट'' को मान्यता देगा।

अब मैं इस घोषणा को माननीय सदन के अनुमोदन के लिए इसके समक्ष रख रहा हूं। इस अनुमोदन के अलावा, इसके अनुसार कोई कानून बनाने का कोई प्रश्न नहीं है। राष्ट्रमण्डल से परे इसके लिए कोई कानून नहीं है। इसमें कोई औपचारिकता भी नहीं है जो आमतौर पर संधियों के मामले में हुआ करती है। यह स्वेच्छा से किया गया समझौता है

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

जो स्वेच्छा से समाप्त किया जा सकता है। इसलिए अगर यह सदन इसका अनुमोदन कर देता है तो इस पर कोई विधान या कानून बनाना जरूरी नहीं होगा। इस घोषणा विशेष में ''सम्राट'' की स्थिति के बारे में कुछ अधिक नहीं कहा गया है, सिवाय इसके कि वह प्रतीक होगा, मगर यह बात पूरी तरह साफ कर दी गई है—यह पूरी तरह साफ कर दी गई थी—कि ''सम्राट'' का कदापि कोई कृत्य नहीं होगा। उसका एक दर्जा है। राष्ट्रमण्डल अपने आप में कोई निकाय नहीं है, काम करने के लिए इसका कोई संगठन नहीं है और ''सम्राट'' के भी कोई कृत्य नहीं हो सकते।

इस घोषणा के कुछ नतीजे भी निकलेंगे। इसके अलावा और कोई दायित्व नहीं होगा कि एक दूसरे के साथ मित्रता का रुख अपनाया जायेगा, आपसी सहयोग की इच्छा होगी, जो हमेशा इस बात पर निर्भर करेगी कि कोई कितना सहयोग करना चाहता है और कहां तक अपनी ही नीति पर चलना चाहता है। ऐसा कोई दायित्व नहीं है जैसे कि कोई वचनबद्धता हो। मगर एक बिल्कुल नई बात लाने की कोशिश की गई है और मैं अच्छी तरह समझ सकता हूं कि वकील लोग क्यों असुविधा सी अनुभव कर रहे हैं, ऐसा इसलिए है कि पहले का ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता और न इस जैसी बात कभी हुई है। कुछ लोग ऐसा भी महसूस कर सकते हैं कि उसके पीछे कोई ऐसी बात है जो वे पूरी तरह नहीं समझ पा रहे, इसमें कोई जोखिम है, कुछ खतरा है, क्योंकि देखने में यह बिल्कुल साधारण सी बात लगती है। लोगों के मन में इस तरह की आशंकाएं पैदा हो सकती हैं। जो बात मैंने अन्य जगहों पर कही है वही मैं यहां दोहराना चाहूंगा कि जो कुछ इस सदन के सामने रखा गया है उसके सिवाय और कुछ नहीं है।

एक या दो मामले जिनका इस घोषणा में जिक्र नहीं है मैं साफ कर देना चाहता हूं। एक यह है, जैसाकि मैंने कहा था कि ''सम्राट'' के इस सम्बन्ध में कदापि कोई कृत्य नहीं है। यह बात हमारी कार्यवाहियों के दौरान स्पष्ट कर दी गई थी और यह बात नि:सन्देह लन्दन में हुए सम्मेलन के कार्यवाही-सारांश में दर्ज है। एक अन्य बात यह है कि इस प्रकार की राष्ट्रमण्डल संस्था बनाने का एक उद्देश्य यह है कि अब एक ऐसे दर्जे की संस्था बनायी जाये तो पूरी तरह विदेशी और एक राष्ट्रीयता की होने के बीच की हो। स्पष्ट है कि राष्ट्रमण्डल के देश भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं।

भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताएं हैं। सामान्यतया या तो आपकी राष्ट्रीयता समान है या फिर आप विदेशी हैं। इन दोनों के बीच की कोई स्थिति नहीं है। अब तक इस राष्ट्रमण्डल में या ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में एक दूसरे को आपस में जोड़ने वाली एक कड़ी थी और वह थी ''सम्राट'' के प्रति निष्ठा। अतः इस कड़ी से एक तरह से मोटे तौर पर समान राष्ट्रीयता थी। जब हम गणराज्य बन जायेंगे तो वह कड़ी टूट जायेगी, समाप्त हो जायेगी। अब अगर हम इन देशों में से किसी एक देश को किसी मामले में तरजीह देना चाहें या कोई विशेषाधिकार देना चाहें तो हम साधारणतया ऐसा नहीं कर सकेंगे क्योंकि ''सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त राष्ट्र खण्ड'' नाम से कहे जाने वाले खण्ड के कारण हर देश उतना ही विदेशी होगा जितना कोई अन्य देश। अब हम उस विदेशीपन की स्थिति को समाप्त करना चाहते हैं। इस बात को अपने हाथ में रखना चाहते हैं कि हम दूसरे देश को क्या विशेषाधिकार या वरीयता, यदि कोई देना चाहें तो, दे सकते हैं। यह बात दो देशों द्वारा केवल संधि करके या कोई अन्य व्यवस्था करके तय की जायेगी, ताकि देशों के आपसी सम्बन्धों का नया आधार बने—या बनाने की कोशिश की जाये—और वह सम्बन्ध ऐसे हों कि अन्य देश, एक तरह से विदेशी होते हुए भी, पूरी तरह विदेशी न रहें। मैं यह पूरी तरह नहीं जानता कि बाद में हम इस मामले से कैसे निबटेंगे। इसका निर्णय सदन को करना होगा—अर्थात् यह अधिकार, केवल अधिकार, लेने का कि यदि हम चाहें तो राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ, कुछ वरीयताओं या विशेषाधिकारों के बारे में बात कर सकें। वे क्या हों, कैसे हों, इसका निर्णय हर मामले में हम स्वयं करेंगे। इन तथ्यों के अलावा गोपनीय रूप से या अन्यथा कोई ऐसी बात तय नहीं की गई है जो लोगों के सामने न रखी गई हो।

सदन को याद होगा कि एक बार राष्ट्रमण्डलीय नागरिकता के बारे में कुछ बात हुई थी। यह समझ पाना कठिन था कि राष्ट्रमण्डलीय नागरिकता का स्वरूप क्या हो, सिवाय इसके कि इसका मतलब वह था कि राष्ट्रमण्डल के देश एक दूसरे के लिए पूरी तरह विदेशी न रहें। यह गैर-विदेशीपन वाली बात अब भी है, मगर मैं समझता हूं कि यह अच्छा ही हुआ कि हमने ऐसी बात करनी छोड़ दी जो स्पष्ट नहीं थी, जिसकी निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती थी, मगर दूसरी बात अब भी बनी हुई है, जैसा कि मैंने अभी कहा है: वह बात यह है कि हमें यह अधिकार स्वयं लेना चाहिये कि यदि हम किसी समय चाहें तो राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ संधि या अन्य व्यवस्था कर सकें ताकि विशेषाधिकारों और वरीयताओं का परस्पर आदान-प्रदान सुनिश्चित हो सके।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

मैंने इस दस्तावेज की बातें संक्षेप में सदन के सामने रखी हैं। यह एक साधारण सा दस्तावेज है और फिर भी सदन अच्छी तरह जानता है कि यह बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज है या यों कहें कि इसमें जो उपबन्ध हैं उनका महान एवं ऐतिहासिक महत्व है। कुछ सप्ताह पूर्व मैं भारत के प्रतिनिधि के रूप में इस सम्मेलन में गया था। मैंने यहां अपने सहयोगियों से परामर्श किया था, नि:संदेह पहले किया था, क्योंकि यह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था और जब भारत के भविष्य का सवाल हो तो कोई भी आदमी इतना बड़ा नहीं है कि वह अपने आप ही इस उत्तरदायित्व को निभा सके। पिछले कई महीनों में हमने प्राय: एक दूसरे से परामर्श किया, बड़े-बड़े प्रतिनिधि संगठनों से परामर्श किया, इस सदन के कई सदस्यों से भी परामर्श किया। फिर भी जब मैं वहां गया तो मुझ पर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था और मैं उसके भार को समझता था। मुझे सलाह देने वाले योग्य साथी थे, मगर मैं एकमात्र भारत का प्रतिनिधि था और एक तरह से उस समय भारत का भविष्य मेरे हाथ में था। इस मायने में मैं अकेला था भी और नहीं भी था क्योंकि जैसे ही मैं हवाई जहाज से गया और उस सम्मेलन में जाकर बैठा तो मैं अपने बीते हुए दिनों की अनेक यादों से घिर गया और एक-एक करके उनके चित्र मेरे सामने आये, जो संतरी और रक्षक की तरह मुझ पर दृष्टि रखे हुए थे और शायद मुझसे कह रहे थे कि मैं लड़खड़ाऊं नहीं और उनको भूलूं नहीं। जैसाकि अनेक माननीय सदस्यों को भी याद होगा, मुझे उन्नीस साल पहले का वह दिन याद आया जबकि हमने आधी रात को रावी नदी के किनारे प्रतिज्ञा की थी और मुझे पहली बार 26 जनवरी के दिन की याद आई और याद आया कि किस तरह कठिनाई और रुकावट के बावजूद हम हर साल यह प्रतिज्ञा करते रहे हैं और फिर मुझे उस दिन की याद आई जब इसी जगह खड़े होकर मैंने इस सदन के सामने एक संकल्प रखा था। वह इस माननीय सदन के सामने सबसे पहले रखे गये संकल्पों में से था, वह ऐसा संकल्प था जो ''उद्देश्यों का संकल्प'' के नाम से जाना जाता है। उस बात को हुए दो साल और पांच महीने बीत चुके हैं। उस संकल्प में हमने मोटे तौर पर बताया था कि हम किस तरह की स्वतंत्र सरकार या गणराज्य अपने देश में चाहते हैं। बाद में एक अन्य जगह और एक प्रसिद्ध अवसर पर इस बारे में भी विचार किया गया और वह अवसर था कांग्रेस का जयपुर अधिवेशन, क्योंकि केवल मेरा ही नहीं बल्कि कई अन्य सहयोगियों के दिमाग इस समस्या से जूझ रहे थे और कोई ऐसा रास्ता निकालने की कोशिश में थे जो भारत के सम्मान और गरिमा और स्वाधीनता के अनुकूल हो और इसके साथ-साथ दुनियां की बदलती

परिस्थितियों के भी अनुकूल हो, कोई ऐसा रास्ता, जिससे भारत के लक्ष्य में हम आगे बढ़ सकें, आगे बढ़ने में हमें मदद मिले, कोई ऐसा रास्ता, जिससे दुनियां में शांति स्थापना के लक्ष्य में हम आगे बढ़ सकें और साथ ही वह ऐसा रास्ता हो जिससे हम अपनी प्रत्येक प्रतिज्ञा का, जो हमने ली है, ठीक-ठीक और पूरी तरह पालन कर सकें। मेरे दिमाग में यह बात साफ थी कि राष्ट्रमण्डल के साथ या किसी दूसरे ग्रुप के साथ किसी तरह का मेल-जोल रखने के चाहे कितने ही लाभ हों मगर किसी एक बड़े से बड़े लाभ के लिए हम अपनी प्रतिज्ञाओं के एक छोटे से भाग को भी छोड़ नहीं सकते, क्योंकि कोई भी देश अपने घोषित सिद्धान्तों में ढिलाई करके प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए इन महीनों के दौरान हमने इस बारे में सोचा और आपस में विचार भी किया और वह सलाह मैं साथ लेकर गया था। क्या मैं यह संकल्प पढ़कर सुनाऊं जो कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में पास किया गया था ताकि आपके दिलों में उसकी याद ताजा हो जाये? शायद आपको इसमें दिलचस्पी हो और मेरी आप से प्रार्थना है कि आप इस संकल्प के एक-एक शब्द पर ध्यान दें:

> ''पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति और भारतीय गणराज्य की स्थापना की दृष्टि से, जो स्वाधीनता का प्रतीक होगा और जिससे भारत को विश्व के राष्ट्रों में ऐसा दर्जा मिलेगा जिसका कि यह उचित अधिकारी है, यूनाइटेड किंगडम और राष्ट्रमण्डल के साथ इसके वर्तमान सम्बन्ध को आवश्यक रूप से बदलना ही होगा। परन्तु भारत अन्य देशों के साथ ऐसे सभी सम्बन्ध बनाये रखने का इच्छुक है जो इसके कार्य करने की स्वतंत्रता और स्वाधीनता के मार्ग में आड़े न आयें और कांग्रेस राष्ट्रमंडल के स्वाधीन राष्ट्रों के साथ उनके हित के लिए और विश्व शांति को बढ़ावा देने के लिए स्वतंत्र साहचर्य का स्वागत करेगी।''

आप देखेंगे कि इस संकल्प की कुछ आखिरी पंक्तियां लगभग लन्दन-घोषणा की पंक्तियों की तरह हैं।

हमने जो पहले प्रतिज्ञायें की थीं उन सभी को ध्यान में रखकर और अन्ततः इस माननीय सदन के संकल्प को ध्यान में रखकर, ''उद्देश्य संकल्प'' को और बाद में जो कुछ हुआ उसे ध्यान में रखकर तथा उस संकल्प में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने जो आदेश मुझे दिया था उसे सामने रखकर मैं वहां गया और मैं पूरी नम्रता से आप

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

से कहना चाहता हूं कि मैंने उस आदेश का अक्षरशः पालन किया है। *(तुमुल हर्ष ध्वनि)*। पिछले कई सालों के दौरान हम सब एक बहुत ही कठिन दौर से गुजरे हैं, हमने विपक्ष में अपने जीवन बिताये हैं, संघर्ष करते बिताये हैं और कभी असफलता में और कभी सफलता में बिताये हैं और हम में से अधिकतर लोगों पर बीते हुए दिनों के उन सपनों और परछाइयों का साया रहता है और जो आशाएं रही हैं और उन आशाओं के बाद अक्सर जो निराशाएं आई हैं उनका भी साया रहता है, फिर भी हमने देखा है कि उस कांटे की तरह चुभने वाली निराशा और हताशा में से भी हम अपने उद्देश्य की पूर्ति रूपी फूल को चुन सके हैं।

हम उन घटनाओं को देखकर ही स्थिति पर विचार न करें जो कि अब बीते हुए जमाने का हिस्सा बन चुकी हैं। आप कांग्रेस के संकल्प में, जो मैंने अभी पढ़कर सुनाया है, यह देखेंगे कि इसमें कहा गया है कि भारत गणराज्य बन जाता है तो राष्ट्रमण्डल के साथ इसके सम्बन्धों में परिवर्तन आना आवश्यक है। यह बात निश्चित है। इसमें आगे कहा गया है कि स्वतंत्र साहचर्य बना रह सकता है बशर्ते कि हमारी पूर्ण स्वाधीनता आश्वस्त हो। इस ''लन्दन-घोषणा'' में भी ठीक यही करने की कोशिश की गई है। मैं कहता हूं कि आप या कोई भी माननीय सदस्य बताये कि क्या भारत की स्वाधीनता, स्वतंत्रता पर कहीं भी थोड़ी-सी भी आंच आई है। मैं नहीं समझता कि आंच आई है। असल में सबसे अधिक जोर न सिर्फ भारत की स्वतंत्रता पर ही दिया गया है, बल्कि राष्ट्रमंडल के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की स्वतंत्रता पर दिया गया है।

प्रायः मुझसे सवाल किया जाता है कि हम इस राष्ट्रमण्डल में कैसे शामिल हो सकते हैं जिसमें रंगभेद की नीति चल रही है और जिसमें कुछ अन्य ऐसी बातें हो रही हैं जिन पर हम आपत्ति करते हैं? मैं समझता हूं कि यह एक अच्छा प्रश्न है और यह एक ऐसा मामला है जिससे आवश्यक रूप से हमें इस बारे में सोचने में कुछ कठिनाई आनी चाहिए। फिर भी यह एक ऐसा प्रश्न है जो वास्तव में पैदा ही नहीं होता। या यों कहिए कि जब हम किसी देश के साथ या देशों के गुट के साथ मित्रता करते हैं तो इसका यह मतलब नहीं होता कि हम उनकी दूसरी नीतियों आदि को भी स्वीकार करते हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि जो कुछ वे करें वही करने के लिए हम भी किसी तरह बंध जाते हैं। दरअसल यह सदन जानता है कि इस वक्त हम या हमारे देश के लोग विश्व के कुछ भागों में रंगभेद की नीति के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं।

यह सदन जानता है कि पिछले कुछ सालों में भारत द्वारा पहल किये जाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने एक अहम सवाल दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति का रहा है। मैं सदन की अनुमति से एक क्षण के लिए उस घटना का जिक्र करूंगा जो कल हुई अर्थात्, संयुक्त राष्ट्र महासभा में जो संकल्प कल पास किया गया उसका जिक्र करूंगा और हमारे शिष्टमण्डल ने इस मामले में जिस तरीके से काम किया उसकी अपनी ओर से और अपनी सरकार की ओर से प्रशंसा करूंगा और दक्षिण अफ्रीका को छोड़कर संयुक्त राष्ट्र के अन्य लगभग सभी देशों की प्रशंसा करुंगा जिन्होंने आखिर में भारत के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया। हमारी विदेशी नीति का एक स्तम्भ जिसका बारम्बार जिक्र किया जाता रहा है, यह है: रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष करना, दमन के शिकार लोगों की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करना। क्या राष्ट्रमण्डल में रहकर आप इस प्रश्न पर अपनी नीति का परित्याग कर रहे हैं? हम अब तक राष्ट्रमण्डल का अधिराज्य (डोमीनियन) होते हुए भी दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के प्रश्न पर और अन्य प्रश्नों पर संघर्ष करते रहे हैं। यह मामला राष्ट्रमण्डल के अधिकार क्षेत्र में लाना हमारे लिए खतरनाक बात थी, क्योंकि ऐसा करने पर वही बात हो जाती जिस पर आप और हम आपत्ति करते हैं, यानी राष्ट्रमण्डल को एक ऐसा श्रेष्ठ निकाय मान लिया जाता जो कभी-कभी एक न्यायाधिकरण या न्यायाधीश की तरह काम करता है या यों कहिए कि अपने सदस्य राष्ट्रों के क्रियाकलापों पर निगरानी रखता है। अगर हम उस सिद्धान्त को एक बार मान लेते तो निश्चय ही उससे हमारी स्वाधीनता और प्रभुसत्ता कम हो जाती। इसलिए हम राष्ट्रमण्डल को इस रूप में मानने को तैयार नहीं थे और अब भी तैयार नहीं हैं और हम इसके लिए भी तैयार नहीं हैं कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राष्ट्रों के आपसी विवाद राष्ट्रमण्डल संस्था के सामने लाये जायें। मित्रता के नाते निश्चय ही हम इस मामले पर चर्चा कर सकते हैं, वह एक अलग बात है। हम राष्ट्रमण्डल के दूसरे देशों में रहने वाले अपने देशवासियों की उचित स्थिति बनाये रखने के इच्छुक हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम उनकी अन्दरूनी नीतियों पर वहां विवाद खड़ा नहीं कर सकते और न ही हम किसी देश के बारे में यह कह सकते हैं कि हम उस देश के साथ इसलिए अपने सम्बन्ध नहीं रख सकते कि उस देश की कुछ नीतियां हम नापसन्द करते हैं।

मुझे डर है कि यदि ऐसा रुख अपना लें तो किसी अन्य देश के साथ शायद ही हमारा कोई सम्बन्ध रह जाये, क्योंकि वह देश कोई न कोई ऐसा काम करता है जो

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

हमें नापसन्द है। कभी-कभी ऐसा होता है कि मतभेद इतने बढ़ जाते हैं कि आप उस देश के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ लेते हैं या कोई बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है। कुछ वर्ष पहले संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने सदस्य राष्ट्रों से यह सिफारिश करने का फैसला किया कि वे स्पेन से अपने राजनयिक प्रतिनिधि वापस बुला लें क्योंकि स्पेन को एक फासिस्ट देश समझा जाता था। मैं इस प्रश्न के गुण-दोषों में नहीं जा रहा हूं। कभी-कभी इस तरह के प्रश्न उठ खड़े होते हैं। वही प्रश्न फिर से पैदा हुआ है और उन्होंने उस निर्णय को पूरी तरह उलट दिया है और प्रत्येक राज्य से कह दिया है कि वह जैसा चाहे करे। यदि आप इस तरह से चलते हैं तो आप कोई भी देश ले लें, चाहे वह बड़ा देश हो या छोटा, सोवियत संघ द्वारा किये जाने वाले हर काम से तो आप सहमत नहीं होते, इसलिए हम सोवियत संघ में अपना प्रतिनिधि क्यों भेजें या हम वाणिज्यिक अथवा व्यापार के मामलों में उनके साथ मैत्री-संधि क्यों करें? आप संयुक्त राज्य अमेरिका की कुछ नीतियों के साथ भले ही सहमत न हों परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आप उनके साथ संधि नहीं कर सकते। राष्ट्रों के लिए वैदेशिक कार्य करने या कोई भी कार्य करने का यह तरीका नहीं हुआ करता। मैं समझता हूं कि इस दुनिया में सबसे पहली बात जो हमें महसूस करनी चाहिए वह यह है कि विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में सोचने का तरीका अलग-अलग है, रहन-सहन का तरीका अलग-अलग है और जीवन के प्रति रवैया भी अलग-अलग है। हमारी अधिकतर कठिनाइयां तब पैदा होती हैं जब एक देश अपनी इच्छा और अपने रहन-सहन का तरीका दूसरे देशों पर लादने की कोशिश करता है। यह बात सही है कि हर देश अलग-थलग होकर नहीं रह सकता क्योंकि आज जो स्थिति विश्व की है उसमें विभिन्न देश धीरे-धीरे एक-दूसरे के नजदीक आ रहे हैं। अगर अलग-थलग रहने वाला कोई देश कोई ऐसा काम करता है जो अन्य देशों के लिए खतरनाक साबित हो तो अन्य देशों को हस्तक्षेप करना पड़ता है। एक बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण यह दिया जा सकता है कि यदि कोई देश अपने यहां ऐसा वातावरण पैदा करता है जिसमें सभी तरह की खतरनाक बीमारियां पैदा हों तो अन्य देशों को आना पड़ेगा और वहां स्वच्छता सुनिश्चित करनी पड़ेगी, क्योंकि यह कोई देश नहीं देख सकता कि वे बीमारियां विश्व भर में फैल जायें। अपनाये जाने के लिए सही सिद्धान्त यही है कि कुछ सीमाओं के अधीन रहते हुए, हर देश को अपने तरीके से अपना जीवन व्यतीत करने की छूट होनी चाहिए।

इस समय विश्व में अलग-अलग विचारधाराएं हैं और इन विचारधाराओं से बड़े-बड़े झगड़े उठ खड़े होते हैं। क्या सही है या क्या गलत है, यह हम बाद में कभी सोच सकते हैं, या यह भी हो सकता है कि सही कुछ और ही हो। या तो आप यह चाहें कि कोई बड़ा झगड़ा खड़ा हो, बड़ा युद्ध हो जिससे इस राष्ट्र की या उस राष्ट्र की विजय हो या फिर आप यह चाहें कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में शांति से रहें और अपनी विचारधारा के अनुसार अपना काम चलायें, अपना जीवन चलाएं, अपने राज्य के ढांचे को चलाएं और अन्त में तथ्यों से यह बात सिद्ध होने दें कि क्या सही है। मुझे इसमें बिल्कुल संदेह नहीं है कि अन्त में व्यवस्था ही है जिससे बात बनती है—बात बनने का अर्थ है मानव जाति की या अलग-अलग देशों के लोगों की प्रगति और बेहतरी—और यही एक स्थायी उपाय है और चाहे जितने सिद्धान्तों को माना जाये और चाहे जितना युद्ध लड़ा जाये उससे ऐसी व्यवस्था बनी नहीं रह सकती जिससे उक्त उद्देश्यों की पूर्ति न होती हो। मैंने इसका जिक्र इसलिए किया कि यह तर्क दिया गया था कि भारत राष्ट्रमण्डल में कैसे शामिल हो सकता है जबकि यह राष्ट्रमण्डल के कुछ देशों की कुछ नीतियों से सहमत नहीं है। मैं समझता हूं कि हमें इन दो मामलों को एक दूसरे से पूरी तरह अलग रखना चाहिए।

यह बात स्पष्ट है कि हम राष्ट्रमण्डल में शामिल इसलिए होते हैं कि हम समझते हैं कि यह हमारे लिए हितकारी है और क्योंकि संसार में कुछ ऐसे उद्देश्य हैं जिन्हें हम प्राप्त करना चाहते हैं। राष्ट्रमण्डल के अन्य देश इस कारण यह चाहते हैं कि हम उसमें बने रहें क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा होना उनके हित में है। यह बात परस्पर समझी गई है कि ऐसा राष्ट्रमण्डल के राष्ट्रों के हित में है और इसीलिए वे इसमें शामिल होते हैं। साथ ही, यह बात पूरी तरह स्पष्ट कर दी जाती है कि प्रत्येक देश अपने मार्ग पर चलने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है, यह हो सकता है कि कभी वे इस मार्ग पर इतने आगे चलें कि राष्ट्रमण्डल से अपने सम्बन्ध ही तोड़ लें। आज के संसार में जहां गड़बड़ फैलाने वाले बहुत से तत्व काम कर रहे हैं, जहां हम अक्सर युद्ध के कगार पर पहुंच जाते हैं, मैं समझता हूं कि अगर कोई संस्था बनी हुई है तो उसे तोड़ देने की बात करना सुरक्षा वाली बात नहीं है। इसके बुरे पहलुओं को तोड़कर अलग फैंकिये, जो बात आप की प्रगति में बाधा बनती है उसे तोड़ दीजिये क्योंकि कोई भी ऐसी किसी बात से सहमत नहीं हो सकता जो राष्ट्र के मार्ग में बाधा पैदा करती हो। अन्यथा, किसी संस्था को अहितकर बातों को अलग करने के अलावा, उस सहकारी संस्था को तोड़ देने के बजाय इसे चलते रहते देना बेहतर है जिससे इस विश्व का हित हो।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

यह घोषणा जो आपके सामने है कोई नई बात नहीं है फिर भी यह उस चीज का पूर्णतया नया रूप है जोकि एक बिल्कुल अलग रूप में मौजूद रही है। मान लीजिये हम इंग्लैंड से पूरी तरह अलग हो जाते और फिर हम राष्ट्रमण्डल में शामिल होने की इच्छा करते तो उस स्थिति में यह एक नयी बात होती। मान लीजिये कि राष्ट्रों का एक नया ग्रुप चाहे कि हम उसमें शामिल हो जायें और इस तरह हम उसमें शामिल हो जाते हैं तो वह एक नयी बात होती जिसके अनेक परिणाम होते। परन्तु इस समय हो यह रहा है कि एक संस्था काफी समय से बनी हुई है। लगभग एक वर्ष और आठ या नौ महीने पहले, 15 अगस्त, 1947 से, उस संस्था के मार्ग में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। अब एक अन्य बड़ा परिवर्तन लाने का विचार हो रहा है। धीरे-धीरे धारणा बदल रही है। इसके बावजूद एक निश्चित कड़ी है जो अलग रूप में बनी हुई है। अब राजनीतिक दृष्टि से हम पूरी तरह स्वतंत्र हैं। आर्थिक दृष्टि से हम उतने ही स्वतंत्र हैं जितने कि स्वतंत्र राष्ट्र हो सकते हैं। कोई भी राष्ट्र इन अर्थों में शत-प्रतिशत स्वतंत्र नहीं हो सकता कि वह एक दूसरे पर बिल्कुल ही निर्भर न हो, परन्तु जो भी हो, भारत को अपने व्यापार के लिए, अपने वाणिज्य के लिए और अपनी आवश्यकता की कई तरह की वस्तुओं के लिए और दुर्भाग्यवश आज अपने अनाज के लिए और कई अन्य बातों के लिए विश्व के अन्य राष्ट्रों पर निर्भर रहना होगा। हम विश्व के अन्य देशों से पूरी तरह अलग-थलग होकर नहीं रह सकते। सदन इस बात को जानता है कि पिछली एक शताब्दी से अधिक समय में इंग्लैंड और इस देश के बीच सभी तरह के सम्पर्क रहे हैं, उनमें से अनेक खराब थे, बहुत ही खराब थे और हमने जीवन भर उन्हें समाप्त करने के लिए संघर्ष किया है। उनमें से कई इतने खराब नहीं थे, कई अच्छे भी हो सकते हैं और अनेक अच्छे हों या खराब, जो भी हैं, इस समय हैं। इन सम्पर्कों का पेटेंट उदाहरण मैं हूं जो इस माननीय सदन में मैं अंग्रेजी भाषा में बोल रहा हूं। निःसंदेह हम अपने प्रयोग के लिए उस भाषा को बदलने वाले हैं परन्तु सच्चाई यही है कि मैं अंग्रेजी भाषा में बोल रहा हूं और यह भी सच है कि ज्यादातर सदस्य जो बोलेंगे वे भी इसी भाषा में बोलेंगे। सच यही है कि हम कुछ नियमों और विनियमों के अनुसार यहां काम कर रहे हैं जिनका आदर्श ब्रिटिश संविधान रहा है। अधिकांश वर्तमान कानून उन्हीं के द्वारा बनाये गये हैं। अतः हमने आवश्यक रूप से इन्हें विकसित किया है। धीरे-धीरे जो कानून अच्छे हैं उन्हें हम रखेंगे और जो हमारे लिए खराब हैं उन्हें हम हटा देंगे। इस मामले में बिना कोई वैकल्पिक व्यवस्था किये एकदम से कोई परिवर्तन लाने से एक रिक्ति-सी पैदा हो जाती है

जो हानिकर हो सकती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था काफी हद तक उनसे प्रभावित हुई है। हमारी सैनिक व्यवस्था उनसे प्रभावित हुई है और यह कुदरती बात है कि हमारी ब्रिटिश सेना जैसी स्थिति में पोषण हुआ है। मैं सदन के सामने कुछ पूर्णतया व्यावहारिक विचार रख रहा हूं। यदि हम पूरी तरह सम्बन्ध तोड़ लेते हैं तो परिणाम यह होगा कि किसी अन्य तरीके से काम चलाते रहने के लिए पर्याप्त व्यवस्था किये बिना एक अन्तराल की अवधि आ जायेगी, नि:सन्देह यदि हम इसका मूल्य चुकाने के लिए तैयार हों तो हम यह रास्ता चुन सकते हैं। यदि हम मूल्य चुकाना नहीं चाहते तो हमें नहीं चुकाना चाहिए और परिणामों का सामना करना चाहिए।

मगर मौजूदा मामले में हमें केवल इन छोटे-मोटे फायदों को ही नहीं देखना है, जो मैंने आपको बतायें हैं, जो हमें और अन्य लोगों को हो सकते हैं, बल्कि हमें विश्व की समस्याओं के प्रति व्यापक दृष्टिकोण से भी देखना है। जब मैं लन्दन में अन्य सरकारों के प्रतिनिधियों के साथ विचार कर रहा था तो मैंने महसूस किया कि मुझे पूरी तरह से भारतीय गणराज्य की प्रभुसत्ता और स्वाधीनता पर ही टिके रहना होगा। मैं किसी भी विदेशी ताकत के प्रति किसी प्रकार की वफादारी के मामले में कदापि कोई समझौता नहीं कर सकता था। मैंने वैसा ही किया। मैंने यह भी महसूस किया कि विश्व के मौजूदा हालात में और भारत और एशिया की मौजूदा स्थिति में यदि हम वहां मित्रता की भावना से इस प्रश्न को देखते हैं तो बेहतर होगा और इससे एशिया में और अन्य जगह समस्याएं हल हो जायेंगी। मैं मानता हूं कि मुझमें सही सौदा करने की योग्यता नहीं है। मैं बाजार के तौर-तरीकों से अनभिज्ञ हूं। तथापि, मैं समझता हूं कि मैं एक अच्छा लड़ने वाला हूं और यह भी समझता हूं कि मैं एक अच्छा मित्र हूं। मैं इन दोनों के बीच की स्थिति में नहीं हूं और इसलिए यदि आपको किसी चीज के लिए कड़ी सौदेबाजी करनी हो तो आप मुझे न भेजें। जब आप लड़ना चाहते हों तो मैं समझता हूं कि मैं अवश्य लडूंगा और फिर जब आप किसी बात का फैसला कर लेते हैं तब आपको उसी पर अटल रहना चाहिए और उस पर जान तक की बाजी लगा देनी चाहिए, परन्तु जहां तक अन्य छोटी-मोटी बातों का सवाल है, मैं समझता हूं कि दूसरे पक्ष की सद्भावना प्राप्त करना कहीं बेहतर है। दुर्भावना से यहां-वहां छोटा-मोटा फायदा उठाने की बजाय यह कहीं बेहतर है कि मित्रता और सद्भावना से कोई निर्णय कर लिया जाये। मैंने इस समस्या को इसी दृष्टिकोण से देखा और मैं यह भी बता दूं कि अन्य लोगों के बारे में मैंने क्या महसूस किया। मैं ब्रिटेन के प्रधानमंत्री की और वहां उपस्थित अन्य प्रतिनिधियों की भी सराहना

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

करना चाहूंगा क्योंकि उन्होंने भी इस समस्या को इसी भावना से देखा, न कि एक दूसरे को बातों में नीचा दिखाना चाहा या इस घोषणा में यहां वहां कोई शब्द बदलना चाहा। यह हो सकता था कि यदि मैं पूरी कोशिश करता तो इस घोषणा में इधर-उधर कोई शब्द बदलवाने में सफल हो जाता, मगर घोषणा का सार नहीं बदला जा सकता था, क्योंकि हमारे लिये और कोई ऐसी बात नहीं थी जिसे हम उस घोषणा से प्राप्त कर सकते हों। मैंने ऐसा करना बेहतर नहीं समझा क्योंकि मैं एक धारणा पैदा करना चाहता था, और मैं समझता हूं कि ऐसी धारणा पैदा करना सही था, कि इन समस्याओं और विश्व की अन्य समस्याओं के प्रति भारत का दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं है। भारत का दृष्टिकोण स्वयं अपनी शक्ति में और अपने भविष्य में आस्था और विश्वास पर आधारित है और इसलिए वह उस आस्था के मार्ग में आने वाले किसी देश से डरता नहीं है, वह किसी दस्तावेज में किसी शब्द या वाक्यांश से डरता नहीं है। परन्तु ऐसा इसी दृष्टिकोण के आधार पर होता है कि यदि आप किसी अन्य देश के साथ मित्र भाव से, सद्भावना से और विशाल हृदय से पेश आयें तो आपको वैसा ही प्रत्युत्तर मिलेगा और शायद आपको उससे कुछ अधिक ही मिलेगा जितना कि आप दे रहे हों। मुझे पूरा विश्वास है कि राष्ट्रों के बीच एक दूसरे के साथ बर्ताव करते समय जैसाकि व्यक्तियों के मामले में होता है, आपको सद्भावना के बदले में सद्भावना ही मिलती है और चाहे कितना ही कपट और चालाकी हो, बुरे रास्ते पर चलने से आपको अच्छे परिणाम नहीं मिल सकते। इसलिए मैंने सोचा कि यह एक ऐसा अवसर है जबकि न केवल इंग्लैंड को बल्कि अन्य देशों को भी, वास्तव में किसी सीमा तक विश्व को, प्रभावित किया जा सकता है, क्योंकि यह मामला जिस पर लन्दन में 10 डाउनिंग स्ट्रीट में विचार किया जा रहा था, ऐसा था, जिसने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित कर रखा था। इसने विश्व का ध्यान अंशतः इसलिए आकर्षित कर रखा था कि भारत एक बहुत महत्वपूर्ण देश है, सम्भावित रूप से और वास्तविक रूप से भी और विश्व यह देखना चाहता था कि यह इतनी पेचीदा और कठिन समस्या, जिसका कोई समाधान दिखाई नहीं देता था, कैसे हल होती है। यदि हम यह समस्या प्रसिद्ध वकीलों पर छोड़ देते तो यह हल नहीं हो सकती थी। वकील जीवन में उपयोगी होते हैं, परन्तु प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भूमिका नहीं होनी चाहिए। यह समस्या इन अतिवादी, संकीर्ण राष्ट्रवादियों द्वारा भी हल नहीं की जा सकती थी जो न तो अपने दायें देख सकते हैं और न बायें ही, परन्तु जो अपनी संकीर्ण भावनाओं के क्षेत्र में ही रहते हैं और इस कारण भूल जाते हैं कि विश्व आगे बढ़ रहा है। यह समस्या उन लोगों द्वारा

भी हल नहीं की जा सकती थी जो बीते हुए जमाने में ही रहते हैं और यह महसूस नहीं कर सकते कि मौजूदा जमाना बीते हुए जमाने से अलग है और आने वाला जमाना और भी ज्यादा अलग होगा। यह समस्या कोई ऐसा व्यक्ति हल नहीं कर सकता था जिसका भारत में और भारत के भाग्य में विश्वास न हो।

मैं चाहता था कि विश्व के देश यह देखें कि ऐसा नहीं है कि भारत का अपने पर विश्वास न हो और यह कि भारत उनके साथ भी सहयोग करने को तैयार है जिनसे वह पहले कभी लड़ता रहा है, बशर्ते कि आज सहयोग का आधार सम्मानजनक हो, वह आधार स्वतंत्र हो, यह एक ऐसा आधार हो जिसके नतीजे केवल हमारे लिए ही नहीं बल्कि विश्व के लिए भी अच्छे हों। यानि हम केवल इस कारण ही किसी से सहयोग करने से इंकार नहीं करेंगे कि उससे पहले कभी हमारी लड़ाई हुई थी और इस तरह हम अपने पिछले ''कर्मों'' का बोझ अपने ऊपर उठाये हुए हैं। हमें बीते हुए समय को उसकी सभी बुराइयों के साथ भूल जाना है। यदि मैं पूरी नम्रता से कहूं तो मैं चाहता था कि विश्व के देश मुद्दों को कुछ भिन्न दृष्टिकोण से देख सकें या यह देखने का प्रयत्न कर सकें कि अब महत्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति क्या रूप अपनाया जा सकता है और उन्हें कैसे निपटाया जा सकता है। हमने अक्सर देखा है कि विश्व की विधान सभाओं में होने वाले तर्क-वितर्कों में कटुता का रुख होता है, एक दूसरे को बुरा भला कहने की बात होती है, एक दूसरे की बात को बिल्कुल न समझने की इच्छा रहती है, बल्कि यों कहिये कि जानबूझकर गलत समझने की और चालाकी भरी बातें कहने की इच्छा रहती है। हो सकता है कि हममें से किसी के लिए समय-समय पर चालाकी भरी बातें कहना और अपने लोगों से या कुछ अन्य लोगों से उसके लिए वाह-वाही लेना संतोष की बात हो। मगर आज के विश्व के माहौल में जब हम विनाशकारी युद्धों के कगार पर खड़े हैं, जब राष्ट्रीय भावनाएं भड़की हुई हैं और जब अचानक बोले गये शब्द से भी भारी अन्तर पड़ सकता है, किसी जिम्मेदार आदमी के लिए ऐसा करना गलत बात है।

कुछ लोगों का विचार है कि राष्ट्रमण्डल में शामिल होकर या इसका सदस्य बने रहकर हम एशिया में अपने पड़ोसी देशों से दूर हो रहे हैं या हमारे लिए दूसरे देशों के साथ, विश्व के बड़े-बड़े देशों के साथ, सहयोग करना ज्यादा मुश्किल हो गया है।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

मगर मैं समझता हूं कि राष्ट्रमण्डल से बाहर रहने के बजाय इसमें रहकर हमारे लिए दूसरे देशों के साथ निकट के सम्बन्ध बढ़ाना अधिक आसान है। कहने में यह बात कुछ अजीब सी लगती है। फिर भी मैं ऐसा कहता हूं और मैंने इस बारे में काफी सोच विचार किया है। राष्ट्रमण्डल दूसरे देशों से हमारे सहयोग और मित्रता के मार्ग में आड़े नहीं आता। अन्ततः हमें ही निर्णय करना होगा और अन्ततः वह निर्णय हमारी अपनी शक्ति पर ही निर्भर करेगा। यदि हम राष्ट्रमण्डल से पूरी तरह अलग हो जायें तो इस समय हम पूरी तरह अलग-थलग पड़ जायेंगे। पूरी तरह अलग-थलग हम रह नहीं सकते और इसलिए परिस्थितियों से विवश होकर हमें किसी न किसी दिशा में झुकाव रखना होगा। मगर किसी न किसी दिशा में वह झुकाव अनिवार्यतः आदान-प्रदान की बात होगी। उसका स्वरूप मैत्री का हो सकता है, कुछ देने का और बदले में कुछ लेने का हो सकता है। दूसरे शब्दों में उससे वचनबद्धता हो सकती है जो मौजूदा स्थिति से कहीं अधिक हो। इस समय कोई वचनबद्धता नहीं है। मेरा कहना है कि इस तरह हम दूसरे देशों के साथ मित्रता स्थापित करने और यदि आप चाहें तो, दूसरे देशों के बीच परस्पर समझ-बूझ के लिए एक पुल का काम करने के लिए आज अधिक स्वतंत्र हैं। मैं इसे बहुत अधिक महत्व भी नहीं देना चाहता, फिर भी इसे बहुत कम महत्व देना भी ठीक नहीं है।

मैं चाहता हूं कि आप अपने आस-पास के आज के विश्व को देखें और विशेष रूप से पिछले दो वर्षों की स्थिति पर दृष्टि डालें और देखें कि विश्व के देशों में भारत की सापेक्ष स्थिति क्या है। मैं समझता हूं कि आप पायेंगे कि इन दो वर्षों में या इससे कुछ कम समय में, प्रभाव में और प्रतिष्ठा में, भारत का स्थान अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक ऊंचा हुआ है। मेरे लिए यह सही-सही बता पाना कुछ कठिन है कि भारत ने क्या किया है या क्या नहीं किया है। किसी के लिए भी यह आशा करना बेतुकी बात होगी कि भारत विश्व में सभी उद्देश्यों के लिए जिहाद छेड़े और उन उद्देश्यों को प्राप्त कर ले। जिन मामलों में सफलता मिली है उनके बारे में भी ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। मगर एक सच्चाई जिसकी कोई घोषणा करना आवश्यक नहीं है, यह है कि इस समय विश्व के मामलों में भारत की प्रतिष्ठा और प्रभाव है। इस बात को देखते हुए कि लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व ही भारत स्वतंत्र राष्ट्र बना है, भारत ने आज जो भूमिका निभाई है, वह आश्चर्यजनक है।

एक बात मैं कहना चाहूंगा और वह यह है। यह जाहिर है कि इस तरह की घोषणा या संकल्प में जो मैंने सदन के सामने रखा है, संशोधन की गुंजाइश नहीं होती। यह या तो स्वीकार किया जाता है या अस्वीकार किया जाता है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि कुछ माननीय सदस्यों ने संशोधनों की सूचनाएं दी हैं। किसी विदेशी शक्ति के साथ कोई संधि या तो स्वीकार की जाती है या अस्वीकार की जाती है। यह आठ या नौ देशों की संयुक्त घोषणा है और इसमें इस सदन में या किसी अन्य सदन में संशोधन नहीं किया जा सकता। इसे स्वीकार किया जा सकता है या अस्वीकार किया जा सकता है। अत: मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप इसके सभी पहलुओं पर विचार करें। सबसे पहले आप यह देखें कि क्या यह हमारी पुरानी प्रतिज्ञाओं के अनुरूप है और यह कि इससे कोई प्रतिज्ञा भंग तो नहीं होती। यदि मुझे यह सिद्ध करके दिखा दिया जाये कि इससे कोई प्रतिज्ञा भंग होती है जो हमने ले रखी है, कि इससे भारत की स्वाधीनता पर किसी तरह का अंकुश लगता है तो निश्चय ही मैं इसका पक्षधर नहीं रहूंगा। दूसरे, आपको देखना चाहिए कि क्या इससे हमारा और विश्व के बाकी देशों को भला होता है। मैं समझता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इससे हमारी भलाई होगी, कि इस समय राष्ट्रमण्डल में बने रहना हमारे लिए हितकारी होगा और विस्तृत अर्थों में, विश्व के कुछ उद्देश्यों के लिए भी, जिनका हम प्रतिनिधित्व करते हैं, यह लाभदायक होगा और अन्त में, मैं कहना चाहूंगा कि यह समझौता न करना निश्चय ही विश्व के इन उद्देश्यों के लिए और हमारे लिए भी हानिकारी होता।

अन्तिम बात यह है कि इस सदन को इस घोषणा को और जो चर्चाएं वहां पर हुईं जिनके परिणामस्वरूप यह घोषणा हुई, उनको कितना महत्व देना चाहिए। यह एक तरीका है, एक अभीष्ट तरीका है और एक ऐसा तरीका है जो रोगी के लिए औषधि बनकर आता है। इस संसार के लिए, जो आज बीमार है और जिसके दस वर्ष के या इससे भी पुराने कई घाव भरे नहीं है, यह आवश्यक है कि हम इसकी समस्याओं पर विचार करें, भावुक होकर और द्वेष से नहीं और जो बीत चुका है उसे बार-बार दोहरा कर नहीं, बल्कि मित्रता की भावना से और राहत पहुंचाने की भावना से विचार करें। मैं समझता हूं इस घोषणा का और इससे पहले जो कुछ हुआ उसका मुख्य महत्व यह है कि कुछ देशों के साथ हमारे सम्बन्धों में इससे सुधार हुआ। हम किसी भी तरह उनके अधीन नहीं हैं और वे भी किसी भी तरह हमारे अधीन नहीं है। हम अपने रास्ते पर चलेंगे

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

और वे अपने रास्ते पर। मगर हमारे रास्ते मित्रता के रास्ते होंगे बशर्ते कि कोई प्रतिकूल बात न हो जाये, बहरहाल एक दूसरे को समझने, एक दूसरे के साथ मित्रता रखने और एक दूसरे के साथ सहयोग करने के प्रयत्न किये जायेंगे। और यह बात कि हमने राहत पहुंचाने वाले इस तरह के नए सम्बन्ध कायम करने शुरू किये हैं हमारे लिए अच्छी होगी, उनके लिए अच्छी होगी और मैं समझता हूं कि सारे विश्व के लिए अच्छी होगी। (*हर्षध्वनि*)

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रान्त : जनरल): महोदय, मैं इस प्रस्ताव में निम्नलिखित संशोधन पेश करता हूं:

''(1) That in the motion, *for the words* 'do hereby ratify' the words has carefully considered *be substituted*:

(2) That the following be added at the end of the motion:

''and is of opinion that membership of the Commonwealth is incompatible with India's new status of a Sovereign Independent Republic. Besides, the terms of membership are derogatory to India's dignity and her new status, and as such are bound to circumscribe and limit her freedom of action in international affairs and tie her down to the chariot-wheel of Anglo-American power bloc. India with a population 350 millions out of a total population of about 500 millions of the whole of the Commonwealth cannot accept the King of England as the Head of the Commonwealth in any shape or form. Also, India cannot become the member of a Commonwealth, many members of which still regard Indians as an inferior race and enforce colour bar against them and deny them even the most elementary rights of citizenship. The recent anti-Indian riots in South Africa, the assertion of the all-White policy in Australia and the execution of Ganapathy and the refusal to commute the death sentence on Sambasivan in Malaya in spite of the representations of the Indian Government clearly show that India cannot derive any advantage from the membership of the Commonwealth and the Britain and the other members of the Commonwealth cannot give up their Imperialist and racial policies.

Considering all these facts and also considering the fact that the Congress Party, which is in a absolute majority in the Constituent Assembly and in other provincial legislatures in the country, has had the complete independence of India with the severance of the British connection as its declared goal at the time of the last general elections, any new relationship in contravention of that policy with the British Commonwealth can only be properly decided by the new Parliament of the Indian Republic, which will be elected under the new constitution on the basis of adult suffrage.

This Assembly, therefore, resolves that the question of India's membership of the Commonwealth be deferred until the new Parliament is elected and the wishes of the people of the country clearly as certained. This Assembly calls upon the Prime Minister of India to inform the Prime Minister of Great Britain and other members of the Commonwealth accordingly.''

(1) कि प्रस्ताव में ''..... यह सभा ..... अनुसमर्थन करती है'' *शब्दों के स्थान पर* ''..... इस सभा ने ..... पर ध्यानपूर्वक विचार किया है'' *शब्द रखे जायें*।

(2) कि प्रस्ताव के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

''और इस सभा का मत है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सर्वसत्ता प्राप्त स्वतंत्र गणराज्य के रूप में भारत की नई स्थिति के अनुकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त सदस्यता की शर्तें भारत की प्रतिष्ठा और उसकी नई स्थिति के लिए अपमानजनक हैं और इसलिए वे अवश्यमेव अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसकी कार्य स्वतंत्रता को सीमित तथा कम कर देंगी और उसे आंग्ल-अमरीकी गुट रूपी रथ के पहिये से बांध देंगी। भारत, जिसकी जनसंख्या समस्त राष्ट्रमण्डल की 50 करोड़ जनसंख्या में से 35 करोड़ है, इंग्लैंड के सम्राट को किसी रूप में अथवा शक्ल में राष्ट्रमण्डल का प्रधान स्वीकार नहीं कर सकता। और भारत उस राष्ट्रमण्डल का सदस्य भी नहीं बन सकता जिसके कई सदस्य अब भी भारतीयों को नीची प्रजाति समझते हैं और उसके विरुद्ध रंगभेद बरतते हैं और उन्हें नागरिकता के समस्त मूल अधिकारों से वंचित किये हुए हैं। दक्षिणी अफ्रीका में अर्वाचीन भारत विरोधी उत्पात, आस्ट्रेलिया में सर्वश्वेत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

नीति और मलाया में भारत सरकार के विरोध के होते हुए भी गणपति को फांसी देना और साम्बशिवम् के मृत्युदण्ड को कम न करना स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि भारत राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से कोई लाभ नहीं उठा सकता और यह भी सिद्ध करते हैं कि ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य अपनी साम्राज्यवादी और प्रजातीय नीतियों को छोड़ नहीं सकते।

इन सब बातों पर विचार करके और इस बात पर भी विचार करके कि कांग्रेस दल ने, जिसे विधान-परिषद् में और देश के अन्य भारतीय विधानमण्डलों में पूर्ण बहुमत प्राप्त है, सामान्य निर्वाचनों के समय भारत की पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश सम्बन्धों के विच्छेद को अपना घोषित उद्देश्य रखा था, उस नीति के विपरीत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से कोई नया सम्बन्ध यथोचित रूप से भारतीय गणराज्य की नई संसद द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है, जो नये विधान के अंतर्गत व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्मित होगी।

अत: परिषद यह निश्चय करती है कि राष्ट्रमण्डल में भारत की सदस्यता के प्रश्न को तब तक स्थगित कर दिया जाये जब तक कि कोई नई संसद निर्मित नहीं होती और देश की जनता की इच्छायें स्पष्टत: नहीं जानी जातीं। यह परिषद् भारत के प्रधानमंत्री को आदेश देती है कि वे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों को तदनुसार सूचना दें।''

महोदय, मैंने अपने नेता प्रधानमंत्री का ऐतिहासिक भाषण बड़े ध्यान से सुना है। उन्होंने स्वयं कहा है कि यह एक ऐतिहासिक अवसर है और जिस घोषणा का वह चाहते हैं कि हम अनुसमर्थन करें वह भी एक ऐतिहासिक घोषणा है। हाल ही के विगत समय में ऐसे बहुत अवसर नहीं आये हैं जब हमें ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में निर्णय करने के लिये कहा गया हो; सम्भवतया ऐसा ही हाल ही का अवसर वह था जब देश को भारत के विभाजन के प्रश्न के विषय में निर्णय लेना पड़ा। उस प्रश्न पर इस सभा ने विचार नहीं किया था वरन् अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने उस बारे में निर्णय किया था। हम जानते हैं कि उस अवसर पर जो निर्णय किया गया उसके परिणाम बहुत अच्छे नहीं रहे हैं। मैं विभाजन की योजना के अत्यन्त तीव्र विरोधियों में से एक था। आज भी

मुझे, इस लंदन घोषणा पर, जिस पर मेरे नेता पहले से सहमत हो चुके हैं और जिसका अनुसमर्थन वह चाहते हैं कि हम करें, उनसे अपनी असहमति व्यक्त करनी है।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): महोदय, एक व्यवस्था का प्रश्न है। मैं जानना चाहूंगा कि इस बात को देखते हुए कि इस संशोधन का स्वरूप नकारात्मक है, क्या यह संशोधन नियमानुकूल है?

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने स्वयं कहा है कि यह ''लगभग नकारात्मक'' है, ''नकारात्मक'' नहीं, इसीलिए मैंने इसकी अनुमति दे दी है।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** महोदय, मैं अंतर्राष्ट्रीय संधियों के बारे में आप का विनिर्णय चाहूंगा कि जब मौजूदा सरकार ने इस तरह की संधि कर ली है तो क्या ऐसा संशोधन लाना उचित होगा। मैं तो यही समझता हूं कि कोई संधि या तो स्वीकार की जा सकती है या अस्वीकार की जा सकती है, किसी संधि में संशोधन नहीं किया जा सकता।

***अध्यक्ष:** यहां हम नियमों के अनुसार कार्य करते हैं और मुझे यह देखना है कि क्या नियमों के अन्तर्गत यह संशोधन ठीक है। उसका संधि पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह मैं नहीं जानता, परन्तु मैं समझता हूं कि नियमों के अन्तर्गत यह संशोधन ठीक है और इसलिए मैंने इसके लिए अनुमति दी है। नि:संदेह, सदन यदि यह समझता है कि इसे पास नहीं किया जाना चाहिए तो वह इसे अस्वीकार कर सकता है।

***श्री जेड.एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): क्या मैं जान सकता हूं कि क्या इस घोषणा का अनुसमर्थन करना संविधान बनाने वाली इस सभा के क्षेत्राधिकार में है?

***अध्यक्ष:** जी हां, मैं समझता हूं कि है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं इस सभा से न तो इस घोषणा को स्वीकार करने के लिए कह रहा हूं और न ही इसे अस्वीकार करने के लिए। मैं तो केवल यह कह रहा हूं कि जब तक देश इस महत्वपूर्ण मामले पर अपना निर्णय नहीं दे देता तब तक के लिए इस पर विचार स्थगित कर दिया जाये। प्रधानमंत्री ने अभी स्वयं कहा है कि

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

जब वह लन्दन में अकेले इस घोषणा पर वार्ता कर रहे थे तो उन्होंने अपने कन्धों पर भारी जिम्मेदारी का बोझ महसूस किया, परन्तु इस भावना से उन्हें एक बोझ उठाने में सहायता मिली कि वहां जाने से पूर्व उन्होंने यहां अपने सहयोगियों से परामर्श किया था। मैं समझता हूं कि यह घोषणा उन चुनावी प्रतिज्ञाओं का उल्लंघन है जो कांग्रेस पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र में की गई थीं और जिनके आधार पर इस सदन के अधिकांश सदस्य चुने गये थे और इस कारण यह सदन इस घोषणा का अनुसमर्थन करने के लिए सक्षम नहीं है। मेरे संशोधन में वही कुछ है जिसकी शिक्षा मेरे नेता प्रधानमंत्री ने जीवन भर हमें दी है। मैं 19 मार्च, 1937 को दिल्ली में हुए अखिल भारतीय सम्मेलन में उनके द्वारा दिये गये भाषण में से उद्धृत करूंगा जहां कांग्रेस टिकट पर चुने गये सभी विधायक एकत्रित हुए थे और जहां उन्होंने हमें चुनाव घोषणा-पत्र की याद दिलाई थी। तब उन्होंने कहा था:

> ''मैं चाहूंगा कि वे उस चुनाव घोषणा-पत्र को और कांग्रेस के उन संकल्पों को याद रखें जिनके आधार पर उन्होंने लोगों के मताधिकार की मांग की थी। यह बात हम में से कोई न भूले कि हम विधान मण्डलों में इसलिए नहीं आये हैं कि हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ किसी भी तरह सहयोग करें बल्कि इसलिए आये हैं कि हम संघर्ष करें और इस अधिनियम को समाप्त करें जो हमें गुलाम बनाता है और हम पर बन्धन लगाता है। हम में से कोई भी यह न भूले कि हम स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं।
>
> यह स्वाधीनता क्या है? एक स्पष्ट, निश्चित, गूंजता हुआ शब्द जिसे दुनियां के सभी लोग समझते हैं, जिसमें संदिग्धता की कोई सम्भावना नहीं है और फिर भी हमारा दुर्भाग्य है कि इस शब्द के भी मतलब निकाले गये हैं और गलत मतलब निकाले गये हैं। आइये इसे हम स्पष्ट करें। स्वाधीनता का अर्थ है पूरी तरह से राष्ट्रीय स्वतंत्रता, इसका अर्थ है, जैसाकि हमारी प्रतिज्ञा में कहा गया है, ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध तोड़ लेना। इसका अर्थ है साम्राज्यवाद का विरोध और साम्राज्यवाद के साथ कोई समझौता न करना। शब्द हम पर फेंके जाते हैं–अधिराज्य (डोमिनियन) का दर्जा, वैस्टमिन्स्टर का कानून, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और हम उन के अर्थ जानने के लिए बाल की खाल निकालते रहते हैं। मुझे कहीं भी वास्तविक राष्ट्रमण्डल दिखाई नहीं देता, मैं तो केवल यह देखता हूं कि एक साम्राज्य है जो भारत के

लोगों का शोषण कर रहा है और जो दुनियां के विभिन्न भागों में अनेक अन्य लोगों का शोषण कर रहा है। मैं चाहता हूं कि एशिया और अफ्रीका में शोषण के इस इतने बड़े यंत्र के साथ हमारे देश का कोई सरोकार न रहे। यदि यह यंत्र नहीं रहेगा तो हमारे दिल में इंग्लैंड के लिए सद्भावना ही सद्भावना रह जायेगी और हर हालत में हम ब्रिटिश जनसाधारण के साथ मित्रता चाहते हैं।

''अधिराज्य का दर्जा'' (डोमिनियन स्टेट्स) ऐसा नाम है जो विचित्र परिस्थितियों में इस्तेमाल में आया और समय के साथ-साथ इसके महत्व में तब्दीली होती गयी। ब्रिटिश राष्ट्रों के ग्रुप में इसका अर्थ था एक यूरोपीय प्रभुत्व वाला ग्रुप जो अपने अधीनस्थ विभिन्न देशों का शोषण करता था। उस यूरोपीय प्रभुत्व वाले ग्रुप के सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों में वैस्टमिन्स्टर कानून द्वारा चाहे जो भी तब्दीली आयी हो परन्तु इसका वह स्वरूप अभी भी कायम है। वह ग्रुप ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिनिधित्व करता है और आज विश्व में यह उन्हीं प्रतिक्रियावादी ताकतों का प्रतीक है जिनके विरुद्ध हम संघर्ष कर रहे हैं। अतः हम इस व्यवस्था और इन ताकतों के साथ स्वेच्छा से सम्बन्ध कैसे रख सकते हैं? या फिर क्या यह धारणा है कि समय के साथ-साथ यदि हम अपना व्यवहार ठीक रखते हैं तो अधीनस्थ ग्रुप से हमारी पदोन्नति प्रभुत्व वाले ग्रुप में हो सकती है और इस पर भी यह साम्राज्यवादी ढांचा और इस सबका आधार लगभग वैसा ही रहेगा जैसा अब है? यह एक निरर्थक धारणा है जिसका वास्तविकता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि सम्भव हो भी तो भी हमें इसका भागी नहीं बनना चाहिए, क्योंकि तब हम साम्राज्यवाद में और अन्यों के शोषण में भागीदार बन जाते हैं और इन अन्यों में अधिकांश लोग शायद हमारे अपने लोग ही होंगे।

यह कहा जाता है और मेरा विश्वास है कि गांधी जी का यह विचार है, कि यदि हम राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते हैं तो इसका अर्थ होगा ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही समाप्त हो जायेगा। इन परिस्थितियों में कोई कारण नहीं है कि हम ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध क्यों न बनाये रखें। इस तर्क में बल है क्योंकि हमारी लड़ाई ब्रिटेन के साथ या ब्रिटेन के लोगों के साथ नहीं है बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ है। परन्तु जब हम इस तरह से सोचते हैं तो एक विशाल और भिन्न

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

विश्व हमारी नजर में आता है और अधिराज्य का दर्जा (डोमिनियन स्टेट्स) और वैस्टमिन्स्टर कानून वर्तमान में न रहकर इतिहास का अंग बन जाते हैं। उस वृहत् जगत में ब्रिटिश राष्ट्र ग्रुप का कोई स्थान नहीं है, बल्कि वहां राजनीतिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता पर आधारित विश्व ग्रुप का स्थान है।''

***अध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य सारा भाषण पढ़कर सुनायेंगे?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** जी नहीं, केवल एक और पैरा पढ़कर सुनाऊंगा।

''अत: अधिराज्य के दर्जे (डोमिनियन स्टेट्स) की उसके व्यापक महत्व की दृष्टि से जिसमें अलग होने का अधिकार भी शामिल है, बात करने का अर्थ है स्वयं को एक ग्रुप के दायरे में सीमित करना जो आवश्यक रूप से अन्य ग्रुपों का विरोध करेगा और अन्य ग्रुप उसका विरोध करेंगे और जो निश्चित रूप से धीरे-धीरे समाप्त हो रही मौजूदा सामाजिक व्यवस्था पर आधारित होगा। इसलिए हम किसी भी शक्ल या सूरत में इस अधिराज्य के दर्जे की बात को स्वीकार नहीं कर सकते, हम स्वतंत्रता चाहते हैं, न कि कोई विशेष दर्जा। इस वाक्यांश की आड़ में, साम्राज्यवाद के हाथ फैलेंगे और हमें अपने शिकंजे में रखेंगे, चाहे इसका बाहरी रूप देखने में कितना ही अच्छा क्यों न हो।

और इसलिए हमारी प्रतिज्ञा कायम रहेगी और हमें ब्रिटेन से अपने सम्बन्ध तोड़ने के लिए परिश्रम करना ही होगा। मगर हम एक बार फिर दोहरा दें कि हम अलग-थलग रहने की या आक्रामक राष्ट्रवाद की, जैसाकि मध्य यूरोपीय देशों में आज इस शब्द को समझा जाता है, किसी नीति के हामी नहीं हैं। हमें आशा है कि हम इंग्लैंड समेत, यदि वह अपनी साम्राज्यवाद की नीति छोड़ देता है तो सभी प्रगतिशील देशों के साथ निकटतम सम्बन्ध रखेंगे।''

यह उन्होंने 1937 में कहा था। अब मैं 10 अगस्त, 1940 की घोषणा में से एक छोटा सा पैराग्राफ उद्धृत करूंगा। पंडित जी ने ''द पार्टिंग आफ द वेज़'' शीर्षक से एक

लम्बा लेख लिखा था जिसका यह अन्तिम भाग है। उन्होंने कहा था:

> ''भारत का लक्ष्य यह है—एक संगठित, स्वतंत्र, लोकतांत्रिक देश जो अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों के विश्व संघ के नजदीकी तौर पर जुड़ा हो। हम स्वतंत्रता तो चाहते हैं, मगर पुरानी तरह की संकुचित, एकान्तिक स्वतंत्रता नहीं। हमारा विश्वास है कि अब अलग-अलग, आपस में लड़ने वाले राज्यों के दिन बीत गये हैं।''

हम स्वतंत्रता चाहते हैं, अधिराज्य (डोमिनियन) का या अन्य कोई दर्जा नहीं। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति जानता है कि अधिराज्य के दर्जे की सारी धारणा इतिहास का हिस्सा बन चुकी है, इसका कोई भविष्य नहीं है। इस युद्ध के बाद यह धारणा बनी नहीं रह सकती, चाहे इस युद्ध का नतीजा कुछ भी हो। मगर यह रहे या न रहे, हम इसे नहीं चाहते। हम राष्ट्रों के किसी ऐसे ग्रुप में बंधकर नहीं रहना चाहते जिसने हम को दबा कर रखा है और हमारा शोषण किया है; हम उस साम्राज्य में नहीं रहेंगे जिसके कुछ हिस्सों में हमारे साथ गुलामों का सा व्यवहार किया जाता है और जहां रंगभेद का बोलबाला है। हम लन्दन नगर के वित्तीय प्रभुत्व से छुटकारा पाना चाहते हैं। हम बिना किसी सीमा के पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहते हैं, सिवाय इसके कि हम चाहें तो अन्य देशों से मिल कर किसी राष्ट्र संघ में या किसी नई विश्व व्यवस्था में शामिल हो सकते हैं। अगर कोई ऐसी विश्व व्यवस्था या राष्ट्र संघ निकट भविष्य में नहीं बनता तो हम अपने पड़ोसी देशों, जैसे चीन, बर्मा, लंका, अफगानिस्तान, फारस के साथ एक संघ बनाकर उनसे निकट से सम्बन्ध रखना चाहेंगे। हम जोखिम लेने के लिए तैयार हैं और खतरों का सामना करने के लिए भी। हम ब्रिटिश थल सेना या नौसेना का तथाकथित संरक्षण नहीं चाहते। हम अपने लिए परिवर्तन स्वयं लायेंगे।

> ''यदि इतिहास साक्षी न होता तो वर्तमान हमें इस अन्तिम फैसले पर पहुंचने के लिए मजबूर कर देता। क्योंकि वर्तमान युद्ध और खतरे में भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथों हमारे लोगों के साथ किये जाने वाले व्यवहार में कोई तब्दीली नहीं आई है। जो लोग इस साम्राज्यवाद का पक्ष और संरक्षण चाहते हैं। वे इसके पास जायें हम अपने रास्ते जायेंगे। अब समय आ गया है कि हमारे रास्ते अलग-अलग हों।''

महोदय, एक ऐसे संकल्प का विरोध करना बहुत ही गम्भीर बात है जो स्वयं पंडित जी जैसे महान नेता ने पेश किया हो, परन्तु मैंने महसूस किया है कि यह ऐसा अवसर है जबकि मुझे वह अवश्य कहना चाहिए जो मैं महसूस करता हूं। मैं अपने दिल

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

की गहराइयों से महसूस करता हूं कि हम एक गलती कर रहे हैं और वह गलती उतनी ही बड़ी है जो देश के बटवारे को स्वीकार करते हुए माउंटबैटन योजना को स्वीकार करते समय की गई थी। इतिहास में ऐसे अवसर आते हैं जब लोगों को परिणामों पर ध्यान दिये बिना वह अवश्य कह देना चाहिए जो वे महसूस करते हों। मैं समझता हूं कि यह संशोधन जो मैंने आपके सामने रखा है इस पर शांति एवं धैर्य से विचार किया जाना चाहिए।

महोदय, जब से हमारे नेता ने 27 अप्रैल को इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये तब से जो भी भाषण उन्होंने पार्टी की बैठकों में दिये हैं और सार्वजनिक सभाओं में दिये हैं वे सब मैंने ध्यान से सुने हैं और जो भी उनकी वार्ता रेडियों से प्रसारित हुई है यह भी मैंने ध्यान से सुनी है और उनका अध्ययन किया है। मैंने वे सब टिप्पणियां भी पढ़ी हैं जो इस घोषणा पर समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। सरदार जी के इस पर जो विचार हैं वे भी मैंने पढ़े हैं। मैंने बड़ी गम्भीरता से सोचा है कि क्या इससे हमें अपने देश के लिए कुछ लाभ हो रहा है, परन्तु मैं समझता हूं कि इससे होने वाली हानियों की अपेक्षा लाभ इतना कम हो रहा है कि घोषणा का अनुसमर्थन करना घातक सिद्ध होगा।

हमारे नेता ने अभी-अभी हमें बताया है कि मेरे जैसे आलोचक बीते जमाने में रह रहे हैं, कि वे वर्तमान में नहीं रह रहे हैं और यह कि वे आने वाले समय को नहीं देख सकते। यह आरोप उन्होंने कुछ उन नेताओं पर लगाया जिनका हम और वह भी बड़ा सम्मान करते हैं और मैंने इस पर बड़े धैर्य से विचार किया है। मैंने वही अंश उद्धृत करने का प्रयास किया है जो विगत काल से सम्बन्ध रखते हैं और वर्तमान के लिए वे सही नहीं है। परन्तु मैं समझता हूं कि उनसे ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है जो बदलते नहीं हैं और मैं यह भी समझता हूं कि वर्तमान में कोई तबदीली नहीं आई है। जैसे ही प्रधानमंत्री ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये उसी समय मलाया के मजदूर संघों के बहादुर भारतीय नेता गणपति को फांसी दे दी गई और आज जब हम इस संकल्प को पास करने जा रहे हैं तो मलाया में एक अन्य बहादुर भारतीय साम्बशिवम् को या तो आज सुबह फांसी पर चढ़ा दिया होगा या फिर शायद आज किसी भी समय फांसी पर चढ़ा दिया जायेगा। मैं समझता हूं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने ही रास्ते पर चल

रहा है और वह अपने रास्ते से हटेगा नहीं, भले ही हम उसे फुसलाने की या जीतने की कितनी ही कोशिश क्यों न करें। उसका अपना उद्देश्य है। मुझे आश्चर्य होता है कि हमारे प्रधानमंत्री, जिनके आदर्शवाद के लिए विश्व भर के लोग उनका सम्मान करते हैं, कभी-कभी इन साधारण बातों को भूल जाते हैं। आप देखें कि दक्षिण अफ्रीका में क्या हो रहा है जहां भारतीय लोगों का शत्रु के समान पीछा किया जाता है। हम विगत काल को तो भूल सकते हैं परन्तु क्या हम वर्तमान से भी अपनी आंखें मूंद सकते हैं? यह सही है कि बड़े-बड़े मामलों के विषय में निर्णय लेते समय हमें भावनाओं को आड़े नहीं आने देना चाहिए। और यद्यपि सारा देश भावनात्मक रूप से इस घोषणा का अनुसमर्थन किये जाने के विरुद्ध है, तथापि अब मैं इसे इन ठोस लाभों की दृष्टि से देखूंगा जिनके बारे में हमें बताया जा रहा है कि वे इससे हमें प्राप्त होंगे। जहां तक मेरा अपना सवाल है, मुझे इससे कोई लाभ होता दिखाई नहीं देता। मान लीजिये हम राष्ट्रमण्डल से अपने सम्बन्ध तोड़ लेते हैं, मान लीजिये हम कहते हैं कि हम स्वतंत्र गणराज्य हैं और एक गणराज्य का राजतंत्र से कदापि मेल नहीं होता, तब क्या होगा? हो सकता है कि आरम्भ में कुछ कठिनाइयां हों, परन्तु क्या हमने यह प्रतिज्ञा नहीं की है कि स्वतंत्रता की आनुषंगिक सभी कठिनाइयों का हम सामना करेंगे और उन पर विजय पायेंगे? अतः इन अस्थायी कठिनाइयों पर काबू पाना होगा। परन्तु हमारे महान राष्ट्र को इंग्लैंड जैसे छोटे से देश के साथ सदा के लिए कदापि बंधे नहीं रहना चाहिए। महोदय, मैं समझता हूं कि जब भारत राष्ट्रमण्डल के साथ अपने सम्बन्ध तोड़ लेगा तो उसे विश्व में वह सम्मान मिलने लगेगा जिसका कि कोई पूर्णतया स्वतंत्र राष्ट्र पात्र है और जब संसार यह जानेगा कि भारत वास्तव में किसी गुट से जुड़ा हुआ नहीं है तो विश्व में उसके प्रति विश्वास की भावना पैदा होगी। राष्ट्रमण्डल के साथ अपने आपको जोड़कर निश्चय ही हम एक शक्ति गुट में शामिल हो जायेंगे। हम इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते। हम आंग्ल-अमरीकी शक्ति गुट में शामिल हो रहे हैं। हम कोई भी ऐसा निर्णय नहीं ले सकते जो इस शक्ति गुट के निर्णय के विरुद्ध हो।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या माननीय सदस्य को यह ज्ञात है कि राष्ट्रमण्डल के सदस्यों में भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर मतभेद हो जाते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं अच्छी तरह जानता हूं कि उनमें मतभेद हो जाते हैं, परन्तु वे मतभेद अनावश्यक बातों पर ही होते हैं। परन्तु मेरा कहना यह है कि राष्ट्रमण्डल में शामिल होकर हमें बड़े-बड़े प्रश्नों पर उनका साथ ही देना पड़ेगा। हम तब तक उनका विरोध नहीं कर सकते जब तक कि हम उनसे सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहते हों। अत: राष्ट्रमण्डल में रहकर हमें उनके पीछे चलना पड़ेगा और उस सीमा तक हमारी स्वतंत्रता सीमित हो जायेगी। सोवियत संघ पहले ही समझता है कि हम आंग्ल-अमरीकी शक्ति गुट में शामिल हो गये हैं। मास्को के सोमवार के ''प्रावदा'' के अंक में पर्यवेक्षक एम. मारिनिन ने 30 अप्रैल को लिखते हुए घोषणा की है कि ''संवैधानिक रूपों में चाहे कितने ही परिवर्तन कर दिये जायें, एक नया सैनिक राजनीतिक आधार आरम्भ किये जाने के सिवाय, ब्रिटेन और भारत के बीच सम्बन्धों में कोई परिवर्तन नहीं आया। एक गणराज्य के रूप में भारत के इस उन्नयन का उपयोग इस गणराज्य को ''दक्षिण-पूर्वी एशिया में आंग्ल-अमरीकी शक्ति'' के रूप में बदलने हेतु ब्रिटिश और भारतीय नेताओं के बीच एक नया सौदा करने के लिए किया जा रहा है। ''ब्रिटिश पर्यवेक्षक समझते हैं कि भारत 'एशिया की कुंजी है' जो वर्तमान शीत युद्ध में पूर्वी मोर्चा है'' और स्वाभाविक है कि संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन इस कुंजी को हथियाना चाहते हैं। इसी प्रयोजन से वे ऋणों द्वारा और स्पष्ट धमकी देकर आर्थिक दबाव डाल रहे हैं।

> ''लन्दन-सम्मेलन का मूल उद्देश्य लेबर सरकार की यह इच्छा है कि डोमिनियनों को दूरगामी सैनिक दायित्वों की एक नयी कड़ी में बांधा जाये और उन्हें आंग्ल-अमरीकी गुट की आक्रामक नीति व्यवस्था में शामिल किया जाये और इस प्रकार उन अपकेन्द्री शक्तियों के कार्य को कमजोर करने का प्रयास किया जाये जो अब ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट कर रही हैं।''

महोदय, साम्यवादी चीन ने भी घोषणा की है कि इस घोषणा पर हस्ताक्षर करके हमारा देश आंग्ल-अमरीकी शक्ति गुट में शामिल हो गया है। हमने सदैव आशा की थी और कल्पना की थी कि भारत और चीन मिलकर काम करेंगे। वह आशा अब छिन्न-भिन्न हो गई है। हिन्द-चीन, श्याम, मलाया और बर्मा पहले से ही साम्यवाद के प्रभाव में हैं। तो फिर भारत द्वारा एशिया का नेतृत्व करने की बात का क्या हुआ? एशिया का एक-तिहाई भाग सोवियत संघ का हिस्सा है। एशिया के अन्य एक-तिहाई भाग में चीन देश है और वह साम्यवाद को ग्रहण कर रहा है। एशिया के शेष एक-तिहाई भाग में भारत और पाकिस्तान हैं और कुछ मध्य पूर्व के देश हैं जो अभी साम्यवाद के बहाव से अछूते हैं। राष्ट्रमण्डल

में शामिल होकर, भारत एशिया के इस अधिकांश भाग का, जो साम्यवाद के प्रभाव में है, शत्रु बन जायेगा। अतः राष्ट्रमण्डल का सदस्य बन जाने पर हमारे द्वारा एशिया के नेतृत्व की सम्भावना भी समाप्त हो जायेगी। यदि हम राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं और सही अर्थों में असम्बद्ध होकर रहते हैं तो रूस और साम्यवादी प्रभाव वाले अन्य देश भी हमारा सम्मान करेंगे और फिर आंग्ल-अमरीकी गुट के देश भी हमारी मित्रता चाहेंगे।

राष्ट्रमण्डल में शामिल होने से हम विश्व के सभी देशों के साथ सौदा करने की अपनी शक्ति खो देंगे। कठिन संघर्ष से प्राप्त हमारी स्वतंत्रता बिक जायेगी और उसके बदले में हमें तनिक सा भी लाभ नहीं होगा। वास्तव में रूस के विरुद्ध अपनी लड़ाई में भारत आंग्ल-अमरीकी साम्राज्यवाद का अन्तिम गढ़ बन जायेगा। अब तक चीन पूर्व में सोवियत प्रभाव का सीमान्त रहा है और क्योमिनतांग के पीछे साम्यवाद से लड़ने वाले अमरीकी बलों की युद्ध भूमि रहा है। अब चीन अमरीका के हाथ से निकल गया है। अतः नयी युद्ध भूमि बनाने के लिए भारत सबसे अधिक उपयुक्त है जहां से आंग्ल-अमरीकी बल साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव से लड़ सकते हैं। अतः राष्ट्रमण्डल में शामिल होकर हम रूस के विरुद्ध आंग्ल-अमरीका की ओर से तीसरे महायुद्ध में शामिल हो रहे हैं। इसी कारण मैं इस प्रस्ताव का इतना घोर विरोध कर रहा हूं और चाहता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

महोदय, मैं आचार्य नरेन्द्र देव के इस विचार से सहमत हूं कि रूस युद्ध नहीं चाहता और यदि हम कह देते हैं कि इस राष्ट्रमण्डल में शामिल नहीं होंगे तो विश्व शांति को बढ़ावा देने और विश्व शांति बनाये रखने के लिए हम कहीं अधिक बेहतर स्थिति में होंगे। मैंने वही कहा है जो मैं ईमानदारी से महसूस करता हूं। मैं समझता हूं कि यदि मैं ऐसा नहीं कहता तो मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया होता। 26 जनवरी, 1931 से मैं स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा करता रहा हूं—हमारे नेता ने उसका उल्लेख किया है—और उस प्रतिज्ञा में कहा गया है कि इस ब्रिटिश साम्राज्य ने आर्थिक दृष्टि से, राजनीतिक दृष्टि से और आध्यात्मिक दृष्टि से भारत का नाश कर दिया है और इसलिए हमारी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध तोड़ना नितान्त आवश्यक है। अतः मैं समझता हूं कि ऐसा व्यक्ति होने के नाते जिसने यह प्रतिज्ञा ली है मैं साफ हृदय से इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकता इसलिए मैं चाहता हूं कि मेरा यह संशोधन स्वीकार किया जाये

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

और इस प्रश्न पर निर्णय स्थगित कर दिया जाये और देश से इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए कहा जाये।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा प्रस्ताव केवल यही है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत किए गए संकल्प में निम्नलिखित जोड़ दिया जाए:

> ''Provided the Commonwealth does not allow discrimination of Indians in South Africa and Australia and also metes out equal justice to all the component units of Commonwealth in social and economic matters.''
>
> ['' परन्तु यह कि राष्ट्रमण्डल दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में भारतीयों के साथ भेदभाव न बरते जाने दे तथा सामाजिक एवं आर्थिक मामलों में राष्ट्रमण्डल के सभी सदस्य देशों के साथ समान रूप से न्याय करे।'']

यह प्रस्ताव पेश करते हुए मैं पहले ही कुछ आशंका महसूस कर रहा हूं, क्योंकि पंडित नेहरू ने अभी-अभी हमें बताया है कि जिस बात पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में निर्णय हो चुका है उसमें परिवर्तन करना उचित नहीं होगा। अत: मैं उनका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि मैंने जो परन्तुक प्रस्तुत किया है, उससे अन्तर्राष्ट्रीय निर्णय के अर्थ में कोई तब्दीली नहीं आती। परन्तु मैं इस परन्तुक को इसलिए जोड़ना चाहता हूं ताकि वे संदेह दूर हो सकें जोकि हमारे मस्तिष्क में पैदा हो चुके हैं।

सर्वप्रथम मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस सोसाइटी से मैं सम्बन्धित हूं अर्थात् सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी, उसका सदैव यह दृष्टिकोण रहा है कि भारत तथा ब्रिटेन में पारस्परिक सम्बन्धों का कारण कोई गूढ़ रहस्य है। जहां तक मेरा विचार है, मैं यह समझता हूं कि इसका कारण ईश्वरीय है तथा अध्यक्ष महोदय, इस विचार से मैं यह कहना चाहता हूं कि पहले जो उग्र स्वभाव वाले थे वे अब नरमपन्थी बन गए हैं। परन्तु पंडित नेहरू के, जो कि अभी हाल तक कठोर दृष्टिकोण वाले हुआ करते थे, विचारों में जो परिवर्तन आया है उसके बारे में मेरे तथा अनेक अन्य लोगों के मस्तिष्क में संशय है। अभी-अभी प्रस्तुत किए गए संकल्प के बारे में जब मैं सोचता हूं तो मुझे ''फूल सभा'' के नाम से पुकारे जाने वाले एक समारोह की याद आती है जो कि विवाहोत्सवों के समय मनाया

जाता है। इस ''फूल सभा'' में सभी लोग अच्छी-अच्छी चीजों के बारे में बातें करते हैं और सभी हर्षोल्लास में खो जाते हैं। मेरा विचार है कि हाल ही का राष्ट्रमण्डल सम्मेलन उस ''फूल सभा'' की भांति था। मैं चाहता हूं कि संविधान सभा पहले संविधान को पूरा कर ले और उसके पश्चात् हम डोमिनियन स्टेट्स से एक दिन के लिए बाहर निकलें और अगले दिन हम फिर इसमें शामिल हो जायें। यदि ऐसा होता है तो हम यह मान सकते हैं कि हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तथा बाद में हम अपनी इच्छा से राष्ट्रमण्डल में शामिल हो सकते हैं। हमें यह प्रतीत होता है कि हम अनजाने में उस जाल के फन्दों में फंस गए हैं जो कि अंग्रेजों ने इतनी चालाकी से तथा इतने गुप्त रूप से हमारे लिए बिछाया है। कभी-कभी इस प्रकार का सन्देह हमारे मनों में पैदा हो ही जाता है। मेरा अपना भय यह है कि ऐसा इसलिए किया गया है कि संयुक्त भारत का जो स्वरूप हमारे सामने रहा है उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाए। लार्ड कर्जन जिस समय वाइसराय थे, उस दौरान यह पहली बार हुआ जबकि बंगाल को दो खण्डों में विभाजित करने का निर्णय लिया गया। उस विभाजन के कारण वास्तविक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत हुई। इससे बहुत समय पश्चात् बर्मा हमसे अलग कर दिया गया। बर्मा जो कि हमारे देश का अभिन्न अंग था। इसके अलावा हमने स्वयं भारत का ही विभाजन उस समय देखा जबकि अंग्रेज भारत को स्वराज देने के लिए मजबूर हो गए। एक तरह से यह विभाजन इसलिए हुआ कि स्वराज के लिए हमारी तीव्र उत्सुकता का लाभ उठाया गया। देश का दो भागों में बंटवारा हो गया तथा इस विभाजन के परिणामस्वरूप लाखों लोग तबाह हुए। मेरा विचार है कि जो स्वतंत्रता हमने प्राप्त की है उसके बारे में अभी कुछ ही लोग सचेत हुए होंगे। परन्तु आम लोगों के, जिन्हें कि हम जनसमूह की संज्ञा देते हैं, जीवन को स्वतंत्रता के आगमन ने तनिक भी प्रभावित नहीं किया है।

अध्यक्ष: क्षमा करें। क्या आप संशोधन पर बोल रहे हैं अथवा किसी अन्य विषय, पर?

श्री लक्ष्मीनारायण साहू: मेरा संशोधन इस प्रकार है:

> ''Provided the Commonwealth does not allow discrimination of Indians in South Africa and Australia and also metes out equal justice to all the component units of Commonwealth in social and economic matters.''

[''परन्तु यह कि राष्ट्रमण्डल दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में भारतीयों के साथ

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

भेदभाव न बरते जाने दे तथा सामाजिक एवं आर्थिक मामलों में राष्ट्रमण्डल के सभी देशों के साथ समान रूप से न्याय करें।'']

अध्यक्षः यह मुझे मालूम है।

श्री लक्ष्मीनारायण साहूः मैं चाहता हूं न्याय समान रूप से हो। जब हम राष्ट्रमण्डल में रहते हैं, तो मैं अवश्य यह कहूंगा कि हमें समान न्याय मिलना चाहिए। यदि हमें समान न्याय नहीं मिलता तो ''फूल सभा'' में रहने का क्या लाभ है? फूल सभा विवाहों के दौरान आयोजित होती है तथा लोग पान चबाते हैं और आनन्द लेते हैं। यह कहा गया है कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् हमें बहुत सम्मान मिला है, परन्तु मुझे समझ में नहीं आता कि किस प्रकार हमें बहुत सम्मान मिला है। मैं नहीं चाहता कि हम औरों से ऊंचे बन जाएं तथा अन्य लोग नीचे की ओर जाएं, परन्तु मैं इतना अवश्य चाहता हूं कि हमारे साथ बराबर का न्याय होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, हमें कोई भी लाभ मिलने वाला नहीं है। हमें अफ्रीका में नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं है, हम भूमि नहीं खरीद सकते, वहां वर्ण भेद विद्यमान है। पाकिस्तान भी, जोकि कुछ दिनों पहले तक हमारे साथ था, बल्कि हमारा ही था, राष्ट्रमण्डल में शामिल हो गया है। हम जानते हैं कि कश्मीर के मामले में हमारे साथ कैसा व्यवहार किया गया है। हमें मालूम है कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल हुए परन्तु उससे हमें कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह एक बहुत बड़ा संगठन है। राष्ट्रमण्डल तुलनात्मक रूप में एक छोटा संगठन है। यदि हमें इससे कुछ लाभ प्राप्त होता है तो मैं कह सकता हूं कि हमें स्वतंत्रता मिली है। मैं केवल यही चाहता हूं कि हम राष्ट्रमण्डल में रहें तो हम यह मांग अवश्य करें कि हमारे साथ कहीं भी किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो। जब राष्ट्रमण्डल में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जोकि दक्षिण अफ्रीका को ठीक व्यवहार करने के लिए विवश कर सके तो मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि हम राष्ट्रमण्डल में रहें। हमें ऐसी व्यवस्था कायम करने का प्रयास करना चाहिए और यह बात वहां बार-बार उठानी चाहिए, अन्यथा इससे कोई भी लाभ नहीं होगा।

अध्यक्ष महोदय, समय की कमी के कारण मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता, परन्तु मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या हम राष्ट्रमण्डल में इसलिए शामिल हुए हैं क्योंकि इंग्लैंड ऐसा चाहता था अथवा इसलिए कि हमारी यह इच्छा थी। मेरे विचार में इंग्लैंड ऐसा बहुत

समय से चाहता था तथा वर्ष 1944 से मि. चर्चिल भी ऐसा ही चाहते थे। 1994 में उन्होंने अपने भाषण में कहा था:

> ''विमान परिवहन के बड़े पैमाने पर विकास के मेल-मिलाप के नए सम्बन्ध पैदा हुए हैं तथा आपस में मिलने के लिए नई सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं और जब युद्ध समाप्त हो जाएगा तथा वायु सेवा की सुविधा को विनाश के अत्यन्त भयावह स्वरूप से शान्ति की महिमा की ओर मोड़ा जाएगा तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की परिषदों की एकता इतनी मजबूत हो जाएगी जितनी कि पहले कभी सम्भव नहीं थी।
>
> जब शान्ति पुनः स्थापित होगी और हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह शीघ्र हो, तो हम आशा करते हैं कि डोमिनियनों के, जिनमें कि हमारा विश्वास है भारत की संगणना होगी और जिसके साथ कि उपनिवेशों (कालोनीज) को भी सम्बद्ध किया जाएगा, प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन बारम्बार हुआ करेंगे और प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से आनन्दोत्सवों के रूप में हमारे जीवन का अंग बनेंगे।''

मैं यह चाहूंगा कि वर्षानुवर्ष आनन्दोत्सवों के रूप में हमारे जीवन का अंग बनने के बजाए ये सम्मेलन हमारे लिए कुछ लाभदायक सिद्ध हों और हमें अपने उचित अधिकार मिलें। जब तक कि हम ऐसा वातावरण पैदा नहीं कर लेते, राष्ट्रमण्डल में रहने अथवा इससे बाहर रहने में कोई अन्तर नहीं होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि हम रूस के आगमन से भयभीत हैं। अब तक तो हम यही कहते रहते हैं कि हम संयुक्त राष्ट्र संघ के किसी गुट में शामिल नहीं होंगे और इस प्रश्न को लेकर हमने भावपूर्ण चर्चाएं की हैं, परन्तु आज ऐसा निर्णय लिया गया प्रतीत होता है कि हम रूस के विरुद्ध हैं तथा आंग्ल-अमरीकी गुट के पक्ष में हैं। इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। जो भी हो, मैं न तो रूस का समर्थक हूं और न आंग्ल-अमरीकी गुट का ही समर्थक हूं। मैं चाहता हूं कि हमारे देश के साथ अन्य देशों जैसा व्यवहार हो, परन्तु अंग्रेजों की नीति से हमें पाकिस्तान देना पड़ा, हमने लंका तक भी खो दी, जो कि हमारे पास श्री रामचन्द्र के युग से थी और हमने बर्मा भी खो दिया। यही मेरा संशोधन है और इसमें कही गई बात को प्राप्त करने के लिए मैंने इसे प्रस्तुत किया है। मैं और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता परन्तु मैं यह चाहता हूं कि हमारे प्रधानमंत्री यह बात निश्चय ही ध्यान में रखें कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

में भाग लेने वाला हमारा प्रतिनिधि आनन्दोत्सवों तथा प्रीति-भोजों के बहकावे में न आ जाए, अपितु वह हमारे देश का सम्मान बढ़ाने का प्रयत्न करे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, संशोधनों की दूसरी अनुपूरक सूची के संदर्भ में मैं, संशोधन संख्या 1, 2 तथा 3 प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं। जहां तक संशोधन संख्या 4 का सम्बन्ध है, मैंने देखा है कि श्री साहू का संशोधन इसी प्रकार का है। अत: मैं यह संशोधन भी प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं, परन्तु अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से इस प्रस्ताव पर बोलना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** क्योंकि और संशोधन नहीं है, अत: श्री कामत चर्चा जारी रख सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में मैं माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू को बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने गत एक महीने के दौरान या यूं कहिए कि गत एक वर्ष या उससे अधिक के दौरान अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का इस सीमा तक विस्तार किया जिसके परिणामस्वरूप कि लन्दन निर्णय ने वास्तविक रूप लिया तथा वह प्रकाश में आया। इस सम्मेलन में उनकी सफलताओं का उल्लेख तथा उनकी आलोचना विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न तरीकों से की गई है। मेरे विचार में इस उपलब्धि की सच्चाई अथवा गुणवत्ता उन दोनों उल्लेखों के बीच है जो कि एक ओर तो सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा किया गया है, अर्थात् कि यह लगभग व्यक्तिगत सफलता है तथा दूसरी ओर कांग्रेस अध्यक्ष डा. पट्टाभि सीतारमय्या द्वारा किया गया है कि इसमें कुछ भी नई बात नहीं है। इस सफलता की सच्चाई अथवा वास्तविकता लन्दन सम्मेलन के बारे में इन दो मतों अथवा दृष्टिकोणों के कहीं बीच में है।

इस प्रस्ताव में जिस घोषणा का उल्लेख किया गया है, उसके तीन ठोस पहलू हैं। प्रथम, यदि हम पैरा 1 को तथा बाद वाले पैराग्राफों को देखें तो पता चलता है कि पैरा 1 में राष्ट्रमण्डल का उल्लेख ''ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल'' के रूप में किया गया है। बाद में इसका उल्लेख केवल ''राष्ट्रमण्डल'' के रूप में ही किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस लन्दन-निर्णय अथवा सूत्र का पहला पहलू यह है कि राष्ट्रों के समूह को दिए जाने वाले नाम से ''ब्रिटिश'' शब्द निकाल दिया गया है या उसका लोप कर दिया

गया है। दूसरे, इस सूत्र में प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य का, जो कि हम शीघ्र ही बनने जा रहे हैं, इस राष्ट्रमण्डल के साथ, जिसका प्रतीकात्मक प्रमुख सम्राट रहेगा, निरन्तर सम्बद्ध रहने अथवा उसका सदस्य बने रहने के साथ सामंजस्य स्थापित करने का निहायत बारीकी से प्रयास किया गया है, जोकि शायद किसी साधारण व्यक्ति के लिए समझना इतना सरल नहीं है।

मैं यह कहना चाहूंगा कि एक स्वतंत्र गणराज्य का राष्ट्रमण्डल के साथ, जिसका प्रमुख सम्राट है, यह सम्बन्ध राजनीतिक सिद्धान्त में एक नई घटना है। इस घोषणा का अन्तिम पहलू यह है कि यह राष्ट्रमण्डल, जिसमें कि हम पूर्ण सदस्य के रूप में शामिल हुए हैं, शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति के मार्ग पर चलने के लिए प्रयासरत रहेगा तथा सहयोग देगा। हमें इस घोषणा की इन्हीं तीन पहलुओं की पृष्ठभूमि में जांच करनी है जिनका कि मैंने अभी उल्लेख किया है। प्रथम पहलू का सम्बन्ध शीर्षक से है जो कि औपचारिक है, राष्ट्रों के इस समूह के नाम में मात्र एक परिवर्तन। परन्तु कुछ दिन पूर्व जब मैंने हाउस आफ कामन्स में 2 मई को मि. एटली द्वारा दिये गये एक प्रश्न के उत्तर को पढ़ा तो मैं क्षुब्ध रह गया। जिस कागज पर इस घोषणा का प्रारूप तैयार किया गया था और हस्ताक्षर हुए थे उसकी स्याही अभी मुश्किल से ही सूखी होगी कि इसके केवल पांच दिन बाद ही एक प्रश्न के उत्तर में मि. एटली ने कहा कि राष्ट्रों के इस समूह के नाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। हाउस आफ कामन्स के कंजर्वेटिव सदस्य मि. वाल्टर फलेचर को मि. एटली द्वारा दिए इस उत्तर को मैं आपकी अनुमति से शब्दशः उद्धृत करना चाहता हूं। इस घोषणा के संसार के सामने प्रख्यापित किये जाने के पांच या छः दिनों के पश्चात् प्रधानमंत्री मि. एटली ने एक संसदीय उत्तर में कहा:

> ''अन्य शब्दों अर्थात राष्ट्रमण्डल, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और यहां तक कि साम्राज्य का प्रयोग अपनाने अथवा न अपनाने के बारे में कोई समझौता नहीं हुआ है...''

> ''परिभाषित शब्दावली को यदि उपयोगी कहना है तो वह, कठोर अथवा अव्यावहारिक हुए बिना राष्ट्रमण्डल, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य में होने वाली घटनाओं, सांविधानिक घटनाओं, के साथ-साथ चलती है।''

उन्होंने एक बार फिर इन तीनों, अर्थात राष्ट्रमण्डल, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य का उल्लेख किया है। ''यह मामला महामहिम की सरकार (हिज मैजेस्टी गवर्नमेंट) तथा

[श्री एच.वी. कामत]

अन्य राष्ट्रमण्डल देशों के बीच परामर्श का विषय रहा है तथा अपनाने आदि के बारे में कोई समझौता नहीं हुआ है।'' यह उनके (मि. एटली) द्वारा हाउस आफ कामन्स के एक सदस्य को दिया गया उत्तर है। ''इन शब्दों में से किसी के प्रयोग किए जाने अथवा न किए जाने के लिए कोई समझौता नहीं हुआ है और न ही यूनाइटेड किंगडम में ऐसा करने अथवा न करने के बारे में कोई निर्णय हुआ है''।

मि. फ्लेचर ने आगे पूछा कि क्या इस बात को ठीक से समझा जाता है कि ''द ब्रिटिश एम्पायर'' शब्दों को सारे साम्राज्य में अनेक लोग बहुत सम्मानजनक मानते हैं तथा क्या प्रधानमंत्री (मि. एटली) यह सुनिश्चित करेंगे कि रोजमर्रा प्रयोग करने से कहीं ये शब्द विषय से परे न हो जाएं? मि. एटली ने उत्तर दिया कि ''राष्ट्रमण्डल तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न राय है तथा यह बेहतर है कि लोगों को उन्हीं शब्दों का प्रयोग करने दिया जाए जिन्हें कि वे सर्वोत्तम समझते हैं,'' जिसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने कहा कि ''राष्ट्रमण्डल'' के नाम से पुकारे जाने वाले राष्ट्रों के इस समूह के उल्लेख अथवा नाम में सरकारी तौर पर कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

जहां तक इस परिवर्तन विशेष की विषय-वस्तु, अर्थात् घोषणा में ''ब्रिटिश'' शब्द के लोप, का सम्बन्ध है, मैं इससे तनिक भी संतुष्ट नहीं हूं। क्या ''ब्रिटिश'' शब्द का लोप किए जाने पर सहमत होकर हमने राष्ट्रमण्डल में सभी जातीय नीतियों को समाप्त कर दिया है? यदि वह ऐसा राष्ट्रमण्डल बनने जा रहा है जिसके साथ कि पूर्व तथा पश्चिम, ब्रिटिश तथा भारत एवं अन्य को भी सम्बंद्ध किया जा सकता है, तो क्या हमने गारंटी दी है अथवा स्वयं को आश्वस्त कर लिया है कि सभी गैर-अश्वेत विरोधी—मैं श्वेत समर्थक अथवा ब्रिटिश समर्थक नहीं कहूंगा—नीतियों का पूर्णतः परित्याग कर दिया गया है? मैं पंडित नेहरू से यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ कि रंगभेद की नीति के विरुद्ध अथवा जातीय फासिस्टवाद के विरुद्ध हमारा संघर्ष जारी रहेगा, परन्तु अध्यक्ष महोदय, क्या मैं अत्यंत नम्रतापूर्वक यह पूछ सकता हूं कि यह मुद्दा जो कि इतना महत्वपूर्ण है, लन्दन सम्मेलन में, जहां कि मि. मलान तथा विभिन्न देशों में उनके विरोधी सदस्य उपस्थित थे, किस कारण से बिल्कुल भी नहीं उठाया गया? पंडित नेहरू अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इसका कोई कारण नहीं बताया गया कि इस सम्मेलन में इस पर आग्रह क्यों नहीं किया गया। शायद इस मुद्दे को उठाने के विरुद्ध केवल एक ही कारण बताया गया है और वह यह है कि हम अन्य मंचों से संघर्ष कर रहे हैं और यह कि इस मामले को सम्मेलन

में उठाए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मेरे विचार में इस लन्दन सम्मेलन में राष्ट्रमण्डल के देशों के भीतर चल रही जातीय नीतियों का प्रश्न उठाने तथा उस पर चर्चा करने के लिए गम्भीर प्रयास किया जाना चाहिए था, परन्तु स्थिति यह है कि ऐसा नहीं किया गया है और हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि दुनियां की घटनाओं से मार्गदर्शन प्राप्त करके अथवा इन घटनाओं से प्रेरित होकर यह राष्ट्रमण्डल जातिभेद नीतियों का, वास्तविक लोकतंत्रात्मक नीतियों के पक्ष में तथा वास्तविक गैर-जातिभेद नीति के पक्ष में, परित्याग कर देगा।

अध्यक्ष महोदय, इसके पश्चात् मैं इसके दूसरे पहलू पर आता हूं। एक प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य के रूप में हम इस राष्ट्रमण्डल के सदस्य बनने जा रहे हैं, एक पूर्ण सदस्य। केवल मात्र जो परिवर्तन हुआ है वह है विगत काल तथा वर्तमान में परिवर्तन। मैं कोई भविष्यवक्ता नहीं हूं और मेरे विचार से कोई भी नहीं कह सकता कि भविष्य में क्या होगा और इसलिए मैं केवल विगत काल तथा वर्तमान की ही बात कर रहा हूं। जहां तक इस पहलू का सम्बन्ध है मेरे विचार से विगत काल तथा वर्तमान में अब तक जो परिवर्तन हुआ है वह केवल यह है कि हम अब ''क्राउन'' में एक प्रकार से कोई निष्ठा नहीं रखते, परन्तु राष्ट्रों के इस समूह के प्रतीकात्मक प्रमुख रूप में ''सम्राट'' अभी कायम है। अध्यक्ष महोदय, अब मैं यह कहना चाहता हूं कि एक गणराज्य के रूप में हमारा अपना निजी प्रमुख होगा, राज्य संघ (फेडरेशन) का प्रमुख, भारतीय संघ (यूनियन आफ इंडिया) का प्रमुख हमारा प्रमुख होगा। मुझे इस घोषणा पर कोई आपत्ति नहीं होती यदि इसमें केवल यह ही कह दिया गया होता ''भारत सरकार ने भारत की इस इच्छा की घोषणा एवं पुष्टि की है कि वह राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य बना रहेगा और इसके स्वाधीन सदस्य राष्ट्रों के स्वतंत्र सहचर्य के प्रतीक के रूप में सम्राट को मान्यता देता रहेगा''। यदि बात यहीं समाप्त हो जाती तो मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई होती परन्तु अन्त में और इस प्रकार राष्ट्रमण्डल के प्रमुख के रूप में जोड़ना वांछनीय नहीं था। अब स्थिति क्या है? हम राष्ट्रमण्डल में हैं, एक पूर्ण सदस्य के रूप में तथा एक ऐसे राष्ट्र सदस्य के रूप में नहीं जो कि घनिष्ट सहचर्य अथवा घनिष्ट सम्बन्धों के आधार पर सम्बद्ध हैं, जैसाकि अभी हाल ही में आयरलैंड ने किया है। आयरलैंड अब सदस्य नहीं रहा है और आयरलैंड गणराज्य विधेयक प्रस्तुत करते समय मि. कास्टेलो ने जो कहा था उसे मैं, पिछले सत्र में परिषद् के सदस्यों को परिचालित किए गए ज्ञापन की प्रति से उद्धृत

[श्री एच.वी. कामत]

कर रहा हूं। माननीय पंडित नेहरू ने उस सत्र के दौरान अपने भाषण में इसका उल्लेख किया था तथा उन्होंने मि. कास्टेलो के भाषण से उद्धरण दिया था।

मि. कास्टेलो ने विधेयक प्रस्तुत करते हुए कहा था:

> ''आयरलैंड की सरकार की स्थिति यह है कि आयरलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं है, यदि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल बनाने वाले राष्ट्रों के साथ समान हितों पर आधारित परम्परागत तथा बहुत समय पहले स्थापित आर्थिक, सामाजिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों से पैदा होने वाले विशेष घनिष्ट सम्बन्धों के अस्तित्व को मान्यता देती है तथा इसकी पुष्टि करती है।''

यह वह सूत्र है जो कि आयरलैंड ने अपनाया है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य रहे बिना भारत के लिए भी ऐसा ही सूत्र क्यों नहीं तैयार किया जा सकता था और इस प्रकार जो कुछ भी इस राष्ट्रमण्डल के भीतर हो रहा है उसमें हम हालांकि प्रत्यक्ष रूप से नहीं परन्तु परोक्ष रूप से, सहयोग करते। पंडित नेहरू ने राष्ट्रमण्डल में हो रही बुरी बातों, बुराइयों, अनेक अवांछनीय, अप्रिय बातों का उल्लेख किया है। उन्होंने कहा था कि हम सब इसके बारे में चिन्तित हैं, ये बातें हम सबके लिए चिन्ता का विषय बनी हुई हैं, परन्तु हम इनका मुकाबला अन्य तरीके से करेंगे। महोदय, क्या हमारे लिए यह सम्भव नहीं था कि हम, जैसा कि आयरलैंड ने किया है, सभी प्रकार की सीमाओं एवं प्रतिबन्धों तथा राष्ट्रमण्डल के भीतर इसके सदस्य देशों द्वारा की जाने वाली विभिन्न वचनबद्धताओं के अध्यधीन राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य न बने रहते हुए विशेष निकट सम्बन्ध स्थापित करते। महोदय, इस सम्बन्ध में मैं आपके तथा सभा के ध्यान में एक महत्वपूर्ण घटना लाना चाहता हूं जो कि अक्तूबर में लन्दन में राष्ट्रमण्डल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में हुई। हमें, कम से कम प्रेस द्वारा तथा अन्य प्रकार से, यह बताया गया था कि किसी भी प्रकार की, न तो व्यक्त और न अव्यक्त, रक्षा-वचनबद्धताएं नहीं हैं। लन्दन सम्मेलन की समाप्ति पर जारी की गई विज्ञप्ति का एक महत्वपूर्ण पैराग्राफ मैं सभा के समक्ष इसके विचारार्थ रखना चाहता हूं। मैं एक अमरीकी समाचार पत्र से उद्धरण दे रहा हूं जिसने लन्दन सम्मेलन की, जिसमें पंडित नेहरू ने भी भारत के प्रधानमंत्री के रूप में भाग लिया था, समाप्ति पर 22 अक्तूबर को जारी की गई विज्ञप्ति का पूर्ण

पाठ प्रकाशित किया था। मुझे नहीं मालूम कि यह विज्ञप्ति भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी या नहीं। संगत पैराग्राफ इस प्रकार है:

> ''ब्रिटेन की सरकार ने ब्रसेल्स संधि के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की शर्तों के भीतर क्षेत्रीय साहचर्य के रूप में अन्य पश्चिमी देशों के साथ अपने सम्बन्धों की रूपरेखा प्रस्तुत की। ''इस बात पर आम सहमति'' थी–इन शब्दों, अर्थात ''इस बात पर आम सहमति'' की ओर ध्यान दें—मैं नहीं जानता कि ''आम सहमति'' का अर्थ सर्वसम्मति है अथवा हमारे प्रधानमंत्री का इस बात पर कोई मतभेद था—कि ब्रिटेन का उसके यूरोपीय प्रतिरक्षा पड़ौसी देशों के साथ यह साहचर्य राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों, संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व में शांति को बढ़ावा देने के हितों के अनुरूप है''। मुझे नहीं मालूम कि क्या आज भी यही स्थिति है, क्या हम उन वचनबद्धताओं का अनुमोदन करते हैं अथवा उनसे सहमत हैं जो कि ब्रिटेन की सरकार ने अपने यूरोपीय पड़ौसी देशों के साथ की है, क्या वे हमारे अपने हित में हैं अथवा क्या हम इनकी जिम्मेदारी लेने से बिल्कुल इन्कार करते हैं। यदि हम स्वतंत्र और ठोस विदेश नीति पर चल रहे हैं, जो कि न तो पश्चिमी गुट और न पूर्वी गुट से ही जुड़ी हुई है, तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि हम इस बात का अनुमोदन करते हैं अथवा इससे सहमत हैं कि आपका करार, यूरोपीय देशों के साथ आपकी प्रतिरक्षव वचनबद्धताएं हमारे अपने हित में भी हैं तथा इस समझौते से विश्व शांति को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि इस समझौते पर, जिसके परिणामस्वरूप कि बाद में ''एटलांटिक संधि'' हुई, कुछ अन्य यूरोपीय देशों द्वारा कठोर प्रहार किया गया है। सोवियत संघ ने तो यहां तक कह दिया कि इस एटलांटिक संधि के बारे में उनसे कोई परामर्श तक नहीं किया गया और यदि उनसे परामर्श किया गया होता तो निश्चय ही वह उसका भागीदार होता और वह भी सामूहिक विश्व शांति की गारंटी देता। उनसे परामर्श नहीं किया गया तथा यह समझौता उनके पीठ पीछे किया गया है। मेरा इरादा इस पर अपना कोई निर्णय देने का नहीं है, परन्तु सोवियत संघ की सरकार ने यह अवश्य कहा कि इस संधि का लक्ष्य उनका देश ही था क्योंकि संधि पर उसकी पीठ पीछे हस्ताक्षर हुए...

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय सदस्य से यह जानना चाहता हूं कि क्या हमने ब्रसेल्स संधि अथवा एटलांटिक संधि स्वीकार कर ली है?

श्री एच.वी. कामत: यदि मेरे माननीय मित्र ने मेरी बात ठीक से समझी होती तो मुझे विश्वास है कि वह यह बात नहीं उठाते।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** यहां कोई एटलांटिक संधि नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं एटलांटिक संधि पर नहीं बोल रहा हूं। मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि जो कुछ मैं बोल रहा हूं वह उसे ठीक से सुनें और समझें तथा ऐसा न करें कि लिखते रहें और यदा-कदा उठकर कोई टिप्पणी कर दें।

जो बात मैं कह रहा हूं वह यह है कि हम राष्ट्रमण्डल की यथास्थिति को सामान्यतया तथा विशेषकर मलाया में, दक्षिण पूर्व एशिया में तथा शायद बर्मा में एवं अफ्रीका में भी बनाए रखने के लिए किस हद तक वचनबद्ध हैं। हमने आज के समाचार पत्रों में पढ़ा है कि आने वाले दो वर्षों के भीतर ब्रिटेन ट्रिपोलिटानिया को इटली की ट्रस्टीशिप में अन्तरित कर देगा। उन्नीसवीं शताब्दी की पुरानी मानसिकता तथा पुराना दृष्टिकोण अभी भी बना हुआ है। वे एक देश को दूसरे देश में इस प्रकार अन्तरित कर देते हैं जैसे कि यह कोई चल सम्पत्ति हो, जैसे कि इन देशों के लोगों का इससे कोई सम्बन्ध न हो। आज भी अंग्रेजों की यही नीति है। एशिया के अधिकांश भागों में उपनिवेशवाद अत्यधिक फैला हुआ है, साम्राज्यवाद अत्यधिक फैला हुआ है। क्या हम भी इसमें योगदान कर रहे हैं? क्या हम इस में एक पार्टी बनने जा रहे हैं, यदि सुस्पष्ट रूप से नहीं तो उपलक्षित रूप से, यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से? क्या राष्ट्रमण्डल में जातिवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद जो कुछ भी चल रहा है उस सब में हम एक पार्टी बनने जा रहे हैं? क्योंकि एटली ने कहा है: ''यदि आप चाहें तो हम इसे साम्राज्य की संज्ञा देते हैं, यह एक साम्राज्य है, चाहे यह राष्ट्रमण्डल हो, हमने सरकारी तौर पर कोई भी परिवर्तन नहीं किया है।'' यही है वह भूमिका जो कि आज ब्रिटेन, मलाया तथा बर्मा भी अदा कर रहा है। बर्मा हमारा पड़ौसी देश है, एक अच्छा पड़ौसी देश। बर्मा के साथ हमारे सम्बन्ध काफी सौहार्दपूर्ण रहे हैं, केवल राजनैतिक सम्बन्ध ही नहीं—आखिरकार ये क्षणभंगुर तथा अस्थायी होते हैं—बल्कि गहरे आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध। बर्मा में, बर्मा के लोगों के कल्याण में तथा एक ऐसी सरकार की सुरक्षा में जो कि हमारे इस पड़ौसी देश में शांति तथा सुरक्षा सुनिश्चित करेगी रुचि रखना हमारे लिए स्वाभाविक ही है। मैं समझ सकता हूं, इसी प्रकार पाकिस्तान है, इसी प्रकार शायद लंका भी। ब्रिटेन कहता है कि उसने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, जातिवाद का परित्याग कर दिया है तो फिर ब्रिटेन इस बर्मा के मामले में रुचि किस कारण रख रहा है? मेरे विचार में, इसका एक ही उत्तर है और वह यह कि ब्रिटेन बर्मा में इसलिए रुचि रख रहा है क्योंकि बर्मा की सीमा

मलाया से लगती है। ब्रिटेन के लिये बर्मा की शांति अथवा बर्मा की सुरक्षा अथवा बर्मा की स्वतंत्रता की अपेक्षा शायद मलाया की टिन तथा रबड़ अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः जब वे देखते हैं कि बर्मा को खतरा है, बर्मा की स्थिति गिर रही है—ईश्वर करे ऐसा न हो—तब वे सचेत हो जाते हैं तथा कहते हैं, ''देखो, यदि बर्मा की स्थिति गिर जाती है, तो मलाया चला जाएगा तथा मलाया हाथ से नहीं जाना चाहिए''। यही कारण है कि आज मलाया आतंकवाद की, लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद के दमन और उत्पीड़न की नीति अपना रहा है और वहां राष्ट्रवाद के समग्र आन्दोलन का दमन किया जा रहा है। हमारे लिए यह शिकायत करने का कोई भी कारण नहीं है कि दक्षिण पूर्व एशिया में, सियाम तथा अन्य भागों में, साम्यवाद अपनी जड़ें मजबूत कर रहा है क्योंकि फ्रांसीसी, डच तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपना पुराना खेल नहीं छोड़ा है। वे अभी भी वही खेल खेल रहे हैं। अतः जब मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि ब्रिटेन, भारत, पाकिस्तान तथा लंका, सभी बर्मा की सहायता करने जा रहे हैं तो मुझे लगा कि दाल में कुछ काला है, क्योंकि मेरे विचार में ब्रिटेन के, उसके मलाया में निहित हित होने के कारण गुप्त उद्देश्य हैं तथा उसके साम्राज्यवादी भाई फ्रांस की वियतनाम में रुचि है तथा साम्राज्यवादी डच की इन्डोनेशिया में। यदि ब्रिटेन ने एशिया में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को छोड़ दिया होता, तो वह निश्चय ही मलाया के लोगों से कह सकता था कि वे अपनी सरकार बनाएं तथा वे वहां से हट सकते थे, जैसा कि उन्होंने भारत के सम्बन्ध में किया, परन्तु वे ऐसा नहीं कहते। वे कहते हैं: ''हम मलाया नहीं छोड़ेंगे'' और फ्रांसीसी कहते हैं ''हम हिन्द-चीन नहीं छोड़ेंगे'' तथा इसी तरह डच लोग कहते हैं ''हम इन्डोनेशिया में अड़े रहेंगे''। दक्षिण पूर्व एशिया में यह घटना एक अमंगलसूचक घटना है तथा जब तक कि ब्रिटेन की सरकार यह जो कुछ भी हो रहा है इस सब में एक पार्टी है—ब्रिटेन राष्ट्रमण्डल का एक सहयोगी सदस्य है—तब तक ब्रिटेन की सरकार भले ही कुछ भी कहती रहे, कि मलाया कि सरकार अपनी पसन्द के अनुसार जो चाहे निर्णय ले सकती है आदि, उसकी बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। ब्रिटेन गणपति की हत्या की जिम्मेदारी से जिसे कुछ ही दिन पूर्व फांसी दी गई है तथा एक अन्य भारतीय की जिम्मेदारी से भी, जिसे शायद आज फांसी दी जा रही है छुट्टी नहीं पा सकता। मलाया में जो कुछ भी हो रहा है उसके लिए ब्रिटेन, अपने उपनिवेश कार्यालय के माध्यम से, जिम्मेदार है। क्या हम अपने दिल पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि जब तक ब्रिटेन की सरकार मलाया में ऐसी नीति का अनुसरण करती रहेगी, जब तक आस्ट्रेलिया अपनी ''श्वेत आस्ट्रेलिया'' नीति पर

[श्री एच.वी. कामत]

इतराता रहेगा तथा जब तक दक्षिण अफ्रीका अपनी भारत विरोधी नीति पर चलता रहेगा, हम स्वतंत्र रूप से तथा स्वेच्छा से राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहेंगे, क्योंकि इस घोषणा में हमारे राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के लिये किसी प्रकार की कोई शर्तें निर्धारित नहीं की गई हैं? इसमें केवल यही कहा गया है कि भारत सरकार सदस्य बने रहने की अपनी इच्छा की घोषणा तथा पुष्टि करती है। इस निर्भीक तथा मृदु कथन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा गया है कि हम राष्ट्रमण्डल के सदस्य के रूप में बने रहेंगे, भले ही राष्ट्रमण्डल में कुछ भी होता रहे। अध्यक्ष महोदय, यह कुछ ऐसी बात है जिसे मैं पसन्द नहीं करता तथा मेरा अपना डर यह है कि ब्रिटेन इस बात के लिए उत्सुक है कि एशिया में जो दुष्कर स्थिति है भारत उसमें दखलन्दाजी न करे। ब्रिटेन की रुचि इस बात में है कि भारत उसे एशिया में यथास्थिति बनाए रखने में सहायता दे। मुझे आशा है कि हम ऐसा नहीं करेंगे, परन्तु मुझे विश्वास है कि बिटेन की रुचि इसी में है। मुझे आशा है कि हम ब्रिटेन को दुष्कर स्थिति से बाहर निकलने के लिए कोई सहायता नहीं देंगे और यह कि हम अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करेंगे।

इसके पश्चात् मैं इसके तीसरे पहलू पर आता हूं और वह यह है कि हम शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने में निर्बाध रूप से अपना सहयोग देने के लिए सहमत हुए हैं। बहुत सुन्दर शब्द हैं, परन्तु केवल सुन्दर शब्द ही सदैव पर्याप्त नहीं होते। ब्रिटेन ने हमेशा कहा है कि वह प्रगति, स्वतंत्रता तथा शांति का हामी है और न जाने किस किस का। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने जिन्हें कुछ दिन पूर्व पंडित नेहरू ने कुछ आमों का उपहार दिया था एक बार अपने एक नाटक में—मैं समझता हूं कि यह नाटक ''मैन एण्ड सुपरमैन'' है—लिखा था कि यह आश्चर्यजनक है कि ब्रिटेन अपनी कूटनीति को किस प्रकार अपने अनुकूल बना लेता है। जब ब्रिटेन किसी सम्राट को सत्ताविहीन करना चाहता है तो वह ऐसा गणराज्य के सिद्धान्तों के आधार पर कर लेता है। जब ब्रिटेन किसी सम्राट को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहता है तो वह ऐसा राजतंत्रवादी अथवा राजतंत्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कर लेता है। जब ब्रिटेन किसी अन्य देश को अपना उपनिवेश बनाना चाहता है तो वह ऐसा मानवीय आधारों पर कर लेता है तथा जब वह कोई अत्याचार अथवा अपराध करना चाहता है तो वह ऐसा न्याय के चिरस्थायी सिद्धान्तों के आधार पर करता है। मुझे विश्वास है कि भारत को राष्ट्रमण्डल में शामिल करने के पश्चात् आज ब्रिटेन ठीक इसी प्रकार कह सकता है कि जो कुछ भी उन्होंने किया है वह राष्ट्रमण्डल के सिद्धान्तों, इच्छास्वातंत्र्यवादी सिद्धान्तों तथा शक्ति के सिद्धान्तों के आधार पर किया है। वह तो यह

भी कह सकता है कि भाईचारे के सिद्धान्तों के आधार पर उसने ऐसा किया है, परन्तु हमें इसकी गहराई में जाना होगा तथा हमारे सामने जो सूत्र प्रस्तुत किया गया है उसकी मूल धारणा का पता लगाना होगा। हमें यह निश्चय ही देखना होगा कि राष्ट्रों का यह समूह शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति का लक्ष्य प्राप्त करने में कितना सहयोग देगा। यह राष्ट्रमण्डल एक ऐसी संस्था है जो स्वयं ही विभाजित है। यह आधी परतंत्र है तथा आधी स्वतंत्र है। जिस संस्था में आपस में ही विभाजन हो, वह कायम नहीं रह सकती तथा राष्ट्रों का ऐसा समूह जो कि आधा परतंत्र हो तथा आधा स्वतंत्र, स्थायी नहीं रह सकता। अतः जब तक राष्ट्रमण्डल के भीतर की इन बुराइयों को दूर नहीं किया जाता अथवा किसी न किसी प्रकार उन्हें समाप्त नहीं किया जाता, मुझे विश्वास है कि तब तक यह राष्ट्रमण्डल निर्बाध रूप से शांति, स्वतंत्रता तथा प्रगति का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। मैं बुराइयों की, अपशकुन की भविष्यवाणी नहीं करना चाहता, परन्तु मेरा अपना संशय यह है कि जब तक कि राष्ट्रमण्डल वही रहता है जैसा कि यह अब है, जब तक आस्ट्रेलिया अपनी सर्व-श्वेत नीति का अनुसरण करता रहेगा, जब तक दक्षिण अफ्रीका रंगभेद की नीति पर चलता रहेगा तथा स्वयं ब्रिटेन एशिया में अपनी साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी नीतियों का अनुसरण करता रहेगा, तब तक भिन्न-भिन्न कौमों का यह निकाय विश्व शांति तथा मानव जाति के कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये कभी भी मिलकर काम नहीं कर सकता। हो सकता है कि ब्रिटेन शांति की बात सोच रहा हो, अर्थात् उसके अपने राज्यक्षेत्रों तथा साम्राज्य के लिए यथास्थिति बनाए रखने की बात, परन्तु जो उद्देश्य हमने सामने रखा है वह संकल्प में उल्लिखित है, अर्थात् यह कि हम विश्व शांति तथा मानव जाति के कल्याण के लिए सहयोग देंगे तथा भरसक प्रयत्न करेंगे। क्या हम वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत यह करने जा रहे हैं? क्या हम यह सब करने में समर्थ होंगे तथा हम यह सब किस सीमा तक कर पाएंगे? मैं चाहता हूं कि प्रधानमंत्री इस विषय पर और प्रकाश डालें। मेरे विचार से महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि हम किस सीमा तक अपनी नीति का अनुसरण कर पाएंगे, क्योंकि हम—पुरानी विरासत के साथ हमारा भारत—शांति, विश्व शांति के लिए प्रतिबद्ध हैं, हम विदेश सम्बन्धी मामलों तथा प्रतिरक्षा मामलों दोनों के सम्बन्ध में किसी सीमा तक ऐसी नीति का अनुसरण कर सकते हैं जो कि विश्व-शांति तथा मानव जाति के कल्याण में सहायक हो और राष्ट्रों के किसी गुट से हम कितनी सीमा तक नहीं बंधेंगे? हम न तो पूर्वी गुट में और न पश्चिमी गुट में ही शामिल होने के उत्सुक हैं, परन्तु हमने एक नये गुट का सृजन कर लिया है। मैं आशा करता हूं कि

[श्री एच.वी. कामत]

यह नया समूह अथवा गुट हमारे लिए हानिकारक रूप में काम नहीं करेगा तथा न ही यह हमारे द्वारा विकसित की जाने वाली सुदृढ़ विदेश नीति तथा मजबूत प्रतिरक्षा नीति के मार्ग में बाधक होगा। ऐसा कहा गया है कि इस संघ से अनेक लाभ हो सकते हैं। मैं जानना चाहता हूं कि वे लाभ क्या हैं, चाहे वे विदेश मामलों में ही अथवा प्रतिरक्षा अथवा आर्थिक मामलों में। क्या कारण यह है कि क्योंकि पाउंडों में हमारी शेष राशियां अभी वहां पड़ी हुई हैं, इसलिए हम तब तक राष्ट्रमण्डल में रहना चाहते हैं जब तक कि हम उन राशियों की पाई-पाई तक वसूल न कर लें। यह सुविदित है और सारी दुनिया इसे जानती है कि ब्रिटेन सरकार द्वारा इस मामले में जिस नीति का अनुसरण किया गया है उसका स्वरूप ऐसा नहीं था कि वह पक्की ईमानदार हो। मैं आशा करता हूं कि शीघ्र ही जो वित्तीय शिष्टमण्डल लन्दन जा रहा है वह ब्रिटिश सरकार को इस बात के लिए राजी करने में सफल होगा कि वह पाउंडों की हमारी शेष राशियों के बारे में अधिक ईमानदारी की नीति का अनुसरण करे।

इसके अलावा, यह भी सुझाव दिया गया है कि भारत अलग-थलग नहीं रह सकता। यह भी एक तर्क दिया गया है। क्या यह बात गम्भीरता से कही गयी है कि जो देश किसी एक या दूसरे ग्रुप में नहीं है अथवा राष्ट्रमण्डल में नहीं है और इस प्रकार के अनेक देश हैं—वे सभी अलग-थलग रह रहे हैं। आज की दुनियां में, चाहे आप किसी ग्रुप में शामिल होते हैं अथवा नहीं, आज की दुनिया का जो स्वरूप है, उसमें कोई भी देश अलग-थलग नहीं हो सकता। यदि कोई देश इस राष्ट्रमण्डल में शामिल नहीं होता, तो क्या इसका यह अर्थ है कि यह अलग-थलग है? भारत को राष्ट्रमण्डल की आवश्यकता की अपेक्षा राष्ट्रमण्डल को भारत की आवश्यकता कहीं अधिक है। यदि इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखा गया होता, तो बातचीत का शायद हम अधिक अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते थे। यदि इस तथ्य ने हमारी नीति का मार्गदर्शन किया होता, तो हम बेहतर कार्यवाही कर सकते थे। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया में तुर्की जैसे छोटे देशों ने कई बार अकेले रहकर स्थिति का सामना किया है। जब प्रथम विश्व युद्ध समाप्ति पर था, तो कमाल अतातुर्क ने अपनी जीर्ण-शीर्ण सेना से यूरोप के अनेक शक्तिशाली देशों से अकेले ही लोहा लिया था तथा उन्हें पराजित किया था। इसी प्रकार क्रांति के पश्चात् भोजन तथा वस्त्र के अभाव से ग्रस्त रूसी सेना ने ब्रिटेन, फ्रांस तथा अनेक अन्य देशों

का अकेले ही मुकाबला किया था तथा विजयी रही थी। उत्साह ही है जिससे कि अन्ततोगत्वा अन्तर पड़ता है। आज पराजयवाद की जिस भावना ने हमें जकड़ लिया है उसका परित्याग करना होगा। यह दुर्बलता है, यह हमारे मन, मस्तिष्क तथा हृदय में बैठी हुई कायरता है। मेरे विचार में आज हमें जिस बात की आवश्यकता है, वह है कुरुक्षेत्र का युद्ध होने से पूर्व की वह मंत्रणा जो कि श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध भूमि में दी:

क्लैव्यामास्मगम: पार्थ नैतत्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्तवोतिष्ठ परंतप।।

और इससे पूर्व कि मेरे मित्र यह शिकायत करें कि मैंने श्लोक उद्धृत किया है और उसका अनुवाद नहीं किया, अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से इस श्लोक का सारांश प्रस्तुत करता हूं। यहां श्री कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि वह दुर्बलता तथा कायरता के आगे न झुकें। वह कहते हैं ''अर्जुन, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। हृदय की यह दुर्बलता लज्जाजनक है। इसका इसी क्षण परित्याग करो। उठो और युद्ध करो''। यही हमारा दृष्टिकोण होना चाहिए और मैं यह आशा करता हूं कि कम से कम भविष्य में यह हमारी नीति का मार्गदर्शन करेगा। कम से कम इतना तो है कि हमारा देश तीस करोड़ से अधिक लोगों का देश है और हम दुनिया में किसी भी बुराई का, यदि आवश्यकता पड़े तो अकेले ही मुकाबला कर सकते हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं अकेले ही मुकाबला करने को प्राथमिकता दूंगा, आम बनिस्बत इसके कि मैं लोकतंत्र, समानता तथा स्वतंत्रता के अपने सिद्धान्तों को तिलांजलि दूं जिनके लिए कि हम गत अनेक वर्षों से लड़ते आ रहे हैं और कुर्बानी देते आ रहे हैं। यदि राष्ट्रमण्डल इन आदर्शों के मार्ग में बाधक होता है, यदि वह इन आदर्शों के कार्यान्वयन में अवरोध पैदा करता है, तो मैं अकेले ही मुकाबला करना पसन्द करूंगा। महात्मा गांधी ने हमें ऐसा करना सिखाया। लोकमान्य तिलक ने हमें यही सिखाया। महायोगी अरविन्द ने हमें यही सिखाया। नेताजी सुभाष ने हमें यही सिखाया। अध्यक्ष महोदय, आपने भी हमें सदैव सही सलाह दी है। हमें अपने दिलोदिमाग को मजबूत रखना होगा और अपनी स्वयं की आन्तरिक शक्ति पर निर्भर रहना होगा तथा हमारे नेता पंडित नेहरू तथा सरदार पटेल ने हमसे सदैव यही कहा है कि दुनिया हमें कुछ भी हानि नहीं पहुंचा सकती। केवल हमारी आन्तरिक कमजोरी ही हमें परास्त कर सकती है, कोई बाहरी खतरा नहीं। यदि हमारी आन्तरिक शक्ति सुदृढ़ है तो हम पर कोई भी अभिभावी नहीं हो सकता। मुझे आशा है कि भविष्य में राष्ट्रमण्डल के साथ हमारे सम्बन्धों के

[श्री एच.वी. कामत]

बारे में यह तथ्य हमारा मार्ग-दर्शन करेगा। सभा के समक्ष जो सूत्र रखा गया है उसके बारे में तथा घोषणा के बारे में मैं तनिक भी संतुष्ट नहीं हूं। मेरे विचार में इसकी शब्दावली अधिक संतोषप्रद होनी चाहिए थी। मेरे विचार में हम अपने साथ बेहतर व्यवहार सुनिश्चित करवा सकते थे। परन्तु जो प्रस्ताव इस समय हमारे समक्ष है, वह पहले से ही किया हुआ एक कार्य है। जैसाकि पंडित नेहरू ने कहा है कि यह एक ऐसी संधि है जोकि पहले ही हो चुकी है। फिर भी मैं इतना कहूंगा कि मैं इस घोषणा को इस आशा में स्वीकार करता हूं कि भविष्य में राष्ट्रमण्डल की नीतियों का मार्ग-दर्शन माननीय विचारों के आधार पर होगा तथा जातिवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का परित्याग कर दिया जाएगा और यह कि राष्ट्रमण्डल दुनिया का नेतृत्व सही नीतियों के आधार पर करेगा। मुझे डर है कि यह आदर्श बहुत ही कठिन है परन्तु परमात्मा की कृपा से सब कुछ सम्भव है और मैं आशा करता हूं कि प्रभु हमारा सही मार्ग-दर्शन करेंगे, ताकि हम वास्तविक मानवीय भ्रातृत्व सुनिश्चित कर सकें—केवल राष्ट्रमण्डल देशों का भ्रातृत्व ही नहीं बल्कि इस दुनिया में, स्वतंत्र दुनिया में शीघ्र ही वास्तविक मानवीय भ्रातृत्व।

***अध्यक्षः** श्री अनन्तशयनम् आयंगर।

अब मैं सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे अपने भाषणों को 15 मिनट तक सीमित रखें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय प्रधानमंत्री को बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने राजनीतिज्ञोचित तरीके से संधि की, जिसकी घोषणा के अनुसमर्थन के लिए आज सभा से कहा गया है। यह हमारे द्वारा इस देश को प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य घोषित किए जाने का स्वाभावित परिणाम है। आज दुनिया का कोई भी देश अलग-थलग नहीं रह सकता। हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम दुनिया के अन्य स्वतंत्र देशों के साथ किसी न किसी प्रकार समझौता करें, एक प्रकार मैत्री समझौता जिससे कि हम उन देशों से जुड़ सकें जोकि दुनिया में स्थायी शांति स्थापित करने में प्रयत्नशील हैं। अतः जो समझौता किया गया है उसके सम्बन्ध में इस देश में किसी को खेद अनुभव करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर, यदि हमने इस प्रकार का कोई समझौता न किया होता, तो हम दुनिया में पुनः शांति स्थापित करने के

अपने कर्तव्य में असफल रहते। जब बातचीत चल रही थी, उस दौरान तथा उससे पूर्व भी कुछ समय के लिए जबकि यह अफवाहें चल रही थीं कि समान अथवा दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होगी, मुझे थोड़ी घबराहट हुई थी। यह किस प्रकार की नागरिकता होगी तथा हमारे देश पर किस प्रकार की प्रतिबद्धताएं तथा दायित्व लागू होंगे, इनकी कल्पना हम नहीं कर सकते थे। परन्तु अब मैं राहत महसूस कर रहा हूं। इसमें कोई दोहरी नागरिकता की बात नहीं है तथा किसी भी प्रकार की कोई प्रतिबद्धताएं नहीं हैं। हम पूर्णत: स्वतंत्र हैं यह किसी प्रकार का संवैधानिक अथवा राजनीतिक सम्बन्ध नहीं है। हम मित्र हैं और इस बात को इस समझौते द्वारा मान्यता मिली है जिसका इस घोषणा के रूप में अनुसमर्थन करने के लिए हमसे कहा गया है। युद्ध के मामले में तथा अन्य सभी मामलों के बारे में भी तथा व्यापार सम्बन्धों के बारे में भी हम पूर्णत: स्वतंत्र हैं। हमें याद होगा कि 1939 के दौरान सभी डोमिनियनों ने अपनी-अपनी संसदों में युद्ध में शामिल होने का निर्णय लिया था। हम सबको याद है कि दक्षिणी अफ्रीका में स्मट्स बहुत ही कम बहुमत से दक्षिण अफ्रीका को युद्ध में शामिल कर सके थे। डोमिनियनों को भी यह छूट थी कि वे युद्ध से बाहर भी रह सकती थीं। जब हम स्वयं को प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य घोषित कर रहे हें तो यह सर्वदा हमारी अपनी इच्छा पर है कि हम स्वयं को स्वतंत्र रखें। हम किसी एक या दूसरे गुट से बंधे हुए नहीं हैं। हम ब्रिटिश सरकार के अंचल के छोर से बंधे हुए नहीं है। हम अब ब्रिटिश के प्रभुत्वाधीन नहीं रहे हैं। यदि किसी प्रकार के दायित्वों के बिना कोई साझेदारी हो सकती है तो हम बराबर के साझेदार हैं। यह केवल मैत्री का प्रश्न है। हम अपने सम्बन्धों का चयन कर सकते हैं। इससे सारी दुनिया ने राहत की सांस ली है। युद्ध के काले बादल मंडरा रहे थे तथा अब शनै:-शनै: वे फट रहे हैं, राजनीतिज्ञता के इस कार्य से यह और भी अधिक सम्भव हो गया है कि युद्ध की आशंकाएं अब काफी सीमा तक दूर हो जाएंगी। राजनीतिज्ञता की इस कार्यवाही ने युद्ध टाल दिया है। इंग्लैंड, यूरोपीय महाद्वीप तथा अमरीका से हाल ही में वापस आए कुछ व्यक्तियों से मुझे पता चला है कि वे लोग हमारे प्रधानमंत्री के इस कार्य से अत्यंत सन्तुष्ट हैं। वर्षो पहले किसी ने कहा था कि पूर्व तथा पश्चिम का कभी आपस में मेल नहीं हो सकता। परन्तु राजनीतिज्ञता के इस कार्य से पूर्व तथा पश्चिम का परस्पर मेल हुआ है। मुझे विश्वास है कि यह मेल स्थायी होगा तथा मैत्री के धागे मजबूत, अधिक मजबूत होते चले जाएंगे।

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

मैं इस बात को जानता हूं कि कुछ सदस्यों द्वारा यहां दिए गए कुछ भाषणों में कुछ सन्देह व्यक्त किया गया है। हम डेढ़ सौ वर्ष से ब्रिटेन के प्रभुत्व में रहे हैं। मैं अपने मित्रों पर आरोप नहीं लगा रहा हूं, परन्तु वे बदली हुई परिस्थितियों के प्रति सजग नहीं हैं। वे अभी भी उन्हीं पुरानी परिस्थितियों में कायम हैं और उन्हीं के बारे में सोच रहे हैं जबकि हम ब्रिटेन के प्रभुत्व के अधीन थे। यहां दिए गए भाषणों का झुकाव उस दिशा में रहा है। इसका कुछ औचित्य भी है क्योंकि राष्ट्रमण्डल के एक सदस्य दक्षिण अफ्रीका में अभी भी जातीय भेदभाव विद्यमान है। राष्ट्रमण्डल का एक अन्य सदस्य आस्ट्रेलिया श्वेत व्यक्ति नीति पर आग्रह कर रहा है। एक तीसरा सदस्य मलाया मामूली बातों के लिए, अपने साथ शस्त्र रखने तक के लिए, हमारे लोगों का निष्ठुरता से नाश कर रहा है। ये बातें हैं, परन्तु जिस समय हम आपस में कुछ सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो हम यह आशा नहीं करते कि ये सब बातें क्षण भर में समाप्त हो जाएंगी। मुझे विश्वास है कि राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य देशों के विचारों में परिवर्तन आएगा, यहां तक कि अब के बाद तथाकथित भारत विरोधी प्रचार भी समाप्त हो जाएगा। जब तक एक देश के सम्बन्ध दूसरे देश के साथ मनमुटावपूर्ण रहते हैं, अनेक अरुचिकर बातें कही जा सकती हैं, परन्तु अब शीघ्र ही दिलोदिमाग में तब्दीली आएगी। मुझे विश्वास है कि इंग्लैंड में भी अनेक लोगों की यह समझदारीपूर्ण राय है कि इस सम्बन्ध को जारी रखा जाए। मुझे विश्वास है कि अब के पश्चात् कोई भी अंग्रेज तथा अन्य कोई भी व्यक्ति जिसकी विश्व शान्ति में रुचि हो, भारत के हितों के विरुद्ध एक भी अनुचित शब्द नहीं कहेगा। आज सुबह के अखबारों में यह समाचार पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई कि मैक्सिको तथा एक अन्य देश के कहने पर राष्ट्र संघ की महासभा में यह प्रस्ताव पास किया गया कि दक्षिण अफ्रीका के मामलों की जांच करने हेतु किसी प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए, एक गोलमेज सम्मेलन किया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि दक्षिण अफ्रीका के मामलों को शान्तिपूर्वक सुलझाने में अधिक देरी नहीं लगेगी। एक अन्य अवसर पर मुझे प्रधानमंत्री ने बताया था कि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड इस बारे में उत्सुक हैं कि हम राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहें। यदि ऐसा है तो मुझे विश्वास है कि वे भारत के प्रति अपनी नीति बदलेंगे, परन्तु हमें उनको कुछ समय देना होगा। उन्होंने एक संशय के युग में शुरुआत की थी, परन्तु वह शनैः-शनैः दूर हो जाएगा। प्रेम अथवा स्नेह अथवा मैत्री एकपक्षीय नहीं होती, वह पारस्परिक ही होती है। हमने सही दिशा अपनाई है, हमें इससे कोई हानि नहीं होगी अपितु सब प्रकार के लाभ प्राप्त होंगे। प्रतिरक्षा तथा अनेक अन्य बातों के सम्बन्ध में हम उन अनेक लाभों से अपने को अलग नहीं रख सकते जो कि अन्ततोगत्वा हमें

प्राप्त होंगे। हमारे राष्ट्रिक दुनिया के इस छोर से उस छोर तक मौजूद हैं। यदि हम स्वयं को प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतंत्रीय गणराज्य घोषित कर दें और इस प्रकार की कोई व्यवस्था न करें तो उनका क्या होगा? मारिशस तथा अन्य स्थानों में वे काफी संख्या में हैं। उन्हें अन्य देशीय मानकर वहां से निकाल दिया जाएगा। इन देशों के राष्ट्रिक नहीं हैं और न ही उन्होंने इस देश की राष्ट्रीयता छोड़ी है। इसलिए यह व्यवस्था उन देशों में रह रहे हमारे राष्ट्रिकों के हित में होगी।

एक अन्य लाभ भी है। यदि हम ऐसी व्यवस्था नहीं करेंगे तो हमारे ऊपर भारी दायित्व आ पड़ेंगे। अमरीका किसी अन्य देश के साथ आसानी से सहायता समझौता नहीं करता। मैं अभी भी इस विचार का हूं कि जहां तक हमारी विदेश नीति का सम्बन्ध है, यह नीति पूर्ण तटस्थता की नीति होनी चाहिए। हमें किसी सत्ता गुट में शामिल होने अथवा न होने का पूरा अधिकार है। मुझे विश्वास है कि प्रभु की सहायता से हम दो युद्धरत देशों में बीच-बचाव करने में तथा स्थायी शांति स्थापित करने और युद्ध को पूरी तरह टालने में समर्थ होंगे। मैं कहता हूं कि वे व्यक्ति भी जिन्होंने मलाया, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण अफ्रीका का उल्लेख किया है, इस घोषणा के विरुद्ध नहीं हैं। वे केवल यह चाहते हैं कि इसमें इतना संशोधन किया जाये कि इस मामले से दिलोदिमाग में तब्दीली आए। परन्तु हमें कोई शर्तें नहीं रखनी चाहिए, हमें उन लोगों की सद्भावना और नेकनीयती पर विश्वास करना चाहिए जोकि अपने साथ-साथ हमें भी इस राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनाना चाहते हैं। इस घोषणा से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि शायद भारत ही है जोकि राष्ट्रमण्डल के साथ इस सम्बन्ध को जारी रखने के लिये उत्सुक है। यह इस घोषणा की भाषा हो सकती है परन्तु हमें केवल भाषा को ही नहीं देखना चाहिए। दूसरा पक्ष भी समान रूप से उत्सुक है, अन्यथा प्रधानमंत्रियों का यह सम्मेलन नहीं हो सकता था और न ही तो यह घोषणा की जा सकती थी। घोषणा के पाठ से ऐसा प्रतीत हो सकता है जैसे कि प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य बनने से पूर्व हम इस घोषणा को जारी किए जाने के लिए उत्सुक थे। परन्तु उन्होंने एक सूत्र खोजा ताकि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल नाम बदलकर राष्ट्रमण्डल नाम रखा। अब हम स्वयं को धोखे में नहीं रख सकते कि दुनिया में हमारे कोई शत्रु नहीं हैं, अनेक शत्रु हैं जोकि दुनिया में हमारी स्थिति के प्रति ईर्ष्या रखते हैं। हमारी प्रतिष्ठा तथा महिमा बढ़ी है और बहुत ही कम समय में हमारा कद काफी ऊंचा हो गया है। अब यह हमारे लिए है कि हम ऐसा कुछ न करें जो कि इस प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक हो।

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

इसके अलावा एक बात और भी है। किसी अन्य बात का ध्यान किए बिना, यदि मुझ से पूछा जाए कि मेरा झुकाव किस ओर है, तो मैं निश्चित रूप से यह कहूंगा कि मैं केवल लोकतंत्र की ओर झुकूंगा तथा मैं किसी तानाशाही से स्वयं को सम्बद्ध नहीं करूंगा। यह मामला अभी हमारे समक्ष नहीं आ रहा है, परन्तु फिर भी यदि राष्ट्रमण्डल के साथ कोई सम्बन्ध कायम करने का कोई कारण है, तो वह ठीक-ठीक यही है कि यह राष्ट्रमण्डल पूरी तरह से लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध है। जो लोकतंत्र ब्रिटेन में कायम है आप उस पर विचार करें। जिस प्रकार वे अपना लोकतंत्र चलाते हैं, वह सचमुच मेरे लिए आश्चर्यजनक है। स्टालिन तथा चर्चिल आदि जैसे अनेक युद्ध नायक हुए हैं। परन्तु चर्चिल के साथ क्या हुआ? उन्होंने रातों-रात उन्हें हटा दिया तथा आज वह विपक्ष में बैठे हैं और कोई भी उसका समर्थक नहीं है। हमें इसी प्रकार के लोकतंत्र में शामिल होना चाहिए और इसलिए हमें ब्रिटेन के साथ मिलकर चलना चाहिए जो कि संसदों की जननी है, समस्त विश्व में लोकतंत्रीय प्रणाली का अग्रदूत है।

जहां तक मेरे मित्र, प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का प्रश्न है, मेरे विचार में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो कुछ उन्होंने कहा है, वह यह है कि संविधान पास किए जाने के तुरंत पश्चात् वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव होंगे तथा हमें उस समय यह निर्णय करना चाहिए कि हम राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखें अथवा नहीं। उसके लिए मेरा उत्तर यह है कि यदि हम इसी समय कहते हैं कि हम राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखेंगे, तो भी ऐसी कोई बात नहीं है। जो कि भविष्य में आने वाली संसद को यह सदस्यता समाप्त करने से रोक सके। अपना पद ग्रहण करने के तुरंत पश्चात् वे अपनी पहली ही बैठक में राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता समाप्त करने सम्बन्धी संकल्प पास कर सकते हैं। अब और तब के बीच हमें यह देखने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा कि क्या राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य भारत के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलते हैं अथवा नहीं। यदि उस समय तक उनका दृष्टिकोण नहीं बदलता है, तो हम और अधिक दृढ़ता से उनसे कह सकते हैं कि वे हमारे मित्र नहीं हैं। इस प्रकार हम ऐसी किसी कार्यवाही के प्रति वचनबद्ध नहीं हो रहे हैं जिसे कि वापस नहीं लिया जा सकता। अतः मैं अपने माननीय मित्र से अनुरोध करूंगा कि वह अपने संशोधन पर आग्रह न करें। मुझे प्रसन्नता होती यदि उन्होंने यह प्रस्तुत ही न किया होता। स्वाभाविक है कि इस संशोधन का आधार संशय है। आज तक तो ''कामनवैल्थ'' का अर्थ यह था कि हमारा धन उनका

धन था तथा उनका धन तो उनका निजी था ही। अब के बाद यह स्थिति बदल जाएगी तथा राष्ट्रमण्डल सबके लिए एक साझा धन होगा। मैं सदन से अपील करता हूं कि वह प्रधानमंत्री के प्रस्ताव को बिना किसी परिवर्तन के पास करे।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से भारत के माननीय प्रधानमंत्री के उस प्रस्ताव का विरोध करना चाहता हूं जो कि लन्दन में हुए राष्ट्रमण्डल सम्मेलन में उनके द्वारा की गई घोषणा का अनुसमर्थन कराने के लिए पेश किया गया है। महोदय, आपने अभी-अभी कहा है कि इस बात का कि भारत राष्ट्रमण्डल में बना रहे अथवा नहीं, हम जो संविधान बनाने जा रहे हैं उस पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। अत: मेरा यह विचार है कि संविधान सभा द्वारा इस प्रश्न पर कोई निर्णय लिए जाने से पूर्व ही प्रधानमंत्री ने यह वचन देकर कि भारत राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखेगा, अपने प्राधिकार से बाहर कार्य किया है। अध्यक्ष महोदय, वह ऐसा करने के लिए सक्षम नहीं थे। यदि मुझे ठीक से याद है तो राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन से पूर्व हमारे प्रधानमंत्री ने बार-बार हमें यह आश्वासन दिया था कि इस बात का निर्णय अन्ततोगत्वा संविधान सभा करेगी कि क्या भारत राष्ट्रमण्डल की अपनी सदस्यता जारी रखे अथवा नहीं। अध्यक्ष महोदय, यह तर्क दिया जा सकता है कि हमारे प्रधानमंत्री द्वारा वहां की गई घोषणा इस मामले में अन्तिम निर्णय नहीं है और इसीलिए इस सभा से उसका अनुसमर्थन करने के लिए कहा गया है। अध्यक्ष महोदय, मैं अत्यंत नम्रता से निवेदन करूंगा कि राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के लिए सहमत होकर प्रधानमंत्री ने संविधान सभा के प्रभुसत्तात्मक स्वरूप पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डाला है और इसे एक ऐसी स्थिति में डाल दिया है, जिसमें कि इसे उनके द्वारा राष्ट्रमण्डल में की गई घोषणा का विवश होकर अनुसमर्थन करना पड़ रहा है। ऐसा इसलिए है कि यदि यह सभा इस घोषणा का अनुसमर्थन करने से मना कर देगी तो उसका अर्थ होगा कि इस सभा का तथा भारत के लोगों का उनमें विश्वास नहीं है। इसलिए इस संविधान सभा के सामने इसके सिवाय कोई चारा नहीं है कि यह उनके द्वारा किये गये समझौते का अनुसमर्थन करे।

जिन परिस्थितियों में यह सभा निर्वाचित हुई थी उनसे मैं पूरी तरह परिचित हूं। यह लगभग एक दलीय संस्था है तथा इससे आसानी से वह सब कुछ करवाया जा सकता है जो कि सत्तारूढ़ सरकार करवाना चाहे। परन्तु फिर भी मैं यह कहूंगा कि संविधान

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

सभा द्वारा इस प्रश्न पर अन्तिम निर्णय लिए बिना प्रधानमंत्री को राष्ट्रमण्डल में बने रहने पर सहमत नहीं होना चाहिए था। उनको कुछ दिन और प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। जो घोषणा उन्होंने लन्दन सम्मेलन में की उसे वह इस प्रश्न के संविधान सभा द्वारा औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिये जाने के बाद कर सकते थे। परन्तु उन्होंने किन्हीं कारणों से, जिन्हें केवल वही अच्छी तरह जानते हैं, घोषणा करना उचित समझा और इस प्रकार वह भारत को राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनाए रखने के लिए वस्तुतः सहमत हो गये।

अध्यक्ष महोदय, मैं सभा के समक्ष निवेदन करना चाहूंगा कि हमारे प्रधानमंत्री द्वारा लन्दन सम्मेलन में की गई घोषणा कोई महत्वहीन अथवा साधारण घोषणा नहीं है। यह घोषणा उस प्रतिज्ञा की घोर अवहेलना करती है जो कि हमारे नेता गत 17 वर्षों से 26 जनवरी को राष्ट्रीय झण्डे के नीचे बार-बार करते रहे हैं और देश के लोगों से करवाते रहे हैं।

अतः आज जबकि राष्ट्रपिता शारीरिक रूप से हमारे मध्य नहीं हैं, हम देखते हैं कि उनके नाम में, सत्य तथा अहिंसा के नाम में, प्रतिदिन लोगों को उपदेश दिये जाते हैं कि वे राष्ट्रपिता द्वारा दिखाये गये आदर्श मार्ग का ही अनुसरण करें। हम केवल इसी से संतुष्ट नहीं हैं। हम विश्व के अन्य देशों को भी उपदेश देते हैं तथा उनसे कहते हैं कि विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने का एकमात्र मार्ग यही है कि महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित सत्य और अहिंसा के आदर्शों का अनुसरण किया जाये। मेरी समझ में यह नहीं आता कि गत 17 वर्षों से देश के करोड़ों लोगों द्वारा बार-बार ली गई शपथों की अवहेलना करने के पश्चात् हम अन्य देशों के लोगों से कैसे यह आशा कर सकते हैं कि वे राष्ट्रपिता के आदर्शों पर चलें तथा इस किस मुंह से विश्व को उसी मार्ग पर चलने के लिए कह सकते हैं जिसका कि हम इतनी निर्लज्जता से परित्याग कर रहे हैं।

अध्यक्ष महोदय, हमारे प्रधानमंत्री ने यह घोषणा तो कर दी है कि भारत राष्ट्रमण्डल में बना रहेगा परन्तु हमें यह नहीं बताया गया है कि राष्ट्रमण्डल में बने रहकर हमें कौन-कौन से लाभ होने की सम्भावना है। हमें यह बताया गया है कि राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में जो कुछ भी हुआ है, उससे भारत के लोग अथवा भारत सरकार किसी भी प्रकार प्रतिबद्ध नहीं हुई है अथवा इन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा है। महोदय, मैं अत्यन्त विनम्रता से यह निवेदन करूंगा कि मुझ जैसा एक सामान्य व्यक्ति

यह नहीं समझ पा रहा है कि किसी विशेष गुट में शामिल हो जाने के पश्चात् हम दायित्वों तथा प्रतिबन्धों से किस प्रकार मुक्त रह सकेंगे। यदि हम वास्तव में ही ऐसी उलझन से मुक्त हैं तो मेरी समझ में नहीं आता है कि हम किसी विशेष गुट में क्यों शामिल हों और न मेरी समझ में यह आता है कि इस गुट के अन्य सदस्य क्यों चाहते हैं कि आप उसमें शामिल हों। मेरी राय में किसी गुट की सदस्यता का अर्थ है उसमें शामिल होने वाले किसी नए देश के तथा उस गुट के अन्य सदस्यों के, जो कि नए देश को उसमें शामिल होने के लिए प्रेरित करते हैं, कुछ दायित्व होते हैं। यह दूसरी बात है कि उस गुट में शामिल होने की शर्तें आज हमारे समक्ष न रखी जाएं। यह तर्क दिया जा सकता है कि केवल दो वर्ष पूर्व ही हमें स्वतंत्रता मिली है और इसलिए अन्य देशों के आक्रमण के विरुद्ध इसे कायम रखना हमारे लिए सम्भव नहीं हो। यह भी हो सकता है कि हमारे नेताओं के दिमाग में यह बात हो कि यदि कोई युद्ध आरम्भ होता है, तो भारत ब्रिटेन की नौसेना के बिना अपनी रक्षा नहीं कर पाएगा। यदि वास्तव में इसी विचार ने हमें राष्ट्रमण्डल में शामिल होने के लिए प्रभावित किया है, तो मैं निवेदन करना चाहूंगा कि आज दुनिया का कोई भी देश अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए किसी भी अन्य देश पर निर्भर नहीं रह सकता है। क्या हम उन घटनाओं को भूल गए हैं जो कि पिछले युद्ध में घटीं? ब्रिटेन की नौसेना सिंगापुर की सुरक्षा के लिए केवल दो ही युद्धपोत भेज सकी तथा इन दोनों में से किसी एक में भी विमानवाहक पोत नहीं था तथा सभी को मालूम है कि वे सिंगापुर की रक्षा नहीं कर सके। यह बात कि ब्रिटेन की नौसेना तथा ब्रिटेन की सरकार भविष्य में और अधिक मजबूत हो जाएगी तथा हमारी भूमि की रक्षा करने के लिए हमें अधिक सहायता दे सकेगी, मेरी राय में तथा मेरे सहयोगियों की राय में अत्यन्त सन्देहास्पद बात है।

इसके अलावा, भारत, पाकिस्तान तथा लंका को छोड़कर राष्ट्रमण्डल के सभी सदस्य देश उस गुट के सदस्य हैं जो कि आंग्ल-अमरीकी गुट के नाम से जाना जाता है। अत: हमारे लिए यह समझना बहुत कठिन नहीं होगा कि भारत को राष्ट्रमण्डल की पूंछ के साथ बांधने का कोई और अर्थ नहीं हो सकता, सिवाय इसके कि यह आंग्ल-अमरीकी गुट में शामिल हो।

यह कहा गया है कि भारत को इंग्लैंड तथा अमरीका के साथ रहकर अनेक लाभ हो सकते हैं। उसे वित्तीय सहायता मिल सकती है। उसे अपने औद्योगीकरण को बढ़ावा

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

देने के लिए सहायता मिल सकती है। यह भी कहा जा सकता है कि अमरीका जैसा एक शक्तिशाली देश अगले युद्ध में भारत को पर्याप्त सहायता दे सकता है और देगा। महोदय, फिलहाल मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि अमरीका हमें वह सहायता देगा जो कि हम मांगेगे। मैं मानता हूं कि शान्ति के समय अमरीकी सहायता भारत के लिए अत्यन्त लाभकारी होगी। परन्तु मेरा विचार है कि युद्ध के समय अमरीकी सहायता पर निर्भर करना हमारे लिए एक प्रकार से आत्मघाती होगा। जिस प्रकार चीन को अमरीकी सहायता दी गई है, वह हमारे लिए एक सबक है। जैसे ही अमरीकी सरकार ने यह देखा कि चियांगकाई शेक के नेतृत्व वाली सरकार की ताकत गिर रही है तो उसने उस सरकार को साम्यवादियों की दया पर छोड़ दिया। मैं यह भी मान सकता हूं कि युद्ध के समय अमरीका भारत को शस्त्र तथा अन्य वस्तुएं देने का भरसक प्रयत्न करेगा, परन्तु महोदय, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक ओर भारत तथा दूसरी ओर अमरीका तथा इंग्लैंड के बीच उमड़ते हुए महासागर हैं। ऐसे संकट के समय में भारत तक सहायता पहुंचना कोई आसान बात नहीं होगी। समुद्रों में पनडुब्बियां चल रही होंगी तथा आकाश से बम और परमाणु बम बरस रहे होंगे। अत: भले ही अमरीका हमें सहायता पहुंचाने के लिए अपनी ओर से ईमानदारी से भी भरसक प्रयत्न करे, इस पर सन्देह किया जा सकता है कि क्या वह सहायता हम तक पहुंच भी पायेगी या नहीं और फिर जैसाकि मैंने कहा है कि एक बहुत बड़ा फासला इन देशों से हमको अलग करता है, हम तक सहायता पहुंचने में काफी समय लग जाएगा। परन्तु महोदय, यदि हम वर्तमान परिस्थितियों पर ध्यान दें तो हम यह पायेंगे कि हम साम्यवादी शक्तियों तथा उनके समर्थकों से घिरे हुए हैं। हम देखते हैं कि रूस, पाकिस्तान की सीमा पर है तथा वह कश्मीर की सीमा पर भी है। चीनी साम्यवादी दिन-प्रतिदिन अधिक बलवान होते चले जा रहे हैं। हम इससे अनभिज्ञ नहीं हैं कि साम्यवादी आज मलाया में क्या कर रहे हैं तथा हमें यह भी ज्ञात है कि बर्मा भी साम्यवादी खतरे से मुक्त नहीं है। मेरे विचार में हममें से कोई भी इस बात की सम्भावना को पसन्द नहीं करेगा कि भविष्य में किसी दिन युद्ध आरम्भ हो जाने की स्थिति में रूसी सैनिक एक सप्ताह के भीतर भारतीय सीमाओं में प्रवेश कर जाएं और हम आंग्ल-अमरीकी गुट में शामिल होने के नाते अमरीकी सहायता की प्रतीक्षा में बैठे रहें। तब हम क्यों अपने आप को एक ऐसी स्थिति में डालें जिसके परिणामस्वरूप कि रूसी गुट यह सोचे कि हम उसके विरुद्ध खड़े हो रहे हैं? यह हमारे लोगों का दुर्भाग्य है अथवा दूसरे शब्दों में मैं यह कहना चाहूंगा कि हमारी विदेश नीति ऐसी रही है जिससे

कि मेरे मन में आशंकाएं पैदा हुई हैं। आज भी ऐसे हालात मौजूद हैं जिसमें कि रूस को हमारे इरादों पर सन्देह होता है और वह यह समझता है कि हम उस गुट के मित्र हैं जो कि उसके विरुद्ध है। यदि मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो शायद यही वह कारण है जिससे कि हमारे राजदूत को, जो कि रूस में लगभग डेढ़ वर्ष रहे, रूस की सरकार के सर्वोच्च पद पर आसीन अतिविशिष्ट व्यक्ति मिस्टर स्टालिन के साथ भेंट का अवसर नहीं दिया गया। अब जबकि हमने स्वयं को राष्ट्रमण्डल के साथ सम्बद्ध कर लिया है, यह कहा जा सकता है कि हमने खुलेआम घोषणा कर दी है कि हम आंग्ल-अमरीकी गुट में शामिल हो गए हैं। आने वाले खतरे की हम कुछ सीमा तक कल्पना कर सकते हैं।

अध्यक्ष महोदय, इसके अलावा, यदि हम उन देशों को छोड़ दें जिनका कि मैंने अभी-अभी उल्लेख किया है, अर्थात् लंका और पाकिस्तान, तो राष्ट्रमंडल के साथ हमारा क्या सम्बन्ध रह जाता है? संस्कृति, सभ्यता, भाषा, वर्ण तथा जाति की दृष्टि से भी हमारा उनके साथ कोई सरोकार नहीं है। इसके बावजूद भी राष्ट्रमंडल के सदस्य हमारे राष्ट्रमंडल में शामिल होने की इच्छा रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दाल में कुछ काला है। हमारे प्रधानमंत्री ने भले ही हमें प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन का ब्यौरा स्पष्ट रूप से न बताया हो, परन्तु दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री ने स्पष्टतया कहा था कि उन्हें भारत को राष्ट्र-मण्डल में बनाए रखने की आवश्यकता है और यह कि यदि भारत उसमें नहीं बना रहा तो इससे राष्ट्रमण्डल को क्षति पहुंच सकती है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि यह उन सबके लिए हानिकारक होता है और यही कारण है कि उन सब ने भारत की सदस्यता जारी रखने का प्रयत्न किया और अब वे सब भारत के राष्ट्रमण्डल में बने रहने पर प्रसन्न हैं।

अध्यक्ष महोदय, यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि चीन में जो कुछ भी हो रहा है, वह दोतरफा मामला है। एक ओर साम्यवादी शक्ति सारे चीन को अपने प्राधिकार के अन्तर्गत लाना चाहती है तथा दूसरी ओर अमरीका राष्ट्रवादी चीन को सहायता देकर चीन को अपने प्रभाव के अन्तर्गत लाना चाहता है। जब अमरीका ने देखा कि राष्ट्रवादी चीन उसके हाथ से निकल रहा है, तो मेरे विचार में उसने भारत को राष्ट्रमण्डल के जरिए अपने गुट में लाने की आवश्यकता अनुभव की। इसका कारण यह है कि एशिया में भारत की स्थिति सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अध्यक्ष महोदय, हमें इस बात को तथा हर प्रकार के आसन्न खतरे को भी ध्यान में रखना चाहिये।

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

जैसा कि मैंने अभी कहा है क्या राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के साथ हमारे ऐसे सम्बन्ध हैं, जो कि हमें उनके साथ रहने को मजबूर करें, विशेषकर जब हम देखते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में हमारे भाइयों के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया जा रहा है? हम अभी उन घटनाओं को नहीं भूले हैं जो कि हाल ही में डर्बन में घटी हैं। आस्ट्रेलिया अभी भी श्वेत आस्ट्रेलियाई नीति पर चल रहा है।

हमारे भाइयों ने जो भूमि अपने कठिन परिश्रम से सुधारकर कृषि योग्य बनाई, अर्थात दक्षिण अफ्रीका की बंजर भूमि, आज वहां उस परिश्रम का उन्हें यह बदला दिया जा रहा है कि उन्हें होटलों, बसों, ट्रेनों आदि में श्वेत लोगों के साथ बैठने की अनुमति नहीं है। इन सबका कोई कारण नहीं है तथा अपनी राष्ट्रीय गरिमा कायम रखते हुए तथा राष्ट्रमण्डल में शामिल रहते हुए हमारे लिए यह असहनीय है कि हमारे भाइयों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए। हमारे लिए यह भी असहनीय है कि हम राष्ट्रमण्डल में ऐसे लोगों से सम्बन्ध रखें जो कि हमारे लोगों के साथ कुत्तों से भी अधिक बुरा व्यवहार करते हैं। ब्रिटेन की सरकार भले ही स्वयं को समाजवादी सरकार कहती हो, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह समाजवादी सरकार किसी भी प्रकार एक साम्राज्यवादी सरकार से भिन्न नहीं है। नि:संदेह, ब्रिटेन की सरकार भारत छोड़कर चली गई है परन्तु आज भी ब्रिटेन द्वारा पन्द्रह से बीस देशों का शोषण किया जा रहा है। अध्यक्ष महोदय, गत पन्द्रह से बीस वर्षों से हम साम्राज्यवाद का विरोध करते आ रहे हैं, हमने इसके विरोध में आवाज उठाई है तथा हमने साम्राज्यवाद को समाप्त करने की, उन लोगों की सहायता करने की, जोकि साम्राज्यवाद के तले आर्त्तनाद कर रहे हैं, शपथ खाई है। तब हम स्वयं को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के, जिसका कि एक सदस्य ब्रिटेन भी हो, साथ कैसे बांध सकते हैं? हम दुनिया से यह कैसे कह सकते हैं कि हम साम्राज्यवाद के विरोधी हैं और यह कि हम उन सभी देशों की रक्षा करेंगे जिनका कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा शोषण किया जा रहा है?

अध्यक्ष महोदय, ये सभी बातें ऐसी हैं जिनकी ओर मेरे विचार में हमें गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना होगा। यदि सदन इसको समझने में तथा इन खतरों को महसूस करने में समर्थ है, तो इसे प्रधानमंत्री द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का कभी भी अनुसमर्थन नहीं करना चाहिए, अपितु इसे इसके विपरीत एक समादेश देना चाहिए कि इस संविधान को अंगीकृत किए जाने

के पश्चात् भारत का विश्व में वही दर्जा होगा जो कि एक स्वतंत्र गणराज्य का होता है, अर्थात् भारत का ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ कोई सरोकार नहीं रहेगा।

अध्यक्ष महोदय, मैं जानता हूं कि वर्तमान प्रसंग में मेरे कथन की कोई सुनवाई नहीं होगी। परन्तु मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे नेताओं के—उन नेताओं के जो कि कल तक इन्कलाब की बात करते रहे हैं—दृष्टिकोण में परिवर्तन आ चुका है। क्रांति की प्रत्येक बात इस समय उन्हें प्रतिक्रियावादी प्रतीत होती है तथा अपनी सभी प्रतिक्रियावादी कार्यवाहियों को वे प्रगतिवादी कार्यवाहियां समझते हैं। इस बात पर गम्भीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि इसके कारण हमारा भविष्य काफी अन्धकारमय प्रतीत होता है। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूं कि अभी हाल ही में प्रधानमंत्री ने उस पार्टी के बारे में, जिसका सदस्य होने का मुझे गर्व है, कहा था कि यह पार्टी एक प्रतिक्रियावादी पार्टी है, जिसके चारों ओर अभी भी पुरानी बातों की दुर्गन्ध है और इसलिए वह राष्ट्रमण्डल के डद्यान की सुगन्ध अनुभव करने में असमर्थ है। परन्तु मैं यह कहना चाहूंगा कि राष्ट्रमण्डल का विचार कोई नया विचार नहीं है। इस विचार की कल्पना एटली अथवा हमारे प्रधानमंत्री द्वारा नहीं की गई है। हमारे प्रधानमंत्री यह भूले नहीं होंगे कि जुलाई, 1944 में ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री मि. चर्चिल ने साम्राज्य के यूनिटों के बारे में बोलते हुए राष्ट्रमण्डल का एक निश्चित चित्र खींचा था, जो कि उस चित्र से भिन्न नहीं था जो कि आज उभर कर सामने आया है। महोदय, हो सकता है कि जो दृष्टिकोण हमारे प्रधानमंत्री ने सोशलिस्ट पार्टी के बारे में व्यक्त किया है वह उनकी राय में सही हो, परन्तु जो बात मैं कह रहा हूं वह यह है कि पुरानी बातों को अवज्ञा करने से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हम अपने पुराने विश्वासों को तिलांजलि दे दें, कि हम अपने सिद्धांतों को भुला दें। सिद्धांत सदैव ही पुराने होते हैं, विश्वास सदैव ही पुराने होते हैं, परन्तु उनको तिलांजली देना, सिद्धांतों या विश्वासों की परवाह किए बिना परिवर्तनशील दुनिया के बहाव में बह जाना एक जीवन्त राष्ट्र को शोभा नहीं देता। ऐसा मार्ग उन देशों को शोभा देता है जिनके कि कोई सिद्धान्त नहीं हैं, परन्तु यह हमारे लिये शोभनीय नहीं है। महोदय, इसलिए मैं अपनी बात इस सदन को इस अपील के साथ समाप्त करना चाहूंगा कि वह इस प्रस्ताव पर समय की आवश्यकता के अनुसार निर्णय लें।

***अध्यक्ष:** कृपया अब रुक जाएं, इस समय एक बजने में पांच मिनट बाकी हैं। अत: हमें रुकना होगा, परन्तु सभा के स्थगित होने के पूर्व मुझे आपको एक दु:खद समाचार देना है जो मुझे अभी-अभी प्राप्त हुआ है। हमारे एक सदस्य श्री एफ. कोठवाला कल बम्बई से यात्रा कर रहे थे तथा इस बैठक में शामिल होने के लिए दिल्ली आ रहे थे। रास्ते में उन्हें दिल का दौरा पड़ा तथा ट्रेन में ही उनका देहान्त हो गया। मैं चाहूंगा कि सदस्य उनकी स्मृति के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जायें।

(*सभी सदस्य मौन खड़े रहे*)

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि सभा सदस्य के परिवारजनों को अपनी सहानुभूति प्रेषित करने की अनुमति मुझे देगी।

अब हमें कल की बैठक के लिए समय निर्धारित करना है। मैंने दिन के आरम्भ में कहा था कि दो सुझाव दिए गए हैं—सुबह का सत्र तथा मध्याह्न पश्चात् का सत्र। मुझे बताया गया है कि अधिकांश सदस्य प्रात: आठ से बारह बजे तक के सत्र के पक्ष में हैं। क्या यही सही है?

***अनेक माननीय सदस्य:** हां।

***अध्यक्ष:** यदि ऐसा है तो कल हम प्रात: आठ बजे से बैठक करेंगे। सभा कल प्रात: आठ बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा 17 मई, 1949 के प्रात:
आठ बजे तक के लिए स्थगित हुई।

Con. 4. VIII.2.40
250

अंक 8
संख्या 2

मंगलवार
17 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

राष्ट्रमंडल के निर्णय के अनुसमर्थन का प्रस्ताव–*(जारी)*..... 61–127

भारतीय विधान परिषद्

मंगलवार, 17 मई, 1949

भारतीय विधान परिषद की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में समवेत हुई।

राष्ट्रमण्डल के निर्णय के अनुसमर्थन का प्रस्ताव—*जारी*

अध्यक्षः अब हम इस प्रस्ताव पर विचार-विमर्श आरम्भ करेंगे। सेठ गोविन्द दास।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, मैं मूल प्रस्ताव का समर्थन और इस प्रस्ताव पर जो सुधार पेश हुए हैं उनका विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। सबसे पहले यह सवाल उठता है कि हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी ने जो एग्रीमेंट किया है वह किसी प्रकार भी हमारी स्वतंत्रता को, हमारे प्रजातंत्र को, राजनीति और आर्थिक किसी भी दृष्टि से क्या किसी तरह की बाधा पहुंचाता है? मैं यह कहना चाहता हूं कि इस एग्रीमेंट के बाद भी हमारा देश पूरी तरह से स्वतंत्र रहेगा। जब हमारे प्रधानमंत्री जी का ग्रेट ब्रिटेन जाने का सवाल उठा था उस समय मैंने पार्लियामेंट में पूछा था कि क्या वहां पर कोई ऐसा फैसला भी हो सकता है जिससे हमारा देश, जो सौवरिन रिपब्लिक होने वाला है, उसमें किसी प्रकार की बाधा पहुंचे? इस सवाल का बड़े स्पष्ट रूप से हमारे प्रधानमंत्री जी ने उत्तर दिया था कि ऐसा कोई भी फैसला वे वहां पर करने वाले नहीं हैं।

कल जब श्री दामोदर स्वरूप जी सेठ बोल रहे थे, तब उन्होंने यह कहा था कि हमारे प्रधानमंत्री जी ने यथार्थ में जिस बात का उन्हें अधिकार न था वह कर दी। मुझे उनकी यह बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। दामोदर स्वरूप जी ने कहा कि इन 28 वर्षों तक हम जिस मुकम्मिल आजादी को हासिल करना चाहते थे वह इससे खत्म हो गई और उन्होंने यह भी कहा कि इस सम्बन्ध में विलायत जाने के पहले हमारे प्रधानमंत्री जी ने हम लोगों से कोई सलाह व मशविरा नहीं किया। मैं दामोदर स्वरूप जी से यह कहना चाहता हूं कि हमने 28 वर्ष तक जिस कांग्रेस के झंडे के नीचे अपनी आजादी की लड़ाई लड़ी, उस कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन ने इस सम्बन्ध में अपना निर्णय कर दिया था और हमारे प्रधानमंत्री जी ने उसी निर्णय को कार्य रूप में परिणत किया है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[सेठ गोविन्द दास]

बात यह है कि इस वक्त दुनिया बहुत छोटी हो गई है। संसार के देश एक दूसरे के बहुत समीप आ गये हैं। आवागमन के इस प्रकार के साधन हमें प्राप्त हैं जिनसे हम एक जगह से दूसरी जगह, जहां पहले हफ्तों में पहुंचते थे अब घण्टों में पहुंचते हैं। ऐसी परिस्थिति में क्या हम अकेले रह सकते हैं और यदि हम अकेले नहीं रह सकते तब हमें क्या करना चाहिये? फिर हम जब चाहे तब इस समझौते को तोड़ सकते हैं।

कल दामोदर स्वरूप जी ने यह कहा कि एक न एक गुट में शामिल होने का यह अर्थ होता है कि अच्छे या बुरे किसी अवसर पर हमको उस गुट में ही रहना पड़ेगा। मैं कहना चाहता हूं कि इस एग्रीमेंट में अगर कोई विशेषता है तो वह यह है कि कामनवेल्थ में रहने पर भी कामनवेल्थ की हर बात में शामिल होने के लिये हम बाध्य नहीं। फिर यह सवाल उठता है कि यदि हमको किसी के साथ रहना ही है तो हम किस के साथ रहें। ग्रेट ब्रिटेन से हमारा बहुत पुराना सम्बन्ध है। जब तक हमें स्वतंत्रता नहीं मिली थी तब तक हमारा उसके साथ दूसरे प्रकार का सम्बन्ध था मगर हमको स्वतंत्रता मिल जाने के बाद वह दूसरे प्रकार का हो गया। जब तक हम स्वतंत्र नहीं हुए थे, उस स्वतंत्रता को हासिल करने के लिये हमारे और ग्रेट ब्रिटेन के बीच एक तरह की कशमकश चल रही थी और उस कशमकश में कटुता भी थी जिसे मैं स्वीकार करता हूं। महात्मा गांधी जी का जो दर्शन (फिलासफी) था और अभी जो दुनिया के सामने मौजूद है उसके अनुसार शत्रुता हमारी किसी के साथ नहीं हो सकती। फिर भी उस कशमकश के कारण कुछ कटुता अवश्य थी। बाद में परिस्थितियां बदल गईं, हम स्वतंत्र हो गये और हमको स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महात्मा गांधी के प्रताप के कारण, बिना किसी रक्तपात के अब ग्रेट ब्रिटेन और हमारे बीच किसी तरह की कशमकश और किसी तरह की कुटता नहीं है। वह कटुता अब मैत्री में परिणत हो गई। यदि हम सारी बातों को पुरानी नजर से देखें तो हमारे सामने कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। कल श्री कामत ने यहां पर गीता का एक श्लोक कहा था। मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों को गीता के ही एक दूसरे श्लोक का स्मरण दिलाता हूं। यदि हम पुराने क्षोभ के कारण पुरानी नजर से सब चीजों को देखें तो हमारे सामने भगवान श्री कृष्ण का वह श्लोक आता है जिसमें उन्होंने कहा है:

क्रोधाद भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

इसलिये इन बातों में हमें क्रोध और क्षोभ को पास नहीं आने देना चाहिये और हमको जो इस समय की परिस्थिति है उसकी तरफ ध्यान देकर निर्णय करना चाहिये।

मैं माननीय प्रधानमंत्री जी को इस बात पर हार्दिक बधाई देता हूं कि उन्होंने इस समय की वास्तविक परिस्थिति को देखा। वे हमारे वही नेता हैं जिनकी अध्यक्षता में हमने पहले पहल लाहौर में मुकम्मिल आजादी का प्रस्ताव पास किया था। इन परिस्थितियों में जो सबसे अच्छा देश के लिये था वह उन्होंने किया है।

मैं मानता हूं कि जिस कामनवेल्थ में हम शामिल हुए हैं, वह कामनवेल्थ अभी सच्चा कामनवेल्थ नहीं है। मैं जानता हूं कि अफ्रीका में हमारे निवासियों की जो स्थिति है, वह हमारे लिये तो दु:ख की बात है ही पर अफ्रीका निवासियों के लिये वह लज्जा की बात होनी चाहिये। मैं यह भी मानता हूं कि आस्ट्रेलिया की जो व्हाइट पालिसी, जो श्वेतांगी नीति है, वह भी कामनवेल्थ के लिये शोभास्पद नहीं। परन्तु सवाल यह है कि यदि हम उसमें न शामिल होते, तो क्या हम इस परिस्थिति को बदल सकते थे? दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में अभी यू.एन.ओ. में जो कुछ हुआ है, उसे आप जानते हैं। कामनवेल्थ में शामिल होने से इन सवालों का यथार्थ में कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सवालों को हमें दूसरे ढंग से हल करना पड़ेगा। क्षोभ और क्रोध में आकर हम कुछ न करें।

कुछ लोगों का यह भी विचार है कि हर एग्रीमेंट का एक नतीजा यह भी निकल सकता है कि आगे जब लड़ाई हो, उसमें हमें जो ग्रेट ब्रिटेन का गुट है, उसमें शामिल होना पड़े। परन्तु इस मामले को भी हमारे प्रधानमंत्री जी ने कई बार स्पष्ट किया है कि कामनवेल्थ में शामिल होने का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि जो लड़ाई होगी उसमें हमें शामिल होना पड़ेगा।

मैं तो यह आशा करता हूं कि आगे चलकर हम अपनी फिलासफी, अपने दर्शन, जो जनशक्ति हमारे देश में है उस जनशक्ति, जो नैसर्गिक साधन हमारे देश को प्राप्त हैं, उन नैसर्गिक साधनों के कारण ऐसी परिस्थिति ला सकते हैं, सब पर प्रभाव डालकर ऐसी हालत उत्पन्न कर सकते हैं, जिससे हम यथार्थ में कामनवेल्थ के देशों का नेतृत्व कर सकें। संसार में संसार के फेडरेशन की कल्पना की जा रही है। वह कल्पना बड़ी सुखद कल्पना है। वह कल्पना कार्यरूप में परिणत होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु यदि वह कल्पना अस्तित्व में आ सके तो हमारी जो स्थिति है, उसको देखते हुए यह भी हो सकता है कि संसार के एक फेडरेशन स्थापित करने में भी हम सफल हो सकें।

अन्त में मैं प्रधानमंत्री जी को फिर से बधाई देना चाहता हूं और मैं इस आशा से अपने वक्तव्य को पूर्ण करना चाहता हूं कि भगवान करे संसार की स्थायी शांति, संसार की स्वतंत्रता और हर क्षेत्र में संसार के उत्कर्ष के लिये हमारा जो एग्रीमेंट हुआ है वह केवल हमारे लिये ही नहीं परन्तु सारे संसार के लिये लाभप्रद हो।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब प्रेसीडेंट साहब, मैं इस रेजोलेशन की बड़ी जोर से ताईद करता हूं। मैं इस मौके पर बिना किसी हेजीटेशन के अपने प्राइम मिनिस्टर साहब को मुबारिकबाद पेश करता हूं, जिनकी कि यह महज पर्सनल ट्रायम्फ नहीं है, जैसा कि सरदार साहब ने फरमाया बल्कि हमारी शान के मुताबिक, देश की उस साफ पोलिसी की ट्रायम्फ भी है। हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब ने हमको कई मौकों पर बतलाया है कि देश की इंटरनल पालिसी की हाई-लाइट्स क्या हैं। इसके अन्दर सबसे अव्वल चीज जो फण्डामेंटल और सेंट्रल चीज है, वह यह है कि हिन्दुस्तान एक सौवरिन इंडिपेंडेंट रिपब्लिक है। जो साहब पंडित जी की पुरानी तकरीरों का हवाला देकर दूसरा नतीजा निकालते हैं उनसे मैं कहता हूं कि वह साहब जिन्होंने रावी पर आजादी का सबक सारे देश को दिया, जिन्होंने उस जमाने में जबकि डोमिनियन स्टेटस को इंडिपेंडेंटस का सबस्टैन्स कहते थे, जबकि बहुत से लोग आजादी और डोमिनियल स्टेटस में कोई तमीज नहीं करते थे, उस वक्त उन्होंने हमारे सामने एक ऐसा मेयार रखा जो कि अव्वल दरजे के किसी मुल्क के वास्ते बायसे फख्र हो सकता था। जिन साहब ने दूसरे मौके पर हमारे सामने वह औबजेक्टिव रिजोलेशन रखा जो दरअसल कान्स्टीट्यूशन की वह जान है, अगर आज वही हमारे सामने यह एक रेजोलेशन रखते हैं, जो दुनिया के अन्दर हमें एक स्टेटस देता है, तो इसमें क्या ताज्जुब की बात है। जो लोग बराबर उनकी स्पीचेज की कद्र करते हैं, जिस दिल और दिमाग ने उन रेजोलेशनों को बनाया वही दिल और दिमाग आज देश की सेवा के वास्ते, देश का सिर ऊंचा करने के वास्ते हमारी एक दूसरे रेजोलेशन की तरफ तवज्जो दिला रहे हैं तो हमें क्यों ताम्मुल है? मुझे तो इनका स्वागत करने और ताईद करने में ऐन खुशी होती है क्योंकि यह हमारे ख्याल के मुताबिक है, उन पुराने कनक्लूजन्स के मुताबिक है जो हमारे सामने रहते आए हैं।

इसके अलावा दूसरी चीज जो इस देश को फारेन पालिसी की हाई-लाइट्स है, वह यह है कि दूसरे ऐसे मुल्कों की, जो हमारे मुकाबले में सप्रेस्ड हैं, हम उनकी इमदाद करें।

तीसरी चीज जो बेसिक उसूल हमने अपने सामने रखे हैं कि हम दुनिया के अन्दर किसी पोलिटिकल ब्लाक का गलत तौर पर साथ न दें और हम किसी के साथ मिलकर किसी के हकूक पर डाका न मारें। इन चारों उसूलों के खिलाफ हम न जायें। इन चारों उसूलों के साथ यह एग्रीमेंट जिसका कि रेटीफिकेशन हमारे सामने मांगा जाता है, यह उन चारों उसूलों के साथ मेल खाता है, इन चारों उसूलों को आगे बढ़ाता है। मुझे कोई शक नहीं है कि यह बिल्कुल ठीक रजोलेशन है, एक ऐसा रेजोलेशन है जो हमारे दिलों का रिफ्लेक्शन है। मैं इस कनैक्शन में जनाब की तवज्जह थोड़ी सी पुरानी हिस्टरी की तरफ दिलाना चाहता हूं। सवाल उठा है यहां पर कि हमको क्या फायदा होगा और

इसको रेटीफाई करने से क्या नुकसान होगा, हम एक तराजू में तोलना चाहते हैं उन फवायद को और इन नुक्सानात को जो इस एग्रीमेंट से हमको होंगे। मुझे यह क्राईटीरियन भी मंजूर है। मैं अर्ज करना चाहता हूं कि हमारे ख्याल के मुताबिक दुनिया के अन्दर जैसे जुगराफिया का इफेक्ट होता है, उसी तरह से हिस्टरी का भी असर एक ऐसी बड़ी भारी चीज है, जिसमें से हम नहीं निकल सकते। कई सौ बरस से हमने जानबूझकर नहीं बल्कि हिस्टरी के कम्पलशन से हमारे मुल्क पर ग्रेट ब्रिटेन की हकूमत रही है। आज में पूछना चाहता हूं कि कोई हमारी असेम्बली को देखे, चाहे हमारी सारी स्टेट को देखे, कानून को देखे, आर्मी को देखे, हमारी नेवी को देखे, हमारी इंडस्ट्रीज को देखे, हमारे रहन-सहन को देखे, हमारे आउटलुक को देखे, कल्चर को देखे, हमारी सारी जिन्दगी को देखे, तो मुझे कोई शक नहीं है कि हर एक आदमी को यह मानना पड़ेगा कि कई सौ बरस के तालमेल से हम लोगों ने जो अपना ढंग निकाला है, हमने जो अपनी तरक्की का रास्ता निकाला है, हम लोगों ने जिस रास्ते पर चलना शुरू किया है, वह एक खास तरह का बन गया है, वह उसके मुताबिक है जो कामनवेल्थ के बड़े-बड़े मुल्क जिसके मुताबिक चलते हैं, उसके मुताबिक है। आज हम गो रिपब्लिक में रहना चाहते हैं तो भी ग्रेट ब्रिटेन और दूसरे मुल्कों के साथ डिमोक्रेसी के मुताबिक चलते हैं। अगर हम आज किसी चीज के पीछे चलते हैं तो वह इंग्लैंड की मदर आफ पार्लियामेंट के पीछे चलते हैं। हमारा यह सारा कान्स्टीट्यूशन जो कि हम यहां बना रहे हैं, इसकी दरअसल बिना गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट है जो कि सन् 1935 में बना था। मैं यह नहीं कहता कि हम एक बहुत पुरानी सिविलाइजेशन के मालिक होते हुए और एक इंडिपेण्डेण्ट नेशनेलटी होते हुए किसी की नकल करना चाहते हैं। हम हरगिज नकल नहीं करना चाहते, पर साथ ही हम यह नहीं भूल सकते कि बहुत वर्षों से हमारा ऐसा ताल्लुक हो गया है जिसको हम यकायक स्नेप नहीं कर सकते। अगर आज हमको एक हवाई जहाज के पुर्जे की जरूरत होती है तो उसके लिए हमको विलायत जाना पड़ता है। अगर आज हम दिल्ली जहाज में कोई मशीन लेते हैं तो उसके पुर्जों के लिए हमको विलायत जाना पड़ता है। जितनी भी हमारी मशीनरी है उसके वास्ते हम आज इंगलैंड पर डिपैण्डेंट हैं। तो आज हम इस चीज को क्यों भूल जाते हैं कि जिन मुल्कों के साथ हमारा बहुत अर्से से ताल्लुक रहा है उनके साथ हमको और कुछ अर्से तक जरूरी तौर पर रहना है। मैं यह मानता हूं कि हमने अंग्रेजों के क्राउन की हुकूमत से अपना ताल्लुक कता कर लिया और ठीक तौर पर कता कर लिया। लेकिन क्या यह अक्लमन्दी की बात नहीं है कि हम अपने फायदे के लिये उस मुल्क से कुछ और अर्से तक ताल्लुकात कायम रखें। जिस तरह कि सन् 1947 में हमारी असेम्बली ने पास किया था कि हमारे गवर्नर जनरल लार्ड माउंट बेटन रहेंगे और हमारे कमाण्डर इन चीफ आकिनलेक रहेंगे और जब तक हमको उनकी जरूरत थी वह रहे और फायदेमन्द साबित हुए। आज हम अपनी आर्डिनेन्स फैक्टरीज को देखें और उन फैक्टरीज को देखे जहां आर्म्स

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

और एम्युनीशन बनता है और देखें कि उनको कौन गाइड करता है। वह अंग्रेज अफसर हैं। इससे आज कौन इन्कार कर सकता है कि हम इस काबिल नहीं हैं कि हम दुनिया में यह कह सकें कि हमने इन दो वर्षों में इतनी तरक्की कर ली है जितनी कि दूसरे मुल्कों ने सदियों में की है। यह मैं मानता हूं कि नेहरू जी और सरदार पटेल की हुकूमत में इन दो सालों में हम बहुत ऊंचे हो गये हैं और दुनिया के मुल्कों के साथ बराबरी का दरजा हासिल करेंगे जो कि हमारा डयू है, लेकिन यह काम आहिस्ता-आहिस्ता होगा, हम अक्लमन्दी को अपने हाथ से न जानें दें। हम वह तरीके इस्तेमाल करें कि हम दुनिया के दूसरे मुल्कों से बिल्कुल आजाद हो जायें। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक क्या यह अक्लमन्दी होगी कि हम सारे उन अंग्रेज अफसरों को निकाल दें जो कि आज हमारी फैक्टरियों को चला रहे हैं। यह हमारे इंटररेस्ट में है कि हम कामनवेल्थ के साथ रहें जब तक कि यह हमारे लिये मुफीद है। हमेशा एसोसियेशन से नुकसान ही नहीं होता। बतलाया गया है कि इससे अंग्रेज खुश हैं और अमरीकन्स खुश हैं कि हिन्दुस्तान कामनवेल्थ में शामिल हो गया। मैं भी इससे बहुत ज्यादा खुश हूं, क्योंकि हमेशा जो एसोसियेशन बनते हैं वह म्यूच्युएल फायदे के लिये ही बनते हैं। कहा गया है कि अच्छा होता अगर इसके अन्दर इंग्लिस्तान के बादशाह को सिम्बोलिक हैड न माना गया होता, अच्छा होता अगर साउथ अफ्रीका की गुत्थी भी सुलझ गई होती और अच्छा होता अगर इस एग्रीमेंट के जरिये आस्ट्रेलिया की व्हाइट पालिसी हटा दी गई होती। मैं बहुत अदब से अर्ज करना चाहता हूं कि इस एग्रीमेंट में यह चीजें नहीं आ सकती थीं। अगर वहां पंडित नेहरू यह सवाल पेश करते तो दूसरे मुल्क कह सकते थे कि हम आपसे क्या बात करें क्योंकि आज तक हिन्दुस्तान में कितने ही अछूत ऐसे हैं जिनको कि जमीन खरीदने का हक हासिल नहीं है और जब तक आपके घर में यह हालत है तब तक हम आपसे बात नहीं कर सकते। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि जिन खराब बातों को हम दूसरे मुल्कों से दूर करवाना चाहते हैं, क्या उनको हमने हिन्दुस्तान में खत्म कर दिया है? मैं कहता हूं कि नहीं किया है। कई साहबान ने यही बातें, बतौर अमेण्डमेंट, इसके अन्दर दाखिल करने की कोशिश की है। मैं कहता हूं कि वह बिल्कुल इररेलेवेण्ट है और हम उनके मुताल्लिक कोई रिजोलेशन पास नहीं कर सकते।

कहा गया है कि चूंकि हम आज एक ऐसे एसोसियेशन में शामिल हो रहे हैं जो कि एंग्लो-अमरीकन ब्लाक से ताल्लुक रखता है इस वजह से हम एंग्लो-अमरीकन ब्लाक में हो जायेंगे और रशिया हमसे नाराज हो जायेगा। यह भी कहा गया है कि अगर रशिया चाहे तो चन्द घण्टों में हिन्दुस्तान आ सकता है। मैं आपसे अदब के साथ अर्ज करूंगा कि यह बात बिल्कुल गलत है। आप मुझे मुआफ करेंगे अगर मैं एक जरा स्लेंग की मिसाल पेश करूं। कहते हैं कि लो जी फलां की मां ने खसम किया, बहुत बुरा किया,

लेकिन अगर खसम करके छोड़ दिया तो और भी बहुत बुरा किया। आज हम अर्से से इस एसोसियेशन में चले आ रहे हैं। हो सकता था कि दूसरे मुल्क आज हमारी रिपब्लिक डिक्लेअर होते ही हमको उस एसोसियेशन से खारिज कर देते और कह देते कि आप अपना रास्ता देखिये क्योंकि आपका एसोसियेशन किंग के साथ नहीं है। हमारे पंडित नेहरू वहां इसलिये तशरीफ नहीं ले गये थे कि वहां जाकर उन मूल्कों से दरख्वास्त करें कि आप हमको किसी तरह इस एसोसियेशन में रख लीजिये। बल्कि वह इस वास्ते गये थे क्योंकि वह नेशन्स अपना पुराना ताल्लुक कायम रखना चाहती हैं चाहे हम किंग का एलीजेंस न मानें। आज हर एक हिन्दुस्तानी अपना सर ऊंचा कर सकता है कि वह किसी हुकूमत के मातहत नहीं है सिवा इण्डिपेण्डेण्ट सावरिन इण्डियन रिपब्लिक के। यह सबसे बड़ी बात है। अगर वह लोग कहते कि हम आपको किसी और शर्त पर शामिल कर सकते हैं, इस शर्त पर नहीं, तब तो एक सवाल उठ सकता था। आज तक हम इस कामनवेल्थ की जम्हूरियत से इसी वजह से खार खाते थे कि इसमें हमको बराबरी का हक नहीं था, लेकिन मैं पूछता हूं कि आज जबकि उसका हर एक मेम्बर बराबर का पार्टनर है तो उसमें शामिल होने में हमको क्यों ताम्मुल होना चाहिये। अगर आज हिन्दुस्तान की जरूरत दूसरे मुल्कों को है तो हिन्दुस्तान को भी दूसरे मुल्कों की जरूरत है। मैं इस बात को एक मिनट के लिये भी मानने को तैयार नहीं हूं कि इस एग्रीमेंट को रेटीफाई करने में हमारी एसेम्बली को कोई ताम्मुल हो सकता है। यह तो हमारी जीत रही कि हम बादशाह के मातहत नहीं हैं और दूसरे मुल्क जो कि बादशाह के मातहत हैं वह हमारे साथ इस एसोसियेशन में मिलने को तैयार हैं। आप किसी नुक्ते ख्याल से देखें, इसमें कोई शक नहीं है कि इसमें हमारा फायदा है कि हम इसको रेटीफाई करें।

इसके अलावा हमको और बातों का भी ख्याल रखना है। अगर आज यह कन्टीन्यूइटी टूट जाती है तो सारे ब्रिटिश पजेशन्स में हिन्दुस्तानियों की पोलिटिकल और इकानोमिक हालत पर बहुत बुरा असर पड़ेगा।

आपको बखूबी मालूम है कि यूनाइटेड नेशन्स के अन्दर एक छोटी सी काउंसिल है जिसका मंशा यह है कि जिन कौमों का स्टैण्डर्ड आफ लिविंग नीचा है उसको उठाने की कोशिश की जाये। पिछली दफा जब पार्लियामेंटरी कान्फ्रेंस की बैठक हुई और उसमें 34 मुल्कों के आदमी शरीक हुए थे तो वहां भी इससे इन्कार नहीं किया गया था कि कामनवेल्थ का नाम ब्रिटिश कामनवेल्थ न रखा जाये बल्कि नाम तब्दील कर दिया गया था। उस वक्त मैंने इकानोमिक कन्डीन्शस के बारे में जिक्र करते हुए कान्फ्रेंस में कहा था कि हमारे साथ इंग्लैंड ने इन्साफ नहीं किया, हमारे पास पांच हजार का कोस्ट लाईन है पर हमारे पास इंग्लैंड ने कोई जहाज नहीं छोड़ा, हमारी 40 हजार मील की रेलवे ट्रेक है, पर हमारे पास कोई लोकोमोटिव बनाने का कारखाना नहीं है और इस गरीब मुल्क

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

से 1700 मिलियन स्टर्लिंग कर्जा जबरदस्ती के लिये है। मैं अर्ज करूंगा कि कामनवेल्थ को भी इस तरह की एक काउंसिल कामनवेल्थ के अन्दर भी बनानी चाहिये ताकि वह जिन मेम्बरो का स्टैण्डर्ड नीचा है उसको बढ़ाने में मदद करे। मैं पूछता हूं कि आज हिन्दुस्तान की जरूरत में कौन सा मुल्क हाथ बटा सकता है। क्या रूस हमारी मदद कर सकता है या अमरीका हमारी मदद कर सकता है? मैं समझता हूं कि इंग्लैंड का और कामनवेल्थ के दूसरे मुल्कों का फर्ज है कि वह इन्साफ करें और हिन्दुस्तान की तरक्की करने में हाथ बटायें। मगर उनको हमसे फायदा होता है तो हमको भी उनसे फायदा हो। ट्रेड इंटर नेशनल चार्टर में भी इस कामनवेल्थ को रिकग्नाइज किया गया है और उसमें कामनवेल्थ की यह पोजीशन है कि जो प्रिविलेजेज और मुल्क उसको दें वह प्रिविलेजेज वह भी और मुल्कों को दे। इस वास्ते यह कहना कि रशिया नाराज हो जायेगा यह बिल्कुल गलत हैं। रशिया के नाराज होने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता और अगर जिन मुल्कों के साथ हमारा अब तक ताल्लुक रहा है अगर उसको हम एकदम छोड़ दें तो ऐसा करने का हमको क्या मौका है। हिन्दुस्तान की यह पुरानी प्रथा रही है कि जिस मुल्क के साथ ताल्लुक रखा उसके साथ दोस्ती का हक पूरा किया और अपनी दोस्ती को कायम रखा। हमको अपने दोस्तों को कोई ऐसा मौका नहीं देना चाहिये कि जिससे कोई नाराजगी का सवाल पैदा हो, उनका पुराना साथ छोड़ने से।

इसमें शक नहीं कि न तो इस आरगेनाइजेशन का कोई सेक्रेटरी है और न इस आरगेनाइजेशन का कोई प्रेसीडेंट है। ब्रिटिश किंग की बाबत कहा जाता है कि वह इसका हैड है, यह मेरी समझ में नहीं आया कि यह क्या चीज है। इसकी मीटिंग में ब्रिटिश किंग प्रिसाइड नहीं करेगा, वह इसका प्रेसीडेंट कभी नहीं होगा और न कभी कोई कास्टिंग वोट देगा। न वीटो का सवाल पैदा होता है। तो उसको कभी ऐसे अख्तियार इस्तेमाल करने का मौका नहीं मिलने को है। कहा तो गया है कि किंग का कोई फंक्शन नहीं है। यह एग्रीमेंट एक ट्रीटी से भी कम वकअत रखता है, आप जब चाहें इसको स्क्रैप कर सकते हैं। इस तरह इस ज्वाइंट फैमिली में आप सब इंडिपेण्डेण्ट होंगे। यह एक तरह से पार्टनरशिप नहीं बल्कि एक एसोसियेशन है जिसके हम एक मेम्बर हैं और उस हैसियत से हमारा सिर और भी ऊंचा है। हमको आज जो काम करना है वह हम बेहतर तरीके से कर सकते हैं, बैहैसियत एक मेम्बर इस एसोसियेशन के होने के। इन अल्फाज के साथ मैं इस रिजोल्यूशन की जोर से ताईद करता हूं।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, हाल में पंडित जवाहरलाल नेहरू इंग्लैंड गये थे और उन्होंने छः अन्य स्वतंत्र देशों से एक समझौता किया था। हमारे

सामने अब यह प्रश्न है कि हमें उस समझौते का अनुसमर्थन करना चाहिये अथवा नहीं करना चाहिये। इस अवसर पर मैं उस समझौते के गुण-दोषों का विवेचन करने नहीं जा रहा हूं। यह समझौता चाहे अच्छा हो या बुरा या उदासीन इसका मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रीमान्, मेरा यह कहना है और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है, कि सभा इससे सहमत होगी कि हमारे पास इस समझौते का अनुसमर्थन करने के अलावा कोई चारा नहीं है। इसका कारण यह है कि पंडित नेहरू ने यह समझौता पंडित नेहरू की हैसियत से नहीं किया। उन्होंने यह समझौता वैदेशिक मंत्री की हैसियत से, हमारे प्रधानमंत्री तथा नेता की हैसियत से और भारत के सर्वप्रधान प्रतिनिधि तथा वक्ता की हैसियत से, भारत के लोगों की ओर से किया। इसलिये अब हम उनके प्रति विश्वासघात नहीं कर सकते। मैं यह कह चुका हूं कि यह एक संधि है और...

***एक माननीय सदस्यः** यदि वह खराब हो तब भी?

***मि. तजम्मुल हुसैनः** वे हमारे प्रतिनिधि हैं और इसी हैसियत से वे वहां गये और यह जानते हुये कि वे वहां जा रहे हैं हमने उनसे कभी यह नहीं कहा कि आप न जाइये। क्या आपने उनसे कहा कि आप जो कुछ करने जा रहे हैं उसके सम्बन्ध में सभा से परामर्श लें? ऐसा कभी नहीं होता है। क्या कैनाडा के प्रधानमंत्री ने अपने लोगों से कुछ पूछा? परन्तु हमसे कहा गया है, हमने अपने नेताओं के वक्तव्यों को सुना है और हम यह जानते भी हैं, कि यहां के लोगों से परामर्श लिया गया था और हमारे उपप्रधानमंत्री ने हमसे कहा है कि जो कुछ किया गया है उससे वे पूर्णतया सहमत हैं। क्या कोई भी ऐसा समझदार आदमी है जो इससे सहमत नहीं है? जब हमारा प्रतिनिधि यहां से जाता है और कोई समझौता करता है तो फिर हमें इसकी चिन्ता न होनी चाहिये कि वह समझौता क्या है? हमें उसका अनुसरण करना चाहिये और उसका अनुसमर्थन करना चाहिये। श्रीमान्, मेरा तो अपना यह विचार है।

अब हमें यह देखना है कि वह समझौता है क्या? भारत एक स्वतंत्र देश है। अब वह पूर्णतया स्वतंत्र है। वह किसी देश के अधीन नहीं है और उसी प्रकार स्वाधीन है जैसे अमेरिका और ब्रिटेन और संसार के अन्य देश। उसे सर्व सत्तात्मक शक्तियां प्राप्त हैं। वह कोई भी काम कर सकता है और किसी भी काम का निराकरण कर सकता है। वह किसी भी देश से युद्ध छेड़ सकता है और किसी भी देश से शान्ति सन्धि कर सकता है। कोई भी देश हमारे आंतरिक तथा वैदेशिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इस समय हम एक ऐसे संघ के सदस्य हैं जो साधारणतया राष्ट्रमण्डल के नाम से विख्यात है। हमारे सम्मुख इस समय यह प्रश्न है कि हमें राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहना चाहिये

[मि. तजम्मुल हुसैन]

अथवा नहीं। श्रीमान्, मेरा यह कहना है कि इससे हमारा हितसाधन ही होगा और हमें उसका सदस्य बने रहना चाहिये। जहां तक मैं समझ पाया हूं आपत्तिजनक बात केवल यही है कि इस समय सम्राट हमारा प्रमुख है। किन्तु हमारे प्रधानमंत्री ने इस दोष का बड़ी योग्यता से निराकरण कर दिया है। अब इंग्लैंड का सम्राट भारत का सम्राट नहीं रह गया है। अब सम्राट राष्ट्रमण्डल का प्रमुख एक प्रतीक के रूप में रहेगा। समझौते अथवा संधि के अनुसार भारत सम्राट के प्रति वफादार न रहेगा। यदि हमारे राष्ट्रपति इंग्लैंड, अमेरिका, रूस अथवा संसार के किसी देश को जायेंगे तो वे हमारे देश के प्रमुख समझे जायेंगे। यदि इंग्लैंड के सम्राट अथवा अमेरिका के प्रधान यहां आयेंगे तो वे एक स्वतंत्र राज्य के प्रमुख के अतिरिक्त और कुछ न समझे जायेंगे। इंग्लैंड का सम्राट कहीं भी भारत का सम्राट न समझा जायेगा। अपने राज्य के प्रमुख के रूप में हम उनका उसी प्रकार आदर करेंगे जैसे वे हमारे राष्ट्रपति अथवा किसी स्वतंत्र राज्य के प्रमुख का आदर करेंगे।

आखिर राष्ट्रमण्डल है क्या? जैसा कि मैं कह चुका हूं, वह सात विभिन्न स्वतंत्र देशों के प्रधानमंत्रियों का सम्मेलन मात्र है और उसका प्रत्येक सदस्य जब कभी वह चाहे उसे छोड़ सकता है। मैं एक उदाहरण देता हूं। यदि इंग्लैंड रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दे तो भारत क्या करेगा? भारत तीन बातों में कोई बात कर सकता है। वह रूस के विरुद्ध इंग्लैंड का साथ दे सकता है। परन्तु मेरा यह विश्वास है कि भारत यह कभी नहीं करेगा और न पंडित नेहरू ही ऐसा करेंगे। दूसरी बात यह है कि भारत तटस्थ रह सकता है। यही होगा। तीसरी बात यह है कि वह इंग्लैंड के विरुद्ध रूस का साथ दे सकता है। यदि यह हुआ तो राष्ट्रमण्डल उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो जायेगा जैसे कि राष्ट्र संघ हुआ था। वह स्वत: समाप्त हो जायेगा। इसलिये मेरा यह कहना है कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य रहने पर भी हम पूर्णतया स्वतंत्र रहेंगे। मेरी तो अपनी यह धारणा है और यह प्रबल धारणा है कि यदि भारत राष्ट्रमण्डल में बराबर रहा, जैसा कि उसने निश्चय किया है, तो संसार में युद्ध नहीं होगा। युद्ध की सम्भावना टल जायेगी और इस प्रकार भारत संसार में शान्ति स्थापित करने में बहुत योग दे सकेगा। मेरा यह नम्र निवेदन है कि राष्ट्रमण्डल में रहने के लिये हमारे लिये यही कारण पर्याप्त है।

***अध्यक्ष:** पंडित बालकृष्ण शर्मा। परन्तु इसके पूर्व कि वे आरम्भ करें मैं एक बात कहना चाहता हूं। कई सदस्यों ने बोलने की इच्छा प्रकट की है। मुझे कई पर्चियां मिली हैं और आज भी मिल रही हैं। कल एक सदस्य महोदय ने यह आपत्ति की थी कि पर्चियों के आधार पर सदस्यों से बोलने के लिये न कह के अपनी जगहों पर उठने पर ही उनसे बोलने के लिये कहा जाये। मैं यही करना चाहता हूं। इसलिये मुझे आशा है

कि जो सदस्य पर्चियां भेज चुके हैं वे भी यदि बोलना चाहें तो अपनी जगहों में खड़े होंगे।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, भारत के प्रधानमंत्री के प्रस्ताव के विरुद्ध इस सभा में जो भाषण दिये गये हैं उन्हें मैंने ध्यानपूर्वक सुना है और राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की घोषणा के सम्बन्ध में समाचार पत्रों में तथाकथित 'वामपक्षियों' की आलोचनायें भी देखी हैं। इन सभी आपत्तियों को पढ़ने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि ये मोटी तौर पर छः श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं।

एक इस प्रकार की आपत्ति की गई है कि राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों की घोषणा, जिसे भारत ने स्वीकार किया है हमारी परम्परा के विरुद्ध है और यह सिद्ध करने के लिये कि हमारी परम्परा ब्रिटिश-विरोधी रही है, माननीय प्रधानमंत्री के भाषणों से तथा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के प्रस्तावों से बहुत से उद्धरण दिये गये हैं। पहली आपत्ति यह की गई है।

दूसरी आपत्ति यह की गई है कि इस प्रकार का कदम उठाकर हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से एक अपवित्र गठबन्धन कर रहे हैं।

तीसरी आपत्ति संक्षेप में इस प्रकार है कि इस प्रकार के कार्य से हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निश्चित रूप से एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो जायेंगे और सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य के नागरिक होने के नाते हमें अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जिस स्वतंत्रता का अधिकार है उसका इस कार्य से अपहरण हो जायेगा।

चौथी बात जो इस घोषणा के विरोधियों ने कही है वह यह है। यद्यपि हम स्वतंत्र हो गये हैं। परन्तु फिर भी हम ब्रिटिश वैदेशिक विभाग का दामन पकड़े हुए हैं और हमने अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा ब्रिटिश वैदेशिक नीति के रथ के साथ बांध दिया है।

पांचवीं बात जो इस घोषणा के विरोधियों ने कही है वह यह है कि सम्राट की प्रमुखता की जनतंत्र से ठीक संगति नहीं बैठती। छठी बात उन्होंने राष्ट्रमंडल के देशों में जातीयता के सम्बन्ध में कहीं है।

घोषणा के विरोधियों ने जो कुछ कहा है उसमें मुझे मुख्यतः यही छः आधारभूत बातें दिखाई देती हैं और मैं इनको एक-एक करके उठाऊंगा।

मैं सर्वप्रथम इस पर विचार करूंगा कि राष्ट्रमण्डल के देशों से यह गठबन्धन हमारी परम्परा के विरुद्ध है...

***एक माननीय सदस्यः** अवश्य ही।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** मेरे माननीय मित्र ने बिना अपने विघ्न का अर्थ समझे हुए ही बड़ी बहादुरी से कह दिया है 'अवश्य ही'। यदि वे एक क्षण के लिये मेरी बातें सुनें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उन्होंने जिस बात को अवश्य ही ठीक कहा है वह उतनी ठीक नहीं है। हमें हमारे नेता के उस भाषण का स्मरण कराया गया है जो उन्होंने सन् 1937 में धारा सभाओं के सदस्यों के सम्मेलन में दिया था और मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने यह कहा है कि निश्चित रूप से हमारी यह नीति निर्धारित की गई है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से हम किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे और यह कि अंग्रेजों से हर प्रकार सम्बन्ध विच्छेद करना ही है और यह कि हमारे नेता ने सम्बन्ध विच्छेद के अपने प्रख्यात सन्देश में यह कहा था कि हम ब्रिटिश वैदेशिक विभाग का दामन पकड़े रहना नहीं चाहते और न वैदेशिक मामलों में व्हाइट हाल से पथप्रदर्शन चाहते हैं।

जब हम इन सभी आपत्तियों पर विचार करने लगते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों से सम्बन्ध रखने में हमें जिन बातों के बारे में आपत्ति थी उनका इस घोषणा से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब हमने अंग्रेजों से इस सम्बन्ध के बारे में आपत्ति की थी तो हमने अंग्रेजों के प्रभुत्व के बारे में आपत्ति की थी और हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारा पथप्रदर्शन करने और हमें वचनबद्ध करने पर आपत्ति की थी जिसमें वे इतने आगे बढ़ गये थे कि नं. 10 डाउनिंग स्ट्रीट अथवा पार्लियामेंटों की जननी के ही आदेश से हमसे बिना परामर्श लिये हुए ही हमें एक महायुद्ध में घसीट दिया गया। इस घोषणा में इस प्रकार की कोई बात नहीं है। बार-बार यह कहा गया है कि हम अपनी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में तथा आन्तरिक मामलों के सम्बन्ध में स्वतंत्र हैं और जो चाहे कर सकते हैं। इस स्थिति में मेरी समझ में नहीं आता कि राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की घोषणा के विरुद्ध जो मत प्रकट किया गया है उसका समर्थन करने के लिये भारतीय राष्ट्र के नेता की हैसियत से हमारे प्रधानमंत्री की की हुई घोषणाओं को अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति अथवा कांग्रेस के प्रस्तावों को उद्धृत करना कहां तक ठीक है। आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब अंग्रेजों से हमारा वह सम्बन्ध नहीं रह गया है जो पहले था। पहले के सम्बन्ध पर ही हमको आपत्ति थी न कि उस सम्बन्ध से जिसकी कल्पना इस घोषणा में की गई है।

दूसरी आपत्ति अर्थात् यह कि हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से एक अपवित्र गठबन्धन करने जा रहे हैं मुझे बिल्कुल निराधार प्रतीत होता है। जब मेरे मित्र ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में सोचने लगते हैं तो उनकी यह धारणा होती है कि उपनिवेशों में ब्रिटेन जो कुछ कर रहा है उसमें हम भी हाथ बटायेंगे। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह बात

नहीं है। उससे हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेज मलाया में जो कुछ कर रहे हैं अथवा डच इंडोनेशिया में जो कुछ कर रहे हैं अथवा फ्रांसीसी हिंदचीन में जो कुछ कर रहे हैं उसका हम विरोध कर सकते हैं। हमारा देश अभी एक उपनिवेश होते हुए भी, जबकि हमने अपने लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव के अतिरिक्त और कहीं भी अपने देश को सर्वसत्ताधारी गणराज्य घोषित नहीं किया है (क्योंकि हम इस समय विधान निर्माण कार्य के मध्य में हैं) क्या हमने उपनिवेश का बीड़ा नहीं उठाया है और राष्ट्रसंघ में तथा संसार में उनके लिये संघर्ष नहीं किया है? क्या उन उत्पीड़ित राष्ट्रों के लिये संघर्ष करने में हमें ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध रखने से कोई बाधा पहुंची है? यदि नहीं पहुंची है तो यह कहना कि राष्ट्रमण्डल के देशों से सम्बन्ध स्थापित करके हम ब्रिटिश वैदेशिक नीति का अनुसरण करेंगे अथवा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथ में कठपुतली हो जायेंगे बिल्कुल निराधार है। मैं यह कहूंगा कि यह बिल्कुल असत्य है।

तीसरी बात एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित होने के बारे में है। मेरे विचार से हम किसी भी गुट में नहीं सम्मिलित होने जा रहे हैं। हमारे वैदेशिक विभाग के मंत्री महोदय ने, जो हमारे प्रधानमंत्री भी हैं, असंख्य बार कहा है कि हमारी वैदेशिक नीति का विकास हो रहा है और जहां तक सम्भव है हम सभी गुटों से अलग रहने का प्रयास कर रहे हैं। हम इस मद को स्वीकार नहीं कर रहे हैं कि हमें सीधे-सीधे एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिये। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने प्रधानमंत्री की वैदेशिक नीति की इस आधार पर आलोचना की है कि हमें सीधे-सीधे एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिये या और कुछ लोगों की यह धारणा है कि हमें रूसी गुट में सम्मिलित हो जाना चाहिये था। किन्तु हम अभी तक इन गुटों से बिल्कुल अलग रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में भले ही हमारी आवाज कमजोर हो परन्तु वह आदरपूर्वक सुनी जाने लगी है और ऐसे क्षेत्रों में भी जहां हमको किसी न किसी गुट के साथ जुड़ा हुआ समझा जाता है और नीची निगाह से देखा जाता है हमारे दृष्टिकोण पर आदरपूर्वक विचार किया जाने लगा है। इसलिये यह आलोचना कि हम अमुक-अमुक गुट में सम्मिलित हो रहे हैं बिल्कुल निराधार है। मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कहा है कि ''एशिया का एक तिहाई भाग रूस का अंग है, चीन साम्यवादी हो गया है और बर्मा, मलाया और इंडोनेशिया साम्यवादी होते जा रहे हैं। ऐसी घड़ी में हम तथाकथित एंग्लो-अमेरिकन गुट में क्यों सम्मिलित हुए हैं?'' पहले तो उनकी बातें निराधार हैं। हम किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं हुए हैं। इसके अतिरिक्त आखिर उनका आशय क्या है? चूंकि चीन साम्यवादी हो गया है और एशिया का एक-तिहाई भाग साम्यवादी है तथा इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा भी साम्यवादी होने जा रहे हैं, क्या हमें भी साम्यवादी होने का प्रयास करना चाहिये? क्या उनका अर्थ यह है कि चूंकि हमारे पड़ौसी साम्यवादी होने

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

जा रहे हैं इसलिये हमें भी साम्यवादी हो जाना चाहिये? श्रीमान्, यदि कोई मुझे यह विश्वास दिला दे कि हमारे साम्यवादी होने से देश का तथा मानवमात्र का हितसाधान होगा तो मैं सर्वप्रथम इस दिशा में आगे बढ़ूंगा। किन्तु हमने रूस की वैदेशिक तथा आन्तरिक नीति के बारे में जो कुछ पढ़ा है उससे दुर्भाग्य से यह विश्वास हो जाता है कि अन्ततोगत्वा उससे पददलित लोगों का अथवा संसार का कल्याण न होगा। आखिर क्यों? क्योंकि उनका अन्य लोगों से आधारभूत मतभेद है और इस मतभेद की उत्पत्ति साम्यवाद की विचारधारा से ही होती है। जब तथाकथित वैज्ञानिक समाजवाद की चर्चा होती है तो मुझे यह कहना पड़ता है कि यह वैज्ञानिक समाजवाद बिल्कुल ही खोखली चीज है क्योंकि 19वीं शताब्दी की विज्ञान की कल्पना पर आधृत वैज्ञानिक विचारधारा अब वैज्ञानिक नहीं रह गई है। तबसे विज्ञान इतना बदल गया है कि उस समय के और अब के विज्ञान में कोई समानता नहीं रह गई है। 19वीं शताब्दी के विज्ञान में अनिश्चितता के सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं था। किन्तु आज का विज्ञान यह घोषणा करता है कि एक इलेक्ट्रन के सम्बन्ध में सब बातें तो दूर रहीं कुछ भी बातें नहीं जानी जा सकती। तथाकथित वैज्ञानिक समाजवाद कुछ पूर्व निश्चित धारणाओं के आधार पर अर्थात् भौतिकवाद के आधार पर मनुष्य के सभी कार्यों की व्याख्या करता है। आखिर यह भौतिकवाद है क्या? आज भौतिकवाद का लोप हो रहा है और उसका स्थान गणित के सूत्र ले रहे हैं किन्तु फिर भी वैज्ञानिक समाजवाद की चर्चा की जाती है। श्रीमान्, मेरा यह कहना है कि वह न वैज्ञानिक है और न सामाजिक। मैं तो यह कहूंगा कि वह समाज विरोधी है क्योंकि शासन के पिशाच के सम्मुख व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षण का बलिदान किया जाता है।

इसलिए मेरा यह कहना है कि यदि हम समाजवाद अथवा साम्यवाद के आधारभूत सिद्धान्तों से सहमत हो सकते तो हम उन्हें सर्वप्रथम अंगीकार करते। किन्तु दुर्भाग्य से हम यह देखते हैं कि अवैज्ञानिक और असामयिक है। इसी कारण हम रूसी गुट में सम्मिलित नहीं होने जा रहे हैं और न तथाकथित एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित होने जा रहे हैं। हमें इसकी पूर्ण स्वतंत्रता है कि हम जैसे भी चाहे अपनी वैदेशिक नीति निश्चित करें और मेरी समझ में नहीं आता कि इस सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव है उसके विरुद्ध लोग यहां अनेक प्रकार के तर्क क्यों उपस्थित करते हैं।

इस सभा से मैं एक बात यह कहना चाहता हूं कि वर्तमान काल में, जैसा कि प्रख्यात दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर ने कहा है कि परम्परागत धारणा के आधार पर विचार करने से काम नहीं चलेगा। धारणायें कई प्रकार की होती हैं जैसे कि परम्परागत धारणा, धार्मिक धारणा और वैज्ञानिक धारणा भी। नि:संदेह हमारा पूर्ण इतिहास, इंग्लैंड के साथ हमारे पिछले

28 वर्षों के संग्राम का इतिहास, ब्रिटेन विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण है। किन्तु क्या राष्ट्रपिता ने हमको यह शिक्षा नहीं दी है कि हम किसी प्रणाली से भले ही घृणा करें परन्तु उसके रचियताओं से हम घृणा न करें? किन्तु आज हमने उस प्रणाली को, जिससे हम घृणा करते थे, उन्हीं लोगों से बदलवा दिया है जो उसका समर्थन करते थे और इसी लिये हम उनसे नाता जोड़ रहे हैं।

जैसा कि प्रधानमंत्री महोदय कह चुके हैं, हमने कोई वचन नहीं दिये हैं। हमने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की वैदेशिक नीति को अंगीकार नहीं किया है। राष्ट्रमण्डल का कोई भी देश संयुक्त राष्ट्र संघ में जिस मार्ग का भी अवलम्बन करना चाहे कर सकता है। हमने यह किया है और आस्ट्रेलिया ने भी यह किया है। इसलिये बार-बार यह तर्क उपस्थित करना कि हम अपने को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के रथ के साथ बांध रहे हैं बिल्कुल निरर्थक प्रतीत होता है।

श्रीमान्, मेरे मित्र श्री कामत ने कल जो भाषण दिया था उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने कुछ बहुत ही सारपूर्ण तथा तर्कपूर्ण प्रश्न पूछे थे। उन्होंने एक प्रश्न यह पूछा था कि क्या राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होने से हमें कोई लाभ होगा? हमने इस नीति का समर्थन इस सभा में ही नहीं किया बल्कि कांग्रेस के महान संगठन में भी किया। हमने आंखें खोलकर सब बातें देखी और अपने प्रधानमंत्री को इस प्रकार की बातचीत करने का अधिकार दिया। क्या हमने उस समय इसके पक्ष में और विपक्ष में सभी बातों पर विचार नहीं कर लिया था? हमने यह सब कुछ जान बूझकर किया और हम यह भी जानते हैं कि इससे हमें अवश्य ही लाभ होगा। आखिर हमारे देश का सैनिक विज्ञान अभी शैशवावस्था में ही है और अपनी रक्षा के सम्बन्ध में ब्रिटेन से नाता जोड़कर हमें बहुत लाभ होगा। इसके अतिरिक्त आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में हमने बहुत सी बातें करनी हैं और इनके बारे में हमें ब्रिटेन तथा राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के विशेषज्ञों से परामर्श प्राप्त हो सकता है और वे हमारा पथप्रदर्शन कर सकते हैं। हम अपने को उस लाभ से क्यों वंचित करें विशेषत: जबकि सम्राट का इसके अतिरिक्त और कोई स्थान नहीं है कि उसे राष्ट्रमण्डल का प्रमुख माना गया है जिसका महत्त्व अधिक नहीं है क्योंकि अब वह हमारे आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा। हमारे देशदूत उनके नाम से नियुक्त नहीं होंगे। वे हमारे राज्य के प्रमुख के नाम से अर्थात् राष्ट्रपति के नाम से नियुक्त होंगे।

इन सभी बातों पर विचार करने के उपरान्त मेरे विचार से हमें अपने प्रधानमंत्री को राष्ट्रमण्डल के सभी राजनीतियों को एक ऐसी बात पर राजी कर लेने के लिये धन्यवाद देना चाहिये जो हमारे लिये हर प्रकार लाभप्रद है।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस सभा से यह सिफारिश करता हूं कि माननीय प्रधानमंत्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं अपने मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना और श्री दामोदर स्वरूप सेठ का इन कारणों से समर्थन करने के लिये तैयार हूं। मैं भी सक्सेना का इस कारण समर्थन करता हूं कि उन्होंने अपने संशोधन द्वारा वही तर्क उपस्थित किया है जो मैंने आरम्भ में इस सभा के पहले अधिवेशन में ही प्रस्तुत किया था। उस समय मैंने कहा था और मैं इस समय भी यह कहता हूं कि इस सभा को इस प्रकार के विधान को बनाने का अधिकार नहीं है। क्योंकि इसका निर्वाचन बहुत ही संकुचित निर्वाचन मण्डल के आधार पर हुआ था जिसका स्वरूप साम्प्रदायिक था, घोरतम साम्प्रदायिक था और इसका यह परिणाम हुआ है कि इस सभा में एक ही दल का प्रभुत्व है। इसलिये यह एक बहुत ही अनर्गल बात है कि इसे विधान निर्माण की शक्ति दी जाये। केवल उसी दल का यहां अस्तित्व है और वह एक ही दृष्टिकोण को उपस्थित करता है। जब मैं यह कहता हूं और जब मेरी यह सम्मति है कि इस सभा को विधान बनाने का अधिकार नहीं है तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मैं श्री सक्सेना का समर्थन करता हूं जो वही बात चाहते हैं जिसे मैं चाहता हूं। वे यह कहते हैं कि आप अपने अन्तिम उद्देश्य तथा अन्तिम नीति की घोषणा उस समय तक न कीजिये जब तक कि संयुक्त निर्वाचक-मंडलों के सिद्धांत के विस्तृत आधार पर एक नई सभा का निर्वाचन न हो जाये।

श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री दामोदर स्वरूप का इस कारण समर्थन करता हूं कि मैं प्रधानमंत्री महोदय के बनाए हुए बहाने का निराकरण करना चाहता हूं। उन्होंने कहा है कि ''अच्छी बात है हमारा देश गणराज्य हो जायेगा परन्तु हम अलग नहीं रह सकते हैं। हमें किसी शक्ति के साथ किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना ही होगा''। यह बात मेरी समझ में आती है। परन्तु मैं यह तर्क उपस्थित कर सकता हूं कि ''यह कैसी बात है कि आप केवल ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के लोगों को ही खुश करना चाहते हैं? आप ईमानदारी के सीधे रास्ते पर क्यों नहीं चलते हैं? जब आपका यह दावा है कि आपका देश स्वतंत्र समाजवादी गणराज्य है तो आप यह क्यों नहीं कहते हैं कि आप सभी स्वतंत्र देशों से पृथक् सन्धियां तथा समझौते करेंगे और ऐसा करने में उस सिद्धान्त का अनुसरण करेंगे जिसे स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के राजनैतिक दल ने निश्चित किया था। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने कहा था कि वे सभी स्वतंत्र देशों से परस्पर सहयोग के आधार पर सन्धि करेंगे और केवल उन्हीं स्वतंत्र देशों से सहयोग करेंगे जो हमारे देश से सहयोग करने के लिये तैयार होंगे। दक्षिण अफ्रीका जैसे देश से सन्धि करने से कोई लाभ न होगा। हमारे देशवासियों के प्रति उस देश का व्यवहार सर्वविदित है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देश भी भारतीयों को अपनी भूमि में कदम नहीं रखने देते। ऐसे लोगों

के पास जाकर हम कैसे सन्धि कर सकते हैं? मेरी समझ में नहीं आता कि माननीय प्रधानमंत्री के समान प्रखर बुद्धि पुरुष किस प्रकार दक्षिण अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देशों से सन्धि कर सकते हैं? मेरे विचार से इस प्रकार की सन्धियों से हमारे सम्मान की हानि होती है। हमें इन देशों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहिये। वास्तव में एक समय हमने इनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया था। हमने दक्षिण अफ्रीका से अपने प्रतिनिधि को वापस बुला लिया था। अब हम उस नीति को उलट रहे हैं और समझौते की नीति का अनुसरण कर रहे हैं जब मैंने समाचार पत्रों में यह पढ़ा कि हमारे प्रधानमंत्री की डॉ. मलान और मि. चर्चिल से मैत्री हो गई है तो मेरा सिर शर्म से झुक गया। जब वे इंग्लैंड गये तो भारतीय स्वतंत्रता के इन जन्मजात शत्रुओं के साथ में रहे। मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे प्रधानमंत्री के विचारों में इस प्रकार का परिवर्तन कैसे हो गया। उन्हें मि. चर्चिल से मिलना ही नहीं चाहिये था और बोलना ही नहीं चाहिये था। उन्हें डा. मलान जैसे लोगों के बीच में नहीं जाना चाहिये था। मुझे जिस बात का डर था वही सच निकली क्योंकि मैं यह देखता हूं कि इन सम्मेलनों के बाद उनका दृष्टिकोण ही बदल गया है। पहले मि. चर्चिल हमारे प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण की निन्दा करते थे। अब वे भी बदल गये हैं यह निश्चित ही इसका द्योतक है कि हम ठीक रास्ते पर नहीं चल रहे हैं। जब हमारी किसी नीति की प्रशंसा मि. चर्चिल और डॉ. मलान जैसे लोग करने लगते हैं तो हमें उसकी अनर्गलता सिद्ध करने के लिये अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसीलिये मैं इन दोनों संशोधनों का समर्थन करता हूं। इसके अतिरिक्त मैं यह अनुभव करता हूं कि हमारे मित्र प्रधानमंत्री महोदय ने दुर्भाग्य से जो घोषणा की है उसके अनुसमर्थन के उद्देश्य से जो प्रस्ताव रखा गया है उसके सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित करना निरर्थक है। उसमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं हो सकता। उसका तो अन्त ही होना चाहिये। उसमें संशोधन होने की कोई सम्भावना नहीं है। इस घोषणा में यह कहा गया है कि भारत राष्ट्रमण्डल का पूर्ण अर्थ में सदस्य बना रहेगा और यह भी कहा गया है कि सम्राट राष्ट्रमण्डल का प्रमुख होगा। जब आप पूर्ण अर्थ में राष्ट्रमण्डल के सदस्य होने जा रहे हैं तो आप सम्राट को राष्ट्रमण्डल का प्रमुख कैसे नहीं मानेंगे? इसलिये सम्राट भारतीय गणराज्य का भी प्रमुख होगा। यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। मैं अर्थवाद का आदी नहीं हूं और न मैं बहुत बारीक अन्तर करने के पक्ष में हूं। या तो आप राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होते हैं या नहीं होते हैं। मैं किसी ऐसे पिशाच का स्वागत नहीं कर सकता जो गणराज्य भी हो और उपनिवेश भी! यह प्रत्यक्षत: एक अनर्गल बात है। इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में हमें किसी संशोधन को उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करना निरर्थक है। हमें इस घोषणा को तथा इस प्रस्ताव को एकदम रद्द कर देना चाहिये और समय के

[मौलाना हसरत मोहानी]

लिये कुछ नहीं छोड़ना चाहिये। मेरे मित्र तथा सहयोगी श्री शरत् बोस ने इस घोषणा के बारे में कहा है कि यह एक बहुत बड़ी धोखेबाजी है और मैं उनके इस मत से पूर्णतया सहमत हूं। मैं उनसे एक कदम आगे बढ़कर यह कहना चाहता हूं कि यह न केवल भारतीय स्वतंत्रता के प्रति धोखेबाजी है किन्तु एशिया के उन सभी देशों के प्रयत्नों के प्रति भी धोखेबाजी है जो अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सचेष्ट हैं। हमारे सामने वियतनाम, इण्डोनेशिया और बर्मा के उदाहरण हैं। हमारे प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य इण्डोनेशिया और बर्मा पर भी इसी प्रकार की चीज लादना चाहते हैं। मेरी तो समझ में नहीं आता कि हमारे प्रधानमंत्री जैसे लोगों ने अपने दृष्टिकोण को क्यों बदल दिया है। जब इण्डोनेशिया के प्रधान ने, जिनका इस प्रकार की धोखे की टट्टी में विश्वास नहीं है, यह कहा कि जोगजाकार्टा में गणराज्य स्थापित करने से कम किसी बात को वे स्वीकार नहीं कर सकते हैं और जब तक वह स्थापित न हो जायेगा वे किसी प्रकार की सन्धि न करेंगे तो इस प्रस्ताव के पक्ष में उन्हें सोवियत रूस का समर्थन प्राप्त हुआ परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे प्रतिनिधि ने क्यों हस्तक्षेप किया और प्रस्ताव को अनिश्चितकाल के लिये स्थगित करवा दिया। मुझे यह सन्देह है कि इण्डोनेशी लोगों को भी उसी मार्ग पर चलने के लिये बाध्य किया जा रहा है जिसका अवलम्बन हमारे प्रधानमंत्री ने किया है। हालैंड भी इण्डोनेशी गणराज्य को इस शर्त पर स्वीकार करने के लिये तैयार है कि वह डच उपनिवेश का अंग बना रहे। यूरोपीय राष्ट्र हमें बेवकूफ बना रहे हैं। हालैंड इण्डोनेशी लोगों को बेवकूफ बनाना चाहता है। वे कहते हैं कि वे इण्डोनेशी गणराज्य को इस शर्त पर स्वीकार करने के लिये तैयार हैं कि वह उनके साम्राज्य का अंग बना रहे। वियतनाम के लोगों से फ्रांस भी यही कहता है। वह कहता है अच्छी बात है, आपके गणराज्य को स्वीकार किया जा सकता है परन्तु इस शर्त पर कि वह फ्रांसीसी साम्राज्य का अंग बना रहे। मैं यह देखता हूं कि इन साम्राज्यवादियों ने नई नई पदावलियां तथा कलासम्बन्धी शब्द गढ़ लिये हैं। ये शब्द हैं क्या? कभी वे औपनिवेशिक गणराज्य शब्दों को प्रयोग में लाते हैं। हमारे प्रधानमंत्री इन्हें स्वीकार करने जा रहे हैं। वियतनाम और अन्य देशों में भी औपनिवेशिक गणराज्य स्थापित होने जा रहे हैं। इन शब्दों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। ये मेरी समझ के बाहर हैं। इस प्रस्ताव में और इस घोषणा में मैं इन शब्दों को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। जैसा कि मैं कह चुका हूं, बर्मा के सम्बन्ध में भी यह लोग हस्तक्षेप करने के लिये तैयार हैं और इस प्रकार बर्मा की सहायता करना चाहते हैं। बर्मा के लोगों ने इस सारे प्रस्ताव को अस्वीकार करके बुद्धिमत्ता का

परिचय दिया क्योंकि उन्हें यह सन्देह था कि हम और अंग्रेज उनके देश जायेंगे और उनसे उसी नीति को अंगीकार करने के लिये कहेंगे जिसे हम स्वीकार करने जा रहे हैं। उसका केवल यही अर्थ होता है कि हम उनकी सहायता करने के लिये तत्पर हैं परन्तु शर्त यह है कि वे ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित हो जायें। यदि आपने यह कहा भी न हो तो कम से कम इसका अर्थ तो यही निकलता है। बर्मा, मलाया और इण्डोनेशिया के सम्बन्ध में हम किसी भी निर्णय को स्थगित कराने का प्रयास कर रहे हैं। हम एक दूषित नीति का ही अनुसरण नहीं कर रहे हैं बल्कि भारतीय स्वतंत्रता के प्रति भी धोखेबाजी कर रहे हैं। हम एशिया के उन देशों के उद्देश्य के प्रति भी धोखेबाजी कर रहे हैं जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये संघर्ष कर रहे हैं। आप अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें उसी मार्ग पर चलने के लिये एक प्रकार से बाध्य कर रहे हैं जिसका अवलम्बन आपने किया है।

मैं प्रधानमंत्री से केवल दो प्रश्न पूछकर समाप्त कर दूंगा। मेरा पहला प्रश्न इस प्रकार है। यदि आप अलग नहीं रहना चाहते हैं और राष्ट्रमण्डल के देशों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो यह कैसी बात है कि आप कोई भी शर्त नहीं रख रहे हैं? यदि आप किसी उपनिवेश से अथवा इंग्लैंड अथवा अमेरिका से सन्धि करना चाहते हैं तो आपको इसकी स्वतंत्रता है परन्तु शर्त यह है कि सब कुछ परस्पर सहयोग के सिद्धान्त के आधार पर किया जाये। दूसरा प्रश्न इस प्रकार है। हमारे प्रधानमंत्री कहते हैं कि हम बिल्कुल तटस्थ रहेंगे और यह कि एंग्लो-अमेरिकन गुट अथवा रूसी गुट में सम्मिलित न होंगे। यदि अन्त तक तटस्थ रहना सम्भव हो तो मुझे कुछ नहीं कहना है परन्तु यह हो सकता है कि तटस्थ रहना असम्भव हो जाये। आपको किसी न किसी गुट में सम्मिलित होना ही पड़े। ऐसी दशा में आपकी स्थिति क्या होगी? मैं केवल नकारात्मक आलोचना नहीं करना चाहता। मैं आपके सम्मुख एक रचनात्मक सुझाव रखना चाहता हूं। यदि कभी इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो हमें किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं होना चाहिये। हमें उदार तटस्थता का दृष्टिकोण स्वीकार करना चाहिये किन्तु हमें इस उदार तटस्थता को रूस के पक्ष में प्रयोग में लाना चाहिये क्योंकि अमेरिका और इंग्लैंड साम्राज्यवादी और पूंजीवादी देश हैं। मेरी समझ में नहीं आता हमारे प्रधानमंत्री के समान दूरदर्शी पुरुष एंग्लो-अमेरिकन गुट में सम्मिलित होने के प्रस्ताव को सुनने के लिये भी क्यों तैयार हैं। क्योंकि वह गुट पूर्णतया साम्राज्यवादी और पूंजीवादी है। जहां तक सोवियत रूस का सम्बन्ध है, मेरा यह कहना है कि हमें उसका साथ देना चाहिये क्योंकि वह न तो पूंजीवादी है और न साम्राज्यवादी। इसलिये मेरा यह कहना है कि इस प्रस्ताव को बिना कोई संशोधन उपस्थित किये हुए ही अस्वीकार कर देना चाहिये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, हमारे प्रधानमंत्री ने लन्दन में प्रधानमंत्रियों के पिछले सम्मेलन में जो समझौता किया है उसका मूल्यांकन करने के लिये हमें यह देखना है कि यह हमारे आत्मसम्मान के अनुरूप है या नहीं अथवा इससे हमारे राष्ट्र का हितसाधन होता है या नहीं। जब मैंने इस समझौते की वाक्यावलि पढ़ी तो मैंने यह अनुभव किया कि उससे ये दोनों शर्तें पूरी होती हैं और वास्तव में कल इसके विरोध में जो भाषण दिये गये उन्हें सुनकर मुझे इस सम्बन्ध में जितना विश्वास हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ था। श्रीमान्, इस समझौते की इस आधार पर आलोचना की गई है कि इससे भारत का कार्य स्वातंत्र्य अप्रत्यक्ष रूप से परिसीमित हो सकता है और वह एंग्लो-अमेरिकन गुट के निन्दनीय उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकता है। उपनिवेश सम्राट के प्रति निष्ठा रखते हैं। किन्तु सन् 1926 से रस्मी तौर पर और सन् 1931 से कानूनी तौर पर यह स्वीकार किया गया है कि आन्तरिक तथा वैदेशिक सभी विषयों के सम्बन्ध में उनका वही पद है जो इंग्लैंड का है। पिछले युद्ध में आयरलैंड के तटस्थ रहने से यह अन्तिम रूप से प्रमाणित हो गया है कि यह समानता सच्चे अर्थ में समानता है। एक छोटा सा देश भी ऐसे विषयों के सम्बन्ध में स्वतंत्र निर्णय कर सका जिनका सम्बन्ध इंग्लैंड तथा उसके अधीनस्थ देशों के अस्तित्व से ही था जिससे यह प्रमाणित होता है कि संकटकाल में भी उपनिवेशों को अपने हितसाधन की दृष्टि से निर्णय करने की उतनी ही स्वतंत्रता है जितनी इंग्लैंड को। इस स्थिति में क्या यह भय निराधार नहीं है कि भारत को, जिसका अब ब्रिटिश सम्राट से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, राष्ट्रमण्डल में रहने से अपने आन्तरिक तथा वैदशिक मामलों के सम्बन्ध में निर्णय करने की स्वतंत्रता उपनिवेशों से भी कम प्राप्त होगी? श्रीमान्, मेरे विचार से सैद्धान्तिक रूप से भी यह नहीं कहा जा सकता कि अपने हित साधन की दृष्टि से भारत को अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में भी निर्णय करने की जो स्वतंत्रता प्राप्त है वह इस समझौते से किसी प्रकार कम हो गई है।

श्रीमान्, अब मैं दूसरे तर्क को उठाता हूं। यदि एंग्लो-अमेरिकन गुट ऐसी नीति का अनुसरण करे जिससे छोटे राष्ट्रों की स्वतंत्रता का अपहरण हो और विश्व में शान्ति स्थापित न हो सके तो क्या हमारे देश के बराबर राष्ट्रमण्डल में रहने से वह इन अपराधों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से योग देगा? बताया जाता है कि कल मेरे मित्र श्री कामत ने कहा था कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहने के बजाय वे उससे अलग रहना पसन्द करते हैं क्योंकि इस प्रकार के सम्बन्ध से इच्छा न होते हुए भी हम एंग्लो-अमेरिकन गुट की नीति से बंध जायेंगे। क्या पिछले तीस वर्षों का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि अलग रहने से कोई देश संसार के सभी मामलों से सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है? सवा सौ वर्ष तक अमेरिका ने अलग रहने की नीति का अकिया किया। उसने अपनी वैदेशिक नीति

इसी आधार पर निश्चित की। वह वाशिंगटन की विचारधारा का पोषण करता रहा किन्तु पहले विश्व युद्ध के छिड़ने के उपरान्त ही, भले ही वह यूरोपीय मामलों से सवा सौ वर्ष तक अगल रहा था और भले ही वह पश्चिमी गोलार्ध से बहुत दूर था, ऐसी घटनायें घटीं कि उसे मित्र देशों की सहायता के लिये युद्ध में प्रवेश करना पड़ा।

दूसरे विश्वयुद्ध का उदाहरण लीजिये। बहुत से अमेरिकन यह चाहते थे कि अमेरिका बिल्कुल तटस्थ रहे ताकि यूरोप में चाहे जो कुछ भी हो उसके फलस्वरूप उसे किसी गुट का सदस्य न समझा जाये किन्तु घटनाचक्र ने तथा उसके स्वार्थ ने और मित्र देशों से उसके सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सम्बन्धों ने उसे मित्र देशों का पक्ष के कारण युद्ध प्रांगण में पदार्पण करने के लिये बाध्य कर दिया। इसलिये यह स्पष्ट है कि जो लोग यह कहते हैं कि अलग रहने से एंग्लो-अमेरिकन गुट की नीति से हमारा कोई सम्बन्ध न रहेगा किसी भ्रमवश ही ऐसा कहते हैं। किसी मृगमरीचिका के पीछे ही दौड़ रहे हैं और यदि उनका परामर्श स्वीकार किया गया तो राष्ट्रमण्डल से अलग रहने पर भी भारत घटनाक्रम से तो छुटकारा न पा सकेगा परन्तु उन राष्ट्रों के समान, जो संकोचवश अथवा दौर्बल्यवश निश्चय नहीं कर सकते हैं और अपनी नीति घोषित करने का साहस नहीं कर सकते हैं, उसे भी सभी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, वे सदस्य भी भ्रम में हैं जिनका यह विचार है कि इस समझौते के पूर्व भारत तटस्थ नीति का अनुसरण कर रहा था। पिछले वर्ष इस प्रकार की सम्मति के लिये भले ही कोई आधार हो परन्तु इस वर्ष तो उसके लिये कोई आधार नहीं है। पिछले आयव्ययक सम्बन्धी वादानुवाद को समाप्त करते हुए प्रधानमंत्री ने भारत की वैदशिक नीति के सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वे किसी तटस्थ नीति का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। वे केवल यह चाहते हैं कि भारत को संकटकाल में अपना मार्ग निश्चित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। यदि इस सभा में कोई ऐसे सदस्य हों जो अपनी सरलतावश यह विश्वास करते हों कि संसार की घटनाओं से भारत अपना मुंह मोड़ सकता है और हम इस प्रकार आचरण कर सकते हैं जैसे हम किसी दूसरी दुनिया में वास करते हों तो उन्हें पिछले मार्च में ही प्रधानमंत्री के वक्तव्य पर आपत्ति करनी चाहिये थी। उस समय तो कोई आपत्ति नहीं की गई और उसे प्रसन्नतापूर्वक सुना गया परन्तु अब मेरी समझ में नहीं आता कि किस प्रकार यह कहा जाता है कि भारत को अलग रहने की नीति का अनुसरण करना चाहिये क्योंकि उस नीति से तो कोई लाभ होने वाला नहीं है। इसके विपरीत यदि किसी नीति से नुकसान हो सकता है तो इस प्रकार की नीति से ही हो सकता है। श्रीमान्, यदि मुझे इस विषय पर दो एक शब्द कहने की आज्ञा हो तो मैं यह कहना चाहता हूं कि इण्डोनेशिया के सम्बन्ध में, जिसे भारत से जितना नैतिक समर्थन प्राप्त हुआ है उतना संयुक्त राष्ट्र संगठन के अन्य किसी

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

देश से प्राप्त नहीं हुआ है, प्रधानमंत्री और भारत सरकार ने जिस नीति का अनुसरण किया है उससे यह प्रमाणित होता है कि अब भारत ब्रिटिश राजनीतिज्ञों अथवा राष्ट्रमण्डल के राजनीतिज्ञों के हाथ में एक कठपुतली नहीं रह गया है। भारत जानता है कि उसका हितसाधन किस प्रकार हो सकता है और वह अपने से बलवान राष्ट्रों का विरोध करके भी अपनी नीति का अनुसरण करने का साहस कर सकता है।

श्रीमान्, मुझे यह दिखाई देता है कि इस समझौते पर जो आपत्तियां की गई हैं वे इस विश्वास पर आधृत हैं कि राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होकर हम इंग्लैंड पर अथवा उपनिवेशों पर कृपा कर रहे हैं। मेरे विचार से यह बहुत बड़ी भूल है क्योंकि हमारा पद वही है जो अन्य किसी राष्ट्र का और संसार में हमारी प्रतिष्ठा तथा राजनैतिक स्थिति वही है जो बड़े-बड़े और समुन्नत राष्ट्रों की। निस्सन्देह भारत के राष्ट्रमण्डल में रहने से राष्ट्रमण्डल को लाभ होगा किन्तु यह भी स्पष्ट है कि भारत की सुरक्षा तथा उसके आर्थिक और वैज्ञानिक हितों की दृष्टि से कम से कम कुछ समय के लिये राष्ट्रमण्डल में रहकर उसे भी लाभ ही होगा। श्रीमान्, किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का अथवा व्यक्तियों के बीच भी किसी समझौते का उस समय तक कोई मूल्य नहीं है जब तक कि उससे सभी सम्बन्धित पक्षों को लाभ न हो। इसलिये इस समझौते के विरोध में, जो हमारे लिये लाभप्रद है, यह कैसे कहा जा सकता है कि इसके फलस्वरूप अब इंग्लैंड और राष्ट्रमण्डल के देश यह समझने लगेंगे कि भारत के राष्ट्रमण्डल में न रहने से जो उनकी स्थिति होती उससे अब उनकी स्थिति कहीं अधिक सुदृढ़ हो गई है? यदि हमें उद्योग धन्धों के सम्बन्ध में सहायता की आवश्यकता होती है तो हम इंग्लैंड के पास जाते हैं और यदि हम आर्थिक और सैनिक क्षेत्रों में वैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो फिर भी इंग्लैंड ही के पास जाते हैं। यदि हमें शस्त्रों की आवश्यकता होती है और यदि हम अपने पदाधिकारियों को उच्च कोटि की सैनिक शिक्षा देना चाहते हैं तो हमें इंग्लैंड का ही ध्यान आता है। इस स्थिति में वास्तविकता को न देखकर यह सोचने से क्या लाभ होगा कि अन्य देशों को तो हमारी सहायता की आवश्यकता है परन्तु हम उनसे अलग रहकर अपने राष्ट्र के अस्तित्व को सुदृढ़ बनाये रखेंगे?

श्रीमान्, कल कुछ वक्ताओं ने, जो इस समझौते को बिल्कुल ही रद्द कर देने के पक्ष में नहीं थे, यह कहा था कि चूंकि इस सभा का चुनाव एक विशेष कार्य के लिये हुआ था इसलिये नैतिक दृष्टि से इसे इस समझौते का अनुसमर्थन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। वे यह चाहते हैं कि इस समझौते का अनुसमर्थन उस समय तक न किया जाये जब तक कि गणराज्य के विधा के अधीन एक नई सभा का निर्माण न हो जाये।

वास्तव में यह तर्क मेरी समझ में नहीं आता है। यदि हम यह समझते हैं कि इस समझौते से हमारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा गिर जाती है अथवा हमारे राष्ट्रीय हितों को हानि होती है, तो हमें उसे इसी समय अस्वीकार कर देना चाहिये। परन्तु यदि वह सभी प्रकार अच्छा है और यदि हम यह समझते हैं कि संसार की वर्तमान स्थिति में उससे केवल हमारा ही हितसाधन न होगा, बल्कि संसार में भी शान्ति स्थापित होगी और पूर्व तथा पश्चिम के बीच सामंजस्य उत्पन्न होगा और दो सभ्यताओं का गठबन्धन सम्भव हो सकेगा, तो हम इसका अनुसमर्थन उस समय तक के लिये क्यों स्थगित करें, जबकि एक नई सभा चुनाव के बाद अस्तित्व में आयेगी? यदि इस समय हमारे अनुसमर्थन करने से नई सभा इस समझौते को निन्दनीय ठहराने के अधिकार से वंचित हो जाती, तो इस तर्क में बहुत बल होता। आगे की सभा को इस सम्बन्ध में निर्णय करने की उतनी ही स्वतंत्रता प्राप्त होगी जितनी वर्तमान सभा को है। जहां तक मैं समझता हूं यद्यपि, भारत ने इंग्लैंड से एक सन्धि की है परन्तु वह बिना पहले सूचना दिये हुये भी राष्ट्रमण्डल को छोड़ सकता है। मैं प्रधानमंत्री महोदय के इस विचार से पूर्णतया सहमत हूं कि यदि भारत राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित न होता और अन्य किसी राष्ट्र से सम्बन्ध जोड़ता, तो अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसकी अवश्य ही आलोचना की जाती। भारत ने जो कुछ किया है वह उसके स्वभाव के अनुरूप ही है। उसने कोई नई सन्धि करने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि केवल ऐसे मित्रों से सम्बन्ध बनाये रखा है जो जनतंत्रात्मक आदर्शों से प्रेरित होते हैं और जिनकी भाषायें भिन्न होने पर भी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में साधारणतया जिनका दृष्टिकोण वही है जो भारत का।

श्रीमान्, मैं इस निर्णय के लिये प्रधानमंत्री महोदय को बधाई देता हूं और सभा से बिना किसी संकोच के यह अनुरोध करता हूं कि वह इस निर्णय का अनुसमर्थन करे, क्योंकि इससे भारत का हितसाधन होगा और विश्व में शान्ति स्थापित होगी।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने कल जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया था, उसका समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं। अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय ने उनकी ही महान विजय के लिये नहीं बल्कि भारत की विजय के लिये भी उन्हें जो बधाइयां दीं उनमें मैं अपना भी योग देना चाहता हूं। उनकी उदार राजनीतिज्ञता के कारण ही भारत आज राष्ट्रमण्डल में इंग्लैंड का सहयोगी बना हुआ है और केवल राष्ट्रमण्डल का अनुगामी नहीं बना हुआ है, जैसाकि कल एक वक्ता महोदय ने कहा था। हम ऐसे अन्य राष्ट्रों के भी साथी बन गये हैं जो जनतंत्रात्मक आदर्शों का आदर करते हैं और विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये सचेष्ट रहते हैं। इसलिये पंडित जी ने केवल अपनी ही प्रतिष्ठा नहीं बढ़ाई है, बल्कि भारत को भी संसार का

[श्री के.एम. मुन्शी]

नेतृत्व प्राप्त करा दिया है। मेरे विचार से इसके लिये वे इस सभा की ही नहीं बल्कि सारे देश की बधाइयों के पात्र हैं।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में पंडित जी ने जो समझौता किया है, उसका विरोध इस सभा में ही नहीं बल्कि बाहर भी कई कारणों से किया गया है। किन्तु जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उनका यदि हम विश्लेषण करें तो उनके मूल में ब्रिटेन के प्रति अविश्वास की भावना ही प्रकट होती है। कई वर्षों तक, लगभग पचहत्तर वर्ष तक भारत ब्रिटेन को विरोध की ही दृष्टि से देखता रहा। इस प्रकार की भावना अभी मिटी नहीं है। इस समझौते की जो अभी आलोचना की गई है, उसका स्रोत यही पुरानी भावना है कि ब्रिटेन से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध भारत के लिये अहितकर होगा। निस्सन्देह पहले ब्रिटेन से संघर्ष करने के लिये ही भारत में जनमत निर्मित किया गया, परन्तु अब स्थिति में परिवर्तन होने के कारण उसे भी बदलने की आवश्यकता है। अब यह विश्वास करने के लिये कोई कारण नहीं है कि कभी ऐसा समय भी आ सकता है, जबकि ब्रिटेन भारत में वही अधिकार प्राप्त कर लेगा, जो उसे 15 अगस्त से पूर्व प्राप्त था। आज सारे संसार में यह स्वीकार किया जाता है कि अब हम ब्रिटेन के शासन से पूर्णतया मुक्त हो गये हैं और हमारा देश अब ब्रिटिश साम्राज्य का अंग नहीं रह गया है। सारे संसार में यह भी स्वीकार किया जाता है कि एशिया में स्थिति को सुस्थिर रखने में तथा विश्व-शान्ति को बनाये रखने में इस भू-भाग में भारत ही सक्षम है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि ब्रिटेन से भय होने का अथवा उसके प्रति अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसके विरोध में जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं, उनका आधार इस प्रकार का अविश्वास ही है।

एक तर्क के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। वह यह है कि राष्ट्रमण्डल पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तर है। यह तर्क न्यायसंगत नहीं है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का विस्तार तथा स्वरूप उस राष्ट्रमण्डल से बिल्कुल भिन्न था, जिसकी कल्पना इस घोषणा में की गई है। यह सभा इससे भली भांति परिचित है कि पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की अथवा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की परिभाषा, जो इस समय अस्तित्व में है परन्तु जो 15 अगस्त को हमारे विधान के स्वीकार होने पर अस्तित्व में नहीं रहेगा, बालफूर घोषणा में इन शब्दों में की गई थी:

> ''ब्रिटिश साम्राज्य में स्वायत्तशासी जनसमुदाय, जिनका पद समान हो और जो स्वदेशीय अथवा वैदेशिक मामलों के सम्बन्ध में किसी प्रकार एक दूसरे के अधीन न हों, यद्यपि वे समान रूप से सम्राट के प्रति निष्ठा रखते हों और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के स्वतंत्र सदस्य हों।...''

इसका एक भाग सुविदित वेस्टमिंस्टर के कानून का भी अंश है। जहां तक इस घोषणा का सम्बन्ध है उसमें इसका कोई अंश छोड़ नहीं दिया गया है। पहले तो जो राष्ट्र राष्ट्रमण्डल के सदस्य होंगे वे स्वतंत्र राष्ट्र होंगे। इस घोषणा में यही शब्द हैं। दूसरे वे सम्राट के प्रति समान रूप से निष्ठा नहीं रखेंगे। नये राष्ट्रमण्डल में यही सबसे महत्वपूर्ण बात है। यह सभी को विदित है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का अस्तित्व 'एक सम्राट' पर निर्भर था। एक महान् वैधाानिक कानून विशेषज्ञ बेरिडेल कीथ की एक किताब में, मुझे स्मरण है, मैंने यह पढ़ा था कि एक सम्राट और सम्राट के प्रति निष्ठा के आधार पर ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल टिका हुआ है और यदि ये मिट गये, तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का भी विघटन हो जायेगा। यह तो सच है ही कि नये राष्ट्रमण्डल में न तो सम्राट के प्रति निष्ठा है और न ब्रिटिश साम्राज्य के पुराने वैधानिक कानूनों में जिस 'एक सम्राट' का वर्णन है उसके लिये ही कोई स्थान है। उदाहरण के लिये, बालफूर की घोषणा में 'ब्रिटिश साम्राज्य' शब्दों को ही लीजिये। उस समय स्वतंत्र देश अर्थात् स्वायत्तशासी उपनिवेश अधिकतर जन्म से ही ब्रिटिश थे। आज हमारा अर्थात् भारतीय नागरिकों का नये राष्ट्रमण्डल में बहुमत है। उसमें अंग्रेजों का बहुमत नहीं होगा। ब्रिटिश साम्राज्य में और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सेना ही एक प्रकार की एकता स्थापित किये हुये थी और उसमें अधिकतर अंग्रेज ही थे, तथा सम्राट के नाम से उसका संचालन होता था। 15 अगस्त सन् 1947 के उपरान्त भारतीय सेना एक स्वतंत्र उपनिवेश की सेना हो गई और अगले 15 अगस्त से तो वह किसी अर्थ में सम्राट की सेना न रह जायेगी। अब भारत पर अंकुश रखने के लिये कोई ब्रिटिश सेना नहीं है। इस प्रकार इस सीमा तक वर्तमान व्यवस्था में तथा पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में कोई साम्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त अब नये राष्ट्रमण्डल में 'एक सम्राट' नहीं रह गया है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सैद्धांतिक आधार यह था कि एक सम्राट था और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में विभिन्न विधान-मण्डल, सरकारें तथा न्यायालय सम्राट के नाम से बोलते थे और कार्य करते थे। अब इस राष्ट्रमण्डल में, जहां तक भारत का सम्बन्ध है, उसकी सरकार, उसका विधान-मण्डल और उसके न्यायालय गणराज्य के राष्ट्रपति के नाम से काम करेंगे और वह भारत के सर्वसत्ताधारी लोगों का प्रतिनिधि होगा। अब उस आधारभूत सिद्धान्त को लीजिये, जो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सन्निहित था। वह सिद्धान्त यह था कि सब शक्ति सम्राट में ही केन्द्रित है और कोई भी कानून उस समय तक प्रयोग में नहीं आ सकता, जब तक कि सम्राट उसके लिये स्वीकृति प्रदान न कर दे अथवा उसके नाम से स्वीकृति प्रदान न हो जाये। जहां तक भारत का सम्बन्ध है इस प्रकार की व्यवस्था अब नहीं रहेगी। 'एक सम्राट' जो पुराने राष्ट्रमण्डल का आधार था, अब नये राष्ट्रमण्डल में कोई स्थान नहीं

[श्री के.एम. मुन्शी]

पायेगा। इसलिये यह कहना कि पुराना ही राष्ट्रमण्डल नये नाम से जीवित रहेगा, ठीक नहीं है।

दूसरा सिद्धान्त जिस पर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल आधृत था, प्रत्येक नागरिक की सम्राट के प्रति निष्ठा का सिद्धान्त था। वेस्टमिंस्टर के कानून में सर्वप्रथम यह कहा गया है कि यह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का आधारभूत सिद्धान्त है। नये राष्ट्रमण्डल में सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा नहीं रहेगी। निष्ठा का अर्थ यह होगा कि राष्ट्रमण्डल के प्रत्येक नागरिक का, चाहे वह जहां भी स्थित हो, सम्राट के साथ सम्बन्ध रहेगा। जहां तक भारत के नागरिकों का सम्बन्ध है, उनकी इंग्लैंड के सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा नहीं होगी। उनकी भारत के गणराज्य के प्रति निष्ठा रहेगी। नये राष्ट्रमण्डल में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की बिल्कुल भी छाया नहीं पड़ी हुई है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यह तर्क कि यह राष्ट्रमण्डल पुराने राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तर है, निराधार है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के समान इस राष्ट्रमण्डल में भी सम्राट प्रतीक रूप में प्रमुख है। परन्तु माननीय प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पुराने राष्ट्रमण्डल में सम्राट को राष्ट्रमण्डल के प्रमुख का पद प्राप्त था और इस रूप में वह कार्य करता था, किन्तु नये राष्ट्रमण्डल में उसे केवल यह पद ही प्राप्त है, परन्तु कोई कार्य नहीं सौंपा गया है। इस सीमा तक सम्राट स्वतंत्र सम्मिलन का प्रतीक रहेगा, परन्तु वह कोई कार्य नहीं करेगा और भारत का कोई नागरिक भी उसके प्रति निष्ठा नहीं रखेगा। जैसा कि घोषणा से मैं समझ पाया हूं, यह नया राष्ट्रमण्डल स्वतंत्र राष्ट्रों का स्वतंत्र सम्मिलन होगा और उसका प्रत्येक राष्ट्र स्वतंत्र रूप से अपने प्रादेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित कर सकेगा। समान हित और समान आदर्श ही उसे अन्य राष्ट्रों से सुसम्बद्ध रखेंगे। जैसा कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मि. एटली ने हाल में कामन्स सभा में कहा था, उससे मुख्यतः यह लाभ होगा कि निकटस्थ होकर परस्पर परामर्श किया जा सकेगा और सहायता की जा सकेगी और सम्राट इस स्वतंत्र सम्मिलन का प्रतीक मात्र होगा।

इसलिये मेरा यह निवेदन है कि एक बिल्कुल नवीन विचारधारा ही इस राष्ट्रमण्डल के रूप में साकार हुई है और इस धारणा के लिये कोई आधार नहीं है कि यह राष्ट्रमण्डल पुराने राष्ट्रमण्डल का ही रूपान्तर है।

श्रीमान्, मुझसे पहले बोलने वाले कई वक्ता महोदयों ने इस राष्ट्रमण्डल का वर्णन उसी प्रकार किया है, जैसे प्राचीन पंडित ब्रह्म का 'नेति नेति' कहकर अर्थात् 'यह नहीं, यह नहीं'

कह कर किया करते थे। मेरा यह नम्र निवदेन है कि राष्ट्रमण्डल से एक वास्तविक लाभ होगा, यह निश्चित है। श्रीमान्, मेरा तो यह विचार है कि भारत के हितसाधन की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये भी इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना एक प्रकार से अनिवार्य था। श्रीमान्, आज भारत को संसार में शान्ति बनाये रखने की ही लगन है। हम अपने नव प्राप्त स्वातंत्र्य को सुव्यवस्थित तथा सुविस्तृत तभी कर सकते हैं जबकि कम से कम एक पीढ़ी तक संसार में शान्ति बनी रहे। इसलिये हमारी सबसे अधिक दिलचस्पी इसमें है कि हम विश्व-शान्ति को स्थायी रखने के लिये और कम से कम अपने भू-भाग में शान्ति बनाये रखने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करें। श्रीमान्, इस उद्देश्य की पूर्ति में भारत तब तक सहायक नहीं हो सकता है, जब तक कि वह राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित नहीं करे। यही किया भी गया है। विश्व-शान्ति की चर्चा करना बहुत सरल है। हम वर्षों से सामूहिक सुरक्षा की चर्चा करते आये हैं। किन्तु सामूहिक सुरक्षा कोई ऐसा मन्त्र नहीं है, जिससे सर्प मोहित हो जायें और न वह कोई अफीम है जिससे लोग अकर्मण्य हो जायें। उसका अर्थ है विस्तृत रूप से राष्ट्रों के साथ तैयारी, रक्षा की तैयारी, शस्त्रों की कोटि का निश्चय, अनुसंधान का एकीकरण तथा सुव्यवस्था और औद्योगिक सहयोग। जैसा कि मैं समझ पाया हूं, राष्ट्रमण्डल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उससे ये सब लाभ सुलभ हो जायेंगे। सैनिक दृष्टि से भारत का हिन्दसागर पर प्रभुत्व है। परन्तु उसी दिशा से हमारे लिये संकट भी उपस्थित हो सकता है और साथ ही संकटकाल में अधिक से अधिक सहायता भी प्राप्त हो सकती है। हमें हिन्दसागर का विस्मरण न होना चाहिये, जिसकी एक छोर पर आस्ट्रेलिया और दूसरी छोर पर दक्षिण अफ्रीका रक्षा स्तम्भ के रूप में हैं। कोई भी सन्धि जिससे हिन्दसागर में रक्षा के लिये तैयारियां हो सकती हैं, भारत के लिये सबसे अधिक लाभप्रद सिद्ध होगी। इस दृष्टि से मैं यह समझता हूं कि इस राष्ट्रमण्डल का भारत के लिये तथा उसके भविष्य के लिये बहुत महत्त्व है।

श्रीमान्, प्रधानमंत्री कई बार कह चुके हैं कि अब इसके लिये समय नहीं है कि हम पहले के समान इंग्लैंड का अविश्वास करते रहें। ब्रिटेन और भारत डेढ़ सौ वर्ष तक एक ही संस्कृति तथा एक ही विचारधारा का पोषण करते रहे हैं और हमारी राजनैतिक तथा कानूनी संस्थायें ही एक समान नहीं रही हैं, बल्कि हम एक ही प्रकार के जनतंत्रात्मक आदर्शों का अनुसरण करते रहे हैं यदि हम कुछ वर्ष आगे की बात सोचें, तो मेरे विचार से विश्व-शान्ति के उद्देश्य से भारत और ब्रिटेन का सम्बन्ध सामूहिक सुरक्षा के लिये बहुत प्रभावपूर्ण सिद्ध होगा। इस दृष्टि से इस नवीन सन्धि के लिये तथा भारत का राष्ट्रमण्डल का सबसे अधिक प्रभावपूर्ण सदस्य होने के लिये यह सभा बधाई की पात्र है। इस दृष्टि से मेरे विचार से इस सभा को तथा देश को इस नवीन राष्ट्रमण्डल का स्वागत करना

[श्री के.एम. मुन्शी]

चाहिये और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह सभा तथा हमारा देश उसे पूर्ण सहयोग प्रदान करेगा। श्रीमान्, मुझे इतना ही कहना है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सभा के नेता के इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के उपरान्त तथा पंडित कुंजरू ने इसका प्रभावपूर्ण ढंग से समर्थन करने के उपरान्त इसका विरोध करने में संकोच का अनुभव होना स्वाभाविक ही है। किन्तु फिर भी तीन शीर्षकों के अधीन मैं इस सभा के सम्मुख कुछ तर्क उपस्थित करना चाहता हूं, जिनके आधार पर मेरे विचार से वह इस प्रस्ताव को अस्वीकार करना ही ठीक समझेगी।

श्रीमान्, मुझे तो इस प्रस्ताव का रूप ही आपत्तिजनक प्रतीत होता है। मैं यह कहता हूं कि यह शब्द 'अनुसमर्थन' आपत्तिजनक है। यह शब्द यह संकेत करता है कि किसी बात का पहले अधिकार दिया गया था और अब उसके अन्तिम रूप से अनुसमर्थन की आवश्यकता है। मुझे तो स्मरण नहीं होता कि इस प्रकार के कदम के लिये पहले कोई अधिकार दिया गया था और न मुझे कोई ऐसा वादानुवाद अथवा इस सभा का निश्चय ही स्मरण होता है, जिसके आधार पर इतना महत्त्वपूर्ण निर्णय किया जा सकता था और सभा से इस निर्णय के अनुसमर्थन के लिये कहा जा सकता था। मैं माननीय प्रधानमंत्री महोदय के इस विचार से सहमत हूं कि इसका या तो अनुसमर्थन किया जा सकता है या इसे अस्वीकार किया जा सकता है, परन्तु इसमें संशोधन करने की बहुत कम गुंजाइश है। कुछ मित्रों ने यह सुझाव रखा था कि इस प्रस्ताव को उस समय तक के लिये स्थगित रखा जाये, जब तक कि इस पर लोगों की राय न ले ली जाये। इस प्रकार के सुझाव सारपूर्ण हो सकते हैं, परन्तु मेरी यह धारणा है कि जिस प्रस्ताव के सम्बन्ध में इस सभा में न कोई विचार हुआ था और न कोई निश्चय किया गया था, उसका अनुसमर्थन करने के लिये उससे अनुरोध करना उससे सरकार के प्रमुख द्वारा की हुई डिग्री की रजिस्ट्री करने के लिये आग्रह करने के समान है।

इसके लिये मैं सिद्धान्ततः तैयार नहीं हूं। मेरे विचार से सभा के सम्मुख एक सम्पन्न कार्य को रखने और उसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की मनोवृत्ति से उस स्वतंत्रता से न वादानुवाद हो सकेगा और न विभिन्न मतों का प्रकाश हो सकेगा, जो देश में जनतंत्रात्मक भावना उत्पन्न करने के लिये आवश्यक हैं।

मैं केवल इसी कारण इस सभा से इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने के लिये नहीं कह रहा हूं। मेरे विचार से अन्य भी कई ऐसे कारण हैं, जिनका वैधानिक महत्त्व है,

जिनके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि यह प्रस्ताव असामयिक है, इसकी समझबूझ कर रचना नहीं की गई है और इससे देश को कोई विशेष लाभ होने की आशा नहीं है।

श्रीमान्, पहले तो हमसे यह कहा गया है कि स्वतंत्र राष्ट्रों के वर्तमान सम्मिलन में, जो अभी तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के नाम से विख्यात था और अब राष्ट्रमण्डल के नाम से कहा जाता है, कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ है तो इस प्रकार का समझौता करने की आवश्यकता ही कहा है? यदि प्रधानमंत्रियों की घोषणा के उपरान्त हमारी स्थिति वही है, जो पहले थी और हम सर्वसत्ताधारी तथा स्वतंत्र हैं और हमारे स्वदेशीय तथा वैदेशिक मामलों में बाहर से किसी प्रकार का प्रभाव न पड़ेगा, तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार का समझौता करने तथा इसके लिये वचनबद्ध होने की आवश्यकता ही क्या है। यदि यह समझौता हमें आगे नहीं बढ़ाता है और यदि हम इसके द्वारा कोई नवीन कार्य नहीं करते हैं, तो मेरे विचार से यह निरर्थक है। यदि इसके द्वारा हम कोई नवीन कार्य नहीं करते हैं, तो यह हमारे लिये खतरनाक सिद्ध होगा और इसे स्वीकार करने के पूर्व हमें सोच विचार कर लेना चाहिये। मेरे विचार से हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये और उसके उपरान्त ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहिये। यदि कोई सारपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है, तो मेरे विचार से इस समझौते को स्वीकार करना अनावश्यक है।

इसके अतिरिक्त हमसे कहा गया है कि विभिन्न स्वतंत्र राष्ट्रों के इस निश्रृंखल सम्मिलन अथवा संघ का प्रमुख, जो पहले ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल अथवा ब्रिटिश साम्राज्य कहा जाता था और अब राष्ट्रमण्डल कहा जाता है, प्रतीक रूप से सम्राट होगा। यह भी सारपूर्ण है। मेरे विचार से जब हमने लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार किया था और जब हमने एक सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य स्थापित करने का उद्देश्य घोषित किया था, तो हमने ब्रिटिश साम्राज्य से अपने सम्बन्ध के बारे में अन्तिम बात कह डाली थी। अब इस रूप में तथा इस अवसर पर सम्राट के नेतृत्व को सामने रखना अथवा प्रतीक रूप से भी इंग्लैंड के सम्राट के नेतृत्व को सामने रखना मेरे विचार से और कुछ नहीं तो कम से कम तर्क विरुद्ध तो है ही। अब ऐसा युग आया है जब हम अपने देश में ही सम्राटों को तथा सम्राटों के राज्यों को समाप्त कर रहे हैं, यद्यपि वे इंग्लैंड के सम्राट की उसके राज्य की तुलना में कई पीढ़ियों से चले आ रहे हैं और इस देश में उन्होंने दुराचार की शक्तियों से बहुत संघर्ष किया है।

श्रीमान्, मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं ब्रिटिश सम्राट का सम्बन्ध किसी दल विशेष से बताऊं। किन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं कि इस देश में ऐसे सम्राट रहे हैं और अब भी हैं, जो अपने को श्री राम के वंशज कहते रहे हैं और जो इसका प्रमाण दे सकते हैं कि सहस्त्र वर्ष तक उन्होंने आक्रमण, दुराचार तथा दमन की शक्तियों से संघर्ष

[प्रो. के.टी. शाह]

किया था और उनके इस वीरतापूर्ण संघर्ष का देश सम्मान करता रहा है। इन प्राचीन काल की सत्ताओं के मिटने पर मैंने एक भी आंसू नहीं बहाया है, क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि जनतंत्र के इस युग में राजसत्ता कोई स्थान नहीं पा सकती। मुझे इसका तनिक भी खेद नहीं है कि इस देश के प्राचीन वंशों के ये अवशेष तथा उनके उत्तराधिकारी एक के बाद एक लुप्त हो रहे हैं। मेरा तो यह विचार है कि देश में एकता लाने तथा जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने का जो काम वर्तमान सरकार ने किया है, वह उसका सबसे बड़ा काम है। परन्तु मैं यह पूछे बिना नहीं रह सकता कि जब इस सरकार ने इस प्रकार की ख्याति प्राप्त की है, तो फिर इस अवसर पर ब्रिटिश सम्राट को प्रतीक रूप से भी प्रमुख क्यों माना जाये?

श्रीमान्, हमसे कहा गया है कि कुछ ही समय पूर्व हम ब्रिटेन और वहां के निवासियों के विरोधी थे और उनको अविश्वास तथा सन्देह की दृष्टि से देखते थे, जिसके फलस्वरूप हमारी इस प्रकार की मनोवृत्ति हो गई है। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि मैं इस दोष से मुक्त नहीं हुआ हूं, परन्तु इसके लिये मैं क्षमायाचना भी नहीं करता हूं। अब भी हम में से बहुत से लोगों की यही मनोवृत्ति है, परन्तु जब हमसे पिछली बातों को भूल जाने और उनके लिये क्षमा प्रदान करने के लिये कहा जाता है, तो मैं यह देखता हूं कि सब बातें भूलनी तो हमको पड़ती हैं और क्षमा प्रदान वे करते हैं। हमें तो एक शताब्दी के शोषण, दमन, उत्पीड़न अधिकार तथा स्वातन्त्र्य-अपहरण और अपने हितों तथा आकांक्षाओं की हानि के इतिहास को भूलना होगा, क्योंकि हमारा देश अब एक स्वतंत्र गणराज्य होने जा रहा है। हमें तो इन सब बातों के लिये क्षमा प्रदान करनी है और उन्हें बिल्कुल ही भूल जाना है और हाथ मिलाना है ऐसे लोगों से, जो कल ही तक शोषक थे और जिन्होंने कल ही तक हमको ऐसे युद्धों में घसीटा है, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था, परन्तु जिनमें हमारे हजारों लोग कट गये और हमारा करोड़ों रुपया खर्च हो गया और मेरे विचार से जिनके बारे में आज भी यह सन्देह किया जा सकता है कि वे बहुत सी बातों को गुजार कर हमें आमंत्रित कर रहे हैं और हमें प्रलोभन देकर हमसे इस समझौते को स्वीकार करने के लिये आग्रह कर रहे हैं।

जब मैं सभा से यह कहता हूं कि उसे याद करना चाहिये कि इस देश में ब्रिटेन ने क्या-क्या किया, तो मुझे केवल अतीतकाल ही स्मरण नहीं हो आता। इस समय भी ब्रिटेन के कई तथा कथित उपनिवेश, जो अब स्वतंत्र राष्ट्र हैं, हमारे प्रति न केवल जातीय विभेद की नीति को प्रयोग में ला रहे हैं, किन्तु संसार को यह अच्छी प्रकार बता रहे हैं कि वे 'गोरे आस्ट्रेलिया' तथा 'गोरे अफ्रीका' को स्थापित करने की नीति का अनुसरण

करेंगे। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि वे विवादों के समाधान के लिये किसी शान्तिपूर्ण उपाय को भी अपनाने के लिये तैयार नहीं हैं।

यदि हम इस जीर्ण ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की तुलना संयुक्त राष्ट्रसंगठन से करें, तो हमें यह दिखाई देता है कि वह कम से कम ऐसे देशों को तो संघ है, जिनका जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों में विश्वास है। उसका एक निश्चित विधान है और एक महापत्र है। उसकी अपनी विधायी तथा कार्यपालिका संस्थायें हैं। किन्तु इसके विपरीत राष्ट्रमण्डल का (यद्यपि हमें खुश करने के लिये अथवा हमारी भावनाओं का ध्यान रखते हुए 'ब्रिटिश शब्द को निकाल दिया गया है) न कोई सर्वमान्य विधान है न कोई महापत्र और न कोई संगठन ही है और उसके विभिन्न सदस्यों के प्रति न्याय कराने के लिये कोई संस्था भी नहीं है। शिकायतों की रजिस्ट्री करने के लिये अथवा उनकी जांच करने के लिये अथवा किसी विवाद में राजीनामा कराने के लिये कोई संस्था नहीं है।

कम से कम हम भारतीयों के लिये ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में संयुक्त राष्ट्रसंगठन से बढ़कर कौन सी ऐसी बात है कि जिसके कारण हम अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के एक ही वर्ष उपरान्त इस राष्ट्रमण्डल के सदस्य हो जायें। मैं इसे दुहराना चाहता हूं कि इस सभा से तथा देश से राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने के लिये आग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ऐसा करने में कोई बुद्धिमत्ता ही है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि कोई परिवर्तन नहीं होने जा रहा है। यदि हमारा देश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य की हैसियत से रहेगा, तो यह हैसियत उसकी संयुक्त राष्ट्रसंगठन में भी है ही! ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का ढांचा ही और उसका दरवाजा केवल भूतपूर्व ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल अथवा साम्राज्य के सदस्यों के लिये ही खोलना इसका द्योतक है कि संसार के एक बड़े समूह अर्थात् संयुक्त राष्ट्रसंगठन के अन्दर एक छोटा समूह बनाया जा रहा है जो बहुत ही आपत्तिजनक है। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से संयुक्त राष्ट्रसंगठन का विश्व में कहीं अधिक प्रसार है और संसार के कहीं अधिक राष्ट्र उसके सदस्य हैं और वह अन्याय के निराकरण में अपेक्षाकृत कहीं अधिक क्रियाशील भी है...

***मि. तजम्मुल हुसैनः** क्या मैं माननीय सदस्य महोदय से यह सूचना प्राप्त कर सकता हूं कि यह कदम उठाने में कोई नुकसान भी है?

प्रो. के.टी. शाहः यदि मेरे माननीय मित्र कुछ धैर्य रखें, तो वे मुझसे सुन सकेंगे कि इसमें नुकसान क्या हैं?

अब मैं अपने तर्क को उठाता हूं। मैं इसकी परीक्षा करने का प्रयास कर रहा हूं कि जिस समझौते को मुझसे स्वीकार करने को कहा जा रहा है, उससे कोई लाभ भी हो सकता है अथवा नहीं। अभी तक तो मैं उसमें कोई लाभ नहीं देख पाया हूं।

[प्रो. के.टी. शाह]

अभी तक मैंने इस विषय पर केवल वैधानिक दृष्टि से विचार किया है। अब मैं इस पर आर्थिक दृष्टि से विचार करने का प्रयास करूंगा। मुझे तो इस प्रश्न का आर्थिक अंग और भी अधिक अंधकारमय दिखाई देता है, क्योंकि इस प्रकार के राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित होने से किसी प्रकार के लाभ की सम्भावना नहीं है। यदि ब्रिटेन स्वयं ही अपने स्वास्थ्य-लाभ के लिये दूसरों का मुखापेक्षी है और अमेरिका से सहायता मांग रहा है, तो यह किसी के भी समझ में आ सकता है कि वह इस स्थिति में नहीं है कि हमें अपनी प्रस्तावित विकास-योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहायता दे सके। यदि हमें अपने विकास-कार्य को आगे बढ़ाने के लिये किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा है, तो मेरी यह धारणा है कि ब्रिटेन से इसकी आशा करना निरर्थक है।

माननीय प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में यह बताया कि वे अच्छे मोलतोल करने वाले नहीं हैं। मेरे विचार से यह ठीक ही है। परन्तु मैं सभा को यह स्मरण कराना चाहता हूं कि ब्रिटेन एक कुशल मोलतोल करने वाला है और वास्तव में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इतने कुशल मोलतोल करने वाले हैं, जो अपनी वाक्पटुता से तथा कूटनीतिज्ञता से तो यह दर्शाते हैं कि मोलतोल करना तो उनके स्वभाव में है ही नहीं, परन्तु प्रतिक्षण वे इतनी कुशलता से मोलतोल करते हैं कि जो कोई उसका शिकार होता है, उसे दस वर्ष बाद उसका पता लगता है। इस समय इस समझौते में किसी प्रकार का मोलतोल न दिखाई देता हो और इसलिये सम्भवत: यह अच्छा न मालूम पड़े कि हम यह पूछें कि इससे क्या प्रतिलाभ होगा। ब्रिटेन की पिछले दो सौ वर्षों की परम्परा यह सिद्ध करती है कि ब्रिटिश राष्ट्र वणिकों को राष्ट्र है और इसलिये वह मोलतोल करने में सबसे कुशल है। अन्य लोग इसे भूल सकते हैं, परन्तु हमें तो हाल ही तक ब्रिटेन की मोलतोल करने की कुशलता का अनुभव होता रहा है और इसलिये मैं इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

इसलिये इस समझौते के फलस्वरूप राष्ट्रमण्डल से निकट सम्पर्क तो अवश्य स्थापित होगा, परन्तु मेरे विचार से इससे देश को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ होने की आशा नहीं है। हमें तो उस देश से सम्बन्ध स्थापित करके नुकसान ही उठाना पड़ेगा। अब मैं अपने माननीय मित्र का ध्यान, जिन्होंने मेरे भाषण में विघ्न डाला था, इस ओर दिलाना चाहता हूं कि इससे क्या नुकसान हो सकता है। मैं कह नहीं सकता कि उन्हें यह ज्ञात है या नहीं कि हमारी जनसंख्या ब्रिटेन की जनसंख्या की पांच गुनी से अधिक है और सम्भवत: वह ब्रिटेन और उपनिवेशों की जनसंख्या की सतगुनी है। इस समय गोरों की जो जनसंख्या है, उसकी मैं चर्चा कर रहा हूं। साधनों की दृष्टि से और मुख्यत: अविकसित साधनों की दृष्टि से सम्भवत: हमारा महत्त्व उनसे कहीं अधिक है। आर्थिक दृष्टि से, चाहे

हमारे सामने आज कितनी भी कठिनाइयां क्यों न हों क्योंकि ये कठिनाइयां तो संक्रान्तिकालीन कठिनाइयां हैं, हमारी स्थिति उनसे कहीं अधिक संतुलित है। ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति तो बहुत ही असंतुलित है और उपनिवेशों की आर्थिक स्थिति भी कम से कम इस समय असंतुलित है। इन देशों को दूसरों से तमाम साधन प्राप्त करने की अधिक आवश्यकता है और ये इस स्थिति में नहीं हैं कि कुछ दे सकें और उनकी आर्थिक स्थिति इस प्रकार की है कि वे अपनी जितनी चीजें अपने काम में लाते हैं उससे अधिक बेचने के लिये बाध्य हैं अर्थात् अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वे जितना उत्पादन करते हैं उससे अधिक खर्च करते हैं। ऐसे लोगों को इस प्रकार के संगठन से यही आशा होती है और यही सम्भावना दिखाई देती है कि उन्हें कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। किन्तु इनके निकट सम्पर्क में आने से हमें किसी प्रकार के लाभ की आशा नहीं हो सकती।

मुझे आशा है कि यदि मैं सभा को इसका स्मरण कराऊं कि पिछले पन्द्रह या बीस वर्षों में इस देश में साम्राज्यशाही की ओर से किस प्रकार पक्षपात होता रहा, तो वह मुझे क्षमा करेगी। यदि साम्राज्यशाही का यह पक्षपात अब उसी प्रकार एक नया रूप धारण करने जा रहा है, जैसे कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल एक नया रूप धारण कर रहा है, तो मुझे इस सभा को इस जाल से बचने के लिये चेतावनी देनी ही चाहिये। यद्यपि यह जाल अभी हमारे सामने नहीं फैलाया गया है, परन्तु समय आने पर वह फैलाया ही जायेगा और हमें अंग्रेज व्यापारी को लाभप्रद पद प्रदान करने के लिये बाध्य होना ही पड़ेगा, भले ही हमारा पद उससे कम लाभप्रद रह जाये और हमें कुछ त्याग करना पड़े।

श्रीमान्, कुछ ही दिन हुये हमने विदेश के लोगों को भारत में पूंजी लगाने के लिये बड़ी शिष्टता दिखाकर आमन्त्रित किया और विशेषतया अंग्रेज पूंजीपतियों की बहुत खुशामद की। इस प्रकार की नीति को मैंने उस समय भी स्वीकार नहीं किया था और इस समय भी उसे स्वीकार करने में असमर्थ हूं, क्योंकि मैं नही समझता हूं कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से निकट सम्बन्ध रखकर हमें आर्थिक दृष्टि से कोई लाभ हो सकता है।

श्रीमान्, यह हो सकता है कि ब्रिटेन अभी बिल्कुल थक न गया हो। मेरा भी यह विचार है कि अभी ब्रिटेन का दम नहीं उखड़ा है, परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि अब ब्रिटेन संसार में कारखानेदारों, खरीददारों और बैंकरों का वैसा राष्ट्र नहीं रह गया है, जैसा कि वह पिछली शताब्दी में था। ऐसे देशों को, जिनको अपने यहां पर्याप्त साधन सुलभ हैं और जिनकी जनसंख्या इतनी अधिक है कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं और अपने लिये वही पद प्राप्त कर सकते हैं। एक ऐसे देश के सम्पर्क से कोई लाभ होने नहीं जा रहा है, जो कानूनी तौर पर भले ही दिवालिया नहीं कहा जा सके, परन्तु जो अभी तक अपना ऋण नहीं चुका सका है और अपने ऋणकर्त्ताओं से अपना हिसाब नहीं तय कर पाया है।

[प्रो. के.टी. शाह]

इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के अपने अर्थ-सम्बन्धी मामलों के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका से धीरे-धीरे सम्बन्ध स्थापित करने और उस पर निर्भर रहने से इस सम्बन्ध में और भी अधिक सन्देह होता है कि हमारे देश के समान अन्य देशों को भी, जिन्होंने हाल ही में स्वतंत्रता प्राप्त की है और जो अपने आर्थिक विकास के सम्बन्ध में सचेष्ट हैं, इन देशों से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करना कहां तक आवश्यक और उचित है कि उनका सारा आर्थिक ढांचा इन देशों के स्वार्थों, तरीकों, वर्ग-प्रणाली और शोषण-नीति पर निर्भर हो जाये। पहले यही होता आया है और यदि हम में इसके विरोध करने की शक्ति नहीं रही, तो यही होता रहेगा।

श्रीमान्, यह खतरा अवश्य है, किन्तु यह उन लोगों की समझ में नहीं आ सकता है, जो केवल ऊपरी बातें देखकर संतुष्ट हो जाते हैं। श्रीमान्, हमें यह सलाह दी गई है कि हम गढ़े हुये मुर्दे न उखाड़ें। हमें यह भी सलाह दी गई है कि इस समय की भी बात बहुत न सोचें, बल्कि दृष्टि में रखें भविष्य को। श्रीमान्, मैं कोई भविष्यवक्ता नहीं हूं और इसलिये कह नहीं सकता हूं कि भविष्य में क्या होगा। किन्तु वर्तमान काल की घटनाओं तथा प्रवृत्तियों को तथा युद्ध के उपरान्त चार वर्षों से जो कुछ हुआ, उसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के इस सम्बन्ध से, जिसका अनुसमर्थन करने के लिये हमसे कहा जा रहा है, हमें न तो आर्थिक सहायता के रूप में और न औद्योगिक विकास के रूप में कोई आर्थिक लाभ होने जा रहा है। इसका परिणाम केवल यह होगा कि हमें इसका बहुत मूल्य चुकाना पड़ेगा। निःस्सन्देह यदि आप मूल्य की चिन्ता न करें तो प्रत्येक चीज लाभप्रद समझी जा सकती है। यदि आप जितना मूल्य मांगा जाये उतना चुकाने के लिये तैयार हैं, तो मुझे आगे कुछ नहीं कहना है। किन्तु यदि आप नफे-नुकसान का ठीक-ठीक हिसाब लगायें, तो मुझे विश्वास है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ वर्तमान सम्बन्धों अथवा भावी सम्बन्धों के बारे में कोई भी रोकड़िया आपको रोकड़ बाकी नहीं दिखा सकता है।

मैं कुछ ही शब्द और कहकर समाप्त करता हूं। इस सम्बन्ध में जो राजनैतिक स्थिति उत्पन्न होगी, उसका जितना महत्त्व बताया गया है उससे किसी प्रकार कम महत्त्व नहीं है। श्रीमान्, हमसे यह कहा गया है कि हम एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं। हम इस प्रकार का जीवन कभी भी व्यतीत नहीं कर सकते हैं। यह किसी की भी सम्मति नहीं है कि हम एकाकी जीवन व्यतीत करें। ऐसा करना मूर्खता होगी। कोई भी देश, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, वर्तमान काल में अलग रहने की नीति का अनुसरण नहीं कर सकता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम केवल ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ ही सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। हम स्वेच्छा से तथा ईमानदारी से संयुक्त राष्ट्र

[प्रो. के.टी. शाह]

संगठन में सम्मिलित हुये हैं, जो कि सारे संसार का संगठन है। हमने यह प्रतिज्ञा की है कि हम उसकी सहायता करेंगे तथा उसके साथ सहयोग करेंगे। संयुक्त राष्ट्र न विभिन्न राजनैतिक समूहों के लिये जो संगठन स्थापित किया है उससे लाभ उठाने का हम प्रयास कर रहे हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करें क्योंकि इससे अन्य लोग हमारे आचरण पर सन्देह कर सकते हैं और हमारे शुद्ध संकल्प होने पर भी हमारे शत्रु हो सकते हैं।

श्रीमान्, हमसे कहा गया है कि हमारी शिक्षा का प्रकार ब्रिटिश प्रणाली के आधार पर निश्चित किया गया है और यह भी कि हमारी सारी शासन-व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था ब्रिटिश प्रणाली पर ही आधृत है। किन्तु क्या इस कारण हमें ऐसी बातों को भी बनाये रखना चाहिये, जो हमारे लिये हानिकर सिद्ध हो सकती है? हमें इसे एक चेतावनी समझना चाहिये और यह समझना चाहिये कि विपत्ति सन्निकट है। इसके कारण हमें और भी अधिक आतिथ्य करने तथा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रश्न के इस अंग पर मुझे बहुत कुछ कहना है, परन्तु मैं आपके धैर्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहता और इन शब्दों के साथ सभा से निवेदन करता हूं कि इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जाये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी आज्ञा से मैं माननीय प्रधानमंत्री महोदय को एक ऐसे जटिल प्रश्न को हल करने के लिये बधाई देता हूं, जिनके बारे में कुछ महीने पूर्व यह समझा जाता था कि वह किसी प्रकार हल नहीं हो सकता है। जिस प्रस्ताव का अनुसमर्थन करने के लिये कहा जा रहा है, उससे हमारे उस निश्चय का किसी प्रकार निराकरण नहीं होता, जिसे हमने इस विधान-परिषद में आरम्भ में ही किया था। भारत आन्तरिक तथा वैदेशिक दोनों प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य का पद ग्रहण करने जा रहा है। हमारे आन्तरिक मामलों तथा वैदेशिक मामलों में सम्राट का कोई हाथ नहीं रहेगा। देश में तथा विदेश में संघ का राष्ट्रपति भारत का प्रतिनिधि होगा। विदेश में किसी प्रकार का कार्य करने के लिये हमें ब्रिटिश सम्राट के प्रमाणपत्र अथवा उसके नाम से दिये हुये प्रमाणपत्र की कोई आवश्यकता न होगी। युद्धकाल तथा शान्तिकाल में और व्यापार-वाणिज्य के सम्बन्ध में हम अपने स्वामी स्वयं होंगे। हम किसी प्रकार के आर्थिक जाल में जकड़े हुये नहीं रहेंगे। जहां तक उपनिवेशों का सम्बन्ध है, भारत में और उनमें बहुत अन्तर है। भारत को एक ऐसी वैदेशिक नीति का अनुसरण करने का अधिकार होगा, जिससे भारत का यथेष्ट रूप से हितसाधन हो सकेगा। इस समझौते को स्वीकार करने के विरोध में केवल यही बात कही गई है कि घोषणा में वेस्टमिंस्टर के कानून के प्रथम भाग को सम्मिलित करने के

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

लिये कोई कारण नहीं है। अर्थात् इसे सम्मिलित करने के लिये कोई कारण नहीं है कि सम्राट ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के स्वतंत्र सम्मेलन का प्रतीक होगा। घोषणा के दूसरे भाग का, जो वेस्टमिंस्टर के कानून की प्रस्तावना का अंग है, अर्थात् जिसका सम्बन्ध सम्राट के प्रति निष्ठा से है, कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिये सम्राट से केवल इतना सम्बन्ध रहेगा कि वह राष्ट्रमण्डल के सदस्यों के स्वतंत्र सम्मिलन का प्रतीक रहेगा। यदि एक प्रतीक रहा तो ढांचे में संघ के राष्ट्रपति को स्थान देना बहुत कठिन हो जायेगा। यह कोई सुसंगत बात न होगी कि इंग्लैंड और उपनिवेशों के प्रधानमंत्री और भारत के राष्ट्रपति को बारी-बारी से सम्मेलन का प्रधान बनाया जाये। चूंकि सम्राट अब भी अन्य उपनिवेशों का प्रमुख है और चूंकि हम स्वतंत्र रूप से एक सम्मेलन में सम्मिलित होने जा रहे हैं, इसलिये सम्राट प्रतीक रूप में बना रहेगा। राष्ट्रमण्डल के विभिन्न देशों के सम्बन्ध में सम्राट के कोई कार्य अथवा कर्त्तव्य अथवा अधिकार न होंगे। सम्राट की यही स्थिति होगी।

इसलिये अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि जो योजना स्वीकार की गई है, वह बहुत आपत्तिजनक तो नहीं है। इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि इस सम्मेलन में और अटलांटिक संधि द्वारा बनाये हुये गुट और संयुक्त राष्ट्र संगठन में किसी प्रकार की समानता नहीं है। कम से कम संयुक्त राष्ट्र के सम्बन्ध में, यद्यपि संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न देशों की सर्वसत्ता उसकी घोषणा के अनुसार निश्चित है, किन्तु उसके अनेक भागों को देखने से आपको पता लगेगा कि कुछ ऐसे प्रावधान हैं, जिनसे संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों की सर्वसत्ता कुछ कम हो जाती है।

इसी प्रकार अटलांटिक संधि के अधीन बने हुये गुट के समान बने हुये किसी गुट में सम्मिलित होने का कोई प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि रक्षा के सम्बन्ध में अथवा युद्ध के सम्बन्ध में अथवा किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में किसी प्रकार का वचन नहीं दिया गया है। इसलिये हमारे प्रधानमंत्री ने जो कार्य किया है, उससे हमें किसी प्रकार के भी दायित्व का भार नहीं उठाना पड़ता। वैदेशिक मामलों अथवा आन्तरिक मामलों के सम्बन्ध में भारत के गणराज्य के पद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और राष्ट्रपति की प्रतिष्ठा पर भी कोई प्रभाव न पड़ेगा। वास्तव में घोषणा में इन बातों का कोई उल्लेख नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि इंग्लैंड का सम्राट भारत में आये तो उसे हमारे राष्ट्रपति की तुलना में अधिक मान प्राप्त न होगा। हमारा राष्ट्रपति भारत का प्रतिनिधि होगा और इंग्लैंड के सम्राट को उससे अग्रिम पद प्राप्त न होगा, भले ही वह भारत के राज्य-क्षेत्र में अथवा किसी

अन्य क्षेत्र में राष्ट्रमण्डल से हमारे सम्बन्ध का प्रतीक हो। अन्य क्षेत्रों में, जिनमें उपनिवेश और इंग्लैंड भी सम्मिलित हैं, राष्ट्रपति को स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी का पद प्राप्त होगा।

इसलिये यह कहा जाता है और कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया भी है कि ''हम अलग ही क्यों न रहें? हम वही स्थिति क्यों न स्वीकार करें जो आयरलैंड ने स्वीकार की है?'' इस सम्बन्ध में हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि आयरलैंड की ऐसी स्थिति है कि वहां के देशवासियों को सभी जगह नागरिकता का लाभ प्राप्त हो सकता है, क्योंकि उनके सम्बन्धी कनाडा, आस्ट्रेलिया और अमेरिका में बसे हुये हैं और वे उपनिवेशों तथा अमेरिका के सम्बन्धों को सुदृढ़ बना सकते हैं। यह आप आसानी से समझ सकते हैं कि वे सभी जगह और इंग्लैंड में भी नागरिकता के अधिकारों को त्याग देने के लिये क्यों तैयार हैं। इसलिये आयरलैंड की स्थिति को ठीक-ठीक समझना आवश्यक है। एक तो आयरलैंड बहुत छोटा देश है और इंग्लैंड के बहुत निकट है और दूसरे आयरिश लोग सभी उपनिवेशों में बसे हुये हैं। इसलिये सम्बन्ध स्थापित करने से जो लाभ होता है, वह उसे स्वत: प्राप्त है और राष्ट्रमण्डल में बिना सम्मिलित हुये भी दोनों गोलार्धों से वह लाभ उठा सकता है। उसमें सम्मिलित न होने से आयरिश लोगों की जो भावनायें हैं, वे भी बहुत कुछ बनी रहती हैं। इन बातों से आयरलैंड की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। हमें अपनी स्थिति पर भी विचार करना है और वह इस दृष्टि से नहीं कि आयरलैंड ने क्या किया है और क्या करने जा रहा है, बल्कि इस दृष्टि से कि हमारे देश का सबसे अधिक हितसाधन किस प्रकार होगा। आपको कई बातों पर विचार करना होगा अर्थात् इस पर कि वर्तमान सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुये हमारी सेना का संगठन किस प्रकार का हो, धन को अपने देश में लाने के लिये हम किन शर्तों को पूरा करें आदि, भले ही ये बातें प्रस्ताव को समझने में सहायक न हों। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कुछ सम्बन्ध स्थापित करने से अथवा पुराने सम्बन्धों को सक्रिय बनाने से देश को लाभ होगा।

इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि विधान में भारत की जो वैधानिक स्थिति है और जो स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा उसे प्राप्त है, उसे बनाये रखते हुये माननीय प्रधानमंत्री ने जो इस समझौते को करते हुये इन बातों को भी ध्यान में रखा होगा।

एक और बात है जिसकी ओर आपको ध्यान देना चाहिये। वह यह है कि विधान में अब बिना किसी विराम को रखे हुये अथवा विधान के पहले बिना कुछ शब्द जोड़े हुये अथवा बिना उसके किसी भाग में सम्राट का उल्लेख किये हुये वह प्रयोग में आयेगा। प्रस्तावना उसी प्रकार रहेगी। विधान में विभिन्न भागों को प्रस्ताव के अनुरूप बनाने के लिये आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं। किन्तु इस वैधानिक ढांचे में सम्राट का कोई

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

स्थान न रहेगा। यह सम्मेलन बहुत ही असम्बद्ध है, किन्तु इससे कुछ लाभ होने की आशा है। वर्तमान काल में कोई भी व्यक्ति और कोई भी देश सुन्दर एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। किसी राष्ट्र का दास होना और उसकी आर्थिक नीति का शिकार होना दूसरी बात है और अपने व्यक्तित्व को बनाये रखना दूसरी बात है। यह कहा जाता है कि यदि आप अपने सभी वैधानिक सम्बन्धों का विच्छेद कर दें, तो स्वाधीनता प्राप्त हो जायेगी। यह गलत है। सब कुछ इस पर निर्भर रहेगा कि आप कितनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। चीन को देखिये। बहुत काल तक वह सिद्धान्ततः स्वाधीन था, किन्तु उसे अन्य देशों का मुंह ताकते रहना पड़ता था। इसी प्रकार सिद्धान्ततः हमारा देश स्वाधीन हो सकता है और उसका ब्रिटेन और ब्रिटिश सम्राट से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो सकता है, किन्तु जब तक आप अपनी शक्ति का विकास न करे लेंगे, आप पर अन्य राष्ट्रों का नियंत्रण रहेगा। इसलिये इस प्रश्न को इसी दृष्टि से हल करना चाहिये कि क्या किसी बात से हमारी शक्ति के विकास में बाधा तो नहीं पड़ती और क्या हमें इसकी स्वतंत्रता है कि हम किसी समय भी सम्बन्ध-विच्छेद कर लें। उदाहरणार्थ, यदि ब्रिटेन का व्यवहार ठीक नहीं रहा तो आगे की सरकार को और प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित आगे की संसद को उससे सम्बन्ध विच्छेद करने की स्वतंत्रता रहेगी। इसलिये यह प्रश्न समयोचित कार्य करने का प्रश्न है। एक ओर यह कहा जाता है कि इस घोषणा में कुछ भी सार नहीं है और दूसरी ओर यह कहा जाता है कि यह बहुत सारपूर्ण है। जब प्रधानमंत्री महोदय खुले तौर पर कोई घोषणा करते हैं तो आपको कोई अधिकार नहीं है कि जो बातें नहीं कही गई हैं, उन्हें आप उस घोषणा के सम्बन्ध में कहें। आपको उनकी बातों पर विश्वास करना होगा। हम अपने प्रधानमंत्री महोदय को इतनी अच्छी तरह जानते हैं और इसलिये हमें यह न सोचना चाहिये कि उन्होंने किसी के साथ कोई समझौता कर लिया है। जो कोई भी समझौता किया गया है, वह घोषणा में बता दिया गया है। क्या आप घोषणा को मानने के लिये तैयार हैं या नहीं?

एक दूसरी बात भी कही गई है और वह यह है कि इस प्रस्ताव का पहले अनुसमर्थन हो जाना चाहिये था। मैंने यह कभी नहीं सुना है कि अन्य राष्ट्रों से संधि करने के पूर्व उसके पूरे ब्यौरे पर अन्य लोगों से विचार-विमर्श हो जाना चाहिये। सारी योजना कई अवसरों पर इस सभा के सामने रखी गई थी। कांग्रेस इस सम्मेलन अथवा संघ में सन्निहित सिद्धान्त का समर्थन करने के लिये तैयार हो गई थी। ऐसी स्थिति में यह कहना कि इस समझौते का प्रत्येक विराम और प्रत्येक वाक्य इस सभा के सामने रखा जाना चाहिये था, कोई अर्थ नहीं रखता। प्रधानमंत्री इस सभा के सम्पूर्ण सन्देश को लेकर गये और वापस आने पर आपसे उसका अनुसमर्थन करने को कह रहे हैं। इस कार्यप्रणाली में क्या दोष है? क्या वह संसार के किसी सभ्य देश को मान्य अन्तर्राष्ट्रीय कार्यप्रणाली के विरुद्ध है?

यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। मैंने यह कभी नहीं सुना है कि किसी समझौते के पूरे ब्यौरे पर किसी संसद अथवा विधान-परिषद में विचार-विमर्श हो जाना चाहिये और उसके प्रत्येक खण्ड पर विचार-विमर्श करके स्वीकार कर लेना चाहिये और तब उसे अन्य पक्षों के सम्मुख स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने के लिये रखा जाना चाहिये। आपको केवल इस पर विचार करना है कि प्रधानमंत्री को कांग्रेस ने अथवा विधान-परिषद ने जो आदेश दिये थे, उनकी उन्होंने किसी प्रकार उपेक्षा तो नहीं की है।

इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि जहां तक भारत का सम्बन्ध है, उसकी ओर से कोई वचन नहीं दिया गया है। उसे इसका अधिकार है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार अपनी वैदेशिक नीति, अपनी आन्तरिक नीति और अपनी औद्योगिक नीति का अनुसरण करे। उपनिवेश होते हुये भी भारत स्वतंत्रता से अपनी ही नीति का अनुसरण कर रहा है और अन्य उपनिवेशों से परामर्श नहीं ले रहा है। उसने ऐसे कार्यों के सम्बन्ध में भी, जिनका ब्रिटेन विरोध करता रहा है, उससे परामर्श नहीं लिया। कठिन स्थिति उत्पन्न होने पर जब ब्रिटेन ने देखा कि किसी पक्ष का साथ देना आपत्तिजनक होगा, तो वह तटस्थ रहा। उसकी तटस्थता से भी हमें लाभ ही होता है। उदाहरणार्थ, यदि कभी राष्ट्रमण्डल के किसी सदस्य और हमारे बीच कलह होगा, तो उसकी तटस्थता लाभप्रद ही सिद्ध होगी। बात यह है कि हम राष्ट्रों के किसी गुट को वचन नहीं दे रहे हैं। भारत ही एक ऐसा देश है, जो किसी प्रकार वचनबद्ध नहीं है। इस स्थिति में जब तक कि आप आजकल के संसार के जटिल प्रश्नों की उपेक्षा करके एकाकी जीवन व्यतीत न करना चाहें, यह बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा कि आप अपने मित्रों को बिना किसी प्रकार के वचन दिये हुये उनसे वार्त्ता कर सकें। जब किसी प्रकार के वचन दिये ही नहीं गये हैं, तो इस निर्णय की आलोचना केवल कानूनी आलोचना होगी, जब तक कि आलोचक यह न चाहें कि वचन दिये जायें। क्या प्रोफेसर शाह यह चाहते है कि वचन दिये जायें? क्या वे लोग, जिन्होंने इस समझौते के सम्बन्ध में चेतावनी दी है, यह चाहते हैं कि वचन दिये जायें? यदि आपकी यह इच्छा है तो दोनों पक्ष वचनबद्ध होंगे। एक ही पक्ष वचन नहीं दे सकता है, इसलिये यह आलोचना तर्कयुक्त नहीं है। एक ओर आप किसी गुट में सम्मिलित नहीं होना चाहते हैं और दूसरी ओर किसी प्रकार के वचन भी नहीं देना चाहते हैं। यदि आप लोगों के किसी समूह से किसी प्रकार का वास्तविक लाभ उठाना चाहते हैं, तो आपको उनकी शर्त्तें मानने के लिये तैयार होना चाहिये। आर्थिक क्षेत्र के सम्बन्ध में भी यह सोचना गलत है कि आप अन्य राष्ट्रों से अलग रहकर ही स्वतंत्र हो सकते हैं। अमेरिका का उदाहरण लीजिये। अमेरिका संसार के अन्य राष्ट्रों पर प्रभुत्व प्राप्त किये हुये है। क्या यह

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

इस कारण है कि उसने इन राष्ट्रों के साथ सन्धियां की हैं? उसके पास धन है, उसके पास सम्पत्ति है और उसके पास विपुल साधन हैं और इसीलिये वह सारे संसार पर प्रभुत्व प्राप्त किये हुये हैं। यूरोप के स्वतंत्र राष्ट्रों को देखिये। क्या उनके स्वतंत्र न होने के कारण उन पर प्रभुत्व है? वे हर प्रकार स्वतंत्र गणराज्य है, पर फिर भी उन पर अन्य देशों का प्रभुत्व है। भारत जैसे उन्नतिशील देश के बिना किसी प्रकार के वचन दिये हुये राष्ट्रमण्डल में रहना विश्व में शान्ति तथा सद्भावना की स्थापना में सहायक होगा। मेरे विचार से हमारे प्रधानमंत्री से विश्व-शान्ति का बड़ा पोषक हमें मिल नहीं सकता। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि यदि वे यह देखेंगे कि इस स्वतंत्र सम्मेलन की आड़ में, जिसका प्रतीक सम्राट है, कोई जाल बिछा हुआ है, तो वे सबसे पहले इस सम्मेलन को भंग कर देने के लिये आपको सलाह देंगे। आपको किसी व्यक्ति से मिलने से इस कारण भय न करना चाहिये कि वह आपको निगल जायेगा। इसका अर्थ यह है कि आप डरपोक हैं और आप में आत्मविश्वास नहीं है। यदि आपमें आत्मविश्वास है तो आप इस सम्मेलन में अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाल सकेंगे। इस स्थिति में, मैंने जो तर्क उपस्थित किये हैं उनको ध्यान में रखते हुये, हमें अपने प्रधानमंत्री के किये हुये समझौते का उत्साह से तथा एकमत से समर्थन करना चाहिये। यद्यपि वे कद में छोटे हैं, किन्तु इस सम्मेलन के फलस्वरूप राष्ट्रमंडल के अन्य मंत्रियों की तुलना में उन्होंने अपने को ऊंचा उठा लिया है। जिन उद्देश्यों को लेकर हमने संघर्ष किया था, उन्हें उन्होंने प्राप्त किया है और साथ ही राष्ट्रमंडल से हमारे सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाया है।

***मि. मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया है, उसका हृदय से समर्थन करने के लिये मैं उपस्थित हुआ हूं। पहले मैं उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपनी तथा अपने देश की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये बधाई देना चाहता हूं। श्रीमान्, पंडित कुंजरू, श्री के.एम मुन्शी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के तथा उनके समान अन्य विद्वान सदस्यों के इस प्रस्ताव पर बोलने के बाद मेरे लिये अब कुछ अधिक कहने को नहीं रह गया है। मैं केवल यह प्रदर्शित करने के लिये बोलना चाहता हूं कि हमारे प्रधानमंत्री ने जिस नीति का प्रतिपादन किया है, उसका समर्थन केवल एक या दो समूह नहीं कर रहे हैं, बल्कि बहुत से समूह कर रहे हैं। देश के अधिकांश लोग उनके निर्णय का समर्थन करते हैं। केवल इसी उद्देश्य से मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये उपस्थित हुआ हूं। पहली बात तो यह है कि जब हम इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में बोलते हैं तो हमें हमेशा पिछली बातों को ही ध्यान में न रखना चाहिये। हमें भूतकाल को भूल जाना है और भूतकाल में जो कुछ हुआ उसे ही हमें दुहराते नहीं रहना चाहिये। हमें भूतकाल

के ही आधार पर अपनी धारणा नहीं बनानी चाहिये। पहले हम पराधीन थे और स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करते थे। इस समय हमारे सामने जो प्रस्ताव रखे जा रहे हैं उन्हें हम उस समय सन्देह की दृष्टि से देखते और उनके विरोध में संघर्ष करते। अब स्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब हमारा राष्ट्र स्वतंत्र है। हमें अपनी कार्यप्रणाली निश्चित करने की स्वतंत्रता है। इसलिये जब अब स्थिति बिल्कुल भिन्न है, मेरी समझ में नहीं आता कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के प्रतिनिधि के नाते हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने जो कार्य किया है, उसकी इस प्रकार आलोचना करने में हम इतना समय क्यों नष्ट करें। श्रीमान्, आज हमारी स्थिति कैसी है? हमारा देश राष्ट्रमण्डल का एक उपनिवेश है और विधान अभी प्रयोग में न आने के कारण उसने सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य का पद प्राप्त नहीं किया है। श्रीमान्, इस स्थिति में हमारे क्या अधिकार हैं? हम जो निर्णय चाहें कर सकते हैं। हम प्रत्येक कार्य करने के लिये स्वतंत्र है। यही समझकर हमारे कुछ मित्र यह सलाह दे रहे हैं कि सभा के सामने जो प्रस्ताव रखा गया है, उसे स्वीकार न किया जाये। इन मित्रों का यह विचार है और यह ठीक ही विचार है कि सम्राट के अधीन रहते हुये और सम्राट को उस राष्ट्रमण्डल का प्रमुख मानते हुये भी जिसके हम भी सदस्य है, हमें अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। इसलिये नये विधान के अनुसार अपने देश को गणराज्य घोषित करने पर भी उसी स्थिति को बनाये रखने में उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है? इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, उस प्रस्ताव अथवा घोषणा को ही लीजिये, जो लन्दन में राष्ट्रमण्डल सम्मेलन की समाप्ति पर प्रकाशित की गई थी। यह घोषणा कोई पेचीदी घोषणा नहीं है। प्रधानमंत्री महोदय ने हमें यह आश्वासन दिया है कि इस घोषणा के सम्बन्ध में कोई बात छिपाकर नहीं रखी गई है और राष्ट्रमण्डल के अन्य उपनिवेशों के अधिकारियों अथवा प्रधानमंत्रियों के साथ कोई गुप्त सन्धि अथवा गुप्त समझौता नहीं किया गया है। इसलिये यह कोई पेचीदी घोषणा नहीं है और मेरी समझ में नहीं आता कि इस घोषणा में किस बात का हम विरोध कर रहे हैं। इसमें केवल वर्तमान स्थिति को बनाये रखने का प्रस्ताव किया गया है, यद्यपि यह भी कहा गया है कि निकट भविष्य में भारत गणराज्य हो जायेगा। इस समय हमारे जो अधिकार हैं और हमारी जो प्रतिष्ठा है, वह किसी प्रकार कम न होगी। घोषणा में इसी का आश्वासन दिया गया है। इसके अतिरिक्त जब हमने सम्राट को सम्मेलन का प्रतीक न कि राष्ट्रमण्डल का प्रमुख माना है, तो हम जो कुछ भी करना चाहें कर सकते हैं। उद्देश्य यह नहीं है कि हमारे आन्तरिक मामलों पर अथवा वैदेशिक मामलों पर इस घोषणा का प्रभाव पड़े।

सभा के सम्मुख जो संशोधन रखे गये हैं वे इस प्रकार हैं:

एक इस प्रकार है कि विधान के स्वीकार होने तक इस प्रस्ताव पर विचार-विमर्श

[मि. मोहम्मद इस्माइल साहब]

स्थगित रखा जाये। क्यों स्थगित रखा जाये? यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि हम राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहेंगे। इस संशोधन का यह भी अर्थ है कि हमारे कार्य करने की स्वतंत्रता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। यदि यह ठीक है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि प्रस्ताव के स्वीकार करने पर उस पर किस प्रकार प्रभाव पड़ेगा। दूसरा संशोधन इस प्रकार है कि जब तक अफ्रीका और आस्ट्रेलिया भारतीयों को राष्ट्रमण्डल के अन्य नागरिकों के समान मानने के लिये तैयार नहीं होते, तो हमें इस प्रस्ताव का अनुसमर्थन नहीं करना चाहिये। किन्तु यदि हम इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं और राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने रहते हैं, तो क्या हम उन लोगों से वार्त्ता करने के लिये और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पहले से अच्छी स्थिति में नहीं होंगे? हमारे प्रधानमंत्री के अन्य मंत्रियों के साथ किये हुये प्रबंध के अधीन राष्ट्रमण्डल के सदस्य रहते हुये भी इन प्रश्नों को हल करने के लिये अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में कोई बात बाधक नहीं होगी।

श्रीमान्, मैं इस विषय पर अधिक न बोलकर सभा से केवल यह अनुरोध करना चाहता हूं कि हमारा देश इस समय अथवा आगे चलकर सबसे अलग होकर नहीं रह सकता है। यदि हमें संसार के अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित करना ही है, अथवा पुराने सम्बन्ध को बनाये रखना है तो हमारे सामने जो व्यवस्था प्रस्तुत है, उससे अच्छी व्यवस्था हो ही नहीं सकती। इस व्यवस्था के अधीन किसी प्रकार के वचन नहीं दिये गये हैं यदि हमारे मित्र यह चाहते हैं कि अन्य देशों के साथ सन्धि की जाये, तो प्रतिबंध और आयंत्रण हमें तथा सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को मानने होंगे। किन्तु इस व्यवस्था के अधीन कोई भी वचनबद्ध नहीं है। हम उतने ही स्वतंत्र हैं जितना आकाश का पक्षी। सन्धि को ही लीजिये। उसकी कम से कम कोई अवधि होगी। इस व्यवस्था की कोई अवधि नहीं है। लन्दन की घोषणा के अधीन अथवा सभा के सम्मुख प्रस्तुत प्रस्ताव के अधीन हमें इसकी स्वतंत्रता है कि हम जब भी चाहें, अपनी स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं। इसलिये वर्तमान परिस्थिति में यह सबसे अच्छी व्यवस्था है और इससे हमें हर प्रकार लाभ होगा। इससे हमें अन्य राष्ट्रों के साथ लाभप्रद स्थिति प्राप्त हो सकेगी और साथ ही पूर्ण कार्य-स्वातंत्र्य भी प्राप्त होगा। इस कारण, अध्यक्ष महोदय, मैं इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री खण्डूभाई के. देसाई** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री द्वारा उपस्थित प्रस्ताव का समर्थन करते हुये मुझे तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं होता। मैं किसी राजनीतिज्ञ अथवा किसी वकील अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों के किसी विद्यार्थी के नाते इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर रहा हूं। मैं इस प्रश्न पर विचार करने के उपरान्त

इस प्रस्ताव का समर्थन कर रहा हूं कि इस समझौते का इस देश के जनसाधारण पर क्या प्रभाव पड़ा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारे प्रधानमंत्री ने इस प्रश्न को जिस प्रकार हल किया है, उससे संसार के अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ गई है। इस प्रस्ताव का विरोध मेरे विचार से मुख्यत: भय और आत्मलाघव की भावना पर आधृत है। विरोध करने वाले मित्रों से मैं यह कहना चाहता हूं कि वे हमारे देशवासियों को जैसा समझते हैं, उससे वे कहीं अधिक स्फूर्तिवान, प्रसन्नचित्त और साहसी हैं और पारस्परिक हितसाधन के लिये वे किसी राष्ट्र से आदान-प्रदान करने में भयभीत नहीं होते हैं। कुछ मित्रों ने जिस प्रकार इस प्रस्ताव का विरोध किया, उससे आत्मविश्वास के अभाव का ही परिचय मिलता है। कुछ वक्ता महोदयों ने ठीक ही कहा है कि हमें भूतकाल की ही बातों को नहीं सोचते रहना चाहिये। हमें वर्तमान काल की स्थिति के अनुसार आचरण करना चाहिये तथा भविष्य को भी अवश्य दृष्टि में रखना चाहिये। यह समझौता वास्तव में राष्ट्रमण्डल का रूप ही बदल देने में बहुत सहायक हुआ है। अभी तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कहे जाने वाले सम्मेलन की रूपरेखा ही हमारे प्रधानमंत्री ने बदल डाली है। इस प्रकार उन्होंने अब तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कहे जाने वाले सम्मेलन के अन्य राष्ट्रों की भी वास्तव में बहुत सहायता की है।

इस देश के जनसाधारण अपने स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी राष्ट्र की प्रतिष्ठा को केवल इस कसौटी पर कसते हैं कि उससे विश्व-शान्ति की कितनी अभिवृद्धि होगी। यह कहा गया है कि इस सम्मेलन के सम्बन्ध में वचन दिये गये हैं। प्रधानमंत्री महोदय ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि किसी प्रकार के वचन नहीं दिये गये हैं। केवल एक वचन दिया गया है और वह है विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि का। मेरे विचार से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एक नये राष्ट्र की ओर से पहला ही कदम उठाकर उन्होंने एक महान् नेतृत्व का बीड़ा उठाया है, जिसका हम स्वागत करते हैं। हमारे सामने यह प्रश्न है कि एक स्वतंत्र देश के निवासी होने के नाते क्या हमें 'मूंदहु आंख कितहु कोई नाहीं' की नीति ग्रहण करनी चाहिये? यदि भय, संकट और कठिनाइयां उपस्थित हैं तो उनसे जूझ कर ही उन्हें हल किया जा सकता है। आप आंखें मूंद कर यह नहीं कह सकते हैं कि संकट उपस्थित है ही नहीं। विश्व-शान्ति संकट में पड़ी हुई है और हमारे राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि उसे संकटमुक्त करने में अपना योग दें। उन मित्रों से, जो चाहते हैं कि यह प्रस्ताव स्वीकार न हो, मैं यह कहना चाहता हूं कि वे विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि के हेतु किये जाने वाले प्रयत्नों से परांगमुख हो रहे हैं। इस समझौते से अवश्य ही एक ऐसी गोष्ठी का निर्माण होता है, जिसमें हमारे प्रतिनिधि प्रवेश कर सकते हैं और हमारी विचारधारा अन्य लोगों के सामने रख के तथा उनसे विचार-विमर्श करके विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि में अपना योग दे सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंग्रेजों से हम अब भी पहले की तरह

[श्री खण्डूभाई के. देसाई]

घृणा करते हैं और उनसे भयभीत हैं। किन्तु अब हमें इस मनोदशा को त्याग देना चाहिये। यह भी कहा गया है कि अंग्रेज मोलतोल करने में बहुत निपुण हैं और वे हमें ठग लेंगे। इस धारणा का आधार भी हमारी पुरानी मनोवृत्ति ही है। क्या भय, सन्देह और अविश्वास के आधार पर विश्व-शान्ति का पोषण अथवा अभिवृद्धि हो सकती है? यदि हमारे राष्ट्र को विश्व-शान्ति की स्थापना के लिये प्रयत्न करने हैं, क्योंकि मेरे विचार से उसने एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति करनी ही है, तो संसार में हमें कुछ ऐसे मित्रों की आवश्यकता होगी जो हमारे विचारों को ग्रहण कर सकते हैं। प्रोफेसर शाह ने कहा है कि वे सन्देह, अविश्वास आदि से पीड़ित हैं। आप कब तक इस अविश्वास, सन्देह और भय से पीड़ित रहेंगे।? आपको संसार में जीवित रहना है। चाहे आप इसे पसन्द करें या न करें, किन्तु संसार की राजनीति का और संसार के तमाम मामलों का आप पर प्रभाव पड़ेगा ही। आपको इसे ध्यान में रखना चाहिये कि आगे चलकर कभी यह न कहा जाये कि जब आपको संसार के राजनीतिज्ञों से वार्त्ता करने का अवसर मिला था, आप अपने कर्त्तव्य का पालन न कर सके। हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने जो कुछ कहा है, उसके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के स्थान में कुछ वक्ताओं ने अस्पष्ट शब्दों में इस समझौते पर आघात किया है। इनमें से कुछ मित्र अभी पुरानी ही बोली बोलते हैं और यह समझते हैं कि वे बामपक्षी अथवा उग्र परिवर्तनवादी हैं। मेरे विचार से न वे बामपक्षी हैं और न उग्र परिवर्तनवादी। वे रूढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी हैं और एक ऐसे राज्य में रहना चाहते हैं जो गतिशून्य हो। हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने संसार के प्रश्नों के सम्बन्ध में अपनी प्रगतिशील विचारधारा से ही प्रेरित होकर राष्ट्रमण्डल में प्रयत्न किये।

श्रीमान्, कुछ ही दिन पूर्व, एक सप्ताह पूर्व, इस देश के श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सभा का इन्दौर में वार्षिक अधिवेशन हुआ और उसमें इस समझौते पर विचार-विमर्श हुआ। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस समझौते का एकमत से समर्थन किया गया और वह केवल इस आधार पर कि इससे बिना भारत के पूर्णतः स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य के पद के मान को किसी प्रकार कम किये हुये विश्व-शान्ति का उत्तरोत्तर हित-साधन होता है। जहां तक इस देश के तथा अन्य देशों के जनसाधारण का सम्बन्ध है, वे केवल विश्व-शान्ति में दिलचस्पी रखते हैं, ताकि के उन्नति कर सकें और सुख-शान्ति से अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

यह कहा गया है इस सभा को इस प्रश्न पर विचार करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। एक संशोधन इस प्रकार है कि हमें इस समझौते का अनुसमर्थन उस समय तक न करना चाहिये, जब तक कि नये विधान के अनुसार निर्वाचन न हो जाये और उसके आधार पर एक नये विधान-मण्डल का निर्माण न हो जाये। मेरे विचार से इस तर्क में कुछ

भी बल नहीं है। यह सभा विधान को स्वीकार करने के लिये सक्षम है और उसे स्वीकार कर ही लेगी तथा देश के भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय कर लेगी। उसे यह सब अधिकार प्राप्त हैं। किन्तु इन लोगों के मतानुसार उसे इस छोटे से समझौते का अनुसमर्थन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। मेरी समझ से यह गलत विचार है और यह तर्कसंगत भी नहीं है। अच्छा तो यही होगा कि हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने हमारे सम्मुख जो प्रस्ताव रखा है, उसे हम निस्संकोच स्वीकार कर लें।

श्रीमान्, इस समझौते को करते समय हमारे प्रधानमंत्री को उस ध्येय का अवश्य ही ध्यान रहा होगा, जिसे उन्हें संसार में महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी के नाते प्राप्त करना है। वे इस समझौते के लिये इसलिये सहमत हुये हैं कि एक ऐसी गोष्ठी का निर्माण हो जाये, जिसके सम्मुख वे अपने विश्व-शान्ति के ध्येय को रख सकें और राष्ट्रमण्डल की आधारशिला पर ऐसे राष्ट्रसंगठन का निर्माण हो सके, जिसका उत्तरोत्तर प्रसार हो और जिससे विश्व-शांति का हित साधन हो।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री कामेश्वर सिंह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस अवसर पर माननीय प्रधानमंत्री को उनकी सफलता के लिये विनयपूर्वक बधाई देता हूं। वे परस्पर विरोधी विचार-धाराओं से अलग रहे हैं और स्थिति का यथार्थ दर्शन करके भारत को एक ऐसे प्रतिष्ठित पद पर आसीन किया है कि अब वह विश्व-शान्ति की अभिवृद्धि करने में समर्थ है।

भारत को अब सभी ने एक स्वतंत्र देश स्वीकार कर लिया। उसके सर्वसत्ताधारी जनतंत्रात्मक गणराज्य होने पर हमारे देशवासी पहले की तरह सम्राट के प्रति निष्ठा नहीं रखेंगे, उसने संसार में अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखना है और यह तभी सम्भव होगा, जब हमारा देश वैदेशिक तथा आन्तरिक मामलों में सभी बन्धनों से मुक्त हो जाये। अब भारत के लोगों में ही सर्वसत्ता सन्निहित होगी और अब वे अन्य देशवासियों के साथ अपना माथा भी ऊंचा कर सकेंगे।

वर्तमान काल में कोई भी देश अन्य देशों से अलग नहीं रह सकता है। विशेषत: हमारे जैसे देश के लिये, जिसने हाल ही में अपनी बेड़ियां काटी हैं और अपने पैरों पर खड़ा होने के लिये बहुत प्रयत्नशील है, यह सोचना भी असम्भव है कि वह अन्य देशों से कोई सरोकार नहीं रखेगा। यदि उसने यह रुख अपनाया तो उसकी उन्नति ही अवरुद्ध न हो जायेगी, बल्कि उसकी स्वतंत्रता भी संकट में पड़ जायेगी। इसलिये राष्ट्रमण्डल में रहने के लिये अपने सुयोग्य प्रधानमंत्री द्वारा सहमत होकर उसने बहुत राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है। अब इस राष्ट्रमण्डल का प्रकार बदल गया है और उसने एक नया रूप धारण

[श्री कामेश्वर सिंह]

कर लिया है। राष्ट्रमण्डल के सदस्यों ने अभिसमयानुसार तथा समझौता करके उसका आकार-प्रकार बदल दिया है। इस पर जोर दिया गया है कि सम्राट के प्रति निष्ठा राष्ट्रमण्डल का आधार नहीं है। किन्तु भारत इंग्लैंड तथा उपनिवेशों के सम्राट को प्रतीक रूप में राष्ट्रमण्डल का प्रमुख मानने के लिये सहमत हो गया है यह सब कुछ एक बहुत बड़े आदर्श को दृष्टि में रखकर अर्थात् विश्व में शान्ति और सम्पन्नता के साम्राज्य को स्थापित करने के आदर्श को दृष्टि में रखकर आपस में समझौता करके किया गया है। जब कभी भारत अथवा कोई अन्य देश यह समझे कि इस संगठन में रहने से उसके राष्ट्रीय आदर्शों तथा उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो सकती है तो वह उसे त्याग सकता है। एक विशेष उद्देश्य को सामने रखकर यह समझौता किया गया है और यदि कोई पक्ष इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य नहीं करता है तो उसे भंग किया जा सकता है। हमारे प्रधानमंत्री ने स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया है कि इस समझौते का यह अर्थ नहीं है कि भारत किसी गुट में सम्मिलित होने जा रहा है। जनतंत्र के सिद्धान्तों में अटल विश्वास रखने के कारण भारत इसके अलावा कोई अन्य कदम भी नहीं उठा सकता था। यदि उसने उन शक्तियों का समर्थन किया होता जो इस समय संसार में गुप्त रूप से स्वेच्छाचारिता फैला रही हैं तो उसने अपने प्रिय आदर्शों का बलिदान कर दिया होता। उससे यह नहीं देखा जा सकता कि मनुष्य को मशीन का पुर्जा बनाने वाली किसी विचारधारा को अपना-कर मनुष्य की स्वतंत्रता और उसके आत्मविश्वास का बलिदान किया जाये।

भारत को अपने राष्ट्रीय हितों की ही चिन्ता करनी है। वर्तमान काल की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों से वशीभूत होकर ही उसने राष्ट्रमण्डल से निकट सम्पर्क स्थापित किया है।

पिछली घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि राष्ट्रमण्डल के वर्तमान ढांचे में रहकर भारत संसार के प्रश्नों का निर्णय कर सकता है। इसे सभी ने स्वीकार किया है कि दक्षिणपूर्वी एशिया में वह सब से अग्रगामी देश है। उसके इतिहास को तथा उसकी भौगोलिक स्थिति को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि वह विश्व में शान्ति स्थापित करने में अवश्य ही समर्थ होगा। किन्तु वह इस कार्य को तभी कर सकता है जब उसकी सैनिक तथा आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो। यह स्थिति राष्ट्रमण्डल के देशों तथा अमेरिका के सहयोग से सुदृढ़ हो सकती है। इसलिये इस समय जिस अशान्ति की बाढ़ में संसार के सभी भू-भाग डूब रहे हैं और जिससे मानवी स्वातन्त्र्य के आधारभूत सिद्धान्तों के ही मिट जाने की आशंका है उसे रोकने के लिये इससे अच्छी सन्धि हो नहीं सकती थी।

कुछ लोगों ने हमारे प्रधानमंत्री महोदय पर यह आरोप लगाया है कि इस देश का ब्रिटिश साम्राज्यवाद से गठबंधन करके उन्होंने एक अपराध किया है। इससे बड़ी झूठ और

कुछ हो नहीं सकती। जब हमें राष्ट्रमण्डल को किसी समय भी त्यागने की स्वतंत्रता प्राप्त है तो इस प्रकार के आरोप निराधार हैं। उनके सम्बन्ध में सभी बातें जानने के कारण हमें इसका विश्वास है कि जब कभी वे राष्ट्रमण्डल के देशों के पारस्परिक विचार-विमर्श में भाग लेंगे तो उसका प्रकार ही बदल जायेगा और विश्व-शान्ति सन्निकट आ जायेगी।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, कल माननीय प्रधानमंत्री ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया था उसका हृदय से समर्थन करने के लिये मैं उपस्थित हुई हूं और इस सभा में जो बधाइयां दी गई हैं उनमें मैं अपना योग भी देती हूं। मुझे आश्चर्य यह है कि प्रधानमंत्री ने राष्ट्रमण्डल में भारत के रहने के सम्बन्ध में जो निर्णय किया है उसकी बहुत आलोचना की गई है। चूंकि यह समाचार समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो गया था इसलिये इस देश के तथा विदेश के साधारणतया सभी लोगों ने प्रधानमंत्री के कार्य का समर्थन किया है। इसलिये मुझे यह आशा थी कि भारत को संसार की दृष्टि में ऊंचा उठाने के लिये तथा उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये उन्होंने जो कार्य किया है उसका समर्थन इस सभा के अधिकांश सदस्य करेंगे। राष्ट्रमण्डल सम्मेलन और प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में भारत के प्रधानमंत्री जिस उच्च पद पर आसीन रहे उसे देखकर सभी भारतीय गर्व से फूले नहीं समाये और अब इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं रह गया है कि आज संसार के राजनीतिज्ञों के बीच हमारे प्रधानमंत्री को जो प्रतिष्ठा प्राप्त है वह अन्य किसी प्रधानमंत्री को प्राप्त नहीं है। वे आज इसकी बाट देख रहे हैं कि भारत एशिया का नेतृत्व ग्रहण करेगा। मैं यह कह सकती हूं कि एशिया में भारत की जो स्थिति है उसके कारण ही हमारे प्रधानमंत्री को नेतृत्व की शक्ति प्राप्त नहीं है बल्कि राजनैतिक क्षेत्र में भारत के स्वतंत्र होने के उपरांत पिछले दो वर्षों में तथा महात्मा गांधी के निर्देशन में कई वर्षों तक उन्होंने जिस राजनीतिज्ञता का परिचय दिया है उसके कारण भी वे इस नेतृत्व के लिये समर्थ हैं। श्रीमान्, आलोचकों ने मुख्यत: यही प्रश्न पूछा है कि राष्ट्रमण्डल में रहने से भारत को क्या लाभ होगा? श्रीमान्, ब्रिटेन की तुलना में इस देश की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति का पंडित कुंजरू, श्री मुन्शी तथा अन्य लोगों ने बड़ी योग्यता से विवेचन किया है। हम यह भूल नहीं सकते कि भारत में ब्रिटेन का शासन होने के कारण हमने उसी प्रकार की विचारधारा अपना ली है जो ब्रिटेन तथा राष्ट्रमण्डल के देशों को प्रिय है। ब्रिटेन तथा ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों की इस कारण प्रशंसा की जा सकती है कि भारत में 150 वर्ष तक शासन करने पर भी यहां से चले जाने के बाद वे इस देश की सद्भावना तथा मित्रता प्राप्त कर सके हैं। परन्तु मेरे विचार से यह भारत की तथा उसके प्रधानमंत्री की इस कारण और भी अधिक प्रशंसा की जा सकती है कि उन्होंने भारत में ब्रिटेन के प्रति फैले हुये सन्देह और अविश्वास को मिटा दिया और भारत की

[बेगम ऐजाज रसूल]

मैत्री प्राप्त करने के लिये जो लोग आगे बढ़े थे उन्हें गले लगा लिया ताकि भारत शान्ति और संपन्नता के मार्ग पर अग्रसर हो सके। श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रस्ताव का विरोध तथा इसकी आलोचना मुख्यत: अविश्वास के कारण की जा रही है और केवल अविश्वास के कारण ही नहीं बल्कि भय के कारण भी की जा रही है। मेरे विचार से हमें इस भय को त्याग देना चाहिये और यह समझना चाहिये कि अब स्थिति वह नहीं रह गई है जो पहले थी। अब भारत एक स्वतंत्र देश है और अपने भाग्य का विधायक है। हम लोगों को, जिनका भारत की महानता पर विश्वास है, यह समझना चाहिये कि जब तक हम सन्देह और अविश्वास जैसी छोटी बातों को नहीं छोड़ेंगे और मैत्री करने के लिये जो लोग आगे बढ़ते हैं उन्हें अपनाते नहीं हैं तब तक हम उन्नति नहीं कर सकते हैं। श्रीमान्, मैं कह चुकी हूं कि भारत में इस समय कई बातें ऐसी हैं जिनका ब्रिटेन की विचारधारा से साम्य है। मेरे विचार से हमें इसे स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिये कि भारत में इस समय जो जनतंत्रात्मक प्रणाली प्रचलित है उसका आधार ब्रिटेन की ही प्रणाली है। हम यह जानते ही हैं कि जनतंत्रात्मक राष्ट्रों में भारत सबसे अल्पवयस्क राष्ट्र है। जिस प्रकार ब्रिटेन ने अपनी जनतंत्रात्मक संस्थाओं का निर्माण किया है और पिछली कुछ शताब्दियों से उन्हें चलाते आये हैं उसे हम पसन्द करते हैं और यदि हम ब्रिटेन के जनतंत्र के मार्ग पर चलते हैं तो हमें इसका विश्वास रहता है कि हम ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। आज भारत में हमारी संस्थायें, हमारा संसदात्मक जीवन, हमारा स्वायत्त-शासन, हमारा शासनतंत्र आदि बहुत कुछ ब्रिटिश प्रणाली पर ही आधृत हैं। ब्रिटिश प्रणाली के अनुसार ही हमारी सेना तथा सुरक्षा संगठनों का निर्माण हुआ है। इसलिये राष्ट्रमण्डल में रहने से हमें अवश्य ही लाभ होगा।

यह कहा गया है कि ब्रिटेन एक गरीब देश है और वह हमें आर्थिक सहायता न दे सकेगा। हमें ब्रिटेन की आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। हम अपने उद्योग-धन्धों तथा अपने साधनों के विकास द्वारा भारत को अवश्य ही समृद्धिशाली बना सकते हैं। हमें किसी भी देश की आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हमें अन्य प्रकार की सहायता, पथप्रदर्शन, परामर्श तथा कला-सम्बन्धी परामर्श की अवश्य ही आवश्यकता है क्योंकि हम अपनी इच्छा के अनुसार भारत का विकास करना चाहते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस समय ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के देश विश्व-शान्ति के लिये सबसे अधिक प्रयत्नशील हैं। भारत सदा से शान्ति स्थापना का समर्थक रहा है और वह अवश्य ही उन देशों के साथ सहयोग करेगा जो विश्व में शान्ति स्थापित करना

चाहते हैं, जो युद्ध न करके सम्पन्न होना चाहते हैं और संसार के अन्य देशों को सम्पन्न होने देना चाहते हैं। इसलिये यह समयोचित ही है कि भारत राष्ट्रमण्डल में रहे। मैं इसमें कुछ भी हानि नहीं देखती हूं। मेरे विचार से भारत के ऐसे देशों के साथ रहने से, जो शान्ति-स्थापना के लिये प्रयत्नशील हैं, उसे लाभ ही होगा।

हम इसे भी नहीं भूल सकते हैं कि भारतीय विचारधारा साम्यवाद के विपरीत है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम भारत में साम्यवाद का आगमन नहीं चाहते हैं और हम यह जानते हैं कि ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के देश साम्यवाद का विरोध कर रहे हैं। इसलिये हमारा तथा इन देशों का समान उद्देश्य है। यह बार-बार कहा गया है कि यदि कोई ऐसा अवसर आये जब भारत यह समझे कि राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ रहने से उसे हानि उठानी पड़ेगी तो उसे त्याग देने में उसके लिये कोई बाधा न होगी। इसलिये मेरी यह धारणा है कि राष्ट्रमण्डल में रहने से भारत को हर प्रकार लाभ होगा और साथ ही वह अपनी प्रतिष्ठा को भी बनाये रख सकेगा।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं माननीय प्रधानमंत्री के प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करती हूं।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया है उसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं मैंने यह देखा कि इस सभा में इसका विरोध केवल सन्देह के कारण किया गया है। यह तर्क उपस्थित किया गया है घोषणा में जो कुछ दिखाई देता है उससे कहीं अधिक उसमें छिपा हुआ है। किन्तु माननीय प्रधानमंत्री स्पष्ट शब्दों में यह कह चुके हैं कि वे किसी ऐसी बात के लिये सहमत नहीं हुये हैं जिसका उल्लेख घोषणा में नहीं है। वास्तव में यह आसानी से समझ में आ सकता है कि जो कुछ घोषित किया गया है उसके अतिरिक्त अन्य कोई बात छिपाकर नहीं रखी गई है।

यह कहा गया है कि इस प्रकार का समझौता करने से भारत को हानि उठानी पड़ेगी। किन्तु मेरा यह कहना है कि राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने से किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पड़ेगा। इसके विपरीत इस कदम से भारत को कई प्रकार से वास्तविक लाभ होगा। यही कारण है कि इस देश के लोगों ने इस समझौते का स्वागत किया है।

श्रीमान्, जैसा कि मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता कह चुके हैं, भारत की आर्थिक तथा रक्षा-सम्बन्धी व्यवस्था तथा अन्य प्रकार की व्यवस्था इंग्लैंड की आर्थिक तथा वाणिज्य सम्बन्धी व्यवस्था पर आधृत है। इंग्लैंड के साथ इतने वर्षों से सम्बन्ध रहने के कारण हमारी विचारधारा, हमारी कार्यप्रणाली तथा हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों के समान ही है। हमें इंग्लैंड से एक बहुत बड़ी धनराशि वसूल करनी है। इन सब बातों

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

के कारण हमें राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ, जो पहले ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के राष्ट्र कहे जाते थे, सम्बन्ध बनाये रखना है। प्रोफेसर शाह ने कहा है कि माननीय प्रधानमंत्री ने इस सभा के सम्मुख एक ऐसे कार्य का प्रस्ताव रखा है जिसे वे सम्पन्न कर चुके हैं और इस सभा से अब एक ऐसे कार्य का अनुसमर्थन करने के लिये कहा जा रहा है जिसे करने का उन्हें अधिकार प्राप्त नहीं था। मेरी समझ में नहीं आता कि यह किस प्रकार तर्कसंगत है। इस सभा ने स्पष्ट शब्दों में इंग्लैंड जाने और प्रधानमंत्रियों के प्रस्तावित सम्मेलन में भाग लेने का अधिकार दिया था। मैं यह कह सकता हूं कि अधिकांश लोग इस समझौते के पक्ष में हैं और बहुत कम लोगों की यह धारणा होगी कि इस देश ने अपने लिये जो स्थिति स्वीकार की है उसे ध्यान में रखते हुये प्रधानमंत्री ने जो कार्य किया है उसके सम्पन्न होने की कोई भी सम्भावना थी। राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों की सम्राट सम्बन्धी विचारधारा से, जो सम्राट को राज्य का प्रमुख मानते हैं, स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणराज्य का समन्वय किया गया है। माननीय प्रधानमंत्री ने एक बहुत कुछ असम्भव कार्य को सम्पन्न करके दिखाया है और मैं इस समझौते की घोषणा तथा प्रधानमंत्री के प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करता हूं।

***मि. फ्रेंक एन्थानी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह जानता हूं कि इस सभा के कुछ सदस्य भले ही कुछ न कहें परन्तु यह समझेंगे अवश्य कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरी पूर्वनिश्चित धारणा है और मैं अवश्य ही इसके पक्ष में हूं। श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि एंग्लो-इण्डियन होने के नाते मैं सौभाग्य से इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में ठीक-ठीक बातें कह सकता हूं। मुझे इसका विश्वास है कि मैं अपने भारतीय देशवासियों का दृष्टिकोण समझ सकता हूं और साथ ही बहुत से अंग्रेजों का भी दृष्टिकोण समझ सकता हूं।

श्रीमान्, अपने अन्य तर्कों को उपस्थित करने से पूर्व मैं प्रोफेसर शाह की एक बात का उत्तर देना चाहता हूं जिसका कुछ अंश में श्री अल्लादी उत्तर दे चुके हैं। उनकी बातों से मैं समझ सका, भले ही उन्होंने इस धारणा के विरुद्ध कई बातें कहीं, कि उनमें कटुता ही न थी बल्कि पुराना विष भी था। प्रोफेसर शाह ने 'अनुसमर्थन' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की। उनका यह विचार है कि यह शब्द एक निन्दनीय कार्य का घोतक है और यह कि वे सभा के सम्मुख एक ऐसे कार्य को रखना चाहते हैं और उसे मानने के लिये हमें विवश करना चाहते हैं जिसे वे सम्पन्न कर चुके हैं। श्रीमान्, वकील होने के नाते मैं यह कह सकता हूं कि यह तर्क निर्बल ही नहीं बल्कि असंगत भी है। प्रधानमंत्री अपने प्रभुओं अर्थात् भारत के लोगों की ओर से इंग्लैंड गये थे, वे उनके दूत, उनके सर्वश्रेष्ठ दूत के रूप में वहां गये थे और कानून की दृष्टि से यह एक स्वयंसिद्ध बात

है कि जब कोई व्यक्ति अपने प्रभुओं का विश्वास भाजन और दायित्व भाजन दूत बन के जाता है और वे यह समझते हैं कि उसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं किया है और हर प्रकार उनके हितसाधन की चेष्टा की है तो उनकी ओर से उसने जो कोई भी वचन दिया हो उसका अनुसमर्थन करने के लिये वे बाध्य हैं। क्या इस सभा में किसी को यह कहने का साहस है कि उन्होंने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया है? क्या कोई यह कह सकता है कि वर्तमान परिस्थिति में वे भारत के सर्वोच्च हितों की रक्षा के लिये प्रेरित नहीं हुये?

श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि इस प्रकार के प्रस्ताव का विरोध कई प्रकार की पूर्वनिश्चित धारणाओं के आधार पर अथवा कुछ उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। मेरे विचार से सम्भवत: दासत्व की भावना से प्रेरित होकर ही इसका विरोध किया गया है और वह भावना छिपाने पर भी नहीं छिपाई जा सकी है। यह मुझ में आता है कि एक ऐसे देश के जनसाधारण, जो पीढ़ियों से और सम्भवत: सैंकड़ों वर्षों से राजनैतिक दासत्व की बेड़ियों में जकड़ा रहा है, दो सौ वर्षों के राजनैतिक दासत्व के प्रभाव से यकायक मुक्त नहीं हो सकते। मेरे विचार से यह विरोध बहुत कुछ प्रत्यक्षत: आत्मलाघव की भावना से प्रेरित होकर किया जा रहा है यद्यपि इसे स्वीकार नहीं किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले कई लोग ऐसे हैं जिन्हें यूरोपीय राष्ट्रों से किसी प्रकार का भी सम्पर्क स्थापित करने में आत्मलाघव का ही अनुभव होता है। उनकी यह धारणा है कि किसी भी यूरोपीय राष्ट्र से सम्पर्क रखने से अवश्य ही यूरोपीय लोगों का प्रभुत्व स्थापित हो जायेगा और एशिया के लोगों को दासत्व स्वीकार करना होगा। मैं फिर यह कहता हूं और मुझे आशा है कि इससे कोई क्षुब्ध न होगा, कि यह सब कुछ उन लोगों के राजनैतिक दासत्व का ही परिणाम है जो नारे लगाकर, सिद्धान्त बघारकर और प्रचार करके अपने राजनैतिक बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास करते रहे हैं। उन्हें वास्तविकता से विमुख होकर नारों और सिद्धान्तों का सहारा लेना पड़ा है। वे अपने को जानबूझकर भ्रम में डाले हुये हैं। हम निस्संकोच होकर यह कहते हैं कि एशिया का नेतृत्व भारत को प्राप्त है। हम यह भी निस्संकोच होकर कहते हैं कि यह एक असंगत बात है कि भारत एशिया का नेता भी बना रहे और राष्ट्रमण्डल से राजनैतिक सम्बन्ध भी रखे। मेरा यह अटल विश्वास है कि भारत की परम्परा ऐसी रही है कि उसे एशिया का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ेगा और एशिया के राष्ट्र उसे अपना सहज नेता मानेंगे। किन्तु इस परम्परा को प्राप्त करने के लिये हमें प्रयत्न करना है। हम अपने को भ्रम में डालकर तथा वास्तविकता से विमुख होकर और केवल सिद्धान्तों और नारों का सहारा लेकर उसे प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रोफेसर शाह ने अपनी वाक्पटुता का परिचय देते हुये एक प्रश्न पूछा था और वह यह था कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से आखिर क्या लाभ होगा और अपने संतोष

[मि. फ्रेंक एन्थानी]

के लिये उन्होंने अपने प्रश्न का बड़ी वीरता से स्वयं उत्तर दे दिया था। उन्होंने यह पूछा था कि यदि हमें किसी प्रकार का लाभ नहीं होने वाला है और न नुकसान ही होने वाला है तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने अथवा इसका अनुसमर्थन करने का क्या अर्थ है? यह हद दर्जे का राजनैतिक अन्धापन है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले हमारे कुछ लोग इसी प्रकार के दृष्टिकोण का परिचय देते रहते हैं।

किन्तु वास्तविकता क्या है इसकी ओर किसी ने संकेत नहीं किया है और न किसी ने यही बताया है कि राष्ट्रमण्डल से अलग होने का क्या अर्थ होता। मैं यह नहीं जानता कि हम में से कितने लोग इसे समझते हैं किन्तु इसका एक अर्थ अवश्य होता। हमारे प्रधानमंत्री इसे समझने में समर्थ हैं और इसे समझते हैं। हमें इसे समझना चाहिये कि ब्रिटेन में हमेशा कुछ लोग ऐसे रहे हैं जिन्हें ब्रिटिश शासकों द्वारा पोषित प्रतिक्रियावादी तथा अनुदार समाचार-पत्रों का समर्थन प्राप्त रहा है और जिनका अधिकांश जीवन इस देश में कांग्रेस से संघर्ष करने में बीता है और जिन्होंने हमेशा कांग्रेस को हिन्दुओं की संस्था माना और इसी कारण हिन्दुओं से तथा कांग्रेस से द्वेष करते रहे। ऐसे अंग्रेज हमेशा हिन्दु-विरोधी और कांग्रेस-विरोधी रहे हैं। यदि भारत राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाता तो ये लोग आगे बढ़कर इस बहाने अपने देश में भारत-विरोधी भावनाओं को फैलाते। सौभाग्य से हमारे बीच प्रधानमंत्री जैसे सुयोग्य व्यक्ति हैं। उन्होंने इन प्रतिक्रियावादी और भारत-विरोधी लोगों पर प्रहार ही नहीं किया है किन्तु इंग्लैंड में इस देश के जो नये मित्र उत्पन्न हो रहे हैं उन्हें भी शक्ति प्रदान की है। मुझे इसका विश्वास है कि राष्ट्रमण्डल से अलग होने पर पहले तो ब्रिटेन और भारत के सम्बन्ध शिथिल हो जाते और अन्ततोगत्वा इस प्रकार सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता कि फिर सम्बन्ध जुड़ ही नहीं सकता। मेरे वे मित्र जो नारे लगाते रहते हैं और सिद्धान्त बघारते रहते हैं अपना हृदय टटोल कर इसका उत्तर दें कि क्या भारत इस समय इस स्थिति में है कि वह संसार के कुछ शक्तिशाली देशों से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले? मैं यह भी कहूंगा कि राष्ट्रमण्डल से अलग होने से केवल ब्रिटेन से ही सम्बन्ध शिथिल होकर अन्त में सम्बन्ध-विच्छेद न होता बल्कि अमेरिका से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता। हमें इस बारे में किसी प्रकार का भ्रम न होना चाहिये। मैं अन्धे देश-प्रेम अथवा चाणक्यनीति का समर्थन नहीं कर रहा हूं। मेरे विचार से मैकाले ही ने यह कहा था कि ब्रिटिश कूटनीति एक ओर नैतिक सिद्धान्तों और दूसरी ओर समयोचित व्यवस्था पर आधृत है। मेरे विचार से वे लोग जो भारत का निर्माण करने जा रहे हैं समयोचित व्यवस्था की उपेक्षा नहीं कर सकते। मैं अवसरवाद की नहीं बल्कि यथार्थवाद की चर्चा कर रहा हूं। इसे सभी मानते हैं कि हमारी सभी योजनाओं का तथा आशाओं का फलीभूत

होना तथा भारत की आर्थिक तथा औद्योगिक व्यवस्था और सैनिक व्यवस्था भी बहुत कुछ ब्रिटेन और अमेरिका से हमारे मैत्री के सम्बन्ध बनाये रखने पर निर्भर है।

मैं उन लोगों में से हूं जिनकी यह धारणा है कि भारत अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है और न व्यतीत करने का साहस ही कर सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले हमारे कुछ लोग भले ही एकाकी जीवन और तटस्थता की चर्चा करें किन्तु इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है और न अन्तर्राष्ट्रीय जगत में इसका कोई स्थान है। पूर्ण तटस्थता न केवल एक काल्पनिक बात है बल्कि वर्तमान काल में वह एक अवास्तविक और अलब्ध्य आदर्श सिद्ध हो चुका है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एकाकी जीवन व्यतीत करने से भारत को पता लगता, जैसा कि बर्मा को पता लग चुका है कि केवल सैद्धान्तिक स्वाधीनता निरर्थक एकाकी जीवन ही है। वास्तविकता से विमुख होकर केवल सैद्धान्तिक स्वाधीनता के पोषण से परिश्रम, अभाव, नैराश्य तथा एकाकीपन के युग का ही प्रादुर्भाव होगा।

मैं इस सभा के सामने एक बात और रखना चाहता हूं। जो लोग इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं उनका पाकिस्तान के प्रति कैसा रूख है? पाकिस्तान से अभी तक हमारे सम्बन्ध उतने मैत्रीपूर्ण नहीं हो सके हैं जितने कि हम में से बहुत से लोग चाहते हैं। राष्ट्रमण्डल की संसदों के प्रतिनिधियों का जो सम्मेलन हुआ था उसमें भारत का एक प्रतिनिधि मैं भी था और मुझे विश्वास है कि मेरे सहकारी मेरी इस बात का समर्थन करेंगे कि पाकिस्तान के कई प्रतिनिधियों ने निश्चित रूप से इस प्रकार की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया कि भारत में कांग्रेस का प्रभुत्व है और वह ब्रिटेन विरोधी है और यह कि भारत नहीं चाहता कि वह राष्ट्रमण्डल में रहे। वे इस प्रकार की भावना इसलिये उत्पन्न करना चाहते थे कि अंग्रेज उनकी ओर हो जायें और भारत का विरोध करने लगे। मेरे विचार से यदि हम राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाते तो हमारे इस कार्य से पाकिस्तान के वे लोग अवश्य ही प्रसन्न होते जो भारत के प्रति किसी प्रकार का भी मैत्री भाव नहीं रखते हैं और मुझे विश्वास है कि आज भारत से ब्रिटेन जिस प्रकार का मैत्रीपूर्ण व्यवहार कर रहा है और जिन साधनों को उसे प्रदान कर रहा है उनका पाकिस्तान ही उत्तरोत्तर उपभोग करता। मेरे विचार से मेरे कई मित्रों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है।

राष्ट्रमण्डल का एक सदस्य जिस जातीयता तथा जातीय अत्याचार का परिचय दे रहा है उससे मैं तथा कोई भी भारतीय जिसे अपने आत्मसम्मान का ध्यान है, क्षुब्ध तथा क्रुद्ध होगा। परन्तु यदि किसी राष्ट्र से सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व हम उससे यह मनवाना चाहें कि वह अपने व्यवहार में कुछ सर्वोत्कृष्ट नैतिक सिद्धान्तों का अनुसरण करेगा तो सम्भवत: हम संसार के किसी राष्ट्र से भी सम्बन्ध स्थापित न कर सकेंगे। क्या हमें केवल

[मि. फ्रेंक एन्थानी]

इसी कारण कि राष्ट्रमण्डल के एक या दो राष्ट्र दुष्ट हैं, नैराश्य और आत्मलाघव की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रमण्डल से अलग होकर उन सब लाभों को त्याग देना चाहिये जो हमें राष्ट्रमण्डल के जनतंत्रप्रेमी सदस्यों से प्राप्त हो सकते हैं और प्राप्त हो रहे हैं।

जब मैं यह कहता हूं कि मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्रमण्डल में रहने से हम दक्षिण अफ्रीका से अपने सम्बन्धों को नहीं सुधार सकते हैं तो सम्भवत: मेरी इस बात से कुछ लोगों को ठेस पहुंचे किन्तु मेरा यह विश्वास है कि हमारे राष्ट्रमण्डल में रहने से अमेरिका और इंग्लैंड के साधन भारत को उपलब्ध होंगे और उनका प्रभाव तथा उनकी बहुत सी अप्रत्यक्ष बातें भारत के पक्ष में होंगी और हमारी स्थिति बिगड़ेगी नहीं। हो सकता है कि मैं गलती कर रहा हूं किन्तु मेरा यह विश्वास है कि जिस सीमा तक हम शक्तिशाली होंगे उसी सीमा तक दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न भी हल होता जायेगा। इसीलिये मैं यह कहता हूं कि हमारी नीति का आधार विस्तृत होना चाहिये और भारत को तुरन्त ही शक्तिसंचय का प्रयास करना चाहिये। सम्भव है इसमें पांच वर्ष लगे अथवा दस वर्ष—किन्तु कोई भी यथार्थवादी और समझदार व्यक्ति यह समझ सकता है कि आजकल के संसार में किसी देश की शक्ति उसकी सैनिक शक्ति से ही समझी जाती है। इसीलिये मेरी यह धारणा है कि जब हम उसी प्रकार सैनिक प्रदर्शन करने में समर्थ होंगे जैसे जापान ने डर्बन में किया था तभी हम दक्षिण अफ्रीका और भारत की गुत्थी को भी सुलझा सकेंगे। परन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं केवल इस कारण राष्ट्रमण्डल से अलग रहना उचित न होगा कि उसमें एक या दो दुष्ट सदस्य हैं।

अन्त में श्रीमान्, मैं केवल एक बात कहकर समाप्त करना चाहता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह भारत के लिये एक सौभाग्य की बात है कि इस समय हमारे बीच ऐसे उच्च कोटि के लोग हैं जो हाल की राजनैतिक घटनाओं से उत्पन्न कटुता से ऊपर उठ सकते हैं, भले ही प्रोफेसर शाह में यह सामर्थ्य न हो और जो राजनैतिक संघर्ष के तूफान के शान्त न होते हुये भी यह स्पष्टतया देख ही नहीं सकते हैं बल्कि स्पष्टतया इसका निर्णय भी कर सकते हैं कि भारत का हितसाधान सर्वोत्तम रूप से किस प्रकार हो सकता है। क्या इस सभा के सम्मुख कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि हमारे प्रधानमंत्री से अधिक किसी अन्य व्यक्ति ने नि:स्वार्थ भाव से लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है? यदि हम इस प्रश्न का उत्तर देते हैं और सच पूछिये तो हमें देना ही होगा, तो अपनी जानकारी के आधार पर उन्होंने जो भी निर्णय किया है उससे भारत का हितसाधन ही होगा। मुझे इसका भी विश्वास है उनको हममें से किसी से भी अधिक जानकारी है। इसलिये इस सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव रखा गया है उसका प्रत्येक भारतीय को हृदय से समर्थन करना ही चाहिये।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि अब इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

मेरे विचार से अधिकांश सदस्य बहस समाप्त करने के पक्ष में हैं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कल से इस प्रस्ताव पर बहुत वादानुवाद हो चुका है और कई माननीय सदस्य इस प्रस्ताव के पक्ष में बोल चुके हैं। वास्तव में मैं तो यह कहूंगा कि उनमें से कई सदस्य इसके समर्थन में इतना आगे बढ़ गये जितना कि मैं भी नहीं बढ़ता। उन्होंने कुछ सम्भाव्य परिणामों को तथा कुछ सन्निहित अर्थ को बताया जिसे अपनी ओर से मैं न तो स्वीकार ही करता और न पसन्द ही करता। किन्तु हम सबको तथा हममें से प्रत्येक व्यक्ति को भविष्य की कल्पना अपने ढंग से करने की स्वतंत्रता है।

जहां तक मेरे इस प्रस्ताव और लन्दन की घोषणा का सम्बन्ध है, हमें केवल इन बातों को देखना है। पहले तो हमें यह देखना है कि उससे हमारे वचनों की पूर्ति होती है या नहीं अथवा कम से कम उनमें से किसी का खण्डन तो नहीं होता है अर्थात् हमें यह देखना है कि इससे भारत उन्नति के मार्ग में अग्रसर होता है या नहीं अथवा इससे भारत के अपने सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणराज्य के लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा तो नहीं पड़ती। दूसरी बात हमको यह देखनी है कि आगामी कुछ वर्षों में इससे भारत को कुछ सहायता प्राप्त होगी या नहीं अथवा यह विभिन्न क्षेत्रों में भारत की गतिशील उन्नति के मार्ग में बाधक तो नहीं सिद्ध होगा। एक प्रकार से हमने राजनैतिक प्रश्न को हल कर लिया है परन्तु राजनैतिक प्रश्न का देश की आर्थिक स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे सम्मुख कई आर्थिक कठिनाइयां उपस्थित हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये हमारे घरेलू प्रश्न हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि हम जिस नीति को भी अपनायें उसके मार्ग को संसार के अन्य देश प्रशस्त कर सकते हैं अथवा उसमें बाधा डाल सकते हैं। हमें यह देखना है कि इस प्रस्ताव से, जो घोषणा में सन्निहित है, हमारी आर्थिक अथवा अन्य प्रकार की उन्नति गतिशील हो सकती है अथवा नहीं? यह दूसरी कसौटी है। मैं इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि बिना बाहर से मदद मांगे हुये भी हम आगे बढ़ सकते हैं। परन्तु इस प्रकार हमारी समस्या अधिक जटिल हो जायेगी और उसे हल करने में अधिक समय लगेगा। इस प्रकार उसे हल करना कोई आसान काम नहीं है।

तीसरी कसौटी यह है कि आजकल के संसार में क्या इससे शान्ति को चिरस्थायी बनाने और युद्ध से पीछा छुड़ाने में सहायता मिलती है या नहीं। कुछ लोग किसी समूह

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

विशेष को अथवा किसी गुट विशेष को प्रोत्साहित करने की चर्चा करते हैं। हम सब अपने को तथा अपने मित्रों को देवता समझने और अन्य लोगों को दानव समझने के आदी हैं। हम सब यह समझते हैं कि हम तो उन्नति के मार्ग में ले जाने वाली शक्तियों के तथा जनतंत्र के पक्ष में हैं और अन्य लोग उनके पक्ष में नहीं हैं। मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि भारत पर तथा भारतीयों पर गर्व करते हुये भी मैं निस्संकोच यह नहीं कह सकता हूं कि हम उन्नति अथवा जनतंत्र के मार्ग में सबसे आगे हैं।

पिछले दो तीन वर्षों का समय हमारे लिये बहुत कठिन समय था और उस बीच हमने बहुत मानहानि सही। हम इस काल में भी लड़खड़ाये नहीं। यह बात हमारे पक्ष में है कि हम इन कठिनाइयों के होते हुये भी जीवित रह सके। परन्तु मुझे आशा है कि उनसे हमने शिक्षा ग्रहण की है। अपनी ओर से मैं अब किसी व्यक्ति की अथवा किसी राष्ट्र की निन्दा करने में सावधान रहता हूं क्योंकि इन बातों के सम्बन्ध में कोई भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र अकलंक नहीं है। इसके अतिरिक्त स्वयं उसी मार्ग पर चलते हुये भी अन्य राष्ट्रों को दोषी ठहराने अथवा युद्ध प्रेमी घोषित करने की मनोवृत्ति अधिकाधिक देखी जाती है।

संसार में चारों ओर देखने पर कुछ नीतियां अच्छी जान पड़ती हैं और कुछ बातें बुरी दिखाई देती हैं और यह विचार उठता है कि कुछ बातें खतरनाक हैं और उनके कारण युद्ध हो सकता है किन्तु अन्य बातें ऐसी नहीं हैं। किन्तु मुझे जो सबसे आश्चर्यजनक बात दिखाई देती है उसे आपके सामने रखता हूं। यदि आप पिछले तीस या इससे कुछ अधिक वर्षों के समय को स्मरण करें, जिसके बीच दो युद्ध घटित हो चुके हैं और इन युद्धों के बीच के समय को भी स्मरण करें तो आपके ध्यान में आयेगा कि स्थिति के अनुसार केवल थोड़ी सी हेर-फेर के साथ एक ही प्रकार के नारे लगाये जाते रहे हैं और एक ही प्रकार के दृष्टिकोण से प्रश्नों को हल करने का प्रयास किया गया है और एक ही प्रकार के भय और सन्देह से लोग त्रस्त रहे हैं तथा एक ही प्रकार सभी ओर के दल शस्त्र सज्जित होते रहे हैं तथा युद्ध सन्निकट आता रहा है। 'यह अब अन्तिम युद्ध है' की चर्चा, जनतंत्र के लिये संघर्ष तथा अन्य सभी बातें उसी प्रकार होती रही हैं। युद्ध समाप्त होता है परन्तु वही संघर्ष और वही युद्ध की तैयारी फिर आरम्भ हो जाती है। फिर दूसरा युद्ध छिड़ जाता है। यह एक बहुत ही असाधारण बात है क्योंकि मुझे इसका विश्वास है कि संसार में कुछ व्यक्तियों अथवा समुदायों को छोड़कर जो युद्धकाल में नफा उठाते हैं, शायद ही कोई ऐसा हो जो युद्ध चाहता हो। कोई भी व्यक्ति और कोई भी देश युद्ध नहीं चाहता है। युद्ध के उत्तरोत्तर भीषण होने पर वे उससे और भी दूर भागना चाहते हैं। किन्तु गतकाल के किसी पाप अथवा कर्म अथवा भाग्यवश वे एक ही

दिशा में एक ही गर्त्त की ओर बढ़ते रहते हैं तथा बुद्धिशून्य जन्तुओं के समान एक ही प्रकार के तर्क तथा एक ही प्रकार के संकेत करते रहते हैं।

क्या हम प्रारब्धवशात् यही सब करने के लिये बाध्य हैं? मैं कह नहीं सकता किन्तु मैं युद्ध की चर्चा और युद्ध की तैयारी की जो मनोवृत्ति बढ़ रही है उसके निराकरण के लिये संघर्ष करना चाहता हूं। यह स्पष्ट है कि कोई भी सरकार और कोई भी देश ऐसी स्थिति में पड़ने का साहस नहीं कर सकता कि संकटकाल तो उपस्थित हो जाये किन्तु वह उसके लिये बिल्कुल भी तैयार न हो। जब तक कि हम इतने वीर न हों कि हम महात्मा गांधी की नीति का अनुसरण कर सकें दुर्भाग्यवश हमें भी तैयारी करनी है। यदि हममें पर्याप्त वीरत्व है तो सब कुछ ठीक हो जाता है और हमें इसकी आवश्यकता नहीं हर जाती। मेरा यह विश्वास है कि यदि हममें पर्याप्त वीरत्व हो तो वही नीति ठीक नीति सिद्ध होगी। परन्तु प्रश्न यह नहीं है कि मैं वीर हो जाऊं अथवा आप वीर हो जायें। प्रश्न यह है कि देश में इतना वीरत्व आ जाये कि वह उस नीति को समझ सके और उसका अनुसरण कर सके। मेरे विचार से अभी हमारी बुद्धि और हमारा व्यवहार उस कोटि का नहीं हुआ है। वास्तव में जब हम उस उच्चतम कोटि की चर्चा करने लगते हैं तो हमें स्मरण हो आता है कि पिछले डेढ़ वर्ष में हमारे देश में लोक-व्यवहार निम्नतर स्तर को पहुंच गया था। इसलिये इस देश में हमको व्यर्थ ही महात्माजी के नाम की दुहाई न देनी चाहिये। कम से कम हम तो ऐसा नहीं कर सकते और कोई भी सरकार यह नहीं कर सकती कि वह कहे तो यह कि वह शान्ति स्थापना के पक्ष में है। किन्तु कार्यरूप में कुछ भी न करे। हमें सावधानी से कदम उठाना है और साथ ही अपनी पूरी योग्यता से तैयारी करनी है। यदि कोई अन्य सरकार भी ऐसा करती है तो हम उसको दोष नहीं दे सकते क्योंकि इतना सावधान तो हर एक ही को होना है। किन्तु मुझे तो यह दिखाई देता है कि कुछ सरकारें अथवा बहुत सी सरकारें इससे बहुत आगे बढ़ रही हैं वे हर समय युद्ध की ही चर्चा करती हैं, वे हर समय अपने विपक्षी को ही दोष देती रहती हैं। वे यह सिद्ध करने का प्रयास करती हैं कि विपक्ष पूर्णतया दोषी है, युद्ध प्रेमी है, इत्यादि। वास्तव में वे ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देती हैं जिसमें अवश्य ही युद्ध होता है। शान्ति की चर्चा करते हुये अथवा शान्ति के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित करते हुये वे ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देती हैं जिसमें गतकाल में युद्ध ही हुये हैं। आर्थिक अथवा अन्य प्रकार के संघर्षों के कारण ही अन्त में युद्ध होता है। किन्तु मेरे विचार से अब आर्थिक अथवा राजनैतिक संघर्ष के कारण युद्ध छिड़ने नहीं जा रहा है। यदि युद्ध छिड़ने जा रहा है तो वह भय की विभीषिका के कारण, ऐसे भय की विभीषिका के कारण कि विपक्षी अवश्य ही विजयी होगा और वह धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा रहा है और समय पाकर इतना शक्तिशाली हो जायेगा कि उसे पराजित करना असम्भव हो जायेगा। इसलिये प्रत्येक

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

पक्ष शस्त्रसज्जित होता जा रहा है और ऐसे शस्त्रों से सज्जित हो रहा है जो सबसे अधिक घातक हैं। मुझे खेद है कि कुछ विषयान्तर हो गया है।

वर्तमान काल की इस विभीषिका का हम किस प्रकार सामना करें? कुछ लोग कहते हैं अमुक समुदाय शान्ति प्रेमी है उसके साथ हो लीजिये और कुछ लोग कहते हैं कि अमुक समुदाय के साथ हो लीजिये क्योंकि उनके विचारानुसार यह भी एक दूसरी प्रकार की शान्ति और उन्नति का पोषक है। किन्तु मुझे इसका विश्वास है कि इस प्रकार किसी समुदाय का साथ देने से शान्ति का पोषण नहीं हो सकता। वास्तव में इससे भयास्पद वातावरण की ही अभिवृद्धि होती है। फिर मुझे क्या करना चाहिये? अकर्मण्य होकर वैराग्य धारण करने की नीति में मेरा विश्वास नहीं है। आप विरक्त नहीं हो सकते। प्रत्येक समस्या को उसका सामना करके तथा उससे संघर्ष करके ही उसे हल किया जा सकता है। इसलिये जो लोग यह सोचते हैं कि हमारी नीति अकर्मण्य होकर खण्डन करने की नीति है अथवा कर्मशून्य नीति है, वे भ्रम में हैं। इस सम्बन्ध में मेरी कभी भी इस प्रकार की कल्पना नहीं रही। मेरे विचार से हमारी नीति सक्रिय नीति है, एक निश्चित नीति है और लोगों के मस्तिष्क से युद्ध के विचार को निकाल देने की नीति है और यही वह होनी भी चाहिये।

मैं यह जानता हूं कि संसार की इस बृहत् समस्या को हल करने की भारत को क्षमता प्राप्त नहीं है। उसका रूप बदलने में वह बहुत ही कमजोर सिद्ध हो सकता है। यह बात हो सकती है। परन्तु मेरा यह दावा नहीं है कि हमारे प्रयत्नों से हमें अवश्य ही इच्छित फल की प्राप्ति हो जायेगी। किन्तु फिर भी मेरा यह कहना है कि इस सम्बन्ध में भारत को एक सक्रिय तथा निश्चित नीति अपनानी चाहिये और अन्य देशों को भी रणोन्मुख नहीं होने देना चाहिये। इस भयास्पद तथा सन्देहास्पद वातावरण का निराकरण करना चाहिये। हमें इस देश की अथवा उस देश की अत्यधिक प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, भले ही वह विश्व में न्यायसंगत व्यवस्था स्थापित करने का दावा करता हो किन्तु विभिन्न देशों में जो अच्छी बातें हों और जो सबको मान्य हों उन पर जोर देना चाहिये। इस प्रकार इन देशों की जो सबसे अच्छी बातें हैं उन्हें हम ग्रहण ही नहीं करेंगे बल्कि जहां तक हो सकेगा इन देशों की आपस की तनातनी को भी कम करेंगे और शान्ति स्थापना में अग्रसर हो सकेंगे। हमें सफलता प्राप्त हो या न हो यह दूसरी बात है। अब हमारे हाथ में यह तो है ही कि हम जिन बातों को ठीक समझते हैं उनकी प्राप्ति के लिये पूरी शक्ति लगाकर काम करें। हम यह इसलिये नहीं करेंगे कि हम डरे हुये हैं और भयग्रस्त हैं। हमने कई भयानक बातों का सामना किया है और मेरे विचार से अब भारत में अथवा संसार में कोई ऐसी बात होने को नहीं रह गई है जिससे हमारे हृदय में भय उत्पन्न हो सके।

किन्तु हम यह नहीं चाहते हैं कि संसार को फिर क्षति उठानी पड़े और एक विध्वंस का सामना करना पड़े जिससे हम लोग अथवा हमारा देश भी छुटकारा नहीं पा सकता। यदि लड़ाई इस देश में न लड़ी जाये और अन्यत्र ही लड़ी जाये किन्तु फिर भी उसका प्रकार विश्वव्यापी और भारतव्यापी भी होगा। हमें इस समस्या को हल करना है।

यह समस्या व्यावहारिक न होकर मनोवैज्ञानिक है यद्यपि हमारे व्यवहार से उसका सम्बन्ध है। मेरे विचार से उसे हल करने में भारत ही कुछ योग दे सकता है। कुछ योग इसलिये दे सकता है कि भले ही हम गांधीजी के अक्षम और अयोग्य अनुयायी हों परन्तु कुछ अंश में हमने उनके उपदेशों को ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त आप देखेंगे कि इन विश्व-संघर्षों में घटना-चक्र क्रमबद्ध होता है और एक घटना से दूसरी घटना उत्पन्न होती है तथा दूषित कर्मों की शृंखला बढ़ती जाती है। युद्ध होता है और उसके समाप्त होने पर उसके कुफल भोगने पड़ते हैं तथा उनके कारण फिर दूसरा युद्ध होता है। यह घटना-चक्र चलता रहता है और प्रत्येक देश कर्म-पाश में अथवा यों कहिये की पाप-पाश में बंध जाता है। अभी तक इन दुराचारों के कारण पश्चिम में युद्ध हुये क्योंकि एक प्रकार ये दुराचार पश्चिमी देशों में ही संकेन्द्रित रहे। मेरा यह अर्थ नहीं है और संसार की राजनीति पर उसका प्रभुत्व रहा है। इसलिये उनके विवादों का, उनके झगड़ों का तथा उनके युद्धों का सारे संसार पर प्रभाव पड़ा है।

सौभाग्य से हमें भारत में यूरोप के समान अपने पूर्वजों से घृणा की देन नहीं मिली है। हम किसी व्यक्ति को अथवा किसी बात को या विचार को पसन्द न करें किन्तु हम यह प्राचीन काल की देन के आधार पर नहीं करते। इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं और अन्य जगहों में हमारे लिये वास्तविकता का ध्यान रखते हुये तथा निरुद्विग्न होकर इन प्रश्नों का हल करना कुछ आसान हो सकता है क्योंकि हमें अन्य लोगों की सद्भावना प्राप्त होगी और वे हमें अपने पूर्वजों से मिली हुई किसी कटुता के आधार पर सन्देह न करेंगे। यह हो सकता है कि कोई भी देश प्रभावपूर्ण ढंग से तभी कार्य कर सकता है जब उसे कुछ शक्ति प्राप्त हो। इस समय मैं भौतिक अथवा युद्धोपयोगी साधनों के बारे में में सोच रहा हूं। इसका अवश्य एक अर्थ है परन्तु मैं इस समय किसी देश की सामान्य शक्ति के बारे में सोच रहा हूं। एक दुर्बल राष्ट्र जो अपने को ही नहीं सम्हाल सकता यह दूसरों को अथवा संसार को क्या सम्हालेगा। मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इन सब बातों पर विचार करे और उसके उपरान्त ही उस छोटे से प्रश्न पर अपना निर्णय दे जो मैंने उसके सामने रखा है क्योंकि मैंने इन सब बातों पर विचार किया है और सबसे अधिक मुझे अपने इस कर्त्तव्य का ध्यान रहा है कि भारत की स्वतंत्रता पर किसी प्रकार की आंच न लगे।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

यह स्पष्ट है कि जिस गणराज्य को स्थापित करने का हमने निर्णय किया है वह अस्तित्व में आयेगा ही। मेरे विचार से हमने उसे प्राप्त कर लिया है। निस्संदेह हम किसी भी हालत में उसे प्राप्त करते ही परन्तु हमने उसे कई अन्य लोगों की सद्भावना से प्राप्त किया है। मेरे विचार से यह एक और बात प्राप्त हुई है। जिन लोगों को हमारी इस प्राप्ति से नुकसान पहुंचे उनकी सद्भावना हमें प्राप्त हो यह भी एक प्रकार की प्राप्ति है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि काम करने का वह ढंग भी महत्वपूर्ण है जिससे किसी के हृदय में कटुता शेष न रह जाये। किसी ओर से भी सद्भावना प्रकट की जाये वह है बहुमूल्य ही। इसलिये जब मैं लन्दन में था और वहां से चले जाने पर भी जब मैं इस प्रश्न पर विचार कर रहा था तो मुझे यह अनुभव हुआ कि थोड़े ही अंश में क्यों न हो परन्तु गांधीजी इस कार्य को पसन्द करते। मैं कार्य से अधिक कार्यप्रणाली पर विचार कर रहा हूं। मैंने यह विचार किया कि इस कार्य से ही संसार में बहुत सद्भावना उत्पन्न हो जायेगी। इस सद्भावना से हमें तथा इंग्लैंड को तो अवश्य थोड़ा बहुत लाभ होगा किन्तु वर्तमान मनोवैज्ञानिक संघर्ष में जबकि लोग एक दूसरे को दोषी ठहरा रहे हैं, इससे एक प्रकार से संसार को भी बहुत लाभ होगा। यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति दोषी हो यह हो सकता है कि कुछ राजनीतिज्ञ अथवा बड़े आदमी दोषी हों किन्तु उन करोड़ो लोगों को कोई दोषी नहीं ठहरा सकता जिन्हें संहारकारी युद्धों में अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे। प्रत्येक देश का बृहत् जनसमुदाय युद्ध विरोधी है। वह युद्धों से भयभीत है। कभी इसी भय का सहारा लेकर युद्ध को उभाड़ा जाता है क्योंकि यह हमेशा ही कहा जा सकता है कि विपक्षी आप पर आक्रमण करने आ रहा है।

इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह सभा न केवल इस पर विचार करे कि राजनैतिक क्षेत्र में हमने क्या प्राप्त किया है क्योंकि उसे तो हम प्राप्त करते ही और कोई भी व्यक्ति हमारे इस कार्य में बाधा नहीं पहुंचा सकता था बल्कि इस पर भी विचार करे कि महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमने इसे ऐसे ढंग से प्राप्त किया है जिससे हमें तथा अन्य लोगों को सहायता मिलती है। इस ढंग से काम करने से हमें किसी कुपरिणाम को नहीं भोगना पड़ता और इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि कहीं हमने किसी को नुकसान पहुंचाकर तो फायदा नहीं उठाया है और कोई व्यक्ति इस कारण कुढ़ तो नहीं रहा है और बदला लेने की तो नहीं सोच रहा है। यदि संसार इस ढंग से काम करे तो सभी प्रश्न बहुत आसानी से हल हो जायेंगे और युद्धों की संख्या ही नहीं बल्कि उसके परिणामों का प्रभाव भी बहुत कम हो जायेगा। सम्भवत: युद्ध होंगे ही नहीं। अंग्रेजों के दोषों की तथा दूसरे देशों की साम्राज्यवाद अथवा उपनिवेशों पर प्रभुत्व रखने की नीति की चर्चा

करना आसान है। उनके बारे में ये बातें अवश्य कही जा सकती हैं। आज किसी देश के गुण-दोषों की और भारत के भी गुण-दोषों की आप एक सूची बना सकते हैं। इन सूचियों को बना लेने पर भी यह प्रश्न रह ही जाता है कि आप अन्य लोगों के गुणों को किस प्रकार ग्रहण करेंगे और संसार में सद्भावना की नींव कैसे डालेंगे।

मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि किसी पक्ष के दोषों पर ही जोर देने से किसी सरकार को अथवा किसी राष्ट्र को कोई लाभ नहीं होता। हमें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। कभी तो हमें इस प्रकार की मनोवृत्ति से संघर्ष भी करना होता है। हमें इसके लिये तो तैयार रहना ही चाहिये परन्तु साथ ही मेरे विचार से अपने ही गुणों को देखने से और अन्य लोगों को दोष देते रहने से हम अपने वास्तविक प्रश्न को नहीं समझ सकते। इसमें सन्देह नहीं कि अपने को गुणवान् समझने से तथा अन्य लोगों को दोषी समझने से हमें एक प्रकार के आन्तरिक सन्तोष का अनुभव होता है। मैं धार्मिक शब्दावलि का प्रयोग कर रहा हूं यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं उसे प्रयोग करने में असमर्थ हूं परन्तु बात यह है कि मैं इस आदरणीय सभा के सम्मुख इस प्रश्न के नैतिक अंग को रखना चाहता हूं। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत के हित को हानि पहुंचाकर मैं किसी ऊंचे नैतिक स्तर से बात करने का साहस कर रहा हूं। कोई भी सरकार ऐसा करने का साहस नहीं कर सकती। परन्तु यदि कोई लाभप्रद कार्य किया जाये और नैतिक दृष्टि से भी वह उचित हो तो यह समझ में आ सकता है और उसकी प्रशंसा की जा सकती है। मेरा यह निवदेन है कि हमने जो कुछ किया है उससे हमें कोई हानि नहीं हुई है और न हो सकती है। राजनैतिक दृष्टि से हम जो कुछ प्राप्त करना चाहते थे उसे हमने प्राप्त किया है और सम्भावना इसकी है कि हम उन्नति करेंगे और हमें उन्नति करने के लिये पहले से अधिक अवसर मिलेंगे। बिना ऐसा किये हुये हमें कुछ वर्षों तक ये अवसर न मिलते।

अन्त में मुझे यह कहना है कि इस कार्य से संसार में शान्ति स्थापित करने में सहायता मिलती है और उसके लिये प्रोत्साहन मिलता है। यह मैं कह नहीं सकता कि किस सीमा तक यह सहायता मिलती है परन्तु यह मैं जानता हूं कि इससे यह देश किसी अन्य देश के प्रति वचनबद्ध नहीं हो जाता। इस सभा को अथवा संसद को इसकी स्वतंत्रता है कि वह किसी भी समय अपनी इच्छा से न कि मेरी इच्छा से इस सम्बन्ध को तोड़ दे। मैं केवल यह बताना चाहता हूं कि भविष्य के लिये हमने अपने देश को किसी प्रकार के बन्धन में नहीं डाला है। भविष्य में यह देश जिस मार्ग का भी अवलम्बन करना चाहे कर सकता है। यदि वह देखेगा कि यह मार्ग ठीक है तो वह इसी मार्ग पर चलता रहेगा। यदि वह देखेगा कि यह मार्ग ठीक नहीं है तो हमने उसे दूसरे मार्ग को ढूंढ निकालने के लिये किसी प्रकार के बन्धन में नहीं डाला है। मेरा यह निवेदन है कि लंदन के सम्मेलन के निर्णय की घोषणा के अनुसमर्थन के लिये मैंने इस सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव रखा है उसका इस सभा को केवल ऊपरी तौर से समर्थन न करना चाहिये बल्कि

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

उसमें जो बाते हैं उनकी प्रशंसा भी करनी चाहिये क्योंकि उनका भारत के भविष्य के लिये एक महत्त्व है जो हमारे आंखों के सामने ही स्पष्ट होता जा रहा है। वास्तव में बहुत पहले से हमने अपने भाग्य को भारत के भाग्य के साथ जोड़ रखा है। हमारा अपना भविष्य भारत के भविष्य पर ही निर्भर है। हम बहुत समय से भविष्य के बारे में सोचते रहे हैं और उसके स्वप्न देखते रहे हैं। अब हम एक ऐसी मंजिल पर पहुंचे हैं जहां हमें अपने निर्णयों तथा कार्यों से प्रत्येक कदम पर अपने भविष्य का निर्माण करना है। अब हमारे लिये यह उचित नहीं है कि केवल प्रस्तावों को स्वीकार करके अथवा अन्य लोगों की आलोचना अथवा निन्दा करके हम भविष्य के सम्बन्ध में चर्चा करें। अब यह हमारे ही हाथ में है कि हम अच्छी व्यवस्था स्थापित करें अथवा बुरी। कभी-कभी हममें से कुछ लोग दूसरों की निन्दा करके ही भविष्य की कल्पना करते हैं। मेरी यह धारणा है कि इस सभा में कुछ सदस्य जिन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया है और कुछ अन्य सदस्य भी जो इस समय सभा में उपस्थित नहीं हैं उस पुराने पिंजरे से बाहर नहीं निकल पाये हैं जिसमें हम सब लोग अभी तक बन्द रहे हैं। उसका दरवाजा भले ही खोल दिया गया हो परन्तु कम से कम हमारे दिमाग अभी उसके अन्दर ही हैं। उनके कारण हमें तथा मेरे कुछ मित्रों को मेरे पन्द्रह बीस वर्ष पहले के भाषण स्मरण हो आये हैं। यदि वे मेरे भाषणों को इतना महत्त्व देते हैं तो उन्हें मेरे इस भाषण को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये। संसार बदल चुका है। किन्तु दुराचार दुराचार ही है और सदाचार सदाचार ही। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है कि अब ऐसा भी नहीं रह गया है। मेरे विचार से साम्राज्यवाद एक दूषित चीज है और जहां कहीं भी वह पाया जाये उसे जड़ से उखाड़ने की आवश्यकता है। इसी प्रकार उपनिवेशों पर प्रभुत्व रखना एक दूषित प्रवृत्ति है और जहां कहीं भी यह पाई जाये इसे जड़ से उखाड़ने की आवश्यकता है। जातीयता भी एक दूषित चीज है और उसे मिटाने के लिये संघर्ष करने की आवश्यकता है। यह सब सच है। किन्तु संसार बदल चुका है और इंग्लैंड भी बदल चुका है। यूरोप बदल चुका है और भारत भी बदल चुका है। सब कुछ बदल चुका है और बदल रहा है इन सब बातों को देखने की आवश्यकता है। यूरोप को ही देखिये जहां पिछले तीन सौ वर्षों में कला और विज्ञान का उत्थान हुआ है और वह सारे संसार में एक नई सभ्यता स्थापित करने में समर्थ रहा है। इस उत्थान काल के लिये यूरोप तथा यूरोप के कुछ देश गर्व कर सकते हैं। किन्तु इन तीन सौ अथवा इससे कुछ अधिक वर्षों के काल में यूरोप धीरे-धीरे एशिया और अफ्रीका में अपना प्रभुत्व स्थापित करता रहा है। यह साम्राज्यवादी हो गया और संसार के अन्य भागों का शोषण करने लगा। इस प्रकार संसार की राजनीति में उसी का प्रभुत्व रहा। मेरा यह विश्वास है कि यूरोप में अब भी बहुत से सुन्दर गुण विद्यमान हैं। जिन लोगों में सुन्दर गुण होते हैं वे सुन्दर कार्य करते हैं। किन्तु राजनैतिक दृष्टि से अब वह संसार का केन्द्र नहीं हो

सकता और न अब वह संसार के अन्य भागों में वैसा प्रभुत्व रख सकता है जैसा कि वह रखता आया है। इस दृष्टि से यूरोप का अब वह महत्त्व नहीं हो सकता जो पहले था और संसार के इतिहास का तथा राजनैतिक और अन्य प्रकार के कार्यों का केन्द्र अब वहां नहीं रह गया है। मेरा अर्थ यह नहीं है कि अब किसी अन्य महाद्वीप का प्रभुत्व हो गया है। यह बात नहीं है। किन्तु अब मानचित्र बिल्कुल बदल गया है। आप ब्रिटिश साम्राज्य तथा तत्सम्बन्धी बातों की चर्चा करते हैं। परन्तु मेरा यह कहना है कि यदि साम्राज्यवाद प्रभाव में रहना भी चाहे तो उसमें अब इसके लिये सामर्थ्य नहीं रह गया है। एशिया के कुछ भू-भागों में अभी फ्रांसीसी साम्राज्यवाद वर्तमान है किन्तु अब उसमें प्रभाव में रहने का सामर्थ्य नहीं रह गया है। वह भले ही एक वर्ष या दो वर्ष तक जीवित रखा जाये परन्तु अब उसमें जीवित रहने का सामर्थ्य नहीं रह गया है। डच लोग भी उसे कुछ प्रदेशों में जीवित रख सकते हैं किन्तु यदि आप इतिहास पर दृष्टिपात करें तो आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि ये बातें पिछली कुछ बातों के अवशेष मात्र हैं। किन्तु वे अब रह नहीं सकतीं। आज भी उनके पीछे कुछ शक्ति हो सकती है और वे कुछ वर्षों तक चल सकती हैं इसीलिये हमने इनके विरुद्ध संघर्ष करना है और सचेत रहना है। मैं इसे स्वीकार करता हूं। परन्तु हमें यह न समझना चाहिये कि अब भी यूरोप अथवा इंग्लैंड वैसा ही है जैसा वह पन्द्रह या बीस वर्ष पूर्व था। ऐसी बात नहीं है।

मैं उन मित्रों की चर्चा कर रहा था जिन्होंने हमारे इस कार्य की आलोचना की है और वास्तव में अकर्मण्ता के दृष्टिकोण को अपनाया है। मैंने अन्यत्र यह कहा था कि उनका दृष्टिकोण प्रगतिशून्य है। मैंने यह भी कहा था कि वर्तमान परिस्थति में वह प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है। मुझे खेद है कि मैंने इस शब्द का प्रयोग किया क्योंकि मैं ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहता जिनसे दूसरों को दु:ख पहुंचे। मैं इस प्रकार लोगों को दु:ख नहीं पहुंचाना चाहता। मैं ऐसी वाक्पटुता से अनभिज्ञ नहीं हूं जिससे लोगों को दु:ख पहुंचे किन्तु मैं उसका प्रयोग नहीं करना चाहता हूं क्योंकि हमें बहुत बड़े प्रश्नों को हल करना है। अपने विरोधी के तर्क को एक दो चातुर्यपूर्ण शब्दों का प्रयोग करके खण्डन करने से जो संतोष होता है वह बहुत साधारण प्रकार का संतोष है क्योंकि इस प्रकार हम उसके हृदय में प्रवेश नहीं करते हैं। किन्तु मैं लोगों के हृदय में प्रवेश करना चाहता हूं। *(तुमुल हर्षध्वनि)* मेरी यह धारणा है कि घर में हमारा जो कोई भी मतभेद हो वह सच्चा मतभेद हो। हम यह नहीं चाहते कि इस देश को एक ही मत मानने के लिये बाध्य किया जाये। *(हर्षध्वनि)*

वैदेशिक मामलों के सम्बन्ध में भी मतभेद हो सकता है। मैं इसे स्वीकार करता हूं। किन्तु किसी भी ऐसे व्यक्ति के सामने, जिसको भारत के प्रति प्रेम है और जो यह चाहता

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

है कि भारत तथा संसार उन्नति करे, ये आधारभूत बातें रहती हैं कि भारत स्वतंत्र रहे, पूर्णतया स्वतंत्र रहे, भारत की आर्थिक तथा अन्य प्रकार की उन्नति हो और भारत संसार में स्वतंत्रता तथा शान्ति स्थापित करने में अपना योग दे। ये आधारभूत बातें हैं। भारत को उन्नति करनी ही है। भारत को अपने ही घर को पहले उन्नत बनाना है। जब तक हमारे देश को आर्थिक शक्ति तथा अन्य प्रकार की शक्ति प्राप्त न हो तब तक वह अन्य उद्देश्यों की पूर्त्ति कैसे कर सकता है? इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है कि हमारे देश को किस प्रकार यह शक्ति प्राप्त हो। मेरे विचार से हम लोगों के लिये यह सम्भव है कि देश को सशक्त बनाने के साधनों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद होते हुये भी हम एक ही प्रकार की वैदेशिक नीति अपनाने के सम्बन्ध में सहमत हों अथवा बहुत अंश तक सहमत हों। मैं अपना अर्थ स्पष्ट करना चाहता हूं। मेरा यह आशय कदापि नहीं है कि कोई तर्क ही उपस्थित न किया जाये या किसी प्रकार की आलोचना ही न की जाये। अवश्य की जाये। मुझे इसकी आवश्यकता है। जिस देश में इस प्रकार की आलोचना होती है वह देश उन्नतिशील कहा जा सकता है। किन्तु मैं यह चाहता हूं कि जो भी तर्क उपस्थित किया जाये वह मैत्रीपूर्ण हो न कि विरोधपूर्ण क्योंकि विरोधपूर्ण तर्क कभी तर्क की सार्थकता की दृष्टि से उपस्थित नहीं किया जाता किन्तु विपक्षी को क्षोभ पहुंचाने के लिये उपस्थित किया जाता है। राजनीति में प्रायः ऐसी बातें दिखाई देती है। मैंने यह देखा है कि किसी भी व्यक्ति ने बहुत मतभेद नहीं प्रकट किया है। मैं उन लोगों के बीच में तथा उन समूहों के बीच में बहुत मतभेद देखता हूं जो अन्य देशों को न कि भारत को अपने सामने रखते हैं। यह आधारभूत मतभेद है। ऐसे लोगों से किसी भी विषय के सम्बन्ध में साहमत्य होना बहुत कठिन है। किन्तु उन लोगों का जिन्हें भारत की स्वतंत्रता, भारत के निकट भविष्य में तथा दूर भविष्य में उन्नति तथा विश्व-शान्ति का ध्यान रहता है, हमारी वैदेशिक नीति से बहुत मतभेद न होगा। मेरे विचार से वास्तव में कोई मतभेद है ही नहीं। वे केवल अपने विचार दूसरे शब्दों में प्रकट करते हैं। कोई भी सरकार सरकारी भाषा का ही प्रयोग कर सकती है किन्तु अन्य लोग विरोधमूलक अथवा उत्तेजनामूलक भाषा का प्रयोग करते हैं जैसा कि हम भी करते आये हैं। इसलिये मेरी इस सभा से तथा देश से यह प्रार्थना है कि वह किसी दल विशेष की भावना से अथवा किसी बात के सम्बन्ध में मोल-तोल करने की भावना से इस प्रश्न पर विचार न करें।

किसी भी व्यापारिक समझौते में हमें इसके लिये सावधान रहना पड़ता है कि हम कहीं कोई ऐसी चीज न खो बैठें जो राष्ट्र के लिये लाभप्रद हो। साथ ही हमें इस प्रश्न का उदारता से विचार करना है। हमारा राष्ट्र एक बड़ा राष्ट्र है। यदि हमारे राष्ट्र का आकार बड़ा है तो केवल इस कारण हमें कारोबार उपलब्ध न होगा। वह हमें तभी उपलब्ध हो

सकता है जब हमारा दिल व दिमाग ऊंचा हो, हमारी समझ ऊंची हो और हमारे कार्य ऊंचे हों। आप बाजार में मोल-तोल करने वालों को भले ही छोटी-मोटी चीजें दे बैठें किन्तु यदि आप कोई बड़ा काम करेंगे तो सारी दुनिया आपकी ओर हो जायेगी। भलाई का परिणाम भलाई ही होता है। भलाई करने से दूसरे लोग भी भलाई करने लगते हैं। किसी बड़े काम से उदारता का परिचय मिलता है और उससे अन्य लोग भी उदार व्यवहार करने लगते हैं।

इसलिये मैं आपसे यह सिफारिश करता हूं कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये और साथ ही यह विश्वास करता हूं कि यह सभा न केवल इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगी बल्कि यह भी अनुभव करेगी कि यह अन्य देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित होने तथा उनके प्रति तथा संसार के प्रति हमारी ओर से उदारता के व्यवहार का द्योतक है। इससे हमारी स्थिति ही सुदृढ़ न होगी बल्कि हम शान्ति को भी सुदृढ़ बनाने में समर्थ होंगे।

***अध्यक्ष:** सभा को स्मरण होगा कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में दो संशोधन उपस्थित किये गये हैं। मैं सभा के सम्मुख प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन रखता हूं। यदि वह स्वीकार कर लिया गया तो अन्य संशोधनों को सभा के सम्मुख रखने की आवश्यकता न रह जायेगी।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, संविधान सभा की आज्ञा मिले तो मैं अपने संशोधन को वापस लेता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री लक्ष्मीनारायण साहू अपना संशोधन वापस लेना चाहते हैं। क्या सभा उन्हें उसे वापस लेने की आज्ञा देती है?

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब केवल श्री शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन रह जाता है। अब मैं श्री शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

> ''प्रस्ताव में 'यह सभा... का अनुमोदन इस रूप से करती है' शब्दों के स्थान पर 'इस सभा ने... पर उस रूप में ध्यानपूर्वक विचार किया है' शब्द रख दिये जायें और निम्नलिखित शब्द प्रस्ताव के अन्त में जोड़ दिये जायें:
>
> 'और इस सभा का यह मत है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता सर्वसत्ता प्राप्त स्वतंत्र गणराज्य के रूप में भारत की नई स्थिति के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त सदस्यता

[अध्यक्ष]

की शर्त्तें भारत की प्रतिष्ठा और उसकी नई स्थिति के लिये अपमानजनक है और इसलिये वे अवश्यमेव अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसकी कार्यस्वतंत्रता को सीमित तथा कम कर देंगी और उसे आंग्ल-अमरीकी गुट रूपी रथ के पहिये से बांध देंगी। भारत, जिसकी जनसंख्या समस्त राष्ट्रमण्डल की 50 करोड़ जनसंख्या में से 35 करोड़ है इंग्लैंड के सम्राट को किसी रूप अथवा शक्ल के राष्ट्रमण्डल का प्रधान स्वीकार नहीं कर सकता। भारत उस राष्ट्रमण्डल का सदस्य भी नहीं बन सकता जिसके कई सदस्य अब भी भारतीयों को नीची प्रजाति समझते हैं और उनके विरुद्ध रंगभेद बरतते हैं और उन्हें नागरिकता के समस्त मूलभूत अधिकारों से वंचित किये हुये हैं। दक्षिण अफ्रीका में अर्वाचीन भारतीय विरोधी उत्पात, आस्ट्रेलिया में सर्वश्वेत नीति और मलाया में भारत सरकार के विरोध के होते हुये भी गणपति को फांसी देना और साम्बशिवम् के मृत्युदण्ड को कम न करना, स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि भारत राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से कोई लाभ नहीं उठा सकता और यह भी सिद्ध करते हैं कि ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्य अपनी साम्राज्यवादी और प्रजातीय नीतियों को नहीं छोड़ सकते।

''इन सब बातों पर विचार करके और इस बात पर भी विचार करके कि कांग्रेस दल ने, जिसे विधान-परिषद् में और देश के अन्य प्रान्तीय विधान-मण्डलों में पूर्ण बहुमत प्राप्त है, सामान्य निर्वाचकों के समय भारत की पूर्ण स्वतंत्रता और ब्रिटिश सम्बन्धों के विच्छेद को अपना घोषित उद्देश्य रखा था, उस नीति के विपरीत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से कोई नया सम्बन्ध यथोचित रूप से भारतीय गणराज्य की नई संसद द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है, जो नये विधान के अंतर्गत प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्मित होगी।

''अत: परिषद् यह निश्चय करती है कि राष्ट्रमण्डल में भारत की सदस्यता के प्रश्न को तब तक स्थगित कर दिया जाये जब तक कि नई संसद नहीं निर्मित होती और देश की जनता की इच्छायें स्पष्टत: नहीं जानी जाती। यह परिषद् भारत के प्रधानमंत्री को आदेश देती है कि वे ब्रिटेन के प्रधानमंत्री और राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों को तदनुसार सूचना दें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं मूल प्रस्ताव पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''यह निश्चय किया जाता है कि यह सभा भारत के राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के बारे में उस घोषणा का अनुसमर्थन करती है जिसके लिये भारत के प्रधानमंत्री

सहमत हुये थे और जिसका उल्लेख उस सरकारी बयान में किया गया था जो 27 अप्रैल, 1949 ई. को राष्ट्रमण्डल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन के समाप्त होने पर निकाला गया था।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

(तुमुल हर्षध्वनि)

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान्, मैं निश्चित रूप से यह जानना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव के पक्ष में कौन लोग हैं और इसके विरोध में कौन लोग हैं? इसके अतिरिक्त मैं यह भी जानना चाहता हूं कि तटस्थ कौन लोग हैं।

***अध्यक्ष:** क्या आप मत विभाजन चाहते हैं?

***कई माननीय सदस्य:** इसके लिये अब बहुत देर हो गई है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मेरा कहना यह है कि जो लोग तटस्थ हैं वे इस प्रस्ताव के विरोध में हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि...

***अध्यक्ष:** यह किसी प्रकार नहीं जाना जा सकता कि तटस्थ कौन हैं?

***मौलाना हसरत मोहानी:** इस सभा का यह निर्णय अन्तिम न होगा...। *(विघ्न)*

***अध्यक्ष:** क्या मौलाना मतविभाजन चाहते हैं?

***मौलाना हसरत मोहानी:** जी हां...। *(विघ्न)*

***मि. तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, अब मतविभाजन के लिये बहुत देर हो चुकी है। आपके यह घोषित करने से पूर्व कि प्रस्ताव स्वीकार हो गया है उन्हें मतविभाजन की मांग कर लेनी चाहिये थी। अब इसके लिये देर हो गई है।

***मौलाना हसरत मोहानी:** यह गलत है। मैं तुरन्त खड़ा हो गया था।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से यदि मौलाना की इच्छानुसार मतविभाजन किया भी जाये तो उन्हें अपने पक्ष में आवश्यक मत मिल जायेंगे। मेरे विचार से मतविभाजन करना आवश्यक नहीं है क्योंकि इसकी मांग देर से की गई है।

अब हम कल प्रात:काल 8 बजे तक के लिये सभा स्थगित करते हैं।

इसके पश्चात् परिषद् बुधवार 18 मई, 1949 ई. के प्रात: 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई है।

Con. 4. VIII.3.49
250

अंक 8
संख्या 3

बुधवार
18 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारत शासन अधिनियम (संशोधन) विधेयक..... 129-136
संविधान सभा के नियमों में नियम 38-ए (3)
और 61-ए का जोड़ना..... 136-142
संविधान का मसौदा (जारी)..... 142-196
[नया अनुच्छेद 67-ए, अनुच्छेद 68, 68-ए, 69
नया अनुच्छेद 69-ए, अनुच्छेद 70, 71 और 72 पर विचार]

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 18 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में प्रातः 8 बजे समवेत हुई।

भारत शासन (संशोधन) विधेयक

***अध्यक्षः** कार्यावली में पहली मद एक विधेयक है जिसकी सूचना माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने दी थी। अस्वस्थ होने के कारण सरदार वल्लभभाई पटेल को यहां से जाना पड़ गया और उन्होंने मुझसे कहा कि माननीय श्री गाडगिल को इस विधेयक के सम्भालने की अनुमति दे दी जाये। श्री गाडगिल।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं की भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये एक विधेयक को उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है

> ''कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये विधेयक को उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

माननीय श्री एन.वी. गाडगिलः श्रीमान्, मैं विधेयक उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** विधेयक उपस्थित हो गया।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिलः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये प्रस्तुत विधेयक पर सभा तुरन्त विचार करे।''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय श्री एन.वी. गाडगिल]

इस विधेयक का उद्देश्य भारत-शासन-अधिनियम में दो प्रावधानों के विषय में संशोधन करना है। पहला प्रावधान धारा 97 है जिसके अन्तर्गत कुर्ग विधान-परिषद (Legislative Council) के निर्माण, शक्तियों और प्रकार्यों में तथा कुर्ग के राजस्व तथा व्यय संबंधी व्यवस्था में परिवर्तन केवल संविधान-सभा (Constituent Assembly) के कानून द्वारा ही किया जा सकता है। जब प्रांतीय विधान-मंडलों में यूरोपिनी का प्रतिनिधित्व समाप्त हुआ था, तब यह बात भूल से रह गई थी कि कुर्ग में प्रतिनिधित्व फिर भी जारी रहेगा। इस समय कुर्ग विधान-परिषद् में दो यूरोपीन हैं और यह अनुचित समझा जाता है कि यह असंगत बात रहने दी जाये। साथ ही, इस अभिप्राय विशेष से संविधान-सभा में कोई विधेयक रखना अनावश्यक है। अन्यथा भी, कुर्ग के विद्यमान संविधान में परिवर्तन करने की शक्ति गवर्नर-जनरल को देना अधिक सुविधाजनक होगा। संशोधन विधेयक के उपबन्ध से सरकार को अधिकार मिल जायेगा कि वह आदेश द्वारा ऐसा कर सके।

दूसरा उपबन्ध संधानीय और समवर्त्ती विधायिनी सूचियों में कुछ परिवर्तन करने के विषय में है। प्रथम सूची की मद एक के अनुसार केन्द्र को रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों से सम्बद्ध राज्य-कारणों से निवारक अवरोध का अधिकार है; किन्तु वास्तव में नजरबन्दों के विषय में कुछ भी करने की कार्यपालिका शक्ति प्रांतों के पास रहती है, क्योंकि ''औपनिवेशिक प्राधिकारी के अधीन निवारक अवरोध के नजरबन्द'' यह समवर्त्ती सूची की 34वीं मद है। दूसरी ओर, प्रांतीय विधायिनी सूची को मद 1 से प्रांतों को सार्वजनिक व्यवस्था के बनाये रखने से सम्बद्ध कारणों से निवारक अवरोध और ऐसे अवरोध के नजरबन्दों दोनों के विषय में शक्ति मिलती है। कोई कारण नहीं है कि अपने-अपने नजरबन्दों के विषय में केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों की शक्तियों में अन्तर रखा जाये। अत: इस विधेयक में यह प्रावधान है कि केन्द्रीय प्राधिकारी के अधीन अवरोध पर केन्द्र का ही कार्यपालक नियंत्रण रहे। यह संधानीय विधायिनी सूची की प्रथम कंडिका में समुचित संशोधन करके किया गया है।

हमें नजरबन्दों के अन्तर-प्रांतीय स्थानान्तरण में भी काफी कठिनाई अनुभव हो रही है। नजरबन्द पूर्णत: प्रांतीय नियंत्रण में होते हैं अत: उन्हें उसी प्रांत विशेष में रखना पड़ता है। अब तक, जब भी अत्यन्त आवश्यकता के मामले में ऐसा अवसर आया है तो 1818 के बंगाल आनियम तृतीय के उपबन्धों का प्रयोग किया गया है। स्पष्टत: यह असंतोषजनक प्रणाली है। स्थानान्तरण की आवश्यकता किसी प्रांत विशेष मैं स्थानाभाव के कारण अथवा नजरबन्द की ही अपने प्रांत में जाने की इच्छा के कारण अथवा प्रांतीय सरकार के लिये अन्य प्रांत में भेजना प्रशासनीय दृष्टि से सुविधाजनक हो, तब उत्पन्न होती है। दो अर्वाचीन

मामलों में हमें 1818 के तृतीय आनियम का प्रयोग करना पड़ा था। पश्चिमी बंगाल के कुछ पंजाबी नजरबन्दों की ओर से भी पूर्वी पंजाब में स्थानान्तरित होने की मांग की गई थी। इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इस समय प्रांतों को कोई शक्ति नहीं है कि वे अपने नजरबन्दों को स्थानान्तरित कर सकें। अतः समवर्त्ती सूची में सुझायें गये सुझाव से यह कठिनाई हल हो जायेगी क्योंकि इससे केन्द्र को यह अधिकार मिल जायेगा कि वह ऐसे स्थानान्तरण के लिये विधि बना सके और अपेक्षित कार्यवाही प्रांतों पर छोड़ दी जाये।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री अनन्तशयनम् के नाम में इस प्रस्ताव पर एक संशोधन की सूचना मिली है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं कोई संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं किन्तु मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** पंडित ठाकुरदास भार्गव ने भी उसी संशोधन की सूचना दी है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं उसे उपस्थित नहीं करता, श्रीमान्।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, इस विधेयक के दो भाग हैं, एक कुर्ग के विषय में है। भारत-शासन-अधिनियम की धारा 97 के अन्तर्गत कुर्ग की विधान-परिषद् उसके राजस्व तथा व्यय सम्बन्धी विद्यमान आनियम तब तक लागू रहेंगे जब तक कि संविधान-सभा (Constituent Assembly) तत्सम विधि तथा आनियम बनाकर उनमें परिवर्तन न कर दे, यह शक्ति संविधान-सभा को स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 8 के अधीन दी गई है। प्रस्तावित संशोधन यह है कि 'संविधान-सभा' के स्थान पर 'गवर्नर-जनरल का आदेश' ये शब्द रख दिये जायें। मेरी अपनी भावना तो यह है कि गवर्नर-जनरल चाहे कितना भी प्रतिष्ठावान हो, फिर भी वह कार्यपालिका का प्रतिनिधि है और यह शक्ति कार्यपालिका को देना और संविधान सभा से ले लेना उपयुक्त नहीं है। यह कहा जाता है कि संविधान-सभा की शक्ति तो बनी ही रहेगी। शायद ऐसा हो, किन्तु जब संविधान-सभा को धारा 97 के अधीन दी गई शक्तियां इस संशोधन द्वारा उस धारा में से निकाल दी जायेंगी, तो यह काम बहुत चक्कर से करना होगा। यह मेरी पहली आपत्ति है। किन्तु हम दो मास में ही संविधान पारित करने वाले हैं और तीन मास की कालावधि के लिये गवर्नर-जनरल को यह शक्ति देने में कोई हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये। यह केवल कार्य साधना का प्रश्न है और यदि कुर्ग विधान-परिषद् में यूरोपियनों की उपस्थिति की असंगति को हटाना तथा ऐसी त्रुटियों का तत्काल सुधार करना ही अपेक्षित समझा जाता है, तो

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

भारत-शासन-अधिनियम के संशोधन की लम्बी कार्यप्रणाली से अच्छा साधन गवर्नर-जनरल का परिषद् आदेश ही है। नि:संदेह इस दृष्टिकोण से यह संशोधन स्वीकार किया जा सकता है; किन्तु यह इस सामान्य सिद्धांत के विरुद्ध है, कि कार्यपालिका को विधान-मंडल के कार्य में हस्तक्षेप अथवा उस पर नियंत्रण नहीं करना चाहिये और विधान-मंडल के विधान में हस्तक्षेप करने की शक्ति केवल सर्वोच्च सर्वसत्ता प्राप्त विधान-मंडल में ही निहित होनी चाहिये।

संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध समवर्त्ती सूची से संधानीय सूची में मदों को स्थानान्तरित करने की शक्ति देने से है। आज संधानीय सूची की मद 1, 'रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रविष्ट राज्यों से संबंधित विषयों के प्रयोजनार्थ अवरोध' केवल संधानीय सूची में ही है। जहां तक प्रांतों का सम्बन्ध है सुरक्षात्मक प्रयोजनों के लिये अवरोधित व्यक्तियों के मामलों में व्यक्ति को नजरबन्द करने की शक्ति केवल प्रांत में निहित है। इस विधेयक का उद्देश्य रक्षा तथा विदेशी मामलों के सम्बन्ध में अवरोधित व्यक्तियों की नजरबन्दी के प्रावधानों को सुरक्षा के प्रयोजनार्थ प्रांतीय सरकारों द्वारा अवरोधित व्यक्तियों के प्रावधानों के बराबर लाना है। किन्तु इस संशोधन की उपयुक्तता अथवा वांछनीयता में मुझे तो संदेह है। मैं यह बात निम्न कारणों से कहता हूं। केन्द्र के पास कोई विशेष कारागृह नहीं है जिनका वह प्रबन्ध करता हो। जिसे भी नजरबन्द किया जाये, चाहे केन्द्र करे अथवा प्रांत, उस व्यक्ति को प्रांतीय सरकार के आदेश से ही प्रांतीय कारागृह में नजरबन्द करना होता है। ऐसे संकटकाल में, जबकि किसी कारागृह विशेष में हैजा या प्लेग हो जाये, तो प्रांतीय सरकार के लिये यह सुगम नहीं होगा कि वह केन्द्र से पत्र व्यवहार करे, उनसे निर्देश मांगे और आदेशों की प्रतीक्षा करे कि किसी बन्दी को उस प्रांत के एक कारागृह से उसी भाग अथवा प्रांत के दूसरे कारागृह में भेज दिया जाये अथवा नहीं। यह कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। अत: भारत-शासन-अधिनियम, 1935 में और अनुकूलन किये गये और लागू रखे गये रूप में भारत-शासन-अधिनियम में भी, और इस परिषद् के समक्ष पेश किये गये संविधान के मसौदे में, जिस पर हम इस समय विचार कर रहे हैं, ऐसे प्रावधान रखना उपयुक्त समझा गया कि औपनिवेशिक सरकार के आदेश से अवरोधित व्यक्तियों को केवल संधानीय विषय न बनाकर समवर्त्ती विषय बनाया जाये। मैं नहीं समझता कि इस अधिकार को अथवा इस प्रविष्टि को समवर्त्ती सूची में से संधानीय सूची में बदलना और केवल संधानीय सरकार को यह क्षेत्राधिकार देना कहां तक बुद्धिमत्ता है। किन्तु मैं इस बात पर बल नहीं दे रहा हूं। जब हम संविधान पर विचार करें और जब हम इस प्रविष्टि पर विचार करें तब इस मामले पर फिर विचार कर सकते हैं। यह विधेयक केवल

एक अस्थायी चीज है और मैं इसे स्वीकार करता हूं क्योंकि यह सदन के समक्ष रखा गया है, यद्यपि मुझे संदेह है कि यह संशोधन, जो कि इस विधेयक द्वारा किया जा रहा है, बिल्कुल उपयुक्त या आवश्यक नहीं है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, यद्यपि यह विधेयक निर्दोष तथा सीधा दिखाई देता है, तदपि मेरे तुच्छ मतानुसार यह विधेयक इस सभा में पारित होने योग्य नहीं है। पहली बात जो विचारार्थ प्रस्तुत होती है वह यह है कि उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्यानुसार खंड 2 का एकमात्र उद्देश्य यह है कि कुर्ग में यूरोपीय प्रतिनिधित्व हटाना है। किन्तु खंड 3 से स्पष्ट है कि यह प्रयोजन सीधे उपाय द्वारा सिद्ध नहीं होता। मैं तो बल्कि यह चाहता हूं कि यह विधेयक केवल इसी उद्देश्य के लिये होता। किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि इस समय जिस चीज की आवश्यकता है उससे कहीं अधिक बात इस विधेयक में रख दी गई है और विधि-निर्माण का यह सिद्धांत है कि एक परिस्थिति विशेष के उपचारार्थ ही विधेयक रखना चाहिये और वह अत्यन्त विस्तृत नहीं होना चाहिये। श्रीमान्, यह विधेयक अत्यधिक विस्तृत है।

इस विधेयक पर मुझे दूसरी आपत्ति यह है कि इसमें संविधान-सभा की शक्ति के स्थान पर गवर्नर-जनरल को शक्ति देने का प्रयास किया गया है। यदि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि अनुसार यह शक्तियां संविधान सभा को दी हैं तो, यह तर्कसंगत दिखाई नहीं देता कि यह शक्तियां केवल कार्यपालिका के हाथ में ही दे दी जायें।

खंड 4 के विषय में भी मुझे संदेह है। इस समय प्रथम सूची में ये शब्द हैं–

> ''रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों से सम्बद्ध राज्य-कारणों से निवारक अवरोध।''

द्वितीय सूची में, खंड इस प्रकार है—

> ''सार्वजनिक व्यवस्था के बनाये रखने से सम्बद्ध कारणों से निवारक अवरोध; ऐसे अवरोध के अधीन व्यक्ति।''

तृतीय सूची-समवर्ती सूची में ये शब्द हैं—

> ''बन्दियों तथा अभियुक्त व्यक्तियों का एक भाग से दूसरे भाग में हटाना।''

किन्तु तृतीय सूची के खंड 34 में, ये शब्द हैं—

> ''संघ के प्राधिकार के अधीन निवारक अवरोध में नजरबन्द किये गये व्यक्ति।''

यदि यह विधेयक उस दोष तक ही सीमित होता जिसका कि उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्य के अनुसार उपचार करना है तो कोई व्यक्ति इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता था। उस वक्तव्य में, हम देखते हैं कि नजरबन्दों के स्थानान्तरण में कठिनाई होने

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

के कारण यह विधेयक सभा के समक्ष रखा जा रहा है, किन्तु इस विधेयक का वास्तविक प्रयोजन उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्य में नहीं दिया गया है। वास्तविक उद्देश्य यह दिखाई देता है कि जो लोग रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों से सम्बद्ध राज्य-कारणों से निवारक अवरोध में लिये गये हैं उनके विषय में प्रांतीय सरकारों की शक्तियां छीन ली जायें। जब इस प्रकार का विधेयक पेश किया जाये तो यह अच्छा हो यदि वास्तविक प्रयोजन का स्पष्टत: उल्लेख कर दिया जाये। वास्तविक प्रयोजन उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्य में उल्लिखित प्रयोजन से भिन्न है। प्रांतीय सरकार पर कुछ अविश्वास सा प्रतीत होता है। उनकी शक्तियों को छीन लेने का प्रयास किया जा रहा है। मैं तो बल्कि यह चाहता हूं कि औपनिवेशिक सरकार की विद्यमान शक्तियों तथा प्रांतीय सरकार की शक्तियों दोनों का विस्तार कर दिया जाता। मैं तो यह समझता हूं कि प्रांतीय सरकारों को भी उन व्यक्तियों के विषय में शक्ति होनी चाहिये, जो रक्षा, विदेशी मामलों आदि के राज्य-कारणों से निवारक अवरोध में हैं और औपनिवेशिक सरकार को उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में शक्ति दी जानी चाहिये जो सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखने के सम्बन्ध में निवारक अवरोध में रखे गये हैं, क्योंकि औपनिवेशिक सरकार के पास तो अपने कारागृह हैं ही नहीं। उसके सारे नजरबन्द प्रांतीय सरकारों के कारागृह में रखे जाते हैं और यदि प्रांतीय सरकार पर अविश्वास किया जाये, तो औपनिवेशिक सरकार उनके कारागृहों में जिन व्यक्तियों को भेजे, उनके विषय में वे सरकारें जो चाहें कर सकती हैं।

इस पर मेरी आपत्ति यह है कि केन्द्रीय सरकार के नजरबन्दों और प्रांतीय सरकार के नजरबन्दों में कोई विभेद नहीं किया जाना चाहिये। मुझे स्मरण है कि 1942 में, जब कुछ नजरबन्द दिल्ली से लाहौर भेजे गये तो उनसे मिलने तथा अन्य मामलों में नियम सर्वथा भिन्न थे। दिल्ली के नजरबन्दों के साथ पंजाब सरकार के नजरबंदों की तुलना में भिन्न प्रकार का बर्ताव किया जाता था। मैं इस विभेद को पसंद नहीं करता और मैं चाहता हूं कि सब नजरबन्दों पर समान नियम लागू होने चाहियें चाहे उनके अवरोध के कारण कुछ भी हों। आखिर, जब तक न्यायालय में पेश न किया जाये नजरबन्द व्यक्ति कानून की दृष्टि में तो सर्वथा निर्दोष है, चाहे कुछ भी कारण हो। अत: नजरबन्दों के साथ समान व्यवहार होना चाहिये, चाहे वे प्रांतीय सरकार के हों अथवा औपनिवेशिक सरकार के हों। यदि यह प्रावधान न रखा जाये तो औपनिवेशिक सरकार के नजरबन्दों तथा प्रांतीय सरकारों के नजरबन्दों में विभेद होने की सम्भावना है।

इसके अतिरिक्त मैं कंडिका (बी) की आवश्यकता को नहीं समझता।

इसमें लिखा है:

> ''बंदियों, अभियुक्तों तथा सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित कारणों से निवारक अवरोध में नजरबन्दों का एक भाग से दूसरे भाग में स्थानान्तरण।''

सूची संख्या 1 की कंडिका 1 के अनुसार शांति व्यवस्था के बनाये रखने से सम्बद्ध कारणों से नजरबन्द व्यक्तियों के विषय में औपनिवेशिक सरकार को कोई शक्ति नहीं है। अत: मैं यह नहीं समझ सकता कि उनके स्थानान्तरण के विषय में यह शक्ति औपनिवेशिक सरकार को कैसे दी जा सकती है, जबकि मूलत: उसे उनको संरक्षण में रखने का अधिकार नहीं है। अत: यह तर्क के अनुसार अपेक्षित है कि आप ऐसे नजरबन्दों के सम्बन्ध में औपनिवेशिक सरकार को शक्ति दें। इसके अतिरिक्त, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों में सम्बन्ध में अथवा विशेष परिस्थितियों में, हो सकता है कि केन्द्रीय सरकार को इन शक्तियों की आवश्यकता हो। मैं जानता हूं कि यह केवल दो मासों के लिये अस्थायी उपाय है अतएव मेरे विचार में हमें संशोधन पेश करके सभा का समय नहीं लेना चाहिये। साथ ही मैं चाहता हूं कि संविधान बनाते समय हमें इन त्रुटियों से बचना चाहिये। यदि इस विधेयक का सिद्धांत नये संविधान में भी रख दिया जाये तो मुझे इसका विरोध करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। मेरी सभा से प्रार्थना है कि इस मामले का निश्चय करते समय इन सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिये।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल:** श्रीमान्, यह वास्तव में बहुत सीधी सी चीज है और इस पर इतना वाद-विवाद उचित नहीं है। इसमें इतनी बातें हैं: दो एक तो अधिनियम के प्रशासन में कुछ असंगतियों का दूर करना है और उसके लिये धारा 97 की कार्य-प्रणाली कुछ जटिल है अत: एक अधिक सरल कार्यप्रणाली का सुझाव रखा गया है। दूसरी बात उन व्यक्त्यिों को एक प्रांत से दूसरे में स्थानान्तरित करने की कठिनाई है जो कि केन्द्रीय सरकार के बन्दी हैं। उपयुक्त प्रावधान करके इस कठिनाई को दूर करने का प्रयास किया गया है। कोई बड़ा सिद्धांत इसमें नहीं है और यदि सिद्धांत का प्रश्न हो भी तो बहुत अल्पकाल के लिये है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये प्रस्तुत विधेयक पर सभा तुरन्त विचार करे।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खंड 1 से 4 तक विधेयक में जोड़ दिये गये।

शीर्षक और प्रस्तावना विधेयक में जोड़ दिये गये।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

> ''भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने वाला विधेयक सभा द्वारा निश्चित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।''

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

''कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने वाला विधेयक सभा द्वारा निश्चित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान-सभा के नियमों में नियम 38-ए (3) और 61-ए का जोड़ना

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करती हूं:

''(i) That the following amendment to the Constituent Assembly Rules be taken into consideration:

After sub-rule (2) of rule 38-A, the following sub-rule be added:

'(3) In this rule, the reference to the Government of India Act, 1935, includes reference to any enactment amending or supplementing that Act, and, in particular, reference to the India (Central Government and Legislature) Act, 1946.'

"(ii) That the provision mentioned in the Constituent Assembly Notification No. CA/76/Com/RR/48, dated the 2nd August, 1948, be made part of the Constituent Assembly Rules, as shown in the amendment below, with effect from 8.5.1948—

In Chapter X of the said rules, after rule 61 the following rule be added:

'Execution of orders as to costs—61-A. Any order made by the President under rule 61 as to costs may, except where such costs are wholly payable out of the sum deposited as security under rule 54, be produced before the principal Civil Court of original jurisdiction within the local limits of whose jurisdiction any person directed by such order to pay any sum of money has a place of residence or business, or, where such place is within the local limits of the ordinary origional civil jurisdiction of a High Court, before the Court of Small

Causes having jurisdiction there, and such Court shall execute such order or cause it to be executed in the same manner and by the same procedure as if it were a decree for the payment of money made by itself in a suit.' ''

[(1) कि संविधान-सभा के नियमों में निम्न संशोधनों का विचार किया जाये:

नियम 38-ए के उपनियम (2) के पश्चात् निम्न उपनियम जोड़ दिया जाये:

''(3) इस नियम में, भारत-शासन-अधिनियम 1935, के प्रसंग में उस अधिनियम का संशोधन अथवा अनुपूरण करने वाले किसी अधिनियम और विशेषतया भारत (केन्द्रीय-शासन और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 का प्रसंग भी समाविष्ट है।''

(2) कि संविधान-सभा की विज्ञप्ति संख्या सी.ए./76/काम/आर.आर./48, दिनांक 2 अगस्त, 1948, को 8.5.1948 से संविधान-सभा के नियमों का अंग बना दिया जाये, जैसे कि निम्न संशोधन में दिखाया गया है:

कथित नियमों के अध्याय दशम में, नियम 61 के पश्चात् निम्न नियम जोड़ दिया जाये—

''**व्यय सम्बन्धी आदेशों का कार्यान्वित होना**—61-ए व्यय के संबंध में नियम 61 के अधीन अध्यक्ष का कोई आदेश, सिवाय उस अवस्था के जबकि ऐसा व्यय नियम 54 के अधीन जमा की हुई रकम में से पूर्णत: दिया जाना हो, मौलिक क्षेत्राधिकार के उस मुख्य न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है, जिसके मौलिक अधिकार की स्थानीय सीमाओं में वह व्यक्ति रहता हो अथवा व्यापार करता हो, जिसे उस आदेश द्वारा कोई रकम जमा कराने का निर्देश दिया गया है अथवा जहां ऐसा स्थान किसी उच्च न्यायालय के साधारण मौलिक व्यवहार क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर हो, वहां उस स्थान पर क्षेत्राधिकार वाले लघुवाद न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है और ऐसा न्यायालय उस आदेश को ऐसे प्रकार और ऐसी प्रणाली से क्रियान्वित करेगा, जैसे कि वह आदेश रकम की अदायगी के विषय में हो और किसी मुकदमे में उसी ने दिया हो।'']

श्रीमान्, ये प्रस्ताव अविवादास्पद हैं और इन पर लम्बी व्याख्या अपेक्षित नहीं है। किन्तु मैं अनुभव करती हूं कि मेरा यह कर्त्तव्य है कि इन संशोधनों की आवश्यकता के विषय

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

में कुछ व्याख्यात्मक शब्द कहूं। पहले प्रस्ताव के विषय में प्रस्तावित संशोधन का उद्देश्य यह है कि संविधान-सभा के नियम 38-ए का उप नियम (1), जैसा यह इस समय है, संविधान-सभा को अधिकार देता है कि वह भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम अथवा उसके अंतर्गत दिये गये किसी आदेश, अथवा बनाये गये किसी नियम, आनियम अथवा अन्य दस्तावेजों में अथवा अनुकूल दिये गये रूप में भारत-शासन-अधिनियम 1935 में संशोधन कर सकती है। किन्तु कुछ अन्य संसदीय विधान भी हैं जो भारत-शासन-अधिनियम का अनुपूरण अथवा संशोधन करते हैं, उदाहरणार्थ भारत (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 है; और यह संदेहास्पद है कि क्या उस उपनियम में भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के प्रसंग में ऐसे विधानों का भी प्रसंग समाविष्ट है। अत: ऐसा समझा जा सकता है कि हमारे नियमों में ऐसे विधेयकों के लिये कोई प्रावधान नहीं किया गया है जिनका उद्देश्य ऐसे विधानों में संशोधन करना हो। नियम 38-ए के उपनियम (3) द्वारा, जो अब प्रस्तावित है, इस भूल को सुधारने का प्रयास किया गया है।

यह केवल यह औपचारिक प्रावधान है अतएव इस पर अधिक विस्तृत विवरण की आवश्यकता नहीं है।

दूसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि इस संशोधन की आवश्यकता इस प्रकार उत्पन्न हुई कि संविधान-सभा के नियमों में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसमें निर्वाचन विषयक व्यय को उस अवस्था में वसूल करने की प्रणाली उल्लिखित हो जबकि वह व्यय जमानत की रकम में से वसूल न किया जा सकता हो। अब तक इस प्रकार के मामलों में भारतीय निर्वाचन तथा जांच अधिनियम, 1920 की धारा 12 का प्रयोग होता था, जिसमें यह व्यवस्था थी कि किसी विधान-मंडल की सभा के निर्वाचन के संबंध में जांच करने के लिये नियुक्त कमिश्नरों की रिपोर्ट पर केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों द्वारा दिये गये व्यय संबंधी आदेश को क्रियान्वित किया जा सकता है। किन्तु एक कठिनाई थी कि उक्त अधिनियम केवल प्रांतों में ही लागू किया गया था, किसी देशी राज्य में नहीं। अत: धारा 12 की कार्यप्रणाली उन मामलों पर लागू नहीं होती थी जिनमें प्रतिवादी किसी देशी राज्य का प्रजाजन हो। अत: माननीय अध्यक्ष ने इस प्रकार का प्रावधान करना आवश्यक समझा और अब इसे संविधान-सभा के नियमों में रखा जाना है जैसे कि पहले प्रकाशित की गई विज्ञप्ति में इंगित था।

इस संशोधन के दो प्रभाव हैं: क्योंकि संविधान-सभा सर्वसत्ताधारी निकाय है, अत: यह प्रावधान समस्त भारत के प्रदेशों में लागू होगा और यह भी बात है कि उसका वही प्रभाव होगा जोकि विधान-मंडल द्वारा पारित किसी कानून का होता है। यह समस्त न्यायालयों

को भी मानना होगा, चाहे वे किसी प्रांत में हों अथवा किसी देशी राज्य में हों। श्रीमान्, मैंने इस प्रस्ताव में जो संशोधन रखे हैं उनका यही उद्देश्य है और यही उनके प्रभाव होंगे। श्रीमान्, मैं अपने प्रस्ताव को पेश करती हूं और परिषद से अनुरोध करती हूं कि इसे स्वीकार कर ले।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, प्रस्तावित नये नियम 61-ए के जोड़ने के विषय में मैं कुछ कठिनाई का अनुभव करता हूं। मुझे नियम के सिद्धांत पर कोई आपत्ति नहीं है। वरन् मैं यह मानता हूं कि कुछ ऐसा प्रावधान अपेक्षित है। मुझे तो यह कठिनाई है कि यह किस स्थान पर रखा जाना चाहिये और इसका क्या रूप होना चाहिये। यह नियम व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता के संशोधन के रूप में है। अध्यक्ष व्यय देने का आदेश दे सकता है; और इस नियम में ऐसी व्यवस्था करने का प्रस्ताव है जिससे व्यय वसूल किया जो सके। इसमें कहा गया कि निर्वाचन सम्बन्धी व्यय उस रकम में से वसूल किया जाना चाहिये जो जमा की गई है और जिस हद तक व्यय उस जमा कराई हुई रकम में से वसूल न हो, वह रकम उस आदेश को समुचित न्यायालय के समक्ष पेश करके वसूल की जा सकती है जैसे कि यह धनराशि के लिये डिग्री हो। मेरा निवेदन है कि यह तो वास्तव में व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता में संशोधन करने का प्रयास है इसमें प्रावधान है कि अध्यक्ष के आदेश को क्रियान्वित किया जाये, जो कि उस संहिता में प्रावहित नहीं है और इस नियम का व्यावहारिक प्रभाव उस संहिता का संशोधन होगा। किन्तु मुझे इस प्रकार के नियम के औचित्य में संदेह है।

मैं तो सभा से इस प्रश्न पर विचार करने के लिये कहना चाहता हूं कि क्या इस सभा की कार्यप्रणाली के नियमों में संशोधन करने का यह प्रभाव होगा कि अध्यक्ष द्वारा दिये गये व्यय संबंधी आदेशों को क्रियान्वित करने का क्षेत्राधिकार वास्तव में न्यायालयों में निहित हो जाये। व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता को तो केवल संशोधन-अधिनियम द्वारा ही बदला जा सकता है। हम इस सभा में पहले ही यह निर्णय कर चुके हैं कि यह सभा दो भिन्न-भिन्न रूपों में समवेत होगी—एक तो संविधान निर्मातृ सभा के रूप में जैसे कि यह अब यह है दूसरे कानून निर्मातृ सभा के रूप में दूसरे सदन में। हमने यह भी निश्चय किया है कि इस सभा में भारत-शासन-अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम का संशोधन किया जा सकता है और हमने अभी इस सभा में भारत-शासन-अधिनियम, 1935 में संशोधन करने के लिये एक विधेयक पारित किया है। व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता के प्रस्तावित संशोधन के विषय में समुचित कार्यप्रणाली यह है कि एक विधेयक द्वारा उस संहिता में वास्तविक सीधा संशोधन किया जाये और यदि यह उपाय वांछनीय समझा जाये तो उसका समुचित स्थान यह सभा विधायिनी सभा के रूप में है जहां उचित विधेयक पेश हो सकता है। यदि इसे इतना आवश्यक समझा जाये कि यह प्रावधान तत्काल ही कानून-ग्रंथ में होना ही चाहिये, तो गवर्नर-जनरल से कहा जाये कि वे एक अध्यादेश जारी

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कर दें और उचित समय में इस अध्यादेश के स्थान पर एक स्थायी कानून बनाकर व्यवहार-कार्यप्रणाली संहिता में उचित संशोधन कर दिया जाये। जैसा कि मैंने निवेदन किया है, कठिनाई यह है कि क्या हमारे कार्यप्रणाली नियमों के संशोधन से न्यायालयों को वास्तव में अपेक्षित प्राप्त हो जायेगा। सक्षम प्राधिकारी इस स्थिति को स्पष्ट करें।

इसके अतिरिक्त कई गम्भीर प्रकार की वाक्य-रचना संबंधी त्रुटियां है जिनके कारण यह नियम, बंधनकारी हो भी, तब भी कई मामलों में प्रभावपूर्ण हो जायेगा। यह प्रावधान किया गया है यदि उस स्थान पर, जहां वह व्यक्ति रहता हो जिससे रुपया वसूल करने का आदेश दिया गया है, कोई उच्च न्यायालय न हो तो उस क्षेत्र में मौलिक न्यायाधिकार वाला उच्चतम न्यायालय उस व्यय संबंधी आदेश को क्रियान्वित करेगा, अर्थात् जिला न्यायाधीश का न्यायालय उस आदेश को क्रियान्वित करेगा। जो व्यक्ति उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में रहते हैं, उनके विषय में वेलघुवाद न्यायालय उस आदेश को क्रियान्वित करेंगे जिनका वहां क्षेत्राधिकार है। यहां कुछ गड़बड़ है। दो प्रकार के उच्च न्यायालय होते हैं—एक तो प्रेसीडेन्सी के नगरों में स्थित न्यायालय और कुछ वे जो अन्य स्थानों पर स्थित हैं। नये उपनियम को बताते समय इस मूलभूत अन्तर की उपेक्षा कर दी गई है। प्रेसीडेन्सी नगरों—बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता—में प्रेसीडेंसी खफीफा न्यायालय हैं और उन उच्च न्यायालयों के मौलिक क्षेत्राधिकार में रहने वाले व्यक्तियों के विषय में तो कोई कठिनाई नहीं होगी और वहां लघुवाद न्यायालय व्यय-संबंधी आदेशों को क्रियान्वित कर देंगे। किन्तु अन्य उच्च न्यायालय हैं जो प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित नहीं है जैसे युक्तप्रांत में इलाहाबाद, मध्यप्रांत में नागपुर, बिहार में पटना, पूर्वी पंजाब में शिमला और आसाम में शिलांग, जहां कि प्रेसीडेंसी लघुवाद कानून लागू नहीं है और जहां कोई प्रेसीडेंसी खफीफा न्यायालय नहीं हैं वहां वही जिला न्यायाधीश के व्यवहार न्यायालय हैं, किन्तु लघुवाद न्यायालय नहीं है जैसे कि प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित उच्च न्यायालयों के मौलिक क्षेत्राधिकार में हैं। प्रेसीडेंसी लघुवाद न्यायालय अधिनियम (1882 के अधिनियम 15) की धारा 5 में प्रावहित है कि कलकत्ता, मद्रास और बम्बई इनमें से प्रत्येक नगर में एक लघुवाद न्यायालय होगा। अन्य नगरों में जहां कि उच्च न्यायालय हैं, कोई लघुवाद न्यायालय नहीं होगा। अतः जो उच्च न्यायालय प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित नहीं है उनके संबंध में कोई लघुवाद न्यायालय नहीं होगा जो इन आदेशों को क्रियान्वित कर सके।

इन उच्च न्यायालयों में, जो प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित नहीं हैं, ऐसे लघुवाद न्यायालय नहीं हैं। प्रेसीडेंसी नगरों के विषय में लघुवाद न्यायालयों के वैत्तिक क्षेत्राधिकार की भी

कुछ सीमा होती है। हो सकता है कि व्यय का आदेश ऐसी रकम के लिये हो जो कि प्रेसीडेंसी नगर के इन न्यायालयों के वैत्तिक क्षेत्राधिकार से अधिक हो। यही कठिनाइयां हैं जो मेरे ध्यान में आती हैं और इन्हीं कारणों से मैंने इसे निकाल देने का एक प्रस्ताव भेजा था जिसे इस आधार पर कि वह नियमों के विरुद्ध उचित प्रकारेण रद्द कर दिया गया। किन्तु मैं इस कठिनाइयों को बता देना चाहता हूं और स्पष्टीकरण मांगता हूं और चाहता हूं कि यदि ऐसा अपेक्षित हो तो इस नियम को अभी रहने दिया जाये और परम श्रेष्ठ गवर्नर-जनरल से एक अध्यादेश जारी करने के लिये कहा जाये और तत्पश्चात् समुचित सदन में एक अधिनियम पारित कर दिया जाये। यह कार्यप्रणाली संबंधी कठिनाइयां हैं जिन पर इस नियम की भाषा निश्चित करते समय स्पष्टत: विचार नहीं किया गया। यह मामले हैं जिन पर परिषद् के सक्षम वकीलों द्वारा विचार करना और कोई हल ढूंढना अपेक्षित है। मैं तो केवल यही निवेदन करना चाहता हूं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्रीमान्, मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जो कठिनाई बताई है वह तो जरा भी गम्भीर कठिनाई नहीं है। मैं यह व्याख्या कर दूं कि हमारा विधान-मंडल कोई ऐसा प्रावधान नहीं बना सकता जो समस्त देशी राज्यों पर लागू हो सके। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह बात पक्की करना है कि वह आदेश सारे न्यायालयों पर बंधनकारी हो और देशी राज्यों में भी लागू हो, यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, यदि यह संशोधन न किया जाये। वास्तव में विधान-मंडल कोई ऐसा प्रावधान बनाने के लिये सक्षम नहीं है, जो समस्त देशी राज्यों में लागू हो सके। केवल यही सर्वसत्ताधारी निकाय उस नियम में संशोधन कर सकता है। भारतीय संविधान-सभा के नियमों में पहले भी एक प्रावधान, नियम 52 है, जिसमें कहा गया है कि कोई न्यायालय किसी निर्वाचन पर आपत्ति नहीं कर सकता। इससे न्यायालयों का क्षेत्राधिकार समाप्त हो गया। अत: यह संशोधन करना पूर्णत: इस सभा की क्षमता में है। मैं नहीं समझती कि मि. नजीरुद्दीन अहमद को जिस कठिनाई की आशंका है उससे कोई भी रोड़ा अटकेगा। मुझे आशा है कि मेरी इस व्याख्या से वे संतुष्ट होंगे।

***अध्यक्ष:** अब मैं दोनों प्रस्तावित संशोधनों पर अलग-अलग मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

> ''(1) नियम 38-ए के उपनियम (2) के पश्चात् निम्न उपनियम जोड़ दिया जाये:
>
> '(3) इस नियम में, भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के प्रसंग में उस अधिनियम का संशोधन अथवा अनुपूरण करने वाले किसी अधिनियम और विशेषतया भारत केन्द्रीय शासन और विधान-मंडल अधिनियम, 1946 का प्रसंग भी समाविष्ट है।' ''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''(2) कि विधान-परिषद् की विज्ञप्ति संख्या सी.ए./76/काम./आर.आर./48, दिनांक 2 अगस्त 1948 को 8.5.1948 से संविधान-सभा के नियमों का अंग बना दिया जाये, जैसे कि निम्न संशाधन में दिखाया गया है: कथित नियमों के अध्याय 10 में नियम 61 के पश्चात् निम्न नियम जोड़ दिया जाये:

व्यय संबंधी आदेशों का कार्यान्वित होना—61-ए व्यय के संबंध में नियम 61 के अधीन अध्यक्ष का कोई आदेश, सिवाय उस अवस्था के जबकि ऐसा व्यय नियम 54 के अधीन जमा की हुई रकम में से पूर्णत: दिया जाना हो, मौलिक क्षेत्राधिकार के उस मुख्य न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है जिसके मौलिक अधिकार की स्थानीय सीमाओं में वह व्यक्ति रहता हो, अथवा व्यापार करता हो, जिसे उस आदेश द्वारा कोई रकम जमा करने का निर्देश दिया गया है अथवा जहां ऐसा स्थान किसी उच्च न्यायालय के साधारण मौलिक व्यवहार क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर हो, वहां उस स्थान पर क्षेत्राधिकार वाले लघुवाद न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है और ऐसा न्यायालय उस आदेश का ऐसे प्रकार और ऐसी प्रणाली से क्रियान्वित करेगा, जैसे कि वह आदेश रकम की अदायगी के विषय में हो और किसी मुकदमे में उसी ने दिया हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान का मसौदा—*जारी*

***अध्यक्ष:** अब हम भारत के संविधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करेंगे।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): सभापति जी, इसके पहले कि आप संविधान की धाराओं को लेवें मैं आपके सामने एक विषय पेश करना चाहता हूं, क्योंकि यह अधिवेशन हमारी संविधान सभा का आखिरी अधिवेशन है। आपने 2 मई सन् 1947 को इसी धारा सभा में यह घोषणा की थी कि:

''मैं सोच रहा था कि हम संविधान का मसविदा तैयार होने पर जितनी जल्दी हो सके, उसका अनुवाद करा लें और अन्त में उसे अपने मौलिक विधान के रूप में पास करें। यदि कहीं भावार्थ लगाने में कोई अस्पष्टता या कठिनाई पेश आई तो अंग्रेजी प्रति भी हवाले के लिये सामने रहेगी, पर मैं व्यक्तिगत रूप में यह चाहता हूं कि संविधान मौलिक रूप में हमारी मुख्य भाषा में हो, अंग्रेजी में नहीं, जिससे हमारे भावी न्यायाधीश अपनी भाषा पर निर्भर हो सकें, विदेशी भाषा पर नहीं।''

इसके बाद मैंने अभी सभी अहिंदी भाषा-भाषी प्रांतों का दौरा किया। मैं बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, आसाम, बंगाल, उड़ीसा, केरल, आंध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, मैसूर, ट्रावनकोर, हैदराबाद गया। सब जगह लोग मुझे एक ही राय के मिले कि हमारा मूल संविधान हमारी राष्ट्र-भाषा में होना चाहिये। हिंदी भाषा-भाषियों का तो मत हम जानते ही हैं। आपने अभी इस संबंध में जो कमेटी बनाई है, उस कमेटी के विषय में भी मुझे मालूम है कि जितनी धारायें हम यहां पास कर चुके हैं, उनका अनुवाद हिंदी में हो चुका है।

मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि आगे कोई दिक्कत न हो, इसलिये यह मुनासिब होगा कि अंग्रेजी धाराओं के साथ-साथ हम अपनी राष्ट्र-भाषा की धाराओं को भी लेते जायें, जिसमें कि हमारा संविधान राष्ट्र-भाषा में भी बन जाये और आपके कथनानुसार ही वह मूल हो, मुख्य हो। यह प्रश्न हमें इसी समय तय कर लेना चाहिये नहीं तो हम आगे चलकर बहुत दिक्कत में पड़ेंगे। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस संबंध में कुछ न कुछ निर्णय हो जाना जरूरी है।

***अध्यक्षः** यह सत्य है कि वाद-विवाद में एक बार मैंने यह वक्तव्य दिया था जिसकी चर्चा की गई है। उसी के अनुसार मैंने मसौदे का अनुवाद तैयार करने के लिये, जो मूलरूप में अंग्रेजी भाषा में बनाया गया था, समितियां नियुक्त की थीं। कुछ सज्जनों ने तीन अनुवाद तैयार किये थे, एक हिंदी में, एक जिसे हिंदुस्तानी कहा जाता है उसमें और तीसरा जिसे उर्दू कहा जाता है उसमें। यह तीनों अनुवाद मुद्रित कर दिये गये थे और मुझे विश्वास है कि सदस्यों को प्रतियां भेज दी गई। किंतु मैं समझता हूं कि इनमें से कोई भी मसौदा बहुत से सदस्यों को स्वीकार्य नहीं था और स्टीयरिंग समिति ने एक प्रस्ताव पारित करके मुझे कहा कि मैं एक और अनुवाद तैयार करने के लिये, जो यथासम्भव शुद्ध हो किंतु साथ ही जनसाधारण की समझ में भी आ जाये, एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त करूं। मैंने वह समिति नियुक्त कर दी और वह समिति इस समय अपना कार्य कर रही है। मुझे विश्वास नहीं है कि उस समिति ने उन अनुच्छेदों का भी, जो अब तक इस सभा में स्वीकृत था पारित हो चुके हैं, अंतिम रूप में अनुवाद पूरा कर लिया है। उस दिन मैं उस समिति की एक बैठक में था और मैंने देखा कि ऐसे एक अनुच्छेद पर वाद-विवाद कर रहे थे जो कुछ पहले आता है। तब से कुछ प्रगति अवश्य हुई होगी किंतु मुझे पूरा पता नहीं है कि वे अब तक कितना आगे पहुंचे हैं। मैं तो अब भी अपने मत पर दृढ़ हूं—मुझे पता नहीं कि इस सभा के समस्त सदस्य मुझसे सहमत हैं या नहीं—किंतु मैं अब भी अपने मत पर दृढ़ हूं कि यदि हम अपने संविधान को मौलिक रूप में अपनी ही भाषा में पारित करें तो यह हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सम्मान के अनुकूल होगा, *(करतल ध्वनि)* किंतु मैं देखता हूं कि यह कठिनाई इन सब मासों में हमारे समक्ष रही है और मैं केवल आशा मात्र कर सकता हूं कि अब जो समिति नियुक्त की गई है वह हमें एक संतोषजनक अनुवाद ठीक समय पर दे सकेगी जिससे उसे इस सभा में पेश करके

[अध्यक्ष]

पास करवाया जा सके। आज मैं यह बात नहीं कह सकता, किंतु ज्योंही मुझे वह अनुवाद प्राप्त होगा मैं उस मामले को सभा के समक्ष रखूंगा।

***श्री एम. थिरूमाला राव** (मद्रास : जनरल): मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान्, हिंदी में संतोषजनक अनुवाद उपलब्ध हो जाने की स्थिति में क्या यह विचार है कि इस संविधान को अंग्रेजी में स्वीकार करने की बात रहने दी जायेगी।

***अध्यक्ष:** मैं ऐसा नहीं समझता, क्योंकि मूल मसौदा अंग्रेजी भाषा में तैयार हुआ है और इसे स्वीकार करना है, किंतु यदि अनुवाद संतोषजनक हो जाये तो हम संविधान को अपनी भाषा में भी स्वीकार कर सकते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं इसका यह अर्थ लगाता हूं कि यदि ऐसा हो भी, तो इस पर समुचित वाद-विवाद किया जायेगा, क्योंकि शायद हममें से कई सदस्य उस हिन्दी अनुवाद पर संशोधनों के सुझाव पेश करे।

***अध्यक्ष:** हां, सभा के प्रत्येक सदस्य को अधिकार होगा कि वह अनुवाद पर संशोधन पेश करे, जहां तक उसकी भाषा का संबंध है, किंतु उसके तत्व पर नहीं कर सकते, क्योंकि तत्व अंग्रेजी भाषा में स्वीकृत हो चुकेगा।

अब हम संविधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करेंगे। सभा ने अनुच्छेद 67 पर विचार किया है। अब हम आगे चलेंगे। स्टीयरिंग समिति का मत था कि हम निर्वाचन सम्बन्धी अनुच्छेदों को पहले स्वीकार कर लें। मैं समझता हूं कि यही सभा की भी इच्छा है। किंतु मुझे पता लगा है कि उन अनुच्छेदों को आज लेना सम्भव न होगा और हम उन्हें कल ले सकते हैं। आज हम अनुच्छेद 68 से आरंभ करेंगे और निर्वाचन संबंधी केवल ऐसे अनुच्छेदों को लेंगे जो आज के वाद-विवाद में आते हों और जो बाद में आयेंगे उन्हें कल लेंगे।

एक अनुच्छेद है जिसकी सूचना संशोधन के रूप में दी गई है, वह है 67-ए। पहले इसे लिया जायेगा।

नया अनुच्छेद 67-ए

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 67 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:
>
> '67:A. (1) The President may nominate persons not exceeding three in number to assist and advise the Houses of Parliament in connection

with any particular Bill introduced or to be introduced in either House of Parliament.

(2) Every person so nominated in connection with any particular Bill shall, in relation to the said Bill, have the right to speak in, and otherwise to take part in the proceedings of either House and any joint sitting of the Houses of Parliament and any Committee of Parliament of which he may be named a member, but shall not, by virtue of such nomination, he entiteled to vote nor shall he be entitled to speak in or otherwise to take part in the proceedings of either House or any joint sitting of the Houses or any Committee of Parliament in relation to any other matter.' ''

[67-ए (1) संसद के किसी सदन में पेश किये गये अथवा किये जाने वाले किसी विशेष विधेयक के संबंध में संसद के सदनों की सहायता करने अथवा उन्हें मंत्रणा देने के लिये राष्ट्रपति तीन से अनधिक व्यक्ति मनोनीत कर सकता है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को, जो इस प्रकार किसी विधेयक के संबंध में मनोनीत किया जाये, उस विधेयक के संबंध में, किसी सदन में और संसद के सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में जिसका सदस्य उसे बना दिया जाये बोलने का तथा कार्यवाही अन्यथा में भाग लेने का अधिकार होगा, किन्तु ऐसे मनोनयन के कारण उसे किसी सदन में अथवा संसद के सदनों की किसी संयुक्त बैठक में अथवा संसद की किसी समिति में किसी अन्य विषय के संबंध में बोलने का अथवा कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार नहीं होगा।]

श्रीमान्, इस अनुच्छेद को संविधान में रखने की आवश्यकता यह है: सभा को स्मरण होगा कि द्वितीय सभा के निर्माण की चर्चा पहले संघीय संविधान समिति की रिपोर्ट की कंडिका 14 में की गई थी।

उस कंडिका में कहा गया था कि मसौदा-समिति को आयर की व्यवस्था को नमूने के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिसके अनुसार द्वितीय सदन के 15 सदस्यों को विज्ञान, साहित्य, कृषि, यंत्रकला आदि विभिन्न हितों द्वारा निर्मित तालिका में से मनोनीत किया जायेगा। जब मसौदा-समिति ने इस पर विचार किया, तब तक श्रीमान्, बी.एन. राव, जो भ्रमणार्थ गये थे, श्री डी.एल. वलेरा और आयर सरकार के अन्य सदस्यों से बात कर चुके थे कि आयरलैंड में प्रचलित यह व्यवस्था किस हद तक सफल हुई है और उन्हें

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बताया गया कि तालिका प्रणाली पूर्णत: असफल रही है, अत: मसौदा-समिति ने संघीय संविधान-समिति की रिपोर्ट की कंडिका 14 में सुझाये गये प्रावधान को हटा देने का निश्चय कर लिया और एक सादा उपाय का सुझाव दिया कि राष्ट्रपति को यह अधिकार दे दिया जाये कि वह द्वितीय सदन में 15 व्यक्तियों को नियुक्त करें जो विशेष ज्ञान अथवा विज्ञान, साहित्य और सामाजिक सेवाओं के व्यावहारिक अनुभव के प्रतिनिधि हों। मसौदा-समिति ने मसौदा तैयार कर लिया उसके पश्चात् इस विचार पर संघीय विधान-समिति ने फिर पुनर्विचार किया और उस अधिवेशन में समिति ने यह सुझाव दिया कि मनोनयनों की कुल संख्या को जो पहले 15 तक सीमित थी दो श्रेणियों में विभाजित किया जाये, अर्थात् कुछ लोग ऐसे हों जो परिषद् के पूर्ण सदस्य हों और उन्हें विशेष ज्ञान और कला, विज्ञान, साहित्य तथा सामाजिक सेवाओं का व्यावहारिक अनुभव हो और तीन अन्य व्यक्तियों को मनोनीत किया जाये जो किसी विशेष विषय पर, जो उस समय संसद् के विचाराधीन हो, संसद को सहायता तथा मंत्रणा दें।

संघीय संविधान-समिति के दूसरे अधिवेशन की सिफारिश के प्रथम भाग को अनुच्छेद 67 में निहित कर दिया गया है जिसे सभा पारित कर चुकी है। संविधान में इस अनुच्छेद को तो इसलिये रखने का प्रस्ताव है कि संघीय संविधान-समिति की सिफारिश के दूसरे भाग को लागू करना है। माननीय सदस्य देखेंगे कि इस अनुच्छेद से उसके अधीन मनोनीत सदस्यों के कृत्य सीमित हो जाते हैं। उसके कृत्य परिषद् को एक विशेष विषय पर परामर्श देना तथा उनकी सहायता करना है जो परिषद् के समक्ष हों; दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 67-ए के अधीन जो सदस्य मनोनीत किये जायेंगे, उनकी पदावधि और कालावधि उस विशेष विधेयक के वाद-विवाद की अवधि के अनुसार ही होगी जिसके संबंध में राष्ट्रपति उन्हें परिषद् की सहायतार्थ तथा परामर्श के लिये मनोनीत करे।

अनुच्छेद 67-ए की दूसरी कंडिका से आप देखेंगे कि उन्हें केवल वाद-विवाद में भाग लेने का ही अधिकार है, चाहे वह वाद-विवाद समस्त परिषद् में हो अथवा किसी समिति विशेष में हो जिसमें परिषद् उन्हें सदस्य मनोनीत कर दे; किन्तु उन्हें मत देने का जरा भी अधिकार नहीं है, जिससे कि इन तीन सदस्यों को बढ़ा देने से परिषद् के मतदाताओं की संख्या में नि:संदेह कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि सभा अनुच्छेद 67-ए में निहित नये प्रावधान को स्वीकार करेगी। मैं सभा को बता देता हूं कि अनुच्छेद 67-ए में परिषद् के लिये विशेषज्ञों को मनोतीत करने का जो प्रावधान है वह नया जरा भी नहीं है। सभा के जिन सदस्यों को भारत-शासन-अधिनियम 1919 के प्रावधानों का ज्ञान है वे जानते हैं कि जब उस अधिनियम के अनुसार सदन में जनता का प्रतिनिधित्व रखा गया,

तब तक और प्रावधान भी रख दिया गया जिससे विभिन्न प्रांतों के गवर्नरों को अधिकार दिया गया था कि वे किसी विशेष मामले पर विशेषज्ञ नियुक्त कर सकते हैं जब सदन उस मामले पर विचार कर रहा हो। मेरे विचार में यह लाभदायक प्रावधान है और यदि संविधान में ऐसा प्रावधान रखा गया तो यह बहुत अच्छी चीज होगी।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं आपको यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जहां तक नये प्रावधान का संबंध है, इसकी कोई सूचना पहले नहीं दी गई थी और हम नहीं जानते थे कि ऐसा प्रावधान सभा के समक्ष आने वाला है। हमें जो मुद्रित पुस्तक दी गई है उसमें यह नहीं है। हमें इसके अस्तित्व के विषय में प्रथम बार ही पता लगा है। इन परिस्थितियों में मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस धारा को स्थगित कर दें, जिससे हम न इस उचित संशोधनों की सूचना दे सकें। जहां तक अनुच्छेद 67-ए के प्रावधानों का संबंध है, वे सरसरी तौर पर देखने पर अत्यधिक विस्तृत दिखाई देते हैं। हमने अभी सुना है कि इन मनोनीत व्यक्तियों की शक्तियां उस विधेयक विशेष के वाद-विवाद के अवधि के बराबर ही होंगी, किंतु इसका संकेत करने के लिये इस धारा में कुछ उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार मैं समझता हूं कि 'उक्त विधेयक के संबंध में' ये शब्द बहुत विस्तृत हैं। मैं समझ सकता हूं कि परिषद् यह मान ले कि इन विशेषज्ञों को नियुक्त कर दिया जाये और फिर उनकी शक्तियां उसी अवधि तक सीमित हों जिसमें वह विधेयक विधान-मंडल के कार्यक्रम में रहे और उसी हद तक कि विधेयक पर विचार किया जा रहा हो। 'उक्त विधेयक के संबंध में' इन शब्दों का यह अर्थ हो सकता है कि जब भी इस प्रकार के किसी प्रावधान को लिया जाये, इसके संबंध के किसी मामले.....

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): माननीय सदस्य की आवाज सुनाई नहीं दे रही है।

***अध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य चाहते हैं कि इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद स्थगित रहे?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** बिल्कुल।

***अध्यक्षः** क्या सभा की भी यही इच्छा है कि यह स्थगित रहे?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अभी हम वाद-विवाद कर सकते हैं और यदि मसौदा-समिति इस पर पुनर्विचार करना चाहे तो हम बाद में ऐसा कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** सुझाव यह है कि यह चीज पहले सदस्यों को नहीं भेजी गई थी। सदस्य समय चाहते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि सभा चाहती है कि इस विषय पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाये, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** हम आज इसे स्थगित कर देते हैं और हम इस पर बाद में विचार करेंगे।

अनुच्छेद 68

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 68 विधान का भाग हो।''

अब हम इस अनुच्छेद के संशोधनों को लेंगे।

(संशोधन संख्या 1453 और 1454 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1455 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में है। मेरे विचार में वह शाब्दिक संशोधन है। क्या आप इसे पेश करना चाहेंगे। इन शाब्दिक संशोधनों के विषय में मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर को एक सुझाव देने वाला हूं। उनके संबंध में वे उनकी सूचना देने वाले सदस्यों के साथ बातचीत करके विचार कर सकते हैं और जिन्हें स्वीकार करना हो उनके विषय में जब सदन में प्रस्ताव पेश हो तब उन्हें स्वीकृत ही मान लिया जाये, किंतु हां, जिन्हें स्वीकार न करना हो उनके विषय में हमें विचार करना होगा कि उनका क्या किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मसौदा-समिति को शायद इस प्रणाली का अनुसरण करने में बहुत प्रसन्नता होगी।

अध्यक्ष: इससे बहुत समय बचेगा और मैं इन सब शाब्दिक संशोधनों और वाक्य-रचना संबंधी संशोधनों को और ऐसे संशोधनों को जो अनुच्छेद के सार से सम्बद्ध नहीं है, छोड़ दूंगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** नहीं, श्रीमान्। यह वाक्य-रचना संबंधी नहीं है।

***अध्यक्ष:** संशोधन में है कि 'तीसरा' शब्द के स्थान पर 'दूसरा' यह शब्द हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं इसे पेश नहीं करता।

(संशोधन संख्या 1457, 1458, 1460 और 1461 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1459 लगभग वाक्य-रचना संबंधी है। संशोधन संख्या 1462 शाब्दिक है। संशोधन संख्या 1463 वाक्य-रचना संबंधी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में अंग्रेजी के शब्दों 'by the President' के स्थान पर 'by Parliament by law' ये शब्द रख दिये जायें।''

मैंने जो संशोधन पेश किया है उसके लिये कोई व्याख्या देना अपेक्षित नहीं है। आप देखेंगे कि विद्यमान में इस खंड के अनुसार संसद के जीवन को बढ़ाने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी। यह अनुभव होता है कि यह साधारण वैधानिक प्रावधानों पर ऐसा आक्रमण है कि ऐसी शक्ति वास्तव में संसद में निहित होनी चाहिये और संसद को यह अधिकार देना चाहिये कि वह अपना जीवन बढ़ाने के लिये विधि द्वारा ऐसा प्रावधान करे और प्रस्ताव आदि किसी अन्य उपाय से न करे।

(संशोधन संख्या 1460 पर संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1465 : वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में आ गया। इसे लेना अपेक्षित नहीं है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में, अंत के विराम के स्थान पर अर्धविराम (;) रख दिया जाये और निम्न शब्द जोड़ दिये जाये:
>
> 'Provided further that the People's House, elected after the Proclamation has ceased to operate, shall hold office only for the balance of the period of 4 years for which it would have been elected if the dissolution had taken place in the normal course under this section. The same provision shall apply to any Parliament elected after the dissolution of its predecessor if it had been dissolved before the completion of the normal term of 4 years.' ''
>
> [परन्तु आगे यह भी कि उद्घोषणा के प्रवर्त्तन की समाप्ति के पश्चात् चुनी हुई लोक सभा चार वर्षों की उस अवधि के शेष भाग के लिये ही अधिकारयुक्त रहेगी जिसके लिये कि वह चुनी जाती, यदि विघटन इस धारा के अधीन सामान्यत: होता। यही प्रावधान उस संसद के लिये लागू होगा जो अपनी पूर्ववर्त्ती संसद के विघटन के बाद चुनी जाये, यदि वह 4 वर्ष की सामान्य अवधि की समाप्ति के पूर्व ही विघटित हो जाये।]

इस संशोधन का सुझाव रखने में, मैं दो सिद्धांतों पर बल देना चाहता हूं एक तो यह कि किसी महान् राष्ट्रीय संकटकाल के पश्चात् या तुरन्त पश्चात् निर्वाचित कोई संसद सम्भवत: उस संकटकाल के कारण ही प्रभावित होगी। अत: यदि वह पूरी अवधि के लिये निर्वाचित हो और शेष रहे हुए समय के लिये न हो तो यह सम्भव है कि ऐसी संसद को उन मामलों का निर्णय करना होगा जो उस सामान्य चुनाव में, जिसके द्वारा वह चुनी गई है, उठे ही न हों अथवा बहुत तुच्छ रूप में ही उठे हों। मेरे विचार में,

[प्रो. के.टी. शाह]

यदि संसद को उन लोकप्रिय भावनाओं तथा प्रश्नों की प्रतिनिधि तथा प्रतिबिम्ब होना है तो इसकी अवधि इतनी लम्बी नहीं होनी चाहिये कि वह लोक-भावनाओं से पूर्णत: सम्पर्क में न रहे, जो कि समय-समय पर परिवर्तनशील परिस्थितियों में बदलती रहती है। अत: यह अत्यंत महत्त्व की बात है कि संसद का जीवन अत्यधिक लम्बा नहीं होना चाहिये।

एक पिछले संशोधन द्वारा मैंने संसद की अवधि चार वर्ष करने का प्रयत्न किया था। किन्तु वह अपेक्षाकृत कम महत्त्व की चीज होने के कारण मैंने उस संशोधन को पेश करना आवश्यक नहीं समझा। किन्तु, यहां मैं इस बात पर बल देना चाहता हूं कि संकटकाल के पश्चात्, किंतु संकटकाल का प्रभाव समाप्त होने से पूर्व संसद चुनी जायेगी, यह बात महत्त्वपूर्ण है और हमें यह संसद केवल उस शेषावधि के लिये चुननी चाहिये जिसके लिये उसकी पूर्ववर्त्ती संसद चुनी जाती और जो अवधि शेष रह गई है।

जैसा मैं पहले कह चुका हूं, इसका कारण यह है कि गम्भीर संकटकाल के दबाव में निर्वाचित संसद, उस संकटकाल के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण जनता की सामान्य भावनाओं को प्रतिबिम्बित न करेगी, विशेषतया जबकि वह संकटकाल इतना भयानक था कि उद्घोषणा करनी पड़ी अथवा संविधान को भी स्थगित करना पड़ा। अत: यह सर्वोत्तम उपाय है कि लोगों का तथा जनमत का प्रतिनिधित्व उचित प्रकारेण प्राप्त करने के लिये, संसद केवल शेषकाल के लिये ही चुनी जाये।

यदि वह सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाये, तो मेरे विचार में अगला खंड केवल एक तर्कसंगत परिणाम होगा। अर्थात्, हर बार, संकटकाल-स्थिति की उद्घोषणा के पश्चात्, जो भी संसद चुनी जाये वह शेषकाल के ही लिये चुनी और पूरी अवधि के लिये न चुनी जाये जैसा कि सामान्यत: संविधान के अधीन निर्देशित होगा।

मेरे विचार में, यह भी ठीक ही होगा, यद्यपि मैं उसका अधिक महत्त्व नहीं समझता, किंतु हमारे वैधानिक विकास में एक सानुरूपता बनाने रखने के लिए ठीक ही रहेगा कि लोकप्रिय विधान-मंडल की सामान्य अवधि पांच वर्ष ही रहे और इस प्रकार नियमित क्रम से पंचवर्षीय अवधि की पुनरावृत्ति हो और यदि बीच में किसी संकटकाल के कारण बाधा पड़ जाये, जैसाकि इस धारा में प्रावधान है तो उसका यह उपचार हो कि नई संसद केवल उस शेषकाल के लिये चुनी जाये, जो संकटकाल के समय शेष हो।

मेरे विचार में यह अत्यन्त सादी सी बात है और यदि इसे स्वीकार कर लिया जाये, तो इससे संसद लोक-भावनाओं से अधि पूर्ण अवगत होगी, जितनी कि उस समय नहीं होती यदि

आप उसे पूरे समय के लिये चुनी जाने दें, यद्यपि वह उस संकटकाल के दबाव में चुनी गई हो जो समाप्त हो गया है, किंतु जिसका प्रभाव समाप्त नहीं हुआ है।

मैं सदन से अनुरोध करता हूं कि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

***अध्यक्षः** एक कठिनाई है। आपने अपने नाम का दूसरा संशोधन जो चार वर्ष की अवधि नियत करने के संबंध में था, पेश नहीं किया।

***प्रो.: के.टी. शाहः** मैं उसे पांच वर्ष करने के लिये पूर्णतः उद्धृत हूं।

***अध्यक्षः** क्या आप इस समय ऐसा कर सकते हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह तो आप के हाथ में है। मैंने जानबूझकर इसे पेश नहीं किया था।

***अध्यक्षः** हम इस पर बाद में विचार करेंगे। श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय!

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** दो संशोधन पेश किये गये हैं, एक तो डाक्टर अम्बेडकर द्वारा और दूसरे प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा। उन दोनों और इस अनुच्छेद पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करने खड़ा हुआ हूं। उसका विरोध करने का मेरा कारण यह है कि उनका संशोधन यह है कि 'President' शब्द के आगे 'with the Consent of the Parliament' ये शब्द जोड़ दिये जायें। अनुच्छेद 68 में लिखा है:

> ''कि उस अवधि को, उस समय जबकि संकटकाल प्रवर्तन में है, राष्ट्रपति एक वर्ष से अनधिक समय के लिये बढ़ा सकता है, आदि।''

मान लीजिये, संसद का अधिवेशन नहीं हो रहा, तो उस अवस्था में हम क्या करेंगे? अन्ततः राष्ट्रपति समस्त भारत का प्रतिनिधि है। उसको बहुत विस्तृत शक्तियां मिलनी चाहियें, और मेरे मतानुसार यह शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में रहनी चाहिये, जब संसद का अधिवेशन न हो रहा हो और जब संकटकाल का मामला हो। अतः मैं संशोधन का विरोध करता हूं और चाहता हूं कि विधान के मसौदे में जैसे यह प्रावधान है वैसे ही इसे रहने दिया जाये।

अगला संशोधन प्रोफेसर शाह का है। मुझे इस पर दो आपत्तियां हैं। वह शाब्दिक संशोधन हो सकता है। आखिर यह एक संशोधन है और यदि यह स्वीकृत हो जाये तो विधि-ग्रंथ

[मि. तजम्मुल हुसैन]

में रखा जायेगा। अत: प्रत्येक शब्द ठीक होना चाहिये। यहां उन्होंने ''Peoples' House'' शब्द प्रयोग किये हैं। विधान के मसौदे में ''Peoples House'' इस नाम की कोई चीज नहीं है। लोक सभा है। दूसरी बात भी है, जो आपने स्वयं बता दी है, कि मेरे मित्र श्री के.टी. शाह ने चार वर्ष की अवधि की चर्चा की है किंतु हम पहले ही पांच वर्ष की अवधि स्वीकार कर चुके हैं। इस संशोधन पर यह दो आपत्तियां हैं और मुझे भरोसा है कि सभा मुझसे सहमत होगी और दोनों में से किसी संशोधन को स्वीकार नहीं करेगी और संविधान के मसौदे में जो शब्द हैं उन्हें ही रहने देगी।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन के विषय में, वे चाहते हैं कि जब संकटकाल में सदन का विघटन हो जाये तो संसद की अवधि पांच वर्ष नहीं होनी चाहिये, वरन उस शेषकाल के लिये ही होनी चाहिये जो पिछली परिषद् के समय में से शेष हो। मुझे तो यह विचित्र बात दिखती है। यदि सदन का विघटन होना है तो वह असाधारण स्थितियों में ही होगा और सदन का केवल छोटी सी बात पर विघटन नहीं किया जायेगा। जब सदन में अवरोध हो जाये, जब मंत्रिमंडल स्थिर न हो अथवा सभा ठीक प्रकार कार्य न कर रही हो, तब कोई आगे बढ़कर सदन का विघटन कर देगा जिससे कि नई सभा की स्थापना की जा सके और उस अभिप्राय के लिये निश्चय ही निर्वाचक मंडल को बताना होगा कि जो सदस्य चुने गये थे, उन्होंने ठीक काम नहीं किया है और इससे अवरोध हो गया है और सभा का कार्य चल नहीं सकता, अत: नई सभा को पांच वर्ष की पूरी अवधि मिलनी चाहिये। प्रोफेसर शाह ने कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं दिया है जिससे कि वे सभा को बता सकते कि विघटन की दशा में ऐसी घटनायें हो सकती हैं जिनमें उनके पेश किये हुए संशोधन की आवश्यकता हो। मुझे भारत का एक उदाहरण पता है, जबकि एक सभा का निर्वाचन के एक वर्ष पश्चात् ही अवरोध हो जाने के कारण विघटन कर दिया गया था और निर्वाचकों ने पूरे 50 नये सदस्य चुने और सभा पूरी अवधि तक काम करती रही। ऐसा होना ही चाहिये, क्योंकि यदि अतीत में सदस्यों ने ठीक प्रकार काम नहीं किया तो कोई कारण नहीं है कि नये सदस्यों को भी पूरी अवधि से क्यों वंचित रखा जाये। अत: मेरा यह कहना है कि नई सभा को पूरी अवधि प्राप्त होनी चाहिये, जैसा कि समस्त संसार में होता है और पिछले सदस्यों की त्रुटि या कदाचार के कारण नये सदस्यों को उनके अधिकारों से वंचित नहीं किया जाना चाहिये। अत: मैं ऐसे संशोधन का विरोध करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, डाक्टर अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है मैं उसके लिये उनको धन्यवाद देता हूं। किंतु वैयक्तिक तौर पर मेरा ख्याल था कि वह परन्तुक हट जाना चाहिये। इसका यह अर्थ होगा कि कुछ

विशेष संकटकालीन स्थिति में वह सभा जो पांच वर्ष के लिये चुनी जाये, दस वर्ष के लिये भी रह सकती है। मान लीजिये कोई युद्ध बीच में आ जाता है और संकट कालीन स्थिति की घोषणा कर दी जाती है और कोई निर्वाचन नहीं होता। युद्ध लम्बे समय तक चल सकता है—ऐसी बात अभी इंग्लिस्तान में हुई थी और संसद नौ वर्ष तक चलती रही। अमरीका में तो युद्ध के मध्य में भी निर्वाचन हुये थे और वर्ष के पश्चात् युद्ध की तीव्रतम स्थिति में नई प्रतिनिधि सभा तथा नई सीनेट भी बनी थी। मैं अनुभव करता हूं कि प्रत्येक पांच वर्षों में लोगों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अवसर मिलना चाहिये और किसी संकटकालीन स्थिति में लोगों के इस अधिकार को छिनने नहीं देना चाहिये। यदि विशेष परिस्थिति में संसद की अवधि को बढ़ाना पड़े भी, तो उस अवधि-वृद्धि की सीमा होनी चाहिये। यह सीमा एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिये।

अध्यक्षः माननीय सदस्य ने इस परन्तुक को हटा देने के सम्बन्ध में किसी संशोधन की सूचना नहीं दी है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं प्रस्ताव पर बोल रहा हूं।

***अध्यक्षः** आप समुचे परन्तुक का विरोध कर रहे हैं। यही आपका भाषण है। डाक्टर अम्बेडकर इस समय भी इस आशय का संशोधन पेश नहीं कर सके। मैं नहीं समझता कि यह प्रश्न पैदा होता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यह संविधान में कमी है और इससे लोग प्रति पांच वर्ष अपने प्रतिनिधि चुनने के लिये अपने अधिकार से वंचित हो जाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, जहां तक संशोधन संख्या 1464 का संबंध है, मेरे विचार में सभा इसे बिना किसी विरोध के पारित कर देगी, किन्तु जहां तक प्रोफेसर शाह के संशोधन का सम्बन्ध है, मुझे उनसे पूरी सहानुभूति है कि उन्होंने ऐसी विशेष स्थिति की कल्पना करने में बहुत परिश्रम किया है जो पैदा हो सकती है; किन्तु इस मामले के कई पहलू है जिनसे वही प्रयोजन अपूर्ण रह जाता है जिसका उन्हें ध्यान है। वास्तव में उनका संशोधन इतनी सावधानी से नहीं रचा गया है कि वह उस विशेष स्थिति में काम दे सके जबकि मान लो संकटकालीन स्थिति की अवधि साढ़े चार वर्ष हो। यदि संकटकालीन स्थिति की अवधि साढ़े चार वर्ष हो तो क्या नई सभा केवल छह ही मास के लिये चुनी जायेगी और यदि संकट स्थिति 5 वर्ष तक ही चलती रहे तो नई सभा कितने समय के लिये चुनी जायेगी? यदि संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये तो यही बेहूदगियां पैदा होती हैं, क्योंकि जब हम भविष्य में पैदा होने वाली छोटी-छोटी विशेष परिस्थितियों पर अत्यन्त ध्यान से विचार करते हैं तो हम प्रायः अन्य कुछ विशेष स्थितियों

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

की उपेक्षा कर जाते हैं जिनसे हमारे विचार शायद व्यर्थ ही हो जायें क्योंकि भविष्य में पैदा होने वाली प्रत्येक संभावित घटना के लिये हम प्रावधान करने में असफल रहते हैं। अत: यद्यपि मैं प्रोफेसर शाह के इस विचार से पूर्ण सहानुभूति रखता हूं कि यदि संभव हो सके तो 'खाकी' निर्वाचन जैसे निर्वाचनों को नहीं होने देना चाहिये और जो सभा उस आधार पर चुनी जाये उसे स्थायी नहीं बनाना चाहिये, किंतु मेरे विचार में ऐसी बातों को होने से रोकने में मानव-बुद्धि शक्तिहीन है। अत: मैं उनसे अनुरोध करना चाहता हूं कि वे अपने संशोधन पर जोर न दें क्योंकि उसमें स्वयं ऐसे कीटाणु हैं जिनसे वही प्रयोजन असफल हो जाता है, जिसके लिये उन्होंने अपना संशोधन भेजा है। अत: मेरे विचार में, डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन के सिवाय, जिसे मैं आशा करता हूं सभा मान लेगी, अनुच्छेद जैसे का तैसा ही रहे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझता कि वाद-विवाद के मध्य मेरे संशोधन संख्या 1464 पर कोई ऐसी बात कही गई है जिसका उत्तर देना अपेक्षित हो। मेरे विचार में इस संशोधन में एक अत्यन्त सुचारू सिद्धांत निहित है और मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन पेश किया है, मेरे विचार में उससे जो कठिनाइयां पैदा होती हैं उनमें से कुछ तो मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पहले ही बता दी है। आखिर निर्वाचन कोई सीधी सी बात नहीं है। इसमें अत्यधिक धन खर्च होता है और मेरे विचार में यह सरकार के प्रति और जनता के प्रति अन्याय होगा कि अल्पकालों के लिए बार-बार निर्वाचन करने का अत्यधिक व्यय उन पर लादा जाये। मुझे प्रोफेसर शाह के इस दृष्टिकोण से पूरी सहानुभूति है कि यह सदा का अनुभव है कि जब भी कोई निर्वाचन युद्ध के तुरन्त बाद ही होता है तो, कई बार लोग अपना संतुलन इतना खो बैठते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि वह निर्वाचन लोगों की भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। किन्तु साथ ही, मेरे विचार में, केवल युद्ध ही ऐसा कारण या परिस्थिति नहीं है जिससे लोगों के मस्तिष्क अपने सामान्य आधार से उखड़ जायें। कई अन्य परिस्थितियां भी हैं, कई अन्य घटनायें है जो वास्तविक युद्ध चाहे न हों, पर जिनसे लोगों के मस्तिष्कों का संतुलन बिगड़ जाता है। अत: इससे कोई लाभ नहीं है कि एक विशेष स्थिति के लिए प्रोफेसर शाह के संशोधन द्वारा उपबन्ध कर दिया जाये और दूसरी विशेष स्थितियों को अछूता छोड़ दिया जाये। अत: मुझे यही जंचता है कि स्थिति को वैसे ही रहने दिया जाये जैसे संविधान के मसौदे में है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1464 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में, 'by the President' इन शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by Law' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् एक और परन्तुक है जिसका सुझाव प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधन संख्या 1466 में दिया है।

''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में, अंत के विराम के स्थान पर अर्धविराम (;) रख दिया जाये तथा निम्न शब्द जोड़ दिये जायें—

'परन्तु आगे यह भी कि उद्घोषणा के प्रवर्तन की समाप्ति के पश्चात् चुनी हुई लोक सभा चार वर्षों की उस अवधि के शेष भाग के लिये ही अधिकारयुक्त रहेगी जिसके लिये कि वह चुनी जाती, यदि विघटन इस धारा के अधीन सामान्यत: होता। यही प्रावधान उस संसद के लिये लागू होगा जो अपनी पूर्ववर्त्ती संसद के विघटन के बाद चुनी जाये, यदि वह चार वर्ष की सामान्य अवधि की समाप्ति के पूर्व ही विघटित हो जाये।''

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में समस्त अनुच्छेद पर मत लूंगा।

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 68 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 68 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 68-ए

***अध्यक्ष:** अब मैं नए अनुच्छेद 68-ए पर आता हूं, जिसे रखने का प्रस्ताव है। डा. अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 68 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद रख दिया जाये:

'68-A. A person shall not be qualified to be chosen to fill a seat in Parliament unless he—

(a) is a citizen of India;

(b) is in the case of a seat in the Council of States, not less than thirty-five years of age and, in the case of a seat in the House of the People, not less than twenty-five years of age, and

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

(c) possesses such other qualifications as may be prescribed in this behalf by or under any law made by Parliament.' ''

[68-ए कोई व्यक्ति संसद में किसी स्थान की पूर्ति के लिये निर्वाचित होने के योग्य तब तक नहीं होगा, जब तक कि वह—

(क) भारत का नागरिक न हो;

(ख) राज्य-परिषद् में किसी स्थान की पूर्ति होनी हो, तो 35 वर्ष की आयु से अनधिक हो और लोक सभा में किसी स्थान की पूर्ति होनी हो तो, 25 वर्ष से अनधिक आयु का हो, और

(ग) ऐसी अन्य योग्यताएं न रखता हो जो कि इस विषय में संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन निर्धारित की जायें।]

श्रीमान, इस अनुच्छेद का उद्देश्य ऐसी योग्यताओं का निर्धारण करना है, जो उस व्यक्ति में होनी चाहिये जो किसी निर्वाचन में अभ्यर्थी होना चाहता हो। सामान्यत: नियम यह है कि जो व्यक्ति मतदाता हो वह केवल इसी कारण कि वह मतदाता है, निर्वाचन में अभ्यर्थी खड़ा होने का अधिकारी है। इस अनुच्छेद में यह सुझाव रखा गया है कि अभ्यर्थी बनने के लिये मतदाता होना तो अपेक्षित योग्यता है ही, इसके साथ ही जो मतदाता अभ्यर्थी होना चाहे, उसमें कुछ अन्य योग्यताएं भी होनी चाहियें। यह अन्य योग्यताएं इस नये अनुच्छेद 68-ए में दी हुई हैं।

मेरे विचार में सभा सहमत होगी कि यह वांछनीय है कि वह अभ्यर्थी जो वास्तव में विधान मंडल में सेवा करना चाहे, कुछ योग्यताओं का भागी होना चाहिये जो केवल मतदाता होने के लिये अपेक्षित योग्यताओं से अधिक उच्च हो। उसे सदन में जो कर्त्तव्य निभाने होते हैं उनके लिये सांसारिक मामलों के अनुभव, कुछ विशेष ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव की आवश्यकता है, और मेरे विचार में यदि यह अतिरिक्त योग्यताएं स्वीकार कर ली जायें, तो हम ऐसे प्रकार के अभ्यर्थी प्राप्त कर सकेंगे, जो साधारण मतदाता मात्र की अपेक्षा अधिक अच्छे प्रकार से सदन की सेवा कर सकेंगे।

***अध्यक्ष:** इस पर कुछ संशोधन हैं: संशोधनों पर संशोधनों की सूची में संख्या 80 श्री नजीरुद्दीन अहमद का है। यह भी वाक्य रचना संबंधी संशोधन दिखाई देता है और मैं इसे मसौदा समिति पर छोड़ देता हूं कि वे इसका निबटारा, प्रस्तावक से परामर्श करके, कर लें।

तत्पश्चात् संख्या 81 भी वाक्य रचना सम्बन्धी संशोधन दिखाई देता है। इसमें, अन्त में 'and voter' ये शब्द जोड़ने का सुझाव है। मैं इसे भी छोड़ देता हूं क्योंकि यह भी लगभग रचना संबंधी है।

(संशोधन संख्या 82, संख्या 83 और संख्या 84 पेश नहीं किये गये।)

तत्पश्चात् हम दूसरी सूची को लेते हैं जो आज सबके पास भेजी गई है। उस सूची का संशोधन संख्या 4 सरदार हुकम सिंह और श्री लक्ष्मी नारायण शाहू के नाम में है।

(वह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 5 और 6 भी पेश नहीं किये गये।)

मुझे श्रीमती दुर्गाबाई के एक अन्य संशोधन की भी सूचना मिली है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करती हूं:

> ''कि नये अनुच्छेद 68-ए के, जिसे अनुच्छेद 68 के पश्चात् रखने का प्रस्ताव किया गया है, खंड (ख) में 'पैंतीस' शब्द के स्थान पर 'तीस' शब्द रख दिया जाये।''

इसका उद्देश्य यह है कि राज्य-परिषद् में स्थान के लिये आयु 35 से घटाकर 30 कर दी जाये। किसी समय सोचा जाता था कि अधिक आयु से पुरुष और स्त्रियों में अधिक बुद्धि आ जाती है किन्तु नई स्थितियों में हमारे लड़के और लड़कियां अधिक विकासशील हैं और अपने उत्तरदायित्व को अधिक अच्छी तरह समझते हैं, बुद्धिमानी आयु पर निर्भर नहीं होती। यह भी विचार किया जाता था कि दूसरी सभा में अधिक आयु के लोग हों, क्योंकि वह दोहराने वाली सभा होगी, जो विधि निर्माण के काम में शीघ्रता पर भी रोक रखेगी। किन्तु यह तो पुरानी कथा है और पुरानी व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था आ गई है। जैसा कि मैंने कहा है कि हमारे लड़के और लड़कियां अब अधिक विकासशील हैं और अब शिक्षण का पाठ्यक्रम इतना विस्तृत है कि इससे वे अपने नागरिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के विषय में बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। अत: मेरे विचार में हम नवयुवकों को अवसर देना चाहिये कि वे राज्य के मामलों में शिक्षण प्राप्त कर सकें। मैंने कहा कि बुद्धिमानी आयु पर निर्भर नहीं है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री 40 वर्ष की आयु से पूर्व ही कांग्रेस के अध्यक्ष बन गये थे और पिट इंगलिस्तान के प्रधानमंत्री बनने के समय 24 वर्ष का ही था। अत: हमें यह आशंका नहीं करनी चाहिये कि एक व्यक्ति 30 वर्ष का ही है केवल इसी कारण वह राज्य संबंधी कार्य नहीं कर सकेगा। मुझे आशा है कि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी। श्रीमान्, मैं इसे पेश करती हूं।

***अध्यक्षः** अब संशोधन और मूल सुझाव दोनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मुझे मेरी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई से यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि बुद्धिमत्ता आयु पर निर्भर नहीं है;

[श्री एच.वी. कामत]

मुझे आशा है, वह इस पर भी सहमत होंगी कि वह लिंग पर भी निर्भर नहीं है। (कई माननीय सदस्यगण : 'आपत्ति'') वे मित्र जो इस पर आपत्ति करते हैं यहां आकर अपने ही प्रश्न का उत्तर दें और इस सभा को अपनी बात पर विश्वास दिलायें। इस संविधान में लिंग के कारण विभेद नहीं किया गया है और मुझे आशा है कि आज हमारे यहां गार्गी, मैत्रेयी और उभयभारती जैसी दार्शनिक नारियों की परम्परा है, अत: बुद्धिमत्ता लिंग पर निर्भर नहीं है। हमारे महानतम ग्रंथ, महाभारत में यह चीज मानी गई है, उसमें एक श्लोक है:

न तेन बद्धो भवति येनास्य पलितं शिर:, यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा: स्थविरं विदु:।।

इसका अर्थ है, कि एक व्यक्ति केवल इसलिये वृद्ध या बुद्धिमान नहीं है कि उसके बाल सफेद हो गये हैं।

अत: राज्य-परिषद् की सदस्यता के लिये आयु-सीमा कम करने के सम्बन्ध में श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन का समर्थन करते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं है। मैं तो और भी आगे बढ़कर दोनों सदनों के लिये एक ही आयु-सीमा रख देता और उस सीमा को घटाकर 21 वर्ष कर देता। कहा गया है कि पिट छोटी आयु में ही इंग्लिस्तान के प्रधानमंत्री बन गये थे। मेरे ख्याल में वे 21 वर्ष की आयु में या कुछ अधिक में ही संसद के सदस्य बन गये थे और 24 वर्ष की आयु में प्रधानमंत्री बन गये थे। यह तो अलबत्ता अपवाद ही है और हम अपवादों के आधार पर कानून नहीं बना सकते किन्तु कुछ भी हो मैं समझता हूं कि इस सीमा को 35 से 30 कर देना बुद्धिमानी होगी। किन्तु इसके संबंध में एक कठिनाई हो सकती है। मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 152 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसके अन्तर्गत राज्यों का विधान-मंडलों के दूसरे सदन की सदस्यता के लिये 35 वर्ष की आयु रखी गई है। मुझे आशा है कि जब हम उस अनुच्छेद पर पहुंचे तब इस संशोधन को ध्यान में रखकर, केन्द्र के द्वितीय सदन के विषय में जो कुछ किया जाये वही प्रांतों तथा राज्यों के द्वितीय सदनों के विषय में भी कर दिया जायेगा और वहां भी आयु-सीमा कम करके तीस वर्ष कर दी जायेगी। जब एक व्यक्ति, जो 35 वर्ष से कम है, केन्द्र के द्वितीय सदन में स्थान की पूर्ति कर सकता है तो कोई कारण नहीं है कि वह राज्य में ऐसा न कर सकें। दूसरी कठिनाई, जो अधिक महत्त्व की नहीं है, अनुच्छेद 55 (3) के कारण है जो हम पहले पास कर चुके हैं और जिसे हम अब संशोधित नहीं कर सकते, जिसमें यह लिखा है कि उप-राष्ट्रपति होने के लिये कोई व्यक्ति 35 वर्ष पूरे कर चुका होना चाहिये। अब राज्य-परिषद् का सभापति ऐसा व्यक्ति होगा जो कि उस परिषद् का सदस्य हो। श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन में (सदस्यता की) आयु-सीमा को 35 से घटाकर 30 कर देने का प्रस्ताव है। इसका यह अर्थ हो गया कि राज्य-परिषद् का प्रत्येक सदस्य राज्य-परिषद् के सभापति पद के लिये खड़ा हो या चुनाव लड़ने के

योग्य न होगा, क्योंकि यदि वह 30 और 35 के बीच में हो तो वह निर्वाचन के लिये अर्ह न होगा। केवल इसीलिये कि वह 35 वर्ष से कम है वह उप-राष्ट्रपति के पद पर आसीन नहीं हो सकता। यह एक विसंगति है जो मुझे कुछ अच्छी नहीं जंचती। कोई व्यक्ति राज्य-परिषद् के लिये चुना जाये और राज्य-परिषद् अपने में से ही एक उप-राष्ट्रपति चुना जाए, किन्तु उसकी आयु उसके लिये एक अड़चन बन जाये, यह मेरे विचार में दुर्भाग्य है। यदि यह अनुच्छेद स्वीकार हो जाये, तो इस कठिनाई को पार करने का मुझे कोई उपाय नहीं सूझता, जब तक पहले पारित किया हुआ अनुच्छेद समुचित रूपेण संशोधित न किया जाये। कोई व्यक्ति जो कि सदन का सदस्य हो वह उसी कारण से उस परिषद् के किसी निर्वाचन में खड़े होने के योग्य होना चाहिये। किन्तु श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन के अन्तर्गत यह एक असंभवता बना दी गई है, केवल इसीलिये कि कोई व्यक्ति 30 और 35 वर्ष के बीच में हो। यदि कोई व्यक्ति द्वितीय सदन में एक स्थान पर आसीन होने के लिये उपयुक्त है तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि वह राज्य-परिषद् के उपाध्यक्ष के पद पर आसीन होने के योग्य क्यों न हो और केवल आयु के कारण निर्योग्य क्यों बना दिया जाये? मुझे आशा है कि मसौदा समिति के बुद्धिमान व्यक्ति इस विसंगति पर गौर करेंगे और जहां तक उनकी बुद्धि उन्हें ऐसा करने दे इसका सुधार करने का प्रयत्न करेंगे।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि दोनों में कोई विसंगति या परस्पर विरोध है। मसौदा समिति इस प्रश्न पर विचार कर सकती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं स्पष्टत: कह देता हूं कि मुझे डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन पर हर्ष नहीं है। मैं नहीं समझता कि इससे विधान अधिक अच्छा बन जायेगा। जैसा कि अभी कहा गया है संसार में ऐसे मामले हुए हैं जबकि 25 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों ने उच्चतम स्थान ग्रहण किये हैं। नवयुवक पिट का उदाहरण अभी दिया गया था शंकराचार्य 22 वर्ष की आयु में जगदगुरू बन गये थे और केवल 32 वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया। सिकन्दर 25 से अनधिक अवस्था में विश्वविजयी बन गया था और 32 वर्ष की आयु में उसका भी देहांत हो गया था। हमारे 30 करोड़ के देश में अकाल-प्रौढ़ नवयुवक हो सकते हैं जो 25 वर्ष से कम की आयु में उच्चतम पद पर आसीन होने के योग्य हों और उन्हें उस अवसर से वंचित नहीं किया जाना चाहिये।

इस संशोधन के भाग (2) के कारण नवयुवक मतदाताओं के अभ्यर्थी बनने में अनावश्यक रूपेण बाधा पड़ती है। इस खंड से वे लोग निर्वाचन के अयोग्य हो जायेंगे जो अपनी आयु 35 वर्ष से कम की बतायें। किसी व्यक्ति के किसी निर्वाचन में अभ्यर्थी बनने की योग्यता में उस आयु के प्रश्न का कोई संबंध नहीं होना चाहिये।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

तीसरा भाग तो और भी अधिक हानिकारक है। आज जो संसद है वह ऐसे प्रतिबंध लगा सकती है जिससे सत्तारूढ़ दल अपने विरोधियों को पराजित कर सके। सत्तारूढ़ दल बहुमत से ऐसे कानून पारित कर सकता है और अभ्यर्थियों के लिये ऐसी योग्यताएं निर्धारित कर सकता है। जिनसे उन्हें अपने विरोधियों के विरुद्ध सहायता मिल सके। संसद को केवल बहुमत से अभ्यर्थियों के लिये योग्यताएं निर्धारित करने की जो शक्ति दी जा रही है वह हानिप्रद है। अतः मेरे विचार में संशोधन बहुत प्रसन्नता की बात नहीं है और मैं बल दूंगा कि डाक्टर अम्बेडकर इस पर विचार करें कि वे इसे वापिस ले सकते हैं या नहीं।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** मैं अपनी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा पेश किये गये संशोधन पर संशोधन का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है उसके अनुसार उस व्यक्ति की आयु, जो राज्य-परिषद् में स्थान के लिये अभ्यर्थी खड़ा होना चाहे, कम से कम 35 वर्ष होनी चाहिये। वास्तव में मेरा मत यह है कि 30 वर्ष से भी कम आयु होनी चाहिये। जब कोई व्यक्ति प्रौढ़ता प्राप्त कर ले तो वह योग्य बन जाना चाहिये। क्योंकि इस आशय का कोई प्रस्ताव पेश नहीं है, अतः मेरे लिये कोई और उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन का समर्थन करूं।

श्रीमान्, मुझे एक फारसी पद का स्मरण हो आया है, किः

बुज़र्गी बा अक्ल अस्त, ना बा साल,
तवंग्री वा दिल अस्त, ना बा माल।

पहले भाग का अर्थ है कि वृद्धता आयु के अनुसार नहीं होती, वरन् बुद्धिमता के अनुसार होती है। मैं दूसरे भाग का अनुवाद नहीं करूंगा। यदि कोई व्यक्ति विवेकशील हो तो उसे राज्य परिषद् में प्रवेश करने से कौन रोक सकता है, चाहे वह 30 वर्ष से कम हो? श्री कामत ने नवयुवक पिट का उदाहरण दिया है। शंकराचार्य का भी उदाहरण है जिनका 32 की आयु में देहांत हो गया था, किन्तु उससे पहले उन्होंने जगदगुरू का पद प्राप्त कर लिया था। राम, कृष्ण और बुद्ध के भी उदाहरण जिन्होंने अत्यन्त अल्प आयु में ही ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इतिहास में कई अन्य दृष्टांत भी हैं। श्रीमान्, मैं श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा पेश किये गये संशोधन का में बल पूर्वक समर्थन करता हूं।

जहां तक डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का संबंध है, मैं उससे सहमत नहीं हूं। उसमें तीन योग्यताओं का उल्लेख है। मेरे मतानुसार संसद में स्थान प्राप्ति के लिये केवल यही योग्यता उपेक्षित है कि वह सूचीबद्ध मतदाता हो। ज्योंही किसी व्यक्ति का नाम मतदाताओं की सूची में आया कि आप उसे निर्वाचन में खड़ा होने या मत देने से नहीं रोक सकते।

निर्वाचन अधिकारी तो वहां होगा ही और पहचान के पश्चात् उसे कोई मत देने से रोक नहीं सकता। यदि वह 35 का न होकर 25 का हो तो उसे अभ्यर्थी बन कर खड़ा होने से क्यों रोका जाये? कानून का साधारण सिद्धांत यही है कि यदि कोई व्यक्ति मत दे सकता है तो वह निर्वाचन के लिये खड़ा भी हो सकता है। यह संशोधन उस सर्वमान्य सिद्धांत वे विरुद्ध रहेगा क्योंकि इसका यह आशय होगा कि मतदाता निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता। डॉ. अम्बेडकर को इसे वापिस ले लेना चाहिये। कोई व्यक्ति मतदाता बन जाये तो वह निर्वाचन के लिये योग्य हो जाना चाहिये और इसलिये, श्रीमान्, मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि इसमें समुचित परिवर्तन कर लें।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया हुआ संशोधन निर्दोष नहीं है। यह भयानक संशोधन है और जनतंत्रीय सिद्धांतों के विरुद्ध है।

पिछले अनुच्छेद 67 के खंड (6) में किसी व्यक्ति को मतदाता बनने की योग्यताओं का वर्णन है। वहां निश्चित रूपेण लिखा है कि वह किन परिस्थितियों में मतदाता बन सकता है और किन परिस्थितियों में नहीं बन सकता। आपने स्पष्टत: कह दिया है कि वह 21 वर्ष का होना चाहिये। ऐसा व्यक्ति निर्वाचनों में मतदाता पंजीबद्ध होने का अधिकारी होगा, यदि वह इस संविधान के अधीन अथवा संसद के किसी अधिनियम के अधीन अनिवास, मस्तिष्क की विक्षिप्तता, अपराध अथवा भ्रष्टाचार या अवैध आचरणों के आधार पर अन्यथा निर्योग्य न ठहरा दिया जाये। अत: श्रीमान्, इस खंड में आपने सुनिश्चित रूप से ऐसे सिद्धांत रख दिये हैं जिनके अनुसार यह संविधान या संसद का कोई अधिनियम किसी व्यक्ति को मतदाता बनने के अयोग्य ठहरा सके। किन्तु अब हम इस संशोधन में क्या देखते हैं? इस संशोधन में खंड (3) एक अशुभ खंड है जो भावी संसद को यह शक्ति देता है कि वह किसी व्यक्ति को किसी भी कारण से संसद का सदस्य बनने के लिये निर्योग्य ठहरा सकती है। आपने उन स्थितियों को निर्धारित नहीं किया है जिनके संबंध में निर्योग्यता का विधान बनाया जा सके, जैसा कि मतदाता के विषय में किया गया है। अत: कोई प्रतिक्रियावादी संसद, कोई पूंजीवादी संसद यह विधि बना सकती है कि कोई व्यक्ति जो कि चुनाव में खड़ा होना चाहे, 5,000 एकड़ भूमि का स्वामी होना चाहिये या एक लाख आयकर देने वाला होना चाहिये। आप कल्पना कर सकते हैं, श्रीमान कि भविष्य में कई प्रतिक्रियावादी संसद किस प्रकार संसद की सदस्यता को उन व्यक्तियों तक सीमित कर सकती है जिन्हें वे अपने दृष्टिकोण से योग्य समझे। श्रीमान्, हमने इस संसद में जो उपबंध किया है, अर्थात् प्रौढ़ मताधिकार का, उसे बाद में समाप्त किया जा सकता है। जो वस्तु एक हाथ से दी गई है वह, उदाहरणार्थ, स्वामित्व-विषयक असम्भव

[महबूब अली बेग साहिब बहादुर]

योग्यताएं रखकर, दूसरे हाथ से छीनी जा सकती है। अत: इन परिस्थितियों में एक नागरिक को निर्वाचन में खड़े होने के अपने अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

और यह तो एक मान्य सिद्धांत है कि जब आप संविधान बना रहे हैं तो आपको यह बात भावी-विधान-मंडल पर छोड़ देनी चाहिये कि वे उन व्यक्तियों की योग्यताएं निर्धारित करें जो कि चुनाव में खड़े होना चाहते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि संविधान में अनावश्यक प्रावधान तो रख दिये गये हैं और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रावधान जो किसी व्यक्ति को संसद का सदस्य बनने के योग्य या अयोग्य ठहराता है, भावी संसद पर छोड़ दिया गया है। यह सिद्धांत के विरुद्ध है; जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है, कि आप अभी ऐसी व्यवस्था तैयार कर रहे हैं जिससे एक व्यक्ति नागरिक बनेगा और वह व्यक्ति कुछ विशेष स्थिति में मतदाता और संसद का सदस्य अथवा मंत्री, अथवा राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति बन सकेगा। आप जब मतदाता के लिये योग्यताएं निश्चित करते हैं, जब आप राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति इत्यादि बनने के लिये योग्तयाएं निर्धारित करते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि आप निर्वाचन के लिये खड़े होने की योग्यता का प्रश्न भावी संसद पर छोड़ दें। यह भयानक बात है और सिद्धांत के विरुद्ध है। इस संशोधन के प्रथम भाग में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और भयानक प्रावधान है। खंड (ख) के संबंध में मैं उन लोगों से सहमत हूं जिनका यह मत है कि एक बार आप मतदाता घोषित हो जायें तो आपको निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार होना चाहिये। आप विशेष योग्यताएं होने पर एक विशेष आयु के लोगों को मताधिकार देकर संसद के प्रतिनिधित्व का आधार विस्तृत करना चाहते हैं, केवल इसी बात के आधार पर प्रत्येक मतदाता को निर्वाचन के लिये खड़ा होने का अधिकार मिल जाना चाहिये। मैं जानता हूं कि ऐसे संविधान हैं जिनमें संसद का सदस्य बनने के लिये भिन्न योग्यताएं रखी गई हैं यह सत्य है। यह बात लोक सभा की अपेक्षा राज्य-परिषरद के विषय में अधिक सत्य है। चाहे कुछ भी हो मैं इस बात के लिये भी सहमत हो सकता हूं कि निर्वाचन खड़ा होने के इच्छुक व्यक्ति की आयु-सीमा बढ़ा दी जाये, किन्तु इस बात के विरुद्ध हूं कि संसद का सदस्य बनने के लिये किसी व्यक्ति की अर्हता या अनर्हता के विषय में कानून बनाने का अधिकार भावी संसद को दे दिया जाये। मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस गंभीर आपत्ति पर विचार करेंगे और अपने संशोधन को वापिस ले लेंगे और यदि आवश्यक हो तो उसे समुचित संशोधनों के साथ पेश करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर पेश किये गये श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन के विषय में मुझे केवल कुछ ही शब्द कहने हैं इस पर मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने इस संशोधन पर इस आधार पर आपत्ति

की है कि उपराष्ट्रपति की, जोकि राज्य-परिषद का सभापति होगा, अर्हता की आयु 35 वर्ष है, इसलिये उस संस्था के सदस्यों की आयु कम करना व्यर्थ है। मुझे भय है कि मेरे माननीय मित्र ने इस संशोधन विशेष में असंगता पाई है और ऐसा करते समय यह नहीं सोचा कि उप-राष्ट्रपति की आयु 35 वर्ष की निश्चित करने का क्या कारण है। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे अनुच्छेद 47 को देखें जिसमें राष्ट्रपति की आयु 35 वर्ष निश्चित की गई है। स्वभावत: क्योंकि रिक्तता होने पर उप-राष्ट्रपति को राष्ट्रपति का स्थान लेना होगा, अत: अनुच्छेद 55 में उप-राष्ट्रपति की आयु भी 35 वर्ष की रखी गई है। राज्य-परिषद के सदस्यों की आयु से इसका कोई संबंध नहीं है। अत: इसमें कोई भी विसंगति नहीं है कि राज्य-परिषद् की सदस्यता के लिये योग्यता की आयु ऐसी निश्चित कर दी जाये तो उसके सभापति के लिये निश्चित आयु से कम हो। मुझे आशा है कि परिषद् समझ जायेगी कि इसमें कोई विसंगति नहीं है और उप-राष्ट्रपति की आयु बिल्कुल अन्य कारणों से ही 35 वर्ष की रखी गई है। इसका राज्य-परिषद् के सदस्यों की अर्हता की आयु से कोई संबंध नहीं है। जहां तक कि डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन से उत्पन्न दूसरी बातों का संबंध है, मेरे विचार में डॉ. अम्बेडकर उनका उपयुक्त उत्तर दे देंगे, यद्यपि मेरा ख्याल है कि वे आपत्तियां तुच्छ हैं और विषय से सम्बद्ध नहीं हैं, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि किसी अभ्यर्थी की योग्यताएं वहीं हों जो कि मतदाता की हो। भूतकाल में वे हमारे अपने विधान-मंडल में ही भिन्न-भिन्न थीं और कई अन्य देशों में भी भिन्न-भिन्न है। अत: अभ्यर्थियों के लिये एक विशेष प्रकार की अर्हताएं तथा मतदाताओं के लिये भिन्न प्रकार की अर्हताएं, जो कम कठोर हों, रखने में कोई बड़ा पाप नहीं है। इस तुच्छ सी बात पर बहुत शोर किया गया है कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन शरारतपूर्ण है तथा अन्यायपूर्ण है। मुझे पूर्ण आशा है कि परिषद् यह समझ जायेगी कि वह बातें वास्तव में स्थिति का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है और उनका समस्या से वास्तव में कोई संबंध नहीं है। मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। मैं कोई अन्य संशोधन स्वीकार नहीं कर सकता।

***अध्यक्ष:** क्या आप उत्तर देना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि मेरे लिये उत्तर देना अपेक्षित है, बस इतना ही कहना काफी है कि यदि मैं श्रीमती दुर्गाबाई का संशोधन स्वीकार कर लूं, तो वह कुछ पहलुओं से अनुच्छेद 152 और 55 से असंगत होगा, क्योंकि प्रांतों के द्वितीय सदन में हमने आयु-सीमा 35 वर्ष रखी है और उप-राष्ट्रपति के लिये भी

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

आयु-सीमा 35 ही रखी है। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि यदि वह विभेद रहे भी, तो कोई बड़ी बात नहीं है और सभा को अब भी यह अधिकार है कि, यदि वह चाहे तो, एक सी आयु-सीमा निर्धारित कर सकती है।

***अध्यक्ष:** मैं अब संशोधन पर और अनुच्छेद पर भी, यदि संशोधन स्वीकृत हो जाये तो संशोधित रूप में, मत लेना चाहता हूं। ऐसा करने से पूर्व मैं एक बात कहना चाहता हूं, किन्तु सभा के मत को प्रभावित करने के विचार से नहीं। इस देश में हम उस व्यक्ति के लिये, जो विधान-मंडल द्वारा पारित कानून का अर्थ निकालने के लिये न्यायाधीश नियुक्त हो, बहुत उच्च योग्यताएं अपेक्षित समझते हैं। हम यह भी जानते हैं कि उन लोगों से भी, जो कानून का अर्थ निकालने में न्यायाधीशों की सहायता करे, अति उच्च योग्यता की आशा की जाती है। किन्तु ऐसा दिखाई देता है कि सदस्यगण का यह मत है कि जिस व्यक्ति को कानून निर्माण करना है उसे किसी योग्यता की अपेक्षा नहीं है और यदि हम उग्रतम स्थिति पर विचार करें तो हो सकता है कि नितांत योग्यता हीन व्यक्तियों का विधान-मंडल ऐसी बातें पारित कर सकता है जो सर्वथा बुद्धि विहीन हो और उस कानून का अर्थ निकालने के लिये सारे कानूनवेत्ताओं और न्यायाधीशों का विवेक अपेक्षित होगा। यह एक विसंगति है किन्तु मुझे ऐसा दिखाई देता है कि इस युग में हमें ऐसी प्रकार की विसंगति को तो सहन करना ही होगा और मुझे तो कम से कम इस पर संतोष ही करना होगा, यद्यपि मैं इसे पसंद नहीं करता।

प्रश्न यह है:

> ''कि नये अनुच्छेद 68-ए के, जिसे अनुच्छेद 68 के पश्चात् रखने का प्रस्ताव किया गया है, खंड (ख) में 'पैंतीस' शब्द के स्थान पर 'तीस' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अध्यक्ष प्रश्न यह है:

> ''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 68-ए विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 68-ए संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 69

***अध्यक्ष:** इस पर कुछ संशोधन हैं। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संख्या 1469।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में, twice at least in every year, and six इन शब्दों के स्थान पर 'once at least in every year at the beginning thereof, and more than three' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस परिवर्तन के फलस्वरूप, संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

"संसद के सदनों का प्रत्येक वर्ष में कम से कम एक बार, उस वर्ष के आरंभ में, आह्वान किया जायेगा और उनके एक सत्र की अंतिम बैठक और उनके अगले सबके लिये नियुक्त दिवस के मध्य तीन मास से अधिक का समय नहीं गुजरेगा।''

श्रीमान्, इस संशोधन पर बोलने से पूर्व, क्या मैं यह कह सकता हूं कि मेरा एक और संशोधन भी है जो इसका पूरक है और यदि दोनों को साथ ही पेश किया जाये, तो परिषद् का समय बच सकता है और मैं जो बात कहने वाला हूं वह अधिक स्पष्ट हो सकती है। अतः यदि आप मुझे वह बाद वाला संशोधन (संख्या 1464) भी साथ ही पेश करने दें तो, अच्छा रहेगा।

***अध्यक्षः** हां।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) के पश्चात्, निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that Parliament or either house thereof, once summoned and in session, shall continue to remain so during the year; and each sitting shall be deemed to be continuous for the entire parliamentary year notwithstanding any interruption due to holidays, adjournment, or prorogation.'

[किंतु संसद या उसका कोई सदन, एक बार बुलाये जाने पर तथा सत्र आरम्भ होने पर, वर्ष भर इसी प्रकार चलता रहेगा; और प्रत्येक बैठक समस्त संसदीय वर्ष के लिये निरन्तर अधिवेशन में समझी जायेगी चाहे छुट्टियों, स्थगन अथवा सत्रावसान के कारण बाधा पड़े।']"

श्रीमान्, यह खंड विद्यमान रीति के अनुरूप रखा गया प्रतीत होता है, जिसके अनुसार विधान-मंडल प्रतिवर्ष दो अधिवेशनों के लिये समवेत होता है, एक आय-व्यय अनुमान अधिवेशन और दूसरे शरद-ऋतु अधिवेशन के लिये।

अब, मेरे विचार में यह रीति उस समय की सरकार की सुविधा के लिये बन गई थी और यह भी कारण था कि उन दिनों संसद के कृत्य बहुत सीमित थे। उस समय

[प्रो. के.टी. शाह]

के विधान-मंडल की शक्तियां तथा प्राधिकार और इस कारण, कार्य अत्यन्त सीमित प्रकार के होते थे, अतः स्वभावतः यही समझा जाता था कि संसद में पेश होने वाले कार्यों के लिये वे सीमित बैठकें ही पर्याप्त थीं। अब क्योंकि संसद का कार्य बढ़ गया है, उस कार्य के परिणामस्वरूप अधिक महान् उत्तरदायित्व आ गया है और इस संविधान के अंतर्गत, जब यह लागू होगा, सदस्यों की संख्या भी डेढ़ सौ से बढ़कर कम से कम 500 हो जानी है, अतः मुझे यह ख्याल होता है कि पहले के समान छह-छह मास तक अब बैठकें रुक नहीं सकती और न इतनी रुकनी ही चाहिये और सदन के कार्य में उस तरह विघ्न नहीं पड़ना चाहिये जैसे कि पहले रूढ़ि बन गई थी।

इंग्लिस्तान में भी यही रिवाज है कि संसद के अधिवेशनों को समूचे संसदीय वर्ष के लिये निरन्तर एक ही समझा जाता है, चाहे बड़े दिन की या ईस्टर की या अन्य स्वीकृति की छुट्टियां वित्त में पड़ जाये। ब्रिटिश संसद एक वर्ष में लगभग 200 दिन काम करती है, जबकि हमारा विधान-मंडल 100 दिन से भी कम कार्य-व्यस्त रहता है। यदि मैं कह दूं तो, हमारी संसद बहुत ही कम कार्य करती है, कम से कम हमारे कार्य के घंटों के हिसाब से तो यही बात है। हम एक सप्ताह में 5 दिन कार्य करते हैं और प्रतिदिन पौने पांच घंटे, अर्थात् एक सप्ताह में 24 घंटे, जो कि सामान्य श्रमिक के सप्ताह से आधा है। अतः स्वभावतः संसद का कार्य बहुत जल्दबाजी में और रूपरेखा-मात्र ही होता, चाहे वह प्रशासन की देखभाल के विषय का काम हो चाहे आर्थिक प्रहरी के रूप में कार्य हो, अथवा कोई नीति संबंधी कार्य हो विधान-निर्माण की सब बारिकियों की तो बात ही छोड़ दीजिये। यह सब कुछ इस सीमित समय में और उन थोड़े से घंटों में नहीं हो सकता, जिनमें बैठने की अब तक भारतीय विधान-मंडल की आदत रही है।

अपनी युक्तियों के लिये दृष्टांत स्वरूप मैं कह सकता हूं हमें अधिकांश को इसका अनुभव है कि उदाहरणार्थ, प्रश्नोत्तर के समय में, उस दिन के लिये नियत अधिकांश प्रश्न परिषद् में बिना उत्तर दिये ही रह जाते हैं यह भी एक उपाय है जिससे कि प्रशासन के कार्यों की आलोचना, देखभाल, नियंत्रण, तथा आयंत्रण किया जाता है। किन्तु अन्य काम करने के लिये उपलब्ध समय के अन्तर्गत, यह कर्त्तव्य उतनी अच्छी तरह पूरा नहीं किया जा सकता जितना कि होना चाहिये। प्रश्न करने के अधिकार का दुरुपयोग होने से रोकने के लिये सूचना संबंधी, प्रश्न के रूप संबंधी तथा पूरक प्रश्नों के पूछने की प्रणाली संबंधी बहुत से प्रतिबंध अथवा शर्तें हैं। देश के सामान्य प्रशासन पर नियंत्रण रखने का समूचा काम, प्रश्न पूछने के इस उपाय द्वारा, संतोषजनक रीति से पूरा नहीं किया जा सकता और इसका यही कारण है कि हमारे पास समय इतना सीमित होता है कि सदन के समक्ष प्रस्तुत काम को हम निबटा नहीं सकते।

संसदीय कर्त्तव्यों के दूसरे पहलू भी हैं, जो इसी प्रकार तथा इसी कारण से ठीक प्रकार नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, आय-व्यय अनुमान चिट्ठ पर ही विचार कीजिये। अब हमारा बजट साढ़े तीन अरब का होता है; करोड़ों के बाद करोड़ों मुश्किल से दो-तीन घंटे के वाद-विवाद के बाद मंजूर कर दिये जाते हैं, जिसमें से आधे से अधिक समय प्रस्तावकर्त्ता मंत्री, पेश करते समय या उत्तर देते समय, ले लेता है। रक्षा-बजट के लिये, जो कुल मिलाकर लगभग एक अरब 60 करोड़ था, हम केवल पौन चार घंटे दे सके, अर्थात् सदन द्वारा दिये गये वास्तविक सुझाव उपलब्ध समय के अत्यन्त, अत्यधिक छोटे अंश तक सीमित रह जाते हैं। हमारे वाद-विवाद में रचनात्मक, सहायक सुझाव के लिये कठिनाई से समय मिलता है। मैं समझता हूं कि यह बात संसदीय कर्त्तव्यों से पूर्णतः निर्वहन के लिये तथा जनतंत्रात्मक पद्धति की पूर्णरूपेण क्रियाशीलता के लिये असंगत है यदि ऐसे नितांत आवश्यक मामलों के विषय में लोक-भावना को समुचित प्रकार से तथा पूर्णरूप से व्यक्त करना है।

जब विद्यमान प्रणाली निश्चित हुई थी, तब यह सर्वथा सम्भव थी, क्योंकि देश का आधे से अधिक बजट हमारे वाद-विवाद की समक्षता के परे था। प्रशासनीय कार्यवाही के एक बड़े अंश पर भी सदन में सिंहावलोकन अथवा वाद-विवाद करने की मनाही थी। अतः वह सीमित समय उन दिनों पर्याप्त रहता होगा। किन्तु नये संविधान के लागू होने के पश्चात् संसद को नई शक्तियां मिलने पर और उसके उत्तरदायित्व में बुद्धि होने पर और इसके साथ-साथ सदस्य संख्या में भी वृद्धि होने पर, मेरे विचार में संविधान द्वारा सदन पर प्रति वर्ष 100 दिन के अधिवेशन का प्रतिबंध लगाना, कम से कम मैं यह कहूंगा, संसदीय उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिये पर्याप्त अवसर नहीं देना ही है।

मुझे ज्ञात है कि 'कम से कम' ये शब्द वहां हैं। अतः मैं जानता हूं, संसद को अधिक लम्बे अधिवेशन के लिये बुलाने या अधिक लम्बे समय तक अधिवेशन रहने पर कोई रोक नहीं है।

किन्तु ऐसी बात संविधान में रखनी पड़ी है और इतने स्पष्ट शब्दों में ऐसा उपबन्ध बनाना पड़ा है कि अधिकतम अन्तर्वेला छह मास है और अपनी कार्य-प्रणाली अपने अधिवेशनों, अपने समय को नियंत्रित करने का काम संसद पर नहीं छोड़ा गया है, इन बातों से यही प्रकट होता है कि मसौदा-रचयिता के मस्तिष्क पर अब भी उसी पद्धति का प्रभाव है जिस पर हम अब तक आचरण करते रहे हैं। मैं इसे आपत्तिजनक समझता हूं; और यदि हमें उसे छोड़ना है तो यह महत्त्वपूर्ण है कि हमें इस प्रकार का संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये, जैसा कि मैं पेश कर रहा हूं।

यह इस कारण और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नीति के महान प्रश्नों पर, केवल धन के विषय में ही नहीं, अपितु देश की भावी प्रगति को निश्चय करने के विषय में, अर्थात् आगामी कई वर्षों में इस देश के भविष्य निर्माण के विषय में महान् बातों पर,

[प्रो. के.टी. शाह]

संक्षेप में ही विचार हो सकेगा और इस विषय में संसद का मत संसद में वाद-विवाद निरर्थक ही हो जाता है। समुचित विचार में समय भी एक महत्त्वपूर्ण चीज होती है। अतः मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि किसी वर्ष संसद के किसी दो अधिवेशनों के मध्य तीन मास से अधिक नहीं गुजरने चाहिये और संसद के वार्षिक अधिवेशनों को निरंतर एकल वार्षिक अधिवेशन समझना चाहिये, जिनमें संसद का कार्य होना चाहिये अधिकतम संभव उत्तरदायित्व की भावना से किया जाना चाहिये जैसा कि जनता के प्रतिनिधि अनुभव करें कि वे निर्वाचकों के प्रति रखते हैं।

बैठकों का ब्यौरा, कार्य प्रणाली का ब्यौरा, निश्चित करने का काम आदि सदन पर छोड़ दिया जाना चाहिये, जैसी कि इस संविधान में व्यवस्था की गई है। उस विषय में मुझे और कुछ नहीं कहना है। मेरा पक्का ख्याल है कि अब तक हमने जो अनुभव प्राप्त किया है उसके आधार पर, तथा इस बात को देखते हुए कि एक वर्ष में संसद को कितनी बैठकें करनी चाहिये या एक वर्ष में संसद का अधिवेशन कितनी बार बुलाया जाना चाहिये इन बातों के विषय में स्पष्ट उपबंध रखा गया है यह अपेक्षित है कि हमें, किसी ऐसे उपाय से जैसा कि मैं सुझाव दे रहा हूं, उपबन्धों का संशोधन करना चाहिये। मुझे आशा है कि मैंने जो युक्तियां प्रस्तुत की हैं वे परिषद् को पसंद होंगी और मेरे संशोधन स्वीकार कर लिये जायेंगे।

(संशोधन संख्या 7, श्री लक्ष्मीनारायण साहू तथा सरदार हुकुम सिंह के नामों से था, पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में 'twice' शब्द के स्थान पर 'thrice' शब्द रख दिया जाये।''

मुझे भय है कि जब यह अनुच्छेद 69 मसौदा समिति द्वारा रचा गया था, तब समिति के सदस्य भारत-शासन-अधिनियम के भयानक स्वप्न के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये थे। डॉ. अम्बेडकर ने, संविधान के मसौदे पर विचार करने के प्रस्ताव को पेश करते हुए, यह स्वीकार किया था, कि इस संविधान पर अधिकतर भारत-शासन-अधिनियम का प्रभाव पड़ा है और यह बुद्धिमतापूर्वक हुआ है, किंतु यहां मेरे विचार में, संसद को एक वर्ष में कम से कम दो बार बुलाने का उपबन्ध, भारत-शासन-अधिनियम से लगभग पूरी तरह नकल किया गया है, शब्दशः नकल किया गया है और इस बात पर कोई विचार नहीं किया गया कि स्वतंत्र भारत की संसद पर क्या-क्या अतिरिक्त कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व आ पड़े हैं अथवा आने वाले हैं यह बात सुविख्यात है कि अमरीकी कांग्रेस तथा ब्रिटिश संसद प्रतिवर्ष आठ-नौ मास के लिये समवेत होती है। आधुनिक काल में राज्य-कार्य इतना उलझा हुआ तथा विस्तृत हो गया है—हां, मैं जनतंत्र की संसद की चर्चा कर रहा हूं, तानाशाही के अन्तर्गत की संसद का नहीं और मुझे आशा है कि हम अपने देश में जनतंत्र

रखेंगे और तानाशाही नहीं—कि जनतंत्र में कोई संसद तब तक लोगों के प्रति अपने दायित्व नहीं निभा सकती और अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकती, जब तक कि संसद प्रतिवर्ष कम से कम 6 मास तक न बैठे। सभा के पिछले बजट अधिवेशन का एक स्पष्ट उदाहरण है कि एक सरकारी मंत्री ने सभा में यह स्वीकार किया था कि कुछ विशेष व्यय सभा द्वारा स्वीकृति की पूर्वाशा में पूरक रूपेण किया गया था। सरकार के अर्थ मंत्री डॉ. मथाई ने पूरक मांगें पेश करके आधे दिन में अथवा कदाचित दो घंटे से भी कम समय में पारित करवा लीं—मैं तो कहता हूं कि जल्दी-जल्दी स्वीकार करवा लीं, किन्तु फिर भी हम सब सदस्य एक-दूसरे पर विश्वास करते हैं, पूरा भरोसा करते हैं। उन्हें सदन में यह बात स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ा कि ''मेरे पास इस बात की कोई सफाई पेश करने को नहीं है कि सभा को इस पर वाद-विवाद करने के लिये पर्याप्त समय क्यों नहीं दिया गया अथवा सदन की मंजूरी के बिना इतना व्यय क्यों किया गया''। मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह ने कहा कि आंकड़े करोड़ों रुपये तक पहुंच गये और संसद की स्वीकृति या मंजूरी के बिना ऐसा बड़ा खर्च कैसे किया गया। डॉ. मथाई यही कहकर संतुष्ट हो गये कि यह खर्च सदन की स्वीकृति अथवा मंजूरी की पूर्व आशा से किया गया और सदन ने हंसी ठट्ठा उड़ाया और पूरक मांगों को पारित कर दिया। श्रीमान्, यह अनियमितता न होती यदि संसद वर्ष में समय-समय पर समवेत होती और बैठती तथा केवल उन निर्धारित कालावधियों में ही नहीं बैठती, जो ब्रिटिश शासन में निर्धारित हुई थी—ग्रीष्म अधिवेशन तथा शरद अधिवेशन—वरन् अधिक समय तक बैठती और व्यय की विभिन्न मदें विभिन्न अवसरों पर उसके समक्ष पेश होती तो सरकार के एक मंत्री को इस प्रकार की अपराध-स्वीकृति न करनी पड़ती, जो कि कम से कम, सुखद बात नहीं थी, और सरकार के मंत्री द्वारा ऐसा स्वीकृति का कोई कारण न होता। सभा के माननीय सभापति श्री मावलंकर ने हम में से कुछ लोगों के साथ पिछले अधिवेशन में औपचारिक वार्ता के मध्य कहा था ''यदि हम इस प्रकार चलते रहे तो हम कार्य समाप्त नहीं कर सकते। यदि हम अपने प्रति तथा देश के प्रति न्याय करना चाहते हैं, तो यह अपेक्षित है तथा आवश्यक है कि संसद एक वर्ष में सात-आठ मास से कम न बैठे''।

मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर, सरकार की ओर से, ऐसी स्थिति की कल्पना करते होंगे और उन्हें विश्वास होगा कि संसद के लिये अब से अधिक बार तथा अधिक लम्बे समय तक बैठना अपेक्षित है। मैं इस संशोधन पर बल नहीं देता किंतु एक ही कारण से ऐसा कह रहा हूं कि मानवीय मामलों में निर्धारित न्यूनतम के अधिकतम ही बनने की संभावना रहती है। आर्थिक मामलों में न्यूनतम वेतन का सुविख्यात उदाहरण है; न्यूनतम वेतन अधिकांश उद्योगों में अधिकतम वेतन ही बन जाता है। यहां भी, इसी प्रकार, मुझे

[श्री एच.वी. कामत]

आशंका है कि न्यूनतम निर्धारित के अधिकतम ही बन जाने की संभावना होगी। हमें ब्रिटिश शासन में भी यही अनुभव हुआ है। भारत-शासन-अधिनियम में लिखा है कि संसद एक वर्ष में कम से कम दो बार समवेत होगी; कोई ऐसा वर्ष शायद ही गुजरा हो जब संसद वर्ष में दो बार से अधिक बैठी हो। अतः मैं प्रस्ताव करता हूं कि संविधान में हमें रख देना चाहिये कि संसद प्रतिवर्ष न्यूनतम तीन बार समवेत हो: एक बजट अधिवेशन हो जो लम्बा अधिवेशन होता है, एक अधिवेशन वर्ष के मध्य में हो, जुलाई या अगस्त में दो मास के लिये समझिये, और तत्पश्चात् शरद् अथवा शीत ऋतु में, अक्टूबर अथवा नवम्बर में हो। केवल तभी हम जनता तथा देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकेंगे। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1472 लगभग वाक्य-रचना संबंधी है।

(संशोधन संख्या 1473 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1475 भी रचना संबंधी है। संशोधन संख्या 1476 भी रचना संबंधी है। प्रो. शाह, संशोधन संख्या 1477 भी मुझे रचना संबंधी ही दिखाई देता है। यदि आप सहमत हों तो हम इसे छोड़ दें।

***प्रो. के.टी. शाहः** मेरे विचार में इसमें कुछ सारभूत प्रश्न निहित हैं।

श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उप-खंड (क) में 'the House is or either House of' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधित खंड इस प्रकार बन जायेगा:

> ''(2) इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति समय-समय पर—
>
> (क) संसद के ऐसे समय तथा ऐसे-ऐसे स्थान पर समवेत होने के लिये, जैसे कि वह उचित समझे, बुला सकता है।''

अर्थात्, मेरे विचार के अनुसार किसी सदन को बुलाने के लिये राष्ट्रपति के प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है। साधारणतया, द्वितीय सदन, इस संविधान के सिद्धांत के अनुसार, एक अविरत निकाय है, जो विघटित नहीं हो सकता। अतः, वह तो सदा रहेगा ही: यदि यह उपबंध कभी लागू भी होगा तो, जहां तक बुलाये जाने का संबंध है, केवल लोक सभा पर लागू होगा।

मैं स्वयं नहीं समझ पाता कि वर्ष के आरम्भ में द्वितीय सदन को भी बुलाना होगा; अथवा अविरत अस्तित्व में होने के कारण, इसे सदा अधिवेशन में माना जायेगा; या अपनी कार्य प्रणाली द्वारा उसके सत्र बुलाने का वह स्वयं विनियमन कर सकेगी।

उस कठिनाई को दूर करने के लिये, मैंने इन शब्दों को हटा देने का, जिनमें संसद के किसी सदन की विशेष चर्चा की गई है और केवल संसद को बुलाने तक ही शब्दों को सीमित करने का सुझाव रखा है। एक अन्तर है, मैं निवेदन करता हूं, कि संसद शब्द के प्रयोग से और संसद के किसी सदन की विशेष चर्चा करने से, यह प्रकट होता है कि दूसरे निकाय के लिये भी राष्ट्रपति को अधिकार है जो कि अवरित सत्र में रहता है। यदि यह माना जाये कि चाहे द्वितीय सदन निरंतर सत्रासीन हो, फिर भी प्रत्येक अवसर पर इसे बुलाना अपेक्षित है, कम से कम प्रतिवर्ष इसे बुलाना अपेक्षित हो—हां, संयुक्त सत्र के अतिरिक्त ही, तो मेरे विचार में इस उपबन्ध को इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है, जो मुझे कुछ विसंगत सा दिखाई देता है। अतः मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि वह अभिप्राय, चाहे कोई भी अभिप्राय हो, ''संसद' शब्द रखने से पूरा हो जायेगा और संसद के प्रत्येक सदन की विशेष चर्चा करना अपेक्षित नहीं है। अतः मैं इस संशोधन की सदन में सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** संख्या 1478।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उप-खंड (क) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:
>
> 'परन्तु यदि किसी समय राष्ट्रपति इस संविधान में किये गये उपबंध के अनुसार लोक सभा को अथवा लोक सभा के विघटन के पश्चात् संसद के किसी सदन को तीन मास से अधिक समय तक अथवा लोक सभा के जीवनकाल में 90 दिन से अधिक समय तक, नहीं बुलाता, तो लोक सभा का अध्यक्ष तथा राज्य-परिषद का सभापति क्रमशः अपने-अपने सदन को बुला सकता है, जो उस अवस्था में वैधरूपेण में बुलाये गये समझे जायेंगे और अपने समक्ष रखे गये अथवा आने वाले किसी कार्य को करने के अधिकारी समझे जायेंगे।' ''

श्रीमान्, एक गंभीर मामला है, जिसका आशय यह है कि यदि राष्ट्रपति संविधान में रखे गये समय से अधिक काल तक संसद के सदनों को नहीं बुलाये, तो ऐसी विशेष स्थिति के उपचार के लिये हमारे पास कोई व्यवस्था होनी चाहिये। अतः इस संशोधन द्वारा अध्यक्ष अथवा द्वितीय सदन के सभापति को शक्ति दी गई है कि वह अपने-अपने सदन को बुलाये और इसके लिये राष्ट्रपति के प्राधिकार की प्रतीक्षा न करे और राष्ट्रपति स्वयं सदन को न बुलाये, तब भी वह बुलाये।

[प्रो. के.टी. शाह]

यह भी कहा जा सकता है कि यह संदेह की भावना है; राष्ट्रपति में विश्वास के अभाव की भावना है और इसलिये यह ऐसी बात है जो संविधान में उपबन्धित नहीं होनी चाहिये। लिखित संविधानों में, विशेषत: ऐसों में जैसा कि हम भारत के लिये तैयार कर रहे हैं, ऐसी आकस्मिकताओं के विरुद्ध व्यवस्था होनी चाहिये, जो या तो हमारे इतिहास में घट चुकी है जो अन्यत्र घट चुकी है। हमें अपने तथा अन्य लोगों के अनुभव से भी पाठ सीखना चाहिये। यदि आप ऐसी बातों को अभीष्ट समझते हैं तो हमें उनकी पुनरावृत्ति को रोकने की व्यवस्था करनी चाहिये। अन्य देशों के इतिहास में ऐसे राष्ट्रपति हो चुके हैं, चाहे हमारे न हुए हो, जिन्होंने विधि को अपने हाथ में ले लिया और कहने को संविधान की ही शक्ति से संविधान के अभिप्राय तथा उद्देश्य को बिल्कुल उलट दिया और उसका निराकरण कर दिया। यदि ऐसी आकस्मिकता उत्पन्न हो जाये तो उसके उपचार के लिये संविधान में ही उपबंध होना चाहिये; और जब ऐसी कठिनाई वास्तव में उत्पन्न हो जाये तब उस कठिनाई के परिणामों से संरक्षण में हमारी सहायता के हेतु संविधान का संशोधन करने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

अत: मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि यदि किसी समय, किसी कारण, राष्ट्रपति संसद के किसी सदन को, अंतिम स्थगन के पश्चात् 90 दिन से अधिक समय तक लोक सभा को नहीं बुलाता—संभव है ऐसा कभी भी न हो, किंतु यह ऐसी संभावना है जिसको रोकने के लिये व्यवस्था करना ठीक होगा—तो प्रत्येक सदन के पीठासीन प्राधिकारी को इस बात की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह कार्यवाही कर सके, सदन का सत्र बुला सके और सदन के कार्य को जारी रख सके। यदि यह कहा जाये, तो संशय की भावना अन्य देशों के पिछले इतिहास के ज्ञान का परिणाम है। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी प्रत्याभूति नहीं है कि ऐसी कोई बात इस देश में होगी ही नहीं। यदि आपका वास्तव में यही मत है कि हमारे लिये ऐसी पूर्वाशा या आशंका करने का कोई कारण नहीं है कि इस भूमि पर ऐसी बात कभी हो सकती है तो लिखित संविधान बनाया ही क्यों जाये? कुछ क्षण पूर्व, मसौदा-समिति के सभापति ने स्वयं ही पिछले एक अनुच्छेद में एक संशोधन उपस्थित किया था, जिससे संकटकाल में संसद के जीवनकाल को बढ़ाने की शक्ति, जो पहले राष्ट्रपति में निहित थी, राष्ट्रपति से संसद को हस्तांतरित कर दी गई।

अब, यदि आपको ज्ञात है कि ऐसी शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है और यदि आप ऐसे दुरुपयोग को रोकने के लिये यह व्यवस्था करना चाहते हैं कि केवल संसद ही कार्यवाही करे, तो मेरे इस सुझाव में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती कि मुझे जिस प्रकार की आकस्मिकताओं की आशंका है उनके पैदा होने पर संविधान में ही कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि उस स्थिति का समाधान हो सके। हमें यह प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये

कि संविधान में बाद में कोई परिवर्तन या संशोधन किया जाये, जिससे स्वयंमेव तथा न्यूनतम कठिनाई से हम अपना प्रयोजन सिद्ध करने में सफल हो सकें।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, संसार का इतिहास उस प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ है जिनमें कि संविधानों को उलट दिया गया है। अतः यह बुद्धिमानी ही है कि हमें इस समय ऐसी संभावना अथवा संयोग पर विचार करना चाहिये तथा तदनुसार उपबंध करना चाहिये। अतएव मैं इस संशोधन की भी सभा में सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** अगला भी आप ही का है। 1479।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उप-खंड (ख) में 'the house' शब्दों के पश्चात् 'over a period not exceeding three months' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

मेरे विचार में यह मेरे पिछले सुझावों का निष्कर्ष है और इसलिये यदि पहले वाला स्वीकृत हो जाये, तो मुझे आशा है कि यह भी स्वीकार कर लिया जायेगा।

(संशोधन संख्या 1480 तथा 1481 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के उप-खंड (ग) के अन्त में विराम के स्थान पर एक अर्धविराम रख दिया जाये और निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'On the advice of the Prime Minister, if such dissolution is earlier than the completion of the normal term as provided for in section 68 (2); provided that the reasons given by the Prime Minister for such dissolution shall be recorded in writing' ''

(यदि ऐसा विघटन धारा 68 (2) में उपबन्धित सामान्य अवधि के पूर्ण होने से पहले हो तो प्रधान मंत्री के परामर्श पर ऐसा किया जायेगा; परन्तु प्रधान मंत्री ऐसे विघटन के लिये दिये गये कारण लिखित रूप में अभिलेखार्थ रखे जायेंगे।)

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के पश्चात्, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'(3) यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ हो या अनिच्छुक

[प्रो. के.टी. शाह]

हो और प्रधानमंत्री की सम्मति में राष्ट्रीय आयात हो, तो वह अध्यक्ष तथा राज्य परिषद् के सभापति से प्रार्थना कर सकता है कि संसद के दोनों सदनों का आह्वान किया जाये और उसके समक्ष ऐसा कार्य रखा जाये जो राष्ट्रीय आयात के लिये अपेक्षित हो। इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के किसी सदन में जो कार्य किया जाये, वह वैधरूपेण किया गया माना जायेगा और उसी प्रकार बाध्यकारी होगा जैसे कि सामान्य रूप से पारित किया हुआ संसद का कोई अधिनियम, प्रस्ताव या आदेश हो:

परन्तु यह भी बात है कि यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास या 90 दिन से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो और प्रधान मंत्री भी उक्त प्रार्थना करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो, तो संसद के किसी सदन का सभापति ऐसा कर सकता है और इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के सदन वैधरूपेण आहूत माने जायें और अपने समक्ष रखे गये कार्य को निबटाने के अधिकारी होंगे।' ''

श्रीमान्, यह संशोधन उसी युक्ति पर आधारित है, जो कि मैंने कुछ समय पूर्व सदन के समक्ष रखने का प्रयत्न किया था। इन संशोधनों के पहले वाले में मैं यह कहने का प्रयत्न कर रहा हूं कि यदि संसद को सामान्य अवधि से पूर्व अर्थात् 5 वर्ष से पहली विघटित करना पड़ जाये, तो कोई विशेष कारण होने चाहियें कि ऐसा विघटन क्यों अपेक्षित समझा जाये। मेरा संशोधन ऐसे विघटन पर कोई रोक नहीं लगाता। मेरा तो यही सुझाव है कि ऐसा केवल प्रधानमंत्री के परामर्श पर ही किया जाना चाहिये, जैसा कि सामान्यतया होगा ही; और राष्ट्रपति के प्राधिकार से नहीं होना चाहिये। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि प्रधान मंत्री लिखित रूप में अपने कारण अभिलेख में रखें। क्योंकि मेरे विचार में वे कारण भविष्य के लिये मूल्यवान सांविधानिक दृष्टांत बन सकते हैं और भावी पीढ़ियों में उनका अत्यधिक मूल्य हो सकता है।

अतएव, उस आधार पर मेरा पहला संशोधन, आशा है, बिल्कुल सीधा है और सदन को स्वीकार्य होगा। इसमें कुछ नहीं है, केवल यही बात है कि जब भी प्रधान मंत्री लोक सभा का सामान्य अवधि से पूर्व विघटन कराना चाहे, उसके लिये कारणों का उल्लेख करने के बारे में सांवैधानिक प्राधिकार तथा आदेश दिया जा रहा है।

दूसरे संशोधन के संबंध में यह मामला अधिक गंभीर है। इसमें इस संभावना की कल्पना की गई है कि राष्ट्रपति संसद को एकत्र बुलाने में असमर्थ या अनिच्छुक हो। यह ऐसी संभावना है जिसकी बिल्कुल अवहेलना की ही नहीं जा सकती। हो सकता है यह बार-बार न हो—हमें आशा करनी चाहिये कि यह कभी नहीं हो। उस संभावना में मेरा सुझाव है

कि प्रधानमंत्री को यह अधिकार होना चाहिये कि वह सदनों के पीठासीन प्राधिकारियों से प्रार्थना कर सके कि वे अपने-अपने सदनों का आह्वान करें और संसद के उस कार्य को जारी रखें, जो शीघ्र होने वाला हो या अपेक्षित हो। दूसरे परन्तुक में मैंने आगे चलकर इस संभावना की भी कल्पना की है कि प्रधानमंत्री ऐसी प्रार्थना करने में असमर्थ अथवा अनिच्छुक हो और राष्ट्रपति भी संसद को बुलाने में असमर्थ या अनिच्छुक हो। उस स्थिति में जब दो मुख्य प्राधिकारी देश के दो प्रमुख कार्यपालक या तो ऐसी प्रार्थना करने में या अपना सांवैधानिक कर्त्तव्य निभाने में असमर्थ हों या ऐसा करने के अनिच्छुक हों, तब सदन के-दोनों सदनों के पीठासीन प्राधिकारियों को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वे अपने निकाय का सत्र बुला सकें और देश का कार्य सामान्य प्रकार से चला सकें।

***अध्यक्षः** क्या आप कृपया यह बतायेंगे कि संख्या 1483 और संख्या 1478 किस प्रकार भिन्न हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** संख्या 1478 में केवल राष्ट्रपति की ही चर्चा की गई और किसी सदन को बुलाने की प्रार्थना करने के लिये प्रधानमंत्री का नाम नहीं रखा गया है। परन्तुक में यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि यदि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ऐसा करने के अनिच्छुक हों, तो सदनों के पीठासीन प्राधिकारियों को अधिवेशन बुलाना चाहिये। संख्या 1483 में प्रत्येक सदन के पीठासीन प्राधिकारी को ऐसा करने की शक्ति दी गई है और उन दो शर्तों की चर्चा नहीं की गई है, जो बाद में 1483 में रखी गई है। मेरे विचार में दोनों संशोधनों में यही अन्तर है।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल था कि एक-दूसरे में आ जाता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** किसी हद तक बाद वाला अधिक सुनिश्चित है। पहले में प्रधानमंत्री को कार्य करना है। किंतु यदि वह उसे करने का अनिच्छुक हो तो शक्ति काम में लाई जायेगी। किंतु कार्यपालिका के सामर्थ्य या इच्छा का प्रश्न न उठाते हुए भी शक्ति स्वतंत्र रूप से काम में लाई जा सकती है।

***अध्यक्षः** मान लीजिये, संख्या 1478 स्वीकृत हो जाता है, तो क्या आपके विचार में संख्या 1483 की आवश्यकता रहेगी?

***प्रो. के.टी. शाहः** नहीं, किसी पर भी मत लिये जाने से पहले यही तो कठिनाई होती है कि दोनों को साथ पेश करना होता है। यदि संशोधन 1478 स्वीकृत हो जाये

[प्रो. के.टी. शाह]

तो मैं स्वयं कह दूंगा कि उन्हें पेश करना अपेक्षित नहीं है। किंतु मैं विभिन्न संशोधन अपने नाम में पेश करता हूं, क्योंकि मुझे कई संभावनाओं की कल्पना और यदि एक स्वीकृत न हो तो कदाचित् दूसरा स्वीकार हो। इन संशोधनों के विषय में मेरा अनुभव यही है कि शायद ऐसी संभावनाओं से सतर्क ही रहना ठीक है। इसी कारण मैं सदन में इन संशोधनों को पेश कर रहा हूं। मुझे आशा है कि वे स्वीकार कर लिये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर तथा संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 69 में संसद के सदनों के सत्र बुलाने का विषय है। इसमें कहा गया है कि संसद के सदन प्रति वर्ष दो बार अनिवार्यत: समवेत होंगे और यह राष्ट्रपति की इच्छा पर छोड़ दिया गया है कि यदि वह आवश्यक समझे, तो उसका समय-समय पर आवाहन करे। वही परन्तुक 1935 के अधिनियम में भी विद्यमान है। मेरे ख्याल में 1935 के अधिनियम में 'दो बार' के स्थान पर 'एक बार' ही है। अनुभव से मैंने देखा है कि साधारणतया मंत्रिगण विधानमंडल के समक्ष आने के अनिच्छुक होते हैं और इसलिये वे विधान-मंडल के सत्र बुलाना नहीं चाहते, जब तक कि सत्र बुलाना विधि के अन्तर्गत आवश्यक न हो। नई व्यवस्था में, जब हम अपना संविधान ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के अनुसार बना रहे हैं, तब मैं यह नहीं समझ पाता कि अपने कार्य की प्रणाली के प्रयोजन के विषय में भी हम उसी कार्य-प्रणाली को क्यों न मानें। पिछले दो वर्ष के अनुभव से मैंने देखा है कि समयाभाव से महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्य भी रूका रहता है। कई मंत्रियों के पास, उनके ही कथनानुसार, दूसरा महत्त्वपूर्ण काम करने के लिये होता है और उनके पास विधान-कार्य के समय नहीं होता। दृष्टांत के रूप में मैं कह सकता हूं कि संसद के पिछले सत्र में 11 महत्त्वपूर्ण सरकारी विधेयकों को रोक देना पड़ा, कई महत्त्वपूर्ण गैर-सरकारी विधेयकों और प्रस्तावों की तो बात ही क्या। अब, यह महत्त्वपूर्ण विधेयक तभी पारित किये जा सकते थे, यदि हम संविधान निर्माता निकाय के इस सत्र से ठीक पहले तक अपना कार्य जारी रखते और इस प्रकार मध्यवर्ती पूरा एक मास व्यर्थ होने से बच जाता। किंतु मंत्रीगण अपने साधारण दिन-प्रतिदिन के कार्य में व्यस्त थे। अत: मैं कहता हूं कि कोई नई कार्य-प्रणाली ढूंढनी होगी, जैसे कि इंगलिस्तान की संसद में होता है, जहां कि सदा मंत्रियों को अपना कार्य संपन्न कराने के लिये स्वयं नहीं आना पड़ता, वरन् यह काम उप-मंत्रियों पर छोड़ दिया जाता है। मंत्रिगण यह बहाना नहीं बना सकते कि उन्हें अपेक्षित समय नहीं मिला, अत: वे अपना कार्य पूरा नहीं कर सके। इंगलिस्तान के समान एक नियम होना चाहिये कि संसद समूचे वर्ष भर लगातार समवेत रहे। नियमों के अन्तर्गत हमारे यहां प्रश्नोत्तर-काल होता है और माननीय मंत्रियों के लिये यह बहुत कठिनाई का समय होता है, क्योंकि वही समय होता है जबकि सदस्य सरकार से सूचना प्राप्त कर सकते हैं और मुझे पता है कि कुछ मामलों में मंत्रिगण

किसी-किसी दिन इस प्रश्नोत्तर काल को हटा देना चाहते थे, जिससे कि वे दूसरे एकत्रित कार्य को पूरा कर सकें। वास्तव में ऐसा हुआ है, यद्यपि नियमों के अंतर्गत यह काम अनिवार्य है। ब्रिटिश संसद में भी यह प्रश्नोत्तर-काल बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। वहां वे रात्रि को भी बैठकें करते हैं। मैं जानता हूं कि यहां कुछ हमारे सदस्य अधिक देर तक बैठना पसंद नहीं करते। किंतु मेरा नम्र निवेदन है कि सदस्यों को स्वयं सोचना चाहिये कि नई अवस्था में उन्हें इस कार्य को अधिक समय देना पड़ेगा। यदि हम अधिक समय नहीं दे सकते, तो हम निस्संदेह अपने निर्वाचन-क्षेत्र के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं कर सकते और नये ढांचे में हमारे लिये कोई स्थान नहीं होगा। नये ढांचे में, जबकि हमारी संसद में छह सौ सदस्य होंगे, तब मैं जानना चाहता हूं कि यदि एक वर्ष में दो ही बैठकें होंगी, तो कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा; मैं समझता हूं कि विधि द्वारा अधिक बैठकें बुलानी पड़ेंगी। श्रीमान्, यह युक्ति दी जाती है कि जब संसद के समक्ष विधान-कार्य लाना होगा तब संसद बुला ली जायेगी। किंतु मैंने आपको उदाहरण दिया है कि महत्त्वपूर्ण विधान-कार्य समयाभाव से पड़ा रह जाता है। मुझे विश्वास है कि यह कार्य उस सत्र में भी पूरा नहीं हो सकेगा और आगामी वर्ष के बजट सत्र में जाकर होगा। बजट सत्र में भी, हम जानते हैं कि करोड़ों रुपये और 80 करोड़ तक के पूरक अनुदान तीन घंटे में निपटा दिये गये और सदस्य विरोध प्रदर्शित करते रह गये। अधिक समय नहीं दिया गया और बहाना यह था कि हमारे पास और अधिक समय उपलब्ध नहीं है। हमें यह तरीका बदलना होगा, यदि हम वास्तव में जनता का प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं और यदि हम अपने अर्थ पर प्रभाव डालने वाली बजट की मुख्य मदों पर ध्यान देना चाहते हैं। अतएव मैं कहता हूं कि बजट के वाद-विवाद के लिये जो चार दिन दिये गये हैं, जो हमारे आंदोलन के कारण 8 दिन कर दिये गये थे, वे लगभग तीन अरब रुपये के बजट को और साथ में रेलवे बजट को भी निबटाने के लिये सर्वथा अपर्याप्त है। कुल मिलाकर हमने तीन सप्ताह लिये, जबकि ब्रिटिश संसद तीन-चार मास लेती है। हां, नियमों के अधीन 31 मार्च के पहले हमें व्यय स्वीकार करना होता है। किंतु ब्रिटिश संसद की कार्य-प्रणाली को क्यों नहीं ग्रहण करते, जहां एक विशेष तारीख तक सेवाओं को वेतन दे दिया जाता है? उसके पश्चात् बजट की विभिन्न मदों पर वाद-विवाद जारी रह सकता है। यदि हमारी नई लोक-संसद में हमें बजट के वाद-विवाद के लिये पूरा समय नहीं दिया जाता है, तो मैं पूर्ण विनम्रता से निवेदन करता हूं कि ये लोक-तंत्र का उपहास होगा। हमें बताया जाता है कि हम ब्रिटिश संसद के अतिरिक्त किसी प्रणाली का अनुसरण नहीं करते। फिर आप सब बातों में उनका अनुसरण क्यों नहीं करते और केवल ऐसा क्यों करते हैं कि जब वह आपको अभीष्ट हो तब मान लेते हैं और जब अभीष्ट नहीं हो तो छोड़ देते हैं? मैं बलपूर्वक इसी मत का हूं कि छह सौ सदस्यों का सदन, जनता के सच्चे प्रतिनिधियों का सदन, जनता की सेवा करने का अवसर नहीं पा सकेगा, यदि आप केवल दो ही सत्र बुलायेंगे। आजकल बजट सत्र फरवरी से लगभग 10 अप्रैल तक

[श्री आर.के. सिधवा]

रहता है, शनिवारों और रविवारों को छोड़कर केवल 53 दिन होते हैं। शरद् सत्र केवल तीन सप्ताह होता है जो शनिवारों को तथा रविवारों को निकालकर केवल सोलह-सत्तरह दिनों का होता है। अतएव मेरा यह कहना है कि पार्लियामेंट के समान केवल एक-दो मास के विश्वास को छोड़ सारे वर्ष ही लगातार सत्र रहना चाहिये। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर मेरी युक्तियों पर विचार करेंगे तथा यदि उन्हें जंच जाये कि वे न्यायपूर्ण तथा संगत हैं तो अधिनियम में आवश्यक उपबंध रख देंगे। इससे कार्य-प्रणाली अधिक सुगम हो जायेगी तथा कार्य जल्दी सम्पन्न होगा हम कार्यालयों में पत्र-व्यवहार के विलम्ब पर शिकायत करते हैं। किंतु क्या हम स्वयं विधान-कार्य को निपटाने में पर्याप्त शीघ्रता करते हैं? हमारे लिये यह अपमानजनक है कि गत कुछ मास में समयाभाव के कारण महत्त्वपूर्ण कार्य आगामी सत्र के लिये पड़ा रह गया। यदि मंत्रिगण यह कहें कि विधान-कार्य के लिये अधिक बैठकें अपेक्षित नहीं हैं, तो सदस्यों को 'ना' कहने की कोई जरूरत नहीं है। किंतु सदस्य भी नरम पड़ गये हैं और जब वे देखते हैं कि मंत्रीगण जारी रखना नहीं चाहते तो वे भी सदन को स्थगित करने के लिये सहमत हो जाते हैं। अत: मैं समझता हूं कि भविष्य में कार्य को अच्छी तरह निपटाने के लिये उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिये।

अध्यक्ष: मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि इस समय हम जिस संगति से चल रहे हैं, हमें शायद श्री सिधवा की ही राय मानकर सारे वर्ष बैठना पड़े; और मुझे आशा है कि सदस्य मान जायेंगे कि केवल लम्बे सत्र ही नहीं, प्रतिदिन लम्बी बैठक भी हुआ करे और यदि आवश्यक हो तो प्रतिदिन एक ही बैठक के स्थान पर दो-तीन बैठकें हों। वैयक्तिक तौर पर मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं चाहता हूं कि संविधान यथाशीघ्र समाप्त हो जाये। मुझे आशा है कि जब भी कभी बैठकों की संख्या या घंटों की संख्या बढ़ाने का प्रश्न उठेगा, तब माननीय सदस्य श्री सिधवा की बातों को याद रखेंगे।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, मैं सर्वप्रथम श्री कामत के संशोधन पर कुछ कहूंगा, जिसके अनुसार संविधान में उल्लिखित दो सत्रों की जगह संसद के तीन सत्र होने चाहियें। मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं, क्योंकि यह सबको अनुभव है कि बजट सत्र में, जो कि लगभग दो मास का होता है, हम सिवा, बजट तथा कुछ विधेयकों को पारित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते। अत: मैं तीन सत्रों के सुझाव का समर्थन करता हूं अर्थात् बजट सत्र, ग्रीष्म सत्र तथा शरद् सत्र होने चाहियें। ऐसा ही एक संशोधन (संख्या 1470) प्रो. शाह का है, जिसमें कहा गया है कि संसद वर्ष के आरम्भ में आहूत होनी चाहिये तथा बीच में अन्तरवेलाओं के अतिरिक्त वर्ष भर चलनी चाहिये। यह भी समुचित दीख पड़ता है और मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इन दोनों में से कौन सा स्वीकृत होता है।

प्रो. शाह ने एक और भी संशोधन पेश किया है, जिससे मैं सहमत हूं, कि यदि गणराज्य का राष्ट्रपति विधान-मंडल को बुलाने में असमर्थ हो, तो राज्य-परिषद् के सभापति अथवा प्रथम सभा के अध्यक्ष को उसका आह्वान करने की शक्ति होनी चाहिये। यदि वे भी ऐसा न करें तो प्रधानमंत्री को चाहिये कि लिखित रूप में इन दोनों सज्जनों से निवेदन करे कि वे संसद का आह्वान करें। किंतु यदि मान लिया जाये कि वे इन्कार कर दें तब क्या होगा? मेरे विचार में ऐसी स्थिति में स्वयं प्रधानमंत्री को संसद के सदनों को आहूत करने की शक्ति होनी चाहिये। यह केवल आपातिक स्थिति के लिये उपबन्ध करना है और निस्संदेह प्रधानमंत्री किसी भी दूसरे से अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। यदि वह समझता है कि संसद को आहूत करने के योग्य आपात है तो उसे ऐसा करने की शक्ति होनी चाहिये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का भी समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर दो दृष्टि बिन्दुओं से आलोचना हुई है अर्थात्—यह कि संसद की बैठकें निरन्तर होनी चाहियें और राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं होनी चाहिये कि वह विधान-मंडल का आह्वान करने से इंकार करके उसे व्यर्थ कर दे। पहली बात पर मैं श्री कामत तथा श्री सिधवा से सहमत हूं। हमारी विद्यमान संसद के अधिवेशन बहुत कम होते हैं और मंत्रिगण तक भी शिकायत करते हैं कि बजट सत्र में उन्हें अपने वर्ष भर के कार्य का पूरा विवरण देने के लिये समय नहीं मिलता। वास्तव में उन्होंने इस बात पर क्षोभ प्रकट किया है कि उन्हें इस प्रयोजन के लिये केवल एक या दो घंटे दिये जाते हैं। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं अनुभव किया होगा कि सदन यथेष्ट समय तक नहीं बैठता। हमें इस विषय में हाउस आफ कामन्स का अवलम्बन करना चाहिये और मुझे आशा है कि विदेशी शासकों के इस उदाहरण का अनुसरण अब न किया जायेगा, जिन्होंने कि भारत में एक नाटकीय संसद की रचना की थी और हमारी संसद वस्तुत: लक्षणानुसार संसद होगी। इसे व्यय तथा करों की पाई-पाई की देखभाल करने का अवसर मिलेगा। हमें संसद की बहुत लम्बी बैठकें करनी चाहिये, जिससे कि अपने कर्त्तव्यों का समुचित निर्वहन करे सकें। अध्यक्ष आदि द्वारा संसद बुलाने के विषय में प्रो. के.टी. शाह के संशोधन के संबंध में मेरा ख्याल है कि हमारे संविधान में, जो कि ब्रिटिश पद्धति के अनुकूल बनाया गया है, राष्ट्रपति बादशाह के स्थान में ही होगा, अतएव उसकी शक्ति अधिक नहीं होगी। अत: मैं नहीं समझता कि प्रो. शाह की आशंकायें युक्तियुक्त हैं और इसलिये ये उपबंध अनावश्यक हैं। अमरीकी पद्धति के संविधान में यह उपयुक्त होते हैं, क्योंकि वहां राष्ट्रपति को बहुत ज्यादा शक्ति मिली होती है और वह विधान-मंडल के प्रयोजन को निष्फल कर सकता है, किंतु हमारे संविधान में तो वह केवल प्रतीकस्वरूप प्रमुख होता है, अत: वह कुछ गड़बड़ नहीं कर सकता और उसे महाभियोग द्वारा हटाने के लिये भी उपबंध हैं, यद्यपि मुझे आशा

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है कि ऐसे अवसर नहीं आयेंगे। अत: मेरे विचार में प्रो. शाह का संशोधन उपयुक्त नहीं है। किंतु संसद की बैठकों के विषय में मैं सहमत हूं कि लगातार सत्र होने चाहियें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मुझे खेद है कि इस अनुच्छेद पर जितने भी संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि सिवाय एक संशोधन के, जिसे मैंने अपने उत्तर के लिये चुना है, किसी अन्य पर टिप्पणी करना अपेक्षित नहीं है। प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधनों से कुछ बातें पैदा होती हैं। उनका प्रथम संशोधन (संख्या 1470) तथा उनका दूसरा संशोधन (संख्या 1479) लगभग एक ही विषय से सम्बद्ध हैं और परिणामत: मैं उनके तर्कों को निबटाने के लिये उन्हें एक साथ लेना चाहता हूं। उन दो संशोधनों में प्रो. शाह ने इस बात पर बल दिया है कि संसद के किसी दो सत्रों के बीच की अन्तरवेला तीन मास से अधिक नहीं होनी चाहिये। दोनों संशोधनों का यही सार तथा आशय है।

प्रो. शाह के इन दो संशोधनों के साथ मैं श्री कामत का संशोधन (संख्या 1471) को ले सकता हूं, क्योंकि उससे भी यही प्रश्न उठता है। मुझे ऐसा दिख पड़ता है कि न प्रो. शाह ने और न श्री कामत ने ही वे कारण समझे हैं कि इन खंडों को पहले-पहल भारत शासन अधिनियम 1935 में क्यों रखा गया था। मेरे विचार में प्रो. शाह तथा श्री कामत समझ लेंगे कि 1935 के अधिनियम के पारण के समय जो राजनैतिक वातावरण था, वह अब के वातावरण से सर्वथा भिन्न था। 1935 में जो वातावरण था उसमें कार्यपालिका विधान-मंडल को टाला करती थी। वास्तव में उस समय से पूर्व विधान-मंडल को प्रधानत: राजस्व के समाहार के लिये ही आहूत किया जाता था। वह केवल बजट के लिये समवेत होता था तथा कार्यपालिका जब अपने आर्थिक प्रस्तावों, अर्थात करों तथा राजस्व के विनियोग दोनों के विषय में विधान-मंडल की स्वीकृति लेने में सफल हो जाती थी, तत्पश्चात् कार्यपालिका इस बात के लिये अतीव उत्सुक नहीं होती थी कि वह विधान-मंडल के समक्ष आकर उसे प्रश्नोत्तर के अधिकार द्वारा दिन-प्रतिदिन के प्रशासन की आलोचना करने दे या सामाजिक शिकायतों के दूर करने के लिये विधान उपस्थित करने दे। वास्तव में मैं स्वयं भारत के उन प्रांतीय विधान-मंडलों के आचरण पर ध्यानपूर्वक गौर करता रहा हूं, जो 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत कार्य करते थे और मैं एक प्रांत विशेष के विषय में जानता हूं, (मैं उसका नाम उल्लेख नहीं करना चाहता) जहां विधान-मंडल समूचे वर्ष में 18 दिन से अधिक समवेत नहीं हुआ और वह भी केवल राजस्व के समाहार विषयक सुझावों पर विधान-मंडल की स्वीकृति लेने के उद्देश्य से ही बुलाया गया था।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** उसके लिये कौन उत्तरदायी था?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यही बताने जा रहा था कि इस प्रकार के आचरण के लिये वही मनोवृत्ति उत्तरदायी थी, जो कि भूतपूर्व में कार्यपालिका की होती थी कि विधान-मंडल के समक्ष आने की तथा विधान-मंडल की देखभाल के लिये अपने आप को और अपने प्रशासन को उपस्थित करने की इच्छा न करना।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** वह कौन सा प्रांत था?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अच्छा हो आप उसे रहने दीजिये। मैं अपने माननीय मित्र को अलग से बता सकता हूं कि वह कौन सा प्रांत था। यह अनुभव किया गया कि यदि ऐसी बात आगे भी हो, जैसी कि 1935 के पहले होती थी, तो वह लोकप्रिय सरकार का उपहास होगा। विधान-मंडल को केवल राजस्व के समाहरण के निमित्त बुलाना तथा बाद में उसे सर्वथा विघटित कर देना और इस प्रकार उसे प्रश्नोत्तर या विधान-निर्माण द्वारा प्रशासन में सुधार करने के समस्त न्यायपूर्ण अवसरों से वंचित कर देना जो विधि द्वारा उसे प्राप्त हैं, लोकतंत्र का उपहास है जैसा कि मैं कह ही चुका हूं, उस प्रकार की बात को होने से रोकने के लिए ही भारत-शासन अधिनियम 1935 में यह खंड रखा गया था। हमने सोचा—वैयक्तिक रूप से मैं भी सोचता हूं—कि वातावरण अब सर्वथा बदल गया है और मैं नहीं समझता कि कोई कार्यपालिका आगे भी विधान-मंडल के प्रति इस प्रकार का कठोर आचरण करने में समर्थ होगी। इसलिये हमने सोचा कि और भी सावधानी के उपाय रूप में वही खंड हमारे वर्तमान संविधान में रखना अभीष्ट होगा। मेरे मित्र श्री कामत तथा प्रो. शाह की धारणा है कि यह पर्याप्त नहीं है। वे और भी अधिक बार सत्र चाहते हैं। विद्यमान रूप में यह खंड इस बात का कोई निषेध नहीं करता कि इस खंड में जो उपबंध है, उससे अधिक बार विधान-मंडल को बुलाया जाये। वास्तव में मैं कहूं, तो मुझे यह भय है कि संसद के सत्र इतने बार होंगे और इतने लम्बे होंगे कि कदाचित संसद के सदस्य स्वयं सत्रों से परेशान हो जायें। इसका कारण यह है कि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी है, वह केवल सुचारू प्रशासन चलाने के लिये ही उत्तरदायी नहीं है, वरन् वह ऐसे विधानी कार्यों के लिये भी जनता के प्रति उत्तरदायी है, जो अपने दल के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये अपेक्षित हो।

इसी प्रकार कई गैर-सरकारी सदस्य भी होंगे, जो शायद अपनी धुन या अपनी तुच्छ तरंगों को पूरा करने के लिये विधान-निर्माण करवाना चाहें। इसके अतिरिक्त एक और कारण हो सकता है जिससे कि कार्यपालिका विधान-मंडल को अधिक बार बुलाने के लिये बाध्य

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

हो जाये। मेरे विचार में समय पर कर-संबंधी विधानों, अनुदानों की मागें तथा पूरित अनुदानों को पारित कराने का प्रश्न भी एक अन्य शक्तिशाली कारण है, जिसके आधार पर कि बहुत हद तक यह प्रश्न निश्चित होगा कि विधान-मंडल को कितनी बार आहूत किया जाये।

अत: सदन से मेरा निवेदन है कि हमने जो उपबंध कर दिया है, वह न्यूनतम के रूप में पर्याप्त है। जहां तक अधिकतम का संबंध है, मामला अनिश्चित छोड़ दिया गया है तथा मैंने जो कारण बताये हैं, उनसे ऐसी कोई आशंका नहीं है कि कार्यपालिका इस खंड विशेष द्वारा लागू न्यूनतम कर्त्तव्यों को करके ही संतुष्ट हो जाये।

मैं प्रो. शाह के संशोधन (संख्या 1477) को लेता हूं। प्रो. शाह इस संशोधन विशेष द्वारा खंड 67 (2) (क) में से (either House) इन शब्दों में उनके तर्क को समझ नहीं सका। उनकी यह धारणा प्रतीत होती थी—यदि मैं गलत हूं तो वे ठीक कर दें—कि क्योंकि द्वितीय सभा विघटनशील नहीं है, अत: राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उसे कार्य करने के लिये आहूत करे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों स्थितियों में बहुत अन्तर है। उस सदन को किसी निश्चित कालावधि के पश्चात् घटित करना चाहे आवश्यक न हो, जैसे कि लोक सभा को पांच वर्ष पश्चात् विघटित करना होता है; किंतु उस सदन को कार्य करने के लिये बुलाने का काम तो फिर भी रहता ही है। सदन यहां दिल्ली में प्रतिदिन चौबीस घंटे तथा प्रतिवर्ष 12 मास तो नहीं बैठा रहेगा। उसे आहूत करना पड़ेगा और सदस्यगण आवाहन करने पर उपस्थित होंगे। अत: मुझे यह दिखता है कि द्वितीय सदन को भी बुलाने की शक्ति के लिये भी वैसा उपबंध होना अपेक्षित है, जैसे कि प्रथम सदन के विषय में उपबंध किया गया है।

अब मैं प्रो. शाह के दो अन्य संशोधनों को लेता हूं (संख्या 1473 तथा 1478)। जैसी शब्दावलि उन्होंने संशोधनों की रखी है, उसके कारण वे कुछ उलझे हुए हैं। संशोधनों का सार यह है कि प्रो. शाह यह समझते प्रतीत होते हैं कि शायद राष्ट्रपति इस अनुच्छेद के अनुसार साधारण काल में संसद को न बुलाये या कि आपात होने पर भी विधान-मंडल को आहूत करें ही नहीं। अत: वे कहते हैं कि जब राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्य में असफल हों, तब विधान-मंडल को आहूत करने की शक्ति प्रथम सभा के अध्यक्ष में अथवा द्वितीय सभा के सभापति या उप सभापति में निहित कर देनी चाहिये। यदि मैं ठीक समझा हूं तो प्रो. शाह की यही युक्ति है। मुझे प्रतीत होता है कि यहां भी प्रो. शाह सारी स्थिति को गलत समझे हैं। सर्व प्रथम तो मैं यह नहीं समझता कि राष्ट्रापति अपना ऐसा कर्त्तव्य करने में क्यों असफल रहेंगे, जो विधि द्वारा उनके लिये नियत किया गया है।

यदि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को यह सुझाव दें कि विधान-मंडल बुलाया जाए और राष्ट्रपति, अकारण, क्रीड़ावश या लम्पटतावश उसे आहूत करने से इन्कार कर दें तो मेरे ख्याल में हमारे पास हमारे अपने संविधान में इसका उपाय है कि ऐसे राष्ट्रपति को पदच्युत कर दिया जाये। हमें उस पर महाभियोग चलाने का अधिकार है, क्योंकि उसके लिये जो कर्त्तव्य नियत किये गये हैं, उन्हें करने से ना करना निस्संदेह संविधान का उल्लंघन है। अतः उस खंड विशेष में पर्याप्त उपचार हैं।

किन्तु यदि हम प्रो. के.टी. शाह के सुझाव को स्वीकार कर लें तो एक और कठिनाई उत्पन्न होती है। मान लीजिये, उदाहरण के लिये कि राष्ट्रपति उचित कारण से विधान-मंडल को नहीं बुलाता और अध्यक्ष तथा सभापति विधान-मंडल को बुला लेते हैं। फिर क्या होगा? यदि राष्ट्रपति विधान-मंडल को नहीं बुलाता तो इसका यह अर्थ हुआ कि कार्यपालिका सरकार के पास सदन के समक्ष रखने के लिये कोई कार्य नहीं है। क्योंकि वही एक आधार है, जिस पर राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर सभा का सत्र बुलाये। अब, अध्यक्ष सभा के लिये कार्य तो पैदा नहीं कर सकता और न सभापति ही ऐसा कर सकता है। कार्य तो कार्यपालिका को ही देना है, अर्थात् प्रधानमंत्री को ही देना है जो राष्ट्रपति को मंत्रणा देगा कि विधान-मंडल को आहूत किया जाये। अतः अध्यक्ष या सभापति को केवल यह शक्ति दे देना कि वे विधान-मंडल को बुला सके और उस सभा के लिये कार्य पेश करने का उपबंध न करना तो मेरे विचार में एक व्यर्थ बात होगी और इसलिये उस संशोधन को स्वीकार करने से कोई अभिप्राय सिद्ध नहीं होगा।

प्रो. के.टी. शाह के अन्तिम संशोधन संख्या 1482 का उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति को सदन के विघटन की अनुमति तब तक नहीं देनी चाहिये, जब तक कि प्रधानमंत्री विघटन के लिये लेख द्वारा अपने कारण न बताये। खैर, मैं नहीं जानता कि इसमें क्या अन्तर हो सकता है कि प्रधानमंत्री जाकर राष्ट्रपति से कहे कि उनके विचार में सदन का विघटन होना चाहिये या प्रधानमंत्री पत्र लिखकर कहे कि सदन विघटित किया जाना चाहिये। प्रो. के.टी. शाह ने अपनी वक्तृता में यह नहीं बताया कि इस लिखित पत्र से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, जो वे विघटन से पूर्व प्रधानमंत्री से लिखवाना चाहते हैं। अतएव मैं कोई टिप्पणी करने में असमर्थ हूं। यदि प्रो. के.टी. शाह का यह उद्देश्य है कि प्रधानमंत्री को विघटन के लिये स्वेच्छाचारिता से नहीं करना चाहिये, तो मेरे विचार में यदि विघटन के विषय में परम्परा पर चला जाये तो वह उद्देश्य पूरा हो जायेगा। जहां ते मैं समझ सका हूं, बादशाह को संसद के विघटन करने का अधिकार है। वह साधारणतः प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर ही उसका विघटन करता है, किंतु एक समय पर, निस्संदेह उस समय पर जबकि मकोले ने इंगलिस्तान का इतिहास लिखा था, जिसमें कि उसने संसद के विघटन

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

के अधिकार के सिद्धांत का प्रवर्तन किया था, तब स्थिति यह थी: सब राजनीतिज्ञ यह मानते थे कि उस समय की परम्परा के अनुसार बादशाह प्रधानमंत्री की मंत्रणा को स्वीकार करने के लिये अवश्यमेव बाध्य नहीं था, यदि प्रधानमंत्री संसद का विघटन चाहता हो। यदि बादशाह चाहता तो वह विरोधी दल के नेता से पूछ सकता था कि क्या वह आकर सरकार की स्थापना करने के लिये उद्यत था, जिससे कि उस प्रधानमंत्री को पदच्युत कर दिया जाये जो सदन का विघटन चाहते थे और विरोधी दल का नेता सरकारी कार्य को संभाल ले और विघटन किये बिना उसी संसद से काम चलाये। बादशाह को यह भी अधिकार था कि वह सदन से कोई और मंत्री को ढूंढ निकाले, जो सदन का विघटन किये बिना प्रशासन चलाने के उत्तरदायित्व को वहन करने के लिये उद्यत हो। यदि बादशाह विरोधी दल के नेता को या किसी अन्य सदस्य को शासन का उत्तरदायित्व संभालने तथा प्रशासन चलाने के लिये राजी करने में असफल होता तो वह सदन का विघटन करने के लिये बाध्य था। इसी प्रकार भारत-संघ का राष्ट्रपति भी सदन की भावनाओं का आभास कर लेगा कि क्या सदन इस बात से सहमत है कि उसका विघटन कर दिया जाये या सदन यह मानता है कि बिना विघटन के ही किसी अन्य नेता द्वारा काम चलाया जाये। यदि वह देखता है कि भावना ऐसी है कि विघटन के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है, तो संवैधानिक राष्ट्रपति के नाते वह निस्संदेह सदन का विघटन करने के विषय में प्रधानमंत्री की मंत्रणा को स्वीकार कर लेगा। अतएव मेरा यह ख्याल है कि लिखित रूप में एक पत्र पर हठ करना, जिसमें वे कारण लिखे हुए हो कि प्रधानमंत्री सदन का विघटन क्यों चाहता है, व्यर्थ दिखाई देता है और उसका मूल्य उस कागज के बराबर भी नहीं है जिस पर वह लिखा गया है। राष्ट्रपति के लिये सदन की भावनाओं को जानने के तथा यह मालूम करने के और भी उपाय हैं कि प्रधानमंत्री सदन के विघटन की मांग किसी सच्चे कारणों से कर रहा है अथवा केवल दल संबंधी प्रयोजनों से कर रहा है। मेरे विचार में हम राष्ट्रपति पर भरोसा कर सकते हैं कि वह दलों के नेताओं और समूचे सदन के मध्य ठीक ही निर्णय करेंगे। अत: मैं नहीं समझता कि यह संशोधन स्वीकार किया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों का एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में 'twice at least in every year, and six' इन शब्दों के स्थान पर 'once at least in every year at the beginning thereof, and more than three' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत कर दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में 'twice' शब्द पर के स्थान 'thrice' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'किंतु संसद या उसका कोई सदन एक बार बुलाये जाने पर तथा अधिवेशन आरम्भ होने पर वर्ष भर इसी प्रकार चलता रहेगा और प्रत्येक बैठक समस्त संसदीय वर्ष के लिये निरन्तर अधिवेशन में समझी जायेगी चाहे छुट्टियों, स्थगन अथवा सत्रावसान के कारण बाधा पड़े।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'the Houses or either House of' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उपखंड (क) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'परन्तु यदि किसी समय राष्ट्रपति इस संविधान में दिये गये उपबंध के अनुसार लोक सभा को अथवा लोक सभा के विघटन के पश्चात् संसद के किसी सदन को तीन मास से अधिक समय तक अथवा लोक सभा के जीवन काल में 90 दिन से अधिक समय तक नहीं बुलाता, तो लोक सभा का अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् का सभापति क्रमश: अपने-अपने सदनों को बुला सकता है जो उस अवस्था में वैध रूपेण समझे जायेंगे और अपने समक्ष रखे गये अथवा आने वाले किसी कार्य को करने के अधिकारी समझे जायेंगे।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''अनुच्छेद 69 के उपखंड (ग) के अन्त में विराम के स्थान पर एक अर्धविराम रख दिया जाये और निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'यदि ऐसा विघटन धारा 68 (2) में उपबन्धित सामान्य अवधि के पूर्व होने से पहले हो, तो प्रधानमंत्री के परामर्श पर ऐसा किया जायेगा, परन्तु प्रधानमंत्री द्वारा ऐसे विघटन के लिये दिये गये कारण लिखित रूप में अभिलेखार्थ रखे जायेंगे।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के पश्चात्, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ हो या अनिच्छुक हो और प्रधानमंत्री की सम्मति में राष्ट्रीय आयात हो, तो वह अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् के सभापति से प्रार्थना कर सकता है कि संसद के दोनों सदनों का आह्वान किया जाये और उसके समक्ष ऐसा कार्य रखा जाये जो राष्ट्रीय आयात के लिये अपेक्षित हो। इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के सदन में जो कार्य किया जाये, वह वैधरूपेण किया गया माना जायेगा और उसी प्रकार बाध्यकारी होगा जैसे कि सामान्य रूप से पारित किया हुआ संसद का कोई अधिनियम, प्रस्ताव या आदेश हो:

परन्तु यह भी बात है यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास या 90 दिन से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो और प्रधानमंत्री भी उक्त प्रार्थना करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो तो संसद के किसी सदन का सभापति ऐसा कर सकता है और इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के सदन वैधरूपेण आहूत माने जायेंगे और अपने समक्ष रखे गये कार्य को निपटाने के अधिकारी होंगे।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उपखंड (ख) में 'the Houses' इन शब्दों के पश्चात् 'over a period not exceeding three months' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** सारे संशोधन रद्द कर दिये गये हैं।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 69 संविधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 69-ए

***अध्यक्ष:** कई सदस्यों ने एक नए अनुच्छेद की सूचना दी है। श्री रामलिंगम् चेटियर का संशोधन संख्या 1484।

***श्री टी.ए. रामलिंगम चेटियर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इसे किसी अधिक सुविधाजनक अवसर पर पेश करूंगा। इस समय इसे पेश करना आवश्यक नहीं है।

अनुच्छेद 70

***अध्यक्ष:** तब हम अनुच्छेद 70 को लेते हैं। इसमें श्री कामत के दो संशोधन संख्या 1485 तथा 1486 हैं, जो रचना संबंधी हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** वे रचना-संबंधी नहीं हैं। किन्तु यदि आपका यह निर्णय है कि वे ऐसे हैं तो मैं उन्हें पेश करने के लिये हठ नहीं करूंगा।

***अध्यक्ष:** कोई अन्य संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 70 संविधान का भाग हो।''

अनुच्छेद 70 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 71

***अध्यक्ष:** एक संशोधन संख्या 1487 है जिसकी सूचना प्राप्त हुई है। यह नकारात्मक है अत: मैं इसके पेश करने की अनुमति नहीं देता।

प्रो. शाह का संशोधन संख्या 1488। यह संशोधन अनुच्छेद 70 में आ जाता है, जो हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान।

(संशोधन संख्या 1489 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रो. शाह का संशोधन सं. 1490।

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 71 के खंड (1) में 'and inform Parliament of the cause of its summons' इन शब्दों के स्थान पर 'on the general state of the Union, including financial proposals and other particular issues of policy be deems suitable for such address' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

> ''प्रत्येक सत्र के आरम्भ पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को, जो एक साथ समवेत होंगे, संघ की साधारण स्थिति के विषय में सम्बोधित करेगा, जिसमें आर्थिक सुझाव तथा अन्य विशेष बातें समाविष्ट होंगी जिन्हें वह ऐसे सम्बोधन के लिये उपयुक्त समझे।''

यहां जो शब्दावलि है उसमें तथा मेरे सुझाये हुए तरीके अन्तर है। मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति का संभाषण मुख्यत: नीति के साधारण प्रश्नों अथवा देश के भविष्य के विषय में हो तथा केवल आह्वान के विशिष्ट कारणों के ही संबंध में न हो। ब्रिटिश संसद में यह रीति है कि संसद के उद्घाटन पर बादशाह सिंहासन से संभाषण देता है। उसमें, साधारणत: सब प्रश्नों का उल्लेख होता है। सरकार विधान के लिये जो मुख्य प्रस्ताव लाना चाहती है, उनका उल्लेख होता है तथा जो मांगें तथा व्यय होने की संभावना हो उनका भी उल्लेख होता है। अब, यदि आप केवल 'आह्वान के कारण' ही कहें, तो इसका अर्थ होगा उस दिन की संघ आवश्यकता; चूंकि यदि राष्ट्रपति को मामलों की साधारण स्थिति का सिंहावलोकन करने की स्वतंत्रता दे दी जाये तथा प्रस्तावित विधानों और सदन में रखी जाने वाली नीति का मोटे से शब्दों में संकेत करने की भी स्वतंत्रता दे दी जाये, तो मेरे विचार में बहुत ज्यादा ढील हो जायेगी। देश की स्थिति के सरकारी सिंहावलोकन से जनता को यह समझाने में बहुत हद तक सहायता मिलेगी कि उनकी सरकार किस प्रकार कार्य कर रही है और यह भी कि समय-समय पर उनकी सरकार क्या-क्या कामों को हाथ में लेती है और किस हद तक ये काम पूरे किये जा रहे हैं।

मेरे विचार में राज्य का दलहीन प्रमुख होने की हैसियत से, जो कि गणराज्य का प्रतिनिधित्व करता है, राष्ट्रपति को व्यापक सिंहावलोकन करना चाहिये और केवल उन्हीं कारणों तक अपना भाषण सीमित नहीं रखना चाहिये जिनसे कि सदन बुलाया गया हो और इसीलिये यह संशोधन रख रहा हूं। मैं इसे सदन के समक्ष पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** अन्य तीन संशोधन संख्या 1491, 1492 तथा 1493 रचना-संबंधी हैं और उनकी अनुमति नहीं दी जाती। अनुच्छेद तथा उस पर पेश किये गये संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, आप ने निर्णय किया है कि संशोधन संख्या 1487 पेश नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इस खंड का पूर्णत: निराकरण करता है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि मुझे इस खंड की आवश्यकता के विषय में ही विश्वास नहीं हो पाता और प्रो. के.टी. शाह के संशोधन के विषय में तो और भी कम विश्वास होता है। श्रीमान्, हम एक खंड पहले पारित कर ही चुके हैं जिससे राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल जाता है कि वह संसद के किसी सदन को संबोधित कर सकेगा। अब इस खंड द्वारा हम राष्ट्रपति के लिये यह अनिवार्य बना रहे हैं कि प्रत्येक सत्र के आरम्भ पर वह संसद के दोनों सदनों को एक साथ संबोधित करेगा, और प्रयोजन भी बता दिया गया है। संसद को बार-बार बुलाने की आवश्यकता पर अभी बहुत लम्बा वाद-विवाद हुआ है और कुछ माननीय सदस्य इस बात पर जोर दे रहे थे कि यदि संसद सारे वर्ष ही समवेत रहे और केवल कुछ छट्टियों में ही बन्द रहे तो अभीष्ट होगा। श्रीमान्, मेरे विचार में कहीं भी, ब्रिटिश संविधान तक में, बादशाह के लिये यह अपेक्षित नहीं है कि जितनी बार भी संसद समवेत हो, वह अपना भाषण दे, अत: मैं प्रयत्न करके भी समझ नहीं पा रहा हूं कि हमारे राष्ट्रपति को बाध्य करने के लिये जानबूझकर ऐसा उपबंध क्यों रखा जाये, जिसकी कि स्थिति तथा पद इंगलिस्तान के बादशाह से अधिक मिलता-जुलता है। वह भारत का सांविधानिक प्रमुख होगा और मुझे यह जंचता नहीं कि उसे बाध्य किया जाये कि वह भाषण दे ही और यह भी बतायें कि उसने किन कारणों से संसद को बुलाया है। श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि सदन द्वारा इस बाध्यकारी खंड के पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न इससे कोई प्रयोजन सिद्ध ही होगा। हां, प्रो. के.टी. शाह का संशोधन अत्यधिक आगे बढ़ा हुआ है। वे तो यह भी चाहते हैं कि इस खंड में वे विषय भी लिखे हुए होने चाहियें जिन पर उसे भाषण देना है। इससे तो राष्ट्रपति के स्वविवेक पर बहुत अधिक बंधन हो जायेगा। संविधान में ऐसा उपबंध रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद के लिये अनिवार्यत: समय देना ही पड़ेगा। श्रीमान्, मेरे विचार में हमने जितना उपबंध कर दिया है वहीं काफी से ज्यादा है और उसे बाध्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वह प्रत्येक सत्र में भाषण दे और एक विशेष विषय-सूची पर ही भाषण दे। मेरे विचार में इस खंड की कोई आवश्यकता नहीं है और यदि डॉ. अम्बेडकर इसे हटा देने के लिये राजी हो सकें, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** प्रो. के.टी. शाह केवल यही चाहते हैं कि जो उन्हीं के शब्दों में विस्तार से कहा गया है पर मेरे विचार में 'आह्वान के कारण' इस पद में यह बात आ जाती है। मेरे विचार में यह पद इतना विस्तृत है कि इसमें वे सब बातें आ जाती हैं, जो प्रो. के.टी. शाह चाहते हैं, मैं यह भी कह सकता हूं कि यही पदावलि अर्थात् 'संसद में भाषण देगा तथा उसे आह्वान के कारणों से अवगत करायेगा'

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

यही पदावलि हम देखते हैं कि ब्रिटिश संसद में प्रयुक्त होती है। यदि प्रो. शाह हाउस आफ कामन्स के नियमों के विषय में केम्पियन की पुस्तक पढ़ें तो वे देखेंगे कि यही पदावलि वहां प्रयोग की गई है और उपयुक्त पदावलि के लिये लम्बी और बड़ी खोज के पश्चात् हमें केम्पियन के इन शब्दों को प्राप्त करने का सौभाग्य मिला और मेरे विचार में यह अच्छा पद है और इसे रख लेना चाहिये, क्योंकि इसमें वे सब बातें आ जाती हैं जो प्रो. शाह चाहते हैं। प्रो. के.टी. शाह ने कहा है कि ऐसा ही उपबंध होना चाहिये कि राष्ट्रपति संदेश भी भेज सकें तथा सदन में अन्यथा सम्भाषण भी कर सकें। मेरे विचार में अनुच्छेद 70 में, जो हमने अभी पारित किया है, एक सुनिश्चित उपबंध है, जो राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकते हैं, संदेश भी भेज सकते हैं और वे संदेश किसी विधेयक विशेष के संबंध में अथवा संसद में पेश किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में हो सकते हैं। मेरे ख्याल में अनुच्छेद 70 में जो कुछ व्यवस्था है उससे अधिक और कुछ नहीं चाहिये। जहां तक सदन को संबोधित करने के विषय में राष्ट्रपति के स्वतंत्र अधिकार का सम्बन्ध है और उसके लिये अनुच्छेद 70 में पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। अतएव मैं समझता हूं कि इस संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 71 के खंड (1) में 'and inform Parliament of the cause of its summons' इन शब्दों के स्थान पर 'on the general state of the Union, including Financial proposals and other particular issues of policy he deems suitable for such address' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 71 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 71 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 72

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 72 संविधान का भाग हो।''

(संशोधन संख्या 1494 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 72 में India' शब्द के पश्चात् 'if elected member of Parliament' ये शब्द रख दिये जायें।

और संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा।

> ''प्रत्येक मंत्री और भारत के महान्यायवादी को, यदि वह संसद का सदस्य चुना जाये तो, यह अधिकार होगा कि वह किसी सदन में, सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में जिसका कि वह सदस्य मनोनीत किया जाये बोल सके और उनकी कार्यवाही में अन्यथा भाग ले सके, किंतु इस अनुच्छेद के आधार पर उसे मत देने का अधिकार न होगा।''

श्रीमान्, मेरा संशोधन केवल उन्हीं मंत्रियों को यह अधिकार देना चाहता है, जो संसद के सदस्य चुने जायें। मेरे विचार में यह संविधान जिस सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होता है, उसी सिद्धांत में यह भी बात है कि मंत्रिगण विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होने चाहियें। यह उत्तरदायित्व तभी पूरा किया जा सकता है जबकि वे संसद के सदस्यों की हैसियत से और संसद में बैठकर अपने आप उत्तर दें।

जो संसद के सदस्य नहीं हैं और फिर भी जिन्हें संसद के किसी सदन में अथवा उसकी किसी समिति में, जिसके कि वे सदस्य मनोनीत किये जायें, बोलने का अथवा कार्यवाही में भाग लेने का जो अधिकार दिया गया है वह एक विसंगत दिखाई देता है, क्योंकि उसे बोलने का अधिकार देने के पश्चात् आप उसे मत देने का अधिकार नहीं देते। साथ ही यह भी सत्य है कि जो व्यक्ति किसी निकाय का सदस्य न हो, उसे उस निकाय में मत देने का कोई अधिकार नहीं मिल सकता, आशय तो यह है कि मंत्री या महान्यायवादी के पास ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तथा युक्तियां हैं जिनसे सदन के निश्चय पर प्रभाव पड़ सकता है, तो यह अपेक्षित है कि ऐसे व्यक्ति को उस निकाय में अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलना चाहिये, जिसका कि वह सदस्य है और जहां वह बोल रहा है। किंतु यदि वह उस निकाय का सदस्य न हो, तो स्थिति बहुत विषम बन जाती है, क्योंकि वहां उपस्थित लोगों को यह ज्ञात होगा कि उसे मत देने का अधिकार नहीं है, अतएव सदन में उनके समान स्थान प्राप्त नहीं है।

मेरे मतानुसार, मंत्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धांत के अनुसार यह आवश्यक है कि मुख्यमंत्री विधान-मंडल के सदस्य भी होने ही चाहियें और यदि वे सदस्य हों तो उस सदन में जिसके कि वे सदस्य हैं उन्हें साधिकार बोलने का तथा मत देने का अधिकार होगा ही। यदि आप यह विशेषाधिकार 'किसी सदन' में मंत्रियों को देना चाहते हैं, चाहे वह उस 'किसी सदन' का सदस्य न भी हो, तो मेरे विचार में उसकी भाषा

[प्रो. के.टी. शाह]

को कुछ भिन्न प्रकार से रखना अच्छा रहेगा। मेरा सुझाव यह है कि यदि आप किसी सदन के निर्वाचित सदस्य हों, तो आपको दूसरे सदन में बोलने का भी अधिकार दिया जा सकता है जिससे कि आप केवल अपने दृष्टिकोण को प्रकट कर सकें तथा किसी समस्या विशेष को समझा सकें, जिस पर कि उस सदन में वाद-विवाद हो रहा है जिसके कि आप सदस्य नहीं हैं। किन्तु मैं जैसे समझता हूं, इस अनुच्छेद में यह स्थिति है: कोई मंत्री जिसे कार्यवाही में भाग लेने का तथा बोलने का अधिकार है अथवा किसी समिति का सदस्य बनने का अधिकार है और जिसे बोलने का अधिकार किंतु मतदान का अधिकार नहीं है, वह शायद अपने उत्तरदायित्व की भावना को बहुत कम अनुभव करे। यह संविधान में एक विसंगति तो है ही कि एक मंत्री को बोलने दिया जाये और मत नहीं देने दिया जाये, इसके अतिरिक्त इससे मंत्रियों के उत्तरदायित्व की भावना का भी, जो परमावश्यक है, न्यूनन हो जायेगा। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि बोलने तथा कार्यवाही में भाग लेने अथवा समिति के सदस्य बनने के अधिकार के साथ-साथ मतदान का भी अधिकार होना चाहिये यदि वह व्यक्ति सदन का निर्वाचित सदस्य हो। मैं निश्चित रूप से 'निर्वाचित सदस्य' ही कहता हूं, क्योंकि वे विशेषज्ञ उदाहरणार्थ, जो कि उस अनुच्छेद के अधीन, जो कि सदन में पहले स्वीकार किया है, राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक या अन्य विषय पर मंत्रणा देने या सहायता देने के विशेष अभिप्राय से, मनोनीत किये जाते हैं, वे स्वभावत: निर्वाचित न होने के कारण जनता के प्रतिनिधि नहीं होंगे; अत: यह उपयुक्त होगा कि उन्हें सदन में पेश मामलों पर अपनी विशिष्ट राय देने तथा जिस कार्य के लिये वे मनोनीत किये गये हैं, उन पर मंत्रणा देने तक ही सीमित रखा जाये तथा उस प्रश्न पर वे मत न दें। अत: मैं समझ सकता हूं कि ऐसे व्यक्तियों को मत देने के अधिकार से वंचित कर दिया जाये। किंतु ऐसे संविधान में, जो कि मंत्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर आधारित है, मेरे विचार में मंत्रियों को केवल किसी सदन की कार्यवाही में ही भाग लेने का अधिकार नहीं होना चाहिये, बल्कि वे उस सदन के सदस्य होने चाहियें तथा उन्हें मतदान का भी अधिकार होना चाहिये। तदनुसार मैं इस संशोधन का सदन में समर्थन करता हूं।

(संशोधन संख्या 1496 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1497 रचना-संबंधी है।

अनुच्छेद और संशोधन पर अब विचार किया जा सकता है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन का आशय नहीं समझ सका हूं, अत: मैं इसका विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं।

मेरे ख्याल में यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में सर्वथा स्पष्ट है। इस अनुच्छेद से यह अर्थ निकलता है कि किसी मंत्री या महान्यायवादी को वाद-विवाद में भाग लेने का

अधिकार होगा, किन्तु इस अनुच्छेद के आधार पर उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा। मेरे मित्र प्रो. शाह एक उपबंध जोड़ना चाहते हैं कि मंत्री या महान्यायवादी को, यदि वह संसद का निर्वाचित सदस्य हो तो, बोलने आदि का अधिकार होगा, किंतु इस अनुच्छेद के आधार पर मत देने का अधिकार नहीं होगा। क्या वे सदन को यह कहना चाहते हैं कि मंत्री या महान्यायवादी को संसद का सदस्य निर्वाचित हो जाने के पश्चात् भी मत देने का अधिकार न होगा? इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि वे ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं कि मंत्री या महान्यायवादी को संसद का निर्वाचित सदस्य बनने के पश्चात् सदन में बोलने अथवा उसको कार्यवाही में अन्यथा भाग लेने का अधिकार हो जायेगा, पर मतदान का अधिकार नहीं होगा। तो फिर मैं अपने विद्वान मित्र प्रो. के.टी. शाह से पूछता हूं कि मत देने का किसे अधिकार है? यदि आप संसद के निर्वाचित सदस्यों को भी संसद में अपना मत देने से रोकना चाहते हैं, तो मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि वे मतदान का अधिकार किसे देना चाहते हैं। क्या वे यह अधिकार संसद के उन सदस्यों को देना चाहते हैं जो कि मनोनीत हों, जो निर्वाचित न हों? मैं तो वास्तव में यह समझने में असमर्थ हूं कि उन्होंने जो संशोधन पेश किया है, उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है। वास्तव में इस अनुच्छेद में जहां तक मैं समझ पाया हूं, दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों का उपबंध है। एक तो वे मंत्री जिनका चुनाव अभी तक नहीं हो पाया है और महान्यायवादी जो कि मनोनीत किया जा सकता है। क्योंकि अनुच्छेद 61(5) के अधीन एक मंत्री सदन का निर्वाचित सदस्य बने बिना छह मास तक अपना पद धारण कर सकता है तथा अनुच्छेद 63 के अंतर्गत महान्यायवादी सदन का निर्वाचित सदस्य होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को महान्यायवादी नियुक्त कर सकता है, जो कि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह हो। हमें दोनों प्रकार की आकस्मिकता के लिये व्यवस्था करनी है। मेरे विचार में यह अनुच्छेद यही करता है। अतएव मेरे ख्याल से यह स्पष्ट है कि यह अनुच्छेद 72 संसद के केवल मनोनीत सदस्यों को अपना मत अनावश्यक रूप से प्रदान करने से रोकता है और सदन के किसी निर्वाचित सदस्य से वह अधिकार नहीं छीनता, चाहे वह मंत्री हो या अन्यथा, इसलिये मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि प्रो. शाह ने अपना संशोधन किस अभिप्राय से पेश किया है और इसलिये मैं सदन से अपील करता हूं कि वह उनके संशोधन को अस्वीकार कर दे।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मेरे पास केवल पांच ही मिनट हैं और मैं अपनी वक्तृता को उन पांच मिनटों में ही समाप्त करना चाहता हूं।

अब प्रो. शाह ने दो संशोधन पेश किये हैं। उनका प्रथम संशोधन है कि 'Every Minister and' इन शब्दों को हटा दिया जाये। अतः वे नहीं चाहते कि कोई मंत्री वाद-विवाद में भाग ले। इसका परिणाम यह होगा। मान लीजिये किसी प्रांत में अथवा भारत संघ में.....

***अध्यक्ष:** वह संशोधन पेश नहीं किया गया। आप संशोधन संख्या 1494 की चर्चा कर रहे हैं। केवल संशोधन संख्या 1495 ही पेश किया गया है।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** मुझे खेद है, मेरे से गलती हो गई। अब मैं संशोधन संख्या 149 को ले रहा हूं, जो प्रो. शाह ने पेश किया है, जिसमें वे कहते हैं कि 'Attorney-General of India' इन शब्दों के आगे 'if elected member of Parliament' ये शब्द जोड़ दिये जायें। उनका अर्थ यह है कि भारत का महान्यायवादी संसद का निर्वाचित सदस्य होना चाहिये। इस पर मुझे यह आपत्ति है। मान लीजिये कि वकीलों में से कोई अर्ह व्यक्ति निर्वाचित नहीं होता, तो किसी निर्वाचित व्यक्ति को महान्यायवादी कैसे बना सकते हैं? आप यह प्रत्याभूति नहीं दे सकते कि निर्वाचित सदस्यों में एक व्यक्ति वकीलों में से हो और अर्ह ही मेरे मित्र श्री कामत अनुच्छेद 63 पर पहले बोल ही चुके हैं जिसमें यह उपबंध है कि राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में से एक को भारत का महान्यायवादी नियुक्त कर सकते हैं। अतएव मेरा निवेदन है कि प्रो. शाह के इस संशोधन में कोई अर्थ नहीं है कि महान्यायवादी एक निर्वाचित सदस्य होना चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि उन्होंने यह संशोधन क्यों पेश किये हैं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि प्रो. शाह अनुच्छेद 72 का आधारभूत अभिप्राय वस्तुत: समझ पाये हैं। इस मामले का पूर्णत: स्पष्ट करने के लिये मैं कुछ साधारण मूल सिद्धांतों का वर्णन पहले करना चाहता हूं। प्रत्येक सदन स्वायत्तधारी सदन होता है; अर्थात् वह ऐसे किसी व्यक्ति को, जो उस सदन का सदस्य न हो, अपनी कार्यवाही में भाग लेने या कार्यवाही के अन्त में मतदान करने की अनुमति नहीं देगा। केवल वही कार्यवाही में भाग ले सकते हैं या मतदान कर सकते हैं जो कि सदन के सदस्य हों। अब हमारे यहां एक विसंगतिपूर्ण स्थिति है और वह यह है। जहां तक केन्द्र का संबंध है हमारे यहां दो सदन हैं, प्रथम सदन और द्वितीय सदन। यह पूर्णतया सम्भव है कि एक व्यक्ति जो मंत्री नियुक्त है प्रथम सदन का सदस्य होगा। यदि वह किसी विधेयक विशेष को भार-वाहक हो और संविधान के अनुसार विधेयक के लिये दोनों सदनों की स्वीकृति की आवश्यकता है, स्पष्टत: विधेयक को केवल प्रथम सभा में ही पारित नहीं करवाना है, द्वितीय सदन में भी पारित करवाना होगा। अतएव यदि किसी विधेयक का भार-साधक मंत्री प्रथम सदन का सदस्य हो, तो साधारणत: वह इस स्थिति में न होगा कि द्वितीय सदन में उपस्थित हो सके तथा उस विधेयक को पारित करा सके, जब तक कि कोई विशेष उपबंध न किया जाये। अनुच्छेद 72 इसलिये बनाया जा रहा है कि जिससे कोई व्यक्ति जो प्रथम सदन का सदस्य हो तथा किसी विधेयक का भार-साधक मंत्री हो, वह द्वितीय सदन में जा सके, उसे संबोधित कर सके तथा उसकी कार्यवाही

में भाग ले सके। अनुच्छेद 72 इस व्यापक नियम में वस्तुतः अपवादस्वरूप है कि कोई व्यक्ति किसी सदन की कार्यवाही में तब तक भाग नहीं ले सकता। जब तक कि वह व्यक्ति उस सदन का सदस्य न हो। यह आवश्यक है कि जो मंत्री द्वितीय सदन का सदस्य हो उसे यह अधिकार होना चाहिये कि वह प्रथम सभा में जा सके तथा उसे संबोधित कर सके, जिससे कि वह विधेयक पारित हो जाये। इसी प्रकार यदि वह प्रथम सदन का सदस्य हो तो उसे अधिकार होना चाहिये कि वह द्वितीय सदन में जाकर, भाषण देकर, उस विधेयक को पारित करा ले। इसी तरह की बात के लिये ही अनुच्छेद 72 का निर्माण किया जा रहा है। यही बात महान्यायवादी के विषय में है। महान्यायवादी प्रथम सदन का सदस्य हो सकता है। उसे शायद द्वितीय सदन में जाने की आवश्यकता पड़ जाये, किन्तु प्रथम सभा का सदस्य होने के कारण उसे शायद द्वितीय सदन में उपस्थित होने का वैध अधिकार न हो। अतएव यह उपबंध किया गया है। इसी प्रकार यदि वह द्वितीय सदन का सदस्य हो तो उसे प्रथम सदन में जाने तथा भाषण देने का वैध अधिकार शायद न हो। इसी उद्देश्य से यह बनाया जा रहा है। हमने उसके अधिकार को कार्यवाही में भाग लेने तक ही सीमित कर दिया है। हम एतद्द्वारा किसी मंत्री को जो दूसरे सदन की कार्यवाही में भाग ले रहा हो, मतदान का अधिकार नहीं देते। क्योंकि हम यह नहीं समझते कि किसी विधेयक विशेष के संबंध में कार्यवाही चलाने के लिये मतदान की शक्ति अपेक्षित है। मेरे विचार में मेरे मित्र ने भी कहा था कि 'Minister' शब्द को हटा दिया जाये और 'elected person' ये शब्द रख दिये जायें; किन्तु उससे भी कठिनाई हो जायेगी क्योंकि हमने अपने संविधान के किसी भाग में कहा है कि कोई ऐसा व्यक्ति जो कि सदन का निर्वाचित सदस्य न हो, कुछ खास समय के लिये मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को योग्य बनाने के लिये ही 'मंत्री' शब्द रखना अपेक्षित है, 'व्यक्ति' शब्द रखना नहीं। यही कारण है कि इस संदर्भ में 'मंत्री' शब्द इतना आवश्यक क्यों है। मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 72 में 'India' शब्द के आगे 'if elected member of Parliament' ये शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** मैं अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 72 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 72 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** सदन कल प्रात: के आठ बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सदन बृहस्पतिवार, 19 मई, 1949 को प्रात: के 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गया।

Con. 4. VIII.4.49
320

अंक 8
संख्या 4

बृहस्पतिवार
19 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप..... 197-264
[नवीन अनुच्छेद 72-क, ख और ग, अनुच्छेद 73, 74, 75, नवीन अनुच्छेद 75-क, अनुच्छेद 76, 77, 78, नवीन अनुच्छेद 78-क, अनुच्छेद 79, नवीन अनुच्छेद 79-क, अनुच्छेद 80, 81, 82, नवीन अनुच्छेद 82-क अनुच्छेद 83, 84 तथा 85 पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

बृहस्पतिवार, 19 मई सन् 1949 ई.

माननीय अध्यक्ष (डा. राजेन्द्र प्रसाद) की अध्यक्षता में कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 8 बजे संविधान-सभा की बैठक हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

नवीन अनुच्छेद 72-क, ख और ग

***अध्यक्षः** अब हमें विधान के अनुच्छेदों पर वाद-विवाद करना है। प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 1498 पर विचार करना है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं नवीन अनुच्छेद 72-क को पेश नहीं करना चाहता हूं। मैं केवल 72-ख और 72-ग को पेश करूंगा। यह संशोधन जिस रूप में यहां छपा हुआ है उसमें मुझे एक मुद्रण त्रुटि दिखाई देती है। संसद का ''मंत्री'' शब्द नहीं हो सकता है, बल्कि संसद का ''सदस्य'' शब्द है। आपकी अनुमति से मैं सही शब्द रख रहा हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 72 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किये जायें—

''That after article 72, the following new articles be inserted:—

'72-B. A Member of Parliament may vacate his seat by resignation in writing addressed to the Speaker of the People's House, or to the Chairman of the Council of States, as the case may be. Any Member of Parliament who accepts any office or post carrying a salary, shall be deemed forthwith to vacate his seat, and cease to be a Member of Parliament. No one shall continue to be a Member of either House who is convicted of any offence of—

(a) treason against the sovereignty, security, or integrity of the State,

(b) of bribery and corruption,

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो. के.टी. शाह]

(c) of any offence involving moral turpitude, and liable to a maximum punishment of two years rigorous imprisonment.

72-C. All expenses in connection with Election to Parliament of all candidates, whether at the time of a General election or a Bye-election shall be defrayed out of the public Treasury, in accordance with a scale prescribed by Parliament; provided that any candidate securing less than 10 per cent of the votes cast at the election shall not be entitled to claim such expenses.' ''

[72-ख. संसद का सदस्य लोक सभा अध्यक्ष को अथवा राज्य-परिषद् के सभापति को, जैसी स्थिति हो, सम्बोधित लिखित त्याग-पत्र द्वारा अपने स्थान को रिक्त कर सकेगा। संसद का कोई सदस्य यदि किसी वेतन के पद को स्वीकार कर लेगा तो उसी समय से उसका स्थान रिक्त समझा जायेगा और संसद का सदस्य नहीं रहेगा। कोई भी सदस्य जो–

(क) राज्य की सर्वोच्चसत्ता, प्रतिभूति अथवा अक्षुण्णता के प्रति द्रोह,

(ख) उत्कोच और भ्रष्टाचार,

(ग) नैतिक पतन सम्बन्धी कोई अपराध जिसके लिये अधिकतम दो वर्ष के कड़े कारावास का दण्ड हो,

के किसी अपराध का दोषी प्रमाणित हो चुका हो तो दोनों आगारों में से किसी आगार का सदस्य न रहेगा।

72-ग. समस्त उम्मीदवारों का संसद के निर्वाचन का सारा खर्च, चाहे वह सामान्य निर्वाचन के समय हुआ हो या उप-निर्वाचन के समय, लोक-विधि से संसद द्वारा विनिहित परिमाण के अनुसार दिया जायेगा; परन्तु निर्वाचन में दिये गये मतों में से 10 प्रतिशत के कम मत प्राप्त करने वाले किसी उम्मीदवार को इस खर्च के मांगने का अधिकार न होगा।]

श्रीमान्, ये दो बातें जिनके प्रविष्ट करने का मैं सुझाव रख रहा हूं सर्वप्रथम उस विधि का निर्धारण करती हैं जिनके द्वारा संसद के सदस्य अपना पद त्याग कर सकते हैं अथवा अपने पद से अलग हो सकते हैं। किसी सदस्य के निर्वाचन होने के पश्चात् भी यदि कोई सदस्य उपरोक्त अपराधों में से किसी भी अपराध के प्रति दोषी है तो विशेषकर संसद में भाग लेने और मत देने की निर्योग्यता को महत्त्व देना चाहिये। यह

स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति जो देशद्रोह, उत्कोच अथवा भ्रष्टाचार या नैतिक पतन सम्बन्धी किसी अपराध के प्रति दोषी प्रमाणित हो चुका है तो वह संसद में भाग लेने के लिये अयोग्य होगा। मेरे विचार से, कोई ऐसा तंत्र होना चाहिए जिसके द्वारा ऐसे व्यक्ति नियमित रूप में निर्वाचित होने पर भी संसद की सदस्यता से अपने आप पृथक् हो जायें।

खर्चे के दृष्टिकोण से दूसरी बात और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। मैं सुझाव रखता हूं कि निर्वाचन का सारा खर्च किसी विनिहित परिणाम के अनुसार लोक-निधि से दिया जाये; और यदि कोई व्यक्ति मतों में से निश्चित प्रतिशत मत प्राप्त करने में असमर्थ होता है तो उसे इस खर्च के मांगने का अधिकार न होना चाहिये। इसके रखने से मेरा प्रयोजन यह है कि एक कमी जो प्रजातंत्रवाद को वास्तविक व्यवहार में असफल बनाती है वह इतने बड़े देश में केन्द्रीय संसद जैसी लोक संस्थाओं में प्रतिनिधान प्राप्त करने के लिये प्रयास करने में और निर्वाचन में प्रयास करने में भारी खर्चा है। साधारण खर्चे की राशि इतनी अधिक हो जायेगी कि केवल बड़े-बड़े दल जिनके पास बहुत फण्ड है वे ही चुनाव लड़ सकेंगे, जो कदाचित् महीनों तक लड़े जायेंगे और जिनमें मत प्राप्त करने के प्रचार हेतु सैकड़ों कार्यकर्त्ता होंगे। वे लोग जो किसी दल से सम्बन्धित नहीं हैं यदि अपने बुते पर चुनाव लड़ सकते हैं तो उनके पास चुनाव लड़ने के लिये बैंक में बहुत रुपया होना चाहिये। इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं है कि जिन व्यक्तियों के पास अपने निजी साधन पर्याप्त हैं या जो व्यक्ति बड़े-बड़े सुसंगठित दलों में, जिनके पास बड़ी-बड़ी धन-राशियां हैं, प्रभावशाली हैं वे ही सर्वोत्तम लोक प्रतिनिधि हैं। अतः मैं सुझाव रखता हूं कि निर्वाचन का खर्च लोक-निधि द्वारा पूरा किया जाये जिससे कि धनवान उम्मीदवारों को निर्धनों की अपेक्षा अनुचित अथवा अनुपयुक्त लाभ न हो सके—यह प्रथा अन्य स्थानों में भी है।

मैं यह भी सुझाव रखता हूं कि खर्चे के परिमाण को भी नियत कर देना चाहिये जिससे कि इस विशेषाधिकार का दुरुपयोग न हो। मैंने यह सुझाव रखा है कि दोनों सामान्य निर्वाचन तथा उप-निर्वाचन का खर्च लोक-निधि से पूरा किया जाये। मैंने यह अभिरक्षण भी रख दिया है कि कोई भी उम्मीदवार जो दिये गये मतों में से 10 प्रतिशत से कम मत प्राप्त करता है वह इस खर्चे की मांग नहीं कर सकता है। यह एक प्रकार की प्रत्याभूति है जिसके कारण कोई उम्मीदवार इस सहायता और सुविधा का दुरुपयोग नहीं करेगा। प्रावधान, जिसको मैं रख रहा हूं, उन उम्मीदवारों की सारवत् सहायता करेगा जो धन के अभाव के कारण इस प्रकार की लोक सेवाओं में आगे न आ सकेंगे।

मैं समझता हूं कि यह सिद्धांत ही इस सभा में इस अनुच्छेद को प्रस्तुत करने के लिये पर्याप्त रूप से पुष्ट है।

***अध्यक्षः** क्या प्रो. के.टी. शाह के इस संशोधन पर कोई सदस्य बोलना चाहता है?

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह समझ लेता हूं कि प्रो. शाह ने 72-क को पेश नहीं किया है और 72-ख और 72-ग को ही पेश किया है।

[श्री एच.वी. कामत]

श्रीमान्, मैं 72-ख के सम्बन्ध में निवेदन करता हूं कि अभी ऐसे किसी नवीन अनुच्छेद की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि प्रो. शाह उस अनुच्छेद को देखने का कष्ट उठायेंगे जो अभी थोड़ी देर के बाद हमारे सामने आयेगा अर्थात् अनुच्छेद 83, तो वे यह देखेंगे कि उसमें सदस्यों की निर्योग्यता की, चाहे संसद में सदस्य के रूप में चुने जाने के लिये हो या सदस्य के रूप में बने रहने के लिये हो, व्यवस्था है। उपखण्ड (क), (ख), (ग), (घ) और (ङ) में विभिन्न निर्योग्यतायें दी हुई हैं। इस रूप में उपखण्ड (ङ) व्यापक है कि कोई व्यक्ति, जो संसद के किसी कानून के अन्तर्गत या उसके द्वारा निर्योग्य कर दिया गया है तो यह संसद के दोनों आगारों में से किसी आगार में सदस्य चुने जाने और बने रहने के लिये निर्योग्य हो जायेगा। यह सच है कि प्रो. शाह ने जिन सम्भावनाओं को प्रकट किया है वे उपखण्ड (क), (ख), (ग) और (घ) में नहीं हैं। श्रीमान्, आपने कल वयस्क-मताधिकार के अन्तर्गत जो खतरे हैं उनके प्रति तथा जो व्यापक अधिकार और विशेषाधिकार इस विधान के द्वारा दिये जा रहे हैं उनके प्रति जो शंकायें प्रकट की थीं उनके होते हुए भी, मैं आशा करता हूं कि नवीन संसद जिसका इस विधान के अनुसार निर्वाचन होगा वह ऐसे व्यक्तियों की बनाई जायेगी जो बुद्धिमान होंगे और लोक सेवा की भावना से ओत-प्रोत होंगे और इन सब कमियों तथा हानियों के होते हुए भी हम इस संसद के लिये ऐसे व्यक्तियों का निर्वाचन कर सकेंगे जो विवेक और बुद्धिमानी से देश तथा निर्वाचक मण्डल के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि नवीन विधान के अनुसार निर्मित नवीन संसद ऐसे नियम बनायेगी जिनके द्वारा जिन अपराधों का नवीन खण्ड 72-ख में प्रो. शाह ने उल्लेख किया है उनमें से किसी भी अपराध के प्रति दोष प्रमाणित व्यक्ति सदस्य के रूप में संसद के किसी आगार में न भाग ले सकेगा और न उसका सदस्य बना रहेगा। जिस विषय का संशोधन में वर्णन किया गया है वह इतना स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति जो शुद्ध लोक भावना से ओत-प्रोत है वह यह न कहेगा कि जो सदस्य देशद्रोह, उत्कोच अथवा भ्रष्टाचार या नैतिक पतन सम्बन्धी किसी अन्य अपराध के प्रति दोषी प्रमाणित हो चुका है तो उसको संसद के किसी आगार में सदस्य बना रहने दिया जाये। यह केवल संसद के आगारों के लिये ही अपमानजनक नहीं है वरन् जिन लोगों ने उनको संसद के सदस्य के रूप में निर्वाचित किया है उनकी सद्भावना तथा विवेक के प्रति भी यह अपमानजनक है। अत: मैं अनुभव करता हूं कि प्रो. शाह का 72-ख संशोधन अभी अनावश्यक तथा असामयिक है। 72-ग के सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि वह केवल कार्यप्रणाली का विषय है जिसको बाद में जबकि संसद के समक्ष संसद के निर्वाचन तथा उप-निर्वाचन की कार्यप्रणाली का विषय प्रस्तुत होगा उस समय लिया जा सकता है। अत: मैं समझता हूं कि दोनों संशोधन असामयिक हैं और अभी इन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह दोनों संशोधनों को अस्वीकार करे।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह में 72-ख और 72-ग दो संशोधन पेश किये हैं। मैं देखता हूं कि मैं अपने माननीय मित्र से सहमत होने के लिये तैयार नहीं हूं। 72-ख के अन्तर्गत मेरे माननीय मित्र चाहते हैं कि यदि कोई संसद का सदस्य नैतिक पतन का अपराधी है तो वह सदस्य नहीं रहेगा। जैसा की

श्री कामत ने बताया है यह अनुच्छेद 83 में दिया हुआ ही है। अतः यह यहां बिल्कुल निरर्थक है। इसके अतिरिक्त यदि वे इस संशोधन को पेश करना ही चाहते हैं तो इसे वे जबकि हम अनुच्छेद 83 पर विचार-विमर्श करें उस समय पेश करें।

72-ग में मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह का संकेत यह है कि उन सब उम्मीदवारों का खर्च जो संसद के चुनाव के लिये खड़े होते हैं, सरकारी तथा लोक-निधि द्वारा पूरा किया जाये। मैं इस बात का भी विरोध करता हूं क्योंकि संसार के किसी भी सभ्य देश में, जहां जनतंत्र के आधार पर संसदात्मक पद्धति है, यह प्रथा नहीं है। हमको करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। साथ ही साथ उन लोगों की संख्या की ओर भी ध्यान दीजिये जो जबकि उनको यह मालूम हो जायेगा कि उनको अपनी जेब से खर्च न करना पड़ेगा तो निर्वाचन के लिये खड़े होंगे। यदि प्रो. शाह यह ठीक समझते हैं कि उम्मीदवारों को व्यक्तिगत रूप में अपना धन खर्च नहीं करना चाहिये तो वह दल, जो उनको उम्मीदवार बनाकर खड़ा करता है, रुपया खर्च करे न कि सरकार रुपया खर्च करे। मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं क्योंकि अभी हमारा देश इतना धनवान नहीं है कि उम्मीदवारों का वैयक्तिक खर्च उठा सके।

***प्रो. के.टी. शाहः** यदि मुझे आज्ञा है तो मैं अपने संशोधन 72-ख को वापस करना चाहूंगा।

सभा की अनुमति से यह संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 72 के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:—

'All expenses in connection with Election to Parliament of all candidates whether at the time of a General election or a Bye-Election shall be defrayed out of the Public Treasury, in accordance with a scale prescribed by Parliament; provided that any candidate securing less then 10 per cent. of the votes cast at the election shall not be entitled to claim such expenses.' ''

(समस्त उम्मीदवारों का संसद के निर्वाचन का सारा खर्च, चाहे वह सामान्य निर्वाचन के समय हुआ हो या उप-निर्वाचन के समय, लोक-निधि से संसद द्वारा विनिहित परिमाण के अनुसार दिया जायेगा; परन्तु निर्वाचन के दिये गये मतों में से 10 प्रतिशत से कम मत प्राप्त करने वाले किसी उम्मीदवार को इस खर्च के मांगने का अधिकार न होगा।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 73

***मि. तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, आगे बढ़ने से पूर्व मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या आप इस समय अनुच्छेद 73 को ले सकेंगे क्योंकि हमको यह कहा गया था कि केवल उन्हीं अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श किया जायेगा जो निर्वाचन विषय से सम्बन्ध रखते हैं जिससे कि मतदाताओं कि नामावलियां जितनी शीघ्र हो सकें उतनी शीघ्र तैयार की जा सकें। मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 73 निर्वाचन विषय से सम्बन्ध नहीं रखता है; वह अध्यक्ष, उपाध्यक्ष इत्यादि के पदों के सम्बन्ध का है।

***अध्यक्ष:** हम निर्वाचन विषय से सम्बन्धित अनुच्छेदों को लेना चाहते थे पर मुझसे यह कहा गया कि माननीय सदस्य उसके लिये पूर्ण रूप से तैयार नहीं हैं और उन अनुच्छेदों पर विचार करने के लिये वे एक या दो दिन और चाहते हैं। इसी कारण से मैंने उनकी बात मान ली और अगले सोमवार से हम उन अनुच्छेदों पर विचार करेंगे।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 73 विधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 1499, 1500 और 1501 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 1502 को पेश करना चाहूंगा। वह शाब्दिक संशोधन नहीं है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 73 के खण्ड (2) में 'another member' (किसी अन्य सदस्य) शब्दों के स्थान में 'a member' (किसी सदस्य) शब्द रखे जायें।''

जिस रूप में मूल विषय है वह कदाचित् किसी अन्य सदस्य के निर्वाचन के पक्ष में है न कि उस सदस्य के पक्ष में जो अब उपसभापति न रहेगा। अनुच्छेद 74 के अनुसार यदि उपसभापति सदस्य नहीं रहता है तो वह अपना पद रिक्त करेगा या पद त्याग करेगा। जब उपसभापति का निर्वाचन होगा तो उसको बिना उसके किसी कसूर के चुनाव लड़ने से रोक दिया जायेगा। मैं निवेदन करता हूं कि जाने वाले उपसभापति को, यदि उसका पुर्निर्वाचन हो सकता है, तो चुनाव लड़ने के अधिकार देने के लिये ''किसी अन्य सदस्य'' शब्दों के स्थान में ''किसी सदस्य'' शब्द रखे जायें।

अनुच्छेद 74 के उपखंड (ग) में एक सम्भावना है जबकि उपसभापति को विश्वास के अभाव के कारण हटाया जायेगा। यह मैं नहीं जानता हूं कि उसके लिये भी चुनाव लड़ने की आज्ञा है या नहीं। जो कुछ भी हो, यह एक ऐसा विषय है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है और यदि इस पर मसौदा-समिति विचार कर लेती है तो मुझे संतोष होगा क्योंकि उपखण्ड (ग) में कुछ उलझनें हैं। यह भी हो सकता है कि उसे चुनाव न लड़ने दिया जाये परन्तु दूसरी स्थिति में तो ऐसी कोई बात नहीं है कि उसको क्योंकर उम्मीदवार न बनने दिया जाये।

एक और बात है जिसको यदि अनुमति दी जाती है तो मैं यहां प्रकट करूंगा। अनुच्छेद 73 के खण्ड (1) में जो कुछ हम स्वीकार कर चुके हैं उसको केवल दुहराया ही गया है और वह केवल पुनरावृत्ति मात्र है। खंड (1) में कहा गया है। ''भारत का उपप्रधान पद-कारणात राज्य-परिषद् का सभापति होगा''। मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 53 की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। वह अनुच्छेद 73 के खंड (1) के समान है।

अनुच्छेद 43 भी इसी प्रकार का है। उसमें कहा गया है: ''उपप्रधान अपने पद-कारणात राज्य-परिषद् का सभापति होगा'' इसके लिये कुछ शर्ते हैं और एक परादिक है। मैं निवेदन करता हूं कि यही प्रावधान शब्द प्रति शब्द अनुच्छेद 43 में स्वीकार किया जा चुका है जो और भी अधिक पूर्ण है। हमने अनुच्छेद 53 में इन्हीं पदों में इसी प्रावधान को रखा है। अत: उपखंड (1) केवल पुनरावृत्ति मात्र है। वास्तव में हम यह नहीं चाहते हैं कि राज्य-परिषद् के दो सभापति हों। अत: खण्ड (1) को निकाल देना चाहिये या दोनों खण्डों को पृथक् कर दिया जाये और खण्ड (1) को अनियमित घोषित कर दिया जाये। मैं आशा करता हूं कि माननीय डा. अम्बेडकर इस बात पर विचार करेंगे और यह देखेंगे कि क्या हमें एक ही बात को दो बार रखना चाहिये।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, श्री नजीरुद्दीन चाहते हैं कि ''किसी अन्य सदस्य'' शब्दों के स्थान में "किसी सदस्य'' शब्द होने चाहियें। मैं इस बात का विरोध करता हूं। मेरा तर्क यह है: अनुच्छेद 73 का खण्ड (2) इस प्रकार है:

> ''राज्य-परिषद् यथासम्भव शीघ्र, अपने किसी सदस्य को अपना उपसभापित चुनेगी और जब-जब उपसभापति का पद रिक्त होगा तब-तब परिषद् किसी अन्य सदस्य को अपना उपसभापति चुनेगी।''

बात यह है। मान लीजिये किसी कारणवश उपसभापति को अपने पद से अलग कर दिया जाता है तो यदि शब्द ''अन्य'' वहां पर रहता है तब तो परिषद् उसे नहीं चुन सकती है किसी और सदस्य को ही चुनेगी। इसीलिये ''अन्य'' शब्द वहां रखा गया है। जब एक उपसभापति पद त्याग कर देता है या उसकी ओर आगे आवश्यकता नहीं समझी जाती है और यदि वह अलग कर दिया जाता है तो हम उसको फिर नहीं रख सकते हैं—दूसरे सदस्य का निर्वाचन करना ही पड़ेगा। यदि आप ''किसी सदस्य'' शब्दों को वहां रखते हैं तो परिषद् उसी सदस्य को फिर से चुन सकती है। इसलिये ''किसी सदस्य'' शब्दों की अपेक्षा ''किसी अन्य सदस्य'' शब्द वहां पर अधिक उपयुक्त, अधिक ठीक तथा अधिक सुन्दर हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता हूं कि श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया गया संशोधन पूर्णतया मूर्खतापूर्ण है और यह खण्ड जिस बात से सम्बन्ध रखता है उसके प्रति पूर्ण मिथ्या धारणा पर यह संशोधन आश्रित है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे यह भी नहीं समझ सकते हैं कि उसी पद के लिये किसी व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन में और नवीन निर्वाचन में अन्तर

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है। अनुच्छेद 73 में हम जिस बात पर विचार कर रहे हैं वह पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में नहीं है वरन् नव-निर्वाचन के सम्बन्ध में है। अनुच्छेद 74 में उल्लिखित परिस्थितियों के कारणवश पद रिक्त होने के फलस्वरूप यह तो एक नव-निर्वाचन है। अनुच्छेद 74 के कारणों द्वारा वह व्यक्ति सभा का सदस्य रहता और यह स्पष्ट है कि सभा का सदस्य न रहने पर आप यह नहीं कह सकते हैं कि आप एक ऐसा 'सदस्य' निर्वाचित करें जो वही व्यक्ति हो जिसने पहले पद धारण किया था। अत: इस सम्भावना की पूर्ति के लिये उपयुक्त शब्द ''किसी अन्य सदस्य'' ही है क्योंकि अनुच्छेद 74 के अन्तर्गत वह सदस्य तो निर्योग्य हो गया। इसलिये अनुच्छेद 73 की शब्दावली बिल्कुल ठीक है। यहां मैं यह कहूंगा कि यदि अवधि अवसान के कारण कोई सदस्य नहीं रहता है तो उसका फिर निर्वाचन हो सकता है क्योंकि वह ''अन्य सदस्य'' है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 73 के खण्ड (2) में 'another member' (किसी अन्य सदस्य) शब्दों के स्थान में 'a member' (किसी सदस्य) शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 73 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 73 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 74

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 74 विचार-विमर्श के लिये है। संशोधन संख्या 1503 एक-दूसरे अनुच्छेद द्वारा, जो अस्वीकृत हो चुका है, आच्छादित हो जाता है।

(संशोधन संख्या 1504 से 1508 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** चूंकि अनुच्छेद 74 पर कोई संशोधन नहीं है अत: मैं सभा का उस पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 74 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 74 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 75

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 75 विचार-विमर्श के लिये है।

(संशोधन संख्या 1509, 1510 और 1511 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1511 पर एक संशोधन है। चूंकि संशोधन संख्या 1511 पेश नहीं किया गया। अतः यह संशोधन भी नहीं आता है।

प्रस्तव यह है:

''कि अनुच्छेद 75 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 75 विधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्षः** सूची 2 में संशोधन संख्या 28 पर एक नये अनुच्छेद 75-क की सूचना है।

नवीन अनुच्छेद 75-क

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 75 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:—

'75-A. At any sitting of the Council of States, while any resolution for the removal of the Vice-President from his office is under consideration the Chairman or while any resolution for the removal of the Deputy Chairman from his office is under consideration, the Deputy Chairman, shall not, though he is present, preside and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Chairman or, as the case may be the Deputy Chairman, is absent.' ''

(75-क. राज्य-परिषद् की किसी बैठक में जबकि उपाध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो सभापति अथवा जबकि उपसभापति को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो उपसभापति, चाहे वह उपस्थित ही हो, तो भी अध्यक्ष का पद ग्रहण नहीं करेगा और ऐसी प्रत्येक बैठक में अन्तिम पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के खण्ड (2) के प्रावधान उसी रूप में लागू होंगे जिस रूप में वे उस बैठक में लागू होते हैं जिसमें सभापति या उपसभापति, जैसी भी स्थिति हो, अनुपस्थित होते हैं।)

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

श्रीमान्, इस नवीन अनुच्छेद के लिये यह कारण है कि सभापति अथवा उपसभापति के विरुद्ध उनको हटाने के लिये कार्यवाही की जाते समय सभापति अथवा उपसभापति अपने ऊपर लगाये गये दोषारोपों का उत्तर देने के लिये उपस्थित हो भी सकते हैं, उसकी उपस्थिति में, यदि यह विशेष रूप से नहीं कहा जाता है कि वह अध्यक्ष पद को ग्रहण नहीं करेंगे तो सभापति को और उसकी अनुपस्थिति में उपसभापति को अध्यक्ष पद-ग्रहण करना होगा। इस विशेष कठिनाई को दूर करने के लिये इस नवीन अनुच्छेद को पेश किया जाता है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं कुछ नहीं सुन पाता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह संशोधन उन पारिभाषिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये पेश किया जा रहा है जो राज्य-परिषद् के सभापति अथवा उपसभापति के, जैसी भी स्थिति हो, विरुद्ध कार्यवाही करने की दशा में उन्नत होंगी। अनुच्छेद स्वयं ही व्याख्यात्मक है और जिस कठिनाई को दूर करने का उसमें प्रयास किया गया है वह किसी भी सदस्य को उस अनुच्छेद के पढ़ने पर स्पष्ट हो जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि सभा के समक्ष जो अनुच्छेद पेश किया गया है उसमें एक कमी है। कमी इस कारण आ गई है कि अनुच्छेद में केवल यही कहा गया है कि जब सभापति अथवा उपसभापति को पद से हटाने का विषय विचाराधीन है तो वह अध्यक्ष-पद-ग्रहण नहीं करेगा। जब तक यह अनुच्छेद इस बात की विशिष्ट रूप से व्यवस्था नहीं करता है, जब तक यह अनुच्छेद इतने शब्दों में इस बात को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं करता है, कि ऐसे अवसरों पर कोई अन्य व्यक्ति, चाहे वह सभा में से हो अथवा सभा के बाहर का हो, अध्यक्ष पद को ग्रहण करेगा तब तक मेरे विचार से यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में अपने आशय तथा अर्थ को स्पष्ट नहीं कर सकता है। साथ-साथ इस अनुच्छेद में यह भी होना चाहिये कि सभा ऐसे अवसरों पर अध्यक्ष-पद-ग्रहण करने के लिये अपने में से किसी व्यक्ति को चुनेगी अथवा किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करेगी। अन्यथा इसका अर्थ यह होगा कि जब सभापति को हटाने का विषय विचाराधीन है और सभापति अध्यक्ष-पद-ग्रहण नहीं करेगा तो फिर कौन अध्यक्ष-पद-ग्रहण करेगा? मैं समझता हूं कि सभा द्वारा इस अनुच्छेद के स्वीकार किये जाने के पूर्व इस कमी को दूर कर देना चाहिये। जिस रूप में यह अनुच्छेद है इसमें सभा द्वारा यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, जैसा कि श्री कामत ने बताई है वैसी कठिनाई उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं है और मैं निवेदन करता हूं कि इस अनुच्छेद में कोई कमी नहीं है। स्थिति यह होगी: यदि यह कहा जाये कि जब सभापति पर मुकदमा चलाया जा रहा होगा—मैं प्रचलित पदावली का प्रयोग कर रहा हूं—तो चाहे वह उपस्थित ही हो, उपसभापति अध्यक्ष-पद ग्रहण करेगा और जब उपसभापति पर मुकदमा चलाया जायेगा तो सभापति अध्यक्ष-पद ग्रहण करेगा; और जब उपसभापति पर मुकदमा चलाया जा

रहा होगा और यदि अध्यक्ष-पद ग्रहण करने के लिये सभापति उपस्थित नहीं है तो नये खण्ड में यह कहा गया है कि उस समय अनुच्छेद 75 का खण्ड (2) लागू होगा। अनुच्छेद 75 के खण्ड (2) में यह कहा गया है कि ''राज्य-परिषद् की किसी बैठक में, सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति, यदि वह भी अनुपस्थित है तो, ऐसा व्यक्ति, जिसका परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों से निश्चय किया जा सके, अथवा यदि ऐसा कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं है तो, अन्य व्यक्ति जिसे परिषद् निश्चय करे, सभापति के रूप में कार्य करेगा''। अतः इस नये अनुच्छेद 75-क से सम्बन्धित दशा में अनुच्छेद 75 के खण्ड (2) के प्रयोग द्वारा यह कठिनाई दूर हो जाती है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 75 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'75-A. At any sitting of the Council of States, while any resolution for for the removal of the Vice-President from his office is under consideration, the Chairman, or while any resolution for the removal of the Deputy Chairman from his office is under consideration, the Deputy Chairman, shall not, though he is present, preside, and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Chairman or, as the case may be, the Deputy Chairman, is absent.' ''

(75-क. राज्य-परिषद् की किसी बैठक में जबकि उपाध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो सभापति, अथवा जब उपसभापति को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो उपसभापति, चाहे वह उपस्थित ही हो, तो भी अध्यक्ष का पद ग्रहण नहीं करेगा और ऐसी प्रत्येक बैठक में अन्तिम पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के खण्ड (2) के प्रावधान उसी रूप में लागू होंगे जिस रूप में वे उस बैठक में लागू होते हैं जिसमें सभापति या उपसभापति, जैसी भी स्थिति हो, अनुपस्थित होते हैं।)

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 75-क विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 76

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 76 विधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 1512 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1513, 1514 और 1515 सबके सब शाब्दिक हैं और इसलिये उनको पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

संशोधन संख्या 1516 मि. नजीरुद्दीन द्वारा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं नियमित रूप से इस संशोधन को पेश करना नहीं चाहता हूं, पर मैं कुछ बात कहना चाहता हूं। मेरे एक ऐसे ही संशोधन को डा. अम्बेडकर ने बड़ी कृपा करते हुए मूर्खतापूर्ण बता दिया था। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि मेरा संशोधन मूर्खतापूर्ण नहीं था। अब भी उस विषय पर मसौदा-समिति में पुनर्विचार करने का समय है। मैं सभा से यह निवेदन करना चाहता था कि यदि सदस्य न रहने पर अथवा पद त्याग करने पर उपसभापति अपने स्थान को रिक्त कर देता है और यदि सदस्य के रूप में उसका पुनर्निर्वाचन हो जाता है तो उसे चुनाव लड़ने से नहीं रोकना चाहिये। कठिनाई केवल अनुच्छेद 74 के खण्ड (ग) में है। मैं समझता हूं कि यह बड़ा सारवत् विषय है कि यदि उपसभापति अपने पद से हट जाता है परन्तु यदि उसका पुनर्निर्वाचन हो जाता है तो उसको चुनाव लड़ने से नहीं रोकना चाहिये। इस बात की मैं सभा को सूचना देना चाहता था। सभा स्वयं इसका विरोध प्रकट कर ही चुकी है अत: मैं इसे पेश नहीं करना चाहता हूं। मैं केवल यह निवेदन करता हूं कि वह संशोधन मूर्खतापूर्ण नहीं है वरन् बहुत ही युक्तियुक्त है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम उस संशोधन पर विचार कर चुके हैं और ऐसा ही एक संशोधन मेरे माननीय मित्र ने अनुच्छेद 73 पर पेश किया था।

***अध्यक्ष:** उसको निपटाया जा चुका है। अनुच्छेद 76 पर कोई संशोधन नहीं है।

(संशोधन संख्या 1517 और 1518 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 76 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 76 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 77

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 77 विधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 1519, 1520 और 1521 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 77 के खण्ड (ख) में 'to the Deputy Speaker' शब्दों के स्थान में 'to the President' शब्द रखे जायें।''

मेरा यह संशोधन केवल कार्यप्रणाली के विषय से सम्बन्ध रखता है। मैं समझता हूं कि जब लोक सभा का सभापति अपना पद त्याग देता है तो यह अधिक अच्छा होगा कि वह अपना त्याग पत्र अध्यक्ष को, न कि उपसभापति को, सम्बोधित करे क्योंकि उपसभापति उसके नीचे का पद धारण करता है।

गौरव की किसी झूठी भावना से प्रेरित होकर मैं यह नहीं कह रहा हूं। परन्तु ऐसे तथा अन्य विषयों में, मैं यह कहूंगा कि शिष्टाचार तथा विशिष्ट अवसर की अनुकूलता के अनुसार कार्यप्रणाली को अनियमित करना चाहिये और इसलिये मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जब आपने यह व्यवस्था की है कि जब उपसभापति को भेजना चाहिये तो मैं समझता हूं कि यह ठीक होगा कि सभापति अपने त्याग पत्र को भारतीय संघ के अध्यक्ष को सम्बोधित करे न कि उपसभापति को। मैं आशा करता हूं और मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इस प्रकार की कार्यप्रणाली के औचित्य की ओर ध्यान देंगे और मेरे इस संशोधन को स्वीकार करेंगे जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि सभापति के पद त्याग करने पर उसका त्याग पत्र अध्यक्ष को सम्बोधित किया जायेगा न कि उपसभापति को। श्रीमान्, मैं अपने नाम के संशोधन संख्या 1522 को पेश करता हूं और सभा की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करता हूं।

(संशोधन संख्या 1523 और 1524 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** संशोधन संख्या 1525 शाब्दिक है।

***अध्यक्षः** मैंने भी ऐसा ही सोचा था।

(संशोधन संख्या 1526, 1527 और 1528 पेश नहीं किये गये।)

मैं समझता हूं कि ये सब संशोधन अनुच्छेद 77 पर हैं। इस अनुच्छेद पर तो केवल एक ही संशोधन पेश किया गया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं विरोध करना चाहता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि वे यह भूल गये कि अध्यक्ष अधिशासी प्रमुख है और हम यह चाहते हैं कि सभापति तथा उपसभापति अधिशासी मण्डल से पूर्णतया स्वतंत्र रहे, अतः जबकि यह व्यवस्था की गई है कि सभापति उपसभापति को अपना त्याग पत्र देगा तो उसका अर्थ यही है कि सभापति तथा सभा जिसका वह सभापति है दोनों की स्वतंत्रता की रक्षा की गई है। यदि हम प्रधान को त्याग पत्र देते हैं तो इसका अर्थ यह है कि हम अधिशासी मण्डल को त्याग पत्र दे रहे हैं। यह बड़ा ही लाभदायक सिद्धांत है कि सभापति तथा उपसभापति अधिशासी मंडल से पूर्णतया स्वतंत्र रहें। अतः मैं आशा करता हूं कि श्री कामत अपने संशोधन पर जोर नहीं देंगे।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** अध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करता हूं और मैं समझता हूं कि जब सभापति पद त्याग करना चाहता है तो वह अपने त्यागपत्र को किसी ऐसे अधिकारी के पास न भेजे जो उसके अधीन कार्य कर रहा हो वरन् किसी अपने से ऊंचे अधिकारी के अर्थात् गणराज्य के अध्यक्ष के पास भेजे। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि सभा के गौरव के लिये यह अधिक अच्छा होगा। मेरे माननीय मित्र प्रो. सक्सेना ने यह कहा है कि वे सभा के गौरव की रक्षा करना चाहते हैं। लोक सभा कई रूपों में अध्यक्ष से सम्बन्धित है और आप इनको एक-दूसरे से पृथक नहीं कर सकते हैं, ऐसा करना असम्भव है और फिर गणराज्य का अध्यक्ष तो, श्रीमान्, कानूनन लोक सभा का प्रमुख है। ये दो ही तो प्रमुख हैं और यह वास्तव में सही तथा ठीक है कि जब वह पद त्याग करना चाहे तो अपने अधीन अधिकारी को त्यागपत्र देने की अपेक्षा वह सर्वोच्च धर्माधिकरण अर्थात् अध्यक्ष को त्यागपत्र दे। इन शब्दों के साथ अपने माननीय मित्र श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मुझे खेद है कि अपने माननीय मित्र श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं। वर्तमान अनुच्छेद एक बड़े ही सरल सिद्धांत पर आश्रित है और वह यह है कि सामान्यतया कोई व्यक्ति उस व्यक्ति को त्यागपत्र देता है जो उसे नियुक्त करता है। सभापति तथा उपसभापति वे व्यक्ति हैं जो सभा द्वारा नियुक्त किये जाते हैं या चुने जाते हैं या निर्वाचित किये जाते हैं। अतः ये दोनों व्यक्ति यदि पद त्याग करना चाहते हैं तो इन्हें सभा को अपना त्यागपत्र देना चाहिये जिसने इन्हें नियुक्त किया है। सभा एक सामूहिक लोक संस्था होने के कारण त्यागपत्र सभा के प्रत्येक सदस्य को पृथक्-पृथक् सम्बोधित नहीं किया जा सकता है। अतः यह प्रावधान रखा गया है कि त्यागपत्र या तो सभापति को सम्बोधित किया जाये या उपसभापति को, क्योंकि वे ही इस सभा का प्रतिनिधान करते हैं। सच बात तो यह है कि सिद्धांत रूप में त्यागपत्र सभा के लिये है क्योंकि सभा ही उनको नियुक्त करती है। अध्यक्ष वह व्यक्ति नहीं है जिसने उन्हें नियुक्त किया हो। अतः यह बहुत ही असंगत होगा कि उपसभापति अथवा सभापति अपने त्यागपत्र अध्यक्ष को दे जिसका सभा से कोई सम्बन्ध नहीं है और जिसे इस सभा से इस कारण कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये कि सभा अधिशासी प्राधिकार से स्वतंत्र रह सके चाहे उस अधिकार का प्रयोग अध्यक्ष द्वारा हो या उस समय की सरकार द्वारा हो।

***श्री एच.वी. कामतः** एक सूचना सम्बन्धी प्रश्न है, क्या मैं डा. अम्बेडकर से यह जान सकता हूं कि वर्तमान समय में केन्द्रीय विधान-सभा के सभापति के सम्बन्ध में क्या कार्यप्रणाली प्रचलित है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** वर्तमान समय में तो स्थिति बहुत भिन्न है। क्या वे वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं या उस स्थिति के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं जिसे वे पैदा करना चाहते हैं? भारतीय सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत सभा और सभापति गवर्नर-जनरल के ही बनाये हुए हैं। अतः सभापति को अपना त्यागपत्र गवर्नर-जनरल को ही देना है। हम उस स्थिति को कायम रखना नहीं चाहते हैं। हम अध्यक्ष

को इतनी पूर्ण तथा अधिशासी मण्डल से इतनी स्वतंत्र स्थिति प्रदान करना चाहते हैं जितनी यथासम्भव हम प्रदान कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या भारतीय सरकार के अधिनियम के अनुसार सभापति का निर्वाचन सभा द्वारा नहीं किया जाता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह बात गलत है। इसमें सन्देह नहीं है कि उसका निर्वाचन किया जाता है; पर उसके निर्वाचन की स्वीकृति गवर्नर-जनरल द्वारा की जाती है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को वापस करने की अनुमति चाहता हूं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 77 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 77 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 78

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 78 विधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 1529 और 1530 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1530 पर संशोधन उत्पन्न ही नहीं होता है क्योंकि स्वयं संशोधन ही पेश नहीं किया गया है।

(संशोधन संख्या 1531 पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 78 पर कोई संशोधन पेश नहीं किया गया है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 78 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 78 विधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 78-क

***अध्यक्ष:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा एक नवीन अनुच्छेद 78-क बढ़ाने के लिये एक संशोधन की सूचना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 78 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:—

'78-A. At any sitting of the House of the People, while any resolution for the removal of the Speaker from his office is under consideration, the Speaker, or while any resolution for the removal of the Deputy Speaker from his office is under consideration, the Deputy Speaker, shall not, though he is present, preside and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Speaker or, as the case may be, the Deputy Speaker, is absent.' ''

(78-क. राज्य-परिषद् की किसी बैठक में जबकि अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो अध्यक्ष और जबकि उपाध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो उपाध्यक्ष, चाहे वह उपस्थित ही हो तो भी, सभापति का पद ग्रहण नहीं करेगा और अन्तिम पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के खण्ड (2) के प्रावधान ऐसी प्रत्येक बैठक में उसी रूप में लागू होंगे जिस रूप में वे उस बैठक में लागू होते हैं जिसमें अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, अनुपस्थित है।)

श्रीमान्, इस नये अनुच्छेद का विषय ठीक वही है जो अनुच्छेद 75-क का है जिसको सभा ने बड़ी उदारतापूर्वक स्वीकार कर लिया है। इस अनुच्छेद की आवश्यकता को माननीय डा. अम्बेडकर ने पूर्ण रूप से समझा दिया है। मैं आशा करता हूं इस नवीन अनुच्छेद को स्वीकार करने में सभा को कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि यह उसी रूप में लोक सभा से सम्बन्ध रखता है जिस रूप में अनुच्छेद 75-क राज्य-परिषद् से सम्बन्ध रखता है।

श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर दम मत लेता हूं क्योंकि यह वैसा ही है जैसा कि एक पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद है जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं। अन्तर यह है कि यह अनुच्छेद लोक सभा के सम्बन्ध में है और पूर्ववर्त्ती राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में है। मैं समझता हूं कि इस पर ओर आगे वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 78 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'78-A. At any sitting of the House of the People, while any resolution for the removal of the Speaker from his office is under consideration, the Speaker, or while any resolution for the removal of the Deputy Speaker from his office is under consideration, the Deputy Speaker, shall not, though he is present, preside and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Speaker or, as the case may be, the Deputy Speaker, is absent.' ''

(78-क. राज्य-परिषद् की किसी बैठक में जबकि अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो सभापति और जबकि उपाध्यक्ष का उसके पद से हटाने का कोई प्रस्ताव विचारार्थ है तो उपाध्यक्ष, चाहे वह उपस्थित ही हो तो भी, सभापति का पद ग्रहण नहीं करेगा और अन्तिम पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के खण्ड (2) के प्रावधान ऐसी प्रत्येक बैठक में उसी रूप में लागू होंगे जिस रूप में वे उस बैठक में लागू होते हैं जिसमें अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, अनुपस्थित है।)''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 78-क विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 79

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 79 विधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 1532, 1533 और 1534 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 79 पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 79 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 79 विधान में प्रविष्ट किया गया।

नवीन अनुच्छेद 74 क

***अध्यक्षः** एक अनुच्छेद 79-क है जिसकी सूचना डा. अम्बेडकर और श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने दी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इसे स्थगित रखना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 79-क स्थगित रखा जाता है। एक और अनुच्छेद 79-क है जिसकी सूचना मि. नजीरुद्दीन अहमद ने दी है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 79 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:—

''79-A. (1) The Chairman shall preside at a meeting of the Council of States, and in his absence, the Deputy Chairman shall preside; and in his absence, any one of the panel of Chairmen appointed by the Chairman and selected by him for the purpose shall preside; and in their absence any member of the Council of States elected by the Council shall preside.

(*2*) At a meeting of the House of the People the Speaker shall preside, and in his absence, the Deputy Speaker shall preside, and in his absence a member of the panel of Chairmen appointed by the Speaker and selected by him for the purpose, and in their absence, any member elected by the House shall preside.

(*3*) At a joint...' ''

''(79-क. (1) राज्य-परिषद् की बैठक में राज्य-परिषद् का सभापति सभापति का आसन ग्रहण करेगा और उसकी अनुपस्थिति में उपसभापति सभापति का आसन ग्रहण करेगा; और उपसभापति की अनुपस्थिति में सभापति द्वारा नियुक्त सभापतियों की तालिका में से कोई एक व्यक्ति जिसको इस प्रयोजन के लिये सभापति द्वारा चुना जाये, वह सभापति का आसन ग्रहण करेगा; और उनकी अनुपस्थिति में परिषद् द्वारा निर्वाचित परिषद् का कोई भी सदस्य सभापति का आसन ग्रहण करेगा।

(2) लोक सभा की बैठक में अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करेगा, और उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करेगा और उसकी अनुपस्थिति में अध्यक्ष द्वारा नियुक्त सभापतियों

की तालिका में से कोई एक व्यक्ति जिसको इस प्रयोजन के लिये अध्यक्ष द्वारा चुना जाये वह सभापति का आसन ग्रहण करेगा; और उनकी अनुपस्थिति में लोक सभा द्वारा निर्वाचित कोई सदस्य सभापति का आसन ग्रहण करेगा।

(3) संयुक्त बैठक में...।''

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, इसकी व्यवस्था अनुच्छेद 75 में हो चुकी है।

***अध्यक्ष:** खण्ड (1) और (2) तो अनुच्छेद 75 और 78 में आ चुके हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उस दशा में मैं खण्ड (3) को पेश करूंगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** खण्ड (3) की भी व्यवस्था हो चुकी है।

***अध्यक्ष:** खण्ड (3) अनुच्छेद 98 (4) में आ जाता है। यदि आप अपने संशोधन पेश करना ही चाहते हैं तो इन्हें आप उस समय ले सकते हैं। वह उपयुक्त स्थिति होगी।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** परन्तु दुहरे प्रावधान आज इस सभा द्वारा स्वीकार किये जा चुके हैं।

अनुच्छेद 80

***अध्यक्ष:** मुझे यह बात याद है। उसका दुहराना आवश्यक नहीं है। हम यह समझ लेते हैं कि वह संशोधन पेश नहीं हुआ है। हम अनुच्छेद 80 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 80 विधान का अंग बने।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) में 'Save as provided in this Constitution' (इस विधान में प्रावहित अवस्था को छोड़कर) शब्दों के स्थान में 'Save as otherwise provided in this Constitution' (इस विधान में इसके विपरीत प्रावहित अवस्था को छोड़कर) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, यह केवल एक भूल है और इसको ठीक करना पड़ेगा।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1537। मैं यह विचार करता हूं कि यह मसौदा बनाने से सम्बन्ध रखता है। संशोधन संख्या 1538। श्री कामत यह उस संशोधन में आ जाता है जिसको अभी पेश किया जा चुका है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, इसका दूसरा भाग तो नवीन है।

***अध्यक्षः** हां, आप दूसरा भाग पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, सर्वप्रथम मैं आपको यह सूचना दूं कि मैंने पांच संशोधन अलग-अलग भेजे थे परन्तु उनको मिला दिया गया है, तीन जो एक संशोधन संख्या 1538 में मिला दिये गये हैं और दो संशोधन संख्या 1541 में। किसी रूप में मैं कार्यालय पर दोषारोपण करना नहीं चाहता हूं। कार्यालय बहुत अधिक परिश्रम कर रहा है और यह सम्भव हो सकता है कि काम की अधिकता के कारण ऐसा हो गया है। मैं आप से यह विनय करूंगा कि इस संशोधनों को अलग-अलग पेश करने दिया जाये।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं संशोधन संख्या 1538 के अन्तिम दो भागों को ही पेश करूंगा तथा आपकी अनुमति से 1541 को भी पेश करूंगा क्योंकि यह उसी खण्ड से ही सम्बन्ध रखता है।

***अध्यक्षः** जी हां।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) में 'at any sitting' शब्दों के पश्चात् 'of either House' शब्द प्रविष्ट किये जायें और 'other than the Chairman or Speaker or person acting as such' (सभापति अथवा अध्यक्ष अथवा इनके स्थानापन्न व्यक्ति को छोड़कर) शब्द निकाल दिये जाये।''

> ''कि अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) के दूसरे पैरा में 'The Chairman' (सभापति) शब्द के पूर्व 'Provided that' (परन्तु) शब्द प्रविष्ट किया जायें''

मैं संशोधन संख्या 1541 के दूसरे भाग को पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या मैं यह संकेत करूं कि यह सभा अनुच्छेद 68-क को स्वीकार कर ही चुकी है जो ठीक वैसा ही है जैसा कि यह संशोधन है जिसको श्री कामत ने पेश करने का प्रयास किया है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** कल हमने अनुच्छेद 68-क स्वीकार किया था जिसमें यही बातें थीं।

***अध्यक्षः** वह 1538 और 1541 के प्रथम भाग को ले रहा है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मुझे खेद है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं सुझाव करता हूं कि श्री कामत इनको अलग-अलग पेश करें। हम एक का समर्थन करना चाहेंगे और दूसरे का विरोध।

***श्री एच.वी. कामतः** 1538 और 1541 दोनों साथ-साथ हैं, अन्यथा बात पूरी नहीं होगी। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> ''Save as otherwise provided in this Constitution, all questions at any sitting of either House or joint sitting of the Houses shall be determined by a majority of votes of the members present and voting.
>
> Provided that the Chairman or Speaker etc.''
>
> (इस विधान में इसके विपरीत प्रावहित अवस्था को छोड़कर, दोनों आगारों में से किसी आगार की बैठक में अथवा आगारों की संयुक्त बैठक में सब प्रश्नों का निश्चयन उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जायेगा।
>
> परन्तु सभापति अथवा अध्यक्ष इत्यादि।)

मैं इस संशोधन पर विस्तारपूर्वक नहीं बोलना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि ये संशोधन बहुत ही स्पष्ट हैं क्योंकि पहले संशोधन में ''दोनों आगारों में से किसी आगार की'' शब्द बढ़ाने का प्रयास किया गया है। यह बात युक्तियुक्त है कि हम हर एक बात को स्पष्ट कर दें। उसके बाद में ही एक दूसरा खण्ड है जो आगारों की संयुक्त बैठक के सम्बन्ध में है।

अन्य दो संशोधनों के सम्बन्ध में, जिनको मेरे विचार से या तो साथ-साथ स्वीकार करना चाहिये या साथ-साथ अस्वीकार कर देना चाहिये, मैं केवल यही कहूंगा कि कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विधान के मसौदे में निरर्थक शब्द समूह भर दिये हैं जिनकी संख्या कम की जा सकती थी और बहुत से शब्दों को हटाया जा सकता था। मैं यह जानता हूं कि हाथी हमारा एक प्रतीक अवश्य है पर मुझे विश्वास है कि सभा इस बात से सहमत नहीं है कि हम विधान को भद्दा तथा बेकाबू बनायें। हमारे ऋषि मुनियों ने विज्ञान और वेदान्त को सूक्ष्म सूत्रों में लिखा है और हमारे एक महान् व्यक्ति को, मेरे विचार से स्वयं व्यासजी को अपने इस श्लोक का गौरव है जिसमें उन्होंने कहा–

''श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथ-कोटिभिः''

(आधे दोहे में कहूं, कोटि ग्रन्थ का सार।)

परन्तु यहां हम उन शब्दों को बार-बार रख रहे हैं जो नितान्त अनावश्यक हैं और जो सरलता से अर्थ का अनर्थ किये बिना या अनुच्छेद के यथार्थ बोध का ह्रास किये बिना हटाये जा सकते थे। मैं चाहता हूं कि हमारा विधान बहुत अधिक न्यून आकार का होता। अभी उस दिन मेरे कुछ मित्रों ने, जो एक कालेज के छात्र हैं और राजनीति विषय के विद्यार्थी हैं, विधान के मसौदे को पढ़ने के पश्चात् मुझे लिखा था—उन्होंने कुछ विनोद में और कुछ सच्ची बातों के रूप में लिखा था कि भविष्य में होने वाले विद्यार्थी हम में से अनेकों को कोसेंगे जिन्होंने देश के लिये इतना बढ़ा विधान बनाया है।

***अध्यक्ष:** क्या इस संशोधन के लिये यह सब आवश्यक है?

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल अपनी बात को स्पष्ट करना चाहता था। मैं अब सीधा अपनी बात पर आता हूं क्योंकि आपने यह कहा कि यह सब संशोधन के लिये आवश्यक नहीं है। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) में हम देखते हैं कि ये शब्द ''सभापति अथवा अध्यक्ष अथवा इनके स्थानापन्न व्यक्ति'' पहले तथा दूसरे दोनों पैरों में रखे गये हैं। पहले पैरे में ''सभापति अथवा अध्यक्ष इत्यादि'' शब्दों के समाविष्ट किये बिना भी अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। यदि वे ''परन्तु'' जैसे किसी परादिक को प्रवष्टि कर दें तो मसौदा बनाने वालों के मन के भाव स्पष्ट रूप से आ जायेंगे और इस एक अनुच्छेद में से कम से कम 8 या 9 शब्दों के भार से हम मुक्त हो जायेंगे। यदि हम अनेकों अनुच्छेदों पर इसी रूप में विचार करें तो मुझे विश्वास है कि कम से कम एक हजार शब्द इस विधान से निकाल दिये जायेंगे।

अत: मैं संशोधन संख्या 1538 के पिछले दो-तिहाई भाग को और नं. 1541 के पूर्वाधि भाग को पेश करता हूं और सभा की स्वीकृति के लिये इनको प्रस्तुत करता हूं।

(संशोधन संख्या 1542, 1543, 1544, 1545, 1546, 1547 और 1548 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधनों पर पेश किया गया संशोधन संख्या 87।

***आचार्य जुगलकिशोर:** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1536 से सम्बन्धित अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) में 'sitting' शब्द जहां जहां आय हो उसके पश्चात् 'of either House' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है और मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद और संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 80 के सम्बन्ध में मसौदा-समिति के विचार-विमर्श के लिये एक मसौदा सम्बन्धी कमी मुझे बतानी है। खण्ड (1) के पश्चात् एक पूरा का पूरा पैरा है। जिसकी खण्ड संख्या होनी चाहिये। मैं समझता हूं कि यही एक ऐसा उदाहरण है जहां एक पैरे को संख्यांकित नहीं किया गया है। इस पैरे की संख्या 1 (क) रखनी चाहिये और उत्तरवर्त्ती खण्डों को फिर से संख्यांकित करना चाहिये।

मसौदे के एक और रूप के सम्बन्ध में मसौदा-समिति के विचार-विमर्श के लिये मैं यह सुझाव करूंगा: अनुच्छेद 78, 79, 80, 81 और 82 में 'the' शब्द के साथ कुछ अधिक प्रेमपूर्ण व्यवहार किया गया है। कदाचित उसका बड़ी स्वतंत्रता के साथ प्रयोग किया

गया है। परन्तु अन्य स्थानों में 'the' शब्द से बहुत घृणा की गई है उदाहरण के रूप में अनुच्छेद 79 में 'the Chairman', 'the Deputy Chairman', the Speaker', 'the Deputy Speaker' इत्यादि पद हैं, परन्तु इसी प्रसंग में अनुच्छेद 78, 80 और 81 में 'the' शब्द नहीं दिखाई देता है। पर यह शब्द फिर अनुच्छेद 82 में दिखाई देता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** (मद्रास : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, आपने शाब्दिक संशोधनों को अनियमित घोषित कर दिया है। क्या मेरे मित्र को इन शाब्दिक संशोधनों पर बोलने का अधिकार है? इस कार्य के सारवत् भाग को हम कर सकें, मूल कार्य में ही अपने आपको लगा सकें और समय व्यर्थ न खो सकें, इन सब प्रयोजनों के लिये ही आपने शाब्दिक संशोधनों को अनियमित घोषित किया है। फिर अन्य प्रकार से उन्हीं विषयों पर बोलकर हमारा समय लेने से क्या लाभ?

***अध्यक्षः** मैं केवल यह जानना चाहता था कि उक्त सदस्य की सहानुभूति किस ओर है, 'the' शब्द के पक्ष में अथवा विपक्ष में। इसके अतिरिक्त, मैं उक्त सदस्य से निवेदन करूंगा कि वे मसौदा-समिति के सदस्यों से विचार-विमर्श करें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं तो अपना भाषण समाप्त कर ही चुका हूं। पर मुझे यह कहने की आज्ञा दीजिये कि इस औचित्य प्रश्न के करने में माननीय सदस्य ने जितना मैं समय लेता उसकी अपेक्षा अधिक समय लिया है। मसौदा-समिति के विचार-विमर्श के लिये मैंने केवल ये दो बातें बताईं और अपना भाषण समाप्त कर दिया।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर मेरी आपत्ति ''आगारों की संयुक्त बैठक'' शब्दों के प्रति है। इस विधान के मसौदे में ऐसा अनुच्छेद 88 है जो दोनों आगारों की संयुक्त बैठकों के सम्बन्ध का है। यह प्रश्न सिद्धांत का है और मैं उन लोगों में से हूं जो इस विचारधारा के हैं कि दोनों आगारों की संयुक्त बैठक न हो। अतः मैं आशा करता हूं कि चाहे यह अनुच्छेद इस समय इसी रूप में पारित कर दिय जाये जैसा की है परन्तु यदि अनुच्छेद 88 में संशोधन हो जाता है या वह गिर जाता है तो मैं आशा करता हूं कि अनुच्छेद 80 का यह भाग भी निकाल दिया जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मुझे खेद है कि मैं श्री कामत के संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे किस संशोधन को? मैंने अलग-अलग तीन संशोधन पेश किये हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह जिसको उन्होंने अभी पेश किया है। मैं पुस्तिका में एक सम्मिलित संशोधन देखता हूं। वे उसके अलग-अलग भागों पर बोले होंगे। पर संशोधन जिस रूप में है वह केवल एक ही है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैंने उनको अलग-अलग भेजा था और मैं उन पर अलग-अलग बोला था। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं उनको बता सकता हूं। सर्वप्रथम 'at any sitting' शब्दों के पश्चात् 'of either House' शब्दों को प्रविष्ट करने का संशोधन है। दूसरा संशोधन ''सभापति अथवा अध्यक्ष अथवा इनके स्थानापन्न व्यक्ति को छोड़कर'' शब्दों को हटाने के सम्बन्ध में है। तीसरा दूसरे पैरे के आरम्भ में ''परन्तु'' शब्द प्रविष्ट करने के सम्बन्ध में है। मैं यह जानना चाहूंगा कि इन तीनों संशोधनों में से माननीय सदस्य किस संशोधन को स्वीकार कर रहे हैं, क्या वे तीनों संशोधनों को अस्वीकार कर रहे हैं अथवा दो को अथवा एक को?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं माननीय सदस्य के संशोधन संख्या 1538 का उल्लेख कर रहा हूं जो जहां तक कि सरकारी प्रलेख का सम्बन्ध है—एक ही संशोधन प्रतीत होता है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैंने इनको अलग-अलग पेश करने की आपसे अनुमति ले ली थी।

***अध्यक्षः** श्री कामत ने तीन बातें पेश की हैं। उनको अलग-अलग लिया जा सकता है। संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> "Save as otherwise provided in this Constitution, all questions at any sitting of either House or joint sitting of the Houses shall be..."
>
> (इस विधान में इसके विपरीत प्रावहित अवस्था को छोड़कर दोनों आगारों में से किसी आगार की बैठक में अथवा आगारों की संयुक्त बैठक में...)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं देखता हूं कि संशोधनों की सूची में से मैं संशोधन संख्या 87 को स्वीकार कर सकता हूं। वह मेरे प्रयोजन की पूर्ति करता है अतः मैं उसे स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्षः** उसमें आपके संशोधन का प्रथम भाग आ जाता है। इसके पश्चात् संशोधन का दूसरा भाग है। मैं संशोधन संख्या 1536 से आरम्भ करूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) में 'Save as provided in this Constitution' (इस विधान में प्रावहित अवस्था को छोड़कर)' शब्दों के स्थान में 'Save as otherwise provided in this Constitution' (इस विधान में इसके विपरीत प्रावहित अवस्था को छोड़कर) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके पश्चात् संशोधनों पर संशोधनों की सूची में आचार्य जुगलकिशोर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 87 पर हम आते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1536 से सम्बन्धित अनुच्छेद 80 के खण्ड (1) में 'Sitting' शब्द जहां जहां आया हो उसके पश्चात् 'either House' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् हम तीसरे संशोधन पर आते हैं जो श्री कामत का संशोधन है वह इस प्रभाव के लिये है:

''कि खण्ड (1) के प्रथम पैरे में से 'otherwise than the Chairman or Speaker or person acting as such' (सभापति अथवा अध्यक्ष अथवा इनके स्थानापन्न व्यक्ति को छोड़कर) शब्दों को निकाल दिया जाये और दूसरे पैरे के आरम्भ में 'Provided that' (परन्तु) शब्द, निस्सन्देह विराम-चिन्हों में आवश्यक परिवर्तन के साथ जोड़ दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् संशोधित रूप में मैं इस अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 80 विधान का अंग बने।''

संशोधित रूप में अनुच्छेद स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 80 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 81

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम आगे के अनुच्छेद 81 पर आते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 81 विधान का अंग बने।''

एक संशोधन है जिसकी सूचना श्री ताहिर और श्री जफर इमाम ने दी थी। परन्तु वे यहां नहीं हैं अत: उसे पेश नहीं किया जाता है। इसके पश्चात् श्री कामत के नाम का संशोधन संख्या 1530 है।

***श्री एच.वी. कामत:** कल अनुच्छेद 68-क के स्वीकृत हो जाने के कारण वह संशोधन अब नहीं रखा जा सकता; अत: श्रीमान्, मैं उसे पेश नहीं करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 81 में 'President, or some person appointed in that behalf by him' (प्रधान अथवा प्रधान द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति) शब्दों के स्थान में 'Speaker of the House of Representatives or Chairman of the Council of States' or some person appointed in that behalf by the Speaker or the Chairman of the Council of States' (लोक सभा के अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् के सभापति अथवा अध्यक्ष या राज्य-परिषद् के सभापति द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधित अनुच्छेद फिर इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''Every member of either House of Parliament shall, before taking his seat, make and subscribe before the Speaker of the House of Representatives or Chairman of the Council of States, or some person appointed in that behalf by the Speaker or the Chairman of the Council of States, a declaration according to the form set out for the purpose in the Third Schedule.''

(संसद के प्रत्येक आगार का प्रत्येक सदस्य, अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, लोक सभा के अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् के सभापति अथवा अध्यक्ष या राज्य-परिषद् के सभापति द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति, के समक्ष, तृतीय अनुसूची में इस प्रयोजन के लिये दिये हुए प्रपत्र के अनुसार घोषणा करेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा।)

श्रीमान्, इस संशोधन के प्रस्तुत करने में मेरा प्रयोजन यह है कि गणराज्य के प्रधान को उन कार्यों में भाग लेने से पृथक् रखा जाये जिनको मैं पूर्णतया सभा के आन्तरिक कार्य समझता हूं। इन विषयों के गणराज्य के प्रधान का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। मैं समझता हूं कि सभा के आन्तरिक स्वायत्त-शासन से सम्बन्धित यह बहुत सादा सा विषय है इस कारण इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

श्रीमान्, मैं सभा के समक्ष अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 81 में 'a declaration' (घोषणा करेगा) शब्दों के स्थान में 'an affirmation or oath' (प्रतिज्ञान करेगा अथवा शपथ लेगा) शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्ष:** सब संशोधन पेश कर दिये गये हैं। अब इन पर वाद-विवाद हो सकता है। क्या कोई सदस्य बोलना चाहता है?

***मि. तजम्मुल हुसैनः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 1551 का विरोध करने के लिये खड़ा होता हूं। अभी तक तो यह कार्यप्रणाली है। जब सभा का निर्वाचन हो जाता है तो सभा में से किसी एक सदस्य को गवर्नर-जनरल द्वारा उनकी बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करने के लिये नियुक्त किया जाता है और फिर अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन होता है। श्रीमान्, अनुच्छेद 81 में यह कहा गया है कि प्रधान अथवा प्रधान द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति के समक्ष प्रतिज्ञान अथवा शपथ लेनी चाहिये। संशोधन यह है कि प्रतिज्ञान अथवा शपथ प्रधान के समक्ष नहीं ली जानी चाहिये वरन् लोक सभा के अध्यक्ष अथवा राज्य सभा के सभापति या अध्यक्ष अथवा सभापति द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति के समक्ष ली जानी चाहिये।

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि इसका कुछ अर्थ नहीं है। मैं समझता हूं कि जो प्रथा इस समय प्रचलित है वह संशोधन में दी हुई प्रथा से अधिक युक्तियुक्त है क्योंकि शपथ के पूर्व अध्यक्ष होता ही नहीं है। इन शब्दों के साथ प्रो. शाह द्वारा पेश किये संशोधन का मैं विरोध करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने संशोधन संख्या 1554 को अभी पेश किया है। उसमें ''घोषणा करेगा'' शब्दों के स्थान में 'प्रतिज्ञान करेगा अथवा शपथ लेगा' शब्दों के रखने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर से कुछ थोड़ा स्पष्टीकरण कराने के लिये यहां प्रस्तुत हुआ हूं। श्रीमान्, क्या मैं आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करूं कि इस सभा ने अनुच्छेद 49 स्वीकार कर लिया है जो पद ग्रहण करने के पूर्व प्रधान अथवा प्रधान के स्थानापन्न व्यक्ति अथवा उसके प्रकार्यों के करने वाले व्यक्ति द्वारा प्रतिज्ञान अथवा शपथ की व्यवस्था करता है। जिस प्रतिज्ञान अथवा शपथ की उस अनुच्छेद में व्यवस्था की गई थी उसमें यह संशोधन कर दिया गया था कि प्रधान अथवा प्रधान का स्थानापन्न व्यक्ति अथवा उसके प्रकार्यों को करने वाला व्यक्ति अपना पद धारण करने के पूर्व निम्न रूप में प्रतिज्ञान करेगा अथवा शपथ लेगाः

> ''मैं अमुक...ईश्वर को साक्षी करके गम्भीरतापूर्वक प्रतिज्ञान करता हूं अथवा मैं अमुक... गम्भीरतापूर्वक शपथ लेता हूं।''

क्या मैं अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर तथा इस सभा से भी यह आश्वासन प्राप्त कर सकता हूं कि अनुच्छेद 81 में उल्लिखित प्रतिज्ञान अथवा शपथ भी उसी रूप में होगी जिस रूप में कि वह इस विधान के अनुच्छेद 49 में प्रावहित है?

***अध्यक्षः** मैं मानता हूं कि वह स्पष्ट है कि इस खण्ड की शब्दावली के अनुकूल बनाने के लिये अनुसूची में संशोधन करना पड़ेगा।

इस अनुच्छेद के सानुकूल बनाने के लिये अनुसूची में भी परिवर्तन करने के लिये एक संशोधन की सूचना है। मुझे एक कठिनाई मालूम हुई है। अनुच्छेद 81 के अन्तर्गत संसद के दोनों सदनों के प्रत्येक सदस्य को प्रधान अथवा प्रधान के द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति के समक्ष प्रतिज्ञान करना होगा या शपथ लेनी होगी। यह काम संसद की प्रथम

[अध्यक्ष]

बैठक में होगा जबकि सदस्य प्रतिज्ञान करेंगे या शपथ लेंगे। मान लीजिये कोई सदस्य उपनिर्वाचन के पश्चात् अधिवेशन के बीच में आता है। क्या वह अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, के समक्ष प्रतिज्ञान कर सकेगा अथवा शपथ ले सकेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि अपने मित्र प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं। यदि मुझे कहने की आज्ञा हो तो मैं यह कहूंगा कि किसी उम्मीदवार जिसका निर्वाचन हो जाता है उसके निर्वाचन के पश्चात् उस समय तक के काल में जब तक कि वह सभा का सदस्य नहीं बनता है जो घटनाक्रम है उसको प्रो. शाह ने मेरे विचार से वास्तव में गलत समझा है। यदि प्रो. शाह अनुच्छेद 81 को देखते तथा ''सदस्यों की निर्योग्यता'' नामक शीर्षक पर ध्यान देते तो सर्वप्रथम उनको यह अनुभव होता कि किसी उम्मीदवार के संसद में केवल निर्वाचित हो जाने से ही उसे संसद का सदस्य होने का अधिकार नहीं मिल जाता है। कुछ ऐसे उत्सव हैं—मैं उनको उत्सव ही कहूंगा—जिनको समुचित रूप से किसी निर्वाचित सदस्य को संसद के सदस्य बनने के पूर्व मनाना होगा। एक ऐसा ही उत्सव शपथ लेने का है जो उसे करना होगा। सभा में अपना स्थान ग्रहण करने के पूर्व उसे पहले शपथ लेनी होगी। जब तक वह शपथ नहीं लेता है तब तक सदस्य नहीं बनता और जब तक वह सदस्य नहीं बनता है तब तक उसे सभा में अपना स्थान ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। प्रावधान इस प्रकार है। जब तक उम्मीदवार शपथ नहीं लेते और अपने स्थान ग्रहण नहीं करते हैं तब तक के सदस्य नहीं होते हैं और अध्यक्ष के निर्वाचन करने का उनको अधिकार नहीं होता है। घटना-क्रम इस प्रकार है—निर्वाचन, शपथ लेना, सदस्य बनना और तत्पश्चात् अध्यक्ष के निर्वाचन के लिये अधिकार प्राप्त करना। अत: अध्यक्ष का निर्वाचन शपथ लेने के पश्चात् होना चाहिये।

इस घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए यह कहना असम्भव होगा कि शपथ अध्यक्ष के समक्ष ली जायेगी क्योंकि अध्यक्ष बना ही नहीं और अध्यक्ष का जब तक निर्वाचन नहीं हो सकता तब तक कि निर्वाचित उम्मीदवार सदस्य न बनें। अत: शपथ लेने का अधिकार अध्यक्ष के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति में निहित करना ही चाहिये। यह स्थिति होने से प्रश्न यह उठता है कि शपथ लेने के इस अधिकार को किसे दिया जाये। यह स्पष्ट ही है कि यह अधिकार केवल प्रधान को ही अथवा किसी उस अन्य व्यक्ति को जिसे प्रधान तदर्थ नियुक्त करे सौंपा जा सकता है। घटनाक्रम के अनुसार केवल इसी मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है कि शपथ लेने का अधिकार या तो प्रधान को सौंपा जाये या उस व्यक्ति को जिसे प्रधान तदर्थ नियुक्त करे। इस अधिकार को अध्यक्ष को नहीं सौंपा जा सकता है क्योंकि उस समय तक तो उसकी कोई सत्ता ही नहीं होती है।

अब मैं अपने अध्यक्ष द्वारा उठाये गये प्रश्न पर आता हूं। शपथ लेने के विषय में उपनिर्वाचन में नव-निर्वाचित सदस्य के सम्बन्ध में क्या होता है? क्या उसे प्रधान के समक्ष जाना होगा अथवा अध्यक्ष के? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि अध्यक्ष के निर्वाचित हो जाने के पश्चात् प्रधान आदेश द्वारा अपनी ओर से शपथ लेने का अधिकार अध्यक्ष को

सौंप देगा और जबकि नव-निर्वाचित उम्मीदवार संसद में शपथ लेने के लिये उपस्थित होगा तो प्रधान द्वारा अधिकार प्राप्त व्यक्ति के रूप में अध्यक्ष शपथ लेगा। अत: किसी नव-निर्वाचित व्यक्ति के लिये यह आवश्यक नहीं होगा कि वह प्रधान अथवा प्रधान द्वारा नियुक्त किसी अध्यक्ष का कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति के समक्ष जाये।

घटना-क्रम यह है और यह विदित हो गया होगा कि अनुच्छेद 81 इस प्रकार से बनाया गया है कि वह इस क्रम के अनुरूप हो सके। मैं यह कहूंगा कि आज भी इसी कार्यप्रणाली का अनुसरण किया जाता है। प्रधान (अथवा गवर्नर-जनरल) जबकि सभा की बैठक प्रथम बार होती है तो उसकी अध्यक्षता करने के लिये किसी व्यक्ति को नियुक्त करता है। अध्यक्षता करने वाले उस अधिकारी के समक्ष प्रत्येक सदस्य शपथ लेता है अथवा प्रतिज्ञान करता है। शपथ लेने के पश्चात् अध्यक्षता करने वाला अधिकारी अध्यक्ष का निर्वाचन कराता है और अध्यक्ष के निर्वाचन के पूरा हो जाने के पश्चात् वह अवकाश ग्रहण करता है और अध्यक्ष अध्यक्षता करने वाले अधिकारी के स्थान को उस समय के पश्चात् आने वाले किसी सदस्य से शपथ लेने के प्रधान द्वारा दिये गये अधिकार सहित ग्रहण किये रहता है। अत: जैसा कि मैंने कहा था मूल मसौदा घटनाक्रम के अनुकूल है और प्रधान द्वारा अध्यक्ष को अधिकार सौंप देने हेतु जो प्रावधान सामान्य रूप से बनाया गया है वह नव-निर्वाचित व्यक्ति को शपथ लेने के लिये प्रधान के पास जाने से रोकेगा।

***अध्यक्ष:** क्या अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक है कि वह शपथ लेने का अधिकार प्रधान से प्राप्त करे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं निवेदन करता हूं कि वैधानिक रूप में यही है क्योंकि सभा की रचना में शपथ लेना एक संयोग मात्र है जिस पर अध्यक्ष का कोई अधिकार नहीं...।

***अध्यक्ष:** मैं उस स्थिति पर विचार नहीं कर रहा हूं। मैं तो अध्यक्ष के निर्वाचन हो जाने के पश्चात् की स्थिति पर विचार कर रहा हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से इसमें कोई गलत अथवा तुच्छ बात नहीं है केवल इस कारण कि सभा की रचना, उसका निर्माण, उसका कानूनी स्वरूप ऐसे विषय हैं जो अध्यक्ष के अधिकार से बाहर हैं। संसद के बन जाने पर अध्यक्ष पर उसके कार्य का प्रभार है और संसद जब तक नहीं बनती तब तक कि सदस्य शपथ नहीं लेते हैं। अत: प्रावधान के अनुसार शपथ लेना वास्तव में सभा निर्माण का एक अंग है और जहां तक उसका सम्बन्ध है मेरे विचार से यह अधिकार न तो अध्यक्ष का है और न उसका होना ही चाहिये।

***अध्यक्ष:** मान लीजिये सभा की किसी बाद में होने वाले बैठक में अध्यक्ष संयोगवश अनुपस्थित हो और कोई नया सदस्य उस दिन आता है जबकि उपाध्यक्ष अथवा कोई अन्य व्यक्ति अध्यक्ष पद ग्रहण किये हुए हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष को जो अधिकार दिया गया है वह केवल अध्यक्ष में ही निहित नहीं होता है वरन् यह उपाध्यक्ष में, सभापतियों की तालिका में अथवा किसी अन्य व्यक्ति में भी जो उस समय अध्यक्ष पद ग्रहण किये हुए हो निहित होता है।

***अध्यक्ष:** अध्यक्ष को अधिकार के सौंपे जाने पर निर्भर होना पड़ेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** विधान द्वारा उद्भूत समस्त अधिकारियों की सद्भावना पर हमें निर्भर होना पड़ेगा।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त: मुस्लिम): मैं यह जानना चाहूंगा कि जब तक समस्त सदस्य शपथ न ले लें तब तक अध्यक्ष किस प्रकार किसी दूसरे व्यक्ति को अपने अधिकार सौंप सकता है?

***अध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 81 में 'President or some person appointed in that behalf by him' (प्रधान अथवा प्रधान द्वारा नियुक्त तदर्थ व्यक्ति) शब्दों के स्थान में 'Speaker of the House of Representatives or Chairman of the Council of States, or some person appointed in that behalf by the Speaker or the Chairman of the Council of State' (लोक सभा के अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् के सभापति अथवा अध्यक्ष या राज्य-परिषद् के सभापति द्वारा तदर्थ नियुक्त व्यक्ति)'' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 81 में 'a declaration' (घोषणा करेगा) शब्दों के स्थान में 'an affirmation or oath' (प्रतिज्ञान करेगा अथवा शपथ लेगा) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 81 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 81 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 82

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 82 विधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 1555 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** मैं सुझाव करता हूं कि संख्या 1556 और 1557 के संयोजन संख्या 1558 के संशोधन में आ जाते हैं यदि इस संशोधन को पेश किया जाता है तो। यदि प्रो. शाह संतुष्ट नहीं हैं तो संशोधन संख्या 1556 को पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'1. (a) No person shall be a member both of Parliament and of the Legislature of a State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule, and if a person is chosen a member both of Parliament and of the Legislature of such a State, then at the expiration of such period as may be specified in rules made by the President that person's seat in Parliament shall become vacant unless he has previously resigned his seat in the Legislature of the State.' ''

[1. (क) प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा 3 में उल्लिखित समय तक कोई भी व्यक्ति दोनों संसद का तथा किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं होगा और यदि कोई व्यक्ति दोनों संसद का तथा ऐसे किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य चुना जाता है तो प्रधान द्वारा निर्मित नियमों में उल्लिखित अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् यदि उस व्यक्ति ने उस राज्य के विधान-मंडल में अपने स्थान को पहले ही न त्याग दिया हो तो उस व्यक्ति का संसद में स्थान रिक्त हो जायेगा।]

श्रीमान्, इस खंड की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। यह एक साधारण नियम है।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि इसमें संशोधन संख्या 1556 और 1557 आ जाते हैं। श्री नजीरुद्दीन अहमद यदि यह समझते हैं कि उनका संशोधन मसौदा सम्बन्धी नहीं है तो वे अपने संशोधन संख्या 1559 को पेश कर सकते हैं।

***मि. नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 82 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'becomes subject to any disqualifications mentioned in' (मैं वर्णित निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है) शब्दों के स्थान में 'is disqualified under' (के अनुसार निर्योग्य हो जाता

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

है) शब्द रखे जायें।''

अनुच्छेद 82 (2) में कहा गया है:

''यदि संसद के किसी आगार का सदस्य—(क) निकटतम आगामी अनुच्छेद के खंड (1) में वर्णित निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है;''

इन शब्दों के स्थान में ''निकटतम आगामी अनुच्छेद के खंड (1) के अनुसार निर्योग्य हो जाता है'' शब्द रखें जायें। निकटतम आगामी अनुच्छेद इस प्रभाव का है कि कुछ सम्भावनाओं के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को निर्योग्य कर दिया जायेगा। यदि ये सम्भावनायें वास्तव में उत्पन्न हो जाती हैं तो निर्योग्यता स्वाभाविक तथा निरपेक्ष रूप से पूर्ण है। अनुच्छेद की मूल भाषा यह है: यदि सदस्य 'निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है। मैं यह कहता हूं: ''यदि वह निकटतम आगामी अनुच्छेद के उपखंड (1) के अनुसार निर्योग्य हो जाता है''। ''निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है'' पद में यह भाव निहित है कि ऐसी घटना होने की अधिकतर सम्भावना है और इसी कारण मैं ''निर्योग्य हो जाता है'' शब्द रखने का सुझाव करता हूं जो एक पूर्ण तथ्य का संकेत करता है। निर्योग्यताओं से सम्बन्ध रखने वाला वास्तविक खण्ड पूर्णतया निरपेक्ष है और इस विषय पर एक पूर्ण तथ्य के रूप में विचार प्रस्तुत करता है। अत: मैं सुझाव करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार किया जाये। मैं इस बात से इन्कार नहीं करता हूं कि यह संशोधन कुछ मसौदा सम्बन्धी ही है। परन्तु मैं यह निवेदन करता हूं कि इसमें भिन्न प्रकार की झंझटे होंगी। यदि आप यह समझते हैं कि मसौदा-समिति द्वारा इस पर विचार न हो तो मैं चाहता हूं कि इस पर मत ले लिया जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (2) में निम्न नवीन उपखंड जोड़ दिये जाये:

'(c) or if he is recalled by the electors in his constituency for failure to properly discharge his duties,

(d) or if he dies.' ''

[(ग) अथवा यदि उसको अपने कर्त्तव्य का उचित रूप से पालन करने में असफल होने के कारण उसके निर्वाचन-क्षेत्र के निर्वाचकों द्वारा वापस बुला दिया जाता है,

(घ) अथवा यदि उसकी मृत्यु हो जाती है।]

(घ) के सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि इस सम्भावना की इस अनुच्छेद में क्योंकर व्यवस्था नहीं की गई है। यह हो सकता है कि डॉ. अम्बेडकर यह कहें कि जब कोई सदस्य मर जायेगा तो यह स्वाभाविक है कि उसका स्थान रिक्त हो जायेगा। परन्तु आपको याद होगा कि इसी विधान-परिषद् ने नियम 2 अथवा 3 में यह निर्धारित किया है कि त्यागपत्र या किसी सदस्य की मृत्यु अथवा अन्य कारण से स्थान रिक्त घोषित कर दिया जायेगा। अत: यदि हम इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था कर दें कि सदस्य की मृत्यु होने पर उसका स्थान रिक्त हो जायेगा तो कुछ भी हानि नहीं होगी।

अपने संशोधन के प्रथम भाग के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि अब प्रजातंत्रों ने, कुछ ने कम से कम सैद्धांतिक रूप में और कुछ ने वास्तविक व्यवहार में, सदस्यों अथवा कदाचित् मंत्रियों तक को अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों के प्रति अपने-अपने कर्त्तव्यों के पालन करने में असफल होने की स्थिति में वापस बुलाने की व्यवस्था की है। मैं समझता हूं कि स्विट्जरलैंड के संघानीय विधान में इस प्रकार का प्रावधान है और अमरीका के कुछ राज्यों में भी ऐसा प्रावधान है। श्रीमान्, मेरे विचार से प्रजातंत्र का जो आदर्श होना चाहिये उसकी पूर्ति यह प्रावधान बहुत कुछ अंश तक करता है। मुझे विश्वास नहीं है कि इस देश में हम आदर्श प्रजातंत्र प्राप्त कर सकेंगे और श्रीमान्, आपने कल ठीक ही कहा था कि नई व्यवस्था में अनेकों अन्तर्वर्त्ती संकट हैं। मैं अनुभव करता हूं और मुझे विश्वास है कि सभा इस बात से सहमत होगी कि चूंकि इस विधान द्वारा प्रौढ़ मताधिकार का पुर:स्थापन किया जा रहा है इसलिये हमें प्रौढ़ शिक्षा की ओर भी शीघ्र तथा तेजी से कदम उठाना चाहिये, क्योंकि मेरे विचार से प्रौढ़ शिक्षा के अभाव में प्रौढ़ मताधिकार, मैं यह तो नहीं कहूंगा कि असफल होगा परन्तु उपयोगी रूप में क्रियान्वित नहीं होगा और देश के सर्वोत्तम हित के लिये नहीं होगा। यदि इस बात की कल्पना की जाती है कि उचित तथा उपयुक्त रूप से शिक्षित निर्वाचकों के लिये संतोषप्रद रूप में अपने कर्त्तव्य का पालन करे और निर्वाचकों को यह अधिकार होना चाहिये, उनकी यह भावना होनी चाहिये, उनको यह संतोष होना चाहिये, उनके लिये यह परम्परा होनी चाहिये कि यदि उनके द्वारा निर्वाचित व्यक्ति इस प्रकार से अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो उनको उसे वापस बुलाने का अधिकार हो। यह एक साधारण सी बात है कि आधुनिक संसदात्मक प्रजातंत्रों में एक बार निर्वाचित होने पर सदस्य अपने निर्वाचकों के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं रखता है और आगामी निर्वाचन तक वह संसद में स्थान ग्रहण किये रहता है और फिर वह निर्वाचकों के पास जाकर उनसे मत देने के लिये प्रार्थना करता है। यह कोई संतोषजनक स्थिति नहीं है और मैं समझता हूं कि यदि शिक्षित निर्वाचकों को उनके द्वारा निर्वाचित सदस्य को वापस बुलाने का अधिकार सौंपा जाता है तो इसमें कोई हानि नहीं है। मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि जब तक निर्वाचकों को समुचित शिक्षा नहीं दी जाती है तब तक यह संकट है कि निर्वाचक ठीक-ठीक कारणों के अतिरिक्त रोष, अज्ञानता, ईर्ष्या अथवा अन्य ऐसी ही भावना के कारण सदस्य को वापस बुला लेंगे परन्तु जिनको हम निर्वाचक बना रहे हैं वह एक बड़ा निर्वाचक समूह है और यदि इस सिद्धांत को स्वीकार किया जाता है तो उसके संपालनार्थ हम किसी न किसी प्रकार के तंत्र की रचना कर सकते हैं और हम किसी अनुपात को भी नियत कर सकते हैं चाहे वह निर्वाचकों का दो-तिहाई हो, तीन-चौथाई हो अथवा पांचवें भाग का चौगुना से जो सदस्य को वापस बुलाने के लिये आवश्यक हो। यह विवरण का विषय है जिसको बाद में निश्चित किया जा सकता है। मैं इस संशोधन को पेश करता हूं और सभा की स्वीकृति के लिये इसे अर्पण करता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री कामत द्वारा पेश किये संशोधन में संशोधन संख्या 1561 और 1562 आ जाते हैं।

(संशोधन संख्या 1563 पेश नहीं किया गया।)

[अध्यक्ष]

संशोधन संख्या 1564 मसौदा सम्बन्धी है। अतः इसको पेश करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 1565 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 1566 और 1567 को पेश करना चाहता हूं, परन्तु यदि आप अनुमति दें तो मैं संशोधन संख्या 1568 के अनुवर्त्ती भाग को पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (3) के पश्चात् नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(4) No one wo is unable to read or write or speak the National Language of India after ten years from the day this Constitution comes into operation shall be entitled to be a candidate for, or offer himself to be elected to, a seat in either House of Parliament.' ''

[(4) कोई भी व्यक्ति जो इस विधान के प्रवर्त्तन में आने के दिवस से 10 वर्ष बाद भारत की राष्ट्रीय भाषा के पढ़ने या लिखने या बोलने में असमर्थ है तो वह संसद के किसी आगार में स्थान प्राप्त करने का अथवा निर्वाचन के लिये स्वयं को प्रस्तुत करने का अधिकारी न होगा।]

मैं समझता हूं कि राष्ट्रीय भाषा के प्रयोग में प्रगति करने तथा उसे देशव्यापी बनाने के लिये यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारा व्यवसाय चाहे जो कुछ हो पर कानून अथवा विधान जैसे पारिभाषिक प्रयोजनों के लिये वर्तमान समय में राष्ट्रीय भाषा के निर्माण करने तथा उसे लोकप्रिय बनाने के हेतु अभी हमें उसमें बहुत उन्नति करनी है। कम से कम विधान-मंडलों में जब तक हम किसी रूप में कोई ऐसी बात अनिवार्य रूप से न रखें जैसे कि कोई भी व्यक्ति जो राष्ट्रीय भाषा समझ, बोल या लिख न सकेगा, वह राष्ट्रीय विधान में उम्मीदवार होने या निर्वाचित होने का अधिकारी न होगा तब तक भाषा की उन्नति नहीं हो सकती है। मैं इस बात को समझता हूं कि तुरन्त ही ऐसी कोई बात रखना कठिन होगा और इसीलिये मैं यह सुझाव कर रहा हूं कि इस विधान के प्रवर्त्तन में आने के दिवस से दस वर्ष बाद प्रत्येक व्यक्ति जो संसद के किसी आगार के निर्वाचन के लिये अपने आपको उम्मीदवार के रूप में प्रस्तुत करता है उससे यह आशा की जायेगी कि वह पर्याप्त रूप से राष्ट्रीय भाषा के पढ़ने-लिखने का ज्ञान रखे। मैं समझता हूं कि जिस परिस्थिति में हम हैं उसके लिये यह महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक है कि कोई ऐसा प्रावधान विधान में रखा जाये और इसी हेतु मेरा यह प्रस्ताव है। मैं आशा करता हूं कि यह खंड सभा को मान्य होगा।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1568 पर श्री लक्ष्मीनारायण साहू द्वारा संशोधन संख्या 89 की सूचना है। पर उसकी आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि संशोधन संख्या 1568 पेश ही नहीं किया गया है। श्री साहू का संशोधन संख्या 1569 श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन में आ जाता है अत: उसको अलग पेश करने की आवश्यकता नहीं है। अब संशोधनों अथवा मूल अनुच्छेद पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** अध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को लेता हूं। उनके संशोधन में यह कहा गया है कि एक ही समय कोई व्यक्ति दोनों विधान-मंडलों का सदस्य नहीं होगा। यह बड़ा ही अटल सिद्धांत है। यदि किसी सदस्य का निर्वाचन दोनों विधान-मंडलों में हो जाता है तो उसे किसी एक में अपना स्थान त्याग देना चाहिये। अब भी यही बात है। इस सभा के कुछ सदस्य प्रान्तीय विधान-मंडलों के भी सदस्य हैं। यह एक अव्यवस्था है जिसको मिटाने का इस संशोधन में प्रयास किया गया है। इस कारण मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

इसके बाद श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 1559 है। मैं उसका भी समर्थन करता हूं। मसौदा समिति ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है वे ''निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है'' शब्द हैं। ''निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है'' ''निर्योग्य हो जाता है'' से सर्वथा भिन्न है। ''निर्योग्य हो जाता है'' एक निश्चित बात है कि सदस्य निर्योग्य हो गया। ''निर्योग्यताओं का पात्र होगा'' एक अनिश्चित बात है। मैं समझता हूं कि इस संशोधन का समर्थन होना चाहिये। इसके पश्चात् मेरे माननीय मित्र श्री कामत का संशोधन संख्या 1590 आता है जिसका मैं विरोध करता हूं। वे कहते हैं कि यदि किसी सदस्य को अपने कर्त्तव्य के उचित रूप में पालन करने में असफल होने पर निर्वाचन क्षेत्र द्वारा वापस बुला लिया जाता है तो उसके स्थान को रिक्त घोषित कर दिया जायेगा। श्रीमान्, राजनीति में क्या होता है? मान लीजिये निर्वाचन होता है और उसमें एक स्थान के लिये तीन उम्मीदवार खड़े होते हैं और मान लीजिये कि 1000 मतदाता हैं। दो उम्मीदवार जो सफल नहीं होते हैं उनमें से हर एक 300 मत प्राप्त करता है और जो व्यक्ति सफल हो जाता है उसे 400 मत मिलते हैं तो यद्यपि उसके विरुद्ध 600 मत हैं पर फिर भी वह सफल हो जाता है। अब जबकि यह सभा का सदस्य हो जाता है तो वे 600 मतदाता उसके विरुद्ध संगठन कर लेते हैं और कहते हैं: ''आप उचित रूप से अपने कर्त्तव्य पालन में असफल रहे और हम आपको वापस बुलाते हैं''। मैं समझता हूं कि, श्रीमान्, यह बड़ा ही संकटास्पद प्रावधान है और मेरे विचार से इसे स्वीकार नहीं करना चाहिये। दूसरा प्रावधान यह है कि यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाये तो उसका स्थान रिक्त घोषित करना ही पड़ेगा। सदस्य की मृत्यु के पश्चात् वह रिक्त होने के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में रह ही नहीं सकता है और मेरे माननीय मित्र मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह समझूं कि उनका संशोधन मूर्खतापूर्ण है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं अपने माननीय मित्र को यह स्मरण करा सकता हूं कि इस परिषद् में हमने इस नियम को पारित किया था तो वे स्वयं इसमें सम्मिलित थे?

***अध्यक्ष:** उनको वह सब याद है। हमें याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** इन शब्दों के कहने के पश्चात् मैं अपना स्थान ग्रहण करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री कामत का संशोधन न तो प्रयोग में आने योग्य है और न व्यवहार में लाने योग्य है। वे कहते हैं ''अथवा यदि उसको उचित रूप से अपने कर्त्तव्य पालन में असफल होने पर उसके निर्वाचक क्षेत्र में निर्वाचकों द्वारा वापस बुला लिया जाता है''। पर इसे निश्चित कौन करेगा? ''निर्वाचक'' तब तो इसका यह अर्थ होगा कि जिस प्रकार मतपेटिका के जरिये से किसी अधिकारी द्वारा उसका निर्वाचन किया जाता है उसी रूप में किसी अधिकारी द्वारा वास्तव में मतदान करना पड़ेगा। श्रीमान्, मैं यह जानता हूं कि कुछ निर्वाचन क्षेत्रों ने सदस्य के कार्यों का विरोध करते हुए लोक सभा में सदस्य के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किये हैं। 5,000 अथवा 10,000 अथवा 500 व्यक्ति यह घोषणा कर सकते हैं कि सदस्य में निर्वाचकों का विश्वास नहीं रहा और उसको वापस बुला लिया जाये। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या निर्वाचकों का यही विचार है? उन 4000 या 5000 व्यक्तियों में से तीन-चौथाई सदस्य मतदाता ही न हों। वे जनता के कुछ और लोगों में से हो सकते हैं। अत: जब तक यह न कहा जाये कि यह उसी विधि से होगा जिस विधि से अर्थात् मतपेटिका में नियमित विधि से मतदान द्वारा उसका निर्वाचन हुआ है तब तक यह सम्भव नहीं हो सकता है। यदि ऐसी कोई विधि स्वीकार की जाती है तब तो मैं इस बात को समझ सकता हूं, परन्तु यह सम्भव नहीं है और न कहीं क्रियान्वित ही है। इसलिये, श्रीमान् मैं इस खण्ड के प्रति स्पष्ट विरोध प्रकट करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार न किया जाये। जिस सदस्य की मृत्यु हो जाती है उसके सम्बन्ध में आज भी वर्तमान अधिनियम के अनुसार नया चुनाव होता है। कार्यालय इस बात से परिचित है। अत: मैं समझता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार न किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के अथवा श्री कामत के किसी भी संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:
>
> '1 (a) No person shall be a member both of Parliament and of the Legislature of a State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule and if a person is chosen a member both of Parliament and of the Legislature of such a State, then at the expiration

of such period as may be specified in rules made by the President that person's seat in Parliament shall become vacant, unless he has previously resigned his seat in the Legislature of the State.' ''

[1. (क) प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा भाग 3 में उल्लिखित समय तक कोई भी व्यक्ति दोनों संसद का तथा किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं होगा और यदि कोई व्यक्ति दोनों संसद का तथा ऐसे किसी राज्य के विधान मंडल का सदस्य चुना जाता है तो प्रधान द्वारा निर्मित नियमों में उल्लिखित अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् यदि उस व्यक्ति ने उस राज्य के विधान-मंडल में अपने स्थान को पहले से ही न त्याग दिया हो तो उस व्यक्ति का संसद में स्थान रिक्त हो जायेगा।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'becomes subject to any disqualifications mentioned in' (में वर्णित निर्योग्यताओं का पात्र हो जाता है) शब्दों के स्थान में 'is disqualified under' (के अनुसार निर्योग्य हो जाता है) शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री कामत के संशोधन के खण्डों पर मैं अलग-अलग मतदान लूंगा, क्योंकि एक संशोधन को मैंने पेश नहीं करने दिया था।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (2) में निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(c) or if he is recalled by the electors in his constituency for failure to properly discharge his duties.' ''

[(ग) अथवा यदि उसको अपने कर्त्तव्य का उचित रूप से पालन करने में असफल होने के कारण उसके निर्वाचन-क्षेत्र के निर्वाचकों द्वारा वापस बुला दिया जाता है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (2) में निम्न नवीन उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

(d) or if he dies' ''

[(अ) अथवा यदि उसकी मृत्यु हो जाती है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम संशोधन संख्या 1568 के दूसरे पैरे पर आते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 82 के खण्ड (3) के पश्चात् निम्न नवीन खण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'No one who is unable to read or write or speak the National Language of India after 10 years from the day this Constitution comes into operation shall be entitled to be a candidate for, or offer himself to be elected to, a seat in either House of Parliament.' ''

(कोई भी व्यक्ति जो इस विधान के प्रवर्त्तन में आने के दिवस से 10 वर्ष बाद भारत की राष्ट्रीय भाषा के पढ़ने, लिखने या बोलने में असमर्थ है तो वह संसद के किसी आगार में स्थान प्राप्त करने का अथवा निर्वाचन के लिये स्वयं को प्रस्तुत करने का अधिकारी न होगा।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 82 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 82 विधान में प्रविष्ट किया गया।

नवीन अनुच्छेद 82-क

***अध्यक्ष:** प्रो. शाह और झुन झुनवाला के नाम से एक संशोधन संख्या 1570 है। वह उम्मीदवारों की योग्यता के सम्बन्ध में है और मैं समझता हूं कि हम इस प्रश्न पर विचार कर ही चुके हैं। जो निर्णय किया जा चुका है उसमें यह आ ही जाता है।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं उसे पेश नहीं करता हूं।

अनुच्छेद 83

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 83 विधान का अंग बने।''

इस अनुच्छेद पर हमारे पास अनेकों संशोधन हैं।

(संशोधन संख्या 1571, 1572, 1573 और 1574 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1575—यह उम्मीदवारों की योग्यता के सम्बन्ध में है और पहले स्वीकार किये गये अनुच्छेद में आ जाता है। इसको पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 83 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में 'is of unsound mind' (वह विक्षिप्त है) शब्दों के स्थान में 'is declared by a competent court to be of unsound mind' (उसको सक्षम न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित कर दिया हो) शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

श्रीमान्, मूल विषय में योग्यताओं की कसौटी यह निर्धारित की गई है कि यदि वह व्यक्ति विक्षिप्त हो। पर किसी कसौटी की ओर संकेत नहीं किया गया है। यह कौन मालूम करेगा कि यह व्यक्ति विक्षिप्त है या नहीं? इन परिस्थितियों में बहुधा कोई बाध्य कसौटी निर्धारित की जाती है वह कसौटी न्यायालय की जांच है। इस बात को इतना अस्पष्ट छोड़ना जितना कि छोड़ा गया है बहुत खतरनाक होगा। मैं यह निवेदन करता हूं कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ विक्षिप्तता है। वह सीमा पर निर्भर है अथवा वह प्रसंग पर निर्भर है। यदि कोई व्यक्ति उच्च कोटि का पूर्ण व्यक्ति है तो वह कह सकता है.....।

***अध्यक्षः** यदि माननीय सदस्य अनुच्छेद 83 के खण्ड (ख) को देखेंगे तो उनको यह विदित होगा ''यदि वह विक्षिप्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है।''

श्री नजीरुद्दीन अहमदः मुझे इस पर आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है।

(संशोधन संख्या 1577, 1578, 1579 और 1580 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 83 के खण्ड (1) उपखण्ड (घ) के स्थान में निम्न खण्ड रखा जाये:

'(d) if he has ceased to be a citizen of India, or has voluntarily acquired the citizenship of a foreign State, or is under any acknowledgment of allegiance of adherence to a foreign State and.' ''

[(घ) यदि वह भारत का जानपद न रहा हो, अथवा उसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की जानपदता अवाप्त कर ली हो अथवा वह किसी विदेशी राज्य के प्रति अनुषक्ति अथवा अभिलग्नता स्वीकार किये हों।]

(संशोधन संख्या 1581 पर संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 1582, 1583 और 1584 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1585, मैं समझता हूं कि यह संशोधन, संशोधन संख्या 1585 में आ जाता है। क्या आप समझते हैं कि वह 1581 से भिन्न है?

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं कुछ शब्दों को निकालने के लिये निवेदन कर रहा हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 83 के खण्ड (1) के उपखण्ड (घ) में से 'or is a subject or a citizen or entitled to the rights or privileges of a subject or a citizen of a foreign power' (अथवा किसी विदेशी राज्य की प्रजा या जानपद है अथवा किसी विदेशी राज्य की प्रजा या जानपाद के अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों का अधिकारी है) शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, मैं उस सच्चे सिद्धांत का अनुसरण कर रहा हूं जिसे मैंने कुछ मिनट पूर्व निर्धारित किया था हमें अनावश्यक शब्द समूहों से यथासम्भव बचना चाहिये और जहां तक हो सके संक्षेप में विषय को प्रस्तुत करना चाहिये और अनुच्छेद के अर्थ अथवा महत्त्व अथवा अभिप्राय का बलिदान किये बिना उसको जितना संक्षिप्त किया जा सकता करना चाहिये। संक्षेप केवल वाक् वैदग्ध्य का ही प्राण नहीं है, वरन् वह सत्य का भी प्राण है। यहां अनुच्छेद 83 के उपखण्ड (घ) में मैं यह अनुभव करता हूं कि पहला भाग ही उपखण्ड (घ) के दूसरे भाग द्वारा उत्पन्न हुई परिस्थिति का समावेश करने के लिये पर्याप्त है। कोई व्यक्ति जो किसी विदेशी राज्य के प्रति अनुषक्ति अथवा अभिलग्नता स्वीकार किये हुये है यदि उसको निर्योग्य कर दिया जाता है तो यह बात तर्कयुक्त है और इसका यही सत्य निष्कर्ष है कि यदि कोई व्यक्ति विदेशी राज्य का प्रजा अथवा जानपद है जो विदेशी राज्य के प्रति अनुषक्ति अथवा अभिलग्नता स्वीकार करने से अधिक गम्भीर विषय है तो उसको निर्योग्य कर ही देना चाहिये। प्रजा या जानपद अथवा कोई वह व्यक्ति जो प्रजा या जानपाद के अधिकारों या विशेषाधिकारों का अधिकारी है वास्तव में उस श्रेणी में आते हैं जो इस अनुच्छेद के इस उपखंड के प्रथम भाग की तुलना में बहुत अधिक गम्भीर अर्थ रखती है। यदि हम किसी व्यक्ति को इस आधार पर निर्योग्य कर देते हैं कि वह विदेशी राज्य से अनुषक्ति अथवा अभिलग्नता रखता है तो हमें यह स्पष्ट कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रजा के किसी व्यक्ति या जानपद को निर्योग्य किया जाता है। यदि एक श्रेणी को निर्योग्य कर दिया जाता है तो मेरे तुच्छ विचारानुसार तो उसके पश्चात् यह बात कि जानपद अथवा प्रजा को भी निर्योग्य कर दिया गया उसी रूप से स्वत: आ जानी चाहिये, जैसे रात्रि के पश्चात् दिन। अत: संक्षिप्त बनाने तथा अनावश्यक शब्द समूहों को हटाने के हेतु मैं इस संशोधन को पेश करता हूं कि यह स्वीकार किया जाये।

(संशोधन संख्या 1586 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): संशोधन संख्या 1587 केवल मसौदा सम्बन्धी है।

***अध्यक्षः** इस विषय पर विचार करने के लिये मैं डॉ. अम्बेडकर से निवेदन करूंगा क्योंकि इस बात से कुछ कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। अन्त में 'और' शब्द के होने से यह अर्थ होगा कि समस्त निर्योग्यतायें एक साथ होनी चाहियें।

, ***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्तः** ऐसा ही मुझे लगता है, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** उनमें से कोई एक निर्योग्यता ही पर्याप्त है। यदि आप 'और' शब्द रखते हैं तो उसका यह अर्थ होगा कि सब की सब निर्योग्यतायें एक साथ होनी चाहिये। इस रूप में तो संशोधन केवल शाब्दिक मात्र नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'और' शब्द के स्थान में 'अथवा' शब्द होना चाहिये।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्तः** मैंने समझा कि वह केवल शाब्दिक चूक है। यदि उसके स्थान में 'अथवा' शब्द रख दिया जाये तो वह सारवत् हो जाता है।

***अध्यक्षः** यदि आप 'अथवा' शब्द बढ़ा दें तो वह स्पष्ट हो जायेगा।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्तः** श्रीमान्, क्या मैं इस संशोधन को नियमित रूप में पेश करूं?

***अध्यक्षः** अवश्य।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्तः** श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 83 के खण्ड (1) के उपखंड (घ) के अन्त में आये हुये 'और' (and) शब्द को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, आशय बिल्कुल स्पष्ट है और आपने उसे इतनी अच्छी तरह से समझा दिया है कि यदि हम 'और' शब्द को रखते हैं तो उसका अर्थ यह हो सकता है कि (क), (ख), (ग), (घ) और (ङ) उपखंडों में दी हुई सब निर्योग्यतायें आवश्यक होंगी। इसका यह भी ठीक अर्थ हो सकता है कि यदि किसी व्यक्ति में इनमें से एक निर्योग्यता है तो उसे निर्योग्य बनाने के लिये यह पर्याप्त नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि 'और' शब्द को निकाल दिया जाये और उसके स्थान में 'अथवा' शब्द रखा जाये और यदि हम 'अथवा' शब्द न रखें तो भी वह ठीक होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि एक और शाब्दिक परिवर्तन की आवश्यकता है। इस खंड में यह कहा गया है कि 'subjector citizen of a forceign power' मेरे विचार से यहां 'foreign State' होना चाहिये। मैं समझता हूं कि इसमें कुछ असंगति है।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर ने संशोधन संख्या 1581 पेश किया है। उससे शब्दों का परिवर्तन हो जाता है।

(संशोधन संख्या 1588 पेश नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 83 के खंड (1) के उपखंड (ङ) को निकाल दिया जाये।''

अनुच्छेद 83 का खंड (1) किसी आगार का सदस्य होने के लिये निर्योग्यताओं के सम्बन्ध में है। उपखंड (ख) सामान्य तथा सुप्रसिद्ध योग्यताओं के सम्बन्ध में है। उपखंड (ङ), जिसके निकाल दिये जाने के लिये मैं प्रयत्नशील हूं, इस प्रभाव का है:

> ''यदि वह संसद निर्मित किसी विधि के द्वारा अथवा अधीन इस प्रकार निर्योग्य कर दिया गया है।''

मैं यह निवेदन करता हूं कि यह उपखंड संसद को बहुत से व्यक्तियों को निर्योग्य करने का अधिकार प्रदान करता है। विधान में इस बात की स्पष्ट व्याख्या करने के अतिरिक्त इस उपखंड द्वारा नये प्रकार की निर्योग्यताओं का विनिधान करना अथवा खोजना भावी संसद पर छोड़ा गया है। मैं निवेदन करता हूं कि कुछ परिस्थितियों में यह बहुत खतरनाक हो सकता है और कोई राजनैतिक दल संसदीय कानून द्वारा आरोपित निर्योग्यताओं के आधार पर अपने विरोधियों पर रोक लगा सकता है। कुछ परिस्थितियों में ऐसी बात को होने देना खतरनाक होगा। स्वयं विधान में निर्योग्यताओं की बहुत स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये और उनकी खोज करने अथवा उनको निश्चित करने के कार्य को विधान-मंडल पर नहीं छोड़ना चाहिये। इसी कारण इस उपखंड को निकालने का मैं प्रयास करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1590।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, इस संशोधनकर्त्ता ने दोषारोपण, नैतिक पतन इत्यादि का उल्लेख (ङ), (च) और (छ) में किया है, वे केवल नियमों के अंग होंगे। निर्वाचन सम्बन्धी व्यय को वापस करना विधान में नहीं है। इन सब बातों पर वादानुवाद हो गया है और ये सब बातें आ गई हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 83 के खंड (1) के उपखंड (ङ) को निकाल दिया जाये और उसके स्थान में निम्न उपखंड (ङ), (च) और (छ) और खंड (2) और (3) रखे जायें और वर्तमान खंड (2) की क्रम संख्या खंड (4) कर दी जाये:
>
> '(e) if after the commencement of this Constitution, he has been convicted or has in proceedings for questioning the validity or regularity of an election, been found to have been guilty, of any

offence or corrupt or illegal practice relating to elections which has been declared by an Act of Parliament to be an offence or practice entailing disqualification for membership of this Legislature, unless such period has elapsed as may be specified in that behalf by the provisions of that Act.'

'(f) if after the commencement of this Constitution he has been convicted of any criminal offence involving moral turpitude by a court and sentenced to transportation or to imprisonment for more than two years unless a period of five years has elapsed since his release.'

'(g) if after the commencement of this Constitution having been nominated as a candidate for the Union and State Legislatures or having acted as an election agent of any person so nominated he has failed to lodge a return of election expenses within the time and in the manner required by any Act of Parliament or of any State Legislature, unless five years have elapsed from the date by which the return ought to have been lodged or the President has removed the disqualification:

Provided that a disqualification under paragraph (g) of the sub-section shall not take effect until the expiration of one month from the date by which the return ought to have been lodged.' ''

''(2) A person shall not be capable of being chosen a member of Parliament, while he is serving a sentence of transportation or of imprisonment for a criminal offence involving moral turpitude.''

''(3) When a person who, by virtue of a conviction or a conviction and a sentence becomes disqualified by virtue of paragraph (e) or (f) if sub-section (1) of this article is at the date of the disqualification a member of Parliament, his seat shall, notwithstanding anything in this article, not become vacant by reason of the disqualification until three months have elapsed from the date thereof or, if within those three

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

months an appeal or petition for revision is brought in respect of the conviction or the sentence, until that appeal or petition is disposed of, but during any period during which his membership is preserved by this sub-section, he shall not sit or vote.''

(ङ) यदि इस विधान के प्रारम्भ के पश्चात् उस पर निर्वाचन की नियमितता अथवा मान्यता पर प्रश्न करने वाली कार्यवाही चल रही हो या उसके प्रति वह दोषी सिद्ध हो चुका हो, निर्वाचन सम्बन्धी किसी ऐसे अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण के प्रति दोषी पाया गया हो जिनको संसद के अधिनियम द्वारा इस विधान-मंडल की सदस्यता के लिये निर्योग्य करने वाला अपराध या आचरण घोषित कर दिया गया है और यदि वह कालावधि समाप्त न हो गई हो जो उस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा तदर्थ उल्लिखित की जा सकती है।

(च) यदि इस विधान के प्रारम्भ के पश्चात् वह किसी नैतिक पतन सम्बन्धी दंडनीय अपराध का किसी न्यायालय द्वारा दोषी सिद्ध कर दिया गया हो और उसको दो वर्ष से अधिक के लिये निर्वासन या कारावास का दंड दिया गया हो और यदि उसके मुक्त होने के समय से पांच वर्ष की अवधि व्यतीत न हो गई हो।

(छ) यदि इस विधान के प्रारम्भ के पश्चात् संघ तथा राज्य के विधान-मंडल के लिये उम्मीदवार के रूप में मनोनीत हो जाने पर अथवा इस प्रकार मनोनीत हुये किसी व्यक्ति के निर्वाचन-अभिकर्ता के रूप में कार्य करने पर वह संसद अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के अधिनियम द्वारा अपेक्षित रीति के अनुसार तथा समय के अन्तर्गत निर्वाचन व्ययों का विवरण दाखिल करने से, असमर्थ रहा हो और यदि विवरण पहुंचने की तिथि से पांच वर्ष न व्यतीत हो गये हों, अथवा प्रधान ने उस निर्योग्यता को हटा न दिया हो:

परन्तु इस उपधारा की कण्डिका (छ) के अन्तर्गत निर्योग्यता तब तक प्रभावी न होगी जब तक कि जिस तिथि को विवरण दाखिल करना चाहिये उस तिथि से एक माह का अवसान न हो गया हो।

(2) कोई व्यक्ति जबकि वह नैतिक पतन सम्बन्धी दंडनीय अपराध के लिये निर्वासन अथवा कारावास का दंड भुगत रहा हो तो संसद का सदस्य चुने जाने के योग्य नहीं होगा।

(3) जब कोई व्यक्ति दोषसिद्धि या दोषसिद्धि और दण्डादेश के कारण इस अनुच्छेद की उपधारा (1) को कंडिका (ङ) और (च) के आधार पर निर्योग्य हो जाता है और इस निर्योग्यता की तिथि को वह संसद का सदस्य

है तो इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी जब तक कि उस तिथि से तीन महीने समाप्त न हो जायें तब तक निर्योग्यता के आधार पर उसका स्थान रिक्त नहीं होगा अथवा यदि इन तीन महीनों में उस दोषसिद्धि या दण्डादेश के सम्बन्ध में अपील की जाती है अथवा पुनर्विचार के लिये आवेदन पत्र भेजा जाता है तो जब तक केवल उस कालावधि में जिसमें इस उपधारा द्वारा उसकी सदस्यता परिरक्षित है वह न स्थान ग्रहण करेगा और न मत देगा।]

जैसा कि मैंने कल कहा था संसद को यह शक्ति नहीं देनी चाहिये कि वह उन शर्तों का निर्धारण करे जो लोगों को उम्मीदवार बनने से निर्योग्य कर दे। यहां तक कि भारतीय सरकार के अधिनियम द्वारा भी यह शक्ति फेडरल संसद को नहीं दी गई थी और उस अधिनियम में कुछ निश्चित शर्तें निर्धारित कर दी गई थीं जो उम्मीदवार को निर्योग्य बनाती थी। मैं समझता हूं कि किसी ऐसे शक्ति प्राप्त दल द्वारा इस प्रावधान के दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना है जो अपने विरोधियों को निर्योग्य करना चाहे। इस कारण मैंने इस संशोधन को रखा है। जैसा कि कल यहां एक मित्र ने कहा था कि नई संसद यह कह सकती है ''कोई भी व्यक्ति यदि वह आयकर नहीं देता है या बहुत अधिक राजस्व नहीं देता है तो चुनाव के लिये खड़ा नहीं हो सकता है''। यह भी कोई निरी असम्भव बात नहीं है कि किसी समय प्रतिक्रियावादी शक्ति प्राप्त कर लें और वे अपने किसी भी विरोधी का चुना जाना न चाहें। अत मैं अनुभव करता हूं कि उम्मीदवारों की योग्यताओं और निर्योग्यताओं का निर्धारण करना संसद को न सौंपा जाये वरन् विधान में इन योग्यताओं तथा निर्योग्यताओं की व्यवस्था की जाये। विधान में निश्चित रूप से उम्मीदवारों की निर्योग्यताओं को निर्धारित करना चाहिये। मैं आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर इस संशोधन को मसौदे में शामिल कर लेंगे।

(संशोधन संख्या 1591 से 1608 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** इस विषय में एक ऐसा प्रश्न है कि जिस पर मैं चाहूंगा कि मसौदा समिति विचार करे। यदि हम इस अनुच्छेद के खंड (2) का उल्लेख करें तो उसमें सभापति या उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का कोई जिक्र नहीं है। वे भी लाभ पद ग्रहण करते हैं। वे भी वेतन भोगी अफसर हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** सरकार के अधीन नहीं। अत: वे इसके अन्तर्गत नहीं आते हैं।

***अध्यक्ष:** यह ठीक है:

सब संशोधन पेश हो चुके हैं। यदि कोई सदस्य इन पर बोलना चाहता है वह बोल सकता है।

***डा. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, मैं उन दोनों संशोधनों का विरोध करता हूं जिसमें से एक मेरे मित्र श्री कामत द्वारा पेश किया गया है और दूसरा प्रो. सक्सेना द्वारा

[डा. पी.एस. देशमुख]

पेश किया गया है। पहला संशोधन अनुच्छेद 83 के खंड (1) (घ) के सम्बन्ध में है और दूसरा (ङ) के सम्बन्ध में है। श्री कामत ने भारत के किसी व्यक्ति, नागरिक अथवा निवासी के विदेशी शक्तियों तथा विदेशी राज्यों से सम्बन्ध की विभिन्न श्रेणियों के परिगणन पर आपत्ति की है। उनका यह सोचना ठीक ही है कि समस्त में अंश व्याप्त है। यद्यपि यह बात ठीक है परन्तु मैं समझता हूं कि जहां तक विदेशी शक्तियों तथा विदेशी राज्यों से सम्बन्ध की बात है उनकी समस्त श्रेणियों की व्याख्या करना तथा इस सम्बन्ध की व्याख्या को यथा शक्य व्यापक बनाना अधिक रक्षात्मक होगा। मैं उनसे इस बात में सहमत हूं कि संक्षिप्त करने पर हमारा अधिकतम ध्यान होना चाहिये और जिस प्रकार कि संस्कृत के कवियों ने एक ही निरर्थक शब्द का निकालना पुत्रजन्म के समान समझा उसी प्रकार इस उच्च आदर्श को हमें अपने समक्ष रखना चाहिये। परन्तु जहां तक इस विशिष्ट उपखंड का सम्बन्ध है मैं समझता हूं कि यह जैसा है वैसा ही रहे। दूसरा संशोधन जिसे प्रो. सक्सेना ने पेश किया है और एक अन्य माननीय सदस्य द्वारा जिसका समर्थन किया गया है वह खंड (1) (ङ) के सम्बन्ध में है। माननीय सदस्यों को इस बात की शंका है कि भावी संसद कुछ तुच्छ बनकर अथवा शक्ति प्राप्त दल के अनुकूलन हेतु उन निर्योग्यताओं का पुर:स्थापन कर दे जो अयुक्तियुक्त हों। मुझे विश्वास है कि कोई भी संसद उस भावना से कार्य नहीं करेगी जिसका विधान द्वारा समर्थन न हो और फिर ये निर्योग्यतायें तो स्वयं ही ऐसी हैं कि इनका रूप प्रमुख है और मुझे तो कोई ऐसी शंका नहीं होती है कि इनके दुरुपयोग किये जाने की कोई सम्भावना हो। यह सच है कि यदि ऐसा कोई प्रावधान नहीं है तो संसद के हाथ बंध जायेंगे और यदि यह भी आवश्यक हो कि भारतीय गणतंत्र में हस्तक्षेप करने से व्यक्तियों के किसी समूह को रोका जाये तो भी वे ऐसा करने में अशक्त होंगे। अत: यह बहुत आवश्यक है कि इस प्रकार का प्रावधान विधान में होना चाहिये और मुझे इस बात का भय नहीं है किसी समय भी इसका दुरुपयोग हो सकेगा। आखिरकार शक्ति प्राप्त दल को, यदि उसे लोक का समर्थन वास्तव में प्राप्त है, तो पूर्ण स्वातंत्र्य है कि वह किसी भी रीति से कार्य करे और किसी ऐसे अधिनियम को पारित करे जो उन परिस्थितियों में आवश्यक हो। यदि किसी समय संसद तुच्छ होकर कोई कार्य करती है तो लोक को उसे उत्तर देना होगा। अत: मैं अनुभव करता हूं कि सभा द्वारा इन दोनों संशोधनों को अस्वीकार किया जाये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं केवल एक ही प्रावधान की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करना चहाता हूं और वह है अनुच्छेद 83(1) का उपखंड (ख) अर्थात् ''यदि वह विक्षिप्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है''। और मैं आशा करता हूं कि मेरी बुद्धि की अविक्षिप्तावस्था पर प्रश्न नहीं किया जायेगा। यदि मैं यह कहूं कि इस खंड की शब्दावली जितनी सुन्दर हो सकती थी उतनी नहीं है। श्रीमान्, मैं अनुमान करता हूं विधान के मसौदे के लेखकों की यह इच्छा है कि किसी विक्षिप्त व्यक्ति को इस सभा का सदस्य न होने दिया जाये और मुझे विश्वास है कि वर्तमान सभा का निर्माण इस प्रकार चुनकर किया है कि इसमें कोई भी विक्षिप्त व्यक्ति नहीं आ पाया है। श्रीमान्, यदि आप इस खंड को इसी रूप में रहने देंगे तो इसका यह अर्थ होगा कि विक्षिप्त व्यक्तियों की एक बड़ी संख्या सभा

में आने वाली है क्योंकि यह योग्यता है ही कि किसी अधिकृत न्यायालय की ऐसी घोषणा होनी चाहिये कि व्यक्ति अविक्षिप्त है। गत अधिवेशन के अन्तिम दिवस में भी यह प्रश्न उठाया गया था और उसके पश्चात् मैंने भारतीय सरकार द्वारा अर्थात् विधान परिषद् के विधायी वर्ग में प्रश्न करते हुये यह जानने का प्रयत्न किया कि भारत के विभिन्न पागलखानों में जितने भी पागल हैं उनमें से कितने सक्षम न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित किये गये हैं। यदि आप इस विषय में और आगे अनुसंधान करें तो आपको यह विदित होगा कि भारत के विभिन्न पागलखानों में जितने व्यक्तियों का इलाज हो रहा है उनमें से 10 प्रतिशत भी किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित नहीं किये गये हैं। मेरा प्रश्न यह है कि क्या आप उन लोगों को मतदाताओं की नामावली में सम्मिलित करेंगे तथा चुनाव में खड़े होने देंगे जो वास्तव में पागलखानों में हैं। हम जानते हैं कि प्रत्येक नगर में कुछ ऐसे व्यक्ति है जो पागलों के समान हैं तथा वे वास्तव में पागल नहीं हैं और जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति यहां तक कि बच्चा भी जो उन पर पत्थर फेंकता है जानता है कि वे पागल हैं। यह सम्भव है और सामान्यतः सच भी है कि किसी व्यक्ति ने उन्हें विक्षिप्त घोषित करने अथवा सक्षम न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित करने का कष्ट नहीं किया है। क्या आप उन सबको नामावली में सम्मिलित होने देंगे? प्रत्येक ग्रामवासी, नगर का प्रत्येक नागरिक यह जानता है कि अमुक-अमुक व्यक्ति विक्षिप्त है तथा पागल है। क्या कोई ऐसी एजेंसी है जिसके द्वारा वह मतदाताओं के रूप में नामावली में दर्ज होने से अथवा निर्वाचन के लिये खड़े होने से रोक दिया जाये?

***अध्यक्षः** परन्तु क्या किसी ऐसे व्यक्ति के निर्वाचित हो जाने का तब तक कोई अवसर है जब तक कि समूचा का समूचा निर्वाचकगण ही विक्षिप्त न हो?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** पर, श्रीमान्, यदि मुझे उसका मत प्राप्त हो सके तो मैं उसको नामावली में दर्ज कर सकता हूं। यदि कोई सक्षम न्यायालय उसे विक्षिप्त घोषित न करे तो वह अपना नाम नामावली में दर्ज करा सकता है। ऐसी घोषणा तो केवल तभी प्राप्त की जाती है जबकि व्यक्ति धनी हो और उसके पास सम्पत्ति हो तथा उसके सम्बन्धियों को उसकी सम्पत्ति का प्रबन्ध करना पड़े। अन्य अवस्थाओं में ऐसी घोषणा प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करते हुये व्यक्ति हमें कहां मिलते हैं? ऐसा करने की आवश्यकता ही नहीं होती है। ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति इतना उग्र हो कि न्यायालय द्वारा उसको काबू में करने की आवश्यकता हो, पर इस दशा में भी उसको केवल कुछ दिनों के लिये निरीक्षण हेतु भेजा जाता है और उसके बाद ऐसी कोई घोषणा प्राप्त नहीं की जाती है। यदि आप विक्षिप्त व्यक्तियों के आने के लिये गुंजाइश रखना चाहते हैं और भावी आगार के सदस्यों के निर्वाचन में उनका हाथ रहने देना चाहते हैं तो आप इस खंड को जैसा है वैसा ही रहने दे सकते हैं। यदि आप ऐसे लोगों को पृथक् रखना चाहते हैं तो ''अधिकृत न्यायालय द्वारा घोषणा विद्यमान है'' शब्दों को निकाल दिया जाये। मैं यह इसलिये कहता हूं कि मैं अपने निजी अनुभव से यह जानता हूं कि विक्षिप्त मनुष्यों की एक बहुत बड़ी संख्या को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विक्षिप्त घोषित नहीं किया गया है।

***अध्यक्षः** क्या कोई और सदस्य बोलना चाहता है? क्या डा. अम्बेडकर को कुछ कहना है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं सिवाय माननीय श्री जी.एस. गुप्ता के संशोधन संख्या 1587 के और किसी संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 83 के खंड (1) के उपखंड (घ) में निम्न खंड रखा जाये:

'(d) if he ceased to be a citizen of India, or has voluntarily acquired the citizenship of a foreign State, or is under any acknowledgement of allegiance or adherence to a foreign State and.' ''

(यदि वह भारत का जानपद न हो रहा हो, अथवा उसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की जानपदता अवाप्त कर ली हो अथवा वह किसी विदेशी राज्य के प्रति अनुषक्ति अथवा अभिलग्नता स्वीकार किये हो।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् श्री कामत का संशोधन संख्या 1585 है। परन्तु डा. अम्बेडकर के संशोधन के पश्चात् वह संशोधन आता ही नहीं है।

इसके पश्चात् श्री गुप्ता का संशोधन संख्या 1587 है। वह यह है: कि 'और' शब्द को निकाल दिया जाये। अथवा क्या इस शब्द के स्थान में ''अथवा'' शब्द रखा जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** बात एक ही है; चाहे ''और'' को निकाल दिया जाये या ''और'' के स्थान में ''अथवा'' रख दिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव है:

''कि अनुच्छेद 83 के खंड (1) के उपखंड (घ) के अन्त में आये हुये 'and' 'और' शब्द को निकाल दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् प्रो. सक्सेना का संशोधन संख्या 1590 है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, सभा की अनुमति से मैं उसे वापस लेने की प्रार्थना करता हूं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् श्री नजीरुद्दीन अहमद के नाम से संशोधन संख्या 1589 है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 83 के खंड (1) के उपखंड (ङ) को निकाल दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इतने ही संशोधन हैं। अब मैं अनुच्छेद पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 83 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

(संशोधित रूप में अनुच्छेद 83 विधान में प्रविष्ट किया गया।)

अनुच्छेद 84

(संशोधित संख्या 1609 से 1618 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 84 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 84 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 85

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 84 विधान का अंग बने।''

(संशोधित संख्या 1620 से 1626 तक पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 85 के खंड (3) में 'as are enjoyed by the members of the House of Commons of the Parliament of the United Kingdom at the commencement of this Constitution' (तब तक वे ही होंगी जो इस विधान के प्रारम्भ पर यूनाइटेड किंगडम के पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को प्राप्त है) शब्दों के स्थान में 'as were enjoyed by the members of the Dominion Legislature of India immediately before the commencement of this Constitution' (तब तक वे ही होंगी जो इस विधान

[श्री एच.वी. कामत]

के प्रारम्भ होने से सद्यपूर्व भारतीय अधिराज्य विधान-मंडल के सदस्यों को प्राप्त है) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, विभिन्न विधानों का मुझे उतना विस्तृत अथवा उतना परिमार्जित ज्ञान नहीं है जितना कि डा. अम्बेडकर को है, परन्तु इन विधानों के अपने अल्पज्ञान पर विश्वास करते हुए मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यह अपने रूप की पहली ही मिसाल है जहां एक स्वतंत्र देश के विधान में दूसरे राज्य के विधान में आये हुए कुछ प्रावधानों का उल्लेख किया है। ऐसा करने के लिये मुझे कोई उचित कारण प्रतीत नहीं होता है। यह हो सकता है कि स्वतंत्र भारत की संसद के सदस्यों को जो अधिकार तथा विशेषाधिकार हम प्रदान करना चाहते हैं वे ठीक उसी प्रकार के अथवा न्यूनाधिक रूप में वे ही हों जो यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के सदस्यों को प्राप्त हैं। परन्तु, श्रीमान्, क्या अति विनम्रतापूर्वक मैं यह पूछ सकता हूं कि ''जब हम अपना निजी विधान बना रहे हैं तो क्या यह आवश्यक अथवा वांछनीय है कि हम किसी अनुच्छेद में यह स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दें कि इस विषय सम्बन्धी प्रावधान इंग्लैंड की पार्लियामेंट के प्रावधानों के अनुसार होंगे?''

इस प्रस्ताव के समर्थन में यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि यूनाइटेड किंगडम का उल्लेख करने से हमारे विधान अथवा हमारे राज्य के गौरव में कोई कमी नहीं आती है और फिर इस तर्क द्वारा इस बात की और भी पुष्टि की जा सकती है कि अब हमने यह घोषणा कर दी है कि भारत राष्ट्रसंघ का पूरा सदस्य है इसलिये अब इंग्लैंड की पार्लियामेंट का हवाला देने में कोई आपत्ति अथवा रुकावट नहीं होनी चाहिये। चाहे वह अपमानजनक न हो अथवा विधान की प्रतिष्ठा को कम न करता हो, परन्तु क्या सभा के गम्भीर विचारार्थ मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या वही विधान की प्रतिष्ठा को बढ़ाता है? हम यह कहते हैं कि अमुक-अमुक बातें वैसी ही होनी चाहिये जैसी कि यूनाइटेड किंगडम अथवा अमरीका में हैं। किसी अन्य देश से कोई बात लेकर अपने विधान में उल्लेख के रूप में उसको समावेश करने की अपेक्षा क्या यह बराबर तथा अधिक आनन्ददायक नहीं होगा कि हम अपनी ही पूर्वोक्तियों अथवा अपनी भारतीय परम्पराओं पर ही विश्वास करें? क्या यह कहना पर्याप्त नहीं है कि सदस्यों के अधिकार विशेषाधिकार तथा विमुक्तियां वे ही होंगी जो कि इस विधान के प्रारम्भ के पूर्व विधान-परिषद् अथवा अधिराज्य विधान-मंडल के सदस्यों को प्राप्त हैं? वैयक्तिक रूप में मैं समझता हूं कि यह बहुत ही अच्छा होगा। मैं यह आशा करने का साहस करता हूं कि इस सभा में मेरे माननीय मित्रों का झुकाव इसी विचार की ओर होगा कि यूनाइटेड किंडम का उदाहरण उदृधृत करने की अपेक्षा जो कुछ परम्परा हमने यहां स्थापित की है उस पर निर्भर होना ही अच्छा है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति इस तथ्य पर आपत्ति नहीं करेगा कि आज जो विशेषाधिकार और विमुक्तियां हमको यहां प्राप्त हैं वे किसी रूप में भी युनाइटेड किंगडम की लोक सभा के सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकारों तथा विमुक्तियों से निम्न प्रकार की हैं अथवा उनसे बदतर हैं।

यह बात भी सच है कि हममें से अनेकों व्यक्ति यह भी नहीं जानते हैं कि वहां की लोक सभा के सदस्यों के क्या-क्या विशेषधिकार हैं। यह हम भली प्रकार जानते हैं

कि इस समय हमारे विशेषाधिकार क्या हैं? अतः श्रीमान्, अन्य देशों में प्रचलित प्रथाओं पर विश्वास करने की अपेक्षा अपने निजी पुष्ट आधार पर खड़े होना ही अच्छा है।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव को सभा के विचारार्थ और स्वीकारार्थ प्रस्तुत करता हूं।

(संशोधन संख्या 1626 पेश नहीं किया गया।)

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''अनुच्छेद 85 के खंड (4) में 'a House of Parliament' (संसद् के किसी आगार में) शब्दों के पश्चात् 'or any Committee thereof' (अथवा उसकी किसी समिति में) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

इन शब्दों के प्रविष्ट कर देने के पश्चात् खंड (4) इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> ''The provisions of clauses (1), (2) and (3) of this article shall apply in relation to persons who by vertue of this Constitution have the right to speak in, and otherwise take part in the proceedings of a House of Parliament or any Committee thereof as they apply in relation to members of Parliament.''
>
> (जिन्हें इस संविधान के सामर्थ्य से संसद के किसी आगार में अथवा उसकी किसी समिति में बोलने का, अथवा अन्य प्रकार से उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है उनके सम्बन्ध में इस अनुच्छेद के खंड (1), (2) और (3) के प्रावधान उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे संसद के सदस्यों के सम्बन्ध में लागू हैं।)

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि खंड (4) को इस अनुच्छेद के खंड (2) के अनुरूप कर दिया जाये। खंड (2) के अनुसार संसद का सदस्य सभा में जो कुछ कहता है उससे सम्बन्धित तथा संसद की समिति में वह जो कुछ कहे उससे सम्बन्धित न्यायालय में किसी कार्यवाही से मुक्त है। उसी प्रकार यह विशेषाधिकार खंड (4) के अन्तर्गत संसद के किसी गैर-सदस्य को भी दिया गया है, परन्तु संसद की किसी समति में वह जो कुछ कहे उसके सम्बन्ध में नहीं है वरन् वह सभा में जो कुछ कहे उसके सम्बन्ध में ही है। मैं ऐसा कोई कारण नहीं समझ पाता हूं कि संसद के किसी गैर-सदस्य को यह विशेषाधिकार क्योंकर न दिया जाये। मैं समझता हूं कि इस विशेषाधिकार का विस्तार संसद के गैर-सदस्य तक भी चाहे वह समिति के सदस्य के रूप में अथवा साक्षी के रूप में वहां जो कुछ भी कहे उसके सम्बन्ध में भी पूर्ण रूप से कर देना चाहिये। मैं समझता हूं कि सामान्य रूप से हम विशेषज्ञों को उनके अनुभव तथा प्रौद्योगिक ज्ञान से लाभ उठाने तथा सहायता पाने के लिये आमंत्रित करेंगे। बहुधा संसद की उपसमितियां अपने

[श्री जसपतराय कपूर]

समक्ष साक्ष्य प्राप्त करने के लिये उच्च व्यवसायों के सदस्यों तथा प्रौद्योगिक विशेषज्ञों को आमंत्रित करेगी जिससे कि महत्त्वपूर्ण विषयों पर ठीक-ठीक निर्णय किया जा सके। ऐसी स्थिति होने पर मैं समझता हूं कि यह बहुत ही आवश्यक है कि संसद की उपसमितियों द्वारा आमंत्रित व्यक्तियों के साक्ष्य रूप से अथवा अन्य प्रकार से कुछ कहने के सम्बन्ध में भी विशेषाधिकार दिया जाये। यह एक बहुत बड़ी त्रुटि है और इस कारण मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को शीघ्र ही स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 1628 से 1630 तक पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 85 के खंड (4) के पश्चात् निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(5) In all matters of privilege of either House of Parliament or of members thereof the House concerned shall be the sole judge and any order, decree or sentence duly passed by that House shall be enforced by the officers or under the authority thereof.''

[(5) संसद के किसी आगार अथवा उसके सदस्यों के विशेषाधिकार के विषय में तत्सम्बन्धी आगार ही एकमात्र न्यायाधीश होगा और उस आगार द्वारा उचित रूप से पारित किये गये किसी आदेश, डिक्री अथवा दंडादेश का उसके अधिकारियों द्वारा अथवा उसके प्राधिकार के अधीन प्रवर्त्तन किया जायेगा।]

श्रीमान्, अन्य देशों की वैधानिक प्रथा में सुज्ञात यह एक साधारण बात है कि सदस्यों के तथा सामूहिक रूप से आगार के भी विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में एक सम्पूर्ण सत्ताधारी विधान-मंडल ही एकमात्र न्यायाधीश है। अत: एक अनिवार्य सिद्धांत के रूप में यह निष्कर्ष निकलता है कि विशेषाधिकारों का किसी प्रकार से अतिक्रम करने पर तत्सम्बन्धी आगार द्वारा ही उसको निपटाया जाये और आगार द्वारा पारित किसी आदेश तथा दंडादेश का प्रवर्त्तन उसी के अधिकारी अथवा उसके प्राधिकार के अधीन किया जाये।

मैं यह कोई नई बात नहीं कह रहा हूं कि इस विधान की सामर्थ्य से संसद के किसी आगार के सामूहिक विशेषाधिकार अथवा उसके सदस्यों के विशेषाधिकार के विषय में, चाहे वे कुछ भी हों, संसद का प्रत्येक आगार ही एकमात्र न्यायाधीश होगा, तथा इन विशेषाधिकारों के किसी भी अतिक्रम पर तत्सम्बन्धी आगार द्वारा विचार किया जाये तथा इसी प्रकार से पारित किये गये किसी दंडादेश का भी उसी के अधिकारियों अथवा उसके प्राधिकार के अन्तर्गत संपालन किया जाये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को सभा के समक्ष रखता हूं।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद तथा उस पर किये गये संशोधन पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं विरोध करना चाहता हूं। उन्होंने यह कहा कि ब्रिटिश पार्लियामेंट में हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के विशेषाधिकारों के स्थान में यह भारत के अधिराज्य विधान-मंडल के विशेषाधिकारों को प्राप्त हों। जहां तक मैं जानता हूं हमें यहां कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है और यदि वे हमारे समस्त विशेषाधिकारों का पूर्ण रूप से निराकरण चाहते हैं तब तो उनका स्वागत है कि वे अपना संशोधन स्वीकार करायें। फिर भी मुझे यह अनुभव अवश्य होता है कि अपने विधान में हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकारों का हवाला वांछनीय नहीं होगा। बहुत से सदस्य यह भी नहीं जानते कि वे अधिकार हैं क्या? अत: मैं यह निवेदन करूंगा कि विद्वान डाक्टर, जिन पर कि विधान के मसौदे का प्रभार है, ऐसा कोई परिशिष्ट प्रविष्ट कर दें जिसमें हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के विशेषाधिकार हों और वे ही हमारे विशेषाधिकार हो जायेंगे। इसमें शक नहीं कि वह एक बड़ा लम्बा परिशिष्ट होगा परन्तु बहुत से सदस्य उन विशेषाधिकारों से परिचित ही नहीं हैं। इसके साथ-साथ अपने विधान में हाउस आफ़ कामन्स के उन विशेषाधिकारों का उल्लेख करना भी हमारे लिये उचित नहीं होगा जो परिवर्तनशील हैं। हम अपने लिये वे विशेषाधिकार रख सकते हैं जो किसी विशेष समय वर्तमान हों। यह सत्य है कि संसद अपने विशेषाधिकारों के बनाने का अधिकार रखती है परन्तु जब तक वह नहीं बना पाती है तब तक प्रस्तावित परिशिष्ट में परिगणित विशेषाधिकारों का ही उपभोग किया जाये। अत: हमें हाउस आफ कामन्स के सदस्यों द्वारा भोग्य विशेषाधिकारों की व्याख्या करनी चाहिये और अपने विधान में उनको परिशिष्ट के रूप में रखना चाहिये जिससे सदस्य यह जान सकें कि वे विशेषाधिकार क्या हैं? मैं आशा करता हूं कि श्री कामत प्रस्तुत रूप में अपने संशोधन पर आग्रह नहीं करेंगे जिसका कि अर्थ यह होगा कि भविष्य में कई वर्षों तक इस आगार के सदस्यों के विशेषाधिकारों का निराकरण हो जायेगा।

मैं अनुच्छेद 85 के खंड (2) के एक और पहलू की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं जिसमें दिया हुआ है:

> ''No member of Parliament shall be liable to any proceedings in any court in respect of anything said or any vote given by him in Parliament or any committee thereof, and no person shall be so liable in respect of the publication by or under the authority of either House of Parliament of any report, paper, votes or proceedings.''
>
> (संसद में या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात अथवा दिये हुए किसी मत के सम्बन्ध में संसद के किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न चल सकेगी और न किसी व्यक्ति के विरुद्ध, संसद के किसी आगार के प्राधिकार के द्वारा अथवा अधीन किसी विवरण-पत्र, मतों अथवा कार्यवाहियों के प्रकाशन के विषय में इस प्रकार की कोई कार्यवाही चल सकेगी।)

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

यह विशेषाधिकार ''संसद के किसी आगार के प्राधिकार के अधीन'' प्रकाशन के सम्बन्ध में ही दिया गया है। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। दस या पन्द्रह वर्ष पूर्व केन्द्रीय परिषद् के एक माननीय सदस्य पंडित कृष्णकान्त मालवीय ने सभा में एक भाषण दिया था जिसको समाचार-पत्रों ने दबा दिया परन्तु उन्होंने इलाहाबाद के अपने पत्र में उस भाषण का प्रकाशन कर दिया। इस प्रकाशन के आधार पर कार्यवाही चलाई गई। यदि मैं कोई भाषण दूं और सरकार का यह विचार हो कि समाचार-पत्रों में इसका प्रकाशन न हो और यदि मैं अपने समाचार-पत्र में उसे प्रकाशित करा दूं तो मुझ पर कार्यवाही चलाई जा सकती है। सभा में मैं जो कुछ बोलूं उस पर विशेषाधिकार होना चाहिये। यदि जनता यह न जान पाये कि मैंने यहां क्या कहा तो जिस निर्वाचकगण ने मुझे चुना है उसके प्रति मैं अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता हूं। मैं उस विशेषाधिकार को जिसकी इस खंड में व्याख्या की गई है निरपेक्ष रूप में चाहता हूं जिससे कि सभा में जो कुछ कहा जाये वह किसी भी पत्र में प्रकाशित हो सके और लोग यह जान सकें कि यहां क्या कहा गया है। यह सत्य है कि जो कुछ यहां कहा जाता है वह सरकारी प्रकाशनों में प्रकाशित किया जायेगा और जनता के लिये प्राप्य होगा पर बहुत थोड़े व्यक्ति उसे पढ़ सकते हैं। यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि दैनिक तथा मासिक पत्रों को जो कुछ यहां कहा जाये उस सब को प्रकाशित करने का विशेषाधिकार हो। श्रीमान् यदि सभा का कोई सदस्य सदस्य होकर अपने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग करता है तो सभा को यह अधिकार है कि वह उसे सभा से अलग कर दे। मैं नहीं समझता हूं कि इन विशेषाधिकारों के दुरुपयोग का कोई भय सदस्यों को इन अधिकारों के प्रदान करने से हमें रोके। यदि राष्ट्रपति को यह विदित होता है कि कोई सदस्य अपने अधिकारों का तथा विशेषाधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है तो वह उसको रोक देगा और उसके भाषण में से आपत्तिजनक भागों को निकाल देगा। मैं आशा करता हूं कि विद्वान डॉ. अम्बेडकर इस बात का ध्यान रखेंगे कि सदस्यों के सभा में तथा बाहर दिये गये भाषणों के प्रकाशन के सम्बन्ध में सदस्यों के विशेषाधिकार निरपेक्ष हों न कि वे संसद के प्राधिकार के द्वारा अथवा उसके अधीन प्रकाशन तक ही सीमित रहें। सदस्यों के लिये यह बड़े महत्त्व का प्रश्न है।

***श्री एच.वी. कामत:** वैयक्तिक स्पष्टीकरण हेतु एक शब्द है, श्रीमान्। मैं अपने माननीय मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना से यह कहूंगा कि मेरे संशोधन के स्वीकार कर लेने का अर्थ विशेषाधिकारों के न होने से नहीं है। मैं उनको यह स्मरण कराऊंगा कि कार्यप्रणाली के नियमों के अन्तर्गत, जिनको इस सभा ने विधान-मंडल के रूप में बैठकर प्रयोगात्मक रूप से अंगीकार किया है, पर विशेषाधिकार-समिति होगी जो इस विषय पर विचार करेगी और सभा के विभिन्न विशेषाधिकारों को परिभाषित करेगी।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं सभा का ध्यान अनुच्छेद 85 के कतिपय पहलुओं की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। वह सदस्यों के विशेषाधिकारों तथा विमुक्तियों के सम्बन्ध में है। पहले खंड में यह कहा गया है कि संसद में भाषण स्वातंत्र्य होगा। दूसरे खंड में कहा गया है कि प्रकाशन का भी विशेषाधिकार है यदि वह प्रकाशन संसद के किसी आगार के प्राधिकार द्वारा अथवा उसके अधीन हो। इसके अर्न्तगत बाहर के समाचार-पत्रों द्वारा भाषणों का प्रकाशन नहीं आता है। मैं समझता हूं कि सदस्य के आगार में कुछ

भी बोलने के अधिकार की प्रत्याभूति होनी चाहिये—हां, यह अवश्य है कि वह कार्यप्रणाली के नियमों तथा राष्ट्रपति के आदेशों के अधीन हों। यह बहुत ही वांछनीय है कि किसी भी आगार में यदि कोई ऐसे भाषण दिये जाते हैं जो आपत्तिजनक नहीं है और जिनको अध्यक्ष अथवा सभापति नियम विरुद्ध घोषित नहीं करता है तो उनका प्रकाशन बाहर से समाचार-पत्रों में भी संसद के आगारों के प्राधिकार के बिना ही पूर्ण रूप से होना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि जनाधिकारों में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पद है। यदि कोई प्रकाशन आगार के प्राधिकार द्वारा अथवा उसके अधीन हो सकता तो तो समाचार-पत्रों को भी उसके प्रकाशन की स्वतंत्रता होनी चाहिये। यह आवश्यक है कि समाचार-पत्र भी आगार की कार्यवाहियों का प्रकाशन कर सकें तथा उन पर उचित आलोचना भी कर सकें। यह कुछ-कुछ असंगत सा प्रतीत होता है कि आगार के प्राधिकार द्वारा जिसका प्रकाशन हो सकता है उसका प्रकाशन समाचार-पत्रों में न हो सके। विधान के मसौदे में यह एक कमी है जिस पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है।

इस खंड के अनुच्छेद (3) के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि उसके प्रावधान अस्पष्ट हैं उसके द्वारा जो विशेषाधिकार तथा विमुक्तियां दी गई हैं उसकी व्याख्या जितनी अस्पष्ट हो सकती हैं उतनी अस्पष्ट हैं। इस खंड को समूचा का समूचा वर्तमान भारत सरकार के अधिनियम में से लिया गया है जिसको इंग्लैंड में अधिनियम किया गया था जहां हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के विशेषधिकारों तथा विमुक्तियां जानी हुई हैं और उन्होंने उनका ठीक ही हवाला दिया है। मैं निवेदन करता हूं कि स्वतंत्रता के पश्चात् हम अपने अधिकारों को हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को मिलने वाले अधिकारों से सम्बन्धित नहीं कर सकते हैं। हमारे अधिकार स्पष्ट तथा विशिष्ट रूप से परिभाषित होने चाहिये। वास्तव में हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के विशेषाधिकार कल्याणकारी नहीं हैं। वे उन सामान्य कानूनों में दिये हुये हैं जो पाठ्य पुस्तकों में पाये जाते हैं जिनकी संख्या बहुत हैं तथा नजीरों में भी पाये जाते हैं जो कई स्थलों में बिखरी पड़ी हैं। कोई हमें यह नहीं बता सकता है कि वे विशेषाधिकार क्या हैं? श्रीमान्, यहां उन विशेषाधिकारों का देना, जो हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को प्राप्त हैं, वस्तुतः किसी भी विशेषाधिकार के न देने के बराबर हैं। यदि कोई सदस्य, जो अपने निर्वाचन क्षेत्र में पर्यटन करना चाहता है। अपने अधिकारों को जानना चाहता है तो उसे जानकारी हासिल करने के लिये अंग्रेज प्राभिकर्ता अथवा परामर्शदाता की सहायता लेनी होगी। हाउस आफ कामन्स के सदस्य पार्लियामेंट में आते-जाते समय तथा पार्लियामेंट से सम्बन्धित कार्य करते समय बन्दी किये जाने से मुक्त हैं। ऐसे अनेकों अपरिभाषित अधिकारों के सम्बन्ध में क्या होगा? इन सबकी परिभाषा कर देनी चाहिये और वर्तमान समय में ये जिस प्रकार अस्पष्ट हैं उसी प्रकार इनको अस्पष्ट नहीं छोड़ देना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि जब तक संसद का आगार इस सम्बन्ध में कानून न बना ले तब तक इस विधान के अन्त में इन अधिकारों को परिभाषित करते हुए एक परिशिष्ट जोड़ देना चाहिये।

श्री जसपतराय कपूर ने जो संशोधन पेश किया है मेरी राय से उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। वे अनुच्छेद में ''संसद के किसी आगार में'' शब्दों के पश्चात् ''तथा उसकी समिति में'' शब्द जोड़ना चाहते हैं। ये शब्द खंड (2) में हैं ही। यह भी एक प्रमुख

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

खंड है। सदस्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों को अंग्रेजी कानून की पाठ्य पुस्तकों द्वारा निश्चित करने के लिये नहीं छोड़ देना चाहिये। वे हम पर अब और लागू नहीं होंगी। जैसा कि मैंने सुझाया है उसके अनुसार इनको स्पष्ट तथा विशिष्ट रूप से परिभाषित कर देना चाहिये।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मुझे विवश होकर इस विचार बिन्दु से कि इन विशेषाधिकारों को इतना अस्पष्ट नहीं छोड़ना चाहिये जितने कि हैं, यथेष्ठ सहानुभूति प्रकट करनी पड़ती है। कामन्स के सदस्यों के विशेषाधिकार अच्छी तरह से समझे हुए हैं और भली प्रकार परिभाषित हैं अतः परिशिष्ट में उनकी परिगणना करने में कोई कठिनाई न होनी चाहिये। मेरे विचार से यह कहना बहुत सन्तोषजनक नहीं होगा कि विशेषाधिकार अमुक-अमुक स्थान के अमुक-अमुक व्यक्तियों के जैसे होंगे। या तो विशेषाधिकार निश्चित रूप में होने चाहियें या अस्पष्ट रूप में। यदि वे सुपरिभाषित तथा सुनिश्चित हैं तो उनके विस्तारपूर्वक विवरण देने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। यदि वे अस्पष्ट तथा अनिश्चित हैं तो इस प्रकार की बातों का उल्लेख मात्र करके हमें सांत्वना देना गलत है। यह कहना कि विशेषाधिकार इंग्लैंड के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के समान होंगे निःसन्देह अस्पष्ट है। कि बाह्य निकाय का तथा उस निकाय अथवा उसके सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकारों का उल्लेख मात्र करने से कोई लाभ नहीं। इन विशेषाधिकारों को विशिष्ट रूप में देने तथा उनकी परिभाषा करने का प्रयत्न करना अच्छा है। और फिर, श्रीमान्, यह कहने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि ''जैसे परिशिष्ट में परिभाषित है'' और फिर उस परिशिष्ट में उनको वस्तुतः दे देना। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि इस विचार कोण में पर्याप्त बल है और मैं आशा करता हूं कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर इसके लिये कोई उपयुक्त हल खोज कर सभा के आभारी होंगे। यह अनुच्छेद बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और मुझे विश्वास है कि हम उसे जल्दी में पारित नहीं होने देंगे क्योंकि इसमें संसद के सदस्यों के विशेषाधिकारों तथा अधिकारों का समावेश है।

जहां तक रिपोर्टों के प्रकाशन का सम्बन्ध है मैं अपने मित्र प्रो. सक्सेना द्वारा उठाये गये विचार बिन्दु का समर्थन करना चाहूंगा। हम उस कार्यक्षमता से परिचित हैं जिससे हमारा मुद्रण कार्यालय सरकारी रिपोर्टों को मुद्रित करता है। यदि सदस्य अथवा यहां तक कि समाचार-पत्र भी इस पर निर्भर रहें कि भाषणों का प्रकाशन सरकारी रिपोर्टों में हो तो भावी कई मासों तक सभा में जो कुछ हुआ है उसके बारे में सभा से बाहर न जाने पायेंगे। यही परिस्थिति है जो इस समय वर्तमान है। समस्त प्रयत्न करने पर भी हम इस स्थिति का परिहार तथा उसमें सुधार नहीं कर सके। अतः मैं सोचता हूं कि इन विशेषाधिकारों को कहीं न कहीं साकार रूप देना चाहिये जिससे कि यदि कोई भाषण सभा में दे दिया गया है और यदि उसको समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दिया गया है तो वह कोई अपराध नहीं है।

ये दो विचार बिन्दु हैं जो विचार करने योग्य हैं और मैं आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर मुझसे इस बात से सहमत होने के लिये इच्छुक होंगे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर, जिस रूप में वह है, दो आपत्तियां उठाई गई हैं, एक भावना पर आश्रित है और दूसरी

किसी अन्य राज्य के आगार के उन विशेषाधिकारों के उल्लेख करने के औचित्य पर जिनसे सामान्य नागरिक तथा यहां के संसद के सदस्य सम्भवत: परिचित नहीं हैं। सर्वप्रथम, जहां तक भावना के विषय का सम्बन्ध है, मैं किसी सीमा तक उसमें शामिल हो सकता हूं, पर यह भी आवश्यक है कि उसको व्यावहारिक विचार बिन्दु से भी समझा जाये। यह सबको विदित है कि सबसे अधिक विस्तृत विशेषाधिकारों का प्रयोग इंग्लैंड की संसद के सदस्यों द्वारा किया जाता है। वर्तमान समय में निर्मित भारतीय विधान-मंडल के वर्तमान विशेषाधिकारों के समान ही यदि विशेषाधिकार रखे जायें तो फल यह होगा कि आगार की अवज्ञा करने पर भी किसी व्यक्ति को दंड नहीं दिया जा सकता। यह प्रश्न वास्तविक रूप में कलकत्ता में उत्पन्न हुआ कि क्या प्रान्तीय विधान-मंडल अथवा इस देश के अन्य विधान-मंडलों की अवज्ञा करने पर किसी व्यक्ति को दंड दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह माना गया कि कोई व्यक्ति जो प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय विधान-मण्डल तक की अवज्ञा करने का अपराधी है उसे दण्ड देने का कोई अधिकार किसी को नहीं है जबकि अवज्ञा के लिये इंग्लैंड की पार्लियामेंट को दंड देने का अन्तर्वर्त्ती अधिकार है। अधिराज्यों और उपनिवेशों में यह प्रश्न उठा और यह माना गया है कि आस्ट्रेलिया के संयुक्त संघ अधिनियम में तथा कनाडा के अधिनियम में विस्तृत पदावली के कारण दोनों स्थानों की संसद को वे ही अधिकार हैं जो इंग्लैंड की पार्लियामेंट को प्राप्त हैं, अत: उनको अवज्ञा के लिये दंड देने का अधिकार है। क्या आप स्वयं अपने को इस अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं? प्रश्न तो यह है।

मैं अब दूसरी आपत्ति पर विचार करूंगा। यदि आपके पास संक्षिप्त रूप में समस्त विशेषाधिकारों की तालिका बनाने का समय तथा अवकाश है तो यह तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि इस सभा के विधायी पक्ष की ओर अध्यक्ष द्वारा निर्मित समिति ने तब तक तालिका का बनाना बहुत ही कठिन समझा जब तक कि वे इंग्लैंड की संसदीय संस्थाओं की सम्पूर्ण क्रियाओं के पूर्ण विवरण को न लें, और इस प्रयोजन के लिये उनके पास पर्याप्त समय नहीं था अत: समिति इस विषय में अध्यक्ष को कोई प्रभाव मंत्रणा न दे सकी। मेरी बात को ठीक किया जा सकता है क्योंकि एक स्थिति में मैं था, पर बाद की स्थिति में नहीं रहा। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत मैं निवेदन करता हूं कि मर्यादा के विरुद्ध होने की कोई भी बात नहीं है। हम अंग्रेजी भाषा को रख रहे हैं। हिन्दी के साथ-साथ कुछ समय के लिये हम अपना विधान अंग्रेजी में रख रहे हैं। तो इंग्लैंड के विशेषाधिकारों के उल्लेख पर आपत्ति क्यों?

दूसरी बात यह है कि विशेषाधिकारों की सूची बनाने के लिये उचित तंत्र की स्थापना करने में संसद को कोई रुकावट नहीं है। इस अनुच्छेद में इस बात के लिये विस्तृत क्षेत्र हैं। ''अन्य बातों में, संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार और विमुक्तियां वे ही होंगी जो संसद, समय-समय पर, विधि द्वारा परिभाषित करे और वे जब तक इस प्रकार परिभाषित नहीं की जातीं, तब तक वे ही होंगी जो इस संविधान के प्रारंभ पर यूनाइटेड किंगडम के पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को प्राप्त है''। अनुच्छेद में बस यही कहा गया है। यह आपके स्वविवेक में किसी रूप से रुकावट नहीं डालता है। आप विशेषाधिकारों को बढ़ा सकते हैं, उनको घटा सकते हैं तथा अन्य प्रकार के विशेषाधिकार

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

रख सकते हैं। ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेंट का उल्लेख किये बिना आप स्वयं अपने विशेषाधिकार को रख सकते हैं। भावी भारतीय संसद के स्वविवेक में कोई बाधा नहीं होती है। केवल अस्थाई रूप में हाउस आफ कामन्स के विशेषाधिकारों को इस आगार पर लागू किया गया है। मर्यादा के विरुद्ध होने से कोसों दूर रहकर इस अनुच्छेद में इंग्लैंड की संसद के सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकारों के उल्लेख कर देने से उनको अपनी संसद द्वारा अपने निजी अधिनियमों से दिये गये विशेषाधिकारों से अप्रमुख बना दिया है। अतः खंड (3) के शब्दों में कोई बात मर्यादा के विरुद्ध नहीं है। इस प्रथा का अनुसरण लाभदायक रूप में आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा अन्य अधिराज्यों में हुआ है और उससे पूर्ण भाषण स्वातंत्र्य तथा हर प्रकार से आगार को सर्वशक्ति प्राप्त हो गई है। जब हम अंग्रेजी भाषा ग्रहण कर रहे हैं तथा जब हम उन वैधानिक पदों का प्रयोग कर रहे हैं। जो इंग्लैंड में प्रचलित हैं तो हमें इस बात को भी ग्रहण करने में नहीं कतराना चाहिये। आप यह कह रहे हैं कि यदि हम यह कहें कि विशेषाधिकार वे ही होंगे जो हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को प्राप्त हैं तो इसमें गुलामी की बू है, यह दासत्व का चिह्न है। पर यह बात कोसों दूर है। आज इंग्लैंड की संसद ग्रेट ब्रिटेन, अधिराज्यों तथा अन्य राज्यों पर अधिपत्य जमाये हुए हैं। यह कहना कि आप उतने ही महान् हैं जितना कि ग्रेट ब्रिटेन कोई निम्न भावना का चिह्न नहीं है, वरन् अपने आत्मसम्मान की पुष्टि करना है तथा अपनी संसद की सर्वशक्ति की भी पुष्टि करना है। अतः, श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के उल्लेख पर जो आपत्ति की गई है उसमें बिल्कुल बल नहीं है। इन परिस्थितियों में यह अनुच्छेद ब्रिटेन के प्रति दासत्व, गुलामी तथा भृत्यभाव की भावना के अधीन निर्माण किये जाने से कोसों दूर रहकर आत्मपुष्टि की भावना से निर्मित किया गया है और इस भावना की पुष्टि के लिये बनाया गया है कि हमारा देश तथा हमारी संसद उतनी ही महान् है जितनी कि ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेंट।

***श्री एच.वी. कामतः** एक स्पष्टीकरण का प्रश्न है, श्रीमान्, क्या मैं अपने कानून विशारद मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर से यह पूछ सकता हूं कि कनाडा और आस्ट्रेलिया के विधानों में, जिसका उन्होंने उल्लेख किया है, इस विषय को प्रावहित करते हुये जो कि विचाराधीन है क्या यू.के. के विधान तथा यू.के. हाउस आफ कामन्स का प्रत्यक्ष उल्लेख करते हैं।

***माननीय सदस्यः** हां, वे करते हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मैंने कहा था कि दोनों कनाडा और आस्ट्रेलिया के विधानों में। कनाडा के विधान में पहले और आस्ट्रेलिया के विधान में पीछे। कनाडा के विधान के सम्बन्ध में यह अनुभव किया गया था कि एक कमी रह गई है और समिति की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में उनको विशेष कानून पारित करना पड़ा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं सुन नहीं सका, परन्तु मैं समझता हूं कि यह कोई बात नहीं है।

***अध्यक्षः** आस्ट्रेलिया के विधान में युनाइटेड किंगडम के हाउस आफ कामन्स का प्रत्यक्ष उल्लेख है।

धारा 49–मंत्रि सभा के तथा प्रतिनिधियों के आगार के और सदस्यों के तथा प्रत्येक आगार की समितियों के वे अधिकार, विशेषाधिकार तथा विमुक्तियां होंगी जो संसद द्वारा घोषित की जाती हैं और जब तक घोषित नहीं की जाती तब तक वे होंगी जो युनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स को, और उसके सदस्यों तथा समितियों को संयुक्त राष्ट्र की स्थापना पर हैं।

करीब-करीब ये ही शब्द यहां प्रयोग में लाये गये हैं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, चूंकि श्री नजीरुद्दीन तथा कुछ अन्य मित्रों द्वारा प्रकट किये गये विचार बिन्दु से सहयोग नहीं कर सका हूं अत: मैं खंड (2) के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि जहां तक संसद के सदस्यों का सम्बन्ध है खंड (2) में उनको दो विशेषाधिकारों तथा विमुक्तियों को देने का प्रयास किया गया है। एक मत देने के सम्बन्ध में है और दूसरी भाषण के सम्बन्ध में है जो संसद में दिये जायेंगे और जो संसद के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित किये जायेंगे। मेरे मित्र और विमुक्तियां चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जिस सदस्य ने संसद में भाषण दिया है उसे और भी विमुक्तियां हों उसे बाहर समाचार-पत्रों में अपना भाषण प्रकाशित कराने का अधिकार तथा विशेषाधिकार हो। उसका सम्बन्ध समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य से हो सकता है पर जहां तक संसद के सदस्यों के भाषण या मत का सम्बन्ध है उसकी स्वतंत्रता इसके अन्तर्गत नहीं आती है। मैं समझता हूं कि यह बात बढ़ाना है और न तो यह न्यायसंगत है और न उचित ही है। उदाहरण के लिये यदि कोई सदस्य सद्भाषण देने के प्रयोजन से नहीं वरन् किसी व्यक्ति अथवा किसी संस्था को कलंकित करने के प्रयोजन से भाषण देना प्रारम्भ करता है और अनेकों बाहर के समाचार-पत्रों में उसको प्रकाशित करता है तो मैं यह कहूंगा कि यह न तो विचारों की सच्ची अभिव्यक्ति है और न यह विचारों की यथार्थ अभिव्यक्ति ही है। अत: मैं यह चाहूंगा कि संसद के सदस्यों को जो विशेषाधिकार दिये गये हैं और जिस विमुक्ति को देने का प्रयास किया गया है उनको माननीय सदस्य उन्हीं दो विशेषाधिकारों और विमुक्तियों तक सीमित रखें जो खंड (2) में दी गई हैं। मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** अध्यक्ष महोदय, इस धारा पर मेरा पहला विचार यह हुआ कि कदाचित यह संसद अथवा विधान-मंडल के सदस्य के विशेषाधिकारों में रुकावट डालने वाली है, पर पुन: विचार करने पर...

***एक माननीय सदस्य:** आपकी बात सुनाई नहीं देती।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं आपको मंत्रणा देता हूं कि आप किसी डाक्टर के पास जायें। श्रीमान्, मुझे यह जानकर बहुत ही खेद हुआ कि मेरी बात सुनाई नहीं देती है। मेरी आवाज में कोई दोष होगा। यदि मेरी आवाज में कोई दोष नहीं है तो मैं अपने उन माननीय मित्रों से जो इसके सम्बन्ध में शिकायत करते हैं। यह निवेदन करुंगा कि वे शीघ्र जाकर किसी स्मर्ण रोग विशेषज्ञ से परामर्श करें।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा था, इस धारा 85 पर मेरा पहला विचार यह हुआ कि यह संसद अथवा विधान-मंडल के सदस्य के विशेषाधिकारों में रुकावट डालने वाली है। पर पुनः विचार करने पर मुझे यह विदित हुआ कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने बड़ी बुद्धिमानी की। मैं विचार करता हूं कि अनुभव ने उनको और भी अधिक बुद्धिमान बना दिया है क्योंकि मैं जानता हूं कि भविष्य में विधान-मंडल में अब से अधिक सदस्यायें आयेंगी। भावी विधान-मंडल में विशिष्ट स्थानों को अपने लिये आरक्षित न करा कर जो दांव पेच उन्होंने खेला है उससे ही यह सिद्ध हो जाता है कि जब वे स्थानों के लिये मांग नहीं करती हैं तो उनको अधिक स्थान मिल ही जायेंगे। यह एक सामान्य मानवीय अनुभव है। यदि कोई स्त्री किसी वस्तु की मांग नहीं करती है तो आप उसे और भी अधिक दे देते हैं। यदि वह मांग करती है तो कभी-कभी आप उसे अस्वीकार भी कर देते हैं। अतः श्रीमान्, मुझे विश्वास है, कुछ तो इस कारण भी कि हिन्दू कोड की अफवाह है और विधान-मंडल में अधिक सदस्यायें आयेंगी और जब आपको इस बात का विश्वास हो जायेगा तथा जब माननीय मित्र डा. अम्बेडकर को इस बात का विश्वास हो जायेगा तो फिर यह केवल एक सावधानी की ही बात है कि उसके पश्चात सदस्यों के विशेषाधिकार अबकी अपेक्षा कम कर दिये जायेंगे, परन्तु एक ऐसी बात है, श्रीमान्, जिसके प्रति मुझे कदाचित् शंका सी है और वह यह है। श्रीमान्, जब तक आप जीवित हैं लोग आपमें दोष निकालने के लिये उत्सुक रहते हैं। कभी-कभी तो आपके दोषों को बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है। कभी-कभी जो दोष आप में नहीं हैं उनको भी आप पर लाद दिया जाता है। परन्तु जब मृत्यु को प्राप्त होकर विदा हो जाते हैं, उदाहरणार्थ जब मैं इस सभा में नहीं रहूंगा और जब शोक-प्रस्ताव पारित होगा तो जो गुण मुझ में नहीं हैं उनका भी बखान किया जायेगा और इस आगार में उनका मेरे गुणों के रूप में प्रदर्शन किया जायेगा। अतः जीवनकाल की अपेक्षा मृत्यु के पश्चात व्यक्ति की अधिक प्रशंसा होती है। अतः मेरा विश्वास यह है कि यह ठीक है कि जो भाषण हम यहां देते हैं उनको सामान्य कार्यवाहियों में प्रकाशित कराया जाये। इसमें कोई त्रुटि नहीं है यह ठीक ही है इसमें कोई भी त्रुटि नहीं निकाल सकता है, परन्तु आपके सम्बन्धी होंगे, आपके मित्र होंगे, आपका पुत्र होगा जो आपके भाषणों को प्रकाशित करना चाहे, उनको पुस्तकाकार में प्रकाशित करना चाहे, मान लीजिये कि उन भाषणों में कुछ आपत्तिजनक बातें हैं तो उस पर कार्यवाही चलाई जायेगी। श्रीमान्, ऐसे भी बहुत से भाषण हो सकते हैं जो प्रकाशन करने योग्य हों और आप उन्हें प्रकाशित करते हैं, परन्तु सरकार की सामान्य कार्यवाहियों का प्रकाशन प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता है। यदि आप प्रकाशित करें अथवा आपका कोई मित्र प्रकाशित करे तो उसे ऐसा विशेषाधिकार नहीं है और उस पर कार्यवाही चलाई जायेगी। यह एक ऐसा संकट है जो इस खंड द्वारा, जिस रूप में कि वह है, प्रस्तुत होगा। अतः मैं यह कहूंगा कि यथार्थ कार्यवाही यह है कि जिसको अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति ने निकाला नहीं है, जिसको अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति ने रोका नहीं है उसको प्रकाशित होने दिया जाये। राष्ट्रपति अथवा अध्यक्ष को किसी ऐसे भाषण को रोकने का हक है जो लोगों में हिंसा पैदा करता है, ऐसे भाषण को रोकने का हक है जिसमें अपमानजनक बातें हैं। अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति को सदा ऐसे भाषणों को रोकने का पूरा हक है। आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति किसी सदस्य को सभा में उपस्थित अथवा अनुपस्थित किसी दूसरे सदस्य के प्रति अपमानजनक बातें कहने देगा? आप ऐसी धारणा क्यों करते हैं कि राष्ट्रपति उस भाषण को रहने देंगे जो लोगों में हिंसा पैदा करता है? यदि एक बार भाषण दे दिया

जाता है और यदि अध्यक्ष उसे निकालने योग्य नहीं समझते हैं तो आप सरकारी प्रकाशन के अतिरिक्त अन्य बाहरी पत्रों में उसके प्रकाशन को क्यों रोकते हैं? एक कारण के अतिरिक्त मैं अन्य कारण नहीं समझ पाता हूं जिससे प्रोत्साहित होकर डा. अम्बेडकर ने सोचा कि चूंकि सदस्याओं की संख्या अधिक होगी अत: व्यर्थ की बातें अधिक होंगी और उनको रोकना ही अच्छा होगा। यदि उन्होंने इसी तर्क को ग्रहण किया है तो मैं भी पूर्णतया उनके साथ हूं। अन्यथा इस खंड के न्यायोचित होने के लिये मुझे और कोई बात नहीं मिलती।

एक और पहलू है। यूनाइटेड किंगडम के हाउस आफ कामन्स के हवाले पर सभा के कुछ सदस्यों ने बड़ी आपत्ति की है। बेशक, यह बहुत ही अच्छा होता यदि इस उल्लेख से बच जाते। यह बताया जा चुका है कि कनाडा तथा आयरलैंड जैसे देशों में भी इन प्रावधानों को उनके विधानों में सम्मिलित किया है। आखिरकार कनाडा निवासी इंग्लैंड के ही लोग हैं। उनमें से बहुत से इंग्लैंड से ही गये हुए लोग हैं। अपना-अपना ही है और पराया-पराया। कनाडा निवासियों के इंग्लैंड के विधान को पूर्णतया अपनाने में कोई हानि नहीं है। हम तो यह दावा नहीं कर सकते हैं हमारी रगों में भी वही खून है अथवा हम मूलत: इंग्लैंड से आये और यहां आकर बसे। यह सत्य है कि वातावरण में यथेष्ट परिवर्तन हो चुका है। जब तक हम संयुक्त राष्ट्र में हैं तब तक हम भी अपनी चापलूसी कर सकते हैं और सोच सकते हैं कि हमारी रगों में भी वही खून है। अभी जब तक कि हम संयुक्त राष्ट्र में हैं इन शब्दों के रखने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि खंड पर विचार-विमर्श हो चुका है। मैं सदस्यों से संक्षिप्त भाषण देने के लिये निवेदन करूंगा।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिम बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, देखने में अनुच्छेद 85 निर्दोष प्रतीत होता है, पर मेरी सम्मति में कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर इस सभा के माननीय सदस्यों का एक सरसरी तौर से अधिक ध्यान आकर्षित होना चाहिये।

दो बातों पर अभी तक विचार-विमर्श हुआ है। एक बात यह है कि संसद के सदस्यों को वे ही अधिकार और विशेषाधिकार होंगे जो इस विधान के प्रारम्भ के समय युनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के लिये विनिहित हैं। मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस बात को बताया कि इसको इस रूप में क्यों रखा गया है। व्यक्तिगत विचार प्रकट करते हुए मैं यह अनुभव करता हूं कि उल्लेख द्वारा इस प्रकार का कानून निर्माण अर्थात् मूल रूप में प्रावधान को न रख कर विदेशों के विधानों का उल्लेख करते हुए कानून बनाना मेरी सम्मति में सभा द्वारा मान्य नहीं होना चाहिये। हम एक स्वतंत्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के लिए विधान बना रहे हैं। स्वयं विधान में अन्तर्वर्त्ती काल के लिये युनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के सदस्यों का उल्लेख कर अधिकारों तथा विशेषाधिकारों को विनिहित करने में हम अपने मार्ग से परे हो गये हैं यद्यपि इंग्लैंड में भी उन अधिकारों तथा विशेषाधिकारों की पूरी सूची नहीं है जिनका सदस्य उपभोग करते हैं। यह एक सच्ची भावना का विषय

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

है कि इन शब्दों को यहां स्थान न दिया जाये। मैं तो सम्भवत: आगामी कुछ महीनों तक अथवा एक वर्ष तक, जब तक कि हम प्रकार्य करते रहें। बिना विशेषाधिकारों के कार्य करता रहूंगा—मैं किन्हीं विशिष्ट विशेषाधिकारों के बिना ही काम करना पसन्द करूंगा अपेक्षाकृत इसके कि उन विशेषाधिकारों का विनिधान विदेशी कानून के उल्लेख द्वारा हो। इस प्रकार एक भाग पर विचार समाप्त होता है।

दूसरी बात जो सभा की कार्यवाही के प्रकाशन सम्बन्धी विमुक्ति के सम्बन्ध में है जो भाषण स्वातन्त्र्य से सम्बन्ध रखती है। अध्यक्ष महोदय, यहां आपकी अनुकम्पा से मैं कुछ ऐतिहासिक तथ्य रखना चाहूंगा जिन पर सभा के प्रत्येक सदस्य को सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिये। आप यह व्यवस्था करने जा रहे हैं कि आप इस सभा में जो कुछ भी करें सभा में आपके भाषण अथवा सभा में आपके कार्य पर पूर्णत: विशेषाधिकार है और केवल भारतीय सरकार द्वारा अथवा सभा के प्राधिकार द्वारा उसके प्रकाशन की नियुक्ति है। इसका आशय यह है कि जो भाषण हम यहां देते हैं यदि उसका सरकारी वाद-विवाद के रूप में मुद्रण तथा प्रकाशन किया जाता है और यह पूर्णत: विमुक्त है और चाहे वह अपमान-वचन हो अथवा अपमान-लेख। परन्तु उसके द्वारा उत्पन्न किसी विषय पर कार्यवाही करने का न्यायालय का क्षेत्राधिकार नहीं है। श्री जगतनारायनलाल ने एक विचार बिन्दु उपस्थित किया है जो वास्तव में आपके विचार ने योग्य है। यह सम्भावना हो सकती है कि इस प्रकार से इन विशेषाधिकारों का दुरुपयोग किया जाये, परन्तु इसका दूसरा रूप भी है। मैं आपको यह बताऊं कि यह प्रश्न हमारी संसद में किस प्रकार उठा।

सभा को शायद यह याद होगा कि कुमारी बीनादास ने बंगाल के राज्यपाल श्री स्टेनले जक्सन पर गोली चलाई। उसको गिरफ्तार कर दिया गया। राज्यपाल मेरा नहीं था। मुकदमे के दौरान में उसने न्यायालय में बयान दिया। यह बयान देशभर में कहीं से भी नहीं मिल सकता था। ऐसा हुआ कि केन्द्रीय विधान-मंडल के एक सदस्य ने उस समय बंगाल सरकार की दमनकारी नीति पर अपना भाषण देते हुए कुमारी बीनादास द्वारा मुकदमें में दिये गये पूरे बयान को पढ़ दिया। वह भेद प्रकट करने वाला प्रलेख है। उसने (कुमारी बीनादास) बंगाल में दमनकारी कार्यों की उत्पत्ति का पूर्ण इतिहास बताया और विशेषकर उन परिस्थितियों को बताया कि जिनसे विवश होकर उसे बंगाल के राज्यपाल के विरुद्ध यह भीषण कदम उठाना पड़ा। ब्रिटिश सरकार ने सुरक्षा के आधार पर समाचार-पत्रों में उसकी एक भी पंक्ति नहीं निकलने दी। प्रश्न उस समय उठा जबकि केन्द्रीय विधान-मंडल के माननीय सदस्य का यह भाषण प्रकाशित हुआ जिसमें यह बयान था। सरकार ने कहा कि यह प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। भारतीय सरकार के कानून मंत्री सर बी.एल. मित्तर ने उस भाषण के प्रकाशन का विरोध किया जिसमें सदस्य ने अपराधिनी कुमारी बीनादास द्वारा मुकदमे में दिये गये बयान को ही कहा था। यह 1934 में हुआ। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं 1935 में हो अथवा 1936 में—उस समय हम शिमला में दंड-विधि संशोधन के विधेयक पर विचार-विमर्श कर रहे थे। दंड-विधि संशोधन विधेयक पर सामान्य विचार-विमर्श के अन्तर्गत मेरे स्वर्गीय मित्र पण्डित कृष्णकान्त मालवीय द्वारा एक भाषण दिया गया जिसमें उन्होंने देश में तत्कथति दमनकारी उपद्रवों का सारांश बताया और यह बताने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार ब्रिटिश सरकार उस दूषित मनोवृत्ति के लिये

उत्तरदायी है जिससे नवयुवक और नवयुवतियां बम तथा रिवोल्वारों में विश्वास, करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। वह बड़ा ही सारगर्भित भाषण था। हमें आश्चर्य हुआ कि दूसरे दिन किसी भी समाचार-पत्र में उस दो घंटे के भाषण का, जो लिखित भाषण था और जिसको मेरे माननीय मित्र पंडित कृष्णकान्त मालवीय न सुनाया था, एक भी वाक्य किसी भी समाचार-पत्र में न छपा। तत्कालीन सरकार अर्थात् गृहमंत्री ने—मेरे विचार से उस समय सर हेनरी क्रेक गृहमंत्री था—खूब सावधानी की और इस बात का ध्यान रखा कि उस भाषण की एक भी पंक्ति समाचार-पत्रों में न निकल सके। केवल वही उसका मुद्रण तथा प्रकाशन कर सकता था जो दंड भुगतने के लिये उद्यत हो। उसके पश्चात् मेरे माननीय मित्र श्री मालवीय ने भाषण के पूरे के पूरे पाठ को जैसा था वैसा अपने समाचार-पत्र अभ्युदय में छाप दिया। उस समय की सरकार तुरन्त उन पर टूट पड़ी, उन पर मकदमा तो नहीं चलाया गया पर उनके पत्र से जमानत मांगी गई। जब यह सब कुछ हो गया तो विधान-सभा के आगार में सन् 1936 में हमने इस पर वाद-विवाद उठाया और अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। हम इस बात पर अड़े कि सभा के विशेषाधिकारों का इस रूप में उल्लंघन किया गया है कि जब किसी सदस्य ने आगार में भाषण दिया और उस भाषण को सरकारी प्रकाशनों अथवा सभा की कार्यवाहियों में मुद्रित और प्रकाशित किया गया तो जब उस सदस्य ने उस सम्पूर्ण भाषण को अक्षरशः अपने पत्र में प्रकाशित करा दिया तो इसके लिये भी विमुक्ति होनी चाहिये। दोनों ओर से माननीय सदस्यों द्वारा प्रबल तर्क उठाये गये थे। उस समय तत्कालीन कानून मंत्री सर नृपेन्द्र नाथ सरकार ने एक आश्चर्यजनक बयान दिया कि सभा को कोई विशेषाधिकार नहीं है यद्यपि सदैव सभा इसी विश्वास से कार्य करती चली जा रही थी कि उसको कुछ अधिकार तथा विशेषाधिकार हैं। उन्होंने कहा कि ''इस सभा को कोई विशेषाधिकार नहीं है''। वही हुआ जो होना था, हमारे दबाव से उस समय मामला तय किया गया। इस बात से एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता है। आज मुझे अपने उन मित्रों और साथियों की इस परिवर्तित विचारधारा पर आश्चर्य होता है जो उन दिनों हमारे साथ थे और जिन्होंने उस समय की सरकार के रुख की निन्दा की थी और यह दृढ़ धारणा निश्चित की थी कि किसी गैर-सरकारी एजेंसी द्वारा ईमानदारी से कार्यवाहियों की रिपोर्ट का प्रकाशन भी सुरक्षित होने योग्य है। उन दिनों ये लोग सब एकमत थे। आज हम इस बात को बिल्कुल भूल गये हैं और हम उन्हीं विशेषाधिकारों का गैर-सरकारी प्रकाशनों तक प्रसार नहीं होने देते हैं। मैं यह समझता हूं कि ऐसा हो सकता है कि वाद-विवाद में कोई सदस्य इस प्रकार की बात कहे जिसको यदि वह बाहर कह दे तो वह किसी न्यायालय की कार्यवाही से विमुक्ति नहीं पा सकता। परन्तु सभा में व्यर्थ दोषारोपण अध्यक्ष द्वारा नहीं करने दिये जायेंगे। वस्तुतः स्थायी आदेश भी इस बात की व्यवस्था करते हैं कि आप विषयान्तर होकर किसी प्रकार से अपमानजनक अथवा आपत्तिजनक कटु भाषण नहीं दे सकते हैं। यदि आप अपमानसूचक तथा अपमानजनक भाषण देते हैं तो अध्यक्ष आपको रोक देता है। सदस्य ऐसी बातें नहीं कह सकता जिनके बारे में उसे विश्वास न हो तथा जिनको वह सिद्ध नहीं कर सकता हो। जब किसी विशिष्ट सदस्य द्वारा इस प्रकार का उल्लेख किया जाता है तो आगार का अध्यक्ष अथवा सभापति तुरन्त ही उसे नियमित होने का आदेश देता है। ऐसा करने पर भी यदि सदस्य दृढ़ है और कुछ आपत्तिजनक बातें अपने भाषण में कह देता है तो क्या होता है? जब सरकार

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

उसको वाद-विवाद के उल्लेख पत्रों के रूप में प्रकाशित करती है तब तो कोई हानि नहीं है यदि सरकार उनको अधिक संख्या में मुद्रित कराती है तो कोई व्यक्ति जैसे चाहे विमुक्ति सहित उनको खरीद सकता है और उनका वितरण कर सकता है। पर बाद में यदि कोई माननीय सदस्य अथवा उसका कोई सम्बन्धी उनको प्रकाशित करना चाहता है और अपने दिये हुए भाषणों को ही अक्षरशः प्रकाशित करता है जो कि सरकारी वाद-विवाद में प्रकाशित हो चुके हैं और इस प्रकार यदि वे अपनी पुस्तकों में उनको प्रकाशित करते हैं तो इसके लिये कोई विमुक्ति नहीं है। यह अमुक्तियुक्त है, चाहे इसके लिये कुछ भी बहाना हो। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि इस बात पर सावधानी से विचार करें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र जिस रीति से इस विशेषाधिकार की मांग करना चाहते हैं जो मेरी सम्मति के अनुसार एक विशेषाधिकार नहीं वरन् अनुज्ञा है उस रीति पर मुझे कम आश्चर्य नहीं हुआ है। संसदों की जननी में इंग्लैंड में उन सदस्यों ने, जो सभा में तथा उससे बाहर भाषण स्वातन्त्र्य के लिये प्रयास करते रहे हैं, जिन विशेषाधिकारों की मांग की है तथा कर रहे हैं, उससे अधिक किसी बात की मांग करने का हम प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। वे अब एक या दो पहलुओं पर विचार करें। सभा से बाहर सदस्यों को राजद्रोहात्मक भाषण देने अथवा अपमानसूचक बयान देने का अधिकार नहीं है, परन्तु सभा के भीतर यदि कोई यह समझता है कि बयान लोक कल्याण हेतु है तो वह कैसा भी कोई बयान दे सकता है चाहे वह सरकार पर आक्रमण करने वाला हो अथवा राज्य को उलटने के लिये हिंसा की शिक्षा देने वाला हो अथवा चाहे वह अपमानसूचक बयान हो। भारतीय सरकार के सन् 1919 के अधिनियम में राजद्रोहात्मक बयान तथा अपमानसूचक बयान रोक दिये जाते थे और नहीं देने दिये जाते थे।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** अध्यक्ष की अनुमति के अधीन आप कोई भी भाषण दे सकते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** सन् 1935 के अधिनियम में उसको निकाल दिया गया है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** उस अधिनियम के अन्तर्गत स्थायी आदेश नहीं दिये गये हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** सन् 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत सभा में भी कोई राजद्रोहात्मक शब्द नहीं कहे जा सकते थे। यदि कोई कह देता था तो उस सदस्य को जो कोई राजद्रोहात्मक या अपमानसूचक बयान कहता था उसको अध्यक्ष डांट देता था। यह वह समय था जबकि विदेशी शिष्टजन-सत्ता हम पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न कर रही थी और हमको किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं देती थी। परन्तु सन् 1935 के अधिनियम के उपयोजना कानून के अधीन हमको सभा में भाषण स्वातन्त्र्य दिया गया: सभा में उसका कोई सदस्य किसी भी बयान को दे सकता है जिसको वह बाहर नहीं दे सकेगा। जो कुछ वह चाहे बाहर नहीं कह सकेगा—केवल इसलिये कि वह सदस्य है और वह कोई भी बयान दे सकता है—क्या इस अधिकार को सीमित नहीं करना है? उसे एक विशेष प्रयोजन के लिये यह विशेषाधिकार दिया गया है। यहां सदस्य जो कुछ

चाहे सभा के अन्य सदस्यों को अपने विचार को मनाने के लिये कह सकते हैं। यहां तक कि वे हिंसा के पक्ष में भी कह सकते हैं। सभा में भाषण देता हुआ कोई सदस्य दंड-विधि के भय से इधर-उधर झांकते हुए नहीं रह सकता है। वह तो बड़ा ही खतरनाक है और यदि इन सीमाओं के अन्तर्गत उसे भाषण देना होगा तब तो देश के लिये लोकतंत्र की ओर प्रगति करना असम्भव होगा। इस कारण सभा में पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है। मेरे मित्र चाहते हैं कि चाहे वे नितान्त अनुचित भाषण दें जिसको यदि वे बाहर दें तो राजद्रोह की धारा के अन्तर्गत उन पर कार्यवाही चला दी जायेगी—तो वे यह चाहते हैं कि चूंकि वे यहां वैसा भाषण दे सकते हैं इसलिये बाहर जाकर वे इसे छपा सकते हैं। मेरे मित्र श्री रोहिणीकुमार चौधरी यह चाहते हैं कि वे अपने पुत्र से एक लाख प्रतियां प्रकाशित करने के लिये कहें और उनके पिता ने जो शब्द कहें हैं उनको समस्त संसार में प्रसारित करें। मेरे मित्र श्री मैत्र जो कुछ चाहते हैं वह यही है। अभी इस समय राजद्रोहात्मक भाषणों को छोड़कर वे हर तरह के अपमानसूचक भाषण देना चाहते हैं। हम में से कुछ ऐसे वामदल के हैं जो सरकार के विरुद्ध, चाहे वह अपनी हो या कोई विदेशी, हर प्रकार के भाषण देना चाहते हैं। हम अभी इस चक्कर से बाहर नहीं निकले हैं। सभा में हम किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी तरह का भाषण दे सकते हैं। यदि हम उनको बाहर कहें तो न्यायालय हमको नहीं छोड़ेगी। सभा में मुझे यह अधिकार है कि मैं यह कह दूं कि पंडित मैत्र बेईमान हैं। बाहर यदि मैं यह कह दूं तो इसके विरुद्ध मुझ पर कार्यवाही चलाई जा सकती है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** ऐसा कहने के लिये मैं आपको पूरी आज्ञा देता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** लोक-हित में यदि वह आवश्यक है तो सभा में उसे कहने से मुझे नहीं डरना चाहिये।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** जिस समय आप यह कहेंगे कि मैत्र बेईमान हैं उसी समय अध्यक्ष आपको नियम पालन करने का आदेश देगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** वर्तमान कानून के अन्तर्गत राष्ट्रपति को ऐसा करने का अधिकार नहीं है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** पूरा-पूरा अधिकार है, यदि आप किसी की व्यक्तिगत निन्दा करें तो।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यदि लोक-हित में मुझे किसी व्यक्ति के वैयक्तिक चालचलन के विरुद्ध कुछ कहना है तो मुझे कहने का अधिकार है। मैं समझता हूं कि वर्तमान भारतीय सरकार के अधिनियम के अधीन मुझे यह कहने का अधिकार है कि यदि वह लोक-हित में हो, और यह अनुच्छेद उस अधिनियम की केवल प्रतिलिपि ही है। आखिर यह एक विशेषाधिकार ही है और यह एक अपवाद ही है चूंकि सामान्यतया आपको गैर-सरकारी व्यक्तियों के विरुद्ध कोई अपमानसूचक भाषण नहीं देना चाहिये अथवा ऐसे उग्र भाषण नहीं देने चाहियें जो राज्य को उलट दें। अतः इस प्रकार यदि कोई अपवाद किया जाता है तो वह विशेषाधिकार है और हमें उसकी परिसीमाओं से शिकायत नहीं होनी चाहिये। यदि उन भाषणों को प्रकाशित किया ही जाता है तो केवल रिपोर्टों में ही किया

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

जा सकता है। यहां तक कि इन रिपोर्टों की प्रतियां बाहर नहीं मिलनी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति सरकारी रिपोर्टों की प्रतियां तक खरीदने के लिये तैयार हैं तो वह ऐसा कर सकता है। सदस्य यह तो जानते ही होंगे कि केवल अपमानसूचक भाषण देने वाला ही दंड का पात्र नहीं है, वरन् जो कोई उसे प्रकाशित कराता है वह भी दंड का पात्र है। कोई व्यक्ति क्योंकर उसकी दस लाख प्रतियां छपाये और उन्हें बांटे। यह तो पूर्णतया भिन्न प्रकार का अपराध है। यह तो स्वयं ही एक अपराध है। अपमानसूचक भाषण देने वाला दंड का पात्र है तथा वह व्यक्ति भी जो उसको प्रकाशित कराता है। यह कहना कि आप उसको यहां छपाते हैं इसलिये आप उसकी अनेकों प्रतियां और छपा सकते हैं ठीक नहीं है। यह कोई विशेषाधिकार नहीं होगा वरन् यह तो अनुज्ञा हुई। माननीय सदस्य यह कहते हैं कि इसके स्पष्टीकरण का कोई अवसर नहीं है, परन्तु स्पष्टीकरण हो अथवा नहीं एक अपमानसूचक भाषण अपमानसूचक ही है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** यह एक आश्चर्यजनक सिद्धान्त है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** मेरे मित्र कहते हैं कि यह एक आश्चर्यजनक सिद्धांत है। एक लड़की द्वारा दिये गये भाषण का और उसके प्रकाशित न होने देने का उन्होंने उल्लेख किया था। पर मैं यह कहूंगा कि यदि वर्तमान सरकार होती तो भी उस भाषण को प्रकाश में नहीं लाना चाहिये था। ऐसा करना तो विशेषाधिकार का दुरुपयोग है। यह तो एक अनुज्ञा है। किस प्रयोजन के लिये ऐसे भाषण प्रकाशित किये जायें? समाज की व्यवस्था छिन्न-भिन्न करने के लिये, मनुष्यों में परस्पर सद्भावना का नाश करने के लिये और समस्त सम्प्रदाय को अस्त-व्यस्त करने के लिये? मैं फिर कहता हूं कि ऐसी बातें विशेषाधिकार का दुरुपयोग ही हैं। ऐसी अवस्थाओं में सामान्य नियम में एक अपवाद रखा जाता है। यथार्थत: यह एक विशेष शस्त्र है जो हमारे हाथों में सौंपा गया है और इस शस्त्र का सावधानी से प्रयोग करना चाहिये। किसी व्यक्ति द्वारा न्यायालय में घसीटे जाने से सतत् निर्भय होकर सभा में सदस्य स्वतंत्रतापूर्वक बोल सकें, यदि ऐसा नहीं है तो वे समुचित रूप से देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करेंगे। इसी प्रयोजन हेतु एक विशेषाधिकार दिया गया है, परन्तु सभा में ही स्वतंत्र भाषण देने तक इसको आयंत्रित रखना चाहिये। बाहर दुहराने नहीं दिया जा सकता है। स्थिति यह है कि किसी व्यक्ति के सदस्य होने के कारण ही वह जो कुछ चाहे नहीं कर सकता है। ब्रिटिश पार्लियामेंट में यही स्थिति है और इस बात में हम उनके अनुरूप होना चाहते हैं। मैं किसी भी संशोधन के विरोध में हूं और चाहता हूं कि यह अनुच्छेद जिस रूप में हैं उसी रूप में स्वीकार किया जाये। हाउस आफ कामन्स के उल्लेख के सम्बन्ध में मुझे तो कोई हानि नहीं दिखाई देती, विशेषकर चूंकि अभी-अभी हम संयुक्त राष्ट्र के सदस्य हो गये हैं। जैसा कि कल स्वयं आपने बताया था कि हम जो कुछ करते चले आ रहे हैं यह उसी के अनुसार है और जब तक हम अंग्रेजी भाषा को पूर्णतया छोड़ न दें तब तक हम ऐसा कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** हमारे समक्ष एक ऐसे विषय पर बड़ा रोचक विचार-विमर्श हुआ जो किसी संशोधन में नहीं है। किसी विशिष्ट खंड में परिवर्तन करने अथवा संपरिवर्तन करने के लिये

ऐसा कोई संशोधन पेश नहीं किया गया जिस पर पंडित मैत्र बोले हैं। इस विषय पर तो कोई संशोधन नहीं है।

अब मैं मत लूंगा। क्या डा. अम्बेडकर कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं। यदि उत्तर में श्री कामत कुछ नहीं चाहते हैं तो। श्री अल्लादी तथा अन्य व्यक्तियों ने उत्तर दे ही दिये हैं और मैं भी सम्भवत: विभिन्न प्रकार से बहुत कुछ वे ही बातें कहता।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1625, श्री कामत का संशोधन।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 85 के खंड (3) में 'as are enjoyed by the members of the House of Commons of the Parliament of the United Kingdom at the commencement of this Constitution' (तब तक वे ही होंगी जो इस विधान के प्रारम्भ पर युनाइटेड किंगडम के पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों को प्राप्त हैं) शब्दों के स्थान में 'as were enjoyed by the members of the Dominon Legislature of India immediately before the commencement of this Constitution' (तब तक वे ही होंगी जो इस विधान के प्रारम्भ होने से सद्यपूर्व भारतीय अधिराज्य विधान-मंडल को प्राप्त हैं) शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् श्री जसपतराय कपूर का संशोधन संख्या 1627 है। मैं समझता हूं कि डा. अम्बेडकर इसे स्वीकार करने के इच्छुक हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 85 के खंड (4) में 'a House of Parliament' (संसद के किसी आगार में) शब्दों के पश्चात् 'or any Committee thereof' (अथवा उसकी किसी समिति में) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् प्रो. शाह का संशोधन संख्या 1631।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 85 के खंड (4) के पश्चात् निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(5) In all matters of the privileges of the House of Parliament or of members of thereof the House concerned shall be sole judge and any

[अध्यक्ष]

order, decree or sentence duly passed by that House shall be enforced by the officers or under the authority thereof.'

[(5) संसद के किसी आगार अथवा उसके सदस्यों के विशेषाधिकार के विषय में तत्सम्बन्धी आगार ही एकमात्र न्यायाधीश होगा और उस आगार द्वारा उचित रूप से पारित किये गये किसी आदेश, डिक्री अथवा दंडादेश का उसके अधिकारियों द्वारा अथवा उसके प्राधिकार के अधीन प्रवर्त्तन किया जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री जसपतराय कपूर के संशोधन संख्या 1627 के अनुसार संशोधित रूप में अनुच्छेद 85 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 85 विधान का अंग बने।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 85 विधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** इससे पूर्व कि हम सभा स्थगित करें मैं सभा के समक्ष एक सुझाव रखना चाहता हूं। सम्भवत: सदस्य इस बात से परिचित होंगे कि आगामी शनिवार और रविवार को देहरादून में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक होगी, यह सुझाव किया गया है कि हम एक दिन के लिये स्थगित करें, पर मैं नहीं समझता हूं कि इस बैठक के कारण हम इस सभा की कार्यवाहियों को बन्द रखें। यदि सदस्यों को मान्य है तो मैं यह सुझाव रखता हूं कि सोमवार को प्रात:काल बैठक करने के बजाय दोपहर बाद बैठक रखें। देहरादून से लौटने वालों को अपने अधिवेशन में उपस्थित होने के लिये सोमवार को प्रात:काल के बजाय दोपहर बाद बैठक रख सकते हैं। मैं आगामी सोमवार को सायंकाल के पांच बजे से आठ बजे तक का सुझाव करता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

***अध्यक्ष:** अब सभा कल प्रात:काल आठ बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् शुक्रवार, 20 मई सन् 1949 के प्रात:काल 8 बजे तक के लिये सभा स्थगित हुई।

Con. 4. VIII.5.40
320

अंक 8
संख्या 5

शुक्रवार
20 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप..... 265-326
[अनुच्छेद 86, 87, 88, 89, 90 तथा 91 पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

शुक्रवार, 20 मई सन् 1949 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 8 बजे, अध्यक्ष (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, आपकी निगाह में एक बहुत ही गम्भीर बात लाना चाहता हूं और वह यह है कि विधान-परिषद् की 5 जनवरी सन् 1949, कार्यवाही की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उस में कार्यवाही का एक बड़ा हिस्सा दबा दिया गया है। (देखिये अंग्रेजी रिपोर्ट का पृष्ठ 1267) रिपोर्ट में यह कहा गया है कि माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह प्रस्ताव पेश किया कि भारत-शासन-अधिनियम में सुधार करने के हेतु उपस्थित किये गए विधेयक पर विचार किया जाये। किंतु तथ्य यह है कि उन्होंने विधेयक को उपस्थित करने की अनुमति, एक प्रस्ताव द्वारा चाही थी। मैं उनके प्रस्ताव का विरोध करना चाहता था और मैंने यह दलील दी थी कि उस समय उसके विरोध करने का मुझे पूरा अधिकार प्राप्त था। किंतु उपाध्यक्ष महोदय ने मुझे बोलने की ही अनुमति नहीं दी। उन्होंने यह कहा कि अगर मैं कुछ कहना चाहता हूं तो वह उस पर सभा की राय लेंगे। मेरी बात सभा ने अस्वीकार कर दी। यह सब बातें रिपोर्ट में नहीं आई हैं। इनको दबाने के लिये कौन जिम्मेदार हैं। मैं चाहता हूं कि ये सभी बातें रिपोर्ट में प्रकाशित हों ताकि लोगों को यह ज्ञात हो जाये कि उपाध्यक्ष उन लोगों की बात ही नहीं सुनते थे जिनको वह पसन्द नहीं करते थे।

यह एक बहुत ही गम्भीर बात है और इसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा।

***अध्यक्ष:** जहां तक मैं समझता हूं माननीय सदस्य का यह कहना है कि गत अधिवेशन की कार्यवाही संबंधी कुछ बातें रिपोर्ट में प्रकाशित नहीं हुई है और उनकी शिकायत यह है कि यहां अधिवेशन में जो कुछ भी हुआ उसकी सही-सही रिपोर्ट प्रकाशित होनी चाहिये थी। उस समय क्या बातें हुई इससे मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूं अतः बिना पूरी तरह सारी बातों के देखें मैं इसके संबंध में अभी कुछ नहीं कह सकता। अगर माननीय सदस्य की कोई शिकायत है तो कृपया वह लिखकर मुझे दे दें ताकि मैं उसकी जांच करा सकूं।

विधान का प्रारूप—*जारी*

अनुच्छेद 86

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 86।

(संशोधन नं. 1632 और 1633 पेश नहीं किये गये।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 86 में और 'जब तक तद्विषयक प्रावधान इस प्रकार नहीं बनाया जाता, तब तक, अधिदेय ऐसी दर से और ऐसे प्रतिबंधों सहित होंगे, जैसे कि इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से सद्य:पूर्ण भारत अधिराज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के विषय में लागू थे' शब्दों को हटा दिया जाये और निम्नलिखित परन्तुका (proviso) जोड़ दी जाये:
>
> 'किंतु शर्त यह है कि संसद के सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन केबिनेट मिनिस्टर को दिये जाने वाले वेतन की एक-चौथाई से कम या एक-तिहाई से ज्यादा न होगा।
>
> और शर्त यह है कि विपक्षी दल का नेता उस वेतन का अधिकारी होगा जो बिना केबिनेट दर्जा वाले किसी मंत्री को दिया जायेगा'।''

इस संशोधन के तीन हिस्से हैं किंतु तीसरा हिस्सा इसकी जान है इसलिये मैं पहले उसी को लेता हूं। इसमें विपक्षी दल के नेता के लिये वेतन का प्रावधान है। सभा यह अच्छी तरह जानती है और सभा को मैं यकीन दिला दूं कि यह बात नितांत सत्य है कि मुझमें भावी विपक्षी-नेता बनने की कोई खूबी नहीं मौजूद हैं। किंतु मैं जो इसे पेश कर रहा हूं उसके चार गम्भीर कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि मैं यह अनुभव करता हूं कि संसद में एक विपक्षी दल को प्रतिष्ठित करना निहायत जरूरी है। वस्तुत: लोकतंत्र के प्रधान स्तम्भ ही यही तीन बातें हैं। एक तो विपक्षी दल का अस्तित्व, दूसरे कानून के अनुसार शासन और तीसरे जबर्दस्त प्रेस। दूसरा कारण यह है कि मैं यह चाहता हूं कि विपक्षी दल संबंधी पद्धति को विधान में मान्यता दे दी जाये। दुर्भाग्य से कुछ क्षेत्रों में यह समझा जाता है, विपक्षी दल का निर्माण या विपक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध मत व्यक्त करना एक तरह से राजद्रोह है। मैं लोगों की इस गलत धारणा को दूर कर देना चाहता हूं। तीसरा कारण यह है कि मैं एक ऐसी स्थिति पैदा करना चाहता हूं जिसमें, निस्तब्ध एवं प्राण-विहीन विधान-मंडल एक सजीव सभा बन जाये और इसका अन्तिम कारण यह है कि संसदात्मक लोकतंत्र की पद्धति को, जिसे विलायत से लाकर हम भारत में प्रचलित करना चाहते हैं मैं यहां सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित देखना चाहता हूं। आपकी अनुमति से श्रीमान्, इन चार बातों पर जिनका कि अभी कारण रूप से मैंने उल्लेख किया है, मैं पूरा प्रकाश डाल देना चाहता हूं।

कई सदस्यों ने इस बात का प्रबल प्रयास किया है कि यहां अमेरिका की प्रधान-मूलक मंत्रिमंडल (Presidential Cabinet) वाली पद्धति अपनाई जाये पर सभा ने इसे अस्वीकार कर दिया। सम्मिश्रित मंत्रिमंडल की पद्धति को भी जो कि स्विटजरलैंड में प्रचलित है इस सभा ने पसन्द नहीं किया और उसने पसन्द किया दलगत-शासन की पद्धति को जो इंग्लैंड में प्रचलित है। दलगत-शासन पद्धति का अर्थ यह है कि राज्य की सारी शक्ति अधिकारारूढ़ दल के हाथ में होगी और प्रकारान्तर से इसका मतलब यह हुआ कि राज्य की सारी शक्ति पार्टी के जरिये चन्द व्यक्तियों में सन्निहित होगी। सभी जानते हैं कि शक्ति व्यक्ति को भ्रष्ट कर देती है और जहां सम्पूर्ण शक्ति ही व्यक्तियों में सन्निहित रहेगी वहां तो वे सम्पूर्ण रूप से भ्रष्ट हो जायेंगे। यह भी एक सर्वविदित तथ्य है कि जब एक दल अधिकार में आता है तो वह सदा अधिकारारूढ़ बने रहने की कोशिश करता है। एक दल विशेष का शासन सर्वथा स्वेच्छाचारी न बन जाये इसका एकमात्र रोक है विपक्षी दल

का अस्तित्व जो मंत्रिमंडल की कार्यवाहियों पर सतर्क दृष्टि रखता है और इस तरह उसे स्वेच्छाचारी हाने से रोके रहता है। इसके अलावा पार्टी गवर्नमेंट कभी ठीक-ठीक तरह काम नहीं कर सकती है जब तक कि उसके कार्यों की प्रखर आलोचना न होती रहे। लोकतंत्रात्मक पद्धति में हमेशा बहस होती है और अधिकारारूढ़ दल की नीति में सुधार किया जाता है। इसके अलावा मैं तो यह अनुभव करता हूं कि विपक्षी दल के न रहने पर अधिकारारूढ़ दल में ही फूट पड़ जाती है और उसके अन्दर गुटबन्दी चल पड़ती है। आप ज्यादा नहीं केवल गत दस वर्षों के इतिहास पर ही दृष्टिपात कीजिये। भारत में जहां भी पार्टी गवर्नमेंट रही हैं और विधान-मंडलों में कोई प्रभावशाली विपक्षी दल नहीं रहा है वहां न केवल मंत्रिमंडल के सदस्यों ने आलोचना पर आक्रोश करना ही शुरू कर दिया बल्कि दल के अन्दर विरोध भाव बढ़ता गया और इसके परिणामस्वरूप एक के बाद एक करके कई मंत्रिमंडल बने और बिगड़े। अधिकारारूढ़ दल के कामों के औचित्य पर प्रश्न किये गये हैं और उनकी ओर से जबाव भी दिये गये हैं। अधिकारारूढ़ दल पर यहां तक आक्रमण किया गया कि सरकारी रुपयों के गबन तक का आक्षेप उस पर किया गया और इसी तरह के अन्य भयानक इलजाम उस पर लगाये गये। इन सब बातों का मूल कारण यही है कि अधिकारारूढ़ दल का विरोध करने के लिये कोई प्रबल विपक्षी दल नहीं है जो उससे यह महसूस करा सके कि लोकमत का उसे मुकाबला करना पड़ेगा। आखिर लोकमत का निर्माण कौन करता है? जनता को सरकार के कामों से परिचित कौन करायेगा और उन्हें उसके कार्यों में दिलचस्पी लेने के लिये कौन प्रेरित करेगा? जब तक कि विधान-मंडल में एक प्रबल विपक्षी दल नहीं होता तो सरकार के कारनामों पर कौन रोशनी डालेगा? इन सब कारणों से एक विपक्षी दल का होना नितांत आवश्यक है। सभी जानते हैं कि वर्तमान युग में सरकार के कार्यों का दायरा बहुत विस्तृत हो गया है और जो भी दल सदा जागरूक और प्रभावी बना रहना चाहता है, उसके लिये यह जरूरी है कि विपक्षी दल के रूप में काम करने में वह अपना सारा समय लगावे। सारा समय देने वाला कोई विपक्षी दल प्रतिष्ठित नहीं हो सकता जब तक कि उसका ऐसा नेता न हो जो अपना समूचा समय, अपनी सारी शक्ति, समस्त देश में एक दायित्वपूर्ण विरोध पैदा कराने में न लगावे इसके लिये सिर्फ इतना ही काफी नहीं है कि विधान-मंडल में एक विपक्षी दल हो बल्कि उस विपक्षी दल की बुनियाद मजबूत होनी चाहिये और देशभर में, उसको समर्थन देने वाला एक प्रबल लोकमत होना चाहिये। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि यहां एक ऐसा प्रबल और जागरूक विपक्षी दल जो कि विधान-मंडल में एवं उसके बाहर भी सुचारू रूप से काम कर सके, तब तक नहीं कायम हो सकता जब तक कि सारा समय देने वाला और वेतन भोगी एक नेता उसके लिये न हो जैसा कि इंग्लैंड में तथा अन्य देशों में है।

आप जानते हैं कि इंग्लैंड में जब तक अनुदार दल वाले या सम्पन्न लोग विपक्षी दल के रूप में थे, वहां विपक्षी दल के नेता को वेतन देने की जरूरत नहीं थी। पर ज्योंही मजदूर दल वालों ने विपक्षी दल का स्वरूप ग्रहण किया—और मैं साहसपूर्वक कह सकता हूं कि यहां भारत में केवल समाजवादी या कम्यूनिस्ट दल ही विपक्षी दल का स्वरूप ग्रहण कर सकता है—संसद ने विपक्षी दल के नेता के लिये एक वेतन निश्चित कर दिया है। भारत वर्ष में, जैसा कि मैं कह चुका हूं, केवल मध्यवर्ग के लोग ही विपक्षी दल का निर्माण कर सकते हैं और उस वर्ग से आप आशा नहीं कर सकते कि वह अपना एक ऐसा आदमी कुर्बान कर देगा जो बिना किसी वेतन के ही अपनी सारी

[श्री जैड.एच. लारी]

शक्ति, अपना सारा समय विपक्षी दल के संगठन में लगा सके। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं कि एक प्रभावी दल के निर्माण के हित में यह जरूरी है कि यथा शीघ्र अपने विधान में एक ऐसा प्रावधान लिपिबद्ध कर लें जैसा कि मैंने अभी-अभी सुझाया है।

किंतु, जैसा कि मैंने आरंभ में ही सुझाया है, गत दस वर्षों में यहां केन्द्रीय विधान-मंडल में या प्रांतीय विधान-मंडलों में कहीं भी कोई प्रभावी विपक्षी दल नहीं रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कई जिम्मेदार व्यक्तियों ने ऐसी बातें कहीं हैं जिनका मतलब यह होता है कि राज्य और अधिकारारूढ़ दल दोनों एक ही चीज हैं। इस आशय की जो बातें कहीं गई हैं वह मुझे मालूम हैं पर यहां उनको सभा के समक्ष रखकर मैं गलतफहमी नहीं पैदा करना चाहता। किंतु यही सभी जानते होंगे कि प्रधान मंत्रियों तक ने—अवश्य ही केन्द्र में नहीं किंतु प्रांतों में—ऐसी बातें कही हैं जिनसे यही आभास मिलता है कि सरकार की यानी अधिकारारूढ़ दल की आलोचना करना मानो राजद्रोह है। किंतु अगर आप मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं तो इससे विपक्षी दल के अस्तित्व को विधान में स्वीकृति मिल जाती है और इसका नतीजा यह होगा कि आज देश में जो यह गलत ख्याल फैला हुआ है, कि सरकार की आलोचना का मतलब है उसके विरुद्ध विरोधभाव पैदा करना, वह जाता रहेगा।

इस प्रावधान को मैं जो विधान में लिपिबद्ध कराना चाहता हूं उसका एक दूसरा कारण भी है और वह यह है कि हम संसदात्मक लोकतंत्र का श्रीगणेश करने जा रहे हैं और प्रारंभ में ही हमें एक ऐसी स्थिति नहीं पैदा करनी चाहिये जिसमें एक दलीय शासन स्थायी रूप से आसीन हो जाये और वह यह समझने लगे कि वह अब सम्यक् रूप से अधिकारारूढ़ हो गया है और उसे सदा अधिकारारूढ़ बने रहना है। देश में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन लाना आज नितांत आवश्यक है। मैं ऐसे अनेक भाषणों का हवाला दे सकता हूं जिनसे अधिकांश जनता के मन में यह ख्याल पैदा हो गया है कि राज्य और अधिकारारूढ़ दल दोनों एक ही चीज हैं और यह कि अधिकारारूढ़ दल की आलोचना का मतलब ही है राज्य की जड़ को कमजोर करना। यही कारण है कि इंग्लैंड में विपक्षी दल को भी सम्राट के नाम से याद किया जाता है और उसे ''हिज मेजेस्टीज अपोजीशन'' (His Majesty's Opposition) कहते हैं। इन शब्दों से निर्वाचकों के दिमाग में तुरन्त यह ख्याल पैदा हो जाता है कि विपक्षी दल के नेता का भी अपना एक कर्त्तव्य है और जो भी कार्य वह विपक्षी दल के नेता की हैसियत से करता है उसे अपना कर्त्तव्य समझकर ही करता है। यही ख्याल यहां देशवासियों के मन में मैं अपने इस संशोधन के द्वारा पैदा करना चाहता हूं। अगर यह संशोधन विधान में रख दिया जाता है तो इससे हर आदमी यही समझेगा कि जब खुद विधान में विपक्षी दल के नेता के अस्तित्व को मान्यता दी गई है और जब वह नेता सरकार की आलोचना करता है और देश में सर्वत्र सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करता है और अधिकारारूढ़ दल के कुकार्यों के विरुद्ध लोकमत पैदा करता है तो जनता यही समझेगी कि वह अपने विधान-बद्ध कर्त्तव्य का पालन कर रहा है।

तीसरा कारण यह है, जैसा कि मैंने बताया है कि किसी प्रभावी विपक्षी दल के अभाव में विधान-सभा बिल्कुल ही निर्जीव हो जायेगी। न केवल सभा ही निर्जीव हो जाती है बल्कि, जैसा कि कतिपय पत्रों ने कहा है, विधान-मंडल सर्वथा अधीनस्थ, दब्बू और आज्ञानुवर्ती बन जाता है। क्या इससे जनता के मन में यह धारणा न उत्पन्न होगी

कि विधान-मंडल केवल एक पाखण्ड है, यह कोई भी काम नहीं करता है, इसके सदस्य सरकार की आलोचना केवल इसलिये करते हैं कि अखबारों में उनका नाम निकले? जनता यही ख्याल करेगी कि सभी संशोधनों को सदस्य वापिस ले लेते हैं और सरकार की ओर से आये हुए प्रस्ताव बिना रंचमात्र संशोधन के ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिये जाते हैं। विधान-मंडल की कार्यवाही में दिलचस्पी नहीं रह जाती और सभा सर्वथा निर्जीव सी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि संसदीय कार्यों में जनता की कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती। और जब तक जनता उसमें दिलचस्पी न ले लोकतंत्र चल नहीं सकता। ऐसी सूरत में सवाल यह पैदा होता है कि जनता में संसदीय कार्यों के प्रति रुचि क्योंकर पैदा कराई जाये? जनता के मन में यह अनुभूति कैसे पैदा की जाये कि विधान-मंडल में जो खुलकर आलोचना होती है, वहां जो बहस-मुबाहिसा होता है, उससे उनके भाग्य के भविष्य का निर्माण हुआ करता है। ऐसी दिलचस्पी जनता के मन में कौन पैदा करेगा? आज मैं यह देखता हूं कि सभी प्रांतों में विपक्षी दल का अस्तित्व धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। यहां केन्द्र की विधान-सभा में ही हम देखते हैं कि कोई विपक्षी दल नहीं रह गया है और इसके परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि कुछ व्यक्ति कहीं-कहीं लम्बी-लम्बी बातें करने लगे हैं। न जानकारी से भरी हुई कोई आलोचना ही होती है और न कोई प्रभावशील विपक्षी दल ही यहां रह गया है।

इसलिये तीसरा कारण जो मैंने आपके सामने रखा है वह इसी विचार से रखा है कि अगर आप विधान-मंडल को एक निर्जीव सभा होने से बचाना चाहते हैं, अगर आप यह चाहते हैं कि संसदीय कार्यों से और अन्ततोगत्वा-लोकतंत्र से जनता की सारी दिलचस्पी जाती न रहे तो उसके लिये जरूरी है कि आप भी यहां वही पद्धति कायम करें जो अन्य देशों में प्रचलित है।

कदम-कदम पर आप यह कहते हैं कि आप ब्रिटिश प्रणाली ज्यादा पसन्द करते हैं। आप यहां हर बात में यही कहते हैं कि सारी खूबियां, ब्रिटिश पद्धति में—वहां की दलीय-शासन व्यवस्था में ही पाई जाती हैं। अगर यही बात है—और मैं खुद महसूस करता हूं कि आपके इस कथन में बहुत कुछ सच्चाई है—तो यह जरूरी है कि ब्रिटेन की संसदात्मक लोकतंत्र की सभी अंगभूत बातों को आप भी अपनावें ताकि यह व्यवस्था यहां असफल न हो। ज्योंही ब्रिटेन निवासियों ने यह महसूस किया कि विपक्षी दल के नेता को सरकारी खजाने से वेतन मिलना ही चाहिये जिससे कि वह दल गतिमान रहे, उन्होंने फौरन इसी तरह का एक प्रावधान स्वीकार कर लिया जैसा कि मैंने सुझाया है। इसी सिद्धांत को अभी हाल में स्वीकार किया है दक्षिण अफ्रीका ने। इन सब कारणों से मैं यह महसूस करता हूं कि मैंने जो संशोधन रखा है वह सर्वथा आपके विचारने योग्य है।

इसकी आलोचना में यहां दो बातें कहीं गई हैं। एक तो यह है कि आखिर विपक्षी दल है ही कहां और उसका नेता कहां है जिसे आप वेतन देने की बात कहते हैं? इसके उत्तर में मेरा निवेदन यह है कि आपको इसके लिये स्थिति पैदा करनी होगी। सब से खतरनाक बात यहां यह है कि हमने अपने लोकतंत्र का जो श्रीगणेश किया है वह ऐसी स्थिति में किया है जबकि देश में केवल एक ही दल का अस्तित्व रह गया है और वह दल इस बात पर बद्धपरिकर है कि दूसरे शासन में आने ही न पावे। संयुक्तप्रांत में ऐसा हो चुका है और आचार्य नरेन्द्र देव जैसे व्यक्ति को वहां व्यवस्थापिका में घुसने नहीं दिया गया। अधिकारारूढ़ दल विपक्षी दल का होना वहां जरूरी नहीं समझता। इसलिये

[श्री जैड.एच. लारी]

मैं कहता हूं कि एक विधान-निर्मातृ संस्था की हैसियत से आपका यह कर्त्तव्य है कि ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें कोई एक दल विपक्षी दल का रूप ग्रहण कर सके। अगर आप यह कहते हैं ''विपक्षी दल अस्तित्व में आवे भी तो, हम उस वेतन की व्यवस्था जरूर कर देंगे'' तो इसका मतलब यह हुआ कि आप विपक्षी दल का आना पसन्द ही नहीं करते इसके लिये तो आपको ऐसी स्थिति पैदा करनी होगी जिसमें जनता यह महसूस करे कि विपक्षी दल का भी एक कर्त्तव्य है और वह भी देश की सेवा के लिये ही होता है। अब तक कि यह अनुभूति जनता में नहीं पैदा की जाती है, कोई समुचित विपक्षी दल कभी अस्तित्व में आ ही नहीं सकता।

दूसरी बात जो इसके विरुद्ध कही जाती है वह यह है कि अगर दो से ज्यादा दल हुए तब क्या होगा? अगर तीन पार्टियां हुई तो उस समय क्या किया जायेगा? आप किस दल को वेतन देंगे यह एक विचित्र तर्क है। यह तो सभी जानते हैं कि संसदात्मक पद्धति में वही दल विपक्षी दल का रूप ग्रहण करता है जिसका अधिकारारूढ़ दल के बाद बहुमत होता है। अन्य और दल, अगर दो से अधिक दल हुए तो, महज पार्टी के नाम से ही संबोधित होते हैं। इसलिये मेरे संशोधन के खिलाफ जो दो बातें कही गई हैं वह सर्वथा निराधार हैं।

जैसा कि पहले कह चुका हूं, मेरा यह संशोधन अन्य सभी संशोधनों का प्राण है। किंतु इसके दो और भाग भी हैं जिनके संबंध में मैं अब कुछ कहूंगा। अनुच्छेद 86 में कहा गया है कि संसद के सदस्यों को यह वेतन प्राप्त होगा जो संसद समय-समय पर निश्चित करे। उसमें यह भी कहा गया है कि जब तक एतद्विषयक प्रावधान नहीं बन जाता है तब तक उन्हें चालू नियमों के अनुसार अधिदेय आदि दिये जायेंगे। आखिर जब हम विधान बनाने बैठे ही हैं तो ऐसे प्रावधानों से उसे क्यों बोझिल बनावें? क्या संसद के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह अपना अधिवेशन प्रारम्भ करते ही वेतन संबंधी बिल पास कर दें? तब 1936 में उत्तरदायी विधान-मंडलों की स्थापना हुई तो इस बारे में कानून बनाने में आखिर क्या कठिनाई हुई थी? जब यह विधान-परिषद् ही अपने अस्तित्व में आई तो हमें अपने वेतनादि को निश्चित करने में भला क्या कठिनाई हुई थी?

दूसरी बात यह है कि बहुतेरे नये विधानों में वेतन की व्यवस्था विधान में ही लिपिबद्ध कर दी गई है। यह वांछनीय नहीं है कि हम इस बात को संसद पर छोड़ दें कि वह समय-समय पर वेतन निश्चित कर लिया करे। किंतु अगर आप इसे संसद पर ही छोड़ने जा रहे हैं तो आप यह तो तय ही कर दें कि सदस्यों एवं सचिवों के वेतन का अनुपात क्या रहेगा। हम यह क्यों कह रहे हैं? इसके दो कारण हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में विभिन्न वर्गों के बीच बड़ा ही आर्थिक वैषम्य है। एक तरफ आपको एक ऐसा वर्ग भी मिलेगा जिसके पास करोड़ों रुपये हैं और दूसरी ओर ऐसे अकिंचन भी मिलेंगे जिनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। विधान-मंडल के सदस्यों एवं सचिवों के वेतन में यह वैषम्य न रहना चाहिये। मैं यह नहीं चाहता कि सदस्यों और सचिवों के वेतन में कोई बड़ा अन्तर हो और सदस्यों को यह महसूस हो कि उन्हें और वेतन पाने के लिये मंत्रियों को सदा खुश रखना पड़ेगा। सदस्य एवं मंत्रियों के वेतन में कुछ साम्य रखने का एक और भी कारण है। जब आप एक बार यह निश्चय कर लेते हैं कि संसद के सदस्यों और मंत्रियों के

वेतन का अमुक अनुपात रहेगा तो मंत्रियों का वेतन तय करने में आपको सदा इसके लिये सतर्क रहना पड़ेगा कि सरकारी खजाने पर कही ज्यादा भार न पड़ जाये। अत: हमारे इस प्रावधान से दो मतलब हल होते हैं। एक तो यह कि सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन में, इसके कारण, बड़ा अन्तर न रहने पायेगा। इसमें शक नहीं कि मंत्रिगण 12 महीने काम करते हैं और संसद के सदस्य केवल चार या पांच महीने ही काम करते हैं। अगर आप इस दृष्टिकोण को सामने रखते हैं तो उस हालत में भी मैंने जो संशोधन रखा है उसके अनुसार सदस्यों एवं सचिवों (मंत्रियों) के वेतन का अनुपात प्राय: बराबर ही रहता है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में एक निश्चित अनुपात के आधार पर ही सदस्यों और मंत्रियों को वेतन दिया जाता है। अत: मैं जो कहना चाहता हूं वह यही है कि सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन में कुछ साम्य होना ही चाहिये जिससे सदस्यों के मन में, किसी भी प्रकार से लाघव-भावना न विकसित होने पावे। पहले के दो संशोधन बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं, भले ही आप उन्हें स्वीकार करें या अस्वीकार करें। किंतु तीसरे में एक बहुत ही महत्त्व का प्रश्न उठाया गया है। आशा है सभा, चाहे पार्टी का निर्णय कुछ भी क्यों न हों, उन कारणों का जिन्हें मैंने सभा के समक्ष अभी रखा है, ख्याल करेगी और इस बात पर विचार करेगी कि विपक्षी दल को विधान द्वारा मान्यता देने का जो सिद्धांत है वह कहां तक वांछनीय है। यह कह देना कि हम इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं और जब संसद बनेगी तो वह सदस्यों के वेतन को निश्चित कर लेगी, बहुत आसान है। पर सवाल यह कि जब सैकड़ों पृष्ठों और अनुच्छेदों का एक बृहत्काय विधान बना रहे हैं, जब आप हर बात को विधान में ही लिपिबद्ध कर रहे हैं और मामूली बात को आगे के लिये नहीं छोड़ रहे हैं तो आप इस प्रावधान को ही आगे के लिये क्यों छोड़ रहे हैं? इसको भी विधान में क्यों नहीं लिपिबद्ध कर देते? लोकतंत्र के हित को देखते हुए, और इस बात को देखते हुए कि देश में पार्टी हुकूमत सुचारू रूप से चल सके, यह प्रावधान वस्तुत: बड़े ही महत्त्व का है। भारत वर्ष में गत कई शताब्दियों तक निरंकुशतंत्र रहा है। हम लोकतंत्र का अपने यहां श्रीगणेश करने जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक है कि हम ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें हमारा लोकतंत्र असफल न होने पावे। हमें इसके लिये कार्यवाही करनी चाहिये कि हमारे लोकतंत्र की सफलता सुनिश्चित हो और इसके लिये सबसे जरूरी चीज यह है कि हम इस बात को सुनिश्चित बना दें कि वर्तमान विधान के प्रयोग में आने पर जब नया विधान-मंडल समवेत हो तो वहां एक विपक्षी दल अवश्य ही मौजूद रहे ताकि हमारा दलीय शासन सफलतापूर्वक चल सके।

(संशोधन नं. 1635 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 86 में, 'भारत अधिराज्य के विधान-मंडल के' शब्दों की जगह 'विधान-परिषद्' शब्द रखे जायें।''

जो शब्द अभी वहां हैं, श्रीमान्, वे अनुपयुक्त हैं। आज ऐसी कोई सभा अस्तित्व में नहीं है जिसे हम भारत अधिराज्य का विधान-मंडल कह सकें। उपायोजित भारत-शासन-अधिनियम के अनुसार तथा पार्लियामेंट एक्ट के अनुसार भी यह विधान-परिषद् ही, कतिपय प्रयोजनों के लिये, भारत-अधिराज्य के विधान-मंडल के रूप में काम करती है। विधान-परिषद् ही

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

एकमात्र विधान-मंडल है। जिसका आज अस्तित्व है और भारतीय संसद के सदस्य भी अपना उत्तराधिकार इसी विधान-परिषद् से प्राप्त करना पसन्द करेंगे बजाय इसके कि वे किसी ऐसे विधान-मंडल से प्राप्त करें जिसका कि कोई अस्तित्व ही न हो। हां किसी समय यह बात जरूरी थी कि जब यह सभा विधान निर्मातृ के रूप में बैठती थी तो उसके सदस्यों को कुछ और ही अधिदेय दिया जाता था और जब वह विधान-मंडल के रूप में समवेत होती थी तो इसके सदस्यों को कुछ दूसरा अधिदेय दिया जाता था। किंतु अब यह बात नहीं रह गई और इसके सदस्यों को समान अधिदेय ही दिया जाता है। इसलिये अब किसी तरह की कोई भी व्यावहारिक कठिनाई नहीं रह गई है। इन शब्दों के साथ मैं सभा से इस संशोधन को स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्री सन्तानम् का जो संशोधन है श्रीमान्, उसमें होना चाहिये ''भारत की विधान-परिषद्'' न कि केवल ''विधान-परिषद्'' जो वहां रखा गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 1637 वैसा ही है जैसा कि नं. 1636। अब सभी संशोधन उपस्थित किये जा चुके हैं अब मूल प्रस्ताव पर तथा संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री लारी के संशोधन पर चन्द शब्द कहने के लिये ही मैं खड़ा हो रहा हूं। संसद के सदस्यों के वेतन का विधान में कोई उल्लेख न होने की जो उनकी शिकायत है तथा उनका यह जो सुझाव है कि विपक्षी दल के नेता को एक वेतन मिलना चाहिये—यह दोनों ही बातें सार पूर्ण हैं और हमें इस पर अवश्य विचार करना चाहिये। किन्तु जब तक कि संसद के सदस्यों एवं विपक्षी पक्ष के नेता, वेतन पर विधान में कोई रोक न हो इन सब विस्तार की बातों को विधान में लिपिबद्ध करना मैं जरूरी नहीं समझता।

बहस में ऐसी बातों को लाकर जिनका सद्य: संबंध केवल उन्हीं से है—मेरा मतलब यह है कि संयुक्त प्रांतीय राजनीति से—श्री लारी ने, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवसर का प्रयोग केवल अपने चिर अभ्यस्त राग को अलापने के लिये ही यहां किया है। हम यहां विधान के मसौदे पर विचार कर रहे हैं और मुझे आश्चर्य होता है कि इस सिलसिले में, श्री लारी के सुझाव को विधान में लिपिबद्ध करके एक विपक्षी पक्ष के निर्माण के लिये हम कोई उपाय निकालें यह हमारे लिये कैसे सम्भव है। किसी विपक्षी दल के अधिकारारूढ़ होने पर विधान में कोई रोक तो लगाई नहीं जा रही है। आज एक अरसे से श्रीमान्, सन् 1937 से ही जब से कि प्रांतों में सन् 1935 के एक्ट प्रवर्तन में आया, ऐसे लोगों की ओर से जिन्हें दुर्भाग्यवश मंत्रि-मंडल में आने की या अधिकारारूढ़ की कोई भी सम्भावना नहीं है मैं यह रोना सुनता आ रहा हूं कि कहीं भी कोई विरोधी पक्ष नहीं है, कांग्रेस दल यथाशक्ति यह चेष्टा करता है कहीं विपक्षी दल बनने न पावे और यह कि जहां कहीं विपक्षी दल है भी वह अपना काम नहीं करता है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि कांग्रेस हो या अन्य कोई भी दल हो जो आगे चलकर इसका स्थान लेगा, वह कैसे विपक्षी दल का निर्माण कर सकता है? विपक्षी दल के सदस्यों को या उसके नेता

को वेतन देने से आखिर कैसे विपक्षी दल का निर्माण हो जायेगा। क्या आपका मतलब यह है कि विधान में एक ऐसा प्रावधान रख दिया जाये जिसके अनुसार, विपक्षी दल के निर्माण हेतु, एक रकम बजट में रखी जा सके? जो लोग यहां वर्तमान शासन-प्रणाली से असन्तुष्ट हैं उनसे मैं यह निवेदन करूंगा कि ठीक-ठीक यह बतावें कि वे चाहते क्या हैं? क्या वे यह चाहते हैं कि विपक्षी दल के निर्माण के लिये केन्द्रीय बजट में एक रकम खासतौर पर रख दी जाये? इस सभा में, जो कि व्यावहारिक ढंग पर सुचारू रूप से अपना काम कर रही है, इस तरह का रुदन शुरू करना एक तरह से सभा में विषयांतर उपस्थित करना है। माननीय मित्र श्री लारी ने सम्भवत: इसीलिये यह विषयांतर यहां उपस्थित किया है कि समाचार-पत्रों के पाठक यहां की कार्यवाही को बिल्कुल निर्जीव न समझें। यहां तक तो मानना पड़ेगा कि उन्होंने एक खिदमत ही की है किन्तु मेरा ख्याल है कि किसी न किसी को यह कहना ही होगा कि उनकी इस शिकायत के लिये यह न कोई उपयुक्त मौका ही और न उपयुक्त स्थान ही है। उनकी यह शिकायत कि कोई विपक्षी पक्ष नहीं है सही है पर इसके लिये अधिकारारूढ़ दल क्या कर सकता है? मैं नहीं समझता कि विधान में विपक्षी दल का उल्लेख करने से क्या लाभ है क्योंकि श्री लारी का संशोधन स्वीकृत हो जाने से ही तो विपक्षी दल का निर्माण न हो सकेगा। अच्छा मान लीजिये कि लारी साहब का संशोधन स्वीकार हो जाता है—जोकि मैं इसे सर्वथा अस्वीकार्य समझता हूं—तो क्या इससे विपक्षी दल की सृष्टि हो जायेगी? क्या वेतनभोगी होने से ही विपक्षी नेता किसी पार्टी का संगठन कर सकेगा? मान लिया कि विपक्षी नेता को वही वेतन और अधिदेय दिये जाते हैं जो कि प्रधान मंत्री को प्राप्त हैं तो इससे क्या वह एक दल संगठित करने में सफल हो जायेगा? मैं समझता हूं कि श्री लारी के लच्छेदार तर्क सभा को भ्रम में डाल देंगे और वह यही विश्वास कर बैठेगी कि वर्तमान स्थिति में किसी न किसी बात की कमी जरूर है और श्री लारी के संशोधन के स्वीकृत होने से वह स्थिति अवश्य पैदा हो जायेगी जिसका आज सर्वथा अभाव है क्योंकि श्री लारी का संशोधन ऐसा है कि साधारणत: विधान में उसे कभी स्थान नहीं मिल सकता है।

माननीय सदस्य ने इन संबंध में ब्रिटिश प्रणाली का और वहां की लोक सभा के विपक्षी पक्ष का भी उल्लेख किया है। अवश्य ही मैंने भी इस बात को गौर से अध्ययन किया है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों के वेतन का क्रमश: क्या इतिहास रहा है और वहां विपक्षी दल के नेता को जो दर्जा दिया गया है और उसको वेतन दिया जाता है उसका क्रमश: किस तरह विकास हुआ है। कई शताब्दियों के बाद यह रूढ़ियां वहां विकसित हो पाई हैं। मैं नहीं समझता कि भावी भारतीय संसद अगर विपक्षी पक्ष के नेता को वेतन देना ही वांछनीय या बुद्धिसंगत समझे तो उसे आखिर ऐसा करने में रुकावट क्या हो सकती है? मैं तो इस बात की कोई आवश्यकता नहीं देखता कि इस तरह का प्रावधान विधान में और इस अनुच्छेद के प्रसंग में जो केवल अनुमति मूलक एक अनुच्छेद है, रखा जाये। यह अनुच्छेद तो संसद को यह अनुमति देने के लिये है कि वह सदस्यों के वेतन एवं अधिदेय के बारे में भविष्य में कानून बना सकती है और उस अन्तर्वर्त्ती काल के लिये जब तक कि संसद बैठे और कानून बनाये, सदस्यों की वर्तमान स्थिति, इस अनुच्छेद के अनुसार पूर्ववत् रहेगी।

उनकी स्थिति पूर्ववत बनाये रखने के बारे में जो प्रावधान है, उस पर भी आपको आपत्ति है। मैं नहीं समझता कि इस समुचित प्रावधान पर उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है?

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

आखिर भावी संसद को प्रारम्भिक काल से इतने काम अधिक रहेंगे कि उनके महत्त्व को देखते हुए सदस्यों के वेतन अधिदेय आदि के प्रश्न बिल्कुल नगण्य से होंगे। मैं तो यह चाहूंगा कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर को अपना वह संशोधन पेश करने दिया जाये जिसमें प्रधान को यह अधिकार दिया गया है कि जब तक संसद ऐसा कानून न बना ले जिसके अनुसार कि वर्तमान स्थिति या वह स्थिति जो उपायोजित भारत-शासन-अधिनियम में रखी गई है पूर्ववत बनी रहे, अगर आवश्यक हो तो वह उनके वेतन और अधिदेय को कम बेशी कर सकता है। श्रीमान्, श्री लारी का यह अभियोग कि वर्तमान स्थिति को चालू रखने के लिये जो प्रावधान रखा गया है वह गलत है, सर्वथा निराधार है क्योंकि भावी संसद के लिये यह सम्भव न होगा कि वह समवेत होते ही छोटे-बड़े जो सैकड़ों मसले हैं उनको निपटा दे। समवेत होने के सम्भवतः दो-तीन वर्ष बाद कहीं संसद इस स्थिति में आयेगी कि वह श्री लारी के सुझावों पर कोई कार्रवाई कर सकें। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि हमारी भावी संसद और वे लोग जिनके हाथ में देश का भाग्य रहेगा, जरूर ही श्री लारी के इन सुझावों को ध्यान में रखेंगे जो उन्होंने विपक्षी दल के नेता के वेतन के संबंध में दिये हैं, अगर उनसे एक विरोधी पक्ष का—एक रचनात्मक विरोधी पक्ष का सृजन होता हो। अवश्य ही एक विरोधी पक्ष होना ही चाहिये किन्तु जैसा प्रावधान कि श्री लारी सुझा रहे हैं उसे विधान में स्थान देना मेरे ख्याल से गलत होगा। अपने संशोधन के पक्ष में आपने जो तर्क उपस्थित किये हैं वह अप्रासंगिक तो हैं ही और साथ ही यह भी है कि इस सभा का उनसे कोई संबंध नहीं है और न सभा के लिये वह बोधगम्य ही है। मैं श्री लारी के संशोधन का विरोध करता हूं श्रीमान्, और श्री संतानम् के संशोधन का तथा तदनुसार संशोधित अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री लारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है मैं उसका विरोध करता हूं और इस कारण से नहीं कि मैं किसी रचनात्मक विरोध के विरुद्ध हूं। यह अनुच्छेद अपने वर्तमान स्वरूप में यथेष्ट व्यापक है और इसके अनुसार संसद के सदस्यों के वेतनादि का प्रावधान किया जा सकता है और वस्तुतः इन बातों का इसमें प्रावधान कर दिया गया है और यह भी नहीं इसमें कहा गया है कि सभी सदस्यों के वेतन एक-समान होंगे। अगर कोई रचनात्मक विरोधी पक्ष है और उसका कोई नेता है तो, इस अनुच्छेद के अनुसार भावी संसद, इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, उसके लिये खास वेतन का या ऐसे वेतन का जो अन्य सदस्यों से अधिक हो, प्रावधान कर सकती है। जैसा कि मैं कह चुका हूं यह अनुच्छेद बहुत व्यापक है। दुनिया के किसी देश में कहीं भी कोई विधान ऐसा नहीं है जिसमें विपक्षी दल के नेता के वेतन के लिये कोई प्रावधान लिपिबद्ध किया गया हो। नियम एवं उपनियम तो संसद ही बनाती है और संसद पर यह रुकावट कहीं नहीं आती है कि वह विपक्षी दल के नेता के वेतन के बारे में कानून नहीं बना सकती। श्री लारी ने जो संशोधन रखा है उसे जरा गौर से पढ़िये, वह इस प्रकार है:

''किन्तु शर्त यह है कि संसद के सदस्यों को दिये जाने वाले वेतन केबिनेट मिनिस्टर को दिये जाने वाले वेतन की एक चौथाई से कम ओर एक तिहाई से ज्याादा न होगा।'' अपने सदस्यों का जो मूल्यांकन किया है उसके अनुसार मंत्री-मंडल का एक सदस्य संसद के तीन या चार सदस्यों के बराबर होगा और संसद के सदस्यों को इससे सदा यह रचनात्मक

प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी कि वे अपने अधिदेय को बढ़ाने के लिये सदा आन्दोलन करते रहेंगे ताकि मंत्रियों का अधिदेय भी बढ़ता चला जाये। अगर सदस्यों का अधिदेय मंत्रियों के अधिदेय के एक चौथाई से ज्यादा नहीं होगा और उस सदस्य को मिलेगा पांच सौ तो मंत्री को मिलेगा दो हजार और अगर सदस्य ने दावा किया एक हजार का तो मंत्री अधिकारी हो जायेगा चार हजार पाने का। मैं नहीं समझता कि क्यों एक चौथाई से कम या एक तिहाई से ज्यादा सदस्य को न दिया जाये। आप इसको इतना तंग या कठोर रूप क्यों दे रहे हैं? आप यह कहिये कि एक चौथाई या एक तिहाई या आधा दिया जायेगा पर एक कठोर अनुपात निश्चित करने का तो कोई मतलब नहीं है। मैं नहीं समझता कि सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन को एक निश्चित अनुपात के आधार पर ही क्यों निश्चित किया जाये।

उनके संशोधन में यह और कहा गया है कि:–''और शर्त यह है कि विपक्षी दल का नेता उस वेतन का अधिकारी होगा जो बिना केबिनेट दर्जा वाले किसी मंत्री को दिया जायेगा''। अगर सरकार यह सिफारिश कर बैठती है, केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टरों का पद हटा दिया जाये तो उस सूरत में मित्रवर श्री लारी का संशोधन बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है। ज्यों ही हमारे मंत्री बिना केबिनेट दर्जा वाले बना दिये जाते हैं, श्री लारी के सुझाव को अमल में लाने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती क्योंकि उनके संशोधन की वाक्य रचना ही ऐसी है कि उस हालत में वह लागू नहीं हो सकता। आप असलियत को क्यों नहीं देखते? 15 अगस्त सन् 1947 से यही सभा विधान-मंडल के रूप में भी काम कर रही है पर इन दो वर्षों के बीच आपने यहां कभी कोई रचनात्मक विरोध की बात देखी हैं? हां, जब हैदराबाद के संबंध में वाद-विवाद हो रहा था उस समय यहां कुछ सजीव विरोध मुझे देखने को मिला था। अन्य और किसी भी मौके पर कभी वास्तविक विरोध देखने को ही नहीं मिला। आखिर विरोधी पक्ष की क्या नीति है, उसका क्या कार्यक्रम है? साम्प्रदायिक मसलों को लेकर यहां विपक्षी दल रहा है पर क्या आप उस परम्परा को स्थायी बनाये रखना चाहते हैं? यहां कोई ऐसा वर्ग है जो सरकार के जबर्दस्त खिलाफ है और चाहता है कि हमारा राज्य सर्वथा समाजवादी बन जाये और अभी बन जाये तो यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। पर आपके सामने अभी नीति के प्रोग्राम की कोई बात तो है नहीं। फिर क्या आप उस आयरलैंडवासी के पथ का अनुकरण करना चाहते हैं जिसने अपना जहाज डूब जाने पर विपक्षी बनने की बात कही थी? किसी आयरिश का जहाज डूब गया और वह किसी टापू के किनारे जा लगा। उसने जो पहला सवाल वहां लोगों से किया वह था—''क्या यहां कोई हुकूमत भी है?'' किसी के हां में उत्तर देते ही वह फौरन बोल उठा—''तो मैं उसके विपक्षी दल का सदस्य हूं''। लारी साहब एक विपक्षी दल का निर्माण करना चाहते हैं पर मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि कोई विपक्षी दल है भी और अगर है तो वह रचनात्मक है या साम्प्रदायिक? इससे तो मैं सहमत हूं कि विरोधी पक्ष होना ही चाहिये। पर वे तो शायद साम्प्रदायिक आधार पर एक विपक्षी दल का निर्माण चाहते हैं। पर क्या ऐसी कोई साम्प्रदायिक पार्टी है जो विपक्षी दल का रूप ग्रहण कर सके? क्या आप साम्प्रदायिक तनातनी को बढ़ावा देना चाहते हैं और साम्प्रदायिक झगड़ों को जो लोग खड़ा किया करते हैं उनसे यह कहना चाहते हैं—''तुम अपना काम करते चले जाओ उलटा जिस तरह भी हो उसे अग्रसर करते रहो और मैं तुम्हें उसके लिये वेतन दूंगा पारिश्रमिक?'' मुझ आश्चर्य हो रहा है कि रचनात्मक विरोध के जो साहब आज यहां इतना हामी बन रहे है उन्हें रचनात्मक विरोध कायम करने का यथेष्ट अवसर मिला था और उन्होंने क्यों नहीं उस दिशा में कोई प्रयास पहले किया?

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

मैं यह जानना चाहता हूं कि आखिर उनकी नीति क्या है, उनका प्रोग्राम क्या है? आखिर देश का हित ही तो वे चाहते हैं? फिर मैं उनसे पूछता हूं कि कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रम से देश का जो हित होगा उससे अधिक हित क्या देश को इनके कार्यों से पहुंच सकेगा? इसलिये मैं समझता हूं कि विधान में विपक्षी दल का उल्लेख करना अनावश्यक है। आप इस बात को संसद पर छोड़ सकते हैं। अगर देश में कोई रचनात्मक विपक्षी दल प्रादुर्भूत होता है और उसका नेता वेतन संबंधी प्रावधान के अभाव से अपना सारा समय और अपनी सारी शक्ति नहीं लगा सकता है जो जनहित के लिये, अपने लोकतंत्र के हित के लिये, संसदात्मक शासन व्यवस्था के लिये और शासन संबंधी दोषों को जनता के सामने लाने के लिये जरूरी है तो मैं कहूंगा कि इसकी व्यवस्था करने के लिये हमारे पास अभी पर्याप्त समय है। अनुच्छेद का जो स्वरूप है उससे ऐसा प्रावधान करने में कोई रुकावट नहीं पड़ती है। किंतु अभी से कुछ सदस्यों को इसके प्रलोभन या उलझाव में डाल देना समुचित नहीं है। हो सकता है चार या पांच सदस्य आपस में मिल जायें और यह मांग करने लगे कि हम विपक्षी दल के रूप में सभा में योगदान करेंगे। हमारे नेता को चार हजार का वेतन मिलना चाहिये और उस रकम को वे आपस में बांट लें। अगर एक रचनात्मक विपक्षी दल विकास पाता है तो उसके लिये अवश्य प्रावधान किया जायेगा। किन्तु जब तक कि कोई रचनात्मक विरोधी पक्ष विकसित नहीं होता है, विधान में विपक्षी नेता के वेतन का प्रावधान रखकर सदस्यों के मन में प्रलोभन पैदा करना ठीक नहीं है। श्री लारी के संशोधन का विरोध मैं, उसके स्वरूप एवं सार दोनों ही बातों के ख्याल से करता हूं। उसका स्वरूप अव्यावहारिक है और सार की बात उसमें यों नहीं है कि अभी हमारे सामने कोई विरोधी पक्ष है ही नहीं। और हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि जिस तरह भी हो एक विरोधी पक्ष कायम ही हो जाये।

माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने अभी कहा है कि वह हमारे संशोधन को पसंद करते हैं। मैं संशोधन द्वारा यही कहना चाहता था कि अन्तर्वर्त्ती काल में वेतनादि के प्रश्न को प्रधान ही स्वत: निश्चित कर दे क्योंकि भारत-शासन-अधिनियम में भी एक इसी आशय का प्रावधान वर्तमान है जिसमें गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया है कि जब तक संसद द्वारा वेतनादि के संबंध में कोई प्रावधान न बन जाये, वह स्वयं अधिदेय संबंधी नियमों में परिवर्तन कर सकता है। श्री सन्तानम् का ख्याल है कि प्रधान को ऐसा अधिकार देना ठीक नहीं है। मैं भी इससे सहमत हूं कि प्रधान को विधान-मंडल के निर्णय को नहीं काटना चाहिये। किन्तु मैं समझता हूं कि जहां तक अधिदेय का प्रश्न है संसद पर ऐसी कोई रोक तो है नहीं कि उसके संबंध में अगर कोई त्रुटि है तो वह उसे दूर करने के लिये कोई कानून नहीं बना सकती। इसलिये इस तरह की कोई असाधारण शक्ति हमें प्रधान को नहीं देनी चाहिये—अत: जानबूझकर मैंने अपना संशोधन पेश नहीं किया।

मि. तजम्मुल हुसैन (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 86 में यह कहा गया है कि संसद के सदस्यों को वह वेतन दिया जायेगा जो संसद तय करे और जब तक कि संसद इस संबंध में कोई निश्चय नहीं कर देती तब तक उनको वह रकम दी जाये जो कि विधान-मंडल या विधानसभा के सदस्यों को फिलहाल दिया जाता है। माननीय मित्र श्री लारी ने इस संबंध में इस आशय का एक संशोधन रखा है कि: (1) केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टरों को जो वेतन दिया जाये उसका एक-चौथाई संसद के सदस्यों को

मिलना चाहिये। अर्थात् आपके हिसाब से हर सदस्य को वेतन के रूप में उस रकम की एक-चौथाई मिलनी चाहिये जो केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टरों को मिलती है। (2) विपक्षी दल का एक नेता होना चाहिये और उसे वही वेतन दिया जाना चाहिये जो एक स्टेट मिनिस्टर को यानी बिना केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टर को दिया जाता है। माननीय मित्र लारी के भाषण को और उनसे पहले के अन्य दो भाषणों को मैंने बड़े ध्यान से सुना है। श्री लारी का यह तर्क कि वेतन निश्चित हो जाना चाहिये बिल्कुल सही दिखाई देता है। विरोधी पक्ष का एक नेता होना ही चाहिये। श्री अनन्तशयनम् आयंगर की दलील यह है कि इस समय विरोधी पक्ष के नेता के लिये प्रावधान न होना चाहिये क्योंकि वर्तमान दल साम्प्रदायिक आधार पर बने हैं। किन्तु भविष्य में तो साम्प्रदायिक गुट होंगे नहीं क्योंकि स्थानों के संरक्षण की हम व्यवस्था नहीं करने जा रहे हैं और अगर उसकी व्यवस्था भी की गई तो वह पृथक् निर्वाचन के आधार पर नहीं की जायेगी। हर आदमी यह महसूस करता है कि विरोधी पक्ष का एक नेता होना ही चाहिये।

दूसरी ओर श्री लारी के संशोधन में एक त्रुटि है और वह यह है। जहां कहीं भी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के आधार पर संसदें हैं वहां विरोधी पक्ष के नेता भी होते हैं और संसद के सभी सदस्यों को वेतन दिया जाता है। किन्तु उनके वेतन का निश्चय खुद विधान नहीं करता है। हर देश में संसद ही, विरोधी पक्ष के नेता एवं संसद के सदस्यों का वेतन निश्चित करती है। दक्षिण अफ्रीका में देखिये या कनाडा में, आस्ट्रेलिया अथवा न्यूजीलैंड जहां भी देखिये हर जगह संसद ही यह सब निश्चित करती है। जब हर जगह संसद ही पर यह छोड़ा गया है तो हमीं क्यों विधान में इसका उल्लेख करके एक नई बात पैदा करें? आखिर विधान में इन सब विस्तार की बातों का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है? विधान में हमें केवल सिद्धांत ही रखना चाहिये और इस आशय का अनुच्छेद विधान में आ ही गया है कि सदस्यों को वेतन दिया जायेगा। वेतन के रूप में क्या रकम दी जायेगी इसका फैसला संसद करेगी न कि यह सभा। इस कारण से मैं इस संशोधन से सहमत नहीं हूं। मैं एक मौखिक संशोधन रखना चाहता हूं श्रीमान् और उस संशोधन से माननीय मित्र लारी का काम आसान हो जायेगा और सारी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी। मेरा सुझाव यह है कि बजाय इसके कि सदस्यों का वेतन मिनिस्टरों के वेतन का एक-चौथाई रखा जाये, सदस्यों और मिनिस्टरों दोनों को समान वेतन दिया जाये। उस सूरत में मेरा ख्याल है सभी खुश हो जायेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): मेरा विश्वास तो यह है श्रीमान्, कि माननीय मित्र लारी ने जो संशोधन रखा है वह देश के लिये अनुचित है और वह एक दुर्भाग्यपूर्ण संशोधन है।

विधान के अनुच्छेद 86 के प्रावधान पर ही पहले मैं विचार करूंगा। इसमें कहा गया कि संसद के सदस्य वह वेतन और अधिदेय पाने के अधिकारी होंगे जिन्हें संसद विधि द्वारा निश्चित करे और जब तक तद्विषयक प्रावधान नहीं बन जाते। तब तक उन्हें वही अधिदेय और वेतन प्राप्त होंगे जो इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से पहले उन्हे मिलते थे।

[श्री विश्वनाथ दास]

अगर मिस्टर लारी को इसके लिये इस तरह आन्दोलन ही करना था तो उनके लिये उचित मार्ग तो यह था कि चुनाव के बाद जब विधान की शर्तों के अनुसार संसद में कोई विधि प्रस्तावित होती तो वह संसद के समक्ष अपनी यह बातें पेश करते।

विधान में, श्रीमान्, वेतन एवं अधिदेय का प्रावधान किया गया है। पर जहां तक मेरा निजी संबंध है मैं इसमें विश्वास नहीं करता और न संसदात्मक गणतंत्र के उन हिमायतियों से मेरा मतैक्य ही है जो यह कहते हैं कि संसद के सदस्य उस काम के लिये जो कि वह अपने निर्वाचन क्षेत्र में या यहां सभा भवन में करते हैं, उन्हें वेतन मिलना ही चाहिये। मेरा विश्वास तो यह है बिना वेतन उन्हें अधिदेय दिया जाये यही वांछनीय मार्ग है। किन्तु हमें इस सभा के माननीय सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता के आगे सर झुकाना ही चाहिये और इसीलिये हम इस बात पर सहमत हो गये हैं कि वेतन तथा अधिदेय की दर संसद आगे चलकर, विधि द्वारा निश्चित करेगी। ऐसी स्थिति में, जहां तक कि मेरा निजी संबंध है, मैं खुद और मेरी विचारधारा के कतिपय मित्र यह महसूस करते हैं कि वेतन का सवाल उठना ही नहीं चाहिये पर हम लोगों का सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता के सामने नतमस्तक होना ही पड़ता है। पर यह बात कहने की तो किसी को इच्छा ही नहीं हो सकती कि जिस संसदात्मक लोकतंत्र की हम अपने देश में स्थापना करने जा रहे हैं उसे विधान में विरोधी पक्ष की मान्यता को स्वीकार करना चाहिये—स्वीकार ही नहीं, बल्कि विधान में इस बात का भी प्रावधान हो जाना चाहिये कि विरोधी पक्ष के नेता को अमुक हिसाब से वेतन दिया जायेगा। माननीय मित्र लारी से यह कहूंगा कि दुनिया के किसी भी प्रवर्तमान विधान की वह नजीर तो मुझे पेश करें जिसमें विरोधी पक्ष के नेता के लिये किसी एक निश्चित वेतन का प्रावधान किया गया हो। यह सच है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट विरोधी पक्ष के नेता को एक निश्चित वेतन अवश्य दिया जाता है और उसका वही दर्जा होता है जो वहां के मिनिस्टर का है। पर विधान में इसके लिये एक खास प्रावधान रखने से इस बात का क्या संबंध है? संसदात्मक लोकतंत्र में दो दलों का होना जरूरी होता है श्रीमान्, एक तो बहुमत वाला दल होता है जो अधिकारारूढ़ रहता है और दूसरा अल्पमत प्राप्त दल जो विरोधी पक्ष के रूप में काम करता है जिससे शासन का काम समुचित रूप से चले। इसलिये विरोधी पक्ष एक अनिवार्य और आवश्यक बुराई है। संसदात्मक गणतंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिये विरोधी पक्ष का होना आवश्यक है भले ही वह एक बुराई हो। किन्तु यह तो कोई औचित्य नहीं है कि इसके लिये विधान में हम एक ऐसा खास प्रावधान रखें जैसा कि संशोधन द्वारा सुझाया गया है। आखिर भविष्य में आने वाली बातों के लिये हमें बहुत कुछ तो पूर्ववर्त्ती दृष्टांतों के आधार पर ही व्यवस्था करनी होगी। मैं तो इस बात का कोई भी औचित्य नहीं देखता कि विधान में विरोधी पक्ष को मान्यता क्यों दी जाये और विरोधी पक्ष के नेता के वेतन का प्रावधान वहां क्यों रखा जाये।

विरोधी पक्ष के नेता के संबंध में इतना कह लेने के बाद अब मैं श्री लारी के उस प्रस्ताव की ओर आता हूं जो उन्होंने संसद के सदस्यों के वेतन की दर के संबंध में रखा है। मैं तो यह अनुभव करता हूं, हमारे जैसे देश के लिये यह प्रस्ताव सर्वथा

अनुचित है। हमारे देश में, जो लोग चोटी पर हैं उनकी आमदनी में और उन लोगों की आमदनी में, जो बिल्कुल ही निम्न स्तर पर है, गरीब हैं और बड़ा भारी अन्तर है और वेतन के लिये जो दर आपने प्रस्ताव में रखी है उससे यह वर्तमान वैषम्य सदा के लिये स्थायी हो जायेगा। अतः यह प्रस्ताव तो मेरी कल्पना के बाहर है। आपका कहना है कि मिनिस्टरों को जो वेतन मिले उसके एक चौथाई और एक तिहाई के बीच सदस्यों को वेतन दिया जाये अगर मंत्रियों का वर्तमान वेतन जो तीन हजार माह वार रखा गया है वही रहता है तो सदस्यों को, आपके प्रस्ताव के अनुसार 750 से लेकर एक हजार रुपये माह वार मिलना चाहिये। मैं माननीय मित्र से यह पूछना चाहता हूं कि अपने देश की अवस्था को देखते हुए क्या उनके लिये यह उचित है कि सदस्यों के लिये 750 से एक हजार रुपये माहवार तक के वेतन का वह प्रस्ताव करे?

***श्री जैड.एच. लारी:** एक हजार रुपये तो हम सबको फिलहाल मिल ही रहे हैं।

***श्री विश्वनाथ दास:** हो सकता है, अगर वह कई समितियों के सदस्य हैं और नियमित रूप से सभा में उपस्थित रहते हैं तो उन्हें एक हजार मिलता हों। उस सूरत में भी मैं उनसे कहूंगा कि उन्होंने जो कुछ कहा है वह सही नहीं है। जहां तक मैं जानता हूं सभा का कोई भी सदस्य तेरह सौ रुपया बतौर अधिदेय के नहीं लेता है। मैं उन सदस्यों में हूं जिन्होंने यह समझकर कि रोजाना 45 रुपये बहुत ज्यादा हैं, केवल तीस रुपया रोजाना लेना पसन्द किया है और फिर एक साधारण कर्मी हूं और मुझे 45 रुपये रोज की जरूरत नहीं है। मैं अपने ऐसे सदस्यों को भी जानता हूं जो विधान-मंडल से रकम पाते ही उसे सीधे अपनी जिला कांग्रेस कमेटी को दे देते हैं और फिर जिला कांग्रेस कमेटी से वेतन के रूप में वह रकम पाते हैं जो कमेटी ने सदस्यों के लिये निश्चित कर रखा है। वह अपना सारा समय ही सार्वजनिक कामों में लगाते हैं पर वेतन लेते हैं उतना ही जो उनकी जिला कांग्रेस कमेटी ने तय कर रखा है न कि वह रकम जो उन्हें विधान-मंडल से मिलती है। ऐसी स्थिति में, मेरा ख्याल यह है कि सभा के समक्ष ऐसा प्रस्ताव लाकर मेरे मित्र ने अपने निर्वाचकों के प्रति और देश के प्रति बड़ा अन्याय किया है।

जहां तक मेरा अपना संबंध है श्रीमान्, मैं यह महसूस करता हूं कि इस संशोधन की किसी भी बात से मैं कोई भी सरोकार नहीं रख सकता। मैं इसे सर्वथा अनावश्यक, अवांछनीय बल्कि दुर्भाग्यपूर्ण समझता हूं। इसलिये मैं अनुच्छेद 86 का, जिस रूप में कि अभी यह है, समर्थन करता हूं। किन्तु मेरी अपनी प्रबल इच्छा यही है कि सभा के माननीय सदस्यों के लिये वेतन की कोई दर निश्चित नहीं की जानी चाहिये और सभा उन्हें जो भी अधिदेय देना तय करे उससे सर्वथा सन्तुष्ट होकर देश की सेवा के लिये सदा स्वेच्छया तैयार रहना चाहिये।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, श्री लारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण संशोधन है और जिन सदस्यों ने उसका विरोध किया है उन्होंने विरोध के दो कारण बतायें हैं पहला तो यह कि दुनिया के किसी भी विधान में ऐसा कोई प्रावधान लिपिबद्ध नहीं किया गया है। दूसरा कारण यह बताया गया है कि विरोधी पक्ष के नेता का वेतन रूढ़ियों के आधार पर स्थिर किया

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

जाता है। मैंने बड़े ध्यान से श्री दास की वक्तृता सुनी है, जिन्होंने यह विचार किया है कि विरोधी पक्ष का होना एक आवश्यक बुराई है। संशोधन की उपयोगिता के संबंध में अगर कोई सन्देह भी था तो श्री दास की वक्तृता सुनने के बाद वह सन्देह जाता रहा है और अब मैं अच्छी तरह यह समझ गया हूं कि इस देश में ऐसे लोग हैं जो इस व्यवस्था को एक आवश्यक बुराई समझते हैं और इसलिये इस व्यवस्था को खुद विधान में लिपिबद्ध करना आवश्यक है। श्री कृष्णमाचारी का कहना है कि यह कोई सैद्धांतिक प्रश्न नहीं है, यह तो महज तफसील की एक बात है मेरा निवेदन यह है कि जब इस देश में विरोधी पक्ष का होना बर्दाश्त ही नहीं किया जाता है, जब उसकी उपेक्षा की जाती है, बल्कि उसे साधारणत: दंडित किया जाता है तो ऐसी हालत में तो यह जरूरी है कि विधान द्वारा विरोधी पक्ष को मान्यता दी जाये। विश्व का ऐसा कोई भी लोकतंत्र नहीं है जो विरोधी पक्ष के अभाव में सुचारू रूप से काम कर सकता हो। अधिकारारूढ़ दल की गलतियों को और उसकी खामियों पर विरोधी पक्ष द्वारा प्रकाश पड़ना ही चाहिये। और विरोधी पक्ष के कारण अधिकारारूढ़ दल को सदा अपने कार्यों में सतर्क रहना होगा। भारतीय लोकतंत्र तो एक नवजात लोकतंत्र है और यहां हम यह देखते हैं कि हर प्रांत में यहां तक कि केन्द्र में भी विरोधी पक्ष को लोग बर्दाश्त नहीं करते और उसकी कोई कद्र नहीं की जाती है। आज प्रांतों में क्या हो रहा है? पब्लिक सेफ्टी एक्ट और अन्य कानूनों के बल पर विरोधी पक्ष के नेताओं को या उन लोगों को जो कि विरोधी पक्ष में है धमकाया जाता है। केवल इतना ही नहीं, विरोधी दल प्रांतों में लुप्त होता जा रहा है। आखिर इसका कारण क्या है? इसका एकमात्र कारण यही है कि अगर कोई मुसलमान विरोध करता है तो सरकार यह कहती है कि वह मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्रीय सिद्धांत में विश्वास रखता रहा है। उससे यह कहा जाता है कि अगर तुम अपना विरोध बन्द नहीं करते हो तो उसको बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। और कोई समाजवादी विरोध करता है तो यह कहा जाता है कि वह सरकार का शत्रु है और अगर कोई कम्युनिस्ट विरोध करता है तो उसे गुंडा बताया जाता है। यह तो अवस्था है जो आज प्रांतों में तथा केन्द्र में देखने को मिलती है। इसलिये विधान द्वारा विरोधी पक्ष को मान्यता देना अब जरूरी हो गया है। मिस्टर लारी ने कहा है कि यह एक सिद्धांत का प्रश्न है। यह वेतन का प्रश्न नहीं हैं मेरा कहना यह है कि अगर विपक्षी दल के नेता को एक वेतन दिया जाता है तो वह अपना सारा समय सरकार की आलोचना में, उसकी गलतियों और असफलताओं के विरुद्ध जनमत तैयार करने में लगा सकेगा। इसलिये मेरा कहना तो यही है कि अब मौका आ गया है कि हम विधान द्वारा विरोधी पक्ष की उपादेयता को स्वीकार करें। मिस्टर लारी का संशोधन अगर आप स्वीकार कर लेते हैं तो उसका मतलब यह होता है कि आप यह स्वीकार करते हैं कि देश में एक रचनात्मक विरोधी पक्ष का होना बड़ा जरूरी है। श्री आयंगर ने कहा है कि रचनात्मक विरोध को तो सहन करना ही होगा। किन्तु इस बात का फैसला कि कौन सा विरोध रचनात्मक है और कौन सा अरचनात्मक, अधिकारारूढ़ दल पद छोड़ा जाता है तो मेरा अपना ख्याल तो यह है कि हर विरोध को, हर आलोचना को वह अरचनात्मक ही कहेगा और उसकी अवहेलना ही करेगा। इसलिये मैं श्री लारी के संशोधन का समर्थन करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह उसे स्वीकार करे।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं मिस्टर लारी के संशोधन का समर्थन करता हूं, जहां तक कि इसकी दूसरी परन्तुका का संबंध है। सैद्धांतिक दृष्टि से मैं इसका समर्थन करता हूं और सभा से भी मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह वेतन संबंधी प्रश्न पर अवश्य विचार करे। एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न इसमें उठाया गया है और इसी कारण मैं इसका समर्थन करता हूं। मैं सभा से पहले यही अनुरोध करूंगा कि वह उस सिद्धांत पर विचार करे जो इसमें सन्निहित है। वेतन संबंधी प्रश्न तो एक गौण विषय है पर महत्त्व की बात विधान द्वारा विरोधी पक्ष को मान्यता का दिया जाना है, इस संशोधन में जो महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक प्रश्न सन्निहित है वह यही कि विधान में इसका उल्लेख होना चाहिये। इस सैद्धांतिक प्रश्न के सामने वेतनादि का प्रश्न सर्वथा नगण्य है। इसलिये सभा का ध्यान मैं प्रश्न के इसी महत्त्वपूर्ण पहलू की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

सभा के तीन गम्भीर एवं विवेकशील सदस्यों ने—श्री टी.टी. कृष्णमाचारी, श्री अनन्तशयनम् आयंगर एवं श्री विश्वनाथ दास ने—इस संशोधन का विरोध तो किया है पर ऐसा करने में उन्हें बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के खिलाफ समझाने में यहां उन्हें काफी दिक्कत उठानी पड़ी है। श्री कृष्णमाचारी हैं तो एक अर्थशास्त्र विशेषज्ञ पर इस संशोधन के खिलाफ कानूनी दलील पेश करने में उन्हें काम करना पड़ा एक वकील के रूप में। हां, मिस्टर आयंगर एक बड़े कानूनदां हैं पर मुझे खेद है वह यहां एक साधारण वकील से ऊपर नहीं उठ सके। लोकतंत्रात्मक संसद में विरोधी पक्ष का होना एक नितांत आवश्यक बात है, श्रीमान्। लोकतंत्रीय संस्थाओं के लिये विरोधी पक्ष का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि हमारा राज्य लोकतंत्रीय हो और वह एक सर्वसत्ताधारी गणतंत्र हो और यही रूप हम उसको देना चाहते हैं। अगर आप यहां विरोधी पक्ष का होना सुनिश्चित नहीं बना सकते तो अपने इस विधान को लोकतंत्रीय विधान कह कर एक ''अलोकतंत्रीय सर्वसत्ताधारी गणतंत्र'' का विधान कहिये। लोकतंत्र की वास्तविकता इसमें है कि वहां विरोधी पक्ष हो। श्री कृष्णमाचारी ने कहा है कि वेतन की व्यवस्था से ही विरोधी पक्ष का आखिर निर्माण तो हो नहीं जायेगा। आपका कहना है कि विरोधी पक्ष शनैः शनैः विकास में आता है और यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसको कि हम निर्माण करके स्थापित कर सकते हों। किन्तु आप भूल जाते हैं कि वेतन की व्यवस्था से विरोधी पक्ष को एक दर्जा मिल जाता है और इससे उसे एक मान्यता भी प्राप्त हो जाती है। विधान-परिषद् के सदस्य जब विधान-मंडल के रूप में बैठकर सरकारी प्रस्तावों का विरोध करना चाहते हैं तो उन्हें वैसा करने में बड़ी ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। मैं तो कहूंगा कि एक प्रभावशाली विरोधी पक्ष के न होने से विधान-मंडल बिल्कुल बिगड़ जाता है। विरोधी पक्ष के रहने से बहुमत प्राप्त दल में सहनशीलता पैदा हो जाती है और विपक्षी दल के न रहने से उनकी वह सहनशीलता सर्वथा जाती रहती है। इसका नतीजा यह होता है कि जब कभी उनकी कोई आलोचना की जाती है तो अधिकारारूढ़ दल का कोई न कोई सदस्य अधीर हो उठता है। ज्योंही कोई तर्क उनके विरुद्ध उपस्थित किया जाता है कि सरकार की तथाकथित प्रतिष्ठा संकट में पड़ने लग जाती है और अधिकारारूढ़ दल उन तर्कों का विरोध करता है, उन पर आक्रोश प्रकट करता है और उनके प्रति उपेक्षा एवं घृणा का व्यवहार बरतता है। कल ही मैंने एक प्रस्ताव रखा था और मेरी समझ से वह सर्वथा युक्तिसंगत था पर डा. अम्बेडकर

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

ने उसे बिल्कुल व्यर्थ और अयुक्तिसंगत बतला दिया। इसके लिये डा. अम्बेडकर को मैं दोषी ठहराता हूं। आज अधिकारारूढ़ दल का जबर्दस्त बहुमत है और उसके मुकाबले में जो विरोधी पक्ष है वह बहुत ही निर्बल है। सुतरां ऐसी स्थिति में यह होना स्वाभाविक है। किसी प्रभावशाली विपक्षी दल के न होने से ही ऐसी स्थिति पैदा होती है। सरकार के पीछे एक विशाल दल है जिसका कि उसे विश्वास प्राप्त है और उसी के फलस्वरूप आज यह स्थिति पैदा हुई है और उसी के कारण अधिकारारूढ़ दल में विपक्षी दल के प्रति उपेक्षा एवं असहिष्णुता का भाव उत्पन्न हो गया है। मैं यह कहूंगा श्रीमान्, कि एक प्रभावशाली विरोधी पक्ष के न होने से सरकार को इस बात का प्रोत्साहन मिल जाता है कि वह निर्द्वन्द होकर जनमत की बिना कोई परवाह किये जो चाहे करे। इसका परिणाम क्या होता है? बाहर वालों को अर्थात् जनता को यहां की कार्यवाही में कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती है। वह यह समझते हैं कि यहां सरकार जो कुछ कहे उसके पक्ष में 'हां' कहने के सिवाय सदस्यों को और कोई काम नहीं है। मैं निवेदन करूंगा कि वास्तविक लोकतंत्र के विकास के लिये यह हितकर नहीं है। प्रांतों में सरकारों का बहुत ही अरचनात्मक विरोध हुआ है। मैं यही चाहता हूं कि कांग्रेस का शासन बना रहे। इस समय कोई दूसरा दल ही नहीं है जिसकी हुकूमत की मैं कल्पना कर सकूं। अत: मेरा अपना यही ख्याल है कि अभी कुछ समय तक कांग्रेस को ही अधिकारारूढ़ रहना चाहिये। किन्तु इसमें मैं एक शर्त रखना चाहता हूं और वह यह है कि इसे इसका पूरा प्रयास करना चाहिये और इसके लिये प्रोत्साहन देना चाहिये कि कोई न कोई विरोधी पक्ष यहां कायम हो। इस तरह से एक विरोधी पक्ष का निर्माण हो सकता है और होना चाहिये। मैं तो कहूंगा कि विरोधी पक्ष के नेता को न केवल पर्याप्त वेतन ही मिलना चाहिये बल्कि उसे एक सचिवालय की सारी सुविधायें प्राप्त होनी चाहियें। जिन सदस्यों ने सरकार के विरोध का कड़वा और अप्रिय कार्य करना पड़ा है उन्हें सचिवालय संबंधी सुविधाओं के न रहने से अपने काम में बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ी है। और ऐसी स्थिति में कोई विपक्षी दल यहां विकसित नहीं हो पाया है। अत: मैं तो कहूंगा कि देश प्रेम के नाते, सभा के प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात की कोशिश करे कि यहां एक प्रभावशाली विपक्षी दल विकसित हो जाये। अगर आप चाहते हैं कि आपकी गवर्नमेंट एक स्थायी गवर्नमेंट हो, अगर आप चाहते हैं कि जनता की निगाह में आपका सम्मान बना रहे, अगर आप चाहते हैं कि जनता में कांग्रेस विरोधी भावना न पैदा हो जो कि आज बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है, अगर आप यह समझते हैं कि आपको जनता को उन शक्तियों के साथ जाने से रोकना चाहिये जो अशांति और अव्यवस्था उत्पन्न कर रही हैं तो जरूरी है कि आप इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करें। आपके लिये यह बहुत जरूरी है कि आप एक विरोधी पक्ष यहां कायम करें और अगर जरूरत हो तो स्वेच्छा से आप में से कुछ लोगों को विपक्षी दल में शामिल हो जाना चाहिये ताकि वह सुदृढ़ और रचनात्मक रहे। विधान में इसको स्थान देकर और प्रोत्साहन देकर ही आप एक रचनात्मक विरोधी पक्ष का निर्माण कर सकते हैं। और मिस्टर कृष्णमाचारी का कहना यह है कि विधान में इसका प्रावधान होना ही नहीं चाहिये। आप तो यहां तक कहते हैं कि परम्परा एवं रूढ़ि के आधार पर ही विरोधी पक्ष का विकास होना चाहिये। अवश्य ही इंग्लैंड के संबंध में यही बात है और वहां हर पद्धति रूढ़ि के आधार पर ही विकसित हुई है। वहां विरोधी पक्ष के नेता

को दो हजार पौंड वेतन मिलता है और एक सचिवालय की सारी सुविधायें उसे प्राप्त हैं। किन्तु जहां तक हमारे विधान का संबंध है वह तो एक लिपिबद्ध विधान है और जब उसमें हमने मंत्रियों के वेतन एवं अधिदेय का खासतौर पर उल्लेख किया है और अगर विरोधी पक्ष के नेता के वेतन का हम उसमें उल्लेख नहीं करते हैं तो कायदे के मुताबिक उसका भाष्य यही किया जायेगा कि विरोधी पक्ष के नेता को विधान कोई वेतन देना नहीं चाहता है। इसलिये मैं तो यही समझता हूं कि विधान में विरोधी पक्ष के नेता के वेतन का उल्लेख खासतौर पर होना चाहिये। हां, वेतन की रकम क्या हो इसे तथा अन्य विस्तार की बातों को विचारार्थ आप भले ही छोड़ दें।

इसलिये मैं माननीय सदस्यों से यह कहूंगा कि पहले वह इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के संबंध में ही निश्चय कर लें। उन्हें पहले यही तय कर लेना चाहिये कि शासन-व्यवस्था की सुरक्षा के लिये वह विरोधी पक्ष का निर्माण करने पर एवं उसे प्रोत्साहन देने के लिये तैयार है कि नहीं। मूल सिद्धांत को तय कर लेने पर विरोधी पक्ष के नेता के वेतन की बात तय करें। सिद्धांत की बात अगर स्वीकार कर ली जाती है तो वेतन निश्चित करने का प्रश्न तो बहुत गौण है।

मैं यह कहूंगा श्रीमान्, कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने इस संबंध में जो तर्क रखे हैं वह मुझे कुछ आश्चर्यपद से ही लगे। उनका कहना है कि संशोधन में विरोधी पक्ष के नेता का वेतन और बिना केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टर का वेतन समान रखा गया हैं। इस बात को लेकर आप यह पूछते हैं कि मान लीजिये हम बिना केबिनेट दर्जा वाले मंत्रियों के पद को उठा देते हैं तो उस सूरत में विरोधी पक्ष के नेता का क्या होगा? उसका यह प्रश्न तो ऐसा मालूम पड़ता है मानो एक वकील की तरह वह वाकचातुर्य द्वारा असल बात को टाल रहे हैं वह इस बात को भूल जाते हैं कि बिना केबिनेट दर्जा वाले मंत्रियों को नियुक्त भले ही न किया जाये पर उनके पदों का निर्माण तो हम कर ही सकते हैं। मैं कह चुका हूं कि यह बात कि विरोधी पक्ष के नेता का वेतन कितना हो या वेतन संबंधी प्रावधान किस रूप में रखा जाये, कोई खास महत्त्व नहीं रखती। अस्तु, मैं यही महसूस करता हूं कि उनका तर्क सर्वथा निराधार है।

बहस मुबाहिसे के सिलसिले में इन तीन विशिष्ट माननीय सदस्यों ने मूल बात के संबंध में—विरोधी पक्ष के नेता को मान्यता दी जाये इस के बारे में—कुछ नहीं कहा। मुझे खुशी है कि एक संगठित विरोधी पक्ष का होना आवश्यक है, इस बात पर इन लोगों ने कोई आपत्ति नहीं व्यक्त की।

श्री आयंगर की एक दूसरी दलील यह रही है कि वर्तमान विरोधी पक्ष के पास अपना कोई खास प्रोग्राम नहीं है। मैं सविनय उनसे निवेदन करूंगा कि इस समय कोई विरोधी पक्ष वर्तमान में नहीं है इसलिये उसके प्रोग्राम का कोई सवाल ही नहीं उठता इस स्थिति के निराकरण के लिये ही तो यह संशोधन रखा गया हैं। मैं यह मानता हूं कि इस समय कोई संगठित विरोधी पक्ष नहीं है, उसका कोई कार्यालय नहीं है, उसके पास धन नहीं है, उसके पास पर्याप्त बल नहीं है कि सुसंगठित कांग्रेस सरकार से मोर्चा ले। मैं तो यह कहता हूं कि विरोधी पक्ष के बहुत से सदस्य यह चाहते हैं कि जहां उनका सरकार से मतैक्य है उसमें वे उसका साथ दें और जहां वे यह समझते हैं कि सरकार गलती कर रही है उसका वे विरोध करें। जहां मतैक्य है वहां वे सरकार के साथ हैं और जहां जरूरत समझेंगे वे उसका विरोध करेंगे। श्री आयंगर ने यह भी कहा है कि सिवाय हैदराबाद

[श्री नजीरूद्दीन अहमद]

के प्रश्न के अन्य किसी प्रश्न पर यहां कभी कोई विरोध नहीं दिखाई दिया। किसी न किसी तरह और किसी न किसी रूप में यहां सभा में साम्प्रदायिकता का हौवा जरूर खड़ा किया जाता है। मैं समझता हूं श्रीमान्, कि ये दलीलें बिल्कुल लचर हैं और सारशून्य हैं। वास्तविक बात तो यह है कि यहां जो विरोधी पक्ष हैं—अगर उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं वह भले ही बिल्कुल निर्बल ही है—पर उसने अपना विरोध केवल हैदराबाद संबंधी प्रश्न तक ही सीमित नहीं रखा है। यहां बड़े-बड़े विवाद हुए हैं और मतभेद के प्रश्नों पर बड़ी बहस हुई है और अवश्य ही व्यक्तिगत रूप से कई व्यक्तियों ने अधिकारारूढ़ दल की नीति का विरोध किया है पर वह विरोध केवल हैदराबाद संबंधी प्रश्न तक ही सीमित नहीं रहा है। हिंदू-कोड-बिल के ही प्रश्न को ले लीजिये। भारतीय मुसलमानों का दृष्टिकोण इस प्रश्न के संबंध में कभी साम्प्रदायिक नहीं रहा है। सरकार के सभी रचनात्मक उपायों का मुसलमानों ने तहेदिल से समर्थन किया है। इसलिये मैं यह कहता हूं कि साम्प्रदायिकता के आधार पर अब कोई तर्क नहीं पेश किया जाना चाहिये। इस दूषित मनोवृत्ति को अब हमें समाप्त कर देना चाहिये, सदा के लिये त्याग देना चाहिये।

इसलिये मैं फिर इस बात को दुहराना चाहता हूं कि अगर आप हुकूमत के रूप में कायम रहना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि जनता आपको आदर एवं प्रेम की दृष्टि से देखती रहे तो आपको यहां एक विपक्षी दल का निर्माण करना चाहिये। आज मुल्क यह महसूस करने लगा है कि अधिकारारूढ़ दल आवश्यकता से अधिक शक्तिमान है। वस्तुतः अधिकारारूढ़ सदस्य भी मन ही मन यह अनुभव करने लगे हैं कि दल आज सर्वेसर्वा बन गया है और उसका उन पर इतना प्रचंड शासन है कि सदस्यों का कोई वैयक्तिक स्वातंत्र्य नहीं रह गया है। हाल में समाचार-पत्रों ने भी यही बात खुलकर कही है। वास्तविक बात तो यह है समाचार-पत्रों में शायद ही ऐसे बहस मुबाहिसों की रिपोर्ट प्रकाशित होती हैं जिनसे सरकार यहां बड़ी विषम स्थिति में पड़ जाया करती है। यहां तक कहा जाता है कि गैर-सरकारी तौर पर दबाव डालकर सरकार इन बातों को समाचार-पत्रों में नहीं आने देती है।

श्रीमान्, यह स्थिति तो कल्याणकारी नहीं कही जा सकती है। आप लोग देश को कहां लिये जा रहे हैं? कम्युनिस्टों के उपद्रव की लपटों से आज चीन घिरा हुआ है। बर्मा भी उनकी पकड़ में आ चुका है। कम्युनिस्टों का उपद्रव बंगाल की पूर्वी सीमा पर पहुंच चुका है। क्या आप देश को कम्युनिस्टों के हवाले कर देना चाहते हैं? अगर आप देश को कम्युनिस्टों के उत्पात से बचाना चाहते हैं तो यहां एक रचनात्मक विरोधी पक्ष की स्थापना कीजिये। इसी तरह आप देशवासियों का समर्थन प्राप्त कर सकते हैं। अन्य कोई विपक्षी दल नहीं आता है तो देशवासियों का विश्वास सरकार से उठ जायेगा और देश में अव्यवस्था पैदा हो जायेगी।

बंगाल में, मैं यह अपने निजी अनुभव के आधार पर कह रहा हूं, आज कांग्रेस सरकार के प्रति प्रांतव्यापी प्रबल आक्रोश है। वहां के मंत्रिमंडल के खिलाफ बड़े ही गम्भीर-गम्भीर अभियोग लगाये जा रहे हैं। मैं यह समझता हूं कि आज देश जिस अशांति और अव्यवस्था की ओर बढ़ता जा रहा है हमें उसे उस तरफ बढ़ने से रोकना ही चाहिये। हम सब तो

सरकार के हाथों को मजबूत बनाना चाहते हैं। हम अशांति और अव्यवस्था पैदा करने वाली ताकतों का साथ नहीं देना चाहते हैं एक रचनात्मक विरोधी पक्ष की स्थापना द्वारा ही आप आने वाले भारत को बचा सकते हैं।

मेरा ख्याल है कि श्रीमान्, जितना समय सभा का मैं लेना चाहता था उससे कुछ ज्यादा मैंने ले लिया है, पर यह मैं अनुभव करता हूं कि यह प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और जितना ध्यान हमने इसकी ओर दिया है उससे अधिक ध्यान इसके लिये अपेक्षित है। इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं संशोधन के अन्तिम अंश में जो सिद्धांत सन्निहित हैं उसका समर्थन करता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा ख्याल है कि इस एक साधारण अनुच्छेद ने सभा का आवश्यकता से अधिक समय ले लिया है और दोनों ही पक्षों ने—अवश्य ही मैं अपने इस कथन के लिये क्षमाप्रार्थी हूं—इसको लेकर ऐसे प्रश्न उठाये हैं जिनका इस अनुच्छेद से कोई संबंध नहीं है। यह अनुच्छेद बिल्कुल ही सरल है। इसमें यह कहा गया है कि सदस्यों के वेतन एवं अधिदेय के संबंध में भावी संसद समय-समय पर विधि द्वारा निश्चय करेगी। विधि का मतलब यह है कि संसद विधेयक उपस्थित करके इसका फैसला करेगी। इस बात का काफी मौका रहेगा कि हम बिल में विरोधी पक्ष के नेता के—अगर ऐसा पक्ष है—वेतन का प्रावधान कर दें और सभा के सदस्यों के वेतन एवं अन्य राज्य के अन्य अधिकारियों के वेतन में क्या अनुपात रहे, इसका भी जैसा चाहें हम निश्चय कर दें। इन सब बातों को भावी संसद पर ही छोड़ा गया है। मेरा ख्याल तो यह है कि अनुच्छेद में जो प्रावधान रखा गया है वह इतना समुवयुक्त है कि उसे विधान में रखने पर यहां कोई विवाद ही नहीं होना चाहिये। बहुत से सदस्यों ने कहा है कि अधिकारारूढ़ दल को एक विरोधी पक्ष की स्थापना कर ही देनी चाहिये। विरोधी पक्ष की स्थापना का काम मानो कोई पेड़ लगाने का काम हो गया। वर्तमान स्थिति में न तो प्रांतों में और न केन्द्र में ही ऐसा करना उपयुक्त है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए मैं नहीं समझता हूं कि यह कोई इस बात का मौका है कि दल अथवा व्यक्ति अपनी-अपनी शिकायतों को व्यक्त करें इसलिये अनुच्छेद में किसी भी विवाद की गुंजाइश नहीं है। आने वाली पार्लियामेंट के यह अधिकार में होगा कि वह विरोधी पक्ष का नेता रखे, उसे वेतन दे और अगर जरूरत हो तो प्रधानमंत्री से भी अधिक वेतन दे। जरूरत अगर समझी जायेगी तो इस पद की स्थापना स्थायी रूप से की जा सकती है। जो बातें यहां लाई गई हैं उनको इस अनुच्छेद के प्रसंग में लाना मैं उपयुक्त नहीं समझता। अगर संशोधनकर्त्ता महोदय विरोधी पक्ष के अस्तित्व को इतना महत्त्व देते हैं और चाहते हैं कि विधान में इसका उल्लेख हो तो उनके लिये जरूरी यह था कि वह इस मामले को स्वतंत्र रूप से पेश करते और किसी दूसरे मौके पर पेश करते जहां इस संबंध में वाद-विवाद उपयुक्त मालूम पड़ता। इसलिये मैं यह समझता हूं कि यह अनुच्छेद बिल्कुल ही आपत्तिशून्य है और यह स्वीकार होना चाहिये।

एक बात मैं ओर कहना चाहता हूं और वह यह है कि मेम्बरों को वेतन पर्याप्त देना चाहिये। मुझे यह बात भयास्पद मालूम होती है कि सभा के बहुत से सदस्य ऐसे हों जिनकी आवश्यकतायें बनी रहें। यह बड़ी खतरनाक बात है और इससे किसी भी देश में लोकतंत्र का समुचित रूप में चलाना कठिन होगा और खास करके हमारे जैसे गरीब देश

[डा. पी.एस. देशमुख]

में तो बहुत ही मुश्किल होगा। बहुत से सदस्य अपने वेतन और अधिदेय की चर्चा करने में सकुचाते हैं और कुछ लोग वेतन को पूर्णतः या अंशतः त्याग करने में देशभक्ति की भावना का अनुभव करते हैं। किन्तु मैं इस बात का आग्रह करूंगा कि ऐसे सदस्यों के पक्ष में कोई प्रलोभन नहीं आने देना चाहिये, जिससे अपनी ईमानदारी और कर्त्तव्य के मार्ग से वह अलग हो जायें। मैंने बाध्य होकर यह बात कही है, क्योंकि केन्द्र एवं प्रांतों के विधान-मंडलों के कई सदस्यों के व्यवहार ने मुझे ऐसा कहने पर प्रेरित किया है। मैं तो सरकार से कहूंगा कि वह समझने वाली जनता की ओर से उसकी कितनी भी तीव्र आलोचना क्यों न की जाये, उसका वह अवश्य मुकाबला करें। किन्तु सदस्यों को पर्याप्त वेतन और अधिदेय जरूर दिया जाये ताकि दूसरे सूत्रों से फायदा उठाने का प्रलोभन उनके मन में उत्पन्न न हो।

इन शब्दों के साथ मैं, श्रीमान्, इस संशोधन का विरोध और अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं विरोध के सदा ही पक्ष में हूं, पर वह होना चाहिए रचनात्मक। किन्तु हम आज यहां यह देखते हैं कि लोग केवल विरोध के लिए ही एक विरोधी पक्ष चाहते हैं और इस संशोधन के समर्थकों ने तो यहां तक कहा है कि सरकार के खिलाफ नियमित रूप से एक विरोध चलाना ही चाहिए। मेरे मित्र सैयद करीमुद्दीन ने कहा है कि सरकार का विरोध करने के लिए विरोधी पक्ष के नेता को वेतन देना ही चाहिये। मैं इसका सख्त विरोध करता हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** मैं अपनी बात बता दूं, श्रीमान्, मैंने यह कहा है कि सरकार की भूलों के खिलाफ हमें अवश्य विरोध करना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवाः** हां, यही मैं भी कह रहा हूं। आपने कहा है कि सरकार के खिलाफ विरोधी पक्ष का आन्दोलन चलना चाहिए। सरकार को सुबुद्धि पथ पर लाने के लिये अगर कोई रचनात्मक विरोध किया जाता है तो निश्चय ही वह स्तुत्य है। किन्तु उसको बदनाम करने के लिए उसके विरुद्ध आन्दोलन करना तो बिल्कुल ही एक दूसरी बात है। मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन ने कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों का जिक्र किया है और कहा है कि वे लोग जो कुछ भी कहते हैं, हम उसे नापसंद करते हैं। यह ऐसी बात नहीं है। हमारी आपत्ति है ऐसे विरोध पर, जो न तो रचनात्मक है और न जो जनता के हित में ही है। एक ऐसा भी वर्ग देश में है, जो निर्दोषों के ऊपर तेजाब फेंकने में, ट्रामों और बसों को जलाने में और बम फेंकने में विश्वास करता है। मान लीजिये इस पक्ष का नेता विधान-मंडल में है और इस नीति की वह वकालत करता है तो क्या आप उसे रचनात्मक विरोध कहेंगे? मैं तो इस वर्ग को देश का शत्रु कहता हूं और इनके नेता को आप यह चाहते हैं कि सरकारी खजाने से वेतन दिया जाये? अवश्य ही यह सत्य है कि इंग्लैंड में विरोधी पक्ष के नेता को सरकारी खजाने से वेतन मिलता है। मुझे इसका इतिहास तो नहीं मालूम है, किन्तु वहां विरोधी पक्ष का नेता न केवल सरकार का विरोध ही करता है, बल्कि समय-समय पर वह उसका समर्थन भी करता है। खैर, इंग्लैंड में चाहे कुछ भी होता हो, मैं इस सिद्धांत के खिलाफ हूं कि विरोधी पक्ष के

नेता को सरकारी खजाने से वेतन दिया जाये। हर पार्टी का अपना फंड होता है और अगर कोई पार्टी चाहती है कि उसका नेता अपना समूचा समय पार्टी के लिये लगावे, तो पार्टी को उसे अपने पास से पैसा देना चाहिए। सरकार का वह समय असमय हमेशा विरोध करेगा और सरकार ही उसको वेतन देगी? यह नहीं होना चाहिये। यह एक गलत सिद्धांत है और मैं इसका जबरदस्त विरोध करता हूं।

***श्री रामनारायण सिंहः** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मिस्टर लारी के संशोधन का मैं समर्थन तो नहीं करता हूं, किन्तु मेरी समझ से उन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न उठाया है जिस पर सभा को विचार करना चाहिये। मैं ब्रिटिश विधान-पद्धति का प्रशंसक नहीं हूं। उनके यहां पार्टी सिस्टम पर शासन चलता है और मेरी समझ से इससे लोकतंत्र के मूल सिद्धांत का ही हनन हो जाता है। हम लोगों से यह कहा जाता है कि वहां विरोधी पक्ष है और उसके नेता को सरकारी कोष से वेतन दिया जाता है। यह एक अच्छा सिद्धांत है। किन्तु अपने देश में हमने अभी-अभी स्वतंत्रता प्राप्त की है और हमारे अधिकारारूढ़ दल यानी कांग्रेस दल के सामने कोई विरोधी पक्ष नहीं है। मैं जानता हूं कि देश में क्या-क्या हो रहा है और मेरा यह ख्याल है कि हमारे कार्यों की आलोचना करने के लिए एक प्रबल विरोधी पक्ष होना ही चाहिए। महाभारत में हम देखते हैं कि भीष्म और अर्जुन एक दूसरे का विरोध करते हैं और भीष्म अर्जुन को बताते हैं कि उनको (भीष्म को) किस तरह मारा जा सकता है। इसी तरह मैं समझता हूं कि वह सरकार एक अच्छी सरकार है, जो विरोधी पक्ष की स्थापना करती है, उसको प्रोत्साहन देती है और वक्त आने पर मैदान से हटने के लिए सदा तैयार रहती है। ऐसी सरकार जो विरोध को पंसद नहीं करती है और सदा अधिकारारूढ़ बना रहना चाहती है, वह देशभक्त नहीं कही जा सकती, बल्कि उसे देशघाती हुकूमत कहना चाहिए। कई प्रांतों में, मेरे अपने प्रांत बिहार में ही, मैं जानता हूं कि क्या हो रहा है। वहां कांग्रेस हुकूमत के सामने कोई विरोधी पक्ष है नहीं, इसलिये वहां सभी तरह के कुकर्म हो रहे हैं। इसलिए मैं यह अनुभव करता हूं कि सरकार की आलोचना के लिए विरोधी पक्ष होना ही चाहिये और उसको प्रोत्साहन मिलना चाहिये। यह जरूरी नहीं है कि विधान में ही उसका उल्लेख किया जाये, किन्तु विधान पास होते ही हमें इस प्रश्न पर यथाशीघ्र विचार करना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, खेद है कि मैं माननीय मित्र लारी के संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। संशोधनकर्ता ने जो दलीलें पेश की हैं, उनका विस्तारपूर्वक जबाव देना मैं जरूरी नहीं समझता हूं। क्योंकि श्री अनन्तशयनम् आयंगर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने उनका जो कुछ उत्तर दिया है उससे मैं सर्वथा सहमत हूं। इसलिए इस सम्बन्ध में और कुछ न कहकर मैं सभा का समय बर्बाद नहीं करना चाहता। उन्होंने जो जवाब दिया है, वह काफी है।

पर श्री संतानम् के संशोधन को मैं स्वीकार करता हूं, जिसमें उन्होंने कहा है कि ''भारत अधिराज्य के विधान-मंडल'' की जगह ''विधान-परिषद्'' शब्द रखे जायें।

***अध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके सभी संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 86 में 'और जब तक तद्विषयक प्रावधान इस प्रकार नहीं बनाया जाता, तब तक, अधिदेय ऐसी दर से और ऐसे प्रतिबन्धों सहित होंगे जैसे कि इस संविधान की प्रारम्भ विधि सद्यपूर्व भारत अधिराज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के विषय में लागू थे'। शब्दों को हटा दिया जाये और निम्नलिखित परन्तुका जोड़ दिया जाये:

'किन्तु शर्त यह है कि संसद के सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन, कैबिनेट मिनिस्टर को दिये जाने वाले वेतन की एक-चौथाई से कम या एक-तिहाई से ज्यादा न होगा।'

'और शर्त यह है कि विपक्षी दल का नेता उस वेतन का अधिकारी होगा, जो बिना कैबिनेट दर्जा वाले किसी मंत्री को दिया जायेगा।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 86 में 'भारत अधिराज्य के विधान-मंडल' शब्दों की जगह 'विधान-परिषद्' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 86 को, संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 86 अपने संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 87

***अध्यक्ष:** अब सभा अनुच्छेद 87 पर विचार करेगी। मैं देखता हूं कि प्रोफेसर शाह का संशोधन नं. 1638 अनुच्छेद 98 के अन्दर आ जाता है, जो थोड़ा ही आगे चलकर आयेगा।

***प्रो. के.टी. शाह:** (बिहार : जनरल): संशोधन का दूसरा हिस्सा उसके अन्दर नहीं आता है, श्रीमान्, मैं केवल दूसरे हिस्से को ही पेश करूंगा। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 87 के खंड (1) के पहले निम्नलिखित नया खंड जोड़ा जाये:

'(1) संसद के किसी आगार को अधिकार होगा कि भारत की जनता अथवा भारतीय संघ के अंगभूत किसी प्रदेश (इकाई) की जनता की ओर से आये हुये प्रार्थना-पत्र या अर्जी को वह ग्रहण करे।' ''

मैं इसे जनता का एक बहुत ही जरूरी अधिकार समझता हूं और संसद का भी एक विशेषाधिकार है। यह आवश्यक है ताकि जनता को, जिसका कि प्रतिनिधान संसद करती

है, को सीधे सत्ताधारी विधान-मंडल के पास पहुंचने का अधिकार रहे और वह उसके सामने किसी भी कानून के सम्बन्ध में, जो विचाराधीन हो, अपनी शिकायतें उसके सामने रख सके या अपनी बात कह सकें।

ये प्रार्थना पत्र वित्त संबंधी मामलों का प्रशासन संबंधी कार्यों के संबंध में भी हो सकते हैं। इन सभी मामलों में, साधारणत: जब तक कि जनता को इस तरह का कोई विशेषाधिकार देने की व्यवस्था नहीं की जाती है, उनको वस्तुत: अपनी शिकायतों को अथवा किसी प्रश्न के सम्बन्ध में अपने विचारों को सत्ताधारी विधान-मंडल के समक्ष उपस्थित करने को कोई अधिकार ही नहीं रहता है, यद्यपि सिद्धान्तत: सत्ता जनता में ही सन्निहित है।

संसद की अवधि मान लीजिये पांच साल की है और ऐसा कोई प्रार्थना पत्र देने का मौका आता है लोक सभा के चुनाव के चार या पांच वर्ष बाद, तो इस अरसे में, सम्भव है कि लोक सभा के प्रतिनिधियों का जनता से कोई संपर्क शेष न रह गया हो और सदस्यों ने जनेच्छा के अनुसार काम करना बन्द कर दिया हो, जैसा कि इस समय बहुत कुछ हो गया है, तो इस सूरत में संभव है और यह अक्सर होता है कि इस अधिकार के अभाव में जनता अपनी बात संसद के समक्ष रख ही न पाये।

और न ऐसी कोई नियमित व्यवस्था ही है जिसके द्वारा संसद लोकमत को परख सके। हां, मिनिस्ट्री या सरकार जिस रूप में चाहे, अपने ढंग से जनता के समक्ष किसी मसले को रखकर उस पर उसकी राय भले ही मांगे। मेरा यह सुझाव है कि जनता को संसद के समक्ष सीधे पहुंचने का और किसी खास मसले पर अपने विचारों को उसके सामने रखने का और इस तरह संसद की उस सम्बन्ध में प्रतिक्रिया जानने का अधिकार होना ही चाहिये। इस देश में तो गरीब से गरीब आदमी को यह अधिकार प्राप्त था। जनता अगर यह समझती थी कि इसके विरुद्ध अन्याय हुआ है या कोई व्यक्ति यह समझता था कि उसके साथ अन्याय हुआ है, तो यहां के पुराने एकतंत्र के जमाने में भी, उसे सीधे सम्राट के पास पहुंचने का अधिकार प्राप्त था। आज के जमाने में, जब हम जनता को इतना सम्मान देते हैं कि उसमें ही सत्ता सन्निहित समझते हैं, जब हम गला फाड़कर यह उद्घोष करते हैं, सारी सत्ता जनता में ही सन्निहित है और हम सरकार तो केवल उसके चाकर मात्र हैं, तो ऐसी हाल में मेरा ख्याल है कि यह मांग कोई बहुत बड़ी मांग नहीं है कि विधान में यह बात लिपिबद्ध कर दी जाये कि जनता को सीधे संसद के पास पहुंचने का और अपना प्रार्थनापत्र देने का अधिकार है क्योंकि आखिर हम अपना विधान ब्रिटिश प्रणाली पर ही बना रहे हैं, जिसमें जनता के इस अधिकार को एवं संसद के विशेषाधिकार को स्वीकार किया गया है।

'प्रार्थना पत्र' शब्द को मैं खुद भी इतना पसंद नहीं करता, पर संशोधन में इसलिए इसे रखा कि इस शब्द का प्रयोग बहुत प्रचलित हो गया है। एक दूसरे संशोधन की भी मैंने सूचना दी है पर मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं और उसमें मैंने इससे उल्टी एक व्यवस्था का सुझाव दिया है। उसमें मैंने यह कहा है कि संसद को भी यह अधिकार होना चाहिए कि किसी मसले पर, बजाय इसके कि सरकार जनमत ले, वह खुद जनमत ले ले। पर इस संशोधन के संबंध में मैंने यह महसूस किया कि आज जो मनोदशा वर्तमान है और परम्परा प्रचलित है, उसमें यह सुझाव बिल्कुल अद्भुत और बड़ा ही परिवर्तनकारी

[प्रो. के.टी. शाह]

सा प्रतीत होगा कि संसद जनता से उसकी राय मांगे, यद्यपि मेरी अपनी राय यही है कि जहां तक कि वास्तविक लोकतंत्र का संबंध है, यह पद्धति उसके सर्वथा अनुरूप है, किन्तु मैं पुनः यह बता देता हूं कि उस संशोधन को मैं अब नहीं पेश कर रहा हूं। मेरा ख्याल है कि प्रस्तुत संशोधन भी उक्त संशोधन का रूपांतर मात्र है। मेरे ख्याल से यह बिल्कुल सही और सनातन है और किसी को भी इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि जो पद्धति उसमें सुझाई गई है वह आज सर्वत्र मान्य हो चुकी है। सभी जगह यह पद्धति बरती जा रही है और कारण नहीं है कि हमारे देश में यह नापसन्द की जाये अथवा दुरुपयोग हो। इन शब्दों के साथ मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

(संशोधन 1639, 1640 और 1641 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** नं. 1642 और 1643 भी इसी विषय के संबंध में हैं। इजाजत हो तो इन दोनों को साथ ही पेश कर दूं। इससे समय में बचत हो जायेगी।

***अध्यक्षः** प्रो. शाह अपने इन दोनों संशोधनों को एक साथ पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् किः

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) में 'कोई विधेयक जो' शब्दों के बाद 'राज्य-परिषद् द्वारा पारित हो चुका है' तथा 'लोक सभा में लम्बमान है' शब्दों के बाद 'वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत न समझा जायेगा, बल्कि ऐसे विघटन के बाद जो नई लोक सभा निर्वाचित हो, वह उसको जिस स्थिति में कि लोक सभा के विघटन के समय वह था, उसके आगे ले सकती है तथा राज्य-परिषद् ने जिस रूप में उसे पारित किया था, यदि उसी रूप में लोक सभा उसे स्वीकार कर लेती है, तो वह विधेयक संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये फौरन उसे प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

जिस रूप में राज्य-परिषद् ने विधेयक को पारित किया था उसमें अगर लोक सभा ने कोई संशोधन किया तो वह राज्य-परिषद् को लौटा दिया जायेगा और अगर लोक सभा द्वारा किये गये संशोधनों को राज्य-परिषद् स्वीकार कर लेती है, तो उस सूरत में विधेयक लोक सभा में वापिस न लाया जायेगा बल्कि संसद के दोनों आगारों द्वारा वह पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा। शब्द क्रमशः रखे जायें।''

तथा यह किः

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) के बाद निम्नलिखित नये खंड जोड़ दिये जायें–

'(6) कोई विधेयक जो किसी भी अवस्था में लोक सभा में लम्बमान है, पर विघटन के समय तक वह वहां पारित नहीं हो सका है, तो वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत समझा जायेगा।

(7) कोई विधेयक जो लोक सभा द्वारा, उसके विघटन के पहले, सभी सीढ़ियों में पारित हो चुका है किन्तु विघटन के समय एक राज्य-परिषद् को नहीं भेजा गया है, वह लोक सभा द्वारा पारित रूप में राज्य-परिषद् द्वारा लिया जायेगा और अगर लोक सभा के विघटन के 30 दिनों के भीतर वह उसी रूप में स्वीकृत हो जाता है, तो वह संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

(8) राज्य-परिषद् में किसी भी दशा में लम्बमान कोई विधेयक, जिस पर लोक सभा ने विचार नहीं किया है, लोक सभा के विघटन के समय उस सभा द्वारा पास न समझा जायेगा किन्तु लोक सभा के विघटन के साथ उसे व्यपगत समझा जायेगा।' ''

(That in clause (5) of article 87, after the words ''A Bill which'' the words ''has been passed by the Council of States and'' and after the words ''the House of the People'' the words ''shall not be deemed to have lapsed on a dissolution of the House of the People, but may be taken up by the new House of the People elected after at such dissolution from the state at which the Bill was at the time of the dissolution of the House; and if agreed to in identical form with that passed by the Council of States, the Bill shall be deemed to have been duly passed by both Houses of Parliament, and shall forthwith sent up for the assent of the President.

If any amendments are made in the House of the People in the Bill as passed by the Council of States such a Bill shall be returned to the Council of States and if the amendments made by the House of the People are accepted and agreed to by the Council of States, such a Bill shall not be brought back to the House of the People but shall be deemed to have been passed by both Houses of Parliament and shall forthwith sent up for the assent of the President be inserted respectively.

and

That after clause (5) of article 87, the following new clauses be inserted:

''(6) A Bill which is pending at any stage in the House of the people but not passed at the time of its dissolution shall be deemed to have lasped on a dissolution of the House of the People.

[प्रो. के.टी. शाह]

(7) A Bill which has been passed through all the stages by the House of the People before its dissolution, but not sent to the Council of States at the time of its dissolution, shall be taken up by the Council of States passed by the House of the People, and if agreed to in identical form within 30 days of the dissolution of the House of the People shall be deemed to have been duly passed by both Houses of Parliament, and shall be sent up to the President for his assent.

(8) A Bill pending in the Council of States at any stage but not considered by the House of the People shall not be deemed to have been passed at the time the House of the People is dissolved, but shall be deemed to have lapsed on dissolution of the House of the People.''

यह संशोधन आगारों के समय की बचत के लिये और ससंद के समक्ष आने वाले विधि विषयक प्रस्तावों को कानूनी रूप देने में कार्य-पद्धति में सहूलियत लाने के लिए ही रखे जा रहे हैं। हो सकता है कि कोई विधेयक राज्य-परिषद् द्वारा सभी सीढ़ियों में समुचित रूप से पारित हो जाये पर उसे लोक सभा के समक्ष भेजने के पहले यह अवस्था उत्पन्न हो कि लोक सभा का विघटन हो जाये। मेरा सुझाव यह है कि ऐसे विधेयक को सर्वथा व्यपगत न समझा जाना चाहिए और अगर नई लोक सभा राज्य-परिषद् द्वारा पास किये हुए रूप में उसे स्वीकार कर ले तो यह समझा जाना चाहिए कि वह संसद के दोनों आगारों द्वारा पास हो गया है। और फौरन प्रधान के पास अनुमति के लिए भेज देना चाहिये। मतलब यह है कि नई लोक सभा द्वारा जब वह सभी सीढ़ियों से पास हो जाये तो उसे फिर राज्य-परिषद् के पास एक नये विधेयक के रूप में वापिस न किया जाये और उसे राज्य-परिषद् फिर अपनी सभी सीढ़ियों से गुजर कर पास न करे।

मैं समझता हूं कि यह एक तर्कसंगत सुझाव है, विशेषतया इस बात का ख्याल रखते हुए कि दोनों ही आगारों को धन विधयकों को छोड़कर अन्य सभी विधेयकों को पुनःस्थापित करने की समान क्षमता प्राप्त है। व्यवहार में यह बात हो सकती है कि महत्त्वपूर्ण विधि विषयक प्रस्ताव नीचे वाले आगार से ही शुरू हों। अगर यह विधेयक लोक सभा के विघटन होने तक पास नहीं हो जाते हैं, तो इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि जो भी प्रस्ताव वहां लम्बमान होंगे, वह सब व्यपगत समझे जायेंगे। किन्तु अगर ऐसा हो कि किसी विधेयक को लोक सभा अपने विघटन के पहले सभी सीढ़ियों में पास कर चुकी है और उसे ऊपर वाले आगार के पास न भेज पाई है, तो यह न समझा जाना चाहिये कि विधेयक व्यपगत

हो गया है। क्योंकि लोक सभा उसे समुचित रूप से पारित कर चुकी है। राज्य-परिषद् उसे आगे ले सकती है और सभी सीढ़ियों में उस पर विचार कर सकती है और अगर लोक सभा द्वारा पारित रूप में ही उस विधेयक को वह स्वीकार कर लेती है तो फिर विघटन के वाद निर्वाचित नई लोक सभा के पास उस विधेयक को भेजने की कोई जरूरत नहीं है।

मैं ऐसी भी अवस्था की कल्पना कर सकता हूं जिसमें यह दशा उत्पन्न हो सकती है। यानी यह कि किसी विधेयक को जल्दी-जल्दी में लोक सभा अपने विघटन से पहले, आखिरी दिन, पास कर दे और ऊपर वाला आगार लोक सभा से सहानुभूति रखते हुए उसे सभी सीढ़ियों से पास कर दे, पेश्तर इसके कि नई लोक सभा उस मसले को अपने हाथ में ले। इस तरह की कठिनाइयां उठ सकती हैं और खास करके उस दशा में जब कि नई लोक सभा में एक भिन्न पार्टी का प्राधान्य हो जिसका विघटित लोक सभा में प्राधान्य नहीं था। ऐसी सूरत में हमें यह भय न होना चाहिये कि जनता की इच्छा के मुताबिक काम न होगा। क्योंकि संभव है कि राज्य-परिषद् पूर्वगामी लोक सभा द्वारा पास किये हुए विधेयक को पास ही न करे और अगर वह उसे पास कर भी दे तो प्रधान संभव है उस पर अपनी अनुमति न दे। इसके अलावा नई लोक सभा ऐसा भी विधेयक पास कर सकती है, जो पूर्वगामी लोक सभा द्वारा आखिरी दिन पास किये गये विधेयक को रद्द कर देता हो अथवा उसका अभिशून्यन कर देता हो। मेरा ख्याल है कि मेरे इस संशोधन के पास होने से एक तो समय की बचत होगी, दूसरे कार्य-पद्धति में सरलता आ जायेगी और आखिरी बात यह है कि फिर दुहरा काम न करना पड़ेगा।

इसमें शक नहीं कि यह सब जाब्ते की बातें हैं जिसे संसद का कोई भी आगार नियमों द्वारा तय कर सकता है। किन्तु जब विधान में इस तरह के आदेश लिपिबद्ध किये जाते हैं, तो मेरा भी संशोधन अगर आ जाता है, तो इससे समय में बड़ी बचत होगी। सभा से इसे स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना की ओर से मुझे कई संशोधनों की सूचना मिली है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांतः जनरल): मेरे दो संशोधन हैं, श्रीमान्! एक तो अनुच्छेद 87 के संबंध में और दूसरा 88 के संबंध में। अनुच्छेद 87 संबंधी संशोधन को मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** बस इतने ही सब संशोधन हैं जो हमें प्राप्त हुए हैं। अब संशोधन और मूल अनुच्छेद पर बहस की जा सकती है।

***श्री बृजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 87 के खंड (2) के विरुद्ध, जिसमें कहा गया है कि कोई भी विधेयक संसद द्वारा पास न समझा जायेगा, जब तक कि उस पर दोनों सदन सहमत न हो जायें, मैं नहीं समझता कि लोकतंत्रीय राज्य में जनता के प्रतिनिधियों को उन लोगों के बराबर क्यों रखा जाता है, जिन्हें प्रांतीय सरकारों ने मनोनीत करके प्रतिनिधि रूप से भेजा है। अगर लोकतंत्रीय पद्धति को सुचारू

[श्री बृजेश्वर प्रसाद]

रूप से चलाना है, तो नीचे वाले आगार की प्रधानता हमें स्वीकार करनी ही होगी। यह कहा गया है कि यह खंड उन संघीय सिद्धांतों से सर्वथा संगत है जिनको हम शुरू में मान चुके हैं। जहां तक मेरा अपना संबंध है, श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि यहां कोई ऐसा तर्क क्यों पेश किया जाता है। मैं ऐसा नहीं समझता कि विधान के मसौदे का स्वरूप शुद्धतः संघीय है। जब हमने संघमूलक व्यवस्था को रखना स्वीकार किया था, उस समय हमारे देश में जो स्थिति थी, वह आज से सर्वथा भिन्न थी। प्रांतों को राजी रखने के लिये हमने संघीय व्यवस्था को नहीं स्वीकार किया था। जब हम ने संघमूलक व्यवस्था को स्वीकार किया था, उस समय हमारे मन में प्रांतों का कोई ख्याल था ही नहीं। संघमूलक व्यवस्था को तो हमने स्वीकार किया था इसलिए कि स्वर्गीय मिस्टर जिन्ना के द्विराष्ट्र संबंधी सिद्धांत का हम जवाब दे सकें। संघमूलक शासन-व्यवस्था को हमने इसलिए स्वीकार किया था कि देशी रजवाड़ों को इस बात पर राजी किया जा सके कि अपनी सत्ता का एक अंश वह छोड़ने पर तैयार हो जाये, किन्तु अब तो स्थिति बिल्कुल ही बदल गई है। दुर्भाग्य से देश का बंटवारा हो चुका है। देशी रजवाड़ों को समाप्त कर दिया गया है। रियासतों की स्थिति आज भारतीय प्रांतों से कहीं बदतर है। पिछली बार जब विधान-परिषद् का अधिवेशन हुआ था, तब मैंने एक एकात्मक राज्य-व्यवस्था के पक्ष में अपना विचार व्यक्त किया था। मुझे यह नहीं मालूम है, श्रीमान्, कि हमारे वैधानिक पंडितों के मन में क्या है। संघमूलक व्यवस्था का झुकाव आगे चलकर एकात्मक व्यवस्था की ओर अवश्य हो जाता है। मेरी जानकारी में इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है, जिसमें एकात्मक राज्य व्यवस्था बिगड़ करके संघमूलक व्यवस्था में बदल गई हो। किन्तु जहां तक संघमूलक व्यवस्था का संबंध है, प्रायः सभी संघीय व्यवस्था वाले देशों के विधान एकात्मक राज्य व्यवस्था की ओर झुक गये हैं। केन्द्र में दूसरे आगार की कल्पना जो मैं करता हूं वह केवल एक परामर्शदातृ सभा के ही रूप में। वह इसीलिये होगा कि जल्दबाजी में कोई कानून पास न किया जा सके। किन्तु मेरी समझ में संघीय विधान पर जोर देना प्रगति से पीछे की ओर जाना होगा और जो लोक संघीय स्वरूप की चर्चा करते हैं और उस पर जोर देते हैं मेरी समझ में देश का बड़ा अहित कर रहे हैं। प्रांत सदा ही केन्द्रीय शासन के अधीन रहे हैं और यह कहना कि उन्हें स्वायत्त शासन प्राप्त हो गया है और उन्हें संघीय अधिकार प्राप्त हो गये हैं, वस्तुतः प्रगति से पीछे की ओर जाना है। मैं तो कहूंगा, श्रीमान्, कि संघमूलक व्यवस्था पर जोर देकर हम इतिहास के क्रम को उलट रहे हैं। संघमूलक व्यवस्था का स्वरूप ही बड़ा दकियानूसी है और इसमें तमाम कमजोरियां भरी हैं। मैं अनुच्छेद 87 के खंड (2) का विरोध करता हूं, श्रीमान्!

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 87 के खंड (1) के पहले निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(1) संसद के किसी आगार को अधिकार होगा कि भारत की जनता अथवा भारतीय संघ के अंगभूत किसी प्रदेश (इकाई) की जनता की ओर से आये हुए प्रार्थना-पत्र या अर्जी को वह ग्रहण करें।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) में 'कोई विधेयक जो' शब्दों के बाद 'राज्य-परिषद् द्वारा पारित हो चुका है' तथा 'लोक सभा में लम्बमान है' शब्दों के बाद 'वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत न समझा जायेगा बल्कि ऐसे विघटन के बाद जो नई लोक सभा निर्वाचित हो, वह उसको जिस स्थिति में कि लोक सभा के विघटन के समय वह था, उससे आगे ले सकते हैं; तथा राज्य-परिषद् में जिस रूप में उसे पारित किया था, यदि उसी रूप में लोक सभा उसे स्वीकार कर लेती है, तो वह विधेयक संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिए फौरन उसे प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

जिस रूप में राज्य-परिषद् ने विधेयक को पारित किया था।, उसमें अगर लोक सभा ने कोई संशोधन किया तो वह राज्य-परिषद् को लौटा दिया जायेगा और अगर लोक सभा द्वारा किये गये संशोधनों को राज्य-परिषद् स्वीकार कर लेती है, तो उस सूरत में विधेयक लोक सभा में वापिस न लाया जायेगा किन्तु संसद के दोनों आगारों द्वारा वह पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।' शब्द क्रमश: रखे जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) के बाद निम्नलिखित नये खंड जोड़ दिये जायें–

'(6) कोई विधेयक जो किसी भी व्यवस्था में लोक सभा में लम्बमान है, पर विघटन के समय तक वहां पारित नहीं हो सका है, तो वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत समझा जायेगा।

(7) कोई विधेयक जो लोक सभा द्वारा, उसके विघटन के पहले, सभी सीढ़ियों में पारित हो चुका है, किन्तु विघटन के समय तक राज्य-परिषद् को नहीं भेजा गया है, वह लोक सभा द्वारा पारित रूप में राज्य-परिषद् द्वारा लिया जायेगा और अगर लोक सभा के विघटन के 30 दिनों के भीतर वह उसी रूप में स्वीकृत हो जाता है, तो वह संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

(8) राज्य-परिषद् में किसी भी दशा में लम्बमान कोई विधेयक, जिस पर लोक सभा ने विचार नहीं किया है, लोक सभा के विघटन के समय उस सभा द्वारा पास न समझा जायेगा, किन्तु लोक सभा के विघटन के साथ उसे व्यपगत समझा जायेगा।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

---

*इसका अंग्रेजी रूप पहले दिया जा चुका है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 87 को विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 87 विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 88

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88 को विधान में शामिल किया जाये।''

(संशोधन नं. 1644 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 88 के 'यदि किसी विधेयक के' शब्दों के बाद 'जो मुद्रा विधेयक या आर्थिक विधेयक नहीं है' शब्द जोड़ दिये जायें।''

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** माननीय सदस्य से मैं कहूंगा कि अनुच्छेद 88 की परन्तुका को देखें जिसमें कहा गया है कि: ''पर इस खंड में की कोई बात किसी मुद्रा-विधेयक को लागू न होगी।''

***श्री एच.वी. कामत:** तब तो इस परन्तुका को ही बदल देना चाहिये। मेरा यह संशोधन कम या बेशी महज रस्मी है किन्तु इससे अनुच्छेद में स्पष्टता आ जाती है। लाघव तो मैं भी चाहता हूं पर ऐसा नहीं कि उससे स्पष्टता ही जाती रहे। अनुच्छेद 89 और 97 मुद्रा विधेयक और अन्य विधेयकों से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये जब हम अनुच्छेद 88 में किसी विधेयक का जिकर करते हैं तो यह ज्यादा अच्छा होगा और यह ज्यादा साफ भी होगा कि हम इस बात को उसमें साफ-साफ कह दें कि जिस विधेयक का इस अनुच्छेद में जिकर है वह मुद्रा-विधेयक या वैत्तिक विधेयक से भिन्न विधेयक है। मेरे माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने ठीक ही सुझाया है—और मैं उनका इसके लिये आभारी हूं—कि इस अनुच्छेद के खंड (1) के नीचे एक परन्तुका दी हुई है जिसमें मुद्रा विधेयक के सम्बन्ध में अपवाद रखा गया है। किन्तु अनुच्छेद 87 में जो भाषा व्यवहृरित की गई है वह यों है: ''मुद्रा विधेयकों तथा अन्य आर्थिक विधेयकों के विषय में इस

संविधान के अनुच्छेद 89 और 97 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए इत्यादि।'' इसलिये अगर हम यह चाहते हैं कि हमारी भाषा में और पद-संहति में एकरूपता रहे, तो मैं समझता हूं और मेरा ख्याल है कि श्री आयंगर भी इससे सहमत होंगे—कि परन्तुका की भाषा भी अनुच्छेद 87 की भाषा के अनुरूप ही होनी चाहिये थी। अनुच्छेद 87 में न केवल मुद्रा विधेयकों का ही जिक्र है बल्कि मुद्रा विधेयक और अन्य आर्थिक विधेयकों का भी जिक्र है, इसलिये अगर श्री आयंगर मेरे संशोधन के आधार पर इस परन्तुका में कोई संशोधन पेश करें तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** पर अगर आपका संशोधन स्वीकार हो जाता है और परन्तुका नहीं हटाई जाती है, तो इस सूरत में क्या स्थिति होगी? परन्तुका को हटाने के लिये कोई संशोधन तो आया नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं समझता हूं कि यह बहुत ही बुरा होगा। परन्तु जब तक कि परन्तुका में समुचित संशोधन नहीं हो जाता है, उसमें एक खामी सी रहेगी। अगर आप श्री आयंगर को या अन्य किसी सदस्य को परन्तुका में समुचित संशोधन पेश करने की अनुमति दें, जिसमें परन्तुका में उल्लिखित आर्थिक विधेयक और मुद्रा विधेयकों का भी समावेश हो, तो मैं समझता हूं कि मेरी आपत्ति का निराकरण हो जायेगा। अन्यथा मुझे आशंका है कि उसमें एक ऐसी त्रुटि रह जायेगी, जिससे दोनों अनुच्छेदों में प्रयुक्त भाषा में साम्य न रह जायेगा।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अनुच्छेद 88 के खंड (1) की परन्तुका को हटाने के लिये एक संशोधन दिया गया है जिसका नम्बर है 1649।

***श्री एच.वी. कामत:** तब तो अगर वह संशोधन स्वीकार हो जाये और मेरा संशोधन स्वीकार हो जाये तो काम अच्छी तरह बन जाता है। इसलिये मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन नम्बर 1646, 1647, 1648 और 1649 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

> ''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में 'दोनों आगारों' शब्दों की जगह 'उस खंड के उपखंड (ग) में उल्लिखित आगार' शब्द रखे जाये। यह केवल स्पष्टीकरण के लिये ही रख रहा हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन नम्बर 1651। मेरा ख्याल है कि यह संशोधन पहले के संशोधनों में आ जाता है।

(संशोधन नम्बर 1652 पेश नहीं किया गया है।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्, किः

''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में अन्त में आये हुये 'दिनों' शब्द के पहले 'निरन्तर' शब्द जोड़ दिया जाये।''

(संशोधन नम्बर 1654 पेश नहीं हुआ।)

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्ः

''अनुच्छेद 88 के खंड (4) में 'समस्त' शब्द हटा दिया जाये।''

मैं परन्तुका के हटाने पर जोर नहीं देता हूं। मैं चाहता हूं कि संशोधन में ही उसके लिये संशोधन कर दिया जाये।

बात बहुत सीधी सी है। यहां अभिप्राय यह है कि संयुक्त बैठक का निर्णय साधारण बहुमत द्वारा होना चाहिये। ऐसी स्थितियों के लिये सब जगह आम तौर पर यही शब्द आये हैं कि दोनों आगारों के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुत से निर्णय होंगे। 'समस्त सदस्य' शब्द तो साधारणतः वहीं पर रखे गये हैं जहां पूर्णरूपेण बहुमत अपेक्षित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र का मैं कृतज्ञ हूंगा, अगर वह इस मसले को मसौदा समिति पर छोड़ दें। मसौदा समिति के विचार के बाद फिर हम इसको यहां आगे लेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं इससे सहमत हूं, श्रीमान्।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्ः

''अनुच्छेद 88 के खंड (4) में 'इस संविधान के प्रयोजनार्थ' शब्दों को हटा दिया जाये।''

मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान्, कि इस जगह हम इन शब्दों को हटा सकते हैं और इनके हटाने से यहां अर्थ में कोई अस्पष्टता न आयेगी और न खंड के अभिप्राय की यथार्थता में ही कोई फर्क पड़ेगा। जो भी मसौदा यहां तैयार किया जाता है या जो भी अनुच्छेद यह सभा प्रस्तुत करती है, वह सब इस संविधान के प्रयोजनार्थ ही है। हम संविधान के सम्बन्ध में ही यहां सब कुछ तय कर रहे हैं। निश्चय ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जो यह कहे कि विधान में जो कुछ भी रखा गया है, वह संविधान के प्रयोजन के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयोजन के लिये है। इसलिए मेरी समझ से यह लिखना, कि चाहे इस अनुच्छेद में हो या अन्य किसी अनुच्छेद में, कि मतगणना को इस संविधान के प्रयोजन

के लिये समझा जायेगा, सर्वथा अनावश्यक और निष्प्रयोजन है। अतः मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि इन शब्दों को, जो कि मेरे ख्याल में अनावश्यक हैं, हटा दिये जायें। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** अब आता है संशोधन नम्बर 1657। मेरे ख्याल से यह संशोधन सिर्फ रचना से सम्बन्ध रखता है।

(संशोधन नं. 1658 और 1659 पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं समझता हूं कि यह संशोधन रचना से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि इसमें कई शब्दों को, जो अनावश्यक है, हटाने की मांग की गई है।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 1660 रचना विषयक है।

(संशोधन नं. 1661 पेश नहीं हुआ।)

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना से मुझे एक संशोधन की सूचना मिली है। उनका संशोधन है कि अनुच्छेद 88 की जगह अमुक निम्नलिखित अंश रखा जाये। यह संशोधन तो किसी संशोधन से सम्बन्ध नहीं रखता। किस संशोधन पर यह संशोधन रखा जा रहा है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उनमें से किसी पर भी यह रखा जा सकता है।

***अध्यक्षः** आप कैसे रखेंगे? यह तो मूल अनुच्छेद पर संशोधन हुआ, किसी संशोधन पर संशोधन नहीं हुआ। समय सम्बन्धी जो नियम है उसे आप केवल यह कहकर चकमा नहीं दे सकते कि ये संशोधन संशोधनों से सम्बन्ध रखते हैं। वस्तुतः यह संशोधन किसी संशोधन के बारे में नहीं है। इसकी सूचना पहले ही आनी चाहिये थी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** संशोधन नं. 1650 पर यह संशोधन रखा गया है।

***अध्यक्षः** तो आप यह कैसे कहते हैं कि समूचे अनुच्छेद 88 की जगह आपके शब्द रखे जायें?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं जो सुझाव दे रहा हूं वह यह है कि संयुक्त बैठक का होना जरूरी न किया जाये।

***अध्यक्षः** वह तो एक अलग बात है। मैं आप के अभिप्राय को समझ रहा हूं कि आप संयुक्त बैठक को यहां नहीं रखना चाहते। किन्तु इसके लिये आपको यथा समय सूचना देनी चाहिए थी। संशोधन सम्बन्धी संशोधनों के रूप में आप इसे यहां रखना चाहते हैं, पर इसका सम्बन्ध वस्तुतः अनुच्छेद की मूल बातों से है और यहां वह ठीक बैठता नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस तरह संशोधनों को उपस्थित करने में यहां अब तक तो हमेशा यही पद्धति बरती गई है।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है, मैं इस तरह के संशोधनों की अनुमति नहीं दे सकता, जिसका सम्बन्ध वस्तुत: किसी संशोधन से नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** तब अगर इजाजत हो, तो मैं खण्ड पर ही बोलूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** हां, यह हो सकता है। अगर सभी संशोधन पेश हो चुके हैं, तो आपको बोलने का मौका दिया जायेगा। हां, अब मूल अनुच्छेद एवं तत्संबंधी संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद में एक प्रावधान इस आशय का रखा गया है कि अगर विधेयकों के सम्बन्ध में नीचे वाले और ऊपर वाले दोनों आगारों में मतभेद हो, तो उस विवाद को तय करने के लिये दोनों की संयुक्त बैठक होगी। इस सम्बन्ध में मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी, पर आपने उसे अनियमित करार दे दिया है। किन्तु मेरा ख्याल है कि उस संशोधन का उद्देश्य ऐसा है कि उस पर सभा को विचार करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि मैं ऊपर वाले आगार को कोई एक बहुत अच्छी संस्था नहीं मानता। मैं तो उसके सर्वथा विरुद्ध हूं किन्तु जब सभा ने उसे स्वीकार कर लिया है तो इस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। पर जो मैं बात कहना चाहता हूं, वह यह है कि ऊपर वाले आगार को इतना अधिकार न मिलना चाहिये जो उसके महत्त्व के अनुरूप न हो। हमने अपना विधान ब्रिटिश पार्लियामेंट के आधार पर बनाया है। वहां हाउस आफ लार्डस और हाउस आफ कामन्स दो आगार जरूर हैं किन्तु हाउस आफ लार्डस के अधिकार बड़े ही सीमित है। मैं चाहता हूं कि यहां भी ऊपर वाले आगार को सीमित ही अधिकार प्राप्त रहें। उसे निचले वाले आगार के समान शक्ति नहीं मिलनी चाहिये, जैसा कि संयुक्त बैठक की व्यवस्था होने से उसे प्राप्त हो जायेगी। मौजूदा मसौदे के मुताबिक लोक सभा द्वारा पास विधेयक ऊपर वाले आगार के पास जायेगा और अगर वहां अस्वीकृत हो जाता है, तो दोनों आगारों की संयुक्त बैठक होगी, जिसमें साधारण बहुमत के द्वारा उस मसले का फैसला किया जायेगा। इस तरह ऊपर वाला आगार लोक सभा द्वारा स्वीकृत किये गये किसी विधेयक को अस्वीकार करने में कामयाब हो जायेगा और लोक सभा को साधारण बहुमत द्वारा उस बिल को प्रभाव में लाने का अधिकार न रहेगा। मेरा ख्याल है कि ऊपर वाला आगार, यद्यपि यह प्रान्तीय विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा, लोक सभा को लोक सभा की तरह प्रतिनिधिमूलक नहीं होगा। लोक सभा का चुनाव सीधे जनता करेगी और ऊपर वाले आगार का चुनाव लोक सभा के सदस्य करेंगे और फिर उसमें प्रधान द्वारा मनोनीत किये गये कुछ व्यक्ति भी सदस्य के रूप में रहेंगे। दूसरी बात यह है कि ऊपर वाला आगार एक ऐसा आगार होगा, जिसके एक तिहाई सदस्य हर दूसरे साल चुने जायेंगे। सुतरां उसके शेष दो तिहाई सदस्य नई भावना के प्रतिनिधि न रहेंगे, क्योंकि वे लोग दो और चार वर्ष पहले निर्वाचित हुये रहेंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि ऊपर वाला आगार जनता के तत्कालीन विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। ऐसी सूरत में उस आगार को लोक सभा के समान अधिकार देना मेरे ख्याल से एक प्रतिक्रियात्मक बात होगी। अगर हम ऊपर वाले आगार को कुछ हैसियत देना ही चाहते हैं, तो हमें उसे केवल उतना

ही अधिकार देना चाहिये। जो कि इंग्लैंड के हाउस आफ लार्ड्स को सन् 1911 के एक्ट द्वारा प्राप्त हैं। हाउस आफ कामन्स द्वारा पास किये गये बिल को अगर हाउस आफ लार्डस स्वीकार नहीं करता है, उस सूरत में वह बिल एक खास अवधि की समाप्ति पर स्वत: कानून बन जाता है। पर हमारे विधान के अनुसार अगर ऊपर वाला आगार किसी बिल को अस्वीकृत कर देता है, तो उस हालत में दोनों आगारों की संयुक्त बैठक विधेयक के भाग्य का फैसला करेगी। मैं समझता हूं कि जब हमने अपना विधान ब्रिटिश पद्धति पर बनाया है, तो इस मामले में भी हमें ब्रिटेन में प्रचलित पद्धति को स्वीकार करना चाहिये। राज्य-परिषद् अगर किसी विधेयक को अस्वीकार कर दे, तो लोक सभा की राय कायम रहनी चाहिये और विधेयक को कानून का रूप मिल जाना चाहिये। हमें यह ख्याल करने की जरूरत नहीं होनी चाहिये कि राज्य-परिषद् ने उसे अस्वीकार कर दिया है। अगर राज्य-परिषद् किसी विधेयक पर विचार करने में बहुत विलम्ब करे और वह विलम्ब एक निश्चित अवधि के बाहर चला जाये, तो उस सूरत में भी बिल को हमें पास समझना चाहिये। ऊपर वाले आगार को यह स्थिति नहीं प्राप्त होनी चाहिये कि लोक सभा द्वारा पास किये गये किसी विधेयक को वह रद्द कर दे। मैं जिस सिद्धांत की वकालत कर रहा हूं यह बड़ा ही हितकर है। इंग्लैंड में भी जहां ऊपर वाला आगार है, लोगों ने ऊपर वाले आगार की शक्ति को सीमित रखना ही ठीक समझा और लोक सभा के द्वारा जनता ने जो राय जाहिर की, उसको वापिस करने का उसे अधिकार नहीं दिया। संयुक्त बैठक की व्यवस्था करके हम ऊपर वाले आगार को बहुत ही महत्त्वपूर्ण शक्ति दे रहे हैं, जो उन्नति में और जनेच्छा के अनुसार काम करने में रुकावट डालेगी, क्योंकि सम्भवत: जनता यह चाहेगी कि कानून जल्दी पास हो ताकि भारतवर्ष भी अन्य देशों के समकक्ष उन्नत हो जाये।

अपने देश में जब हम इतने पिछड़े हुये हैं, हमें जरूरत इस बात की होगी कि हम जल्दी-जल्दी आगे बढ़ें और हमें ऐसे किसी बन्धन की जरूरत नहीं है जैसा कि इस खंड के जरिये ऊपर वाले आगार की ओर से हमें मिल सकता है। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि ब्रिटिश पद्धति को हमें यहां स्वीकार करना चाहिये। ब्रिटिश पार्लियामेंट की इस व्यवस्था का कामनवैल्थ के अन्य देशों ने भी अनुकरण किया है। आस्ट्रेलिया में ऊपर वाला आगार किसी बिल पर 6 महीने के अन्दर विचार नहीं करता है, तो लोक सभा ऐसे आशय का प्रस्ताव पास कर देती है कि वह बिल पास हो जाना चाहिये। इंग्लैंड में तो इसकी भी जरूरत नहीं होती है। दोनों ही देशों में एक ही बात चलन में है और वह यह कि लोक सभा की आवाज ही अन्तिम है और ऊपर वाला आगार उसकी आवाज को अस्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये आशा है, इस खंड पर विचार करते समय सदस्यगण यह बात ध्यान में रखेंगे कि वे एक ऐसे सिद्धांत रख रहे हैं, जो हमारी समुन्नति में रुकावट डाल सकता है। मैं नहीं चाहता कि यह प्रावधान हमारे विधान को कलंकित करे जिसे हम अपने स्वतंत्र भारतीय लोकतंत्र के लिये स्वीकार करने जा रहे हैं। आशा है कि यह सभा दोनों आगारों की संयुक्त बैठक का जो प्रावधान है, उसे स्वीकार न करेगी और मेरी बातों को ध्यान में रखेगी।

***श्री चिमनलाल चक्कूभाई शाह** (सौराष्ट्र): अध्यक्ष महोदय, श्री सक्सेना द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का मैं विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैंने संशोधन उपस्थित करने की उन्हें अनुमति ही नहीं दी। वह अनुच्छेद के विरुद्ध बोले हैं।

***श्री चिमनलाल चक्कूभाई शाह:** मैं अनुच्छेद के समर्थन में बोलने के लिये खड़ा हुआ हूं। अनुच्छेद 87 में यह कहा गया है कि कोई विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता है, जब तक कि वह दोनों आगारों द्वारा स्वीकृत न हो जाये। यह एक ऐसी चीज है, जिसमें हम लोगों की राय एक है। तब सवाल यह उठता है कि उस सूरत में क्या किया जायेगा जबकि दोनों आगारों में विधेयक के सम्बन्ध में मतभेद हो। सम्भव है कि हम लोग यह कहें कि मतभेद की हालत में हमको उस मसले को वहीं छोड़ देना चाहिये; विधेयक को व्यपगत हो जाने देना चाहिये और उसे कानून न बनने देना चाहिये। ऐसा करना अमेरिकन पद्धति का अनुकरण करना होगा। किन्तु कुछ लोग हैं, जिनका यह ख्याल है कि हमें विधेयक को छोड़ न देना चाहिये, बल्कि कुछ ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे दोनों आगारों का मतभेद दूर किया जा सके। ऐसी व्यवस्था के लिये हमारे सामने दो या तीन तरीके हैं। एक तो हम ब्रिटिश पद्धति का अनुकरण कर सकते हैं, जिसके अनुसार एक निश्चित अवधि के बीत जाने पर लोक सभा द्वारा पास किया हुआ बिल अगर अध्यक्ष उसे प्रमाणीकृत कर देता है, तो वह स्वत: कानून का रूप ग्रहण कर लेता है। दूसरे हम आयरिश पद्धति का भी अनुकरण कर सकते हैं, जिसके अनुसार लोक सभा किसी विधेयक को प्रस्ताव द्वारा दुबारा पास कर दे तो वह कानून बन जाता है। किन्तु इन दोनों देशों का विधान एकात्मक है और हमारा विधान संघात्मक है। इसलिये यह दोनों पद्धतियां हम अपने यहां लागू नहीं कर सकते। संघात्मक विधान में जो ऊपर वाला आगार बनता है, उसमें विभिन्न इकाइयों या राज्यों के प्रतिनिधि रहते हैं वह हाउस आफ लार्डस की तरह नहीं होता जिसमें सदस्य लोग वंश परम्परा के हिसाब से आते हैं और जिसका स्वरूप दकियानूसी है। हम लोगों का जो ऊपर वाला आगार होगा वह ऐसा न होगा, बल्कि उसमें भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधि रहेंगे इसलिये वह भी एक तरह से लोक सभा के समान ही प्रतिनिधि-मूलक होगा। केन्द्र में राज्य-परिषद् या ऊपर वाले आगार की जो व्यवस्था की गई है, वह केवल इस उद्देश्य से कि राज्यों की अथवा इकाइयों की वहां आवाज पर्याप्त रूप से प्रतिध्वनित की जा सके। ऐसे सूरत में तीसरा रास्ता जो परिस्थिति को सुलझाने का निकलता है, वह है संयुक्त बैठक का उपाय। इसमें शक नहीं कि यह हल बहुत बड़ा अच्छा हल नहीं है पर सोचने-समझने के बाद जो अच्छा हल मिल सकता है, वह यही हल है। दोनों आगारों की जब संयुक्त बैठक होगी तो सम्भव है कि समझौते के द्वारा वे अपने मतभेद का निपटारा कर लें या फिर लोक सभा के बहुमत के अनुसार ही उसका फैसला होगा। किन्तु यह कहना कि केवल लोक सभा ही किसी विधेयक पर एक मात्र निर्णायक हो सकती है और यह कि एक निश्चित अवधि की समाप्ति पर ऊपर वाले आगार की इस सम्बन्ध में कोई आवाज ही न रह जायेगी, ठीक नहीं है। क्योंकि संघात्मक विधान में ऊपर वाले आगार का उद्देश्य ही यह होता है कि वह विभिन्न इकाइयों की आवाज प्रतिध्वनित करने के लिये प्रतिनिधि रूप में होता है और वे भी जनता के चुने हुए उसी तरह के प्रतिनिधि हैं, जिस तरह कि लोक सभा के सदस्य। इसलिये मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 88 में जो हल रखा गया है, यद्यपि वह एक आदर्शपूर्ण नहीं है, फिर भी वह एक ऐसा अच्छा हल है जिसकी संघात्मक विधान में हम कल्पना कर सकते हैं।

ब्रिटिश पद्धति का अनुसरण करना ठीक न होगा। क्योंकि हाउस आफ लार्ड्स का निर्माण वहां बिल्कुल ही भिन्न तरीके पर होता है, जिसको कि हमने अपने विधान में सोचा भी नहीं है। और ब्रिटिश विधान एकात्मक है और उसे हम अपने संघात्मक विधान में नहीं बिठा सकते हैं। इसलिये मैं अनुच्छेद 88 का समर्थन करता हूं।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगर:** माननीय मित्र कामत ने जो बात उठाई है, मैं केवल उसी का उत्तर देने की कोशिश कर रहा हूं, श्रीमान। मैं उनको बताना चाहता हूं कि अनुच्छेद 88 के अन्दर इस आशय की एक परन्तुका है:

''पर इस खंड में कोई बात किसी मुद्रा विधेयक को लागू नहीं होगी।''

पर उनका ख्याल है कि इतना पर्याप्त नहीं है। इसलिये वह ''जो मुद्रा विधेयक या आर्थिक विधेयक नहीं है'' शब्दों को वहां और रखना चाहते हैं, ससम्मान मैं उनसे यही निवेदन करूंगा कि यह शब्द वहां रहने ही नहीं चाहियें। मैं इन कारणों से यह कह रहा हूं। इस अनुच्छेद में मुद्रा विधेयकों और अन्य आर्थिक वैत्तीय विधेयकों में कुछ अन्तर रखा गया है। मुद्रा विधेयक अनुच्छेद 90 में आता है, जिसमें कहा गया है:

> ''इस अध्याय के प्रयोजनार्थ वह विधेयक मुद्रा विधेयक समझा जायेगा, जिसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखने वाले प्रावधान ही हैं अर्थात्...'' इत्यादि।

केवल इन्हीं बातों का जिस विधेयक में उल्लेख है, उन्हीं के सम्बन्ध में यह पद्धति रखी जा रही है और अन्य आर्थिक विधेयक जिसमें न केवल अर्थ सम्बन्धी ही मामलों का समावेश है बल्कि और बातें भी प्रसंगात् रखी गई हैं, उन विधेयकों के सम्बन्ध में यह पद्धति नहीं लागू होगी, लोक सभा में तो केवल वही विधेयक पुरस्थापित किये जायेंगे, जिसमें सिर्फ उन्हीं बातों का जिक्र है जो अनुच्छेद 90 में दी हुई हैं। जहां तक कि ऊपर वाले आगार का सम्बन्ध है, इन बातों के सम्बन्ध में उसे कोई क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त है। हां, वह इनके सम्बन्ध में केवल सिफारिश के रूप में ही कुछ सुझाव दे सकता है और उसकी सिफारिश लोक सभा के पास भेजी जा सकती हैं। लोक सभा इसकी सिफारिशों को स्वीकार करे या न करे यह उसकी मर्जी पर है। इन दोनों सूरतों में यानी ऊपर वाले आगार की सिफारिशें मंजूर हों या न हों, विधेयक दोनों सभाओं द्वारा पास समझा जायेगा। जहां तक कि अन्य आर्थिक विधेयकों को सम्बन्ध है, उनके लिये दूसरी पद्धति निर्धारित की गई है। और अगर यह प्रश्न खड़ा होता है कि कोई विधेयक शुद्धत: मुद्रा विधेयक है या नहीं, तो उस सम्बन्ध में लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा। इनके अलावा जहां तक अन्य बातों का सम्बन्ध है, उनसे सम्बन्ध रखने वाले विधेयकों को दोनों ही आगारों में पुर:स्थापित किया जा सकता है और दोनों ही आगारों को उनके सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। अनुच्छेद 88 के अधीन केवल मुद्रा विधेयकों को ही ऊपर वाले आगार से छूट दी गई है। अन्य आर्थिक विधेयकों के सम्बन्ध में, जो मुद्रा विधेयक नहीं हैं और जिनमें कि अन्य बातों का भी समावेश है, दोनों ही आगारों को क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा। मुद्रा विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किये जा सकते हैं और ऊपर

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

वाला आगार उनके सम्बन्ध में सिफारिश के ही रूप में कोई बात सुझा सकता है। इसलिये मैं कहूंगा कि यह संशोधन अनावश्यक है और इस अधिनियम के पीछे जो योजना है उसके सर्वथा विरुद्ध है। अतः श्री कामत का संशोधन अनियमित है।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में बोलने का मेरा इरादा तो नहीं था किन्तु मैं मद्रास से आया हूं और मुझे अनुभव है कि दोनों आगार वहां किस तरह काम करते हैं और ऊपर वाला आगार विधि निर्माण सम्बन्धी काम में कैसे रुकावट डालता है, इसीलिये मैं इस सम्बन्ध में कुछ कहने के लिये खड़ा हुआ हूं। जहां तक कि धारा सभा की कांग्रेस पार्टी का सम्बन्ध है, वह कम या बेशी संयुक्त बैठक के रूप में ही बैठा करती है, क्योंकि जिन बिलों को पास करना होता है उस पर वहां विचार-विमर्श कर लिया जाता है। यह सभी जानते हैं कि किसी विधेयक का प्रारम्भ लोक सभा से ही होता है। किन्तु उसकी सदस्य संख्या वहां 215 है। और जब ऊपर वाले आगार के साथ संयुक्त बैठक होती है, तो उसकी आवाज निर्णायक नहीं रह जाती है। इस तरह से लोक सभा द्वारा पास किये गये बिल को ऊपर वाला आगार अक्सर रोक लिया करता है। अगर ऊपर वाला आगार किसी बात से असहमत है, तो वह संशोधन का सुझाव रख सकता है और बिल को लोक सभा के पास वापस भेज सकता है। उस हालत में लोक सभा का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अगर बिल में कोई दोष रह गया हो तो उसे दूर करें। अगर लोक सभा ऊपर वाले आगार से सहमत नहीं होता है, तो एक मतभेद खड़ा होता है और उसी के लिये यहां अनुच्छेद में संयुक्त बैठक का सुझाव रखा गया है। अगर मत-विभाजन में एक तरफ सदस्यों की संख्या काफी ज्यादा है, अर्थात् यों कहिये 100 एक तरफ हैं और डेढ़ सौ एक तरफ तब तो संयुक्त बैठक में लोक सभा ही निर्णायक रहती है। किन्तु ऊपर वाले आगार से सीधे जनता से चुने हुए लोग नहीं आते हैं, आज जिस तरह ऊपर वाले आगार की रचना होती है, उसमें छोटे-छोटे पूंजीपतियों और नौकरशाही के ही प्रतिनिधि आते हैं, और जब भी कोई प्रगतिशील कानून बनाने का प्रयास किया जाता है, देर करने की कोशिश करते हैं।

और कभी-कभी तो लोक सभा द्वारा पास किये गये बिल को नाकाम करने की कोशिश करते हैं। एक साधारण आदमी की हैसियत से और एक अनपढ़ आदमी की हैसियत से इस सम्बन्ध में मैं ऐसा ही महसूस करता हूं। ऊपर वाला आगार हो या न हो, इस सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान-मंडल में विचार किया गया था और मैं अरसे तक ऊपर वाले आगार के खिलाफ था। किन्तु अब हम वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव करने जा रहे हैं, जिससे तरह-तरह के लोग विधान-मंडलों में आयेंगे। बहुत से लोक अनुभवशील होंगे और बहुत से ऐसे भी होंगे जिनको कुछ भी अनुभव न होगा। इसलिये यह अच्छा होगा कि हम ऊपर वाले आगार में कुछ अनुभवी राजनीतिज्ञों को सदस्य के रूप में मनोनीत करें जिससे कि हम उनके अनुभव और पथ-प्रदर्शन से लाभ उठा सकें। यही कारण था, जिससे प्रेरित होकर मैंने ऊपर वाले आगार का समर्थन किया था। 1935 के अधिनियम में, मेरे ख्याल से, इस आशय का कोई प्रावधान नहीं था। पर जो भी हो, हम लोगों ने 1935 के अधिनियम को पूरी तरह कार्यान्वित ही नहीं किया। हमें उसका केवल डेढ़ साल का अनुभव मिला। सन् 1937 से लेकर 1939 तक ही हम उस पर अमल कर

सके। इस काल में मैं नहीं समझता कि ऐसा कोई मौका उठा, जिसमें संयुक्त बैठक की नौबत आई हो। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं, विधान-सभा में जो कांग्रेस दल था, वह प्रायः संयुक्त बैठक करके मसलों का फैसला कर लिया करता था। हमने यह भी देखा कि लोक सभा के सदस्यों द्वारा लाये गये प्रगतिशील कानूनों को पास करने में ऊपर वाला आगार रुकावट डालता था या देर कर दिया करता था। किन्तु अब डॉ. अम्बेडकर ने यह समझा दिया है कि ऊपर वाले आगार की अब जैसी रचना होगी उसमें वह न प्रगतिशील कानून के बनाने में रुकावट डालेगा और न देर ही करेगा। ऊपर वाले आगार में जो लोग चुनकर आयेंगे, वह न जमींदार या ताल्लुकेदार होंगे बल्कि उनको लोक सभा के प्रतिनिधि सदस्य ही चुनेंगे। इसलिये अब मैं इससे सहमत हो गया हूं। लोक सभा के सदस्यों को यह जानकारी रहेगी कि ऊपर वाले आगार के लिए किस तरह के आदमियों को चुनकर भेजा जाए। किन्तु इसका मतलब यह नहीं हुआ कि निर्वाचन के बाद भी वे लोग लोक सभा के सदस्यों की मर्जी के मुताबिक ही चलेंगे। वे लोग तो अपनी मर्जी के मुताबिक ही सभा में राय देंगे। हां, प्रगतिशील कानूनों के पास किये जाने में कोई रुकावट न डाली जाये, यह एक विचारणीय बात जरूर है। मेरी राय तो यह है कि इस बात को रोकने के लिये कि लोक सभा जल्दीबाजी में कोई कानून पास न करे, ऊपर वाले आगार के लिये हम एक अवधि जरूर निर्धारित कर दें जिसके अन्दर उसे किसी मसले पर अपना निर्णय कर ही लेना चाहिये। उस अवधि के अन्दर या तो ऊपर वाला आगार लोक सभा द्वारा पास किये गये कानून को पास कर दे या अगर उसमें कोई दोष हो तो उसे दूर करने के लिये लोक सभा के पास उसे वापस भेज दे। अगर लोक सभा फिर भी अपनी बात पर अड़ी रहे और ऊपर वाले आगार की बात को मानने को तैयार न हो, तो उस सूरत में एक निश्चित अवधि के बीतने के बाद बिल स्वतः कानून का रूप ग्रहण कर ले। मेरे ख्याल से यह व्यवस्था संयुक्त बैठक वाली व्यवस्था से ज्यादा अच्छी होगी। जो भी हो, विधान में इस आशय का एक प्रावधान है कि दस वर्ष के बाद अगर जनता विधान के किसी खंड या अनुच्छेद में कोई परिवर्तन करना जरूरी समझे तो वह ऐसा कर सकती है। कहावत भी है कि 'अभ्यास करते-करते ही मनुष्य पारंगत होता है'। कुछ समय बाद आने वाले विधान-मंडलों में जनता के वास्तविक प्रतिनिधि आयेंगे और वे ऐसी स्थिति में रहेंगे कि वह इस बात को जान सकें कि इस खंड को लेकर उनको क्या-क्या कठिनाइयां होंगी और तदनुसार वह उसमें सुधार कर सकते हैं। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात खत्म करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** एक ही ऐसा संशोधन है, श्रीमान्, जिसके सम्बन्ध में उत्तर के रूप में कुछ कहना जरूरी है और वह संशोधन है, माननीय मित्र श्री कामत का संशोधन नं. 1656, जिसमें उन्होंने कहा है कि ''इस संविधान के प्रयोजनार्थ'' शब्द हटा दिये जाने चाहियें। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि यह शब्द बड़े ही जरूरी हैं और वहां अवश्य रहने चाहियें। मैं यह क्यों कह रहा हूं यह बात आपको अनुच्छेद 87 (2) तथा अनुच्छेद 91 के प्रावधानों में मिल जायेगी। अनुच्छेद 87 के खंड (2) के अनुसार कोई विधेयक प्रत्येक आगार द्वारा पृथक्-पृथक् बैठकों में स्वतंत्र रूप से पास होना चाहिये। इतना हो जाने के बाद इस संविधान के अनुसार कोई विधेयक अनुच्छेद 91 के अधीन प्रधान के पास स्वीकृति के लिये भेजा जायेगा। माननीय मित्र कामत यह देखेंगे

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कि अनुच्छेद 88 के प्रावधान उन प्रावधानों के विपरीत पड़ते हैं, जो अनुच्छेद 87 (2) में रखे गये हैं। इसलिये यहां यह व्यक्त करना जरूरी है कि संयुक्त बैठक में स्वीकृत होने पर विधेयक प्रधान के पास भेजा जायेगा।

इसलिये मेरा कहना है कि ''इस विधान के प्रयोजनार्थ'' इन शब्दों का रखना मेरे ख्याल से बहुत जरूरी है और इन्हें हम अनावश्यक नहीं समझ सकते।

अनुच्छेद 88 में रखे गये प्रावधानों के सम्बन्ध में जो कई वक्ताओं ने कुछ बातें कहीं हैं उनके सम्बन्ध में मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि उन्होंने जो आशंका व्यक्त की है, उसके लिये कुछ आधार जरूर हैं। लेकिन जैसा कि मेम्बरों ने कहा है यह प्रावधान एक बिलकुल ही नई चीज है, ऐसी बात नहीं है। अन्य कई विधानों में भी यह प्रावधान है। इसलिये मेरा सुझाव यही है कि अनुच्छेद को ज्यों का त्यों रहने दिया जाये और हम यह देखेंगे कि आगे चलकर कालक्रम से इसका क्या प्रभाव पड़ता है? अगर उनकी आशंका सही उतरती है, तो मुझे शक नहीं कि कुछ माननीय सदस्य अवश्य ही इस अनुच्छेद के संशोधन के लिये आगे आवेंगे और विधान के संशोधन के लिये हमने जो पद्धति रखी है उसके अनुसार उसे संशोधित करायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने मेरे संशोधन नम्बर 1645 के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला है, उसको मद्देनजर रखते हुए मैं इसे वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

सभा की स्वीकृति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में 'दोनों आगारों' शब्दों की जगह 'उस खंड के उपखंड (ग) में उल्लिखित आगार' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में, अन्त में आये हुए 'दिनों' शब्द के पहले 'निरन्तर' शब्द जोड़ दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामत:** माननीय डॉ. अम्बेडकर के स्पष्टीकरण को दृष्टि में रखते हुए मैं संशोधन नम्बर 1656 को वापिस लेने की सभा से अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो संशोधन रखे गये थे वे दोनों ही स्वीकृत हो चुके हैं। अब मैं संशोधित अनुच्छेद पर राय लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88, अपने संशोधित रूप में, विधान में जोड़ा जाए।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 88 संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 89

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि संशोधन नं. 1662 केवल शाब्दिक है और मसौदे के अन्य प्रावधानों के अन्दर वह आ जाता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** नीचे वाले आगार का जो इस निश्चित विशेषाधिकार या अधिकार प्राप्त रहता है उसका इस संशोधन में दृढ़तापूर्वक उल्लेख किया गया है। मैं नहीं समझ पाता कि इस अधिकार का निषेधात्मक रूप में क्यों उल्लेख किया जाये।

***अध्यक्षः** वह अधिकार तो नीचे वाले आगार को प्राप्त है ही। विधान के प्रावधानों से उनका हरण तो होता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** प्रारम्भ में ही मुझे वह बात दुहरा देनी पड़ती है जिसका कि मैंने कल यहां जिक्र किया था। मैंने इन संशोधनों को दो पृथक् संशोधनों के रूप में भेजा था किन्तु दुर्भाग्य से वह एक में मिला दिये गये हैं। विधान-परिषद् कार्यालय कार्यभार से व्यक्त हैं और उसे मैं इसके लिये दोषी नहीं ठहराता हूं। मैं संशोधन के केवल दूसरे भाग को ही पेश करने की अनुमति आप से चाहता हूं।

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 82 के खण्ड (1) में 'राज्य परिषद् में... पुरःस्थापित न किया जायेगा' (not be introduced in the Council of States) शब्दों की जगह 'राज्य परिषद् में... पुरःस्थापित किया जायेगा' (be introduced in the Council of States) शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्षः** यह संशोधन तो महज रस्मी है।

***श्री एच.वी. कामतः** अवश्य ही, मैं यह स्वीकार करता हूं, श्रीमान्, कि यह संशोधन सिर्फ रस्मी है और इसलिये मैं इसे मसौदा-समिति पर छोड़ता हूं।

(संशोधन नं. 1664 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 89 में 'तीस दिन' शब्द जहां कहीं भी आये हैं, उनकी जगह 'इक्कीस दिन' शब्द रखे जायें।''

संशोधन का अभिप्राय यह है कि जब मुद्रा विधेयक लोक सभा द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो वह राज्य-परिषद् की सिफारिशों के लिये उसके पास जायेगा। हो सकता है कि अमल में वस्तुतः हमें सात दिन से भी कम लगें। तीस दिनों की अवधि अधिकाधिक रूप में रखी गई थी। जब हम लोगों ने यह संशोधन बनाया था उस समय हम किफायतन इक्कीस दिन से भी कम अवधि रखना चाहते थे। किन्तु अब मेरा ख्याल है कि 14 दिनों की या एक पखवाड़े की अवधि सभी तरह की विशेष स्थितियों के लिये पर्याप्त

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

होगी। यदि डा. अम्बेडकर राजी हों और सभा की अनुमति हो तो ''इक्कीस दिन'' के बजाय ''चौदह दिन'' शब्द रख दूं क्योंकि हमारे प्रयोजन के लिये यह अवधि पर्याप्त है। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** श्री नजीरूद्दीन अहमद के नाम में दो संशोधन हैं (नं. 1666, 1667)। इनका सम्बन्ध मुख्यत: अनुच्छेद की वाक्य रचना से है।

इस तरह इस अनुच्छेद पर केवल एक ही संशोधन है जो श्री कृष्णमाचारी का है। अब अनुच्छेद पर वाद-विवाद प्रारम्भ किया जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन रखा है, श्रीमान्, मैं उसे स्वीकार करता हूं। अवधि को और घटाकर जो चौदह दिन का सुझाव रखा गया है मैं उसे भी मंजूर कर लूंगा। अगर सभा मुझे इस आशय का संशोधन रखने की अनुमति दे तो मैं प्रस्ताव रखूंगा कि संशोधन में रखी हुई इक्कीस दिन की अवधि को घटाकर चौदह दिन कर दिया जाये। जिन कारणों से मैं यह परिवर्तन का सुझाव दे रहा हूं मैं उन्हें भी बतायें देता हूं। ब्रिटिश पार्लियामेंट में ऐसा होता है कि लोक सभा (House of Commons) जो भी वित्त सम्बन्धी प्रावधान पास करती है उस पर हाउस आफ् लाड्र्स केवल अपनी सहमति दे देता हूं। जहां तक कि वित्त सम्बन्धी प्रावधानों का सम्बन्ध है, हाउस आफ लाड्र्स ने अपने अधिकार का पूर्णत: परित्याग ही कर दिया है। हम यहां यह स्थिति नहीं रख रहे हैं। कर सम्बन्धी या वैत्तीय प्रस्तावों के सम्बन्ध में जो कि लोक सभा में पुन: स्थापित किये जायेंगे, हम ऊपर वाले आगार को अपनी बात कहने का अधिकार दे रहे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम ऊपर वाले आगार को एक विशेषाधिकार दे रहे हैं जो साधारणत: उन्हें कहीं प्राप्त नहीं है। पर साथ ही हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि बजट सम्बन्धी प्रस्ताव बहुत ही आवश्यक होते हैं। आज भी, जैसा कि सदस्यों को मालूम है, लोक सभा को हम वित्त सम्बन्धी विधेयकों के लिये छ: या आठ दिनों से ज्यादा समय नहीं देते हैं। तीस दिन या इक्कीस दिन की अवधि देने का नतीजा, मेरी समझ से, यह होगा कि वित्त विधेयक, जो कि महत्त्वपूर्ण होता है, बहुत दिनों तक खटाई में पड़ा रह जायेगा। अगर ऊपर वाला आगार उस पर अपनी राय देना चाहता है तो इसके लिये, मेरी राय में, चौदह दिनों की अवधि पर्याप्त से भी अधिक है।

***अध्यक्ष:** मूल प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 89 में 'तीस दिन' शब्द जहां भी आये हैं उनकी जगह 'इक्कीस दिन' शब्द रखे जायें।''

इस पर एक और संशोधन यह रखा गया है कि ''इक्कीस दिन'' की जगह ''चौदह दिन'' रखा जाये। संशोधन इस प्रकार है:

> ''संशोधन में 'इक्कीस दिन' शब्दों की जगह 'चौदह दिन' शब्द रखे जाये।''

प्रस्ताव यह है कि:

> ''संशोधन पर रखे गये संशोधन को स्वीकार किया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधित संशोधन स्वीकार किया जाये।''

संशोधन मंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 89 को, उसके संशोधित रूप में, स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 89 को संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 90

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 90 को लेते हैं।

(संशोधन नं. 1668 पेश नहीं किया गया।)

***श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रांत और बरार): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) से 'ही' (only) शब्द निकाल दिया जाये।''

यह अनुच्छेद भारत शासन अधिनियम की धारा 37 का प्रतिरूप है जिसमें यह कहा गया है कि कोई विधेयक या संशोधन जिसमें कर वृद्धि की या कर लगाने की अथवा ऋण लेने इत्यादि-इत्यादि, की व्यवस्था की गई हो वह बिना गवर्नर जनरल की सिफारिश के पुर:स्थापित या प्रस्तावित न किया जायेगा। इसका मतलब यह हुआ कि यह जरूरी नहीं है कि विधेयक केवल मुद्रा विधेयक ही हो। उसमें और बातें भी हो सकती हैं पर अगर कर या ऋण सम्बन्धी कोई प्रावधान है तो वह धारा 37 के अन्दर आयेगा और उसके लिये गवर्नर जनरल की सिफारिश जरूरी होगी। इस अनुच्छेद 90 में यह कहा गया है कि विधेयक तभी मुद्रा विधेयक समझा जायेगा जबकि उसमें केवल कर या ऋण लेने आदि के ही प्रावधान हों। इसका यह अर्थ भी किया जा सकता है कि कोई विधेयक जिस में कर और ऋणादि के प्रावधान के साथ ही अन्य और बातों से सम्बन्ध रखने वाले प्रावधान हैं तो वह मुद्रा विधेयक नहीं माना जायेगा। अगर यही प्रयोजन है तब तो मुझे कुछ नहीं कहना है पर अगर प्रयोजन यह नहीं है तो मैं यह जरूर कहूंगा कि यहां 'ही' (only) शब्द बड़ा गोलमाल पैदा कर सकता है क्योंकि विधेयक में इन सब बातों के साथ-2 अन्य किसी बात का भी प्रावधान है तो वह मुद्रा विधेयक न माना जायेगा। मसौदा समिति का क्या अभिप्राय है यह तो मैं नहीं जानता पर मेरी समझ से अनुच्छेद के इस पहलू का हमें अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(संशोधन नं. 1670 और 1671 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

''(क) अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड में 'किसी कर' शब्दों के आगे और

[प्रो. के.टी. शाह]

'का' के पहले शुल्क, भारदर' या अन्य किसी रूप के राजस्व, आय का सरकारी प्राप्ति अथवा सरकारी व्यय' शब्द जोड़े जायें; तथा

(ख) अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'विधि' शब्द के बाद और 'के' के पहले 'या किसी वर्तमान प्रसंविदा' शब्द और रखे जायें''

यह संशोधन इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि खंड (क) में मुद्रा विधेयक व्यक्त करने के लिये जो पारिभाषिक शब्द रखे गये हैं उनका और खुलासा हो जाये। कहने का मतलब यह है कि वह विधेयक मुद्रा विधेयक समझा जाये जो किसी एक शुल्क, भारदर, उद्ग्रहण या अन्य किसी रूप के राजस्व, आय या सरकारी प्राप्ति अथवा सरकारी व्यय का आरोपण, उत्पाद, परिहरण, परिवर्तन अथवा आयनियमन करता हो। विधान के मसौदे में कहीं भी, विधान में दिये हुये महत्त्वपूर्ण परिभाषिक शब्दों की व्याख्या नहीं दी गई है, इसी कारण, इस महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द के स्पष्टीकरण के लिये यह संशोधन मैं रख रहा हूं।

''कर'' शब्द जो यहां रखा गया है उसमें अगर अन्य तरह के सरकारी राजस्व या आमदनी को भी, आप शामिल मानते हैं, जिनका कि हमने यहां पृथक-पृथक हवाला दिया है तो मुझे आशंका है कि कोई स्पष्ट परिभाषा-मूलक खंड न होने के कारण इसमें गलतफहमी होगी। बहुत सम्भव है कि वकीलों की चातुरी ''कर'' शब्द को ऐसा अर्थ दे कि उस में और तरह के सरकारी राजस्व, आमदनी जिनका कि मैंने उल्लेख किया है शामिल न किये जायें। और कोई विधेयक, बावजूद इस बात के कि वह मुद्रा विधेयक है, पर उसमें कर के आरोपण, उत्सादन, परिहरण, परिवर्तन अथवा आनियमन का उल्लेख न होने से वह मुद्रा विधेयक न समझा जाये। मैं समझता हूं कि ऐसा होने से तो राज्य परिषद् की शक्ति बहुत ही बढ़ जायेगी। इसलिये यह बहुत ही आवश्यक है कि यहां अन्य तरह के सरकारी राजस्व आय या प्राप्ति को भी शामिल कर लिया जायें ताकि इस मामले में किसी विवाद की गुंजाइश न रह जाये।

विधान सम्बन्धी इतिहास का हर विद्यार्थी यह जानता होगा कि इंग्लैंड में लोक सभा और हाउस आफ लार्ड्स के बीच अक्सर अपने प्रावधान के लिये जो-जो झगड़े हुये हैं उनमें मुद्रा विधेयक की परिभाषा ही प्रायः करके मूल में रही है। बजट में अन्य ऐसी बहुत सी बातों का समावेश करके जो कि पहले उस में नहीं शामिल थीं, हाउस आफ लार्ड्स को मुद्रा विधेयक सम्बन्धी शक्ति को क्रमशः बहुत कुछ घटा दिया गया है। इस तरह से वित्त सम्बन्धी मामलों में लोक सभा का इतना प्राधान्य स्थापित हो गया है और अब उस पर कोई प्रश्न ही नहीं उठाया जा सकता है।

अनुच्छेद में जो शब्द रखे गये हैं अगर वे ऐसे ही रहने दिये जाते हैं तो मेरा ख्याल है कि इससे इस बात की काफी आशंका है कि वित्त सम्बन्धी मामलों में लोक सभा के अधिकार उतने व्यापक और पूर्ण न रहेंगे जितना कि मेरे ख्याल में दायित्व पूर्ण प्रतिनिधि मूलक लोकतंत्रीय व्यवस्था में उसे होना चाहिये।

इसीलिये मैंने इन सब शब्दों को भी शामिल कर दिया है जिनको लेकर अतीत काल में किसी न किसी रूप में दूसरे मूल्कों में मतभेद खड़ा हो चुका है और मेरी समझ से यह जरूरी है कि इन सब शब्दों का यहां स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाये।

मेरे संशोधन का दूसरा भाग जिसमें किसी विधि या प्रसंविदा के संशोधन का उल्लेख है, वह तो और भी आवश्यक है। सरकार की प्रसंविदाएं प्राय: ऋण रूप में दिये गये धन से ही सम्बन्ध रखती हैं और ऋण के रूप में ली हुई रकम पर जो ब्याज होता है, हो सकता है उसी की दर में परिवर्तन किया जाये। इसमें परिवर्तन किये गये हैं। प्रसंविदा में परिवर्तन किये जाते हैं वह एक तरफा ही होते हैं और अवश्य ही सत्ताधारी विधानसभा को ऐसा करने को क्षमता प्राप्त रहती है पर यह शक्ति लोक सभा में निहित रहनी चाहिये। मुद्रा विधेयकों और वित्त सम्बन्धी प्रशासन के सम्बन्ध में जो उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त रहता है उसी अधिकार का यह भी एक अंग माना जाना चाहिये। उदाहरण के लिये मैं आप को बताऊंगा कि इंग्लैंड में, निधिकृत राष्ट्र ऋण पर जो ब्याज की दर है वह बार-बार घटाई गई है। ब्याज दर घटाने का कार्य अवश्य ही सर्वसत्ताधारी किसी निकाय का काम है और जो विधान हम बना रहे हैं उसमें यह अधिकार विधान-मंडल को निस्संदेह प्राप्त है। पर एतदर्थ जो विधेयक रहेगा वह वित्त विषयक विधेयक का ही एक अंग होगा इसलिये इसके बारे में क्षमता केवल लोक सभा को ही प्राप्त रहनी चाहिये।

मुझे इस सम्बन्ध में कई अन्य उदाहरण भी याद हैं। करीब पन्द्रह साल हुए, अमेरिका में नागरिकों के निजी प्रसंविदाओं में भी, जिनमें कि 'गोल्ड क्लाज' का समावेश था, कांग्रेस के एक अधिनियम द्वारा संशोधन किया गया था। संशोधन का आशय यह था कि अमेरिकन नागरिक और उसके विदेशस्थ ग्राहक के बीच हुई प्रसंविदा में, ''गोल्ड क्लाज'' की उपेक्षा की जायेगी अगर उस प्रसंविदा के अनुसार यह जरूरी हो कि माल या सेवाओं के लिये भुगतान सोने में होगा, चाहे किसी देश की मुद्रा के हिसाब से भुगतान करने की बात उसमें कही गई हो। यदि ये प्रसंविदायें वहां प्रभावी बनी रहने दी जातीं और उनके लिये यह संशोधन न किया गया होता तो इसका नतीजा यह होता कि तत्कालीन अमेरिकन कांग्रेस और वहां की सरकार डालर की विनिमय दर को अनुपात में रखने के लिये चाहे जो भी उपाय करती वह सब व्यर्थ होता क्योंकि वहां की मुद्रा की बाबत तो जैसा भी होता किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान तो केवल सोने में या सोने के बराबर मूल्य की मुद्रा में या बुलियन में, जैसी भी प्रसंविदा में शर्त होती, करना जरूरी होता। अमेरिकन विधान मंडल ने ऐसी सूरत में यह कानून बना दिया कि गोल्ड क्लाज प्रसंविदाओं में लागू न होगा। अगर यह क्लाज प्रभावी रहने दिया जाता तो जिस प्रयोजन के लिये तत्कालीन अमेरिकन विधान मंडल ने उक्त कानून पास किया था वह न सिद्ध हो पाता। अगर मुद्रा-विधेयकों के सम्बन्ध में लोक सभा को जो शक्तियां दी गई हैं उनमें इस तरह की शक्ति समाविष्ट नहीं रखी जाती है तो मुझे भय है कि आज के युग में, जिसमें कि हम रह रहे हैं, उसमें ऐसा करने का मतलब यह होगा कि नागरिकों के पारस्परिक आर्थिक व्यवहार में या नागरिकों और राज्य के बीच जो आर्थिक व्यवहार होगा उसमें संशोधन के निर्मित कानून बनाने की लोक सभा की जो शक्ति है उसको पूरा-पूरा आप यहां नहीं दे रहे हैं। मेरी

[प्रो. के.टी. शाह]

राय में इन सभी शक्तियों का आप यहां उल्लेख कर दीजिये। अगर आप उस सिद्धांत को साफ-साफ स्वीकार करते हैं कि वित्त सम्बन्धी मामलों में सर्वोच्च अधिकार लोक सभा में ही निहित रहना चाहिये तो मेरी समझ से मेरे इस संशोधन को मानने में आपको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इसी ख्याल से मैंने पहले एक संशोधन रखा था जिस में साफ-साफ कहा गया था कि मुद्रा विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है। यह खंड निषेधात्मक रूप में इस प्रकार रखा गया है कि इसका गलत अर्थ लगाया जा सकता है और इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। अस्तु मेरा वह संशोधन तो पेश नहीं हुआ और अब इसीलिये मैं उस बात का खुलासा करा लेना चाहता हूं जिसके सम्बन्ध में खुद विधान में कोई सन्देह न रहना चाहिये और जिसको हमें यहां इसलिए न छोड़ना चाहिए कि आगे चलकर सभा के नियमों या स्थायी आज्ञाओं या पूर्ववर्त्ती उदाहरणों के आधार पर उसका खुलासा हो जायेगा। इस सम्बन्ध में हमारा अपना कोई पूर्ववर्त्ती उदाहरण है नहीं और हमें उसे बनाना पड़ेगा। आखिर हर मौके पर हम इस सम्बन्ध में ब्रिटेन के वैधानिक इतिहास का हवाला तो ढूंढ नहीं सकते। हमें इस बात की गुंजाइश न रहने देनी चाहिये कि आगे चलकर कोई भी कानूनी चातुरी का प्रयोग कर सके और इस उदार परम्परा को क्षति पहुंचे। सभा में पहल किसी मौके पर यह कहा गया था कि अपना यह विधान वकीलों के लिये कल्प वृक्ष सिद्ध होगा। आशा है यह कथन सच न उतरेगा। ऐसा कोई शब्द पदसंहति रख कर अपने बुनियादी विधान को हमें अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं रहने देना चाहिये जिसको कि कानूनी चातुरी से तोड़-मरोड़ कर कोई गलत अर्थ दे। इसी लिए मैंने यह संशोधन रखा है और आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

> ''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखण्ड (ङ) में 'राशि की वृद्धि' शब्दों की जगह 'राशि में परिवर्तन या उसका उत्सादन' शब्द रखे जायें।''

इस तरह के संशोधन की आवश्यकता पर बहुत कुछ कहने की मुझे जरूरत नहीं है क्योंकि यह सभी जानते हैं कि व्यय की मदें जब भार के आगम पर भारित होंगी तो ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि उस व्यय की कोई आवश्यकता न रहे और वह व्यय किया ही न जाये या उसमें कमी या वृद्धि हो जाये। वृद्धि की सम्भावना मैं सोच सकता हूं पर इस खंड में केवल एक वृद्धि की ही सम्भावना सोची गई है। मैं पूछता हूं आखिर यह क्यों नहीं यहां सोचा गया कि व्यय में कमी भी हो सकती है या यह कि व्यय की राशि बिल्कुल उठा ही दी जा सकती है? यह प्रश्न भी उठता है कि व्यय की कौन-कौन सी मदें होंगी जो भारत के राजस्व पर भारित होंगे। उस प्रश्न के समाधान के लिए हम अनुच्छेद 92 (3) को देख सकते हैं। उसमें कहा गया है अमुक-अमुक व्यय भारत के राजस्व पर भारित होंगे। उस समूची को मैं नहीं पढ़ने जा रहा हूं इन विभिन्न मदों की ओर सभा का ध्यान मात्र मैं आकृष्ट कर देता हूं। उस सम्बन्ध में 'क' से 'च' तक की कुल 6 मदें हैं अगर गौर से आप इनको पढ़ें तो देखेंगे कि राष्ट्रपति के वेतन और भत्ते के सम्बन्ध में विधान में यह व्यवस्था रखी गई

है कि उसके पदावधि काल में इसमें कोई कमी नहीं की जा सकती है। यह व्यवस्था आपको अनुच्छेद 48 (4) में मिलेगी। यह तो ठीक ही है। पर जब हम राज्य-परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते सम्बन्धी प्रावधान को देखते हैं तो यह पाते हैं। तत्सम्बन्धी अनुच्छेद में यह साफ-साफ नहीं कहा गया है कि उनके वेतन और भत्ते में, इनकी पदावधि काल में कोई कमी न की जायेगी जैसा कि राष्ट्रपति के बारे में कहा गया है। अवश्य ही मैं मानता हूं उसमें कमी न की जायेगी, पर चूंकि संसद सर्वसत्ता सम्पन्न रहेगी इसलिये वह उसमें कमी कर सकती है। इस सम्भावना को मद्देनजर रखते हुए ही मैंने यह सुझाव दिया है कि ''परिवर्तन'' शब्द रखा जाये। 'परिवर्तन' शब्द में घटाना या बढ़ाना दोनों ही बातें आ जाती हैं। इसलिये में माननीय डा. अम्बेडकर से तथा सभा से अपील करूंगा कि 'परिवर्तन' शब्द को रखना स्वीकार कर लें क्योंकि यह अधिक व्यापक शब्द है और इसमें घटाना या बढ़ाना दोनों ही बातें आ जाती हैं।

और जहां तक कि उत्सादन यानी व्यय-राशि के उठाने का सम्बन्ध है, वह भी कोई असम्भव बात नहीं है। अगर आप अनुच्छेद 92 (3) को देखें, जिसका कि मैंने अभी हवाला दिया है, तो पायेंगे कि उसमें उन विभिन्न मदों का उल्लेख किया गया है जो भारत के राजस्व पर भारित होंगे। उक्त अनुच्छेद के उपखण्ड (4) में कहा गया है कि इस संविधान से अथवा संसद से विधि द्वारा इस प्रकार प्रभृत्त घोषित व्यय भारत के राजस्व पर भारित होगा। मुझे व्यय सम्बन्धी अन्य मदों का उल्लेख करने की जरूरत नहीं है जिनको संसद भारत के राजस्व पर भारित करने का निश्चय कर सकती है। बहुत से ऐसे अनुदान भी हो सकते हैं जो कि विभिन्न शैक्षणिक, सांस्कृतिक या सामाजिक या अन्य संस्थाओं को दिये जाते हों और संसद विधि द्वारा भारत के राजस्व पर उनको भारित करने का निश्चय करे और फिर कालान्तर में विधि द्वारा उनको बन्द कर देने का वह निश्चय करे। अनुच्छेद का जो वर्तमान रूप है उसमें यह सम्भावना ही नहीं रखी गई है कि भारत के राजस्व पर भारित होने वाले इन व्ययों में कमी भी हो सकती है या इनको बिल्कुल बन्द भी किया जा सकता है। अतः इस स्थिति को सुधारने के लिये और आकस्मिक आवश्यकताओं की गुंजाइश को पूरा करने के लिये मैं अपना संशोधन नं. 1674 पेश कर रहा हूं और सभा से इसे स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 1675, 1676, 1677 और 1678—ये सब के सब शाब्दिक मात्र हैं। अब प्रस्तुत अनुच्छेद से सम्बन्ध रखने वाले सभी संशोधन पेश हो चुके हैं और जो कोई इन पर अथवा अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहते हों कह सकते हैं।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन के सम्बन्ध में ही मैं बोलूंगा। अनुच्छेद के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। उन्होंने अभी अनुच्छेद 90 के उपखण्ड (1) (ङ) का हवाला दिया है जिसमें कहा गया है ''किसी व्यय को भारत के राजस्व पर भारित घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि की वृद्धि'' इस तरह व्यय में वृद्धि की बात हो तभी वह कोई विधेयक मुद्रा विधेयक समझा जायेगा। माननीय मित्र श्री कामत यह चाहते हैं कि 'वृद्धि' शब्द की जगह 'परिवर्तन' शब्द रखा जाये। मैं उनसे कहूंगा कि वह मूल योजना पर गौर करें और फिर मसौदा बनाने वालों की योजना को समझ लेने के बाद भी अगर वह यहां यह परिवर्तन लाना

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

चाहते हैं तो वह इस पर जोर दें पर पहले उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि इसके पीछे मूल योजना क्या है? अनुच्छेद 97 में कहा गया है कि—इस संविधान के अनुच्छेद 90 के खण्ड (1) के (क) से (च) तक के पदों में उल्लिखित विषयों में से किसी के लिए प्रावधान करने वाला विधेयक अथवा संशोधन राष्ट्रपति के अभिस्ताव के बिना पुर:स्थापित अथवा प्रस्तावित न किया जायेगा...''

व्यय की वृद्धि के सम्बन्ध में जो मुद्रा विधेयक होगा उसके लिये भी राष्ट्रपति का अभिस्ताव आवश्यक है। इस अनुच्छेद के परन्तुक में कहा गया है ''किसी कर के घटाने अथवा उत्सादन के लिए प्रावधान करने वाले किसी संशोधन के प्रस्ताव के लिए इस खण्ड के अधीन किसी अभिस्ताव की अपेक्षा न होगी''। वर्तमान विधि के अनुसार भी आमतौर पर यही कायदा रहा है कि किसी मुद्रा या वित्त सम्बन्धी विधेयक में कर को घटाने का या उठाने का संशोधन पेश किया जाता है तो उसके लिये गवर्नर जनरल की सिफारिश जरूरी नहीं हुआ करती। इसी व्यवस्था का अनुकरण यहां भी किया गया है। कर के लगाने से समाज पर भार पड़ता है इसलिए उसके बारे में राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी होती है पर जब किसी कर को घटाने या उठाने का प्रश्न है तो उसके लिए सिफारिश की जरूरत नहीं है। यह प्रश्न सर्वथा सभा की मरजी पर निर्भर करता है और इसके लिए राष्ट्रपति द्वारा इस जांच की जरूरत नहीं होती कि आया वह प्रस्ताव समाज के हित में है या उसके प्रतिकूल। यहां मूल में योजना यही है। अनुच्छेद 97 का पहले वाला अंश संशोधन और विधेयक दोनों के लिए ही लागू है पर परन्तुक केवल संशोधन पर ही लागू होता है। अत: किसी कर की राशि में कमी करने वाला या उसका उत्सादन करने वाले विधेयक के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी है। बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के वह उपस्थित ही नहीं किया जा सकता । और ऐसे विधेयक के लिये भी जो किसी चालू कर को बढ़ाना चाहता हो या किसी व्यय को बढ़ाना चाहता हो, राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी आवश्यक है। किन्तु व्यय को बढ़ाने वाले विधेयक तथा व्यय को घटाने या उठाने वाले विधेयक में एक अन्तर है और वह यह है। व्यय को बढ़ाने वाला विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है किन्तु व्यय को कम करने वाला या उसे उठा देने वाला विधेयक किसी भी सभा में उपस्थित किया जा सकता है क्योंकि ऐसे विधेयकों के सम्बन्ध में दोनों ही आगारों को अधिकार क्षेत्र प्राप्त है। अगर किसी कर को घटाने या उठाने का प्रश्न है तो तद्विषयक विधेयक किसी भी आगार में उपस्थित किया जा सकता है, पर मेरे माननीय मित्र श्री कामत चाहते हैं कि यह शक्ति केवल लोक सभा तक ही सीमित रहे। व्यय को बढ़ाने का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिस पर यह विचार करना होगा कि आया भारत उस वृद्धि को बरदास्त कर सकता है या नहीं। कोई व्यय भारत के राजस्व पर भारित हो या न हो, यह ऐसा प्रश्न है कि जिस पर छान-बीन करना जरूरी है क्योंकि कोई व्यय जो कि देश के राजस्व पर भारित होगा उसके लिए सभा की राय अपेक्षित नहीं है जोकि आमतौर पर सभा उस पर बहस मुबाहिसा कर सकती है पर सभा का मतदान उसके लिए अपेक्षित नहीं है। ऐसी सूरत में सभा के अधिकार पर जो प्रतिबंध है उसे कर या व्यय की वृद्धि तक ही सीमित रखना क्या ठीक न होगा। आप तो वृद्धि और कमी दोनों ही विषयों में उसके अधिकार को उठा देना चाहते हैं। ससम्मान मैं यह कहूंगा कि मा. मित्र ने इस खंड के दायरे को समझने

में भूल की है और अब व्यर्थ ही वह दोनों आगारों के अधिकार क्षेत्र पर प्रतिबंध लगाना चाहते हैं और ऐसे विषय के बारे में जिसमें कि केवल मुद्रा सम्बन्धी प्रश्न में तथा व्यय या कर वृद्धि के सम्बन्ध में ही अधिकार-क्षेत्र लोक सभा तक सीमित रखा गया है। इसलिए श्री कामत के संशोधन से मैं सर्वथा असहमत हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक ज्ञातव्य है, श्रीमान्। क्या माननीय सदस्य मुझे वह अनुच्छेद बतायेंगे जिसमें यह प्रावधान है कि कोई विधेयक जो व्यय को बढ़ाने या उठाने की बात कहता है वह किसी भी आगार में उपस्थित किया जा सकता है। अनुच्छेद 97 के परन्तुक में तो कर को घटाने या उठाने की बात कही गई है और राजस्व अथवा व्यय की अन्य मदें उसमें नहीं हैं। समस्त योजना कुछ अस्पष्ट है और मैं नहीं जानता कि श्री आयंगर की दृष्टि में यह योजना स्पष्ट कैसे दिखती है। अगर वह मुझे समझा दें तो मैं अपने संशोधन के सम्बन्ध में अवश्य ही विचार करूंगा।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** जहां तक कि संशोधन का सम्बन्ध है, विधेयक सम्बन्धी संशोधन बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के ही वह पेश किया जा सकता है अगर उसमें किसी कर को घटाने या उठाने की बात है। पर विधेयक के लिये, विशेषतः जबकि उसमें कर को घटाने की बात है, राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है। पर अगर उसमें कर बढ़ाने की बात है तो विधेयक मुद्रा विधेयक के रूप में ही आयेगा। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 97 को देखिये। पर जिसमें कर घटाने की बात कही गई है वह विधेयक मुद्रा विधेयक है ही नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** वह कौन से प्रावधान हैं जिसके अनुसार आप यह कह रहे हैं?

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** विधेयक तभी मुद्रा विधेयक हो सकता है जबकि उसमें राशि वृद्धि की बात कही गई है। अगर वह राशि वृद्धि से संबंध नहीं रखता है तो वह मुद्रा विधेयक नहीं है और इसलिये वह अनुच्छेद 97 के अन्तर्गत आ जाता है और उसके लिये राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित भी हो सकती है और अनपेक्षित भी। माननीय मित्र श्री कामत यह चाहते हैं कि इसके लिये राष्ट्रपति की सिफारिश होनी ही चाहिये और साथ ही वह मुद्रा विधेयक भी माना जाना चाहिए। वर्तमान वैधानिक व्यवस्था के अनुसार मुद्रा विधेयक के संबंध में केवल एक ही आगार को अधिकार क्षेत्र प्राप्त है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि मैं बीच में हस्तक्षेप कर रहा हूं, पर मैं प्रश्न का स्पष्टीकरण चाहता हूं। माननीय मित्र का ध्यान मैं अनुच्छेद 97 (1) के परन्तुक की ओर आकृष्ट करूंगा जिसका कि आपने अभी हवाला दिया है। परन्तुक में कहा गया है कि ऐसे विधेयक के लिए जिसमें कर को घटाने या उठाने की बात है राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी नहीं होगी। पर और खर्चों का क्या होगा, उनके घटाने या उठाने के सवाल के बारे में क्या किया जायेगा? इस योजना में इन सब बातों का कोई खुलासा नहीं है।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** उस हालत में विधेयक न तो मुद्रा विधेयक समझा जायेगा और न वित्त विधेयक। मुद्रा विधेयक तो वही विधेयक माना जायेगा जो अनुच्छेद 90 के खंड (1) के (क) से (च) तक के उपखंडों के अंतर्गत आता हो। इस तरह केवल यही विधेयक मुद्रा विधेयक या वित्त विधेयक माना जायेगा जिसका संबंध व्यय की राशि की वृद्धि से है। अगर उसमें राशि को बढ़ाने का प्रश्न नहीं है अर्थात् उसमें राशि को

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

बढ़ाने या उठाने का प्रश्न है तो वह मुद्रा विधेयक नहीं समझा जायेगा। यही कारण है कि उसके संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी समझते हैं। यदि यह परन्तुक केवल कर से संबंध रखता है, जैसा कि मैं समझ रहा हूं, तो कर में वह सभी बातें तो नहीं आती जिनका उल्लेख (क) से (च) तक के उपखंडों में दिया गया है। मैं यह देखता हूं कि 'कर' शब्द यहां अन्य प्रावधानों से भिन्न अर्थ में व्यवहृत किया गया है। इसलिए परन्तुक लाजिमी तौर पर कर विषयक विधेयक या प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (1) (क) में प्रावहित किसी व्यय की राशि को घटाने या उठाने से संबंध रखने वाले संशोधन के लिए लागू नहीं होता। ऐसे विधेयक तो किसी भी आगार में बिना किसी सिफारिश के पेश किये जा सकते हैं। अत: अब प्रश्न जो उठता है वह यह है कि कर की राशि को घटाने या उठाने वाले विधेयक भी क्या उसी श्रेणी में रख दिये जायें जिसमें कि राशि-वृद्धि करने वाले विधेयक हैं। इस संबंध में मेरा कहना तो यह है कि किसी कर को घटाने या उठाने से संबंध रखने वाले मामलों में किसी भी आगार के अधिकार क्षेत्र को सीमित करना ठीक नहीं है। ऐसे विधेयकों के संबंध में जिनमें रकम को बढ़ाने की बात है, एक मात्र अधिकार-क्षेत्र केवल लोक सभा को ही प्राप्त है और अन्य विधेयक किसी भी आगार में स्वच्छन्दता पूर्वक पेश किये जा सकते हैं। मैं इस आयंत्रण से सहमत नहीं हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के खंड (2) में यह कहा गया है कि: ''कोई विधेयक केवल इसी कारण से मुद्रा विधेयक न समझा जायेगा कि वह अर्थ दंड या अन्य आर्थिक शास्ति के आरोपण का, अथवा अनुज्ञाओं के लिए शुल्क की या की हुई सेवाओं के लिए शुल्क की, अभियाचना का या देने का प्रावधान करता है, अथवा इस कारण से कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनार्थ किसी कर के आरोपण, उत्सादन, परिहरण, परिवर्तन या आनियमन का प्रावधान करता है।'' इसके अनुसार, श्रीमान्, वह विधेयक, जिसमें किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा किसी कर के आरोपण, उत्सादन या परिवर्तन का प्रावधान किया गया है, मुद्रा विधेयक नहीं होगा। मैं खुद भी यही महसूस करता हूं, जैसा कि अभी श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने बताया है, कि वह विधेयक जिसमें किसी कर को बढ़ाने का या कोई नया कर लगाने का प्रावधान है, मुद्रा विधेयक होगा पर यहां उस खंड का अभिप्राय यह है कि ऐसा विधेयक मुद्रा विधेयक न होगा।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं आपको कुछ गलत फहमी हो रही है। इस खंड से तो स्थानीय निकाय को करारोपण का अधिकार मात्र प्राप्त होता है। उससे कर थोड़े ही मिलता है, बल्कि कर लगाने का अधिकार मिलता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह तो मैं जानता हूं, श्रीमान्। मेरा यह ख्याल है कि वह विधेयक भी, जिसके द्वारा किसी स्थानीय निकाय को कर लगाने का अधिकार मिलता है, मुद्रा-विधेयक माना जाना चाहिये। वस्तुत: प्रो. के.टी. शाह का संशोधन जिसमें कि अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (क) में ''शुल्क, भार दर या अन्य किसी रूप के राजस्व, आय या सरकारी प्राप्ति अथवा सरकारी व्यय'' शब्दों को जोड़ने की बात कही गई है, वह मेरी समझ से कहीं अच्छा प्रावधान होगा। उपखंड (क) में केवल इतना ही कहा गया है कि—''किसी कर का आरोपण, उत्सादन, परिहरण, परिवर्तन अथवा आनियमन''

उसमें ''शुल्क, भार दर, उद्ग्रहण या किसी अन्य रूप के राजस्व, आय या प्राप्ति'' ये शामिल नहीं है। माननीय कानून मंत्री से, जो कि इस विधेयक के कर्ताधर्ता हैं, मैं यह अनुरोध करूंगा कि इस उपखंड (क) में वह समुचित संशोधन होने दें। मैं यह महसूस करता हूं कि उस खंड (2) से लोक सभा की थोड़ी बहुत शक्ति कम हो जाती है और इससे शासन के लिये यह लाजिमी हो जाता है कि वह ऐसे विधेयकों को, जो कि वस्तुतः मुद्रा विधेयक हैं, ऊपर वाले आगार के समक्ष जरूर रखे। मैं नहीं समझता कि ऐसे मामलों के संबंध में ऐसा करना उचित होगा। मैं यह महसूस करता हूं कि अनेक स्थानीय निकायों को आज कुछ भी राजस्व नहीं मिलता है। बहुत से बड़े-बड़े कार्यों के लिये जो कि उनको करने हैं, उनके पास आज कोई भी निधि नहीं है। मैं खुद एक बड़े जिले के बोर्ड का सदस्य हूं और यह महसूस करता हूं कि जब तक कि स्थानीय निकायों को और राजस्व नहीं प्राप्त होता है, वे अपने कार्यक्रम को पूरा कर ही नहीं सकते। हम अपने संसद में तो करोड़ों रुपये का व्यय दो तीन घंटे के अन्दर पास कर देते हैं पर ये स्थानीय निकाय अपने समूचे वर्ष में चन्द लाख रुपये भी नहीं इकट्ठा कर पाते जिससे कि वे अपनी मोटी-मोटी जरूरियात को जैसे स्कूल बनाना, ग्राम्य सड़कों की मरम्मत करना और इसी तरह के अन्य कई प्रतिदिन के काम में आने वाली आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इन सब बातों के बावजूद भी आप यहां प्रावधान यह कर रहे हैं कि ऐसे विधेयक जिनसे स्थानीय निकायों को कर लगाने का अधिकार प्राप्त होता है, मुद्रा-विधेयक नहीं समझे जायेंगे। इससे तो ऐसे विधेयकों के पास होने में बड़ी देर लग जायेगी। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद में कुछ ऐसा संशोधन होना चाहिये जिससे कि संबंधित विधेयक के पास होने में बिलम्ब होने के कारण स्थानीय निकायों को असुविधा न उठानी पड़े।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** प्रस्तुतः अनुच्छेद संबंधी बहस को देखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अभी इस पर हमें और गौर करना पड़ेगा। मैं आपसे अनुरोध करूंगा, अध्यक्ष महोदय, कि इस पर अभी आप राय न लें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि संशोधन नं. 1669 में 'only' (ही) शब्द के बारे में जो सुझाव हैं उस पर हमें विशेष रूप से विचार करना चाहिये। यह शब्द यहां बिल्कुल मिसफिट है।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के संबंध में कुल चार संशोधन पेश हुए हैं। पहला संशोधन है नं. 1669 जिसमें कहा गया है कि 'only' (ही) शब्द यहां से हटा दिया जाये। श्री नजीरुद्दीन अहमद चाहते हैं कि इस संशोधन की अहमियत पर खासतौर पर विचार किया जाये। मसौदा समिति इस पर विचार कर सकती है। समूचा अनुच्छेद अभी विचारार्थ अभी यों ही छोड़ दिया जाता है।

अनुच्छेद 91

***अध्यक्षः** अब हम आगे के अनुच्छेद 91 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 विधान का अंग माना जाये।''

(संशोधन 1679 पेश नहीं किया गया।)

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 91 में 'either that he assents to the Bill or he withholds assent therefrom' (वह विधेयक पर अनुमति देता है या अनुमति रोक लेता है) शब्दों की जगह 'that he assents to the Bill' (कि वह विधेयक पर अनुमति देता है) शब्द रखे जायें और अनुच्छेद के परन्तुक के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:—

'and if the Bill is passed again by the House with or without amendment and presented to the President, the President shall not withhold assent therefrom.' ''

(और अगर विधेयक, संशोधन सहित या बिना संशोधन के पुन: सभा द्वारा पास हो जाता है और राष्ट्रपति के सामने रखा जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति नहीं रोकेगा।)

इस संशोधन को पेश करने में मैं यहां अच्छे से अच्छे व्यक्तियों का ही पथानुसरण कर रहा हूं क्योंकि खुद मसौदा समिति का भी इसी आशय का एक संशोधन है जो आगे चलकर आयेगा। संसद द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक पर अपनी अनुमति रोकने का जो राष्ट्रपति को अधिकार है उसको इस संशोधन के द्वारा उठा देना चाहता हूं। इस संबंध में मेरा इतना ही मन्तव्य है कि हमारे प्रधान की यही स्थिति है जो इंग्लैंड में सम्राट की है और जब सम्राट को संसद द्वारा पास किये विधेयक पर अनुमति रोकने का अधिकार नहीं प्राप्त है तो यहां भी वही होना चाहिए। सुतरां यह संशोधन सर्वथा उचित है।

जहां तक कि मेरे दूसरे संशोधन का संबंध है, बिना उसके यह परन्तुक अपूर्ण ही रह जाता है। मान लीजिये राष्ट्रपति किसी विधेयक को पुन: विचारार्थ वापिस लौटा देता है और संसद उसके बारे में किसी निर्णय पर पहुंचती है तो उस हालत में बिना इस संशोधन के समूची कार्यवाही अपूर्ण और अधूरी रह जायेगी। इस संबंध में मसौदा समिति का भी यही दृष्टिकोण है, इसलिए यह संशोधन भी स्वीकृत होना चाहिए।

(संशोधन नं. 1681, 1682, 1683 और 1684 नहीं पेश किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

''अनुच्छेद 91 के परन्तुक में 'अधिक से अधिक 6 सप्ताह में' (not later than six weeks) शब्दों की जगह 'यथासंभव शीघ्र' (as soon as possible) शब्द रखे जायें।''

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** इस संशोधन पर मेरा एक संशोधन है जो है नं. 94।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि यह संशोधन सिर्फ अनुच्छेद की रचना यानी उसके मसौदे से ही संबंध रखता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** पर अमल में इससे फर्क जरूर पड़ेगा।

***अध्यक्षः** तो आपका यह ख्याल है कि इससे अभिप्राय में फर्क पड़ेगा?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** हां, श्रीमान्। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1685 में अनुच्छेद 91 के परन्तुक के लिए प्रस्तावित शब्द 'possible' के लिये 'may be' शब्द रखे जायें।''

इस संबंध में मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि इस संशोधन से सार में अन्तर आयेगा। परन्तुक में यह कहा गया है कि:—

''विधेयक के उपस्थापन के पश्चात् यथासंभव शीघ्र, राष्ट्रपति उसे लौटा देगा... इत्यादि'' (The President may, as soon as possible, after presentation of the Bill, return the Bill, etc.)। यहां मैं यह चाहता हूं कि ''as soon as possible'' की जगह ''as soon as may be'' कर दिया जाये। अगर हम इसे इसी रूप में रहने देते हैं जिसमें कि डा. अम्बेडकर इसे रखना चाहते हैं तो इससे समय का व्यवधान नहीं मिलता है। ''as soon as possible'' का मतलब यह हुआ कि शीघ्र ही वह लौटा दिया जायेगा यहां possible शब्द से यह मतलब होगा कि जहां तक शारीरिक रूप से शक्य है वह फौरन उसे लौटा देगा। इस 'possible' शब्द के रहने से राष्ट्रपति को समय का किंचिन्तमात्र भी व्यवधान न मिल पायेगा। पर ''may be'' के रहने से उसे समय में समुचित व्यवधान मिल जायेगा। ''may be'' रहने से यह मतलब होगा कि जहां तक कि उचित रूप से व्यवहार्य हो। यही एक मात्र कारण है कि जिसके लिए मैंने यह संशोधन रखा है।

(संशोधन नं. 1686 पेश नहीं हुआ।)

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 1687, मेरे ख्याल से केवल शाब्दिक है। संशोधन नं. 1688 का आशय भी मेरी समझ से वही है जो कि श्री लोकनाथ मिश्र के संशोधन का है जिसे उन्होंने अभी-अभी पेश किया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** थोड़ा सा भाषा संबंधी अन्तर दोनों में है। मेरे ख्याल में डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव ज्यादा अच्छा होगा।

***अध्यक्षः** मैं इस पर मत ले लूंगा। इसे पेश करने की जरूरत नहीं है।

अब आता है संशोधन नं. 1687। इसका भी वही आशय है जो कि डा. अम्बेडकर के संशोधन नं. 1688 का है। हम मान लेते हैं कि यह उपस्थित किया जा चुका है। क्या इसे पेश करना जरूरी है? अगर इसमें कुछ अन्तर है तो इसे पेश किया जा सकता है।

***श्रीमती बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव रखती हूं, श्रीमान्, कि:

> ''अनुच्छेद 91 में पहले परन्तुक के बाद निम्नलिखित दूसरा परन्तुक जोड़ा जाये:
>
> 'पर और शर्त यह है कि राष्ट्रपति यह घोषित कर दे कि विधेयक पर वह अपनी अनुमति रोकता है या जब वह विधेयक पर अथवा उसके किसी निर्दिष्ट प्रावधान पर अथवा अपनी किसी सिफारिश पर पुनर्विचार का अनुरोध करते हुए उसे लौटा दे तब, संसद के आगारों को, उसकी सिफारिशों पर पुनर्विचार कर लेने के बाद, उस विधेयक को, किसी संशोधन या बिना संशोधन सहित पास कर देना होगा और राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके पास लौटा देना होगा और राष्ट्रपति तब उस पर अनुमति नहीं रोकेगा।' ''
>
> (Provided further that if after the President has declared that he withholds assent from the Bill or has returned the Bill with a request for reconsideration of the Bill or of a specified provision thereof, or of any amendment by him, the Houses of Parliament should, after reconsideration of his recommendations pass the Bill again with or without an amendment and return it to him for his assent, he shall not withhold his assent therefrom.)

विधेयक जब पहली बार राष्ट्रपति के सम्मुख रखा जाये तो वह उस पर क्या कार्रवाई करे, उसकी व्यवस्था अनुच्छेद 91 के प्रस्तुत प्रावधान में दी हुई है। किन्तु यहां इसका खुलासा नहीं किया गया है कि उस सूरत में क्या जाप्ता बरता जायेगा जबकि राष्ट्रपति की किसी सिफारिश को बिना मंजूर किये ही अगर संसद विधेयक को पुन: उसके पास लौटा दे। क्या आपका यह अभिप्राय है कि उस हालत में राष्ट्रपति अपने सुझावों पर पुनर्विचार करने के लिए उसे संसद को फिर लौटा देगा? इसका मतलब तो यह होगा कि विधेयक के संबंध में अनावश्यक विलम्ब होगा और इसका यह भी मतलब होगा कि विधेयक एक बार से अधिक भी राष्ट्रपति को लौटाया जा सकता है। मैंने इसी उद्देश्य से यह संशोधन रखा है कि यह अस्पष्टता जाती रहे और यह स्पष्ट हो जाये कि राष्ट्रपति किसी विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ केवल एक बार ही संसद को लौटा सकता है और अगर संसद राष्ट्रपति द्वारा सुझाये गये संशोधनों को नहीं स्वीकार करती है तो वह विधेयक को पुन: राष्ट्रपति को लौटा देगी और उस सूरत में वह विधेयक को फिर दुबारा संसद को विचारार्थ नहीं लौटा सकता है। हाउस आफ कामन्स में, अगर कोई विधेयक दो बार पास हो जाता है तो स्वत: विधि का रूप ग्रहण कर लेता है चाहे हाउस आफ लार्ड्स भले ही इससे असहमत हो। यही बात अमेरिका में भी है। वहां अगर कोई विधेयक कांग्रेस के दो तिहाई बहुमत से पास हो जाता है तो वह कानून बन जाता है चाहे प्रेसीडेंट उसे

अस्वीकार ही क्यों न कर दे। इस अनुच्छेद में भी कुछ ऐसी ही व्यवस्था रहनी चाहिये ताकि अनावश्यक विलम्ब न हो। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करती हूं।

(संशोधन नं. 1690 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 1691 और अन्य संशोधनों के अन्दर आ जाता है जो कि पेश किये जा चुके हैं। अब लिया जाता है संशोधन नं. 1692।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

''निम्नलिखित नया खंड अनुच्छेद 91 में जोड़ा जाये:

'(2) अगर संसद राष्ट्रपति की सिफारिशों को नहीं स्वीकार करती है तो विधेयक फिर राष्ट्रपति को लौटा दिया जायेगा और वह यह घोषणा करेगा कि आया वह विधेयक पर अपनी अनुमति देता है या नहीं। अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता है तो लोक सभा स्वत: विघटित हो जायेगी और शीघ्र ही नया निर्वाचन किया जायेगा। अगर नये निर्वाचन में पुन: उसी दल का बहुमत रहता है जो कि विघटन के समय अधिकारारूढ़ था तो राष्ट्रपति अपना पद रिक्त कर देगा और विधेयक संसद का कानून बन जायेगा।'

'(2) If the House do not accept the recommendations of the President the Bill shall again be presented to the President, and the President shall declare either that he assents to the Bill or that he does not assent to the Bill. If the President does not assent to the Bill, the House of the People shall automatically dissolve itself, and a fresh election shall be held immediately. If the party that was in power at the time of the dissolution is again returned in majority, the President shall vacate his office and the Bill becomes an Act of Parliament.'

अपनी बात कहने के पहले, श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से अनुच्छेद 91 और उसके परन्तुक को पढ़कर सुना देता हूं। अनुच्छेद 91 का रूप यों है:—

''जब संसद के दोनों आगारों द्वारा कोई विधेयक पारित कर दिया गया है तो वह राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जायेगा और राष्ट्रपति घोषित करेगा कि वह विधेयक पर या तो अनुमति देता है या अनुमति रोक लेता है;

पर राष्ट्रपति अनुमति के लिये अपने समक्ष विधेयक उपस्थापन के पश्चात् अधिक से अधिक छ: सप्ताह में, उस विधेयक को, यदि वह मुद्रा विधेयक नहीं है, तो आगारों को संदेश के साथ लौटा सकेगा और इस संदेश में प्रार्थना कर सकेगा

[श्री तजम्मुल हुसैन]

कि वे इस विधेयक पर अथवा इसके किसी उल्लिखित प्रावधान पर पुनर्विचार करें और विशेषतया उन संशोधनों के पुर:स्थापित करने की वांछनीयता पर विचार करे जिनको उसने अपने संदेश में अभिस्तावित किया हो, और आगार विधेयक पर तद्नुसार विचार करेंगे।''

अनुच्छेद 91 में यह कहा गया है कि स्वीकृत हो जाने पर विधेयक राष्ट्रपति के सामने रखा जायेगा और उसे यह अधिकार है कि उस पर अनुमति दे या रोक ले। परन्तुक में कहा गया है कि अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता है तो वह उसे पुनर्विचारार्थ लोक सभा को लौटा देगा और लोक सभा उस पर फिर विचार करेगी। मेरा कहना यह है कि मान लीजिये लोक सभा उस पर पुनर्विचार नहीं करती है अथवा राष्ट्रपति की सिफारिशों को नहीं मंजूर करती है तो उस सूरत में क्या होगा? ऐसी अवस्था के लिए इस अनुच्छेद में कोई व्यवस्था नहीं की गई है। ऐसी अवस्था की व्यवस्था के लिये ही मैंने प्रस्तुत संशोधन पेश किया है। इसमें यह कहा गया है कि अगर लोक सभा विधेयक पर पुनर्विचार न करे या राष्ट्रपति की सिफारिशों को नामंजूर कर तो विधेयक पुन: राष्ट्रपति को लौटा दिया जायेगा। उस हालत में राष्ट्रपति संसद द्वारा भेजे गये विधेयक को स्वीकार करेगा और अगर वह उसे स्वीकार नहीं करता है तो ब्रिटिश विधान के अनुसार, जैसा कि मैं उसे समझता हूं, लोक सभा स्वत: अपना विघटन कर देगी और नया निर्वाचन होगा। नये निर्वाचन में अगर फिर उसी दल का बहुमत रहता है जो कि पहले अधिकारारूढ़ था तो—अंग्रेजी विधान के अनुसार तो सम्राट को अपना पद त्याग करना होगा—उस सूरत में मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति या तो विधेयक को स्वीकार करे या फिर यह समझा जाये कि उसने अपना पद त्याग दिया है और विधेयक स्वत: कानून बन जायेगा। मेरे संशोधन का यही मतलब है। मैं समझता हूं कि अपना यह संशोधन मैं ब्रिटिश विधान के अनुसार ही यहां पेश कर रहा हूं जिसका कि हमने यहां बहुत कुछ अनुकरण किया है। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह मेरे संशोधन को स्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** सभी संशोधन पेश हो चुके हैं। अब मूल अनुच्छेद और संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***डा. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, स्पष्टत: इस अनुच्छेद में, इसकी मूल वाक्य रचना को देखते हुए, कम से कम दो त्रुटियां तो अवश्य थीं जैसा कि डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस संशोधन से ही प्रकट है कि ''अधिक से अधिक 6 सप्ताह में'' (not later than six weeks) शब्दों की जगह ''यथासंभव शीघ्र'' (as soon as possible) शब्द रखे जायें। दूसरी त्रुटि जो इसमें सोची गई थी और जिसे दूर करने के लिए अब एक प्रावधान रखा जा रहा है वह यह है कि अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति रोक लेता है तो उस सूरत में क्या होगा? अब जो प्रावधान रखा जा रहा है उसका अभिप्राय यह है कि जब विधेयक दूसरी बार राष्ट्रपति के सम्मुख रखा जायेगा तो उसके लिए यह लाजिमी होगा कि वह उस पर अपनी अनुमति दे। विधेयक जब दुबारा उसके पास पहुंचेगा तो उस पर अपनी अनुमति नहीं रोक सकता है। जहां तक कि पहले संशोधन यानी

डा. अम्बेडकर के संशोधन का संबंध है, मैं नहीं कह सकता कि उसका मंजूर किया जाना बहुत जरूरी है। विचारणीय प्रश्न यह है कि आया यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि राष्ट्रपति उस पर यथासम्भव शीघ्र अपनी अनुमति देगा या हमें कोई अवधि निर्धारित कर देनी चाहिये जिसके अन्दर राष्ट्रपति अपनी अनुमति दे ही दे। मैं समझता हूं कि ''अधिक से अधिक 6 सप्ताह में'' ये शब्द अगर यों ही रहने दिये जाते हैं तो राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह यथासंभव शीघ्र उस पर अपना निर्णय दे दे और किसी भी हालत में वह 6 सप्ताह से ज्यादा समय न ले। अतः प्रस्तावित परिवर्तन को मैं बिल्कुल उचित समझता हूं।

जहां तक कि दूसरे संशोधन का संबंध है, मैं इसे बहुत जरूरी समझता हूं कि उस अवस्था के लिए जबकि राष्ट्रपति अनुमति रोक लेता है, यहां कोई न कोई प्रावधान होना ही चाहिये। यह तो मान ही लेना चाहिये कि राष्ट्रपति सदा प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा और अगर लोक सभा द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक को अधिकारारूढ़ दल का समर्थन नहीं प्राप्त है तो उस सूरत में विधेयक के पास होने की कोई संभावना ही नहीं रहती है। इसलिए विधेयक पर अनुमति रोकने का प्रश्न तब तक उठेगा ही नहीं जब तक कि राष्ट्रपति अपने को ऐसी परिस्थिति में न पाता हो, जहां अधिकारारूढ़ दल की सिफारिशों से वह मतभेद रखता है और उनसे सहमत न हो। ऐसी अवस्था में यह मान लेना सही होगा कि प्रधानमंत्री या तत्कालीन शासन के विचारों और राष्ट्रपति के विचारों में मेल नहीं बैठ रहा है। ऐसे मतभेद की अवस्था के लिए कोई न कोई समाधान सभा को सोचना ही होगा और उसे यहां पर स्पष्ट प्रावधान रखना ही होगा जिसके प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति के बीच मतभेद की कठिनाई को हल किया जा सके। मेरा ख्याल है कि जहां तक कि उपरोक्त स्थिति का संबंध है, प्रस्तावित संशोधन से उसका समाधान हो जाता है। इसलिये मैं इसका समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री मिश्र ने जो संशोधन (नं. 1680) पेश किया उसका समर्थन करने के लिये तथा अपने विद्वान मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन नं. 1685 का विरोध करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। मेरे माननीय मित्र डा. देशमुख ने श्री मिश्र के संशोधन का पांडित्यपूर्ण ढंग से समर्थन कर दिया है और उस पर मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं। जहां तक कि माननीय विद्वान मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का संबंध है मैं यह जरूर कहूंगा कि उन्होंने सभा के समक्ष उसे रखकर बुद्धिमत्ता का काम नहीं किया है। इससे मुझे इस कथन का स्मरण हो आता है कि ''होमर की प्रतिमा भी कभी-कभी सो जाया करती है''। मेरा ख्याल है कि डा. अम्बेडकर यहां धोखा खा गये। वह एक अनुभवी व्यक्ति हैं। न केवल एक अनुभवी पब्लिक मैन ही वह हैं बल्कि एक अनुभव संपन्न राज्य मंत्री भी हैं। उसके जैसा व्यक्ति एक निश्चित अवधि और ''यथासंभव शीघ्र'' इसमें कितना बड़ा अन्तर है यह न समझ सके, यह बड़ा ही आश्चर्यप्रद सा मुझे लगता है। मानव स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि अगर कर्तव्य और सेवा के लिए उस पर कोई अंकुश नहीं रहता है तो वह सदा ही टालमटोल और दीर्घ सूत्रता की प्रवृत्ति अपना लेता है। हमारे विज्ञ मनीषी इस प्रवृत्ति को समझते थे। इसके संबंध में उन्होंने कहा है कि:

आलस्यो हि मनुष्याणाम्।
शरीरस्थो महान् रिपुः।

[श्री एच.वी. कामत]

यानी आलस्य मनुष्यों का एक बड़ा शारीरिक शत्रु है। कर्तव्य और सेवा भावना भरकर हमें टाल-मटोल और दीर्घ सूत्रता की प्रवृत्ति को विनष्ट करना ही होगा। हम इस बात को निश्चित नहीं मान सकते कि भारतीय लोक राज्य का प्रत्येक राष्ट्रपति सदा कर्तव्य और सेवा के उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर ही अपना काम करेगा। अवश्य ही हम आशा करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि ऐसा ही हो, पर इसकी कोई गारंटी नहीं है कि ऐसा ही होगा। इसलिए मेरी राय में यह बहुत जरूरी है कि इस तरह की अवस्था के लिए हम विधान में एक निश्चित अवधि अवश्य निर्धारित कर दें। मुझे यकीन है कि एक मंत्री की हैसियत से डा. अम्बेडकर जरूर जानते होंगे कि सरकारी सचिवालय की विभिन्न फाइलें 'इमीजियेट', 'अर्जेंट' या 'अर्ली' (early) आदि लेबुलों के साथ अरसे तक इधर से उधर ठोकर खाती रहती हैं। जिन फाइलों पर 'इमीजियेट' लेबुल लगा है वह मंत्री महोदय के पास एक दिन में पहुंचती हैं और जिस पर 'अर्जेंट' का लेबुल लगा है वह दो दिन में और जिस पर 'early' का लेबुल लगा है वह तो दो तीन महीने तक सचिवालय में ही दबी पड़ी रह जाती है। और फिर वर्तमान सरकार ने 'विचारार्थ' और ''क्रियात्मक विचारार्थ'' (consideration and active consideration) जैसे नये लेबुल भी निकाल रखे हैं ऐसी सूरत में मैं चाहता हूं कि ''as soon as possible'' शब्दों के रखने से जो भी कठिनाइयां उपस्थित हो सकती हों वह जाती रहें। कोई नहीं जानता कि ''as soon as possible'' का मतलब क्या है? हमें मालूम है कि असेम्बली में मंत्रीगण प्रश्नों के उत्तर में आदतन ''as soon as possible'' कह दिया करते हैं। जब कभी यह पूछा जाता है कि अमुक काम कब तक हो जायेगा तो उत्तर यही मिलता है कि ''as soon as possible'' या यह कि ''very soon'' (शीघ्र ही)। यह पद संहति सर्वथा अस्पष्ट है, प्रयोजन शून्य है और इसका कोई अर्थ नहीं है। इस पद संहति को विधान में और खास करके इस तरह के अनुच्छेद में, जहां हम यह निर्धारित कर रहे हों कि राष्ट्रपति अमुक अवधि के भीतर फला काम कर ही देगा, हमें स्थान ही नहीं देना चाहिये। हम यह अनुच्छेद ही क्यों रख रहे हैं? इसीलिये कि कोई विधेयक राष्ट्रपति के सचिवालय में—और मैं जानता हूं कि राष्ट्रपति का सचिवालय अन्य सचिवालयों से कुछ भिन्न नहीं होगा—त्रिशंकु की तरह लटका न रह जाये। इसलिए मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करूंगा कि वे अपना संशोधन वापस ले लें। इससे कोई लाभ नहीं है। मैं अनुरोध करूंगा कि यह अनुच्छेद ज्यों का त्यों पास किया जाये। मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध और श्री मिश्र के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर राय लेता हूं। क्या आप कुछ कहना चाहते हैं, डा. अम्बेडकर?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्। मैं नहीं समझता कि जवाब में कुछ कहना जरूरी है।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 1680 और 1688 दोनों एक ही आशय के हैं पर नं. 1688 की वाक्य रचना जरूर कुछ अच्छी है। मैं पहले नं. 1688 पर ही राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 के परन्तुक के आगे निम्नलिखित अंश और जोड़ दिया जाये:

'और अगर विधेयक संशोधन सहित या बिना संशोधन के पुन: सभा द्वारा पास हो जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति नहीं रोकेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इससे संशोधन 1689 पर रुकावट आ जाती है क्योंकि दोनों का आशय एक ही है। इस पर राय लेने की जरूरत नहीं है।

अब मैं संशोधन 1692 को लेता हूं जिसे श्री तजम्मुल हुसेन ने पेश किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

'(2) अगर संसद राष्ट्रपति की सिफारिशों को नहीं स्वीकार करता है तो विधेयक फिर राष्ट्रपति को लौटा दिया जायेगा और वह यह घोषणा करेगा कि आया वह विधेयक पर अपनी अनुमति देता है या नहीं। अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता है तो लोक सभा स्वत: विघटित हो जायेगी और शीघ्र ही नया निर्वाचन किया जायेगा। अगर नये निर्वाचन में पुन: उसी दल का बहुमत रहता है जो कि विघटन के समय अधिकारारूढ़ था तो राष्ट्रपति अपना पद रिक्त कर देगा और विधेयक संसद का कानून बन जायेगा।''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** एक संशोधन रह गया है जो है संशोधन नं. 1685 जिसे डा. अम्बेडकर ने पेश किया है। इस पर एक संशोधन श्री नजीरुद्दीन अहमद ने रखा है। मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधन-सूची में संशोधन नं. 1685 में अनुच्छेद 91 के परन्तुक के लिए प्रस्तावित शब्द ''possible'' के लिए ''may be'' शब्द रखे जायें''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं. 1685 पर मत लेता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 के परन्तुक में 'अधिक से अधिक 6 सप्ताह में' (not later than six weeks) शब्दों की जगह 'यथासंभव शीघ्र' (as soon as possible) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब इन दोनों संशोधनों—नं. 1685 और 1688—द्वारा संशोधित अनुच्छेद पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 अपने संशोधित रूप में विधान में शामिल किया जाए।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 91 संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** अब बैठक स्थगित होती है। सोमवार की शाम को 5 बजे सभा पुन: समवेत होगी।

इसके बाद सभा सोमवार, 23 मई सन् 1949 ई. की शाम को 5 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 4. VIII.5.40
320

अंक 8
संख्या 5

शुक्रवार
20 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप..... 265-326
[अनुच्छेद 86, 87, 88, 89, 90 तथा 91 पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

शुक्रवार, 20 मई सन् 1949 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 8 बजे, अध्यक्ष (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, आपकी निगाह में एक बहुत ही गम्भीर बात लाना चाहता हूं और वह यह है कि विधान-परिषद् की 5 जनवरी सन् 1949, कार्यवाही की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उस में कार्यवाही का एक बड़ा हिस्सा दबा दिया गया है। (देखिये अंग्रेजी रिपोर्ट का पृष्ठ 1267) रिपोर्ट में यह कहा गया है कि माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह प्रस्ताव पेश किया कि भारत-शासन-अधिनियम में सुधार करने के हेतु उपस्थित किये गए विधेयक पर विचार किया जाये। किंतु तथ्य यह है कि उन्होंने विधेयक को उपस्थित करने की अनुमति, एक प्रस्ताव द्वारा चाही थी। मैं उनके प्रस्ताव का विरोध करना चाहता था और मैंने यह दलील दी थी कि उस समय उसके विरोध करने का मुझे पूरा अधिकार प्राप्त था। किंतु उपाध्यक्ष महोदय ने मुझे बोलने की ही अनुमति नहीं दी। उन्होंने यह कहा कि अगर मैं कुछ कहना चाहता हूं तो वह उस पर सभा की राय लेंगे। मेरी बात सभा ने अस्वीकार कर दी। यह सब बातें रिपोर्ट में नहीं आई हैं। इनको दबाने के लिये कौन जिम्मेदार हैं। मैं चाहता हूं कि ये सभी बातें रिपोर्ट में प्रकाशित हों ताकि लोगों को यह ज्ञात हो जाये कि उपाध्यक्ष उन लोगों की बात ही नहीं सुनते थे जिनको वह पसन्द नहीं करते थे।

यह एक बहुत ही गम्भीर बात है और इसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा।

***अध्यक्ष:** जहां तक मैं समझता हूं माननीय सदस्य का यह कहना है कि गत अधिवेशन की कार्यवाही संबंधी कुछ बातें रिपोर्ट में प्रकाशित नहीं हुई है और उनकी शिकायत यह है कि यहां अधिवेशन में जो कुछ भी हुआ उसकी सही-सही रिपोर्ट प्रकाशित होनी चाहिये थी। उस समय क्या बातें हुई इससे मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूं अतः बिना पूरी तरह सारी बातों के देखें मैं इसके संबंध में अभी कुछ नहीं कह सकता। अगर माननीय सदस्य की कोई शिकायत है तो कृपया वह लिखकर मुझे दे दें ताकि मैं उसकी जांच करा सकूं।

विधान का प्रारूप—*जारी*

अनुच्छेद 86

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 86।

(संशोधन नं. 1632 और 1633 पेश नहीं किये गये।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 86 में और 'जब तक तद्विषयक प्रावधान इस प्रकार नहीं बनाया जाता, तब तक, अधिदेय ऐसी दर से और ऐसे प्रतिबंधों सहित होंगे, जैसे कि इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से सद्य:पूर्ण भारत अधिराज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के विषय में लागू थे' शब्दों को हटा दिया जाये और निम्नलिखित परन्तुका (proviso) जोड़ दी जाये:
>
> 'किंतु शर्त यह है कि संसद के सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन केबिनेट मिनिस्टर को दिये जाने वाले वेतन की एक-चौथाई से कम या एक-तिहाई से ज्यादा न होगा।
>
> और शर्त यह है कि विपक्षी दल का नेता उस वेतन का अधिकारी होगा जो बिना केबिनेट दर्जा वाले किसी मंत्री को दिया जायेगा'।''

इस संशोधन के तीन हिस्से हैं किंतु तीसरा हिस्सा इसकी जान है इसलिये मैं पहले उसी को लेता हूं। इसमें विपक्षी दल के नेता के लिये वेतन का प्रावधान है। सभा यह अच्छी तरह जानती है और सभा को मैं यकीन दिला दूं कि यह बात नितांत सत्य है कि मुझमें भावी विपक्षी-नेता बनने की कोई खूबी नहीं मौजूद हैं। किंतु मैं जो इसे पेश कर रहा हूं उसके चार गम्भीर कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि मैं यह अनुभव करता हूं कि संसद में एक विपक्षी दल को प्रतिष्ठित करना निहायत जरूरी है। वस्तुत: लोकतंत्र के प्रधान स्तम्भ ही यही तीन बातें हैं। एक तो विपक्षी दल का अस्तित्व, दूसरे कानून के अनुसार शासन और तीसरे जबर्दस्त प्रेस। दूसरा कारण यह है कि मैं यह चाहता हूं कि विपक्षी दल संबंधी पद्धति को विधान में मान्यता दे दी जाये। दुर्भाग्य से कुछ क्षेत्रों में यह समझा जाता है, विपक्षी दल का निर्माण या विपक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध मत व्यक्त करना एक तरह से राजद्रोह है। मैं लोगों की इस गलत धारणा को दूर कर देना चाहता हूं। तीसरा कारण यह है कि मैं एक ऐसी स्थिति पैदा करना चाहता हूं जिसमें, निस्तब्ध एवं प्राण-विहीन विधान-मंडल एक सजीव सभा बन जाये और इसका अन्तिम कारण यह है कि संसदात्मक लोकतंत्र की पद्धति को, जिसे विलायत से लाकर हम भारत में प्रचलित करना चाहते हैं मैं यहां सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित देखना चाहता हूं। आपकी अनुमति से श्रीमान्, इन चार बातों पर जिनका कि अभी कारण रूप से मैंने उल्लेख किया है, मैं पूरा प्रकाश डाल देना चाहता हूं।

कई सदस्यों ने इस बात का प्रबल प्रयास किया है कि यहां अमेरिका की प्रधान-मूलक मंत्रिमंडल (Presidential Cabinet) वाली पद्धति अपनाई जाये पर सभा ने इसे अस्वीकार कर दिया। सम्मिश्रित मंत्रिमंडल की पद्धति को भी जो कि स्विटजरलैंड में प्रचलित है इस सभा ने पसन्द नहीं किया और उसने पसन्द किया दलगत-शासन की पद्धति को जो इंग्लैंड में प्रचलित है। दलगत-शासन पद्धति का अर्थ यह है कि राज्य की सारी शक्ति अधिकारारूढ़ दल के हाथ में होगी और प्रकारान्तर से इसका मतलब यह हुआ कि राज्य की सारी शक्ति पार्टी के जरिये चन्द व्यक्तियों में सन्निहित होगी। सभी जानते हैं कि शक्ति व्यक्ति को भ्रष्ट कर देती है और जहां सम्पूर्ण शक्ति ही व्यक्तियों में सन्निहित रहेगी वहां तो वे सम्पूर्ण रूप से भ्रष्ट हो जायेंगे। यह भी एक सर्वविदित तथ्य है कि जब एक दल अधिकार में आता है तो वह सदा अधिकारारूढ़ बने रहने की कोशिश करता है। एक दल विशेष का शासन सर्वथा स्वेच्छाचारी न बन जाये इसका एकमात्र रोक है विपक्षी दल

का अस्तित्व जो मंत्रिमंडल की कार्यवाहियों पर सतर्क दृष्टि रखता है और इस तरह उसे स्वेच्छाचारी हाने से रोके रहता है। इसके अलावा पार्टी गवर्नमेंट कभी ठीक-ठीक तरह काम नहीं कर सकती है जब तक कि उसके कार्यों की प्रखर आलोचना न होती रहे। लोकतंत्रात्मक पद्धति में हमेशा बहस होती है और अधिकारारूढ़ दल की नीति में सुधार किया जाता है। इसके अलावा मैं तो यह अनुभव करता हूं कि विपक्षी दल के न रहने पर अधिकारारूढ़ दल में ही फूट पड़ जाती है और उसके अन्दर गुटबन्दी चल पड़ती है। आप ज्यादा नहीं केवल गत दस वर्षों के इतिहास पर ही दृष्टिपात कीजिये। भारत में जहां भी पार्टी गवर्नमेंट रही हैं और विधान-मंडलों में कोई प्रभावशाली विपक्षी दल नहीं रहा है वहां न केवल मंत्रिमंडल के सदस्यों ने आलोचना पर आक्रोश करना ही शुरू कर दिया बल्कि दल के अन्दर विरोध भाव बढ़ता गया और इसके परिणामस्वरूप एक के बाद एक करके कई मंत्रिमंडल बने और बिगड़े। अधिकारारूढ़ दल के कामों के औचित्य पर प्रश्न किये गये हैं और उनकी ओर से जबाव भी दिये गये हैं। अधिकारारूढ़ दल पर यहां तक आक्रमण किया गया कि सरकारी रुपयों के गबन तक का आक्षेप उस पर किया गया और इसी तरह के अन्य भयानक इलजाम उस पर लगाये गये। इन सब बातों का मूल कारण यही है कि अधिकारारूढ़ दल का विरोध करने के लिये कोई प्रबल विपक्षी दल नहीं है जो उससे यह महसूस करा सके कि लोकमत का उसे मुकाबला करना पड़ेगा। आखिर लोकमत का निर्माण कौन करता है? जनता को सरकार के कामों से परिचित कौन करायेगा और उन्हें उसके कार्यों में दिलचस्पी लेने के लिये कौन प्रेरित करेगा? जब तक कि विधान-मंडल में एक प्रबल विपक्षी दल नहीं होता तो सरकार के कारनामों पर कौन रोशनी डालेगा? इन सब कारणों से एक विपक्षी दल का होना नितांत आवश्यक है। सभी जानते हैं कि वर्तमान युग में सरकार के कार्यों का दायरा बहुत विस्तृत हो गया है और जो भी दल सदा जागरूक और प्रभावी बना रहना चाहता है, उसके लिये यह जरूरी है कि विपक्षी दल के रूप में काम करने में वह अपना सारा समय लगावे। सारा समय देने वाला कोई विपक्षी दल प्रतिष्ठित नहीं हो सकता जब तक कि उसका ऐसा नेता न हो जो अपना समूचा समय, अपनी सारी शक्ति, समस्त देश में एक दायित्वपूर्ण विरोध पैदा कराने में न लगावे इसके लिये सिर्फ इतना ही काफी नहीं है कि विधान-मंडल में एक विपक्षी दल हो बल्कि उस विपक्षी दल की बुनियाद मजबूत होनी चाहिये और देशभर में, उसको समर्थन देने वाला एक प्रबल लोकमत होना चाहिये। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि यहां एक ऐसा प्रबल और जागरूक विपक्षी दल जो कि विधान-मंडल में एवं उसके बाहर भी सुचारू रूप से काम कर सके, तब तक नहीं कायम हो सकता जब तक कि सारा समय देने वाला और वेतन भोगी एक नेता उसके लिये न हो जैसा कि इंग्लैंड में तथा अन्य देशों में है।

आप जानते हैं कि इंग्लैंड में जब तक अनुदार दल वाले या सम्पन्न लोग विपक्षी दल के रूप में थे, वहां विपक्षी दल के नेता को वेतन देने की जरूरत नहीं थी। पर ज्योंही मजदूर दल वालों ने विपक्षी दल का स्वरूप ग्रहण किया—और मैं साहसपूर्वक कह सकता हूं कि यहां भारत में केवल समाजवादी या कम्यूनिस्ट दल ही विपक्षी दल का स्वरूप ग्रहण कर सकता है—संसद ने विपक्षी दल के नेता के लिये एक वेतन निश्चित कर दिया है। भारत वर्ष में, जैसा कि मैं कह चुका हूं, केवल मध्यवर्ग के लोग ही विपक्षी दल का निर्माण कर सकते हैं और उस वर्ग से आप आशा नहीं कर सकते कि वह अपना एक ऐसा आदमी कुर्बान कर देगा जो बिना किसी वेतन के ही अपनी सारी

[श्री जैड.एच. लारी]

शक्ति, अपना सारा समय विपक्षी दल के संगठन में लगा सके। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं कि एक प्रभावी दल के निर्माण के हित में यह जरूरी है कि यथा शीघ्र अपने विधान में एक ऐसा प्रावधान लिपिबद्ध कर लें जैसा कि मैंने अभी-अभी सुझाया है।

किंतु, जैसा कि मैंने आरंभ में ही सुझाया है, गत दस वर्षों में यहां केन्द्रीय विधान-मंडल में या प्रांतीय विधान-मंडलों में कहीं भी कोई प्रभावी विपक्षी दल नहीं रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कई जिम्मेदार व्यक्तियों ने ऐसी बातें कहीं हैं जिनका मतलब यह होता है कि राज्य और अधिकारारूढ़ दल दोनों एक ही चीज हैं। इस आशय की जो बातें कहीं गई हैं वह मुझे मालूम हैं पर यहां उनको सभा के समक्ष रखकर मैं गलतफहमी नहीं पैदा करना चाहता। किंतु यही सभी जानते होंगे कि प्रधान मंत्रियों तक ने—अवश्य ही केन्द्र में नहीं किंतु प्रांतों में—ऐसी बातें कही हैं जिनसे यही आभास मिलता है कि सरकार की यानी अधिकारारूढ़ दल की आलोचना करना मानो राजद्रोह है। किंतु अगर आप मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं तो इससे विपक्षी दल के अस्तित्व को विधान में स्वीकृति मिल जाती है और इसका नतीजा यह होगा कि आज देश में जो यह गलत ख्याल फैला हुआ है, कि सरकार की आलोचना का मतलब है उसके विरुद्ध विरोधभाव पैदा करना, वह जाता रहेगा।

इस प्रावधान को मैं जो विधान में लिपिबद्ध कराना चाहता हूं उसका एक दूसरा कारण भी है और वह यह है कि हम संसदात्मक लोकतंत्र का श्रीगणेश करने जा रहे हैं और प्रारंभ में ही हमें एक ऐसी स्थिति नहीं पैदा करनी चाहिये जिसमें एक दलीय शासन स्थायी रूप से आसीन हो जाये और वह यह समझने लगे कि वह अब सम्यक् रूप से अधिकारारूढ़ हो गया है और उसे सदा अधिकारारूढ़ बने रहना है। देश में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन लाना आज नितांत आवश्यक है। मैं ऐसे अनेक भाषणों का हवाला दे सकता हूं जिनसे अधिकांश जनता के मन में यह ख्याल पैदा हो गया है कि राज्य और अधिकारारूढ़ दल दोनों एक ही चीज हैं और यह कि अधिकारारूढ़ दल की आलोचना का मतलब ही है राज्य की जड़ को कमजोर करना। यही कारण है कि इंग्लैंड में विपक्षी दल को भी सम्राट के नाम से याद किया जाता है और उसे ''हिज मेजेस्टीज अपोजीशन'' (His Majesty's Opposition) कहते हैं। इन शब्दों से निर्वाचकों के दिमाग में तुरन्त यह ख्याल पैदा हो जाता है कि विपक्षी दल के नेता का भी अपना एक कर्त्तव्य है और जो भी कार्य वह विपक्षी दल के नेता की हैसियत से करता है उसे अपना कर्त्तव्य समझकर ही करता है। यही ख्याल यहां देशवासियों के मन में मैं अपने इस संशोधन के द्वारा पैदा करना चाहता हूं। अगर यह संशोधन विधान में रख दिया जाता है तो इससे हर आदमी यही समझेगा कि जब खुद विधान में विपक्षी दल के नेता के अस्तित्व को मान्यता दी गई है और जब वह नेता सरकार की आलोचना करता है और देश में सर्वत्र सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करता है और अधिकारारूढ़ दल के कुकार्यों के विरुद्ध लोकमत पैदा करता है तो जनता यही समझेगी कि वह अपने विधान-बद्ध कर्त्तव्य का पालन कर रहा है।

तीसरा कारण यह है, जैसा कि मैंने बताया है कि किसी प्रभावी विपक्षी दल के अभाव में विधान-सभा बिल्कुल ही निर्जीव हो जायेगी। न केवल सभा ही निर्जीव हो जाती है बल्कि, जैसा कि कतिपय पत्रों ने कहा है, विधान-मंडल सर्वथा अधीनस्थ, दब्बू और आज्ञानुवर्ती बन जाता है। क्या इससे जनता के मन में यह धारणा न उत्पन्न होगी

कि विधान-मंडल केवल एक पाखण्ड है, यह कोई भी काम नहीं करता है, इसके सदस्य सरकार की आलोचना केवल इसलिये करते हैं कि अखबारों में उनका नाम निकले? जनता यही ख्याल करेगी कि सभी संशोधनों को सदस्य वापिस ले लेते हैं और सरकार की ओर से आये हुए प्रस्ताव बिना रंचमात्र संशोधन के ज्यों के त्यों स्वीकार कर लिये जाते हैं। विधान-मंडल की कार्यवाही में दिलचस्पी नहीं रह जाती और सभा सर्वथा निर्जीव सी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि संसदीय कार्यों में जनता की कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती। और जब तक जनता उसमें दिलचस्पी न ले लोकतंत्र चल नहीं सकता। ऐसी सूरत में सवाल यह पैदा होता है कि जनता में संसदीय कार्यों के प्रति रुचि क्योंकर पैदा कराई जाये? जनता के मन में यह अनुभूति कैसे पैदा की जाये कि विधान-मंडल में जो खुलकर आलोचना होती है, वहां जो बहस-मुबाहिसा होता है, उससे उनके भाग्य के भविष्य का निर्माण हुआ करता है। ऐसी दिलचस्पी जनता के मन में कौन पैदा करेगा? आज मैं यह देखता हूं कि सभी प्रांतों में विपक्षी दल का अस्तित्व धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। यहां केन्द्र की विधान-सभा में ही हम देखते हैं कि कोई विपक्षी दल नहीं रह गया है और इसके परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि कुछ व्यक्ति कहीं-कहीं लम्बी-लम्बी बातें करने लगे हैं। न जानकारी से भरी हुई कोई आलोचना ही होती है और न कोई प्रभावशील विपक्षी दल ही यहां रह गया है।

इसलिये तीसरा कारण जो मैंने आपके सामने रखा है वह इसी विचार से रखा है कि अगर आप विधान-मंडल को एक निर्जीव सभा होने से बचाना चाहते हैं, अगर आप यह चाहते हैं कि संसदीय कार्यों से और अन्ततोगत्वा-लोकतंत्र से जनता की सारी दिलचस्पी जाती न रहे तो उसके लिये जरूरी है कि आप भी यहां वही पद्धति कायम करें जो अन्य देशों में प्रचलित है।

कदम-कदम पर आप यह कहते हैं कि आप ब्रिटिश प्रणाली ज्यादा पसन्द करते हैं। आप यहां हर बात में यही कहते हैं कि सारी खूबियां, ब्रिटिश पद्धति में—वहां की दलीय-शासन व्यवस्था में ही पाई जाती हैं। अगर यही बात है—और मैं खुद महसूस करता हूं कि आपके इस कथन में बहुत कुछ सच्चाई है—तो यह जरूरी है कि ब्रिटेन की संसदात्मक लोकतंत्र की सभी अंगभूत बातों को आप भी अपनावें ताकि यह व्यवस्था यहां असफल न हो। ज्योंही ब्रिटेन निवासियों ने यह महसूस किया कि विपक्षी दल के नेता को सरकारी खजाने से वेतन मिलना ही चाहिये जिससे कि वह दल गतिमान रहे, उन्होंने फौरन इसी तरह का एक प्रावधान स्वीकार कर लिया जैसा कि मैंने सुझाया है। इसी सिद्धांत को अभी हाल में स्वीकार किया है दक्षिण अफ्रीका ने। इन सब कारणों से मैं यह महसूस करता हूं कि मैंने जो संशोधन रखा है वह सर्वथा आपके विचारने योग्य है।

इसकी आलोचना में यहां दो बातें कहीं गई हैं। एक तो यह है कि आखिर विपक्षी दल है ही कहां और उसका नेता कहां है जिसे आप वेतन देने की बात कहते हैं? इसके उत्तर में मेरा निवेदन यह है कि आपको इसके लिये स्थिति पैदा करनी होगी। सब से खतरनाक बात यहां यह है कि हमने अपने लोकतंत्र का जो श्रीगणेश किया है वह ऐसी स्थिति में किया है जबकि देश में केवल एक ही दल का अस्तित्व रह गया है और वह दल इस बात पर बद्धपरिकर है कि दूसरे शासन में आने ही न पावे। संयुक्तप्रांत में ऐसा हो चुका है और आचार्य नरेन्द्र देव जैसे व्यक्ति को वहां व्यवस्थापिका में घुसने नहीं दिया गया। अधिकारारूढ़ दल विपक्षी दल का होना वहां जरूरी नहीं समझता। इसलिये

[श्री जैड.एच. लारी]

मैं कहता हूं कि एक विधान-निर्मातृ संस्था की हैसियत से आपका यह कर्त्तव्य है कि ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें कोई एक दल विपक्षी दल का रूप ग्रहण कर सके। अगर आप यह कहते हैं ''विपक्षी दल अस्तित्व में आवे भी तो, हम उस वेतन की व्यवस्था जरूर कर देंगे'' तो इसका मतलब यह हुआ कि आप विपक्षी दल का आना पसन्द ही नहीं करते इसके लिये तो आपको ऐसी स्थिति पैदा करनी होगी जिसमें जनता यह महसूस करे कि विपक्षी दल का भी एक कर्त्तव्य है और वह भी देश की सेवा के लिये ही होता है। अब तक कि यह अनुभूति जनता में नहीं पैदा की जाती है, कोई समुचित विपक्षी दल कभी अस्तित्व में आ ही नहीं सकता।

दूसरी बात जो इसके विरुद्ध कही जाती है वह यह है कि अगर दो से ज्यादा दल हुए तब क्या होगा? अगर तीन पार्टियां हुई तो उस समय क्या किया जायेगा? आप किस दल को वेतन देंगे यह एक विचित्र तर्क है। यह तो सभी जानते हैं कि संसदात्मक पद्धति में वही दल विपक्षी दल का रूप ग्रहण करता है जिसका अधिकारारूढ़ दल के बाद बहुमत होता है। अन्य और दल, अगर दो से अधिक दल हुए तो, महज पार्टी के नाम से ही संबोधित होते हैं। इसलिये मेरे संशोधन के खिलाफ जो दो बातें कही गई हैं वह सर्वथा निराधार हैं।

जैसा कि पहले कह चुका हूं, मेरा यह संशोधन अन्य सभी संशोधनों का प्राण है। किंतु इसके दो और भाग भी हैं जिनके संबंध में मैं अब कुछ कहूंगा। अनुच्छेद 86 में कहा गया है कि संसद के सदस्यों को यह वेतन प्राप्त होगा जो संसद समय-समय पर निश्चित करे। उसमें यह भी कहा गया है कि जब तक एतद्विषयक प्रावधान नहीं बन जाता है तब तक उन्हें चालू नियमों के अनुसार अधिदेय आदि दिये जायेंगे। आखिर जब हम विधान बनाने बैठे ही हैं तो ऐसे प्रावधानों से उसे क्यों बोझिल बनावें? क्या संसद के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह अपना अधिवेशन प्रारम्भ करते ही वेतन संबंधी बिल पास कर दें? तब 1936 में उत्तरदायी विधान-मंडलों की स्थापना हुई तो इस बारे में कानून बनाने में आखिर क्या कठिनाई हुई थी? जब यह विधान-परिषद् ही अपने अस्तित्व में आई तो हमें अपने वेतनादि को निश्चित करने में भला क्या कठिनाई हुई थी?

दूसरी बात यह है कि बहुतेरे नये विधानों में वेतन की व्यवस्था विधान में ही लिपिबद्ध कर दी गई है। यह वांछनीय नहीं है कि हम इस बात को संसद पर छोड़ दें कि वह समय-समय पर वेतन निश्चित कर लिया करे। किंतु अगर आप इसे संसद पर ही छोड़ने जा रहे हैं तो आप यह तो तय ही कर दें कि सदस्यों एवं सचिवों के वेतन का अनुपात क्या रहेगा। हम यह क्यों कह रहे हैं? इसके दो कारण हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में विभिन्न वर्गों के बीच बड़ा ही आर्थिक वैषम्य है। एक तरफ आपको एक ऐसा वर्ग भी मिलेगा जिसके पास करोड़ों रुपये हैं और दूसरी ओर ऐसे अकिंचन भी मिलेंगे जिनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। विधान-मंडल के सदस्यों एवं सचिवों के वेतन में यह वैषम्य न रहना चाहिये। मैं यह नहीं चाहता कि सदस्यों और सचिवों के वेतन में कोई बड़ा अन्तर हो और सदस्यों को यह महसूस हो कि उन्हें और वेतन पाने के लिये मंत्रियों को सदा खुश रखना पड़ेगा। सदस्य एवं मंत्रियों के वेतन में कुछ साम्य रखने का एक और भी कारण है। जब आप एक बार यह निश्चय कर लेते हैं कि संसद के सदस्यों और मंत्रियों के

वेतन का अमुक अनुपात रहेगा तो मंत्रियों का वेतन तय करने में आपको सदा इसके लिये सतर्क रहना पड़ेगा कि सरकारी खजाने पर कही ज्यादा भार न पड़ जाये। अत: हमारे इस प्रावधान से दो मतलब हल होते हैं। एक तो यह कि सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन में, इसके कारण, बड़ा अन्तर न रहने पायेगा। इसमें शक नहीं कि मंत्रिगण 12 महीने काम करते हैं और संसद के सदस्य केवल चार या पांच महीने ही काम करते हैं। अगर आप इस दृष्टिकोण को सामने रखते हैं तो उस हालत में भी मैंने जो संशोधन रखा है उसके अनुसार सदस्यों एवं सचिवों (मंत्रियों) के वेतन का अनुपात प्राय: बराबर ही रहता है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में एक निश्चित अनुपात के आधार पर ही सदस्यों और मंत्रियों को वेतन दिया जाता है। अत: मैं जो कहना चाहता हूं वह यही है कि सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन में कुछ साम्य होना ही चाहिये जिससे सदस्यों के मन में, किसी भी प्रकार से लाघव-भावना न विकसित होने पावे। पहले के दो संशोधन बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं, भले ही आप उन्हें स्वीकार करें या अस्वीकार करें। किंतु तीसरे में एक बहुत ही महत्त्व का प्रश्न उठाया गया है। आशा है सभा, चाहे पार्टी का निर्णय कुछ भी क्यों न हों, उन कारणों का जिन्हें मैंने सभा के समक्ष अभी रखा है, ख्याल करेगी और इस बात पर विचार करेगी कि विपक्षी दल को विधान द्वारा मान्यता देने का जो सिद्धांत है वह कहां तक वांछनीय है। यह कह देना कि हम इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं और जब संसद बनेगी तो वह सदस्यों के वेतन को निश्चित कर लेगी, बहुत आसान है। पर सवाल यह कि जब सैकड़ों पृष्ठों और अनुच्छेदों का एक बृहत्काय विधान बना रहे हैं, जब आप हर बात को विधान में ही लिपिबद्ध कर रहे हैं और मामूली बात को आगे के लिये नहीं छोड़ रहे हैं तो आप इस प्रावधान को ही आगे के लिये क्यों छोड़ रहे हैं? इसको भी विधान में क्यों नहीं लिपिबद्ध कर देते? लोकतंत्र के हित को देखते हुए, और इस बात को देखते हुए कि देश में पार्टी हुकूमत सुचारू रूप से चल सके, यह प्रावधान वस्तुत: बड़े ही महत्त्व का है। भारत वर्ष में गत कई शताब्दियों तक निरंकुशतंत्र रहा है। हम लोकतंत्र का अपने यहां श्रीगणेश करने जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक है कि हम ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमें हमारा लोकतंत्र असफल न होने पावे। हमें इसके लिये कार्यवाही करनी चाहिये कि हमारे लोकतंत्र की सफलता सुनिश्चित हो और इसके लिये सबसे जरूरी चीज यह है कि हम इस बात को सुनिश्चित बना दें कि वर्तमान विधान के प्रयोग में आने पर जब नया विधान-मंडल समवेत हो तो वहां एक विपक्षी दल अवश्य ही मौजूद रहे ताकि हमारा दलीय शासन सफलतापूर्वक चल सके।

(संशोधन नं. 1635 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 86 में, 'भारत अधिराज्य के विधान-मंडल के' शब्दों की जगह 'विधान-परिषद्' शब्द रखे जायें।''

जो शब्द अभी वहां हैं, श्रीमान्, वे अनुपयुक्त हैं। आज ऐसी कोई सभा अस्तित्व में नहीं है जिसे हम भारत अधिराज्य का विधान-मंडल कह सकें। उपायोजित भारत-शासन-अधिनियम के अनुसार तथा पार्लियामेंट एक्ट के अनुसार भी यह विधान-परिषद् ही, कतिपय प्रयोजनों के लिये, भारत-अधिराज्य के विधान-मंडल के रूप में काम करती है। विधान-परिषद् ही

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

एकमात्र विधान-मंडल है। जिसका आज अस्तित्व है और भारतीय संसद के सदस्य भी अपना उत्तराधिकार इसी विधान-परिषद् से प्राप्त करना पसन्द करेंगे बजाय इसके कि वे किसी ऐसे विधान-मंडल से प्राप्त करें जिसका कि कोई अस्तित्व ही न हो। हां किसी समय यह बात जरूरी थी कि जब यह सभा विधान निर्मातृ के रूप में बैठती थी तो उसके सदस्यों को कुछ और ही अधिदेय दिया जाता था और जब वह विधान-मंडल के रूप में समवेत होती थी तो इसके सदस्यों को कुछ दूसरा अधिदेय दिया जाता था। किंतु अब यह बात नहीं रह गई और इसके सदस्यों को समान अधिदेय ही दिया जाता है। इसलिये अब किसी तरह की कोई भी व्यावहारिक कठिनाई नहीं रह गई है। इन शब्दों के साथ मैं सभा से इस संशोधन को स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्री सन्तानम् का जो संशोधन है श्रीमान्, उसमें होना चाहिये ''भारत की विधान-परिषद्'' न कि केवल ''विधान-परिषद्'' जो वहां रखा गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 1637 वैसा ही है जैसा कि नं. 1636। अब सभी संशोधन उपस्थित किये जा चुके हैं अब मूल प्रस्ताव पर तथा संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री लारी के संशोधन पर चन्द शब्द कहने के लिये ही मैं खड़ा हो रहा हूं। संसद के सदस्यों के वेतन का विधान में कोई उल्लेख न होने की जो उनकी शिकायत है तथा उनका यह जो सुझाव है कि विपक्षी दल के नेता को एक वेतन मिलना चाहिये—यह दोनों ही बातें सार पूर्ण हैं और हमें इस पर अवश्य विचार करना चाहिये। किन्तु जब तक कि संसद के सदस्यों एवं विपक्षी पक्ष के नेता, वेतन पर विधान में कोई रोक न हो इन सब विस्तार की बातों को विधान में लिपिबद्ध करना मैं जरूरी नहीं समझता।

बहस में ऐसी बातों को लाकर जिनका सद्य: संबंध केवल उन्हीं से है—मेरा मतलब यह है कि संयुक्त प्रांतीय राजनीति से—श्री लारी ने, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवसर का प्रयोग केवल अपने चिर अभ्यस्त राग को अलापने के लिये ही यहां किया है। हम यहां विधान के मसौदे पर विचार कर रहे हैं और मुझे आश्चर्य होता है कि इस सिलसिले में, श्री लारी के सुझाव को विधान में लिपिबद्ध करके एक विपक्षी पक्ष के निर्माण के लिये हम कोई उपाय निकालें यह हमारे लिये कैसे सम्भव है। किसी विपक्षी दल के अधिकारारूढ़ होने पर विधान में कोई रोक तो लगाई नहीं जा रही है। आज एक अरसे से श्रीमान्, सन् 1937 से ही जब से कि प्रांतों में सन् 1935 के एक्ट प्रवर्तन में आया, ऐसे लोगों की ओर से जिन्हें दुर्भाग्यवश मंत्रि-मंडल में आने की या अधिकारारूढ़ की कोई भी सम्भावना नहीं है मैं यह रोना सुनता आ रहा हूं कि कहीं भी कोई विरोधी पक्ष नहीं है, कांग्रेस दल यथाशक्ति यह चेष्टा करता है कहीं विपक्षी दल बनने न पावे और यह कि जहां कहीं विपक्षी दल है भी वह अपना काम नहीं करता है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि कांग्रेस हो या अन्य कोई भी दल हो जो आगे चलकर इसका स्थान लेगा, वह कैसे विपक्षी दल का निर्माण कर सकता है? विपक्षी दल के सदस्यों को या उसके नेता

को वेतन देने से आखिर कैसे विपक्षी दल का निर्माण हो जायेगा। क्या आपका मतलब यह है कि विधान में एक ऐसा प्रावधान रख दिया जाये जिसके अनुसार, विपक्षी दल के निर्माण हेतु, एक रकम बजट में रखी जा सके? जो लोग यहां वर्तमान शासन-प्रणाली से असन्तुष्ट हैं उनसे मैं यह निवेदन करूंगा कि ठीक-ठीक यह बतावें कि वे चाहते क्या हैं? क्या वे यह चाहते हैं कि विपक्षी दल के निर्माण के लिये केन्द्रीय बजट में एक रकम खासतौर पर रख दी जाये? इस सभा में, जो कि व्यावहारिक ढंग पर सुचारू रूप से अपना काम कर रही है, इस तरह का रुदन शुरू करना एक तरह से सभा में विषयांतर उपस्थित करना है। माननीय मित्र श्री लारी ने सम्भवत: इसीलिये यह विषयांतर यहां उपस्थित किया है कि समाचार-पत्रों के पाठक यहां की कार्यवाही को बिल्कुल निर्जीव न समझें। यहां तक तो मानना पड़ेगा कि उन्होंने एक खिदमत ही की है किन्तु मेरा ख्याल है कि किसी न किसी को यह कहना ही होगा कि उनकी इस शिकायत के लिये यह न कोई उपयुक्त मौका ही और न उपयुक्त स्थान ही है। उनकी यह शिकायत कि कोई विपक्षी पक्ष नहीं है सही है पर इसके लिये अधिकारारूढ़ दल क्या कर सकता है? मैं नहीं समझता कि विधान में विपक्षी दल का उल्लेख करने से क्या लाभ है क्योंकि श्री लारी का संशोधन स्वीकृत हो जाने से ही तो विपक्षी दल का निर्माण न हो सकेगा। अच्छा मान लीजिये कि लारी साहब का संशोधन स्वीकार हो जाता है—जोकि मैं इसे सर्वथा अस्वीकार्य समझता हूं—तो क्या इससे विपक्षी दल की सृष्टि हो जायेगी? क्या वेतनभोगी होने से ही विपक्षी नेता किसी पार्टी का संगठन कर सकेगा? मान लिया कि विपक्षी नेता को वही वेतन और अधिदेय दिये जाते हैं जो कि प्रधान मंत्री को प्राप्त हैं तो इससे क्या वह एक दल संगठित करने में सफल हो जायेगा? मैं समझता हूं कि श्री लारी के लच्छेदार तर्क सभा को भ्रम में डाल देंगे और वह यही विश्वास कर बैठेगी कि वर्तमान स्थिति में किसी न किसी बात की कमी जरूर है और श्री लारी के संशोधन के स्वीकृत होने से वह स्थिति अवश्य पैदा हो जायेगी जिसका आज सर्वथा अभाव है क्योंकि श्री लारी का संशोधन ऐसा है कि साधारणत: विधान में उसे कभी स्थान नहीं मिल सकता है।

माननीय सदस्य ने इन संबंध में ब्रिटिश प्रणाली का और वहां की लोक सभा के विपक्षी पक्ष का भी उल्लेख किया है। अवश्य ही मैंने भी इस बात को गौर से अध्ययन किया है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों के वेतन का क्रमश: क्या इतिहास रहा है और वहां विपक्षी दल के नेता को जो दर्जा दिया गया है और उसको वेतन दिया जाता है उसका क्रमश: किस तरह विकास हुआ है। कई शताब्दियों के बाद यह रूढ़ियां वहां विकसित हो पाई हैं। मैं नहीं समझता कि भावी भारतीय संसद अगर विपक्षी पक्ष के नेता को वेतन देना ही वांछनीय या बुद्धिसंगत समझे तो उसे आखिर ऐसा करने में रुकावट क्या हो सकती है? मैं तो इस बात की कोई आवश्यकता नहीं देखता कि इस तरह का प्रावधान विधान में और इस अनुच्छेद के प्रसंग में जो केवल अनुमति मूलक एक अनुच्छेद है, रखा जाये। यह अनुच्छेद तो संसद को यह अनुमति देने के लिये है कि वह सदस्यों के वेतन एवं अधिदेय के बारे में भविष्य में कानून बना सकती है और उस अन्तर्वर्त्ती काल के लिये जब तक कि संसद बैठे और कानून बनाये, सदस्यों की वर्तमान स्थिति, इस अनुच्छेद के अनुसार पूर्ववत् रहेगी।

उनकी स्थिति पूर्ववत बनाये रखने के बारे में जो प्रावधान है, उस पर भी आपको आपत्ति है। मैं नहीं समझता कि इस समुचित प्रावधान पर उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है?

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

आखिर भावी संसद को प्रारम्भिक काल से इतने काम अधिक रहेंगे कि उनके महत्त्व को देखते हुए सदस्यों के वेतन अधिदेय आदि के प्रश्न बिल्कुल नगण्य से होंगे। मैं तो यह चाहूंगा कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर को अपना वह संशोधन पेश करने दिया जाये जिसमें प्रधान को यह अधिकार दिया गया है कि जब तक संसद ऐसा कानून न बना ले जिसके अनुसार कि वर्तमान स्थिति या वह स्थिति जो उपायोजित भारत-शासन-अधिनियम में रखी गई है पूर्ववत बनी रहे, अगर आवश्यक हो तो वह उनके वेतन और अधिदेय को कम बेशी कर सकता है। श्रीमान्, श्री लारी का यह अभियोग कि वर्तमान स्थिति को चालू रखने के लिये जो प्रावधान रखा गया है वह गलत है, सर्वथा निराधार है क्योंकि भावी संसद के लिये यह सम्भव न होगा कि वह समवेत होते ही छोटे-बड़े जो सैकड़ों मसले हैं उनको निपटा दे। समवेत होने के सम्भवतः दो-तीन वर्ष बाद कहीं संसद इस स्थिति में आयेगी कि वह श्री लारी के सुझावों पर कोई कार्रवाई कर सकें। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि हमारी भावी संसद और वे लोग जिनके हाथ में देश का भाग्य रहेगा, जरूर ही श्री लारी के इन सुझावों को ध्यान में रखेंगे जो उन्होंने विपक्षी दल के नेता के वेतन के संबंध में दिये हैं, अगर उनसे एक विरोधी पक्ष का—एक रचनात्मक विरोधी पक्ष का सृजन होता हो। अवश्य ही एक विरोधी पक्ष होना ही चाहिये किन्तु जैसा प्रावधान कि श्री लारी सुझा रहे हैं उसे विधान में स्थान देना मेरे ख्याल से गलत होगा। अपने संशोधन के पक्ष में आपने जो तर्क उपस्थित किये हैं वह अप्रासंगिक तो हैं ही और साथ ही यह भी है कि इस सभा का उनसे कोई संबंध नहीं है और न सभा के लिये वह बोधगम्य ही है। मैं श्री लारी के संशोधन का विरोध करता हूं श्रीमान्, और श्री संतानम् के संशोधन का तथा तदनुसार संशोधित अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री लारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है मैं उसका विरोध करता हूं और इस कारण से नहीं कि मैं किसी रचनात्मक विरोध के विरुद्ध हूं। यह अनुच्छेद अपने वर्तमान स्वरूप में यथेष्ट व्यापक है और इसके अनुसार संसद के सदस्यों के वेतनादि का प्रावधान किया जा सकता है और वस्तुतः इन बातों का इसमें प्रावधान कर दिया गया है और यह भी नहीं इसमें कहा गया है कि सभी सदस्यों के वेतन एक-समान होंगे। अगर कोई रचनात्मक विरोधी पक्ष है और उसका कोई नेता है तो, इस अनुच्छेद के अनुसार भावी संसद, इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, उसके लिये खास वेतन का या ऐसे वेतन का जो अन्य सदस्यों से अधिक हो, प्रावधान कर सकती है। जैसा कि मैं कह चुका हूं यह अनुच्छेद बहुत व्यापक है। दुनिया के किसी देश में कहीं भी कोई विधान ऐसा नहीं है जिसमें विपक्षी दल के नेता के वेतन के लिये कोई प्रावधान लिपिबद्ध किया गया हो। नियम एवं उपनियम तो संसद ही बनाती है और संसद पर यह रुकावट कहीं नहीं आती है कि वह विपक्षी दल के नेता के वेतन के बारे में कानून नहीं बना सकती। श्री लारी ने जो संशोधन रखा है उसे जरा गौर से पढ़िये, वह इस प्रकार है:

''किन्तु शर्त यह है कि संसद के सदस्यों को दिये जाने वाले वेतन केबिनेट मिनिस्टर को दिये जाने वाले वेतन की एक चौथाई से कम ओर एक तिहाई से ज्याादा न होगा।'' अपने सदस्यों का जो मूल्यांकन किया है उसके अनुसार मंत्री-मंडल का एक सदस्य संसद के तीन या चार सदस्यों के बराबर होगा और संसद के सदस्यों को इससे सदा यह रचनात्मक

प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी कि वे अपने अधिदेय को बढ़ाने के लिये सदा आन्दोलन करते रहेंगे ताकि मंत्रियों का अधिदेय भी बढ़ता चला जाये। अगर सदस्यों का अधिदेय मंत्रियों के अधिदेय के एक चौथाई से ज्यादा नहीं होगा और उस सदस्य को मिलेगा पांच सौ तो मंत्री को मिलेगा दो हजार और अगर सदस्य ने दावा किया एक हजार का तो मंत्री अधिकारी हो जायेगा चार हजार पाने का। मैं नहीं समझता कि क्यों एक चौथाई से कम या एक तिहाई से ज्यादा सदस्य को न दिया जाये। आप इसको इतना तंग या कठोर रूप क्यों दे रहे हैं? आप यह कहिये कि एक चौथाई या एक तिहाई या आधा दिया जायेगा पर एक कठोर अनुपात निश्चित करने का तो कोई मतलब नहीं है। मैं नहीं समझता कि सदस्यों एवं मंत्रियों के वेतन को एक निश्चित अनुपात के आधार पर ही क्यों निश्चित किया जाये।

उनके संशोधन में यह और कहा गया है कि:–''और शर्त यह है कि विपक्षी दल का नेता उस वेतन का अधिकारी होगा जो बिना केबिनेट दर्जा वाले किसी मंत्री को दिया जायेगा''। अगर सरकार यह सिफारिश कर बैठती है, केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टरों का पद हटा दिया जाये तो उस सूरत में मित्रवर श्री लारी का संशोधन बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है। ज्यों ही हमारे मंत्री बिना केबिनेट दर्जा वाले बना दिये जाते हैं, श्री लारी के सुझाव को अमल में लाने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती क्योंकि उनके संशोधन की वाक्य रचना ही ऐसी है कि उस हालत में वह लागू नहीं हो सकता। आप असलियत को क्यों नहीं देखते? 15 अगस्त सन् 1947 से यही सभा विधान-मंडल के रूप में भी काम कर रही है पर इन दो वर्षों के बीच आपने यहां कभी कोई रचनात्मक विरोध की बात देखी हैं? हां, जब हैदराबाद के संबंध में वाद-विवाद हो रहा था उस समय यहां कुछ सजीव विरोध मुझे देखने को मिला था। अन्य और किसी भी मौके पर कभी वास्तविक विरोध देखने को ही नहीं मिला। आखिर विरोधी पक्ष की क्या नीति है, उसका क्या कार्यक्रम है? साम्प्रदायिक मसलों को लेकर यहां विपक्षी दल रहा है पर क्या आप उस परम्परा को स्थायी बनाये रखना चाहते हैं? यहां कोई ऐसा वर्ग है जो सरकार के जबर्दस्त खिलाफ है और चाहता है कि हमारा राज्य सर्वथा समाजवादी बन जाये और अभी बन जाये तो यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। पर आपके सामने अभी नीति के प्रोग्राम की कोई बात तो है नहीं। फिर क्या आप उस आयरलैंडवासी के पथ का अनुकरण करना चाहते हैं जिसने अपना जहाज डूब जाने पर विपक्षी बनने की बात कही थी? किसी आयरिश का जहाज डूब गया और वह किसी टापू के किनारे जा लगा। उसने जो पहला सवाल वहां लोगों से किया वह था—''क्या यहां कोई हुकूमत भी है?'' किसी के हां में उत्तर देते ही वह फौरन बोल उठा—''तो मैं उसके विपक्षी दल का सदस्य हूं''। लारी साहब एक विपक्षी दल का निर्माण करना चाहते हैं पर मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि कोई विपक्षी दल है भी और अगर है तो वह रचनात्मक है या साम्प्रदायिक? इससे तो मैं सहमत हूं कि विरोधी पक्ष होना ही चाहिये। पर वे तो शायद साम्प्रदायिक आधार पर एक विपक्षी दल का निर्माण चाहते हैं। पर क्या ऐसी कोई साम्प्रदायिक पार्टी है जो विपक्षी दल का रूप ग्रहण कर सके? क्या आप साम्प्रदायिक तनातनी को बढ़ावा देना चाहते हैं और साम्प्रदायिक झगड़ों को जो लोग खड़ा किया करते हैं उनसे यह कहना चाहते हैं—''तुम अपना काम करते चले जाओ उलटा जिस तरह भी हो उसे अग्रसर करते रहो और मैं तुम्हें उसके लिये वेतन दूंगा पारिश्रमिक?'' मुझ आश्चर्य हो रहा है कि रचनात्मक विरोध के जो साहब आज यहां इतना हामी बन रहे है उन्हें रचनात्मक विरोध कायम करने का यथेष्ट अवसर मिला था और उन्होंने क्यों नहीं उस दिशा में कोई प्रयास पहले किया?

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

मैं यह जानना चाहता हूं कि आखिर उनकी नीति क्या है, उनका प्रोग्राम क्या है? आखिर देश का हित ही तो वे चाहते हैं? फिर मैं उनसे पूछता हूं कि कांग्रेस पार्टी के कार्यक्रम से देश का जो हित होगा उससे अधिक हित क्या देश को इनके कार्यों से पहुंच सकेगा? इसलिये मैं समझता हूं कि विधान में विपक्षी दल का उल्लेख करना अनावश्यक है। आप इस बात को संसद पर छोड़ सकते हैं। अगर देश में कोई रचनात्मक विपक्षी दल प्रादुर्भूत होता है और उसका नेता वेतन संबंधी प्रावधान के अभाव से अपना सारा समय और अपनी सारी शक्ति नहीं लगा सकता है जो जनहित के लिये, अपने लोकतंत्र के हित के लिये, संसदात्मक शासन व्यवस्था के लिये और शासन संबंधी दोषों को जनता के सामने लाने के लिये जरूरी है तो मैं कहूंगा कि इसकी व्यवस्था करने के लिये हमारे पास अभी पर्याप्त समय है। अनुच्छेद का जो स्वरूप है उससे ऐसा प्रावधान करने में कोई रुकावट नहीं पड़ती है। किंतु अभी से कुछ सदस्यों को इसके प्रलोभन या उलझाव में डाल देना समुचित नहीं है। हो सकता है चार या पांच सदस्य आपस में मिल जायें और यह मांग करने लगे कि हम विपक्षी दल के रूप में सभा में योगदान करेंगे। हमारे नेता को चार हजार का वेतन मिलना चाहिये और उस रकम को वे आपस में बांट लें। अगर एक रचनात्मक विपक्षी दल विकास पाता है तो उसके लिये अवश्य प्रावधान किया जायेगा। किन्तु जब तक कि कोई रचनात्मक विरोधी पक्ष विकसित नहीं होता है, विधान में विपक्षी नेता के वेतन का प्रावधान रखकर सदस्यों के मन में प्रलोभन पैदा करना ठीक नहीं है। श्री लारी के संशोधन का विरोध मैं, उसके स्वरूप एवं सार दोनों ही बातों के ख्याल से करता हूं। उसका स्वरूप अव्यावहारिक है और सार की बात उसमें यों नहीं है कि अभी हमारे सामने कोई विरोधी पक्ष है ही नहीं। और हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि जिस तरह भी हो एक विरोधी पक्ष कायम ही हो जाये।

माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने अभी कहा है कि वह हमारे संशोधन को पसंद करते हैं। मैं संशोधन द्वारा यही कहना चाहता था कि अन्तर्वर्त्ती काल में वेतनादि के प्रश्न को प्रधान ही स्वत: निश्चित कर दे क्योंकि भारत-शासन-अधिनियम में भी एक इसी आशय का प्रावधान वर्तमान है जिसमें गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया है कि जब तक संसद द्वारा वेतनादि के संबंध में कोई प्रावधान न बन जाये, वह स्वयं अधिदेय संबंधी नियमों में परिवर्तन कर सकता है। श्री सन्तानम् का ख्याल है कि प्रधान को ऐसा अधिकार देना ठीक नहीं है। मैं भी इससे सहमत हूं कि प्रधान को विधान-मंडल के निर्णय को नहीं काटना चाहिये। किन्तु मैं समझता हूं कि जहां तक अधिदेय का प्रश्न है संसद पर ऐसी कोई रोक तो है नहीं कि उसके संबंध में अगर कोई त्रुटि है तो वह उसे दूर करने के लिये कोई कानून नहीं बना सकती। इसलिये इस तरह की कोई असाधारण शक्ति हमें प्रधान को नहीं देनी चाहिये—अत: जानबूझकर मैंने अपना संशोधन पेश नहीं किया।

मि. तजम्मुल हुसैन (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 86 में यह कहा गया है कि संसद के सदस्यों को वह वेतन दिया जायेगा जो संसद तय करे और जब तक कि संसद इस संबंध में कोई निश्चय नहीं कर देती तब तक उनको वह रकम दी जाये जो कि विधान-मंडल या विधानसभा के सदस्यों को फिलहाल दिया जाता है। माननीय मित्र श्री लारी ने इस संबंध में इस आशय का एक संशोधन रखा है कि: (1) केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टरों को जो वेतन दिया जाये उसका एक-चौथाई संसद के सदस्यों को

मिलना चाहिये। अर्थात् आपके हिसाब से हर सदस्य को वेतन के रूप में उस रकम की एक-चौथाई मिलनी चाहिये जो केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टरों को मिलती है। (2) विपक्षी दल का एक नेता होना चाहिये और उसे वही वेतन दिया जाना चाहिये जो एक स्टेट मिनिस्टर को यानी बिना केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टर को दिया जाता है। माननीय मित्र लारी के भाषण को और उनसे पहले के अन्य दो भाषणों को मैंने बड़े ध्यान से सुना है। श्री लारी का यह तर्क कि वेतन निश्चित हो जाना चाहिये बिल्कुल सही दिखाई देता है। विरोधी पक्ष का एक नेता होना ही चाहिये। श्री अनन्तशयनम् आयंगर की दलील यह है कि इस समय विरोधी पक्ष के नेता के लिये प्रावधान न होना चाहिये क्योंकि वर्तमान दल साम्प्रदायिक आधार पर बने हैं। किन्तु भविष्य में तो साम्प्रदायिक गुट होंगे नहीं क्योंकि स्थानों के संरक्षण की हम व्यवस्था नहीं करने जा रहे हैं और अगर उसकी व्यवस्था भी की गई तो वह पृथक् निर्वाचन के आधार पर नहीं की जायेगी। हर आदमी यह महसूस करता है कि विरोधी पक्ष का एक नेता होना ही चाहिये।

दूसरी ओर श्री लारी के संशोधन में एक त्रुटि है और वह यह है। जहां कहीं भी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के आधार पर संसदें हैं वहां विरोधी पक्ष के नेता भी होते हैं और संसद के सभी सदस्यों को वेतन दिया जाता है। किन्तु उनके वेतन का निश्चय खुद विधान नहीं करता है। हर देश में संसद ही, विरोधी पक्ष के नेता एवं संसद के सदस्यों का वेतन निश्चित करती है। दक्षिण अफ्रीका में देखिये या कनाडा में, आस्ट्रेलिया अथवा न्यूजीलैंड जहां भी देखिये हर जगह संसद ही यह सब निश्चित करती है। जब हर जगह संसद ही पर यह छोड़ा गया है तो हमीं क्यों विधान में इसका उल्लेख करके एक नई बात पैदा करें? आखिर विधान में इन सब विस्तार की बातों का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है? विधान में हमें केवल सिद्धांत ही रखना चाहिये और इस आशय का अनुच्छेद विधान में आ ही गया है कि सदस्यों को वेतन दिया जायेगा। वेतन के रूप में क्या रकम दी जायेगी इसका फैसला संसद करेगी न कि यह सभा। इस कारण से मैं इस संशोधन से सहमत नहीं हूं। मैं एक मौखिक संशोधन रखना चाहता हूं श्रीमान् और उस संशोधन से माननीय मित्र लारी का काम आसान हो जायेगा और सारी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी। मेरा सुझाव यह है कि बजाय इसके कि सदस्यों का वेतन मिनिस्टरों के वेतन का एक-चौथाई रखा जाये, सदस्यों और मिनिस्टरों दोनों को समान वेतन दिया जाये। उस सूरत में मेरा ख्याल है सभी खुश हो जायेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): मेरा विश्वास तो यह है श्रीमान्, कि माननीय मित्र लारी ने जो संशोधन रखा है वह देश के लिये अनुचित है और वह एक दुर्भाग्यपूर्ण संशोधन है।

विधान के अनुच्छेद 86 के प्रावधान पर ही पहले मैं विचार करूंगा। इसमें कहा गया कि संसद के सदस्य वह वेतन और अधिदेय पाने के अधिकारी होंगे जिन्हें संसद विधि द्वारा निश्चित करे और जब तक तद्विषयक प्रावधान नहीं बन जाते। तब तक उन्हें वही अधिदेय और वेतन प्राप्त होंगे जो इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से पहले उन्हे मिलते थे।

[श्री विश्वनाथ दास]

अगर मिस्टर लारी को इसके लिये इस तरह आन्दोलन ही करना था तो उनके लिये उचित मार्ग तो यह था कि चुनाव के बाद जब विधान की शर्तों के अनुसार संसद में कोई विधि प्रस्तावित होती तो वह संसद के समक्ष अपनी यह बातें पेश करते।

विधान में, श्रीमान्, वेतन एवं अधिदेय का प्रावधान किया गया है। पर जहां तक मेरा निजी संबंध है मैं इसमें विश्वास नहीं करता और न संसदात्मक गणतंत्र के उन हिमायतियों से मेरा मतैक्य ही है जो यह कहते हैं कि संसद के सदस्य उस काम के लिये जो कि वह अपने निर्वाचन क्षेत्र में या यहां सभा भवन में करते हैं, उन्हें वेतन मिलना ही चाहिये। मेरा विश्वास तो यह है बिना वेतन उन्हें अधिदेय दिया जाये यही वांछनीय मार्ग है। किन्तु हमें इस सभा के माननीय सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता के आगे सर झुकाना ही चाहिये और इसीलिये हम इस बात पर सहमत हो गये हैं कि वेतन तथा अधिदेय की दर संसद आगे चलकर, विधि द्वारा निश्चित करेगी। ऐसी स्थिति में, जहां तक कि मेरा निजी संबंध है, मैं खुद और मेरी विचारधारा के कतिपय मित्र यह महसूस करते हैं कि वेतन का सवाल उठना ही नहीं चाहिये पर हम लोगों का सदस्यों की सम्मिलित बुद्धिमत्ता के सामने नतमस्तक होना ही पड़ता है। पर यह बात कहने की तो किसी को इच्छा ही नहीं हो सकती कि जिस संसदात्मक लोकतंत्र की हम अपने देश में स्थापना करने जा रहे हैं उसे विधान में विरोधी पक्ष की मान्यता को स्वीकार करना चाहिये—स्वीकार ही नहीं, बल्कि विधान में इस बात का भी प्रावधान हो जाना चाहिये कि विरोधी पक्ष के नेता को अमुक हिसाब से वेतन दिया जायेगा। माननीय मित्र लारी से यह कहूंगा कि दुनिया के किसी भी प्रवर्तमान विधान की वह नजीर तो मुझे पेश करें जिसमें विरोधी पक्ष के नेता के लिये किसी एक निश्चित वेतन का प्रावधान किया गया हो। यह सच है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट विरोधी पक्ष के नेता को एक निश्चित वेतन अवश्य दिया जाता है और उसका वही दर्जा होता है जो वहां के मिनिस्टर का है। पर विधान में इसके लिये एक खास प्रावधान रखने से इस बात का क्या संबंध है? संसदात्मक लोकतंत्र में दो दलों का होना जरूरी होता है श्रीमान्, एक तो बहुमत वाला दल होता है जो अधिकारारूढ़ रहता है और दूसरा अल्पमत प्राप्त दल जो विरोधी पक्ष के रूप में काम करता है जिससे शासन का काम समुचित रूप से चले। इसलिये विरोधी पक्ष एक अनिवार्य और आवश्यक बुराई है। संसदात्मक गणतंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिये विरोधी पक्ष का होना आवश्यक है भले ही वह एक बुराई हो। किन्तु यह तो कोई औचित्य नहीं है कि इसके लिये विधान में हम एक ऐसा खास प्रावधान रखें जैसा कि संशोधन द्वारा सुझाया गया है। आखिर भविष्य में आने वाली बातों के लिये हमें बहुत कुछ तो पूर्ववर्त्ती दृष्टांतों के आधार पर ही व्यवस्था करनी होगी। मैं तो इस बात का कोई भी औचित्य नहीं देखता कि विधान में विरोधी पक्ष को मान्यता क्यों दी जाये और विरोधी पक्ष के नेता के वेतन का प्रावधान वहां क्यों रखा जाये।

विरोधी पक्ष के नेता के संबंध में इतना कह लेने के बाद अब मैं श्री लारी के उस प्रस्ताव की ओर आता हूं जो उन्होंने संसद के सदस्यों के वेतन की दर के संबंध में रखा है। मैं तो यह अनुभव करता हूं, हमारे जैसे देश के लिये यह प्रस्ताव सर्वथा

अनुचित है। हमारे देश में, जो लोग चोटी पर हैं उनकी आमदनी में और उन लोगों की आमदनी में, जो बिल्कुल ही निम्न स्तर पर है, गरीब हैं और बड़ा भारी अन्तर है और वेतन के लिये जो दर आपने प्रस्ताव में रखी है उससे यह वर्तमान वैषम्य सदा के लिये स्थायी हो जायेगा। अतः यह प्रस्ताव तो मेरी कल्पना के बाहर है। आपका कहना है कि मिनिस्टरों को जो वेतन मिले उसके एक चौथाई और एक तिहाई के बीच सदस्यों को वेतन दिया जाये अगर मंत्रियों का वर्तमान वेतन जो तीन हजार माह वार रखा गया है वही रहता है तो सदस्यों को, आपके प्रस्ताव के अनुसार 750 से लेकर एक हजार रुपये माह वार मिलना चाहिये। मैं माननीय मित्र से यह पूछना चाहता हूं कि अपने देश की अवस्था को देखते हुए क्या उनके लिये यह उचित है कि सदस्यों के लिये 750 से एक हजार रुपये माहवार तक के वेतन का वह प्रस्ताव करे?

***श्री जैड.एच. लारी:** एक हजार रुपये तो हम सबको फिलहाल मिल ही रहे हैं।

***श्री विश्वनाथ दास:** हो सकता है, अगर वह कई समितियों के सदस्य हैं और नियमित रूप से सभा में उपस्थित रहते हैं तो उन्हें एक हजार मिलता हों। उस सूरत में भी मैं उनसे कहूंगा कि उन्होंने जो कुछ कहा है वह सही नहीं है। जहां तक मैं जानता हूं सभा का कोई भी सदस्य तेरह सौ रुपया बतौर अधिदेय के नहीं लेता है। मैं उन सदस्यों में हूं जिन्होंने यह समझकर कि रोजाना 45 रुपये बहुत ज्यादा हैं, केवल तीस रुपया रोजाना लेना पसन्द किया है और फिर एक साधारण कर्मी हूं और मुझे 45 रुपये रोज की जरूरत नहीं है। मैं अपने ऐसे सदस्यों को भी जानता हूं जो विधान-मंडल से रकम पाते ही उसे सीधे अपनी जिला कांग्रेस कमेटी को दे देते हैं और फिर जिला कांग्रेस कमेटी से वेतन के रूप में वह रकम पाते हैं जो कमेटी ने सदस्यों के लिये निश्चित कर रखा है। वह अपना सारा समय ही सार्वजनिक कामों में लगाते हैं पर वेतन लेते हैं उतना ही जो उनकी जिला कांग्रेस कमेटी ने तय कर रखा है न कि वह रकम जो उन्हें विधान-मंडल से मिलती है। ऐसी स्थिति में, मेरा ख्याल यह है कि सभा के समक्ष ऐसा प्रस्ताव लाकर मेरे मित्र ने अपने निर्वाचकों के प्रति और देश के प्रति बड़ा अन्याय किया है।

जहां तक मेरा अपना संबंध है श्रीमान्, मैं यह महसूस करता हूं कि इस संशोधन की किसी भी बात से मैं कोई भी सरोकार नहीं रख सकता। मैं इसे सर्वथा अनावश्यक, अवांछनीय बल्कि दुर्भाग्यपूर्ण समझता हूं। इसलिये मैं अनुच्छेद 86 का, जिस रूप में कि अभी यह है, समर्थन करता हूं। किन्तु मेरी अपनी प्रबल इच्छा यही है कि सभा के माननीय सदस्यों के लिये वेतन की कोई दर निश्चित नहीं की जानी चाहिये और सभा उन्हें जो भी अधिदेय देना तय करे उससे सर्वथा सन्तुष्ट होकर देश की सेवा के लिये सदा स्वेच्छया तैयार रहना चाहिये।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, श्री लारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण संशोधन है और जिन सदस्यों ने उसका विरोध किया है उन्होंने विरोध के दो कारण बतायें हैं पहला तो यह कि दुनिया के किसी भी विधान में ऐसा कोई प्रावधान लिपिबद्ध नहीं किया गया है। दूसरा कारण यह बताया गया है कि विरोधी पक्ष के नेता का वेतन रूढ़ियों के आधार पर स्थिर किया

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

जाता है। मैंने बड़े ध्यान से श्री दास की वक्तृता सुनी है, जिन्होंने यह विचार किया है कि विरोधी पक्ष का होना एक आवश्यक बुराई है। संशोधन की उपयोगिता के संबंध में अगर कोई सन्देह भी था तो श्री दास की वक्तृता सुनने के बाद वह सन्देह जाता रहा है और अब मैं अच्छी तरह यह समझ गया हूं कि इस देश में ऐसे लोग हैं जो इस व्यवस्था को एक आवश्यक बुराई समझते हैं और इसलिये इस व्यवस्था को खुद विधान में लिपिबद्ध करना आवश्यक है। श्री कृष्णमाचारी का कहना है कि यह कोई सैद्धांतिक प्रश्न नहीं है, यह तो महज तफसील की एक बात है मेरा निवेदन यह है कि जब इस देश में विरोधी पक्ष का होना बर्दाश्त ही नहीं किया जाता है, जब उसकी उपेक्षा की जाती है, बल्कि उसे साधारणत: दंडित किया जाता है तो ऐसी हालत में तो यह जरूरी है कि विधान द्वारा विरोधी पक्ष को मान्यता दी जाये। विश्व का ऐसा कोई भी लोकतंत्र नहीं है जो विरोधी पक्ष के अभाव में सुचारू रूप से काम कर सकता हो। अधिकारारूढ़ दल की गलतियों को और उसकी खामियों पर विरोधी पक्ष द्वारा प्रकाश पड़ना ही चाहिये। और विरोधी पक्ष के कारण अधिकारारूढ़ दल को सदा अपने कार्यों में सतर्क रहना होगा। भारतीय लोकतंत्र तो एक नवजात लोकतंत्र है और यहां हम यह देखते हैं कि हर प्रांत में यहां तक कि केन्द्र में भी विरोधी पक्ष को लोग बर्दाश्त नहीं करते और उसकी कोई कद्र नहीं की जाती है। आज प्रांतों में क्या हो रहा है? पब्लिक सेफ्टी एक्ट और अन्य कानूनों के बल पर विरोधी पक्ष के नेताओं को या उन लोगों को जो कि विरोधी पक्ष में है धमकाया जाता है। केवल इतना ही नहीं, विरोधी दल प्रांतों में लुप्त होता जा रहा है। आखिर इसका कारण क्या है? इसका एकमात्र कारण यही है कि अगर कोई मुसलमान विरोध करता है तो सरकार यह कहती है कि वह मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्रीय सिद्धांत में विश्वास रखता रहा है। उससे यह कहा जाता है कि अगर तुम अपना विरोध बन्द नहीं करते हो तो उसको बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। और कोई समाजवादी विरोध करता है तो यह कहा जाता है कि वह सरकार का शत्रु है और अगर कोई कम्युनिस्ट विरोध करता है तो उसे गुंडा बताया जाता है। यह तो अवस्था है जो आज प्रांतों में तथा केन्द्र में देखने को मिलती है। इसलिये विधान द्वारा विरोधी पक्ष को मान्यता देना अब जरूरी हो गया है। मिस्टर लारी ने कहा है कि यह एक सिद्धांत का प्रश्न है। यह वेतन का प्रश्न नहीं हैं मेरा कहना यह है कि अगर विपक्षी दल के नेता को एक वेतन दिया जाता है तो वह अपना सारा समय सरकार की आलोचना में, उसकी गलतियों और असफलताओं के विरुद्ध जनमत तैयार करने में लगा सकेगा। इसलिये मेरा कहना तो यही है कि अब मौका आ गया है कि हम विधान द्वारा विरोधी पक्ष की उपादेयता को स्वीकार करें। मिस्टर लारी का संशोधन अगर आप स्वीकार कर लेते हैं तो उसका मतलब यह होता है कि आप यह स्वीकार करते हैं कि देश में एक रचनात्मक विरोधी पक्ष का होना बड़ा जरूरी है। श्री आयंगर ने कहा है कि रचनात्मक विरोध को तो सहन करना ही होगा। किन्तु इस बात का फैसला कि कौन सा विरोध रचनात्मक है और कौन सा अरचनात्मक, अधिकारारूढ़ दल पद छोड़ा जाता है तो मेरा अपना ख्याल तो यह है कि हर विरोध को, हर आलोचना को वह अरचनात्मक ही कहेगा और उसकी अवहेलना ही करेगा। इसलिये मैं श्री लारी के संशोधन का समर्थन करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह उसे स्वीकार करे।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं मिस्टर लारी के संशोधन का समर्थन करता हूं, जहां तक कि इसकी दूसरी परन्तुका का संबंध है। सैद्धांतिक दृष्टि से मैं इसका समर्थन करता हूं और सभा से भी मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह वेतन संबंधी प्रश्न पर अवश्य विचार करे। एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न इसमें उठाया गया है और इसी कारण मैं इसका समर्थन करता हूं। मैं सभा से पहले यही अनुरोध करूंगा कि वह उस सिद्धांत पर विचार करे जो इसमें सन्निहित है। वेतन संबंधी प्रश्न तो एक गौण विषय है पर महत्त्व की बात विधान द्वारा विरोधी पक्ष को मान्यता का दिया जाना है, इस संशोधन में जो महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक प्रश्न सन्निहित है वह यही कि विधान में इसका उल्लेख होना चाहिये। इस सैद्धांतिक प्रश्न के सामने वेतनादि का प्रश्न सर्वथा नगण्य है। इसलिये सभा का ध्यान मैं प्रश्न के इसी महत्त्वपूर्ण पहलू की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

सभा के तीन गम्भीर एवं विवेकशील सदस्यों ने—श्री टी.टी. कृष्णमाचारी, श्री अनन्तशयनम् आयंगर एवं श्री विश्वनाथ दास ने—इस संशोधन का विरोध तो किया है पर ऐसा करने में उन्हें बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी है। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के खिलाफ समझाने में यहां उन्हें काफी दिक्कत उठानी पड़ी है। श्री कृष्णमाचारी हैं तो एक अर्थशास्त्र विशेषज्ञ पर इस संशोधन के खिलाफ कानूनी दलील पेश करने में उन्हें काम करना पड़ा एक वकील के रूप में। हां, मिस्टर आयंगर एक बड़े कानूनदां हैं पर मुझे खेद है वह यहां एक साधारण वकील से ऊपर नहीं उठ सके। लोकतंत्रात्मक संसद में विरोधी पक्ष का होना एक नितांत आवश्यक बात है, श्रीमान्। लोकतंत्रीय संस्थाओं के लिये विरोधी पक्ष का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि हमारा राज्य लोकतंत्रीय हो और वह एक सर्वसत्ताधारी गणतंत्र हो और यही रूप हम उसको देना चाहते हैं। अगर आप यहां विरोधी पक्ष का होना सुनिश्चित नहीं बना सकते तो अपने इस विधान को लोकतंत्रीय विधान कह कर एक ''अलोकतंत्रीय सर्वसत्ताधारी गणतंत्र'' का विधान कहिये। लोकतंत्र की वास्तविकता इसमें है कि वहां विरोधी पक्ष हो। श्री कृष्णमाचारी ने कहा है कि वेतन की व्यवस्था से ही विरोधी पक्ष का आखिर निर्माण तो हो नहीं जायेगा। आपका कहना है कि विरोधी पक्ष शनैः शनैः विकास में आता है और यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसको कि हम निर्माण करके स्थापित कर सकते हों। किन्तु आप भूल जाते हैं कि वेतन की व्यवस्था से विरोधी पक्ष को एक दर्जा मिल जाता है और इससे उसे एक मान्यता भी प्राप्त हो जाती है। विधान-परिषद् के सदस्य जब विधान-मंडल के रूप में बैठकर सरकारी प्रस्तावों का विरोध करना चाहते हैं तो उन्हें वैसा करने में बड़ी ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। मैं तो कहूंगा कि एक प्रभावशाली विरोधी पक्ष के न होने से विधान-मंडल बिल्कुल बिगड़ जाता है। विरोधी पक्ष के रहने से बहुमत प्राप्त दल में सहनशीलता पैदा हो जाती है और विपक्षी दल के न रहने से उनकी वह सहनशीलता सर्वथा जाती रहती है। इसका नतीजा यह होता है कि जब कभी उनकी कोई आलोचना की जाती है तो अधिकारारूढ़ दल का कोई न कोई सदस्य अधीर हो उठता है। ज्योंही कोई तर्क उनके विरुद्ध उपस्थित किया जाता है कि सरकार की तथाकथित प्रतिष्ठा संकट में पड़ने लग जाती है और अधिकारारूढ़ दल उन तर्कों का विरोध करता है, उन पर आक्रोश प्रकट करता है और उनके प्रति उपेक्षा एवं घृणा का व्यवहार बरतता है। कल ही मैंने एक प्रस्ताव रखा था और मेरी समझ से वह सर्वथा युक्तिसंगत था पर डा. अम्बेडकर

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

ने उसे बिल्कुल व्यर्थ और अयुक्तिसंगत बतला दिया। इसके लिये डा. अम्बेडकर को मैं दोषी ठहराता हूं। आज अधिकारारूढ़ दल का जबर्दस्त बहुमत है और उसके मुकाबले में जो विरोधी पक्ष है वह बहुत ही निर्बल है। सुतरां ऐसी स्थिति में यह होना स्वाभाविक है। किसी प्रभावशाली विपक्षी दल के न होने से ही ऐसी स्थिति पैदा होती है। सरकार के पीछे एक विशाल दल है जिसका कि उसे विश्वास प्राप्त है और उसी के फलस्वरूप आज यह स्थिति पैदा हुई है और उसी के कारण अधिकारारूढ़ दल में विपक्षी दल के प्रति उपेक्षा एवं असहिष्णुता का भाव उत्पन्न हो गया है। मैं यह कहूंगा श्रीमान्, कि एक प्रभावशाली विरोधी पक्ष के न होने से सरकार को इस बात का प्रोत्साहन मिल जाता है कि वह निर्द्वन्द होकर जनमत की बिना कोई परवाह किये जो चाहे करे। इसका परिणाम क्या होता है? बाहर वालों को अर्थात् जनता को यहां की कार्यवाही में कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती है। वह यह समझते हैं कि यहां सरकार जो कुछ कहे उसके पक्ष में 'हां' कहने के सिवाय सदस्यों को और कोई काम नहीं है। मैं निवेदन करूंगा कि वास्तविक लोकतंत्र के विकास के लिये यह हितकर नहीं है। प्रांतों में सरकारों का बहुत ही अरचनात्मक विरोध हुआ है। मैं यही चाहता हूं कि कांग्रेस का शासन बना रहे। इस समय कोई दूसरा दल ही नहीं है जिसकी हुकूमत की मैं कल्पना कर सकूं। अत: मेरा अपना यही ख्याल है कि अभी कुछ समय तक कांग्रेस को ही अधिकारारूढ़ रहना चाहिये। किन्तु इसमें मैं एक शर्त रखना चाहता हूं और वह यह है कि इसे इसका पूरा प्रयास करना चाहिये और इसके लिये प्रोत्साहन देना चाहिये कि कोई न कोई विरोधी पक्ष यहां कायम हो। इस तरह से एक विरोधी पक्ष का निर्माण हो सकता है और होना चाहिये। मैं तो कहूंगा कि विरोधी पक्ष के नेता को न केवल पर्याप्त वेतन ही मिलना चाहिये बल्कि उसे एक सचिवालय की सारी सुविधायें प्राप्त होनी चाहियें। जिन सदस्यों ने सरकार के विरोध का कड़वा और अप्रिय कार्य करना पड़ा है उन्हें सचिवालय संबंधी सुविधाओं के न रहने से अपने काम में बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ी है। और ऐसी स्थिति में कोई विपक्षी दल यहां विकसित नहीं हो पाया है। अत: मैं तो कहूंगा कि देश प्रेम के नाते, सभा के प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात की कोशिश करे कि यहां एक प्रभावशाली विपक्षी दल विकसित हो जाये। अगर आप चाहते हैं कि आपकी गवर्नमेंट एक स्थायी गवर्नमेंट हो, अगर आप चाहते हैं कि जनता की निगाह में आपका सम्मान बना रहे, अगर आप चाहते हैं कि जनता में कांग्रेस विरोधी भावना न पैदा हो जो कि आज बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही है, अगर आप यह समझते हैं कि आपको जनता को उन शक्तियों के साथ जाने से रोकना चाहिये जो अशांति और अव्यवस्था उत्पन्न कर रही हैं तो जरूरी है कि आप इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करें। आपके लिये यह बहुत जरूरी है कि आप एक विरोधी पक्ष यहां कायम करें और अगर जरूरत हो तो स्वेच्छा से आप में से कुछ लोगों को विपक्षी दल में शामिल हो जाना चाहिये ताकि वह सुदृढ़ और रचनात्मक रहे। विधान में इसको स्थान देकर और प्रोत्साहन देकर ही आप एक रचनात्मक विरोधी पक्ष का निर्माण कर सकते हैं। और मिस्टर कृष्णमाचारी का कहना यह है कि विधान में इसका प्रावधान होना ही नहीं चाहिये। आप तो यहां तक कहते हैं कि परम्परा एवं रूढ़ि के आधार पर ही विरोधी पक्ष का विकास होना चाहिये। अवश्य ही इंग्लैंड के संबंध में यही बात है और वहां हर पद्धति रूढ़ि के आधार पर ही विकसित हुई है। वहां विरोधी पक्ष के नेता

को दो हजार पौंड वेतन मिलता है और एक सचिवालय की सारी सुविधायें उसे प्राप्त हैं। किन्तु जहां तक हमारे विधान का संबंध है वह तो एक लिपिबद्ध विधान है और जब उसमें हमने मंत्रियों के वेतन एवं अधिदेय का खासतौर पर उल्लेख किया है और अगर विरोधी पक्ष के नेता के वेतन का हम उसमें उल्लेख नहीं करते हैं तो कायदे के मुताबिक उसका भाष्य यही किया जायेगा कि विरोधी पक्ष के नेता को विधान कोई वेतन देना नहीं चाहता है। इसलिये मैं तो यही समझता हूं कि विधान में विरोधी पक्ष के नेता के वेतन का उल्लेख खासतौर पर होना चाहिये। हां, वेतन की रकम क्या हो इसे तथा अन्य विस्तार की बातों को विचारार्थ आप भले ही छोड़ दें।

इसलिये मैं माननीय सदस्यों से यह कहूंगा कि पहले वह इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के संबंध में ही निश्चय कर लें। उन्हें पहले यही तय कर लेना चाहिये कि शासन-व्यवस्था की सुरक्षा के लिये वह विरोधी पक्ष का निर्माण करने पर एवं उसे प्रोत्साहन देने के लिये तैयार है कि नहीं। मूल सिद्धांत को तय कर लेने पर विरोधी पक्ष के नेता के वेतन की बात तय करें। सिद्धांत की बात अगर स्वीकार कर ली जाती है तो वेतन निश्चित करने का प्रश्न तो बहुत गौण है।

मैं यह कहूंगा श्रीमान्, कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने इस संबंध में जो तर्क रखे हैं वह मुझे कुछ आश्चर्यपद से ही लगे। उनका कहना है कि संशोधन में विरोधी पक्ष के नेता का वेतन और बिना केबिनेट दर्जा वाले मिनिस्टर का वेतन समान रखा गया हैं। इस बात को लेकर आप यह पूछते हैं कि मान लीजिये हम बिना केबिनेट दर्जा वाले मंत्रियों के पद को उठा देते हैं तो उस सूरत में विरोधी पक्ष के नेता का क्या होगा? उसका यह प्रश्न तो ऐसा मालूम पड़ता है मानो एक वकील की तरह वह वाकचातुर्य द्वारा असल बात को टाल रहे हैं वह इस बात को भूल जाते हैं कि बिना केबिनेट दर्जा वाले मंत्रियों को नियुक्त भले ही न किया जाये पर उनके पदों का निर्माण तो हम कर ही सकते हैं। मैं कह चुका हूं कि यह बात कि विरोधी पक्ष के नेता का वेतन कितना हो या वेतन संबंधी प्रावधान किस रूप में रखा जाये, कोई खास महत्त्व नहीं रखती। अस्तु, मैं यही महसूस करता हूं कि उनका तर्क सर्वथा निराधार है।

बहस मुबाहिसे के सिलसिले में इन तीन विशिष्ट माननीय सदस्यों ने मूल बात के संबंध में—विरोधी पक्ष के नेता को मान्यता दी जाये इस के बारे में—कुछ नहीं कहा। मुझे खुशी है कि एक संगठित विरोधी पक्ष का होना आवश्यक है, इस बात पर इन लोगों ने कोई आपत्ति नहीं व्यक्त की।

श्री आयंगर की एक दूसरी दलील यह रही है कि वर्तमान विरोधी पक्ष के पास अपना कोई खास प्रोग्राम नहीं है। मैं सविनय उनसे निवेदन करूंगा कि इस समय कोई विरोधी पक्ष वर्तमान में नहीं है इसलिये उसके प्रोग्राम का कोई सवाल ही नहीं उठता इस स्थिति के निराकरण के लिये ही तो यह संशोधन रखा गया हैं। मैं यह मानता हूं कि इस समय कोई संगठित विरोधी पक्ष नहीं है, उसका कोई कार्यालय नहीं है, उसके पास धन नहीं है, उसके पास पर्याप्त बल नहीं है कि सुसंगठित कांग्रेस सरकार से मोर्चा ले। मैं तो यह कहता हूं कि विरोधी पक्ष के बहुत से सदस्य यह चाहते हैं कि जहां उनका सरकार से मतैक्य है उसमें वे उसका साथ दें और जहां वे यह समझते हैं कि सरकार गलती कर रही है उसका वे विरोध करें। जहां मतैक्य है वहां वे सरकार के साथ हैं और जहां जरूरत समझेंगे वे उसका विरोध करेंगे। श्री आयंगर ने यह भी कहा है कि सिवाय हैदराबाद

[श्री नजीरूद्दीन अहमद]

के प्रश्न के अन्य किसी प्रश्न पर यहां कभी कोई विरोध नहीं दिखाई दिया। किसी न किसी तरह और किसी न किसी रूप में यहां सभा में साम्प्रदायिकता का हौवा जरूर खड़ा किया जाता है। मैं समझता हूं श्रीमान्, कि ये दलीलें बिल्कुल लचर हैं और सारशून्य हैं। वास्तविक बात तो यह है कि यहां जो विरोधी पक्ष हैं—अगर उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं वह भले ही बिल्कुल निर्बल ही है—पर उसने अपना विरोध केवल हैदराबाद संबंधी प्रश्न तक ही सीमित नहीं रखा है। यहां बड़े-बड़े विवाद हुए हैं और मतभेद के प्रश्नों पर बड़ी बहस हुई है और अवश्य ही व्यक्तिगत रूप से कई व्यक्तियों ने अधिकारारूढ़ दल की नीति का विरोध किया है पर वह विरोध केवल हैदराबाद संबंधी प्रश्न तक ही सीमित नहीं रहा है। हिंदू-कोड-बिल के ही प्रश्न को ले लीजिये। भारतीय मुसलमानों का दृष्टिकोण इस प्रश्न के संबंध में कभी साम्प्रदायिक नहीं रहा है। सरकार के सभी रचनात्मक उपायों का मुसलमानों ने तहेदिल से समर्थन किया है। इसलिये मैं यह कहता हूं कि साम्प्रदायिकता के आधार पर अब कोई तर्क नहीं पेश किया जाना चाहिये। इस दूषित मनोवृत्ति को अब हमें समाप्त कर देना चाहिये, सदा के लिये त्याग देना चाहिये।

इसलिये मैं फिर इस बात को दुहराना चाहता हूं कि अगर आप हुकूमत के रूप में कायम रहना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि जनता आपको आदर एवं प्रेम की दृष्टि से देखती रहे तो आपको यहां एक विपक्षी दल का निर्माण करना चाहिये। आज मुल्क यह महसूस करने लगा है कि अधिकारारूढ़ दल आवश्यकता से अधिक शक्तिमान है। वस्तुतः अधिकारारूढ़ सदस्य भी मन ही मन यह अनुभव करने लगे हैं कि दल आज सर्वेसर्वा बन गया है और उसका उन पर इतना प्रचंड शासन है कि सदस्यों का कोई वैयक्तिक स्वातंत्र्य नहीं रह गया है। हाल में समाचार-पत्रों ने भी यही बात खुलकर कही है। वास्तविक बात तो यह है समाचार-पत्रों में शायद ही ऐसे बहस मुबाहिसों की रिपोर्ट प्रकाशित होती हैं जिनसे सरकार यहां बड़ी विषम स्थिति में पड़ जाया करती है। यहां तक कहा जाता है कि गैर-सरकारी तौर पर दबाव डालकर सरकार इन बातों को समाचार-पत्रों में नहीं आने देती है।

श्रीमान्, यह स्थिति तो कल्याणकारी नहीं कही जा सकती है। आप लोग देश को कहां लिये जा रहे हैं? कम्युनिस्टों के उपद्रव की लपटों से आज चीन घिरा हुआ है। बर्मा भी उनकी पकड़ में आ चुका है। कम्युनिस्टों का उपद्रव बंगाल की पूर्वी सीमा पर पहुंच चुका है। क्या आप देश को कम्युनिस्टों के हवाले कर देना चाहते हैं? अगर आप देश को कम्युनिस्टों के उत्पात से बचाना चाहते हैं तो यहां एक रचनात्मक विरोधी पक्ष की स्थापना कीजिये। इसी तरह आप देशवासियों का समर्थन प्राप्त कर सकते हैं। अन्य कोई विपक्षी दल नहीं आता है तो देशवासियों का विश्वास सरकार से उठ जायेगा और देश में अव्यवस्था पैदा हो जायेगी।

बंगाल में, मैं यह अपने निजी अनुभव के आधार पर कह रहा हूं, आज कांग्रेस सरकार के प्रति प्रांतव्यापी प्रबल आक्रोश है। वहां के मंत्रिमंडल के खिलाफ बड़े ही गम्भीर-गम्भीर अभियोग लगाये जा रहे हैं। मैं यह समझता हूं कि आज देश जिस अशांति और अव्यवस्था की ओर बढ़ता जा रहा है हमें उसे उस तरफ बढ़ने से रोकना ही चाहिये। हम सब तो

सरकार के हाथों को मजबूत बनाना चाहते हैं। हम अशांति और अव्यवस्था पैदा करने वाली ताकतों का साथ नहीं देना चाहते हैं एक रचनात्मक विरोधी पक्ष की स्थापना द्वारा ही आप आने वाले भारत को बचा सकते हैं।

मेरा ख्याल है कि श्रीमान्, जितना समय सभा का मैं लेना चाहता था उससे कुछ ज्यादा मैंने ले लिया है, पर यह मैं अनुभव करता हूं कि यह प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और जितना ध्यान हमने इसकी ओर दिया है उससे अधिक ध्यान इसके लिये अपेक्षित है। इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं संशोधन के अन्तिम अंश में जो सिद्धांत सन्निहित हैं उसका समर्थन करता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा ख्याल है कि इस एक साधारण अनुच्छेद ने सभा का आवश्यकता से अधिक समय ले लिया है और दोनों ही पक्षों ने—अवश्य ही मैं अपने इस कथन के लिये क्षमाप्रार्थी हूं—इसको लेकर ऐसे प्रश्न उठाये हैं जिनका इस अनुच्छेद से कोई संबंध नहीं है। यह अनुच्छेद बिल्कुल ही सरल है। इसमें यह कहा गया है कि सदस्यों के वेतन एवं अधिदेय के संबंध में भावी संसद समय-समय पर विधि द्वारा निश्चय करेगी। विधि का मतलब यह है कि संसद विधेयक उपस्थित करके इसका फैसला करेगी। इस बात का काफी मौका रहेगा कि हम बिल में विरोधी पक्ष के नेता के—अगर ऐसा पक्ष है—वेतन का प्रावधान कर दें और सभा के सदस्यों के वेतन एवं अन्य राज्य के अन्य अधिकारियों के वेतन में क्या अनुपात रहे, इसका भी जैसा चाहें हम निश्चय कर दें। इन सब बातों को भावी संसद पर ही छोड़ा गया है। मेरा ख्याल तो यह है कि अनुच्छेद में जो प्रावधान रखा गया है वह इतना समुवयुक्त है कि उसे विधान में रखने पर यहां कोई विवाद ही नहीं होना चाहिये। बहुत से सदस्यों ने कहा है कि अधिकारारूढ़ दल को एक विरोधी पक्ष की स्थापना कर ही देनी चाहिये। विरोधी पक्ष की स्थापना का काम मानो कोई पेड़ लगाने का काम हो गया। वर्तमान स्थिति में न तो प्रांतों में और न केन्द्र में ही ऐसा करना उपयुक्त है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए मैं नहीं समझता हूं कि यह कोई इस बात का मौका है कि दल अथवा व्यक्ति अपनी-अपनी शिकायतों को व्यक्त करें इसलिये अनुच्छेद में किसी भी विवाद की गुंजाइश नहीं है। आने वाली पार्लियामेंट के यह अधिकार में होगा कि वह विरोधी पक्ष का नेता रखे, उसे वेतन दे और अगर जरूरत हो तो प्रधानमंत्री से भी अधिक वेतन दे। जरूरत अगर समझी जायेगी तो इस पद की स्थापना स्थायी रूप से की जा सकती है। जो बातें यहां लाई गई हैं उनको इस अनुच्छेद के प्रसंग में लाना मैं उपयुक्त नहीं समझता। अगर संशोधनकर्त्ता महोदय विरोधी पक्ष के अस्तित्व को इतना महत्त्व देते हैं और चाहते हैं कि विधान में इसका उल्लेख हो तो उनके लिये जरूरी यह था कि वह इस मामले को स्वतंत्र रूप से पेश करते और किसी दूसरे मौके पर पेश करते जहां इस संबंध में वाद-विवाद उपयुक्त मालूम पड़ता। इसलिये मैं यह समझता हूं कि यह अनुच्छेद बिल्कुल ही आपत्तिशून्य है और यह स्वीकार होना चाहिये।

एक बात मैं ओर कहना चाहता हूं और वह यह है कि मेम्बरों को वेतन पर्याप्त देना चाहिये। मुझे यह बात भयास्पद मालूम होती है कि सभा के बहुत से सदस्य ऐसे हों जिनकी आवश्यकतायें बनी रहें। यह बड़ी खतरनाक बात है और इससे किसी भी देश में लोकतंत्र का समुचित रूप में चलाना कठिन होगा और खास करके हमारे जैसे गरीब देश

[डा. पी.एस. देशमुख]

में तो बहुत ही मुश्किल होगा। बहुत से सदस्य अपने वेतन और अधिदेय की चर्चा करने में सकुचाते हैं और कुछ लोग वेतन को पूर्णतः या अंशतः त्याग करने में देशभक्ति की भावना का अनुभव करते हैं। किन्तु मैं इस बात का आग्रह करूंगा कि ऐसे सदस्यों के पक्ष में कोई प्रलोभन नहीं आने देना चाहिये, जिससे अपनी ईमानदारी और कर्त्तव्य के मार्ग से वह अलग हो जायें। मैंने बाध्य होकर यह बात कही है, क्योंकि केन्द्र एवं प्रांतों के विधान-मंडलों के कई सदस्यों के व्यवहार ने मुझे ऐसा कहने पर प्रेरित किया है। मैं तो सरकार से कहूंगा कि वह समझने वाली जनता की ओर से उसकी कितनी भी तीव्र आलोचना क्यों न की जाये, उसका वह अवश्य मुकाबला करें। किन्तु सदस्यों को पर्याप्त वेतन और अधिदेय जरूर दिया जाये ताकि दूसरे सूत्रों से फायदा उठाने का प्रलोभन उनके मन में उत्पन्न न हो।

इन शब्दों के साथ मैं, श्रीमान्, इस संशोधन का विरोध और अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं विरोध के सदा ही पक्ष में हूं, पर वह होना चाहिए रचनात्मक। किन्तु हम आज यहां यह देखते हैं कि लोग केवल विरोध के लिए ही एक विरोधी पक्ष चाहते हैं और इस संशोधन के समर्थकों ने तो यहां तक कहा है कि सरकार के खिलाफ नियमित रूप से एक विरोध चलाना ही चाहिए। मेरे मित्र सैयद करीमुद्दीन ने कहा है कि सरकार का विरोध करने के लिए विरोधी पक्ष के नेता को वेतन देना ही चाहिये। मैं इसका सख्त विरोध करता हूं।

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** मैं अपनी बात बता दूं, श्रीमान्, मैंने यह कहा है कि सरकार की भूलों के खिलाफ हमें अवश्य विरोध करना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवाः** हां, यही मैं भी कह रहा हूं। आपने कहा है कि सरकार के खिलाफ विरोधी पक्ष का आन्दोलन चलना चाहिए। सरकार को सुबुद्धि पथ पर लाने के लिये अगर कोई रचनात्मक विरोध किया जाता है तो निश्चय ही वह स्तुत्य है। किन्तु उसको बदनाम करने के लिए उसके विरुद्ध आन्दोलन करना तो बिल्कुल ही एक दूसरी बात है। मेरे मित्र श्री करीमुद्दीन ने कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों का जिक्र किया है और कहा है कि वे लोग जो कुछ भी कहते हैं, हम उसे नापसंद करते हैं। यह ऐसी बात नहीं है। हमारी आपत्ति है ऐसे विरोध पर, जो न तो रचनात्मक है और न जो जनता के हित में ही है। एक ऐसा भी वर्ग देश में है, जो निर्दोषों के ऊपर तेजाब फेंकने में, ट्रामों और बसों को जलाने में और बम फेंकने में विश्वास करता है। मान लीजिये इस पक्ष का नेता विधान-मंडल में है और इस नीति की वह वकालत करता है तो क्या आप उसे रचनात्मक विरोध कहेंगे? मैं तो इस वर्ग को देश का शत्रु कहता हूं और इनके नेता को आप यह चाहते हैं कि सरकारी खजाने से वेतन दिया जाये? अवश्य ही यह सत्य है कि इंग्लैंड में विरोधी पक्ष के नेता को सरकारी खजाने से वेतन मिलता है। मुझे इसका इतिहास तो नहीं मालूम है, किन्तु वहां विरोधी पक्ष का नेता न केवल सरकार का विरोध ही करता है, बल्कि समय-समय पर वह उसका समर्थन भी करता है। खैर, इंग्लैंड में चाहे कुछ भी होता हो, मैं इस सिद्धांत के खिलाफ हूं कि विरोधी पक्ष के

नेता को सरकारी खजाने से वेतन दिया जाये। हर पार्टी का अपना फंड होता है और अगर कोई पार्टी चाहती है कि उसका नेता अपना समूचा समय पार्टी के लिये लगावे, तो पार्टी को उसे अपने पास से पैसा देना चाहिए। सरकार का वह समय असमय हमेशा विरोध करेगा और सरकार ही उसको वेतन देगी? यह नहीं होना चाहिये। यह एक गलत सिद्धांत है और मैं इसका जबरदस्त विरोध करता हूं।

***श्री रामनारायण सिंहः** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मिस्टर लारी के संशोधन का मैं समर्थन तो नहीं करता हूं, किन्तु मेरी समझ से उन्होंने बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न उठाया है जिस पर सभा को विचार करना चाहिये। मैं ब्रिटिश विधान-पद्धति का प्रशंसक नहीं हूं। उनके यहां पार्टी सिस्टम पर शासन चलता है और मेरी समझ से इससे लोकतंत्र के मूल सिद्धांत का ही हनन हो जाता है। हम लोगों से यह कहा जाता है कि वहां विरोधी पक्ष है और उसके नेता को सरकारी कोष से वेतन दिया जाता है। यह एक अच्छा सिद्धांत है। किन्तु अपने देश में हमने अभी-अभी स्वतंत्रता प्राप्त की है और हमारे अधिकारारूढ़ दल यानी कांग्रेस दल के सामने कोई विरोधी पक्ष नहीं है। मैं जानता हूं कि देश में क्या-क्या हो रहा है और मेरा यह ख्याल है कि हमारे कार्यों की आलोचना करने के लिए एक प्रबल विरोधी पक्ष होना ही चाहिए। महाभारत में हम देखते हैं कि भीष्म और अर्जुन एक दूसरे का विरोध करते हैं और भीष्म अर्जुन को बताते हैं कि उनको (भीष्म को) किस तरह मारा जा सकता है। इसी तरह मैं समझता हूं कि वह सरकार एक अच्छी सरकार है, जो विरोधी पक्ष की स्थापना करती है, उसको प्रोत्साहन देती है और वक्त आने पर मैदान से हटने के लिए सदा तैयार रहती है। ऐसी सरकार जो विरोध को पंसद नहीं करती है और सदा अधिकारारूढ़ बना रहना चाहती है, वह देशभक्त नहीं कही जा सकती, बल्कि उसे देशघाती हुकूमत कहना चाहिए। कई प्रांतों में, मेरे अपने प्रांत बिहार में ही, मैं जानता हूं कि क्या हो रहा है। वहां कांग्रेस हुकूमत के सामने कोई विरोधी पक्ष है नहीं, इसलिये वहां सभी तरह के कुकर्म हो रहे हैं। इसलिए मैं यह अनुभव करता हूं कि सरकार की आलोचना के लिए विरोधी पक्ष होना ही चाहिये और उसको प्रोत्साहन मिलना चाहिये। यह जरूरी नहीं है कि विधान में ही उसका उल्लेख किया जाये, किन्तु विधान पास होते ही हमें इस प्रश्न पर यथाशीघ्र विचार करना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, खेद है कि मैं माननीय मित्र लारी के संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। संशोधनकर्ता ने जो दलीलें पेश की हैं, उनका विस्तारपूर्वक जबाव देना मैं जरूरी नहीं समझता हूं। क्योंकि श्री अनन्तशयनम् आयंगर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने उनका जो कुछ उत्तर दिया है उससे मैं सर्वथा सहमत हूं। इसलिए इस सम्बन्ध में और कुछ न कहकर मैं सभा का समय बर्बाद नहीं करना चाहता। उन्होंने जो जवाब दिया है, वह काफी है।

पर श्री संतानम् के संशोधन को मैं स्वीकार करता हूं, जिसमें उन्होंने कहा है कि ''भारत अधिराज्य के विधान-मंडल'' की जगह ''विधान-परिषद्'' शब्द रखे जायें।

***अध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके सभी संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 86 में 'और जब तक तद्विषयक प्रावधान इस प्रकार नहीं बनाया जाता, तब तक, अधिदेय ऐसी दर से और ऐसे प्रतिबन्धों सहित होंगे जैसे कि इस संविधान की प्रारम्भ विधि सद्यपूर्व भारत अधिराज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के विषय में लागू थे'। शब्दों को हटा दिया जाये और निम्नलिखित परन्तुका जोड़ दिया जाये:

'किन्तु शर्त यह है कि संसद के सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन, कैबिनेट मिनिस्टर को दिये जाने वाले वेतन की एक-चौथाई से कम या एक-तिहाई से ज्यादा न होगा।'

'और शर्त यह है कि विपक्षी दल का नेता उस वेतन का अधिकारी होगा, जो बिना कैबिनेट दर्जा वाले किसी मंत्री को दिया जायेगा।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 86 में 'भारत अधिराज्य के विधान-मंडल' शब्दों की जगह 'विधान-परिषद्' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 86 को, संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 86 अपने संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 87

***अध्यक्ष:** अब सभा अनुच्छेद 87 पर विचार करेगी। मैं देखता हूं कि प्रोफेसर शाह का संशोधन नं. 1638 अनुच्छेद 98 के अन्दर आ जाता है, जो थोड़ा ही आगे चलकर आयेगा।

***प्रो. के.टी. शाह:** (बिहार : जनरल): संशोधन का दूसरा हिस्सा उसके अन्दर नहीं आता है, श्रीमान्, मैं केवल दूसरे हिस्से को ही पेश करूंगा। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 87 के खंड (1) के पहले निम्नलिखित नया खंड जोड़ा जाये:

'(1) संसद के किसी आगार को अधिकार होगा कि भारत की जनता अथवा भारतीय संघ के अंगभूत किसी प्रदेश (इकाई) की जनता की ओर से आये हुये प्रार्थना-पत्र या अर्जी को वह ग्रहण करे।' ''

मैं इसे जनता का एक बहुत ही जरूरी अधिकार समझता हूं और संसद का भी एक विशेषाधिकार है। यह आवश्यक है ताकि जनता को, जिसका कि प्रतिनिधान संसद करती

है, को सीधे सत्ताधारी विधान-मंडल के पास पहुंचने का अधिकार रहे और वह उसके सामने किसी भी कानून के सम्बन्ध में, जो विचाराधीन हो, अपनी शिकायतें उसके सामने रख सके या अपनी बात कह सकें।

ये प्रार्थना पत्र वित्त संबंधी मामलों का प्रशासन संबंधी कार्यों के संबंध में भी हो सकते हैं। इन सभी मामलों में, साधारणत: जब तक कि जनता को इस तरह का कोई विशेषाधिकार देने की व्यवस्था नहीं की जाती है, उनको वस्तुत: अपनी शिकायतों को अथवा किसी प्रश्न के सम्बन्ध में अपने विचारों को सत्ताधारी विधान-मंडल के समक्ष उपस्थित करने को कोई अधिकार ही नहीं रहता है, यद्यपि सिद्धान्तत: सत्ता जनता में ही सन्निहित है।

संसद की अवधि मान लीजिये पांच साल की है और ऐसा कोई प्रार्थना पत्र देने का मौका आता है लोक सभा के चुनाव के चार या पांच वर्ष बाद, तो इस अरसे में, सम्भव है कि लोक सभा के प्रतिनिधियों का जनता से कोई संपर्क शेष न रह गया हो और सदस्यों ने जनेच्छा के अनुसार काम करना बन्द कर दिया हो, जैसा कि इस समय बहुत कुछ हो गया है, तो इस सूरत में संभव है और यह अक्सर होता है कि इस अधिकार के अभाव में जनता अपनी बात संसद के समक्ष रख ही न पाये।

और न ऐसी कोई नियमित व्यवस्था ही है जिसके द्वारा संसद लोकमत को परख सके। हां, मिनिस्ट्री या सरकार जिस रूप में चाहे, अपने ढंग से जनता के समक्ष किसी मसले को रखकर उस पर उसकी राय भले ही मांगे। मेरा यह सुझाव है कि जनता को संसद के समक्ष सीधे पहुंचने का और किसी खास मसले पर अपने विचारों को उसके सामने रखने का और इस तरह संसद की उस सम्बन्ध में प्रतिक्रिया जानने का अधिकार होना ही चाहिये। इस देश में तो गरीब से गरीब आदमी को यह अधिकार प्राप्त था। जनता अगर यह समझती थी कि इसके विरुद्ध अन्याय हुआ है या कोई व्यक्ति यह समझता था कि उसके साथ अन्याय हुआ है, तो यहां के पुराने एकतंत्र के जमाने में भी, उसे सीधे सम्राट के पास पहुंचने का अधिकार प्राप्त था। आज के जमाने में, जब हम जनता को इतना सम्मान देते हैं कि उसमें ही सत्ता सन्निहित समझते हैं, जब हम गला फाड़कर यह उद्घोष करते हैं, सारी सत्ता जनता में ही सन्निहित है और हम सरकार तो केवल उसके चाकर मात्र हैं, तो ऐसी हाल में मेरा ख्याल है कि यह मांग कोई बहुत बड़ी मांग नहीं है कि विधान में यह बात लिपिबद्ध कर दी जाये कि जनता को सीधे संसद के पास पहुंचने का और अपना प्रार्थनापत्र देने का अधिकार है क्योंकि आखिर हम अपना विधान ब्रिटिश प्रणाली पर ही बना रहे हैं, जिसमें जनता के इस अधिकार को एवं संसद के विशेषाधिकार को स्वीकार किया गया है।

'प्रार्थना पत्र' शब्द को मैं खुद भी इतना पसंद नहीं करता, पर संशोधन में इसलिए इसे रखा कि इस शब्द का प्रयोग बहुत प्रचलित हो गया है। एक दूसरे संशोधन की भी मैंने सूचना दी है पर मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं और उसमें मैंने इससे उल्टी एक व्यवस्था का सुझाव दिया है। उसमें मैंने यह कहा है कि संसद को भी यह अधिकार होना चाहिए कि किसी मसले पर, बजाय इसके कि सरकार जनमत ले, वह खुद जनमत ले ले। पर इस संशोधन के संबंध में मैंने यह महसूस किया कि आज जो मनोदशा वर्तमान है और परम्परा प्रचलित है, उसमें यह सुझाव बिल्कुल अद्भुत और बड़ा ही परिवर्तनकारी

[प्रो. के.टी. शाह]

सा प्रतीत होगा कि संसद जनता से उसकी राय मांगे, यद्यपि मेरी अपनी राय यही है कि जहां तक कि वास्तविक लोकतंत्र का संबंध है, यह पद्धति उसके सर्वथा अनुरूप है, किन्तु मैं पुनः यह बता देता हूं कि उस संशोधन को मैं अब नहीं पेश कर रहा हूं। मेरा ख्याल है कि प्रस्तुत संशोधन भी उक्त संशोधन का रूपांतर मात्र है। मेरे ख्याल से यह बिल्कुल सही और सनातन है और किसी को भी इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि जो पद्धति उसमें सुझाई गई है वह आज सर्वत्र मान्य हो चुकी है। सभी जगह यह पद्धति बरती जा रही है और कारण नहीं है कि हमारे देश में यह नापसन्द की जाये अथवा दुरुपयोग हो। इन शब्दों के साथ मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

(संशोधन 1639, 1640 और 1641 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** नं. 1642 और 1643 भी इसी विषय के संबंध में हैं। इजाजत हो तो इन दोनों को साथ ही पेश कर दूं। इससे समय में बचत हो जायेगी।

***अध्यक्षः** प्रो. शाह अपने इन दोनों संशोधनों को एक साथ पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् किः

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) में 'कोई विधेयक जो' शब्दों के बाद 'राज्य-परिषद् द्वारा पारित हो चुका है' तथा 'लोक सभा में लम्बमान है' शब्दों के बाद 'वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत न समझा जायेगा, बल्कि ऐसे विघटन के बाद जो नई लोक सभा निर्वाचित हो, वह उसको जिस स्थिति में कि लोक सभा के विघटन के समय वह था, उसके आगे ले सकती है तथा राज्य-परिषद् ने जिस रूप में उसे पारित किया था, यदि उसी रूप में लोक सभा उसे स्वीकार कर लेती है, तो वह विधेयक संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये फौरन उसे प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

जिस रूप में राज्य-परिषद् ने विधेयक को पारित किया था उसमें अगर लोक सभा ने कोई संशोधन किया तो वह राज्य-परिषद् को लौटा दिया जायेगा और अगर लोक सभा द्वारा किये गये संशोधनों को राज्य-परिषद् स्वीकार कर लेती है, तो उस सूरत में विधेयक लोक सभा में वापिस न लाया जायेगा बल्कि संसद के दोनों आगारों द्वारा वह पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा। शब्द क्रमशः रखे जायें।''

तथा यह किः

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) के बाद निम्नलिखित नये खंड जोड़ दिये जायें–

'(6) कोई विधेयक जो किसी भी अवस्था में लोक सभा में लम्बमान है, पर विघटन के समय तक वह वहां पारित नहीं हो सका है, तो वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत समझा जायेगा।

(7) कोई विधेयक जो लोक सभा द्वारा, उसके विघटन के पहले, सभी सीढ़ियों में पारित हो चुका है किन्तु विघटन के समय एक राज्य-परिषद् को नहीं भेजा गया है, वह लोक सभा द्वारा पारित रूप में राज्य-परिषद् द्वारा लिया जायेगा और अगर लोक सभा के विघटन के 30 दिनों के भीतर वह उसी रूप में स्वीकृत हो जाता है, तो वह संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

(8) राज्य-परिषद् में किसी भी दशा में लम्बमान कोई विधेयक, जिस पर लोक सभा ने विचार नहीं किया है, लोक सभा के विघटन के समय उस सभा द्वारा पास न समझा जायेगा किन्तु लोक सभा के विघटन के साथ उसे व्यपगत समझा जायेगा।' ''

(That in clause (5) of article 87, after the words ''A Bill which'' the words ''has been passed by the Council of States and'' and after the words ''the House of the People'' the words ''shall not be deemed to have lapsed on a dissolution of the House of the People, but may be taken up by the new House of the People elected after at such dissolution from the state at which the Bill was at the time of the dissolution of the House; and if agreed to in identical form with that passed by the Council of States, the Bill shall be deemed to have been duly passed by both Houses of Parliament, and shall forthwith sent up for the assent of the President.

If any amendments are made in the House of the People in the Bill as passed by the Council of States such a Bill shall be returned to the Council of States and if the amendments made by the House of the People are accepted and agreed to by the Council of States, such a Bill shall not be brought back to the House of the People but shall be deemed to have been passed by both Houses of Parliament and shall forthwith sent up for the assent of the President be inserted respectively.

and

That after clause (5) of article 87, the following new clauses be inserted:

''(6) A Bill which is pending at any stage in the House of the people but not passed at the time of its dissolution shall be deemed to have lasped on a dissolution of the House of the People.

[प्रो. के.टी. शाह]

(7) A Bill which has been passed through all the stages by the House of the People before its dissolution, but not sent to the Council of States at the time of its dissolution, shall be taken up by the Council of States passed by the House of the People, and if agreed to in identical form within 30 days of the dissolution of the House of the People shall be deemed to have been duly passed by both Houses of Parliament, and shall be sent up to the President for his assent.

(8) A Bill pending in the Council of States at any stage but not considered by the House of the People shall not be deemed to have been passed at the time the House of the People is dissolved, but shall be deemed to have lapsed on dissolution of the House of the People.''

यह संशोधन आगारों के समय की बचत के लिये और ससंद के समक्ष आने वाले विधि विषयक प्रस्तावों को कानूनी रूप देने में कार्य-पद्धति में सहूलियत लाने के लिए ही रखे जा रहे हैं। हो सकता है कि कोई विधेयक राज्य-परिषद् द्वारा सभी सीढ़ियों में समुचित रूप से पारित हो जाये पर उसे लोक सभा के समक्ष भेजने के पहले यह अवस्था उत्पन्न हो कि लोक सभा का विघटन हो जाये। मेरा सुझाव यह है कि ऐसे विधेयक को सर्वथा व्यपगत न समझा जाना चाहिए और अगर नई लोक सभा राज्य-परिषद् द्वारा पास किये हुए रूप में उसे स्वीकार कर ले तो यह समझा जाना चाहिए कि वह संसद के दोनों आगारों द्वारा पास हो गया है। और फौरन प्रधान के पास अनुमति के लिए भेज देना चाहिये। मतलब यह है कि नई लोक सभा द्वारा जब वह सभी सीढ़ियों से पास हो जाये तो उसे फिर राज्य-परिषद् के पास एक नये विधेयक के रूप में वापिस न किया जाये और उसे राज्य-परिषद् फिर अपनी सभी सीढ़ियों से गुजर कर पास न करे।

मैं समझता हूं कि यह एक तर्कसंगत सुझाव है, विशेषतया इस बात का ख्याल रखते हुए कि दोनों ही आगारों को धन विधयकों को छोड़कर अन्य सभी विधेयकों को पुनःस्थापित करने की समान क्षमता प्राप्त है। व्यवहार में यह बात हो सकती है कि महत्त्वपूर्ण विधि विषयक प्रस्ताव नीचे वाले आगार से ही शुरू हों। अगर यह विधेयक लोक सभा के विघटन होने तक पास नहीं हो जाते हैं, तो इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि जो भी प्रस्ताव वहां लम्बमान होंगे, वह सब व्यपगत समझे जायेंगे। किन्तु अगर ऐसा हो कि किसी विधेयक को लोक सभा अपने विघटन के पहले सभी सीढ़ियों में पास कर चुकी है और उसे ऊपर वाले आगार के पास न भेज पाई है, तो यह न समझा जाना चाहिये कि विधेयक व्यपगत

हो गया है। क्योंकि लोक सभा उसे समुचित रूप से पारित कर चुकी है। राज्य-परिषद् उसे आगे ले सकती है और सभी सीढ़ियों में उस पर विचार कर सकती है और अगर लोक सभा द्वारा पारित रूप में ही उस विधेयक को वह स्वीकार कर लेती है तो फिर विघटन के वाद निर्वाचित नई लोक सभा के पास उस विधेयक को भेजने की कोई जरूरत नहीं है।

मैं ऐसी भी अवस्था की कल्पना कर सकता हूं जिसमें यह दशा उत्पन्न हो सकती है। यानी यह कि किसी विधेयक को जल्दी-जल्दी में लोक सभा अपने विघटन से पहले, आखिरी दिन, पास कर दे और ऊपर वाला आगार लोक सभा से सहानुभूति रखते हुए उसे सभी सीढ़ियों से पास कर दे, पेश्तर इसके कि नई लोक सभा उस मसले को अपने हाथ में ले। इस तरह की कठिनाइयां उठ सकती हैं और खास करके उस दशा में जब कि नई लोक सभा में एक भिन्न पार्टी का प्राधान्य हो जिसका विघटित लोक सभा में प्राधान्य नहीं था। ऐसी सूरत में हमें यह भय न होना चाहिये कि जनता की इच्छा के मुताबिक काम न होगा। क्योंकि संभव है कि राज्य-परिषद् पूर्वगामी लोक सभा द्वारा पास किये हुए विधेयक को पास ही न करे और अगर वह उसे पास कर भी दे तो प्रधान संभव है उस पर अपनी अनुमति न दे। इसके अलावा नई लोक सभा ऐसा भी विधेयक पास कर सकती है, जो पूर्वगामी लोक सभा द्वारा आखिरी दिन पास किये गये विधेयक को रद्द कर देता हो अथवा उसका अभिशून्यन कर देता हो। मेरा ख्याल है कि मेरे इस संशोधन के पास होने से एक तो समय की बचत होगी, दूसरे कार्य-पद्धति में सरलता आ जायेगी और आखिरी बात यह है कि फिर दुहरा काम न करना पड़ेगा।

इसमें शक नहीं कि यह सब जाब्ते की बातें हैं जिसे संसद का कोई भी आगार नियमों द्वारा तय कर सकता है। किन्तु जब विधान में इस तरह के आदेश लिपिबद्ध किये जाते हैं, तो मेरा भी संशोधन अगर आ जाता है, तो इससे समय में बड़ी बचत होगी। सभा से इसे स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना की ओर से मुझे कई संशोधनों की सूचना मिली है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांतः जनरल): मेरे दो संशोधन हैं, श्रीमान्! एक तो अनुच्छेद 87 के संबंध में और दूसरा 88 के संबंध में। अनुच्छेद 87 संबंधी संशोधन को मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** बस इतने ही सब संशोधन हैं जो हमें प्राप्त हुए हैं। अब संशोधन और मूल अनुच्छेद पर बहस की जा सकती है।

***श्री बृजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 87 के खंड (2) के विरुद्ध, जिसमें कहा गया है कि कोई भी विधेयक संसद द्वारा पास न समझा जायेगा, जब तक कि उस पर दोनों सदन सहमत न हो जायें, मैं नहीं समझता कि लोकतंत्रीय राज्य में जनता के प्रतिनिधियों को उन लोगों के बराबर क्यों रखा जाता है, जिन्हें प्रांतीय सरकारों ने मनोनीत करके प्रतिनिधि रूप से भेजा है। अगर लोकतंत्रीय पद्धति को सुचारू

[श्री बृजेश्वर प्रसाद]

रूप से चलाना है, तो नीचे वाले आगार की प्रधानता हमें स्वीकार करनी ही होगी। यह कहा गया है कि यह खंड उन संघीय सिद्धांतों से सर्वथा संगत है जिनको हम शुरू में मान चुके हैं। जहां तक मेरा अपना संबंध है, श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि यहां कोई ऐसा तर्क क्यों पेश किया जाता है। मैं ऐसा नहीं समझता कि विधान के मसौदे का स्वरूप शुद्धतः संघीय है। जब हमने संघमूलक व्यवस्था को रखना स्वीकार किया था, उस समय हमारे देश में जो स्थिति थी, वह आज से सर्वथा भिन्न थी। प्रांतों को राजी रखने के लिये हमने संघीय व्यवस्था को नहीं स्वीकार किया था। जब हम ने संघमूलक व्यवस्था को स्वीकार किया था, उस समय हमारे मन में प्रांतों का कोई ख्याल था ही नहीं। संघमूलक व्यवस्था को तो हमने स्वीकार किया था इसलिए कि स्वर्गीय मिस्टर जिन्ना के द्विराष्ट्र संबंधी सिद्धांत का हम जवाब दे सकें। संघमूलक शासन-व्यवस्था को हमने इसलिए स्वीकार किया था कि देशी रजवाड़ों को इस बात पर राजी किया जा सके कि अपनी सत्ता का एक अंश वह छोड़ने पर तैयार हो जाये, किन्तु अब तो स्थिति बिल्कुल ही बदल गई है। दुर्भाग्य से देश का बंटवारा हो चुका है। देशी रजवाड़ों को समाप्त कर दिया गया है। रियासतों की स्थिति आज भारतीय प्रांतों से कहीं बदतर है। पिछली बार जब विधान-परिषद् का अधिवेशन हुआ था, तब मैंने एक एकात्मक राज्य-व्यवस्था के पक्ष में अपना विचार व्यक्त किया था। मुझे यह नहीं मालूम है, श्रीमान्, कि हमारे वैधानिक पंडितों के मन में क्या है। संघमूलक व्यवस्था का झुकाव आगे चलकर एकात्मक व्यवस्था की ओर अवश्य हो जाता है। मेरी जानकारी में इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है, जिसमें एकात्मक राज्य व्यवस्था बिगड़ करके संघमूलक व्यवस्था में बदल गई हो। किन्तु जहां तक संघमूलक व्यवस्था का संबंध है, प्रायः सभी संघीय व्यवस्था वाले देशों के विधान एकात्मक राज्य व्यवस्था की ओर झुक गये हैं। केन्द्र में दूसरे आगार की कल्पना जो मैं करता हूं वह केवल एक परामर्शदातृ सभा के ही रूप में। वह इसीलिये होगा कि जल्दबाजी में कोई कानून पास न किया जा सके। किन्तु मेरी समझ में संघीय विधान पर जोर देना प्रगति से पीछे की ओर जाना होगा और जो लोक संघीय स्वरूप की चर्चा करते हैं और उस पर जोर देते हैं मेरी समझ में देश का बड़ा अहित कर रहे हैं। प्रांत सदा ही केन्द्रीय शासन के अधीन रहे हैं और यह कहना कि उन्हें स्वायत्त शासन प्राप्त हो गया है और उन्हें संघीय अधिकार प्राप्त हो गये हैं, वस्तुतः प्रगति से पीछे की ओर जाना है। मैं तो कहूंगा, श्रीमान्, कि संघमूलक व्यवस्था पर जोर देकर हम इतिहास के क्रम को उलट रहे हैं। संघमूलक व्यवस्था का स्वरूप ही बड़ा दकियानूसी है और इसमें तमाम कमजोरियां भरी हैं। मैं अनुच्छेद 87 के खंड (2) का विरोध करता हूं, श्रीमान्!

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 87 के खंड (1) के पहले निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(1) संसद के किसी आगार को अधिकार होगा कि भारत की जनता अथवा भारतीय संघ के अंगभूत किसी प्रदेश (इकाई) की जनता की ओर से आये हुए प्रार्थना-पत्र या अर्जी को वह ग्रहण करें।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) में 'कोई विधेयक जो' शब्दों के बाद 'राज्य-परिषद् द्वारा पारित हो चुका है' तथा 'लोक सभा में लम्बमान है' शब्दों के बाद 'वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत न समझा जायेगा बल्कि ऐसे विघटन के बाद जो नई लोक सभा निर्वाचित हो, वह उसको जिस स्थिति में कि लोक सभा के विघटन के समय वह था, उससे आगे ले सकते हैं; तथा राज्य-परिषद् में जिस रूप में उसे पारित किया था, यदि उसी रूप में लोक सभा उसे स्वीकार कर लेती है, तो वह विधेयक संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिए फौरन उसे प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

जिस रूप में राज्य-परिषद् ने विधेयक को पारित किया था।, उसमें अगर लोक सभा ने कोई संशोधन किया तो वह राज्य-परिषद् को लौटा दिया जायेगा और अगर लोक सभा द्वारा किये गये संशोधनों को राज्य-परिषद् स्वीकार कर लेती है, तो उस सूरत में विधेयक लोक सभा में वापिस न लाया जायेगा किन्तु संसद के दोनों आगारों द्वारा वह पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।' शब्द क्रमश: रखे जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 87 के खंड (5) के बाद निम्नलिखित नये खंड जोड़ दिये जायें–

'(6) कोई विधेयक जो किसी भी व्यवस्था में लोक सभा में लम्बमान है, पर विघटन के समय तक वहां पारित नहीं हो सका है, तो वह लोक सभा के विघटन पर व्यपगत समझा जायेगा।

(7) कोई विधेयक जो लोक सभा द्वारा, उसके विघटन के पहले, सभी सीढ़ियों में पारित हो चुका है, किन्तु विघटन के समय तक राज्य-परिषद् को नहीं भेजा गया है, वह लोक सभा द्वारा पारित रूप में राज्य-परिषद् द्वारा लिया जायेगा और अगर लोक सभा के विघटन के 30 दिनों के भीतर वह उसी रूप में स्वीकृत हो जाता है, तो वह संसद के दोनों आगारों द्वारा समुचित रूप से पारित समझा जायेगा और अनुमति के लिये प्रधान के पास भेज दिया जायेगा।

(8) राज्य-परिषद् में किसी भी दशा में लम्बमान कोई विधेयक, जिस पर लोक सभा ने विचार नहीं किया है, लोक सभा के विघटन के समय उस सभा द्वारा पास न समझा जायेगा, किन्तु लोक सभा के विघटन के साथ उसे व्यपगत समझा जायेगा।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

---

*इसका अंग्रेजी रूप पहले दिया जा चुका है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 87 को विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 87 विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 88

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88 को विधान में शामिल किया जाये।''

(संशोधन नं. 1644 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 88 के 'यदि किसी विधेयक के' शब्दों के बाद 'जो मुद्रा विधेयक या आर्थिक विधेयक नहीं है' शब्द जोड़ दिये जायें।''

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** माननीय सदस्य से मैं कहूंगा कि अनुच्छेद 88 की परन्तुका को देखें जिसमें कहा गया है कि: ''पर इस खंड में की कोई बात किसी मुद्रा-विधेयक को लागू न होगी।''

***श्री एच.वी. कामत:** तब तो इस परन्तुका को ही बदल देना चाहिये। मेरा यह संशोधन कम या बेशी महज रस्मी है किन्तु इससे अनुच्छेद में स्पष्टता आ जाती है। लाघव तो मैं भी चाहता हूं पर ऐसा नहीं कि उससे स्पष्टता ही जाती रहे। अनुच्छेद 89 और 97 मुद्रा विधेयक और अन्य विधेयकों से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये जब हम अनुच्छेद 88 में किसी विधेयक का जिकर करते हैं तो यह ज्यादा अच्छा होगा और यह ज्यादा साफ भी होगा कि हम इस बात को उसमें साफ-साफ कह दें कि जिस विधेयक का इस अनुच्छेद में जिकर है वह मुद्रा-विधेयक या वैत्तिक विधेयक से भिन्न विधेयक है। मेरे माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने ठीक ही सुझाया है—और मैं उनका इसके लिये आभारी हूं—कि इस अनुच्छेद के खंड (1) के नीचे एक परन्तुका दी हुई है जिसमें मुद्रा विधेयक के सम्बन्ध में अपवाद रखा गया है। किन्तु अनुच्छेद 87 में जो भाषा व्यवहृरित की गई है वह यों है: ''मुद्रा विधेयकों तथा अन्य आर्थिक विधेयकों के विषय में इस

संविधान के अनुच्छेद 89 और 97 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए इत्यादि।'' इसलिये अगर हम यह चाहते हैं कि हमारी भाषा में और पद-संहति में एकरूपता रहे, तो मैं समझता हूं और मेरा ख्याल है कि श्री आयंगर भी इससे सहमत होंगे—कि परन्तुका की भाषा भी अनुच्छेद 87 की भाषा के अनुरूप ही होनी चाहिये थी। अनुच्छेद 87 में न केवल मुद्रा विधेयकों का ही जिक्र है बल्कि मुद्रा विधेयक और अन्य आर्थिक विधेयकों का भी जिक्र है, इसलिये अगर श्री आयंगर मेरे संशोधन के आधार पर इस परन्तुका में कोई संशोधन पेश करें तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** पर अगर आपका संशोधन स्वीकार हो जाता है और परन्तुका नहीं हटाई जाती है, तो इस सूरत में क्या स्थिति होगी? परन्तुका को हटाने के लिये कोई संशोधन तो आया नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं समझता हूं कि यह बहुत ही बुरा होगा। परन्तु जब तक कि परन्तुका में समुचित संशोधन नहीं हो जाता है, उसमें एक खामी सी रहेगी। अगर आप श्री आयंगर को या अन्य किसी सदस्य को परन्तुका में समुचित संशोधन पेश करने की अनुमति दें, जिसमें परन्तुका में उल्लिखित आर्थिक विधेयक और मुद्रा विधेयकों का भी समावेश हो, तो मैं समझता हूं कि मेरी आपत्ति का निराकरण हो जायेगा। अन्यथा मुझे आशंका है कि उसमें एक ऐसी त्रुटि रह जायेगी, जिससे दोनों अनुच्छेदों में प्रयुक्त भाषा में साम्य न रह जायेगा।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अनुच्छेद 88 के खंड (1) की परन्तुका को हटाने के लिये एक संशोधन दिया गया है जिसका नम्बर है 1649।

***श्री एच.वी. कामत:** तब तो अगर वह संशोधन स्वीकार हो जाये और मेरा संशोधन स्वीकार हो जाये तो काम अच्छी तरह बन जाता है। इसलिये मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन नम्बर 1646, 1647, 1648 और 1649 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

> ''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में 'दोनों आगारों' शब्दों की जगह 'उस खंड के उपखंड (ग) में उल्लिखित आगार' शब्द रखे जाये। यह केवल स्पष्टीकरण के लिये ही रख रहा हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन नम्बर 1651। मेरा ख्याल है कि यह संशोधन पहले के संशोधनों में आ जाता है।

(संशोधन नम्बर 1652 पेश नहीं किया गया है।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्, किः

''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में अन्त में आये हुये 'दिनों' शब्द के पहले 'निरन्तर' शब्द जोड़ दिया जाये।''

(संशोधन नम्बर 1654 पेश नहीं हुआ।)

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्ः

''अनुच्छेद 88 के खंड (4) में 'समस्त' शब्द हटा दिया जाये।''

मैं परन्तुका के हटाने पर जोर नहीं देता हूं। मैं चाहता हूं कि संशोधन में ही उसके लिये संशोधन कर दिया जाये।

बात बहुत सीधी सी है। यहां अभिप्राय यह है कि संयुक्त बैठक का निर्णय साधारण बहुमत द्वारा होना चाहिये। ऐसी स्थितियों के लिये सब जगह आम तौर पर यही शब्द आये हैं कि दोनों आगारों के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुत से निर्णय होंगे। 'समस्त सदस्य' शब्द तो साधारणतः वहीं पर रखे गये हैं जहां पूर्णरूपेण बहुमत अपेक्षित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र का मैं कृतज्ञ हूंगा, अगर वह इस मसले को मसौदा समिति पर छोड़ दें। मसौदा समिति के विचार के बाद फिर हम इसको यहां आगे लेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं इससे सहमत हूं, श्रीमान्।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्ः

''अनुच्छेद 88 के खंड (4) में 'इस संविधान के प्रयोजनार्थ' शब्दों को हटा दिया जाये।''

मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान्, कि इस जगह हम इन शब्दों को हटा सकते हैं और इनके हटाने से यहां अर्थ में कोई अस्पष्टता न आयेगी और न खंड के अभिप्राय की यथार्थता में ही कोई फर्क पड़ेगा। जो भी मसौदा यहां तैयार किया जाता है या जो भी अनुच्छेद यह सभा प्रस्तुत करती है, वह सब इस संविधान के प्रयोजनार्थ ही है। हम संविधान के सम्बन्ध में ही यहां सब कुछ तय कर रहे हैं। निश्चय ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जो यह कहे कि विधान में जो कुछ भी रखा गया है, वह संविधान के प्रयोजन के अतिरिक्त अन्य किसी प्रयोजन के लिये है। इसलिए मेरी समझ से यह लिखना, कि चाहे इस अनुच्छेद में हो या अन्य किसी अनुच्छेद में, कि मतगणना को इस संविधान के प्रयोजन

के लिये समझा जायेगा, सर्वथा अनावश्यक और निष्प्रयोजन है। अतः मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि इन शब्दों को, जो कि मेरे ख्याल में अनावश्यक हैं, हटा दिये जायें। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** अब आता है संशोधन नम्बर 1657। मेरे ख्याल से यह संशोधन सिर्फ रचना से सम्बन्ध रखता है।

(संशोधन नं. 1658 और 1659 पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं समझता हूं कि यह संशोधन रचना से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि इसमें कई शब्दों को, जो अनावश्यक है, हटाने की मांग की गई है।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 1660 रचना विषयक है।

(संशोधन नं. 1661 पेश नहीं हुआ।)

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना से मुझे एक संशोधन की सूचना मिली है। उनका संशोधन है कि अनुच्छेद 88 की जगह अमुक निम्नलिखित अंश रखा जाये। यह संशोधन तो किसी संशोधन से सम्बन्ध नहीं रखता। किस संशोधन पर यह संशोधन रखा जा रहा है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उनमें से किसी पर भी यह रखा जा सकता है।

***अध्यक्षः** आप कैसे रखेंगे? यह तो मूल अनुच्छेद पर संशोधन हुआ, किसी संशोधन पर संशोधन नहीं हुआ। समय सम्बन्धी जो नियम है उसे आप केवल यह कहकर चकमा नहीं दे सकते कि ये संशोधन संशोधनों से सम्बन्ध रखते हैं। वस्तुतः यह संशोधन किसी संशोधन के बारे में नहीं है। इसकी सूचना पहले ही आनी चाहिये थी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** संशोधन नं. 1650 पर यह संशोधन रखा गया है।

***अध्यक्षः** तो आप यह कैसे कहते हैं कि समूचे अनुच्छेद 88 की जगह आपके शब्द रखे जायें?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं जो सुझाव दे रहा हूं वह यह है कि संयुक्त बैठक का होना जरूरी न किया जाये।

***अध्यक्षः** वह तो एक अलग बात है। मैं आप के अभिप्राय को समझ रहा हूं कि आप संयुक्त बैठक को यहां नहीं रखना चाहते। किन्तु इसके लिये आपको यथा समय सूचना देनी चाहिए थी। संशोधन सम्बन्धी संशोधनों के रूप में आप इसे यहां रखना चाहते हैं, पर इसका सम्बन्ध वस्तुतः अनुच्छेद की मूल बातों से है और यहां वह ठीक बैठता नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस तरह संशोधनों को उपस्थित करने में यहां अब तक तो हमेशा यही पद्धति बरती गई है।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है, मैं इस तरह के संशोधनों की अनुमति नहीं दे सकता, जिसका सम्बन्ध वस्तुत: किसी संशोधन से नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** तब अगर इजाजत हो, तो मैं खण्ड पर ही बोलूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** हां, यह हो सकता है। अगर सभी संशोधन पेश हो चुके हैं, तो आपको बोलने का मौका दिया जायेगा। हां, अब मूल अनुच्छेद एवं तत्संबंधी संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद में एक प्रावधान इस आशय का रखा गया है कि अगर विधेयकों के सम्बन्ध में नीचे वाले और ऊपर वाले दोनों आगारों में मतभेद हो, तो उस विवाद को तय करने के लिये दोनों की संयुक्त बैठक होगी। इस सम्बन्ध में मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी, पर आपने उसे अनियमित करार दे दिया है। किन्तु मेरा ख्याल है कि उस संशोधन का उद्देश्य ऐसा है कि उस पर सभा को विचार करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि मैं ऊपर वाले आगार को कोई एक बहुत अच्छी संस्था नहीं मानता। मैं तो उसके सर्वथा विरुद्ध हूं किन्तु जब सभा ने उसे स्वीकार कर लिया है तो इस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। पर जो मैं बात कहना चाहता हूं, वह यह है कि ऊपर वाले आगार को इतना अधिकार न मिलना चाहिये जो उसके महत्त्व के अनुरूप न हो। हमने अपना विधान ब्रिटिश पार्लियामेंट के आधार पर बनाया है। वहां हाउस आफ लार्डस और हाउस आफ कामन्स दो आगार जरूर हैं किन्तु हाउस आफ लार्डस के अधिकार बड़े ही सीमित है। मैं चाहता हूं कि यहां भी ऊपर वाले आगार को सीमित ही अधिकार प्राप्त रहें। उसे निचले वाले आगार के समान शक्ति नहीं मिलनी चाहिये, जैसा कि संयुक्त बैठक की व्यवस्था होने से उसे प्राप्त हो जायेगी। मौजूदा मसौदे के मुताबिक लोक सभा द्वारा पास विधेयक ऊपर वाले आगार के पास जायेगा और अगर वहां अस्वीकृत हो जाता है, तो दोनों आगारों की संयुक्त बैठक होगी, जिसमें साधारण बहुमत के द्वारा उस मसले का फैसला किया जायेगा। इस तरह ऊपर वाला आगार लोक सभा द्वारा स्वीकृत किये गये किसी विधेयक को अस्वीकार करने में कामयाब हो जायेगा और लोक सभा को साधारण बहुमत द्वारा उस बिल को प्रभाव में लाने का अधिकार न रहेगा। मेरा ख्याल है कि ऊपर वाला आगार, यद्यपि यह प्रान्तीय विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचित होगा, लोक सभा को लोक सभा की तरह प्रतिनिधिमूलक नहीं होगा। लोक सभा का चुनाव सीधे जनता करेगी और ऊपर वाले आगार का चुनाव लोक सभा के सदस्य करेंगे और फिर उसमें प्रधान द्वारा मनोनीत किये गये कुछ व्यक्ति भी सदस्य के रूप में रहेंगे। दूसरी बात यह है कि ऊपर वाला आगार एक ऐसा आगार होगा, जिसके एक तिहाई सदस्य हर दूसरे साल चुने जायेंगे। सुतरां उसके शेष दो तिहाई सदस्य नई भावना के प्रतिनिधि न रहेंगे, क्योंकि वे लोग दो और चार वर्ष पहले निर्वाचित हुये रहेंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि ऊपर वाला आगार जनता के तत्कालीन विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। ऐसी सूरत में उस आगार को लोक सभा के समान अधिकार देना मेरे ख्याल से एक प्रतिक्रियात्मक बात होगी। अगर हम ऊपर वाले आगार को कुछ हैसियत देना ही चाहते हैं, तो हमें उसे केवल उतना

ही अधिकार देना चाहिये। जो कि इंग्लैंड के हाउस आफ लार्ड्स को सन् 1911 के एक्ट द्वारा प्राप्त हैं। हाउस आफ कामन्स द्वारा पास किये गये बिल को अगर हाउस आफ लार्डस स्वीकार नहीं करता है, उस सूरत में वह बिल एक खास अवधि की समाप्ति पर स्वत: कानून बन जाता है। पर हमारे विधान के अनुसार अगर ऊपर वाला आगार किसी बिल को अस्वीकृत कर देता है, तो उस हालत में दोनों आगारों की संयुक्त बैठक विधेयक के भाग्य का फैसला करेगी। मैं समझता हूं कि जब हमने अपना विधान ब्रिटिश पद्धति पर बनाया है, तो इस मामले में भी हमें ब्रिटेन में प्रचलित पद्धति को स्वीकार करना चाहिये। राज्य-परिषद् अगर किसी विधेयक को अस्वीकार कर दे, तो लोक सभा की राय कायम रहनी चाहिये और विधेयक को कानून का रूप मिल जाना चाहिये। हमें यह ख्याल करने की जरूरत नहीं होनी चाहिये कि राज्य-परिषद् ने उसे अस्वीकार कर दिया है। अगर राज्य-परिषद् किसी विधेयक पर विचार करने में बहुत विलम्ब करे और वह विलम्ब एक निश्चित अवधि के बाहर चला जाये, तो उस सूरत में भी बिल को हमें पास समझना चाहिये। ऊपर वाले आगार को यह स्थिति नहीं प्राप्त होनी चाहिये कि लोक सभा द्वारा पास किये गये किसी विधेयक को वह रद्द कर दे। मैं जिस सिद्धांत की वकालत कर रहा हूं यह बड़ा ही हितकर है। इंग्लैंड में भी जहां ऊपर वाला आगार है, लोगों ने ऊपर वाले आगार की शक्ति को सीमित रखना ही ठीक समझा और लोक सभा के द्वारा जनता ने जो राय जाहिर की, उसको वापिस करने का उसे अधिकार नहीं दिया। संयुक्त बैठक की व्यवस्था करके हम ऊपर वाले आगार को बहुत ही महत्त्वपूर्ण शक्ति दे रहे हैं, जो उन्नति में और जनेच्छा के अनुसार काम करने में रुकावट डालेगी, क्योंकि सम्भवत: जनता यह चाहेगी कि कानून जल्दी पास हो ताकि भारतवर्ष भी अन्य देशों के समकक्ष उन्नत हो जाये।

अपने देश में जब हम इतने पिछड़े हुये हैं, हमें जरूरत इस बात की होगी कि हम जल्दी-जल्दी आगे बढ़ें और हमें ऐसे किसी बन्धन की जरूरत नहीं है जैसा कि इस खंड के जरिये ऊपर वाले आगार की ओर से हमें मिल सकता है। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि ब्रिटिश पद्धति को हमें यहां स्वीकार करना चाहिये। ब्रिटिश पार्लियामेंट की इस व्यवस्था का कामनवैल्थ के अन्य देशों ने भी अनुकरण किया है। आस्ट्रेलिया में ऊपर वाला आगार किसी बिल पर 6 महीने के अन्दर विचार नहीं करता है, तो लोक सभा ऐसे आशय का प्रस्ताव पास कर देती है कि वह बिल पास हो जाना चाहिये। इंग्लैंड में तो इसकी भी जरूरत नहीं होती है। दोनों ही देशों में एक ही बात चलन में है और वह यह कि लोक सभा की आवाज ही अन्तिम है और ऊपर वाला आगार उसकी आवाज को अस्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये आशा है, इस खंड पर विचार करते समय सदस्यगण यह बात ध्यान में रखेंगे कि वे एक ऐसे सिद्धांत रख रहे हैं, जो हमारी समुन्नति में रुकावट डाल सकता है। मैं नहीं चाहता कि यह प्रावधान हमारे विधान को कलंकित करे जिसे हम अपने स्वतंत्र भारतीय लोकतंत्र के लिये स्वीकार करने जा रहे हैं। आशा है कि यह सभा दोनों आगारों की संयुक्त बैठक का जो प्रावधान है, उसे स्वीकार न करेगी और मेरी बातों को ध्यान में रखेगी।

***श्री चिमनलाल चक्कूभाई शाह** (सौराष्ट्र): अध्यक्ष महोदय, श्री सक्सेना द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का मैं विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैंने संशोधन उपस्थित करने की उन्हें अनुमति ही नहीं दी। वह अनुच्छेद के विरुद्ध बोले हैं।

***श्री चिमनलाल चक्कूभाई शाह:** मैं अनुच्छेद के समर्थन में बोलने के लिये खड़ा हुआ हूं। अनुच्छेद 87 में यह कहा गया है कि कोई विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता है, जब तक कि वह दोनों आगारों द्वारा स्वीकृत न हो जाये। यह एक ऐसी चीज है, जिसमें हम लोगों की राय एक है। तब सवाल यह उठता है कि उस सूरत में क्या किया जायेगा जबकि दोनों आगारों में विधेयक के सम्बन्ध में मतभेद हो। सम्भव है कि हम लोग यह कहें कि मतभेद की हालत में हमको उस मसले को वहीं छोड़ देना चाहिये; विधेयक को व्यपगत हो जाने देना चाहिये और उसे कानून न बनने देना चाहिये। ऐसा करना अमेरिकन पद्धति का अनुकरण करना होगा। किन्तु कुछ लोग हैं, जिनका यह ख्याल है कि हमें विधेयक को छोड़ न देना चाहिये, बल्कि कुछ ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे दोनों आगारों का मतभेद दूर किया जा सके। ऐसी व्यवस्था के लिये हमारे सामने दो या तीन तरीके हैं। एक तो हम ब्रिटिश पद्धति का अनुकरण कर सकते हैं, जिसके अनुसार एक निश्चित अवधि के बीत जाने पर लोक सभा द्वारा पास किया हुआ बिल अगर अध्यक्ष उसे प्रमाणीकृत कर देता है, तो वह स्वत: कानून का रूप ग्रहण कर लेता है। दूसरे हम आयरिश पद्धति का भी अनुकरण कर सकते हैं, जिसके अनुसार लोक सभा किसी विधेयक को प्रस्ताव द्वारा दुबारा पास कर दे तो वह कानून बन जाता है। किन्तु इन दोनों देशों का विधान एकात्मक है और हमारा विधान संघात्मक है। इसलिये यह दोनों पद्धतियां हम अपने यहां लागू नहीं कर सकते। संघात्मक विधान में जो ऊपर वाला आगार बनता है, उसमें विभिन्न इकाइयों या राज्यों के प्रतिनिधि रहते हैं वह हाउस आफ लार्डस की तरह नहीं होता जिसमें सदस्य लोग वंश परम्परा के हिसाब से आते हैं और जिसका स्वरूप दकियानूसी है। हम लोगों का जो ऊपर वाला आगार होगा वह ऐसा न होगा, बल्कि उसमें भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधि रहेंगे इसलिये वह भी एक तरह से लोक सभा के समान ही प्रतिनिधि-मूलक होगा। केन्द्र में राज्य-परिषद् या ऊपर वाले आगार की जो व्यवस्था की गई है, वह केवल इस उद्देश्य से कि राज्यों की अथवा इकाइयों की वहां आवाज पर्याप्त रूप से प्रतिध्वनित की जा सके। ऐसे सूरत में तीसरा रास्ता जो परिस्थिति को सुलझाने का निकलता है, वह है संयुक्त बैठक का उपाय। इसमें शक नहीं कि यह हल बहुत बड़ा अच्छा हल नहीं है पर सोचने-समझने के बाद जो अच्छा हल मिल सकता है, वह यही हल है। दोनों आगारों की जब संयुक्त बैठक होगी तो सम्भव है कि समझौते के द्वारा वे अपने मतभेद का निपटारा कर लें या फिर लोक सभा के बहुमत के अनुसार ही उसका फैसला होगा। किन्तु यह कहना कि केवल लोक सभा ही किसी विधेयक पर एक मात्र निर्णायक हो सकती है और यह कि एक निश्चित अवधि की समाप्ति पर ऊपर वाले आगार की इस सम्बन्ध में कोई आवाज ही न रह जायेगी, ठीक नहीं है। क्योंकि संघात्मक विधान में ऊपर वाले आगार का उद्देश्य ही यह होता है कि वह विभिन्न इकाइयों की आवाज प्रतिध्वनित करने के लिये प्रतिनिधि रूप में होता है और वे भी जनता के चुने हुए उसी तरह के प्रतिनिधि हैं, जिस तरह कि लोक सभा के सदस्य। इसलिये मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 88 में जो हल रखा गया है, यद्यपि वह एक आदर्शपूर्ण नहीं है, फिर भी वह एक ऐसा अच्छा हल है जिसकी संघात्मक विधान में हम कल्पना कर सकते हैं।

ब्रिटिश पद्धति का अनुसरण करना ठीक न होगा। क्योंकि हाउस आफ लार्ड्स का निर्माण वहां बिल्कुल ही भिन्न तरीके पर होता है, जिसको कि हमने अपने विधान में सोचा भी नहीं है। और ब्रिटिश विधान एकात्मक है और उसे हम अपने संघात्मक विधान में नहीं बिठा सकते हैं। इसलिये मैं अनुच्छेद 88 का समर्थन करता हूं।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगर:** माननीय मित्र कामत ने जो बात उठाई है, मैं केवल उसी का उत्तर देने की कोशिश कर रहा हूं, श्रीमान। मैं उनको बताना चाहता हूं कि अनुच्छेद 88 के अन्दर इस आशय की एक परन्तुका है:

''पर इस खंड में कोई बात किसी मुद्रा विधेयक को लागू नहीं होगी।''

पर उनका ख्याल है कि इतना पर्याप्त नहीं है। इसलिये वह ''जो मुद्रा विधेयक या आर्थिक विधेयक नहीं है'' शब्दों को वहां और रखना चाहते हैं, ससम्मान मैं उनसे यही निवेदन करूंगा कि यह शब्द वहां रहने ही नहीं चाहियें। मैं इन कारणों से यह कह रहा हूं। इस अनुच्छेद में मुद्रा विधेयकों और अन्य आर्थिक वैत्तीय विधेयकों में कुछ अन्तर रखा गया है। मुद्रा विधेयक अनुच्छेद 90 में आता है, जिसमें कहा गया है:

> ''इस अध्याय के प्रयोजनार्थ वह विधेयक मुद्रा विधेयक समझा जायेगा, जिसमें निम्नलिखित विषयों में से सब अथवा किसी से सम्बन्ध रखने वाले प्रावधान ही हैं अर्थात्...'' इत्यादि।

केवल इन्हीं बातों का जिस विधेयक में उल्लेख है, उन्हीं के सम्बन्ध में यह पद्धति रखी जा रही है और अन्य आर्थिक विधेयक जिसमें न केवल अर्थ सम्बन्धी ही मामलों का समावेश है बल्कि और बातें भी प्रसंगात् रखी गई हैं, उन विधेयकों के सम्बन्ध में यह पद्धति नहीं लागू होगी, लोक सभा में तो केवल वही विधेयक पुरस्थापित किये जायेंगे, जिसमें सिर्फ उन्हीं बातों का जिक्र है जो अनुच्छेद 90 में दी हुई हैं। जहां तक कि ऊपर वाले आगार का सम्बन्ध है, इन बातों के सम्बन्ध में उसे कोई क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त है। हां, वह इनके सम्बन्ध में केवल सिफारिश के रूप में ही कुछ सुझाव दे सकता है और उसकी सिफारिश लोक सभा के पास भेजी जा सकती हैं। लोक सभा इसकी सिफारिशों को स्वीकार करे या न करे यह उसकी मर्जी पर है। इन दोनों सूरतों में यानी ऊपर वाले आगार की सिफारिशें मंजूर हों या न हों, विधेयक दोनों सभाओं द्वारा पास समझा जायेगा। जहां तक कि अन्य आर्थिक विधेयकों को सम्बन्ध है, उनके लिये दूसरी पद्धति निर्धारित की गई है। और अगर यह प्रश्न खड़ा होता है कि कोई विधेयक शुद्धत: मुद्रा विधेयक है या नहीं, तो उस सम्बन्ध में लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा। इनके अलावा जहां तक अन्य बातों का सम्बन्ध है, उनसे सम्बन्ध रखने वाले विधेयकों को दोनों ही आगारों में पुर:स्थापित किया जा सकता है और दोनों ही आगारों को उनके सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। अनुच्छेद 88 के अधीन केवल मुद्रा विधेयकों को ही ऊपर वाले आगार से छूट दी गई है। अन्य आर्थिक विधेयकों के सम्बन्ध में, जो मुद्रा विधेयक नहीं हैं और जिनमें कि अन्य बातों का भी समावेश है, दोनों ही आगारों को क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा। मुद्रा विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किये जा सकते हैं और ऊपर

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

वाला आगार उनके सम्बन्ध में सिफारिश के ही रूप में कोई बात सुझा सकता है। इसलिये मैं कहूंगा कि यह संशोधन अनावश्यक है और इस अधिनियम के पीछे जो योजना है उसके सर्वथा विरुद्ध है। अतः श्री कामत का संशोधन अनियमित है।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में बोलने का मेरा इरादा तो नहीं था किन्तु मैं मद्रास से आया हूं और मुझे अनुभव है कि दोनों आगार वहां किस तरह काम करते हैं और ऊपर वाला आगार विधि निर्माण सम्बन्धी काम में कैसे रुकावट डालता है, इसीलिये मैं इस सम्बन्ध में कुछ कहने के लिये खड़ा हुआ हूं। जहां तक कि धारा सभा की कांग्रेस पार्टी का सम्बन्ध है, वह कम या बेशी संयुक्त बैठक के रूप में ही बैठा करती है, क्योंकि जिन बिलों को पास करना होता है उस पर वहां विचार-विमर्श कर लिया जाता है। यह सभी जानते हैं कि किसी विधेयक का प्रारम्भ लोक सभा से ही होता है। किन्तु उसकी सदस्य संख्या वहां 215 है। और जब ऊपर वाले आगार के साथ संयुक्त बैठक होती है, तो उसकी आवाज निर्णायक नहीं रह जाती है। इस तरह से लोक सभा द्वारा पास किये गये बिल को ऊपर वाला आगार अक्सर रोक लिया करता है। अगर ऊपर वाला आगार किसी बात से असहमत है, तो वह संशोधन का सुझाव रख सकता है और बिल को लोक सभा के पास वापस भेज सकता है। उस हालत में लोक सभा का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अगर बिल में कोई दोष रह गया हो तो उसे दूर करें। अगर लोक सभा ऊपर वाले आगार से सहमत नहीं होता है, तो एक मतभेद खड़ा होता है और उसी के लिये यहां अनुच्छेद में संयुक्त बैठक का सुझाव रखा गया है। अगर मत-विभाजन में एक तरफ सदस्यों की संख्या काफी ज्यादा है, अर्थात् यों कहिये 100 एक तरफ हैं और डेढ़ सौ एक तरफ तब तो संयुक्त बैठक में लोक सभा ही निर्णायक रहती है। किन्तु ऊपर वाले आगार से सीधे जनता से चुने हुए लोग नहीं आते हैं, आज जिस तरह ऊपर वाले आगार की रचना होती है, उसमें छोटे-छोटे पूंजीपतियों और नौकरशाही के ही प्रतिनिधि आते हैं, और जब भी कोई प्रगतिशील कानून बनाने का प्रयास किया जाता है, देर करने की कोशिश करते हैं।

और कभी-कभी तो लोक सभा द्वारा पास किये गये बिल को नाकाम करने की कोशिश करते हैं। एक साधारण आदमी की हैसियत से और एक अनपढ़ आदमी की हैसियत से इस सम्बन्ध में मैं ऐसा ही महसूस करता हूं। ऊपर वाला आगार हो या न हो, इस सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान-मंडल में विचार किया गया था और मैं अरसे तक ऊपर वाले आगार के खिलाफ था। किन्तु अब हम वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव करने जा रहे हैं, जिससे तरह-तरह के लोग विधान-मंडलों में आयेंगे। बहुत से लोक अनुभवशील होंगे और बहुत से ऐसे भी होंगे जिनको कुछ भी अनुभव न होगा। इसलिये यह अच्छा होगा कि हम ऊपर वाले आगार में कुछ अनुभवी राजनीतिज्ञों को सदस्य के रूप में मनोनीत करें जिससे कि हम उनके अनुभव और पथ-प्रदर्शन से लाभ उठा सकें। यही कारण था, जिससे प्रेरित होकर मैंने ऊपर वाले आगार का समर्थन किया था। 1935 के अधिनियम में, मेरे ख्याल से, इस आशय का कोई प्रावधान नहीं था। पर जो भी हो, हम लोगों ने 1935 के अधिनियम को पूरी तरह कार्यान्वित ही नहीं किया। हमें उसका केवल डेढ़ साल का अनुभव मिला। सन् 1937 से लेकर 1939 तक ही हम उस पर अमल कर

सके। इस काल में मैं नहीं समझता कि ऐसा कोई मौका उठा, जिसमें संयुक्त बैठक की नौबत आई हो। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं, विधान-सभा में जो कांग्रेस दल था, वह प्रायः संयुक्त बैठक करके मसलों का फैसला कर लिया करता था। हमने यह भी देखा कि लोक सभा के सदस्यों द्वारा लाये गये प्रगतिशील कानूनों को पास करने में ऊपर वाला आगार रुकावट डालता था या देर कर दिया करता था। किन्तु अब डॉ. अम्बेडकर ने यह समझा दिया है कि ऊपर वाले आगार की अब जैसी रचना होगी उसमें वह न प्रगतिशील कानून के बनाने में रुकावट डालेगा और न देर ही करेगा। ऊपर वाले आगार में जो लोग चुनकर आयेंगे, वह न जमींदार या ताल्लुकेदार होंगे बल्कि उनको लोक सभा के प्रतिनिधि सदस्य ही चुनेंगे। इसलिये अब मैं इससे सहमत हो गया हूं। लोक सभा के सदस्यों को यह जानकारी रहेगी कि ऊपर वाले आगार के लिए किस तरह के आदमियों को चुनकर भेजा जाए। किन्तु इसका मतलब यह नहीं हुआ कि निर्वाचन के बाद भी वे लोग लोक सभा के सदस्यों की मर्जी के मुताबिक ही चलेंगे। वे लोग तो अपनी मर्जी के मुताबिक ही सभा में राय देंगे। हां, प्रगतिशील कानूनों के पास किये जाने में कोई रुकावट न डाली जाये, यह एक विचारणीय बात जरूर है। मेरी राय तो यह है कि इस बात को रोकने के लिये कि लोक सभा जल्दीबाजी में कोई कानून पास न करे, ऊपर वाले आगार के लिये हम एक अवधि जरूर निर्धारित कर दें जिसके अन्दर उसे किसी मसले पर अपना निर्णय कर ही लेना चाहिये। उस अवधि के अन्दर या तो ऊपर वाला आगार लोक सभा द्वारा पास किये गये कानून को पास कर दे या अगर उसमें कोई दोष हो तो उसे दूर करने के लिये लोक सभा के पास उसे वापस भेज दे। अगर लोक सभा फिर भी अपनी बात पर अड़ी रहे और ऊपर वाले आगार की बात को मानने को तैयार न हो, तो उस सूरत में एक निश्चित अवधि के बीतने के बाद बिल स्वतः कानून का रूप ग्रहण कर ले। मेरे ख्याल से यह व्यवस्था संयुक्त बैठक वाली व्यवस्था से ज्यादा अच्छी होगी। जो भी हो, विधान में इस आशय का एक प्रावधान है कि दस वर्ष के बाद अगर जनता विधान के किसी खंड या अनुच्छेद में कोई परिवर्तन करना जरूरी समझे तो वह ऐसा कर सकती है। कहावत भी है कि 'अभ्यास करते-करते ही मनुष्य पारंगत होता है'। कुछ समय बाद आने वाले विधान-मंडलों में जनता के वास्तविक प्रतिनिधि आयेंगे और वे ऐसी स्थिति में रहेंगे कि वह इस बात को जान सकें कि इस खंड को लेकर उनको क्या-क्या कठिनाइयां होंगी और तदनुसार वह उसमें सुधार कर सकते हैं। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात खत्म करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** एक ही ऐसा संशोधन है, श्रीमान्, जिसके सम्बन्ध में उत्तर के रूप में कुछ कहना जरूरी है और वह संशोधन है, माननीय मित्र श्री कामत का संशोधन नं. 1656, जिसमें उन्होंने कहा है कि ''इस संविधान के प्रयोजनार्थ'' शब्द हटा दिये जाने चाहियें। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि यह शब्द बड़े ही जरूरी हैं और वहां अवश्य रहने चाहियें। मैं यह क्यों कह रहा हूं यह बात आपको अनुच्छेद 87 (2) तथा अनुच्छेद 91 के प्रावधानों में मिल जायेगी। अनुच्छेद 87 के खंड (2) के अनुसार कोई विधेयक प्रत्येक आगार द्वारा पृथक्-पृथक् बैठकों में स्वतंत्र रूप से पास होना चाहिये। इतना हो जाने के बाद इस संविधान के अनुसार कोई विधेयक अनुच्छेद 91 के अधीन प्रधान के पास स्वीकृति के लिये भेजा जायेगा। माननीय मित्र कामत यह देखेंगे

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कि अनुच्छेद 88 के प्रावधान उन प्रावधानों के विपरीत पड़ते हैं, जो अनुच्छेद 87 (2) में रखे गये हैं। इसलिये यहां यह व्यक्त करना जरूरी है कि संयुक्त बैठक में स्वीकृत होने पर विधेयक प्रधान के पास भेजा जायेगा।

इसलिये मेरा कहना है कि ''इस विधान के प्रयोजनार्थ'' इन शब्दों का रखना मेरे ख्याल से बहुत जरूरी है और इन्हें हम अनावश्यक नहीं समझ सकते।

अनुच्छेद 88 में रखे गये प्रावधानों के सम्बन्ध में जो कई वक्ताओं ने कुछ बातें कहीं हैं उनके सम्बन्ध में मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि उन्होंने जो आशंका व्यक्त की है, उसके लिये कुछ आधार जरूर हैं। लेकिन जैसा कि मेम्बरों ने कहा है यह प्रावधान एक बिलकुल ही नई चीज है, ऐसी बात नहीं है। अन्य कई विधानों में भी यह प्रावधान है। इसलिये मेरा सुझाव यही है कि अनुच्छेद को ज्यों का त्यों रहने दिया जाये और हम यह देखेंगे कि आगे चलकर कालक्रम से इसका क्या प्रभाव पड़ता है? अगर उनकी आशंका सही उतरती है, तो मुझे शक नहीं कि कुछ माननीय सदस्य अवश्य ही इस अनुच्छेद के संशोधन के लिये आगे आवेंगे और विधान के संशोधन के लिये हमने जो पद्धति रखी है उसके अनुसार उसे संशोधित करायेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने मेरे संशोधन नम्बर 1645 के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला है, उसको मद्देनजर रखते हुए मैं इसे वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

सभा की स्वीकृति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में 'दोनों आगारों' शब्दों की जगह 'उस खंड के उपखंड (ग) में उल्लिखित आगार' शब्द रखे जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88 के खंड (2) में, अन्त में आये हुए 'दिनों' शब्द के पहले 'निरन्तर' शब्द जोड़ दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***श्री एच.वी. कामत:** माननीय डॉ. अम्बेडकर के स्पष्टीकरण को दृष्टि में रखते हुए मैं संशोधन नम्बर 1656 को वापिस लेने की सभा से अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो संशोधन रखे गये थे वे दोनों ही स्वीकृत हो चुके हैं। अब मैं संशोधित अनुच्छेद पर राय लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 88, अपने संशोधित रूप में, विधान में जोड़ा जाए।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 88 संशोधित रूप में विधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 89

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि संशोधन नं. 1662 केवल शाब्दिक है और मसौदे के अन्य प्रावधानों के अन्दर वह आ जाता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** नीचे वाले आगार का जो इस निश्चित विशेषाधिकार या अधिकार प्राप्त रहता है उसका इस संशोधन में दृढ़तापूर्वक उल्लेख किया गया है। मैं नहीं समझ पाता कि इस अधिकार का निषेधात्मक रूप में क्यों उल्लेख किया जाये।

***अध्यक्षः** वह अधिकार तो नीचे वाले आगार को प्राप्त है ही। विधान के प्रावधानों से उनका हरण तो होता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** प्रारम्भ में ही मुझे वह बात दुहरा देनी पड़ती है जिसका कि मैंने कल यहां जिक्र किया था। मैंने इन संशोधनों को दो पृथक् संशोधनों के रूप में भेजा था किन्तु दुर्भाग्य से वह एक में मिला दिये गये हैं। विधान-परिषद् कार्यालय कार्यभार से व्यक्त हैं और उसे मैं इसके लिये दोषी नहीं ठहराता हूं। मैं संशोधन के केवल दूसरे भाग को ही पेश करने की अनुमति आप से चाहता हूं।

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 82 के खण्ड (1) में 'राज्य परिषद् में... पुरःस्थापित न किया जायेगा' (not be introduced in the Council of States) शब्दों की जगह 'राज्य परिषद् में... पुरःस्थापित किया जायेगा' (be introduced in the Council of States) शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्षः** यह संशोधन तो महज रस्मी है।

***श्री एच.वी. कामतः** अवश्य ही, मैं यह स्वीकार करता हूं, श्रीमान्, कि यह संशोधन सिर्फ रस्मी है और इसलिये मैं इसे मसौदा-समिति पर छोड़ता हूं।

(संशोधन नं. 1664 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 89 में 'तीस दिन' शब्द जहां कहीं भी आये हैं, उनकी जगह 'इक्कीस दिन' शब्द रखे जायें।''

संशोधन का अभिप्राय यह है कि जब मुद्रा विधेयक लोक सभा द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो वह राज्य-परिषद् की सिफारिशों के लिये उसके पास जायेगा। हो सकता है कि अमल में वस्तुतः हमें सात दिन से भी कम लगें। तीस दिनों की अवधि अधिकाधिक रूप में रखी गई थी। जब हम लोगों ने यह संशोधन बनाया था उस समय हम किफायतन इक्कीस दिन से भी कम अवधि रखना चाहते थे। किन्तु अब मेरा ख्याल है कि 14 दिनों की या एक पखवाड़े की अवधि सभी तरह की विशेष स्थितियों के लिये पर्याप्त

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

होगी। यदि डा. अम्बेडकर राजी हों और सभा की अनुमति हो तो ''इक्कीस दिन'' के बजाय ''चौदह दिन'' शब्द रख दूं क्योंकि हमारे प्रयोजन के लिये यह अवधि पर्याप्त है। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** श्री नजीरूद्दीन अहमद के नाम में दो संशोधन हैं (नं. 1666, 1667)। इनका सम्बन्ध मुख्यत: अनुच्छेद की वाक्य रचना से है।

इस तरह इस अनुच्छेद पर केवल एक ही संशोधन है जो श्री कृष्णमाचारी का है। अब अनुच्छेद पर वाद-विवाद प्रारम्भ किया जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन रखा है, श्रीमान्, मैं उसे स्वीकार करता हूं। अवधि को और घटाकर जो चौदह दिन का सुझाव रखा गया है मैं उसे भी मंजूर कर लूंगा। अगर सभा मुझे इस आशय का संशोधन रखने की अनुमति दे तो मैं प्रस्ताव रखूंगा कि संशोधन में रखी हुई इक्कीस दिन की अवधि को घटाकर चौदह दिन कर दिया जाये। जिन कारणों से मैं यह परिवर्तन का सुझाव दे रहा हूं मैं उन्हें भी बतायें देता हूं। ब्रिटिश पार्लियामेंट में ऐसा होता है कि लोक सभा (House of Commons) जो भी वित्त सम्बन्धी प्रावधान पास करती है उस पर हाउस आफ् लाड्र्स केवल अपनी सहमति दे देता हूं। जहां तक कि वित्त सम्बन्धी प्रावधानों का सम्बन्ध है, हाउस आफ लाड्र्स ने अपने अधिकार का पूर्णत: परित्याग ही कर दिया है। हम यहां यह स्थिति नहीं रख रहे हैं। कर सम्बन्धी या वैत्तीय प्रस्तावों के सम्बन्ध में जो कि लोक सभा में पुन: स्थापित किये जायेंगे, हम ऊपर वाले आगार को अपनी बात कहने का अधिकार दे रहे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम ऊपर वाले आगार को एक विशेषाधिकार दे रहे हैं जो साधारणत: उन्हें कहीं प्राप्त नहीं है। पर साथ ही हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि बजट सम्बन्धी प्रस्ताव बहुत ही आवश्यक होते हैं। आज भी, जैसा कि सदस्यों को मालूम है, लोक सभा को हम वित्त सम्बन्धी विधेयकों के लिये छ: या आठ दिनों से ज्यादा समय नहीं देते हैं। तीस दिन या इक्कीस दिन की अवधि देने का नतीजा, मेरी समझ से, यह होगा कि वित्त विधेयक, जो कि महत्त्वपूर्ण होता है, बहुत दिनों तक खटाई में पड़ा रह जायेगा। अगर ऊपर वाला आगार उस पर अपनी राय देना चाहता है तो इसके लिये, मेरी राय में, चौदह दिनों की अवधि पर्याप्त से भी अधिक है।

***अध्यक्ष:** मूल प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 89 में 'तीस दिन' शब्द जहां भी आये हैं उनकी जगह 'इक्कीस दिन' शब्द रखे जायें।''

इस पर एक और संशोधन यह रखा गया है कि ''इक्कीस दिन'' की जगह ''चौदह दिन'' रखा जाये। संशोधन इस प्रकार है:

> ''संशोधन में 'इक्कीस दिन' शब्दों की जगह 'चौदह दिन' शब्द रखे जाये।''

प्रस्ताव यह है कि:

> ''संशोधन पर रखे गये संशोधन को स्वीकार किया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधित संशोधन स्वीकार किया जाये।''

संशोधन मंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 89 को, उसके संशोधित रूप में, स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 89 को संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 90

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 90 को लेते हैं।

(संशोधन नं. 1668 पेश नहीं किया गया।)

***श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रांत और बरार): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) से 'ही' (only) शब्द निकाल दिया जाये।''

यह अनुच्छेद भारत शासन अधिनियम की धारा 37 का प्रतिरूप है जिसमें यह कहा गया है कि कोई विधेयक या संशोधन जिसमें कर वृद्धि की या कर लगाने की अथवा ऋण लेने इत्यादि-इत्यादि, की व्यवस्था की गई हो वह बिना गवर्नर जनरल की सिफारिश के पुर:स्थापित या प्रस्तावित न किया जायेगा। इसका मतलब यह हुआ कि यह जरूरी नहीं है कि विधेयक केवल मुद्रा विधेयक ही हो। उसमें और बातें भी हो सकती हैं पर अगर कर या ऋण सम्बन्धी कोई प्रावधान है तो वह धारा 37 के अन्दर आयेगा और उसके लिये गवर्नर जनरल की सिफारिश जरूरी होगी। इस अनुच्छेद 90 में यह कहा गया है कि विधेयक तभी मुद्रा विधेयक समझा जायेगा जबकि उसमें केवल कर या ऋण लेने आदि के ही प्रावधान हों। इसका यह अर्थ भी किया जा सकता है कि कोई विधेयक जिस में कर और ऋणादि के प्रावधान के साथ ही अन्य और बातों से सम्बन्ध रखने वाले प्रावधान हैं तो वह मुद्रा विधेयक नहीं माना जायेगा। अगर यही प्रयोजन है तब तो मुझे कुछ नहीं कहना है पर अगर प्रयोजन यह नहीं है तो मैं यह जरूर कहूंगा कि यहां 'ही' (only) शब्द बड़ा गोलमाल पैदा कर सकता है क्योंकि विधेयक में इन सब बातों के साथ-2 अन्य किसी बात का भी प्रावधान है तो वह मुद्रा विधेयक न माना जायेगा। मसौदा समिति का क्या अभिप्राय है यह तो मैं नहीं जानता पर मेरी समझ से अनुच्छेद के इस पहलू का हमें अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(संशोधन नं. 1670 और 1671 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

''(क) अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड में 'किसी कर' शब्दों के आगे और

[प्रो. के.टी. शाह]

'का' के पहले शुल्क, भारदर' या अन्य किसी रूप के राजस्व, आय का सरकारी प्राप्ति अथवा सरकारी व्यय' शब्द जोड़े जायें; तथा

(ख) अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'विधि' शब्द के बाद और 'के' के पहले 'या किसी वर्तमान प्रसंविदा' शब्द और रखे जायें''

यह संशोधन इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि खंड (क) में मुद्रा विधेयक व्यक्त करने के लिये जो पारिभाषिक शब्द रखे गये हैं उनका और खुलासा हो जाये। कहने का मतलब यह है कि वह विधेयक मुद्रा विधेयक समझा जाये जो किसी एक शुल्क, भारदर, उद्ग्रहण या अन्य किसी रूप के राजस्व, आय या सरकारी प्राप्ति अथवा सरकारी व्यय का आरोपण, उत्पाद, परिहरण, परिवर्तन अथवा आयनियमन करता हो। विधान के मसौदे में कहीं भी, विधान में दिये हुये महत्त्वपूर्ण परिभाषिक शब्दों की व्याख्या नहीं दी गई है, इसी कारण, इस महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द के स्पष्टीकरण के लिये यह संशोधन मैं रख रहा हूं।

''कर'' शब्द जो यहां रखा गया है उसमें अगर अन्य तरह के सरकारी राजस्व या आमदनी को भी, आप शामिल मानते हैं, जिनका कि हमने यहां पृथक-पृथक हवाला दिया है तो मुझे आशंका है कि कोई स्पष्ट परिभाषा-मूलक खंड न होने के कारण इसमें गलतफहमी होगी। बहुत सम्भव है कि वकीलों की चातुरी ''कर'' शब्द को ऐसा अर्थ दे कि उस में और तरह के सरकारी राजस्व, आमदनी जिनका कि मैंने उल्लेख किया है शामिल न किये जायें। और कोई विधेयक, बावजूद इस बात के कि वह मुद्रा विधेयक है, पर उसमें कर के आरोपण, उत्सादन, परिहरण, परिवर्तन अथवा आनियमन का उल्लेख न होने से वह मुद्रा विधेयक न समझा जाये। मैं समझता हूं कि ऐसा होने से तो राज्य परिषद् की शक्ति बहुत ही बढ़ जायेगी। इसलिये यह बहुत ही आवश्यक है कि यहां अन्य तरह के सरकारी राजस्व आय या प्राप्ति को भी शामिल कर लिया जायें ताकि इस मामले में किसी विवाद की गुंजाइश न रह जाये।

विधान सम्बन्धी इतिहास का हर विद्यार्थी यह जानता होगा कि इंग्लैंड में लोक सभा और हाउस आफ लार्ड्स के बीच अक्सर अपने प्रावधान के लिये जो-जो झगड़े हुये हैं उनमें मुद्रा विधेयक की परिभाषा ही प्रायः करके मूल में रही है। बजट में अन्य ऐसी बहुत सी बातों का समावेश करके जो कि पहले उस में नहीं शामिल थीं, हाउस आफ लार्ड्स को मुद्रा विधेयक सम्बन्धी शक्ति को क्रमशः बहुत कुछ घटा दिया गया है। इस तरह से वित्त सम्बन्धी मामलों में लोक सभा का इतना प्राधान्य स्थापित हो गया है और अब उस पर कोई प्रश्न ही नहीं उठाया जा सकता है।

अनुच्छेद में जो शब्द रखे गये हैं अगर वे ऐसे ही रहने दिये जाते हैं तो मेरा ख्याल है कि इससे इस बात की काफी आशंका है कि वित्त सम्बन्धी मामलों में लोक सभा के अधिकार उतने व्यापक और पूर्ण न रहेंगे जितना कि मेरे ख्याल में दायित्व पूर्ण प्रतिनिधि मूलक लोकतंत्रीय व्यवस्था में उसे होना चाहिये।

इसीलिये मैंने इन सब शब्दों को भी शामिल कर दिया है जिनको लेकर अतीत काल में किसी न किसी रूप में दूसरे मूल्कों में मतभेद खड़ा हो चुका है और मेरी समझ से यह जरूरी है कि इन सब शब्दों का यहां स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाये।

मेरे संशोधन का दूसरा भाग जिसमें किसी विधि या प्रसंविदा के संशोधन का उल्लेख है, वह तो और भी आवश्यक है। सरकार की प्रसंविदाएं प्राय: ऋण रूप में दिये गये धन से ही सम्बन्ध रखती हैं और ऋण के रूप में ली हुई रकम पर जो ब्याज होता है, हो सकता है उसी की दर में परिवर्तन किया जाये। इसमें परिवर्तन किये गये हैं। प्रसंविदा में परिवर्तन किये जाते हैं वह एक तरफा ही होते हैं और अवश्य ही सत्ताधारी विधानसभा को ऐसा करने को क्षमता प्राप्त रहती है पर यह शक्ति लोक सभा में निहित रहनी चाहिये। मुद्रा विधेयकों और वित्त सम्बन्धी प्रशासन के सम्बन्ध में जो उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त रहता है उसी अधिकार का यह भी एक अंग माना जाना चाहिये। उदाहरण के लिये मैं आप को बताऊंगा कि इंग्लैंड में, निधिकृत राष्ट्र ऋण पर जो ब्याज की दर है वह बार-बार घटाई गई है। ब्याज दर घटाने का कार्य अवश्य ही सर्वसत्ताधारी किसी निकाय का काम है और जो विधान हम बना रहे हैं उसमें यह अधिकार विधान-मंडल को निस्संदेह प्राप्त है। पर एतदर्थ जो विधेयक रहेगा वह वित्त विषयक विधेयक का ही एक अंग होगा इसलिये इसके बारे में क्षमता केवल लोक सभा को ही प्राप्त रहनी चाहिये।

मुझे इस सम्बन्ध में कई अन्य उदाहरण भी याद हैं। करीब पन्द्रह साल हुए, अमेरिका में नागरिकों के निजी प्रसंविदाओं में भी, जिनमें कि 'गोल्ड क्लाज' का समावेश था, कांग्रेस के एक अधिनियम द्वारा संशोधन किया गया था। संशोधन का आशय यह था कि अमेरिकन नागरिक और उसके विदेशस्थ ग्राहक के बीच हुई प्रसंविदा में, ''गोल्ड क्लाज'' की उपेक्षा की जायेगी अगर उस प्रसंविदा के अनुसार यह जरूरी हो कि माल या सेवाओं के लिये भुगतान सोने में होगा, चाहे किसी देश की मुद्रा के हिसाब से भुगतान करने की बात उसमें कही गई हो। यदि ये प्रसंविदायें वहां प्रभावी बनी रहने दी जातीं और उनके लिये यह संशोधन न किया गया होता तो इसका नतीजा यह होता कि तत्कालीन अमेरिकन कांग्रेस और वहां की सरकार डालर की विनिमय दर को अनुपात में रखने के लिये चाहे जो भी उपाय करती वह सब व्यर्थ होता क्योंकि वहां की मुद्रा की बाबत तो जैसा भी होता किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान तो केवल सोने में या सोने के बराबर मूल्य की मुद्रा में या बुलियन में, जैसी भी प्रसंविदा में शर्त होती, करना जरूरी होता। अमेरिकन विधान मंडल ने ऐसी सूरत में यह कानून बना दिया कि गोल्ड क्लाज प्रसंविदाओं में लागू न होगा। अगर यह क्लाज प्रभावी रहने दिया जाता तो जिस प्रयोजन के लिये तत्कालीन अमेरिकन विधान मंडल ने उक्त कानून पास किया था वह न सिद्ध हो पाता। अगर मुद्रा-विधेयकों के सम्बन्ध में लोक सभा को जो शक्तियां दी गई हैं उनमें इस तरह की शक्ति समाविष्ट नहीं रखी जाती है तो मुझे भय है कि आज के युग में, जिसमें कि हम रह रहे हैं, उसमें ऐसा करने का मतलब यह होगा कि नागरिकों के पारस्परिक आर्थिक व्यवहार में या नागरिकों और राज्य के बीच जो आर्थिक व्यवहार होगा उसमें संशोधन के निर्मित कानून बनाने की लोक सभा की जो शक्ति है उसको पूरा-पूरा आप यहां नहीं दे रहे हैं। मेरी

[प्रो. के.टी. शाह]

राय में इन सभी शक्तियों का आप यहां उल्लेख कर दीजिये। अगर आप उस सिद्धांत को साफ-साफ स्वीकार करते हैं कि वित्त सम्बन्धी मामलों में सर्वोच्च अधिकार लोक सभा में ही निहित रहना चाहिये तो मेरी समझ से मेरे इस संशोधन को मानने में आपको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इसी ख्याल से मैंने पहले एक संशोधन रखा था जिस में साफ-साफ कहा गया था कि मुद्रा विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है। यह खंड निषेधात्मक रूप में इस प्रकार रखा गया है कि इसका गलत अर्थ लगाया जा सकता है और इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। अस्तु मेरा वह संशोधन तो पेश नहीं हुआ और अब इसीलिये मैं उस बात का खुलासा करा लेना चाहता हूं जिसके सम्बन्ध में खुद विधान में कोई सन्देह न रहना चाहिये और जिसको हमें यहां इसलिए न छोड़ना चाहिए कि आगे चलकर सभा के नियमों या स्थायी आज्ञाओं या पूर्ववर्त्ती उदाहरणों के आधार पर उसका खुलासा हो जायेगा। इस सम्बन्ध में हमारा अपना कोई पूर्ववर्त्ती उदाहरण है नहीं और हमें उसे बनाना पड़ेगा। आखिर हर मौके पर हम इस सम्बन्ध में ब्रिटेन के वैधानिक इतिहास का हवाला तो ढूंढ नहीं सकते। हमें इस बात की गुंजाइश न रहने देनी चाहिये कि आगे चलकर कोई भी कानूनी चातुरी का प्रयोग कर सके और इस उदार परम्परा को क्षति पहुंचे। सभा में पहल किसी मौके पर यह कहा गया था कि अपना यह विधान वकीलों के लिये कल्प वृक्ष सिद्ध होगा। आशा है यह कथन सच न उतरेगा। ऐसा कोई शब्द पदसंहति रख कर अपने बुनियादी विधान को हमें अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं रहने देना चाहिये जिसको कि कानूनी चातुरी से तोड़-मरोड़ कर कोई गलत अर्थ दे। इसी लिए मैंने यह संशोधन रखा है और आशा है सभा इसे स्वीकार करेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

> ''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखण्ड (ङ) में 'राशि की वृद्धि' शब्दों की जगह 'राशि में परिवर्तन या उसका उत्सादन' शब्द रखे जायें।''

इस तरह के संशोधन की आवश्यकता पर बहुत कुछ कहने की मुझे जरूरत नहीं है क्योंकि यह सभी जानते हैं कि व्यय की मदें जब भार के आगम पर भारित होंगी तो ऐसी परिस्थिति भी आ सकती है कि उस व्यय की कोई आवश्यकता न रहे और वह व्यय किया ही न जाये या उसमें कमी या वृद्धि हो जाये। वृद्धि की सम्भावना मैं सोच सकता हूं पर इस खंड में केवल एक वृद्धि की ही सम्भावना सोची गई है। मैं पूछता हूं आखिर यह क्यों नहीं यहां सोचा गया कि व्यय में कमी भी हो सकती है या यह कि व्यय की राशि बिल्कुल उठा ही दी जा सकती है? यह प्रश्न भी उठता है कि व्यय की कौन-कौन सी मदें होंगी जो भारत के राजस्व पर भारित होंगे। उस प्रश्न के समाधान के लिए हम अनुच्छेद 92 (3) को देख सकते हैं। उसमें कहा गया है अमुक-अमुक व्यय भारत के राजस्व पर भारित होंगे। उस समूची को मैं नहीं पढ़ने जा रहा हूं इन विभिन्न मदों की ओर सभा का ध्यान मात्र मैं आकृष्ट कर देता हूं। उस सम्बन्ध में 'क' से 'च' तक की कुल 6 मदें हैं अगर गौर से आप इनको पढ़ें तो देखेंगे कि राष्ट्रपति के वेतन और भत्ते के सम्बन्ध में विधान में यह व्यवस्था रखी गई

है कि उसके पदावधि काल में इसमें कोई कमी नहीं की जा सकती है। यह व्यवस्था आपको अनुच्छेद 48 (4) में मिलेगी। यह तो ठीक ही है। पर जब हम राज्य-परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते सम्बन्धी प्रावधान को देखते हैं तो यह पाते हैं। तत्सम्बन्धी अनुच्छेद में यह साफ-साफ नहीं कहा गया है कि उनके वेतन और भत्ते में, इनकी पदावधि काल में कोई कमी न की जायेगी जैसा कि राष्ट्रपति के बारे में कहा गया है। अवश्य ही मैं मानता हूं उसमें कमी न की जायेगी, पर चूंकि संसद सर्वसत्ता सम्पन्न रहेगी इसलिये वह उसमें कमी कर सकती है। इस सम्भावना को मद्देनजर रखते हुए ही मैंने यह सुझाव दिया है कि ''परिवर्तन'' शब्द रखा जाये। 'परिवर्तन' शब्द में घटाना या बढ़ाना दोनों ही बातें आ जाती हैं। इसलिये में माननीय डा. अम्बेडकर से तथा सभा से अपील करूंगा कि 'परिवर्तन' शब्द को रखना स्वीकार कर लें क्योंकि यह अधिक व्यापक शब्द है और इसमें घटाना या बढ़ाना दोनों ही बातें आ जाती हैं।

और जहां तक कि उत्सादन यानी व्यय-राशि के उठाने का सम्बन्ध है, वह भी कोई असम्भव बात नहीं है। अगर आप अनुच्छेद 92 (3) को देखें, जिसका कि मैंने अभी हवाला दिया है, तो पायेंगे कि उसमें उन विभिन्न मदों का उल्लेख किया गया है जो भारत के राजस्व पर भारित होंगे। उक्त अनुच्छेद के उपखण्ड (4) में कहा गया है कि इस संविधान से अथवा संसद से विधि द्वारा इस प्रकार प्रभृत्त घोषित व्यय भारत के राजस्व पर भारित होगा। मुझे व्यय सम्बन्धी अन्य मदों का उल्लेख करने की जरूरत नहीं है जिनको संसद भारत के राजस्व पर भारित करने का निश्चय कर सकती है। बहुत से ऐसे अनुदान भी हो सकते हैं जो कि विभिन्न शैक्षणिक, सांस्कृतिक या सामाजिक या अन्य संस्थाओं को दिये जाते हों और संसद विधि द्वारा भारत के राजस्व पर उनको भारित करने का निश्चय करे और फिर कालान्तर में विधि द्वारा उनको बन्द कर देने का वह निश्चय करे। अनुच्छेद का जो वर्तमान रूप है उसमें यह सम्भावना ही नहीं रखी गई है कि भारत के राजस्व पर भारित होने वाले इन व्ययों में कमी भी हो सकती है या इनको बिल्कुल बन्द भी किया जा सकता है। अतः इस स्थिति को सुधारने के लिये और आकस्मिक आवश्यकताओं की गुंजाइश को पूरा करने के लिये मैं अपना संशोधन नं. 1674 पेश कर रहा हूं और सभा से इसे स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 1675, 1676, 1677 और 1678—ये सब के सब शाब्दिक मात्र हैं। अब प्रस्तुत अनुच्छेद से सम्बन्ध रखने वाले सभी संशोधन पेश हो चुके हैं और जो कोई इन पर अथवा अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहते हों कह सकते हैं।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन के सम्बन्ध में ही मैं बोलूंगा। अनुच्छेद के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। उन्होंने अभी अनुच्छेद 90 के उपखण्ड (1) (ङ) का हवाला दिया है जिसमें कहा गया है ''किसी व्यय को भारत के राजस्व पर भारित घोषित करना अथवा ऐसे किसी व्यय की राशि की वृद्धि'' इस तरह व्यय में वृद्धि की बात हो तभी वह कोई विधेयक मुद्रा विधेयक समझा जायेगा। माननीय मित्र श्री कामत यह चाहते हैं कि 'वृद्धि' शब्द की जगह 'परिवर्तन' शब्द रखा जाये। मैं उनसे कहूंगा कि वह मूल योजना पर गौर करें और फिर मसौदा बनाने वालों की योजना को समझ लेने के बाद भी अगर वह यहां यह परिवर्तन लाना

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

चाहते हैं तो वह इस पर जोर दें पर पहले उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि इसके पीछे मूल योजना क्या है? अनुच्छेद 97 में कहा गया है कि—इस संविधान के अनुच्छेद 90 के खण्ड (1) के (क) से (च) तक के पदों में उल्लिखित विषयों में से किसी के लिए प्रावधान करने वाला विधेयक अथवा संशोधन राष्ट्रपति के अभिस्ताव के बिना पुर:स्थापित अथवा प्रस्तावित न किया जायेगा...''

व्यय की वृद्धि के सम्बन्ध में जो मुद्रा विधेयक होगा उसके लिये भी राष्ट्रपति का अभिस्ताव आवश्यक है। इस अनुच्छेद के परन्तुक में कहा गया है ''किसी कर के घटाने अथवा उत्सादन के लिए प्रावधान करने वाले किसी संशोधन के प्रस्ताव के लिए इस खण्ड के अधीन किसी अभिस्ताव की अपेक्षा न होगी''। वर्तमान विधि के अनुसार भी आमतौर पर यही कायदा रहा है कि किसी मुद्रा या वित्त सम्बन्धी विधेयक में कर को घटाने का या उठाने का संशोधन पेश किया जाता है तो उसके लिये गवर्नर जनरल की सिफारिश जरूरी नहीं हुआ करती। इसी व्यवस्था का अनुकरण यहां भी किया गया है। कर के लगाने से समाज पर भार पड़ता है इसलिए उसके बारे में राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी होती है पर जब किसी कर को घटाने या उठाने का प्रश्न है तो उसके लिए सिफारिश की जरूरत नहीं है। यह प्रश्न सर्वथा सभा की मरजी पर निर्भर करता है और इसके लिए राष्ट्रपति द्वारा इस जांच की जरूरत नहीं होती कि आया वह प्रस्ताव समाज के हित में है या उसके प्रतिकूल। यहां मूल में योजना यही है। अनुच्छेद 97 का पहले वाला अंश संशोधन और विधेयक दोनों के लिए ही लागू है पर परन्तुक केवल संशोधन पर ही लागू होता है। अत: किसी कर की राशि में कमी करने वाला या उसका उत्सादन करने वाले विधेयक के लिए राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी है। बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के वह उपस्थित ही नहीं किया जा सकता । और ऐसे विधेयक के लिये भी जो किसी चालू कर को बढ़ाना चाहता हो या किसी व्यय को बढ़ाना चाहता हो, राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी आवश्यक है। किन्तु व्यय को बढ़ाने वाले विधेयक तथा व्यय को घटाने या उठाने वाले विधेयक में एक अन्तर है और वह यह है। व्यय को बढ़ाने वाला विधेयक केवल लोक सभा में ही पुर:स्थापित किया जा सकता है किन्तु व्यय को कम करने वाला या उसे उठा देने वाला विधेयक किसी भी सभा में उपस्थित किया जा सकता है क्योंकि ऐसे विधेयकों के सम्बन्ध में दोनों ही आगारों को अधिकार क्षेत्र प्राप्त है। अगर किसी कर को घटाने या उठाने का प्रश्न है तो तद्विषयक विधेयक किसी भी आगार में उपस्थित किया जा सकता है, पर मेरे माननीय मित्र श्री कामत चाहते हैं कि यह शक्ति केवल लोक सभा तक ही सीमित रहे। व्यय को बढ़ाने का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिस पर यह विचार करना होगा कि आया भारत उस वृद्धि को बरदास्त कर सकता है या नहीं। कोई व्यय भारत के राजस्व पर भारित हो या न हो, यह ऐसा प्रश्न है कि जिस पर छान-बीन करना जरूरी है क्योंकि कोई व्यय जो कि देश के राजस्व पर भारित होगा उसके लिए सभा की राय अपेक्षित नहीं है जोकि आमतौर पर सभा उस पर बहस मुबाहिसा कर सकती है पर सभा का मतदान उसके लिए अपेक्षित नहीं है। ऐसी सूरत में सभा के अधिकार पर जो प्रतिबंध है उसे कर या व्यय की वृद्धि तक ही सीमित रखना क्या ठीक न होगा। आप तो वृद्धि और कमी दोनों ही विषयों में उसके अधिकार को उठा देना चाहते हैं। ससम्मान मैं यह कहूंगा कि मा. मित्र ने इस खंड के दायरे को समझने

में भूल की है और अब व्यर्थ ही वह दोनों आगारों के अधिकार क्षेत्र पर प्रतिबंध लगाना चाहते हैं और ऐसे विषय के बारे में जिसमें कि केवल मुद्रा सम्बन्धी प्रश्न में तथा व्यय या कर वृद्धि के सम्बन्ध में ही अधिकार-क्षेत्र लोक सभा तक सीमित रखा गया है। इसलिए श्री कामत के संशोधन से मैं सर्वथा असहमत हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक ज्ञातव्य है, श्रीमान्। क्या माननीय सदस्य मुझे वह अनुच्छेद बतायेंगे जिसमें यह प्रावधान है कि कोई विधेयक जो व्यय को बढ़ाने या उठाने की बात कहता है वह किसी भी आगार में उपस्थित किया जा सकता है। अनुच्छेद 97 के परन्तुक में तो कर को घटाने या उठाने की बात कही गई है और राजस्व अथवा व्यय की अन्य मदें उसमें नहीं हैं। समस्त योजना कुछ अस्पष्ट है और मैं नहीं जानता कि श्री आयंगर की दृष्टि में यह योजना स्पष्ट कैसे दिखती है। अगर वह मुझे समझा दें तो मैं अपने संशोधन के सम्बन्ध में अवश्य ही विचार करूंगा।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** जहां तक कि संशोधन का सम्बन्ध है, विधेयक सम्बन्धी संशोधन बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के ही वह पेश किया जा सकता है अगर उसमें किसी कर को घटाने या उठाने की बात है। पर विधेयक के लिये, विशेषतः जबकि उसमें कर को घटाने की बात है, राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक है। पर अगर उसमें कर बढ़ाने की बात है तो विधेयक मुद्रा विधेयक के रूप में ही आयेगा। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 97 को देखिये। पर जिसमें कर घटाने की बात कही गई है वह विधेयक मुद्रा विधेयक है ही नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** वह कौन से प्रावधान हैं जिसके अनुसार आप यह कह रहे हैं?

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** विधेयक तभी मुद्रा विधेयक हो सकता है जबकि उसमें राशि वृद्धि की बात कही गई है। अगर वह राशि वृद्धि से संबंध नहीं रखता है तो वह मुद्रा विधेयक नहीं है और इसलिये वह अनुच्छेद 97 के अन्तर्गत आ जाता है और उसके लिये राष्ट्रपति की सिफारिश अपेक्षित भी हो सकती है और अनपेक्षित भी। माननीय मित्र श्री कामत यह चाहते हैं कि इसके लिये राष्ट्रपति की सिफारिश होनी ही चाहिये और साथ ही वह मुद्रा विधेयक भी माना जाना चाहिए। वर्तमान वैधानिक व्यवस्था के अनुसार मुद्रा विधेयक के संबंध में केवल एक ही आगार को अधिकार क्षेत्र प्राप्त है।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि मैं बीच में हस्तक्षेप कर रहा हूं, पर मैं प्रश्न का स्पष्टीकरण चाहता हूं। माननीय मित्र का ध्यान मैं अनुच्छेद 97 (1) के परन्तुक की ओर आकृष्ट करूंगा जिसका कि आपने अभी हवाला दिया है। परन्तुक में कहा गया है कि ऐसे विधेयक के लिए जिसमें कर को घटाने या उठाने की बात है राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी नहीं होगी। पर और खर्चों का क्या होगा, उनके घटाने या उठाने के सवाल के बारे में क्या किया जायेगा? इस योजना में इन सब बातों का कोई खुलासा नहीं है।

***श्री अनन्तशयनम् आयंगरः** उस हालत में विधेयक न तो मुद्रा विधेयक समझा जायेगा और न वित्त विधेयक। मुद्रा विधेयक तो वही विधेयक माना जायेगा जो अनुच्छेद 90 के खंड (1) के (क) से (च) तक के उपखंडों के अंतर्गत आता हो। इस तरह केवल यही विधेयक मुद्रा विधेयक या वित्त विधेयक माना जायेगा जिसका संबंध व्यय की राशि की वृद्धि से है। अगर उसमें राशि को बढ़ाने का प्रश्न नहीं है अर्थात् उसमें राशि को

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

बढ़ाने या उठाने का प्रश्न है तो वह मुद्रा विधेयक नहीं समझा जायेगा। यही कारण है कि उसके संबंध में राष्ट्रपति की सिफारिश जरूरी समझते हैं। यदि यह परन्तुक केवल कर से संबंध रखता है, जैसा कि मैं समझ रहा हूं, तो कर में वह सभी बातें तो नहीं आती जिनका उल्लेख (क) से (च) तक के उपखंडों में दिया गया है। मैं यह देखता हूं कि 'कर' शब्द यहां अन्य प्रावधानों से भिन्न अर्थ में व्यवहृत किया गया है। इसलिए परन्तुक लाजिमी तौर पर कर विषयक विधेयक या प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (1) (क) में प्रावहित किसी व्यय की राशि को घटाने या उठाने से संबंध रखने वाले संशोधन के लिए लागू नहीं होता। ऐसे विधेयक तो किसी भी आगार में बिना किसी सिफारिश के पेश किये जा सकते हैं। अत: अब प्रश्न जो उठता है वह यह है कि कर की राशि को घटाने या उठाने वाले विधेयक भी क्या उसी श्रेणी में रख दिये जायें जिसमें कि राशि-वृद्धि करने वाले विधेयक हैं। इस संबंध में मेरा कहना तो यह है कि किसी कर को घटाने या उठाने से संबंध रखने वाले मामलों में किसी भी आगार के अधिकार क्षेत्र को सीमित करना ठीक नहीं है। ऐसे विधेयकों के संबंध में जिनमें रकम को बढ़ाने की बात है, एक मात्र अधिकार-क्षेत्र केवल लोक सभा को ही प्राप्त है और अन्य विधेयक किसी भी आगार में स्वच्छन्दता पूर्वक पेश किये जा सकते हैं। मैं इस आयंत्रण से सहमत नहीं हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के खंड (2) में यह कहा गया है कि: ''कोई विधेयक केवल इसी कारण से मुद्रा विधेयक न समझा जायेगा कि वह अर्थ दंड या अन्य आर्थिक शास्ति के आरोपण का, अथवा अनुज्ञाओं के लिए शुल्क की या की हुई सेवाओं के लिए शुल्क की, अभियाचना का या देने का प्रावधान करता है, अथवा इस कारण से कि वह किसी स्थानीय प्राधिकारी अथवा निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनार्थ किसी कर के आरोपण, उत्सादन, परिहरण, परिवर्तन या आनियमन का प्रावधान करता है।'' इसके अनुसार, श्रीमान्, वह विधेयक, जिसमें किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा किसी कर के आरोपण, उत्सादन या परिवर्तन का प्रावधान किया गया है, मुद्रा विधेयक नहीं होगा। मैं खुद भी यही महसूस करता हूं, जैसा कि अभी श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने बताया है, कि वह विधेयक जिसमें किसी कर को बढ़ाने का या कोई नया कर लगाने का प्रावधान है, मुद्रा विधेयक होगा पर यहां उस खंड का अभिप्राय यह है कि ऐसा विधेयक मुद्रा विधेयक न होगा।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं आपको कुछ गलत फहमी हो रही है। इस खंड से तो स्थानीय निकाय को करारोपण का अधिकार मात्र प्राप्त होता है। उससे कर थोड़े ही मिलता है, बल्कि कर लगाने का अधिकार मिलता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह तो मैं जानता हूं, श्रीमान्। मेरा यह ख्याल है कि वह विधेयक भी, जिसके द्वारा किसी स्थानीय निकाय को कर लगाने का अधिकार मिलता है, मुद्रा-विधेयक माना जाना चाहिये। वस्तुत: प्रो. के.टी. शाह का संशोधन जिसमें कि अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (क) में ''शुल्क, भार दर या अन्य किसी रूप के राजस्व, आय या सरकारी प्राप्ति अथवा सरकारी व्यय'' शब्दों को जोड़ने की बात कही गई है, वह मेरी समझ से कहीं अच्छा प्रावधान होगा। उपखंड (क) में केवल इतना ही कहा गया है कि—''किसी कर का आरोपण, उत्सादन, परिहरण, परिवर्तन अथवा आनियमन''

उसमें ''शुल्क, भार दर, उद्ग्रहण या किसी अन्य रूप के राजस्व, आय या प्राप्ति'' ये शामिल नहीं है। माननीय कानून मंत्री से, जो कि इस विधेयक के कर्ताधर्ता हैं, मैं यह अनुरोध करूंगा कि इस उपखंड (क) में वह समुचित संशोधन होने दें। मैं यह महसूस करता हूं कि उस खंड (2) से लोक सभा की थोड़ी बहुत शक्ति कम हो जाती है और इससे शासन के लिये यह लाजिमी हो जाता है कि वह ऐसे विधेयकों को, जो कि वस्तुतः मुद्रा विधेयक हैं, ऊपर वाले आगार के समक्ष जरूर रखे। मैं नहीं समझता कि ऐसे मामलों के संबंध में ऐसा करना उचित होगा। मैं यह महसूस करता हूं कि अनेक स्थानीय निकायों को आज कुछ भी राजस्व नहीं मिलता है। बहुत से बड़े-बड़े कार्यों के लिये जो कि उनको करने हैं, उनके पास आज कोई भी निधि नहीं है। मैं खुद एक बड़े जिले के बोर्ड का सदस्य हूं और यह महसूस करता हूं कि जब तक कि स्थानीय निकायों को और राजस्व नहीं प्राप्त होता है, वे अपने कार्यक्रम को पूरा कर ही नहीं सकते। हम अपने संसद में तो करोड़ों रुपये का व्यय दो तीन घंटे के अन्दर पास कर देते हैं पर ये स्थानीय निकाय अपने समूचे वर्ष में चन्द लाख रुपये भी नहीं इकट्ठा कर पाते जिससे कि वे अपनी मोटी-मोटी जरूरियात को जैसे स्कूल बनाना, ग्राम्य सड़कों की मरम्मत करना और इसी तरह के अन्य कई प्रतिदिन के काम में आने वाली आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। इन सब बातों के बावजूद भी आप यहां प्रावधान यह कर रहे हैं कि ऐसे विधेयक जिनसे स्थानीय निकायों को कर लगाने का अधिकार प्राप्त होता है, मुद्रा-विधेयक नहीं समझे जायेंगे। इससे तो ऐसे विधेयकों के पास होने में बड़ी देर लग जायेगी। मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद में कुछ ऐसा संशोधन होना चाहिये जिससे कि संबंधित विधेयक के पास होने में बिलम्ब होने के कारण स्थानीय निकायों को असुविधा न उठानी पड़े।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** प्रस्तुतः अनुच्छेद संबंधी बहस को देखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अभी इस पर हमें और गौर करना पड़ेगा। मैं आपसे अनुरोध करूंगा, अध्यक्ष महोदय, कि इस पर अभी आप राय न लें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि संशोधन नं. 1669 में 'only' (ही) शब्द के बारे में जो सुझाव हैं उस पर हमें विशेष रूप से विचार करना चाहिये। यह शब्द यहां बिल्कुल मिसफिट है।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के संबंध में कुल चार संशोधन पेश हुए हैं। पहला संशोधन है नं. 1669 जिसमें कहा गया है कि 'only' (ही) शब्द यहां से हटा दिया जाये। श्री नजीरुद्दीन अहमद चाहते हैं कि इस संशोधन की अहमियत पर खासतौर पर विचार किया जाये। मसौदा समिति इस पर विचार कर सकती है। समूचा अनुच्छेद अभी विचारार्थ अभी यों ही छोड़ दिया जाता है।

अनुच्छेद 91

***अध्यक्षः** अब हम आगे के अनुच्छेद 91 को लेते हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 विधान का अंग माना जाये।''

(संशोधन 1679 पेश नहीं किया गया।)

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अनुच्छेद 91 में 'either that he assents to the Bill or he withholds assent therefrom' (वह विधेयक पर अनुमति देता है या अनुमति रोक लेता है) शब्दों की जगह 'that he assents to the Bill' (कि वह विधेयक पर अनुमति देता है) शब्द रखे जायें और अनुच्छेद के परन्तुक के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:—

'and if the Bill is passed again by the House with or without amendment and presented to the President, the President shall not withhold assent therefrom.' ''

(और अगर विधेयक, संशोधन सहित या बिना संशोधन के पुन: सभा द्वारा पास हो जाता है और राष्ट्रपति के सामने रखा जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति नहीं रोकेगा।)

इस संशोधन को पेश करने में मैं यहां अच्छे से अच्छे व्यक्तियों का ही पथानुसरण कर रहा हूं क्योंकि खुद मसौदा समिति का भी इसी आशय का एक संशोधन है जो आगे चलकर आयेगा। संसद द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक पर अपनी अनुमति रोकने का जो राष्ट्रपति को अधिकार है उसको इस संशोधन के द्वारा उठा देना चाहता हूं। इस संबंध में मेरा इतना ही मन्तव्य है कि हमारे प्रधान की यही स्थिति है जो इंग्लैंड में सम्राट की है और जब सम्राट को संसद द्वारा पास किये विधेयक पर अनुमति रोकने का अधिकार नहीं प्राप्त है तो यहां भी वही होना चाहिए। सुतरां यह संशोधन सर्वथा उचित है।

जहां तक कि मेरे दूसरे संशोधन का संबंध है, बिना उसके यह परन्तुक अपूर्ण ही रह जाता है। मान लीजिये राष्ट्रपति किसी विधेयक को पुन: विचारार्थ वापिस लौटा देता है और संसद उसके बारे में किसी निर्णय पर पहुंचती है तो उस हालत में बिना इस संशोधन के समूची कार्यवाही अपूर्ण और अधूरी रह जायेगी। इस संबंध में मसौदा समिति का भी यही दृष्टिकोण है, इसलिए यह संशोधन भी स्वीकृत होना चाहिए।

(संशोधन नं. 1681, 1682, 1683 और 1684 नहीं पेश किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

''अनुच्छेद 91 के परन्तुक में 'अधिक से अधिक 6 सप्ताह में' (not later than six weeks) शब्दों की जगह 'यथासंभव शीघ्र' (as soon as possible) शब्द रखे जायें।''

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** इस संशोधन पर मेरा एक संशोधन है जो है नं. 94।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि यह संशोधन सिर्फ अनुच्छेद की रचना यानी उसके मसौदे से ही संबंध रखता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** पर अमल में इससे फर्क जरूर पड़ेगा।

***अध्यक्षः** तो आपका यह ख्याल है कि इससे अभिप्राय में फर्क पड़ेगा?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** हां, श्रीमान्। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

''संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1685 में अनुच्छेद 91 के परन्तुक के लिए प्रस्तावित शब्द 'possible' के लिये 'may be' शब्द रखे जायें।''

इस संबंध में मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि इस संशोधन से सार में अन्तर आयेगा। परन्तुक में यह कहा गया है कि:—

''विधेयक के उपस्थापन के पश्चात् यथासंभव शीघ्र, राष्ट्रपति उसे लौटा देगा... इत्यादि'' (The President may, as soon as possible, after presentation of the Bill, return the Bill, etc.)। यहां मैं यह चाहता हूं कि ''as soon as possible'' की जगह ''as soon as may be'' कर दिया जाये। अगर हम इसे इसी रूप में रहने देते हैं जिसमें कि डा. अम्बेडकर इसे रखना चाहते हैं तो इससे समय का व्यवधान नहीं मिलता है। ''as soon as possible'' का मतलब यह हुआ कि शीघ्र ही वह लौटा दिया जायेगा यहां possible शब्द से यह मतलब होगा कि जहां तक शारीरिक रूप से शक्य है वह फौरन उसे लौटा देगा। इस 'possible' शब्द के रहने से राष्ट्रपति को समय का किंचिन्तमात्र भी व्यवधान न मिल पायेगा। पर ''may be'' के रहने से उसे समय में समुचित व्यवधान मिल जायेगा। ''may be'' रहने से यह मतलब होगा कि जहां तक कि उचित रूप से व्यवहार्य हो। यही एक मात्र कारण है कि जिसके लिए मैंने यह संशोधन रखा है।

(संशोधन नं. 1686 पेश नहीं हुआ।)

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 1687, मेरे ख्याल से केवल शाब्दिक है। संशोधन नं. 1688 का आशय भी मेरी समझ से वही है जो कि श्री लोकनाथ मिश्र के संशोधन का है जिसे उन्होंने अभी-अभी पेश किया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** थोड़ा सा भाषा संबंधी अन्तर दोनों में है। मेरे ख्याल में डा. अम्बेडकर का प्रस्ताव ज्यादा अच्छा होगा।

***अध्यक्षः** मैं इस पर मत ले लूंगा। इसे पेश करने की जरूरत नहीं है।

अब आता है संशोधन नं. 1687। इसका भी वही आशय है जो कि डा. अम्बेडकर के संशोधन नं. 1688 का है। हम मान लेते हैं कि यह उपस्थित किया जा चुका है। क्या इसे पेश करना जरूरी है? अगर इसमें कुछ अन्तर है तो इसे पेश किया जा सकता है।

***श्रीमती बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव रखती हूं, श्रीमान्, कि:

> ''अनुच्छेद 91 में पहले परन्तुक के बाद निम्नलिखित दूसरा परन्तुक जोड़ा जाये:
>
> 'पर और शर्त यह है कि राष्ट्रपति यह घोषित कर दे कि विधेयक पर वह अपनी अनुमति रोकता है या जब वह विधेयक पर अथवा उसके किसी निर्दिष्ट प्रावधान पर अथवा अपनी किसी सिफारिश पर पुनर्विचार का अनुरोध करते हुए उसे लौटा दे तब, संसद के आगारों को, उसकी सिफारिशों पर पुनर्विचार कर लेने के बाद, उस विधेयक को, किसी संशोधन या बिना संशोधन सहित पास कर देना होगा और राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके पास लौटा देना होगा और राष्ट्रपति तब उस पर अनुमति नहीं रोकेगा।' ''
>
> (Provided further that if after the President has declared that he withholds assent from the Bill or has returned the Bill with a request for reconsideration of the Bill or of a specified provision thereof, or of any amendment by him, the Houses of Parliament should, after reconsideration of his recommendations pass the Bill again with or without an amendment and return it to him for his assent, he shall not withhold his assent therefrom.)

विधेयक जब पहली बार राष्ट्रपति के सम्मुख रखा जाये तो वह उस पर क्या कार्रवाई करे, उसकी व्यवस्था अनुच्छेद 91 के प्रस्तुत प्रावधान में दी हुई है। किन्तु यहां इसका खुलासा नहीं किया गया है कि उस सूरत में क्या जाप्ता बरता जायेगा जबकि राष्ट्रपति की किसी सिफारिश को बिना मंजूर किये ही अगर संसद विधेयक को पुन: उसके पास लौटा दे। क्या आपका यह अभिप्राय है कि उस हालत में राष्ट्रपति अपने सुझावों पर पुनर्विचार करने के लिए उसे संसद को फिर लौटा देगा? इसका मतलब तो यह होगा कि विधेयक के संबंध में अनावश्यक विलम्ब होगा और इसका यह भी मतलब होगा कि विधेयक एक बार से अधिक भी राष्ट्रपति को लौटाया जा सकता है। मैंने इसी उद्देश्य से यह संशोधन रखा है कि यह अस्पष्टता जाती रहे और यह स्पष्ट हो जाये कि राष्ट्रपति किसी विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ केवल एक बार ही संसद को लौटा सकता है और अगर संसद राष्ट्रपति द्वारा सुझाये गये संशोधनों को नहीं स्वीकार करती है तो वह विधेयक को पुन: राष्ट्रपति को लौटा देगी और उस सूरत में वह विधेयक को फिर दुबारा संसद को विचारार्थ नहीं लौटा सकता है। हाउस आफ कामन्स में, अगर कोई विधेयक दो बार पास हो जाता है तो स्वत: विधि का रूप ग्रहण कर लेता है चाहे हाउस आफ लार्ड्स भले ही इससे असहमत हो। यही बात अमेरिका में भी है। वहां अगर कोई विधेयक कांग्रेस के दो तिहाई बहुमत से पास हो जाता है तो वह कानून बन जाता है चाहे प्रेसीडेंट उसे

अस्वीकार ही क्यों न कर दे। इस अनुच्छेद में भी कुछ ऐसी ही व्यवस्था रहनी चाहिये ताकि अनावश्यक विलम्ब न हो। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करती हूं।

(संशोधन नं. 1690 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 1691 और अन्य संशोधनों के अन्दर आ जाता है जो कि पेश किये जा चुके हैं। अब लिया जाता है संशोधन नं. 1692।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

''निम्नलिखित नया खंड अनुच्छेद 91 में जोड़ा जाये:

'(2) अगर संसद राष्ट्रपति की सिफारिशों को नहीं स्वीकार करती है तो विधेयक फिर राष्ट्रपति को लौटा दिया जायेगा और वह यह घोषणा करेगा कि आया वह विधेयक पर अपनी अनुमति देता है या नहीं। अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता है तो लोक सभा स्वत: विघटित हो जायेगी और शीघ्र ही नया निर्वाचन किया जायेगा। अगर नये निर्वाचन में पुन: उसी दल का बहुमत रहता है जो कि विघटन के समय अधिकारारूढ़ था तो राष्ट्रपति अपना पद रिक्त कर देगा और विधेयक संसद का कानून बन जायेगा।'

'(2) If the House do not accept the recommendations of the President the Bill shall again be presented to the President, and the President shall declare either that he assents to the Bill or that he does not assent to the Bill. If the President does not assent to the Bill, the House of the People shall automatically dissolve itself, and a fresh election shall be held immediately. If the party that was in power at the time of the dissolution is again returned in majority, the President shall vacate his office and the Bill becomes an Act of Parliament.'

अपनी बात कहने के पहले, श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से अनुच्छेद 91 और उसके परन्तुक को पढ़कर सुना देता हूं। अनुच्छेद 91 का रूप यों है:—

''जब संसद के दोनों आगारों द्वारा कोई विधेयक पारित कर दिया गया है तो वह राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जायेगा और राष्ट्रपति घोषित करेगा कि वह विधेयक पर या तो अनुमति देता है या अनुमति रोक लेता है;

पर राष्ट्रपति अनुमति के लिये अपने समक्ष विधेयक उपस्थापन के पश्चात् अधिक से अधिक छ: सप्ताह में, उस विधेयक को, यदि वह मुद्रा विधेयक नहीं है, तो आगारों को संदेश के साथ लौटा सकेगा और इस संदेश में प्रार्थना कर सकेगा

[श्री तजम्मुल हुसैन]

कि वे इस विधेयक पर अथवा इसके किसी उल्लिखित प्रावधान पर पुनर्विचार करें और विशेषतया उन संशोधनों के पुर:स्थापित करने की वांछनीयता पर विचार करे जिनको उसने अपने संदेश में अभिस्तावित किया हो, और आगार विधेयक पर तद्नुसार विचार करेंगे।''

अनुच्छेद 91 में यह कहा गया है कि स्वीकृत हो जाने पर विधेयक राष्ट्रपति के सामने रखा जायेगा और उसे यह अधिकार है कि उस पर अनुमति दे या रोक ले। परन्तुक में कहा गया है कि अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता है तो वह उसे पुनर्विचारार्थ लोक सभा को लौटा देगा और लोक सभा उस पर फिर विचार करेगी। मेरा कहना यह है कि मान लीजिये लोक सभा उस पर पुनर्विचार नहीं करती है अथवा राष्ट्रपति की सिफारिशों को नहीं मंजूर करती है तो उस सूरत में क्या होगा? ऐसी अवस्था के लिए इस अनुच्छेद में कोई व्यवस्था नहीं की गई है। ऐसी अवस्था की व्यवस्था के लिये ही मैंने प्रस्तुत संशोधन पेश किया है। इसमें यह कहा गया है कि अगर लोक सभा विधेयक पर पुनर्विचार न करे या राष्ट्रपति की सिफारिशों को नामंजूर कर तो विधेयक पुन: राष्ट्रपति को लौटा दिया जायेगा। उस हालत में राष्ट्रपति संसद द्वारा भेजे गये विधेयक को स्वीकार करेगा और अगर वह उसे स्वीकार नहीं करता है तो ब्रिटिश विधान के अनुसार, जैसा कि मैं उसे समझता हूं, लोक सभा स्वत: अपना विघटन कर देगी और नया निर्वाचन होगा। नये निर्वाचन में अगर फिर उसी दल का बहुमत रहता है जो कि पहले अधिकारारूढ़ था तो—अंग्रेजी विधान के अनुसार तो सम्राट को अपना पद त्याग करना होगा—उस सूरत में मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति या तो विधेयक को स्वीकार करे या फिर यह समझा जाये कि उसने अपना पद त्याग दिया है और विधेयक स्वत: कानून बन जायेगा। मेरे संशोधन का यही मतलब है। मैं समझता हूं कि अपना यह संशोधन मैं ब्रिटिश विधान के अनुसार ही यहां पेश कर रहा हूं जिसका कि हमने यहां बहुत कुछ अनुकरण किया है। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह मेरे संशोधन को स्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** सभी संशोधन पेश हो चुके हैं। अब मूल अनुच्छेद और संशोधनों पर बहस की जा सकती है।

***डा. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, स्पष्टत: इस अनुच्छेद में, इसकी मूल वाक्य रचना को देखते हुए, कम से कम दो त्रुटियां तो अवश्य थीं जैसा कि डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस संशोधन से ही प्रकट है कि ''अधिक से अधिक 6 सप्ताह में'' (not later than six weeks) शब्दों की जगह ''यथासंभव शीघ्र'' (as soon as possible) शब्द रखे जायें। दूसरी त्रुटि जो इसमें सोची गई थी और जिसे दूर करने के लिए अब एक प्रावधान रखा जा रहा है वह यह है कि अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति रोक लेता है तो उस सूरत में क्या होगा? अब जो प्रावधान रखा जा रहा है उसका अभिप्राय यह है कि जब विधेयक दूसरी बार राष्ट्रपति के सम्मुख रखा जायेगा तो उसके लिए यह लाजिमी होगा कि वह उस पर अपनी अनुमति दे। विधेयक जब दुबारा उसके पास पहुंचेगा तो उस पर अपनी अनुमति नहीं रोक सकता है। जहां तक कि पहले संशोधन यानी

डा. अम्बेडकर के संशोधन का संबंध है, मैं नहीं कह सकता कि उसका मंजूर किया जाना बहुत जरूरी है। विचारणीय प्रश्न यह है कि आया यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि राष्ट्रपति उस पर यथासम्भव शीघ्र अपनी अनुमति देगा या हमें कोई अवधि निर्धारित कर देनी चाहिये जिसके अन्दर राष्ट्रपति अपनी अनुमति दे ही दे। मैं समझता हूं कि ''अधिक से अधिक 6 सप्ताह में'' ये शब्द अगर यों ही रहने दिये जाते हैं तो राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह यथासंभव शीघ्र उस पर अपना निर्णय दे दे और किसी भी हालत में वह 6 सप्ताह से ज्यादा समय न ले। अतः प्रस्तावित परिवर्तन को मैं बिल्कुल उचित समझता हूं।

जहां तक कि दूसरे संशोधन का संबंध है, मैं इसे बहुत जरूरी समझता हूं कि उस अवस्था के लिए जबकि राष्ट्रपति अनुमति रोक लेता है, यहां कोई न कोई प्रावधान होना ही चाहिये। यह तो मान ही लेना चाहिये कि राष्ट्रपति सदा प्रधानमंत्री द्वारा दिये गये परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा और अगर लोक सभा द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक को अधिकारारूढ़ दल का समर्थन नहीं प्राप्त है तो उस सूरत में विधेयक के पास होने की कोई संभावना ही नहीं रहती है। इसलिए विधेयक पर अनुमति रोकने का प्रश्न तब तक उठेगा ही नहीं जब तक कि राष्ट्रपति अपने को ऐसी परिस्थिति में न पाता हो, जहां अधिकारारूढ़ दल की सिफारिशों से वह मतभेद रखता है और उनसे सहमत न हो। ऐसी अवस्था में यह मान लेना सही होगा कि प्रधानमंत्री या तत्कालीन शासन के विचारों और राष्ट्रपति के विचारों में मेल नहीं बैठ रहा है। ऐसे मतभेद की अवस्था के लिए कोई न कोई समाधान सभा को सोचना ही होगा और उसे यहां पर स्पष्ट प्रावधान रखना ही होगा जिसके प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति के बीच मतभेद की कठिनाई को हल किया जा सके। मेरा ख्याल है कि जहां तक कि उपरोक्त स्थिति का संबंध है, प्रस्तावित संशोधन से उसका समाधान हो जाता है। इसलिये मैं इसका समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री मिश्र ने जो संशोधन (नं. 1680) पेश किया उसका समर्थन करने के लिये तथा अपने विद्वान मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन नं. 1685 का विरोध करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। मेरे माननीय मित्र डा. देशमुख ने श्री मिश्र के संशोधन का पांडित्यपूर्ण ढंग से समर्थन कर दिया है और उस पर मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं। जहां तक कि माननीय विद्वान मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का संबंध है मैं यह जरूर कहूंगा कि उन्होंने सभा के समक्ष उसे रखकर बुद्धिमत्ता का काम नहीं किया है। इससे मुझे इस कथन का स्मरण हो आता है कि ''होमर की प्रतिमा भी कभी-कभी सो जाया करती है''। मेरा ख्याल है कि डा. अम्बेडकर यहां धोखा खा गये। वह एक अनुभवी व्यक्ति हैं। न केवल एक अनुभवी पब्लिक मैन ही वह हैं बल्कि एक अनुभव संपन्न राज्य मंत्री भी हैं। उसके जैसा व्यक्ति एक निश्चित अवधि और ''यथासंभव शीघ्र'' इसमें कितना बड़ा अन्तर है यह न समझ सके, यह बड़ा ही आश्चर्यप्रद सा मुझे लगता है। मानव स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि अगर कर्तव्य और सेवा के लिए उस पर कोई अंकुश नहीं रहता है तो वह सदा ही टालमटोल और दीर्घ सूत्रता की प्रवृत्ति अपना लेता है। हमारे विज्ञ मनीषी इस प्रवृत्ति को समझते थे। इसके संबंध में उन्होंने कहा है कि:

आलस्यो हि मनुष्याणाम्।
शरीरस्थो महान् रिपुः।

[श्री एच.वी. कामत]

यानी आलस्य मनुष्यों का एक बड़ा शारीरिक शत्रु है। कर्तव्य और सेवा भावना भरकर हमें टाल-मटोल और दीर्घ सूत्रता की प्रवृत्ति को विनष्ट करना ही होगा। हम इस बात को निश्चित नहीं मान सकते कि भारतीय लोक राज्य का प्रत्येक राष्ट्रपति सदा कर्तव्य और सेवा के उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर ही अपना काम करेगा। अवश्य ही हम आशा करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि ऐसा ही हो, पर इसकी कोई गारंटी नहीं है कि ऐसा ही होगा। इसलिए मेरी राय में यह बहुत जरूरी है कि इस तरह की अवस्था के लिए हम विधान में एक निश्चित अवधि अवश्य निर्धारित कर दें। मुझे यकीन है कि एक मंत्री की हैसियत से डा. अम्बेडकर जरूर जानते होंगे कि सरकारी सचिवालय की विभिन्न फाइलें 'इमीजियेट', 'अर्जेंट' या 'अर्ली' (early) आदि लेबुलों के साथ अरसे तक इधर से उधर ठोकर खाती रहती हैं। जिन फाइलों पर 'इमीजियेट' लेबुल लगा है वह मंत्री महोदय के पास एक दिन में पहुंचती हैं और जिस पर 'अर्जेंट' का लेबुल लगा है वह दो दिन में और जिस पर 'early' का लेबुल लगा है वह तो दो तीन महीने तक सचिवालय में ही दबी पड़ी रह जाती है। और फिर वर्तमान सरकार ने 'विचारार्थ' और ''क्रियात्मक विचारार्थ'' (consideration and active consideration) जैसे नये लेबुल भी निकाल रखे हैं ऐसी सूरत में मैं चाहता हूं कि ''as soon as possible'' शब्दों के रखने से जो भी कठिनाइयां उपस्थित हो सकती हों वह जाती रहें। कोई नहीं जानता कि ''as soon as possible'' का मतलब क्या है? हमें मालूम है कि असेम्बली में मंत्रीगण प्रश्नों के उत्तर में आदतन ''as soon as possible'' कह दिया करते हैं। जब कभी यह पूछा जाता है कि अमुक काम कब तक हो जायेगा तो उत्तर यही मिलता है कि ''as soon as possible'' या यह कि ''very soon'' (शीघ्र ही)। यह पद संहति सर्वथा अस्पष्ट है, प्रयोजन शून्य है और इसका कोई अर्थ नहीं है। इस पद संहति को विधान में और खास करके इस तरह के अनुच्छेद में, जहां हम यह निर्धारित कर रहे हों कि राष्ट्रपति अमुक अवधि के भीतर फला काम कर ही देगा, हमें स्थान ही नहीं देना चाहिये। हम यह अनुच्छेद ही क्यों रख रहे हैं? इसीलिये कि कोई विधेयक राष्ट्रपति के सचिवालय में—और मैं जानता हूं कि राष्ट्रपति का सचिवालय अन्य सचिवालयों से कुछ भिन्न नहीं होगा—त्रिशंकु की तरह लटका न रह जाये। इसलिए मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करूंगा कि वे अपना संशोधन वापस ले लें। इससे कोई लाभ नहीं है। मैं अनुरोध करूंगा कि यह अनुच्छेद ज्यों का त्यों पास किया जाये। मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध और श्री मिश्र के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर राय लेता हूं। क्या आप कुछ कहना चाहते हैं, डा. अम्बेडकर?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्। मैं नहीं समझता कि जवाब में कुछ कहना जरूरी है।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 1680 और 1688 दोनों एक ही आशय के हैं पर नं. 1688 की वाक्य रचना जरूर कुछ अच्छी है। मैं पहले नं. 1688 पर ही राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 के परन्तुक के आगे निम्नलिखित अंश और जोड़ दिया जाये:

'और अगर विधेयक संशोधन सहित या बिना संशोधन के पुन: सभा द्वारा पास हो जाता है तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति नहीं रोकेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इससे संशोधन 1689 पर रुकावट आ जाती है क्योंकि दोनों का आशय एक ही है। इस पर राय लेने की जरूरत नहीं है।

अब मैं संशोधन 1692 को लेता हूं जिसे श्री तजम्मुल हुसेन ने पेश किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

'(2) अगर संसद राष्ट्रपति की सिफारिशों को नहीं स्वीकार करता है तो विधेयक फिर राष्ट्रपति को लौटा दिया जायेगा और वह यह घोषणा करेगा कि आया वह विधेयक पर अपनी अनुमति देता है या नहीं। अगर राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति नहीं देता है तो लोक सभा स्वत: विघटित हो जायेगी और शीघ्र ही नया निर्वाचन किया जायेगा। अगर नये निर्वाचन में पुन: उसी दल का बहुमत रहता है जो कि विघटन के समय अधिकारारूढ़ था तो राष्ट्रपति अपना पद रिक्त कर देगा और विधेयक संसद का कानून बन जायेगा।''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** एक संशोधन रह गया है जो है संशोधन नं. 1685 जिसे डा. अम्बेडकर ने पेश किया है। इस पर एक संशोधन श्री नजीरुद्दीन अहमद ने रखा है। मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधन-सूची में संशोधन नं. 1685 में अनुच्छेद 91 के परन्तुक के लिए प्रस्तावित शब्द ''possible'' के लिए ''may be'' शब्द रखे जायें''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं. 1685 पर मत लेता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 के परन्तुक में 'अधिक से अधिक 6 सप्ताह में' (not later than six weeks) शब्दों की जगह 'यथासंभव शीघ्र' (as soon as possible) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब इन दोनों संशोधनों—नं. 1685 और 1688—द्वारा संशोधित अनुच्छेद पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 91 अपने संशोधित रूप में विधान में शामिल किया जाए।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 91 संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** अब बैठक स्थगित होती है। सोमवार की शाम को 5 बजे सभा पुन: समवेत होगी।

इसके बाद सभा सोमवार, 23 मई सन् 1949 ई. की शाम को 5 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 4. VIII-6.49
320

अंक 8
संख्या 6

सोमवार
23 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप..... 327-369

[नवीन अनुच्छेद 67-क, अनुच्छेद 100, 101, 102 तथा
नवीन अनुच्छेद 102-क पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

सोमवार, 23 मई सन् 1949 ई.

अध्यक्ष (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) की अध्यक्षता में कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में दोपहर बाद पांच बजे संविधान सभा की बैठक हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 67क—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 67-क को लेंगे जिसको उस दिन लिया गया था और स्थगित कर दिया था।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं सभा से इस अनुच्छेद को वापस करने की अनुमति के लिये प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि उन्होंने पेश ही नहीं किया था अत: वापस करने का प्रश्न ही नहीं है।

***मि. बी. पोकर साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): नहीं, उसको ले लिया गया था और वह सभा के अधिकार में है। अत: माननीय सदस्य को उसे वापस लेने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करना चाहिए।

***अध्यक्ष:** ठीक है, मुझे खेद है कि मुझसे गलती हुई है। इस अनुच्छेद को वापस करने के पक्ष में माननीय डा. अम्बेडकर अपने तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरी ओर से यह तर्क है कि जैसा कि मैंने गत अवसर पर कहा था संसद में कुछ व्यक्तियों के नाम निर्देशन के लिये हमने एक उपबंध रखा था। मूल प्रस्थापना पन्द्रह व्यक्तियों के नाम निर्देशित करने के लिये थी। बाद में यह निश्चित किया गया कि इन पन्द्रह व्यक्तियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाये अर्थात् बारह साहित्य, विज्ञान, कला, सामाजिक सेवा इत्यादि का प्रतिनिधित्व करते हुए और किसी विशेष विधेयक के सम्बन्ध में संसद के सदनों को सहायता तथा मंत्रणा देने की तीन व्यक्तियों के नामनिर्देशन के लिये एक और उपबंध बनाया जाये। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जो उपबंध पहले से ही अनुच्छेद 67 में दिया हुआ है और जो राष्ट्रपति को संसद में बारह व्यक्तियों के नाम निर्देशित करने की अनुज्ञा देता है वह इस प्रयोजन की पूर्ति कर देता है जो नये अनुच्छेद 67-क में निहित है। यदि अनुच्छेद 67-क को विधि के रूप में पारित कर दिया जाता है तो नाम निर्देशित व्यक्तियों द्वारा जो सेवायें की जायेंगी वे उन व्यक्तियों द्वारा भी की आयेंगी जिनके अनुच्छेद 67 के अन्तर्गत नाम निर्देशित होंगे। अत: अनुच्छेद 67-क के अंतर्गत नामनिर्देशन केवल उसी नामनिर्देशन प्रणाली की पुनरावृत्ति

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है जो अनुच्छेद 67 के अन्तर्गत आ जाती है। इसके साथ-साथ यह भी अनुभव किया जाता है कि एक स्वतंत्र संसद में जो पूर्णतया सम्पूर्ण सम्पन्न तथा जनता का प्रतीक है, उसमें बहुत अधिक नामनिर्देशन नहीं होना चाहिये। बारह तो हैं ही, एंग्लो-इंडियन्स के भी कुछ नामनिर्देशन होंगे तो यह अनुभव किया गया कि नामनिर्देशन की इस संख्या में परिवृद्धि करना संसद के लोकप्रिय तथा प्रतिनिध्यात्मक रूप के लिये अपमानजनक होगा। इसी कारण मैं इस अनुच्छेद 67-क को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से अनुच्छेद 67-क वापस किया गया।

अनुच्छेद 92 से 99 तक के सम्बन्ध में कथन

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि अब हम अनुच्छेद 100 से प्रारम्भ करें।

***अध्यक्ष:** मैं यह मान लेता हूं कि 92 से 99 अनुच्छेदों पर अभी विचार-विमर्श स्थगित किया जाये जिससे कि वित्त तथा वित्त-विधेयकों से सम्बन्धित कारोबार पर और आगे विचार किया जा सके।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां, स्थिति ऐसी ही है। जब अनुच्छेद 90 पर वाद-विवाद हो रहा था मैंने सुझाव रखा था कि वाद-विवाद समाप्त न किया जाये और उस पर मत न लिया जाये क्योंकि अन्तिम क्षणों में मैंने उस अनुच्छेद में एक कमी मालूम की जिसको दूर करना मैंने आवश्यक समझा। यदि वह कमी दूर की जाती है तो इस अनुच्छेद के कारण 96 से 99 अनुच्छेदों पर भी पुनर्विचार अपेक्षित है। अनुच्छेद 91 को हम पारित कर चुके हैं। 92 से 99 अनुच्छेदों पर और विचार करना अपेक्षित है इसलिये मैं चाहता हूं कि अभी इन अनुच्छेदों को स्थगित रखा जाये। पर हम अनुच्छेद 100 से प्रारम्भ कर सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, आर्टिकिल 99 से हमारी भाषा का सम्बन्ध है। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि अगर आर्टिकिल 92 से 99 पर अभी विचार नहीं किया जायेगा तो फिर धारा 99 पर कब विचार किया जायेगा, क्योंकि जैसा मैंने उस दिन कहा था हमको अपना विधान अपनी भाषा में भी पास करना है और मुझे यह पता लगा है कि जो कमेटी आपने बनाई थी, वह कमेटी आर्टिकिल 50 तक अनुवाद कर चुकी है और वे आर्टिकिल जो हम पास कर चुके हैं इस समय भी आ सकते हैं तो मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि आप आर्टिकिल 99 को आगे बढ़ा रहे हैं तो उसे कब तक के लिये बढ़ा रहे हैं और क्या भाषा विषयक निर्णय न होने पर भी कमेटी ने जिन धाराओं का अनुवाद कर लिया है उनको उपस्थित किया जा सकेगा और उन पर विचार किया जा सकेगा।

अध्यक्ष: अभी तक मेरे पास कमेटी की कोई रिपोर्ट नहीं आई है और मुझे मालूम नहीं है कि वह कहां तक गये हैं। मगर कम से कम जहां तक हम पहुंच चुके हैं वहां तक उसका अनुवाद तैयार हो जाये तभी हम उसको देख सकते हैं। इसलिये अगर आज हम इसको न लें तो उसमें कोई दिक्कत नहीं होगी।

सेठ गोविन्ददास: मेरा सवाल तो बाकी रह गया। मैं यह जानना चाहता हूं कि आर्टिकिल 99 कब तक के लिये मुल्तवी किया जायेगा?

अध्यक्ष: मैं ठीक नहीं कह सकता हूं मगर उसे आगे किसी दिन लिया जायेगा।

सेठ गोविन्ददास: तो क्या मैं इस तरह समझूं कि जितने आर्टिकिल हम यहां पर पास कर चुकेंगे उतने आर्टिकिल का अनुवाद हो जाने पर और वह आपके पास पहुंचने पर और आर्टिकिल 99 न लेने पर भी हम उन धाराओं पर विचार कर सकेंगे?

अध्यक्ष: मैं आज कुछ नहीं कह सकता। मुझे उन पर विचार करके समय निश्चित करना होगा। हो सकता है कि आर्टिकिल 99 को कुछ दिन के लिये मुल्तवी रखना पड़े।

अब हम अनुच्छेद 100 से प्रारम्भ करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं आपके सूचनार्थ इस विषय का एक और पहलू प्रस्तुत करूं वह यह है कि जब हम यकायक अन्य कुछ अनुच्छेदों को ले लेते हैं और वे अनुच्छेद यदि ऐसे होते हैं जिन पर हम पूरी तरह से तैयार नहीं हैं तो हमें अकस्मात् उन पर विचार करना पड़ता है। मैं निवेदन करता हूं कि यदि आज नहीं तो भविष्य में आप इस विषय पर विचार करेंगे।

***अध्यक्ष:** सदस्यों के समक्ष यह संविधान एक बहुत अरसे से है और मैं समझता हूं कि सदस्यों ने प्रारूप का अध्ययन कर लिया होगा। संशोधनों की संख्या से भी यही विदित होता है कि समस्त सदस्यों ने सम्पूर्ण संविधान पर पूर्ण विवरण सहित विचार कर लिया है। अत: यदि कोई ऐसा अनुच्छेद ले लिया जाता है जो उस अनुच्छेद के बाद नहीं आता है जिस पर हम विचार कर चुके हैं तो किसी व्यक्ति को भी अकस्मात् विचार नहीं करना पड़ता। परन्तु इस सम्बन्ध में हम सदस्यों के विचारों पर ध्यान देंगे और मैं नहीं समझता हूं कि यदि हम अनुच्छेद 100 तथा उसके अनुवर्त्ती अनुच्छेदों को ले लेते हैं कोई बड़ी असुविधा होगी।

अनुच्छेद 100

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1784, जिसकी सूचना श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरी ने दी है, वास्तव में संशोधन नहीं है। जहां तक इसका सम्बन्ध है वह निषेधात्मक संशोधन है।

संशोधन संख्या 1785 श्री नजीरुद्दीन अहमद का है। वह शाब्दिक संशोधन है। अत: हम इसे भी छोड़ सकते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 100 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 100 विधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 101

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 101।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 101 के खण्ड (1) में 'called in question' शब्दों के पश्चात् 'in any court' शब्द प्रविष्ट किये जाये।''

मैं केवल इस अनुच्छेद में उस बात को स्पष्ट करना चाहता हूं जिसके प्रति मुझे विश्वास है कि वह प्रकट नहीं की गई है और मैं समझता हूं कि किसी कार्यवाही की मान्यता पर किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं किया जायेगा। अत: इस बात को बिल्कुल स्पष्ट तथा व्यक्त करने के लिये मैं इन शब्दों को प्रविष्ट करने का सुझाव रखता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 101 के खण्ड (2) में 'or other member' शब्दों के स्थान में 'and no member' शब्द रखे जायें।''

इस अनुच्छेद में खण्ड (2) इस प्रकार है:

''न कोई पदाधिकारी अथवा संसद का अन्य सदस्य...'' इत्यादि इत्यादि।

वास्तव में 'न कोई पदाधिकारी अथवा संसद का अन्य सदस्य' से यह भाव प्रकट होता है कि एक पदाधिकारी सदन का सदस्य है। 'अन्य' शब्द पूर्णतया भ्रमोत्पादक है। उस से असत्य भावना प्रकट होती है। यदि संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो यह पद इस प्रकार का होगा:

'न कोई पदाधिकारी और न कोई ससंद का सदस्य...' इत्यादि इत्यादि।

वस्तुत: मैं एक पदाधिकारी और सदस्य में अन्तर करना चाहता हूं। इस संशोधन के पक्ष में यही एक साधारण तर्क है। अनुवर्त्ती संशोधन को मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि वह एक अनावश्यक संशोधन प्रतीत होता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं समझता हूं कि दोनों संशोधन गलत हैं। एक के सम्बन्ध में तो किसी न्यायालय में कार्यवाहियों पर प्रश्न नहीं किया जा सकता है और दूसरे के सम्बन्ध में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को सही अर्थ में संसद के पदाधिकारी कहा जा सकता है। अत: उनको भी मुक्त रखना चाहिये। मैं समझता हूं कि इस खण्ड का यही अभिप्राय है।

***अध्यक्ष:** क्या उसके अन्तर्गत अन्य पदाधिकारी भी आ जाते हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'ससंद का पदाधिकारी' इसके अन्तर्गत अध्यक्ष अथवा संसद प्रयोजनार्थ अध्यक्ष द्वारा नियुक्त अन्य पदाधिकारी आ जाते हैं। इसको व्यापक अर्थ के लिये रखा गया न कि संकुचित अर्थ के लिये।

***अध्यक्ष:** क्या 'न कोई सदस्य' के अन्तर्गत अध्यक्ष भी आ जायेगा?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष भी सदस्य होगा। इसीलिये मैं समझता हूं कि 'अन्य सदस्य' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

***अध्यक्ष:** मान लीजिये यदि वह 'न कोई पदाधिकारी' तथा 'न कोई सदस्य' हो तो उसके अन्तर्गत अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष आ जायेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** आ सकते हैं। मैं नहीं समझता हूं कि इसमें कोई बड़ी हानि नहीं है।

***अध्यक्ष:** कदाचित् यह आशय हो कि अन्य पदाधिकारियों की रक्षा की जाये उदाहरण के लिये मार्शल।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** पदाधिकारियों के अन्तर्गत समस्त पदाधिकारी आ जाते हैं। प्रश्न यह है कि क्या 'सदस्य' वहां रहना चाहिये। यदि उसको जैसा है वैसा ही रहने दिया जाये तो कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। जहां तक प्रथम भाग का सम्बन्ध है मैं नहीं समझता हूं कि हम ''और न कोई सदस्य'' शब्द रखकर उसे संकुचित करें।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, आपके समक्ष जो ध्वनिवर्द्धक यंत्र है उसमें कोई खराबी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, श्री कामत के संशोधन को मैं नहीं समझता हूं कि वह आवश्यक है क्योंकि न्यायालय को छोड़कर और कहां विधिवत् संसद की कार्यवाहियों पर प्रश्न किया जा सकता है? अत: केवल न्यायालय ही ऐसे स्थान हैं जहां संसद की कार्यवाहियों पर विधिवत् प्रश्न किया जा सकता है और विधि सम्बन्धी मंजूरी प्राप्त की जा सकती है। अत: अपने संशोधन में श्री कामत जिन शब्दों का उल्लेख करते हैं। वे अनावश्यक हैं।

मेरे बताये हुए इस कारण से जिस फड़ में इन कार्यवाहियों पर विधिवत् प्रश्न किया जा सकता है और किसी के भी राष्ट्रपति अथवा अध्यक्ष अथवा अन्य कोई पदाधिकारी अथवा सदस्य के विरुद्ध यदि कोई विधि सम्बन्धी साहाय्य प्राप्त की जा सकती है, वह फड़ न्यायालय ही है। श्री कामत यह देखेंगे कि हाशिये की टिप्पणी इस बात को स्पष्ट कर देती है।

मेरे मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किये गये संशोधन के सम्बन्ध में तो उन्होंने यह नहीं समझा कि उपखंड (2) में महत्त्वपूर्ण शब्द 'जिनमें शक्तियां निहित हैं।''

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** व्यवस्था बनाये रखने के लिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** 'न कोई पदाधिकारी अथवा संसद का अन्य सदस्य जिसमें शक्तियां निहित है' वे व्यक्ति हैं जिनकी उपखंड (2) के द्वारा रक्षा की जाती है। अध्यक्ष पदाधिकारी भी है और सदस्य भी। उसे तो कोई शक्ति सौंपी न जायेगी। संविधान उसको शक्ति सौंपता है। अतः इस तथ्य पर विचार करते हुए कि केवल 'अन्य सदस्य' ही अर्थात् यथास्थिति अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष को छोड़कर सदस्य ही ऐसा है जिसे रक्षित होने की आवश्यकता है। इस कारण 'अन्य' शब्द महत्त्वपूर्ण हैं।

***अध्यक्षः** 'अथवा व्यवस्था बनाये रखने के लिये' इन शब्दों का क्या प्रभाव है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मान लीजिये सदन में कोई झगड़ा हो जाये। मैं इस रूप में कहना तो नहीं चाहता हूं। परन्तु मान लीजिये सदन में कोई झगड़ा हो जाये और किसी सदस्य को हटाने के लिये किसी पदाधिकारी को न पाकर अध्यक्ष किसी अन्य सदस्य से जो उपस्थित है उस सदस्य को हटाने के लिये निवेदन करता है जो झगड़ा कर रहा है। तो यह विशिष्ट सदस्य वह सदस्य है जिसमें अध्यक्ष द्वारा यह प्राधिकार निहित कर दिया जाता है और वह 'अन्य सदस्य' के अन्तर्गत आयेगा।

***अध्यक्षः** 'अथवा अन्य कोई पदाधिकारी जो सदन का सदस्य नहीं है' क्या वह इसके अन्तर्गत आता है?

***माानीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** 'अधिकारी' तो वहां रहेगा ही।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं कुछ स्पष्टीकरण के लिये निवेदन कर सकता हूं? मेरे संशोधन का उल्लेख करते हुए श्री सन्तानम् ने कहा था कि किसी संशोधन की मान्यता पर केवल न्यायालय में ही प्रश्न नहीं किया जा सकता है वरन् विधान-मण्डल में भी किया जा सकता है। क्या डा. अम्बेडकर उनसे सहमत हैं?

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** मैंने जो व्याख्या की है मैं उसके प्रति उत्तरदायी हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** डा. अम्बेडकर द्वारा उल्लिखित दूसरी बात के सम्बन्ध में कि हाशिये का उपशीर्षक स्पष्ट है क्या मैं यह संकेत कर सकता हूं कि दूसरे फड़ में अर्थात् विधान-सभा में मुझसे यह कहा गया था कि हाशिये के शीर्षकों का विधान से कोई सम्बन्ध नहीं है और अनुच्छेद अथवा धाराओं को बिना हाशियों के शीर्षकों के उल्लेख के लिए लिया जाता है। यदि ऐसा है और यदि आप हाशिये के शीर्षक और अनुच्छेद को साथ-साथ नहीं पढ़ेंगे तो मेरी समझ में तो स्पष्ट अर्थ नहीं आता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इस विषय पर दो विचारधारायें हैं एक विचारधारा यह है कि हाशिये की टिप्पणी धारा का अंग नहीं है, दूसरी विचारधारा यह है कि हाशिये

की टिप्पणी धारा का अंग है। उदाहरणार्थ श्री मावलंकर ने जब वे बम्बई में थे इस विचारधारा को माना कि हाशिये की टिप्पणी धारा का अंग नहीं है, परन्तु बम्बई सभा के वर्तमान अध्यक्ष ने अभी-अभी यह कहा था कि हाशिये की टिप्पणी धारा का प्रमुख अंग है क्योंकि वह धारा के अर्थ की कुंजी है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 101 के खंड (1) में 'called in question' शब्दों के पश्चात् 'in any court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 101 के खंड (2) में 'or other member' शब्दों के स्थान में 'and no member' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 101 विधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 101 विधान में प्रविष्ट किया गया।

भाग 5–अध्याय 3

***अध्यक्षः** भाग 5–अध्याय 3।

(संशोधन संख्या 1789 और 1790 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि भाग 5 के अध्याय 3 के शीर्षक में 'Legislative' शब्द के स्थान में 'extraordinary' शब्द रखा जाये।''

यह शीर्षक फिर 'राष्ट्रपति की असामान्य शक्तियां हो जायेगा।

मैं विशेषकर इस पहलू की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि जो कोई शक्ति राज्य के मुखिया अथवा मुख्य कार्यपालिका को हो वह कार्यपालिका शक्ति के रूप में होनी चाहिये। यदि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कोई अन्य शक्तियां रखने का प्रस्ताव किया जाता है तो यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वे शक्तियां असामान्य है अर्थात् उनका प्रयोग सामान्यकाल अथवा सामान्य परिस्थितियों में नहीं किया जायेगा। यह सत्य है कि असामान्य परिस्थितियों में जैसे कि आपात की दशा में असामान्य शक्तियों का प्रयोग आवश्यक तथा

[प्रो. के.टी. शाह]

न्याययुक्त होगा। अतः मैं समझता हूं कि स्वयं शीर्षक में इस बात को साफ कर देना आवश्यक है कि निश्चित रूप से यह असामान्य शक्ति है जो हमारे द्वारा विधायी शक्ति न कही जाने पर भी विधान का रूप ग्रहण कर लेती है। विधायी शक्ति तो कार्यपालिका-प्रमुख को होनी ही न चाहिये। नहीं तो वह कार्यपालिका आज्ञप्ति का रूप तक ग्रहण कर लेगी अथवा कोई ऐसा रूप ग्रहण कर लेगी जो उन परिस्थतियों में उचित प्रतीत हो। जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि यहां किसी उल्लेख द्वारा हमें यह उपलक्षित, प्रतिपादित अथवा सूचित नहीं करना चाहिये कि राष्ट्रपति की असामान्य शक्तियों के अतिरिक्त और भी विधि बनाने की शक्तियां हैं। मैं समझता हूं कि यह विषय पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया गया है और सदन को मान्य होगा।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, अध्याय 3 राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों के सम्बन्ध में है। प्रो. शाह चाहते हैं कि 'विधायी' शब्द के स्थान में 'असामान्य' शब्द का प्रयोग किया जाये। अनुच्छेद 102 इस बात को स्पष्ट कर देता है कि यह राष्ट्रपति की असामान्य शक्ति है। वह असामान्य होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, परन्तु फिर भी वह विधायी शक्ति ही है। इस कारण मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि और अधिक विचार-विमर्श आवश्यक है। प्रस्ताव यह है:

> ''कि भाग 5 के अध्याय 3 के शीर्षक में 'legislative' शब्द के स्थान में 'extraordinary' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 102

***अध्यक्षः** अब हम मूल अनुच्छेद पर आते हैं सर्वप्रथम श्री दामोदरस्वरूप सेठ का संशोधन संख्या 1792 है।

(यह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही इस संशोधन को दो भागों में पेश करने की अनुमति प्राप्त करने के लिये मैं निवेदन करता हूं। संयोगवश सचिवालय में इन दोनों को मिलाकर एक संशोधन बना दिया गया है।

***अध्यक्षः** आप ऐसा कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'when both Houses' शब्दों के स्थान में 'when one or both Houses' शब्द रखे जायें।''

अब हम संविधान के अनुच्छेद 69 को देखते हैं और उसके खंड (2) को पढ़ते हैं तो हमें विदित होता है कि राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों अथवा किसी सदन को समय-समय पर आह्वान कर सकता है। अत: यह कोई असम्भव बात नहीं है कि किसी विशिष्ट अवसर पर दोनों सदन सत्र में न हो वरन् केवल एक सदन ही सत्र में हो। अत: मैं राष्ट्रपति की शक्ति को केवल ऐसे अवसरों के लिये निर्बन्धित करूंगा जबकि कोई भी सदन सत्र में न हो। इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को अध्यादेश प्रख्यापित करने का तभी अधिकार है जब दोनों सदन सत्र में न हों। जैसा कि मैं अनुच्छेद 69 का उल्लेख करते हुए कह चुका हूं ऐसा अवसर आ सकता है जबकि एक सदन सत्र में हो। अत: इस बात को स्पष्ट करने के लिये हमको यह कहना पड़ेगा कि ''केवल तभी जबकि संसद के दोनों सदन अथवा कोई एक सदन सत्र में हो''।

मेरा दूसरा संशोधन जो कि संशोधन संख्या 1793+ का पिछला आधा भाग है पूर्णतया शाब्दिक है। मैं केवल उसे नियमित रूप से पेश किये देता हूं और उस पर विचार करने के लिये उसे प्रारूप समिति पर छोड़ देता हूं, क्योंकि यह स्पष्ट है कि राष्ट्र एक अथवा एक से अधिक अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है। जिस रूप में अनुच्छेद है उसमें बहुवचन का प्रयोग हुआ है। जिस संयोग का मैंने उल्लेख किया है उसके लिये व्यवस्था करने के लिये मैंने इस संशोधन को पेश कर दिया है। यह विशुद्ध रूप में शाब्दिक है अत: मैं इस पर अधिक नहीं कहना चाहता हूं।

एक और तीसरा संशोधन, संशोधन संख्या 1794 मेरे नाम से है। 102 अनुच्छेद को पुन: पढ़ने पर मैं समझता हूं कि वह आवश्यक नहीं है क्योंकि स्वयं संतुष्ट होने के पूर्व राष्ट्रपति प्रत्येक साधन का आश्रय लेगा जो उसे उपलब्ध हैं और इसमें मंत्रि-परिषद् से परामर्श भी शामिल है। अत: मैं संशोधन 1794 को पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1795 शाब्दिक है अत: उसे पेश नहीं करने दिया जाता है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): संशोधन संख्या 1794 मेरे नाम से भी है मैं उसे पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** मैं आपको बाद में अवसर दूंगा।

***मि. बी. पोकर साहिब:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) पर निम्न परन्तुक लगाया जाये:
>
> 'Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law.' ''

श्रीमान्, यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण विषय है जो प्रत्येक उस नागरिक के मौलिक अधिकार पर प्रभाव डालता है जिसका किसी सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमा किया जायेगा। पूर्व इसके

+कि ''Such Ordinances'' के स्थान में ''Such Ordinance or Ordinances'' शब्द रखे जायें।

[मि. बी. पोकर साहिब]

कि उसे अपने स्वातन्त्र्य से वंचित किया जाये। नि:सन्देह ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनके अन्तर्गत शीघ्र ही कार्यवाही करनी पड़े परन्तु किसी सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमा किये जाने के मौलिक अधिकार से उसे वंचित नहीं करना चाहिये। जिस कारण मैंने इस संशोधन की सूचना दी है वह हमारा अभी हाल का अनुभव है जो हमें अध्यादेशों के प्रवर्त्तन करने और यहां तक कि उन लोक-रक्षा के अधिनियमों के प्रवर्त्तन के विषय में विभिन्न प्रान्तों में हुआ है जिन्होंने अध्यादेशों का रूप ग्रहण कर लिया है। बाद में इन अध्यादेशों को विधि बना दिया गया। परन्तु महत्त्वपूर्ण विषय जिस पर ध्यान जाना चाहिये वह यह है कि जिस नागरिक पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाता है वह अपने मौलिक अधिकारों से वंचित हो जाता है। मैं जानता हूं कि मद्रास प्रान्त में सैकड़ों ऐसे अभियोग हैं जिनमें उस प्रान्त के विधान-मंडल द्वारा पारित लोक सभा अधिनियम में दिये हुए उपबन्धों का भी पालन नहीं किया गया और बन्दी किये जाने के आधार को बनाये बिना ही लोगों को हफ्तों ही नहीं वरन महीनों बन्दी रखा गया और अभिरक्षा हेतु कैद रखा। यह बड़ी ही दुष्टतापूर्ण स्थिति है। आपकी दृष्टि में उच्च न्यायालय के वे निर्णय आ गये होंगे जिनका समाचार-पत्रों में प्रकाशन हो चुका है और अभी हाल में मद्रास के उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रथा की बड़े कटु शब्दों में निन्दा की है। यह माना कि ऐसी आपातिक स्थिति हो सकती है जिस में असामान्य शक्ति का प्रयोग करना पड़े परन्तु उसमें किसी नागरिक को उसके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं करना चाहिये और फिर मैं तो यह नहीं समझ पाता कि आपातिक स्थिति उत्पन्न होने पर भी, जिसमें परन्तु कार्यवाही करना आवश्यक है, नागरिक को क्यों उस अधिकार से वंचित किया जाये। परन्तु जिस दुष्टतापूर्ण ढंग से लोक-रक्षा अधिनियम तक को प्रशासन में लाया जाता है उससे हमारी आंखे खुल जाती हैं कि राष्ट्रपति को ऐसे अध्यादेश पारित करने की शक्ति देना सह्य नहीं होना चाहिये जो नागरिकों को अपने स्वातन्त्र्य से वंचित करने की अनियंत्रित शक्तियां प्रदान करता है। अत: श्रीमान् मैं निवेदन करता हूं कि यह बड़ा ही आवश्यक तथा वांछनीय परन्तुक है जिसे इस खंड के पश्चात् जोड़ना चाहिये और मैं सदन से निवेदन करूंगा कि लोक-रक्षा-अध्यादेशों और लोक-रक्षा-अधिनियमों को प्रशासन में लाने के अभी हाल के अनुभवों पर वह विचार करे जिनके द्वारा निर्दोष नागरिकों को बिना मुकदमा चलाये महीनों लगातार बन्दी रखा जाता है तथा बहुत से अभियोगों में तो किसी व्यक्ति को अभिरक्षा हेतु महीनों कैद रखा जाता है और बिना कारण बताये उसे बाद में छोड़ दिया जाता है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि भविष्य में ऐसी स्थिति को सहन करने के लिये कोई नियम नहीं होना चाहिये। अत: मैं इस सदन के माननीय सदस्यों से इस विषय के इस पहलू पर गम्भीर विचार करने के लिये निवेदन करूंगा और चाहे इस खंड के प्रारूप के ध्याय में साम्यवादियों अथवा अन्य ऐसे निकायों का विचार रहा हो परन्तु फिर भी नागरिकों को अपने-अपने स्वातन्त्र्य से पूर्णतया ऐसे अध्यादेशों द्वारा वंचित करना न्यायमुक्त नहीं है और वह भी एक अनिश्चितकाल के लिये। अत: श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यह सदन कृपा करके इस संशोधन को स्वीकार करेगा।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1797 श्री कामत द्वारा पेश किये संशोधन के अन्तर्गत आ जाता है।

(संशोधन संख्या 1798 और 1799 पेश नहीं किये गये।)

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन संख्या 1798 पर एक संशोधन पेश करने की सूचना दी है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1798 पेश नहीं किया गया है। जो संशोधन पेश नहीं किया गया है उस पर संशोधन पेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

***श्री जसपतराय कपूर:** मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर उसे फौरन ही स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि वह शाब्दिक संशोधन है पर है आवश्यक।

***अध्यक्ष:** यदि वह शाब्दिक संशोधन है जो आप उनसे (डा. अम्बेडकर) बातचीत कर सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** उसे पेश करने दिया जाये या नहीं यह मैं आप पर छोड़ता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** वह छपी हुई सूची में नहीं है।

***अध्यक्ष:** जो सूची आज घुमाई गई है वह उस सूची में है। सूची 2 (द्वितीय सप्ताह) पद संख्या 39।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) में 'assented to by the President'' शब्दों को निकाल दिया जाये क्योंकि ये शब्द स्पष्टतया निरर्थक हैं। यह एक विधेयक है जिसकी स्वीकृति दी जा रही है न कि अधिनियम। राष्ट्रपति द्वारा जब कोई विधेयक एक बार स्वीकार कर लिया जाता है तो वह अधिनियम बन जाता है। उसके पश्चात् राष्ट्रपति की और स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन पर संशोधन नहीं है। वास्तव में यह तो मूल अनुच्छेद पर संशोधन है।

***श्री जसपतराय कपूर:** उस संशोधन पर यह संशोधन मात्र है।

***अध्यक्ष:** किसी पूर्व अवसर पर मैंने इस प्रकार के संशोधन को पेश नहीं होने दिया था जो संशोधन पर संशोधन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मैं इस बार भी इसे नियम विरुद्ध घोषित करता हूं।

(संशोधन संख्या 1800 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'both Houses of Parliament' शब्दों के पश्चात् 'within four weeks of its promulgation' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

[श्री एच.वी. कामत]

यदि सदन द्वारा मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''Every such ordinance, shall be laid before both Houses of Parliament within four weeks of its promulgation, etc., etc.''

मेरे इस संशोधन का महत्त्व अथवा औचित्य एक कमी के कारण उत्पन्न होता है जो यहां आ गई है। राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश की अवधि की व्यवस्था इस अध्याय में कोई भी अनुच्छेद नहीं करता है। अब तक हम इसी ख्याल में थे, कम से कम भारतीय सरकार के अधिनियम तथा गवर्नर-जनरल की उसमें दी हुई अध्यादेश बनाने की शक्ति के अनुभव के आधार पर, कि एक अध्यादेश स्वाभाविक रूप से छः महीने के अवसान पर समाप्त हो जाता है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद में कहा गया है कि ''संसद के पुनः बैठने के छः सप्ताह के अन्त हो जाने पर प्रवर्त्तन में न रहेगा।''

***श्री एच.वी. कामत:** संसद के पुनः एकत्रित होने से छः सप्ताह। संसद को कभी आहूत नहीं किया जाता है। अपने राष्ट्रपति से हम एक संवैधानिक राष्ट्रपति होने की आशा करते हैं और यह आशा करते हैं कि वे सदा संसद की मंत्रणा अथवा निर्देश के अनुसार कार्य करेंगे। परन्तु यह कौन जानता है कि हमारे भाग्य में क्या बदा है? यदि राष्ट्रपति एकाधिपति होना चाहता है अथवा एकाधिपति की शक्तियों का प्रयोग करना चाहता है और यदि इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है तो जो आपात उत्पन्न हुआ है उस पर अथवा जिन परिस्थितियों के कारण उसके लिये अध्यादेश का प्रख्यापन करना आवश्यक हो गया है उन पर विचार करने के लिये वह संसद को आहूत ही न करे। यदि हम समस्त अध्याय को पढ़ जायें तो हमें विदित होगा कि संसद को आहूत करने के लिये कोई अवधि नहीं है। अनुच्छेद में केवल यह कहा गया है कि अध्यादेश संसद के दोनों सदनों में रखा जायेगा। मान लीजिये राष्ट्रपति संसद का आह्वान करता है और वह एक वर्ष के बाद–अम्बेडकर अपनी भावभंगी से 'नहीं' कह रहे हैं—कदाचित् उनकी बुद्धि संवैधानिक है और यदि उनको राष्ट्रपति चुना जाये तो वे एकाधिपति की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे—परन्तु वास्तव में उनसे भिन्न प्रकार का मनुष्य इस अनुच्छेद से अनुचित लाभ उठा सकता है और युक्तियुक्त काल के अन्तर्गत ससंद का आह्वान नहीं करेगा। इसलिये मैं समझता हूं कि यह आवश्यक है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 69 खंड (1) कदाचित् इस स्थिति को स्पष्ट कर देगा। उसमें यह दिया हुआ है ''संसद के सदनों को प्रत्येक वर्ष में कम से कम दो बार अधिवेशन के लिये आहूत किया जायेगा तथा उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिये नियुक्त तिथि के बीच छः मास का अन्तर न रहेगा।''

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यादेश का प्रख्यापन करने के छः माह के पश्चात् वह आगामी सत्र आहूत कर सकता है। और फिर संसद के समारम्भ से छः सप्ताह के पश्चात् वह

अध्यादेश समाप्त होता है। इसका यह अभिप्राय है कि अध्यादेश का प्रवर्त्तन साढ़े सात माह अथवा साढ़े सात माह से एक या दो दिन कम तक रह सकता है न कि छः माह तक जैसा कि अंग्रेजी शासन व्यवस्था तक में था। कम से कम इस रूप में यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अध्याय है कि हम राष्ट्रपति को कुछ ऐसी शक्तियां सौंपने अथवा उनसे सुसज्जित करने का प्रयास कर रहे हैं जिनके विरुद्ध कांग्रेस तथा समस्त देशभक्त अंग्रेजी शासन में लड़े—मेरा अभिप्राय गवर्नर-जनरल की अध्यादेश बनाने की शक्ति से है। मैं चाहता हूं कि इस शक्ति को जितना हम निर्बन्धित कर सकते हैं उतना करें। अतः इस अनुच्छेद का दुरुपयोग न करने देने के लिये मैं संवैधानिक रक्षा-कवच की व्यवस्था करना चाहता हूं। मैं इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था लाना चाहता हूं कि राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश प्रख्यापन तिथि से चार सप्ताह के भीतर संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा। इसमें कोई व्यावहारिक कठिनाई नहीं है। मुझे विश्वास है कि जैसा अन्य अनेक देशों में किया जाता है दो सप्ताह में हमें संसद को आहूत किया जा सकता है। आप आपातिक सत्र को आहूत कर सकते हैं और संसद के दोनों सदनों को आहूत करने के लिये चार सप्ताह का समय बहुत पर्याप्त है।

यदि हम अनुच्छेद 275 को देखें तो खंड (2) के उपखंड (ग) में यह निश्चित रूप से दिया हुआ है कि ''छः मास के अवसान पर उद्घोषणा प्रवर्त्तन शून्य हो जायेगी ...।'' परन्तु यहां जैसा कि मैं बता चुका हूं यह कमी आ गई है और मैं खुश होऊंगा यदि निश्चित रूप से यह निर्धारित कर दिया जाये कि राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित कोई अध्यादेश छः मास के अवसान पर प्रवर्त्तनशून्य हो जायेगा मैं नहीं समझ पाता हूं कि प्रारूप समिति के बुद्धिमान व्यक्तियों से यह चूक किस प्रकार हो गई। मैं प्रसन्न होऊंगा यदि इस प्रभाव का यह रक्षा-कवच इस अध्याय में निर्धारित कर दिया जाता है कि छः माह के अवसान पर कोई अध्यादेश प्रवर्त्तन में न रहेगा अथवा यह कि प्रत्येक अध्यादेश की छः मास के पश्चात् स्वयं ही समाप्ति हो जायेगी। यदि इसको स्वीकार नहीं किया जाता है तो मैं समझता हूं कि केवल मेरा संशोधन ही कि अध्यादेश के प्रख्यापन करने के चार सप्ताह के भीतर संसद का आह्वान होना चाहिये। यह अनुच्छेद इस बात की व्यवस्था करता है कि उसके बाद छः सप्ताह के भीतर वह प्रभाव शून्य हो जायेगा। इससे अध्यादेश बनाने की शक्ति बहुत कुछ निर्बन्धित हो जायेगी। इससे अध्यादेश की अवधि अधिक से अधिक दस सप्ताह की रह जायेगी। ऐसा हो सकता है कि राष्ट्रपति को कभी-कभी अध्यादेश प्रख्यापित करने पड़ें और यह भी हो सकता है कि प्रत्येक बार विभिन्न कारणों वश संसद का आहूत करना व्यावहार्थ न हो सके। तो फिर इस अनुच्छेद में यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि प्रख्यापन के छः मास के अवसान पर किसी अध्यादेश का कोई प्रभाव न रहेगा। यदि यह अनुच्छेद अध्यादेश की अधिकतम अवधि निर्विष्ट करता है तो मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता हूं पर चाहे डा. अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार न करें फिर भी मैं आशा करता हूं कि वे इस बात के लिये विशिष्ट रूप से व्यवस्था करेंगे कि प्रख्यापन की तिथि से छः मास के अवसान पर कोई भी अध्यादेश प्रवर्तन में न रहेगा। केवल अनुच्छेद 69 के क्रियाकरण पर ही हमें इस बात को नहीं छोड़ देना चाहिये क्योंकि उस अनुच्छेद के अधीन जैसी कि मैंने साधारण गणित के अनुसार गणना की है एक अध्यादेश साढ़े सात मास तक प्रवर्त्तन में रह सकता है। अतः मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति इस विषय पर फिर से विचार करेगी और प्रख्यापन की तिथि से अधिक से अधिक छः मास के अवसान पर किसी अध्यादेश के प्रभावशून्य हो जाने की व्यवस्था करेगी।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1802। मैं समझता हूं कि यह संशोधन संशोधन संख्या 1805 के साथ है। दोनों को एक साथ पेश किया जा सकता है। क्या आप दोनों संशोधनों को साथ-साथ अथवा अलग-अलग पेश करना चाहेंगे?

पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं संशोधन संख्या 1805 को पेश नहीं करना चाहता हूं। श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'six weeks from the re-assembly of Parliament' शब्दों के स्थान में 'thirty days from the promulgation of the Ordinance' शब्द रखे जायें।''

अनुच्छेद 102 में यह अपेक्षित है:

> ''इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश को संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जायेगा और संसद के पुन: अधिविष्ट होने से छ: सप्ताह के अवसान पर, अथवा यदि उस कालावधि के अवसान से पूर्व उसकी प्रतिनिन्दा का संकल्प दोनों सदनों से पारित हो जाता है, तो इनमें से दूसरे संकल्प के पारण होने पर, प्रवृत्त न रहेगा।''

यह एक प्रमुख विषय है जिस पर अनेक यूरोपीय देशों में अभी हाल में पारित किये गये संविधानों में अधिक से अधिक महत्त्व दिया गया है। एक अध्यादेश पारित करने की शक्ति कार्यपालिका को कुछ काल के लिये कोई विधि पारित करने की शक्ति देने के समान है। यदि देश में ऐसा आपात है जिसके लिये यह अपेक्षित है कि अध्यादेश के प्रख्यापन द्वारा तुरन्त ही कार्यवाही की जाये तो स्पष्ट रूप से यह आवश्यक है कि उस विषय पर विचार करने के लिये यथासंभव शीघ्र संसद आहूत की जाये। मान लीजिये देश में विधि और व्यवस्था पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ता है और उस समय की सरकार यह आवश्यक समझती है कि स्थिति को खराब होने से रोकने के लिये अथवा उसको काबू में लाने के लिये तुरन्त ही अध्यादेश प्रख्यापित किया जाये और यह भी स्पष्ट है कि यदि विधान-मंडल अधिविष्ट नहीं है तो देश में शान्ति बनाये रखने के लिये, कार्यपालिका को यह अधिकार होना चाहिये कि वह अपने आपको पर्याप्त शक्ति से सुसज्जित कर सके। परन्तु यह भी समान रूप से आवश्यक है कि उस गंभीर स्थिति पर विचार करने के लिये, जो उस अध्यादेश के प्रख्यापन को आवश्यक बना देती है, विधान-मंडल को बिना परिहार करने योग्य विलम्ब के आहूत किया जाये। अत: मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि गवर्नर-जनरल द्वारा प्रख्यापित कोई अध्यादेश कई महीनों तक क्योंकर प्रवृत्त रहे। जिस रूप में यह अनुच्छेद है उसमें दो बातें हैं—पहली यह कि अध्यादेश जब तक प्रवर्त्तन में रहेगा तब तक संसद की बैठक न हो, दूसरी यह कि संसद की बैठक होने पर भी वह तुरन्त ही प्रभावशून्य नहीं होगा परन्तु यदि उस कालावधि के अवसान के पूर्व यदि उसको दोनों सदनों द्वारा अस्वीकार नहीं कर दिया जाता है तो वह संसद के पुन: अधिवेष्टित होने पर छ: सप्ताह तक प्रवर्त्तन में रहेगा। मैं जानता हूं कि यही कार्यप्रणाली भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में निर्धारित की गई थी परन्तु जिन परिस्थितियों में यह अधिनियम पारित किया गया था उनमें वह कार्यप्रणाली समझ में आने योग्य थी। उस अधिनियम के उपबंध

इस प्रकार के थे कि जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार अन्तिम प्रयत्न द्वारा देश में विधि और व्यवस्था बनाये रखने के लिये प्राधिकार का प्रयोग कर सके। अब वह सब बदल चुका है। हमारे यहां अब उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्री-मंडल है। अत: ऐसा कोई कारण नहीं है कि भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में निर्धारित ढंग का हम अपने नव-विधान में अनुकरण करने का प्रयास करें।

श्रीमान्, ऐसे अनेको देश हैं जिनमें कार्यपालिका को यह शक्ति नहीं है। कुछ ऐसे देश हैं जिनमें यद्यपि कार्यपालिका आज्ञप्ति प्रख्यापन करने की शक्ति से सुसज्जित है पर उसे यथासम्भव शीघ्र ही विधानमंडल आहूत करना पड़ता है और उसके समक्ष कुछ विशेष प्रकार की आज्ञप्तियों को रखना पड़ता है। फ्रांस का उदाहरण लीजिये। मेरा ख्याल यह है कि जिस कालावधि के लिये वहां अध्यादेश प्रवृत्त रह सकता है वह इस कालावधि से बहुत कम है जो सभा द्वारा अनुच्छेद 102 को पारित कर लेने पर होती है। मैं नहीं समझता हूं कि नई परिस्थितियों में कार्यपालिका को उन बृहद् शक्तियों से सुसज्जित करना जो भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम द्वारा सौंपी गई थीं किसी प्रकार से भी न्याययुक्त है। समस्त विधान और अध्यादेश भी एक विशिष्ट प्रकार का विधान ही है, संसद की स्वीकृति के अधीन है और इस स्वीकृति के लिये यथासम्भव शीघ्र प्रयास करना चाहिये।

श्रीमान्, एक उदाहरण देकर मैं अपने अभिप्राय को और भी अधिक स्पष्ट करूंगा। मान लीजिये कि सभा के शीतकालीन सत्र के पश्चात् ही देश में ऐसी परिस्थिति उठ खड़ी होती है जिसके लिये अध्यादेश का प्रख्यापन करना आवश्यक है। सामान्यतया दूसरा सत्र आगामी अक्टूबर या नवम्बर मास में होता है। यदि अनुच्छेद 102 स्वीकार कर लिया जाता है तो अध्यादेश लगभग छ: मास और सम्भवतया उसके पश्चात् छ: सप्ताह तक और प्रवृत्त रह सकता है। अत: अध्यादेश के प्रवर्त्तन में रहने की अधिकतम अवधि साढ़े सात मास तक हो सकती है। यह स्पष्ट है कि यह बहुत ही लम्बी अवधि है और इस बात के लिये कोई कारण नहीं है कि कार्यपालिका को इतने दीर्घकाल के लिये विधान बनाने की शक्ति क्योंकर हो। अत: मैं समझता हूं कि अवधि इतनी ही होनी चाहिये कि जिसमें विधान-मंडल बैठक कर सके और उस असामान्य स्थिति पर विचार कर सके जिसके लिये अध्यादेश का प्रख्यापन करना अपेक्षित है जो किसी न किसी रूप में देश की शान्ति अथवा सुरक्षा पर प्रभाव हो जाने के कारण आवश्यक अध्यादेश हो गया हो। उदाहरण के लिये यदि कोई चुंगी सम्बन्धी विधियां हैं जिनमें देश के आर्थिक हित के लिये तुरन्त परिवर्तन करना अपेक्षित है तो कार्यपालिका आवश्यक परिवर्तन कर सकती है और यदि हम छ:, सात या आठ मास तक प्रतीक्षा करें और इस समय के पश्चात् ही यदि विधान-मंडल उस विधान पर विचार करे तो कोई हानि नहीं होगी। परन्तु जबकि अध्यादेश का सम्बन्ध देश की शान्ति और सुरक्षा से है अथवा ऐसी ही परिस्थिति से है जिसके लिये एक अध्यादेश के अधीन कार्यपालिका द्वारा असामान्य कार्यवाही करना अपेक्षित है तो मैं समझता हूं कि हमें यह देखना होगा कि जिस अवधि तक वह अध्यादेश प्रवृत्त रहता है वह यथासंभव कम हो और कोई भी विधान जो अपेक्षित है समस्त परिस्थितियों पर उचित विचार करने के पश्चात् संसद द्वारा पारित किया जाये।

श्रीमान्, मेरी आपत्ति केवल यही नहीं है कि जिस अवधि तक अध्यादेश प्रवृत्त रहेगा वह बहुत लम्बी है, वरन् वह उस अध्यादेश के रूप से भी सम्बन्ध रखती है जो प्रख्यापित

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

किया जायेगा। कार्यपालिका जल्दबाजी में ऐसा अध्यादेश पारित कर सकती है जो यद्यपि आंशिक रूप में आवश्यक हो परन्तु अपने समस्त विवरण सहित अपेक्षित न हो। अतः यह आवश्यक है कि विधान-मंडल को एक अवसर दिया जाये केवल उस स्थिति पर ही विचार करने के लिये नहीं जिसके कारण अध्यादेश पारित करना अपेक्षित है वरन् अध्यादेश के निबन्धनों पर भी विचार करने के लिये। श्रीमान्, यह सम्भव हो सकता है कि विधान-मंडल इस विचार को रखते हुए भी कि कोई विधान आवश्यक है कार्यपालिका से पूर्णतया सहमत न हो और जो अध्यादेश प्रख्यापित किया जा चुका है उसमें रूप भेद कर दे। श्रीमान्, इन दो कारणों के आधार पर मैं यह बहुत हो आवश्यक समझता हूं कि कार्यपालिका को अध्यादेश पारित करने की जो शक्ति दी गई है वह अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत जितनी होगी उससे बहुत कुछ सीमित कर देनी चाहिये। मैं आशा करता हूं कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर इस विषय पर उतना विचार करेंगे जितने विचार के ये योग्य हैं और मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि यह ऐसा विषय है जिस पर यदि आवश्यक समझा जाये तो आगार से विचार स्थगित करने के लिये निवेदन किया जाये यदि वे आवश्यक संशोधन को तैयार करके नहीं लाये हों।

श्रीमान्, यह हो सकता है कि जिस रूप में मैंने यह संशोधन रखा है सम्भव है कि वह दोषयुक्त हो। किसी सदस्य के लिये इसमें दोष निकालना बहुत ही सरल होगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि विनाशकारी आलोचना की जाये वरन् ऐसी कार्यवाही की जाये जो देश के नये संवैधानिक स्थिति से संगत हो और विधान-मंडल के उत्तरदायित्वों के अनुरूप हो।

***अध्यक्षः** क्या इस समय मैं यह संकेत करूं कि आपको संशोधन संख्या 1805 पेश करना है क्योंकि यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो वह आवश्यक हो जाता है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** जी हां, मैं आपसे सहमत हूं। मैं समझता हूं कि इसको पेश करना चाहिये। अतः श्रीमान्, मैं पेश करता हूंः

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) की व्याख्या निकाल दी जाये।''

मुझे इस संशोधन के बारे में कुछ नहीं कहना चाहिये क्योंकि जो संशोधन में पेश कर चुका हूं उसके फलस्वरूप यह संशोधन है।

***अध्यक्षः** इस संशोधन पर संशोधन की सूचना श्री जसपतराय कपूर ने दी है। क्या वे उसे पेश करेंगे?

***श्री जसपतराय कपूरः** जी नहीं।

***अध्यक्षः** प्रो. शाह।

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'Parliament' शब्द के पश्चात् जहां कि वह प्रथम बार आता है 'immediately after each House

assembles' शब्द प्रविष्ट कर दिये जाये; जहां 'and' शब्द प्रथम बार आता है उसके पश्चात् 'unless approved by either House of Parliament by specific Resolution' शब्द तथा 'operate' शब्द के पश्चात् 'forthwith' शब्द प्रविष्ट किये जायें और 'at the expiration of six weeks from the re-assembly of Parliament, or, if before the expiration of that period resolutions disapproving it are passed by both Houses, upon the passing of the second of those resolutions; शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, संशोधित खंड इस प्रकार का हो जायेगा।

'Every such Ordinance shall be laid before both Houses of Parliament immediately after each House assembles, and unless approved by either House of Parliament by specific Resolution, shall cease to operate with.''

'at the expiry of six weeks, इत्यादि, इत्यादि'' सब के सब शब्द निकाल दिये जायेंगे।

श्रीमान्, मेरे संशोधन का सिद्धांत वही है जिसका पंडित कुंजरू ने इतना जोरदार समर्थन किया है। मुझे विश्वास है कि हम में से अधिकांश अध्यादेश बनाने की शक्ति को मुख्य कार्यपालिका में निहित करने से कुछ सीमा तक घृणा अथवा अविश्वास करते हैं चाहे हम उस पर कितना ही आवरण डालें चाहे वह कितना ही आवश्यक हो, चाहे वह कितना ही न्यायमुक्त हो परन्तु वह विधि-नियम का निषेध है। अर्थात् यद्यपि वह सामान्य विधान-मंडल द्वारा पारित विधान नहीं है फिर भी उसे विधि की शक्ति होगी जो अवांछनीय है। चाहे वह अत्याज्य हो तथा इससे भी अधिक चाहे वह आपात के समय में समर्थनीय हो पर इसी तथ्य से कि वह असामान्य अथवा आपात शक्ति है, वह विधान-मंडल द्वारा विचार-विमर्श किये बिना कार्यपालिका का पारित आदेश अथवा आज्ञप्ति है यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसी असामान्य परिस्थितियों के लिये जितने समय के लिये वह अपेक्षित है उससे एक पल अधिक न उसको रहने दिया जा सकता है और न रहने देना चाहिये।

या तो कई संविधानों में प्रमुख कार्यपालिका को यह शक्ति दी ही नहीं गई है और यदि दी भी गई है तो किसी ऐसे तरीके से जो इस संशोधन द्वारा प्रस्तावित किया गया है उसको जितना प्रभाव तथा कठोरता से हो सका है उतना संकुचित किया गया है। अर्थात् यदि अध्यादेश आपात के समय अथवा असामान्य परिस्थितियों का सामना करने के लिये पारित किया जाता है तो संसद के दोनों सदनों के अधिविष्ट होते ही उनके समक्ष रख देना चाहिये और यदि विशिष्ट संकल्पों द्वारा प्रत्येक सदन से वह स्वीकार नहीं किया जाता है तो वह प्रभावशून्य हो जाना चाहिये। नागरिक स्वातंत्र्य के हित में यह कम से कम आवश्यक है।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं समझता हूं कि इस अन्तिम शक्ति को कार्यपालिका के हाथों में देने के प्रति हम इससे अधिक अपना अविश्वास प्रकट नहीं कर सकते कि यह अपेक्षा की जाये कि जब तक संसद उसे स्वीकार नहीं कर लेती है या यूं कहिये कि इस प्रकार अपना निजी अधिनियम नहीं बना लेती है तथा जब तक विधान मंडल उसे अपना निजी अधिनियम नहीं बना लेता है तो राष्ट्रपति द्वारा पारित इस प्रकार का कार्यपालिका का विधान तुरन्त ही प्रभावशून्य हो जायेगा। उस अधिकतम काल के प्रति, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति का अध्यादेश प्रवृत्त रह सकता है, हमें किसी संदेह की गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये। यदि संसद का सत्र नहीं हो रहा है अथवा साधारण निर्वाचन लम्बित है इस कारण संसद का अधिवेशन नहीं हो सकता है तो कुछ समय दिया जा सकता है परन्तु वह यथासम्भव कम से कम होना चाहिये। इस दशा में निस्सन्देह अन्य संशोधन, जो पेश हो चुके हैं, प्रवृत्त होंगे और मैं आशा करता हूं कि वे अवश्य प्रवृत्त होंगे। अर्थात् यह कि संविधान द्वारा अध्यादेश की अधिकतम कालावधि सीमित कर देना चाहिये। चाहे कोई अध्यादेश किसी समय आवश्यक हो, चाहे वह किसी आपात के कारण अत्याज्य तथा समर्थनीय हो पर उसकी अधिकतम कालावधि तीन या चार मास तक अथवा अधिक से अधिक छः मास तक सीमित कर देना चाहिये। यद्यपि यह अवधि अनावश्यक है परन्तु सिद्धांत महत्त्वपूर्ण है। यह कहकर कि अवधि अनावश्यक है मैं यह सुझाव नहीं करता हूं कि उसको किसी भी समय तक के लिये प्रसारित कर दिया जाये। जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यही है कि तीन, चार या छः सप्ताह में कोई अधिक अन्तर नहीं हो जायेगा। अध्यादेश बनाने का कार्य स्वयं ही असामान्य तथा अवांछनीय शक्ति होने के कारण इसको इसकी अवधि के लिये अधिकतम काल विनिहित कर निबन्धित करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी दशा में इस अवधि में और अधिक समय बढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो संसद को बुलाया जाये और प्रत्येक सदन उस अध्यादेश पर विचार करे और यदि किसी विशिष्ट संकल्प द्वारा प्रत्येक सदन से वह स्वीकार नहीं किया जाता है तो उस अध्यादेश को उसी समय से प्रभावशून्य समझा जाये।

केवल इन निबंधों और परिसीमाओं के अधीन मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति में इस असामान्य शक्ति के निहित होने से सहमत हो सकते हैं।

यह सत्य है कि यद्यपि अध्यादेश बनाने का नाममात्र का प्राधिकार राष्ट्रपति को है परन्तु वे केवल प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर कार्यवाही करेंगे और स्वाभाविक रूप से प्रधानमंत्री संसद के प्रति उत्तरदायी होगा जहां तक कि उत्तरदायित्व पूर्ण मंत्रिमंडल के साधारण उपचारों का प्रभाव पड़ सकता है। इस बात के होते हुए भी मैं इसे दलबन्दी की आवश्यकताओं अथवा संभावनाओं पर निर्भर नहीं करूंगा कि वह यह देखें कि ऐसी असामान्य शक्तियां किस समय अथवा किस अवधि तक प्रयोग में लाई जायें और इसी कारण मैं यह चाहूंगा कि संविधान के अंतर्गत संविधान के द्वारा अध्यादेश की अवधि के लिये अधिकतम काल निहित किया जाये और एक निश्चित कार्यप्रणाली निर्धारित की जाये जिसके द्वारा संसद

के प्रत्येक सदन से एक विशिष्ट संकल्प द्वारा वह अध्यादेश स्वीकृत किया जा सके। मैं आशा करता हूं कि यह अतिमहत्त्वपूर्ण विषय सदन को स्वयं मान्य होगा और संशोधन स्वीकार हो जायेगा।

(संशोधन संख्या 1804, 1806, 1807 और 1808 पेश नहीं किये गये।)

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

> ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'except when both Houses of Parliament are in session' शब्दों के पश्चात् 'after consultation with his Council of Ministers' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यह इतना स्पष्ट है कि शायद मुझे यह उत्तर मिले कि सब संविधानों में यह माना जाता है कि संवैधानिक प्रमुख सदैव मंत्रि-परिषद् की मंत्रणा के अनुसार कार्य करता है और अन्य संविधानों में यह विशेष रूप में नहीं दिया जाता है कि वह ऐसा करे। इस बात को जानते हुए भी मैंने यह संशोधन पेश किया है क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि हम एक लिखित संविधान बना रहे हैं जिसमें हम प्रत्येक विवरण रख रहे हैं और जिसके फलस्वरूप यह संविधान बहुत बड़ा तथा भारी हो गया है। इन परिस्थितियों में मैं समझता हूं कि इतना महत्त्वपूर्ण विषय जो इतना स्पष्ट है अवश्य रखा जाये। यह कहा जा सकता है कि परम्परा अपने आप बन जायेगी और राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों से मंत्रणा करनी होगी। मेरा निवेदन यह है कि यहां तो अभी परम्परा बनेगी। हम अपने राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रमुख बना रहे हैं और उसे वे शक्तियां सौंप रहे हैं जो अनन्य प्रतीत होती हैं परम्परा धीरे-धीरे बनेगी परन्तु चूंकि यह संविधान लिखित है और प्रत्येक बारीकी पर विचार किया जा रहा है तो फिर इस तथ्य को किसी व्यक्ति की इच्छा अथवा तरंग पर क्यों छोड़ा जाये चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो? यदि यह हम स्पष्ट निर्धारित कर दें कि उसे मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार कार्य करना होगा तो उसकी स्थिति के लिये यह अपमानजनक नहीं होगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक औचित्य सम्बन्धी प्रश्न है श्रीमान्, श्री पोकर द्वारा पेश किया गया संशोधन नियम-विरुद्ध है। उनका संशोधन इस प्रकार है:

> ''Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law.''

यदि आप मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 15 को देखें जिसको हम पारित कर चुके हैं तो उसमें कहा गया है:

> ''भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वातन्त्र्य से विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता से अथवा विधियों के संरक्षण से वंचित रखा जायेगा।''

[श्री आर.के. सिधवा]

यह अनुच्छेद जो हमने पारित कर दिया है निश्चित रूप से इस बातों की व्याख्या करता है कि दैहिक स्वातन्त्र्य क्या है और उनका किस प्रकार संरक्षण किया जायेगा। अतः यह संशोधन नियम विरुद्ध होगा।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि यह नियम-विरुद्ध है। वह अनुच्छेद 15 से असंगत नहीं जिसको हम पारित कर चुके हैं। वह केवल उसकी पुष्टि करता है। इस कारण मैं इस संशोधन की आज्ञा देता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर बहुत से संशोधन पेश किये गये हैं। सदन के लिये यह स्वाभाविक होगा कि वह इस बात पर जोर दे कि न तो संसद की साधारण शक्तियों को परिसीमित किया जायेगा और न संसद की इच्छाओं का किसी अप्रत्यक्ष रूप में दमन किया जायेगा। इसी उद्देश्य से इस सदन के अनेक माननीय सदस्य अध्यादेश के प्रवर्त्तन की कालावधि को सीमित करने के लिये प्रस्तुत हुए हैं और इस बात पर आग्रह करते हैं कि राष्ट्रपति संसद के सदनों का सत्र यथासम्भव शीघ्र बुलायेगा। जो संशोधन पेश किये गये उनमें से किसी के समर्थन में दिये गये भाषणों से मैं बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुआ हूं।

पहला संशोधन, जिसको श्री पोकर ने पेश किया है, बहुत ही गलत जगह पर है। यही नहीं कि किसी व्यक्ति को बिना किसी विधि के, जिसके अन्तर्गत उसे बन्दी किया जा सकता है। बन्दी करने के सम्बन्ध में पर्याप्त उपबन्ध न बनाये हों वरन् यह वह स्थल नहीं है, जहां कि ऐसा संशोधन पेश किया जाये क्योंकि मैं तो यह नहीं समझता हूं कि सभा को इस बात से भयभीत होने की आवश्यकता है कि राष्ट्रपति बिना व्यवस्था के लोगों को गिरफ्तार करने के लिये अपनी शक्ति का दुरुपयोग करेगा अथवा भारत के किसी नागरिक वर्ग को अपने स्वातन्त्र्य से वंचित करने के लिये अध्यादेश प्रख्यादित करेगा। किसी दशा में भी मूलाधिकारों के स्वीकार हो जाने पर मैं नहीं समझता हूं कि श्री पोकर द्वारा पेश किये गये संशोधन की कोई आवश्यकता है। वर्तमान समय में गिरफ्तारी की विधियों के, लोक-रक्षा-अधिनियम के तथा प्रान्तों में पारित अन्य विधियों के अधीन बहुत मनुष्य अपने स्वातन्त्र्य से वंचित कर दिये गये हैं। माननीय सदस्यों की यह शिकायत सही है कि प्रान्तों में प्रवृत्त लोक-रक्षा-अधिनियमों के उपबन्धों का मनमाने तथा कष्टदायक रूप में प्रयोग किया गया है और इससे बहुत कुछ असंतोष हुआ है। परन्तु हम प्रान्तों अथवा उनकी शक्तियों पर विचार नहीं कर रहे हैं। यहां हम राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों पर विचार कर रहे हैं और हमें इस तथ्य पर ध्यान देना पड़ेगा कि वर्तमान समय में केवल आरक्षी अथवा न्यायाधीश के रूप में सरकारें समाप्त हो चुकी हैं। एक समय ऐसा था जब संसार की सभी सरकारें केवल आरक्षी तथा न्यायाधीश ही थीं। परन्तु आजकल सरकारी कार्यवाही के क्षेत्र के बाहर कोई चीज नहीं है। अन्य बातों के साथ-साथ आजकल की सरकारें दूकानदार भी हैं, कमीशन एजेंट भी हैं और यहां तक कि ठेकेदार भी हैं। वर्तमान परिस्थितियों में हर प्रकार का कार्य जिसे एक सामान्य नागरिक करता था सरकार द्वारा

किया जाता है। श्रीमान्, इस कारण मैं समझता हूं कि जो शक्तियां हम राष्ट्रपति को दे रहे हैं वे और भी अधिक आवश्यक हैं क्योंकि नित्य प्रति का प्रशासन बहुत जटिल हो गया है।

उदाहरण के लिये नियंत्रणों के प्रशासन को ही लीजिये। ऐसे हजारों अवसर आयेंगे जबकि कार्यपालिका के लिये इस प्रकार की कोई शक्ति रखना आवश्यक हो जायेगा। इस वर्तमान असाधारण काल में जो संसार काल में जो संसार भर में छाया हुआ है, मैं समझता हूं कि यह नितान्त आवश्यक तथा वांछनीय है कि राज्य के मुखिया को ये असामान्य शक्तियां दी जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** संविधान का निर्माण केवल असाधारण काल के लिये नहीं किया जाता है, वह भावी अनेकानेक वर्षों के लिये बनाया जाता है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इस संविधान में जो उपबंध हैं वे ऐसे हैं कि सामान्य परिस्थितियों में भी उनके दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना नहीं है। पंडित कुंजरू ने कहा था कि भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम में यह अंग्रेजी सरकार के हित के लिये था, कि इस प्रकार की धारा रखी गई थी क्योंकि उस समय सरकार उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं थी। परन्तु जबकि सरकार पर विधान-मंडल का उत्तरदायित्व है तो उसके दुरुपयोग किये जाने का डर ही नहीं है। मैं समझता हूं कि पंडित कुंजरू ने स्वयं ही अपने तर्क का उत्तर दे दिया है। मुझे विश्वास है कि कोई भी राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सम्मति के बिना कार्य नहीं करेगा और कोई भी मंत्रिमंडल सदन के सदस्यों के बहुमत की सम्मति के बिना कार्य नहीं करेगा। अतः इस धारा के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा यदि किसी शक्ति के प्रयोग में लाने की सम्भावना है तो उसे विधान-मंडल की स्पष्ट स्वीकृति तथा सम्मति प्राप्त होगी और इस कारण मैं समझता हूं कि सरदार हुकुमसिंह का संशोधन भी आवश्यक नहीं है। कोई भी राष्ट्रपति पद धारण किये नहीं रह सकता है यदि वह ऐसे अध्यादेश निकालेगा जिनको मंत्रिमंडल की तथा अन्ततः विधानमंडल की सम्मति प्राप्त नहीं है। अतः श्रीमान्, मैं समझता हूं कि जो रक्षा-कवच सुझाये गये हैं उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। जबकि अध्याादेश को वापस करने की शक्ति राष्ट्रपति को दे दी गई है तो संवैधानिक प्रमुख होने के नाते—लोक-संरक्षण होने के नाते वह किसी विधायी साधन की, जितने समय के लिये वह नितान्त आवश्यक है उससे एक दिन अधिक तक के लिये अनुज्ञा नहीं देगा।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, पेश किये गये अपने संशोधन के परिणामस्वरूप पंडित कुंजरू व्याख्याओं को हटाना चाहते हैं। वास्तव में श्रीमान्, व्याख्यायें दो नहीं हैं। केवल एक ही व्याख्या है। मेरे अभिप्राय से इस अनुच्छेद का तीसरा उपखंड भी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपबंध है। यह इस प्रकार हैः

> ''If and so far as an Ordinance under this article makes any provision which Parliament would not under this Constitution be competent to enact., it shall be void.''

[डा. पी.एस. देशमुख]

मैं समझता हूं कि इस उपबंध से श्री पोकर साहिब भी संतुष्ट हो जायेंगे क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त कोई विधायी शक्ति यदि किसी भी मूलाधिकार के विरुद्ध जाती है तो वास्तव में उस सीमा तक वह शून्य हो जायेगा और उसका कुछ भी अर्थ नहीं होगा।

इन सब परिस्थितियों में श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि जो संशोधन पेश किये गये हैं उनमें से किसी की भी आवश्यकता हो। मैं समझता हूं कि जो समय यहां दिया गया है वह सम्भवतः पर्याप्त होगा। परन्तु फिर भी यदि डा. अम्बेडकर यह अनुभव करते हैं कि जो तर्क प्रस्तुत किये गये हैं उनसे वे सन्तुष्ट हैं और तीस दिन की उल्लिखित अवधि के अन्दर संसद को तुरन्त बुलाने का उपबंध बनाना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, पर श्रीमान्, मैं यह समझता हूं कि राष्ट्रपति को जो विधायी शक्ति दी गई हैं उनके दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना नहीं है और जिस प्रकार की शक्तियां इस अनुच्छेद में उल्लिखित हैं वे आवश्यक हैं।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, सर्वप्रथम मुझे संशोधन संख्या 1802 को लेना चाहिये जो मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू द्वारा पेश किया गया है। श्रीमान्, खंड (2) के उपखंड (क) में यह कहा गया है कि प्रत्येक अध्यादेश संसद के समक्ष रखा जायेगा और संसद के पुनः अधिवेष्टित होने से छः सप्ताह की समाप्ति पर प्रभावशून्य हो जायेगा इत्यादि, इत्यादि। मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू कहते हैं कि अध्यादेश के प्रख्यापन करने से तीस दिन की समाप्ति पर वह प्रभावशून्य हो जाये। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि मैं इसे समझने में असमर्थ हूं। केवल आपातिक स्थिति में ही अध्यादेश प्रख्यापित किये जाते हैं। मान लीजिये कि आपात ऐसा है कि वह तीस दिन से अधिक रहे तो उस दशा में हम क्या करें?

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, माननीय सदस्य ने पंडित कुंजरू के संशोधन को ठीक-ठीक नहीं समझा है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, जिस समय पंडित कुंजरू ने यह संशोधन पेश किया था मैं यहां पर नहीं था। पर उनके संशोधन से यह स्पष्ट है कि वे यह चाहते हैं कि अध्यादेश प्रख्यापन करने के समय से तीस दिन की समाप्ति पर वह प्रभावशून्य हो जाये। यदि यही बात है तो मैं आपके समक्ष एक उदाहरण रखूंगा। मान लीजिये कि साधारण निर्वाचन के लिये लोक सभा का आज विघटन हो जाता है। दूसरे दिन आपात उत्पन्न हो जाता है और संघ का राष्ट्रपति अध्यादेश प्रख्यापित करता है। तो आप क्या करेंगे? सदस्य तो हैं ही नहीं। आप किस प्रकार पुनः संसद बुलायेंगे? मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

अब मुझे श्री पोकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 1796 को लेने दीजिये। वे कहते हैं 'Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law' इसे मैं नहीं समझ सकता हूं। यह एक असामान्य कार्यप्रणाली है। अध्यादेश का

अर्थ है एक असामान्य कार्यप्रणाली। ऐसे आपात में दैहिक स्वातन्त्र्य का प्रश्न ही नहीं उठता। हम नहीं जानते कि उस समय क्या होगा। अतः उनके संशोधन का भी विरोध होना चाहिये।

सरदार हुकुमसिंह द्वारा पेश किये गये संशोधन में यह कहा गया है कि जब कोई अध्यादेश प्रख्यापित किया जाता है, तो मंत्रि-परिषद् से पहले ही परामर्श कर लेना चाहिये। यह बहुत ही युक्तियुक्त है। हमें इसका समर्थन करना चाहिये। आखिरकार प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल जनता के मुख्य प्रतिनिधि ही है। इसमें भी सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति भी समस्त संघ का प्रतिनिधान करता है। परन्तु मैं समझता हूं कि प्रधानमंत्री और उसका मंत्रिमंडल अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है और अध्यादेश प्रख्यापित करने के पूर्व उनसे परामर्श करना चाहिये। इसलिये मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***मि. महबूब अली बेग साहिबः** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, पंडित कुंजरू द्वारा पेश किये गये संशोधन से तथा श्री पोकर द्वारा पेश किये गये संशोधन से भी मैं पूर्णतया सहमत हूं। सर्वप्रथम मैं पंडित कुंजरू द्वारा पेश किये गये संशोधन पर बोलूंगा। मैं समझता हूं कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर के लिये इस संशोधन को स्वीकार करना संभव होना चाहिये। पंडित कुंजरू ने यह स्पष्ट बता दिया कि अध्यादेश द्वारा शासन छः माह तक तथा छः सप्ताह से ऊपर छः माह तक रह सकता है। तो प्रश्न यह है कि क्या यह वांछनीय है कि गणतंत्र में, जिसमें देश के लोकप्रतिनिधि उपस्थित हैं जिनको अल्पकालीन सूचना द्वारा आहूत किया जा सकता है, आप संसद आमंत्रित करने को स्थगित करने का अवसर कार्यपालिका को दें, जिसके लिये कि कार्यपालिका को छः मास और छः सप्ताह तक के लिये अधिकार मिल जाता है। मैं निवेदन करता हूं कि यह गणतंत्र विरोधी है और कम से कम इससे कार्यपालिका द्वारा दमन किया जा सकेगा। आजकल मैं मंत्रिमंडल के सदस्यों की यह प्रवृत्ति देखता हूं कि वे ऐसा विधान प्रस्तुत करते हैं अथवा संविधान में ऐसी प्रस्थापना रखते हैं, जो स्वयं वर्तमान आशंकाओं पर आश्रित होती है। शक्ति प्राप्त सरकार अथवा जिन व्यक्तियों पर इन विषयों का प्रभाव रहता है, वे समझते हैं कि सदैव तनाव बना रहता है और उसके लिये किसी भी घटना का सामना करने की कार्यपालिका शक्ति देने वाले उपबंध बनने चाहियें। ठीक है, किसी घटना के उत्पन्न होते ही उस स्थिति का सामना करने के लिये कार्यपालिका को शक्ति देने के लिये हम उद्यत हैं। जबकि एक सप्ताह अथवा दस दिन में ससंद बुलाई जा सकती हे, तो मैं कोई कारण नहीं समझ पाता कि हम यह निश्चित करने के लिये कि प्रख्यापित अध्यादेश बना रहे या नहीं, संसद आमंत्रित करने में देर करने का अवसर क्यों दें। यह संकट से परिपूर्ण है और ऐसे अवसर हैं कि कार्यपालिका अन्यायपूर्वक स्वयं शक्तियां ग्रहण कर ले और संसद के बुलाने के स्थगित करने के लिये प्रलोभित हो। अतः श्रीमान्, गणतंत्रीय बुद्धि वाले डा. अम्बेडकर पंडित कुंजरू के संशोधन में निहित सुझाव को स्वीकार कर सकेंगे।

श्री पोकर के संशोधन के सम्बन्ध में मैं उस वाद-विवाद को पुनः जाग्रत नहीं करना चाहता हूं, जो अनुच्छेद 15 पर विचार-विमर्श करते समय उत्पन्न हुआ था। उस समय यह नियम-विरुद्ध घोषित किया जा चुका था कि दैहिक स्वातन्त्र्य की रक्षा विधि द्वारा अर्थात् संसद द्वारा निर्धारित कार्यप्रणाली के अनुसार हो सकती है। हम उसे पारित कर

[मि. महबूब अली बेग साहिब]

चुके हैं। परन्तु यहां हम राष्ट्रपति के मनमाने नियम से भी चाहे वह छः मास के लिये हो चाहे दो मास के लिये, लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा क्यों न करें? अनुच्छेद 15 का औचित्य, जो हम पारित कर चुके हैं, यह है कि कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में ससंद को विधान बनाना है। कुछ विषयों के सम्बन्ध में कार्यप्रणाली संसद को ही निर्धारित करनी है। उदाहरणार्थ, जब किसी व्यक्ति को, बिना मुकदमा चलाये, उसके स्वातन्त्र्य से वंचित किया जाता है तो उसे संसद द्वारा निर्धारित कार्यप्रणाली के अनुसार जेल में बन्द किया जा सकता है। परन्तु एक ही व्यक्ति को अर्थात् राष्ट्रपति को क्यों अध्यादेश पारित करने दिया जाये, जिसके द्वारा वह किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा उस पर मुकदमा चलाये बिना ही उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दे? इस कारण में इस संशोधन का समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि डा. अम्बेउकर को यह संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 102 में दिये हुये उपबंधों पर मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने कुछ मौलिक आपत्तियां उठाई हैं। अपने भाषण में उन्हीं ने यह कहा था कि हम सचमुच भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम में दिये हुये उपबंधों को पुनः रख रहे हैं। जिनकी देश के सभी दलों ने निन्दा की थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे मित्र पंडित कुंजरू को यह याद नहीं रहा कि भारतीय सरकार के 1935 के अधिनियमों में दो भिन्न-भिन्न उपबंध हैं। उपबंधों की एक श्रेणी भारतीय सरकार के उस अधिनियम की 42 धारा में है और दूसरी श्रेणी 43 धारा में है। धारा 43 में दिये हुये उपबंध गवर्नर जनरल को वे अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान करते थे, जिनको वह अपने उन प्रकार्यों के पालन करने में आवश्यक समझता था जो विधान द्वारा उसको सौंपे गये थे और जिनका अपने स्वविवेक अथवा वैयक्तिक निर्णय के अनुसार पालन करना उसके लिये अपेक्षित था। उन अध्यादेशों से जिनको धारा 43 के अन्तर्गत प्रख्यापित करने की शक्ति गवर्नर जनरल को थी, विधान-मंडल पूर्णतया पृथक कर दिया गया था। वह जो कुछ चाहे कर सकता था जिसको वह अपने विशेष प्रकार्यों के पालन करने में आवश्यक समझता था। दूसरी बात यह है कि गवर्नर जनरल द्वारा धारा 43 के अन्तर्गत प्रख्यापित अध्यादेश उस समय भी प्रख्यापित किया जा सकता है, जब विधान-मंडल का अधिवेशन हो रहा हो। धारा 43 के उपबंधों के अधीन वह एक समान विधायी प्राधिकारी था। यह स्पष्ट हो गया होगा कि वर्तमान अनुच्छेद 102 में उन उपबंधों में से कोई उपबंध नहीं है जो भारतीय सरकार के अधिनियम में धारा 43 में दिये हुये हैं। अतः राष्ट्रपति को विधान की वे स्वतंत्र शक्ति नहीं है, जो धारा 43 के अधीन गवर्नर जनरल को थीं। उसकी इस धारा के अन्तर्गत अध्यादेश प्रख्यापित करने का अधिकार नहीं है जबकि विधान मंडल का अधिवेशन हो रहा हो। हम केवल यही कर रहे हैं कि गवर्नर जनरल को धारा 42 के अन्तर्गत जो शक्तियां दी गई थीं, उनको अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के लिये बनाये रखें। वे उस अवधि से सम्बन्ध रखती हैं, जबकि विधान मंडल का अवकाश हो और अधिवेशन न हो। और केवल उसी समय तक अनुच्छेद 102 में दिये गये उपबंध प्रयोग में लाये जा सकते हैं। अनुच्छेद 102 में दिये हुये उपबंध राष्ट्रपति को कोई ऐसी शक्ति प्रदान नहीं करते हैं, जो केन्द्रीय विधानमंडल को स्वयं प्राप्त न हो, क्योंकि उन पर कोई विशिष्ट उत्तरदायित्व नहीं है, उनको कोई स्वविवेक नहीं है और उनका कोई वैयक्तिक निर्णय नहीं है। अतः मेरा निवेदन यह है कि जो तर्क मेरे मित्र

पंडित कुंजरू ने प्रस्तुत किया है, वह अनुच्छेद 102 के उपबंधों के बहुत कुछ परे है। मैं तो यह कहूंगा कि यह अनुच्छेद कुछ-कुछ ब्रिटिश इमर्जेंसी पावर्स एक्ट 1920 के प्रावधानों के अनुरूप है—मैं बहुत ही संयत भाषा का प्रयोग कर रहा हूं इस अधिनियम के अन्तर्गत भी बादशाह को उद्घोषणा निकालने का अधिकार है और जब कोई उद्घोषणा निकाल दी जाती थी, तो कार्यपालिका को किसी विषय पर विचार करने के लिये विनियम बनाने का अधिकार था और जब संसद का सत्र नहीं होता था तब ऐसा करने की अनुज्ञा थी। सदन के समक्ष मेरा निवेदन यह है कि उन दशाओं की कल्पना करना कठिन नहीं है, जिनमें किसी विशिष्ट काल में वर्तमान साधारण विधि द्वारा प्रदत्त शक्तियां उस परिस्थिति का सामना करने में क्षीण हो जाती हैं, जो एकदम अचानक उत्पन्न हो जाती हैं। कार्यपालिका को क्या करना है? कार्यपालिका के सामने एक नई परिस्थिति है जिस पर उसे विचार करना है। अनुमानत: वर्तमान विधिसंहिता में उस पर विचार करने की उसे शक्ति प्राप्त नहीं है। आपात का निराकरण होना ही चाहिये और मुझे यह प्रतीत होता है कि इसका एक मात्र हल यही है कि राष्ट्रपति को एक विधि प्रख्यापित करने की शक्ति सौंपी जाये, जिसके द्वारा कार्यपालिका उस विशिष्ट-परिस्थिति का सामना कर सके, क्योंकि वह विधि की सामान्य कार्यप्रणाली का आश्रय नहीं ले सकती है; चूंकि अनुमानत: विधानमंडल का सत्र नहीं हो रहा है। अत: मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्यत: अनुच्छेद 102 में दिये हुये उपबंधों पर कोई आपत्ति नहीं है।

यह संकेत मेरे मित्र श्री पोकर ने अपने संशोधन संख्या 1796 में किया था, जिसके द्वारा उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि सिवाय सक्षम न्यायालय द्वारा मुकदमें के पश्चात् दोष सिद्ध हो जाने के किसी ऐसे अध्यादेश द्वारा किसी नागरिक को वैयक्तिक स्वातन्त्र्य के अपने मूलाधिकार से वंचित नहीं करना चाहिये। जहां तक उनके संशोधन का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि उन्होंने अनुच्छेद 102 के खंड (3) को नहीं पढ़ा है। अनुच्छेद 102 के खंड (3) में यह निर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 102 के उपबंधों के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा बनाई गई विधि में वे ही परिसीमाएं होंगी, जो विधान-मण्डल द्वारा सामान्य रीति से बनाई गई विधि में होती है। विधानमंडल द्वारा सामान्य रीति से बनाई गई विधि उन उपबंधों के अधीन रहती है जो इस संविधान के प्रारूप के मूलाधिकार के अनुच्छेदों में दिये हुये हैं। ऐसा होने पर अनुच्छेद 102 के उपबंधों के अन्तर्गत बनी हुई कोई विधि अपने आप ही नागरिकों के मूलाधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानों के अधीन हो ही जायेगी और इस कारण ऐसी कोई विधि उन उपबंधों का अतिक्रमण नहीं कर सकेगी तथा किसी ऐसे उपबंध की आवश्यकता नहीं होगी, जो मेरे मित्र श्री पोकर ने अपने संशोधन संख्या 1796 में सुझाया है।

मेरे मित्र श्री कामत द्वारा सुझाया गया संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 1798 मुझे तो आशयहीन सा प्रतीत होता है। मान लीजिये एक सदन का सत्र है और दूसरे का नहीं है। जैसा कि मैंने कहा है यदि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो अनुच्छेद 102 के प्रावधान आवश्यक हैं, क्योंकि इस संविधान के अनुसार किसी एक सदन द्वारा कोई विधि पारित नहीं की जा सकती है। विधान में दोनों सदनों को भाग लेना चाहिये। अत: एक सदन की उपस्थिति वास्तव में इस परिस्थिति की पूर्ति नहीं करती है।

श्री एच.वी. कामतः क्या इसका आशय यह है कि जब एक ही सदन सत्र में हो, मान लीजिये कि लोक सभा सत्र में हो, तो भी राष्ट्रपति को यह शक्ति होगी?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जी हां, इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि सामान्य रीति से विधि पारित करने का ढांचा ही वर्तमान नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** तब तो मैं कहूंगा कि यह लज्जाजनक है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अब मैं अपने मित्र श्री कुंजरू द्वारा अपने संशोधन संख्या 1802 में उठाये गये अन्य प्रश्न पर आता हूं। उनका सुझाव है कि अनुच्छेद 102 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा अधिनियमित किया गया विधान अध्यादेश के प्रख्यापन करने से तीस दिन के पश्चात् अपने आप समाप्त हो जायेगा। अनुच्छेद के प्रारूप में यह उपबंध है कि संसद की बैठक से छः सप्ताह तक वह बना रहेगा। मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने क्यों इस संशोधन को प्रस्तुत किया है इसका कारण यह है: वे कहते हैं कि अनुच्छेद के मसौदे में दिये हुये प्रावधानों के अन्तर्गत छः सप्ताह से भी अधिक समय व्यतीत हो सकता है, क्योंकि वे समझते हैं कि कार्यपालिका संसद आहूत करने में एक या दो मास लगा सकती है। मान लीजिये संसद चार मास में आहूत की जाती है तो छः सप्ताह भी और होने चाहियें—यह तो व्यवहार्य है अथवा इससे भी अधिक समय लग सकता है, यदि कार्यपालिका संसद आहूत करने में देर कर दे। मैं यह नहीं जानता हूं कि वास्तव में क्या होगा, पर मेरा विचार यह है कि जो भय मेरे माननीय मित्र कुंजरू को है वह भय वास्तव में निराधार है, क्योंकि अनुच्छेद 69 में हमने व्यवस्था कर दी है, जिसमें यह कहा गया है कि संसद के दो सत्रों में परस्पर छः मास का अन्तर न होगा, और मुझे विश्वास है कि संसदीय कार्यवाहियों की आवश्यकता के कारण जितने सत्रों की वर्तमान समय में माननीय सदस्य सोच रहे हैं उससे संसद के अधिक सत्र होंगे। अतः मैं कहता हूं कि अनुच्छेद 69 पर विचार करते हुये, कार्यवाहियों की आवश्यकता पर ध्यान देते हुये तथा संसद का विश्वास बनाये रखने हेतु सरकार की आवश्यकता को सोचते हुये मैं नहीं समझता हूं कि तत्कालीन कार्यपालिका द्वारा कोई ऐसी विलम्बकारी रीति मानने दी जायेगी जिससे अनुच्छेद 102 के अंतर्गत प्रख्यापित अध्यादेश अनुचित रूप से एक दीर्घकाल तक प्रवर्तित बना रहे। अतः मैं सोचता हूं कि जिस रूप में अनुच्छेद के प्रारूप में उपबंध हैं, उनको उसी रूप में रहने दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, क्या मैं एक अन्तिम प्रश्न पूछ सकता हूं? क्या यह हमारे विचारों के अथवा स्वतंत्रता तथा जनतंत्र की विचारधारा के—और मैं समझता हूं कि ऐसे ही विचार डा. अम्बेडकर के हैं—विरुद्ध नहीं हैं कि इस अनुच्छेद में अध्यादेश का अधिकतम काल न रखा जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे निजी विचार ये हैं कि जो विरोध की भावना मेरे माननीय मित्र श्री कामत तथा मेरे माननीय मित्र श्री कुंजरू ने भी प्रकट की है, उसका साकार कारण इस अध्याय के अभागे शीर्षक ''राष्ट्रपति की विधायी शक्तियां'' से उत्पन्न होता है। यह शीर्षक होना चाहिये था ''संसद के सत्र में न होने पर विधान बनाने की शक्ति''। मैं समझता हूं कि यदि इस प्रकार का सीधा सा शीर्षक इस अध्याय को दे

दिया जाता, तो इस उपबंध पर बहुत सा विरोध दब जाता। यह ठीक है कि 'अध्यादेश' शब्द बुरा है, परन्तु यदि श्री कामत अपनी कुशाग्र बुद्धि से कोई अच्छा शब्द सुझा सकते हैं तो सर्वप्रथम मैं उसे स्वीकार करूंगा। 'अध्यादेश' शब्द को मैं पसन्द नहीं करता हूं पर उसके स्थान में कोई अन्य शब्द मैं नहीं सोच सकता हूं।

***अध्यक्षः** एक और संशोधन है जिसे सरदार हुकुमसिंह ने पेश किया है और जिसमें वे कहते हैं कि राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद् से परामर्श करने के पश्चात् अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसके सम्बन्ध में याद दिलाने के प्रति मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं। बात यह है कि वह संशोधन अनावश्यक है क्योंकि राष्ट्रपति बिना मंत्रियों की मंत्रणा के न तो कार्य करेगा और न कर सकता है।

***अध्यक्षः** विधान के प्रारूप में ऐसा उपबंध कहां है, जो राष्ट्रपति को मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार कार्य करने के लिये बाध्य करता हो?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे विश्वास है कि ऐसा उपबंध है और वह उपबंध यह है कि अपने कार्यों के पालन करने में राष्ट्रपति को सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी।

***अध्यक्षः** चूंकि हम एक लिखित संविधान बना रहे हैं, हमें इस बात को कहीं स्पष्ट रूप में रखना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यद्यपि इस समय मैं उसे बता नहीं सकता हूं, पर मुझे विश्वास है कि ऐसा उपबंध है। मैं समझता हूं कि ऐसा एक उपबंध है कि राष्ट्रपति मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करने के लिये बाध्य है। वास्तव में अपने मंत्रियों की मंत्रणा के बिना वह कार्य नहीं कर सकता है।

***कुछ माननीय सदस्यः** अनुच्छेद 61 (1)।

***अध्यक्षः** उसमें केवल मंत्रियों के कर्त्तव्य निर्धारित हैं, पर उसमें यह नहीं दिया गया है कि यह राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह मंत्रियों द्वारा दी गई मंत्रणा के अनुसार कार्य करे। उसमें यह नहीं दिया गया है कि उस मंत्रणा को स्वीकार करने के लिये राष्ट्रपति बाध्य है। क्या संविधान में कोई और उपबंध है? यदि कोई उपबंध नहीं है तो हम उस पर महाभियोग भी नहीं चला सकेंगे, क्योंकि इस कार्य में वह संविधान का अतिक्रमण तो करेगा ही नहीं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 61 की ओर आकर्षित करूं, जो राष्ट्रपति के कार्य निर्वहन के सम्बन्ध में है। जब तक उसे अपने ''कार्य निर्वहन के लिये'' मंत्रणा नहीं मिली है, तब तक वह अपने किसी कृत्य का निर्वहन नहीं कर सकता है। यह केवल ''सहायता तथा मंत्रणा देना'' ही नहीं है। ''अपने कार्य निर्वहन'' में ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द हैं।

***अध्यक्ष:** मुझे संदेह है कि ये शब्द राष्ट्रपति को बाध्य कर भी सकेंगे। उसमें केवल यही दिया गया है कि राष्ट्रपति के कृत्य प्रयोग में उसको सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा। इसमें यह नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति उस मंत्रणा को मानने के लिये बाध्य होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि तत्कालीन मंत्रिमंडल की मंत्रणा वह स्वीकार नहीं करता है, तो मंत्रणा प्राप्त करने के लिये उसे मंत्रियों का कोई और निकाय बनाना पड़ेगा। मंत्रियों से स्वतंत्र होकर वह कार्य नहीं कर सकेगा।

***अध्यक्ष:** कहीं इस बात की व्यवस्था करने में कि राष्ट्रपति मंत्रियों की मंत्रणा मानने के लिये बाध्य होगा, कोई वास्तविक कठिनाई है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम ऐसी व्यवस्था कर रहे हैं। यदि मैं यह कह सकता हूं तो प्रवेश-लिखित में ऐसा एक उपबंध है।

***अध्यक्ष:** मैंने उस पर भी विचार कर लिया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** कंडिका 3 इस प्रकार है: संघ की कार्यपालिका शक्ति के अंतर्गत सब विषयों में प्रदत्त शक्तियों को प्रयोग में लाने के लिये राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की मंत्रणा का अनुसरण करेगा। इसमें हम कुछ संशोधन प्रस्तावित करना चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** आप इसमें परिवर्तन करना चाहते हैं। जिस रूप में वह है उसमें यह दिया गया है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग करने में राष्ट्रपति को मंत्री मार्ग प्रदर्शन करेंगे, न कि विधायी शक्ति में।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुच्छेद 61 अनेकों अन्य विधानों में लगभग अक्षरश: इसी प्रकार है और राष्ट्रपतियों ने सदैव यही समझा है कि इस भाषा का यही अर्थ है कि वे उस मंत्रणा को स्वीकार करें। यदि कोई कठिनाई है, तो उपयुक्त संशोधन द्वारा उसको अवश्य दूर किया जायेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यादेश के अधिकतम काल के विषय पर जो साढ़े सात मास तक बढ़ाया जा सकता है आप इस अनुच्छेद को खामोश छोड़ देंगे। यह असम्भव है।

***अध्यक्ष:** क्या अपने संशोधन पर श्री कामत दूसरा भाषण देने जा रहे हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति से हमारे राष्ट्रपति सर्वथा भिन्न हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद की रचना करने में हम ब्रिटिश शासन से भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं और ये बहुत ही भयानक स्थिति है।

***अध्यक्ष:** आप अपना भाषण दे चुके हैं। मैं नहीं समझता हूं कि इस समय आपको यह बात कहने का अधिकार है। अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'when both houses' शब्दों के स्थान में 'when one or both Houses' और 'such Ordinances' शब्दों के स्थान में 'such Ordinance or Ordinances' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) में 'except when both Houses of Parliament are in session' शब्दों के पश्चात् 'after consultation with his Council of Ministers' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (1) पर निम्न परन्तुक लगाया जाये:

'Provided that such ordinance shall not deprive any citizen of his right to personal liberty except on conviction after trial by a competent court of law.' ''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'both Houses of Parliament' शब्दों के पश्चात् 'within four weeks of promulgation' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'six weeks from the re-assembly of Parliament' शब्दों के स्थान में 'thirty days from the promulgation of any Ordinance' शब्द रखे जायें'' और ''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) की व्याख्या निकाल दी जाये।''

संशोधन अस्वीकार किये गये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 102 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'Parliament' शब्द के पश्चात् जहां कि वह प्रथम बार आता है 'immediately after each House assembles' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें; जहां 'and' शब्द प्रथम बार आता है, उसके पश्चात् 'unless approved by either House of Parliament by specific Resolution' शब्द तथा 'operate' शब्द के पश्चात् 'forthwith' शब्द प्रविष्ट किये जायें और 'at the expiration of six weeks from the re-assembly of Parliament, or if before the expiration of that period resolutions disapproving it are passed by both Houses, upon the passing of the second of those resolutions' शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि ये ही सब संशोधन हैं।

प्रस्ताव यह है:

'कि अनुच्छेद 102 संविधान का अंग बने।'

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 102 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अध्याय 4

***अध्यक्षः** एक संशोधन है, जिसकी मेरे पास सूचना है कि एक नया अनुच्छेद 102 (क) प्रविष्ट किया जाये। हम उसे लेंगे।

इस अध्याय के शीर्षक पर एक संशोधन है।

इस अध्याय को संख्यांकित करने के बारे में श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 1809। मैं नहीं समझता हूं कि उसको लेना आवश्यक है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि भाग 5 के अध्याय 4 के शीर्षक में 'Federal Judicature' शब्दों के स्थान में 'Union Judiciary' शब्द रखे जायें।''

यह केवल उस पूर्ववर्ती अनुच्छेद का आनुषंगिक मात्र है जिसमें भारत का संघ के रूप में वर्णन किया गया है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि भाग 5 के अध्याय 4 के शीर्षक में 'Federal Judicature' शब्दों के स्थान में 'Union Judiciary' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** श्री गुप्ता का संशोधन पूर्ववर्ती संशोधन के समान ही है।

नया अनुच्छेद 102-क

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि भाग 5 अध्याय 4 में निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'102-क इस संविधान के अधीन भारत में न्यायपालिका कार्यपालिका अथवा विधानमंडल से पूर्णतया पृथक् तथा सर्वथा स्वतंत्र होगी।' ''

श्रीमान्, संविधान निर्माण में यह संशोधन एक बड़े ही महत्त्वपूर्ण सिद्धांत की व्याख्या करता है, जिस पर मैं अनेक विभिन्न दृष्टिकोणों से आग्रह कर चुका हूं, परन्तु जिस पर मैं इस समय इस दृष्टिकोण से इस आशा में जोर देना चाहूंगा कि कम से कम न्यायपालिका के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु यह संशोधन सदन को स्वीकार होगा।

श्रीमान्, शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत बहुत से देशों में प्रजातंत्रीय सरकार की आधारशिला के रूप में समझा जाता है। दुर्भाग्यवश इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के प्रति अन्य अवसरों पर मैं सदन को विश्वास नहीं करा सका, जब मैंने या तो सामान्य रूप में या विधानमंडल को कार्यपालिका से स्वतंत्र रहने के तथा कार्यपालिका को विधानमंडल से स्वतंत्र रहने के लिये इसकी व्याख्या की थी। खैर, न्यायपालिका के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि यह सिद्धांत अपेक्षाकृत किसी अन्य स्थल के यहां अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस देश में लोकप्रिय आन्दोलन का इतिहास आरम्भ से ही इस मांग से युक्त रहा है कि कम से कम न्यायपालिका कार्यपालिका से पृथक् तथा पूर्णतया स्वतंत्र रहनी चाहिये। पूर्ववर्ती सरकार की एक विशेषता यह थी कि न्यायिक संगठन की मात्रा में एक यथेष्ट स्थिति तक न्यायपालिका की तथा कार्यपालिका की शक्तियां एक ही पदाधिकारी में निहित कर दी जाती थीं। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसका अपवाद उसी समय से किया गया था, जब से कि इस देश में प्रजातंत्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ।

यद्यपि जितने पूर्णरूप में मैं चाहता हूं, उतने पूर्णरूप में इस संविधान में यह अभी तक स्वीकार नहीं हो पाया है, पर मुझे विश्वास है कि सैद्धांतिक रूप में इस सदन का बहुमत इस बात पर आपत्ति नहीं करता है। मैंने इसे बहुत ही व्यापक बना दिया है। इस संशोधन में केवल न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक्करण ही नहीं है, वरन् उसकी स्वतंत्रता भी है तथा मैं उसे विधानमंडल तथा कार्यपालिका से भी पृथक् रखना चाहता हूं।

मैं समझता हूं कि विधानमंडल में न्यायिक वर्ग की उपस्थिति से न तो कोई लाभ है और न वह किसी रूप में विधानमंडल के अथवा स्वयं न्यायाधीशों के लिये ही सहायक

[प्रो. के.टी. शाह]

है, इस रूप में कि यदि न्यायाधीश विधानमंडल के सदस्य हैं, तो उन पर उस वाद-विवाद तथा कार्यवाहियों का प्रभाव पड़ सकता है, जो उस विधिनिर्माण में हुई थी और यदि किसी खास मुकदमे में उस विधि का प्रयोग आ जाता है, तो वे स्वयं उस विधि के शाब्दिक अर्थ का पूर्ण प्रयोग नहीं कर सकेंगे। न्याय-प्रशासन सम्बन्धी यह एक बड़ा ही पुष्ट सिद्धांत माना जा चुका है कि विधानमंडल में उस विधि के पारित करते समय जो कुछ हुआ उससे न्यायाधीशों का कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता है और उस निकाय में उस विधि पर विचार-विमर्श करते समय जो तर्क उठाये गये अथवा जो बातें कही गईं उनका न्यायाधीशों पर कोई प्रभाव नहीं होना चाहिये। उन्हें तो अपने आप को केवल विधानमंडल के अन्तिम अधिनियम तक ही, जैसी कि उसकी शब्दावलि है, सीमित रखना चाहिये और जब कभी कोई विषय उनके सम्मुख आता है, जिसमें उस विधि का प्रयोग निहित है, तो उस विधि की व्याख्या करने के लिये वे ही सर्वोच्च प्राधिकारी हैं।

मैं समझता हूं कि यही एक सुदृढ़ स्थिति है, जिस पर इस विधान में सामान्यत: जोर देना चाहिये। अत: यह मेरे संशोधन के उस भाग के सम्बन्ध में है, जो न्यायपालिका को विधानमंडल से पृथक् तथा स्वतंत्र रखने के सम्बन्ध में है।

व्यवहार विषयक स्वातन्त्र्य तथा देश के शासन में साधारण प्रजातंत्रात्मक स्वरूप के विचार बिन्दु से हर प्रकार से, जिसकी सम्भवत: हम प्रत्याभूति कर सकते हैं, न्यायपालिका का कार्यपालिका से पूर्ण पृथक्करण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। मैं समझता हूं कि यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि न्यायपालिका, जो व्यवहार विषयक स्वातन्त्र्य का मुख्य प्रकार है, कार्यपालिका के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से पूर्णतया पृथक् तथा स्वतंत्र रहे। जैसा कि पहले बहुधा हुआ है, उच्च न्यायिक पदाधिकारियों का समान अथवा और भी उच्चतर प्रशासी पदों पर तरक्की अथवा तबादले पर जाने की संभावना, मेरी सम्मति में, स्वयं एक ऐसा प्रलोभन है जिससे न्यायाधीशों को बचाना चाहिये। मैं समझता हूं कि विधि द्वारा न्यायाधीशों का न्यायिक पदों पर से प्रशासी पदों पर तबादला बन्द कर देना चाहिये, चाहे वह पद कितना ही उच्च तथा प्रभावशाली हो, वरना ऐसे तबादले में वे अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो जायेंगे और कदाचित् इस आशा में कि जिनके हाथ में शक्तियां हैं, वे उपयुक्त समय पर उनकी उचित प्रशंसा करें, वे अनजाने में ऐसे ही आदर्शों पर अपना निर्णय देंगे।

मैं समझता हूं कि हमारे जैसे देश में, जो अभी प्रजातंत्रीय सरकार के ढांचे के लिये नया है जो दलाश्रित सरकार की सीमाओं के लिये नया है और जो केवल पद के प्रलोभन के लिये ही नहीं वरन् अन्य लाभों के लिये दल-व्यवस्था में भी नया है, इस बात पर बहुत अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि न्यायपालिका कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्र रहे और उससे किसी रूप में भी प्रभावित न रहे। यह तमाशा पहले बहुत हुआ करता था। कदाचित् यहां बहुतों को इस बात का ज्ञान है जबकि उच्च प्रशासी पदाधिकारी विधायी कार्यवाहियों में मार्ग अनुसरण करने के आदेश देने तक में वास्तविक रूप में अर्ध-सरकारी मंत्रणा देने तक में नहीं हिचकते थे। मुझे विश्वास है कि देश में अब वह स्थिति नहीं है। परन्तु ऐसे न हो कि कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर प्रभाव डालने की जरा सी भी गुंजाइश अज्ञानवश रह जाये, मैं यह सुझाव करता हूं कि ऐसी संभावना को भी दूर कर दिया जाये। अत: संविधान में यह निश्चित व्यवस्था कर देनी चाहिये कि न्यायपालिका

कार्यपालिका से या विधानमंडल से पूर्णतया पृथक् तथा स्वतंत्र होनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि इस सरल सिद्धांत पर कोई आपत्ति नहीं होगी और सदन द्वारा यह स्वीकार कर लिया जायेगा।

***श्री के.एम. मुन्शी:** अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रो. शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन के प्रति मुझे केवल कुछ ही बातें कहनी हैं। जैसा कि सदन ने देखा होगा, इस संशोधन में दो विचारधारायें मिला दी गई हैं। पहली विचारधारा न्यायपालिका शक्तियों का कार्यपालिका शक्तियों से पृथक्करण है। दूसरी विचारधारा न्यायपालिका का स्वातन्त्र्य है। इस समय यदि मैं सदन को स्मरण करा सकता हूं तो शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत, जो आरम्भ में अठारहवीं शताब्दी में मोन्टेस्क्यू ने प्रस्तुत किया था, वह आधारशिला थी जिस पर अमरीका के संयुक्त राज्य के संविधान का निर्माण किया गया था। पर विगत 150 वर्षों के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का आधुनिक राज्य में पालन नहीं किया जा सकता है। आज हम देखते हैं कि कार्यपालिका अर्ध न्यायिक रूप के अनेक न्यायाधिकरण नियुक्त करता है। हम देखते हैं कि विभिन्न प्रकार के आचरण को विनियमित करने वाली विधि के अन्तर्गत कार्यपालिका द्वारा अनेकों नियम बनाये जाते हैं। आधुनिक राज्य में कार्यपालिका विधान की तथा झगड़ों को निपटाने तक की कतिपय शक्तियों का उपभोग करती है। हम औद्योगिक न्यायालय भी देखते हैं, जो स्वयं अपने ऊपर हिस्सेदारों के अधिकारों पर निर्णय करने का अधिकार ले रही हैं दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि कभी कभी न्यायपालिका को ऐसे कृत्य करने पड़ते है जो बहुत ही संकीर्ण विचार से प्रशासी हैं। अत: शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत एक निन्दनीय सिद्धांत है। ब्रिटिश नमूने को ग्रहण करते हुये यह संविधान पूर्णतया विभिन्न सिद्धांत पर आधृत किया गया है। हमने न्यायपालिका में उतनी स्वतंत्रता निहित कर दी है, जितनी कि इंग्लैंड में प्रिवी कौंसिल को प्राप्त हैं और उससे बहुत अधिक जितनी कि अमरीका की उच्चतम न्यायालय को है, परन्तु शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण को अस्वीकार कर दिया गया है। यह शक्तियों के पृथक्करण के सम्बन्ध में है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में, जिस पर कि मेरे मित्र प्रो. शाह ने जोर दिया है, इस अध्याय में पर्याप्त सावधानी बरती गई है कि इस संविधान के अन्तर्गत भारत में न्यायिक प्रणाली एक संयुक्त प्रणाली होनी चाहिये और जो जितनी एक आधुनिक राज्य में हो सकती है, कार्यपालिका से उतनी स्वतंत्र हो। इस अध्याय पर विचार करने में अग्रसर होने पर सदन को यह विदित हो जायेगा कि एक बार न्यायाधीश के नियुक्त हो जाने पर उसका पारिश्रमिक और भत्ता इत्यादि निश्चित बने रहते हैं। और भी यह कि उसको कुछ परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से हटाया नहीं जा सकता है, जैसे कि दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से वह हटाया जा सकता है। बाद में वकालत करने से वह वंचित किया जाता है और मुझे विश्वास है कि अपनी न्यायाधीश की अवधि समाप्त होने पर वह सरकार से अपने भविष्य के लिये कोई आशा न रखेंगे। उन समस्त देशों में जिनमें इंग्लैंड का नमूना ग्रहण किया गया है, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये ये पर्याप्त प्रत्याभूतियां समझी जाती हैं। ये रक्षा-कवच हैं ही। और अधिकतर यह इस बात पर निर्भर है कि न्यायपालिका किस प्रकार का कार्य करेगी, विधानमंडल की भावना क्या है और

[श्री के.एम. मुंशी]

न्यायपालिका किस भावना से कार्य करती है। यह वह विषय है जो देश के लोकमत पर तथा उन व्यक्तियों पर निर्भर है जो संविधान को क्रियान्वित करेंगे। परन्तु जहां तक न्यायपालिका का सम्बन्ध है, वह उतनी ही स्वतंत्र है जितनी कि वह किसी अन्य देश में स्वतंत्र है और ऐसा कोई भय नहीं होना चाहिये कि प्रो. शाह के संशोधन के प्रथम भाग को स्वीकार न करने के कारण किसी प्रकार से भी न्यायपालिका पंगु अथवा क्षीण हो जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, विगत पचास वर्षों से भी अधिक समय से कांग्रेस वचन-वद्ध है कि कार्यपालिका को न्यायपालिका से पृथक् करना चाहिये। प्रत्येक बार जब यह विषय जनता के समक्ष आया है, तो मुख्य कारण यही बताया गया है कि सिद्धान्तत: यह बुरा है। एक ही व्यक्ति अभियोक्ता तथा न्यायाधीश नहीं होना चाहिये और देश में आजकल यही हो रहा है और विगत समय में भी न्याय का खून हुआ करता था, जबकि एक ही व्यक्ति अभियोक्ता और न्यायाधीश होता था, जो अपराधी व्यक्ति के मुकदमे को करता था। मैं इसके ब्यौरे का विवरण नहीं दूंगा क्योंकि लोगों को यह भली प्रकार विदित है कि हम इन दो कृत्यों के पृथक्करण का समर्थन क्यों करते चले आ रहे थे और यह परम आवश्यक है कि इन दो कृत्यों को पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये। पर, श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि यह प्रश्न गत सत्र में इसी सदन में विचार-विमर्श के लिये प्रस्तुत हुआ था और हमने लगभग तीन घंटे तक इस पर वाद-विवाद किया था। यदि आप कृपा कर राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों को देखेंगे, तो उसमें एक अनुच्छेद 39-क पारित किया गया है जिसमें कहा गया है:

> ''The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the public services of the State.''

यह वह अनुच्छेद है जो उस सरकार के लिये, जो पद ग्रहण करेगी, निदेशक सिद्धांत के रूप में पारित किया जा चुका है और ग्रहण किया जा चुका है और वह इस संशोधन की अपेक्षा, जिसे मेरे मित्र प्रो. शाह पेश करना चाहते हैं, अधिक शक्तिशाली है। जिस विषय पर विचार-विमर्श हो चुका है और जो निश्चित किया जा चुका है और जो एक अनुच्छेद का अंग बन चुका है और यद्यपि इस विषय से सिद्धान्तत: मैं सहमत हूं, क्योंकि गत सत्र में इसी सदन में उस पर पूरा-पूरा विचार-विमर्श हो चुका था, तो मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता हूं कि उस विषय पर हम क्यों एक दूसरा खंड फिर रखें और वाद-पद को जटिल बनायें। मेरी सम्मति से 'निदेशक' का अर्थ है कि उसमें इस अनुच्छेद से अधिक बल है। यह हो सकता है कि कोई सरकार उस निदेशक नीति को स्वीकार न करे। इस बात के लिये, कि यदि वह इस निदेशक नीति को स्वीकार न करे, साधन विधानमंडल के हाथ में है। अत: मैं आग्रह करता हूं कि यद्यपि इस सिद्धांत को मैं स्वीकार करता हूं, पर जहां तक मुझे याद है, चूंकि इस विषय पर तीन घंटे तक खूब विचार-विमर्श हो चुका है और यह विषय अनुच्छेद का अंग बन गया है, इस प्रकार का संकल्प पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

श्री पी.के. सेन (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये सिद्धांत का मैं हृदय से समर्थन करता हूं। न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के

कृत्यों के मिलाने के प्रश्न पर, मुझे नहीं मालूम कितनी बार वाद-विवाद हो चुका है। राजा राममोहन राय के समय से न्यायपालिका और कार्यपालिका के कृत्यों को पृथक् करने का परम आवश्यक प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख है। कदाचित मुझे तो आश्चर्य हुआ। वास्तव में मैं तो आश्चर्यचकित हो गया—जबकि मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ने यह कहा कि यह एक निन्दनीय सिद्धांत है कि न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के कृत्यों को न मिलाया जाये। हां, यह प्रश्न उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में नहीं उठता है।

***अध्यक्षः** मैं यह बात बता दूं कि यहां इस अध्याय में हमारा केवल संघ की न्यायपालिका से सम्बन्ध है, यहां हमारा सम्बन्ध अधीन न्यायपालिका अथवा किसी अन्य न्यायपालिका से नहीं है। जहां तक संघ का सम्बन्ध है, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में परस्पर कृत्यों के मिलाने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

***डा. पी.के. सेनः** पर श्रीमान्, मैं समझता हूं कि संशोधन तो यही है:

> ''Subject to this Constitution, the Judiciary in India shall be completely separate from and wholly independent of the Executive or the Legislature.''

यह आवश्यक नहीं कि यह संघ के न्यायमंडल के अन्तर्गत ही आता हो। मैं यह निवेदन करता हूं कि यह सिद्धांत स्वयं ऐसा है कि हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये, चाहे इसके लिये उचित स्थान कहीं भी हो, जो कि विवादास्पद विषय हो सकता है, और यह संशोधन तो एक सिद्धांत का प्रतीक है। अब हमारे लिये यह निश्चित रूप से कहने का समय है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका में पृथक्करण होना चाहिये। मैं इस बात को प्रमाणित नहीं करता हूं कि इस विशिष्ट स्थल पर होने के कारण यह प्रतीत होता है कि वह संघ के न्यायमंडल के अन्तर्गत है, पर स्थिति यह नहीं है। संशोधन में केवल यह कहा गया है कि भाग 5 के अध्याय 4 में एक नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये। एक पृथक् शीर्षक और होने दीजिये। मैं नहीं जानता हूं कि यह किस स्थल पर होना चाहिये। पर यह वास्तव में निस्सार सी बात है। मुझे पूर्ण आशा है कि जल्दबाजी में यह संशोधन अस्वीकार नहीं किया जायेगा, वरन् सदन वास्तव में इस पर यह विचार पूर्ण मत प्रकट करेगा कि इसे एक स्वीकृत सिद्धांत के रूप में मानना चाहिये। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, जिस पर अनेक विगत वर्षों से हम आग्रह करते चले आये हैं, अतः अपने संविधान में इसे रखना चाहिये। यह संघानीय न्यायपालिका और यहां तक कि उच्च न्यायालय के अधीन नहीं आता है। पर यह भी अपयश है कि लगभग भारत में सर्वत्र अधीन न्यायमंडल में इन कृत्यों की संयुक्ति है और यही उस अपकार की जड़ है, जिसके विरुद्ध हम अनेक वर्षों से शिकायत करते आये हैं। अतः मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, जो संशोधन मेरे मित्र प्रो. शाह द्वारा इस संविधान में एक नवीन अनुच्छेद 102-क प्रविष्ट कराने का प्रयास करते हुये संशोधन पेश किया है,

[श्री एच.वी. कामत]

उसका समर्थन करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। श्री मुंशी से न्यायपालिका तथा कार्यपालिका की शक्तियों के पृथक्करण के विरुद्ध तर्क सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ, इस बात पर विचार करते हुये कि राज्य-नीति के निदेशक सिद्धांतों में, जैसा कि श्री सिधवा ने ठीक संकेत किया, इस सदन ने एक अनुच्छेद 39-क पारित कर ही दिया है, जिसमें यह दिया गया है कि राज्य की लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के लिये राज्य प्रयत्नशील होगा। सदन के समक्ष जिस रूप में मूल अनुच्छेद 39-क पेश किया गया था, उसमें काल की एक सीमा उल्लिखित थी अर्थात् इस संविधान के प्रारम्भ से तीन वर्ष की अवधि। बाद में काल को सीमा हटा दी गई और बिना किसी अवधि अथवा काल-सीमा के उल्लेख के, जिसके अन्तर्गत इन दो कृत्यों को पृथक् किया जा सके, अनुच्छेद 39-क पारित कर दिया गया। एक काल-सीमा के निकाल देने से देश के अनेक भागों में न्यायाधीशों और वकीलों में संदेह उत्पन्न हो गया, जिन्होंने यह सोचा कि वास्तव में इस समूचे वाद-पद को एक अनिश्चित समय के लिये दबा दिया गया। इस सदन द्वारा अनुच्छेद 39-क के स्वीकार कर लेने के बाद ही पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति श्री क्लिफोर्ड मनमोहन अग्रवाल ने बिहार न्यायिक पदाधिकारी सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये इस अनुच्छेद का उल्लेख किया था और कहा था—मैं 9 दिसम्बर के हिन्दुस्तान टाइम्स में से पढ़ रहा हूं।

''क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यह प्रकट हो जाने पर भी, कि जो लोग दंडविधि के प्रशासन के लिये नियुक्त किये जाते हैं उन पर शक्ति रखना प्रशासन के जर्जर यंत्र को संचालित करने में सहायता देता है, सरकार उस शक्ति का परित्याग करने के लिये अनिच्छुक है, यद्यपि जिस जनता के प्रतिनिधि होने का वह दावा करती है, वह बहुत समय पहले हो जाने वाले इस सुधार की मांग करती है और यद्यपि सरकार स्वयं इस बात से पूर्णतया परिचित है कि यदि दंड-विधि का प्रशासन उन लोगों का विश्वास प्राप्त करना चाहता है, जिनकी रक्षा के लिये वह है, तो यह एक आवश्यक कदम है?''

जबकि गत नवम्बर या दिसम्बर में इस सदन में इस अनुच्छेद 39-क पर संशोधन पेश किया गया था, तो माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि भारतीय सरकार न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के पूर्णतया पक्ष में है।

***अध्यक्ष:** श्री कामत, क्या मुख्य न्यायाधिपति ने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में टिप्पणी की थी?

***श्री एच.वी. कामत:** जी हां, उस संदेह के सम्बन्ध में जो उत्पन्न हो गया था। मैं हिन्दुस्तान टाइम्स में से...

***अध्यक्ष:** क्या वह इस विशिष्ट अनुच्छेद के सम्बन्ध में है?

***श्री एच.वी. कामत:** वह संदेह के सम्बन्ध में है। क्या मैं उस पूरे के पूरे उद्धरण को पढ़ूं? उसमें कहा गया है कि अवधि तथा काल-सीमा को हटाने के प्रयास के कारण

यह अनुच्छेद अनेक लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न करता है और ''पटना उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने इस संदेह के प्रति वाक्पटुता से आवाज उठाई थी। स्वर्गीय सरोजिनी देवी ने भी बिहार न्यायिक पदाधिकारियों के सम्मेलन में भाषण दिया था''। मैं फिर उसी तारीख के हिन्दुस्तान टाइम्स पत्र में से पढ़ रहा हूं।

***अध्यक्ष:** इन समस्त उल्लेखों से इस अनुच्छेद का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** बिना तीन साल की समय-सीमा के अनुच्छेद 39-क का केवल में उल्लेख करता हूं और इससे अनेक लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। यद्यपि जैसा कि प्रधानमंत्री ने कहा था, हम जानते हैं कि भारतीय सरकार पूर्णतया पृथक्करण के पक्ष में है, फिर भी तीन साल की समय-सीमा के निकाल देने से सहमत होने के कारण बहुत से लोगों को शंका हुई अथवा उन्होंने सोचा कि इसके बारे में हमारी सद्भावना नहीं है। मेरे विचार से स्वतंत्र न्यायपालिका की महान् आवश्यकता इस तथ्य के कारण है कि सर्वप्रथम तो यहां पर एक फेडरल संघ संविधान का निर्माण कर रहे हैं, जहां केन्द्र और एककों में जो झगड़े होंगे, उनको निपटाने या तय करने के लिये एक स्वतंत्र न्यायिक प्राधिकारी आवश्यक है; और दूसरे मेरे तुच्छ विचार में यह अत्यन्त आवश्यक है कि एक प्रजातन्त्रात्मक राज्य में नागरिक की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि वह एक निष्पक्ष प्राधिकार के सम्मुख राज्य के विरुद्ध शिकायत कर सके। ये दो कृत्य जिनका मैंने अभी उल्लेख किया है, अर्थात् सर्वप्रथम केन्द्र और एककों में झगड़े निपटाने अथवा तय करने का न्यायपालिका का कृत्य तथा राज्य के विरुद्ध नागरिक को न्याय प्रदान करने का कृत्य, तब तक पूरे नहीं किये जा सकते जब तक कि न्यायपालिका कार्यपालिका से पृथक् न हो तथा उससे पूर्णतया स्वतंत्र न हो। अत: स्वतंत्र राष्ट्र तथा स्वतंत्र जनतंत्रात्मक राज्य के प्रसंग में, जिसका हम अपने देश में निर्माण करने जा रहे हैं, इसके पूर्व कि हम नागरिकों को मूलाधिकार प्रदान करें अथवा इसके पूर्व कि हम केन्द्र और एककों के मध्य विभिन्न कृत्यों और शक्तियों का बंटवारा करें, न्यायपालिका की उच्च प्राथमिकता हो जानी चाहिये। जिन अधिकारों को आप नागरिकों को दे रहे हैं, उनके रक्षण तथा संरक्षण के लिये यदि न्यायपालिका नहीं है तो हम अपने संविधान की पवित्रता की रक्षा किस प्रकार कर सकेंगे? इस कारण मैं कहता हूं कि श्री मुंशी के इस वक्तव्य के सुनने के लिये तैयार न था कि यह एक निन्दनीय सिद्धांत है और वर्तमान युग में इसकी कोई मान्यता नहीं है। बल्कि इसके विरुद्ध, श्रीमान्, मैं साहसपूर्वक यह कहता हूं कि वैयक्तिक स्वातन्त्र्य तथा प्रजातंत्रात्मक स्वतंत्रता पर आक्रमणों के बढ़ जाने से, जिन्हें कि हम आज समस्त संसार में देख रहे हैं, एक स्वतंत्र न्यायपालिका का स्थान इतना ऊंचा कभी नहीं था जितना कि आज है। अत: श्रीमान्, मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा सदन के समक्ष प्रस्तुत किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं और सदन से निवेदन करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): प्रो. शाह द्वारा पेश किये संशोधन पर मुझे कई आपत्तियां हैं सर्वप्रथम वह इस अध्याय के विषय से संगत नहीं है, जो उच्चतम न्यायालय के निर्माण तथा कृत्यों से सम्बन्ध रखता है। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में परस्पर सम्बन्ध जैसा सामान्य प्रसंग इस अध्याय का विषय नहीं है। यह सत्य है कि

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

संविधान के प्रारूप में न्यायपालिका, उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय और अधीन न्यायालयों से सम्बन्धित कोई सामान्य अध्याय नहीं है। यदि ऐसा होता और यदि हम न्यायपालिका और कार्यपालिका में परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करते तो बात दूसरी होती। यदि इस प्रकार का कोई अनुच्छेद रखना ही है, तो संविधान के किसी अन्य भाग में उसका स्थान होना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि इस सदन ने किसी रूप में इस सामान्य विषय पर, जबकि सदन द्वारा मूलाधिकार पर वाद-विवाद हुआ था, विचार कर ही लिया है। वर्तमान परिस्थितियों पर विचार करते हुये प्रथम कुछ वर्षों में संविधान का क्रियान्वित करना कठिन होगा, तो यह अनुभव किया गया कि क्या कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्करण को तुरन्त ही हाथ में ले लिया जाये। अतः यह संशोधन उस संकल्प की भावना के विरुद्ध है, जो इस सदन द्वारा निश्चित हो चुका है। यह दूसरी बात है।

तीसरी बात यह है कि इस प्रकार का सामान्य खंड प्रशासन के समस्त तंत्र को दुर्व्यवस्थित कर सकता है। मैं इसे अभी एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करता हूं।

जिस तिथि से संविधान लागू होता है, उस तिथि से कार्यपालिका तथा न्यायपालिका का पूर्ण पार्थक्य हो जाता है। यह सत्य है कि अभी भारत के विभिन्न प्रान्तों के प्रशासन के ढांचे में कार्यपालिका और न्यायपालिका में कुछ न कुछ मेल अथवा संयुक्ति है। न्यायपालिका के सम्बन्ध में तथा जिस रूप में न्यायपालिका संविधान के विभिन्न भागों पर कार्य करेगी, इस सम्बन्ध में विशिष्ट उपबंधों के रखे बिना यदि आप इस प्रकार का सामान्य अनुच्छेद रखते हैं, तो प्रशासन कार्य किस प्रकार ठीक-ठीक होगा? इस बात को छोड़ते हुये भी और भी महत्त्वपूर्ण संवैधानिक आपत्तियां इस प्रकार के अनुच्छेद पर हैं मैं तुरन्त यह कह देना चाहता हूं कि न्यायपालिका के कृत्यों को कार्यपालिका के कृत्यों से पृथक् करने से मैं पूर्णतया सहमत हूं। पर यदि आप संविधान में इस प्रकार का सामान्य अनुच्छेद अथवा संशोधन रख देंगे, तो उससे बहुत सी कठिनाई उत्पन्न होने की संभावना है। यदि हम संसार के विभिन्न भागों के प्रशासनीय संस्थाओं का केवल निरीक्षण करें, जिसमें अमरीका भी शामिल है, जहां कि कम से कम न्यायपालिका से कार्यपालिका को पृथक् करने के सिद्धांत को मान लिया गया है, तो हमको यह विदित होगा कि अनेक अर्ध न्यायिक कृत्य ऐसे हैं जिनको उन संस्थाओं में निहित कर दिया गया है, जो कार्यपालिका अथवा प्रशासनीय संस्थायें कही जाती हैं। इसके बिना साधारण रूप से प्रशासन नहीं चल सकता है। संभव है ये कृत्य इस रूप में पूर्णतया न्यायिक न हों, जिस रूप में कि उनका किसी न्यायालय द्वारा निर्वहन किया जा सकता है। परन्तु वास्तव में उन पर दलों के परस्पर अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का कार्य भार होता है।

मैं इस सदन के सदस्यों से यह निवेदन करूंगा कि वे संयुक्त राज्य (अमरीका) की उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन का कोई भी अंक ले लें और उन अनेकों अभियोगों को लें, जो राज्यों में परस्पर आयोग कहे जाने वाले तथा अन्य अनेक अर्धन्यायिक आयोगों से, जो अमरीका के विभिन्न प्रान्तों में कार्य कर रहे हैं, आये हुये हैं। इसमें सन्देह नहीं

कि इन अभियोगों में उच्चतम न्यायालय ही अन्तिम आश्रय है। इसकी कठिनाई के अलावा भी प्रशासी निकायों में किसी प्रकार के न्यायिक कृत्यों के निहित करे बिना आधुनिक प्रशासीतंत्र का संचालन करना असंभव है। मैं यह भी कह दूं कि पृथक् करने के सम्बन्ध में किसी खंड के न होने पर भी आस्ट्रेलिया के संविधान में न्यायालय में न्यायिक शक्ति निहित करने के एक अनुच्छेद ने कठिनाई पैदा कर दी है। वहां जो पद काम में लाया गया है वह 'न्यायिक शक्तियां अमुक-अमुक में निहित होंगी'। आस्ट्रेलिया में यह प्रश्न उठा है कि क्या आयकर न्यायाधिकरण, जो अर्धन्यायिक कृत्यों का प्रयोग करते रहे हैं, निर्धारण के प्रश्नों पर भी विचार कर सकते हैं। बहुत कठिनाई के पश्चात् तथा न्यायालयों और न्यायाधिकरणों का इतिहास खोजने के पश्चात् प्रिवी कौंसिल ने इस कठिनाई को पार किया और बताया कि एक निकाय, जो न्यायिक कृत्यों को प्रयोग कर रहा है, पर न्यायिक शक्तियों का प्रयोग नहीं कर रहा है वह वस्तुतः न्यायालय नहीं हो सकता।

अतः यदि हम इस बात को रखने के लिये उत्सुक भी हों, तो इसके लिये विभिन्न विधान-मंडलों द्वारा प्रयत्न होना चाहिये। इस प्रकार के विधान को उठाने में विधानमंडलों को उन विभिन्न कृत्यों की परीक्षा करनी होगी जिनका निर्वहन, प्रशासनीय, अर्धप्रशासनीय, अर्धन्यायिक न्यायाधिकरणों द्वारा किया जाता है और फिर देखना होगा कि कुछ अर्धन्यायिक कृत्यों को प्रशासनीय निकायों में निहित किये जाने से संगत कहां तक न्यायालयों अथवा वरिष्ठ न्यायालयों पर अन्तिम आलम्बन की प्रत्याभूति की जा सकती है।

मैं समझता हूं कि इस प्रकार का एक सामान्य अनुच्छेद हमें बड़ी कठिनाई में डाल देगा। यद्यपि मैं कार्यपालिका के पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहता हूं अथवा यह नहीं कहना चाहता हूं कि कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में कोई पार्थक्य नहीं होना चाहिये, पर इसके लिये समस्त क्षेत्र का अनुसंधान आवश्यक है और आप इस स्थिति में होने चाहियें कि आप प्रशासनीय कार्य के समस्त क्षेत्र की परीक्षा कर सकें, जिन देशों में सिद्धांत को मान लिया गया है, उनमें जिस प्रकार से इसका प्रयोग किया गया है, उस पर ध्यान दे सकें, उनके आधुनिक काल के उदाहरण से लाभ उठा सकें और यह विचार करें कि हम उन गतों से बच सकें जिनमें वे गिर पड़े हैं। इस समस्या के सुलझाने का यही उचित मार्ग है।

अतः इन आधारों पर मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं: पहला यह कि यह इस विशिष्ट अध्याय के विषय से संगत नहीं है: दूसरा यह कि इसमें सामान्य प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र का अनुसंधान निहित है: तीसरा यह कि यह सत्य है कि इससे समस्त प्रशासन दुर्व्यवस्थित हो जायेगा और चौथा यह कि 'पूर्णतः पृथक्' और 'पूर्णतः स्वतंत्र' शब्दों से बड़ी कठिनाई उत्पन्न होगी।

मैं प्रो. शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मुझे खेद है कि मैं स्वयं को प्रो. शाह की विचारधारा के अनुकूल नहीं पाता हूं और उनके द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन नहीं कर सकता हूं। उस ओर से दो भाषण दिये जा चुके हैं (श्री के.एम. मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा) पर मुझे यह कहते हुए खेद है कि वे पूर्णरूप से सुनाई नहीं

[डा. पी.एस. देशमुख]

दिये, अत: यदि मैं किसी बात को इधर-उधर दुहरा दूं तो मुझे क्षमा किया जाये। वैसे तो मैं जितना संक्षेप में बोल सकता हूं बोलूंगा।

जो संशोधन प्रस्तावित किया गया है वह दो बातें चाहता है। वह न्यायपालिका से कार्यपालिका का पार्थक्य चाहता है तथा वह न्यायपालिका की स्वतंत्रता की भी व्यवस्था करना चाहता है। जहां तक उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध है, वह तो कार्यपालिका से पृथक् है ही, अत: पार्थक्य का कोई प्रश्न नहीं उठता है। दूसरी बात जिसे प्रो. शाह प्राप्त करना चाहते हैं वह है स्वतंत्रता। उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता किस प्रकार प्राप्त की जायेगी? यदि अन्य विभिन्न देशों के संविधान पर ध्यान दें तो यह व्यवस्था कहीं भी नहीं की गई है कि किसी विशिष्ट देश की न्यायपालिका किस प्रकार स्वतंत्र होगी। न्यायाधीशों की नियुक्ति के तरीके के उचित संकलन द्वारा, इस व्यवस्था के द्वारा कि न्यायपालिका के न्यायिक कृत्यों में कार्यपालिका का कोई हस्तक्षेप न होगा, न्यायाधीशों को आसानी से न हटाये जाने देने के कारण द्वारा इत्यादि इत्यादि बातों के द्वारा न्यायपालिका के लिये अधिक स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है न कि किसी प्रत्यक्ष उपबन्ध द्वारा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश स्वतंत्र होंगे। श्री मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जो कुछ कहा (मैं नहीं जानता हूं कि मैंने उनको ठीक-ठीक सुना भी है), उस पर ध्यान न देते हुये मैं साहसपूर्वक यह कहता हूं कि मैं तो इस बात को पूर्णतया स्वीकार करता हूं कि सदन के समक्ष जो संविधान का प्रारूप है, उसमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता विनिहित है और उससे अधिक न आवश्यक है और न उपादेय ही है। जिस प्रकार कि हम यह कहकर कि कुछ सदस्यों को विरोधी दल बनाना चाहिये कोई विरोधी दल नहीं बना सकते हैं, उसी प्रकार यह कहकर कि वह स्वतंत्र होगी हम उसे स्वतंत्र नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार यह कहकर कि ''आप स्वतंत्र है'' आप स्वतंत्र न्यायपालिका नहीं बना सकते। एक दीर्घकाल से भारतीय न्यायपालिका के अपने निजी अनुभव से मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि एक भारतीय न्यायाधीश को जितना होना चाहिये कदाचित् वह उससे अधिक स्वतंत्र है, अपेक्षाकृत इसके विरुद्ध होने से। यदि कोई व्यक्ति भारत की न्यायपालिका के सम्पूर्ण क्रियाकरण को देखे, तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि बिना इस प्रकार के खंड की व्यवस्था किये, जिसके द्वारा हम उनसे यह कहें कि वे स्वतंत्र हैं और उन पर कार्यपालिका का कोई प्रभाव नहीं होगा, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और फेडरल न्यायालय के न्यायाधीशों ने उतनी स्वतंत्रता से कार्य किया है जितनी स्वतंत्रता से देश उनसे कार्य करने की आशा करता था। इस विचार-बिन्दु से मैं कहता हूं कि ये उपबंध पूर्णतया पर्याप्त हैं और हम पर्याप्त रूप से एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था कर रहे हैं। सम्मानपूर्वक मैं श्री मुंशी से मतभेद प्रकट करना चाहूंगा यदि वे यह सोचते तथा कहते हैं कि स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करना संभव नहीं है। मेरे विचार में एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करना नितांत आवश्यक है, पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस अध्याय के उपबंध इस आशय की पूर्ति करते हैं।

मुझे एक छोटा सा सुझाव रखना है। मैं यह कह ही चुका हूं कि यह संविधान न तो संघीय है और न फेडरल: यह दोनों की खिचड़ी है। डा. अम्बेडकर 'फेडरल' शब्द को 'संघ' शब्द में परिवर्तन करने के लिये एक संशोधन प्रस्तुत करने वाले हैं। मैं नहीं

समझता हूं कि यह संशोधन बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर जब तक इस संविधान में फेडरेशन का कोई भी अंश बाकी है मैं डा. अम्बेडकर से इस महत्त्वपूर्ण विषय के लिये यह निवेदन करूंगा कि इसको किसी भाग में शामिल करने और केवल अध्याय के रूप में रखने की अपेक्षा संविधान में इसके लिये एक स्वतंत्र भाग बनायें। एक संविधान जो फेडरल है उसके तीन प्रमुख तत्व, विधान-मंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। जहां तक गौरव का प्रश्न है न्यायपालिका अन्य दों से कम नहीं है और इसलिये उसके लिये एक अलग भाग होना चाहिये। उसको अध्याय 4 के आश्रित नहीं करना चाहिये वरन् उसके लिये एक अलग भाग होना चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं हृदय से इस संशोधन के सिद्धांत का समर्थन करता हूं जो पेश किया गया है। उसको इस स्थान में रखने के औचित्य के सम्बन्ध में तथा उसकी सही पदावली के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं जिस बात पर जोर देना चाहता हूं, वह कार्यपालिका से न्यायपालिका को पृथक् करने तथा न्यायपालिका के स्वातंत्र्य के पीछे सिद्धांत है। उसे कहां प्रविष्ट किया जाये तथा उसकी ठीक-ठीक पदावली क्या हो, ये तो बाद में विचार करने के विषय हैं। वास्तव में इस महत्त्वपूर्ण वाद-पद पर विचार-विमर्श तथा निर्णय करने के लिये इन दो विषयों को पूर्णतया पृथक् रखना बहुत वांछनीय है। यदि हम इस सिद्धांत को पसन्द नहीं करते हैं तो हमें यह स्पष्ट कह देना चाहिये, पर यदि हम उसे पसन्द करते हैं तो उपयुक्त स्थान में उसको रखना अथवा उसकी सही-सही पदावली ऐसे विषय हैं जिनकी इस सदन में व्यवस्था की जा सकती है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये 50 वर्ष से भी अधिक समय तक आन्दोलन करने के पश्चात् सदन में यह सुनकर आश्चर्य होता है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता अब वांछनीय नहीं है। किसी न किसी रूप में यहां ये सुझाव रखे गये हैं कि यह समय उपयुक्त नहीं है, ये देश इस समय न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को पृथक् करने के परीक्षण के अनुकूल नहीं हैं तथा न्यायपालिका की स्वतंत्रता अब कोई उत्सुक्ता की वस्तु नहीं है। हम सदियों से गुलामी में रहे हैं और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक हम गुलामी की भावना से मुक्त नहीं हुये हैं और इसी कारण हम स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने पर भी न्यायपालिका को कार्यपालिका की इच्छाओं तथा तरंगों के अधीन रखना चाहते हैं। कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मंचों पर से तथा समाचार पत्रों में भी और अन्यत्र सब स्थलों पर यही पुकार थी कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् तथा स्वतंत्र कर दिया जाये।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** महासभा के क्या विचार थे?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मुझे विश्वास है कि उन्होंने भी इस सिद्धांत का समर्थन किया। आज भी इस सिद्धांत का कोई विरोध नहीं करता है सिवाय उनके जिनको अब शक्ति प्राप्त है और जो इसके लिये अब तक सब से अधिक चिल्लाते थे। शक्ति मिल जाने पर वे अब उसे छोड़ना नहीं चाहते हैं और न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् तथा स्वतंत्र करना नहीं चाहते हैं। वाद-विवाद को सुनकर मेरे मन में ये विचार उत्पन्न हुये हैं।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कार्यपालिका और न्यायपालिका के कृत्यों के संयुक्त होने का विषाक्त प्रभाव निन्दनीय है। ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनमें सरकार या प्रधानमंत्री ने मंडल महतक को तार दिया है कि किसी खास मुकदमे का किसी खास रूप में फैसला किया जाये अथवा निपटाया जाये। उच्च न्यायालय की सूचना में भी ये बातें आ गई हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व एक ऐसा ही मामला कलकत्ते में हुआ और उसकी अनेक रूपों में व्याख्या की गई। आज भी यही हो रहा है। यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि इस स्वतंत्रता के दिनों में भी ऐसी बातें हो सकती हैं। यह सत्य है कि महतक मंडल को परोक्ष रूप से ऊपर से दबाव डालकर नियंत्रित किया जाता है। मैं यह निवेदन करता हूं कि सदन के एक बड़े ही प्रतिष्ठित तथा विख्यात वकील श्री मुंशी के तर्कों पर पर्याप्त विचार की आवश्यकता है। श्री मुंशी का यह सुझाव प्रतीत होता है कि अभी न्यायपालिका का पार्थक्य तथा स्वातंत्र्य व्यवहार्य नहीं है और यदि मैं सम्मानपूर्वक कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि जो तर्क उन्होंने प्रस्तुत किये हैं वे कुछ अप्रत्याशित हैं। उन्होंने यह संकेत किया कि हमने नियम-निर्माण की शक्तियां ले ली हैं। औद्योगिक न्यायालय तथा अन्य संस्थायें हैं, जहां सरकार को निर्णय करना होगा। पर मैं निवेदन करूंगा कि नियम-निर्माण की शक्ति का न्यायपालिका और कार्यपालिका के पार्थक्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। आप जितनी शक्तियां चाहते हैं ले लीजिये। एक प्रजातंत्रात्मक सदन आप को उतनी ही शक्तियां देगा जितनी की आवश्यकता है। आप जो विधि चाहते हैं पारित कर सकते हैं। न्यायपालिका के स्वातन्त्र्य से यही आशय है कि जो नियम आप बनाते हैं, न्यायालय को उन नियमों के अन्तर्गत जो शक्ति आप उसे देते हैं, उसका प्रयोग कार्यपालिका के हस्तक्षेप के बिना करने देना चाहिये अर्थात् जबकि महतक न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करता है, उसके ऊपर किसी का प्रभाव नहीं होना चाहिये। बुरी से बुरी बात वह यह कर सकता है कि वह लोगों का सच्चा न्याय नहीं करे। यदि कोई ऐसी बात है जो जनता के हृदय को प्रफुल्लित कर सकती है और हमारी स्वतंत्रता को ठोस रूप दे सकती है, तो वह न्यायपालिका में विश्वास है। जिस समय आप किसी व्यक्ति के हृदय में यह विचार उत्पन्न होने देते हैं कि न्यायपालिका में उसका विश्वास नहीं है, सरकार की स्थिरता जर्जरित हो जायेगी। मैं निवेदन करता हूं कि इस विचार-बिन्दु से न्यायपालिका की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति होनी चाहिये। यह नहीं है कि इसकी मांग अवसर से पूर्व की जा रही हो। यह एक ऐसा सुधार है जिसकी हम बहुत दिनों से मांग कर रहे हैं। आज इस सुधार के विरुद्ध तर्क क्यों है? यह वह तर्क है जिसे ब्रिटिश सरकार पचास वर्षों से अधिक समय से देती चली आई थी। आज भी हम उनके तर्कों को दुहरा रहे हैं। मैं निवेदन करता हूं कि बिना किसी प्रतिबंध तथा कपट के यहां अभी इस सिद्धांत को स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि नियम-निर्माण की शक्ति और अनेक विषयों में राज्य द्वारा हस्तक्षेप करने की आवश्यकता वास्तव में इस विषय की तह तक नहीं पहुंच पायेंगी। न्यायपालिका फिर भी इनसे स्वतंत्र रह सकती है। कार्यपालिका को नियम-निर्माण करने की शक्ति होनी चाहिये। परन्तु संकीर्ण सीमाओं में दी हुई शक्ति का स्वतंत्र प्रयोग न्यायालय को करने दीजिये। श्रीमान्, सदन के एक प्रसिद्ध सदस्य ने, जिसे अमूल्य न्यायिक अनुभव है, यह बताया है कि यह आन्दोलन सौ वर्ष से भी अधिक समय से अर्थात् राजा राममोहन राय के समय से है। वास्तव में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच का यह बहुत ही सुदृढ़ आधार रहा है। मेरे कहने का यह आशय है कि यदि न्यायपालिका

को कार्यपालिका के प्रभाव से पृथक नहीं किया जायेगा, तो नैतिक भ्रष्टाचार हो जायेगा। न्यायपालिका में जनता का विश्वास जर्जरित हो जायेगा।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने, जो एक विख्यात वकील और स्मृतिज्ञ हैं तथा एक महान् देशभक्त हैं, हमारे सामने ये विचार प्रकट किये हैं कि वे इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं, पर ये कहते हैं कि इसके लिये यह समय नहीं है। वे कहते हैं कि वर्तमान समय में यह नहीं हो सकता है। मैं सदन से इस बात पर विचार करने के लिये आग्रह करता हूं कि क्या हम नौकरशाही ब्रिटिश सरकार के इस सुधार को तुरन्त स्वीकार करने से इन्कार करने के तर्कों को दुहराते रहें। श्रीमान्, मैं काफी कह चुका हूं। मैं वाद-विवाद को बढ़ाना नहीं चाहता हूं। मैं केवल यही चाहता हूं कि बिना किसी कपट के इस सिद्धांत को तुरन्त स्वीकार किया जाये।

***अध्यक्ष:** अब आठ बज चुके हैं। मैं समझता हूं कि विचार-विमर्श बन्द कर देना अच्छा है।

श्री बृजेश्वर प्रसाद: (बिहार : जनरल): क्या इस प्रस्ताव पर बोलने के लिये मैं सदन का एक मिनट ले सकता हूं?

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि सदन अब और भाषण सुनने के लिये इच्छुक नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि कोई उत्तर आवश्यक है। यदि मैं कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि कदाचित् यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रो. शाह ने यह संशोधन पेश किया है। जब हम राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श कर रहे थे, उस समय इस विषय पर पूर्ण विवरण सहित वाद-विवाद हुआ था। अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस विषय को फिर क्यों उठाया गया और इस पर वाद-विवाद क्यों हुआ? अनुच्छेद 39-क में यह विषय लगभग समाप्त कर दिया था।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि भाग 5 अध्याय 4 में निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:
>
> '102-क इस संविधान के अधीन भारत में न्यायपालिका कार्यपालिका अथवा विधानमंडल से पूर्णतया पृथक् तथा सर्वथा स्वतंत्र होगी।' ''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

तत्पश्चात् सभा मंगलवार तारीख 24 मई सन् 1949 ई. के आठ बजे तक स्थगित हुई।

Con. 4. VIII.7.49
320

अंक 8
संख्या 7

मंगलवार
24 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप..... 371-426

[अनुच्छेद 103 तथा 103-क पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

मंगलवार, 24 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा की बैठक कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 8 बजकर दस मिनट में, अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) की अध्यक्षता में समवेत हुई।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, क्या हम समय पर उपस्थित होने के लिये कोई उपाय कर सकते हैं? मुझे यह देखकर बहुत दुःख होता है कि हम अपना कार्य ग्यारह मिनट देर करके आरम्भ करते हैं। यह बुरी बात है। हमें समय पर उपस्थित होना चाहिये। कृपया आप इस प्रश्न पर विचार करें।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): इसके लिये हम लोग दोषी हैं। दोष हमारा है। हम लोग समय पर उपस्थित नहीं होते।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त:** मध्यप्रांत की विधानसभा में मैंने एक बार यह किया कि मैं ठीक समय पर उपस्थित हुआ और जब मैंने यह देखा कि गणपूर्त्ति नहीं हुई थी तो मैंने माननीय सदस्यों से यह कहा कि मैं यह देखने के लिये पांच मिनट के लिये चला जाता हूं कि गणपूर्त्ति होती है या नहीं। एक ही बार मुझे ऐसा करना पड़ा और अब मुझे पांच सैंकड के लिये भी नहीं रुकना पड़ता है। यह एक बहुत चिंताजनक बात है कि यह आदरणीय सभा ग्यारह मिनट देर करके अपना कार्य आरम्भ करे।

***अध्यक्ष:** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि माननीय सदस्य महोदय ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। मैं स्वयं सभा भवन में बीस मिनट से रुका हुआ हूं। मुझे आशा है कि जो प्रश्न उठाया गया है उस पर माननीय सदस्य यथेष्ट ध्यान देंगे और मेरे लिये यह आवश्यक न होगा कि मध्यप्रांत की विधानसभा में जो कदम उठाया गया था उसे मैं भी उठाऊं। कल से हम लोग ठीक समय पर यहां उपस्थित हो जायें।

अब हम अनुच्छेद 103 को उठायेंगे।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 103

***मि. तजम्मुल हुसैन:** अध्यक्ष महोदय, मेरा संशोधन एक बहुत साधारण संशोधन है। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (1) में 'Chief Justice' शब्दों के पूर्व 'Supreme' शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[मि. तजम्मुल हुसैन]

अब मैं अनुच्छेद 103 का खंड (1) पढ़ता हूं:

> ''There shall be a Supreme Court of India consisting of a Chief Justice of India and such number of other judges not being less than seven as Parliament may by law prescribe.''

यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो संशोधित खंड इस प्रकार हो जायेगा:—

> ''There shall be a Supreme Court of India consisting of a Supreme Chief Justice of India, etc.''

इस अनुच्छेद के अनुसार उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति भारत का मुख्य न्यायाधिपति कहा जायेगा और प्रांतीय उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति ही मुख्य न्यायाधिपति कहा जायेगा। मेरी यह राय है कि इन दोनों में भेद किया जाना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति भारत का मुख्य न्यायाधिपति कहा गया है और उच्च न्यायालय का न्यायाधिपति केवल मुख्य न्यायाधिपति कहा गया है। किन्तु हमने भारत के प्रधानमंत्री और प्रांतीय प्रधान मंत्रियों में विभेद किया है। भारत का प्रधानमंत्री प्रधानमंत्री कहा जायेगा परन्तु प्रांतों के प्रमुख मुख्यमंत्री कहे जायेंगे। इसके अतिरिक्त भारत का महाधिवक्ता महान्यायावादी कहा जायेगा किन्तु प्रांतों में वह महाधिवक्ता ही कहा जायेगा। हमने इन नामों में भी विभेद किया है। भारत का महालेखा-परीक्षक, महालेखा-परीक्षक कहा जायेगा किन्तु प्रांतों में वह मुख्य लेखा-परीक्षक कहा जायेगा। इसलिये प्रांतीय उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति और प्रांतीय उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति में भेद करने के लिए हमें भारत के मुख्य न्यायाधिपति को केवल भारत का मुख्य न्यायाधिपति न कहकर भारत का उच्चतम मुख्य न्यायाधिपति कहना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं और मुझे आशा है कि वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (1) में 'and such number of other judges not being less than seven as Parliament may by law prescribe' शब्दों के स्थान में 'and until Parliament by law prescribes a larger number, of seven other judges' शब्द रखे जायें।''

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि उच्चतम न्यायालय का निर्माण उस समय तक के लिये स्थगित न किया जाये जब तक कि संसद विधि द्वारा न्यायाधीशों की संख्या निर्धारित न करे। इस संशोधन में यह उपबंध रखा गया है कि उच्चतम न्यायालय में सात न्यायाधीश होंगे।

(संशोधन संख्या 1815 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Every Judge of the Supreme Court shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal and shall hold office until he attains the age of sixty-five years:

Provided that in the case of appointment of a Judge, other than the Chief Justice, the Chief Justice of India shall always be consulted.' ''

श्रीमान्, अनुच्छेद 61 के साथ पढ़ने से मेरे संशोधन का वही अर्थ तथा उद्देश्य प्रकट हो जायेगा जो भारत सरकार के अधिनियम, 1935 की धारा 200 के उपबंधों का है। इस धारा के अधीन संघ न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य न्यायाधीश सम्राट द्वारा नियुक्त होते हैं और यह समझा जाता है कि सम्राट अपने मंत्रियों के परामर्श से कार्य करता है। अनुच्छेद 61 के अधीन भारत का राष्ट्रपति अपने मंत्रियों के परामर्श लेकर अथवा उनके परामर्श देने पर कार्य करेगा। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति वहां के प्रेसीडेंट द्वारा सीनेट के परामर्श से तथा उसकी सहमति से नियुक्त होता है अन्य उपनिवेशों में भी सम्राट का प्रतिनिधि मंत्रिमंडल से परामर्श लेकर उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति तथा अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। इसलिये मेरा संशोधन उस प्रथा के अनुरूप ही है जो अमरीका तथा अन्य उपनिवेशों में प्रचलित है और भारत सरकार के अधिनियम, 1935 में उपबन्धानित है। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** दो और संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 1822 और 1823 हैं जिनका आशय बहुत कुछ एक समान है। मेरे विचार से इन संशोधनों को अलग-अलग उपस्थित करना आवश्यक नहीं है किन्तु मैं यह मान लेता हूं कि इनका आशय बहुत कुछ वही है जो संशोधन संख्या 1816 का है। हम उस संशोधन को उठायेंगे जो भाषा की दृष्टि से सबसे अच्छा है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखे जायें:

'(2) The Chief Justice of Bharat, who shall be the Chief Justice of the Supreme Court, shall be appointed by the President subject to confirmation by two-thirds majority of the total number of members of Parliament assembled in a joint session of both the Houses of Parliament.'

'(3) Every judge of the Supreme Court, shall be appointed on the

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

advice of the Chief Justice of Bharat by the President under his hand and seal and shall hold office until he attains the age of sixty-five years:

Provided that:

(a) a judge may, by writing under his hand addressed to the President, resign his office;

(b) a judge may be removed from his office in the manner provided in clause (5).' ''

श्रीमान्, इस संशोधन में मैंने यह उपबंध रखा है कि उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होगा किन्तु दोनों सभाओं के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा उसके निर्णय की पुष्टि आवश्यक होगी। इस समय खंड (2) में यह उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को राष्ट्रपति नियुक्त करेगा जिसका अर्थ यह है कि प्रधानमंत्री अथवा कार्यपालिका उसे नियुक्त करेगी। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का कार्यपालिका से किसी प्रकार का भी संबंध न होना चाहिये। इसी सिद्धांत को मैं इस धारा में प्रविष्ट करना चाहता हूं। वर्तमान व्यवस्था के अधीन कार्यपालिका ही उसे अस्तित्व में लायेगी। राष्ट्रपति उसे प्रधानमंत्री से परामर्श लेकर नियुक्त करेगा। इससे उच्चतम न्यायालय के स्वातंत्र्य का कुछ अंश में अपहरण हो जायेगा। हम इस समय देश के सर्वोच्च न्यायाधिकरण के लिये उपबंध बना रहे हैं। इस न्यायाधिकरण को किसी प्रकार भी सन्देह की दृष्टि से न देखा जाना चाहिये और किसी भी कार्यपालिका का उस पर प्रभाव न पड़ना चाहिये। यदि मुख्य न्यायाधिपति को राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री नियुक्त करता है तो उसका स्वातंत्र्य सीमित हो जाता है। इसलिये श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि मुख्य न्यायाधिपति को राष्ट्रपति अवश्य नियुक्त करेगा परन्तु संसद के कम से कम दो तिहाई सदस्य उसके निर्णय की पुष्टि करेंगे। इसका अर्थ यही है कि किसी व्यक्ति की नियुक्ति का प्रस्ताव राष्ट्रपति ही करेंगे किन्तु यदि संसद के दो तिहाई सदस्य उनके प्रस्तावित नाम को स्वीकार न करें तो कोई ऐसा दूसरा नाम प्रस्तावित किया जायेगा जो दोनों सभाओं के दो तिहाई सदस्यों को स्वीकार्य हो। इस प्रकार राष्ट्रपति को भी कार्य करने की कुछ शक्ति प्राप्त होगी। वही नामों को प्रस्तावित करेंगे किन्तु वही नाम स्वीकार किया जायेगा जो दोनों सभाओं के दो तिहाई सदस्यों को मान्य होगा। राष्ट्रपति को प्रस्ताव उपस्थित करने की स्वतंत्रता होगी किन्तु जो व्यक्ति चुना जायेगा वह विधानमंडल की दोनों सभाओं का विश्वास भाजन होगा। इस प्रणाली से दो लाभ होंगे। इससे कार्यपालिका को यह अधिकार रहेगा कि वह जिस किसी व्यक्ति को योग्य समझेगी उसे चुनेगी किन्तु वह किसी दल-विशेष की भावना से प्रेरित होकर यह कार्य नहीं करेगी किन्तु उसे इस प्रकार करेगी कि दोनों सभाओं के सभी सदस्य अथवा कम से कम दो तिहाई सदस्य उसके प्रस्तावित नाम को स्वीकार करेंगे। इसलिये श्रीमान्, मैं जिस उपबंध का प्रस्ताव कर रहा हूं वह उस उपबंध से कहीं अच्छा है जो इस समय मसौदे में समाविष्ट है। इस समय श्रीमान् न्यायाधीशों

को नियुक्त करने के लिये भी यह आवश्यक नहीं है कि केवल उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लिया जाये किन्तु उन्हें उच्चतम मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेकर नियुक्त किया जाता है जिसका अर्थ यह है कि उनकी नियुक्ति में भी मुख्यतया कार्यपालिका का ही हाथ होता है। श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रकार की व्यवस्था न रहनी चाहिये। उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश केवल उच्चतम न्यायाधीश के परामर्श से ही नियुक्त किया जाना चाहिये ताकि उन्हें केवल मुख्य न्यायाधिपति से अधिकार प्राप्त हो न कि कार्यपालिका से। मेरे विचार से श्रीमान्, यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है और इसे हमारे संविधान में स्थान दिया जाना चाहिये। हम हमेशा से यह कहते आये हैं कि हमें एक स्वाधीन न्यायपालिका की आवश्यकता है। अन्य देशों के बहुत से लोग इस बात पर गर्व करते हैं और संयुक्त राज्य अमरीका को भी इसका गर्व है। मेरे विचार से हम भी यह चाहते हैं कि मुख्य न्यायाधिपति तथा उच्चतम न्यायालय पर किसी प्रकार का सन्देह न किया जा सके। उन्हें पूर्णतया स्वाधीन होना चाहिये ताकि प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास रहे कि उन पर कार्यपालिका का कोई भी प्रभाव न पड़ेगा। मेरे विचार से मेरा संशोधन बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसलिये मुझे यह आशा है कि इस सभा के सदस्य मसौदे में इस उद्देश्य से कुछ परिवर्तन कर लेंगे कि उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति को केवल कार्यपालिका ही अस्तित्व में न लाये और राष्ट्रपति उसी की सिफारिश के आधार पर उसे नियुक्त न करे।

श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि उच्च न्यायालयों से परामर्श लेने के संबंध में यह उपबंध एक जीर्ण रूढ़ि है। राज्यों के संघ में समाविष्ट होने के कारण अब उनका स्वतंत्र अस्तित्व न रह जायेगा। जब उन्हें यह पद प्राप्त नहीं था। तो यह उपबंध साार्थक कहा जा सकता था परन्तु अब इसके लिये कोई स्थान नहीं रह गया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इसे निकाल देंगे और समयोचित व्यवस्था करेंगे। इस प्रकार हमें एक स्वाधीन न्यायपालिका प्राप्त हो जायेगी और उसका कार्यपालिका से किसी प्रकार का संबंध न रह जायेगा। मैंने यह उपबंध रखा है कि राष्ट्रपति ही कार्य करेगा, जिसका अर्थ यह है कि कार्यपालिका को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह नामों को प्रस्तावित करे किन्तु इन नामों में से विधानसभा में अर्थात् दोनों सभाओं के संयुक्त सत्र में दो तिहाई बहुमत से यथोचित नाम यथोचित रूप से चुना जायेगा। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 1818 उपस्थित नहीं किया गया।)

***मि. बी. पोकर साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) और खंड (2) के प्रथम परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:
>
> '(2) Every judge of the Supreme Court other than the Chief Justice of India shall be appointed by the President by warrant under his hand

[मि. बी. पोकर साहब]

> and seal after consultation with the judges of the Supreme Court and Chief Justices of High Courts in the States and with the concurrence of the Chief Justice of India; and the Chief Justice of India shall be appointed by the President by a warrant under his hand and seal after consultation with the judges of the Supreme and the Chief Justices of the High Court in the States and every judge of the Supreme Court shall hold office until he attains the age of sixty-eight years.' ''

श्रीमान्, मैंने इस संशोधन को इस बात को सामने रखकर उपस्थित किया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति पर किसी प्रकार का राजनैतिक प्रभाव न पड़े। इसी विचार से मैंने इस संशोधन को उपस्थित किया है और मेरे इस विचार की पुष्टि संघ न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों द्वारा इस सभा को दी हुई सम्मति से होती है। तत्संबंधी ज्ञापन इस सभा के माननीय सदस्यों को दिया गया था। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं उस ज्ञापन के कुछ वाक्यों को पढ़ता हूं। उसमें कहा गया है:

''यह ज्ञात हुआ है कि एक प्रांतीय सरकार ने यह आदेश किया है कि मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिशों को प्रधानमंत्री के पास न भेजकर मुख्य सचिव (चीफ सेक्रेटरी) के पास भेजना चाहिये और कुछ मामलों में उसने सहायक सचिव (असिस्टेंट सेक्रेटरी) से कहा है कि वह इस संबंध में उच्च न्यायालय से आगे लिखा पढ़ी करे। इस प्रकार यह प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ती हुई दिखाई दे रही है कि उच्च न्यायालय को प्रांतों के गृह विभाग का एक अंग समझा जाये। इस प्रवृत्ति से उच्च न्यायालयों की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचना अवश्यम्भावी है जिसके फलस्वरूप वे लोगों की दृष्टि में गिर जायेंगे और इसलिये इसे रोकने के लिये एक सम्मेलन में समवेत न्यायाधीशों ने एक मत से यह निर्णय किया कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में निम्नलिखित प्रणाली अपनाई जाये:

> ''इस संबंध में मुख्य न्यायाधिपति अपनी सिफारिशें सीधे-सीधे राष्ट्रपति के पास भेजे। राज्यपाल से परामर्श लेकर राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायाधिपति का समर्थन प्राप्त करके नियुक्तियां करनी चाहियें।''

इस प्रणाली के अधीन इसकी आवश्यकता न रह जायेगी कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति प्रधानमंत्री से तथा गृह मंत्री से परामर्श करे और उन्हें समझाये कि उसकी सिफारिशें ठीक हैं। इसके अधीन उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिशें नियुक्त करने वाले अधिकारी अर्थात् राष्ट्रपति के सम्मुख हमेशा रखी जायेंगी। भारत के मुख्य न्यायाधिपति से समर्थन प्राप्त करने से इस संबंध में उच्च स्तर पर कोई राजनैतिक प्रभाव अथवा किसी दल विशेष का प्रभाव न पड़ सकेगा।''

उसमें आगे यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में भी आवश्यक परिवर्तनों के साथ यही सिद्धांत अपनाये जायें। उसी ज्ञापन में यह भी कहा गया है कि:

> ''इसलिये यह सुझाव रखा जाता है कि अनुच्छेद 193 (1) में निम्नलिखित अथवा कोई अन्य यथोचित शब्द रखे जायें:
>
> 'Every Judge of the High Court shall be appointed by the President by a warrant under his hand and seal on the recommendation of the Chief Justice of the High Court after consultation with the Governor of the State and with the concurrence of the Chief Justice of India.' ''

उसमें आगे यह भी कहा गया है कि:

> ''उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में भी आवश्यक परिवर्तनों के साथ उपरोक्त अपनाया जाये। अनुच्छेद 103 (2) को भी यथोचित रूप से संशोधित किया जाये।''

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस उपबंध को स्वीकार करने के पूर्व इस सभा को एक सम्मेलन में समवेत विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों तथा संघ न्यायालय के न्यायाधीशों की सम्मति को यथेष्ट महत्त्व देना चाहिये। यह एक बहुत महत्त्व की बात है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश यह न समझें कि उनका अस्तित्व अथवा उनकी नियुक्ति किसी राजनैतिक विचारधारा अथवा किसी राजनैतिक दल की इच्छा पर निर्भर है। इसलिये वह आवश्यक है कि इन नियुक्तियों पर राजनैतिक प्रभाव न पड़ने देने के लिये सुदृढ़ रक्षा कवच होना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि कोई न्यायाधीश किसी राजनैतिक दल के प्रभाव से नियुक्त हुआ हो तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य करते समय अथवा एक साधारण व्यक्ति के रूप में व्यवहार करते समय उस प्राधिकारी के विचारों का अवश्य ही आदर करेगा जिसने उसे नियुक्त किया हो। इसे सभी मानेंगे कि न्यायाधीशों का किसी प्रकार की राजनैतिक विचारधारा से संबंध न होना चाहिये। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि प्रस्तावित कार्यप्रणाली में जो मुख्य शर्त रखी गई है वह पूरी की जानी चाहिये अर्थात् उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने में भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति प्राप्त की जानी चाहिये। इस ज्ञापन में इस पर जोर दिया गया है और यह एक ऐसा उत्कृष्ट सिद्धांत है कि इसे सभा को स्वीकार कर ही लेना चाहिये। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि राष्ट्रपति को मुख्य न्यायाधिपति के सहकारियों को नियुक्त करने के पूर्व उससे परामर्श ही न लेना चाहिये बल्कि उसकी सहमति भी प्राप्त कर लेनी चाहिये। इस ज्ञापन में इस पर बहुत जोर दिया गया है कि यह परमावश्यक है कि न्यायाधीशों को राजनैतिक प्रभावों से अछूता रखा जाये। इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्यप्रणाली के अधीन यह भी रखा गया है कि राज्य के राज्यपाल

[मि. बी. पोकर साहब]

से भी परामर्श लिया जाना चाहिये किन्तु यह अधिक महत्व की बात नहीं है। यह संभव है कि राज्यपाल भी किसी प्रकार के राजनैतिक विचार रखता हो। इसलिये अपने संशोधन में मैंने राज्यपाल के नाम को स्थान नहीं दिया है। इसे सभी मानेंगे कि न्यायपालिका पर किसी राजनैतिक दल का अथवा किसी राजनैतिक विचारधारा का प्रभाव न पड़ना चाहिये। न्यायपालिका का कार्यपालिका से किसी प्रकार का संबंध न रखने के बारे में कल जो वाद-विवाद हुआ था उसमें मैं इस समय नहीं पड़ना चाहता। सभा को इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये और मुझे आशा है कि माननीय विधि मंत्री समस्या के इस अंग पर गम्भीरता से विचार करेंगे विशेषतया इसलिये कि उपरोक्त सिफारिशें संघ न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों के सम्मेलन की ओर से की गई है। श्रीमान्, मेरे विचार से संघ न्यायालय के न्यायाधीश और विभिन्न न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों के इस सम्मेलन के अतिरिक्त इस विषय पर अन्य कोई ऊंचा प्राधिकारी मिल नहीं सकता।

अपने संशोधन में मैंने जो दूसरी बात उठाई है वह यह है कि उच्चतम न्यायाधीशों की पदनिवृत्ति की आयु बढ़ाकर 68 वर्ष कर देनी चाहिये। कुछ वर्षों से यह देखा जाता रहा है कि उच्च न्यायालयों के बहुत से ऐसे न्यायाधीश जो स्वस्थ होते हैं और आगे कई वर्षों तक काम कर सकते हैं साठ वर्ष की आयु में ही निवृत्त कर दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस ज्ञापन में इसके लिये बहुत ही सबल कारण बताये गये हैं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु बढ़ाकर अड़सठ वर्ष क्यों कर देनी चाहिये। इस ज्ञापन में यह कहा गया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की निवृत्ति की आयु में और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की निवृत्ति की आयु में तीन से लेकर पांच वर्ष तक का अन्तर होना चाहिये। इसी ज्ञापन में यह भी कहा गया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु पैंसठ वर्ष निश्चित की जाये। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु पर उस समय पर विचार-विमर्श किया जायेगा जब तत्संबंधी अनुच्छेद विचारार्थ उठाये जायेंगे। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु बढ़ाकर बासठ अथवा त्रेसठ वर्ष रख दी जाये और संघ न्यायालय तथा भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों की सिफारिश के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु बढ़ाकर अड़सठ वर्ष रख दी जाये। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि माननीय विधि-मंत्री इस प्रश्न पर बहुत गंभीरता से विचार करें क्योंकि इस देश के सर्वोच्च न्याय संबंधी प्राधिकारी की सिफारिशों से मेरे संशोधन का समर्थन होता है।

(संशोधन संख्या 1820 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): संशोधन संख्या 1821 का उद्देश्य केवल मसौदे के दोषों को दूर करना है। इसलिये मैं चाहता हूं कि मसौदा-समिति उस पर विचार करे।

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं संशोधन संख्या 1822 और 1823 का आशय संशोधन संख्या 1816 से पूरा हो गया है और वह उपस्थित किया जा चुका है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'with' शब्द के बाद 'the Council of States and' शब्द रखे जायें।''

संशोधित खंड इस प्रकार हो जायेगा:

> ''Every judge of the Supreme Court shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal after consultation with the Council of States and such of the judges of the Supreme Court and of the High Courts in the States as may be necessary for the purpose and shall hold office until he attains the age of sixty-five years.''

श्रीमान्, इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े। मेरा संशोधन इस प्रकार है कि यदि राष्ट्रपति नियुक्ति करेगा तो वह स्वभावत: प्रधानमंत्री के परामर्श से नियुक्ति करेगा। श्रीमान्, आदरपूर्वक मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि न्यायाधीशों, राजदूतों अथवा राज्यपालों की नियुक्ति के संबंध में इस संविधान द्वारा प्रधानमंत्री को इतनी शक्ति तथा प्रभाव प्रदान किया गया है कि यदि वह चाहे तो स्वेच्छाचारी शासक हो सकता है। मेरे विचार से कुछ ऐसे विषय हैं जिन पर राजनीति का अथवा राजनैतिक दलों का प्रभाव न पड़ने देना चाहिये। यह भी एक ऐसा ही विषय है। मेरे विचार से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को इस प्रकार के प्रभाव से अछूता रखना चाहिये। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि न्यायाधीशों को नियुक्त करने में राष्ट्रपति केवल न्यायपालिका से ही परामर्श न ले किन्तु राज्य परिषद् से भी परामर्श ले ताकि दलबंदी की मनोवृत्ति समाप्त हो जाये अथवा कम हो जाये और किसी प्रकार का राजनैतिक प्रभाव भी न पड़ने पाये।

इस सुझाव की पुष्टि इस तर्क से भी होती है कि जिस प्रकार अर्थ-संबंधी शक्तियों के संबंध में अवर सभा को अर्थात् लोक सभा को उच्चतम अधिकार प्राप्त है उसी प्रकार ऐसे विषयों के संबंध में अर्थात् उच्च पदों के लिये शक्ति के संतुलन की दृष्टि से नियुक्ति करने के लिये मेरे विचार से राज्य-परिषद् से परामर्श लेना चाहिये ताकि इस कार्य में किसी प्रकार का प्रभाव न पड़ने पाये क्योंकि यदि प्रधानमंत्री ही राष्ट्रपति को इन विषयों के संबंध में परामर्श देगा तो कई प्रकार से प्रभाव पड़ने की संभावना है।

मेरे विचार से राज्य-परिषद् जो राज्यों की तथा कुछ हितों की प्रतिनिधि सभा होगी, इस विषय के संबंध में एक संतुलित दृष्टिकोण अपना सकेगी। इसलिये ऐसे विषयों के संबंध में राज्य-परिषद् का राष्ट्रपति को परामर्श देना किसी प्रकार आपत्तिजनक न होगा।

इस संबंध में संयुक्त राज्य अमरीका का दृष्टांत दिया जा सकता है। यद्यपि अमरीका का संविधान उस सिद्धांत पर आधृत नहीं है जो इस मसौदे में सन्निहित है किन्तु ऐसे विषयों में वहां की सीनेट का हाथ रहता है। इस विषय के संबंध में वहां के दृष्टांत

[प्रो. के.टी. शाह]

का अनुसरण करके हमें लाभ होगा और हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उच्चतम न्यायपालिका की रचना के संबंध में राज्य-परिषद् राष्ट्रपति को परामर्श दे। मुझे आशा है कि मेरा सुझाव स्वीकार किया जायेगा।

(संशोधन संख्या 1825, 1826 और 1828 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1827 के आशय की पूर्त्ति अन्य संशोधनों से हो गई है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'may be' शब्दों के स्थान में 'the President may deem' शब्द रखे जायें।''

इस समय यह खंड जिस रूप में है उसके अधीन 'may be' शब्द किसी न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किये जा सकते हैं क्योंकि किसी को इस आवश्यकता का निर्णय करना ही होगा। मैंने यह संशोधन इस उद्देश्य से उपस्थित किया है कि राष्ट्रपति स्वविवेक से यह निर्णय करे कि किन न्यायाधीशों से परामर्श लेना आवश्यक होगा। मेरे विचार से यह संशोधन आवश्यक है क्योंकि अन्यथा यह शब्द अस्पष्ट ही रह जायेंगे।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1830 और 1831 के आशय की पूर्त्ति संशोधन संख्या 1829 से हो चुकी है।

***प्रो. के.टी. शाह:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'until he attains the age of sixty-five years' शब्दों के स्थान में 'during good behaviour or until he resigns; provided that any such Judge may resign his office at any time after 10 years of service in a judicial office and if he so resigns, he shall be entitled to such pension as may be allowed under the law passed by the Parliament of India for the time being in force' शब्द रखे जायें।''

संशोधित खंड इस प्रकार हो जायेगा:

> ''Every judge of the Supreme Court shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal after consultation with such of the judges of the Supreme Court and of the High Courts in the States as may be necessary for the purpose and shall hold office during good

behaviour or until he resigns; provided that any such Judge may resign his office at any time after 10 years of service in a judicial office and if he so resigns, he shall be entitled to such pension as may be allowed under the law passed by the Parliament of India for the time being in force.''

इस प्रकार भी मैं न्यायपालिका को पूर्ण रूप से स्वाधीन करना चाहता हूं। इसका आशय यह है कि नियुक्तियां किसी निश्चित अवधि अथवा निर्धारित आयु के लिये नहीं की जायेंगी जिसे समाप्त करके किसी न्यायाधीश को अवश्य ही निवृत्त होना होगा किन्तु, जैसा कि इंग्लैंड में होता है और अभी हाल तक संयुक्त राज्य अमरीका में भी होता आया है, न्यायाधीशों को जीवनकाल के लिये नियुक्त किया जाना चाहिये। उन्हें इस प्रकार के भय से पीड़ित न रहना चाहिये कि सरकार के अथवा कार्यपालिका के रुष्ट होने पर उन्हें अपने पद से हटा दिया जायेगा। उन्हें इस भय से पीड़ित न रहना चाहिये कि उन्हें फिर न्यायालयों में वकालत करके अपनी जीविका उपार्जन करनी होगी अथवा किसी ऐसी उपजीविका को अपनाना होगा जो न्यायाधीशों के अनुरूप न हो अथवा जिससे उनकी स्वाधीनता और चरित्र पर प्रभाव पड़े।

इसलिये मेरा यह सुझाव है कि जैसा कि इंग्लैंड में होता है और अभी हाल तक संयुक्त राज्य अमरीका में भी होता आया है। चाल-चलन ठीक होने पर न्यायाधीशों को बहुत कुछ जीवन पर्यन्त पदासीन रहने देना चाहिये।

किन्तु यदि कोई न्यायाधीश यह अनुभव करे कि मानसिक अथवा शारीरिक दोर्बल्य के कारण यह अपने कृत्यों का पालन अथवा यथेष्ट रूप से पालन नहीं कर सकता है तो मेरा यह सुझाव है कि दस वर्ष तक न्यायाधीश रहने के उपरांत वह पदत्याग कर सकता है। मेरा यह भी सुझाव है कि पदत्याग करने के उपरांत उसे अपनी साधारण आजीविका के संबंध में किसी प्रकार की चिन्ता न रहे। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक स्थिति के संबंध में उसे पूर्ण प्रतिभूति प्राप्त होनी चाहिये और इसलिये उसे यथोचित निवृत्ति-वेतन मिलना चाहिये।

पद त्याग के उपरांत दिये जाने वाले निवृत्ति-वेतन का संसद को विधि द्वारा किसी विशेष न्यायाधीश के लिये नहीं बल्कि साधारणतया सभी न्यायाधीशों के लिये निश्चित करना चाहिये। चाहे जो भी विधि प्रवर्त्तन में हो किन्तु उसके अधीन किसी निवृत्ति न्यायाधीश को दस वर्ष तक सेवा करने के उपरांत निवृत्ति-वेतन मिलना चाहिये।

मेरा यह मत है कि इस प्रकार के न्यायाधीशों को निवृत्ति वेतन के रूप में वही धनराशि दी जानी चाहिये जो वे पदासीन होने की अवस्था में वेतन के रूप में पाते थे ताकि उनके लिये आजीविका उपार्जन के लिये किसी अन्य उपजीविका, वृत्ति अथवा सेवा को अपनाने का प्रलोभन न रह जाये। यदि उनका वेतन उनके जीवन स्तर को बनाये रखने के लिये पर्याप्त था तो उन्हें उसी प्रकार का निवृत्ति-वेतन भी मिलना चाहिये।

यह मेरी अपनी सम्मति है और मैं यह नहीं चाहता कि संविधान में इसका समावेश हो किन्तु मेरा यह सुझाव है कि इस संबंध में संसद विधि बनाये। इस सभा में मैं इसी उच्चतम सिद्धांत पर जोर देता रहा हूं कि यह आवश्यक है कि न्यायाधीशों को पूर्ण स्वाधीनता

[प्रो. के.टी. शाह]

प्राप्त है। अपने पिछले संशोधन में उनकी नियुक्ति की कार्यप्रणाली निश्चित करके मैंने उन्हें स्वाधीनता प्राप्त कराने का प्रयास किया है और इस संशोधन द्वारा चरित्र अच्छा रहने पर उनके बहुत कुछ जीवन पर्यन्त पदासीन रहने की व्यवस्था करके भी मैंने यही प्रयास किया है। यदि किसी कारण कोई न्यायाधीश निवृत्त होना चाहे अथवा बिना किसी दोषारोप के उसे पद से हटाना आवश्यक हो तो उसे इतना निवृत्ति वेतन दिया जाना चाहिये कि वह अपने अवशिष्ट जीवनकाल में समृद्धिशाली जीवन न सही किन्तु कम से कम स्वाधीनता से सुख-शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। श्रीमान, यह एक बहुत ही साधारण सिद्धांत है और मुझे आशा है कि इस पर किसी प्रकार की आपत्ति न की जायेगी और मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जायेगा।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'sixty-five' शब्द के स्थान पर 'sixty' शब्द रखा जाये और 'The President, however, may in any case extend from year to year the age of retirement up to sixty-five years' शब्द जोड़ दिये जायें।''

श्रीमान्, मैंने तीन कारणों को ध्यान में रखकर यह संशोधन उपस्थित किया है। एक कारण तो यह है कि सरकारी सेवकों के संबंध में निवृत्ति की आयु 55 वर्ष रखी गई है किन्तु उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये वह बढ़ाकर साठ वर्ष कर दी गई है। मुझे इसके लिये कोई कारण नहीं दिखाई देता कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में उसे बढ़ाकर 65 वर्ष कर दिया जाये। बहुत काल तक सेवा करने के उपरान्त उन्हें निवृत्त हो जाना चाहिये और अन्य लोगों के लिये स्थान रिक्त कर देना चाहिये। मुझे यह ज्ञात है कि मुख्य न्यायाधिपतियों ने कुछ समय पूर्व एक सम्मेलन में समवेत होकर यह सिफारिश की थी कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु 65 वर्ष होनी चाहिये। उस सम्मेलन की कार्यवाही देखने से मुझे यह पता लगा कि विद्वान् न्यायाधीशों ने इसके लिये कोई तर्कपूर्ण कारण नहीं बताये हैं। मुख्यत: उन्होंने यही कारण बताया है कि यदि निवृत्ति की आयु बढ़ाकर 65 वर्ष न की जाये तो उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिये उच्चतम न्यायालय में पद स्वीकार करने के लिये पर्याप्त आकर्षण नहीं रहेगा। मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि विद्वान् मुख्य न्यायाधिपतियों के तर्क को देखकर मुझे बहुत खिन्नता का अनुभव हुआ। हमें केवल इसलिये कि उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों के लिये आकर्षण रहेगा, जिन्हें धन से ही सबसे अधिक प्रेम है। मुख्य न्यायाधिपतियों की इस सिफारिश को स्वीकार न करना चाहिये।

दूसरा कारण यह है और उसे बताते हुए मैं इस सभा के साठ वर्ष से अधिक आयु के माननीय सदस्यों के प्रति अपना आदरभाव प्रकट कर देना चाहता हूं कि प्राय: साठ वर्ष के बाद लोगों में इतना शारीरिक तथा मानसिक बल नहीं रह जाता कि वे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के कठिन कार्य को संभाल सकें। मुझे यह ज्ञात है कि उच्च न्यायालयों में कुछ ऐसे न्यायाधीश भी रहे जिन्हें साठ वर्ष की आयु के पूर्व ही इतने मानसिक दोर्बल्य

का शिकार होना पड़ा है कि वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कृत्यों का पालन यथेष्ट रूप से नहीं कर सके हैं। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के प्रति आदर प्रकट करते हुए मैं कहना चाहता हूं कि कभी हमने यह भी देखा है कि अधिवक्ता तो बोलता जा रहा है किन्तु वे अपने खर्राटे ले रहे हैं।

***अध्यक्षः** इसका आयु से संबंध नहीं है।

***श्री जसपतराय कपूरः** हमेशा नहीं। श्रीमान्, इसमें कोई संदेह नहीं। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति जो साठ वर्ष की आयु का होने जा रहा हो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कठिन कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के कर्त्तव्यों का तो पालन कर ही नहीं सकता। मैं यह जानता हूं कि यह सभी लोगों के संबंध में नहीं कहा जा सकता परन्तु मैं यह कहूंगा कि कभी ऐसा भी होता ही है इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि हम यह नियम निश्चित कर देते हैं कि उच्चतम न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक पदासीन रहेगा तो यह उचित न होगा। मैं यह जानता हूं कि निस्संदेह इस सभा में बहुत से ऐसे सदस्य हैं जो साठ वर्ष के हो चुके हैं किन्तु जो देश के भूषण हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का शरीर तथा मस्तिष्क इतना स्वस्थ नहीं होता।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, तीसरा कारण यह है कि और यह सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है कि जिस व्यक्ति ने साठ वर्ष की आयु तक सेवा की हो और सरकार से सुन्दर उपलब्धियां प्राप्त की हों उसे निवृत्ति होने के लिये तथा समाज के लिये अवैतनिक रूप में कार्य करने के लिये तैयार रहना चाहिये। समाज प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से, जो साठ वर्ष की आयु का हो गया हो, यह आशा करता है कि वह समाज के उत्थान के लिये अवैतनिक रूप से कार्य करे। श्रीमान्, हमारे देश में प्राचीनकाल में लोग अपने सामने यह आदर्श रखते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के चतुर्थाश्रम के सन्यासी हो जाना चाहिये और अकिंचन होकर समाज सेवा करनी चाहिये। हमारे पूर्वाचार्यों ने हमारे सामने यह आदर्श रखा है। श्रीमान्, मेरे विचार से यह कोई बड़ी बात नहीं है कि हम प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा करें और विशेषकर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के समान विद्वान लोगों से यह आशा करें कि वे साठ वर्ष की आयु के उपरांत अवैतनिक रूप से देश सेवा करके लोगों के सामने एक अच्छा उदाहरण रखें। मेरे हृदय में प्रायः यह विचार उठता है कि सरकारी सेवकों को, निवृत्ति पश्चात् जब वे निवृत्ति वेतन पाते हैं और आजीविका उपार्जन की चिंता से मुक्त रहते हैं, किसी रचनात्मक कार्य में लगकर अवैतनिक रूप से समाज सेवा करनी चाहिये। यदि वे ऐसा करें तो हमें विभिन्न कार्य क्षेत्रों में बहुत से सुयोग्य समाज सेवक उपलब्ध हो जाएं। किंतु इस संशोधन में यह नहीं कहा गया है कि साठ वर्ष की आयु के उपरांत न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में पदासीन रहे ही नहीं। मैंने केवल यह कहा है कि साधारणतया साठ वर्ष की आयु प्राप्त होने पर वे निवृत्त कर दिये जायेंगे किन्तु यदि राष्ट्रपति यह समझे कि कोई न्यायाधीश बहुत ही योग्य है और सुयोग्य न्याय प्रशासन के लिये उसे रखना आवश्यक है तो वह पैंसठ वर्ष की आयु तक पदासीन रखा जा सकता है किन्तु प्रत्येक वर्ष उसकी पदावधि बढ़ाई जायेगी। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर तथा यह सभा इस संशोधन को स्वीकार करेंगे।

(संशोधन संख्या 1834 और 1835 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री सतीश चन्द्र** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'until he attains the age of 65 years' शब्दों के स्थान में 'for such period as may be fixed in this behalf by Parliament by law' शब्द रखे जायें।''

इस खंड में जो आयु निश्चित की गई है उसके संबंध में बहुत वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है। मेरे माननीय मित्र मि. पोकर साहब, मि. नजीरुद्दीन अहमद तथा मि. महबूबअली बेग यह चाहते हैं कि वह बढ़ाकर अड़सठ वर्ष कर दी जाये किन्तु श्री जसपतराय कपूर और श्री मोहनलाल गौतम यह चाहते हैं कि वह कम करके साठ वर्ष रख दी जाये। मेरे विचार से हमारे संविधान में यत्र तत्र बहुत अनुच्छेदों में अनावश्यक रूप से आयु निश्चित कर दी गई है। आयु का प्रश्न आगे की संसदों के लिये छोड़ा जा सकता है और वे ही काल विशेष की स्थिति को देखकर तथा आवश्यकताओं को समझकर इस संबंध में निर्णय करेंगी। श्री जसपतराय कपूर ने जो कुछ कहा है उससे मैं सबसे अधिक सहमत हूं। उन्होंने जो तर्क उपस्थित किये हैं उन्हें मैं दुहराना नहीं चाहता। मेरी यह धारणा है कि चूंकि इस सभा में अधिकतर वयोवृद्ध सज्जन हैं इसलिये कई स्थानों में ऐसी आयु निश्चित की गई है जिससे नवयुवकों के प्रति न्याय नहीं हो सका है। विधान-मंडलों की सदस्यता के लिये हमारे संविधान में जो आयु-सीमा निश्चित की गई है वह संसार में ऊंची से ऊंची आयु-सीमा है और यदि संसद के उच्च सदन की सदस्यता के संबंध में एक संशोधन स्वीकार न किया जाता तो वह आयु-सीमा संसार की सबसे ऊंची आयु-सीमा होती। मुझे आशा है कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा और यह भविष्य की संसद के लिये छोड़ दिया जायेगा कि वह इस संबंध में आयु-सीमा निश्चित कर मेरे विचार से साठ वर्ष की आयु के उपरांत अधिकांश लोगों का मानसिक तथा शारीरिक बल क्षीण हो जाता है यद्यपि अपवाद हमेशा ही होते हैं। किन्तु मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता और केवल यह चाहता हूं कि इस प्रकार के ब्यौरे के प्रश्न भविष्य की संसद के लिये छोड़ दिये जायें।

(संशोधन संख्या 1837 और 1838 उपस्थित नहीं किये गये।)

***मि. महबूबअली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के पहले परन्तुक में 'the Chief Justice of India shall always be consulted' शब्दों के स्थान में 'it shall be made with the concurrence of the Chief Justice of India' शब्द रखे जायें।"

प्रस्तावित संविधान के अधीन राष्ट्रपति कार्यपालिका का वैधानिक प्रमुख होगा। संविधान में संसदात्मक जनतंत्र का सिद्धांत सन्निहित है। इसलिये राष्ट्रपति का पथप्रदर्शन प्रधानमंत्री अथवा मंत्रि-परिषद् करेगा जिसमें किसी न किसी राजनैतिक दल के लोग होंगे। इसलिये राष्ट्रपति के निर्णय पर राजनैतिक दलों के दृष्टिकोण का अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। इसलिये

यह आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के पूर्व मुख्य न्यायाधिपति की सहमति प्राप्त की जाये ताकि न्यायाधीशों की नियुक्ति पर राजनैतिक दलों का प्रभाव न पड़े।

यह एक समुचित सिद्धांत है। यह आवश्यक है कि संघीय न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में मुख्य न्यायाधिपति की सहमति प्राप्त की जाये। यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति के बीच मतैक्य नहीं हो सकता है और एक प्रकार की जिद पैदा हो सकती है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति जैसे ऊंचे व्यक्तियों के बीच इस प्रकार के मत-वैषम्य की संभावना नहीं हो सकती। यदि किसी प्रकार का मतभेद हो भी तो राष्ट्रपति किसी ऐसे दूसरे नाम का प्रस्ताव कर सकता है जो मुख्य न्यायाधिपति को मान्य हो। इसलिये संघीय न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में मुख्य न्यायाधिपति की पूर्व सहमति प्राप्त करने के बारे में कोई गंभीर आपत्ति नहीं की जा सकती है। इससे यह तो हो ही जायेगा कि इन नियुक्तियों के संबंध में राजनैतिक दलों का प्रभाव न पड़ सकेगा।

(संशोधन संख्या 1840 और 1841 उपस्थित नहीं किये गये।)

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के दूसरे परन्तुक के बाद निम्नलिखित नया परन्तुक प्रविष्ट किया जाये:
>
> 'Provided further that where a Judge resigns his office on grounds of ill-health, he shall be entitled to pension as if he has continued in service until the age of sixty-five years.' "

श्रीमान्, इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि यदि किसी न्यायाधीश का स्वास्थ्य गिर जाने पर उसे निवृत्त होना पड़े तो वह किसी प्रकार के भय से पीड़ित न रहे और उसके लिये कार्यपालिका में अथवा राजनैतिक क्षेत्र में किसी पद का प्रलोभन न रहे। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि उच्चतम न्यायालय के अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को किसी भय अथवा प्रलोभन का शिकार न होना चाहिये। ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं जिन्होंने स्वास्थ्य अच्छा रहने पर सेवा की हो किन्तु सत्तावन अथवा इकसठ अथवा बासठ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर जो यह अनुभव करते हों कि स्वास्थ्य गिरने पर उन्हें निवृत्त होना पड़ेगा। स्वभावत: उनके लिये यह प्रलोभन रहेगा कि वे उस काल के लिये प्रबंध करें जबकि वे पदच्युत हो जायेंगे। हमें इस देश में ऐसे दृष्टांत देखने को मिले ही हैं कि एक व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा है फिर भारत के गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका परिषद् का सदस्य हो गया है, फिर प्रांत की कार्यपालिका परिषद् का सदस्य हो गया है और फिर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश मंडल का सदस्य हो गया है। यह न होने देना चाहिये। वास्तव में यदि कोई व्यक्ति यह अनुभव करे कि उसके लिये कोई प्रबंध नहीं रह गया है तो उसे किसी वृत्ति पद अथवा उपजीविका के लिये एक प्रकार

[डा. पी.के. सेन]

से भीख ही मांगनी होगी ताकि वह अपना भरण पोषण कर सके। उद्देश्य यही है। मैं इस प्रसंग में सभा का ध्यान अनुच्छेद 103 के खंड (7) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं क्योंकि उसका भी इससे संबंध है। उसमें कहा गया है:

> ''कोई व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर रहा हो वह भारत के राज्यक्षेत्र में किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के सम्मुख वकालत अथवा कोई कार्य न करेगा।''

यद्यपि इसका इस प्रश्न से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है किन्तु मैं यह बताना चाहता हूं कि मैंने एक नया अनुच्छेद 103-क प्रविष्ट करने के बारे में एक संशोधन उपस्थित किया है जिसमें मैंने यह कहा है कि जो व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो वह भारत के मुख्य न्यायाधिपति अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के पदों के अतिरिक्त भारत सरकार अथवा किसी राज्य के अधीन किसी लाभप्रद पद पर नियुक्त होने का पात्र न होगा परन्तु राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेकर उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अस्थायी रूप से अन्य प्रकार के कर्त्तव्य पालन के लिये भी नियोजित कर सकता है और साथ ही यदि आपात-संबंधी घोषणा प्रवर्तन में होने के काल में यदि कोई नियुक्ति की जाये और यदि राष्ट्रपति यह प्रमाणित करे कि वह नियुक्ति राष्ट्रीय हित के लिये आवश्यक है तो यह अनुच्छेद उस नियुक्ति के संबंध में प्रयोग में नहीं आयेगा।

इन अपवादों को छोड़कर मैं यह चाहता हूं कोई निवृत्ति न्यायाधीश सरकार के अधीन किसी लाभप्रद पद पर अथवा किसी कार्य में न लगाया जाये। यह बहुत ही आवश्यक है क्योंकि अन्यथा यह होता रहेगा कि पदासीन न्यायाधीश राजनैतिक दलों अथवा व्यापारिक संस्थाओं के साथ संपर्क स्थापित करेंगे और यह बहुत ही अनुचित होगा। यदि इन सभी रक्षा-कवचों को अपनाया जाये तो यह बहुत ही आवश्यक हो जायेगा कि उसे वही निवृत्ति वेतन दिया जाये जो संविधान में उपबन्धित सर्वोच्च आयु-सीमा अर्थात् पैंसठ वर्ष तक सेवा करने के उपरांत किसी न्यायाधीश को मिलती है।

यह कहा जा सकता है कि यह सब कुछ नियमों में निर्धारित किया जायेगा। मुझे इस संबंध में सन्देह है कि इस संबंध में संविधान में कोई उपबंध है या नहीं। जब संविधान में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि न्यायाधीश को पैंसठ वर्ष की आयु तक सेवा करनी होगी तो यदि अस्वस्थ होने के कारण अथवा अन्य कारणों से वह सेवा न कर सके तो वह सेवा के अनुपात से निवृत्ति वेतन पायेगा अथवा संभवत: बहुत कम निवृत्ति-वेतन पायेगा। इसका पद से हटने पर और निवृत्ति होने पर ही उसके मस्तिष्क में प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि पदासीन रहने पर भी उसके दृष्टिकोण पर प्रभाव पड़ेगा और वह किसी ऐसे साधन के खोज में रहेगा जिससे उसे दरिद्रता से छुटकारा मिल सके। मेरे विचार से न्यायाधीशों को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिये ताकि पैंसठ वर्ष के पहले भी निवृत्त होने पर वह सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

श्रीमान्, मुझे आशा है कि असंख्य संशोधन के बीच यह छोटा सा संशोधन कई संशोधनों के समान अनावश्यक तथा अस्वीकार्य न समझा जायेगा। मेरे विचार से यह देश के हित साधन के लिये बहुत आवश्यक है।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 1843 उपस्थित करना चाहता हूं जो इस प्रकार हैः

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के बाद निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जायेः

'(2A) Any person who has once been appointed as Judge of any High Court or Supreme Court shall be debarred from any executive office under the Government of India or under that of any unit, or, unless he has resigned in writing from his office as judge, from being elected to a seat in either House of Parliament, or in any State Legislature.' ''

यह संशोधन उस सामान्य सिद्धांत के अनुरूप ही है जिसे मैंने इस सभा के सम्मुख रखने का प्रयास किया है। वह यह है कि न्यायपालिका को किसी प्रलोभन में न पड़ने दिया जाये और उसका कार्यपालिका अथवा विधानमंडल से किसी प्रकार का संपर्क न रहे। मेरा यह सुझाव है कि न्यायाधीश पद पर न रहने के काल में अथवा निवृत्त होने पर कार्यपालिका के किसी पद पर नियुक्त होने के लिये संविधान में प्रतिषेध होना चाहिये ताकि किसी न्यायाधीश के लिये अधिक उपलब्धियां अथवा अधिक सम्मान प्राप्त करने के लिये कोई ऐसा प्रलोभन न रह जाये जिससे उसकी स्वाधीनता पर प्रभाव पड़े।

मेरा यह भी सुझाव है कि न्यायाधीश को पदत्याग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये और तब उसे साधारण नागरिक के सभी अधिकार प्राप्त होंगे जिसमें विधानमंडल में किसी जगह के लिये खड़े होने का अधिकार भी सम्मिलित है। किन्तु पदासीन रहने पर उसे यह अधिकार प्राप्त न होगा। मेरे विचार से यह सुझाव इतने स्पष्ट हैं कि इनके समर्थन के लिये अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं फिर यह कहना चाहता हूं कि पहले हमें ऐसे उच्च पदस्थ सरकारी सेवकों का बड़ा कटु अनुभव रहा है जिन्होंने बहुत ऊंचे पद प्राप्त किये और फिर निवृत्त होने पर ब्रिटेन के प्रभावपूर्ण पदों को प्राप्त करते रहे अथवा इस देश में व्यापारिक संस्थाओं में निदेशकों के पदों को प्राप्त करते रहे। यहां उच्च सरकारी पदों पर रहने के कारण वे अनुचित रूप से प्रभाव डालते रहे। कांग्रेस तथा अन्य दल उनके इस प्रकार के कार्य का विरोध करते रहे हैं। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस प्रकार की व्यवस्था अब न रहनी चाहिये। मेरे विचार से यह संशोधन भी उस सिद्धांत के अनुरूप ही है और इसलिये सभा को इसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

***श्री जसपतराय कपूरः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

''संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 1843 में अनुच्छेद 103 के प्रस्तावित नवीन खंड (2ए) के स्थान में निम्नलिखित रखा जायेः

'(2A) No Judge of the Supreme Court shall be eligible for further office of profit either under the Government of India or under the Government of any State after he has ceased to hold his office.' ''

श्रीमान्, मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 1843 के आशय तथा उसमें सन्निहित सिद्धांत से सहमत हूं। किन्तु मैं अपना संशोधन इस कारण उपस्थित कर रहा हूं कि प्रोफेसर शाह के संशोधन में दो दोष हैं। पहले तो उनके संशोधन में यह शब्द है कि, ''कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का अथवा उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो, कार्यपालिका के किसी पद पर नियुक्त न किया जा सकेगा''। इसका अर्थ यह है कि वै अवैतनिक रूप से भी भारत सरकार की अथवा किसी राज्य की सरकार की सेवा न कर सकेंगे। मेरे विचार से केन्द्र की सरकार को अथवा किसी राज्य की सरकार की सेवा न कर सकेंगे मेरे विचार से केन्द्र की सरकार को अथवा किसी राज्य की सरकार को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह अवैतनिक रूप से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा प्राप्त कर सके।

प्रोफेसर शाह के संशोधन का दूसरा दोष यह है कि उसमें यह उपबंधानित किया गया है कि निवृत्त होने पर उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश संसद के किसी सदन का सदस्य होने की पात्रता रखेगा जो कि अनावश्यक है। श्रीमान्, मेरे विचार से यह सभी सरकारी सेवकों के संबंध में कहा जा सकता है कि जब तक वह किसी लाभप्रद पद पर आसीन रहेगा वह किसी भी विधान-मंडल का सदस्य न हो सकेगा चाहे वह प्रांतीय हो अथवा केन्द्रीय। इसलिये प्रोफेसर शाह के संशोधन का यह भाग अनावश्यक है। इसीलिये मैं अपना संशोधन उपस्थित कर रहा हूं।

श्रीमान्, प्रोफेसर साहब ने यह ठीक ही कहा है कि न्यायपालिका की स्वाधीनता को बनाये रखने के लिये उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के लिये यह प्रलोभन न रहना चाहिये कि निवृत्त होने पर सम्भवत: उसे कोई लाभप्रद पद दिया जायेगा। यह पहला कारण है। दूसरा यह है कि जैसा कि मैं कुछ मिनट पूर्व एक संशोधन उपस्थित करते हुए कह चुका हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को निवृत्त होने के पश्चात् अवैतनिक रूप से समाज की सेवा करने के लिये तैयार रहना चाहिये। तीसरा कारण यह है कि महालेखा-परीक्षक के संबंध में यह सिद्धांत स्वीकार किया जाने वाला है। अनुच्छेद 124 (3) में, जिस पर हम कुछ समय बाद विचार करेंगे, यह उपबंधानित है कि निवृत्त होने पर महालेखा-परीक्षक को कोई पद नहीं दिया जायेगा। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में भी इसी सिद्धांत को अपनाना चाहिये। मैंने इस सभा के एक विद्वान् सदस्य से इस संबंध में विचार-विमर्श किया और उन्होंने मुझसे यह कहा कि राज्यों को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे उच्चतम न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीशों की सेवाओं का विभिन्न प्रकार से उपयोग करें। इस संबंध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु उच्चतम न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीशों को किसी प्रकार की उपलब्धियां प्रदान न की जानी चाहिये। उच्चतम न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश से विभिन्न प्रकार से महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये कहा जा सकता है। किन्तु उसे अपने निवृत्ति वेतन से ही संतोष करना चाहिये जो उसे अवश्य ही दिया जायेगा; और कोई उपलब्धियां उसे नहीं प्रदान की जानी चाहियें।

इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं और मुझे आशा है कि उसे यह सभा स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 1844 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (3) में निम्नलिखित नवीन खंड जोड़ दिया जाये:

'(c) or is a distinguished jurist.' ''

मेरे इस छोटे से संशोधन का उद्देश्य यह है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करते समय राष्ट्रपति को लोगों को चुनने के लिये एक विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध हो जाये। सभा के ध्यान में यह आ जायेगा कि इस समय यह अनुच्छेद जिस रूप में है इसके अनुसार केवल दो श्रेणियों से न्यायाधीश चुने जा सकते हैं। एक श्रेणी तो उन लोगों की है जो किसी उच्च न्यायालय के अथवा लगातार दो या तीन उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश रह चुके हों। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है जो किसी उच्च न्यायलय में अथवा लगातार दो या दो से अधिक उच्च न्यायालयों में अधिवक्ता रह चुके हों। मुझे इसका विश्वास है कि यह सभा इसका अनुभव करेगी कि न पदों पर ऐसे पुरूषों को और महिलाओं को भी नियुक्त करना इष्ट ही नहीं है बल्कि आवश्यक भी है जो प्रख्यात विधिवेत्ता तथा न्यायवेत्ता हों। मेरे विचार से केवल न्यायाधीश अथवा अधिवक्ता ही ऐसे लोग नहीं होते। आनुषंगिक रूप से मैं यह भी बताना चाहता हूं कि मेरा यह संशोधन हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों के योग्यता-संबंधी उपबंध पर आधृत है। मेरे विचार से यह सभा मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी और इस प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने में राष्ट्रपति को एक बृहत् क्षेत्र से चुनने का अवसर प्रदान करेगी।

(संशोधन संख्या 1846 और 1847 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (3) के उपखंड (बी) के बाद निम्नलिखित नवीन उपखंड प्रविष्ट किया जाये:
>
> '(c) has been a pleader in one or more District Courts for at least twelve years.' ''

श्रीमान्, अनुच्छेद 103 के खंड (3) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की अर्हता निर्धारित की गई है। उस खंड में कहा गया है:

> ''कोई व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये तब तक अर्ह न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो और—
>
> (क) उच्च न्यायालय का अथवा लगातार दो या दो से अधिक ऐसे न्यायालयों का पांच वर्ष तक न्यायाधीश न रह चुका हो; अथवा
>
> (ख) उच्च न्यायालय का अथवा लगातार दो या दो से अधिक ऐसे न्यायालयों का दस वर्ष तक अधिवक्ता न रह चुका हो।''

जहां तक न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये अर्हता का संबंध है मैं यह चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये वकील भी अर्ह हो। इसका कारण यह है कि अधिवक्ता की अथवा वकील की अर्हता एक ही होती है। अधिवक्ता

[श्री मोहम्मद ताहिर]

वकील से अधिक अर्ह नहीं होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि साधारणतया अधिवक्ता केवल उच्च न्यायालय में ही कार्य करता है और वकील केवल जिला न्यायालयों में कार्य करता है किन्तु यह वे केवल अपनी सुविधा के अनुसार करते हैं। आजकल कोई वकील भी सन्था में निश्चित धन जमा करके अधिवक्ता हो सकता है। यह धन जमा करने पर ही वह अधिवक्ता हो जाता है। श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या कोई व्यक्ति थोड़ा धन जमा करने से ही पहले से अधिक अर्ह हो जाता है? इसलिये मेरा यह कहना है कि जहां तक अर्हता का संबंध है अधिवक्ता और वकील दोनों समान अर्हता रखते हैं। इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, यदि वकीलों के लिये उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिये कोई अवसर न रहेगा तो उनके वर्ग के प्रति एक बड़ा अन्याय होगा। श्रीमान्, यह सभी को विदित है कि उस वर्ग ने देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये बहुत बलिदान किया है। मैं यह नहीं कहता कि केवल वकीलों के ही वर्ग ने देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया। अन्य वर्गों ने भी उसके लिये संघर्ष किया किन्तु जहां तक वकीलों के वर्ग का संबंध है आप देखेंगे कि किसी बिरले अधिवक्ता ने ही देश की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया। अपने संविधान द्वारा यदि हम उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के नियुक्त होने का अवसर वकीलों को न दें तो यह उनके वर्ग के प्रति एक बड़ा अन्याय होगा। मेरे कुछ मित्र कह सकते हैं कि जिला न्यायालयों के कुछ ऐसे वकीलों को भी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने का अवसर मिल जायेगा जिन्होंने कभी भी वकालत न की हो। कई अधिवक्ता भी ऐसे हैं जिन्होंने कभी पैरवी ही नहीं की है। इसके अतिरिक्त जब कोई व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जायेगा तो यह देखा ही जायेगा कि वह उस पद के लिये अर्ह है या नहीं। मेरा यह कहना है कि जहां तक अर्हता का संबंध है वकीलों और अधिवक्ताओं में कोई अन्तर नहीं है। इसलिये यदि एक अधिवक्ता उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो सकता है तो कोई कारण नहीं है कि एक वकील नियुक्त न हो सके। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 1849 उपस्थित नहीं किया गया)

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (3) की व्याख्या 1 के बाद निम्नलिखित नवीन व्याख्या प्रविष्ट की जाये और नवीन व्याख्या की गणना तदनुसार की जाये:
>
> *Explanation II.*–in this clause District Court means a District Court which exercises or which before the commencement of this Constitution exercised jurisdiction in any district of the territory of India.' ''

इस संशोधन का समर्थन करने के लिये मैं कोई भाषण नहीं देना चाहता क्योंकि जिस संशोधन को मैंने अभी उपस्थित किया था उसका यह अनुवर्त्ती संशोधन ही है। इसलिये इसकी अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (3) की व्याख्या (2) में जहां कहीं 'advocate' शब्द आया है उसके बाद 'or a pleader' शब्द रखे जायें और 'a person held judicial' शब्दों के स्थान में 'such person held judicial' शब्द रखे जाये।''

इस संशोधन के पहले भाग के संबंध में मैं कुछ अधिक कहने नहीं जा रहा हूं। जहां तक इस संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध है यदि हम व्याख्या की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि वह इस प्रकार है:

> ''In computing for the purpose of this clause the period during which a person has been an advocate, any period during which a person held judicial office after he became an advocate shall be included.''

इसमें 'a person held' इत्यादि शब्दों के स्थान में 'such person held' इत्यादि शब्द होने चाहियें। 'a' शब्द के स्थान में 'such' शब्द होना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''खंड (3) में व्याख्या (2) के बाद 'judicial office' शब्दों के बाद 'not inferior to that of a district judge' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूं कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (4) में 'supported by not less than two-thirds of the members present and voting has been presented to the President by both Houses of Parliament' शब्दों के स्थान में 'by each House of Parliament supported by a majority of the total membership of that House and by a majority of not less than two-thirds of the members of that House present and voting has been presented to the President' शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्ष:** डा. बक्शी टेकचन्द ने इस संशोधन पर एक संशोधन उपस्थित करने की सूचना दी है। संशोधनों पर संशोधनों की सूची में इस संशोधन की संख्या 101 है।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं करना चाहता।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से एक और संशाधन भी है।

क्या श्री बी. दास अपना संशोधन संख्या 102 उपस्थित कर रहे हैं? उन्होंने इस संशोधन पर एक संशोधन उपस्थित करने की सूचना दी है। वह छपी हुई सूची का संशोधन संख्या 102 है।

(संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** अपने संशोधन संख्या 1854 के संबंध में मुझे यह कहना है कि चूंकि वह बहुत कुछ मसौदे के संशोधन से संबंध रखता है इसलिये मसौदा-समिति ही उस पर विचार करे। इसलिये मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (4) में 'passed' शब्द के बाद 'after a Committee consisting of all the Judges of the Supreme Court had investigated the charge and reported on it to the President and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं अनुच्छेद 103 का खंड (4) पढ़ूंगा।

> ''A judge of the Supreme Court shall not be removed from his office except by an order of the President passed after an address supported by not less than two-thirds of the members present and voting has been presented to the President by both Houses of Parliament in the same Session for such removal on the ground of proved misbehaviour or incapacity.''

श्रीमान्, अनुच्छेद 103 के खंड (4) में किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने की प्रक्रिया का उल्लेख है। उसमें यह कहा गया है कि संसद के दोनों सदनों के राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्ताव उपस्थित करने पर राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को पदच्युत कर सकता है। श्रीमान्, मेरे विचार से यह सिद्धांतत: गलत होगा कि कोई न्यायाधीश संसद की सिफारिश से पदच्युत किया जाये। यदि संसद में बहुसंख्यक दल किसी न्यायाधीश के पक्ष में न हो तो उसे हटाना बहुत आसान होगा। न्यायाधीश को तो सभी प्रकार की दल बन्दियों से अलग रहना ही होगा। उसे निष्पक्ष होना होगा और शासनारूढ़ सरकार से किसी प्रकार की आशा न करनी होगी और अपना काम करते रहना होगा। उसे इसकी चिंता न करनी होगी कि कौन शासनारूढ़ है। मेरा यह निवेदन है कि यदि किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कोई अभिकथन हो तो उस अभिकथन की पहले जांच की जानी चाहिये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायाधीशों की एक समिति बने और वह समिति किसी न्यायाधीश के विरुद्ध जो अभिकथन उपस्थित किया गया हो उसकी जांच करे और उस संबंध में एक प्रतिवेदन राष्ट्रपति को दे और अभिकथन के प्रमाणित होने पर राष्ट्रपति संसद के परामर्श से उसे पदच्युत करे। इसलिये, श्रीमान्, यदि मेरा संशोधित प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो खंड इस प्रकार हो जायेगा:

> ''A Judge of the Supreme Court shall not be removed from his office except by an order of the President passed, after a Committee consisting of all the Judges of the Supreme Court had investigated the charge and reported on it to the President and etc.''

श्रीमान्, मेरे विचार से न्यायाधीशों को पदच्युत करने की यही यथेष्ट प्रणाली है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1856 मि. मोहम्मद ताहिर के नाम से है। मेरे विचार से इस संबंध में किसी भाषण की आवश्यकता नहीं है। उसके द्वारा केवल 'not less than two-thirds' शब्दों के स्थान में 'a majority' शब्दों को रखने का प्रस्ताव किया गया है। मैं यह मान लेता हूं कि उसे उपस्थित कर दिया गया है।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** अच्छी बात है, श्रीमान्। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1857 एक शाब्दिक संशोधन है।

संशोधन संख्या 1858 प्रो. के.टी. शाह के नाम से है। क्या उसका आशय 'incapacity and misbehaviour' शब्दों से पूरा नहीं हो जाता है?

***प्रो. के.टी. शाह:** यदि आपका यह विचार है कि उसका आशय पूरा हो गया है तो वह मुझे मान्य है और मैं अपने संशोधन को उपस्थित नहीं करना चाहता।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1859। उसका आशय भी बहुत कुछ उस संशोधन से पूरा हो जाता है जिसे मि. तजम्मुल हुसैन ने उपस्थित किया है।

संशोधन संख्या 1860 का भी आशय संशोधन संख्या 1859 से पूरा हो जाता है। संशोधन संख्या 1861 एक शाब्दिक संशोधन है। संशोधन संख्या 1862 डा. बी.आर. अम्बेडकर के नाम से है। वह भी एक रस्मी संशोधन है और उसका उद्देश्य केवल यह है कि 'a declaration' शब्दों के स्थान में 'an affirmation or oaths' शब्द रख दिये जायें। संविधान के मसौदे के अन्य भागों में जहां कहीं ये शब्द आये हैं हमने इस प्रकार का परिवर्तन किया है। मैं यह मान लेता हूं कि वह उपस्थित कर दिया गया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं रस्मी तौर पर उसे उपस्थित करता हूं:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (6) में 'a declaration' शब्दों के स्थानों में 'an affirmation or oaths' शब्द रखे जायें।''

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 का खंड (7) निकाल दिया जाये।''

वह अनुच्छेद इस प्रकार है:

> ''No person who has held office as a judge of the Supreme Court shall plead or act in any court or before any authority within the territory of India.''

इस खंड के अनुसार मेरे विचार से प्रत्येक न्यायाधीश निवृत्त होने पर बिल्कुल बेकार हो जायेगा। कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जाये और निवृत्त होने पर उसे पर्याप्त तथा सामर्थ्य प्राप्त हो और वह संसार के

[श्री मोहम्मद ताहिर]

कई कार्य करना चाहे। श्रीमान्, ऐसा संविधान बनाना जिससे कोई व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य न कर सके बहुत अनुचित होगा। संविधान में ऐसे उपबंध न होने चाहिये जिनके आधार पर किसी व्यक्ति के कार्य, सामर्थ्य होने पर भी सीमित हो जायें। इसलिये मेरे विचार से उच्चतम न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों को जो ठीक समय पर निवृत्त हो गये हों किन्तु अन्य क्षेत्रों में कार्य करने के लिये सक्षम हों अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की आज्ञा मिलनी चाहिए। इन शब्दों के साथ मैं अपना प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 1864 उपस्थित नहीं किया गया।)

***माननीय श्री. के. सन्तानम्:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 103 के खंड (7) में 'any authority' शब्दों के बाद 'or shall hold any office of profit without the previous permision of the President' शब्द प्रविष्ट किये जाये।''

मैं 'of profit' शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं।

श्रीमान्, बहुत से लोगों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को निवृत्त होने के पश्चात् किसी पद की इच्छा न करनी चाहिये। इस प्रकार के पूर्ण प्रतिषेध को स्थान देने से हम कठिनाई में पड़ जायेंगे। उदाहरण के लिये इस समय न्यायाधिपति श्री वर्दाचार्य आय कर अनुसंधान आयोग के सभापति हैं। इसी प्रकार हम पृच्छा-आयोग अथवा अन्य प्रकार के आयोग स्थापित कर सकते हैं जिनमें ये निवृत्त न्यायाधीश बहुत उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु मेरे संशोधन में इसका प्रयास किया गया है कि बिना राष्ट्रपति की स्पष्ट आज्ञा के वे किसी लाभप्रद पद को स्वीकार न करें। साधारणतया राष्ट्रपति इस प्रकार की आज्ञा न देंगे जब तक कि वह कोई ऐसा पद न हो जिसे स्वीकार करने से उस न्यायाधीश की स्वाधीनता पर कोई प्रभाव न पड़े। मैं विशेषतया यह चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश किन्हीं निजी समवायों में ऐसे पद स्वीकार न कर सकें जैसे निदेशक मंडली के सभापति का पद इत्यादि। यदि हम अपनी न्यायपालिका को सभी प्रकार के प्रलोभनों से अछूता रखना चाहते हैं तो यह बहुत आवश्यक है। इसलिये मेरा यह कहना है कि बिना किसी कठिनाई अथवा पेचीदगी को पैदा किये हुए मेरे संशोधन से इन सभी उद्देश्यों की पूर्त्ति हो जाती है। मैं इस सभा से यह सिफारिश करता हूं कि वह स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1866 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1867। संविधान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में अनुच्छेद 146 भी है। मेरे विचार से इसके आशय की पूर्त्ति उस अनुच्छेद से हो जाती है। क्या आप इस संशोधन को इस प्रसंग में भी उपस्थित करना चाहते हैं?

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 1868 और 1869 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मुझे जिन संशोधनों की सूचना दी गई थी उन सब पर विचार-विमर्श हो चुका है। जो सदस्य अब किसी संशोधन पर अथवा मूल अनुच्छेद पर बोलना चाहते हैं वे अब बोल सकते हैं। मैं सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे संक्षेप में बोलें। एक ही अनुच्छेद के संबंध में संशोधन उपस्थित करने में हमने दो घंटे लगा दिये हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 1817 का समर्थन करता हूं। इस संशोधन के उपबंधों के अनुसार उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति संसद के दोनों सदनों के संयुक्त सत्र में समवेत संसद के कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से होनी चाहिये। यदि आप कृपा करके इस अनुच्छेद के खंड (4) को देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि जहां तक उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने का संबंध है, संसद के दोनों सदनों के एक ही सत्र में उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से समर्थित इस संबंध में एक प्रस्ताव राष्ट्रपति के सम्मुख रखना चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि यह एक समुचित सिद्धांत है कि पदच्युत करने वाला प्राधिकारी नियुक्त करने वाला प्राधिकारी भी होना चाहिये। इसलिये पदच्युत करने के बारे में जो उपबंध है उससे इस आपत्ति का निराकरण हो गया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में विधान मंडल को कोई प्रभाव न रखना चाहिये। जहां तक उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति का संबंध है इस प्रकार की आपत्ति तर्क की कसौटी में नहीं उतर सकती है। निस्सन्देह नियुक्ति राष्ट्रपति ही करें किन्तु उस नियुक्ति की पुष्टि संसद के कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से होनी चाहिये। इससे उच्चतम-न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पर लोगों का विश्वास बढ़ जायेगा और साथ ही जब यह ज्ञात हो जायेगा कि उसकी नियुक्ति का समर्थन राष्ट्रपति ने भी किया है तो उसकी प्रतिष्ठा तथा उसका प्रभाव और भी बढ़ जायेगा क्योंकि प्रधानमंत्री के परामर्श से काम करने से राष्ट्रपति विधानमंडल के बहुमत का प्रतिनिधित्व करेगा। यदि दो-तिहाई बहुमत की व्यवस्था स्वीकार की जाय तो उससे अधिक प्रतिष्ठा और प्रभाव प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त इस संशोधन से उस आपत्ति का भी निराकरण हो जाता है जो संशोधन संख्या 1813 द्वारा की गई है क्योंकि इसमें 'भारत का मुख्य न्यायाधिपति' शब्द रखे गये हैं। यह नाम उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपति के नाम से भिन्न होगा।

मैं संशोधन संख्या 1843 के सम्बन्ध में एक बात और कहना चाहता हूं। यह कहा गया है कि निवृत्ति के उपरांत उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश किसी लाभप्रद पद को स्वीकार न करे और न किसी न्यायालय में वकालत करे। यह उपबन्ध है तो सुन्दर किन्तु साथ ही संशोधन 1843 द्वारा उसके कार्य जिस प्रकार निर्बन्धित किये गये हैं, वह उचित नहीं हैं। मेरे मतानुसार उच्चतम न्यायालय का कोई निवृत्त, न्यायाधीश लोक सभा अथवा राज्य-परिषद् का सदस्य होने के लिये उत्तम पात्र है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यद्यपि निवृत्त होने के पश्चात् कोई न्यायाधीश किसी अधीनस्थ न्यायालय में वकालत न करने दिया जाये किन्तु उसे इसकी स्वतंत्रता रहे कि वह विधानमंडल के सदस्य के रूप में कार्य करता रहे।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं विशेषतया एक विषय पर बोलना चाहता हूं जिसके संबंध में कुछ संशोधन उपस्थित किये गये हैं। वह है उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु का विषय। कुछ सदस्यों ने यह संशोधन प्रस्तावित किया है कि उनकी आयु घटाकर साठ वर्ष कर दी जाये और एक में यह सुझाव रखा गया है कि उसे बढ़ाकर अड़सठ वर्ष कर दिया जाये। किसी विशेष आयु के लिये अर्थात् पैंसठ वर्ष अर्थात् छयासठ वर्ष के लिये कारण बताना बहुत कुछ कठिन ही है। इनमें बहुत अन्तर नहीं है। बहुत विचार करने के उपरांत जिन लोगों से परामर्श किया गया था उन की यह राय थी कि पैंसठ वर्ष ही उचित आयु होगी।

मेरे विचार से भारत में पहले आयु-सीमाएं, केवल सेवा-दृष्टि से निश्चित की गई। यहां ब्रिटिश सरकार ने कई प्रकार की सेवायें आरम्भ कीं जैसे कि आई.सी.एस. जिसमें पहले लगभग सभी अंग्रेज ही होते थे परन्तु बाद में कुछ भारतीय भी रखे जाने लगे। सरकार की परिभाषा सेवाओं के हितों की दृष्टि से ही की जाती थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन सेवाओं में नियुक्त लोगों ने देश की सेवा की। मैं उनके विरुद्ध कुछ कहने नहीं जा रहा हूं। किन्तु सेवाओं की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता था और उन्हीं के हितों की दृष्टि से नियम बनाये जाते थे।

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि आप किसी व्यक्ति से राष्ट्र की सेवा किस प्रकार करायें। प्रत्येक देश लोगों को काम सिखाने में बहुत धन व्यय करता है। किसी योग्य और काम सीखे हुए व्यक्ति को आपको न हटाना चाहिये और उसके स्थान में काम न सीखे हुए व्यक्ति को रखकर नये सिरे से काम न करवाना चाहिये। यह कहना कठिन है कि कोई व्यक्ति अपने पूरे सामर्थ्य से काम कर रहा है या नहीं। विभिन्न वृत्तियों में आयु के अनुसार विभिन्न सामर्थ्य सीमाएं होंगी। यह स्पष्ट है कि खान में काम करने वाला कोई व्यक्ति साठ वर्ष की आयु तक अथवा उसके लगभग किसी आयु तक काम नहीं कर सकता। बौद्धिक कार्य करने वाले लोग अधिक आयु तक कार्य कर सकते हैं। यही लेखकों के विषय में भी कहा जा सकता है। यह कहना स्पष्टत: अनर्गल होगा कि लेखक को किसी आयु के पश्चात् लिखना छोड़ देना चाहिये क्योंकि उसका बौद्धिक बल क्षीण हो जाता है। मुझे इसमें भी सन्देह है कि इस सभा के सदस्य विधानसभा के सदस्यों के लिये अथवा मंत्रियों के लिये अथवा इस प्रकार के अन्य लोगों के लिये कोई आयु निश्चित करने के पक्ष में होंगे। हम यह नहीं करते हैं। बात यह है कि उच्च स्तरों के लिये जब उत्कृष्ट लोगों की आवश्यकता होती है तो किसी ऐसी आयु-सीमा को निश्चित करना खतरनाक होता है जिसके कारण कार्य कुशल लोग न लिये जा सकें। मैं आपके सामने एक उदाहरण रखता हूं जो एक अन्य क्षेत्र में हमें दिखाई दिया। वह वैज्ञानिकों का एक मामला था। इस सम्बन्ध में क्या हम यह कह सकते हैं कि कोई वैज्ञानिक साठ वर्ष के बाद काम नहीं कर सकता है? वास्तव में कुछ उच्च कोटि के वैज्ञानिकों ने साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् ही उत्कृष्ट कार्य किया है। आयनस्टीन को ही देखिये। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि उनकी आयु क्या है किन्तु वह साठ वर्ष से बहुत अधिक होगी। फिर भी आयनस्टीन इस युग के सबसे बड़े वैज्ञानिक हैं। क्या किसी सरकार को उनसे यह कहने का साहस है कि चूंकि आप अब साठ वर्ष के हो गये हैं इसलिये हम आपके ज्ञान का उपयोग नहीं कर सकते और अब आप अपने प्रयोग निजी तौर पर

कीजिये? भारत में भी कुछ उच्चतम कोटि के वैज्ञानिक हैं और मुझे इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा कि क्या उन्हें निवृत्त कर दिया जाये। मैंने यह कहा कि हमारे देश में उच्च कोटि के लोगों की कमी है और यदि प्रशासन-संबंधी कुछ नियमों के कारण, जो आविष्कारपूर्ण उच्च कोटि के बौद्धिक कार्य की उपेक्षा करते हैं, आप उन्हें हटा दें तो देश विपत्ति में पड़ जायेगा। हमारे बीच में जो थोड़े से लोग हैं उनकी सेवाओं से भी हम वंचित हो जायेंगे।

न्यायाधीशों के संबंध में, विशेषत: संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में हम साधारण प्रशासन-सेवाओं के आधार को स्वीकार नहीं कर सकते। न्यायाधीश भिन्न प्रकार का कार्य करते हैं। उसमें अपेक्षाकृत अधिक शारीरिक थकान का अनुभव नहीं होता। किसी न्यायाधीश को साधारणतया प्रशासनाधिकारी के समान किसी गर्दगुवार का सामना नहीं करना पड़ता; किन्तु साथ ही वह बहुत उत्तरदायित्व का कार्य है और जहां तक मुझे ज्ञात है अन्य सभी देशों में न्यायाधीशों की आयु-सीमा अपेक्षाकृत ऊंची है। वास्तव में उनके यहां कोई आयु-सीमा निश्चित की ही नहीं गई है। अमरीका के उच्चतम न्यायालय का सबसे महान न्यायाधीश अर्थात् होम्स, बयानवे वर्ष की आयु तक काम करता रहा और तीस या चालीस वर्ष तक लगातार बड़ी योग्यता से कार्य करता रहा। यदि आप इंग्लैंड की प्रिवी कौंसिल में जायें, यद्यपि मैं कह नहीं सकता कि अब वहां किस प्रकार के लोग हैं किन्तु कुछ वर्ष पूर्व जब मैं वहां गया था तो मैंने देखा था कि लम्बी दाढ़ी वाले बड़े बूढ़े लोग बैठे हुए थे और उन्हें देखने से जैसा पता लगता था वे सौ वर्ष तक किसी भी आयु के होंगे। यह हो सकता है कि आप बहुत अधिक आयु के लोगों को रखने लगें किन्तु बात यह है कि हमें इस प्रश्न पर केवल नवयुवकों को आजीविका प्राप्त कराने की दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिये। यदि आपको ऊंची योग्यता रखने वाले लोगों की आवश्यकता होगी तो यह स्पष्ट है कि आप आयु की ओर ध्यान नहीं देंगे। कोई नवयुवक बहुत ही कुशल हो सकता है और कोई बूढ़ा व्यक्ति कुशल कार्यकर्त्ता नहीं हो सकता है। किन्तु बात यह है कि यदि कोई बुढ़ा व्यक्ति अनुभवी हो और मानसिक तथा अन्य दृष्टियों से स्वस्थ हो तो उसे हटाना अथवा हटने के लिये बाध्य करना और उसके स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को रखना जो न अनुभव हो और न योग्य ही हो राज्य के लिये हानिकार ही न होगा बल्कि उसके लिये एक दुर्भाग्य की बात भी होगी। हमें उच्च न्यायालयों के लिये तथा उच्चतम न्यायालय के लिये बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। इसमें सन्देह नहीं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या सीमित ही होगी किन्तु पदों की अधिकाधिक वृद्धि होगी और इस समय हमें बहुत कम लोग उपलब्ध हैं। सम्भवत: भविष्य में अधिकतर न्यायाधीश वकीलों में से ही लिये जायेंगे और बाद में आप इस पर विचार कर सकते हैं कि वकीलों में से उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पदों के लिये अच्छे से अच्छे लोग लिये जाने के लिये किस प्रकार के नियम बनाये जायें। यह अत्यन्त आवश्यक है कि न्यायाधीश प्रथम श्रेणी की योग्यता रखने वाले तो हों ही परन्तु साथ ही देश में भी ऐसी योग्यता रखने वाले तथा ऊंचे चरित्र वाले समझे जायें। ये लोग ऐसे व्यक्ति होने चाहियें जो न्याय के मार्ग में बाधक होने पर कार्यपालिका का अथवा किसी भी व्यक्ति का विरोध कर सकें। इन सब बातों का ध्यान रखते हुए मेरे विचार से मसौदा-समिति ने संघ न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये पैंसठ वर्ष की आयु निश्चित करने के लिये जो सुझाव रखा है वह उचित ही है और किसी भी यथोचित आयु-सीमा से ऊंची नहीं है। आपको यह विदित ही है कि यहां हम में से बहुत से

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

लोग साठ वर्ष अथवा साठ वर्ष से अधिक भयास्पद आयु के हैं। किन्तु हम फिर भी काम कर रहे हैं और ऐसा काम कर रहे हैं जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के काम से कहीं अधिक थकान पैदा करने वाला है। हम इसलिये काम कर रहे हैं कि देश की हम पर कृपा है अथवा वह यह समझता है कि हमारा काम करना आवश्यक है। चाहे जो भी हो किन्तु यदि आप हमें पसन्द न करें तो हमें निकाल सकते हैं और दूसरे लोगों को हमारे स्थान में रख सकते हैं हमारे लिये कोई आयु-सीमा नहीं है। किन्तु उच्च न्यायालय के तथा संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को इस प्रकार के राजनैतिक कार्यों अथवा दलबन्दी आदि से अलग रहना चाहिये और यदि वे स्वस्थ हों तो उन्हें काम करने देना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि चाहे जैसे भी नियम आप बनायें किन्तु कुछ कठिनाइयां अवश्य उत्पन्न होंगी और कुछ ऐसे लोग भी काम करते रहेंगे जो ठीक नहीं। किन्तु संघीय न्यायालय में ऐसे लोग नियुक्त किये जायेंगे जो उच्च न्यायालय में अथवा अन्य किसी जगह काम कर चुके होंगे। इसलिये कोई व्यक्ति बहुत खराब नहीं हो सकता है क्योंकि ऐसा होने पर वह नियुक्त ही न किया जाता। उसने उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधिपति के पद पर अथवा किसी अन्य पद पर काम करके अपनी योग्यता प्रमाणित की होगी। इसलिये आपको इसका विश्वास रहेगा कि वह एक कोटि की योग्यता रखता है। इस दशा में उसे काम करने देना चाहिये। केवल इस कारण किसी योग्य व्यक्ति को हटाने से कि वह साठ वर्ष का हो गया है, काम में बहुत कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। इसलिये सभा से मेरा यह निवेदन है कि संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये 65 वर्ष की आयु-सीमा का जो सुझाव रखा गया है वह स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री कपूर ने अपने संशोधन में यह कहा है कि आयु को घटाकर 65 वर्ष से साठ वर्ष कर देना चाहिये और श्री सतीश चन्द्र ने यह सुझाव रखा है कि आयु का प्रश्न संसद के निर्णय के लिये छोड़ दिया जाये। श्रीमान्, अपना तर्क उपस्थित करते समय श्री कपूर को ही इसका विश्वास नहीं था कि साठ वर्ष की आयु उपयुक्त है अथवा नहीं। उन्होंने कहा था कि उन्हें साठ वर्ष से कम आयु का एक ऐसा न्यायाधीश मिला है जो मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ था। यदि साठ वर्ष से कम आयु का कोई न्यायाधीश मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ था तो मेरे मतानुसार उसे नियुक्त करने वाला प्राधिकारी भी मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ था क्योंकि आशा यह नहीं की जाती कि कोई न्यायाधीश मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ होगा अथवा पागल होगा। ऐसे व्यक्ति को अपने पद पर रहने नहीं दिया जा सकता। श्रीमान्, यह तर्क उपस्थित किया गया है जो लोग साठ वर्ष के हो जाते हैं वे साधारणतया अक्षम और अस्वस्थ होते हैं मैं अपने उन मित्रों से, जिनका ऐसा विचार है, यह कह देना चाहता हूं कि साठ वर्ष की आयु के हजारों ऐसे लोग हैं जो बहुत से ऐसे नवयुवकों से अधिक स्वस्थ, अधिक योग्य, अधिक कार्य कुशल और अधिक साधारण ज्ञान रखने वाले हैं जिन्हें इन गुणों पर गर्व है। यह एक वास्तविक बात है और इससे कोई मुंह नहीं मोड़ सकता। इसलिये जो यह कहते हैं कि साठ वर्ष के बाद लोग पागल हो जाते हैं उन्हें आजकल के नवयुवकों की कोई जानकारी नहीं है। उनका शारीरिक गठन ऐसा हो गया है कि चालीस वर्ष का आदमी साठ वर्ष का दिखाई देता है। औषधि विज्ञान के अनुसार किसी व्यक्ति

को पैंतालीस वर्ष के बाद ऐनक पहनने की आवश्यकता होती हैं किन्तु आप देखते हैं कि तीस वर्ष के नवयुवक ऐनक पहनते हैं। आजकल के नवयुवक चालीस वर्ष की आयु में बुढ़े हो जाते हैं किन्तु साठ वर्ष से अधिक आयु के हजारों लोग ऐसे हैं जिनका शारीरिक गठन आजकल के नवयुवकों से अच्छा है। न्यायपालिका को बूढ़े लोगों के ज्ञान तथा अनुभव से बहुत लाभ होगा। मुझे यह ज्ञात है कि वेतन आयोग ने निवृत्ति आयु को बढ़ाने की सिफारिश की है। मैं नहीं जानता कि सरकार ने इस संबंध में कौन सा कदम उठाया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रशासन की दृष्टि से इस कदम से नवयुवकों के उन्नति के मार्ग में बाधा पहुंचेगी किन्तु यह कहना कि साठ वर्ष के आदमी पागल हो जाता है एक अनर्गल बात है। मैं जानता हूं कि दो न्यायाधीश अंधे हो जाने पर भी न्यायालय में टाइप की सहायता से काम करते रहे और वे दो न्यायाधीश इस देश के सर्वोत्तम न्यायाधीशों में से थे आखिर न्यायाधीशों से तो योग्यता तथा निष्पक्षता अपेक्षित है और उनके संबंध में आयु का कोई महत्त्व नहीं है। यद्यपि मैं साठ वर्ष का हो गया हूं किन्तु मैं अपने को कई नवयुवकों से अच्छा नवयुवक समझता हूं। योग्यता ही महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति स्वस्थ और योग्य तथा धीर हो तो साठ वर्ष के बाद भी उसे लोक सेवा में लगाये रखना चाहिये। मैं इस पर इसलिये जोर दे रहा हूं कि कहीं हम नवयुवकों को अवसर देने की भावना ही में न बह जायें। आप लोगों को केवल इस कारण नहीं हटा सकते हैं कि वे साठ वर्ष की आयु के हो गये हैं।

जहां तक प्रोफेसर शाह के संशोधन का संबंध है, वे यह चाहते हैं कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रश्न का निर्णय राज्य-परिषद् करे। मैं इसका पूरे जोर से विरोध करता हूं। हमें निष्पक्ष तथा स्वाधीन न्यायाधीशों की आवश्यकता है और यदि आप इस प्रश्न के निर्णय का अधिकार राज्य-परिषद् को सौंप देंगे तो लोग अपनी-अपनी नियुक्ति के लिये कोशिश करेंगे और योग्यता आदि की उपेक्षा की जायेगी। निस्संदेह जनतंत्र की दृष्टि से उससे परामर्श करके लाभ होगा क्योंकि हम चाहते हैं कि विस्तृत रूप से विचार-विमर्श हो तथा परामर्श किया जाये किन्तु उसकी भी एक सीमा है। यदि आप राज्य-परिषद् को न्यायाधीशों को नियुक्त करने का अधिकार दे देंगे तो आप बहुत आगे बढ़ जायेंगे। आखिर हमारा प्रधानमंत्री एक उत्तरदायी व्यक्ति होगा ही। किन्तु प्रोफेसर शाह का कहना है कि उन्हें राजदूतों, राज्यपालों, न्यायाधीशों इत्यादि की नियुक्त करनी होगी। यह सच है। वे अपनी पसंद के लोगों को नियुक्त कर सकते हैं और पक्षपात भी कर सकते हैं परन्तु हमें भी उनके कार्यों पर मत देने का अधिकार होगा। आप इस प्रश्न का निर्णय 150 या इससे अधिक लोगों की परिषद् से नहीं करवा सकते। लोग अपनी-अपनी कोशिश करेंगे और योग्यता की उपेक्षा की जायेगी। मुझे यह कहना पड़ता है कि मुझे इसका आश्चर्य है कि इस संशोधन को प्रोफेसर शाह जैसे व्यक्ति ने उपस्थित किया।

मेरे माननीय मित्र मि. मोहम्मद ताहिर यह चाहते हैं कि जिन वकीलों ने जिला न्यायालयों में दस वर्ष तक वकालत की है उन्हें भी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने का अधिकारी समझा जाये। श्रीमान्, हम जानते हैं कि कई मूर्ख वकील तथा बारिस्टर, जिन्हें कोई मुकदमें नहीं मिलते, न्यायालयों के बरामदों में घूमते रहते हैं। क्या इन लोगों में से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने चाहियें? उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उच्च न्यायालय का अनुभव तथा ज्ञान प्राप्त होना चाहिये और इस दृष्टि से मि. ताहिर का संशोधन आपत्तिजनक है।

[श्री आर.के. सिधवा]

विचाराधीन अनुच्छेद के संबंध में खंड (4) में न्यायाधीशों को पदच्युत करने के बारे में एक महत्त्वपूर्ण उपबंध है। उसमें कहा गया है कि किसी न्यायाधीश को हटाने के संबंध में संसदों के दोनों सदनों द्वारा एक प्रस्ताव स्वीकार करने पर और दो-तिहाई उपस्थित सदस्यों के उसके पक्ष में मत देने पर राष्ट्रपति उस न्यायाधीश को हटा सकता है। मुझे ज्ञात नहीं है कि संयुक्त प्रांत के एक न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य कोई न्यायाधीश हटाया गया है। उसे संयुक्त प्रांत के प्रधानमंत्री के परामर्श से गवर्नर जनरल ने दुराचार के लिये हटाया था। मुझे यह ज्ञात नहीं था कि गवर्नर जनरल को यह शक्ति प्राप्त थी यद्यपि मेरी दृष्टि में एक ऐसा न्यायाधीश था जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता था। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि हमारे गवर्नर जनरल ने एक उत्कृष्ट दृष्टांत रखा है। अन्य न्यायाधीश इससे शिक्षा ग्रहण करेंगे और भविष्य में अपने आचरण तथा व्यवहार के संबंध में सावधान रहेंगे। आप इस संविधान में यह उपबंध रखना चाहते हैं कि यदि दोनों सदन अपनी संयुक्त बैठक में दो-तिहाई बहुमत से यह निर्णय करें कि कोई न्यायाधीश हटाया जाये तो राष्ट्रपति उसे पदच्युत कर देगा। यह एक अच्छी बात है कि विधानमंडलों को विस्तृत शक्तियां दी जायें किन्तु इससे बाहर से कई प्रकार के प्रभाव पड़ेंगे और किसी भी न्यायाधीश को हटाना असंभव हो जायेगा। संयुक्त प्रांत के इस मामले में न्यायाधीश के विरुद्ध कई बातें सिद्ध न हो सकीं और केवल वस्तु स्थिति पर ही विचार करना पड़ा। यदि हम इस प्रश्न को दोनों सदनों के निर्णय के लिये छोड़ दें तो दोषी होने पर भी किसी न्यायाधीश को हटाना कठिन हो जायेगा। विधानमंडल के लिये विस्तृत शक्तियों की मांग को ध्यान में रखते हुए भी मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता और वास्तव में मुझे इसका आश्चर्य है कि संविधान में इस प्रकार के उपबंध को स्थान देने का प्रस्ताव किया गया है। यदि आप इसे राष्ट्रपति पर छोड़ दें और कदाचित वह भ्रष्ट व्यवहार करे तो हम उससे पूछताछ कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि वह भ्रष्ट व्यवहार न करेगा।

आयु-सीमा के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसका मैं विरोध करता हूं और मूल प्रस्ताव के केवल इस अंग को छोड़कर कि विधान-मंडल के दोनों सदनों को किसी न्यायाधीश को हटाने की शक्ति दी जाये, मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 103 पर विचार-विमर्श करते समय कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये हैं। पहला प्रश्न जो मैं उठाना चाहता हूं वह हमारी न्यायपालिका में निर्वाचन प्रणाली को प्रयुक्त करने का प्रश्न है। श्रीमान्, यह प्रस्ताव रखा गया है कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति को चुनने की एक प्रणाली यह है कि संयुक्त सत्र में उसे दो-तिहाई बहुमत से चुना जाये। प्रोफेसर के.टी. शाह ने राज्य-परिषद् द्वारा न्यायाधीशों का निर्वाचन करने की व्यवस्था का प्रस्ताव रखकर इस प्रणाली को सीमित कर दिया है। किसी भी दशा में, चाहे यह संसद के संयुक्त सत्र में किया जाये अथवा राज्य-परिषद् में किया जाये, स्थिति यह है कि हम एक बहुत ही भयास्पद सिद्धांत को अपनाने जा रहे हैं जिसके अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन होगा न कि वे चुने जायेंगे जैसा कि अभी तक होता आया है। श्रीमान्, इस प्रश्न के इस अंग

पर, अर्थात् इस पर कि न्यायाधीशों को चुना जाये या निर्वाचित किया जाये, बहुत विचार किया गया है और हमने इनमें से एक सुझाव को अस्वीकार कर दिया है और न्यायाधीशों को चुनकर ही नियुक्त करने की प्रणाली को ही उपयुक्त समझा है।

***प्रो. के.टी. शाहः** अपनी ओर से मैं यह बात साफ कर देना चाहता हूं कि मैंने यह नहीं कहा है कि वे निर्वाचित किये जायें। मैंने यह कहा है कि राज्य-परिषद् से परामर्श किया जाये।

***श्री आर.के. सिधवाः** उसका वही अर्थ है।

***श्री विश्वनाथ दासः** विधान-मंडल से परामर्श लेना और निर्वाचित करना अवश्य ही दो भिन्न प्रणालियां हैं। किन्तु इस संविधान के अधीन हम जिस जनतंत्र को चलन में लाना चाहते हैं क्या उसमें मेरे मित्र प्रोफेसर शाह न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में निर्वाचन को स्थान देने से कम किसी बात को करना चाहते हैं? जिन देशों ने इस निर्वाचन के सिद्धांत को स्वीकार किया है उनकी कठिनाइयों से हम अनभिज्ञ नहीं हैं। यदि आप एक बार निर्वाचन के सिद्धांत को स्वीकार कर लेंगे तो आप किन कारणों से अधीनस्थ न्यायालयों में निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार न करेंगे और किस प्रकार उन्हें इसे स्वीकार करने से रोकेंगे? अमेरिका में एक निश्चित निर्वाचक-मंडल लोक-अभियोजकों तक को निर्वाचित करता है।

इस स्थिति में, श्रीमान्, मैं अपने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि निर्वाचन के आधार पर नियुक्त करने की प्रणाली की उपेक्षा की जानी चाहिये और उसे हमेशा के लिये अस्वीकार कर देना चाहिये।

श्रीमान्, अब मैं उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों की आयु-सीमा के प्रश्न को उठाता हूं। साधारणतया सरकारी सेवक पचपन वर्ष में निवृत्त होते हैं। उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में यह आयु बढ़ाकर साठ वर्ष कर दी गई है। मेरे विचार से मसौदा-समिति ने इस परिवर्तन के लिये यथोचित कारण नहीं बताये हैं। मैंने एक लेख देखा है जिसमें इसकी कुछ व्याख्या की गई है, परन्तु मेरा यह कहना है कि यथोचित व्याख्या नहीं की गई है। एक बात हम नहीं भूल सकते हैं और वह यह है कि उच्चतम न्यायालय के तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों ने, जो पहले वकालत करते होंगे अथवा अधीन न्यायाधिकारी होंगे और अपनी योग्यता से ऊंचे उठे होंगे, कुछ निजी सम्पति अर्जित की होगी और वह उन्हीं की सम्पति होगी। संविधान द्वारा उन्हें सेवा की अवधि के संबंध में, स्वाधीनता से निर्णय करने और अपने कृत्यों तथा कर्त्तव्यों का पालन करने में बाहर से हस्तक्षेप न होने देने के संबंध में रक्षा कवच प्रदान किया गया है। इस स्थिति में यदि मेरे माननीय मित्र आयु को बढ़ाकर पैंसठ वर्ष भी करना चाहें तो उसके लिये मेरे विचार से, कारण बताने की आवश्यकता है। श्रीमान्, एक ऐसे देश में जहां अंग्रेजों के शासन-काल में लोगों की औसत आयु अठाइस वर्ष थी और अब भी मुझे विश्वास है कि वही है, उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों को पैंसठ वर्ष तक काम करने देने के लिये कोई कारण नहीं है। हिंदू समाज के महान ऋषियों ने बताया है कि जीवनयापन किस प्रकार किया जाये। उन्होंने यह कहा है कि वृद्धावस्था

[श्री विश्वनाथ दास]

में वानप्रस्थ अथवा सन्यास धारण करना चाहिये। क्या आप कम से कम उच्च न्यायालयों और उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीशों को वानप्रस्थ और सन्यास धारण करने की व्यवस्था नहीं रहने देना चाहते? हिंदू समाज में यह जीवन की बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवस्था है। अन्य समाजों में भी जैसे कि ईसाइयों के और मुसलमानों के समाज में यह आशा की जाती है कि लोग वृद्धवस्था में अपना समय ईश्वरोपासना अथवा स्वतंत्र रूप से सामाजिक कार्य करने में लगायेंगे। मनुष्य को अपने जीवन-काल में, कम से कम वृद्धावस्था में, आजीविका अर्जन से अतिरिक्त किसी अन्य कार्य में अर्थात् किसी आध्यात्मिक अथवा सामाजिक कार्य में लगाने के लिये समय मिलना चाहिये। इस स्थिति में मुझे विश्वास है कि इस सभा के माननीय सदस्य समाज की इस स्वाभाविक आशा को ठुकरायेंगे नहीं और पैंसठ वर्ष की आयु-सीमा को स्वीकार न करेंगे ताकि उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीश, जिनसे समाज, देश तथा राज्य बहुत आशा लगाये बैठा रहता है, वानप्रस्थ अथवा सन्यस्थ का जीवन व्यतीत करके अपने स्रष्टा की उपासना कर सकें अथवा जिनका ईश्वर में विश्वास न हो वे समाज सेवा में लग सकें।

अब मैं अनुच्छेद 103 के खंड (2) के परन्तुक को उठाता हूं। उसमें कहा गया है: ''परन्तु मुख्य न्यायाधिपति के अतिरिक्त अन्य किसी न्यायाधीश के संबंध में भारत के मुख्य न्यायाधिपति से हमेशा परामर्श लिया जायेगा''। मेरी समझ में नहीं आता कि किस कारण इस परन्तुक को रहने दिया जाये। मुख्य न्यायाधिपति एक बहुत ही उत्तरदायी व्यक्ति होगा और यह समझ में नहीं आता कि किस कारण उससे अपने उत्तराधिकारी मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति के संबंध में परामर्श न लिया जायेगा। मेरे विचार से मुख्य-न्यायाधिपति के पद के लिये एक उपयुक्त व्यक्ति को चुनने के संबंध में मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श न लेना उनके पद और प्रतिष्ठा के प्रति एक अन्याय होगा।

मैं एक बात और कहकर समाप्त कर दूंगा। यह कहा गया है कि किसी न्यायाधीश को कार्यकाल में अथवा निवृत्ति काल में कोई लाभप्रद पद न दिया जाना चाहिये। मेरे विचार से यह संशोधन तर्कपूर्ण नहीं है। गवर्नर-जनरल और राज्यपालों को छोड़कर उच्चतम-न्यायालय के न्यायाधीशों को सबसे अधिक वेतन मिलेंगे। यदि उच्चतम-न्यायालय के किसी न्यायाधीश को सरकार कोई पद देगी तो वह उसी के पद के समान कोई पद होगा अथवा कोई ऐसा पद होगा जिसमें बहुत कुछ न्याय संबंधी कार्य ही करने होंगे। इसे ध्यान में रखते हुए जिन निर्बन्धों का प्रस्ताव किया गया है वे मुझे तर्कपूर्ण नहीं प्रतीत होते, इसलिये जिन मित्रों की इस प्रकार की धारणा है उनसे मैं सहमत नहीं हूं। इस प्रकार के परन्तुक का आधार केवल भय ही दिखाई देता है। मैं अपने मित्रों से यह अपील करता हूं कि वे इस प्रकार का भय न करें। मेरे विचार से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने के संबंध में जिस प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष निर्वाचन प्रणाली का प्रस्ताव उपस्थित किया गया है उस पर विचार भी न किया जाना चाहिये और साठ वर्ष की न कि पैंसठ वर्ष की आयु-सीमा निश्चित की जानी चाहिये। अनुच्छेद 103 के खंड (2) का परन्तुक अनावश्यक है और राज्य के अधीन लाभप्रद पदों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने के संबंध में प्रस्तावित निर्बन्धन अनावश्यक हैं और यह दिखाई देता है कि उनका आधार केवल भय ही है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यहां केवल सभा को चेतावनी देने और यह बताने आया हूं कि मेरे मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना का सुझाव स्वीकार न किया जाये। उनका यह विचार प्रतीत होता है कि जो कोई भी नियुक्ति की जाये उसका समर्थन संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से हो। मेरा यह निवेदन है कि यह बहुत ही खतरनाक सिद्धांत है। संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत का अर्थ यह है कि नियुक्तियां बहुसंख्यक दल के नेता की स्वेच्छा पर ही निर्भर रहेगी। यह कई बार बताया जा चुका है कि वर्तमान सरकार अर्थात् विभिन्न प्रांतों के मंत्री कभी-कभी न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करते हैं। हाल में प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश, न्यायाधिपति बोमांट ने इस प्रकार की कार्यवाही की कड़ी आलोचना करते हुए कुछ बातें कहीं थीं। एक निर्णय के संबंध में अपना निर्णय सुनाते समय इस न्यायाधिपति ने यह कहा था कि मुझे यह कहना पड़ता है कि कांग्रेस को जिस किसी समय न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को पृथक करने की बहुत चिंता थी अब शक्ति प्राप्त करने पर पुरानी प्रणाली को ही बनाये रखने के पक्ष में दिखाई देती है। एक प्रख्यात न्यायाधीश का यह कथन यह प्रमाणित करता है कि कार्यपालिका के लिये किसी समय न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप करने के लिये गुंजाइश है। इसका भविष्य में बहुत ही गम्भीर परिणाम हो सकता है। इसलिये मैं इस सभा को इस संबंध में सचेत करना चाहता हूं और यह सिफारिश करता हूं कि वह किसी ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार न करे जिसका उद्देश्य यह हो कि उसे न्यायाधीशों की नियुक्ति की संपुष्टि का अधिकार प्राप्त हो और न इस सुझाव से सहमत हो कि संसद ही न्यायाधीशों को पदच्युत करने के संबंध में कार्यवाही करे। इस प्रकार की कोई बात एक क्षण के लिये भी स्वीकार न की जानी चाहिये।

अब मैं आयु के प्रश्न को उठाता हूं। मेरे विचार से हमें न्यायाधीश की कम से कम आयु निश्चित करनी है न कि अधिक से अधिक आयु। हम यह जानते हैं कि इंग्लैंड में उच्च न्यायालय के अथवा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये कोई आयु-सीमा निश्चित नहीं की गई है। किसी भी आयु का पुरुष, यदि वह न्याय संबंधी कार्यवाही का संचालन कर सकता है, न्यायाधीश वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है। यह एक बहुत गलत सिद्धांत है कि किसी व्यक्ति को विशेषतया किसी वृद्ध व्यक्ति को अपनी आयु घोषित करने के लिये बाध्य किया जाये। इस प्रसंग में मैं लोगों के नेताओं को तथा प्रतिष्ठित लोगों को चेतावनी देता हूं कि वे अपने जन्म-दिवस न मनायें। यदि वे अपने जन्म दिवस मनाना चाहें तो कम से कम उन्हें अपनी आयु घोषित न करनी चाहिये। यह बड़े खेद की बात है कि कोई व्यक्ति जिसे हम युवा समझें, मेरे मस्तिष्क में इस समय हमारे नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं, अपना जन्म-दिवस मनाने की आज्ञा देते समय यह कहें कि वे लगभग साठ वर्ष के हो गये हैं। अब लोगों को उनकी ठीक-ठीक आयु का पता लग गया है। अभी तक लोग उन्हें दस वर्ष कम आयु का समझे बैठे थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे यह चाहते थे कि लोग उन्हें कम आयु का समझें किन्तु यह एक गलत बात है कि लोगों को किसी की आयु का स्मरण कराया जाये।

इसके अतिरिक्त जहां तक आयु का संबंध है किसी महिला के उच्चतम-न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के संबंध में कोई प्रतिषेध नहीं दिखाई देता। श्रीमान्, मैं आपसे पूछता हूं कि उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये कौन बुद्धिमती स्त्री

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

पचपन वर्ष की होने पर भी यह कहेगी कि मैं पचपन वर्ष की हूं? उच्च न्यायालय की न्यायाधीश होने के लिये तो क्या इंग्लैंड के राज्य की सम्राज्ञी होने के लिये भी कोई स्त्री यह न कहेगी कि वह पचास वर्ष की है अथवा साठ वर्ष की है। किसी राज्य को पाने के लिये भी कोई स्त्री यह न कहेगी इसलिये आयु निर्धारित करने का सिद्धांत एक गलत सिद्धांत है। कोई स्त्री या पुरुष अधिक आयु प्राप्त करने से ही बुड्ढ़े नहीं हो जाते। इस समय अधिक से अधिक आयु निर्धारित न की जानी चाहिये। यह प्रश्न उन लोगों के निर्णय के लिये छोड़ देना चाहिये जो इस संबंध में निर्णय करने के लिये सक्षम हों।

इस संबंध में मैं श्री सतीशचन्द्र के संशोधन की ओर संकेत करता हूं। वे यह चाहते हैं कि आयु इस सभा में निर्धारित की जानी चाहिये बल्कि भविष्य में संसद में निर्धारित की जानी चाहिये। यदि हम इसके लिये सहमत हो जाते हैं तो एक कठिनाई उत्पन्न होगी। संविधान के स्वीकार होने पर हमें उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के लिये एक मुख्य न्यायाधिपति नियुक्त करना होगा। यदि कोई आयु निर्धारित न की गई और हम यह निश्चय करें कि संसद इसे निर्धारित करेगी तो हम कठिनाई में पड़ जायेंगे। हम इसका निर्णय न कर सकेंगे कि किस प्रकार के लोगों को हम नियुक्त न करें।

अब मैं एक शब्द 'परामर्श' के संबंध में कहूंगा डा. अम्बेडकर ने उस पंक्ति को निकाल देने का प्रस्ताव रखा है जिसमें कहा गया है ''उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्ययालयों के उन न्यायाधीशों से परामर्श लेने के पश्चात्'' और मेरे विचार से उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। आखिर यह एक ऐसा विषय है जिसके संबंध में केवल राष्ट्रपति को ही निर्णय करना चाहिये। यदि वह यह समझता है कि कोई व्यक्ति बहुत ही योग्य है तो उसे किसी से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का उपबंध न रखना चाहिये कि वह अवश्य ही ऐसा करे। मेरे विचार से इस अनुच्छेद का निर्वचन यह है कि यदि राष्ट्रपति आवश्यक न समझे तो वह किसी से परामर्श लेने के लिये बाध्य नहीं है। यदि यह निर्वचन है तो ठीक है। यदि यह निर्वचन नहीं है तो मेरा यह निवेदन है कि यह कहना उचित न होगा कि राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से अवश्य ही परामर्श लेना चाहिये। आखिर उच्चतम न्यायालय के मुख्याधिपति उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित होगा। यह अजीब सा लगता है कि ऊंचे पद के लिये किसी व्यक्ति को चुनने के लिये राष्ट्रपति को नीचे पदों के लोगों से परामर्श लेना पड़ेगा। संभव है आजकल जनतंत्र इस ओर प्रगति कर रहा हो। हमें ऐसे विद्यार्थी देखने को मिलते हैं जो यह कहते हैं कि अध्यापकों की नियुक्ति तथा उन्नति के संबंध में भी उनसे परामर्श लिया जाना चाहिये। कभी हमारे देखने में भी ऐसे विद्यार्थी आते हैं जो दूसरों के भड़काने पर यह मांग करते हैं कि कोई अध्यापक प्रधानाध्यापक बना दिया जाये। किन्तु यह उचित नहीं है और मेरा यह निवेदन है कि ऊंचे पदों पर लोगों को नियुक्त करने के लिये नीचे पदों पर नियुक्त लोगों से परामर्श न लिया जाना चाहिये। देश के कुछ भागों में हमें अजीब स्थिति देखने को मिलती है क्योंकि वहां किसी उप-न्यायाधीश अथवा न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया जाता है। लोक सेवा आयोग में भले ही ऐसा कोई सदस्य न हो जिसने किसी न्यायालय में वकालत

की हो अथवा जिसे न्यायाधीश पद के लिये आवश्यक योग्यता का ज्ञान हो किन्तु फिर भी लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया जाता है। यह एक अनर्गल बात है। कुछ जगहों में उप-न्यायाधीश को विभाग की विधि-संबंधी परीक्षाओं में बैठना पड़ता है और उन्हें एक ऐसा अधिकारी लेता है जिसे विधि का कोई भी ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार की बातें न होनी देनी चाहिये। इसलिये मैं यह निवेदन करता हूं और पूरे जोर से यह निवेदन करता हूं कि ऊंचे पदों के लिये नियुक्तियां करने के लिये नीचे पदों के न्यायधिकारियों से परामर्श लेने की प्रक्रिया तर्क विरुद्ध है।

श्रीमान्, मुझे एक शब्द अपने माननीय मित्र डा. सेन के संशोधन के संबंध में कहनी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस पर विचार करने की आवश्यकता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी वकालत छोड़कर उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो जाये और दूसरे वर्ष रुग्ण होने के कारण उसे पदत्याग करना पड़े और वह अपने को साधनहीन पाये तो यह बहुत खेदजनक बात होगी। भविष्य के लिये उसे किसी प्रकार की प्रतिभूति मिलनी चाहिये और वह प्रतिभूति निवृत्ति वेतन के रूप में होनी चाहिये। हमें न्यायापालिका के ऐसे सदस्य देखने को मिले हैं जिन्हें कठिन मानसिक परिश्रम से रुग्ण होकर पदत्याग करना पड़ा है। ऐसे लोगों को निवृत्ति वेतन देने के लिये कोई उपबंध होना चाहिये। श्रीमान्, मैं कह नहीं सकता कि इस प्रकार का उपबंध संविधान में समाविष्ट करना चाहिये अथवा इसे संसद के निर्णय के लिये अथवा राष्ट्रपति के निर्णय के लिये छोड़ देना चाहिये। राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति की शर्तों में यह भी रख सकता है कि यदि रोगवश किसी न्यायाधीश को पदत्याग करना पड़े तो उसे निवृत्त वेतन मिलेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अब हम संविधान संबंधी विचार-विमर्श के एक ऐसे स्तर पर पहुंच गये हैं जो यदि सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर नहीं तो कम से कम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्तरों में से एक है। उच्चतम न्यायालय जनतंत्र का प्रहरी है। संविधान के एक आरम्भ के भाग में हमने मूलाधिकारों का समावेश किया है और हमें इसकी चिंता है कि संघ के नागरिकों को इन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति प्राप्त हो, इसी आलय द्वारा इन अधिकारों की रक्षा होगी और प्रत्येक नागरिक को संविधान में सन्निहित ये अधिकार प्राप्त हो सकेंगे। इसलिये इस न्यायालय के कार्य में कार्यपालिका का किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होना चाहिये। उच्चतम न्यायालय जनतंत्र का प्रहरी है। वह नागरिकों के अधिकारों का परिदर्शक तथा संरक्षक है। इसलिये प्रत्येक स्तर पर अर्थात् न्यायाधीशों को नियुक्त करने के स्तर से लेकर उनके वेतन तथा पदावधि निश्चित करने के स्तर तक सभी बातों को इस समय नियमित करने की आवश्यकता है ताकि कार्यपालिका का न्यायाधीशों के प्रकार्यों से बहुत कम संबंध रहे अथवा कुछ भी संबंध न रहे। इन उपबंधों को इसी को दृष्टि में रखकर स्थान दिया गया है। जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनको इस कसौटी पर कसना चाहिये कि उनसे न्यायपालिका की वह स्वाधीनता प्राप्त होती है अथवा नहीं जिसे इस अध्याय में स्थान देने का प्रयास किया गया है।

श्रीमान्, दो रस्मी संशोधन उपस्थित किये गये हैं, अर्थात् संशोधन संख्या 1813 और 1840 जिनका संबंध नामों से है। उनका उद्देश्य यह है कि भारत का मुख्य न्यायाधिपति उच्चतम मुख्य-न्यायाधिपति कहा जाये। उच्च न्यायालयों के संबंध में इसका यह अर्थ होता

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

है कि हम उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को उच्च न्यायालय संबंधी मुख्य न्यायाधिपति अथवा उच्च न्यायाधिपति कहें। उच्चतम मुख्य न्यायाधिपति, उच्च मुख्य न्यायाधिपति अथवा निम्न मुख्य न्यायाधिपति—मैंने न्यायाधीशों के ऐसे नाम कभी नहीं सुने। उच्चतम न्यायालय इसी देश में स्थापित होने नहीं जा रहा है। अमेरिका में और विभिन्न अन्य स्थानों में भी उच्चतम न्यायालय हैं। ये संशोधन बिल्कुल अनावश्यक हैं और इन्हें अस्वीकार कर देना चाहिये।

जहां तक न्यायाधीशों की संख्या का संबंध है, उच्चतम न्यायालय का कई विषयों के संबंध में अपीलीय अधिकार क्षेत्र होने के कारण सात की संख्या कोई बड़ी संख्या नहीं है। स्थिति के अनुसार तथा समय की आवश्यकताओं को देखते हुए संसद को इस सात की संख्या को बढ़ाने, नियुक्ति की शक्ति दी गई है।

जो महत्त्वपूर्ण संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनका आशय यह है कि राज्यों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से राष्ट्रपति परामर्श ले। उच्चतम न्यायालय के अपर न्यायाधीशों को नियुक्ति के संबंध में मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेना आवश्यक है। मुख्य न्यायाधिपति के संबंध में उससे ऊंचा कोई ऐसा न्यायाधिकारी न होगा जिससे कि परामर्श लिया जा सके।

इसलिये इस उपबंध को तो रखना ही होगा। अवर न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लिया जायेगा। किन्तु राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से परामर्श लेने को आपत्तिजनक बताया गया है। यदि राष्ट्रपति यह समझे की इस प्रकार का परामर्श लेना आवश्यक है तो मेरे विचार से उसे इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये। यह राष्ट्रपति पर छोड़ दिया गया है कि वह अपने विवेक से इसका निर्णय करे कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से परामर्श लिया जाये अथवा नहीं लिया जाये। उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति इस देश के किसी प्रांत का होगा और वह इस संबंध में राय देने में असमर्थ हो सकता है कि उच्चतम न्यायालय में कौन लोग न्यायाधीश नियुक्त किये जायें। इसलिये राष्ट्रपति केवल मुख्य न्यायाधिपति से ही यथोचित परामर्श नहीं प्राप्त कर सकेगा और उसे विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से परामर्श लेने की आवश्यकता पड़ेगी। वह सभी न्यायाधीशों से परामर्श लेने के लिये बाध्य नहीं है। जब कभी वह यह समझे कि यथोचित न्याय-प्रशासन के हित में परामर्श लेना आवश्यक है तो वह स्वेच्छा से परामर्श लेगा। उसे यह शक्ति दी जानी चाहिये।

यह एक अजीब सुझाव है कि भारत का मुख्य न्यायाधिपति व राज्य परिषद के सदस्यों के बहुमत से नियुक्त किया जाये। जिन सदस्यों ने इस आशय का संशोधन उपस्थित किया है वे मुझे 'अजीब' शब्द के प्रयोग के लिये क्षमा करेंगे क्योंकि मैं उनके सुझाव को और कुछ कह भी नहीं सकता। इससे उनकी नियुक्ति एक निर्वाचन का रूप धारण कर लेगी और बहुमत प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न किये जायेंगे। यह सभ्य संसार के किसी भाग में अनहोनी बात है।

आयु के संबंध में, कुछ नवयुवक मित्र यह चाहते हैं कि पैंसठ वर्ष की आयु को घटाकर साठ वर्ष कर दिया जाये और अन्य लोग यह चाहते हैं कि उसे बढ़ाकर अड़सठ वर्ष कर दिया जाये। कनाडा में ऊपर की आयु-सीमा पचहत्तर वर्ष की है। वहां न्यायाधीश

पचहत्तर वर्ष तक पदासीन रहते हैं। इंग्लैंड की प्रिवी कौंसिल के बारे में मुझे यह बताया गया है कि उसके न्यायाधीश सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त करने पर निवृत्त होते हैं। अमेरिका में कोई आयु-सीमा है ही नहीं। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश वर्तमान विधि के अधीन साधारणतया साठ वर्ष की आयु में निवृत्त होता है और यदि कुछ ही वर्ष पूर्व नियुक्त किया गया हो तो उसकी आयु के विरुद्ध कुछ नहीं कहा जाता है। भले ही हमारे मित्र श्री मुंशी इसे न मानें किन्तु वे अभी काफी हृष्ट-पुष्ट हैं और पच्चीस या तीस वर्ष तक वे प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में ठीक-ठीक निर्णय कर सकते हैं। इस प्रकार के लोगों की सेवा हमें प्राप्त होनी ही चाहिये। इस दृष्टि से साठ वर्ष की आयु बहुत कम है और अपने यहां की गरम आबोहवा को देखते हुए मेरी तो यह इच्छा है कि सत्तर वर्ष की आयु रखी जाये। किन्तु कुछ सावधानी की आवश्यकता है। इसलिये, पैंसठ वर्ष की आयु-सीमा यथोचित आयु-सीमा प्रतीत होती है। इसलिये पैंसठ वर्ष की आयु न बढ़ाई जाये और न घटाकर साठ कर दी जाये। नवयुवक हृष्ट-पुष्ट होते हैं और उनके लिये कई अन्य क्षेत्र खुले पड़े हैं। न्यायपालिका के लिये संतुलित बुद्धि की आवश्यकता है। अपरिपक्व मस्तिष्क के लोग बेकार ही सिद्ध होंगे। न्यायाधीशों को पर्याप्त अनुभव तथा निरुद्विग्न होकर निर्णय करने की क्षमता प्राप्त होनी चाहिये। वृद्ध न्यायाधीश नवयुवकों के मार्ग में बाधक सिद्ध न होंगे। नवयुवक कई अन्य कार्य कर सकते हैं। न्यायपूर्ण निर्णय के मार्ग में नवयुवकों को बाधा न पहुंचानी चाहिये और इसलिये केवल वयोवृद्ध पुरुष ही चुने जाने चाहियें। किन्तु किसी असाधारण योग्यता तथा संतुलित बुद्धि वाले किसी नवयुवक के लिये जिसे प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में निर्णय करने की विपुल क्षमता प्राप्त हो, कोई बाधा नहीं है। मद्रास के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की आयु तैतालीस वर्ष ही है और वे पैंसठ वर्ष तक कार्य कर सकते हैं। यह एक असाधारण बात है अन्यथा किसी युवा न्यायाधीश से प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में ठीक-ठीक निर्णय करने की आशा नहीं कर सकते।

श्रीमान्, मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत के इस कथन से सहमत हूं कि दस वर्ष से सेवा में लगे हुए न्यायाधीशों से ही उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न चुने जाने चाहियें। उन्होंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि राष्ट्रपति को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि यथोचित न्याय प्रशासन की दृष्टि से वह किसी प्रख्यात न्यायवेत्ता को भी नियुक्त कर सके। उनके संशोधन द्वारा राष्ट्रपति इसके लिये बाध्य नहीं होता कि वह केवल न्यायवेत्ताओं को ही नियुक्त करे। कई मामलों के संबंध में उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक प्रश्नों पर विचार करना होता है। किसी वकील को इन संवैधानिक मामलों का बहुत कम अनुभव होता है। कोई भी व्यक्ति विधि-वृत्ति को सीधे-सीधे स्वीकार कर सकता है। वह किसी विधि कालेज में प्रवेश कर सकता है अथवा किसी विश्वविद्यालय में विधि की फैकल्टी का डीन हो सकता है। कई प्रख्याति व्यक्ति तथा लेखक हैं और कई ख्यातनामा न्यायवेत्ता हैं। यदि राष्ट्रपति आवश्यक समझे तो उसे किसी प्रख्यात न्यायवेत्ता को नियुक्त करने की स्वतंत्रता क्यों न हों? वास्तव में मेरा तो यह परामर्श है कि सात न्यायाधीशों में से एक ख्यातनामा न्यायवेत्ता होना चाहिये। श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी ने, जिनसे मैंने परामर्श किया था, मुझसे कहा कि कुछ वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमरीका में प्रेसीडेंट रूजवेल्ट ने फिलिप फ्रैंकफर्टर नाम के एक व्यक्ति को नियुक्त किया था। वह हारवर्ड विश्वविद्यालय का एक प्रोफेसर था। यह उन्होंने एक नया प्रयोग किया। उसके पहले केवल बारिस्टर अथवा न्यायपालिका के लोग लिये जाते थे। उनका यह प्रयोग बहुत सफल सिद्ध हुआ

[श्री अनन्तशयनम् आयंगर]

है। वह व्यक्ति इस समय संयुक्त राज्य अमरीका के सबसे अग्रगण्य तथा प्रख्यात न्यायाधीशों में गिना जाता है। इसलिये, श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव से सहमत हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को जिन श्रेणियों से लिया जाये उनमें प्रख्यात न्यायवेत्ताओं की भी एक श्रेणी रखी जाये।

अच्छे व्यवहार के संबंध में मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शाह यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उसी काल तक पदासीन रहे जब तक वह अच्छा व्यवहार करे। स्पष्टत: वह इसे भूल गये हैं कि इस प्रकार का उपबंध आगे है। इसमें कोई संदेह नहीं कि खंड (2) के प्रथम भाग में यह निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया गया है कि अच्छा व्यवहार करने पर ही कोई व्यक्ति पदासीन रहेगा किन्तु आगे यह उपबंध है कि प्रमाणित दुर्व्यवहार अथवा असामर्थ्य के आधार पर किसी व्यक्ति को पदच्युत किया जा सकेगा। मैं इसका यह अर्थ समझता हूं कि उच्चतम न्यायलय के न्यायाधीश के समान प्रतिष्ठित व्यक्ति के संबंध में आरम्भ में यह नहीं कहा गया है कि उसकी पदावधि का दुर्व्यवहार से कोई संबंध होगा अथवा किसी व्यक्ति को यह संदेह करने की आवश्यकता कि वह दुर्व्यवहार कर सकता है। आस्ट्रेलिया के संविधान में यह कहा गया है कि न्यायाधीश उसी समय तक नियुक्त रहे जब तक वह अच्छा व्यवहार करे। आगे यह उपबंध है कि दुर्व्यवहार करने पर वह पदच्युत किया जा सकता है। सारांश यह है कि यदि कोई न्यायाधीश दुर्व्यवहार का दोषी हो तो उसे हटाने के लिये उपबंध है। आरम्भ में ही यह कहना किसी विवाद के संबंध में यह कहने के समान है कि यदि वह मर जायेगा तो क्या होगा? कुछ ही संप्रदाय विवाह के समय जवाई के मर जाने की कल्पना करते हैं और उसके लिये प्रबंध करते हैं किन्तु अन्य संप्रदाय इस प्रकार की घटना को घटित न होने देने की ही अधिक चिन्ता करते हैं मैं यह रखना पसन्द न करूंगा कि कोई न्यायाधीश अच्छे व्यवहार के काल तक ही नियुक्त रहे। यदि उसने दुर्व्यवहार किया अथवा वह अयोग्य सिद्ध हुआ तो उसे हटाने के लिये पर्याप्त व्यवस्था है।

अब मैं 'पद' के संबंध में कुछ कहूंगा। श्री सन्तानम् ने खंड (7) की ओर संकेत किया और यह कहा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की बिना राष्ट्रपति की सहमति के कोई लाभप्रद पद स्वीकार न करना चाहिये। मैंने और हम में से कई लोगों ने कुछ महत्त्वपूर्ण पदों पर ऐसे सैक्रेटरियों को देखा है जो 3000 से लेकर 4000 रु. तक का वेतन पाते थे और उद्योग व्यवसाय में लगे हुए कुछ लोगों की सहायता करते रहते थे और निवृत्त होने पर ही उनकी किसी न किसी संस्था के प्रबंधक हो जाते थे। मैं यह चाहता हूं कि लोग अपने को इस प्रकार बेच न दें। विशेषत: किसी न्यायाधीश के लिये तो यह एक बड़ी अनुचित बात होगी कि वह किसी व्यक्ति के पक्ष में निर्णय करे और फिर उसकी किसी सेवा में लग जाये। यह बात नहीं है कि इस उपबंध में यह अन्तिम रूप से कह दिया गया है और इसका प्रतिषेध है। राष्ट्रपति की सहमति से वह इसका निर्णय करेगा कि उसका नया पद उसके पिछले पद से असंगत तो नहीं है। राष्ट्रपति ठीक मामलों में यथेष्ट आज्ञा देगा। मैं इस सभा से अनुरोध करता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् का यह प्रतिषेध मूलक संशोधन स्वीकार कर लिया जाये कि कोई व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो बिना राष्ट्रपति की सहमति के कोई लाभप्रद पद स्वीकार न करे।

अब मैं डा. सेन का संशोधन उठाता हूं जिसका आशय यह है कि न्यायाधीशों को रोगवश पूरे काल तक कार्य न कर सकने पर भी निवृत्ति वेतन दिया जाये। जो लोग न्यायाधीश नियुक्त होंगे वे तीन प्रकार के होंगे। जो लोग सेवा में लगे होंगे वे निवृत्ति-वेतन अवश्य ही पायेंगे। वे कार्य काल के पहले भी निवृत्त हो सकते हैं। वकीलों में से जो लोग लिये जायेंगे वे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने तक बूढ़े हो जायेंगे और पर्याप्त ख्याति तथा धन प्राप्त कर चुके होंगे। उनके संबंध में भी यह व्यवस्था अनावश्यक है। इसमें कुछ संदेह नहीं कि मैं उनके इस सुझाव से सहमत हूं कि केवल उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये ही नहीं किन्तु मंत्रियों के लिये भी एक राष्ट्रीय निवृत्ति वेतन योजना निश्चित की जानी चाहिये और वास्तव में इस योजना से उन लोगों को भी लाभ होना चाहिये जो राष्ट्र की महान सेवा कर चुके हैं। पद निवृत्ति के पश्चात् अथवा ऐसे काल के पश्चात् जब देश यह समझे कि अब उनकी लोक-सेवा की आवश्यकता नहीं है उन्हें सड़कों पर न पटक देना चाहिये और इस प्रकार की कोई योजना बनानी चाहिये। उस योजना से सभी लोगों को न कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को ही लाभ होना चाहिये।

जिन संशोधनों को मैंने स्वीकार किया है उनके अतिरिक्त मैं अन्य संशोधनों का विरोध करता हूं। मैं सभा से यह अपील करता हूं कि वह इसकी ओर ध्यान दें कि अन्य संशोधन केवल रस्मी हैं अथवा इस उपबंध में सन्निहित इस योजना के विरोध में हैं कि न्यायपालिका का कार्यपालिका से किसी प्रकार का संबंध न रहे।

***अध्यक्ष:** मि. नजीरुद्दीन अहमद! आप अन्तिम वक्ता होंगे। आपके भाषण के बाद हम विचार-विमर्श समाप्त कर देंगे।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री ने अपने भाषण द्वारा इस प्रश्न पर प्रकाश डालकर बुद्धिमान लोगों का जो वास्तविक चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं। वास्तविक योग्यता प्राप्त लोगों के संबंध में आप कोई आयु-सीमा निश्चित नहीं कर सकते। दो माननीय सदस्यों ने केवल संघ न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में ही आयु-सीमा रखने का प्रयास नहीं किया है बल्कि यह भी कहा है कि साठ वर्ष में सभी प्रकार का बौद्धिक बल परिसीमित हो जाता है। मेरा यह निवेदन है कि यदि परखने की यही कसौटी रखी गई तो पंडित जवाहरलाल नेहरू भी, जो इकसठ वर्ष के हो गये हैं, किसी सार्वजनिक पद के लिये अयोग्य समझे जायेंगे। श्री के.एम. मुंशी भी, जो बासठ वर्ष के हो गये हैं इसी प्रकार अयोग्य समझे जायेंगे। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, जो छयासठ वर्ष के हो गये हैं और भी अयोग्य समझे जायें और सरदार पटेल, जो चौहत्तर वर्ष के हैं, और देश के एक भूषण हैं तथा जिनकी बुद्धि पहले के समान ही प्रखर है इस तर्क के अनुसार अयोग्य ही समझे जायेंगे। वास्तविक योग्यता प्राप्त लोगों के लिये साठ वर्ष की आयु-सीमा निश्चित करना निरर्थक है और मैं तो यह कहूंगा कि लड़कपन है। एक सदस्य महोदय तो यहां तक कह गये कि साठ वर्ष में मनुष्य बुद्धि शून्य हो जाता है और किसी प्रकार का भी बौद्धिक कार्य नहीं कर सकता है। उनकी यह धारणा है कि मनुष्य में जितना यौवन हो उतनी ही उसकी बुद्धि प्रबल होती है। वास्तव में वे तो यह कहेंगे कि आयु की वृद्धि

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

के अनुपात से बुद्धि का ह्रास होता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य जितना युवा हो उतना ही उसका मस्तिष्क न्याय-संबंधी अथवा अन्य प्रकार के बौद्धिक कार्य करने के लिये परिपक्व होता है। यह सब अनर्गल बातें हैं।

यद्यपि हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने पैंसठ वर्ष की आयु-सीमा रखी है किन्तु उनके प्रति आदर प्रकट करते हुए मैं अड़सठ वर्ष की आयु-सीमा के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। मैं इन कारणों से यह कर रहा हूं। विधि-वृत्ति में सुयोग्य व्यक्तियों की बहुत आयु हो जाती है। यदि वे न्यायाधीश नियुक्त होंगे तो उन्हें बहुत त्याग करना पड़ेगा। यदि आप पैंसठ वर्ष की आयु निश्चित करते हैं तो सुयोग्य विधि-वेत्ताओं को न्यायाधीशों के उच्च पदों को स्वीकार करने के लिये कुछ भी प्रोत्साहन न मिलेगा। खंड (6) में पैंसठ वर्ष की आयु रखी गई है परन्तु साथ ही उसके बारे में यह भी कहा गया है कि वह किसी न्यायालय में वकालत न करेगा। यह एक बहुत उपयुक्त शर्त है किन्तु इससे पैंसठ वर्ष की आयु-सीमा का खंडन होता है। पैंसठ वर्ष की आयु में सुयोग्य व्यक्तियों की बुद्धि प्रखर रहती है और यदि उन्हें न्यायालयों में वकालत न करने दी गई, यद्यपि मेरे विचार से करने दी जानी चाहिये, तो उनकी आयु-सीमा बढ़ा देनी चाहिये। वास्तव में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को बहुत ही उच्च कोटि के न्याय संबंधी कर्त्तव्यों का पालन करना होगा। यदि आप पैंसठ वर्ष की आयु-सीमा निश्चित करते हैं तो आप उत्कृष्ट योग्यता तथा अनुभव रखने वाले लोगों को देश की सेवा में न लगा सकेंगे। इस स्थिति में मेरे विचार से अड़सठ वर्ष की आयु-सीमा रखी जानी चाहिये।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को राष्ट्रपति की अनुमति से लाभप्रद सरकारी पदों को स्वीकार करने देने से एक दूषित सिद्धांत प्रयोग में आ जायेगा। उच्च कोटि के न्यायाधिकारियों को सरकारी पदों को स्वीकार करने के लिये कभी भी प्रोत्साहित न करना चाहिये। न्यायाधीश पदों से निवृत्त होने पर उन्हें सरकार से किसी पद की आशा न करनी चाहिये। श्री सन्तानम् ने सुयोग्य व्यक्तियों के प्रवेश न होने के संबंध में जिस कठिनाई का अनुभव किया है वह उनके संशोधन से दूर नहीं होती। वह आयु को बढ़ाकर अड़सठ वर्ष कर देने से दूर हो जायेगी। इंग्लैंड में साधारण न्यायाधीशों को 72 वर्ष की आयु में निवृत्त किया जाता है किन्तु उन उच्चतम न्यायाधीशों के लिये जो न्याय विशारद होते हैं कोई आयु-सीमा नहीं है। वे सम्राट के प्रसादकाल तक पदासीन रहते हैं और इसका अर्थ यह है कि वे कार्यकुशल रहते हैं। इंग्लैंड में न्यायाधीश के कार्य कौशल को कई प्रकार परख लिया जाता है। यहां साधारणतया प्रिवी कौंसिल और लार्ड सभा के सबसे ऊंचे न्यायाधिकारी की आयु कम से कम सत्तर वर्ष होती है। साधारणतया उच्च कोटि के न्याय पदों पर अस्सी वर्ष के न्याय विशारद आसीन रहते हैं। हमें माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने बताया है कि वहां 90 वर्ष की आयु के अथवा इससे अधिक आयु के लोग बड़ी कुशलता से कार्य करते रहते हैं। प्रिंवी कौंसिल और लार्ड सभा के कुछ महान निर्णय ऐसे लोगों ने सुनाये जो 80 वर्ष अथवा 90 वर्ष की आयु के थे। यह कहा गया है कि भारत की जलवायु में अधिक आयु तथा कार्यकौशल का सामंजस्य नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि यह एक तर्क विरुद्ध बात है। अंग्रेजों ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु

साठ वर्ष और साधारण अधिकारियों की आयु पचपन वर्ष निश्चित कर दी थी। उन्होंने योग्यता के विकास के लिये कोई स्थान नहीं रखा था। वे चाहते थे कि उनके अधिकारियों को केवल यंत्रों के समान अथवा लिपिकों के समान कार्य करने की योग्यता प्राप्त हो। वे किसी नवीन कार्य करने के लिये और कार्य-स्वातंत्र्य अथवा विचार-स्वातंत्र्य के लिये प्रोत्साहन नहीं देते थे और सरकारी सेवा में लगे हुए लोगों की बुद्धि कुंठित कर देते थे। श्रीमान्, अब ये दूषित बातें न रहेंगी। अब स्वछंद वातावरण में हमारे अधिकारियों की योग्यता बढ़ जायेगी। उनमें नवीन कार्य करने की शक्ति होगी और अपने देश के लिये उत्कृष्ट कार्य करने के लिये देश-प्रेम होगा। पचपन अथवा साठ वर्ष की कृत्रिम आयु-सीमा रखने के लिये अब आयु-सीमा को बढ़ा देना चाहिये। विशेषतया न्यायाधीशों के उच्च पदों के लिये मैं बहुत विचार करने के बाद यह मत प्रकट करता हूं कि कम से कम आयु साठ वर्ष की होनी चाहिये। साठ वर्ष के पूर्व बहुत कम न्यायाधिकारी कार्य कुशल होते हैं। उच्च कोटि के न्यायवेत्ताओं के बुद्धि बल तथा अनुभव का परिचय साठ वर्ष के उपरांत ही मिलता है। मुझे तो प्रसन्नता होती यदि इससे भी ऊंची आयु-सीमा रखी जाती। किन्तु इस दशा में इसकी आवश्यकता होती कि वह राष्ट्रपति के प्रसाद-काल तक ही पदासीन रहता। किन्तु यह समझा गया है कि यह उच्च कोटि के न्यायवेत्ताओं के मार्ग में बाधक सिद्ध हो सकता है। इसलिये मैं यह नहीं चाहता कि उच्च कोटि के न्यायाधिकारी राष्ट्रपति के प्रसाद-काल तक ही पदासीन रहें। इसलिये मैं कोई आयु-सीमा न रखने और पैंसठ वर्ष की आयु रखने के बीच की एक बात का सुझाव रखता हूं और वह यह है कि अड़सड़ वर्ष की आयु निश्चित की जाये। न्यायाधिकारियों को बहुत उच्च कोटि के कर्त्तव्यों का पालन करना होता है। उनको बेकार वेतन नहीं दिया जाता। उनको बहुत काम करना होता है। अपनी वकालत छोड़कर उच्च न्याय पदों को स्वीकार करने के लिये उन्हें यह दिखाई देना चाहिये कि भविष्य में उन्हें दीर्घ काल तक कार्य करना होगा और उनका कार्य उपयोगी सिद्ध होगा। वास्तव में इसके विरुद्ध यह कहा गया है कि लोक सेवा के अर्थ त्याग करने की भावना से लोगों को इन पदों को स्वीकार करना चाहिये। मेरे विचार से जो व्यक्ति अपनी लाभप्रद वकालत को छोड़ेगा वह बहुत त्याग करेगा। त्याग की भी कुछ सीमा होनी चाहिये। इन कारणों को ध्यान में रखते हुए मेरा यह निवेदन है कि उनकी आयु-सीमा बढ़ा दी जानी चाहिये। एक अन्य प्रसंग में मैं यह भी निवेदन करने का प्रयास करूंगा कि उनके वेतन पर भी यथोचित विचार किया जाये। मेरा यह निवेदन है कि इस विचार-विमर्श से बहुत सी बातें स्पष्ट हुई हैं और उनकी ओर हमें यथेष्ट ध्यान देना चाहिये। कम से कम यह तो पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि यह गलत है कि साठ वर्ष के बाद लोग कार्य कुशल नहीं रहते। मेरा यह निवेदन है कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है उसे यह सभा भले ही स्वीकार न करे किन्तु उसमें सन्निहित सिद्धांत याद रखे जायेंगे और एक दिन वह आयेगा जब हम कम से कम अपने सर्वोच्च न्यायाधिकारियों की आयु-सीमा बढ़ाने के लिये बाध्य हो जायेंगे।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अब हमें विचार-विमर्श समाप्त कर देना चाहिये। हम कई भाषण सुन चुके हैं।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): किन्तु अभी तक केवल वकील ही बोले हैं।

***अध्यक्ष:** यदि आप लोग बोलना चाहते हैं तो मैं आपको रोकूंगा नहीं किन्तु मेरे विचार से बहुत विचार-विमर्श हो चुका है। सभी भाषण वकीलों ही के नहीं थे। उदाहरणार्थ श्री सिधवा वकील नहीं हैं।

डा. अम्बेडकर, क्या आप संशोधनों के संबंध में कुछ कहेंगे?

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं दो संशोधनों को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। उनमें से एक, संशोधन संख्या 1829 है जिसे श्री सन्तानम् से उपस्थित किया है और दूसरा, संशोधन संख्या 1845 है जिसे श्री कामत ने उपस्थित किया है और जिसके द्वारा उन्होंने यह प्रस्ताव रखा है कि न्यायवेत्ता भी उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश चुना जाये। किन्तु श्री कामत के संशोधन संख्या 1845 के संबंध में मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं अभी इसका निश्चय नहीं कर सका हूं कि हम प्रसंग में 'distinguished' (प्रतिष्ठित) शब्द उपयुक्त है या नहीं। मुझे यह परामर्श दिया गया है की 'eminent' (प्रख्यात) शब्द अधिक उपयुक्त होगा। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं मैं अभी इस संबंध में निश्चय नहीं कर सका हूं और इसलिये मैं मसौदा-समिति की ओर से यह बात कहना चाहता हूं कि उसे संविधान का मसौदा दुहराते समय इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह 'प्रतिष्ठित' शब्द को स्वीकार करे अथवा उसके स्थान में 'प्रख्यात' शब्द अथवा कोई अन्य उपयुक्त शब्द रखे दे।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद के संबंध में जो बहुत से संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से वास्तव में तीन प्रश्न उठाये गये हैं। पहला प्रश्न तो यह है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश किस प्रकार नियुक्त किये जायें? इस प्रश्न के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनका वर्गीकरण करने से वे तीन प्रकार के दिखाई देते हैं। एक प्रस्ताव यह है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश मुख्य-न्यायाधिपति की सहमति से नियुक्त किये जायें। यह एक दृष्टिकोण है। दूसरा दृष्टिकोण इस प्रकार है कि राष्ट्रपति जो नियुक्तियां करे उनका समर्थन संसद के दो-तिहाई बहुमत से होना चाहिये। तीसरा सुझाव इस प्रकार का है कि वे राज्य-परिषद् से परामर्श लेकर नियुक्त किये जाने चाहियें।

इस संबंध में मैं इसे स्वीकार करता हूं कि जो प्रश्न उठाया गया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस संबंध में इस सभा में किसी प्रकार का मतभेद न होना चाहिये कि हमारी न्यायपालिका का कार्यपालिका से कोई संबंध न होना चाहिये और उसमें योग्य व्यक्ति होंगे। प्रश्न यह है कि इन दो उद्देश्यों की पूर्त्ति किस प्रकार हो। अन्य देशों में इस प्रश्न को दो प्रकार से हल किया गया है। इंग्लैंड में सम्राट बिना किसी परिसीमा के नियुक्तियां करता है जिसका अर्थ यह है कि सामयिक कार्यपालिका नियुक्तियां करेगी। संयुक्त राज्य अमरीका में इससे बिल्कुल भिन्न प्रणाली प्रयोग में है और वहां उच्चतम न्यायालय के पदों तथा राज्य के अन्य पदों के लिये नियुक्तियां सीनेट की सहमति से ही की जाती है। मुझे यह दिखाई देता है कि अपनी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा इसे भी ध्यान में रखते हुए इस देश में उत्तरदायित्व की भावना अभी उतनी नहीं है जितनी संयुक्त राज्य

अमरीका में है। यह खतरनाक सिद्ध होगा कि राष्ट्रपति बिना किसी परिसीमा के नियुक्तियां करे अर्थात् सामयिक कार्यपालिका के परामर्श से ही नियुक्तियां करे। इसी प्रकार कार्यपालिका की प्रत्येक नियुक्ति के संबंध में विधानमंडल की सहमति प्राप्त करना भी बहुत उपयुक्त उपबंध नहीं हैं इस प्रथा के बहुत बोझल होने के अतिरिक्त उसके अधीन यह भी सम्भावना रहेगी कि राजनैतिक दबाव तथा राजनैतिक बातों का नियुक्तियों पर प्रभाव पड़ेगा। मसौदे में जो अनुच्छेद है उसमें मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। उसके अधीन नियुक्तियों के संबंध में राष्ट्रपति उच्चतम तथा अन्तिम प्राधिकारी नहीं है और न विधानमंडल का ही प्रभाव पड़ता है। इस अनुच्छेद में इस प्रकार का उपबंध है कि ऐसे लोगों से परामर्श लिया जाये जो इतने सुयोग्य हों कि इस प्रकार के विषयों पर यथोचित परामर्श दे सकें और मेरे विचार से इस प्रकार का उपबंध फिलहाल पर्याप्त समझा जाये।

मुख्य न्यायाधिपति की सहमति के संबंध में मुझे यह दिखाई देता है कि जो लोग इस प्रस्ताव के समर्थन में हैं उनका मुख्य न्यायाधिपति की निष्पक्षता और ठीक निर्णय पर विश्वास है मेरी अपनी यह धारणा है कि मुख्य न्यायाधिपति निस्संदेह एक प्रख्यात व्यक्ति होगा। मेरी अपनी यह धारणा है कि निस्संदेह न्यायाधिपति बहुत ही प्रख्यात व्यक्ति होगा किन्तु फिर भी न्यायाधिपति में भी साधारण मनुष्यों की कमजोरियों तथा भावनाएं होंगी। मेरे विचार से न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में मुख्य न्यायाधिपति के मत को मानने का अर्थ यह होगा कि उसे वह अधिकार प्राप्त हो जायेगा जो हम न तो राष्ट्रपति को और न तत्कालीन सरकार को देने के लिये तैयार हैं। इसलिये मेरे विचार से यह भी एक खतरनाक प्रस्ताव है।

इस अनुच्छेद के संबंध में जो विभिन्न संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनके द्वारा जो दूसरा प्रश्न उठाया गया है वह है आयु का प्रश्न। आयु के संबंध में अनेक प्रकार के विचार प्रकट किये गये हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि न्यायाधीशों को साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर निवृत्ति हो जाना चाहिये। जहां तक उच्च न्यायालयों का संबंध है उनमें इस समय यही होता है। कुछ लोगों का यह कहना है कि संविधान में कोई भी आयु न रखी जानी चाहिये और संसद को विधि द्वारा आयु-सीमा निश्चित करनी चाहिये। मेरे विचार से यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह संसद पर छोड़ दिया जाये कि वह समय-समय पर आयु निश्चित करे तो कोई भी व्यक्ति न्यायाधीश होने के लिये तैयार न होगा क्योंकि न्यायाधीश पद स्वीकार करने के पूर्व प्रत्येक व्यक्ति यह जानना चाहेगा कि वह साधारणतया कितने काल के लिये उस पद पर रहेगा। इसलिये मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि समय समय पर संसद आयु के संबंध में उपबंध निश्चित नहीं कर सकती बल्कि उसे संविधान में ही निश्चित करना होगा। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि यदि कोई भी आयु-सीमा रखी गई तो उसका अर्थ यह होगा कि आप ऐसे लोगों को हट जाने के लिये बाध्य कर रहे हैं जो हमारी निश्चित की हुई आयु अर्थात् 65 वर्ष के होने पर भी हृष्ट-पुष्ट हों ओर कई वर्षों तक यथेष्ट रूप से देश की सेवा कर सकते हों। मैं इस मत को पूर्णतया स्वीकार करता हूं कि यह नहीं माना जा सकता कि पैंसठ वर्ष की आयु में मनुष्य के बौद्धिक बल का शून्यन हो जाता है। साथ ही मेरे विचार से जिन माननीय सदस्यों ने इस आशय के संशोधन उपस्थित किये हैं वे उस

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

उपबंध को भूल गये हैं जो हमने अनुच्छेद 107 में रखा है और जिसमें हमने यह कहा है कि मुख्य न्यायाधिपति की इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी निवृत्त न्यायाधीश से किसी विशेष मामले या मामलों के संबंध में निर्णय करने को कहें। इसलिये अनुच्छेद 107 के इस उपबंध के फलस्वरूप, मैं यह कहूंगा कि इसकी संभावना न रह जायेगी कि ऐसे लोगों के बुद्धि बल का प्रयोग न किया जा सके जो उच्चतम न्यायालय में कार्य कर चुके हों। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि आयु सम्बन्धी विचार-विमर्श के समय जो तर्क उपस्थित किये गये और जो भय प्रकट किया गया उसका कोई आधार नहीं है।

इस संशोधन सम्बन्धी वाद-विवाद में जो तीसरी बात कहीं गई थी उसे में अब उठाता हूं। वह न्यायपालिका के सदस्यों के निवृत्त होने पर पद स्वीकार करने का प्रश्न है। इस सम्बन्ध में दो संशोधन उपस्थित किये गये हैं। एक प्रोफेसर के.टी. शाह ने उपस्थित किया है और दूसरा श्री जसपतराय कपूर ने। मेरा अपना विचार यह है कि इनमें से कोई भी संशोधन स्वीकार नहीं किया जा सकता। ये संशोधन बहुत कुछ उन उपबंधों के आधार पर उपस्थित किये गये हैं जो संविधान के मसौदे में लोक सेवा आयोग के संबंध में रखे गये हैं। मेरे विचार से न्यायपालिका के सदस्यों में तथा संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों में आधारभूत अन्तर है। यह अन्तर यह है। लोक सेवा आयोग सरकार की सेवा करता है और ऐसे विषयों के संबंध में निर्णय करता है जिनमें सरकार की दिलचस्पी होती है अर्थात् वह असैनिक सेवाओं के लिये लोगों को नियुक्त करता है। यह हो सकता है कि किसी विभाग का मंत्री लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को यह वचन देकर उस पर प्रभाव डाल सकता है कि यदि वह उस प्रार्थी की सिफारिश करे जिसमें उसकी दिलचस्पी है तो उसे निवृत्त होने पर कोई अन्य पद दे दिया जायेगा। लोक सेवा आयोग का कार्यपालिका से बहुत निकट संबंध रहता है। दूसरे शब्दों में लोक सेवा आयोग हमेशा ऐसे विषयों का निर्णय करता रहता है जिनमें कार्यपालिका की बहुत दिलचस्पी होती है। किन्तु न्यायपालिका ऐसे विषयों के संबंध में निर्णय करती है जिनमें सरकार की बहुत कम दिलचस्पी रहती है अथवा कुछ भी दिलचस्पी नहीं रहती। न्यायपालिका प्रायः नागरिकों के आपस के मामलों का निर्णय करती है और यदाकदा नागरिकों और सरकार के बीच किसी मामले का निर्णय करती है। इसलिये इसकी बहुत कम संभावना है कि सरकार न्यायपालिका के किसी सदस्य पर प्रभाव डालेगी। इसलिये मेरा अपना मत यह है कि लोक सेवा आयोग के संबंध में जो उपबंध हैं वे न्यायपालिका के संबंध में प्रयोग में नहीं आ सकते। इसके अतिरिक्त कई मामले ऐसे होते हैं जिनके संबंध में न्याय संबंधी उत्कृष्ट योग्यता रखने वाले लोगों को काम में लगाना आवश्यक हो जाता है। हमारे मित्र श्री वर्दाचार्य के उदाहरण को लीजिये। वे अब उस आयोग के सदस्य नियुक्त किये गये हैं जो आय कर के प्रश्नों के संबंध में अनुसंधान कर रहा है।

***श्री जसपतराय कपूरः** यह अवैतनिक रूप से किया जाना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जी नहीं, उन्हें वेतन दिया जाता है। वह सम्राट के अधीन लाभप्रद पद पर नियुक्त किये गये हैं।

इसलिये न्याय-विशारदों के अतिरिक्त इन पदों पर और कौन लोग नियुक्त किये जा सकते हैं? यदि इस प्रकार के लोग जिनमें इस प्रकार के कार्य करने की क्षमता है

ऐसे उपबंधों से कार्य करने से वंचित कर दिये जायें जैसे कि श्री जसपतराय कपूर ने प्रस्तावित किये हैं तो बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी। मैं यह कह चुका हूं कि कार्यपालिका और न्यायपालिका इतने पृथक हैं कि कार्यपालिका को न्यायपालिका के निर्णयों पर प्रभाव डालने का कोई अवसर ही न मिलेगा। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि जिस उपबंध का प्रस्ताव रखा गया है वह अनावश्यक है। मैं इन सभी संशोधनों का विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (1) में 'Chief Justice' (मुख्य न्यायाधीश) शब्दों के पूर्व 'Supreme' (उच्चतम) शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (1) में 'and such number of other judges not being less than seven, as Parliament may by law prescribe' शब्दों के स्थान में 'and until Parliament by law prescribes a larger number of seven other judges' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Every Judge of the Supreme Court shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal and shall hold office until he attains the age of sixty-five years:

Provided that in the case of appointment of a Judge, other than the Chief Justice, the Chief Justice of India shall always be consulted.' ''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताय यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखे जायें:

'(2) The Chief Justice of Bharat, who shall be the Chief Justice of the Supreme Court, shall be appointed by the President subject to confirmation by two-thirds majority of the total number of members of Parliament assembled in a joint session of both the Houses of Parliament.' ''

[अध्यक्ष]

'(3) Every judge of the Supreme Court shall be appointed on the advice of the Chief Justice of Bharat by the President under his hand and seal and shall hold office until he attains the age of sixty-five years:

Provided that—

(a) a judge may, by writing under his hand addressed to the President, resign his office;

(b) a judge may be removed from his office in the manner provided in clause (5).' ''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) और खंड (2) के प्रथम परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

(2) Every judge of the Supreme Court other than the Chief Justice of India shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal after consultation with the judges of the Supreme Court and Chief Justice of High Courts in the States and with the concurrence of the Chief Justice of India; and the Chief Justice of India shall be appointed by the President by a warrant under his hand and seal after consultation with the judge of the Supreme and the Chief Justices of the High Court in the States and every judge of the Supreme Court shall hold office until he attains the age of sixty-eight years.' ''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'with' शब्द के बाद 'the Council of States and' शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'may be' शब्दों के स्थान में 'the President may deem' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'until he attains the age of sixty-five years' शब्दों के स्थान में 'during good behaviour or until he resigns; provided that any such judge may resign his office at any time after 10 years of service in a judicial office and if he so resigns, he shall be entitled to such pension as may be allowed under the law passed by the Parliament of India for the time being in force' शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'sixty-five' शब्द के स्थान पर 'sixty' शब्द रखा जाये और 'the President, however, may in any case extend from year to year the age of retirement up to sixty-five years' शब्द जोड़ दिये जायें।''

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, सभा यदि आज्ञा दे तो मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** श्री मोहनलाल गौतम का संशोधन संख्या 1834 भी है। मैंने उन्हें उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी थी क्योंकि उसका आशय संशोधन संख्या 1883 से पूरा हो जाता था। क्या वे यह चाहते हैं कि मैं उस पर मत लूं?

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, सभा यदि आज्ञा दे तो मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) में 'until he attains the age of 65 years' शब्दों के स्थान में 'for such period as may be fixed in this behalf by Parliament by law' शब्द रखे जायें।''

***श्री सतीश चन्द्र:** श्रीमान्, सभा यदि आज्ञा दे तो मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के पहले परन्तुक में 'the Chief Justice of India shall always be consulted' शब्दों के स्थान में 'it shall be made with the concurrence of the Chief Justice of India' शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के दूसरे परन्तुक के बाद निम्नलिखित नया परन्तुक प्रविष्ट किया जाये:

'Provided further that where a Judge resigns his office on grounds of ill-health, he shall be entitled to pension as if he has continued in service until the age of sixty-five years.' ''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** श्री जसपतराय कपूर ने इस संशोधन पर एक संशोधन उपस्थित किया है। यह सूची 2 का संशोधन संख्या 41 है और इस प्रकार है:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1843 में अनुच्छेद 103 के प्रस्तावित नवीन खंड (2ए) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2A) No Judge of the Supreme Court shall be eligible for further office of profit either under the Government of India or under the Government of any State after he has ceased to hold his office.' ''

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं यह नहीं चाहता कि यह बहुत ही उपयोगी संशोधन गिर जाये। इसलिये यदि सभा आज्ञा दे तो मैं इस संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के मूल संशोधन को सभा के सामने रखता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (2) के बाद निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(2A) Any person who has once been appointed as Judge of any High Court or Supreme Court shall be debarred from any executive office under the Government of India or under that of any unit, or, unless he has resigned in writing from his office as Judge, from being elected to a seat in either House of Parliament, or in any State Legislature.' ''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 1845 को संशोधित रूप में सभा के सामने रखता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (3) में निम्नलिखित नवीन खंड जोड़ दिया जाये:

'(c) or is an eminent jurist.' ''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (3) के उपखंड (बी) के बाद निम्नलिखित नवीन उपखंड प्रविष्ट किया जाये:

'(c) has been a Pleader in one or more District Courts for at least twelve years.''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (3) की व्याख्या 1 के बाद निम्नलिखित नवीन व्याख्या प्रविष्ट की जाये और नवीन व्याख्या की गणना तदनुसार की जाये:

'Explanation II.–In this clause District Court means a District Court which exercises or which before the commencement of this Constitution exercised jurisdiction in any district of the territory of India.' ''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (3) की व्याख्या (2) में जहां कहीं 'advocate' शब्द आया है उसके बाद 'or a Pleader' शब्द रखे जायें और 'a person held judicial' शब्दों के स्थान में 'such person held judicial' शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''खंड (3) में व्याख्या (2) के बाद 'judicial office' शब्दों के बाद 'not inferior to that of a district judge' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (4) में 'supported by not less than two-thirds of the members present and voting has been presented to the President by both Houses of Parliament' शब्दों के स्थान में 'by each House of Parliament supported by a majority of the total membership of that House and by a majority of not less than two-thirds of the members of that House present and voting has been presented to the President' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (4) में 'passed' शब्द के बाद 'after a Committee consisting of all the Judges of the Supreme Court had investigated the charge and reported on it to the President and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (4) में 'not less than two-thirds' शब्दों के स्थान में 'a majority' शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (6) में 'a declaration' शब्दों के स्थान में 'an affirmation or oath' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 का खंड (7) निकाल दिया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103 के खंड (7) में 'any authority' शब्दों के बाद 'or shall hold any office of profit without the previous permission of the President' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं समूचे अनुच्छेद को, स्वीकृत संशोधनों द्वारा संशोधित रूप में, सभा के सामने रखता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 103, संशोधित रूप में, स्वीकार कर लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 103, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 103-ए

***डा. पी.के. सेन:** इस संशोधन के संबंध में अपने विचार प्रकट करने के लिये मैं अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। वास्तव में सभा को यह स्मरण होगा कि जब मैं संशोधन संख्या 1842 को उपस्थित कर रहा था तो मैंने इस संशोधन की ओर तथा इस में सन्निहित सिद्धांत की ओर संकेत किया था, वह सिद्धांत यह है कि जो व्यक्ति न्यायाधीश रह चुका हो उसे बाद को अपने लिये पद ढूंढने की आवश्यकता न पड़नी चाहिये और इस उद्देश्य से उसे राजनैतिक दलों तथा कुछ व्यक्तियों की खुशामद करके अपने पद की प्रतिष्ठा न गिरानी चाहिये। वास्तव में जो विचार-विमर्श हमने अभी सुना है उसमें कई प्रसंगों में इसकी चर्चा की गई है और मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि मुझे संविधान में इस आशय का कोई उपबंध नहीं दिखाई देता। मेरे विचार से यह बहुत ही आवश्यक है कि किसी न्यायाधीश को अपना पद छोड़ने पर किसी अन्य पद की खोज में न रहना चाहिये। इस कारण, विशेषतया हमारे देश के लिये, इस उपबंध का बहुत महत्त्व है क्योंकि यहां ऐसे लोग भी रहे हैं जो पहले न्यायपालिका के अधिकारी थे, फिर कार्यपालिका के अधिकारी हो गये और फिर न्यायपालिका में ही किसी पद पर नियुक्त हो गये। इस प्रकार की बातें न होने दी जानी चाहियें। इसी कारण मैं इस संशोधन को उपस्थित करता रहा हूं और मुझे आशा है कि यह सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** किन्तु यह संशोधन रस्मी तौर पर उपस्थित नहीं किया गया है।

***अध्यक्ष:** प्रस्तावक महोदय यह कहते हैं कि उन्होंने उसे उपस्थित कर दिया है।

***डा. पी.के. सेन:** मैंने इस समय इसे अभी उपस्थित नहीं किया है। पिछले एक अवसर पर जब मैं संशोधन संख्या 1842 उपस्थित कर रहा था तो मैंने इसकी ओर संकेत किया था। इसलिये श्रीमान्, मैं उसे रस्मी तौर पर उपस्थित करता हूं। वह इस प्रकार है:

> ''अनुच्छेद 103 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:
>
> '103-A. A person who is holding or has held the office of Judge of the Supreme Court shall not be eligible for appointment to any office of emolument under the Government of India or a State, other than that of the Chief Justice of India or the Chief Justice of a High Court:
>
> Provided that the President may, with the consent of the Chief Justice of India, depute a Judge of the Supreme Court temporarily on other duties:
>
> Provided further that this article shall not apply in relation to any appointment made and continuing while a Proclamation of Emergency is in force, if such appoointment is certified by the President to be necessary in the national interest.' ''

[डा. पी.के. सेन]

इन अवसर पर राज्य को इसकी आवश्यकता पड़ेगी कि वह अनुभवी लोगों को सेवा में लगाये... (*विघ्न*)।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या माननीय सदस्य महोदय इस संशोधन को उपस्थित कर सकते हैं चूंकि सभा संशोधन संख्या 1865 को अस्वीकार कर चुकी है? उस संशोधन में वही सिद्धांत सन्निहित है जो संशोधन संख्या 1870 में सन्निहित है।

***श्री जसपतराय कपूर:** संशोधन संख्या 1865 में 'of profit' शब्द नहीं आये हैं।

***अध्यक्ष:** प्रस्तावक महोदय ने 'of profit' शब्द जोड़ दिये थे।

***डा. पी.के. सेन:** जी नहीं, श्रीमान्, वह बहुत ही सीमित है और उसमें निश्चित रूप से यह नहीं कहा गया है कि किस प्रकार के पद निषिद्ध हैं। वास्तव में उसमें यह भी नहीं कहा गया है, कुछ आपात्तिक दशाओं में राष्ट्रपति यह विचार कर सकता है कि किसी व्यक्ति के परिपक्व ज्ञान तथा अनुभव की राज्य को आवश्यकता होगी और इन अवसरों पर उसे इस प्रकार के किसी पद पर नियुक्त करने से देश का हित साधना होगा। मैंने इस सभा के सम्मुख जो संशोधन रखा है उसमें यह अधिक स्पष्ट कर दिया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** संशोधन संख्या 1843 का आशय भी यही था।

***डा. पी.के. सेन:** कुछ सीमा तक यह कहा जा सकता है कि संशोधन संख्या 1843 से इस प्रस्ताव का आशय पूरा हो जाता है। मैं इसे आपके निर्णय के लिये छोड़ता हूं कि इस दृष्टि से यह आवश्यक है या नहीं और इस पर सभा को विचार करना चाहिये या नहीं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से जिस संशोधन की ओर संकेत किया गया है उससे नवीन अनुच्छेद 103-ए में परिभाषित सिद्धांत की पूर्त्ति हो जाती है। यह सच है कि इस संशोधन में एक दो बातें और कही गई हैं। जब सिद्धांत ही स्वीकार नहीं किया गया है तो उससे सम्बद्ध प्रश्नों पर विचार नहीं किया जा सकता। जब तक डा. सेन इस पर जोर नहीं देते हैं हम इस प्रस्ताव पर विचार न करेंगे। किन्तु यदि वे जोर देते हैं तो मुझे इस पर मत लेना होगा।

***डा. पी.के. सेन:** मेरी यह इच्छा है कि इस पर विचार-विमर्श किया जाये और इसके सम्बन्ध में निर्णय किया जाये। यदि आपका यह विचार है कि चूंकि संशोधन संख्या 1843 पर विचार हो चुका है इसलिये मैं इस संशोधन को उपस्थित नहीं कर सकता तो बात यहीं समाप्त हो जाती है।

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं, आपके संशोधन में कुछ अन्य बातें भी हैं। वैधानिक दृष्टि से उनका आशय संशोधन संख्या 1843 से पूरा नहीं होता है। किंतु उसमें वही सिद्धान्त सन्निहित है जो संशोधन संख्या 1843 में सन्निहित है। इसलिये मैं इसे आप पर छोड़ता हूं कि आप उसे उपस्थित करें या न करें।

***डा. पी.के. सेन:** श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित करता हूं।

***श्री बी. दास:** मेरे मित्र डा. सेन ने, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हैं, इस संशोधन को उपस्थित करके जिस आत्म-विश्वास का परिचय दिया है उसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूं। यद्यपि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यह आपत्ति की है कि यह संशोधन अनियमित है किन्तु मेरे विचार से उनकी आपत्ति ही अनियमित है। श्रीमान्, हम भारतीयों पर वकीलों का ही प्रभुत्व है। हमारे वकील ही हमारे संविधान को बनाते हैं, हमारी राजनीति पर नियंत्रण रखते हैं और यह सोचते हैं कि उच्च न्यायालयों और न्यायपालिका का पद उच्चतम है और किसी भी न्यायाधीश की आलोचना नहीं की जा सकती। श्रीमान्, हम सभी को विदित है कि हाल में एक मामले में इलाहाबाद के उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने जो निर्णय सुनाया था उसकी परीक्षा हो रही है जिससे यह प्रमाणित होता है कि न्यायाधीश भी गलती कर सकते हैं। हम यह भी जानते हैं कि लखनऊ के मुख्य न्यायालय के एक न्यायाधीश ने सत्तर वर्ष की आयु में यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उनकी आयु दस वर्ष कम है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश इस प्रकार के हैं और मैं इसे दुहराना चाहता हूं कि साधारण मनुष्य ही इस प्रकार की प्रकृति का परिचय देते हैं मेरे विचार से अग्रेजों की न्याय के सम्बन्ध में जो धारणा है जिसका भारत में पोषण होता रहा है उसका इस संविधान में पोषण न होना चाहिये। मैंने अपने संशोधन इस उद्देश्य से उपस्थित नहीं किये कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के निवृत्त होने पर उनको पद ढूंढने की प्रवृत्ति निर्बन्धित कर दी जाये। मेरे विचार से यदि खंड 103-ए स्वीकार कर लिया गया तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश साधारण लोगों के समान हो जायेंगे और वे असाधारण लोग न समझे जायेंगे। वे यह समझते हैं कि वे असाधारण लोग हैं और उनसे कोई गलती हो ही नहीं सकती। किन्तु वकील न होने के कारण और लोगों का प्रतिनिधि होने के नाते मैं यह कह सकता हूं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पूर्व ब्रिटिश अधिकारियों के समान कार्य करते हैं और उन्हीं की विचारधारा का अनुसरण करते हैं। एक दूसरे अनुच्छेद में, अर्थात् अनुच्छेद 104 में, जिस पर कुछ समय बाद विचार किया जायेगा, मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने यह रखा है कि पुराने भारत-सरकार के अधिनियम की व्यवस्था के समान उच्चतम न्यायालय के 5000 रु. का वेतन दिया जाये और अन्य न्यायाधीशों को 4000 रु. का वेतन दिया जाये। वे सभी भारतीय हैं और मैं यह भी आशा करता हूं कि वे देश भक्त भी हैं। यदि मेरे मित्र जो मंत्री हैं 3000 रु. का वेतन स्वीकार कर सकते हैं तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 5000 रु. अथवा 4000 रु. के वेतन की मांग किस प्रकार कर सकते हैं? मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी भी व्यक्ति का भले ही वह उच्च पदाधिकारी हो, विशेष अधिकारों की मांग न करनी चाहिये। वे लोग केन्द्र में हमारे मंत्रियों से किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं जो केवल 3000 रु. पाते हैं। मेरे विचार से कुछ प्रांतीय सरकारें अपने मंत्रियों को इससे भी कम वेतन देती हैं।

दूसरी बात यह है कि मद्रास के मित्रों को छोड़कर मैंने बिरला ही कोई उच्च न्यायालय का न्यायाधीश देखा है जो भारतीय वस्त्र पहनता है। भारत को स्वतंत्र हुए दो वर्ष बीत गये हैं। क्या कारण है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश अभी भी अंग्रेजी प्रणाली का ही अनुसरण करते हैं और अंग्रेजी पोशाक ही पहनते हैं? भारत के सभी उच्च न्यायालयों में भी यही होता है। ये लोग देश भक्त कैसे कहे जा सकते हैं? ये लोग किस प्रकार उच्च

[श्री बी. दास]

कोटि की न्याय-परम्परा बनाये रखेंगे और किस प्रकार लोगों में सामाजिक न्याय की नवीन भावना जागृत करेंगे? श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मुझे डा. पी.के. सेन के संशोधन का हृदय से समर्थन करने का अवसर मिला। मैं उन्हें एक बार फिर इसके लिये बधाई देता हूं कि उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश होते हुए उन्होंने इस संशोधन को उपस्थित करके अपने आत्मविश्वास का परिचय दिया है। श्रीमान्, मैं आपको भी इस संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा देने के लिये बधाई देता हूं।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** श्रीमान्, डा. पी.के. सेन ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह अनियमित नहीं है। उसके द्वारा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है और मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि इस पर विचार किया जाये। जिन संशोधनों पर विचार हो चुका है उनमें और इस संशोधन में यह अन्तर है कि इसमें ऐसे व्यक्ति के संबंध में भी विचार किया गया है जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर आसीन हो। इस संबंध में मैं सभा को यह स्मरण कराना चाहता हूं कि कई अवसरों पर संघ न्यायालय के न्यायाधीश ऐसे कार्यों में लगाये गये हैं जिनका न्याय से कोई संबंध नहीं था और जो एक प्रकार से राजनैतिक तथा कूटनीतिक कार्य थे। एक पदासीन न्यायाधीश युद्ध-परिषद् का सदस्य बनाकर इंग्लैंड भेजा गया था और उसके उपरांत मुख्य न्यायाधिपति के आपत्ति करने पर भी युद्ध-मंत्रिमंडल का सदस्य बना दिया गया था। जब वह इंग्लैंड में रहा उसने राजनैतिक कार्य ही नहीं किया बल्कि बहुत ही कटु साम्प्रदायिक प्रचार भी किया। यह बहुत ही आवश्यक है कि संविधान में ऐसा उपबंध रखा जाये कि भविष्य में इस प्रकार की बातें न हो सकें और पदासीन न्यायाधीश न्याय-संबंधी कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में न लगाये जा सकें। जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं और जिनमें से कुछ अस्वीकार हो चुके हैं उनमें तथा इस संशोधन में यही मुख्य अन्तर है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** इस संशोधन में 'has held' शब्द प्रयोग किये गये हैं।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** संशोधन में ये शब्द हैं। 'a person who is holding or has held the office of Judge' (कोई व्यक्ति जो न्यायाधीश पद पर हो अथवा न्यायाधीश पद पर रह चुका हो'।) इसमें दो प्रकार के व्यक्तियों की कल्पना की गई है। पहली कल्पना उस व्यक्ति के संबंध में है जो न्यायाधीश पद पर आसीन हो। इस संबंध में विचार-विमर्श नहीं हुआ है और किसी संशोधन पर विचार नहीं हुआ है। इसलिये इसके बारे में औचित्य-प्रश्न नहीं किया जा सकता है। जहां तक इस खंड के दूसरे भाग का संबंध है उसमें ऐसे व्यक्ति का उल्लेख है जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो और उसमें यह कहा गया है कि वह किसी पद पर नियुक्त होने के लिये पात्र न समझा जायेगा इत्यादि। इसके संबंध में निस्संदेह कुछ संशोधन उपस्थित किये गये थे और वे अस्वीकार हो गये थे किन्तु डा. सेन ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें यह अतिरिक्त उपबंध है कि राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श लेकर उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को थोड़े समय के लिये अन्य कार्य में लगा सकता है। इसका संबंध पदासीन तथा पद

निवृत्त दोनों प्रकार के न्यायाधीशों से है। इस परन्तुक में आगे यह भी कहा गया है कि यह अनुच्छेद किसी ऐसी नियुक्ति के संबंध में प्रयोग में नहीं आयेगा जो ऐसे समय में की गई हो अथवा जारी रखी गई हो जब आपात की घोषणा प्रवर्तन में हो और जिसके संबंध में राष्ट्रपति ने यह प्रमाणित किया हो कि वह राष्ट्र के हित के लिये आवश्यक है। जब राष्ट्र आपातिक स्थिति में हो तो कुछ अपवाद करने की आवश्यकता पड़ सकती है। डा. सेन ने इसी परन्तुक का सुझाव रखा है। यह स्पष्ट है कि जिन संशोधन पर विचार हो चुका है उनसे यह आशय पूरा नहीं होता है। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि डा. सेन का संशोधन नियमित है और इस पद पर विचार किया जाना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं थोड़े से शब्द कहकर इस विषय को समाप्त करना चाहता हूं। इसके पूर्व मैं यह बताना चाहता हूं कि यह संशोधन किस विचार पर आधृत है। इस संशोधन के मुख्य उद्देश्य को समझने के लिये हमें तीन विभिन्न प्रश्नों पर विचार करना है। पहला प्रश्न उच्चतम न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों का है जो कार्यपालिका के किसी पद पर नियुक्त किये गये हों और जिनको उच्चतम न्यायालय में अपने पद पर वापिस जाने का कोई अधिकार प्राप्त न हो। यह एक प्रश्न है। दूसरा प्रश्न यह है कि कोई व्यक्ति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर आसीन रहने के पश्चात् न्याय-कार्य के अतिरिक्त कार्यपालिका का कोई कार्य कर सकता है अथवा नहीं। तीसरा प्रश्न यह है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को, जो न्याय-कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में लगाया गया हो उच्चतम न्यायालय में अपने पद पर वापिस आने का अधिकार है या नहीं। मेरा यह विचार है और यदि वह ठीक न हो तो डा. सेन मुझे बता सकते हैं, कि इस संशोधन का संबंध तीसरे प्रश्न से है अर्थात् इससे कि उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश थोड़े समय के लिये न्याय-कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में लगाया जा सकता है या नहीं और उसके पश्चात् उसे उच्चतम न्यायालय में अपने पद पर वापिस आने का अधिकार है या नहीं।

पहले प्रश्न के संबंध में, जिसे मैंने पहले बताया है अर्थात् इसके संबंध में कि उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश कार्यपालिका के किसी पद पर इस शर्त पर नियुक्त किया जा सकता है या नहीं कि वह उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश-पद को त्याग देगा मेरे विचार से उसे नियुक्त करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि वह उच्चतम न्यायालय में अपने पद को हमेशा के लिये त्याग देगा।

दूसरे प्रश्न के संबंध में अर्थात् इसके संबंध में कि उच्चतम न्यायालय के किसी निवृत्त न्यायाधीश को कोई कार्य सौंपा जाये, या न सौंपा जाये हम अभी विचार कर चुके हैं। इस संबंध में कोई परिसीमा नहीं होनी चाहिये।

तीसरे प्रश्न पर, मेरी समझ से विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार के दो मामले हमारे देश में हुए हैं एक मामला तो युद्ध काल में हुआ था जबकि उस समय की भारत सरकार ने संघ न्यायालय के एक न्यायाधीश को कूटनीतिक कार्य के लिये बाहर भेजा था। इस सरकार ने भी किसी उच्च न्यायालय के, जिसका नाम मुझे याद नहीं आ

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

रहा है, एक न्यायाधीश को कूटनीतिज्ञ कार्य के लिये बाहर भेजा था। दोनों अवसरों पर इन कार्यों की बड़ी आलोचना हुई थी। मेरे मित्र श्री चिम्मनलाल सीतलवाद ने टाइम्स आफ इंडिया में एक लेख प्रकाशित करवाया था जिसमें उन्होंने सरकार के इस कार्य की आलोचना की थी। उनके उन विचारों से मैं सहमत हूं। किन्तु डा. पी.के. सेन ने अपने संशोधन में जो शब्द रखे हैं उन्हें मैं इस समय स्वीकार करने में असमर्थ हूं क्योंकि या तो वे शब्द उद्देश्य का उल्लंघन करते हैं या उसकी पूर्ति ही नहीं करते। किन्तु मैं मसौदा-समिति से यह सिफारिश करने के लिये तैयार हूं कि इस विषय पर विचार किया जाये। इस आश्वासन को दृष्टि में रखते हुए मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे अपना संशोधन वापिस ले लें।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या मैं यह प्रार्थना कर सकता हूं कि इस खंड पर कल तक निर्णय न किया जाये क्योंकि हम में से कई लोग उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर ने हमसे कहा है कि वे उसे मसौदा-समिति के सामने ला रहे हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** उसे स्थगित किया जाये।

***अध्यक्ष:** जब उसे मसौदा-समिति के सामने लाया जा रहा है तो उसका अर्थ यही है कि उसे स्थगित रखा गया है क्योंकि जब वह फिर इस सभा के सामने आयेगा तो वह उस रूप में आयेगा जिसे कि मसौदा-समिति स्वीकार करेगी।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिंह** (बिहार : जनरल): इससे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): यदि डा. अम्बेडकर किसी निश्चित प्रस्ताव को रखें तो उस पर हम यहां विचार कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** वह मसौदा-समिति से ऐसे रूप में सभा के सामने रखा जायेगा जिसमें यहां उठाई हुई सभी बातों का समावेश होगा।

तब हम कल प्रात: आठ बजे तक के लिये सभा स्थगित करते हैं।

इसके पश्चात् संविधान सभा बुधवार 25 मई, 1949 के
प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 4. VIII-8.49
320

अंक 8
संख्या 8

बुधवार
25 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारत (केन्द्रीय शासन तथा विधान मंडल) (संशोधन) विधेयक..... 427

अल्पसंख्यकों पर रिपोर्ट..... 427-487

भारतीय संविधान-सभा

बुधवार, 25 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

भारत (केन्द्रीय शासन तथा विधान मंडल) (संशोधन) विधेयक

***माननीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं कि भारत (केन्द्रीय शासन तथा विधान मंडल) अधिनियम, 1946 में संशोधन करने के लिये एक विधेयक उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि भारत (केन्द्रीय शासन तथा विधान मंडल) अधिनियम 1946 में संशोधन करने के लिये एक विधेयक उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी:** श्रीमान्, मैं विधेयक को उपस्थित करता हूं।

परामर्शदातृ समिति की रिपोर्ट अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई : जरनल): श्रीमान्, मैं आपके समक्ष परामर्शदातृ समिति के प्रतिवेदन पर, जो अन्तिम बार इस मास समवेत हुई थी, विचार करने का प्रस्ताव करने आया हूं। समिति का कार्य समाप्त होने के पश्चात् उसका विघटन कर दिया गया है। सभा को याद होगा कि अगस्त 1948 में, सम्भवतः अगस्त की 8 तारीख को, परामर्शदातृ समिति ने एक प्रतिवेदन पेश किया था और तत्पश्चात् अल्पसंख्यक समिति ने परामर्शदातृ समिति के प्रतिवेदन पर विचार करके अपने सुझाव रखे थे जिनमें सदन को परामर्श दिया गया था कि वह अल्पसंख्यकों के लिये विधान मंडलों में जनसंख्या के आधार पर स्थान रक्षित करने के रूप में कुछ राजनीतिक संरक्षण तथा कुछ अन्य संरक्षण भी स्वीकार कर ले।

हां, सभा को याद होगा कि जब यह प्रतिवेदन किया गया था, वह ऐसा समय था कि उस वक्त स्थितियां भिन्न थीं और विभाजन का प्रभाव भी पूर्णतः नहीं समझा गया

---

*इस चिह्न का यह अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

था या उस पर ध्यान नहीं दिया गया था। उस समय भी, जबकि विधान मंडलों में जनसंख्या के आधार पर स्थान रक्षित करने के सुझाव वाला प्रतिवेदन पारित किया गया था, इस विषय पर मतभेद था। अस्तु, अध्यन्त राष्ट्रीय विचारधारा के लोगों के एक वर्ग ने, जिसके नेता इस सभा के उपाध्यक्ष डाक्टर मुखर्जी थे, आरम्भ से ही संविधान में ऐसे रक्षणों का विरोध किया है। उस समय राजकुमारी अमृतकौर ने भी रक्षणों का कड़ा विरोध किया था, किन्तु उस समय अल्पसंख्यकों को भय था कि उन्हें जनसंख्या के आधार पर समुचित संख्या में प्रतिनिधित्व होगा या नहीं; और परामर्शदातृ समिति ने, मतभेद के होते हुए भी, उन अल्पसंख्यकों की ऐसी आशंकाओं को दूर करना अपेक्षित समझा जो उनके विचार में औचित्यपूर्ण समझी जा सकती थी। सभा को यह भी स्मरण होगा कि दक्षिण भारत के मुस्लिमों के प्रतिनिधि, श्री पोकर ने, जो अपरिवर्तनशील हैं तथा कट्टर मुस्लिम लीगी हैं, उस समय इस सदन में यह संशोधन रखा था, जब सुझाव सदन में पेश किये गये थे तब, कि पृथक् निर्वाचनों को रखा जाये अर्थात् वे जारी रहें, जिनका कि प्रभाव समस्त देश भर में और शायद बाहर भी, पूर्णत: ज्ञात है और अनुभूत है। परामर्शदातृ समिति के सभापति की हैसियत से मेरे सुझावों को सभा ने लगभग एकमत से स्वीकार कर लिया था और जब इन सुझावों को स्वीकार किया गया तब अल्पसंख्यकों ने व्यापक रूप से प्रशंसा की भावना व्यक्त की थी। कुछ समय पश्चात् हमें पुन: समवेत होना पड़ा क्योंकि, जहां तक पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल के प्रान्तों का सम्बन्ध है, हमारे सुझाव अपूर्ण थे, क्योंकि जब 1948 के अगस्त सत्रों में सदन ने सुझावों को पारित किया था, तब विभाजन का प्रभाव अनुभूत या ज्ञात न था और उस समय जो बृहद् निष्क्रमण हुआ वह जारी ही था और सिखों की स्थिति उस समय लगभग अनिश्चित थी। ऐसे ही बंगाल में भी विभाजन का प्रभाव पूर्णत: समझा नहीं गया था और दोनों प्रान्त इस प्रश्न को तब तक स्थगित करना चाहते थे जब तक कि स्थिति पूर्णत: निश्चित न हो जाये और प्रभावों को पूरी तरह समझ न लिया जाये। बाद में दिसम्बर में इस प्रश्न पर विचार करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई थी। परामर्शदातृ समिति ने पांच व्यक्तियों की एक उपसमिति नियुक्त की जिसमें हमारे आदरणीय अध्यक्ष भी सदस्य थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू, मैं स्वयं, श्री मुन्शी तथा डा. अम्बेडकर इस समिति के सदस्य थे। इस समिति की बैठक हुई और उसने फरवरी में अपना प्रतिवेदन पेश किया। जब यह प्रतिवेदन पेश हुआ तब सिख सम्प्रदाय के सदस्य इस प्रतिवेदन पर विचार करने तथा इस विषय में अपनी जाति से परामर्श करने के लिये समय चाहते थे। और भी, जब यह प्रतिवेदन परामर्शदातृ समिति के समक्ष पेश हुआ था, तब मुस्लिम प्रतिनिधियों में से कुछ ने, 1948 के अगस्त सत्र में संविधान के पारित होने के बाद बहुत समय तक पूर्ण विचार करने के बाद, अपने विचारों को बदल लिया था; उन्होंने यह कहा कि सब रक्षण समाप्त हो जाने चाहियें और यह अल्पसंख्यकों के ही अपने हित में है कि विधान मंडलों में ऐसा रक्षण हटा देना चाहिये। बिहार के प्रतिनिधियों ने इस पर बहुत जोर दिया और दूसरे प्रतिनिधियों ने उसका समर्थन किया। उस समय कुछ मतभेद था और मैं तथा समिति भी उत्सुक थी कि ऐसे अत्यधिक महत्त्व के प्रश्न पर हमें जल्दबाजी में मत नहीं लेना चाहिये। क्योंकि सिख प्रतिनिधि अपनी स्थिति पर विचार करने के लिये समय चाहते थे अत: हमने स्वभावत: बैठक स्थगित कर दी और बाद में हम इस मास के आरम्भ में पुन: समवेत हुए।

जब हम इस बार समवेत हुए तब हमने स्वयं अल्पसंख्यकों के दृष्टिकोण में महान् अन्तर पाया। डाक्टर मुखर्जी ने प्रस्ताव किया कि विधान मंडल में जनसंख्या के आधार पर रक्षण सम्बन्धी खंड को हटा दिया जाये। जब यह सुझाव पेश किया गया, तब श्री मुनिस्वामी पिल्ले ने, जो कि अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, इस आशय का एक संशोधन रखा कि रक्षण सम्बन्धी उपबंध, जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, दस वर्ष के लिये रहने दिया जाये। परामर्शदातृ समिति में साधारणत: सदस्यों की राय, जो कि लगभग एकमत थी, यह थी कि यह रक्षण, जहां तक कि अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, उस कालावधि के लिये जारी रखा जाये तथा श्री मुनिस्वामी पिल्ले का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। सिख प्रतिनिधियों ने एक सुझाव रखा जो किसी हद तक पिछली स्थिति पर एक सुधार था। उस सुझाव का चाहे कुछ भी उद्देश्य हो, फिर भी परामर्शदातृ समिति ने सिखों के सुझाव पर उपयुक्त विचार करना उचित समझा, क्योंकि समिति के सदस्यों को, सिख सम्प्रदाय की, जो कि पंजाब के विभाजन से बहुत दु:ख उठा चुका है, भावनाओं तथा भावुकता के लिये सदा एक विशेष प्रकार के उत्तरदायित्व का अनुभव होता रहा है। पूरे वाद-विवाद के बाद, समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सिखों ने रक्षण समाप्त करना स्वीकार करने का जो सुझाव मान लिया है वह बहुत सुधार है। यद्यपि इसके साथ एक दूसरा प्रस्ताव लगा दिया गया है जो वास्तव में उन्हें कुछ शर्तों पर रक्षण दे देता है और जिससे इस सुझाव का महत्त्व कम हो जाता है। समस्त स्थिति पर विचार करके समिति इस परिणाम पर पहुंची कि ऐसा समय आ गया है कि अल्पसंख्यक सम्प्रदायों ने बहुत सोच समझ के पश्चात् यह समझ लिया है कि अल्पसंख्यक सम्प्रदायों पर ही अतीत में ऐसे रक्षणों का बुरा प्रभाव पड़ा था और रक्षणों को हटा देना चाहिये।

परामर्शदातृ समिति के लगभग चालीस सदस्यों के सदन में, इस सुझाव के विरुद्ध केवल एकमात्र मत था। अत: हमने सोचा कि यद्यपि इस सभा ने अगस्त 1947 में उन सुझावों को स्वीकार कर लिया था, पर अब हमारा और सदन का कर्त्तव्य है कि हम इस सभा को यह परामर्श दें कि वह स्थिति पर पुनर्विचार करे और हम सभा के समक्ष ऐसा सुझाव रखें जो सभा के उद्घोषित सिद्धांतों के अनुकूल हो, जिनके अनुसार हमें एक शुद्ध लोकतंत्रात्मक राज्य स्थापित करना है जो शुद्धत: राष्ट्रीय सिद्धांतों पर आधारित होगा। अत: जब हमने परिवर्तित वातावरण पाया तो हमने यह अपना कर्त्तव्य समझा कि इस सभा में उस पूर्ववर्त्ती निर्णय को बदलने का सुझाव रखें, जो कि अस्थायी था, जैसा कि इस सभा ने कई बार कहा था। इन परिस्थतियों के ही अन्तर्गत यह सुझाव इस सभा में पेश किये गये हैं।

जहां तक सिख सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, केवल एक ही सुझाव है जो वस्तुत: उस सिद्धांत से भिन्न नहीं है जो परामर्शदातृ समिति ने रखा है, क्योंकि परामर्शदातृ समिति ने श्री मुन्स्विामी पिल्ले का संशोधन भी स्वीकार कर लिया कि अनुसूचित जातियों के लिये रक्षण जारी रहना चाहिए। सिखों ने स्वयं यह सोचा कि उनमें से कुछ वर्ग ऐसे हैं जिन्होंने

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

अभी कुछ समय पहले ही धर्म परिवर्तन किया है, जो पहले अनुसूचित जातियों के हिन्दू थे और जो भी उन निर्योग्यताओं से दु:ख उठा रहे हैं जिनसे कि हिन्दू सम्प्रदाय के दोष के कारण अनुसूचित जातियों के हिन्दू पीड़ित हैं सिख लोग तो सिख सम्प्रदाय के दोष के कारण ही पीड़ित हैं किसी अन्य के कारण नहीं। वास्तव में, सच्ची बात तो यह है, कि ये धर्म परिवर्तित लोग अनुसूचित जातियां नहीं हैं या नहीं कहलानी चाहियें, क्योंकि सिख मत में अछूतपन नाम की कोई वस्तु नहीं है और न वर्गों का कोई अन्तर या वर्गीकरण है। किन्तु, इस देश में दुर्भाग्यवश हिन्दू धर्म में कुछ रूढ़ियों तथा पक्षपात का कुप्रभाव है, जो समाज में घुस आई हैं, इसी प्रकार हिन्दूओं के सुधरे हुए सम्प्रदाय में भी, जोकि सिख पंथ कहलाता है, समयानुसार किसी हद तक पतन हो गया है। वे एक भ्रांति में फंसे हुए हैं जिसे भय-भ्रांति कहते हैं। वे अनुभव करते हैं कि यदि इन अनुसूचित जातियों को, जो सिख मत ग्रहण कर चुके हैं, वे ही विशेषाधिकार नहीं दिये गये, जो कि अनुसूचित जातियों को, जो दिये गये हैं, तो यह सम्भावना है कि वे पुन: हिन्दू अनुसूचित जातियां बन जायें तथा उनमें विलीन हो जायें। अत: सभा के यह समझ में आ गया होगा, और मैं सभा से कुछ नहीं छिपाना चाहता, कि धर्म राजनैतिक प्रयोजनों के लिये केवल एक बहाना है, एक आड़ है। वास्तव में उच्च सिख धर्म ऐसा नहीं है जो वर्गभेद को मान्यता दे। यह मानना चाहिये कि आज सिखों को कई कारणों से दु:ख उठाना पड़ा है और उनके मस्तिष्क की वर्तमान स्थिति पर विचार करने में हमें बहुत कोमल भावनायें रखनी चाहियें और यथासम्भव उस स्थिति के उपचार के लिये उपबंध करना चाहिये। इसीलिये जब ये प्रस्ताव हमारे समक्ष आये तब मैंने वास्तव में उन्हें बलपूर्वक समझाया कि आप अपने धर्म को इतना मत गिराइये कि आप इतने नीचे गिर जायें कि कुछ थोड़ी-सी शाक-भाजी के लिये अपने धर्म के तत्व को छोड़ दें। किन्तु वे नहीं माने। अत: हम ज्यादा से ज्यादा यही कर सकते हैं कि उनकी जाति के उन लोगों को जो यह आरक्षण चाहते हैं हम अनुसूचित जातियों की श्रेणी में जाने के लिये कह दें। ये लोग अब अनुसूचित जातियों के साथ मिलने के लिये तैयार हो गये हैं; जो सिख सम्प्रदाय के लिये अच्छी चीज नहीं है, किन्तु फिर भी वे ऐसा चाहते हैं और हम अनुभव करते हैं कि कुछ समय के लिये, हम उनके लिये यह रियायत दे देंगे। सिद्धांततया यह स्थिति युक्तियुक्त है। वे सब अनुसूचित जातियां कहलायेंगी, रामदासी और तीन चार दूसरे, जो भी नाम हों, वे सब एक अनुसूचित जाति कहलायेंगे। सिख उन्हें अनूसूचित जाति सिख कह सकते हैं। आखिर, धर्म की दृष्टि में, ईश्वर की दृष्टि में और बुद्धिमान लोगों की दृष्टि में, वे सब एक ही हैं। ये रियायतें जनता के वर्ग विशेष के लिये रखी गई हैं, इसलिये, यद्यपि अनुसूचित जातियों के लोगों की ओर से भारी विरोध किया गया, उन्हें भी स्वभावत: यह आशंका थी और न्यायपूर्ण भय-भ्रांति थी कि यदि वे इसे मान गये या सभा ने इस स्थिति को स्वीकार कर लिया तो उनके वर्ग में से बलात् धर्म परिवर्तन द्वारा अनुसूचित जाति सिखों में लोगों के चले जाने का वास्तविक खतरा है, फिर भी हमने इसे स्वीकार कर लिया। अब हमारा उद्देश्य यह है, अथवा सभा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र और यथाशक्य द्रुतगति से इस श्रेणी विभाजन तथा अंतरों को समाप्त कर दें और सबको समानता के स्तर पर ले आयें। अतएव, चाहे स्थायी रूप में हम इसे मान्यता दे दें, यह बहुसंख्यकों का कर्त्तव्य है कि अपनी उदारता से अल्पसंख्यकों में भरोसे की भावना पैदा

करें, और इसी प्रकार अल्पसंख्यक सम्प्रदायों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे अतीत को भूल जायें और इस पर विचार करें कि अच्छाई की उस भावना के कारण, जोकि विदेशियों के विचार में सम्प्रदाय और सम्प्रदाय के बीच संतुलन रखने के लिये अपेक्षित थी, देश को कितनी हानि उठानी पड़ी है। इससे वर्गों तथा सम्प्रदायों में विभाग तथा उप विभाग बन गये हैं, जो उन्होंने अपनी न्याय भावना के अनुसार पैदा करना ठीक समझा, कोई स्वार्थ इसमें बताने की बात तो अलग ही है। हमने, स्वतंत्र भारत की आधारशिला रखने का उत्तरदायित्व लिया है जो हमारा सबका प्रयत्न होगा और होना चाहिये, बहुसंख्यकों का भी और अल्संख्यकों का भी—पर मुख्यत: बहुसंख्यकों का—यही प्रयत्न होना चाहिये। अत: हमें उस स्थिति के अनुसार कार्य करना चाहिये जिसकी कि हमसे आशा की जाती है और ऐसा वातावरण पैदा करना चाहिये जिसमें जितनी जल्दी ये वर्ग विभाजन समाप्त हो जाये उतना ही अच्छा हो। अत: मैं सभा से, विशेषत: अनुसूचित जातियों से अनुरोध करता हूं कि वे इस रियायत पर, जो कि सिखों को दी गई है, कोई गुस्सा या स्पर्धा न करें, मैं मानता हूं कि यह रियायत ही है। सिखों के अपने हित में ही यह अच्छी बात नहीं है। किन्तु जब तक सिखों को यह विश्वास न हो जाये कि यह गलत है, तब तक मैं उन्हें यह छूट देना चाहता हूं, किन्तु यह हमारे मतानुसार न्यायपूर्ण सम्बन्धों के सिद्धांतों से असंगत नहीं होनी चाहिये। जहां तक दूसरे सम्प्रदायों का सम्बन्ध है, मेरे ख्याल में जब हम परामर्शदातृ समिति में समवेत हुए थे, जबकि ये सुझाव अल्पसंख्यकों की ओर से, विशेषत: मुस्लिमों की ओर से पेश हुए थे, तब पर्याप्त समय दिया गया था कि वे अपने निर्वाचन क्षेत्रों से, अपने सम्प्रदायों से और अन्य सम्प्रदायों से भी राय कर लेते। हमारी यह इच्छा नहीं है कि किसी जल्दी में किसी सम्प्रदाय को किसी बात के लिये वचनबद्ध करें। यदि वे वास्तव में ईमानदारी से इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इस देश की परिवर्तित स्थिति में, यह सबके हित में है हम एक असाम्प्रदायिक राज्य का सच्चा और असली शिलान्यास करें, तो अल्पसंख्यकों के लिये सबसे अच्छा यही है कि वे बहुसंख्यकों की सद्भावना तथा न्यायबुद्धि पर विश्वास करें, और उन पर भरोसा करें। इसी प्रकार हमारा भी जोकि बहुसंख्या में हैं, कर्त्तव्य है कि हम इस पर विचार करें कि अल्पसंख्यकों की क्या भावना है और यदि हमारे साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा कि उनके साथ होता है तो हमारी क्या भावनायें होंगी। किन्तु दूरकाल में यही सबके हित में होगा कि वे भूल जायें कि इस देश में बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक जैसी कोई वस्तु है और यही समझें कि भारत में केवल एक ही सम्प्रदाय है (*साधु, साधु*)। श्रीमान्, इन विचारों के साथ मैं निम्न रूप में प्रस्ताव करता हूं कि परामर्शदातृ समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया जाये:

> ''निश्चय किया जाता है कि संविधान सभा अपने 24 जनवरी सन् 1947 ई. के प्रस्तावानुसार नियुक्त परामर्शदातृ समिति द्वारा प्रस्तुत की हुई, तारीख 11 मई सन् 1949 ई. के प्रतिवेदन पर विचार आरम्भ करे जो अल्पसंख्यकों के कतिपय राजनैतिक अभिरक्षणों के बारे में है।

यह भी निश्चय किया जाता है—

1. कि इस सम्बन्ध में संविधान सभा द्वारा अब तक किये गये निर्णयों के बावजूद भारतीय संविधान के मसौदे के भाग 14 के उपबंधों को इस प्रकार संशोधित

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

किया जाये कि उक्त प्रतिवेदन में दी हुई, परामर्शदातृ समिति की सिफरिशों को कार्यान्वित किया जा सके; और

2. कि पूर्वी पंजाब की निम्नलिखित जातियों को अर्थात् मजहबी, रामदासी, कबीरपंथी और सिकलीगरों को प्रान्त की अनुसूचित जातियों की तालिका में शामिल किया जाये ताकि ये भी विधान मंडलों में अनूसूचित जातियों को दिये गये प्रतिनिधान के लाभ के अधिकारी हो सकें।''

***अध्यक्ष:** मुझे कुछ संशोधनों की सूचना प्राप्त हुई है। किन्तु मेरे विचार में ये संशोधन तब पेश होंगे जब हम प्रतिवेदन पर विचार करने के सम्बन्ध में इस प्रस्ताव को निबटा लें। वे दूसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में पेश होंगे जो मेरे विचार में माननीय सरदार पटेल बाद में पेश करेंगे। क्या यही बात है?

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): दूसरा भाग भी इसी प्रस्ताव का एक भाग है। यह तो एक ही है। उन पर इकट्ठे ही विचार करना होगा।

***अध्यक्ष:** तब मैं मान लेता हूं कि दोनों भाग पेश हो चुके हैं और इसलिये हम इस समय दोनों संशोधनों पर विचार कर सकते हैं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस प्रतिवेदन पर विचार करने के प्रस्ताव पर, इस समय संशोधनों को लिये बिना, व्यापक रूप से विचार किया जा सकता है? मैं जानना चाहता हूं कि क्या हम इस पर व्यापक वाद-विवाद कर सकते हैं?

***अध्यक्ष:** केवल एक ही प्रस्ताव है जो दो भागों में है और मैंने निर्णय दे दिया है कि दोनों को साथ लिया जाये। अतएव सारा प्रस्ताव, जिसमें दोनों भाग हैं, पेश हो चुका है और हम संशोधनों को लेंगे और बाद में हम मुख्य प्रस्ताव पर तथा संशोधनों पर भी बहस कर सकते हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल खां** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, इससे पहले कि आप संशोधनों के प्रस्तावकों से अपने प्रस्ताव पेश करने के लिये कहें, क्या मैं जान सकता हूं, कि विधान मंडल में अल्पसंख्यकों वे प्रतिनिधित्व के समस्त प्रश्न पर वाद-विवाद हो सकता है अथवा अल्पसंख्यकों के उपबंधित स्थानों के रक्षण सम्बन्धी पिछले प्रतिवेदन पर पुनर्विचार के सवाल पर ही बहस हो सकती है?

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि मेरे माननीय मित्र श्री इस्माइल के प्रश्न का यह आशय है कि इस विषय के सारे सरगम पर वाद-विवाद हो। इस प्रश्न का समस्त इतिहास सदन के समक्ष नहीं है। हां, अपने भाषण में माननीय सदस्य वैसे ही उन परिस्थितियों की चर्चा कर सकते हैं जिनके फलस्वरूप यह परिवर्तन हुआ है। किन्तु नि:संदेह हम यहां बैठकर उन सब बातों पर तथ्यपूर्ण प्रस्ताव के रूप में बहस नहीं करने जा रहे हैं जो 1947 से अब तक हुई हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है, मैं नहीं जानता कि क्या सभा इस प्रस्ताव पर वाद-विवाद कर सकती है। प्रस्ताव की भाषा ऐसी है कि उसमें संशोधन पेश हो ही नहीं सकते। विद्यमान रूप में प्रस्ताव संविधान के मसौदे का संशोधन नहीं है। प्रस्ताव की ऐसी रचना की गई है कि इसे संविधान में शामिल नहीं किया जा सकता। इसमें तो मसौदा-समिति से प्रार्थना की गई है कि वह खंडों की रचना को बदलकर कुछ परिवर्तनों को स्थान दे दें। वर्तमान रूप में प्रस्ताव के दोनों भागों को लें तो इस पर केवल व्यापक वाद-विवाद हो सकता है हम उस पर इस प्रकार संशोधन पेश नहीं कर सकते जैसे कि यह संविधान के मसौदे का भाग हो।

***अध्यक्ष:** यह प्रस्ताव संविधान के मसौदे के अंग के रूप में, सभा के समक्ष, नहीं रखा गया है। पहले परामर्शदातृ समिति ने तथा सभा ने कुछ विनिश्चय किये थे। ऐसा विचार किया गया कि हाल ही में परामर्शदातृ समिति ने जो प्रतिवेदन दिया है वह पहले सभा के समक्ष विचारार्थ पेश किया जाना चाहिये। यदि उस प्रतिवेदन को सभा स्वीकार कर ले तो बाद में संविधान के मस्विदे में आवश्यक संशोधन कर दिये जायेंगे। इस समय हम परामर्शदातृ समिति की 11 तारीख की रिपोर्ट पर ही विचार कर रहे हैं। संविधान के मसौदे में संशोधन करने का प्रश्न बाद में उठेगा। यह तो उस प्रतिवेदन पर साधारण बहस ही है और क्योंकि उस प्रतिवेदन के अनुसार पूर्व निश्चित कुछ बातों के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन होने हैं अत: ये परिवर्तन भी प्रस्ताव के दूसरे भाग में दिखाये गये हैं। यदि ये परिवर्तन स्वीकार कर लिये जायेंगे तो मसौदे में तदनुसार संशोधन कर दिया जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** फिर तो मैं समझता हूं कि हम जो वाद-विवाद करने वाले हैं वह एक प्रकार का व्यापक वाद-विवाद होगा।

***अध्यक्ष:** पहले प्रस्ताव पर संशोधन पेश होंगे, फिर व्यापक वाद-विवाद होगा।

***श्री मुहम्मद इस्माइल खां:** श्रीमान्, संविधान सभा की गत बैठक में सारे प्रश्न पर वाद-विवाद हुआ था। यह विनिश्चय किया गया था कि अल्पसंख्यकों के लिये स्थानों का रक्षण किया जायेगा। यदि सुझाव यह हो कि रक्षण को हटा दिया जाये, तो क्या इससे समस्त प्रश्न पर फिर से बहस हो सकती है कि अल्पसंख्यकों का विधान मंडलों के लिये चुनाव कैसे हो? अथवा, क्या वाद-विवाद इस बात तक ही सीमित है कि रक्षण को रखा जाये या नहीं?

***अध्यक्ष:** इस समय परामर्शदातृ समिति का प्रतिवेदन केवल रक्षण के प्रश्न तक ही सीमित है, इसलिये इस समय हम केवल उसे ही ले सकते हैं।

***श्री मुहम्मद इस्माइल खां:** श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि उसके अलावा सारे संशोधन अनियमित होंगे।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, किसी विनिश्चय पर, जो कि पहले किया जा चुका हो, कार्यप्रणाली के नियमों के नियम 32 के अनुसार ही फिर

[श्री जसपतराय कपूर]

से बहस हो सकती है। उस नियम में लिखा है कि कोई प्रश्न, जिस पर एक विनिश्चय हो चुका, दुबारा उठाया नहीं जा सकता, जब तक कि उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के एक-चौथाई सदस्य सहमत न हो जायें। अतएव, श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि केवल उसी प्रश्न पर पुनः बहस हो सकती है जिस पर आज उपस्थित सदस्यों के एक-चौथाई सहमत हो जायें। जब हम श्री इस्माइल द्वारा भेजे गये संशोधन पर आते हैं तो यह प्रश्न उठता है कि इसके कौन-कौन से भाग ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में आज उपस्थित सदस्यों के कम से कम चतुर्थांश पुनर्विचार के लिये तैयार हैं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि वह प्रश्न उठेगा। मुझे पूरा विश्वास है कि चतुर्थांश से अधिक, वास्तव में सभा का बहुमत, परिवर्तनों के पक्ष में है।

***श्री जसपतराय कपूरः** यह ठीक है, श्रीमान्, जहां तक कि माननीय सरदार पटेल द्वारा सभा के समक्ष पेश किये गये प्रस्ताव का सम्बन्ध है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि सरदार पटेल द्वारा सिफारिश किये हुए रूप में पुनर्विचार करने के प्रश्न पर जो लगभग समूची सभा सहमत हो जायेगी। मेरे माननीय मित्र श्री इस्माइल ने जो प्रश्न उठाया है कि क्या कोई ऐसे मामले पर, जो प्रतिवेदन में नहीं हो, विचार किया जा सकता है, उस विषय में मेरा निवेदन यह है कि उस पर तभी विचार किया जा सकता है जब यहां उपस्थित 25 प्रतिशत सदस्य सहमत हो जायें।

***अध्यक्षः** जब यह प्रश्न उठेगा तब हम उस पर विचार करेंगे।

***मि. बी. पोकर साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, जो औचित्य प्रश्न उठाया गया है, उस पर मैं यह कहना चाहता हूं। विद्यमान प्रस्ताव के अधीन सभा द्वारा पहले विनिश्चित रक्षणों को हटा देने का सुझाव है और यह रक्षण इस तथ्य पर आधारित है कि अल्पसंख्यकों के लिये अपनी शिकायत पेश करने का कोई उपाय होना चाहिये। उसी उद्देश्य से पृथक् प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भी बल दिया गया था। जब यह लक्षण समाप्त हो जाता है तो विधान मंडल में अपना प्रतिनिधित्व कराने का एकमात्र अवसर भी चला जाता है। अतः पृथक् प्रतिनिधित्व का प्रश्न इस प्रतिवेदन पर विचार करते समय स्वयं उठ जाता है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मुझे आपको धन्यवाद देना है कि आपने मुझे तथा मेरे मित्रों को सभा के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न रखने का अवसर दिया है जिसमें अल्पसंख्यकों को, केवल मुस्लिमों को ही नहीं, वरन् अन्य अल्पसंख्यकों को भी अत्यन्त दिलचस्पी है। मैं सर्वप्रथम संशोधन को पेश करता हूं जो मेरे नाम में तथा मेरे मित्रों के नाम में है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

(क) कि प्रस्ताव की दूसरी कण्डिका की उप-कण्डिका (1) को हटा दिया जाये, तथा उप-कण्डिका (2) की संख्या बदलकर उप-कण्डिका (1) कर दिया जाये।

(ख) इस प्रकार निर्मित उप-कण्डिका (1) के अनुसार निम्न उप-कण्डिकायें जोड़ी जायें:

''(2) कि देश के केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मंडलों में मुस्लिमों तथा अन्य अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिये जनसंख्या के आधार पर स्थानों के रक्षण के सिद्धांत की परिपुष्टि की जाये तथा उसे जारी रखा जाये; और

(3) कि इस सम्बन्ध में इस सभा द्वारा पहले किये गये किसी विनिश्चयों के होते हुए भी, संविधान के मस्विदे के भाग 14 को तथा किसी अन्य सम्बद्ध अनुच्छेद को इस प्रकार संशोधित किया जाये कि यह पक्का हो जाये कि उपरोक्त उपखंड (2) के अनुसार रक्षित स्थान उसी सम्प्रदाय के लोगों से भरे जायेंगे, जो कि उसी अल्पसंख्यक जाति के मतदाताओं के निर्वाचन-मंडलों द्वारा चुने जायें।''

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान्, मैंने नियम 32 को ध्यान में रखते हुए इस संशोधन के भाग (ख) के खंड (3) को पेश करने पर आपत्ति की थी। हमने पहले ही एक बार यह निश्चय किया था कि संयुक्त निर्वाचक मंडल होंगे और पृथक् निर्वाचक मंडल नहीं होंगे। मेरा निवेदन है कि इस विनिश्चय पर तब तक पुनर्विचार नहीं किया जा सकता है जब तक कि आज उपस्थित 25 प्रतिशत सदस्य इस पर सहमत न हों। मेरा निवेदन है कि नियम 32 स्पष्टत हमारे मार्ग में अड़ता है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिबः** श्रीमान्, निवेदन यह है कि अल्पसंख्यकों के समस्त प्रश्न पर, वास्तव में हमारे समक्ष पेश की गई रिपोर्ट तथा प्रस्ताव से पुनर्विचार आरम्भ हो गया है। अतएव मेरा संशोधन उस सुझाव का केवल समुचित भाग ही है, जिसने कि समूचे प्रश्न को उठा दिया है। जब सभा के विनिश्चय का उस भाग पर जो अल्पसंख्यकों के लिये स्थानों के रक्षण से सम्बद्ध है, पुनर्विचार आरम्भ हो गया है तो दूसरे भाग पर भी पुनर्विचार आरम्भ हो जाता है। अतएव मैं नहीं समझता कि इस सम्बन्ध में सभा के किसी नियम का उल्लंघन होता है। इसलिये, श्रीमान, मैं आपकी अनुमति से अपने संशोधन पर, जो कुछ मुझे कहना है, कह सकता हूं।

जैसे कि मैं कह रहा था, पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल पर प्रभाव डालने वाली अल्पसंख्यक समस्याओं पर प्रतिवेदन देने के लिये नियुक्त उपसमिति गत वर्ष 23 नवम्बर को समवेत हुई तथा उसने सिफारिश की कि इस सभा ने अगस्त 1947 में अन्य प्रान्तों के लिये जो प्रबंध मंजूर किये हैं, वे ही इन प्रान्तों पर भी लागू किये जायें और कोई परिवर्तन करना अपेक्षित नहीं है। इस प्रतिवेदन पर विचार करते समय परामर्शदातृ समिति ने सारे प्रश्न पर भी पुनर्विचार कर डाला। श्रीमान्, मैं समिति की कार्यवाही पर जरा भी आपत्ति नहीं करता। मैं तो यही चाहता हूं कि अल्पसंख्यकों तथा उनके लिये आरक्षणों के प्रश्न पर भी पुनर्विचार किया जाये, जिसमें कि पृथक् निर्वाचक मंडलों का प्रश्न भी, जोकि इस प्रश्न का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा स्वाभाविक भाग है, शामिल है।

***अध्यक्ष:** क्या मैं पहले इस औचित्य प्रश्न को, जो श्री कपूर ने उठाया है, निबटा दूं? क्या कोई अन्य सदस्य इस औचित्य प्रश्न पर कुछ कहना चाहता है?

***श्री जैड.एच. लारी:** अध्यक्ष महोदय, माननीय सरदार पटेल द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का उद्देश्य अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व तथा उनके लिये राजनैतिक आरक्षणों के प्रश्न को पुन: उठाना है। एक बार विधान मंडलों में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न पुन: उठ जाता है, तो केवल रक्षणों के हटाने का प्रश्न ही नहीं, प्रस्तुत सारे सम्बद्ध विषय अवश्यमेव पुन: उठ जाते हैं। आप स्थानों के रक्षण को हटाने के प्रश्न पर तब तक विचार नहीं कर सकते, जब तक कि आप यह विचार न करें कि उनका प्रतिनिधित्व किस प्रकार होना है। अतएव, मेरा निवेदन यह है कि यदि सभा अल्पसंख्यकों के लिये राजनैतिक आरक्षणों पर विचार करने के लिये तैयार है, तो यह किसी सदस्य को अधिकार है कि वह विधान मंडलों में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में और राजनैतिक आरक्षणों के सम्बन्ध में कोई संशोधन पेश कर सके। अतएव, मेरा ख्याल है कि समस्त संशोधन, जिनकी कि सूचना दी गई है, प्रसंगानुकूल है और उन्हें पेश करने की अनुमति मिल जानी चाहिये।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या एक बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर सकता हूं? 27 अगस्त 1947 को श्री पोकर ने निम्न रूप में एक संशोधन पेश किया था।

> ''अल्पसंख्यकों, मूलाधिकारों आदि सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति के प्रतिवेदन पर, जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों के विषय में था, विचार करने पर संविधान सभा का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मंडलों के समस्त चुनाव, जहां तक मुस्लिमों का सम्बन्ध है, पृथक् निर्वाचक-मंडलों के आधार पर होने चाहिये।''

सभा ने इस विशिष्ट प्रस्ताव को रद्द कर दिया था। इस बात को ध्यान में रखते हुए तथा नियम 32 को ध्यान में रखते हुए, जो इस सभा की कार्यवाहियों का आनियमन करता है, मेरे विचार में यह संशोधन अनियमित होगा, जब तक कि इस सभा के 25 प्रतिशत सदस्य सहमत न हो जायें।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, इस औचित्य प्रश्न पर मैं उन बातों से सहमत हूं जो श्री लारी ने कही हैं। श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि इस प्रतिवेदन पर विचार करने में हम उन विनिश्चयों को बदल रहे हैं जो कि हम पहले ही कर चुके हैं। मेरे माननीय मित्र श्री कपूर ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है वह सरदार पटेल के प्रस्ताव पर भी उतना ही लागू होता है जितना कि श्री इस्माइल के संशोधन पर लागू होता है। यदि प्रस्ताव के विषय में सभा का पूर्ववर्त्ती निर्णय बदला जा सकता है तो उस प्रस्ताव पर संशोधन के सम्बन्ध में ऐसा क्यों नहीं किया जा सकता? इसके अतिरिक्त यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है अत: समुचित संशोधनों को पेश करने के लिये प्रत्येक अवसर दिया जाना चाहिये। इस महत्त्वपूर्ण मामले पर मैं राष्ट्र के प्रतिनिधियों से स्पष्ट निर्णय चाहता हूं। अतएव, मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि ऐसे संशोधनों की केवल अनुमति ही नहीं दी जानी चाहिये, अपितु सभा को उनका स्वागत करना चाहिये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, अभी जो संशोधन पेश हुआ है वह तो प्रस्ताव का पूर्ण निराकरण ही है और मैं आपका निर्णय चाहता हूं कि क्या यह संशोधन के रूप में पेश हो भी सकता है?

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब:** श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि जब सभा ने माननीय सरदार पटेल को इस प्रस्ताव के पेश करने की अनुमति दी तो, मेरे विचार में, इसने मेरे संशोधन के लिये भी अनुमति दे दी, क्योंकि सरदार के प्रस्ताव में ऐसे प्रश्न को पुन: उठाया गया है जिस पर पहले एक बार सभा विनिश्चय कर चुकी है। जब उस विनिश्चय के एक महत्त्वपूर्ण भाग पर पुन: विचार किया जाता है, तो श्रीमान्, मेरे विचार में, उससे दूसरा भाग अपने आप विचारार्थ प्रस्तुत हो जाता है।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में दो औचित्य प्रश्न उठाये गये हैं। पहला यह है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों के प्रश्न पर सभा पहले ही निर्णय कर चुकी है, और यह प्रश्न दुबारा नहीं उठाया जा सकता, जब तक कि एक चौथाई सदस्य इस पर सहमत न हो जायें। दूसरा प्रश्न, जो प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने उठाया है, यह है कि जो संशोधन पेश करने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है, वह मूल प्रस्ताव का नकारात्मक है इसलिये इसे संशोधन नहीं माना जा सकता।

पहले प्रश्न पर, मेरा ख्याल यह है कि उस समय सभा के समक्ष जो प्रस्ताव था उस पर श्री पोकर ने एक प्रस्ताव या उसी की तरह कोई चीज पेश की थी और उनको रद्द करके सभा ने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। उस समय स्वीकृत प्रस्ताव पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव आज पेश हो रहा है। अतएव, किसी संशोधन या ऐसी कोई चीज पर भी, जो उस मूल प्रस्ताव पर संशोधन के रूप में हो, वाद-विवाद हो सकता है। इसलिये मेरा निर्णय यह है कि जो पहला औचित्य प्रश्न उठाया है वह सिद्ध नहीं होता और संशोधन नियमित है।

जहां तक कि दूसरे औचित्य प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरे विचार में यह संशोधन नकारात्मक नहीं है क्योंकि स्वयं संशोधन में ही दूसरा एक उपाय सुझाया गया है और इसलिये वह नकारात्मक नहीं है। मेरा निर्णय यह है कि दूसरा औचित्य प्रश्न भी सिद्ध नहीं होता।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब:** अध्यक्ष महोदय, मैं कह रहा था कि जब परामर्शदातृ समिति पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब के प्रश्न पर विचार करने के लिये नियुक्त की गई विशिष्ट उपसमिति की सिफारिशों पर विचार कर रही थी, तब उसने सभी प्रान्तों के अल्पसंख्यकों के समस्त प्रश्न को फिर उठा दिया। जैसा कि मैंने कहा है, मुझे समिति की इस कार्यवाही पर जरा भी आपत्ति नहीं है। मैं केवल यही चाहता हूं कि अल्पसंख्यकों तथा उनके राजनैतिक आरक्षणों का समूचा प्रश्न एक बार पुन: सभा के समक्ष रख दिया जाना चाहिये, जिससे कि सभा, इस समय, जबकि यह संविधान को पारित करने की अन्तिम स्थिति में है, इस विषय पर सोच-समझकर पुनर्विचार कर सके।

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब]

यह ऐसा विषय है कि जिसका अल्पसंख्यकों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और इसलिये यह आवश्यक है कि सभा इस समय इस विषय पर पुनर्विचार करे। श्रीमान्, परामर्शदातृ समिति के प्रतिवेदन में उल्लेख है और इस पर माननीय सरदार पटेल ने व्याख्या भी की है कि अगस्त 1947 से जबकि सभा ने पिछला विनिश्चय किया था स्थितियां बहुत बदल गई हैं। प्रतिवेदन में यह भी कहा गया है कि यह अब उचित नहीं है कि अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के अतिरिक्त अल्पसंख्यकों के लिये वैधानिक रक्षण हो। मैं स्वीकार करता हूं कि स्थितियां बदल गई हैं, और संदेह तथा संशय तथा पक्षपात-भावनायें, जो विद्यमान थीं, अब तक व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हैं और वातावरण साफ हो गया है। मुसलमानों ने दिखा दिया है कि यह संदेह अनुपयुक्त तथा अकारण थे। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि वे देश की प्रतिरक्षा के लिये तथा मातृभूमि का सम्मान बनाये रखने के लिये सबसे आगे हैं। हां, श्रीमान्, देश में यही परिवर्तन हुआ है, किन्तु इस परिवर्तन से यह पक्ष सिद्ध नहीं होता कि मुस्लिमों और अन्य अल्पसंख्यकों के लिये यह थोड़े से संरक्षण भी हटा दिये जायें। दूसरी ओर इस परिवर्तन से यह सिद्ध होता है कि उन्हें अधिक अच्छे और सच्चे संरक्षण दिये जायें। मेरी यही राय है। अब जो स्थिति है उससे यह पता लगता है कि मुस्लिम स्पष्ट और खुले दिल के लोग हैं और वे जो कुछ कहते हैं वही उनका आशय होता है और कि वे जो कुछ अब तक कहते रहे हैं वही उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि अन्य कोई जनवर्ग मातृभूमि के जितने निष्ठावान्, नागरिक हैं उतने ही मुसलमान भी हैं।

श्रीमान्, यह कहना कि माननीय प्रधानमंत्री और माननीय सरदार पटेल और अध्यक्ष महोदय, आप भी न्याय तथा उदारता की भावना से ओतप्रोत हैं, और बात है। जनता के समस्त वर्ग आप पर पूरा भरोसा करते हैं यह एक बात है। किन्तु यह कहना कि सरकार के लोगों के प्रत्येक भाग में भी वही न्याय-भावना व्याप्त है, दूसरी बात है। जैसा कि मैंने कहा है, सरकार के प्रमुख सज्जन हैं और उनमें न्याय तथा उदारता की भावना है। किन्तु वे सब जगह नहीं जा सकते। वे प्रत्येक स्थान पर तथा प्रत्येक समय पर उपस्थित नहीं हो सकते। अतएव कई स्थानों पर ऐसी बातें होंगी जो जनता के कुछ वर्गों में असंतोष तथा निराशा पैदा कर सकती हैं। फिर, वे यह बातें सरकार के समक्ष कैसे रखें? क्या कोई कह सकता है कि इस प्रकार काम चलेगा कि सरकार के लोगों के प्रत्येक वर्ग द्वारा जनता के मामलों के प्रबंध के विषय में किसी को कोई शिकायत न रहे? स्पष्टतः ऐसा कोई दावा नहीं किया जा सकता। फिर, यदि कुछ भी हो, जनतंत्रात्मक राज्य में लोगों को शासन के प्रमुख तथा सामान्यतः सरकार के समक्ष अपनी शिकायतें पेश करने का अवसर तथा अधिकार मिलना चाहिये।

फिर, आगे चलकर प्रतिवेदन में कहा गया है कि समिति को संतोष है कि अल्पसंख्यकों की स्वयं यह भावना है कि स्थानों का वैधानिक रक्षण समाप्त कर दिया जाना चाहिये। मैं नहीं जानता कि समिति को यह संतुष्टि कैसे हो गई। जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, इस माननीय सदन के कुछ सदस्य रक्षण को समाप्त करने के लिये शायद तैयार हो गये हों। मैं इसे मानता हूं पर वह सहमति किस प्रकार की थी? जिस जाति का प्रतिनिधित्व वे करना चाहते हैं, उस जाति के सम्बन्ध में उनके कार्य किस प्रकार के हैं? उनमें से

कुछ ने तो उस दल को ही छोड़ दिया है जिसकी ओर से वे चुने गये हैं और जिसके बल पर वे सभा में आये थे। इस प्रकार उन्होंने अपने प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया है। अतएव, यह समझना कि वे मुसलमानों के अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि हैं, मेरे विचार में, ठीक नहीं है। मुझे पता है कि वे पिछले कुछ समय से इस सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रचार करते रहे हैं और अब हमारे समक्ष प्रतिवेदन आ गया है।

श्रीमान्, मेरा दावा है और मैं निश्चितरूपेण कहता हूं कि मुसलमान, समूचा सम्प्रदाय, रक्षण छोड़ने के पक्ष में नहीं है। इतना ही नहीं, वे इस सभा से प्रार्थना करते हैं कि पृथक् निर्वाचक मंडलों को रखा जाये, क्योंकि इसी से उन्हें विधान मंडलों में उचित प्रकार का प्रतिनिधित्व मिल सकता है। मुस्लिम लीग ने, जोकि अब भी मुस्लिम सम्प्रदाय की प्रतिनिधि संस्था है, इसी वर्ष एक बार से अधिक बार स्थानों के रक्षण के पक्ष में निश्चित विचार प्रकट किये हैं, किन्तु उसने पृथक् निर्वाचक-मंडलों को बनाये रखने के लिये भी जोर डाला है। जहां तक मुस्लिम अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है यही स्थिति है।

अब, यदि बहुसंख्यक जाति या शासनारूढ़ दल इन संरक्षणों को हटाना चाहता है तो वह दूसरी बात है। किन्तु मेरा निवेदन है कि अल्पसंख्यकों के कन्धों पर इन संरक्षणों को हटाने का उत्तरदायित्व डालना उचित नहीं है।

जब हमने यह प्रतिवेदन तथा अन्य एतद्सम साहित्य पढ़ा तो हमें यह ख्याल पैदा हुआ कि अल्पसंख्यकों की धार्मिक आधार पर आपत्ति की जा रही है। वास्तव में अन्य देशों में, विशेषत: यूरोप के देशों में, अल्पसंख्यक मुख्यत: भाषा और मूलवंश के आधार पर बनते हैं, किन्तु यहां हमारे देश में स्थिति मूलत: भिन्न है। यहां एक प्रकार के लोग दूसरे प्रकार के लोगों से मुख्यत: अपने धर्म के आधार पर ही भिन्न होते हैं। धर्म के अन्तर से जीवन में अन्तर आ जाता है और जीवन से सम्बद्ध मामलों और चीजों पर दृष्टिकोण में अन्तर आ जाता है। इस देश में मनुष्य को अपने धर्म के हिसाब से आंका जाता है। यहां तक कि मैं कह सकता हूं कि अनुसूचित जातियों का भी आधार धार्मिक विश्वास ही है। देश में जो धार्मिक भावनायें प्रचलित हैं उन्हीं के आधार पर वे अल्पसंख्यक जाति बन गये हैं श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि लोगों के एक वर्ग को दूसरे वर्ग से अलग करने के लिये धर्म को आधार बनाने में कोई हानि नहीं है। चाहे कुछ भी हो, इस देश में तो यही स्थिति है और हम इससे बच नहीं सकते। जब हम कहते हैं कि एक हिन्दू है और दूसरा मुसलमान है तो कोई इस बात से इन्कार नहीं कर सकता। है कि दोनों में अन्तर है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे एक दूसरे का गला काटने के लिये दौड़ें। इस अन्तर को ठीक करना है और वह ठीक हो सकता है। हम सामंजस्य ही चाहते हैं, भौतिक एकता या कठोर समन्वय नहीं। हम नहीं चाहते कि किसी देश की जनसंख्या में एक ही धर्म के उपासक हों। एकता के प्रवर्त्तकों का यह विचार नहीं है। एकता का अर्थ है सामंजस्य। संसार के अन्य भागों में भी लोगों के विविध वर्गों के विषय में जो अन्तर होते हैं उन्हें ठीक करना। सामंजस्य तभी सम्भव है जबकि सभी वर्ग संतुष्ट हों, खुश हों। यदि वे देखें कि उन्हें उनके अधिकार मिल रहे हैं, उन्हें तंग नहीं किया जा रहा, उनकी सुनी जाती है तथा उनके साथ मनुष्यों का सा व्यवहार होता है, तो शांति स्वयं हो जायेगी। बार-बार कहा जाता है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों से लोगों में झगड़ा

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब]

तथा शत्रुता पैदा होती रही है। क्या इन झगड़ों का कारण पृथक् निर्वाचक मंडल है श्रीमान्! अब तक कई वर्षों से पृथक् निर्वाचक मंडलों के आधार पर चुनाव होते रहे हैं। यदि वास्तव में जनसाधारण को इस प्रकार के निर्वाचनों पर गुस्सा होता, तो किसी और समय अधिक झगड़ा निर्वाचनों के समान होता। मैं चाहता हूं कि सभा के माननीय सदस्य मुझे बतायें कि क्या उन्होंने निर्वाचनों के समय इस प्रकार के झगड़ों, दंगों या उपद्रवों की चर्चा सुनी है। वस्तुस्थिति यह है कि जनसाधारण मानते हैं कि लोगों के विविध वर्गों को अपने-अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। अतएवं इस पर उन्हें क्षोभ नहीं है। मैं कहता हूं कि विधान मंडलों में अपने-अपने प्रतिनिधि भेजने के प्रत्येक वर्ग के इस अधिकार के कारण साधारणतः लोग गांवों में तथा अन्यत्र सुखपूर्वक मिल-जुलकर रहते रहे हैं। श्रीमान्, सदा लोग एक दूसरे का गला कांटने के लिये नहीं दौड़ते। यदि ऐसा होता और यदि यह पृथक् निर्वाचन मंडलों की पद्धति ही इसका कारण होती, तो उस पद्धति के कार्यान्वित करने के समय अर्थात् निर्वाचनों के समय ही विशेषतः झगड़े पैदा होते। तो फिर झगड़े की जड़ क्या है? झगड़े की जड़ यह है कि अल्पसंख्यक जो भी मांग करें उनका विरोध किया जाता है और मेरे विचार में जनसाधारण को उन मांगों के विरोध करने की आदत नहीं है, वरन् राजनैतिक दल ही यह सब कुछ किया करते हैं, क्योंकि राजनैतिक दलों के इस दृष्टिकोण की जड़ में शक्ति का प्रेम है। श्रीमान्, यूरोप के अन्य देशों में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष व्यवस्था की गई है, पोलैंड, यूगोस्लेविया, बुलगारिया, अलबानिया, यूनान, तुर्की आदि देश में ऐसा किया गया है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): क्या इन देशों में कहीं भी पृथक् निर्वाचक मंडल है?

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिबः** अलबानिया में, उस छोटे से देश में, केवल 10 लाख जनसंख्या वाले देश में, थोड़ी सी जनसंख्या के छोटे से देश में उन्होंने अल्पसंख्यकों के लिये एक प्रकार पृथक् निर्वाचन मंडल पद्धति को स्वीकार कर लिया है। वहां भी उन्हें आशंका नहीं है कि पृथक् निर्वाचक मंडल से देश और भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जायेगा। उन्होंने सोचा कि अल्पसंख्यकों के लिये ऐसा करना स्वाभाविक होगा। अन्य देशों में पृथक् निर्वाचन मंडलों का प्रश्न नहीं उठा, पर अल्पसंख्यकों ने जो भी सरंक्षण मांगे, वे उन्हें मिल गये। यह मुख्य बात है। उन्हें वे संरक्षण मिल गये जिनकी कि उन्हें देशों की स्थिति के अनुसार आवश्यकता थी। हमारे देश में, यहां जो स्थितियां हैं, उनके अंतर्गत पृथक् निर्वाचक मंडलों से ही अल्पसंख्यकों को संतोष हो सकता है और इसी से वे अन्य जातियों के साथ समानता का पद प्राप्त कर सकते हैं। यही कारण है कि इस देश में हम पृथक् निर्वाचक मंडलों के लिये प्रयत्न करते रहे हैं और हम उनको बनाये रखने के लिये आंदोलन करते रहे हैं। जब पश्चिमी देशों में निजी कानून, धार्मिक शिक्षण आदि विषयों में अल्पसंख्यकों के लिये विशेष व्यवस्था की थी और पश्चिम में निर्वाचन-सम्बन्धी मामलों में भी ऐसी व्यवस्था की भी, तब यह व्यवस्था राष्ट्रों की लीग में एकत्रित संसार के महान् नीतिज्ञों के नियंत्रण तथा तत्वाधान में की गई थी। यदि यह गलत बात होते तो क्या संसार के यह महान् राजनीतिज्ञ इन विशेष प्रबन्धों के लिये सहमत हो जाते विशेषतः

प्रथम विश्व युद्ध के बाद में? उनके विचार में ऐसी व्यवस्था में कोई बुराई नहीं है। यहां तक कि पोलैंड में रूथेनी लोगों के विषय में उन्होंने स्थानीय स्वशासन को भी स्वीकार कर लिया। संसार में महान् राजनीतिज्ञों के यह विचार उस समय थे, जबकि वे एक महानतम संकट से निकले ही थे। मेरा आशय प्रथम विश्व युद्ध से है। अतः श्रीमान्, इसमें कोई बुराई नहीं है यदि हम इस देश में पृथक् निर्वाचक-मंडलों की मांग करे। पहले तो हमारा देश ब्रिटिश-शासन के अधीन था। यह कहा जाता है और स्वतंत्र रूप से कहा जाता है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों की पद्धति का अंग्रेजो ने लोगों में फूट डालने और उन पर अपना साम्राज्य अटल बनाने के लिये ही आविष्कार किया था। किन्तु इस समय विदेशी यहां नहीं हैं। अब हम स्वतंत्र राष्ट्र हैं लोगों को पृथक् निर्वाचक-मंडलों का अधिकार मिले तभी यह सम्भव है कि उन लोगों के सच्चे प्रतिनिधि जाकर सरकार के समक्ष या विधान मंडल में या बहुसंख्यक सम्प्रदाय के समक्ष अपने विचार प्रकट कर सकें। वे तो केवल आत्म अभिव्यक्ति का अधिकार मांगते हैं। जो जिस विषय का आन्दोलन करें उनके विषय में निर्णय किसी प्रकार भी किया जा सकता है, किन्तु पृथक् निर्वाचक मंडलों का तो यही आशय है कि उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति का अधिकार मिले, और उसके साथ ही, समागम का अधिकार भी मिले। श्रीमान्, अब भी इसमें क्या हानि है कि सभा मेरी बात को सुने और मेरे विचारों को सुने? वे जिस प्रकार चाहें निर्णय कर सकते हैं, पर क्या उनसे यह सुनवाई का अधिकार भी छिन जाना चाहिये? कहा जाता है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों से पार्थक्य की भावना पैदा होती है और उसके विषय में कठोर बातें कही जा रही हैं। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि कठोर शब्दों का अर्थ युक्तियां नहीं होता। पृथक् निर्वाचक मंडलों का अर्थ पार्थक्य नहीं है, इसका अर्थ तो यह है कि लोगों के एक वर्ग और दूसरे वर्ग में भेदों को मान लिया जाये; इसका यह आशय है कि इन भेदों को मान्यता दी जानी चाहिये और जब वे भेद उभर आयें तो उन भेदों से पीड़ित लोगों के सच्चे प्रतिनिधियों की बात प्राधिकारियों द्वारा सुनी जानी चाहिये; इसका तो यही आशय है। अतएव, यह असल में सम्प्रदायों के पृथक्करण की योजना नहीं है। यह तो लोगों में समझौता कराने की योजना है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, लोगों का एक वर्ग दूसरे वर्ग के पास जायेगा, अल्पसंख्यक जाति अपने प्रतिनिधियों के द्वारा बहुसंख्यकों के पास जायेगी, सरकार और संसद के पास जायेगी। अतएव, इससे वास्तव में लोगों में सामंजस्य होता है पार्थक्य नहीं। मान लीजिये, आप जनसमूहों में इस अन्तर को मिटाना चाहते हैं, तो मैं सर्वप्रथम आपसे पूछता हूं कि क्या यह अपेक्षित है जैसा कि मैं कह चुका हूं, एकता का अर्थ सब लोगों का कठोर समन्वय नहीं है। यदि विद्यमान अल्पसंख्यक तथा उनके अन्तर समाप्त हो जायेंगे, तो लोगों में अन्य प्रकार के अन्तर तथा अन्य अल्पसंख्यक दिखाई देने लगेंगे। मानव जाति का यह स्वभाव है। हमें ऐसे अन्तर का अतीव समुचित उपाय से मुकाबला करना है और उन्हें ठीक करना है और अत्यन्त समुचित उपाय यही है कि सम्बद्ध लोगों को संतोष और तुष्टि प्रदान की जायें, हां, समुचित सीमाओं तथा हदों में ही यह होगा। अतएव मैं कहता हूं कि ऐसे अन्तरों को दूर करना अपेक्षित नहीं है। यह ठीक भी नहीं है, क्योंकि यह तो बाध्य करने का मामला है यदि लोगों के एक वर्ग से कहा जाये कि वे अपनी जीवन-प्रणाली के कुछ अन्तरों का परित्याग कर दें।

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब]

तब, श्रीमान्, यदि यह भी मान लिया जाये कि आप ऐसे अन्तरों को मिटा देने पर हठ करते हैं, तो क्या आप उन भेदों की उपेक्षा करके उन्हें मिटा सकते हैं, क्योंकि पृथक् निर्वाचक मंडलों को हटाने का अर्थ है कि लोगों के वर्गों में जो अन्तर वर्तमान है उनकी अवहेलना कर दी जाये? श्रीमान्, नि:संदेह, उन अन्तरों के समाधान का यह उपाय नहीं है कि उनकी उपेक्षा कर दी जाये और उन्हें भूलने का प्रयत्न किया जाये। इससे लोगों में असंतोष तथा उत्पीड़न की भावना उत्पन्न होगी तथा बढ़ेगी, जो किसी के लिये हितकर नहीं है।

श्रीमान्, विधान मंडलों में अनुसूचित जातियों को स्थानों के रक्षण का संरक्षण दिया गया है और यह ठीक ही किया गया है। वे इसके योग्य हैं; वे युगों से कई कठिनाइयों तथा दमन के शिकार होते रहे हैं, इसलिये जब हम स्वतंत्रता के संसार में प्रवेश कर रहे हैं, तो यह ठीक ही है कि उन्हें भी संसार के समक्ष आने की ओर इच्छानुसार कुछ भी कहने की स्वतंत्रता दी जाये। अतएव, श्रीमान्, इस समिति ने अनुसूचित जातियों के लिये स्थान रक्षण बनाये रखने की सिफारिश करके उचित ही कार्य किया है। किन्तु बहुसंख्यक सम्प्रदाय की ओर से कहा जाता है कि वे उसी सम्प्रदाय के अंग हैं, वे उसी संस्कृति और धर्म के उपासक हैं और वे उसी मूलवंश के हैं, फिर भी, श्रीमान्, यह उचित समझा गया कि उन्हें स्थानों के रक्षण का पृथक् संरक्षण दिया जाये। श्रीमान्, जब यह न्यायपूर्ण है तो क्या अन्य सम्प्रदायों के सम्बन्ध में, जोकि बहुसंख्यक दल से स्वीकृतरूपेण भिन्न हैं, यह और भी अधिक न्यायोचित नहीं है? श्रीमान्, यह दिखाई दे सकता है कि यह कार्य प्रतिहिंसा की भावना पर आधारित है, पर कुभावना या प्रतिहिंसा की कोई भी व्यवस्था चिरस्थायी नहीं हो सकती। मैं चाहता हूं कि सभा इस पहलू पर विचार करे। मुसलमान भी अन्य सम्प्रदायों के समान इस देश में, जो कि उनकी मातृभूमि है, समन्वय, समृद्धि और सुख की धारा बहाने के लिये प्रभावी रूप में तथा कुशलता से अंशदान देना चाहते हैं और इस अभिप्राय से वे दूसरों के ही समान अवसर प्राप्त करना चाहते हैं, वे इस देश की जनता का माननीय अंग बनना चाहते हैं अन्य अंगों के समान ही माननीय अंग; वे चाहते हैं कि स्वतंत्रता के युग में उन्हें भी अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता मिले। श्रीमान्, यह कहा जा सकता है कि वे उन प्रतिनिधियों के द्वारा अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं जिन्हें सब जनता ने मिलकर चुना है। मान लीजिये कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय तथा अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के बीच मतभेद हो जाता है, तो क्या बहुसंख्यकों के प्रतिनिधि अल्पसंख्यकों की भिन्न विचारधारा का प्रतिनिधित्व करेंगे, श्रीमान्? ऐसे मतभेद शायद बहुत न हों, किन्तु जब ऐसे अन्तर होते हैं वे महत्त्वपूर्ण होते हैं और यह बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है कि उन मामलों में अल्पसंख्यक लोगों को संतोष हो।

तब श्रीमान्, वे ऐसे मामले में अपनी शिकायत कैसे पेश कर सकते हैं, यदि उनका कोई प्रतिनिधि हो ही नहीं? तब फिर यह कह दिया जाता है कि मुसलमानों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि केवल मुसलमानों का ही प्रतिनिधित्व करेंगे, यह साम्प्रदायिक निर्वाचन हो गये, इसलिये यह सब चीज ही साम्प्रदायिकता से रंगी हुई है। यदि सम्प्रदायवाद से आपका आशय है पृथकता, अब कट्टरता तथा ऐसी कोई अन्य वस्तु, तो हां, मुसलमान यह नहीं चाहते। यदि यह कहना ही साम्प्रदायिकता है कि मैं मुसलमान हूं या मैं ईसाई हूं तो मेरे पास

इसका कोई इलाज नहीं है। किसी सम्प्रदाय के पास इसका क्या इलाज है कि वह मुसलमान सम्प्रदाय है या ईसाई सम्प्रदाय है? अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के लिये सदा बहुसंख्यक जाति की अप्रसन्नता या आलोचना सहना कोई खेल नहीं है। वे भी उतना ही शान्ति से रहना चाहते हैं, जितना कि जनता का कोई वर्ग चाहता हो, किन्तु फिर वे इस संरक्षण पद्धति पर, और पृथक् निर्वाचक मंडलों की पद्धति पर तथा स्थानों के रक्षण पर क्यों हठ ठानते हैं क्यों वे जानते हैं कि केवल इसी प्रकार वे अन्य लोगों के पास जा सकते हैं, वास्तव में उनके पास पहुंच सकते हैं और इस प्रकार उस सामंजस्य को स्थापित कर सकते हैं, जिसके लिये वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं। इसी कारण से मुस्लिम तथा अन्य अल्पसंख्यक यह व्यवस्था चाहते हैं जिनका मैं समर्थन कर रहा हूं; और इसलिये यह केवल उचित ही है कि जहां उनके अन्तरों का सम्बन्ध है, उन्हें अपने विचारों को व्यक्त करने का उपकरण, अवसर अवश्य मिलना चाहिये। तब, इसका यह आशय नहीं है कि अन्य मामलों में, वे जनता के अन्य भागों से मिल नहीं सकते। वास्तविक आचरण में ऐसा नहीं होता। वस्तुस्थिति यह है कि इस सभा का प्रत्येक माननीय सदस्य साम्प्रदायिक आधार पर चुना गया है। हिन्दुओं के लिये मुसलमानों ने मत नहीं दिये; ईसाइयों के लिये मुस्लिमों ने मतदान नहीं किये और मुसलमान के लिये न हिन्दुओं ने मत दिये और न मुसलमानों ने ही दिये और इसलिये प्रत्येक सदस्य साम्प्रदायिक आधार पर चुना गया है। क्या इसका यह अर्थ है कि सभा के समक्ष पेश होने वाले अधिकांश मामलों में वे समस्त जनता की ओर से नहीं बोल सकते? इससे उनके मस्तिष्क पर पर्दा नहीं पड़ गया है और इससे व्यापक मामलों को निपटाने में कोई अन्तर नहीं पड़ा है, अतः यह कहना उचित या तर्कपूर्ण नहीं है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों से वास्तव में जनता के दो वर्गों में विभाजन हो जाता है। वास्तव में यही आलोचना, लोगों के अधिकार पर यही आक्रमण, संदेह और असंतोष का सृजन करता है। यदि उन्हें यह अधिकार दे दिया जाये तो वे संतुष्ट हो जाते हैं, वे ठीक पथ पर चलते हैं और वे अन्य लोगों से सहयोग करते हैं और देश में समन्वय रहता है। यह अधिकार बहुत लम्बे समय से उन्हें मिला हुआ है, उसी समय से जब इस देश में सर्वप्रथम संसदीय नियम लागू किये गये थे। अतएव मैं कहता हूं कि पृथक् निर्वाचक-मंडल झगड़ा पैदा करने के स्थान पर, वास्तव में लोगों में सामंजस्य स्थापित करने का साधन उपकरण है। इससे आप, इससे सरकार यह जान सकती है कि विविध वर्गों के लोगों के महत्त्व क्या हैं और फिर आप उन शिकायतों और उन झगड़ों का उपचार कर सकते हैं। यदि हम उनकी नहीं सुनते, यदि आप नहीं जानते कि उनके असंतोष की जड़ में क्या है तो ऐसे मामले में आप समुचित उपचार नहीं कर सकते। अतः यह तो वास्तव में लोगों से सहयोग और एकता को पक्का करने का साधन है।

प्रतिवेदन की दूसरी बात है: इसमें लिखा है:

> ''यद्यपि पृथक् निर्वाचक मंडलों की समाप्ति से राजनीति में से बहुत-सा विष निकल गया था...''

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या वक्ताओं के लिये कोई समय की सीमा है? हमें आज वाद-विवाद अवश्य समाप्त करना चाहिये। यदि एक ही सदस्य को आधे घंटे से अधिक समय दिया जाता है, तो और बहुत से सदस्य हैं जो बोलने के लिये आतुर हैं।

***अध्यक्ष:** क्योंकि यह प्रमुख संशोधन है, अत: मैंने वक्ता को रोका नहीं है। मुझे आशा है कि सदस्य घड़ी पर भी नजर रखेंगे।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब:** शायद यह अन्तिम अवसर है कि मैं इस महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न पर अल्पसंख्यकों की ओर से बोल रहा हूं। अतएव...

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अन्य सदस्य भी हैं जो कि बोलने के लिये आतुर हैं। ये तो पहले ही बहुत समय ले चुके हैं। (*बाधायें*)।

***एक माननीय सदस्य:** उन्हें अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये समय मिलना चाहिये। (*बाधायें*)।

***अध्यक्ष:** इसीलिये मैंने यह समय दिया है...

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब:** आपने मुझे जो छूट दी है उसके लिये आपका कृतज्ञ हूं। ऐसे विषय के लिये दो घंटे भी ज्यादा नहीं होंगे।

मैं प्रतिवेदन में से एक और कथन का उद्धरण दे रहा हूं:

> ''यद्यपि पृथक् निर्वाचक मंडलों को समाप्ति से राजनीति में से बहुत-सा विष निकल गया था, फिर भी धार्मिक सम्प्रदायों के लिये स्थानों के रक्षण से, यह अनुभव किया गया, कुछ हद तक पार्थक्य उत्पन्न होता है...''

श्रीमान्, पृथक् निर्वाचक मंडलों को समाप्त किया गया है। हम अभी तक पृथक् निर्वाचक मंडलों के अंतर्गत हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यहां हम सब सदस्य पृथक् निर्वाचक मंडलों के अधीन चुने गये हैं। संविधान के मसौदे में स्थानों के रक्षण की जो चर्चा है वह अभी तक लागू नहीं हुई है। मैं नहीं जानता कि प्रतिवेदन में यह कैसे लिखा है कि इससे बहुत सा विषय निकल गया है और स्थानों के रक्षण से किसी हद तक पार्थक्य कैसे होता है। स्पष्ट है कि उनका यह आशय है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों की समाप्ति के ज्ञान से कुछ विष कम हो गया है। यहां भी, यह कठोर शब्द हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, कठोर शब्दों से कुछ भी सिद्ध नहीं होता और वे युक्तियों का स्थान नहीं ले सकते। यही मैं निवेदन करना चाहता हूं। जैसे कि मैं सिद्ध कर चुका हूं, पृथक् निर्वाचन मंडलों से लोगों में समन्वय और संतोष पैदा हो रहा है और इससे लोग देश में सुख, समृद्धि और एकता में अंशदान करने के योग्य बनते हैं। लोगों को यह ज्ञात है ही कि पृथक् निर्वाचक मंडलों को समाप्त किया जा रहा है। फिर भी लोगों ने धैर्य और शान्ति रखी है। क्यों? क्योंकि लोगों को भरोसा है कि यह महान् सभा अब भी इस प्रश्न पर पुनर्विचार करेगी और उनके साथ न्याय करेगी। किन्तु वह वातावरण उस प्रकार उत्पन्न नहीं हुआ है जैसा कि प्रतिवेदन में सुझाया गया है। जैसा कि मैंने कहा है कि झगड़ा पृथक् निर्वाचक मंडलों या किसी अन्य रक्षा कवच के कारण नहीं है। सद्भावना तो उस संतोष के फलस्वरूप है जो लोगों के विचारों और भावनाओं के प्रति दिखाये गये सम्मान से उत्पन्न हुआ है।

श्रीमान्, मैं इस मामले पर कोई विवाद नहीं उठाना चाहता। मैं तो शान्तिप्रिय व्यक्ति हूं और सदा शान्ति और समन्वय के लिये ही प्रयत्नशील रहा हूं। इसे विभिन्न लोगों ने स्वीकार किया है। इस विषय में मैं अपने सम्प्रदाय के गुणों का ही प्रतिबिम्ब हूं। मेरा सम्प्रदाय देश में शान्ति और समृद्धि चाहता है; वह देश में समन्वय चाहता है। इसी विचार से, श्रीमान्, मैं अपने सम्प्रदाय की ओर से कहता हूं और मांग करता हूं कि उन्हें विधान मंडलों और सरकार के समक्ष अपनी शिकायतें पेश करने का मूलाधिकार मिलना चाहिये जिससे कि वे इस देश के सुख, शक्ति और सम्मान के लिये अपना अधिकतम अंशदान कर सकें, जोकि उनकी भी मातृभूमि, इतनी हद तक ही है जितने हद तक कि दूसरों की हूं।

श्रीमान्, मैं संशोधन पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री लारी। मुझे आशा है कि श्री लारी संक्षेप में बोलने के लिये सदस्यों द्वारा दिये गये सुझाव का ध्यान रखेंगे।

***श्री जैड.एच. लारीः** रखूंगा, श्रीमान्।

अध्यक्ष महोदय, अल्पसंख्यकों सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति द्वारा नियुक्त विशिष्ट उपसमिति के निर्णय से मैं अपनी क्षुद्र सहमति अभिव्यक्त करता हूं। उसके ही शब्दों में कहा जा सकता है कि वह निर्णय ऐसा है कि 'संविधान में ऐसा कोई उपबंध नहीं होना चाहिये जिसका प्रभाव यह हो कि लोगों का कोई वर्ग सार्वजनिक जीवन की मुख्य धारा से अलग हो जाये'। मैं मानता हूं कि अल्पसंख्यकों को राष्ट्र का अभिन्न अंग बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): माननीय सदस्य ने अपना संशोधन पेश नहीं किया है।

***श्री जैड.एच. लारीः** सांसदिक व्यवहार को जानता हूं। मैं इसे पेश करूंगा धैर्य रखिये। अल्पसंख्यकों को ऐसे संरक्षण मांगने चाहियें, जो इस इच्छा से संगत हों और जिनका उद्देश्य यह हो कि उन्हें देश के शासन में सम्मानपूर्ण स्थान मिले, पृथक् उदासीन वर्ग के रूप में नहीं, वरन् समस्त जीवित राष्ट्र के अंग के रूप में। मैं अब इससे संतुष्ट नहीं हूं कि कुछ मामलों में मुस्लिम वकीलों को भेज दिया जाये। मेरी यह इच्छा है कि मेरे प्रतिनिधि की, चाहे वह मुस्लिम हो या हिन्दू, देश के शासन में प्रभावी आवाज हो। मामले को उस दृष्टिकोण से देखते हुए, मैं पृथक् निर्वाचक मंडलों के बिल्कुल विरुद्ध हूं और मैं विधान मंडलों में स्थानों के रक्षण का पक्षपाती नहीं हूं। पहली बात तो बिल्कुल खतरनाक है और दूसरी प्रभावहीन है और उसमें पार्थक्य की कालिमा है। किन्तु मैं नकारात्मक उपायों से संतुष्ट नहीं हूं। यह कहना पर्याप्त नहीं है कि रक्षण समाप्त होने चाहिये, यह संकीर्णता है, पृथक् निर्वाचक मंडल बुरे हैं। अल्पसंख्यकों के राजनीतिक अधिकारों को समुचित मान्यता देने के लिये क्रियात्मक उपाय होने चाहियें। मैं चाहता हूं कि यह माननीय सदन इस प्रश्न पर उन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए विचार करे जो स्विटजरलैंड अथवा आयरलैंड जैसे ऐहिक जनतंत्रात्मक राज्यों में अल्पसंख्यकों के लिये उत्पन्न हुई थीं और वहां जो उपचार

[श्री जैड.एच. लारी]

खोजे गये और ढूंढ निकाले गये उन पर विचार करे। यही कारण है कि मैं यह प्रस्ताव करता हूं, श्रीमान्, और श्री तजम्मुल हुसैन अब संतुष्ट हो जायेंगे:

> ''कि प्रस्ताव की द्वितीय कण्डिका की उप-कण्डिका (1) में 'the provisions of' इन शब्दों के पश्चात् 'article 67 and' शब्द रख दिये जायें।
>
> कि प्रस्ताव की दूसरी कण्डिका की उप-कण्डिका (1) में, 'in the said report' इन शब्दों के पश्चात् 'with the addition that elections be held under the system of cumulative votes in multi-member constituencies and the modification that no seats be reserved for the Scheduled Castes' ये शब्द जोड़ दिये जायें।
>
> कि प्रस्ताव की दूसरी कण्डिका की उप-कण्डिका (2) हटा दी जाये।''

मेरे संशोधन का यही आशय है कि बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्र होने चाहियें, दो, तीन या चार क्षेत्र हो सकते हैं, जो भी संसद निश्चित करे। इसका परिणाम यह होगा कि अल्पसंख्यकों को अपने मत का वर्गीकरण करने का अधिकार दिया जायेगा। सभा के एक विभाग की युक्तियों को समाप्त करने के लिये, यद्यपि वह बहुत छोटा वर्ग है, मैं कह सकता हूं कि यह हल जोकि मैंने पेश किया है, मुस्लिम लीग का संमिश्रण नहीं है, यह हल 1853 में सोचा गया था जबकि श्री मार्शल ने जोहन रसल के नाम एक खुली चिट्ठी 'अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक, उनके सम्बन्धित अधिकार' में इसका समर्थन किया था।

अल्पसंख्यकों को समस्या भारत में ही नई नहीं है। सब देशों में सब कालों में अल्पसंख्यक थे और उन्हें दु:ख उठाना पड़ा था। एक लेखक ने शेक्सपीयर का अनुकूलन करते हुए यह सूत्र गढ़ा था 'अल्पसंख्यकों को तो दु:ख उठाना ही पड़ेगा यह तो उनकी जाति का चिन्ह है'। किन्तु मेरे विचार में यही ऊपरी बात है। यह गूढ़ सत्य नहीं है। मुझे तो यह दीखता है कि अल्पसंख्यकों के प्रति न्याय जनतंत्र का आधार है। कारण यह है। जनतंत्र के दो सिद्धांत यह हैं, पहला कि अन्तत: बहुसंख्यकों को ही शासन करना है और दूसरा, कि प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह प्रतिनिधि-संस्था में अपने प्रतिनिधि भेज सके और इस प्रकार उस सरकार के चुनाव में जिसके प्रति वह निष्ठा रखता है उसका कुछ भाग हो। जिन्होंने मिल साहब के लेखों को पढ़ा है वे जनतंत्र के मूलाधिकारों के विषय में उनकी युक्तियों से प्रभावित हुए होंगे, कि किसी सभा में प्रत्येक राजनैतिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व देश में उस विचारधारा के समर्थकों की संख्या के अनुपात से होना चाहिये। और यही स्वाभाविक है। यह सभा यहां किस लिये है? यहां सारे तीस करोड़ आदमी आकर आपस में विचार नहीं कर सकते। अतएव प्रतिनिधियों के भेजने की प्रणाली है। किन्तु यदि आप ऐसा उपाय अपनायें जिससे कि केवल 51 प्रतिशत लोगों को ही विधान मंडल में प्रतिनिधित्व मिले, तो वह राष्ट्र का प्रतिबिम्ब नहीं रहता। अब प्रश्न यह है कि क्या इस सदन द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधित्व के उपाय से जनतंत्र के सिद्धांत प्रभावशील हो जाते हैं या क्रियान्वित होते हैं। आरम्भ में ही, श्रीमान्, आपको अनुमति से मैं लार्ड एक्टेन का लेख पढ़ देता हूं। उन्होंने लिखा है:

''जनतंत्रवाद की एक व्यापक बुराई बहुसंख्यकों का अत्याचार है, जो कि निर्वाचन जीतने में बल प्रयोग से या धोखे से सफल हो जाते हैं। उस चीज को समाप्त कर देना ही जोखम को टालना है। प्रतिनिधित्व की व्यापक पद्धति से यह जोखम चिरस्थायी हो जाती है। समान निर्वाचक मंडलों से अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता। पैंतीस वर्ष पूर्व यह कहा गया था कि इसका इलाज आनुपातिक प्रतिनिधित्व है। यह बिल्कुल लोकतंत्रात्मक है, क्योंकि इससे उन सहस्त्रों मतदाताओं का प्रभाव बढ़ जाता है, जिनकी अन्यथा शासन में कोई आवाज नहीं होती और इससे अधिक व्यक्ति समानता के समीप आ जाते हैं, क्योंकि ऐसा उपाय किया जाता है कि कोई मत बेकार नहीं जायेगा तथा प्रत्येक मतदाता संसद में अपने विचार के एक सदस्य को स्थान दिलाने में अंशदान करता है।''

अत: यही हल मैं इस सदन के समक्ष रख रहा हूं। यह सदन जानता है कि इस समय देहातों में तीन राजनीतिक दल हैं—कांग्रेस, समाजवादी और साम्यवादी। उनमें से दो ने इसी प्रणाली को प्रतिनिधित्व की समुचित पद्धति स्वीकार कर लिया है। 1947 के अक्तूबर की 15 तारीख को समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया था, जिसमें लिखा है—मैं इसका उद्धरण देने के लिये क्षमा चाहता हूं:

''समस्त निर्वाचन सीधे, गुप्त तथा वयस्क मताधिकार द्वारा संयुक्त निर्वाचक मंडलों की पद्धति से होना चाहिये। बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्र होने चाहिये तथा सामूहिक मतों की पद्धति के अनुसार मतदान होना चाहिये, जिससे कि अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व मिल सके।''

लगभग उन्हीं दिनों 'जनयुग' में इस प्रतिनिधित्व के बारे में लेख था और लेखक ने यों लिखा था:

''वयस्क मताधिकार तथा संयुक्त निर्वाचक मंडलों की स्थापना का सब ओर स्वागत किया जायेगा क्योंकि उससे उपयुक्त लोकतंत्रात्मक हल का आधार बन जायेगा। अब समन्वयित लोकतंत्रात्मक कार्यक्रम के लिये संयुक्त प्रयत्नों के लिये लोगों के समन्वयित हितों के आधार पर ही हमें लोगों से अपील करनी चाहिये। पर यह प्रश्न फिर भी शेष रहता है कि प्रतिनिधित्व की ऐसी पद्धति कैसे आविष्कृत की जाये जिससे कि अल्पसंख्यक ऐसे प्रतिनिधि चुन सकें, जिनमें उन्हें विश्वास हो और फिर भी जिससे पार्थक्य उत्पन्न न हो।''

और फिर उसमें लिखा है:

''इसका सर्वोत्तम, सर्वाधिक लोकतंत्रात्मक और असाम्प्रदायिक तरीका आनुपातिक प्रतिनिधित्व है, निर्वाचक मंडलों की यह पद्धति यूगोस्वालिया जैसे नये जनतंत्रों में तथा कई पुरानों में भी प्रचलित है। इसमें साम्प्रदायिक रक्षणों की कोई आवश्यकता नहीं होगी।''

अब, श्रीमान्, मेरे विचार में सदन सांवैधानिक दृष्टान्तों की तीन पुस्तकों को नहीं भूला होगा, जो इस संविधान सभा ने श्री राव योग्य नियंत्रण में तैयार की थीं। उनमें अल्पसंख्यकों के लिये प्रतिनिधित्व के समुचित उपाय पर विचार किया गया है। मुझे आशा है कि सदन

[श्री जैड.एच. लारी]

इन पुस्तकों को न भूला होगा। यदि आप प्रथम भाग के 17 पृष्ठ को देखें, तो लेखक ने या संग्रहकर्ता ने लिखा है:

> ''अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा हितों का बहुत अचछा सरंक्षण आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा निर्वाचन की पद्धति है।''

मुझे आशा है कि उन स्थानों पर बैठे हुये एक वाधाकर्ता सदस्य को संतोष हो जायेगा कि वह साम्यवादी या समाजवादी नहीं है। इन मामले पर अन्य पुस्तक, तीसरे ग्रंथ में, पृष्ठ 164 पर पूरा विवरण है। संग्रहकर्त्ता लिखता है:

> ''किन्तु आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आलोचक सब सहमत हैं कि ऐसे देशों में, जहां अर्थ जागृत, मूलवंशीय या साम्प्रदायिक अल्पसंख्यक हैं, इस पद्धति का लागू करना अपेक्षित है।''

आप देखेंगे कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को उन लोगों ने स्वीकार किया है, जिन पर निरपेक्ष भावना से अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के उपाय ढूंढने का कार्यभार रखा गया था और उन्हें बड़े राजनैतिक दलों ने स्वीकार कर लिया है, जिनमें से एक के भविष्य में शक्ति आरूढ़ होने की सम्भावना है।

यदि यह पर्याप्त नहीं है तो आप अन्य देशों के अनुभव को देख सकते हैं। हम बिल्कुल कोरे कागज पर संविधान का निर्माण नहीं कर रहे हैं। पहले भी संविधान बन चुके हैं, पहले भी कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं और पहले भी अल्पसंख्यक थे। अधिकतम मिलता-जुलता उदाहरण आयरलैंड का है। क्या मैं सदन से कहूं कि वह इस बात का ध्यान रखे कि आयरलैंड में दो धर्म हैं—प्रोटेस्टैंट और केथोलिक—जो परस्पर विरोधी हैं। आयरलैंड का भी धार्मिक अल्पसंख्यकों के आंदोलन के फलस्वरूप विभाजन किया गया था, जिसका परिणाम यह है कि आयरलैंड में दो राज्य हैं। आरम्भ में इन दोनों देशों ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति रखी थी, बाद में उत्तरी आयरलैंड ने उसे छोड़ दिया और प्रधान आयर में वह अब भी जारी है। अब वहां क्या स्थिति है? एक लेख ने स्थिति को संक्षेप में यों लिखा है:

> ''दक्षिणी आयरलैंड में धर्म का प्रश्न अब राजनीति की विभाजन रेखा नहीं रह गया है।''

आयरलैंड के उस भाग में, जहां आनुपातिक प्रतिनिधित्व है, लेखक कहता है कि धर्म का प्रश्न अब राजनीति की विभाजन रेखा नहीं रह गया है। आगे चलकर लेखक लिखता है:

> ''धार्मिक प्रश्न, जो दक्षिणी आयरलैंड में भी इतना ही कटुतापूर्ण था जितना कि उत्तरी आयरलैंड में, अब राजनीति में अपना महत्व खो बैठा है। अब प्रोटेस्टेंट तथा कैथोलिक पार्टियां नहीं रही हैं। अलस्टर में इससे बहुत भिन्न स्थिति है। आनुपातिक

प्रतिनिधित्व वहां भी अपना शांति का उपयोगी कार्य कर रहा था। कैथोलिक और नेशनलिस्ट वहां अल्पसंख्यकों में थे, किन्तु उनको उचित प्रतिनिधित्व मिला हुआ था और कोई शिकायत की भावना नहीं थी। कैथोलिकों को कई ऐसे क्षेत्रों में भी कुछ प्रतिनिधित्व मिला हुआ था, जहां प्रोटेस्टेंटों की बहुलता है और इसके विपरीत स्थिति भी थी। आनुपातिक प्रतिनिधित्व की समाप्ति से कटुता फैल गई जो अब भी वहां विद्यमान है।''

यह देश के एक भाग में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की उपस्थिति और दूसरे भाग में उसकी अनुपस्थिति का सत्य अनुभव है।

मुझे विश्वास है कि सदन के वे सदस्य जो आज की राजनीति से अवगत रहना चाहते हैं 'राउण्ड टेबल' को पढ़ते होंगे। उसके मार्च 1948 के अंक में आयरलैंड में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की उपयुक्तता पर या अनुपयुक्तता पर विचार करते हुये, लेखक लिखता है:

''जादू वही है जो सिर पर चढ़कर बोले और इस निर्वाचन प्रणाली से प्रत्येक वर्ग को अपना प्रतिनिधित्व बनाये रखने में ही सहायता नहीं मिली है, वरन् इससे हमें स्थिर शासन प्राप्त हुआ है। इसने अल्पसंख्यकों के प्रति न्याय तथा बहुसंख्यकों के शासन करने के अधिकार में सामंजस्य स्थापित करने की जटिल समस्या का यथासम्भव समाधान कर दिया है।''

यहां आपके पास ऐसे देश का उदाहरण है, जहां ऐसी ही परिस्थितियां थीं, जहां आंदोलन के फलस्वरूप विभाजन हुआ, जहां एक भाग में आनुपातिक प्रतिनिधित्व को लागू रखने का प्रयास किया गया तथा दूसरे भाग में उसका परित्याग कर दिया गया। क्या हमारे लिये यह बुद्धिमानी नहीं होगी कि हम उस अनुभव से लाभ उठायें जो हमारे देश के समान ही है?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** दक्षिणी आयरलैंड की जनसंख्या क्या है?

***श्री जैड.एच. लारी:** आपको जनसंख्या से मतलब है या सिद्धांत से? आप आसानी से वार्षिकी (ईयर बुक) को देखकर जनसंख्या का पता लगा सकते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या आप यह कहते हैं कि अब आयरलैंड में सामूहिक मतदान पद्धति है?

***श्री जैड.एच. लारी:** हां, वहां आनुपातिक प्रतिनिधित्व है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** आयरलैंड के संविधान के अनुसार कोई मतदाता एक से अधिक मत नहीं दे सकता और मतदान गूढ़शलाका-पद्धति द्वारा होता है।

***श्री जैड.एच. लारी:** आप किस वर्ष की चर्चा कर रहे हैं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 1937।

***श्री जैड.एच. लारी:** यह अशुद्ध है। आप फिर पढ़िये और मैं जो कुछ कहता हूं वही आपको मिल जायेगा। 'राउंड टेबल' में इस पर पूरा विचार किया गया है। कृपया उसे पढ़िये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** आपको जो संवैधानिक दृष्टान्तों की पुस्तकें दी गई हैं, उन्हें पढ़िये।

***श्री जैड.एच. लारी:** स्विट्जरलैंड में भी यही बात हुई थी। सदन को पता है कि केण्टन को तीन निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया था। एक मुख्यत: प्रोटेस्टेण्ट था और दूसरा मुख्यत: कैथोलिक। परिणाम यह हुआ कि एक भाग में कैथोलिकों को प्रतिनिधित्व नहीं मिला तथा दूसरे में प्रोटेस्टेण्टों को प्रतिनिधित्व नहीं मिला। आनुपातिक प्रतिनिधित्व लागू किया गया। सबको पता है कि आज स्विट्जरलैंड सुदृढ़, लोकतंत्रात्मक तथा लौकिक सुखी परिवार है।

यही बात बेल्जियम में हुई। मैं एक अन्य लेख का उद्धरण दे सकता हूं। वह कहता है:

> ''बेल्जियम में अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व न मिलने से फ्लैण्डर्स और वेलोनी के मध्य मूलवंशीय, भाषा सम्बन्धी तथा धर्म सम्बन्धी अन्तर बढ़ गये। फ्लैण्डर्स का प्रतिनिधत्व केवल कैथोलिकों द्वारा होता था, फ्रांसीसी भाषा-भाषी जिलों का प्रतिनिधित्व उदारदल तथा समाजवादियों के द्वारा होता था। आनुपातिक प्रतिनिधित्व से दोनों क्षेत्रों से इन सब दलों के सदस्य चुने गये और इसके परिणामस्वरूप बेल्जियम का राजनैतिक एकीकरण हो गया।''

जनतंत्र के सिद्धांत के अनुसार किसी अल्पसंख्यक को मताधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिये, चाहे वे अल्पसंख्यक राजनैतिक हों, धार्मिक हों अथवा सामाजिक हों। यदि आप तर्क से देखें तो आपको पता चलेगा कि जहां 51 प्रतिशत के सामान्य बहुमत से चुनाव होता है, वहां 49 प्रतिशत प्रतिनिधित्वहीन रह जाते हैं। यदि आप यथार्थवाद पर विचार करें तो आप इस बात की आवश्यकता अनुभव करेंगे कि निर्वाचनों की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि जनता के प्रत्येक वर्ग को प्रतिनिधित्व मिल जाये और यदि आप अनुभव से लाभ उठाना चाहें तो आप देखेंगे कि जिन देशों में यह समस्या उठी, वहां उन्हें एक ही हल मिला कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व हो। मैं तो और भी आगे बढ़कर यह कहूंगा कि इस प्रणाली को मान लेना राष्ट्रीय हित में है और यह तीन कारणों से ऐसा है।

1. संसद राष्ट्र के मस्तिष्क का दर्पण होनी चाहिये, अन्यथा उसे यथेष्ट सम्मान नहीं मिलेगा। ऐसे उदाहरण हैं, जहां कि अल्पसंख्यक सदन के सदस्यों का बहुमत चुनने में सफल हो गये हैं, जहां निर्वाचन से एक भाग पूर्णत: मताधिकार से वंचित हो गया। मैं युक्तप्रान्त के अर्वाचीन निर्वाचनों को लेता हूं जहां समाजवादियों को 11 निर्वाचन क्षेत्रों को लगभग 35 प्रतिशत मत मिले थे, किन्तु उनका एक भी प्रतिनिधि नहीं चुना गया। जहां तक जनता का सम्बन्ध है, यह निश्चय से कहा जा सकता है कि 35 प्रतिशत लोग समाजवादी

दल के पीछे थे, किन्तु निर्वाचन की पद्धति ऐसी थी कि उस दल को बिल्कुल भी प्रतिनिधित्व नहीं मिला उस हद तक सदन की मान्यता कम हो गई और उस हद तक वह उस राष्ट्र का प्रतिनिधि नहीं रहा, जिसका प्रतिनिधित्व वह करना चाहता है।

2. किसी अल्पसंख्यक को कोई शिकायत नहीं रहेगी। मैं उनमें से नहीं हूं जो यह विश्वास करते हैं कि अल्पसंख्यकों की समस्त कल्पित शिकायतें पूरी होनी चाहियें। वे युक्तियुक्त होनी चाहिये। उनके हितों का उस हद तक ध्यान रखा जा सकता है जिस हद तक कि वे राष्ट्रीय हितों से संगत हो। ज्यों ही उनके हितों और राष्ट्र के हितों में विरोध हो, अल्पसंख्यकों को कुएं में जाना होगा। किन्तु जहां राष्ट्रीय हित सुरक्षित हो अथवा जोखम में या खतरे में न हो, वहां अल्पसंख्यकों से परामर्श लेना अपेक्षित हो। यदि आप ऐसा करें तो इससे अवश्यमेव राज्य का एकीकरण होगा। अत: आनुपातिक प्रतिनिधित्व का दूसरा लाभ यह है कि इससे राज्य का एकीकरण होगा।

3. यदि आप आनुपातिक प्रतिनिधित्व को मान लें तो सदन में विरोधी दल भी बन जायेगा। साम्प्रदायिक आधार पर दल नहीं बनेगा, वरन् महान् राष्ट्रीय प्रश्नों पर आधारित दल बनेगा। इससे ऐसा एक दल बन जायेगा जो आप से सहयोग करेगा, जहां तक कि राज्य की अखंडता का प्रश्न है, जहां तक कि राष्ट्र के सम्मान को बढ़ाने का प्रश्न है। साथ ही वह आपकी त्रुटियों को दूर करेगा तथा आपको ठीक मार्ग पर रखेगा। ज्यों ही आप निर्वाचन करेंगे, आपके सदन में एक विरोधी दल बन जायेगा, जो राष्ट्र की प्रतिष्ठा के विषय में जागरूक होगा, जो राष्ट्र के हितों की रक्षा की आवश्यकता के विषय में होगा और साथ ही नई ससंद में बहुसंख्यकों को सुधारने का कार्य करेगा। अत: मैं कहता हूं कि मैंने जो हल पेश किया है, वही एकमात्र हल है—जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह मेरा अपना हल नहीं है, वरन् युगातीत हल है जिस पर कई देशों में आचरण किया गया है।

अब क्या आपत्ति है? आप इसे क्यों स्वीकार नहीं करते? प्रत्येक सदस्य जानता ही है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व के विविध प्रकार हैं: एक तो एकल संक्राम्य मत है, सामूहिक मत होता है और सूची पद्धति होती है। मैंने सामूहिक मतदान के रूप में आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सुझाव रखा है। अच्छा, यह कहा जा सकता है कि यह भी पृथक् निर्वाचक मंडलों का प्रकारान्तर ही है, इसे मान लेना पृथक् निर्वाचक मंडलों को मानना ही है। जब मैंने युक्तप्रांतीय विधान मंडल में इसे रखा तो यही आलोचना की गई थी। किन्तु आप भूलते हैं कि 1937 से स्थिति बदल गई है। युक्तप्रान्त को ही लीजिये जहां कि मुस्लिम बहुलता से हैं। आपको पता है कि वहां 80 लाख मुस्लिम हैं, पर उनका अनुपात केवल ग्यारह-बारह प्रतिशत है। यदि आप त्रि-सदस्य निर्वाचन क्षेत्र रखें, तो 33 प्रतिशत मत प्राप्त किये बिना कोई सदस्य निर्वाचित नहीं हो सकता।

अतएव यह आलोचना कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रकारान्तर से पृथक् निर्वाचन ही है, बहुत अनुदार है। वस्तुस्थिति यह है कि मैं पृथक् निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित होकर आया हूं। मैं अपने सम्प्रदाय की क्या सेवा करता हूं? नि:संदेह मैं यहां आता हूं और कुछ

[श्री जैड.एच. लारी]

विचार का समर्थन करता हूं, किन्तु क्या विचार प्रकट कर देने मात्र से ही मेरे सम्प्रदाय को कुछ लाभ होता है? (**एक माननीय सदस्यः** होता है) नहीं होता। इससे तो मेरे वहां के मित्रों को मेरे विरुद्ध लोगों को और भी अधिक कटु बनाने का अवसर मिलता है और वे कहते हैं कि श्री लारी ने यह प्रश्न इसलिये उठाया है कि इससे उनके सम्प्रदाय का लाभ है। किन्तु मैं एक प्रतिनिधि चाहता हूं, चाहे वह मौलाना आजाद की जगह कोई सरदार क्यों न हो, किन्तु मुझे यह अनुभव होना चाहिये कि उस सरकार के निर्वाचन में मेरा हाथ हो और उसे मेरी भावनाओं का आदर करना होगा, क्योंकि उसे फिर मेरे से मत लेने के लिये मेरे पास आना होगा।

किन्तु युक्तप्रान्त का मामला लीजिये। 10 प्रतिशत मुसलमानों की सुगमता से उपेक्षा की जा सकती है। किसी पद्धति का परीक्षण संकटकाल में ही होता है, जबकि आवेश बढ़ जाता है। उस समय नहीं, जबकि सुगमता से कार्य चल रहा हो। अतः मेरा निवेदन है कि आपको इस प्रश्न पर शान्ति से विचार करना चाहिये कि स्थानों के रक्षण के अतिरिक्त, पृथक् निर्वाचक मंडलों के अतिरिक्त, क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे अल्पसंख्यकों को—चाहे वे राजनैतिक हों, सामाजिक हों या धार्मिक हों—समुचित अधिकार मिल सकते हैं।

हमने जो कुछ किया है उसमें समझौते की भावना का ही आभास रहा है। अभी उस दिन लन्दन निर्णय को स्वीकार करते हुये आपने बादशाह को कड़ी के रूप में स्वीकार कर लिया। उस बादशाह को जिसे आप पहले साम्राज्यवाद और हमारे अधिकारों के दमन का प्रतीक मानते थे। इससे पता लगता है कि आप कितने उदार हैं। क्या फिर आपको वही उदारता नहीं दिखानी चाहिये, जबकि आप अपने ही एक वर्ग के विषय में निर्णय कर रहे हैं, जिसके विषय में आप मान चुके हैं कि उसे राष्ट्र का अभिन्न भाग ही मानना पड़ेगा? यदि ऐसा सम्भव हो तो आप मेरी भावनाओं को ही तसल्ली देने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? जैसा कि मैं कह चुका हूं, राष्ट्रीय हित ही सर्वोपरि होने चाहिये। यदि यह बताया जा सके कि इस उपाय से राष्ट्रीय हितों का अनुसेवन नहीं हो सकता या वे जोखम में हैं, तो मैं पहला व्यक्ति हूं जो उन्हें छोड़ने के लिये तैयार हो जाऊंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): आपने पाकिस्तान की मांग क्यों की थी?

***श्री जैड.एच. लारीः** खैर, यदि वह वैयक्तिक प्रश्न हो, तो मैं अपने माननीय मित्र को बता सकता हूं कि मैंने मुस्लिम लीग के दिल्ली अधिवेशन में पाकिस्तान के सृजन का विरोध किया था। किन्तु प्रश्न यह है: क्या यह प्रश्न अब संगत है? क्या आप पुरानी शिकायतों को ताजा नहीं कर रहे हैं? मैं आपसे न्याय की दृष्टि से पूछता हूं। आप कहते हैं कि आप मुझे राष्ट्र का अभिन्न अंग मानते हैं। किन्तु ज्यों ही आप ऐसी आपत्तियां उठाते हैं, आप सारा आडम्बर छोड़ देते हैं। आप यह दिखा देते हैं कि आप मुझे राष्ट्र का अभिन्न अंग नहीं समझते और आप पुरानी भ्रान्तियों को अब भी दिल में रखते हैं। आपने जो उदारता दिखाई है यह उससे संगत नहीं है।

मुझे विश्वास है कि उधर जो सब प्रकार की बाधायें हैं, उनके बावजूद इस सदन का हृदय बहुत साफ है, कम से कम इस देश के नेताओं का हृदय बहुत साफ है और वह हृदय यह देख लेगा कि मुसलमानों की नाड़ी कैसे चलती है।

श्री इस्माइल ने मद्रास की मुस्लिम लीग के विषय में बताया है। खैर, मैं यहां कोई विवाद करने नहीं आया हूं। किन्तु मैं यह जरूर कहूंगा कि जहां तक युक्तप्रान्तीय मुस्लिम लीग का सम्बन्ध है, लीग राजनीति में भाग नहीं लेगा और मद्रास की मुस्लिम लीग अब प्रतिनिधि नहीं रही है।

अब, श्रीमान्, यदि आप मान लें कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व को स्वीकार करना है, तो मेरा तीसरा संशोधन अनुसूचित जातियों के लिये स्थान रक्षण नहीं रहना चाहिये, इसका परिणाम मात्र है, क्योंकि एक बार आप आनुपातिक प्रतिनिधित्व स्वीकार कर लें तो किसी जाति के लिये रक्षण की गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

किन्तु क्या मैं यहां एक क्षण के लिये रुक कर के इस विषय में कुछ शब्द कह सकता हूं? यदि आप मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व छीन लेते हैं, किन्तु साथ अनुसूचित जातियों के लिये उसे बनाये रखते हैं, तो दो प्रश्न उठते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति के लिये चाहे इसका कोई मूल्य न हो। किन्तु भावुक लोगों के लिये उनका बहुत मूल्य है। रास्ते चलता मुसलमान स्वभावत: कहेगा, ''हूं, अनुसूचित जातियां तो हिन्दू सम्प्रदाय का भाग हैं। हिन्दुओं और उनमें कोई विरोधाभाव नहीं है। स्पष्ट है कि आप अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व देना चाहते हैं, क्योंकि आप सम्भवत: यह अनुभव करते हैं कि आप विधान मंडलों में पर्याप्त मात्रा में अनुसूचित जातियों को नहीं भेज सकेंगे। यदि निर्वाचक मंडल सर्वथा जागरूक हो, यदि निर्वाचक मंडल चेतन हो, यदि निर्वाचक मंडल उस सम्प्रदाय के प्रत्येक अंग को प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता से अवगत हो, तो आप यह नहीं कह सकते कि रक्षण अपेक्षित है। रक्षण से यह पता चलता है कि उस विषय में आप सबल अनुभव नहीं कर रहे। कुछ लोगों के मस्तिष्क में सन्देह है कि आप सम्भवत: सवर्ण लोगों की पक्षपात भावना को दूर करके अनुसूचित जातियों को अच्छी संख्या में प्रतिनिधित्व नहीं दे सकेंगे''। मुसलमान कहेंगे: ''आपको अनुसूचित जातियों के विषय में भी, जो कि आपके सदा अंग रहे हैं, ऐसा भरोसा नहीं है। फिर मुस्लिमों के विषय में क्या होगा, जिन पर अब भी कई जगह शंका की जाती है?'' और संशय का कारण भी है क्योंकि, जैसा आपने ठीक ही कहा है, मुस्लिम भारत का अर्थ है मुस्लिम लीगी भारत। यह सत्य है: मैं इससे इन्कार नहीं करता। आप मुस्लिमों के मन में यह ख्याल क्यों पैदा करते हैं कि इधर आपको अनुसूचित जातियों के हितों की तो चिन्ता है और आप उनके लिये प्रतिनिधित्व दे रहे हैं, पर उधर आप मुसलमानों के हितों की चिन्ता या परवाह नहीं करते और यद्यपि आप कहते हैं कि बहुसंख्यक जाति उदार रहेगी और मुस्लिमों के प्रतिनिधि भी पर्याप्त संख्या में चुनेगी, पर मुस्लिमों के लिये वैसी ही चिन्ता व्यक्त नहीं की है? हो सकता है कि आप समझते हों कि मुसलमान बहुसंख्यकों का विरोध होते हुये भी प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सकेंगे।

माननीय सरदार पटेल को सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना चाहिये। उन्हें उस पर मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ विचार करना चाहिये।

[श्री जैड.एच. लारी]

दूसरी बात यह है: यदि आप अनुसूचित जातियों के लिये स्थान-रक्षण द्वारा प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को स्वीकार कर लेते हैं, तो क्या आप यह भी स्वीकार नहीं कर लेते हैं कि यह रक्षण राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध नहीं है? यदि है तो इसे स्वीकार क्यों करते हैं? यदि नहीं है, तो आप यह क्यों कहते हैं कि अनुसूचित जातियों के लोगों ने मतैक्य से यह विचार प्रकट किया है कि वे रक्षण चाहते हैं? किन्तु क्या इस प्रश्न पर मुसलमानों के विचारों का पता लगाया गया था? मैं नहीं समझता कि परामर्शदातृ समिति में मुस्लिम सम्प्रदाय के जो लोग हैं, इनका देश पर कोई प्रभाव है और वे मुस्लिमों की ओर से कोई बन्धनकारी कार्य कर सकते हैं। यह दूसरी बात है कि यदि मैं परामर्शदातृ समिति में होता तो मैं भी यही राय देता, क्योंकि मैं स्थानों का रक्षण नहीं चाहता। यदि आप उस सम्प्रदाय का मत जानना चाहते थे, तो सरदार पटेल के लिये उपयुक्त तरीका यह होता कि वे अपनी अध्यक्षता में मुस्लिम सदस्यों का अधिवेशन बुलाते, उनके समक्ष सब तथ्य रखते और उनकी सम्मति मांगते। वैयक्तिक तौर पर मैं नहीं समझता कि सदन के किसी सदस्य की यह भावना होनी चाहिये कि बातूनी सदस्यों की ही चलती है और वे ही जीत जाते हैं। मैं बोलने वाला सदस्य हूं, किन्तु दूसरे सदस्य नहीं बोलते। मैं नहीं चाहता कि मेरे सहयोगी यह समझें कि मैंने उनसे राय लिये बिना और असत्य आडम्बर करके सरदार पटेल को आश्वासन दे दिया है कि यह स्थिति है। अतएव मैं कहता हूं कि दो रास्ते हैं। एक यह है कि स्थानों का रक्षण किसी के लिये भी न किया जाये। यह राष्ट्र के हित में है। किन्तु यदि आप सम्बद्ध अल्पसंख्यक जाति के विचारों के आधार पर रक्षण रखना या समाप्त करना चाहते हैं तो उस जाति के विचारों का पता लगाने के लिये समुचित कदम उठाइये। मैं अपने सहयोगियों के प्रति न्याय करने के लिये यह कहता हूं जो कि अपने विचारों को मेरे समान बलपूर्वक प्रकट नहीं कर सकते, कि ऐसा उपाय अपनाया जाये। मैं इस धारणा से चल रहा हूं कि अतीत को भुला दिया गया है। जो अतीत को भुलाना नहीं चाहते, मैं उनकी ओर ध्यान नहीं देता। मैं जानता हूं कि उनकी संख्या कम है। यदि बहुमत की यही राय होती तो इसकी अवहेलना कहने में जोखिम थी। किन्तु मैं जानता हूं, इसलिये इसी धारणा पर चलता हूं कि विगत को भुला देना चाहिये। मैं यहां पर भारतीय राष्ट्र का अभिन्न अंग बनकर आया हूं। केवल उसी हैसियत से मैं सदन में कुछ बातों का समर्थन करता हूं। बहुसंख्यकों की मर्जी है कि वह मेरी बातों को स्वीकार करें या ठुकरा दें। इतिहास ही निश्चित करेगा कि कौन ठीक था। कई बार बहुसंख्यक गलती पर होते हैं और यह आवश्यक नहीं है कि अल्पसंख्यक सदा ठीक ही मार्ग पर हों। किन्तु मेरे अन्तरतम में मुझे सन्तोष है कि मैं जो कुछ कहता हूं, वह उपयुक्त है तथा समुदाय के राष्ट्रीय हित में है। उस आधार पर मैंने इस माननीय सदन के समक्ष यह प्रस्ताव रखा है मैं देश के नेताओं से अपील करता हूं कि इस विषय पर फिर नये सिरे से विचार करें। सर्वप्रथम आपको यह विचार करना चाहिये कि क्या उनके लिये ऐसा उपाय अपनाना सम्भव नहीं है, जिस पर दूसरों ने आचरण किया है और इससे सफलता मिली है तथा राज्य का स्थायित्व जोखिम में नहीं पड़ा है। मेरे विचार में इससे सदा के लिये समस्या का समाधान हो जायेगा। हमें इस पद्धति का दस वर्ष तक अनुभव करना चाहिये। संविधान को कभी भी बदला जा सकता है। जब अल्पसंख्यक कहते हैं कि 'हमें आनुपातिक प्रतिनिधित्व रखना चाहिये' तब आप स्वीकार क्यों नहीं कर लेते?

दो निर्वाचनों के लिये इसे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते? क्या आप भावी पीढ़ियों को बांधने जा रहे हैं? नहीं। शायद आप कहेंगे ''आप इसी पर चलकर क्यों नहीं देखते?'' यह युक्तियुक्त प्रश्न है। किन्तु मैं कह सकता हूं कि सम्भवत: उस समय मैं यहां नहीं रहूं। उसमें बहुत जोखिम है। किन्तु आप पांच वर्ष तक इस पर चलिये और यदि इससे राज्य की अखंडता जोखिम में पड़ जाये तो इसे छोड़ दीजिये। पहले आपने रक्षित स्थान रखने का निर्णय किया था। अब आप कहते हैं 'नहीं'। छ: वर्ष पश्चात् संविधान में संशोधन करने से आपको कौन रोकता है? अतएव मैं कहता हूं, न्याय करिये और उदार बनिये। (*बाधायें*)। यदि उदारता नहीं तो कम से कम न्याय अवश्य करिये। मैं बाधा पर प्रसन्न हूं। उदारता मुझे भी अपील नहीं करती। यह तो निर्धनों और दीनों की भाषा है। किन्तु न्याय तो प्रत्येक नागरिक का हक है। अत: मै कहता हूं, न्याय करिये। हमें प्रश्न पर विचार करना चाहिये तथा ऐसा करते समय स्विट्जरलैंड या अन्य देशों से तटस्थ विचारकों और राजनीतिज्ञों को भी आमंत्रित करें। इस प्रश्न पर विचार करने के लिये हम उन्हें बुलायें और यदि वे कहें कि मैं गलत हूं, तो आप जैसा चाहे करिये। किन्तु, ईश्वर के लिये मुझे अवसर दीजिये, मुस्लिम सम्प्रदाय के एक सदस्य की हैसियत से नहीं वरन् भारतीय राष्ट्र के एक सदस्य की हैसियत से। उन्हें जीवित रहने का तथा देश के बिशद हित में अपना भाग पूरा करने का अवसर दीजिये।

जहां तक पृथक् निर्वाचक मंडल के प्रश्न का सम्बन्ध है, मुझे भी मोहम्मद इस्माइल साहिब के विरोध करने का अत्यन्त असुखद कार्य करना पड़ रहा है, क्योंकि मैं सदा ही यह सोचता रहा हूं कि इस सदन में मेरा अस्तित्व व्यर्थ रहा है। पृथक् निर्वाचक मंडलों के आधार पर चुना जाने के कारण मैं केवल यही कह सकता हूं, कि मुस्लिम सम्प्रदाय क्या विशेष बात चाहता है। यदि मैं कोई ऐसी बात कहूं, जो राष्ट्र के हित में हो, तो मुझे सम्प्रदायवादी कहकर बुरा बताया जाता है। अत: मैं तो ऐसी चीज का सुझाव रख रहा हूं, जिस पर मैंने चलकर नहीं देखा है, बल्कि जिस पर दूसरे चले हैं और उसे स्वीकार किया है।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): क्या मैं जान सकता हूं, श्रीमान्, कि क्या किसी तर्क को दोहराने की अनुमति है?

***श्री जैड.एच. लारी:** मेरे मित्र को वक्तृता कला का ज्ञान नहीं है, अन्यथा वे ऐसा नहीं कहते कि कोई बात दोहराई नहीं जाती। बातें दोहराई जाती हैं किन्तु अक्षरश: नहीं। अत: मैंने कहा कि न्याय करिये और वस्तुस्थिति पर विचार करिये और तत्पश्चात् निर्णय करिये, जोकि सब सम्प्रदायों के हितों तथा राष्ट्र के लिये लाभकारी हो और हमारे राज्य की शुभकीर्ति में चार चांद लगाये।

***श्री एम. थिरुमल राव** (मद्रास : जनरल): मेरे पास आयरलैंड गणराज्य सम्बन्धी लेख की एक प्रति है। उसमें श्री लारी द्वारा दिये गये उद्धरण का एक शब्द भी नहीं है।

***अध्यक्ष:** यदि कोई सदस्य उस अंश का उद्धरण देना चाहे, तो वह ऐसा कर सकता है।

***श्री एम. थिरुमल राव:** यदि मुझे बोलने का अवसर मिलेगा, तो मैं ऐसा करूंगा।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य को अवसर मिले तो वे बोल सकते हैं।

अगला संशोधन संख्या 5 है, जिसकी सूचना कई सदस्यों ने दी है।

(संशोधन संख्या 5, 6, 7 और 8 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** अब एक और संशोधन श्री ठाकुरदास भार्गव का है, जिसकी मुझे सूचना मिली है। उसी संशोधन की सूचना श्री नागप्पा और श्री खांडेकर ने दी थी।

(श्री नागप्पा और पंडित ठाकुरदास भार्गव दोनों बोलने के लिये खड़े हुये।)

***अध्यक्षः** मुझे पता लगा है कि पंडित ठाकुरदास भार्गव का संशोधन पहले आया था। क्योंकि यह संशोधन पहले आया था, अतः मैं उन्हें इसको पेश करने का अवसर दूंगा। (*श्री नागप्पा को सम्बोधित करते हुये*) आपको इस पर बोलने का अवसर मिले, तो आप बोल सकेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि प्रस्ताव में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'स्थानों के रक्षण तथा नाम निर्धारणों का उपबंध इस संविधान के आरंभ से दस वर्ष की अवधि तक रहेगा।''

***अध्यक्षः** क्या यह मूल प्रस्ताव पर संशोधन है?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** यह एक संशोधन पर संशोधन है।

***एक माननीय सदस्यः** किन्तु कोई संशोधन पेश नहीं किया गया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** यह एक संशोधन पर संशोधन है। सदन इसका यह तरीका है कि जब संशोधनों की सूचना दे दी जाये, तो ऐसा समझा जाता है कि सारे संशोधन पेश हो चुके। पिछले सत्र में यही निर्णय दिया गया था। उसी नियम के अनुसार मैंने इस संशोधन की सूचना दी है।

***अध्यक्षः** बिल्कुल ठीक कहा जाये तो यह किसी संशोधन पर संशोधन नहीं है। यदि यह संशोधन है तो यह किसी ऐसे संशोधन पर संशोधन है, जो आपने पेश नहीं किया है।

***पं. ठाकुर दास भार्गवः** प्रणाली यह है कि संशोधन पर संशोधनों को पेश करने की अनुमति दी जाती है, चाहे वह अपने ही संशोधन पर संशोधन क्यों न हो? उपाध्यक्ष ने यही निर्णय दिया था।

***अध्यक्षः** संविधान के मसौदे में मैंने निर्णय दिया था कि मैं संशोधनों पर संशोधन तो स्वीकार कर लूंगा, किन्तु मूल अनुच्छेद पर संशोधनों को नहीं, यदि वे समय पर न आयें, चाहे वे संशोधनों पर संशोधन के बहाने ही क्यों न भेजे गये हों। इसी आधार पर

मैं इतने दिनों से चल रहा हूं। उपाध्यक्ष ने अध्यक्षता करते समय पहले जो निर्णय दिया था, उसकी मुझे कोई सूचना नहीं दी गई। अतः मैंने वह निर्णय दिया था और तब से मैं इसी पर चल रहा हूं। मैं समय बीतने पर ऐसे संशोधनों को स्वीकार नहीं करता, जो ठीक-ठीक कहा जाये तो संशोधनों पर संशोधन नहीं है, वरन् मूल अनुच्छेद पर संशोधन है।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, यह संशोधन पर संशोधन हो सकता है, श्री लारी के संशोधन संख्या 4 पर, जिसमें लिखा है कि प्रस्ताव की दूसरी कण्डिका की उप-कण्डिका (2) को हटा दिया जाये। इसका अर्थ यह है कि वे अनुसूचित जातियों की कुछ श्रेणियों को प्रतिनिधित्व नहीं देना चाहते। पंडित भार्गव चाहते हैं कि रक्षण दस वर्षों तक रहे।

***श्री जसपतराय कपूर**: क्या मैं निवेदन कर सकता हूं...

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त**: मैंने अभी समाप्त नहीं किया है। श्री लारी का संशोधन है कि प्रस्ताव की दूसरी कण्डिका की उप-कण्डिका (2) को हटा दिया जाये। उनका आशय यह है कि वे रक्षण नहीं रखना चाहते। पंडित भार्गव कहते हैं कि दस वर्षों के लिये रक्षण रहना चाहिये। अतः उनका संशोधन दूसरे संशोधन पर संशोधन है। मैं आपका ध्यान इसी बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर**: मैं आदरपूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि यह वस्तुतः दूसरे संशोधनों पर संशोधन है, जो श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब तथा श्री लारी द्वारा पेश किये गये थे, अतः यह संशेधन पूर्णतः नियमित समझा जा सकता है। इन संशोधनों का उद्देश्य प्रस्ताव को विशेष प्रकार से संशोधित करना है। श्री भार्गव केवल यही चाहते हैं कि प्रस्ताव को एक भिन्न प्रकार से संशोधित किया जाये। पिछले दोनों संशोधनों का उद्देश्य माननीय सरदार पटेल द्वारा सदन में पेश किये गये प्रस्ताव को संशोधित करना था। अब श्री भार्गव चाहते हैं कि उन दो संशोधनों में जिस प्रकार सुझाया गया है, उस प्रकार प्रस्ताव संशोधित नहीं होना चाहिये, वरन् दूसरे तरीके से संशोधित होना चाहिये।

***अध्यक्ष**: इस बात को ध्यान में रखते हुये और उस बात को ध्यान में रखते हुए, जो माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने सदन में पेश की है, मैं यह मान लेता हूं कि यह संशोधन पर संशोधन है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव**: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि प्रस्ताव में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:
>
> 'स्थानों के रक्षण तथा नामनिर्धारणों का उपबंध इस संविधान के आरम्भ से दस वर्ष की अवधि तक रहेगा।' ''

मैं इसे केवल औपचारिक रूप में पेश करता हूं। यदि मुझ पर आपकी आंख पड़ जाये, तो मैं इस प्रस्ताव पर पुनः बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष**: अब संशोधन तथा मूल प्रस्ताव सदन के समक्ष वाद-विवाद के लिये पेश है

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं बहुसंख्यक सम्प्रदाय को तथा अल्पसंख्यक परामर्शदातृ समिति को बधाई देता हूं, जो कि इस देश में अल्पसंख्यकों की समस्या पर विचार करने के लिये नियुक्त की गई थी। श्रीमान्, इसमें तीन पक्षक हैं। सर्वप्रथम हमें इस आश्चर्यजनक सफलता पर, जो ब्रिटिश राज्य की दो शताब्दियों में भी प्राप्त नहीं हो सकी थी, माननीय सरदार पटेल को बधाई देनी है। उन्होंने इसे दो ही वर्ष में पूरा कर लिया। अंग्रेजों ने भारत में अपना अखंड राज्य बनाये रखने के लिये फूट फैलाई थी। अब, जो काम दो सदियों में पूरा नहीं हो सका वह दो वर्षों में पूरा हो गया है। अब अल्पसंख्यक स्वयं आगे बढ़कर कहते हैं कि वे कोई रक्षण नहीं चाहते। यह एक सफलता है। दूसरा पक्षक अल्पसंख्यक परामर्शदातृ समिति है और तीसरा पक्षक स्वयं अल्पसंख्यक हैं। हमें इन तीनों को बधाई देनी है। अब लोग पूछ सकते हैं: ''फिर क्या बात है कि आपने अपने रक्षण का परित्याग नहीं किया?'' मैं नहीं समझता कि हमें धार्मिक अल्पसंख्यक होने के कारण रक्षण मिल रहा है। हम धार्मिक अल्पसंख्यक नहीं हैं। हमें आर्थिक, अल्पसंख्यक होने के कारण रक्षण मिल रहा है। हम धार्मिक अल्पसंख्यक नहीं हैं। हम आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक अल्पसंख्यक हैं। हम दो निर्योग्यताओं से तो पीछा छुड़ा चुके हैं। महात्मा गांधी ने कृपा करके हमें दो प्रकार की स्वतंत्रता दी है—सामाजिक स्वतंत्रता और राजनैतिक स्वतंत्रता। अब श्रीमान्, बहुसंख्यक जाति संख्या में अधिक है। आपने देखा कि कौरव संख्या में सौ थे और पाण्डव पांच ही थे, पर उन्हें राज्य में समान अधिकार था। यद्यपि भगवान् कृष्ण अन्तिम अवतार के रूप में स्वतंत्रता या यूं कहिये देश के प्रशासन में समुचित अंश नहीं प्राप्त करा सके, किन्तु बाद में महात्मा गांधी ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर हरिजनों के लिये राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की; उन्होंने केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही प्राप्त नहीं की; वरन् 1932 तक हमसे घृणा की जाती थी, हमें चिढ़ाया जाता था, सताया जाता था और हमारे साथ दुर्व्यवहार होता था, पर 1932 के पश्चात् वह घृणा प्रेम में परिणित हो गई। कुछ माननीय सदस्यों ने कहा है कि अनुसूचित जातियों को रक्षण नहीं मिलना चाहिये। हमें बिना पूछे ही इस बहुसंख्यक जाति ने रक्षण दे दिया है। मेरे माननीय मित्र श्री लारी तथा अन्य मित्र कह रहे हैं: ''इन अनुसूचित जातियों को रक्षण क्यों दिया जाये?'' हम अपने सम्प्रदाय के लिये रक्षण नहीं मांग रहे। हम वे लोग हैं जिन्होंने सब लोगों को आश्रय दिया है। तीन हजार वर्ष पूर्व हमने आपको शरण दी। हमारी जाति ने ही सबको आश्रय दिया है। हमारी जाति आश्रय नहीं मांगती। श्रीमान्, हमारी सहायता बिना अंग्रेज इस देश पर राज्य नहीं कर सकते थे; हमारे सहयोग के बिना मुस्लिम इस देश पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते थे और कांग्रेस आजादी प्राप्त नहीं कर सकती थी। 1942 में ही हम आंदोलन में शामिल हुये और हमारे शामिल होने के ही फलस्वरूप हम अंग्रेजों को निकाल सके। अत: श्रीमान्, हमारे सहयोग बिना, हमारी सहायता बिना इस देश में कोई भी कायम नहीं रह सकता। हम समस्त देश के साधिकार शाही स्वामी हैं और भारत के आदि निवासियों के वंशज होने के नाते हमें सब कुछ अधिकार है, किन्तु हम ऐसे संकुचित मनोवृत्ति वाले नहीं हैं कि दूसरों को यहां से निकाल दें। हम आश्रय देते रहे हैं; हम भूमि को जोतते रहे हैं; हम दूसरों के लिये परिश्रम करते रहे हैं। देखिये, हमने कितना बलिदान कर दिखाया है। कई शताब्दियों से हमारे साथ दुर्व्यवहार होता रहा है, फिर भी हम अपने धर्म पर जमे रहे। कुछ ऐसी गन्दी मछलियां हैं जो सिक्ख या ईसाई बन गये। किन्तु आज भी सात करोड़ लोग हिन्दू धर्मावलम्बी हैं, जिससे यही प्रकट है कि इस जाति का लक्षण ही दु:ख सहन करना, बलिदान करना

तथा परिश्रम करना है। अत: श्रीमान्, मैं आपका, बहुसंख्यकों का, आश्रय नहीं मांग रहा। मैं जानता हूं 'प्रत्येक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार है'। आखिर, क्या आप यह समझते हैं कि आप ही बहुसंख्यक सम्प्रदाय है? मैं आपको अल्पसंख्यक सम्प्रदाय बना सकता हूं। यह तो केवल वर्ग का प्रश्न है जाति का नहीं। जब ऐसी बात है तो मुझे रक्षा की अपेक्षा नहीं है। आपने जो रक्षण दिया है उसके लिये मैं आभारी हूं। अब आप सहायता का हाथ बढ़ाते हैं तो मैं उसे क्यों ठुकराऊं? हम अनुसूचित जातियों ने इस देश पर अरब से आक्रमण नहीं किया है। हम यहां बाहर से नहीं आये हैं और यदि हम दूसरे लोगों को मिला नहीं सकते तो हमारे लिये कोई दूसरा राज्य नहीं है जहां हम जाकर रह सकें। हम पृथक् राष्ट्र नहीं हैं, हम एक ही धर्म, एक ही संस्कृति, एक ही परम्परा के हाड़मांस हैं, हम इस भूमि के असली बालक हैं। हमारे साथ भिन्न बर्ताव कैसे हो सकता है? अत: मेरे माननीय मित्र हमारी तथा हमारे सम्प्रदाय की आड़ में अपनी जाति की वकालत न करें। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि यदि उनके दिल में हमारे लिये कोई भी स्नेह है, तो हमें हमारे ही हितार्थ रक्षण मिल जाने दें। अपनी ओर से तो हम अपने हितों का संरक्षण दूसरों से अधिक कर सकते हैं। आत्म-सहायता सर्वोपरि सहायता है; यही नारा है और यह सत्य है। वे कहते हैं 'आपको रक्षण की क्या आवश्यकता है?' स्वतंत्रता तब तक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जब तक कि वह तीन अंगों में पूर्ण न हों। प्रथम सामाजिक है, दूसरा राजनैतिक है और तीसरा आर्थिक। स्वाधीनता के लिये यह बहुत आवश्यक तथा मुख्य है। मैं जानता हूं कि जहां तक आर्थिक स्वतंत्रता का सम्बन्ध है, समूचा देश ही पिछड़ा हुआ है, किन्तु यह सम्प्रदाय विशेषत: पिछड़ा हुआ है, आज भी, यहीं और अभी, मैं रक्षण की समाप्ति के लिये तैयार हूं, यदि प्रत्येक हरिजन परिवार को 10 एकड़ सिंचाई की भूमि तथा 20 एकड़ सूखी जमीन मिल जाये तथा हरिजनों के सारे बच्चों को विश्वविद्यालयों तक नि:शुल्क शिक्षा मिले और असैनिक या सैनिक विभागों में मुख्य पदों का पांचवा भाग मिले। मैं बहुसंख्यक सम्प्रदाय को चुनौती देता हूं कि यदि वे इतना देने के लिये तैयार हैं तो मैं सारे रक्षण छोड़ने के लिये तैयाार हूं। मेरे मुस्लिम मित्रों को जान लेना चाहिये कि हम हरिजन लोग राष्ट्र प्रेम में किसी से कम नहीं हैं। हमें ही अधिक लड़नां पड़ा क्योंकि यह हमारा देश है। आखिर आप तो आक्रमणकारी हैं, निष्क्रमणकारी हैं, आपको इस देश में इतनी दिलचस्पी नहीं हो सकती, जितनी कि हमें हो सकती है और हमीं लोग इस देश की समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं, कृषिश्रम द्वारा अथवा औद्योगिक श्रम द्वारा। दुर्भाग्यवश, शहद एकत्र करने वाली मधुमक्षिका के समान हम कड़ा परिश्रम करते हैं, किन्तु हम शहद से दूर ही रहते हैं, किन्तु समय आयेगा और यदि आप अब तक के समान ही स्वार्थी बने रहे, तो अंग्रेजों के साथ जो कुछ हुआ है वही आपके साथ भी किया जायेगा। आपका क्या है जो कि मध्य एशिया, मंगोलिया और मंचूरिया से आये हैं? आपको अपने स्थानों पर लौटना होगा। वहां से भी आपको निकाल दिया जायेगा। इस देश में सबसे अधिक हक हमीं को है। अत: आपने कोई कृपा नहीं की है, अपितु उचित ही किया है।

मैंने आपको बताया है कि जहां तक इस देश का सम्बन्ध है, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या आर्थिक समस्या ही है। यदि आप निश्चय कर लें तो इस प्रश्न का हल करना बहुत सरल है। आप सारे देश में जमींदारी का उन्मूलन कर रहे हैं। आपके पास लाखों

[श्री एस. नागप्पा]

एकड़ भूमि आ जायेगी। यदि आप प्रत्येक हरिजन परिवार को, जिसके पास भूमि नहीं है, सारे भूमिहीन हरिजनों को दस एकड़ सिंचाई की भूमि और 20 एकड़ सूखी भूमि दे दें और बच्चों को विश्वविद्यालय तक की शिक्षा दे दें तो मैं रक्षण छोड़ने के लिये तैयार हूं। लीजिये।

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): यदि आप 10 एकड़ सिंचाई की भूमि तथा 20 एकड़ सूखी भूमि दे दें तो प्रत्येक ब्राह्मण हरिजन बनने के लिये तैयार है।

***श्री एस. नागप्पा:** यदि ब्राह्मण को भूमि दे भी दी जाये तो वह जोतेगा कैसे? अब तक उसके पास भूमि रही है। उसे हमारा आश्रय लेना पड़ता है, हमें नौकर रखना पड़ता है। यह तो नपुंसक को रम्भा सौंपना है। अपने ब्राह्मण मित्रों से मैं कहता हूं कि ''आपके भूमि मांगने से क्या लाभ है? भूमि तो कृषक को देनी चाहिये, वही भूमि का स्वामी होना चाहिये। आप स्वामित्व के शौक से ही उसके स्वामी नहीं बनना चाहते। आपके पास जो सम्पत्ति हो उसका उपयोग आपको करना चाहिये।'' मेरे ब्राह्मण मित्र के ऐसा कहने से कोई लाभ नहीं है कि ''मैं आगे बढ़कर कहता हूं कि मैं हरिजन बनने के लिये तैयार हूं।'' ईसाई या मुस्लिम के समान कोई हरिजन नहीं बन सकता। आपको जन्मजात हरिजन होना होता है, आपको हरिजन के रूप में जन्म पाना होता है, आज आप ईसाई या मुस्लिम बन सकते हैं, अगले दिन आप दाढ़ी रखकर सिख बन सकते हैं, किन्तु आप बिना जन्म लिये हरिजन नहीं बन सकते।

***एक माननीय सदस्य:** बहुत स्वार्थमय है।

***श्री एस. नागप्पा:** ऐसा मत समझिये कि हरिजन हर किसी को अपनी जाति में लेते रहे हैं। यदि आप हरिजन सम्प्रदाय में आना चाहते हैं, तो आपको झाड़ू देने तथा मल-मूत्र साफ करने के लिये तैयार रहना चाहिये। आप ऐसा नहीं करना चाहते और अपनी शान रखते हैं। आप कहते हैं: ''मैं हिन्दू हूं और मैं दूसरे के लिये झाड़ू निकाल नहीं सकता और मल-मूत्र साफ नहीं कर सकता।'' आप तो पांचों घी में रखना चाहते हैं: ''चुपड़ी मेरी और रूखी तुम्हारी। यदि मैं छोड़ूं, तो रुखी को ही छोड़ूं चुपड़ी को नहीं।'' यही आपका सिद्धांत है न? मैं श्री मोहनलाल गौतम से पूछता हूं, जिन्होंने कृपा करके हरिजन बनना चाहा था।

मेरे माननीय मित्र श्री लारी के संशोधन के विषय में, कि अनुसूचित जातियों के लिये रक्षण समाप्त हो जाना चाहिये, मैं अपने माननीय मित्र को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने सदन में यह विचार रखा है। किन्तु इसे आदर्श ही रहने दीजिये, इसे क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सकता। आज जो कुछ हुआ है और कहा गया है उसके बाद मेरे माननीय मित्र श्री लारी को स्मरण रखना चाहिये कि आज नहीं, तो कुछ समय पहले, वे भी हरिजन थे। उन सम्प्रदायों में हरिजन ही शामिल हुये थे।

***मि. जैड.एच. लारी:** यदि मुझे दस एकड़ सिंचाई की भूमि तथा 20 एकड़ सूखी भूमि मिल जाये तो मुझे हरिजन बनने में बहुत प्रसन्नता होगी।

***श्री एस. नागप्पा:** यदि आप मल-मूत्र साफ कर सकते हैं तो हरिजन बन सकते हैं। आपको कोई नहीं रोकता। सम्प्रदाय तो कर्मानुसार होते हैं, किसी के लिखा नहीं हुआ है कि वह अमुक है। यदि आप अध्यापन का कार्य करें तभी अध्यापक कहला सकते हैं। भंगी का कार्य करे तो भंगी हो जाते हैं, झाड़ू निकालें तो मेहत्तर कहलाते हैं। यदि आप हरिजन बनने के इतने शौकीन हैं तो उनका कर्म आप ले सकते हैं। जो भी मित्र झाड़ू निकालने या मल-मूत्र साफ करने का काम करने के लिये तैयार हों...

***अध्यक्ष:** कृपया सदन के समक्ष प्रस्तुत प्रस्ताव तक ही अपनी बात को सीमित रखें। हरिजनों के कर्त्तव्यों को तो हम सब जानते हैं।

***श्री एस. नागप्पा:** अब मैं उपयोगी बात पर आता हूं। मुझे आशा है कि मेरे माननीय मित्र, जो मेरे सम्प्रदाय से ईर्ष्या करते रहे हैं, सदा के लिये ऐसा नहीं करते रहेंगे।

हम रक्षणों को पहले ही समाप्त कर चुके हैं। मैं पूछता हूं कि इस सदन के लिये रक्षण कहां है। हमें सवर्ण हिन्दुओं के साथ मिला दिया गया था और उन्होंने हमें चुना था। हम सवर्ण हिन्दुओं के प्रतिनिधि हैं। मैं केवल हरिजनों के लिये ही विधि नहीं बना रहा हूं, प्रत्युत तीसों करोड़ लोगों के लिये बना रहा हूं। संविधान केवल मेरे ही सम्प्रदाय के लिये नहीं बन रहा है। मैं केवल अपने ही सम्प्रदाय द्वारा निर्वाचित नहीं हुआ हूं। अत: वस्तुत: हमने रक्षण समाप्त कर दिया है। यह संसद, यह संविधान सभा संयुक्त निर्वाचक मंडलों द्वारा चुनी गई है। इसे ईसाइयों, सिक्खों, हरिजनों तथा हिन्दुओं ने स्वीकार किया है। केवल मेरे वे ही मित्र अपने लोगों द्वारा चुने गये हैं, जो कि दो राष्ट्र के सिद्धांत का प्रचार करते रहे हैं। मैं कहता हूं, श्रीमान्, कुछ त्रुटियां है। अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की सद्भावना का बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने समुचित रूप में उपयोग नहीं किया है। मैं ऐसे दृष्टान्त दे सकता हूं, जहां वे अपनी बात से पीछे हट गये हैं, जहां वे विशाल-हृदय सिद्ध नहीं हुये हैं। मद्रास को ही लीजिये, जहां 80 लाख हरिजन हैं। क्रिप्स-प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक दस लाख व्यक्तियों के लिये एक प्रतिनिधि आना चाहिये। हम केवल सात हैं यदि जनसंख्या के अनुसार रक्षण हो तो हमें आठ होना चाहिये था। किन्तु यह तो छोटी सी बात है कि हम आठ हों या सात, काम तो वही होता है। त्रावनकोर को लीजिये। इसी राज्य को हरिजनों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम तथा प्रगतिशील समझा जाता है। इसी राज्य ने सर्वप्रथम मंदिर प्रवेश लागू किया। किन्तु वह राज्य संविधान सभा में हरिजनों को प्रतिनिधित्व देने में असमर्थ रहा है। साठ लाख की जनसंख्या में से तेरह लाख हरिजन हैं। इन तेरह लाख हरिजनों की उपेक्षा कर दी गई है और चार लाख मुसलमानों को एक स्थान दिया गया है। सोहन की पगड़ी उतार कर मोहन के सिर पर रख दी गई है। इसी कारण हम रक्षण चाहते हैं। यह कहा जा सकता है कि वह तो राज्य है। युक्त प्रान्त को लीजिये। 1931 की जनगणना के अनुसार युक्त प्रान्त में 1 करोड़ 20 लाख हरिजन हैं। मैं देखता हूं कि उस प्रान्त से केवल छ: सदस्य हैं। बंगाल की क्या स्थिति है? मेरे पास बंगाल के विषय में ठीक-ठीक आंकड़े नहीं हैं। पंजाब में क्या है? मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव कहते रहे हैं कि वहां 18 लाख हरिजन तथा 4 लाख सिख हरिजन हैं, कुल मिलाकर 22 लाख हुये। मैं देखता हूं कि वहां से हरिजनों का एक ही प्रतिनिधि आया

[श्री एस. नागप्पा]

है। क्रिप्स के प्रस्तावों के अनुसार दो होने चाहिये थे। अब हम रियासतों को देखें। पटियाला रियासत की क्या स्थिति है? 26 लाख की जनसंख्या में से 9 लाख हरिजन हैं। इस परिषद् में कम से कम एक प्रतिनिधि होना चाहिये था। मध्यभारत को लीजिये। 70 लाख की जनसंख्या में से वहां 17 लाख हरिजन हैं। अब परम मान्य गवर्नर जनरल उस रियासत में गये थे, तब हरिजनों ने उनसे अभिवेदन किया था—''श्रीमान्, सत्तर लोगों के सदन में हमारे केवल तीन सदस्य हैं, यद्यपि हमारी जनसंख्या 17 लाख हैं।'' देखिये, बहुसंख्यक जाति ने कैसा न्याय किया है। हम आपसे अपील करते हैं, हम दावा नहीं करते, हम उनकी सद्भावना से अपील करते हैं, केवल करबद्ध हो कर नहीं, वरन् घुटने टेककर कि हमारे साथ न्याय कीजिये। हम कृपा की याचना करते हैं। आखिर, हम मूक हैं, हमारी आवाज धीमी है। मध्यभारत में केवल तीन सदस्य हैं, संविधान सभा में एक भी नहीं। अपनी इस स्वार्थता के कारण, आप हमें रक्षण मांगने के लिये बाध्य कर रहे हैं। यह आपके परीक्षण का काल था, यदि आप विशाल-हृदयता दिखाते, तो हम सबसे पहले और सबसे आगे बढ़कर कहते, कि ''हम कोई रक्षण नहीं चाहते।'' दोष आपका है हमारा नहीं। इस कारण महात्मा गांधी कहते थे ''पुराने जमाने में आपके पिताओं और पूर्वजों ने उनके विरुद्ध जो पाप किये हैं, उन्हें धोने के लिये हरिजन सेवक बनिये।'' गलती आपकी ही है। यदि किसी मंदिर और मस्जिद के विषय में विवाद होता था, तो वेदी पर हमारा शीश चढ़ाया जाता था। यदि कोई हिन्दू-मुस्लिम दंगा होता तो हम ही ने युद्ध लड़ा। हमें क्या पुरस्कार मिला? ''ठीक है, परिश्रम करते जाइये'', यह पारितोषिक मिला ''तुम मेरे प्रहरी कुत्ते हो; मेरे दास या गुलाम बने रहो'', यही इनाम मिला। क्या इसे आप न्याय कहते हैं? अब तक आप ऐसा कर सकते थे क्योंकि हम जानते नहीं थे। महात्मा जी ने उस अज्ञानता को दूर कर दिया है। उन्होंने हमारे दिमाग में पर्याप्त देशभक्ति, पर्याप्त जागरूकता भर दी है। आप सोच सकते हैं कि महात्मा जी अब नहीं रहे। किन्तु आपको ज्ञात होना चाहिये कि उनकी आत्मा सर्वत्र है, उनकी भावना सर्वत्र विद्यमान है। आप आज उन्हें देख नहीं सकते; किन्तु वे हमारे कर्मों को देख रहे हैं। कांग्रेसजन, जो उनके वंशज होने का दावा करते हैं, जानते हैं कि वे इस सभा को देख रहे हैं। मैं यह आप पर छोड़ता हूं। आप जहां भी चाहें रक्षण समाप्त कर सकते हैं। मैंने चुनौती दे दी है, आपको इसे स्वीकार करना है।

मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन पर, जिसके अनुसार स्थानों के रक्षण तथा नाम निर्देशन के उपबंध दस वर्ष ही रहेंगे, मुझे यही कहना है कि इस सदन के लगभग हम सभी हरिजन सदस्य एकत्र हुये थे तथा माननीय पंडित नेहरू ने कृपा करके हमें समझाया था कि हमारे अपने ही हितों में यही सर्वोत्तम बात है। उनके परामर्श के अनुसार हमने इस बात पर निर्णय किया है। आखिर, यह ऐसा प्रश्न है जिस पर संसद को पुनर्विचार करना है। यदि दस वर्षों के पश्चात् हमारी स्थिति वही रहती है जो अब है, तो यह संसद के हाथ में है कि रक्षण को जारी रखे या समाप्त कर दे। आपको कौन रोकता है कि आप पांच या दस वर्ष पश्चात या दो वर्ष पश्चात् ही संसद का एक अधिनियम बनाकर कह सकते हैं–''हरिजनों की मांग स्वीकार कर दी गई है, अब वे दूसरों के समान स्तर पर हैं और उनके लिये यह स्थानों का रक्षण अपेक्षित नहीं है।'' आज यह जिस रूप में है आप उस पर फिर विचार कर सकते हैं। अतः हमने स्वीकार कर लिया कि रक्षण इस संविधान के आरंभ से दस वर्ष तक रहने चाहिये।

मैं एक बार फिर अल्पसंख्यक समिति के सदस्यों का और इसके सभापति हमारे माननीय सरदार पटेल का, जिन्होंने कि हमारे अधिकारों के संरक्षण के लिये इतना कष्ट उठाया है, धन्यवाद देता हूं। मैं, श्रीमान्, आपका धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे यह अवसर दिया है।

***अध्यक्ष:** मैं सदस्यों से कहना चाहता हूं कि वे अपनी वक्तृता को दस मिनट तक ही सीमित रखें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, डाक्टर सरदार पटेल ने जो प्रस्ताव पेश किया है, वह हमारे देश के सांवैधानिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम है और इस पर भविष्य के इतिहासकार तथा सांवैधानिक लेखक प्रसन्नता से हर्ष प्रकट करेंगे। श्रीमान्, आरम्भ में ही मैं कह देना चाहता हूं कि मैं इस प्रस्ताव के साथ हृदय से पूर्णत: सहमत हूं (साधु, साधु)। श्रीमान्, मेरे पास जो थोड़ा सा समय है, उसमें मैं केवल मुख्य बातों पर ही बोलना चाहता हूं। मूल प्रस्ताव में और दो मुख्य प्रस्तावों में थोड़ा सा अन्तर भी है और वे किसी हद तक मिलते-जुलते भी हैं। मूल प्रस्ताव के अनुसार मुसलमानों का रक्षण समाप्त होना है। श्री इस्माइल साहिब ने जो संशोधन पेश किया है, उसके अनुसार रक्षण रहना चाहिये। श्री लारी सब रक्षणों को समाप्त करना चाहते हैं, अत: मूल प्रस्ताव और श्री लारी का संशोधन इस विषय में सहमत हैं कि मुसलमानों का रक्षण समाप्त हो जाना चाहिये और यह श्री इस्माइल के संशोधन के विपरीत है।

फिर अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में मूल प्रस्ताव और श्री इस्माइल उन्हें बनाये रखना चाहते हैं, किन्तु श्री लारी उन्हें मिटाना चाहते हैं। पिछड़े हुये वर्ग के सिक्खों के सम्बन्ध में भी स्थिति वैसी ही है। अत: श्री लारी तथा श्री इस्माइल के संशोधन एक दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं।

श्रीमान्, मेरे विचार में हमें उस स्थिति पर ध्यान देना चाहिये, जिसमें भारतीय मुस्लिमों ने स्थानों का रक्षण स्वीकार किया था। वह ऐसा समय था, जबकि साम्प्रदायिक स्थिति बहुत असंतोषप्रद थी और उस समय कुछ रक्षण आवश्यक दिखाई देते थे। किन्तु अब स्थिति बहुत सुधार गई है और प्रतिदिन सुधर रही है और बहुत समय से दोनों सम्प्रदायों में अतीव समन्वय है। मैं समझता हूं कि किसी प्रकार के रक्षण स्वस्थ राजनैतिक विकास के प्रतिकूल हैं उनसे एक प्रकार की लाघव-भावना प्रकट होती है। वे एक प्रकार की भय-भावना से पैदा होते हैं और वास्तव में उनका प्रभाव यह होगा कि मुसलमान एक विधि-आश्रित अल्पसंख्यक बन जायेंगे। तब फिर मुस्लिम रक्षणों का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध पृथक् निर्वाचक मंडलों से है, जिनके कारण इतनी मुसीबतें पैदा हो गई हैं। अत: मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि रक्षणों को बनाये रखने से उन पृथक् निर्वाचक मंडलों की दु:खद स्मृति तथा उससे सम्बद्ध समस्त कड़वाहट सदा के लिये बनी रहेगी। मेरा निवेदन है कि यह तो दस वर्षों के लिये भी बुरा है।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि मुस्लिमों के लिये स्थानों का रक्षण, विशेषतया इस समय, मुस्लिमों के लिये ही वास्तव में हानिप्रद होगा। वास्तव में यदि हम रक्षण स्वीकार

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कर लें और निर्वाचन करें तो हिन्दुओं और मुस्लिमों के मध्य इस समय जो सम्बन्ध हैं वे बिगड़ जायेंगे। स्थिति में जो अत्यधिक सुधार हुआ है वह खत्म हो जायेगा। विगत के हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की स्मृति ताजा हो जायेगी और भावनाओं में कटुता आ जायेगी। हिन्दुओं और मुस्लिमों में फूट बढ़ जायेगी—जो बहुत अवांछित है, चाहे हम केवल मुसलमानों के दृष्टिकोण से ही उस पर विचार करें। इससे मुसलमानों में ही फूट पड़ जायेगी। वास्तव में यदि स्थान रक्षित हों तो एक अभ्यर्थी मुसलमान खड़ा कर सकते हैं और एक हिन्दू। मुस्लिम विभक्त हो जायेंगे। वे एक अभ्यर्थी के पीछे लग जायेंगे या दूसरे के और इससे व्यर्थ के प्रश्न पर उन्हीं में विभाजन हो जायेगा। अतः मेरा निवेदन है कि मुसलमानों के लिये रक्षण अवांछनीय होगा। वर्तमान संदर्भ में, जबकि हमने पृथक् निर्वाचक मंडलों को समाप्त करके अपने सम्बन्ध सुधार लिये हैं, यह तर्कसंगत नहीं होगा और यह मुस्लिमों के लिये तथा समस्त राजनैतिक ढांचे के लिये भी निश्चय से हानिकारक है।

श्रीमान्, रक्षण ऐसे प्रकार का रक्षा-उपाय है, जिससे वह वस्तु, जिसकी रक्षा की जाती है, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। अतः इन सब कारणों से, मुझे मुसलमानों के लिये रक्षण का जोरदार विरोध करना चाहिये। अब, श्री लारी के संशोधन का भी यही आशय है कि मुस्लिमों के लिये कोई रक्षण नहीं होना चाहिये और जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, मैं उसका स्वागत करता हूं। किन्तु उनके संशोधन के साथ यह शर्त अड़ी हुई है कि सामूहिक मतदान होना चाहिये। उनका तर्क मुख्यतः यूरोपीय विचारों पर आधारित है। आयरलैंड में दोनों वर्गों के मध्य का संघर्ष अनन्त है। वह इतिहास के प्रभात से ही आरम्भ हुआ था और कभी समाप्त होने वाला नहीं है। किन्तु जहां तक हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों का विषय है, दोनों सम्प्रदायों के बीच मैत्री केवल अस्थायी रूप से टूट गई थी और प्रसन्नता की बात है कि देश में अतीत काल से जो प्राचीन मैत्री चली आ रही थी, वह पुनः स्थापित हो गई, स्थिति पुनः सुधर गई है। सामूहिक मतदान की पद्धति आवश्यक नहीं है और इस पर काम करना अत्यन्त कठिन है। मैं नहीं समझता कि यह भारत की विद्यमान स्थितियों में आवश्यक है, विशेषतः क्योंकि यहां करोड़ों निरक्षर मतदाता हैं। अतएव मेरा निवेदन है कि किसी प्रकार का सामूहिक मतदान अथवा कोई अन्य विवेकयुक्त उपाय अथवा उस प्रकार के कोई सुधार अनावश्यक हैं। केवल मुस्लिम दृष्टिकोण से ही हम कोई रक्षण नहीं चाहते।

तत्पश्चात्, फिर सम्प्रदायों के लिये स्थानों का रक्षण अनिर्वायतः पृथक् निर्वाचक मंडलों से सम्बद्ध है। पृथक् निर्वाचक मंडलों के हटाने के पश्चात् स्थानों का रक्षण नितांत तर्क विरुद्ध होगा। यदि हम स्थानों के लिये खड़े हों, रक्षित स्थानों के लिये नहीं, तो परिणाम यह होगा कि हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के अधिक निकट आ जायेंगे। यद्यपि हम अल्पसंख्यक हैं और इसी बात पर श्री लारी ने बहुत बल दिया है। तो मेरे विचार में किसी हिन्दू अभ्यर्थी के लिये मुसलमानों की अवहेलना करना सम्भव नहीं होगा। वास्तव में प्रत्येक स्थान के लिये कम से कम दो अभ्यर्थी होंगे और मुकाबला होने की स्थिति में, मुसलमानों का बहुत महत्त्व होगा और यह भी हो सकता है कि यदि वे बुद्धिमान

अल्पसंख्यकों की तरह कार्य करें और ठीक प्रकार से एक या दूसरे अभ्यर्थी का साथ दें, तो सब निर्णय उन्हीं के हाथ में होंगे। चुनावों में उनकी आवाज निर्णायक होगी। हो सकता है कि भारी बहुमत दिखाई देने वालों को निर्वाचन के अन्त में पता लगे कि वह एकमात्र वोट से पराजित हो गये। अत: कोई अभ्यर्थी मुस्लिमों की अवहेलना नहीं कर सकता, चाहे उसे कितनी ही विजय की आशा क्यों न हो। अत: मुस्लिमों की खैरियत इसी में है कि वे सार्वजनिक मामलों में बुद्धिमानी से अपना भाग अदा करे और हिन्दुओं के साथ मिलकर चलें। इससे दोनों सम्प्रदायों को बहुत लाभ होगा, और अगले निर्वाचनों में बिना किसी रक्षणों के ही हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे से निर्वाचनों में और अपनी मातृभूमि की सेवा के लिये सार्वजनिक मामलों में एक दूसरे से सहयोग करेंगे।

मेरे जो माननीय मित्र यह समझते हैं कि रक्षण होने चाहियें, वे विगत को ही देखते हैं। वे पीछे की ओर आंखें लगाये हुये हैं। किन्तु हमारी आंखें, भारतीय मुस्लिमों की आंखें भविष्य की ओर होनी चाहिये। हमारा दृष्टिकोण प्रगतिशील होना चाहिये। अब, भारतीय राजनीति में बहुत से विषय हैं, मैं उनमें से किसी के विषय में यह नहीं सोच सकता कि उनमें साम्प्रदायिक आधार पर कुछ अन्तर हो सकता है। प्रान्तों में मुख्य विषय यह हैं—शिक्षा, स्वच्छता और स्थानीय स्वशासन। इन विषयों से किसी सम्प्रदाय विशेष पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। हिन्दुओं और मुसलमानों को अपनी मातृभूमि के कल्याणार्थ साथ-साथ खड़े होकर इन विषयों पर कार्य करना होगा।

केन्द्रीय क्षेत्र में औद्योगिक समस्यायें हैं, सिंचाई की योजनायें हैं, प्रतिरक्षा तथा परराष्ट्र सम्बन्धों का प्रश्न है और शान्ति तथा व्यवस्था की समस्यायें भी हैं। इन मामलों में साम्प्रदायिकता कुछ भी नहीं है तथा उनमें प्रत्येक की समान रूपेण रुचि है, चाहे उसका सम्प्रदाय या धर्म कुछ भी हो। मेरा बहुत पक्का ख्याल है कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। यह बात नहीं है कि धर्म की उपेक्षा कर दी जाये; किन्तु धर्म तो निजी बात ही है और सार्वजनिक जीवन में हमें सम्प्रदायों के आधार पर नहीं सोचना चाहिये। इस सभा में अथवा बाहर सार्वजनिक जीवन में, हम न हिन्दू हैं और न मुस्लिम ही हैं। अपने निजी जीवन में हमें पक्के हिन्दू या मुसलमान होना चाहिये। अत: यदि हम निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन के बीच अपने दृष्टिकोण में भेद करें, तो कोई झगड़ा नहीं होगा। राज्य को अपने नागरिकों की धार्मिक भावनाओं में यथासम्भव न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिये। उन्हें अछूता छोड़ देना चाहिये। यदि मुस्लिम अपना कर्त्तव्य ठीक प्रकार से तथा विवेकपूर्वक पूरा करें, यदि वे अपना कर्त्तव्य निष्ठापूर्वक तथा देशप्रेमपूर्वक पूरा करें, तो उनकी स्थिति ठीक बनी रहेगी।

अन्य अल्पसंख्यकों के विषय में मैं निवेदन करता हूं कि हमारी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जानी चाहिये। अनुसूचित जातियां हैं और सिखों में नई अनुसूचित जातियां भी हैं, सीमावर्ती क्षेत्र हैं, पृथक् किये हुये तथा अंशत: पृथक् किये हुये क्षेत्र हैं और आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय भी हैं; उन सबकी रक्षा की जायेगी। श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब के संशोधन से उनकी रक्षा होंगी। श्री लारी उन सबको समाप्त कर देना चाहते हैं। किन्तु उन सब अल्पसंख्यकों की स्थिति कायम रखी जायेगी। यह तो निर्वाचक मंडलों और सरकार की पद्धति में भरोसा रखने का प्रश्न है। यदि इनमें से कोई अल्पसंख्यक यह अनुभव करते हैं कि स्थानों का

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

रक्षण प्राप्त किये बिना उनकी रक्षा नहीं होगी तो उन्हें खुशी से रक्षण मिलने दीजिये। जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, मेरे विचार में हमें कोई शिकायत नहीं है। यह तो उन्हें संतुष्ट करने का ही प्रश्न है। यदि उनका ख्याल है कि उन्हें रक्षण से संतोष हो जायेगा तो उन्हें लेने दीजिये और इस सम्बन्ध में श्री लारी का संशोधन कुछ आवश्यकता से अधिक आगे बढ़ जाता है और वह अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर आक्रमण है। सिख अनुसूचित जातियों के विषय में भी यही बात है। यह तो उन्हें कहना है कि वे स्थानों का रक्षण चाहते हैं या नहीं, उनके लिये कुछ कहना हमारा काम नहीं है। यह कोई तर्क या युक्ति का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह तो वास्तव में प्रत्येक वर्ग अथवा सम्प्रदाय में विश्वास तथा सुरक्षा की भावना पैदा करने का प्रश्न है कि किसी विशेष योजनानुसार, उनके साथ न्यायपूर्वक तथा उचित व्यवहार किया जायेगा।

जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है, हमारे यहां पश्चिमी बंगाल के विधान मंडल में वाद-विवाद हो चुका है, जहां मैंने देखा कि मुसलमानों का मत बहुलता से स्थान-रक्षण के विरुद्ध था। संघीय बोर्ड आदि के चुनावों के लिये स्थान-रक्षण की पद्धति कभी की समाप्त हो चुकी है और हिन्दू तथा मुस्लिम मित्रों के समान साथ मतदान करते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दुओं को मुस्लिमों के मत मांगने पड़ते हैं। यह बहुत शक्तिशाली और स्वागत योग्य बात है। मुसलमानों को यथार्थवादी होना चाहियें, जैसी कि उनसे आशा की जाती है और उनकी आंखें अतीत पर नहीं गड़ी रहनी चाहिये। उन्हें चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र अपनी नई स्थिति में जमने का प्रयत्न करें यदि वे महान् हिन्दू सम्प्रदाय में विश्वास का प्रदर्शन करें तो मुझे भरोसा है कि वे उनके साथ औचित्य और न्याय से बर्ताव करेंगे।

***डॉ. एच.सी. मुखर्जी** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, सभा द्वारा परामर्शदातृ समिति की सिफारिशें तथा सरदार पटेल द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को स्वीकार करने के विषय में विचार करते समय दो प्रश्न उठते हैं, जो मेरे विचार में सभा को अपने आप से पूछने चाहियें। पहला यह है: जब हम कहते हैं कि हम असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित करना चाहते हैं तो क्या हम सच्चे हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या हम एक ही राष्ट्र चाहते हैं? यदि हमारा विचार असाम्प्रदायिक राज्य बनाने का है, तो यह अनिवार्य निष्कर्ष है कि हम धर्म के आधार पर अल्पसंख्यकों को मान्यता नहीं दे सकते। मेरे विचार में यही प्रबलतम युक्ति है कि धार्मिक वर्गों के लिये रक्षण समाप्त हो जाने चाहियें और ऐसा तत्काल ही होना चाहिये। जहां तक राष्ट्र के निर्माण का सम्बन्ध है, मैं मानता हूं कि प्रत्येक सम्प्रदाय में कुछ आर्थिक रूप से पिछड़े हुये वर्ग हैं और उनके लिये गत दिसम्बर में स्वीकृत निदेशक सिद्धांतों में उपबंध कर दिया गया है।

श्रीमान्, मैं अपनी सारी स्थिति स्पष्ट बता देना चाहता हूं और यह कह देना चाहता हूं कि वैयक्तिक रूप से मुझे राजनैतिक क्षेत्र में पिछड़े हुये वर्गों के लिये रक्षण पर अत्यधिक आपत्ति है। मैं मानता हूं कि वे हमारी सहानुभूति के पात्र हैं और उन्हें आर्थिक संरक्षणों की आवश्यकता है, किन्तु मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि वे राजनैतिक संरक्षण

क्यों मांगते हैं। मैं नहीं समझता कि पिछड़े हुये सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति यह अनुभव क्यों करे कि जब तक वह अपना कोई विश्वस्त प्रतिनिधि न चुने तब तक विधान मंडल में उसकी शिकायतें पेश नहीं हो सकती। मेरे विचार में ऐसे रुख से पता चलता है कि उन्होंने अब तक अल्पसंख्यक जाति के सदस्य होने के नाते, राष्ट्र का अंग और भाग बन जाने का निश्चय नहीं किया है। फिर भी मैं अपने नेताओं की बुद्धिमता के समक्ष सिर झुकाता हूं और प्रस्ताव का समर्थन करता हूं, केवल इसलिये कि मुझे आशा है कि सभा पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन को स्वीकार कर लेगी, जिसके अनुसार ये रक्षण एक सुनिश्चित कालावधि तक ही रहेंगे और हम एक ही बार ऐसी व्यवस्था कर देंगे कि जब यह संविधान प्रवर्त्तन में आये उसके दस वर्ष पश्चात् वे समाप्त हो ही जायेंगे।

श्रीमान्, जब गत जनवरी में संविधान सभा का विघटन हुआ, तब यद्यपि मुझे अपने घर पर बहुत आवश्यक कार्य था तब भी मैं जान बूझकर यहां ठहरा था, क्योंकि रक्षणों की समाप्ति के इस प्रश्न पर मैं देश की भावनाओं को जानना चाहता था। यह मेरे जीवन का स्वप्न था, जब से कि मेरी माता जी ने मुझे स्पष्ट बताया था कि मुझे दो कार्य करने हैं। मैंने उनके चरण स्पर्श करके उन दो कर्त्तव्यों को पूरा करने का वचन दिया। एक यह थी कि जब तक मुझ में जीवन है तब तक मद्यमान के विरुद्ध प्रचार करूं और दूसरा वह कि साम्प्रदायिक विचारों को समाप्त करने का प्रयत्न करूं। यद्यपि साधारण माने में यह शिक्षित स्त्री नहीं थी किन्तु उन्होंने देखा था कि मिन्टो-मोरले सुधार योजना से राष्ट्रीय जीवन में कितना संघर्ष उत्पन्न हो चुका था, जिससे कि अमुस्लिमों को हमारे मुस्लिम भाइयों से पृथक् कर दिया गया था। उन्होंने मुझसे वायदा करवाया था कि यदि मैं कभी सार्वजनिक अथवा राजनैतिक क्षेत्र में उतरूं तो मुझे इस साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों की प्रणाली को समाप्त कराने के लिये तन मन से लग जाना चाहिये। मैं आभारी हूं कि ईश्वर ने मेरे जीवन की रक्षा की है जिससे कि नवीन शास्त्र (नये टेस्टामेंट) में उल्लिखित पैगम्बर के समान में भी गा सकता हूं:

> ''प्रभो, अब अपने दास को शान्ति से जाने दीजिये क्योंकि मेरी आंखों ने आपकी मुक्ति को देख लिया है।''

अत: मैंने देश के विचारों को जानने का प्रयत्न किया। मैं सभा को बता देना चाहता हूं कि इसमें भारत भर में राष्ट्रीय ईसाइयों को दस वर्ष तक भारी अविचल कार्य करना पड़ा है। मैंने एक प्रश्नावलि भेजी और अपने लोगों को 42 पत्र भेजे जिनमें से 35 के उत्तर प्राप्त हुये हैं। मैंने उनके उत्तरों को मिलाकर एकत्र किया और मैंने देखा कि अन्य लोगों के अतिरिक्त राष्ट्रीय ईसाइयों द्वारा भी पूछताछ की गई थी तो हिन्दुओं, मुस्लिमों, सिक्खों और अनुसूचित जातियों के मित्र थे। एकत्रित रूप में उनके उत्तरों से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं।

जहां तक जनसाधारण का सम्बन्ध है मेरे मित्रों ने एक स्वर से कहा कि जनसाधारण रक्षणों को नहीं चाहते। वे चाहते हैं भोजन, वस्त्र, अपने सिरों को छिपाने के लिये स्थान, डाक्टरी सहायता और अच्छी सड़कें। उनकी तो ये ही मांगें हैं। जब उनसे विशेष रूप से पूछा गया कि वे स्थान रक्षण चाहते हैं या नहीं, तो प्रत्येक ने यही उत्तर दिया ''हम जानते हैं कि हम विधान मंडलों में कभी भी नहीं जा सकेंगे, हमें रक्षणों में कोई रुचि

[डा. एच.सी. मुखर्जी]

या मतलब नहीं है''। इस बात में सब प्रकार के लोग एकमत थे। फिर निम्न मध्यवर्त्ती श्रेणी के लोगों से उत्तर प्राप्त हुये जोकि अपनी आजीविका के लिये सेवावृत्ति पर निर्भर करते हैं। उनकी प्रतिक्रिया यह थी कि यदि किसी प्रकार का रक्षण हो तो वे सेवाओं में ही रक्षण चाहते हैं। श्रीमान्, मेरे विचार में, यह रक्षण की मांग उच्च मध्यवर्त्ती श्रेणी द्वारा की जाती है जिनकी राजनीतिक आकांक्षायें हैं। फिर मैंने एक और प्रश्नावली भेजी जिसमें मैंने पूछा कि स्थान-रक्षण की मांग किस उद्देश्य से की जाती है। दो उद्देश्य बताये गये। मेरे मित्रों के विचार से सर्वप्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि अधिकांश व्यक्तियों की राजनैतिक आकांक्षायें हैं—वे सत्ता के पीछे दौड़ते हैं, पदों के पीछे दौड़ते हैं और वास्तव में वे लोग अपना निजी स्वार्थ साधने के लिये विभिन्न विधान मंडलों में अपनी स्थिति का उपयोग करना चाहते हैं। श्रीमान्, मैं कहता हूं कि ऐसे व्यक्तियों की स्वतंत्र भारत में कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह स्वीकार किया गया था कि कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो वास्तव में अपनी जातियों के भविष्य के विषय में चिन्तित हैं। ऐसे व्यक्ति विधान मंडल में इसलिये आना चाहते हैं कि वे समझते हैं कि वे अपने वर्ग के हितों का संरक्षण कर सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों का मैं आदर करता हूं। किन्तु हमने विविध मूलाधिकार पारित कर दिये हैं जो धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संरक्षणों को प्रत्याभूत करते हैं और वे संरक्षण न्याय हैं, उन संरक्षणों पर न्यायालय निर्णय कर सकता है; अत: मेरे विचार में ऐसे वर्गों के लोगों की उपस्थिति अपेक्षित नहीं है। फिर जब मैं उस निदेशक तत्व पर विचार करता हूं कि सामाजिक तथा आर्थिक रूप में पिछड़े हुये वर्गों के साथ न्याय किया जायेगा, तो मुझे ख्याल होता है और भरोसा होता है कि उनके साथ न्याय किया ही जायेगा। मेरे विचार में अनुसूचित जातियों को भी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है। किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं अपने नेताओं की बुद्धिमानी के समक्ष नतमस्तक हूं, अतएव मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

अब प्रश्न यह है: क्या बहुसंख्यक सम्प्रदाय पर विश्वास किया जा सकता है? बहुसंख्यक जाति ने प्रत्येक अल्पसंख्यक के प्रति उदारता दिखाई है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है। श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से सभा को बताना चाहता हूं कि जब लगभग दो मास तक मैं उस कुर्सी पर बैठा था जिस पर कि आज आप आसीन हैं, तो मैंने जानबूझकर यह परीक्षण किया था कि क्या हम बहुसंख्यक सम्प्रदाय पर विश्वास कर सकते हैं। मेरे मुस्लिम, मेरे सिख और अनुसूचित जातियों के मित्र मेरे साथ सहमत होंगे कि मैंने उन्हें अपनी भावनायें व्यक्त करने का प्रत्येक अवसर दिया था और यह बहुसंख्यक जाति की अनुमति से, उनकी मौन अनुमति से किया गया था। मैं सभा को यह भी बता सकता हूं कि इन दो मासों में, लगभग प्रतिदिन विदेशी पर्यवेक्षक आते थे और उनमें से कुछ पत्रकार थे और अन्य लोग, जिन्हें धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी कार्य में रुचि थी, प्रतिदिन मेरे घर आकर मुझे पूछा करते थे, ''क्या आपको पूरा भरोसा है कि बहुसंख्यक जाति न्याय करेगी?'' मैंने कहा, ''हां, बिल्कुल, मेरा तो यही ख्याल है; किन्तु मैं चाहता हूं कि आप स्वयं देखिये और अपने निष्कर्ष निकालिये।''। एक स्वतंत्र अमरीकी पत्रकार था जिसने मुझे श्री विन्स्टन चर्चिल के मानचेस्टर भाषण का उद्धरण दिया था जिसमें उन्होंने कहा था कि ब्राह्मण लोग

'मिल' और 'बेन्थम' की बाते करते हैं और फिर भी भारत में अपने अनुसूचित जातियों के भाइयों को स्वतंत्रता देने से इंकार करते हैं। मैंने उसे बताया कि अनुसूचित जातियों के प्रत्येक सदस्य को अपनी शिकायतें पेश करने का अधिकार है। उसी दिन श्री नागप्पा और श्री कक्कन ने सदन में अपनी शिकायतें रखीं और कोई भी सवर्ण हिन्दू नहीं था जिसने उन शिकायतों के अस्तित्व से इंकार किया हो। उस दिन की कार्यवाही के अन्त में, दो तीन सवर्ण हिन्दू खड़े हुये, जिन्होंने उन सब शिकायतों को स्वीकार करते हुये यह वचन दिया कि उन निर्योग्यताओं को हटाने के लिये सब प्रयत्न किये जाने चाहियें।

श्रीमान्, इन बातों से पता चलता है कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से डरने की कोई बात नहीं है। मुझे अपने अनुभव से यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि अल्पसंख्यकों के लिये यही बुद्धिमत्ता का मार्ग है कि वे बहुसंख्यकों पर भरोसा करें और यदि वे इस देश में शान्ति और सम्मानपूर्वक रहना चाहते हैं तो उन्हें सद्भावना प्राप्त करनी चाहिये। अब तक हमारा रुख सहायतापूर्ण नहीं रहा है। मैं विस्तार की बातों में नहीं जाना चाहता, किन्तु सब यह स्वीकार करेंगे कि अल्पसंख्यकों का रुख जरा भी सहायतापूर्ण नहीं रहा है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि हमने राष्ट्रीय आंदोलन में रोड़ा अटकाने के लिये कितनी बार पीछे से प्रभाव डाला। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहूंगा। बहुसंख्यकों को मैं कहता हूं, ''हम सदा के लिये अच्छी तरह से और न्यायपूर्वक हमारा ध्यान रखने का भार आपके कंधों पर डाल रहे हैं।'' भगवान ने बहुसंख्यक सम्प्रदाय को यह अवसर दिया है कि वास्तविक कार्य द्वारा, सच्चे उदाहरण द्वारा यह सिद्ध कर दें कि जो कुछ कहा गया है वह सत्य है और व्यक्तिगत रूप से मुझे सकारण विश्वास है कि वे सफल सिद्ध होंगे।

***अध्यक्ष:** मैं कह सकता हूं कि मेरे पास फिर बोलने के इच्छुक सदस्यों के पास से चिटें आई हैं। किन्तु मैं उन चिटों पर नहीं चलूंगा; मैं अपनी आंखों पर काम लूंगा।

***बेगम ऐजाज रसूल** (युक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, माननीय सरदार पटेल ने अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के प्रतिनिधित्व के विषय में जो प्रस्ताव पेश किया है, मैं उसका हृदय से समर्थन करने के लिये आई हूं। श्रीमान्, मुझे खेद है कि मुझे मद्रास के श्री इस्माइल के संशोधन का विरोध करना पड़ता है। उनके संशोधन का सारांश यह है कि पृथक् निर्वाचक मंडलों को रहने दिया जाये। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं आरम्भ से ही यह समझती हूं कि लौकिक राज्य में पृथक् निर्वाचक मंडलों का कोई स्थान नहीं है। अतएव संयुक्त निर्वाचक मंडलों के सिद्धांत को स्वीकार करने के पश्चात् अल्पसंख्यकों के लिये स्थान रक्षण मुझे व्यर्थ और अर्थहीन दिखता है। जो अभ्यर्थी हिन्दुओं और मुस्लिमों के संयुक्त मतों से चुना जाये वह सम्भवत: केवल मुसलमानों के ही दृष्टिकोण को पेश नहीं कर सकता और इसलिये यह स्थान रक्षण सर्वथा तथ्यहीन है। मेरे विचार में रक्षण एक स्वनाशक शस्त्र है जो सदा के लिये अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से दूर कर देता है। यह अल्पसंख्यकों को कोई अवसर ही नहीं देता कि वे बहुसंख्यकों की सद्भावना प्राप्त कर सकें। इससे पार्थक्य और सम्प्रदायवाद की भावना बनी रहती है जिसे एक ही बार सदा के लिये मिटा देना चाहिये। यह रक्षण केवल दस वर्षों के लिये था और मेरे विचार में हमारे देश के जीवन में यह दस वर्ष सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और सम्प्रदायों में मेल कराने के लिये प्रत्येक प्रयास किया जाना चाहिये।

[बेगम ऐजाज रसूल]

श्रीमान्, यह एक आधार है जिस पर कि मैं माननीय सरदार पटेल के प्रस्ताव का समर्थन करती हूं।

मेरे समर्थन करने का दूसरा कारण यह है कि अभी तक भारत के सम्प्रदायों में पृथकत्व की भावना पाई जाती है। यह मिट जानी चाहिये। मेरा ख्याल है कि यह अल्पसंख्यकों के हित में है कि वे बहुसंख्यक जाति में विलीन होने का प्रयत्न करें। इससे अल्पसंख्यकों को हानि नहीं होने वाली है, मैं उन्हें यह विश्वास दिला देती हूं, क्योंकि आगे चलकर यह उन्हीं के हित में है कि वे बहुसंख्यकों की सद्भावना प्राप्त करें। मेरे विचार में यह आवश्यक है कि इस देश में रहने वाले मुस्लिम अपने आपको पूर्णतया बहुसंख्यक सम्प्रदाय की सद्भावना पर छोड़ दें, पृथकत्व की भावनाओं को त्याग दें और सच्चा लौकिक राज्य बनाने में अपना पूरा बल लगा दें।

श्रीमान्, मैं पिछले दो वर्षों की घटनाओं के इतिहास को नहीं लूंगी। वह बहुत दु:खद इतिहास है और कोई इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि जो कुछ घटनायें हुई हैं उनमें इस देश के रहने वाले मुसलमानों को सबसे अधिक दु:ख उठाना पड़ा है। केवल उनके जीवन और सम्पत्ति ही जोखम में नहीं रहे हैं और असुरक्षित नहीं रहे हैं, बल्कि उनका सम्मान ही जोखम में पड़ गया और उनकी वफादारी पर ही संदेह किया जाने लगा। इससे उन्हें बहुत निराशा और मानसिक चिन्ता रही है। हम भूत को भुला देना चाहते हैं और हम यह चाहते हैं कि एक नया अध्याय आरम्भ करना चाहिये जिससे इस देश में रहने वाले समस्त सम्प्रदाय सुख और सुरक्षा पूर्वक रह सकें। मुस्लिमों के मस्तिष्क में कुछ आशंका है कि स्थान रक्षण हट जाने के पश्चात् वे अपनी जनसंख्या के अनुपात से विधान मंडलों में स्थान प्राप्त नहीं कर सकेंगे। मेरे विचार में यह आशंका निर्मूल है क्योंकि मेरे विचार में जब हम बहुसंख्यक सम्प्रदाय के सम्मान पर सब कुछ छोड़ देते हैं, तो वे अपनी साख और सम्मान बनाये रखने के लिये अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्यों को केवल उनकी जनसंख्या के आधार पर ही नहीं वरन् शायद अधिक संख्या में चुनेंगे। मैं कल्पना नहीं कर सकती कि भविष्य में कोई राजनैतिक दल मुसलमानों की अवहेलना करके अपने अभ्यर्थी खड़े कर सकता है। मुसलमान इस देश की जनसंख्या के एक बहुत बड़े अंग हैं। मैं नहीं समझती कि कोई राजनैतिक दल उनकी उपेक्षा कर सकता है, विशेषत: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तो ऐसा कर ही नहीं सकती, जो सदा अल्पसंख्यकों की रक्षा का दावा करती रही है। श्रीमान्, मेरे विचार में हमें मुसलमानों को इस देश में लौकिक लोकतंत्रात्मक राज्य की स्थापना के लिये ही नहीं, वरन् उसको सुदृढ़ बनाने के लिये मार्ग तैयार करना चाहिये। ऐसा करने का हमारे लिये केवल यही उपाय है कि हम अपने रक्षणों का परित्याग कर दें और बहुसंख्यकों को यह दिखा दें कि हमें उनमें पूरा विश्वास है। तब ही मेरे ख्याल में बहुसंख्यक अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे।

श्रीमान् मैं चाहती हूं कि मेरे मुस्लिम मित्र इस स्थिति की कल्पना करें यदि मुस्लिमों के लिये स्थान रक्षण रहता है तो यह बहुसंख्यक जाति की ओर से दान के समान होगा। वे कहेंगे 'हम उन्हें इतने स्थान दे दें।' हमें स्थान मिल जायेंगे, किन्तु उन स्थानों को देने में बहुसंख्यकों की ओर से अधिक सद्भावना नहीं होगी पृथकत्व की भावना रहेगी—किन्तु

यदि हम रक्षण प्राप्त न करने के लिये सहमत हो जायें, तो उस सम्प्रदाय के और निर्वाचन लड़ने वाले दल के सम्मान तथा प्रतिष्ठा की परीक्षा होगी और मैं नहीं समझता कि कोई दल अल्पसंख्यकों की, विशेषत: मुस्लिमों की उपेक्षा कर सकता है या करने का साहस कर सकता है। ऐसी स्थिति में मैं कल्पना करती हूं कि हिन्दू केवल मुस्लिमों के ही पास नहीं, वरन् अपने ही भाइयों के पास जायेंगे तथा उनसे मुसलमानों को मत देकर उस निर्वाचन मंडल से मुस्लिम अभ्यर्थी को चुनने के लिये कहेंगे। इनमें क्या बात अधिक अच्छी होगी, मैं जानना चाहती हूं: यह स्थानों का रक्षण जिससे कि दोनों सम्प्रदायों में विभाजन रहता है, या हिन्दुओं के बहुमत से चुना जाना, इसलिये नहीं कि हमारे लिये एक स्थान रक्षित था, वरन् इसलिये कि हमारे हिन्दू भाइयों ने हिन्दुओं के पास जा-जा कर मुस्लिमों को चुनने की प्रार्थना की थी? अतएव मेरे विचार में यह दोनों के हितों में है कि ऐसा हो और यही उपाय है जिससे कि दोनों सम्प्रदायों में सद्भावना तथा मैत्री उत्पन्न की जा सकती है। विश्वास से विश्वास की उत्पत्ति होती है और जब हम बहुसंख्यकों के हाथ में एक पवित्र न्यास दे देते हैं—तो यह निश्चित है कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे।

श्रीमान्, मैं युक्त प्रान्त की रहने वाली हूं जहां भारत के सब प्रान्तों से अधिक मुसलमान हैं। मैंने मुस्लिम जनसाधारण में, पुरुषों और स्त्रियों में, दस वर्ष काम किया है, इसलिये मैं उनके विचारों को कुछ जानने का दावा कर सकती हूं। मुस्लिम शिक्षा की दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुये हैं किन्तु जहां तक राजनीतिक जागृति का सम्बन्ध है वे आज बहुत चेतन हैं और कुछ समय से ऐसे ही है। मैं कह सकती हूं कि युक्त प्रान्त के मुस्लिम वस्तुस्थिति को भली प्रकार समझते हैं। वे समझ गये हैं कि बदली हुई परिस्थितियों में उन्हें अपना रुख बदल लेना चाहिये। अत: मेरे विचार में आज मैं जो बात कह रही हूं वह सर्वथा उनके हित में हैं और मैं जानती हूं कि युक्त प्रान्त के अधिकांश मुसलमान इस मामले में मेरे साथ हैं।

श्रीमान्, एक मित्र ने कल मुझे कहा था कि मुस्लिम यथार्थदृष्टा हैं। मैं सर्वथा सहमत हूं। मेरे विचार में वे बहुत यथार्थवादी लोग हैं। वे रूढ़िवादी नहीं हैं और उनके रूढ़िगत विचार नहीं हैं। मुस्लिम इतिहास से पता लगेगा कि वे सदा समय के अनुसार चलते रहे हैं। अत: यदि हम आज मुस्लिम सम्प्रदाय के लिये स्थान-रक्षण के उन्मूलन की मांग करते हैं तो मेरे विचार में हम सर्वथा ठीक मार्ग पर हैं और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार चलना चाहते हैं।

श्रीमान्, जो मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे वे जा चुके हैं। जिन्होंने यहां रहने का निर्णय किया है वे बहुसंख्यक सम्प्रदाय के साथ मित्रतापूर्वक रहना चाहते हैं और समझते हैं कि उन्हें यहां के वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार अपने जीवन को ढालना चाहिये। मैं यह नहीं कहती कि उन्हें इस देश में रहने वाले अन्य लोगों की इच्छाओं के अनुसार ही बदलना होगा। श्रीमान्, हम यह नहीं चाहते कि हमें मुस्लिमों के रूप में कोई विशेष रियायत मिले किन्तु हम यह भी नहीं चाहते कि हमारे विरुद्ध कोई विभेद किया जाये। इसी कारण मैं कहती हूं कि इस महान् देश के राष्ट्रीक होने के नाते हम यहां के रहने वाले लोगों की आकांक्षाओं और आशाओं में भागीदार हैं किन्तु साथ ही हम यह आशा करते हैं कि हमारे साथ सम्मान और न्याय से संगत तरीके से बर्ताव किया जाये।

[बेगम ऐजाज रसूल]

श्रीमान्, कभी-कभी मुसलमानों की वफादारी को चुनौती दी गई है। मुझे खेद है कि यह बात मुझे उठानी पड़ी है, क्योंकि मेरे विचार में इसकी चर्चा करने का यह ठीक अवसर है। मैं नहीं समझती कि वफादारी और धर्म का क्या सम्बन्ध है। मेरे विचार में जो लोग राज्य के हितों के विरुद्ध काम करते हैं और विध्वंसक कार्यवाही में भाग लेते हैं वे निष्ठाहीन हैं, चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान हों अथवा किसी अन्य जाति के हों। जहां तक इस बात का सम्बन्ध है, मेरे विचार में मैं कई हिन्दुओं से अधिक निष्ठावान हूं, क्योंकि उनमें से कई लोग विध्वंसक कार्यवाहियों में लगे रहते हैं, किन्तु मेरे हृदय में सबसे अधिक अपने देश का ही हित है। मेरे ख्याल में ऐसा ही मैं उन मुसलमानों के विषय में कह सकती हूं जिन्होंने यहां रहने का निश्चय किया है। वे केवल संघर्ष और झगड़े से बचना चाहते हैं, सुरक्षितता चाहते हैं, अपनी मानसिक वृत्ति को उसी प्रकार विकसित करना चाहते हैं। श्रीमान्, यह बहुसंख्यकों का काम है कि वे अल्पसंख्यक जातियों के मन में भरोसे, सद्भावना और सुरक्षितता की भावना उत्पन्न करें। तब ही निष्ठा उत्पन्न हो सकती है, क्योंकि निष्ठा तो लोगों की मानसिक स्थिति से ही उत्पन्न होती है। केवल कहने से ही उत्पन्न नहीं होती। अतः मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि यह प्रस्ताव पेश करके सरदार पटेल ने उचित किया है, क्योंकि वे विविध सम्प्रदायों को मिल जाने का अवसर दे रहे हैं।

श्रीमान्, एक बात और है। कुछ ऐसे हिन्दू और मुसलमान भी हैं जो समझते हैं और चिन्तित हैं कि अल्पसंख्यकों के लिये रक्षण समाप्त हो जायेगा तो उनके कुछ स्थान कम हो जायेंगे। मुझे खेद है कि वे ऐसी बात सोचते हैं। रक्षणों के समाप्त होने से जो लाभ हैं वे उन अलाभों से अधिक हैं जो कुछ स्थानों के छिप जाने से होंगे। मैं तो स्थानों के कम हो जाने की कल्पना ही नहीं करती क्योंकि, जैसे कि मैं कह चुकी हूं, दल अपने सम्मान और साख के लिये ही जनसंख्या के आधार से अधिक अभ्यर्थी खड़े करेंगे जिससे कि उचित संख्या में लोगों का चुना जाना निश्चित हो जाये। आजकल प्रत्येक बात पर लोकमत का प्रभाव पड़ता है और भारत का लौकिक लोकतंत्रात्मक राज्य बनाने का घोषित उद्देश्य है अतः वह इस आधार पर कोई शिकायत नहीं रहने देगा। अतः मैं अनुभव करती हूं कि अल्पसंख्यकों, विशेषतः मुसलमानों की कुछ भी हानि नहीं होने वाली है। हमारे हिन्दू मित्र यह सोच सकते हैं कि इस आधार पर उन्हें कुछ स्थान खोने पड़ेंगे। मेरे विचार में वे गलत तरीके से सोच रहे हैं। यह सत्य है कि अब बहुसंख्यकों पर बहुत महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा है और अब उन्हें यह देखना है कि मुसलमान और अन्य अल्पसंख्यक अपनी जनसंख्या के अनुसार चुने जाते हैं किन्तु यह उत्तरदायित्व बहुसंख्यकों का है। मेरे विचार में इससे दोनों सम्प्रदायों में इतना सामंजस्य तथा सद्भावना हो जायेगी कि यह जोखम तो उठानी ही चाहिये। जो मुसलमान यह समझते हैं कि इससे उन्हें हानि होगी, मैं उनसे कहती हूं कि इससे हानि नहीं होगी क्योंकि इससे दोनों सम्प्रदायों में अधिक अच्छे सम्बन्ध उत्पन्न हो जायेंगे। यदि मुसलमानों से कुछ स्थान छिन भी जायें, तो भी मेरे विचार में उन्हें वह त्याग कर देना चाहिये क्योंकि उससे वे बहुसंख्यकों की सद्भावना प्राप्त कर लेंगे।

श्री लारी ने अनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का योग्यता से और बलपूर्वक समर्थन किया है, किन्तु मैं उससे प्रभावित नहीं हुई। उन्होंने अन्य देशों का उदाहरण दिया है। वे देश राजनैतिक रूप में तथा शिक्षा की दृष्टि से बहुत आगे बढ़े हुये हैं। वे क्षेत्रफल में और जनसंख्या में बहुत छोटे हैं और मेरे ख्याल में भारत की उन देशों से तुलना करना साध्य वस्तु नहीं है। भारत में आनुपातिक प्रतिनिधित्व तथा एकल संक्राम्य मत के सिद्धांत को बहुत कम लोग समझते हैं। विधान मंडलों में भी यह समुचित प्रकार से कार्यान्वित नहीं हो सकती क्योंकि बहुत कम लोग हैं जो उसे कार्यान्वित करना चाहते हों। जहां लाखों मतदाता हों, वहां सामुहिक मतों का सिद्धांत सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। क्योंकि निर्वाचक मंडल इतना विस्तृत और निरक्षर है कि उस पद्धति को कार्यान्वित करना असम्भव होगा। मेरे ख्याल में एक ही उपाय है कि संयुक्त निर्वाचक मंडल हों और स्थानों का रक्षण न हो। मेरे विचार में यही उपाय है जिससे कि हम साथ-साथ चल सकते हैं। हमें एक बार ही पृथकवत्व की भावना को छोड़ देना चाहिये और मेरे विचार में श्री लारी के प्रस्ताव से भी वह भावना बनी रहती है। श्रीमान्, मेरे विचार में संसार में और विशेषत: एशिया के जगत् में इतनी बुरी शक्तियां कार्य कर रही हैं कि स्थान रक्षणों जैसी ये छोटी-छोटी बातें शीघ्र ही भुला दी जायेंगी, क्योंकि आखिर आज संसार के मामलों के बड़े क्षेत्र में हमें देखना है कि भारत एशिया में अपना नेतृत्व बनाये रख सके और अपने आपको आक्रमणकारी तथा विध्वंसकारी शक्तियों से भी बचा सके। हम नहीं चाहते कि हमारे देश में ऐसी स्थिति हो जैसी कि चीन में है या जैसा कि वर्मा में खतरा है। अत: हमें अपने साधनों का भौतिक और नैतिक साधनों का विकास करना है। जिससे कि भारत समृद्ध और शक्तिशाली देश बन सके। अत: मेरे विचार में ये ऐसी बातें हैं जो पृष्ठभूमि में चली जानी चाहियें। हमें भारत को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने के लिये अपनी समूची शक्ति लगा देनी चाहिये।

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला** (आसाम : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं यह कहकर कोई गुप्त भेद नहीं खोल रहा हूं कि इस प्रश्न पर गत दिसम्बर में इस सभा के बहुत से मुस्लिम सदस्यों ने अनौपचारिक ढंग से बात की थी कि मुसलमानों को स्थान रक्षण से लाभ है या रक्षण-हीनता के व्यापक सरोवर में तैरने से लाभ है। उस समय हम कोई निर्णय नहीं कर सके और मेरे इस सुझाव को मान लिया गया कि हमें अपने निर्वाचक मंडलों से राय लेनी चाहिये। मैं नहीं जानता कि मेरे अन्य मित्रों ने अपने निर्वाचक मंडलों से पूछा या नहीं, किन्तु मैंने आसाम के विधान मंडल में अपने दल के मुस्लिम सदस्यों को पत्र लिखा था और उन्होंने मुझे मतैक्य से यह आदेश दिया कि मुसलमानों के लिये रक्षण मांगना चाहिये।

***मि. बी. पोकर साहब:** माननीय सदस्य का कहना है कि गत दिसम्बर में इस सभा के समस्त मुस्लिम सदस्यों ने इस प्रश्न पर विचार किया था। यह कथन सत्य नहीं है।

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला:** श्री पोकर बहादुर को मैं कैसे समझा सकता हूं। शायद वे उस समय दिल्ली से अनुपस्थित थे जबकि हमने वह अधिवेशन किया था। श्रीमान्, आज मैं बहुत खेदात्मक दृश्य देख रहा हूं कि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर भी मुट्ठी भर

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

मुस्लिम सदस्य कोई निर्णय नहीं कर सके और वे इस सभा में परस्पर विरोधी मन्तव्य प्रकट कर रहे हैं, जिससे मुझे दु:ख होता है। अल्पसंख्यक सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति ने अपनी 11 मई की बैठक में एक बहुत महत्त्वपूर्ण निर्णय किया—मुझे भय है कि मेरे विचारानुसार वह निर्णय बहुत पर्याप्त तथ्यों या आंकड़ों के आधार पर किया गया। अल्पसंख्यक सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति के माननीय सभापति ने संविधान सभा को जो प्रतिवेदन पेश किया है उसमें राजनीति के बहुत सुन्दर सिद्धांत भरे हुये हैं और मैं व्यक्तिगत रूप से इस बात का समर्थन कर सकता हूं—क्योंकि मैं स्वयं अल्पसंख्यक समिति का सदस्य हूं और मैंने उसकी कई बैठकों में भाग लिया है, यद्यपि घरेलू झगड़े के कारण मैं इस मास की 11 तारीख को नहीं जा सकता था—पर मैं कह सकता हूं कि सरदार पटेल ने ठीक रास्ता अपनाया है और उन्होंने कई बार यह घोषणा की है कि संविधान सभा ने खुले सत्र में विविध अल्पसंख्यकों को रक्षण देने का पहले ही निर्णय कर दिया है, अत: उन अल्पसंख्यकों के सदस्यों पर ही यह निर्भर है कि वे स्पष्ट घोषित करें कि वे रक्षण नहीं चाहते। श्रीमान्, मेरे विचार में यही ठीक रास्ता है। मुझे स्मरण है कि पिछले दो अवसरों पर माननीय सरदार जी ने यह सिद्धांत निकाला था। श्रीमान्, दुर्भाग्यवश मैं देखता हूं कि 11 मई के अधिवेशन में, जबकि मुस्लिम अल्पसंख्यकों के केवल चार ही सदस्य उपस्थित थे, केवल एक न ही मेरे माननीय मित्र डाक्टर एच.सी. मुखर्जी के प्रस्ताव का वक्तृता द्वारा समर्थन किया था, दूसरे ने मत देकर उसका विरोध किया था; इस प्रकार एक के समर्थन को दूसरे ने अपने विरोध द्वारा बराबर कर दिया था और मंत्रिमंडल के एक माननीय सदस्य ने तटस्थ रहकर अच्छा ही किया था, मेरा मतलब मौलाना अबुल कलाम आजाद से है और एक मौलाना को तटस्थ देखकर दूसरे मौलाना भी जो कि सदस्य थे—यानी मौलाना हिफजुर रहमान भी तटस्थ रह गये। श्रीमान्, यदि हम आदरणीय सरदार पटेल के सिद्धान्त का तर्कसंगत निष्कर्ष निकाले तो उन्हें यह मामला मुस्लिम सदस्यों पर ही छोड़ देना चाहिये था कि मुसलमान रक्षण चाहते हैं या नहीं। हम मुट्ठी भर तो हैं ही और जैसे कि श्री लारी पहले ही कह चुके हैं सरदार पटेल सहज ही हम थोड़े से सदस्यों से कह सकते थे कि हम उनसे मिलकर अपना मत प्रकट करें। परामर्शदातृ समिति में जो प्रस्ताव पेश किया गया वह भी एक अमुस्लिम द्वारा ही किया गया था। मैं डाक्टर एच.सी. मुखर्जी का बहुत आदर करता हूं, उन्होंने बहुत त्याग किया है। वे उच्च कोटि के देशभक्त हैं और जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है वे मद्यपान आदि के उन्मूलन के लिये आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं। वे इस महान् सभा के माननीय उपाध्यक्ष भी हैं, पर मैं कभी नहीं समझता कि वे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं, अत: उन्हें जरा भी अधिकार नहीं है कि वे समिति में प्रस्ताव करें कि दस वर्ष मात्र के लिये सभा ने मुस्लिमों को जो रक्षण दिया है उसे भी हटा दिया जाये और मुझे यह देखकर खेद है कि यद्यपि प्रतिवेदन में सरदार पटेल ने कहा है कि:

> ''उस अधिवेशन में मैंने कहा था कि यदि किसी सम्प्रदाय विशेष के लोग सचमुच यह अनुभव करें कि स्थान-रक्षण की समाप्ति से उनके हित का अधिक अनुसेवन होता है तो उनके विचारों को स्वभावत: उचित वजन दिया जाना चाहिये और मामले पर पुनर्विचार होना चाहिये।''

उन्हें केवल मुस्लिम सदस्यों से ही परामर्श करने का युक्तियुक्त उपाय अपनाना चाहिये, किन्तु ऐसा किये बिना, उन्होंने बेगम ऐजाज रसूल के एकमात्र समर्थन के आधार पर, इस सभा से यह सिफारिश कर देना ठीक समझा कि मुसलमानों के लिये स्थान रक्षण समाप्त हो जाना चाहिये। व्यक्तिगत रूप से मुझे रक्षण का शौक नहीं है और जहां तक आसाम का सम्बन्ध है, रक्षण की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु यदि हम समस्त भारत को लें तो हमें मानना ही पड़ेगा कि मुस्लिम अल्पसंख्यक न्यायपूर्वक रक्षण मांग सकते हैं और वे कम से कम कुछ समय के लिये तो रक्षण के योग्य हैं ही। हमें जनसंख्या के अनुपात पर विचार करना चाहिये। उड़ीसा में 1.5 प्रतिशत मुसलमान हैं, मध्यप्रदेश में 5 प्रतिशत, मद्रास में 7 प्रतिशत, बिहार में 11 प्रतिशत, युक्त प्रान्त में 14 प्रतिशत, आसाम में 14 प्रतिशत। यह भी कहा जा सकता है कि ''उड़ीसा में रक्षण से क्या होगा, जहां 1.5 प्रतिशत ही हैं?'' बात यह है कि किसी प्रान्त में रक्षण से बहुसंख्यक सम्प्रदाय को कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि, यदि सारे मुस्लिम मिल जायें तो भी वे सभा में बहुसंख्यक सम्प्रदाय की इच्छा को नहीं बदल सकते, किन्तु मनोवृत्ति का प्रश्न आ जाता है। हम जानते हैं कि बंगाल विभाजन जैसा निश्चित तथ्य मनोवृत्ति, भावुकता और हठ के कारण बिगड़ गया। स्वतंत्र भारत ने अभी हाल ही में स्वतंत्रता प्राप्त की है और अब उसे एकीकरण की आवश्यकता है। उसे सब सम्प्रदायों के, चाहे वे छोटे हों या बड़े, अविश्वास को शान्त करना तथा संदेह दूर करना चाहिये। जैसा कि कई वक्ताओं ने कहा है, हम बहुसंख्यक सम्प्रदाय की कृपा पर निर्भर हैं। मैं माननीय सरदार पटेल से सहमत हूं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय को ऐसी तरह बर्ताव करना चाहिये कि अल्पसंख्यकों को सांविधानिक संरक्षणों की आवश्यकता ही अनुभव न हो। इसी प्रकार मैं अपने प्रत्येक मुस्लिम मित्र से, जोकि इस समय भारत अधिराज्य का अधिवासी है, प्रार्थना करता हूं कि वह राष्ट्र और देश के हितार्थ दृढ़ निष्ठा रखें और पूर्ण सहयोग प्रदान करें। हम 1906 से पृथक् निर्वाचक मंडल पद्धति के अधीन पले हैं। बुरा कहिये चाहे अच्छा, हमें इस पद्धति के अनुसार चलने की आदत पड़ गई है। (*बाधा*)। एक सहयोगी की ओर से बाधा डाली गई है, वे स्वयं पृथक् निर्वाचक मंडल के ही फलस्वरूप यहां हैं। वे माननीय बाधक भूल जाते हैं कि इस सभा के सदस्य पृथक् निर्वाचक मंडलों के आधार पर चुने गये हैं। मुझे आसाम विधान मंडल के केवल मुस्लिम सदस्यों ने इस सभा के लिये चुना था। इसी प्रकार मेरे माननीय मित्र, मेरे सहयोगी प्रधानमंत्री और आसाम से आने वाले अन्य मंत्रीगण सब हिन्दू सदस्यों के ही मतों से चुने गये हैं। यदि यह पृथक् निर्वाचक मंडल नहीं तो और क्या हुये? किन्तु जैसा कि कहा गया है, समय बदल गया है। हमें लेना और देना आरम्भ करना होगा। मैं अपने मद्रासी मित्रों से प्रार्थना करूंगा कि वे पृथक् निर्वाचक मंडलों की बलपूर्वक युक्तियों का परित्याग कर दें। दूसरी ओर मैं बहुसंख्यक सम्प्रदाय से प्रार्थना करूंगा कि वे मुस्लिम अल्पसंख्यकों को सीमित कालावधि के लिये रक्षण प्रदान कर दें। पिछली वक्ता, मेरी माननीया मित्र बेगम एजाज रसूल ने कहा है कि रक्षणों से सम्प्रदाय को जरा भी लाभ नहीं होगा। मैं उनसे पूर्णतः सहमत हूं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय के मतों के बिना मुस्लिम किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं चुन सकते जिस पर उन्हें भरोसा हो, अभ्यर्थी हिन्दू तथा मुसलमान दोनों का विश्वासपात्र होना चाहिये, किन्तु रक्षणों का मुस्लिम सम्प्रदाय पर भारी मनौवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा। वे कम से कम ऐसा विश्वास कर लेंगे कि उनमें से कम से कम एक तो उनकी

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

ओर से बोलने के लिये, उनके हितों का संरक्षण करने के लिये, विधान मंडल में है। मुसलमानों को इतने दान से भी क्यों वंचित करते हैं? समयानुसार कार्य करिये और दया कीजिये, अंग्रेजों के कवि ने कहा है ''कृपा दोहरा आशीर्वाद है''।

श्रीमान्, रक्षण का प्रश्न तो प्रतिवेदन में ही निहित है। आप अनुसूचित जातियों को रक्षण देना चाहते हैं, जिनकी संख्या भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक सम्प्रदाय से दुगनी है। आप कम से कम दो प्रान्तों में भारतीय ईसाइयों को राजनैतिक संरक्षण अथवा रक्षण देना स्वीकार करते हैं। आप आंग्ल भारतीय सम्प्रदाय के लिये भी यही स्वीकार करते हैं। यह प्रतिवेदन केवल मुस्लिमों के विषय में ही पिछले विनिश्चय और विद्यमान प्रस्ताव तथा इस प्रतिवेदन में अन्तर है। मैं सभा से अपील करता हूं कि जब सम्बद्ध अल्पसंख्यक संरक्षण चाहते हैं तो आप उन्हें इससे वंचित मत रखिये। यदि यह कहा जाये कि कुछ सदस्यों ने कहा है कि वे रक्षण नहीं चाहते तो यहां उपस्थित मुस्लिम सदस्यों के बहुमत को मान लेना चाहिये। यदि सदस्यों का बहुत यह कहे कि वे रक्षण नहीं चाहते तो मैं सबसे पहले बहुमत के समक्ष सिर झुका दूंगा।

एक बात और, फिर मैं समाप्त कर दूंगा। हम कहते हैं कि हम शक्तिशाली लोकतंत्रात्मक राज्य बनाना चाहते हैं। लोकतंत्र का यही आशय है कि अधिराज्य की जनता का प्रत्येक भाग यह अनुभव करे कि उनका देश के प्रशासन से सीधा सम्पर्क है। देश का प्रशासन दो भागों में विभक्त है। एक तो विधान मंडल है जो मंत्रिमंडल को चुनता है और दूसरा कार्यपालिका है जिसमें सरकारी नौकर हैं। यदि आप अल्पसंख्यकों का संरक्षण, किसी न किसी प्रकार, चाहे रक्षण द्वारा, अथवा श्री लारी के मतानुसार बहु-निर्वाचन क्षेत्रों तथा सामुहिक मतदान द्वारा, नहीं करते, तो लोकतंत्र कुतंत्र बन जायेगा। वह बहुत बुरा दिन होगा यदि भारत स्वतंत्र देश के रूप में अपने अस्तित्व के प्रारंभ में ही कुतंत्र बन जाये।

***माननीय सदस्यगणः** समाप्त करिये, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** अभी बारह बजने में 20 मिनट हैं। मेरे पास चिटों पर बहुत से नाम हैं; किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं चिटों की उपेक्षा करके अपने नेत्रों का ही प्रयोग करूंगा। जब मैं अपनी आंखों का प्रयोग करना चाहता हूं तब भी मुझे लगभग आधा दर्जन व्यक्ति अपने स्थानों पर खड़े हुए मिलते हैं एक सदस्य ने यह शिकायत लिख कर भेजी है कि वे मुझे दिखाई नहीं पड़ते। मेरे विचार में यह शिकायत कई अन्य सदस्यों को भी है और इस चिट का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः मैं सभा की इच्छा जानना चाहता हूं कि क्या वे इस वाद-विवाद को कल तक जारी रखना चाहते हैं।

***कई माननीय सदस्यः** हां।

***अध्यक्षः** ऐसा प्रतीत होता है कि कई सदस्य इस वाद-विवाद को जारी रखना चाहते हैं। विषय महत्त्वपूर्ण है और मैं उनसे सहमत हूं अब हम वाद-विवाद जारी रख सकते हैं। कल मेरे विचार में, अधिक समय नहीं लगेगा।

***माननीय सदस्यगण:** कल का समुचा दिन, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** इसकी क्या आवश्यकता है? हमें अल्प कार्य करना है जो महत्त्वपूर्ण भी है। अत: मेरा विचार इस वाद-विवाद को कुछ समय तक सीमित करने का है, जिससे कि हम अगला प्रस्ताव ले सकें और तत्पश्चात् संविधान के मसौदे को ले सकें। पर, इस पर हम कल विचार करेंगे; आज हमारा विचार आगे बढ़ने का है।

***माननीय जेरोम डी'सूजा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे विश्वास है कि इस सभा के माननीय सदस्य मुझसे सहमत होंगे कि हमारे समक्ष एक गम्भीर महत्त्व का विनिश्चय है, कि ऐसे प्रयोग को समाप्त कर दिया जाये जो हमारे देश के लिये गम्भीरतम परिणामों से पूर्ण है।

श्रीमान्, श्री लारी ने अपने विचारों की जो बलपूर्वक व्याख्या की है, उससे सबकी समझ में एक बात स्पष्टत: आ सकती है और वह यह है कि लोकतंत्र को कार्यान्वित करने में ऐसा कोई उपाय निकालना चाहिये जिससे कि अल्पसंख्यकों की अवहेलना या उपेक्षा न हो। हो सकता है यही बात उन लोगों के मस्तिष्क में भी रही हो जिन्होंने हमारे देश में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत लागू किया हो। उनके विचारों पर विचार करके यह निर्णय करना हमारा काम नहीं है, किन्तु अब यह नितान्त स्पष्ट है कि लोकतंत्र को इन गड्ढ़ों से बचाने के लिये, जब राजनैतिक विशेषाधिकारों को धार्मिक विभेदों पर आधारित अल्पसंख्यको से जोड़ा गया, तब राजनैतिक मामलों में एक बहुत गम्भीर और भयानक उलटफेर कर दिया गया। इसके परिणाम पिछले कुछ वर्षों के भारत के इतिहास पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखें हैं। इस देश के अधिकांश पर्यवेक्षकों के विचार में इसका फल हमारे देश का विभाजन है। अत: समस्त देश अब यह समझता है कि चाहे विरोध करने वाले लोगों को तत्काल कितनी ही असुविधा क्यों न हो, पर हमें दृढ़ निश्चय होकर इस उलटफेर से भिन्न मार्ग को अपनाना चाहिये और ऐसे पथ पर चलना चाहिये जिससे कि आगे चल-कर कभी भी हमारे देश के राजनैतिक जीवन में केवल धर्म पर आश्रित विभेद प्रवेश न कर सके।

श्रीमान्, भारत के राष्ट्रवादियों ने पृथक् निर्वाचक-मंडलों के सिद्धांत का सदा विरोध किया और मुझे विश्वास है कि वे एक समय संयुक्त निर्वाचक मंडलों के होते हुये रक्षण रखने के लिये जो उद्यत हो गये थे वह भी समझौते की भावना से ही किया गया था। मुझे विश्वास है, श्रीमान्, कि यदि इस उपबंध की स्वीकृति के समय वही स्थितियां होतीं जो आज हैं, तो प्राचीन व्यवस्था के इस छोटे से चिन्ह को बनाये रखने में अब से भी अत्यधिक हिच होती और बहुत ही कम मतैक्य होता। किन्तु जैसा कि कई पूर्व वक्ताओं ने स्पष्ट कर दिया है, हमारे देश में घटनाचक्र तथा लोकमत से यह आवश्यक हो गया है कि यह चिन्ता भी मिटा देनी चाहिये। उस घटनाक्रम के एक पहलू का तो डाक्टर मुखर्जी ने संकेत किया है, वह पहलू यह है कि हमारे संविधान के मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय में वैयक्तिक अधिकारों के लिये कितनी सम्पूर्णता, उदारता तथा व्यापकता से संरक्षण रखे गये हैं, किस प्रकार मूलाधिकारों को उच्चतम न्यायालय की शक्ति तथा क्षेत्राधिकार के अधीन रख दिया गया है और उन उपबंधों को इस सभा ने किस भावना से पारित किया।

[माननीय जेरोम डी'सूजा]

इस बात के साथ-साथ बहुसंख्यक सम्प्रदाय की ओर से सद्भावना की कई बातों से अल्पसंख्यकों को इतना विश्वास हो गया है कि आज माननीय सरदार पटेल द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव के समर्थन में भारी बहुमत होना निश्चित है। मैं इससे इन्कार नहीं करता कि कई विरोधी भी हैं। किन्तु देश के उत्तर तथा दक्षिण में हमारा जनता से सम्पर्क रहा है और मेरे ख्याल में मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि जहां तक ईसाइ सम्प्रदाय का सम्बन्ध है, प्राप्त पत्रों को देखते हुये और लोगों ने जो विचार सार्वजनिक रूप में प्रकट किये हैं उन्हें देखते हुये, मैं कह सकता हूं कि इस विनिश्चय के विषय में समस्त भारत डाक्टर मुखर्जी के साथ है कि स्थान-रक्षण नहीं होना चाहिये।

श्रीमान्, इस प्रस्ताव के समर्थन में मैं भारत में स्वस्थ राष्ट्रीयता के विकास के प्रश्न को नहीं उठाना चाहता। वह तो स्पष्ट कारण है ही। हमारे देश की दु:खद घटनाओं से यह प्रकट हो जाता है कि हमें साम्प्रदायिक पृथकत्व के पथ से दृढ़तापूर्वक मुंह मोड़ देना चाहिये। किन्तु, क्रियात्मक दृष्टिकोण से भी, उस अन्तिम चिन्ह में कुछ युक्तिहीन तथा परस्पर विरोधी बातें थीं जिन्हें हम पहले किसी समय स्थायी बनाना चाहते थे। हमें कहा गया था कि कुछ धार्मिक अल्पसंख्यकों और धार्मिक हितों के लिये उसी धर्म के अनुयायियों द्वारा प्रतिनिधित्व प्राप्त कराया जाये किन्तु ये प्रतिनिधि ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा चुने जाने थे जहां सम्भवत: अधिकांश निर्वाचक उस धर्म के अनुयायी नहीं होते। अब, श्रीमान्, या तो आप अल्पसंख्यकों के धार्मिक हितों के लिये प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लें और उन लोगों से अपने प्रतिनिधि चुनने के लिये कहें या आप धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व के समूचे सिद्धांत को त्याग दें और हमें ऐसी अस्पष्ट स्थिति में न रखें कि किसी विशेष हित के प्रतिनिधि उन लोगों द्वारा चुने जायें जो कि उस हित के अनुयायी नहीं हैं। रक्षणों में यही एक परस्पर विरोधी बात है, यही तर्कहीनता है जिसे हम हटाना चाहते हैं और जिसके लिये अब सभा यह कह सकती है कि वह मिट जानी चाहिये। अत: अब मुझे सभा से सानुरोध अपील करनी है कि सब प्रकार के विशेष संरक्षणों, विशेष स्थान-रक्षणों, पिछड़े हुये वर्गों के लिये विशेष सहायता देने का विचार अब धर्म के आधार पर नहीं करे, वरन् वैयक्तिक योग्यता के आधार पर, वैयक्तिक कमियों और आवश्यकताओं के आधार पर करे, नि:संदेह सामाजिक पृष्ठभूमि का ध्यान रखना चाहिये, किन्तु मुख्यत: वैयक्तिक गुणावगुण पर ही विचार करना चाहिये। किसी व्यक्ति की इसलिये सहायता की जानी चाहिये कि वह निर्धन है, उसके जन्म और पालनपोषण के कारण उसे सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक उन्नति करने का अवसर नहीं मिला है। अतएव इससे कोई प्रयोजन नहीं मिला है कि वह ईसाई है, अथवा मुसलमान है, अथवा हिन्दू है, अथवा ब्राह्मण है, अथवा अब्राह्मण है अथवा अनुसूचित जाति का है। सरकार, सचमुच में लोकतंत्रीय सरकार के समान, सब पिछड़े हुये वर्गों के प्रति पिता समान व्यवहार करते हुये उसकी सहायता वैयक्तिक आवश्यकताओं के आधार पर करेगी, और साम्प्रदायिक या धार्मिक वर्गीकरण के आधार पर नहीं। हमें पूरी आशा है कि इसी प्रकार नवीन भारत का लोकतंत्र यथेष्ट प्रकार से विकसित होगा और ऐसा विकास करके, हम दूसरों के लिये, जो कि शायद लोकतंत्र के सिद्धात को कार्यान्वित करने में सफल नहीं हुये हैं, उदाहरण रखेंगे, जो केवल हमारे ही लिये लाभदायक नहीं होगा, अपितु समस्त जगत् में सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में सहायक होगा।

श्रीमान्, संरक्षण के इस अन्तिम चिन्ह का परित्याग करने में हम कोई जोखम नहीं उठा रहे हैं—वह अन्तिम चिन्ह जिस पर कि ईसाई और अन्य अल्पसंख्यकों ने आशा लगाई थी—जिन संरक्षणों का वचन दिया गया था और जो उन्हें मिलना अब तक निश्चित समझा जाता था। मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि राष्ट्रीय नेता और बहुसंख्यक सम्प्रदाय ऐसा उत्तदायित्व ले रहे हैं, जिसकी गम्भीरता को, मुझे आशा है, वे पूरी तरह समझते हैं। सरदार पटेल ने बहुसंख्यक सम्प्रदाय के उत्तरदायित्व पर अत्यन्त गम्भीर शब्दों में बल दिया है। आज से यह देखना उनका कर्त्तव्य है कि समस्त सम्प्रदायों के लोगों को अभ्यर्थी चुनते समय न्यायपूर्ण अवसर मिले, और चुनावों में उनके साथ न्याय हो, पर शर्त यह है कि वे व्यक्तिगत रूप से योग्य हों, वे सामाजिक और राजनैतिक तौर पर प्रगतिशील हों और उनकी संस्था यह सभा को स्वीकार्य हों। अत: मै कह सकता हूं कि उन्हें चुनवाने का उत्तरदायित्व अल्पसंख्यकों के कंधों से हटकर बहुसंख्यकों के सिरों और कंधों पर जा पड़ा है। यदि मैं इस सभा वे रुख से पता लगा सकूं तो वे उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। हम उनके आश्वासन को स्वीकार करने के लिये इच्छुक हैं और हमें ऐसा करने में प्रसन्नता है, कि वे अपनी योग्यतानुसार अपनी प्रतिज्ञा की भावना पर और इस समझौते पर दृढ़ और सच्चे होंगे, जिससे कि हम और वे उस राजनैतिक प्रयोग के अन्त पर खुशी मनाने में एक हो सकें, जिसके कारण हमारे लोगों को इतना दु:ख पाना पड़ा है और अंत में भारतीय लोकतंत्र के निर्वाचित प्रतिनिधि उसे स्वतंत्र तथा इच्छापूर्ण मत से समाप्त कर रहे हैं। (*हर्षध्वनि*)

मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कहूंगा। मुझे आशा है और मेरी प्रार्थना है कि जो भावना सरदार पटेल के भाषण तथा इस सभा की प्रतिक्रिया में व्याप्त रही है वही इस देश के राजनैतिक नेताओं और बहुसंख्यक संस्थाओं और जनता में भी व्याप्त रहे, हमारे महान् नेताओं ने बुद्धिमत्तापूर्वक तथा दृढ़तापूर्वक जिस लौकिक लोकतंत्र की नींव डाली है, उसके मार्ग पर चलकर, जाति और मत के विभेद से, मातृभूमि की सेवा में लग जायेगा। इस प्रकार मुस्लिम और ईसाई, हिन्दू और पारसी और आंग्ल-भारतीय सब कंधे से कंधा भिड़ाकर खड़े होंगे और हमारे सब लोगों की समृद्धि और सुख के लिये कार्य करेंगे और भारत के नये लोकतंत्र को उन शानदार सफलताओं तक पहुंचायेंगे, जो निश्चय से भगवान ने हमारे लिये नियत की हैं।

***श्री जगतनारायण लाल:** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव का समर्थन करने और श्री इस्माइल तथा श्री लारी के संशोधनों का विरोध करने के लिये आया हूं। वास्तव में इतने मुस्लिम मित्रों की और मेरे पूर्व वक्ता की वक्तृतायें सुनने के बाद, जिन्होंने कि स्वयं संशोधन का विरोध किया है, यह ज्यादा अपेक्षित तो नहीं था कि मैं भी इसका विरोध करने के लिये आऊं, किन्तु मैं केवल अपनी एक भावना को व्यक्त करने आया हूं जो यह है कि भारत विभाजन के कटु-अनुभव के पश्चात् भी, क्या इस सभा में या भारत में कोई भी ऐसा व्यक्ति शेष है जो पृथक् निर्वाचन मंडलों का विचार करे और आगे आकर उनका समर्थन करे। यह दु:ख की और आश्चर्य की भावना है जिसे मैं यहां व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। विगत के सब आश्वासनों के पश्चात् और पड़ौसी देश में जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुये, यह राज्य एक लौकिक राज्य होगा, और

[श्री जगतनारायण लाल]

इसमें विश्वास, उपासना और विचारों की स्वतंत्रता होगी, और यहां राजनैतिक अधिकार प्रदान करने के प्रयोजनार्थ कोई धार्मिक विभेदों को मान्यता नहीं मिलेगी, यह सब देखते हुये, यह उचित प्रतीत नहीं होता और यह किसी सम्प्रदाय के लिये, किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के लिये अच्छा भी नहीं होता कि वह आगे आकर किसी प्रकार के रक्षण की मांग करे।

श्री लारी ने आगे आकर सामूहिक मतदान की मांग की। उन्होंने सांविधानिक दृष्टान्तों के तीसरे भाग की चर्चा की। किन्तु उन्हीं सांविधानिक दृष्टान्तों से वे देख सकते थे—समय कम है, अन्यथा मैं उन भागों को पढ़कर सुनाता—कि सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ ने अनुच्छेद 123 द्वारा, स्विट्जरलैंड ने अनुच्छेद 49 द्वारा, जर्मनी ने अनुच्छेद 136 द्वारा, यूगोस्लोविया, फिनलैंड आदि सबने यह घोषणा कर दी है कि धर्म और धार्मिक विभेद का राजनैतिक अधिकारों से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। श्रीमान्, 1906 में जब से पृथक् निर्वाचक मंडल आरम्भ हुये थे, उसके अनुवर्ती वर्षों में, गोलमेज समम्लेन में और अन्त में विभाजन से पृथक् निर्वाचक मंडलों के कटु फल इतने सुविदित हो गये हैं कि उन्हें गिनाने की आवश्यकता नहीं है। अतः मैं नम्रतापूर्वक संशोधनों का विरोध करता हूं और कहता हूं कि जो आश्वासन दिये गये हैं कि भारत एक लौकिक राज्य होगा, उनके बाद रक्षणों के लिये कोई मांग नहीं होनी चाहिये। जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, कई लोगों की उनकी चर्चा है और विशेषतः एक पूर्ववर्ती वक्ता ने कहा है ''जब उन्हें मिल गया, तो हमें क्यों नहीं''? किन्तु मैं एक बार फिर कह देता हूं कि अनुसचित जातियों को धर्म के आधार पर रक्षण नहीं दिये गये हैं; वे हिन्दू सम्प्रदाय के अंग हैं और उन्हें स्पष्टतः आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक रूप में पिछड़े हुए होने के कारण ही रक्षण दिया गया है। अतः वह उपमा यहां लागू नहीं होती। इन शब्दों के साथ मैं संशोधनों का विरोध तथा प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** बारह बजे हैं। सभा कल प्रातःकाल आठ बजे तक के लिये स्थगित रहेगी।

तत्पश्चात् सभा बृहस्पतिवार, 26 मई 1949 के 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

परिशिष्ट 'क'

भारतीय संविधान सभा

परिषद् भवन,
नई दिल्ली, 11 मई 1949।

प्रेषक:

माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल,
सभापति, अल्पसंख्यकों, मूलाधिकारों, आदि सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति।

सेवा में:

अध्यक्ष महोदय,
भारतीय संविधान सभा।

प्रिय महोदय,

अल्पसंख्यकों, मूलाधिकारों, आदि सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति ने अपने 8 अगस्त 1947 के प्रतिवेदन में अल्पसंख्यकों के लिये कुछ राजनैतिक संरक्षणों की सिफारिश की थी। संविधान सभा ने उन्हें अपने अगस्त 1947 के सत्र में स्वीकार कर लिया था और वे संविधान के मसौदे के भाग 14 में रख दी गई हैं। इन सिफारिशों के अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान मंडलों के समस्त निर्वाचन संयुक्त निर्वाचन मंडलों के आधार पर होने थे जिनमें कुछ निर्धारित अल्पसंख्यकों के लिये उनकी जनसंख्या के आधार पर स्थान रक्षित होने थे। यह रक्षण दस वर्षों की कालावधि के लिये होना था, जिसके पश्चात् स्थिति पर पुनर्विचार होना था। पासंग नहीं रखा गया था, किन्तु अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लोगों को, जिनके लिये कि स्थान रक्षित किये गये थे, सामान्य स्थानों के लिये खड़े होने का अधिकार मिलना था। जिन सम्प्रदायों के लिये स्थान रक्षित होने थे वे थे मुस्लिम, अनुसूचित जातियां और भारतीय ईसाई। अन्तिम जाति को केवल केन्द्रीय विधान मंडल तथा मद्रास और बम्बई के प्रान्तीय विधान मंडलों के सम्बन्ध में ही यह रक्षण मिलना था।

2. इस समय मैं आपको स्मरण कराना चाहता हूं कि समिति ने अपने प्रतिवेदन में लिखा था कि अल्पसंख्यक ''किसी भी प्रकार एकमत नहीं हैं कि, उनके अपने हित में, विधान मंडलों में विधि द्वारा रक्षण की आवश्यकता है या नहीं''। फिर भी समिति ने स्थानों के रक्षण की सिफारिश कर दी ''जिससे कि अल्पसंख्यक विधान मंडल में अपने प्रतिनिधित्व की संख्या पर निर्वाध संयुक्त निर्वाचन पद्धति के प्रभाव के विषय में आशंकित न अनुभव करें।''

3. जब सभा द्वारा उपरोक्त सिफरिशों पर विचार किया जा रहा था तब देश के विभाजन के फलस्वरूप ऐसी घटनायें घट रही थीं जिनमें पूर्वी पंजाब में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रश्न पर, विशेषत: जहां तक सिक्खों का सम्बन्ध है, विचार करना असम्भव हो गया। तदनुसार पूर्वी पंजाब का प्रश्न स्थगित कर दिया गया; और यह प्रश्न भी स्थगित

कर दिया गया कि क्या पश्चिमी बंगाल में अल्पसंख्यकों को आरक्षित स्थानों पर खड़ा होने का अधिकार दिया जाये।

4. परामर्शदातृ समिति ने अपनी 24 फरवरी 1948 की बैठक में एक विशेष उपसमिति पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल की अल्पसंख्यक समस्याओं पर प्रतिवेदन करने के लिये नियुक्त की जिसमें मैं सभापति था तथा निम्न सदस्य थे:

माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू

माननीय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

श्री के.एम. मुन्शी, और

माननीय डाक्टर बी.आर. अम्बेडकर।

यह विशेष उपसमिति 23 नवम्बर 1948 को समवेत हुई तथा परामर्शदातृ समिति को प्रतिवेदन दिया। उस प्रतिवेदन की प्रति परिशिष्ट के रूप में यहां नत्थी है।

5. यह प्रतिवेदन परामर्शदातृ समिति की 30 दिसम्बर 1948 की बैठक में विचारार्थ प्रस्तुत हुआ। समिति के कुछ सदस्यों का ख्याल था कि परामर्शदातृ समिति ने 1947 में अपना प्रतिवेदन पेश किया था तब से लेकर स्थिति बहुत बदल चुकी है और स्वतंत्र भारत में और वर्तमान स्थिति में अब यह समुचित नहीं रहा है कि मुस्लिमों, ईसाइयों, सिक्खों या किसी अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिये कोई स्थान रक्षण रहे। यद्यपि पृथक् निर्वाचक मंडलों के उन्मूलन ने राजनीति में से बहुत सा विष मिटा दिया है, तदपि यह ख्याल है कि धार्मिक सम्प्रदायों के लिये स्थान-रक्षण से पृथकत्व की कुछ भावना उत्पन्न होती है और उस हद तक वे लौकिक लोकतंत्रात्मक राज्य के सिद्धांत के विरुद्ध है। डाक्टर एच.सी. मुखर्जी, श्री तजम्मुल हुसैन, श्री लक्ष्मीकांत मैत्र और कुछ अन्य सदस्यों ने इस आशय के प्रस्ताव भेजे थे कि संविधान सभा से यह सिफारिश की जाये कि भारत में विधान मंडलों में किसी सम्प्रदाय के लिये स्थान-रक्षण न हो। श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले के कथित प्रस्तावों में एक संशोधन की सूचना दी कि उक्त प्रस्ताव के प्रभाव से अनुसूचित जातियों को निकाल दिया जाये। उस अधिवेशन में मैंने कहा था कि यदि किसी सम्प्रदाय विशेष के लोग सचमुच यह अनुभव करें कि स्थान-रक्षण की समाप्ति से उनके हित का अधिक अच्छा अनुसेवन होता है तो उनके विचारों को स्वभावत: उचित वजन दिया जाना चाहिये और मामले पर पुनर्विचार होना चाहिये। साथ ही मैं इस बात के लिये चिन्तित था कि समिति में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को पर्याप्त समय मिलना चाहिये कि वे अपने लोगों के विचारों का अच्छी तरह पता लगायें और जो संशोधन पेश किये गये हैं उन पर पूरी तरह विचार करें, जिससे कि यदि कोई परिवर्तन किया जाये तो वह अल्पसंख्यकों की अपनी इच्छानुसार ही हो और उन पर बहुसंख्यकों की ओर से थोपा न जाये। तदनुसार समिति कोई निर्णय किये बिना ही स्थगित हो गई और 11 मई 1949 को पुन: समवेत हुई। उस अधिवेशन में डाक्टर एच.सी. मुखर्जी के प्रस्ताव पर परामर्शदातृ समिति के सदस्यों के अत्यधिक बहुमत का समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु, यह बात स्वीकार की गई कि अनुसूचित

*परिशिष्ट 'ख'

जातियों की विशेष स्थिति से यह अपेक्षित हो जाता है कि उन्हें पहले के निर्णय के अनुसार दस वर्ष के लिये रक्षण दिया जाये। तदनुसार परामर्शदातृ समिति में, एकमात्र मत के विरोध के साथ उक्त प्रस्ताव श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले द्वारा संशोधन रूप में, निम्न प्रकार पारित हो गया:

> ''कि अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अल्पसंख्यकों के लिये रक्षण की पद्धति को समाप्त कर दिया जाये।''

और यह भी निश्चय किया गया कि उक्त प्रस्ताव की किसी बात का प्रभाव विधान मंडलों में आदिम जातियों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उन सिफारिशों पर नहीं पड़ेगा जो उत्तर-पूर्वी सीमा (आसाम) आदिम जाति और पृथक्कृत क्षेत्र उपसमिति और पृथक्कृत तथा अंशत: पृथक्कृत क्षेत्र (आसामेतर) उपसमिति ने दी हैं। समिति ने यह भी निर्णय किया कि इस प्रस्ताव का विधान मंडलों में आंग्ल भारतीयों के प्रतिनिधित्व विषयक विशेष उपबंधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

6. समिति ने सिक्ख प्रतिनिधियों द्वारा मतैक्य से रखे गये सुझाव को भी मान लिया कि पूर्वी पंजाब में निम्नलिखित जातियों, अर्थात् मजहबियों, रामदासियों, कबीरपन्थियों और सिकलीगरों को भी, जो कि अनुसूचित जातियों के समान ही निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं, अनुसूचित जातियों की सूची में समाविष्ट कर लिया जाये, जिससे कि वे अनुसूचित जातियों को दिये गये प्रतिनिधित्व से लाभ उठा सकें। इस परिवर्तन तथा उपरोक्त प्रस्ताव के अधीन रहते हुए परामर्शदातृ समिति द्वारा नियुक्त विशेष उपसमिति के प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया गया।

7. उपरोक्त निर्णयों के फलस्वरूप आसाम और पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यकों के लिये रक्षित स्थानों के अतिरिक्त व्यापक स्थानों पर भी खड़े होने के अधिकार को हटा देने के सम्बन्ध में कई सदस्यों से जो प्रस्ताव प्राप्त हुए थे वे वापस ले लिये गये।

8. समिति इस बात को पूरी तरह समझती है कि एक बार जो निर्णय कर लिये जायें उन्हें हल्के से विचार के पश्चात् नहीं बदल देना चाहिये। किन्तु अगस्त 1947 से स्थितियां बहुत बदल गई हैं और समिति को यह संतोष है कि अल्पसंख्यकों का स्वयं यही ख्याल है कि समस्त देश के हित के अतिरिक्त उनके स्वयं के हित में धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिये वैधानिक स्थान-रक्षण समाप्त हो जाना चाहिये। तदनुसार यह समिति सिफारिश करती है कि संविधान के प्रारूप के भाग 14 के उपबंधों को इन विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए संशोधित कर देना चाहिये।

आपका विश्वस्त,
वल्लभभाई पटेल
सभापति।

परिशिष्ट 'ख'

परामर्शदातृ समिति के प्रतिवेदन की कंडिका 4 में उल्लिखित विशिष्ट उप-समिति का प्रतिवेदन

24 फरवरी 1948 के अपने अधिवेशन में अल्पसंख्यकों, मूलाधिकारों आदि सम्बन्धी परामर्शदातृ समिति ने पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल की अल्पसंख्यक समस्याओं पर प्रतिवेदन देने के लिये एक उपसमिति नियुक्त की थी जिसके सभापति सरदार वल्लभभाई पटेल तथा सदस्य पंडित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, डाक्टर अम्बेडकर और श्री मुन्शी थे। हम 23 नवम्बर को समवेत हुये थे और एतद्द्वारा अपना प्रतिवेदन उपस्थित करते हैं। हमें बहुत खेद है कि रुग्णावस्था के कारण डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद हमारे विचार-विमर्श के समय उपस्थित नहीं हो सके थे और हम उनकी सम्मति से लाभ नहीं उठा सके, किन्तु हमें उनसे पता चला है कि हम जिन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं वे उनसे सर्वथा सहमत हैं।

2. परामर्शदातृ समिति को ध्यान होगा कि अगस्त 1947 में एक सत्र में संविधान सभा ने इस समस्या पर विचार किया था जिसे मोटे तौर पर अल्पसंख्यकों के लिये राजनैतिक संरक्षणों की समस्या कहा जा सकता है और सभा निम्न निष्कर्षों पर पहुंची थी:

(1) कि केन्द्रीय और प्रांतीय विधान मंडलों के समस्त निर्वाचन संयुक्त निर्वाचक मंडलों के आधार पर होंगे और कुछ उल्लिखित अल्पसंख्यकों के लिये उनकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान रक्षित होंगे। यह रक्षण दस वर्षों के लिये होगा, जिसके अन्त में स्थिति पर पुनर्विचार होगा। पासंग नहीं होगा। किन्तु जिन अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिये स्थान रक्षित हैं उनके सदस्यों को साधारण स्थानों पर भी खड़े होने का अधिकार होगा;

(2) कि मंत्रिमंडलों में अल्पसंख्यकों के लिये कोई वैधानिक स्थान-रक्षण नहीं होगा, किन्तु 1935 के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत राज्यपालों को दिये गये निदेश-पत्र की कंडिका 7 के समान परम्परा का एक उपबंध संविधान के परिशिष्ट में लगा दिया जायेगा;

(3) कि अखिल-भारतीय और प्रान्तीय सेवाओं में प्रशासन की कुशलता के विचार को ध्यान में रखते हुए उन सेवाओं में नियुक्तियां करते समय अल्पसंख्यकों के दावों को ध्यान में रखा जायेगा; और

(4) कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करने के लिये केन्द्र में राष्ट्रपति द्वारा तथा प्रान्तों में राज्यपालों द्वारा एक अधिकारी नियुक्त किया जायेगा जो संरक्षणों के कार्य प्रभाव के विषय में क्रमशः संघीय और प्रान्तीय विधान मंडलों को प्रतिवेदन देगा।

यह विनिश्चय ऐसे समय पर हुए थे जब कि पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल की जनसंख्या के ढांचे पर रेडक्लिफ पंचाट के प्रभाव ठीक-ठीक ज्ञात न थे और पूर्वी तथा पश्चिमी पंजाब की सीमा पर जनता का एक दु:खपूर्ण और वृहद् निष्क्रमण हो रहा था। अत: सभा ने पूर्वी पंजाब में सिक्खों तथा अन्य अल्पसंख्यकों के लिये संविधान में उपबंधित किये जाने वाले राजनैतिक क्षेत्र के अल्पसंख्यक अधिकारों के समुचे प्रश्न पर विचार स्थगित कर दिया। पश्चिमी बंगाल के प्रतिनिधियों के सुझाव पर सभा इस बात के लिये भी सहमत हो गई कि इस प्रश्न पर भी विचार स्थगित कर दिया जाये कि क्या उस प्रान्त में अल्पसंख्यकों को अपनी जनसंख्या के अनुसार रक्षित स्थानों के अतिरिक्त साधारण स्थानों पर खड़ा होने का अधिकार मिलना चाहिये।

3. हमें सौंपी गई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या सिक्ख-समस्या है। हमने उन सब मांगों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है जो की उनकी ओर से विविध संस्थाओं और व्यक्तियों ने रखी है; उनमें बहुत भिन्नता है और एक ओर यह सुझाव है कि कोई विशेष सांविधानिक संरक्षण आवश्यक नहीं है, तो दूसरी ओर शिरोमणि अकाली दल की अन्यन्त स्पष्ट मांगें भी हैं। मुख्यत: वे मांगे ये हैं:

(1) कि सिक्खों को विधान मंडल के लिये शुद्ध साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों द्वारा अपने प्रतिनिधि चुनने का हक होना चाहिये;

(2) कि पूर्वी पंजाब के प्रान्तीय विधान मंडल में 50 प्रतिशत स्थान और केन्द्रीय विधान मंडल में 5 प्रतिशत स्थान सिक्खों के लिये रक्षित होने चाहियें;

(3) कि उनके लिये युक्त प्रान्त और दिल्ली में स्थान रक्षित होने चाहियें;

(4) कि अनुसूचित जाति सिखों को अन्य अनुसूचित जातियों के समान ही विशेषाधिकार होने चाहियें; और

(5) कि सेना में स्थानों के कुछ अनुपात का वैधानिक रक्षण होना चाहिये।

आप देखेंगे कि ये सुझाव उन विनिश्चयों से मूलत: भिन्न हैं जो सभा ने अन्य सब सम्प्रदायों के विषय में किये हैं, जिनमें कि अनुसूचित जातियां भी समाविष्ट हैं।

4. हमारे लिये यह कहना शायद ही अपेक्षित हो कि इस समस्या पर विचार करते समय हमें उन दु:खद विपत्तियों का पूरा ज्ञान है जो सिक्ख जाति को पंजाब विभाजन से पहले और पश्चात् झेलनी पड़ी हैं। पश्चिमी पंजाब के उपद्रवों के कारण उन्हें कई मूल्यवान प्राणों और बहुत सी भौतिक सम्पदा से हाथ धोना पड़ा है और इस बात में हिन्दुओं को भी सिक्खों के समान ही मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं; पर सिक्खों के साथ यह विशेष दु:खद घटना हुई कि उन्हें कई ऐसे स्थानों को भी छोड़ देना पड़ा जो उनके धर्मानुसार बहुत पवित्र थे। यद्यपि हम पूरी तरह समझते हैं कि उन्हें कितना शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना पड़ा है, किन्तु हमें यह स्पष्ट दिखता है कि हमारे पास विचारार्थ जो प्रश्न भेजा गया है, उसे अवश्यमेव अन्य आधारों पर ही सुलटाना होगा।

5. सिक्ख संख्या के दृष्टिकोण से तो अल्पसंख्यक हैं, किन्तु वे किसी ऐसी कठिनाई से पीड़ित नहीं हैं जिनसे अन्य सम्प्रदाय पीड़ित हैं जिनका कि मामला परामर्शदातृ समिति के पास था। वे उच्च शिक्षा प्राप्त तथा शक्तिशाली सम्प्रदाय हैं और उनमें केवल सैनिकों के नहीं, किसानों और कारीगरों के भी बहुत गुण हैं और उद्योग करने का अत्यधिक साहस है। वास्तव में कोई ऐसा कार्यक्षेत्र नहीं है जिसमें सिक्खों को देश में किसी जाति से प्रतियोगिता का भय हो, और हमें पूरा विश्वास है कि, उनमें जो गुण हैं, उनके कारण वे ऐसी समृद्धि के स्तर पर शीघ्र ही पहुंच जायेंगे, जो कि अन्य सम्प्रदायों के लिये प्रतिस्पर्धा का कारण होगा। और भी अविभक्त पंजाब में तो वे जनसंख्या का 14 प्रतिशत भाग थे, किन्तु पूर्वी पंजाब में वे जनसंख्या का 30 प्रतिशत अंग हैं, इससे उन्हें प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में अत्यधिक प्राधिकार का स्थान प्राप्त होगा।

6. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हम विधान मंडलों में न साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों की और न पासंग की ही सिफारिश कर सकते हैं जो कि शिरोमणि अकाली दल की मुख्य मांगें हैं। पहली बात तो यह है कि वे सिक्खों के ही कल्याणार्थ अपेक्षित नहीं हैं, जिसके कारण हम ऊपर बता चुके हैं। वास्तव में हमें यह दिखाई देता है कि संयुक्त निर्वाचक मंडलों और रक्षित-स्थानों और अतिरिक्त स्थानों पर भी चुनाव लड़ने के अधिकार के अंतर्गत, सिक्ख शायद अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लेंगे, जबकि साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों के आधार पर उनका प्रतिनिधित्व सीमित ही रहेगा। इस प्रतिनिधित्व को बढ़ाने का एकमात्र यही उपाय है कि उन्हें पासंग दे दिया जाये जिसका अर्थ यह है कि उस स्वत्व को कम करना जिसे कि अन्य जातियां न्यायपूर्वक अपना अधिकार समझती हैं। दूसरी बात यह है कि साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडल और पासंग देश के सामान्य हितों की दृष्टि से निश्चय ही बुरी चीज है। दल की मांगें ठीक वे ही हैं जो कि मुस्लिम लीग मुस्लिमों के लिये मांगा करती थी और उससे जो दुःखपूर्ण परिणाम निकले उन्हें देश खूब जानता है। हमें पूरा विश्वास है कि यदि हमें ऐसे राज्य का निर्माण करना है जो कि शान्ति और युद्ध, समृद्धि और विपत्ति, सबमें संगठित रह सके तो संविधान में कोई ऐसा उपबंध नहीं होना चाहिये जिसका प्रभाव जनता के किसी वर्ग को सार्वजनिक जीवन की मुख्य धारा से अलग कर देना हो। इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित प्रस्ताव की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो कि संविधान सभा ने अपनी 3 अप्रैल 1948 की बैठक में पारित किया था:

> ''क्योंकि लोकतंत्र के समुचित रूप से कार्यान्वित होने के लिये और राष्ट्रीय एकता और संगठन के विकास के लिये यह अपेक्षित है कि साम्प्रदायिकता को भारतीय जीवन से निकाल दिया जाये, अतः इस सभा का यह मत है कि किसी ऐसी साम्प्रदायिक संस्था को, जो कि अपने संविधान द्वारा या अपने किसी अधिकारी या अंगों में निहित किसी विवेकाश्रित शक्ति के प्रयोग द्वारा किसी व्यक्ति को धर्म, मूलवंश या जाति के आधार पर या किसी अन्य आधार पर अपनी सदस्यता में शामिल करती है या उससे वंचित करती है, किसी कार्यवाही में लगने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये, सिवाय उन कार्यवाहियों के जो कि सम्प्रदाय की

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये आवश्यक हो और कि ऐसी कार्यवाहियों को रोकने के लिये सब आवश्यक, उपाय विधायिनी और प्रंशासनीय काम में लिये जाने चाहिये।''

सम्प्रदायवाद की परिभाषा करना सदा आसान नहीं है, किन्तु इसमें कुछ संदेह नहीं हो सकता कि पृथक् निर्वाचक मंडल इस भावना का कारण भी है और गम्भीर प्रतीक भी है। अतः दल की मांगें सभा के सुविचारित निर्णय से सर्वथा असंगत है।

यदि संविधान में सिक्खों के लिये साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडल तथा पासंग जैसे विशेष संरक्षणों की प्रत्याभूति दी जाती है तो हमें भय है कि कुछ अन्य सम्प्रदायों को ऐसे ही विशेषाधिकारों से वंचित करना असम्भव होगा। विवरणी में युक्तियां भिन्न हो सकती हैं किन्तु मुख्य आधार एक सा होगा। हम इस सम्बन्ध में अनुसूचित जातियों का उल्लेख कर सकते हैं, जिनका शिक्षा तथा भौतिक जीवन का मापदंड, भारतीय स्तर की तुलना में भी, अत्यधिक नीचा है और इसके अतिरिक्त जो गम्भीर सामाजिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं। वे सभा द्वारा स्वीकृत उपबंध से ही संतुष्ट हो गये हैं जिसका ऊपर कण्डिका 2 में उल्लेख किया गया है। हमें कोई ऐसी वैध युक्ति दिखाई नहीं देती जिससे कि सिक्खों के लिये संविधान में ऐसे रक्षणों का रखना उचित हो जो कि अनुसूचित जातियों को प्राप्त नहीं है। अनुसूचित जातियों का मामला तो केवल उदाहरण के लिये है। हमें विश्वास है कि शिरोमणि अकाली दल की मांग को स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि अन्य सम्प्रदायों के लिये ऐसे ही विशेषाधिकार अनिवार्यतः दिये जायें, इससे लौकिक राज्य की सम्पूर्ण विचारधारा ही नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी, जो कि हमारे नये संविधान का आधार है।

7. तदनुसार हम सिफारिश करते हैं कि सिक्खों के लिये कोई विशेष उपबंध नहीं होने चाहियें, सिवाय उन सामान्य उपबंधों के, जो कि सभा ने कुछ अन्य सम्प्रदायों के लिये पहले ही स्वीकार किये हैं और जिनका संक्षिप्त उल्लेख कण्डिका 2 में किया गया है।

8. सभा ने पश्चिमी बंगाल के अल्पसंख्यकों को आरक्षित स्थानों पर खड़े होने का अधिकार देने के प्रश्न पर विचार स्थगित किया था, उसका कारण यही था कि पश्चिमी बंगाल के प्रतिनिधियों ने बताया था कि उस समय प्रान्त की जनसंख्या की रचना ज्ञात नहीं थी। यद्यपि पूर्वी बंगाल से अर्वाचिन निष्क्रमण के कारण पश्चिमी बंगाल में विविध सम्प्रदायों की जनसंख्या की ठीक-ठीक प्राक्कलन अनुमान का ही विषय है, पर मोटे तौर पर स्थिति स्पष्ट है और हम नहीं समझते कि कोई ऐसे कारण विद्यमान हैं जिनसे कि सभा द्वारा अन्य प्रान्तों के लिये स्वीकृत व्यवस्था पश्चिमी बंगाल में लागू न की जाये।

—वल्लभभाई पटेल।

Con. 4. VIII.9.49
320

अंक 8
संख्या 9

बृहस्पतिवार,
26 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

परामर्शदातृ समिति की रिपोर्ट

अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में–(*जारी*)..... 489–549

भारतीय संविधान-सभा

बृहस्पतिवार, 26 मई सन् 1949 ई.

भारतीय विधान-परिषद् कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 8 बजे अध्यक्ष (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

अल्पसंख्यकों पर रिपोर्ट—*जारी*

***श्री आर. के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अल्पसंख्यक समिति की जो बैठक सन् 1947 में हुई थी और जो बैठक 11 मई सन् 1949 में हुई है, इन दोनों में कितना अन्तर है! दृष्टिकोण में क्या आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। कल लोग यहां पूछ रहे थे कि सन् 1947 के बाद आखिर क्या बात हुई है जिससे समिति ने अपनी राय बदल दी? माननीय सदस्यों को मैं बता दूं कि यह बात नहीं है कि पहली बैठक में बहुसंख्यक सदस्य स्थान सम्बन्धी किसी आरक्षण के विरुद्ध नहीं थे बहुत से लोग अवश्य ही चन्द लोगों को छोड़कर—तब भी पृथक् निर्वाचन और स्थान सम्बन्धी आरक्षण को बिल्कुल उठा देने के ही पक्ष में थे, किन्तु हमारे नेताओं ने ऐसा महसूस किया है कि अगर अपनी स्वतंत्रता का श्रीगणेश होते ही हम इस रफ्तार से चलना शुरू करेंगे तो हमारी स्थिति को लोग गलत समझ बैठेंगे और शायद लोग यह कहें कि बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर कुठाराघात कर रहे हैं। इसलिये उन लोगों की यह राय हुई कि पृथक् निर्वाचन की पद्धति को उठाकर हम अच्छा प्रारंभ कर रहे हैं और इस योजना पर अमल करते हुए हमें अल्पसंख्यकों को एक मौका देना चाहिये। हम में से कुछ लोग इस राय से सहमत नहीं थे और हमने इस प्रश्न पर सभा का मत लिया कि स्थान सम्बन्धी आरक्षण उठा दिया जाये। पर हमारे समर्थकों की संख्या बहुत कम थी और हमें दूसरे पक्ष की राय स्वीकार करनी पड़ी।

पर अब इस बीच में क्या हो गया? कल ही यह पूछा गया था कि पहली वाली स्कीम को प्रयोगार्थ हम क्रियान्वित क्यों नहीं कर रहे हैं? पर उसके क्रियान्वित करने के पहले देश में एक बहुत बड़ी बात हो गई। साम्प्रदायिक उपद्रवों ने देश में एक विभीषिका खड़ी कर दी। जो कुछ हुआ मैं उसे यहां कहना नहीं चाहता। सभा के प्रत्येक सदस्य को मालूम है कि क्या हुआ? साम्प्रदायिक उपद्रवों के कारण गत वर्ष हमें अपनी संसद में इस आशय का एक प्रस्ताव पास करना पड़ा कि कोई भी साम्प्रदायिक संगठन, जिसका उद्देश्य है राजनीतिक अधिकारों और विशेषाधिकारों की प्राप्ति, उसे संसद कोई मान्यता न देगी। इस प्रस्ताव को पास हुए तेरह महीने बीत चुके और मेरी राय में हमें इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में अर्सा पहले अपनी राय बदलनी चाहिये थी, पर हमारा नेतृवर्ग यह चाहता था कि साम्प्रदायिक उत्तेजना शान्त हो जाये तो कुछ किया जाये। ईश्वर को धन्यवाद है

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री आर.के. सिधवा]

कि विधान निर्माण का काम कुछ अर्से के लिये बढ़ गया। अगर ऐसा न होता तो मैं आपको बताऊं कि स्थान सम्बन्धी आरक्षण का जो प्रावधान विधान में रहता, वह विधान के लिये एक कलंक ही होता। अस्तु, परमात्मा को धन्यवाद है कि स्वयं प्रकृति ने विधान-निर्माण के काम को कुछ अर्सा के लिये टाल दिया और इस बीच में यह बात सिद्ध हो गई, आरक्षण की व्यवस्था अवश्य ही उठ जानी चाहिये।

अब जब हम देख रहे हैं कि साम्प्रदायिक संघर्ष के कारण इतनी बड़ी बर्बादी हो चुकी है, तो मैं नहीं समझ पाता कि कुछ लोग अभी भी साम्प्रदायिक परित्राण (सेफगार्डस) क्यों चाहते हैं। अब भला क्यों साम्प्रदायिक परित्राण दिया जा सकता है? अंग्रेज लोग जब यहां थे तक साम्प्रदायिक परित्राण की जरूरत थी ताकि वह लोग अपना खेल खेल सकें। किन्तु अब अंग्रेज चले गये हैं, सुतरां किसी के अधिकारों के लिए परित्राण की कोई जरूरत नहीं रह गई है। आज प्रायः पचास वर्षों से हमारी यही अभिलाषा रही है कि यह बुराई, जिसने कि देश में इतनी बड़ी बर्बादी पैदा की, जो हमारे राजनैतिक शरीर में एक नासूर और जहर वाद की तरह जहरीला असर पैदा करती रही है, किसी तरह खत्म की जाये। आज का दिन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण दिन है और जब हमारा विधान अमल में आयेगा, तो संसार की दूसरी जातियां इस बात के लिये हमें गौरव से याद करेंगी कि हमारे विधान में साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं दिया गया है और हमारा राज्य वास्तविक अर्थ में एक ऐहिक राज्य है।

मेरे मा. मित्र मुहम्मद इस्माइल ने कल बहस-मुबाहिसे के दौरान में यह कहा था कि बिना पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था हुए मुसलमान इन्साफ न पा सकेंगे और उन्हें वह प्रतिनिधित्व न प्राप्त हो सकेगा जो वह चाहते हैं। अगर मेरे माननीय मित्र श्री मुहम्मद इस्माइल अब भी द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त में और साम्प्रदायिकता में विश्वास रखते हैं, तो अवश्य ही उनके लिये यहां कोई स्थान नहीं है। परन्तु श्री लारी सरीखे अनेक व्यक्ति भी मौजूद हैं जो अपने सहधर्मियों को यह कहकर फटकारते हैं कि ''इस समय भी द्विराष्ट्रीय सिद्धांत का और पृथक् निर्वाचन का राग अलाप रहे हैं? अब बराय मिहरबानी इन सब बातों को भूल जाइये''। श्री लारी के अन्य और विचार चाहे जो कुछ भी हों, पर मैं उन्हें यकीन दिला सकता हूं कि श्री लारी सरीखे मुसलमानों को बहुसंख्यक वर्ग का विश्वास सदा प्राप्त रहेगा। पर श्री मुहम्मद इस्माइल जैसे व्यक्तियों को यह विश्वास न मिलेगा और यह आश्चर्य की बात न होगी कि यह निर्वाचन में न आ पाये। बम्बई के म्युनिसिपल निर्वाचन में, जहां संयुक्त निर्वाचक हैं, बहुत से मुस्लिम उम्मीदवार, बहुसंख्यक वर्ग का समर्थन पाकर चुने गये हैं। अगर बहुसंख्यक सम्प्रदाय से मुस्लिम उम्मीदवारों को समर्थन न किया होता, तो कांग्रेस द्वारा खड़े किये गये ये उम्मीदवार कभी न चुने गये होते। यह तो एक उदाहरण के रूप में मैंने आपको बताया है। डा. मुखर्जी ने अपने निजी अनुभव के आधार पर यह कहा था कि बहुसंख्यक संप्रदाय अतीत काल में सदा ही उदार रहा है, अपने ही संप्रदाय के सम्बन्ध में मैं कहता हूं कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है कि हमने किसी खास राजनैतिक अधिकार या रियायत की मांग की हो। हम तो खुद अपने पांव पर खड़े हैं और कोई कृपा नहीं चाहते हैं, पर बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने स्वतः अपनी प्रेरणा से हमारे

कार्य का सदा ख्याल रखा है। श्री लारी ने अपनी सुन्दर वक्तृता के सिलसिले में यह कहा कि बहुसंख्यक संप्रदाय को उदार और न्यायसंगत रहना चाहिये और डा. मुखर्जी ने बतलाया कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय सदा उदार और न्यायसंगत रहा है। अल्पसंख्यक वर्ग का एक सदस्य होने के नाते मैं निजी अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय वस्तुतः सदा उदार रहा है। कभी-कभी तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय बहुत ही उदार रहा है और मेरे इस कथन में रंच-मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। अगर अल्पसंख्यक वर्ग समुचित व्यवहार करे तो उसे बहुसंख्यक सम्प्रदाय से डरने का कोई कारण नहीं है। अगर अल्पसंख्यकों की मांगें समुचित हैं तो मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हूं कि मुसलमानों के चुने जाने में जरा भी कठिनाई न होगी। बहुसंख्यक वर्ग का वोट पाकर बहुसंख्यक मुसलमान चुनाव में जरूर आ जायेंगे।

श्री लारी ने अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली के लिये यहां वकालत की है। आप ने कहा है कि इस पद्धति से अल्पसंख्यकों के अधिकारों और हितों को संरक्षण मिल सकेगा और इस सम्बन्ध में आपने बेलज्यिम, स्विट्जरलैंड और इंग्लैंड के अल्पसंख्यकों की नजीर भी पेश की। मैं उनसे बिलकुल सहमत हूं कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति में अल्पसंख्यकों के हित समुचित रूप से संरक्षित रहते हैं। अपने कांग्रेस विधान में भी यही पद्धति रखी गई है। अखिल भारतीय कांग्रेस सदस्यों के चुनाव में प्रतिनिधि लोग यही पद्धति बरतते हैं। किन्तु यह मालूम होना चाहिये कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या, सभी प्रान्तों को मिलाकर, पांच सौ से ज्यादा नहीं होती, छोटी जमात के लिये यह पद्धति प्रयोग में लाई जा सकती है। इसके अलावा, जो लोग इस पद्धति से परिचित हैं वे जानते हैं कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति बड़ी पेचीदी होती है और समझदार व्यक्ति ही इसे समझ पाते हैं। श्री लारी इस पद्धति को प्रयोग में लाना चाहते हैं, ऐसे निर्वाचन में जहां निर्वाचकों की संख्या पचास हजार से एक लाख तक पहुंचेगी। बेलजियम और स्विट्जरलैंड की आबादी मुश्किल से कुछ लाख होगी। उनके निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाताओं की संख्या कितनी नगण्य होगी यह हम खुद समझ सकते हैं। हमारे देश की जनसंख्या चालीस करोड़ है और हमारे निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाता होंगे पचास हजार से एक लाख तक। ऐसी सूरत में हमारे यहां यह पद्धति सुचारू रूप से नहीं बरती जा सकती। विधान परिषद् कार्यालय से जो साहित्य इस सम्बन्ध में प्राप्त हुआ है, उससे पता चलता है कि एक देश में इस पद्धति का प्रयोग किया गया था, पर वहां भी लोगों को फिर बैलट बाक्स की पद्धति पर वापस आना पड़ा। आम चुनाव में यह पद्धति कभी सुचारू रूप से काम नहीं कर सकती।

मिस्टर इस्माइल और मि. पोकर ने, जिन्होंने कि प्रस्ताव का समर्थन किया है, पृथक् निर्वाचन के सम्बन्ध में बड़े प्रखर विचार व्यक्त किये हैं। मैं इन दोनों सज्जनों को यह बताना चाहता हूं कि परामर्शदातृ समिति हमेशा बदलती रही है। पहली मीटिंग में जबकि हमने प्रस्ताव पास किया था श्री खलीकुज्जमां ने, जो उसके एक सदस्य थे (वह मुस्लिम लीग के सदस्य भी थे) इसका समर्थन किया था। मिस्टर चुद्रीगर भी परामर्शदातृ समिति के सदस्य थे पर ये दोनों सज्जन अब पाकिस्तान पहुंच गये हैं। इन दोनों सज्जनों ने प्रस्ताव का समर्थन किया था, पर द्विराष्ट्रीय सिद्धांत में विश्वास रखने के कारण दोनों ही पाकिस्तान चले गये। आप बहुसंख्यक वर्ग को इसके लिये कैसे दोषी कह सकते हैं कि उसने

[श्री आर.के. सिधवा]

एक निर्णय करके, जो कि सबको मान्य था, बाद में उसे बदल दिया? उनको दोषी बनाना तो एक आश्चर्यप्रद बात है। ये लोग अपने दिलों को टटोलें और अपनी अन्तरात्मा से पूछें कि प्रस्ताव में हाथ बटाकर, हम में से कइयों की इच्छा के विरुद्ध प्रस्ताव पास करा कर वे यहां से चले क्यों गये। संरक्षण के मैं बहुत खिलाफ था पर अपने नेताओं और अपने मुस्लिम मित्रों की मरजी के आगे हमें सर झुकाना पड़ा। मैंने कहा था कि इसका प्रयोग कर देखिये, आप खुद इसे शीघ्र ही त्याग देंगे। आज वह शुभ दिन हमारे विधान-निर्माण के इतिहास में आ गया है, जब हम अपना निर्णय बदल रहे हैं।

श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला ने कल यह कहा था कि डा. मुखर्जी को मुस्लिम सम्प्रदाय का यह कहकर उल्लेख न करना चाहिये था कि वे इसके विरुद्ध थे। मैं तो यह चाहता हूं कि श्री सादुल्ला साहब यह बात श्री मुहम्मद इस्माइल से कहते, जिनको अपने संशोधन में यह नहीं कहना चाहिये था कि अन्य अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को पृथक् निर्वाचन मिलना चाहिये। आपका कहना है कि न केवल मुसलमानों को बल्कि अन्य अल्पसंख्यकों को भी पृथक् निर्वाचन की सहूलियत मिलनी चाहिये। अन्य अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में बोलने से उन्हें क्या प्रयोजन? अगर डा. मुखर्जी के लिये यह कहा जाता है कि उन्हें मुसलमानों का जिक्र करने से क्या प्रयोजन, तो मैं पूछता हूं मि. मुहम्मद इस्माइल फिर हमारे लिये यह क्यों कहते हैं कि हमें पृथक् निर्वाचन प्राप्त होना चाहिये, जबकि हमारा सम्प्रदाय पृथक् निर्वाचन के सर्वथा विरुद्ध है।

हमारे सामने जो योजना रखी गई है, वह ऐसी है जिसे हर व्यक्ति, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो, खुशी से स्वीकार करना चाहिये और उसके लिये गौरव बोध करना चाहिये। हमें तो यह कहना चाहिये कि हमारा प्रस्तुत प्रस्ताव, जिसके द्वारा हम अपने पूर्व निर्णय को बदल रहे हैं, जिसने देश में इतनी बड़ी बर्बादी पैदा की, वह हर व्यक्ति को शान्ति और सद्भावना के सन्निकट लाकर विश्व के इतिहास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम करने जा रहा है। इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मिस्टर लारी और मि. मुहम्मद इस्माइल के संशोधनों का मैं विरोध करता हूं। श्री मुहम्मद इस्माइल के संशोधन में ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है, क्योंकि यह एक ऐसे जमाने के लिये है जो कि गुजर चुका है। अत: इसके खिलाफ बोलकर मैं सभा का समय नहीं बर्बाद करना चाहता।

हां, श्री लारी के संशोधन पर ध्यान देना जरूरी है। उन्होंने बड़े ही सुन्दर ढंग से अपना पक्ष प्रतिपादन किया है। अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति पर और सामूहिक मतदान की व्यवस्था के अनुसार, जैसा कि श्री लारी का सुझाव है, मैंने निर्वाचन क्षेत्रों को बनाने की कोशिश की है। मुसलमानों की बड़ी आबादी संयुक्त प्रान्त में है। वहां उनकी संख्या 14 प्रतिशत बैठती है। सामूहिक मतदान की पद्धति से आखिर श्री लारी को या उनके सम्प्रदाय को किस तरह समुचित प्रतिनिधान प्राप्त हो सकता है? दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है, जहां यह पद्धति अमल में हो। उदाहरण के लिये आप गोरखपुर को ले लीजिये।

वहां की कुल आबादी 23 लाख है और नई संसद की लोक सभा के लिये यहां तीन जगहें होंगी। वहां मुसलमानों की आबादी दो लाख है और श्री लारी के संशोधन के मुताबिक वहां के मुस्लिम मतदाता अपने सब वोट एक उम्मीदवार के लिये इकट्ठा कर सकते हैं। वहां दो लाख की आबादी में एक लाख मुस्लिम वोटर होंगे और वे अपने कुल तीन लाख वोट एक उम्मीदवार को इकट्ठा दे सकते हैं, पर फिर भी उनका उम्मीदवार सफल नहीं हो सकता है, क्योंकि बाकी 21 लाख की आबादी में प्रायः 11 लाख वोटर होंगे और वे अपने 33 लाख वोट तीन उम्मीदवारों को इकट्ठा देंगे। और फिर एक वोटर को तीन वोट हों और वह अपने तीनों वोट एक ही उम्मीदवारों को दे, यह बात भी बड़ी अलोकतंत्रीय है और ऐसा दुनिया के किसी देश में नहीं होता है। और फिर इस पद्धति से वह उद्देश्य भी नहीं सिद्ध हो सकता है जो श्री लारी के मस्तिष्क में है। इस तरह की सामूहिक मत पद्धति सर्वथा अलोकतंत्रीय है और अवैज्ञानिक है। इससे एक व्यक्ति को अपने सभी मत एक उम्मीदवार के पक्ष में देने का अधिकार तो जरूर मिलता है, पर फिर भी इससे उस उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो पाती जो श्री लारी के दिमाग में है। मिस्टर लारी की यह भी ख्वाहिश थी कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की पद्धति को यहां परीक्षणार्थ प्रयोग में लाया जाये। मैं खुद भी इस पद्धति में विश्वास रखता हूं। इससे हर वर्ग को समुचित प्रतिनिधान मिल जाता है। किन्तु अगर हम इस समय अपने देश में इस पद्धति को चालू करते हैं, तो हमारे मार्ग में अनेक कठिनाइयां खड़ी हो जायेंगी। इस पद्धति को समुचित रूप से कार्यान्वित करने के लिये यह जरूरी है कि निर्वाचक समूह शिक्षित हो, क्योंकि मतदाता को इसमें यह सोचना पड़ेगा कि उम्मीदवारों में अपने मत की प्राथमिकता का क्रम वह किस प्रकार रखे। अशिक्षित व्यक्ति प्राथमिकता के महत्त्व को अच्छी तरह समझ ही नहीं सकते। उनको यह व्यक्त करना होगा कि वह पहली प्राथमिकता किसे देते हैं और दूसरी और तीसरी किसे देते हैं। छोटे-मोटे चुनावों में भी, जहां कि विधान परिषद् के सदस्यों को इस पद्धति के आधार पर मतदान करना पड़ा है, यह देखा गया है कि अधिकतर सदस्य इसे अच्छी तरह नहीं समझ पाये हैं। केवल चतुर और विशेषज्ञ ही यह समझ सकते हैं कि इस पद्धति के हिसाब से कैसे वोट दिये जाते हैं। आयरलैंड और स्विटजरलैंड में, जहां कि यह पद्धति बरती जाती है, मतदाता वर्ग बड़ा ही शिक्षित है और फिर वहां किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में बीस-बाइस हजार से ज्यादा मतदाता नहीं हैं। आयरलैंड में एक निर्वाचन क्षेत्र में अधिक से अधिक बीस हजार वोटर हैं और स्विट्जरलैंड में बाइस हजातर वोटर हैं। अब फ़र्ज कीजिये, आप अपने देश में यह पद्धति बरतते हैं। आप जानते हैं कि इसका क्या नतीजा होगा? संयुक्त प्रान्त में कुल आबादी करीब 500 लाख हैं और लोक सभा के लिये, आबादी के आधार पर दस मुसलमान चुने जायेंगे। अगर अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के अधीन सभी मुस्लिम वोटर अपनी पहली प्राथमिकता समान संख्या में चुने हुए दस उम्मीदवारों को दें और समूचा प्रान्त एक निर्वाचन क्षेत्र हो, तभी दसों उम्मीदवार चुने जा सकते हैं। पर 500 लाख की आबादी रखने वाला सारा का सारा प्रान्त आखिर एक निर्वाचन क्षेत्र तो बनाया नहीं जा सकता। ज्यादा से ज्यादा यह किया जा सकता है कि प्रान्त को दस निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त कर दिया जाये, अगर श्री लारी के प्रयोजन को सिद्ध करना है। उस सूरत में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में पचास लाख की आबादी होगी और प्रत्येक में समान संख्यक मुस्लिम आबादी होनी चाहिये जो कि सर्वथा असम्भव है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

अगर हम अनेक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या दस से ज्यादा नहीं बढ़ाते हैं और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के सभी मुस्लिम वोटर अपनी पहली राय किसी एक खास मुस्लिम उम्मीदवार को देते हैं, तभी दसों उम्मीदवार चुने जा सकते हैं बशर्ते कि हर निर्वाचन क्षेत्र में मुस्लिम आबादी समान हो, पर सब जगह उनकी समान आबादी हो ही नहीं सकती। श्री लारी ने जो हल निकाला है वह ऐसा हल है जो अमल में नहीं लाया जा सकता। और फिर इस तरह के निर्वाचन क्षेत्र बनाने में और तरह-तरह की नई जटिलतायें उत्पन्न होंगी और आप इस आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों की रचना कर ही नहीं सकते। इसके अलावा इस पद्धति पर चलने में मतदान की गोपनीयता जाती रहेगी। अशिक्षित लोग मतदान पत्र पर यह नहीं व्यक्त कर सकते कि वे अपनी प्राथमिकता किस क्रम से दे रहे हैं, इसलिये किसी दूसरे आदमी के द्वारा मतपत्र भरवाने होंगे और इससे मतदान की गोपनीयता जाती रहेगी। इसलिये मेरा ख्याल है कि अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली दूसरे छोटे-मोटे देशों के लिये चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न सिद्ध हुई हो, पर इससे हमारे मुल्क में वांछित प्रयोजन नहीं सिद्ध हो सकता है और इस देश के लिये तो यह पद्धति बिल्कुल अव्यवहार्य है। मिस्टर लारी हमारे जिला गोरखपुर से ही आये हैं जहां की आबादी देश-विभाजन के पहले कल चालीस लाख थी जिसमें सिर्फ चार लाख मुसलमान थे। अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली से वहां के कुल दो लाख मुस्लिम वोट मिस्टर लारी को मिलेंगे। पर अगर इस तरह सभी मुसलमान उन्हीं को अपना वोट देते हैं तो दूसरे उनको अपना वोट न देंगे। उस सूरत में लोगों की स्वाभाविक प्रवृत्ति यही होगी और साम्प्रदायिकता इस तरह जरूर अपना असर दिखाने लगेगी। फिर तो मि. लारी चुने न जा सकेंगे। इसलिये मेरा ख्याल है कि इस पद्धति से हम जो चाहते हैं वह पूरा नहीं हो सकता है। इससे तो साम्प्रदायिक भावना ही बढ़ेगी जिसे हम अपनी इस प्रस्तावित व्यवस्था द्वारा बिल्कुल खत्म कर देना चाहते हैं।

इसलिये मैं कहूंगा कि आज का दिन हिन्दुस्तान की तारीख में एक महत्त्वपूर्ण दिन है और जो निर्णय हम कर रहे हैं वह भी एक ऐतिहासिक निर्णय है। आज 48 वर्षों के संग्राम के बाद हम पृथक् निर्वाचन पद्धति को समाप्त करने में सफल हुए हैं। आशा है कि अब से देश का समूचा वातावरण बदल जायेगा। बहुसंख्यक संप्रदाय अब इस बात के लिये धर्मबद्ध होता है कि अधिक से अधिक मुस्लिम देशभक्तों को चुनकर वह अपनी सच्चाई का सबूत दे। मुझे तो इस बात का पक्का विश्वास है कि अब और ज्यादा मुसलमान चुने जायेंगे, अगर जनता की सेवा-भावना लेकर वह आगे आयें और सच्चाई और निष्ठा के साथ देश एवं देशवासियों की सेवा के लिये प्रस्तुत हों।

कल मिस्टर लारी ने यहां यह बताया था कि संयुक्त प्रान्त में सोशलिस्ट 11 जगहों के लिये चुनाव लड़े और उनको 30 प्रतिशत वोट मिले। मेरा ख्याल है कि ये आंकड़े गलत हैं पर हम मान लेते हैं कि ये सही हैं। इस हालत में जिस व्यवस्था का प्रस्ताव आपने रखा है उसके अधीन अगर ग्यारह निर्वाचन क्षेत्रों को चार निर्वाचन क्षेत्रों में बदल दें और प्रत्येक से चार प्रतिनिधि लिये जायें तो सोशलिस्टों को सफल होने का मौका मिल

सकता था। गोरखपुर में निर्वाचन क्षेत्र की आबादी 7 लाख थी। इसलिये अगर चार निर्वाचन क्षेत्रों को मिलाकर अनेक सदस्यात्मक एक निर्वाचन क्षेत्र बना दिया जाये तो उसकी आबादी हो जायेगी 28 लाख के करीब। इतना बड़ा निर्वाचन क्षेत्र तो आवश्यकता से अधिक बड़ा हो जायेगा और उसका प्रबंध करना कठिन होगा। क्योंकि प्रत्येक में मतदाताओं की संख्या 15 लाख तक पहुंच जायेगी। इतने बड़े निर्वाचन क्षेत्र से तो फिर धनकुबेर और सम्पन्न व्यक्ति ही चुनाव लड़ सकते हैं और साधारण व्यक्ति कभी वहां से चुना ही न जा सकेगा। उसके अलावा सोशलिस्टों को जो वोट मिले थे वह सब के सब उनके कार्यक्रम को देखकर थोड़े ही दिये गये थे। हर मतदाता जो कांग्रेस से नाराज थे उसने अपना वोट सोशलिस्ट को दे दिया। अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली में आप ऐसे नतीजे की आशा नहीं कर सकते।

इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर मैं माननीय सरदार पटेल को बधाई देता हूं कि एक या दो स्थानों को छोड़कर अन्य सर्वत्र स्थान सम्बन्धी आरक्षण की व्यवस्था को समाप्त करके आपने अपनी कीर्तिपताका को और भी गौरवान्वित बना दिया है। इस सम्बन्ध में आपकी जो रिपोर्ट है उससे हमारे देश की इतिहास धारा ही बदल जायेगी। अल्पसंख्यकों ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया है और उनका कहना है कि वे स्थान सम्बन्धी आरक्षण नहीं चाहते हैं। मैं तो यही आशा करता हूं कि दस वर्ष के अन्दर हमारे हरिजन बन्धु भी इस स्थिति में आ जायेंगे। कि समयानुकूल दिशा को अपना लेंगे और आरक्षण सम्बन्धी अधिकार को वे स्वत: छोड़ देंगे। ऐसा होने पर हर व्यक्ति को बिना किसी जाति या धर्म भेद के समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जायेगा। उस समय लोगों को वोट मिलेंगे सेवा, योग्यता और गुण के आधार पर और हमारी प्राचीन दासता के सभी नियम उस समय समाप्त हो चुके होंगे।

***सरदार हुकुम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): अध्यक्ष महोदय, सभा के सामने इस समय जो प्रस्ताव उपस्थित है, मैं उसका हृदय से समर्थन करता हूं। इसके समर्थन के सिलसिले में मुझे चन्द बातें कहनी हैं धर्म के आधार पर जो लोग अल्पसंख्यक माने जाते हैं उनके लिये जो भी आरक्षण हैं वह सब इस प्रस्ताव द्वारा समाप्त करने की कोशिश की जा रही है। यह एक सर्वसम्मत बात है कि देशवासियों के प्रत्येक वर्ग को इसका जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है, चाहे वह वर्ग संख्या की दृष्टि से या राजनैतिक दृष्टि से अल्पसंख्यक ही क्यों न हो, कि उसे समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त रहना चाहिये तथा देश के शासन में उसका समुचित हाथ रहना चाहिये। इस अधिकार को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता और फिर हमारे ऐहिक राज्य में तो इस पर कोई प्रश्न ही नहीं किया जा सकता। फिर विवाद रह जाता है केवल समुचित प्रतिनिधित्व पाने की प्रणाली के सम्बन्ध में। इस सम्बन्ध में हमने एक पद्धति का परीक्षणार्थ प्रयोग किया है और वह पद्धति है पृथक् निर्वाचन और एक निश्चित अनुपात के हिसाब से प्रतिनिधान का दिया जाना। हमने एक लम्बे अरसे तक इस प्रणाली का प्रयोग करके इसकी परीक्षा की है। अवश्य ही इस सम्बन्ध में हममें यह मतभेद हो सकता है कि आया हमें जो भी दिक्कतें उठानी पड़ी हैं उनका मूल कारण यह पृथक् निर्वाचन प्रणाली ही थी या और किन्हीं बातों के कारण हमें इन सब दिक्कतों का शिकार होना पड़ा है। पर इस बात को सभी मंजूर करते हैं कि पृथक् निर्वाचन प्रणाली

[सरदार हुकुम सिंह]

ने विभिन्न संप्रदायों के बीच एक खाई जरूर खड़ी कर दी। हमने इस पद्धति को अरसे तक प्रयोग करके देख लिया है और अब हम एक जाति के रूप में—सुसम्बद्ध जाति के रूप में—जीवित रहना चाहते हैं। इसके लिये वांछनीय है कि हम अन्य कसी प्रणाली को अपनायें। इस सम्बन्ध में एक प्रणाली का सुझाव श्री लारी ने दिया है और उनकी प्रणाली है सामूहिक मतदान की प्रणाली। यह उपाय भी अच्छा ही है। इससे अल्पसंख्यकों और विभिन्न हितों—सबको—ही समुचित प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। पर इसे अपनाने में एक कठिनाई मैं यह महसूस करता हूं कि हमारे जैसे विशाल देश में जहां 90 प्रतिशत जनता अशिक्षित है, यह प्रणाली सुचारू रूप से अभी कार्यान्वित न की जा सकेगी। इसको अपनाने में मुझे केवल यही एक कठिनाई नजर आ रही है अन्यथा मैं इसका सहर्ष स्वागत करता। अल्पसंख्यक-परामर्शदातृ समिति ने यह महसूस किया कि स्थान सम्बन्धी आरक्षण की व्यवस्था से साम्प्रदायिकता को प्रश्रय मिलेगा जिससे विभिन्न सम्प्रदायों में पार्थक्य बना रहेगा। इसलिये उन्होंने अपनी रिपोर्ट में यह राय दी है कि हर तरह का आरक्षण समाप्त कर देना चाहिये। निश्चय ही यह एक बहुत ही लम्बी छलांग थी कि पृथक् निर्वाचन से, जिसके कि हम अरसा से आदी थे, एकाएक हम संयुक्त निर्वाचन पर आ गये। इसीलिये एक बीच का रास्ता अपनाने के ख्याल से आरक्षण की बात पहले रखी गई थी। पर अब हममें से प्रत्येक व्यक्ति यही अनुभव करता है कि हमें एक सुसम्बद्ध जाति के रूप में बढ़ना चाहिये, भिन्न-भिन्न फिरकों में अब हमें न विभक्त रहना चाहिये और पार्थक्य की हर बात को हमें अब खत्म कर देना चाहिये। मेरी राय में अगर हम इस पद्धति को एक मौका दें, जिसे दस वर्षों के लिये अमल में लाने का यहां सुझाव दिया गया है, तो उसमें कोई नुकसान नहीं है। अगर हम यह देखते हैं कि यह पद्धति ठीक तरह से काम कर रही है, अगर अल्पसंख्यक लोगों को इस बात का संतोष है कि उनके अधिकार सुरक्षित हैं तो और किसी संरक्षण की फिर आगे मांग न होगी। पर अगर उनको यह महसूस होता है कि उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया है और उनके विरुद्ध कुछ भेदभाव बरता गया है तो अवश्य ही अल्पसंख्यक लोग और किसी पद्धति को अपनाने के लिये जोरदार आवाज उठायेंगे और तब उनका पक्ष और भी मजबूत रहेगा। इसलिये मेरा ख्याल तो यही है कि हमें इस नवीन व्यवस्था को, कि अल्पसंख्यकों को कोई आरक्षण नहीं दिया जायेगा, एक खास मौका देना चाहिये। हम में से हर व्यक्ति यही महसूस करता है कि राष्ट्र को एक सुसम्बद्ध जाति के रूप में विकसित देखने के लिये हमें यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये और मैं इस बात का यकीन दिलाना चाहता हूं कि सिख लोग इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यथाशक्ति प्रयास करने को तैयार हैं और यही कारण है कि वे इस प्रस्ताव का पूर्णतः समर्थन कर रहे हैं।

मैं यह कहूंगा कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करके अल्पसंख्यकों ने बहुसंख्यक सम्प्रदाय को एक कड़ी परीक्षा में डाल रखा है। अब उन पर इस बात की जबरदस्त जिम्मेदारी आयत हो गई है कि वह यह देखें कि अल्पसंख्यक अपने अधिकारों को पूर्णतः सुरक्षित महसूस करते हैं। जहां तक मैं देख पाता हूं, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा इसी में है कि हमारा राज्य ऐहिक हो। वास्तविक अर्थ में राष्ट्रीयतावादी होना अल्पसंख्यकों के लिये लाभप्रद है। बल्कि मैं तो यह कहता हूं कि यह अल्पसंख्यक ही हैं जो राष्ट्रीयता को अगर गलत

रूप दिया गया तो उसके खिलाफ वह जंग करेंगे। हमें जरूरत है शुद्ध असली राष्ट्रीयता की, नकली की नहीं। बहुसंख्यक सम्प्रदाय को इस बात का गर्व नहीं करना चाहिये कि उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय है। अपनी विशेष सुविधाजनक स्थिति के कारण ही वह राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपना चुके हैं। कुछ ऐसी बात नहीं है कि उन्होंने यह दृष्टिकोण अपनी मर्जी से अपनाया हो। उनको चाहिये कि वे अपने को अल्पसंख्यकों की स्थिति में रख कर उनकी आशंकाओं को समझने की कोशिश करें। संरक्षण की सारी मांगें और ये जो संशोधन यहां रखे गये हैं वह सभी उस आशंका के फलस्वरूप हैं जो कि अल्पसंख्यकों के मन में हैं। मैं यह भी कहूंगा कि सिखों को भी अपनी भाषा, लिपि तथा सेवाओं के सम्बन्ध में जरूर भय है। उनकी आशंकाओं को हमारी सरकार दूर कर सकती है। सरकार को यह देखना चाहिये कि उनकी आशंका दूर हो और हर सम्प्रदाय की संस्कृति को विकास पाने का पूरा मौका मिले। कई बातों को—परामर्शदातृ समिति की रिपोर्ट में यही कहा गया है—हम रूढ़ि के लिये छोड़ सकते हैं यह ठीक ही होगा। विधान के मसौदे में इन सब बातों का कोई उल्लेख नहीं होना चाहिये। व्यक्तिगत रूप से तो मैं इस बात के पक्ष में हूं कि अल्पसंख्यकों के सरंक्षण के सम्बन्ध में जो अध्याय विधान में रखा गया है वह सारा का सारा हटा दिया जाये। मैंने इस आशय के एक संशोधन की अरसा पहले सूचना भी दी थी। इस सम्बन्ध में कुछ रूढ़ियां जरूर ही विकसित होनी चाहियें और बहुसंख्यक सम्प्रदाय का यह कर्त्तव्य है कि इसका प्रयास करे कि कुछ हितकर रूढ़ियां चलन में आ जायें जिससे कि इस अन्तर्वर्त्ती काल में अल्पसंख्यक अपने को सुरक्षित महसूस करें।

प्रस्तुत प्रस्ताव के दूसरे हिस्से में यह कहा गया है कि सिखों की चार जातियां अनुसूचित जातियों में शामिल कर ली जायें। माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस सम्बन्ध में सभा से यह अनुरोध किया है कि सिखों को जो रियायत दी जा रही हैं उससे बुरा न मानें और नाराज न हों। आपने यह भी कहा था और बड़ी स्पष्टवादिता के साथ कहा था कि ''धर्म का सहारा लेकर लोग अपने राजनैतिक उद्देश्यों को सिद्ध करना चाहते हैं।'' फिर भी आपने सभा से यह आग्रह जरूर किया कि वह सिखों के मनोभावों के प्रति सहानुभूति रखें, क्योंकि कई कारणों को लेकर उन्हें बड़ी ही क्षति उठानी पड़ी है। इन सब रियायतों के लिये और सहानुभूति व्यवहार के लिये निश्चय ही सिख लोग सरदार पटेल के, परामर्शदातृ समिति के एवं इस सभा के कृतज्ञ हैं। पर मैं अपने कर्त्तव्य पालन में चूकूंगा, अगर मैं यह न बता दूं कि इस प्रश्न विशेष पर मेरा दृष्टिकोण कुछ दूसरा ही है। यहां हमसे यह कहा गया है कि सिख धर्म जाति-पाति का कोई भेदभाव नहीं मानता है और यह कि कतिपय राजनैतिक अधिकारों को पाने के लिये हमने अपने धर्म सम्बन्धी कई सिद्धांतों को कुर्बान कर दिया। किन्तु इस सम्बन्ध में मैं अन्यथा सोचता हूं क्योंकि जब हम यह कहते हैं कि वह सभी संरक्षण जो कि उन अल्पसंख्यकों को दिये जाते हैं जो कि धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक माने जाते हैं, अब बन्द हो जाने चाहियें, तो फिर इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा ही। अगर हम कुछ रियायतें, विशेष सुविधायें या अधिकार अनुसूचित जातियों को देते हैं और केवल इस आधार पर देते हैं वे सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुये हैं और इसलिये नहीं कि वे धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक हैं तो दूसरी श्रेणियों के ऐसे लोगों को भी चाहे, उनका धर्म कुछ भी हो, जो सामाजिक

[सरदार हुकुम सिंह]

आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से उसी तरह पिछड़े हुये हैं, आपको इस सूची में शामिल करना होगा। इसलिये मेरा कहना तो यह है कि यह बात अरसा पहले ही हो जानी चाहिये थी कि इन लोगों को भी, जो कि पिछड़े हुए हैं हमें अनुसूचित जातियों में शामिल कर लेना था। हमें इस रियायत के रूप में न समझना चाहिये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): इसके लिये दोषी ठहराइये सरदार उज्जल सिंह को।

***सरदार हुकुम सिंह:** अस्तु, इन सब बातों के बावजूद भी सिख लोग इसके लिये बहुत कृतज्ञ हैं। अगर यह रियायत है तो भी सिख इसके लिये कृतज्ञ हैं। और वे इसके अधिकारी हैं, अगर इसलिये यह उन्हें दिया जा रहा है तो भी वे इसके लिये कृतज्ञ हैं। हम ऐसा महसूस करते हैं कि हमारी एक ऐसी मांग, जिसके लिये हम बहुत चिन्तित थे, अब पूरी कर दी गई है। सिख यह आशा करते हैं कि उनकी अन्य छोटी-मोटी मांगों पर भी अनुकूल ढंग पर विचार किया जायेगा ताकि उन्हें संतोष हो और वे देश की प्रगतिशील शक्तियों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर राष्ट्र के वांछित लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें।

***श्री मुहम्मद इस्माइल खां** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, परामर्शदातृ समिति ने इस सम्बन्ध में अपने पहले के निर्णय को बदलकर अब जो दूसरा निर्णय किया है, मैं उसका हृदय से समर्थन करता हूं। इस नये निश्चय से स्थान सम्बन्धी आरक्षण की समाप्ति हो जाती है, जिससे कोई कारगर संरक्षण तो मिलता नहीं था और केवल साम्प्रदायिकता को ही जीवित रखने में मदद मिलती थी। बहुसंख्यक संप्रदाय के मतदाताओं की संख्या इतनी ज्यादा है कि अगर वह चाहते तो बिना किसी दिक्कत के अपने मतलब को सिद्धि के लिये इस उपाय का प्रयोग करके अपनी मरजी के लोगों को ही चुन सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। मैं उनको मुबारकबाद देता हूं कि उन्होंने अपने लाभ के लिये इस उपाय को प्रयोग में लाना ठीक नहीं समझा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्य की वक्तृता हम साफ-साफ नहीं सुन पाते हैं। उनकी आवाज ठीक-ठीक सुनाई ही नहीं दे रही है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल खां:** सभा के वाद-विवाद में, श्रीमान्, मैं शायद ही कभी भाग लेता हूं और शायद यही वजह है कि माइक्रोफोन पर बोलने की सही आदत मैं नहीं अख्तियार कर पाया हूं और मेरी आवाज इस पर ठीक नहीं बैठ रही है। अस्तु, मुझे खुशी है कि यह फैसला किया गया है और मैं इसका स्वागत करता हूं। मैं इसका अभिनन्दन इसीलिये कर रहा हूं कि स्थान सम्बन्धी सरंक्षण से केवल साम्प्रदायिकता को ही प्रश्रय मिल पाता और इससे मुसलमानों या अन्य अल्पसंख्यकों को कोई वास्तविक संरक्षण नहीं मिल पाता। बहुसंख्यक संप्रदाय को मैं धन्यवाद देता हूं कि उसने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये इस व्यवस्था का उपयोग करके अपने जबरदस्त बहुमत से कोई लाभ नहीं उठाया। कुछ

दिनों से मुसलमान यह सोच रहे थे कि यह आरक्षण की व्यवस्था एक दायित्वपूर्ण शासन-व्यवस्था के लिये बिल्कुल बेमेल चीज है। मैं कहूंगा कि जब यहां प्रान्तों में प्रान्तीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था पहले पहल चालू की गई, तो फौरन ही मुसलमानों को यह महसूस होने लगा कि पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था उनकी हित-रक्षा के लिये कोई प्रभावकर संरक्षण नहीं बन सकती है। उन्हें उसी समय यह एहसास नहीं हुआ बल्कि उसके बहुत पूर्व भी उन्हें इसका यकीन नहीं था कि इस व्यवस्था से उनको पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हो सकेगा। मैं समझता हूं कि सभा को इस बात की याद दिलाई जा सकती है कि जब मिस्टर जिन्ना ने अपनी 14 शर्तें रखी थीं तो उन्होंने यह भी सोच रखा था कि उनके द्वारा मांगे हुए कतिपय संरक्षण अगर स्वीकार कर लिये जाते हैं, तो भविष्य में जो चुनाव होंगे वह संयुक्त निर्वाचन के आधार पर ही होंगे। कुछ अरसा से मुसलमान यह सोचने लगे हैं कि दायित्वपूर्ण शासन व्यवस्था के चालू हो जाने पर पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था अब असामयिक हो गई है। मद्रास से आये हुए अपने माननीय मित्र को, जो पृथक् निर्वाचन पर इतना आग्रह कर रहे हैं, मैं यह बताना चाहता हूं कि जिन परिस्थितियों और अवस्थाओं के कारण इस व्यवस्था को जन्म दिया गया था, अब वह नहीं रह गई है। उस समय जबकि पृथक् निर्वाचन की मांग की गई थी, विधान सभाओं के लिये चुनाव सीधे जनता द्वारा नहीं होता था। उस समय विधान सभाओं के लिये जो लोग चुने जाते थे उनको म्युनिसिपल या जिला-बोर्ड के सदस्य चुनते थे। संरक्षण के लिये कोई वैधानिक व्यवस्था नहीं थी। उस समय एक विदेशी हुकूमत का बोलबाला था और उसका अपना सरकारी दल विधान सभाओं में सदस्य के रूप में था और उस समय अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये मुसलमान पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था का उपयोग कर सकते थे। पर जैसा कि मैंने अभी अभी कहा है, प्रान्तों में स्वायत्त शासन के चालू होते ही मुसलमानों को इसका एहसास हो गया कि पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था से उनके हितों का संरक्षण नहीं हो सकता और उन्हें हमेशा के लिये विरोधी पक्ष में ही रहना होगा और इस ख्याल से उनको बड़ी ही निराशा हुई। मेरे आदरणीय मित्र श्री मुहम्मद सादुल्ला ने फरमाया है कि स्थान सम्बन्धी आरक्षण की व्यवस्था एक मात्र बेगम ऐजाज रसूल की राय से ही हटाई गई है। इस संबंध में मैं उनको याद दिलाऊंगा कि आज से दस बारह महीने पहले एक मीटिंग हुई थी, जिसमें विधान-परिषद् के बहुतेरे मुसलमान सदस्यों ने भाग लिया था और उसमें यह फैसला हुआ था कि आरक्षण सम्बन्धी व्यवस्था को हटाने के लिये कोई कार्रवाई की जानी चाहिये। इसलिये यह कहना सही नहीं है कि एकमात्र बेगम ऐजाज रसूल के वोट से ही यह निर्णय किया गया है। बेगम ऐजाज रसूल ने जो मत दिया था, वह उनका केवल अपना मत नहीं था बल्कि उन सब लोगों का था, जिन्होंने कि उस मीटिंग में भाग लिया था। मैं यह नहीं कहता हूं कि श्री सैयद सादुल्ला भी उस मत से सहमत थे, पर दस या बारह सदस्य जरूर वहां थे जिन्होंने इसका समर्थन किया था कि आरक्षण सम्बन्धी व्यवस्था को उठाने के लिये कोई कार्रवाई की जानी चाहिये।

अब मैं अपने उन मित्रों को जो अपने अधिकारों के संरक्षणार्थ पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था पर इतना आग्रह कर रहे हैं, यह बताना चाहता हूं कि हमारे वर्तमान विधान में मौलिक अधिकारों को न्याय स्वरूप दिया गया है। भविष्य में अपने अधिकारों के लिये हम विधानसभा में नहीं लड़ेंगे बल्कि सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर इनको मान्य करायेंगे

[श्री मोहम्मद इस्माइल खां]

और हमारे दृष्टिकोण से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसका फैसला कराना हमारे लिये अधिक हितकर होगा। विधान सभाओं में तो दलबन्दी की भावना इतनी प्रबल रही है कि ऐसे प्रश्नों पर सर्वथा तटस्थ होकर शायद ही कभी कोई विचार किया जा सके। पर जबकि विधान में ही इस संरक्षण की व्यवस्था कर दी गई है, तो हमारे लिये डरने की कोई बात नहीं है। हमारी जो सांस्कृतिक, धार्मिक अथवा शैक्षणिक संस्थायें होंगी, वह सदा इस बात का ध्यान रखेंगी कि हमारे अधिकारों पर कहीं अतिक्रमण नहीं हो रहा है, उनको कम नहीं किया जा रहा है और आवश्यक होने पर वह इसकी रक्षा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करके करेंगी। भविष्य में मैं विश्वास करता हूं कि मुस्लिम सदस्य भी अपने निर्वाचन क्षेत्रों की ओर से उसी तरह अधिकारपूर्वक बोल सकेंगे जैसा कि अन्य सदस्य बोलते हैं। इसीलिये मैं इस साम्प्रदायिकता को उठा देना चाहता हूं जो पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था के रूप में मौजूद है ताकि विधान सभाओं में आने पर मुस्लिम सदस्य भी वैसे ही अधिकारपूर्वक बोल सकें जैसा कि अन्य सदस्य बोलते हैं और वे न केवल मुसलमानों के प्रतिनिधि की हैसियत से बोलें बल्कि अपने निर्वाचन क्षेत्र के सभी निर्वाचकों की ओर से बोल सकें। पृथक् निर्वाचन के आधार पर चुने गये प्रतिनिधियों में और प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के आधार पर आये प्रतिनिधियों में कोई सामन्जस्य नहीं हो सकता है। आप इन दोनों के बीच की कोई व्यवस्था नहीं रख सकते। साम्प्रदायिक अधिकारों के संरक्षण के लिये आरक्षण की व्यवस्था कभी उपयोगी थी ही नहीं। इसीलिये मैं इस निर्णय का समर्थन करता हूं जो आरक्षण को हटाने के लिये किया गया है। मैं मद्रास से आये हुए अपने बन्धुओं को बताना चाहता हूं कि आज से 20 साल पहले भी मुसलमान लोक पृथक् प्रतिनिधान की व्यवस्था को उठा देने की सोच रहे थे, बशर्ते कि कतिपय संरक्षण उन्हें दे दिये जाते, पर जो विधान सन् 1935 के एक्ट के आधार पर बना उसमें संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं रखी गई थी। उनके अधिकारों के संरक्षण की जिम्मेदारी निर्देश पत्र के जरिये प्रान्त के गवर्नरों पर रखी गई थी। किन्तु आज स्थिति सर्वथा बदल गई है। अब तो हमारे अधिकारों के संरक्षण की व्यवस्था विधान में कर दी गई है। फिर पृथक् प्रतिनिधान की हमें अब क्या जरूरत रह जाती है? और फिर इस व्यवस्था से हमें मदद ही कैसे मिलेगी? इससे तो यही होगा कि हम और दलों के साथ मिलना ही न चाहेंगे। आखिर जब आप साम्प्रदायिक आधार पर चुनाव करेंगे तो यह जरूरी है कि आप एक न एक साम्प्रदायिक संगठन भी उसके लिये रखेंगे, जो उम्मीदवारों को नामंजूर करेगा और विधान सभा में काम करने के लिये अपना कार्यक्रम बनायेगा। इसका मतलब यह होगा कि जो वर्तमान वस्तुस्थिति है वह बनी रहेगी और इससे यह होगा कि साम्प्रदायिकता अपने बुरे से बुरे रूप में कायम रहेगी। इससे क्या आप यह उम्मीद करते हैं कि हमें इस व्यवस्था को अब उठा देना चाहिये। यह जरूरी है कि हम में से बहुत से लोग, जिनका विकास कि पुरानी परम्परा में हुआ है, उनके लिये इस अधिकार का त्यागना जरा कठिन होगा जिसका कि एक अरसे तक उन्होंने उपभोग किया है। पर यह काम हम अपने लिये नहीं करने जा रहे हैं बल्कि देश की आने वाली मुस्लिम पीढ़ियों के लिये। सर्वोत्तम मार्ग यही है कि हम बहुसंख्यक सम्प्रदाय पर भरोसा करें। अगर आप पृथक् निर्वाचन की और जगहों

के आरक्षण की व्यवस्था भी करा लें तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय को इस बात से कैसे रोक सकेंगे कि वह अपना निर्णय आप पर न लाद सकें। कोरी वक्तृता से तो आपकी रक्षा हो न पायेगी। आपको एक न एक दल के साथ मिलना ही होगा। अगर आप अपने को बिल्कुल अकेला कटा हुआ नहीं रखना चाहते हैं उनकी शर्तों पर आपको मिलना होगा। और फिर हम तो यह चाहते हैं कि हमारा राज्य सर्वथा असाम्प्रदायिक एवं ऐहिक हो। हमारे सामने एक मौका है और उसे हमें न छोड़ना चाहिये। एक वास्तविक असाम्प्रदायिक और ऐहिक राज्य के निर्माण में हमें बाधक न बनना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रस्ताव को मेरा हार्दिक समर्थन प्राप्त है। जिस रिपोर्ट का इस प्रस्ताव में हवाला दिया गया है, वह हमारे श्रद्धास्पद एवं प्रिय नेता सरदार वल्लभभाई पटेल के अथक प्रयास के फलस्वरूप ही इस रूप में सामने आ सकी है। उन कतिपय कृतित्वों में से यह भी एक है जिनको इधर ही कुछ दिनों के भीतर प्राप्त करने का सारा श्रेय सरदार पटेल को है।

अवश्य ही कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनको लेकर यत्र तत्र कुछ शिकायत भी हो सकती है। मुझे खुद ही शिकायत का मौका मिला है। पर इस प्रस्ताव का मुख्य सार यह है कि इसके कार्यान्वित होते ही, हमारा जो सुसम्बद्ध भारतीय राष्ट्र बनाने का एक ऐहिक राज्य निर्माण का जो स्वप्न है, उसकी पूर्ति का पथ प्रशस्त हो जायेगा। मुझे विश्वास है कि इस प्रस्ताव का परिणाम यह होगा कि साम्प्रदायिक झगड़े, जिन्होंने कि गत कई वर्षों से भारतीय इतिहास को कलंकित कर रखा था, सिर्फ कहानी मात्र रह जायेंगे।

यह तो मैं नहीं जानता कि दुनिया के अन्य देशों के अल्पसंख्यक वहां की राजनीति में क्या हिस्सा लेते हैं, पर भारतवर्ष में तो इस अल्पसंख्यक समस्या का ब्रिटिश शासन काल से ही सदा जबरदस्त हाथ रहा है। हिन्दुस्तान में दो तरह के अल्पसंख्यक हैं जैसा कि आप सभी जानते हैं। एक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय तो वह है जो अपने आदमियों के लम्बे चौड़े कद के आधार पर और अपने बाहुल्य के आधार पर और इस तथ्य के कारण कि वे दुनिया के किसी भी भाग में अपना प्रबंध कर सकते हैं, अन्य अल्पसंख्यकों के दिलों में बल्कि यहां तक कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय के दिलों में भी साधारणत: त्रास पैदा करते हैं। दूसरा अल्पसंख्यक वर्ग वह है जो हमारे दिलों में दया और सहानुभूति पैदा करता है, जो निरंतर हमें अपनी उन भूलों की याद दिलाता है जो कि हमने अतीत में की हैं, हमारे उस व्यवहार की याद दिलाता है जो हमने उनके साथ पूर्व में किया है और जिसको लेकर उनको अनेक शिकायतें हैं और सही हैं। इस अल्पसंख्यक वर्ग के प्रति हमने जो भूले की हैं, उनका हमें सुधार करना ही होगा। मुझे खुशी है कि मैं यह कह सकता हूं कि प्रस्तुत रिपोर्ट में इस अल्पसंख्यक वर्ग के लिये, जो कि वस्तुत: हमारी दया और सहानुभूति का अधिकारी है, वाजिब ख्याल रखा गया है और दूसरे अल्पसंख्यक वर्ग की मांग पर ध्यान नहीं दिया गया है, जिसके लिये वह कुछ दिनों से शोर कर रहे हैं।

मैं इस प्रसंग में सभा का ध्यान उन अवस्थाओं की ओर आकृष्ट करूंगा जो आज आसाम में वर्तमान हैं। वहां की आबादी के आंकड़े ये हैं। सवर्ण हिन्दुओं की आबादी

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

39 प्रतिशत, मुसलमानों की 28.6 प्रतिशत और जनजाति वालों की आबादी 32.4 प्रतिशत। अब मैं आपसे एक सवाल करना चाहता हूं। अब आबादी की सूरत यह है तो उस में क्या इसकी जरूरत है कि किसी सम्प्रदाय के लिये स्थान सुरक्षित रखे जायें? मैं पूछता हूं कि जब वहां कोई बहुसख्यंक संप्रदाय है ही नहीं, जबकि वहां तथाकथित बहुसंख्यक सम्प्रदाय—यानी सवर्ण हिन्दुओं और जनजाति की आबादी में केवल 6 प्रतिशत का अन्तर है, जैसा कि आंकड़ों से स्पष्ट है, तो फिर क्या किसी भी सम्प्रदाय के लिये सुरक्षित स्थान की व्यवस्था की क्या जरूरत है? आशा है सभा इस पर विचार करेगी। हमारे प्रान्त में जहां विभिन्न सम्प्रदायों की आबादी में इतना कम अन्तर है, स्थान सम्बन्धी आरक्षण की व्यवस्था को आप परीक्षा के तौर पर उठाकर देख सकते हैं कि इसका परिणाम क्या होता है? अगर आपका अभिप्राय अन्ततोगत्वा यही है कि आरक्षण मूलक व्यवस्था हटा दी जाये, तो आप इस प्रयोग को हमारे ही प्रान्त से क्यों नहीं आरम्भ करते, जहां विभिन्न सम्प्रदायों की आबादी में बहुत थोड़ा ही अन्तर है। मैं सभा से आग्रह करूंगा कि वह मेरी इस बात पर समुचित विचार करे।

मेरे माननीय मित्र श्री सादुल्ला अभी यह शिकायत कर रहे थे, जैसा कि मैं उनकी बात से समझ पाया, कि आसाम में मुसलमानों के लिये स्थान सम्बन्धी संरक्षण की व्यवस्था नहीं है। अगर ऐसे प्रान्त हैं जहां मुसलमानों के लिये संरक्षण की जरूरत नहीं है तो मैं कहूंगा कि आसाम उनमें एक जरूर है। मै यह इसलिये कह रहा हूं कि वहां मुसलमानों की आबादी 24 प्रतिशत है, जैसा कि आप ने फरमाया है और यह आबादी अवश्य ही एक बहुत ही बड़ी आबादी है। इस मौके पर मैं इस बात का खंडन जरूर करूंगा कि हमारे प्रान्त के मुसलमान स्थान सम्बन्धी आरक्षण मांगते हैं इसके प्रतिकूल उनके मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों से ही आये हुए कितने ऐसे मुस्लिम सदस्य आसाम की विधान सभा में हैं, जो स्थान सम्बन्धी आरक्षण से सहमत नहीं हैं, मैं समझता हूं कि हम में से किसी के लिये भी यह व्यर्थ है कि वह आसाम के मुसलमानों के लिये जगहों के आरक्षण की चर्चा यहां करे।

सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करना चाहता हूं माननीय मित्र श्री लारी की मांग की तरफ। आपने अनेक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्र बनाने की तथा सामूहिक मतदान की प्रणाली अपनाये जाने की मांग की है। उनकी मांग की पूर्ति से तो अध्यक्ष महोदय, मुझे यह डर है कि इस प्रस्ताव का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा। अगर मुसलमान या अन्य किसी सम्प्रदाय को यह मालूम होता है कि अगर धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर वह किसी वर्ग से मिल जायेंगे, तो भविष्य में उनको अपनी जगहें जरूर मिल जायेंगी, तो इसका नतीजा यह होगा कि साम्प्रदायिकता की बुराई यहां बनी रह जायेगी। अनेक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रों के चुनाव में मुसलमान आपस में मिल जायेंगे और अपने लिये एक स्थान पा ही लेंगे। जिस किसी भी खास निर्वाचन क्षेत्र में हिन्दुओं की या अन्य सम्प्रदाय की संख्या कम होगी वह आपस में मिल जायेंगे और इस तरह अनेक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रों के रखने से और सामूहिक मतदान की पद्धति अपनाने से हमारा जो मूल अभिप्राय है वही नष्ट हो जायेगा।

दूसरी बात जिसकी ओर सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करना चाहता हूं वह यह है। आबादी के आंकड़ों को मद्देनजर रखते हुए क्या यह वांछनीय होगा कि किसी भी ऐसे सम्प्रदाय को, जिसके लिये जगहें सुरक्षित कर दी हैं, आम जगहों के लिये चुनाव लड़ने की इजाजत दी जाये? थोड़ी देर के लिये आइये, हम इस स्थिति की जांच-पड़ताल ही कर लें। हमारे प्रान्त में सवर्ण हिन्दुओं की संख्या केवल 39.6 प्रतिशत है और जनजातियों की संख्या है 32.4 प्रतिशत। अगर अपनी जगहों के अलावा आम जगहों से भी चुनाव लड़ने की इजाजत जनजातियों को मिलती है, तो उनमें से कुछ जगहें तो उनको मिल ही जायेंगी। मैं सभा से कहता हूं कि वह इस पर विचार तो करे कि क्या यह वांछनीय होगा कि जनजातियों को आम जगहों के लिये चुनाव लड़ने की अनुमति दी जाये? पर मैं ईमानदारी से यह जरूर कहूंगा कि जनजातियों की जो संख्या बताई गई है यानी 32.6 प्रतिशत, वह शायद बिल्कुल सही संख्या नहीं हैं मुझे बताया गया है कि चाय बागानों की आबादी का कुछ अंश, जो यहां आंकड़ों में शामिल किये गये हैं, वस्तुतः मैदानों में रहता है और वह आम जगहों के निर्वाचन क्षेत्र में शामिल होगा। उस दशा में मैं इस बात की वकालत करूंगा कि इन आंकड़ों में परिवर्तन होना चाहिये। मेरे कहने का मतलब यह है कि अगर यह बात सही है कि करीब दस लाख की आबादी, जिसे गलती से जनजाति की आबादी में शामिल कर दिया गया है, वह वस्तुतः जनजाति के लोगों की नहीं है, तो इस सारे आंकड़े को हमें दुबारा ठीक कर लेना चाहिये।

***अध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य को मैं यह बता दूं कि इस समय हम जनजाति के प्रश्न पर नहीं विचार कर रहे हैं हम दूसरों के सम्बन्ध में गौर कर रहे हैं। इसलिये माननीय सदस्य को यह चाहिये कि जनजाति की चर्चा छोड़कर आरक्षण सम्बन्धी मूल प्रश्न पर बोलें। समय आने पर वह अपनी बात कह सकते हैं, अगर उसकी जरूरत हो, पर इस समय नहीं। अन्यथा मुझे औरों को भी जनजाति के बारे में बोलने की अनुमति देनी होगी जो मैं नहीं चाहता।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** आपने मेरी भूल सुधार दी, श्रीमान्। अस्तु मैं पुनः इस रिपोर्ट के लिये साधुवाद देता हूं। खास तौर पर हमें खुशी इस बात की है कि अनुसूचित जातियों के सदस्यों के लिये सुरक्षित जगहों की व्यवस्था की गई है। हम सब यही आशा करते हैं कि निकट भविष्य में ही—इसके लिये हमें दस वर्षों तक नहीं रुकना पड़ेगा बल्कि इससे बहुत पहले ही—उन जातियों के लोग जिन्हें कि हम अनुसूचित जाति का नाम देते हैं, तेजी से तरक्की करेंगे और इस देश के अन्य सम्प्रदायों के समकक्ष आ जायेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं, श्रीमान्।

***श्री फ्रेंक एन्थोनी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो रिपोर्ट सभा के समक्ष माननीय सरदार पटेल ने रखी है उसके पैरा 5 के अन्त में एक वाक्य आया है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इस प्रस्ताव से उन प्रावधानों पर कोई असर न आयेगा, जिनके द्वारा देश के ऐंग्लो इंडियन सम्प्रदाय को प्रतिनिधान देने की व्यवस्था की गई है और इसी के कारण मैं यहां परामर्शदातृ समिति को अपनी कृतज्ञता ज्ञापन के

[श्री फ्रेंक एन्थोनी]

लिये खड़ा हुआ हूं, जिसने सरदार पटेल के पथप्रदर्शन में ऐसी उदारता और मैत्री का हाथ हमारी ओर बढ़ाया है। मैं यह जरूर मंजूर करूंगा कि अल्पसंख्यक उपसमिति एवं परामर्शदातृ समिति की बैठकों के सिलसिले में अनेक ऐसे अवसर आये जब मैं बहुत चिन्ताकुल और व्यग्र हो गया था। मैं यह जानता हूं, श्रीमान्, कि अपनी बातों का विवरण देना न सिर्फ अहंभाव का परिचायक है बल्कि इससे अक्सर लोगों को चिढ़ पैदा हो जाती है। अपने संप्रदाय का प्रतिनिधित्व करने में मुझे सदा इस विश्वास से प्रेरणा मिलती रही है कि अपने एंग्लो इंडियन सम्प्रदाय का, इसका पूर्ववर्ती इतिहास कुछ भी रहा हो, असली घर भारतवर्ष ही है, वह अपने घर के लिये अन्य किसी देश की कल्पना नहीं कर सकता और इसे सही मायने में कहीं घर मिल सकता है तो भारत में ही मिल सकता है और तब जबकि इस देश के निवासी उसे हृदय से स्वीकार कर लें और अपना लें। यह विश्वास मेरे लिये अपने धर्म का एक अंग रहा है। जब अल्पसंख्यकों के अधिकारों के सम्बन्ध में वाद-विवाद चल रहा था और उनकी रूपरेखा निश्चित की जा रही थी, उस समय मेरे मन में दो सवाल उठा करते थे। एक तो यह कि क्या भारतीय नेतृवर्ग का बात में समर्थ हो सकेगा कि वह अतीत को भूल जाये और क्षमा कर दे? दूसरा प्रश्न मन में यह उठता था, अगर उस देश का नेतृवर्ग अतीत को भूल जाये और उसे क्षमा भी कर दे तो क्या वह इस अपने सम्प्रदाय की, जो छोटा तो जरूर है पर महत्वशून्य नहीं है, विशेष आवश्यकताओं और कठिनाइयों को भी स्वीकार करने के लिये तैयार हो जायेगा? आज मैं वर्णनातीत कृतज्ञता की भावना से यह कह सकता हूं, श्रीमान्, कि भारत का नेतृवर्ग न केवल अतीत को भूल जाने और माफ कर देने में भी समर्थ हुआ है, बल्कि एंग्लो-इंडियन सम्प्रदाय की, जिसका नेतृत्व करने का मुझे गौरव प्राप्त है, विशेष आवश्यकताओं और कठिनाइयों को भी समझने और स्वीकार करने में वह समर्थ हुआ है। मेरा यह विश्वास है कि इस लघु सम्प्रदाय के प्रति मैत्री का हाथ बढ़ाकर परामर्शदातृ समिति ने एक अपूर्व उदारता का परिचय दिया है। जब हम इन समस्याओं पर बहस मुबाहिसा कर रहे थे तो अक्सर मैं यह महसूस किया करता था कि समिति के बहुसंख्यक सदस्यों के मन में ये प्रश्न जरूर वर्तमान थे, यद्यपि उन्होंने इसे व्यक्त नहीं किया, पर उनके दिमाग में यह प्रश्न जरूर नाच रहे थे जिन्होंने मेरे अनुरोध के प्रति अनुकूल रुख अपनाने में उन्हें प्रेरणा दी और शायद उन्हीं प्रश्नों ने आगे चलकर एक ठोस शक्ल अख्तियार की। सम्भवत: उनके दिलों में उठने वाले सवाल यह थे। ''एंग्लो-इंडियन समाज की ओर से तो आप बराबरी के भी रुख की मांग नहीं कर सकते हैं? आपके सम्प्रदाय ने हमारे स्वातंत्र्य-संग्राम के लिये कुर्बानी करना तो दूर रहा उलटे हमारे उद्देश्य को कुचलने वाली प्रतिक्रियामूलक शक्तियों का साथ दिया। क्या आपके सम्प्रदाय के सम्बन्ध में हमारा यह कहना गलत है?'' अधिकतर सदस्यों के मन में सम्भवत: यही प्रश्न थे, जो बद्धमूल धारणा की तरह घर कर चुके थे। मैं समझ रहा था कि ये प्रश्न हमारी राह में बाधक होंगे। कभी-कभी तो ऐसा अनुभव करता था कि यह बाधा ऐसी है जो अजेय है। किन्तु बावजूद इन सब बातों के हमारे सम्प्रदाय को बहुसंख्यक वर्ग ने एक भारतीय अल्पसंख्यक समाज के रूप में स्वीकार किया और इतना ही नहीं इसके साथ उन्होंने खास तौर पर रियायत का सलूक किया और इसकी विशेष कठिनाइयों को उन्होंने मंजूर किया और उसकी फिक्र की। इस सम्बन्ध में, श्रीमान्, मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहता हूं—शब्दों द्वारा पर्याप्त रूप से इस कृतज्ञता का

ज्ञापन करना मेरे लिये सम्भव नहीं है—परामर्शदातृ समिति के सभापति श्री सरदार पटेल के प्रति जिन्होंने इस सम्बन्ध में बड़ा अनुकूल रुख अपनाया। इस सम्बन्ध में सभा में दी हुई कतिपय वक्तृताओं से शायद यह ख्याल पैदा हो कि परामर्शदातृ समिति तो ऐसी भावना से अनुप्राणित थी कि अल्पसंख्यकों को वह दिया ही न जाये जो वह चाहते हैं या अपने लिये जरूरी समझते हैं। मैं इस धारणा का खंडन करने के लिये ही खड़ा हुआ हूं। बहुतेरे सदस्यों ने इस पक्ष का प्रतिपादन किया ठोस तर्क रखते हुये और सर्वथा औचित्य का प्रदर्शन करते हुए कि अल्पसंख्यकों के अनुरोध को हमें न स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि उससे देश हित को नुकसान पहुंचेगा। जब मैं इनकी बातें सुनता था तो अक्सर यही महसूस करता था कि अल्पसंख्यकों का अनुरोध कभी न स्वीकार किया जायेगा, क्योंकि तर्क के आधार पर, यहां तक कि औचित्य के भी आधार पर और राष्ट्र के एकीकरण की आवश्यकता को देखते हुए उनकी बहुत सी मांगें ऐसी थीं जिनका कभी समर्थन ही नहीं किया जा सकता था। किन्तु सौभाग्यवश सरदार पटेल जैसा व्यक्ति उस समिति का सभापति था। मैंने देखा कि वह तर्कों की उपेक्षा कर जाते थे और कभी-कभी तो ऐसे तर्कों को वह अनसुनी कर देते थे जिसका कोई तर्क-संगत जवाब ही नहीं हो सकता था, जो सैद्धांतिक दृष्टि से सर्वथा अकाट्य थे। उन्होंने समिति के सदस्यों को बारहा यह साफ साफ बता दिया कि उस सम्बन्ध में उन्होंने जो ढंग अपनाया है वह न तो तर्क से अनुप्राणित होकर, न औचित्य से प्रेरित होकर और न शास्त्रीय सिद्धांतों ही से प्रभावित होकर, बल्कि वह केवल इस प्रयास के लिये अपनाया है कि अल्पसंख्यकों की अनुभूति को उनकी वास्तविक मनोवैज्ञानिक दशा को समझा जा सके। उन्होंने यह साफ साफ बता दिया था कि वह जिस सिद्धांत पर काम कर रहे हैं वह यह है। इस सम्बन्ध में हमारे लिये यह देखना उतना जरूरी नहीं है कि इस समस्या के लिये जो कर रहे हैं वह सिद्धांत के हिसाब से, शास्त्रीय वाद के हिसाब से कहां तक ठीक है। ज्यादा जरूरी यह देखना है कि अल्पसंख्यकों के अनुरोध कुछ भी क्यों न हों अगर वह बिल्कुल ही पागलपन के न हों तो हमें जहां तक शक्य हो उनकी पूर्ति करनी चाहिये, क्योंकि अगर उनके मन में कोई डर बैठा हुआ है जिसके कारण वह ये मांगें करते हैं, तो फिर वह डर चाहे फिर वास्तविक हो या काल्पनिक हो, देशहित का ख्याल रखते हुए अच्छा यही होगा कि उनके भय का निराकरण कर दिया जाये। उन्होंने बताया कि हमें अल्पसंख्यकों की मनोदशा का ध्यान रखते हुए इस समस्या पर विचार करना चाहिये। यही कारण है कि हमें विशेष सुविधा देने वाले प्रावधान विधान में रखे गये हैं। तर्क या सिद्धांत के आधार पर तो हमें इन सुविधाओं के मांगने का हक ही नहीं है।

एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से, श्रीमान्, जो एक अरसा से अल्पसंख्यकों की मनोवैज्ञानिक दशा को और उनकी कठिनाइयों को समझता है, मैंने कभी-कभी इन बात को धृष्टता ही समझा है कि एक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय का कोई प्रतिनिधि दूसरे अल्पसंख्यक वर्ग को उपदेश दे और कहे कि ''अमुक काम आपके लिये हानिकर है''। इसलिये मैं ऐसी कोई बात नहीं कहूंगा जिससे यह गंध मिलती हो कि मैं मुस्लिम बन्धुओं को उपदेश दे रहा हूं। पर मैं यह जरूर कहना चाहता हूं कि परामर्शदातृ समिति में जो भी फैसले हुए हैं वह, जहां तक कि दूसरे अल्पसंख्यकों का सम्बन्ध है, सर्व सम्मति से हुए थे।

[श्री फ्रेंक एन्थोनी]

पर परामर्शदातृ समिति और कर ही क्या सकती थी? मुस्लिम प्रतिनिधियों की राय एक नहीं थी उनके भिन्न-भिन्न प्रतिनिधियों ने भिन्न-भिन्न बातें कहीं। ऐसी सूरत में हम दूसरा फैसला करते ही क्या? विधान-परिषद् में भी उनमें मतैक्य नहीं था। इसलिये जब मुस्लिम प्रतिनिधियों में परस्पर इतना मतभेद रहा तो परामर्शदातृ समिति के सामने इस फैसले को मंजूर करने के अलावा और दूसरा रास्ता ही क्या था और इस हालत में जबकि इस फैसले को अन्य सभी सम्प्रदायों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया और बहुत से मुसलमानों ने भी इसका समर्थन किया? अध्यक्ष महोदय, परामर्शदातृ समिति के इस फैसले के सम्बन्ध में कह सकता हूं कि यह जोर जबर्दस्ती से नहीं किये गये हैं बल्कि मैत्री और सद्भावनापूर्ण परामर्श के बाद, परस्पर मिलजुलकर हमने इन्हें मंजूर किया है।

मेरा यह विश्वास है कि इन निर्णयों को फलीभूत बनाने में सरदार पटेल ने वह सहायता दी है जो शायद इधर कुछ वर्षों के भीतर और दूसरा कोई व्यक्ति दे नहीं सकता था। उन्होंने राष्ट्र के एकीकरण और उसकी समुन्नति के कार्य के लिये अल्पसंख्यक वर्गों को कुछ ऐसा अनुप्राणित किया कि वे हृदय से इसमें लग गये और उसके फलस्वरूप हम सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंच सके।

कुछ लोग अभी भी यह महसूस करते हैं कि अन्तर्वर्त्ती काल के लिये विधान में हमें इतने संरक्षण नहीं रखने चाहिये थे। किन्तु मैं अन्यथा समझता हूं। मैं यह महसूस करता हूं कि यह एक अच्छी बात है, एक हितकर बात है कि हमने दस वर्ष की एक सीमित अवधि निर्धारित कर दी है। उन बन्धुओं को जो इसके लिये चिन्तित हैं कि शीघ्र ही पूर्ण रूप से देश का एकीकरण हो जाना चाहिये, मैं यह कहूंगा—''एक महती जाति के लिये दस वर्ष की अवधि उसके इतिहास के एक क्षण का भी एक लघु हिस्सा है।'' हमारा लक्ष्य है एक सर्वथा ऐहिक और लोकतंत्रीय राज्य की स्थापना। अभी हम अपने इस लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये हैं। पर यह जरूर है कि हमारा लक्ष्य बहुत दूर नहीं हैं इस लक्ष्य तक पहुंचने में, हो सकता है हमें कई बार गिरना और उठना पड़े पर इस मंजिल पर पहुंचने तक के लिये हमने जो कतिपय संरक्षण अल्पसंख्यकों को दिये हैं, वह इस बात के लिये बहुत ही हितकर और लाभप्रद होंगे कि अल्पसंख्यक वर्ग इस अन्तर्वर्ती काल को पार कर जायें।

कुछ लोगों का यह ख्याल है, खास करके अन्य देशों से आये हुए पत्रकारों का, कि हिन्दुस्तान में आज अल्पसंख्यकों को सताया जा रहा है; अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि रूप में जो लोग हैं वे वस्तुतः अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व नहीं करते या भय और जोर जबरदस्ती की भावना ने उनको सर्वथा निर्जीव बना दिया है; सुतरां उनके हृदय में जो भय है उसे वे व्यक्त नहीं करते। मुझे तो भय का कभी कोई ख्याल मन में पैदा नहीं हुआ। अपना विचार व्यक्त करने में मुझ पर तो कभी कोई जोर जबरदस्ती नहीं की गई है। मैं तो कहूंगा कि अल्पसंख्यकों के जो प्रतिनिधि हैं वे आज किसी दल विशेष के हाथ की कठपुतली नहीं हैं। जब हम यह कहते हैं कि हम अपने दिलों में यही महसूस करते

हैं कि हमारे प्रति बड़ी उदारता बरती गई है, तो हम किसी जोर जबरदस्ती या डर के कारण यह नहीं कहते हैं बल्कि हम हृदय से यह कहते हैं। पर साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि हम भ्रमग्रस्त नहीं हैं। हम चापलूसी करना नहीं जानते हैं। कतिपय अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों को मैंने यह कहते सुना है कि भारतभूमि में जो कुछ हो रहा है वह सब का सब ही ठीक नहीं है। मैं पूछता हूं सब कुछ ठीक है ही किस मुल्क में? गलतफहमी के कारण जरूर मौजूद हैं। आज मैं देखता हूं कि कुछ प्रान्तों में बड़ी जल्दीबाजी में कतिपय नीतियों को अमल में लाया जा रहा है और मैं यह महसूस करता हूं कि साम्प्रदायिक स्वार्थों की दुर्भावना से ही प्रेरित होकर इन कतिपय नीतियों को शीघ्रता से प्रयोग में लाया जा रहा है। इनमें मैं एक नई तरह की साम्प्रदायिकता देख रहा हूं और वह है भाषा एवं प्रान्तीयता की साम्प्रदायिकता, जो हमारी पुरानी और मरी हुई धर्मगत साम्प्रदायिकता से कहीं ज्यादा खतरनाक और बुरा असर पैदा करने वाली है। साम्प्रदायिकता रूपी अनेक फणधारी विषधर इन नीतियों के द्वारा कई क्षेत्रों में मुझे सर उठाता दिखाई दे रहा है। मैं देखता हूं कि जिन लोगों को इस नई साम्प्रदायिकता से अत्यधिक प्रेम है, वे धार्मिक साम्प्रदायिकता की आड़ में, जो कि आज मर चुकी है, अपनी भाषा और प्रांतीयता की साम्प्रदायकिता का प्रश्रय देने का प्रयास कर रहे हैं हम यह देख रहे हैं, श्रीमान्—बिना किसी दुर्भाव के मैं यह कह रहा हूं—कि इस महती संस्था के बहुत से सदस्य नियमत: तो कांग्रेस के सदस्य हैं पर वस्तुत: भावना से वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिन्दू महासभा के सदस्य हैं। मुझे दुर्भाग्यवश रोज ही कांग्रेस दल के प्रभावशाली और सम्मानित नेताओं के ऐसे भाषण समाचार पत्रों में देखने को मिलते हैं, जिनमें कहा गया होता है कि भारतीय स्वातन्त्र्य और भारतीय संस्कृति का, हिन्दू राज और हिन्दू संस्कृति के अतिरिक्त और अर्थ ही क्या हो सकता है? इन बातों को लेकर ही शक पैदा होता है। पर किस महान राष्ट्र को अपनी महानता के लक्ष्य-पथ पर चलते हुये उठना और गिरना नहीं पड़ा है? मुख्य बात जो हमें करनी थी वह हमने निश्चित कर ली है। हमने अपना लक्ष्य तय किया है और उसकी प्राप्ति के लिये हम सही दिशा में चल पड़े हैं। एक ऐहिक लोकतंत्रीय राज्य की स्थापना ही हमारा लक्ष्य है। ऊंचे-ऊंचे सिद्धांतों का नारा लगाना आप फिर शुरू करें, यह बेकार है। उससे आप वास्तविकता को नहीं बदल सकते। हमारा जोर शोर से यह कहना कि हमने ऐहिक; लोकतंत्रीय राज्य की स्थापना कर ली है, गलत है क्योंकि अपने इस लक्ष्य को अभी हम प्राप्त नहीं कर सके हैं। उसे हमें प्राप्त करना है। पर जैसा कि मैंने कहा है, यह जरूर है कि हम सही दिशा में चल पड़े हैं। जैसा कि हमारे प्रधानमंत्री ने अभी उस दिन सभा में कहा है, जहां कि मैं भी मौजूद था, आरक्षण की व्यवस्था को उठाकर और उसे केवल दस साल तक के लिये सीमित रखकर बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने और विशेषत: देश के नेतृवर्ग ने यह व्यक्त किया है, कर दिया है कि उन्हें इस बात के लिये अपने ऊपर विश्वास है कि वह अपने लक्ष्य को निश्चय ही प्राप्त करेंगे। उनके लिये तो यह काम उनके धर्म का एक अंग है। अल्पसंख्यकों की किसी मांग को समाप्त करने के अभिप्राय से प्रेरित होकर उन्होंने ऐसा नहीं किया है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने अल्पसंख्यक वर्गों से समझौता करके अपने कर्त्तव्य का उसे एक अंग समझ कर ऐसा किया है। मेरा तो यह विश्वास है कि भारतवर्ष एक ऐहिक राज्य बनकर ही अपना पूर्ण विकास प्राप्त कर सकता है। अगर अतीत की ओर जाने का और प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित करने का कोई प्रयत्न किया गया, तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम यही होगा

[श्री फ्रेंक एन्थोनी]

कि इस महान् देश के शक्तिशाली एवं समृद्ध होने की जो सम्भावनायें हैं, वह निर्जीव हो जायेंगी और इसकी उन्नति रुक जायेगी। मैं तो यहां तक कहता हूं कि लक्ष्य प्राप्ति के निमित्त जो हमारा अभियान हो—अभियान इसलिये कह रहा हूं कि हमें अभी भी अपना लक्ष्य प्राप्त करना बाकी है—उसमें अल्पसंख्यक वर्गों की अग्रिम पंक्ति में रहना होगा। ऐसा अल्पसंख्यक समुदाय जो यह सोचता हो कि पन्थ या वर्ग का आसरा लेकर वह समृद्धि पा सकता है, उसके लिये मैं कहूंगा कि वह अपना विनाश बुला रहा है। अपनी बात समाप्त करने से पहले, श्रीमान्, मैं एक और बात की भी प्रसंगात् चर्चा कर देना चाहता हूं। कुछ लोग यह कहते हैं—''वाह मिस्टर एंथोनी, तुमने तो बड़ी बड़ी ऊंची बातें कहीं हैं और बड़े ऊंचे नाम उद्‌गार व्यक्त किये हैं। अगर तुम्हारी ऐसी ही प्रबल अनुभूति है तो फिर अपने सम्प्रदाय के नाम के पहले जो 'एंग्लो' शब्द लगा रखा है उसे हटा क्यों नहीं देते?'' इसके जवाब में मुझे यह कहना है—'एंग्लो इंडियन' शब्द चाहे अच्छा हो या बुरा, पर सही या गलत इस शब्द के पीछे बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें मैं बहुत ही प्रिय मानता हूं।'' पर मैं अपने मित्र से भी दो कदम आगे बढ़कर उनसे कहता हूं–''आप अपने मार्का 'हिन्दू' को हटा दीजिये और फौरन ही मैं 'एंग्लो' शब्द को अपने सम्प्रदाय के नाम के आगे से हटा दूंगा। जिस दिन आप अपने 'हिन्दू' मार्का को हटा देंगे, जिस दिन आप भूल जायेंगे कि आप हिन्दू हैं, उसी दिन बल्कि उससे दो दिन पहले ही मैं लिखा पढ़ी में और अगर जरूरत हो तो ढोल पीट कर मैं 'एंग्लो' शब्द को अपने सम्प्रदाय के नाम से हटा दूंगा।'' और यह इसलिये आप विश्वास करें कि जिस दिन हम सभी अपने इन मार्कों को या संज्ञाओं को हटाना शुरू कर देंगे, न केवल उनके लिये अपनी मौखिक सहानुभूति रखते हुये, न केवल उनके लिये शाब्दिक निष्ठा रखते हुये, बल्कि उनके लिये अपने दिलों में सच्ची अनुभूति रखते हुय जिस दिन हम अपने कर्मों द्वारा, न कि केवल वाणी द्वारा, ऐहिक राज्य के प्रति अपनी गम्भीर निष्ठा को फलवती बनाने के हेतु ऐसा करना शुरू करेंगे, वह दिन देशवासियों के लिये गौरव का दिन होगा और भारत के सभी अल्पसंख्यक समुदाय उसका सबसे आगे बढ़कर अभिनन्दन करेंगे। उस पवित्र दिन के उदित होने के पूर्व ही यहां के अल्पसंख्यक यह भूल चुके होंगे कि वह यहां अल्पसंख्यक हैं और उनके दिलों में यही भाव भर गया रहेगा कि वह केवल भारतीय हैं और सदा रहेंगे।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रस्ताव के लिये इतनी सद्‌भावना प्रकट की जा चुकी है कि इसके समर्थन के लिये मेरा खड़ा होना अनावश्यक ही है। किन्तु इसके समर्थन के लिये मैं एक मानसिक प्रेरणा का अनुभव कर रहा हूं, क्योंकि देश के भाग्य में जो इतना बड़ा ऐतिहासिक परिवर्तन होने जा रहा है, उसके समर्थन में मैं भी शरीक होना चाहता हूं। मेरे साथी उपप्रधानमंत्री ने जो प्रस्ताव सभा के समक्ष उपस्थित किया है, वह वस्तुतः एक ऐतिहासिक प्रस्ताव है। इस प्रस्ताव का अर्थ यह है कि हम न केवल उस बात का परित्याग ही करने जा रहे हैं जो कि बुरी है, बल्कि हम इसे सदा के लिये समाप्त कर अपनी पूरी शक्ति के साथ यह दृढ़ निश्चय कर रहे हैं कि हम एक ऐसे पथ पर चलेंगे, जिसे राष्ट्र के प्रत्येक वर्ग के लिये हम बुनियादी तौर पर अच्छा समझते हैं।

मुझे विश्वास है कि हम सभी जो यहां उपस्थित हैं, इस बात को बखूबी समझ गये हैं कि पार्थक्य की बात से, चाहे वह पृथक् निर्वाचन की शक्ल में रही हो या अन्य किसी रूप में, हमारे देश का और उसके निवासियों का बड़ा ही भयानक अहित हुआ है। कुछ दिन पहले हमने यह निर्णय किया था कि पृथक् निर्वाचन की दूषित पद्धति को हम जरूर हटा देंगे। यह यहां की सबसे बड़ी बुराई थी। हमने यह निर्णय जरूर किया था और बड़ी अनिच्छा के साथ कि आरक्षण की कुछ न कुछ व्यवस्था अभी हम जारी रहने देंगे। आरक्षण की व्यवस्था को हमने जो अनिच्छा से रखा इसके दो कारण थे। पहला कारण तो यह था कि हमने यह अनुभव किया कि हम इस व्यवस्था को उठा नहीं सकते जब तक कि अल्पसंख्यकों की सद्भावना हम न प्राप्त कर लें। यह बात सरासर उन पर निर्भर करती थी कि वह खुद आगे बढ़ें और कहें कि हमें आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने अतीत में अल्पसंख्यकों को जो आश्वासन दिये हैं उनको देखते हुए हमारे लिये यह कभी शोभनीय नहीं है कि हम किसी निर्णय को जबरन अल्पसंख्यकों से स्वीकार करायें। इसके अलावा यों भी ऐसा करना कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। दूसरा कारण यह था कि हमें अपने दिलों में ही इसका पूरा भरोसा नहीं था कि हम लोग और देश के लोग, सभी आरक्षणों के उठा दिये जाने पर किस तरह शासन की व्यवस्था चलायेंगे, इसलिये भी हम लोगों ने आरक्षण की व्यवस्था को मान लिया पर हमारे दिलों में यह सन्देह जरूर रहा है कि एक बुरी व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय करते हुए शायद हमने कमजोरी ही दिखलाई है। इसलिये जब यही प्रश्न एक दूसरे प्रसंग में सामने आया तो हमने यह विचार किया कि अनुसूचित जातियों के लिये तो आरक्षण की व्यवस्था रहने दी जाये पर शेष सबके लिये समाप्त कर दी जाये। मैंने इस प्रस्ताव को बड़ी तत्परता और खुशी से स्वीकार किया। इसे मंजूर करने में मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मेरी एक बहुत बड़ी तकलीफ दूर हुई। यह सब इसलिये कि अपने राजनीतिक क्षेत्र में पृथक् निर्वाचन या अन्य कोई अलगाव की व्यवस्था रखने के खिलाफ मेरे दिल और दिमाग में एक मुद्दत से संघर्ष चल रहा था और मैं जितना ही इस मसले पर सोचता था मैं यही अनुभव करता था ऐसी व्यवस्था को उठाना ही सही बात है, न केवल शुद्ध राष्ट्रीयता की दृष्टि से—यह कार्य राष्ट्रीयता की दृष्टि से सही तो है ही—बल्कि हर अलग-अलग वर्ग के हित के ख्याल से भी या आप यह कह सकते हैं कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक सभी के हित के लिये यह कार्य सही है।

हम सभी अपने को राष्ट्रीयतावादी कहते हैं पर हमने अपने-अपने दिलों में राष्ट्रीयता की जो कल्पना कर रखी है वह शायद आपस में मिलती जुलती न होगी और भिन्न-भिन्न होंगी। हम सभी अपने को राष्ट्रीयतावादी कहते हैं और हमारा ऐसा कहना सही भी है पर फिर भी हम में से बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो इस पार्थक्य-मूलक प्रवृत्तियों से, चाहे वह साम्प्रदायिक हों या प्रान्तीयता से सम्बन्ध रखती हों या अन्य किसी बात से, सर्वथा स्वतंत्र हों। हम में ये प्रवृत्तियां वर्तमान हैं पर इसका मतलब यह नहीं है कि हम इनको दूर करने का प्रयत्न न करें और इनके सामने सर झुका दें। हां यह जरूर है कि अपनी इन दुष्प्रवृत्तियों को छिपाने के लिये हमें राष्ट्रीयता का जामा हर्गिज न अपनाना चाहिये।

इसलिये जब मैंने इस मसले पर गौर किया तो मैं इसी नतीजे पर पहुंचा कि अगर अपने जातीय इतिहास की वर्तमान स्थिति में, जबकि हम अपने विधान का निर्माण कर

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

रहे हैं, जो हो सकता है बहुत स्थायी न हो—क्योंकि दुनिया में आखिर परिवर्तन होता ही रहता है, क्योंकि हम तो यही चाहते हैं कि हमारा विधान काफी ठोस और स्थायी हो–हम इसमें कोई ऐसी बात रखते हैं जो सरीहन गलत है और जिसकी वजह से यह तय समझिये कि लोग गलत ही रास्ता पकड़ेंगे तो हमारा यह काम देश के हक में बड़ा बुरा होगा। कुछ दिन पहले एक दूसरे प्रश्न के प्रसंग में हमने यह निर्णय किया था कि साम्प्रदायिकता से या बिलगाव पैदा करने वाली अन्य किसी बात ही से हम कोई सरोकार न रखेंगे। उस समय किसी ने हमसे यह ठीक ही पूछा था कि ऐसी अवस्था में हम आरक्षणों की व्यवस्था क्यों रख रहें हैं क्योंकि इससे राजनीतिक क्षेत्र में लोग अपने-अपने वर्ग की बात सोचने लगेंगे।

मैं यह चाहता हूं कि इस मसले पर—चाहे अल्पसंख्यकों के लिये जगह के आरक्षण का सवाल हो या किसी प्रकार के संरक्षण का प्रश्न हो—आप वस्तुस्थिति को दृष्टि में रखते हुए विचार करें। ऐसे संरक्षण का या अन्य प्रकार के किसी संरक्षण का उस हालत में तो कुछ मानी हैं जबकि आपके यहां कोई निरंकुश या विदेशी शासन हो। पर जब आपके देश में प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था चालू है तो उस हालत में इस तरह के आरक्षण की व्यवस्था रखने से उस वर्ग को, जिसके लिये व्यवस्था की जाती है वस्तुतः लाभ के बदले नुकसान की ही ज्यादा सम्भावना रहती है। जबकि देश में कोई बाहरी हुकूमत हो या निरंकुश राजा हो तो उस हालत में तो सम्भव है कि संरक्षण आपके लिये लाभप्रद हो क्योंकि राजा आपमें फूट पैदा करा सकता है। पर जब आप पूर्ण लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के विरुद्ध हैं तो अगर बहुत ही छोटे अल्पसंख्यक वर्ग को भी आप कोई संरक्षण देते हैं तो उसका परिणाम यह होगा कि वह अल्पसंख्यक वर्ग हमेशा के लिये आपसे कट जायेगा। हो सकता है कि संरक्षण से कुछ परित्राण उसे प्राप्त हो पर यह भी तो सोचिये उसके लिये उसे कीमत कितनी बड़ी चुकानी पड़ रही है। वह आपसे कट कर हमेशा के लिये अलग हो जायेगा, और बहुसंख्यक सम्प्रदाय के साथ न चलकर वह बिचारा एक अलग ही दिशा में चलेगा, अवश्य ही यह मैं राजनीतिक दृष्टिकोण से कह रहा हूं। बहुसंख्यक सम्प्रदाय की हमदर्दी और भाईचारा खोकर ही उसे यह संरक्षण मिलेगा। लोकतंत्रीय व्यवस्था में तो देर से हो या जल्दी हो, बहुमत की मर्जी को प्रधानता मिलेगी ही। किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग या अल्पमत के लिये यह बहुत ही बुरा है कि वह ऐसा रुख अख्तियार करे जिसमें संसार का या बहुमत को प्रतीत हो कि मानो वह यों कह रहा है–''हम आपसे अलग रहना चाहते हैं, हमें आप पर विश्वास नहीं है, हम अपना प्रबंध आप कर लेंगे, हमें आप संरक्षण की व्यवस्था कर दीजिये''। उसके ऐसे रुख का नतीजा यह हो सकता है कि एक आना संरक्षण उसे मिल जाये और पन्द्रह आने से वह हाथ धो बैठे। यह बात बहुमत के हित की दृष्टि से भी खराब है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय भले ही यह महसूस करे कि आबादी के ख्याल से और अन्य बातों को देखते हुए वह बहुत ही मजबूत है और इसलिये अल्पमत की इच्छाओं को वह बखूबी दबा सकता है। पर अगर बहुमत ऐसा सोचने लगेगा तो यह उसकी एक बड़ी भूल ही नहीं होगी बल्कि यह कहना चाहिये कि उसने इतिहास से कोई नसीहत हासिल नहीं की। क्योंकि कितना भी बड़ा बहुमत क्यों न हो पर अगर अल्पमतों के साथ अन्याय होता है तो उससे उसे हमेशा तकलीफ मिलती

है और यह बात आखिर में बहुमत के लिये नुकसानदेह साबित होती है। इसलिये इस सम्बन्ध में एक मात्र उपाय यही है और यह अल्पमत और बहुमत दोनों ही के हितों के लिये आवश्यक है कि इनके बीच जो भी दीवार हो जो उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में अलग रखती है, उसे ही हटा दिया जाये ताकि वे अपना विकास कर सकें और साथ-साथ चल सकें। इसका मतलब यह नहीं है कि जोर जबर्दस्ती से इस पर अमल कराया जाये। सभी वर्ग अपनी-अपनी विचार प्रणाली अपना सकते हैं, वे अपना गुट बना सकते हैं। पर यह सब, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक, धर्म और वर्ग आदि के आधार पर नहीं किया जा सकता है। गुट या दल बनाये जा सकते हैं पर अन्य बातों की मिली-जुली बुनियाद पर ताकि लोगों में इस बात की आदत पैदा हो सके कि वस्तुस्थिति पर अपने वर्ग या सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से न विचार कर समवाय के दृष्टिकोण से कर सकें। वही पद्धति वांछनीय है जिसे आप किसी भी समय बरत सकते हैं। लोकतंत्रीय व्यवस्था में तो इस पद्धति पर चलना नितान्त आवश्यक है क्योंकि अगर आप ऐसा नहीं करते हैं तो मुसीबतें पैदा होंगी जिसे अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों को ही भुगतना पड़ेगा पर बहुमत पक्ष के लिये वह मुसीबत और ज्यादा तकलीफदेह होगी।

आज की परिरिस्थति में चाहे आप हिन्दुस्तान की बात लीजिये या दुनिया के किसी और बड़े भूभाग की, सभी जगह हमें इस प्रवृत्ति का विकास करना होगा कि लोग केवल अपने देश के दृष्टिकोण से किसी प्रश्न पर विचार न करें बल्कि यथासम्भव मानव सम्प्रदाय के व्यापक दृष्टिकोण से विचार करें। संकुचित दृष्टिकोण से ही अगर किसी समस्या पर हम सोच विचार करेंगे तो वास्तविकता से हम दूर हो जायेंगे। और जगहों में जो आज बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं जिससे कि दुनिया के हालात में परिवर्तन होते जा रहे हैं उनको अगर हम नहीं समझते हैं और अपने भविष्य को अतीत से सर्वथा पृथक् कर देते हैं; अगर हम अपने अतीतकालीन कुछ विचारों और सन्देहों को पकड़े रहते हैं तो वर्तमान को हम कभी भी न समझ पायेंगे, भविष्य को समझना तो दूर की बात रही, जो अभी निर्माण प्रक्रिया में है। बहुत सी बातें जिनको लेकर हम यहां वाद-विवाद कर रहे हैं ऐसी हैं जिनको हमने अपने अतीत से ही ले रखा है। उनसे हम छुटकारा पा नहीं सकते, हम में से कोई भी उन्हें नहीं छोड़ पाता है क्योंकि हम अपने अतीत के ही एक अंश हैं। पर अगर हम अपने भविष्य को धीरे-धीरे कोई रूपरेखा देना चाहते हैं, उसे गढ़ना चाहते हैं तो इसके लिये यह जरूरी है कि हम अतीत से अपने को अलग करने की कोशिश करें। इसलिये हर दृष्टि से—सिद्धांत की दृष्टि से, विचारधारा की दृष्टि से, राष्ट्रीयता की दृष्टि से, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यकों के हित की दृष्टि से और इस दृष्टि से कि हम वर्तमान और भविष्य के स्वरूप को सही-सही समझ सकें—मैं इस प्रस्तुत योजना का अभिनन्दन करता हूं। याद रहे कि भविष्य अतीत से कहीं भिन्न होगा।

मैं तो यहां तक चाहता हूं कि यह योजना इस हद तक कार्यान्वित की जाये कि जो रक्षण रह गये हों वह भी समाप्त कर दिये जायें। किन्तु मैं यह भी कहूंगा कि मैं यह समझता हूं कि देश की जो वर्तमान स्थिति है उसमें ऐसा करना वांछनीय नहीं होगा। मेरा मतलब यह है कि अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में रक्षण हटाना सही नहीं होगा। इस समस्या पर मैं इस दृष्टि से विचार नहीं करता कि अमुक सम्प्रदाय धार्मिक दृष्टि

[माननीय पं. जवारहलाल नेहरू]

से अल्पसंख्यक है इसलिये उसे रक्षण मिलना चाहिये, बल्कि इस दृष्टि से कि देश का अमुक सम्प्रदाय या वर्ग बहुत असहाय और पिछड़ा हुआ है इसलिये उसे रक्षण मिलना चाहिये और मदद मिलनी चाहिये। और फिर मुझे इसकी खुशी है कि रक्षण की व्यवस्था केवल दस साल के लिये ही रखी जा रही है।

इस बात को समझने के लिये कि वर्तमान अतीत से किस प्रकार भिन्न है, मैं अब चाहता हूं कि आप थोड़ी देर के लिये एक खास तरीके पर उस पर विचार करें। ज्यादा नहीं पांच वर्ष पहले की ही परिस्थिति पर विचार कीजिये। उन समस्याओं का ख्याल कीजिये जिनका मुझे और आपको तब सामना करना पड़ता था। उन समस्याओं की एक सूची बनाइये और उन विभिन्न समस्याओं की एक अलग सूची बनाइये जिन पर इस महती सभा को रोज बरोज विचार करना पड़ रहा है। आप देखेंगे कि दोनों सूचियों में जबर्दस्त अन्तर है। आज जो हमारे सामने समस्यायें हैं जिनका हल ढूंढ निकालना है, उनसे यह प्रकट है कि हम कितना बदल गये हैं—यह परिवर्तन चाहे अच्छाई की तरफ हो या बुराई की तरफ। आज दुनिया बदल रही है, हिन्दुस्तान बदल रहा है न केवल राजनीतिक दृष्टि से ही बल्कि और तरह से भी। इन सारे परिवर्तनों की असली कसौटी है यह देखना कि एक समय विशेष पर क्या समस्यायें हमारे सामने आती हैं। आज जो समस्यायें हमारे सामने हैं वह उन समस्याओं से सर्वथा भिन्न हैं जो आज से पांच वर्ष पहले राजनीतिक आर्थिक प्रश्नों अथवा रियासतों के सम्बन्ध में हमारे सामने थीं। जो मैं कह रहा हूं अगर वह सही है तो फिर हमें अपनी समस्याओं का समाधान अब दूसरे ढंग से करना होगा। हां, ऐसा करने में यह जरूरी है कि हम अपने बुनियादी आदर्शों का और अपनी मूल विचारधारा का, जिसने कि हमें अतीत में सदा अनुप्राणित किया है, साथ न छोड़ेंगे, उन्हें पकड़े रहेंगे। पर साथ ही हमें यह भी याद रखना होगा कि अतीतकालीन विचारधाराओं की कई बातों का अब वर्तमान स्थिति में कोई स्थान नहीं रह गया है। पृथक् निर्वाचन, जगहों का आरक्षण और ऐसी ही अन्य बातें जो पहले बहुत ही महत्त्व की थीं, वह इसी श्रेणी में आती हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था को उठा देना न केवल सिद्धांतत: ही अच्छा है, यह केवल सम्बद्ध लोगों के लिये और खास तौर पर अल्पसंख्यकों के लिये ही नहीं लाभप्रद नहीं है बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी देश के लिये और दुनिया के लिये भी एक अच्छा कदम है। इससे जाहिर होता है कि एक असाम्प्रदायिक लोकतंत्र की स्थापना के प्रयास में हम वस्तुत: निष्ठा और सच्चाई से कार्यरत हैं। हमने यहां असाम्प्रदायिक लोकतंत्र का प्रयोग किया है और अन्य बहुत से लोग भी इन शब्दों का प्रयोग करते हैं इस सम्बन्ध में कभी-कभी मैं ऐसा महसूस करता हूं कि इन शब्दों का जरूरत से ज्यादा प्रयोग हो रहा है और ऐसे लोगों द्वारा जो इसके वास्तविक महत्त्व को समझते ही नहीं हैं। यह तो एक ऊंचा आदर्श है जिसकी प्राप्ति के लिये हमें कोशिश करनी चाहिये। पर चाहे हिन्दू हों या मुसलमान या पारसी या ईसाई हों, हम में से कोई भी अपने दिल पर हाथ रखकर यह कहने का साहस नहीं कर सकता है कि उसके दिल में और दिमाग में साम्प्रदायिक भेदभाव की भावना और बुराई सर्वथा है ही नहीं। ऐसा कोई नहीं कह सकता है और अगर ऐसा कहने वाले लोग होंगे भी तो उनकी संख्या बिल्कुल ही नगण्य होगी क्योंकि हम सभी अतीत की ही एक उपज हैं। मुझे खुद ही यह बात सुखद नहीं मालूम होती है कि हम में से कोई दूसरे को यह उपदेश दे कि

हमें आपस में कैसा बर्ताव करना चाहिये या यह कि कोई दल दूसरे दल को, चाहे अल्पसंख्यक दल हो या बहुसंख्यक यह उपदेश दे कि सद्भावना के लिये उसे यों यह करना चाहिये या वह करना चाहिये। अवश्य ही सद्भावना पाने के लिये कुछ न कुछ किया ही जाना चाहिये; यह आवश्यक है। पर सद्भावना, निष्ठा या प्रेम यह ऐसी वस्तु तो नहीं है जो उपदेश द्वारा प्राप्त की जा सके। यह बातें तो विकास पाती हैं, कतिपय परिस्थितियों के कारण, हृदय और मस्तिष्क की भावना के कारण और इस बात का बोध हो जाने के कारण कि अन्ततोगत्वा भलाई किस बात में है।

अब मैं सभा के महत्त्वपूर्ण निर्णय को लेता हूं जिससे हमारे भविष्य पर एक गम्भीर प्रभाव पड़ने जा रहा है। इस मसले के सम्बन्ध में हमारे दिमाग में यह बात साफ-साफ आ जानी चाहिये कि इस दिशा में और आगे बढ़ने के लिये हम में से हर एक को चाहे वह बहुसंख्यक वर्ग का हो या अल्पसंख्यक का, ऐसा करने की कोशिश करनी होगी कि दूसरे दल की या व्यक्ति की सद्भावना प्राप्त हो सके। मैं जो कह रहा हूं वह एक पुराना कथन है। फिर भी मैं इसे इसलिये कह रहा हूं कि यह बात मेरे मन में बैठ गई है कि आपका सम्बन्ध चाहे किसी भी दल से हो, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में आपकी उस उदारता, सद्भावना और स्नेह का ही असर पड़ता है जिसको लेकर आप प्रतिपक्षी के पास पहुंचते हैं। अगर आप में यह बातें नहीं हैं तो आपकी बातों का कुछ भी असर उस पर न पड़ेगा और अगर यह बातें आप में हैं तो इनके प्रतिक्रियात्मक प्रभाव के फलस्वरूप प्रतिपक्षी में यह बातें जरूर पैदा हो जायेंगी। अगर आज अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लघुमात्र भी उदारता और सद्भावना होती तो आज की जो बड़ी-बड़ी अंतर्राष्ट्रीय समस्यायें हैं उनका समाधान निकालना हमारे लिये और आसान हो जाता। अगर हम अपने देश में इन समस्याओं का समाधान इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर करने का प्रयास करें, तो आपको विश्वास दिलाता हूं, तो हमारे लिये इसमें सफल होना कहीं आसान हो जायेगा। हम सब में भलाई और बुराई दोनों का ही सम्मिश्रण है और प्रतिपक्षी की बुराई को दिखाना बड़ा ही आसान होता है। पर अपनी बुराइयों को ढूंढना आसान नहीं हैं क्यों न हम अपनी बुराइयां ढूंढें? क्यों न हम इस पद्धति का प्रयोग कर देखें जिसे दुनिया के महापुरुषों ने, महात्माओं ने निकाला है जिन्होंने हमेशा प्रतिपक्षी की खूबियों पर ही दृष्टि रखने और इस तरह उसे पास लाने पर जोर दिया है। हमारे राष्ट्रपिता आखिर किस रास्ते पर चलते थे? आखिर वह किस तरह सब तरह के लोगों को, हर दल को और हर व्यक्ति को अपनी ओर खींचते थे और उससे भलाई पा लेते थे? वह हमेशा मनुष्य के गुण की ओर ही दृष्टि रखते थे और शायद यह जानते हुए कि उसमें बुराइयां भी हैं। व्यक्ति या दल के गुणों पर ही वह हमेशा जोर देते थे और उससे उसकी खूबियों का अच्छा से अच्छा उपयोग करवा लेते थे। मैं समझता हूं कि वही एकमात्र रास्ता है जिसके अनुसार हमें व्यवहार करना चाहिये। मुझे इसका पूरा विश्वास हो गया है कि इस रास्ते पर चलने का परिणाम हमारे लिये अच्छा ही होगा। किन्तु जैसा कि मैंने किसी अन्य अवसर पर कहा था मैं सभा को फिर याद दिलाऊंगा कि हमारा यह निर्णय हम सबके लिये धर्म का एक अंग है और विशेष करके बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लिये क्योंकि इस निर्णय को स्वीकार करने के बाद उन्हें यह दिखाना होगा कि वह दूसरों के प्रति उदारता और न्याय का बर्ताव कर सकते हैं। हमने इस निर्णय को अपना धर्म माना है और तदनुसार ही हमें अपना आचरण रखना चाहिये।

(श्री तजम्मुल हुसैन बोलने के लिये मंच पर आयें।)

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** एक नियम सम्बन्धी प्रश्न है श्रीमान्। आपने मिस्टर तमीजुद्दीन खां का नाम पुकारा है न कि मिस्टर तजम्मुल हुसैन का।

***श्री तजम्मुल हुसैन:** (बिहार : मुस्लिम): अच्छा होगा अगर माननीय सदस्य अपना चश्मा बदल डालें। अध्यक्ष महोदय ने तजम्मुल हुसैन को पुकारा और तजम्मुल हुसैन मैं ही हूं।

अध्यक्ष महोदय, स्थानों का रक्षण, चाहे वह किसी रूप में और किसी भी सम्प्रदाय या वर्ग के लिये दिया जाये, सिद्धांत की दृष्टि से बिल्कुल गलत है। इसलिये अपनी तो पक्की राय यह है कि स्थानों के रक्षण की व्यवस्था किसी के लिये भी न होनी चाहिये और मुसलमान होने की हैसियत से कहता हूं कि मुसलमानों के लिये न होनी चाहिये। मुसलमानों के लिये स्थान-रक्षण की कोई व्यवस्था नहीं होनी चाहिये। (*खूब, खूब*) मैं आपको बताना चाहूंगा कि किसी भी सभ्य देश में जहां लोकतंत्रीय आधार संसदात्मक शासन-पद्धति प्रचलित है, स्थानों के रक्षण की कोई भी व्यवस्था आपको नहीं मिलेगी। इंग्लैंड का ही उदाहरण ले लीजिये वहां की लोक सभा पार्लियामेंटों की जननी मानी जाती है। उसमें किसी भी सम्प्रदाय के लिये स्थान-रक्षण की कोई व्यवस्था नहीं हैं इसमें शक नहीं कि विश्वविद्यालयों के लिये वहां जगहें जरूर सुरक्षित रखी जाती थीं पर अब यह व्यवस्था भी उठा दी गई है। आखिर यह व्यवस्था है क्या? यह एक रियायत है, संरक्षण है कमजोरों की रक्षा के लिये। इसके अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है। हम मुसलमान कोई रियायत नहीं चाहते, कोई सरंक्षण नहीं चाहते और न किसी प्रकार की रक्षा चाहते हैं। हम कमजोर नहीं हैं। इस रियायत से भलाई की बजाय मुसलमानों को नुकसान ही ज्यादा पहुंचेगा। संरक्षित स्थानों की व्यवस्था का यही मतलब होता है कि निर्वाचक समुदाय की इच्छा के प्रतिकूल आप उन पर किसी प्रतिनिधि को जबर्दस्ती लाद देते हैं। निर्वाचक समूह चाहता हो या न चाहता हो हम जबर्दस्ती उसके प्रतिनिधि बन जाते हैं। हम नहीं चाहते हैं कि जबर्दस्ती एक अनुच्छिक निर्वाचक समूह पर प्रतिनिधि रूप में हम लाद दिये जाये। ऐसा होने से बहुसंख्यक सम्प्रदाय का ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है कि हम उनके अधिकारों पर आक्रमण कर रहे हैं हम नहीं चाहते कि वे ऐसा सोचें। हमें अपने लिये जोर लगाकर खुद प्रयास करना चाहिये। पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था हमारे देश के लिये एक अभिशाप रही है और इससे देश को इतना जबर्दस्त नुकसान पहुंचा है जिसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। इस व्यवस्था को शुरू किया यहां अंग्रेजों ने। संरक्षित स्थानों की व्यवस्था भी इसी पृथक् निर्वाचन पद्धति की एक शाखा है। पृथक् निर्वाचन पद्धति को उठाकर उसकी जगह अब स्थान-रक्षण की व्यवस्था को न दीजिये। इस पद्धति से हमारी तरक्की में बड़ी रुकावट पड़ी है। पृथक् निर्वाचन की पद्धति को तो हमने अब सदा के लिये समाप्त कर दिया है। पर हम संरक्षित स्थानों की व्यवस्था को भी नहीं चाहते हैं। हम चाहते हैं कि यह दोनों ही व्यवस्थायें खत्म कर दी जायें। हम राष्ट्र के साथ घुल-मिलकर एक हो जाना चाहते हैं। हम अपने पांव पर खड़ा होना चाहते हैं। हम किसी का सहारा नहीं लेना चाहते।

हम कमजोर नहीं हैं काफी मजबूत हैं। हम पहले भारतीय हैं तब और कुछ और सदा हम भारतीय रहेंगे। (*खूब, खूब*) भारत हमारा देश है। वतन की हैसियत से हम और दूसरे किसी मुल्क को नहीं जानते हैं। हम भारतीय हैं और सदा रहेंगे। हम भारत की प्रतिष्ठा और गौरव के लिये लड़ेंगे और मर जायेंगे। (*प्रशंसा सूचक ध्वनि*) इस मामले में हम सब एक रहेंगे और हम में कोई भेद आ नहीं सकता। एक रहकर ही हम कायम रह सकेंगे वरना हम गिर जायेंगे। इसलिये अब हम स्थान-रक्षण की व्यवस्था नहीं चाहते हैं। इस व्यवस्था से हमारी एकता जाती रहेगी। बहुसंख्यक सम्प्रदाय के उपस्थित सदस्यों से मैं पूछता हूं ''आप हमें अपने पांव पर खड़े होने देंगे या नहीं? आप हमें भारतीय जाति का अंग बने रहने देंगे या नहीं? आप हमें अपना बराबर का साझीदार मानते हैं या नहीं? आप हमें अपने साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने देंगे या नहीं? आप अपने दुख-सुख में हमें हिस्सा बटाने देंगे या नहीं?'' अगर आपका जवाब हां में है तो फिर भगवान् के लिये आप मुसलमानों को संरक्षित स्थान देने की व्यवस्था को अपने दिमाग से हटा दीजिये। हम अपने लिये विधान द्वारा किसी संरक्षण की व्यवस्था नहीं चाहते हैं। जैसा कि मैंने कहा है हम अपने पांव पर खड़ा होना चाहते हैं। अगर हम अपने पांव पर खड़े होंगे तो हम में अपने को लघु समझने की कोई भावना नहीं रहेगी। हम किसी से किसी तरह लघु नहीं हैं। हम में आप में कोई फर्क नहीं है। हम जगत् पिता परमात्मा की पूजा आपकी तरह न करके अवश्य ही एक दूसरे तरह से करते हैं पर केवल इसी आधार पर आप हमें अल्पसंख्यक करार दें यह तो कोई ठीक बात नहीं है। हम अल्पसंख्यक नहीं है। 'अल्पसंख्यक' शब्द अंग्रेजों का निकाला हुआ है। उन्होंने अल्पसंख्यक वर्गों की रचना की थी। अंग्रेज लोग यहां से चले गये और उनके साथ अल्पसंख्यक वर्ग भी चले गये। अब इस शब्द को आप अपने शब्दकोष से हटा दीजिये। (*खूब, खूब*) अब हिन्दुस्तान में कोई अल्पसंख्यक वर्ग नहीं रह गया है। जब तक यहां पृथक् निर्वाचन की पद्धति थी और संरक्षित स्थानों की व्यवस्था वर्गों के लिये थी तब तक ही यहां अल्पसंख्यक समुदायों और बहुसंख्यक समुदाय का अस्तित्व था पर अब सब मिलकर एक समुदाय हो गये हैं।

मैं बहुसंख्यक सम्प्रदाय से अनुरोध करूंगा कि वह अल्पसंख्यकों का अविश्वास न करे। अल्पसंख्यकों ने अब अपने को यहां के अनुसार व्यवस्थित कर लिया है। इसका एक अमली उदाहरण मैं आपके सामने रखता हूं। हैदराबाद सम्बन्धी घटना आपको याद होगी। हैदराबाद के विरुद्ध जब आपने पुलिस कार्रवाई शुरू की उसके पहले वाले रोज बहुसंख्यकों को क्या आशंका थी यह आप जानते हैं। उन्हें यह डर था कि अगर हैदराबाद के खिलाफ कोई कार्रवाई शुरू की गई तो मुसलमान दंगा शुरू कर देंगे। आज करीब डेढ़ साल पहले यहां धारा-सभा में इस सम्बन्ध में बोलने वाला पहला व्यक्ति मैं था। मैंने भारत सरकार की आलोचना की। मुझे अफसोस है कि उस वक्त सरदार पटेल सभा में मौजूद नहीं थे जो इस महकमे के मंत्री थे पर मेरे माननीय मित्र श्री गाडगिल कार्य भार सम्भालने के लिये मौजूद थे। मैंने सरकार के कार्य की आलोचना की। मैंने उन्हें बताया कि यह उनका बिल्कुल गलत ख्याल है कि मुसलमान बगावत कर बैठेंगे। मैंने कहा कि मुसलमान यहां

[मि. तजम्मुल हुसैन]

के अनुसार उचित पथ अपनायेंगे। मेरे शब्द ये थे: ''हैदराबाद के खिलाफ आप अपनी सेना रवाना कर दीजिये। आप दो दिन में समूचे हैदराबाद रियासत पर कब्जा कर लेंगे''। मेरी लम्बी वक्तृता समाप्त होने पर महकमे के तत्कालीन मालिक श्री गाडगिल ने जवाब दिया पर उन्होंने एक शब्द भी हैदराबाद के सम्बन्ध में न कहा और मेरी आलोचना का उन्होंने कोई उत्तर ही नहीं दिया। मैंने उनसे सवाल किया—''आप ने सबकी बातों का तो जवाब दिया पर मेरी बात का जवाब क्यों नहीं दिया? मैं कहता हूं हैदराबाद के विरुद्ध सेना रवाना कर दीजिये। आप दो दिन में समूचे हैदराबाद पर कब्जा कर लेंगे और यहां कोई भी दंगा फिसाद न होगा''। श्री गाडगिल ने इतना ही कहा था–''आप बिल्कुल ठीक कहते हैं; हम ऐसा ही करेंगे''।

मैं सभी अल्पसंख्यकों से अपील करूंगा कि अपने राज्य को पूर्णत: ऐहिक स्वरूप देने में वह बहुसंख्यक समुदाय का हाथ बटायें। अब अपनी बदली हुई स्थिति में, मैं चाहता हूं कि मुल्क का हर नागरिक अपना पूरा विकास कर सके और यही कारण है कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था को मैं अल्पसंख्यकों के लिये घातक समझता हूं। मैं चाहता हूं कि अल्पसंख्यक यह भूल जायें कि राजनैतिक क्षेत्र में वह अल्पसंख्यक हैं। अगर वे अपने को अल्पसंख्यक समझेंगे तो वह बहुसंख्यक समुदाय से सर्वथा पृथक् हो जायेंगे और वैसा होने पर उनमें एक नैराश्यभाव पैदा होगा जो उनको पंगु कर देगा। मैं नहीं चाहता कि हम लोग सदा अल्पसंख्यक ही समझे जायें। मैं अल्पसंख्यकों से यह पूछता हूं कि क्या आप यह ख्वाहिश रखते हैं कि नहीं कि आप भी राष्ट्र के अंग हों और उसके भाग्य निर्माण में आपका भी हाथ हो? अगर आप यह ख्वाहिश रखते हैं तो अपने को बहुसंख्यक समुदाय से अलग करके इसे आप नहीं पूरा कर सकते हैं। अगर अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि धारा सभाओं में संरक्षित स्थानों की व्यवस्था के आधार पर चुनकर आ जाते हैं तो वहां देश के कामों के बारे में वह अपनी कारगर आवाज नहीं उठा सकते हैं। वह हुकूमत तो कभी बना ही नहीं सकते। इंग्लैंड का प्रख्यात प्रधानमंत्री डिसरायले कभी वहां का प्रधानमंत्री न बन पाता अगर वहां यहूदियों के लिये संरक्षित स्थानों की व्यवस्था रहती। मैं चाहता हूं कि भारतीय लोकतंत्र में अल्पसंख्यकों को सम्मान का स्थान प्राप्त हो। राष्ट्र के हितों को हम पहले देखेंगे और वर्ग के हितों को बाद में। अल्पसंख्यकों को शीघ्र ही वह दिन लाना चाहिये जबकि वह व्यवस्थापिका सभाओं में भारतीय जाति के प्रतिनिधि रूप में पहुंच सकें न कि किसी वर्ग या सम्प्रदाय का बिल्ला लगाकर उन्हें वहां पहुंचना हो।

अब अगर आपको अनुमति हो श्रीमान्, तो मैं चन्द शब्द उन वक्तृताओं के सम्बन्ध में कहूंगा जो सरदार पटेल के प्रस्ताव के खिलाफ यहां दी गई हैं। मद्रास से आये श्री मुहम्मद इस्माइल के भाषण को पहले लेता हूं। आप पृथक् निर्वाचन चाहते हैं मैं उनसे अपील करूंगा कि भिक्षा के रूप में वह कुछ न मांगे। पृथक् निर्वाचन की मांग भिक्षा की ही एक मांग है। मैं उनसे कहूंगा कि इसका परिणाम बड़ा ही भयावह होगा। बहुसंख्यक सम्प्रदाय फिर आपका कभी विश्वास न करेगा। फिर आप कभी भी किसी बात के लिये अपनी जोरदार आवाज नहीं उठा सकेंगे। आप बहुसंख्यक वर्ग से सर्वथा अलग से हो जायेंगे और आपके साथ बाहर वालों का सा सलूक बरता जायेगा और आपकी दशा वही हो

जायेगी जो अनुसूचित जातियों की है। आप अनुसूचित जातियों की तरह गरीब नहीं हैं। आप कमजोर नहीं हैं, अशिक्षित नहीं हैं, और असंस्कृत नहीं हैं। आप सदा अपने पांव पर खड़े हो सकते हैं। आपके सम्प्रदाय ने बड़े-बड़े रत्न पैदा किये हैं। इसलिये सरंक्षण की मांग आप न कीजिये। आपको अपने ऊपर विश्वास होना चाहिये। आपको सदा अपनी बात के लिये सदा प्रयास द्वारा सफलता की कोशिश करनी चाहिये। आपको चाहिये कि सीधी तरह चुनाव लड़कर आप धारा सभाओं में आयें। अब जमाना बदल गया है। जमाने के मुताबिक आप अपने को व्यवस्थित कीजिये। आपने कल अपनी वक्तृता में यह स्वीकार किया है कि वातावरण अब अच्छा हो गया है। मैं आपसे सर्वथा सहमत हूं कि वातावरण अब अच्छा हो गया है। मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि वातावरण को खराब मत कीजिये। इसको और अच्छा बनाइये पर यह न कीजिये कि पृथक् निर्वाचन का आग्रह करके इसे बिगाड़िये। अगर आप पृथक् निर्वाचन के लिये आग्रह करेंगे तो वातावरण जरूर खराब होगा। अगर पृथक् निर्वाचन की आपकी मांग पूरी कर दी जाती है तो वातावरण पहले जैसा ही दूषित हो जायेगा। इस्माइल साहब, अपने मन में यही सोचिये कि आप भारतीय हैं और भारतीय रहेंगे और फिर देखिये कि पृथक् निर्वाचन का सारा ख्याल आपके दिमाग से काफूर हो जायेगा। फिर कभी आप उसका ख्याल भी न करेंगे।

मैं आपको बताऊं श्रीमान्, कि खंड 292 के सम्बन्ध में मैंने संशोधन भेजा कि इस खंड को हटा देना चाहिये और संरक्षित स्थानों की कोई व्यवसथा न होनी चाहिये तो मेरे कई मुस्लिम दोस्तों ने जो संरक्षित जगहों की व्यवस्था के पक्ष में थे मुझसे बोले—''यह नहीं समझते हो कि हिन्दुओं की मनोवृत्ति इस समय ऐसी है कि अगर संरक्षित स्थानों की व्यवस्था हमारे लिये न रखी गई तो हम चुनाव में कभी सफल ही न होंगे।'' एक माननीय सदस्य ने, जिनके लिये मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है, मुझसे यों कहा–''हमारी हालत देखिये। हम सदा कांग्रेस के साथ रहे, जेल गये और सभी मुसीबतें झेलीं। इसमें शक नहीं कि कांग्रेस हमें टिकट जरूर देगी। इसी तरह सोसलिस्ट और कम्युनिष्ट पार्टी की ओर से भी कई मुसलमानों को टिकट मिलेंगे। पर वोट तो पाना है निर्वाचकों से। उनसे कैसे वोट पाइयेगा? वे हम लोगों को कभी भी न चुनेंगे। इसलिये अगर संरक्षित स्थानों की व्यवस्था हमारे लिये नहीं रखी जाती है तो हिन्दुओं की मनोवृत्ति के कारण कोई भी मुसलमान चुनाव में कभी न आ सकेगा।'' मैंने उनसे यह कहा कि मैं उनकी इस बात से सहमत हूं कि हिन्दुओं की मनोवृत्ति फिलहाल वैसी ही है जैसा कि आप बयान कर रहे हैं इस्माइल साहब से भी कहता हूं कि जब तक संरक्षित स्थानों की या पृथक् निर्वाचन की पद्धति कायम रहेगी हिन्दुओं की यह मनोवृत्ति कभी नहीं बदल सकती है। आप इन दोनों बातों को उठा दीजिये और उनकी मनोवृत्ति अपने आप बदल जायेगी। मैं इस विस्तार में नहीं जाऊंगा कि इस मनोवृत्ति का इतिहास क्या है? इसके लिये कौन कितना दोषी है मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूंगा क्योंकि इन सब विस्तार की बातों में जाने में समय बहुत लगेगा और मुझे वक्त दिया गया है बहुत थोड़ा, जिसमें ही मैं अपनी बात खत्म कर देना चाहता हूं। आप सब लोग यह जानते हैं कि हिन्दुओं में यह मनोवृत्ति कैसे उपजी। हमें इसमें रहना है इसलिये उनकी इस मनोदशा को बदलना हमारा ही फर्ज है और ऐसा करने का एकमात्र उपाय यह है कि हम अपने को भारतीय लोकतंत्र का अंग बना दें। आपको यह कहना चाहिये कि हिन्दू अब आपके शत्रु नहीं बन्धु हैं और अवश्य ही वे हमारे बन्धु हो जायेंगे।

[मि. तजम्मुल हुसैन]

अब मैं श्री लारी की बातों की ओर आता हूं। वे पृथक् निर्वाचन नहीं चाहते हैं और न स्थान रक्षण की व्यवस्था ही वे पसन्द करते हैं। उन्होंने दोनों ही पद्धतियों की निन्दा की है और उन्हें खतरनाक बतलाया है। यहां मैं उनसे सर्वथा सहमत हूं। उन्होंने हमेशा ही पृथक् निर्वाचन की और स्थान-रक्षण की निन्दा की है, देश विभाजन की भी निन्दा की है। उनका यह काम बिल्कुल सही है पर वे सामूहिक मतदान पद्धति की भी सिफारिश करते हैं। एकलसंक्राम्य मत के आधार पर अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को आप चालू करना चाहते हैं। हमारे माननीय मित्र प्रो. सक्सेना ने हमें अभी बताया है कि यह सामूहिक मतदान की पद्धति कितनी जटिल है और इसमें हिसाब-किताब की कितनी पेचीदगी है। मैं इसकी जटिलता के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहने जा रहा हूं। मैं केवल एक ही बात कहना चाहता हूं और वह यह कि श्री लारी यह चाहते हैं कि सामने वाले दरवाजे से नहीं तो पिछले दरवाजे से ही असेम्बली में वह घुस जायें। उदाहरण के तौर पर मैं आपको यह समझाऊंगा। फर्ज कीजिये एक निर्वाचन क्षेत्र में लोक सभा के लिये चार जगहें हैं पर उम्मीदवार खड़े हैं पांच। इनमें कोई न कोई चार चुने जायेंगे और एक को हारना होगा। इन पांचों उम्मीदवारों में चार हिन्दू हैं और एक मुसलमान। अब हिन्दू वोटरों के वोट उनके उम्मीदवारों में बंट जायेंगे और उनके तीन चुन लिये जायेंगे। मुस्लिम उम्मीदवार मुसलमानों के वोट पर आ जायेगा। इस प्रणाली में होगा यही कि फिर ही पृथक् निर्वाचन और स्थान-रक्षण की बात चालू हो जायेगी। मैं अपने मित्र श्री लारी से कहूंगा कि यह व्यवस्था तो पृथक् निर्वाचन से भी खराब है क्योंकि इसमें साफगोई नहीं है और लुकाछिपी बहुत है। मिस्टर मुहम्मद इस्माइल की बात तो मैं समझ सकता हूं। वह साफ-साफ कहते हैं कि पृथक् निर्वाचन उनके ख्याल से जरूरी है इसलिये वे उसकी मांग करते हैं। पर श्री लारी का जो तरीका है वह मेरी समझ में नहीं आता क्योंकि उसमें साफ-साफ न कह अपनी मांग को घुमा फिरा कर कहा गया है। मुझे विश्वास है कि मुसलमान ऐसे नापाक और टेढ़े रास्ते को कभी न पसन्द करते हैं। वह साफगोई पसन्द करते हैं और सीधे लड़ना पसन्द करते हैं लुकछिप कर नहीं। बावजूद इसके कि मिस्टर लारी ने हमेशा पाकिस्तान का खुले तौर पर विरोध किया है, पृथक् निर्वाचन और स्थान-रक्षण की व्यवस्था का विरोध किया है, आप में लाघव भावना जरूर वर्तमान है। मैं उनसे कहूंगा कि इस ख्याल को—इस डर को—हटा दीजिये कि आप दूसरे से लघु हैं और मुल्क की हालत अच्छाई की ओर बदल जायेगी।

अन्त में मैं अपने आदरणीय मित्र, आसाम के भूतपूर्व प्रधानमंत्री सर मुहम्मद सादुल्ला के भाषण की ओर आता हूं जिनके लिये मेरे मन में बड़ा सम्मान भाव है। आपने यहां यह शिकायत की है कि अल्पसंख्यकों तथा मूलाधिकारों के सम्बन्ध में जो परामर्शदातृ-समिति बनाई गई थी उसके अधिकांश मुस्लिम सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया था कि मुसलमानों के लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था न होनी चाहिये। मैं कह चुका हूं कि आसाम के भूतपूर्व प्रधानमंत्री के लिये मेरे मन में बड़ा सम्मान-भाव है पर उनकी इस बात से शायद मैं सहमत न हो सकूंगा। मैंने उस समिति में अपना यह प्रस्ताव भेजा था कि मुसलमानों के लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था न होनी चाहिये। मेरे इस प्रस्ताव

पर माननीय सरदार पटेल के सभापतित्व में वहां विचार किया गया था। मैंने अपने प्रस्ताव पर भाषण दिया और बेगम ऐजाज रसूल ने उसका समर्थन किया था। मौलाना आजाद भी उपस्थित थे। उन्होंने मेरा विरोध नहीं किया। केवल एकमात्र सदस्य जिन्होंने मेरे प्रस्ताव का विरोध किया था वे थे बिहार के श्री जाफर इमाम साहब। उस समिति में भी मेरे प्रस्ताव के पक्ष में मुस्लिम सदस्यों का बहुमत था। केवल एक सदस्य विरोधी थे और तीन सदस्य—बेगम ऐजाज रसूल, मौलाना आजाद और मैं—उसके पक्ष में थे। उस बैठक में इस पर कुछ निश्चय न हो सका और बैठक अनिश्चित अवधि के लिये स्थगित रखी गई। इस महीने की 11वीं तारीख को फिर उसकी बैठक हुई। मैं इसमें शामिल होना चाहता था खास कर इसलिये कि वहां मेरा प्रस्ताव था। मैं उसे फिर पेश करना चाहता था। पर मुझे मीटिंग की सूचना ही नहीं मिली। सूचना दिल्ली में ही पड़ी रह गई, मेरे पास पहुंची ही नहीं। अगर उसकी सूचना मुझे मिली होती तो मैं जरूर बैठक में शामिल होता। दिल्ली आने पर मुझे मालूम हुआ कि मीटिंग 11 तारीख को हुई थी। खैर, मुझे यह जान कर खुशी हुई कि मेरे प्रस्ताव का जो सार था वह मंजूर कर लिया क्योंकि मैं गैर हाजिर था। मैंने समाचार पत्रों में एक वक्तव्य दिया कि मैं क्यों बैठक में शामिल न हो सका जो सभी पत्रों में छपा था। सर सादुल्ला भी उस बैठक में शामिल न हो सके। उसमें अपने चार सदस्य मौजूद थे, मौलाना आजाद, मौलाना हिफजुर्रहमान, बेगम ऐजाज रसूल और श्री जाफर इमाम। मौलाना आजाद और मौलाना हिफरुर्जहमान ने मेरे प्रस्ताव का विरोध नहीं किया था। आखिर इस सभा में हर सदस्य तो बोलता नहीं है। अगर किसी को विरोध करना होता है वह विरोध में अपना मत दे देता है। अगर वह बोलता नहीं है और अपनी राय प्रस्ताव के पक्ष में देता है तो इसका मतलब यह है कि वह उसके पक्ष में है। मौलाना आजाद तो खुद वहां मौजद थे। अगर वह प्रस्ताव का विरोध करना चाहते तो वह कर सकते थे। दो मौलानाओं ने तो कुछ कहा ही नहीं और बेगम ऐजाज रसूल ने मेरे प्रस्ताव के सारांश का समर्थन ही किया। प्रस्ताव पेश किया था मेरे माननीय मित्र डा. मुखर्जी ने। उनका प्रस्ताव भी सार में मेरे प्रस्ताव से सर्वथा मिलता जुलता था। बेगम ऐजाज रसूल ने उसका समर्थन किया था और मेरे मित्र जाफर इमाम साहब ने उसका विरोध किया था। अगर दोनों मौलाना मेरे प्रस्ताव के खिलाफ होते तो वे जाफर इमाम के साथ मत देते। पर वे दोनों साहब कुछ नहीं बोले। प्रस्ताव पर मत लिया गया और बहुमत उसके पक्ष में था। मैं समझता हूं कि माननीय सरदार पटेल ने यह कहा था कि मुसलमान उसके पक्ष में हैं यद्यपि दोनों मौलाना इस पर चुप थे। इसका मतलब ही यह हुआ कि दोनों साहब मेरे पक्ष में थे। इस तरह प्रस्ताव के पक्ष में तीन मत और विरोध में एक ही मत था।

जहां तक मेरा ख्याल है—मुझे ठीक-ठीक तो याद नहीं है—उस समिति में सात मुस्लिम सदस्य थे उनमें से केवल दो मेरे प्रस्ताव के खिलाफ हैं और पांच पक्ष में हैं सर सादुल्ला और जाफर इमाम साहब ये दोनों मेरे खिलाफ हैं और मौलाना आजाद, मौलाना हिफजुर्रहमान, बेगम ऐजाज रसूल, श्री हुसैन भाई लालजी और मैं ये पांच इसके पक्ष में है। श्री हुसैन भाई लालजी के विचारों से लोग अच्छी तरह परिचित हैं। उन्होंने मिस्टर जिन्ना का विरोध किया था। मैं उनके विचारों से परिचित हूं। उन्होंने मुझे एक बार लिखा

[मि. तजम्मुल हुसैन]

भी था कि भगवान के लिये जैसे भी हो स्थान-रक्षण की व्यवस्था को हटाने के लिये जरूर कुछ कीजिये। इसलिये मैं कहता हूं कि मेरे पक्ष में जबरर्दस्त बहुमत था। एक और साहब भी उस समिति में थे और वे थे श्री सैयद अली जहीर। वे आजकल एक राजदूत के रूप में काम कर रहे हैं। मैं उनके विचारों को जानता हूं। वे भी मेरे ही विचार के व्यक्ति हैं।

मेरे आदरणीय मित्र श्री सादुल्ला साहब ने जो दूसरी बात इस बारे में कही है वह यह है कि इस प्रस्ताव पर यहां मुस्लिम सदस्यों की राय ही क्यों न ले ली जाये। यह उन्होंने चुनौती दी है। मैं उनकी इस चुनौती को मंजूर करता हूं। मैं अपने माननीय मित्र को यह बता दूं कि जब मुस्लिम सदस्य पहली मर्तबा दिल्ली पहुंचे तो उनकी एक बैठक वेस्टर्न कोर्ट में हुई थी जिसमें सभी सदस्य मौजूद थे। पहले बोलने के लिये मैं ही खड़ा हुआ और मैंने कहा कि संरक्षित स्थानों की व्यवस्था न रहनी चाहिये। मैंने अपना प्रस्ताव भी विधान-परिषद् में भेजा था जब आपकी ही अध्यक्षता में अधिवेशन चल रहा था। मुझे खेद है कि एक को छोड़कर किसी सदस्य ने मेरा साथ नहीं दिया। मैंने देखा कि मुसलमान स्थान-रक्षण को व्यवस्था चाहते हैं और इसलिये मैंने अपना प्रस्ताव पेश नहीं किया। वह पहली मीटिंग भी जिसमें मुस्लिम सदस्य मेरे खिलाफ थे। दूसरी बैठक नवाब मुहम्मद इस्माइल के मकान पर नं. 18 विन्डसर प्लेस में हुई थी, जिसके बारे में उन्होंने आपसे कहा था। उस बैठक में जबर्दस्त बहुमत मेरे प्रस्ताव के पक्ष में था। वही मुस्लिम सदस्य जो वेस्टर्न कोर्ट वाली बैठक में शरीक थे, यहां भी मौजूद थे और वहां जबर्दस्त बहुमत से यह तय पाया कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था न होनी चाहिये। देखिये कैसा परिवर्तन हुआ। एकमात्र सदस्य जिन्होंने मेरे प्रस्ताव का वहां विरोध किया वे थे यही मेरे माननीय मित्र श्री सादुल्ला साहब। आपका यही ख्याल है कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था आवश्यक है। चूंकि आप इस व्यवस्था को ठीक समझते हैं इसीलिये आप इसे आवश्यक बताते हैं। मैं आपके मत का आदर करता हूं और यह आशा करता हूं कि आप भी मेरे मत का आदर ही करेंगे। आपने कहा था कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था जरूर होनी चाहिये। पर आपने यह भी कहा था—''व्यक्तिगत रूप से तो मैं स्थान-रक्षण की व्यवस्था के पक्ष में नहीं हूं पर इसे रखने की बात इसलिये कहता हूं कि मुसलमान लोग इसे चाहते हैं।'' विनम्रतापूर्वक मैं उनसे कहूंगा कि उनका यह कहना गलत है। मुसलमान इसे नहीं चाहते हैं। एकमात्र सादुल्ला साहब ने ही मेरे प्रस्ताव का विरोध किया था। मद्रास का दल भी वहां मौजूद था। उनका अपना एक अलग दल है। मैं उनकी बात को समझ पाता हूं। वह हमेशा से ही कहते रहे हैं कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था न रहनी चाहिये पर पृथक् निर्वाचन की पद्धति जरूर रहनी चाहिये। वेस्टर्न कोर्ट वाली मीटिंग में उन्होंने कहा था कि पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था होनी चाहिये। यही बात उन्होंने, नवाब मुहम्मद इस्माइल के स्थान पर जो बैठक हुई उसमें कही और यही बात वे यहां भी कह रहे हैं वे जो चाहें रखें पर यह बात जबर्दस्त बहुमत से पास हो चुकी है कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था न रहनी चाहिये। हम सब उस बैठक में मौजूद थे। उसके बाद मैंने अपना इस आशय का संशोधन भेजा था कि यह सारा का सारा खंड हटा दिया जाये या फिर मुसलमानों के लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था न रखी जाये।

***अध्यक्षः** आपका वक्त खत्म हो चुका है।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** जल्द ही अपनी बात समाप्त किये देता हूं। मेरा प्रस्ताव था कि बिल्कुल साफ-साफ, सीधी-सीधी संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था रखी जाये। श्री सादुल्ला साहब का कहना है कि जाती तौर पर वे खुद पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को पसंद नहीं करते पर चूंकि मुसलमान इसे चाहते हैं इसलिये वे इसको रखने की बात कह रहे हैं। मैं उनको विश्वास दिलाता हूं उनका यह ख्याल गलत है। मुसलमान इसे नहीं चाहते हैं।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य कृपया घड़ी की ओर देखें। उन्होंने बहुत समय ले लिया है।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** मुझे यह सब बातें इसलिये कहनी पड़ रही हैं कि यहां मुझे चुनौती दी गई है। एक मिनट में मैं अपनी बात खत्म किये देता हूं। मेरे पास सारे सदस्यों की सूची मौजूद है। इसमें कुल 33 मुस्लिम सदस्य हैं। जिनमें 31 तो प्रांतों से आये हैं और दो हैं रियासतों के। इनमें चार सदस्य तो मद्रास के हैं। मैं यह भी बता दूं कि सदस्यों में बहुत से ऐसे हैं जो बराबर ही अनुपस्थित रहे। क्योंकि ये लोग पाकिस्तान चले गये हैं। खासतौर पर पंजाब के सभी सदस्य पाकिस्तान चले गये और बंगाल के पांच सदस्यों में से तीन चले गये हैं बाकी में, मद्रास के चार सदस्य हैं वह पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था चाहते हैं। विधान-परिषद् के रजिस्टर पर कुल मुस्लिम सदस्य 23 हैं। इनमें से, जैसा मैं कह चुका हूं, चार पृथक् निर्वाचन के पक्ष में है, चार—2 बिहार के और 2 आसाम के—स्थान-रक्षण की व्यवस्था के पक्ष में है। एक साहब सामूहिक मतदान की पद्धति के पक्ष में हैं और एक सदस्य यानी श्री हुसैन इमाम की राय मालूम नहीं हो पाई है। मैंने उनसे इस प्रश्न पर बातचीत की थी पर उनकी राय नहीं जान पाया। इस तरह हम देखते हैं कि विधान-परिषद् के रजिस्टर पर जिन 23 सदस्यों के नाम हैं उनमें चार पृथक् निर्वाचन चाहते हैं, चार स्थान-रक्षण की व्यवस्था के पक्ष में हैं, एक सामूहिक मतदान की पद्धति के पक्ष में है और एक सदस्य की राय मालूम ही नहीं हो पाई है। बचे हुए 13 सदस्य संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था चाहते हैं जिसमें संरक्षित जगहों की व्यवस्था को कोई भी स्थान न दिया गया हो। अगर आप उन सदस्यों की गिनती करें जो मेरे साथ नहीं हैं तो उनकी संख्या होती है कुल 10 और हम है 13 और अगर मि. लारी को भी हम अपने साथ जोड़ लें क्योंकि वे भी स्थान-रक्षण या पृथक् निर्वाचक के पक्ष में नहीं है तो हमारी संख्या हो जाती है 14। आज उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या है 15 और इनमें चार स्थान-रक्षण की व्यवस्था चाहते हैं और तीन पृथक निर्वाचन की। जो आठ सदस्य बच गये वे मेरे साथ हैं। इस तरह ही हमारा ही बहुमत है।

अपनी बात अब मैं खत्म किये देता हूं श्रीमान्। मैं बहुसंख्यक सम्प्रदाय से आग्रह करूंगा कि वह स्थान-रक्षण की व्यवस्था को मुसलमानों पर जबर्दस्ती न लादें। अगर आपकी धारणा है और यह विश्वास है कि यह व्यवस्था गलत है तो भगवान् के लिये आप हमारे लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था न कीजिये। आप जानते थे कि पृथक् निर्वाचन की पद्धति मुसलमानों

[मि. तजम्मुल हुसैन]

के लिए और सारे देश के लिये एक गलत पद्धति थी और इसलिये आपने उसकी बावत मुसलमानों से कभी राय मश्विरा नहीं किया। सादुल्ला साहब ने भी यह एतराज नहीं उठाया कि मुसलमानों से इस संबंध में राय मश्विरा नहीं किया गया और उन्होंने इसे उठाने की बात स्वीकार की। यह क्यों? इसीलिये कि लोगों का यही विश्वास था कि यह व्यवस्था देश के लिये गलत चीज है। हम आपसे कहते हैं कि आप हमें अल्पसंख्यक न बनाइये, हमें अपना बराबर का साझीदार बनाइये। फिर देखिये कि यहां न कोई बहुसंख्यक रह जायेगा और न अल्पसंख्यक।

अब अंत में मैं एक बात कहने की अनुमति चाहता हूं और वह एक बड़ी ही गंभीर बात है जिसे मैंने सभा भवन में अभी तक नहीं कहा है। पर चूंकि मैं यह महसूस करता हूं कि कुछ लोग यहां ऐसे हैं जो मेरी बात के सख्त खिलाफ हैं, इसलिये मैं चेतावनी दे रहा हूं। जैसा कि आपको मालूम है श्रीमान्, मुसलमानों में दो फिरके हैं। एक सियों का दूसरा सुन्नियों का। प्रांतों से जो यहां 31 मुस्लिम सदस्य आये हैं उनमें एक मात्र शिया मैं ही हूं। रियासतों से आये दो प्रतिनिधियों में 1 साहब शिया है और दूसरे सुन्नी। मैं आपके यह बता देना चाहूंगा कि शियों ने पृथक् निर्वाचन का और स्थान-रक्षण की व्यवस्था का हमेशा ही विरोध किया है। वे सदा राष्ट्रीयतावादी रहे हैं। मैं दस साल बिहार प्रांतीय शिया सम्मेलन का सभापति रहा हूं और हम लोगों ने हमेशा यही कहा है कि हम शुद्धतः संयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था चाहते हैं। अभी हाल में, सन् 1948 ई. की 31वीं दिसम्बर को अखिल भारतीय शिया सम्मेलन का 35वां अधिवेशन संयुक्तप्रांत के मुजफ्फर नगर में हुआ था, जिसके प्रधान थे सर सुलतान अहमद जिन्हें सभी जानते हैं। वहां सर्वसम्मति से एक इस आशय का प्रस्ताव पास हुआ था कि पृथक् निर्वाचन और स्थान-रक्षण की पद्धति न रहनी चाहिये। सम्मेलन में भाग लेने के लिये मैं यहां से गया था। सम्मेलन के सभापति के भाषण का एक अंश मैं पढ़ कर सुनाता हूं।

''विधान के मसौदे में यह प्रावधान किया गया है कि अल्पसंख्यकों के लिये स्थान-रक्षण की व्यवस्था अभी दस वर्ष तक चालू रखी जाये। यह प्रावधान इसलिये किया गया है कि अल्पसंख्यकों को उनकी असुविधात्मक स्थिति में कुछ सहूलियत मिल सके। सहिष्णुता और बन्धुत्व की भावना से प्रेरित होकर तथा अल्पसंख्यकों के अधिकारों के संरक्षण के लिये जो प्रचलित सिद्धांत हैं उनका अनुगमन करते हुए, उनके लिये यह व्यवस्था की जा रही है। इस दृष्टि से तो यह प्रावधान बिल्कुल सही है। पर मुझे ऐसा लगता है कि इस प्रावधान का परिणाम यह होगा कि बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यकों में पार्थक्य भाव की जो बीमारी है उसकी अवधि बढ़ जायेंगी और उसके कीटाणु दस साल तक देश में जहर पैदा करते रहेंगे जिसका असर कालांतर तक बना रहेगा। स्थान-रक्षण की व्यवस्था तो दीर्घकालीन दुर्भावों को धीरे धीरे आसानी से दूर करने का एक उपाय मात्र है। यह ऐसा उपचार है जिसके द्वारा किसी रोग को इस तरह धीरे-धीरे दूर कर दिया जाये कि जहां तक हो सके रोगी को उपचार का आभास भी न मिल सके और किसी को यह ख्याल पैदा न हो सके कि बहुसंख्यक वर्ग में अल्पसंख्यकों के प्रति सहानुभूति का अभाव है। मैं यह कहता हूं कि हम यह साहस क्यों न करें कि पृथक् निर्वाचन की भयंकर

दूषित पद्धति के साथ ही हम स्थान-रक्षण की पद्धति को भी उठा दें। पार्थक्य भाव पैदा करने वाली कोई भी व्यवस्था आप न रहने दीजिये चाहे वह कितनी ही निर्दोष क्यों न हो। हमें चाहिये कि हम सभी देशस्थ लोग बन्धुत्व भाव और विश्वास सूत्र से परस्पर आबद्ध होकर एक हो जायें और ऐसी कोई भी बात न बाकी रहने दें जिसने हमारे पार्थक्य का, हमारे पारस्परिक भेदभाव का कोई आभास मिलता हो। जिसके कारण अतीत में हम परस्पर अमित्र बने रहें और एक दूसरे से मैत्री करने में सदा विमुख रहें। एक महती जाति के इस अलोक मंडित प्रभात में हमें अब हमेशा के लिये विनिद्रित हो जाना चाहिये और तब हमारे नवार्जित स्वातंत्र्य का ऐतिहासिक वातावरण और हमारा बन्धुत्व भाव अवश्य हमें इस बात का साहस प्रदान करेगा कि सहयोगिता के सिद्धांत को हम अपने जातीय जीवन के लिये धर्मवत अपना लें।

पार्थक्य के इस चिन्ह को हमेशा के लिये कायम न रहने देने का एक और भी कारण है। उससे दूसरे अल्पसंख्यकों को संरक्षण की मांग के लिये प्रोत्साहन मिलता है। फिर अल्पसंख्यक वर्गों के भीतर जो अल्पसंख्यक हैं उन्हें भी अपने लिये संरक्षण पाने का हक हो जाता है। इस तरह पार्थक्य भावना को दूर करने में कोई मदद मिलती तो दूर रही, इस व्यवस्था से पार्थक्य भावना और बढ़ेगी जिसका नतीजा यह होगा कि हमारी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जटिलतायें और भी गहन हो जायेंगी। संरक्षित स्थानों की व्यवस्था रखने का लाजिमी नतीजा यह होगा कि साम्प्रदायिक एवं राजनैतिक आधार पर काम करने वाले एक संगठन को कायम रखना ही होगा। हमारे लिये जरूरी यह है कि जैसे भी हो ऐसे संगठनों को हर्गिज न पनपने दें।''

***अध्यक्षः** आपने जितना पढ़कर सुनाया है वह काफी है।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** सिर्फ एक मिनट का समय और लूंगा श्रीमान्। मुझे कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कहनी है।

***अध्यक्षः** नहीं, अब और समय नहीं दिया जायेगा।

***श्री एल.एस. भाटकर** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, अध्यक्ष महोदय, आज के शुभ अवसर पर मैं भी अपने विचार इस असेम्बली के सामने रखना चाहता हूं। कल जो रिपोर्ट माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल साहब ने असेम्बली के सामने पेश की और जो प्रस्ताव रखा है उसका मैं पूर्णतया स्वागत करता हूं। इस भारतवर्ष का यह बड़ा सौभाग्य है कि उसके अन्दर सरदार साहब जैसे पूजनीय और धुरंधर नेता मौजूद हैं और इस देश के सामने जो बड़ी-बड़ी समस्यायें आई उनकी वे पूरी तौर से हल करके यश प्राप्त कर सके। अगर कुछ दिन पूर्व किसी से भी पूछा जाता कि क्या हिन्दुस्तान में जातीय और स्वतंत्र मतदान बंद हो जायेगा तो कोई भी यही जवाब देता कि यह बात बिल्कुल असम्भव है। ऐसी ही असम्भव बात सरदार साहब ने करके बतलाई, जिसके लिये जितने धन्यवाद उनको भारतवासी लोग दें उतने कम ही हैं।

[श्री एल.एस. भाटकर]

इस घटना समिति ने हिंदुस्तान एक सैक्यूलर अथवा अजातीय स्टेट होगा, ऐसी घोषणा कई बार कर दी है। इस उच्च ध्येय को सामने रखते हुए अगर इस देश की घटना में जातीय मतदान संघ और जातीय मतदान जारी रहता, तो यह घटना समिति अपने उद्देश्यों को पूरी तौर से प्राप्त नहीं कर सकी, ऐसा दोष इस घटना समिति को कबूल करना पड़ता। मगर सरदार साहब ने जो भारतवासियों का विश्वास संपादन किया, उसका यह फल है कि जातीय मतदान संघ को घटना में से पूर्णतया निकालकर सिर्फ शिड्यूलड कास्ट के लोगों के लिये दस वर्ष तक रिजर्व सीट रखी गई है।

मैं खुले दिल से यह कहने के लिये तैयार हूं कि, अगर यह भी चीज हम इस घटना से निकाल सकते थे, तो अच्छा ही होता। मगर शिड्यूल कास्ट के लोगों की गरीबी, उनमें शिक्षा का अभाव और लोगों के सामाजिक ख्यालों से उनको समाज में नीचा स्थान देने की प्रणाली, जो कि अभी सर्वत्र दिखाई देती है, इसको देखकर शिड्यूल कास्ट के लोगों को घटना में कोई विशेष साहाय्य न देना, न्याय की बात नहीं हो सकती थी, क्योंकि उनकी गिरी हालत को वह स्वयं नहीं मिटा सके। मुझे यह आशा है कि आते हुए दस साल में सबके साहाय्य से हरिजन वर्ग बहुत कुछ प्रगति कर सकेगा और ऐसा होने पर जो विशेष साहाय्य हम आज चाहते हैं, उसकी आवश्यकता नहीं रहेगी। मगर यह सब होने के लिये हर चीज में दीगर लोगों का सहकार्य हमें मिलना चाहिये। यह प्रस्ताव यहां लाकर सरदार साहब ने महात्मा गांधी जी की हमें याद दिलाई है। इस प्रस्ताव के अनुसार जो घटना (विधान) बनेगी, उनका सच्चा आधार महात्मा जी का किया हुआ पूना पैक्ट है।

आज वक्त बहुत कम है, इसका मुझे ख्याल है। इस कारण से मैं अपना भाषण लम्बा नहीं चाहता, यदि मेरे दिल में कई बातों पर अपना विचार प्रकट करने की इच्छा थी। मैं इतना ही खास कहना चाहता हूं कि अभी भी सभी प्रांतों में और सभी जगह शिड्यूल कास्ट के लोगों को जितनी मदद हिंद सरकार देना चाहती है, उतनी मदद उन्हें नहीं मिलती है। उनके लिये बिना फी की शिक्षा का प्रबंध, शिक्षा के लिये आर्थिक साहाय्य और पढ़े हुए लोगों को गवर्नमेंट सर्विस में जगह मिलनी चाहिये। यह बातें मिलने में आज बहुत मुशिकलातें आगे आती हैं, जिसके ऊपर कोई भी ख्याल नहीं किया जाता। इससे लोगों में असंतोष फैलता है और यह असंतोष आगे चलकर राजकीय स्वरूप धारण करता है जिससे देश की बहुत हानि होती है मगर मुझे विश्वास है कि सरदार साहब जल्द ही हमारी यह आपत्तियां भी दूर कर देंगे।

अन्त में फिर एक बार सरदार साहब को धन्यवाद देकर मैं उनके प्रस्ताव का पूरा समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य देख रहे होंगे कि मैं अल्संख्यक वर्गों के वक्ताओं को ही अपनी बात कहने के लिये समय दे रहा हूं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): पर श्रीमान्, उनके संबंध में क्या होगा जिनका कि इस प्रस्ताव से मतभेद है? उनको भी अपनी बात कहने का मौका जरूर मिलना चाहिये।

***अध्यक्ष:** जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोलना चाहते थे उनको भी मैंने मौका दिया है।

***सरदार सुचेत सिंह** (पटियाला और ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन): माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने जो प्रस्ताव यहां पेश किया है उसका मैं पूर्णतया समर्थन करता हूं, सिखों में जो पिछड़े हुए वर्ग हैं उन्हें राजनैतिक प्रयोजनों के लिये जो अनुसूचित जातियों में शामिल कर लेने का जो निर्णय है वह बड़ी ही खुशी का विषय है और परामर्शदातृ समिति उसके लिये बधाई का पात्र है। अवश्य ही यह खेद की बात है कि सिख समाज वर्ग और सम्प्रदाय संबंधी भेदभाव को पूर्णतया दूर करने में कामयाब नहीं हो सका जिसके लिये कि उसका प्रादुर्भाव हुआ था। देश के अन्य समाजों में जाति या वर्ग की भावना वर्तमान है वह चिरकाल से चली आ रही है। और उन लोगों में संस्कारबद्ध हो गई है। सिखों में वर्ग सम्बन्धी भेदभाव का जो दु:खद दृश्य आप देख रहे हैं वह बहुत इसी कारण से है कि इस देश में यह भावना आज अर्से से चली आ रही है। पर वस्तुस्थिति को देखते हुए, परामर्शदातृ-समिति इससे अच्छा कोई निर्णय नहीं कर सकती कि अनुसूचित जातियों को जो सुविधायें और विशेषाधिकार दिये गये हैं वही अन्य पिछड़े हुए वर्गों को दिये जायें चाहे वे किसी मत के मानने वाले हों और परामर्शदातृ समिति को इस सिफारिश को मंजूर करने के सिवा, यह सभा ही कुछ और अच्छा निर्णय कर सकती है। समिति की सिफारिशें अभिनन्दनीय हैं क्योंकि लाभ इससे यह होगा कि पिछड़े हुए वर्गों में जो भेदभाव बरता जा रहा था वह दूर हो जायेगा। धर्म के आधार पर तो इस भेदभाव को कभी जारी ही न रहने देना चाहिये था। और फिर अपने असाम्प्रदायिक राज्य के सिद्धांत के अनुकूल अगर हमें कोई प्रगति करनी है तो, जैसा कह चुका हूं, परामर्शदातृ समिति इसके अलावा और कुछ कर नहीं सकती थी। असाम्प्रदायिक राज्य की कल्पना या अनुभव सिखों के लिये कोई नई बात नहीं है। महाराजा रणजीतसिंह का राज्य यद्यपि उसमें प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था नहीं थी, अमली और सैद्धांतिक दोनों ही दृष्टियों से सर्वथा एक असाम्प्रदायिक राज्य था क्योंकि उनके वजीरों में और उच्च पदाधिकारियों में कई हिंदू और मुसलमान सज्जन थे। उनकी राजकीय भाषा पर्शियन थी। कितने विरोधाभास की बात है कि रणजीतसिंह का राज्य एक सिख राज्य था पर वह साम्प्रदायिक नहीं था और जमाने की पूर्ण असाम्प्रदायिकता और मानवता उस राज्य में अभिव्यक्त थी। सिख लोग स्वभाव से ही लोकतंत्रीय भावना रखने वाले होते हैं और शुद्ध असाम्प्रदायिक वातावरण में ही उन्हें सुख मिलता है।

मुझे खुशी है कि संरक्षण, रक्षण, पासंघ और परिभार के लिये जो-जो कई खास मांगें की गई थीं और जो कि सर्वथा अलोकतंत्रीय थीं उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सिख लोग उद्योगशील और परिश्रमी होते हैं और प्रतियोगिता से वह नहीं डरते हैं, अगर वह ईमानदारी से की जाये। राजनैतिक, आर्थिक या प्रशासन संबंधी किसी भी क्षेत्र में क्यों न प्रतियोगिता उन्हें करनी हो वह उसके लिये सहर्ष तैयार रहते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में हम अपने देशवासियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिये तैयार हैं। हम उनसे

[सरदार सुचेत सिंह]

किसी भी तरह पृथक् होकर अलग रहना नहीं पसन्द करते हैं। हमने अपने राष्ट्रीय भावना सम्पन्न कार्यों और सेवाओं के बल पर यह नाम पैदा किया है कि हम भारतीय संस्कृति सम्यता और यहां की सामाजिक व्यवस्था के रक्षक कहे जाते हैं और हमारे लिये यह कहा जाता है कि विदेशी शासकों के अत्याचारों से हमने इनकी सदा रक्षा की है। हमें अपने को रक्षण मांगने की स्थिति में पाकर कभी खुश नहीं होना चाहिये। आत्म सम्मान और आत्म प्रतिष्ठा के प्रश्न को तो जाने दीजिये जोकि जहां तक कि सिखों का संबंध है यह उनके लिये महत्त्व का प्रश्न है, मैं पूछता हूं कि आखिर जो संरक्षण आप चाहते हैं वह किससे बचने के लिये? क्या आपको अपने ही देशवासियों से ही जो विदेशी शासन को समाप्त करने के जंग में सदा आपके साथी रहे हैं, डर है? जनतंत्र की स्थापना के लिये हमारे समुदाय ने और धर्म ने शताब्दियों तक संघर्ष किया है। तो अब क्या उसी जनतंत्र से डर कर आप संरक्षण की मांग करना चाहते हैं? क्या आप संरक्षण की मांग करते हैं हिंदुओं के डर से जिनके लिये हमारे गुरु श्री तेगबहादुर जी ने हंसते हुए इसी नगरी में अपने प्रणों की आहुती दे दी थी? सिख धर्म और सिख सम्प्रदाय ने देश के इतिहास में वह पार्ट अदा किया है जो उसका फर्ज था और उसे इस बात का यकीन है कि वह न केवल अपने को ही कायम रखने में समर्थ होगा बल्कि भविष्य में संकट आने पर सदा वह उस महत्त्वपूर्ण प्रयोजन को भी सिद्ध करेगा जिसके लिये गुरुओं ने उसका निर्माण किया था। मैं अपने उन सहधर्मियों से सहमत नहीं हूं जिनका यह ख्याल है कि आजादी हासिल हो जाने पर सिखों की उपयोगिता समाप्त हो गई है और अब उनको संरक्षण, रक्षण और पासंघ आदि के पवित्र कटघरे में ही सुरक्षित रखा जा सकता है। मुझे तो इस विचार से ही घृणा है। उन अलोकतंत्रीय और पुरानी जीर्ण-शीर्ण व्यवस्थाओं को, जिनको कि यहां अंग्रजों ने अपने आधिपत्य को एक अर्सा तक चालू रखने के लिये और स्थायी बनाने के लिये चलाया था, हमें साहस के साथ सदा के लिये समाप्त कर देना चाहिये। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का अस्तित्व और विशेष प्रतिनिधान की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के हित के लिये कभी भी अनुकूल नहीं है क्योंकि इससे, यह होगा कि बहुसंख्यक वर्ग के मकाबले में अल्पसंख्यक स्थायी रूप से एक अनुकूल स्थिति में पड़ जायेंगे। हमारा धर्म अजेय है, उस पर कभी किसी तरह से आघात नहीं किया जा सकता है। यह कहना कि अपनी ही भूमि में और अपने ही वातावरण में आज हमारा धर्म खतरे में है, यह सूचित करता है कि ऐसी आशंका प्रकट करने वाले व्यक्ति सिख धर्म के मूलभूत गुणों और खूबियों का ज्ञान नहीं रखते हैं और उन्हें ठीक-ठीक समझते नहीं हैं। ईश्वर में विश्वास, स्वातंत्र्य, समानता, भ्रातृभाव, गरीब और सताये हुए व्यक्तियों के विरुद्ध किये जाने वाले अत्याचार और अन्याय के प्रतिरोध का साहस तथा प्राण देकर भी नीति पर कायम रहने का सुविचार आदि गुण दुनियां में जब तक अपेक्षित समझे जायेंगे तब तक मानव जगत् में, सिख सम्प्रदाय को और उनकी सेवा, आत्म त्याग और विश्वास भावना को सदा ऊंचा स्थान मिलेगा। सिख चाहते थे सामाजिक न्याय, और अपनी न्यायपूर्ण आकांक्षाओं का समुचित आदर और यह खुशी की बात है कि भारत के भाग्य निर्माता दो विशिष्ट नेताओं से—मेरा मतलब है माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल से—पर्याप्त मात्रा में हमें यह दोनों ही बातें प्राप्त हुई हैं। इन दो उदार हृदय नेताओं की विशाल सहृदयता,

सहानुभूति और राजनीतिज्ञता के कारण ही वह सम्भव हो सका कि सिख अपनी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को और अपनी पार्थक्य भावना को छोड़ने में समर्थ हो सके और देश की सुख समृद्धि में अन्य देशस्थ सम्प्रदायों के साथ बराबर के साझीदार बन सके। सिख चाहते हैं कि सबके साथ समान बर्ताव किया जाये और अपने विधान में इनके लिये पूर्ण व्यवस्था रखी गई है। इसलिये सिख अब अपने-अपने देश बन्धुओं—हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और पारसियों—के साथ अपने भाग को एक कर देने के लिये प्रस्तुत और दृढ़ संकल्प हो जायेंगे। अब उनके सामने खुला हुआ क्षेत्र है जहां सबके साथ न्याय ही बरता जायेगा और किसी के प्रति पक्षपात न किया जायेगा। यही सिख चाहते थे। भाषा का प्रश्न, प्रांत निर्माण का प्रश्न और शरणार्थियों के पुनर्वास का प्रश्न, इन सभी बातों पर मुझे विश्वास है कि संबंधित अधिकारियों द्वारा समुचित रूप से विचार किया जायेगा। सेवाओं में प्रतियोगिता के आधार पर भर्ती की व्यवस्था होने से हमको भी देशवासियों की तरह इस बात का समान मौका मिलेगा कि गुण और योग्यता के आधार पर हम जो पा सकते हों पायें।

सिखों को इसके लिये प्रसन्नता और गौरव का बोध करना चाहिये कि हमारी राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध संग्राम संचालन में सदा हमारे गुरुओं के इतिहास और पथ के अनुसार ही चलती रही है। राष्ट्रपिता से प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त करते हुए उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने सिद्धांत और क्रियात्मक रूप से, निष्ठापूर्वक अहिंसा व्रत का सदा ही पालन किया जिसकी हमारे पहले गुरु से लेकर नवें गुरु तक, सभी गुरुओं ने शिक्षा दी है और उस पर अमल किया है। और अभी हाल में कांग्रेस शासन ने विकल्प मार्ग के रूप में हैदराबाद में जो पुलिस कार्रवाई की है और काश्मीर में आक्रमण का जो प्रतिरोध किया है वह भी उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार किया है जिनकी शिक्षा गुरु गोबिन्द सिंह जी ने दी है और जिस पर उन्होंने अमल किया है गुरु गोबिन्द सिंह जी का कथन था:

चुकार अब हमा हीलते दर गुजरत

हलालस्त बुर्दन बशमशमीर दस्त।

इसका मतलब यह है कि जब शांतिमय उपाय असफल हो जायें उस हालत में तलवार का सहारा लेना जायज है। मुझे विश्वास है कि देश के विभिन्न सम्प्रदायों और मतों में अब एक्य भाव उत्पन्न हो जाने पर, इस नई व्यवस्था में देश की सेवा के लिये मिलजुल कर काम करने का और चिंतन करने का हमें अधिकाधिक अवसर मिलेगा। इन शब्दों के साथ में सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करे।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): सरदार पटेल के प्रस्ताव को अपना पूर्ण समर्थन देने के लिये ही मैं आज खडा हो रहा हूं। वस्तुत: मुझे ऐसा करने में बड़ी ही खुशी हो रही है क्योंकि अभी हाल ही में ऐसा मौका आया था कि मैंने उनकी बात से अपना मतभेद प्रकट किया था और अनिच्छापूर्वक ही मुझे ऐसा करना पड़ा था।

[मौलाना हसरत मोहानी]

श्रीमान्, मैंने स्थान-रक्षण के सिद्धांत का विरोध किया था और ऐसे समय जबकि कांग्रेस पार्टी उसके पक्ष में थी। इस व्यवस्था को रखने के पक्ष में कांग्रेस पार्टी की दलील यह थी कि ''स्थान-रक्षण की व्यवस्था को हम नहीं चाहते हैं पर मुसलमानों के साथ हमें कुछ रियायत बरतनी ही होगी और यही कारण है कि इसे कम से कम दस साल तक तो हम रखना ही चाहते हैं''। उस पर मैंने यह कहा था—मैं 4 जनवरी सन् 1949 ई. की कार्रवाई की सरकारी रिपोर्ट जो प्रकाशित हुई है उससे यहां पढ़ रहा हूं—''हम कोई रियायत लेना नामंजूर करते हैं। अगर बहुसंख्यक दल या कांग्रेस पार्टी स्थान-रक्षण के स्थान को स्वीकार करती है तो उसका असाम्प्रदायिक राज्य स्थापित करने का और साम्प्रदायिकता को समाप्त करने का जो दावा है वह झूठा हो जायेगा।''

अब प्रस्तुत प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करते हुए मैं उन संशोधनों को लेता हूं जिनको मेरे कतिपय मद्रास से आये बन्धुओं ने पेश किया है। उनके संशोधनों का विरोध मैं उस तथ्य के आधार पर करता हूं कि वे मुस्लिम लीग को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। मुस्लिम लीग अब समाप्त हो चुकी है पर मिस्टर मुहम्मद इस्माइल यह कहते हैं अखिल भारतीय मुस्लिम का अस्तित्व अभी बाकी है। मैं पूछता हूं वह मुस्लिम है कहां? हमें हमेशा के लिए अब यह फैसला कर लेना चाहिए कि हम यहां ऐसी पार्टियां न रहने देंगे जो साम्प्रदायिकता के आधार पर खड़ी हों। अगर हम सही-सही लोकतंत्रीय राज्य की स्थापना करना चाहते हैं तो फिर साम्प्रदायिक या धार्मिक पार्टियों की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है। इस बात को सभी जानते हैं कि लोकतंत्रीय व्यवस्था का मतलब ही है बहुमत का शासन और इसलिए लोकतंत्र में यह जरूरी है कि अल्पमत को बहुमत के फैसले के आगे सर झुकाना ही होगा। अब मैं पूछता हूं आखिर क्या कारण है जिसके लिए अल्पसंख्यक वर्ग बहुसंख्यक वर्ग के फैसलों को मानने के लिए तैयार होते हैं? वह ऐसा इसी धारणा के आधार पर करते हैं कि कालान्तर में जनमत उनके पक्ष में हो जाने पर यह संभव है कि शासन की बागडोर उनके हाथ में आ जाये और बहुमत वाले अल्पमत हो जाये और अल्पमत वाले बहुमत का रूप ग्रहण कर लें। इसलिए लोकतंत्रीय पद्धति तभी सुचारू रूप से काम कर सकती है जबकि पार्टियों का स्वरूप शुद्ध राजनीतिक हो। अगर धर्म के आधार पर चलने वाली केवल साम्प्रदायिक पार्टियां ही रहेंगी तो लोकतंत्र का सारा उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायेगा। अगर देश में मुसलमानों की पार्टी, इसाइयों की पार्टी और पारसियों की पार्टी बनती हैं तो इसका आखिर क्या नतीजा होगा? लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में इन्हें कैसे बहुमत प्राप्त हो जायेगा? सम्प्रदाय या धर्म के आधार पर पार्टियों का निर्माण होने देना बिल्कुल ही वाहियात बात है। इसलिये, मद्रास से आये हुए बन्धुओं के लिए या सिखों या पारसियों के लिए साम्प्रदायिक आधार पर पार्टी बनाना बिल्कुल बेकार है। लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में उन्हें राजनीतिक आधार पर पार्टी बनानी चाहिए। मुस्लिम बन्धुओं को मैंने हमेशा यही राय दी है कि साम्प्रदायिकता को वह सदा के लिए विदा कर दें। जब स्थान-रक्षण की व्यवस्था न रहेगी तो बाध्य होकर वह राजनीतिक आधार पर अपनी पार्टी बनायेंगे और अन्य पार्टियों से मिलकर काम करेंगे या अपना अस्तित्व खो बैठेंगे। सार्वजनिक जीवन में उनको कोई स्थान न रह जायेगा। मेरा कहना यह है कि मुसलमानों को एक जुदा ही पार्टी बनानी चाहिए जिसका नाम हो इंडिपेंडेंट पार्टी या इंडिपेंडेंट सोशलिस्ट पार्टी।

मैं पसन्द करूंगा कि उसका नाम आजाद पार्टी हो और मेरे बन्धु श्री शरत चन्द्र बोस की पार्टी से उसका ताल्लुक रहे। श्री बोस के वामपक्षीय दल के साथ मिलकर वह अपनी एक संयुक्त पार्टी बना सकते हैं। ऐसा करने पर ही मेरे मुसलमान भाई लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में हाथ बटाने की आशा कर सकते हैं। जोकि राष्ट्रीयतावादी दल का आज बहुमत है पर इस संयुक्त दल के लिए यह संभव हो सकेगा कि आगे चलकर कभी यही अपना बहुमत बना ले। उस हालत में कांग्रेस या राष्ट्रीयतावादी दल का अल्पमत रह जायेगा। जब तक हम ऐसा नहीं करते हैं कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग जो वामपक्षीय दलों से सहयोग करके संयुक्त दल नहीं बनाता है, आशा की कोई भी सूरत नहीं रखता है। अकेले अपने बल कोई भी दल चाहे सोशिलिस्टों का हो या कम्युनिस्टों का हो या और किन्हीं का, अगर कांग्रेस का मुकाबला करेगा और चुनाव लड़ेगा तो वह कभी भी विजयी नहीं हो सकता है। आपके सामने इसकी ताजा मिसाल है संयुक्त प्रांत के हाल के चुनाव में सोशिलिस्ट पार्टी की हार। इसलिए कांग्रेस दल के अलावा अन्य राजनैतिक दलों के लिए यह जरूरी है कि आपस में मिलकर एक संयुक्त दल का वह निर्माण करें, अगर वह चाहते हैं कि बहुमत में आये और शासन का संचालन करें। उस सूरत में अगर हम राजनीतिक आधार पर दल का निर्माण करते हैं तो राजनैतिक दृष्टि से जो अल्पसंख्यक रहेंगे उनके हितों के लिए संरक्षण का सवाल उठेगा। यहां आकर मुझे माननीय मित्र लारी का समर्थन करना पड़ता है। संरक्षण की व्यवस्था के लिए उनका जो प्रस्ताव है वह किसी साम्प्रदायिक पार्टी को संरक्षण देने के लिए नहीं बल्कि राजनीति के आधार पर बनी पार्टियों को संरक्षण देने के लिए ऐसी पार्टी फिर चाहे सोशलिस्टों की हों, कम्युनिस्टों की हो या फारवर्ड ब्लाक वालों की हो। अगर अनुपाती प्रतिनिधान की रियायत देने के लिए भी आप तैयार नहीं हैं तो समाजवादी दल जैसे दल को भी, जिसे कि अभी संयुक्त प्रांत के चुनाव में 35 प्रतिशत वोट मिले थे, एक भी स्थान न मिल सकेगा। पर एक बात के संबंध में हम श्री लारी से मतभेद रखते हैं उनका विचार यह प्रतीत होता है कि राजनीति के आधार पर बने दलों को अगर अनुपाती प्रतिनिधान की रियायत दे दी जाती है तो स्थान-रक्षण की व्यवस्था की जरूरत नहीं रह जाती है। अगर यह रियायत नहीं दी जाती है तो श्री लारी, जैसा कि उनके कहने से मालूम होता है, या तो वह अपनी विपक्षी नीति को बदल देंगे या इस मामले में सर्वथा तटस्थ हो जायेंगे। उन्होंने यहां कहा ऐसा ही है। पर मेरे साथ ऐसी बात नहीं हैं। अगर अनुपाती प्रतिनिधान की व्यवस्था नहीं की जाती है तो भी मैं स्थान-रक्षण की व्यवस्था नहीं चाहूंगा क्योंकि अगर वामपक्षीय दल आपस में मिलकर एक संयुक्त दल बना लेते हैं तो उस हालत में बहुत जल्द ही खुद कांग्रेस ही अनुपाती प्रतिनिधान की मांग करने लगेगी। उस हालत में तो यह राष्ट्रीयवादी दल अनुपाती प्रतिनिधान पाने के लिए खुद शोर मचाने लग जायेगा। अगर बहुत से वामपक्षीय दल आपस में मिल जाते हैं तो राष्ट्रीयतावादी दल के लिए यह संभव न होगा कि वह चुनाव में हमें हरा दें। वामपक्षीय दलों का जो सम्मिलित संगठन होगा वह बहुमत में रहेगा, भले ही उनके लिए राष्ट्रीयतावादी दल को पछाड़ना संभव न हो पर उसके लिए चिंतित होने की हमें जरूरत नहीं है। समय आ रहा है जबकि राष्ट्रीयतावादी दल बाध्य होकर अनुपाती प्रतिनिधान की रियायत मांगने लगेगा।

[मौलाना हसरत मोहानी]

श्री सादुल्ला साहब एक प्रांत के प्रधानमंत्री रह चुके हैं और उन्हें बहुत कुछ तजुर्बा हासिल है। मुझे उनके इस कथन पर कि इस मसले का निबटारा सभा के मुसलमान प्रतिनिधियों की राय से होना चाहिए, बड़ा आश्चर्य हुआ है। मैं तो उनके इस सुझाव को हास्यास्पद और बिल्कुल व्यर्थ समझता हूं। सभा के सामने सरकार पटेल का प्रस्ताव है और सभा को उस पर अपनी राय देने का पूरा अधिकार है। इसलिए मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है श्री सादुल्ला साहब के ऐसे सुझाव पर। मैं जानता हूं कि सभा के कुछ मुसलमान सदस्य स्थान-रक्षण के पक्ष में हैं। पर इससे क्या? अगर बहुमत इसके पक्ष में हो तो भी में परवाह नहीं करूंगा। इस प्रस्ताव पर निर्णय तो सभा के सभी सदस्यों के मत से ही होना चाहिये। अगर केवल मुसलमान सदस्यों की ही राय वे आधार पर इस प्रस्ताव पर निर्णय किया जाता है तो यह एक बड़ी ही उपहासास्पद और वाहियात बात होगी। इसका मतलब तो यह होगा कि हम साम्प्रदायिकता को समाप्त करने नहीं जा रहे हैं। इसका मतलब यह होगा कि हम अन्य प्रश्नों का भी फैसला इसी तरह जुदागाना राय के आधार पर करेंगे। अवश्य ही एक बड़ी ही वाहियात बात होगी। मैं यह नहीं पा रहा हूं कि उनके जैसे अनुभवी व्यक्ति ने आखिर ऐसा वाहियात सुझाव रखने का साहस ही कैसे किया। इन शब्दों के साथ, मैं श्रीमान सरदार पटेल के प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी:** अध्यक्ष महोदय, हमारे महान नेता सरदार वल्लभभाई पटेल अपनी दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध हैं और उन्होंने जो प्रस्ताव यहां रखा है मैं उसका हार्दिक समर्थन करता हूं। भारत के राजनैतिक एकीकरण के प्रश्न को हल कर लेने के बाद अब आप इसके साम्प्रदायिक एकीकरण के प्रश्न को ले रहे हैं। मेरा ख्याल है कि उन्होंने जो प्रस्ताव सभा के सामने रखा है उससे साम्प्रदायिक एकीकरण का जो हमारा उद्देश्य है वह बहुत हद तक पूरा हो जायेगा। इस संबंध में मैं चाहता हूं कि कतिपय बातों पर सरदार पटेल कुछ प्रकाश डालें। इसी विचार से, श्रीमान्, मैंने आपसे चन्द मिनट मुझे देने का अनुरोध किया था।

इस संबंध में पहली बात जो मैं सभा के सामने कहना चाहता हूं। वह यह है कि मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि यहां हमारे मुस्लिम बन्धुओं ने—करीब-करीब सभी ने ही आरक्षण हटाने के प्रस्ताव का समर्थन किया है और यह कहा है कि धारा सभाओं मे प्रतिनिधान सर्वथा असाम्प्रदायिक आधार पर होना चाहिये। यह सौभाग्य की बात है कि आज इन लोगों की यह राय है। पर इस संबंध में मुस्लिम बन्धुओं को एक बात ध्यान में रखनी चाहिये और वह यह कि अब जबकि चुनाव साम्प्रदायिकता के आधार पर न होकर राष्ट्रीयता के आधार पर होगा तो पहले के एक या दो निर्वाचन ऐसे नहीं होंगे जिनको हम आदर्श कहें। ऐसा भी मौका आ सकता है कि मुसलमान जगहें खो बैठें क्योंकि संरक्षित स्थानों की व्यवस्था को हम अभी-अभी उठा रहे हैं मुसलमान बन्धुओं को यह मालूम हो जाना चाहिये कि देश की वर्तमान स्थिति में मुसलमान होने के नाते एक ही जगह पाना उनके लिए बहुत कठिन होगा। उस काल तक जब तक कि शेष भारत यह नहीं महसूस करता कि वह और मुसलमान एक हैं, मुसलमानों को चुनाव में जगहें खोनी

ही पड़ेंगी। उनको अपने व्यवहार द्वारा इस बात के औचित्य को प्रमाणित करना होगा कि वह अपनी वर्तमान जगहों के पाने के अधिकारी हैं। इसमें कुछ समय लगेगा। पर अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए अगर संसद कुछ काल तक बिना किसी मुस्लिम सदस्य के भी रहे तो मुझे इसका दु:ख न होगा क्योंकि एक या दो निर्वाचन के बाद जो चुनाव लड़े जायेंगे वह सेवा और योग्यता के आधार पर लड़े जायेंगे न कि साम्प्रदायिकता के आधार पर। इसलिए, जब मुसलमान बन्धु साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और संरक्षित स्थानों की व्यवस्था को उठा देने पर तैयार हैं तो उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि अभी-अभी जो चुनाव होंगे उनमें उनको नुकसान उठाना पड़ेगा और धारा सभाओं में कुछ अर्से तक उनको जगहें न मिल पायेंगी। इतनी बड़ी तादाद में आना उनके लिए मुश्किल होगा जितनी तादाद में कि अब तक वह आते रहे हैं। मुझे आशा है कि, इस समाज के विद्वान सदस्य, जब इस प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं, तो इस उक्त तथ्य को वे अच्छी तरह समझते होंगे।

दूसरी बात जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं वह है अनुसूचित जातियों के संबंध में। जब उनको शुरू-शुरू में पृथक् प्रतिनिधान दिया गया था तो गांधी जी ने इसके विरुद्ध उपवास प्रारम्भ कर दिया था। अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमने व्यवस्था को स्वीकार सा कर लिया है। पर पहले पहल जब यह पद्धति चालू की गई थी तो हम सभी को इससे बड़ा सदमा पहुंचा था। तब इसे कोई भी नहीं पसंद करता था और महात्मा जी ने जब इसके विरुद्ध आमरण उपवास की घोषणा की तो ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इस संबंध में गांधी जी को 8 सितम्बर सन् 1933 को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था:

> ''सरकारी योजना के अनुसार दलित वर्ग के लोग हिंदू समाज के अंग बने रहेंगे और हिंदू निर्वाचकों के साथ ही समान स्तर पर मतदान में भाग लेंगे पर प्रारम्भिक बीस वर्षों तक, निर्वाचक के रूप हिंदू समाज का अंग बने रहने पर भी, उनके लिए एक बड़ी ही सीमित संख्या में कतिपय विशेष निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था रहेगी जिससे उन्हें अपने अधिकारों और हितों के सरंक्षण का एक रास्ता मिल जायेगा और हम लोगों को इस बात का पूरा यकीन हो गया है कि मौजूदा हालात में यह व्यवस्था जरूरी है।''

इस तरह आप देखेंगे, श्रीमान् कि अनुसूचित जातियों को पृथक् प्रतिनिधान देने का विचार जब शुरू-शुरू में कार्यान्वित किया गया था तो इसी इरादे से कि यह व्यवस्था केवल बीस साल तक ही चालू रखी जायेगी। बीस साल के बाद, यह आशा की गई थी कि, ये जातियां हिंदुओं के साथ मिलकर सर्वथा एक हो जायेंगी। यह व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी सन् 1933 में और अब 1949 का साल चल रहा है। अब बीस साल से कुछ ही कम दिन रह गये हैं। ब्रिटिश सरकार की पुरानी योजना के अनुसार भी अनुसूचित जातियों के लिए पृथक् प्रतिनिधान की व्यवस्था 1952 में ही समाप्त हो जानी चाहिये। फिर आप इसे दस साल तक और क्यों आगे बढ़ा रहे हैं? फिर एक और भी बात हैं, श्रीमान्, अनुसूचित जातियों की सूची पर आप अगर नजर दौड़ायें तो देखेंगे कि उसमें बहुतेरी जातियां शामिल कर ली गई हैं। अनुसूचित जातियों के लिए पृथक् प्रतिनिधान की व्यवस्था का अनुभव हमें प्राप्त हो चुका है। जो वास्तविक स्थिति है उसे मंजूर करना चाहिये।

[श्री महावीर त्यागी]

''अनुसूचित जातियां'' यह जो संज्ञा है वह केवल दिखावे के लिए है क्योंकि अनुसूचित जाति बोलकर कोई जाति है ही नहीं। असल में यह संज्ञा निकाली गई थी उन जातियों के लिए जो पिछड़ी हुई हैं, गरीब हैं अछूत हैं, और कुचली हुई हैं। भिन्न-भिन्न प्रांतों की ऐसी जातियों को ''अनुसूचित जातियों' की श्रेणी में शामिल कर लिया गया है। बावजूद इस बात के कि यह संज्ञा केवल एक दिखावा मात्र है आज अरसे से यह चालू है। इस पर भी जरा गौर कीजिये कि इन जातियों का प्रतिनिधित्व कैसे होता है। अनुसचित जातियों की सूची में सैकड़ों जातियां शामिल की गई हैं पर अगर आप यह देखें कि इनका प्रतिनिधित्व कैसे हो रहा है तो आपको हर प्रांत में यही मिलेगा कि केवल एक या दो जातियों के लोग ही सर्वत्र अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। ज्यादातर चमार जाति के लोग ही सब जगह इसके मान पर प्रतिनिधि हैं। संयुक्त प्रांत में तो ऐसा ही है और पंजाब में भी यही बात है। मैं यह जानना चाहता हूं कि आखिर इस व्यवस्था से कोरी, परना, कोरबा और डोम जातियों के लोगों को क्या फायदा पहुंचा है? यह व्यवस्था, श्रीमान्, केवल दिखावे के लिए है। आखिर डा. अम्बेडकर ही किस तरह इस वर्ग के सदस्य हैं? क्या वह अशिक्षित हैं, कम पढ़े हैं या अछूत हैं? आखिर उनके पास क्या नहीं है? भारत के अच्छे से अच्छे बुद्धि विशारदों में भी उनका एक ऊंचा स्थान है। फिर भी आपका नाम अनुसूचित जाति में रखा गया है। अब चूंकि उनका नाम उस सूची में है और वह एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हैं, वह सदा धारा-सभा के सदस्य होंगे और मंत्रिमंडल में भी उनको जगह मिलेगी और हमेशा वह अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि बने रहेंगे। और फिर अभी हाल में विवाह करके एक ब्राह्मण महिला को अपनी पत्नी बनाया है। पेशे से वे ब्राह्मण हैं और अब ब्राह्मण स्वसुर और साला आ जाने से भी वे ब्राह्मण हैं। इसी तरह और लोग भी हैं। उदाहरण के लिए हमारे मित्र प्रो. यशवन्त राय को ही लीजिये। उनके पास क्या नहीं है? आपको हजारों ब्राह्मण और कायस्थ ऐसे मिलेंगे जिनकी स्थिति इन मित्रों से, जो अनुसूचित जाति में शामिल हैं, कहीं खराब है। इस तरह अनुसूचित जाति के नाम पर, खुशहाल लोग, और इन जातियों के चन्द चुने हुए व्यक्ति ही, लाभ उठाते हैं। यह सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं है। स्थान-रक्षण की व्यवस्था से किसी भी जाति को कोई वास्तविक लाभ नहीं मिल पाता है। चन्द व्यक्ति या परिवार ही इससे लाभान्वित होते हैं इसलिये जब हम पृथक् निर्वाचन और संरक्षित स्थानों की व्यवस्था उठा रहे हैं, श्रीमान्, और जाति के आधार पर बनी इस व्यवस्था को सदा के लिए समाप्त करने जा रहे हैं तो फिर इसे दस वर्ष के लिए ही और क्यों चालू रहने दें? क्या हमारा अनुभव यह नहीं प्रकट करता है कि सैकड़ों अनुसूचित जातियों में से केवल चन्द जातियों को ही प्रतिनिधित्व मिल जाता है। फिर अनुसूचित जाति के साथ जबरदस्ती इतनी अन्य जातियों को आप क्यों बांधे दे रहे हैं? इन जातियों के लोग तो केवल मतदान भर कर सकते हैं, उनको कोई लाभ इस व्यवस्था से नहीं मिल पाता है। और अगर किसी जाति का कोई आदमी चुनाव में आता है भी तो इससे उस जाति को क्या फायदा पहुंचता है? अगर जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व न दिया जाकर वर्ग के आधार पर दिया जाये तो यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। पर जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व देने से क्या लाभ है यह मैं नहीं समझ पाता हूं। समाज को जाति पाति शून्य बनाया जाये यह बात तो मैं मानता हूं पर समाज वर्गशून्य कैसे हो सकता है? जब तक मुल्क यह फैसला नहीं

करता है कि उसका समाज सर्वथा वर्ग शून्य होगा तब तक देश में वर्ग रहेंगे ही और इसलिए वर्गों को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिये। समूचे मुल्क को एक दल के दायरे में लाना कभी संभव नहीं है। यह अव्यावहारिक बात है। अल्पमत वाले वर्ग रहेंगे ही और उनके प्रतिनिधान की व्यवस्था करनी ही होगी। जब तक ऐसा नहीं होगा मुल्क में शांति नहीं हो सकती है। मैं इस पर नहीं विश्वास करता कि संप्रदाय के आधार पर कोई अल्पमत हो सकता है। हां आर्थिक आधार पर, राजनैतिक आधार पर और विचारधारा वे आधार पर तो अल्पमत रहेंगे ही और उनके संरक्षण की व्यवस्था जरूर होनी चाहिये। पर आप जिस तरह फैसला कर रहे हैं उससे अल्पमत वाले लोगों को प्रतिनिधान नहीं मिल पायेगा। मैं तो सुझाव दूंगा कि अनुसूचित जाति के नाम पर प्रतिनिधान देने की व्यवस्था करने के बजाय आप भूमि रहित मजदूरों के लिए, जूते पर पालिस चढ़ाने वालों के लिए या इसी तरह के अन्य काम करने वालों के लिए, जिनको जीवन यापन के लिए पर्याप्त पैसे नहीं मिलते हैं, आप विशेष प्रतिनिधान की व्यवस्था कीजिये। जाति के आधार पर प्रतिनिधान की व्यवस्था करके उस जहर को फिर हमारे समाज के राजनैतिक शरीर में प्रशिष्ट मत कराइये जिसे अंग्रेजों ने प्रविष्ट कराया था। मैं तो कहूंगा, श्रीमान्, कि बजाय इसके कि तथाकथित अनुसूचित जातियों को संरक्षण देने के, अल्पमत वालों को और अगर आप पसन्द करें तो वर्ग के आधार पर, रक्षण दिया जाये। पालिश चढ़ाने वालों को, कपड़ा धोने वालों को और इसी तरह के अन्य वर्गों को, इस स्थान-रक्षण की व्यवस्था के द्वारा अपने प्रतिनिधि भेजने दीजिये क्योंकि ये सब ऐसे वर्ग हैं जिनको वास्तविक रूप में कोई प्रतिनिधान नहीं मिल पाता है। सही बात तो यह है कि सरदार पटेल के इस प्रस्ताव के पास हो जाने के बाद भी, मैं समझता हूं कि जैसी हालत है उसमें भूमि पर दिन-रात श्रम करने वाले गरीब किसानों को कोई प्रतिनिधान नहीं प्राप्त हो सकेगा। इस व्यवस्था में गरीब देहाती के लिए प्रतिनिधान की कोई गुंजाइश है ही नहीं। इससे तो केवल शहरवासी नागरिकों को ही रक्षण की व्यवस्था होती है। इससे जमीन पर मेहनत करने वाले गरीब किसानों को नहीं बल्कि उनके श्रम का शोषण करने वालों को फायदा पहुंचेगा। इससे तो उन्हीं लोगों को प्रतिनिधान मिल पायेगा जो कागज को स्याही से सींचते हैं, न कि उनको जो जमीन को पानी से सींचते हैं। सामान्य रूप से शिक्षा पाया हुआ यह वर्ग तो केवल डर पैदा करता है और उत्पादन मूलक कार्य तो कुछ करता नहीं, पर भूमि जोतने वालों में, संपत्ति उत्पादन करने वालों में ज्यादातर ऐसे लोग हैं जो अशिक्षित हैं और इस कारण प्रतिनिधान का अपना समुचित अंश पाने से वह वंचित ही रह जाते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि कानून पेशा वाले लोग और चन्द पढ़े लिखे व्यक्ति ही समूचे मुल्क का स्थायी रूप से मगर गलत प्रतिनिधि बने रहते हैं। हल पर कलम की हुकूमत चलती है। संपत्ति पैदा करने वालों को कोई शिक्षा नहीं मिल पाती है और शायद वे सदा ही इसी तरह रहेंगे। वे बेचारे पहले भी गुलाम थे और इस विधान के पास हो जाने के बाद भी वे गुलाम ही रहेंगे। अगर आप इन पीड़ितों की मदद करना चाहते हैं तो सर्वोत्तम उपाय यही है कि इनके लिये संरक्षण की कुछ व्यवस्था कीजिये। हमको कोई ऐसा कानून बनाना चाहिये जिससे ये अशिक्षित लोग इस सभा में आ सकें। सच तो यह है कि इस विधान-परिषद् में शायद ही कोई किसान सदस्य हो जो उस तरह का किसान

[श्री महावीर त्यागी]

हो जैसा कि हमारे देश के किसानों में 80 प्रतिशत किसान हैं। जब तक वहीं किसान अपने असली रूप में यहां नहीं आते हैं भारत का सही प्रतिनिधान हो नहीं सकता। इसलिए मेरा निवेदन यह है, श्रीमान्, कि ''अनुसूचित जातियां'' इन शब्दों को हटाकर उसकी जगह ''अनुसूचित वर्गों'' शब्द रखने चाहिए ताकि असावधानी में हम इस साम्प्रदायिक दूषण को अपनी संसद में स्थायी तौर पर स्थान न दे बैठें। वस्तुतः अछूतों में कुछ सामाजिक अयोग्यतायें हैं और अब तो प्रायः सभी प्रांतों में सरकारों ने उनकी सामाजिक अयोग्यताओं को अमान्य करने का कानून बना दिया है। जो लोग उनके प्रतिनिधि रूप में यहां आये हैं उनमें एक भी ऐसा न होगा जिसके साथ कोई भी सामाजिक अयोग्यता हो। अनुसूचित जाति का व्यक्ति ब्राह्मण कन्या से शादी कर सकता है। मैं तो कहूंगा श्रीमान् कि अनुसूचित जाति के नाम पर प्रतिनिधान की व्यवस्था का सारा लाभ आज उठा रहे हैं केवल चन्द व्यक्ति। सभा को वस्तुस्थिति पर ठंडे दिल से विचार करना चाहिए और 'अनुसूचित जाति' से क्या असल मतलब रहा है इसके बारे में हमारा जो एक लम्बा अनुभव है उससे हमें फायदा उठाना चाहिए। और फिर हमें यह फैसला करना चाहिये कि आया साम्प्रदायिक प्रतिनिधान की जगह वर्गों के प्रतिनिधान की व्यवस्था ठीक होगी या नहीं। साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधान की व्यवस्था न कर अगर वर्ग के आधार पर की जाती है तो मतदाता तो एक ही रहेंगे पर अन्तर यह होगा कि यह पद्धति नाम के लिहाज से कुछ अच्छी रहेगी और इससे हमारे दृष्टिकोण पर भी स्वास्थ्यकर प्रभाव पड़ेगा।

***एक माननीय सदस्यः** माननीय सदस्य क्या अपना संशोधन पेश कर रहे हैं?

, ***श्री महावीर त्यागीः** कोई संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं क्योंकि यह संशोधन पेश करने का अवसर नहीं है। मैं संशोधन पेश करूंगा पर उस समय जब अनुच्छेद पर विचार किया जायेगा। इस समय तो आम बहस हो रही है। यह मौका संशोधन पेश करने का नहीं है। इस मसले पर मैं वाद-विवाद करने के लिए मैं दो अवसर चाहता हूं। विधान के मसौदे में प्रतिनिधान के संबंध में जो व्यवस्था सोची गई है वह बहुत सुन्दर है क्योंकि इससे साम्प्रदायिकता का विष हमेशा के लिए जाता रहता है। पर साथ ही हमें इस बात पर भी विचार करना होगा कि अगर मुसलमान चुनाव में नहीं आये तब हमारी क्या स्थिति होगी?

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): आप यह मान क्यों लेते हैं कि मुसलमान चुने ही नहीं जायेंगे।

***श्री महावीर त्यागीः** इसलिए कि मैं वस्तुस्थिति को जानता हूं, मैं ख्याली दुनिया में नहीं रहता हूं। मैं जनता का आदमी हूं और हिंदूओं की मनोवृत्ति से और मुसलमानों की वृत्ति से भी परिचित हूं। राष्ट्र को यह बात जान लेनी चाहिए। मुसलमान तो इस बात को जान गये हैं कि कुछ अरसे तक वह चुनाव में नहीं आ सकेंगे। जब तक कि वे जनता के साथ नहीं मिल जाते हैं और उसे इस बात का विश्वास नहीं दिला देते कि वे उनके साथ में हैं वह चुने नहीं जा सकेंगे। वे इस बात को जानते हैं। एक अरसे

से वे सभी बातों में अलग रहे हैं और आपकी इस व्यवस्था से आखिर एक दिन में तो यह बात न हो जायेगी कि मुसलमान साम्प्रदायकिता को छोड़कर राष्ट्रीयता को अपना लें। हां, उसमें एक ऐसा वर्ग जरूर है जो हमेशा उनका साथ देता रहा जिनके पास अधिकार थे और वह वर्ग भले ही चाहे तो ऐसा कर सकता है वह यहां के वास्तविक मुसलमानों को साम्प्रदायिकता को छोड़कर राष्ट्रीयता अपनाने में कुछ समय लगेगा। इतने दिनों तक जो वे लोग पृथक् रहे हैं वह इसलिए कि वह शेष भारत से अपने को पृथक् रखना चाहते थे। इस व्यवस्था से उन्होंने अब तक आनन्द उठाया है और अब उन्हें थोड़ी असुविधा पाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए मेरे ख्याल से तो जो प्रस्ताव श्री लारी ने रखा है उस पर हमें विचार करना चाहिए। उनका सुझाव है कि अनेक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रों में सामूहिक मतदान की पद्धति बरती जानी चाहिए। इसमें कोई जटिलता नहीं है। बल्कि इसके मुकाबले में, एकल संक्राम्य मत के आधार पर, बरती जाने वाली प्रतिनिधान प्रणाली कहीं अधिक जटिल है। सामूहिक मतदान-पद्धति तो बहुत ही सरल है। मान लीजिये चार सदस्यों का एक बहुसदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्र है। वहां मुझे भी चार वोट देने का अधिकार प्राप्त है और एक मुस्लिम बंधु को भी चार वोट देने का अधिकार है। अब मुझे इस बात की आजादी है कि अपने चारों वोट चार अलग-अलग उम्मीदवारों को दूं या सब एक को ही दे दूं, या एक वोट एक को दूं और बाकी तीन या दो दूसरे को दूं। मैं अपने मतों को बांट सकता हूं या चाहूं तो अपनी पसन्द के उम्मीदवार को अपने चारों वोट दे दूं। उस व्यवस्था से अल्पमतों को भी, न केवल मुस्लिम अल्पमत को बल्कि सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट अल्पमत को भी, अपनी बात कहने का मौका मिल सकेगा।

अब मान लीजिये किसी शहरी निर्वाचन क्षेत्र में दूकानदारों का प्राधान्य है और वे अपना कोई प्रतिनिधि भेजना चाहते हैं अगर वहां ग्राहक वर्ग अपने उम्मीदवार को भेजना चाहता है तो यदि सब के सब अपने चारों वोट अपने एक उम्मीदवार को दे दें तो उसे विजयी बना सकते हैं। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें बिना किसी साम्प्रदायिक प्रतिनिधान के, जाति या वर्ग का ख्याल किये बिना, सभी तरह के अल्पमतों का एक निशंकता या निश्चिंतता प्राप्त हो जाती है। इस व्यवस्था को अपनाकर आप आज के अल्पमतों के लिए और आने वाले अल्पमतों के लिए भी प्रतिनिधान की व्यवस्था कर सकते हैं। मैं यह कहूंगा कि सभा इस पर विचार कर सकती है कि आया सामूहिक मतदान की पद्धति कारगर होगी या नहीं। अगर सामूहिक मतदान की पद्धति अपनाई जाती है तो जाति के आधार पर कोई संरक्षित स्थान रखने की जरूरत नहीं रह जाती है। इस व्यवस्था से यह भी लाभ होता है कि अल्पमतों को अपना उम्मीदवार भेजने का मौका मिल जाता है। यह व्यवस्था अन्य देशों में और सफलता के साथ, बरती जा रही है। इसलिए मैं इस बात की जोरदार सिफारिश करूंगा कि सामूहिक मतदान की पद्धति पर विचार किया जाये। इसे दस साल के लिए ही अपना लिया जाये। अनुसूचित जातियों के लिए स्थान-रक्षण की व्यवस्था उठा दी जानी चाहिये और इसी तरह सिखों और मुसलमानों के प्रतिनिधान भी जो अलग व्यवस्था है उसे भी हटा देना चाहिए। अपनी राष्ट्रीयता पर बिना कोई धब्बा लगाये ही हम इन सबके प्रतिनिधान की व्यवस्था कर सकते हैं इस सामूहिक मतदान की पद्धति को अपनाकर। यह पद्धति सर्वथा व्यावहारिक है।

[श्री महावीर त्यागी]

मुझे इतना ही कहना था, श्रीमान्। हां, सिर्फ एक बात और कहनी है। मैं यहां सिख प्रतिनिधियों को, मुस्लिम प्रतिनिधियों को, ईसाई प्रतिनिधियों को—इन सभी बन्धुओं को—बधाई दूंगा कि उन्होंने स्थान-रक्षण की व्यवस्था को उठाने का प्रस्ताव सहर्ष मंजूर कर लिया है। उन्होंने इस संबंध में जो उदारता, ऐतिहासिक उदारता दिखाई है, आशा है देश उसकी कदर करेगा। निर्वाचक वर्ग को उनकी इस उदारता का सदा ख्याल रहेगा और मुझे इस बात का पूरा यकीन है कि देश अल्पमतों के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करता होगा कि वे देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर स्थान-रक्षण की व्यवस्था को उठाने के प्रस्ताव को स्वीकार करने पर सहर्ष तैयार हो गये हैं।

इन शब्दों के साथ मैं यह कहूंगा कि किसी भी संप्रदाय या जाति के लिए संरक्षित स्थान की व्यवस्था न रहनी चाहिए और सभी अल्पमतों को सामूहिक मतदान की व्यवस्था द्वारा संरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।

***कर्नल बी.एच. जैदी** (रामपुर-बनारस राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने इस ऐतिहासिक वाद-विवाद के सिलसिले में मुझे यहां अपना पहला भाषण देने का अवसर प्रदान किया है।

मुझे इस बात से बड़ी ही खुशी हुई है, श्रीमान्, और मैं जानता हूं कि सभा के हर वर्ग को इसकी खुशी हुई होगी, कि अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों ने और मुस्लिम प्रतिनिधियों ने भी यहां यह साबित कर दिया है, जैसा कि इसके पहले कभी नहीं हुआ था, कि देश के संबंध में उनका जो दृष्टिकोण है वह देशभक्ति पूर्ण है, ठोस है और सुलझा हुआ है। भविष्य के लिए यह एक अच्छा शकुन है। मुझे खेद है कि प्रस्तुत प्रस्ताव का विरोध केवल चन्द दाक्षिन्य मित्रों ने ही किया है। पुरानी परम्परा के उठने में लम्बा समय लगता ही है। अंग्रेजों ने जो छड़ी मुसलमानों को थमा दी थी उसके सहारे वह आज करीब साल से चलते आये हैं और उन्हें इसकी आदत सी हो गई है। हम इन सब सहारों को पसन्द करने लग गये। बहुत से मरीज जिन्हें पावों के उपयोग का अभ्यास नहीं रह गया है, उनको अगर छड़ी दे दी जाती है तो वे सदा उसी का उपयोग करेंगे और उसी के सहारे चलेंगे चाहे कोई अच्छा डाक्टर फिर उन्हें उनके पांवों के उपयोग की अच्छी शिक्षा ही क्यों न दे दे। वे हमेशा छड़ी का ही सहारा लेना चाहेंगे। छड़ी शब्द यहां कुछ मौजू नहीं है। वैसाखी शब्द को रखना ज्यादा ठीक होगा क्योंकि उससे न केवल सहारा मिलता है बल्कि कुछ बनावटी ऊंचाई भी मिल जाती है। अगर हम इस वैसाखी को फेंक देते हैं तो हमें न केवल अपने पांव की ताकत पर भरोसा करना पड़ेगा बल्कि हमारी ऊंचाई भी इससे कम हो जायेगी। इस देश में हमें कुछ झूठा महत्त्व दे दिया गया था, वह खोखला महत्त्व था, केवल एक छाया थी और अब हम उसी छाया को पकड़े रहना चाहते हैं मुझे तो यही आशा है कि कालान्तर में चलकर, किसी सूदूर भविष्य में नहीं बल्कि निकट भविष्य में ही, हमारे इन दाक्षिन्य बन्धुओं को भी यह समझ में आ जायेगा कि माननीय सरदार पटेल और देश के भाग्य का निर्माण करने वाले हमारे अन्य नेता उनके सही शुभचिन्तक थे, अहितैषी नहीं थे।

ऐसा क्यों कह रहा हूं इसका कारण भी बताये देता हूं। अगर सरदार पटेल हमारे शुभचिन्तक न होते तो उनके लिए सर्वोत्तम काम यह होता कि हमको इसी वैसाखी पर चलने देते। इससे हम जीवनभर के लिए लंगड़े हो जाते। इससे हमारा भौतिक, नैतिक सब तरह का ऐसा पतन हो जाता कि हम कभी उठ न पाते। पर उन्होंने ऐसा न करके हमारे लिए जो लाभप्रद व्यवस्था हो सकती थी उसका प्रस्ताव रखा है। जो व्यवस्था की जा रही है वह न केवल देश हित की दृष्टि से अच्छी है बल्कि अल्पसंख्यकों के हित के ख्याल से भी वह बहुत अच्छी है। हमें अपने पांवों पर चलने की आदत सिखाई जा रही है। हमें आत्मनिर्भरता की शिक्षा दी जा रही है। कोई भी व्यक्ति जिसमें आत्मसम्मान की भावना है, पुरुषत्व की भावना है वह इन कृत्रिम संरक्षणों से चिपटे रहना कभी न पसन्द करेगा। इन कृत्रिम संरक्षणों के लिए आग्रह करना, इनके लिए वकालत करना और इनसे चिपटे रहना क्या आपको अपनी प्रकृति के विरुद्ध नहीं मालूम पड़ता? आपके आत्मसम्मान भाव को इससे ठेस नहीं पहुंचती? और फिर मैं यह पूछता हूं कि ये संरक्षण क्या वास्तविक रूप में सरंक्षण है? इनसे आपको रक्षा मिलती है? इनसे आपका उद्देश्य पूरा हो जाता है? आखिर इस बात के लिए कि, यहां के मुसलमानों का भविष्य सुखमय हो वह खुशहाल रहे और ससम्मान जीवन यापन करें, उत्तम से उत्तम प्रत्याभूति (गारंटी) क्या हो सकती है? मेरी तुच्छ राय में तो उनके कल्याण के लिए दो ही बातें अपेक्षित हैं। पहली बात और सबसे जरूरी बात तो यह है कि उनमें आत्मनिर्भरता की भावना होनी चाहिये, आत्मबल होना चाहिये, आत्मसम्मान की भावना होनी चाहिए। अपने ऊपर और अपने भाग्य पर तथा जगन्नियंता परमात्मा पर विश्वास होना चाहिये। दूसरी बात यह है कि अपने बहुसंख्यक सम्प्रदाय के बन्धुओं पर उन्हें विश्वास और भरोसा होना चाहिए। वह सरंक्षण ही किस काम का जिसको पाकर आप बहुसंख्यक सम्प्रदाय की सहानुभूति और विश्वास ही खो बैठें? हमारी मांग को संसद स्वीकार कर ले या नेतृवर्ग दे भी दे तो हमें क्या लाभ, अगर उससे बहुमत वर्ग के अधिकांश लोगों को नाराजगी मिले। अगर इन संरक्षणों से उनके दिमाग में हमारे खिलाफ शक ही बना रहे और वह हमसे नाखुश हो जायें तो इन संरक्षणों से हमें क्या फायदा पहुंचेगा? कोरा कागजी संरक्षण किस काम का। हमारा वास्तविक संरक्षण इस बात में है कि हम अपनी शक्ति पर निर्भर करें और अपने भाइयों की, बहुसंख्यक सम्प्रदाय वालों की—जो वस्तुतः हमारे भाई ही हैं—सद्भावना, मैत्री, बन्धुभाव, न्याय-परायणता और उदारता पर विश्वास करें।

हमारे सम्प्रदाय के सदस्यों का देश के अन्य किसी अल्पमत वाले वर्ग के सदस्यों के मन में अगर हिंदुओं की सद्भावना पर कोई शक है तो उसके दो ही कारण हो सकते हैं। या तो यह कि इस संबंध में वर्तमान पीढ़ी को बड़ा ही कटु अनुभव मिला है या फिर यह कि भारतीय इतिहास की शिक्षा ही उन्हें ऐसी दी गई है कि उन्हें अपने बहुसंख्यक बन्धुओं के सद्भाव पर भरोसा नहीं हो पाता है। जहां तक कि वर्तमान पीढ़ी का संबंध है मैं यह पूछता हूं कि कब किस अल्पमत ने यहां अपने भविष्य को और हितों को बहुसंख्यक सम्प्रदाय की सद्भावना पर छोड़ा है? हमने न अपने ऊपर विश्वास किया और न अपने बहुसंख्यक बन्धुओं पर। हमने विश्वास किया केवल एक तीसरे पक्ष का। गत सौ वर्षों के इतिहास में एक भी मौका ऐसा नहीं आया है जिसकी ओर ईमानदारी से संकेत करके हम यह कह सकते हों कि यहां के बहुसंख्यक वर्ग ने हमारे हितों के साथ

[कर्नल बी.एच. जैदी]

विश्वासघात किया है। बहुसंख्यक सम्प्रदाय के सामने कभी यह प्रश्न ही नहीं आया कि वह हमारे भविष्य और हितों के संबंध में अपनी जिम्मेदारी महसूस करें। क्योंकि हमने कभी इसके लिए उसका सहारा नहीं चाहा और न हमने अपनी ताकत का सहारा चाहा, हम तो एक विदेशी ताकत का ही सदा सहारे के लिए मुंह देखते रहे और वह ताकत अपने स्थानों की सिद्धि के लिए हमें आपस में सदा लड़ाती रही और बेबस करती रही।

अगर वर्तमान शताब्दी के अनुभव से इस संबंध में हम कोई पथ-प्रदर्शन नहीं पाते हैं तो हम अपने अतीतकालीन इतिहास की ओर भी देख सकते हैं। अगर इस देश के हिंदुओं ने कभी अपनी संकीर्णता का, धर्मान्धता का और अल्पसंख्यकों को सताने का कोई सबूत दिया है तो उस सूरत में तो आपका अपने भविष्य के संबंध में उनसे डरना ठीक और उचित है। पर संबंध में इतिहास क्या बताता है? जहां तक कि मेरी जानकारी है हिंदुस्तान के इतिहास में कभी ऐसा कोई मौका नहीं आया है जब हिंदुओं ने किसी अल्पसंख्यक वर्ग को सताया हो। एक मौका तो ऐसा भी यहां आया जब हिंदू अल्पमत में आ गये थे पर उन्होंने पुनः अपने को बहुसंख्यक बना लिया। यह बात उस समय की है जबकि इस देश में बुद्धिस्टों का शासन था; उस समय हिंदू अल्पमत में आ गये थे पर धीरे-धीरे उन्होंने अपना बहुमत बना लिया। जैन भी यहां अल्पमत ही थे। इसी तरह सीरियन, क्रिश्चियन और पारसी भी अल्पसंख्यक ही थे। सच तो यह है कि भारतवर्ष ने अनेक अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को यहां शरण दिया और उनकी रक्षा की। भारतीय इतिहास भर में इस संबंध में एकमात्र दुःखद घटना जो मैं सोच पाता हूं वह है बौद्धमत का अस्तित्व शून्य होना। बौद्धमत का जन्म इसी देश में हुआ था और यही उसका अस्तित्व नहीं रह सका। पर इस बात को अल्पसंख्यकों पर अत्याचार नहीं कहा जा सकता। मैं समझता हूं कि देश की मौजूदा पीढ़ी इसी का अब प्रायश्चित कर रही है जो वह बौद्ध प्रतीकों को अपना रही है। आज हम अपनी राष्ट्रीय पताका में और राष्ट्रीय चिन्हों में उन्हीं बातों को समुचित स्थान दे रहे हैं जिनसे हम किसी जमाने में भाग खड़े हुए थे और जिनको हमने उन दिनों में आवश्यक आदर नहीं प्रदान किया था। इसीलिए इतिहास को देखते हुए या अपनी वर्तमान पीढ़ी के तजुर्बों को देखते हुए मैं तो यही महसूस करता हूं कि अल्पसंख्यक संप्रदाय को इस डर का कोई कारण नहीं है कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय सद्भावना और मैत्री उनको न प्राप्त हो सकेगी और यह कि उनके प्रांत बहुसंख्यक वर्ग की न्याय भावना न रहेगी।

आखिर इस सभा के संबंध में ही हमारा क्या अनुभव रहा है? मैं तो यहां बहुत कम आया करता हूं पर जब भी मैं आता हूं मैं एक बात से खास तौर पर प्रभावित होता हूं। यहां हर विचारधारा के लोगों के प्रति सभी अल्पमतों के प्रतिनिधियों के प्रति बड़ी सहिष्णुता का बर्ताव किया जाता है, मैत्री बरती जाती है और मित्रवत् उनको प्रोत्साहन दिया जाता है। अल्पसंख्यक वर्ग में भी एक सदस्य ऐसे हैं जो सबसे अलग हैं, बिल्कुल अकेले हैं। मेरे माननीय मित्र मौलाना हसरत मोहानी खुद ही एक अल्पमत हैं; अपनी विचारधारा के यहां वह एक मात्र समर्थक हैं। पर उनके साथ भी मैंने यही देखा है कि सभा सदा उदारता बरतती है बल्कि सदा अपनी बात करने की आजादी देती है। मित्रवत बर्ताव

करती है और सौजन्यमय हासपरिहास का ही रुख रखती है। इस तरह चाहे इस सभा में देखिये, या कांग्रेस दल के किसी काम में देखिये, देश के नेतृत्व में देखिये, सब जगह आपको विशाल दृष्टिकोण सहिष्णुता और उदार लोकतंत्रीय भावना के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देगा। यह भी मान लें कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अवसर के अनुकूल नहीं उठ पाता है तो उस सूरत में भी अल्पसंख्यक वर्ग के लिए सर्वोत्तम यही होगा कि वह किसी भी संरक्षण के लिए आग्रह न करे। मैं तो यह कहता हूं कि जब तक बहुसंख्यक सम्प्रदाय में चेतना नहीं उत्पन्न होती आपको कोई संरक्षण नहीं प्राप्त हो सकता। भविष्य का संरक्षण केवल इसी बात से हो सकता है कि हमारी आंतरिक भावना में सुधार हो। केवल हमारा ही एक अकेला देश नहीं है जहां अल्पसंख्यक समस्या वर्तमान है। दूसरे देशों में और दूसरे कालों में भी अल्पसंख्यक और उनके हितों की समस्या रही है। यहां तक कि इंग्लैंड में भी अल्पसंख्यकों के प्रति हमेशा वैसा ही बर्ताव नहीं हुआ है जैसा कि हम सोचते हैं। एक विद्यार्थी के नाते मुझे ऐक्टन लाइब्रेरी में जाने का मौका प्रायः मिला करता था। एक दिन लाइब्रेरी मे मैंने एक प्रस्तर देखा जिस पर श्री ऐक्टन के मित्र लार्ड मारले के कुछ शब्द अंकित थे। प्रस्तर पर अंकित शब्दों को पढ़ने से मुझे ज्ञात हुआ कि एक रोमन कैथोलिक होने के कारण लार्ड ऐक्टन को कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश होने से इंकार किया गया था, पर कालान्तर में चलकर उसी विश्वविद्यालय ने लार्ड ऐक्टन से उस बात का अनुरोध किया कि अध्यापक का पद स्वीकार कर वह विश्वविद्यालय को गौरवान्वित करने की कृपा करें। कालक्रम से सुधार आ ही जाता है। रोमन कैथोलिक लोगों के हितों का संरक्षण आखिर कैसे हुआ? पहले उनको विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिलता था और सिविल सर्विस में उनको जगह दी जाती थी, पर कालान्तर में चलकर उनको सभी सुविधायें मिलने लगी। अंग्रेजों के दृष्टिकोण में आखिर किस बात ने इतनी उदारता ला दी? अवश्य ही रोमनों के आन्दोलन के फलस्वरूप उनमें यह उदारता नहीं आई और न प्राप्त सरंक्षणों के कारण ही। मूल बात यह थी कि देश की अन्तर्चेतना को, उसके विवेक को चोट पहुंची और उन लोगों ने यह महसूस किया कि अपने देशवासी रोमन कैथोलिक बन्धुओं के प्रति उनका व्यवहार न्यायपूर्ण नहीं रहा। दासत्व प्रथा की समाप्ति अभी हाल की बात है। आखिर इस प्रथा को किसने समाप्त किया? क्या दासों के आन्दोलन के फलस्वरूप या प्राप्त संरक्षणों के फलस्वरूप यह प्रथा समाप्त हुई? नहीं, इस प्रथा की समाप्ति इस कारण हुई कि जहां भी यह प्रथा जोरों पर थी वहां देशवासियों में चेतना जागी, विवेक जागा। मैं तो अल्पसंख्यकों के भविष्य को बहुसंख्यक सम्प्रदाय की सद्भावना और न्याय-परायणता के भरोसे पर छोड़ने को तैयार हूं। मुझे उनकी सद्भावना पर पूरा विश्वास है। पर अगर यह मान भी लिया जाये कि उनमें हमारे लिये सद्भाव नहीं है तो उस हालत में भी मैं तो उनमें सहिष्णुता और न्याय-परायणता पैदा होने तक प्रतीक्षा करना पसन्द करूंगा, पर संरक्षण का आग्रह न करूंगा जब तक अपने देशवासियों में चेतना और विवेक नहीं जागृत हो जाते हैं। मैं प्रतीक्षा करता रहूंगा चाहे इसके लिये कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े, क्योंकि इस देश का कोई भविष्य हो ही नहीं सकता है जब तक कि यहां शुद्ध लोकतंत्रीय सिद्धांतों पर न चला जाये और सबको समान अवसर न दिया जाये। मेरे मित्र श्री तजम्मुल हुसैन ने अभी कहा है: ''इस देश में ऐसा कोई वर्ग नहीं रहता जो अपने को अल्पसंख्यक समझता हो।'' इस संबंध में मैं यह निवेदन करूंगा, श्रीमान्,

[कर्नल बी.एच. जैदी]

कि इस देश में एक अल्पमत का वर्ग है और वह हमेशा रहा है और हर मुल्क में एक ऐसा अल्पमत वर्ग है और सदा रहेगा। वह अल्पमत वर्ग है उन लोगों का जो भले हैं, न्याय-परायण हैं, जो दयालु और उदार हृदय हैं और जो मानव जाति के समुत्थान के लिए, उसकी जागृति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसा एक अल्पमत इस देश में भी वर्तमान है, श्रीमान्, जिसमें शामिल हैं, माननीय सरदार पटेल, भारत के प्रधानमंत्री और अध्यक्ष महोदय आप स्वयं भी और मुझे तो यही आशा है कि सभा के सदस्यगण भी इसमें शामिल हैं। यही अल्पमत है जो देश में सच्ची लोकतंत्रीय व्यवस्था को न्यायमूलक शासन को स्थापित करना और प्रगतिशील दृष्टिकोण को अग्रसर करना अपना सिद्धांत मानता है। अगर देश के अल्पसंख्यकों को कोई आशंका है तो उनको चाहिये कि वह देश के इस गौरवशाली अल्पमत के साथ हो जायें जिसके हाथ में न केवल भारत का भाग्य बल्कि देश के सभी अल्पसंख्यक वर्गों का भाग्य सदा सुरक्षित रहेगा। अगर आपको अपनी कमजोरियों का ज्ञान है, अगर आप दुर्बल हृदय हैं तो आपको चाहिए कि आप इस अल्पमत का साथ दें और उसके हाथों को मजबूत बनायें। इसमें आपका भविष्य सुरक्षित है। (*हर्ष ध्वनि*)

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अब इस प्रस्ताव पर मत लिया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** सवाल यह है कि:

''इस प्रस्ताव पर राय की जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अल्पसंख्यकों से संबंध रखने वाली परामर्शदातृ समिति का जब मुझे पहले-पहल सभापति नियुक्त किया गया था तो दरअसल मैं बहुत डर रहा था और उस काम को बोझिल दिल से ही हाथ में लिया था क्योंकि मैं यह महसूस कर रहा था कि गत इतने वर्षों के विदेशी शासन का जो इतिहास रहा है उसके कारण हमारा काम बड़ा ही मुश्किल है। जब मैंने इस काम को हाथ में लिया था उस समय देश एक बड़ी ही कठिन स्थिति से गुजर रहा था और सभी वर्गों के लोग सन्देह संकुल हो रहे थे। देश में जो कतिपय वर्ग थे उनमें मुश्किल से कोई परस्पर कोई विश्वास भी था। फिर भी मैं यह कहूंगा कि सत्ता के हस्तान्तरित होते ही धीरे-धीरे लोगों में परिवर्तन आने लगा जिससे मुझे बड़ा ही प्रोत्साहन मिला। मैं यह महसूस करने लगा कि लोगों में धीरे-धीरे परस्पर विश्वास और सद्भावना आती जा रही है।

अल्पसंख्यक समिति के सामने जब मैंने पहली बार स्थान-रक्षण के द्वारा कतिपय राजनैतिक संरक्षणों को देने का प्रस्ताव रखा था तो उसके संबंध में सभी अल्पसंख्यक वर्गों की अधिकाधिक सम्मति और सहमति मिल चुकी थी। डा. मुखर्जी शुरू से ही किसी

भी तरह का संरक्षण या सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था के प्रतिकूल थे। अल्पसंख्यक वर्गों के ऐसे राष्ट्रीयतावादी नेताओं ने अवश्य ही मेरे प्रस्ताव पर असहमति प्रकट की थी। मुझे विश्वास है कि डा. मुखर्जी अवश्य ही अब इस बात से खुश होंगे कि प्रस्तुत व्यवस्था उनकी इच्छा के अनुकूल है।

जब मैंने अपने इन प्रस्तुत प्रस्तावों को सभा के सामने रखा तो लोगों का एक दल ऐसा भी निकला जिसके लिए वर्तमान दलदल से निकलना, जिसमें कि वह काफी गहराई तक धंस चुके थे, मुश्किल मालूम पड़ा। मद्रास से आये हुए एक मित्र ने स्थान-रक्षण और साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था के लिए एक संशोधन रखा। जब यहां साम्प्रदायिक निर्वाचन के आधार पर पृथक-पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की रचना के लिए प्रस्ताव रखा गया था तो उसका समर्थन एक बड़े ही प्रसिद्ध मुस्लिम नेता ने किया था। उन्होंने इस सभा में विधान के प्रति सदा निष्ठावान बने रहने की भी शपथ ली थी पर उसके बाद ही फौरन आप मय सरो समान करांची चले गये। अब आप वहां की मुस्लिम लीग का कार्य संचालन कर रहे हैं। आप यहां से चले तो गये, पर यहां लीग की बची खुची विरासत शायद मद्रास में ही छोड़ गये हैं। दुर्भाग्य से पुरानी मुस्लिम के कोष की एक बहुत बड़ी रकम अभी भी बची हुई है जिसके संबंध में अभी तक कुछ तय नहीं हो पाया है। हमारे कुछ मित्रों का अभी भी यही ख्याल है कि उस रकम का एक बड़ा हिस्सा उन्हें मिल सकता है, अगर वह अभी भी यहां पुरानी मुस्लिम लीग का काम जारी रखें। अगर वह सारी की सारी रकम भी अथवा उसका कोई हिस्सा यहां आ भी जाता है तो मुझे शक है कि जो लोग उसे पायेंगे उनकी उससे कुछ भलाई हो सकेगी। जिन लोगों का यह कहना है कि इस देश में दो जातियां हैं और उन दोनों में किसी बात में ऐक्य नहीं है और इस बिना पर यह दावा करते हैं कि उन्हें अलग एक भूभाग मिलना ही चाहिए जहां वह स्वतंत्रतापूर्वक रह सकें, वह ऐसा कर सकते हैं। मैं उनको इस पर दोष नहीं देता हूं। पर जिन लोगों के दिमाग में अभी भी लीग का ख्याल बाकी है, जो यह ख्याल करते हैं कि लीग के योजनानुसार चलकर जब हमने अपनी एक मांग तो पूरी ही करवा ली है तो हमें अब पुनः उसी योजना पर चलना चाहिये, उनसे मैं सादर यह निवेदन करूंगा कि आप अपने नव प्राप्त प्रदेश में जाइये और वहां अपनी स्वतंत्रता का उपभोग कीजिये और हमें यहां अब शांतिपूर्वक रहने दीजिये। इस देश में उन लोगों के लिये अब कोई स्थान नहीं है जो पृथक प्रतिनिधान की मांग करते हैं। इस अभागे देश में पृथक प्रतिनिधान की पद्धति जो चालू की गई थी वह इसलिए नहीं कि उन लोगों ने, जो इस पद्धति की मांग रखने का दावा करते हैं, इसके लिए मांग की थी। बल्कि जैसा कि स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली ने एक मौके पर कहा था, यह पद्धति हुक्मन हम पर लादी गई थी। इसका जो नतीजा हुआ उसे हम सभी भुगत रहे हैं। हमें अब अपने इतिहास में एक परिवर्तन का अध्याय लाना चाहिये और जो भी पद्धति हम लागू करें वह देशवासियों की सहमति के आधार पर लागू करें। अपने इतिहास की धारा को बदलने के लिए मैं सभा की सहमति चाहूंगा, सभी अल्पसंख्यकों की सहमति चाहूंगा। आपने यह सहमति दी है और अवश्य ही इसके लिये आप गौरव और सम्मान के पात्र हैं। आपके इस कृतित्व को जिसे कि आज आपने सम्पादित किया है, हमारी आने वाली संतानें स्वर्णाक्षरों

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

में लिखेंगी और आशा एवं विश्वास करता हूं जो कदम आप हम उठा रहे हैं उससे देश की सूरत, उसका इतिहास और उसका स्वरूप सर्वथा बदल जायेगा।

हमारे सामने इस संबंध में जो पहला संशोधन है वह सन् 1947 के अगस्त वाले अधिवेशन में नामंजूर हो चुका है। उस अधिवेशन में यह संशोधन मुख्य संशोधन था और इसी दल ने इसे उस समय भी पेश किया था। देश में जो कुछ हुआ है उसका एक दीर्घकालीन अनुभव हो जाने के बाद भी, उस पर अरसे तक सोच समझ लेने के बाद भी जब लोगों ने यह प्रस्ताव रखा है तो मैं नहीं समझता कि उनके रुख में अभी भी कोई परिवर्तन हुआ है। पर इतना मैं जानता हूं कि इस संशोधन को उपस्थित करने का उन्हें मुस्लिम लीग से आदेश मिला है। आज यह जगह ऐसी नहीं रह गई है कि आप दूसरों के आदेश पर यहां चलें। अब तो इस जगह पर आपको अपने विवेक के अनुसार चलना होगा और देश की भलाई के लिए काम करना होगा। किसी भी सम्प्रदाय का यह सोचना कि उसके हित उसके देश के हित से, जहां कि वह रहता है, कुछ अलग हैं, एक बड़ी भारी भूल है। मान लीजिये कि हम स्थान-रक्षण की व्यवस्था को स्वीकार कर लेते हैं तो उस सूरत में मैं अपने को मुस्लिम समाज का एक शत्रु समझूंगा क्योंकि एक असाम्प्रदायिक एवं लोकतंत्रीय राज्य में अगर हम ऐसी कार्यवाही करते हैं तो उसका नतीजा अच्छा नहीं हो सकता है। फर्ज कर लीजिये कि साम्प्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचन की व्यवस्था यहां कर दी जाती है। उस सूरत में क्या आप यह उम्मीद करते हैं कि प्रांत में या केन्द्र में कहीं भी मंत्रिमंडल में आपको कोई जगह मिल सकती है? आपके हित समस्त देश के हित से कुछ पृथक हैं। यहां जो मंत्रिमंडल होगा या जो शासन होगा वह सम्मिलित दायित्व के आधार पर होगा और जो लोग हमारा विश्वास नहीं करते हैं या बहुसंख्यक सम्प्रदाय पर जिनको विश्वास नहीं है, यह स्पष्ट है कि, वह मंत्रिमंडल में या शासन में कहीं लिये नहीं जा सकते हैं आप अपने को हुकूमत से अलग कर देंगे और हमेशा के लिए अल्पमत बने रह जायेंगे। इससे आपको क्या फायदा पहुंचेगा? क्या अभी भी यह सोचते हैं कि कोई तीसरी शक्ति ऐसी हो जायेगी जो अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के विरुद्ध खड़ा कर देगी और आबादी के आधार पर उनके एक या दो आदमियों को हुकूमत में लेने में बाध्य कर देगी? आपका यह ख्याल गलत है। जो धारणा आपके दिमाग में अब तक थी और जिसके अनुसार अब तक आप चलते थे उसे आप हमेशा के लिए हटा दीजिये। अब यह एक स्वतंत्र देश है। यह राज्य सर्वसत्ता प्राप्त राज्य है। आपकी यह सभा सर्वप्रभुता सम्पन्न सभा है। यहां आप देश के भविष्य को अपनी मर्जी के मुताबिक स्वरूप दे रहे हैं। इसलिए बराय महरबानी आप अतीत को भूल जाइये; इसे भूलने की कोशिश कीजिये। अगर ऐसा करना आपके लिए असंभव है तो आपके लिए अच्छा यह है कि आपको अपने विचारों के अनुसार जो सर्वोत्तम स्थान मालूम पड़ता हो आप वहां चले जायें। मैं गरीब मुस्लिम जनता को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता हूं जिसने काफी मुसीबतें झेली हैं। अपने लिए अलग राज्य और भूभाग पाने के बारे में आपका जो भी दावा हो मुझे उसके संबंध में कुछ नहीं कहना है। आपको जो भी प्राप्त हो गया है उसके लिए भगवान् आपका भला करे। पर कृपया न भूलिये कि गरीब मुस्लिम जनता ने कितने कष्ट उठाये हैं। उनको अब शांतिपूर्वक रहने दीजिये ताकि वह अपने परिश्रम और पसीने की कमाई का सुखोपभोग कर सकें।

मुझे याद है कि जिस सज्जन ने अगस्त सन् 1947 के अधिवेशन में प्रस्ताव रखा था उन्होंने पृथक निर्वाचन की मांग करते हुए यह कहा था कि आज मुसलमान समाज एक सुसंगठित, सुसम्बद्ध और एक मजबूत अल्पमत है। यह तो अच्छा ही है। जो अल्पमत जबरदस्ती देश का विभाजन करा सकता है वह हरगिज अल्पमत नहीं हो सकता। आप अपने को अल्पसंख्यक क्यों समझते हैं? जब आपका समाज एक सुसंगठित, सुसम्बद्ध और मजबूत अल्पमत है तो आप संरक्षण क्यों चाहते हैं? आप विशेष सुविधायें क्यों मांगते हैं? इस सबकी मांग उस समय तो करना ठीक था जब यहां एक तीसरा पक्ष वर्तमान था पर अब वह बात नहीं रह गई है। अब तो सारी बात ही खत्म हो गई। आपका यह स्वप्न एक दिवा स्वप्न है और अब आपको उसे भूल जाना चाहिये। अब उसका ख्याल ही छोड़ दीजिये। अब यह न सोचिये कि कोई तीसरा पक्ष आकर रोटी का बंटवारा करने लगेगा और इन व्यवस्थाओं को चालू रहने देगा। इसलिए अल्पमत का भविष्य—चाहे कोई अल्पमत हो—इसी में है कि वह बहुमत का विश्वास करे। अगर बहुसंख्यक समुदाय दुर्व्यवहार करेगा तो उसको भुगतना पड़ेगा। अगर बहुसंख्यक समुदाय अपने दायित्व को नहीं समझता है तो यह देश के लिये बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। अगर मैं किसी अल्पमत समाज का सदस्य होता तो अब मैं इस बात को भुला देता कि मैं किसी अल्पमत का सदस्य हूं। किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति हमारा प्रधानमंत्री बन सकता है। आखिर ऐसा क्यों नहीं हो सकता? आखिर ब्राह्मणों को विरोध करने वाले मिस्टर नागप्पा ही क्यों यहां प्रधानमंत्री नहीं बने सकते? मुझे उनसे यह सुनकर बड़ी खुशी हासिल हुई है कि बीस एकड़ जमीन का मालिक होने के नाते वह अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं समझे जा सकते हैं। पर उन्होंने कहा है—मुझे इस जाति के सदस्य होने का गौरव प्राप्त है क्योंकि मैंने इसमें जन्म ग्रहण किया है। इस जाति में जन्म पाने पर ही आप इसके सदस्य हो सकते हैं। मुझे बड़ी हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि इस नौजवान ने सभा भवन में यह उद्‌गार व्यक्त किया है कि अनुसूचित जाति में पैदा होने पर उसे गौरव है। आखिर इसके गौरव की बात ही क्या है? उस नौजवान बन्धु को देश में आदर का स्थान प्राप्त है। मैं तो यह चाहता हूं कि इस जाति के हर सदस्य अपने को ब्राह्मण से भी ऊंचा समझे। बल्कि मैं यह चाहता हूं कि हरिजन और ब्राह्मण यह भूल जायें कि वह अमुक जाति के सदस्य हैं और यही समझें कि सभी बराबर हैं।

हमारे मित्र आसाम के श्री सादुल्ला ने यह फरमाया है कि इस बात को व्यक्त करके कि स्थान संरक्षण की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के हित में है या नहीं, मुसलमानों के हित में है या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए उन लोगों ने दिसम्बर या फरवरी में एक अपनी बैठक की थी, वह किसी रहस्य का उद्‌घाटन नहीं कर रहे हैं। मैं उनसे यह पूछता हूं कि क्या यह सुझाव मैंने दिया था कि इस पर वह लोग विचार करें? वे लोग इस पर विचार करने के लिए समवेत ही क्यों हुए, अगर उन्हें इस देश से विदेशी शासन के समाप्त हो जाने का कोई आभास नहीं मिला था? आखिर उन्होंने ऐसा सोचना क्यों शुरू किया कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था शायद उनके लिए अच्छी हो या न हो। फौरन ही उनके दिमाग में यह सब ख्यालात पैदा होने लगे। यह बातें उन लोगों के दिमाग

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

में आने लगी जो पहले देश विभाजन की मांग करते थे। आजादी का पहला फायदा तो हमें यही पहुंचा कि अब ऐसे ख्याल उन लोगों के मन में उठने लगे। अब आपका दिमाग सोचने समझने के लिए आजाद हो गया है और इसलिए आप यह महसूस करने लगे हैं कि अतीत में आप जो करते थे वैसा करना शायद अब ठीक न होगा। अल्पसंख्यक समिति के सामने यही बातें रखी गई थी। जब डाक्टर मुकर्जी ने अपना प्रस्ताव पेश किया था तो बिहार के श्री तजम्मुल हुसैन ने ही उठकर यह संशोधन रखा था कि स्थान-संरक्षण की व्यवस्था उठा देनी चाहिए। समिति में उनको इस बात की चुनौती दी गई कि वह इसका सबूत दें कि उन्होंने उसके संबंध में मुस्लिम सदस्यों से राय ले ली है। इस पर श्री तजम्मुल हुसैन ने सभी प्रांतों के प्रतिनिधियों की रायें बतानी शुरू की जिनसे उन्होंने परामर्श किया था। पर हम यह नहीं चाहते थे कि बहुमत के बल पर उस प्रस्ताव को पास करें। मैंने परामर्शदातृ समिति के सामने यह राय व्यक्त की कि इस प्रश्न को अभी स्थगित रखा जाये और इस बीच में अल्पसंख्यक वर्गों के सदस्य अपने अपने निर्वाचन क्षेत्रों में परामर्श करके यह जान लें कि वस्तुतः मतदाता वर्ग क्या चाहते हैं। फिर करीब चार महीने बाद परामर्शदातृ समिति की बैठक हुई पर दुर्भाग्य से श्री सादुल्ला साहब उपस्थित नहीं थे या वह समिति में आये नहीं और इस तरह उन्हें लोगों ने क्या रायें दी, यह जानकारी उन्हीं के पास रह गई और समिति को मालूम न हो सकी। उन्होंने फरमाया है कि उस बैठक में कुल चार ही सदस्य उपस्थित थे जिसमें मौलाना आजाद तटस्थ थे। मैं नहीं जानता कि उन्होंने मौलाना आजाद से परामर्श लिया भी था या नहीं। उनका दावा है कि मौलाना आजाद के मन को वह मुझसे भी ज्यादा जानते हैं। पर मैं उनको यह बता सकता हूं कि मौलाना आजाद चेतना शून्य नहीं हैं, वह एक चेतनाशील व्यक्ति हैं। अगर उन्होंने यह महसूस किया होता कि वह प्रस्ताव मुस्लिम समाज के हित के विरुद्ध है तो वह फौरन अपनी राय जाहिर करते। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। क्योंकि वह समझते थे कि और महसूस करते थे कि जो भी हो रहा है वह सही है। इसलिए अगर सादुल्ला साहब उनकी चुप्पी का मतलब यह लगाते हैं कि वह तटस्थ थे तो यह उनकी भूल है क्योंकि मौलाना आजाद एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने सारी जिन्दगी बड़े-बड़े संकट के समय भी, मुस्लिम समाज के विरोध का मुकाबला किया और अपने विचार पर डटे रहे। उन्होंने अपना जामा नहीं बदला है। अगर वह देश विभाजन का दावा किये होते, उसके लिये काम किये होते, अगर उनका यह विश्वास रहा होता कि इस देश में दो जातियां हैं तो मुझे यकीन है कि देश विभाजन के बाद वह हर्गिज यहां न रहते। क्योंकि अगर उनका यह विश्वास होता कि मुसलमान एक भिन्न जाति के रूप में हैं तो फिर विभाजन के बाद यहां ठहरना वह गवारा ही नहीं करते।

किंतु कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने देश के बंटवारे के लिए काम किया, जिन्होंने तमाम जिन्दगी यही कहा कि हिंदू और मुसलमान सर्वथा दो भिन्न कौमें हैं और फिर भी यहां जो कोई रह गई है, उसका प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं। मुझे आश्चर्य है कि सादुल्ला साहब अब इस देश के विशाल मुस्लिम समूह का प्रतिनिधित्व करने का दावा कर रहे हैं। वह कैसे यह दावा कर सकते हैं? मुझे तो उनके इस दावे पर आश्चर्य है।

बल्कि उनसे ज्यादा तो मैं मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर सकता हूं। मुसलमानों का प्रतिनिधित्व तो वह उस रास्ते पर चलकर नहीं कर सकते हैं जिस पर कि तमाम जिन्दगी वह चले हैं। उनको अपना वह पथ बदलना होगा। वह यह भी कहते हैं कि स्थान-रक्षण की व्यवस्था का उन्हें कोई आकर्षण नहीं है, आसाम के लोग उसे नहीं चाहते हैं। फिर मैं उनसे पूछता हूं कि कौन इस व्यवस्था को चाहता है? क्या भारत के मुसलमान उसे चाहते हैं? तो क्या उसी रूप में सभा इस प्रश्न पर निर्णय करने जा रही है? आप यह फरमाते हैं कि इस सभा में अगर मुस्लिम सदस्यों की या अल्पमत वालों की राय उनकी बात के खिलाफ है तो वह सभा के फैसले को मंजूर कर लेंगे। उन्होंने यहां मुसलमानों की राय देख ही ली है। अब उन्हें चाहिए कि वह अपनी राय बदल दें।

हम एक बहुत बड़ा सौदा कर रहे हैं।, हम इतिहास के क्रम को बदलने जा रहे हैं। एक बहुत बड़ा दायित्व हमारे सिर पर है और इसलिए मैं आप सबसे यह अपील करूंगा कि इस पर अपनी राय देने के पहले खूब सोच लीजिये, अपने विवेक को टटोल लीजिये और यह सोच लीजिये कि भविष्य में इस देश में क्या होने जा रहा है। इस देश का भावी स्वरूप एक स्वतंत्र देश के अनुरूप होगा और स्वरूप उससे सर्वथा भिन्न होगा जिसकी कल्पना देश विभाजन कराने वालों ने की थी। इसलिए देश विभाजन में जिन्होंने हाथ बटाया है उनसे मैं कहूंगा कि वह इस बात को खूब समझ लें कि अब समय बदल गया है, स्थिति बदल गई है और दुनिया बदल गई है और इसलिए अगर वह अपना कल्याण चाहते हैं तो वह भी, लाजिमी है कि, अपना परिवर्तन करें। अब पृथक निर्वाचन के प्रश्न पर कुछ कहना समय बर्बाद करना है।

हमारे मित्र लारी ने एक दूसरा संशोधन रखा है। उनका कहना है कि परामर्शदातृ समिति ने इस समस्या के समाधान के संबंध में जो पथ ग्रहण किया है वह सही है। मुझे खुशी है कि वह इतना स्वीकार तो करते हैं। समिति की बैठक से फायदा ही क्या अगर किसी समाधान के लिए गलत रास्ता ही पकड़ना हम तय करें। समिति ने इस प्रश्न को सर्वथा अल्पसंख्यकों की मर्जी पर छोड़ दिया था। हमारी ओर से इस संबंध में कोई पहल नहीं ली गई थी। मैंने जब अल्पसंख्यकों को संरक्षित स्थान देने की व्यवस्था का प्रस्ताव तैयार किया था तो समिति में जिसमें अल्पसंख्यक थे उन सबकी बहुसंख्यक राय लेकर ही उसे तैयार करने की कोशिश की थी। अल्पसंख्यकों की भावनाओं को मैं छेड़ना नहीं चाहता था। इस सभा का प्रतिनिधि होने के नाते मेरा सदा यही प्रयास रहा है कि व्यवस्था ऐसी हो कि जिससे अल्पसंख्यक निश्चिन्तता का अनुभव करने लगें। आज भी अगर कोई रियायत दी जा रही है तो केवल उसी उद्देश्य से दी जा रही है कि यहां छोटे से छोटे अल्पमत को भी कोई आशंका न रह जाये। क्योंकि मेरा यह ख्याल है कि असंतुष्ट अल्पसंख्यक समुदाय हमेशा एक बोझ और खतरा बना रहता है। जब तक कि वह बेकायदे न चलें, हमें कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे किसी भी अल्पमत वर्ग की भावना को चोट पहुंचे। श्री लारी का यह कहना है कि अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति हमें चलानी ही चाहिए, उसके संबंध में मैं उन्हें यह बता दूं कि यह कोई नई पद्धति नहीं है। इसका

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

प्रारम्भ हुआ था आयरलैंड में और स्वीट्जरलैंड और अन्य कुछ देशों में यह आज प्रवर्तन में है। मैं मिस्टर लारी को यह बताऊं कि आयरलैंड अपने संयुक्त प्रांत के एक जिले के बराबर भी नहीं है। गोरखपुर का जिला ही आयरलैंड से बड़ा है। हमारा देश एक बहुत ही विशाल देश हैं जहां एक विस्तृत जन समूह आबाद है। हमने इस देश में, जहां इतनी अशिक्षा है, प्रौढ़ मताधिकार चालू किया है। यहां तो प्रत्यक्ष मतदान की जो सीधी पद्धति है वही काफी भयावह प्रतीत होती है। ऐसी हालत में अनुपाती प्रतिनिधान की जटिल व्यवस्था चलाना यहां के लिए आसान नहीं होगा। अपने विधान में इस तरह की जटिल व्यवस्थाओं को स्थान देना बड़ा खतरनाक होगा। इसलिए मैं उनसे यही कहूंगा कि उनकी समझ में स्थान-रक्षण की व्यवस्था अगर खराब है तो फिर प्रकारान्तर से उस व्यवस्था को यहां लाने की कोशिश न करनी चाहिये। जो व्यवस्था हमने की है उसे ज्यों का त्यों रहने दीजिये और देखिये कि होता क्या है? एक महीना हुआ अहमदाबाद के म्युनिसिपल चुनाव में मैंने देखा कि सभी मुसलमान मिलकर संयुक्त निर्वाचन पद्धति के अनुसार चुनाव लड़े और उनके सभी उम्मीदवार सफल रहे, जो कि उनके खिलाफ ऐसे लोग खड़े थे जिनके लिए मुस्लिम लीग ने पूरा खर्च किया था। उस निर्वाचन में हरिजनों को अपने नियत कोटा से भी एक स्थान ज्यादा मिल गया था। आजादाना तौर पर किये जाने वाले चुनावों ने यह साबित कर दिया है कि स्थान-रक्षण की या अन्य किसी व्यवस्था के द्वारा प्रगति में रुकावट डालना हमारे लिए बहुत बुरा है। अगर हम इस प्रश्न को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक वर्गों पर छोड़ देते हैं कि वह आपस में इसका एक फैसला तय कर लें तो हम सबके लिए यह एक गौरव की बात होगी। आखिर आपको इसमें डर क्या है? कल ही तो आप यह कह रहे थे कि आपका अल्पमत समुदाय एक सुसंगठित और एक मजबूत अल्पमत है। ऐसी सूरत में आप डरते क्यों हैं? दूसरों को अपना दोस्त बनाइये और वातावरण में परिवर्तन पैदा कीजिये। ऐसा करने से आप अपने अंश से अधिक जगहें पायेंगे। अगर देश के लिए आपकी भावनायें वैसी ही हैं जैसी कि अन्य लोगों की तो अवश्य आपको चुनाव में जगहें मिलेंगी। जहां तक मुमलमानों की बात का संबंध है मेरा ख्याल है कि सभी बातों का जवाब मैंने दे दिया है। मुस्लिम समाज के बहुतेरे योग्य प्रतिनिधियों ने अपने अन्य प्रतिनिधियों के दावों के खोखलापन पर काफी रोशनी डाल दी है, इसलिये इस पर और कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

अब सवाल आता है सिखों का। सिख सम्प्रदाय के लिए मेरे मन में सदा यथेष्ट आदर, सम्मान और प्रशंसा का भाव रहा है। मैं हमेशा उनका मित्र रहा हूं जोकि कभी-कभी उन्होंने इसका खंडन किया है कि मैं उनका मित्र हूं। इस मौके पर भी मैंने उनको समझाया कि अगर अपने लिए संरक्षित जगहें रखने पर आग्रह करते हैं तो उनके लिये इसकी व्यवस्था कर दूंगा और समिति को इसे मानने पर राजी करूंगा। किन्तु मैं यह महसूस करता हूं कि यह व्यवस्था उनके हित में अच्छी नहीं है। इसके संबंध में जो चाहे फैसला कर लें। यह बात मैं उन्हीं पर छोड़ देता हूं। अनुसूचित जाति के सिखों के लिए यह रियायत सिख मांगें, यह उनके लिए गौरव की बात नहीं है। उन्होंने इस प्रसंग में रणजीत सिंह का कथन उद्धृत किया है जिन्होंने ऐसी मदद अनुसूचित जातियों को दी थी। आखिर इन अनुसूचित जाति वालों का कब राज्य रहा है? ये बेचारे तो सदा ही पीसे गये हैं, हमेशा

नीचे रहे हैं और बिल्कुल धूल की हैसियत इनकी रही है। हमारी लम्बी चौड़ी बातों के बावजूद भी उनकी आज क्या हालत है? उनमें चन्द लोग ऐसे हो सकते हैं जो साहस सम्पन्न हों। दिलेर हों। उनकी दस हजार की आबादी तीन दिनों के अन्दर ईसाई बन गई। बीदर में जाकर आप उनकी दशा देखें। क्या इसे आप धर्म परिवर्तन कहेंगे? हर्गिज नहीं। उन्हें इस बात का डर था कि रजाकारों के अपराधों में उन्होंने जो साथ दिया था उसके लिए वे पकड़ लिये जायेंगे। उन्होंने कुछ अपराध किये भी थे। उन्होंने यह सोचा कि विशाल मुस्लिम जनसमूह उनके पकड़े जाने की मुखालिफत करेगा, उनका साथ देगा। इस बार धर्म परिवर्तन की घटना हुई अनुसूचित जातियों में। पर धर्म परिवर्तन की बात के अलावा भी, मैं आपसे यह पूछता हूं कि क्या कभी मेहतरों की बस्ती में जाकर वहां उनके घरों में एकाध घंटा ठहरे हैं? क्या उनके पास कोई भी ऐसा स्थान है जिसको अपना घर या वतन कह सकें? मि. नागप्पा जरूर कहते हैं ''हिन्दुस्तान हमारा घर है'' यह बहुत खुशी की बात है और हमें उनके मनोभाव पर गौरव है। पर गरीब लोगों को निरंतर सताया जा रहा है और आज भी उनको रक्षण नहीं मिल रहा है। हम उनके ट्रस्टी है। पूना के समझौते में हमने एक प्रतिज्ञा की है। क्या हमने उसे पूरा कर लिया? हमको यह स्वीकार करना ही होगा कि हम दोषी हैं। आपकी जानकारी के लिए मैं आपको यह भी बता दूं कि देश के दूसरे भागों में धर्म परिवर्तन करने वालों में हजारों ऐसे हैं जो आज पुनः अपने धर्म में आना चाहते हैं पर उनको ऐसा करने नहीं दिया जा रहा है। वे अपने धर्म में पुनः वापिस आ नहीं पाते हैं और दुर्भाग्य से, हम उनकी सहायता करने में भी असमर्थ हैं। यह तो है उनकी अवस्था। वे कृपाण धारण करने वाले लोग नहीं हैं। उनका एक भिन्न ही वर्ग है। पर कृपाण और तलवार धारण करके भी भयभीत रहना यह असंगत बात है। स्थान-रक्षण की व्यवस्था आपके आदर्श पर अहितकर प्रभाव डाल सकती है। मुझे आपको यह रियायत देने पर कोई विरोध नहीं है। मैं तो आप लोगों से—सिखों से—यह कहूंगा कि देश का नियंत्रण अपने हाथ में लीजिये और इसका शासन चलाइये। वे शासन चलाने में समर्थ हो सकते हैं क्योंकि उनके पास क्षमता है, साधन है और साहस है। कृषि में, इंजिनीयरिंग में, सेना में, हर क्षेत्र में आपने अपनी योग्यता साबित कर दिखाई है। आप अपने को क्यों ऐसा हीन समझने लगे हैं? इस हीन भाव को दूर करने के ख्याल से ही तो मैं अनुसूचित जातियों को यह कह रहा हूं कि वह भूल जायें कि वे अनुसूचित जाति के हैं। मैं जानता हूं, यह भूलना उनके लिए मुश्किल है पर सिखों के लिए यह मुश्किल नहीं है। मैं आपका कृतज्ञ हूं कि इस दी हुई रियायत के लिए आप हमारे प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर रहे हैं इस देश में अब हम चाहते हैं शांति और ऐक्य का वातावरण, अविश्वास और सन्देह का नहीं। हम अपना विकास करना चाहते हैं। हिंदुस्तान में खून की कमी है, आज यह बिल्कुल ही दुर्बल हो गया है। जब तक आप इसकी नसों में खून नहीं देंगे, स्थान-रक्षण पर झगड़ कर हम कुछ भी न हासिल कर सकेंगे। ठोस बुनियाद पर हमें अपने देश को खड़ा करना होगा। जैसा कि मैंने अभी आपसे कहा है, जब मुझे इस समिति का सभापति बनाया गया था तो मैं कांप रहा था पर मैंने गौरव बोध जरूर किया था और आज भी मुझे गौरव बोध हो रहा है और मुझे आशा है कि सभा भी इस बात पर गर्व अनुभव करती होगी कि अपने अतीत की कालिमा को विधान से हटाने में हम सब प्रायः एक मत हो गये हैं (*हर्ष ध्वनि*) और ईश्वर की कृपा से, उसके

[माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल]

आर्शीवाद से एक सच्चे असाम्प्रदायिक और लोकतंत्रीय राज्य की बुनियाद रखने में समर्थ हो गये हैं, जहां प्रत्येक नागरिक बराबर का मौका पा सकेगा। परमात्मा हमें बुद्धि दे, साहस दे कि हम सभी लोगों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करें।

***अध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके सभी संशोधनों पर राय लूंगा। पहला संशोधन है श्री मुहम्मद इस्माइल का। प्रस्ताव यह है कि:

''(क) प्रस्ताव की दूसरी कंडिका की उप कंडिका (1) हटा दी जाये और उपकंडिका (2) का संख्याक्रम बदलकर उसे उप कंडिका (1) कर दिया जाये।

(ख) इस पर कंडिका (1) के बाद निम्नलिखित उप कंडिका जोड़ दी जाये।

(2) मुसलमानों और अन्य अल्पसख्यकों के लिए आबादी के आधार पर देश की केन्द्रीय एवं प्रांतीय विधान-मंडलों में स्थानों को संरक्षित रखने का जो सिद्धांत है उसकी पुष्टि की जाये और रखा जाये।

(3) इस सभा द्वारा इस संबंध में जो कोई भी निर्णय किया जा चुका हो उसके बावजूद भी विधान के मसौदे के भाग 14 के तथा इससे मिलते जुलते अन्य अनुच्छेदों के प्रावधानों में इस तरह संशोधन कर दिया जाये कि यह बात सुनिश्चित हो जाये कि उपखंड (1) के अनुसार संरक्षित रखे गये स्थान अल्पसंख्यकों के मतदाताओं के निर्वाचन क्षेत्रों से चुने गये उन संप्रदायों के सदस्यों द्वारा ही सदा पूर्ण किये जायेंगे।''

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री लारी के एक-एक पैरे पर अलग-अलग मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''प्रस्ताव की दूसरी कंडिका की उपकंडिका (1) में ''the provisions of'' शब्दों के बाद ''article 67'' शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन नामंजूर रहा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''प्रस्ताव की दूसरी कंडिका की उपकंडिका (1) में 'in the said report' (उक्त रिपोर्ट में) शब्दों के बाद 'with the addition that elections be held under the system of cumulative votes in multiple constituencies and the modification that no seats be reserved for the Scheduled Castes'

(उस परिवर्तन के साथ कि अनेक सदस्यात्मक निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव सामूहिक मतदान की पद्धति के अनुसार होंगे और इस संशोधन के साथ कि अनुसूचित जातियों के लिए कोई संरक्षित स्थान न रखे जायेंगे) शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन नामंजूर रहा।

***अध्यक्ष:** इसके बाद आता है वह संशोधन जिसे पं. ठाकुरदास भार्गव ने पेश किया है।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** (संयुक्तप्रांत : जनरल): मैं समझता हूं प्रस्तावक महोदय, उनके संशोधन को स्वीकार कर रहे हैं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई जे. पटेल:** हां, मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव है कि:

''निम्नलिखित अंश प्रस्ताव में जोड़ दिया जाये:

'1. स्थानों को संरक्षित रखने के और मनोनीतकरण के प्रावधान इस संविधान के प्रारम्भण से दस वर्ष की अवधि तक ही चालू रहेंगे।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

'पं. ठाकुरदास भार्गव के संशोधन द्वारा, जो कि स्वीकृत हो चुका है, संशोधित रूप में मूल प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव संशोधित रूप में स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब सभा कल प्रात: 8 बजे तक के लिए स्थगित होती है।

इसके बाद विधान-परिषद् शुक्रवार ता. 27 मई सन् 1949 के प्रात: 8 बजे तक के लिए स्थगित हुई।

———

Con. VIII.10.49
320

अंक 8
संख्या 10

शुक्रवार,
27 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान-सभा के नियमों (अनुसूची) में कंडिका 4-क की प्रविष्टि..... 551-576

संविधान का प्रारूप..... 576-612

[अनुच्छेद 104 से 123 पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

शुक्रवार, 27 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय, (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अपने देश में नये सिक्कों के जारी करने के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विषय पर क्या आपकी अनुज्ञा से मैं आपका ध्यान आकर्षित कर सकता हूं? हमारी कठिनाई यह है कि इन दिनों भारतीय संसद तो समवेत हो ही नहीं रही है और संविधान-सभा ही सर्वोच्च निकाय है जिसका सत्र हो रहा है। मुझे विश्वास है कि वित्त-विभाग में नये सिक्के चालू करने के पूर्व प्रश्न पर वाद-विवाद हो रहा है और मुझे यह सूचना मिली है कि इस सम्बन्ध में कुछ निर्णय भी कर लिये गये हैं। सिक्के जारी करने का प्रश्न बड़े महत्त्व का है और मुझे यह सूचना मिली है कि नये सिक्कों के आकार प्रकार के प्रति अब तक वित्त समिति पर भी विश्वास नहीं किया गया है। विशेष कर मुझे यह सूचना मिली है कि यद्यपि अशोक स्तम्भ रखा गया है और बादशाह की छाप हटा दी गई है फिर भी नये सिक्कों में अंग्रेजी अक्षरों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अतः श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप कृपा कर इस सदन को इस विषय पर विचार करने का अवसर दें और यदि आवश्यक हो तो इस आशय के लिये माननीय वित्त मंत्री को आमंत्रित करें।

***अध्यक्ष:** इस सदन में हम इस विषय को नहीं ले सकते हैं। यहां हम केवल संविधान तैयार करने के लिये आये हैं और यह प्रश्न, जिसे माननीय सदस्य ने उठाया है इस सदन के विधायी पक्ष का है और मैं यह सुझाव दूंगा कि वे इस विषय को वहीं उठायें और यदि उस सभा का सत्र नहीं हो रहा है तो वे सरकार से इस विषय में बातें कर सकते हैं।

संविधान-सभा के नियमों (अनुसूची) में कंडिका 4-क की प्रविष्टि

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि संविधान-सभा के नियमों की अनुसूची में कंडिका 4 के पश्चात् निम्न कंडिका प्रविष्ट की जाये:
>
> '4-A. Notwithstanding anything contained in paragraph 4, all the seats in the Assembly allotted to the State of Kashmir may be filled by nomination and the representatives of the State to be chosen to fill such seats may be nominated by the Ruler of Kashmir on the advice of his Prime Minister.' ''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

इस सदन के समक्ष इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिये मेरी ओर से वास्तव में बहुत कम शब्दों की आवश्यकता है। काश्मीर उन राज्यों में से है जिसका इस सभा के निर्माण करने के हेतु बने हुए नियमों के अंतर्गत, इस सदन में प्रतिनिधान होना चाहिये। यह प्रतिनिधान किस प्रकार प्राप्त किया जाये इसके सम्बन्ध में नियम बना दिये गये हैं। यद्यपि अक्टूबर सन् 1947 के अन्त से काश्मीर भारतीय अधिराज्य में प्रवेश कर गया था पर उसका प्रतिनिधान नहीं हो पाया था। माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि इन समस्त मासों में काश्मीर की दशा अस्थिर सी रही। काश्मीर के शासक ने स्वयं भारतीय अधिराज्य में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की। राज्य की एक महान् राजनैतिक संस्था ने इसका समर्थन किया और गवर्नर-जनरल ने उसे स्वीकार कर लिया। जैसा कि मैंने कहा था यह स्वीकृति अक्टूबर सन् 1947 के अन्त में किसी समय दी गई थी।

नियमों के लेने के पूर्व मुझे बता देना चाहिये कि उन समस्त राज्यों को, जो भारतीय अधिराज्य में प्रवेश कर चुके हैं, संविधान-सभा के नियमों की अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया है। उनमें से एक राज्य काश्मीर है। साथ ही साथ, सदन के समक्ष संविधान का जो प्रारूप प्रस्तुत किया गया है उसकी प्रथम अनुसूची के भाग 3 में माननीय सदस्यों ने यह देखा होगा कि काश्मीर उन राज्यों में से है जो उस अनुसूची में रखे जायेंगे। परन्तु जहां तक प्रतिनिधान का सम्बन्ध है उन कठिनाइयों के कारण प्रक्रिया में समय-समय पर परिवर्तन हो चुका है जो उन नियमों के परिपालन करने के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई थीं, जिनको आरम्भ में इस सदन में राज्यों को प्रतिनिधि भेजने के लिये बनाया गया था। इस प्रकार का अन्तिम नियम संविधान-सभा के उन नियमों में नियम संख्या 4 पर है जो आजकल प्रवर्तन में है। इस नियम में राज्यों के बांट में आने वाले स्थानों में से आधे से अन्यून स्थानों की पूर्ति तत्सम्बन्धी राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा की जायेगी और शेष के लिये स्वयं शासक द्वारा नाम निर्देशित किये जायेंगे।

जहां तक कश्मीर का इस विषय से सम्बन्ध है, इस राज्य के लिये इन नियमों के अन्तर्गत बांट में आने वाले स्थानों की संख्या चार है, अर्थात् जनसंख्या के प्रत्येक दस लाख पर एक। यदि इस नियम का पालन किया जाता है तो इस संख्या का आधे से अन्यून का निर्वाचन विधान मंडल द्वारा होना चाहिये। काश्मीर के संविधान में, एक विधान सभा है जिसको प्रजा-सभा कहा जाता है। इस सभा के निर्वाचन लगभग दिसम्बर सन् 1946 तथा जनवरी सन् 1947 में हुए और इन निर्वाचनों के समाप्त होते ही यह सभा बनाई गई। इसके दो या तीन माह के पश्चात् एक बैठक हुई जिसको राज्य के आय-व्यय के लेखे को पारित करने के लिये बुलाया गया। यह सब शक्ति हस्तान्तरण करने के पूर्व हुआ और देशी राज्यों की स्थिति में जो परिवर्तन हुआ वह शक्ति हस्तान्तरण के पश्चात्। 15 अगस्त सन् 1947 के पश्चात् काश्मीर अपने पैरों पर खड़ा रहा जब तक कि सन् 1947 के अक्टूबर के अन्त में वह भारत में प्रविष्ट न हुआ। लगभग अप्रैल सन् 1947 ई. से इस प्रजा-सभा की कोई बैठक नहीं हुई। अक्टूबर सन् 1947 से काश्मीर राज्य के पश्चिमी भाग पर जो आक्रमण हुए तथा उसके बाद जो कुछ हुआ उसके कारण वहां बहुत कुछ झगड़े फसाद रहे, इन सब बातों से माननीय सदस्यगण परिचित हैं ही। बड़ी कठिन परिस्थिति रही।

तब से इस सभा की कोई सत्ता नहीं रही। शायद उसकी सत्ता केवल कागजी ही है, वास्तव में तो वह मृतवत् ही है। अक्टूबर सन् 1947 में काश्मीर राज्य भारत में प्रविष्ट हुआ। इसके पश्चात् ही महाराज ने एक आपाती प्रशासन की स्थापना की जिसका मुखिया शेख मुहम्मद अब्दुल्ला हुआ जो काश्मीर के सर्वाधिक लोकप्रिय पक्ष का नेता था। मार्च 1948 में उन्होंने इस आपाती प्रशासन के स्थान में एक सरकार बनाई जिसको उन्होंने लोकप्रिय अन्तर्वर्ती सरकार का नाम दिया जिसमें एक मंत्रिमंडल भी है। उन्होंने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री का पद स्वीकार करने के लिये आमंत्रित किया और अपने सहकारी पसन्द करने का कार्य भी उन पर ही छोड़ा। संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांतानुसार सरकार को कार्य करना था। इस नयी सरकार की स्थापना करते समय जो उद्घोषणा उन्होंने की थी उसमें उन्होंने प्रजा-सभा का कोई उल्लेख नहीं किया, परन्तु शान्ति स्थापित होने के पश्चात् ही इस नई सरकार को एक राष्ट्रीय सभा बुलाने के लिये आमंत्रित किया जो राज्य के लिये संविधान बनाने के कार्य में अग्रसर हो। वर्तमान काल में प्राचीन प्रजा-सभा मृतवत् है, नई राष्ट्रीय सभा अस्तित्व में न आ पाई क्योंकि इस सीमा तक शान्त और प्रशान्त-वातावरण ही न हो पाया तथा इसका कारण आर्थिक तथा राजनैतिक साम्य भी था, जिसके द्वारा इस राष्ट्रीय सभा को बुलाना न्यायमुक्त हो सकता है।

इन परिस्थितियों में वर्तमान तथ्यों पर विचार करते हुए हमें कोई ऐसी रीति पसन्द करनी है जिसके द्वारा इस सभा में हम उनके प्रतिनिधियों को ला सकें। मैं यह समझता हूं कि माननीय सदस्य इस बात को स्वीकार करेंगे कि काश्मीर जो कि अब भारत का एक अंग है उसके प्रतिनिधि इस सभा में होने चाहियें। मैं चाहता था कि उसके प्रतिनिधि इस समय से बहुत पूर्व आ जाते पर इसमें कई रुकावटें हुईं, पर आज हम इस स्थिति में हैं कि इस सदन में चार व्यक्तियों को ला सकते हैं जो कश्मीर की जनसंख्या के समुचित प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूं वह यह है कि यद्यपि किसी दशा में भी इनमें से दो प्रतिनिधि तो वर्तमान नियमों के अन्तर्गत वे व्यक्ति होने चाहियें जिनका शासक द्वारा नाम-निर्देश किया जायेगा पर हम यह सुझाव रख रहे हैं कि चारों व्यक्तियों का अपने प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर शासक द्वारा नाम-निर्देश किया जाये। दैवयोग से प्रधानमंत्री वह व्यक्ति है जो राज्य की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था का प्रतिनिधान करता है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी याद रखना है कि प्रधानमंत्री और उसकी सरकार का आधार प्रजा सभा नहीं है, जो मर चुकी है वरन् उनका आधार यह तथ्य है कि वे राज्य के सबसे बड़े राजनैतिक दल का प्रतिनिधान करते हैं। अतः केवल यही ठीक है कि इस दल का मुखिया जो प्रधानमंत्री भी है उसे इस विषय पर कि संविधान-सभा में काश्मीर के उचित प्रतिनिधि कौन हों शासक को मंत्रणा देने का विशेषाधिकार हो। इसी कारण हमने यह सुझाव रखा है। वर्तमान परिस्थितियों में यही सब से अच्छी रीति है जिसका पालन किया जा सकता है। इससे इस संविधान सभा तथा काश्मीर की सरकार और जनता में कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध हो जायेगा। ये प्रतिनिधि यहां आयेंगे और इस सदन की आगे की कार्यवाही में भाग लेंगे। जैसा कि सदस्यों को विदित होगा प्रान्त

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

और राज्य सम्बन्धी अधिकांश अनुच्छेदों पर अभी विचार होगा और यही ठीक है कि काश्मीर उन वाद-विवादों में भाग ले जिनमें इन अनुच्छेदों को अन्तिम रूप दिया जायेगा।

अब मैं और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं। फिर भी, एक संशोधन को विचार में रखते हुए, जिसकी कि सूचना दी जा चुकी है, मैं एक छोटी सी बात स्पष्ट करना चाहूंगा। यह सुझाया गया है कि काश्मीर के स्थान में हम जम्मू और काश्मीर रखें। इसमें संदेह नहीं कि 'जम्मू और काश्मीर' राज्य की अपेक्षाकृत सुन्दर व्याख्या करते हैं। पर मैंने इस विशिष्ट प्रस्ताव में काश्मीर शब्द का क्यों प्रयोग किया है इसका कारण यह है कि समस्त विधि सम्बन्धी अधिनियमों तथा नियमों में, जो अब तक बने हैं तथा जिनमें इस विशिष्ट राज्य का उल्लेख करना पड़ा है, इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या काश्मीर शब्द में अथवा उसके अर्थ में दोनों जम्मू और काश्मीर निहित हैं?

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** काश्मीर का अर्थ जम्मू और काश्मीर से है। उदाहरणार्थ भारतीय सरकार के अधिनियम में यदि आप उस अनुसूची को देखें जिसमें राज्यों के नाम दिये गये हैं तो उस में यह मिलेगा कि इस राज्य को काश्मीर कहा गया है। संविधान के प्रारूप की अनुसूची में काश्मीर के रूप में इसका उल्लेख है। संविधान-सभा के नियमों की संलग्न सूची में इसको काश्मीर ही कहा गया है। अत: मैं समझता हूं कि इन परिस्थितियों में केवल काश्मीर शब्द का प्रयोग ही सर्वोत्तम होगा तथा संशोधन और जो शब्द मैंने प्रयुक्त किया है उन दोनों का बिल्कुल एक ही अर्थ है। अत: मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि राज्य के इस नाम काश्मीर को वे रहने दें क्योंकि यदि आप इसे बदलते हैं तो हमें और बातों को बदलना होगा जो हमारी विधियों तथा नियमों में पहले से हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** क्या मैं माननीय सदस्य के भाषण में हस्तक्षेप कर सकता हूं? प्रस्ताव में यह दिया हुआ है कि काश्मीर को चार स्थान बांट में दिये जायेंगे और उनको इस संविधान-सभा में भेजा जायेगा। माननीय सदस्य ने अभी यह स्पष्ट किया है कि जैसा कि अन्य विधियों तथा अधिनियमों में दिया हुआ है 'काश्मीर' शब्द का अर्थ जम्मू और काश्मीर है। यह सोचा गया है कि प्रतिनिधि चार हों। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इन चार प्रतिनिधियों के इस प्रकार नाम निर्देशित किये जायेंगे कि जम्मू और लद्दाख का भी इनके द्वारा प्रतिनिधान हो?

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** इस प्रस्ताव में 'काश्मीर' का अर्थ है समस्त जम्मू और काश्मीर और उस राज्य की सरकार में जो अब तक है उस पर सम्पूर्ण प्रभुत्व। विचार यह है कि चार व्यक्ति छांटे जायें जिन पर समस्त राज्य के हितों के प्रतिनिधान करने का विश्वास किया जाये—केवल जम्मू और लद्दाख का ही नहीं वरन् मैं विश्वास करता हूं कि ऐसा व्यक्ति जो मीरपुर—जम्मू क्षेत्र के हितों का भी प्रतिनिधान करे—यदि प्रधानमंत्री उसे ऐसा व्यक्ति समझकर उसका नाम निर्देशन करना पसन्द करता है कि

वह समस्त राज्य के हितों का प्रतिनिधान कर सकता है तो ऐसे किसी व्यक्ति की सिफारिश करने में उसे कोई रुकावट नहीं होगी। अतः जो कुछ करने का हम विचार कर रहे हैं वह यही है। हम ऐसी किसी बात को नहीं मानते हैं। जो अभी-अभी सैनिक कार्यों के निलम्बन करने के फलस्वरूप हो गई हो। हम जो कुछ चाहते हैं वह यह है कि सभा में उन व्यक्तियों को लाया जाये जो समूचे राज्य का प्रतिनिधान करेंगे। और हमारी सम्मति में प्रधानमंत्री, जो सरकार का प्रतिनिधान करता है तथा सबसे बड़े राजनैतिक दल का भी प्रतिनिधान करता है, सर्वोत्तम व्यक्ति है जो शासक को ऐसी सिफारिश कर सकता है जिस पर वह नाम निर्देशित करेगा। श्रीमान्, अभी मैं और कुछ अधिक नहीं कहना चाहता हूं। मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं अच्छे तर्कों से आधार पर इस प्रस्ताव का विरोध करने की प्रार्थना करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन पेश हो जाने के पश्चात् आप इसका विरोध कर सकते हैं। कुछ संशोधनों की सूचना मिल चुकी है और...

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, क्या आप मुझे यही और अभी अपने विरोध प्रकट करने की आज्ञा देंगे? मैं संशोधनों के लिये नहीं ठहरना चाहता हूं क्योंकि संशोधनों से मेरे विरोध का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि हमें प्रस्ताव पर जो संशोधन है उनको लेना चाहिये। जब संशोधन पेश किये जा चुकेंगे और अब समूचे प्रश्न पर विचार-विमर्श होगा उस समय मौलाना अपने विचार प्रकट कर सकते हैं।

श्री कामत अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): शाब्दिक होने के कारण तथा श्री आयंगर ने जो कुछ अभी कहा है उस पर विचार करते हुए मैं उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं, पर चूंकि मैं इस प्रस्ताव पर बोलना चाहता हूं मैं आशा करता हूं कि बाद में आप मुझे दृष्टि में लाने की कृपा करेंगे।

***अध्यक्षः** मैं कोई वचन नहीं देता हूं।

प्रो. शाह अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***मौलाना हसरत मोहानीः** मुझे यह संकेत करना है कि मैं इस रूप में इस प्रस्ताव का विरोध करना चाहता हूं कि आप इस समय उन बातों को पेश करने का अवसर दें।

***अध्यक्षः** आप उस समय इस प्रस्ताव का विरोध कर सकते हैं। इस समय तो हम पहले संशोधनों को लेंगे। उनको पेश किया जायेगा और उसके पश्चात् आप जो चाहें कह सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में से 'all' शब्द को निकाल दिया जाये।''

[प्रो. के.टी. शाह]

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में जहां-जहां 'Kashmir' शब्द आया है उसके पूर्व 'Jammu and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में जहां 'may be' शब्द प्रथम बार आया है उसके स्थान में 'may, pending the holding of a plebiscite, under the auspices of the United Nations' Organisation, and without prejudice to the result of that plebiscite be' शब्द रखे जायें।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by nomination' शब्दों के स्थान में 'be elected by the Praja Sabha of the State of Jammu and Kashmir' शब्दों को रखा जाये।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'nominated' शब्द के स्थान में 'elected' शब्द रखा जाये।''

''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by the Ruler of Kashmir on the advice of his Prime Minister' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

अध्यक्ष महोदय, जो कार्य मैंने अपने ऊपर लिया है उसकी गम्भीरता तथा कोमलता के प्रति मैं पूर्णरूप से जागरूक हूं।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** क्या मैं इस संशोधन के माननीय प्रस्तावक से प्रार्थना कर सकता हूं कि उनके संशोधनों के बाद प्रस्ताव का क्या रूप होगा उसे सदन के समक्ष पढ़ कर सुनायें।

***प्रो. के.टी. शाह:** बहुत अच्छा, वह इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''Notwithstanding anything contained in para 4, the seats in the Assembly allotted to the State of Jammu and Kashmir may, pending the holding of a plebiscite under the auspices of the United Nations, Organisation, and without prejudice to the results of that plebiscite, be filled by election by the Praja Sabha of Jammu and Kashmir and the representatives of the State to be chosen to fill such seats may be elected.''

श्रीमान्, मैं कह रहा था कि इस संशोधन को प्रस्तुत करते हुए और उन तर्कों को प्रस्तुत करते हुए जो इस सदन को अपने विचारानुकूल बनाने के लिये मुझे उसके समक्ष रखने हैं मैंने जो कार्यभार अपने ऊपर लिया है उसकी गंभीरता तथा कोमलता से मुझसे अधिक और कोई व्यक्ति परिचित नहीं हो सकता है। इस कार्य को गुरुता तथा कोमलता से इस प्रकार परिचित होने पर भी श्रीमान्, मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैं किसी प्रकार से भी किसी ऐसे पद अथवा वाक्य अथवा भावभंगी अथवा ध्वनि का प्रयोग नहीं

करूंगा जो तर्कों में किंचित मात्र आवेग तथा विरोध का आभास कराये। मैं जानता हूं कि इस विषय को एक दीर्घकालीन विरोध द्वारा बहुत गहरा रंगा गया है। श्रीमान्, मैं इस बात से भी परिचित हूं कि इस विषय पर तीव्र मनोमालिन्य होगा, अतः जहां तक मेरे बस की बात है मैं आपको पुनः आश्वासन देता हूं कि मैं एक भी ऐसा वाक्य प्रयोग नहीं करूंगा और न कोई ऐसा हाव-भाव दिखाऊंगा जो इस सदन की प्रतिष्ठा के विरुद्ध किसी प्रकार का आवेग उत्पन्न करे तथा जो इस विषय की गम्भीरता से परे हो।

अपने तर्कों को अग्रसर करने के पूर्व, क्या मैं विनम्रतापूर्वक इस विषय पर भाषण देने के लिये अपने प्रमाण-पत्रों के रूप में कुछ कह सकता हूं।

श्रीमान्, अब तक लगभग 15 वर्ष अथवा इससे भी अधिक समय से मैं काश्मीर राज्य तथा उसके शासन से परिचित रहा हूं। इस विषय से सम्बन्धित मुख्य दलों से मैं परिचित हूं और उनके सहयोग में काम करता रहा हूं। चाहे वह कितने ही तुच्छ रूप में क्यों न हो पर जिस दिन से वह प्रारूप के रूप में था उसी दिन से तत्कथित 'नये काश्मीर' की रूपरेखा बनाने में मैंने सहायता दी है, जबकि वर्तमान प्रधानमंत्री बम्बई पधारे थे और पन्द्रह दिन तक इस विषय में मुझसे परामर्श करने की कृपा की थी। पूर्ववर्ती काश्मीर सरकार के योजना निर्माण कार्य में परामर्शदाता बनने के निमंत्रण प्राप्त करने का भी गौरव मुझे मिला था और इस सम्बन्ध में वहां की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिये, जनता को पहचानने के लिये, प्रशासन से परिचय प्राप्त करने के लिए मैं काश्मीर राज्य में गया और वह भी केवल एक यात्री के दृष्टिकोण से नहीं वरन् उक्त विषयों के एक निकटस्थ विद्यार्थी के दृष्टिकोण से। सम्भव है किताबों का कीड़ा होने के नाते मुझे पहले इन बातों से परिचय प्राप्त करने का कुछ अवसर मिला था।

श्रीमान्, कदाचित् यह मेरा दुर्भाग्य है कि गत कुछ वर्षों की प्रगति के पश्चात् भी मैं इस विषय से सम्बन्धित रहा और इस तर्क को प्रस्तुत करते समय मैं आपके समक्ष कुछ ऐसे विचार रखने का प्रयत्न करूंगा कि जिनसे मेरा विश्वास है कि आपको यह प्रकट हो जायेगा कि इस विषय पर मैं जो कुछ कहता हूं वह समाचार-पत्र की शीर्ष रेखाओं में केवल थोथे ज्ञान के आधार पर नहीं है वरन् वह इस विषय के जिस पर हम विचार कर रहे हैं कुछ गम्भीर अध्ययन, निकट परिवेक्षण तथा वैयक्तिक ज्ञान के आधार पर है।

श्रीमान्, इस भूमिका के पश्चात् अब मुझे उस संशोधन की ओर अग्रसर होने दीजिये जिसे मैंने सुझाया है। श्रीमान्, सर्वप्रथम मेरा सुझाव यह है कि 'all' शब्द को निकाल दिया जाये। 'all' के पश्चात् definite article 'The' तो रहेगा ही। अतः इस पद के प्रयोग किये बिना भी उसमें 'all' निहित हो ही जायेगा। यह केवल शाब्दिक परिवर्तन ही नहीं है जिसे कि मैं सुझा रहा हूं। जब मैं अपने उद्देश्य को आगे विस्तारपूर्वक प्रकट करूंगा उस समय कदाचित् आप देखेंगे कि इस विचार में, कि 'all' शब्द निकाल दिया जाये, कुछ सार है।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, इसके पश्चात् मेरा अगला सुझाव है कि राज्य का नाम बदल दिया जाये और उसको और अधिक रूप में ''जम्मू और काश्मीर का राज्य'' कहा जाये। राज्य का सरकारी नाम यही है और इस प्रकार के सरकारी लेख में राज्य के सही नाम को हम क्यों न रखें इसके विरुद्ध मुझे कोई तर्क नहीं सुझाई देता है। श्रीमान्, मैं आपको पुनः आश्वासन देता हूं कि यह पदावली अथवा नाम अथवा केवल शाब्दिक संशोधन का विषय नहीं है। जैसा कि मैं आपको बताऊंगा इस विषय में कुछ ऐसा महत्त्व है जो इस बात को बहुत अधिक आवश्यक बना देता है कि आप इस प्राचीन राज्य के नाम के एक भाग को न छोड़ें और यहां तक कि उसके प्रथम भाग को तो न छोड़ें।

केवल उसे कश्मीर राज्य कहने से तो आप एक अनर्थ अथवा एक त्रुटि को स्थायी रूप दे रहे हैं जो कि माननीय प्रस्तावक महोदय के अनुसार प्रकट रूप से सभी अभिलेखों में हो गई है। श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि यदि एक बार हमने कोई गलती की, यदि हम राज्य के एक भाग के महत्त्व से—उस भाग से सम्बन्धित महान् आत्माओं के महत्त्व से प्रभावित हो गये तो क्या यह इस बात के लिये कोई तर्क है कि हम उस राज्य के दूसरे भाग को, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, भूल जायें और इस सरकारी अभिलेख मैं उस त्रुटि को स्थायी बनाये रखें और केवल ''काश्मीर'' ही कहें जबकि हमारा वास्तविक आशय ''जम्मू और काश्मीर'' से है?

श्रीमान्, यह मान लिया गया है, यह एक साधारण ज्ञान का विषय है तथा यह एक ऐसा तथ्य है जिसे इस संकल्प के माननीय प्रस्तावक महोदय तक ने अस्वीकार नहीं किया है कि राज्य का सही नाम यही है। और वे लोग जिन्हें 'काश्मीर छोड़ो' के सम्बन्ध में राज्य के वर्तमान प्रधानमंत्री का संघर्ष याद है यह अनुभव करेंगे कि जो घटनाचक्र हुआ है उसमें यह हो सकता है कि यदि आप इसी रूप में इसका नाम रखेंगे तो जहां-जहां यह नाम प्रयुक्त होने दिया जायेगा वहां इससे दुःखद मिथ्या भ्रम हो सकता है और हमारे सरकारी अभिलेख कुरूप हो जायेंगे।

श्रीमान्, आप बाद में देखेंगे कि, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने कहा है कि यह विषय केवल शाब्दिक परिवर्तन का है, यहां यह बात नहीं है। इस बात में एक महत्त्व है जिसके प्रति मैं आशा करता हूं कि यह सदन जैसे हम आगे अग्रसर होंगे वैसे उसे समझ जायेगा। जम्मू और काश्मीर के राज्य को जम्मू और काश्मीर वे रूप में ही ठीक-ठीक कहा जाता है—यह कहना चाहिये कि एक ही राज्य क्षेत्र के अन्दर उसी प्रकार से दो राज्य हैं जैसे कि प्रथम स्टूआर्ट के अधीन इंग्लैंड और स्कॉटलैंड दो राज्य थे। उसका शासक जेम्स स्कॉटलैंड का छठा शासक और इंग्लैंड का प्रथम शासक था। एक ही व्यक्ति दो मुकुट धारण करता था। जम्मू और काश्मीर लगभग सन् 1933 के साम्प्रदायिक विप्लव तक समस्त व्यवहार्य प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये वस्तुतः न्यूनाधिक रूप में दो स्पष्ट भागों में विभाजित था यद्यपि थे वे दोनों एक ही शासक के अधीन।

मुझे विश्वास है कि सदन के समक्ष यह सिद्ध करने के लिये, कि नाम का विषय केवल शाब्दिक संशोधन का विषय ही नहीं है, वरन् उसके पीछे एक महत्त्व है—घटनाचक्र

में एक ऐसा महत्त्व जो केवल इस सदन तथा इस देश तक ही सीमित नहीं है, मैं बहुत कुछ कह चुका हूं। इसका प्रभाव इस देश के बाहर भी है जैसा कि मैं बाद में बताने का प्रयत्न करूंगा। अतः हमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग में बड़ा सजग रहना चाहिये जिससे कि हमारा नाम, हमारी समस्त पदावली परिस्थितियों तथा सही तथ्यों के अनूकूल हो।

श्रीमान्, इसके पश्चात् मैं एक बहुत ही कठिन तथा कोमल विषय पर आता हूं और वह यह है कि संयुक्तराष्ट्र संघ के तत्वावधान में जनमत लेने तक लम्बित...

***डा. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस समय मैं एक औचित्य प्रश्न उठाना चाहता हूं। इस प्रस्ताव में काश्मीर राज्य को जो प्रतिनिधान देना प्रस्तावित किया जा रहा है उसका जनमत तथा संयुक्तराष्ट्र संघ से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं समझता हूं कि इस संशोधन को नियम विरुद्ध घोषित किया जाये।

***अध्यक्षः** इस औचित्य प्रश्न पर माननीय सदस्य को क्या कहना है?

***प्रो. के.टी. शाहः** भारत के सर्वोच्च प्राधिकारी की घोषणा भी यही है कि जिस दिन प्रवेश करने पर सहमति प्रकट की गई थी उस दिन महाराजा जो कि पूर्णरूप से संवैधानिक प्रमुख था उसके द्वारा किया गया राज्य का प्रवेश जनमत के फल द्वारा समर्थन के अधीन था।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह बिल्कुल झूठ—शत-प्रतिशत झूठ है। प्रो. शाह द्वारा ऐसा कथन सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ है, अचम्भा हुआ है मैं चकित हुआ हूं।

***प्रो. के.टी. शाहः** यदि मैं गलत कह रहा हूं तो वह सही किया जा सकता है। हमने स्वयं संयुक्त राष्ट्र के जनमत लेने के निर्णय को स्वीकार कर लिया है और एक प्रशासक नियुक्त कर दिया गया है। यदि मैं गलती पर हूं तो मैं आपके अधिकार में हूं।

***अध्यक्षः** बात यह है कि क्या प्रवेश किसी शर्त के अधीन था। जैसा कि मुझे प्रधानमंत्री से ज्ञात हुआ है प्रवेश बिना किसी शर्त के अधीन तथा सम्पूर्ण है। जनमत के फलस्वरूप इस प्रवेश का फल बदला जा सकता है, पर प्रवेश पूर्ण तथा अन्तिम है। अतः प्रवेश का प्रश्न ही नहीं उठता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** यह सुझाव मैं कदापि नहीं दे रहा हूं कि जम्मू और काश्मीर के प्रतिनिधि यहां नहीं आयें।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** डा. पट्टाभि सीतारमैया ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है वह इस रूप में विषय से अति संगत प्रतीत होता है कि यह संकल्प प्रवेश के उस अधिनियम के फलस्वरूप है जिसको भारतीय सरकार तथा संविधान-सभा ने स्वीकार कर लिया है और इस सम्बन्ध के कारण ही हमारी सभा में काश्मीर और जम्मू राज्य के प्रतिनिधियों को लाने के लिये उपबंध बना रहे हैं। जनमत से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि प्रधानमंत्री ने संकेत किया है प्रवेश पूर्णरूप से तथा महाराजा की ओर से निष्कपट

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

रूप से हो गया है। सम्भव है प्रवेश का फल जनमत द्वारा पलट दिया जाये—पर इस बात का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है जिस पर हम विचार कर रहे हैं।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि संशोधन का यह भाग नियम विरुद्ध है। हमें यह देखना है कि इस प्रस्थापना से इसका कोई सम्बन्ध भी है। यदि मुख्य प्रस्थापना से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो इस संशोधन को नियम विरुद्ध घोषित कर देना चाहिये। जो सूचना माननीय प्रधानमंत्री ने दी है तथा जो सूचना श्रीमान्, आपने अनुग्रहपूर्वक दी है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर का प्रवेश बिना किसी शर्त के हुआ है। अब जबकि प्रवेश बिना किसी शर्त के है तो जनमत के प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुख्य प्रस्थापना में कहा गया है कि काश्मीर राज्य के बांट में आने वाले सभा के स्थानों की पूर्ति नाम-निर्देश द्वारा की जायेगी और इन स्थानों की पूर्ति के लिये राज्य के जो प्रतिनिधि चुने जायेंगे उनका शासक द्वारा नाम-निर्देश किया जायेगा। इसके लिये कोई अवधि नहीं है कोई शर्त नहीं है। ऐसी कोई शर्त नहीं रखी जा सकती है क्योंकि जैसा कि हमें अभी बताया गया है प्रवेश बिना किसी शर्त के हुआ था। किसी ऐसी बात को सोचकर जिसका अस्तित्व नहीं है और जो इस सदन की सूचना में लाये गये तथ्यों द्वारा आवश्यक नहीं है, मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि यह संशोधन अवश्य ही नियम विरुद्ध है।

***अध्यक्ष:** मैं इस बात को मानने के लिये उद्यत हूं कि डा. पट्टाभि सीतारमैया द्वारा उठाया गया औचित्य प्रश्न सुदृढ़ तथा मान्य है। काश्मीर का प्रवेश बिना किसी शर्त के था और यहां हमारा जिस बात से सम्बन्ध है वह उस राज्य का इस सभा में प्रतिनिधान है। जनमत कब होगा और उसका क्या फल होगा इससे यहां हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा सम्बन्ध तो केवल इस सदन में उस राज्य के प्रतिनिधान से है। जो रीति सुझाई गई है वह प्रस्तावक के पक्ष में है। उस रीति पर माननीय सदस्य अपना संशोधन पेश कर सकते हैं पर उन सदस्यों की स्थिति के सम्बन्ध में कोई शर्त नहीं रख सकते हैं जो इस सदन में भेजे जायेंगे। उनकी स्थिति तथा पदावधि पर बिना किसी शर्त के लगाये वे इस सदन में उसी प्रकार आसन ग्रहण करेंगे जैसे अन्य सदस्य। अत: संशोधन का वह भाग नियम विरुद्ध घोषित किया जाता है।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं आपके नियम निर्देश को शिरोधार्य करता हूं, अत: संशोधन के अन्य भागों पर ही अपने आपको सीमित रखूंगा। इससे संशोधन को क्षति अवश्य होगी कम से कम इस रूप में कि वह मेरे तर्क का एक पूर्ण अंग था। फिर भी जितना मैं कर सकता हूं उतना अपने संशोधन के इस महत्त्वपूर्ण अंग के निकाल दिये जाने पर भी अपने तर्क को स्वयं सम्पूर्ण बनाऊंगा।

श्रीमान्, आगे के संशोधन में यह सुझाया गया है कि प्रतिनिधियों का चुनाव जम्मू और काश्मीर की प्रजा सभा द्वारा हो। श्रीमान्, यह एक स्वीकृत तथ्य है कि जैसा कि माननीय प्रस्तावक महोदय ने स्वयं घोषित किया है कि राज्यों का प्रतिनिधान कुछ निर्वाचन द्वारा और कुछ शासक द्वारा नाम-निर्देशित करने से प्राप्त किया जाता है। और फिर प्रवेश

तिथि से इस वर्तमान सुझाव तक कि प्रतिनिधियों को चुन लिया जाये हमने उन्नीस माह अथवा इससे अधिक समय बीत जाने दिया है। श्रीमान्, मैं जानता हूं कि ऐसी परिस्थितियां तथा प्रगति रही हैं वजन के कारण इस सभा में काश्मीर का प्रतिनिधान प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है।

जहां लोकप्रिय विधान मंडल थे उनको आधे प्रतिनिधियों का निर्वचन करने दिया गया, शेष आधों का शासक द्वारा नामनिर्देश किया गया। इस विषय में उस कल्याणकारी सिद्धांत को तिलांजलि क्यों दी जा रही है? माननीय सदस्य ने यह कहा ही है कि काश्मीर की प्रजा-सभा का निर्वाचन सन् 1946-47 में हुआ था अतः वह अब तक अपने सामान्य रूप में वर्तमान है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या यह वर्तमान है? उसमें कितने सदस्य है?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह हो सकता है कि समस्त सदस्य उस क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत न हों जहां तक कि उसका शासक के लेख द्वारा प्रसार होता है। यह कम से कम इस पारिभाषिक स्थिति में परिवर्तन नहीं करता है कि जम्मू और काश्मीर के विधायी निकाय की सत्ता है और भविष्य में इन विषयों में जिस उदाहरण का हमने पालन किया है उसके अनुसार इस निकाय को कम से कम आधे सदस्यों के निर्वाचन करने का अधिकार है मैं नहीं समझ पाता हूं कि केवल कश्मीर के लिये इसका क्यों त्याग किया जाये।

मूल प्रस्ताव में कश्मीर के सब प्रतिनिधियों का नाम-निर्देशित किया जाना अपेक्षित है और वह भी प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर। हमने यह मान लिया है कि वह सरकार अथवा वह प्राधिकारी काश्मीर की जनसंख्या के बहुमत का प्रतीक है। यदि नये निर्वाचन होते तो यह अवश्यमेव स्पष्ट प्रकट हो जाता। पर परिस्थतियां बदल गई और राष्ट्रीय पक्ष प्रबल हो गया। सदन को यह तथ्य याद रखना चाहिये कि काश्मीर और जम्मू दोनों को मिला कर उनकी जनसंख्या में लगभग 76 प्रतिशत मुसलमान और 24 प्रतिशत डोगरा तथा अन्य गैर-मुस्लिमों को मिलाकर हिन्दू हैं। यह तो इस सदन को अपनी बुद्धिमानी से निर्णय करना है कि जनसंख्या के इस अनुपात के होते हुए और इस अरसे में जो कुछ घटनायें हुई हैं उनके होते हुए क्या यह सम्भव है कि, जब स्वयं सीमाप्रांत संकट में है और जबकि यद्यपि 'युद्ध रोकने' की घोषणा करने पर भी संधिपत्र पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं हुए हैं और राज्य में शान्ति नहीं हो पाई है, ठीक-ठीक आधार पर निर्वाचन हो सके। काश्मीर को जो संकट है, अथवा काश्मीर में किसी भयंकर दुर्घटना के कारण भारत को जो संकट है उनको मेरे शब्दों द्वारा कहे जाने की अपेक्षा इस सदन की कल्पना पर छोड़ना अच्छा है।

यद्यपि इस समय इस विषय को जटिल बनाने का मैं इच्छुक नहीं हूं पर जो परिणाम हो सकते हैं उनकी गुरुता मुझे इस सदन को बतानी चाहिये। इस सदन के समक्ष यह प्रश्न रखने के लिये मैं बाध्य हूं कि यदि हम कुछ निर्वाचन द्वारा और कुछ शासक की इच्छानुसार नाम-निर्देशन द्वारा निर्वाचन की प्रथा को त्यागते हैं न कि प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर शासक द्वारा सबका नाम निर्देशन जो यहां अपेक्षित हैं तो यह विषय इस सदन के

[प्रो. के.टी. शाह]

निर्णय का है। मैं यह सुझाव देने के लिये प्रेरित हुआ हूं कि वातावरण की असामान्य परिस्थिति के कारण सबका निर्वाचन हो। दूसरे राज्यों में जैसा सामान्य तथा शान्त वातावरण है यदि इस राज्य में भी वही वातावरण होता, यदि इस विषय में किसी तीसरे दल के बलात् प्रवेश द्वारा परिस्थिति को इतना जटिल नहीं बनाया जाता तो मैं भी उसी पूर्वोदाहरण का पालन करता और इस बात की अपेक्षा करता कि कम से कम कुछ प्रतिनिधि लोक प्रतिनधि हों जिनका उचित रूप में उनके प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचन हो। परन्तु वहां आज जैसी परिस्थिति है तथा जो परिस्थितियां वहां उत्पन्न हो गई हैं उनके अनुसार समस्त लोक प्रतिनिधियों का निर्वाचन होना चाहिये। मेरा यह निवेदन है। जब मैं यह कहता हूं कि हम प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों अथवा न्याय के विचार अथवा दूरदर्शिता अथवा बुद्धिमानी का इस विषय में परित्याग नहीं करेंगे यदि हम यह कहें कि इस सदन के सब प्रतिनिधियों को काश्मीर की जनता और केवल काश्मीर की जनता ही निर्वाचन करे तो मैं बहुत कुछ अधिक नहीं कह रहा हूं। यदि इस पक्ष का यह दावा है कि वह काश्मीर के लोगों के एक बहुत बड़े वर्ग तथा समस्त काश्मीर के लोगों का प्रतिनिधान करता है तो इस बात से डरने का कोई कारण नहीं है कि वे अपनी इच्छाओं के अनुसार अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सकते हैं अत: प्रतिनिधियों के निर्वाचन का न कि नाम-निर्देशन का जो सुझाव मैं रख रहा हूं उसे उन्हें नहीं टालना चाहिये।

इस विषय में मैं इस ओर संकेत करने के लिये विवश हूं कि विगत साढ़े तीन वर्ष से जम्मू और काश्मीर के इतिहास में होने वाली प्रगतियों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। आपको उस आन्दोलन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये जो फरवरी सन् 1946 ई. में आरम्भ किया गया था और जिसमें उत्तरदायित्वपूर्ण पक्ष के नेता ने ''कश्मीर छोड़ो'' का युद्ध छेड़ा था जिसके फलस्वरूप घटनाओं में प्रगति हुई और तब से जो कठिनाइयां हुई उनका प्रादुर्भाव हुआ। मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह सदन पक्ष का किसी ऐसी बात में साथ दे जो इस प्रकार की प्रतीत हो कि मानो वह किसी एक व्यक्ति की इच्छाओं के प्रति समर्पण हो चुकी हो कि तब तक कुछ नहीं हो सकता जब तक कि महाराजा का निष्कासन न हो अथवा उसको पूर्ण शक्ति न दी जाये। उसे काश्मीर की जनता का पूरा विश्वास प्राप्त है या नहीं यह बात तो अभी सिद्ध होने को शेष है। मैं जानता हूं कि उसका अनुसरण करने वाले बहुत होंगे। पर साथ ही साथ यदि आप संदेहरहित प्रमाण चाहते हैं तो ऐसी कोई बात नहीं है कि सीमित मताधिकार के अन्तर्गत हो जो कि प्रचलित है आप निर्वाचन के लिये क्यों नहीं निमंत्रण भेजें। यदि आप वयस्क मताधिकार रखते हैं तो और भी अच्छा है। परन्तु सन् 1946 के सीमित मताधिकार के अन्तर्गत भी यदि आप निर्वाचन करें तो आपको सच्चे लोक-प्रतिनिधि मिल जायेंगे।

आपको यह भी नहीं भूलना चाहिये कि जो घटनायें वहां हुईं हैं उनसे अन्य देशों तथा पड़ौसी और बाहर के अधिराज्यों में रुचि उत्पन्न हो गई है। ऐसा होने पर हमारे अकेले की ओर से किये गये निर्णय को बिना संदेह के वे नहीं मानेंगे। यदि आप पुन: शान्ति स्थापित करना चाहते हैं, यदि आप अपने पड़ौसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं तो आपको उन्हें यह कहने के लिये व्यर्थ के अवसर नहीं देने चाहियें कि आप ऐसा

आकार प्रकार खड़ा करने जा रहे हैं और ऐसा काम कर रहे हैं जिनके द्वारा आपकी खुद की घोषणायें और यहां तक कि दूसरे के जो कुछ भी हित हो सकते हैं वे सब संकट में आ जाते हैं। यदि हमारे देश के उज्जवल नाम पर तथा उसके इस दावे पर कलंक लगने जा रहा है। कि वह सदैव जनता अथवा उन लोगों का समर्थक है जो शोषित है तो मैं समझता हूं कि यह मांग करना कुछ अधिक नहीं है कि इस विषय में सबके सब प्रतिनिधियों का निर्वाचन हो और इस सदन में उस राज्य के हितों के प्रति जिस समय हम संविधान के उस भाग पर पहुंचे उस समय वे जो कुछ भी कहें वह काश्मीर जनता का सच्चा प्रतिबिम्ब हो।

***अध्यक्षः** आपका संशोधन यह है कि नया निर्वाचन हो और सभा प्रतिनिधियों का निर्वाचन करे।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं केवल यही चाहता हूं कि उनका निर्वाचन हो।

***अध्यक्षः** आप यह भी कहते हैं कि सभा प्रतिनिधियों को भेजे। यदि ऐसा है तो साधारण निर्वाचन का प्रश्न कैसे उठता है?

***प्रो. के.टी. शाहः** मै कहता हूं कि सभा द्वारा उनका निर्वाचन हो।

***अध्यक्षः** यदि वह सभा का शेषांश हो तो क्या अन्तर है?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं सुझाव रखता हूं कि वह अच्छा होगा यदि वयस्क मताधिकार द्वारा उनका निर्वाचन हो। पर यह हो नहीं सकता। यदि आप कश्मीर के लोकमत का सच्चा प्रतिबिम्ब प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको यह प्रजासभा द्वारा करना चाहिये जो राज्य का विधान मंडल है चाहे ऐसा करना हमारे लिये बहुत ही अप्रिय हो।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में सभा के समक्ष एक या दो बातें रखना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। गत सप्ताह ही तो ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अपना निकट सम्पर्क बनाये रखने की सम्पुष्टि की है। यदि हम अब इस कार्य को पूर्ण कर लें तो ये दोनों घटनायें मिलकर अपना महत्त्व रखेंगी।

दूसरी बात यह है कि मैं यह चाहूंगा कि इस सदन के लोग इस बात को समझें कि काश्मीर की स्थिति जैसी कि है...।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या मैं माननीय संशोधन प्रस्तावक से यह जान सकता हूं कि सभा का निर्वाचन कब हुआ?

***प्रो. के.टी. शाहः** 1946 के नवम्बर या दिसम्बर में।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या काश्मीर में उस समय बर्फ गिरी?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह मैं नहीं जानता। निर्वाचन सर्दियों में होते हैं।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** उस समय वर्तमान प्रधानमंत्री कारावास में थे।

***प्रो. के.टी. शाहः** उस समय के प्रधानमंत्री नहीं थे। वे कारावास में अवश्य थे।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** सभा के वर्तमान सदस्य कहां हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह मैं नहीं जानता। आप काश्मीर के डाकखाने से यह प्रश्न करें।

***श्री आर.के. सिधवाः** क्या माननीय सदस्य यह जानते हैं कि आया प्रजा-सभा अब भी है, यदि है तो कहां है उसकी सदस्य संख्या क्या है, उसके सदस्य कहां हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** प्रजा-सभा को अपने सदस्यों के पते मालूम होने चाहियें। सदस्य इकट्ठे हो सकते हैं या नहीं यह मैं नहीं जानता हूं। यदि आप प्रजा-सभा से परामर्श करना चाहते हैं और यदि आप काश्मीर की जनता का मत जानना चाहते हैं तो प्रजा-सभा की बैठक के लिये कम से कम गणपूर्ति हो सकती है। यदि आप नहीं चाहते हैं तो इस प्रस्ताव को पारित किया जा सकता है।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या माननीय सदस्य को यह विदित है कि प्रजा-सभा के कुछ अथवा अधिकांश सदस्य पाकिस्तान चले गये हैं और जो रह गये हैं वे पाकिस्तान के हित में कार्य कर रहे हैं? क्या वे इस बात से परिचित हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं इस बात से परिचित नहीं हूं। कुछ लोग चले गये होंगे।

***अध्यक्षः** यदि बाधा न दी जाये तो समय की बचत होगी।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैंने सोचा कि मुझे माननीय सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये, पर भविष्य में मैं उन पर ध्यान नहीं दूंगा।

सदन के समक्ष मैं दो या तीन बातें और रखना चाहूंगा। सर्वप्रथम मैं यह चाहूंगा कि सदन काश्मीर की जनसंख्या के अनुपात को याद रखे, उसकी भौगोलिक स्थिति, उसके सम्बन्ध तथा वहां जो कुछ हो सकता है उसकी सम्भावनाओं को याद रखे। मैं समझता हूं कि इस सदन को यह तो विदित ही है कि अब तक हमने लगभग 100 करोड़ काश्मीर पर खर्च कर दिया है। उसके प्रति फलस्वरूप हमें क्या मिल रहा है? न मालूम हमने काश्मीर पर कितनी जान न्योछावर कर दीं। पर हम अभी यहां तक भी नहीं पहुंच पाये हैं कि सामान्य दशा तथा पूर्ण शान्ति स्थापित हो पाई हो जिससे सामान्य संवैधानिक उन्नति हो सके।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः** माननीय सदस्य द्वारा कही गई बातों का मैं घोर विरोध करता हूं। यहां हम काश्मीर के भविष्य पर वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** हम केवल प्रस्ताव पर वाद-विवाद कर रहे हैं। जो विषय प्रस्ताव के अंतर्गत नहीं आते हैं उनके सम्बन्ध में बातें कहना माननीय सदस्य के लिये न्यायसंगत नहीं है।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इन विषयों को मैं नहीं लूंगा। मैं उन पर टीका टिप्पणियां भी नहीं करूंगा। मैं केवल यह कहकर समाप्त करूंगा कि यह बड़ा गम्भीर विषय है। सदन को इस बात का ध्यान रखना चाहिये...।

***एक माननीय सदस्यः** गम्भीर से आपका क्या आशय है?

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं आपको नहीं बता सकता हूं कि गम्भीर से क्या आशय है और किस प्रकार वह गम्भीर है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): गम्भीर बात यह है कि माननीय सदस्य कश्मीर से इतने अनभिज्ञ हैं कि वे यह भी नहीं जानते हैं कि प्रजा-सभा के सदस्य कौन थे और कहां हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** इस सदन के लिये इस विषय के सब पहलुओं पर विचार करना और फिर उस पर निर्णय करना बड़े महत्त्व का विषय है। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** अब हम प्रस्ताव और संशोधनों पर विचार-विमर्श कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, इस सदन में इस बात पर दो राय नहीं हो सकती कि हम बहुत प्रसन्न हैं कि शीघ्र ही, हमारे प्रधानमंत्री के शब्दों में काश्मीर की सौन्दर्यपूर्ण भूमि के, जिसका सौन्दर्य इतनी लूट मार में भी बना हुआ है, प्रतिनिधि इस महान् सदन में अपने स्थान ग्रहण करेंगे। जिस विषय पर हम आज विचार-विमर्श कर रहे हैं उसको आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता है। मेरे मित्र प्रो. शाह ने सर्वप्रथम 'काश्मीर' के स्थान में 'जम्मू और काश्मीर' रखने का संशोधन प्रस्तुत किया। क्या मैं उनको यह बता दूं कि इस विषय के बारे में माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने जो कुछ कहा उसके बाद संशोधन केवल एक मसौदा सम्बन्धी संशोधन के रूप में रह जाता है। माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने हमें यह आश्वासन दिया कि यद्यपि केवल काश्मीर शब्द का ही प्रयोग किया गया है, पर आशय है समस्त राज्य से। यदि प्रो. शाह संविधान के प्रारूप की प्रथम अनुसूची के भाग 3 को देखने का कष्ट करेंगे तो उनको विदित होगा कि इस राज्य का उल्लेख केवल काश्मीर के रूप में किया गया है। इसके पश्चात् प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधन के लिये न गुंजाइश है और न वह न्यायसंगत है।

माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर द्वारा पेश किये प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरे मन में कुछ बातें उत्पन्न होती हैं और मैं यह निवेदन करूंगा कि अपने उत्तर में वे कृपा कर इन बातों पर कुछ प्रकाश डालें। सर्वप्रथम हमें यह नहीं बताया गया या शायद मैंने सुना नहीं होगा कि प्रधान मंत्री की मंत्रणा से शासक द्वारा इस राज्य से कितने सदस्य या प्रतिनिधियों का नाम निर्देशन किया जायेगा।

***माननीय श्री एम. गोपालास्वामी आयंगरः** मैंने चार का उल्लेख किया था।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे दु:ख है कि मैंने यह नहीं सुना। सदस्यों की संख्या चार है। मैं आशा करता हूं कि गत जनगणना में जो जनसंख्या के अंक थे उनको हम मानेंगे। इस सम्बन्ध में यह बात पैदा होती है कि क्या केवल जम्मू और काश्मीर का ही नहीं वरन् लद्दाख का भी प्रतिनिधान होगा—मेरा आशय मीरपुर और पूंछ सहित समस्त राज्य क्षेत्र से है। माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने कहा है कि कुछ माह पूर्व तक काश्मीर की हालत कुछ अस्थिर सी थी पर अब वह स्थिर होती जा रही है। हमारे लिये यह बड़ा ही सुखद समाचार है और हम इसका बहुत स्वागत करते हैं। कृतज्ञता की यह बात है कि स्थिति तेजी के साथ सुधरती जा रही है। काश्मीर के कुछ क्षेत्रों के बारे में, जो पहले पाकिस्तान के अधिकार में था और जो गलत रूप से आजाद काश्मीर कहा जाता था, कुछ विरोधी अफवाहें उड़ी थीं तथा समाचारपत्रों में समाचार प्रकाशित हुए थे। यू.एन.सी.आई.पी. के संकल्प...।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** श्रीमान्, क्या इस तथ्य की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करूं कि इस प्रकार की बातें नियम विरुद्ध मानी जायें। हम काश्मीर के सम्पूर्ण रूप पर विचार-विमर्श नहीं कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** मैं उनका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करने ही वाला था कि इस प्रकार की टिप्पणियां पूर्णतया असंगत हैं। इस समय हम काश्मीर से इस सदन में चार प्रतिनिधि भेजने के विषय में बातचीत कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं। मैं और आगे इस विषय को नहीं बढ़ाऊंगा। मैं अब आगे की बात को लूंगा और वह है इस सभा में काश्मीर से प्रतिनिधान की रचना। मैं कभी अपने जीवन में पृथक् निर्वाचन के पक्ष में नहीं रहा। कभी भी मैंने पृथक् निर्वाचनों का समर्थन नहीं किया जिनके आधार पर इस देश में और यहां तक कि इस सदन तक में निर्वाचन हुए। हम सबको यह बात भली भांति विदित है कि मंत्रिमंडल योजना के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन के आधार पर इस सदन के लिये सदस्यों का निर्वाचन हुआ था। उस समय मैंने यह आशा की थी कि इस स्थिति का शीघ्र ही अन्त होगा। कल ही तो हमने उस काम को पूरा किया है जिसको हमने किसी समय गत वर्ष में अथवा कुछ मास पूर्व आरम्भ किया था अर्थात् जिस काम को हमने अठारह या इक्कीस माह पूर्व शुरू किया था और जिसके द्वारा हमने पृथक् निर्वाचनों को समाप्त किया था।

***अध्यक्षः** इसमें पृथक् निर्वाचन का कोई प्रश्न नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं उस बात पर आ रहा हूं। इस बात को प्रो. शाह ने काश्मीर की जनसंख्या के बारे में उल्लेख किया था कि वहां कितने हिन्दू हैं कितने मुसलमान हैं, कितने सिख हैं। जुलाई सन् 1946 में प्रत्येक प्रान्त से इन्होंने सदस्य निर्वाचित किये थे। प्रतिनिधान का आधार प्रान्त अथवा राज्य की प्रत्येक दस लाख की जनसंख्या के पीछे एक सदस्य था। यानी मध्यप्रान्त और बरार जैसे प्रान्त के लिये जिसमें 160 लाख

गैर-मुस्लिम थे और 10 या 12 लाख मुसलमान थे इस सदन के लिये 16 गैर-मुस्लिम अथवा हिन्दू भेजे गये और एक मुसलमान। इस राज्य की जनसंख्या में, जिसका कि शीघ्र ही इस सदन में प्रतिनिधान होने वाला है, मैं समझता हूं कि लगभग 10 लाख हिन्दू हैं और शेष मुसलमान। उस निर्णय के अनुकूल जिसको हमने कल ही स्वीकार किया है, मैं प्रसन्न होउंगा यदि हम इस नये नाम-निर्देशन के लिये पृथक्करण की भावना को तिलांजलि दे दें। यदि समस्त जम्मू और कश्मीर से सारे के सारे प्रतिनिधि हिन्दू हों या मुसलमान हों बशर्ते कि आपको वही सर्वोत्तम व्यक्ति मिल जायें तो मैं इसका स्वागत करूंगा। मैं आशा करता हूं कि इस सदन में कश्मीर से इन प्रतिनिधियों के नाम-निर्देशन के विषय में साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधान नहीं किया जायेगा। पृथक् निर्वाचन के विषय पर इस सदन में जो निर्णय हम कर चुके हैं यह उस निर्णय के पूर्णतया अनुरूप होगा।

***अध्यक्ष:** क्या मैं यह संकेत करूं कि जहां तक राज्यों से इस सदन में प्रतिनिधान का सम्बन्ध है सम्प्रदाय के आधार पर प्रतिनिधि भेजने का कभी कोई प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ है जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है प्रान्तों के सदस्यों की तरह से नहीं बल्कि वहां से सब सदस्य जो यहां आये हैं, जिस सम्प्रदाय के वे हैं उसके आधार पर वे यहां नहीं आये हैं। अत: यह प्रश्न यहां नहीं उठता है।

***श्री एच.वी. कामत:** चूंकि हमारा निर्वाचन मंत्रिमंडल योजना के अंतर्गत हुआ था, मैं आशा करता हूं कि राज्यों के प्रतिनिधान के लिये एक ही नीति अथवा रीति का पालन होगा और मैं यह भी आशा करता हूं कि कश्मीर राज्य के लिये उस रीति का परित्याग नहीं किया जायेगा जो राज्यों के लिये अपनाई गई है और प्रान्तों में नहीं अपनाई गई है।

इसके बाद श्रीमान्, एक बात और है जिसको, जब भी समय हो, मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से स्पष्ट कराना चाहूंगा। गत नवम्बर-दिसम्बर के इस सभा के सत्र में जबकि नियमों में संशोधन किया जा रहा था मैंने एक प्रश्न उठाया था कि उस सब राज्यों का जिनका अब तक प्रतिनिधान नहीं हुआ है इस सदन में उचित रूप से तथा उपयुक्त प्रकार से कब तक प्रतिनिधान हो जायेगा। मेरी समझ से विधान-सभा का यह अन्तिम सत्र है और इस कारण यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है—अत: हम वास्तव में बहुत ही प्रसन्न होते यदि मय राज्यों के जो भारत में प्रवेश कर चुके हैं या मिल चुके हैं समस्त भारत के प्रतिनिधि इस सभा में आ जाते।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, माननीय सदस्य फिर विषय से दूर हो रहे हैं और उनकी बातें इस प्रस्ताव से कोई सम्बन्ध नहीं रखती हैं।

***अध्यक्ष:** मेरा यह विचार हो रहा है कि अन्य राज्यों का उल्लेख अनावश्यक तथा असंगत है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैंने सोचा कि राज्य के रूप में काश्मीर जो भारतीय संघ में प्रवेश कर चुका है वह अन्य उन राज्यों के समान ही है जो भारतीय राज्य में प्रवेश कर चुके हैं और इस विचार से मैं यह...।

***अध्यक्ष:** जहां तक मुझे विदित है भोपाल और काश्मीर को छोड़कर अन्य सब राज्य जो प्रवेश कर चुके हैं वे तो इस सभा में आ गये हैं। जहां तक हैदराबाद का सम्बन्ध है मैं नहीं जानता हूं कि यह प्रवेश की किस स्थिति में है, पर और सब राज्य जिनके प्रवेश के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं है वे सब सिवाय काश्मीर और भोपाल के आ ही गये हैं और कश्मीर के लाने का आज कदम उठाया जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामत:** तक हैदराबाद जहां का सम्बन्ध है...।

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न अभी नहीं उठता है। वह आवश्यक नहीं है; मैं स्वयं बाद में इसकी सूचना दे दूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** गत बजट सम्बन्धी सत्र में गृह मंत्री सरदार पटेल ने कहा था कि हैदराबाद तथा काश्मीर की स्थिति अन्य राज्यों के समान है जो भारतीय संघ में प्रवेश कर चुके हैं। मैंने केवल यह आशा की थी कि—मैंने आग्रह नहीं किया था कि भारतीय संघ में प्रविष्ट हुए सब राज्यों के प्रतिनिधि इस सदन में होंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस सदन में प्रतिनिधि भेजने का विषय बहुत सरल है। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि यह फालतू विषय माननीय सदस्य द्वारा क्यों प्रस्तुत किया गया है।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू:** माननीय सदस्य असंगत प्रसंग पर बोलने में दक्ष हैं वे यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाते हैं कि क्या-क्या हो चुका है? लगभग समस्त राज्य जो प्रवेश कर चुके हैं उनके प्रतिनिधि यहां हैं सिवाय काश्मीर के।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, आपने स्वयं यह कहा था कि भोपाल का प्रवेश हो गया है पर अब तक उसका प्रतिनिधान नहीं हुआ। मैं नहीं समझ पाता हूं कि मैं विषय से असंगत हूं या कोई और ही भूल रहा है। मेरे पास एक तालिकाबद्ध कथन है जिसमें इस समय इस सदन में उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या दी गई है।

***अध्यक्ष:** बात क्या है?

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं केवल यह कहना चाहता था कि अभी इस सदन में इक्कीस सदस्यों को स्थान ग्रहण करना है और मैं आशा कारता हूं कि शीघ्र ही इस ओर कदम उठाया जायेगा कि ये सबके सब 21 सदस्य जम्मू और कश्मीर राज्य के सदस्यों के सहित इस महत्त्वपूर्ण सत्र के दौरान में इस सदन में अपने स्थान ग्रहण कर लेंगे। मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि क्या बाधाओं की कोई आवश्यकता थी। मैं विषय को आगे बढ़ाने नहीं जा रहा था और मुझे खेद है कि प्रधानमंत्री ने मेरे तर्कों की धारा को गलत समझा और मुझे बाधा देना ठीक समझा। श्रीमान् यह मेरी अन्तिम बात है और मैं भाषण समाप्त कर चुका। मैं नहीं समझता हूं कि प्रधानमंत्री क्यों इतने बेसब्र हो रहे हैं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** खिन्न हो रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अपना छोटा सा भाषण समाप्त करने के पूर्व मैं उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करूंगा। अन्तिम बात यह है (*बाधायें*)। मैं आशा करता हूं कि श्री बालकृष्ण शर्मा को अवसर मिलेगा।

***अध्यक्षः** बात क्या है?

***श्री एच.वी. कामतः** अन्तिम बात यह है। इस शहर के एक महत्त्वपूर्ण दैनिक पत्र की कल की प्रति में एक समाचार था कि काश्मीर के महाराज थोड़े समय के लिये अवकाश पर जा रहे हैं और कोई अन्य व्यक्ति रीजेंट के रूप में प्रकार्य करेगा। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि इस संकल्प का संपालन, जिसको हम आज पारित कर रहे हैं, इस प्रकार की जनश्रुति पर आश्रित परिवर्तन के पूर्व हो जायेगा और अल्पावकाश पर राज्य छोड़ने के पूर्व कश्मीर के शासक द्वारा अपने प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर सदस्यों का नाम-निर्देशन कर दिया जायेगा।

अन्त में, मैं प्रसन्न होता कि जिस व्यक्ति का प्रधानमंत्री के रूप में उल्लेख किया गया है उसको किसी अन्य नाम से कहा जाता। भारत में केवल एक ही प्रधानमंत्री है। मुझसे यह कहा गया है कि सब प्रान्तों को अभी हाल में एक गश्ती चिट्ठी जारी की गई है—राज्यों के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता हूं—कि वहां मुख्य मंत्रियों का नाम मुख्यमंत्री अथवा प्रमुख मंत्री रखा जाये और प्रधानमंत्री की उपाधि केवल भारतीय संघ के प्रधानमंत्री के लिये आरक्षित रखी जाये। अतः मुझे खुशी होती यदि इस प्रस्ताव के पेश करने वाले माननीय श्री गोपालास्वामी आयंगर 'प्रधानमंत्री' के स्थान में 'प्रमुख मंत्री' शब्द रखते क्योंकि मैं समझता हूं कि इससे भारतीय सरकार ने जो अभी-अभी सब प्रान्तों को गश्ती चिट्ठी जारी की है उसका विरोध होता है।

ये बातें हैं जिनको मैं आशा करता हूं कि इस प्रस्ताव के पेश करने वाले विचार-विमर्श के उत्तर में स्पष्ट करेंगे। मैं आशा करता हूं कि इस सदन में हम काश्मीर के अपने दोस्तों का शीघ्र ही स्वागत कर सकेंगे।

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, श्री आयंगर के प्रस्ताव का मैं इस आधार पर विरोध नहीं कर रहा हूं कि इसके द्वारा यह चाहा गया है कि काश्मीर के प्रतिनिधियों का नाम-निर्देशन हो, न इस आधार पर कि मेरे कुछ माननीय मित्रों ने संशोधन प्रस्तुत किये हैं जिनमें से कुछ में यह चाहा गया है कि 50 प्रतिशत का निर्वाचन हो और 50 प्रतिशत का नाम-निर्देशन। चाहे शत प्रतिशत का निर्वाचन हो या नाम-निर्देशन मुझे चिन्ता नहीं। परन्तु जिसका मैं विरोध करता हूं वह बात यह है। वास्तव में मैं जानता तो नहीं हूं पर इस समय काश्मीर से इस संविधान-सभा में प्रतिनिधि भेजे जाने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता हूं। पंडित नेहरू नाराज हो गये क्योंकि वे कहते हैं कि प्रवेश पूर्ण रूप से हो चुका है और प्रवेश में कोई सन्देह नहीं रहा। वे कहते हैं कि काश्मीर भारत में प्रवेश कर चुका है और उसको इस संविधान-सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये मांग करने का पूरा अधिकार है। यद्यपि इस विषय पर मुझे अपने मित्र श्री आयंगर से झगड़ने की आवश्यकता नहीं है पर मुझे उनसे एक प्रश्न पूछना है। मैं प्रधानमंत्री के इस विचार को मान लेता हूं कि प्रवेश पूर्ण रूप से हो चुका है, यद्यपि मुझे इस बात में सन्देह है कि

[मौलाना हसरत मोहानी]

वे पूर्णतया ठीक कहते हैं या नहीं। क्योंकि एक बार नहीं, तो दो बार नहीं वरन् अनेकों बार वे यह कह चुके हैं कि यह प्रवेश काश्मीर के लोगों के जनमत के अन्तिम निर्णय पर आश्रित है। बेशक, अब उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया है। उन्होंने एक कठिनाई पैदा कर दी है और उनकी चाल यह है कि यह जनमत कभी नहीं होगा और इसलिये वे कहते हैं कि प्रवेश पूर्ण रूप में हो चुका है और उसके प्रति कोई सन्देह नहीं है। यह मानते हुए भी मैं श्री गोपालास्वामी आयंगर से यह पूछता हूं कि वे भारतीय सरकार के निर्णय की प्रत्याशा क्यों करते हैं और इस बात का प्रस्ताव इस समय प्रस्तुत क्यों करते हैं। मैं यह कहता हूं कि इस समय क्यों। क्योंकि सामान्यतया हम देखते हैं कि उन सब राज्यों में जो भारत में प्रवेश कर चुके हैं स्थायी रूप से उन राज्यों के शासकों को निवृत्ति वेतन देकर अलग कर दिया है और प्रशासन कार्य भारतीय सरकार अथवा किसी प्रान्तीय सरकार ने ले लिया है। काश्मीर सरकार की क्या स्थिति होगी। इस विषय में मैं नहीं जानता हूं कि भारतीय सरकार अथवा प्रधानमंत्री के मन में क्या है। प्रवेश के पश्चात् क्या उनको (काश्मीर के शासक को) भी निवृत्ति वेतन देकर अलग कर दिया जायेगा और प्रशासन कार्य भारतीय सरकार के हाथों में ले लिया जायेगा? क्या ऐसी बात है? तब तो मैं यह कहूंगा कि इस बात पर अभी कोई निर्णय नहीं हुआ है और जब निर्णय नहीं हुआ है तो मैं समझता हूं कि वर्तमान समय में काश्मीर के महाराजा की कोई सत्ता नहीं है अतः संविधान-सभा के लिये उनके द्वारा प्रतिनिधियों के नाम-निर्देशन का प्रश्न ही नहीं उठता है। मैं कहता हूं कि ये सब बातें समय से पूर्व हैं। जब तक आप काश्मीर सरकार की स्थिति और महाराज की स्थिति के बारे में निर्णय न कर लें तब तक इस प्रकार के किसी प्रस्ताव को रखना निन्दनीय रूप से मूर्खतापूर्ण है। इस आधार पर मैं इस प्रस्ताव का पूर्णतया विरोध करता हूं। मैं समझता हूं कि इस समय उनको यह प्रस्ताव पेश नहीं करने देना चाहिये।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरूः** श्रीमान्, मेरे माननीय साथी के इस अति सरल प्रस्ताव के कारण कुछ सदस्य लगभग उन समस्त सम्बन्धित विषयों का उल्लेख करने के लिये प्रेरित हुए हैं जो इस प्रस्ताव के विषय में नहीं हैं वरन् काश्मीर के विषय में हैं और इस प्रकार हम काश्मीर की इस महान् जटिल तथा कठिन समस्या पर सोचने के लिये प्रेरित हो गये हैं। इस प्रसंग में यह जरा कठिन सा हो जाता है कि कोई व्यक्ति अपने आपको सदन के समक्ष रखे हुए इस सरल प्रस्ताव पर ही सीमित रखे। फिर भी मैं इस प्रस्थापना से परे नहीं जाना चाहता हूं और न मैं यह समझता हूं कि यह सदन उससे परे जायेगा यद्यपि बहुत से सदस्यों को ऐसा करने का प्रलोभन हुआ है।

सदन के समक्ष बड़ी सरल प्रस्थापना है। इस समय मैं यह कह दूं कि प्रो. शाह के पांडित्य और ज्ञान का मैं बड़ा प्रशंसक हूं। फिर भी आज जो कुछ उन्होंने काश्मीर के बारे में कहा केवल उसे ही सुनकर नहीं वरन् अनेक वर्षों तक काश्मीर के बारे में जो कुछ उन्होंने ही किया तथा कहा उसको समझकर मुझे आश्चर्य हुआ है। मेरा भी काश्मीर से अनेकों रूप में सम्बन्ध रहा है और एक प्रकार से तो मैं भारत के किसी अन्य भाग की अपेक्षाकृत काश्मीर का ही अधिकतर हूं। काश्मीर में स्वतंत्रता के युद्ध से

मैं सम्बन्धित रहा हूं और वहां के अनेकों समूह, बहुत से लोगों, महाराजा से लेकर तुच्छ से तुच्छ व्यक्तियों तक अनेक व्यक्तियों से परिचित हूं अत: यदि सदन में मैं कुछ कहने का साहस करूं तो प्रो. शाह इस विषय पर जितना अधिकार रख सकते हैं उससे अधिक अधिकारपूर्वक मैं कह सकता हूं। प्रधानमंत्री होने के नाते से नहीं वरन् एक काश्मीरी होने के नाते से तथा एक भारतीय होने के नाते से, जो इन विषयों से सम्बन्धित रहा है, मैं बोल रहा हूं। प्रो. शाह द्वारा यह प्रस्ताव सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि काश्मीर की तत्कथित प्रजा-सभा इस सदन में प्रतिनिधि भेजे। यदि प्रो. शाह काश्मीर की बाबत कुछ जानते हैं तो उनको यह जानना चाहिये कि काश्मीर में प्रजा-सभा से अधिक अस्तित्वहीन संस्था और कोई नहीं है। उनको यह जानना चाहिये कि सारी की सारी परिस्थितियां, जिनके अन्तर्गत गत निर्वाचन हुआ था, आश्चर्यजनक तथा तमाशे के समान थीं। उनको यह जानना चाहिये कि काश्मीर के समस्त शिष्टजनों द्वारा उसका बहिष्कार किया गया था। निर्वाचन भयंकर शीतकाल में किया गया था जिससे कि लोग निर्वाचन स्थलों में न जा सकें, और काश्मीर की सर्दी ऐसी है जिसका शायद इस सदन के सदस्यों को कोई अनुभव नहीं। एक माननीय सदस्य ने वहां की सर्दी के बाबत मुझसे पूछा था और यह पूछा था कि क्या बर्फ गिर रही थी। पर ठंडे देश में जब बर्फ गिरती है तो उस समय गरम मौसम कहा जाता है। सर्दियों में बर्फ गिरने वाले मौसम के तापक्रम से 20° या 30° अंक तापक्रम गिर जाता है। निर्वाचन उस समय किये गये थे जब सड़कें बन्द थीं जब दर्रों में हो कर निकल नहीं सकते थे। वास्तव में मतदाताओं के लिये बाहर निकलना असम्भव था। इसके अलावा इन कठिनाइयों के होते हुए भी जिनमें एक कठिनाई यह भी थी कि उनके (काश्मीर की राष्ट्रीय संस्था) नेता, जिनमें शेख अब्दुल्ला तथा अन्य लोग थे, जेल में थे—इन सब बातों के होते हुए भी जब काश्मीर के राष्ट्रीय सम्मेलन ने इन चुनावों को लड़ना निश्चित किया तो उनके उम्मीदवारों को बन्दी बनाया गया और सब तरह के रोड़े अटकाये गये; और यह स्पष्ट था कि उनको खड़े नहीं होने दिया गया। अत: उन्होंने उसका बहिष्कार करने का निश्चय किया और उन्होंने बहिष्कार किया जिसका फल यह हुआ कि काश्मीर के सम्पूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन ने उन निर्वाचनों का बहिष्कार किया जिस प्रकार से 1920 के राष्ट्रीय आन्दोलन में भारत में निर्वाचनों का बहिष्कार किया गया था और इस बहिष्कार में आश्चर्यजनक सफलता मिली। यह सत्य है कि लोग चुनाव में आये। बहिष्कार करने से आप और लोगों को चुनाव से नहीं रोक सकते, पर मतदाताओं का प्रतिशत इतना कम था, मैं उस सही भिन्न को तो भूल गया, पर वह लगभग उपेक्षणीय सा था और जो लोग चुनाव में आये वे ऐसे थे जिन्होंने सदा स्वतंत्रता के आंदोलन का विरोध किया था और उस समय तक जिन्होंने काश्मीर की स्वतंत्रता के विचार को जहां तक उनसे हो सका धक्का पहुंचाया था। और इसके बाद जब काश्मीर ने इन नई स्थितियों को ग्रहण किया और सदैव की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हो गया तो उनमें से कुछ लोगों ने पाकिस्तान की शरण ली। इस प्रकार के निकाय का उल्लेख किया गया है, वह एक अस्तित्वहीन निकाय है, वास्तव में तो वह कोई निकाय ही नहीं। वह शरीर से पृथक् हुई आत्मा है। उसकी बैठक नहीं होती। पर फिर भी प्रो. शाह शान्तिपूर्वक यह कहते हैं कि इस आदरणीय सदन के लिये वह प्रजा-सभा सदस्यों का निर्वाचन कर सकती है—यह तो एक बड़ा भयानक प्रस्ताव है।

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

मैं यह मानता हूं कि इस सदन के सदस्य के लिये यह वांछनीय नहीं है कि वह नाम-निर्देशन द्वारा अथवा किसी अन्य संकीर्ण रीति से आये, पर दुर्भाग्यवश हममें से यहां बहुत से ठीक उसी रूप से यहां नहीं आये हुए है जिस रूप में हम उनको यहां चाहते थे, मेरा आशय राज्यों से आने वालों से है। उनमें से कुछ नाम-निर्देशन द्वारा भेजे गये हैं और कुछ निर्वाचन द्वारा आये हैं—और निवार्चन भी उन निकायों द्वारा जिनका बहुध ा ठीक-ठीक निर्माण नहीं हुआ था। पर वस्तुस्थिति जैसी थी वैसी हमें स्वीकार करनी पड़ी क्योंकि हम यह चाहते थे कि वे यहां आकर संविधान निर्माण में हमारी सहायता करें। अत: कश्मीर के लिये जो रीति सुझाई गई है वह यद्यपि आदर्श तो नहीं है पर फिर भी मैं यह अवश्य सोचता हूं कि भारत के अनेकों राज्यों में ग्रहण की गई रीति से वह अच्छी है। यह वह रीति है जिसमें लोकप्रिय सरकार लोकप्रिय पक्ष के नेता के द्वारा जो उसका मुखिया है शासक से कहलाती है कि अमुक-अमुक नाम होने चाहियें और इस प्रकार आपको सदस्य मिलते हैं। प्रजातंत्र के विचार से भी यह कोई गलत रीति नहीं है। यद्यपि यह शत प्रतिशत ठीक नहीं है पर सदन को यह गौर करना चाहिये कि आप कौन सा इससे अच्छा तरीका सुझा सकते हैं। मौलाना हसरत मोहानी की बात मैं समझ सकता हूं और यदि मैंने उनको ठीक-ठीक सुना है तो मैं उनसे सहमत होने के लिये तैयार हूं कि हमारे लिये यह अधिक अच्छा और शानदार होता कि काश्मीर प्रतिनिधि यों को हम यहां बहुत पहले ले आते पर हमने यह नहीं किया। यह हमारा कसूर था, शायद औरों का कसूर हो, पर कारण चाहे जो कुछ ही हमने वह नहीं किया। परन्तु क्या यह कोई कारण है कि हम आगे इस त्रुटि को क्यों बनाये रखें? आगामी दो या तीन माह के लिये अथवा जितने भी अधिक समय के लिये यह सदन समवेत हो, जबकि हम अपने संविधान को अन्तिम स्वरूप दे रहे हैं हमारे लिये यह वांछनीय है कि काश्मीर राज्य तथा किसी अन्य राज्य के प्रतिनिधियों को यहां आने और भाग लेने का पूर्ण अवसर दें चाहे अब तक उन्होंने कोई भाग न लिया हो। अत: मैं निवेदन करता हूं कि श्री आयंगर द्वारा पेश किया गया प्रस्ताव ही इस कठिनाई से निकलने का मार्ग है।

मैं उनको यह सुझाव दूंगा तथा उनसे निवदेन करूंगा कि वे इस प्रस्ताव की शब्दावली में थोड़ा सा परिवर्तन स्वीकार कर लें। जो कुछ शब्द उन्होंने रखे हैं वे ठीक हैं, उन्होंने 'काश्मीर शब्द रखा है जैसा कि अनेक अधिनियमों में वह आता है। सामान्तया उन्होंने इन अधिनियमों में से ही शब्द को लिया है। पर क्योंकि लोगों के मन में कुछ थोड़ा सा भ्रम है यह अच्छा होगा कि इसकी कुछ अधिक पूर्णरूप में जैसे कि ''काश्मीर राज्य'' के रूप में व्याख्या कर दी जाये और उसके पश्चात् कोष्टकों में ''जो काश्मीर और जम्मू के राज्य के नाम से प्रसिद्ध है'' शब्द रख दिये जायें। नि:संदेह जहां तक इस बात का स्मबन्ध है कि जम्मू और काश्मीर से लोगों को आने का अधिकार हो मैं समझता हूं कि ऐसा करने के लिये उनको हर तरह का मौका देना तो हमारे हाथ में है। और दूसरी बात यह है कि जहां तक रीति का सम्बन्ध है जो इस प्रस्ताव में प्रस्तावित है उसके अतिरिक्त अन्य किसी उत्तम तथा अधिक उपयुक्त रीति मैं नहीं सोच सकता हूं।

***श्री टी.ए. रामालिंगम् चेट्टियर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अब इस प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि इस प्रस्ताव पर मत लिया जाये।''

मैं यह मान लेता हूं कि सदन की यही इच्छा है।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर:** श्रीमान्, वास्तव में मुझे बहुत कम कहना है। पर मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र मौलाना हसरत मोहानी ने जो एक दो बातें कही हैं उनके प्रति कुछ शब्द कहने ही चाहियें। उन्होंने सन्देह प्रकट किया है कि इस प्रवेश को पूर्ण होने के पक्ष में क्या प्रधानमंत्री की व्याख्या पूर्णतया सही है। मेरी धारणा है कि वह पूर्णतया सही है। महाराजा ने प्रवेश करने की इच्छा प्रकट की थी और तत्कालीन गवर्नर-जनरल द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया था। उस अभिलेख की मेरे सामने एक प्रति है। वह पूर्णतया बिना किसी शर्त के है। पर उस समय से जो कुछ हुआ उसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र ने किया है और मैं जानता हूं कि मेरे एक दूसरे माननीय मित्र प्रो. शाह भी मौलाना साहब के विचारों की ओर संकेत करते हुए प्रतीत हुए। सही स्थिति यह है। प्रवेश पूर्णरूप से हो चुका है। इसमें सन्देह नहीं कि हमने उस समय जनमत लेने की बात रखी है जबकि एक ठीक, उपयुक्त और निष्पक्ष जनमत लेने के लिये परिस्थितियां उत्पन्न हो जायें। पर वह जनमत केवल इसलिये है कि राज्य के लोगों को यह अवसर दिया जाये कि वे अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति कर सकें और उनकी इच्छा की अभिव्यक्ति केवल इस दिशा में ही होगी कि जो प्रवेश हो चुका है क्या वे इसकी सम्पुष्टि करते हैं या नहीं, पर यह सम्पुष्टि इस रूप में नहीं है कि प्रवेश को पूर्ण करने के लिये इस सम्पुष्टि की आवश्यकता हो, वरन् यदि जनमत का निर्णय काश्मीर राज्य को भारत में बने रहने के विरुद्ध होता है तो हम केवल इस बात के लिये वचनबद्ध हैं कि काश्मीर को भारत से पृथक् करने में हम रुकावट नहीं डालेंगे। इस सम्बन्ध में मैं सदन का ध्यान भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के उन उपबंधों की ओर आकृष्ट करूंगा जिनके अन्तर्गत कोई राज्य भारत में प्रविष्ट हो जाता है और बाद में प्रवेश अधिनियम से बाहर होना चाहता है और इस प्रकार मुख्य अधिराज्य से पृथक होना चाहता है तो अधिराज्य की स्वीकृति के बिना वह ऐसा नहीं कर सकता है। हमने केवल यह वचन दिया है कि जब कभी जनमत लिया जाता है और यदि जनमत का निर्णय भारत के विरुद्ध होता है तो यदि वे हमसे अलग होना चाहते हैं तो कश्मीर के लोगों की इस इच्छापूर्त्ति में हम रुकावट नहीं डालेंगे। उसका केवल यही अर्थ है। अत: मेरी धारणा है कि यह कथन कि इस समय प्रवेश पूर्णरूप से हो चुका है राज्य की वर्तमान स्थिति का पूर्णरूप से सही चित्रण है।

इसके बाद उन्होंने पूछा कि इस समय प्रतिनिधि क्यों लाये जायें। प्रवेश कार्य की पुष्टि कराने के लिये हम उन्हें इस सदन में नहीं ला रहे हैं। क्योंकि वे प्रवेश कर चुके हैं इस तथ्य के आधार पर उनको जो अधिकार मिले हैं उनको प्रयोग में लाने के लिये हम उनको अवसर दे रहे हैं। हम एक नया संविधान बना रहे हैं जिसका केवल संघ

[माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर]

पर ही प्रभाव नहीं पड़ेगा वरन् संघ के एककों पर भी प्रभाव पड़ेगा और प्रवेश हो जाने के कारण काश्मीर इस समय उस संघ का एकक है। समस्त संघ के लिये संविधान बनाने के लिये यही ठीक है कि इस सभा में सब एककों के प्रतिनिधियों को स्थान मिले।

मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह की आपत्तियों का लम्बा उत्तर देना आवश्यक नहीं है। उनको माननीय प्रधानमंत्री द्वारा निपटाया जा चुका है। मैं केवल यही कहूंगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि देर हुई। प्रो. शाह यह विचार रखते हुए प्रतीत हुए कि कुछ माह पूर्व युद्ध बन्द कर दिया गया था और वे यह नहीं समझ सके कि उसके बाद ही यह कदम क्यों नहीं उठाया गया। युद्ध बंद करने से केवल सैनिक कार्यवाही स्थगित की जाती है और वातावरण के इतना शांत होने में कि हम कुछ कर सकें कुछ समय लगता है। मैं यह विश्वास करता हूं कि मेरा यह कहना ठीक है कि युद्ध बंद करने के पश्चात् और वातावरण शांत होना आरम्भ होने के पश्चात् संविधान निर्मातृ के रूप में संविधान-सभा की यही पहली बैठक है। मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रस्तावना को इस बैठक में प्रस्तुत करने में हम पर देरी करने का अपराध लगाया जा सकता है।

मैं नहीं समझता हूं कि उनके भाषण की अन्य बातों का मैं उत्तर दूं पर एक संशोधन जिसकी उन्होंने सूचना दी है और जिस पर उन्होंने आग्रह किया है उसको मुझे लेना चाहिये। वे पैरा क में से 'all' शब्द को निकालना चाहते हैं। 'all' शब्द जानबूझ कर रखा गया था क्योंकि वर्तमान नियमों में कुछ स्थानों का नाम-निर्देशन बिना किसी अन्य व्यक्ति की सहायता के शासक द्वारा किये जाने के उपबंध हैं। अब हम जो सुझाव रख रहे हैं वे ये हैं कि कुछ स्थानों का ही नहीं बल्कि सब स्थानों का नाम-निर्देशन शासक द्वारा होना चाहिये और ऐसा करने में वे प्रधानमंत्री की मंत्रणा का पालन करेंगे। केवल यही कारण है कि 'all' शब्द को वहां रखा गया है। मैं समझता हूं कि इस शब्द के रहने देने में कोई हानि नहीं है।

'काश्मीर' शब्द के सम्बन्ध में जो उन्होंने दूसरा संशोधन रखा है उसके बारे में प्रधान मंत्री सुझाव दे ही चुके हैं कि शायद हम उसे स्पष्ट कर सकें। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस प्रकार के प्रभाव का संशोधन रखने के लिये इच्छुक हूं कि ''Kashmir State'' के पश्चात् ''otherwise known as the State of Jammu and Kashmir'' शब्द कोष्टकों में रख दिये जायेंगे। यदि सभा को यह मान्य है तो संशोधित रूप में मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।

केवल एक विषय और है जिसका मुझे उल्लेख करना है और वह है मेरे माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उठाया गया विषय। इस सम्बन्ध में ''Prime Minister'' शब्द के प्रयोग से वे कदाचित् घबराये हुए से प्रतीत हुए। वे ''Premier'' शब्द को इसके स्थान में रखना चाहेंगे। दुर्भाग्य से मैं उनके सुझाव को यहां मानने में असमर्थ हूं क्योंकि राज्य की संवैधानिक विधि के द्वारा कश्मीर में मंत्रिमंडल का मुखिया ''Prime Minister' के नाम से विदित है और जब तक यह वहां है तब तक हमें इस पदावली का जो काश्मीर संविधान में प्रयुक्त है सम्मान करना चाहिये।

मुझे और भी बातों का उल्लेख करना चाहिये—अर्थात् जनता द्वारा निर्वाचन जिसका सुझाव मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह ने दिया है। काश्मीर की वर्तमान दशा में जनता द्वारा प्रत्यक्ष साधारण निर्वाचन सम्भव नहीं है। यदि उनका सुझाव यह होता है कि सीमित मताधिकार के आधार पर, जो पहले प्रवर्तन में था, हम इस दिशा में कुछ कर सकते थे तो उसका अर्थ भी एक प्रजा-सभा संगठित करने के प्रयोजन हेतु साधारण निर्वाचन ही होता और आज ऐसे निर्वाचन नहीं हो सकते हैं। अतः मेरा विचार यह है कि कश्मीर के आधुनिक वातावरण में इन लोक-प्रतिनिधियों के लिये प्रत्यक्ष निर्वाचन नहीं किया जा सकता और इन निर्वाचनों के लिये आपको नई प्रजा-सभा बनानी होगी। इन परिस्थितियों में उत्तम मार्ग यही है। जिसको मैंने सुझाया है।

मैं आशा करता हूं कि यह सदन इस प्रस्ताव को स्वीकार करेगा।

***अध्यक्षः** जो सुझाव माननीय प्रधानमंत्री ने प्रस्तुत किया था उसे प्रस्तावक महोदय ने स्वीकार कर लिया है और वह सुझाव यह है कि ''State of Kashmir'' शब्दों के पश्चात् कोष्टकों में 'otherwise known as the State of Jammu and Kashmir' शब्द मूल प्रस्तावना में प्रविष्ट किये जायें। यदि सभा इसे स्वीकार कर लेती है तो उसके बाद मैं और संशोधनों को लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि प्रस्तावित पैरा 4-क में 'State of Kashmir' शब्दों के पश्चात् कोष्टकों में 'otherwise known as the State of Jammu and Kashmir' शब्द प्रविष्ट किये जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में से 'all' शब्द को निकाल दिया जाये।''
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका-4 में जहां-जहां ''Kashmir' शब्द आया है उसके पूर्व 'Jammu and' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by nomination' शब्दों के स्थान में ''by election by the Praja Sabha of the State of Jammu and Kashmir' शब्दों को रखा जायें''
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'nominated' शब्दों के स्थान में 'elected' शब्द रखा जाये।''
>
> ''कि प्रस्तावित कंडिका 4-क में 'by the Ruler of Kashmir on the advice of Prime Minister' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किये गये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संविधान-सभा के नियमों की अनुसूची में कंडिका 4 के पश्चात् निम्न कंडिका प्रविष्ट की जाये:

'4-A. Notwithstanding, anything contained in paragraph 4, all the seats in the Assembly allotted to the State of Kashmir (otherwise known as the State of Jammu and Kashmir) may be filled by nomination and the representatives of the State to be chosen to fill such seats may be nominated by the Ruler of Kashmir on the advice of his Prime Minister.' ''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संविधान का प्रारूप—*जारी*

अनुच्छेद 104

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं निवेदन करूंगा कि अनुच्छेद 104 स्थगित किया जाये।

अनुच्छेद 105

***अध्यक्ष:** इसके बाद मैं अनुच्छेद 105 को लूंगा।

(संशोधन संख्या 1879 और 1880 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 105 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 105 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 106

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 106।

(संशोधन संख्या 1881 और 1882 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** इस संशोधन पर एक संशोधन है। चूंकि वह संशोधन पेश नहीं किया गया। अत: यह संशोधन भी रह जाता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): वह संशोधन संख्या 1883 में आ जाता है जिस पर मैं अपना संशोधन पेश करूंगा।

***अध्यक्षः** यदि ऐसा है तो अच्छा है।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, क्या आपकी अनुज्ञा से श्री नजीरुद्दीन अहमद के स्थान में मैं इस संशोधन को पेश कर सकता हूं।

***अध्यक्षः** जी हां।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 106 के खंड (1) में जहां कि 'High Court' शब्द दूसरी बार आता है उसके पश्चात् 'duly qualified for appointment as a judge of the Supreme Court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यदि किसी समय सत्र समवेत करने के लिये उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की गणपूर्ति नहीं होती है तो मुख्य न्यायाधिपति तत्सम्बन्धी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करेगा और भारत का मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का नाम-निर्देशन करना जितने समय के लिये आवश्यक समझे उतने समय के लिये तदर्थ न्यायाधीश के रूप में उच्च न्यायालय की बैठकों में उपस्थित होने के लिये उससे निवेदन करेगा। कोई तर्क आवश्यक नहीं है। जो न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में तदर्थ न्यायाधीश के रूप में बैठेगा उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायधीश के रूप में नियुक्त होने के लिये पर्याप्त योग्यता होनी चाहिये, अन्यथा वह स्थान ग्रहण नहीं कर सकता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मैं सूची 6 के संशोधन संख्या 124 को पेश करूंगा। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1883 के उल्लेख सहित अनुच्छेद 106 के खंड (1) में 'Chief Justice may' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

इस संशोधन की शब्दावली बहुत ही सरल है क्योंकि सदन को यह विदित होगा कि अनुच्छेद 106 मुख्य न्यायाधिपति द्वारा तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये व्यवस्था करता है और वह यह है कि किसी भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से यह निवेदन किया जा सकता है कि वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से सहयोग करें और किसी विशिष्ट अभियोग का निर्णय करने के लिये मुख्य न्यायधिपति द्वारा निश्चित किये गये धर्मासन पर बैठे। जिस रूप में यह अनुच्छेद वर्तमान है उसका आशय यह है कि मुख्य न्यायाधिपति तत्कालीन सरकार के बिना किसी हवाले के ऐसा कर सकता है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि स्थिति ठीक वैसी नहीं है जैसी कि होनी चाहिये क्योंकि मुख्य न्यायाधिपति सहित उच्चतम न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है तो इस न्यायालय में बिना कार्यपालिका के हवाले के और अतिरिक्त नियुक्ति नहीं होनी चाहिये। यह ठीक है कि मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से इस प्रकार सहयोग देने की प्रार्थना करने से प्रशासी तथा आर्थिक समस्यायें उत्पन्न होंगी ही तथा ऐसे अवसर के औचित्य की भी यह मांग है कि कार्यपालिका के मुखिया के परामर्श

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के बिना मुख्य न्यायाधिपति यह कार्य न करे। इसीलिये श्रीमान्, मैंने यह पेश किया है कि 'with the consent of the President' शब्द रख दिये जायें। वास्तव में उसकी सम्मति प्राप्त करना कोई बड़ा कठिन कार्य नहीं है क्योंकि अधिकतर वह रस्मी विषय है। और फिर एक रक्षा कवच यह भी है कि ऐसे अवसर आते हैं जबकि उच्चतम न्यायालय ने उन विषयों का निर्णय किया है जिसमें राजनैतिक गंध आती है। इस रक्षा कवच के कारण ऐसी किसी राजनैतिक ईर्ष्या की सम्भावना का भी अंशत: निराकरण हो सकता है जिसका प्रयोग मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किसी विशिष्ट अभियोग के निर्णय के लिये तदर्थ न्यायाधीश पसन्द करने में हो जाये। अमरीका में न्यायपालिका का इतिहास लगभग एक यही इतिहास है कि न्यायपालिका की मनोवृत्ति पर राजनीति का किस प्रकार प्रभाव पड़ा है। अमरीका संविधान का कोई भी विद्यार्थी यह जानता होगा कि अमरीका के उच्चतम न्यायालय द्वारा संवैधानिक विषयों के निर्णय में राजनीति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। नि:संदेह एक ऐसे रक्षा कवच की आवश्यकता है जिसके द्वारा यह व्यवस्था की जाये कि ऐसे विषय में कार्यपालिका का कुछ हाथ होगा और यदि वह वास्तव में यह समझे कि किसी विशिष्ट न्यायाधीश का चुनाव ठीक नहीं है तो यह हो सकता है कि मुख्य न्यायाधिपति का ध्यान उस विषय के उस विशिष्ट पहलू की ओर आकृष्ट किया जाये।

जैसी विशेष दशा का मैंने उल्लेख किया है केवल उसके रक्षार्थ ही व्यवस्था करने के हेतु नहीं वरन् ऐसे विषय में निहित औचित्य की सम्पुष्टि के लिये भी मैंने इस संशोधन को पेश किया है। मैं आशा करता हूं कि संशोधन के स्वीकार करने में सदन को कोई कठिनाई नहीं होगी। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं दो संशोधनों को स्वीकार करता हूं सूची 6 का संख्या 124 और संशोधन संख्या 1883।

***अध्यक्ष:** दो संशोधन पेश किये गये हैं। दोनों को डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। अब मैं उन पर मत लूंगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1883 के उल्लेख सहित अनुच्छेद 106 के खंड (1) में 'Chief Justice may' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President and, शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 106 के खंड (1) में जहां कि 'High Court' शब्द दूसरी बार आता है उसके पश्चात् 'duly qualified for appointment as a judge of the Supreme Court' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 106 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 106 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 107

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1884। यह निषेधात्मक संशोधन है। अत: मैं इसे नियम विरुद्ध ठहराता हूं।

संशोधन संख्या 1885। इस प्रश्न पर निर्णय हो चुका है। अत: इसे पेश करने को आवश्यकता नहीं है।

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं संशोधन संख्या 1886 को पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि इसी प्रकार का एक और संशोधन है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1887 न्यूनाधिक रूप में शाब्दिक संशोधन है। अत: उसके पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश कर सकता हूं:

''कि अनुच्छेद 107 में से 'subject to the provisions of this article' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

ये शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 107 की पंक्ति 3 में 'at any time' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, इस संशोधन का आशय वही है जो कि उस संशोधन का था जिसको मैंने पूर्ववर्ती अनुच्छेद पर पेश किया था और जिसको इस सदन ने स्वीकार कर लिया था। यह अनुच्छेद निवृत्ति प्राप्त न्यायाधीशों की उच्च न्यायालय में उपस्थिति के सम्बन्ध में है। जो तर्क मैंने पहले दिये थे उनके आधार पर यह आवश्यक होगा कि किसी ऐसे व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिये आमंत्रित करने के पूर्व मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति प्राप्त कर ले।

(संशोधन संख्या 1889 और 1890 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अब हमारे समक्ष अनुच्छेद और संशोधन वाद-विवाद के लिये प्रस्तुत हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किये गये संशोधन 125 को मैं स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 107 को पंक्ति 3 में 'at any time' शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 107 में से 'subject to the provisions of this article' शब्दों को निकाल दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 107 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 107 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 108

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 108 सदन के विचारार्थ प्रस्तुत है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 108 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'108. The Supreme Court shall sit at such place or places as the Chief Justice may, with the approval of the President, from time to time appoint.' ''

जिस रूप में यह अनुच्छेद वर्तमान है, मेरी तुच्छ राय में उसकी शब्दावली सुन्दर नहीं है। जिस समय से हमने इस संविधान के एक-एक अनुच्छेद पर विचार करना आरम्भ किया है उस समय से यह पहला अवसर है कि हमारे सामने एक ऐसा अनुच्छेद आया है जिसमें यह दिया गया है कि राज्य का एक विशिष्ट विभाग एक विशिष्ट स्थान पर समवेत होगा। हम संसद के सदनों के अधिवेशन के स्थान नियत करने वाले अनुच्छेद 69 जैसे तथा राष्ट्रपति का पदावास नियत करने वाले अनुच्छेद 48 (4) जैसे महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद पारित कर चुके हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसे स्थान से सम्बन्ध रखने वाले और भी अनुच्छेद हैं जहां अनुमानत: राज्य के निकाय अथवा विभाग समवेत होंगे। पर किसी

भी अनुच्छेद में उस विशिष्ट स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है जहां राज्य के ऐसे विभाग समवेत हों। क्या मैं डा. अम्बेडकर से यह निवेदन कर सकता हूं कि इस अनुच्छेद में यह उल्लेख करना कि उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत हो, वे क्यों आवश्यक समझते हैं? भारत की राजधानी के प्रश्न पर पूरा का पूरा संविधान मौन है। हमारे देश की राजधानी का कोई जिक्र संविधान में नहीं है। इस सदन में एक संशोधन भी आया था जिसको किसी कारणवश पेश नहीं किया गया, पर मुझे यह बताया गया है कि मेरे मित्रगण इस विषय के पीछे दूसरे रूप से पड़े हुए हैं। भारत की राजधानी बदलने की आवश्यकता अथवा वांछनीयता का बहुधा उल्लेख किया गया है। खैर, इस बात का विरोध किये बिना तथा इस ओर जो प्रयत्न किया जायेगा उसके होते हुये भी यहां मैं इस प्रश्न पर केवल औचित्य के आधार पर विचार प्रस्तुत करता हूं। जबकि इस प्रश्न पर समस्त संविधान मौन है तो इस अनुच्छेद में देहली के जिक्र को राजधानी के रूप में क्यों लायें? क्या यह अधिक वांछनीय अथवा सुखद नहीं है कि उच्चतम न्यायालय के लिये स्थान पसन्द करने के कार्य को हम मुख्य न्यायाधिपति तथा भारतीय संघ के राष्ट्रपति पर छोड़ दें? वास्तव में इस विषय पर निर्णय करने के लिए वे सबसे अधिक कुशल व्यक्ति हैं और मुझे विश्वास है कि ऐसे संविधान के अन्तर्गत, जिसने कि हम भारतीय संघ के लिये राष्ट्रपति निर्वाचन कर रहे हैं और मुख्य न्यायाधिपति के लिये एक महान् वैध तथा कानूनी प्राधिकार रख रहे हैं, मैं ऐसा कोई कारण नहीं देख पाता हूं कि हम यह बात क्यों रखें कि उच्चतम न्यायालय एक विशिष्ट स्थान पर समवेत हो। इस आशय के लिये इस अनुच्छेद में दिल्ली के उल्लेख करने के लिये कोई भी मान्य कारण नहीं है। यह हो सकता है कि उच्चतम न्यायालय अन्य स्थान में भी समवेत हो सके; दिल्ली राजधानी होने पर भी अन्य अनेकों कारणों से वे यह निश्चित करें कि वह अन्य स्थान में समवेत हो। इसलिये मैं सोचता हूं कि इस अनुच्छेद में दिल्ली का जिक्र अनावश्यक है।

एक और बात है श्रीमान्, जिस रूप में अनुच्छेद है वह इस प्रकार पढ़ा जाता है ''The Supreme Court shall be a court of record'' उच्चतम न्यायालय क्या होगी और क्या नहीं होगी ये ऐसे विषय हैं जिन पर पूर्ववर्ती और परवर्ती अनुच्छेदों में पूर्णरूप से विचार कर लिया गया है। 'court of record' यह उधार लिया हुआ पद है और हमें यहां इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। अतः मेरे संशोधन में यह दिया गया है कि उच्चतम न्यायालय उस स्थान अथवा उन स्थानों में समवेत होगी जिनको समय-समय पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से मुख्य न्यायाधिपति नियत करे। श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और सदन की स्वीकृति के लिये निवेदन करता हूं।

***अध्यक्षः** सूची संख्या 1 में इस अनुच्छेद पर एक संशोधन संख्या 3 है जिसकी सूचना श्री गैडगिल ने दी है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 1891 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 108 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

'108.–The Supreme Court shall be a court of record and shall have all the powers of such a court including the power to punish for contempt of itself.

108.-A–The Supreme Court shall sit in Delhi or at such other place or places as the Chief Justice of India may, with the approval of the President, from time to time appoint.' ''

श्रीमान्, साधारण वाद-विवाद के पश्चात् मैं यह बताऊंगा कि जिन संशोधन को मैं पेश कर रहा हूं वह क्यों आवश्यक हैं।

(संशोधन संख्या 1892, 1893 और 1894 पेश नहीं किये गये।)

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि सूची 6 के संशोधन संख्या 126 के, जिसे डा. अम्बेडकर ने अभी पेश किया, प्रस्तावित अनुच्छेद 108-क में 'shall sit in Delhi or at such other place or places' शब्दों के स्थान में 'shall sit at Delhi and or at such other place and places' शब्द रखे जायें।''

यदि किसी प्रकार यह संशोधन सदन को स्वीकार न हो तो मैं इसके स्थान में एक और पेश करूंगा-

''कि सूची 6 के संशोधन संख्या 126 के प्रस्तावित अनुच्छेद 108-क में 'places' शब्द के पश्चात् 'or in Delhi and at such other place or places' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यदि मेरा प्रथम संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा।

''The Supreme Court shall sit in Delhi and or at such other place or places, as the Chief Justice of India may, with the approval of the President, from time to time appoint.''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या माननीय सदस्य कृपा कर यह स्पष्ट करेंगे कि 'and' के पश्चात् आड़ी रेखा होनी चाहिये या पड़ी।

***श्री जसपतराय कपूर:** दोनों के बीच में एक रेखा होनी चाहिये। यदि मेरा दूसरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है, तो अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''The Supreme Court shall sit in Delhi or at such other Place or Places as the Chief Justice of India, with the approval of the President, from time to time appoint.''

श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करने के पक्ष में मेरा तर्क यह है कि मुझे विश्वास है कि जिस अर्थ के प्रतिपादन के लिये अनुच्छेद 108-क है, वह अर्थ इस अनुच्छेद से प्रतिपादित नहीं होता है और यदि होता है तो मैं समझता हूं कि यह स्पष्ट है कि इसके द्वारा एक विसंगत स्थिति उत्पन्न हो जाती है और दिल्ली राजधानी के साथ बड़ा ही दुर्व्यवहार किया जाता है। जिस रूप में प्रस्तावित अनुच्छेद है, उसका यह आशय है कि उच्चतम न्यायालय दिल्ली में अथवा उसके विकल्प में किसी अन्य स्थान में समवेत होगा, जिसका वास्तव में यही अर्थ होता है कि उस समय वह दिल्ली में समवेत नहीं होगा। इसका यह और भी अर्थ होता है कि चाहे उच्चतम न्यायलय देश के आधे दर्जन स्थानों में समवेत हो, पर उनमें से एक स्थान दिल्ली नहीं होगा। अत: उच्चतम न्यायालय के समवेत होने के लिये दिल्ली और अन्य स्थान परस्पर अपवर्जित होंगे। मुझे विश्वास है कि न माननीय डा. अम्बेडकर का यह इरादा है और न श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का ही, जो इस संशोधन के सहायक लेखक प्रतीत होते हैं कि इस अनुच्छेद का यह अर्थ लगाया जाये। और फिर, श्रीमान्, उस विसंगति के विषय में, जो इससे उत्पन्न होती है मुझे यह निवेदन करना है कि उसका आशय यह है कि जब तक उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत होता है उसे देश में अन्यत्र गश्ती (circuit) न्यायालय का अधिवेशन करने का अधिकार अथवा विशेषाधिकार नहीं होगा। अपने कार्य के हित के या अभियोगों में लगे हुये लोगों को आवश्यक सुविधा प्रदान करने के लिये देश के विभिन्न भागों में गश्ती (सरकिट) न्यायालय का अधिवेशन करने की आवश्यकता को मुख्य न्यायाधिपति समझ सकता है। यदि मुख्य न्यायाधिपति यह समझता है कि इस तथ्य के कारण कि बहुत से अभियोग मान लीजिये मद्रास से अथवा बम्बई से इकट्ठे हो गये और उन अभियोगों को संव्यवहृत करने के लिये अथवा वादी-प्रतिवादी तथा अन्य व्यक्तियों को सुविधा देने के लिये, जिससे कि दिल्ली तक आने की असुविधा से वे बच जायें, यह आवश्यक है कि गश्ती न्यायालय मद्रास या बम्बई में जायें, तो मुख्य न्यायाधिपति को ऐसा करने का अधिकार नहीं है। हां, यदि वे ऐसा करना चाहते हैं तो एक छोटी सी तरकीब काम में ला सकते हैं, परन्तु वह बहुत ही असुविधाजनक तथा हास्यास्पद होगी। उच्चतम न्यायालय को वह किसी अन्य स्थान में, मान लीजिये शाहदरा अथवा किसी अन्य नये शरणार्थियों के नगर में, जिसमें मुख्य न्यायाधिपति को स्थान देने के लिये माननीय मंत्री पुनर्निवास राजी हो जायें, ले जा सकते हैं और किसी निकटस्थ स्थान में उच्चतम न्यायालय को ले जाकर वे जैसी आवश्यकता पड़े उसके अनुसार बम्बई, मद्रास और कलकत्ता में गश्ती न्यायालय का अधिवेशन कर सकते हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इस विषम स्थिति को नहीं रहने देना चाहिये। दिल्ली के प्रति अन्याय के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि वर्तमान अनुच्छेद में यह निहित है कि चाहे उच्चतम न्यायालय छ: स्थानों में अधिवेशन करे, पर उसको यह अधिकार नहीं होगा कि अभागी दिल्ली में वह गश्ती न्यायालय भी रख सके। इसका अर्थ यह है कि या तो दिल्ली को यह विशेषाधिकार होगा कि वह अपने क्षेत्र के अन्तर्गत ही उच्चतम न्यायालय का अधिवेशन करे या उसको यह सुविधा तक नहीं होगी कि वह गश्ती न्यायालय अपने यहां रख सके। दिल्ली को जो कुछ दृष्टिगोचर होता है या तो वह उस सबकी साम्राज्ञी है और या उसको विस्मृति में पटक दिया जायेगा। श्रीमान्, मैं न तो इसके प्रति किसी तर्क को ही समझ पाता हूं और न इस स्थिति की मूर्खता को ही समझ पाता हूं। यदि इस अनुच्छेद के द्वारा किसी का यह विचार है कि उच्चतम न्यायालय के स्थान को दिल्ली से हटाकर किसी अन्य स्थान पर ले जाया जाये,

[श्री जसपतराय कपूर]

तो मैं निवेदन करता हूं कि यह प्रस्थापना सीधे स्पष्ट रूप में कही जानी चाहिये और उसे इस अप्रकट रीति से नहीं आने देना चाहिये। पर मुझे विश्वास है कि इस संशोधन के लेखकों की यह मंशा कदाचित् नहीं है, अतः इस विषय की विस्तृत व्याख्या मुझे नहीं करनी चाहिये; और चूंकि शायद लेखकों की यह मंशा नहीं है, मैं यह निवेदन करूंगा कि यह आवश्यक है कि इस संशोधन का उस रूप में संशोधन किया जाये जो मैंने सुझाया है, जिससे कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को यह अधिकार हो कि वह दिल्ली में या किसी अन्य स्थान या स्थानों में, दोनों दिल्ली और किसी अन्य स्थान या स्थानों में अधिवेशन करने के लिये प्रबंध कर सके। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि यह आवश्यक संशोधन माननीय डा. अम्बेडकर को तथा इस सदन को भी मान्य होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर जिन्होंने डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किये गये संशोधन पर संशोधन पेश किया है, उनका विरोध करने में वकील न होने के कारण मुझे हिचकिचाहट है। परन्तु श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मैं इस विदेशी भाषा को उतना समझता हूं, जितना कि एक विदेशी समझ सकता है और जैसा सरल खंड 108 अब है, उसे उतना जटिल और कठिन बनाने की आवश्यकता को समझने में असमर्थ हूं, जितना कि श्री जसपतराय के संशोधन को स्वीकार कर लेने पर वह बन जायेगा।

श्रीमान्, भविष्य में उच्चतम न्यायालय के कार्य करने के स्थान के सम्बन्ध में कुछ ढील देने की आवश्यकता से मैं पूरी तौर से सहमत हूं, यह हो सकता है कि वह दिल्ली अथवा किसी अन्य स्थान में कार्य करे और यही मेरे मित्र श्री जसपतराय कपूर चाहते हैं। यदि दिल्ली में न्यायालय नियत किया जाता है, तो यह भी संभव होना चाहिये कि मुख्य न्यायाधिपति, यदि आवश्यक हो तो और यदि वह यह आवश्यक समझता है कि न्यायालय के मुख्यावास के परिवर्तन करने पर दिल्ली में न्यायालय उसी प्रकार अधिवेशन कर सकता है, जिस प्रकार कि वह दिल्ली के मुख्यावास रखकर अन्यत्र अधिवेशन कर सकता है, तो उसका अधिवेशन अन्यत्र करने का प्रबंध कर सके मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 108-क का जो वर्तमान स्वरूप है, उसके अन्त के शब्दों की स्थिति में यह बात आ जाती है। वह इस प्रकार है—''उच्चतम न्यायालय दिल्ली और अन्य किसी स्थान या स्थानों में समवेत होगा''। इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि उच्चतम न्यायायल या तो दिल्ली में या अन्य किसी स्थान में समवेत हो। इसमें उच्चतम न्यायालय के दिल्ली में और अन्य किसी स्थान में समवेत होने की संभावना का बहिष्कार नहीं किया जाता है और जहां तक पद रचना का सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता हूं कि उसमें कोई अधिक विधि सम्बन्धी पारिभाषिक बात हो, पर है वह वास्तव में भाषा का विषय और मैं समझता हूं कि जो डर मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर ने प्रकट किया है, वह पूर्णतया निराधार है और वे सब बातें, जिनको वे उस परिस्थिति को अनुकूल बनाने के लिये लाना चाहते हैं, जो अनुच्छेद 108-क की रचना से उत्पन्न होगी, जिस रूप में यह खंड इस समय है, उसमें हैं। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि 'और' तथा 'अथवा'' रखने में कोई सार नहीं है। किसी संविदा-प्रपत्र से अथवा किसी वहन-पत्र से अथवा किसी ऐसे लेख से जिसमें

वाणिज्य सम्बन्धी लेन देन हों, मैं बहुत परिचित हूं, जिसमें किसी विकल्प की संभावना की व्यवस्था करना बहुत आवश्यक होता है, परन्तु इसको कोई विधि सम्बन्धी मंजूरी प्राप्त नहीं है और मैं समझता हूं कि हम 'और' तथा 'अथवा' नहीं रख सकते हैं और एक-दूसरे के विकल्प के रूप में हम 'और' तथा 'अथवा' के बीच में कोई आड़ी रेखा नहीं डाल सकते हैं और न हम दोनों 'और' तथा 'अथवा' को साथ-साथ रख सकते हैं, क्योंकि भाषा दोषपूर्ण हो जायेगी। मैं समझता हूं कि सदन को इस बात का पूर्ण विश्वास रखना चाहिये कि इस संशोधन के बनाने वालों के विचार में वे परिस्थितियां थी जो श्री जसपतराय कपूर के दिमाग में आई हैं और उनको यह विश्वास हो गया और जो लोग उन्हें विश्वास दिला सकते हैं, उन्होंने विश्वास दिलाया है कि अनुच्छेद 108-क जिस रूप में है, उसमें सब परिस्थितियां आ जाती हैं। जिस प्रकार श्री जसपतराय कपूर ने संशोधन प्रस्तुत किया है, यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है तो कठिनाई होगी। श्रीमान्, डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैंने श्री जसपतराय कपूर के तर्क को सुना है तथा श्री कृष्णमाचारी के तर्क को भी सुना है। मेरी सम्मति यह है कि शब्दावलि जिस रूप में है उस रूप में वह वास्तव में अस्पष्ट है, स्पष्ट नहीं है। निश्चय ही कोई भी व्यक्ति यह तर्क उठा सकता है कि 'other' शब्द दोनों 'place' और 'places' शब्दों को विशिष्टता प्रदान करता है। जिस रूप में यह संशोधन है उसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि या तो न्यायालय दिल्ली में होगा और दिल्ली के अतिरिक्त यदि वह किसी अन्य स्थान में होता है तो दिल्ली में कोई गश्ती न्यायालय नहीं हो सकता है। यदि 'other' शब्द 'places' को विशिष्टता प्रदान करता है तो न्यायालय दिल्ली के अतिरिक्त अन्य स्थान में हो सकता है। मैंने समझा था कि श्री कृष्णमाचारी इस अस्पष्टता को दूर करेंगे, पर उनका भाषण सुनने के बाद मेरी सम्मति यह है कि यह संशोधन वास्तव में द्वयर्थक है। मैं नहीं समझता हूं कि इस संशोधन के लेखकों का यह भाव व्यक्त करने का आशय था कि दिल्ली एक ऐसा स्थान होगा, जो श्री जसपतराय कपूर के शब्दों में या तो सर्वोच्चाधिकार स्थान है या एक परित्यक्त स्थान है। जिस रूप में आज मैं स्थिति को समझ रहा हूं, उसके अनुसार मेरा विनम्र निवेदन यह है कि सरकार ने दिल्ली छोड़ने का निश्चय नहीं किया है। दिल्ली राजधानी है और आज हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि दिल्ली वह स्थान होगा जहां उच्चतम न्यायालय होगा। मैं ऐसे किसी अन्य देश को नहीं जानता हूं जिसमें राजधानी के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान में उच्चतम न्यायालय होती हो। जब तक दिल्ली राजधानी है, उच्चतम न्यायालय के योग्य स्थान वही है। साथ ही साथ वह अभिलेख न्यायालय है; वह एक ऐसा न्यायालय है जिसके लिये अपना स्थायी स्थान होना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता है, परन्तु यदि किसी समय राजधानी बदली जाती है तो संविधान के इस भाग में संशोधन करने में कोई कठिनाई नहीं होगी अथवा यदि आज ही इसकी व्यवस्था करनी है, तो यदि आप इस संशोधन के साथ-साथ श्री जसपतराय कपूर के दूसरे संशोधन को स्वीकार कर लें तो उसकी और भी अधिक अच्छे रूप में व्यवस्था हो सकती है, क्योंकि फिर प्राधिकारियों को इस बात पर विचार करने का अधिकार होगा कि राजधानी बदल चुकी है और उसके बदलने पर यदि

[पंडित ठाकुरदास भार्गव]

ऐसा आवश्यक हो तो दिल्ली गश्ती न्यायालय से वंचित नहीं की गई है। मैं तो कम से कम यह नहीं समझ सका हूं कि एक ही समय में उच्चतम न्यायालय दिल्ली तथा किसी अन्य स्थान में किस प्रकार बैठेगा। मेरी तुच्छ सम्मति में एक न्यायालय उसी स्थान पर समवेत हुआ कहा जा सकता है जहां उसका स्थायी स्थान है। यह सोचना तर्कसंगत नहीं है कि यदि उच्चतम न्यायालय का अन्य स्थान पर गश्ती न्यायालय के रूप में बैंच बैठता है तो यह कहा जाये कि वह न्यायालय केवल उसी स्थान पर बैठ रहा हो। एक न्यायालय के लिये स्थायी स्थान होना चाहिये और उसका उस स्थान पर समवेत हुआ समझना चाहिये, जहां उसका स्थान स्थायी है। इस संदिग्धता का निवारण करना आवश्यक है। यदि श्री कृष्णमाचारी यह समझते हैं कि 'और' तथा 'अथवा' शब्दों का प्रयोग केवल हस्तान्तर पत्र अथवा संविदा में ही किया जाता है और उन्होंने उनको संधि अथवा विधि सम्बन्धी लेख में नहीं देखा है, तो श्री जसपतराय कपूर का संशोधन बिल्कुल स्पष्ट है और उस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, श्री कामत तथा श्री जसपतराय कपूर दोनों ने जो बातें उठाई हैं, वे सब लगभग उस संशोधन में आ जाती हैं, जिसको मैंने पेश किया है।

श्रीमान्, नया अनुच्छेद 108 आवश्यक है, क्योंकि उच्चतम न्यायालय की सत्ता की व्याख्या करने के लिये हमने संविधान के मसौदे में कोई उपबंध नहीं रखा है। यदि सदन अनुच्छेद 192 को देखें, तो उसे भारत के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में ठीक ऐसा ही अनुच्छेद दिखाई पड़ेगा, अत: उच्चतम न्यायालय की स्थिति की व्याख्या करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संविधान में एक वैसा ही अनुच्छेद रखा जाये। इस बात के बताने में कि 'अभिलेख-न्यायालय' शब्दों का क्या अर्थ है, मैं सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। संक्षेप में मैं यह कहूंगा कि अभिलेख न्यायालय वह न्यायालय है जिसके अभिलेखों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है और जब कभी उनको किसी न्यायालय में पेश किया जाता है, तो उन पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। 'अभिलेख-न्यायालय' शब्दों का यह अर्थ है। इसके पश्चात् अनुच्छेद 108 के दूसरे भाग में यह कहा गया है कि अपने स्वयं का अवमान करने पर इस न्यायालय को दंड देने की शक्ति होगी। यह सत्य है कि यदि विधि द्वारा आप एक बार किसी न्यायालय को अभिलेख-न्यायालय बना दें, तो इस स्थिति के कारण अवमान के लिये दंड देने की शक्ति आवश्यक रूप से उसे हो जाती है। पर इस तथ्य के कारण कि इंग्लैंड में यह शक्ति अधिकतर साधारण विधि से प्राप्त की जाती है और चूंकि हमारे देश में साधारण विधि नाम की कोई वस्तु नहीं है, हमने यह उत्तम समझा कि सम्पूर्ण स्थिति का वर्णन स्वयं विधि में कर दिया जाये। इसी कारण अनुच्छेद 108 पुर:स्थापित किया गया है।

अनुच्छेद 108-क के सम्बन्ध में श्री कामत ने एक प्रश्न उठाया था कि 'दिल्ली' शब्द क्यों रखा जाये। इसका उत्तर बड़ा सरल है। किसी न्यायालय के लिये एक निश्चित स्थान होना चाहिये, जहां वह समवेत हो और अभियोगों से सम्बन्धित लोगों को यह विदित होना चाहिये कि वे कहां और किसके पास जायें। अत: स्वयं विधि में यह देना आवश्यक है कि न्यायालय कहां बैठे और इसीलिये 'दिल्ली' शब्द आवश्यक है और इसी आशय

के लिये इस शब्द को यहां पुर:स्थापित किया है। जो और शब्द अनुच्छेद 108-क में आये हैं, उनको इस कारण रखा गया है कि अभी तक यह निश्चय नहीं किया गया है कि दिल्ली भारत की राजधानी रहेगी। यदि आप ''or at such other place or places as the Chief Justice of India may, with the approval of the President from time to time appoint'' शब्द नहीं रखते हैं तो यह होगा। मान लीजिये भारत की राजधानी बदल दी जाती है तो हमें उच्चतम न्यायालय के उस स्थान में समवेत के लिये, जिसको संसद राजधानी के रूप में निश्चित करती है, संविधान में संशोधन करना पड़ेगा। इस कारण मैं समझता हूं कि ये शब्द आवश्यक हैं। मेरे माननीय मित्र श्री कपूर ने जो प्रश्न उठाया है, उसके सम्बन्ध में मैं समझता हूं कि मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी का उत्तर पर्याप्त है और मैं उससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? जिस विचार को अभी डाक्टर अम्बेडकर ने प्रकट किया है कि अभियोगों से सम्बन्धित व्यक्तियों को यह विदित हो जाना चाहिये कि उच्चतम न्यायालय किस स्थान पर समवेत होगा और यह कि राजधानी के प्रश्न पर अभी कुछ तय नहीं किया गया है, तथा न्यायालय को किसी अन्य स्थान अथवा स्थानों में समवेत होना पड़े, तो फिर दिल्ली का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है?

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि वक्ता द्वारा अपने प्रथम भाषण में यह प्रश्न पूछा गया था और उसका उत्तर दिया जा चुका है। उन्हें उस उत्तर से संतोष हुआ या नहीं, यह दूसरी बात है। पर प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या डाक्टर अम्बेडकर से मैं एक छोटी सी बात स्पष्ट करा सकता हूं? जब तक उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत होगा, उस समय क्या उसको यह अधिकार होगा कि वह इस देश में कहीं अन्यत्र गश्ती न्यायालय स्थापित कर सके?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अवश्य, एक गश्ती न्यायालय केवल एक धर्मासन है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं सदन से अपना संशोधन वापस करने के लिये निवेदन करता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन 126।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि चूंकि यह संशोधन दो अनुच्छेदों से सम्बन्ध रखता है, यह अच्छा होगा कि उन पर पृथक्-पृथक् मत लिया जाये?

***अध्यक्ष:** अच्छा, मैं संशोधन संख्या 126 के प्रथम भाग पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 108 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'108. The Supreme Court shall be a Court of Record and shall have all the powers of such a court including the power to punish for contempt of itself.' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं दूसरे भाग पर मत ले रहा हूं:

प्रस्ताव यह है:

''108-A. The Supreme Court shall sit in Delhi or at such other place or places, as the Chief Justice of India may, with the approval of the President, from time to time appoint.''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इसमें श्री कामत का संशोधन आ जाता है, उस पर मत लेने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है, इसमें पूरी की पूरी कार्यवाही आ जाती है।

***अध्यक्ष:** अत: डा. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में इस अनुच्छेद पर मैं मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 108 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 108 और 108-क संविधान में प्रविष्ट किये गये।

अनुच्छेद 109 से 114

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 109 इस संविधान का अंग बने।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 109 से 114 तक स्थगित रखे जायें। मैं क्यों इन अनुच्छेदों को स्थगित रखना चाहता हूं, इसका कारण यह है कि ये अनुच्छेद यद्यपि साधारण नियमों का वर्णन करते हैं, पर इसके साथ-साथ अनुसूची 1 के भाग 3 में दिये हुए राज्यों के लिए कुछ रक्षण भी देते हैं। यह विदित हुआ है कि भाग 3 के राज्यों की स्थिति के बारे में पुन: विचार किया जा रहा है और भाग 3 के राज्यों को भाग 1 के राज्यों के समान आधार और स्तर पर लाया जायेगा। यदि ऐसा हो जायेगा तो इन 109 से 114 अनुच्छेदों में जो रक्षण दिये गये हैं, उनको पुर:स्थापन करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। मैं सुझाव रखता हूं कि इन अनुच्छेदों को स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्ष:** अभी हम उनको छोड़ देंगे।

अनुच्छेद 115

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 115 संविधान का अंग बने।''

पहला संशोधन श्री कामत का संशोधन संख्या 1937 है। वह निषेधात्मक है और संशोधन के रूप में नियम-विरुद्ध घोषित किया जाता है। संशोधन संख्या 1938। डा. बख्शी टेकचन्द, आपने इस संशोधन पर संशोधन की सूचना दी है। सर्वप्रथम आप अपना संशोधन पेश करें।

***डा. बख्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं जिस संशोधन को पेश कर रहा हूं, वह संशोधनों की सूची अंक 1 में संशोधन संख्या 1938 पर संशोधन है। संशोधन संख्या 1938 पर संशोधन के अनुसार...''

***अध्यक्ष:** पहले आप मूल संशोधन पेश करिये और फिर उस संशोधन पर संशोधन पेश करें।

***डा. बख्शी टेकचन्द:** बहुत अच्छा, श्रीमान्, सबसे पहले संशोधन संख्या 1938 जिस रूप में छपा हुआ है उस रूप में पेश करूंगा।

''कि अनुच्छेद 115 में 'in the nature of' शब्दों के पूर्व 'including those' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

इस संशोधन में एक शाब्दिक परिवर्तन सुझाया गया है और वह यह है:

''कि अनुच्छेद 115 में 'or orders in the nature of the writs' शब्दों के स्थान में 'orders or writs including writs in the nature of' शब्द रखे जायें।''

[डा. बख्शी टेकचन्द]

इस संशोधन से अनुच्छेद 115 की पदावली अनुच्छेद 25 के अनुरूप हो जायेगी, जिसको यह सदन विगत सत्र में पारित कर ही चुका है। प्रारूप-समिति द्वारा प्रारूपित किया गया अनुच्छेद 115 इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> "Parliament may by law, confer on the Supreme Court power to issue directions or orders in the nature of the writs of *habeas corpus, mandamus* prohibition, *quo warranto,* and *certiorari,* or any of them for any purpose other then those mentioned in clause (2) of article 25 (which relates to the enforcement of fundamental rights) of this Constitution.''

यह देखा गया होगा कि जिस रूप में यह अनुच्छेद प्रारूपित किया गया है, उससे केवल उस प्रकार के लेख, जो विशिष्ट रूप से उल्लिखित हैं, अन्य प्रकार के नहीं, निकालने की शक्ति उच्चतम न्यायालय में निहित करने की संसद की शक्ति सीमित होती है। इस संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद को और भी अधिक व्यापक बनाने का प्रयास किया जाता है, जिससे कि संसद उच्चतम न्यायालय को लेख, निदेश, आदेश अथवा उन लेखों को जो प्रारूपित अनुच्छेद 115 में हैं, निकालने की शक्ति देने के लिए विधि बना सके। भविष्य में उच्चतम न्यायालय को इस अनुच्छेद में दिये हुए लेखों के अतिरिक्त अन्य लेख निकालने की शक्ति देना आवश्यक हो सकता है। सदन इस बात में सहमत होगा कि संसद की शक्ति में ऐसे निर्बन्धन रखना वांछनीय नहीं है। और फिर जैसा कि मैं कह चुका हूं, अनुच्छेद 25 जो उच्चतम न्यायालय के न्याय मूलाधिकारों के संबंध में लेख निकालने की शक्ति के सबंध में है, उसमें इस पदावली को अंगीकार किया गया है। अनुच्छेद 25 का खंड (2) जिस रूप में इस सदन द्वारा पारित किया गया है, वह इस प्रकार है:

> ''The Supreme Court shall have power to issue directions or orders or writs including writs in the nature of *habeas corpus, mandamus,* prohibition, *quo warranto* and *certiorari,* whichever may be appropriate for the enforcement of any of the rights conferred by this part.''

अनुच्छेद 115 की पदावली को अनुच्छेद 25 की पदावली के अनुरूप बनाने के लिए मैं इस अनुच्छेद को पेश करता हूं और इस सदन की स्वीकृति के लिये इसे प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1939 जो डा. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 115 में से '(which relates to the enforcement of fundamental rights)' शब्द और कोष्टक निकाल दिये जायें।''
>
> ये शब्द व्यर्थ हैं।

***अध्यक्ष:** संख्या 1940 वैसा ही है, जैसा कि अभी पेश हो चुका है, अत: उसको पेश करने की आवश्यकता नहीं है। संशोधन संख्या 1941, जो श्री नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है, वह भी प्रारूप संबंधी है और उसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। संशोधन संख्या 1942 पेश नहीं किया गया।

मैं समझता हूं कि हमारे पास ये ही संशोधन हैं।

क्या कोई सदस्य कुछ बोलना चाहता है?

अब हम संशोधनों पर मत लेंगे।

सर्वप्रथम मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 1939 को लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 115 में से '(which relates to the enforcement of fundamental rights)' शब्द और कोष्टक निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1938 पर अर्थात् डा. बख्शी टेकचन्द के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 115 में 'or orders in the nature of the writs' शब्दों के स्थान में 'orders or writs, including writs in the nature' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** यह अब मूल संशोधन हो जाता है। संशोधित रूप में इस संशोधन पर मैं सदन का मत लेता हूं।

संशोधित रूप में संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं दोनों संशोधनों द्वारा, एक डाक्टर अम्बेडकर का और दूसरा डाक्टर टेकचन्द का, संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 115 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 115 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 116

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 116 को लेते हैं। पहला संशोधन श्री कामत के नाम से संशोधन संख्या 1943 है। निषेधात्मक होने के कारण इसको नियम विरुद्ध ठहराया जाता है।

केवल विराम चिन्ह से संबंधित होने के कारण संशोधन संख्या 1944 तो मसौदा संबंधी भी नहीं है।

अनुच्छेद 116 पर और कोई संशोधन नहीं है। मैं इस अनुच्छेद पर सदन का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 116 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 116 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 117

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 117 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 1945 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 117 में 'all courts' शब्दों के स्थान में 'all other courts' शब्द रखे जायें।''

यदि यह संशोधन स्वीकार किया जाता है तो यह अनुच्छेद इस प्रकार पढ़ा जायेगा।

''The law declared by the Supreme Court shall be binding on all other courts within the territory of India.''

मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को स्वयं अपने ही निर्णय द्वारा बांधने का प्रयास नहीं करता है। मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद से यह आशय है कि इस देश में उच्चतम न्यायालय के अधीन अन्य न्यायालय समय-समय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित निर्णय और विधि के बंधन में रहेंगे। स्वयं उच्चतम न्यायालय को इस बंधन में बांधना मूर्खता होगी क्योंकि लचीलेपन के प्रति विश्वास प्राप्त करने के लिए, भूल-चूक का निवारण करने के लिए और उन्नति के लिये गुंजाइश छोड़ने के लिये उच्चतम न्यायालय को इस अनुच्छेद के क्षेत्र से बाहर रखना होगा। उच्चतम न्यायालय ने किसी पूर्व अवसर पर जो निर्णय दिया है तथा विधि की जो व्याख्या की है उनमें वह संशोधन कर सकती है और पहले जो त्रुटियां की हैं उन्हें सुधार सकती है। अत: मैं समझता हूं कि यह कहकर इस अनुच्छेद का अर्थ सही-सही प्रकट किया जायेगा कि भारत राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत ''अन्य समस्त न्यायालयों'' में उच्चतम न्यायालय की विधि मानी जायेगी।

श्रीमान्, मैं इस संशोधन को पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1947 और 1948 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, एक बात है जिसे मैं बता देना चाहूंगा। वास्तव में प्रस्तावित अनुच्छेद का यह आशय कदापि नहीं है कि हाउस आफ लार्डस के समान उच्चतम न्यायालय अपने स्वयं के निर्णय के बंधन में रहे। उच्चतम न्यायालय अपने निर्णय को बदलने में और पहले की गई धारणा से भिन्न धारणा करने में स्वतंत्र होगी। जहां तक भाषा का संबंध है मुझे पूर्ण संतोष है कि इस आशय की पूर्ति हो जाती है।

***श्री एच.वी. कामत:** तो फिर ''अन्य सब न्यायालय'' क्यों न कहें?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ''सब न्यायालय'' का अर्थ ''अन्य सब न्यायालय'' है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 117 में ''all courts'' शब्दों के स्थान में ''all other courts'' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 117 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 117 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 118

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 118।

(संशोधन संख्या 1949 और 1950 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 118 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 118 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 119

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1951 नियम विरुद्ध ठहराया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, अपने संशोधन संख्या 1952 में मैं जिस बात को उठाना चाहता हूं वह एक साधारण सी बात है। यह अनुच्छेद इस विचार को व्यक्त करता है कि उच्चतम न्यायालय अपनी सम्मति राष्ट्रपति को दे अथवा अपने स्वविवेक के अंतर्गत वह अपनी सम्मति को रोक भी सकता है। मैं समझता हूं कि इसका आशय यह है कि जब राष्ट्रपति किसी विषय को उच्चतम न्यायालय की सम्मति के लिये भेजता है तो उच्चतम न्यायालय के लिये और कोई चारा नहीं हैं यदि वह आशय नहीं है तब तो भाषा ठीक है पर यदि आशय यह है कि राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय को किसी विषय के उल्लेख करने पर उस विषय पर उसे राष्ट्रपति को अपनी सम्मति देनी होगी तब तो ''shall'' शब्द आना चाहिये। इस विषय का मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उच्चतम न्यायालय पर कोई बंधन नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** तो मैं अपना संशोधन पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1953 नियम विरुद्ध ठहराया जाता है और संशोधन संख्या 1954 शाब्दिक है।

श्री एच.वी. कामतः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 119 के खंड (2) में 'decision' शब्द के स्थान में 'opinion' शब्द और 'decide the same and report the fact to the President' शब्दों के स्थान में 'submits its opinion and report to the President' शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, मूल रूप में मैंने इन्हें दो पृथक् संशोधनों के रूप में भेजा था पर उनको एक संशोधन में सूचीबद्ध कर दिया गया है। यदि सदन द्वारा यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो इस अनुच्छेद का प्रसंगान्तर्गत खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> ''The President may notwithstanding anything contained in clause (i) of the proviso to article 109 of this Constitution, refer a dispute of the kind mentioned in the said clause to the Supreme Court for opinion and the Supreme Court shall thereupon, after giving the parties an opportunity of being heard, submit its opinion and report to the President.''

यदि हम खंड (1) को सावधानीपूर्वक पढ़े तो यह विदित होगा कि उसमें जिस बात का उल्लेख किया गया है वह है किसी ऐसे विषय पर 'उच्चतम न्यायालय की सम्मति' जिसे राष्ट्रपति उस न्यायालय के पास भेजना उचित अथवा आवश्यक समझे...।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि इस अनुच्छेद 119 को स्थगित किया जाये क्योंकि इसमें भी अनुच्छेद 109 से 114 अनुच्छेदों तक का उल्लेख है जिनको स्थगित रखने के लिये हम निश्चय कर चुके हैं।

श्री एच.वी. कामतः फिर तो, श्रीमान्, अपने संशोधन को बाद में रखने के अधिकार को मैं सुरक्षित रखूंगा।

अनुच्छेद 120

(संशोधन संख्या 1956 और 1957 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 120 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 120 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 121

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं निवेदन करूंगा कि इस अनुच्छेद को स्थगित रखा जाये।

अनुच्छेद 122

***माननीय श्री बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, में प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि वर्तमान अनुच्छेद 122 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'122. *Officers and servants and the expenses of the Supreme Court.*— (1) Appointments of officers and servants of the Supreme Court shall be made by the Chief Justice of India or such other judge or officer of the court as he may direct:

Provided that the President may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the court shall be appointed to any office connected with the Court, save after consultation with the Union Public Service Commission.

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) Subject to the provisions of any law made by Parliament, the conditions of service of officers and servants of the Supreme Court shall be such as may be prescribed by rules made by the Chief Justice of India or by some other judge or officer of the court authorised by the Chief Justice of India to make rules for the purpose:

Provided that the salaries, allowances and pensions payable to or in respect of such officers and servants shall be fixed by the Chief Justice of India in consultation with the President.

(3) The administrative expenses of the Supreme Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the court, shall be charged upon the revenues of India, and any fees or other moneys taken by the court shall form part of those revenues.'

इस परिवर्तित प्रारूप का उद्देश्य उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता के लिये एक और भी अधिक अच्छा उपबंध बनाना है और यह उपबंध बनाना भी है कि उच्चतम न्यायालय के प्रशासी व्यय भारत के राजस्व पर भारित होंगे।

श्रीमान्, इस संशोधन पर एक संशोधन है जिसको मैं इस समय पेश करना चाहूंगा।

''कि संशोधन संख्या 1967 में प्रस्तावित अनुच्छेद 122 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:

'Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.''

***अध्यक्ष:** इस संशोधन पर श्री कपूर का एक संशोधन है।

***श्री जसपतराय कपूर:** वह डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन में आ जाता है, अत: उसको पेश करना मैं अनावश्यक समझता हूं।

(संशोधन संख्या 1968 और 1996 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** तो फिर डाक्टर अम्बेडकर का ही संशोधन है। सर्वप्रथम मैं उस संशोधन को लूंगा जिसको उन्होंने स्वयं अपने संशोधन पर पेश किया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा। डा. अम्बेडकर के संशोधन में एक विशिष्ट बात है जिसकी ओर मैं इस सदन का विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। मैं खंड (3) का उल्लेख करता हूं जो उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों से संबंधित अथवा उनको दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन सहित न्यायालय के प्रशासी व्यय को भारत के राजस्व पर भारित करता है। श्रीमान्, इस विशिष्ट खंड की ओर मैं इस सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं क्योंकि हम लोगों में से कुछ का यह विचार है कि भारत के राजस्व पर भारित होने वाले समस्त पदों को एक विशिष्ट अनुच्छेद के अन्तर्गत ले आना चाहिये और यदि मुझे ठीक-ठीक याद है तो वह अनुच्छेद 92 है; इस विशिष्ट खंड को यहां क्यों आने दिया गया है इसका एकमात्र कारण यह है कि अनुच्छेद 92 में छोड़ दिया गया है—उस पर सदन द्वारा विचार नहीं किया गया है। अत: मैं यह कहना चाहूंगा कि उचित समय पर जबकि अनुच्छेद 92 पर विचार किया जाये सदन इस खंड (3) को और इसके समान अन्य सब खंडों को हटाकर चाहे वे कहीं पर हों, यहां हों अथवा अध्यक्ष की व्यवस्था में हों या महालेखा परीक्षक की व्यवस्था में हों, या लोक सेवा आयोग के अधीन हों, उन सबको एक ही शीर्षक के अन्तर्गत लाया जाये जिससे कि लोग और कम से कम भावी विधान मंडल के सदस्य यह जान जायें कि वे कौन-कौन से पद हैं जो नितांत अनिवार्य हैं और जो भारत के राजस्व पर भारित हैं।

दूसरी बात यह है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं पर मैं सोचता हूं कि इस सदन के सदस्यों द्वारा यह समझ लिया जाये और मैं आशा करता हूं कि वे लोग जो न्याय का प्रशासन करेंगे तथा भविष्य में देश का प्रशासन करेंगे यह समझ लें कि यह एक प्रवर्त्तनशील उपबंध ही नहीं वरन् एक रक्षा कवच भी है। इसके संबंध में केवल एक बात यही है कि न्यायाधीशों द्वारा कर्मचारीवृन्द की नियुक्ति जैसा विषय सामान्यतया कार्यपालिका के क्षेत्र के बाहर रखा जाये अन्यथा इन पदों को बजट में रखने के लिये कार्यपालिका को उपक्रम करना पड़ेगा। कारण यह है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाये रखना चाहिये और यह कि न्यायपालिका यह न समझे कि वह कार्यपालिका की कृपा पर अवलम्बित है जो समय-समय पर उसे प्राप्त होती रहेगी और जिससे न्यायपालिका द्वारा किये जाने वाले उन निर्णयों पर स्वाभाविक रूप से प्रभाव पड़ेगा जो तत्कालीन कार्यपालिका के हितों से संबंध रखते हैं। इसके साथ ही साथ, श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस सदन का अथवा इस संविधान के बनाने वालों का यह उद्देश्य नहीं है कि वे विशिष्ट कृपा प्राप्त निकायों की सृष्टि करना चाहते हों जो स्वयं कार्यपालिका और विधान मंडल से पूर्णतया स्वतंत्र होकर एक प्रकार से सामान्य होकर राजनैतिक निकाय से उच्च निकाय के रूप में कार्य करते हुए सामज्य के अंतर्गत राज्य बन जायें। यदि ऐसा होता तो मैं समझता हूं कि कदाचित इस प्रकार के उपबंध केवल उच्चतम न्यायालय के प्रति ही नहीं वरन् महालेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग, संसद के दोनों सदनों के राष्ट्रपति और

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अध्यक्ष इत्यादि के प्रति भी पुर:स्थापन करने में हम सावधानी रखते क्योंकि ऐसा करने से हम ऐसी अनेकों संस्थाओं की सृष्टि कर देंगे जिनकी वह स्थिति हो जायेगी कि अपनी उच्चता प्रदर्शन करने के प्रत्येक प्रयत्न में उनका कार्यपालिका से विरोध होना अवश्वमभावी है। वास्तविक व्यवहार में यह अधिक अच्छा है कि ये समस्त संस्थायें लोक सेवा के लिये भर्ती, तरक्की की शर्तें और कर्मचारीवृन्द को दिये जाने वाले वेतन के विषयों में प्रचलित विनियमों के अनुसार न्यूनाधिक रूप में कार्य करें। इस प्रकार के अन्य निकाय जो यद्यपि इस प्रकार के संवैधानिक उपबंध से सुसज्जित नहीं हैं, उनमें जो कुछ हो रहा है इस विषय में मेरा तुच्छ अनुभव यह है कि लोक सेवा में पृथक विभाग करने से कोई लाभ नहीं होता है। बहुधा यह होता है कि तरक्की अथवा राष्ट्र के समस्त विषय एक छोटे से क्षेत्र अथवा किसी विशिष्ट निकाय के छोटे से दायरे में सीमित कर दिये जाते हैं तो बहुधा यही होता है कि जो व्यक्ति उस निकाय के सर्वोच्च कार्यपालिका पद पर पहुंच जाता है और यदि उस विशिष्ट पद को राज्य की साधारण सेवाओं की श्रेणी में, चाहे वह केन्द्रीय हो अथवा प्रांतिक, नहीं रखा जाता है तो वह हमेशा के लिये वही बना रहता है; इस प्रकार के गतिरोधों में पड़कर कोई विशेष व्यक्ति जो इस संकीर्ण श्रेणी के उच्च पद तक उठकर यह देखता है कि वह बिना पदच्युत हुये अथवा बिना हटाये उससे मुक्त नहीं हो सकेगा तो उन गतिरोधों से बहुत सी असुविधायें हो जायेंगी; परन्तु यदि इन विशिष्ट निकायों की स्थापना सामान्य सेवा का अंग बन जाती हैं तो उसमें नियुक्त कोई भी व्यक्ति जिसको किसी एक विभाग के लिये अयोग्य समझा जाता है उसे किसी अन्य कार्य वाले विभाग में भेजा जा सकता है। यह तर्क सम्मत है कि पारित करते समय यह स्पष्ट करना अच्छा होगा कि तत्संबंधी प्राधिकारियों द्वारा इस धारा के अन्तर्गत दी हुई शक्तियों के प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता में यह अनुच्छेद वास्तव में एक अड़चन के रूप में प्रवृत नहीं होगा फिर भी यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस संविधान के बनाने वाले तथा इस सदन की यह मंशा नहीं है कि इन गतिरोधों की उत्पत्ति की जाये और ये निकाय समय की आवश्यकताओं को ध्यान में न लाते हुए तथा अन्य सेवाओं में जो शर्तें प्रवृत्त हैं उनको ध्यान में न रखते हुए कृत्य करें। ऐसा हो सकता है कि साधारण सेवाओं के वेतनों में कमी की जाये और यदि कार्यपालिका की इस प्रार्थना को कि वे भी ऐसा ही करें मुख्य न्यायाधिपति इस आधार पर अस्वीकार करता है कि जो कुछ कार्यपालिका के विभागों में होता है उससे उसका कोई संबंध नहीं है और जहां तक कि उसके विभाग का संबंध है वह वेतनों में कमी नहीं होने देगा तो इसका यह अर्थ होगा कि हम इस निकाय को पृथक रखने में सहायक हो रहे हैं और यह झगड़े की जड़ होगी। अत: चूंकि कार्यपालिका और सेवाओं का घनिष्ठ संबंध है मैं आशा करता हूं कि मुख्य न्यायाधिपति और महालेखा परीक्षक जैसे पदाधिकारियों को इस विशेष स्थिति में रखने के तथ्य मात्र का यह आशय नहीं होगा कि वे अपने अधिकार का पूर्णरूपेण प्रयोग करें वरन् यह होगा कि ऐसी स्थिति में उस शक्ति के दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना के विरुद्ध रक्षाकवच है जो कार्यपालिका को उस समय के लिये दिया गया है जबकि अपने अधीन सेवाओं में वृद्धि करने की अथवा भर्ती इत्यादि के विषय की आवश्यकता है। मैं समझता हूं कि इन बातों के सहित मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई प्रस्थापना पारित की जा सकती है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश लिये गये संशोधन (संख्या 1967) का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं और उस दिन प्रो. शाह के संशोधन का विरोध करते हुए जो कुछ मैंने कहा था उस पर एक बार पुन: जोर देने के लिये इस अवसर का लाभ उठाता हूं कि इस संविधान ने यद्यपि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया है परन्तु न्यायपालिका की स्वतंत्रता की यथसंभव अधिक से अधिक सीमा तक रक्षा की है। अत: ऐसा कोई भय कि इस स्वतंत्रता का निर्वाह इस कारण नहीं किया जायेगा कि हमने शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया है नितांत निर्मूल है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सदैव रक्षा करना इस सदन का कर्त्तव्य होना चाहिये और मैं आशा करता हूं कि यही होगा।

मेरे मित्र जो सबसे अन्त में बोले हैं उन्होंने इस संशोधन का समर्थन किया है जिसका मैं भी समर्थन करता हूं। परन्तु जो बातें उनके मुख से प्रकट हुई हैं उनमें से कुछ बातों से मैं यदि स्वयं सहयोग न दूं तो वे मुझे क्षमा करेंगे। न्यायपालिका राज्य का एक स्वतंत्र अंग है। मैं उनसे इस बात में पूर्णतया सहमत हूं कि हम साम्राज्य के अन्तर्गत राज्य नहीं रख सकते हैं। विधान-मंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका ये सब राज्य के अंग हैं जिनकी एक सुव्यवस्थित संविधान में अपने-अपने उपयुक्त तथा क्रमानुसार स्थानों में रक्षा होनी चाहिये। अत: जैसा कि इस खंड में कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां, भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा अथवा किसी अन्य न्यायाधीश या न्यायालय के पदाधिकारी द्वारा जिसे वह (मुख्य न्यायाधीश) आदेश दे दे, की जायें, यह बहुत आवश्यक है। ये पदाधिकारी न्याय प्रशासन से संबंधित कार्य करने वाले हैं। वे पदाधिकारी नहीं हैं जिनका तबादला कार्यपालिका में अथवा अन्य विभागों में किया जा सकता है और यह आवश्यक है कि ऐसे पदाधिकारियों की श्रेणी जो न्याय प्रशासन से संपर्क रखती हैं वह जिस न्यायपालिका की सेवा करती है उसमें अपनी पूर्ण भक्ति रखे। संभव है कि अर्हतायें भी भिन्न प्रकार की हों। इस संबंध में लोक सेवा आयोग का निर्देश संबंधी उपबंध लाभकारी है। उसका यह आशय होगा कि नियुक्तियों के विषय में कोई पक्षपात नहीं होगा। यदि कोई व्यक्ति एक बार न्यायपालिका के कर्मचारीवृन्द में नियुक्त हो जाता है तो उसे उसी विभाग के संपर्क में रहना चाहिये। इस कारण खंड (1) बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किया संशोधन आवश्यक है, क्योंकि जहां तक वैतिक भार का संबंध है उसको तो विधान मंडल ही विनिश्चित कर सकता है। आखिरकार देश के वित्त का उत्तरदायित्व तो संसद पर है। अत: वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन का अनुमोदन राष्ट्रपति द्वारा अर्थात् शक्ति प्राप्त दल द्वारा होना चाहिये। पर इस संबंध में इस विषय को हमें इस प्रकार से आरक्षित करना चाहिये कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सदा पोषण होता रहे।

इस संबंध में मैं इस सभा का ध्यान फेडरल न्यायालय तथा प्रांतीय उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों द्वारा दिये गये ज्ञापन में की गई टीकाओं की ओर आकर्षित करूंगा।

[श्री के.एम. मुन्शी]

उन्होंने जो कुछ कहा है वह यह है:

> ''इस देश में अंग्रेजों द्वारा स्थापित न्याय प्रशासन की प्रणाली को धन्यवाद, जिसके कारण न्यायपालिका ने समस्त विषयों में अब तक नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों की कार्यपालिका शक्ति के अपहरण तथा आक्रमण से रक्षा करने के कार्य में स्वतंत्र रूप से भाग लिया। पर दुर्भाग्यवश अभी-अभी न्यायपालिका की सत्ता और गौरव से विलग होने की तथा अपनी शक्तियों को क्षीण करने की प्रवृत्ति देखने में आई है जो यदि नहीं रोकी गई तो बहुत ही असंतोषजनक होगी।''

इस संशोधन में पूरे के पूरे उपबंध का आशय है कि सत्ता या गौरव तथा जो शक्तियां उन्हें प्राप्त है उनको क्षीण होने से रोके। यह आवश्यक है कि प्रजातंत्र में परस्पर नागरिकों, राज्यों और यहां तक कि भारतीय सरकार और राज्यों के झगड़ों को मिटाने के लिये न्यायपालिका होनी चाहिये। यदि यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जाती है तो हम शीघ्र ही सर्वाधिकारवाद की ओर उन्मुख हो जायेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। मैं जानता हूं कि देश एक संकट काल में से गुजर रहा है अत: यह स्वाभाविक है कि अपनी राष्ट्रीय सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये कार्यपालिका को बड़ी-बड़ी शक्तियां धारण करना होगा। पर इसके साथ-साथ राष्ट्रीयता को अक्षुण्ण बनाये रखने की प्रजातंत्रात्मक रीति और सर्वाधिकारवादी रीति में परस्पर जो अन्तर है उसे नहीं भूल जाना चाहिये। इस संबंध में प्रजातंत्रात्मक रीति और सर्वाधिकारवादी रीति के मध्य न्यायपालिका की स्वतंत्रता सीमांकन रेखा है। मुझे विश्वास है कि इस संविधान के उपबंध पर्याप्त रूप से न्यायपालिका की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति करते हैं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र सर्वश्री कृष्णमाचारी और मुंशी के भाषणों के पश्चात् जिनको सभा ने अभी-अभी सुना है, सभा की स्वीकृति के लिये इन दोनों भागों पर कुछ निवेदन करने के हेतु बहुत ही कम शब्द आवश्यक हैं।

दो सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त हैं। एक यह कि आपको न्यायपालिका की स्वतंत्रता के पोषण के योग्य होना चाहिये और यदि अपने ही कार्यालय पर न्यायपालिका का पर्याप्त नियंत्रण न हो तो उसकी स्वतंत्रता संदेहात्मक हो सकती है। यदि उसका कार्यालय पद वृद्धि अथवा तरक्की के लिये किसी अन्य क्षेत्र पर निर्भर करता है। संभव है कि इसके द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता नष्ट हो जाये। पर साथ ही साथ यह मानना पड़ेगा कि न्यायपालिका और उसके कार्यालय को अपने भत्ते और वेतन लोकनिधि से लेने पड़ेंगे। अन्तत: जिस व्यक्ति पर प्रभाव पड़ेगा वह करदाता है। अत: एक ओर जबकि आपको न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिये तो दूसरी ओर एक प्रजातंत्र राज्य में करदाता के हितों की भी रक्षा करनी होगी। यह तभी हो सकता है जबकि देश की उस सरकार को पर्याप्त नियंत्रण शक्ति दी जाये जो वित्त संबंधी विषय में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है। वर्तमान उपबंध का प्रभाव यह है कि प्रत्येक बार व्यय सदन के मत के अधीन नहीं है। यह अच्छी बात है। लोक-निधि पर वह एक मुख्य भार बना दिया गया है। इसका प्रभाव यह है कि संबंद्ध न्यायालय अपनी नियुक्तियों पर पूर्ण नियंत्रण रखेगा। साथ-ही-साथ यह उपबंध

वहां तक लोक और सरकार के हितों की रक्षा करता है जहां तक कि देश के वित्त की रक्षा करने के लिये सरकार लोक की प्रतिनिधि है। अर्थात् यदि वेतनों में वृद्धि की जाती है तो मुख्य न्यायाधिपति अथवा अन्य न्यायिक प्राधिकारी अपना मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते हैं। यह समस्या वास्तव में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमंडल के समय उत्पन्न हुई। मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ने यह स्थिति ग्रहण की कि उच्च न्यायालय प्रांतीय सरकार के नियंत्रण के अधीन अन्य कार्यालयों से विभिन्न आधार पर स्थिति है। मंत्रिमंडल ने उसका विरोध किया और यह विनिश्चित किया कि अपने कार्यालय पर उनका पूर्ण नियंत्रण हो सकता है पर वेतन इत्यादि की साधारण माप श्रेणी के संबंध में उसे औरों के समान होना पड़ेगा। यह एक महान मूल सिद्धांत है। जब भी आप किसी विशिाष्ट कार्यालय के वेतन अथवा उपलब्धियों पर विचार करें आपको उसकी व्यवस्था के देश के कारण वित्त संबंधी ढंग से करनी चाहिये।

साधारण लोक अर्थव्यवस्था तथा देश की वित्त संबंधी स्थिति पर बिना विचार किये आप सरकारी सेवकों अथवा सरकारी पदाधिकारियों के किसी विशिष्ट वर्ग और यहां तक कि कभी-कभी न्यायाधीश तक के लिये कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते हैं। मूल प्रस्थापना तथा संशोधन द्वारा, जो सभा के सम्मुख प्रस्तुत किये गये हैं, तीनों सिद्धांतों की पूर्ति हो जाती है। इन परिस्थितियों में मैं निवेदन करता हूं कि सभा दोनों संशोधनों को स्वीकार करे क्योंकि वे न्यायपालिका के गौरव और स्वातंत्र के पोषक होने के साथ-साथ सामान्य करदाता के हितों की भी रक्षा करते हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महादेय, कभी-कभी यह कहा जाता है कि सारे तर्क वादी के पक्ष में थे पर डिक्री उस पर हुई। ठीक ऐसा ही मुझे अनुभव हुआ जब मैंने इन संशोधनों को पढ़ा तथा मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और अन्य वक्ता जिन्होंने मेरे समक्ष विचार प्रकट किये हैं उनके भाषणों को सुना। वे चाहते हैं कि उच्चतम न्यायालय कार्यपालिका से पूर्णतया स्वतंत्र रहे और न्यायाधीशों के वेतन समय-समय पर विधान मंडल के मत पर छोड़े जायें। उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को दिये जाने वाले अथवा उनसे संबंधित वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन को नियत करने का क्षेत्राधिकार, यह अनुच्छेद 122 मुख्य न्यायाधिपति को देता है। इस संशोधन द्वारा इसमें रूप भेद करने का प्रयास किया गया है। यहां जिस रूप में यह खंड है। उसके अनुसार मुख्य न्यायाधिपति को राष्ट्रपति के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। उसमें यह कहा गया है कि ''राष्ट्रपति से परामर्श करने पर''। अत: वेतन और भत्ते नियत करने के लिये मुख्य न्यायाधिपति स्वतंत्र है जो स्वयं उसके तथा उसके पदाधिकारियों की स्वतंत्रता से संगत है। ''परामर्श'' शब्द का यहां जानबूझकर प्रयोग किया गया है। अब उन्होंने ''परामर्श'' शब्द को हटाकर ''अनुमोदन'' शब्द रखने का संशोधन रखा है। ''अनुमोदन'' ''परामर्श'' से सर्वथा भिन्न है। राष्ट्रपति को अब अधिकार है कि वह इसमें अड़चन डाल दे। पर ऐसा करने वाले राष्ट्रपति कौन हैं। भारतीय सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर जनरल को किसी व्यक्ति से परामर्श करने की आवश्यकता न थी और

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

वह पूर्ण रूप से उसके स्वविवेक के अधीन था कि वह जो कुछ चाहे करे। यहां इस संविधान में राष्ट्रपति का अर्थ है ''अपने मंत्रियों के परामर्श युक्त''। अत: वास्तव में जो कुछ होगा वह यह है कि इस समय मुख्य न्यायाधिपति को मंत्री के स्वर में स्वर मिलाना होगा। यह कहा जा सकता है कि समस्त मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को मंत्रणा देगा। मंत्रिमंडल में विधि अथवा विधि और व्यवस्था के मंत्री की बुलन्द आवाज होगी। सामान्यतया मंत्री की आवाज उसके सचिव की आवाज है। अत: उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को गृह विभाग अथवा विधि विभाग के सचिव मात्र के स्वर में स्वर मिलाना पड़ेगा। इस संशोधन का यही अर्थ है कि वह मंत्रिमंडल पर निर्भर रहेगा और तत्कथित न्यायपालिका की स्वतंत्रता छीन ली जायेगी अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि यह संशोधन किस प्रकार न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संगत है और न इसमें मुझे कोई बुद्धिमानी दिखाई देती है। मूलरूप में इस खंड के बनाने के पश्चात् बनाने वालों ने अपना मत बदल दिया है और वे इस खंड को भारतीय सरकार के अधिनियम के उपबंध के समान रूप में रखना चाहते हैं। अनुकूलित रूप में भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 216 इस विषय की ओर निर्देश करती है:

''फेडरल न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को दिये जाने वाले तथा उनसे सम्बन्धित समस्त वेतन, भत्ते और उपवेतन सहित फेडरल न्यायालय का प्रशासी व्यय अधिराज्य के राजस्व पर भारित होगा और न्यायालय द्वारा लिया गया कोई देय अथवा अन्य धन उस राजस्व का भाग होगा।''

धारा 242 (4) परन्तुक (ख) इस प्रकार है:

> "मुख्य न्यायाधिपति द्वारा उक्त उपबंध (2) के अन्तर्गत निर्मित नियमों का वेतन भत्ते, अवकाश अथवा निवृत्तिवेतन से जहां तक संबंध है उसके लिये गवर्नर जनरल का अनुमोदन अपेक्षित है।"

वे इस उपबंध का अनुकरण करना चाहते हैं। गवर्नर जनरल बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में इस देश के समस्त विभागों पर क्षेत्राधिकार रखना चाहता था जिनमें उच्च न्यायालय तथा फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश भी शामिल हैं। हम इस उपबंध का अनुकरण करें? मैं इस संशोधन के पक्ष में नहीं हूं। यह संशोधन न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के उस सिद्धांत के संगत नहीं है जिसके लिये हम सब वचनबद्ध हैं और जिसके पक्ष में हम सब हैं।

इसके पश्चात्, श्रीमान्, खंड (2) के संबंध में, जो वेतन इत्यादि सहित उच्च न्यायालय के व्यय को संघ के राजस्व को भारित करता है, कुछ क्षेत्रों में कुछ शंकायें की गई हैं कि क्या न्यायाधीशों के वेतन के संबंध में ही वह भारित होगा अथवा अन्य पदाधिकारियों और सेवकों के वेतन इत्यादि के संबंध में भी भारित होगा। यह दावा किया गया था कि यदि ऐसा किया जाता है तो अनेक अलग-अलग विभाग तथा स्वायत्तशासी प्राधिकारियों की उत्पत्ति हो जायेगी उच्चतम न्यायालय एक स्वायत्तशासी निकाय है जो अपने विषयों

को स्वयं विनियमित करता है जिनमें उसके पदाधिकारियों के वेतन और भत्ते आ जाते हैं। यह एक विभाग है। महालेखा-परीक्षक का दूसरा विभाग है। लोक सेवा आयोग तीसरा विभाग है। अत: कुछ लोग जो यह चाहते थे कि समय-समय पर संसद का नियंत्रण रहे वे इस खंड को भी निकालना चाहते थे। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। यह खंड रहना चाहिये क्योंकि जब आपने एक ओर मुख्य न्यायाधिपति को वेतन और निवृत्ति वेतन का विनियमन करने दिया है तो दूसरी ओर समय-समय पर आप संसद को इन बातों में बाधा देने की आज्ञा नहीं दे सकते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो पूरी की पूरी बात रद्द हो जायेगी। अब भी देर नहीं हुई है और मैं माननीय प्रस्तावक महोदय से निवेदन करूंगा कि वे अपने विनिश्चय पर पुनर्विचार करें। यदि वे यही समझते हैं कि यह बना रहे तो मैं इस संशोधन का विरोध नहीं करता हूं। मुझे यह संशोधन स्वीकार है।

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति जी, मैं श्री कृष्णमाचारी साहब की अमेंडमेंट की मुखालफत करता हूं।

किसी भी कांस्टीट्यूशन में तीन चीजें जरूरी होती हैं एक तो इंडिपेंडेंट ज्यूडीशियरी, दूसरा लेजिस्लेचर और तीसरा एक्जीक्यूटिव अगर कोई आदमी पूछे कि इन तीनों में से कौन सा बड़ा है और कौन सा छोटा है तो इस सवाल को पूछने वाले की ही गलती होगी क्योंकि यह तीनों ही बोडी पोलिटिक के भिन्न और शामिल अंग हैं। जिस कांटीट्यूशन में ज्यूडीशियरी को पूरी तरह से आजादी हासिल नहीं होती वह कांस्टीट्यूशन कभी भी किसी मुल्क की जनता की आजादी के सवाल की गारंटी नहीं करता। मगर हमें देखना चाहिये कि हमने उस ज्यूडिशियरी को क्या अख्तियार दे दिया है। तो उससे रोशन होगा कि इस किस्म के इख्तियार कायम करने हमारे लिये वाजिब और जायज हैं या नहीं।

जनाब के रूबरू दफा 109 जिस पर अभी तक बहस नहीं हुई है उसके अलफाज बड़े बाजेह हैं। उस ज्यूडिशियरी के समान गवर्नमेंट ऑफ इंडिया खुद और मुद्दई और मुद्दालय के पेश होंगे। चुनाच: उसके अलफाज दफा 109 में साफ हैं कि बतौर फरीक मुकदमा गवर्नमेंट व स्टेट पेश होंगे। इसके अलावा अगर हम सारे कांस्टीट्यूशन में दफात को देखें दफा 7 से 30 तक Fundamental Rights को देखें, यदि और दफात को देखें तो पता चलेगा कि सुप्रीम कोर्ट हमारी आजादी की नीव है। सुप्रीम कोर्ट की आजादी किसी इंडिविज्युअल के मातहत कर देना जिसका अख्तियार एक्जीक्यूटिव नेचर का है या ऐसी नेचर का कहा जा सकता है, दुरुस्त और जायज नहीं हैं जो दफा 122 पहले थी उसके अन्दर अलफाज बड़े सीधे थे:

> ''The salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the Supreme Court shall be fixed by the Chief Justice of India in consultation with the President.''

मैं अदब से अर्ज करता हूं कि उसके अन्दर अगर यह लफ्ज़ बढ़ा दिये जायें ''ऐप्रुवल ऑफ प्रेसीडेंट'' (approval of the President) तो ज्यूडिशियरी की आजादी मुकम्मिल

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

नहीं होगी और ऐसा करना मुनासिब नहीं होगा। इन शब्दों को बढ़ाना जाहिर करता है कि डर है कि ज्यूडीशियरी अपने नौकरों की तनुख्वाह इस तरह बढ़ायेगी जिसको गवर्नमेंट पसन्द नहीं करेगी। क्या मैं यह अर्ज कर सकता हूं कि कोई भी ज्यूडिशियरी का अफसर इसी तरह कह सकता है कि प्रेसीडेंट पर भी उसको यही शुबहा है, लेजिस्लेचर पर भी उसको यही शुबहा है कि न मालूम कल कितने नये मिनिस्टर बढ़ा दिये जायेंगे। मेरी राय में इस किस्म के शुबाहात इस तरह से प्रेसीडेंट पर या चीफ जस्टिस पर करना इस बात को जाहिर करता है कि हमको उन पर पूरा भरोसा नहीं है। इस वास्ते जहां तक कि ज्यूडीशियरी का सवाल है मैं साफ तौर पर अर्ज करना चाहता हूं कि चीफ जस्टिस की पावर्स के साथ इस तरह से खेलना हर्गिज जायज नहीं है। हमारा फर्ज है कि हम ज्यूडिशियरी को लेजिस्लेचर और एक्जीक्यूटिव दोनों के साथ बराबरी का दर्जा दें। इनके कोआर्डिनेशन पर हमारी किस्मत, हमारी आजादी और हमारी हर चीज जो हिंदुस्तान के अन्दर ऐसी है कि जिसको हम पनपने देना चाहते हैं, मुनहसिर है। इनमें से अगर आप किसी एक के भी साथ इस तरह से खेलना चाहें तो ऐसी दिक्कत पैदा हो सकती है कि ज्यूडीशियरी हमारी सारी आजादी को खत्म कर सकती हैं, लेजिस्लेचर ऐसा कानून बना सकता है कि ज्यूडीशियरी को खत्म कर सकता है। ऐक्जीक्यूटिव से भी इसी तरह का डर पैदा हो सकता है। इसलिये इन तीनों के कोआर्डिनेशन से ही हमारी भलाई हो सकती है। इन पर शुबहात करने की कोई वजह नहीं है कि आप यह रखें ''with the approval of the Pressident'' गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के सेक्शन 342 में जो प्रोवाइजो है उसके बारे में मैं अर्ज करना चाहता हूं कि पुरानी गवर्नमेंट कुछ भी करना चाहती हो, हमें उससे मतलब नहीं है। आज तो हमारा ताल्लुक है अपनी ज्यूडीशियरी से, कि वह बिल्कुल इंडिपडेंट होनी चाहिये जिससे कि हम उस पर पूरा भरोसा कर सकें। इसके लिये जरूरी है कि वह इंडिपेंडेटली काम करे और प्रेसीडेंट को या लेजिस्लेचर उस से interfere न करे सके। इसलिये यह जरूरी है कि उसके अख्तियारात में कमी न की जाये। जहां हम यह कर रहे हैं कि प्रेसीडेंट की सैलरी चार्ज आन गवर्नमंट रेवेन्यू होगी, तो वैसी ही चीफ जस्टिस की भी चार्ज आन दी रेवेन्यूज हो। इसी तरह से जो इस किस्म के अफसरान हैं कि जिनकी इंडिपेंडेंस इस सारे कांस्टीट्यूशन में ठीक तौर पर काम करने के वास्ते जरूरी है उन सबका ही खर्चा चार्ज आन दी रेवेन्यूज होना चाहिये। जब आपने एक दफा रकम उनके वास्ते मुअय्यन कर दी तो चीफ जस्टिस को अख्तियार होना चाहिये कि वह उसको चाहे जैसे खर्च करे और लेजिस्लेचर और एक्जीक्यूटिव उसमें दखल न दे सकें।

आपने अभी डाइरेक्टिव प्रिंसिपल में पास किया है कि आप ज्यूडिशियरी और एक्जीक्यूटिव का सैपरेशन चाहते हैं। मैं पूछना चाहता हूं कि इसको आप कैसे इफेक्ट कर सकते हैं अगर आप चीफ जस्टिस को और उसके महकमे को पूरी आजादी खर्च करने की नहीं देते। क्या आप चाहते हैं कि छोटी-छोटी पोस्ट के लिए चीफ जस्टिस तो कहे कि वह जरूरी है और फिर प्रेसीडेंट पर प्रोपोजल भेजें तो प्रेसीडेंट के मानी आखिर में प्राइम मिनिस्टर के और उस मिनिस्टरी के अन्दर उनके बड़े सैक्रेटरी के और वह सैक्रेटरी वगैरह कमेंट करेंगे कि यह पोस्टें ठीक हैं या नहीं? क्या यह जायज होगा कि चीफ जस्टिस इस तरह

से एक-एक पोस्ट के लिये लिखे? जिनके हाथ में आप सारे हिंदुस्तान की आजादी देना चाहते हैं; तो फिर क्या वजह है कि आप उन पर इस बारे में शुबाह करें कि वह इस काम को अच्छी तरह से नहीं कर सकेंगे। मैं अदब से अज्र करना चाहता हूं कि इस तरह की जो अमेंडमेंट हैं, इन सब की तह में यह चीज है कि यह डर रहे हैं कि कहीं चीफ जस्टिस ऐसे न हो जायें कि वह बहुत रुपया खर्च कर दे। और सारे कांस्टीट्यूशन हरदम वरहम कर दें। इस शुबाह की कोई वजह नहीं है। हमने आज तक हिंदुस्तान में ब्रिटिश गवर्नमेंट के जमाने में भी जबकि उनकी ज्यूडिशियरी थी, उनके दबाव में न थी, यह देखा कि उस वक्त भी ज्यूडिशियरी ने एक्जीक्यूटिव की परवाह नहीं की। क्या हम नहीं जानते कि दफा 26 पब्लिक सेफ्टी एक्ट को हमारी फेडरेल कोर्ट ने नाजायज करार दे दिया था अगर आप चाहते हैं कि इस देश में हमें वही आजादी हासिल रहे बल्कि उससे बढ़कर आजादी यहां कायम हो जो कि अब तक रही है तो यह जरूरी है कि आप ज्यूडीशियरी का मरतबा एक्जीक्यूटिव या लेजिस्लेचर से कम न होने दें।

इस असेम्बली के मेम्बर साहिबान को याद होगा कि जब दफा 15 पर बहस हो रही थी उस वक्त यह सवाल था कि आया लेजिस्लेचर जब कोई कानून पास कर देगा तो उस कानून पर भी ज्यूडीशियरी को यह अख्तियार हो कि वह कह दे कि कानून जस्टिस के मुताबिक है या नहीं, जैसा कि अमेरिका के अन्दर दस्तूर है कि जहां तक कि हर एक आदमी की लाइफ और पर्सनल लिबर्टी का सवाल है ज्यूडिशियरी लेजिस्लेचर के बनाये कानून के बारे में राय दे सकती है कि यह जायज है या नहीं। तो उस वक्त यह सवाल दर पेश था कि ज्यूडिशियरी को इतनी पावर्स दी जाये कि वह लेजिस्लेचर के बनाये हुये कानून को भी कह दे कि यह दुरुस्त और जायज नहीं है। जबकि ऐसे सवालात आपके रूबरू पेश होते हैं और जबकि हाउस एक तरह से इसके हक में था तो मैं उम्मीद करता हूं कि आयन्दा भी जब इसके मुताल्लिक फिर कोई सवाल पेश होगा तो हाउस ज्यूडीशियरी के पूरे अख्तियारात की हिमायत करेगा। जब हम ज्यूडीशियरी को इतने अख्तियार देना चाहते हैं तो मैं अदब से अर्ज करना चाहता हूं कि किसी डर के मातहत यह नहीं करना चाहिये कि छोटे-छोटे सरवेंट्स की पोस्टों के वास्ते चीफ जस्टिस को एक्जीक्यूटिव का दस्तनिगर होना पड़े। यह अमेंडमेंट मुनासिब नहीं है और मैं इसकी मुखालिफत करता हूं।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, यह कहना आवश्यक है कि न तो मैं इस अनुच्छेद 122 की पदावली से प्रसन्न हूं और न इसमें निहित विचार से ही। श्रीमान्, इस बात के प्रति मेरी इच्छा किसी से कम नहीं है कि देश की न्यायपालिका कार्यपालिका से पूर्णतया स्वतंत्र रहे, पर मैं समझता हूं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को केवल न्याय प्रशासन तक ही सीमित रखा जाये और न्यायपालिका की स्वतंत्रता की आड़ में हम न्यायपालिका को उन कार्यों की शक्ति प्रदान करते हुए न चले जायें तो सामान्यतया कार्यपालिका अथवा संसद के क्षेत्राधिकार में है। अनुच्छेद 122 के अनुसार उच्चतम न्यायालय में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को भरने के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की नियुक्ति का अधिकार तथा प्राधिकार हम उच्चतम न्यायालय को, मुख्य न्यायाधिपति को और उन न्यायाधीशों को, जिनका कि मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नाम निर्देश किया जायेगा और यहां

[श्री जसपतराय कपूर]

तक कि उच्चतम न्यायालय के उन अधीन पदाधिकारियों तक को, जिनका मुख्य न्यायधिपति द्वारा नाम निर्देश किया जायेगा, सौंप रहे हैं। श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि इन सब नियुक्तियों के लिये उच्चतम न्यायालय को शक्ति सौंपने की कोई आवश्यकता है। और फिर, श्रीमान्, इस न्यायपालिका को केवल यही शक्ति नहीं सौंप रहे हैं वरन् हम इस शक्ति को बिना किसी रुकावट के पूर्ण रूप में दे रहे हैं। हम यह देखें कि खंड (1) क्या कहता है: ''Appointments of officers and servants of the Supreme Court shall be made by the Chief Justice of India or such other judge or officer of the court as he may direct,'' और आगे यह दिया हुआ है ''Provided that the President may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the court shall be appointed to any office connected with the court, save after consultation with the Union Public Service Commission.''।

श्रीमान्, यह अच्छी बात है कि इस परादिक को यहां प्रविष्ट किया गया है, पर मुझे ऐसा अनुभव होता है कि ''may'' शब्द के स्थान में ''shall'' शब्द होना चाहिये। इस परादिक में संघ के लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के लिये निश्चित रूप से व्यवस्था होनी चाहिये। जिस प्रकार मैं इसका निर्वाचन करता हूं उससे यह आशय निकल सकता है कि संघ के लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के लिये राष्ट्रपति नियम बनाये अथवा नहीं भी बनाये। क्योंकि उसमें यह कहा गया है कि ''Provided that the President may by rule require...'' इसका यह अर्थ नहीं होता कि सब विषयों में संघ के लोक सेवा आयोग से परामर्श लेना ही चाहिये। अत: मैं इसका बहुत स्वागत करूंगा कि यह आवश्यक बना दिया जाये कि लोक सेवा आयोग के विचारों पर सदैव विचार किया जायेगा।

खंड (2) में हम देखते हैं कि इस परादिक में यह दिया हुआ है कि इन पदाधिकारी इत्यादिकों को दिये जाने वाले अथवा उनसे संबंधित वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन राष्ट्रपति से परामर्श कर भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियत किये जायेंगे। श्रीमान्, मुझे यह कहना चाहिये कि आज माननीय डा. अम्बेडकर ने नि:संदेह पर्याप्त बुद्धिमानी से इस प्रभाव का संशोधन पेश किया है कि 'in consultation with' शब्दों के स्थान में हमें 'with the approval of the President' शब्द रखने चाहियें। यह बाद में जो विचार उत्पन्न हुआ वह वास्तव में स्वागत के योग्य है। पर मैं यह निवेदन करता हूं कि यह और भी अच्छा होता यदि आरम्भ में ये सारी नियुक्तियां स्वयं राष्ट्रपति द्वारा ही की जातीं। जिस रूप में परादिक है उसका यह आशय है कि आरम्भ में मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा मनोनीत कोई अन्य व्यक्ति ही इस विषय में अपना दिमाग लगायेगा। वह कुछ व्यक्तियों को चुनेगा उनके वेतन और भत्ते नियत करेगा और इसके बाद वह इन सारी बातों को राष्ट्रपति के समक्ष उनके अनुमोदन के लिये रखेगा। श्रीमान्, इस प्रकार से कदाचित राष्ट्रपति को एक बड़ी भद्दी तथा संकटमय स्थिति में डालना है। जबकि प्रस्थापना मुख्य न्यायाधिपति जैसे उच्च पदाधिकारी से प्राप्त होती है तो उन सुझावों को तुरन्त अस्वीकार करने में वह

हिचकिचायेगा। सामान्तया वह यह सोचेगा कि ''इन विषयों में मैं मुख्य न्यायाधीश का क्यों विरोध करूं? वह जैसा चाहता है वैसा उसे करने दो।'' यद्यपि यदि आरम्भ में ही इसे राष्ट्रपति पर छोड़ दिया जाता तो शायद उसका विनिश्चय बहुत कुछ भिन्न होता। अतः मैं समझता हूं कि यह बहुत ही अच्छा होता कि इस उपबंध में हम यह निर्धारित कर देते कि सब बातों का विनिश्चय स्वयं राष्ट्रपति ही करेगा न कि राष्ट्रपति के अनुमोदन से मुख्य न्यायाधिपति।

तत्पश्चात मैं इस अनुच्छेद के खंड (3) पर आता हूं। इस खंड के अनुसार संसद के अधिकार और विशेषाधिकारों का अपहरण किया जा रहा है। इस खंड में यह दिया गया है: ''The administrative expenses of the Supreme Court including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the court, shall charged upon the revenues of India and any fees or other moneys taken by the court shall form part of those revenues.'' विशेष रूप से मैं इस सभा के माननीय सदस्यों का ध्यान 'shall be charged upon the revenues of India, शब्दों की ओर आकर्षित करता हूं। इस खंड से जो उलझने होंगी वे बड़ी गम्भीर तथा दूर तक प्रभाव डालने वाली हैं। इसका यह अर्थ है कि इस विषय में संसद को कुछ भी अधिकार न होगा और इन नियुक्तियों के संबंध में अर्थ संबंधी प्रस्थापना चाहे जैसी हों वे संसद के समक्ष कदापि नहीं आयेंगी और अपने आप ही वे सरकार द्वारा स्वीकार्य मानी जायेंगी और इस विषय में संसद को कोई अधिकार नहीं होगा और यह संसद के मत का विषय ही नहीं होगा। मैं इसमें कोई न्यायमुक्त बात नहीं समझ पाता हूं कि वेतन और भत्ते इत्यादिकों को क्योंकर संसद के मत के अधीन न रखा जाये। यह तो मैं समझ सकता हूं कि न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों के संबंध में हम ऐसा एक उपबंध रखें। इस विषय से संगत अनुच्छेद जब हमने पारित किये थे उस समय हम इसकी व्यवस्था कर ही चुके हैं। पर जहां तक उच्चतम न्यायालय के साधारण चपरासी का संबंध है तथा जहां तक उच्चतम न्यायालय के साधारण पंखा कुली का संबंध है उसका वेतन संसद के मत के अधीन नहीं होगा। क्यों? हमें दूसरों पर शंका नहीं करनी चाहिये पर साथ ही साथ हमें आत्म विश्वास भी होना चाहिये। यदि हमसे दूसरों पर विश्वास करने के लिये कहा जाता है तो साथ ही साथ हमसे यह न कहा जाये कि हम स्वयं अपने में विश्वास न करें। हम अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों के प्रति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में विश्वास करते हैं तो वेतन इत्यादि नियत करने के विषय में हम संसद में भी विश्वास करें कि वह ठीक कार्य करेगी। यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को किसी शक्ति का सौंपना आवश्यक नहीं है तो हम उस शक्ति को उन पर क्यों लादें और अपने अधिकारों तथा विशेषाधिकारों से अपने आप को वंचित क्यों करें? अधीन पदाधिकारियों का वेतन अवश्य ही संसद के मत के अधीन होना चाहिये और संसद के क्षेत्राधिकार से बाहर नहीं होना चाहिये। उदाहरण के रूप में मान लीजिये कि उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति संसद के समक्ष यह प्रस्तुत करता है...।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य ने बहुत समय ले लिया है। मैं नहीं समझता हूं कि इस चर्चा को और अधिक देर तक जारी रखना आवश्यक है। बारह बजने वाले हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं समाप्त करने वाला हूं। मान लीजिये उच्चतम न्यायालय एक करोड़ अथवा इससे भी अधिक रुपयों का एक बड़ा बजट प्रस्तुत करता है। यदि खंड (3) जिस रूप में है उसी रूप में रहता है तो ससंद का उस पर कोई भी नियंत्रण नहीं रहेगा और उच्चतम न्यायालय को इस समस्त राशि का अनुदान करना पड़ेगा। यह कहा जाता है कि उच्चतम न्यायालय से हम यह आशय न करें कि वह इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव करेगा। मैं मानता हूं कि वे ऐसी मूर्खता नहीं करेंगे। पर कुछ बातें ऐसी हैं जिनका संसद को ही विशेष ज्ञान है और जिनका शायद उच्चतम न्यायालय को ज्ञान न हो। देश की वित्तीय स्थिति का संसद को विशेष ज्ञान है। देश की वास्तविक वित्तीय स्थिति से अपरिचित होने के कारण उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश ऐसा बजट बना सकते हैं जिसमें बहुत अधिक व्यय अंतर्ग्रस्त हो। इन कारणों के आधार पर मैं निवेदन करता हूं कि यह अनुच्छेद न तो बहुत अच्छे प्रकार से विचारा गया है और न इसकी शब्दावली ठीक है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्...।

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य पांच मिनट से अधिक समय नहीं लेंगे। मैं इस अनुच्छेद पर आज ही चर्चा समाप्त करना चाहता हूं।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। मैं यह ठीक-ठीक नहीं समझ पाता हूं कि यह प्रश्न उठता ही कहां है। जहां तक इस अनुच्छेद और संशोधनों का संबंध है इनमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता को निर्बन्धित करने की कोई बात नहीं है। मूल अनुच्छेद 122 यह था कि भारत का मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति से परामर्श कर वेतन, भत्ते इत्यादि निश्चित करेगा। संशोधन में केवल 'परामर्श' के स्थान में 'अनुमोदन' शब्द रखने का प्रयास किया गया है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर ने कहा था, यह भारत के मुख्य न्यायाधिपति की स्वतंत्रता अथवा गौरव का प्रश्न नहीं है। यह केवल देश के वित्त का प्रश्न है। देश के वित्त के बारे में राष्ट्रपति को अधिक अच्छा ज्ञान है और देश के वित्त के अनुसार वह वेतन और भत्ते नियत करेगा। देश के प्रशासन में ऐसे और भी व्यक्ति हैं जो वैसी ही सामर्थ्य तथा अर्हता रखते हैं और लगभग उतना ही श्रम करते हैं। यह आवश्यक है कि एक ही प्रकार के कार्य के लिये जो समान क्षमता, योग्यता और अर्हता से किया जाता है। समान वेतन, भत्ते, निवृत्ति वेतन और उपलब्धियां होनी चाहियें। अत: स्वतंत्रता का प्रश्न अथवा न्यायपालिका की स्वतंत्रता में कोई निर्बन्धन अथवा अड़चन का प्रश्न उठता ही नहीं है। न्यायालय के पदाधिकारियों की नियुक्ति पूर्णतया उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के हाथ में है और ऐसा होना भी चाहिये क्योंकि इन पदाधिकारियों से तो उन्हें ही तो काम लेना है। कुछ दशाओं में जब राष्ट्रपति उचित समझे उसे नियम निर्धारित करने का अधिकार है कि सेवाओं के कुछ वर्गों के लिये लोक सेवा आयोग से परामर्श किया जायेगा और यहां भी मुख्य न्यायाधिपति के

गौरव और ऐश्वर्य के लिये कोई अहितकारी बात नहीं है। समस्त देश के प्रशासन के लिये यह तो राज्य की नीति का प्रश्न है। अत: सभा की स्वीकृति के लिये मैं दोनों संशोधनों की सिफारिश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, स्थिति को स्पष्ट करने के लिये मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा। श्रीमान्, इसमें कोई संदेह नहीं कि सामान्यतया इस सभा ने यह मान लिया है कि विधि द्वारा कार्यपालिका से न्यायपालिका को हम जितना स्वतंत्र बना सकते हैं उतना स्वतंत्र बनाना चाहिये। परन्तु इसके साथ ही साथ यह भय है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के नाम से जैसा कि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा है हम साम्राज्य के अंतर्गत राज्य की उत्पत्ति कर रहे है। हम साम्राज्य के अंतर्गत राज्य की उत्पत्ति करना नहीं चाहते हैं पर साथ ही साथ हम न्यायपालिका को पर्याप्त स्वतंत्रता देना चाहते हैं जिससे कि कार्यपालिका का पक्ष लिये बिना अथवा उससे भयभीत हुए बिना वह कार्य कर सके। मूल अनुच्छेद 122 के स्थान में जिस नये संशोधन को मैंने प्रस्तावित किया है उसके उपबंधों का यदि मेरे मित्र सावधानीपूर्वक परीक्षण करेंगे तो उनको यह विदित होगा कि नये अनुच्छेद में मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। वह साम्राज्य के अन्तर्गत राज्य को उत्पत्ति नहीं होने देता है और मैं समझता हूं कि न्यायपालिका को वह उतनी स्वतंत्रता देता है जितनी बिना किसी बैर और प्रीति के न्याय प्रशासन के लिये आवश्यक है। अत: इस नये अनुच्छेद 122 में दिये हुए सब उपबंधों की विस्तृत व्याख्या करने की मुझे आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद के वाद-विवाद में जिन वक्ताओं ने भाग लिया है वे भी इस बात से साधारणतया सहमत हैं कि नये अनुच्छेद के कुछ खंड जैसे कि खंड (1) खंड (2) और यहां तक कि खंड (3) भी निरापवादनीय हैं। मतभेद केवल खंड (2) के परादिक पर मालूम होता है। मूल परादिक में यह उपबंध था कि राष्ट्रपति से परामर्श कर मुख्य न्यायाधिपति वेतन, भत्ते इत्यादि, इत्यादि नियत करेगा। संशोधित परादिक यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त कर मुख्य न्यायाधिपति इस कार्य को करेगा, और वास्तव में प्रश्न यह है कि मूल उपबंध जिसमें यह दिया हुआ है कि राष्ट्रपति से परामर्श कर यह कार्य किया जाये अथवा राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त कर यह कार्य किया जाये इन दोनों विकल्पों में से हम किसको चुनें। इसमें सन्देह नहीं कि मूल मसौदा ''राष्ट्रपति से परामर्श कर'' अन्तिम विनिश्चय मुख्य न्यायाधिपति पर निर्भर करता है अथवा निर्भर करता हुआ प्रतीत होता है और नया परादिक ''राष्ट्रपति से अनुमोदन प्राप्त कर'' शब्दों सहित अन्तिम विनिश्चय राष्ट्रपति पर निर्भर करता हुआ प्रतीत होता है और वास्तव में वह राष्ट्रपति पर निर्भर करता है और यही मंशा भी है। श्रीमान्, इस विषय का विनिश्चय करने के लिये दो बातों पर विचार करना चाहिये। एक यह है कि फेडरल न्यायालय के लिये वर्तमान उपबंध क्या है? यदि माननीय सदस्य भारतीय सरकार के सन् 1935 ई. के अनुकूलित अधिनियम की धारा 216 के खंड (2) को देखेंगे तो उन्हें विदित होगा कि उसमें दिये हुए उपबंध अनुमोदन पर इस विषय को छोड़ते हैं—मुझे खेद है कि वह धारा 242 खंड (2) है—जो गवर्नर जनरल की अनुमति पर इस विषय को निर्भर करती है। इस विचार से तो हम, जो स्थिति वर्तमान है उसी को जारी रख रहे हैं। पर मुझे यह प्रतीत होता है कि एक विचार और भी है जो इस

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

बात का समर्थन करता है कि हम इस ''राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त कर'' पद को रखें और वह यह है। नि:संदेह यह वांछनीय है कि राज्य के सेवक को दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन समान हों और इन विषयों में असैनिक सेवाओं में बहुत अधिक अन्तर नहीं होना चाहिये। इससे बहुत अधिक मनोवेदना उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है और निधि पर अनावश्यक भार पड़ सकता है। यदि आप इस विषय को मुख्य न्यायाधिपति पर छोड़ दें तो यह हो सकता है, मैं यह नहीं कहता कि यह होगा ही पर यह हो सकता है कि मुख्य न्यायाधिपति ऐसे भत्ते की दर, वेतन और निवृत्ति वेतन नियत कर सकता है जो न्यायपालिका को छोड़कर अन्य विभागों में कार्य करने वाले असैनिक सेवकों के लिये नियत वेतन इत्यादि से बहुत ही भिन्न हो और मैं नहीं समझता हूं कि ऐसी वस्तुस्थिति वांछनीय है। अत: मेरे निर्णय के अनुसार नया मसौदा, नया संशोधन जिसको मैंने प्रस्तुत किया है वह इस विषय का उचित हल है और मैं आशा करता हूं कि सभा मूल परादिक के स्थान में उसको स्वीकार करेगी।

एक और विषय है जिसका मैं जिक्र करूंगा, यद्यपि उसकी व्यवस्था न तो मेरे संशोधन में है और न उसका उल्लेख उन सदस्यों ने ही दिया है जिन्होंने वाद-विवाद में भाग लिया है। इसमें सन्देह नहीं कि मेरे नये अनुच्छेद के खंड (3) के द्वारा हमने यह उपबंध रखा है कि उच्चतम न्यायालय का प्रशासन व्यय भारत के राजस्व पर भारित होगा, पर प्रश्न यह है कि क्या खंड (3) में दिया हआ यह उपबंध न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये पर्याप्त है। अपने निजी विचार प्रकट करते हुए मैं नहीं समझता हूं कि यह खंड स्वयं न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिये पर्याप्त होगा। आखिर जब हम यह कहते हैं कि कोई विशिष्ट भार राज्य की संचित निधि पर भारित होगा तो इसका क्या अर्थ है? इसका केवल यही अर्थ है कि उस पर सभा का मत लेने की आवश्यकता नहीं हैं इसके अतिरिक्त इसका और कुछ अर्थ नहीं है। हम स्वयं यह कह चुके हैं कि जब किसी विशिष्ट भार का भारत के राजस्व पर भारित करना घोषित कर दिया जाता है तो यही होगा कि वह एक ऐसा विषय हो जायेगा जिस पर मत न लिया जाये यद्यपि विधान मंडल द्वारा उस पर चर्चा हो सकती है। अत: जो उपबंध हमने बनाये हैं उनके प्रकाश में अनुच्छेद 122 को पढ़ने पर जो अर्थ निकलता है वह यही है कि न्यायपालिका से संबंधित बजट के भाग पर प्रति वर्ष विधान मंडल का मत देना अपेक्षित नहीं होगा। पर मैं समझता हूं कि एक प्रश्न ऐसा है कि जो इस विषय की तह तक जाता है और उस पर पहले विचार होना चाहिये और वह यह है कि इस बात का निश्चय कौन करेगा कि उच्चतम न्यायालय की क्या-क्या आवश्यकतायें हैं। हमने ऐसा कोई उपबंध नहीं बनाया है। हमने इस बात का निश्चय करना कार्यपालिका पर छोड़ दिया है कि न्यायपालिका के लिये प्रति वर्ष कितना धन नियत किया जाये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक बड़ी ही दुर्बल स्थिति है जिसको ठीक करने की आवश्यकता है। इस स्थिति में मैं सभा का ध्यान भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की धारा 216 में दिये हुए उपबंधों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। जिसमें यह कहा गया है कि फेडरल विधान मंडल की सभाओं में गवर्नर जनरल द्वारा रखे जाने वाले किसी व्यय के प्राक्कलन में फेडरल न्यायालय के प्रशासन व्यय के लिये कितनी धनराशि रखी जाये इस विषय में गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करेगा। अत: उस धन राशि

पर जो फेडरल न्यायालय के उचित संचालन के लिये आवश्यक है। यदि कार्यपालिका का मुख्य न्यायाधीश से मतभेद हुआ तो गवर्नर जनरल हस्तक्षेप कर सकता है और यह विनिश्चय कर सकता है कि कितना धन बांट में दिया जाये। पर इस समय वह उपबंध जैसा संविधान हम ग्रहण कर रहे हैं उसके अनुकूल नहीं है अत: मेरे निर्णय के अनुसार हमें मुख्य न्यायाधिपति के प्रशासन कार्य के संचालन के लिये पर्याप्त निधि प्राप्त कराने की कोई दूसरी रीति खोजनी चाहिये। इस बात के कारण मैं इस अनुच्छेद को थोड़ी देर के लिये भी नहीं रोकना चाहता हूं। मैंने केवल सभा के समक्ष इसका जिक्र कर दिया है जिससे कि यदि वह वांछनीय समझे तो इस बात को लाने के लिये बाद में कोई उपयुक्त संशोधन रखा जा सके।

***अध्यक्ष:** सभा के समक्ष सर्वप्रथम मैं, डा. अम्बेडकर ने अपने मूल संशोधन पर जो संशोधन पेश किया है, उसे रखूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''कि संशोधन संख्या 1967 में प्रस्तावित अनुच्छेद 122 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान में निम्न परन्तुक रखा जाये:

'Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधित रूप में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 1967 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि वर्तमान अनुच्छेद 122 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

122. *Officers and servants and the expenses of the Supreme Court.*– (1) Appointments of officers and servants of the Supreme Court shall be made by the Chief Justice of India or such other judge or officer of the court as he may direct?

Provided that the President may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the court shall be appointed to any office connected with the court, save after consultation with the Union Public Service Commission.

[अध्यक्ष]

(2) Subject to the provisions of any law made by Parliament, the conditions of service of officers and servants of the Supreme Court shall be such as may be prescribed by rules made by the Chief Justice of India or by some other judge or officer of the court authorised by the Chief Justice of India to make rules for the purpose:

Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.

(3) The administrative expenses of the Supreme Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the court, shall be charged upon the revenues of India, and any fees or other moneys taken by the court shall form part of those revenues.' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 122 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 122 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** जिन कारणों के आधार पर अनुच्छेद 109 से 114 तक स्थगित किये गये हैं उसी आधार पर अनुच्छेद 123 स्थगित रहेगा।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, 30 मई सन्, 1949 ई. के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 4. VIII.11.49
320

अंक 8
संख्या 11

सोमवार
30 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारतीय अधिनियम, 1946 (संशोधन) विधेयक..... 613-615

संविधान का प्रारूप..... 616-669

[अनुच्छेद 124 से 131 पर विचार]

भारतीय संविधान-सभा

सोमवार, 30 मई, 1949

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

भारतीय अधिनियम 1946 (संशोधन) विधेयक

***माननीय डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी:** (पश्चिमी बंगाल : जनरल) श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल के) अधिनियम 1946 के संशोधक विधेयक पर यह सभा तुरन्त विचार करे।''

श्रीमान्, यह विधेयक भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान मंडल के) अधिनियम 1946 में, जिसका 26 मार्च 1946 को ब्रिटिश पार्लियामेंट में पारण हुआ था, संशोधन करने के लिये उपस्थित किया गया है। इस संशोधन के दो उद्देश्य हैं। इसका पहला उद्देश्य यह है कि रुई (जिसमें धुनी हुई रुई तथा कपास और बिनौले सम्मिलित हैं) ऐसे पदार्थों की श्रेणी में रखी जाये जिन पर केन्द्र का नियंत्रण है। इसका दूसरा उद्देश्य कोयले की ऐसी परिभाषा करता है कि फिर इसके सम्बन्ध में सन्देह के लिये कोई स्थान न रह जाये और यह निर्धारित करना है कि कोयले में पत्थर का कोयला और कोयले के बने हुए पदार्थ भी सम्मिलित हैं।

पहले मैं दूसरे उद्देश्य के सम्बन्ध में बोलूंगा। कुछ वर्षों से कोयले, पत्थर के कोयले और कोयले के बने हुए पदार्थों पर केन्द्र का नियंत्रण रहा है। हाल में न्यायालयों में एक दो निर्णय इस आशय के किये गये हैं कि पत्थर का कोयला विधि की दृष्टि से कोयले की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता। यह प्रश्न विधि-विभाग के सम्मुख रखा गया और उसने यह परामर्श दिया है कि उचित यह होगा कि अधिनियम को ही संशोधित किया जाये और उसके निर्वचन को पहले की तिथि से प्रवर्तन में लाया जाये और इस आशय का उपबंध रखा जाये कि कोयले में पत्थर का कोयला तथा कोयले के बने हुए सभी पदार्थ सम्मिलित हैं, ताकि किसी प्रकार के सन्देह के लिये स्थान न रह जाये।

जहां तक रुई का सम्बन्ध है, जब भारत-रक्षा-नियम प्रवर्तन में थे, उस समय रुई पर केन्द्र का नियंत्रण था। सभा को स्मरण होगा कि बाद में भारत-रक्षा-नियमों के अधीन जो शक्तियां केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय विधान मंडल को प्राप्त थी, उनका शून्यन हो गया। मार्च 1946 में भारत सरकार के अधिनियम को विशेष रूप से संशोधित किया गया। जब मैं आपकी अनुमति से, इसे अधिक संशोधित करने का प्रस्ताव रख रहा हूं, ताकि भारत सरकार को कुछ समय के लिये, यदि आवश्यक हो तो, कुछ पदार्थों के सम्बन्ध में विधि बनाने की कुछ शक्तियां प्राप्त हो जायें।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डा. श्यामाप्रसाद मुकर्जी]

साधारणतया ये पदार्थ प्रान्तीय अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। ये समवर्ती सूची में रखे गये थे। दूसरे शब्दों में यदि केन्द्रीय विधान मंडल का यह विचार हो कि इन पदार्थों पर केन्द्र का नियंत्रण हो तो यह व्यवस्था पांच वर्ष तक की जा सकती है। सभा को स्मरण होगा कि इस प्रकार के नियंत्रित पदार्थों की सूची में आठ पदार्थ हैं: खाद्य पदार्थ, सूती और ऊनी कपड़ा, कागज, पेट्रोल और पेट्रोल से बने हुए पदार्थ, यंत्रों से चलने वाली गाड़ियों के भाग, कोयला, लोहा और इस्पात तथा अबरक। एक समय यह विचार किया गया था कि सूती तथा ऊनी कपड़े में कपास भी सम्मिलित है। किन्तु बाद में यह बताया गया कि सूती और ऊनी कपड़े का अर्थ केवल सूती और ऊनी कपड़ा ही है। यदि इसका अर्थ केवल सूती और ऊनी कपड़ा ही है, तो सूती कपड़ा इस परिभाषा के अन्तर्गत न आयेगा। यह एक अनर्गल बात होगी। इसलिये वर्तमान विधि के अनुसार रुई केवल प्रान्तीय अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। पिछले वर्ष, जब रुई फिर से नियंत्रित की गई थी, तो प्रान्तों का तथा सम्बन्धित सभी पक्षों का यही मत था कि रुई को भी नियंत्रित करना आवश्यक है। किसी विधि द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त नहीं थी। इसलिये हम ने एक रुई-नियंत्रक आज्ञा का मसौदा बनाया और प्रान्तों से कहा कि वे उसके अनुसार विधि बनायें। कुछ प्रान्तों ने ऐसा किया और कुछ प्रान्तों ने देर कर दी। इसके बाद राज्यों को इसी प्रकार की विधि बनाने के लिये राजी करने में बहुत समय लग गया। बाद को इस नियंत्रक आज्ञा को प्रयोग में लाने के सम्बन्ध में आदेश देने में बहुत सी पेचीदगियां पैदा हो गई, क्योंकि केन्द्रीय सरकार को कोई विधि बनाने अथवा कार्यपालन सम्बन्धी कोई कार्यवाही करने के लिये कोई विधि-प्रदत्त शक्ति प्राप्त नहीं थी। यह प्रश्न प्रान्तीय सरकारों के सम्मुख रखा गया और अब वे इसके लिये राजी हो गई हैं कि रुई को भी केन्द्र द्वारा नियंत्रित पदार्थों के अंतर्गत रखा जाये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रुई पर नियंत्रण कई दशाओं को ध्यान में रखकर रखा जायेगा और ये दशायें समय-समय पर बदल सकती हैं।

मैंने संसद के इस अधिनियम को संशोधित करने के लिये आज एक प्रस्ताव इस कारण उपस्थित किया है कि यह सभा ही, न कि केन्द्रीय विधान मंडल, इसमें संशोधन कर सकती है। इसके फलस्वरूप यदि केन्द्रीय विधान मंडल चाहेगा तो रुई भी एक नियंत्रित पदार्थ हो जायेगी। विधेयक के विधि का रूप धारण कर लेने पर केन्द्रीय विधान मंडल को एक अन्य विधेयक को इस उद्देश्य से स्वीकार करना होगा कि रुई भी उस आवश्यक-प्रदाय-अधिनियम के पदार्थों में सम्मिलित हो जाये, जो इस समय उपरोक्त आठ पदार्थों के सम्बन्ध में प्रयोग में है। यह एक साधारण तथा विवाद शून्य प्रस्ताव है और इसके सम्बन्ध में सभा के किसी सदस्य महोदय ने कोई संशोधन भी उपस्थित नहीं किया है। मुझे आशा है कि यह प्रस्ताव बिना वाद-विवाद हुए ही स्वीकार कर लिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

> ''भारतीय (केन्द्रीय सरकार और विधान मंडल के) अधिनियम, 1946, के संशोधन विधेयक पर यह सभा तुरन्त विचार करे।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया गया है। इसलिये मैं इसके खंडों पर सभा का मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

''खंड 1 से 4 तक विधेयक के अंग बना लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खंड 1 से 4 तक विधेयक के अंग बना लिये गए।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''प्रस्तावना तथा नाम विधेयक के अंग बना लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रस्तावना तथा नाम विधेयक के अंग बना लिये गये।

***माननीय डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि इस सभा ने जिस विधेयक के सम्बन्ध में निर्णय किया है उसे स्वीकार कर लिया जाये।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 124

***अध्यक्ष:** अब सभा संविधान के मसौदे, अर्थात् अनुच्छेद 124 पर विचार करेगी।

इस अध्याय के शीर्षक के सम्बन्ध में मि. नजीरुद्दीन अहमद ने एक संशोधन (संख्या 1974) की सूचना दी है।

चूंकि वह शीर्षक के सम्बन्ध में है, इसलिये उसे हम इस समय छोड़ सकते हैं।

एक नया भाग जोड़ने के सम्बन्ध में एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 1973, श्री गोपाल नारायण का भी है।

(संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।)

अब तीसरे सप्ताह की सूची का संशेधन संख्या 25 उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1975 के सम्बन्ध में अध्याय 5 में जहां कहीं (जिसमें शीर्षक भी सम्मिलित है) 'Auditor-General शब्द आया है, उसके स्थान में 'Comptroller and Auditor-General' शब्द रखे जायें।''

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

यह संशोधन एक साधारण कारण को ध्यान में रखकर उपस्थित किया गया है। संविधान के मसौदे में महालेखापरीक्षक को केवल लेखा-परीक्षण का ही कार्य नहीं दिया गया है, बल्कि सरकार के व्यय पर नियंत्रण रखने का भी कार्य दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 1935 के अधिनियम में जहां कहीं 'महालेखा-परीक्षक' शब्द आया है, वहां उसके ये दोनों कृत्य समझे गये हैं। किन्तु, चूंकि यह सम्भव है कि हम संसद को महालेखा-परीक्षक का नाम ऐसा होना चाहिये कि संविधान के मसौदे में उसे जो शक्तियां प्रदान की गई हैं और उनके अनुसार उसे जिन कर्तव्यों का पालन करना है, वे सब उससे व्यक्त हो जायें। इसलिये यह प्रश्न बहुत सरल है। इसका सम्बन्ध केवल महालेखा-परीक्षक के नाम से ही है, जिससे उसके वे सभी कर्त्तव्य व्यक्त हो जायें जिनका वह इस समय पालन करता है अथवा भविष्य में पालन करेगा। मुझे आशा है कि यह सभा इस संशोधन को स्वीकार करने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं करेगी।

***अध्यक्ष:** इसके बाद संशोधन संख्या 130 आता है। यह भी श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के नाम से है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन संख्या 1975 के सम्बन्ध में एक अन्य संशोधन भी उपस्थित किया गया है।

***अध्यक्ष:** आपने संशोधन संख्या 130 की सूचना दी है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह केवल संशोधन संख्या 1975 के आशय को अधिक विस्तृत बनाता है। इस समय या तो संशोधन संख्या 1975 उपस्थित किया जाये या मैं अपने विस्तृत आशय वाले संशोधन को उपस्थित करूं?

***अध्यक्ष:** श्री बी. दास संशोधन संख्या 1975 को उपस्थित करें।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि

> ''अनुच्छेद 124 के खंड (1) में 'President' शब्द के बाद 'by warant under his hand and seal' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये उपस्थित किया है कि महालेखा-परीक्षक भी उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायधिपति के समान राष्ट्रपति द्वारा ही नियुक्त होगा और इसलिये यह आवश्यक है कि 'उसके हस्ताक्षर तथा मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

***अध्यक्ष:** अब संशोधन संख्या 130 उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1975 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 124 के खंड (1) के बाद निम्नलिखित नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:
>
> '(1-a) Every person appointed to be the Comptroller and Auditor-General of India shall, before he enters upon his office, make and

subscribe before the President or some person appointed in that behalf by him an affirmation or oath according to the form set out for the purpose in the Third Schedule.'''

श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री बी. दास ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उसका यह बहुत कुछ अनुवर्ती संशोधन है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर तथा मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्ति होने के कारण अब इस पद की प्रतिष्ठा बढ़ रही है। चूंकि उन नियुक्तियों के सम्बन्ध में ही इस प्रणाली का अनुसरण किया जायेगा, जिनमें सम्बन्धित अधिकारी को शपथ लेनी होगी, इसलिये प्रस्तावित खंड को रखकर इसकी कमी पूरी कर देनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1976 उपस्थित नहीं किया जायेगा, क्योंकि संघ की अन्य नियुक्तियों के सम्बन्ध में विचार करते समय सभा इस संशोधन में सन्निहित सिद्धांत पर विचार कर चुकी है।

संशोधन संख्या 1977 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती, क्योंकि इसका उद्देश्य मसौदे में ही शुद्धि करना है।

(संशोधन संख्या 1978 और 1979 उपस्थित नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1980 का आशय एक अन्य संशोधन से पूरा हो जाता है, जिसे श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने उपस्थित किया है।

इसके अतिरिक्त खंड (4) के सम्बन्ध में दो संशोधन हैं। उसमें से एक सूची 1 का 25-ए है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अब इस संशोधन के पहले सूची 2 का संशोधन संख्या 131 आ गया है।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''तारीख 28 मई, 1949 के संशोधनों पर संशोधनों की सूची 1 के संशोधन संख्या 25-ए के स्थान में निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 1980 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 124 के खंड (5) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखा जाये:

(4) Subject to the provisions of any law made by Parliament, the conditions of service of members of the staff of the Comptroller and Auditor-General shall be such as may be prescribed by rules made by the Comptroller and Auditor-General:

Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.' ''

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

श्रीमान्, अनुच्छेद 124 के खंड (4) के स्थान पर यह आ जायेगा और इससे उसका अर्थ भी विस्तृत हो जायेगा। इसमें यह भी उपबंध रखा गया है कि अपने कर्मचारियों को दिये जाने वाले वेतनों, भत्तों और निवृत्ति-वेतनों को निश्चित करने में महालेखापरीक्षक राष्ट्रपति से केवल परामर्श ही न लेगा, बल्कि उसकी स्वीकृति भी प्राप्त करेगा। यह सब कुछ सम्बन्धित प्राधिकारियों के विवेक पर निर्भर है क्योंकि इनका प्रभाव उस सिद्धांत पर भी पड़ सकता है, जो भारत सरकार के अधीन अन्य सेवाओं के सम्बन्ध में अपनाया गया हो। इस संशोधन के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं हो सकता, क्योंकि इससे केवल वर्तमान मसौदे में सुधार होता है। श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 25-बी और 1981 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1981 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 124 के खंड (5) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(5) The administrative expenses of the office of the Comptroller and Auditor-General, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the Comptroller and Auditor-General and members of his staff, shall be charged upon the revenues of India.' ''

श्रीमान्, इसमें तथा अनुच्छेद 124 के खंड (5) में एक ही सिद्धांत सन्निहित है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कार्यालय के प्रशासन सम्बन्धी व्यय का उल्लेख है, जिसमें वास्तव में आकस्मिक व्यय, यात्रा-व्यय इत्यादि ही सम्मिलित होंगे। इससे पूरा चित्र सामने आ जायेगा। इसमें कोई नई बात नहीं रखी गई है। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 1982 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** अब मूल अनुच्छेद पर तथा सभा के सामने जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन पर विचार-विमर्श हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद तथा इसके सम्बन्ध में उपस्थित किये हुये संशोधनों के बारे में मुझे थोड़ी सी बातें कहनी हैं। महालेखापरीक्षक का पद इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस संविधान के आर्थिक उपबंधों को प्रयोग में लाने वाले अधिकारियों में मैं उसको सर्वप्रथम स्थान देता हूं। महालेखापरीक्षक का विधान मंडल तथा कार्यपालिका से कभी भी कोई सम्बन्ध न रहना चाहिये। वह हमारे धन का प्रहरी होगा। इसलिये उसकी स्थिति इतनी सुदृढ़ बना देनी चाहिये कि उस पर किसी भी बड़े से बड़े व्यक्ति का प्रभाव न पड़ सके। इस दृष्टि से मुझे इसकी प्रसन्नता है कि महालेखापरीक्षक को शक्तिशाली बनाने के लिये कुछ संशोधन उपस्थित किये गये

हैं। इस प्रकार के संशोधनों का तथा तदनुसार संशोधित अनुच्छेद का मैं स्वागत करता हूं। मैं यह नहीं चाहता कि महालेखापरीक्षक विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी हो, किन्तु मैं यह देखता हूं कि मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी ने अपने संशोधन में कहा है कि:

> ''महालेखापरीक्षक के कार्यालय का प्रशासन सम्बन्धी व्यय, जिसमें नियंत्रक महालेखा-परीक्षक तथा उसके कर्मचारियों को दिये जाने वाले या उनसे सम्बन्धित सब वेतन, भत्ते और निवृत्ति-वेतन सम्मिलित हैं, भारत राजस्व पर भारित होंगे।''

मैं इस संशोधन का, जिसका उद्देश्य यह है कि महालेखा परीक्षक और उसके कार्यालय का व्यय भारत राजस्व पर भारित किया जाये, बहुत विरोध करता हूं। जिस समय भारत-मंत्री इस देश पर शासन करता था उस समय, 1935 के अधिनियम के अधीन, कुछ व्यय राजस्व पर भारित किया जाता था। अब हम अपने देश का शासन करते हैं और हमने ब्रिटिश शासन को समाप्त कर दिया है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, महालेखापरीक्षक की स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि उस पर किसी व्यक्ति का प्रभाव न पड़ सके। किन्तु साथ ही संसद् को उसके तथा उसके कर्मचारियों के वेतन तथा भत्तों पर विचार करने के अधिकार से वंचित न किया जाना चाहिये। जब विधान मंडल देश के प्रति उत्तरदायी होगा, तो मेरी समझ मैं नहीं आता कि कुछ व्ययों को राजस्व पर भारित करने की प्रथा क्यों रहने दी जा रही है। इसका अर्थ यह होगा कि सभा को इन विषयों के सम्बन्ध में मत देने का अधिकार न होगा। नि:संदेह हम इसके सम्बन्ध में विचार-विमर्श कर सकेंगे, किन्तु इतने ही से कुछ न होगा। नये संविधान के अधीन हमें व्ययों को राजस्व पर भारित करने की प्रथा को समाप्त कर देना चाहिये। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद का यह भाग निकाल देना चाहिये। यद्यपि मैं इससे पूर्णतया सहमत हूं कि महालेखा परीक्षक को बिल्कुल स्वाधीन होना चाहिये, किन्तु मैं श्री कृष्णमाचारी द्वारा उपस्थित संशोधन का बहुत विरोध करता हूं।

***श्री बी. दास:** श्रीमान्, अनुच्छेद 124 को संशोधित करके जो रूप दिया गया है उस पर मुझे प्रसन्नता है। विदेशी शासन के अधीन मैं पिछली संसद का 23 वर्ष तक सदस्य रहा, जब कि भारत-मंत्री महालेखापरीक्षक को नियुक्त करता था। उसको यह आदेश दिया जाता था कि अर्थ-विभाग की सनकों के विरुद्ध वह कुछ न लिखे। उस समय के यूरोपीय अधिकारियों के सम्बन्ध में यदि कोई अनियमित बातें होती थीं, तो उनके सम्बन्ध में वह कुछ भी नहीं लिख सकता था। हम में से कुछ लोगों के 23 वर्ष तक उत्पीड़न सहने के उपरान्त अब ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया है। इसलिये भारत सरकार को सुदृढ़ बनाये रखने के लिये तथा सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में भारत सरकार के कर्मचारियों को नैतिक सिद्धांतों का अनुसरण करने में समर्थ बनाने के लिये महालेखा परीक्षक को वही स्थिति प्राप्त होनी चाहिये, जो हमने लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को प्रदान की है। यह एक प्रसन्नता की बात है कि मसौदा-समिति ने मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के दो संशोधनों के अनुसार अनुच्छेद के मसौदे में परिवर्तन करना उचित समझा और उसे बदल दिया।

[श्री बी. दास]

मुझे इसका आश्चर्य है कि मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा 'भारित' व्यय के सम्बन्ध में सहमत न हुए। सम्भवत: श्री सिधवा यह भूल गये थे कि ब्रिटिश शासनकाल में भारत-मंत्री की आज्ञाओं के अधीन भारत-राजस्व के 75 प्रतिशत अंश पर मत नहीं लिया जाता था। नवीन व्यवस्था के अधीन सरकार के कुछ कृत्य राजस्व पर भारित होंगे। वे यह भी भूल गये कि आय-व्ययक के अनुदानों की मांगों में, जो ससंद में स्वीकार की जाती हैं, उधार लिये हुए धन का ब्याज भारित व्यय है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य व्यय भी भारित होते हैं। इस समय गवर्नर जनरल का व्यय सरकार पर भारित होता है और आगे चलकर राष्ट्रपति का व्यय भी सरकार पर भारित होगा। विधान मंडल के सदस्य गवर्नर जनरल की फ़िजूलखर्ची अथवा महालेखापरीक्षक की अथवा उच्चतम न्यायालय की फ़िजूलखर्ची की आलोचना करने के अधिकार से वंचित न होंगे। हमने भारित व्ययों की सूची में उच्चतम न्यायालय के व्यय का भी उल्लेख किया है। इस सूची में महालेखापरीक्षक के व्यय का भी उल्लेख करने में हम संकोच का अनुभव क्यों करें? इससे उसे ज्ञात रहेगा कि संसद ने उसे कितनी धनराशि प्रदान की है। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अपने संशोधन में कहा है कि:

> ''परन्तु इस खंड के अधीन बनाये हुए नियमों के लिये जहां तक उनका सम्बन्ध वेतनों, भत्तों, अवकाश अथवा निवृत्ति-वेतनों से होगा राष्ट्रपति की स्वीकृति अपेक्षित होगी।''

संसद द्वारा निर्वाचित मंत्रिमंडल तो आखिर होगा ही। राष्ट्रपति जो मंत्रिमंडल से परामर्श लेकर कार्य करेगा यह देखेगा कि...

***श्री आर.के. सिधवा:** तब सभी कुछ राजस्व पर ही भारित क्यों नहीं कर देते?

***श्री बी. दास:** आपको 'भारित व्यय' को स्वीकार करना ही होगा। अन्य विषयों के सम्बन्ध में मंत्रालयों को हस्तक्षेप न करना चाहिये, क्योंकि आजकल प्रत्येक मंत्रालय उसके लिये स्वीकृत व्यय से हमेशा अधिक व्यय कर देता है और आय व्ययक के नियंत्रण को अथवा आर्थिक नियंत्रण को स्वीकार नहीं करता। मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा यह अवश्य ही जानते होंगे कि 118 करोड़ रुपये के अनुपूरक अनुमान 31 मार्च 1949 को संसद की स्वीकृति के लिये उपस्थित किये गये । इसलिये यदि महालेखापरीक्षक और उसके कर्मचारी उच्च स्तर पर न रखे गये, तो संविधान के अधीन उन पर जिस उत्तरदायित्व का भार रखा गया है, उसका निर्वहन उनके लिये दुष्कर हो जायेगा। यही लोक सेवा आयोग तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। इसलिये कुछ व्यय तथा कुछ ब्याज भी राजस्व पर भारित होंगे क्योंकि इस व्यवस्था के अधीन कार्यपालिका का हस्तक्षेप न हो सकेगा। नि:संदेह वाद-विवाद द्वारा संसद हस्तक्षेप कर सकती है और कोई व्यक्ति मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा को इस अधिकार से वंचित न करेगा। मैं संशोधित अनुच्छेद 124 का बड़ी प्रसन्नता से समर्थन करता हूं।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें दो विपरीत दृष्टिकोणों के बीच का दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसके पूर्व कि मैं अपने माननीय मित्र के संशोधन की सार्थकता प्रदर्शित करूं, उचित यह होगा कि मैं माननीय सदस्यों को नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कृत्यों का दिग्दर्शन कराऊं।

यह कहना गलत होगा कि मेरे माननीय मित्र ने अपने संशोधन द्वारा जो प्रस्ताव उपस्थित किये हैं, उनसे विधान मंडल की शक्ति, प्रतिष्ठा अथवा उत्तरदायित्व किसी प्रकार सीमित अथवा निर्बन्धित हो जाते हैं। हमें इसे समझता है कि विधान मंडल ही विधि बनाने के लिये सक्षम है। विधि का निर्वाचन न्यायपालिका करेगी। श्रीमान्, कार्यपालिका जिस धन को व्यय करेगी, उसकी स्वीकृति विधान सभा प्रदान करेगी और वास्तव में विधान मंडल द्वारा स्वीकृत धन को कार्यपालिका ही यथेष्ट रूप से व्यय कर सकती है। इसकी परीक्षा कौन प्राधिकारी करेगा कि विधान मंडल द्वारा स्वीकृत धन को यथेष्ट रूप से व्यय किया गया है या नहीं? इस महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिये विधान मंडल ने विधि के अधीन एक नये प्राधिकारी की व्यवस्था की है और यह प्राधिकारी महालेखापरीक्षक ही है। कार्यपालिका तथा महालेखापरीक्षक के कृत्यों की इस प्रकार निश्चित रूप से परिभाषा करने के उपरान्त प्रश्न यह उठता है कि महालेखापरीक्षक अपने कृत्यों का निर्वहन किस प्रकार करेगा? श्रीमान्, मैं इस सभा का ध्यान अनुच्छेद 124 के सम्बन्ध में कुछ क्षण पूर्व उपस्थित संशोधन संख्या 25-ए की ओर दिलाता हूं, जिसमें यह कहा गया है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक अपने कर्मचारियों को स्वयं नियुक्त करेगा अथवा किसी ऐसे व्यक्ति से नियुक्त करायेगा जिसे वह निदेश करे। इससे महालेखापरीक्षक को कर्मचारियों को पुनर्नियुक्त करने की भी शक्ति प्राप्त हो जाती है। खंड 4-ए द्वारा उसे आवश्यक अतिरिक्त कर्मचारी नियुक्त करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस सम्बन्ध में मैं माननीय सदस्यों का ध्यान उस परन्तुक की ओर दिलाता हूं, जिसमें कार्यपालिका के प्रभुत्व द्वारा अर्थात् भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति द्वारा महालेखापरीक्षक की शक्तियां विशेषरूप से निर्बन्धित की गई हैं। मैं उसे इस सभा के सदस्यों को पढ़कर सुनाता हूं।

> ''परन्तु इस खंड के अधीन बनाये हुए नियमों के लिये जहां तक उनका वेतनों, भत्तों अवकाश अथवा निवृत्ति-वेतनों से सम्बन्ध है राष्ट्रपति की स्वीकृति अपेक्षित होगी।''

मैं स्वयं यह चाहता हूं कि यह परन्तुक इस कारण निकाल दिया जाता कि यह महालेखा परीक्षक की स्वाधीनता का अपहरण करता है, क्योंकि उसे वेतनों, भत्तों, अथवा अवकाश सम्बन्धी नियमों की स्वीकृति के लिये कार्यपालिका का मुंह ताकना पड़ेगा। इस सीमा तक महालेखापरीक्षक का कार्यपालिका से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहना तो अलग रहा, उसे उसके अधीन हो जाना पड़ेगा। इसलिये मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा कृपया इस ओर ध्यान देंगे कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन में मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। आपने यह रक्षण रखा है कि कार्यपालिका के प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति की स्वीकृति

[श्री विश्वनाथ दास]

आवश्यक है, जिसका अर्थ यह है कि वेतनों, भत्तों, अवकाश अथवा निवृत्ति-वेतन सम्बन्धी नियमों के बारे में मंत्रिमंडल की स्वीकृति आवश्यक होगी और इसका अर्थ यह है कि मंत्रिमंडल को विधान मंडल की स्वीकृति अपेक्षित होगी। इससे अधिक और किसी बात की आवश्यकता नहीं है। प्रस्तावित भारित व्यय उस भारित व्यय से बिल्कुल भिन्न है, जिसकी व्यवस्था 1935 के भारत सरकार के अधिनियम के अधीन थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इसे ध्यान में रखकर उपबंध रखे थे कि विधान मंडलों का तथा कार्यपालिका का गवर्नर जनरल से कलह हो सकता है, किन्तु हमारे संविधान में इस प्रकार के किसी कलह की कल्पना नहीं की गई है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान अनुच्छेद 125 की ओर फिर दिलाता हूं। उसमें कहा गया है–''महालेखापरीक्षक भारत सरकार के अथवा किसी राज्य के सरकार के लेखे के सम्बन्ध में ऐसे कर्त्तव्यों का पालन करेगा अथवा ऐसी शक्तियों को प्रयोग करेगा, जो संसद द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा अथवा उसके अधीन निर्धारित की गई हों अथवा की जायें'' यह देखा जा सकता है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक को बिल्कुल विधान मंडल के अधीन बना दिया गया है। भारित लेखे के सम्बन्ध में उपबंध इसलिये रखा गया है कि भविष्य में केन्द्रीय कार्यपालिका और महालेखापरीक्षक के उत्तरदायित्व के निर्वहन में कोई कलह अथवा जिच उत्पन्न न हो। इसलिये यह एक यथोचित तथा आवश्यक उपबंध है और इसमें किसी एक दृष्टिकोण को नहीं अपनाया गया है, बल्कि दो विपरीत दृष्टिकोणों के बीच के दृष्टिकोण को अपनाया गया है।

इन शब्दों के साथ मैं श्री कृष्णमाचारी के संशोधनों का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से अब इस सम्बन्ध में अधिक आलोचना की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, संविधान में महालेखापरीक्षक की जो स्थिति रखी गई है अथवा उपस्थित संशोधनों द्वारा भी उसे जो स्थिति प्रदान की गई है उससे मुझे बहुत संतोष नहीं है। मेरा अपना यह विचार है कि इस प्राधिकारी का स्थान भारतीय संविधान में सबसे महत्त्वपूर्ण है। वही एक ऐसा व्यक्ति होगा जो इस पर देखरेख रखेगा कि संसद ने जिस व्यय के लिये मत दिया है उससे अधिक व्यय न हो अथवा संसद के विनियोग-अधिनियम में जो व्यवस्था की हो उसमें परिवर्तन न किया जाये। यदि इस प्राधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह यथोचित रूप से अपने कर्त्तव्यों का पालन करेगा, तो उसे न्यायपालिका के समान स्वाधीन बनाना होगा। मेरा यह निवदेन है कि उसके कर्त्तव्य न्यायपालिका के कर्त्तव्यों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी अनुच्छेदों तथा महालेखापरीक्षक सम्बन्धी अनुच्छेदों की तुलना करने के उपरान्त में यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हमने उसे उतनी स्वाधीनता नहीं दी है जितनी हमने न्यायपालिका को प्रदान की है। मेरी अपनी यह धारणा है कि उसे न्यायपालिका से कहीं अधिक स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिये।

मैं यह बताना चाहता हूं कि न्यायपालिका को हमने जिस स्थिति में रखा है और महालेखापरीक्षक को हम जिस स्थिति में रखने जा रहे हैं, उनमें एक अन्तर है। पिछले

सप्ताह ही मैंने मूल अनुच्छेद 122 के सम्बन्ध में यह संशोधन उपस्थित किया था कि उच्चतम न्यायालय को अपने अधिकारियों तथा सेवकों को नियुक्त करने की शक्ति प्रदान है। इस अनुच्छेद के मसौदे में तथा उपस्थित संशोधनों में मुझे यह दिखाई देता है कि महालेखा परीक्षक को इस प्रकार की कोई शक्ति नहीं प्राप्त होने जा रही है। इस शक्ति के अभाव का अर्थ यह है कि महालेखापरीक्षक के कर्मचारियों को कार्यपालिका नियुक्त करेगी। चूंकि कर्मचारी कार्यपालिका द्वारा नियुक्त होंगे, इसलिये वे उसी के अनुशासन में रहेंगे। इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि यदि किसी प्राधिकारी को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का अनुशासन रखने की शक्ति प्राप्त नहीं है, तो उसके प्रशासन का पतन हो जायेगा। इस दृष्टि से मेरे विचार से लोक हित में तो यह होता कि महालेखा-परीक्षक को यह शक्ति दी जाती। किन्तु लोग भावनावश महालेखापरीक्षक को इस प्रकार की शक्ति देने के लिये तैयार नहीं है। इस समय मेरे विचार से लोगों की भावना का आदर करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जा सकता। साधारणतया मेरा यही विचार है।

जहां तक संशोधनों का सम्बन्ध है, मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा उपस्थित संशोधनों को तथा श्री बी. दास द्वारा उपस्थित एक संशोधन को अर्थात् संशोधन संख्या 1975 को स्वीकार करता हूं। संविधान के मसौदे में अथवा विभिन्न अन्य संशोधनों में महालेखा परीक्षक को जो स्थिति प्रदान की गई है, उसमें इन संशोधन द्वारा अवश्य बहुत कुछ सुधार होता है। परन्तु मैं यह देखता हूं कि इन संशोधनों द्वारा संशोधित अनुच्छेद पर भी श्री सिधवा को आपत्ति है। यदि मैं उन्हें ठीक समझ पाया हूं, तो उनकी आपत्ति यह है कि महालेखा परीक्षक का व्यय संचित निधि पर भारित न करके साधारण प्रदाय समझा जाये और सेवाओं पर संसद मत दे। उनका तर्क यह है कि इसके लिये कोई कारण नहीं है कि संसद को महालेखापरीक्षक के व्यय तथा प्रशासन सम्बन्धी व्यय पर विचार-विमर्श करने के अधिकार से वंचित किया जाये। मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा कुछ व्ययों का भारत राजस्व पर भारित करने के अर्थ को बिल्कुल गलत समझे हैं। यदि मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा अनुच्छेद 93 को देखें, जिसमें इस विषय का उल्लेख है, तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि यद्यपि कुछ व्यय भारत राजस्व पर भारित किये गये हैं किन्तु उन्हें इस प्रकार भारित करने से ही संसद इन व्ययों पर विचार-विमर्श करने के अधिकार से वंचित नहीं हो जाती। विचार-विमर्श करने का अधिकार तो उसे प्राप्त होगा ही। केवल मत देने का अधिकार नहीं दिया गया है। इस विषय पर मतदान नहीं हो सकता। इस पर मतदान इस कारण नहीं हो सकता कि जिस प्रकार हम यह नहीं चाहते कि महालेखापरीक्षक जिन बातों को आवश्यक समझे उन में कार्यपालिका बहुत हस्तक्षेप न करे उसी प्रकार हम यह भी नहीं चाहते कि विधान मंडल के बहुत से सदस्य जो मितव्यय प्रेमी होने से किसी न किसी कारणवश असंतुष्ट हों, महालेखापरीक्षक के सुयोग्य प्रशासन में हस्तक्षेप करें। इसी कारण यह उपबंध रखा गया है। मेरे मित्र श्री सिधवा यह भी अनुभव करेंगे कि यह कोई असाधारण उपबंध नहीं है। वास्तव में यह उस उपबंध के अनुरूप है जो उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में रखा गया है। इसलिये मेरे विचार से इस विषय के सम्बन्ध में श्री सिधवा की आलोचना को स्वीकार करने के लिये कोई कारण नहीं है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि यह अनुच्छेद संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया जाये। मैं श्री बी. दास के सूची 1 के संशोधन संख्या 125 को तथा श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन संख्या 130 संशोधित संख्या 31 तथा सूची 1 के संशोधन संख्या 25-सी को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1975 के सम्बन्ध में भाग 5 के अध्याय 5 में जहां कहीं (जिस में शीर्षक भी सम्मिलित) 'Auditor-General' शब्द आया है उसके स्थान में 'Comptroller and Auditor-General' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 124 के खंड (1) में 'President' शब्द के बाद 'by warrant under his hand and seal' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1975 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 124 के खंड (1) के बाद निम्नलिखित नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(1-a.) Every person appointed to be the Comptroller and Auditor-General of India shall, before he enters upon his office, make and subscribe before the President or some person appointed in that behalf by him an affirmation or oath according to the form set out for the purpose in the Third Schedule.' ''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''(तीसरे सप्ताह की) तारीख 28 मई, 1949 की सूची 1 के संशोधित संख्या 25-ए के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1980 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 124 के खंड (4) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखा जाये:

''(4) Subject to the provisions of any law made by Parliament, the conditions of service of members of the staff of the Comptroller and

Auditor-General shall be such as may be prescribed by rules made by the Comptroller and Auditor General:

Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the President.' ''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1981 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 124 के खंड (5) के स्थान में निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(5) The administrative expenses of the office of the Comptroller and Auditor-General, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the Comptroller and Auditor-General and members of his staff, shall be charged upon the revenues of India.' ''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 124, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 124, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 124-ए

***अध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह ने अनुच्छेद 124-ए की सूचना दी है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'124-A. The Auditor-General shall be appointed from among persons qualified as Registered Accountants or holding any other equivalent qualifications recognised as such, and having not less than ten years' practice as such Auditors.' ''

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है, क्योंकि जब से अर्थ-विभाग का संगठन हुआ है, महालेखापरीक्षक हमेशा असैनिक सेवा (सिविल सर्विस) के लोगों में से चुना जाता रहा है। असैनिक सेवा के लोग विशेष प्रकार की शिक्षा प्राप्त किये हुए रहते हैं और उनका विशेष प्रकार का दृष्टिकोण हो जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह दृष्टिकोण महालेखापरीक्षक के कृत्यों और कर्तव्यों के पालन के लिये उपयुक्त ही होता है। यदि हम यह चाहते हैं कि महालेखापरीक्षक का कार्य योग्यता से तथा समुचित ढंग से हो, क्योंकि लेखे की यथोचित परीक्षा के लिये यह आवश्यक है, तो मेरे विचार से महालेखापरीक्षक की अर्हता, व्यावहारिक अनुभव तथा विशेष ज्ञान का उल्लेख करना होगा। सरकार का लेखाकर्म किसी निश्चित तिथि तक धन-प्राप्ति और धन-व्यय पर आधृत है, किन्तु राज्य जिन वृहत् वाणिज्य-सम्बन्धी उपक्रमों को आरम्भ करने जा रहा है, उनको दृष्टि में रखते हुए तथा उसे कारबारियों, ठेकेदारों आदि से जो विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने पड़ते हैं उनको ध्यान में रखते हुए, मेरे विचार से यह आवश्यक है कि लेखा परीक्षा ऐसे लोग करें जो कारोबार के व्यवहार से परिचित हों और इसलिये योग्यता से सेवा करने में समर्थ हों। मैंने कम से कम पंजीबद्ध अंकिकों की अर्हता का प्रस्ताव रखा है। हाल में स्वीकृत विधि के अधीन ये लोग शासन प्राप्त (चार्टर्ड) अंकिक कहे जायेंगे और उन्हें इस प्रकार का कार्य करने का कुछ वर्षों का अनुभव होगा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें विशेष अर्हता तथा लेखा परीक्षक का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त होना चाहिये। मेरे विचार से ऊंची नियुक्तियों के सम्बन्ध में साधारण लोक-सेवाओं से, चाहे भारतीय प्रशासन सेवाओं से या भारतीय असैनिक सेवाओं से, लोगों को उन्नति देकर अथवा बदली करके रखना उपुयक्त न होगा। जिस प्रकार हमने न्याय-सम्बन्धी सेवाओं के बारे में यह रखा है कि केवल किसी सेवा की सदस्यता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि विशेष ज्ञान तथा अनुभव की आवश्यकता है, उसी प्रकार मेरा यह सुझाव है कि हम इस सम्बन्ध में भी संविधान में कुछ अर्हता और विशेष ज्ञान तथा व्यावहारिक अनुभव निर्धारित करें। संशोधन में तो केवल इसका उल्लेख है कि दस वर्ष का व्यावहारिक अनुभव आवश्यक होगा, किन्तु यदि संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो वास्तव में चोटी के लोग लिये जायेंगे। इस समय इस प्रकार के लोगों की आय इतनी अधिक होती है कि सम्भवत: राज्य उनको उतना वेतन हीं दे सकता है किन्तु साथ ही इस पद का जो महत्त्व होगा और जो प्रतिष्ठा होगी उससे ख्यातनामा लोग आकर्षित होंगे। न्याय-सम्बन्धी पदों पर भी ऐसे वकील आ रहे हैं जिनकी बहुत ऊंची आय है। इसलिये सभा से मैं यह सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य इस पर बोलना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह कहूंगा कि प्रोफेसर के.टी. शाह का संशोधन एक मौलिक संशोधन है और वाणिज्य जगत में प्रचलित विचारधाराओं के अनुरूप है किन्तु मेरे विचार से वह महालेखा परीक्षक को नियुक्त करने की इस देश की तथा अन्य देशों की प्रथा के बिल्कुल विरुद्ध है। वास्तव में यह आवश्यक नहीं है कि महालेखा परीक्षक अवश्य ही अंकिक हो। उसे कई अन्य प्रकार के कर्त्तव्यों का भी पालन करना

होगा और उनका पालन करने के लिये उसे पूरे प्रशासन का ज्ञान होना चाहिये। मेरे विचार से भारत के महालेखापरीक्षक को नियुक्त करने की वर्तमान प्रणाली सम्भवत: सर्वोत्तम है। हमारे यहां कुछ बहुत ही अच्छे महालेखापरीक्षकों ने काम किया है, जो पहले प्रशासक थे और अर्थ-विभाग में रह चुके थे तथा विभिन्न स्थानों में महालेखापरीक्षक तथा उच्च पदधारी रह चुके थे। इसलिये यह प्रश्न केवल गणित के अथवा लेखे का ज्ञान का नहीं है बल्कि पूरे प्रशासन के ज्ञान का है। इस दृष्टि से मेरे विचार से यह सभा इसे स्वीकार करेगी कि प्रोफेसर शाह की धारणा कितनी ही बोधगम्य क्यों न हो, किन्तु है वह एक अत्यंत संकुचित धारणा ही। यदि किसी व्यक्ति को केवल पंजीबद्ध अंकिक की अर्हता प्राप्त हो तो वह महालेखापरीक्षक होने के योग्य नहीं समझा जा सकता। यदि आप प्रशासन सम्बन्धी अनुभव का प्रतिबंध नहीं रखते हैं, तो ऐसे ही लोग सामने आयेंगे। पंजीबद्ध अंकिकों का मुझे कुछ अनुभव है और मेरे विचार से उनका काम ऐसा नहीं है कि उसे प्रशासन का तथा लेखे का पर्याप्त ज्ञान रखने वाला कोई व्यक्ति न कर सके। भारत सरकार का जो कोई भी महालेखापरीक्षक अथवा महांकिक होता है उसे पंजीबद्ध अंकिक के कार्य का पूर्ण ज्ञान होता है। मुझे कोई ऐसा कारण नहीं दिखाई देता जिसके आधार पर मैं प्रोफेसर शाह के दृष्टिकोण का समर्थन करूं और सभा से उनके संशोधन को स्वीकार करने के लिये आग्रह करूं। उससे वर्तमान व्यवस्था तो समाप्त हो ही जायेगी, किन्तु साथ ही भविष्य की सरकार के लिये किसी उपयुक्त व्यक्ति को महालेखापरीक्षक के पद पर नियुक्त करना कठिन हो जायेगा। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, प्रोफेसर के.टी. शाह ने जो संशोधन दिया है मैं उसकी ताईद करता हूं। इसलिये कि जो आडिटर जनरल का काम करेंगे अगर उनको आडिट का काम मालूम नहीं होगा तो वह कैसे आडिटर जनरल बनेंगे। हम लोगों ने चार्टर्ड एकाउंटेंट बिल पास किया है उसमें कम से कम जो दस वर्ष आडिट का काम किये होगा उसी को रजिस्टर्ड एकाउंटेंट बनायेंगे नहीं तो नहीं। और जो दस वर्ष या इससे ज्यादा गवर्नमैंट में आडिट का काम किये हैं उनको शायद छोड़ देंगे लेकिन जो जी.डी.ए. हैं उनको कम से कम एक वर्ष काम करना चाहिये जब रजिस्टर्ड एकाउंटेट बन सकते हैं। हम लोगों ने उनके लिए इतना कष्ट इसीलिये रख दिया है कि हमारा आडिट का काम अच्छी तरह हो। तो जो हम लोगों का सबसे बड़ा आडिटर होगा उसको तो आडिट का कुछ न कुछ पास होना ही चाहिये। जब तक उनको आडिट का कुछ पास नहीं होगा तब तक उनको रखना कैसे मुमकिन होगा। यह मुझे मालूम नहीं होता। इसीलिये मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन की ताईद करता हूं और समझता हूं कि ऐसा होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से इस प्रस्ताव पर अन्य कोई सदस्य नहीं बोलने जा रहे हैं। मैं अब उस पर मत लूंगा।

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

''निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

124-A. The Auditor-General shall be appointed from among persons qualified as Registered Accountants or holding any other equivalent qualifications recognised as such, and having not less than ten years' practice as such Auditors.' ''

संशोधन गिर गया।

अनुच्छेद 125

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 125 को उठाते हैं। इसके सम्बन्ध में एक संशोधन है। संशोधन संख्या 1984, जो पंडित हृदयनाथ कुंजरू के नाम से है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आपकी अनुमति से अपने संशोधन में स्थानीय प्राधिकारी का उल्लेख नहीं रहने देना चाहता। यदि आप मुझे इसकी अनुमति दें तो मेरा संशोधन इस प्रकार हो जायेगा:

''अनुच्छेद 125 में 'and of the Government of any State' शब्दों के स्थान में 'the Government of any State or any other authority' शब्द रखे जायें।''

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि संसद को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को अतिरिक्त कार्य देने की शक्ति होनी चाहिये। अब हम निगमों को स्थापित करने जा रहे हैं और दामोदर घाटी निगम को स्थापित कर ही चुके हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भविष्य में हम ऐसे अन्य निगमों को भी स्थापित करेंगे। जहां तक मुझे स्मरण है, दामोदर घाटी निगम अधिनियम में यह उपबंध है कि यद्यपि निगम को यह अधिकार है कि वह अपने लेखे की परीक्षा अपने नियुक्त किये हुए लेखा परीक्षकों से करवाए किन्तु साथ ही सरकार भी महालेखा परीक्षक से इस सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिये कह सकती है। श्रीमान्, मेरी यह इच्छा है कि इस स्थिति को बनाये रखा जाना चाहिये, विशेषतया इसलिये कि इस प्रकार के नियमों की संख्या बढ़ने वाली है। भारतीय-रेलवे-परिपृच्छा समिति ने यह सिफारिश की है कि रेलवे के प्रबंध के लिये एक रेलवे प्राधिकार-संस्था की स्थापना होनी चाहिये। यह प्राधिकार संस्था अस्तित्व में आने पर छ: अथवा सात सौ करोड़ की सम्पत्ति पर और लगभग दो सौ करोड़ के व्यय पर नियंत्रण रखेगी। चूंकि स्वायत्तशासी सभी निगमों की सम्पत्ति सरकार की होगी इसलिये यह आवश्यक है कि यह शक्ति प्राप्त हो कि यदि वह चाहे तो वह अपनी स्थापित की हुई प्राधिकार संस्थाओं की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में पूछताछ कर सके और इस उद्देश्य से महालेखापरीक्षक से उनके लेखे की परीक्षा के लिये जिस कार्य को भी वह उचित समझे, करने को कहे यह आवश्यक नहीं है कि संसद इस कार्य को करे। किन्तु उसे यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि उसने जो निगम स्थापित किये हैं, उनके लेखे की परीक्षा के लिये वह महालेखा परीक्षक को

निदेश करे। राज्य ने इन निगमों पर करोड़ों रुपया लगाया है अथवा लगायेगा। इसलिये उसे विधि द्वारा इसके लिये बाध्य न करना चाहिये कि वह इन्हीं निगमों द्वारा नियुक्त लेखा परीक्षकों के प्रतिवेदनों पर ही निर्भर रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन निगमों का अविश्वास किया जा रहा है। मैं इन निगमों के सदस्यों अथवा इनके नियुक्त किये हुए लेखा परीक्षकों की सच्चाई पर आक्षेप नहीं कर रहा हूं। मैं केवल यह चाहता हूं कि यह सामान्य सिद्धांत अपनाया जाये कि महालेखा परीक्षक की शक्ति का विस्तार हो सकता है, ताकि संसद को उसकी स्थापित की हुई प्राधिकार संस्थाओं के प्रबंध की परीक्षा करवाने के लिये एक स्वाधीन प्राधिकारी प्राप्त हो।

श्रीमान्, मुझे आशा है कि दामोदर-घाटी-निगम-अधिनियम के सम्बन्ध में जो कुछ किया गया है, उसे दृष्टि में रखते हुए यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 25-डी और संशोधन संख्या 1985 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1986, जो डा. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 125 की व्याख्या के स्थान में निम्नलिखित व्याख्या रखी जाये:
>
> '*Explanation.*—In this article the expression 'law made by Parliament' includes any law, ordinance, order, byelaw, rule or regulation passed or made before the commencement of this Contitution and for the time being in force in the territory of India.' ''

सभा को सम्भवत: यह स्मरण होगा कि महालेखा परीक्षक के कृत्यों का नियमन संसद की किसी विधि द्वारा नहीं होता है किन्तु गवर्नर जनरल को भारत सरकार के 1935 के अधिनियम द्वारा प्रदान की हुई शक्तियों के अधीन जारी किये हुए अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम इत्यादि द्वारा होता है। इसलिये गवर्नर जनरल द्वारा जारी किये हुए अध्यादेशों, आदेशों, उपविधियों, नियमों और विनियमों को जीवित रखने के लिये यह आवश्यक है कि व्याख्या को कुछ बढ़ाया जाये ताकि उसमें ये आदेश भी सम्मिलित हो सकें।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महादेय, इस अनुच्छेद का सम्बन्ध संसद द्वारा निर्धारित महालेखापरीक्षक की शक्तियों और कृत्यों से है। श्रीमान्, हमने अभी एक ऐसा अनुच्छेद स्वीकार किया है जिसके द्वारा महालेखापरीक्षक को बहुत कुछ स्वाधीन शक्तियां प्रदान की गई हैं। इस अनुच्छेद द्वारा संसद को कई अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी विधि बनाने की शक्ति हो गई है। यद्यपि मैं इसका स्वागत करता हूं कि महालेखा परीक्षक को स्वाधीन बनाया गया है और जो कुछ डा. अम्बेडकर ने कहा है उससे सहमत हूं और

[श्री आर.के. सिधवा]

महालेखापरीक्षक को लेखे की परीक्षा के सम्बन्ध में सभी शक्तियां प्रदान करने के लिये उसके नाम के आगे 'नियंत्रक' शब्द जोड़ने के लिये उनकी प्रशंसा करता हूं, किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण शक्तियों के सम्बन्ध में ससंद से विधि बनाने के लिये क्यों कहा जा रहा है। मैं एक उदाहरण दूंगा। इस समय महालेखापरीक्षक को किसी ऐसे धन-पत्र के लिये स्वीकृति देने का अधिकार नहीं है जिसकी धनराशि आय व्ययक के अनुदान से अधिक हो। कार्यपालिका की बनाई हुई इस आशय की एक विधि है। इसकी उपेक्षा करके यदि कोई मंत्रिमंडल आय-व्ययक के अनुदान से अधिक धनराशि व्यय कर देता है और महालेखापरीक्षक उसे सम्बन्धित मंत्री के ध्यान में लाता है, तो वह महालेखापरीक्षक से धनपत्र को स्वीकार कर लेने के लिये कहता है, क्योंकि वह यह समझता है कि उसे सभा का विश्वास प्राप्त है और यदि उसे अनुपूरक अनुदान के रूप में सभा के सम्मुख रखा जायेगा तो सभा उसे स्वीकार कर लेगी। इस समय नियम के होते हुए भी महालेखापरीक्षक कुछ नहीं कर सकता। वह केवल कागजों पर लेखा परीक्षा सम्बन्धी आपत्ति की मुहर लगा देता है और सम्बन्धित मंत्री के संकेत से धन-पत्र को स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार कार्यपालिका के बनाये हुए नियम का उद्देश्य महालेखापरीक्षक के उसकी उपेक्षा करने से समाप्त हो जाता है, क्योंकि वह यह समझता है कि मंत्री को सभा का विश्वास प्राप्त है और वह आपत्ति ही क्यों करे। श्रीमान्, यदि किसी मंत्री की यह धारणा हो कि चूंकि उसे सभा का विश्वास प्राप्त है इसलिये वह महालेखापरीक्षक को धन-पत्र स्वीकार करने के लिये बाध्य कर सकता है तो यह जनतंत्र का उपहास ही होगा। वह लोगों का, लोगों के लिये तथा लोगों द्वारा शासन होगा। मंत्री को लोगों का विश्वास प्राप्त होने का यह अर्थ नहीं है कि वह संसद के निर्णय की उपेक्षा करे। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है और मैं यह चाहता हूं कि इसका संविधान में समावेश किया जाये कि महालेखापरीक्षक किसी ऐसी धनराशि को स्वीकार न करे जो आय-व्ययक के अनुदान से अधिक हो। जैसा कि मैंने एक दिन कहा था, मेरे सामने यह हुआ है कि 31 मार्च को सभा को 130 करोड़ जैसी बड़ी धनराशि को अनुपूरक अनुदान के रूप में स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ा। यद्यपि सदस्य इसके विरुद्ध थे किन्तु वे मंत्रिमंडल को पशोपेश में नहीं डालना चाहते थे। यदि इस प्रकार का उपबंध संविधान में होता तो किसी को भी, न महालेखापरीक्षक को, न सम्बन्धित मंत्री को, न सभा को, संविधान की उपेक्षा करने का साहस होता। नियम अथवा विनियमों की उपेक्षा हो सकती है किन्तु संविधान की उपेक्षा नहीं हो सकती है। इसलिये मैं आशा करता हूं कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर इस विषय पर विचार करेंगे और महालेखापरीक्षक को पूरी शक्तियां प्रदान करेंगे तथा ऐसी व्यवस्था करेंगे कि कोई व्यक्ति उसके कार्य में हस्तक्षेप न कर सके। यदि आप आपात के कारण 130 करोड़ रुपये की धनराशि स्वीकार कर लेंगे (यद्यपि यह आय-व्ययक की कुल धनराशि की एक तिहाई धनराशि है) तो यह बहुत ही अनुचित और खेदजनक बात होगी।

मैं अपने मित्र श्री कुंजरू के संशोधन से पूर्णतया सहमत हूं। मैं तो इससे आगे बढ़ने के लिए तैयार हूं और यह चाहता हूं कि स्थानीय प्राधिकारी ही सम्मिलित न किये जायें

बल्कि स्थानीय यदि कोई स्थानीय निकाय महालेखापरीक्षक अथवा उसके कर्मचारियों की सहायता चाहे तो उसे वह सहायता प्रदान की जानी चाहिये। स्थानीय निकायों की दशा बहुत ही खराब है और यदि महालेखापरीक्षक अपने कर्मचारियों को भेजकर उनकी सहायता करेगा तो उनकी दशा सुधर सकती है।

मुझे इतना ही कहना है और मैं आशा करता हूं कि मेरी पहली बात पर डा. अम्बेडकर विचार करेंगे।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, श्री कुंजरू के संशोधन का उद्देश्य यह है कि महालेखापरीक्षक को केवल सरकारों के लेखों की ही परीक्षा करने की शक्ति प्राप्त न हो बल्कि कई स्वाधीन निगमों और अन्य निकायों के लेखों की भी परीक्षा करने की शक्ति प्राप्त हो। जहां तक मूल अनुच्छेद का सम्बन्ध है उसमें व्याख्या के रूप में यह उपबंध है कि संसद महालेखापरीक्षक को किसी विशेष संगठन अथवा निकाय के सम्बन्ध में प्राधिकार दे सकती है और समय-समय पर बनाई हुई अपनी विधियों में यथोचित उपबंध रख सकती है। डा. अम्बेडकर ने जिस संशोधन का प्रस्ताव रखा है उससे अब यह व्याख्या संशोधित हो जाती है और अब इस संशोधित व्याख्या में न केवल वर्तमान विधि बल्कि अध्यादेश, उपविधि, नियम और विनियम भी, जो संविधान के प्रयोग में आने के पूर्व स्वीकार किये गये हों और इस समय प्रवर्त्तन में हों, सम्मिलित किये गये हैं।

इसके अतिरिक्त ये शब्द भी रखे गये हैं—''जो संसद द्वारा निर्मित विधि द्वारा अथवा उसके अधीन निर्धारित किये गये हैं या निर्धारित किये जायें।'' इन शब्दों का उल्लेख अनुच्छेद ही में है। इस दृष्टि से, मेरे विचार से, जिस संशोधन का प्रस्ताव किया गया है वह अनावश्यक है। उद्देश्य यह है कि न केवल सरकारी लेखे की बल्कि उन सभी महत्त्वपूर्ण निकायों के लेखों की भी यथोचित परीक्षा हो, जो समय-समय पर स्थापित किये जायें। इस उद्देश्य की पूर्ति संसद द्वारा स्वीकृत विधियों, नियमों और विनियमों से होगी। यह संसद पर निर्भर है कि वह यह देखे कि महालेखा परीक्षक को किन्हीं निकायों के सम्बन्ध में प्राधिकार देना आवश्यक है या नहीं इस सम्बन्ध में यथोचित व्याख्या करे। इसलिये इस अनुच्छेद में स्थानीय निकायों तथा अन्य प्रकीर्ण निगमों और संगठनों को सम्मिलित करना आवश्यक नहीं है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि चूंकि अनुच्छेद में इस सम्बन्ध में यथेष्ट उपबंध है, इसलिये पंडित कुंजरू के संशोधन को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मेरे मित्र श्री सिधवा ने सभा का ध्यान महालेखापरीक्षक पद की महत्ता की ओर आकर्षित किया और यह कहा कि इस आशय का एक उपबंध रखना चाहिये कि महालेखापरीक्षक किसी समय भी आय-व्ययक में से स्वीकृत धन से अधिक व्यय न होने देगा। मेरे विचार से यह उपबंध भी अनावश्यक है। हमने पिछले वर्ष देखा कि आय-व्ययक अनुमानों का उतना आदर नहीं किया जितना कि किया जाना चाहिये था। किन्तु यह असाधारण बात हुई थी और मेरे विचार से कोई भी जनतंत्रात्मक संसद इसे दुबारा न होने देगी। यह नियम सभी को विदित है कि किसी सरकार, संगठन अथवा कार्यपालिका को आय-व्ययक

[डा. पी.एस. देशमुख]

में स्वीकृत धन से अधिक व्यय न करना चाहिये। इसलिये संविधान में इस आशय का कोई उपबंध प्रविष्ट करना अनावश्यक है। यदि किसी समय कार्यपालिका इस समुचित तथा आधारभूत सिद्धांत का खंडन करे तो संसद को उसे यथोचित रूप से दंडित करने के लिये तैयार रहना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, यदि मेरे मित्र श्री कुंजरू अपने संशोधन, से 'or any local' (अथवा कोई स्थानीय) शब्दों को निकाल दें तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैंने उन्हें निकाल दिया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यह मैं इसलिये कह रहा हूं कि स्थानीय लेखा परीक्षा प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में है। किन्तु 'other authority' (अन्य प्राधिकारी) शब्दों को जोड़ना आवश्यक हो सकता है और उपयोगी भी सिद्ध हो सकता है। जैसा कि वे स्वयं कह चुके हैं, भारत सरकार की नीति यह है कि ऐसे कारबारों के सम्बन्ध में, जिनका प्रबंध विभागों द्वारा नहीं हो सकता, बहुत से नियम स्थापित किये जायें और इसलिये यह आवश्यक है कि भारत सरकार इन निगमों के लेखों के परीक्षण का प्रबंध करे। इस स्थिति में मेरे विचार से यह उचित ही होगा कि केन्द्रीय सरकार को इसकी शक्ति दी जाये कि वह इस प्रकार की सभी प्राधिकारी-संस्थाओं के लेखों की परीक्षा करने की आज्ञा अपने महालेखापरीक्षक को दे सके। जिस परिवर्तन का मैंने सुझाव दिया है उसके साथ मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

मेरे मित्र श्री सिधवा ने कहा है कि महालेखा-परीक्षक के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में बहुत से नियम कार्यपालिका द्वारा बनाये जाते हैं और मैंने जिस संशोधन का सुझाव रखा है उसके अनुसार भी वही शक्तियां प्रयोग में आयेंगी जो पहले प्रयोग में थीं और इसलिये कार्यपालिका को ही महालेखापरीक्षक के कर्त्तव्यों को निर्धारित करने का प्राधिकार प्राप्त होगा। यह स्पष्ट है कि यह स्थिति तर्कसंगत नहीं है क्योंकि जिस पदाधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह अर्थ के प्रशासन के सम्बन्ध में कार्यपालिका पर नियंत्रण रखेगा उसके कर्त्तव्य कार्यपालिका के ही बनाये हुए नियमों द्वारा निर्धारित होंगे। इस सम्बन्ध में मैं अपने माननीय मित्र श्री सिधवा से केवल यह कह सकता हूं कि ये उपबंध बहुत कुछ अक्षरश: 1935 के भारत सरकार के अधिनियम की धारा 151 से, जो राष्ट्रधन की अभिरक्षा के सम्बन्ध में है और धारा 166 से, जो महालेखापरीक्षक के कर्त्तव्यों के बारे गवर्नर-जनरल के बनाये हुए नियमों के सम्बन्ध में है, लिये गये हैं, उस अधिनियम के अधीन यह व्यवस्था थी कि गवर्नर जनरल स्वविवेक से इस सम्बन्ध में नियम बनाये अर्थात् इन नियमों को बनाने में उसके लिये यह आवश्यक न था कि वह मंत्रिमंडल से परामर्श ले। इस सीमा तक महालेखा-परीक्षक के कर्त्तव्यों को निर्धारित करने के लिये गवर्नर-जनरल के बनाये हुए नियमों का कार्यपालिका से कोई सम्बन्ध न होता था। अब हम राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में स्वविवेक से प्रयोग में आने वाली कोई शक्ति नहीं दे रहे हैं और यदि उसे इन नियमों में कोई परिवर्तन करना होगा तो वह अवश्य ही मंत्रिमंडल से अर्थात् कार्यपालिका से परामर्श लेकर इस दिशा में कदम उठायेगा। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि

इस सीमा तक यह व्यवस्था तर्कसंगत नहीं है। किन्तु मुझे आशा है कि मेरे मित्र श्री सिधवा, जो अवश्य ही नई संसद के सदस्य बने रहेंगे शीघ्रातिशीघ्र संसद से यह अनुरोध करेंगे कि इन नियमों को विधि का रूप देकर स्थिति में सुधार किया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 125 में 'and of the Government of any State' शब्दों के स्थान में 'the Government of any State or other authority' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 125 की व्याख्या के स्थान में निम्नलिखित व्याख्या रखी जाये:

''*Explanation.*—In this article, the expression 'law made by Parliament' includes any law, ordinance, order, by-law, rule or regulation passed or made before the commencement of this Constitution and for the time being in force in the territory of India.' ''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 125, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 125, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 126

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 126।

(संशोधन संख्या 1987 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 126 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 126 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 127

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 127।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 127 में 'Parliament' शब्द के स्थान में 'each House of Parliament' शब्द रखे जायें।''

यह केवल एक रस्मी संशोधन है:

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 127 में 'Parliament' शब्द के स्थान में 'each House of Parliament' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 127, संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 127, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 127-ए

***अध्यक्षः** इस आशय के एक संशोधन की सूचना मिली है कि एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 127-ए जोड़ दिया जाये। यह संशोधन संख्या 1989 है, जो प्रोफेसर शाह के नाम से है।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, चूंकि सभा इस संशोधन में सन्निहित सिद्धांत को पहले अस्वीकार कर चुकी है इसलिये मैं इसे उपस्थित नहीं करना चाहता।

अनुच्छेद 128

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 128।

अध्याय के शीर्षक के सम्बन्ध में मि. नजीरुद्दीन अहमद ने एक संशोधन की सूचना दी है। उसे हम इस समय छोड़ देते हैं।

संशोधन संख्या 1991 खंडनकारी संशोधन है और इसलिये उसे उपस्थित नहीं किया जा सकता।

संशोधन संख्या 1992 का उद्देश्य मेरे विचार से मसौदे में शुद्धि करना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, 'State' (राज्य) शब्द सर्वत्र प्रयुक्त है। इसलिये इस संशोधन को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है।

(संशोधन संख्या 1993 और 1994 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** तो, अनुच्छेद 128 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 128 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 128 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 129

***अध्यक्ष:** कई संशोधन मेरे सामने हैं। अध्याय के शीर्षक के सम्बन्ध में एक संशोधन श्री नजीरुद्दीन अहमद का है। उसे हम छोड़ देते हैं।

(संशोधन संख्या 1996 और 1997 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** सभापति जी, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 129 के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

'of whom there shall be at least one from each of the States of Part I of the First Schedule.' ''

सभापति जी, मेरा कहने का मतलब यह है कि देश में जितने भी स्टेट्स होंगे उस स्टेट्स में से एक गवर्नर होना चाहिये। इसका मतलब यह है कि जितने प्रान्त हम बनाते हैं उन प्रान्तों में से हर एक का एक गवर्नर होना चाहिये। जब तक यह नहीं होता, तब तक हर एक प्रान्त की जो आत्म-मर्यादा है, वह ठीक नहीं होगी। इसलिये मैं यह रखना चाहता हूं कि हर एक प्रान्त में कम से कम एक आदमी गवर्नर हो। जब इलेक्शन होगा, तब वहां का होगा और जब इलेक्शन नहीं होगा तब पैनेल से लिया जायेगा। कम से कम स्टेट का आदमी दूसरे प्रान्त में गवर्नर बन सकता है जब उसी प्रान्त में उसको गवर्नर नहीं बनाया जाये।

मैं उड़ीसा प्रान्त से आया हूं और मैं देखता हूं कि जो शासन-प्रबंध अभी चलता है उसमें हम लोगों का अभी तक कोई भाग केन्द्र में नहीं है। सब जगह में, भारतवर्ष के

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

बाहर भाग लेते हैं उसमें हमारा अभी तक कुछ भाग नहीं है। इसलिये हम लोग इतने संकुचित हो जाते हैं कि हम लोगों का प्रान्त तरक्की नहीं करने पाता। इसलिये मैं चाहता हूं कि इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या प्रस्तावक महोदय यह चाहते हैं कि राज्यपाल उसी प्रान्त का हो?

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से उनका आशय यह है कि प्रत्येक राज्य से एक राज्यपाल होगा भले ही वह दूसरे प्रान्त में नियुक्त किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महदेय, मैं यह कह नहीं सकता कि मैं अपने कुछ ऐसे विचारों को व्यक्त कर सकूंगा या नहीं जो मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी यह धारणा है कि भारत के किसी प्रान्त में भी राज्यपाल की आवश्यकता नहीं है। मंडल (डिवीजन) का आयुक्त (कमिश्नर) केन्द्र के प्रशासन-सम्बन्धी अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण में रखा जा सकता है। मांडलिक आयुक्तों को अधिक शक्ति दे दीजिये। मेरी यह धारणा है कि विधान मंडल, मंत्रिमंडल तथा राज्यपाल सभी, प्रान्तों के लिये हानिकारक है।

श्रीमान्, आप से अच्छी तरह इसे और कोई नहीं जानता कि आजकल प्रान्तों में प्रशासन कार्य किस प्रकार चल रहा है। मैं यह जानता हूं कि मैं जो कुछ कह रहा हूं वह प्रान्तीय स्वायत्त शासन, संघीय शासन तथा जनतंत्र के विरुद्ध है। किन्तु मैं यह अनुरोध करता हूं कि हम अपना दृष्टिकोण बदलें। जिस समय हमने प्रान्तीय स्वायत्त-शासन को स्वीकार किया था उस समय हम ब्रिटिश शासन के अधीन थे। उस समय हमने अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिये यह नारा लगाया था। हम इसे अच्छी तरह जानते थे कि अंग्रेज केन्द्र में कोई सुविधा अथवा शक्ति प्रदान करने नहीं जा रहे हैं। प्रान्त सबसे कमजोर थे किन्तु वहां भी उन्होंने पूर्ण स्वायत्त शासन प्रदान नहीं किया था। उन्होंने शक्तियां अपने ही पास सुरक्षित रखी थीं। अब समय बदल गया है। अब प्रान्तीय स्वायत्त शासन का अर्थ यह है कि केन्द्र पर विश्वास नहीं किया जाये। उस समय तो यह अविश्वास सकारण ही था क्योंकि केन्द्र में विदेशी शासन था। अब हम स्वतंत्र हो गये हैं। इसलिये अब यह कैसे सम्भव हो सकता है और कैसे उचित अथवा आवश्यक कहा जा सकता है कि प्रान्तों को शक्तियां दी जायें किन्तु एक बहुत कुछ अशक्त राज्यपाल को नियुक्त किया जाये। वह एक कठपुतली ही सिद्ध होगा। ऐसी दशा में हम राज्यपालों को रखें ही क्यों?

श्रीमान्, समाप्त करने के पूर्व मैं एक बात और कहना चाहता हूं। इसे सभी स्वीकार करते हैं कि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत अब खोखला सिद्ध हो चुका है। इस सिद्धांत का सम्बन्ध केवल न्यायपालिका के विधान मंडल तथा कार्यपालिका से पृथक्करण के प्रश्न से है और यह संघीय शासन व्यवस्था पर आधृत है। इसका अर्थ यह है कि शक्तियों का पृथक्करण होना चाहिये। किन्तु जब शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत खोखला सिद्ध हो चुका है तो संघीय शासन का सारा ढांचा गिर पड़ता है और नष्ट हो जाता है।

मेरे विचार से 1946 से अब तक संविधान बनाने में जल्दी न दिखाकर हमें लाभ ही हुआ है। अब यह कहा जाता है कि हमें उसे जल्दी समाप्त करना चाहिये क्योंकि हम बहुत समय ले चुके हैं। संविधान बनाने में देर करके हमने कुछ ऐसी बातें तय कर दी हैं जिन्हें हम 1946 अथवा 1947 में संविधान को समाप्त करके तय नहीं कर सकते थे। एक तो राज्य संघ में समाविष्ट हो गये हैं। यदि हम 1947 में ही संविधान को स्वीकार कर लेते तो यह सम्भव न हो सकता। इस प्रकार का संविधानिक परिवर्तन करना कोई सरल कार्य नहीं है। संविधान सभा को किसी नई विधि को बनाने अथवा किसी नई विधि में परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है। सरदार पटेल भारतीय राज्यों को संघ में समाविष्ट कर सके हैं, नये राज्यों का निर्माण कर सके हैं, कुछ संघांगों को समाप्त कर सके हैं और राज्यों को विभिन्न प्रान्तों में समाविष्ट कर सके हैं। इसके अतिरिक्त यदि हम संविधान को 1947 में स्वीकार कर लेते तो हमें संविधान में भारत के विभिन्न अल्पसंख्यकों के लिये जगहें रक्षित करने के उद्देश्य से उपबंध रखने पड़ते। कुछ देर करके हमने वह कार्य सम्पन्न किया है जो 1947 में असम्भव प्रतीत होता था।

श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि इस अध्याय को अर्थात् संविधान के भाग 6 को स्वीकार करने में हमें जल्दी न करनी चाहिये। इस समय हम भारत सरकार के अधिनियम से संतुष्ट हैं। हमें स्थित्यनुसार तथा आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है। आज माननीय डा. मुकर्जी पांच मिनट में ही इस सभा से एक विधेयक स्वीकार करा सके हैं। यदि कोई और सभा होती तो उसे स्वीकार करने में वह सम्भवत: कुछ घंटे का समय लेती। मेरी समझ में नहीं आता कि हम संविधान बनाने में इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं। सम्भवत: हम अन्तर्राष्ट्रीय जगत की सम्मति, अपने अंग्रेज तथा अमेरिकन मित्रों की सम्मति, पूंजीपतियों के समाचारपत्रों की सम्मति तथा ऐसे लोगों की सम्मति की ओर से ही ध्यान देते हैं जिन्हें हमारे राष्ट्र की आशाओं तथा आकांक्षाओं से कोई सहानुभूति नहीं है। मुझे आशा है कि भारत की वर्तमान स्थिति की ओर अधिक ध्यान दिया जायेगा। आज आवश्यकता इसकी है कि गरीब लोगों की आर्थिक स्थिति में तुरन्त सुधार किया जाये और निरक्षरता का अन्त किया जाये। इन कार्यों को तो हम नहीं करते हैं किन्तु लोगों पर एक नये संविधान को लादना चाहते हैं और निर्वाचनों में राष्ट्रधन को नष्ट करना चाहते हैं। श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 129 का विरोध करता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र ने जो दृष्टिकोण अभी सभा के सामने रखा था उसका मैं समर्थन करता हूं। इस सभा के कई सदस्यों को यह विदित है कि इस उद्देश्य से मैंने एक संकल्प की सूचना दी थी। उस संकल्प में मैंने यह कहा था हमारे संविधान का आधार एक अर्धसंघीय प्रणाली न होकर एक यथोचित एकात्मक प्रणाली होनी चाहिये। मैंने इस संकल्प की सूचना इसे ध्यान में रखकर दी थी कि विश्व की वर्तमान स्थिति में यह आवश्यक है कि भारत एक सुसंगठित और सशक्त राष्ट्र हो ताकि वह विश्व-शांति बनाये रखने में प्रमुख भाग ले सके और निर्णायक कार्य कर सके। मैंने अपने संकल्प में यह भी कहा था कि किन कारणों से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं। कुछ लोग यह कहेंगे कि संविधान का मसौदा तैयार करते समय इस पर जोर क्यों नहीं दिया गया? सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से वर्तमान सरकार से अधिक और किसी ने

[डा. पी.एस. देशमुख]

यह स्पष्ट नहीं किया है और न इस पर सोचा ही है कि संविधान की नींव कहां टेढ़ी पड़ गई है। अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि वर्तमान संविधान को प्रयोग में लाने से भविष्य में कई संकटों का सामना करना पड़ेगा। मेरे विचार से यदि हम बहुत कुछ एक क्रांतिकारी निर्णय करके इस संविधान की नींव बदल कर इन संकटों से मुक्ति पा लें तो इससे लोगों का हितसाधन होगा। संविधान की नींव आखिर किस स्थान पर डाली गई? वह दिल्ली में नहीं डाली गई। वह भारत में किसी स्थान में नहीं डाली गई। वह इंग्लैंड में डाली गई और वास्तव में वर्तमान स्थिति से भिन्न स्थिति को दृष्टि में रखकर डाली गई। संविधान का मसौदा केवल 1935 के भारत सरकार के अधिनियम की पुनरुक्ति है। लंदन के कई गोलमेज सम्मेलनों में समवेत होकर हमने केवल मि. जिन्ना की बढ़ती हुई मांगों पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों, रक्षणों तथा वजनों, सारे भारत में बिखरी हुई छोटी-छोटी रियासतों के प्रश्नों को ही हल करने का प्रयास किया और भारत की उस समय की राजनैतिक स्थिति को ध्यान में रखकर संविधान के एक ढांचे की कल्पना की तथा उसे एक स्वरूप प्रदान किया और उसी की हम इस समय नकल कर रहे हैं। मेरे विचार से यह संविधान और इसमें सन्निहित सिद्धांत हमारे देशवासियों की प्रकृति के अनुरूप नहीं हैं। मैं हमेशा इसके लिये अनुरोध करता रहा हूं कि हमें अपने देश के राजनैतिक प्रशासन के लिये सच्चाई के साथ एक ऐसा हल निकालना चाहिये जो हमारे देशवासियों की प्रकृति के अनुरूप हो। अब रियासतें हमारे मार्ग में बाधक नहीं हैं और न मुस्लिम लीग ही अटल बनी हुई है। इस स्थिति में हम अपने संविधान को एकात्मक स्वरूप देकर एक तर्कपूर्ण साधन को क्यों न अपनायें? ऐसा करने पर ही लोग हमारे साथ पूर्ण सहयोग करेंगे और हम उनके शारीरिक तथा बौद्धिक बल का पूर्ण उपयोग कर सकेंगे। इस संविधान की आधारभूत बातों को स्वीकार करने के अतिरिक्त यदि हम इस मार्ग का अनुसरण करें तो हम न केवल भारतीय राष्ट्र का शीघ्रातिशीघ्र निर्माण करेंगे बल्कि ऐसा करने में हमारी शक्ति भी बहुत कम नष्ट होगी।

श्रीमान्, इस प्रस्ताव में मैंने मुख्यतया इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि राज्यों में, संघों में तथा प्रान्तों में मंत्रिमंडल अस्थिर रहेंगे। हम समाचारपत्रों में लगभग प्रतिदिन यह पढ़ते हैं कि विभिन्न प्रान्तों के बीच कोई न कोई कलह आदि हो रहा है और वे केन्द्र के साथ सहयोग नहीं कर रहे हैं। जब हम विधान सभा के रूप में समवेत थे तो कृषि मंत्री ने यह शिकायत की थी कि खाद्य पदार्थों के उत्पादन में प्रान्त सहयोग नहीं कर रहे हैं। शरणार्थियों के पुनर्वास के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की शिकायत की गई थी। प्रान्तों में कर लगाने की प्रणाली के सम्बन्ध में भी कुछ प्रश्न उठ खड़े हुए है। आज ही के समाचारपत्रों से हमें ज्ञात हुआ है कि विभिन्न प्रान्तों में कितना विक्रय कर लगाया गया है। मुझे एक विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि मध्यप्रान्त के लिये जो भी चीजे जाती हैं उन पर बम्बई में विक्रय कर लगता है क्योंकि वे उस प्रान्त से होकर आती है और फिर उन पर मध्यप्रान्त में विक्रयकर लगता है। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, हम कई आर्थिक प्रश्नों पर वाद-विवाद करने में कई दिन लगा देते हैं और तब कहीं कोई निर्णय होता है। प्रान्तों से हमारे पास ऐसे प्रस्ताव आते हैं जो एक दूसरे का खंडन करते हैं और केन्द्र से हमेशा अधिक अनुदान के लिये मांग की जाती है।

इसके अतिरिक्त हमारे सामने एक भावी प्रान्तों का प्रश्न भी है। हम जानते हैं कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में इस समय सारे देश में उत्तेजना है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिये हमने एक दो समितियों का निर्माण किया किन्तु स्थिति में सुधार होने के स्थान में वह और भी अधिक बिगड़ रही हैं जिससे विचारशील लोगों को दुख ही होता है। यदि हम प्रान्तों को बनाये रखना चाहते हैं तो हमें एक-भाषी प्रान्तों को स्वीकार करना ही होगा। हम कुछ कठिनाई से अथवा अपने नेताओं के प्रभाव से हम प्रश्न को थोड़े समय के लिये टाल सकते हैं परन्तु एक-भाषी प्रान्त अस्तित्व में आयेंगे ही। भले ही मेरे मित्र श्री मुंशी बम्बई को संयुक्त महाराष्ट्र में सम्मिलित न होने देना चाहें, किन्तु वे उसे सम्मिलित होने से न रोक सकेंगे। इसलिये इन सब प्रश्नों को हल करने के लिये और विशेषतया एक-भाषी प्रान्तों के वृहत् प्रश्न को हल करने के लिये, जिसके सम्बन्ध में लोग इतने अधिक उत्तेजित हैं, मेरा यह सुझाव है कि प्रान्तों को स्वायत्तशासी न रहने दिया जाये। यदि ऐसा किया गया तो सभी प्रकार के कलह और विद्वेष का अन्त हो जायेगा। प्रान्तों के अस्तित्व के कारण ही कलह भी है और विद्वेष भी, जब केवल केन्द्रीय सरकार ही रह जायेगी तो केवल एक ही विधान मंडल होगा, एक ही मंत्रिमंडल होगा और एक ही प्रकार की विधि होगी और इस कलह और विद्वेष का अन्त हो जायेगा। तब इन सभी मांगों का इस प्रकार समन्वय किया जा सकेगा कि कोई कठिनाई शेष रह सकेगी। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर मैं इस सभा के माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे सच्चाई से इस पर विचार करें कि क्या इस देश के लिये एकात्मक शासन प्रणाली ही उपयुक्त, तर्कपूर्ण तथा व्यावहारिक शासन प्रणाली नहीं है? संघीय शासन का लोगों की संघ बनाने की इच्छा से न कि एकता स्थापित करने की इच्छा से सामंजस्य है। किन्तु भारत में लोग केवल संघ बनाना ही नहीं चाहते वे एकता चाहते हैं। जनसाधारण की यही इच्छा है। इसलिये मेरे, विचार से, यह कोई समझदारी की बात न होगी कि मेरा प्रस्ताव केवल इस कारण ठुकरा दिया जाये कि अब संविधान में आधारभूत परिवर्तन करने के लिये बहुत देर हो गई है। यदि यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया गया तो सारा संविधान बहुत सरल हो जायेगा। और उसे दो तीन सप्ताह में ही बड़े संतोषजनक ढंग से समाप्त किया जा सकता है। यदि हम उसे इतने समय में समाप्त न भी कर सके तो भी हमारे सामने कोई कठिनाई न रहेगी क्योंकि एकात्मक शासन के अधीन सभी विषय केन्द के अधीन होंगे और इस पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता न रह जायेगी कि कौन से विषय समवर्त्ती होंगे, कौन से विषय प्रान्तीय होंगे और कौन से केन्द्रीय होंगे। मैं सभी सदस्यों से यह अनुरोध करता हूं कि वे इस पर विचार करें कि क्या इससे भारत का हित-साधन न होगा और क्या इससे भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र न होगा और इस स्थिति से मुक्त न होगा कि सभी संकटों का सामना करने के उपरान्त भी वह फिर संकट ही में पड़ा रहे। हम इस प्रस्ताव को इस समय भले ही स्वीकार न करें किन्तु पन्द्रह वर्ष बाद हमें इसे स्वीकार करना ही होगा। इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी संदेह नहीं है। तब तक बहुत देर हो जायेगी और बहुत समय नष्ट हो जायेगा। सारे भारत में बहुत कलह और विद्वेष फैल जायेगा और भले ही फिर आप एकात्मक शासन स्वीकार करने का निश्चय करें परन्तु उसके लिये देर हो जायेगी। यदि आप इस प्रणाली को इसी समय स्वीकार कर लेते हैं तो देश निष्फल बलिदान तथा कष्ट सहन से बच जायेगा। इसलिये इस सभा

[डा. पी.एस. देशमुख]

के सभी सदस्यों से मेरा यह अनुरोध है कि वे इस प्रस्ताव पर मनन करें और इस पर विचार करें कि इसे स्वीकार करना सम्भव है या नहीं। त्रुटि के परिशोधन के लिये अभी भी समय है।

***अध्यक्ष:** मेरा माननीय सदस्यों से यह अनुरोध है कि वे विचाराधीन अनुच्छेद पर ही मत-प्रकाश करें। मैंने डा. देशमुख को एक बड़े प्रश्न पर इसलिये मत प्रकट करने दिया कि उनकी इस सम्बन्ध में हमेशा से इस प्रकार की प्रबल धारणा रही है। मैंने उन्हें तो अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया किन्तु अब हम विचाराधीन अनुच्छेद पर ही अपना मत प्रकट करें।

***श्री आर.के. सिधवा:** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आपने इस प्रकार का निर्णय किया है क्योंकि मैं कई बार औचित्य प्रश्न उठाना चाहता था परन्तु फिर मैंने यह सोचा कि मैं विघ्न उपस्थित न करूं। जब हम संविधान के आधारभूत सिद्धांतों को निश्चित कर चुके हैं तो मेरे विचार से मुझसे पहले बोलने वाले दो वक्ताओं ने जो भाषण दिये वे नियम-विरुद्ध थे। यह मेरा नम्र निवेदन है। अब आपने स्थिति स्पष्ट कर दी है। अन्यथा उनके तर्कों का खंडन करने में मुझे पन्द्रह मिनट लगाने पड़ते। श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि अन्य सदस्यों को इस विषय के सम्बन्ध में कुछ न कहने दिया जायेगा। डा. देशमुख ने अपने प्रस्ताव पर मत प्रकट किया यद्यपि संचालन समिति ने उसे नियम-विरुद्ध घोषित कर दिया था।

श्रीमान्, श्री साहू के संशोधन में यह कहा गया है कि प्रत्येक प्रान्त को एक राज्यपाल भेजने का अवसर मिलना चाहिये। मुझे इस विचार से सहानुभूति है कि प्रत्येक प्रान्त को विभिन्न प्रान्तों में राज्यपालों को भेजने का अवसर मिलना चाहिये। यद्यपि मैं किसी प्रान्त में उसी प्रान्त का कोई निवासी राज्यपाल नियुक्त न करने की जो प्रथा इस समय अपनाई गई है उससे पूर्णतया सहमत हूं किन्तु मेरे विचार से प्रत्येक प्रान्त को, यदि वहां सुयोग्य व्यक्ति हों तो उन्हें राज्यपाल बनाकर भेजने का अधिकार होना चाहिये। इसकी उपेक्षा न होनी चाहिये और एक या दो प्रान्तों से ही राज्यपाल न चुने जाने चाहिए। यद्यपि मैं इस तर्क से पूर्णतया सहमत हूं किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस सम्बन्ध में संविधान में संशोधन न करना चाहिये और उसे मूल रूप में रहने देना चाहिये। राज्यपालों की नियुक्ति के सम्बन्ध में यह प्रश्न फिर हमारे सामने आयेगा और तब इस पर आगे विचार हो सकता है। श्रीमान्, मैं इस धारणा से सहमत हूं कि प्रत्येक प्रान्त में ऐसे व्यक्ति हैं जो सुयोग्य शासक हो सकते हैं। इसलिये नियुक्तियां करते समय इसकी ओर ध्यान देना चाहिये कि विभिन्न प्रान्तों का विस्मरण तो नहीं किया जा रहा है। चाहे मेरी धारणा जो कुछ भी हो किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि यह संशोधन संविधान में समाविष्ट किया जाये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने दल के माननीय सदस्यों से तथा माननीय मुख्य प्रतोद से यह स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूं कि श्री सिधवा ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** उन्होंने कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मुझे खेद है। मेरा मतलब श्री साहू से है। मेरे मस्तिष्क में श्री सिधवा का नाम इसलिये है कि आज उन्होंने एक बहुत ही आश्चर्यजनक बात कही है। वे यहां तक कह गये कि प्रत्येक प्रांत में सुयोग्य व्यक्ति हैं। यदि वे वास्तविकता की ओर ध्यान दें तो वे यह अनुभव करेंगे कि वे भ्रम में हैं। क्या आसाम में कोई सुयोग्य व्यक्ति है? यदि कोई सुयोग्य व्यक्ति होता तो उसे मंत्रिमंडल में अथवा राज्य-मंत्रालय में अथवा उपराज्य मंत्रालय में स्थान मिलता अथवा वह किसी प्रांत का राज्यपाल होता। यदि आसाम प्रांत में कोई सुयोग्य व्यक्ति होता तो उसे भारत के बाहर किसी दूतावास में अथवा किसी अन्य पद पर नियुक्त किया जाता। आसाम में ऐसे सुयोग्य व्यक्ति नहीं हैं। भारत में प्रख्यात न्यायाधीश हैं और उन न्यायाधीशों ने यह निश्चय किया है कि आसाम में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो राज्यपाल का कार्य कर सकता है अथवा मंत्रिमंडल में अथवा राज्य मंत्रालय में अथवा किसी दूतावास में नियुक्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त क्या उड़ीसा में भी कोई सुयोग्य व्यक्ति है? क्या उड़ीसा के किसी भी व्यक्ति को मंत्रिमंडल में अथवा किसी दूतावास में किसी महत्त्वपूर्ण स्थान पर नियुक्त किया गया है अथवा क्या वहां का कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त किया गया है? आप इसे स्वीकार करेंगे कि आप यह नहीं कह सकते हैं कि जो लोग इन नियुक्तियों को करते हैं वे उपयुक्त तथा उत्तरदायी लोग नहीं हैं और यथोचित निर्णय नहीं करते हैं। आप यह नहीं कह सकते हैं। इसलिये मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा का कथन बिल्कुल गलत है। हमें प्रतीक्षा करनी चाहिये। सुयोग्य व्यक्तियों को जन्म लेने देना चाहिये उन्हें सुयोग्य होने देना चाहिये और समय आने पर वे लोग इन प्रांतों में यथोचित स्थानों को प्राप्त कर लेंगे।

श्रीमान्, इसके अतिरिक्त मैं अपने माननीय मित्र श्री साहू का इस कारण विरोध करता हूं कि उनका संशोधन बिल्कुल अपरिपक्व है। यदि यह सभा अनुच्छेद 131 को स्वीकार कर लेती है अर्थात् इसे स्वीकार कर लेती है कि प्रत्येक प्रांत में राज्यपाल निर्वाचित किया जायेगा तो प्रत्येक प्रांत अपने यहां के किसी व्यक्ति को राज्यपाल बना सकता है। यदि किसी प्रांत का कोई भी व्यक्ति राज्यपाल न चुना गया तो इसके लिये वह स्वयं ही दोषी होगा। जहां तक मैं समझ सकता हूं, किसी प्रांत के किसी व्यक्ति को राज्यपाल के उच्च पद पर आसीन करने की सम्भावना इसी प्रकार हो सकती है कि उस पद के लिये निर्वाचन हो। यदि निर्वाचन किया गया तो प्रत्येक प्रांत का कोई न कोई व्यक्ति उस पद के लिये निर्वाचित हो जायेगा। अन्यथा यह किसी प्रकार भी सम्भव न हो सकेगा। मैं श्री साहू के संशोधन का इस कारण भी विरोध करता हूं कि उनका तर्क बिल्कुल गलत है क्योंकि यदि हम थोड़ी देर के लिये यह मानें कि उस पद के लिये निर्वाचन न होकर मनोनीतकरण हुआ तो उस दशा में क्या स्थिति होगी? मैं उनसे निश्चित रूप से यह कहता हूं कि यदि प्रत्येक प्रान्त के एक व्यक्ति के स्थान में आप प्रत्येक प्रान्त के तीन व्यक्तियों का सुझाव रखते हैं तो यह सम्भव न हो सकेगा। यदि मनोनीतकरण ही हुआ तो इसका अवसर न मिलेगा।

***अध्यक्ष:** मैं यह बताना चाहता हूं कि इस समय सभा के सम्मुख निर्वाचन अथवा नियुक्ति का प्रश्न नहीं है। इस अनुच्छेद का विषय यह नहीं है कि राज्यपाल किस प्रकार नियुक्त किया जायेगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं विनयपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि श्री साहू का संशोधन बिल्कुल अपरिपक्व है क्योंकि यदि इस पद के लिये निर्वाचन हुआ तो साधारणतया किसी दूसरे प्रांत के व्यक्ति के आने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि राज्यपाल निर्वाचित हुआ तो प्रत्येक प्रांत के लोग अपने ही यहां के किसी व्यक्ति को निर्वाचित करेंगे और इसलिये यह प्रश्न नहीं उठता। श्री साहू के संशोधन का प्रसंग तभी उत्पन्न हो सकता है जब हम यह मानें कि इस पद के लिये निर्वाचन न होगा। उस स्थिति में हम यह कह सकते हैं कि राज्यपाल के पद के लिये लोगों को मनोनीत करने में इसका ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक प्रांत के लोगों को इस पद के लिये अवसर मिले। इसलिये मैं श्री साहू के संशोधन का विरोध करता हूं और उसे अपरिपक्व समझता हूं।

श्रीमान्, यदि इस पद के लिये मनोनीतकरण की ही व्यवस्था की गई तो आप यह आशा नहीं कर सकते हैं कि प्रत्येक प्रांत के लोगों को इस पद पर नियुक्त होने का अवसर मिलेगा। हमें इस समय वास्तविकता की ओर ध्यान देना चाहिये। बम्बई के तीन व्यक्ति इस समय राज्यपाल हैं और यू.पी. और दिल्ली के तीन व्यक्ति राज्यपाल हैं किंतु बिहार और बंगाल जैसे महत्त्वपूर्ण प्रांतों का एक व्यक्ति भी इस समय राज्यपाल नहीं है। कुछ समय पूर्व श्रीमती सरोजिनी नायडू इस पद पर थीं और वे बंगाली थीं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि आप केवल मनोनीतकरण की व्यवस्था करते हैं तो आपको मनोनीत करने वाले व्यक्ति पर सब कुछ छोड़ना पड़ेगा और आप यह प्रतिबंध नहीं रख सकते हैं कि प्रत्येक प्रांत का कोई न कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त किया जाये। यद्यपि मैं श्री साहू के प्रस्ताव का विरोध करता हूं किन्तु उनकी भावनाओं से मुझे सहानुभूति है और मेरे विचार से जब तक हम मनोनीतकरण संबंधी नीति को निश्चित नहीं करते हैं तब तक हमें प्रत्येक प्रांत के दावों को पूरा करना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अब इस प्रस्ताव पर मत लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 129 के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

'and of whom there shall be at least one from each of the States of Part I of the First Schedule.'''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 129 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 129 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 130

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2000 का उद्देश्य केवल मसौदे में शुद्धि करना है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 130 के खंड (1) में 'may' शब्द के स्थान में 'shall' शब्द रखा जाये।''

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

> 'The executive power of the State shall be vested in the Governor and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and the law.' ''

मैंने जिस शब्द को प्रविष्ट करने का प्रस्ताव किया है वह बहुत आवश्यक है वह संविधान राज्यपाल के लिये यह अनिवार्य होना चाहिये कि वह संविधान और विधि के अनुसार अपनी शक्तियों को प्रयोग करे अर्थात् वह अपने मंत्रियों के परामर्श से कार्य करे। आगे के खंडों में और संविधान के अन्य भागों में इसी प्रकार के उपबंध हैं। राज्यपाल को कई शक्तियां प्राप्त हैं। राज्यपाल को केवल वही शक्तियां प्राप्त नहीं है जिनके लिये मंत्री विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी है, किन्तु ऐसी शक्तियां भी प्राप्त हैं, जिन्हें वह स्वविवेक से प्रयोग में ला सकता है। इसलिये इस संविधान के अधीन हम जिस नवीन तथा जनतंत्रात्मक प्रणाली को प्रवर्तन में लाने जा रहे हैं उसके अन्तर्गत यह उचित ही होगा कि राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख, संविधान तथा विधि के अनुसार, अपनी शक्तियों को प्रयोग में लाये अर्थात् ऐसी शक्तियों को प्रयोग में लाने में अथवा ऐसे कार्यों के करने में, जिनके लिये मंत्रिमंडल उत्तरदायी ठहराया जा सके, वह अपने मंत्रियों से परामर्श ले। मेरे प्रस्ताव का उद्देश्य केवल शाब्दिक परिवर्तन नहीं है किन्तु एक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक परिवर्तन है और मुझे आशा है कि सभा को वह स्वीकार्य प्रतीत होगा।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 130 के खंड (1) में 'may' शब्द के बाद 'on behalf of the people of the State' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो यह अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

> ''The executive power of the State shall be vested in the Governor and may on behalf of the people of the State be exercised by him in accordance with the Constitution and the law.''

[श्री मोहम्मद ताहिर]

इस संशोधन का उद्देश्य सरल और स्पष्ट है। मैं यह चाहता हूं कि राज्यपाल को प्रांत में किसी की ओर से शक्तियों को प्रयोग में लाना चाहिये। वह प्रांत के लोगों की ओर से ही शक्तियों को प्रयोग में लायेगा। इसलिये मेरे विचार से संविधान में इसका उल्लेख होना आवश्यक है कि राज्यपाल राज्य के लोगों की ओर से शक्तियों का प्रयोग करेगा।

इन शब्दों के साथ मैं अपना प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 2003 उपस्थित नहीं किया गया)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2004। क्या उसका उद्देश्य केवल मसौदे में शुद्धि करना नहीं है?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जी नहीं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** यदि आप उसे सारभूत समझते हैं तो आप उसे उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 130 के खंड (2) के उपखंड (ए) में 'transfer to the Governor any functions conferred by any existing law on' शब्दों के स्थान में 'authorise or empower the Governor to exercise any power or perform any functions which by any exitsing law are exercisable or performable by' शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, संदर्भ में ये शब्द हैं:

> ''इस अनुच्छेद की किसी बात से–
>
> (क) यह न समझा जायेगा कि राज्यपाल को वर्तमान विधि अथवा किसी अन्य अधिकारी द्वारा प्रदत्त कोई प्रकार्य हस्तांतरित किये जा रहे हैं।''

मेरी आपत्ति 'राज्यपाल को कोई प्रकार्य हस्तांतरित किये जा रहे हैं' शब्दों के संबंध में है, मेरा यह निवेदन है कि प्रकार्यों का कुछ पदों के साथ स्थायी संबंध होता है और उन्हें कभी भी हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। केवल कुछ अन्य लोगों को किसी विशेष पद के प्रकार्यों तथा शक्तियों को प्रयोग में लाने का अधिकार दिया जा सकता है। मुरे की अंग्रेजी के आक्सफोर्ड के कोष में 'प्रकार्य' की यह परिभाषा की गई है–''किसी प्रकार का कार्य जो कोई पदधारी करे''। मेरे विचार से प्रकार्य उन शक्तियों का एक भाग है जो कोई पदधारी प्रयोग में लाये। इसलिये मैंने यह सुझाव रखने का प्रयास किया है कि इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी राज्यपाल को किसी ऐसी शक्ति को प्रयोग में लाने का अथवा प्रकार्य को करने का अधिकार प्राप्त न होगा जो वर्तमान विधि के अधीन अन्य प्राधिकारियों द्वारा प्रयोग में आती हो अथवा किया जाता हो। ''प्रकार्य हस्तान्तरित किये जा रहे हैं'' शब्द अनुपयुक्त होंगे। मैं यह नहीं कहता हूं

कि इस संशोधन का उद्देश्य मसौदे में शुद्धि करना नहीं है। उससे मसौदे की भी शुद्धि होती है। किन्तु मेरे विचार से 'प्रकार्यों' के प्रसंग में 'हस्तांतरित' शब्द का प्रयोग उपयुक्त नहीं है और इसीलिये मैंने सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है।

(संशोधन संख्या 2005 उपस्थित नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, यह अनुच्छेद 42वें अनुच्छेद के समान ही है, जो संघ की कार्यपालिका शक्ति के बारे में है। यह अक्षरश: अनुच्छेद 42 के समान ही है। संशोधनों की पुस्तक में मुझे यह दिखाई देता है कि अनुच्छेद 42 के संबंध में भी बिल्कुल इसी प्रकार के संशोधन उपस्थित किये गये थे और उन पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श अधिक हुआ था। अनुच्छेद 42 तथा तद्विषयक संशोधनों के संबंध में मैंने जो कुछ कहा था उससे अधिक और कुछ कहने से कुछ लाभ न होगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि सभा में जितने भी संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से किसी को भी स्वीकार करने के लिये मैं तैयार नहीं हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, अनुच्छेद 42 अन्य प्रसंग में आया है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 130 के खंड (1) में 'may' शब्द के स्थान में 'shall' शब्द रखा जाये।

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 130 के खंड (1) में 'may' शब्द के बाद 'on behalf of the people of the State' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 130 के खंड (2) के उपखंड (ए) में 'transfer to the Governor any functions confereed by any existing law on' शब्दों के स्थान में 'authorise or empower the Governor to exercise any power or perform any functions which by any existing law are exercisable or performable by' शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 130 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 130 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 131

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद के संबंध में माननीय सदस्य इस ओर ध्यान देंगे कि मसौदा-समिति ने दो विकल्पों का सुझाव दिया है। संशोधन इन विकल्पों में से एक न एक विकल्प के संबंध में है। इसलिये मेरे विचार से सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि एक विकल्प के संबंध में किसी संशोधन पर विचार कर लिया जाये और यदि वह स्वीकार कर लिया गया तो अन्य विकल्प के संबंध में सभी संशोधन स्वत: गिर जायेंगे। हम संशोधन संख्या 2006 को उठाते हैं और यदि वह स्वीकार कर लिया गया तो हम दूसरा संशोधन उठायेंगे।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मेरा सुझाव यह है। संशोधनों को उठाया जा सकता है परन्तु पहले हमें इस संबंध में निर्णय कर लेना चाहिये कि हम पहले विकल्प को स्वीकार करते हैं या दूसरे विकल्प को ताकि यदि हम पहले विकल्प को स्वीकार करते हैं तो उसके संबंध में संशोधन उपस्थित किये गये हैं उन्हीं पर विचार किया जाये और अन्य संशोधनों पर विचार न किया जाये।

***अध्यक्ष:** मैंने यही सुझाव रखा था परन्तु यह विचार किया गया कि अच्छा यही होगा कि संशोधनों को उठाया जाये।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त** यदि हम दूसरे विकल्प को लेते हैं और फिर संशोधनों को उठाते हैं तो पहले विकल्प पर विचार ही न हो सकेगा।

***अध्यक्ष:** यदि संशोधन संख्या 2006 स्वीकार कर लिया गया तो दूसरे विकल्प के संबंध में सभी संशोधन गिर जायेंगे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** (मद्रास : जनरल): एक तीसरा विकल्प भी है।

***अध्यक्ष:** उसे किसी विकल्प के संबंध में संशोधन के रूप में उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं आपके ध्यान में संशोधन संख्या 2015 लाना चाहता हूं, जो मेरे नाम से है।

***अध्यक्ष:** मैं उसे उठाऊंगा। उसे स्वतंत्र रूप से उठाया जायेगा। पहले हम संशोधन संख्या 2006 पर विचार करेंगे। श्री गौतम।

***एक माननीय सदस्य:** नियुक्तियों के प्रश्न का क्या होगा?

***अध्यक्ष:** हम इस समय निर्वाचन संबंधी प्रश्न को उठा रहे हैं। उसके बाद हम नियुक्तियों के प्रश्न को उठायेंगे। पहले हम निर्वाचन-संबंधी प्रश्न पर विचार कर लेना चाहते हैं?

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** दोनों को अस्वीकार किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** दूसरे विकल्प के संबंध में संशोधन है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** यदि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्तियों के संबंध में संशोधन स्वीकार कर लिये गये तो अन्य सभी संशोधन गिर जायेंगे।

***अध्यक्षः** प्रश्न केवल यह है कि संशोधनों पर किस क्रम से विचार किया जाये। मैं पहले निर्वाचनों के प्रश्न को निबटा देना चाहता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह प्रस्तावक पर छोड़ देना चाहिये कि किस विकल्प पर विचार किया जाये। डा. अम्बेडकर यह बतायें कि वे किस विकल्प को उपस्थित करना चाहते हैं। साधारणतया किसी विशेष अनुच्छेद को उपस्थित किया जाना चाहिये। मसौदा-समिति के सभापति पर यह छोड़ देना चाहिये कि वह जिस प्रस्ताव को चाहें उपस्थित करें। यदि आप उन्हें इसकी आज्ञा दे दें तो प्रश्न हल हो जायेगा। वे किसी एक विकल्प को उपस्थित कर सकते हैं। यह बाद को एक साधारण प्रथा हो जायेगी। इसलिये मेरे विचार से सबसे अच्छा यह होगा कि इसका निर्णय प्रस्तावक महोदय पर छोड़ दिया जाये। यदि आप डा. अम्बेडकर को प्रस्तावक मानते हैं तो उनसे किसी एक विकल्प को उपस्थित करने के लिये कहा जाये।

***अध्यक्षः** क्या डा. अम्बेडकर किसी एक विकल्प को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं इस संबंध में कुछ कहना चाहता हूं कि कौन सी प्रक्रिया स्वीकार की जाये। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय अनुच्छेद 131 विकल्प के रूप में है दोनों विकल्पों में एक बात समान है और वह यह है कि दोनों में राज्यपाल के निर्वाचन का सुझाव है। निर्वाचन का प्रकार इस समय एक आनुसंगिक प्रश्न है। इसके विपरीत तीन-चार संशोधनों में एक ऐसा सिद्धांत सन्निहित है जो अनुच्छेद 131 के मसौदे के दो विकल्पों में सन्निहित सिद्धांतों के विरुद्ध है अर्थात् उनमें यह सुझाव रखा गया है कि राज्यपाल मनोनीत होना चाहिये। यदि राज्यपाल के मनोनीतकरण-संबंधी संशोधन को सभा स्वीकार करती है तो दोनों विकल्प गिर जाते हैं और उन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि उचित यह होगा कि पहले श्री गुप्ते के संशोधन संख्या 2010 को उठाया जाये और फिर श्री कामत के संशोधन को और उसके बाद संशोधन संख्या 2015 को उठाया जाये। यदि यह विषय पहले उठाया जाता है और सभा यह निर्णय कर लेती है कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति का सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाये तो अनुच्छेद 131 के किसी विकल्प पर विचार करने से कोई लाभ न होगा। यह मेरा सुझाव है किन्तु यह आपके निर्णय के अधीन है।

***अध्यक्षः** कई संशोधन इस संबंध में हैं कि राज्यपाल का निर्वाचन हो अथवा राष्ट्रपति द्वारा उसकी नियुक्ति हो। अन्य संशोधन निर्वाचन प्रणाली के संबंध में हैं। पहले में निर्वाचन के प्रश्न को हल कर लेना चाहता हूं ताकि निर्वाचन-प्रणाली के संबंध में जो संशोधन हैं वे भी निबटा दिये जायें। तब हम नियुक्ति के प्रश्न को उठायेंगे और नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा ही की जायेगी।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** (मद्रास : जनरल): यदि नियुक्ति के प्रश्न को पहले उठाया जा रहा है तो निर्वाचन के प्रश्न का स्वत: निराकरण हो जायेगा। मैं इस विषय पर डा. अम्बेडकर के विचारों से सहमत हूं।

***अध्यक्ष:** इस पर अवश्य ही वाद-विवाद होगा, क्योंकि इस संबंध में मतभेद दिखाई देता है। इसलिये हम श्री गुप्ते के दूसरे विकल्प को उठायेंगे। इसमें भी उन्होंने परामर्श के लिये स्थान रखा है। मेरे विचार से हमें पहले संशोधन संख्या 2015 को उठाना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): मेरा यह निवेदन है कि संशोधन संख्या 2011 का भी सार वही है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2007 का भी सार वही है। इनमें से कोई एक उपस्थित किया जा सकता है और फिर हम शब्दावलि के संबंध में निर्णय कर लेंगे। संशोधन संख्या 2006 को हम छोड़ रहे हैं। संशोधन संख्या 2007 उसी के समान है। संशोधन संख्या 2015 उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री के.एम. मुन्शी:** (बम्बई : जनरल): संशोधन संख्या 2015 अधिक पूर्ण है।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे संशोधन का क्या होगा?

***अध्यक्ष:** वह उतना पूर्ण नहीं है जितना संशोधन संख्या 2015 है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 131 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:
>
> '131. The Governor of a State shall be appointed by the President by warrant under his hand and seal.'

इस संशोधन का, जो इस सभा के पांच छ: सदस्यों के नाम से है, सबसे बड़ा गुण यह है कि इस अनुच्छेद में अथवा मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित विकल्पों में जिस प्रक्रिया को निर्धारित किया गया है उससे इस संशोधन में सरल प्रक्रिया का सुझाव है।

श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि भारत की एकता की दृष्टि से तथा केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि प्रांतों पर भारत सरकार के प्राधिकार को अक्षुण बनाये रखा जाये। इस कथन का कि राष्ट्रपति एक नामावली से लोगों को चुनकर मनोनीत कर सकता है वास्तव में यह अर्थ है कि राष्ट्रपति का मनोनीतकरण का अधिकार सीमित हो जाता है। इससे विधान के हाथ में शक्ति चली जाती है। श्रीमान्, यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति पर विधान मंडल का कोई प्रभाव न पड़े। राज्यपाल पद के लिये मेरे विचार से उसी प्रांत से अथवा अन्य किसी प्रांत से कोई व्यक्ति नियुक्त किया जा सकता है। मेरी अपनी धारणा यह है कि किसी प्रांत में वहीं का कोई निवासी

राज्यपाल नियुक्त न किया जाये, क्योंकि इससे विघटनशील प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिये मैं यह कहना चाहता हूं कि राष्ट्रपति का मनोनीतकरण का अधिकार सीमाबद्ध न होना चाहिये। श्रीमान्, इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है। यह एक सीधा-सादा प्रस्ताव है और मैं सभा से यह सिफारिश करता हूं कि यह स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्षः** निर्वाचन के संबंध में अन्य संशोधन भी हैं। मैं उन्हें उपस्थित करने को कहूंगा और फिर हम सामान्य वादानुवाद कर सकते हैं। एक संशोधन मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से है और दूसरा श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय के नाम से। पहला विकल्प श्री गुप्ते के नाम से है और संशोधन संख्या 2013 पंडित लक्ष्मीकांत मैत्र और अन्य लोगों के नाम से है। अन्य भी कई संशोधन निर्वाचन विषयक हैं। इसलिये मैं उनमें से एक को उठाऊंगा। मेरे विचार से संशोधन संख्या 2013 इन सबसे अधिक विस्तृत है। किन्तु हम किसे उठायें? जो लोग निर्वाचन के पक्ष में हैं वे इनमें से एक को चुन सकते हैं और मैं उसे उपस्थित करने की आज्ञा दे दूंगा। जो लोग निर्वाचन के पक्ष में हैं वे निर्वाचन संबंधी किसी संशोधन को चुन सकते हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** मेरा संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 2019 भी है।

***अध्यक्षः** उसका आशय भिन्न है और वह निर्वाचन के प्रश्न के बाद आयेगा। इस समय हम निर्वाचन-संबंधी प्रश्न पर विचार कर रहे हैं।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, संशोधन संख्या 2013 सबसे अधिक विस्तृत है किन्तु मेरे दल ने मुझे उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी है।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्तः** यदि आप उपस्थित किये हुये संशोधन पर मत लें तो सारी समस्या हल हो जायेगी। यदि वह स्वीकार कर लिया गया तो फिर अन्य किसी संशोधन को उपस्थित करने को कोई आवश्यकता न रह जायेगी। अब वादानुवाद हो सकता है।

***अध्यक्षः** मैं यह मान लेता हूं कि कोई अन्य संशोधन उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

***माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्तः** यदि यह संशोधन गिर जाता है तो अन्य संशोधनों को उपस्थित करना होगा।

***अध्यक्षः** तो हम पहले इस संशोधन पर विचार कर लें। मैं यह देखता हूं कि इस संबंध में अधिक मतभेद नहीं है और इसलिये मैं आशा करता हूं कि अधिक वादानुवाद न होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने सभा के सम्मुख अभी जो संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 2015, उपस्थित किया है उसका

[श्री एच.वी कामत]

समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं। मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी उसका सार, अर्थात् संशोधन संख्या 2015 का सार, भी वही है। केवल इसमें इस संशोधन की वैधानिक तथा संवैधानिक वाक्यावली का अभाव है। इस प्रस्ताव के सार के संबंध में बोलने के पूर्व मैं एक बात, एक साधारण बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। संविधान के मसौदे पर पहले एक समय जब वादानुवाद हो रहा था तो उस अवसर पर सभा ने एकमत से यह स्वीकार किया था कि राज्यपाल का निर्वाचन होगा। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या किसी सदस्य को सभा के इस निर्णय के विरुद्ध कोई संशोधन उपस्थित करने की आज्ञा मिल सकती है? इस सभा ने मुख्य सिद्धांत पर विचार-विमर्श किया और एक निर्णय किया। यह दूसरा विकल्प मसौदा समिति की ही रचना है। इसलिये क्या किसी सदस्य को कोई ऐसा संशोधन उपस्थित करने की आज्ञा मिल सकती है जो राज्यपाल के निर्वाचन के विरुद्ध हो?

***अध्यक्षः** इस सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह अपने निर्णयों को बदल दे। इसे पूर्व निर्णय में परिवर्तन करके उपस्थित किया गया है। सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह इसे अस्वीकार कर दे। इसलिये औचित्य-प्रश्न का कोई प्रसंग नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** इस संशोधन में आये हुए 'of a state' शब्द बहुत कुछ अनावश्यक हैं। यदि हम राष्ट्रपति विषयक अध्याय को देखें तो हम उसमें एक स्थान पर राष्ट्रपति का उल्लेख पायेंगे और राष्ट्रपति के निर्वाचन-विषयक अनुवर्त्ती अनुच्छेद में 'of India' शब्दों का उल्लेख न पायेंगे। इस उदाहरण को देखकर मैंने यह विचार किया कि संक्षिप्त विवरण की दृष्टि से ''of India' शब्दों को निकाला जा सकता है। किन्तु मैं इस पर जोर नहीं देता हूं और इस सभा के सम्मुख उपस्थित इस संशोधन का समर्थन करता हूं, जिसका सार मेरे संशोधन के समान ही है।

मेरे मित्र मि. ताहिर ने एक आपत्ति की थी और वह यह था कि इस सभा ने पहले एक अवसर पर राज्यपाल को चुनने की एक अन्य प्रणाली के संबंध में निर्णय किया था। यह सच है। इस सभा के अगस्त के अधिवेशन में इस सभा ने इस आशय का एक अनुच्छेद स्वीकार किया था—मैं समितियों के प्रतिवेदनों की दूसरी माला से पढ़कर सुना रहा हूं–कि प्रत्येक प्रांत के लिये एक राज्यपाल होगा और यह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होगा। किन्तु श्रीमान्, आपने ठीक ही कहा है कि यह एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सभा है और अपने निर्णयों को बदल सकती है। अगस्त 1947 में जब यह अनुच्छेद स्वीकार किया गया था तब से स्थिति बदल गई है और मेरे विचार से इसके लिये यथेष्ट कारण है कि सभा अपने निर्णयों में परिवर्तन करे। सभा को यह स्मरण होगा कि 1947 के जुलाई-अगस्त के अधिवेशन में जिस योजना की रूपरेखा निश्चित की थी वह बहुत कुछ एक संघीय योजना थी...

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य-प्रश्न करना है। प्रक्रिया संबंधी नियमों के नियम 32 में कहा गया है कि: ''कोई ऐसा प्रश्न जिसके संबंध में सभा निर्णय

कर चुकी हो तब तक फिर से उपस्थित न किया जायेगा जब तक कि एक-चौथाई उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्य इसके लिये सहमत न हों।''

***अध्यक्षः** मैंने यह मान लिया है कि उपस्थित सदस्यों में से एक-चौथाई से अधिक इसके पक्ष में हैं। यदि आप चाहते हैं तो मैं इसकी पुष्टि करा सकता हूं मेरे विचार से एक-चौथाई से अधिक सदस्य इसके पक्ष में हैं।

***श्री विश्वनाथ दासः** श्रीमान्, क्या आप इसे केवल माने ले रहे हैं या आपने वास्तव में सभा का मत ले लिया है?

***अध्यक्षः** मैंने सभा का मत तो नहीं लिया है किन्तु मैं जानता हूं कि वह इसी प्रकार है। यदि आप चाहते हैं तो मैं सभी मत ले सकता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** निर्णय सुनाया जा चुका है। क्या अब कोई सदस्य महोदय उस पर आपत्ति कर सकते हैं?

श्री एच.वी. कामतः सभा को स्मरण होगा कि 1947 के अगस्त के अधिवेशन में हमने कार्यपालिका के संबंध में कुछ अनुच्छेद स्वीकार किये थे, जिनमें कई स्थलों पर भारतीय राज्य को संधान कहा गया है। किन्तु इस समय हम जिस संविधान के मसौदे पर विचार कर रहे हैं उसमें से यह शब्द मेरे विचार से कुछ सारपूर्ण कारणों के आधार पर जानबूझकर निकाल दिया गया है। अनुच्छेद 1 में, जिसे हमने इस सभा के पिछले अधिवेशन में स्वीकार किया था, यह कहा गया है कि भारत राज्यों का एक संघ होगा। इसलिये हमारे राज्य के संघीय अंग पर न कि संधानीय अंग पर अधिक जोर दिया गया है। मेरे मित्र डा. देशमुख एक घंटे पूर्व अपने उस प्रस्ताव पर बोले थे जो भारत के लिये एक सशक्त एकात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में है। हमारे देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए उनके प्रस्ताव के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। किंतु, श्रीमान्, इस संबंध में एक बात की ओर ध्यान देना चाहिये और वह यह है कि आज हम जिस संविधान को बना रहे हैं वह केवल संक्राति काल के लिये नहीं है बल्कि कई दशाब्दियों तक के लिये है जबकि हमारी स्थिति ईश्वर की कृपा से सुस्थिर हो जायेगी और हम पुनर्निर्माण के कार्य में लग जायेंगे। प्रान्तों में हमारे लोग स्वायत्त शासन के आदी हो गये हैं। पिछले दस वर्षों से अथवा इससे अधिक समय से उन्होंने उसका अनुभव किया है और, मेरे विचार से, यह बुद्धिमत्ता की बात न होगी कि हम अब स्वायत्त शासन प्रणाली का शून्यन कर दें अथवा उसका न्यूनन करें। देश की सुस्थिर अवस्था तथा शक्ति को देखते हुए हमारे लिये तो यह आवश्यक है कि हम प्रत्येक प्रांत के लोगों को अधिकाधिक अधिकार प्रदान करें। परन्तु, श्रीमान्, इस सम्बन्ध में आधारभूत बात यह है कि हम इन प्रांतों के लिये अथवा नये संविधान के अनुसार राज्यों के लिये, जो प्रशासन अथवा शासन की इकाइयां होंगी, किस प्रकार की सरकार निर्धारित करने जा रहे हैं अथवा उसका सुझाव करने जा रहे हैं? यदि संविधान का यह लक्ष्य है कि प्रत्येक राज्य में संसदात्मक अथवा मंत्रिमंडल मूलक सरकार हो तो यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रणाली अनुचित और अग्राह्य है। इसे सभी स्वीकार करते हैं कि किसी प्रांत में अथवा देश में सफल मंत्रिमंडल मूलक

[श्री एच.वी. कामत]

सरकार का एक लक्षण यह भी है कि एक निरपेक्ष संविधानिक प्रमुख हो जो संविधानिक प्रतीक हो। यदि राज्यपाल प्रांत के सभी मतदाताओं के मत से प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किया जाये तो संभावना इसकी होगी कि वह किसी दल का व्यक्ति होगा और उसकी कुछ प्रबल धारणायें होंगी। चूंकि वह प्रांत के सभी प्रौढ़ मतदाताओं द्वारा निर्वाचित होगा इसलिये वह यह समझेगा कि वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है और राज्य के मुख्यमंत्री से कहीं अधिक शक्तिशाली है क्योंकि मुख्यमंत्री केवल एक निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होगा और बहुसंख्यक दल का नेता होने के कारण राज्यपाल द्वारा मनोनीत होगा। इस प्रकार राज्य में दो परस्पर विरोधी प्राधिकारी हो जायेंगे। इनमें से एक मुख्यमंत्री होगा जिसे हमने विचाराधीन संविधान के अधीन राज्य के संबंध में कार्यपालन का प्राधिकार प्रदान किया है। दूसरा व्यक्ति राज्यपाल होगा, जिसे संविधान द्वारा बहुत अधिक शक्तियां अथवा प्रकार्यता प्रदान नहीं किये गये हैं किंतु वह बहुत सी शक्तियां प्राप्त कर लेगा क्योंकि वह यह कहेगा कि मुझे तो सारे प्रांत के लोगों ने निर्वाचित किया है, इसलिये मैं लोगों के प्रति उत्तरदायी हूं न कि मुख्यमंत्री के प्रति। इसलिये प्रांत के प्रशासन में प्रत्येक कदम पर और यदि प्रत्येक कदम पर नहीं तो प्रायः निर्वाचित राज्यपाल और निर्वाचित मुख्यमंत्री के बीच कलह होगा। इसलिये मेरे विचार से हमने प्रांतीय राज्यपाल के संबंध में निर्वाचन प्रणाली को समाप्त करके समझदारी का ही काम किया है।

प्रांत अथवा राज्य के राज्यपाल के संबंध में किसी नामावली से चुनने की प्रणाली पर भी बहुत सी आपत्तियां की जा सकती है। थोड़ी देर के लिये हम यह मानें कि किसी राज्य का विधान मंडल राष्ट्रपति के पास चार या पांच नामों की एक नामावली भेजता है और राष्ट्रपति अपने दृष्टिकोण अथवा धारणा के अनुसार, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी धारणा के अनुसार ही कार्य करता है, पहले नाम को न चुनकर दूसरे, तीसरे, चौथे अथवा किसी अन्य नाम को चुनेगा तो क्या होगा? राज्य का विधान मंडल अवश्य ही राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्ति से रुष्ट रहेगा क्योंकि वह पहले व्यक्ति की अपेक्षा होने से मनोनीत होगा। इसलिये नामावली से किसी व्यक्ति के नियुक्त होने से मंत्रियों के अथवा राज्य के विधान मंडल के, नवीन राज्यपाल से बहुत अच्छे संबंध न रहेंगे।

इस संबंध में एक विचारणीय बात और भी है। निर्वाचन में हमेशा ही, चाहे वह छोटे निर्वाचन क्षेत्र में हो या बड़े निर्वाचन क्षेत्र में, कई दल अथवा समूह शक्ति प्राप्त करने के लिये एक-दूसरे से संघर्ष करते रहते हैं। किसी विधान मंडल में किसी सुगठित दल के होने पर भी संभावना इसकी है कि यह विदित होने पर कि राज्यपाल की नियुक्ति के लिये राष्ट्रपति के पास नामावली भेजी जा रही है, उस दल में भी समूह बन जायेंगे और प्रत्येक समूह अपने आदमी का समर्थन करेगा। इस प्रकार नामावली प्रणाली के अधीन निर्वाचन होते समय जो दलबन्दी की भावना उत्पन्न होगी तथा जो उत्तेजना फैलेगी वह आने वाले वर्षों में भी उसी प्रकार बनी रहेगी और प्रांत में कोई दल अथवा मंत्रिमंडल सुचारू रूप से कार्य न कर सकेगा और न मंत्रिमंडल और लोगों के बीच ही सद्भावना होगी।

श्रीमान्, इसलिये मेरा यह निवेदन है कि नियुक्ति की तुलना से निर्वाचन के पक्ष में और विपक्ष में सभी बातों की ओर ध्यान देने से यह प्रतीत होता है कि नियुक्ति ही श्रेयस्कर है। ''मनोनीतकरण'' शब्द मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। मेरे विचार से इस प्रसंग में यह शब्द बहुत ही अनुपयुक्त है क्योंकि वास्तव में राष्ट्रपति मनोनीत नहीं करेगा बल्कि नियुक्त करेगा। इस आशय का एक संशोधन भी था परन्तु मुझे यह दिखाई देता है कि वह उपस्थित नहीं किया गया है मैंने उसे अभी देखा है।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन का यद्यपि मैं समर्थन कर रहा हूं किन्तु उसके विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि राज्यपाल केवल एक प्रतीक के रूप में प्रमुख नहीं है। आलोचक, अनुच्छेद 188 और 187 की ओर संकेत कर सकते हैं क्योंकि उनके अधीन राज्यपाल को आपात की गंभीर स्थिति के लिये शक्तियां तथा अध्यादेश प्रवर्त्तन में लाने का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 188 में यह देखा जा सकता है कि ये असाधारण शक्तियां राज्यपाल को अधिक से अधिक दो सप्ताह के लिये प्रदान की गई हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चौबीस घंटे में भी आश्चर्यजनक बातें अथवा अत्याचार किये जा सकते हैं। परन्तु सभा इस ओर ध्यान देगी कि राज्यपाल के लिये यह आवश्यक है कि वह जो कोई भी कार्य करे उसकी सूचना राष्ट्रपति को दे। इसलिये वास्तव में आपात की स्थिति उत्पन्न होने पर राज्यपाल शीघ्र ही अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाता है और सारी शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में चली जाती है। इस स्थिति में सारे देश का शासन संविधान के भाग 11 के 275 से लेकर 278 तक के अनुच्छेदों के अनुसार होगा।

अध्यादेश बनाने की शक्ति मुझे पसन्द नहीं है और राष्ट्रपति की इस शक्ति के संबंध में मैंने कुछ संशोधन उपस्थित किये थे। किंतु राष्ट्रपति की आध्यादेश बनाने की शक्ति को सीमित करने के उद्देश्य से उपस्थित मेरे इन संशोधनों के विरुद्ध डा. अम्बेडकर ने अपना तर्क हमारे सामने रखा था। उन्होंने यह कहा था कि यह कोई असाधारण बात नहीं है कि राष्ट्रपति को ऐसे समय के लिये यह शक्ति दी जा रही है जबकि संसद सत्रस्थ न होगी और यदि स्थिति यह होगी कि संसद बराबर, लगभग सारे वर्ष, सत्रस्थ होगी तो उन्होंने सभा को यह आश्वासन दिया कि राष्ट्रपति को अध्यादेश बनाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। मुझे आशा है कि वही तर्क इस प्रसंग में भी स्थिर होगा। इसको दृष्टि में रखते हुए कि राज्यों में तथा केन्द्र में भी विधि-निर्माण का बहुत कार्य होगा, मुझे विश्वास है कि राज्यों के विधान-मंडल तथा केन्द्र में संसद बराबर सत्रस्थ होंगे और जैसा कि डा. अम्बेडकर ने कहा है, राज्यपाल को राज्यों में तथा राष्ट्रपति को केन्द्र से किसी अध्यादेश को प्रवर्त्तन में लाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि सभी बातों को ध्यान में रखते हुए और इसे भी ध्यान में रखते हुए कि कोई प्रणाली दोषमुक्त नहीं है और संपूर्ण संविधान पर विचार करते हुए तथा राज्यों के विधान-मंडलों तथा राज्यों से मन्त्रिमंडलों को दी हुई शक्तियों तथा केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक संबंधों पर विचार करते हुए, मेरी समझ से सबसे कम दोष विभिन्न राज्यों के राज्यपालों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त करने की प्रणाली में है। इसलिये मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि यह स्वीकार कर लिया जाये।

श्री बी.ए. मांडलोई (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना संशोधन संख्या 2007 उपस्थित करना चाहता हूं। वह अधिक विस्तृत है क्योंकि उसमें पहला विकल्प भी सन्निहित है।

अध्यक्ष: संशोधन संख्या 2007 का आशय वही है जो संशोधन संख्या 2015 का है और वह अभी उपस्थित किया जा चुका है।

श्री बी.ए. मांडलोई: परन्तु दूसरा भाग उपस्थित नहीं किया गया है। मेरा संशोधन दोनों विकल्पों के संबंध में है। उसमें पहला विकल्प निकाल देने का प्रस्ताव किया गया है और दूसरे विकल्प में कुछ परिवर्तन करने का सुझाव है।

***अध्यक्ष:** यदि दूसरा विकल्प स्वीकार कर लिया जाता है तो पहला विकल्प स्वत: गिर जाता है।

सरदार हुकम सिंह (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): श्रीमान्, जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसका मैं विरोध करता हूं। मेरे विचार से हम में से वे लोग जिन्होंने संशोधनों की सूचना दी है एक संकटापन्न स्थिति में पड़ गये हैं क्योंकि सभा इस प्रश्न पर, बिना हमको सुने हुए और बिना हमारे संशोधनों पर हमारे कथन पर विचार किये हुए, निर्णय करने जा रही है। मेरे नाम से भी एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 2006 है। मेरे मतानुसार दूसरा विकल्प ही सर्वोत्तम है। वह मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है। उसमें एक व्यवस्था राज्य के राज्यपाल के निर्वाचन की है। मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत के इस विचार से सहमत हूं कि प्राय: निर्वाचन करना बहुत व्यसाध्य तथा कष्टसाध्य होगा। इसके अतिरिक्त राज्यपाल तथा मुख्यमंत्री के बीच कलह की सम्भावना भी बनी रहेगी। साथ ही मेरा यह भी विचार है कि राज्यपाल को स्वविवेक से प्रयोग में लाने के लिये इतनी शक्ति न दी जानी चाहिये। जब उसे एक ही दल के परामर्श से उसे प्रयोग में लाना होगा तो उसका दुरुपयोग भी हो सकता है। पक्षपात भी हो सकता है। मेरे विचार से प्रस्तावित दूसरे विकल्प से इस प्रकार का पक्षपात अवरुद्ध हो सकता है। यदि राज्य का विधान मंडल एक नामावली प्रस्तुत करेगा तो उस दशा में भी नि:संदेह शासनारूढ़ दल को, अथवा राज्यपाल को, अन्तिम शक्ति प्राप्त होगी और जिसे भी वे पसन्द करेंगे उसे चुनेंगे। नामावली में उल्लिखित लोगों की योग्यता जनसाधारण परख सकेंगे और यदि उपयुक्त व्यक्ति न चुना गया तो वे चुनाव की कम से कम आलोचना तो कर ही सकेंगे। इससे पक्षपात अथवा शक्ति का दुरुपयोग रुक सकता है। इसलिये मेरे विचार से शुद्ध निर्वाचन और शुद्ध मनोनीतकरण की परस्पर दो प्रणालियों में से दूसरा विकल्प उत्कृष्ट है। इस कारण मैं प्रस्तुत प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर: श्रीमान्, लगभग दो वर्ष पूर्व जो निर्णय किया गया था उसे दृष्टि में रखते हुए तथा इसे भी दृष्टि में रखते हुए, सभी बातों को ध्यान में रखकर मुझे विश्वास है कि सबसे अच्छा यही होगा कि हम श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन को स्वीकार कर लें। मैं इस संशोधन का समर्थन करने के उद्देश्य से कुछ शब्द

कहना चाहता हूं। इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें मुख्यत: यह स्मरण रखना चाहिये कि इस सभा ने यह सिद्धांत स्वीकार किया है कि विभिन्न राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाये, यह कि राज्यपाल प्रांत का केवल संविधानिक प्रमुख है और यह कि विभिन्न राज्यों में अवर सदन के प्रांत उत्तरदायी मंत्रिमंडल को ही कार्यपालन संबंधी वास्तविक शक्ति प्रदान की गई है। सभा को इस प्रश्न पर विचार करना है कि इस स्थिति में क्या यह उचित होगा कि सार्वभौम मताधिकार पर आधृत एक बहुव्ययी तथा वृहत् निर्वाचन-तंत्र को स्वीकार किया जाये। इस सभा में प्रस्तुत विभिन्न प्रस्तावों पर अर्थात् (1) सार्वभौम मताधिकार के आधार पर राज्यपाल के चुनाव, (2) अनुपाती प्रतिनिधित्व के अथवा अन्य किसी सिद्धांत के आधार पर अवर सदन अथवा दोनों सदनों के बहुमत से राज्यपाल के निर्वाचन, (3) राज्य के अवर सदन द्वारा एक नामावली प्रस्तुत करने तथा राष्ट्रपति द्वारा उसमें से किसी के चुने जाने, और (4) मंत्रिमंडल के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा चुने जाने के प्रस्तावों पर पूर्ण रूप से विचार करने के उपरांत मैंने यह अनुभव किया कि बुद्धिमत्ता इसी में होगी कि हम अन्तिम प्रस्ताव को स्वीकार करें। यदि कोई राज्यपाल संविधानिक प्रमुख के रूप में अपने कृत्यों का यथेष्ट निर्वहन कर रहा है तो संविधान के अधीन उसे जो शक्तियां प्रदान की गई है उनकी तुलना में निर्वाचन के लिये उसे जो धन व्यय करना पड़ेगा वह बहुत अधिक होगा। संभावना इसकी भी होगी कि जनसाधारण द्वारा निर्वाचित राज्यपाल का विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी तथा सार्वभौम मताधिकार के आधार पर निर्वाचित मुख्यमंत्री तथा मंत्रिमंडल से कलह हो जाये। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल की दशाओं को दृष्टि में रखते हुए निर्वाचन भी किसी दल का पड़ता लेकर लड़ा जायेगा। वास्तव में निर्वाचनों में भी प्रत्येक दल को किसी नेता का आश्रय लेना पड़ता है, जिसके संबंध में यह आशा की जाती है कि वह भविष्य में प्रांत का मुख्यमंत्री होगा। क्या राज्यपाल का आश्रय लेना चाहिये अथवा मुख्यमंत्री का? सरकार के प्रतिदिन के कार्य में भी यह संभावना बनी रहती है कि मंत्रियों की राज्यपाल से कलह हो जाये। किन्तु हम जिस भित्ति पर अपने संविधानिक ढांचे का निर्माण कर रहे हैं वह विधान मंडल तथा कार्यपालिका के बीच तथा कार्यपालिका और सरकार के प्रतीक रूप प्रमुख के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंधों पर आधृत है। संयुक्त राज्य अमरीका के किसी राज्य के गवर्नर तथा हमारे संविधान में कल्पित राज्यपाल में कोई समानता नहीं है। संयुक्त राज्य के संविधान के अधीन किसी राज्य के गवर्नर को वास्तविक तथा सारपूर्ण शक्ति प्राप्त होती है। संयुक्त राज्य में कार्यपालिका तथा विधान मंडल को स्पष्ट रूप से पृथक किया गया है। यथेष्ट उदाहरण कनाडा के संविधान में मिल सकता है जिसमें उत्तरदायी गवर्नर की व्यवस्था है। कनाडा में प्रत्येक प्रांत का लेफ्टीनेंट गवर्नर, गवर्नर जनरल द्वारा अर्थात् मंत्रिमंडल की प्रमंत्रणा से गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होता है। कनाडा के संविधान के तथा हमारे संविधान के कई अंगों में समानता है और हमारे संविधान को कुछ आलोचकों ने अर्थ-संधानीय तक कहा है। मुख्यत: हमने उपनिवेशों अथवा राष्ट्रमंडल के विभिन्न भागों में प्रचलित उत्तरदायी शासन के सिद्धांत को स्वीकार किया है। जहां कहीं भी उत्तरदायी शासन, संविधान का आधारभूत सिद्धांत है वहां कहीं भी राज्यपाल के निर्वाचन की व्यवस्था नहीं है।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

मुझे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि अब संविधान व्यवहार में आने लगेगा तो यह प्रथा बन जायेगी कि राज्यपाल के निर्वाचन के संबंध में भारत सरकार प्रांतीय मंत्रिमंडल से परामर्श लेगी। यदि यह राष्ट्रपति और उसके मंत्रिमंडल पर छोड़ दिया जायेगा तो, जहां तक समझ में आता है, राष्ट्रपति प्रांत की स्थिति पर विचार करते हुए एक ऐसे व्यक्ति को चुनेगा जिसकी योग्यता के बारे में कोई संदेह न होगा, जिसका सामाजिक जीवन में एक सुप्रतिष्ठित स्थान होगा और जिसका प्रांत की दल बन्दिओं तथा कलह से कोई संबंध न रहा होगा। संभावना इसी की है कि ऐसा व्यक्ति मंत्रिमंडल का मित्र होगा और उसकी ओर से मध्यस्थल का काम करेगा तथा आरम्भ में मंत्रिमंडलमूलक शासन के सामंजस्यपूर्ण संचालन में सहायक होगा। मुख्य बात जो स्मरण रखने योग्य है, यह है कि राज्यपाल एक संविधानिक प्रमुख तथा मंत्रिमंडल का चतुर परामर्शदाता होगा और हर प्रकार के संकट को समाप्त करने में समर्थ होगा। यदि राज्यपाल की यह स्थिति होगी तो सम्भावना इसी की है कि भारत सरकार द्वारा संभवत: प्रांतीय सरकार की सहमति से चुना हुआ राज्यपाल, अपने कृत्यों को उस व्यक्ति से कहीं अच्छी तरह निभायेगा जो किसी दल का सहारा लेकर प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर सारे प्रांत द्वारा चुना जायेगा अथवा निर्वाचन के किसी सिद्धांत के आधार पर विधान मंडल द्वारा चुना जायेगा।

एक बात मैं यह कह देना चाहता हूं। इस वादानुवाद में यह बात कही गई है कि क्या यह एक बुद्धिमत्ता की बात है कि प्रधानमंत्री को अथवा प्रधानमंत्री के परामर्श से कार्य करने वाले संघ के राष्ट्रपति को इतनी अधिक शक्ति दी जाये। यदि आप सभी सेनाओं के मुख्य सेनानायक की नियुक्ति के संबंध में संसार में विभिन्न भागों में भेजे जाने वाले राजदूतों की नियुक्ति के संबंध में, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति तथा न्यायाधीशों की तथा उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति के संबंध में विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल अथवा सिद्धांतत: राष्ट्रपति का विश्वास कर सकते हैं तो मैं इसमें कोई हानि नहीं देखता हूं कि राष्ट्रपति ही राज्यपाल की नियुक्ति करे क्योंकि अवश्य ही प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के परामर्श से कार्य करना होगा। प्रांतीय मंत्रिमंडल से परामर्श लेने की प्रथा आसानी से स्थापित हो सकती है। सभा को यह विदित होगा कि कनाडा में गवर्नरों की नियुक्ति के संबंध में इस प्रकार की प्रथा स्थापित हो चुकी है। यद्यपि आस्ट्रेलिया का संविधान भिन्न प्रकार का है किन्तु वहां भी इसी प्रकार की प्रथा स्थापित हो चुकी है और प्रत्येक राज्य का गवर्नर प्रांतीय मंत्रिमंडल की परामर्श से नियुक्त किया जाता है।

मेरे विचार से मुझे नामावली के संबंध में भी कुछ शब्द कहने चाहियें क्योंकि मैं मसौदा समिति का एक सदस्य हूं और उस समिति ने यह अनुभव किया है कि सभा के पहले के निर्णय के अनुसार निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार करने में कठिनाई होगी। मसौदा समिति ने विचारार्थ एक अन्य सुझाव उपस्थित किया था। सभी बातों पर विचार करने के उपरांत मुझे यह विश्वास हो गया है कि नामावली प्रणाली को स्वीकार करने से बहुत संकट का सामना करना पड़ेगा क्योंकि विभिन्न विश्वविद्यालयों में वाइस-चांसलरों

के निर्वाचनों से यही अनुभव हुआ है। यदि कोई प्रांतीय विधान मंडल तीन या चार व्यक्तियों को निर्वाचित करेगा तो राष्ट्रपति क्या करेगा? क्या वह उस व्यक्ति को लेने के लिये सहमत हो जायेगा। जिसने सबसे अधिक मत प्राप्त किये हों अथवा इसकी उपेक्षा करके किसी ऐसे व्यक्ति को चुनेगा कि जिसे कम मत प्राप्त हुए हों? साधारणतया उसे उस व्यक्ति का समर्थन करना चाहिये जिसने सबसे अधिक मत प्राप्त किये हों। यदि वह इसकी उपेक्षा करेगा और अन्य तीन व्यक्तियों में से किसी को चुनेगा तो प्रांत और केन्द्र के बीच कलह होगी और यह कलह बनी रहेगी। यह एक और कठिनाई होगी। इसलिये यदि राष्ट्रपति उस प्रांत में सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाये रखना चाहेगा तो उसे उसी व्यक्ति की नियुक्ति का समर्थन करना होगा जिसने प्रांतीय विधान-मंडल में सबसे अधिक मत प्राप्त किये हों। इसका यही परिणाम होगा। सभा को एक अन्य बात पर भी विचार करना चाहिये। अपने संविधान में हमें प्रत्येक ऐसी प्रणाली को प्रविष्ट करने का प्रयास करना चाहिये जिससे केन्द्रों और प्रांतों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित हो सकें। यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करते हैं जो प्रांत अथवा राज्य द्वारा तो निर्वाचित न हों किन्तु प्रांतीय मंत्रिमंडल की सहमति से संघ के राष्ट्रपति द्वारा चुना गया हो तो आप केन्द्र और प्रांत के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकेंगे और उनके बीच कलह की संभावना मिट जायेगी, जो अन्यथा बनी रहेगी।

एक बात और भी है। यह कहा गया है कि राज्यपाल को अवसर आने पर असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना पड़ेगा। इससे मनोनीतकरण की, न कि निर्वाचन की, अधिक पुष्टि होती है। यदि सार्वभौम मताधिकार के आधार पर निर्वाचित व्यक्ति प्रांतीय मंत्रिमंडल से कलह करे और अपने को प्रांतीय मंत्रिमंडल से ऊंचा समझे तो संविधानिक संकट उपस्थित होने की संभावना बढ़ जायेंगी। ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है कि राज्यपाल का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाये किन्तु असाधारण अवसरों पर ही इसकी आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार के हस्तक्षेप के संबंध में भी प्रांतीय मंत्रिमंडल की सहमति से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त व्यक्ति लोक निर्वाचित व्यक्ति की अपेक्षा सम्भवतः अधिक सावधानी से कदम बढ़ायेगा। सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, सामंजस्य के हित में, सुचारू रूप से कार्य-संचालन के हित में और प्रांतीय मंत्रिमंडल तथा राज्यपाल के बीच सद्भावपूर्ण संबंध स्थापित करने के हित में, अच्छा यही होगा कि हम कनाडा के संविधान का अनुसरण करें और राज्यपालों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त करने की व्यवस्था करें और इस प्रथा को स्थापित होने दें कि केन्द्रीय मंत्रिमंडल का पथ प्रदर्शन प्रांतीय मंत्रिमंडल के परामर्श से भी होगा। इन शब्दों के साथ मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन का सहर्ष समर्थन करता हूं।

डा. पी.एस. देशमुखः अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से यह एक ऐसा अनुच्छेद है जिस पर हमें अन्य साधारण अनुच्छेदों की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप से विचार-विमर्श करना चाहिये क्योंकि हम राज्य के राज्यपाल पद की परिभाषा को ही बदलने जा रहे हैं। यह ठीक है कि चूंकि हमने प्रौढ़ मताधिकार की तथा निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था की है इसलिये इस देश के असंख्य लोग इसकी बाट जोह रहे हैं कि वे एक ऐसे व्यक्ति के चुनाव में मत देंगे जो उनके प्रान्त का भाग्य विधाता होगा। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मैं प्रांतों को उनके वर्तमान रूप में बनाये रखने के पक्ष में नहीं हूं। राज्यपालों की नियुक्ति के संबंध में भी हमें कुछ आधारभूत बातों पर विचार करना है। यदि हम यह

[डा. पी.एस. देशमुख]

निर्णय करते हैं कि राज्यपाल प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर प्रांतों द्वारा चुना जायेगा तो तर्कसंगत बात यही है कि वह सच्चे अर्थ में कार्यपालिका का प्रधिकारी हो। इसके विपरीत यदि आप उसे प्रतीक रूप में प्रमुख बनाना चाहते हैं और उसकी वही स्थिति बनाये रखना चाहते हैं, जो उसे 1935 ई. के अधिनियम के अधीन प्राप्त है और जो उसे संविधान के मसौदे के अधीन प्राप्त है तो इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है कि राष्ट्रपति उसे नियुक्त करे। इस प्रश्न पर बहुत मतभेद है। कुछ लोगों का यह मत है कि यदि भारत के लोगों से यह कहने के बाद कि राज्यपाल निर्वाचित होंगे हम अपना वचन भंग कर देते हैं और राष्ट्रपति द्वारा उनकी नियुक्ति की व्यवस्था करते हैं तो हम उनके प्रति विश्वासघात करते हैं। इसलिये, श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि भारत के लोग यह समझें कि हम क्या करने जा रहे हैं और क्यों ऐसा कर रहे हैं? इसलिये मैं यह चाहता हूं कि राज्यपालों को नियुक्त करने के पक्ष में जितने भी तर्क हों वे इस सभा में बता दिये जायें ताकि राष्ट्र को यह विश्वास हो जाये कि जो निर्णय हम करने जा रहे हैं वह ठीक निर्णय है। चूंकि प्रांत बने रहेंगे और संविधान का ढांचा भी यही रहेगा, इसलिये मेरे विचार से हमारे इस कदम से, यद्यपि हम यह कदम देर करके उठा रहे हैं, एक त्रुटि दूर हो जायेगी जो अन्यथा बनी रहती। हमारा सारा संविधान 1935 ई. के अधिनियम पर आधृत है और वह अधिनियम उत्तरदायी शासन के सिद्धांतों पर आधृत है। उत्तरदायी शासन केन्द्र में ही नहीं है बल्कि प्रांतों में भी है। जहां कहीं भी उत्तरदायी शासन हो वहां के लिये यह आवश्यक है कि लोगों के प्रतिनिधियों को किसी दिन और किसी समय कार्यपालिका में परिवर्त्तन करने का अधिकार प्राप्त हो। इसलिये प्रशासन का प्रमुख एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप न करे। इस दशा में यह आवश्यक है कि यदि आप निर्वाचित राज्यपालों की भी व्यवस्था करते हैं तो उन्हें प्रतीक रूप में प्रमुख होना होगा और उन्हें प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त न होना चाहिये। इसलिये यह उचित न होगा कि लोगों से केवल नाम मात्र के प्रमुख को निर्वाचित करने के लिये एक वृहत् निर्वाचन में भाग लेने के लिये कहा जाये। मुझे विश्वास है कि इस संशोधन में जो निर्णय सन्निहित है वह ठीक निर्णय है क्योंकि राज्यपाल केवल प्रतीक रूप में प्रमुख होगा। वह एक संविधानिक प्रमुख होगा और उसे प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त न होगा। कभी यह भी कहा जाता है कि हम लोगों को मतदान के अधिकार से वंचित कर रहे हैं। मेरे विचार से यह बात नहीं है क्योंकि लोगों को समय-समय पर प्रांतीय सभाओं के लिये प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अवसर मिलेगा। इन प्रतिनिधियों का बहुसंख्यक दल प्रांतीय मंत्रिमंडल की रचना करेगा और प्रांत का शासन करेगा तथा संविधान द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों को प्रयोग में लायेगा।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति के संबंध में यह भी आपत्ति की जाती है कि हम राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री को अत्यधिक अधिकार दे रहे हैं। हमारे देश में, जो संसार के सबसे बड़े देशों में से एक है, हमें लोक-निर्वाचित व्यक्ति को, चाहे हम इसे पसंद करें या न करें, बहुत सी शक्तियां देनी होंगी। आखिर भारत का प्रधानमंत्री लोकप्रिय प्रधानमंत्री ही होगा। वह उसी समय तक पदासीन रह सकेगा जब तक वह लोक निर्वाचित संसद का विश्वास भाजन होगा। इसलिये प्रधानमंत्री को अथवा राष्ट्रपति को नियुक्ति की शक्ति

प्रदान करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिये। आखिर लोक-प्रतिनिधि तो उन से पूछताछ कर ही सकते हैं। इसलिये, श्रीमान्, मैं एक क्षण के लिये भी यह तर्क स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं कि प्रधानमंत्री को नियुक्ति का बहुत अधिक अधिकार हो जायेगा। वह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करेगा। वह राजदूतों को तथा राज्यपालों आदि को नियुक्त करेगा और इस प्रकार वह दिल्ली में शासन करने वाला एक प्रकार का मुगल सम्राट हो जायेगा। मेरे विचार से यह भय निराधार है कि प्रधानमंत्री को नियुक्ति की अत्यधिक शक्ति दी जा रही है।

***एक माननीय सदस्यः** क्या आप यह माने ले रहे हैं कि आलोचना होगी?

***डा. पी.एस. देशमुखः** जी हां। मैं अवश्य यह माने ले रहा हूं कि आलोचना होगी और वह होगी ही क्योंकि हम एक ऐसा कदम उठा रहे हैं जिससे वह सिद्धांत ही बदल जाता है, जिसके लिये हम सहमत हो चुके हैं। इसलिये मुझे इसका अधिकार है कि मैं यह समझूं कि आलोचना होगी और यह भी कहूं कि विपक्षी क्या कह सकते हैं?

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, हमें इस पर भी विचार करना है। यदि हम प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर राज्यपाल को निर्वाचित करें तो उसके तथा प्रांतीय मुख्यमंत्री के बीच संभवतः कभी भी सामंजस्यपूर्ण संबंध नहीं रह सकते और यह यदा कदा ही होगा कि उसका मुख्यमंत्री से पूर्णतया मतैक्य होगा। चूंकि हमने प्रांतीय सरकारों को बहुत कुछ स्वायत्तता प्रदान की है इसलिये, श्रीमान्, यह कल्पना से परे नहीं है कि कोई प्रांत केन्द्र की पूर्णतया उपेक्षा करने लगे। हमें इस पूरे प्रश्न पर विचार करना चाहिये और केवल इस दृष्टि से विचार न करना चाहिये कि प्रांत के दो महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हमेशा सुचारू रूप से कार्य कर सकेंगे या नहीं बल्कि इस दृष्टि से भी विचार करना चाहिये कि इसका परिणाम क्या होगा? यदि उनके बीच प्रत्येक प्रश्न के संबंध में मतैक्य रहता है, उदाहरणार्थ यदि वे केन्द्र की पूर्णतया उपेक्षा करने के लिये सहमत हो जाते हैं तो क्या स्थिति होगी और केन्द्र किस स्थिति में पड़ जायेगा। यदि कोई प्रांत केन्द्र के सुझावों अथवा आदेशों को न मानें तो क्या केन्द्र उस प्रांत पर आक्रमण कर देगा? सीमित शक्ति प्राप्त निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था तो अनुपयुक्त है ही किन्तु साथ ही निर्वाचित राज्यपाल की हमेशा यह धारणा रहेगी कि वह प्रांत में सबसे अधिक लोकप्रिय व्यक्ति है और लोगों का विश्वास भाजन है और इसलिये प्राधिकार को प्रयोग में लाने के लिये सबसे अधिक सक्षम है। इसलिये उसके तथा मुख्यमंत्री के बीच अवश्य ही कलह होगा। यदि कलह न भी हुआ और पूर्ण मतैक्य रहा तो यदि ये दो सज्जन केन्द्र की उपेक्षा करने लगेंगे तो कैसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी इस विषय पर भी गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। इसलिये, श्रीमान्, मेरे विचार से, जब तक प्रांत बने रहते हैं और हमारे संविधान के ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है तब तक स्थिति में भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है और बुद्धिमत्ता इसी में है कि राष्ट्रपति को नियुक्ति की शक्ति प्रदान की जाये। श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि किसी अवसर पर नियुक्ति राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त ही रहे। केवल निर्वाचित राज्यपाल के संबंध में ही यह तर्कयुक्त था कि हम महाभियोग संबंधी उपबंध को स्थान देते। यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो यह सब बातें निकल जायेंगी। इसलिये मेरी यह इच्छा है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त ही रहे।

माननीय श्री बी.जी. खेर (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, चूंकि यह सभा अपने निर्णय को दुहराना चाहती है जो उसने इस विषय में दो वर्ष पूर्व किया था, मैं यह समझता हूं कि मुझे इस संशोधन में सन्निहित सिद्धांत के संबंध में कुछ शब्द कहने चाहियें। मैं उसका सच्चे हृदय से समर्थन करना चाहता हूं। पहली बात यह है कि जब हमने यह निर्णय किया था तब से देश की स्थिति बदल गई है और भले ही हमने इस निर्णय को उस समय ठीक समझा हो किन्तु अन्य विषयों के संबंध में हमने इस निर्णय का उल्लंघन किया ही है। अनुभव से भी यह ज्ञात हुआ है कि जो प्रणाली हमने स्वीकार की है वह व्यवहार में सफल रही है। श्रीमान्, प्रश्न यह है। जब हमने अनुच्छेद 129 को स्वीकार करके यह निर्णय कर लिया है कि हम प्रांतों में राज्यपाल रखेंगे ही तो क्या हमें निर्वाचित राज्यपालों को रखना चाहिये? अथवा क्या वह राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत अथवा नियुक्त होना चाहिये? इस वादानुवाद में प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचन करने का समर्थन किसी ने नहीं किया है क्योंकि इसमें अत्यधिक व्यय तो होगा ही, साथ ही प्रांत का प्रमुख एक ऐसा व्यक्ति हो जायेगा जो राज्य के सभी लोगों द्वारा निर्वाचित होगा। किन्तु हमने जिस उत्तरदायी शासन के सिद्धांत को स्वीकार किया है उसके अनुसार संविधान के अधीन राज्य की संपूर्ण शक्ति मुख्यमंत्री को प्राप्त होगी। इससे अवश्य कुछ कलह होगा जिसे प्रशासन के सुसंचालन के हित में न होने देना चाहिये। आखिर हमने राज्यपाल की व्यवस्था क्यों की है? क्योंकि, श्रीमान्, वह राज्य का प्रतिनिधित्व करेगा। मुख्यमंत्री सभा के बहुसंख्यक दल का नेता होने के कारण पदारूढ़ रहेगा और वह प्रशासन के प्रत्येक कार्य के उत्तरदायी ठहराया जायेगा। जहां तक राज्यपाल का संबंध है, हमने उसे बहुत कम शक्तियां प्रदान की हैं। किन्तु मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं कि वह केवल नाममात्र का प्रमुख है। नाममात्र का प्रभुत्व न कोई अच्छा कार्य कर सकता है और न कोई बुरा कार्य। श्रीमान्, सभा से मेरा यह निवेदन है कि यदि राज्यपाल अच्छा आदमी हो तो वह बहुत से अच्छे कार्य कर सकता है और यदि वह बुरा आदमी हो तो बहुत से बुरे कार्य कर सकता है, भले ही जिस संविधान को हम बना रहे हैं उसके अधीन उसे बहुत कम शक्ति दी गई है। उसे जो शक्तियां और प्रकार्य प्रदान करने जा रहे हैं वे बहुत कम हैं उदाहरणार्थ वह विधान सभा का आह्वान करेगा तथा उसे विघटित करेगा, राज्य की विधानसभा द्वारा स्वीकृत विधेयकों के लिये अनुमति देगा, राज्य के प्रतिनिधियों के रूप में कार्य करेगा, सामान्य निर्वाचन अथवा मंत्रिमंडल के पदत्याग के उपरांत मुख्यमंत्री को नियुक्त करेगा, रस्मी अवसरों पर प्रांत का प्रतिनिधित्व करेगा और आपात की दशा में ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो हम उसे प्रदान करेंगे। वह राज्य का प्रतीक होगा। व्यवहार में हमने यह देखा है कि यदि कोई राज्यपाल कार्यशील व्यक्ति हो और सज्जन हो तो वह पदारूढ़ दल के विपक्षियों के सम्पर्क में आकर कई आयोजनों के संबंध में उनकी सहमति प्राप्त कर सकता है और साधारणतया दौरे करके अथवा अन्य प्रकार से प्रशासन को सामंजस्यपूर्ण बना सकता है। किन्तु साथ ही वह बहुत शरारत भी कर सकता है। इसलिये मेरा यह विचार है कि यह एक गलत कदम होगा कि हम राज्यपाल को अधिक विस्तृत मताधिकार के आधार पर निर्वाचित करें और प्रांत के शिखर पर एक ऐसे व्यक्ति को रखें जिसे मुख्यमंत्री से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। इसलिये यदि सभी लोगों द्वारा मताधिकार के

आधार पर निर्वाचन करने की प्रणाली पर विचार न किया जाये तो सरदार हुक्मसिंह ने जिस दूसरे विकल्प की ओर संकेत किया है उस पर, अर्थात् सभा द्वारा निर्वाचित लोगों की नामावली के प्रश्न पर, विचार किया जाये। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के तर्कपूर्ण भाषण के उपरांत जिसमें उन्होंने इस प्रणाली के दोष बताये हैं, मुझे केवल इतना कहना है कि यदि सभा में भी निर्वाचन होगा तो कुछ प्रचार और दलबंदी होगी ही और चाहे जो कोई व्यक्ति नियुक्त हो, सभा के दो चार व्यक्ति रुष्ट हो ही जायेंगे। यह उपयुक्त बात न होगी।

इसलिये, श्रीमान्, इस प्रणाली को स्वीकार करने से जो कलह होगा उसे यदि हम न होने देना चाहें तो हमें इस नियुक्ति के संबंध में किस सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिये? हमारा पथप्रदर्शक यही सिद्धांत होना चाहिये कि कार्यपालिका का कोई सदस्य लोकमत से निर्वाचित न हो। लोग यह कह सकते हैं कि हम विक्टोरिया के मध्यकाल के उदाहरणों का अनुसरण कर रहे हैं किन्तु मिल की लिखी हुई 'रिप्रजेंटेटिव गवर्नमेंट' नामी पुस्तक में मैंने इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का उल्लेख पाया:

''लोकप्रिय संविधान के अधीन सुशासन का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि कार्यपालिका का कोई कर्मी लोक निर्वाचन के आधार पर कभी भी नियुक्त न किया जाना चाहिये। वह लोकमत के आधार पर अथवा लोकप्रतिनिधियों के मत के आधार पर कभी भी नियुक्त न किया जाना चाहिये।''

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह एक बहुत सुन्दर सिद्धांत है। आप प्रांत में एक दल के नेता को उत्तरदायी ठहराना चाहते हैं, आप भारत के प्रधानमंत्री को उत्तरदायी ठहराना चाहते हैं। उसे लोगों को नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये चाहे वे केन्द्रीय मंत्रिमंडल में उसके सहकारी हों अथवा राज्यपाल हों। चाहे राज्यपाल को आप प्रांत में सीमित शक्ति दें या अधिक शक्ति दें किन्तु चूंकि वह प्रांत में कार्यपालिका का प्रतीक रूप में प्रमुख होगा, इसलिये उस प्रधानमंत्री का विश्वास भाजन होना चाहिये। इन लोगों को निर्वाचन के आधार पर नियुक्त करने का सिद्धांत बहुत ही सन्देहात्मक है। अमेरिका में जो कुछ किया जाता है उस पर मैं अपने विचार नहीं प्रकट करना चाहता। किन्तु चूंकि हमने उत्तरदायी शासन की इंग्लैंड की प्रणाली को स्वीकार किया है और राज्यपाल को एक स्थान प्रदान करने का निर्णय किया है, इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि प्रांतों में सामंजस्यपूर्ण शासन बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि देश का राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को प्रांत का राज्यपाल नियुक्त करे जो उसका विश्वास भाजन हो, जिसका अवश्य ही यह अर्थ है कि वह उसके मंत्रिमंडल का तथा प्रांत के मंत्रिमंडल का विश्वास भाजन होगा। किसी अन्य प्रणाली के फलस्वरूप, चाहे वह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचन करने की प्रणाली हो अथवा विधानसभा के लोक प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचन करने की प्रणाली हो, अवश्य ही बहुत संघर्ष होगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** अध्यक्ष महोदय, हमारे लिये यह कहना बहुत कठिन है कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है। दो वर्ष पूर्व, जून के महीने में, प्रांतीय संविधान समिति में तीन या चार दिन तक इस प्रश्न पर विचार-विमर्श हुआ। इस समिति के सभापति माननीय सरदार पटेल जैसे सुप्रतिष्ठित व्यक्ति थे और उसके सदस्यों में माननीय श्री खेर जैसे प्रधानमंत्री थे और माननीय डा. अम्बेडकर भी उस समिति के सदस्य थे। एक दिन प्रांतीय संविधान समिति और संघीय संविधान समिति के सदस्यों की संयुक्त बैठक हुई। इस प्रश्न पर बहुमत से यह निर्णय किया गया कि राज्यपाल पद के लिये निर्वाचन होगा। श्रीमान्, मेरे वे माननीय मित्र जो श्री कामत और श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन के पक्ष में बोले हैं यह कहते हैं कि अब स्थिति बदल गई हैं। इसलिये कुछ सदस्यों ने इस निर्णय में परिवर्तन करने का सुझाव किया है। स्थिति में परिवर्तन होने से आखिर इस प्रश्न पर क्या प्रभाव पड़ा है? नि:संदेह हमने इस बीच अर्थात् अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त की; किन्तु क्या इसका इस निर्णय में परिवर्तन करने से कोई संबंध है? क्या आप स्वतंत्र होने पर मनोनीत राज्यपालों को चाहते हैं और क्या परतंत्र रहने पर निर्वाचित राज्यपालों से संतुष्ट हो जाते? इस बीच देश का विभाजन भी हुआ है, रक्तपात भी हुआ है और देश को महान् विपत्ति का सामना करना पड़ा है। क्या यही कारण है कि हम निर्वाचित राज्यपालों के स्थान में मनोनीत राज्यपालों की व्यवस्था करें? मुझे केवल एक कारण दिखाई देता है और वह यह है कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर की प्रतिष्ठा में कुछ परिवर्तन हुआ है। सम्भवत: यही कारण है कि आज हम अपने निर्णय को बदल रहे हैं अन्यथा.....

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य महोदय से यह कहता हूं कि वे व्यक्तिगत आक्षेप न करें।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** क्या मैं डा. अम्बेडकर की ओर संकेत भी न करूं।

***अध्यक्ष:** आप व्यक्तिगत आक्षेप न करे।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मुझे इसका खेद है। मैं डा. अम्बेडकर की ओर संकेत न करूंगा। किन्तु मैं यह कहूंगा कि इस निर्णय में परिवर्तन करने का मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता।

मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने, जिन्होंने इस प्रश्न के संबंध में सरकारी संशोधन उपस्थित किया था, अपने भाषण में अधिक स्पष्टीकरण नहीं किया। उन्होंने जिस प्रकार अपना संशोधन उपस्थित किया तथा उसका समर्थन उससे यह स्पष्ट हो गया कि उन्होंने सच्चे हृदय से यह सब कुछ नहीं किया और जिस प्रकार वे भागकर अपनी जगह पर चले गये उससे भी स्पष्ट हो गया कि उन्होंने एक कड़वी घूंट पी है और उन्होंने जो कुछ कहा उससे वे स्वयं पसंद नहीं करते हैं। उपस्थित प्रस्ताव के अनुसार राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। राष्ट्रपति कौन होगा? राष्ट्रपति विधान मंडलों के सदस्यों द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होगा।

वह अवश्य ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो बहुसंख्यक दल का विश्वास पात्र होगा। भले ही कुछ माननीय सदस्यों की यह इच्छा हो कि वह राजनीति के संबंध में बिल्कुल तटस्थ रहे किन्तु वह पूरी न होगी। राष्ट्रपति राज्यपाल को किस प्रकार मनोनीत करेगा? राष्ट्रपति राज्यपाल को प्रधानमंत्री के परामर्श से नियुक्त करेगा। प्रधानमंत्री कौन होगा? प्रधानमंत्री राजनीति में डूबा हुआ एक व्यक्ति होगा वह किसी दल का सदस्य होगा और उस दल की विचारधारा से उसका पथप्रदर्शन होगा। उसके विचार एक बिल्कुल तटस्थ व्यक्ति के विचार न होंगे। यदि आप एक ऐसे व्यक्ति को जो किसी दल का सदस्य होगा और उसका नेता होगा, राज्यपाल को नियुक्त करने का अधिकार दे रहे हैं तो आप इस संबंध में लोगों को अपना मत प्रकट करने का अधिकार क्यों नहीं दे रहे हैं।? आखिर, श्रीमान्, पद स्वीकार करते समय राज्यपाल को कौन सी शपथ लेनी होगी? उसे यह शपथ लेनी होगी:

> ''मैं...अमुक, ईश्वर की शपथ लेता हूं (सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं) कि मैं श्रद्धापूर्वक... के राज्यपाल का कार्य पालन (अथवा राज्यपाल के कृत्यों का निर्वहन) करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं...की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूंगा।''

कोई व्यक्ति, जो किसी विशेष प्रांत के बारे में कुछ न जानता हो और उस प्रांत की भाषा न जानता हो, मनोनीत हो सकता है और उस व्यक्ति से यह आशा की जायेगी कि वह उस प्रांत की सेवा उस व्यक्ति से कहीं अच्छी तरह करेगा जो प्रांत के लोगों द्वारा निर्वाचित होगा। श्रीमान्, क्या आप इस स्थिति को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं? वह मनोनीत व्यक्ति भारत के किसी भाग का हो सकता है—हो सकता है कि वह दक्षिण भारत का हो अथवा उत्तर भारत का हो अथवा पंजाब का हो—वह भारत के किसी कोने का हो सकता है और उससे आशा की जाती है कि वह शपथ लेगा और वह यह शपथ लेगा ही कि वह उस प्रांत के हित साधन के लिये कार्य करेगा यद्यपि उसे उनके बारे में कुछ भी जानकारी न होगी। हम इसी स्थिति को स्वीकार करने जा रहे हैं। ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त करने के लिये राष्ट्रपति को प्रांत के लोगों से अथवा प्रांत के लोगों के प्रतिनिधियों से परामर्श लेने की भी आवश्यकता न होगी। वह राष्ट्रपति की स्वेच्छा से अथवा भारत के प्रधानमंत्री की स्वेच्छा से मनोनीत होगा। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति के लिये राष्ट्रपति को सारे भारत में घूमना पड़ेगा, उसे विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से भी परामर्श लेना होगा और विभिन्न प्रांतों के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों से भी परामर्श लेना होगा। किन्तु राज्यपाल को चुनने के लिये उस प्रांत के लोगों से भी परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है जिसका कि वह राज्यपाल नियुक्त होगा; उनकी सम्मति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में हमें कठिनाई का अनुभव होगा। यह कहा जाता है कि यदि आप निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था करेंगे तो राज्यपाल और मुख्यमंत्रियों के बीच संघर्ष होगा। मेरे विचार से विभिन्न प्रांतों के वर्तमान मुख्यमंत्री इसी भय से ग्रस्त हैं और इसी कारण

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

राज्यपालों के मनोनीतकरण का यह निर्णय किया गया है। किन्तु हम यह मानें (और यह बातें पहले से समझ में आ ही सकती हैं) कि ऐसा प्रधानमंत्री होगा जो किसी दल विशेष का नेता होगा और प्रांत में आप जिस राज्यपाल को रखना चाहते हैं वह किसी ऐसे दल के हाथ में होगा जो भारत के प्रधानमंत्री का दल न होगा। तो कैसी स्थिति उत्पन्न होगी? भारत का प्रधानमंत्री उस प्रांत में किसी राज्यपाल को भेजेगा। क्या उस राज्यपाल का अन्य दल द्वारा संचालित सरकार से सामंजस्यपूर्ण व्यवहार रहेगा? क्या आप यह आशा कर सकते हैं कि कांग्रेस दल द्वारा चुना हुआ राज्यपाल प्रांत के मंत्रिमंडल के साथ बिना किसी संघर्ष के सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करेगा? यह एक स्पष्ट बात है। इसके अतिरिक्त यह कैसे माना जा सकता है कि हमेशा कांग्रेस दल ही अथवा कोई अन्य दल ही पदारूढ़ रहेगा और किसी अन्य दल का प्रधानमंत्री न होगा? क्या केन्द्र में और विभिन्न प्रांतों में इस प्रकार के अवसर ही उपस्थित न होंगे? इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि यदि निर्वाचन की व्यवस्था को स्वीकार न करके हम वर्तमान व्यवस्था को स्वीकार करें तो संघर्ष की संभावना बढ़ जायेगी। इसके अतिरिक्त यदि आप उसे शक्ति सम्पन्न बनायेंगे और वर्तमान संविधान के अधीन वह महत्त्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग करेगा ही क्योंकि प्रांतों में राज्यपालों को केवल दर्शनार्थ नहीं रखा गया है, तो संघर्ष अवश्य ही होगा। किसी विशेष प्रांत में, जहां मुख्यमंत्री शक्तिशाली होगा, वह अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी प्रांतों में ऐसा ही होगा। उदाहरणार्थ आसाम जैसे प्रांत में राज्यपाल को महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त होने चाहिये और कठिन परिश्रम करना चाहिये। यदि आपने वहां कोई ऐसा राज्यपाल भेज दिया जो जन जातियों के बारे में कुछ भी नहीं जानता है, जो उनके रीति-रिवाजों तथा अन्य बातों के बारे में तथा उनकी दयनीय दशा के बारे में कुछ भी नहीं जानता है और वहां जाकर उन्हें देखकर केवल चकित हो जाता है तो इसका भयंकर परिणाम होगा। हमारे जैसे प्रांत का मुख्यमंत्री जन जातियों के साथ किसी प्रकार का संबंध नहीं रख सकता है। प्रांत का मुख्यमंत्री होने के लिये उसे इसकी आवश्यकता नहीं पड़ सकती है कि वह उनके हितों की चिन्ता करे अथवा उनके बारे में पूछ-ताछ करे किन्तु यदि राज्यपाल का निर्वाचन हुआ तो कोई ऐसा व्यक्ति राज्यपाल होगा जिसके हृदय में जन जातियों के प्रति भी सहानुभूति होगी और जन जातियों, जिन्हें मुख्यमंत्री के चुनाव में मत देने का अधिकार नहीं है, कम से कम यह जान सकेंगी कि उनका राज्यपाल कौन होगा और उसके निर्वाचन में मत भी दे सकेंगी। इन लोगों को एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति के संबंध में मत देने के अधिकार से क्यों वंचित किया जाये, जो उनका भाग्य विधाता होगा? इसलिये सबसे अच्छा तो यही होता कि हम निर्वाचन की व्यवस्था करते। हम इस संबंध में अंग्रेजों की प्रथा का अनुसरण क्यों करें? अंग्रेजों की प्रथा यह थी कि वे बाहर से किसी व्यक्ति को लाकर गवर्नर जनरल नियुक्त करते थे और उसे राज्यपालों को नियुक्त करने का अधिकार होता था और वह ऐसे लोगों को राज्यपाल पदों पर नियुक्त करता जिनके बारे में वह समझता था कि वे उसके हितों की रक्षा करेंगे। क्या आप राष्ट्रपति को राज्यपालों को इस प्रकार चुनने की शक्ति देने जा रहे हैं कि वह किसी प्रांत के हितों की उपेक्षा करके किसी ऐसे व्यक्ति को वहां के राज्यपाल-पद के लिये चुने जिसे केवल भारत के ही हितों का ध्यान रहे और उस प्रांत के हितों का कुछ भी ध्यान न रहे? क्या आप यह चाहते हैं

कि वहां एक ऐसा व्यक्ति पदारूढ़ रहे जो बराबर प्रांतीय मंत्रिमंडल के कार्य की देखरेख कर सके ताकि वह किसी समय भी केन्द्र के विरुद्ध कोई कार्य न करे। क्या वे लोग जो प्रांतीय राज्यपालों का मनोनीतकरण चाहते हैं इस संदेह से ग्रस्त हैं? मेरा यह निवेदन है कि उन्हें इस प्रकार का सन्देह न करना चाहिये। इसलिये मुझे यह आशा थी कि यदि आप निर्वाचन व्यवस्था को स्वीकार न भी करेंगे तो कम से कम आप नामावली से चुनने की व्यवस्था को स्वीकार कर लेंगे क्योंकि मेरी समझ में नहीं आता कि इसके विरुद्ध कौन सी तर्कपूर्ण आपत्ति की जा सकती है।

साथ ही अतिरिक्त व्यय के सम्बन्ध में भी आपत्ति की गई है। यदि सामान्य निर्वाचन के दिन ही यह निर्वाचन भी होता है तो अतिरिक्त व्यय का प्रश्न ही नहीं उठता। अधिक कार्य क्षमता का प्रश्न ही नहीं उठता। आप यह आशा नहीं कर सकते हैं कि आपके बराबर बाहर के लोगों को नियुक्त करने पर भी प्रांत के लोग संतुष्ट रहेंगे। यदि किसी कारण आप राज्यपाल के निर्वाचन को एक वृहत् कार्य भी समझते हैं तो मेरे विचार से यदि प्रांत के लोगों से किसी प्रकार परामर्श किया जायेगा तो उन्हें संतोष हो जायेगा। मसौदा समिति ने जो दूसरा विकल्प उपस्थित किया है उससे कम से कम स्थानीय विधान मंडल को राज्यपाल के संबंध में अपनी सम्मति व्यक्त करने का अवसर मिल जाता है, चाहे वह उस प्रांत का हो अथवा बाहर का, और उसे इसका भी अवसर मिलता है कि वह उस प्रांत के किसी व्यक्ति का सुझाव रखे। इससे कम से कम कुछ मात्रा में दोष का परिहार हो जायेगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अध्यक्ष महोदय, दो वर्ष पूर्व मैंने तथा कुछ अन्य सदस्यों ने दुर्भाग्य से इस सभा को यह समझाने का निष्फल प्रयास किया था कि वह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर राज्यपालों को निर्वाचित करने की प्रणाली को स्वीकार न किया जाये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सभा ने अब अपना विचार बदल दिया है और मेरे माननीय मित्र श्री खेर भी, जिन्होंने दो वर्ष पूर्व राज्यपालों के निर्वाचन का बड़े जोरदार शब्दों में समर्थन किया था, अब एक बिल्कुल ही भिन्न प्रणाली का समर्थन कर रहे हैं। किंतु इस मत परिवर्तन के लिये जो कारण बताये गये हैं उनमें से कुछ की हमें परीक्षा करनी चाहिये। सभा के लिये यह संभव था कि वह राज्यपालों के निर्वाचन के सिद्धांत को तो अस्वीकार करती किन्तु उनको चुनने की उस वैकल्पिक प्रणाली को स्वीकार कर लेती जिसकी सिफारिश मसौदा समिति ने की थी। किन्तु आज जिस प्रणाली का प्रस्ताव रखा गया है वह राष्ट्रपति द्वारा शुद्ध मनोनीतकरण की प्रणाली है। जहां तक मुझे स्मरण है संशोधन के प्रस्तावक महोदय ने अपने छोटे से भाषण में यह कहा था कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होने चाहिये ताकि केन्द्रीय कार्यपालिका की नीति के अनुसार प्रांतों का शासन हो सके। मेरे माननीय मित्र श्री खेर ने इस विषय पर बोलते हुए यह सम्मति प्रकट की है कि वह ठीक है कि प्रांतों के राज्यपालों को भारत का प्रधानमंत्री मनोनीत करे क्योंकि प्रधानमंत्री ही देश के सुशासन के लिये उत्तरदायी होगा। श्रीमान्, मैं यह देखता हूं कि यद्यपि श्री खेर ने अपने उन विचारों को बदल दिया है जो वे 1947 ई. में रखते थे किन्तु वे अब भी यह चाहते हैं कि प्रांतीय मंत्रियों पर, जो प्रांतीय विधान मंडलों में बहुसंख्यक दलों का प्रतिनिधित्व करेंगे, बाहर का कोई प्राधिकारी नियंत्रण रखे। पहले यह प्रस्ताव था कि निर्वाचित राज्यपाल उन पर नियंत्रण रखे किन्तु अब श्री खेर के मतानुसार भारत के प्रधानमंत्री की सिफरिश से मनोनीत राज्यपाल को उन पर नियंत्रण रखना चाहिये।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** मैंने यह नहीं कहा था।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** किंतु उसका निचोड़ यही है। मेरे माननीय मित्र ने यह कहा था कि चूंकि भारत का प्रधानमंत्री देश के सुशासन के लिये उत्तरदायी होगा, इसलिये सिद्धांतत: यह उचित है कि वह प्रांतीय राज्यपालों को मनोनीत करे। यदि राज्यपालों को मंत्रिमंडलों पर नियंत्रण न रखने दिया जायेगा तो प्रधानमंत्री की सिफारिश से नियुक्त ये लोग देश के सुशासन को बनाये रखने में प्रधानमंत्री की किस प्रकार सहायता करेंगे? मनोनीतकरण से उसे अपने कर्त्तव्यपालन में तभी सहायता मिल सकती है जबकि यह समझा जाये कि वह मनोनीत राज्यपालों द्वारा प्रांतीय सरकारों पर व्यवहित अथवा अव्यवहित रूप से नियंत्रण रख सकेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** नियंत्रण कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** यदि मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का यह विचार है उन्हें इस संबंध में श्री खेर के साथ विचार-विमर्श करना चाहिये और यह देखना चाहिये कि वे किसी अंश में भी सहमत हो सकते हैं। या नहीं। मैं यह अच्छी प्रकार समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी यह नहीं चाहते कि भारत का प्रधानमंत्री प्रान्तीय सरकारों पर नियंत्रण रखे। परंतु यदि श्री खेर की सम्मति को तर्क की कसौटी पर कसा जाये तो वह श्री कृष्णमाचारी की सम्मति से विपरीत प्रकट होगी। मेरे विचार से इस सभा को तथा केन्द्रीय सरकार को श्री खेर की मिथ्या धारणा के वश न होना चाहिये।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** मैं किसी मिथ्या धारणा के वश में नहीं हूं। माननीय सदस्य महादेय मेरे आशय को ठीक-ठीक नहीं समझ पाये हैं। मैं उन्हें यह आश्वासन देता हूं कि मैं प्रधानमंत्री को इस प्रकार की कोई शक्ति देने के पक्ष में नहीं हूं। उन्हें यह समझना चाहिये कि कार्य करने की एक प्रणाली होती है। यह आवश्यक नहीं है कि उसका संविधान में अवश्य ही सन्निवेश हो। महत्त्व व्यक्तियों का होता है न कि संविधान का।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैं यह मान लेता हूं कि अब मेरे माननीय मित्र की यह इच्छा नहीं है कि भारत का प्रधानमंत्री प्रांतीय सरकारों पर नियंत्रण रखे। किन्तु उन्हें यह बताना चाहिये था कि उनके इस कथन का क्या अर्थ है कि भारत का प्रधानमंत्री भारत के शासन के प्रति अपने कर्त्तव्यों का सुचारू रूप से तभी पालन कर सकेगा जबकि प्रांतीय राज्यपाल उसकी सिफारिश के आधार पर मनोनीत किये जाये। किन्तु यदि मेरे माननीय मित्र श्री खेर ने कुछ ही क्षणों में अपनी सम्मति बदल ली है तो अब मैं उस पर अधिक कुछ न कहूंगा। किन्तु उन्होंने जानबूझकर अथवा अनजाने जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है उस पर सभा को विचार करना चाहिये। भारत का प्रधानमंत्री तथा उसका मंत्रिमंडल कुछ ही विषयों के संबंध में भारत के सुशासन के लिये उत्तरदायी हैं अर्थात् उन विषयों के संबंध में जो केन्द्रीय संसद के संविधान में हैं अर्थात् केन्द्रीय कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं। यद्यपि हमारे संविधान में केन्द्रीय विधान मंडल और कार्यपालिका को बहुत शक्ति दी गई है किन्तु वह एकात्मक संविधान नहीं है। उसमें प्रांतीय सरकारों को

नगर समितियों और जिला मंडलियों के स्तर पर नहीं लाया गया है। यद्यपि उनके प्राधिकार में कुछ कमी की गई है किन्तु उन्हें कुछ विषयों पर नियंत्रण रखने की अनन्य शक्ति दी गई है। भारत का प्रधानमंत्री उन विषयों के संबंध में सुशासन बनाये रखने के लिये उत्तरदायी न होगा जिन पर प्रांतीय विधान मंडल और कार्यपालिका अनन्य रूप से नियंत्रण रखेंगे। श्रीमान्, मेरे विचार से इसे स्पष्टतया समझ लेना चाहिये ताकि केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के बीच कोई कटु संघर्ष न हो।

हमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात को भी ध्यान में रखना है। हमारा संविधान ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा जनतंत्र स्वतंत्र तथा पूर्ण रूप से समुन्नत हो सके और देश में किसी समय भी एकसत्तात्मक शासन स्थापित न हो सकें। इस समय हम में से बहुत से लोगों की यह धारणा है कि देश के प्रांतीय कार्यपालिका की अपेक्षा केन्द्रीय कार्यपालिका का अधिक विश्वास है। किन्तु पहले तो यह कोई ऐसा कारण नहीं है जिसके आधार पर प्रांतीय सरकारों को केन्द्रीय कार्यपालिका के अधीन लाया जाये। दूसरे, हमेशा यहीं स्थित नहीं बनी रह सकती है। ऐसे समय की कल्पना की जा सकती है जबकि केन्द्रीय सरकार का उतना विश्वास न किया जायेगा जितना कि कुछ प्रांतीय सरकारों का किया जायेगा। यदि आप सभी महत्त्वपूर्ण विषयों के संबंध में केन्द्रीय कार्यपालिका को प्रांतों पर नियंत्रण रखने की शक्ति देते हैं तो यह संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि देश में एकसत्तात्मक शासन स्थापित हो जाये। ऐसे भी देश हैं जहां संधान शासन प्रणाली प्रयुक्त है और जहां समय-समय पर संधान सरकार और राज्यों की सरकारों के बीच मतभेद होता रहता है। कनाडा में तो एक प्रांतीय सरकार ने यहां तक किया कि उसने अपने यहां की मुद्रा-प्रणाली को ही बदल डाला। केन्द्र इसी कारण इस स्थिति का निराकरण कर सका क्योंकि उसने यह मत निश्चय किया कि इस विषय के संबंध में उसे ही अनन्य नियंत्रणाधिकार प्राप्त है। उसने इस संबंध में शक्ति प्रयोग के लिये राज्यपाल का अथवा अन्य किसी उपाय का उपयोग नहीं किया। इसी प्रकार यदि इस देश में भी प्रांतों और केन्द्र के बीच संघर्ष होगा तो संभावना इसी की है कि यदि संघर्ष गंभीर हुआ तो वह किसी ऐसे विषय के संबंध में होगा जो केन्द्र के अधिकार में होगा और इस दशा में केन्द्र को इस स्थिति के निराकरण के लिये पर्याप्त साधन प्राप्त होंगे। किन्तु हमें यह धारणा बिल्कुल त्याग देनी चाहिये कि केन्द्रीय कार्यपालिका की इच्छाओं को पूरा करने के लिये राज्यपाल का किसी प्रकार उपयोग किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस अवसर पर अनुच्छेद 175 और 188 का निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा। अनुच्छेद 175 के अनुसार प्रांत के विधान मंडल द्वारा पारित किसी विधेयक के संबंध में यह आवश्यक है कि राज्यपाल अनुमति देगा अथवा उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक लेगा। मेरे माननीय मित्र, श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, ने कनाडा का उदाहरण दिया जहां प्रांतों के लेफ्टीनेंट गवर्नरों को डोमिनियन का गवर्नर जनरल नियुक्त करता है। वहां उत्तरदायी शासन के आरम्भ-काल में लेफ्टीनेंट गवर्नर विधेयकों को गवर्नर जनरल के विचारार्थ प्रतिनिधि होने के नाते, यह अधिकार प्राप्त रोक सकता था और गवर्नर जनरल को, सम्राट का प्रतिनिधि होने के नाते, यह अधिकार प्राप्त था और अब भी है कि वह किसी प्रांतीय विधेयक के संबंध में अनुमति न दे। आगे चलकर एक ऐसी प्रणाली प्रयुक्त हुई जिसके अधीन लेफ्टीनेंट गवर्नरों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे गवर्नर

जनरल के विचारार्थ विधेयकों को रोकें क्योंकि यह समझा जाने लगा कि इससे पूर्ण उत्तरदायी शासन के प्राधिकार का अल्पीकरण हो जाता है। किन्तु गवर्नर जनरल कनाडा के संविधानिक अधिनियम में निर्धारित अवधि तक किसी ऐसे विधेयक को अस्वीकार कर सकता है जिसके संबंध में गवर्नर ने अनुमति दे दी हो। श्रीमान्, इस संविधान में हमने राष्ट्रपति को इस प्रकार की कोई शक्ति प्रदान नहीं की है। राज्यपाल राष्ट्रपति के विचारार्थ किसी विधेयक को रोक सकता है किन्तु यदि राज्यपाल यह कदम न उठाये तो राष्ट्रपति की चर्चा भी न होगी। इस स्थिति में, श्रीमान्, यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति राज्यपालों को अनुदेश देगा कि अमुक-अमुक विधेयक उसके विचारार्थ रोके जायें क्योंकि केन्द्र उनके संबंध में सहमत नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं आदरपूर्वक बता सकता हूं कि हमने अभी अनुच्छेद 175 को स्वीकार नहीं किया है और अधिक संभावना इसकी है कि उसके संबंध में जो संशोधन प्रस्तावित होंगे उनसे उसका रूप ही बदल जायेगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मुझे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। यही मैं भी कहना चाहता था। अच्छा तो यह होगा कि राज्यपाल को राष्ट्रपति की हाथों की कठपुतली बनाने के स्थान पर प्रांतीय विधेयकों को किस निश्चित अवधि के अन्दर अस्वीकार करने की शक्ति राष्ट्रपति को दे दी जाये। इस दशा में सिद्धांतत: और यथार्थत: उत्तरदायित्व केन्द्रीय कार्यपालिका का हो जायेगा। अन्यथा संभावना इसकी है कि राज्यपाल और उसके मंत्रिमंडल के बीच संघर्ष होगा। कनाडा के प्रांतों के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह भय केवल काल्पनिक ही नहीं है।

श्रीमान्, अब मैं अनुच्छेद 188 को उठाता हूं। मैं कह नहीं सकता कि मेरे माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी मुझसे इस अनुच्छेद के संबंध में भी यह कहेंगे कि राज्यपाल को चुनने की प्रणाली में जो परिवर्तन किया गया है उसे दृष्टि में रखते हुए उसे निकाल देने का अथवा उसमें परिवर्तन करने का प्रस्ताव है। जब दो वर्ष पूर्व सभा ने राज्यपालों को निर्वाचन के संबंध में निर्णय किया था तो उस समय यही मुख्य तर्क उपस्थित किया गया था कि आपात की गम्भीर स्थिति उत्पन्न होने पर राज्यपाल को निर्णयात्मक रुप से कार्य करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। उस समय यह अनुभव किया गया था कि लोक समर्थन पर आश्रित उत्तरदायी मंत्रिमंडल संकट के समय उतनी शक्ति से कार्य न कर सकेंगे जितनी स्थिति के निराकरण के लिये आवश्यक होगी और यह भी अनुभव किया गया कि बुद्धिमत्ता इसी में है कि प्रांत की निर्वाचित प्रभुत्वसंपन्न कार्यपालिका को गंभीर आपात के उपस्थित होने पर प्रांत में शांति बनाये रखने के लिये पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहियें। 1947 ई. के पश्चात् इस संबंध में मत परिवर्तन हुआ है जो कि इससे स्पष्ट हो जाता है कि मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन का अभी तक समर्थन ही हुआ है। इसलिये, श्रीमान्, मुझे आशा है कि अनुच्छेद 188 निकाल दिया जायेगा। किसी प्रांत में कोई ऐसी घटना घटित होने पर जिससे देश की शांति संकट में पड़ जाये अथवा ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर, जो दृढ़ता से कार्य न करने के कारण आगे चलकर विकट रूप धारण कर सकती है, यथोचित कार्य करने के लिये गणराज्य के राष्ट्रपति को

किसी अन्य अनुच्छेद के अधीन शक्ति प्रदान की जा सकती है; श्रीमान्, मेरे विचार से प्रांतीय राज्यपालों को प्रशासन को अपने हाथ में लेने की शक्ति देने की अपेक्षा इस ढंग से प्रांतों की आपात की स्थिति का अधिक अच्छी प्रकार निराकरण किया जा सकता है। यद्यपि अंतिम शक्ति गणराज्य के राष्ट्रपति को ही प्राप्त है किन्तु संभवत: बिना राज्यपाल से परामर्श किये वह कोई कार्य न करेगा। राज्यपाल अपने प्रांत की स्थिति की सूचना राष्ट्रपति को दे सकता है और यह उस पर छोड़ सकता है कि वह जिस किसी कार्य को करने का निर्णय करना चाहे, करे।

श्रीमान्, इस दृष्टि से मुझे आशा है कि अनुच्छेद 188 या तो निकाल दिया जायेगा या इस प्रकार संशोधित किया जायेगा कि वह प्रांतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना से असंगत न होगा और उसके कारण राज्यपाल और मंत्रिमंडल के बीच कटु संघर्ष न होगा। संविधान के अधीन आपात के समय जिस किसी नियंत्रण की आवश्यकता हो उसे गणराज्य का राष्ट्रपति स्वयं प्रयोग में लाये और राज्यपाल द्वारा प्रयोग में न लाये ताकि राज्यपाल और मंत्रिमंडल के बीच संघर्ष न हो।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** क्या माननीय सदस्य महोदय संशोधन का समर्थन कर रहे हैं अथवा विरोध?

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, 31 मई, 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 4. VIII-12.49
320

अंक 8
संख्या 12

मंगलवार,
31 मई
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान-सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर..... 671

संविधान का प्रारूप (*जारी*)..... 672-735

(अनुच्छेद 131 से 136 पर विचार किया गया)

भारतीय संविधान-सभा

मंगलवार, 31 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 8 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण एवं रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया;

सरदार रणजीत सिंह (पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासत-संघ)।

सेठ गोविन्द दास (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति जी, मुझे एक बात आपके सामने रखनी है और वह बहुत जरूरी बात मैं समझता हूं। आपको शायद मालूम हुआ होगा कि इस हाउस के कुछ सदस्यों की मोटर कार पर अंग्रेजी की जगह हिन्दी का नम्बर पड़ा हुआ था और उनमें से एक-सदस्य के ऊपर दिल्ली की पुलिस ने उस तख्ती पर हिन्दी का नम्बर होने की वजह से जुरमाना किया है। कुछ सदस्यों के ऊपर इस सम्बन्ध में मुकदमे चल रहे हैं, ऐसा मुझे मालूम हुआ है और यह विषय इस असेम्बली के सदस्यों के प्रीविलेजेज का है और जबकि स्वराज्य हमारे यहां स्थापित हो गया है, ऐसी हालत में हमारी भाषा के नम्बरों के ऊपर मुकदमा चलाना, यह एक बहुत आश्चर्यजनक और लज्जाजनक बात है और इसलिये मैं आपसे कहना चाहता हूं, मैं नहीं जानता कि यह विषय आपके सामने पहले से था या नहीं, लेकिन मैं आपका ध्यान इधर आकर्षित करना चाहता हूं और कहना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में उचित कार्रवाई होनी चाहिये।

श्री मोहनलाल गौतम (संयुक्तप्रान्त : जनरल): सभापति जी, थोड़ी सी सूचना मैं दे दूं और वह यह है कि मैं जब यहां पर से जा रहा था और मेरी जो गाड़ी थी, उस पर यू.पी. का हिन्दी प्लेट पर नम्बर लिखा हुआ था और वह यहां पर काफी दिनों तक रही और केसकर और दूसरे लोगों के पास भी इसी तरह की गाड़ी थी और प्लेट पर हिन्दी का नम्बर था। जब मैं यहां से जा रहा था तो मेरा भी चालान हुआ और यह चालान अभी पैडिंग में है। उसमें क्या होगा, यह मैं नहीं जानता। लेकिन यह वाक्या है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं बोलना चाहता हूं, श्रीमान्!

***अध्यक्ष:** इसी विषय के सम्बन्ध में?

***श्री आर.के. सिधवा:** नहीं, श्रीमान्।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***अध्यक्ष:** मैं इसे निपटा दूंगा। यह एक ऐसा मसला है, जिस पर गौर करना होगा। इसमें क्या कार्रवाई करनी होगी उसके लिये मैं सेक्रेटरी से कहूंगा।

मैं समझता हूं कि पंडित कुंजरू कल की अधूरी बात को पूरा करने के लिये कुछ कहना चाहते हैं।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)
अनुच्छेद 131—(*जारी*)

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** (संयुक्तप्रांत : जनरल): मैं आपका कृतज्ञ हूं श्रीमान्, कि आपने मुझे इस बात का मौका दिया कि कल श्री खेर ने जो सवाल मुझसे किया था उसका जवाब दे सकूं। उन्होंने यह जानना चाहा था कि गवर्नरों को मनोनीत करने का जो संशोधन है, उस के क्या मैं हक में हूं। मैंने कल शुरू में ही यह साफ-साफ बता दिया था कि दो वर्ष पूर्व भी मैंने इस सिद्धांत का विरोध किया था कि उनका चुनाव किया जाये। मनोनीतकरण की व्यवस्था को मैं चुनाव से बेहतर समझता हूं, पर इस व्यवस्था को मैं सन्तोषजनक उसी हालत में समझूंगा, जबकि अनुच्छेद 175 में वैसा संशोधन किया जाये जिसका कि मैंने कल सुझाव दिया है और जिसको कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने भी मंजूर किया है। और अनुच्छेद 188 को हटा दिया जाये। अनुच्छेद 188 को हटाने को तो मैं इसलिये कहता हूं कि गवर्नर जो अब मनोनीत किये जायेंगे, उनको मंत्रिमंडल को भंग करने और प्रशासन को अपने हाथ में लेने की शक्ति न रहेगी, जो कि चुने हुए गवर्नर को रहती। अगर ये दो सुधार यहां कर दिये जायें तो मनोनीत गवर्नर रखने के सिद्धांत पर मुझे कोई आपत्ति न रहेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): पं. हृदयनाथ कुंजरू ने अभी यह हवाला दिया है कि मैंने उनके सुझाव को मंजूर करने की बात मान ली है। मैं ऐसी स्थिति में नहीं हूं कि किसी बात को मंजूर करने की बात मान लूं और फिर मेरे मानने का प्रभाव यह नहीं होगा कि सभा के लिये वह लाजिमी हो जाये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैंने यह नहीं कहा कि कृष्णमाचारी साहब ने मसौदा समिति की ओर से या डा. अम्बेडकर की ओर से ऐसा कहा है। मैंने तो केवल अपनी खुशी जाहिर की है कि मेरे मित्र कृष्णमाचारी जैसे वैधानिक विषयों के जानकार व्यक्ति ने भी मेरे सुझाव पर अपनी सहमति प्रकट की।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर बहस-मुबाहिसा शुरू होने से पहले में माननीय सदस्यों के यह कहूंगा कि विधान पर विचार करने का काम हमें शीघ्रता से करना चाहिये। मैंने सदस्यों को काफी आजादी दी है और बदले में मैं उनसे भी उदारता की आशा रखता हूं, ताकि विधान पर विचार करना हम जल्द से जल्द पूरा कर सकें। कभी-कभी तो मैंने ऐसी भी वक्तृतायें यहां होने दी हैं जिनका विचाराधीन संशोधन से कोई सम्बन्ध नहीं था पर उनको अनुमति मैंने इसलिये दी कि मैं यह अनुभव करता था कि उनके द्वारा जो विचार व्यक्त किये जा रहे हैं, वह शायद अगर उस अनुच्छेद विशेष के प्रसंग में नहीं तो किसी आगामी अनुच्छेद के प्रसंग में विचारणीय हों। इसके अलावा मैं माननीय सदस्यों को यह बात ध्यान में रखने को कहूंगा कि तर्कों की पुनरावृत्ति न होनी चाहिये। अगर

कोई सदस्य यह समझता है कि उनकी किसी बात के लिये और स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है और जो कुछ कहने जा रहे हैं वह सभा के सामने कहा जा चुका है तो उन्हें न बोलना चाहिये। अपनी इस अपील के साथ मैं बहस-मुबाहिसे का काम शुरू करता हूं। आशा है, सदस्यगण मेरी बात का ख्याल रखेंगे।

***डा. पी.के. सेनः** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यह स्पष्ट है कि इस प्रश्न पर सभा में जब पहले निर्णय किया गया था तब से उसके सम्बन्ध में सदस्यों में बहुत कुछ विचार परिवर्तन हो गया है। मैं खुद भी यह मंजूर करता हूं कि इस सम्बन्ध में विचार बदलने वालों में मैं भी एक हूं। उस समय विशेषकर जब कि गत बैठक में इस पर निर्णय किया गया था, मुझे अच्छी तरह याद है कि सदस्यों के दिमाग में इस बात का अधिक ख्याल था कि गवर्नर का चुनाव इस तरह हो कि वह प्रशासन में हस्तक्षेप कर सके, अगर दलबंदी के झगड़े और छल-प्रपंच के कारण प्रशासन के भंग या व्यर्थ हो जाने की आशंका पैदा हो जाये, उस समय ऐसा महसूस किया गया था कि राज्यपाल प्रशासन में हस्तक्षेप कर सके, इसके लिये आवश्यक यह है कि उसे इस बात की अनुभूति हो, उसे समूचे प्रांत का समर्थन प्राप्त है। यही कारण था कि इस बात पर कि राज्यपाल किस तरह चुना जाये, बहुत ज्यादा जोर दिया गया था और यह तय किया गया था कि न तो नियुक्ति द्वारा और न मनोनयन द्वारा किसी को राज्यपाल बनाया जाये, बल्कि निर्वाचन में और वह भी प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर किये गये निर्वाचन में जो व्यक्ति चुना जाये वही राज्यपाल बनाया जाये। पर उसके बाद शांति और गंभीरतापूर्वक विचार करने पर अब सदस्यगण इस नतीजे पर पहुंचे गये हैं कि ऐसे आम चुनाव से, जिसमें कि राज्यपाल का प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुनाव किया जाये, हर प्रान्त पर बड़ा भारी कार्यभार पड़ जायेगा और उससे उस उद्देश्य की शायद ही कोई सिद्धि हो, जिसके लिये कि इसकी व्यवस्था की जा रही है। आखिर इस व्यवस्था का प्रयोजन क्या है? प्रयोजन यह है कि लोकतंत्रीय सिद्धांतों का पूर्णतः पालन किया जा सके। अब सवाल यह उठता है कि राज्यपाल का प्रशासन में हस्तक्षेप करना क्या लोकतंत्रीय सिद्धांत के अनुकूल होगा या इससे उसका हनन होगा? मैं तो कहता हूं कि राज्यपाल अगर प्रशासन में हस्तक्षेप करता है, तो फिर लोकतंत्रीय व्यवस्था का कोई मतलब नहीं रह जाता है। हमने यह फैसला किया है कि राज्यपाल संवैधानिक रूप से प्रमुख रहेगा। प्रान्त में उत्तम शासन चलाने की समूची जिम्मेदारी प्रान्त के मुख्यमंत्री और उसके मंत्रिमंडल पर रहेगी। प्रशासन विषयक सभी शक्ति मुख्यमंत्री एवं उसके मंत्रिमंडल में निहित रहेगी। ऐसी हालत में अगर ऐसा कोई पदाधिकारी रखा जाता है, जो यह समझता हो कि समूचे प्रान्त का समर्थन उसे प्राप्त है, सुतरां वह प्रान्त के शासन में हस्तक्षेप कर सकता है, तो यह व्यवस्था लोकतंत्र के सर्वथा विपरीत होगी और इससे लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों का हनन होगा। ऐसी व्यवस्था होने से तो मुख्यमंत्री और उसके मंत्रिमंडल के लिये यह सम्भव न हो सकेगा कि वह ऐसे उपायों की व्यवस्था कर सके जो उसके ख्याल से प्रान्त के हित में उत्तम हों। सद्यस्कृत्यता की विशेष स्थितियों में ही राज्यपाल को प्रान्त की शासन व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की शक्ति होनी चाहिये और वह भी एक थोड़ी अवधि के लिये। यह जरूर है कि सद्यस्कृत्यता सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल उन्हीं अवस्थाओं और परिस्थितियों में करेगा जहां उसको ऐसा करना उचित हो। किन अवस्थाओं में वह इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है यह विधान में एक स्थल पर बता दिया गया है पर साधारणतः राज्यपाल का प्रकार्य यही रहेगा कि शासन

[डा. पी.के. सेन]

में हस्तक्षेप न करे और सर्वथा तटस्थ रहे। इसलिये लोकतंत्रीय राज्य के हितों का ध्यान रखते हुए और उस संसदात्मक शासन व्यवस्था के हित का ध्यान रखते हुए, जिसे कि हमने अपने विधान का आधार माना है, वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन द्वारा राज्यपाल को नियुक्त करना सर्वथा अनावश्यक और अनुचित होगा।

राज्यपाल के चुनाव के लिये जो दूसरी व्यवस्था सुझाई गई है, वह यह है कि उसका चुनाव विधान मंडलों द्वारा किया जाये। इस व्यवस्था में भी एक बहुत बड़ी खराबी रहेगी—यह जरूर है खराबी का रूप कुछ दूसरा ही होगा। खराबी यह रहेगी कि मुख्यमंत्री और राज्यपाल के बीच संघर्ष खड़ा हो जायेगा, जिसमें मुख्यमंत्री और उसका मंत्रिमंडल एक तरफ होगा तथा राज्यपाल तथा उसके समर्थक एक ओर होंगे। इसलिये मेरा अपना विश्वास यह है कि यह व्यवस्था संसदात्मक शासन के लिये हितकर होने के बदले मुख्यमंत्री और उसके मंत्रिमंडल के लिये एक कांटा बन जायेगी और ऐसे किन्हीं उपायों का अवलम्बन करने से उन्हें रोकेगी जो प्रान्त के शासन के हित में आवश्यक हों। तो सवाल उठता है कि किया क्या जाये? उत्तर यह है कि हमें कोई दूसरी समुचित व्यवस्था ढूंढनी होगी। अगर हमें इस बात का निश्चय है कि अनुच्छेद 131 में राज्यपाल के निर्वाचन के लिये जो दो तरीके सुझाये गये हैं—इस अनुच्छेद में दोनों तरीकों का उल्लेख है—उनसे हमारे लोकतंत्रीय प्रयोजन की सिद्धि न होगी, तो फिर और दूसरा उपाय क्या हो सकता है? दूसरा उपाय जो हमारे सामने रखा गया है वह यह है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के हाथ में होगी और परम्परा के अनुसार केन्द्रस्थ प्रधानमंत्री की राय से राष्ट्रपति उसकी नियुक्ति करेगा। इस सम्बन्ध में यहां कई माननीय सदस्यों ने, जिन्होंने कि इस व्यवस्था पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, यह कहा है कि राष्ट्रपति के हाथ में इतना अधिकार देना लोकतंत्र के लिये हितकर न होगा। फिर प्रश्न यह है कि कौन सी व्यवस्था अधिक लाभप्रद होगी? निर्वाचन के लिये जो दो तरीके बताये गये हैं, उनके अग्राह्य होने पर राज्यपाल की नियुक्ति का अधिकार हम राष्ट्रपति को दें, या न दें, जिसे प्रधानमंत्री के परामर्शानुसार काम करना होगा। चूंकि राष्ट्रपति प्रान्त के प्रति सर्वथा तटस्थ रहेगा। वह इस सम्बन्ध में इस तरह से काम कर सकेगा, जो प्रान्त के हित के लिये अनुकूल हो, भले ही वह जिस व्यक्ति को नियुक्त करने जा रहा हो वह उस प्रान्त का हो या देश के अन्य किसी भाग का। पर ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल बनाने में, जो कि प्रान्त से तटस्थ हो, एक और भी बड़ा लाभ है। मेरा मतलब यह नहीं है कि लाजिमी तौर पर प्रान्त से बाहर का ही आदमी राज्यपाल बनाया जाये। पर अगर ऐसी व्यवस्था रखी जाती है तो उसमें लाभ जरूर है। लाभ यह है कि उसका दिमाग बिल्कुल आजाद रहेगा, सर्वथा तटस्थ रहेगा और वहां के भिन्न-भिन्न वर्गों या विचारों के लोगों से कोई पूर्व सम्पर्क न होने के कारण वह सदा तटस्थ दृष्टि रख सकेगा।

जैसा कि यहां सदस्यों को बताया जा रहा है, राज्यपाल का प्रकार्य यही होगा कि वह शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलने में सहायता दे। वह शासन व्यवस्था में हस्तक्षेप करने के लिये नहीं होगा बल्कि उसे सुचारू रूप से चलाने में मदद देने के लिये। अगर

राज्य के विभिन्न वर्गों में, विभिन्न सम्प्रदायों में परस्पर कोई मत विरोध है तो उन सभी में ऐक्य स्थापित करना राज्यपाल का काम होगा। मुख्यमंत्री और मंत्रिमंडल के हाथ में जो शासन-व्यवस्था रहेगी उसे सुचारू रूप से चलाने में मदद देना ही राज्यपाल का कर्त्तव्य होगा। राज्यपाल का प्रकार्य यह नहीं होगा कि वह शासन व्यवस्था में हस्तक्षेप करे और अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा करे। असल में राज्यपाल की सृष्टि ही इस उद्देश्य से की जा रही है कि वह शासन की मशीन को सुव्यवस्थित रखे और यह देखे कि उसके कलपुरजे सब ठीक-ठीक चल रहे हैं और यह काम वह हस्तक्षेप द्वारा नहीं बल्कि मित्रवत् परामर्श देकर ही सम्पादित कर सकेगा। राज्यपाल के सम्बन्ध में जब हम ऐसी धारणा रख रहे है, तो हमारा विश्वास है कि सुन्दर शासन के लिये यही अच्छा होगा कि हम सर्वसम्मति से यही निर्णय करें कि राज्यपाल को चुनने का सर्वोत्तम तरीका है राष्ट्रपति द्वारा उसका मनोनीत किया जाना।

***श्री विश्वनाथ दास:** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, राज्यपाल के चुनाव से सम्बन्ध रखने वाले अनुच्छेद 131 पर बहस-मुबाहिसे के सिलसिले में मैं उन कठिनाइयों को समझ रहा हूं जो कि एक आम निर्वाचन में आ सकती है जिसमें कि समूचे प्रान्त के प्रत्येक बालिग नागरिक भाग लेंगे। बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचन द्वारा राज्यपाल को चुना जाये, यह एक बड़ी ही कठिन पद्धति होगी और इसमें अवाध्य रूप से बड़ी जटिलतायें पैदा होंगी। इस सम्बन्ध में मसौदा समिति ने जो दूसरा वैकल्पिक सुझाव रखा है, वह भी मुझे सन्तोषजनक नहीं मालूम होता है। इन्हीं सब कारणों से मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी—संशोधन नं. 2023 यह संशोधन चाहे जैसा भी हो पर हमें सदस्यों की सामूहिक बुद्धिमता को मानना ही होगा। इस प्रश्न पर बोलते हुए श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने हमारा ध्यान पूर्ववर्ती ब्रिटिश उदाहरण की ओर आकृष्ट किया था। क्या वह ब्रिटेन का एक भी पूर्ववर्ती उदाहरण दे सकते हैं जब कि कोई ब्रिटिश गवर्नर नियुक्त किया गया हो? इस सम्बन्ध में एकमात्र पूर्ववर्ती उदाहरण, जहां तक मैं याद कर पाता हूं, है आयरलैंड के लार्ड लेफ्टिनेंट का। लार्ड लेफ्टिनेंट एक गैर-सरकारी व्यक्ति थे, जिसे मंत्रिमंडल ने सदा मनोनीत किया। ब्रिटिश उदाहरण का हवाला देना तो उस बात के विरुद्ध जायेगा जिसका वह यहां पक्ष प्रतिपादन कर रहे हैं। कनाडा के पूर्ववर्ती उदाहरण का भी यहां उल्लेख उन्होंने किया है, पर मैं उनसे कहूंगा कि जिस पद्धति को हम यहां अपनाना चाहते हैं वह दक्षिणी अफ्रीका की पद्धति से ज्यादा मिलती जुलती है, जहां प्रान्तों में स्वायत्त शासन नहीं के बराबर है। ऐसी स्थिति में श्रीमान्, विधान को शीघ्र पास करने के लिये आप चाहे कितने ही फिक्रमन्द क्यों न हों, माननीय सदस्यों ने जो पथ अपनाया है उसमें देर होना अनिवार्य है। आवश्यक बातें, जिन पर कि सभा विचार कर चुकी थी और जिनको कि वह स्वीकार कर चुकी थी, अब हटाई जा रही हैं। उनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का अब सुझाव दिया जा रहा है। इन सब बातों के कारण यहां वाद-विवाद होगा ही और वाद-विवाद होने पर विधान के पास होने में देर होना लाजिमी है। इसलिये मैं तो आपसे यही कहूंगा कि हम लोगों ने कोई भी ऐसा काम नहीं किया है, जिसके लिये हमें आप से उपदेश मिलें या जिसके लिये हम आपसे उपदेश का अनुरोध करें, क्योंकि हमने तो कभी यह इच्छा आपके सामने नहीं व्यक्त की है कि इस पर विचार किया जाये कि हमें बोलने का मौका दिया जाये। यहां यह कहा गया है, श्रीमान्, कि राज्यपाल के प्रकार्य बहुत ही

[श्री विश्वनाथ दास]

कम रहेंगे, अगर अपनी नई व्यवस्था में, जिसको कि हम विधान में लिपिबद्ध कर रहे हैं, राज्यपाल के प्रकार्य बहुत ही कम हैं तो फिर उसको आप रखते ही क्यों हैं? राज्यपाल को एक खासी रकम वेतन के रूप में दी जायेगी और भत्ता दिया जायेगा। ऐसी हालत में जो प्रकार्य उसके लिये निर्धारित किये जा रहे हैं, अगर वह बहुत उपयोगी और आवश्यक नहीं हैं और जो रकमें आप उसे देंगे उतने के लायक नहीं हैं, तो मेरी समझ से तो राज्यपाल की व्यवस्था ही को हम हटा दें तो अच्छा है। मेरा दावा तो यह है कि नई व्यवस्था में–अगर सभा इसमें कोई परिवर्तन कर दे तो बात दूसरी है—राज्यपाल में कई निश्चित और महत्त्वपूर्ण शक्तियां सन्निहित रखी गई हैं। अध्यादेश निकालने की शक्ति, किसी विधेयक को विचारार्थ पुनः सभा को लौटाने की शक्ति—अवश्य ही भारत-शासन—अधिनियम 1935 में जिस रूप में यह शक्ति है उससे भिन्न रूप में—मंत्रियों को बरखास्त करने की और निर्वाचन बढ़ाने की शक्ति राज्यपाल में सन्निहित रखी गई हैं। मैं दावे से कहता हूं कि ये सभी शक्तियां जो नई व्यवस्था में राज्यपाल को प्राप्त रहेंगी वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिये विधान में जिन बातों को हम स्वीकार कर चुके हैं, उनमें अगर कोई परिवर्तन किया जाता है तो उसका मतलब यह होगा कि दायित्व के सम्बन्ध में इस समय जो प्रावधान है उनमें बहुत परिवर्तन हो जायेगा। अगर ये शक्तियां चालू रहने दी जाती हैं तो मैं दावें के साथ कहूंगा कि नवीन व्यवस्था में राज्यपाल को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रकार्य सम्पादित करना होगा। इस सम्बन्ध में मुझे बड़ा ही कटु अनुभव मिल चुका है। मैं एक प्रान्त का मुख्यमंत्री था और मुझे मालूम है कि गवर्नर (राज्यपाल) मेरी पार्टी को तोड़ने पर तुला था। मैं जानता हूं कि वह दिन अब चले गये हैं और अब एक नया जमाना आ रहा है। मैं अपने माननीय मित्रों से कहूंगा कि वह भविष्य की ओर देखें। अगर यह बात होती कि हमारे नेता लोग सदा अपने पदों पर बने रहेंगे, पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे महामना व्यक्ति ही देश का कार्यभार सम्भालते रहेंगे, तो इस सम्बन्ध में मुझे कोई भी शिकायत नहीं होती। पर मैं माननीय बन्धुओं से कहूंगा कि मानव जीवन कोई स्थायी चीज नहीं है; हम कितना भी क्यों न चाहें पर मानव जीवन तो अस्थायी ही रहेगा। पार्टियां रहेंगी ही और नई नई पार्टियां बनेंगी। पार्टियों का सदा उत्थान और पतन होता ही रहेगा। विश्व में इतिहास में ऐसे उत्थान और पतन के आपको अनेक उदाहरण मिलेंगे। ऐसी व्यवस्था में मैं माननीय सदस्यों से आग्रह करूंगा कि वह भविष्य का ख्याल रखें और इस बात की ओर ध्यान दें कि जो नई व्यवस्था वह अपनाने जा रहे हैं वह कहां तक सुचारू रूप से काम कर सकेगी।

वह नई व्यवस्था क्या है जो भविष्य में लागू होने जा रही है? भविष्य में जो लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था हम लागू करने जा रहे हैं वह पार्टी प्रणाली के आधार पर चालू की जायेगी। समाचार पत्रों में यह बात दावे के साथ कही गई है कि हमारी व्यवस्थापिका सभा में कोई विरोधी पक्ष वर्तमान में नहीं है, सुतरां कांग्रेस पार्टी जो चाहती है वह पास करती है। मैं इस व्यवस्था से कतई सहमत नहीं हूं और उपरोक्त राय रखने वालों के साथ हूं। इतना जरूर है कि इसकी आलोचना जो भी की जाये, पर यह एक तथ्य है कि लोकतंत्रीय

व्यवस्था देश और राज्य के लिये हितकर हो इसके लिये एक सुसंगठित और सुचारू रूप से काम करने वाली पार्टी-प्रणाली नितांत आवश्यक है। ऐसी हालत में जबकि पार्टी-प्रणाली का अस्तित्व एक मानी हुई बात है, यह कोई नहीं कह सकता कि कौन पार्टी अधिकारारूढ़ हो जायेगी। सम्भव है कि केन्द्र में जो दल अधिकारारूढ़ है उससे सर्वथा एक भिन्न दल किसी प्रान्त में अधिकारारूढ़ हो जाये। ऐसी दशा में क्या स्थिति होगी? अधिनियम के अनुसार तो राज्यपाल संवैधानिक प्रमुख के रूप में रहेगा। उसकी नियुक्ति की जायेगी प्रधानमंत्री की सलाह से, जो एक दूसरी पार्टी का नेता रहेगा। माननीय मित्र श्री खेर ने इस प्रश्न पर बोलते हुए अवश्य ही एक मतलब की, जानकारी की बात कही है। आपने कहा है कि राज्यपाल की नियुक्ति मंत्रिमंडल के परामर्श से की जायेगी। अगर ऐसा होता है—मैं नहीं जानता कि नियुक्ति होगी किस तरह—तो मनोनीतकरण द्वारा उसको नियुक्त करना उतना आपत्तिजनक नहीं रह जाता है। पर अपनी विधानसभा में होने वाले वाद-विवादों से यह प्रकट होता है कि प्रधानमंत्री ही राज्यपाल की नियुक्ति करेगा। आज जो हमारा प्रधानमंत्री है वह विश्व के चन्द महान् पुरुषों में से एक है। उससे तो हम न्याय की आशा कर सकते हैं और करते हैं। उसका अपना कोई स्वार्थ है नहीं, जिसे वह सिद्ध करने का प्रयास करेगा। पर केन्द्र में ऐसा भी प्रधानमंत्री आ सकता है जिसका अपना स्वार्थ हो। अगर राज्यपाल वही बात करना चाहता है जिसका उल्लेख मेरे माननीय मित्र परम विधानवेत्ता डा. सेन ने किया है और प्रान्त के बहुमत प्राप्त दल के शासन में हस्तक्षेप करता है, तो यह एक बहुत ही गम्भीर बात होगी। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं और उनके साथ हूं, जो ऐसा अनुभव करते हैं कि नये विधान में जो व्यवस्था हम रखना चाहते हैं वह हमारे लिये उपयोगी होगी। मैं दावे के साथ कहूंगा कि आप दोनों ही बातें नहीं कर सकते हैं। लोकतंत्रात्मक और एकतंत्रात्मक, इन दोनों व्यवस्थाओं को एक साथ नहीं चालू रख सकते हैं। प्रान्त में जो शासन-व्यवस्था आप रखने जा रहे हैं वह पांव से गर्दन तक तो लोकतंत्रीय रहेगी, पर सिर होगा उसका एकतंत्रात्मक। आपकी इस व्यवस्था का असफल होना अनिवार्य है। इस व्यवस्था को रखकर आप कलह पैदा करने जा रहे हैं। मैं यह जानता हूं कि इस व्यवस्था के विरुद्ध मैं अपना मत नहीं दूंगा, क्योंकि जैसा मैं कह चुका हूं मैं सभा की सामूहिक बुद्धिमत्ता के सामने सर झुकाऊंगा ही। पर भविष्य में इस व्यवस्था का क्या परिणाम होगा इसके बारे में मैं अपनी राय जरूर ही यहां साफ-साफ बता देना चाहता हूं और उसे दर्ज करा देना चाहता हूं। मुझे इसका अनुभव मिल चुका है और मुझे इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है कि इसके सम्बन्ध में मेरा जो अनुभव रहा है उसी की पुनरावृत्ति अब होगी। माननीय सरदार पटेल अगर यहां मौजूद होते तो मैं बताता कि गवर्नर जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद का यहां एजेंट था, किस तरह हमारी पार्टी को तोड़ने का सतत प्रयास करता रहा। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधीन गवर्नर जो कुछ किया करते थे, उसी की पुनरावृत्ति अब अधिकारारूढ़ दल करेगा। पर इतना जरूर मैं निःसंकोच कहूंगा कि हमारे नेता उतना नीचे हर्गिज न गिरेंगे और न उस रूप में काम करने की कल्पना ही करेंगे जिसमें कि पूर्ववर्त्ती शासन करता था।

हमें यह बताया जा रहा है कि प्रान्तों में ऐक्य लाने के जो उपाय हैं, उनमें यह भी एक है। पर इस व्यवस्था से आप ऐक्य कैसे ला सकते हैं? यह असम्भव है। इन कार्यों द्वारा आप ऐक्य कभी ला नहीं सकते हैं अपने माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद

[श्री विश्वनाथ दास]

की बात तो मैं समझ सकता हूं। वह शुद्ध एकतंत्रात्मक व्यवस्था के हामी हैं। वह तो यह चाहते हैं कि समूचा विधान फाड़ कर फेंक दिया जाये। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में उनको कोई विश्वास नहीं है। उनके विचारों से मैं सहमत नहीं हूं पर उनके विचारों का आदर करता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, आप दोनों ही बातें नहीं पा सकते हैं। लोकतंत्रात्मक और एकतंत्रात्मक दोनों व्यवस्थायें आप साथ-साथ नहीं चला सकते हैं मेरे माननीय मित्र यह फरमाते हैं कि केन्द्रस्थ प्रधानमंत्री तो भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी होगा इसलिये वह अगर किसी व्यक्ति को राज्यपाल मनोनीत करता है तो इसे आप एकतंत्र नहीं कह सकते हैं। पर यह बात लोकतंत्रीय भी नहीं कही जा सकती है। भले ही प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति ही किसी को मनोनीत करें, पर प्रधानमंत्री जिस व्यक्ति को कहेगा उसी को राष्ट्रपति मनोनीत करेगा और यह व्यवस्था कभी भी लोकतंत्रामक नहीं कही जा सकती है। हम गांवों के निवासियों को अधिकार दे रहे हैं। हम ग्राम-पंचायतों को संगठन करने जा रहे हैं। आप पंचायत को यह अधिकार दे रहे हैं कि वह अपना प्रधान चुन ले। क्या विधान में यही अधिकार आप विधानसभा को नहीं देंगे? माननीय मित्र श्री रामालिंगम चेटियर तो एक कदम और आगे बढ़ गये हैं। आप यह चाहते हैं कि जिला बोर्डों और म्युनिसिपल क्षेत्रों को चुनाव के इलाके में शामिल करके प्रान्तों के निर्वाचक समूह का आकार और बढ़ा दिया जाये। प्रश्न का यह पहलू यह भी है, जिसके सम्बन्ध में एक उपाय के लिये हमें खोजना पड़ सकता है। पर इस बात को सभा ने अस्वीकार ही कर दिया है। न इस बात के लिये मैंने कोई वकालत ही यहां की थी और न मुझे इसके अस्वीकृत होने का खेद है। मेरा कहना यह है कि सभा अगर एक निर्वाचित व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में रखना चाहे तो उसे इस अधिकार से आप इन्कार नहीं कर सकते है और इन्कार करने का आप कोई औचित्य भी नहीं बता सकते हैं। माना, आपका यह कहना सकारण हो सकता है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर चुना हुआ एक राज्यपाल भी हो और एक दायित्वपूर्ण प्रधानमंत्री भी हो, ऐसी व्यवस्था कहीं नहीं वर्तमान है, सुतरां यह अवांछनीय है। आपके इस कहने में औचित्य हो सकता है, पर अगर सभा निर्वाचित राज्यपाल रखने का फैसला करती है तो आप कैसे रोक सकते हैं? सन् 1947 के अधिवेशन में जब इस प्रश्न पर यहां विचार किया गया था तो मैंने सदस्यों से आग्रह किया था कि यह व्यवस्था उचित नहीं होगी, पर मेरी बात मानी नहीं गई और जैसा कि मैंने बतलाया है कि मैं पार्टी और सभा की संयुक्त बुद्धिमत्ता के आगे नतमस्तक हो जाता हूं, मैंने सभा के निर्णय को स्वीकार किया था। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह सभा और इसके माननीय सदस्य इस बात के लिये बहुत मशहूर हो चले हैं कि वह अपने निर्णयों का सदा बदला करते हैं। हमने एक समिति नियुक्त की थी। माननीय सरदार पटेल जैसा व्यक्ति उसका सभापति था। उस समिति की सर्वसम्मत सिफारिशों को हमने विधान के मसौदे में स्थान दिया। इस प्रश्न पर सभा ने पहले ही खूब बारीकी से सोच विचार कर लिया था और तब उसे मसौदा-समिति के पास भेजा था। और आज विधानान्तर्गत रखी हुई व्यवस्था में हम इतना बड़ा परिवर्तन करने का प्रस्ताव रख रहे हैं। अगर आप पूर्व निर्णीत व्यवस्था को बदलते हैं तो मेरे ख्याल में यह उन सदस्यों के प्रति अन्याय होगा जो लोक अनुपस्थित रह गये हैं, यह समझते हुए कि विधान में अब कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया जायेगा।

***अध्यक्षः** इस आशा में कि उसके मत की आवश्यकता न पड़ेगी, किसी भी सदस्य को अनुपस्थित होने का अधिकार नहीं है। हर सदस्य से यही आशा की जाती है कि वह अपनी जगह पर मौजूद रहेगा। श्री विश्वनाथ दास अभी यह कह रहे थे कि कुछ सदस्य यह सोचकर गैर-हाजिर रह गये कि मसौदा ज्यों का त्यों मंजूर कर लिया जायेगा। इसीलिये मैंने यह बता दिया है कि किसी भी सदस्य को मसौदे की किसी बात के सम्बन्ध में यह नहीं मान लेना चाहिये कि वह ज्यों का त्यों रह जायेगा। सभा की बैठक में उपस्थित रहना उसका फर्ज है।

***श्री विश्वनाथ दासः** इसके लिये मैं अध्यक्ष महोदय का कृतज्ञ हूं और साथ ही उस सदस्य का भी कृतज्ञ हूं जिसने मेरी बात का विरोध किया है। पर यह सोचना कि जब सभा में मसौदे की किसी बात पर एक बार पूरी तरह विचार हो चुका है, तो पुनः उसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया जायेगा, क्या गलत होगा?

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): बिल्कुल ही गलत होगा।

***एक अन्य माननीय सदस्यः** अगर यह गलत नहीं है तो आप आये ही यहां क्यों?

***श्री विश्वनाथ दासः** एक-दूसरे मित्र मुझसे यह पूछ रहे हैं कि मैं यहां आया ही क्यों? हम सब यहां क्यों आये हैं इसे वह भी जानते हैं और मैं भी जानता हूं। अस्तु, इस भाष्य को मानकर मैं चलने को तैयार नहीं हूं। इस प्रश्न के सम्बन्ध में मेरी क्या अनुभूति है उसे यहां व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य और दायित्व समझता हूं। मैं यह भी बता दूं कि उड़ीसा प्रान्त के और अन्तर्गत के राज्यों से आये हुये भी प्रतिनिधियों से मैंने इस सम्बन्ध में परामर्श कर लिया है और वह सभी मेरे इस ख्याल से सहमत हैं कि यह व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं काम कर सकेगी।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं उस संशोधन का समर्थन करने के लिये खड़ी हो रही हूं, जिसे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने पेश किया है और जिसका समर्थन माननीय मित्र कामत ने किया है। मैं उसे स्पष्ट रूप से स्वीकार करूंगी। एक अरसा तक मेरी भी यही राय थी कि प्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रणाली इस सम्बन्ध में अन्य प्रणालियों के मुकाबले में ज्यादा अच्छी होगी। पर अब इस सम्बन्ध में मैंने अपनी राय बदल दी है। जिन लोगों ने इस प्रश्न पर विचार किया है और इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि राज्यपाल को मनोनीत या नियुक्त करने का जो सुझाव इस संशोधन में रखा गया देखती है, वह हमारी वर्तमान परिस्थिति में अन्य किसी व्यवस्था से जरूर अच्छा है, उन में मैं भी एक हूं। मैं यह देखती हूं, श्रीमान्, कि जिन मित्रों ने राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के मनोनीत किये जाने के प्रस्ताव का विरोध किया है, उन्होंने दो कारणों से ही उसका विरोध किया है। उनका कहना है कि यह व्यवस्था लोकतंत्रीय सिद्धांतों से सामंजस्य नहीं रखती है और साथ ही इससे राष्ट्रपति को लोकतंत्रीय आदर्श को बड़ी क्षति पहुंचेगी, अगर राज्यपाल के निर्वाचन में जनता मताधिकार के प्रयोग से वंचित रखी जाती है और लोकतंत्र की आधारभूत इस विचारधारा का कि प्रत्येक नागरिक को मताधिकार के प्रयोग का अधिकार होगा, सर्वथा हनन हो जायेगा, अगर राष्ट्रपति को यह शक्ति दे दी जाती है, मैं यह निवेदन

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

करूंगी कि किसी भी व्यवस्था की उपयोगिता या अनुपयोगिता को आखिर आप उसके परिणामों से ही तो जाचेंगे। कुछ ऐसे प्रकार्य हैं जिनको राज्यपाल सम्पादित करेगा। हम विधान में राज्यपाल की व्यवस्था इसलिये चाहते हैं कि हमारा यह ख्याल है कि इस व्यवस्था से प्रान्त में सुव्यवस्था रहेगी और अगर राज्यपाल अपने प्रकार्यों और दायित्वों के प्रति जागरूक है तो इस व्यवस्था से जनता के परस्पर विरोधी वर्गों में एक ऐक्य और समन्वय स्थापित हो सकेगा। इसी उद्देश्य से ही इस व्यवस्था का प्रस्ताव रखा जा रहा है। इसके पीछे मूलभूत कल्पना यह है कि राज्यपाल को दलगत राजनीति से, पार्टी के प्रपंच से ऊपर रखा जाये। मसौदे के अनुच्छेद 135 के एक खंड में यह कहा गया है कि राज्यपाल किसी भी सदन (हाउस) का सदस्य न रहेगा और अगर कोई ऐसा व्यक्ति इस पद के लिये चुना जाता है, जो किसी सदन का सदस्य है, तो चुने जाने के पूर्व उसे अपनी सदस्यता से इस्तीफा देना होगा। इस व्यवस्था के पीछे मूलभूत विचार यह है कि राज्यपाल दलबन्दी की राजनीति और झगड़ों से ऊपर रहे। मैं पूछती हूं कि अगर राज्यपाल को जनता की मरजी पर पार्टी के निर्णयों के अधीन रखा जाता है, तो आपकी यह कल्पना कि वह सर्वथा तटस्थ रहेगा, कभी पूरी हो सकती है? इसलिये मैं तो यह अनुभव करती हूं कि इस संशोधन के मुकाबले में जिस अन्य प्रणाली को अपनाने का सुझाव यहां कुछ सदस्य दे रहे हैं वह बहुत खतरनाक है। इस संशोधन का विरोध करने वाले मित्र ने इसके खिलाफ दूसरी बात यह पेश की है कि इससे राष्ट्रपति को आवश्यकता से अधिक शक्ति मिल जाती है। मैं पूछती हूं कि किसी व्यक्ति को राज्यपाल पद के लिये पसन्द करने के पहले इस सम्बन्ध में क्या राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से और प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमंडल से परामर्श न करेगा? जो लोग मनोनीत राज्यपाल की नियुक्ति के पक्ष में हैं, उन्होंने कल यह कहा था कि इस व्यवस्था से एक बहुत ही सुखद और उपयोगी परम्परा यह चालू हो जायेगी कि इस बारे में प्रान्त के मुख्यमंत्रियों से परामर्श लिया जाने लगेगा। मेरा तो ख्याल है कि यह परम्परा चालू हो चुकी है और अब विकास पाती जा रही है। जब भी कहीं गवर्नर की नियुक्ति करनी होती है तो उस प्रान्त के मुख्यमंत्री से अनिवार्य रूप से परामर्श लिया ही जाता है। इसलिये मैं समझती हूं कि मित्रों की यह जो आशंका है कि राष्ट्रपति अपने दायित्वों का पालन राष्ट्रहित का ध्यान रखते हुए अच्छी तरह न करेगा, यह सर्वथा निराधार है। इसलिये इस सम्बन्ध में समूची जिम्मेदारी राष्ट्रपति पर छोड़ देने में कोई आशंका नहीं है। जब राष्ट्रपति इन दायित्वों का पालन उतनी सतर्कता से करेगा तो इनको उस पर छोड़ देने में मुझे तो खतरे का कारण कोई नहीं दिखाई देता है। मैं अपने माननीय मित्रों को यह भी बता दूं कि जो व्यक्ति इतने महान् दायित्व का कार्यभार ग्रहण करेगा वह यों ही नहीं ग्रहण करेगा, बल्कि खूब सोच विचार कर लेने के बाद ही ग्रहण करेगा क्योंकि वह जानता है कि उसे श्री रोहिणी कुमारी चौधरी, श्री विश्वनाथ जैसे मित्रों की आलोचना का मुकाबला करना पड़ेगा, जो इस प्रस्ताव के खिलाफ हैं और राष्ट्रपति को यह अधिकार देने में डरते हैं। इसलिये मैं यह कहूंगी कि इसमें खतरे की कोई बात नहीं है और अगर कोई अवांछनीय व्यक्ति इस पद के लिये मनोनीत किया जाता है तो लोग जाकर राष्ट्रपति से यह कह सकते हैं कि वह व्यक्ति अवांछनीय क्यों है और किन कारणों से उसे हटा देना चाहिये?

इसलिये मैं तो यही अनुभव करती हूं, मनोनीतकरण द्वारा राज्यपाल को नियुक्त करने में कोई खतरा नहीं है और मित्रों से इस बात के लिये आग्रह करूंगी कि यहां यह तर्क जो रखा गया है कि वर्तमान स्थिति में इससे अधिक सुन्दर और सुरक्षामूलक व्यवस्था दूसरी कोई हो नहीं सकती है, उससे उन्हें यकीन हो जाना चाहिये। खुद मसौदा-समिति ने इस सम्बन्ध में अब अपना विचार बदल दिया है और वैकल्पिक सुझाव यह रखा है कि सदनों द्वारा निर्वाचित चार अभ्यर्थियों की तालिका में से किसी एक को राज्यपाल नियुक्त किया जाये। जो वैकल्पिक व्यवस्था सुझाई गई है वह निराली है और दुनिया में कहीं भी इस तरह की व्यवस्था नहीं चालू है। और फिर गुणागुण के आधार पर भी इस तालिका-व्यवस्था की कोई वकालत नहीं की जा सकती है। मैं तो यह कहूंगी कि इन व्यवस्था में जिम्मेदारी किसी एक पर नहीं रहेगी। इसमें जिम्मेदारी बंटी रहेगी और ऐसी व्यवस्था के जो दुर्गुण हो सकते हैं वह सब इसमें रहेंगे। इसमें दायित्व न तो राष्ट्रपति पर रह जायेगा न केन्द्रीय मंत्रिमंडल पर और न प्रान्तीय मंत्रिमंडल पर, क्योंकि इस व्यवस्था में दायित्व कइयों में बंटा रहेगा। इस तालिका-प्रणाली में खतरा इस बात का है कि चारों उम्मीदवारों को अगर समान संख्या में मत न मिले, जो कि लाजिमी है, तो उस हालत में अगर राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को चुन लेता है, जिसे कम मत प्राप्त हुए हैं, तो उस व्यक्ति और प्रान्तीय विधान मंडल में संघर्ष पैदा हो जायेगा। ऐसी हालत में स्वाभाविक है कि वह जिम्मेदारी लेना न चाहेगा। अन्ततोगत्वा परिणाम यह होगा कि खुद सभा को ही उस का चुनाव करना होगा। चुनाव हो या नियुक्ति, अगर वह सभा द्वारा ही होती है तो मैं नहीं समझती कि उसमें कोई महत्त्व है।

मैं यह भी कहना चाहती हूं कि अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति अपनाने से वस्तुस्थिति में कोई सुधार नहीं आ जायेगा। इस पद्धति को अपनाने का परिणाम यही होगा कि समूची सभा दलों में बंट जायेगी और वह यहां परस्पर संघर्ष करने लगेंगे। फ्रांसीसी प्रणाली के सारे दुर्गुण और सारी असुविधायें इससे पैदा हो जायेंगी। हमारे कई विश्वविद्यालयों में तालिका प्रणाली का और उसके आधार पर नियुक्ति का प्रयोग किया जा चुका है, पर इन प्रयोगों का परिणाम ऐसा नहीं रहा है कि हम कह सकें कि यह पद्धति वहां अच्छी तरह कारगर रही है। इस पद्धति पर जो भी व्यक्ति नियुक्त किया गया, बाद मैं उसे अपदस्थ होना पड़ा। परिणाम यही हुआ कि हारे हुए उम्मीदवार ने एक विरोधी पक्ष कायम कर लिया और वाइस चान्सलर के सामने बड़ी ही मुसीबतें पैदा कीं। इसलिये मैं कोई कारण नहीं देखती कि हम इस सीधी-साधी प्रणाली को क्यों न अपनायें जिससे राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करे। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन का हार्दिक समर्थन करती हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस खंड को विधान के महत्त्वपूर्ण खंडों में से एक मानता हूं। हमने अपने विधान की जो रूपरेखा तैयार की है वह ब्रिटिश विधान के आधार पर तैयार की है। ब्रिटिश विधान में एक सम्राट की व्यवस्था है और अपने विधान में उसकी जगह हमने एक राष्ट्रपति रख दिया है। विधान में सम्राट को कोई प्रकार्य नहीं दिये गये हैं। वह एक शून्य के समान है, पर एक ऐसे

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

शून्य के जो कि अंकों के दाहिनी ओर है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि इंग्लैंड की राजनीति में सम्राट एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है और वहां की राजनीति पर उसका प्रबल प्रभाव पड़ता है। इसलिये मेरा कहना तो यही है कि जब हम अपना विधान ही ब्रिटिश विधान के आधार पर बना रहे हैं, तो राष्ट्रपति और राज्यपालों को हमें वही महिमा देनी चाहिये जो इंग्लैंड में सम्राट को प्राप्त है। मैं यह अनुभव करता हूं कि अगर हमारे राज्यपालों को राष्ट्रपति मनोनीत करता है तो उसे सम्राट की सी महिमा कदापि नहीं प्राप्त हो सकती है। यह महिमा तो उसे तभी प्राप्त हो सकती है, जब वह वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा चुना जाये। सम्राट को इंग्लैंड में जो महिमा प्राप्त है वह वहां और किसी भी व्यक्ति को नहीं प्राप्त है। ऐसी हालत में अगर हम अपने विधान को ब्रिटिश नमूने के आधार पर रखते हैं, तो हमें यह न भूलना चाहिये कि राज्यपाल को केवल नाममात्र का प्रमुख न बनाना चाहिये बल्कि उसे वही महिमा और प्रतिष्ठा प्राप्त रहनी चाहिये जो इंग्लैंड में सम्राट को प्राप्त है। वर्तमान में तो सभी प्रान्तों के गवर्नरों (राज्यपालों) को केन्द्रीय सरकार ने ही नियुक्त किया है, पर उन्हें वह प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त है जो उनके लिये अपेक्षित है। मैं जानता हूं कि अगर जनता द्वारा उनका निर्वाचन होता तो उनमें से बहुत तो चुने ही नहीं जाते। मेरे ही प्रान्त में इसके लिये जो नियुक्ति हुई है उससे मैं खुश नहीं हूं। और यह भी महसूस करता हूं कि अगर चुनाव के जरिये इस पद की पूर्ति की जाती, तो जो सज्जन इस समय वहां पदस्थ है वह हर्गिज न आ पाते। अगर यह पद्धति जारी रखी गई तो इससे यह होगा कि ब्रिटिश नमूने के आधार पर निर्मित अपने विधान का जो मूल उद्देश्य है वही खत्म हो जायेगा।

राज्यपाल को आम निर्वाचन द्वारा चुनने के विरुद्ध एक तर्क यह भी रखा गया है कि निर्वाचित राज्यपाल की प्रतिष्ठा मुख्यमंत्री से ऊंची रहेगी और उसके फलस्वरूप दोनों में संघर्ष होगा। मैं नहीं समझता कि ऐसा क्यों होगा। दोनों ही पदों के लिये जो व्यक्ति निर्वाचित किये जायेंगे, वह देशभक्त होंगे और प्रान्त एवं देश के प्रति उनके दिल में प्रेम होगा। पदासीन रहते हुए दोनों ही सदा यह उदाहरण उपस्थित करने का प्रयास करेंगे कि प्रान्त के हित में यह सचेष्ट होकर काम कर सकते हैं। अपने उच्च पदों पर आसीन रहते हुए दोनों ही यह दिखायेंगे कि वह अपनी व्यक्ति धारणाओं में सामंजस्य पैदा कर सकते हैं और प्रान्त के हित में मिलकर काम कर सकते हैं मैं कोई कारण नहीं देखता कि उनके बीच संघर्ष क्यों पैदा होगा। ज्यादा करके सम्भावना इसी बात की है कि मुख्यमंत्री और राज्यपाल दोनों ही बहुसंख्यक दल के समर्थन पर चुने जायेंगे, इसलिये सम्भवत: दोनों एक ही दल के होंगे। और अगर वह एक दल के नहीं भी हैं जो कि तभी सम्भव है जबकि दलों का पलड़ा बराबर हो और एक दल का मुख्यमंत्री हो और दूसरे का राज्यपाल हो—उस हालत में भी दोनों दलों को परस्पर सहयोग देना होगा। जब दोनों दलों में परस्पर सहयोग भाव रहेगा तो इससे मतदाताओं में सहयोग भाव आना निश्चित है और इस तरह प्रान्त को यह लाभ पहुंचेगा कि सदन के दोनों दलों में सहयोग रहेगा। इसलिये उनमें संघर्ष की आशंका करना बिल्कुल निराधार होगा। ये दोनों उच्च व्यक्ति, जिनको समूचा प्रान्त चुनेगा, अवश्य ही इतने बुद्धिमान होंगे कि प्रान्त की भलाई के लिये ही अपनी सारी योग्यता का

उपयोग करेंगे। वह आपस में कदापि न लड़ेंगे और हमेशा यही कोशिश करेंगे कि प्रान्त की भलाई के आगे अपने झगड़ों को तुच्छ समझा जाये।

फिर यहां यह कहा गया है कि हमें यह डर न होना चाहिये कि केन्द्र को आवश्यकता से अधिक अधिकार प्राप्त हो जायेंगे। राष्ट्रपति को हमने और भी बहुत से व्यापक अधिकार दिये हैं और यह कहा है कि इतने व्यापक अधिकार उसे इसलिये दिये जा रहे हैं कि वह किसी दल विशेष का व्यक्ति न होगा। देश के सभी विधान मंडल मिलकर उसका चुनाव करेंगे। वह किसी दल का व्यक्ति न होगा। प्रधानमंत्री की राय से ही वह सदा काम करेगा। इस तरह जो पार्टी केन्द्र में अधिकारारूढ़ रहेगी वही प्रान्तों के राज्यपालों को मनोनीत करेगी। वही सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भी नियुक्त करेगी। पर यह अच्छी बात न होगी। मैं कभी भी इस राय से सहमत नहीं हो सकता हूं कि इन सभी उच्च पदाधिकारियों को मनोनीत करने की शक्ति एक व्यक्ति में सन्निहित रखी जाये। हमें यह याद रखना चाहिये कि किसी को भी सर्वाधिकार देना अच्छा नहीं होता है। इससे आदमी सर्वथा भ्रष्ट हो जाता है। अगर हम एक व्यक्ति, प्रधानमंत्री को ये सब अधिकार दे देते हैं, तो चाहे वह व्यक्ति कितना भी अच्छा क्यों न हो—और फिर यह जरूरी नहीं है कि सभी प्रधानमंत्री हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री के समान ही श्रेष्ठ व्यक्ति हों और हो सकता है कुछ ऐसे भी हों जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें—यह एक खतरनाक बात होगी। प्रधानमंत्री के परामर्श से राज्यपाल मनोनीत करने की शक्ति राष्ट्रपति को देना ठीक न होगा। हम यह प्रावधान भी कर रहे हैं कि सद्यस्कृत्यता की दशा में राज्यपाल को प्रान्त की शासन-व्यवस्था को अपने हाथ में लेने का अधिकार रहेगा। जब तक कि प्रान्त की जनता का विश्वास उसे प्राप्त न रहे वह ऐसा कर नहीं सकता है। और जनता का विश्वास उसे तभी प्राप्त रह सकता है, जबकि उसका निर्वाचन जनता द्वारा हो। अगर जनता द्वारा वह निर्वाचित नहीं रहता है, तो सद्यस्कृत्यता की दशा में उसे शासन की बागडोर जनता लेने ही न देगी। इसलिये जनता द्वारा निर्वाचित तो राज्यपाल को होना ही चाहिये।

यहां यह कहा गया है कि केन्द्र को प्रान्तों पर पूरा अधिकार प्राप्त रहना चाहिये। अगर आपका विचार यह होता है कि विधान एकात्मक शासन-व्यवस्था के अनुरूप हो, तो उस सूरत में तो मैं केन्द्र को सर्वाधिकार सम्पन्न बनाने का समर्थन करता। पर हमारा जो विधान बन रहा है, उसके अनुसार तो हमें प्रान्त की जनता की देशभक्ति पर ही यह बात छोड़नी पड़ेगी कि वह इस तरह चलें और यह कोशिश करें कि केन्द्र शक्तिशाली रहे और वह केन्द्र के अनुकूल काम करें। और जब जनता के ऊपर इस बात को आप छोड़ देते हैं, तो वह यही कोशिश करेंगे कि राज्यपाल ऐसा व्यक्ति हो जो केन्द्र के अनुकूल काम करे, देश हित का ध्यान रखते हुए कि अपने प्रकार्यों को पूरा करे। हमें जनता और उसकी देशभक्ति पर भरोसा करना ही होगा।

यहां यह कहा गया है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन करना एक बड़ा कठिन काम होगा। पर यह तो हम जानते हैं कि सभी धारा सभाओं के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर ही किया जायेगा। सदस्यों के

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

चुनाव के साथ ही हम राज्यपालों का भी चुनाव कर सकते हैं। मैं तो यही कहूंगा राज्यपाल की शक्तियां ऐसे ही व्यक्ति को कभी न मिलनी चाहिये जिसे जनता का विश्वास न प्राप्त हो। डा. अम्बेडकर के मूल सुझाव को ही हमें मंजूर करना चाहिये।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस बहस में, इस मौके पर मैं दखल न देता पर माननीय मित्र श्री विश्वनाथ ने जो बातें कही हैं उन्हीं की वजह से मुझे दखल देना पड़ रहा है। अगर इस समय सभा के सामने इस नये संशोधन के सम्बन्ध में सारी स्थिति पर प्रकाश नहीं डाल दिया जाता है, तो मुझे डर है कि सम्भवत: उनकी बातों का गलत अर्थ लगा लिया जायेगा।

सदस्यों को याद होगा कि जब सन् 1947 में इस प्रश्न पर संघ-संविधान-समिति और प्रान्तीय संघ-संविधान-समिति (Union Constitution Committee & the Provincial Union Constitution Committee) की संयुक्त बैठक में विचार किया गया था, तो इस पर परस्पर दो विरोधी मत थे। यह बात है संविधान सभा के प्रारम्भिक काल की। एक मत तो यह था कि अमेरिकन विधान के आधार पर हमें अपना विधान तैयार करना चाहिये और दूसरा मत यह था कि ब्रिटिश नमूने पर हमें अपना विधान बनाना चाहिये। एक समय ऐसा भी आया था कि बैठक में सदस्यों की राय कभी एक पक्ष की ओर झुकती थी और कभी दूसरे पक्ष की ओर। पर अन्ततोगत्वा आम राय ब्रिटिश प्रणाली के पक्ष में रही और लोगों को यही पसंद रहा कि केन्द्र और प्रान्त, दोनों के सम्बन्ध में ब्रिटिश पद्धति ही अपनाई जाये।

कुछ लोग इन दोनों पक्षों के बीच का मार्ग पसंद करते थे। महसूस यह किया जा रहा था कि अगर किसी समय केन्द्र या प्रान्त में एक बहुमत रखने वाली हुकूमत को कायम करना असम्भव हो और राजनैतिक दल कई टुकड़ियों में बंटे हों, तो उस सूरत में वयस्क मताधिकार के आधार पर चुना गया राष्ट्रपति और राज्यपाल, जिसे जनता का समर्थन प्राप्त होगा, हुकूमत में स्थैर्य ला सकेंगे।

पर जब इस योजना पर विचार किया जाने लगा तो एक विचित्र ही स्थिति पैदा हो गई। केन्द्र के सम्बन्ध में तो यह योजना नहीं स्वीकार की गई और यह तय हुआ कि केन्द्रस्थ राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रमुख की स्थिति प्राप्त रहनी चाहिये और वयस्क मताधिकार के आधार पर समूचे राष्ट्र द्वारा उसका निर्वाचन न होना चाहिये, पर जहां तक राज्यपाल का सम्बन्ध है, योजना को मंजूर कर लिया गया। इस तरह राष्ट्रपति और राज्यपाल को वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनने की जो योजना इस उद्देश्य से रखी गई थी कि देश में उन्हें ऐसी प्रतिष्ठा और शक्ति प्राप्त रहे कि वह शासन स्थैर्य ला सकें, वह टूट गई।

ब्रिटिश नमूने का अपनाने पर अगर हम राज्यपालों को वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनने का प्रावधान करते हैं, तो यह एक असंगत बात होगी। यह बिल्कुल एक ही असामयिक और वाहियात व्यवस्था होगी। प्रान्त के नागरिकों द्वारा वयस्क मताधिकार के

आधार पर जो राज्यपाल चुना जायेगा उसकी आप कल्पना तो कीजिये। प्रान्त के राजनैतिक जीवन में जिनको शीर्षस्थान प्राप्त रहेंगे, वे तो मुख्यमंत्री या मंत्री बनना चाहेंगे क्योंकि उनके हाथ में काफी अधिकार रहेंगे। इसलिये अधिकारारूढ़ पार्टी चुनाव के समय राज्यपाल के पद के लिये एक ऐसे ही व्यक्ति का नाम रखेगी जो मंत्रिपद के अभ्यर्थियों से कम महत्त्व रखता हो। इसका परिणाम यह होगा कि दल का सर्वोत्तम व्यक्ति राज्यपाल पद के लिये उपलब्ध न हो सकेगा। चुनाव के सिलसिले में प्रान्त को जो खर्च बैठेगा और जो कार्यशक्ति लगेगी, वह सब दल के एक गौढ़ व्यक्ति को ही शासन प्रमुख बनाने में बेकार सर्फ होगी। प्रान्त का मुख्यमंत्री ही उसे नामदज करेगा इसलिये यह लाजिमी है कि मुख्यमंत्री से उसका महत्त्व कम होगा। ऐसी सूरत में कोई कारण नहीं है कि चुनाव के इतने बड़े तमाशे का आयोजन क्यों किया जाये।

गत अप्रैल माह में दोनों समितियों की फिर बैठक हुई जिसमें इस प्रश्न पर विचार किया गया। आखिरी तौर पर यह तय पाया कि चूंकि शासन में राज्यपाल का नियंत्रण रहेगा इसलिये निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था करना बेकार है। ऐसा सोचा गया और ठीक ही सोचा गया कि मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता के रूप में रहेगा और पार्टी का कोई व्यक्ति, प्रान्त के सभी वयस्क नागरिकों द्वारा राज्यपाल के रूप में निर्वाचित हो जाता है, तो ऐसी सूरत में अगर इन दोनों में कोई संघर्ष खड़ा होता है, तो राज्यपाल की स्थिति मुख्यमंत्री से संभवत: ऊंची रहे। राज्यपाल वयस्क मताधिकार के आधार पर सभी नागरिकों द्वारा निर्वाचित रहेगा। अत: उसको प्रतिष्ठा प्राप्त रहेगी और सम्भव है आकस्मिक स्थिति उत्पन्न होने पर वह मुख्यमंत्री के अधिकारों को दबाने की कोशिश करे। इस सूरत में यह लाजिमी है कि दोनों में संघर्ष खड़ा हो जायेगा। इस सम्भावना को दूर करना ही होगा। वर्तमान व्यवस्था यह है कि बहुमत दल के नेता की हैसियत से मुख्यमंत्री ही प्रान्त की शासन-व्यवस्था का नियंत्रण करेगा जैसा कि इंग्लैंड में वहां का प्रधानमंत्री करता है। अगर प्रान्त में मुख्यमंत्री के दर्जे के दो व्यक्ति रहेंगे तो इससे प्रान्त में बड़ी दु:खद स्थिति पैदा हो सकती है। इसी बात को मद्देनजर रखते हुए संयुक्त बैठक में अन्ततोगत्वा यह तय रहा कि इस सम्बन्ध में सर्वोतम यह होगा कि राज्यपाल के निर्वाचन की बात खत्म कर दी जाये।

अगर आप पुरानी योजना को देखें, जिसका कुछ अंश यहां अनुच्छेद 144 (6) में दिया गया है, तो आपको यह संकट और स्पष्ट हो जायेगा। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि—''इस अनुच्छेद के अधीन मंत्रियों की नियुक्ति और वियुक्ति से सम्बद्ध अपने प्रकार्यों का पालन राज्यपाल (Governor) स्वविवेक से करेगा''। इतना बड़ा अधिकार राज्यपाल को दिया गया था कि स्वविवेक से वह मंत्रियों को नियुक्त या बरखास्त कर सकता है। यह अधिकार तो इतना बड़ा है कि इसे प्रयोग में लाने की शक्ति प्रान्त के संवैधानिक प्रमुख को नहीं होनी चाहिये।। इसलिये इस व्यवस्था को अब हम हटा रहे हैं। इसके हटा देने पर प्रान्त की हुकूमत की स्थिति एक दायित्वपूर्ण सरकार की हो जायेगी जैसा कि ब्रिटेन में है।

[श्री के.एम. मुंशी]

हमें स्थिति पर विचार केवल इस रूप में करना होगा। हमें सोचना यह होगा कि प्रान्त का शासन अच्छा होगा निर्वाचित राज्यपाल रखने से या मनोनीत राज्यपाल रखने से? अगर मनोनीत राज्यपाल होगा तो स्वाभाविक है कि स्वविवेक से मंत्रियों को बरखास्त करने की उसे शक्ति न रह जायेगी। वह केवल एक संवैधानिक प्रमुख के रूप में रहेगा। जब तक कि मंत्रिमंडल को स्थिरता प्राप्त है, प्रान्त के शासन की बागडोर मुख्यमंत्री और उसके दल के हाथों में ही रहेगी।

माननीय मित्र श्री आलादी कृष्णस्वामी अय्यर ने इस सम्बन्ध में कैनाडा की मिसाल पेश की है। उनके गहन पाण्डित्य का मैं आदर करता हूं, पर यहां मैं उनसे सहमत नहीं हूं। अपने इस संशोधन में जिस तरह के गवर्नर की कल्पना है यानी मनोनीत गवर्नर रखने की जो व्यवस्था है, वह कैनाडा की व्यवस्था से भिन्न है। कैनाडा का गवर्नर तो कमोबेशी एक तरह से इंग्लैंड की हुकूमत के जरिये ही नियुक्त होता है जोकि वह वहां का वैधानिक प्रमुख रहता है। पर हमारे यहां का गवर्नर मनोनीत तो अवश्य रहेगा, पर अगर हुकूमत स्थिर है तो उसके अधिकार केवल अनुच्छेद 147 के प्रावधान तक ही सीमित रहेंगे, अर्थात् वह मंत्रिपरिषद् के विचारार्थ किसी विषय को, जिस पर मंत्री ने तो निर्णय कर लिया है पर मंत्रिपरिषद् ने नहीं किया है, उसके पास भेज सकता है। इसलिये सिवाय इसके कि वह कतिपय निर्णयों पर मंत्रिपरिषद् से पुनर्विचार करने के लिये कहे, उसे अन्य महत्त्व के काम नहीं सम्पादित करने होंगे। फिर इस बात पर भी विचार कर लीजिये। क्या यह अच्छा न होगा कि इस प्रकार्य को सम्पादित करने के लिये, बजाय मुख्यमंत्री के किसी अनुयायी व्यक्ति को रखने के हम एक स्वतंत्र व्यक्ति को रखें, जो इस प्रश्न पर सर्वथा तटस्थ होकर स्वतंत्र रूप से विचार कर सके? इसलिये इस दृष्टि से भी यही अच्छा होगा कि मंत्रिपरिषद् को सलाह देने के लिये हम एक स्वतंत्र व्यक्ति को ही रखें, जो उस अवधि में जब तक कि शासन को स्थैर्य प्राप्त रहे उसे सलाह दे।

मनोनीत गवर्नर रखने में एक दूसरा फायदा और भी है। उस जगह की बात लीजिये, जहां बहुमत प्राप्त कोई दल है नहीं या अगर है भी तो वह कई टुकड़ियों में बंटा हुआ है और मुख्यमंत्री का पद पाने के लिये उसमें बड़ी प्रतिद्वंदिता है। वैसी स्थिति में एक स्वतंत्र व्यक्ति, जो पार्टी की राजनीति से सर्वथा तटस्थ है, कहीं अच्छा होगा एक ऐसे व्यक्ति से, जो किसी पार्टी से सन्नद्ध है। उदाहरण के लिये यह कल्पना कर लीजिये कि वहां का कांग्रेस दल दो वर्गों में विभक्त हो जाता है, जैसा कि बदकिस्मती से कुछ प्रान्तों में हुआ है और हर दल मुख्यमंत्री के लिये अपना-अपना आदमी खड़ा करता है। ऐसी सूरत में निर्वाचित राज्यपाल की क्या स्थिति रहेगी, जो कमाबेशी मुख्यमंत्रित्व की आकांक्षा रखने वाले दो व्यक्तियों में से एक का अनुयायी होगा ही? इससे प्रान्त की शासन व्यवस्था में अनावश्यक जटिलता पैदा होगी। इससे कहीं अच्छा यह होगा कि हम एक मनोनीत राज्यपाल की व्यवस्था करें और इस तरह प्रान्त की राजनीति से उसे सर्वथा अलग रखें ताकि प्रतिद्वन्द्वी दलों में जो प्रतिद्वन्दिता हो उसका संचालन समुचित रूप से न्यायपूर्वक और वैधानिक ढंग से किया जा सके। सभी बातों पर विचार करते हुए अच्छा यही होगा कि केन्द्र द्वारा मनोनीत राज्यपाल रखा जाये तो प्रान्त की दलगत राजनीति से और तज्जन्य ईर्ष्या और आवेश से सर्वथा मुक्त हो।

फिर सद्यस्कृत्यता की दशा के सम्बन्ध में भी विचार किया जाये, जब अनुच्छेद 188 लागू किया जायेगा। सद्यस्कृस्यता की स्थिति उत्पन्न होने पर राज्यपाल स्वविवेक सम्बन्धी शक्ति का प्रयोग करेगा। उसे राष्ट्रपति को रिपोर्ट देनी होगी और उक्त अनुच्छेद के अधीन केवल दो सप्ताह तक उसकी कोई उद्घोषणा प्रवृत्त रहेगी। वैसी स्थिति के लिये भी, अगर कोई वास्तविक सद्यस्कृत्यता की दशा प्रान्त में पैदा हो गई हो, तो एक ऐसा ही व्यक्ति जिसका प्रान्त की राजनीति से कोई सम्बन्ध न हो, राज्यपाल के प्रकार्यों को अच्छी तरह पूरा करेगा न कि वह व्यक्ति जो वहां के एक या दूसरे दल से सम्बद्ध हो।

अनुच्छेद 188 में यह बात परोक्ष रूप से निहित है कि प्रान्त में ऐसी हालत होने पर, जबकि वहां कोई स्थायी हुकूमत न चलाई जा सके तभी, राज्यपाल सद्यस्कृत्यता सम्बन्धी अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा। ऐसी हालत में उचित यही होगा कि ऐसा व्यक्ति जिसका वहां के किसी दल से सम्बन्ध हो, उस महत्त्वपूर्ण पद पर न आसीन किया जाये क्योंकि सद्यस्कृत्यता की दशा उत्पन्न होने पर प्रान्त में सार्वजनिक शान्ति बनाये रखने की जिम्मेदारी उसी पर रहेगी।

अनुच्छेद 188 में इससे आगे जिस स्थिति की कल्पना की गई है उसे भी सोचिये। प्रान्त में संविधान के निलम्बित हो जाने पर एक ऐसा ही व्यक्ति ज्यादा समुचित रहेगा जिस पर केन्द्र का विश्वास हो। प्रान्त के शासन में स्थिरता लाने में केन्द्र का एक विश्वस्त व्यक्ति ज्यादा उपयोगी होगा बनिस्बत ऐसे व्यक्ति के जिसका प्रान्त की राजनीति से गहरा सम्बन्ध हो।

गत अप्रैल महीने से इस उपरोक्त विचार ने जोर पकड़ा है। यह कहना सही नहीं है कि इस फैसले को पार्टी के सामने आखिरी समय रखा गया था या यह कि इस पर पूरी तरह से बहस नहीं हुई। संवैधानिक दृष्टिकोण से तथा समस्त देश की भलाई को देखते हुए—दोनों ही बातों का ख्याल करते हुए—बहुसंख्यक सदस्य इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि राज्यपाल को मनोनीत करना ही ज्यादा अच्छा होगा।

इन सभी बातों के ख्याल से मैं यही आशा करता हूं कि सभा सर्वसम्मति से यह संशोधन स्वीकार करेगी।

***माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रश्न पर इतने भाषण हो चुके हैं कि सभी तर्क जिसकी कि प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में कल्पना की जा सकती है वह सब सभा के सामने—शायद रखे जा चुके हैं। मैं नहीं समझता कि मैं और क्या कह सकता हूं। किसी निर्णीत प्रश्न पर फिर विचार करने में सभा को जो थोड़ी हिचकिचाहट है उसे मैं अच्छी तरह समझ सकता हूं। ऐसी हिचकिचाहट का होना ठीक भी है। फिर भी हमने जब पहले इस पर विचार किया था तब क्या सूरत थी इसे भी हमें ध्यान में रखना चाहिये। हमने इससे पूर्व सन् 1947 में इस पर विचार किया था जब मेरे माननीय साथी उपप्रधानमंत्री ने उसे सभा के सामने रखा था और सभा ने उस समय इसे मंजूर कर लिया था। तब से आज करीब दो साल बीत चुके हैं और इन दो साल में यहां की स्थिति में एक बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है और अगर हम किसी प्रश्न पर पुनर्विचार करना चाहते हैं, जिस पर हम दो वर्ष पूर्व, 15 अगस्त सन् 1947 के पहले, कोई निर्णय कर चुके हैं, तो 15 अगस्त सन् 1947 के बाद जो

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

कुछ हुआ है उसको ध्यान में रखते हुए हमारा ऐसा करना आश्चर्यप्रद न होना चाहिये, क्योंकि इस दो वर्ष की अवधि में हमें बहुत कुछ अनुभव—कड़वे अनुभव—प्राप्त हुए हैं। इसलिये मेरा मंतव्य तो यही है कि हम इस पर पुनर्विचार कर सकते हैं और कानूनन इसका अधिकार तो हमें है ही, औचित्य की दृष्टि से भी हमें इसका अधिकार है। वस्तुतः गत वर्ष के दौरान में कई मौकों पर इस सभा की समितियों ने इस प्रश्न पर तथा अन्य प्रश्नों पर विचार किया है, इसलिये नहीं कि इनमें कोई परिवर्तन ही किया जाये बल्कि इसलिये कि इनमें एक सामंजस्य स्थापित किया जाये। समितियां कई थीं जैसे कि संघ संविधान समिति, अनुकरणीय प्रान्तीय संविधान समिति। प्रान्तीय संविधान समिति के सभापति थे मेरे साथी खुद उप प्रधानमंत्री महोदय। इन सभी प्रश्नों पर विचार और विवाद हो जाने के बाद इन समितियों ने यह अनुभव किया कि फैसलों में कुछ परिवर्तन करना वांछनीय है। इस तरह सरदार पटेल ने तथा उन्हीं की तरह औरों ने भी, जिन्होंने निर्वाचित राज्यपाल रखने की व्यवस्था का प्रतिपादन किया था, यह अनुभव किया कि इसमें परिवर्तन करना वांछनीय है।

परिवर्तन करने के कारण क्या हैं यह सभा के सामने बताया जा चुका है और इस सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिये जरूरी नहीं है। पर इतना मैं कहूंगा कि शुरू मैं भी यह नहीं कर पाया था कि इन दोनों में कौन सी व्यवस्था को अपनाना ज्यादा अच्छा होगा। अवश्य ही इस सम्बन्ध में एक व्यवस्था मैंने पसंद की थी पर वह ऐसी नहीं थी जिसे मैं खुद सर्वथा उत्तम ही कह सकूं। इस सम्बन्ध में मैंने जितना भी अधिकाधिक विचार किया और लोगों से परामर्श लिया, मैंने यह महसूस किया कि मनोनीत राज्यपाल रखने का जो यह प्रस्ताव है वह संविधान की वर्तमान स्थिति में सभी दृष्टियों से वांछनीय है। यह व्यवस्था व्यावहारिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि लोकतंत्रीय दृष्टि से भी सर्वथा वांछनीय और ग्राह्य है।

जिन बातों को प्राप्त करने की हम जबरदस्त कोशिश करते आये हैं, उनमें एक यह है कि पार्थक्य-प्रवृत्ति को दूर किया जाये, दलों का निर्माण न हो। हमने यह फैसला कर लिया है कि साम्प्रदायिकता को कभी प्रश्रय न देंगे। पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को और स्थानों को संरक्षित रखने की व्यवस्था को हमने उठा दिया है। किन्तु पार्थक्य पैदा करने वाली अन्य बहुत सी बातें हैं जिनके बारे में हमें अभी व्यवस्था करनी होगी। अवश्य ही कानून के जरिये हम इनकी बाबत कोई व्यवस्था नहीं कर सकते हैं। हमें दिल और दिमाग का सहारा लेकर इसकी व्यवस्था करनी होगी। फिर भी एक परम्परा या प्रणाली ऐसी होती है जो पार्थक्य भावनाओं को विकास देने में सहायक या अवरोधक होती है। मैं यह अनुभव करता हूं कि अगर हम निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था रखते हैं तो उससे कुछ हद तक प्रान्तीयता सम्बन्धी पार्थक्य भावना को अधिक प्रश्रय मिलेगा बनिस्बत दूसरी व्यवस्था के। इस व्यवस्था के रहने से केन्द्र और प्रान्त में सम्पर्क कम हो जायेगा। आम तौर पर, बल्कि मैं तो समझता हूं कि हमेशा ही गवर्नर उसी प्रान्त का हुआ करेगा। जैसा कि यहां कहा गया है, हो सकता है कि वह उस बहुमत प्राप्त दल का, जिसके हाथ में उस समय प्रान्त की शासन व्यवस्था हो, वह एक प्रतिद्वंदी हो। और फिर उसके लिये वयस्क मताधिकार के आधार पर सर्वत्र चुनाव का जबरदस्त इन्तजाम करना होगा। प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान

मंडलों के निर्वाचनों का जबरदस्त भार तो है ही और ऊपर से एक और जबरदस्त निर्वाचन की जिम्मेदारी अगर हम ले लेते हैं तो इसमें राष्ट्र के न केवल एक बड़े समय, एक बड़ी शक्ति ही का व्यय होगा, एक बड़ी रकम भी लगेगी जिसे अन्य जरूरी योजनाओं को उपेक्षा करके ही हम इसमें खर्च करेंगे। इसके अलावा इस व्यवस्था का लाजिमी नतीजा यह भी होगा कि प्रान्तीयता की संकुचित भावना को प्रश्रय मिलेगा और प्रान्तीय दृष्टिकोण से सोचने और करने की सर्वत्र प्रकृति पैदा होगी। यह जरूर है कि प्रान्तों को स्वशासन का अधिकार प्राप्त है इसलिये प्रान्तीय सरकारें जनता का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रान्तीय ढंग पर लाभ करेंगी ही। पर प्रश्न यह है कि प्रान्त के राज्यपाल को आवश्यकता से अधिक प्रान्तीय स्वरूप देकर इस प्रान्तीय प्रकृति के दूषण को आप और भी बढ़ाना चाहते हैं क्या? मेरी समझ से तो अवश्य ही यह कहीं अच्छा होगा कि राज्यपाल का प्रान्त की राजनीति से, वहां के विभिन्न दलों से कोई विशेष सम्बन्ध न रहा हो। और जैसा कि श्री मुंशी ने कहा है, क्या यह अच्छा न होगा कि इस पद के लिये हम एक पूर्णत: तटस्थ व्यक्ति को रखें जो प्रान्त की सरकार को मान्य हो, क्योंकि अगर ऐसा व्यक्ति रखा जाता है जो उसे पसंद न हो, तो यह स्पष्ट है, वह अच्छी तरह अपने प्रकार्यों का सम्पादन नहीं कर पायेगा। राज्यपाल तो ऐसा ही व्यक्ति हो जो प्रान्त की जनता को मान्य हो, वहां की सरकार को मान्य हो और जो प्रान्त के अधिकारारूढ़ दल का अंग भी न समझा जाता हो। हो सकता है कि कभी-कभी प्रान्त का ही कोई व्यक्ति इस पद पर आसीन करा दिया जाये। हम यह नहीं कहते हैं कि प्रान्त का आदमी उस जगह इस पद पर रखा ही न जायेगा। पर सभी बातों का ख्याल करते हुए प्रान्त के बाहर के किसी व्यक्ति को—प्रख्यात व्यक्ति को—कभी-कभी ऐसे व्यक्तियों को जिन्होंने राजनीति में कोई जबरदस्त पार्ट न लिया हो, इस पद पर रखना वांछनीय होगा। राजनीतिक व्यक्ति सम्भवत: ऐसा कार्यक्षेत्र पसंद करेंगे जहां वह अधिक क्रियाशील रहें। पर ऐसे भी प्रख्यात व्यक्ति मिलेंगे जिनको शिक्षा सम्बन्धी कार्य में या जीवन के अन्य क्षेत्रों में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा और महिमा प्राप्त होगी। स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्ति इस पद पर रहकर सरकार की नीति चलाने में उसको पूरा सहयोग देंगे और हर तरह उसकी नीति को पूरा करने में उसको मदद देंगे। और इन सब कार्यों को सम्पादित करते हुए जनता के सामने कुछ ऐसी ऊंची बात रखेंगे जो पार्टी से बहुत ऊपर की चीज होंगी। इस तरह ऐसे व्यक्ति वस्तुत: सरकार के लिये अधिक सहायक होंगे, बनिस्बत ऐसे व्यक्ति के जो अधिकारारूढ़ दल का अंग समझा जाता हो? मैं तो यही कहूंगा कि मनोनीत राज्यपाल को रखने की व्यवस्था दूसरी व्यवस्था से अधिक लोकतंत्रात्मक होगी, इन अर्थ में कि दूसरी व्यवस्था से लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलने में उतनी मदद न मिलेगी।

आखिर लोकतंत्र की कसौटी क्या है? इसकी आखिरी हद तक अगर आप आते हैं तो हो सकता है कि निर्वाचन के अर्थ में लोकतंत्रीय व्यवस्था आपको सर्वत्र उत्कृष्ट प्रतीत हो, पर इसमें संघर्ष पैदा होने की आशंका रहती है। और संघर्ष पैदा होने पर यह व्यवस्था टूटने लगती है। आज दुनिया में चारों ओर देखिए क्या हो रहा है? कितनी हुकूमतें ठीक से चल रही हैं? कितनी ही हुकूमतें आज जर्जर होती जा रही हैं। कितनी ही हुकूमतें ऐसी है जो राजनीतिक या आर्थिक कारणों से सदा ही जर्जरित बनी रहती हैं। बहुत ही

[माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू]

कम लोकतंत्रात्मक सरकारें आज आपको ऐसी मिलेंगी जो स्थायी हों। एक स्थायी लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था का प्रावधान करने में हमारे लिये बड़ा जरूरी यह है कि हम कोई ऐसी बात न करें जो भारत के ऐक्य को, उसकी एकरूपता को या उसकी शासन व्यवस्था को विच्छिन्न करे, जिससे कि संघर्ष पैदा हो। हम बड़े-बड़े गम्भीर संकट कालों से गुजरे हैं और एक हद तक उन पर विजय पाने में हम सफल रहे हैं। हमें अभी भी बड़े कठिन समय से होकर गुजरना है और मैं समझता हूं कि देश के ऐक्य को, इसकी शासन व्यवस्था के स्थैर्य को, उसकी सुरक्षा को सदा बनाये रखने का ध्यान रखते हुए ही हमें प्रत्येक बात पर विचार करना चाहिये और संविधान में ऐसी बहुत सी बातों का समावेश न करना चाहिये जिनके कारण बहुधा हमें बड़े-बड़े चुनाव करने पड़ें और हमारी इस एकता के भंग होने की आशंका हो। बड़े-बड़े चुनावों से जनता की मानसिक शांति भंग होती है और साथ ही राष्ट्र की बहुत बड़ी शक्ति निर्माणात्मक कार्यों से हटकर निर्वाचन व्यवस्था में व्यय होती है। इसमें शक नहीं कि हमारा लोकतंत्र निर्वाचन पर ही आधृत होना चाहिये। हमने विधान में इसकी व्यवस्था भी की है। पर सवाल तो यह है कि क्या हम सब बातों के लिये बार-बार चुनाव करने का प्रावधान करें? ऐसा करना बिल्कुल अनावश्यक है। ऐसा करने से संघर्ष पैदा होगा, शक्ति और धन का अपव्यय होगा। राज्यपाल और लोकतंत्रीय संसद के लिये जो बड़े चुनाव होंगे उनसे लोगों में एक विघटनात्मक प्रवृत्ति पैदा होगी। इसलिये मनोनीत राज्यपाल रखने का जो संशोधन है उसका मैं पूर्णतः समर्थन करता हूं।

बस एक ही बात और कहनी है, श्रीमान्। मैं समझता हूं कि निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था में प्रायः अनिवार्य रूप से यही होगा कि राज्यपाल केवल उसी प्रान्त का व्यक्ति होगा और देश में वर्तमान विभिन्न अल्पसंख्यक वर्गों में से किसी का प्रतिनिधि शायद ही कभी मुश्किल से राज्यपाल बने। आमतौर पर यही होगा कि बहुमत प्राप्त दल अपने ही किसी सदस्य को उस पद पर आसीन करेगा। पर स्पष्ट है कि वांछनीय यह होगा कि अल्पसंख्यकों के प्रख्यात नेताओं को—सारल्य की दृष्टि से ही मैंने इस शब्द का यहां प्रयोग कर दिया है, पर भविष्य में आशा यही है कि हम बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक शब्दों का प्रयोग न करेंगे—विभिन्न दलों के नेताओं को इस पद के लिये अवसर दिया जाये। मेरा ख्याल है कि मनोनीत राज्यपाल की व्यवस्था रखने में अल्पसंख्यकों को इसका ज्यादा मौका मिल सकेगा।

***श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला** (आसाम : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, बहस में प्रधानमंत्री के दखल दे देने से पासा बिल्कुल पलट गया है और मेरा उनके खिलाफ बोलना बेकार है। फिर भी अपने सिद्धांत का पालन करने के लिये और सभा से देश की जो विशाल जनता है, उसके ख्याल से मैं यह जरूर कहूंगा कि इस मसले पर पूरी तरह से विचार होना चाहिये और बहस होनी चाहिये। यह संशोधन जिस पर कि अभी बहस हो रही है, एक ऐसा संशोधन है जो विधान के मसौदे की बुनियादी बातों को ही बदल देता है। संविधान-सभा के आदेशानुसार विधान निर्माताओं ने, प्रान्तीय राज्यपालों को चुनाव के आधार पर रखने का प्रावधान किया था। पर वर्तमान संशोधन चुनाव की बुनियादी बात को खत्म कर देता है और यह कहता है कि राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करे। यह संशोधन एक बुनियादी बात से ताल्लुक रखता है, इसलिये हमें इस पर खूब शांत होकर विचार

करना चाहिये, खास करके इसलिये कि इस संशोधन के जरिये संविधान सभा का पूर्व निर्णय रद्द हो जाता है। जहां तक कि प्रान्त के राज्यपालों का सम्बन्ध है, निर्वाचित व्यक्ति रखने में या मनोनीत व्यक्ति के रखने में क्या हानि-लाभ हैं, इसका हमें एक तलपट तैयार कर लेना चाहिये। संशोधन के समर्थक तीन बातों पर जोर देते हैं, जिनके कारण उसका विश्वास है कि नियुक्ति सम्बन्धी व्यवस्था ज्यादा अच्छी होगी। उनकी तीन बातों को एक-एक करके मैं बताये देता हूं। उनका पहला तर्क तो यह है, प्रान्त का मुख्यमंत्री एक निर्वाचित व्यक्ति रहेगा और अगर राज्यपाल भी निर्वाचित रहेगा तो इससे प्रान्तीय शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलने में बाधा पहुंचेगी और ऐसी व्यवस्था लोकतंत्रीय सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत होगी। इस तर्क के प्रत्येक शब्द का मैं विरोध करता हूं। आज देश में कई राजनैतिक दल हैं पर शासन चल रहा है एक दल का।

***श्री महावीर त्यागी:** हर मुल्क में एक ही दल शासन चलाता है।

***श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला:** श्री त्यागी के हस्तक्षेप से मैं विषयान्तर में नहीं पड़ूंगा। मैं इस तर्क के प्रत्येक शब्द के लिये चुनौती देता हूं। आज देश का शासन चला रही है यहां की एक ही प्रमुख राजनीतिक पार्टी। निर्वाचन को व्यवस्था रखने पर, अधिक सम्भव यही है कि प्रान्त का मुख्यमंत्री और राज्यपाल दोनों ही एक दल के व्यक्ति होंगे। इसका परिणाम यह होगा कि प्रान्त का शासन सुचारू रूप से चलेगा क्योंकि मुख्यमंत्री और राज्यपाल हमेशा मिलकर ही काम करेंगे। और फिर हम चाहते यह हैं कि हमारा लोकतंत्र पूर्णत: एक असाम्प्रदायिक लोकतंत्र हो, एक ऐसा गणराज्य हो जहां इस विचार को पोषण प्राप्त हो कि देश की शासन व्यवस्था में नागरिकों की आवाज रहनी चाहिये। अगर यहां आप निर्वाचन का सिद्धांत अपनाते हैं, तो इससे नागरिकों को प्रान्त के राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनी बात कहने का अधिकार प्राप्त रहेगा। और फिर हमने जनता में यह विश्वास भर दिया है कि दो वर्ष पूर्व इस सम्बन्ध में हमने जो निर्वाचन का सिद्धांत अपनाया था, वह ज्यों का त्यों रहेगा; उसमें कोई परिवर्तन न किया जायेगा। और अब हमसे यह कहा जा रहा है कि मनोनीत राज्यपाल की व्यवस्था करने से प्रान्त का शासन ज्यादा अच्छी तरह चलेगा और शासन व्यवस्था लोकतंत्रीय रहेगी।

निर्वाचित राज्यपाल रखने के विरुद्ध यहां यह कहा जा रहा है श्रीमान्, कि प्रान्तों में दलबन्दी के झगड़े चल रहे हैं और इस व्यवस्था से संघर्ष भाव पैदा होगा एवं राज्यपाल और मुख्यमंत्री में सदा मतभेद ही चलता रहेगा। पर आप यह कैसे मान लेते हैं कि बाहर का कोई व्यक्ति अगर राज्यपाल नियुक्त किया जाता है तो उससे प्रान्त का शासन सुचारू रूप से चलाने में हमेशा मदद ही मिलेगी? कल यहां एक साहब ने कहा कि मनोनयन की व्यवस्था रखने पर राष्ट्रपति पश्चिमी भारत के किसी प्रख्यात राजनीतिज्ञ को राज्यपाल नियुक्त करके आसाम या उड़ीसा के सुदूरवर्ती प्रान्त को भेज सकेगा। यह कहा जाता है कि ऐसे प्रकाण्ड राजनीतिज्ञ महोदय का दिमाग सर्वथा तटस्थ और निष्पक्ष रहेगा। उनमें कोई पक्षपात भाव न रहेगा। वह प्रान्त की राजनीति में न फंसेगा। इसलिये प्रान्तीय कार्यों के सम्बन्ध में विचार करते समय वह तटस्थ एवं निष्पक्ष मस्तिष्क से काम ले सकेगा। इन सभी बातों को मैं माने लेता हूं। पर इस सम्बन्ध में इस अहम बात को भी ध्यान

[श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

में रखना चाहिये कि ऐसे राज्यपाल महोदय को प्रान्त की हालत की कोई जानकारी न रहेगी और इस सम्बन्ध में उनका विभाग बिल्कुल शून्य ही रहेगा। पश्चिमी प्रदेश से आये हुए राजनीतिज्ञों में बहुत ऐसे होंगे जिन्हें असम या उड़ीसा के सुदूरवर्ती प्रान्तों की हालत के सम्बन्ध में कतई कोई भी जानकारी न रहेगी। अपने जमाने में मैंने कई राजनीतिज्ञों से बातचीत की है और उनमें अच्छी से अच्छी जानकारी रखने वालों को भी, पूर्ववर्ती प्रदेशों की हालत के सम्बन्ध में मैंने दयनीय रूप से अनभिज्ञ पाया।

इसलिये श्रीमान्, यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी पश्चिम भारतीय राजनीतिक की नियुक्ति मात्र से प्रान्त की हुकूमत अधिक सुचारू रूप से चलने लग जायेगी।

दूसरी बात जो इस सम्बन्ध में आपके सामने मैं रखना चाहता हूं वह यह है। यह हम कैसे मान लेते हैं कि प्रान्तीय मंत्रिमंडल उसी दल का होगा जिसका कि राज्यपाल नियुक्त किया जायेगा? अगर ऐसा न हुआ तो व्यवस्था और भी बदतर हो जायेगी। केन्द्र के आदेशानुसार राज्यपाल शासन को एक तरह से चलाने की कोशिश करेगा और प्रान्त का मंत्रिमंडल, जो दूसरे राजनीतिक दल का होगा, दूसरी ही तरह से उसे चलाने की कोशिश करेगा। इस खींचातानी में आखिर में होगा वही, जो मंत्रिमंडल चाहेगा और सुशासन के प्रयोजन के लिये राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये गये राज्यपाल को वापस बुलाना होगा। मेरा ख्याल है कि यह एक ऐसी सम्भावना है जो बहुत दूर की बात नहीं है। मेरा मंतव्य तो यह है, श्रीमान्, कि सुशासन आदर्श शासन से कहीं अच्छा है। और सुशासन के साथ अगर स्वशासन भी हो तो वह सुशासन से भी अच्छा है। इसलिये, इस बात के ख्याल से प्रान्त का शासन एक सुशासन हो, दक्ष शासन हो और साथ ही स्वशासन हो, यहां निर्वाचन की व्यवस्था को रखना ही अधिक संगत है।

निर्वाचन व्यवस्था के विरुद्ध दूसरी आपत्ति यह की गई है, एक होआ यह खड़ा किया है कि उसमें खर्च बहुत बैठेगा। मैंने हौआ शब्द का प्रयोग इसलिये किया है कि प्रान्त के आम निर्वाचन में जो रकम खर्च की जायेगी उसी में राज्यपाल का भी निर्वाचन हो जायेगा। उसके निर्वाचन के लिये आपको ऊपर से एक पैसा भी न खर्च करना पड़ेगा। निर्वाचनों को मैं 1911 से ही, करीब चालीस वर्षों से देखता आ रहा हूं। मैंने यही देखा है कि जब आम चुनाव होता है, तो केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मंडलों का चुनाव साथ ही कर दिया जाता है। निर्वाचन केन्द्रों में जहां मतपत्रों की एक पेटी प्रान्तीय चुनाव के लिये रहती है वहीं एक और पेटी केन्द्रीय निर्वाचन के लिये भी रख दी जाती है। और कोई खर्च ऊपर से नहीं बैठता है। दोनों के लिये एक ही मतपत्र देने वाला अधिकारी रहता है। और एक ही नामजदगी का परचा लेने वाला अधिकारी रहता है और एक ही कर्मचारी वर्ग रहता है। मतदाता को सिर्फ इतना करना पड़ता है कि प्रान्तीय विधान मंडल सम्बन्धी मतपत्र को वह एक पेटी में डालता है, तो केन्द्रीय विधान मंडल सम्बन्धी मतपत्र को एक दूसरी पेटी में डालता है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): अगर कोई उपनिर्वाचन हुआ तो?

***श्री सैयद मुहम्मद सादुल्लाः** मैं आम चुनाव की बात कह रहा हूं जो नियमानुसार करना ही होगा। और आप कह रहे हैं उपनिर्वाचन की बात जो एक अपवाद की बात है। एक अपवाद के आधार पर आप किसी आम सिद्धांत को खराब नहीं बता सकते हैं। इसलिये मैं पूरे जोर के साथ कहूंगा कि ऐसी स्थिति में राज्यपाल के निर्वाचन में ऊपर से हमारा कोई खर्च न बैठेगा।

निर्वाचित राज्यपाल रखने के विरुद्ध तीसरी बात यह कही गई है और इसे कहने वाले हैं विद्वान विधिवेत्ता लोग, कि दुनिया में कहीं भी निर्वाचित गवर्नर रखने की व्यवस्था नहीं है। सिवाय एक अमेरिका के अन्य सभी देशों में गवर्नर की नियुक्ति ही की जाती है। हमें यह भी सुझाया गया है कि हमें अपने देश में इस सम्बन्ध में कैनाडियन पद्धति का अनुकरण करना चाहिये। कैनाडा की पद्धति वहां की हालत के मुताबिक वहां के लिये अच्छी हो सकती है। इस पद्धति के सम्बन्ध में भी यहां मसौदा समिति के दो प्रकाण्ड विधिवेताओं में मतभेद है। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी की एक राय है और श्री के.एम. मुंशी की दूसरी। श्री मुंशी का कहना है कि कैनाडियन पद्धति हमारे देश के लिये एक आदर्श पद्धति नहीं हो सकती है। और फिर हम अगर कैनाडियन पद्धति अपनाते भी हैं तो उसके लिये हमें एक और व्यवस्था यह करनी पड़ेगी कि विधान में एक बड़ी परन्तुका रखनी पड़ेगी। परन्तुका इस आशय की होगी कि एक ऐसी रूढ़ि को चालू करना होगा जिसके अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रान्तीय मंत्रिमंडल को राय देने का हक हो। यह सुझाव श्री अल्लादी ने दिया है। पर सारी बात तो यहीं आकर अटकती है। विधान के मसौदे के मुताबिक राज्यपाल की नियुक्ति पहले करनी होगी और फिर राज्यपाल वहां के वृहत्तम दल के नेता से कहेगा कि वह प्रान्तीय मंत्रिमंडल को बनाये। पर जब मंत्रिमंडल ही न रहेगा तो राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति राय किससे लेगा? और फिर जैसा मैंने अभी कहा है, उस अवस्था का भी ख्याल कीजिये जबकि प्रान्तीय विधान मंडल के बहुसंख्यक सदस्य उस दल के न हों जो केन्द्र में अधिकारारूढ़ है। यह लाजिमी है कि राष्ट्रपति केन्द्र वाले दल का ही एक सदस्य होगा। राष्ट्रपति राज्यपाल पद के लिये जिस व्यक्ति को मनोनीत करेगा वह उसी के दल का ही एक व्यक्ति होगा। ऐसी सूरत में राष्ट्रपति में और उस दल में, जिसको कि प्रान्तीय विधान मंडल में बहुमत प्राप्त रहेगा, मतभेद का होना अवश्यम्भावी है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** यह जरूरी नहीं है कि दोनों में मतभेद ही होगा।

***श्री सैयद मुहम्मद सादुल्लाः** इंडियन सिविल सर्विस वालों में से किसी एक को गवर्नर नियुक्त करने की जो प्रणाली यहां ब्रिटिश अमलदारी में थी, उसकी हम लोगों ने हमेशा निन्दा की है। बाहरी निकाय द्वारा गवर्नर नियुक्त या मनोनीत किये जाने की व्यवस्था को हटाने के लिये हमने तरह-तरह के नारे उठाये हैं। हमारा अमेरिका की लोकतंत्रीय व्यवस्था के प्रति सदा आकर्षण रहा है। हमारे लिये तो राज्यपाल के सम्बन्ध में निर्वाचन व्यवस्था अपनाने के सिवाय और कोई उत्तम मार्ग ही नहीं हो सकता है। मैं जानता हूं कि राज्यपाल को प्रतिष्ठा प्रदान के हेतु विधान में उसके निर्वाचन की व्यवस्था रखने की जो लोग वकालत कर रहे हैं। उनके सामने एक प्रबल विरोधी पक्ष है। मैं जानता हूं, विरोधियों की टक्कर में हम टिक न सकेंगे। यहां वक्ता पर वक्ता हमें यही बता रहे हैं कि शुरू

[श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला]

में निर्वाचन व्यवस्था के पक्ष में थे, पर गम्भीरतापूर्वक इस पर विचार करने के बाद अब उन्हें मनोनीतकरण सम्बन्धी व्यवस्था ही अधिक अच्छी दिखाई दे रही है। इन लोगों को अपने मत में परिवर्तन करने की पूरी आजादी विचार करके या देशभक्त होने का दावा करने का इनको कोइ एकाधिकार नहीं प्राप्त है, वह खुशी से ऐसा कर सकते हैं पर योग्यता का या किसी विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके या देशभक्त होने का दावा करने का इनको कोई एकाधिकार नहीं प्राप्त है। हम लोगों ने भी इस मसले पर उतना ही स्थिर चित्त होकर, देश के हित का उतना ही ख्याल रखते हुए विचार किया जितना कि हमारे इन बन्धुओं ने। और हमें इस बात का पक्का विश्वास हो गया है कि लोकतंत्र के बारे में हमारी जो कल्पना है, उसके अनुसार निर्वाचित राज्यपाल रखने को व्यवस्था मनोनीत राज्यपाल की व्यवस्था से अधिक उत्तम है। आज देश का शासन एक दल चला रहा है, श्रीमान्—मेरा मतलब कांग्रेस दल से है। इस महान् दल के सदस्यों की इस प्रश्न पर एक राय नहीं है और यह प्रश्न भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, एक बुनियादी प्रश्न है जिसमें हर सदस्य को अपना व्यक्तिगत मत देने की आजादी रहनी चाहिये। पर हो क्या रहा है, श्रीमान्? एक आज्ञापत्र जारी किया गया है, पार्टी की तरफ से सभा के प्रत्येक सदस्य को, चाहे वह कांग्रेस दल का सदस्य हो या न हो, वह आदेशपत्र बांटा गया है कि हर कांग्रेस सदस्य...

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। पार्टी के निर्णयादि की बातें यहां कहने में क्या माननीय सदस्य महोदय कायदे के अन्दर हैं।

***श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला:** आदेश पत्र तो यहां सभा भवन में ही बांटा गया था और दरअसल मुझे भी उसकी एक प्रति दी गई थी।

***अध्यक्ष:** शायद कुछ अन्य माननीय सदस्यों ने भी पार्टी का जिक्र यहां किया है। इस से तो यहां का वाद-विवाद बड़ा ही अवास्तविक बन जाता है। सदस्यों में जब कोई भाषण देने आता है तो यह कहता है कि वह संशोधन के विरुद्ध है, पर जब मत देने का समय आता है तो वह अपना मत देते हैं संशोधन के पक्ष में। मेरा ख्याल है कि बहस को यहां समाप्त कर देना चाहिये।

***श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला:** मैं जो कुछ भी कहने जा रहा था वह यह था कि संविधान सभा में किस दल की क्या सदस्य संख्या है। इस सभा की कुल सदस्य संख्या है इस समय 303। जहां तक मुझे ठीक-ठीक याद है इसमें कांग्रेस दल के सदस्यों की संख्या है 275। अब ऐसी सूरत में अगर कांग्रेस दल के सदस्यों को पार्टी द्वारा जारी किये गये आदेश पत्र के अनुसार ही मतदान करना पड़ेगा, तो दूसरे दल की राय तो कभी स्वीकृत ही न हो पायेगी। जैसा कि माननीय पं. जवाहरलाल नेहरू के भाषण की समाप्ति पर उठते ही मैं नम्रतापूर्वक कह चुका हूं, मैं केवल इसी उद्देश्य से बोलने के लिये खड़ा हुआ हूं कि दूसरा पक्ष क्या है यह भी लिपिबद्ध हो जाये ताकि आने वाली सन्तानें उसे मान सकें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधानमंत्री के स्पष्टवादिता पूर्ण भाषण के बाद किसी को भी यह समझाना मेरी समझ से जरूरी नहीं रह जाता है कि प्रान्त के राज्यपाल को रखने के सम्बन्ध में सभा के निर्णय में परिवर्तन करना या उसे

पलटना क्यों जरूरी है। पर इस मसले के सम्बन्ध में कई वक्ता बोले हैं जिनमें कई प्रकाण्ड विधिवेता एवं अनुभवी प्रशासक भी थे। ऐसे समय जबकि लोगों की भावनायें उत्तेजित रहती है, प्राय: यही होता है कि समर्थक एवं विरोधी, दोनों ही पक्ष, जो तर्क अपने-अपने पक्ष के प्रतिपादन में रखते हैं उन पर खूब बढ़ा चढ़ाकर जोर देते हैं। जिन लोगों ने यहां संशोधन का विरोध किया है उन्होंने सारा जोर इसी बात का भूत खड़ा करने में लगाया है कि संशोधन से केन्द्र को सीमातीत शक्ति मिल जायेगी, उससे प्रान्तीय सरकारें अपने अधिकारी से वंचित हो जायेंगी और लोकतंत्रीय भावना का गला घुट जायेगा, इत्यादि इत्यादि। दूसरी तरफ जिन्होंने संशोधन का समर्थन किया है उन्होंने अन्य देशों का उदाहरण रखते हुए अपने पक्ष का प्रतिपादन किया है। अवश्य ही यह मंजूर करना होगा कि संशोधन के समर्थकों ने जो उदाहरण पेश किये हैं वह इस सम्बन्ध में हमारे देश में जो स्थिति वर्तमान में है, उस पर सीमित रूप में ही लागू हो सकते हैं। कई पूर्व वक्ताओं ने संशोधन के विरुद्ध बोलते हुए उसके दोषों का चित्र चित्रण बड़ा-चढ़ाकर, अतिरंजित करके किया है। इससे एक दो गलत धारणायें पैदा हो गई हैं जिन्हें दूर कर देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं, श्रीमान्। इसी तरह आदरणीय मित्र श्री सैयद मुहम्मद सादुल्ला के दो-एक तर्कों का जवाब देना भी मैं जरूरी समझता हूं। मेरा ख्याल है कि उनके तर्कों का इसी समय खंडन कर देना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि उनके तर्क ऊपर से देखने में तो बहुत ही स्तुत्य और समुचित लगते हैं पर बारीकी से विचार करने पर यह जाहिर हो जाता है कि उनके तर्क न तो स्तुत्य है और न समुचित ही हैं। आदरणीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने कल अपने प्रवाहपूर्ण भाषण में जो तर्क उपस्थित किये थे उनका मैं यहां उल्लेख करूंगा। अपने भाषण में श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने कनाडा के गवर्नर जनरल द्वारा वहां के लेफ्टिनेंट गवर्नरों की नियुक्ति का उदाहरण पेश कर अपने पक्ष का प्रतिपादन किया था। मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह समूचे प्रश्न पर गौर करे। उसकी समझ में स्वत: यह बात आ जायेगी कि आदरणीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने कनाडा का उदाहरण, केवल उदाहरण वे नाते ही रखा था। उदाहरण रखने में उनका उद्देश्य यह कदापि न था कि गवर्नर की नियुक्ति के सम्बन्ध में सभा कनाडा में प्रचलित योजना को ही ज्यों का त्यों अपना ले।

मैं सभा को बताना चाहूंगा कि जब हम कनाडा या आस्ट्रेलिया की पद्धति को अपनाने की बात करते हैं तो इस बात को भुल जाते हैं कि इन देशों में आज जो अवस्था देखने में आ रही है वह उससे बिल्कुल भिन्न है जो कि वहां आरम्भिक दिनों में थी। उदाहरण के लिये मैं आपको बताऊं कि वेस्टमिनिस्टर स्टेट के पास होने के पहले आस्ट्रेलिया में गवर्नरों को नियुक्ति उसी तरह हुआ करती थी जैसे कि अन्य उपनिवेशों में हुआ करती है। आस्ट्रेलिया में प्रान्तीय गवर्नरों की स्थिति यह भी कि वह ब्रिटिश कैबिनेट के उस मंत्री के प्रति जिम्मेदार होते थे, जो राष्ट्रमंडलीय देशों के पारस्परिक सम्बन्धों की देख-भाल करता था। (Minister in charge of Commonwealth Relations) उसका सम्बन्ध सीधे ह्वाइटहाल से रहता था। वह सीधे पत्र व्यवहार कर सकता था और प्राय: सम्बन्धित ब्रिटिश सचिवालय से वह सीधे आदेश प्राप्त किया करता था, क्योंकि वेस्टमिनिस्टर के स्टेचूट के पास होने के बाद ही आस्ट्रेलिया को एक अविभक्त एकक (undivided unit) माना गया था और तभी से, यह जो पद्धति प्रचलित थी कि ब्रिटिश मंत्री सीधे आस्ट्रेलिया

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के प्रान्तिक गवर्नरों से पत्र व्यवहार करते थे, वह खत्म की गई थी। कैनाडा की संवैधानिक स्थिति अभी कुछ दिनों पहले तक हमारी स्थिति में बहुत कुछ साम्य रखती थी, पर वहां एक प्रचलित विशेष व्यवस्था के सम्बन्ध में मैं यह जोर देकर कहूंगा कि वह इस देश के लिये कतई लागू नहीं हो सकती है। कैनाडा के विधान पर लिखने वाले हर लेखक यह मानते हैं कि लेफ्टिनेंट गवर्नरों की नियुक्ति सम्बन्धी जो समूची योजना है, और प्रान्तों पर केन्द्र का जो नियंत्रण है वह ऐसा है कि वास्तविक नियंत्रण वहां के केन्द्रीय शासन के ही हाथ में रहता है। कैनाडा के विधान के अधीन केन्द्रीय मंत्रिमंडल ही प्रान्तीय गवर्नरों को आदेश जारी किया करता है। वस्तुतः ऐसे मौके आये हैं जब कि उन्होंने गवर्नरों को हटाने में स्वविवेक का प्रयोग किया है। ऐसे दो मौकों की जानकारी प्रायः सबको है, जबकि वहां के केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने गवर्नरों को हटाया है। कैनाडा के विधान के अनुसार, वहां प्रान्तीय गवर्नर वहां के केन्द्रीय शासन के एजेंट के रूप में काम करता है। जहां तक कि मेरा अपना सम्बन्ध है, मैं इस बात को नामंजूर करता हूं कि हम लोग यह चाहते हैं कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाने वाला हमारा भावी राज्यपाल किसी भी तरह से केन्द्रीय शासन के एजेंट के रूप में काम करे। मैं इस बात को बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूं, क्योंकि भावी शासन के सम्बन्ध में जो योजना हमारे दिमाग में है, उसमें ऐसे विचार को कोई स्थान ही नहीं है। हां शक्ति वितरण सम्बन्धी योजना पर विचार करते समय अगर सभा यह आवश्यक समझे—क्योंकि सभा को ही इस पर आखिरी तौर पर विचार करना होगा—कि केन्द्र के पास कुछ शक्तियां रक्षित (reserved) रहनी चाहियें, ताकि प्रान्तों में एक सुशासन का चलना सुनिश्चित रहे और जरूरत पड़ने पर केन्द्र प्रान्तीय शासन में दखल दे सके, तो शक्ति वितरण सम्बन्धी व्यवस्था में हम इसके लिये पर्याप्त रूप से प्रावधान कर सकते हैं। हमारे लिये इस जीर्ण शीर्ण प्राचीन पद्धति को अपनाने की कोई जरूरत नहीं है। इस पद्धति का विकास तो ऐतिहासिक परम्पराओं के कारण हआ है। उपनिवेशों में सम्राट के विशेषाधिकार को बनाये रखने की जो कल्पना थी, उसे ब्रिटिश मिनिस्टरों ने क्रियात्मक रूप दिया जिससे इस पद्धति का विकास हुआ। हमें इस पद्धति विशेष को अपनाने की कोई जरूरत नहीं है। अगर परिस्थितिवश केन्द्र की मरजी के मुताबिक प्रान्तों को चलना हो भी, तो यह हमारे लिये उपयोगी न होगा कि इसके लिये प्रान्तीय राज्यपाल को हम केन्द्रीय शासन के एजेंट के रूप में रखकर उसके द्वारा केन्द्र की मरजी को प्रान्त पर लादें। मनोनीत राज्यपाल को रखने के विरुद्ध बहुत सी आपत्तियां जो यहां उठाई गई हैं, उनका स्वभावतः निराकरण हो जायेगा अगर हमारी उपरोक्त बात को ठीक-ठीक समझ लिया जाये। इस विशेष अनुच्छेद के द्वारा या यहां आगे पास होने वाले किसी अनुच्छेद के द्वारा हम यह प्रावधान ही नहीं करना चाहते हैं कि प्रान्त का राज्यपाल केन्द्र के एजेंट के रूप में रहे। मनोनीत राज्यपाल की उपयोगिता के सम्बन्ध में हमारे प्रधानमंत्री ने पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है। इस सम्बन्ध में श्री सादुल्ला साहब से मैं इतना ही कहूंगा—बावजूद आपके यकीन के और बावजूद उस तजुर्बे के जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अर्से तक जनता द्वारा तरह-तरह से चलाये गये संग्राम का हमें मिला है और जो तजुर्बा आपको ब्रिटिश गवर्नर के अधीन मंत्रिमंडल में रहकर प्रकार्य चलाने का मिला है, यह हम अच्छी तरह समझ गये हैं कि निर्वाचन व्यवस्था को, जहां वह जरूरी है वहां से हम हटाना नहीं चाहते हैं और न हम यही चाहते हैं कि कहीं व्यर्थ दोबारा चुनाव किया जाये।

श्री सादुल्ला साहब की एक बात से मैं अवश्य सहमत हूं। निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था के विरुद्ध जो यह तर्क उपस्थित किया जा रहा है कि इसमें बड़ा खर्च बैठेगा, वह बिल्कुल बेमतलब है। लोकतंत्रीय प्रणाली तो एक खर्चीली प्रणाली है ही। अगर सभा को लोकतंत्रीय व्यवस्था रखनी है तो उसे निर्वाचन सम्बन्धी सारा खर्च उठाना ही पड़ेगा, चाहे फिर निर्वाचन एक बार करना हो या दो बार करना हो या जरूरत के मुताबिक जब भी करना हो। मैं श्री सादुल्ला की इस बात से पूर्णतः सहमत हूं कि खर्च और परेशानी वगैरह की बातें, जो यहां निर्वाचन व्यवस्था के विरुद्ध रखी जा रही हैं और उन्हें जो एक अजेय कठिनाई बताया जा रहा है, वह बेमतलब है।

वास्तविक महत्त्व की बात इस सम्बन्ध में यह है और मेरे ख्याल में शायद सभा भी इसी बात से प्रेरित होकर इस विचाराधीन प्रस्ताव का अन्ततोगत्वा समर्थन करेगी कि हम जो व्यवस्था रख रहे हैं, वह ऐसी हो कि उसमें संघर्ष की कोई आशंका न रह जाये। इस बात का खुलासा बहुत से वक्ताओं ने किया है और खासतौर पर हमारे प्रधानमंत्री ने। अगर समान शक्ति वाले दो अधिकारियों को आप रखते हैं जिनमें से एक का निर्वाचन तो अधिक प्रत्यक्ष रूप से होगा और जिसके कार्यकाल की अवधि अधिक सुनिश्चित रहेगी—यहां यह याद रहना चाहिये कि राज्यपाल की पदावधि पांच साल की होगी, अगर वह इससे पहले ही दोषारोप के कारण हटा न दिया गया और दूसरा ऐसा होगा कि जिसकी पदावधि आधे घंटे के लिए सुनिश्चित न रहेगी—तो यह निश्चय जानिये कि ये दोनों जब साथ काम करेंगे तो इनमें संघर्ष होगा ही। वयस्क मताधिकार के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन करने के पक्ष में एक यह बात तो कही ही जा सकती है कि इस व्यवस्था से यह होगा कि वह दल जिसका कि प्रान्त पर अधिकार रहेगा, लूट में पूरे तौर से हिस्सा न बंटा पायेगा क्योंकि राज्यपाल कौन चुना जायेगा यह अनिश्चित रहेगा और यह भी अनिश्चित रहेगा कि दल का नेता जो मुख्यमंत्री पद का अभिलाषी होगा वह निर्वाचित ही हो जायेगा। पर मसौदा समिति ने जिस दूसरी वैकल्पिक व्यवस्था की सिफारिश की है कि विधान मंडल चार सदस्यों की एक तालिका चुन दे जिसमें किसी एक को राष्ट्रपति राज्यपाल नियुक्त कर दे, अगर वह अपनाई जाती है तो फिर प्रान्त के बहुमत प्रान्त दल के दो शक्तिशाली व्यक्तियों के बीच लाभ के सम्बन्ध में समझौता हो जायेगा। एक व्यक्ति दूसरे से यों कहेगा:—''आप तो राज्यपाल बन जाइये और मैं बनूं मुख्यमंत्री''। मैं तो यही अनुभव करता हूं श्रीमान्, कि अगर इन दोनों ही व्यवस्थाओं में से ही मुझे एक को चुनने को कहा जाये तो अवश्य ही तालिका व्यवस्था को न पसंद कर मैं वयस्क मताधिकार के आधार पर राज्यपाल के चुनाव को ही पसंद करूंगा। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं इस व्यवस्था को पसंद करता हूं क्योंकि प्रान्तीय प्रशासन के दो महत्त्वपूर्ण पदों के लिये दो चुनावों का प्रावधान करके विधान में संघर्ष का बीज वपन करना हम नहीं चाहते हैं।

माननीय मित्र श्री सादुल्ला ने यह कहा है कि सदस्यों ने अपने दो वर्ष पूर्व के विचारों को बदलने का जो कारण बताया है कि उसे वह नहीं समझ सके हैं। (*बाधा*) माननीय मित्र श्री बी. दास क्या कह रहे हैं इसे मैं नहीं सुन पा रहा हूं। जवाब में इतना ही कहूंगा कि मेरे ख्याल में उन्हीं बातों की वजह से इन लोगों ने अपनी राय बदली है, जो श्री सादुल्ला को अब भी परेशान कर रही है। आपने अभी-अभी फरमाया है कि हम

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

लोग अमेरिकन विधान के कैसे प्रशंसक हैं। नि:संदेह हम अमेरिकन विधान के प्रशंसक जरूर हैं पर हमने उसे अपनाया नहीं है। अमेरिकन विधान को न अपनाने का कारण यह है कि हम लोगों का यह विश्वास है और मेरा तो पक्का विश्वास है कि भारतीय जनता की प्रवृत्ति या मनोदशा के लिये संसद मूलक लोकतंत्र ही अधिक अनुकूल होगा। अगर दो वर्ष पहले हमने राज्यपाल के निर्वाचन की व्यवस्था को अपनाया था तो वह केवल उसी दोष के कारण जिसका शिकार होकर सादुल्ला साहब इतनी वकालत कर रहे है। अवश्य ही राय बदलने वालों में मैं नहीं हूं। हम लोग एक विधान तैयार करने की कोशिश कर रहे थे और ऐसा करने में हमने यह कोशिश की कि विभिन्न विधानों से भिन्न-भिन्न तरह के संरक्षणों को हम अपनायें। हमारे दिमाग में यह बात तय नहीं हो पाई थी कि हमारा भावी विधान पूर्णत: संसदात्मक रहेगा या कुछ अंशों में संसदात्मक और कुछ अंशों में राष्ट्रपति प्रधान रहेगा। वस्तुत: हमारे नेताओं के लिये यह एक प्रशंसा की बात है कि उन्होंने अन्त तक इस सम्बन्ध में अपना दिमाग खुला रखा। विभिन्न स्थितियों में इस प्रश्न पर विवेचन करना उन्होंने जारी रखा और अन्ततोगत्वा इस निर्णय पर पहुंचे कि हम शुद्धत: संसदात्मक शासन व्यवस्था ही अपनायेंगे, जिसमें राष्ट्रपति-प्रधान शासन व्यवस्था का रंचमात्र भी अंश न रहेगा। माननीय मित्र श्री सादुल्ला को मैं बताऊंगा कि अमेरिका में विधान मंडल और गवर्नर की परस्पर तुलनात्मक स्थिति में क्या है। कुछ रियासतों में विधान मंडल एक साल तक आहूत ही नहीं किया जाता और कई रियासतों में तो, मेरा ख्याल है, बजट पास करने के लिये विधान मंडल का आह्वान किया जाये, इसकी कोई पाबन्दी ही नहीं है। अमेरिकन विधान के अधीन वहां की रियासतों का कार्य संचालन कैसे होता है, इसकी जो थोड़ी बहुत जानकारी हम लोगों को है, उसी के आधार पर हम यहां इस सम्बन्ध में यत्र तत्र कुछ बातें कहते हैं। अमेरिका में न्यायपालिका का कितना प्राधान्य है, इस पर जस्टिस राय जैक्सन की लिखी हुई एक पुस्तक जो किसी पाठ्यक्रम में है, मैं अभी हाल में पढ़ रहा था। पुस्तक में मैंने एक स्थल पर यह स्पष्टोल्लेख पाया कि वहां की कई रियासतों में विधान मंडल को दो-दो वर्षों तक नहीं आहूत किया जाता है। स्थिति यह है कि या तो गवर्नर को आप प्रधानता दें या विधान मंडल को। अगर आप राष्ट्रपति मूलक प्रणाली अपनाते हैं तो गवर्नर को प्राधान्य प्राप्त रहेगा। संसदात्मक प्रणाली में प्रधानता प्राप्त रहेगी विधान मंडल को और बहुमत प्राप्त दल के नेता को। प्राधान्य किसे दिया जाये यह पसंद कर लेना बिल्कुल आसान है। किसे प्राधान्य देना तर्कसंगत होगा यह साफ समझ में आ जाने वाली बात है। यही कारण है कि हमने मनोनीत राज्यपाल को रखना पसंद किया है। कैनाडा की नजीर का जो यहां हवाला दिया गया है, अब मैं उसकी ओर आता हूं सभा के सदस्यों का बाहर वालों के मन में यह ख्याल न पैदा होने दीजिये कि कैनाडा के उदाहरण के आधार पर हमने वहां की कोई व्यवस्था अपनाई है। हमारा विचार यह है कि गवर्नर की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह से की जायेगी, पर प्रधानमंत्री सम्बन्धित मुख्यमंत्री से परामर्श करके ही अपनी सलाह देगा और इस मामले के मुख्यमंत्री की मंजूरी लाजिमी होगी। मेरा ख्याल है कि इस सम्बन्ध में यह रूढ़ि (मुख्यमंत्री की मंजूरी) चालू भी हो चुकी है। इस तरह राज्यपाल के रूप में जो व्यक्ति निर्वाचित होगा, वह प्रान्तीय राजनीति को निष्पक्ष रूप से संतुलित रख सकेगा। एक ऐसे व्यक्ति को

रखने में क्या लाभ है जिसका किसी दल से सम्बन्ध न हो, जो प्रान्तीय भावना से परे हो, इस पर प्रधानमंत्री ने पर्याप्त रूप से प्रकाश डाल दिया है। इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूंगा। माननीय मित्र श्री सादुल्ला, जिस स्थिति की कल्पना कर रहे हैं उसका अस्तित्व सम्भवत: आरम्भिक काल में रहे पर वह स्थिति सदा नहीं बनी रहेगी। मुख्यमंत्री से आखिर कैसे परामर्श किया जा सकता है? हम सर्वत्र नया निर्वाचन करने जा रहे हैं। राज्यपाल तो आपके पास पहले ही से मौजूद है जिन्हें राष्ट्रपति या केन्द्रस्थ प्रधानमंत्री ने नियुक्त कर रखा है। राज्यपाल अपने पद पर बना रहे या नहीं इस सम्बन्ध में मुख्यमंत्री से कैसे परामर्श लिया जा सकता है? नये मुख्यमंत्री के कार्यभार संभालने पर क्या राज्यपाल की फिर से नियुक्ति हो जायेगी?

मध्यवर्ती काल में इस तरह की असंगत बातों का होना स्वाभाविक है। सादुल्ला साहब ने खुद यह कहा हैं कि किसी एक खराबी की वजह से आप समूची योजना को खराब नहीं बना सकते हैं। यह बिल्कुल सम्भव है कि प्रान्त में राज्यपाल का प्रकार्य करने वाला व्यक्ति इस बात पर बिल्कुल राजी हो कि जरूरत हो तो राज्यपाल को फिर से मनोनीत किया जाये या अगर मुख्यमंत्री उसे नहीं पसंद करता है तो वह अपने पद से हट जायेगा। अगर प्रान्त का नया मंत्रिमंडल राज्यपाल पद पर अपनी पसंद का कोई दूसरा व्यक्ति रखना चाहता है, तो मुझे इसमें रंचमात्र संदेह नहीं है कि प्रधानमंत्री, अगर वह अपने वर्तमान प्रधानमंत्री के समान ही व्यापक दृष्टिकोण रखने वाला उसी के दर्जे का व्यक्ति है, प्रान्त के मुख्यमंत्रियों पर खुशी से यह छोड़ देगा कि वह अपनी पसंद के आदमियों को राज्यपाल पद पर आसीन कर लें। मेरा ख्याल है कि जिस भयानक स्थिति की कल्पना से श्री सादुल्ला साहब परेशान हो रहे हैं उसका समुचित रूप से निराकरण हो जायेगा, अगर भारत का प्रधानमंत्री ऐसा व्यक्ति हुआ जो लोकतंत्रीय सिद्धांतों को समझता हो और उन पर चलता हो।

एक ही बात मुझे और कहनी है श्रीमान्, और वह है पं. हृदयनाथ कुंजरू द्वारा कही चन्द बातों के सम्बन्ध में। मैं इससे सर्वथा सहमत हूं कि उन्होंने जो बातें कही हैं वह इसी कारण से कही हैं कि उनके मन में वास्तविक सन्देह है। इस सम्बन्ध में मैं इतना कहूंगा कि विधान के मसौदे के आगे आने वाले अनुच्छेदों के सम्बन्ध में नि:संदेह सभा का यही इरादा है कि उनमें ऐसा परिवर्तन कर दिया जाये कि पहले किये गये परिवर्तनों से उनका मेल बैठ सके। अगर कुंजरू साहब यह चाहते हैं कि आरक्षित विधेयकों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 175 में जो प्रावधान है, उनका वहां खुलासा कर दिया जाये तो हमें ऐसा कर देना चाहिये। माननीय मित्र अगर यह चाहते हैं कि उन विषयों के बारे में जिनमें केन्द्रीय सरकार का अपना स्वार्थ है, केन्द्रीय सरकार के विचार क्या हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख हो जाना चाहिये और विधेयकों को आरक्षित रखने की जिम्मेदारी राज्यपाल पर न रहनी चाहिये, क्योंकि उससे उस पर दोषारोप य लांछन का एक वातावरण पैदा होगा तथा उसके और मुख्यमंत्री के बीच दुर्भाव उत्पन्न होगा, तो उचित स्थल पर हमें इसका खुलासा कर देना चाहिये। हम यह लिपिबद्ध कर दें कि अमुक स्थितियों में सहगामी विषयों के सम्बन्ध में राज्यपाल राष्ट्रपति से आदेश मांग सकता है। इस बात का तो हम साफ-साफ उल्लेख विधान में कर सकते है, जिससे कोई शक न रह जाये।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

अनुच्छेद 188 के सम्बन्ध में मुझे सिर्फ एक ही बात कहनी है। इस अनुच्छेद को सर्वथा एक स्वतंत्र अनुच्छेद समझ लिया गया है और यह नहीं ख्याल किया गया है कि अनुच्छेद 278 का इससे सम्बन्ध है और इसी 278 अनुच्छेद पर ही यह सर्वथा आधृत है। इसीलिये इसके बारे में यह कहा गया है कि इससे राज्यपाल को खास अधिकार मिल जाते हैं और मुख्यमंत्री महज कठपुतली के रूप में रह जाता है। यह अनुच्छेद केवल इसी उद्देश्य से रखा गया है कि मौके पर जो अधिकारी हों, उसे 14 दिन की संक्षिप्त अवधि के लिये यथोचित कार्यवाही करने का अधिकार रहे। हो सकता है कि अक्सर यह अवधि सात या पांच दिन की रहेगी। सभा के माननीय सदस्यों से मैं कहूंगा कि वह अनुच्छेद 278 को पढ़ लें और अगर जरूरत हो तो उसमें संशोधन कर लें। अनुच्छेद 278 में यह साफ-साफ कहा गया है कि राष्ट्रपति, जो एक पखवारे के बाद प्रान्त की सारी व्यवस्था को अपने हाथ में लेगा, उसे संसद का समर्थन प्राप्त रहेगा। इस अनुच्छेद का मूल प्रयोजन यही है कि उस सूरत में जबकि प्रान्त का शासन बिल्कुल खराब हो गया हो या ऐसी हालत वहां पैदा हो गई हो कि सख्त कार्यवाही करना जरूरी हो तो शासन की जिम्मेदारी प्रान्त से हटा कर केन्द्र को हस्तान्तरित कर दी जाये। केन्द्र के सम्बन्ध में तो हम यह कल्पना ही नहीं करते हैं कि वहां गैर जिम्मेदार हुकूमत रहेंगी। वहां एक ऐसा राष्ट्रपति होगा जिस पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण रहेगा और प्रधानमंत्री पर नियंत्रण रहेगा संसद का। अनुच्छेद 278 में साफ-साफ कहा गया है कि राष्ट्रपति सर्वथा अपनी मर्जी के मुताबिक नहीं काम करेगा। संसद की अनुमति लेकर ही वह काम करेगा। अगर प्रान्तों में एक व्यक्ति का शासन जारी रहने दिया जाता है या यह कहिये कि केन्द्रीय सरकार राज्यपाल को आदेश देकर अपना शासन वहां जारी रखती है, तो ऐसा तभी होगा जबकि इसके लिये संसद की अनुमति मिल गई हो। जहां प्रान्तीय प्रतिनिधि एक बड़ी संख्या में रहें और प्रान्त के दृष्टिकोण को सभा के समक्ष रखने का उन्हें मौका रहेगा। मुझे इसमें रंचमात्र भी शक नहीं है कि भावी भारत का कोई प्रधानमंत्री ऐसा न होगा जो ऐसी सख्त कार्यवाही करने में, जिनका कि अनुच्छेद 188 में उल्लेख है, प्रान्त विशेष के प्रतिनिधियों के मत की उपेक्षा करेगा।

मैं सभा का और समय नहीं लेना चाहता हूं क्योंकि इस पहलू पर यहां बहुत कुछ कहा जा चुका है। पर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊंगा अगर विचाराधीन प्रस्ताव पर मतदान की जो कल्पना माननीय मित्र श्री सादुल्ला ने यहां व्यक्त की है, उसके सम्बन्ध में एक बात न कह दूं। शायद यह दुर्भाग्य की बात है कि देश में हालत ऐसी रही है कि यहां केवल एक ही दल ने देश की आजादी के काम में प्रमुख भाग लिया और दूसरा दल जो प्रभावी रूप से हमें सहयोग दे सकता था, वह मुल्क छोड़कर सारे सामान के अन्यत्र चल गया। इसमें कांग्रेस दल का क्या दोष है? इस दल ने अकेले देश की स्वतंत्रता के लिये जंग किया, सुतरां इसी के बहुसंख्यक सदस्य निर्वाचित होकर यहां आये। पर मैं अपने माननीय मित्र को इतना जरूर बताऊंगा कि कांग्रेस पार्टी ऐसी पार्टी नहीं है जिस पर डिक्टेटरों का शासन चल रहा हो। बहुमत का इस पार्टी में अवश्य ही आदर किया जाता है और ऐसी कोई बात नहीं की जाती है कि जनता की राय को तोड़-मोड़कर उसे एक खास राय के हक में लाया जाये और दुनिया को यह दिखाया जाये कि यह राय सभा के बहुमत की राय है। अगर मेरे माननीय मित्र आज अल्पमत में है, तो इसके लिये क्या

मैं दोषी हूं या प्रधानमंत्री दोषी या कांग्रेस पार्टी दोषी है? मैं अपने मित्र को यह विश्वास दिलाता हूं कि हम लोगों में ऐसे लोग, जो कांग्रेस पार्टी के सदस्य हैं, हमेशा यही भावना रखते हैं कि बहुमत प्राप्त दल होने के नाते, जो महत्त्वपूर्ण दायित्व उन पर आयत है, उसका वह निष्ठापूर्वक निर्वाह करें। उन्हें मैं यह भी विश्वास दिलाऊंगा कि कांग्रेस पार्टी कभी कोई ऐसा काम नहीं करती है जिसके विरुद्ध पार्टी के बहुत से लोग हों, भले ही, उन सदस्यों को किसी प्रश्न विशेष पर बहुमत प्राप्त न हो। इस तरह के मसले में इन सब बातों के लाने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि इसके पीछे ऐसी कोई बात नहीं जो बहुत ही महत्त्व की हो। माननीय मित्र श्री सादुल्ला को मैं यह बताना चाहता हूं कि निर्वाचित राज्यपाल, मुख्यमंत्री के मुकाबले में प्रान्तीय आजादी का न तो अधिक हिमायती होगा और न अल्पसंख्यकों के हितों का ही वह उतनी हिमायत करेगा। अगर हम निर्वाचित राज्यपाल रखने का निर्णय करते हैं तो इसका मतलब यही होगा कि हम दुहरे निर्वाचन की व्यवस्था कर रहे हैं और संघर्ष की गुंजायश पैदा कर रहे हैं। सम्भावना यही है कि हमें ऐसे आदमी ही न मिल सकेंगे जो उन प्रकार्यों को पूरा कर सकें, जिन्हें कि हम निर्वाचित राज्यपाल के द्वारा या तालिका व्यवस्था से लिये गये राज्यपाल के द्वारा सुचारू रूप से पूरा कराना चाहते हैं। पर साथ ही मैं जानता हूं, जैसा कि बहुधा कहा जाता है प्रतिभा सम्पन्न योग्य सम्राट को भी अक्सर फांसी के तख्ते पर लटकना पड़ता है। यह भी हो सकता है कि ऐसा राज्यपाल, जो बौद्धिक एवं अन्य दृष्टि से प्रचुर योग्यता रखने वाला व्यक्ति है, वह भी शायद बड़ा अप्रिय बन जाये और श्री सादुल्ला जैसा स्थिर एवं अनुभवी व्यक्ति ही खूब चुनकर रखे गये प्रतिभा सम्पन्न राज्यपाल से अच्छा सिद्ध हो जाये। इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि भविष्य हमारे हाथ की बात नहीं है। हमारा बस तो इतना ही है कि जो भी सीमित योग्यता परमात्मा ने हमें दी है, उससे भविष्य के बारे में ठीक-ठीक कल्पना करके एक व्यवस्था कर दें। मेरा विश्वास है कि संशोधन में जो सुझाव रखा गया है उसी पर चलने में बुद्धिमानी है और मैं आशा करता हूं कि सभा उसे स्वीकार करेगी।

***श्री बी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, मैं एक भारतीय रियासत से आया हूं। राज्यपाल को राष्ट्रपति मनोनीत करे या जनता उसका निर्वाचन करे, इस प्रश्न पर जो वाद-विवाद यहां दो दिनों से चल रहा है उसे मैंने बड़े ध्यान से सुना है। इस समूची बहस के दौरान में मैं यही आश्चर्य कर रही था कि सभा ने आया यह भी सोचा है या नहीं या इस पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है या नहीं कि जो विधान बन रहा है वह भारत के केवल गैर रियासती इलाकों के लिये नहीं होगा बल्कि वह समूचे देश के लिये लागू होगा जिसमें रियासतें भी शामिल हैं। मैं यह बता दूं कि जो विधान हम बना रहे हैं वह भारतीय रियासतों के लिये भी लागू होगा, क्योंकि ये रियासतें भी हमारे भावी भारतीय संघ के अंग के रूप में ही रहेंगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** अनुच्छेद 128 में यह साफ-साफ कह दिया गया है कि यह केवल उन्हीं क्षेत्रों के लिये लागू होगा जो प्रान्तों के नाम से पुकारे जाते हैं न कि रियासतों के लिये।

***श्री बी.एस. सर्वटे:** मैं यह बता दूं कि जब हम लोगों को यहां सदस्य रूप में उपस्थित होने की अनुमति दी गई है, तो यह स्वाभाविक है कि...

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** मैंने यह नहीं कहा है कि माननीय सदस्य को बोलने का अधिकार नहीं है। मैं तो केवल उनकी एक भूल को ठीक कर रहा था।

***श्री बी.एस. सर्वटे:** उस सूरत में माननीय मित्र को थोड़ा इंतजार करना था और यह देखना चाहिये था कि मैं कहने क्या जा रहा हूं। अस्तु, जो विधान हम बना रहे हैं वह अब भारतीय रियासतों के लिये भी लागू होगा। पहले यह बात रियासतों की मरजी पर छोड़ी गई थी कि वह चाहें तो विधान को स्वीकार करें या न करें। पर अभी हाल में जो प्रतिज्ञा-पत्र (Covenants) जारी किया गया है, उसके अनुसार यह अब रियासतों की इच्छा की बात नहीं रह गई है। पर अगर हम यह मान भी लें कि रियासतों को यह स्वेच्छा प्राप्त है कि वह विधान को अपने लिये मंजूर करें, या न करें, तो उस हालत में भी इसमें शक नहीं है कि रियासतें विधान को स्वीकार ही करेंगी। इसलिये स्थिति यह है कि भावी भारतीय संघ के लिये जो विधान हम बना रहे हैं, वह उन क्षेत्रों के लिये भी लागू होगा जो रियासतों में शामिल है। अत: सभा को उस व्यक्ति की स्थिति के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिये, जो रियासतों में प्रान्तीय राज्यपाल का स्थानीय रहेगा। सभा को यह मालूम होगा कि जो रियासतें भारतीय संघ में प्रविष्ट हो चुकी हैं और जिन पर कि यह विधान लागू रहेगा, वहां उन रियासतों में या जहां कई रियासतों को मिलाकर एक संघ बनाया है वहां उन संघों में प्रधान के रूप में राजप्रमुख हैं और राजप्रमुख का पद वंश परम्परा के हिसाब से नहीं दिया जायेगा, पर जो अभी राजप्रमुख होंगे, वह अपने शेष जीवन भर तो इस पद पर बने ही रहेंगे। भारत सरकार ने यह मंजूर कर लिया है कि राजप्रमुखों की वर्तमान स्थिति कम से कम उनके जीवन काल तक तो बनी ही रहेगी। अगर स्थिति यही है, तो गवर्नर का निर्वाचन किया जाये या राष्ट्रपति उसे नियुक्त करे इस पर जो यहां वाद-विवाद चल रहा है वह क्या आश्चर्यप्रद नहीं है? राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के नियुक्त किये जाने के पक्ष में जो तर्क दिया जा रहा है वह यह है कि अगर राज्यपाल नहीं नियुक्त किया जाता है तो प्रधानमंत्री शान्ति बनाये रखने की अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह अच्छी तरह न कर पायेगा। समूचे भारत का एक तृतीयांश तो इन रियासतों को मिल कर बना है और इस एक तृतीयांश का शासन राजप्रमुख करते हैं जो राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत न रहेंगे। अगर प्रधानमंत्री शान्ति बनाये रखने की अपनी जिम्मेदारी का पालन इन राजप्रमुखों को लेकर कर सकता है तो यह समझने की बात है कि अमनोनीत राज्यपालों को लेकर भी वह शेष भारत के सम्बन्ध में अपनी जिम्मेदारी का पालन खूब मजे में कर सकता है। वस्तुत: यह एक बहुत बड़ी असंगति की बात है। सभा को कुछ न कुछ ऐसा प्रावधान ढूंढना ही होगा, जिसके द्वारा राजप्रमुखों की स्थिति और उनके अधिकार राज्यपाल की स्थिति और अधिकार के स्तर पर ला दिये जायें या फिर हमें एक दूसरा विकल्प अपनाना होगा। दूसरा विकल्प यह है दो वर्ष पूर्व इस सभा ने एक प्रस्ताव पास किया था जो यह था कि राज्यपाल निर्वाचन द्वारा ही रखा जाये। उस समय यह दलील दी गई थी कि अगर निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था नहीं की जाती है, तो लोकतंत्रीय सिद्धांत का हनन होगा और प्रान्त को जो स्वशासन का अधिकार है वह खत्म हो जायेगा। पर अब सभा इस मत पर आ गई है कि देश के हित में मनोनीत राज्यपाल को रखना ही अधिक श्रेयस्कर है। अगर आप विधान में कोई ऐसा प्रावधान नहीं करते हैं, जिससे

अधिकार के सम्बन्ध में राज्यप्रमुख राज्यपाल के स्तर पर आ जायें तो फिर कुछ और आगे बढ़कर आपको दूसरा विकल्प यह अपनाना होगा कि जब विधान को पास करने का समय आये तो उस समय जो भी राज्यपाल पद पर आसीन हो उनके ही वंशजों को यह पद देने का या कम से कम उनके जीवनकाल तक तो उनको ही इस पद पर आसीन रहने देने का प्रावधान कर दिया जाये। यही दो रास्ते सभा के सामने हैं। मैं आग्रह करूंगा कि राजप्रमुखों को राज्यपालों के स्तर पर लाने के हेतु आवश्यक प्रावधान रखने पर सभा अवश्य विचार करे। मैं बतौर चेतावनी के यह कह रहा हूं और इसलिये कह रहा हूं कि सभा ऐसे प्रावधान की उपयोगिता की कहीं उपेक्षा न कर बैठे। मैं देखता हूं कि विधान में कहीं भी रियासतों या उनको मिलाकर बनाये संघों के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं रखा गया है। हम ऐसा मानते हैं और जो स्थिति है उसमें यह मानना होगा कि रियासतें भारतीय संघ के अंग के रूप में ही रहेंगी। फिर भी राज्यों या राज्यसंघों को प्रान्तों के स्तर पर लाने के लिये हम कोई प्रावधान नहीं कर रहे हैं, यह आश्चर्य की ही बात है।

इस चेतावनी के साथ मैं विचाराधीन प्रस्ताव का यानी राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यपालों को रखने के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री सिधवा।

आशा है, उनका यह भाषण आखिरी भाषण होगा और उनके बाद कोई और सदस्य न बोलेगा। इस मसले पर यहां काफी बहस हो चुकी है।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या अपने निर्णय के रूप में आप यह बात कह रहे हैं, श्रीमान्?

***अध्यक्षः** अगर आप को अप्रिय न मालूम हो तो मैं यही कहूंगा कि आगे और किसी वक्ता को बोलने देने का मेरा अभिप्राय नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, मैं उन लोगों में नहीं हूं, जिन्हें उन मित्रों के रुख पर आश्चर्य हो रहा है जिन्होंने पहले निर्वाचित राज्यपाल रखने के प्रस्ताव का समर्थन किया था और अब मनोनीत राज्यपाल रखने के प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं। करीब दो वर्ष पहले जब इस प्रश्न पर विचार किया गया था तो उस समय भी मेरा मत यही था कि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही राज्यपाल पद पर आसीन होना चाहिये। संशोधन संबंधी पुस्तक के 204 पृष्ठ पर आप मेरा एक संशोधन देखेंगे जिसकी सूचना गत अप्रैल में मैंने भेजी थी संशोधन का रूप यों है–

''राज्य का शासक प्रधान द्वारा नियुक्त किया जायेगा।'' (The Governor of a State shall be appointed by the President)

उस समय कुछ लोग भी थे जो मेरे इस मत से सहमत थे कि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही राज्यपाल बनाया जाना चाहिये। पर उस समय मेरी और मुझसे सहमत मित्रों की आवाज केवल अरण्य रुदन ही रही। पर आज स्थिति बदल गई है। माननीय मित्र

[श्री आर.के. सिधवा]

रोहिणी कुमार चौधरी ने कल यहां यह पूछा था: ''इस बीच में आखिर कौन सी ऐसी बात हो गई जिसके कारण लोगों ने अपनी राय बदल दी है?'' मैं यह पूछता हूं कि देशहित के ख्याल से लोगों ने अगर अपनी राय बदल दी है तो क्या गुनाह किया है? जो लोग इस व्यवस्था का विरोध करते थे, उन्होंने अगर यह समझ लिया है कि अल्पमत वालों की ही राय ठीक थी, अगर अब वे लोग यह महसूस करते हैं कि अल्पमत वालों का कहना ही सही था, तो उनके लिये क्या यह उचित नहीं है कि वह अपनी राय को बदल दें? क्या ऐसा करना गलत है? मैं तो इनका कृतज्ञ हूं। इस मत को रखा था चन्द लघु व्यक्तियों ने पर अब हमारे इन बड़े व्यक्तियों ने, यह महसूस करके कि उनकी राय गलत थी अपनी राय बदल दी और हम लोगों का मत मान लिया। इसके लिये वस्तुत: हमें उनकी प्रशंसा करनी चाहिये। गत वर्ष भी बहुतों ने यही महसूस किया था कि राज्यपाल की नियुक्ति मनोनयन द्वारा होनी चाहिये। पर यह केवल संयोग की बात थी कि लोग निर्वाचन व्यवस्था के पक्ष में बह गये और उसी व्यवस्था की जीत रही। श्री दास ने यह फरमाया है कि मनोनीत राज्यपाल रखने का परिणाम यह होगा कि केन्द्र में तो लोकतंत्रीय व्यवस्था रहेगी और प्रान्तों में रहेगी एक स्वेच्छातंत्रीय व्यवस्था। मैं नहीं समझ पाता हूं कि प्रान्तों में स्वेच्छातंत्रीय व्यवस्था कैसे रहेगी। आखिर प्रान्तों के विधान मंडलों में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा निर्वाचित सदस्य आयेंगे ही। फिर वहां स्वेच्छातंत्रीय व्यवस्था कैसे रहेगी?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। माननीय सदस्य का यह कहना कि गत अवसर पर केवल संयोगवश ही निर्वाचन व्यवस्था मंजूर कर ली गई थी, सभा पर यह एक गंभीर आक्षेप है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि आक्षेप के उद्देश्य से यह कहा गया है। यह तो भाषा की बात है। उन्होंने अपने ढंग से यह बात कही है।

***श्री आर.के. सिधवा:** राज्यपाल को मनोनीत करेगा राष्ट्रपति जो जनता द्वारा निर्वाचित रहेगा। इसे आप स्वेच्छातंत्र कहेंगे? ब्रिटिश अमलदारी में जिस तरह लोगों को मनोनीत किया जाता था और अब जिस तरह किया जायेगा उसमें अन्तर है। इस अन्तर को शायद माननीय मित्र नहीं समझ रहे हैं। अतीत में वायसराय केन्द्रीय विधान मंडल के लिये सदस्य मनोनीत करता था और प्रान्तीय विधान मंडलों के लिये गवर्नर और म्युनिसिपैलिटी या जिला बोर्डों के लिये कमिश्नर और कलेक्टर मनोनीत करता था। माननीय मित्र श्री बी. दास क्या यह समझते हैं कि अब जो मनोनयन होगा वह उसी तरह का होगा जैसा कि वायसराय वगैरह करते थे? आप अगर ऐसा समझते हैं तो आपकी समझदारी पर अफसोस है। हमारा राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित रहेगा। हम यह नहीं चाहते हैं कि सभी पदों के लिये निर्वाचन ही किया जाये। मूलभूत बात यह है कि विधान मंडलों में निर्वाचित व्यक्ति ही आयेंगे। और फिर आप भी यह नहीं चाहेंगे कि सभी पदों के निर्वाचन ही किया जाये और इस तरह देश में अव्यवस्था पैदा की जाये। यह एक बुनियाादी बात है जो हमारे ध्यान में रहनी चाहिये।

साथ ही मैं यह भी महसूस करता हूं कि राज्यपाल की स्थिति सर्वथा नगण्य रहेगी। उसे शक्तियां प्राप्त हैं; ऊंचा दर्जा प्राप्त है, वह प्रान्त का सर्वश्रेष्ठ नागरिक माना जायेगा, यह सब मैं मंजूर करता हूं, पर कार्यपालन के सम्बन्ध में वह सर्वथा नगण्य रहेगा और इस दृष्टिकोण से मनोनीतकरण की व्यवस्था और वह भी किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं जिसे जनता का विश्वास नहीं प्राप्त है बल्कि...

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): अगर हम अमेरिका से कुछ ऐसे यंत्र मंगा लें जो मनुष्य का कार्य सम्पादित कर देते हों तो क्या हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा?

***श्री आर.के. सिधवा:** अगर आपका यही तर्क है तो फिर इसका उत्तर देने में मैं असमर्थ हूं।

दूसरी बात यह है श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में हम जो नीति अपनाने जा रहे हैं, वह एक बड़ी ही अभिनन्दनीय नीति है और वह यह है कि किसी प्रान्त में वहां का कोई व्यक्ति राज्यपाल पद के लिये मनोनीत न किया जायेगा। यह एक बड़ी उपयोगी नीति है और मैं इसका समर्थन करता हूं। हो सकता है कि इस व्यवस्था में भी आप कभी-कभी गलत मनोनयन कर बैठें पर आमतौर पर यह गलती न होगी। अगर प्रान्त से ही किसी व्यक्ति को मनोनीत करने की नीति आप अपना लेते हैं तो इससे इतना कलह पैदा होगा कि राज्यपाल की प्रतिष्ठा जाती रहेगी और वह बदनाम हो जायेगा। मैं इस प्रसंग में किसी नाम का उल्लेख करना नहीं चाहता हूं पर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊंगा अगर एक विशेष घटना का उल्लेख यहां न कर दूं।

***अध्यक्ष:** कृपा कर किसी नाम का उल्लेख न कीजिये और न किसी घटना का ही उल्लेख कीजिये जिसे लोग आसानी से समझ जायें।

***श्री आर.के. सिधवा:** एक ऐसे व्यक्ति का जिक्र कर रहा हूं जिसका चरित्र सन्देह से परे है जिसके विचार स्वातंत्र्य पर आज कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता है और...

***श्री बी. दास:** मैं इस कथन का सख्त विरोध करता हूं कि छोटे प्रान्तों में ऐसे चरित्रवान और योग्य व्यक्ति नहीं हैं जो दूसरे प्रान्तों के राज्यपाल होने लायक हों। मैं कहूंगा कि छोटे प्रान्तों में, बम्बई और अन्य बड़े प्रान्तों से भी योग्य और चरित्रवान् व्यक्ति आपको इस पद के लिये मिलेंगे।

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा को आखिर अपनी राय रखने का अधिकार तो है ही।

***श्री आर.के. सिधवा:** एक ऐसा व्यक्ति जिसका चरित्र प्रश्न से परे हो, जिसकी योग्यता और सच्चाई के बारे में कोई सन्देह न हो, अगर उसे भी आप उसके ही प्रान्त में राज्यपाल पद पर आसीन कर देते हैं तो उसकी सर्वप्रियता जाती रहेगी और वह बदनाम हो जायेगा। मैं किसी के नाम का उल्लेख यहां नहीं करना चाहता। इतने से ही अगर कुछ लोग मेरे इशारे को समझ गये हों अच्छा ही है।

[श्री आर.के. सिधवा]

श्री दास का कहना है कि उनके प्रान्त में ऐसे योग्य और सक्षम व्यक्ति हैं जो दूसरे प्रान्तों में राज्यपाल हो सकें। कल मैंने ही यहां कहा था कि सभी प्रान्तों में योग्य व्यक्ति हैं और राज्यपाल की नियुक्ति में किसी प्रान्त विशेष की उपेक्षा की जाती है तो इसके लिये बुरा न मानना चाहिये। मेरी इस बात पर कल श्री बी. दास ने हर्ष प्रकट किया था। पर आज ऐसा मालूम पड़ता है कि आप कुछ दूसरा ही समझ रहे हैं और रह-रह कर आपत्ति कर रहे हैं। मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि भविष्य में चाहे जो भी कोई प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति हो, राज्यपाल की नियुक्ति में उसे सभी प्रान्तों का ध्यान रखना चाहिये। यह बात नहीं है कि योग्य व्यक्ति केवल चन्द प्रान्तों में ही पाये जाते हों, योग्य व्यक्ति सभी प्रान्तों में पाये जाते हैं और राज्यपाल का चुनाव करने में राष्ट्रपति को, यह बात ध्यान में रखनी चाहिये। इस सम्बन्ध में उसको संकुचित दृष्टिकोण न रखना चाहिये। उसकी यह कोशिश होनी चाहिये कि सभी प्रान्तों के योग्य व्यक्तियों को मौका मिले। मैं इस मत का प्रबल समर्थक हूं कि प्रान्त के किसी व्यक्ति को राज्यपाल पद पर वहां न रखना चाहिये और मैं आपको बता दूं कि अगर आप ऐसा करते हैं तो राज्यपाल अप्रिय हो जायेगा। इन शब्दों के साथ मैं हृदय से इस संशोधन का समर्थन करता हूं, श्रीमान्।

***माननीय श्री सत्यानारायण सिंहः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान् किः

''अब इस प्रश्न पर राय ली जाये।''

***श्री बी. दासः** पहले इसके कि वाद-विवाद समाप्त करने का प्रस्ताव पेश हो, मैं आपसे यह अनुरोध करूंगा कि श्रीमान्, कि चन्द बातों के स्पष्टीकरण का मुझे मौका दिया जाये, यद्यपि यह लाजमी है कि इस संशोधन के पक्ष में ही मैं राय दूंगा।

***अध्यक्षः** जब आप संशोधन के पक्ष में ही राय देंगे तो फिर संशोधन के विरुद्ध बोलने में क्या लाभ है? मैं ऐसी बात की अनुमति नहीं दे सकता।

***श्री बी. दासः** हम पर यह बन्दिश लगा दी गई है श्रीमान्, कि...

***अध्यक्षः** अगर आप पर कोई बन्दिश है तो वह बन्दिश खुद आपने लगाई है। इस सभा में हर सदस्य को अपनी इच्छानुसार राय जाहिर करने का हक है।

प्रस्ताव यह है किः

''इस प्रस्ताव पर अब राय ली जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस संशोधन पर एक लम्बी बहस हुई है और मैं नहीं समझता कि अब कोई लम्बी वक्तृता देकर सभा का समय लेना मेरे लिये जरूरी है। मैं दो बातों को स्पष्ट करने के लिये ही खड़ा हो रहा हूं। एक तो सभा को मैं यह बता देना चाहता हूं कि इन दो विकल्पों में, जो

मसौदा-समिति ने सभा के सामने रखा है और इस संशोधन नं. 2015 में जिस पर यहां कल से बहस चल रही थी, क्या परस्पर सम्बन्ध है। दूसरी बात मैं यह बता देना चाहता हूं कि सभा के सामने ठीक-ठीक प्रश्न क्या है ताकि सभा को मालूम हो सके कि मसौदा समिति द्वारा दिये गये दोनों विकल्पों और इस संशोधन के सम्बन्ध में निर्णय करते समय क्या बात ध्यान में रखने की है।

पहला विकल्प जो मसौदा समिति ने रखा है श्रीमान्, वह तो ठीक-ठीक उसी निर्णय के अनुसार रखा गया है जो कि कुछ दिन पहले सभा ने उस समिति की सिफारिशों के आधार पर किया था, जो प्रान्तीय संविधान के बारे में आधारभूत सिद्धांतों को निर्धारित करने के लिये नियुक्त की गई थी। मसौदा-समिति को इस मामले में स्वेच्छा से कोई बात रखने का अधिकार नहीं था क्योंकि उसे जो आदेश दिये गये थे उनके अनुसार मसौदा समिति इस सभा द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों को मानने के लिये बाध्य थी। इसलिये प्रश्न यह उठता है कि फिर मसौदा समिति ने इस विकल्प को उपस्थित करना क्यों आवश्यक समझा। इसका कारण यह है। मसौदा समिति ने यह महसूस किया, जैसा कि सभा में सभी जानते हैं, कि राज्यपाल के कोई प्रकार्य न होंगे। उसे ऐसा कोई प्रकार्य न रहेगा जिसको कि वह स्वविवेक या व्यक्तिगत निश्चय के आधार पर सम्पादित करे। इस नये विधान के सिद्धांतों के अनुसार उसे सभी मामलों में अपनी मंत्रिपरिषद् की राय पर ही चलना होगा। इस वस्तुस्थिति का ख्याल रखते हुए यह सोचा गया कि क्या यह वांछनीय होगा कि निर्वाचकों पर एक और ऐसे निर्वाचन में भाग लेने की जिम्मेदारी लादी जाये जिसमें समय बहुत लगेगा, दिक्कत बहुत उठानी पड़ेगी और मैं तो कहूंगा कि जिसमें खर्च भी बहुत बैठेगा। यह भी महसूस किया गया कि यह बखूबी जानते हुए कि विधान के अधीन राज्यपाल को क्या शक्ति प्राप्त रहेगी, कोई भी व्यक्ति इस पद के लिये चुनाव लड़ने को तैयार न होगा। हम लोगों ने यह महसूस किया कि राज्यपाल की शक्तियां बड़ी ही सीमित हैं, नाम मात्र की हैं और उसका पद केवल एक शोभा बढ़ाने के लिये है, ऐसी सूरत में बहुत ही कम लोग ऐसे मिलेंगे जो इस पद के लिये चुनाव लड़ने को तैयार हों। यही कारण था कि मसौदा समिति ने एक विकल्प का सुझाव देना आवश्यक समझा।

वाद-विवाद के सिलसिले में यहां निर्वाचन के विरुद्ध यह तर्क रखा गया है कि इससे राज्यपाल और मुख्यमंत्री में प्रतिद्वंदिता पैदा होगी क्योंकि दोनों जनता द्वारा निर्वाचित रहेंगे। जहां तक कि मेरा संबंध है मैं इस तर्क से प्रभावित नहीं था क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि चुनाव द्वारा लिये जाने पर भी राज्यपाल और मुख्यमंत्री में प्रतिद्वंदिता पैदा हो सकती है। इसका सीधा-सा कारण यह है कि मुख्यमंत्री चुना जायेगा नीति के आधार पर राज्यपाल तो किसी नीति के आधार पर चुना न जायेगा क्योंकि अधिकार न होने से उसकी अपनी कोई नीति होगी नहीं। जहां तक मैं समझता हूं, राज्यपाल का निर्वाचन होगा उसके व्यक्तित्व के आधार पर। उसके चुनाव में यह बात ख्याल में रखी जायेगी कि हैसियत के ख्याल से, चरित्र की दृष्टि से, शिक्षा की दृष्टि से, सार्वजनिक जीवन में उसका स्थान देखते हुए, राज्यपाल पद के लिये वह ठीक होगा या नहीं। पर मुख्यमंत्री के चुनाव में यह देखा जायेगा कि उसका प्रोग्राम सही और उपयोगी है या नहीं। इसलिये अगर हम यहां चुनाव का सिद्धांत अपना भी लेते हैं तो संघर्ष की कोई गुंजाइश नहीं है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरा तर्क यह दिया गया है कि अगर हम राज्यपाल को केवल प्रतीक के रूप में ही रख रहे हैं तो क्या ऐसे पदाधिकारी को चुनाव के जरिये रखना जरूरी है जिसमें बड़ा खर्च बैठेगा और बड़ी परेशानी भी उठानी पड़ेगी? इसी बात को देखते हुए मसौदा समिति ने यह महसूस किया कि उसे एक दूसरा विकल्प सुझा देना चाहिये। सभा में जो बहस हुई है उससे मुझे यही धारणा हुई है कि अधिकतर वक्ता यह अनुभव करते हैं कि मसौदा समिति द्वारा सुझाये गये दोनों विकल्पों में और इस संशोधन में एक जबरदस्त और बुनियादी फर्क है। मेरी समझ से, मसौदा समिति के दूसरे विकल्प में और इस संशोधन में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। मसौदा समिति का जो दूसरा विकल्प है उसमें भी मनोनीतकरण की बात है। फर्क इतना ही है कि उसमें यह शर्त रख दी गई है कि राष्ट्रपति, प्रांतीय विधान मंडल द्वारा चुनी एक तालिका में से ही एक व्यक्ति को इस पद के लिये मनोनीत करेगा। पर बुनियादी बात यह है कि मनोनीतकरण का सिद्धांत वहां भी रखा गया है। इस दृष्टि से मसौदा समिति के दूसरे विकल्प में और श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा उपस्थित किये गये इस संशोधन में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। दूसरे शब्दों में मैं यह कहूंगा कि सभा के सामने दो ही रास्ते हैं। या तो मसौदा समिति के दूसरे विकल्प को वह पसंद कर ले या इस संशोधन को। संशोधन में यह कहा गया है कि मनोनीत करने में कोई कैद न रहेगी, राष्ट्रपति जिसे पसंद करेगा मनोनीत कर लेगा। पर दूसरे विकल्प में यह कैद रखी गई है कि प्रांतीय विधान द्वारा चुनी एक तालिका से ही किसी एक को राष्ट्रपति मनोनीत करेगा। एक दृष्टिकोण से, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि, मसौदा समिति का जो सुझाव है यानी तालिका में से किसी एक को मनोनीत करने का जो प्रस्ताव है वह संशोधन वाले प्रस्ताव से कहीं अच्छा है। पर साथ ही सभा को मैं यह भी आगाह कर देना चाहता हूं कि सभा के समक्ष मूल प्रश्न यह नहीं है कि मनोनीत राज्यपाल को रखा जाये या निर्वाचित राज्यपाल को, क्योंकि जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह पदाधिकारी केवल प्रतीक के रूप में ही रहेगा। मनोनीतकरण द्वारा उसे नियुक्त किया जाये या किसी अन्य व्यवस्था द्वारा, यह तो केवल एक मनोविज्ञान का प्रश्न है। इससे जनता के मन में यही सवाल रहेगा कि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किसी व्यक्ति को रखना ठीक होगा या किसी ऐसे व्यक्ति को रखना ठीक होगा जिसको मनोनीत करने में विधान मंडल के सदस्यों ने हाथ बटाया हो। इसके अतिरिक्त इसमें मुझे तो और कोई खास बात नजर नहीं आती है। अत: जो बात मैं सभा को बताना चाहता हूं वह यह है कि उसके सामने मूल प्रश्न यह नहीं है कि राज्यपाल को मनोनीत किया जाये या उसको निर्वाचित किया जाये। पर मूल प्रश्न यह है कि उसे क्या-क्या शक्ति हम देना चाहते हैं। अगर हमारा राज्यपाल केवल संवैधानिक प्रतीक के रूप में ही रहेगा और विधान में जो अधिकार उसे देने की हम सोच रहे हैं उससे अधिक शक्तियां उसे न रहेंगी, तथा प्रांतीय मिनिस्ट्री के अन्दरूनी शासन व्यवस्था में उसे हस्तक्षेप का कोई अधिकार न रहेगा तो फिर मनोनीतकरण संबंधी सिद्धांत को मानने में व्यक्तिगत रूप से मुझे तो कोई खास आपत्ति नहीं मालूम पड़ती है। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि...

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** क्या आप ऐसी भी किसी स्थिति की कल्पना करते हैं जबकि राज्यपाल को चाहे वह प्रतीक मात्र हो या अन्यथा, मंत्रिमंडल बनाने की शक्ति

न रहेगी? क्या उसे यह क्षमता प्राप्त न रहेगी कि मंत्रिमंडल बनाने के लिये वह एक व्यक्ति को बुलावे, चाहे उस व्यक्ति को एक प्रबल बहुमत प्राप्त हो या एक महत्त्वपूर्ण अल्पमत ही उसके साथ हो? अवश्य ही यह एक बहुत बड़ा अधिकार है जिससे उसे किसी भी हालत में वंचित नहीं किया जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** वह अधिकार तो राज्यपाल को रहेगा ही चाहे वह मनोनीत किया गया हो या निर्वाचित हो। मंत्रिमंडल बनाने के लिये अगर वह गलत आदमी को बुलाता है तो उसे शीघ्र ही अपनी उस गलती के लिये पछताना होगा। निर्वाचित राज्यपाल की व्यवस्था करने पर भी आखिर इस गलती की संभावना तो बनी ही रहती है। ऐसे राज्यपाल का, हो सकता है कि कोई मित्र हो जिसे ही वह मंत्रिमंडल बनाने के लिये बुलाये पर सभा शीघ्र ही विश्वास या अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा इसका फैसला कर देगी। पर प्रश्न का यह पहलू ऐसा नहीं है जो महत्त्वपूर्ण हो। इसका महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि स्थानीय विधान मंडल में बहुमत प्राप्त दल द्वारा बनाये मंत्रिमंडल के काम में हस्तक्षेप करने का क्या उसे अधिकार रहेगा? अगर बहुमत प्राप्त मंत्रिमंडल के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप का उसे अधिकार प्राप्त नहीं है तो फिर यह प्रश्न कि उसे मनोनीत किया जाये या निर्वाचित किया जाये सर्वथा एक गौण प्रश्न है। इस प्रश्न के संबंध में मेरा तो यही मत है, और यही कारण है कि सभा से मैं यह कह रहा हूं, कि इस मसले पर फैसला करने में उसे कमोवेशी इस सैद्धांतिक प्रश्न के पचड़े में न पड़ना चाहिये कि राज्यपाल को निर्वाचित किया जाये या मनोनीत किया जाये बल्कि सभा को यह मुख्य बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उसे अधिकार क्या दिये जा रहे हैं? यह मैं मानता हूं कि यह प्रश्न हमारे सामने आज नहीं पेश है, इस पर तो हम आगे चलकर विचार करेंगे, जब अनुच्छेद 175 और 188 के निहित प्रश्नों पर पहुंचेंगे और किसी संशोधन के जरिये या और अतिरिक्त खंड रखकर उसे अधिकार देने की बात करेंगे। राज्यपाल को अधिकार प्रदान करने वाले जो खंड या संशोधन आगे चलकर सभा के सामने पेश हों, उनके संबंध में उसे सतर्क और सावधान होकर विचार करना चाहिये। पर अगर इस संबंध में विधान में मूलभूत सिद्धांत यही रखा जाता है जैसा कि हमारा इरादा है, कि राज्यपाल केवल संवैधानिक प्रतीक के रूप में रहेगा और प्रांत के प्रशासन में हस्तक्षेप करने का उसे अधिकार न होगा तो आज इस प्रश्न पर विचार करना कि वह मनोनीत रहे या निर्वाचित, बिल्कुल महत्त्व नहीं रखता।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** माननीय सदस्य क्या संशोधन को स्वीकार कर रहे हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इसे सभा पर छोड़ रहा हूं।

***अध्यक्ष:** तो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किये गये संशोधन नं. 2015 पर मैं राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 131 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:
>
> '131. राज्य के राज्यपाल को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि इस संशोधन के पास हो जाने पर, इस अनुच्छेद से संबंध रखने वाले अन्य सभी संशोधन स्वत: समाप्त हो जाते हैं अत: अब मैं अनुच्छेद के संशोधित रूप पर मत लेता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 131, अपने संशोधित रूप में विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 131 को, इसके संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 132

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर हमारे सामने बहुत से संशोधन आये हैं। चूंकि हमने एक विकल्प के पक्ष में निर्णय कर लिया है, दूसरे विकल्प से संबंध रखने वाले सभी संशोधन खुद-ब-खुद खत्म हो जाते हैं। इसलिये हम केवल उन्हीं संशोधनों को लेंगे कि जिनका कि संबंध इस प्रस्तावित अनुच्छेद से है। पहला संशोधन है नं. 2033 का जो कि ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम से है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं इसे नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर का एक संशोधन है जिसे वह अब पेश करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2033 और 2041 के प्रसंग में, जो अनुच्छेद 132 के संबंध में दिये गये हैं, निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'राज्यपाल की पदावधि.—132. (1) राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त राज्यपाल पद धारण करेगा।

(2) राज्यपाल राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्यपाल अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा।

परंतु अपने पद की अवधि की समाप्ति हो जाने पर भी राज्यपाल अपने उत्तराधिकारी के पदग्रहण तक पद धारण किये रहेगा।''

अब यह जो अनुच्छेद है श्रीमान्...

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, संशोधन नं. 2033 अभी पेश नहीं हुआ है। दूसरा संशोधन है नं. 2041 जिस पर यह संशोधन रखा गया है पर यह नं. 2041 भी अभी नहीं पेश किया गया है।

***अध्यक्ष:** हां, यह संशोधन तो अभी तक पेश नहीं हुआ है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधन नं. 2041 तो डा. अम्बेडकर के नाम से ही है।

***अध्यक्ष:** हां, उसे वह रस्मी तौर पर पेश तो कर दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैंने अभी यह कहा है कि उसकी जगह मैं यह संशोधन रख रहा हूं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर संशोधन नं. 2041 पेश कर रहे हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): प्रथा यह रही है कि इन सभी संशोधनों के संबंध में यह मान लिया जाता है कि वह पेश हो चुके हैं और उन पर संशोधन रखने का किसी भी सदस्य को अधिकार है।

***अध्यक्ष:** पर इस प्रथा पर हम लोग तो नहीं चलते आ रहे हैं।

खैर, आप अपने संशोधन को ही पेश कीजिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 132 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'132. राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त राज्यपाल पद धारण करेगा।' ''

सभा से मैं सिफारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे। इसके अलावा मुझे और कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्ष:** अगर यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो अन्य सभी संशोधन स्वत: गिर जाते हैं। अत: इस संशोधन को हम ऐसा समझ लेते हैं कि इसमें बाकी सभी आ जाते हैं।

संशोधन और अनुच्छेद पर अब बहस हो सकती है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): तो मेरा संशोधन नं. 2034 क्या पेश ही न हो पायेगा? इसमें यह कहा गया है कि राज्यपाल हटाया न जा सकेगा। इसलिये यह संशोधन तो प्रस्तावित संशोधन के अंदर नहीं आ सकता है।

***अध्यक्ष:** अगर पांच वर्ष की अवधि स्वीकृत हो जाती है तो यह संशोधन कहां रह जाता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मुख्य प्रश्न यह है कि जब राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा तो राष्ट्रपति द्वारा वह हटाया भी जा सकता है या नहीं।

***अध्यक्ष:** अगर डा. अम्बेडकर का संशोधन पास हो जाता है तो संशोधन नं. 2034 ठहरता ही कहां है? हां, प्रो. शाह अगर अपने संशोधन पर बोलना चाहें तो बोल सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** दोनों ही संशोधन पेश कर दिये जायें और फिर सभा इनमें से एक को चुन लें।

***अध्यक्ष:** अगर प्रो. शाह ऐसा चाहते हैं तो इसे पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 132 में 'पद' (office) शब्द के बाद जहां कि वह दूसरी बार आता है और इस अवधि के अन्दर वह अपने पद से हटाया न जा सकेगा। शब्द रख दिये जायें।''

संशोधित अनुच्छेद का स्वरूप यह होगा:

> ''शासक (राज्यपाल) अपनी पद प्रवेश तिथि से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा और इस अवधि के अन्दर वह पद से हटाया न जा सकेगा।''

जैसा कि मैं समझता हूं, यह संशोधन मूलत: इस योजना से भिन्न है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करेगा। सभा ने अभी एक प्रस्ताव पास किया है जिसके अनुसार राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा और अब इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति करना असम्भव है। इस संबंध में मैं यह बता देना चाहता हूं कि इस बात को देखते हुए कि राज्यपाल के निर्वाचन की व्यवस्था न करके हमने उसको मनोनीत करने की व्यवस्था की है, हमें उसे सर्वथा राष्ट्रपति की मरजी पर न छोड़ देना चाहिये। कम से कम हमें यह तो देखना ही चाहिये—अगर हमें उसे प्रांत में संवैधानिक प्रतीक के रूप में रखना है, अगर उसे प्रांतीय मंत्रिमंडल की राय पर चलाना है और मनोनीतकरण संबंधी सिद्धांत के विरुद्ध जो कुछ भी आपत्ति है अगर उसे हमें दूर करना है—कि कम से कम तब तक जब तक कि विधान के अनुसार, अपने मंत्रिमंडल की राय लेकर वह ठीक-ठीक कार्य संचालन करता है, वह राष्ट्रपति की मरजी पर न छोड़ दिया जाये, जो प्रांत से दूर पर स्थित रहेगा और जो कि स्थानीय अधिकारी न होकर एक राष्ट्रीय अधिकारी के रूप में रहेगा। अभी हमारे एक पूर्व वक्ता ने कहा है कि अगर राज्यपाल को मनोनीत करने का ही सिद्धांत यहां रखा जाता है तो वह जरूर होना चाहिये कि संबंधित प्रांत के मुख्यमंत्री के परामर्श के आधार पर ही उसकी नियुक्ति हो। जब तक कि यह रूढ़ि (मुख्यमंत्री के परामर्शानुसार ही राज्यपाल नियुक्त किया जाये) विकास न पा जाये मेरे संशोधन में जो व्यवस्था है उस पर चलना और भी जरूरी है। मैं नहीं कह सकता कि ऐसी रूढ़ि यहां चल पड़ेगी, पर अगर चालू हो जाये तो भी और उस सूरत में तो खासतौर पर, यह

बड़ा जरूरी होगा कि प्रांत के बाहर के किसी केन्द्रस्थ अधिकारी को यह अधिकार न रहे कि वह राज्यपाल को हटा दे। जब तक राज्यपाल प्रांत के संवैधानिक सलाहकारों की सलाह के अनुसार काम करता है, तब तक मेरी समझ से, यह होना चाहिये कि इस अनुच्छेद के अनुसार जो उसकी पांच साल की पदावधि रखी गई है उसके अन्दर वह अपदस्थ नहीं किया जा सके।

स्वेच्छा से या अन्य आकस्मिक स्थितियों के पैदा होने पर राज्यपाल के पदत्याग के बारे में, अवश्य ही एक प्रावधान रखा गया है जिसके अनुसार राज्यपाल को हटाया जा सकता है। पर उस प्रावधान के अधीन रहते हुए और तदनुसार इस समस्त विधान के अधीन रहते हुए, उसके पद की अवधि पूरे पांच वर्ष की ही होनी चाहिये न कि राष्ट्रपति प्रसाद-पर्यन्त।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** हम तो यहां यह प्रावधान स्वीकृत कर चुके हैं कि राज्यपाल राष्ट्रपति प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करेगा।

***प्रो. के.टी. शाहः** यह अभी पास कहां हुआ है? अगर इसी बिना पर वह पास समझा जाता है कि आपने उसे पेश कर दिया है तो मुझे आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्षः** एक दूसरा संशोधन है श्री गुप्ते का जो अभी पेश होना बाकी है। मैं देखता हूं कि वह उसे नहीं पेश कर रहे हैं। उसके बाद आते हैं, सैयद जाफर इमाम और श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन। ये लोग भी अपने संशोधनों को नहीं पेश कर रहे हैं।

अब प्रो. शाह अपने नं. 2048, 2049 और 2051 के संशोधनों को पेश कर सकते हैं।

प्रो. के.टी. शाहः मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान् कि:

> ''अनुच्छेद 132 के परन्तुक के खंड (ख) में 'संविधान को अतिक्रमण करने पर' शब्दों के बाद 'या अगर राज्यद्रोह का या संघ की रक्षा सुरक्षा या अखंडता के विरुद्ध अपराध करने का दोषी पाया जाये तो' शब्द जोड़ दिये जायें।

अगर यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो यह होगा कि राज्यपाल का निष्कासन उसी हालत में होगा जबकि वह स्वत: पद त्याग कर दे या कतिपय अपराधों का वह दोषी पाया जाये। कतिपय संभव स्थितियों के संबंध में प्रावधान करने के लिये ही यह संशोधन रखा जा रहा है। इसका यह मतलब नहीं है कि हम यह उम्मीद करते हैं या यह कल्पना करते हैं कि ऐसे उच्च पदस्थ व्यक्ति के लिये यह संभव होगा कि साधारणतया ऐसे अपराधों का दोषी पाया जायेगा। सभा से इस संशोधन को स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

अब मैं अपना संशोधन नं. 2049 पेश करता हूं। यह यों है:

> ''कि अनुच्छेद 132 में, वर्तमान परन्तुक (ख) के बाद निम्नलिखित नया परन्तुक जोड़ा जाये:

[प्रो. के.टी. शाह]

'(ख 1) राज्यपाल, समुचित रूप से प्रमाणीकृत शारीरिक या मानसिक अक्षमता के कारण, या घूसखोरी अथवा भ्रष्टाचार का दोषी पाया जाने पर या अनुच्छेद 137 में प्रावहित स्थिति के लिये अपने पद से निष्कासित किया जा सकता है।' ''

ये सब विशेष स्थितियां है जो संभव है कि कभी उत्पन्न हो जायें। इसलिये इन सब सूरतों में राज्यपाल को निष्कासित करने का अधिकार विधान द्वारा प्राप्त रहना चाहिये। मेरी समझ से यह अनुच्छेद उन सब अवसरों का उल्लेख करने के लिए ही रखा जा रहा है जब राज्यपाल को निष्कासित करने के लिये असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना पड़े। घूसखोरी या भ्रष्टाचार का अपराधी पाये जाने पर अथवा मानसिक या शारीरिक अक्षमता के आधार पर जिसके संबंध में न केवल शक हो बल्कि जो समुचित रूप से प्रमाणीकृत हो, राज्यपाल स्वत: अपने पद से निष्कासित हो जायेगा।

मैं अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर देता हूं। वह यों है:

''कि अनुच्छेद 132 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 132 (क) जोड़ दिया जाये:

'132-क. राज्यपाल की पदावधि की समाप्ति के पूर्व, उसकी मृत्यु हो जाने पर या नियमानुसार उसके त्याग पत्र दे देने और उसके स्वीकृत हो जाने पर अथवा उन अन्य कारणों के पैदा होने पर जिनका विधान में एतदर्थ उल्लेख है, राज्यपाल का पद रिक्त हो जायेगा। किसी भी समय राज्यपाल का पद रिक्त हो जाने की हालत में, रिक्तता की अवधि में राज्यपाल के प्रकार्यों को सम्पादित करने का जो प्रबंध किया जायेगा वह तभी तक लागू रहेगा जब तक कि इस विधान में प्रावहित रीति से दूसरे राज्यपाल का चुनाव न हो जाये।' ''

इस प्रयोजन के लिये राज्यपाल को नियुक्त न किया जायेगा बल्कि उसका निर्वाचन किया जायेगा। यह प्रावधान भी स्थिति विशेष के लिये ही किया जा रहा है अर्थात् अन्तर्वर्ती काल के लिये किया जा रहा है। मृत्यु या त्यागपत्र या विधान में दिखाये गये अन्य कारणों से राज्यपाल का पद रिक्त हो जाने पर जब तक दूसरा राज्यपाल न उपलब्ध हो जाये तब तक के लिये यह प्रावधान किया जा रहा है। इस अन्तर्वर्ती काल के लिये जब तक कि एक राज्यपाल की व्यवस्था न हो जाये, उसके प्रकार्यों को पूरा कराने के लिये एक न एक प्रावधान करना ही होगा। आशा है इस सरल प्रस्ताव को सभा स्वीकार करेगी।

***प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना:** डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है श्रीमान् उससे अनुच्छेद 132 के मूल प्रावधान में बड़ा भारी परिवर्तन आ जाता है। मुझे इसका भी अफसोस है कि उन्होंने इस बात का कोई कारण भी यहां न ही बताया है कि ऐसा बुनियादी परिवर्तन वह किस लिए चाहते हैं। अभी-अभी हमने एक प्रावधान स्वीकार किया है जिसके अनुसार राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जायेगा। हम इस प्रावधान के संबंध में ही यह महसूस कर रहे हैं कि इसको पास करना लोकतंत्रीय सिद्धांत का परित्याग करना है। और अब एक दूसरा प्रावधान इस आशय का रखा जा रहा है कि

राज्यपाल राष्ट्रपति प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करेगा। सर्वोच्च न्यायालय के संबंध में हमने यह प्रावधान किया है कि उस न्यायालय के न्यायाधीश जब एक बार नियुक्त हो जायेंगे तो उनका निष्कासन तभी हो सकेगा जबकि संसद के दोनों आगारों द्वारा, उनमें उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से समर्थित, अभिलेख राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाये। राज्यपाल के संबंध में आप एक भिन्न ही प्रावधान कर रहे हैं। यह प्रावधान तो बड़ा ही असाधारण प्रतीत होता है। उससे तो राज्यपाल की स्वतंत्रता बिल्कुल जाती रहती है। वह राष्ट्रपति का बताया हुआ आदमी रहेगा जिसका मतलब यह हुआ कि वह प्रधानमंत्री तथा केन्द्रीय अधिकारारूढ़ दल का ही आदमी रहेगा। जब एक बार राज्यपाल की नियुक्ति हो जाती है तो मैं नहीं समझता कि वह अपनी पूरी पांच साल की अवधि तक क्यों नहीं अपने पद पर बना रहे और क्यों यह व्यवस्था की जाये कि राज्यपाल चाहे तो उसका निष्कासन कर दे? इसका तो यही मतलब होगा कि अपने पद पर बना रहने के लिये वह हमेशा राष्ट्रपति का मुंह देखता रहेगा और सदा उसका अनुज्ञाकारी बना रहेगा। वह कभी स्वतंत्र मन होकर रह ही नहीं सकता है। फिर उसकी प्रतिष्ठा क्या रहेगी? डा. अम्बेडकर ने इसका कोई कारण नहीं बताया है कि वह यह परिवर्तन क्यों कर रहे हैं? राज्यपाल के निर्वाचन की व्यवस्था तो आपने नहीं रखी यह ठीक है पर अब उसे राष्ट्रपति के प्रसाद पर क्यों अवलम्बित छोड़ते हैं? मूल अनुच्छेद में यह कहा है कि:

> ''संविधान का अतिक्रमण करने पर राज्यपाल, इस संविधान के अनुच्छेद 137 में प्रावहित रीति से किये हुए प्राभियोग द्वारा पद से निष्कासित किया जा सकेगा।''

इसका मतलब यह हुआ कि दोनों सदनों द्वारा प्राभियोग लाये जाने पर ही राज्यपाल निष्कासित किया जा सकेगा। अब आप यह प्रावधान कर रहे हैं कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करेगा। ऐसे राज्यपाल को तो कोई आजादी ही न रह जायेगी और केन्द्र उसके जरिये कुछ मनमानी करने की कोशिश कर सकता है। मनोनीत होने पर भी कम से कम वह स्वतंत्र होकर तो काम कर सकता है अगर यह व्यवस्था हो कि नियुक्ति के बाद उसे निष्कासित न किया जा सके। पर यह व्यवस्था करके कि वह राष्ट्रपति प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करेगा, आप उसकी स्वतंत्रता ही छीन लेते हैं। यह तो एक बड़ा ही गंभीर परिवर्तन आप करने जा रहे हैं। आशा है सभा इस पर खूब सावधानी से विचार करेगी। अगर ऐसा करने का कोई प्रबंध कारण नहीं बताते हैं तो आशा है डा. अम्बेडकर अपने इस संशोधन को वापिस ले लेंगे।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अब जब यह निर्णय कर लिया गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जायेगा, तो यह लाजमी है कि विधान के अन्य संबंधित प्रावधानों में भी तदनुसार संशोधन कर लिया जाये और इस दृष्टिकोण से मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं जिसे डा. अम्बेडकर ने यहां अभी उपस्थिति किया है। इस संशोधन में यह कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करेगा और जब भी राष्ट्रपति उससे अप्रसन्न हो जायेगा तो वह पद से अलग हो जायेगा। जब किसी की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है तो समुचित यही है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार होना चाहिये कि अप्रसन्न होने पर वह उसे निष्कासित भी न कर सके। पर राज्यपाल के निर्वाचन की व्यवस्था को हटा देने से खामी आ गई है

[श्री लोकनाथ मिश्र]

उसे दूर करने के लिये, अच्छा यह होता कि राज्य के विधान मंडलों को न केवल संविधान के अतिक्रमण के लिये ही बल्कि किसी कदाचार के लिये भी राज्यपाल के विरुद्ध प्राभियोग लाने का अधिकार दिया जाता। ''कदाचार'' शब्द का प्रयोग यहां मैंने जानबूझकर किया है और इसलिये कि जब प्रांत के बाहर का ही व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त किया जाता है तो यह जरूरी है कि प्रांतवासियों को कम से कम यह अधिकार तो दिया जाये कि अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा वे उसके कार्यकलाप पर निगाह रखें और उसकी आलोचना करें। अगर यह अधिकार दिया गया होता या दूसरे शब्दों में यों कहिये कि राज्य के विधान मंडलों द्वारा, राज्यपाल के विरुद्ध प्राभियोग लाने का प्रावधान रखा गया होता तो राष्ट्रपति द्वारा अनुचित नियुक्ति के विरुद्ध एक संरक्षण की व्यवस्था हो जाती। मनोनीत राज्यपाल को रखने के विरुद्ध यहां जो प्रमुख आपत्तियां पेश की गई हैं उनमें एक यह भी है कि वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसका प्रांत से न कोई सरोकार होगा न कोई लेना देना होगा, उसका जनता से कोई संबंध न रहेगा और प्रांत के नागरिकों की पहुंच से वह परे रहेगा इसलिये जब तक राष्ट्रपति को, संघ के प्रधान और प्रांत के मुख्यमंत्री को यह खुश रखता है चैन की बंसी बजाता रहेगा। पर ये बातें उस पर बिल्कुल ही लागू नहीं होती हैं। राज्यपाल के निष्कासन को अगर न केवल राष्ट्रपति के प्रसाद पर अवलम्बित रखकर अगर राज्य के विधान मंडल के प्रसाद पर भी अवलम्बित रख दिया जाता तो बहुत अच्छा होता क्योंकि राज्य का विधान मंडल वहां की जनता का प्रतिनिधि होता है। यह व्यवस्था उस बुराई के विरुद्ध एक संरक्षण होती जो कि इस प्रावधान से, कि राष्ट्रपति राज्यपाल को मनोनीत करेगा पैदा होती है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** स्थिति यों है श्रीमान्, राज्यपाल को निष्कासित करने का अधिकार तो राष्ट्रपति को विधान में दे दिया गया है पर प्रो. शाह यह चाहते हैं कि विधान में उन बातों को भी लिपिबद्ध कर दिया जाये जिनके आधार पर राज्यपाल निष्कासित किया जा सकता है। मेरा तो यह ख्याल है कि जब आपने राष्ट्रपति को यह व्यापक अधिकार दे दिया है कि वह राज्यपाल को हटा सकता है तो उसके अन्दर यह अधिकार भी आ जाता है कि घूसखोरी या भ्रष्टाचार अथवा संविधान का अतिक्रमण करने के लिये या अन्य किसी कारण से जिसके संबंध में राष्ट्रपति को यह महसूस हो कि उसे हटा देना चाहिये, वह उसे निष्कासित कर सकता है। इसलिये इन सब बातों का विधान में स्पष्टोल्लेख करके उसे बोझिल बनाना बिल्कुल अनावश्यक सा प्रतीत होता है जबकि राष्ट्रपति के लिए सर्वथा संभव रहेगा कि इन कारणों के लिये राज्यपाल को हटा दे क्योंकि यहां यह कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करेगा। इसलिये मैं तो यह समझता हूं कि सर्वथा अनावश्यक है कि उन बातों का विधान में क्रमबद्ध उल्लेख दिखाया जाये जिनके लिये राष्ट्रपति राज्यपाल को हटा सकता है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2033 और 2041 के प्रसंग में जो कि अनुच्छेद 132 के संबंध में दिये गये हैं, निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:
>
> 'राज्यपाल की पदावधि–132 (1) राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त राज्यपाल पद धारण करेगा।

(2) राज्यपाल राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्यपाल अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा।

परन्तु अपने पद की अवधि की समाप्ति हो जाने पर भी राज्यपाल अपने उत्तराधिकारी के पद ग्रहण तक पद धारण किये रहेगा।' ''

संशोधन स्वीकार हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 132 अपने संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 132 को संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 133

***अध्यक्ष:** इस आशय के कई संशोधन आये हैं कि इस अनुच्छेद को हटा दिया जाये। इन पर विचार करने की जरूरत नहीं है। ये तो निषेधात्मक संशोधन है इसलिये मैं यह मान लेता हूं कि इनको पेश करने की जरूरत नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं तो यह कहूंगा कि पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के प्रसंग में यह सर्वथा अनावश्यक है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 133 को विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 133 विधान से हटा दिया गया।

अनुच्छेद 134

***अध्यक्ष:** पहले विकल्प को तो हमने हटा दिया है और अब उन्हीं संशोधनों को लेना है जो दूसरे विकल्प के संबंध में आये हैं। मेरा ख्याल है कि संशोधन नं. 164 के अन्दर जो डा. अम्बेडकर के नाम में है, अन्य सभी आ जाते हैं।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर: मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2061 के संबंध में, अनुच्छेद 134 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'राज्यपाल नियुक्त होने के लिये योग्यतायें:—कोई व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त होने का पात्र न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो और 35 वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो।' ''

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं यह समझ लेता हूं कि श्रीमान् कि संशोधन उपस्थित किया जा चुका है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, यहां सभापति और सभा किसी संशोधन के बदले में अन्य संशोधन पेश करने की अनुमति दे सकते हैं।

***अध्यक्ष:** समूचा संशोधन पढ़ना आपके लिये जरूरी नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं संशोधन नं. 2061 को पेश करता हूं। श्रीमान् और यह भी प्रस्ताव करता हूं कि इस संशोधन के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

> 'राज्यपाल नियुक्त होने के लिए योग्यतायें.—''कोई व्यक्ति राज्यपाल होने का पात्र न होगा जब तक कि यह भारत का नागरिक न हो और 35 वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो।''

(संशोधन नं. 2062, 2065 से 2071, 2075 से 2080, 2082, 2084, 2087, 2089 और 2090 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2061 के संबंध में, अनुच्छेद 134 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:
>
> 'राज्यपाल नियुक्त होने के लिये योग्यतायें.—''कोई व्यक्ति राज्यपाल होने का पात्र न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो और 35 वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो।' ''

संशोधन स्वीकार हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 134 को उसके संशोधित रूप में विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 134 संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 135 को ले सकते हैं।

***श्री ए. थानु पिल्ले:** (ट्रावनकोर): क्या मैं यह जान सकता हूं श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद का खंड (2) रहेगा या नहीं रहेगा?

***अध्यक्ष:** समूचे अनुच्छेद के स्थान पर अब यह संशोधन रख लिया गया है।

***श्री ए. थानु पिल्लेः** संशोधन यों है, श्रीमान्।

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2061 के संबंध में, अनुच्छेद 134 के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये।'' मूल संशोधन यों थाः

'कि अनुच्छेद 134 के वर्तमान खंड (1) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये।'

इसका प्रभाव तो शायद यह हुआ कि केवल खंड (1) में संशोधन हो गया है और खंड (2) ज्यों का त्यों बना रहेगा।

***अध्यक्षः** जो संशोधन पास किया गया है उसका प्रभाव यह पड़ता है कि समूचे अनुच्छेद 134 की जगह यह संशोधित अनुच्छेद रखा जायेगा।

हां अब हम अनुच्छेद 135 पर आते हैं।

अनुच्छेद 135

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 135, विधान का अंग समझा जाये।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (1) में न तो संसद का और न 'प्रथम अनुसूची में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य के विधान मंडल का' शब्दों की जगह 'न तो संसद के किसी सदन का और न प्रथम अनुसूची में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य के विधान मंडल के सदन का' शब्द रखे जायें।

यह एक केवल औपचारिक संशोधन है। इसके बाद अब मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (1) में:

(क) 'संसद का या किसी राज्य के विधान मंडल का' शब्दों की जगह 'संसद के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के किसी सदन का' शब्द रखे जायें।

(ख) 'सदन का अथवा उस विधान मंडल का अपना स्थान, जैसी भी स्थिति हो' शब्दों की जगह 'उस सदन का अपना स्थान' शब्द रखे जायें।''

और अब मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (2) में, 'परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति' शब्दों की जगह 'लाभ का अन्य कोई पद' शब्द रखे जायें।''

(संशोधन नं. 2092 और 2095 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरा प्रस्ताव है:

> ''कि अनुच्छेद 135 के खंड (3) में 'राज्यपाल के लिए पदावास रहेगा और' (The Governor shall have an official residence and) शब्दों को हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** तब तो अनुच्छेद में जो ''There'' शब्द आया है उसे भी हटा देना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** 'There' शब्द रहेगा। ''There shall be paid to the Governor etc.'' इस तरह अनुच्छेद का रूप होगा। मैं नहीं समझता कि अपना विधान, ऐसी विस्तार की बातों से क्यों बोझिल बनाया जाये। राज्यपाल के पदावास का प्रश्न, मेरी समझ से, एक बड़ा ही नगण्य प्रश्न है। अगर राज्यपाल के पदावास का उल्लेख अपने विधान में न रखा जाता तो इससे विधान के महत्त्व में कोई कमी थोड़े ही आ जाती। यह तो साधारण समझ की बात है कि राज्यपाल को पदावास मिलेगा ही। हम यह कल्पना ही नहीं करते हैं कि राज्यपाल को सरकारी तौर पर कोई पदावास न दिया जायेगा। आखिर प्रांत के मुख्यमंत्री के संबंध में क्या हम यह नहीं समझते हैं कि उसे पदावास दिया जायेगा? पर हमने विधान में इसका कहां उल्लेख किया है? मैं नहीं कह सकता कि दुनिया के किसी महत्त्वपूर्ण विधान से ज्यों का त्यों उठाकर तो इस अनुच्छेद को यहां नहीं रख दिया गया है। मुझे ठीक मालूम है कि अमेरिकन विधान में प्रेसीडेंट या स्टेट गवर्नरों के पदावास का कोई उल्लेख नहीं है। मैं नहीं जानता कि किस देश के विधान से अनुप्राणित होकर डा. अम्बेडकर एवं मसौदा समिति के उनके साथियों ने इस मसले को विधान में लिपिबद्ध करना जरूरी समझा है।

***एक माननीय सदस्य:** आयरिश विधान से अनुप्राणित होकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** राष्ट्रपति के संबंध में अनुच्छेद 48 को हमने ठीक इसी रूप में पास किया है। यहां हम केवल अनुच्छेद 48 का अनुगमन मात्र कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं आपकी इस बात की ओर आ ही रहा हूं। मैं नहीं समझता कि सिर्फ इसलिए कि राष्ट्रपति के पदावास का उल्लेख विधान में आ चुका है, राज्यपाल के पदावास का भी उल्लेख कर देना क्यों जरूरी है। राष्ट्रपति के संबंध में पदावास का उल्लेख आ जाने से क्या यह तर्क संगत हो जाता है, जरूरी हो जाता है कि राज्यपाल के पदावास का उल्लेख किया ही जाये? या मैं यों कहूंगा कि चूंकि एक छोटी सी गलती—गलती मुझे न कहना चाहिये—हो चुकी है इसलिए क्या उसको दुहरा देना भी जरूरी है?

अनुच्छेद 48 पर वाद-विवाद के सिलसिले में यह प्रश्न मैंने उठाया था। बहस का जवाब देते हुए डा. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा उससे इस प्रश्न का कोई समुचित या समझ में आने वाला जवाब न मिल सका। उनके लाभ के लिये और उनकी याददास्त को ताजा करने के लिये, उनके भाषण से आवश्यक अंश उद्धृत करके, अगर आज्ञा हो

तो मैं सुना दूं श्रीमान्। राष्ट्रपति के पदावास के संबंध भी उनका उत्तर कोई संतोषजनक नहीं था। हमने मनोनीत राज्यपाल रखने की व्यवस्था की है। राष्ट्रपति तो राज्यपाल से कहीं श्रेष्ठ और महिमान्वित अधिकारी होगा। अवश्य ही मुझे इसका खेद होता है कि राज्यपाल के पदावास का यहां आखिर उल्लेख ही क्यों किया जा रहा है। राष्ट्रपति के पदावास के संबंध में बहस का जवाब देते हुए अम्बेडकर साहब ने यह फरमाया था:

> ''पर श्री कामत से मैं यह पूछना चाहता हूं। आप यह चाहते हैं या नहीं कि राष्ट्रपति को एक पदावास दिया जाये और यह कि संसद इसके लिये प्रावधान करे? और अगर हमने इस व्यवस्था को खुद विधान में लिपिबद्ध कर दिया है तो इसमें क्या बड़ी गलती कर दी है?''

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह कोई गलती है। विधान में पदावास का उल्लेख करके हम कोई गलती नहीं कर रहे हैं। पर मैं कहता यह हूं कि विधान में इसका उल्लेख लाने की आखिर आवश्यकता ही क्या है? आपने आगे फरमाया था ''यह तो एक मामूली समझ की बात है।'' (मुझे आश्चर्य है कि कौन सी समझ की बात उनके दिमाग में थी) ''मैं श्री कामत से यह पूछना चाहता हूं कि आप इस बात को मंजूर करते हैं या नहीं कि राष्ट्रपति को यह पदावास मिलना चाहिये?'' इस पर दखल देते हुए मैंने यह कहा था, ''क्या मैं यह जान सकता हूं कि प्रधानमंत्री को पदावास दिया जाएगा या नहीं?'' आपने इसका कोई जवाब नहीं दिया और आगे फरमाया ''अगर पदावास देने की बात आप स्वीकार करते हैं तो मेरी समझ से यह महत्त्व शून्य है कि आप इसका उल्लेख विधान में कर दें या इस बात को भावी संसद के निर्णयार्थ छोड़ दें, हमने इस मसले को विधान में क्यों लिपिबद्ध कर दिया है इसका कारण यह है कि भारत शासन अधिनियम में और भारत शासन अधिनियम की दूसरी अनुसूची द्वारा प्रदत्त अधिकार के अधीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा निकाले गये कतिपय परिषद् के आदेशों में, गवर्नर जनरल और गवर्नरों के पदावासों का उल्लेख रखा गया है''। सिर्फ इसलिये कि भारत-शासन अधिनियम में इसका उल्लेख रखा गया है, क्या हमारे लिये यह जरूरी है कि हम अन्धे होकर इसकी नकल कर लें और उस पर आगे सोच विचार ही न करें? मैं समझता हूं कि अपना विधान, जैसा मैं कह चुका हूं, बड़ा ही बृहदाकार बन गया है और इसमें विस्तार की अनावश्यक बातें कर दी गई हैं। हम पदावास का विधान में उल्लेख इसलिये कर रहे हैं कि हम भारत शासन अधिनियम के आधार पर चल रहे हैं चाहे हमारा यह चलना तर्कसंगत हो या न हो। हम पदावास के उल्लेख को आसानी से छोड़ सकते थे। उसके छोड़ने में लाभ भी था और ऐसा करना तर्कसंगत भी था।

एक आखिरी बात और कहनी है। राज्यपाल को एक से ज्यादा पदावास हो सकते हैं। मान लीजिये उसे दो पदावास देने हैं और विधान में जिक्र है एक का तो उस सूरत में क्या होगा? आशा है कि डा. अम्बेडकर और उसके बुद्धिमान् साथी लोग इस पर विचार करेंगे। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन नं. 2097 से 2102 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** मूल अनुच्छेद और संशोधनों पर अब बहस हो सकती है।

***श्री बी. दासः** अध्यख महोदय, इस अनुच्छेद द्वारा भत्ते, मानदेय (honorarium) और आवास की व्यवस्था की गई है। समझा यही जाता है कि राज्यपाल कांग्रेस के आदमी होंगे या कांग्रेस के आदेशों को मानने वाले होंगे। यद्यपि माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने अपना वह संशोधन यहां पेश नहीं किया है जिसमें राज्यपालों को चार हजार पांच सौ रुपये प्रतिमाह वेतन देने की बात कही गई है, पर गवर्नर, गवर्नर-जनरल अथवा राष्ट्रपति के वेतन का प्रश्न कुछ महीनों से हम में से अधिकांश लोगों को व्यग्र किये हुए हैं। अगर राज्यपालों को कांग्रेस विचारधारा का व्यक्ति रहना है, उन्हें कांग्रेस के आदर्शों पर चलना है, इस महान् आदर्श पर चलाना है कि प्रत्येक कांग्रेसजन को 150 रुपये में ही अपना निर्वाह करना चाहिये, जिसका रास्ता हमारे सुयोग्य नेता श्री राजगोपालाचारी ने दिखाया है, तो यहां कम से कम कांग्रेसजनों को इस प्रश्न का समाधान हमेशा के लिए कर ही लेना होगा। हमारा गवर्नर-जनरल क्यों वर्तमान समय में आयकर से मुक्त 7,500 रुपया प्रति मास बतौर वेतन के ले? मसौदा समिति या डा. अम्बेडकर राज्यपालों के लिये 4,500 रुपये का वेतन क्यों निर्धारित करते हैं? हम यह मानते हैं कि आयकर की रकम इसमें से बाद में दे दी जाएगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्, क्या इस अनुच्छेद के साथ हम अनुसूची को भी स्वीकार करने जा रहे हैं।

***अध्यक्षः** हम अनुसूची को नहीं पास करने जा रहे हैं।

***श्री बी. दासः** मैं सिद्धांत के संबंध में विचार कर रहा हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** उस पर विचार करने का अवसर हमें आगे चलकर मिलेगा।

***अध्यक्षः** उन्हें अपने तर्क का विस्तार करने दीजिये। वक्त आने पर मैं उन्हें रोक दूंगा।

***श्री बी. दासः** इस अनुच्छेद के स्वीकृत होते ही विधान मंडल को यह अधिकार मिल जायेगा कि वह वेतन निश्चित कर दे और जो कुछ हो रहा है वह हम सब जानते ही हैं। संसद ने गवर्नर जनरल का वेतन 7,500 रु. प्रति माह निश्चित कर ही दिया है और यह रकम आयकर से मुक्त रहेगी।

***अध्यक्षः** जो रकम यहां आप बता रहे हैं वह क्या सही है मिस्टर दास? मैं समझता हूं कि 5,500 रु. वेतन निश्चित हुआ है।

***श्री बी. दासः** नहीं श्रीमान्।

***कुछ माननीय सदस्यः** 5,500 रु. ही तय हुआ है।

***श्री बी. दास:** मुझे खेद है कि मेरी बात गलत थी। अस्तु मैं मित्रों के कथन को स्वीकार करता हूं। पर मुझ जैसे कांग्रेसमैन को, जिसके दिमाग में, यह विचार भरा गया हो कि कांग्रेस मंत्री के लिए 150 रु. माहवार पर्याप्त होना चाहिये, यह रकम तो बहुत ही बड़ी मालूम होती है। और फिर हम यह भी जानते हैं कि गवर्नर जनरल को भोज वगैरह देने के लिए 63 हजार रुपये अलग दिये जाते हैं।

***अध्यक्ष:** मेरी समझ से बेहतर होगा कि आप गवर्नर जनरल का हवाला यहां न दें।

***श्री बी. दास:** हर प्रांत के गवर्नर को पार्टी और भोज देने के लिये अलग से रुपये मिलते हैं। गरीब प्रांतों में इसके लिए करीब 6,000 हजार रुपये गवर्नर को दिये जाते हैं और बम्बई और मद्रास जैसे प्रांतों में तो यह रकम और भी बड़ी होगी। यह सारी रकम खर्च की जाती है। ब्रिटिश शान शौकत की नकल में और आडम्बर में। सर्वसत्ता सम्पन्न यह सभा क्या इस बात की अनुमति देगी या इसे पसंद करेगी कि गवर्नर लोग उतनी बड़ी रकम शान शौकत और आडम्बर में खर्च करें और बड़े-बड़े वेतन लें? हमारे केन्द्रस्थ मंत्री तीन हजार से ज्यादा नहीं पाते हैं फिर क्यों कोई कांग्रेस मैन तीन हजार से ज्यादा ले? मैं आशा करता हूं कि हमारे राज्यपाल देशभक्त आदमी होंगे। मैं जानता हूं कि सर की उपाधि के धारण करने वाले कई उदारचेता सज्जन गवर्नर बनाये गये हैं। तीन हजार की रकम उनके लिये काफी बड़ी रकम है और उस सूरत में जबकि सभी कुछ उनके लिए नया होगा, हिज एक्सेलेंसी कहलाने का और राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाने का उन्हें गौरव प्राप्त होगा तो यह रकम मेरी समझ से उनके लिये पर्याप्त होनी चाहिए। मुझे दुख है कि पूर्वगामी खंडों पर जो वाद-विवाद हुआ उसमें मैं भाग न ले सका। पर उनसे जो निष्कर्ष निकलता है वह यही है कि ये मनोनीत गवर्नर जो वस्तुत: निठल्ले लोग हैं। अब राष्ट्रपति या गवर्नर जनरल के पास यह आवेदन करेंगे कि राज्यपाल पदों के लिए वे अभ्यर्थी हैं। मसौदा समिति ने और इस सभा ने अनुच्छेद 133 को मंजूर कर लिया है और इसके अनुसार ऐसे मनोनीत लोग हमेशा कहीं न कहीं गवर्नर ही बने रहेंगे। अनुच्छेद 133 का जो मूल मसौदा था उसमें यह कहा गया था कि जो व्यक्ति राज्यपाल के पद पर रह चुका है वह उस पद के लिए केवल एक बार पुनर्नियुक्त किये जाने का पात्र होगा।

एक दूसरे अनुच्छेद में हमने सर्वोच्च न्यायालय के संबंध में विचार किया था। उस सिलसिले में कहा गया था कि हम नहीं चाहते हैं कि न्यायाधीश लोग अपने पदों को स्वीकार करें और फिर डा. अम्बेडकर या सरदार पटेल के निवास स्थान का चक्कर काटें और उनकी मुंहजोई करें। अब हम यह देखते हैं कि देश में हम निठल्लों का ऐसा वर्ग पैदा करने जा रहे हैं जो हमेशा गवर्नर जनरल या प्रधानमंत्री के घरों का चक्कर काटेंगे और 88 वर्ष का बूढ़ा होने पर भी यही चाहेंगे कि हमेशा के लिए जब तक कि उन्हें चिर निद्रा न मिल जाये, वह गवर्नर ही बने रहें। ये ऐसी बातें हैं जो मुझे बहुत ही व्यग्र करती है। आशा है गवर्नरों की उपलब्धियां निश्चित करने में सभा बड़ी सावधान रहेगी। किसी भी व्यक्ति के लिये इतना ही बहुत होना चाहिये कि वह राज्यपाल मनोनीत किया गया है और फिर अगर वह कांग्रेस मैन है तो उसे और भी खुश होना चाहिये और प्रसन्नतापूर्वक देश की सेवा करनी चाहिये। और अगर कांग्रेस से बाहर का कोई आदमी इस पद के लिए मनोनीत किया जाता है तो उसको तो एक बड़ा सम्मान प्राप्त हो जाता है

[श्री बी. दास]

उपलब्धियों की रकम क्या रखी जाये इसका फैसला कांग्रेस आदेशों के अनुसार होना चाहिए, चाहे वह फैसला यह सभा करे या प्रांतीय विधान मंडल करे। गवर्नरों से मैं आशा करता हूं कि उनका आचरण कांग्रेसजनों का सा होगा और वैसा नहीं जैसा कि हमारे अतीतकालीन गवर्नरों का था।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मुझे प्रसन्नता है श्रीमान्, कि यह खंड प्राय: ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। केवल एक बात मेरी समझ में न आ सकी। माननीय मित्र श्री कामत ने जो पक्ष प्रतिपादन किया है उसे मैं न समझ सका। हमेशा से आप इसी बात की वकालत करते आये हैं कि गवर्नर मनोनीत किये जायें। पर ऐसा मालूम पड़ता है कि मनोनीत कर देने के बाद अब आप उन्हें निकाल ही देना चाहते हैं। आप चाहते यह हैं कि राज्यपाल के पास अपना जो कुछ साधन हो उसी पर वह गुजर-बसर करे। शायद आप यह भूल जाते हैं कि मनोनीत राज्यपाल को घर से बाहर एक दूसरे प्रांत में जाना होगा जहां उसके कोई मित्र या बन्धु न होंगे। मंत्रियों के साथ यह बात नहीं है। भारत के अधिकांश प्रांतों में मंत्रियों को सरकारी तौर पर निवास स्थान मिले हुए हैं न केवल उन्हें निवास स्थान ही मिले हुए हैं बल्कि उनको फर्नीचर, परदे, मोटरकार वगैरह सभी सामान सरकारी खर्च से मिलते हैं।

श्री एच.वी. कामत: क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या विधान में इनका उल्लेख है?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** विधान में इनका उल्लेख नहीं है पर इस बात की ओर मैं आ ही रहा हूं। विधान में इसका उल्लेख इसलिए नहीं है कि मंत्री लोग तो सदा बहुमत वाले दल के हाथ में रहते हैं और इसलिए जो कुछ भी वह चाहें उन्हें मिल सकता है। पर गरीब गवर्नरों की स्थिति पर तो जरा गौर कीजिये। वह एक प्रांत से दूसरे में भेजा जाता है जहां शायद वह बहुत ही कम लोगों को जानता है; जहां शायद वह खुद मिनिस्ट्री की इच्छा से प्रतिकूल प्रांत पर जबरदस्ती लाद दिया गया है। ऐसी स्थिति में छोटी से छोटी मदद जो आप उसकी कर सकते हैं वह यही है कि उसे सर रखने की जगह तो दें। अगर उसे एक सरकारी आवास स्थान प्राप्त रहेगा तो सीधे वह वहां जा सकता है जहां उसे कम से कम सर रखने की जगह तो मिल जायेगी। अपने खाने पीने का प्रबंध वह विचार बाद में कर लेगा। पर अगर उसे आवास स्थान न रहेगा तो उसे इस मित्र के पास, उस मित्र के पास, दौड़ना पड़ेगा और अन्ततोगत्वा वह किसी बड़े व्यवसायी के हाथ में पड़ जायेगा जो उसे रहने की जगह देगा। हम जानते ही हैं कि बड़े व्यवसायी ऐसे उच्च पदस्थ व्यक्तियों को शरण देने के लिये मशहूर हैं। और फिर आपका गवर्नर तो प्रांत के किसी धन कुवेर सेठ का कृतज्ञ हो जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): आवास स्थान न मिलने के कारण उसे वापिस अपने प्रांत भी जाना पड़ सकता है (*हंसी*)।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** इसीलिए तो मैं कहता हूं कि गवर्नर के लिए सरकार की ओर से निवास स्थान का प्रबंध तो करना ही होगा अन्यथा उस प्रांत में अपना काम करना उसके लिए असंभव हो जाएगा।

यहां यह जो प्रावधान किया गया है कि गवर्नर का वेतन प्रांतीय विधान मंडल निश्चित करेगा वह भी एक बड़ा ही उत्तम प्रावधान है क्योंकि अगर मंत्रिमंडल एक खास गवर्नर को पसंद न करता हो तो हो सकता है वह उसके वेतन को घटाकर केवल एक रुपया कर दे और इस तरह गवर्नर को प्रांत छोड़ने पर मजबूर कर दे। यह तो एक बहुत ही उत्तम और एक ठोस संरक्षण है जो विधान में रखा जा रहा है क्योंकि विधान मंडल के बहुसंख्यक सदस्य जो कुछ करेंगे वह प्रांत की राय समझी जायेगी और अगर वह ऐसा समझते हों कि जो गवर्नर दिया गया है वह उनके प्रांत के लिए उपयुक्त नहीं है तो वह उसके वेतन को घटाकर केवल दो या एक रुपया भी कर सकते हैं जैसा कि द्वैध शासन के दिनों में हुआ था जब मंत्रियों का वेतन घटाकर एक या दो रुपया कर दिया गया था। प्रांत के हाथ में यह एक बहुत ही प्रबल अस्त्र है और मुझे खुशी है कि यह अस्त्र प्रांत की जनता के हाथ में रहने दिया गया है।

अब आता है गवर्नरों के भत्ते का सवाल। मुझे उनके भत्ते से भी दिलचस्पी है। मैं चाहता हूं कि वेतन के बाद उसको भत्ते मिलने ही चाहियें। पार्टी और दावत के लिए भी उसको रकम मिलनी चाहिये। यह भत्ता उसे इसलिए दिया जायेगा कि वह भिन्न-भिन्न लोगों को पार्टियां दे सकें—उनको डिनर पार्टी दे सके, लंच पार्टी वगैरह दे सके। मेरा तो ख्याल है कि यह भत्ता खास तौर पर उसे मिलना चाहिये और हमें यहां यह भी लिपिबद्ध कर देना चाहिये कि पार्टियों के संबंध में तरजीह दी जायेगी विधान मंडल के सदस्यों को। इस भत्ते के संबंध में दखल देने का कोई प्रयास ही नहीं किया जाता है। इसलिए गवर्नर उसका उपभोग करता है। अगर उसे पार्टी और डिनर देने के लिए रकम दी जाती है तो फिर उसे सरकार की ओर से निवास स्थान ही होना चाहिये। यह अच्छा नहीं मालूम पड़ेगा कि गवर्नर डिनर, लंच और पार्टियां भिन्न-भिन्न होटलों में देता फिरे। इसलिए कम से कम इन पार्टियों के ख्याल से ही निवास स्थान पाने का वह पात्र हो जाता है। श्री कामत इसके विरुद्ध नहीं हैं कि पार्टी वगैरह के लिए उसे भत्ता दिया जाये पर आप उसे मकान देने के खिलाफ जरूर हैं जहां वह इस रकम का सदुपयोग कर सकता है। मकान ही न रहेगा तो फिर इस रकम का वह क्या करेगा? आज गवर्नरों का सर्वप्रथम कर्त्तव्य यह है कि वे पार्टियां दें—डिनर पार्टी दे, टी पार्टी दे और इसी तरह की अन्य पार्टियां दें। अपनी सर्वप्रियता बनाये रखने के लिए मंत्रिमंडल की सर्वप्रियता बनाये रखने के लिए उसे पार्टियां देनी ही होंगी। अगर उसे कहीं कोई गलती दिखाई देगी तो फौरन वहां पहुंचकर मंत्रिमंडल के समर्थन में उसे एक भाषण दे देना होगा। इसके अतिरिक्त अन्य और भी कई समारोहों में, मसलन पारितोषिक वितरण, सम्भ्रान्त परिवारों के विवाहोत्सव जिनमें गवर्नर को उपस्थित होना ही होगा ताकि वह सर्वप्रिय बना रहे। इसलिए मेरा कहना है कि गवर्नर के आवास स्थान पाने में हमें रोड़ा न अटकाना चाहिये और इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों पास कर देना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि यही उचित मौका है जबकि सभा को और खासतौर पर मसौदा समिति के सदस्यों को यह सुझाव दे दूं कि उन्हें एक-एक प्रावधान, इस आशय का, विधान में रख देना चाहिये कि एक ही व्यक्ति एक समय दो या तीन या इससे भी अधिक प्रांतों के लिए गवर्नर नियुक्त किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** इस आशय का कोई संशोधन तो आपने पेश नहीं किया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं कोई संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं। मैं केवल सभा को यह सुझाव दे रहा हूं कि इस अनुच्छेद में ऐसा परिवर्तन कर दे कि मेरे सुझाव की बात इसमें आ जाये। मैं यह अनुभव करता हूं कि मेरे इस सुझाव से खर्च में बड़ी कमी आ जाएगी। अगर एक ही गवर्नर कई प्रांतों के प्रशासन के लिए संविधानिक प्रमुख के रूप में जिम्मेदार बना दिया जाये तो इससे व्यय में अवश्य ही कमी आ जायेगी। बिहार, बंगाल, उड़ीसा और असम, पहले एक गवर्नर के अधीन थे ही। यह प्रांत अब फिर एक हो जायेंगे। मितव्ययिता की बात को ध्यान में रखकर ही मैं यह सुझाव दे रहा हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। एक खंड हम इस आशय का पास कर चुके हैं कि हर प्रांत का एक गवर्नर होगा और यह सुझाव उसके सर्वथा विपरीत है (*खूब खूब*)।

***अध्यक्षः** डा. देशमुख के कथन से मैं सर्वथा सहमत हूं: हम इस आशय का एक अनुच्छेद पास कर चुके हैं कि हर प्रांत का एक राज्यपाल होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** फिर मुझे कुछ नहीं कहना है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, माननीय मित्र श्री बी. दास ने राज्यपालों की उपलब्धियों के संबंध में आपत्ति की है जो इस अनुच्छेद में उल्लिखित अनुसूची में दी गई है। उच्च पदों के लिए रखी गई उपलब्धियों का जो प्रश्न है वह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। मैं नहीं समझता कि अनुसूची में रखी गई उपलब्धियों पर, इस अनुच्छेद के सिलसिले में बहस करना वाजिब होगा पर जब आपने यह निर्णय दे दिया है कि उन पर बहस की जा सकती है तो उनके बारे में मैं चन्द शब्द कह देना चाहता हूं। कांग्रेसजन होने के नाते एक निश्चित जीवनस्तर पर चलने के लिए और एक निर्धारित वेतन लेने के लिए हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं। पर मुझे यह कहते हुए दु:ख होता है कि हम उन सभी बातों को भूल बैठे हैं जो हमने पहले कहीं थीं। कांग्रेस के कराची वाले अधिवेशन में हमने उस आशय का एक प्रस्ताव पास किया था कि उच्चतम पदाधिकारी का वेतन अधिक से अधिक पांच सौ रुपये होंगे। वर्तमान महंगाई को ध्यान में रखते हुए अब हम इसे दो हजार रुपये कर सकते हैं। परन्तु यहां हम गवर्नर के वेतन के लिए 4,500 रुपयों का प्रावधान कर रहे हैं। गरवर्नर तो केवल एक नाममात्र पदाधिकारी रहेगा जिसके कोई प्रकार्य न होंगे और जो राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करेगा। मैं नहीं समझता कि इतनी बड़ी रकम उसके लिए जरूरी है। और फिर वेतन के अलावा उसके लिए भत्ते का ऊपर से प्रावधान है। जब संबंधित अनुसूची पर विचार किया जाने लगेगा उस समय इस संबंध में मैं और भी कहूंगा। पर यहां मैं केवल इतना ही कहूंगा कि इस अनुच्छेद को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि अनुसूची में जो रकम नियत की गई है उसे हम स्वीकार कर रहे हैं।

***श्री एम. थीरूमाला राव:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस धारणा में था कि मसौदा समिति का संशोधन नं. 2100 पेश किया जायेगा जो इस आशय का है कि:

''अनुच्छेद 135 के खंड (3) के साथ निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'परन्तु राज्यपाल की उपलब्धियां चार हजार पांच सौ रुपये से कम न होंगी।' ''

मेरा ख्याल है कि राज्यपालों के वेतन और उपलब्धियों के संबंध में हमें एक समान नीति यहां अपनानी चाहिये जैसा कि मेरी समझ से आजकल है। उस मसले को सम्बन्धित विधान मंडल की मरजी पर छोड़ने में कोई फायदा नहीं है क्योंकि गवर्नरों का वेतन तय करने में यह विधान मंडल कई बातों से प्रभावित होंगे। अगर आवश्यक हो तो हमें इस पद की कई श्रेणियां कर देनी चाहिये जैसे कि प्रथम श्रेणी का राज्यपाल, द्वितीय श्रेणी का राज्यपाल और प्रांत की आमदनी के हिसाब से यह श्रेणी निर्धारित की जाये। पर इनके वेतन के प्रश्न को सर्वथा विधान मंडलों पर छोड़ देना ठीक न होगा। गवर्नरों के संबंध में यह ख्याल किया जाता है कि उनको विधान मंडलों और मंत्रियों पर कोई अधिकार तो न रहेगा पर उनका ओहदा उनसे ऊंचा रहेगा। राज्यपालों को, जनता की दृष्टि में अपनी एक मर्यादा और प्रतिष्ठा को बनाये रखना है। इसलिये उनके वेतन के प्रश्न को बतौर खिलौने के विधान मंडलों के हाथ में न दे देना चाहिए जहां उसकी उपलब्धियों को घटाने में भिन्न-भिन्न दलों का अपना कोई मतलब होगा। मैं तो यह कहूंगा श्रीमान्, कि राष्ट्रपति और राज्यपाल दोनों के वेतन और भत्ते के लिए विधान में एक रकम नियत कर दी जानी चाहिये ताकि विधान मंडलों के प्रभावाधीन यह प्रश्न न रह जाये। मैं चाहता हूं कि मसौदा-समिति इस मसले पर गौर करे और इसके बारे में एक-एक समुचित संशोधन पेश करे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं इस संबंध में आपका निर्णय चाहता हूं श्रीमान्, कि मेरा संशोधन क्यों नहीं पेश हो सकता है। अनुच्छेद 149 में कहा गया है कि हर प्रांत का एक राज्यपाल होगा। इसका केवल यही मतलब हुआ कि कोई प्रांत बिना राज्यपाल के न होगा। इस अनुच्छेद से इस पर रोक नहीं आती है कि एक ही व्यक्ति एक समय एकाधिक प्रांत का राज्यपाल नियुक्त किया जाये।

***अध्यक्ष:** निर्णय का प्रश्न नहीं उठता है क्योंकि माननीय सदस्य ने अपना संशोधन ही नहीं पेश किया।

अब मैं संशोधनों पर राय लेता हूं। पहला संशोधन है डा. अम्बेडकर का।

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (1) में 'न तो संसद का और न प्रथम अनुसूची में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य के विधान मंडल का' शब्दों की जगह 'न संसद के किसी सदन का और न प्रथम अनुसूची में उस समय उल्लिखित रहे किसी राज्य के विधान मंडल के सदन का' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (1) में—

(क) 'संसद का या किसी राज्य के विधान मंडल का' शब्दों की जगह 'संसद के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के किसी सदन का' शब्द रखे जायें।

(ख) 'सदन का अथवा उस विधान मंडल का अपना स्थान, जैसी भी स्थिति हो' शब्दों की जगह 'उस सदन का अपना स्थान' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (2) में, 'परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति' शब्दों की जगह 'लाभ का अन्य कोई पद' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है

''कि अनुच्छेद 135 के खंड (3) में 'राज्यपाल के लिए पदावास रहेगा और' (The Governor shall have an official residence, and) शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत रहा।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 135 को इसके संशोधित रूप में विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 135 को संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रो. शाह ने इस आशय के एक संशोधन की सूचना भेजी है कि अनुच्छेद 135 के बाद एक नया अनुच्छेद जोड़ा जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** दूसरा अनुच्छेद लेने से पूर्व मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि अनुच्छेद 135 में 'निर्वाचित' (elected) शब्द निकाल दिया जाये।

***अध्यक्ष:** यह तो एक मानी हुई बात है।

नया अनुच्छेद 135-क

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं श्रीमान्।

''कि अनुच्छेद 135 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 135 (क) जोड़ा जाये:

'प्रत्येक राज्यपाल को, अपनी पदावधि को पूर्ण कर लेने और निवृत्त होने पर, ऐसा निवृत्ति वेतन और भत्ता दिया जायेगा जैसा कि राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा प्रावहित करे।'

'पर ऐसे किसी राज्यपाल के जीवनकाल में, जो कि निवृत्त हो चुका हो, उसके स्वीकृत निवृत्ति वेतन और भत्ते में ऐसा परिवर्तन न किया जायेगा जो उसके प्रतिकूल हो।'

'पर यह भी कि ऐसा निवृत्ति वेतन उसे इसी शर्त्त पर दिया जायेगा कि राज्यपाल निवृत्त होने पर उस राज्य में या भारत सरकार के अधीन कोई लाभ का पद नहीं धारण करता है।' ''

इस संशोधन से मेरा यही अभिप्राय है श्रीमान्, कि भारत की लब्ध-प्रतिष्ठ संतानों और प्रख्यात जनसेवकों को जो उन्नति करके राज्यपाल पद पर पहुंच जायें उन्हें निवृत्त होने पर एक समुचित निवृत्ति से वेतन और भत्ता सुनिश्चित रूप से प्राप्त हो सके ताकि वे किसी अभाव या मोहताजी में न पड़ सकें या ऐसे किसी प्रलोभन में न पड़ जायें जिसके वशीभूत होकर अपने गत पदावधि में अर्जित प्रभाव का उपयोग अवांछनीय रूप से करें।

राज्य के ऐसे उच्च पदों पर पहुंचने वालों के लिए, इन सब बातों का ख्याल करके विधान में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। हां एकमात्र न्यायपालिका के संबंध में इन सब बातों का ख्याल रखते हुए प्रावधान विधान में अवश्य किया गया है। जहां तक मेरा मन है, मैं कोई कारण नहीं देखता कि ऐसे प्रतिष्ठित पदाधिकारियों और सरकारी कर्मचारियों के लिए शेष जीवन के लिये, जिन्होंने कि राज्य और देश की सेवा, राष्ट्रपति और राज्यपाल जैसे विशिष्ट पदों पर रहकर की है, कोई ऐसी व्यवस्था क्यों न विधान में प्रावहित कर दी जाये ताकि वह किसी अभाव से मुक्त रहें और प्रलोभन में पढ़कर अपने प्रभाव का उपयोग अवांछनीय रूप से न करें।

निवृत्ति वेतन किस पैमाने पर दिया जाये इसका उल्लेख मैंने नहीं किया है और जानबूझकर नहीं किया है। निवृत्ति वेतन के संबंध में मैंने एक शर्त भी सुझाई है कि वह तभी दिया जायेगा जब कि संबंधित व्यक्ति सेवा से निवृत्त हो जाये यानी अवकाश ग्रहण कर ले। अर्थात् यह निवृत्ति वेतन उसे तभी दिया जायेगा जबकि वस्तुतः अपने अवशिष्ट जीवनकाल में अभाव से मुक्त रहकर वह देश की सेवा में ही अवैतनिक रूप से लीन रहे और उस राज्य में जिस में वह राज्यपाल रह चुका है अथवा भारत सरकार के अधीन लाभ के किसी पद को धारण न करता हो। अवश्य ही अगर वह कोई ऐसा पद धारण करता है जिसके साथ उपलब्धियां हैं, तो उसे निवृत्ति वेतन और इन उपलब्धियों में से एक

[प्रो. के.टी. शाह]

को चुन लेना होगा। पर इस शर्त से अधीन रहते हुए वह लाभ का अन्य कोई पद धारण नहीं करता है, निवृत्त होने पर उसे शेष जीवन के लिये निवृत्ति वेतन मिलना ही चाहिये। जिन लोगों ने राज्य की दक्षतापूर्वक सेवा की है उनको अवशिष्ट जीवन के लिए, इस दलबंदी की दुनिया में, राज्य द्वारा निवृत्ति वेतन की प्रतिभूति का प्रावधान होना ही चाहिये, उनकी सर्वथा उपेक्षा न होनी चाहिये।

मैं तो यह मानता हूं श्रीमान्, कि कोई भी ऐसा व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त या निर्वाचित न किया जाएगा जिसने नियुक्ति के पहले भी ऐसी सेवा न की जो जिससे कि उसे ख्याति मिली हो, सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठा की स्थिति प्राप्त हुई हो जिसके आधार पर कि राज्यपाल निर्वाचित होने के लिये वह योग्य समझा जाये। ऐसी दशा में ऐसे उच्च पदों पर काम करने वालों के लिए प्रतिभूति का प्रावधान उसी उद्देश्य से किया जा रहा है जिस उद्देश्य से कि सभी सभ्य देशों में कर्मियों के लिये बुढ़ापे की पेंशन की प्रतिभूति दी जाती है और पेंशन की रकम इस हिसाब से निर्धारित की जाती है कि शेष जीवन में भी वह अपने उसी जीवनस्तर का निर्वाह कर सके जिसका कि कार्यकाल में वह आदी हो चुका था। निवृत्ति वेतन ऐसा वेतन है जो कर्मी को उसके कार्यकाल में नहीं दिया जाता है पर कार्य से अवकाश ग्रहण करने पर उसे दिया जाता है और यही बात यहां भी लागू है। राज्यपाल का काम भी एक काम ही है और शायद अपने ढंग का विशिष्टतम काम है। जबकि उसकी सेवायें इतनी विशिष्ट होती हैं कि उनकी चरम परिणति के फलस्वरूप ही वह राज्यपाल नियुक्त किया जाता है तो मेरी समझ से उचित यही है कि उन सेवाओं को, ऐसे ही किसी रूप से जैसा कि मैं सुझा रहा हूं, मान्यता दी जाये तथा पुरस्कृत किया जाये। जैसा मैं पहले कह चुका हूं, यह जरूरी नहीं है कि भत्ते और निवृत्ति वेतन की दर भी विधान में प्रावहित की जाये। जरूरी इतना ही है कि इस सिद्धांत को मंजूर कर लिया जाये इस संबंध में आवश्यक प्रावधान करने की व्यवस्था राज्य के विधान-मंडल पर छोड़ दी जाये। पर इस शर्त के साथ कि विधि द्वारा जो भी प्रावधान एक बार कर दिया जायेगा उसमें ऐसा परिवर्तन फिर न किया जायेगा जो निवृत्ति पाने वाले अवकाश ग्रहीत व्यक्ति के प्रतिकूल हो। मेरी समझ से, मेरा यह प्रस्ताव एक बहुत ही सरल और समुचित प्रस्ताव है पर सभा यदि स्वीकार कर ले।

***डा. पी.एस. देशमुखः** मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह यह चाहते हैं श्रीमान्, कि राज्यपालों के लिये निवृत्ति वेतन की व्यवस्था कर दी जाये। जो दृष्टिकोण उन्होंने सभा के समक्ष रखा है उसके प्रति मुझे बड़ी सहानुभूति है क्योंकि आमतौर पर यही होगा—अवस्था विशेष में कभी कोई अपवाद भी हो सकता है—कि इन पदों के लिए हम देश के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में से किसी को चुनेंगे और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं में बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जिनके पास कोई पर्याप्त रकम बैंक में हो या कोई बड़ी सम्पत्ति हो। इसलिये मैं समझता हूं कि एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिये एक ऐसा प्रावधान करने के पक्ष में सभी कुछ कहा जा सकता है। अपने जीवन के अन्तिम भाग में ही कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता राज्यपाल पद पर इस विधान के अधीन राष्ट्रपति द्वारा आसीन किया जायेगा पर अपनी पदावधि की समाप्ति पर अब वह निवृत्त होगा तो उसके जीवन

निर्वाह का कोई सहारा न रहेगा। पर इस सभी सहानुभूति के बावजूद भी अगर हम इस संशोधन को स्वीकार करते हैं तो हमें यह मानना पड़ेगा कि इससे कई कठिनाइयां खड़ी हो जायेंगी। सबसे पहली कठिनाई तो यह होगी कि आप उसकी पदावधि क्या रखेंगे। मान लीजिये राज्यपाल का स्थान रिक्त होने पर किसी को आप उसकी जगह नियुक्त करते हैं और वह शेष पदावधि को जो 6 महीने, एक वर्ष या दो वर्ष की है, समाप्त कर लेता है। प्रो. शाह का क्या यह मतलब है कि ऐसे व्यक्ति को भी अनुपात के हिसाब से एक पेंशन मिलनी चाहिये या उसके लिये आप अन्य कोई व्यवस्था प्रस्तावित करेंगे? दूसरे, मैं नहीं समझता कि कहीं भी और कभी भी ऐसी व्यवस्था बरती गई है या उन लोगों ने जो सौभाग्य से इस पद पर आसीन किये गये हैं कभी इसकी मांग की है। कुल मिलाकर, मेरा ख्याल है लाभ इसी में है कि निवृत्ति वेतन की व्यवस्था न की जाये। मेरे प्रोफेसर मित्र ने यह तर्क अवश्य रखा है कि पुरस्कार के रूप में ही यह निवृत्ति वेतन उसे मिलेगा और अगर वह लाभ का कोई पद धारण कर लेता है तो किसी निवृत्ति वेतन का वह अधिकारी न रह जायेगा। पर मेरा ख्याल यह है कि जो सार्वजनिक कार्यकर्त्ता उस पद के लिये अपनी सेवायें देना चाहेगा उसे, अपनी पदावधि काल में जो भी वेतन मिलेगा उसी पर संतोष करना होगा और निवृत्ति वेतन की उसे कोई आशा नहीं रखनी चाहिये। अगर हम इनके लिये निवृत्ति वेतन का प्रावधान करते हैं तो फिर हमें राजदूतों और कमोवेशी इसी श्रेणी के अन्य कई लोगों के लिए भी निवृत्ति वेतन देने के प्रश्न पर विचार करना होगा। फिर तो सभी लोग निवृत्ति वेतन का दावा करने लग जायेंगे और हमारे राजस्व की एक बड़ी रकम सिर्फ इसी निवृत्ति वेतन में ही खर्च हो जायेगी। सैद्धांतिक दृष्टि से भी मैं इसे अच्छा नहीं समझता हूं, इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं।

***सरदार हुकूम सिंहः** (पूर्वी पंजाब सिख): मैं इस प्रस्ताव का विरोध करने के लिए खड़ा हुआ हूं। मैं यह महसूस करता हूं कि राज्यपालों को निवृत्ति वेतन देने में कोई औचित्य नहीं है। हमें यह बताया गया है कि ये राज्यपाल केवल नाममात्र के प्रमुख हैं, केवल शोभार्थ हैं और इनको कोई शक्ति और अधिकार नहीं रहेंगे। जिस तरह से हम चल रहे हैं उससे मैं समझता हूं कि हम राज्यपालों को उन सभी अधिकारों से वंचित रख रहे हैं जो कि उन्हें राज्य या प्रांतों में प्राप्त रह सकते हैं। सभी शक्तियां केन्द्र में ही सन्निहित रखी जा रही हैं। अवशिष्ट विषयों को भी केन्द्र के ही हवाले किया गया है। ऐसी स्थिति में, जबकि राज्यपालों को कुछ करना धरना ही न रहेगा, जब केवल संवैधानिक प्रतीक के रूप में रहेंगे और केवल शोभार्थ रहेंगे तो उन्हें साढ़े चार हजार का वेतन, अन्य उपलब्धियां, भोजादि देने के लिये भत्ता पदावास और अन्य सुविधायें देकर उन्हें हमने बहुत कुछ दे दिया है। इतना सब कुछ देने के बाद भी अब प्रो. शाह ये चाहते हैं कि उन्हें निवृत्ति वेतन भी दिया जाए ताकि पद से निवृत्त होने पर ये लोग शाही जिंदगी बिता सकें।

मैं इस संशोधन के विरुद्ध हूं। राज्यपालों को ऊपर से निवृत्ति वेतन दिया जाये इसमें कोई औचित्य मुझे तो नहीं दिखाई देता है क्योंकि ये लोग नाममात्र के प्रमुख रहेंगे और प्रांतों या राज्यों में इनकी कोई शक्ति न रहेगी।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 135 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद 135 (क) जोड़ा जाये:

'135-क 'प्रत्येक राज्यपाल को अपनी पदावधि को पूर्ण कर लेने और निवृत्त होने पर ऐसा निवृत्ति वेतन और भत्ता दिया जायेगा जैसा कि राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा प्रावहित करे।'

'परन्तु ऐसे किसी राज्यपाल के जीवनकाल में, जो निवृत्त हो चुका हो, उसके स्वीकृत निवृत्ति वेतन और भत्ते में ऐसा परिवर्तन न किया जायेगा जो उसके प्रतिकूल हो।'

'पर यह भी कि ऐसा निवृत्ति वेतन उसे इसी शर्त पर दिया जायेगा कि राज्यपाल निवृत्त होने पर उस राज्य में या भारत सरकार के अधीन कोई लाभ का पद नहीं धारण करता है।' ''

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 136

***अध्यक्ष:** एक संशोधन है जिसकी सूचना डा. अम्बेडकर ने दी है। यह है संशोधन नं. 2104, और भी संशोधन हैं जो कमोबेशी इसी आशय के हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** सूची नं. 2 में जो मेरा संशोधन नं. 132 है वह करीब-करीब वैसा ही है जैसा कि अनुच्छेद 49 जिसे सभा पास कर चुकी है।

***अध्यक्ष:** पहले संशोधन पेश हो जाये तब हम संशोधन नं. 132 को ले सकते हैं। डा. अम्बेडकर, तो फिर मैं मान लूं कि आपने अपना संशोधन नं. 2104 पेश कर दिया है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उसे पेश कर रहा हूं श्रीमान्। वह यों है:

''कि अनुच्छेद 136 में 'इस राज्य के विधान मंडल के सदस्यों के समक्ष' शब्दों की जगह 'मुख्य न्यायाधिपति के समक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में, उस राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के किसी अन्य न्यायाधीश के समक्ष' शब्द रखे जायें।''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2106 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 136 में 'उस राज्य के विधान मंडल के सदस्यों के समक्ष' शब्दों की जगह 'उस राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के अथवा उसकी अनुपस्थिति में, न्यायालय के प्राप्य अग्रतम न्यायाधीश के समक्ष' शब्द रखे जायें।' ''

इसके लिये किसी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है क्योंकि, जैसा मैं कि कह चुका हूं। इसका भी स्वरूप करीब वैसा ही है जैसा कि अनुच्छेद 49 का जिसे सभा पास कर चुकी है। राज्यपाल के चुनाव के लिये आपने अब जो दूसरी व्यवस्था निश्चित की है उसको देखते हुए यह उचित नहीं होगा कि राज्यपाल विधान मंडल के सदस्यों के समक्ष शपथ ग्रहण करे। उचित यही होगा कि उस राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ही इस प्रकार्य को सम्पादित कराये अथवा उसकी अनुपस्थिति में उस उच्च न्यायालय का प्राप्य अग्रतम न्यायाधीश इसे सम्पादित कराये।

इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमान्।

(संशोधन नं. 2105 और 2107 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 136 में 'मैं अमुक गंभीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं' शब्दों की जगह निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

''मैं अमुक $\frac{\text{ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूं।}}{\text{गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं।}}$ शब्द रखे जायें।''

संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 49 के अधीन राष्ट्रपति जो निश्चयोक्ति करेगा या जो शपथ लेगा उसके संबंध में सभा ने एक संशोधन स्वीकार किया है और उसको देखते हुए एकरूपता के ख्याल से यह संशोधन रखा जा रहा है।

उस मौके पर जबकि उक्त संशोधन यहां पास हुआ था आप सभापति के आसन पर मौजूद नहीं थे श्रीमान्। तब आप वर्धा में रुग्ण पड़े थे। प्रसन्नता की बात है कि ईश्वर की दया से आप शीघ्र स्वस्थ हो गये जिसके फलस्वरूप हमें यह सौभाग्य प्राप्त हो सका कि सभा के कार्य संचालन के लिये सभापति के आसन पर पुनः हम आपको आसीन पा सके।

मैं कोई लम्बी वक्तृता नहीं देना चाहता हूं क्योंकि मुझे जो कुछ भी इस संबंध में कहना था उस मौके पर कह चुका हूं। इस समय मैं केवल इतना ही कहूंगा कि किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा ली जाने वाली शपथ या की जाने वाली निश्चयोक्ति के संबंध में अगर हम यह संशोधन स्वीकार कर लेते हैं तो हम अपनी परम्परा एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति के प्रति अपनी निष्ठा ही ज्ञापित करते हैं। मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 2107, 2108 और 2109 मेरा ख्याल है, नहीं पेश किये जा रहे हैं उपस्थित किये गये संशोधनों के संबंध में उत्तर के रूप में क्या डा. अम्बेडकर कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और माननीय मित्र श्री कामत के संशोधनों को मैं स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2104 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 136 में ''उस राज्य के विधान मंडल के सदस्यों के समक्ष'' शब्दों की जगह ''उस राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के अथवा उसकी अनुपस्थिति में उस न्यायालय के प्राप्य अग्रतम न्यायाधीश के, समक्ष'' शब्द रखे जायें।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2106 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 136 में ''मैं अमुक गंभीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता (शपथ लेता) हूं'' शब्दों की जगह निम्नलिखित शब्द रखे जायें:

''मैं अमुक $\frac{\text{ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूं।}}{\text{गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं।'}}$ ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** (संयुक्तप्रांत : जनरल): शपथ पढ़ी कैसे जाएगी ? इसी तरह तो:–'मैं ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूं या गंभीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं? अब सवाल यह उठता है कि कुछ लोग यह कहेंगे कि गवर्नर ईश्वर के नाम पर शपथ ले। पर हमारे देश में ऐसे भी लोग हो सकते हैं जो नास्तिक हों (*बाधा*) (अध्यक्ष शपथ पढ़ कर सुनाते हैं) अच्छा यह विकल्प के रूप में रखा गया है। यही मैं जानना चाहता था। किसी को जो ऐसा नहीं करना चाहता है इसके लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिये कि यह ईश्वर के नाम पर ही शपथ ले।

***अध्यक्षः** नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 136 संशोधित रूप में विधान का अंग माना जाये''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 136, संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 1 जून सन् 1949 ई. के प्रातः 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

———

पुस्तक संख्या 5 खण्ड VIII -16 मई,1949 से 16 जून,1949

खण्ड VIII पुस्तक संख्या-5 दिनांक 01.06.1949 से 16.06.1949

भारतीय संविधान सभा
(भारतीय विधान परिषद)
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

Con. 4. VIII-13.49
320

अंक 8
संख्या 11

सत्यमेव जयते

बुधवार,
1 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप–(जारी)
(अनुच्छेद 137 से 145 पर विचार) 735 क-798

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 1 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 137

***अध्यक्षः** वह आज अनुच्छेद 137 से आरंभ करेंगे। इस पर एक संशोधन है जिसकी सूचना श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने दी है, किन्तु वह नकारात्मक है।

(संशोधन संख्या 2111 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): पहले जो विनिश्चय हो चुका है उसे देखते हुए यह अनुच्छेद पेश नहीं किया जा सकता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): इस पर सभा में मत लिया जाना चाहिये।

***माननीय डा. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): इस पर मत लिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** मैं इसका यह अर्थ लगाता हूं कि कोई और संशोधन पेश नहीं किया जायेगा।

अब प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 137 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 137 संविधान में से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 138

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि जो परिवर्तन पहले ही किया जा चुका है उसे देखते हुए कोई विकल्प बना लिया जाये?

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 138 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'दस अध्याय में उपबन्ध न की हुई किसी आकस्मिकता में राज्य के राज्यपाल के कृत्यों के निर्वहन के लिये राष्ट्रपति, जैसा उचित समझे, वैसा उपबन्ध बना सकेगा।' ''

मैं बिना किसी व्याख्या के इस संशोधन को पेश करता हूं। इस पर टिप्पणी अपेक्षित भी नहीं है।

(संशोधन संख्या 2132, 2134 और सूची 3 का संख्या 169 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 138 में, 'Chapter' (अध्याय) शब्द के स्थान पर 'Constitution' (संविधान) शब्द रख दिया जाये।''

श्रीमान्, मेरे विचार में 'संविधान' शब्द अधिक उपयुक्त और व्यापक है। यदि मेरे मित्र इसे स्वीकार कर लें, तो यह 'अध्याय' शब्द के स्थान पर प्रयुक्त हो सकता है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है।

''कि अनुच्छेद 138 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

''इस अध्याय में उपबन्ध न की हुई किसी आकस्मिकता में राज्य के राज्यपाल के कृत्यों के निर्वहन के लिये राष्ट्रपति, जैसा उचित समझे वैसा, उपबन्ध बना सकेगा।

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 138 में 'अध्याय' शब्द के स्थान पर 'Constitution' (संविधान) शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 138 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 138 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 139 और 140

***अध्यक्षः** इन्हें हटा देना होगा क्योंकि वे पहले किये गये विनिश्चय से असंगत हैं, किन्तु मुझे बताया गया है कि औपचारिक रूप में उन पर मत लेना अपेक्षित है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 139 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 139 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 140 संविधान का भाग हो।

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 140 संविधान से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 141

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में दो संशोधन हैं। एक तो संशोधन संख्या 2148 है और उस पर पं. ठाकुरदास भार्गव का एक संशोधन सूची 3 का संख्या 170 है।

(संशोधन संख्या 2148, सूची 3 में संख्या 170 और संख्या 2149 से 2152 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 141 संविधान का भाग हो।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 141 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 142

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं औपचारिक रूप में संशोधन संख्या 213 पेश करता हूं और उसके स्थान पर मैं संशोधन संख्या 184 (तृतीय सप्ताह-सूची 4) पेश करता हूं:

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

''कि अनुच्छेद 142 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'142, इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होगा जिनके बारे में उस राज्य के विधान-मंडल को विधि बनाने की शक्ति है'।''

श्रीमान्, इससे अनुच्छेद की भाषा सरल हो जायेगी और खंड (ख) भी हट जायेगा जिससे कि उलझनें पैदा होती हैं क्योंकि इसमें संविधान के मसौदे के कुछ पहलूओं की चर्चा है जिनके विषय में हमने अब तक कोई विनिश्चय नहीं किया है, क्योंकि यह प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्यों के बारे में हैं जिनके विषय में बाद में विनिश्चय करना होगा जबकि उन राज्यों की स्थिति ठीक प्रकार परिभाषित की जायेगी। अत: श्रीमान्, यह संशोधन आवश्यक है और मुझे आशा है कि सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

(संशोधन संख्या 2154 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 142 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'142. इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होगा, जिनके बारे में उस राज्य के विधान मंडल को विधि बनाने की शक्ति है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 142 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 142 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 143

(संशोधन संख्या 2155 और 2156 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामत:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में 'except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion.' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

यदि इस संशोधन को सभा स्वीकार कर ले तो अनुच्छेद 143 का यह खंड इस प्रकार बन जायेगा:

> ''राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।''

श्रीमान्, इस खंड के पढ़ने से यह पता लगता है कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की बिना विचारे लगभग अंधे होकर नकल कर दी गई है। कोई वैध या बड़ा कारण नही है कि गवर्नर को अपने मंत्रियों के सम्बन्ध में उससे अधिक शक्ति दी जाये जो राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों के सम्बन्ध में दी गई है, चाहे वह स्वविवेकाश्रित शक्ति हो या अन्यथा। यदि हम अनुच्छेद 61 को देखें, तो उसमें लिखा है:

> ''राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।''

जब, श्रीमान्, उस दिन आपने एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया था, तब डाक्टर अम्बेडकर ने यह कह कर इस खंड की व्याख्या की थी कि राष्ट्रपति अपने सब कृत्यों के निर्वहन में अपने मंत्रियों की मन्त्रणा मानने के लिए बाध्य है। किन्तु यहां अनुच्छेद 143 से राज्यपाल को कुछ स्वविवेकाश्रित शक्तियां मिल जाती है और मुझे यह प्रतीत होता है कि पहले भी वह बुरा ही था, किन्तु अब राज्यपाल के निर्वाचन सम्बन्धी अनुच्छेद 131 को संशोधित रूप में स्वीकार करने के पश्चात् और मनोनीत राज्यपालों को स्वीकार करने के पश्चात्, यह सिद्धान्ततः गलत होगा और सांविधानिक शासन के सिद्धांतों और नियमों के विरुद्ध होगा, जिनके आधार पर आप इस देश का ढांचा बनाने जा रहे हैं। मैं कहता हूं कि राज्यपाल को यह अतिरिक्त शक्तियां, अर्थात् स्वविवेकाश्रित शक्तियां, देना गलत है। मैं अनुभव करता हूं कि सांविधानिक शासन के सिद्धांतों से जरा भी नहीं हटना चाहिए जब तक कि आपात स्थिति सम्बन्धी कोई कारण न हो और इन स्वविवेकाश्रित शक्तियों को हटा देना चाहिए। मुझे आशा है कि सदन मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगा। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में, 'head' शब्द के आगे एक अर्धविराम रख दिया जाये तथा 'who shall be responsible to the Governor and shall' ये शब्द रख दिए जायें तथा 'to' शब्द हटा दिया जाये।''

[प्रो. के.टी. शाह]

अतः संशोधित अनुच्छेद ऐसा बन जायेगा:

''(1) एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा, जो राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी होगी और राज्यपाल को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता तथा मन्त्रणा देगी...आदि।''

श्रीमान्, यह तो संविधान के मस्विदे के इस व्यापक सिद्धान्त का तर्कसंगत निष्कर्ष है कि शासन विधान मंडल के प्रति समस्त मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर चलेगा। साथ ही, मंत्रिमंडल में प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री या उसे कुछ भी नाम दीजिये, मुख्य परामर्शदाता होगा और मैं चाहता हूं कि संविधान द्वारा उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री पर ही रहे, अन्य मंत्रियों की यह स्थिति नहीं हो। मंत्रिमंडल के भीतर चाहे कुछ भी कार्यप्रणाली या परम्परा हो, मंत्रिमंडल के निर्णय चाहे किसी प्रकार किये जायें, जहां तक राज्यपाल का संबंध है, मैं समझता हूं कि मुख्यमंत्री का ही उत्तरदायित्व होगा जो कि अपने सहयोगियों की नियुक्ति के विषय में और यदि आवश्यक हो तो उन्हें हटाने के विषय में भी मंत्रणा देगा। यह उचित है कि राज्य के सांविधानिक मुखिया, अर्थात् राज्यपाल, को दी गई मंत्रणा के लिये मुख्यमंत्री को ही सीधा उत्तरदायी ठहरा दिया जाये। क्योंकि यह हमारे द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों का स्पष्ट निष्कर्ष है, अतः मुझे आशा है कि इस संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं होगी।

(संशोधन 2159 से 2163 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** कोई अन्य संशोधन नहीं है। अनुच्छेद और संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मुझे भय है कि मुझे मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन का विरोध करना पड़ेगा, केवल इस कारण कि उन्होंने अनुच्छेद के क्षेत्र को स्पष्ट नहीं समझा है और यह संशोधन भ्रान्ति के कारण रखा गया है।

श्रीमान्, निःसंदेह यह सत्य है कि इस अनुच्छेद से कुछ शब्दों को हटाया जा सकता है जो राज्यपाल के उन कृत्यों के निर्वहन के सम्बन्ध में हैं, जिनके विषय में उसे अपने स्वविवेक से कार्य करना होगा, चाहे उसके मंत्री उसे कुछ भी मंत्रणा क्यों न दें। इस अभिप्राय का उल्लेख करने के दो तरीके हैं। एक तो यह है कि इस अपवाद का उल्लेख अनुच्छेद 143 में कर दिया जाये और बाद वाले अनुच्छेदों में राज्यपाल की उन शक्तियों को गिना दिया जाये जिनसे कि वह अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है, या इस शक्ति की यहां कोई चर्चा न की जाये और केवल उपयुक्त अनुच्छेद में उसका उल्लेख

कर दिया जाये। पहले तरीके को अपनाया गया है। यहां व्यापक सिद्धांत की चर्चा कर दी गई है कि गवर्नर को सामान्यत: अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चलना होगा, सिवाय संविधान के उन अनुच्छेदों में आने वाले स्वविवेक के कृत्यों के निर्वहन में जिनमें कि उसे स्वविवेक से कार्य करने की स्पष्टत: शक्ति दी गई है। बाद में संविधान में ऐसे अनुच्छेद दे दिये गये हैं, जिनके विषय में उसे स्वविवेक से कार्य करने के लिये कहा गया है, जिनमें वे सब मामले आ जाते हैं जहां साधारण प्रणाली से हटना पड़ता है, जिन पर मैं देखता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत को कोई आपत्ति नहीं है, मैं अनुच्छेद 188 का हवाला दे सकता हूं, तो मैं इस अनुच्छेद के उपबन्धों को इसी प्रकार रहने देने में कोई हानि नहीं समझता। यदि ऐसा हो कि यह सभा निश्चय कर दे कि बाद वाले सब अनुच्छेदों में स्वविवेक की शक्ति नहीं रखनी चाहिये, जैसा कि सभा कर सकती है, तो यह खंड विशेष निरर्थक हो जायेगा। मेरे माननीय मित्र जो बात सिद्ध करना चाहते हैं वह युक्तिहीन दिखाई देती है, जबकि वे यह मान लेते हैं कि अनुच्छेद 188 के अंतर्गत राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति दी जा सकती है। यदि वह अनुच्छेद 188 में दी जा सकती है, तो उसका यहां उल्लेख करने में कोई हानि नहीं है। इस अपवाद का अनुच्छेद 143 में उल्लेख करने से कोई हानि नहीं हो सकती। अतएव, श्री कामत इस अपवाद के यहां उल्लेख करने में जो गम्भीर आपत्ति देखते हैं वह युक्तिहीन है। इसलिये मेरे विचार में यह अच्छा हो कि यह अनुच्छेद संशोधन के बिना ही स्वीकार कर लिया जाये। यदि सभा के लिये यह आवश्यक है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्ति को सीमित कर दिया जाये या बिल्कुल हटा दिया जाये, तो ऐसा बाद के अनुच्छेदों में किया जा सकता है जहां विशेष उल्लेख किया गया है जिसके बिना यहां उल्लिखित शक्ति को काम में ही नहीं लिया जा सकता। मैं सभा का ध्यान इसी बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं और मेरे ख्याल में अनुच्छेद को विद्यमान रूप में ही पारित कर दिया जाये।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने इस अपवाद के विषय में, जो कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में जोड़ा गया है, स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। यदि राज्यपाल को, वास्तव में, स्वविवेक की शक्ति देनी है, तो यह अपेक्षित है कि यह खंड, जिसे श्री कामत हटाना चाहते हैं, रहना ही चाहिये।

श्रीमान्, इसके अतिरिक्त मैं नहीं जानता कि मस्विदा-समिति ने इस बात को जानबूझ कर हटा दिया है या इसे बाद में रखना चाहती है कि गवर्नर मंत्रिपरिषद् के अधिवेशनों में सभापतित्व करेगा, मैं डाक्टर अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या ऐसा उपबन्ध अपेक्षित नहीं है। यहां ऐसा कोई उपबंध दिखाई नहीं देता। यह अनुच्छेद 143 भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 50 की केवल पुनरावृत्ति ही है, जिसमें कि यह उपबंध है कि गवर्नर अपनी इच्छानुसार मंत्रिपरिषदों के अधिवेशनों का सभापतित्व कर सकता है, अतएव

[डा. पी. एस. देशमुख]

मेरे विचार में यह शक्ति अत्यावश्यक है। अन्यथा, मंत्रिगण राज्यपाल को किसी अधिवेशन में आने से रोक सकते हैं और इस शक्ति का उपबंध न किया जाये तो वह राज्यपाल को प्राप्य नहीं होगी। मैं मस्विदा-समिति के सदस्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं और वे देखें कि क्या यह संभव है कि वे अनुच्छेद 143 पर ऐसा संशोधन स्वीकार कर लें या यह किसी अन्य भाग में यह उपबंध रख दें। मेरे विचार में मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में सभापतित्व करने की शक्ति राज्यपाल के लिये आवश्यक है और उसका उपबंध होना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद में उपबंधित है:

> ''कि राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।''

श्रीमान्, मैं सांविधानिक विधिवेत्ता नहीं हूं, किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि इस अनुच्छेद के उपबंधों के कारण राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई मंत्रणा पर चलने के लिये बाध्य नहीं है। इसका यही आशय है, मंत्रियों को अधिकार है कि वे राज्यपाल को मंत्रणा दे सकें। राज्यपाल को पूरा अधिकार है कि वह उस मंत्रणा को स्वीकार करे या ठुकरा दे। प्रशासन के दूसरे क्षेत्र में राज्यपाल अपने कृत्यों के निर्वहन में अपने स्वविवेक से काम कर सकता है। इस क्षेत्र में मंत्रिमंडल को कोई मंत्रणा देने की शक्ति नहीं है। हां, यह राज्यपाल पर छोड़ दिया गया है कि वह इस क्षेत्र में भी मंत्रियों की मंत्रणा मांग सकता है।

मैं अनुभव करता हूं कि हमने स्थिति के वर्तमान तथ्यों पर विचार नहीं किया है हमने संसार के विभिन्न देशों के संविधानों की नकल करने का प्रयत्न किया है। इस समय यह अपेक्षित है कि राज्यपाल को केवल अपने स्वविवेक से काम करने की ही शक्ति नहीं, वरन् अपने वैयक्तिक विवेक के अनुसार कार्य करने की भी शक्ति मिलनी चाहिये। मेरा ख्याल है कि राज्यपाल को विशेष उत्तरदायित्वों की शक्ति भी मिलनी चाहिये, जो कि इस देश में ब्रिटिश शासन के अधीन गवर्नरों को प्राप्त थी। मेरे विचार में प्रांतों में नेताओं की कमी है। योग्य व्यक्ति उपलब्ध नहीं हैं और विविध प्रांतों में सब प्रकार की बातें होती रहती हैं। जब तक कि राज्यपालों को विस्तृत शक्तियां न दी जायें, तब तक प्रांतीय प्रशासन में कोई सुधार करना कठिन होगा। ऐसी कार्यप्रणाली चाहे लोकतंत्रात्मक न हो, पर देश के हितों में यह पूर्णतः ठीक होगी। मैं लोकतंत्र को, देश के महत्त्वपूर्ण हितों को जोखिम में नहीं डालने दे सकता। मैं अनुभव करता हूं कि इस देश के मध्य श्रेणी वाले बुद्धिजीवियों में सृजन की शक्ति शेष नहीं रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे पहल करने और उद्योग करने के योग्य नहीं रहे हैं। जनसाधारण जो कि इस देश के शासक

होने चाहियें, पददलित हैं और सब प्रकार से शोषित हैं। इन परिस्थितियों में कोई तरीका शेष नहीं है सिवाय इसके कि भारत सरकार प्रांतीय प्रशासन को अपने ही हाथों में ले ले। मेरा ख्याल है कि हम इस देश में क्रांति के द्वार पर खड़े हैं। मैं इस स्थिति में अनुभव करता हूं कि यह अपेक्षित है कि समस्त शक्तियां भारत सरकार के हाथ में केन्द्रित रहनी चाहियें। कुछ प्रांतों में तो विधि और शांति की व्यवस्था सर्वथा टूट ही गई प्रतीत होती है। डाके, अग्निकांड, लूट, हत्या और मुद्रास्फीति का ही बोलबाला है। मैं इस अनुच्छेद के विरुद्ध हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि संघवाद ऐसे देश में सफल नहीं हो सकता जो कि परिवर्तन काल में से गुजर रहा हो। अमरीका की राष्ट्रीय अर्थस्थिति पूर्णत: विकसित है। वहां संघीय प्रकार की सरकार चल सकती है जिस देश में विस्तार की और आर्थिक विकास की गुंजाइश न हो वहां केन्द्रित अर्थव्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। भारत में जहां हमारी कृषि, उद्योग, खनिज उत्पादन आदि विकास की शैशवावस्था में हैं, यह आवश्यक है कि भारत सरकार के हाथ में शक्तियां निहित हों। संघवाद का उन्नीसवी शताब्दी में प्रचार था जब कि संचार के साधन अविकसित थे। प्राचीनकाल में पारिभाषिक ज्ञान तथा सरकारों को उपलब्ध साधन बहुत कम थे। आज परिस्थिति सर्वथा बदल गई है। संचार साधन द्रुतगति से विकसित हो गये हैं। भारत सरकार के पास पारिभाषिक ज्ञान तथा अपेक्षित व्यक्तियों का इतना भंडार है कि वह आधुनिक सरकारों से प्रत्याशित समस्य कृत्यों का निर्वहन कर सकता है। यह भी एक कारण है कि मैं इस अनुच्छेद के विरुद्ध हूं। इस देश में संघवाद के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। सारी सरकारें लगभग एकात्मक प्रकार की ही हो गई हैं यदि हमें सब मोर्चों पर राजनैतिक उथल-पुथल, आर्थिक उलझनों तथा सैनिक पराजयों से बचना है, तो हमारे नेताओं और राजनीतिज्ञों को रूढ़ि-विरुद्ध तरीके से सोचना सीख लेना चाहिये; अन्यथा इस देश का भविष्य अन्धकारमय है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष, महोदय मैं डाक्टर अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या यह अपेक्षित है कि 'that the Governor will be aided and advised by his Ministers' शब्दों के पश्चात् 'except in regard to certain matters in respect of which he is to exercise his discretion' ये शब्द रखे जायें। मान लीजिये कि ये शब्द, जो कि पुराने भारत शासन अधिनियम और पुरानी व्यवस्था के प्रतीक हैं हटा दिये जाते हैं तो क्या हानि है? मंत्रियों के कृत्य विधि रूपेण राज्यपाल को सहायता और मंत्रणा देना है। जिस अनुच्छेद में ये शब्द हैं उसमें यह नहीं लिखा है कि राज्यपाल मंत्रियों की मंत्रणा पर चलेगा किन्तु यह आशा की जाती है कि समस्त देशों में, जहां कि उत्तरदायी सरकार है, जो सांविधानिक परम्परा है उसके अनुसार, राज्यपाल सब मामलों में अपने मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करेगा। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कानून में स्पष्ट लिखा है कि कुछ उल्लिखित मामलों में वह अपने ही प्राधिकार से कार्यवाही कर सकता है, अत: अनुच्छेद 143 उसके मार्ग में रोड़ा बन जायेगा।

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 188 से राज्यपाल को यह शक्ति मिल जाती है कि वह मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना कर दे और प्रांत के प्रशासन को अपने हाथ में ले ले, अतः यह आवश्यक है कि इन शब्दों को रहने दिया जाये, अर्थात् राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति रहने दी जाये। किन्तु वे हमें आश्वासन देते हैं कि यदि बाद में धारा 188 को हटा दिया जायेगा तो अनुच्छेद 143 के शब्दों पर पुनः विचार हो सकेगा। मैं इस स्थिति को पूर्णतया समझता हूं तथा इसे अच्छा समझता हूं, किन्तु फिर भी मैं चाहता हूं कि जिन शब्दों पर मेरे मित्र श्री कामत ने आपत्ति की है, उन्हें हटा दिया जाये। मेरा वैयक्तिक रूप में यह ख्याल है कि यदि इसे न रखा जाये तो कोई हानि नहीं होगी और फिर हम अनुच्छेद 188 पर ही नहीं, साथ ही अनुच्छेद 175 पर भी उनके गुणावगुण के अनुसार विचार कर सकते हैं; किन्तु श्री कृष्णमाचारी के आश्वासन के बावजूद भी आपत्ति किये गये शब्दों को रहने देने से यह ख्याल पैदा नहीं होता कि मस्विदा-समिति सदन से ऐसे सिद्धांतों पर वचनबद्ध होने के लिये कह रही है, जिन्हें बाद में स्वीकार करना अवांछित समझा जा सके। मैं अनुच्छेद 188 के गुणावगुण के विषय में कुछ नहीं कहूंगा। इसके विषय में मैं पहले ही अपने विचार संक्षेपतः अभिव्यक्त कर चुका हूं और इस पर बाद में पूरी तरह विचार करने का अवसर मिलेगा जबकि इस अनुच्छेद पर सदन विचार करेगा। किन्तु आरंभ में ही हम ऐसी शब्दावली का क्यों प्रयोग करें, जो पुरानी व्यवस्था की असुखद स्मृति है और जो हमें यह ख्याल दिलाती है कि यह समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये निश्चित तथ्य समझा जा सकता है, यद्यपि यह बाद में संभव हो सकता है कि सदन अब किये हुए विनिश्चय को बदल सके? श्रीमान्, मेरे विचार में इन कारणों से मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को स्वीकार करना तथा बाद में अनुच्छेद 175 तथा 188 पर उनके गुणावगुण के अनुसार विचार कर लेना अच्छा होगा।

समाप्त करने से पहले मैं एक बात और कहना चाहता हूं। यदि अनुच्छेद 143 को वर्तमान स्थिति में पारित कर दिया जाये, तो उससे इस प्रकार की भ्रांतियां उत्पन्न हो सकती हैं जिस प्रकार की मेरे माननीय मित्र डाक्टर देशमुख के हृदय में प्रतीत होती है, जबकि उन्होंने यह मांग की है कि एक उपबंध रख देना चाहिये जिससे राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् के अधिवेशनों में सभापतित्व करने का अधिकार मिल जाये। संविधान के मस्विदे में इसका उपबंध नहीं रखा गया है और मेरे विचार में यही ठीक है। ग्रेट ब्रिटेन और ब्रिटिश अधिराज्यों में उत्तरदायी शासन की जो परम्परा स्थापित हो गई है, यह उसके विरुद्ध होगा कि राज्यपाल या गवर्नर जनरल साधिकार अपने मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में सभापतित्व करे। संविधान के मस्विदे में केवल इतना ही किया गया है कि मुख्यमंत्री का यह कर्त्तव्य निश्चित कर दिया गया है कि वह प्रशासनीय मामलों और सरकार के विधान कार्यक्रम के विषय में मंत्रिपरिषदों के विनिश्चयों से राज्यपाल को अवगत करे। इसके बावजूद हम देखते हैं कि अनुच्छेद 143 की विद्यमान भाषा से डाक्टर देशमुख जैसे व्यक्ति के मन में भी भ्रांति हो गई है जो संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद को पूरे ध्यान से पढ़ने का

कष्ट करते हैं। यह भी एक कारण है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्ति की चर्चा अनुच्छेद 143 में नहीं होनी चाहिये। मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी की वक्तृता से यह आशा उत्पन्न नहीं होती कि मैंने जो सुझाव दिया है उसके स्वीकार होने की कोई आशा हो। फिर भी मैं यह कहना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि श्री कामत ने जो तरीका बताया है वह उससे अच्छा है जो मस्विदा उप-समिति स्वीकार करती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने अपने माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी की वक्तृता को और श्री कामत जो शब्द निकालना चाहते हैं उन्हें बनाये रखने के पक्ष में उनकी युक्तियों को बहुत ध्यानपूर्वक सुना है। यदि राज्यपाल निर्वाचित राज्यपाल होता, तो मैं समझ लेता कि उसे ये स्वविवेक की शक्तियां मिलनी चाहियें, किन्तु अब हमारे यहां मनोनीत राज्यपाल होंगे जो राष्ट्रपति के प्रसादकाल तक पदधारण करेंगे और मैं नहीं समझता कि ऐसे व्यक्तियों को धारा 188 में उल्लिखित शक्तियां दी जानी चाहियें।

फिर, यदि अनुच्छेद 188 पर विचार होना है—और वह अस्वीकृत भी हो सकता है—तो यह उचित नहीं है कि ये शक्तियां इस अनुच्छेद में पहले ही दे दी जायें। यदि अनुच्छेद 188 पारित हो जायेगा तो हम इस अनुच्छेद पर पुनः विचार कर सकते हैं और अपेक्षित हो तो यह खंड जोड़ सकते हैं। सभा में राज्यपाल की शक्तियों के विषय में जो कुछ कहा जा चुका है उसे देखते हुए हमें यह पूर्व धारणा नहीं बना लेनी चाहिये कि हम अनुच्छेद 188 को पारित कर ही देंगे।

ये शब्द अपमानजनक विगत काल की स्मृति हैं। मुझे भय है कि यदि इन शब्दों को रहने दिया गया तो कोई राज्यपाल पिछले गवर्नरों की नकल करने का प्रयत्न कर सकता है और उनका दृष्टान्त दे सकता है, कि अमुक अवसर पर गवर्नर ने अपने स्वविवेक से कार्य किया था। मेरा ख्याल है कि हमारे संविधान में, जो कि हम बना रहे हैं, राज्यपाल की यह शक्तियां ठीक नहीं बैठती और श्री कामत ने जो संशोधन पेश किया है उसकी सूचना माननीय गोविन्दवल्लभ पन्त जैसे महान् व्यक्ति ने भी दी है। मेरे विचार में पंडित पन्त की बुद्धिमानी इस बात की पर्याप्त प्रतिभूति होनी चाहिये कि यह संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये। यह भी संभव हो सकता है कि सभा अनुच्छेद 188 को पारित ही न करे। यदि कोई आपात हो, तो प्रान्त का प्रमुख मंत्री स्वयं आकर राज्यपाल से प्रार्थना करेगा कि आपात की घोषणा कर दी जाये और उसके निराकरण के लिये केन्द्र की सहायता प्राप्त की जानी चाहिये। राज्यपाल प्रांत के प्रमुख मंत्री से पूछे बिना आपात की घोषणा क्यों करे? हमें देखना चाहिये कि मुख्यमंत्री और प्रांत का राज्यपाल ऐसे अवसर पर एक दूसरे से विरोध-भाव न रखें। ऐसी स्थिति आने नहीं देनी चाहिये जबकि मुख्यमंत्री कहें कि वह शासन चलाना चाहता है और राज्यपाल उससे बिना पूछे और उसके विरोध प्रदर्शन के बावजूद भी आपात की घोषणा कर दे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इससे मुख्यमंत्री नितांत शक्तिहीन हो जायेगा। मेरे विचार में कोई कुटिल राज्यपाल प्रांत में चाहे तो ऐसी स्थिति पैदा कर सकता है या राष्ट्रपति के कहने पर भी कर सकता है यदि उस प्रांत में ऐसा दल सत्तारूढ़ हो जो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से विरुद्ध हो। मेरे विचार में अनुच्छेद 188 को, यदि रखा भी जाये तो, ऐसे प्रकार से संशोधित कर देना चाहिये कि राज्यपाल, प्रांत के मुख्यमंत्री की ही मंत्रणा पर आपात की घोषणा करे। मैं डाक्टर अम्बेडकर को सुझाव देता हूं कि ये शब्द इस अनुच्छेद में नहीं होने चाहियें और उसके परिणामत: संशोधन के रूप में, इस अनुच्छेद की उपधारा (2) को हटा देना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं अपने माननीय उग्रवादी मित्रों श्री कामत और प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना से सविनय असहमत हूं और मेरे विचार में प्रांतों को जितनी अधिक शक्ति दी जाये, उतना ही उन शक्तियों के प्रयोग में केन्द्र का संरक्षण और नियंत्रण कठोर होना चाहिये। मेरा तो यही ख्याल है। अब हमने स्वशासित राज्यों के निर्माण के पुराने विचार को छोड़ दिया है और अब हम केन्द्र में शक्तियों का संग्रह रख रहे हैं और हम मनोनीत राज्यपाल रखने वाले हैं। वे राज्यपाल व्यर्थ ही तो नहीं होंगे। आखिर, हमें यह देखना है कि केन्द्र की नीति सफल हो। हम राज्यों को साथ-साथ मिला कर रखना चाहते हैं और राज्यपाल एक अभिकर्ता या वह एक साधन होगा जो कि केन्द्रीय नीति के लिये जोर डालेगा और उसका अभिरक्षण करेगा। वास्तव में हमारी पुरानी विचारधारा अब सर्वथा बदल गई है। देश की समस्त राजनीति पर केन्द्र की नीति का प्रभाव और असर पड़ता है। उदाहरणार्थ प्रतिरक्षा जैसे विषय लीजिये जिनमें शांति या युद्ध, विदेशों से संबंध समाविष्ट हैं; हमारे वाणिज्यिक सम्बन्धों को लीजिये, जिनमें आयात और निर्यात समाविष्ट हैं ये ऐसे विषय हैं जिनका समस्त राजनीति पर प्रभाव पड़ता है और प्रांत अप्रभावित नहीं रह सकते, वे केन्द्र की नीति से स्वतंत्र नहीं रखे जा सकते। केन्द्र में जो नीति निर्धारित होगी उसका सब राज्यों को अनुसरण करना चाहिये और यदि राज्यपाल प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के हाथ में हों तो विविध प्रान्तों में विविध नीतियां होंगी और प्रत्येक प्रांत की नीति ऐसी ही अस्थायी होगी जैसा कि वहां का मंत्रिमंडल होगा। क्योंकि कई प्रकार के मंत्रिमंडल होंगे जिनके विभिन्न दलीय नाम होंगे और वे भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों पर चलेगे, उनकी नीतियां एक-दूसरे से अवश्य भिन्न होंगी; अतएव यह और भी अत्यावश्यक है कि राज्यों और केन्द्र के बीच कार्यक्रमों और नीतियों का तालमेल हो। राज्यपाल केन्द्र का अभिकर्ता होने के कारण एकमात्र प्रत्याभूति है जो विभिन्न प्रांतों और राज्यों का एकीकरण करेगा। केन्द्रीय सरकार भी प्रांतीय सरकारों के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करेगी; अपने प्रशासन के अतिरिक्त उन्हें केन्द्रीय सरकार की ओर से भी कार्यों का निर्वहन करना होगा। राज्यपाल केन्द्र के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करेगा और ध्यान देगा कि केन्द्रीय नीति पर सच्चाई से आचरण हो। अतएव राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों को कम नहीं करना चाहिये।

लोकतंत्रात्मक रुचि वन्य पशु के समान होती है। आप चाहे जो कहें, लोकतंत्र दलों और जनसाधारण के भ्रमों और भ्रान्तियों पर चलता है। कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जो इस वन्य पशु को नियंत्रण में रख सके। मैं लोकतंत्र की निन्दा नहीं करता। लोकतंत्र को अपने मार्ग पर चलने देना चाहिये। पर इसका पतन होकर अराजकता नहीं आनी चाहिये। इसके अतिरिक्त कदाचित् राज्य-सरकारें अपनी नीतियों पर दृढ़ न हों। सरकारें मासों या वर्षों के पश्चात् बदल सकती हैं और उनके साथ उनकी नीतियां भी बदल सकती हैं। राज्यपाल भी बदल सकते हैं किन्तु उन्हें केन्द्र द्वारा दिये गये निर्देश तथा नीतियां लगभग अपरिवर्तित रहेंगी। राज्यों को जितनी अधिक शक्तियां दी जायें उतना ही अधिक कड़ा नियंत्रण होना चाहिये। एक ओर राज्यपाल को केन्द्रीय नीति का और दूसरी ओर उसे संविधान का संरक्षक होना चाहिये। अतएव उसकी शक्तियों को ज्यों की त्यों रहने देना चाहिये।

***श्री बी.एस. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो व्याख्या की है उसे सभा को स्वीकार कर लेना चाहिये और राज्य के स्वविवेक सम्बन्धी शब्दों को रहने देना चाहिये जब तक कि हम अनुच्छेद 175 और 188 को पारित न कर दें।

माननीय डाक्टर देशमुख ने मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में राज्यपाल द्वारा सभापतित्व करने के सम्बन्ध में जो सुझाव रखा है, मुझे उसका विरोध करना है। उन्होंने पूछा है कि क्या मस्विदा समिति बाद में ऐसा उपबंध रखना चाहती है। मैं नहीं जानता कि मस्विदा समिति का भविष्य के लिये क्या विचार है किन्तु जहां तक हमारे समक्ष प्रस्तुत मस्विदे का सम्बन्ध है, मेरे विचार में मस्विदा समिति ने इस बात को निश्चय ही ठुकरा दिया है।

मैं माननीय सदन का ध्यान अनुच्छेद 147 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसके अंतर्गत राज्यपाल को केवल सूचना मात्र का अधिकार है। यदि हम उसे मंत्रिमंडल के अधिवेशनों पर सभापतित्व करने देते हैं तो हम उस स्थिति से हट जायेंगे जो हम उसे देना चाहते हैं, अर्थात् वह सांविधानिक मुखिया नहीं रहेगा। यदि वह मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में सभापति होगा तो सब प्रशासनीय क्षेत्रों में मंत्रिमंडल के विनिश्चयों को निश्चित करने में उसकी प्रभावशाली आवाज होगी, चाहे वे क्षेत्र ऐसे हों जो कि उसकी स्वविवेक की शक्ति के लिये रक्षित न हो। यदि उसे कुछ शक्तियां दी जाती हैं, तो हमारा प्रयत्न होना चाहिये कि उन्हें यथासम्भव कम करें, जिससे कि सांविधानिक मुखिया के नाते राज्यपाल की स्थिति बनी रहे। अतः श्रीमान्, मैं डा. देशमुख के प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, वास्तव में संशोधन का विरोध करने वालों और समर्थन करने वालों में कोई अंतर नहीं है। सर्वप्रथम

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

अनुच्छेद 143 में व्यापक सिद्धांत, मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व का सिद्धांत, रखा गया है कि राज्यपाल को कार्यपालिका कार्यवाही के विविध क्षेत्रों में अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चलना चाहिये। फिर अनुच्छेद में उपबंधित है कि ''except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them is his discretion.'' [जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़ कर] जब तक इस संविधान में ऐसे अनुच्छेद हैं जिनसे कि राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने की सामर्थ्य होती है और कुछ स्थितियों में, शायद, मंत्रिमंडल की बात की अवहेलना करने या राष्ट्रपति के पास मामला भेज देने की क्षमता प्राप्त होती है, तब तक यह अनुच्छेद विद्यमान रूप में सर्वथा उचित है। यदि बाद में सदन इस निष्कर्ष पर पहुंच जाये कि जिन अनुच्छेदों से राज्यपाल के विशिष्ट मामलों में स्वविवेक से कार्य करने की सामर्थ्य प्राप्त है, उन्हें हटा दिया जाये, तो इस अनुच्छेद में भी संशोधन किया जा सकता है किन्तु जब तक अनुवर्ती अनुच्छेद हैं जिनसे कि राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने और मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर कार्य न करने की अनुमति प्राप्त है, तब तक यह अनुच्छेद, अपने विद्यमान रूप में, सर्वथा उचित है।

दूसरा यही प्रश्न है कि क्या पहले अनुच्छेद 143 में यह उपबंध कर दिया जाये कि राज्यपाल मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर कार्य करेगा और बाद में यह उपबंध रख दिया जाये कि ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी...वह ऐसा कर सकता है'' अथवा ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी वह अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है।'' मेरे विचार में यह अधिक अच्छा उपाय है कि अनुच्छेद 143 में ऐसा उपबंध रखा जाये कि राज्यपाल सदा मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर कार्य करेगा, सिवाय विशेष अथवा विशिष्ट मामलों में जहां कि उसे अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति है। हां, यदि सदन इस निष्कर्ष पर पहुंच जाये कि राज्यपाल किसी मामले में अपने स्वविवेक से कार्य नहीं करेगा और वह हर मामले में केवल मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर ही कार्य करेगा, तो इस अनुच्छेद में परिणामतः परिवर्तन हो जायेगा। अर्थात् उन अनुच्छेदों पर विचार होने और उनके पारित हो जाने के पश्चात् सदन को पूरा अधिकार होगा कि वह अनुच्छेद 143 के अनुवर्ती भाग को हटा दे, जो कि बाद के अनुच्छेदों पर सदन द्वारा किये गये विनिश्चय के फलस्वरूप होगा। किन्तु इस समय यह बिल्कुल ठीक है और मैं नहीं समझता कि अनुच्छेद 143 की भाषा में कोई परिवर्तन अपेक्षित है। प्रत्येक अनुच्छेद के आरंभ में यह कहना भी भारी होगा कि ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी राज्यपाल अपने उत्तरदायित्व पर कार्य कर सकता है।''

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, एक स्पष्टीकरण करवाना चाहता हूं। श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि जब आपात की शक्तियां राज्यपाल के समान राष्ट्रपति को भी दी गई

है, शायद अधिक दी गई हैं, तब स्वविवेक की शक्तियां केवल राज्यपालों को ही क्यों दी गई हैं, राष्ट्रपति को क्यों नहीं दी गई?

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करना चाहता हूं। अनुच्छेद 143 के अंतर्गत मंत्रिपरिषद् राज्यपाल के कर्त्तव्यों के प्रयोग में उसकी सहायता करेगी। यहां तक बात स्पष्ट है। मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी जो कार्यावधि में संख्या 142-ए है और मैंने उसे पेश नहीं किया है। उस संशोधन में मैंने सुझाव दिया है कि राज्यपाल सब मामलों में अपने मंत्रियों की मंत्रणा मानने पर बाध्य होगा, सिवाय उन मामलों के जिनके विषय में उसके लिये इस संविधान के अधीन अपने स्वविवेक से कार्य करना अपेक्षित है। मेरा निवेदन है कि यह कहना गलत है कि राज्यपाल एक मूक व्यक्ति होगा। वास्तव में मेरे मतानुसार राज्यपाल बहुत विस्तृत शक्तियों का और बहुत महत्त्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग करेगा। यदि हम अनुच्छेद 144 को देखें तो उसमें लिखा है:

> ''राज्यपाल के मंत्री उसके द्वारा नियुक्त होंगे और उसके प्रसादकाल पर्यन्त अपने पद धारण करेंगे।''

अत: उसे अपने मंत्री नियुक्त करने की शक्ति है। किन्तु जब मंत्री हों ही नहीं तब उसे अपने कृत्यों के निर्वहन में कौन मंत्रणा देगा? जब वह अपने मंत्रिमंडल को पदच्युत कर देगा, जब भी वह अपने कृत्यों को अपने स्वविवेक से ही करेगा।

फिर भी, यदि पिछले मंत्रिमंडल के विघटन के पश्चात्, राज्यपाल किसी दल के नेता को मंत्रियों के चुनने के लिये बुलायेगा, उस अवस्था में, कोई मंत्रिमंडल अस्तित्व में नहीं होगा; फिर उसे मंत्रणा देने के लिये कौन होगा? अतएव वह स्वविवेक से ही अपने कृत्यों का निर्वहन करेगा।

यह ख्याल करना गलत है कि राज्यपाल पर ऐसे कर्त्तव्यों का भार नहीं होगा जिन्हें वह स्वविवेक से पूरा करेगा। अनुच्छेद 175 और 188 दूसरे अनुच्छेद हैं जिनसे उसे स्वविवेक वे प्रयोग के लिये अन्य कर्त्तव्य मिलते हैं।

अनुच्छेद 144 (4) के अंतर्गत निदेश-पत्र का उल्लेख है, जो चतुर्थ अनुसूची में दिया हुआ है। उसकी अंतिम कंडिका इस प्रकार है:

> ''अच्छे प्रशासन के स्तरों के संधारण के हेतु, आचारिक, सामाजिक और अधिक कल्याण के पोषण करने वाले और जनता के समस्त वर्गों को सार्वजनिक जीवन तथा राज्य के शासन में यथोचित भाग लेने के लिये योग्य बनाने वाले समस्त उपायों की वृद्धि के हेतु और समस्त वर्गों और पंथों में सहकारिता सद्भाव और धार्मिक विश्वासों और भावनाओं के प्रति परस्पर आदर उत्पन्न करने के हेतु राज्यपाल भरसक उद्योग करेगा।''

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मेरा निवेदन है कि मेरे मतानुसार राज्यपाल मंत्रिमंडल और सामान्यत: जनता का पथ-प्रदर्शक, दर्शक और मित्र होगा, जिससे कि वह कुछ कृत्यों का प्रयोग करेगा जिनमें से कुछ अलिखित परंपरा के रूप में होंगे और कुछ ऐसे होंगे जो संविधान द्वारा लिखित रूप में प्रदत्त होंगे। वह ऐसा व्यक्ति होगा जो दल से परे होगा और वह मंत्रिमंडल और सरकार को निरपेक्ष दृष्टिकोण से देखेगा। वह मंत्रियों और विधान मंडल के सदस्यों पर ऐसे प्रकार से प्रभाव डालेगा कि प्रशासन सहज ही चलेगा। वास्तव में यह कहना, कि उसके जैसा व्यक्ति केवल मूक व्यक्ति ही होगा या शक्तिहीन सम्मानित अधिकारी होगा, गलत है। यह बिल्कुल ठीक है कि जहां तक सांविधानिक राज्यपाल का प्रश्न है उसे कई मामलों में मंत्रियों की मंत्रणा लेनी होगी, किन्तु कई ऐसे मामले हैं जिनमें न वह मंत्रणा प्राप्य ही होगी और न वह उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य ही होगा।

अनुच्छेद 147 के अधीन राज्यपाल को सूचना मांगने की शक्ति है और भाग (ग) में लिखा है: मुख्यमंत्री का कर्त्तव्य होगा:

> ''किसी विषय को, जिस पर मंत्री ने विनिश्चिय कर दिया हो किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया हो, राज्यपाल के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचारार्थ रखना।''

यह विशेष रूप से ऐसा मामला है कि जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। राज्यपाल को अधिकार है कि वह मुख्यमंत्री को ऐसा कोई मामला मंत्रिपरिषद् में रखने के लिये कहे जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया हो। जब वह सूचना मांगेगा तब वह अपने स्वविवेक के प्रयोग से कार्यवाही करेगा। वह किसी प्रकार की सूचना मांग सकता है। इस शक्ति के द्वारा वह मंत्रिमंडल को अनुत्तरदायी कार्य करने से रोक सकता है और उस पर नियंत्रण रख सकता है। मेरे विचार में, वर्तमान संविधान में राज्यपाल की जो स्थिति रखी गई है उससे वह बहुत महत्त्वपूर्ण कृत्यों का प्रयोग करेगा और इसलिये अनुच्छेद 143 में उसके स्वविवेक संबंधी शब्दों को बनाये रखना बहुत अपेक्षित है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 143 नितांत स्पष्ट है। मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन के विषय में कई बातें उठाई गई हैं, कि क्या राज्यपाल केवल नाममात्र का ही होगा, क्या वह सांविधानिक मुखिया ही होगा अथवा उसे स्वविवेक की शक्तियां प्राप्त होंगी। मेरे ख्याल में इस प्रश्न पर बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना होगा। अनुच्छेद 143 मंत्रियों के कृत्यों के संबंध में ही है। वह मुख्यत: राज्यपाल की शक्तियों और कृत्यों के सम्बन्ध में नहीं है। उसमें केवल लिखा है:

> ''राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।''

यदि यह मान लिया जाये कि हम वहीं ठहर जाते हैं, तो क्या यह सम्भावित है कि कई उलझनें उठेंगी या इससे उन स्वविवेक की शक्तियों में हस्तक्षेप होगा जो राज्यपाल को देने का विचार है? मेरे विचार में अनुच्छेद 188 संभवत: अपेक्षित है और मैं यह

सुझाव नहीं देना चाहता कि राज्यपाल को आपात में कार्य करने की जो शक्ति अनुच्छेद 188 में दी गई है वह नहीं होनी चाहिये। मेरा कहना यह है कि यदि यह उपबंध, ''उन बातों को छोड़कर, जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों अथवा इनमें से किन्ही के पालन में स्वविवेक का प्रयोग करेगा'' नहीं रहे, तो क्या इससे उन शक्तियों पर प्रभाव पड़ेगा जो उसे अनुच्छेद 188 के अधीन स्वविवेक द्वारा काम करने के विषय में दी जायेंगी? मैंने अपने माननीय मित्र और आदरणीय सांविधानिक विधिवेत्ता श्री अल्लादी कृष्णास्वामी की वक्तृता को ध्यान से सुना है किन्तु मैं यह नहीं समझ पाया कि इन प्रकार का उपबंध क्यों अपेक्षित है। उन्होंने कहा कि इसके स्थान पर हमें बाद में, अनुच्छेद 188 पर विचार करते समय कहना पड़ेगा ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी''। पहली बात तो यह है कि मेरे ख्याल में यह अपेक्षित नहीं है। दूसरी बात यह है कि, यदि यह मान भी लिया जाये कि बाद में अनुच्छेद 188 में यह उपबंध रखना अपेक्षित होगा कि 'अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी', तो भी इन शब्दों को यहां रखना आपत्तिजनक है और इससे कुछ लोगों को कुछ लोगों के विरुद्ध एक प्रकार का अनावश्यक और अनापेक्षित वैमनस्य पैदा करने का अवसर मिल जायेगा। अनुच्छेद 143 में मुख्यत: मंत्रियों के कृत्यों की चर्चा है। इस समय मंत्रियों को राज्यपाल की शक्तियों और उसके प्रकार्यों का स्मरण क्यों कराया जाये और यह क्यों कहा जाये कि जहां राज्यपाल के लिये अपने स्वविवेक से कार्य करना अपेक्षित है वहां मंत्रिगण उसे सहायता या मंत्रणा नहीं देंगे? इस अनुच्छेद में तो मुख्यमंत्री की शक्तियां और प्रकार्य परिभाषित करनी हैं। इसके साथ यह सुझाव देना मानो शिष्टाचार और विनम्रता के अभाव का आभास कराता है। अतएव मेरे विचार में इस प्रश्न पर उस तरह विचार करना चाहिये। प्रश्न यह नहीं है कि हम राज्यपालों को स्वविवेक की शक्तियां देंगे या नहीं, प्रश्न यह नहीं है कि वह केवल नाममात्र का होगा या नहीं। इन प्रश्नों पर तो उचित समय तथा स्थान पर बहस होगी। जब हम अनुच्छेद 143 पर विचार कर रहे हैं जिसमें कि मुख्यमंत्री के प्रकार्यों को परिभाषित किया गया है, तब उसी अनुच्छेद में यह कहना असंगत और अनावश्यक है कि ''जिन बातों में इस संविधान द्वारा अथवा इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी के पालन में स्वविवेक का प्रयोग करेगा, उन बातों को छोड़ कर...।'' यद्यपि मैं इस बात को पूर्णत: मानता हूं कि अनुच्छेद 188 सर्वथा आवश्यक है, फिर भी मेरा सुझाव है कि इस अनुच्छेद 143 में ये शब्द नितांत अनावश्यक हैं और वहां नहीं रखने चाहिये। क्रियात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो यह उपबंध इस स्थान पर उचित नहीं है और शिष्टाचार युक्त नहीं है, न युक्तियुक्त ही है और प्रसंगानुसार ही है। अतएव मेरा सुझाव

[श्री एच.वी. पातस्कर]

है कि इन शब्दों को हटा देने से कोई हानि नहीं है। मैं नहीं जानता कि मेरा सुझाव स्वीकार्य हो, या नहीं किन्तु मेरे विचार में उच्चतर दृष्टिकोण से यह विचार करने योग्य है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, स्थिति यह है कि अनुच्छेद 41 के अंतर्गत संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग, संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा। अब, संघ का राष्ट्रपति विधि तथा व्यवस्था के बनाये रखने और सुशासन के लिये उत्तरदायी होगा। राज्य का मंत्रिमंडल विधान मंडल में बहुमत के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी है। अब राष्ट्रपति और राज्य के मध्य सम्बन्ध जोड़ने वाली कौन सी शृंखला है? वह शृंखला राज्यपाल है। अतएव, राष्ट्रपति केवल राज्यपाल के द्वारा ही देश के सुशासन के कृत्यों का निर्वहन कर सकता है। असाधारण स्थिति में राज्यपाल ही अनुच्छेद 188 के अंतर्गत आपात की शक्तियों की शरण ले सकता है। अत: अनुच्छेद 143 के अंतर्गत अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति उसमें होनी ही चाहिये और अनुच्छेद 188 अपेक्षित है और हटाया नहीं जा सकता। इसलिये अनुच्छेद 188 में रखी गई आपात की शक्तियां किसी न किसी रूप में अपेक्षित है जिससे कि राज्यपाल राज्य में विधि व्यवस्था बनाये रख सके और व्यवस्थानुसार शासन चला सके।

मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन के विषय में, कि मंत्री राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी होगा, एक बात और कहना चाहता हूं। मंत्री का विधान मंडल में बहुमत होता है, इस प्रकार बहुमत के द्वारा, वह जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि वह राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी रहे और विधान मंडल के प्रति तथा विधान मंडल के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी न रहे, तो विधान मंडल में बहुमत उसे हटा सकता है तथा वह अपनी स्थिति को बनाये नहीं रख सकता। वह पद धारण करे नहीं रह सकता। अतएव यह एक असंभव सुझाव है कि मंत्री कभी राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी रह सके तथा विधान मंडल में बहुमत द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी न रहे। इसलिये वह विधान मंडल और जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये और राष्ट्रपति के प्रति नहीं। यही एक उपाय है जिससे संविधान के मस्विदे की योजना के अंतर्गत देश का शासन चलाया जा सकता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): मैं वाद-विवाद में कोई मूल्यवान अंशदान करने की आकांक्षा से न बोल कर अधिकतर स्पष्टीकरण और प्रकाश प्राप्ति की इच्छा से बोलने उठा हूं।

श्रीमान्, मनोनीत राज्यपालों को रखने के विषय में अनुच्छेद को स्वीकार करते समय सदन पर इस बात का प्रभाव पड़ा था कि माननीय डा. अम्बेडकर ने हमें आश्वासन दिया था कि राज्यपाल केवल प्रतीक स्वरूप ही होगा। अब मैं माननीय डाक्टर अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति केवल प्रतीक स्वरूप कहा जा सकता है जिसे अपने स्वविवेक से कार्य करने का अधिकार हो। मुझे बताया गया है कि मनोनीत राज्यपालों का यह उपबंध ब्रिटिश संविधान के नमूने पर रखा गया है। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता

हूं कि क्या इंग्लिस्तान का बादशाह किसी मामले में अपने स्वविवेक से कार्य करता है? मुझे पता लगा है—शायद गलत बात हो—कि बादशाह को अपनी वधू चुनने में भी स्वविवेक का अधिकार नहीं है। यह काम सदा उसके लिये इंग्लिस्तान का प्रधानमंत्री ही करता है।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेक से कार्य करने का क्या अर्थ है क्योंकि मैं भुक्तभोगी हूं और मेरे प्रांत को भी इससे हानि उठानी पड़ी है। 1942 की बात है कि एक गवर्नर ने अपने स्वविवेक द्वारा कार्य करते हुए अपना मंत्रिमंडल एक अल्पसंख्यक दल में से चुना था और वह अल्पसंख्यक दल अन्ततोगत्वा बहुसंख्यक दल बन गया था। मैं यह भी जानता हूं और सदन को भी स्मरण होगा, कि सिंध के गवर्नर द्वारा स्वविवेक के प्रयोग के फलस्वरूप एक लोकप्रिय मंत्री—श्री अल्लाहबक्श को पदच्युत होना पड़ा था। श्रीमान्, हमारे इस अनुभव के बावजूद हमें कहा जाता है कि राज्यपाल को अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्तियां दे दी जायें, मुझे भय है कि हम अब भी विगत काल में ही रह रहे हैं जिसे हम सब भूलना चाहते थे।

हम सदा यही सोचते थे कि एक ही व्यक्ति की इच्छा द्वारा, जो कि स्वविवेक से कार्य करने वाले राज्यपाल को नियुक्त करेगा, शासित होने के स्थान पर जनता की इच्छा द्वारा शासित होना अधिक अच्छा है। यदि राज्यपाल को अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति दे दी जायेगी तो संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो उसे ऐसा करने से रोक सके। वह बादशाह स्टार्क बन सकता है। और भी, अनुच्छेद में लिखा है कि जब भी राज्यपाल यह सोचे कि वह अपने स्वविवेक से कार्य कर रहा है, तो उससे कहीं भी उत्तर नहीं मांगा जा सकता। मंत्रियों और राज्यपालों में विवाद हो सकता है कि मंत्रियों को मंत्रणा देने की क्षमता है या नहीं; राज्यपाल की बात ही चलेगी और मंत्रियों की बात का कोई मूल्य न होगा। क्या हमें इस युग में ऐसी वस्तु को सहन करना चाहिये? क्या हमें स्वविवेक से कार्य करने वाले राज्यपाल को रखने का विचार तज देने में एक मिनट से अधिक समय लगना चाहिये? यह कहा जा सकता है कि इस मामले पर बाद में विचार किया जा सकता है। किंतु मैं अनुभव करता हूं कि एक बार हम इस उपबंध को स्वीकार कर लेंगे तो हमें यह समझने में अधिक समय नहीं लगेगा कि हमने गलती की है। ऐसा क्यों हो? क्या इस विषय में संशय की कोई गुंजाइश है? क्या ऐसा सोचने की गुंजाइश है कि इस देश में कोई भी, विधान मंडल के सदस्यों की तो बात ही छोड़िये, कभी भी इस विचार को पसंद करेगा कि एक व्यक्ति द्वारा मनोनीत राज्यपाल को स्वविवेक के प्रयोग से कार्य करने की शक्ति दे दी जाये? श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यदि मेरी युक्ति का आधार ठीक है तो हमें राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति प्रदान करने के उपबंध को अस्वीकार करने में एक मिनट भी नहीं खोना चाहिये।

इस अनुच्छेद के अन्तिम खंड में लिखा है कि मंत्रियों ने क्या मंत्रणा दी इस प्रश्न पर किसी न्यायालय में जांच नहीं की जा सकती। मैं इस बात पर स्पष्टीकरण चाहता

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

हूं। एक दशा में उसे मंत्रियों की मंत्रणा पर चलना है और दूसरी दशा में उसे अपने स्वविवेक के प्रयोग से कार्य करना है। क्या मंत्रियों को ऐसे विषय में राज्यपाल को मंत्रणा देने का अधिकार होगा जिनमें उसे स्वविवेक के प्रयोग का अधिकार है? यदि मुझे ठीक स्मरण है तो, 1937 में जब इस मामले पर विवाद था कि क्या मंत्रियों को उन विषयों पर मंत्रणा देने का अधिकार है जिनमें राज्यपाल अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है, यह समझा जाता था कि मंत्रिगण राज्यपाल को अपने स्वविवेक के प्रयोग में मंत्रणा दे सकते हैं और यदि राज्यपाल उनकी मंत्रणा को स्वीकार न करे तो मंत्रियों को यह कहने का अधिकार था कि उन्होंने क्या मंत्रणा दी थी। मैं नहीं जानता कि इस समय क्या मंशा है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कि मंत्री राज्यपाल को मंत्रणा देने में सक्षम हों, किन्तु राज्यपाल उनकी मंत्रणा को न माने और कोई बात कर दे जो लोकप्रिय न हो। एक राज्यपाल, जो कि केन्द्र द्वारा मनोनीत होगा, उस प्रान्त में अलोकप्रिय रहने का साहस कर सकता है जहां कि वह कार्य कर रहा हो। यदि वह अपने प्रान्त में सेवा कर रहा हो तो लोकमत के विषय में चिन्तित हो सकता है किन्तु ऐसे प्रान्त में वह शायद लोकमत की चिन्ता नहीं करेगा, जहां कि वह केवल कार्य कर रहा हो। मान लीजिये, एक राज्यपाल, अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चलने की बजाय, दूसरी तरह कार्य करता है। यदि ऐसी बात के लिये जो कि राज्यपाल स्वयं करे, मंत्रियों की आलोचना की जाये, वे और मंत्री ऐसे व्यक्ति पर अभियोग लगाना चाहें, तो क्या मंत्रियों को यह कहने का अधिकार नहीं है कि उन्होंने राज्यपाल को कुछ और मंत्रणा दी थी किन्तु राज्यपाल ने भिन्न प्रकार से कार्य किया? हम मंत्रियों को यह अधिकार क्यों नहीं देते कि वे ऐसे पत्र पर, ऐसे अश्लील पत्र पर, ऐसे अज्ञानी पत्र पर, मुकदमा चला सकें जो मंत्रियों की ऐसी आलोचना करते हों? मंत्रियों को न्यायालय के समक्ष यह क्यों न कहने दिया जाये कि उन्होंने राज्यपाल को क्या मंत्रणा दी थी? मैं कहना चाहता हूं, श्रीमान्—और ऐसा कहने के लिये मुझे क्षमा करें—कि इस अनुच्छेद के पक्ष में सबसे अच्छी यही बात कही जा सकती है कि यह 1935 के भारत शासन अधिनियम की मिलती-जुलती नकल है जिसके विषय में, उसके प्रकाशन पर, इस सदन के बहुत से सदस्यों ने कहा था कि वे उसे चिमटी से भी छूना नहीं चाहते।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने श्री कामत के संशोधन पर जो कुछ कहा है उसके बाद मेरे लिये कुछ कहना या वाद-विवाद में भाग लेना अपेक्षित हो, किन्तु क्योंकि मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने मुझसे खास तौर पर प्रश्न पूछा है और उसका उत्तर मांगा है, अत: मैंने सोचा कि शिष्टाचार के नाते मुझे कुछ शब्द कहने ही चाहियें। श्रीमान्, मुख्य और प्रधान प्रश्न यह है कि क्या राज्यपालों को स्वविवेक की शक्तियां मिलनी चाहिये। यही प्रश्न

प्रमुख और सर्वोपरि है। इस प्रश्न पर हम कुछ विनिश्चय कर लें तभी दूसरे प्रश्न पर उपयोगिता से विचार हो सकता है कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अंतिम भाग में प्रयुक्त शब्दों को वहां रखा जाये या कहीं अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिया जाये। अतः मेरा विचार है कि सर्वप्रथम मैं इस प्रश्न को ही लूं जो कि, जैसा मैंने कहा है, मुख्य प्रश्न है। वाद-विवाद के मध्य यह कहा गया है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियां बनाये रखना प्रांतों में उत्तरदायी शासन के प्रतिकूल है। यह भी कहा गया है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों को बनाये रखने से 1935 के भारत शासन अधिनियम की गंध आती है, जो कि प्रधानतः अलोकतंत्रात्मक था। अब, व्यक्तिगत रूप से बोलते हुए, मेरे मन में जरा भी संशय नहीं है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों को बनाये रखना या उसमें यह शक्तियां निहित करना, किसी प्रकार भी उत्तरदायी शासन के प्रतिकूल या उसका निराकरण नहीं है। मैं इस प्रश्न को कुरेदना नहीं चाहता क्योंकि इस विषय में मैं कनाडा के संविधान और आस्ट्रेलिया के संविधान का हवाला देकर सदन को पूरी तरह संतुष्ट कर सकता हूं। मैं नहीं समझता कि सदन में कोई भी इस पर विवाद करेगा कि कनाडा की शासन व्यवस्था पूर्णतः उत्तरदायी शासन व्यवस्था नहीं है और न सदन में कोई यह चुनौती ही देगा कि आस्ट्रेलिया की सरकार उत्तरदायी सरकार नहीं है। यह कह कर मैं कनाडा के संविधान की धारा 55 को पढ़कर सुनाना चाहता हूं:

> ''धारा 55–जब संसद के सदनों द्वारा पारित कोई विधेयक महारानी की स्वीकृति के लिये गवर्नर-जनरल के समक्ष पेश किया जाये, तो वह स्वविवेकानुसार तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए या तो महारानी के नाम में स्वीकृति दे देगा या महारानी की स्वीकृति रोक लेगा या महारानी की इच्छा की सूचना मिलने तक विधेयक को रक्षित कर लेगा।''

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मैं डाक्टर अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि ब्रिटिश उत्तरी अमरीका अधिनियम कब पारित हुआ था?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अधिनियम की तिथि से कुछ नहीं होता।

***श्री एच.वी. कामतः** लगभग एक शताब्दी पहले!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यही मेरा उत्तर है कनाडा तथा आस्ट्रेलिया वालों ने इस उपबंध को अब भी हटाना अपेक्षित नहीं समझा है। वे बिल्कुल संतुष्ट हैं कि कनाडी अधिनियम की धारा 55 में इस उपबंध को रहने देना उत्तरदायी शासन से सर्वथा संगत है। यदि वे यह अनुभव करते कि यह उपबंध उत्तरदायी शासन से संगत नहीं है तो उन्हे आज भी, अधिराज्य होने के नाते, इस उपबंध का निराकरण करने का पूरा अधिकार

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है। उन्होंने ऐसा नहीं किया है। अतः पंडित कुंजरू को उत्तर देते समय मैं कह सकता हूं कि कनाडा और आस्ट्रेलिया वाले ऐसा नहीं समझते कि ऐसा उपबंध उत्तरदायी शासन का उल्लंघन है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है, क्या हम कनाडा या आस्ट्रेलिया की स्थिति में रहेंगे? अथवा हम गणराज्यात्मक संविधान बनायेंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उन्होंने जो कहा, मैं उसे समझ नहीं सका। यदि सदन संतुष्ट है, जैसे कि मुझे आशा है कि राज्यपाल में कुछ स्वविवेक निहित करने का उपबंध उत्तरदायी शासन के साथ असंगत या असमन्वयित नहीं है, तो इस पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि इस खंड को रहने देना वांछनीय है और मेरे विवेकानुसार आवश्यक है। प्रश्न केवल यही उठता है कि...।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अस्तु, डाक्टर अम्बेडकर आलोचना की युक्ति को बिल्कुल समझ नहीं पाये। आलोचना यह नहीं है कि अनुच्छेद 175 में राज्यापाल को कुछ शक्तियां नहीं दी जायें, आलोचना इस बात पर की गई है कि विचाराधीन अनुच्छेद के अंतर्गत राज्यपाल को व्यापक रूप से कुछ स्वविवेक की शक्तियां क्यों दी जायें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार में उन्होंने अनुच्छेद को गलत पढ़ा है। मुझे खेद है कि मेरे पास संविधान का मस्विदा नहीं है। 'Except in so far as he is by or under this Constitution' (उन बातों को छोड़ कर जिन में वह इस संविधान के द्वारा या अधीन) ये ही शब्द हैं। यदि शब्द ये होते कि ''उन बातों को छोड़ कर, जब भी वह सोचे कि उसे अपने मंत्रियों की मंत्रणा के विरुद्ध या इच्छाओं के विरुद्ध अपनी स्वविवेक की शक्ति का प्रयोग करना चाहिये'', तो मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू की आलोचना वैध होती। यह खंड तो बहुत परिमित खंड है; इसमें लिखा है–''उन बातों को छोड़ कर जिनमें वह इस संविधान के द्वारा या अधीन।'' अतएव अनुच्छेद 143 को अन्य अनुच्छेदों के साथ पढ़ना होगा, जिनमें स्पष्टतः शक्ति राज्यपाल के लिये रक्षित की गई है। यह कोई व्यापक खंड नहीं है, जिसमें राज्यपाल को शक्ति दी गई हो कि वह किसी मामले में अपने मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना कर सकता है, जिसमें वह समझे कि उसे अवहेलना करनी चाहिये मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र, पंडित कुंजरू की युक्ति में यही त्रुटि है।

अतएव जैसा मैंने कहा है, किसी विशिष्ट मामलों में राज्यपाल की स्वविवेक की शक्ति को बनाये रखना उत्तरदायी शासन व्यवस्था से बिल्कुल असंगत नहीं है, अतः केवल यही प्रश्न उठता है कि हम इस स्वविवेक की शक्ति का उपबंध कैसे करें।? मुझे प्रतीत होता है कि इसके करने के तीन उपाय हैं। एक उपाय यह है कि जैसे मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने कहा है, अनुच्छेद 143 से ये शब्द निकाल दिये जायें और अनुच्छेद 175 जैसे अनुच्छेदों में अथवा 188 या ऐसे अन्य उपबंधों में जोड़ दिये जायें, जो कि सदन बाद में रख दे, जिसके द्वारा राज्यपाल में स्वविवेक की शक्ति निहित कर दी जाये कि ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुये भी, राज्यपाल को यह शक्ति होगी या वह शक्ति होगी।'' दूसरा उपाय यह है कि अनुच्छेद 143 में यह कह दिया जाये ''कि उन बातों को छोड़ कर जो अमुक अनुच्छेदों में स्पष्टतः उपबन्धित हों—अनुच्छेद 175, 188, 200 अथवा वे कुछ भी हों।'' किंतु मैं सदन से निवेदन करना चाहता हूं कि सदन को किसी न किसी रूप में यह उल्लेख करना ही पड़ेगा कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति होगी।

अब मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू तथा अन्य व्यक्ति, जो उसी प्रकार बोले हैं, इस बात के पक्ष में प्रतीत होते हैं कि ये शब्द यहां से हटा देने चाहियें तथा अन्यत्र रख देने चाहियें या अनुच्छेद 143 में उन विशिष्ट अनुच्छेदों का उल्लेख कर देना चाहिये। मुझे दिखाई देता है कि ये तो केवल रचना का प्रश्न है। इसमें कोई सार का प्रश्न नहीं है और सिद्धांत का प्रश्न नहीं है। मैं व्यक्तिगत रूप से स्वयं अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अन्तिम भाग को संशोधित करने के लिये सर्वथा उद्यत हूंगा, यदि मुझे इस समय यह पता हो कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति देने के विषय में यह संविधान सभा क्या उपबंध रखना चाहती है। मुझे यह कठिनाई अनुभव हो रही है कि हम अभी तक न अनुच्छेद 175 या 188 पर पहुंचे हैं और न हमने राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति देने के सम्बन्ध में अन्य उपबंध रखने की समस्त सम्भावनाओं पर विचार ही किया है। यदि मुझे पता होता, तो मैं बहुत जल्दी अनुच्छेद 143 को सुधारने और विशिष्ट अनुच्छेद की चर्चा करने के लिए उद्यत हो जाता, किन्तु अभी यह नहीं हो सकता। अतएव मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 143 में इस समय जो शब्द हैं उन्हें वैसे ही रहने दिया जाये तो कोई त्रुटि नहीं हो सकती। निःसंदेह वे असंगत नहीं हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या इस अनुच्छेद 61 (1) के बीच, जो कि राष्ट्रपति और उसके मंत्रियों के सम्बन्धों के विषय में है कोई अन्तर नहीं है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, है; क्योंकि हम राष्ट्रपति को स्वविवेक की शक्ति नहीं देना चाहते। क्योंकि प्रांतीय सरकारों के लिए केन्द्रीय सरकार के अधीन

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

रहते हुए कार्य करना अपेक्षित है और इसलिए यह पक्का करने के लिए कि वे केन्द्रीय सरकार के अधीन रह कर कार्य करें, राज्यपाल कुछ चीजों को रक्षित रखेगा जिससे कि राष्ट्रपति को यह देखने का अवसर मिल सके कि उन नियमों पर अमल किया जाता है, जिनके अंतर्गत प्रांतीय सरकारों को संविधान के अनुसार या केन्द्रीय सरकार के अधीन रह कर कार्य करना चाहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि इस प्रकार की व्यापक स्वविवेकीय शक्तियां प्रदान करने के स्थान पर स्वविवेक की शक्तियों सम्बन्धी कुछ अनुच्छेदों को संविधान में उल्लिखित कर दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने यही तो कहा है कि मैं ऐसा करने के लिए बिल्कुल तैयार हूं। मैं विशिष्ट अनुच्छेदों का उल्लेख करने के लिए तैयार हूं, यदि मुझे पता ही कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों के सम्बन्ध में सदन इस संविधान में कौन से अनुच्छेद रखने जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामतः** इसे स्थगित क्यों न कर दिया जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हम सुधार कर सकते हैं। सदन को अनुच्छेद 143 फिर सुधारने का पूरा अधिकार है। यदि सारे को देखने के पश्चात् सदन का यह ख्याल हो कि अनुच्छेदों का स्पष्ट उल्लेख करना अधिक अच्छा रहेगा, तो सदन ऐसा कर सकता है। यह तो केवल शब्दों की बहस है।

***श्री एच.वी. कामतः** कभी आगे और कभी पीछे क्यों जायें?

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में 'except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में 'head' शब्द के पश्चात् एक अर्धविराम (कामा) रख दिया जाये और 'who shall be resposible to the Governor and shall' ये शब्द रख दिये जायें और 'to' शब्द हटा दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 143 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 143 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 144

(संशोधन संख्या 2164 और संशोधन संख्या 2164 पर 173 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2165 डाक्टर अम्बेडकर के नाम पर है। उस पर भी संशोधन हैं, किन्तु उस संशोधन पर संशोधनों के पेश होने से पूर्व वह संशोधन पेश होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'144. (1) मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमंत्री की मंत्रणा से करेगा तथा राज्यपाल के प्रसाद पर्यंत मंत्री अपने पद धारण करेंगे :

किन्तु बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा राज्यों में आदिम जातियों के कल्याण के लिए भार-साधक एक मंत्री होगा जो इसके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का, अथवा किसी अन्य कार्य का भी, भार-साधक हो सकेगा।

(1क) परिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।' ''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं सुझाव दे सकता हूं कि माननीय डाक्टर अम्बेडकर अनुच्छेद 144 के खंड (1क) में 'परिषद' शब्द के साथ मंत्री जोड़ कर कुछ शाब्दिक हेर-फेर कर सकते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह बिल्कुल ठीक है। इससे यह अनुच्छेद 62 के अनुरूप हो जायेगा। मैं यह संशोधन पेश करता हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या मैं जान सकता हूं कि बिहार तथा अन्य स्थानों में उस मंत्री विशेष की नियुक्ति की क्या प्रणाली होगी? क्या यह राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त किया जायेगा—नि:संदेह यह स्पष्ट है, क्योंकि आप कहते हैं 'परन्तु' और इसका यह अर्थ है कि पहले हमने जो कुछ कहा है वह इन मंत्रियों के विषय में लागू नहीं होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें यही लिखा है कि खंड (1) के अधीन जो मंत्री नियुक्त होंगे, अर्थात् जो मुख्यमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त किये जायेंगे, उनमें से एक मंत्री इस विषय का भार-साधक होगा।

***अध्यक्षः** इस संशोधन पर तीन संशोधन हैं, संशोधन संख्या 134, 135 और 174।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैं इन दोनों संशोधनों में से किसी को भी पेश करना नहीं चाहता। किन्तु मैं आशा करता हूं कि मस्विदा समिति इन दो संशोधनों में निहित सुझावों पर संविधान के मस्विदे पर अंतिम रूप में विचार करते समय विचार करेगी।

(संशोधन संख्या 174 पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन सं. 2166 से 2169 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2170।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, डाक्टर अम्बेडकर ने मेरी बात पहले ही रख दी है। मैं इस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 2171, 2172 और 2173 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) में 'appointed' शब्द के स्थान पर 'chosen' शब्द रख दिया जाये और 'his pleasure' (प्रसाद-पर्यंत) इन शब्दों के पश्चात् निम्न शब्द रख दिये जायें:
>
> 'और उस समय पर्यन्त जब तक कि मंत्रिपरिषद् विधान सभा के सदस्यों की विश्वासपात्र रहती है।' ''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि मंत्रिमंडल का स्थायित्व सदस्यों के ही विश्वास पर निर्भर रहता है, राज्यपाल के प्रसाद पर नहीं। हो सकता है कि कुछ

मामलों में राज्यपाल की इच्छा तथा विधानसभा के सदस्यों के विश्वास में एक प्रकार का द्वन्द्व हो जाये। यह हो सकता है कि विधानसभा के सदस्यों को मंत्रियों में विश्वास न रहे, किन्तु साथ ही राज्यपाल से लंबे सम्बन्ध के कारण मंत्रिगण राज्यपाल के प्रसाद के पात्र रहें। मैं चाहता हूं कि राज्यपाल के हाथों को अधिक मजबूत करना चाहिये, जिससे कि यदि वह देखे कि उसके प्रसाद के प्रश्न के अतिरिक्त, यदि मंत्रियों को सभा का विश्वास प्राप्त नहीं हो, तो मंत्रिमंडल का विघटन कर दिया जाना चाहिये। कई मामलों में, उदाहरणार्थ स्थानीय निकायों में मैंने देखा है कि यद्यपि सदस्यों को जिला-मंडल के सभापति में कोई विश्वास नहीं है और वे अविश्वास का प्रस्ताव पारित भी कर देते हैं, किन्तु फिर भी सभापति पद धारण किये रहता है, क्योंकि संविधान में कहीं यह उपबंध नहीं है कि अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर सभापति के लिये अपना पद त्यागना अपेक्षित है। ज्यों-ज्यों समय गुजरता है, सभापति अधिकाधिक सदस्यों को, जिन्होंने कि उसके विरुद्ध मतदान किया था, अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें विश्वास न करने वाले सदस्यों को सभापति के पक्ष में आना पड़ जाता है। इसी प्रकार मंत्रियों के भी संबंध में होना सम्भव है। अतएव मेरा निवेदन है कि यदि राज्यपाल देखे कि मंत्रियों को सदन का विश्वास प्राप्त नहीं है, तो उस समय भी उसे कहना चाहिये कि वे अपने पदों को रिक्त कर दें और मंत्रिमंडल का विघटन करवा दें।

श्रीमान्, इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इससे पहले कि मैं अपना संशोधन पेश करूं, मैं यह कहना चाहता हूं कि आरंभ में 'so' और 'as' शब्दों के मध्य 'long' शब्द छूट गया है। शायद यह मुद्रण की त्रुटि या कुछ और है; किन्तु 'long' शब्द वहां होना चाहिये।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) में 'during his pleasure' (राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त) इन शब्दों के स्थान पर 'so long as they enjoy the confidence of the Legislative Assembly of the State' (जब तक कि वे राज्य की विधानसभा के विश्वासपात्र रहें) ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मेरे संशोधन का आशय स्पष्ट है और मैं नहीं समझता कि मुझे इस प्रस्ताव के समर्थन में अधिक शब्द कहने हैं। इस प्रश्न पर दो मत नहीं है कि मंत्रीपरिषद् विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी हो या नहीं। माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन में भी इस उत्तरदायित्व का सुझाव है। यह माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन के खंड (1क) में निहित है। अन्य संशोधन भी है, जिनसे यह संकेत मिलता है कि विधानमंडल के प्रति मंत्रियों का उत्तरदायित्व स्वीकृत तथ्य है। प्रश्न यह है कि राज्यपाल के प्रसाद और

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब]

सदन के प्रसाद में जब अन्तर हो, तो किसकी बात चलेगी, राज्यपाल की या विधानमंडल की, अर्थात् विधानमंडल में बहुमत की।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यह स्वीकृत तथ्य है कि मंत्री विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होने चाहियें और इसलिये मेरे संशोधन में यह सुझाव है कि मेरे सुझाये हुये शब्द जोड़ कर यह बात इस अनुच्छेद में स्पष्ट और संदेह से परे कर देनी चाहिये। श्रीमान्, यह कहा जा सकता है, ऐसी परम्परा बन जायेगी, जिससे कि मेरे संशोधन में प्रस्तावित प्रक्रिया लागू हो जायेगी। परम्पराओं का तो आश्रय तब लिया जताा है जब कि हम किसी विषय में स्पष्ट निर्णय न कर सकें और अनुभव से पाठ सीखना चाहें। किंतु जनता के प्रतिनिधियों के प्रति मंत्रियों का यह उत्तरदायित्व तो संसार के अनुभव के आधार पर नि:संदेह स्वीकार कर लिया गया है। अत: इस मामले में हमें परम्परा बन जाने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, मेरे संशोधन में प्रस्तावित उपबंध अब तो विशेषत: अपेक्षित हो गया है, क्योंकि संविधान सभा ने विनिश्चय कर लिया है कि अब तो विशेषत: अपेक्षित हो गया है, क्योंकि संविधान सभा ने विनिश्चय कर लिया है कि राज्यपाल निर्वाचित न होकर नियुक्त होगा। शायद मस्विदा समिति ने संविधान के मस्विदे में इस अनुच्छेद को वर्तमान रूप में उस समय रखा था, जब कि उस समिति ने यह सोचा कि राज्यपाल किसी न किसी प्रकार से निर्वाचित होगा। किन्तु यह स्थिति अब बदल गई है। राज्यपाल राष्ट्रपति का मनोनीत व्यक्ति होगा। अत: मेरे विचार में यह स्पष्ट करना विशेषत: अपेक्षित है कि मंत्रिपरिषद् उसी समय तक पद धारण करे जब तक वह विधान सभा की विश्वासपात्र रहे। यह बहुत जनतंत्रात्मक और स्वीकार्य प्रक्रिया है और इसके विषय में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये और हम अनुभव से कुछ नहीं सीखना चाहते। अत: मेरे ख्याल में सदन मेरा आशय समझ जायेगा, जो कि बहुत स्पष्ट है और इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा।

(संशोधन संख्या 2176 से 2178 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मैं एक संशोधन को भूल से छोड़ गया था, वह संशोधन पर संशोधनों की मुद्रित सूची का संख्या 109 है, जिसकी सूचना श्री गुप्ते ने दी थी।

(वह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 2179 से 2184 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संख्या 2185।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(3) कोई मंत्री उस पद पर चुने जाने के समय उस राज्य की यथास्थिति विधान सभा या विधान परिषद् का सदस्य होगा।' ''

मस्विदे में उपबंध है–

> ''कोई मंत्री जो निरंतर छः मासों की किसी कालावधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य न रहे, उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।''

यह उपबंध लोकतंत्र की भावना से मेल नहीं खाता मालूम होता। यही उपबंध 1935 के भारत शासन अधिनियम में भी था। और हां, वे साम्राज्यवाद के दिन थे और सौभाग्य है कि वे दिन अब चले गये। उस समय यह उपबंध इसलिये रखा गया था कि यदि कोई गवर्नर किसी व्यक्ति को मंत्री बनाना पसंद करे और सौभाग्यवश या दुर्भाग्यवश वह व्यक्ति देश के लोगों द्वारा निर्वाचित न हो तो उसे परोक्ष रूप से मंत्री नियुक्त कर दिया जाता था, जैसा कि संविधान में और 1935 के अधिनियम के उपबन्धित है। किन्तु अब राज्यों के लोग विधानसभा के सदस्यों को चुनेंगे और हमें निःसंदेह यह सोच लेना चाहिये कि वे राज्यों के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को अपना प्रतिनिधि बनाकर विधानसभा या परिषद् में भेजेंगे। अतएव मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि जिसे उस समय तक राज्यों के लोगों ने न चुना हो और जिसका अर्थ यह है कि उसे राज्यों के लोगों ने विधानसभा या परिषद् में अपना प्रतिनिधि बनाने के लिये पसंद न किया हो, तो श्रीमान् उस व्यक्ति को मंत्री नियुक्त क्यों किया जाये। मैं राज्य के लोगों की आवाज का अधिक आदर करता हूं और उसका समर्थन करने के लिये मैं निवेदन करूंगा कि वह उपबंध संविधान में नहीं रहना चाहिये और मंत्री सभा के उन्ही सदस्यों में से होने चाहिये जो कि राज्य के लोगों द्वारा निर्वाचित हों क्योंकि वे ही राज्यों के लोगों द्वारा भेजे हुये राज्यों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। मुझे आशा है कि इस संशोधन पर माननीय सदस्य समुचित विचार करेंगे और सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

***अध्यक्षः** इस पर एक संशोधन संख्या 176 है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** 2186 या 2189 कोई भी पेश नहीं करना चाहता क्योंकि सदन ने इन दोनों के सिद्धांत को अस्वीकृत कर दिया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) में 'Legislature of the State' (राज्य के विधानमंडल) इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of the State' (राज्य की विधानसभा) ये शब्द रख दिये जायें।

श्रीमान्, यह शाब्दिक संशोधन नहीं है। मैं नहीं कह सकता कि शायद इस धारा में यह 'संसद' शब्द का प्रयोग डाक्टर अम्बेडकर ने भूल-चूक से कर लिया हो, किन्तु मेरे विचार में इसे जानबूझकर प्रयोग किया गया है। इसका यह आशय है कि कोई ऐसा सदस्य

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

जो कि वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुना गया है और चुना नहीं जा सकता है, वह भी मंत्री बन सकता है। अनुच्छेद में कहा गया है:

> ''कोई मंत्री, जो निरंतर छः मासों की किसी कालावधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य न रहे, उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।''

इसका अर्थ यह है कि यदि एक व्यक्ति प्रथम सदन का सदस्य नहीं है, किन्तु मंत्री बना दिया जाये और मान लीजिये कि वह व्यक्ति वयस्क मताधिकार के आधार पर छः मासों में प्रथम सदन का सदस्य चुना नहीं जा सकता है, तो इस अनुच्छेद के अन्तर्गत हम यह उपबंध कर रहे हैं कि वह मंत्री बना रहेगा, यदि राज्यपाल द्वारा द्वितीय सदन का सदस्य मनोनीत कर दिया जाये। मेरे विचार में यह अलोकतंत्रात्मक है कि हमारे मंत्री ऐसे व्यक्ति हों, जो वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने ही नहीं जा सकते। अतएव मैंने सुझाव रखा है कि इस अनुच्छेद में 'विधानमंडल' के स्थान पर 'विधानसभा' शब्द रख दिया जाये। सभा में कोई भी मनोनीत नहीं होगा और इसलिये समस्त मंत्रियों को अपने पदों पर रहने के लिये अपनी नियुक्ति के छः मासों के अंदर ही वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन जीतना होगा। अन्यथा वे व्यक्ति जो जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं, किन्तु मुख्यमंत्री के कृपापात्र हैं, वे प्रांतीय विधानमंडल के द्वितीय सदन में मनोनीत हो सकते हैं और वे इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन मंत्रिपद पर रह सकते हैं। मैं चाहता हूं कि केवल वे ही सदस्य, जो कि वयस्क मताधिकार के निर्वाचन में निर्वाचकों का विश्वास प्राप्त कर सकें, मंत्री के पद पर आसीन रहने चाहियें। कोई भी, जो कि सीधे वयस्क मताधिकार द्वारा चुना न जा सके और प्रथम सदन का सदस्य न हो, मंत्री-परिषद् का सदस्य नहीं होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** क्या आपके संशोधन का यह प्रभाव नहीं कि द्वितीय सदन का वह सदस्य भी मंत्रिपद प्राप्त नहीं कर सकता, जो कि निर्वाचित सदस्य हो?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह प्रभाव है, श्रीमान्। मैं चाहता हूं कि केवल प्रथम सदन के ही सदस्य लिये जाने चाहियें, जिसका अर्थ यह है कि केवल वे ही मंत्री बनने के योग्य होने चाहियें जो वयस्क मताधिकार द्वारा चुने जायें। यदि कोई सदस्य वयस्क मताधिकार द्वारा प्रथम सदन के लिये निर्वाचन में निर्वाचकों का विश्वास प्राप्त नहीं कर सके, तो उसे मंत्री नहीं बनाना चाहिये। यही लोकतंत्र का सार है, जिसका अर्थ है जनता की सरकार, जनता द्वारा सरकार। अतएव मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद में 'राज्य के विधानमंडल' इन शब्दों के स्थान पर 'राज्य की विधानसभा' ये शब्द रख दिये जायें। मुझे आशा है कि मस्विदा समिति इस सुझाव को स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन 2188 से 2191 तक पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में 'In choosing his ministers and in his relations with' इन शब्दों के स्थान पर 'In the choice of his ministers and in the exercise of his other functions under the Constitution' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, यह केवल एक शाब्दिक संशोधन मात्र ही है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2193।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में 'but the validity of anything done by the Governor shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instruction' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि यदि खंड रहने दिया गया, तो यह अनुदेशपत्र का स्पष्ट निराकरण होगा, जिसका कि उपबंध चतुर्थ अनुसूची में किया गया है। उस अनुसूची में राज्यपाल को कुछ अनुदेश दिये गये हैं और उसे उन अनुदेश के अनुसार चलना है। किन्तु यदि विद्यमान खंड रहने दिया जाये, तो इसका यह अर्थ होगा कि चतुर्थ अनुसूची में दिये गये अनुदेशपत्र के बावजूद राज्यपाल अन्यथा कार्य कर सकता है। अतएव यह उन अनुदेशों का स्पष्ट निराकरण है। अतएव मेरे विचार में यह अच्छा होगा, यदि मेरे बताये हुए शब्द इस खंड में से निकाल दिये जायें।

(संशोधन संख्या 2194 से 2197 तक पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 का खंड (6) हटा दिया जाये।''

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** क्यों?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** क्योंकि हम उससे अधिक स्वविवेक की शक्तियां नहीं देना चाहते, जितनी कि कुछ अनुच्छेदों में उल्लिखित हैं। हम आपकी बात मानने का प्रयत्न कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** इस पर श्री कामत का एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं तीसरे सप्ताह की तीसरी सूची के संशोधन संख्या 177 को पेश करता हूं। मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2198 के प्रसंग से अनुच्छेद 144 के खंड (6) में निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(7) प्रत्येक मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के विधानमंडल के समक्ष पूर्णतः प्रकट कर देगा कि उसका किसी उद्यम, कारबार, व्यापार या उद्योग में क्या हित, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार है, चाहे वह निजी कार्य हो अथवा सरकार के सीधे स्वामित्व में हो अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित हो, अथवा किसी प्रकार सरकार द्वारा सहायता प्राप्त अथवा रक्षित हो; और विधानमंडल उस मामले को ऐसे प्रकार निबटा सकता है जिस प्रकार कि वह उन परिस्थितियों में अपेक्षित अथवा समुचित समझे।
>
> प्रत्येक मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपने पद का परित्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा।' ''

श्रीमान्, मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि हमारे देश के प्रशासन में केवल कुशलता का ही नहीं, शुद्धि का भी बहुत उच्च मापदंड होना चाहिये। मुझे विश्वास है कि हम सब सहमत हैं कि किसी राज्य के या समूचे भारत के मंत्रियों को हमारे प्रशासन में ऐसी ही कुशलता तथा शुद्धि की वृद्धि करनी चाहिये। इस पर कोई विवाद नहीं कर सकता कि हमारे देश का प्रत्येक मंत्री संशय से परे होना चाहिये। श्रीमान्, दुर्भाग्यवश यह आशा सदा पूरी नहीं हुई है। हमारे कई नेताओं ने और श्रीमान्, आपने भी, हाल ही में कहा था कि इस देश में सार्वजनिक जीवन के मापदंड में कुछ अवनति हुई है। यह बहुत चिन्ताजनक तथा अत्यन्त दुःखद बात है जिसे हमें अपने समस्त उपलब्ध साधनों से रोकना है और क्या मैं सविनय निवेदन कर सकता हूं कि यह भी एक उपाय है, जिससे हम अपने सार्वजनिक जीवन तथा अपने प्रशासन में शुद्धता का बहुत ऊंचा मापदंड स्थापित कर सकते हैं तथा उसे बनाये रख सकते हैं।

श्रीमान्, क्या मैं आपकी अनुमति से अपनी युक्तियों के समर्थन में एक दो उदाहरण दे सकता हूं, जो इन्हीं दिनों, हमारे देश के कुछ भागों में दृष्टिगोचर हुए हैं? एक राज्य में, जो कि तत्पश्चात् निकटवर्ती प्रान्त में विलय हो गया है, बंबई की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका की खुली सूचना के अनुसार राज्य के मंत्रिमंडल में ऐसे व्यक्ति को ले लिया गया था जो चोर बाजारी पर दंडित हो चुका था। इस कथन का प्रतिवाद नहीं किया गया और इसे चुनौती नहीं दी गई। हाल ही में एक बहुत दुःखद घटना घटी है, एक राज्यसंघ

के एक मंत्री को कांस्टीट्यूशन हाउस में भ्रष्टाचार के कथित अभियोग पर गिरफ्तार करने की दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में यह मामला तो अभी न्यायालय के विचाराधीन है।

***श्री एच.वी. कामतः** इसी कारण मैंने कहा है, भ्रष्टाचार के कथित अभियोग पर।

अतः मैं अपने संशोधन द्वारा यह बात निश्चित कर देना चाहता हूं कि जहां तक मनुष्य की शक्ति में है, हम प्रशासन और सार्वजनिक जीवन में शुद्धता बनाये रखने में समर्थ होंगे।

श्रीमान्, क्या मैं आपकी अनुमति से सदन में यह पढ़ कर सुना सकता हूं कि इस मामले पर पहले कभी डाक्टर अम्बेडकर ने स्वयं क्या कहा था? डाक्टर अम्बेडकर इस बात के बिल्कुल पक्ष में थे कि केन्द्र की मंत्रिपरिषद् के विषय में ऐसा संशोधन पेश किया जाये। किन्तु वे चाहते थे कि वह अधिक प्रभावशाली हो और मैंने अपने पिछले संशोधन को विस्तृत करके तथा नया पेश करके यथा शक्य डाक्टर अम्बेडकर की बात को पूरा करने का प्रयत्न किया है।

उस अवसर पर डाक्टर अम्बेडकर ने कहा था किः

> ''यदि यह आवश्यक है (अर्थात् इस प्रकार का उपबंध आवश्यक है) तो वह प्रधानमंत्रियों और राज्य के अन्य मंत्रियों के विषय में होना चाहिये, राष्ट्रपति के विषय में नहीं, क्योंकि प्रशासन पर सम्पूर्ण नियंत्रण तो उन्हीं का होता है।''

अपनी युक्ति को आगे बढ़ाते हुये अपनी स्थिति को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा थाः

> ''मेरे ख्याल में हमें सब को इस बात में दिलचस्पी है कि प्रशासन, केवल कुशलता की दृष्टि से ही नहीं शुद्धता की दृष्टि से भी बहुत ऊंचे स्तर पर रहे।''

आगे चल कर उन्होंने कहाः

> ''यदि आप इस उपबंध को प्रभावी बनाना चाहते हैं, तो इसमें तीन उपबंध होने चाहिये।''

फिर उन्होंने यह कहाः

> ''एक तो आरंभ में ही घोषणा (अर्थात् जब वह पद ग्रहण करे।)''

[श्री एच.वी. कामत]

''दूसरे, अपना पद त्यागते समय घोषणा:

तीसरे यह व्याख्या करने का उत्तरदायित्व, कि ये पूंजी इतनी असाधारण रूप में कैसे बढ़ी: और

चौथे, उसे एक अपराध घोषित करना तथा उसके लिये दंड या जुर्माने की व्यवस्था।''

उस समय उन्होंने जो दूसरे उपबंध का उल्लेख किया था, वह मैंने आज के अपने संशोधन में समाविष्ट कर दिया है। मैंने इस आशय का एक नया खंड रख दिया है कि प्रत्येक मंत्री अपने पद का त्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा और मैं देखता हूं कि प्रोफेसर शाह तो अपने एक संशोधन में एक कदम और आगे बढ़ गये हैं और उन्होंने डा. अम्बेडकर का सुझाया हुआ तीसरा उपबंध भी समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है, जिससे कि यह खंड पूरी तरह प्रभावी हो जाये।

मंत्री की उस घोषणा पर कार्यवाही करने का काम मैंने विधानमंडल पर छोड़ दिया है। हो सकता है कि उसके कुछ अंश, अधिकार या हित हों, किन्तु विधानमंडल यह विनिश्चय कर दे कि यह मामला तुच्छ है; और वह उन अधिकारों और विशेषाधिकारों का अनुसेवन कर सकता है। मैंने यहां यह नहीं कहा है कि ऐसे मामले में क्या कार्यवाही की जानी चाहिये, जैसे कि प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधन में कहने का प्रयत्न किया है। मैंने विधानमंडल पर उसकी इच्छानुसार इसका निर्णय छोड़ दिया है। और श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस संशोधन को स्वीकार करके हम प्रशासन और सरकार की शुद्धता की, जहां तक मनुष्य के लिये संभव है, प्रत्याभूति दे रहे होंगे।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 3 (तीसरा सप्ताह) के संशोधन संख्या 177, दिनांक 30 मई 1949 में, अनुच्छेद 144 प्रस्तावित नये खंड (7) में:

(क) प्रथम कंडिका में–

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें:

(2) तृतीय पंक्ति में 'disclosure' शब्द के स्थान पर 'declaration' शब्द रख दिया जाये;

(3) षष्ट पंक्ति में 'controlled by' इन शब्दों के पश्चात् 'Central or State' ये शब्द रख दिये जायें;

(4) 'और विधानमंडल उस मामले को ऐसी प्रकार निपटा सकता है जिस प्रकार कि वह उन परिस्थितियों में अपेक्षित या समुचित समझे' इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें–

'और वह या तो उस हित, हक, अधिकार, अंश या सम्पत्ति को खुले बाजार में बेच देगा, या उन्हें अपनी ओर से न्यास के रूप में भारत के रक्षित बैंक को दे देगा, जो कि उससे समस्त आय, किराया, लाभ, ब्याज अथवा लाभांश को प्राप्त करेगा और उन्हें सम्बद्ध राज्यपाल या मंत्री के खाते में जमा करेगा, और उस राज्यपाल या मंत्री द्वारा पद रिक्त करने पर इस प्रकार जमा की हुई सब राशियां उसे लौटा दी जायेंगी तथा न्यास की मूल पूंजी भी उसे लौटा दी जायेगी; और

(ख) द्वितीय कंडिका में–

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें; और

(2) अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'और यदि उसकी पूंजी, हक, अधिकार, अंश, ब्याज या सम्पत्ति में विशेष परिवर्तन जो जाये, तो वह ऐसा स्पष्टीकरण देगा जो कि विधान मंडल उससे मांगना अपेक्षित समझे।' ''

मेरा संशोधित संशोधन, जो कि मैं आपकी अनुमति से सदन को पढ़ कर सुनाता हूं, इस प्रकार है:

''प्रत्येक राज्यपाल या मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के विधान मंडल के समक्ष पूर्ण घोषणा करेगा कि उसका किसी उद्यम, कारबार, व्यापार या उद्योग में क्या हित, हक, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार है, चाहे वह निजी कार्य हो अथवा केन्द्र या राज्य की सरकार के सीधे स्वामित्व में हो अथवा केन्द्र की या राज्य की सरकार द्वारा नियंत्रित हो अथवा किसी प्रकार सरकार द्वारा सहायता प्राप्त अथवा रक्षित हो और वह या तो उस हित, हक, अधिकार, अंश या सम्मत्ति को खुले बाजार में बेच देगा, या उन्हें अपनी ओर से न्यास के रूप में भारत के रक्षित बैंक को देगा, जो कि उससे

[प्रो. के.टी. शाह]

समस्त आय, किराया, लाभ, ब्याज अथवा लाभांश को प्राप्त करेगा और उन्हें सम्बद्ध राज्यपाल या मंत्री के खाते में जमा करेगा और उस राज्यपाल या मंत्री द्वारा पद रिक्त करने पर, इस प्रकार जमा की हुई सब राशियां उसे लौटा दी जायेंगी, तथा न्यास की मूल पूंजी भी उसे लौटा दी जायेगी।

प्रत्येक राज्यपाल या मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपने पद का परित्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा और यदि उसकी पूंजी, हक, अधिकार, अंश, ब्याज या सम्पत्ति में विशेष परिवर्तन हो जाये, तो वह ऐसा स्पष्टीकरण देगा जो कि विधान मंडल उससे मांगना अपेक्षित समझे।''

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या अंश बाजारों का जुआ भी इसमें आ जाता है?

***प्रो. के.टी. शाह:** हां, जुआ कई व्यक्तियों के लिये कारबार है और व्यापार भी है।

क्योंकि श्री कामत ने अपने प्रस्ताव के इतिहास को समझाने का प्रयत्न किया है, अत: क्या मैं उसे और भी सविस्तार समझाने के अभिप्राय से यह कह सकता हूं कि पिछले अवसर पर राष्ट्रपति तथा भारतीय संघ के प्रधानमंत्री के सम्बन्ध में मैंने ऐसा एक संशोधन पेश करने का प्रयत्न किया था और वह संशोधन अस्वीकृत हो गया था। किन्तु उस प्रस्ताव को अस्वीकार करते समय मस्विदा समिति के सभापति ने कृपा करके कुछ बातें कहीं थीं, जिनमें यह सुझाव था कि उस समय संशोधन की जो भाषा थी उसके कारण वह अक्रियात्मक अथवा व्यर्थ था और कुछ ऐसी शर्तों अथवा सुधारों का संकेत किया था, जिनसे वह अधिक व्यावहारिक बन सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री कामत ने उनकी बात पकड़ ली। अब मैं इस सुखद स्थिति में हूं कि मैं उन बातों को अधिक सारवान तरीके से पेश करना चाहता हूं, जो डाक्टर अम्बेडकर के कथन के अनुकूल हों। बात केवल यही है। हमें सबको अपने प्रशासन की कार्यक्षमता तथा शुद्धता बनाये रखने और उसकी वृद्धि करने में दिलचस्पी है। मंत्री को संदेह से परे होना चाहिये और इसलिये यहां यह सुझाव दिया गया है कि यदि उन्हें प्रलोभन का कोई अवसर मिले, यदि उनका किसी कारबार, व्यापार या वृत्ति में कोई हित हो, या सम्बन्ध हो, जो किसी प्रकार केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार द्वारा नियंत्रित या सहायता प्राप्त हो सकता हो या हो, तो वह सब भाग राज्य के विधानमंडल के समक्ष घोषित कर दिया जाना चाहिये। मैंने 'disclosure' शब्द को बदल कर 'declaration' कर दिया है, क्योंकि 'disclosure' शब्द से यह आशय निकलता है कि कोई वस्तु पहले छिपाई गई थी, जिसे अब प्रकट किया जाना है और 'declaration' शब्द पूंजी की केवल घोषणा मात्र है जो कि सम्बद्ध व्यक्ति सदन के समक्ष करेगा।

श्रीमान्, यह अच्छी परम्परा है कि संयुक्त पूंजी कंपनी के संचालक को भी संचालक का पद ग्रहण करते समय यह घोषणा करनी पड़ती है, यह प्रकट करना पड़ता है कि

क्या उसका किसी ऐसी कम्पनी का निकाय में कोई हित है, जिसमें कि उसकी कम्पनी को दिलचस्पी हो सकती हो। बम्बई नगर-निगम जैसे निकाय में भी ऐसी परंपरा है कि उसमें सदस्य तक को घोषणा करनी पड़ती है यदि कोई मामला, जिसमें उसे दिलचस्पी हो निकाय के समक्ष पेश हो। यदि ऐसी परंपरा, यदि ऐसा सार्वजनिक निकायों की साधारण विधि या आचरण में भी पाये जाते हैं, तो श्रीमान्, मैं सदन से कहता हूं कि यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रान्तीय मंत्रियों के लिये भी इसी प्रकार मंत्री बनने से पहले किसी कम्पनी या उद्यम में अपनी पूंजी, या व्यापार या वृत्ति की घोषणा करना अपेक्षित हो।

श्रीमान्, संयुक्त राज्य ब्रिटेन के एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री वाल्डविन की कथा प्रसिद्ध है—सुविख्यात है—कि उसने प्रधानमंत्री का पद स्वीकार करने से पूर्व वाल्डविन लिमिटेड से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर दिया, जो कि लोहे तथा इस्पात की भारी फर्म थी और जब वे पद निवृत्त हुए, तब उन्हें वास्तव में यह घोषणा करनी पड़ी कि शायद उन के पास उतने ही सौ रह गये थे जितने कि उनके पास पद-ग्रहण के समय सहस्त्र थे। इंगलिस्तान जैसे देश की सार्वजनिक सेवा में जो त्याग करना पड़ता है, उसका यह अंग है और मुझे आशा है कि उस प्रकार के लोगों ने जो आदर्श या उदाहरण रखा है उसका इस देश में भी अनुसरण किया जायेगा। इस संशोधन द्वारा हम संविधान में ऐसा उपबंध समाविष्ट करना चाहते हैं, जिससे यह निश्चित रहे कि राज्य में राज्यपाल, मंत्री या प्रधानमंत्री जैसा उच्च पद धारण करने वाले व्यक्ति को स्वलाभ के लिये अपने प्राधिकार, शक्ति या स्थिति का प्रयोग या दुरुपयोग करने का कोई अवसर ही न मिल सके, अतः मैंने यह सुझाव रखा है कि केवल ऐसी घोषणा ही नहीं होनी चाहिये वरन् ऐसी घोषणा के पश्चात् वह हित, अंश अथवा अधिकार या तो सार्वजनिक बाजार में बेच दिया जाये जिससे कि उसके विषय में कुछ भी कहने का प्रश्न ही नहीं रहे, या ऐसा न किया जाये, तो वह सम्पत्ति, अधिकार या अंश भारत के रक्षित बैंक में न्यास रूप में रख दिया जयो, जो कि उस पर समस्त ब्याज, लाभांश, नफा या किराया प्राप्त करे और सम्बद्ध व्यक्ति के खाते में जमा कर दे, जिससे कि सम्बद्ध व्यक्ति द्वारा पद से हटने पर वह उसे लौटाया जा सके। यह ऐसा उपबन्ध है जिससे कि उस व्यक्ति को किसी प्रकार आर्थिक हानि नहीं होगी और साथ ही पदासीन होने की कालावधि में उसके आचरण की शुद्धता और उत्तमता सुरक्षित रहेगी।

मुझे पता है, श्रीमान्, कि यदि लोग मंत्री या राज्यपाल के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करना चाहें या अनुचित लाभ उठाना चाहें, तो वे ऐसा कर सकेंगे। यदि विधि पालन का एक तरीका है, तो विधि-उल्लंघन के सौ तरीके हो सकते हैं। किन्तु साथ ही, जितना हमारे वश में है और जितना हम इन गड़बड़ों को रोकने के लिये खुले तौर पर प्रबंध कर सकते हैं, उतना करने के लिये मेरे विचार में इस प्रकार का संशोधन आवश्यक है, विशेषतः यह देखते हुए कि हमारे यहां बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और नैतिक-पतन की, जो हमारी सार्वजनिक सेवा की सब शाखाओं में प्रवेश कर गया है, अत्यन्त सामान्य और व्यापी

[प्रो. के.टी. शाह]

शिकायत है और इसी प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए मैं यह संशोधन रख रहा हूं और मुझे विश्वास है कि यह सदन इसे अस्वीकार नहीं करेगा।

(संशोधन संख्या 2200, 2201 और 2202 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मुझे श्री जयपाल सिंह से एक संशोधन की सूचना अभी-अभी मिली है। यह देर में आया है, किन्तु यह देखते हुए कि इससे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पैदा होता है जो कि केवल भूल से ही रह गया था, अत: मैं उसके पेश करने की अनुमति देता हूं।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) में 'State of' इन शब्दों के पश्चात् 'Bombay' शब्द जोड़ दिया जाये।''

श्रीमान्, मेरे इस विलम्बित संशोधन की अनुमति देने के लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं। आसाम के प्रांत के विषय में अनुसूची में पहले ही पर्याप्त उपबंध कर दिया गया है, किन्तु बम्बई को छोड़ दिया गया है। जब आदिम जातीय उप-समिति समवेत हुई थी, तब राज्यों के विलय का अंतिम निर्णय नहीं हुआ था। कई राज्यों के विलय के फलस्वरूप बम्बई में 44 लाख की जनसंख्या बढ़ गई है और उसमें से बहुत से आदिम जाति के और पिछड़ी हुई जातियों के लोग भी होंगे। मेरा सुझाव है कि बम्बई को भी इस अनुच्छेद में समाविष्ट कर लेना चाहिये, जिससे कि उस प्रांत में भी एक ऐसा मंत्री हुआ करे, जो अपने अन्य कर्त्तव्यों के अतिरिक्त आदिम जातियों और अन्य पिछड़ी हुई जातियों के लिये विशेष ध्यान दे सके।

मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा आसाम के विषय में जानना चाहते थे। मैं उनका ध्यान संविधान के मस्विदे के पृष्ठ 185 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जहां वे देखेंगे कि असम के लिये पर्याप्त उपबंध कर दिया गया है। मुझे अपने संशोधन के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह चीज भूल से छूट गई है और मुझे आशा है कि डाक्टर अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***डा. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, बहुत से संशोधन पेश किये गये हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि उनके विषय में इतना ही उत्तर पर्याप्त होगा कि वे जो सुझाव विशिष्ट रूप से संविधान में रखना चाहते हैं, वह संविधान के अन्य उपबंधों में आ जायेगा अथवा उस तरीके से पूरा हो जायेगा जिससे कि अब तक मंत्रिमंडल कृत्यों का निर्वहन करते रहे हैं। मैं यहां बस एक दो बातों पर ही कुछ बोलना चाहता हूं।

सबसे पहले मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि इस परन्तुक को स्वतंत्र अनुच्छेद के रूप में स्थानान्तरित कर दिया जाये या इसे यहां अनुच्छेद 104 में स्वतंत्र उपखंड के रूप

में रख दिया जाये, तो अच्छा होगा। मैं अनुच्छेद 104 की कंडिका (1) के परंतुक के विषय में कह रहा हूं जो बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा और श्री जयपाल सिंह द्वारा अपने संशोधन में सुझाये गये स्थान के विषय में है। मेरे विचार में यह एक सारवान उपबंध है, जो स्वतंत्र रूप से रखा जाना चाहिये, परंतुक के रूप में नहीं। मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि स्वतंत्र खंड जोड़ने के विषय में श्री गुप्ते का एक संशोधन है। मैं उसके पक्ष में हूं।

तत्पश्चात् मैं बम्बई को समाविष्ट करने के विषय में एक शब्द कहना चाहता हूं। मुझे श्री जयपाल सिंह के साथ पूरी सहानुभूति है। उन्होंने संक्षेप में जो कारण बताये हैं, उनको देखते हुए बम्बई को इस अनुच्छेद में उल्लिखित सूची में समाविष्ट करना उचित होगा।

इसके बाद श्री कामत का संशोधन है, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन से संशोधित होना है। इस पर मतभेद नहीं हो सकता कि जनता के लिये कार्य करने वाले लोग यथासंभव सच्चे हों, इस विषय में कोशिश करने में हमें कोई कसर नहीं छोड़नी है और बहुत सख्त होना है। इसी अभिप्राय से संशोधन में मंत्रियों के कारबार सम्बन्धी हितों की घोषणा का उपबंध रखा गया है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमें यह बात संविधान में उपबन्धित करनी चाहिये या इस उद्देश्य के पूरा करने के अन्य उपाय हैं। मेरे मित्र श्री कामत ने सुझाव दिया है कि मंत्रियों के वैयक्तिक और कारबार संबंधी हितों की घोषणा होनी चाहिये। प्रोफेसर शाह, जो ऐसे मामलों में बारीकियों पर पहुंच जाते हैं, आगे यह भी प्रबंध करना चाहते हैं कि जब कुछ हितों के अस्तित्व का पता लग जाये, तो उनका एक विशेष प्रकार से निबटारा किया जाये। इन व्यापक संशोधनों के होते हुए भी मेरे विचार में समाज-सेवा करने वाले लोगों तथा सार्वजनिक अधिकारियों के दुराचरण की संभावना पूर्णतः दूर नहीं होती। कारबार संबंधी हितों के अतिरिक्त हजारों ऐसी बातें हो सकती हैं, जिन्हें निरुत्साहित करना अथवा रोकना भी उतना ही अभीष्ट है, जैसे कि अपने जन्म-दिवस के समारोह पर अथवा अपने पुत्र या पुत्री या अन्य संबंधियों के विवाहों पर सार्वजनिक अभिनन्दन ग्रहण करना। यदि हम यह व्यवस्था करना चाहते हैं कि हमारे मंत्री अपने उपयुक्त वेतनादि के अतिरिक्त कोई अन्य लाभ न उठायें, तो हमें इन सब बातों को भी और बहुत सी अन्य बातों को भी समाविष्ट करना होगा। इस सब चीजों की सूची तैयार करना और उनके विषय में जांच पड़ताल करने या उन्हें ठीक करने के सम्बन्ध में उपबंध करना तो ऐसी लम्बी बात है, जो कि मेरे विचार में संविधान में रखी ही नहीं जा सकती। मेरे मन में संदेह की छाया मात्र भी नहीं है कि हमारे अपने राष्ट्र के नैतिक मापदंड को ऊंचा उठाने के लिये यथासम्भव सब कुछ करना चाहिये। मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि इस समय वह बहुत ऊंचा है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ऐसा करने के लिये यह सही स्थान या उपाय है। मुझे विश्वास है कि हमारी स्वतंत्रता की, हमारी राष्ट्रीयता की और हमारे कंधों पर जो उत्तरदायित्व आ पड़ा है उसकी भावना भारत में अब बढ़ती

[डा. पी.एस. देशमुख]

जा रही है और मुझे तो आशा है कि इस उपबंध के बिना भी हमारे देश का नैतिक मापदंड ऊंचा हो ही जायेगा। किन्तु इस समय स्थिति लज्जाजनक है, इसमें संदेह का लेष भी नहीं है। बहुत कम लोग, सुसंस्कृत लोग, उच्च शिक्षा प्राप्त लोग भी सत्य का कोई मूल्य नहीं समझते और विविध प्रकार से गुप्त लाभ और फायदे उठाने का भूत सवार है। संविधान में उन सब बातों को लिख देना, जब कि मनुष्य इतना आचारहीन हो जाये कि वह नैतिक नियमों से गिर जाये, मस्विदा बनाने वालों के लिये असंभव होगा। अतः मैं इसे अच्छा समझता हूं कि इस विषय को संविधान में बिल्कुल न रखा जाये और यदि अपेक्षित हो तो उन निदेशों में, जो कि राष्ट्रपति राज्यपालों को देगा, यह बात शामिल कर दी जाये कि राज्यपाल यह ध्यान रखे कि मंत्री और प्रधानमंत्री, जो कि प्रांतीय स्वायत्त शासन की योजना के अंतर्गत इतनी शक्ति और प्राधिकार प्राप्त करेंगे, अपचार न करें और कि ऐसा अपचार हो तो राज्यपाल उसकी सूचना राष्ट्रपति को दे। यदि इन निदेशों का अनुसरण किया जायेगा तो बहुत सा अच्छा काम, जो हम चाहते हैं, पूरा हो जायेगा। वह उपाय अधिक अच्छा होगा, इसकी बजाय कि हम यह स्पष्ट मान कर अपने संविधान को गंदा करें कि हमारे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपनी नैतिकता का स्वयं ध्यान रखने में असमर्थ हैं और वे किसी नैतिक सिद्धांत की परवाह नहीं करते।

अब मैं अपने उपप्रांत बरार के विषय में कुछ कहना चाहता हूं। हमने उन राज्यों के साथ मध्यप्रांत और बरार का भी नाम लिखा है, जहां कि आदिम जातियों तथा अनुसूचित जातियों के हितों पर ध्यान देने के लिये एक अतिरिक्त मंत्री होगा। यह भी कहा गया है कि उस मंत्री को अन्य कार्य भी मिल सकता है। इससे मुझे भारत शासन अधिनियम की धारा 52 का स्मरण हो आता है। बरार के सम्बन्ध में राज्यपाल पर एक विशेष उत्तरदायित्व डाल दिया गया था और उसे यह ''देखना था कि प्रांत के राजस्व का समुचित अंश बरार में या उसके लाभार्थ व्यय किया जाये।'' मैं बरार की सांविधानिक स्थिति का हवाला देकर सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता। किन्तु जहां एक आर्थिक दृष्टि से शोषण का प्रश्न है, मैं कह सकता हूं कि बरार को बहुत समय से यह शिकायत रही है कि उससे जो बहुत अधिक राजस्व उगाहा जाता है, उसे प्रांत के दूसरे और अधिक निर्धन भाग हड़प जाते हैं और बरार यथायोग्य लाभ प्राप्त नहीं कर पाता। हां, अब इसके लिये समय नहीं रहा है कि राज्यपाल पर बरार के विषय में कोई विशेष उत्तरदायित्व डालने के या ऐसे किसी निदेश के लिये कहा जाये। किन्तु मैं चाहता हूं कि प्रशासकों को यह याद रखना चाहिये कि बरार की आवश्यकताओं पर अब भी ध्यान देना और विचार करना अपेक्षित है।

एक और बात है और वह 25 लाख रुपये के विषय में है, जो निजाम को भाटक के रूप में दिये जाते थे। मेरे विचार में अब हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि निजाम की नाममात्र की प्रभुता आखिर पूरी तरह समाप्त हो गयी है और उसका अंत हो गया

है, और अब से हैदराबाद के निजाम और बरार के बीच कोई संबंध नहीं है। अतः मुझे आशा है कि निजाम को यह 25 लाख रुपये की राशि देने की प्रश्न अब नहीं उठेगा।

***अध्यक्षः** हमें बरार द्वारा दिये जाने वाली राशि या उसके पृथक् वित्त से कोई मतलब नहीं है। हमें यहां केवल इसी बात से मतलब है कि कुछ प्रांतों में पिछड़ी हुई आदिम जातियों के कल्याणार्थ एक मंत्री होना चाहिये।

***डा. पी.एस. देशमुखः** मैं केवल एक शब्द और कहना चाहता हूं, श्रीमान्। मैंने इस विषय की इसलिये चर्चा की है कि विशेष उत्तरदायित्व संबंधी पुराना उपबंध अंततोगत्वा समाप्त हो रहा है। क्योंकि निजाम को 25 लाख की राशि नहीं दी जायेगी, यह राशि बरार के प्रदेश में शिक्षा और चिकित्सा पर खर्च होनी चाहिये। इस विषय में मैंने गृहमंत्री को लिखा है और मुझे आशा है कि, हम 1935 के अधिनियम के उपबंधों को नहीं लिख रहे हैं इसलिये, मेरा यह सुझाव स्वीकार कर लिया जायेगा कि यह 25 लाख रुपये की राशि बरार के लोगों के लिये ही खर्च की जाये।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, विचाराधीन अनुच्छेद 144 बहुत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है, अतः उसके कुछ उपबंधों के विषय में मैं सदन का कुछ समय लेने का साहस करता हूं।

पहली बात यह है कि अनुच्छेद 144 का खंड (1) अनावश्यक रूप से व्यापक है। इसमें लिखा है:

> ''राज्यपाल के मंत्री उसके द्वारा नियुक्त किये जायेंगे और वे उसके प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर आसीन रहेंगे।''

अभी हमने अनुच्छेद 143 पर बहस की थी, जिसमें प्रश्न यह था कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति होनी चाहिये या नहीं। यहां उसका स्वविवेक बहुत ही विस्तृत हो गया है। अब, यदि राज्यपाल चाहे, तो वह अपने मंत्रियों को नियुक्त कर सकता है और मुख्यमंत्री से कहा जा सकता है कि वह ऐसे दल में से मंत्रिमंडल बना ले जो सदन में सबसे बड़ा दल न हो। इस पर कोई रोक नहीं है। मैं तो ऐसा उपबंध चाहता था कि राज्यपाल सभा में महत्तम दल के नेता से ही मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहे। इसके अतिरिक्त श्रीमान् 'उसके प्रसाद पर्यन्त' इन शब्दों के भिन्न-भिन्न आशय निकाले जाते हैं। ऐसी परंपरा का अभी विकास होना है कि राज्यपाल को किसी मंत्रिमंडल को पदच्युत करने का तभी अधिकार है, जब वह मंत्रिमंडल विधानसभा का विश्वासपात्र न रहे। इस संबंध में दो संशोधन पेश किये गये हैं और मुझे खेद है कि मैं

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

उनमें से किसी का समर्थन नहीं कर सकता, क्योंकि प्रयुक्त शब्द ये हैं—''विधानसभा का विश्वासपात्र रहे।'' मेरा नम्र निवेदन है कि जब तक मंत्रिमंडल विधानसभा के बहुमत सदस्यों का विश्वास खो न दे, तब तक उसे पदच्युत न किया जाये। अब, यह ठीक है कि इसका एकमात्र निर्णयकर्त्ता राज्यपाल ही होगा, अतः इस संबंध में उसे बहुत शक्ति प्राप्त होगी। यदि यह उपबंध रख दिया जाता है कि जब तक मंत्रिमंडल प्रथम सदन का विश्वासपात्र रहे, तो यह मामला संदेह से परे हो जाता, और यदि राज्यपाल ऐसे मंत्रिमंडल को पदच्युत कर दे, जिस पर सदन को विश्वास हो, तो यह काम उसके अधिकारों के अन्दर नहीं होगा।

श्री सक्सेना ने खंड (3) के विषय में एक संशोधन पेश किया है वे चाहते हैं कि केवल प्रथम सभा के ही सदस्यों को मंत्री चुना जाये। इस विषय में मेरा निवेदन है कि द्वितीय सदन में बहुत से ऐसे सदस्य होंगे, जो कि नगरपालिकाओं, जिलामंडलों, ग्राम-पंचायतों आदि लोगों के निकायों द्वारा चुने जायेंगे, अतः कोई कारण नहीं है कि हम प्रथम सदन तक ही सदस्यता को सीमित रखें। मेरा निवेदन यह है, सब निर्वाचित सदस्य, चाहे वे प्रथम सदन में हों चाहे द्वितीय में, मंत्रिपद के लिये अर्ह होने चाहियें।

परंतुक के विषय में मैं एक शब्द कहूंगा। मैं मंत्रिपद के लिये परोक्ष रूप से रक्षण रखने के बहुत विरुद्ध हूं। यहां तक कि अनुसूचित जातियों, पिछड़े हुए वर्गों और आदिम जाति लोगों का सम्बन्ध है, हमने इस संविधान में अत्यन्त स्पष्ट उपबंध रख दिये हैं, जिनका उद्देश्य इन वर्गों की हालत सुधारने का है और शक्ति आरूढ़ व्यक्तियों का कर्त्तव्य ऐसी व्यवस्था करना होगा, जिससे कि इन वर्गों के हितों की अवहेलना न हो और एक पृथक मंत्री रखने की अपेक्षा नहीं है। इस संविधान में पिछड़े हुए वर्गों को दो श्रेणियों में बांटा गया है, एक तो अनुसूचित जातियां जिनके लिये रक्षण रखा गया है और दूसरे पिछड़े हुए वर्ग जिनके लिये रक्षणों की व्यवस्था नहीं है। यदि हम अनुच्छेद 301 पर दृष्टिपात करें, तो हमें पता लगेगा कि पिछड़े वर्गों का संरक्षण उस अनुच्छेद में किया गया है, जिसमें राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य बना दिया गया है कि वह देखे कि पिछड़े हुए वर्गों की, जिनमें अनुसूचित जातियां भी है, स्थिति सुधारी जाती है और एक आयोग द्वारा उन वर्गों की हालत की जांच करवाये और आयोग करना प्रतिवेदन दे दे तब ऐसी कार्यवाही हो जिससे कि वे सामान्य स्तर पर आ जायें। आदिम जाति लोगों के विषय में अनुच्छेद 300 में एक विशिष्ट उपबंध है, जिसमें कहा गया है:

> .....''राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण पर प्रतिवेदन करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति आदेश द्वारा राष्ट्रपति किसी समय

कर सकेगा, और इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर तो करेगा ही।''

यदि आप अनुच्छेद 299 को देखें तो आपको यह देख कर प्रसन्नता होगी कि राष्ट्रपति और प्रत्येक राज्य दोनों विशेष अधिकारी नियुक्त करेंगे जो यह जांच करेंगे कि ये रक्षण-कवच कैसे कार्यान्वित होते हैं और इन उपबंधों पर कैसे अमल होता है। अतः राष्ट्रपति का और संघीय विधानमंडल का, जिन्हें आयोग का प्रतिवेदन पेश होगा, यह बाध्यकारी कर्त्तव्य है कि वे इसका ध्यान रखें कि पिछड़े हुए वर्गों की अवस्था में सुधार होता है। मैं नहीं समझ पाता कि विविध कृत्य-निर्वाहकों के कृत्य एक दूसरे की हद में क्यों पड़ जायें और उनके लिये मंत्रिमंडलों में रक्षण क्यों हों। जहां तक अल्पसंख्यक परामर्श समिति के प्रतिवेदन का सम्बन्ध है, उन्होंने तो यह सिफारिश नहीं की है कि पिछड़े हुए वर्गों और दलित वर्गों के लिये पृथक मंत्री रखा जाये। कल्याण-कार्य के विषय में अनुसूचित जातियों को पृथक करने का या उनका अलग उल्लेख करने का कोई कारण नहीं है, जब कि दोनों के लिये सरकार पर समान उत्तरदायित्व है। मेरा निवेदन है कि यह विभेद हटा दिया जाना चाहिये। वास्तव में अनुच्छेद 301 के विषय में कोई विभेद नहीं है। मेरा कहना यह है कि यदि अनुसूचित वर्गों या पिछड़े हुए वर्गों को विशेष संरक्षण की आवश्यकता है तो वह समग्र भारत में है, केवल मध्य भारत, उड़ीसा और बिहार में ही नहीं। मुझे यह निवेदन करना है, श्रीमान्, कि संविधान ने उनकी पहले ही रक्षा कर दी है। अछूतपन एक अपराध बना दिया गया है। मूलाधिकारों में इतने उपबंध हैं, जिनके कारण उन्हें सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश करने का विशेषाधिकार है। इस बात को देखते हुए मैं इस प्रकार के रक्षण के विरुद्ध हूं। मैं इस उपबंध के विरुद्ध इसलिये हूं कि यह स्थायी है और समस्त प्रांतों में ऐसे रक्षणों की मांग के लिये बहाना सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह उपबंध केवल पहले दस वर्षों के लिए ही नहीं है, वरन् सदा के लिये है। यह हमारे संविधान पर एक धब्बा है और इसीलिये इस सदन को यह परंतुक रद्द कर देना चाहिये।

अगली बात मंत्रियों की सम्पत्ति के विषय में श्री कामत ने उठाई थी और प्रोफेसर शाह ने उसका समर्थन किया था। उन्होंने कहा था कि मंत्रियों को अपने पद पर नियुक्त होते समय और शासन छोड़ते समय भी यह प्रकट करने के लिये कहा जाये कि उनके पास क्या है और उनसे यह प्रकट करने के लिये कहा जाये कि अपने मंत्रित्व काल में उन्होंने कितना धन कमाया था और कितना संग्रह किया। यह तो परिप्रश्न हुआ। मैं नहीं समझता कि हमें मंत्रियों के विषय में ऐसे परिप्रश्नों का आश्रय लेना चाहिये। हमने अन्य प्रतिष्ठित अधिकारियों के विषय में ऐसे प्रस्तावित उपबंध को पहले ही अस्वीकृत कर दिया है।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): अध्यक्ष महोदय, यद्यपि श्री जयपाल सिंह ने संशोधन की कोई सूचना नहीं दी, पर शायद, श्रीमान्, आपने उन्हें संशोधन पेश करने की अनुमति दे दी थी और वे उस पर बोले थे। मैं नहीं जानता कि वास्तविक स्थिति क्या है? किंतु क्योंकि इस सदन के तीन सदस्य इस पर बोल चुके हैं, अत: मैं इस विषय में अपना मत अभिव्यक्त करना चाहता हूं। बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रांत के तीन प्रान्तों में आदिम जातियों, अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के हितों की चिन्ता करने के लिये और उनकी रक्षा करने के लिये पृथक-पृथक मंत्रियों की सिफारिश की गई है। अल्पसंख्यक समिति की आदिम जाति उपसमिति की सिफारिश पर ही मैंने सभापति की हैसियत से अन्य सदस्यों के साथ मिल कर यह सुझाव दिया था कि इन तीन प्रांतों में रहने वाले पिछड़े हुए लोगों की परवाह करने के उद्देश्य से संविधान में ऐसा उपबंध रख दिया जाये। इसका कारण यह है कि जब हमने ये सिफारिशें की थी तब यह समझा गया था कि इन लोगों के साथ विशेष व्यवहार करने या उनकी रक्षा करने के मामले में ये प्रांत पिछड़े हुए थे। अब इन तीन प्रांतों—बिहार, मध्यप्रांत और उड़ीसा—में अब उनके लिये, सब प्रकार के कल्याण-कार्य के लिये और उनकी रक्षा के लिये सुसंगठित विभाग है। उस समय हमने बंबई, मद्रास आदि जैसे आगे बढ़े हुए प्रगतिशील प्रांतों को शामिल नहीं किया था, क्योंकि वे उस मामले में बीस-तीस वर्षों से कार्यवाही कर रहे थे, अत: उन्हें शामिल नहीं किया गया था। कोई यह भी कह सकता है कि इन प्रांतों का उल्लेख करना उनके लिये कलंक रूप है। किंतु मैं समझता हूं कि इस समय श्री जयपाल सिंह के संशोधन में प्रस्तावित शब्द नहीं जोड़ा जाना चाहिये, जब तक कि बंबई के मंत्रिमंडल से परामर्श न कर लिया जाये या इस पर और अधिक विचार न कर लिया जाये। किन्तु, श्रीमान्, मैं इतना ही कह कर समाप्त करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** श्रीमान्, जहां तक अनुच्छेद 144 पर विचार करने का संबंध है, मुझे केवल उसकी भाषा पर आपत्ति है और मैं निम्न सुझाव दूंगा और मुझे आशा है कि वह उन लोगों को स्वीकार होगा जिन्होंने यह भाषा रखी है कि: ''राज्यपाल के मंत्री उसके द्वारा नियुक्त होंगे और उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' इससे पहले अनुच्छेद 143 है जिसमें लिखा है कि ''एक मंत्रिपरिषद् होगी।'' स्वभावत: हमें यह तो लिखना ही होगा कि मंत्रिपरिषद् को राज्यपाल नियुक्त करेगा। मेरे विचार में केवल यह लिख देना अच्छा रहता कि मंत्रिपरिषद को राज्यपाल नियुक्त करेगा। साथ ही आगे यह लिखना अवांछनीय है कि ''वे उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' मेरे मतानुसार यह अनावश्यक है और हम राज्य के प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् को जो पद देने जा रहे हैं उसके विरुद्ध है। कदाचित् यह उपबंध उस प्राचीन भावना का अवशेष है: मंत्री बादशाह के प्रसाद-पर्यन्त

पद धारण करते हैं। तब से स्थिति बदल गई है और अब यह अपेक्षित नहीं है कि हम वही भाषा रखें कि ''वे उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' मैं मानता हूं कि यदि राज्यपाल नियुक्त करने वाला प्राधिकारी है तो स्वभावत: उसे कुछ परिस्थितियों में यह शक्ति होनी चाहिये, जिसके लिये इस धारा में उपबंध रखा जा सकता है, कि मंत्रिपरिषद् का विघटन किया जा सकता है अथवा कुछ नये मंत्री नियुक्त किये जा सकते हैं, किन्तु, श्रीमान्, जब हम इस शुभ वर्ष 1949 में मंत्रि परिषद् की नियुक्ति का उपबंध कर रहे हैं, तब हमारे लिये यह कहना अपेक्षित नहीं है कि ''वे राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' हमने विनिश्चय किया है कि वह 'राज्यपाल' राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होगा और मैं नहीं समझता कि ऐसा कहना उचित होगा कि वे उसके प्रसाद-पर्यन्त पद पर रहेंगे। यह पूछा जा सकता है कि ''यदि मंत्रियों को बदलना हो तब क्या होगा?'' मंत्रियों को केवल तभी बदलना चाहिये, जब वे सदन में बहुमत का विश्वास खो बैठें और उसके लिये निदेश-पत्र में उपबंध रखा जा सकता है, किन्तु अब अनुच्छेद 144 जिस प्रकार है, उसके विषय में मैं नहीं समझता कि हमें इस प्रकार के राज्यपाल के विषय में, जैसा कि हमने निश्चय किया है, यह रखना उचित हो कि वह मंत्रिपरिषद को नियुक्त करेगा जोकि उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगी। यह शब्दावली अन्य सांविधानिक पुस्तकों से ले ली गई होगी और जैसा कि मैंने कहा है इसका कारण शायद यह है कि पहले जब मंत्रियों की शक्तियों का विकास हुआ था तब शायद वे मुकुट के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करते थे, किन्त जब कोई बादशाह नहीं होगा और इस अनुच्छेद की भाषा सुखद और उचित नहीं है, अत: मैं अपील करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 144 के इस भाग को संविध ान में से निकाल दिया जाये।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और आदिम जाति लोगों के लिये उपबंध रखना अपेक्षित है। अनुच्छेद 37 में हमने जनता के दुर्बल भागों, और विशेषत: अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के आर्थिक और शिक्षा-संबंधी हितों के वर्धन का उपबंध रख दिया है और फिर अनुच्छेद 301 के अनुसार राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करेगा जो कि पिछड़े हुए वर्गों और आदिम जातीय लोगों की उन्नति का ख्याल रखेगा। संविधान के मस्विदे में इन दो उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, आदिम जातीय क्षेत्रों और अनुसूचित वर्गों के सम्बन्ध में एक विभाग बनाने का विशेष उल्लेख करना अनावश्यक है। यह सब बातें राज्य मंत्रालय पर छोड़ दी जानी चाहिये; वे इस विषय पर विचार कर लेंगे कि उनकी उन्नति के लिये क्या करना अपेक्षित है और किस चीज की कमी है और इस प्रकार का विस्तृत वर्णन लिखना अनावश्यक है और मैं नहीं समझता कि इस विशिष्ट उपबंध से कोई ऐसी बात हो जायेगी जो इन दोनों अनुच्छेदों से नहीं होगी। किसी दलित वर्ग के व्यक्ति से यह बात कहने से कोई लाभ नहीं है कि वह दलित वर्ग है, इसिलये उसे अमुक सुविधाएं दी गई हैं; इससे उसमें लाघव-भावना अवश्य उत्पन्न हो जाती हैं यहां वहां सुविधाएं देने से ही सदा मनुष्य की

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

उन्नति नहीं होती। यह तो अधिकतर मानसिक रचना का प्रश्न है। यदि एक व्यक्ति सोचता है ''मैं क, ख, ग, घ के तुल्य हूं'' तो वह उन्नति कर जाता है; ज्यों ही आप उसे कह देते हैं ''तुम निकृष्ट व्यक्ति हो, अतः तुम्हें अमुक सुविधाएं दी गई हैं और हम तुम्हें अन्य व्यक्ति के हितों का हनन करके ऊंचा उठा रहे हैं'' त्यों ही वह नीचे गिर जाता है। वह स्वयं उन्नति नहीं कर पाता। अतः मेरे विचार में यह बात अनुसूचित वर्गों के हित की है, (आदिम जाति लोगों के हित की है, कि उन्हें बार-बार नहीं कहा जाये कि) क्योंकि वे तुच्छ लोग हैं, क्योंकि वे दुर्बल व्यक्ति हैं, अतः उन्हे अमुक सुविधायें दी गई हैं। बात का बतंगड़ बनाने से उन्हे कोई लाभ नहीं होता। यह बात बहुत बुरी लगती है कि 'क' को छात्रवृत्ति देनी है क्योंकि वह अनुसूचित जाति का है और 'ख' जो अधिक अच्छा लड़का है और आर्थिक दृष्टि से और प्रतिभा तथा वैयक्तिक अर्हता की दृष्टि से अधिक योग्य है, इन सुविधाओं से वंचित रखा जायेगा, क्योंकि वह ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति का है अथवा अनुसूचित जातियों से अतिरिक्त किसी जाति का है। राज्य यह कैसे कह सकता है कि एक लड़के हो अधिक सुविधाएं दी जायेंगी क्योंकि वह एक विशेष संप्रदाय या विशेष वर्ग का है, यद्यपि वे अन्य वर्ग के किसी लड़के की तुलना में जीवन की अधिक सुविधाओं को प्राप्त कर रहे हैं, केवल इसलिये कि वह भिन्न संप्रदाय का है? न्याय और औचित्य की दृष्टि से यह वस्तु असंभव है और श्रीमान्, यह बात समग्र समुदाय के हितों के अनुकूल नहीं है। अतः इन दो अनुच्छेदों को देखते हुए, जिनका मैंने उद्धरण दिया है और संविधान की व्यापक योजना की दृष्टि से, मेरे विचार में, पिछड़े हुए वर्गों के लिये अलग रखने का यह विशेष उपबंध हटा देना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 144 के खंड (3) के सम्बन्ध में मैं सदन का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। खंड में लिखा है: ''कोई मंत्री, जो निरंतर छः मासों की किसी कालावधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य न रहे, उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।'' मैं अनुभव करता हूं कि यह 1935 के विद्यमान भारत शासन अधिनियम के खंड की पुनरावृत्ति या नकल मात्र है। मैं नहीं समझता कि यह अब आवश्यक है, क्योंकि, नये संविधान के अंतर्गत प्रांतीय विधानमंडलों में 300 से 600 तक सदस्य होंगे और मैं नहीं समझता कि विशेष पदों के लिये भी हमें व्यक्तियों की कमी रहे। मैं इसके विरुद्ध हूं कि कोई बाह्य व्यक्ति, चाहे वह कितना भी उच्च योग्यता प्राप्त हो, मंत्रित्व के उत्तरदायी आसन पर छः मास के लिये भी बैठाया जाये। अनुभव से हमें पता लगा है कि कई बार जब ऐसे मंत्री नियुक्त किये गये, तो अंततोगत्वा इससे भ्रष्टाचार ही हुआ। छः मासों की कालावधि के पश्चात् उस मंत्री के लिये किसी को अपना स्थान छोड़ना पड़ता है और उस सज्जन को कोई अन्य पद देना होता है जिसके लिये वह अयोग्य हो, ऐसा एक दो प्रांतों में हो भी चुका है। अतः जब हमारे यहां बड़े-बड़े सदन होंगे

जिनमें विस्तृत अनुभव वाले और कई प्रकार से विशेषज्ञ व्यक्ति होंगे, तब मैं अनुभव करता हूं कि यह उचित नहीं है और बहुत अच्छा सिद्धांत नहीं है कि हम भारत शासन अधिनियम, 1935 के उपबंध की नकल करें और यह कहें कि यदि मुख्यमंत्री यह अनुभव करे कि अमुक व्यक्ति, जो सदस्य नहीं है, विशेष परामर्श के लिये चाहिये, तो उस व्यक्ति को मंत्री बना दिया जाना चाहिये। कई बार मुख्यमंत्री किसी पर कृपा करना चाहेगा। उसकी तो योग्यताएं हों उनके नाम पर उसे मंत्री बनने के लिए कहा जायेगा और छः मासों के पश्चात् उसे विधानमंडल का सदस्य बनाना होगा, क्योंकि वह छः मास के पश्चात् उस पद को धारण नहीं कर सकता। जैसा कि मैंने कहा है, श्रीमान्, किसी अन्य व्यक्ति से उसके लिये स्थान खाली कराया जायेगा और उसे और कुछ देना होगा और इससे सार्वजनिक जीवन भ्रष्ट हो जायेगा।

श्री जयपाल सिंह ने बंबई को भी जोड़ देने के सम्बन्ध में जो संशोधन रखा है, उसके विषय में मुझे कहना है कि वह सिद्धान्ततः गलत है। इस सदन की परामर्शदातृ समिति ने एक समिति नियुक्त की थी और उन्होंने समूचे प्रश्न पर विचार किया था। वे सब प्रान्तों में गये। उन्होंने सिफारिश की थी कि केवल इन्हीं प्रांतों में आदिम जातियों के कल्याण के लिये तथा अन्य किसी कार्य के लिये अलग मंत्री होना चाहिये। इस समय आकर यह कहना, कि बंबई भी समाविष्ट होना चाहिए, अत्यन्त अनुचित है। जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, वे मद्रास में बहुत हैं। जब एक समिति ने समग्र प्रश्न पर विचार कर लिया है, तब यह सिद्धांततः गलत होगा कि कोई आकर सदन में आश्चर्य के समान संशोधन लाकर रख दे कि किसी अन्य प्रांत को भी समाविष्ट करना चाहिये। उस दृष्टिकोण से मैं भी जयपाल सिंह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** अध्यक्ष महोदय, सदन में अपनी अधिकांश वक्ताओं में मैंने माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर से कई अपीलें की थी कि वे मेरे उठाये हुए कुछ प्रश्नों को स्पष्ट करके मुझे अनुगृहीत करें। इस दशा में मेरे पिछले प्रयत्न असफल रहे थे; किन्तु मुझे राजा ब्रूस के दृष्टान्त पर विश्वास है और मुझे आशा है कि इस बार मैं उनसे जो स्पष्टीकरण चाहूंगा, उस पर समुचित ध्यान दिया जायेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या हम माननीय सदस्य से मंच पर आकर सदन को संबोधित करने की प्रार्थना करें जिससे कि हम उनकी वक्तृता की अच्छी प्रकार सुनने का आनंद उठा सकें?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** (*मंच पर आकर*) मैं यह जान कर बहुत कृतार्थ हुआ कि सदन में कम से कम एक सदस्य ऐसा है जो मेरी बातों को सुनने के लिये उत्सुक है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। इसके बदले में मैं केवल इतना ही कर सकता हूं कि वे माननीय सदस्य इस सदन में जो कुछ बोलें उस पर मैं पूरा ध्यान दूं।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं कुछ स्पष्टीकरण चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि मंत्रिमंडल में आदिम जातियों के सदस्यों के रक्षण के लिये विशेषत: ये ही प्रांत क्यों चुने गये हैं यदि इन प्रांतों में महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक हैं तो वे, अवश्यमेव संविधान के उपबंधों के अंतर्गत, मंत्रिमंडल में स्थान प्राप्त कर लेंगे। यदि इन प्रांतों में महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक नहीं है तो मंत्रिमंडल में पिछड़े हुए वर्गों और अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व देने के प्रयोजन के लिये इन प्रांतों को ही क्यों चुना गया है?

***अध्यक्ष:** मंत्रिमंडल में अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के लिये प्रतिनिधित्व का कोई प्रश्न नहीं है। उनका ध्यान रखने के लिये एक मंत्री नियुक्त होना है; यह बात नहीं है कि वह उस आदिम जाति या पिछड़े हुए सम्प्रदाय का ही व्यक्ति हो।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** खेद है, मैं यह बात समझा नहीं।

***अध्यक्ष:** इस परंतुक में कोई ऐसा प्रश्न नहीं है कि आदिम जाति लोगों का या पिछड़े हुए वर्गों का कोई व्यक्ति मंत्री नियुक्त होगा, या मंत्रिमंडल में इनमें से किसी वर्ग के लिये स्थान रक्षित होगा। केवल यही बात है कि एक मंत्री नियुक्त होगा जो उनके हितों का ध्यान रखेगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं, श्रीमान्, यदि इस खंड का फिर यह अर्थ है कि कोई सदस्य आदिमजाति के कल्याण का भार-साधक चुना जा सकता है और नियुक्त हो सकता है, चाहे वह अनुसूचित जाति या आदिमजाति का हो अथवा नहीं, अर्थात् इस खंड का यही प्रयोजन है कि आदिमजातियों के मामलों का ध्यान रखने के लिये एक मंत्रिपद होना चाहिये, तो मेरे विचार में यह अनावश्यक है। आदिमजातीय लोगों को सामान्यत: यही ख्याल है कि इस उपबंध के कारण, आदिमजातीय लोगों अथवा अनुसूचित जातियों को मंत्रिमंडल में स्थान मिल जायेगा। यदि इसका यह अर्थ है कि इस परंतुक का यह आशय होना आवश्यक नहीं है कि कोई आदिमजातीय व्यक्ति या अनुसूचित जाति का व्यक्ति आदिमजातीय लोगों के कल्याण का ध्यान रखने के लिये भारसाधक बनाया जायेगा, तो मेरे विचार से यह खंड उनके लिये निराशाजनक होगा। यदि इस परंतुक का यह आशय निकाला जाना है कि, किसी सवर्ण हिन्दू या मुसलमान तक या ईसाई तक को आदिमजातीय कल्याण का ध्यान रखने का काम सौंपा जा सकता है और इसका यह अर्थ होना अपेक्षित नहीं है कि कोई आदिम जाति का सदस्य रखा जाये, तो मैं यही कहना चाहता हूं कि वह उद्देश्य आधा भी पूरा नहीं होगा।

मेरी युक्ति यह है। यदि कोई महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक हो, तो उस महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक अथवा अनुसूचित जातियों को मंत्रिमंडल में स्वयं प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जायेगा। यदि आप

यह नही समझते कि कोई महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक है अथवा यदि आप समझते हैं कि आदिमजाति के लोग महत्त्वहीन अल्पसंख्यक हैं, तो फिर मैं नहीं समझता कि उस प्रयोजन के लिये विशेष मंत्रिपद क्यों रखा जाये। उदाहरण के लिये, क्या आप यह कहते हैं कि शिक्षा का भार-साधक मंत्री, जो कि आदिम जाति का न हो, आदिमजाति के लोगों की शिक्षा का ठीक ध्यान नहीं रखेगा, क्योंकि उसे आदिमजातियों के कल्याण का भार-साधन नहीं बनाया गया है? वह चाहे विशेष रूप से आदिमजातीय कल्याण का भार-साधक न बनाया जाये; फिर भी वह आदिमजातीय लोगों की शिक्षा का ध्यान रखेगा। शिक्षा मंत्री को वह तो करना ही होगा। लोक निर्माण कार्यों का भार-साधक कोई मंत्री आदिमजातीय क्षेत्रों में समुचित संचार का ध्यान रखेगा। आदिमजातीय कल्याण के लिये एक विशेष मंत्रिपद रखने से क्या लाभ है? आपको आदिमजातीय लोगों की विधि-व्यवस्था का ध्यान रखना होगा; आपको उनकी शिक्षा का ध्यान रखना होगा; आपको उनके स्थानीय-स्वायत्त शासन का ध्यान रखना होगा; एक मंत्री क्या कर सकता है? मंत्रिमंडल के सारे मंत्रियों को सब प्रकार से आदिमजातीय तक लोगों के हितों का ध्यान रखना होगा। यदि आदिमजातीय कल्याण के लिये आप आदिमजाति के अतिरिक्त अन्य किसी सदस्य को या अनुसूचित जाति के व्यक्ति को रख दें, तो इसका क्या अर्थ हुआ? क्या आपका यह अभिप्राय है कि वह प्रत्येक बात में अपनी टांग अड़ायेगा और कहेगा, ''आपने मेरे क्षेत्र में शिक्षा का पर्याप्त प्रबंध नहीं किया है, अथवा आपने मेरे लिये पर्याप्त सड़कें नहीं बनाई हैं अथवा आपने आदिमजाति के लोगों के स्वास्थ्य का समुचित ध्यान नहीं रखा है?'' क्या मंत्री नियुक्त करने का यही अभिप्राय है? उस प्रयोजन के लिये विशेषत: एक मंत्री नियुक्त करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि सामान्यत: प्रत्येक मंत्री को अपने विभाग के सम्बन्ध में आदिमजातियों के हितों का ध्यान रखना होगा, चाहे वह स्वयं किसी जाति का हो।

***श्री आर.के. सिधवा:** जैसे श्रम मंत्री श्रमिकों के हितों का ध्यान रखता है, इसी प्रकार आदिमजाति मंत्री भी कर सकता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रमिकों के हित तो एक विशेष प्रकार के होते किन्तु आदिमजातीय लोगों को प्रत्येक बात से मतलब है। क्या आपका कहने का यह अभिप्राय है कि वह आदिमजातीय मंत्री केवल आदिमजाति के हितों का ही ध्यान रखेगा? यह तो सबका उत्तरदायित्व समझा जाता है; इस समय यह स्थिति है कि आसाम मंत्रिमंडल में दो आदिमजातीय मंत्री हैं और 1937 से सदा आदिमजातीय मंत्री होते हैं और आदिमजातीय मंत्री के बिना कभी मंत्रिमंडल बना ही नहीं, यह काम तो सहज ही मुख्यमंत्री पर छोड़ दिया जा सकता है जो अपने मंत्रियों को चुनेगा और वह नि:संदेह एक आदिमजातीय मंत्री को चुन कर उन लोगों के हितों का ध्यान रखेगा। अन्यथा, यदि आप केवल आदिमजातीय मामलों के लिये एक मंत्री रखेंगे तो काम में बार-बार बाधा पड़ेगी और गड़बड़ पड़ेगी, और प्रतिस्पर्धा होगी और अन्य मंत्रालयों के कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप होगा।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान्, क्या आप मुझे इसकी अनुमति देते हैं कि मैं संशोधन संख्या 134 को पेश कर दूं जो मेरे नाम पर है और जिसके संबंध में मैंने कहा था कि मैं उसे पेश करना नहीं चाहता? मैं देखता हूं कि यह आवश्यक संशोधन है और मैंने बहुत से सदस्यों से परामर्श किया है जो समझते हैं कि यह पेश होना चाहिये।

***अध्यक्षः** संशोधन यह है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2165 में, अनुच्छेद 144 के प्रस्तावित खंड (1) में का परन्तुक हटा दिया जाये और उसका सारांश चतुर्थ अनुसूची में उल्लिखित निदेश-पत्र में समाविष्ट कर दिया जाये।''

***डा. पी.एस. देखमुखः** इतनी देर के पश्चात् इसके पेश करने की अनुमति नही मिलनी चाहिये।

***अध्यक्षः** ऐसा प्रतीत होता है कि इतनी देर के पश्चात् इस समय इस संशोधन के पेश करने पर आपत्ति है, अतः मैं इसकी अनुमति नहीं देना चाहता।

***श्री जसपतराय कपूरः** यदि किसी को आपत्ति हो तो बात और है किन्तु यह संशोधन डाक्टर अम्बेडकर और अधिकांश अन्य सदस्यों को, जिनसे मैंने परामर्श किया है, स्वीकार्य है। इसकी अनुमति देने में कोई हानि दिखाई नहीं देती। यदि डाक्टर देशमुख इस संशोधन के विरुद्ध हैं तो हां, वे इसके गुणावगुण पर बोल सकते हैं और उन्हें सदन को यह विश्वास दिलाने का अवसर मिलेगा कि वह इसे ठुकरा दें।

***अध्यक्षः** क्या इससे वाद-विवाद फिर आरंभ नहीं हो जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुखः** हां। यदि डा. अम्बेडकर इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं, तो इसका एक और उपाय है। परन्तुक पर अलग से मतदान हो सकता है और यदि यह अस्वीकृत हो जाये, तो इसे हटाया जा सकता है।

***अध्यक्षः** यह एक उपाय है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस परंतुक को हटाना स्वीकार नहीं करता, किन्तु मैं इस परंतुक को इस अनुच्छेद से हटाकर निदेश-पत्र में रखने के लिये पूर्णतः उद्यत हू।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि इस अनुच्छेद को अभी रहने दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** क्यों, इतनी देर बहस करने के बाद?

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि यह यहां रहना चाहिये या निदेश-पत्र में स्थानान्तरित हो जाना चाहिये। जिस संशोधन का सुझाव दिया गया है उसका यही प्रभाव प्रतीत होता है। यदि इस संशोधन के इस समय पेश होने के विरुद्ध बहुत से सदस्य हैं, तो मैं इसे पेश नहीं होने दूंगा, किन्तु यदि यह नियम-सम्बन्धी ही आपत्ति है तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं सदन को इस संशोधन पर भी विचार करने का अवसर दूं। मैं जानना चाहता हूं कि क्या इसके विरोध में बहुत से सदस्य हैं।

***डा. पी.एस. देशमुख:** जहां तक स्थानांतरण का प्रश्न है, उसके लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त होंगे। इस समय यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि यह श्री गुप्ते द्वारा प्रस्तावित स्वतंत्र संशोधन है जिसे पृथक खंड के रूप में रखना है।

***अध्यक्ष:** यदि डा. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकृत हो जाये और परन्तुक रह जाये, तो श्री गुप्ते के संशोधन की क्या स्थिति होगी?

***डा. पी.एस. देशमुख:** यदि डाक्टर अम्बेडकर यह कहने के लिये तैयार हों कि इस परन्तुक पर अभी मतदान नहीं हो, तो मेरे मित्र के संशोधन का अभिप्राय पूरा हो जायेगा। अन्यथा यह निराकरण होगा...

***अध्यक्ष:** यह निराकरण नहीं है। वे तो इस चीज को अधिनियम के बीच में से हटा कर अनुसूची और निदेश-पत्र में स्थानान्तरित करना चाहते हैं अत: यह निराकरण नहीं है; यह तो इस चीज को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखने मात्र का प्रश्न है।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या मैं निवेदन कर सकता हूं, श्रीमान्, कि हमारी व्यापक नीति यही होनी चाहिये कि मेरे विचार में संविधान पर विचार करते समय हमें नियम-विवाद पर अधिक नहीं अड़ना चाहिये?

***अध्यक्ष:** मैं इस बात की सराहना करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इस परंतुक को स्थानान्तरित करने से इसका मूल्य न रहेगा, जोकि अब है, क्योंकि निदेश-पत्र में जो निदेश दिये हुये होते हैं उन्हें मानने के लिये राज्यपाल बाध्य नहीं है और उनका पालन न करने पर कोई उसे किसी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी के समक्ष जवाब नहीं मांग सकता। मुझे विश्वास है कि इस परन्तुक का आधार सम्बद्ध उप-समिति में हुआ एक प्रकार का समझौता है और यदि हम इस समय इसमें कोई परिवर्तन कर देंगे तो हो सकता है कि इससे उप-समिति द्वारा निर्मित संविधान की योजना ही उलट-पुलट हो जाये।

अध्यक्ष: मेरे ख्याल से इस पर कुछ आपत्ति है, इसलिये मैं इसे इस समय पेश नहीं कर सकता। डाक्टर अम्बेडकर व्यापक वाद-विवाद का उत्तर दे सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** क्या मैं अब यह प्रस्ताव कर सकता हूं कि इस खंड पर अंतिम विनिश्चय कल तक के लिये स्थगित कर दिया जाये।

***अध्यक्षः** इतने लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् मेरे विचार में इससे कुछ लाभ नहीं होगा। यदि हम इसे कल तक स्थगित भी कर दें, तो भी आपका संशोधन कल तक पेश नहीं होगा।

***श्री जसपतराय कपूरः** इस अनुच्छेद पर इतना वाद-विवाद करने के पश्चात्, इस पर कुछ और विचार करना अपेक्षित प्रतीत होता है। इस लम्बे वाद-विवाद से पता लगता है कि इस पर मतभेद है और यह संभव है...

***अध्यक्षः** यह स्थिति कल प्रातःकाल तक नहीं बदलेगी। डाक्टर अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, भिन्न-भिन्न संशोधनों पर जो बहस हुई है उसमें मैंने देखा है केवल चार बातें हैं जिन पर उत्तर देना अपेक्षित है। बहस में पहली बात यह कही गई है कि यह उपबंध करने की बजाय कि मंत्री प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे, यह अभीष्ट है कि ऐसा उपबंध किया जाये कि वे उस समय तक पद धारण करेंगे, जब तक कि वे सदन के बहुमत के विश्वास-पात्र रहें। अब, मुझे संदेह नहीं है कि इस संविधान का यही उद्देश्य है कि मंत्रिमंडल उसी कालावधि तक पद धारण करेगा, जब तक कि वह बहुमत का विश्वास-पात्र रहे। संविधान उसी सिद्धांत पर कार्यान्वित होगा। हमने इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, इसका कारण यह है कि उस रूप में यह बात किसी संविधान में उल्लिखित नहीं है जो कि संसदीय शासन पद्धति पर आधारित संविधान हो। 'प्रसाद पर्यन्त' का सदा यही मतलब लगाया जाता है कि मंत्रिमंडल बहुमत का विश्वास खो बैठे उसके बाद 'प्रसाद' नहीं बना रहेगा। ज्योंही मंत्रिमंडल बहुमत का विश्वास खो बैठेगा, त्योंही यह मान लिया जायेगा कि राष्ट्रपति अपने 'प्रसाद' का प्रयोग करके मंत्रिमंडल को हटा देगा, अतएव समस्त उत्तरदायी शासनों में जो रूढ़िगत वाक्य प्रयुक्त होता है उससे भिन्न भाषा का यहां प्रयोग करना अनावश्यक है। मुझे भय है, कि मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन, जो कि 'प्रथम सदन' शब्द रखने के विषय में था, स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत, प्रधानमंत्री को अधिकार है कि वह अपना मंत्रिमंडल केवल प्रथम सदन में से ही नहीं वरन् द्वितीय सदन में से भी चुन सके। हमारी यह योजना नहीं है कि मंत्री प्रथम सदन से ही लिया जाये, द्वितीय सदन से नहीं। परिणामतः बिना निर्वाचित हुये छः मास तक मंत्री नियुक्त करने का उपबंध ऐसा विस्तृत होना चाहिये कि उसमें दोनों आ जायें, इस कारण मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

तीसरा संशोधन, जिस पर बहुत वाद-विवाद हुआ है, मेरे मित्र श्री कामत और प्रोफेसर शाह ने पेश किया था। छोटे-मोटे संशोधनों के सिवाय, वे लगभग एक से ही थे। उस सम्बन्ध में, मैं यह कहना चाहता हूं कि सभा को याद होगा कि अनुच्छेद पर, जो कि

अनुच्छेद 144 के समान ही है, प्रोफेसर शाह ने संशोधन संख्या 1332 पेश किया था और उस पर लम्बी बहस हुई थी। उस अवसर पर मैंने इस विषय में अपने विचार अभिव्यक्त किये थे, इसलिये मैंने जो कुछ कहा था उसके अतिरिक्त अब कुछ और कहना सर्वथा अनावश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे माननीय मित्र डाक्टर अम्बेडकर ने उस समय उस संशोधन को इसलिये स्वीकार नहीं किया था कि उनके विचार में वह पर्याप्त रूप से व्यापक नहीं था। अब यह अधिक व्यापक है।

***अध्यक्षः** यह सब बातें आप पहले ही कह चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** चौथा प्रश्न मेरे मित्र श्री जयपाल सिंह ने और किसी हद तक श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने भी उठाया है। इस खंड विशेष को संविधान के मस्विदे में रखने का कारण यह है कि यह आदिमजाति के लोगों से सम्बद्ध उपसमिति की सिफारिशों में है, जिसे कि संविधान सभा की अल्पसंख्यक समिति ने नियुक्त किया था। उस समिति के प्रतिवेदन में, आप देखें कि उसके साथ एक परिशिष्ट है जिसका नाम 'कानूनी सिफारिशें' है। इस अनुच्छेद में जो परन्तुक रखा गया है वह उस समिति विशेष के सुझाव और सिफारिश की शब्दशः नकल है। उसमें कहा गया है कि बिहार, मध्यप्रांत और बरार तथा उड़ीसा के प्रांतों में आदिमजातियों के कल्याण के लिये एक पृथक मंत्री होगा, परन्तु इसके साथ ही वह मंत्री अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण के संबंध में किसी कार्य का या किसी अन्य कार्य का भी भार-साधक हो सकेगा। अतः मस्विदा समिति के पास इस परन्तुक को रखने के सिवाय कोई चारा न था। क्योंकि यह आदिमजाति संबंधी उपसमिति के प्रतिवेदन के उस भाग में जिसे 'कानूनी सिफारिश' का नाम दिया गया है। समिति की यह इच्छा थी कि यह उपबंध संविधान में ही आना चाहिये और उसके किसी अन्य अंग में नहीं डाला जाना चाहिये। इस कारण मस्विदा समिति ने इसे रखा है और यह अन्य समिति की ही सिफारिश के अनुसार है।

मेरे मित्र श्री जयपाल सिंह ने जो सुझाव दिया है कि बंबई को भी शामिल कर लेना चाहिये क्योंकि बंबई प्रदेश में जो विलय हुए हैं, उनके फलस्वरूप आदिमजाति लोगों की संख्या बढ़ गई है, उस सुझाव के विषय में मुझे खेद है कि इस समय मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि इस मामले में बंबई के मंत्रिमंडल से परामर्श लेना अपेक्षित है और दुर्भाग्य से मेरे मित्र माननीय श्री खेर, जो पिछले कुछ दिनों संविधान सभा में उपस्थित थे, अब यहां नहीं हैं, अतः मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे संशोधन के विषय में मैं जानना चाहता हूं कि क्या डा. अम्बेडकर पहले अभिव्यक्त किये हुए अपने विचारों से पीछे हट गये हैं?

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि इस प्रकार की जिरह की अनुमति दी जा सकती है।

अब मैं संशोधनों को लेता हूं।

इस अनुच्छेद 144 के खंड (1) के सम्बन्ध में श्री ताहिर और श्री मोहम्मद इस्माइल के दो संशोधन, संख्या 2174 और 2175 हैं।

यदि डा. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकृत हो गया तो वे स्वत: गिर जायेंगे। अत: मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'144. (1) मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त मंत्री अपने पद धारण करेंगे; किन्तु बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा राज्यों में आदिमजातियों के कल्याण के लिये भार-साधक एक मंत्री होगा जो इसके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का अथवा किसी अन्य कार्य का भी भार-साधक हो सकेगा।

(1क) मंत्रिपरिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं, दो संशोधनों, संख्या 2174 और 2175 का प्रश्न ही नहीं उठता।

तत्पश्चात् श्री ताहिर का संख्या 2185 है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(3) कोई मंत्री उस पद पर चुने जाने के समय, उस राज्य की यथास्थिति विधानसभा या विधान-परिषद् का सदस्य होगा।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन सं. 2187 है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) में 'Legislature of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of the State' ये शब्द रख दिये जायें।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** तत्पश्चात् डा. अम्बेडकर का संशोधन संख्या 2192 है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में 'In choosing his ministers and in his relation with them' इन शब्दों के स्थान पर 'in the choice of his ministers and in the exercise of his other functions under the Constitution' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में, 'but the validity of anything done by the Governor shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instruction' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर हम श्री कामत के संशोधन पर आते हैं, जिस पर प्रोफेसर शाह ने दूसरा संशोधन पेश किया था। मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन पर पहले मत लूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** डाक्टर अम्बेडकर का संशोधन संख्या 2198 भी है।

***अध्यक्षः** मैं उस पर अंत में मत लूंगा। अब मैं प्रो. शाह के संशोधन सं. 185 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 3 (तीसरा सप्ताह) के संशोधन संख्या 277, दिनांक 30 मई 1949 में, अनुच्छेद 144 के प्रस्तावित नये खंड (7) में–

(क) प्रथम कंडिका में–

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें;

[अध्यक्ष]

(2) तृतीय पंक्ति में 'disclosure' शब्द के स्थान पर 'declaration' शब्द रख दिया जाये;

(3) षष्ट पंक्ति में 'controlled by' इन शब्दों के पश्चात् 'Central or State' ये शब्द रख दिये जायें;

(4) और विधानमंडल उस मामले को इसी प्रकार निबटा सकता है जिस प्रकार की वह, उन परिस्थितियों में अपेक्षित या समुचित समझे इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'और वह या तो उस हित, हक, अधिकार, अंश या सम्पत्ति को खुले बाजार में बेच देगा या उन्हें अपनी ओर से न्यास के रूप में भारत के रक्षित बैंक को दे देगा; जो कि उससे समस्त आय, किराया, लाभ, ब्याज अथवा लाभांश को प्राप्त करेगा और उन्हें सम्बद्ध राज्यपाल या मंत्री के खाते में जमा करेगा और उस राज्यपाल या मंत्री द्वारा पद रिक्त करने पर इस प्रकार जमा की हुई सब राशियां उसे लौटा दी जायेंगी तथा न्यास की मूल पूंजी भी उसे लौटा दी जायेगी;

(ख) और द्वितीय कंडिका में:

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें; और

(2) अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'और यदि उसकी पूंजी, हक, अधिकार, अंश, ब्याज या सम्पत्ति में विशेष परिवर्तन हो जाये तो, वह ऐसा स्पष्टीकरण देगा जो कि विधानमंडल उससे मांगना अपेक्षित समझे।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2198 के प्रसंग से, अनुच्छेद 144 के खंड (6) में निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) प्रत्येक मंत्री जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के विधानमंडल के समक्ष पूर्णत: प्रकट कर देगा कि उसका किसी उद्यम, कारबार, व्यापार या उद्योग में क्या हक, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार हैं, चाहे वह निजी कार्य हो अथवा सरकार के सीधे स्वामित्व में हो अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित हो अथवा किसी प्रकार सरकार द्वारा सहायता प्राप्त अथवा रक्षित हो, और

विधानमंडल उन मामले को ऐसे प्रकार निबटा सकता है जिस प्रकार कि वह उन परिस्थितियों में अपेक्षित अथवा समुचित समझे।

प्रत्येक मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपने पद का परित्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 का खंड (6) हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 144 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 144 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 144-क

***अध्यक्ष:** श्री बी.एम. गुप्ते ने एक संशोधन की सूचना दी है कि अनुच्छेद 144 के पश्चात् एक नया अनुच्छेद 144-क रख दिया जाये। वह इस प्रकार है:

''कि अनुच्छेद 144 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'144-क बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा के राज्यों में आदिमजातियों के कल्याणार्थ भार-साधक एक मंत्री होगा, जो इसके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का अथवा किसी अन्य कार्य का भी भार-साधक हो सकेगा।' ''

मेरे विचार में, अभी जो अनुच्छेद स्वीकृत हुआ है उसमें यह समाविष्ट है। अत: यह पेश नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद 145

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): मैं संशोधन संख्या 2205 को पेश नहीं करना चाहता, किन्तु मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** जब अनुच्छेद पर बहस आरम्भ हो, तब आप ऐसा कर सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2204 और 2206 पेश नहीं किये गये।)

(संशोधन संख्या 136 और 176 को क्रमश: तृतीय और चतुर्थ सूचियों के थे, पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 145 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(2क) अपने कर्त्तव्यों के पालन में महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह लगा हुआ है, समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा और उस राज्य की ओर से पेश होते समय, भारत के राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत अन्य सब न्यायालयों में भी, जिनमें उच्चतम न्यायालय समाविष्ट है, सुनवाई का अधिकार होगा।' ''

मैं चाहता हूं कि महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह महाधिवक्ता है, समस्त न्यायालयों में, बिना किसी विशेष प्राधिकार के, सुनवाई का अधिकार हो, और जब वह अपने राज्य की ओर से पेश हो, तब उसे अन्य राज्यों में भी, तथा फेडरल न्यायालय में भी ऐसा ही अधिकार हो। मेरी युक्ति अनुच्छेद 63, खंड (3) के उदाहरण पर आधारित है। संविधान के मस्विदे के अनुच्छेद 62 में ऐसा हो उपबंध है जिससे कि भारत के महान्यायवादी को भारत के राज्य-क्षेत्र के सब न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार है। उस अनुच्छेद का खंड (3) इस प्रकार है:

> ''अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिये महान्यायवादी को भारत राज्य-क्षेत्र में के सब न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा।''

महान्यायवादी के लिये यह उपबंध है कि वह अपने पद के कारण भारत के राज्य-क्षेत्र में के प्रत्येक न्यायालय में पेश हो सकता है, किन्तु ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिससे कि महाधिवक्ता को उस राज्य के समस्त न्यायालयों में पेश होने की शक्ति या प्राधिकार हो, जिसमें कि वह लगा हुआ हो और अन्य न्यायालयों में भी तथा उच्चतम न्यायालय में भी पेश होने का प्राधिकार हो, जब किसी वाद में उसका राज्य एक पक्ष के रूप

में हो। यदि हम यहां अनुच्छेद 63 के खंड (3) के समान कोई खंड नहीं रखे तो प्रत्येक मामले में राज्य के लिये अपेक्षित होगा कि वह महाधिवक्ता को आवश्यकता होने पर पेश होने का प्राधिकार दे। इस विधि रूप उपबंध के बिना उसे प्रत्येक वाद में प्राधिकार प्राप्त करना होगा और पंजीकरण की कठिनाइयां हो सकती हैं। बिहार का वकील पश्चिमी बंगाल का महाधिवक्ता नियुक्त हो सकता है। शायद वह पटना के उच्च न्यायालय में पंजीबद्ध हो और कलकत्ता के उच्च न्यायालय में न हो। यह कठिनाई होगी, कि यद्यपि वह पश्चिमी बंगाल का महाधिवक्ता होगा, किन्तु उसे पंजीकरण की कठिनाइयों के कारण कलकत्ता उच्च न्यायालय के किसी अधीन न्यायालय में पेश होने का अधिकार नहीं होगा और यह भी हो सकता है कि जिस राज्य में वह महाधिवक्ता हो वह राज्य भी किसी अन्य राज्य में किसी वाद में एक पक्ष के रूप में हो: वहां भी उसे उस राज्य की ओर से जिसका वह महाधिवक्ता है, किसी लिखित प्राधिकार के बिना तथा पंजीकरण की कठिनाई के बिना, पेश होने का प्राधिकार मिलना चाहिये।

दंड प्रक्रिया संहिता में भी लोक-अभियोजक के लिये ऐसा ही उपबंध है। उस संहिता की धारा 493 में उसे प्राधिकार किया गया है कि वह उस जिले में किसी वाद में स्वत: पेश हो सकता है, जिसका कि वह लोक-अभियोजक है। व्यवहार वादों में पेश होने वाले सरकारी वकील के लिये भी ऐसा ही उपबंध है।

अत: मेरा निवेदन है कि वह एक आवश्यक उपबंध है, अन्यथा मैंने जो कठिनाइयां सुझाई हैं वे और अन्य ऐसी ही कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। यह उन उपबंधों के समान ही है जो राज्य की ओर से पेश होने वाले सब वकीलों के लिये रखे गये हैं और कोई कारण नहीं है कि महाधिवक्ता के लिये भी इसे सिद्धांतत: स्वीकार क्यों न कर लिया जाये। यदि इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाये कि महाधिवक्ता को उन सब न्यायालयों में बिना प्राधिकार सुनवाई का अधिकार होना चाहिये, जिनमें वह राज्य पक्ष के रूप में हो, तो मेरे विचार में यहां ऐसा उपबंध रख देना चाहिये। यदि रचना पर कोई आपत्ति हो तो मस्विदा समिति इस पर विचार करके समुचित मस्विदा पेश कर सकती है।

यह संशोधन इसी सिद्धांत पर आधारित है।

(संशोधन संख्या 179, 2208 और 2209 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरूद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को एक छोटे से मौखिक परिवर्तन के साथ पेश करना चाहता हूं, जिस पर मुझे पता लगा है, डाक्टर अम्बेडकर को कोई आपत्ति नहीं है। श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 145 के विद्यमान खंड (3) और (4) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:
>
> (3) महाधिवक्ता के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा तथा राज्यपाल द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक पायेगा।' ''

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

श्रीमान्, खंड (3), विद्यमान रूप में इस प्रकार है:

> "(3) राज्य के मुख्यमंत्री के पदत्याग पर, महाधिवक्ता अपने पद से निवृत्त होगा, पर वह अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति अथवा अपनी पुनर्नियुक्ति होने तक पदासीन रह सकेगा।"

इस उपबंध से बहुत सी असुविधा उत्पन्न हो जायेगी। मेरा निवेदन है कि महाधिवक्ता की पदावधि राजनैतिक धांधली पर निर्भर नहीं रखनी चाहिये। यह सर्वथा सम्भव है कि महाधिवक्ता किसी लम्बे वाद में व्यस्त हो, जिसमें राज्य को दिलचस्पी हो। अकस्मात् उसको हटाना राज्य के हितों पर विपरीत प्रभाव डालेगा। अत: यह अधिक अच्छा है कि उसकी पदावधि राज्यपाल के प्रसाद पर निर्भर रखी जाये।

मुझे पता लगा है कि यह संशोधन बिल्कुल उसी तरह का है, जैसा कि डाक्टर अम्बेडकर ने स्वयं सुझाया है और यह उन्हें स्वीकार्य है। अत: मैं आशा करता हूं कि सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या आप संशोधन संख्या 2211 को पेश नहीं कर रहे हैं?

***अध्यक्ष:** उन्होंने उसे अपने संशोधन में शामिल कर लिया है। यह बिल्कुल आपके संशोधन जैसा ही है, अत: अब उसके पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री जसपत राय कपूर:** अध्यख महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद ने जो संशोधन संख्या 2207 पेश किया है, उसके समर्थन में मुझे एक ही युक्ति और पेश करनी है। अनुच्छेद 145 के खंड (1) के अनुसार, प्रत्येक राज्य का राज्यपाल, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की अर्हता रखने वाले व्यक्ति को, राज्य का महाधिवक्ता नियुक्त करेगा। अब, श्रीमान्, जो पारंगत विधिवेत्ता होगा वह भी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह है और इस कारण यह महाधिवक्ता नियुक्त होने के लिये भी अर्ह होगा। यह संभव हो सकता है कि एक पारंगत विधिवेत्ता उच्च न्यायालय का नियमानुसार पंजीबद्ध अधिवक्ता न हो। यदि किसी पारंगत विधिवेत्ता को महाधिवक्ता नियुक्त कर दिया जाये और यदि संयोगवश वह उच्च न्यायालय का नियमानुसार पंजीबद्ध सदस्य नहीं है, तो उसे नि:संदेह किसी उच्च न्यायालय में या अधीन न्यायालय में पेश होने का हक नहीं होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए, श्रीमान्, मेरे विचार में यह अपेक्षित है कि श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन को, या कम से कम उसके सारांश को, स्वीकार कर लिया जाये। यह कहा जा सकता है कि यह तो आकस्मिकता तभी ही घटेगी कि उच्च न्यायालय में पंजीबद्ध न हुए विधिवेत्ता को महाधिवक्ता नियुक्त कर दिया जाये। मैं मानता हूं कि ऐसा हो सकता है। किन्तु जब हम इस संविधान में छोटी-छोटी बातों को रखने के लिये कटिबद्ध हैं, तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह कसर क्यों रहने दी जाये।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किये गये संशोधन (संख्या 2207) का विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। संशोधन का कारण यह प्रतीत होता है कि भारत के महाधिवक्ता और प्रांत के महाधिवक्ता के कृत्यों के विषय में भ्रान्ति है। भारत का महाधिवक्ता—जिसका नाम हमने इस संविधान में ''महान्यायवादी'' रखा है—वास्तव में भारत भर में कृत्य करने वाला महाधिवक्ता होगा। उदाहरणार्थ, जब भी संविधान की व्याख्या का कोई प्रश्न विद्यमान व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अधीन किसी न्यायालय में उठेगा, तो उसमें पेश होने के लिये भारत सरकार को सूचना दी जायेगी। अत: भारत के महाधिवक्ता को केन्द्र के हितों का समर्थन करने के लिये समस्त प्रांतीय न्यायालयों में पेश होना पड़ेगा।

प्रांत के महाधिवक्ता की स्थिति सर्वथा भिन्न है। अपने प्रांत में तो, स्वभावत: महाधिवक्ता होने के नाते, उसे प्रांत के समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार है। किन्तु अन्य प्रांतों में, महाधिवक्ता होने के नाते उसकी कोई हैसियत नहीं है। उसकी स्थिति वही होगी जो कि उच्च न्यायालय के एक अधिवक्ता की होती है और इसलिये उस पर लीगल प्रेक्टीशनर्स अधिनियम के उपबंध लागू होंगे। अन्य प्रांतों में महाधिवक्ता होने के नाते उसकी कोई स्थिति नहीं है, अत: कोई कारण नहीं है कि उसे भारत के महाधिवक्ता के समान स्थिति प्रदान की जाये। साधारणत: एक प्रांत का महाधिवक्ता अन्य प्रांत के उच्च न्यायालय में राज्य संबंधी मुकदमों के प्रयोजन से नहीं जाता। वह वहां अपनी निजी वकालत के अभिप्राय से जाता है, और इसलिये उस मामले में वह उन शर्तों के अधीन ही पेश हो सकता है, जो उस न्यायालय ने नियत की हैं, जिसमें कि वह पेश होना चाहता है।

साधारणत: उच्च न्यायालय का एक दूसरे के अधिवक्ता को अपने यहां आने देते हैं। किन्तु ऐसी घटनाएं हो चुकी हैं जबकि एक उच्च न्यायालय ने दूसरे के अधिवक्ता को विविध कारणों से, जो वैध या अवैध हो सकते हैं, अपने यहां पेश होने की अनुमति नहीं दी। किसी उच्च न्यायालय के अधिवक्ता के दूसरे उच्च न्यायालय में पेश होने का अधिनियम उस दूसरे उच्च न्यायालय के नियमों और नीति पर निर्भर है। अत: यह अधिक अच्छा है कि दूसरे उच्च न्यायालय में महाधिवक्ता के पेश होने का प्रश्न भी लीगल प्रेक्टीशनर्स अधिनियम द्वारा अधिनियमित हो, जो कि इस वृत्ति के अन्य सदस्यों पर लागू है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** महाधिवक्ता के लिये निजी वकालत का मैं समर्थन नहीं करता। जब वह अपने राज्य की ओर से अन्य उच्च न्यायालय में पेश हो, तभी यह प्रश्न उठता है। क्या मैं इस तथ्य की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर सकता हूं कि मैं नहीं चाहता कि महाधिवक्ता निजी वकालत करे? जब वह अपने राज्य की ओर से अन्य उच्च न्यायालय में पेश हो, तभी यह प्रश्न उठता है। अत: निजी वकालत का प्रश्न नहीं उठता। अपने राज्य की ओर से महाधिवक्ता के उच्चतम न्यायालय में पेश होने का क्या उपबंध रखा गया है?

***श्री के.एम. मुंशी:** महाधिवक्ता के अन्य प्रान्त में जाकर पेश होने के विषय में किसी को कठिनाई अनुभव हुई है। कोई कारण नहीं है कि इसके लिए विशेष उपबंध रखा जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। हमने इन मामलों के विषय में अपने संविधान में ब्रिटिश तरीके को आदर्श माना है। ब्रिटेन के महान्यायवादी की स्थिति मंत्री के बराबर होती है। डा. सेन ने एक संशोधन की सूचना दी थी कि महाधिवक्ता को वही पद दिया जाये, किन्तु उन्होंने उसे पेश नहीं किया। मैं इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि यदि हम इंग्लिस्तान के तरीके पर ही चलें तो अच्छा हो। मैं डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे हमें बतायें कि इस विषय में वे उस आदर्श पर क्यों नहीं चलते?

***डा. पी.के. सेन:** श्रीमान्, मैं इस बात को अच्छी तरह समझता हूं कि इस बहस को कम से कम मुझे तो लम्बा नहीं करना चाहिये और मैं अपनी वक्तृता को यथासंभव शीघ्र ही समाप्त करूंगा।

मैं इस सदन में जो कुछ कहना चाहता हूं वह मेरे संशोधन के समर्थन में नहीं है, क्योंकि उसे तो में पेश ही नहीं कर रहा हूं, वरन् महाधिवक्ता के पद के विषय में जो मूलभूत सिद्धांत हैं मैं उनके बारे में अपने विचार अभिव्यक्त करूंगा। इस समय महाधिवक्ता नि:संदेह प्रान्त का सुविख्यात वकील होता है, किन्तु उसके कृत्य तथा कर्त्तव्य केवल ये ही हैं कि वह कुछ मामलों में सरकार को परामर्श दे जो उन वादों में उठते हैं जो या तो सरकार और किसी गैर-सरकारी पक्ष के बीच में हों या ऐसे पक्षों के मध्य हों जो किसी न किसी प्रकार सरकार से सम्बद्ध हों। उदाहरणार्थ कोई न्यास की सम्पत्ति सरकार के पास हो और कोई उस न्यास के विषय में विवाद करे। इस प्रकार के कई मामलों में महाधिवक्ता की राय पूछी जाती है। उसका कार्यालय वास्तव में विधि सम्बन्धी परामर्श का केन्द्र होता है इसी प्रकार लीगल रिमेम्ब्रेन्सर या न्यायिक सचिव का कार्यालय भी होता है। इनमें से किसी मामले में सरकार उसकी राय पूछने या उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है और कई विषयों में उसकी खास बात की परवाह नहीं की जाती। मान लीजिये कि श्रम अथवा राजस्व अथवा स्थानीय स्वशासन का भार-साधक मंत्री कुछ कानून बनाना चाहता है। नि:संदेह वह महाधिवक्ता से परामर्श करता है किन्तु वह महाधिवक्ता की सम्मति की चिन्ता न करके किसी अन्य घटिया, अनुत्तरदायी अधिवक्ता की राय ले सकता है और उस पर चल सकता है। मुझे यह सब सिद्धांतों के विरुद्ध दिखाई देता है। मेरे विचार में महाधिवक्ता का पद इससे कहीं ऊंचा होना चाहिये। उसकी स्थिति मंत्री के बराबर होनी चाहिये। फिर विधि मंत्री बहुत हद तक सरकार की विधायिनी और प्रशासनीय

रचना पर प्रभाव डाल सकता है। इस बात को बहुत हद तक भुला दिया गया है, और वास्तव में, विधि-मंत्री के अधीन मुकुट का विधि-अधिकारी, महाधिवक्ता मुश्किल से ही कुछ कर सकता है, चाहे वह बहुत विद्वान व्यक्ति हो जो कि विधान कार्य पर प्रभाव डाल सके। उसकी शक्तियां लगभग नहीं के समान होती हैं। जैसी कि मेरी धारणा है, महाधिवक्ता की स्थिति बहुत अधिक ऊंची होनी चाहिये। जब तक उसकी स्थिति मंत्री के बराबर न हो, उसके लिए अपने कर्त्तव्यों का समुचित रूप में निर्वहन करना असंभव है। दूसरे शब्दों में, इसका यह अर्थ है कि मेरी विनीत राय के अनुसार, महाधिवक्ता पर विधि-विभाग का कार्यभार होना चाहिये। न्यायालयों में उपस्थिति का प्रश्न उठ सकता है। फिर वह मुकदमों में क्यों पेश होता फिरे? सब समय महाधिवक्ता यह समझता है कि सरकार की ओर से छोटे न्यायालयों में या उच्च न्यायालय में पेश होकर फीस कमाना उसका विशेषाधिकार है। अस्तु, यदि उस पर विधिमंत्री के कार्यालय के कर्त्तव्यों का भी भार रख दिया जाये तो यह बात महत्त्व की नहीं रहेगी उसका सर्वाधिक प्रमुख कर्त्तव्य यह होगा कि वह सरकार के विधान सम्बन्धी और कार्यपालिका ढांचे में उच्च स्तर स्थापित करे और कायम रखे। फिर वह सब मामले में फीस के लिये जाकर पेश नहीं हो सकता; किन्तु उच्च नीति सम्बन्धी मामले में, वह नि:संदेह ही महाधिवक्ता की हैसियत से अपनी सरकार की नीतियों और सिद्धांतों की व्याख्या, उच्च स्तर पर, न्यायालयों के समक्ष जाकर दे सकता है। आजकल हम बहुत संकट के समय से गुजर रहे हैं बहुत सी अस्थिर नीतियां दिखाई देती हैं और सब प्रकार के विभेदात्मक विधान बनाये जा रहे हैं जिनसे प्रकट होता है कि उन्हें अत्यन्त बुद्धिहीनता तथा अकुशलता से बनाया गया है। मेरा निवेदन यह है कि महाधिवक्ता उन थोड़े से लोगों में से है, जिसे यदि विधिमंत्री के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाये, तो वह सब प्रकार से विधान की नीति के अधिनियमन, रूपकरण और निश्चय करने में बहुत बड़ा भाग ले सकता है। मेरी तुच्छ सम्मति में, विधि-राज्य ऐसा राज्य है जो सरकार को सब प्रकार की विघटनशील शक्तियों से बचा सके। इन उच्च कृत्यों का भार-धासक विधिमंत्री हो तो सरकार के लिये यह संभव होगा कि वह ठीक तरीके से और ठीक दिशा में बढ़ सके। ये ही बातें मैं अनुच्छेद 145 के सम्बन्ध में विनम्रतापूर्वक सदन के समक्ष पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि जो बहस हुई है उस पर मेरे लिये कुछ और कहना अपेक्षित है। मैं तो बस यही कहना चाहता हूं। मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 2210 स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन संख्या 2207 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 145 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खंड जोड़ दिया जाये।

[अध्यक्ष]

(2क) अपने कर्त्तव्यों के पालन में, महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह लगा हुआ है, समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा, और उस राज्य की ओर से पेश होते समय, भारत के राज्यक्षेत्र के अंतर्गत अन्य सब न्यायालयों में भी, जिसमें उच्चतम न्यायालय समाविष्ट है, सुनवाई का अधिकार होगा।' ''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, इस संशोधन की संख्या क्या है?

***अध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर फिर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 145 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये।

'(2क) अपने कर्त्तव्यों के पालन में, महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह लगा हुआ है, समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा और उस राज्य की ओर से पेश होते समय, भारत के राज्यक्षेत्र के अंतर्गत अन्य सब न्यायालयों में भी, जिनमें उच्चतम न्यायालय समाविष्ट है, सुनवाई का अधिकार होगा।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 2210 पर मत लेता हूं, जिसमें 2211 भी समाविष्ट है:

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 145 के खंड (3) और (4) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

(3) महाधिवक्ता राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा, तथा राज्यपाल द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक पायेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 145 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 145 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम कल सवेरे के 8 बजे तक के लिये उठ जायेंगे।

इसके पश्चात् संविधान सभा बृहस्पतिवार, 2 जून 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 8. VIII-14.49
390

अंक 8

संख्या 14

बृहस्पतिवार
2 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

सभा स्थगन ...799-802
संविधान का प्रारूप–(*जारी*) ...802-881
(अनुच्छेद 137 से 145 पर विचार)

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 2 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

सभा-स्थगन

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि प्रतिदिन जो संशोधन आ रहे हैं उनकी बाढ़ के सामने टिकना सदस्यों के लिये कठिन है। संशोधनों के आने के विरुद्ध मैं शिकायत नहीं करता हूं, मैं तो केवल यही चाहता हूं कि हमें इतना अवकाश तो मिलना चाहिये कि हम उन पर सावधानी से विचार कर सकें और तैयार होकर आ सकें और यदि आवश्यक हो तो अनुपूरक संशोधन प्रस्तुत कर सकें। हम भारत के लिये ऐसा संविधान पारित कर रहे हैं, जो संसार में सर्वोत्तम हो। हर एक आकार-प्रकार की और भिन्न-भिन संख्याओं युक्त संशोधनों की सूचियां, जिनकी कल्पना की जा सकती है, आ रही हैं जिनमें बड़े-बड़े उग्र परिवर्तन करने वाले संशोधन वर्तमान हैं। कुछ संशोधन तो स्वयं संविधान पर पूर्ण रूप से नये संशोधन हैं, न कि वे केवल संशोधनों पर संशोधन के रूप में ही हैं, यद्यपि उनको नियमित संशोधनों ''की ओर निर्देश करते हुये'' अथवा संशोधनों पर संशोधनों तक के रूप में रूपान्तर कर प्रस्तुत किया जाता है। मैं इस प्रवृत्ति का विरोध नहीं करता हूं। यह सच है कि यदि सदस्य उचित और आवश्यक समझें तो उन्हें अपनी सम्मति बदलने का अधिकार होना चाहिये। अतः क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि उन सदस्यों की एक समिति बनाई जाये जो इन विषयों में वास्तविक रुचि रखते हों? जिन संशोधनों को सदस्य रखना चाहते हैं, उनकी हम एक पूर्ण रूपरेखा बनायें और फिर हम उन पर विचार करने के लिये कुछ समय रखें और यदि आवश्यक हो तो और आगे संशोधन रखें। मैं देखता हूं कि मसौदा-समिति एक कड़ी कसौटी पर कसी जा रही है। बिना किसी सूचना के उन्हें प्रतिदिन बहुत से संशोधनों को देखना पड़ता है—और इसके लिये मैं उनसे पूर्ण सहानुभूति रखता हूं। अतः मैं अनुभव करता हूं कि सदस्यों को कुछ समय दिया जाये, जिससे वे यह निश्चित कर

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

सकें कि कौन-कौन से संशोधन वास्तव में आवश्यक हैं। संविधान-निर्माण-कार्य में काल को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये और मुझे विश्वास है कि किसी प्रकार से भी 15 अगस्त सन् 1949 तक हम संविधान पारित नहीं कर सकते हैं। अतः क्या माननीय सदस्यों के अथवा आपके समक्ष मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि एक या दो माह तक के लिये कार्य-स्थगन किया जाये? इस समय में जो लोग संशोधन भेजना चाहते हैं, वे कठिन परिश्रम करें और जितने संशोधन भेजना चाहते हैं, उन सब को एक ही बार भेज दे जिससे कि हम तैयार होकर आ सकें। इस दशा में जो वाद-विवाद होगा वह अधिक लाभदायक होगा। इस समय नये संशोधनों पर सदस्यों में परस्पर संभ्रम वर्तमान है, अतः वाद-विवाद न्यूनाधिक रूप में विषय की साधारण रूपरेखा तक ही सीमित रहता है, जो विशेष लाभदायक नहीं है। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि हमें पर्याप्त समय दिया जाये। ऐसी संभावना है कि ग्रीष्म-ताप का, जो दो या तीन दिन से कम हो गया है, कदाचित् पुनः आवेश के साथ प्रादुर्भाव हो और यह भी एक बात है, जिस पर विचार किया जाये। सभा से इन सब विषयों पर विचार करने और कोई मार्ग खोज निकालने के लिये मैं निवेदन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत : जनरल): सभा-स्थगन के मैं विरुद्ध हूं। एक या दो माह के लिये सभा स्थगित करने के श्री नजीरुद्दीन अहमद के सुझाव पर मुझे आश्चर्य हुआ है। मैं समझता हूं कि संशोधनों पर नये संशोधन संविधान पर चर्चा करने के अंतिम दिन तक आते रहेंगे और उनका अन्त नहीं होगा। यदि हम इस संविधान को समाप्त करना चाहते हैं, तो ग्रीष्म-ताप का बिना विचार किये हुय हमें समवेत होते रहना चाहिये। यदि हम सभा स्थगित करते हैं, तो इस संविधान के पारित करने के लिये हमें आगामी वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। चाहे कुछ भी हो हमें समवेत होते रहना चाहिये और संविधान को समाप्त करना चाहिये। इसके साथ ही साथ मैं समझता हूं कि संशोधनों को समझने और उन पर विचार करने के लिये हमें पूरा-पूरा समय मिलना चाहिये, पर इस कार्य के लिये हमें सभा को स्थगित नहीं करना चाहिये। जब तक समाप्त न कर लें तब तक हमें कार्य जारी रखना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन का प्रथम भाग वास्तव में युक्तियुक्त है, कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे पास संशोधन पिछली रात के 9 या 10 बजे पहुंचते हैं और हमारे लिये यह बहुत कठिन कार्य हो जाता है कि हम किस समय संशोधनों पर संशोधन भेजें, जब कि हम सुबह होते ही आठ बजे समवेत होते हैं इस विचार से उनका यह तर्क कि कुछ समय दिया जाये, युक्तियुक्त है। पर सभा स्थगित करने के विषय में मैं उनको नहीं समझ

सका और न मैं सभा स्थागित करने के पक्ष में हूं। मैं यह सुझाव रखूंगा कि जब ये संशोधन आ जाते हैं तो आप हमें एक दिन और दे दिया करें, अभ्रिपाय यह है कि इन महत्त्वपूर्ण संशोधनों पर एक दिन छोड़कर चर्चा की जाये, न कि दूसरे दिन जिससे कि यदि हम संशोधनों पर संशोधन रखना चाहें तो ऐसा कर सकें। केवल यही उपाय है और ऐसा करने से सदस्य समय पर संशोधन भेज सकेंगे। सभा स्थगित करने के पक्ष में मैं नहीं हूं, हमें समवेत होते रहना चाहिये और संविधान को समाप्त करना चाहिये। श्रीमान्, मेरा विचार यह है।

***अध्यक्ष:** सदस्यों को नए संशोधन के लिए, जिनको वे रखना चाहते हैं, अवसर देने का मैं यथासंभव प्रयत्न करता रहा हूं। सुझाव यह है कि जो संशोधन आदेश-पत्र पर है, यदि उस पर संशोधन रखा जाये तो इस नये संशोधन पर अन्य और संशोधनों के लिए मैं और समय दूं। मैं नहीं समझ पाता हूं कि यदि हम इस प्रकार आगे बढ़ेंगे तो क्या कभी संशोधनों का अन्त हो पायेगा, क्योंकि संशोधन रखने के लिए हम समय दे ही चुके हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, कार्यालय से नये संशोधन पूर्व रात्रि को आते हैं और वे सायंकाल के साढ़े नौ बजे मिलते हैं।

***अध्यक्ष:** हमारे पास 4000 संशोधनों से भी अधिक संशोधन आरंभ में आ गए हैं और उसके बाद इन संशोधनों पर संशोधन आ रहे हैं यदि यह सुझाव किया जाता है कि इन संशोधनों पर संशोधनों के लिए हम और अधिक समय दें, तो जैसा कि मैंने कहा था इन संशोधनों का अन्त नहीं होगा। यदि कोई ऐसा विषय है जिस पर और अधिक विचार करने की आवश्यकता है और यदि किसी संशोधन द्वारा कोई ऐसा विषय प्रस्तुत किया जाता है, जिसके बारे में सदस्य यह समझते हैं कि वे अपने विचार प्रकट नहीं कर सके हैं, तो उस विशेष संशोधन पर विचार स्थगित करने के लिए यह एक आधार होगा और यदि सदस्यों की यही इच्छा होगी, तो किसी विशिष्ट अनुच्छेद अथवा संशोधन पर, जिसके लिये अधिक विचार-विमर्श अपेक्षित है, चर्चा स्थगित करने के मार्ग में मैं बाधा नहीं डालूंगा, पर मैं समझता हूं कि किसी सदस्य के लिये नये संशोधन रखने अथवा ग्रीष्म-ताप के कारण सभा का स्थगन न तो सभा ही चाहती है और न मैं ही चाहता हूं। मैं समझता हूं कि ग्रीष्म-ताप के कारण स्थगित करने के प्रश्न पर सदस्यों द्वारा कुछ सुझाव अथवा विचार किया गया था, पर हमारे सौभाग्य से जैसे ही ग्रीष्प-ताप के कारण सभा स्थगित करने का प्रश्न उठा, किसी प्रकार ग्रीष्म-ताप कम हो गया। इस कारण मैं समझता हूं कि वह आंदोलन भी दब गया। मैं आशा करता हूं कि ग्रीष्म-ताप के कारण सभा स्थगित करने के किसी विचार को लाये बिना हम कार्य करते रहेंगे। परन्तु यदि किसी विशिष्ट पद के स्थगन करने के लिये कोई सारवत् आधार है, तो उस पर विचार करने के लिये मैं सदैव उद्यत हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, एक वास्तविक कठिनाई है जिस पर विचार करने के लिए मैं आपसे निवेदन करूंगा। सदस्यों को, अधिकतर बहुत से सदस्यों को, संशोधनों अथवा संशोधनों पर संशोधनों की सूचना रात्रि के लगभग साढ़े दस बजे मिलती है और आप स्वयं विचार सकते हैं कि संशोधनों की प्राप्ति के पश्चात् उनको सावधानी से अध्ययन करने के लिए अधिक समय नहीं रहता है। यदि इन संशोधनों को कुछ जल्दी भेजा जा सकता है, तो आज प्रातःकाल जो शिकायत की गई है वह मैं समझता हूं कि कम हो जायेगी, पर यदि हमें ऐसे समय ही संशोधन प्राप्त होंगे जैसे कि अब साढ़े दस और ग्यारह बजे के बीच में, तब तो यह शिकायत अवश्य बनी रहेगी।

***अध्यक्ष:** यदि कोई ऐसा संशोधन है, जिस पर विचार-विमर्श अपेक्षित है और जिसके लिए सदस्य समय चाहते हैं तो इस प्रकार के किसी सुझाव पर विचार करने के लिए मैं उद्यत रहूंगा। सदस्यों के पास संशोधन दस बजे पहुंचते हैं, क्योंकि दोपहर बाद पांच बजे तक संशोधन आते हैं और दस बजे से पूर्व वे सदस्यों को नहीं मिल सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** इसमें न तो कार्यालय का दोष है और न हमारा ही।

***अध्यक्ष:** पर टाइप करने के पश्चात् ही तो वे भेजे जायेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा:** कार्यालय से—मेरा आशय मसौदा समिति से है—हमें दस बजे संशोधन मिलते हैं।

***अध्यक्ष:** मसौदा-समिति भी प्रति दिवस समवेत हो रही है और इस सभा के समाप्त होने के पश्चात् वे प्रति दिवस समवेत होते हैं और जो कुछ हुआ है, उस सब पर उन्हें विचार करना पड़ता है तथा अन्य बातों पर विचार करते हुये उन्हें अपने मसौदे बनाने पड़ते हैं और ये मसौदे लगभग पांच बजे कार्यालय में आते हैं और उसके पश्चात् उनको टाइप किया जाता है और भेजा जाता है। इन सब कामों में समय लगता ही है। परन्तु जैसा कि मैंने कहा था, किसी विशिष्ट पद पर, जिसके बारे में सदस्यों को संदेह है, चर्चा स्थगित करने पर विचार करने के लिए मैं सदैव तत्पर रहूंगा।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 146

***अध्यक्ष:** अब हम ऐसे अनेक अनुच्छेदों पर विचार करेंगे, जो न्यूनाधिक रूप में उन अनुच्छेदों के अक्षरशः समान रूप हैं, जिनको हम विगत कुछ दिनों में पारित कर चुके

हैं और मैं समझता हूं कि इनमें से बहुत से अनुच्छेदों पर अधिक चर्चा नहीं होगी। अनुच्छेद 146।

(संशोधन संख्या 2212 पेश नहीं किया गया।)

प्रो. शाह ने संशोधन संख्या 2213 प्रस्तुत किया है। क्या आप उसे पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): जी हां, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 146 के खंड (1) में 'Governor' (राज्यपाल) शब्द के स्थान में 'the Government of the State concerned' (सम्बद्ध राज्य की सरकार) शब्द रखे जायें।

कि अनुच्छेद 146 के खंड (2) में जहां 'Governor' (राज्यपाल) शब्द पहली बार आता है उसके स्थान में 'Government of the State' (उस राज्य की सरकार) शब्द रखे जायें।''

अत: संशोधित खंड इस प्रकार का हो जायेगा:

''All executive action of the Government of a State shall be expressed to be taken in the name of the Government of the State concerned.''

[किसी राज्य की सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही सम्बद्ध राज्य की सरकार के नाम से की हुई कही जायेगी।]

और ऐसा ही परिवर्तन दूसरे खंड में हो जायेगा।

मैं क्यों यह संशोधन पेश करता हूं, इसका कारण यह है कि अपने संविधान में राज्यपाल को, जो कि आखिरकार राज्य का एक अस्थायी मुखिया ही है और जिसका केवल कुछ वर्षों के लिए सरकार के समस्त प्रशासन कार्य को उसके नाम से किया हुआ समझने के लिए निर्वाचन हुआ है, इतना स्वीय महत्त्व देना हमारे लिए यदि अनुपयुक्त न कहा जाये तो अस्वाभाविक अवश्य है। उन देशों के लिए तो यह ठीक है जहां वंशानुगत, स्थायी तथा यावज्जीवन राजा राज्य का मुखिया होता है। फिर भी वह उस सीमा तक अस्वीय है कि उसको सम्राट की सरकार कहा जाता है। पर इस विषय में यह सुझाव कि समस्त प्रशासन कार्य राज्यपाल के नाम में समझा जाये, उस लोकतंत्रात्मक गणराज्य से मुझे पूर्णतया असंगत प्रतीत होता है, जिसकी हम स्थापना करने का विचार कर रहे हैं। राज्यपाल आयेगा

[प्रो. के.टी. शाह]

और जायेगा। अधिक से अधिक वह पांच वर्ष के लिये आयेगा, अतः उसे मुखियागिरी का वह स्थायित्व तथा वह शाश्वत अधिकार प्राप्त नहीं है, जो वंशानुगत सम्राट पद्धति को प्राप्त है। अतः यह सुझाव करना कि प्रत्येक प्रशासन कार्य राज्यपाल के नाम से हो, अनुपयुक्त है और वास्तविक नहीं है।

आज भी भारतीय सरकार के आदेश अभिव्यक्त होते हैं और सदैव भारतीय सरकार के आदेश के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। इस स्वीय महत्त्व की अपेक्षा, जो इस खंड द्वारा व्यक्तिगत रूप में राज्यपाल को दिया हुआ प्रतीत होता है, इस प्रकार की कोई अस्वीय अभिव्यक्ति सरकार के उस रूप के लिये अधिक उपयुक्त तथा समुचित होगी जिसकी हम स्थापना करने जा रहे हैं।

मैं यह समझता हूं कि यह केवल सरकार के प्रशासन पक्ष तक ही सीमित है। परन्तु फिर भी मैं समझता हूं कि जो तर्क मैं प्रस्तुत कर रहा हूं वह अन्तिम होना चाहिये कि सरकार का कार्य अस्वीय हो और, जैसी स्थिति हो, क अथवा ख प्रान्तीय सरकार अथवा ग या घ राज्य सरकार के नाम से हो।

मैं यह मानता हूं कि आदेशों पर सचिव के हस्ताक्षर होंगे। जब ऐसा है तो यह और भी अधिक समुचित होगा कि वे सम्पूर्ण राज्य के नाम से कहे जायें न कि राज्यपाल के नाम से जो उन पर हस्ताक्षर नहीं करता है।

इसके अतिरिक्त यदि विचार यह है कि समस्त प्रशासन कार्यों पर राज्यपाल द्वारा भी हस्ताक्षर किये जायेंगे, अतः यह अधिक समुचित होगा कि उनको राज्यपाल के नाम से माना जाये, तो मैं और भी अधिक जोरदार आपत्ति करूंगा। क्योंकि इस दशा में पूर्वोक्त तर्क के अतिरिक्त, स्वयं राज्यपाल के लिये सरकार के प्रत्येक आदेश पत्र पर गौर करना असम्भव होगा और फल यह होगा कि राज्य तंत्र कार्य नहीं कर सकेगा। अतः मैं सुझाव रखता हूं कि सरकारी कार्यों को राज्यपाल के नाम से होने की अपेक्षा हम उसके लिये एक अधिक उपयुक्त तथा अधिक स्वीय अभिव्यक्ति—सम्बद्ध राज्य की सरकार—रखें, और मैं समझता हूं कि इस सुझाव पर कोई आपत्ति नहीं होगी।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं समझती हूं कि इस अनुच्छेद की भाषा ठीक अनुच्छेद 64 की भाषा के समान है जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2214 मसौदा सम्बन्धी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं। अनुच्छेद 146 अनुच्छेद 130 का केवल एक तर्कयुक्त परिणाम है। अनुच्छेद 130 में यह कहा गया है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी। ऐसा होने से इसका केवल यही तर्कयुक्त परिणाम निकलता है कि प्रशासन-कार्य की समस्त अभिव्यक्ति राज्यपाल के नाम से होगी जैसा कि अनुच्छेद 146 में प्रावहित है।

मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह ने जो पर्यवेक्षण किये हैं कि पूर्व शासन-व्यवस्था में सब प्रशासन-कार्य भाारतीय सरकार के नाम से अभिव्यक्त होता था, इस पर मेरा उत्तर यह है कि यह इस तथ्य के कारण था कि प्राचीन प्रणाली के अनुसार भारत की असैनिक और सैनिक सरकार गवर्नर जनरल में निहित नहीं थी, वरन् परिषद्युक्त गवर्नर जनरल में थी और इसके परिणामस्वरूप समस्त कार्य भारतीय सरकार के नाम से अभिव्यक्त किये जाते थे। जहां तक अनुच्छेद 130 का सम्बन्ध है, इस स्थिति में पूर्ण परिवर्तन हो गया है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 146 के खंड (1) में 'Governor' (राज्यपाल) शब्द के स्थान में 'The Government of the State concerned' (सम्बद्ध राज्य की सरकार) शब्द रखे जायें।

कि अनुच्छेद 146 के खंड (2) में जहां 'Governor' (राज्यपाल) शब्द पहली बार आता है उसके स्थान में 'Government of the State' (राज्य की सरकार) शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 146 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 146 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 147

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 147 संविधान का अंग बने।''

संशोधन संख्या 2215, श्री कामत्।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, यह निषेधात्मक है।

***अध्यक्ष:** एक विकल्प भी है। श्री कामत, आप किस भाग को पेश करना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रथम भाग को पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** वह तो निषेधात्मक है।

***श्री एच.वी. कामतः** तो मैं उसे पेश नहीं करूंगा, पर श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद पर भाषण दूंगा।

(संशोधन संख्या 2216, 2217, 2218, 2219 और 2220 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद को बने रहने देने के लिये मैं कोई मान्य कारण नहीं समझ पाता हूं। यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि यह अनुच्छेद ठीक उसी आधार पर है जिस आधार पर हम राष्ट्रपति के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद स्वीकार कर चुके हैं। पर अब चूंकि हमने राज्य के लिये मनोनीत राज्यपाल स्वीकार कर लिये हैं, मेरे विचार से यदि इस अनुच्छेद को पूर्णतया अपमाजित न किया जाये, तो कम से कम इसमें रद्दोबदल तो करना ही होगा।

इस अनुच्छेद में कुछ ऐसी बाते हैं जो राज्यों के लिये मनोनीत राज्यपालों के सिद्धांत से पूर्णतया असंगत नहीं, तो कम से कम सानुरूप तो नहीं हैं। एक ही उदाहरण लीजिये यदि सभा इस अनुच्छेद के खंड (ग) पर सावधानी से विचार करे तो उसे यह विदित होगा कि मनोनीत राज्यपाल को मंत्रिमंडल की तत्कथित दिन प्रतिदिन की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की शक्ति दे दी गई है। मुझे आश्चर्य है कि किसी ऐसे विषय को मंत्रिमंडल के विचारार्थ प्रस्तुत कराने के लिये राज्यपाल मुख्यमंत्री को क्यों आमंत्रित करे, जिस पर मंत्री विनिश्चय कर चुका है, पर मंत्रिमंडल द्वारा उस पर विचार नहीं किया गया है। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय पर विनिश्चय करना पूर्णतया मंत्रिमंडल के हाथ में है और राज्यपाल को कोई ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं है न उसे कोई विशेषाधिकार, शक्ति अथवा अधिकार है कि वह इसमें दखल दे सके। मंत्रिमंडल की कार्यवाही का प्रबंध करना, परस्पर विचार-विमर्श करना और यदि वे चाहते हैं तो कोई विशिष्ट प्रक्रिया निश्चित करना पूर्णतया मंत्रिमंडल का कार्य है। यदि किसी मंत्री ने किसी विषय पर विचार कर लिया है, पर समूची परिषद् ने उस पर विचार नहीं किया है, तो राज्यपाल दखल नहीं दे सकता है और मुख्यमंत्री को यह नहीं कह सकता है कि आप इसे मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत करे। मुख्यमंत्री और उसके साथी यह विनिश्चय करने के लिये पर्याप्त रूप से सक्षम हैं कि परिषद् के समक्ष कौन सा विषय प्रस्तुत किया जाये और किस विषय को उसके समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। मेरे विचार से यह उस सांवैधानिक लोकतंत्र के आदेशों के समनुकूल है, जिसको हम राज्यों में स्थापित करना चाहते हैं। मेरे मित्र श्री बी. दास पूछते हैं कि लोकतंत्र कहां है? मैं भी उनसे सहमत हूं कि समस्त विश्व में सच्चा लोकतंत्र कहीं भी नहीं है। परन्तु हम उसके सन्निकट पहुंचना चाहते हैं। मैं आशा करता हूं कि यदि हम सब मिलकर प्रयत्न करें, तो निकट भविष्य में लोकतंत्र के सन्निकट पहुंच जायेंगे।

इसके पश्चात्, श्रीमान्, इस अनुच्छेद के खंड (ख) में एक बात और है जो मेरे तुच्छ निर्णय के अनुसार उस नई व्यवस्था के विरुद्ध है, जिसको हमने राज्यों के लिये स्वीकार

कर दिया है। इस खंड के अधीन राज्य-प्रशासन सम्बन्धी किसी सूचना को राज्यपाल मंगा सकता है। यह एक प्रकार से उल्टी गंगा बहाना है। मैं समझता हूं कि राज्यों में मनोनीत राज्यपाल होने के कारण इस बात का विनिश्चय करना राज्य के मुख्यमंत्री अथवा प्रधानमंत्री पर छोड़ना चाहिये कि राज्यपाल के समक्ष वह किस विषय को रखे और किस को न रखे। यदि वह और उसके साथी सामूहिक रूप से विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी विशिष्ट विषय को राज्यपाल के पास भेजा जाये, तो अवश्य वे उस विषय को राज्यपाल के पास भेज सकते हैं। परन्तु राज्यपाल को राज्य के विषयों के प्रशासन और विधान की प्रस्थापनाओं के सम्बन्ध में कोई सूचना मंगाने का कोई अधिकार नहीं है। इस अनुच्छेद का यह एक और पहलू है, जो मेरे विचार से उस सांवैधानिक लोकतंत्र के सिद्धांत का उल्लंघन करता है, जिसकी स्थापना हम राज्यों में करने वाले हैं तथा मनोनयन के सिद्धांत के विरुद्ध है, जिसे हम राज्य के राज्यपालों के लिये स्वीकार कर चुके हैं। मैं बहुत प्रसन्न होता, यदि यह अनुच्छेद अपमार्जित कर दिया जाता। ये सब सरकारी कार्यवाही के विषय हैं जिनके प्रति मैं समझता हूं—बल्कि निश्चित रूप से जानता हूं—कि सरकारी कार्य संचालन के विषय पर प्रत्येक प्रान्त तथा राज्य में पुस्तिकायें हैं। इन बातों को आसानी से बाद में लिया जा सकता था और सरकारी कार्य-संचालन की प्रक्रिया के रूप में उन पुस्तिकाओं में समाविष्ट किया जा सकता था। परिवर्तित रूप में अनुच्छेद 131 के स्वीकार कर लेने के पश्चात् जो नई व्यवस्था हमने अंगीकार की है, उससे यह अनुच्छेद जिस रूप में है, उस रूप में असंगत है। अत: माननीय डा. अम्बेडकर से मैं निवेदन करूंगा कि यदि उन्होंने इस अनुच्छेद पर अभी विचार नहीं किया है, तो उस पर अपने और अपने बुद्धिमान सहयोगियों द्वारा और अधिक परिपक्व विचार करने के लिये इसको स्थगित करें। यदि इस अनुच्छेद को अपमार्जित नहीं किया जा सकता है, तो मैं आशा करता हूं कि गत कुछ दिनों में जो कुछ हुआ है, उसको ध्यान में रखते हुये उसे पूर्ण रूप से बदल तो दिया ही जायेगा और इस आशय के लिये इसको कुछ समय के लिये स्थगित कर दिया जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय मुझे खेद है कि मैं अपने माननीय मित्र श्री कामत के इस सुझाव से सहमत नहीं हो सकता हूं कि इस अनुच्छेद को निकाल दिया जाये। अनुच्छेद 146, जिसको हम अभी पारित कर चुके हैं, यिद उसमें दिये हुये उपबंध पर वे कुछ और अधिक ध्यान देंगे तो मैं समझता हूं कि वे इस अनुच्छेद को संविधान में रखने की बुद्धिमत्ता को स्वीकार करेंगे। इस समय अनुच्छेद 146 के अधीन प्रत्येक आदेश, जो मंत्रिमंडल या मंत्रालय या किसी मंत्री द्वारा दिया जाता है, तो वह एक ऐसा आदेश होगा जो राज्यपाल के नाम से प्रकाशित तथा प्रख्यापित होगा। यदि अनुच्छेद 147 को न रखें तो ऐसा कोई अनुच्छेद नहीं है, जो राज्यपाल को उसके नाम से किये गये विभिन्न कार्यों और उसके नाम से पारित तथा जारी किये

[डा. पी.एस. देशमुख]

गये आदेशों का ज्ञान करा सके। मेरे मित्र ने कहा है कि यह दैनिक कार्य में भी निर्दिष्ट होगा। श्रीमान्, मैं उनको यह कहने का साहस करता हूं कि साधारण विषयों के सम्बन्ध में, जो महत्त्वपूर्ण नहीं है और दैनिक कार्य के रूप के हैं, मुझे विश्वास है कि कोई भी राज्यपाल उन पर प्रश्न करने की अथवा मुख्यमंत्री से यह प्रार्थना करने की कि इन विषयों को विचारार्थ मंत्रिमंडल के पास भेजा जाये, बुद्धिमत्ता न करेगा?

***श्री एच.वी. कामतः** इसके लिये क्या प्रत्याभूति है?

***श्री पी.एस. देशमुखः** राज्यपाल की बुद्धिमत्ता ही प्रत्याभूति है तथा उस प्राधिकारी की बुद्धिमत्ता जो नियुक्त करेगी ऐसे...।

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने पूछा था कि इसके लिये प्रत्याभूति क्या है?

***श्री पी.एस. देशमुखः** मैंने कहा था कि राज्यपाल की बुद्धिमत्ता तथा उस अधिकारी की बुद्धिमत्ता जो राज्यपाल को नियुक्त करेगा, प्रत्याभूति है।

श्रीमान्, यह अनुच्छेद महत्त्वहीन दैनिक कार्यों की ओर निर्दिष्ट नहीं होगा। वरन् यह केवल उन आदेशों की ओर निर्दिष्ट होगा जिनके बारे में राज्यपाल यह समझे कि उन के द्वारा अधिक व्यापक रूप से प्रतिक्रिया होने की संभावना है और वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि मंत्रिमंडल में समस्त मंत्रियों द्वारा उन पर विचार करना बुद्धिमानी का कार्य होगा। इस निदेश के अतिरिक्त कि इस प्रश्न पर मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया जाये, अन्य कोई बात नहीं है। मंत्रिमंडल के विनिश्चय को रद्द करने का प्राधिकार राज्यपाल को नहीं दिया गया है। यह अनुच्छेद राज्यपाल को केवल यह शक्ति प्रदान करता है कि जब कभी वह यह समझे कि किसी मंत्री के विनिश्चय पर कुछ और अधिक ध्यान दिया जाये, तो समूचे मंत्रिमंडल को उस पर विचार करने के लिये वह कहेगा।

मेरे मित्र श्री कामत ने इस अनुच्छेद के खंड (ख) पर भी प्रहार किया है। जहां तक इस भाग का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि यह भी बहुत आवश्यक है। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि मंत्रिमंडल अथवा कतिपय मंत्री राज्यपाल से मेल नहीं रखते हैं, तो उनकी ऐसी स्थिति हो जायेगी कि वे राज्यपाल को पूर्ण अंधकार में रख सकेंगे। इसके अतिरिक्त मुझे पूर्ण विश्वास है कि राज्यपाल को दी गई इन शक्तियों का शायद किसी समय भी दुरुपयोग नही होगा और यह आवश्यक है कि उसे दिन प्रतिदिन के प्रशासन के बारे में पूर्ण सूचना मिले, जिससे कि वह गलत नीति के अनुसरण को रोक सके तथा प्रान्तीय सरकार की कार्यप्रणाली और प्रकार के बारे में भारतीय सरकार और राष्ट्रपति को सूचना भी दे सके। आखिर प्रान्तीय स्वायत्त शासन तथा राष्ट्रपति और भारतीय सरकार के बीच

में राज्यपाल एक आवश्यक कड़ी है और इस प्रकार्य का पर्याप्त रूप से निर्वाह वह तभी कर सकता है, जब उसे कुछ बातों पर पुनः विचार करने के लिये मंत्रिमंडल से कहने का अधिकार हो तथा उसे दिन प्रतिदिन की कार्यवाहियों की सूचना प्राप्त करने का साधन उपलब्ध हो कि क्या-क्या आदेश जारी किये गये हैं और किस प्रकार का प्रशासन-कार्य चल रहा है।

इसके पश्चात्, श्रीमान्, मेरे मित्र ने राज्यपाल को विधान भेजने की प्रस्थापना का भी विरोध किया है, पर वह भी लाभदायक तथा वांछनीय है। राज्यपाल को पहले से ही यह ज्ञात होना चाहिये कि प्रांतीय सभा के समक्ष किस विधान का प्रस्तुत करना प्रस्थापित किया जा रहा है, उस विधान का क्या प्रकार है और वर्तमान परिस्थिति से उसका क्या सम्बन्ध है अथवा भारत के अन्य भागों के विधान की तुलना में वह कैसा है। यह देखना भी उसका कर्त्तव्य है कि भारत की नीति के वह किस प्रकार समनुरूप है। केवल वही एक ऐसा व्यक्ति है जो वहां रहेगा और मुख्यमंत्री को अधिक व्यापक तथा अधिक निष्पक्ष दृष्टिकोण से मंत्रणा दे सकेगा। मंत्रणा देने के सिवाय मैं नहीं समझता हूं कि उसके और अधिक आगे बढ़ने की सम्भावना हो। किसी दशा में भी वह अनुच्छेद उसकी कोई अधिक शक्तियां प्रदान नहीं करता है। परन्तु इतना प्राधिकार तो उसे अवश्यमेव होना चाहिये कि वह प्रस्थापित विधान पर पूर्ण रूप से विचार करने के लिये मंत्रिमंडल से निवेदन कर सके, जिससे कि प्रांत के प्रशासन में प्रान्त के मंत्रियों अथवा समूचे रूप में भारतीय सरकार को अहित के कारण क्षति न हो।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि मुख्यमंत्री की बुद्धिमत्ता में हम क्यों विश्वास न करें? क्या मुख्यमंत्री इतना बुद्धिमान नहीं है?

***श्री पी.एस. देशमुखः** यदि मेरे विद्वान मित्र श्री कामत पूरी बात पर शांतिपूर्वक विचार करें तो उनको यह विदित होगा कि वास्तव में प्रत्येक बात मुख्यमंत्री पर छोड़ दी गई है और छोड़ी जा रही है और राज्यपाल के हस्तक्षेप करने की कोई संभावना नहीं है। यह केवल उस सूचना को प्राप्त करने के अधिकार का दावा करता है जिसको वह आवश्यक समझे। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत उसको यह कहने की शक्ति नहीं दी गई है कि अमुक-अमुक विधान पारित नहीं किये जायेंगे। इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था है कि राज्य सम्बन्धी सब विनिश्चय राज्यपाल के पास सूचनार्थ भेजे जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** राज्यपाल उनको मांग क्यों न ले? मुख्यमंत्री के लिये यह सब कुछ करना अपेक्षित क्यों है?

***श्री पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, यह केवल एक पारस्परिक प्रबंध है और इस प्रबंध में मुझे कोई आपत्तिजनक बात नहीं दिखाई देती है। अनुच्छेद व्यवस्था करता है कि मुख्यमंत्री

[डा. पी.एस. देशमुख]

राज्यपाल को कुछ बातों की सूचना देगा और अन्य सूचनायें मंगाने का राज्यपाल को अधिकार है। गौरव अथवा रस्म अदायगी का कोई प्रश्न नहीं है। अत: मैं इस अनुच्छेद का जोरदार समर्थन करता हूं और सुझाव रखता हूं कि जिस रूप में यह है उसी रूप में पारित किया जाये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, चूंकि राज्यपाल की शक्तियां और कार्य-संचालन सम्बन्धी अनुच्छेदों (भाग 4 अध्याय 2) को हम समाप्त करने वाले हैं, मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि सभा के सामने अपने विचारों को प्रकट कर दूं। मैं चाहता हूं कि इस बात में विश्वास करने के लिये कि राज्यपाल का पद एक लाभदायक पद है, मुझ में मेरे मित्र डा. पंजाब राय देशमुख का सा कट्टर आशावाद होता। स्वतंत्र भारत में जब से कांग्रेसियों के हाथों में शक्ति आई है, प्रांतों में क्या अनुभव प्राप्त किया गया है? राज्यपाल ने किस प्रकार प्रकार्य किया है? यह एक साधारण ज्ञान का विषय है और इस सभा के जिम्मेदार सदस्यों द्वारा यह कई बार कहा गया है कि राज्यपाल केन्द्रीय सरकार का और राज्य-संघ तथा प्रान्तों द्वारा निर्वाचित मंत्रणालयों का राज्यपाल किस प्रकार सहयोग दे सकेगा? मेरे मित्र डा. देशमुख के अनुसार राज्यपाल ज्ञान परिपूर्ण है। मैं इस बात पर आपत्ति करता हूं और मुझे इस बात में बहुत सन्देह है, विशेषकर जब कि राज्यपाल मनोनीत राज्यपाल है—राष्ट्रपति तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किया हुआ। मैं चाहता हूं कि हमें अब फेडरल संविधान और संघ-सरकार नहीं रखना चाहिये। हमने सारी शक्तियां राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल में केन्द्रित कर दी है और यह बुरी बात नहीं है। यदि हम प्रान्तीय सरकारें, प्रान्तीय राज्यपाल और प्रान्तीय मंत्रियों को हटा दें तो बहुत सा व्यय बच जायेगा।

***अध्यक्ष:** इस प्रश्न की चर्चा करने से कुछ लाभ नहीं है। इस विषय को तो हम पारित कर चुके हैं।

***श्री बी. दास:** पर मेरे मित्र श्री कामत ने आज प्रात: मनोनीत राज्यपाल और उनके प्रकार्यों का उल्लेख किया था।

प्रश्न यह है कि यदि हम राष्ट्रपति और राज्यपालों में सारी शक्तियां केन्द्रित करना चाहते हैं तो हमें यह देखना चाहिये कि राज्यपाल निर्वाचित हैं या नहीं। पर मसौदा-समिति के पास इस प्रश्न और इन खंडों पर विचार करने का समय ही नहीं था कि क्या ये खंड मनोनीत राज्यपालों के लिये समुचित है। इस समस्त अध्याय में यही एक दुष्टतापूर्ण बात है। हम जानते हैं कि संविधान के विभाग निष्प्राण बने रहते हैं। अमरीका के संविधान के कुछ विभाग व्यर्थ हो चुके हैं। इस संविधान के कुछ विभाग भी व्यर्थ होंगे। हां, यदि कुछ लोग ऐसे हैं जिनको यह भ्रम है कि राज्यपाल निर्वाचित मंत्रियों के विरुद्ध विधि प्रदत शक्तियों का प्रयोग करेगा, तो वे वर्तमान प्रथा को ध्यान में रखें, जिसके अंतर्गत

राज्यपाल, उसके प्रान्त में क्या हो रहा है, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता है, जहां कि प्रान्तीय मंत्रिमंडल इस सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई सूचना नहीं देता है।

यह एक लगातार रहने वाला झगड़ा है और शायद राष्ट्रपति और हमारे प्रिय प्रधानमंत्री को राज्यपाल और प्रान्तीय मंत्रिमंडल में सद्भावना उत्पन्न करने के लिये भिन्न-भिन्न स्थितियों में हस्तक्षेप करना पड़ेगा। यह होते हुये भी मैं साहसपूर्वक यह भविष्यवाणी करता हूं कि प्रांतीय मंत्रिमंडल की विजय होगी और राज्यपाल वैसे ही प्रतीक रूप रहेंगे जैसे कि गत दो वर्ष से रहते चले आये हैं।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, अपने माननीय मित्र श्री कामत का पूर्ण समर्थन न करते हुये मैं उनका, जहां तक कि उपखंड (ग) का सम्बन्ध है, समर्थन करना चाहूंगा। मेरे विचार से इस उपखंड के क्रियाकरण में कुछ कठिनाइयां हैं। उपखंड में यह कहा गया है:

> ''If the Governor so requires, to submit for the consideration of the Council of Ministers any matter on which a decision has been taken by a Minister but which has not been considered by the Council.''
>
> (किसी विषय को, जिस पर मंत्री ने विनिश्चय कर दिया हो, किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार न किया हो, राज्यपाल के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचार के लिये रखना)

मैं नहीं समझ पाता हूं कि किसी विशिष्ट विषय में मंत्री द्वारा क्या विशिष्ट विनिश्चय किया गया है यह राज्यपाल कैसे जानेगा क्योंकि उपखंड (क) के अनुसार केवल मंत्रिमंडल द्वारा किये गये विनिश्चय ही उसके पास भेजे जायेंगे।

मंत्रिमंडल की कार्य-प्रणाली के अनुसार विनिश्चयों की दो श्रेणियां हैं। अपने विभाग में तथा अपनी जिम्मेदारी पर, अपने साथियों की सम्मति लिये अथवा उनको जानकारी तक दिये बिना विभिन्न विषयों पर, जो दिन प्रतिदिन उसके समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं, मंत्री कुछ विनिश्चय करता है। परन्तु इनसे अधिक महत्त्व के अन्य विषय हैं जिनको मंत्रिमंडल के समक्ष सामूहिक विनिश्चय के लिये मंत्री को प्रस्तुत करना पड़ेगा। दूसरी श्रेणी के विनिश्चय ही राज्यपाल के पास जायेंगे। पहली श्रेणी के विनिश्चयों के सम्बन्ध में स्वयं अनुच्छेद में भी कोई जिक्र नहीं किया गया है। अत: मैं नहीं समझता हूं कि वह इनके बारे में किस प्रकार जानकारी प्राप्त करेगा। मुझसे यह कहा जायेगा कि राज्यपाल उपखंड (ख) से लाभ उठा सकता है और सूचना मंगा सकता है। यह तो मैं समझ सकता हूं कि यदि उसे सूचना मिल जाती है, तब तो वह और अधिक बातें पूछ सकता है, परन्तु किसी मंत्री द्वारा किये गये किसी विशिष्ट विनिश्चय की सूचना उसे आरंभ में किस प्रकार मिल

[श्री बी.एम. गुप्ते]

सकती है? सूचना के किसी ऐसे साधन के अभाव में उससे हस्तक्षेप करने के लिये कहा जाता है और व्यवहार्य रूप में वह मंत्री द्वारा किये गये विनिश्चय के परिपालन तक को रोक सकता है। विचार इस बात पर करना है कि उसकी सांवैधानिक मुखिया की स्थिति से यह कितना संगत है। क्या राज्यपाल को इस अधिकार से सुसज्जित करना आवश्यक है अथवा क्या यह वांछनीय भी है? मैं यह सुझाव नहीं कर रहा हूं कि प्रान्त राज्यपाल के पवित्र परामर्श से लाभ न उठा सके। हो सकता है कि वह परिपक्व अनुभव तथा विशाल ज्ञानयुक्त वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ हो। पर इसी आशय की पूर्त्ति उसकी विधि प्रदत्त अधिकार दिये बिना भी हो सकती है। प्रधानमंत्री को वह निजी रूप से सुझाव दे सकता है। हमारे पास सम्राज्ञी विक्टोरिया के पत्रों का उदाहरण है। वह हमारे पास साक्ष्य रूप में है कि बिना किसी विधि प्रदत्त अथवा सांवैधानिक अधिकार के एक चतुर शासक प्रधानमंत्री को विभिन्न सुझाव देकर किस प्रकार मंत्रिमंडल के विनिश्चयों पर पूरा-पूरा प्रभाव डाल सकता था। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस विधि प्रदत्त अधिकार से राज्यपाल को सुसज्जित करना आवश्यक नहीं है।

यह कहा जा सकता है कि आवश्यक चाहे यह न हो पर वांछनीय है। परन्तु इस बात का संकट है कि इससे मुसीबत पैदा हो सकती है। मान लीजिये कि राज्यपाल अपने विधि-प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करता है और मंत्री द्वारा किये गये विनिश्चय पर आपत्ति करता है। मानव प्रकृति जैसी है वैसी ही रहेगी, सम्बद्ध मंत्री इस बात पर अवश्य क्षुब्ध होगा। उसको आश्चर्य होगा कि राज्यपाल को किस प्रकार यह सूचना मिली। क्या उसके ऊपर कोई प्रहरी है अथवा क्या वहां कोई खुशामदी है? सन् 1935 के भारतीय सरकार के अधिनियम में सरकारी सचिव को सीधे राज्यपाल से मिलने का अधिकार था। जब इस विशिष्ट उपबंध पर हाउस आफ कामन्स में वाद-विवाद हुआ तो किसी ने राज्यपालों का मंत्रियों के प्रहरी के रूप में वर्णन किया। मसौदा-समिति ने बहुत ठीक किया कि सचिवों के राज्यपाल तक पहुंचने के इस अरुचिकर अधिकार को अस्वीकार किया। इन प्रहरियों के अभाव में मंत्री को आश्चर्य होगा कि राज्यपाल से किसने कहा। क्या कोई खुशामदी है? आज एक मंत्री इस हस्तक्षेप से क्षुब्ध होता है तो कल कोई अन्य मंत्री असंतुष्ट होगा। इस प्रकार यह हो सकता है कि कटुता बढ़े और मेरी राय में तो यह भी हो सकता है कि मंत्रिमंडल और राज्यपाल में परस्पर जो हार्दिक सम्बन्ध होना चाहिये, उसमें इसके कारण गड़बड़ी उत्पन्न हो जाये।

और फिर यदि ऐसा विधि-प्रदत्त अधिकार है, तो शायद फ्रांस का राष्ट्रपति मिलरो जैसा महत्त्वाकांक्षी राज्यपाल इस अधिकार के दुरुपयोग करने अथवा आवश्यकता से अधिक उपयोग करने के प्रलोभन में आ सकता है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस उपबंध का रखना अनावश्यक है और कम से कम इतना तो विचारणीय है ही कि क्या यह आवश्यक है कि इसको इसी रूप में रखा जाये, जिस रूप में यह विधान के मसौदे में है।

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः श्रीमान्, इस आधार पर कि राज्यपाल मनोनीत हैं, अपने माननीय मित्र कामत के इस अनुच्छेद पर विरोध को मैं नहीं समझ सका। उन्होंने ही तो इस प्रस्थापना का समर्थन किया था। और वे ही अब यह कहे हैं कि चूंकि वे मनोनीत है, अतः उनको यह अधिकार नहीं होना चाहिये। राज्यपालों के मनोनीत होने के पश्चात् यदि इस धारा को निकाला जाता है, तो यह और भी अच्छा होगा कि राज्यपालों को ही हटा दिया जाये।

इस सभा ने जिस योजना को स्वीकार किया है, उसके अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल मनोनीत किया जायेगा और हमने उसे स्वविवेक का अधिकार दिया है। राज्य के मुखिया के रूप में यदि राज्यपाल को यह विदित नहीं होता कि राज्य में क्या हो रहा है अथवा उसके मंत्रियों ने क्या विनिश्चय किया है, तो वह किस प्रकार राज्य के मुखिया के रूप में प्रकार्य कर सकता है?

***श्री एच.वी. कामतः** मुख्यमंत्री द्वारा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मुख्यमंत्री शायद उसे कुछ न बताये। अतः यह धारा आवश्यक है, जिससे कि राज्यपाल कम से कम यह जान सके कि राज्य में क्या हो रहा है।

इस योजना के अंतर्गत, जिसको मसौदा-समिति ने प्रस्थापित किया है, वे एक ऐसा राज्यपाल सोचते हैं, जो केन्द्र के राष्ट्रपति और प्रान्तीय सरकारों में सम्पर्क बनाये रखने वाला पदाधिकारी होने का प्रयत्न करे। वह इस बात पर ध्यान देने का प्रयत्न करेगा कि प्रान्तीय सरकार की नीति केन्द्रीय सरकार की योजना के अनुकूल है। अपने अच्छे ज्ञान तथा अनुभव के कारण वह मंत्रणालय को मंत्रणा देने तथा पथप्रदर्शन करने का प्रयत्न करेगा। मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रपति केवल उन व्यक्तियों को मनोनीत करेगा, जिनको पूर्ण प्रशासन सम्बन्धी अनुभव हो, जो बुद्धिमान हों और जिनमें राज्यपाल होने के लिये आवश्यक राजनैतिक तथा बौद्धिक क्षमता हो, जिससे कि वे प्रान्तीय मंत्रिमंडल का ठीक पद-प्रदर्शन कर सकें। राज्यपाल को दलबंदी से अपने आपको दूर रखना होगा और इस प्रकार से ही उसकी स्थिति अधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावी होगी। यदि उसे, जैसा कि सुझाया गया है, अपने मंत्रियों से सूचना प्राप्त करने अथवा उसके नाम से राज्य में जो कुछ हो रहा है, उसे जानने तक का हक नहीं है, तो मैं नहीं समझता हूं कि उसका रखना उचित है।

श्री गुप्ते ने खंड (ग) पर आपत्ति की है। उन्होंने यह अनुभव किया है कि यदि मंत्री के विनिश्चय को लौटने का हक राज्यपाल को है, तो इसके कारण मनोमालिन्य बढ़ सकता है। व्यक्तिगत रूप में मैं यह अनुभव करता हूं कि नई योजना के अंतर्गत

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

राज्यपाल समूचे मंत्रिमंडल का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। खंड में केवल यह कहा गया है कि यदि कोई मंत्री अपनी जिम्मेदारी पर कोई महत्त्वपूर्ण विनिश्चय करता है और यदि उस पर सम्पूर्ण मंत्रिमंडल ने विचार नहीं किया है, तो वह यह इच्छा प्रगट करेगा कि उस विषय पर मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया जाये। श्री गुप्ते ने यह शिकायत की कि मंत्री को इस बात पर आश्चर्य हो सकता है कि उसके विनिश्चयों के बारे में राज्यपाल को कैसे जानकारी हुई। खंड (ख) के अधीन यह (राज्यपाल) स्वयं प्रधानमंत्री से सूचना मंगा सकता है। यह सोचने के लिये कोई कारण नहीं है कि कोई चुगलखोर हो अथवा कुछ ऐसे लोग हों जो मंत्री से छिप कर राज्यपाल के पास जाते हों। राज्यपाल दौरा भी करता रहेगा और अपने व्यक्तिगत अनुभव द्वारा भी बहुत सी बातें जान जायेगा। जिस योजना को इस सभा में स्वीकार किया है, उसके अंतर्गत राज्यपाल को इस रीति द्वारा मनोनीत किया जायेगा कि वह मंत्रिपरिषद् से अपनी उच्च बौद्धिक क्षमता तथा ठोस प्रशासन ज्ञान और मंत्रणा द्वारा सम्मान प्राप्त कर सके। फिर तो मंत्री राज्यपाल में विश्वास करेंगे और प्रान्त की उन्नति अथवा उसके वास्तविक हितों की वृद्धि के लिये स्वयं संलग्न होंगे।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद पर हमने पर्याप्त चर्चा कर ली है और मैं चाहूंगा कि माननीय सदस्य संक्षिप्त रूप में अपने भाषण दें।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, हमारे मन साफ हैं। जहां तक इस एक बात का सम्बन्ध है कि जो राज्यपाल नियुक्त किया जायेगा, वह अपनी स्थिति में प्रान्त का प्रथम नागरिक होगा; यद्यपि जहां तक सुप्रशासन तथा विधि और व्यवस्था के पोषण का सम्बन्ध है उसे कोई कार्यपालिका शक्ति प्राप्त नहीं होगी। क्योंकि यह तथ्य निश्चित है, हमें यह जानना चाहिये कि इस अनुच्छेद का क्या निर्वाचन है। इसमें सन्देह नहीं कि खंड (क), (ख) और (ग) कुछ गड़बड़ी सी पैदा करते हैं और इस बात को मैं मानने के लिये तैयार हूं। खंड (क) के अधीन प्रधानमंत्री का यह कर्त्तव्य है, मुख्यमंत्री के लिये यह आवश्यक है कि राज्यपाल उससे जो सूचना चाहते हैं वह उनको दे। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है, कि यदि मुख्यमंत्री यह समझे कि सूचना मंगाने का राज्यपाल को हक नहीं है, तो वह सूचना देने के लिये मना कर सकता है, क्योंकि प्रान्त का प्रशासी मुखिया वही है। परिणाम यह होगा कि शायद कुछ संघर्ष हो जाये। संघर्ष से बचने के लिये मुख्यमंत्री को यह स्वतंत्रता है कि वह राष्ट्रपति को शिकायत करे और राष्ट्रपति इस विषय में हस्तक्षेप कर सकेगा।

खंड (ग) के संबंध में उन व्यक्तियों द्वारा जो इसके विरोध में हैं, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि राज्यपाल के लिये यह अपेक्षित होगा कि वह किसी विषय को, जिस पर मंत्री द्वारा विनिश्चय कर लिया गया है, पर मंत्रिमंडल द्वारा उस पर विचार नहीं किया

गया है, मंत्रिमंडल के विचारार्थ भेजे। श्री गुप्ते पूछते हैं कि राज्यपाल यह किस प्रकार जाने की मंत्री ने क्या किया है। कोई भी फाइल जो राज्यपाल के पास भेजी जाती है, उसमें एक पूर्ण टिप्पणी रहती है कि किसी वाद-विषय पर मंत्री ने विचार किया है या मंत्रिपरिषद् ने।

***श्री बी.एम. गुप्ते:** प्रत्येक मंत्री की फाइल उसके पास नहीं जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह प्रथा सर्वत्र विद्यमान है। प्रत्येक फाइल राज्यपाल के पास हस्ताक्षरों के लिये जाती है। संविधान में यह कहा गया है कि सब आदेश राज्यपाल के नाम से दिये जायेंगे, अत: रस्मी तौर से सारी फाइल उसके पास जाती हैं न कि केवल एक कागज। अपने हस्ताक्षर करने के पूर्व उसे सारी फाइल को देखना पड़ेगा।

***श्री एच.वी. कामत:** कोई फाइल उसके (राज्यपाल के) पास तभी जायेगी, जब किसी विषय पर समूचे मंत्रिमंडल ने विचार कर लिया है, न कि किसी मंत्री का विनिश्चय उसके पास जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): सिन्ध में ऐसा होता होगा, लेकिन हमारे यहां प्रान्तों में ऐसा नहीं होता।

***श्री आर.के. सिधवा:** यदि उनके पास फाइल नहीं जाती है तो वह उसे मंगा सकता है। वह कह सकता है—''मैं यह जानना चाहूंगा कि हस्ताक्षर करने के पूर्व मुझे क्या कहना है।'' किसी विभाग का मुखिया चैक पर हस्ताक्षर करता है, जो एक रस्मी काम है, पर जहां तक उसके हस्ताक्षर का सम्बन्ध है उसे जिम्मेदारी लेनी पड़ती हैं। आप यह नहीं कह सकते कि यह फाइल नहीं मंगा सकता है और इस कारण यह प्रश्न नहीं उठता है। मान लीजिये कोई मंत्री ऐसी विनिश्चय करता है, जिस पर राज्यपाल को कोई संदेह होता है और वह सोचता है कि इस विषय पर समूचे मंत्रिमंडल का विचार होना चाहिये, तो उस विषय पर मंत्रिमंडल द्वारा पुन: विचार करने के हेतु कहना उसके लिये ठीक बात होगी। मुझे ऐसे उदाहरण मालूम हैं जिनमें किसी मंत्री ने कोई विनिश्चय किया और राज्यपाल के कहने पर मंत्रिमंडल ने उस पर पुन: विचार किया और उन्हें उसको बदलना पड़ा। इसमें कोई दोष नहीं है। इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडल उससे यह भी कह सकता है कि मंत्री ने बिल्कुल ठीक किया है। अत: खंड (क) और (ख) की अपेक्षा खंड (ग) अधिक न्यायपूर्ण है, क्योंकि कभी-कभी मैंने यह देखा है कि अपने वैयक्तिक निर्णय के आधार पर मंत्री कुछ आदेश निकालता है और उन्हें राज्यपाल के पास भेजता है। वह कोई झगड़े का विषय हो सकता है, जिसके बारे में राज्यपाल सच्चे हृदय से यह सोचे कि यह प्रान्त और उसके निवासियों के हित में है कि इस विषय पर मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया जाये। तो ऐसा करने के लिये वह पूर्णरूप से न्याययुक्त है। अत: यद्यपि

[श्री आर.के. सिधवा]

खंड (क) और (ख) में तो कुछ भाषा सम्बन्धी सुधार की गुंजाइश है, पर खंड (ग) जिस पर ज्यादा जोर दिया गया है, उसे तो रहने देना चाहिये।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मुझे खेद है कि आपकी इस मंत्रणा के होते हुये भी कि इस अनुच्छेद पर चर्चा कम करके शीघ्र विनिश्चय किया जाये, मुझे यहां आना पड़ा। वह इसलिये कि मैंने सोचा कि माननीय सदस्यों से मत लेने के पूर्व उनको इस अनुच्छेद के एक पहलू को पूर्ण स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये। इस समय यह जान लेना अच्छा है कि प्रान्त के राज्यपाल को हम क्या-क्या शक्तियां तथा उत्तरदायित्व सौंप रहे हैं। मसौदा-समिति की कठिनाई को मैं अच्छी तरह से समझता हूं, जब कि उन्हें इस परिस्थिति का सामना करना पड़ा, जिसमें ऐन वक्त पर उनके समक्ष आमूल परिवर्तन रख दिये गये। यदि यही कठिनाई है, तो विचार करने के लिये वे सुविधापूर्वक समय ले सकते थे।

मेरे मित्र श्री देशबन्धु ने कहा कि राज्यपाल निदेश तथा मंत्रणा देने के लिये है। यदि मसौदा-समिति तथा सभा के विचारशील नेताओं का यही विचार है, तब तो मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 147 में दी हुई शक्तियां ही नहीं वरन् कुछ और अधिक भी आवश्यक है।

इस सभा में हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है, वह यह है कि राज्यपाल सांवैधानिक मुखिया हो अथवा एक ऐसा राज्यपाल जो मंत्रणालय को मंत्रणा देने का और मंत्रणालय सम्बन्धी विचार और कार्य को ठीक रूप देने का कार्य करे। यदि उसका अनुवर्ती रूप है और यदि उसे प्रशासन को सुधारने और स्तर को ऊंचा उठाने में हस्तक्षेप करना है, तो यह शक्ति अस्वाभाविक नहीं है, वरन आवश्यक है। जो कुछ मैं जानना चाहता हूं तथा जिसके जानने की मांग करने का इस सभा को अधिकार है, वह यह है कि इस अनुच्छेद का आधार क्या है? इस अनुच्छेद का मसौदा एक भिन्न वातावरण तथा परिस्थिति में कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखते हुये बनाया गया था और वे यह थीं कि वयस्क मताधिकार के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन होगा। पर अब स्थिति बदल गई।

इस समय मैं माननीय सदस्यों का ध्यान खंड (ख) की ओर आकर्षित करूंगा, जिस में यह कहा गया है:

> ''to furnish such information relating to the administration of the affairs of the State and proposals for litigation as the Governor may call for.''

मैं स्वयं यह नहीं समझ पाता हूं कि राज्यपाल जो संविधान पर अटल है और जो सांवैधानिक मुखिया होगा वह प्रशासन सम्बन्धी विषयों में क्यों पढ़े। यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या राज्यपाल को विधान की प्रस्थापनाओं की जानकारी होनी चाहिये। यहां फिर मैं यह कहता हूं कि उपबंध यह बनाया गया है कि मंत्रिपरिषद् की कार्यवाही राज्यपाल को संचारित की जाये। यह भी कि समस्त विधान जो विधानमंडल द्वारा स्वीकृत अथवा पारित किया गया है, उसे राज्यपाल की अनुमति के लिये उसके पास भेजना चाहिये। अत: राज्यपाल को यह जानने के लिये कि क्या विधान बनने वाला है और उसकी रूपरेखा क्या है, पूरा-पूरा अवसर दिया गया है। ऐसा होने से खंड (ख) पूर्णतया अनावश्यक प्रतीत होता है। परन्तु यदि सभा की यह इच्छा है कि सरकार प्रशासन के विषय में राज्यपाल का भी हाथ रखे, तब तो यह उपबंध न्याययुक्त है। इस अनुच्छेद पर चर्चा करते समय यदि मैं चौथी अनुसूची की ओर ध्यान आकर्षित न करूं, जिसमें अनुदेश लिखित की व्यवस्था की गई है, तो यह एक अन्याय होगा। राज्यपाल को दिये गये अनुदेश लिखित कोई विधायी बल अथवा विधि द्वारा मान्यता नहीं है। वह चाहे कुछ भी हो, चाहे वह पहाड़ी का धर्मोपदेश हो अथवा चाहे वह कोई वास्तविक बात हो, वह राज्यपाल को कुछ प्रशासी कार्य करने की गुंजाइश देता है। मैं विशेषकर कंडिका 4 का उल्लेख करता हूं जिसमें यह कहा गया है:

> ''राज्यपाल सुप्रशासन के स्तर को बनाये रखने, नैतिक, सामाजिक और आर्थिक कल्याण की वृद्धि हेतु समस्त साधनों में उन्नति करने और लोक-जीवन तथा राज्य सरकार में अपना-अपना उचित भाग प्राप्त करने के हेतु जनसंख्या के सब वर्गों को उचित सुविधा देने के लिये जो कुछ उसके अधिकार में है, वह सब करेगा...''

राज्यपाल के निर्वाचन अथवा चुनाव की रीति में परिवर्तन करने के पश्चात् क्या सभा उसको ये शक्तियां सौंपना चाहती है? यदि ऐसा है तब तो मैं इसके आधार को समझ सकता हूं और यह कहूंगा कि खंड (ख) पूर्णतया न्याययुक्त है। इस कारण मैं समझता हूं कि जो लोग इस अनुच्छेद को पारित करने के लिये इस सभा में अगुआ बनने के जिम्मेवार है, उन पर माननीय सदस्यों को यह समझाने का भी उत्तरदायित्व है कि राज्यपाल और सरकार में जो सम्बन्ध होना चाहिये, उसके प्रति उनके मन में क्या विचार है और उनमें परस्पर झगड़ा किस प्रकार से न होने दिया जायेगा तथा निपटाया जायेगा।

अपनी ओर से मैं आपको अपने थोड़े से अनुभव का वर्णन करूं। मुझे अब भी वे दिन याद हैं जब कि झगड़े के विषय उत्पन्न होते थे और राज्यपाल किसी प्रकार एक निष्पक्ष व्यक्ति होने की सदैव सावधानी रखता था और कहता था कि अनुमति की शक्ति होने के कारण झगड़े के विधान में मंत्रिमंडल को उसे कोई सम्मति नहीं देनी है। यदि यही दशा है तब तो उसे इस बात की सूचना पहले देने में कोई आशय नहीं है कि पक्ष के नेता अथवा मंत्रिमंडल का क्या विधायी कार्यक्रम है। मैं विशेषतया यह अनुमान

[श्री विश्वनाथ दास]

करता हूं कि कुछ समय में जैसे-जैसे इस संविधान का क्रियाकरण होगा, तो सम्भव है कि केन्द्र में और राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रकार के राजनैतिक कार्यक्रम और आदर्शवाद को लेकर पक्षों के प्रादुर्भाव लिए क्षेत्र हो। ऐसी दशाओं में केन्द्र के प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत राज्यपाल राज्य के मंत्रिमंडल द्वारा, जिसका मुखिया किसी अन्य राजनैतिक पक्ष का व्यक्ति है, पूर्णतया स्वीकार न हो। ऐसी परिस्थिति में यदि राज्यपाल को प्रशासन में कठिनाई उत्पन्न करने की शक्ति दी जाती है, तो संघर्ष से कदापि नहीं बच सकते।

अन्त में मैं सभा के समक्ष यह बात रखना चाहता हूं कि 1935 के भारतीय सरकार के अधिनियम में राज्यपाल को हस्तक्षेप करने के लिये और प्रान्तीय सरकार द्वारा किये गये कार्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिये यथेष्ट शक्तियां सौंपी गई थी। यह कहना चाहिये कि नकेल उसके हाथ में थी। परन्तु यदि एक बार भारत के प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर राष्ट्रपति राज्यपाल नियुक्त कर देता है, तो जब तक वह स्वयं पदत्याग न करे, तब तक इस संविधान में उस पर नियंत्रण रखने के लिये कोई बात नहीं है। अत: मैं अनुभव करता हूं कि आप एक ऐसा राज्यपाल नियुक्त कर रहे हैं, जो नैतिक रूप से भारत के प्रधानमंत्री और भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी हो। प्रतीक के रूप में अथवा केन्द्र या राष्ट्रपति के नियंत्रण के अधीन उसे परिसीमित करने के लिये इस समय विधि में कुछ भी नहीं है। अत: माननीय सदस्यों का यह पूछना ठीक है कि क्या आप राज्यपाल में अधिक व्यापक क्षेत्र की शक्तियां निहित कर रहे हैं, जिनसे वह दुष्टता करने में समर्थ हो और साथ ही साथ राष्ट्रपति या गणराज्य के प्रधानमंत्री में उस पर नियंत्रण करने की कोई शक्ति निहित करने की व्यवस्था नहीं कर रहे हैं।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 147 में राज्यपाल की शक्तियों पर जो आपत्ति की गई है, उनको मैं नहीं समझ सकता हूं। इस सभा ने यह स्वीकार कर लिया है कि प्रान्तों में एक राज्यपाल होगा—और यह स्वीकार करना बिल्कुल ठीक है। जैसा कि कुछ सदस्यों ने कहा है यह आवश्यक नहीं है कि राज्यपाल प्रतीकमात्र हो और न यह आवश्यक है कि वह लोगों की जलपान और व्यालू कराने वाला एक श्रेष्ठ यजमान ही हो। उसे कुछ राजनैतिक प्रकार्य करने होंगे और राजनैतिक प्रकार्य ही उसे सांवैधानिक मुखिया का रूप देते हैं।

कुछ माननीय सदस्यों का, जिन्होंने भाषण दिये हैं, यह विचार है कि एक सांवैधानिक मुखिया के लिये कोई प्रकार्य नहीं है और मुख्यमंत्री अथवा मंत्रियों को अपनी मंत्रणा से लाभ दिये बिना तथा सरकारी कार्यों पर एक निष्पक्ष दर्शक के रूप में विचार बतायें बिना

जो कुछ वे करते हैं, उस पर पृष्ठांकन करने के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं करना है। जिस सरकारी व्यवस्था को हमने विचारा है, वह ब्रिटिश संविधान के आदर्श पर है। अनुच्छेद 147 उस अनुच्छेद 65 की पुनरावृत्ति है, जिसे हम केन्द्र के राष्ट्रपति के प्रति स्वीकार कर चुके हैं। इस संविधान में सरकार का उत्तरदायित्व यदि कुछ है तो प्रान्तों की अपेक्षा केन्द्र में यह अधिक व्यापक तथा दृढ़ है। इस विचार के कारण मैं नहीं समझ सकता हूं कि उन्हीं शक्तियों के सम्बन्ध में बार-बार क्यों आपत्ति की जाती है।

मेरे मित्र श्री गुप्ते ने उपखंड (ग) का उल्लेख किया था और यह प्रश्न किया था कि राज्यपाल यह सूचना कहां से प्राप्त करेगा? यदि आप उपखंड (ख) को पढ़ेंगे तो उसमें कहा गया है:

> ''It shall be the duty of the Chief Minister of each State to furnish such information relating to the administration of the affairs of the State and proposals for legislation as the Governor may call for.''
>
> (प्रत्येक राज्य के मुख्यमंत्री का यह कर्त्तव्य होगा कि राज्य-कार्यों के प्रशासन सम्बन्धी तथा विधान के लिये प्रस्थापनाओं सम्बन्धी जिस जानकारी को राज्यपाल मंगावे, उसको दे।)

इस खंड के अंतर्गत राज्यपाल को महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में जानकारी मंगाने के लिये मुख्यमंत्री से कहने का अधिकार होगा और यदि वह यह समझता है, कोई विनिश्चय समूचे मंत्रिमंडल द्वारा नहीं किया गया है, वरन् किसी एक मंत्री द्वारा किया गया है और उस पर समस्त मंत्रिमंडल द्वारा पुनर्विचार अपेक्षित है तो उस पर पुनर्विचार कराने के लिये खंड (ग) उसको शक्ति देगा। इसमें क्या दोष है? जब कोई मंत्री अपने साथियों से छिपा-कर कोई काम करता है और मुख्यमंत्री से छिपाकर कोई काम करता है, जिस पर मंत्रियों के समस्त कार्यों की जिम्मेदारी है, तो राज्यपाल यह क्यों नहीं कह सकता है कि ''यह एक विशिष्ट आदेश है। मैं समझता हूं कि यह बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है। मैं चाहता हूं कि सामूहिक उत्तरदायित्व होने के कारण सब मंत्री एक स्थान पर समवेत हों और इस पर विचार करें?'' यदि वे स्वीकार करते है; तो वह भी उनकी मंत्रणा को अवश्य स्वीकार करेगा। उनकी बात काटने का उसे अधिकार नहीं है यह केवल सावधानी का विषय है कि सांवैधानिक मुखिया के मत से यदि कोई विनिश्चय ऐसा है, जिस पर समस्त मंत्रिमंडल का विचार करना न कि केवल एक मंत्री का विचार आवश्यक है, तो उसको इस प्रकार लिया जाये। अत: यह एक रक्षाकवच है, जो सामूहिक उत्तरदायित्व और प्रधानमंत्री की शक्तियों

[श्री के.एम. मुंशी]

की रक्षा करता है, तथा वह कोई शक्ति नहीं है, जो शासन में हस्तक्षेप करती हो। अतः यह शंका कि यह अनुच्छेद इस प्रकार से हस्तक्षेप करेगा, पूर्णतया निराधार है।

इसके पश्चात् अपने माननीय मित्र श्री विश्वनाथ दास के सम्बन्ध में मुझे एक मनोवैज्ञानिक का दावा याद आता है कि जब एक शिशु अपने जीवनारम्भ में कोई धारणा कर लेता है तो वह जीवनपर्यन्त बनी रहती है। मेरे मित्र श्री विश्वनाथ दास, जब वे 1908 में उड़ीसा के मुख्यमंत्री थे, उनको बहुत ही बुरा राज्यपाल मिला था और उस समय उनकी जो धारणा राज्यपालों की शक्तियों के बारे में हुई वह दस वर्ष के पश्चात् भी बनी हुई है। वे भूल जाते हैं कि 1938 में भी बहुत से ऐसे राज्यपाल थे, जो अक्षरशः सांवैधानिक स्थिति ग्रहण किये हुये थे और जो इंग्लैंड में अपने संसदीय जीवन के अनुभव के कारण जब कभी मंत्रियों से कुछ विचारों पर पुनर्विचार करने के लिये कहते थे। यह बहुत लाभदायक था। विशेषकर मैं सर रोजर लूमले को निर्दिष्ट कर रहा हूं, जो उस समय बम्बई के राज्यपाल थे। नई शासन-व्यवस्था में हमें पुरानी धारणा को नहीं लाना चाहिये। नये राज्यपाल को सिवाय सांवैधानिक मुखिया होने के और कोई शक्ति नहीं है उसका केन्द्र द्वारा मनोनयन होगा। प्रान्त में जो कुछ हो रहा है उसका वह एक निष्पक्ष दर्शक होगा। अपनी सरकार के गौरव, उसकी दृढ़ता और सामूहिक उत्तरदायित्व का पोषण करना उसका प्रकार्य है। इस सीमित क्षेत्र में वह कुछ प्रभाव का प्रयोग कर सकता है। इस प्रभाव का वह तभी प्रयोग कर सकता है जक कि उसे वे परिसीमित शक्तियां दी जायें। सभा को मैं यह कहूंगा कि चूंकि हम ब्रिटिश आदर्श का अनुकरण कर रहे हैं, इसलिये हमें यह भी विचार करना चाहिये कि वहां सांवैधानिक मुखिया के क्या कर्त्तव्य और प्रकार्य है।

***श्री विश्वनाथ दासः** श्री मुन्शी ने मेरी जो आलोचना की है, उसे मुझे स्वीकार करने दीजिये, क्योंकि उनसे मैं चिन्तित नहीं होता, पर मैं उनसे निवेदन करूंगा कि जो प्रश्न मैंने उठाये हैं उनका वे उत्तर दें।

***श्री के.एम. मुन्शीः** मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि राज्यपाल की स्थिति पर इंग्लैंड के सांवैधानिक मुखिया के रूप को दृष्टिकोण में रखते हुये विचार किया जाये। सभा के हितार्थ जिस प्रकार लार्ड एसक्विथ ने, जो अपने जीवन काल में कमजोर प्रधानमंत्री नहीं समझा गया था, इंग्लैंड के राजा की स्थिति की व्याख्या की है, उसको मैं पढ़ कर सुनाऊंगा। इंग्लैंड में सांवैधानिक मुखिया की स्थिति की परिभाषा उनकी यह है:

> ''अब यह परम्परा सुव्यवस्थित है कि अन्त में राजगद्दी पर बैठने वाला अपने मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करता है और उसके अनुसार कार्य करता है...। उसको जो सुसंगत सूचना मिलती है, उस सब को अपने मंत्रियों को देने का हक और इसके लिये वह बाध्य है।''

अत: बात यह नहीं है कि अपने मंत्रियों से उसे जो कुछ सूचना मिलती है, उसके अतिरिक्त उसे कोई सूचना नहीं मिल सकती।

''उन आपत्तियों को बताना, जो जिस प्रणाली के सुझाव की वे मंत्रणा देते हैं, उसके विरुद्ध वे उसे मान्य प्रतीत होती है। यदि वह ठीक समझता है तो कोई कल्पिक नीति बताना। ऐसी शिक्षायें अति सम्मान के साथ मंत्रियों द्वारा ग्रहण की जाती हैं और उन पर उसकी अपेक्षा अधिक आदर और श्रद्धा के साथ विचार किया जाता है, जब कि वे किसी अन्य क्षेत्र से आती। पर अन्त में सम्राट सदैव उस मंत्रणा के अनुसार कार्य करता है, जिस का प्रदान करना (यदि अवश्य है तो) पुनर्विचार के पश्चात् मंत्री अपना कर्त्तव्य समझ कर मंत्रणा देते हैं कि संसद द्वारा उसका ब्यौरा देने के लिये उन्हें आमंत्रित किया जा सकता है और कदाचित् किया भी जायेगा।''

अत: इंग्लैंड में सांवैधानिक मुखिया नाममात्र का नहीं है। वह प्रतीक मात्र नहीं है। अपने मंत्रियों को मंत्रणा देने का उसके पास महत्त्वपूर्ण कार्य है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, सूचना प्राप्त करने का प्रश्न है, क्या मैं श्री मुन्शी से यह पूछ सकता हूं कि क्या संसार के किसी लिखित संविधान में किसी सांवैधानिक मुखिया को ये शक्तियां सौंपी गई हैं जो अनुच्छेद 147 में हैं?

***श्री के.एम. मुन्शी:** जहां तक इस संविधान का सम्बन्ध है, जैसा कि मैंने कहा था अपने देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये जहां तक हमसे हो सका है, हमने ब्रिटिश आदर्श को ग्रहण करने की कोशिश की है, अत: प्रान्त के सांवैधानिक मुखिया और राष्ट्रपति को उसी स्तर पर रखना चाहिये जिस पर इंग्लैंड का सांवैधानिक मुखिया हैं। श्रीमान्, प्रान्तों में अनेकों अल्पसंख्यक वर्ग होंगे और राज्यपाल का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि सरकारों द्वारा पालन की गई साधारण रीतियों में संतुलन हो। यह इस प्रकार हो सकता है। बहुसंख्यक वर्ग के पक्ष का नेता होने के कारण प्रधानमंत्री को कुछ नीतियों का परिचालन करना होगा। उसे यह विदित हो सकता है कि उन नीतियों को अल्पसंख्यक वर्ग स्वीकार नहीं कर सकता है, परन्तु राज्यपाल अपने प्रधानमंत्री पर प्रभाव डाल कर पक्षों में कुछ मेल पैदा कर सके, जो इंग्लैंड में ''अध्यक्ष पद से छिपा कर'' कहा जाता है। अत: उसको अपने मंत्रियों से कुछ कार्यक्रमों पर पुन: विचार करने के लिये निवेदन करने का अधिकार होना चाहिये। यह सच है कि अन्त में उसे अपने मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करनी ही चाहिये। यदि प्रधानमंत्री अंत में यह कह देता है कि ''मेरी यह नीति है, मेरी यह मंत्रणा है'' तो राज्यपाल को वे स्वीकार करनी पड़ेगी, पर उस स्थिति तक पहुंचने के पूर्व उसके पास विनिश्चयों पर प्रभाव डालने के लिये पर्याप्त क्षेत्र है।

***श्री विश्वनाथ दास:** मुझे खेद है कि मैं बाधा डाल रहा हूं। क्या श्री मुन्शी ईमानदारी के साथ यह विश्वास करते हैं कि प्रान्त में राज्यपाल की स्थिति इंग्लैंड की कार्यपालिका से कोई सम्बन्ध अथवा कोई समानता रखती है? यह हुई पहली बात। दूसरी बात यह है कि क्या वे यह नहीं जानते हैं कि इंग्लैंड में राजा की यह भी स्थिति नहीं है कि वह शाही मुद्रा का प्रयोग कर सके, उसका प्रयोग लार्ड प्रीवी सील करता है? अत: वे किस प्रकार इंग्लैंड के राजा तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल की तुलना प्रान्तीय राज्यपाल और उसके मंत्रिमंडल से करते हैं?

***श्री के.एम. मुन्शी:** इस अनुच्छेद के विरुद्ध यह जो आपत्ति उठाई जाती है मैं उसको नहीं समझ पाता हूं। हम इस देश में लोकतंत्र की स्थापना चाहते हैं। हम इस प्रकार की शासन-व्यवस्था करना चाहते हैं, जो न्यूनाधिक रूप में, ब्रिटिश आदर्श पर हो। ऐसे होने से इंग्लैंड के सफल प्रयोगों के अनुसरण करने में हमें किसी बात से बाधा नहीं होनी चाहिये। हम कोई नया प्रयोग नहीं कर रहे हैं यदि अपने मंत्रियों पर प्रभाव डालने अथवा उनके विनिश्चयों पर उनसे पुनर्विचार करने के लिये कहने तक का प्रकार्य राज्यपाल का नहीं है तो केवल यही विकल्प है, जिसको दो साल पूर्व सुझाया गया था; पर वह अस्वीकार कर दिया गया था, कि एक बार निर्वाचित किया हुआ प्रधानमंत्री सांवैधानिक मुखिया हो और अपने पांच वर्ष की पद-अवधि पर्यन्त प्रान्त की सरकार का पूर्णरूप से स्वामी हो। यदि अपने मंत्रिमंडल पर राज्यपाल अपने प्रभाव का प्रयोग करता है तो इसमें कुछ भी हानि नहीं है वरन् बड़ा लाभ है। जैसा कि मैंने कहा था अभी प्रान्तों में केवल एक ही पक्ष है, पर ऐसा समय आ सकता है, जब अनेक पक्ष हो जायेंगे और जब मुख्यमंत्री संकटकाल में परस्पर दलों में समझौता करने और नीतियों का समन्वय करने में असफल होगा। ऐसे समय में राज्यपाल की बहुत आवश्यकता होगी और इस विचार बिन्दु के कारण मैं निवेदन करता हूं कि जो शक्तियां यहां दी गई हैं, वे एक सांवैधानिक मुखिया के लिये वैध शक्तियां हैं और लोकतंत्र के शांत संचालन के लिये वे अत्यन्त आवश्यक हैं तथा स्वयं मंत्रियों के लिये वे बहुत लाभदायक होंगी; क्योंकि ऐसी दशा में वे एक ऐसे व्यक्ति से गुप्त सूचना और मंत्रणा प्राप्त कर सकेंगे, जो उनसे पूर्णतया एकीकरण स्थापित करते हुए भी अन्य दलों से मिलता है। इस विचार बिन्दु से ये शक्तियां, जिनको हमने राज्यपाल के लिये स्वीकार किया है, अत्यन्त आवश्यक हैं और इनको बने रहने देना चाहिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि यदि अनुच्छेद 147 को स्वीकार कर लिया जाता है, तो हमारे भावी संविधान में यह एक कलंक के रूप में रहेगा। श्रीमान्, जिस प्रकार से कंडे का एक टुकड़ा दूध के समूचे बर्तन को गंदा कर देता है उसी प्रकार यह विशिष्ट उपबंध हमारे समस्त संविधान को गंदा कर देगा। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बोल रहता हूं और मैं समझता हूं कि यह बहुत ही अरुचिकर उपबंध है और यह उपबंध प्रान्तीय प्रशासन में संघर्ष पैदा करेगा। प्रथम प्रश्न जिसे आपको स्मरण रखना चाहिये, वह यह है कि प्रान्त में मुख्यमंत्री

सर्वाधिक प्रभावी व्यक्ति है या राज्यपाल। क्या आप एक क्षण के लिये भी इस बात को अस्वीकार कर सकते हैं कि प्रान्त में नि:संदेह मुख्यमंत्री ही प्राधिकार प्राप्त व्यक्ति है, सिवाय कुछ विषयों के जो संविधान के अंतर्गत राज्यपाल के स्वविवेक के अधीन होंगे? तो फिर क्या यह कहना ठीक है कि मुख्यमंत्री का यह कर्त्तव्य होगा कि वह कुछ कार्य करे अथवा कुछ सूचना राज्यपाल को दे? उदाहरणार्थ, मुझे इस अनुच्छेद के प्रथम खंड को उठाने दीजिये। उसमें कहा गया है कि ''मुख्यमंत्री का यह कर्त्तव्य होगा कि मंत्रिमंडल के राज्यकार्य के प्रशासन सम्बन्धी समस्त विनिश्चयों और विधान के लिये प्रस्थापनाओं की सूचना राज्यपाल को दे।'' यह एक ऐसा कार्य है जिसको सरकार के मुख्य सचिव पर छोड़ा जा सकता है और छोड़ा जाता है।

यदि किसी कारणवश मुख्य सचिव अथवा कार्यभारित सचिव मंत्रिमंडल की कार्यवाही की प्रति राज्यपाल के पास नहीं भेजता है तो क्या मुख्यमंत्री कर्त्तव्य न पालन करने का दोषी होगा? इस अनुच्छेद की रचना इस प्रकार होनी चाहिये—''राज्य-प्रशासन सम्बन्धी समस्त सूचना यदि वह राज्यपाल के अधिकार, शक्तियां और स्वविवेक पर प्रभाव डालती हैं तो राज्यपाल के पास भेजी जायेंगी।'' अन्य बातों की सूचना के लिये राज्यपाल का कोई सम्बन्ध नहीं हैं केवल उन्हीं विषयों की सूचना, जो उसके स्वविवेक पर प्रभाव डाल सकती हैं। उसके पास भेजी जा सकती है। मंत्रिमंडल का विनिश्चय राज्यपाल के पास भेजा जा सकता है, अन्य कोई विषय नहीं और वह भी साधारण कार्यालय की कार्यवाही पर छोड़ दिया जाये। जिसके द्वारा सूचना राज्यपाल के पास भेजी जाये। किसी भी मुख्यमंत्री को अपने कर्त्तव्यपालन में असफल न समझा जाये, यदि किसी कारणवश कार्यवाही की प्रतियां राज्यपाल के पास न भेजी जायें। इसके पश्चात् श्रीमान् खंड (ख) इस प्रकार पढ़ा जाता है:

> ''To furnish such information relating to the administration of the affairs of the State and proposals for legislation as the Governor may call for.''
>
> (राज्य-कार्य के प्रशासन सम्बन्धी और विधान के लिये प्रस्थापनाओं सम्बन्धी जिस जानकारी को राज्यपाल मंगावे, उसको दे।)

किसी सूचना मंगाने का उसको क्या अधिकार है? सूचना प्राप्त कर वह क्या कर सकता है? किसी सूचना, किसी फाइल अथवा किसी ऐसी वस्तु के मंगाने का उसका कोई अधिकार नहीं है। वर्तमान प्रबंध में भी ऐसा कोई उपबंध नहीं है। सब फाइलें मुख्यमंत्री को जाती हैं। उसका ऐसा कोई कर्त्तव्य नहीं है कि वह कुछ बातों को राज्यपाल के पास भेजे। मैं समझता हूं कि समस्त खंड की बहुत ही बुरी रचना है और इस खंड की इस प्रकार की रचना की जानी चाहिये थी।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

''राज्य-कार्य के प्रशासन सम्बन्धी किसी सूचना को राज्यपाल मंगा सकता है और यदि मुख्यमंत्री के मतानुसार राज्यपाल के उचित कर्त्तव्य-पालन के लिये ऐसी सूचना आवश्यक है, तो वह उसको दी जायेगी।''

अन्य सब विषयों में राज्यपाल का कोई कर्त्तव्य नहीं है। केवल वही सूचना, जो उसे अपने कर्त्तव्य पालन में सहायता करे, उसके पास भेजी जाये। मुझे भय है कि इस खंड की दु:खद रचना की गई है। यह प्रतीत होता है कि मानो राज्यपाल वही राज्यपाल है, जो ब्रिटिश शासक का प्रतिनिधि था और इसी कारण मुख्यमंत्री उसके अधीन रखा गया है और उसे उसके आदेशों का पालन करना होगा। पर वर्तमान संविधान, जिसका हम निर्माण कर रहे हैं, ऐसा नहीं है। हम यहां किसी व्यक्ति को न तो शासक के रूप में और न शासक के प्रतिनिधि के रूप में रख रहे हैं। एकाधिपति शासन-व्यवस्था का प्रश्न नहीं है, यह तो लोकतंत्र का प्रश्न है। राज्यपाल को राज्य के उन कार्यों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, जो पूर्णतया मंत्रणालय के विचाराधीन हैं। वह केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है, जबकि वह सूचना उसकी स्वविवेक शक्ति के प्रयोग करने के लिये आवश्यक हो तथा अन्य विषयों की सूचना वह मुख्यमंत्री से नहीं मांग सकता है और मुख्यमंत्री का यह कर्त्तव्य भंग करना नहीं हो सकता, यदि वह राज्यपाल को कोई ऐसी सूचना न दे जो पूर्णतया उसके विचाराधीन है। यदि राज्यपाल कोई सुसंगति प्रकट कर सकता है, तो अवश्य ही वह सूचना उसको दी जायेगी, अन्यथा नहीं।

श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि इस अनुच्छेद का तीसरा खंड उसके सब खंडों से अधिक खतरनाक है उसमें कहा गया है—''किसी विषय को, जिस पर मंत्री ने विनिश्चय कर लिया हो किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया हो, राज्यपाल के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचार के लिये रखना।'' ऐसे बहुत से कार्य हैं जिनको मंत्रणालय द्वारा किया जाता है, हां यह अवश्य है कि उनको गैर-रस्मी परामर्श द्वारा किया जाता है। बहुत से ऐसे कार्य हैं, जिनको कोई विशिष्ट मंत्री करता है और यदि उसे कोई संदेह होता है, तो वह बहुधा मुख्यमंत्री से परामर्श करता है। मुख्यमंत्री से यह कहने वाला कि इस विषय को मंत्रिमंडल के सम्मुख रखो, राज्यपाल कौन है? वह ऐसा क्यों करे? मंत्री के रूप में मैंने कोई आदेश पारित कर दिया और जब मुझे यह विदित हुआ कि इसमें कुछ सन्देह है, तो मैंने मुख्यमंत्री से पूछा कि क्या वह आदेश ठीक है या नहीं। यदि मुख्यमंत्री यह कह देता है कि वह ठीक है, तो मैं उस आदेश को पारित कर देता हूं। वह आदेश बहुत जरूरी है और उस आदेश पर शीघ्र कार्यवाही की जानी चाहिये। ऐसे आदेश से राज्यपाल को क्या सम्बन्ध? इस विषय पर पुनर्विचार करने के लिये राज्यपाल मुख्यमंत्री से किस प्रकार कह सकता है? उसकी शक्तियों के क्षेत्र में वह बिल्कुल ही

न हो और उस पर पुनर्विचार किया ही क्यों जाये? श्रीमान्, उदाहरणार्थ, मान लीजिये कि न्यायमंत्री मृत्यु-दंड का परिहार करता है; समस्त विषयों पर विचार कर वह ऐसा करता है। उसने मुख्यमंत्री से भी परामर्श कर लिया है, परन्तु उसका विनिश्चय सचिव की मंत्रणा के विरुद्ध है और सचिव यह करता है कि वह राज्यपाल के पास जाता है और कहता है–''यह एक ऐसा व्यक्ति है जिसका मृत्यु-दंड परिहार किया जा रहा है और आपको चाहिये...

***अध्यक्ष:** इस संविधान में वह उपबंध कहां है, जो मंत्री को क्षमा प्रदान करने की शक्ति देता है?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, आपकी बात ठीक है, परन्तु मैं केवल एक उदाहरण दे रहा हूं। आखिरकार मंत्री उस आदेश को पारित कर देता है।

***अध्यक्ष:** इस संविधान के आधार पर नहीं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं एक और उदाहरण दूं। उदाहरणार्थ, मान लीजिये कि कुछ दुकानों, उत्पादन अथवा अन्य किसी वस्तु का मंत्रणालय द्वारा समझौता किया जाता है जो सचिव अथवा विभाग के मुखिया की इच्छा के विरुद्ध है और वे उस आदेश से सहमत नहीं होते हैं। इस विषय के पुनर्विचार के लिये वे राज्यपाल के पास पहुंचते हैं। वह आदेश मुख्यमंत्री से परामर्श करके पारित किया जा सकता था, परन्तु फिर भी राज्यपाल कहता है कि इस विषय पर मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया जाये—और समय बीत जाता है। मेरा प्रश्न यह है कि ऐसे विषयों में राज्यपाल को क्यों हस्तक्षेप करने दिया जाये। मैं केवल एक उदाहरण दे रहा हूं और भी उदाहरण हो सकते हैं पर ऐसे विषयों में जिनसे राज्यपाल का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, जिनके सम्बन्ध में किसी विशिष्ट मंत्री ने मुख्यमंत्री से परामर्श कर आदेश पारित किये हैं, राज्यपाल को क्या अधिकार है कि वह मुख्यमंत्री से फिर यह कहे कि मंत्रिमंडल द्वारा इस विषय पर विचार हो? क्यों राज्यपाल ऐसा कहे? ऐसा करने से उस विषय में देर होती है और आदेश निष्फल हो जाता है। आप यह कह सकते हैं कि मुख्यमंत्री ने गलती की, अत: यह एक ऐसा विषय है जिस पर मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया जाये। परन्तु राज्यपाल उन विषयों में मंत्री की गलती निकालने वाला कौन है, जो उसकी विशेष शक्तियों पर प्रभाव नहीं डालते हैं? यह प्रश्न है जिसे मैं पूछना चाहूंगा। इस आधार पर कि वह मंत्री से सहमत नहीं होता है, अथवा इस आधार पर कि उसके पदाधिकारी मंत्रियों से सहमत नहीं होते हैं, राज्यपाल अपनी टांग अड़ाने वाला तथा मुख्यमंत्री अथवा मंत्रिमंडल से किसी विषय पर पुनर्विचार करने के लिये कहने वाला कौन है? यह खंड बहुत खतरनाक है, यह खंड बड़ा ही खराब खंड है।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, यहां मैं यह कहूंगा कि कुछ प्रांतों में प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री से बिना परामर्श किये मंत्री राज्यपाल को कागज भेज देता है और उसे ऐसा करने दिया जाता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** यह दोषपूर्ण है। राज्यपाल क्यों हस्तक्षेप करे? मुख्यमंत्री वहां है और यदि वह देखता है कि कोई विशिष्ट मंत्री सरकारी नीति के विरुद्ध कार्य कर रहा है, तो वह कोई भी कागज मंगा सकता है, वह मंत्री को मंत्रणा दे सकता है या वह स्वयं आदेश पारित कर सकता है। यहां राज्यपाल का क्या काम है? मैं माननीय डाक्टर अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि जो कुछ मैंने कहा है, उस पर ध्यान देते हुये समस्त स्थिति पर पुनर्विचार करें। मुझे विश्वास है कि अन्य खंडों के बारे में हम चाहे जो कुछ कहें, खंड (ग) मंत्रिमंडल और राज्यपाल में संघर्ष तथा झगड़े पैदा करेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मुझे यह कहना चाहिये कि इस अनुच्छेद 147 पर जो इतना उत्तेजनात्मक वाद-विवाद हुआ है उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है आरम्भ में ही मैं सभा को यह स्मरण कराना चाहूंगा कि यह अनुच्छेद 147 अनुच्छेद 65 की ठीक पुनरुत्पत्ति है, जिसको यह सभा पारित कर चुकी है। अनुच्छेद 65 राष्ट्रपति को वही शक्ति प्रदान करता है, जिनका अनुच्छेद 147 में राज्यपाल को देना प्रस्थापित किया गया है। अत: मैंने सोचा कि जो वाद-विवाद उस समय हुआ था, जबकि अनुच्छेद 65 सभा के समक्ष था, वह अनुच्छेद 147 के प्रयोजन के लिये पर्याप्त था।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं माननीय डाक्टर अम्बेडकर को यह याद दिलाऊं कि राष्ट्रपति निर्वाचित है और राज्यपाल मनोनीत...(*बाधायें*)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** चूंकि वाद-विवाद समाप्त हो चुका है और चूंकि सभा के बहुत से सदस्य यह समझते हैं कि इस अनुच्छेद 147 के पीछे अवश्य कोई बात ऐसी है, जो प्रान्त में मंत्रियों तथा मंत्रिमंडल की स्थिति को संकट में डाल देगी, इसलिये मैं कुछ व्याख्या करना चाहता हूं।

मैं यह चाहूंगा कि सबसे पहले सभा इस बात पर ध्यान दे। संविधान के अंतर्गत राज्यपाल के लिये ऐसा कोई भी प्रकार्य नहीं है, जिसका वह स्वयं निर्वहन कर सकता हो। यद्यपि उसके लिये कोई प्रकार्य नहीं है पर उसे कुछ कर्त्तव्य पालन करने होंगे और मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि सभा इस अन्तर को ध्यान में रखे। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह निश्चय है कि यह अनुच्छेद किसी विशिष्ट विषय पर मंत्रिमंडल के विनिश्चय को पलटने की शक्ति राज्यपाल को प्रदान नहीं करता है, बल्कि इसी अनुच्छेद

के अंतर्गत राज्यपाल के लिये अनिवार्य है कि वह मंत्रिमंडल की मंत्रणा को स्वीकार करे। मैं समझता हूं कि इस बात को हमें नहीं भुला देना चाहिये। कहीं भी इस अनुच्छेद में न खंड (क) में, न खंड (ख) में और न खंड (ग) में यह कहा गया है कि किसी विशेष परिस्थिति में राज्यपाल मंत्रिमंडल की बात पलट दे। अतः यह आलोचना, जो इस अनुच्छेद पर की गई है कि यह अनुच्छेद किसी प्रकार से मंत्रिमंडल के विनिश्चयों में हस्तक्षेप करने या उनको पलटने का अधिकार राज्यपाल को देता है, पूर्णतया विषय से परे है और पूर्णतया भ्रमात्मक है।

***श्री. एच.वी. कामतः** क्या वह उन विनिश्चयों को रोक अथवा उनमें बाधा नहीं डाल सकेगा...?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जब मैं बोल रहा हूं, उस समय मेरे मित्र मुझे बाधा न दें। अन्त में वे कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं और यदि मेरी स्थिति ऐसी होगी कि मैं उत्तर दे सकूं, तो उत्तर दूंगा।

राज्यपाल के प्रकार्य और उसके कर्त्तव्यों में, जिनका उसे पालन करना होगा, विभेद कर दिया गया है। मेरा निदेवन यह है कि यद्यपि राज्यपाल के लिये कोई प्रकार्य नहीं हैं, परन्तु फिर भी क्योंकि वह सांवैधानिक मुखिया है, उसे कुछ कर्त्तव्यों का पालन करना होगा। मेरे विचारानुसार उसके कर्त्तव्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक यह है कि उसे मंत्रिमंडल को पदारूढ़; रखना होगा चूंकि उसके प्रसाद काल पर्यन्त मंत्रिमंडल पदारूढ़ रहेगा, अतः उसे इस बात का ध्यान रखना होगा कि मंत्रिमंडल के विरुद्ध वह अपने प्रसाद का प्रयोग करे या नहीं और यदि करे तो कब। दूसरा कर्त्तव्य जो राज्यपाल का है और होना चाहिये, वह यह है कि वह मंत्रिमंडल को मंत्रणा दे, उसको चेतावनी दे, उसको कोई विकल्प सुझाये और पुनर्विचार करने के लिये कहे। मैं नहीं समझता हूं कि इस सभा में कोई व्यक्ति इस बात पर आपत्ति करेगा कि राज्यपाल पर यह कर्त्तव्य लादा जाये, क्योंकि अन्यथा राज्यपाल पूर्णतया अनावश्यक व्यक्ति होगा जिससे कोई लाभ नहीं। वह किसी पक्ष का नेता नहीं है; वह समूचे राज्य के रूप में लोक-प्रतिनिधि है। जनता के नाम में वह प्रशासन संचालन करता है। उसको यह देखना चाहिये कि प्रशासन इस प्रकार का हो, जिसको अच्छा, कुशल और ईमानदारी का प्रशासन समझा जाये। अतः इन दो कर्त्तव्यों पर विचार करते हुये जो राज्यपाल को पालन करने हैं अर्थात् प्रशासन पवित्र, भ्रष्टाचारहीन तथा निष्पक्ष हो और यह कि मंत्रिमंडल द्वारा की गई प्रस्थापनायें लोक-इच्छा के विरुद्ध नहीं हों, अतः इस कार्य के लिये मंत्रिमंडल को मंत्रणा देना, चेतावनी देना और पुनर्विचार के लिये कहना—मैं सभा से पूछता हूं कि जब तक राज्यपाल के समक्ष कुछ सूचना न हो, तब तक वह अपने कर्त्तव्य-पालन करने की स्थिति किस प्रकार ग्रहण कर सकता है? मैं निवेदन करता हूं कि जब तक उसकी स्थिति ऐसी नहीं होती है कि वह सूचना प्राप्त कर सके, तब तक जिन सांवैधानिक प्रकार्यों का मैंने अभी उल्लेख किया

है उनका निर्वाह राज्यपाल नहीं कर सकता है। उदाहरण के रूप में, मान लीजिये कि मंत्री कोई संकल्प पारित करते हैं—मैं जानता हूं कि आज भी अनेक प्रान्तों में बहुत से विषयों में ऐसा हुआ है—कि राज्यपाल के पास कोई कागज न भेजा जाये तो राज्यपाल अपने प्रकार्यों का किस प्रकार निवेदन करेगा? अच्छे और पवित्र प्रशासन हेतु राज्यपाल को अपने प्रकार्यों के निर्वहन करने में समर्थ होने के लिये हम राज्यपाल को कोई सूचना मांगने की शक्ति प्रस्थापित करते हैं। यदि मैं कह सकता हूं तो मैं समझता हूं कि सभा से मुझे यह कहना चाहिये कि केन्द्र में किस प्रकार कार्य संचालित होता है। जहां तक मुझे विदित है, मंत्रिमंडल के सब कागजात प्रधान राज्यपाल (गवर्नर जनरल) को भेजे जाते हैं। इसी प्रकार तत्कथित साप्ताहिक संक्षिप्त विवरण भेजा जाता है जिनको प्रत्येक मंत्रणालय तैयार करता है और जिनमें सार्वजनिक कार्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रत्येक मंत्रिमंडल द्वारा किये गये विनिश्चत होते हैं ये संक्षिप्त विवरण मंत्रिमंडल के पास आते हैं और प्रधान राज्यपाल के पास भी जाते हैं। यदि मान लीजिये कि विभाग द्वारा भेजे गये इस साप्ताहिक संक्षिप्त विवरण को देख कर मुख्य राज्यपाल को यह विदित होता है कि किसी मंत्री ने किसी विशिष्ट विषय पर मंत्रिमंडल के निर्देश बिना विनिश्चत किया है, जिसको वह ठीक नहीं समझता है, तो मुख्य राज्यपाल को यदि यह कहने की शक्ति दे दी जाये कि इस विशिष्ट विनिश्चय पर, जिसको किसी मंत्री ने शेष मंत्रियों से परामर्श किये बिना कर लिया है, मंत्रिमंडल द्वारा विचार किया जाये तो क्या इसमें कोई दोष है? मैं नहीं समझ सकता हूं कि इससे क्या हानि हो सकती है, मैं नहीं समझ सकता हूं कि सरकारी कार्य के प्रशासन में वह किस रूप का हस्तक्षेप होगा। अतः मैं निवेदन करता हूं कि इस अनुच्छेद पर जो आलोचना की गई है, वह या तो इस अनुच्छेद के गलत पढ़ने पर आधारित है अथवा किसी मिथ्या धारणा के कारण है, जो लोगों के मन में है कि यह अनुच्छेद राज्यपाल को प्रशासन में हस्तक्षेप करने की शक्ति दे रहा है। ऐसी किसी बात को नहीं सोचा गया है और मुझे विश्वास है कि अनुच्छेद 147 की भाषा से ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकलेगा। जो कुछ यह अनुच्छेद करता है, वह यह है कि राज्यपाल को ऐसी स्थिति में रखा जाये कि वह उन कर्त्तव्यों का प्रकार्य तो—उनको मैं नहीं कहता हूं क्योंकि प्रकार्य तो उसके कुछ नहीं हैं—पालन कर सके, जिसका पालन प्रत्येक अच्छे राज्यपाल को करना चाहिये। *(तालियां)*

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं डाक्टर अम्बेडकर से कुछ प्रश्न पूछ सकता हूं?

***अध्यक्षः** अब प्रश्न पूछने से क्या लाभ? आपको अवसर मिल चुका था।

***श्री एच.वी. कामतः** डाक्टर अम्बेडकर ने कहा था कि उनके भाषण के पश्चात् मैं कुछ प्रश्न कर सकूंगा।

***अध्यक्षः** चर्चा के अन्त में प्रश्न करने की प्रथा को मैं पसन्द नहीं करता हूं। समस्त प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका है। अब मैं इस अनुच्छेद पर मत लूंगा, क्योंकि इस पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 147 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 147 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 147-क

***अध्यक्षः** प्रो. शाह ने एक और अनुच्छेद 147-क बढ़ाना प्रस्थापित किया है।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

अनुच्छेद 150

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 148 और 149 पारित किये जा चुके हैं। हम अनुच्छेद 150 पर पहुंचते हैं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि इस अनुच्छेद को स्थगित किया जाये।

***अध्यक्षः** क्या सभा की यह इच्छा है कि इस अनुच्छेद को स्थगित किया जाये?

***माननीय सदस्यगणः** जी हां।

अनुच्छेद 151

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 151 पर पहुंचते हैं।

(संशोधन संख्या 2298 से 2304 तक पेश नहीं किये गये।)

(संशोधन संख्या 2305 पेश नहीं किया गया।)

श्री गुप्ते द्वारा तीसरी सूची की संख्या 181 में इस संशोधन पर संशोधन है, पर मूल संशोधन पेश नहीं किया गया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 2305 को पेश करूंगा।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 151 के खंड (1) में से 'and the expiration of the said period of five years shall operate as a dissolution of the Assembly' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।''

***श्री बी.एम. गुप्ते:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2304 के निर्देश से अनुच्छेद 151 के खंड (1) के पश्चात् निम्न परन्तुक प्रविष्ट कर दिया जाये:

'Provided that the said period may, while a Proclamation of Emergency is in operation, be extended by Parliament for a period not exceeding one year at a time and not extending in any case beyond a period of six months after the Proclamation has ceased to operate.'

(परन्तु उक्त कालावधि को, जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, संसद विधि द्वारा, किसी कालावधि के लिये बढ़ा सकेगी, जो एक बार एक वर्ष से अधिक न होगी तथा किसी अवस्था में भी उद्घोषणा के प्रवर्तन का अन्त हो जाने के पश्चात् छः मास की कालावधि से अधिक विस्तृत न होगी।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** एक औचित्य प्रश्न है यह संशोधन संख्या 2304 पेश नहीं किया गया है।

***अध्यक्ष:** यह मेरी गलती है। इसका सम्बन्ध 2304 से है, न कि 2305 से।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं संशोधन संख्या 2304 पेश कर रहा हूं। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 151 के खंड (1) में 'its first meeting' शब्दों के पश्चात् 'and no longer' शब्द प्रविष्ट किये जाये।''

***श्री बी.एम. गुप्ते:** श्रीमान्, अग्रसर होने के पूर्व में एक गलती ठीक करने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये निवेदन करता हूं, जो असावधानी अथवा उपेक्षा के कारण हो गई है। मैं अपने संशोधन में 'Parliament for a period' के स्थान में 'Parliament by law for a period' शब्द रखना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** हां, आपको ऐसा करने की अनुज्ञा है।

***श्री बी.एम. गुप्तेः** यह उपबंध ठीक वैसा ही है, जैसा कि हम केन्द्रीय संसद के लिये अनुच्छेद 68 को पारित कर चुके हैं। यहां यह और भी कम आपत्तिजनक है। उस अनुच्छेद में संसद को अपना जीवनकाल बढ़ाने दिया है। इस अनुच्छेद में मैंने संसद को राज्य के विधानमंडल का जीवनकाल बढ़ाने का अधिकार दिया है। कुछ लोग यह तर्क करेंगे कि अनुच्छेद 227 को विचार में रखते हुये इस शक्ति का संसद को देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि आपात में संसद को राज्य के समस्त विषयों पर विधान बनाने का अधिकार दिया गया है, अतः यह आवश्यक नहीं है कि राज्य के विधानमंडल का जीवनकाल बढ़ाया जाये। पर यह ठीक नहीं होगा, क्योंकि आपात का यह अनिवार्य अर्थ नहीं है कि उत्तरदायित्वपूर्ण प्रान्तीय सरकार के समस्त तंत्र को रद्द कर दिया जाये। इसके विपरीत युद्ध प्रयत्न अथवा आपात प्रयत्न में और भी अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि इस तंत्र को संचालित रखा जाये। यदि यह उपबंध नहीं रखा जाता है तो यदि आपातकाल में राज्य के विधानमंडल के काल का अवसान हो जाता है, तो हमारा उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। विधानमंडल स्वतः विघटित हो जायेगा और समस्त तंत्र निलम्बित हो जायेगा। अतः मैं निवेदन करता हूं कि संसद को, यदि वह चाहती है और यदि उस समय लोक-कल्याण के लिये यह आवश्यक हो, तो अवधि बढ़ाने की यह शक्ति संसद को होनी चाहिये। इसलिये मैं इस संशोधन को पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2306 और 2307 मसौदा सम्बन्धी है। संशोधन संख्या 2308, डा. अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 151 के खंड (2) में 'third year' शब्दों के स्थान में 'second year' शब्द रखे जायें।''

(संशोधन संख्या 2309 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** संशोधन पेश किये जा चुके हैं। क्या कोई व्यक्ति इस अनुच्छेद अथवा संशोधनों पर कुछ कहना चाहता है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, अग्रसर होने से पूर्व मैं यह जानना चाहूंगा कि अनुच्छेद 150 के पारित करने से पूर्व क्या इस अनुच्छेद को लिया जा सकता है, क्योंकि इस अनुच्छेद में यह निर्धारित किया गया है कि एक तिहाई सदस्य तीन वर्ष के पश्चात् निवृत्त हो जायेंगे। जब तक हम परिषद् की रचना के बारे में न जानें, हम यह किस प्रकार विनिश्चय कर सकते हैं कि वे दो वर्ष पश्चात् निवृत्त हो अथवा तीन वर्ष पश्चात्।

***अध्यक्षः** परिषद् की रचना चाहे कैसी हो, आधे सदस्य दूसरे वर्ष के अन्त में निवृत्त हो जायेंगे और यदि एक तिहाई के लिये विनिश्चय किया जाता है तो एक तिहाई निवृत्त हो जायेंगे। परिषद् की रचना पर यह किसी रूप में भी निर्भर नहीं होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यदि आपका यही आदेश है तो, श्रीमान् यह मुझे शिरोधार्य हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यह अनुच्छेद पारित किया जा चुका है कि द्वितीय सदन होगा। यह अनुच्छेद केवल इस बात पर विचार करता है कि सदस्य स्वयं अपना पुनर्निर्वाचन किस प्रकार करेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** हमें अभी यह विनिश्चय करना है कि वह परिषद् नौ वर्ष तक रहेगी अथवा छः वर्ष तक और यह परिषद् की रचना पर निर्भर होगा। यह रचना उस अवधि को निश्चित करेगी जिसके पश्चात् एक तिहाई सदस्य निवृत्त होंगे।

***अध्यक्ष:** वह परिषद् की रचना पर निर्भर नहीं है। सदन का जीवनकाल चाहे कितना ही हो, उस की रचना उस विनिश्चय के अनुसार होगी, जिसको हम अनुच्छेद 150 के सम्बन्ध में स्वीकार करेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** बहुत अच्छा, श्रीमान्, मैं आपके आदेश को शिरोधार्य करता हूं।

मुझे केवल यह कहना है कि श्री गुप्ते का संशोधन, जो संसद को एक बार जबकि आपात का अन्त न हो, विधानमंडलों का जीवनकाल एक वर्ष तक और बढ़ाने की शक्ति देता है वह लगभग पूर्णतया लोकतंत्र विरोधी है, पर यह होगा कि कभी-कभी प्रान्तों में विधान सभायें दस या बारह साल तक बनी रहेंगी। मान लीजिये युद्ध हो जाता है और वह युद्ध बहुत दिनों तक रहता है तो प्रति वर्ष सभाओं का जीवनकाल बढ़ा दिया जायेगा। मैं कहता हूं कि श्री गुप्ते का संशोधन, जो संसद को एक बार एक वर्ष के लिये प्रान्तीय विधान मंडलों का जीवनकाल बढ़ाने की शक्ति देना चाहता है, एक ऐसा संशोधन है जो पूर्णतया लोकतंत्र विरोधी है। मैं जानता हूं कि संसद के सम्बन्ध में हमने ऐसा उपबंध होने दिया है और उस समय भी मैंने उसका विरोध किया था। मुझे खेद है कि प्रधानमंत्री यहां नहीं हैं। मैं चाहता हूं कि वे यहां होते और इस विषय पर अपनी सम्मति हमें देते। जहां तक मैं जानता हूं वे इस उपबंध के विरुद्ध हैं। यह कहा गया है कि जब युद्ध जारी रहता है, तो निर्वाचन कठिन हो जाता है। पर मैं कहता हूं कि युद्धकाल में ही जनता का मनोवेग इतना बदल जाता है कि उसके विचार जानने के लिए निर्वाचन होना चाहिये। अतः मैं समझता हूं कि प्रांतीय विधान मंडलों के जीवनकाल को वर्ष प्रति वर्ष अनिश्चित समय तक बढ़ाने की यह शक्ति कुछ ऐसी है कि जो पूर्णतया लोकतंत्र विरोधी होने के साथ-साथ बहुत हानिकारक होगी। हम जानते हैं कि अमेरिका के संयुक्त राज्य में राष्ट्रपति का निर्वाचन उस समय हुआ था, जब युद्ध उच्च शिखर पर था और राष्ट्रपति रूजवेल्ट का पुनर्निर्वाचन हुआ था और मैं समझता हूं कि इसके कारण संयुक्त राज्य का गौरव बहुत उच्च हो गया था। मैं समझता हूं कि केवल यही उपयुक्त है कि बिना इस बात का विचार किये कि युद्ध हो अथवा न हो, विधान मंडलों के निर्वाचन पांच वर्ष

की नियत अवधि के पश्चात् हो। लोगों को प्रत्येक पंचवर्षीय अवधि के पश्चात् नये निर्वाचनों की मांग करने का अधिकार है। यह एक ऐसा अधिकार है, जिसे लोगों से आपात के बहाने नहीं छीनना चाहिये। यदि संसद को यह शक्ति दी जाती है, तो इसका दुरुपयोग हो सकता है और लोगों को अनिच्छित सरकार के हटाने तथा अपनी मर्जी की सरकार चुनने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है। अतः श्री गुप्ते के इस संशोधन के मैं विरोध में हूं।

इसके पश्चात् यह कहा गया है कि प्रत्येक तीसरी वर्ष परिषद् के एक तिहाई सदस्य निवृत्त होंगे। मुझे खुशी है कि डा. अम्बेडकर ने अब यह प्रस्थापना की है कि यह अवधि तीन वर्ष के स्थान में दो वर्ष की होगी। इसके परिषद् का जीवनकाल केवल छः वर्ष के लिये होगा, जो लगभग सभा के जीवनकाल के बराबर है। इससे परिषद् में अधिक नवीनता का भी आश्वासन मिलता है। अतः मैं डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** डा. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं श्री गुप्ते के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री गुप्ते के संशोधनों पर मत लूंगा, जिसे डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2304 के निर्देश से अनुच्छेद 151 के खंड (1) के पश्चात् निम्न परन्तुक प्रविष्ट कर दिया जाये:
>
> 'Provided that the said period may, while a Proclamation of Emergency is in operation be extended by Parliament for a period not exceeding one year at a time and not extending in any case beyond a period of six months after the Proclamation has ceased to operate.' ''
>
> (परन्तु उक्त कालावधि को, जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्त्तन में है संसद विधि द्वारा किसी कालावधि के लिये बढ़ा सकेगी, जो एक बार एक वर्ष से अधिक नहीं होगी तथा किसी अवस्था में भी उद्घोषणा के प्रवर्त्तन का अन्त हो जाने के पश्चात् छः मास की कालावधि से अधिक विस्तृत न होगी।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं संशोधन को वापस लेना चाहूंगा।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 2308 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 151 के खंड (2) में 'third year' शब्दों के स्थान में 'second year' शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् मैं इन दोनों संशोधनों द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 151 पर सभा का मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 151 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 151 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 152

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् हम अनुच्छेद 152 पर आते हैं। इस अनुच्छेद पर डा. अम्बेडकर का संशोधन संख्या 2311 है, जिस पर कई और संशोधन हैं, जिनमें से एक संशोधन प्रथम सूची में संशोधन संख्या 38 है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 152 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'*152. Qualification for membership of the State Legislature*—A person shall not be qualified to be chosen to fill a seat in the Legislature of a State unless he—

(a) is a citizen of India;

(b) is, in the case of a seat in a Legislative Assembly not less than twenty five years of age and, in the case of a seat in the Legislative Council, not less than thirty five years of age; and

(c) possesses such other qualifications as may be prescribed in that behalf by or under any law made by the Legislature of the State.' ''

(152, *राज्य के विधान-मंडल की सदस्यता के लिये अर्हता*—कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधानमंडल में किसी स्थान की पूर्ति के लिये चुने जाने के लिये अर्ह न होगा जब तक कि—

(क) वह भारत का नागरिक हो;

(ख) विधानसभा के स्थान के लिये कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का, तथा विधानपरिषद् के स्थान के लिये कम से कम पैंतीस वर्ष की आयु का न हो; तथा

(ग) ऐसी अन्य अर्हतायें न रखता हो जोकि इस बारे में निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन निहित की जायें।)

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैंने कहा था, इस पर अनेक संशोधन है। उनको अब पेश किया जा सकता है।

(अनुपूरक सूची के संशोधन संख्या 126, 127, 128 और 129 पेश नहीं किये गये।)

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, तृतीय सप्ताह की सूची 1 के संशोधन संख्या 38 को मैं पेश करती हूं, जो इस प्रकार है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2311 में प्रस्थापित अनुच्छेद 152 के खंड (ख) 'thirty five' (पैंतीस) शब्द के स्थान में 'thirty' (तीस) शब्द रखा जाये।''

यह उस खंड के समनुरूप है जिसे हम उत्तर सदन के सदस्यों के लिये आयु अर्हता के सम्बन्ध में पारित कर चुके हैं, अत: इस विषय पर कुछ अधिक नहीं कहना है कि यह संशोधन यहां क्यों पेश किया जा रहा है। परन्तु भाषण समाप्त करने से पूर्व मैं इस अनुच्छेद के खंड (ग) के संबंध में, जिसको डा. अम्बेडकर ने प्रस्थापित किया है, एक शंका का निवारण कराना चाहूंगी। उसमें यह कहा गया है कि किसी व्यक्ति की ''ऐसी अन्य अर्हतायें होनी चाहिये जो कि इस बारे में निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन विहित की जायें।''

श्रीमान्, जो शंका मेरे मन में है वह यह है यद्यपि हमने वयस्क मताधिकार के सिद्धांत को अपनाया है और यह आशा करते हैं कि इन दोनों सभाओं के लिये लोक-निर्वाचित व्यक्ति सदस्य होंगे, जिनको केवल इस सदन में बैठने के लिये अपने प्रतिनिधि भेजने का ही हक न होगा, वरन् उत्तर सदन के लिये भी होगा चाहे वह केन्द्र का हो अथवा प्रांत का—पर मेरी शंका यह है कि जिस रूप में यह उपखंड उसके अनुसार यह बिल्कुल संभव है कि कोई सम्पत्ति विषयक अर्हता अथवा कोई अन्य अर्हता पुर:स्थापित कर दी जाये, जिसके कारण सदस्य विधानमंडल के किसी सदन में अपने आप को उम्मीदवार के रूप में प्रस्तुत करने से रोक दिये जायें।

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

श्रीमान्, प्रान्तीय विधानमंडल के अर्थात् राज्य के उत्तर सदन की रचना को पेश करते हुये कनाडा और दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों का उल्लेख किया गया था। जहां उन लोगों के लिये, जो उत्तर सदन के सदस्य हो सकते हैं, सम्पत्ति विषयक अर्हता विहित है। यदि हमारे मन में यही विचार बना रहता है कि इस उपखंड को किसी भी समय पुरःस्थापित किया जा सकता है—और मुझे तो यह भी पता नहीं है कि इस उपखंड को कहां रखा जायेगा, परन्तु कहीं इससे उत्तर सदन और अवर सदन के सदस्यों की अर्हतायें निर्बन्धित न हो जायें और जो कुछ अपने वयस्क मताधिकार द्वारा दे दिया है, अर्थात् यह कि प्रत्येक वयस्क मत दे सकता है और 25 अथवा 30 वर्ष की आयु का कोई भी वयस्क अवर अथवा उत्तर सदन का सदस्य हो सकता है, वह निर्बन्धित न हो जाये और यदि कोई और अर्हतायें विहित की जाती हैं, तो उसके द्वारा उसका अधिकार छीन लिया जाये। मेरा प्रश्न यह है कि हम अपने अधिकार इस सभा में निर्धारित संविधान से प्राप्त करें अथवा वे संसद से प्राप्त किये जायें, जो समय-समय पर उनमें परिवर्तन कर सकती है। यदि संसद जो कि एक संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न निकाय होगा, संविधान में परिवर्तन करना चाहती है तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। उसके लिये एक विहित रीति है और मतों की कुछ निश्चित संख्या द्वारा ही संविधान में परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु मान लीजिये कि किसी प्रान्तीय विधानमंडल में अथवा संसद में किसी निर्दिष्ट समय किसी प्रस्ताव पर मत लिया जाता है और सदस्यों की अर्हता का प्रश्न उठाया जाता है, तो मुझे भय है कि यह रक्षाकवच अथवा उपबंध, जिसको हमने रखा है कि प्रत्येक वयस्क अथवा 25 या 30 वर्ष की आयु वाला कोई वयस्क किसी भी सदन का सदस्य हो सकेगा, रद्द हो जायेगा। अतः मैं आशा करती हूं कि डा. अम्बेडकर सभा को यह आश्वासन देंगे कि यह संभावना उनके मन में नहीं है, क्योंकि जहां तक अनर्हताओं का सम्बन्ध है, दोनों सदनों में से किसी का सदस्य होने या सदस्य के रूप में उपस्थित होने से किसी सदस्य को अनर्हित करने वाला एक पृथक् अनुच्छेद है। यहां यह विशिष्ट रूप से कहा गया है कि समय-समय पर सदस्यों की अर्हतायें विहित की जायेंगी। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं।

(संशोधन संख्या 2312 से 2318 तक पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

> ''कि अनुच्छेद 152 में 'age' शब्द के पश्चात्, जहां कि वह पहली बार आया है, 'is literate and is not otherwise disqualified from being elected' शब्द और 'age' शब्द जहां दूसरी बार आया है उसके पश्चात् 'is qualified to vote

in the constituency from which he seeks election, and is not otherwise disqualified from being elected' शब्द बढ़ा दिये जायें।''

इस संशोधन के विचारार्थ जिस महत्त्वपूर्ण बात को मैं कहना चाहूंगा, वह है उन उम्मीदवारों के लिये, जो उन्हें विधानमंडल में निर्वाचित होने का प्रयत्न करते हैं, उन्हें साक्षर होने की आवश्यकता है। हमारे देश में अविद्या की भयानक भरमार है—पूर्ण निरक्षरता है और निरक्षरता के प्रबल होने का संकट अथवा कदाचित विधानमंडल में निरक्षर उम्मीदवारों के आने का संकट मुझे इतना महान प्रतीत होता है कि मैं समझता हूं कि विधान मंडल में निर्वाचन के लिये प्रयास करने वाले उम्मीदवारों के लिये कम से कम साक्षर होने की आवश्यक बात या अर्हता रखें तो अच्छा होगा।

वर्तमान वस्तुस्थिति में यह मांग करना कठिन है कि समस्त निर्वाचकगण साक्षर हों, क्योंकि हमारे यहां 85 प्रतिशत जनसंख्या निरक्षर है और वयस्क मताधिकार होने से यह स्वाभाविक है कि मतदाता अधिकतर निरक्षर होंगे। यह दुर्भाग्य ही है, जिसको हम शीघ्र से शीघ्र मिटाना चाहेंगे और मुझे पूर्ण विश्वास है कि कुछ कालावधि के अंतर्गत शायद दस वर्ष के अंतर्गत—निरक्षरता पूर्णतया नष्ट कर दी जायेगी और लोकतंत्रात्मक नागरिकता की इस न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति मतदाताओं में हो जायेगी।

परन्तु जब तक वह विद्यमान है और जब तक, यदि अधिक नहीं तो लगभग तीन चौथाई जनसंख्या के निरक्षर होने का संकट हमारे सम्मुख है, मैं समझता हूं कि इस संविधान में इस आवश्यक बात का रखना आवश्यक है कि उम्मीदवार कम से कम साक्षर तो हों और जो साक्षर न हों उनको अनर्ह कर दिया जायेगा।

श्रीमान्, मेरे संशोधन में उम्मीदवारों के लिये अनर्हता सम्बन्धी अन्य पद इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं और उनके ऊपर मैं इतना जोर भी नहीं देता हूं। मसौदा-समिति के सभापति ने जो संशोधन पेश किया है, यदि वह पारित हो जाता है, तो उसमें उनमें से कुछ आ जायेंगे। परन्तु उम्मीदवारों की साक्षरता के विषय में मेरे कट्टर विचार हैं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभा इस बात में मुझसे सहमत होगी और साक्षरता की इस अर्हता को केवल संसद के अधिनियम द्वारा नहीं वरन् संविधान द्वारा निर्धारित करेगी।

मैं अपने संशोधन को सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन पेश हो चुके हैं। यदि कोई व्यक्ति इस अनुच्छेद अथवा किसी संशोधन पर बोलना चाहता है, तो वह बोल सकता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 68 को स्वीकार करने में मुझे कुछ कठिनाई है। पहली कठिनाई यह है

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कि मैं समझता हूं कि विधान सभा के सदस्य को अधिक उत्साही, अधिक जोशपूर्ण और अधिक ओजस्वी होना चाहिये, अपेक्षाकृत विधान-परिषद् के सदस्यों के, जो वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ होंगे, पर संशोधन में यह कहा गया है कि विधान सभा के सदस्य कम से कम पैंतीस वर्ष के हों और विधान-परिषद् के सदस्य कम से कम तीस वर्ष के हों। मैं निवेदन करता हूं कि यह पूरी बात उल्टे रूप में होनी चाहिये। जैसा कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन में अवर आगार के लिये आयु-सीमा...

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि आपको मिथ्याभ्रम है। वह 'पैंतीस वर्ष' के स्थान में 'तीस वर्ष' शब्द चाहती है। वह परिषद् से सम्बन्ध रखता है न कि सभा से। ''विधान-परिषद् के स्थान के लिये कम से कम 35 वर्ष की आयु का न हो'' इसके स्थान में वह ''30 वर्ष'' रखना चाहती है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** परन्तु श्रीमान्, केन्दीय विधान मंडल अर्थात् संसद के तत्स्थानी उपबंध में यह उपबंध है कि लोक सभा अर्थात् अवर सदन के लिये पच्चीस वर्ष की आयु-सीमा होगी और विधान-परिषद् के लिये पैंतीस से कम न होगी। परन्तु जैसा कि छापा गया है और सूचित किया गया है...।

***अध्यक्ष:** यह कहा गया है कि राज्य की परिषद् के स्थान के लिये पैंतीस वर्ष की आयु से कम न हो और लोक सभा के स्थान के लिये तीस वर्ष के कम न हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अत: उत्तर सदन के लिये आयु-सीमा 30 और अवर सदन के लिये 25 है। इस दशा में तो मुझे कुछ भी नहीं कहना है। इस भूल का उत्तरदायित्व उस वेग और शीघ्रता पर है, जिसके साथ संशोधन हमारे ऊपर फेंके जा रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मूल खंड के स्थान में डा. अम्बेडकर के संशोधन को रखा गया है। श्रीमान्, इस संशोधन में मुझे दो बातों पर आपत्ति है; पहली आपत्ति खंड (ग) पर है। इस खंड में कहा गया है:

> ''ऐसी अन्य अर्हतायें न रखता हो जोकि इस बारे में निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन विहित की जायें।''

इसमें ''संसद'' शब्द कहा ही नहीं गया है। मैं यह पसन्द करता, कि इन अर्हताओं को स्वयं संविधान में निर्धारित किया जाता। संविधान का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि

उसमें उम्मीदवारों की अर्हतायें निर्धारित की जायें, परन्तु दुर्भाग्वश इसके सम्बन्ध में विनिश्चय करना राज्य के विधानमंडलों पर छोड़ दिया गया है। फल यह होगा कि प्रत्येक राज्य अपने-अपने उम्मीदवारों के लिये पृथक्-पृथक् अर्हतायें रखेगा। कोई व्यक्ति जो बम्बई की सभा का सदस्य हो सकता है वह संयुक्त प्रांत में सदस्य होने का पात्र न होगा, क्योंकि संभव है कि बम्बई में अर्हतायें संयुक्त प्रांत की अर्हताओं से भिन्न हों। मैं समझता हूं कि यह एक त्रुटि है, जिसे डा. अम्बेडकर ठीक करेंगे।

श्रीमान्, जैसा कि मैंने कहा था, मैं तो इस बात के सर्वथा विरुद्ध हूं कि संसद को अर्हता विहित करने की शक्ति दी जाये, स्वयं संविधान में यह निर्धारित करना चाहिये कि ये अर्हतायें क्या होंगी। अन्यथा उम्मीदवारों की अर्हतायें पक्षों के दांव-पेच हो जायेंगे। उदाहरणार्थ, कोई कट्टर सरकार शक्ति-सम्पन्न हो सकती है और यह निर्धारित कर सकती है कि केवल जमींदार या वे लोग जो किसी विशिष्ट राशि को आय-कर में देते हैं, निर्वाचन में खड़े होने के पात्र होंगे। नतीजा यह होगा कि साधारण लोग वंचित हो जायेंगे। अतः श्रीमान्, मैं समझता हूं कि खंड (ग) अपमार्जित कर दिया जाये।

इसके पश्चात् खंड (ख) पर आइये। इसमें यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति निर्वाचन के लिये अर्ह न होगा—विधानसभा के लिये यदि वह पच्चीस वर्ष की आयु से कम हो और विधान-परिषद् के लिये यदि वह तीस वर्ष की आयु से कम हो। जैसा कि मैंने उस दिन कहा था, अन्य संविधानों में साधारणतया ये सीमायें विहित नहीं की गई हैं। इंग्लैंड में कोई भी मतदाता संसद का सदस्य हो सकता है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो इससे बहुत कम आयु में प्रान्तीय सभाओं के सदस्य हो गये हैं। अतः श्रीमान्, मैं समझता हूं कि कम से कम प्रान्तीय विधानमंडलों के लिये, जो संसदीय कार्यों के लिये प्रशिक्षण गृह हैं, सदस्य बनने की आयु इक्कीस वर्ष नियत की जाये।

***अध्यक्षः** हमारे सम्मुख ये सब तब प्रस्तुत किये गये थे जब हमने अनुच्छेद 68-क पर चर्चा की थी। क्या यह आवश्यक है कि उन्हीं तर्कों को फिर से दुहराया जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा पेश किये संशोधन को मैं स्वीकार करता हूं। खंड (ग) के बारे में उन्होंने जो भय प्रकट किया है कि यह खंड सदस्यों के लिये संसद द्वारा सम्पत्ति विषयक अर्हतायें विहित कराने में सहायक होगा, इस सम्बन्ध में मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि उपखंड (ग) की तह में ऐसी कोई बात नहीं हैं। इस खंड के पीछे जो बात है वह दिवाला, चित्त विकृति, किसी विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्र में निवास और ऐसी ही बातों का उपबंध है यह निश्चित

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है कि ऐसा कोई विचार नहीं है कि उम्मीदवारों के लिये सम्पत्ति विषयक अर्हता एक आवश्यक शर्त के रूप में रखी जाये।

इसके पश्चात् साक्षरता के बारे में प्रो. के.टी. शाह के संशोधन के प्रति मैं समझता हूं कि यह ऐसा विषय है जिसको विधानमंडलों पर छोड़ना ही ठीक होगा। अर्हतायें विहित करते समय यदि विधानमंडल यह समझे कि साक्षरता की अर्हता आवश्यक है तो मैं समझता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे उसे लागू कर देंगे।

श्रीमान्, केवल एक बात है जिसका मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूंगा कुछ रूप में उपखंड (ग) अनुच्छेद 290 और 291 से सम्बन्धित है जो निर्वाचन सम्बन्धी विषय के हैं। हमने इन अनुच्छेदों को पारित नहीं किया है। यदि अनुच्छेद 290 और 291 पर विचार करते समय सभा इस निर्णय पर पहुंचती है कि उपखंड (ग) में दिये हुए उपबंध संसद निर्मित विधि द्वारा विहित किये जाये तो मसौदा-समिति के उपखंड (ग) के अन्तिम भाग पर पुनर्विचार करने के अधिकार को मैं सुरक्षित रखना चाहूंगा। इस बात के अधीन रहते हुए मैं समझता हूं कि संशोधित रूप में इस अनुच्छेद को पारित किया जाये।

***अध्यक्ष:** अब मैं इस अनुच्छेद पर विभिन्न संशोधनों सहित मत लूंगा। पहले संशोधन सूची 1 का संशोधन संख्या 38 श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी का है संशोधन प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2311 में प्रस्थापित अनुच्छेद 152 के खंड (ख) में 'thirty-five (पैंतीस) शब्द के स्थान में 'thirty' (तीस) शब्द रखा जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 152 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'152. *Qualification for membership of the State Legislature*—A person shall not be qualified to be chosen to fill a seat in the Legislature of a State unless he—

(a) is a citizen of India;

(b) is, in the case of a seat in a Legislative Assembly, not less than twenty-five years of age and in the case of a seat in the Legislative Council, not less than thirty years of age; and

(c) possesses such other qualifications as may be prescribed in this behalf by or udner any law made by the Legislature of the State.' ''

[152. *राज्य के विधानमंडल की सदस्यता के लिए अर्हता*—कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधानमंडल में किसी स्थान की पूर्ति के लिए चुने जाने के लिए अर्ह न होगा जब तक कि—

(क) वह भारत का नागरिक न हो;

(ख) विधानसभा के स्थान के लिए कम से कम 25 वर्ष की आयु का, तथा विधान-परिषद् के लिए कम से कम 30 वर्ष की आयु का न हो; तथा

(ग) ऐसी अन्य अर्हतायें न रखता हो जो कि इस बारे में निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन विहित की जाये।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''अनुच्छेद 152 में 'age' शब्द के पश्चात्, जहां कि वह पहली बार आया है, 'is literate, and is not otherwise disqualified from being elected' शब्द और 'age' शब्द जहां दूसरी बार आया है उसके पश्चात् 'is qualified to vote in the constituency from which he seeks election and is not otherwise disqualified from being elected' शब्द बढ़ा दिये जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 152 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 152 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् एक और अनुच्छेद 152-क की सूचना हमारे पास है, जो मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद से आवृत हो जाता है जिसको हमने अभी पारित किया है, अत: उसके लेने की आवश्यकता नहीं है।

इसके बाद हम अनुच्छेद 153 पर पहुंचते हैं।

अनुच्छेद 153

***अध्यक्षः** सभा के विचारार्थ अनुच्छेद 153 प्रस्तुत है।

सर्वप्रथम संशोधन संख्या 2321 के सम्बन्ध में, : चूंकि हम अनुच्छेद 69 के सम्बन्ध में एक ऐसे ही संशोधन पर अभी उस दिन बहुत चर्चा कर चुके थे। क्या प्रो. शाह फिर भी इसे पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** यदि मैं औचित्य के अंतर्गत हूं तो मैं उसे पेश करना चाहूंगा। परन्तु यदि आप उसे नियम विरुद्ध ठहराते हैं तो उसको पेश नहीं किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** उसे नियम विरुद्ध ठहराने का प्रश्न नहीं है। यदि उसको पेश किया जाता है तो जो तर्क एक बार प्रस्तुत किये जा चुके हैं उनको फिर दुहराया जायेगा।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं इस बात से सहमत हूं कि यह उसी प्रकार का संशोधन है, परन्तु ठीक वैसा नहीं है।

***अध्यक्षः** मैंने यह नहीं कहा कि यह ठीक वैसे ही है।

***प्रो. के.टी. शाहः** ठीक है। श्रीमान्, मैं उसे पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2322, 2323, 2324, 2325 और 2326 पेश नहीं किये जाते हैं। क्योंकि वे शाब्दिक संशोधन हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** चूंकि मेरा संशोधन संख्या 2327 उन संशोधनों का अंग है जो पेश नहीं किये गये हैं, मैं उसे पेश नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** तो फिर संशोधन संख्या 2328, 2329 और 2330 भी निकल जाते हें। संशोधन संख्या 2331 पेश नहीं किया जाता है।

***श्री मुहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 153 के खंड (2) के उपखंड(ग) के अंत में 'if the Governor is satisfied that the administration is failing and the ministry has become unstable' शब्द प्रवृष्ट कर दिये जायें।''

इस खंड में विधान-सभा का आह्वान करने, सत्रावसान करने अथवा उसको विघटन करने के लिए राज्यपाल को कुछ शक्तियां दी गई हैं। मैं यह चाहता हूं कि कुछ कारण दिये जायें जिनके आधार पर सभा का विघटन आवश्यक हो। मैं देखता हूं कि अनुच्छेद

153 के खंड (3) पर डा. अम्बेडकर का एक संशोधन है जिसके द्वारा वे इस खंड को हटाना चाहते हैं जो इस प्रकार है: ''(3) इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपखंड (क) और (ग) के अधीन राज्यपाल के प्रकार्यों का प्रयोग राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेक से किया जायेगा।'' इसके विपरीत मैं चाहता हूं कि विघटन करने के लिए कुछ कारण दिये जायें। संविधान में कहीं भी हम वे शर्तें तथा परिस्थितियां नहीं रख रहे हैं जिनके अंतर्गत सभा स्थगित की जा सकती है। यदि हम कोई शर्त्त नहीं रखते हैं तो कठिनाइयां होंगी। मान लीजिये किसी प्रान्त में कोई ऐसा पक्ष शक्ति सम्पन्न है जिसके विचारों से राज्यपाल सहमत नहीं है ऐसी अवस्था में यह हो सकता है कि सभा विघटन करने के लिए राज्यपाल कोई न कोई कारण खोज ले और नये निर्वाचनों के लिये प्रबंध करे। यदि ऐसी बात हो जाती है तो वह सभा के विघटन करने के लिए कोई न्यायपूर्ण बात न होगी। केवल इस आधार पर कि राज्यपाल बहुसंख्यक पक्ष के विचारों का समर्थक नहीं है। सभा का विघटन नहीं होना चाहिये। ऐसी कठिनाइयों से मुक्त होने के लिये मैं समझता हूं कि यह आवश्यक है कि कुछ शर्तें और परिस्थितियां इस संविधान में रखी जायें जिनके अधीन ही राज्यपाल सभा का विघटन कर सके। कुप्रशासन अथवा मंत्रिमंडल की अस्थिरता तथा कार्य करने की अयोग्यता के अतिरिक्त अन्य और कोई कारण सभा के विघटन करने के लिये नहीं होना चाहिये। अत: इस विषय पर विचार किया जाये और हमें कुछ शर्तें और परिस्थितियां उपबन्धित करनी चाहिये जिनके अधीन राज्यपाल सभा का विघटन कर सके।

***अध्यक्ष:** इसके बाद का संशोधन संख्या 2333 पेश नहीं किया जाता है। डा. अम्बेडकर संशोधन संख्या 2334 पेश कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 153 के खंड (3) को निकाल दिया जाये।''

संवैधानिक राज्यपाल की योजना से यह खंड प्रकट रूप में असंगत है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2335 वैसा ही है जैसा कि अभी संशोधन पेश किया गया था। संशोधन संख्या 2336 पेश नहीं किया जाता है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, जो संशोधन अभी मेरे विद्वान् मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया है उसके अर्थ और निर्वचन को लेने के लिए क्या मैं आपकी अनुमति प्राप्त कर सकता हूं? यदि सभा द्वारा यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके कारण राज्यपाल को दी गई स्वविवेक की शक्तियों का निराकरण हो जायेगा। वैसे तो उपखंड (ख) है। क्या मैं यह समझूं कि जहां तक सभा के सत्रावसान का सम्बन्ध है, राज्यपाल मुख्यमंत्री अथव मंत्रिमंडल से परामर्श करके ऐसा करता है और इसी कारण खंड (3) में उसका कोई निर्देश आवश्यक नहीं है।

***अध्यक्ष:** वह खंड (3) को निकालना चाहते हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** खंड (3) में उपखंड (क) और (ग) का निर्देश है। मैं (क) और (ख) को परस्पर समान समझता हूं। राज्यपाल सदनों अथवा किसी सदन को किसी ऐसे समय और स्थान में समवेत होने के लिए आहूत कर सकता है जिनको वह ठीक समझे। अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि सत्रावसान का कार्य क्योंकर पृथक स्तर पर हो।

***अध्यक्ष:** यह ठीक वही है जो अब नहीं किया जा रहा है। तीनों को समान बनाया जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामत:** तो फिर इस अपमार्जन के एक दूसरे पहलू पर मै निर्देश करना चाहूंगा। यह वह प्रश्न है जिसे आपने इस सभा में उस दिन उठाया था अर्थात्, यह कि अपने प्रकार्य के प्रयोग करने में संघ के राष्ट्रपति को सहायता तथा मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिमंडल होगा।

यहां तत्स्थानी अनुच्छेद 143 है:

> ''राज्यपाल को अपने प्रकार्यों के प्रयोग में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिमंडल होगा जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होगा।'

श्रीमान्, जैसा कि आपने राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल के परस्पर सम्बन्ध के अनुच्छेद के सम्बन्ध में बताया था, क्या इस संविधान में कोई ऐसा अनुच्छेद है, उपबंध है जो राज्यपाल को उसके मंत्रिमंडल द्वारा दी गई मंत्रणा को स्वीकार करने के लिए या मानने के लिए बाध्य करता हो? इस अनुच्छेद में उसको विधान सभा के विघटन करने की शक्ति सौंपी जा रही है। सब लोकतंत्रों में यह एक गंभीर विषय है। अनेक विभिन्न लोकतंत्रों में ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं और कभी-कभी तो हमारे प्रान्तों तक में भी, जिनमें कि मंत्रिमंडल ने अपने विरुद्ध प्रस्तुत किये गये अविश्वास के प्रस्ताव के विरोध में समय लेने के लिए प्रयास करते हुए सभा का सत्रावसान कर देने के लिए राज्यपाल की सहायता प्राप्त की है। यह उतना गंभीर नहीं है जितना कि सभा का विघटन। यहां इस अनुच्छेद में यह आसानी से कहा गया है ''इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन।'' इस अनुच्छेद खंड (1) के प्रति मुझे हर्ष है कि हमारी संसद और हमारे अन्य विधानमंडल अब से अधिक बार और अधिक समय के लिए समवेत होंगे। मैं आशा करता हूं कि उचित समय होने पर इस विषय पर विचार किया जायेगा और यह प्रभाववर्त्ती होगा। इस अनुच्छेद का खंड (2) महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह राज्य के राज्यपाल द्वारा सभा के विघटन पर विचार व्यक्त करता है और इस बात को विचार में रखते हुए कि यद्यपि कोई विशिष्ट उपबंध

नहीं है—हां यह समझा जा सकता है और अव्यक्त भाव को व्यक्त करते हुए, डा. अम्बेडकर यह कह सकते हैं कि उसका सार तो वहां है; परन्तु हमने अभी तक राज्यपाल की स्वविवेक शक्तियों के निराकरण करने तक पर निश्चय नहीं किया है और कल ही सभा में इस विषय की हमने पूर्ण चर्चा की थी—परन्तु राज्यपाल को उसके मंत्रिमंडल द्वारा दी गई मंत्रणा को स्वीकार करने के लिए बाध्य करने वाला कोई विशिष्ट उपबंध इस संविधान में नहीं है यह इस संविधान में एक कमी है। यह होते हुए भी हम उसे विधानसभा विघटन करने की शक्ति सौंप रहे हैं और इस बात का जिक्र तक नहीं कर रहे हैं कि उसे इस सम्बन्ध में अपने मंत्रियों की मंत्रणा का अनुसरण करना चाहिए अथवा उनसे परामर्श करना चाहिए। मैं यह कहने के लिए विवश हूं कि यह शक्ति जिसे हम राज्यपाल को सौंप रहे हैं वह उस नई व्यवस्था से असंगत होगी जिसको हम इस देश में लाना चाहते हैं यदि हम राज्यपाल को उसके मंत्रियों द्वारा दी गई मंत्रणा को स्वीकार करने के लिये बाध्य करें। मैं आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद को स्थगित रखा जायेगा और मसौदा-समिति इस अनुच्छेद में उपयुक्त रीति से परिवर्तन कर अथवा इसका पुनरीक्षण कर बाद में दूसरा प्रस्ताव प्रस्तुत करेगी।

***श्री गोपाल नारायण** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर बोलने के पूर्व मैं एक शिकायत करना चाहता हूं और उसे दूर करने के लिए आपकी सहायता चाहता हूं। मैं उन लोगों में से हूं जो इस सभा की प्रत्येक बैठक में उपस्थित हुए हैं और आरम्भ से लेकर अन्त तक बैठे रहे हैं परन्तु अब मेरा धैर्य जाता रहा। मैं देखता हूं कि इस सभा के कुछ ऐसे चन्द माननीय सदस्य हैं जिन्होंने समस्त वाद-विवादों पर अधिपत्य जमा रखा है और जो प्रत्येक अनुच्छेद, प्रत्येक संशोधन और प्रत्येक संशोधन के संशोधन पर अवश्य बोलते हैं। श्रीमान्, मैं जानता हूं कि आप अपनी परिसीमाओं में बंधे हुए हैं और नियमों के अधीन आप उन्हें नहीं रोक सकते हैं, यद्यपि आपकी आकृति से मुझे यह विदित हो जाता है कि आप भी कभी-कभी परेशान हो जाते हैं, पर आप उन्हें रोक नहीं सकते। श्रीमान्, मैं एक सुझाव रखता हूं कि कुछ सदस्यों पर कुछ समय का प्रतिबंध लगा दिया जाये। उनको दो या तीन मिनट से अधिक नहीं बोलने दिया जाये। जहां तक इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, यद्यपि इसमें कोई नई बात नहीं है और यह राज्यपाल की स्वविवेक शक्तियों की व्यवस्था करता है, पर इसमें पन्द्रह मिनट लग गये हैं। फिर भी कोई न कोई सदस्य आ जाता है और इसका विरोध करने लगता है। इससे छुटकारा पाने के लिए मैं आपसे निवेदन करता हूं, परन्तु यदि आप छुटकारा नहीं दिला सकते हैं तो आप हमें कम से कम, इस सभा में बैठने की अपेक्षा, अपने-अपने स्थानों में सोने दें अथवा कुछ और कार्य करने दें। श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं इस विषय में लाचार हूं। मैं इसे सदस्यों की सद्भावना पर छोड़ता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** (*बोलने के लिए उठे।*)

***अध्यक्ष:** इसके बाद भी क्या आप बोलना चाहते हैं? (*हंसी*)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता हूं कि मुझे उत्तर देना आवश्यक है। इस विषय पर कई बार वाद-विवाद हो चुका है।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 153 के खंड (2) के उपखंड (ग) के अन्त में 'if the Governor is satisfied that the administration is failing and the minsitry has become unstable' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

'कि अनुच्छेद 153 के खंड (3) को निकाल दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 153 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 153 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 153-क

***अध्यक्ष:** प्रो. शाह की एक नये अनुच्छेद के लिए सूचना है।

***प्रो. के.टी. शाह:** मुझे बताया गया है कि यह विषय पहले आ चुका है, पर मैं इसके बाबत कुछ नहीं जानता हूं। मसौदा-समिति के माननीय सभापति मुझे इस बात

की सूचना देंगे। यदि इस पर विनिश्चय कर लिया गया है तो मैं इसे पेश नहीं करूंगा, पर मैं तो नहीं समझता हूं कि यह विषय आ चुका हो।

***अध्यक्षः** *(संशोधन संख्या 1483 को देखने के पश्चात्)* सदस्यों के अधिकारों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 153 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद 153-क प्रविष्ट किया जाये:

'153-A. If at any time when the Assembly is not sitting, it appears necessary to more than half of the total membership of the State Legislative Assembly that a situation has arisen in the State which calls for the Assembly to be sitting and consider the situation, they may in writing signed by them address the Speaker of the Assembly to convene a meeting of the Assembly for considering the matter specified in the application; and on receipt of such a requisition the Speaker shall convene the meeting within not more than seven clear days after receipt of the Requisition; provided that the Speaker may, if he deems proper, call upon such requisitioning members to bear the expenses of such a meeting, unless the Assembly specifically resolves to the contrary and exonerate the members concerned from the charge.' ''

[153-क. यदि किसी समय जबकि सभा समवेत नहीं हो रही हो यदि राज्य की विधानसभा के कुछ सदस्यों की आधी संख्या से अधिक को यह आवश्यक प्रतीत हो कि राज्य में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण सभा का बैठक करना और उस परिस्थिति पर विचार करना आवश्यक है तो वे अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा सभा के अध्यक्ष को उस आवेदन पत्र में उल्लिखित विषय पर विचार करने हेतु सभा की बैठक करने के लिये सम्बोधित कर सकते हैं और ऐसे मांग-पत्र की प्राप्ति पर अध्यक्ष प्राप्ति से पूरे सात दिन से अनधिक समय के अंतर्गत सभा की बैठक बुलायेगा, परन्तु यदि अध्यक्ष उचित समझता है तो मांग-पत्र देने वाले सदस्यों से ऐसी बैठक का खर्च बर्दाश्त करने के लिये, यदि सभा विशिष्ट रूप से इसके विरुद्ध संकल्प नहीं करती है और उन सदस्यों को इस भार से मुक्त नहीं करती है तो कहेगा।]

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान्, मेरी सम्मति में इस मांग का अधिकार एक महत्त्वपूर्ण अधिकार है जो सभा के सदस्यों को दिया जाना चाहिये यदि उनकी संख्या राज्य की विधानसभा की समस्त सदस्य संख्या की आधी से अधिक है। श्रीमान्, इस संविधान के पूरे ढांचे को ऐसी रूपरेखा दी गई है कि विधानमंडल सम्बन्धी समस्त शक्तियां भी कार्यपालिका में निहित कर दी गई है', मेरा आशय सभा के बुलाने, विघटन करने, सत्तावसान करने और स्थगित करने से है। अतः मुझे यह विदित होता है कि इस संशोधन में मैंने जिस रक्षा कवच की ओर संकेत किया है उसके अंतर्गत सभा की समस्त सदस्य संख्या के आधे से अधिक सदस्यों की मांग और अध्यक्ष की अनुमति के अधिकार के दुरुपयोग किये जाने की ही रोक नहीं है वरन् उससे बड़ा लाभ होगा।

जैसा कि सभा को विदित है यह हो सकता है कि राज्य के विधानमंडल के दो सत्रों में छः मास का कालान्तर हो जाये। छः माह की कालावधि में यह अविचारणीय नहीं है कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाये जिसको स्वयं विधानमंडल के विचार-विमर्श और कार्यवाही के अतिरिक्त अन्य प्रकार से न निपटाया जा सके। ऐसी बातें भी हो सकती हैं जिनके कारण इस प्रकार की बैठक करने में कार्यपालिका या तो असमर्थ हो या अनिच्छुक। अतः शेष सदस्यों के लिये और यदि मैं कह सकता हूं तो कदाचित् विधानमंडल के गैर सरकारी सदस्यों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे यह प्रार्थना कर सकें कि सभा बुलाई जाये और इस मांग करने के अधिकार की व्यवस्था करने के लिये मेरा संशोधन है।

मैं समझता हूं कि मैंने आवश्यकता से अधिक रक्षा कवचों की व्यवस्था की है जिससे इस प्रकार के अधिकार का दुरुपयोग न हो। सर्वप्रथम यह निर्धारित किया गया है कि सभा का कोई निम्नांश नहीं वरन् उसका एक निरपेक्ष बहुमत यदि बैठक बुलाना आवश्यक समझे। दूसरे यदि वे ऐसा करते हैं तो उन्हें उस विशिष्ट परिस्थिति का उल्लेख करते हुए, जिसके कारण इस प्रकार की बैठक करना अपेक्षित है, लिखित रूप में पीठासीन प्राधिकारी को सम्बोधन करना पड़ेगा। तीसरे यदि सभा समवेत होते समय वह स्थिति की गम्भीरता अथवा उन लोगों को बुद्धिमानी को नहीं मानती है जिन्होंने ऐसी प्रार्थना की है और उनको भार से मुक्त करने के लिये विशिष्ट रूप से संकल्प नहीं करती है तथा सभा का समवेत साधारण रीति से नहीं मानती है तो यदि अध्यक्ष उचित समझता है तो बैठक बुलाने का समस्त खर्च उनको भुगतना पड़ेगा।

इन सावधानियों अथवा रक्षा कवचों के अधीन मैं समझता हूं कि इस मांग करने के अधिकार के किसी प्रकार से दुरुपयोग किये जाने की सम्भावना नहीं है, इसके विपरीत यह सम्भव है कि इसके कारण साधारण सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न हो जाये,

प्रान्त की घटनाओं अथवा कार्यवाहियों के प्रति साधारण गैर-सरकारी सदस्यों में तीव्र रुचि पैदा हो जाये और यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार से उत्तरदायित्व पूर्ण सरकार का वास्तविक प्रशिक्षण विधानमंडल में हो जाया करे।

मैं जानता हूं कि यह मांग कुछ अस्वाभाविक सी है, पर मैं विश्वास करता हूं कि उसकी ''अस्वाभाविकता'' मात्र ही उसको रद्द करने के लिये कारण नहीं होगी। मैं विश्वास करता हूं कि सभा मैंने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं उनकी प्रबलता पर ध्यान देगी और मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करेगी।

***अध्यक्षः** क्या इस संशोधन के बारे में कोई कुछ कहना चाहता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 153 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'153-A. If at any time when the Assembly is not sitting, it appears necessary to more than half of the total membership of the State Legislative Assembly that a situation has arisen in the State which calls for the Assembly to be sitting and consider the situation, they may in writing signed by them address the Speaker of the Assembly to convene a meeting of the Assembly for considering the matter specified in the application; and on receipt of such a requisition the Speaker shall convene the meeting within not more than seven clear days after receipt of the Requisiton; provided that the Speaker may, if he deems proper, call upon such requisitioning members to bear the expenses of such a meeting, unless the Assembly specifically resolves to the contrary and exonerate the members concerned from the charge.' ''

[153-क. यदि किसी समय जबकि सभा समवेत नहीं हो रही हो यदि राज्य की विधानसभा के कुल सदस्यों की आधी संख्या से अधिक हो यह आवश्यक प्रतीत हो कि राज्य में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिसके कारण सभा का बैठक

[अध्यक्ष]

करना और उस परिस्थिति पर विचार करना आवश्यक है तो वे अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा सभा के अध्यक्ष को उस आवेदन पत्र में उल्लिखित विषय पर विचार करने हेतु सभा की बैठक करने के लिये सम्बोधन कर सकते हैं और ऐसे मांग पत्र की प्राप्ति पर अध्यक्ष प्राप्ति से पूरे सात दिन से अनधिक समय के अंतर्गत सभा की बैठक बुलायेगा, परन्तु यदि अध्यक्ष, उचित समझता है तो मांग पत्र देने वाले सदस्यों से ऐसी बैठक का खर्च बर्दाश्त करने के लिये, यदि सभा विशिष्ट रूप से इसके विरुद्ध संकल्प नहीं करती है और उन सदस्यों को इस भार से मुक्त नहीं करती है, तो कहेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 154

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि यह अनुच्छेद 154 अक्षरश: वैसा ही है जैसा कि अनुच्छेद 70 जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि एक राज्य सम्बन्धी है तो दूसरा संघ संबंधी। क्या इस पर लम्बी चर्चा करने की आवश्यकता है?

***अनेक माननीय सदस्य:** जी नहीं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 154 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 154 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 155

***अध्यक्ष:** यह अनुच्छेद भी अक्षरश: वैसा ही है जैसा कि अनुच्छेद 71, सिवा इसके कि वर्तमान अनुच्छेद राज्य सम्बन्धी है और पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद केन्द्र सम्बन्धी। इस पर संशोधन भी शाब्दिक प्रकार के हैं सिवा एक के जो संशोधन संख्या 2348 श्री सिधवा का है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 155 संविधान का अंग बने।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 155 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 156

***अध्यक्ष:** यह अनुच्छेद भी अनुच्छेद 72 जैसा है जिसको हम स्वीकार कर चुके हैं। हां इस पर कुछ संशोधन है।

(संशोधन संख्या 2349 से 2352 तक पेश नहीं किये गये।)

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 156 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 156 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 157

***अध्यक्ष:** जहां तक मैं मालूम कर सकता हूं इस अनुच्छेद पर कोई संशोधन नहीं है जो बहुत सारवत् प्रकार का हो। सब शाब्दिक संशोधन हैं यह अनुच्छेद संघ सम्बन्धी अनुच्छेद 76 के समान है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 157 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 157 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् एक नया अनुच्छेद 157-क प्रविष्ट करने के लिये एक और संशोधन की सूचना प्रो. शाह द्वारा है।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, इस विषय पर पहले चर्चा हो चुकी है और इसको अस्वीकार किया जा चुका है। अत: मैं इसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

(संशोधन संख्या 2359 पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 158

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 158 संविधान का अंग बने।''

***श्री मुहम्मद ताहिरः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 158 में 'A member holding office as' शब्दों के स्थान में 'The' रखा जाये और अनुच्छेद 158 के खंड (ख) में 'such member' शब्दों के स्थान में 'he' शब्द और 'to the Deputy Speaker' शब्दों के स्थान में 'the member of the Legislative Assemby' शब्द रखे जायें।''

यदि संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो अनुच्छेद इस प्रकार का हो जायेगा:

'The Speaker or Deputy Speaker of an Assembly—

(a) shall vacate his office if he ceases to be a member of the Assembly;

(b) may at any time by writing under his hand addressed if he is the Speaker to the members of the Legislative Assembly and if he is the Deputy Speaker, to the Speaker, resign his office, and...''

[विधान सभा का अध्यक्ष या उपाध्यक्ष–

(क) यदि सभा का सदस्य नहीं रहता तो अपना पद रिक्त कर देगा;

(ख) किसी समय भी अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा, जो विधान सभा के सदस्यों को सम्बोधित होगा यदि वह अध्यक्ष है तथा अध्यक्ष को सम्बोधित होगा यदि वह उपाध्यक्ष है अपना पद त्याग सकेगा तथा...]

इस सम्बन्ध में मैं चन्द शब्द कहूंगा। विधानसभा के अध्यक्ष के लिये यह आवश्यक है कि वह सदन का सदस्य हो। वह सदस्य के रूप में पद त्याग या पद रिक्त नहीं कर रहा है वरन् विधान सभा के अध्यक्ष के रूप में वह ऐसा कर रहा है। इसलिये मैं समझता हूं कि 'के रूप में पद धारण करने वाला सदस्य' शब्द व्यर्थ हैं और केवल 'विधान सभा का अध्यक्ष या उपाध्यक्ष' शब्द होने चाहिये। जहां तक त्यागपत्र के सम्बोधन करने का सम्बन्ध है मैं यह निवेदन करूंगा कि विधान सभा का अध्यक्ष सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है। विधान सभा में अध्यक्ष सर्वोच्च पदाधिकारी है यदि वह पद त्याग करता है तो वह विधान सभा के सदस्य को सम्बोधन करे न कि उपाध्यक्ष को। यह और बात है कि वह अपना त्यागपत्र उपाध्यक्ष को दे। परन्तु जहां तक त्यागपत्र के सम्बोधन करने का सम्बन्ध है वह विधान सभा के सदस्यों को ही सम्बोधन करे जिन्होंने उसे इस पद के लिये निर्वाचित किया है। अतः मैं समझता हूं कि इस उपबंध को इसी प्रकार संशोधित किया जाये। इन चन्द शब्दों के साथ मैं सभा की स्वीकृति के लिये इस संशोधन को प्रस्तुत करता हूं।

(संशोधन संख्या 2361 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2362।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, पहले एक ऐसा ही संशोधन गिर चुका है और मैं यह देखने के लिये उत्सुक नहीं हूं कि इस संशोधन का भी वही हाल हो।

(संशोधन संख्या 2363 और 2364 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मुहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> 'कि अनुच्छेद 158 के खंड (ग) में 'all the then members of the Assembly' शब्दों के स्थान में 'the members of the Assembly present and voting' शब्द रखे जायें।''

खंड (ग) इस प्रकार है:

> ''(c) may be removed from the office for incapacity or want of confidence by a resolution of the Assembly passed by a majority of all the then members of the Assembly.''
>
> [विधान सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा असामर्थ्य अथव विश्वास के अभाव के कारण अपने पद से हटाया जा सकेगा।]

श्रीमान्, मैं इन 'विधान सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों' शब्दों का अर्थ जहां तक समझ सकता हूं उसमें विधान सभा के समस्त सदस्य का भाव आ जाता है। मान लीजिये सभा में 300 सदस्य हैं तो इसका अर्थ होगा विधान सभा के समस्त सदस्य अर्थात् 300। मान लीजिये सभा के 50 सदस्य सभा में उपस्थित नहीं हैं तो जहां तक इस विषय का सम्बन्ध है उस पर इन सदस्यों को मत देने का अधिकार नहीं होगा। अतः मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस विषय पर केवल वे ही सदस्य विचार करें जो विधान सभा में उपस्थित हैं और जो इस विषय पर मत दे सकते हैं। यदि 'विधान सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों' शब्द का अर्थ विधान सभा में उपस्थित सदस्यों से है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं समझता हूं कि जिस रूप में यह खंड है उस रूप में इसे रखना वांछनीय नहीं है।

इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 2366, 2367 और 2368 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2369।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या श्री जसपतराय कपूर एक और संशोधन को, जो उसके नाम से अनुच्छेद 159-क है, पेश करेंगे जो इसी संशोधन का दूसरा रूप है, जो इस समय सदन के समक्ष है? यदि वे उस संशोधन को पेश कर रहे हैं तो मैं समझता हूं इस संशोधन को पेश करने में कोई लाभ नहीं। मैं समझता हूं कि बाद का संशोधन उस आशय की पूर्त्ति अधिक पर्याप्त रूप में करेगा जो उनके मन में है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रांत : जनरल): मैं अपने माननीय मित्र श्री टी. टी. कृष्णमाचारी को यह आश्वासन दे सकता हूं कि मैं अपने समस्त सुसंगत संशोधनों को पेश करूंगा। अन्तिम संशोधन को पेश करने के लिये मैं समझता हूं कि यह आवश्यक है कि संशोधन संख्या 2369 को पेश किया जाये। अन्यथा अन्य किसी संशोधन को पेश करने की अनुमति मुझे नहीं होगी जो कि इस संशोधन पर संशोधन हैं।

***अध्यक्षः** औपचारिक रूप से आप उसे पेश कर सकते हैं और उसके पश्चात् इस संशोधन पर संशोधनों को ले सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान् क्या आपका यह सुझाव है कि मैं इसे न पढ़ूं।

***अध्यक्षः** जी हां।

***श्री जसपतराय कपूरः** अध्यक्ष महोदय, संशोधनों की छपी सूची, अंक 1 के संशोधन संख्या 2369 को मैं पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 156 के अन्त में निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:
>
> (2) When a resolution for the removal of the Speaker is under discussion the Deputy Speaker shall preside and when the resolution for removal of the Deputy Speaker is under consideration and the Speaker is absent such other person shall preside as under the rules of procedure of the Assembly is authorised to preside during the absence of the Deputy Speaker.' ''
>
> [(2) जब अध्यक्ष को हटाने के संकल्प पर चर्चा हो तब उपाध्यक्ष पीठासीन होगा और जब उपाध्यक्ष को हटाने के संकल्प पर चर्चा हो और अध्यक्ष अनुपस्थित

हो तब ऐसा कोई अन्य व्यक्ति पीठासीन होगा जो विधान-सभा की प्रक्रिया के नियमों के अन्तर्गत उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में पीठासीन होने के लिये प्राधिकृत है।]

इस संशोधन में सुधार करने के लिये मैंने इस संशोधन पर संशोधनों की सूचना दी है। सबसे पहले मैं संशोधन संख्या 138 पेश करूंगा जो इस प्रकार है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2369 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 158 के स्थान में निम्न नवीन अनुच्छेद रखा जाये:

158-A. At any sitting of the Legislative Assembly of a State, while any resolution for the removal of the Speaker from his office is under consideration, the Speaker, or while any resolution for the removal of the Deputy Speaker from his office is under cosideration, the Deputy Speaker, shall not, though he is present, preside and the provisions of clause (2) of the next succeeding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Speaker or, as the case may be, the Deputy Speaker, is absent.' ''

[158-क. विधान सभा की किसी बैठक में, जब अध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष, अथवा जब उपाध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब उपाध्यक्ष, उपस्थित रहने पर भी, पीठासीन न होगा तथा आगामी अनुवर्त्ती अनुच्छेद के खंड (2) के उपबंध उसी रूप में प्रत्येक बैठक के सम्बन्ध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अनुपस्थित है।]

इस संशोधन पर एक संशोधन संख्या 195 और भी है।

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2369 और सूची 2 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 138 के निर्देश से अनुच्छेद 159 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

The Speaker and the Deputy Speaker not to preside at sitting of

'159-A. At any sitting of the Legislative Assembly of a State,

[श्री जसपतराय कपूर]

the Assembly while a resolution for his removal from office is under consideration.

while any resolution for the removal of the Speaker from his office is under consideration, the Speaker, or while any resolution for the removal of office is under consideration, the Deputy Speaker, shall not, and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Speaker or, as the case may be, the Deputy Speaker, is absent.

[जब उसके पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष सभा की बैठकों में पीठासीन न होगा।

159-क विधान सभा की किसी बैठक में जब अध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष अथवा जब उपाध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प हो जब उपाध्यक्ष, उपस्थित रहने पर भी, पीठासीन न होगा, तथा अन्तिम पूर्ववत्ती अनुच्छेद के खंड (2) के उपबंध उसी रूप में प्रत्येक बैठक के संबंध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अनुपस्थित है।]

संशोधन संख्या 195 को पढ़ना कदाचित् अनावश्यक है उसके द्वारा संशोधन संख्या 138 में जिस परिवर्तन का प्रयास किया गया है वह केवल यह है कि इस अनुच्छेद का स्थान अनुच्छेद 159 के बाद में हो न कि 158 के बाद।

श्रीमान्, इस संशोधन में सुझाई गई प्रक्रिया के सिद्धांत और औचित्य को संसद के दोनों सदनों से सम्बन्धित प्रक्रिया पर विचार करते हुए एक बार पहले इस सदन द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। यह अनुच्छेद उन्हीं आधारों पर है जिन पर अनुच्छेद 75-क और 78-क हैं जिनको सभा स्वीकार कर चुकी है। यह संशोधन उसी प्रक्रिया के निर्धारण करने का केवल प्रयास करता है जिसको हमने संसद के दोनों सदनों के लिये निर्धारित किया है।

यह स्पष्ट है कि विधान-सभा के लिये यह अनुचित होगा और अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष के लिये यह कष्टदायक होगा कि जब उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया जा रहा है तो ऐसे विचार-विमर्श पर सभा में वह पीठासीन हो और मैं समझता हूं कि सभा के प्रति ठीक व्यवहार करने के लिये और अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष को उस कष्टदायक स्थिति से मुक्त करने के लिये जिसमें वह अपने आपको पड़ा हुआ पायेगा जब कि ऐसे अविश्वास के प्रस्ताव पर उसके विरुद्ध सदन में चर्चा हो रही है, यह आवश्यक है कि यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष पीठासीन न हो और जैसी कि इस संशोधन में व्यवस्था की गई है कोई अन्य व्यक्ति पीठासीन हो इस विषय पर मुझे और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि एक बार पहले इस पर चर्चा हो चुकी है और सभा की स्वीकृति के लिये मैं इसे प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस विषय को अनुच्छेद 159 के पश्चात् रखना चाहिये। यह पेश किया जा चुका है और अनुच्छेद 159 पर विचार समाप्त करने के पश्चात् हम इस पर मत लेंगे।

मैं अनुच्छेद 158 पर मत लूंगा। सर्वप्रथम मैं श्री ताहिर के संशोधनों पर मत लूंगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 158 में 'A member holding office as' शब्दों के स्थान में 'The' शब्द रखा जाये और अनुच्छेद 158 के खंड (ख) में 'such member' शब्दों के स्थान में 'he' शब्द और 'to the Deputy Speaker' शब्दों के स्थान में 'the member of the Legislative Assembly' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 158 के खंड (ग) में 'all the then members of the Assembly' शब्दों के स्थान में 'the members of the Assembly present and voting' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 158 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 158 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 159

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 159 को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 2370 और 2371 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 159 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 159 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 159–(*जारी*)

***अध्यक्ष:** मैं श्री कपूर द्वारा पेश किये गये संशोधन पर अब मत लेता हूं।

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2369 और सूची 2 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 138 के निर्देश से अनुच्छेद 159 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:–

The Speaker and the Deputy Speaker not to preside at sittings of the Assembly while a resolution for his removal from office is under consideration.

'159-A. At any sitting of the Legislative Assembly of a State, while any resolution for the removal of the Speaker from his office is under consideration, the Speaker, or while any resolution for the removal of the Deputy Speaker from his office is under consideration, the Deputy Speaker, shall not, though he is present, preside, and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Speaker, as the case may be, the Deputy Speaker, is absent.' ''

[जब उसके पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष सभा की बैठकों में पीठासीन न होगा।

158-क. विधान सभा की किसी बैठक में, जब अध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब अध्यक्ष, अथवा जब उपाध्यक्ष को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब उपाध्यक्ष उपस्थित रहने पर भी, पीठासीन न होगा, तथा अन्तिम पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के खंड (2) के उपबंध उसी रूप में ऐसी प्रत्येक बैठक के सम्बन्ध में लागू होंगे जिसमें कि वे उस बैठक के सम्बन्ध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अनुपस्थित है।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

नया अनुच्छेद 159-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 160

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 160 को लेते हैं।

इस अनुच्छेद पर कोई संशोधन नहीं है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** संख्या 2373 है। श्रीमान्, मैं पेश करता हूंः

''कि अनुच्छेद 160 में 'another' शब्द के स्थान में 'a' शब्द रखा जाये।''

मैं केवल दूसरे भाग को पेश करता हूं। यह संशोधन अन्य प्रसंग में दो बार गिर चुका है, परन्तु फिर भी सदन के पुनर्विचारार्थ मैं इस पेश करने का साहस करता हूं जिससे कि मसौदा-समिति द्वारा उन अन्य प्रसंगों पर पुनर्विचार किया जा सके। यह अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि परिषद् का उप-सभापति अथवा सभापति स्थानच्युत हो अथवा जब-जब सभापति या उपसभापति का पद रिक्त हो तब-तब परिषद् किसी 'अन्य' सदस्य को चुनेगी। प्रश्न अन्य सदस्य के बारे का है। मैं निवदेन करता हूं कि जब सभापति या उपसभापति अपने स्थान से हट जाते हैं तो वह सभापति अथवा उपसभापति निर्वाचन के पात्र नहीं होंगे क्योंकि वे सदस्य नहीं हैं, परन्तु एक उपबंध है कि जितनी बार सभापति अथवा उपसभापति का पद रिक्त हो अन्य सदस्य चुना जाये। मान लीजिये कि कोई उपसभापति अपने स्थान से हटता है तो यह प्रथम रिक्ति है। इसके निर्वाचन का पात्र भूतपूर्व उपसभापति न होगा क्योंकि वह सदस्य न रहेगा, परन्तु इसके पश्चात् द्वितीय रिक्ति होती है और इस

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अरसे में मान लीजिये कि उपसभापति परिषद् का सदस्य पुनः चुन लिया जाता है तो प्रश्न यह है कि आप उसे चुनाव लड़ने देंगे या नहीं? द्वितीय अथवा बाद में रिक्ति होने के समय उसका पुनर्निवाचन हो सकता है और जो कुछ मैं जानता हूं उसके अनुसार तो वह पात्र होगा; परन्तु यदि आप 'अन्य सदस्य' कहें तो इन शब्दों का क्या प्रभाव होगा, मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या उस सदस्य को जो इस अरसे में अन्यथा अर्ह हो चुका है वंचित रखा जायेगा? यदि यही इच्छा है कि उसको वंचित रखा जाये तब तो बात और है; पर मैं नहीं समझता हूं कि उसको वंचित रखने की इच्छा है इसके विपरीत एक यह विश्वास है कि जैसे ही कोई व्यक्ति अपने स्थान से हट जाता है तो वह उम्मीदवार नहीं हो सकता है क्योंकि वह सदस्य नहीं रहा, परन्तु वह विचार जो इस संशोधन का आधार है यह है कि इस अरसे में उसका पुनर्निर्वाचन हो सकता है। और प्रश्न यह है कि आप उसे चुनाव लड़ने देंगे या नहीं मैं निवेदन करता हूं कि पुनः विचार करने पर शायद यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। यह शाब्दिक संशोधन नहीं है वरन् सारवत् संशोधन है। यह उस सदस्य को अधिकार देता है जो यद्यपि पहले अपने स्थान से हट चुका है पर इस अरसे में उसका पुनर्निर्वाचन हो चुका है।

***अध्यक्षः** डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि 'another' शब्द के स्थान में 'a' शब्द रखा जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 160 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 160 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्षः** प्रो. शाह ने एक नये अनुच्छेद की सूचना दी है।

***प्रो. के.टी. शाहः** वह आवृत हो चुका है।

अनुच्छेद 161

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 161, श्री जसपतराय कपूर का संशोधन संख्या 196 एक पृथक् अनुच्छेद के रूप में आयेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** शायद बाद में कोई प्रक्रिया सम्बन्धी आपत्ति उठा दे, अत: यह अच्छा है कि उसे अभी पेश कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** श्री कपूर संशोधन संख्या 2381 को पेश कर सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 161 के पश्चात् निम्न खंड प्रविष्ट किया जाये:

''(2) When a resolution for the removal of the Speaker is under discussion the Deputy Speaker shall preside and when the resolution for removal of the Deputy Speaker is under consideration and the Speaker is absent such other person shall preside as under the rules of procedure of the Assembly is authorised to preside during the absence of the Deputy Speaker.' ''

[(2) जब अध्यक्ष को हटाने के संकल्प पर चर्चा हो तब उपाध्यक्ष पीठासीन होगा और जब उपाध्यक्ष को हटाने के संकल्प पर चर्चा हो और अध्यक्ष अनुपस्थित हो तब ऐसा कोई अन्य व्यक्ति पीठासीन होगा जो सभा की प्रक्रिया के नियमों के अंतर्गत उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में पीठासीन होने के लिये प्राधिकृत है।]

इस पर मैं संशोधनों पर संशोधनों की सूची (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 139 को पेश करता हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 2381 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 161 के अन्त में निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

161-A. At any sitting of the Legislative Council of a State, while any resolution for the removal of the Chairman from his office is

[श्री जसपतराय कपूर]

under consideration, the Chairman, or while any resolution for the removal of the Deputy Chairman from his office is under consideration, the Deputy Chairman shall not, though he is present, preside, and the provisions of clause (2) of the next succeeding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Chairman or, as the case may be, the Deputy Chairman, is absent.' ''

[161-क. विधानपरिषद् की किसी बैठक में, जब सभापति को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब सभापति, अथवा जब उपसभापति को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब उपसभापति, उपस्थित रहते पर भी, पीठासीन न होगा तथा आगामी अनुवर्त्ती अनुच्छेद के खंड (2) के उपबंध उसी रूप में प्रत्येक ऐसी बैठक के लिए लागू होंगे जिसमें कि वे उस बैठक के संबंध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति सभापति या उपसभापति अनुपस्थित है।]

इस पर फिर मैं एक और संशोधन संख्या 196 पेश करता हूं जो उन्हीं संशोधनों पर संशोधनों की सूची में है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2381 और सूची 2 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 139 के निर्देश से अनुच्छेद 162 के पश्चात् निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

The Chairman or the Deputy Chairman not to preside at sittings of the Legislative Council while a resolution for his removal from office is under consideration.

'162-A. At any sitting of the Legislative Council of a State, while any resolution for the removal of the Chairman from his office is under consideration, the Chairman or while any resolution for the removal of the Deputy Chairman from his office is under consideration, the Deputy Chairman, shall not, though he is present, preside, and the provisions of

clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Chairman or, as the case may be, the Deputy Chairman, is absent.' ''

[जब उसके पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तब सभापति या उपसभापति पीठासीन न होगा।

162-क. विधान-परिषद् की किसी बैठक में, जब सभापति को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब सभापति, अथवा जब उपसभापति को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब उपसभापति, उपस्थित रहने पर भी, पीठासीन न होगा तथा अन्तिम पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खंड (2) के उपबंध उसी रूप में प्रत्येक ऐसी बैठक के लिए लागू होंगे जिसमें कि वे उस बैठक के सम्बन्ध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति सभापति या उपसभापति अनुपस्थित है।]

इसके समर्थन के लिए मुझे कुछ भी नहीं कहना है। यह ठीक उन्हीं आधारों पर है जिन पर अनुच्छेद 159-क है जिसको हमने अभी स्वीकार किया है और हम इस संशोधन को भी शीघ्र ही स्वीकार करेंगे।

(संशोधन संख्या 2376 से 2380 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मैं अनुच्छेद 161 पर मत लेता हूं और इस अन्तिम संशोधन 196 पर पृथक् मत लूंगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 161 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 161 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 162

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 162 को लेता हूं। नया अनुच्छेद 162-क बाद में आयेगा।

(संशोधन संख्या 2383, 2384 और 2385 पेश नहीं किये गये।)

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है :

''कि अनुच्छेद 162 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 162 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 162-क

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 162-क पर मत लेता हूं जो श्री कपूर द्वारा सूची 6 के संशोधन संख्या 196 के रूप में पेश किया गया है।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2381 और सूची 2 (तृतीय सप्ताह) के संशोधन संख्या 139 के निर्देश से अनुच्छेद 162 के पश्चात् निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

The Chairman or the Deputy Chairman not to preside at sitting of the Legislative Council while resolution for his removal from office is under consideration.

'162-A. At any sitting of the Legislative Council of a State, while any resolution for the removal of the Chairman from his office is under consideration, the Chairman or while any resolution for the removal of the Deputy Chairman from his office is under consideration, the Deputy Chairman, shall not, though he is present, preside, and the provisions of clause (2) of the last preceding article shall apply in relation to every such sitting as they apply in relation to a sitting from which the Chairman or, the Deputy Chairman, as the case may be, is absent.' ''

[जब उसके पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तब सभापति या उपसभापति पीठासीन न होगा।

162-क. विधान-परिषद् की किसी बैठक में, जब सभापति को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब सभापति अथवा जब

उपसभापति को अपने पद से हटाने का कोई संकल्प विचाराधीन हो तब उपसभापति, उपस्थित रहने पर भी, पीठासीन न होगा तथा अन्तिम पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद के खंड (2) के उपबंध उसी रूप में प्रत्येक ऐसी बैठक के लिए लागू होंगे जिसमें कि वे उस बैठक के सम्बन्ध में लागू होते हैं जिससे कि यथास्थिति सभापति या उपसभापति अनुपस्थित है।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 162-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 163

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 163 पर पहुंचते हैं।

(संशोधन संख्या 2386, 2387 और 2388 पेश नहीं किये गये।)

तो फिर अनुच्छेद 163 पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 163 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 163 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

नया अनुच्छेद 163-क

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 163-क नया अनुच्छेद है जिसको पेश करना है। वह सूची 1 में से संशोधन संख्या 39 है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, ठीक एक ऐसा ही अनुच्छेद—अनुच्छेद 79-क प्रस्तुत किया जा चुका है और उसको स्थगित रखा गया है और इस नये अनुच्छेद से सम्बन्धित शर्तें न्यूनाधिक रूप में वही हैं जो अनुच्छेद 79-क के सम्बन्ध में हैं।

***अध्यक्ष:** तो फिर इसे छोड़ दिया जाता है। अनुच्छेद 164।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं सुझाव रखता हूं कि यह विशिष्ट अनुच्छेद इस कारण स्थगित रखा जाये कि संयुक्त बैठकों के बारे में, जो अनुवर्ती अनुच्छेदों में आती है, निश्चय करने के सम्बन्ध में हमें कठिनाइयां हैं। सदन द्वारा कुछ संशोधनों के स्वीकार कर लेने

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

से जो कुछ नये विचार उत्पन्न हो गये हैं उनका किस प्रकार अनुकूलन किया जाये। इस सम्बन्ध में वास्तव में हमने अभी तक कोई निश्चय नहीं किया है। अंत: में मैं सुझाव रखता हूं कि यह अनुच्छेद स्थगित किया जाये।

***अध्यक्ष:** क्या सदन की यह इच्छा है कि इसे स्थगित किया जाये।

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

अनुच्छेद 165

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 165। इस पर श्री ताहिर का संशोधन संख्या 2397 है।

(संशोधन संख्या 2397, 2398 और 2399 पेश नहीं किये गये।)

इसके पश्चात् संशोधन संख्या 2400 है पर यह शाब्दिक संशोधन है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** पूर्व अवसरों पर अध्यक्ष ने डा. अम्बेडकर को ऐसे संशोधन पेश करने की अनुज्ञा दी है और मैं समझता हूं कि उसी प्रथा को जारी रखा जायेगा और इसको औपचारिक रूप में पेश किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 165 में 'a declaration' शब्दों के स्थान में 'an affirmation or oath' शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 165 में 'a declaration' शब्दों के स्थान में 'an affirmation or oath' शब्द रखे जायें।

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब संशोधित रूप में अनुच्छेद 165 सदन के समक्ष है।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 165 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 165 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, यह अनुच्छेद किस प्रकार इस अध्याय के अंतर्गत आ सकता है जिसका शीर्षक ''सदस्यों की अनर्हता है''? अनुच्छेद 165 अनर्हता से सम्बन्ध नहीं रखता है बल्कि घोषणा से सम्बंध रखता है।

***अध्यक्षः** यह वह विषय है जिस पर डा. अम्बेडकर ध्यान देंगे।

अनुच्छेद 166

(संशोधन संख्या 2401 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 166 के खंड (1) के पश्चात् निम्न नया खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(1a) No person shall be a member of the Legislature of two or more States and if a person is chosen a member of the Legislatures of two or more States, then, at the expiration of such period as may be specified in rules made by the President, that person's seat in the Legislatures of all the States shall become vacant, unless he has previously resigned his seat in the Legislatures of all but one of the State.' ''

[(1क) कोई व्यक्ति दो या अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य न होगा तथा यदि कोई व्यक्ति दो या अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य चुन लिया जाये तो ऐसी कालावधि की समाप्ति के पश्चात्, जो कि राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये नियमों में उल्लिखित हो, सब राज्यों के विधानमंडलों में ऐसे व्यक्ति का स्थान रिक्त हो जायेगा यदि उसने एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमंडलों के अपने स्थान को त्याग न दिया हो।]

यह एक ऐसा खंड है जो उस स्थिति की व्यवस्था करता है जिसमें एक व्यक्ति दो राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य हो जाता है। पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद उस व्यक्ति के सम्बन्ध का था जो राज्य के विधान-मंडल और संसद का सदस्य हो।

***अध्यक्षः** श्री नजीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन संख्या 2403 है, पर वह संशोधन संख्या 2404 से, जो अभी पेश किया गया है, आवृत हो जाता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 166 का खंड (2) अपमार्जित कर दिया जाये।''

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि संशोधन संख्या 2405 पहले संशोधन द्वारा आवृत है।

(संशोधन संख्या 2405 और 2406 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मुहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 166 के खंड (3) के उपखंड (क) को अपमार्जित किया जाये।''

उपखंड (क) में कहा गया है कि यदि कोई सदस्य आगे के अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 167 के खंड (1) में उल्लिखित किसी अनर्हता के अधीन आ जाता है तो उसका स्थान रिक्त हो जायेगा। परन्तु यदि कोई व्यक्ति अनुच्छेद 167 के खंड (1) में उल्लिखित अनर्हताओं के अधीन आ जाता है तो वह विधानमंडल का सदस्य कैसे हो सकता है? इस खंड को रखना आवश्यक नहीं है क्योंकि कोई सदस्य सदस्य नहीं हो सकता है यदि वह अनुच्छेद 167 के खंड (1) के अंतर्गत अनर्ह हो जाता है।

(संशोधन संख्या 2408 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 166 के खंड (3) में निम्न नवीन उपखंड प्रविष्ट किये जायें:

(c) or is recalled by the electors in his constituency for failure to properly discharge his duties;

(d) or dies.' ''

[(ग) अथवा अपने कर्त्तव्यों का समुचित रूप से निर्वहन करने में अमसर्थ होने के कारण उसके निर्वाचन-क्षेत्र के निर्वाचकों को द्वारा वापस बुला दिया जाता है;

(घ) अथवा मर जाता है।]

संशोधन के दूसरे भाग के बारे में जो सदस्य की मृत्यु से सम्बन्ध रखता है क्या मैं एक दो बातों का उल्लेख कर सकता हूं? जब मैंने इससे पूर्व अवसर पर एक ऐसा ही संशोधन पेश किया था तो मेरी जिज्ञासा का उत्तर नहीं मिला था। उस समय मैंने जो प्रश्न किया था वह यह था कि सदस्य की मृत्यु हो जाने पर रिक्ति होती है या नहीं। यदि हम राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के पद में होने वाले रिक्तियों सम्बन्धी अनुच्छेद 51 और 55 को देखें तो उनमें यह स्पष्ट निर्धारित किया गया है कि मृत्यु, पदत्याग, अथवा अन्य प्रकार से रिक्ति होगी। यहां खंड (क) ''अन्य प्रकार'' का निर्देश करता है और खंड (ख) 'पदत्याग' का निर्देश करता है। परन्तु मृत्यु के कारण जो स्थान रिक्त हो जाता है उसके उपबंध के बारे में इस बात का कोई जिक्र नहीं किया गया है। मैं नहीं समझ पाता हूं कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के बारे में इस बात का क्यों जिक्र किया गया है और संसद के सदस्यों के लिए ऐसे किसी जिक्र को हम क्यों छोड़ देते हैं। हमने सभा की प्रक्रिया के नियमों में ऐसा उपबंध रखा है जिनको हमने दो वर्ष पूर्व स्वीकार किया था। इन नियमों के नियम 5 का सुसंगत भाग इस प्रकार पढ़ा जाता है:

''जब मृत्यु, पदत्याग अथवा अन्य प्रकार से रिक्ति होती है।''

मैं नहीं जानता हूं कि मेरे इस संशोधन के स्वीकार करने में मसौदा-समिति अथवा डा. अम्बेडकर के मार्ग में क्या केवल गौरव का विचार ही आड़े आ जाता है। मेरे इससे पहले संशोधन पर बोलते हुए श्री सिधवा ने कहा था कि यदि सदस्य मर जाता है तो ''कार्यालय'' को इस सम्बन्ध में पता लग जाता है। मैं नहीं समझता कि उनका आशय किस कार्यालय से है अथवा किस कार्यालय को पता लग जायेगा। अतः इस अनुच्छेद में यह कहना अधिक अच्छा है कि सदन के सदस्य की मृत्यु हो जाने पर भी रिक्ति हो जायेगी।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैंने कहा था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् कार्यालय को सूचना देगा।

***श्री एच.वी. कामतः** यही माननीय सदस्य ने कहा था। पर कौन सा कार्यालय इस बात को जानेगा? जब कि आपने निश्चित रूप से इस बात को कहा है कि राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति की मृत्यु हो जाने पर रिक्ति हो जायेगी और हमारी सभा के नियमों में भी यही है तो मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस अनुच्छेद में इस बात को क्यों न रखा जाये।

(संशोधन संख्या 2410 से 2414 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** मैं डाक्टर अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे द्वारा जो प्रश्न उठाया गया है क्या डा. अम्बेडकर उसका उत्तर नहीं देंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उसका उत्तर देना आवश्यक नहीं समझता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 166 के खंड (1) के पश्चात् निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(1a) No person shall be a member of the Legislature of two or more States and if a person is chosen a member of the Legislatures of two or more States, then, at the expiration of such period as may be specified in rules made by the President, that person's seat in the Legislatures of all the States shall become vacant, unless he has previously resigned his seat in the Legislatures of all but one of the States.' ''

[(1क) कोई व्यक्ति दो या अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य न होगा तथा यदि कोई व्यक्ति दो या अधिक राज्यों के विधानमंडलों का सदस्य चुन लिया

[अध्यक्ष]

जाये तो ऐसी कालावधि की समाप्ति के पश्चात्, जो कि राष्ट्रपति द्वारा बनाये गये नियमों में उल्लिखित हो, सब राज्यों के विधानमंडलों में ऐसे व्यक्ति का स्थान रिक्त हो जायेगा यदि उसने एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमंडलों के अपने स्थान को त्याग न दिया हो।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 166 का खंड (2) अपमार्जित किया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि खंड (3) का उपखंड (क) अपमार्जित किया जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 166 के खंड (3) में निम्न नवीन उपखंड प्रविष्ट किये जायें:

'(c) or is recalled by the electors in his constituency for failure to properly discharge his duties;

(d) or dies.' ''

[(ग) अथवा अपने कर्त्तव्यों का समुचित रूप से निर्वहन करने में असमर्थ होने के कारण उसके निर्वाचन क्षेत्र के निर्वाचकों द्वारा वापस बुला लिया जाता है।

(घ) अथवा मर जाता है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 166 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 166 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 167

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'profit' (लाभ) शब्द के पश्चात् निम्न शब्द प्रविष्ट किये जायें:

'or contract of building or of supply of any article, or is a shareholder in any joint stock company which has such a contract of building or of supply of any article.' ''

[अथवा निर्माण का संविदा अथवा किसी वस्तु का प्रदेय धारण किये है अथवा किसी ऐसी अविभक्त-श्रेष्ठि-समवाय का हिस्सेदार है जिसके पास ऐसे निर्माण के संविदा अथवा किसी वस्तु के प्रदेय हों।]

संशोधित रूप में यह भाग इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

''A person shall be disqualified for being chosen as, and for being, a member of the Legislative Assembly or Legislative Council of a State–

(a) if he holds any office of profit or contract of building or of supply of any article, or is a shareholder in any joint stock company which has such a contract of building or of supply of any article under the Government, etc...''

[कोई व्यक्ति किसी राज्य की विधानसभा या विधान-परिषद् का सदस्य चुने जाने के लिये तथा सदस्य होने के लिये अनर्ह होगा–

(क) यदि वह... कोई अन्य लाभ का पद धारण किये हुए है अथवा निर्माण का संविदा अथवा किसी वस्तु का प्रदेय धारण किये हुये है अथवा किसी ऐसी अविभक्त श्रेष्ठि-समवाय का हिस्सेदार है, जिसके पास ऐसे निर्माण के संविदा अथवा किसी वस्तु के प्रदेय हों।]

अपने निजी हित और लोक सेवा के हित में परस्पर संघर्ष की सम्भावना से उद्भूत प्राचीन कालीन अनर्हता के किसी लाभ के पद को धारण करने को अनर्हता के रूप में प्रविष्ट करा दिया है। वर्तमान परिस्थितियों में केवल लाभ का पद धारण करना अर्थात् कोई पद, जिसके साथ कुछ वेतन अथवा भत्ता संलग्न है, कम से कम बहुत से उम्मीदवारों के लिये प्रलोभन नहीं है जिन्होंने व्यापार अथवा वृत्ति में ख्याति प्राप्त कर ली है और जिनके आय के अन्य साधन सरकारी वेतनों से कहीं अधिक हैं।

इस बात से सरकार में किसी लाभ के पद धारण करने की अनर्हता किसी प्रकार से कम नहीं हो जाती है। मैं कुछ और बातें जोड़ना चाहता हूं जो हम देखते हैं कि

[प्रो. के.टी. शाह]

निजी लाभ के समक्ष लोकहित का बलिदान करने में किसी लाभ के पद धारण करने से अधिक प्रलोभन के साधन हो सकते हैं। बालपोल के काल में चाहे कुछ भी परिस्थिति रही हों परन्तु आज एक उस विधि निर्माण करने वाले के लिये अथवा एक उस विधान-मंडल के उम्मीदवार के लिये सरकारी पद कोई प्रलोभन नहीं हैं जिसकी निजी वृत्ति, व्यापार अथवा कारबार सफलता से चल रहे हों जिसमें सरकार से सम्पर्क रखने अथवा सदन के सदस्य होने से अधिक लाभ की आशा की जा सकती है।

आज कल के महान् निर्माण के समय में प्रलोभन अथवा भ्रष्टाचार का सबसे महान् साधन निर्माण संविदा है। महान् निर्माण तथा विकास योजनाओं द्वारा, जिनमें राज्य की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से रुचि है, बहुत अधिक लाभ की सम्भावना है। दिन प्रतिदिन इन योजनाओं में राज्यों की रुचि बढ़ती चली जा रही है और ये योजनायें इस सीमा तक लाभ के साधन हैं कि जिनको मंजूर करने की शक्ति है और जिनके पास ऐसे संविदा हैं वे चाहे जितना खर्च कर सकते हैं यदि लोग उनके लिये केवल पर्याप्त रूप में प्रचार कर दें अथवा सरकार से सरल शर्तों पर ऐसे संविदा दिलाने में सहायता कर दें। यही हाल अन्य उन वस्तुओं के अधिक परिमाण में प्रदेय के सम्बन्ध में है जिनकी आधुनिक सरकार को आवश्यकता है। मैं समझता हूं कि विधानमंडल का सदस्य ऐसे किसी प्रलोभन से मुक्त होना चाहिये; अत: कोई भी व्यक्ति को ऐसे संविदा धारण किये हुए है अथवा जो, किसी निर्माण संबंधी अविभक्त श्रेष्ठि-समवाय में हिस्सेदार के रूप में हित रखता है, जो समवाय की निर्माण सम्बन्धी वस्तुयें अपना अन्य वस्तुयें, जिनकी सरकार को आवश्यकता है, प्रदान करती है, तो उसे, विधानमंडल की सदस्यता से अनर्ह कर दिया जाये। ऐसे हितों को संख्या अधिक अथवा विभिन्न रूप में है और मेरी सम्मति में कोई भी व्यक्ति जिसका इनमें हित हो उसे अनर्ह कर देना चाहिये।

इसी कारण मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि यदि आप अपने विधि निर्माताओं को प्रलोभन से स्वतंत्र रखना चाहते हैं, यदि आप यह चाहते हैं कि वे निर्लेप होकर लोक-सेवा करें और लोक-सेवा की ओर ही उनका ध्यान रहे तो मैं समझता हूं कि यह आवश्यक है कि आप, मैंने जिन प्रकारों का उल्लेख किया है उनमें हित रखने वाले व्यक्ति को अनर्ह करने के इस सुझाव को स्वीकार करें। केन्द्र तथा राज्य दोनों के विधानमंडलों की उम्मीदवारी के लिये यह एक अनर्हता होनी चाहिये। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 2416 पेश नहीं किया गया।)

***श्री मुहम्मद ताहिर:** अध्यक्ष महोदय, मैं अपने संशोधन के केवल उत्तर भाग को पेश करना चाहूंगा। श्रीमान् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि 'Legislature of the State' (राज्य के विधानमंडल) शब्दों के पश्चात् 'or any Local Authority of such State' (अथवा उस राज्य के किसी स्थानीय प्राधिकारी) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, मेरे संशोधन का अभिप्राय स्पष्ट तथा व्यक्त है। मैं कोई भाषण देना नहीं चाहता हूं। यदि मेरे माननीय मित्र इसे स्वीकार करना चाहते हैं तो कर सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2418 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (घ) के स्थान में निम्न उपखंड रखा जाये:

'(d) If he has ceased to be a citizen of India or has voluntarily acquired the citizenship of a foreign State, or is under any acknowledgement of allegiance or adherance to a foreign State.' ''

[(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है अथवा किसी विदेशी राज्य की नागरिकता को स्वेच्छा से अर्जित कर चुका है। अथवा किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुशक्ति को अभिस्वीकार किये हुए हो।]

***श्री महावीर त्यागी:** अब चूंकि हम संयुक्त राष्ट्र मंडल में है इंग्लैंड के संबंध में हमारी स्थिति क्या होगी? बादशाह के प्रति हमारी निष्ठा भी क्या अनर्हता होगी?

***अध्यक्ष:** वह संविधान के निर्वाचन का विषय है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** राष्ट्रीयता अधिनियम द्वारा इस पर विचार किया जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** पर हमें यह विदित होना चाहिये कि यह क्या है...।

(संशोधन संख्या 2420 से 2423 तक पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामत:** मैं समझता हूं कि मेरा संशोधन 2424 पूर्णतया शब्दिक है और मैं उसे मसौदा-समिति पर छोड़ता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि वह सार सम्बन्धी है।

***श्री एच.वी. कामत:** यदि ऐसा है तो मैं उसे पेश करूंगा।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (घ) के अन्त में अर्धविराम के पश्चात् 'or' (अथवा) शब्द बढ़ा दिया जाये।''

श्रीमान्, सदस्यों की अनर्हता के सम्बन्ध के (अनुच्छेद 83) एक ऐसे ही अनुच्छेद में 'और' शब्द के स्थान में 'अथवा' शब्द रखा गया है। मैं समझता हूं कि मसौदा-समिति

[श्री एच.वी. कामत]

अपने ही उदाहरण का अनुसरण करेगी और यहां भी वैसा ही परिवर्तन करेगी। इसी कारण मैंने कहा था कि यह मसौदा सम्बन्धी संशोधन है। चाहे 'और' शब्द अपमार्जित किया जाये अथवा उसके स्थान में 'अथवा' शब्द रखा जाये, मेरी अप्रशिक्षित बुद्धि के अनुसार तो न्यूनाधिक रूप में एक ही बात है। इसी कारण मैंने कहा था कि मैं इस बात को मसौदा-समिति के बुद्धिमान सदस्यों पर छोड़ता हूं क्योंकि इन विषयों में मैं केवल नौसिखिया हूं। मैंने सोचा 'अथवा' शब्द अधिक समुचित है—क्योंकि इन अनर्हताओं में से यदि एक भी अनर्हता है—यदि कोई व्यक्ति इन कारणों में से एक कारण द्वारा भी अनर्ह हो जाता है तो यह अनुच्छेद प्रयुक्त होगा।

***अध्यक्षः** डा. अम्बेडकर इस पर विचार कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** जैसा मैंने कहा था मसौदा-समिति के बुद्धिमान सदस्यों के विनिश्चय पर मैं इसे छोड़ता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अनुच्छेद बिल्कुल ठीक है।

***अध्यक्षः** क्या वे सब एक साथ नहीं पढ़े जायेंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जी नहीं, वे सब एक साथ नहीं पढ़े जायेंगे।

***अध्यक्षः** यदि 'अथवा' शब्द बढ़ा दिया जाये तो सब सन्हेद दूर हो जायेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उसे आवश्यक नहीं समझता हूं।

(संशोधन संख्या 2425, 2426 और 2427 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मुहम्मद ताहिरः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (ङ) के पश्चात् निम्न नवीन उपखंड बढ़ा दिया जाये:

'(f) if he is not registered as voter.' ''

[(च) यदि यह मतदाता के रूप में पंजीबद्ध नहीं किया गया है।]

श्रीमान्, इस अनुच्छेद के (क) से (ङ) तक खंड सदस्य होने के लिये अनर्हताओं की संगणना कराते हैं। मैं चाहता हूं कि इसे भी इस अनुच्छेद में शामिल कर लिया जाये

जिससे कि यदि कोई व्यक्ति पंजीबद्ध मतदाता नहीं है तो वह सभा का सदस्य नहीं हो सकता है। यदि सदस्यता उन लोगों तक ही निर्बन्धित नहीं की जाती है जिनके नाम मतदाताओं की सूची में हैं तो प्रत्येक व्यक्ति आ सकता है और निर्वाचन के लिये अपना नाम निर्देश पत्र दाखिल कर सकता है। अतः यह आवश्यक है कि इस प्रकार का खंड बढ़ाया जाये।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अपने अन्य संशोधन संख्या 2430 और 2432 भी इस समय पेश कर सकते हैं।

***श्री मुहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, इस संशोधन का मैं केवल उत्तर भाग पेश करता हूं।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 167 के खंड (2) में 'Government of any State' (किसी राज्य की सरकार) शब्दों के पश्चात् 'or any local or other Authority subject to the control of such State' (अथवा उस राज्य के नियंत्रण के अधीन कोई स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकारी) शब्द प्रविष्ट किये जायें।' ''

इस पर मैं कोई भाषण नहीं दे रहा हूं।

श्रीमान्, जैसा कि आपने सुझाया है मैं इस संशोधन संख्या 2432 को भी इस समय पेश करूंगा। उसके प्रथम भाग को मैं पेश नहीं कर रहा हूं। द्वितीय भाग जिसको मैं पेश करता हूं वह इस प्रकार है:

> ''कि अनुच्छेद 167 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'for any State' शब्दों के पश्चात् 'or a Chairman, a Vice Chairman, a President or a Vice President of any Local or other Authority of such State' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

मैं संशोधन संख्या 2433 को पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 2429 और 2430 के निर्देश से, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 167 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) के स्थान में निम्न उपखंड रखा जाये:

''He is a minister either for India or for any such State.''

[वह भारत का अथवा किसी ऐसे राज्य का मंत्री है।]

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

श्रीमान्, यह शब्दावली वास्तव में अनुच्छेद 83 के एक ऐसे ही उपखंड की शब्दावली के अनुरूप है जिसको इस सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। यह इसलिये आवश्यक है कि उपखंड (2) (क) में प्रथम अनुसूची के भाग 3 का एक ऐसा निर्देश है जिसको हटाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं क्योंकि जहां तक इस अनुसूची के भाग 3 में राज्यों का सम्बन्ध है हम इस प्रकार के एक पृथक् उपबंध बनाने की आकस्मिकता को दृष्टिगोचर नहीं करते हैं। इस प्रभाव का कोई आवश्यक उपबंध एक पृथक् अध्याय में रखा जायेगा।

वर्तमान रूप में उपखंड (ख) की शब्दावली में कुछ आभार आरोपित किये गये हैं जिनसे हम बचना चाहेंगे और हम समझते हैं कि ''वह भारत का अथवा किसी ऐसे राज्य का मंत्री है'' यह शब्दावली सब प्रयोजनों के लिये पर्याप्त है।

मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद में जो कुछ चन्द शब्द कहूंगा उन पर आप ध्यान नहीं देंगे—वैसे भी आज हम बहुत से अनुच्छेद पारित कर चुके हैं। मैं डा. अम्बेडकर से यह पूछना चाहूंगा कि वे इस बात को अवश्य स्पष्ट करें कि उनके संशोधन में आई हुई पदावली 'विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति' का क्या अर्थ है। श्रीमान्, 'अनुषक्ति' बहुत व्यापक शब्द है। उसका अर्थ बहुत कुछ निश्चित सा नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि कहीं संयुक्त राष्ट्र मंडल के प्रति हमारी अनुषक्ति हममें से बहुतों को अनर्ह न कर दे विशेषकर हमारे प्रधानमंत्री को जो इंग्लैंड जैसे एक विदेशी राज्य के प्रति हम से कुछ थोड़ी अनुषक्ति स्वीकार कराने में सहायक थे। संयुक्त राष्ट्रमंडल के सदस्य बन जाने से हमने एक विदेशी राजा को किसी सीमा तक अभिज्ञात कर लिया हैं। क्या यह अनुषक्ति हममें से बहुतों को अनर्ह न कर देगी? यदि वह ऐसा करती है तो केवल डा. अम्बेडकर ही इस सदन में रह जायेंगे। हम सब अनर्ह हो जायेंगे। हमारी अनुषक्ति संयुक्त राष्ट्रमंडल तथा इंग्लैंड के बादशाह से है जो विदेशी है। चूंकि 'अनुषक्ति' शब्द बहुत ही संदेहात्मक है मैं समझता हूं कि इस संशोधन की शब्दावली में कुछ परिवर्तन किया जाये अथवा मसौदा समिति द्वारा यह वचन दिया जाये कि इस शब्द को इतना संदेहात्मक नहीं रहने दिया जायेगा। संयुक्त राष्ट्रमंडल से तथा अन्य अधिराज्यों से हमारे सम्बन्ध एक विदेशी राज्य के रूप में निर्वचन किये जा सकते हैं। यह संधि का विषय नहीं है यह स्थायी सम्बन्ध का विषय है जिसे हम स्थापित कर चुके हैं। संधि संविदा है। यह कोई संधि नहीं है। यह तो विदेशी अधिराज्यों के प्रति वास्तविक अनुषक्ति है। मैं यह चाहूंगा कि डा. अम्बेडकर इस वाद पद पर प्रकाश डालें। या तो इसकी शब्दावली बदल दी जाये जिससे कि हम संयुक्त राष्ट्रमंडल में रह सकें या यह आश्वासन दिया जाये कि संयुक्त राष्ट्रमंडल के देश इस अनुच्छेद के प्रयोजनार्थ विदेशी राज्य नहीं समझे जायेंगे।

मुझे प्रसन्नता है कि श्री मोहनलाल गौतम ने अपना संशोधन पेश नहीं किया वरना हममें से बहुत से जिन्होंने प्रवेशिका परीक्षा पारित नहीं की है वे सब अनर्ह हो जाते। मैं अनर्ह समझा जाता यदि प्रवेशिका की अर्हता होती। मेरी शिक्षा कठिनाई से प्राथमिक शिक्षा के बराबर है। मैं केवल यही चाहता हूं कि मेरे देश के वे व्यक्ति जो मेरे समान निरक्षर हैं इन उपबंधों से अनर्ह न किये जायें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं दो बातों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। उपखंड (ङ) में कहा गया है कि ''यदि वह राज्य के विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन इस प्रकार अनर्ह कर दिया जाता है।''

एक और अनुच्छेद में हमने यह निर्धारित किया है कि राज्य के विधानमंडल को अर्हता निर्धारित करने की शक्ति दे दी गई है और यहां हम उसे अनर्हता निर्धारित करने की शक्ति देते हैं। परन्तु इसके बाद डा. अम्बेडकर ने हमें यह आश्वासन दिया है कि संसद अर्हतायें निर्धारित करेगा न कि राज्य का विधानमंडल। अत: मैं डाक्टर अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे हमें यह बतायें कि क्या संसद द्वारा इस शक्ति का भी प्रयोग किया जायेगा या नही। यहां हम यह कहते हैं कि राज्य का विधानमंडल उन लोक पदों की घोषणा कर सकता है जिनका धारण करना किसी व्यक्ति को राज्य के विधानमंडल का सदस्य होने से अनर्ह न करेगा। मैं समझता हूं कि इस बात को भी संसद पर छोड़ देना चाहिये। संसद संसदीय सचिवों, उपमंत्रियों इत्याादि जैसे लोक पदों को निर्धारित करे जिनके धारण करने से राज्य में इन पदों के धारण करने वाले विधानमंडल में सदस्य बने रहने से अनर्ह न होंगे। विधानमंडल में सदस्य बनने से व्यक्तियों को अनर्ह करने वाली विधि भी समस्त राज्यों में एक समान होनी चाहिये। वरना फल यह होगा कि प्रत्येक राज्य पृथक्-पृथक् विधियां पारित करेगा और एक व्यक्ति जो कि बम्बई विधानमंडल की सदस्यता का उम्मीदवार न हो सकता है वह संयुक्त प्रान्त के विधानमंडल की सदस्यता का उम्मीदवार न हो सकेगा। इस कमी को दूर कर देना चाहिये और राज्य के 'विधानमंडल' के स्थान में हमें संसद को समस्त प्रान्तों के लिये समान विधि बनाने की शक्ति प्रदान कर देनी चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मुझे खेद है कि श्री मोहनलाल गौतम ने अपना संशोधन पेश नहीं किया। मैं अनुभव करता हूं कि विधानमंडल के सदस्य के लिये कुछ शैक्षणिक अर्हता होनी चाहिये। यह विचार प्रचलित हो गया है कि विधानमंडल के सदस्य के लिये शिक्षा, प्रशासन अथवा न्याय सम्बन्धी किसी भी अनुभव की आवश्यकता नहीं है। एक डाक्टर, एक इंजीनियर अथवा एक वकील को एक निश्चित अवधि तक विशेष प्रकार की प्रशिक्षा ग्रहण करनी होती है। मैं यह समझता हूं कि विधि निर्माताओं का कार्य किसी

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

डाक्टर, वकील अथवा इंजीनियर से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु विधि निर्माता होने के लिये केवल यही पर्याप्त समझा जाता है कि वह सड़क सभाई हो, चीखने वाला वक्ता हो, एक पेशेवर राजनैतिक नर्त्तक हो, बहुरूपया हो तथा पक्का बदमाश हो। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि यदि हम शासन की किसी विभिन्न प्रणाली का निर्माण करना चाहते हैं तो विधि निर्माताओं के लिये कुछ शैक्षणिक अर्हतायें आवश्यक समझी जानी चाहियें। श्रीमान् मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है।

***श्री एम. थीरूमल राव** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या माननीय सदस्य ने 'बदमाश' शब्द का प्रयोग किया था? मैं उनका भाषण ठीक नहीं सुन सका। यदि उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया है तो क्या यह शब्द संसदीय है?

***अध्यक्ष:** यदि इस शब्द का प्रयोग किया गया है तो ऐसा नहीं होना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वह केवल इस कहावत का अनुसरण करता है कि बदमाश के लिये राजनीति अन्तिम सहारा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं अपने मित्र श्री त्यागी के लिये खड़ा होता हूं क्योंकि उन्होंने मुझसे एक या दो तीखे प्रश्न किये हैं। क्योंकि वे स्वयं यह कहते हैं कि वे बेपढ़े हैं मैं 'अनुषक्ति' शब्द को समझने की उनकी कठिनाई को भली प्रकार समझ सकता हूं। इसलिये मैं उन्हें यह बताऊंगा कि 'अनुषक्ति' शब्द का क्या अर्थ है। जब एक देश पर दूसरा देश आक्रमण करता है तो यह होता है कि वहां के निवासी भय के कारण अथवा सेना-विधि के कारण उस सैनिक राज्यपाल द्वारा निर्मित विधियों का कभी-कभी पालन करने लग जाते हैं जो आक्रमणकारी देश के नाम से शासन करता है। जब तक आक्रमण होता रहता है और सैनिक आधिपत्य बना रहता है ऐसे व्यवहार को बहुधा क्षमा कर दिया जाता है। बहुधा यह होता है कि नियंत्रण में ढील होने के कारण या विरोध के मिट जाने के कारण आक्रमणकारी अथवा सैनिक राज्यपाल की आज्ञापालन करने की जब वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं रहती है तब भी कुछ लोग सैनिक राज्यपाल अथवा आक्रमणकारी की आज्ञापालन करते चले जाते हैं। विधि के अंतर्गत उनके इस व्यवहार को 'अनुषक्ति' के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। अभिस्वीकरण से यह भिन्न है। इस प्रकार की अवस्था से त्राण पाने के लिये 'अनुषक्ति' शब्द का प्रयोग किया गया है।

मेरे मित्र श्री त्यागी इस विषय पर भी बहुत उत्तेजित हुए थे कि किन देशों को विदेशों के रूप में समझा जाये। इस बात में मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र श्री त्यागी का यह उद्देश्य नहीं है कि वे मुझे संयुक्त राष्ट्रमंडल के सम्बन्ध की किसी चर्चा में अंतर्ग्रस्त करें

जो एक ऐसा विषय है जिस पर इस सदन में वाद-विवाद तथा विचार हो चुका है, पर मैं उनसे यह कहना चाहूंगा कि अनुच्छेद 303 उपखंड (1) पर यह परिभाषा करने के लिये कि किन देशों को विदेश समझा जाये मैं एक संशोधन रखना चाहता हूं और यदि मेरे मित्र श्री त्यागी के पास संशोधनों की छपी सूची का अंक 2 है तो वे यह देख सकते हैं कि वह प्रस्थापित संशोधन क्या है। प्रस्थापित संशोधन यह घोषणा करने की शक्ति, कि कौन से देश विदेश नहीं हैं राष्ट्रपति को देता है और उस घोषणा से यह निर्णय होगा कि कोई विशिष्ट देश विदेश है अथवा नहीं। अपने मित्र श्री त्यागी के लाभार्थ मैं व्याख्या सम्बन्धी एक शब्द और बढ़ाना चाहूंगा। बहुत से लोग शायद इस बात से चिन्तित हैं कि प्रस्थापित संशोधन अथवा संयुक्त राष्ट्रमंडल के करार के अंतर्गत जब किसी देश को विदेश के रूप में घोषित नहीं किया जाता है तो वे सब लोग जो उन देशों के निवासी हैं अपने आप नागरिकता के उन समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेते हैं जो इस संविधान द्वारा इस देश के लोगों को दिये जा रहे हैं। मैं अपने मित्रों से कहना चाहता हूं कि ऐसी कोई बात नहीं होगी। संयुक्त राष्ट्र मंडल के सम्बन्ध के अंतर्गत यह स्थिति होगी: समस्त अधिराज्य देशों में निवासियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जायेगा— नागरिक, अन्यदेशीय और एक तीसरी श्रेणी जो एक विशिष्ट देश में रहते हुए अधिराज्य निवासियों की कही जा सकती है। इसका यह अर्थ होगा कि भारत में निवास करने वाले अधिराज्यों के नागरिकों को अन्यदेशीय नहीं माना जायेगा, उनको कुछ अधिकार होंगे जो अन्यदेशीय को नहीं होंगे, पर मेरे विचार से वे नागरिकता के उन पूर्ण अधिकारों के हकदार कदापि नहीं होंगे जो हम अपने देश के लोगों को देंगे। मैं आशा करता हूं कि मेरे मित्र श्री त्यागी को कोई ऐसी बात मिल गई होगी जिससे उनके मन में जो संदेह थे वे दूर हो जायेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** इस रोचक भाषण के लिये जो आपने दिया है मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'profit' (लाभ) शब्द के पश्चात् निम्न शब्द प्रविष्ट किये जाये:
>
> 'or contract of building or of supply of any article, or is a shareholder in any Joint Stock Company which has such a contract of building or of supply of any article.' ''
>
> [अथवा निर्माण का संविदा अथवा किसी वस्तु का प्रदेय धारण किये है अथवा किसी ऐसी अविभक्त श्रेष्ठि-समवाय का हिस्सेदार है जिसके पास ऐसे निर्माण के संविदा अथवा किसी वस्तु के प्रदेय हों।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि 'Legislature of the State' (राज्य के विधानमंडल) शब्दों के पश्चात् 'or any Local Authority of such State' (अथवा उस राज्य के किसी स्थानीय प्राधिकारी] शब्द, प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (घ) के स्थान में निम्न उपखंड रखा जाये:

'(d) if he has ceased to be a citizen of India or has voluntarily acquired the citizenship of a foreign State or is under any acknowledgement of allegiance or adherence to a foreign State.' ''

[(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है अथवा किसी विदेशी राज्य की नागरिकता को स्वेच्छा से अर्जित कर चुका है। अथवा किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति को अभिस्वीकार किये हुए हो।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (घ) के अन्त में अर्धविराम के पश्चात् 'or' (अथवा) शब्द बढ़ा दिया जाये।' ''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (1) के उपखंड (ङ) के पश्चात् निम्न नवीन उपखंड बढ़ा दिया जाये:

'(f) if he is not registered as a voter.' ''

[(च) यदि वह मतदाता के रूप में पंजीबद्ध नहीं किया गया है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'Government of any State' (किसी राज्य की सरकार) शब्दों के पश्चात् 'or any local or other Authority subject to the control of such State' (अथवा उस राज्य के नियंत्रण के अधीन कोई स्थानीय अथवा अन्य प्राधिकारी)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) के स्थान में निम्न उपखंड रखा जाये:

'He is a minister either for india or for any such State.'

[वह भारत का अथवा ऐसे किसी राज्य का मंत्री है।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मि. मुहम्मद ताहिर के अन्य दो संशोधन गिर जाते हैं क्योंकि मेरे पेश किये गये संशोधन की स्वीकृति से वे खंड निकल जाते हैं।

***अध्यक्ष:** जी हां, संशोधन संख्या 2432 और 2433 गिर जाते हैं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया संशोधन और दूसरा श्री कृष्णमाचारी द्वारा पेश किया गया संशोधन स्वीकार कर लिये गये हैं और मैं संशोधित रूप में अनुच्छेद पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 167 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 167 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** हम कल प्रात:काल के 8 बजे तक के लिये स्थगित करते हैं।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार 3 जून सन् 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VIII-15.49
320

अंक 8
संख्या 15

शुक्रवार
3 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 168 से 171 तथा 109 से 111 पर विचार] ...883-942

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 3 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 168

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 168 को उठायेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): इसके पूर्व कि अनुच्छेद 168 उठाया जाये, मैं अध्यक्ष महोदय का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि एक संशोधन इस आशय का है कि एक नवीन अनुच्छेद 168-ए प्रविष्ट किया जाये। अनुच्छेद 168 से सम्बन्धित दो संशोधनों अर्थात् संशोधन संख्या 2440 और 2441 के फलस्वरूप यह प्रश्न उठता है। यह अनुभव किया गया है कि उचित यह होगा कि इन प्रश्नों को एक पृथक् अनुच्छेद 167 (क) में समाविष्ट किया जाये। किन्तु मेरे विचार से सभा को प्रस्तावित अनुच्छेद पर विचार करने का समय नहीं मिला। इसलिये यदि अध्यक्ष महोदय अनुमति दें तो मैं यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि इसे आगे किसी तिथि के लिये स्थगित किया जाये ताकि सभा को इस नवीन अनुच्छेद के विषय को अच्छी प्रकार समझने के लिये पर्याप्त समय मिल जाये।

***अध्यक्ष:** मैं यह विचार कर रहा था कि इसे संशोधन संख्या 2441 के साथ उठाया जाये। यदि इसे स्थगित किया जा रहा है तो ठीक ही है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** बात यह है कि उससे संशोधन संख्या 2441 का आशय बहुत कुछ पूरा हो जाता है किन्तु जो प्रक्रिया निर्धारित की गई है वह भिन्न है। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि सदस्यों को उसे समझने के लिये कुछ समय दिया जाये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इसे स्थगित किया जाये और आगे किसी अवसर पर उठाया जाये।

***अध्यक्ष:** यदि सदस्यों को इस पर आपत्ति नहीं है तो मैं इसे स्थगित कर सकता हूं।

एक नये संशोधन की सूचना मिली है जिसका आशय यह है कि एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 167(क) प्रविष्ट किया जाये, जो सदस्यों की निर्योग्यता के बारे में है

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[अध्यक्ष]

और यह सुझाव उपस्थित करता है कि किसी सदस्य की निर्योग्यता के प्रश्न पर एक विशेष प्रकार से विचार किया जाये। सुझाव यह है कि उसे स्थगित किया जाये। सूचना संशोधन संख्या 2441 के बारे में दी गई है, जो अनुच्छेद 168 के सम्बन्ध में है। किन्तु उस पर यथोचित रूप से इसी समय विचार किया जा सकता है। परन्तु इरादा यह है कि उसे इस समय स्थगित किया जाये ताकि सदस्य उस पर विचार कर सकें।

अब हम अनुच्छेद 168 को उठायेंगे। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 168 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

मेरे विचार से पहले तीन संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 2434, 2435 और 2436 मसौदे में शुद्धि करने के उद्देश्य से उपस्थित किये गये हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जी हां, उनका उद्देश्य मसौदे में शुद्धि करना है।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2437। इसका आशय प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद से अर्थात् अनुच्छेद 167 (क) से पूरा हो जाता है। हम इसे छोड़ सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2438 और 2439 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2440 और 2441 : ये प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद के सम्बन्ध में हैं। हम इन्हें छोड़ सकते हैं।

अनुच्छेद 168 के सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया गया है। क्या इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई सदस्य महोदय बोलना चाहते हैं।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, यह 168 आर्टिकिल यहां रखने के लिये कुछ जरूरत है, ऐसा मुझे मालूम नहीं होता है, क्योंकि कोई आदमी जो इस असेम्बली में घुस जायेंगे उनके लिये तो बहुत प्रबंध है और जब ऐसे आदमी मेम्बर नहीं हैं और मेम्बर की जो क्वालीफिकेशन है, यहां बनने की और यह जब उनमें मौजूद नहीं होंगी, तब भी यहां आकर घुस जायेंगे। तो उसके लिये तो प्रबंध है कि उनको निकाल दे सकते हैं और जब उनके ऊपर कुछ दंड दिया जायेगा तो उनको क्रिमिनल ट्रेसपास के लिये दंड दिया जा सकता है। उसके लिये एक स्वतंत्र ऐसा प्रबंध करना मुझे ठीक नहीं मालूम होता है। हम ऐसा आर्टिकिल ज्याादा रख कर क्या फायदा उठायेंगे, यह मैं सोच नहीं सकता हूं। उनको तो क्रिमिनल ट्रेसपासर्स में दंड देना चाहिये। इतना ही मैं कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 168 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 168 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 169

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 169 को उठाते हैं।

(संशोधन संख्या 2442, 2443 और संशोधन पर संशोधन संख्या 141 और 2444 उपस्थित नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 2445।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 169 के खंड (4) में 'a House of the Legislature of a State' (राज्य के विधानमंडल के किसी सदन) शब्दों के बाद 'or any committee thereof' (अथवा उसकी किसी समिति) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, अनुच्छेद 169 के खंड (4) में मेरा संशोधन प्रविष्ट होने पर वह इस प्रकार हो जायेगा:

> ''The provisions of clauses (1), (2) and (3) of this article shall apply in relation to persons who by virtue of this Constitution have the right to speak in, and otherwise take part in the proceedings of, a House of the Legislature of a State or any Committee thereof as they apply in relation to members of that Legislature.''
>
> (जिन व्यक्तियों को इस संविधान के आधार पर राज्य के विधानमंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति में बोलने का, अथवा अन्य प्रकार से उसकी कार्यवाही में भाग लेने का, अधिकार है, उनके सम्बन्ध में खंड (1), (2) और (3) के उपबंध उसी प्रकार लागू होंगे जिस प्रकार वे उस विधानमंडल के सदस्यों के सम्बन्ध में लागू हैं।)

इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति से, भले ही वह विधान सभा का सदस्य न हो, विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी समिति में कार्य करने अथवा उसके समक्ष उपस्थित होने के लिये कहा जाये तो उसमें वह जो कुछ करे या कहे उसके सम्बन्ध में उसे वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो विधानमंडल के सदस्यों के होंगे। यदि विधानमंडल द्वारा निर्मित समिति के समक्ष उपस्थित होने अथवा उसमें कार्य करने के लिये आमंत्रित व्यक्तियों को इस प्रकार की उन्मुक्ति प्राप्त न होगी तो उनके लिये अबाध तथा स्वतंत्र रूप से कार्य करना कठिन हो जायेगा। केन्द्रीय संसद द्वारा निर्मित समिति के समक्ष उपस्थित होने वाले इस प्रकार के व्यक्तियों के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में सभा मेरे एक संशोधन को स्वीकार कर चुकी है। इसी आधार पर, मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन भी स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2446 और 2447 उपस्थित नहीं किये गये हैं। संशोधनों और अनुच्छेद पर अब विचार-विमर्श हो सकता है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं इस अनुच्छेद के खंड (3) के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैं उन सब बातों को नहीं दुहराना चाहता जो मैंने पिछले एक अवसर पर कहीं थी जबकि हम इसी के समान एक खंड पर विचार कर रहे थे, जो केन्द्रीय संसद के सदस्यों के विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में था। किन्तु उस अवसर पर हमने जो खंड स्वीकार किया था उसकी लोगों में तथा समाचार-पत्रों में क्या प्रतिक्रिया हुई उसकी ओर में डा. अम्बेडकर का तथा इस सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। मुझे इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि डा. अम्बेडकर सचेत रहते हैं और प्रतिदिन कुछ महत्त्वपूर्ण समाचार पत्रों को पढ़ लेते हैं अथवा कम से कम अपने सामने पढ़वा लेते हैं। इस सभा ने जैसे ही संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार सम्बन्धी खंड को स्वीकार किया वैसे ही अधिकांश समाचार पत्रों ने, हमने उसे जिस ढंग से स्वीकार किया था उसकी आलोचना की। हिन्दुस्तान टाइम्स जैसे कट्टरपन्थी पत्र ने भी यह लिखा था कि अपने देश के लिये एक लिखित संविधान का मसौदा बनाते हुए हम यह बहुत ही अनुचित बात कर रहे हैं कि हम कोई ऐसा कानून बनायें अथवा अपने संविधान में कोई ऐसी बात प्रविष्ट करें जिसका किसी अन्य देश के अलिखित संविधान से सम्बन्ध हो। सभा को यह विदित है कि ब्रिटेन का संविधान अलिखित है, भले ही यह उपबंध किसी पत्र में उल्लिखित हो। मुझे विश्वास है कि जिस समय वह खंड स्वीकार किया गया था, हमारे संविधान के पंडितों ने, हमारे विशेषज्ञों ने, डा. अम्बेडकर, श्री अल्लादी तथा उनकी विचारधारा के अन्य लोगों ने यह समझ कर आत्मसंतोष कर लिया था कि चूंकि कामन्स सभा संसदों की जननी है इसलिये सभा की कुछ बातों का उल्लेख करके हम संसार में सब से उत्तम बात कर रहे हैं, यद्यपि हम में से बहुत से लोग उस सभा के बारे में कुछ नहीं जानते और इसे अपना सौभाग्य भी समझते हैं। उस अवसर पर जो सदस्य बोले थे उनमें से अधिकांश जानते भी न थे कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं और कुछ पत्रों ने तथा कुछ आलोचकों ने इस कार्य के सम्बन्ध में यह कहा था कि मसौदा-समिति ने अपने काम में टालमटोल दिखाई हैं वह कम से कम एक अनुसूची का मसौदा तैयार कर सकती थी और उसे संविधान के अन्त में प्रविष्ट कर सकती थी और उसमें यह दिखा सकती थी कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं। ऐसा नहीं किया गया और केवल इस आशय का एक खंड रख दिया गया कि जो विशेषाधिकार वहां प्राप्त हैं वे यहां भी प्राप्त होंगे। यह कोई नहीं जानता कि वहां कौन से विशेषाधिकार प्राप्त हैं, इसलिये यह भी कोई नहीं जानता कि हमें कौन से विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। श्री मावलंकर महोदय के सभापतित्व में हमारी संसद ने प्रयोगात्मक रूप से प्रक्रिया के कुछ नियमों को स्वीकार किया है और उसने एक विशेषाधिकार समिति को भी नियुक्त किया है अथवा नियुक्त करने जा रही है। मुझे आश्चर्य है कि हमने अपने संविधान में इस लाभप्रद उपबंध को समाविष्ट करने की बुद्धिमत्ता क्यों नहीं दिखाई कि केन्द्रीय संसद के सदस्य होने के नाते हमें जो विशेषाधिकार प्राप्त हैं वे राज्यों के विधानमंडलों के सदस्यों को भी प्राप्त होंगे।

यदि किसी संविधान का उल्लेख करना आवश्यक ही थी तो कम से कम एक अलिखित संविधान का अर्थात् ब्रिटेन के संविधान का उल्लेख न करना चाहिये था और ऐसा करके मसौदा-समिति ने बड़ी नासमझी का काम किया है। अमेरिका का लिखित संविधान था ही जबकि हम में से कुछ लोगों को इसका गर्व भी है कि हमने बहुत सी बातें अमेरिका के संविधान से ली हैं। क्या मैं डा. अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि क्या इंग्लैंड की कामन्स सभा के सदस्यों को अमेरिका की प्रतिनिधि सभा के विशेषाधिकारों से अधिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं? यदि ऐसी बात है तो मैं इस सम्बन्ध में सूचना चाहता हूं। यदि यह बात नहीं है तो मेरे विचार से किसी अलिखित संविधान का उल्लेख करना उचित नहीं है। मैं तो यह चाहता हूं कि किसी भी अन्य संविधान का उल्लेख न किया जाये। यदि आवश्यक हो तो हमें अपने संविधान में एक अनुसूची समाविष्ट कर देनी चाहिये और इस अनुच्छेद में यह लिख देना चाहिये कि अधिकार और विशेषाधिकार अन्त में अनुसूची में उल्लिखित हैं। संभवत: इच्छा यह है कि विषय को सरल बनाया जाये किन्तु किसी विषय की अत्यधिक सरल बनाना हमेशा ठीक नहीं होता है। यदि संक्षिप्त विवरण की दृष्टि से इस खंड को सरल बनाने की आवश्यकता थी तो किसी अन्य विकल्प पर विचार किया जा सकता था और संसार के किसी देश के लिखित संविधान का उल्लेख किया जा सकता था। वह मुझे इतना अप्रिय न होता। किन्तु मेरी तो यह इच्छा है कि किसी समय भी संविधान में स्पष्ट शब्दों में एक अनुसूची प्रविष्ट की जाये जिसमें यह बताया जाये कि विधानमंडलों और संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार क्या हैं? मेरे विचार से इस खंड विशेष को बदल कर फिर से लिखा जाना चाहिये। पहले एक अवसर पर हमने इसी प्रकार का एक खंड स्वीकार किया है किन्तु यदि हमने एक बार गलती की है तो हमें उसे बार-बार न दुहराना चाहिये। इसलिये डा. अम्बेडकर से तथा मसौदा-समिति के उनके बुद्धिमान सहकारियों से मेरा यह निवेदन है कि वे इस खंड को दुहरायें और यदि वे यह समझें कि बुद्धिमानी इसी में है तो उसे भी तदनुसार दुहरा कर समझदारी का परिचय दें।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं भी उपस्थित अनुच्छेद के खंड (3) के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैंने अनुच्छेद 85 के खंड (3) के सम्बन्ध में एक संशोधन की भी सूचना दी थी। वह संशोधन संख्या 1624 था। मैंने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में एक अन्य संशोधन की भी अर्थात् संशोधन संख्या 2443 की सूचना दी थी। इन खंडों में से प्रत्येक में सदस्यों के विशेषाधिकारों का उल्लेख है और कामन्स सभा की ओर संकेत किया गया है। किन्तु मैंने पहले के संशोधन और इस संशोधन को भी उपस्थित नहीं किया क्योंकि मैंने यह विचार किया कि इसके कारण मसौदा-समिति को बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। इन खंडों के बारे में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इनमें यह परिभाषा करने का प्रयास किया गया है कि हमारे वही विशेषाधिकार होंगे जो इंग्लैंड की कामन्स सभा के सदस्यों के हैं। 1935 के भारत सरकार के अधिनियम से नकल करके इन खंडों को लिया गया है। यह खंड उस अधिनियम से ज्यों का त्यों ले लिया गया है और इसमें स्थिति को स्पष्ट करने के लिये कुछ भी प्रयास नहीं किया गया है। जैसा कि श्री कामत ने बताया है, इससे यह पता लगता है कि मसौदा-समिति ने इस सम्बन्ध में कुशलता से कार्य नहीं किया है। कठिनाई यह है कि कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकार कहीं भी सुनिश्चित रूप से उल्लिखित नहीं हैं। इसलिये हम में से कोई

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

भी सदस्य निश्चित रूप से यह नहीं समझ सकता कि उसके विशेषाधिकार क्या हैं। उचित यही है और इसकी आवश्यकता भी है कि इस विषय को अधिक स्थगित न रखा जाये। मेरा अपना विचार यह है कि माननीय सदस्यों को यह सुझाव उपस्थित करना चाहिये कि एक ऐसी अनुसूची समाविष्ट करनी चाहिये जिसमें विशेषाधिकारों का उल्लेख हो। यदि उनके बारे में आज कोई निश्चय किया जाता है तो उसे अनुसूची में समाविष्ट किया जा सकता है और अनुसूची का उल्लेख करते हुए इस खंड में थोड़ा सा संशोधन किया जा सकता है। मैंने एक मसौदा तैयार कर रखा है और यदि मुझ से कहा गया तो मैं उसे यथोचित अवसर पर उपस्थित करूंगा। मेरे विचार से उचित यही है कि जिन विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये हम चिंतित हैं वे स्पष्टतया विदित होने चाहिये। मेरे विचार से उन्हें व्यवस्थित रूप दिया जाना चाहिये। इस समय हम उन्हें संविधान की एक अनुसूची में समाविष्ट कर सकते हैं और आगे चल कर यदि संसद आवश्यक समझे तो उसे दुहरा सकती है और विस्तृत रूप दे सकती है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, पिछले एक अवसर पर मैंने श्री कामत का समर्थन किया था और उस समय मैंने जो कुछ कहा था उसका एक शब्द भी मैं इस समय नहीं दुहराना चाहता। जहां तक इस खंड का सम्बन्ध है, मैंने एक स्पष्ट सुझाव उपस्थित करना है। यदि कामन्स सभा का उल्लेख न किया जाये तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। किन्तु यदि यह संभव न हो तो मेरे एक दूसरे सुझाव पर विचार किया जाये। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ सन्देह नहीं है कि जो सुझाव मैं उपस्थित करता हूं उन पर अधिक विचार नहीं किया जाता किन्तु फिर भी मुझे आशा है कि मेरे इस सुझाव की उपेक्षा न की जायेगी। मैं तो इसे अधिक पसंद करता कि विशेषाधिकारों के विषय पर सभा द्वारा स्वीकृत अनुच्छेद 85 के सम्बन्ध में विचार करते समय विचार किया जाता। इससे कामन्स सभा के उल्लेख करने की भी आवश्यकता न पड़ती और अनेक प्रकार के विशेषाधिकारों को भी समाविष्ट न करना पड़ता। यह खंड इस प्रकार है:

> ''अन्य बातों में किसी राज्य के विधानमंडल के किसी सदन के सदस्यों के विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां ऐसी होंगी, जैसी विधानमंडल विधि द्वारा परिभाषित करे...''

इसके स्थान पर कि प्रत्येक राज्य का विधानमंडल विशेषाधिकारों की परिभाषा करे मैं इसे पसंद करता हूं कि वे वही हों जो संसद को प्राप्त हों। कुछ समय के लिये कामन्स सभा का उल्लेख रहे किन्तु जब विशेषाधिकारों की परिभाषा की जाये तो संसद ही, न कि प्रत्येक राज्य परिभाषा करे क्योंकि विभिन्न राज्यों की परिभाषा में अन्तर हो सकता है। मुझे आशा है कि मेरा यह सुझाव स्वीकार कर लिया जायेगा क्योंकि इसे स्वीकार करने से फिर अन्य स्थान पर कामन्स सभा का उल्लेख करने की आवश्यकता न रह जायेगी। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 85 की ओर संकेत करके हम अपने संविधान को अपने निर्णय पर ही आधृत कर सकेंगे और अनुच्छेद 85 में इंग्लैंड की कामन्स सभा का उल्लेख रहने पर भी सभी राज्यों के विधानमंडलों के सदस्यों के विशेषाधिकार समान रूप से विस्तृत

होंगे और एक साथ ही समाप्त होंगे और उनमें किसी प्रकार का अन्तर न होगा। मेरी यह धारणा हैं कि यह एक तर्कपूर्ण सुझाव है और मुझे यह आशा है कि मसौदा-समिति तथा माननीय डा. अम्बेडकर इसे पसन्द करेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 169 के सम्बन्ध में मैंने एक संशोधन की, अर्थात् संशोधन संख्या 2444 की सूचना दी थी, किन्तु मैंने उसे उपस्थित करना उचित नहीं समझा। मुझे खेद है कि हमारी इस सभा की साधारणतया यही प्रवृत्ति रही है कि पेचीदे प्रश्नों को टाल दिया जाये। इस खंड के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि पार्लियामेंट की कामन्स सभा के सदस्यों के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का उल्लेख अनुचित है। यह बात नहीं है कि कामन्स सभा का उल्लेख करने में मैं लज्जा का अनुभव करता हूं। मैं यही कहना चाहता हूं कि इस प्रकार इस विषय के सम्बन्ध में भी हम एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न को टाल रहे हैं यद्यपि यह संविधान-सभा इसे हल करने के लिये सक्षम है। आखिर क्या मैं पूछ सकता हूं कि यदि इस कठिन प्रश्न को इस समय हल नहीं किया गया तो इसे कब हल किया जायेगा? यदि हमारे नेता तथा विधिवेत्ता आज विधानमंडलों के सदस्यों के विशेषाधिकारों की परिभाषा नहीं कर सकते हैं तो मेरी समझ में नहीं आता है कि यह कब सम्भव हो सकेगा। मैं यह जानता हूं कि इस सभा के कुछ सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त रहे हैं। यदि हम उन सबकी परिभाषा नहीं भी कर सके तो कम से कम उन विशेषाधिकारों की परिभाषा कर दें जिन्हें हम जानते हैं। मैं यह जानता हूं कि इस सभा के तथा प्रान्तीय विधानमंडलों के कुछ सदस्यों को बिना अनुज्ञप्ति के शस्त्र रखने का अधिकार प्राप्त रहा है। मैं यह भी जानता हूं कि अनुच्छेद 69 में जिस भाषण-स्वातंत्र्य के अधिकार का उल्लेख है वह अधिकार भी उनको प्राप्त रहा है। बन्दी करने के प्रश्न पर भी पंजाब की विधान-सभा में एक समय विचार हुआ था जबकि यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या विधान-सभा के सत्र में भाग लेने के लिये आते समय या वापस जाते समय किसी सदस्य को बन्दी किया जा सकता है? जहां तक कामन्स सभा का सम्बन्ध है वहां इस प्रकार की बातों का कहीं उल्लेख नहीं है। वे अलिखित संविधान के अंग हैं। कुछ ऐसे विशेषाधिकार हैं जिनका सम्भवत: उल्लेख नहीं किया जा सकता। चाहे जो भी हो, मेरे विचार से, कामन्स सभा का उल्लेख कुछ हद तक लज्जाजनक है। हम उसका उल्लेख ही क्यों करें? हमारे देश में भी बहुत काल तक संसदें अस्तित्व में रही हैं, इसके लिये कोई कारण नहीं है कि हम अपने विशेषाधिकारों को लिखने का प्रयास न करें। यदि आगे चल कर उन्हें विस्तृत करने अथवा सीमित करने की आवश्यकता हुई तो यह किया जा सकता है किन्तु अपनी उन्मुक्तियों तथा विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में कामन्स सभा का इस प्रकार उल्लेख करना अनुचित है।

इसके अतिरिक्त मैंने यहां यह प्रवृत्ति देखी है कि जब कभी कोई पेचीदा प्रश्न उठ खड़ा होता है, जैसे कि राज्य-परिषद् अथवा किसी समान निकाय के निर्माण का प्रश्न, तो हम उसे संसद के निर्णय के लिये स्थगित कर देना चाहते हैं। जब हम संविधान की रचना कर रहे हैं तो हमें आधारभूत तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का इसी सभा में तुरन्त ही निर्णय कर देना चाहिये।

श्रीमान्, मेरे विचार से अच्छा यही होगा कि जिन शब्दों द्वारा कामन्स सभा का उल्लेख किया गया है उन्हें निकाल दिया जाये। यदि हम इस प्रश्न के सम्बन्ध में इसी समय

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

निर्णय नहीं कर सकते हैं तो हमें इसे विधानमंडलों के निर्णय के लिये छोड़ देना चाहिये। किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो हमें श्री जसपतराय कपूर का संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये। वे यह चाहते हैं कि जब कभी इन विशेषाधिकारों की परिभाषा की जाये उस समय इसका ध्यान रखा जाये कि प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्यों को वही विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त हो जो केन्द्रीय विधानमंडल के सदस्यों को प्राप्त हों।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, कुछ ही समय पूर्व जब हम संसद के विशेषाधिकारों पर विचार-विमर्श कर रहे थे तो इस विषय के सम्बन्ध में वादानुवाद हुआ था और मैंने यह सोचा था कि चूंकि यह सभा संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद को स्वीकार कर चुकी है इसलिये जब हम राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में उसी प्रकार के उपबंध को उपस्थित करेंगे तो आगे कुछ वादानुवाद न होगा। किन्तु चूंकि वादानुवाद हुआ है और मेरे मित्र श्री कामत के कथनानुसार समाचारपत्रों में भी उत्तेजना है, इसलिये मेरे लिये यह आवश्यक हो गया है कि मैं यह बताऊं कि मसौदा-समिति ने ऐसा क्यों किया विशेषतया इसलिये भी कि जब पिछली बार वादानुवाद हुआ था तो स्थिति स्पष्ट करने के लिये मैं नहीं बोला था।

मैं कह नहीं सकता कि कितने सदस्य समझते हैं कि विशेषाधिकार का वास्तव में क्या अर्थ है। हमने जिन विशेषाधिकारों की कल्पना की है उनको दो विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले तो ऐसे विशेषाधिकार हैं जो सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हैं जैसे भाषण-स्वातन्त्र्य का अधिकार और कर्त्तव्यपालन में बन्दी होने से उन्मुक्ति। किन्तु विशेषाधिकारों के अन्तर्गत केवल इतना ही नहीं आता।

***डा. पी.एस. देशमुख:** हम न विशेषाधिकारों की गणना चाहते हैं और न उनके प्रयोग के सम्बन्ध में कोई भाषण ही चाहते हैं। हम केवल यह जानना चाहते हैं कि संविधान में उनका समावेश करना सम्भव है या नहीं। वास्तव में प्रश्न यही है।

***अध्यक्ष:** वे इस प्रश्न की चर्चा कर रहे हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह बता रहा हूं कि कठिनाई क्या है। यदि हमें इन दो बातों अर्थात् भाषण-स्वातन्त्र्य और बन्दी होने से उन्मुक्ति पर ही विचार करना होता तो इनका उल्लेख अनुच्छेद ही में बड़ी आसानी से किया जा सकता था और हमें कामन्स सभा का उल्लेख करने की आवश्यकता न होती। किन्तु संसद के सम्बन्ध में हम जिन विशेषाधिकारों की चर्चा करते हैं वे पूर्वकथित दो विशेषाधिकारों से, जो सदस्यों को केवल व्यक्तिगत रूप से प्राप्त होते हैं, कहीं अधिक विस्तृत हैं उदाहरणार्थ संसद को कुछ ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं जो जनसाधारण को प्राप्त नहीं होते और ऐसे भी अधिकार प्राप्त होते हैं जो सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त नहीं होते। उदाहरणार्थ कामन्स सभा की शक्तियों और विशेषाधिकार के अधीन संसद को इसकी स्वतंत्रता है कि वह किसी नागरिक को संसद के अवमान के लिये अभिशस्त करे और जब यह विशेषाधिकार

प्रयोग किया जाता है तो न्यायालयों का कोई क्षेत्राधिकार नहीं रह जाता। यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद को इसकी भी स्वतंत्रता है कि वह संसद के किसी सदस्य के विरुद्ध, जिसने कोई ऐसा कार्य किया हो जिससे संसद का अवमान होता हो, कार्यवाही करे। ये प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है—उदाहरणार्थ बन्दी करने का प्रश्न। किसी नागरिक को ऐसा कार्य करने के लिये बन्दी करने के अधिकार की, जिसे संसद अपना अवमान समझती हो, आसानी से परिभाषा नहीं की जा सकती। यह कहना भी आसान नहीं है कि सदस्यों के व्यक्तिगत रूप से किये हुए किन कार्यों से संसद का अवमान होना है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** हमारी दिलचस्पी केवल सदस्यों के विशेषाधिकारों से है न कि संसद के विशेषाधिकारों से।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे कहने दीजिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, इसकी परिभाषा करना कोई आसान काम नहीं है कि किन कार्यों के बारे में यह कहा जा सकता है कि उनसे संसद का अवमान होता है। इसके लिये बहुत विचार-विमर्श और परीक्षा की आवश्यकता होगी। इसी कारण हमने इन विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की गणना करना उचित नहीं समझा। किन्तु इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है और मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति को भी कुछ सन्देह नहीं है, कि संसद को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहियें जबकि संसद की मानहानि और निराधार आलोचना हो सकती है जिसके फलस्वरूप इस देश में संसदात्मक संस्थाओं का बहुत अवमान होगा और लोग उसके प्रति श्रद्धा नहीं रखेंगे यद्यपि उनका हितसाधन करने वाली इस संसदात्मक संस्थाओं का उन्हें आदर करना चाहिये।

मैंने एक कठिनाई बताई है जिसके कारण हम विशेषाधिकारों का निश्चित रूप से उल्लेख नहीं कर सके हैं। अब मैं उन कठिनाइयों को भी बताऊंगा जिनका कि हमें सामना करना पड़ा था।

मेरे विचार से यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता कि संसद के विशेषाधिकारों की अधिनियम में ही गणना होनी चाहिये तो हमें तीन मार्गों का अनुसरण करना पड़ता। एक तो उन्हें संविधान में समाविष्ट करना पड़ता अर्थात् संसद के तथा उसके सदस्यों के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का विस्तृत विवरण देना होता। मैंने मे की पुस्तक ''पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस'' का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया क्योंकि संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का वही एक स्रोत है। मैंने मे की ''पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस'' की अनुक्रमणिका को भी पढ़ा और उसमें देखा कि अनुक्रमणिका के आठ या नौ स्तम्भों में संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का ही विवरण है। इसलिये यदि आप मे की तद्विषयक व्याख्या के आधार पर संसद के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की एक सम्पूर्ण संहिता को अधिनियम में प्रविष्ट करना चाहते हैं तो मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि हमें विशेषाधिकार तथा उन्मुक्ति-सम्बन्धी बीस अथवा पच्चीस पृष्ठ जोड़ने पड़ेंगे। मैं कह नहीं सकता कि इस सभा के माननीय सदस्य संसद के विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों के सम्बन्ध में बीस अथवा पच्चीस पृष्ठ के एक बृहत् विवरण को स्थान देना चाहेंगे अथवा नहीं। इस कारण भी हमने इस मार्ग का अनुसरण नहीं किया।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरा मार्ग यह है कि ये शब्द रखे जा सकते थे, जैसे कि संविधान के कई स्थलों पर रखे गये हैं, कि इस विशेष विषय के सम्बन्ध में संसद उपबंध कर सकती है और जब तक वह उपबंध न करेगी तब तक वर्तमान स्थिति बनी रहेगी। हम इस मार्ग का अनुसरण कर सकते थे। हम यह कह सकते हैं कि संसद सदस्यों के तिथि सभा के विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की परिभाषा कर सकती है और जब तक यह परिभाषा न की जाये वही विशेषाधिकार जारी रहेंगे जो संविधान के प्रवर्त्तन में आने की तिथि को प्राप्त थे। किन्तु जैसा कि माननीय सदस्यों को विदित है, दुर्भाग्य से 1935 के अधिनियम द्वारा संसद को तथा उसके सदस्यों को कोई विशेषाधिकार अथवा उन्मुक्तियां प्रदान नहीं की गई। उसमें केवल एक उपबंध रखा गया और वह यह था कि बोलने की स्वतंत्रता होगी और संसद में वादानुवाद के समय कही हुई किसी बात के लिये कोई सदस्य अभियोजित न किया जायेगा। इसलिये हम इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते थे क्योंकि वर्तमान संसद अथवा विधानसभा को कोई विशेषाधिकार अथवा उन्मुक्तियां प्राप्त नहीं हैं। इसलिये हम इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते थे।

हमारे लिये केवल एक ही मार्ग रह गया और उसी का हमने अनुसरण किया अर्थात् हमने यह कहा कि संसद को वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो कामन्स सभा को प्राप्त हैं। मेरे विचार से कामन्स सभा के उल्लेख के सम्बन्ध में भावनावश ही आपत्ति की गई है क्योंकि मसौदा-समिति के इस कार्य के विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किया गया है उसमें मुझे कोई सार नहीं दिखाई देता। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में उसी मार्ग का अनुसरण किया गया है जिसका हमने अनिवार्य रूप से अवलम्बन करना था क्योंकि हमारे सामने अन्य कोई विकल्प नहीं था। इस दशा में मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद को उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाये जिस रूप में यह मसौदे में रखा गया है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** माननीय सदस्य महोदय ने मेरे दूसरे सुझाव के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसाकि मैं बता चुका हूं, यदि आप सभी विशेषाधिकारों तथा उन्मुक्तियों का निश्चयात्मक रूप से विस्तृत विवरण देना चाहते हैं तो इसके लिये कम से कम पच्चीस पृष्ठ आवश्यक होंगे...।

***अध्यक्षः** डा. देशमुख का सुझाव यह था कि इस अनुच्छेद में, जो राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में है, हम केवल ये शब्द रख सकते हैं कि किसी राज्य के विधानमंडल के सदस्यों को वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जो संसद के सदस्यों को प्राप्त होंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह सुझाव केवल मसौदे की शुद्धि के सम्बन्ध में है। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि राज्यों के विधानमंडलों के सम्बन्ध में हम जिन अनुच्छेदों को स्वीकार कर रहे हैं उनमें से अधिकांश उन्हीं अनुच्छेदों के समान हैं जो हमने केन्द्रीय संसद के सम्बन्ध में स्वीकार किये हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि अन्य कई विषयों के सम्बन्ध में राज्यों के विधानमंडलों पर भी वही उपबंध प्रयुक्त होंगे।

किन्तु चूंकि हमने अन्यत्र इस मार्ग का अनुसरण नहीं किया है, इसलिये केवल इस विषय के सम्बन्ध में उसे स्वीकार करना अनुपयुक्त होगा।

***अध्यक्ष:** पहले मैं श्री जसपतराय कपूर के संशोधन पर सभा का मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 169 के खंड (4) में 'a House of the Legislature of a State' (राज्य के विधानमंडल के किसी सदन) शब्दों के बाद 'or any committee thereof' (अथवा उसकी किसी समिति) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 169, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 169, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 170

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 170 के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 2450 और 2451 के अतिरिक्त और कोई सारभूत संशोधन उपस्थित नहीं किये गये हैं।

(संशोधन संख्या 2448 और 2449 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 170 में 'so made' (बनाया जाता) शब्दों के बाद 'salaries and' (वेतन और) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में असावधानी से जो एक बात रह गई है उसी को पूरा करने के लिये यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया है। अनुच्छेद 170 विधानसभा तथा विधान-परिषद् के सदस्यों के वेतनों तथा भत्तों के बारे में है सभा को यह विदित होगा कि इसके दो भाग हैं। पहले भाग में संसद द्वारा वेतन और भत्ते निश्चित करने के सम्बन्ध में उपबंध किया गया है और आगे के भाग में यह कहा गया है कि जब तक यह उपबंध न किया जाये वर्तमान व्यवस्था जारी रहेगी। किन्तु वास्तव में ये शब्द हैं: 'इस दर पर भत्ते जारी रहेंगे।' सभा को यह विदित होगा कि प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्यों को इस समय वेतन मिल रहे हैं यदि 'वेतन' शब्द प्रविष्ट न किया गया तो जब तक इस सम्बन्ध में उपबंध

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

न रखा जायेगा तब तक प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्यों को कोई वेतन न मिलेगा। इस अनुच्छेद की शब्दावली अनुच्छेद 86 की शब्दावली के समान ही है जो संसद के सदस्यों के बारे में है। संविधान सभा के सदस्य वेतन नहीं पाते हैं। इसलिये भत्तों के लिये उपबंध किया गया है किन्तु प्रान्तीय विधानमंडलों में सदस्य वेतन पाते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि 'वेतन' शब्द प्रविष्ट किया जाये। मुझे आशा है कि यह सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 2451 मि. जैड.एच. लारी के नाम से है। केन्द्रीय संसद के सम्बन्ध में इसी आशय के एक संशोधन पर विचार-विमर्श हुआ था और वह अस्वीकार कर दिया गया था। मैं यह देखता हूं कि मि. लारी उपस्थित भी नहीं हैं। इसलिये यह संशोधन उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं श्री भारती के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 170 में 'so made' (बनाया जाता) शब्दों के बाद 'salaries and (वेतन और) शब्द प्रविष्ट किये जायें।

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 170, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 170, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 170 (क) की सूचना श्री भारती ने दी है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** एक अन्य संशोधन भी है जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

नवीन अनुच्छेद 170-क

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 170 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद 170-क प्रविष्ट किया जाये:

''170-A. It shall be open to the Legislature of any State to move the Supreme Court to restrain any other State from ill-treating or discriminating against or denying the Fundamental Rights of citizens to

the individual originating from the former State but who are setted or carrying on any trade, profession, occupation or business in the latter on the ground only of their not being original inhabitants of that State.' ''

(170-क, किसी भी राज्य के विधानमंडल को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी ऐसे अन्य राज्य को रोकने के लिये उच्चतम-न्यायालय को परिचालित करे, जो पूर्वोक्त राज्य में जन्मे हुए उन लोगों के प्रति, जो वहां बस गये हों अथवा व्यापार, वृत्ति आजीविका अथवा कारोबार में संलग्न हों इस कारण दुर्व्यवहार कर रहा हो अथवा विभेद बरत रहा हो अथवा उन्हें नागरिकों के मूलाधिकारों से वंचित कर रहा हो कि वे उस राज्य के मूल-निवासी नहीं हैं।)'

श्रीमान्, यह एक बहुत कठिन विषय है और इसके कारण बहुत से जनसेवी लोगों में बहुत उत्तेजना है और जब तक हम इसके लिये किसी संवैधानिक उपचार की व्यवस्था नहीं करते तब तक यह विकृत रूप में उपस्थित होता रहेगा।

श्रीमान्, साधारणतया इस प्रश्न का स्वरूप साम्प्रदायिक प्रश्न के समान ही है और इसके फलस्वरूप भी वही परिणाम होने की सम्भावना है जो साम्प्रदायिक प्रश्न के फलस्वरूप हुए हैं और जिनके कारण देश का विभाजन हुआ है। अन्तर्प्रान्तीय विद्वेष, जो इस समय कई प्रकार प्रकट हो रहा है, देश की अक्षुण्णता के लिये घातक सिद्ध होगा और उसके कारण देश के विभिन्न भागों के बीच सद्भावना भी नहीं बनी रहेगी। इस समय इस ओर तुरन्त ही ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि हम इस प्रकार के प्रश्नों का संवैधानिक हल चाहते हैं और इन्हें शान्ति तथा सद्भावनापूर्वक हल करना चाहते हैं तो जिस प्रकार के उपबंध का मैंने सुझाव रखा है उसका बहुत महत्त्व है। हमें यह विदित है कि इस प्रकार की भावना अब इस रूप में प्रकट होने लगी है कि विधि-निर्माण में नहीं तो कम से कम कर लगाने में और सेवाओं के लिये नियुक्तियां करने में विभेद किया जाता है अथवा देश के किसी भाग के लोगों को व्यापार आजीविका अथवा कारोबार के सम्बन्ध में अथवा किसी प्रदेश में कारोबार, व्यापार अथवा वृत्ति करने के सम्बन्ध में सुविधायें प्रदान की जाती हैं। इस प्रश्न का एक हल यह सुझाया गया है कि देश के विभिन्न भागों का किसी आन्तरिक समानता के आधार पर, जैसे कि भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण किया जाये। किन्तु इसके फलस्वरूप नई कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं। मेरे विचार से यह भावना ही इस प्रकार की है कि जब तक इसके निराकरण के लिये संविधान में ही सामंजस्य तथा सद्भावनापूर्ण उपबंध न रखा जाये तब तक संकटों से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

यह हो सकता है कि आपने केन्द्रीय सरकार अथवा विधानमंडल को इस प्रकार की शक्तियां प्रदान की हों। इस आधार पर आपकी यह धारणा हो सकती है कि जिन लोगों को शिकायत हो उनके प्रति न्याय किया जाये। मेरा अपना विचार यह है कि इस व्यवस्था के कारण केन्द्रीय सरकार और केन्द्रीय विधानमंडल पर ही यह सन्देह किया जा सकता

[प्रो. के.टी. शाह]

है कि वे न्याय की दृष्टि से नहीं बल्कि राजनीतिक दृष्टि से निर्णय करते हैं। इसलिये मैंने यह सुझाव रखा है कि राज्यों के विधानमंडलों को सामूहिक रूप में यह शक्ति प्रदान की जाये कि वे उच्चतम न्यायालय के सम्मुख किसी वाद को उपस्थित कर सकते हैं क्योंकि सम्भावना इसी की है कि उच्चतम न्यायालय केवल न्याय की दृष्टि से निर्णय करेगा और इस संशोधन में जिन शिकायतों की ओर संकेत किया गया है उसके सम्बन्ध में केवल न्याय के आधार पर एक ऐसे न्यायिक प्राधिकारी द्वारा निर्णय किया जायेगा जिस पर न कोई अभियोग लगाया जायेगा और न कोई आपत्ति की जायेगी।

श्रीमान्, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामूहिक रूप से इस प्रकार की जो शिकायतें होंगी उनके सम्बन्ध में किसी न्यायालय में वाद उपस्थित करना कठिन होगा क्योंकि प्रत्यक्षत: किसी विशेष व्यक्ति को कोई ऐसी हानि न होगी जिसके सम्बन्ध में प्रमाण दिया जा सके और कार्यवाही की जा सके तथा न्यायालय में वाद उपस्थित किया जा सके। मैं इस कठिनाई को पूर्णतया अनुभव करता हूं और इसलिये मैं इस उपचार का सुझाव उपस्थित कर रहा हूं कि प्रस्तावित उपबंध के समान किसी उपबंध को स्थान दिया जाये ताकि वर्गीयता का निरोध हो सके और किसी प्रकार की आपत्ति न की जा सके। इस प्रकार आपत्ति के लिये बहुत कम स्थान रह जायेगा।

यह कल्पनातीत नहीं है कि किसी दिन सारे देश का एकीकरण हो जायेगा और लोगों में एकता की भावना जागृत हो जायेगी। किन्तु इसमें अवश्य कुछ समय लगेगा। जब तक सारा देश राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित नहीं होता तब तक इस प्रकार का उपबंध बहुत सी कठिनाइयों को दूर करने में सहायक होगा। कम से कम मुझे तो इन कठिनाइयों की कल्पना से भय का ही अनुभव होता है। इसलिये मुझे आशा है कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रोफेसर शाह का ध्यान केवल इस ओर दिलाना चाहता हूं कि अनुच्छेद 9 और 10 के अधीन हम यह उपबंध रख चुके हैं कि मूलवंश, जाति, जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी नागरिक के प्रति विभेद न किया जायेगा और राज्याधीन किसी पद अथवा नौकरी के संबंध में कोई नागरिक धर्म, निवास, जन्मस्थान आदि के आधार पर न तो अपात्र समझा जायेगा और न उसके प्रति विभेद किया जायेगा। चूंकि प्रान्तीयता के आधार पर विभेद करने के विरुद्ध ये उपबंध है इसलिये एक पृथक् अनुच्छेद में इस प्रकार का उपबंध करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। मेरे मित्र की यह इच्छा है कि राज्य के विधानमंडल को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह उच्चतम न्यायालय के सम्मुख वाद उपस्थित कर सके। मेरे विचार से प्रान्तीय भावनाओं और विद्वेष की बढ़ा चढ़ा कर चर्चा करना उचित नहीं है। लोग व्यवहार न्यायालयों में अपने मामलों को तय करा सकते हैं। मेरे विचार से इस उपबंध को स्थान देकर हम प्रान्तीय विद्वेष को बढ़ायेंगे न कि उसे कम करेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मेरे विचार से इस अवसर पर इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान देने के लिये कोई युक्तियुक्त कारण नहीं है। प्रोफेसर शाह ने भाषा, जाति आदि

के कारण प्रान्तों और राज्यों के बढ़ते हुए विद्वेष की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया हैं किन्तु जैसा कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना कह चुके हैं, मूलाधिकारों के अधीन अनुच्छेद 13 और 25 में इन अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है और इनको प्रयोग में लाने के लिये उपबंध रखे गये हैं। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि अनुच्छेद 25 में किसी व्यक्ति को, न कि किसी निगम को, यह अधिकार दिया गया है कि वह भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये यथोचित प्रक्रिया द्वारा उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित कर सकता है। मैं कह नहीं सकता कि आगे चल कर न्यायवेत्ता, विधिवेत्ता तथा संविधान के विशेषज्ञ अनुच्छेद 25 का किस प्रकार निर्वचन करेंगे। मेरे विचार से उससे केवल व्यक्ति को ही अधिकार प्राप्त होते हैं और विधानमंडल अथवा किसी अन्य संगठन को प्राप्त नहीं होते। किन्तु प्रोफेसर शाह ने जिस उपचार का सुझाव रखा है यह रोग से भी अधिक कष्टकर सिद्ध होगा। वे अन्तर्प्रान्तीय विद्वेष को जहां तक संभव हो मिटाना चाहते हैं ताकि किसी प्रकार का विभेद न हो सके। किन्तु इस रोग का यह उपचार नहीं है कि किसी अन्य राज्य पर रोकथाम करने के लिये किसी राज्य को उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त हो। किसी राज्य के इस प्रकार के कार्य से दूसरे राज्य को यह भ्रम हो सकता है कि वह उसके मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है। इसका यही भयंकर परिणाम होगा। इसलिये यदि हमें उपचार ही प्राप्त करना है तो हमें भाग 3 के अनुच्छेद 25 के उपबंधों का ही अनुसरण करना चाहिये। यदि किसी राज्य के किसी ऐसे नागरिक को, जिसका उस राज्य में उद्‌भव न हुआ हो किन्तु वहां बस गया हो, वहां की सरकार से कोई शिकायत हो तो भाग 3 के अधीन उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करे। यह पर्याप्त व्यवस्था है और इस प्रकार के अनुच्छेद को प्रविष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं अपने मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल और श्री कामत के समान केवल यह कह कर संतोष नहीं कर लेना चाहता कि एक नये अनुच्छेद को प्रविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है और हमें मूलाधिकारों के उपबंधों से ही संतोष कर लेना चाहिये।

मैं इस सुझाव का बहुत विरोध करता हूं कि इस अनुच्छेद में जिस प्रकार के विषय का उल्लेख है उसके सम्बन्ध में किसी राज्य को किसी अन्य राज्य के आचरण पर आपत्ति करने की क्षमता प्राप्त होनी चाहिये। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि प्रोफेसर शाह जैसे व्यक्ति ऐसे लोगों के हितों की रक्षा का प्रयास कर रहे हैं जिनके प्रति मैं उनसे सहानुभूति की आशा नहीं करता था। अपने भाषण में उन्होंने साम्प्रदायिक बातों का भी निर्देश किया है। यह एक प्रथा चल पड़ी है कि आलोचक स्वयं चाहे साम्प्रदायिकता में डूबा हुआ हो और चाहे केवल अपने ही सम्प्रदाय के लोगों की अथवा अपने ही रिश्तेदारों की सहायता करता हो किन्तु वह अन्य लोगों को साम्प्रदायिक कहता है। यह आजकल की प्रथा है। जो लोग 90 प्रतिशत लोगों के लिये खड़े होते हैं वे साम्प्रदायिक कहे जाते हैं और जिन्होंने अपने रिश्तेदारों अथवा अपनी जाति के लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी का हितसाधन न किया हो वे लोगों को समझते हैं कि वे बड़े सदाचारी और विश्वप्रेमी हैं। मैं इस ओर संकेत नहीं करना चाहता था किन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यद्यपि इस अनुच्छेद में साम्प्रदायिकता का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु फिर भी मेरे विद्वान्

[डा. पी.एस. देशमुख]

मित्र प्रोफेसर शाह ने उसकी चर्चा की है। वास्तव में वे कारोबारियों, व्यापारियों आदि के हितों की रक्षा करना चाहते हैं। मैं इसे पूरे जोर से कहना चाहता हूं कि भारत में कारोबार तथा व्यापार-वाणिज्य में लगे हुये लोग ईमानदार सिद्ध नहीं हुये हैं। इस वृत्ति का आधार धोखेबाजी ही रही है। यदि आप देखें कि समय-समय पर हमारे खाद्य-पदार्थ किस प्रकार बेचे जाते हैं तो आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि किस प्रकार अवमिश्रण किया जाता है। मेरे विचार से किसी को यह कहने का साहस न होगा कि उसे शुद्ध खाद्य-पदार्थ मिलते हैं और उनमें किसी प्रकार का अवमिश्रण नहीं होता। ईमानदारी से कारोबार करके जो लाभ होता है उससे व्यापारी संतुष्ट नहीं रहते। इस स्थिति में यदि कोई राज्य बृहत् रूप से इस अवमिश्रण के विरुद्ध किसी विधि का निर्माण करना चाहे तो मेरे मित्र प्रोफेसर शाह वे मतानुसार ऐसे राज्य को, जिसमें केवल व्यापारी और कारोबारी ही हों, उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये ताकि ऐसी विधि का निर्माण करने वाले किसी राज्य अथवा सभी राज्यों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय कार्यवाही कर सके।

एक अन्य बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है और वह है भारत में सूदखोरी का प्रश्न। आगे चल कर संयुक्त महाराष्ट्र जैसे राज्य को, अस्तित्व में आने पर, उन सूदखोरों के विरुद्ध कार्यवाही करनी होगी जो केवल सूदखोरी से और धोखा देकर ही हजारों लाखों एकड़ जमीन पर अधिकार किये हुए हैं। मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र प्रोफेसर शाह इन्हीं लोगों के भय तथा त्रास को व्यक्त कर रहे थे। यदि वे भयभीत हैं तो मैं उन्हें दोष नहीं देता। यदि वे वास्तव में भयभीत हैं तो उनके भय के निराकरण का उपाय यही है कि वे अपना सुधार करें और समाज के अन्य लोगों के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार करें और केवल धोखेबाजी से ही सम्पन्न होने तथा अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयास न करें। यह अपचार इससे कहीं श्रेष्ठ है कि किसी राज्य को उनकी रक्षा के लिये उच्चतम न्यायालय में वाद उपस्थित करने की शक्ति दी जाये ताकि उनके जघन्य कार्यों की ओर किसी का ध्यान ही न जाये और उनका विरोध ही न हो सके। इस दृष्टि से मैं उस मूलाधिकार को भी पसंद नहीं करता हूं जिसके अधीन कोई व्यक्ति कहीं भी भूमि अथवा सम्पत्ति का अर्जन कर सकता है क्योंकि विपुल सम्पत्ति के अर्जन का ही अर्थ है कि वह न्यायोचित रीति से प्राप्त नहीं की गई है। यदि कोई राज्य इन अनुचित उपायों को रोकने के लिये आगे बढ़ता है तो उसे इसकी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिये और समाज के इन शत्रुओं को दंडित करने में उसके मार्ग में कोई बाधा न होनी चाहिये।

श्रीमान्, इन कारणों को दृष्टि में रखते हुए मेरे विचार से इस अनुच्छेद के फलस्वरूप बेईमानी तथा समाज-विरोधी सभी ऐसे कार्य कानूनी हो जायेंगे, जिन्हें करने का हमारे देश के कुछ लोगों को अभ्यास हो गया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस प्रकार की कोई बात न होने दी जायेगी। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, 'अल्पसंख्यक' शब्द का गलत निर्वाचन किया जाता है। हम मुसलमानों को ही अल्पसंख्यक और हिन्दुओं को ही बहुसंख्यक समझते थे। बाद को सिख सामने आये और अनुसूचित जातियां भी अल्पसंख्यक समझे जाने लगे। अब हिन्दुओं के ही छोटे-छोटे सम्प्रदायों और जातियों के लिये भी इस शब्द को प्रयोग

करने का प्रयास किया जाता है। हिन्दू सम्प्रदाय का इन छोटी-छोटी जातियों द्वारा शोषण होता रहा है और यदि इन जातियों का घोर विरोध किया जा रहा है तो उसका आधार साम्प्रदायिक भावनायें नहीं हैं। वह इन जातियों के जनशोषण के कारण किया जा रहा है। कोई राज्य इस शोषण को समाप्त करने का प्रयास कर सकता है और उसके मार्ग में इस उपबंध के कारण कोई रुकावट न आने देनी चाहिये।

***प्रो. के.टी. शाह:** जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उनको दृष्टि में रखते हुए मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस संशोधन को वापस लेने की आज्ञा दी जाये।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 171 को उठाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** चूंकि अनुच्छेद 171 से आरम्भ होने वाले अध्याय के बाद के उपबंधों का आशय उन्हीं उपबधों के समान है, जिनके बारे में सभा ने अभी विनिश्चय नहीं किया है और जो वित्तीय विषयों और उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में हैं, हम पहले उन उपबंधों पर विचार कर सकते हैं और अनुच्छेद 109 को उठा सकते हैं। वित्तीय उपबंधों और उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी उपबंधों को स्वीकार कर लेने पर अनुच्छेद 171 से आरम्भ होने वाले अध्याय के बाद के उपबंधों पर विचार करना सरल हो जायेगा क्योंकि उनके आशय में तथा पहले के अनुच्छेदों के आशय में प्रसंगानुसार ही थोड़ा सा अन्तर है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हमें इसकी सूचना नहीं दी गई थी कि अनुच्छेद 109 आज उठाया जायेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इससे क्या अन्तर पड़ता है।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 171 और 172 केवल प्रक्रिया के सम्बन्ध में है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 172 संयुक्त अधिवेशनों के सम्बन्ध में है और जब तक अवर सदन के ढांचे के सम्बन्ध में विनिश्चय नहीं किया जाता तब तक हम संयुक्त अधिवेशनों के प्रश्न के सम्बन्ध में भी कोई विनिश्चय नहीं कर सकते। अनुच्छेद 172 के बाद के अनुच्छेदों का आशय उन्हीं अनुच्छेदों के समान है जो हमने स्थगित कर रखे हैं। किन्तु अध्यक्ष महोदय जैसा उचित समझें करें।

***अध्यक्ष:** सूचना दी गई है। मि. नजीरुद्दीन अहमद, कार्यावधि में आप देखेंगे कि विषय (2) भाग 5 के अध्याय 2 और 4 तथा भाग 6 के अवशिष्ट अनुच्छेदों के सम्बन्ध में है। इसलिये इसकी सूचना दी गई है कि अनुच्छेद 109 आज उठाया जायेगा। क्या हम अनुच्छेद 109 को उठायें?

***माननीय सदस्यगण:** जी हां।

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 109 उठाते हैं।

अनुच्छेद 109

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 109 में 'If in so far as' (यदि जहां तक) शब्दों के स्थान में 'if and in so far as' (यदि और जहां तक) शब्द रखे जायें।''

(संशोधन संख्या 1896 और 1897 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 1898 उपस्थित करता हूं, जो मेरे नाम से है और उसमें संशोधन करते हुए मैं तीसरे सप्ताह की सूची 3 के संशोधन संख्या 147 को उपस्थित करता हूं, जो इस प्रकार है:

> ''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1898 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 109 के परन्तुक के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:
>
> 'Provided that the said jurisdiction shall not extend to a dispute to which any State is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, engagement, sanad or other similar instrument which provides that the said jurisdiction shall not extend to such dispute.' ''
>
> (परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद तक न होगा जिसमें कोई राज्य एक पक्ष हो, यदि वह विवाद किसी संधि, करार, वचनबंध, सनद अथवा इसी प्रकार की अन्य किसी ऐसी लिखत से उत्पन्न होता हो, जो यह उपबंध करती हो कि उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार ऐसे विवाद तक न होगा।)

श्रीमान्, संशोधन संख्या 1898 और मेरे संशोधन का आशय बहुत कुछ समान ही है। मेरे संशोधन में केवल यह कहा गया है कि परन्तुक (1) को निकाल देने से पूरे परन्तुक का रूप क्या हो जायेगा। परन्तुक (1) को इस कारण निकालने का प्रस्ताव किया गया है कि उसमें ऐसे विवादों का उल्लेख है जिनमें प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित कोई राज्य एक पक्ष है जिससे कई करार और विवाद सामने आते हैं किन्तु उन्हें इस परन्तुक द्वारा इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर नहीं आने दिया गया है। सभा को स्मरण होगा कि अपने विचार-विमर्श में हम जानबूझ कर प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों की चर्चा नहीं कर रहे हैं जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं और श्री के.एम. मुंशी और डा. अम्बेडकर भी कह चुके हैं, यदि इन राज्यों के लिये पृथक् रूप से उपबंध करने की आवश्यकता हुई और यदि संविधान के मसौदे के सभी अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श कर लेने पर भी यह आवश्यकता समझी गई तो इनके लिये एक पृथक् अध्याय में उपबंध किया जायेगा और इसलिये यह परन्तुक संख्या (1) बिल्कुल अनावश्यक है। इस प्रकार के उपबंध को स्थान न देने के लिये ही मैंने इस संशोधन को उपस्थित किया है क्योंकि

इससे ये राज्य उन राज्यों के समान न रह जायेंगे, जो इस समय भारत के प्रान्त हैं। श्रीमान्, इससे कोई पेचीदगी पैदा नहीं होती क्योंकि इसका उद्देश्य केवल परन्तुक (1) को निकाल देना है। मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन संख्या 1899, 1900 और 1901 उपस्थित नहीं किये गये।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 109 का विरोध करने के लिये उठा हूं। मुझे उन्हीं तर्कों को फिर दुहराने में कभी भी संकोच नहीं होता क्योंकि मेरी यह धारणा है कि सम्भवत: उन्हें दुहराने से कुछ प्रभाव पड़े और एकात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में मत परिवर्तन हो जाये। इस अनुच्छेद के अधीन उच्चतम न्यायालय को जो शक्ति प्रदान की गई है उसे प्रदान करने के पक्ष में मैं नहीं हूं। भारत सरकार को दो राज्यों के किसी विवाद का निर्णय करने की शक्ति हमेशा से प्राप्त रही है। मैं इसे अच्छी प्रकार समझता कि संघीय-शासन में उच्चतम न्यायालय का स्थान क्या है किन्तु मैं संघीय-शासन तथा उच्चतम न्यायालय दोनों के विरुद्ध हूं। मेरी यह धारणा है कि यदि दो राज्यों के बीच संघर्ष हो तो भारत सरकार को उस सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिये। यदि भारत सरकार और किसी राज्य के बीच संघर्ष हो तो भारत सरकार का निर्णय अन्तिम समझा जाना चाहिये। प्रान्तीय सरकारें अधीन सरकारें हैं। मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (ट्रावणकोर राज्य): अध्यक्ष महोदय, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका समर्थन करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। हम यह देखते हैं कि संविधान के मसौदे में प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों और भाग 1 के राज्यों के बीच अन्तर करने का प्रयास किया गया है क्योंकि भाग 3 के राज्यों और केन्द्र के तथा भाग 1 के राज्यों और केन्द्र के राजनैतिक सम्बन्धों में अन्तर हैं। श्रीमान्, जबसे यह मसौदा तैयार हुआ है स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया है। हम इस मसौदे के भाग 3 में देखते हैं कि उन्नीस राज्यों की गणना की गई है। अन्य राज्यों का उल्लेख इसलिये नहीं किया गया कि आशा यह थी कि वे बड़े एककों में समाविष्ट हो जायेंगे। अब सभी छोटे-छोटे राज्य लुप्त हो चुके हैं। उन उन्नीस एककों में से भी, जिनके बारे में आशा की जाती थी कि वे रहेंगे हम देखते हैं कि अब केवल चार या पांच शेष रह गये हैं और वे भी अर्थात् वे राज्य जो इस समय प्रान्त कहे जाते हैं, शीघ्रता से अन्य राज्यों के स्तर पर आ रहे हैं यदि भाग 3 के राज्यों के लोगों को नये संविधान के प्रवर्त्तन पर कोई लाभ प्राप्त होगा तो मेरे विचार से वह यह है कि उन्हें उच्चतम न्ययालय के सम्मुख वाद उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। इन राज्यों के लोगों को अभी तक प्रिवी कौंसिल में अपील करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। हमारे न्यायालय सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं। ट्रावणकोर के उच्च न्यायालय को उस राज्य के सम्बन्ध में वही विस्तृत शक्तियां प्राप्त हैं जो भारत के प्रान्तों के सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल को प्राप्त हैं। अब स्थिति में परिवर्तन हो रहा है और परिवर्तन होना ही चाहिये। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा है कि अब इस आधार पर उपबंध रखे जायेंगे कि उच्चतम न्यायालय को भाग 1 और भाग 3 के राज्यों के सम्बन्ध में समान क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा

[श्री ए. थानू पिल्ले]

किन्तु यदि भाग 3 के राज्यों के समय पर करार नहीं किया गया तो वे इन उपबंधों के प्रवर्त्तन के प्रभाव से वंचित हो जायेंगे। श्रीमान्, मुझे पूरी आशा है कि यह आकस्मिक स्थिति उत्पन्न न होगी। मुझे आशा है कि इस विषय में सम्बन्धित सभी लोग, जिनमें भारत-सरकार के सूत्रधार और वे लोग भी सम्मिलित हैं जिन्हें भाग 3 के राज्यों की ओर से बोलने का अधिकार है, इसे स्वीकार करेंगे कि इन राज्यों के लोगों को उच्चतम न्यायालय के सम्मुख वाद उपस्थित करने का उसी प्रकार अधिकार प्राप्त होना चाहिये जैसे प्रान्तों के लोगों को प्राप्त है। इस अधिकार के सम्बन्ध में कोई विभेद न होना चाहिये। इस आशा से मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन का हृदय से समर्थन करता हूं। इस सम्बन्ध में मैं एक बात और कहना चाहता हूं। भाग 3 के राज्यों में भारत सरकार के आदेश से, अथवा निदेश से, संविधान निर्माण का कार्य रोक दिया गया है। भारत सरकार राज्यों के लिये एक अनुकरणीय संविधान तैयार कर रही है। मैं कह नहीं सकता कि वह काम कितना आगे बढ़ा है। इस प्रश्न को हल करना ही है और तुरन्त ही हल करना है कि राज्यों का संविधान इस संविधान-सभा में तैयार होगा अथवा राज्यों में ही उनकी अपनी-अपनी संविधान सभाओं द्वारा तैयार होगा। चाहे जो कुछ भी हो, देर न की जानी चाहिये क्योंकि जिस संविधान को हम यहां बना रहे है वह भी, जब तक भाग 2 के राज्यों का संविधान तैयार नहीं हो जाता और स्वीकार नहीं हो जाता, प्रवर्त्तन में नहीं लाया जा सकता। इसलिये देर न करनी चाहिये और इस सम्बन्ध में जो कदम भी आवश्यक समझा जाये उठाये जाने चाहिये। मेरे विचार से भाग 3 के राज्यों के लिये तुरन्त ही संविधान तैयार करवाने से संविधान-सभा कोई अनियमित कार्यवाही नहीं करेगी क्योंकि बिना उस संविधान को स्वीकार किये हुए यह संविधान भी प्रवर्त्तन में न लाया जा सकेगा। मुझे आशा है कि इस विषय पर यह सभा तथा भारत सरकार तत्परता से विचार करेंगे।

(संशोधन संख्या 1899 से लेकर 1901 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 109 के परन्तुक के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Provided that the said jurisdiction shall not extend to a dispute to which any State is a party, if the dispute arises out of any provision of a treaty, agreement, engagement, sanad or other similar instrument which provides that the said jurisdiction shall not extend to such dispute.' ''

(परन्तु उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार उस विवाद तक न होगा जिसमें कोई राज्य एक पक्ष हो यदि वह विवाद किसी संधि, करार, वचन-बंध, सनद अथवा इसी

प्रकार की अन्य किसी ऐसी लिखित से उत्पन्न होता हो, जो यह उपबंध करती हो कि उक्त क्षेत्राधिकार का विस्तार ऐसे विवाद तक न होगा।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 109 में 'if in so far as' (यदि जहां तक) शब्दों के स्थान में 'if and in so far as' (यदि और जहां तक) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 109 संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 109, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 110 को उठायेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 109 (क) को प्रविष्ट करने के उद्देश्य से मैंने संशोधन संख्या 182 और 183 की सूचना दी है मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि उन्हें स्थगित रखने की आज्ञा दी जाये।

***अध्यक्ष:** उन्हें स्थगित रखा जा सकता है। किन्तु यदि अन्य अनुच्छेदों को स्वीकार करने से ये संशोधन निष्फल हो जायें तो आपको वह स्थिति स्वीकार करनी होगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, क्या मैं स्थिति स्पष्ट कर सकता हूं? स्थिति यह है कि अनुच्छेद 109 (क) एक स्वावलम्बी अनुच्छेद है इसलिये अध्यक्ष महोदय को जो भय है वह उपस्थित न होगा और यह अनुच्छेद आगे के अनुच्छेदों के स्वीकार होने से निष्फल न होगा। उसका विषय एक नवीन विषय है। यदि अध्यक्ष महोदय की इच्छा हो तो उसे स्थगित रखा जा सकता है।

***अध्यक्ष:** यदि वह निष्फल न हुआ तो उस पर आगे विचार किया जायेगा। इस समय ये दो संशोधन स्थगित किये जाते हैं।

अनुच्छेद 110

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य मत्स्य): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में 'a State' (किसी राज्य) शब्दों के स्थान में 'the territory of India' (भारत राज्यक्षेत्र) शब्द रखे जायें।''

[श्री राजबहादुर]

मुख्यत: दो कारणों से मैं इस संशोधन को उपस्थित करना चाहता हूं। 'एक राज्य' शब्द ऐसे हैं जिनसे इस अनुच्छेद का अर्थ तथा निर्वचन अवश्य ही परिसीमित तथा निर्बन्धित हो जाता है। हम इस सम्भावना की कल्पना आसानी से कर सकते हैं कि किसी अन्य देश को पराजित करके अथवा अन्य प्रकार भी भारत राज्य-क्षेत्र में नये क्षेत्र सम्मिलित किये जा सकते हैं। जहां तक 'भारत राज्य-क्षेत्र' की परिभाषा का सम्बन्ध है। अनुच्छेद 1 के खंड (3) में कहा गया है कि:

''भारत के राज्य-क्षेत्र में–

(क) राज्यों के राज्य-क्षेत्र;

(ख) प्रथम अनुसूची के भाग 4 में उल्लिखित राज्य-क्षेत्र; तथा

(ग) ऐसे अन्य राज्य-क्षेत्र जो अर्जित किये जायें, समाविष्ट होंगे।''

यदि हम 'एक राज्य' शब्दों को रहने देते हैं, तो आगे को जो राज्य-क्षेत्र अर्जित किये जायेंगे अथवा जो स्वेच्छा से भारत के राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट होंगे, इस अनुच्छेद की परिधि के अन्दर नहीं आयेंगे और इसलिये, मेरा यह नम्र निवेदन है, कि इन शब्दों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

यदि हम अनुच्छेद 111 को भी उठायें तो हम देखेंगे कि उसमें 'एक राज्य' शब्द नहीं बल्कि 'भारत राज्य-क्षेत्र' शब्द प्रयोग किये गये हैं। अनुच्छेद 111 इस प्रकार है:

> ''भारत राज्य-क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय के, चाहे तो व्यवहार विषयक चाहे दांडिक चाहे अन्य कार्यवाही में दिये निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी''...

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में भी वही शब्द, अर्थात् 'भारत राज्य-क्षेत्र' प्रयुक्त है। इसलिये यह आवश्यक है कि अनुच्छेद 110 में भी वही शब्द, अर्थात् 'भारत राज्य-क्षेत्र' प्रयुक्त हों न कि 'एक राज्य'। इन कारणों से मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1903 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं संशोधन संख्या 1904 और 1907 को एक साथ उपस्थित करना चाहता हूं क्योंकि वे आपस में सम्बन्धित हैं। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में 'as to the interpretation of this Constitution' (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

मैं यह भी प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 110 के खंड (2) में 'as to the interpretation of this Constitution (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

मेरे विचार से ये आनुषंगिक संशोधन है और उन विधियों के आनुषंगिक संशोधन हैं जो विधानसभा में पारित हो चुके हैं। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इन दो संशोधनों का बहुत सांविधानिक महत्त्व है।

अनुच्छेद 110 के खंड (1) में यह उपबंध है कि:

> ''भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च-न्यायालय के, चाहे तो व्यवहार विषयक चाहे दांडिक चाहे अन्य कार्यवाही में दिये निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी यदि वह उच्चतम न्यायालय प्रमाणित कर दे कि उस मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है।''

मैं अन्त के कुछ शब्दों को अर्थात् 'इस संविधान के निर्वचन का' शब्दों को निकाल देना चाहता हूं। इन शब्दों को निकालने का प्रभाव यह होगा कि किसी उच्च न्यायालय के, चाहे तो व्यवहार विषयक चाहे दांडिक चाहे अन्य कार्यवाही में दिये निर्णय, आज्ञप्ति या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी यदि वह उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि उस मामले में कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। यदि हम जिन शब्दों के सम्बन्ध में आपत्ति की गई है उन्हें रहने देते हैं तो प्रमाणित करने की शक्ति केवल संविधान के निर्वचन की त्रुटियों तक ही सीमित रहेगी और कोई ऐसी विधि-सम्बन्धी त्रुटि होने पर, जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो, उच्च न्यायालय प्रमाण-पत्र न दे सकेगा। इसका प्रभाव यह होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता साक्ष्य अधिनियम, भारतीय दंड-संहिता आदि में विहित विधि के खंडन का प्रतिकार भी न हो सकेगा। यदि उच्च न्यायालय के निर्णय में कोई बहुत बड़ी त्रुटि भी हो जायेगी तो उस पर भी वह प्रमाण पत्र देने में असमर्थ होगा यद्यपि उसके आधार पर सम्बन्धित पक्ष उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है।

दूसरा संशोधन खंड (2) के सम्बन्ध में है। उसमें यह उपबंध है कि जहां उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाण पत्र देना अस्वीकार कर दिया हो वहां, यदि उच्चतम न्यायालय को समाधान हो जाये कि इस मामले में इस संविधान के निर्वचन का सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो वह ऐसे निर्णय की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा। इसलिये हम इस स्थिति में हैं कि यदि संविधान के निर्वचन में त्रुटि हो तो उच्च न्यायालय अपील के लिये प्रमाण पत्र दे सकता है और खंड 2 के अधीन उच्चतम न्यायालय उस दशा में अपील के लिये इजाजत देगा जबकि संविधान को निर्वचन का कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। मेरा यह निवेदन है कि यह मसौदा उस समय तैयार किया गया था जबकि प्रिवी कौंसिल प्रकार्य कर रही थी। इस बीच हमने विधान सभा में एक ऐसी विधि स्वीकार की है जिसके अनुसार संघ-न्यायालय को ऐसे मामलों के सम्बन्ध में विचार करने की शक्ति प्राप्त हो गई है जो व्यवहार विषयक हों और प्रिवी कौंसिल में लम्बित हों उसके पूर्व ये दोनों खंड पूर्णतया सार्थक कहे जा सकते थे। पहले संघ-न्यायालय और प्रिवी कौंसिल के बीच काम बंटा हुआ था। संघ न्यायालय को ऐसे मामलों के सम्बन्ध में अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्राप्त था जिनमें संविधान के अर्थात् भारत-शासन-अधिनियम के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता था। प्रिवी कौंसिल सीधे-सीधे उन अपीलों को सुनती थी जिनमें

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता था और संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न होता था। यदि संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता था तो संघ-न्यायालय के निर्णय की अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती थी। अब प्रिवी कौंसिल की इस शक्ति का अपहरण हो गया है जब प्रिवी कौंसिल और संघ-न्यायालय की सब शक्तियां उच्चतम न्यायालय को प्राप्त होंगी। अब संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर ही उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाण पत्र देने की उच्च न्यायालय की शक्ति समयोचित नहीं रह गई है। संघ-न्यायालय को प्रिवी कौंसिल की शक्तियां अंशत: प्राप्त रही हैं और उच्चतम न्यायालय को वे अब पूर्णत: प्राप्त होंगी। इस स्थिति में प्रिवी कौंसिल को जो शक्तियां प्राप्त हैं और संघ-न्यायालय को जो शक्तियां अभी तक प्राप्त रही हैं उनका एकीकरण होना चाहिये और वे उच्चतम न्यायालय को प्रदान की जानी चाहियें। वास्तव में चाहे संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो अथवा न हो उच्च न्यायालय को प्रमाणपत्र देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। उच्चतम न्यायालय को भी विशेष इजाजत देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये भले ही संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या न हो। संविधान के अतिरिक्त अनेक अधिनियमों के सम्बन्ध में भी बहुत बड़ी विधि-सम्बन्धी त्रुटियां हो सकती हैं और यह स्पष्ट है कि इन कारणों से भी उच्च न्यायालय के प्रमाण पत्र के आधार पर अपील करने की आज्ञा दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में इस स्थिति से कुछ सीमा तक परित्राण पाने का प्रयास किया गया है। वह इस प्रकार है: ''प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय उल्लिखित राज्यों के अतिरिक्त भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा, उन मामलों के सम्बन्ध में जिन पर इस संविधान के अनुच्छेद 110 और अनुच्छेद 111 प्रयुक्त नहीं होते हैं, किसी वाद अथवा विषय पर दिये हुए अथवा स्वीकृत निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश की अपील करने की विशेष इजाजत उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से दे सकता है।' इसलिये जहां कहीं उच्च न्यायालय ने इजाजत न दी हो अथवा अनुच्छेद 110 के खंड (1) के अधीन न दे सका हो अथवा जहां कहीं उच्चतम न्यायालय उस अनुच्छेद के खंड (2) के अधीन विशेष इजाजत न दे सका हो, उच्चतम न्यायालय को विशेष इजाजत देने की अवशिष्ट शक्ति प्राप्त है। इसका परिणाम यह होगा कि यदि किसी मामले के निर्णय में विधि-सम्बन्धी कोई ऐसी बहुत बड़ी त्रुटि हो जाये जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो तो उच्च न्यायालय इस सम्बन्ध में प्रमाणपत्र न दे सकेगा। किन्तु अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत दे सकेगा। वास्तव में विधि-सम्बन्धी कोई बहुत बड़ी त्रुटि होने पर भी उच्च न्यायालय कोई प्रमाण पत्र न दे सकेगा किन्तु उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत दे सकेगा। इस अर्थ में अनुच्छेद 110 का खंड (2), जिसके अधीन संघ-न्यायालय किसी विधि प्रश्न में संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर इजाजत दे सकेगा और अनुच्छेद 112, जिसके अधीन उच्चतम-न्यायालय अन्य मामलों में विशेष इजाजत दे सकता है, परस्पर विरोधी हैं। इसलिये अनुच्छेद 110 के खंड (2) को और अनुच्छेद 112 को मिलाकर उच्चतम न्यायालय को किसी ऐसे मामले में विशेष इजाजत देने की शक्ति दी गई है जिसमें कोई विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। यद्यपि उच्चतम न्यायालय

को यह शक्ति दी गई है परन्तु उच्च न्यायालय विधि-सम्बन्धी किसी ऐसी त्रुटि के सम्बन्ध में ही प्रमाण-पत्र दे सकता है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। यदि विधि सम्बन्धी त्रुटि का विषय इतना गम्भीर है कि उच्चतम न्यायालय को उसकी शुद्धि करनी होगी तो उच्च न्यायालय को प्रमाण पत्र देने की शक्ति भी दी जानी चाहिये ताकि उच्चतम न्यायायल में अपील की जा सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उच्चतम न्यायालय को विशेष इजाजत देने का प्राधिकार प्राप्त है किन्तु यह बहुत ही असुविधाजनक और बहुव्ययसाध्य होगा। कोई पक्ष बड़ी आसानी से उच्च न्यायालय को आवेदन पत्र दे सकता है किन्तु उच्चतम न्यायालय से विशेष इजाजत प्राप्त करने में देर ही न होगी बल्कि बहुत धन भी व्यय करना होगा और कई लोग यह सब न कर सकेंगे। इस स्थिति में प्रस्तावित संशोधन का प्रभाव यह होगा कि उच्च न्यायालय को किसी विधि प्रश्न के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये प्रमाणपत्र देने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): साधारण मामलों में भी?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी हां।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** इसका आशय अनुच्छेद 111(1) (क) (ख) और (ग) से पूरा हो जाता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** कठिनाई यह है कि इन उपबन्धों का मसौदा उस अधिनियम को स्वीकार करने के पूर्व तैयार किया गया था जिससे हमने प्रिवी कौंसिल के अपील सुनने के अधिकार का अपहरण किया है। 110, 111 और 112 अनुच्छेदों को मिला देना चाहिये और उनका मसौदा फिर से तैयार करना चाहिये। वास्तव में कई बातें दुहराई गई हैं और कई बातें छूट गई हैं। इस दोष को दूर करने का सबसे आसान तरीका यह है कि यह कहा जाये कि यदि किसी मामले में विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उच्चतम न्यायालय को प्रमाण-पत्र देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और ऐसे मामलों में, जिनमें विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों, उच्चतम न्यायालय को भी इजाजत देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** क्या अनुच्छेद 111 में दांडिक मामले भी आ जाते हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी नहीं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हम इसके लिये एक पृथक् अनुच्छेद में उपबंध कर रहे हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं आपके इस ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिये आपका आभारी हूं कि अनुच्छेद 111 में दांडिक मामलों के सम्बन्ध में उपबंध नहीं किया गया है। वास्तव में यह कठिनाई अनुभव की जाती है और यह एक विसंगति है कि यद्यपि हम व्यवहार विषयक साधारण मामलों में संघ-न्यायालय में अपील कर सकते हैं किन्तु दंड-विषयक मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें नागरिकों के जीवन और सम्पत्ति का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

होता है, हमें सीधे उच्चतम न्यायालय में ही अपील करनी होगी। मेरा यह सुझाव है कि इस कसौटी के स्थान में कि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा अन्य विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है यह कसौटी रखनी चाहिये, कि कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है या नहीं चाहे वह संविधान के निर्वचन का प्रश्न हो या अन्य कोई प्रश्न। किसी ऐसे विधि-प्रश्न में, जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और अन्य विधि-प्रश्नों में विभेद करना उस समय तर्कसंगत कहा जा सकता था जबकि संघ-न्यायालय और प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार अलग-अलग थे और प्रश्न यह उठता था कि क्या यह ऐसी विधि है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा अन्य प्रकार की विधि है। किन्तु चूंकि अब उच्चतम न्यायालय को प्रिवी कौंसिल के प्रकार्य करने होंगे इसलिये यह बारीक विभेद, जो पहले तर्कसंगत कहा जा सकता था, अब अनावश्यक है। इसलिये इस विभेद को पूर्णतया मिटा देना चाहिये।

श्रीमान्, जैसा कि आपने बताया है, इसमें दांडिक मामलों का समावेश नहीं है और वे अनुच्छेद 111 के विषय नहीं हैं। किन्तु हमसे कहा गया है कि एक अन्य व्यवस्था की जा रही है। हम यह जानना चाहते हैं कि महत्त्वपूर्ण अनुच्छेदों को बाद में प्रविष्ट करने का इस प्रकार जो प्रयास किया जाता है वह कब समाप्त होगा। वास्तव में सदस्यों के सम्मुख अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधनों को जिस ढीले ढाले ढंग से उपस्थित किया जाता है वह उनकी समझ के बाहर है। बिना पर्याप्त समय दिये हुए हमारे लिये इन धाराओं के पूरे आशय को समझना कठिन हो जाता है। सदस्यों के सम्मुख पूर्ण चित्र उपस्थित किया जाना चाहिये। दांडिक मामलो का उल्लेख नहीं किया गया है और हमसे कहा गया है कि एक अन्य उपबंध रखा जा रहा है। मैं आदरपूर्वक यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 110, 111 और 112 पर फिर विचार होना चाहिये। मेरे मतानुसार अनुच्छेद 112 बिल्कुल अनावश्यक है। यदि हम उच्च न्यायालयों को विधि-प्रश्नों के सम्बन्ध में प्रमाण-पत्र देने की शक्ति प्रदान कर देते हैं और उच्च न्यायालयों के न देने पर उच्चतम न्यायालय को अपील करने की इजाजत देने की शक्ति प्रदान कर देते हैं तो सारा प्रश्न हल हो जाता है। संविधान के निर्वचन के प्रश्न और अन्य विधि-प्रश्नों में विभेद करने और दांडिक तथा व्यवहार-सम्बन्धी मामलों में विभेद करने के स्थान में कसौटी यह होगी कि कोई सारवान विधि-प्रश्न उपस्थित है या नहीं और हमें एक उपबंध उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में और एक उपबंध उच्चतम न्यायालय की विशेष इजाजत के सम्बन्ध में रखना होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे बताये हुए उपाय से यह विषय सरल हो जायेगा। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में एक नया मसौदा तैयार किया जाये।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कुछ अन्य संशोधन भी हैं।

(संशोधन संख्या 1905 और 1906 उपस्थित नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1906 के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले दो संशोधन हैं किन्तु मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद ने अभी जो संशोधन उपस्थित किया है उससे उनका आशय पूरा हो जाता है। उनकी शब्दावली बहुत कुछ उसीकी शब्दावली के समान है। संशोधन संख्या 148 और 149।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं अपना संशाधन नहीं उपस्थित करना चाहता।

***अध्यक्षः** तब संशोधन संख्या 149 भी नहीं उपस्थित किया जा सकता।

(संशोधन संख्या 1908 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1909 डा. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (3) 'not only on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided, but also' (ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर ही नहीं बल्कि) शब्दों के स्थान में 'on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided and with the leave of the Supreme Court' (ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर, तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से) शब्द रखे जायें।''

वर्तमान अनुच्छेद की भाषा थोड़ी बहुत अव्यवस्थित है और इसी कारण उसमें परिवर्तन किया जा रहा है ताकि उसका पाठ सरल हो जाये। यह खंड इस प्रकार हो जायेगा:

> ''जहां ऐसा प्रमाण-पत्र अथवा ऐसी इजाजत दे दी गई हो वहां मामलें में कोई पक्ष, ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर, तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से अन्य किसी आधार पर, उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा।''

(संशोधन संख्या 1910 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** इन अनुच्छेद के सम्बन्ध में इतने ही संशोधन हैं। यदि कोई सज्जन इस विषय में बोलना चाहते हैं तो अब बोल सकते हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जो विचार प्रकट किये हैं उनमें से कुछ के सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं। इन अनुच्छेदों में यह योजना सन्निहित है। जहां तक अनुच्छेद 110 का सम्बन्ध है, चाहे मामला किसी प्रकार का हो यदि उसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। उसका इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि विषय का महत्त्व क्या है? यह प्रश्न किसी भी प्रक्रिया के सम्बन्ध में उठाया जा सकता है। वह दांडिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में उठाया जा सकता है और व्यवहार-प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है। यह प्रश्न किसी ऐसे कार्य के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है जिसके प्रसंग में कुछ लाख रुपये अथवा कुछ सौ रुपये का उल्लेख हो। इसका अनुच्छेद 110 से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है परन्तु इस सम्बन्ध में विभिन्न अनुच्छेदों की योजना ध्यान में रखना आवश्यक है। अनुच्छेद 111 में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के सामान्य अधिकार का उल्लेख है। किन्तु उच्चतम न्यायालय

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

में किसी ऐसी सामान्य अपील के सम्बन्ध में, जिसमें दोनों पक्षों के नागरिकता के अधिकार अन्तर्ग्रस्त हों, वादी-प्रतिवादी में से किसी को भी इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी भी सांविधानिक प्रश्न को उठाये, भले ही उसने अनुच्छेद 110 में सन्निहित उपचार का उपयोग न किया हो, क्योंकि सिद्धांत यह है कि जब उच्चतम न्यायालय में अपील की जा रही हो तो वादी-प्रतिवादी में से किसी को भी इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह किसी सांविधानिक प्रश्न को उठाये और यह प्रमाणित करे कि वह सारे मामले के निर्णय से सम्बन्धित हैं। अब यह कहा जा रहा है कि प्रत्येक ऐसे मामले में, जिसमें विधि का अशुद्ध निर्वचन किया गया हो, चाहे उसका विषय किसी भी प्रकार का क्यों न हो, उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार होना चाहिये। मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद के तर्क का यही सार था। इस प्रकार के मामले अनुच्छेद 111 (ग) के अधीन आयेंगे। कई प्रकार के अधिनियम, विनियम तथा आदेश हैं। इस विस्तृत देश के विभिन्न न्यायालयों में कई साधारण प्रश्न भी उठाये जा सकते हैं। प्रत्येक मामला, चाहे उसका विषय कुछ भी हो, उच्चतम न्यायालय के ही सम्मुख न आना चाहिये। किन्तु साथ ही किसी मामले का विषय साधारण होने पर भी उसके सम्बन्ध में ऐसा प्रश्न उठ सकता है जिसका अन्य मामलों पर तथा अन्य वादी-प्रतिवादियों पर प्रभाव पड़े और यह ठीक ही है कि उच्चतम न्यायालय को अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। इसलिये अनुच्छेद 111 के खंड (ग) में यह साधारण उपबंध रखा गया है ''कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक है।'' इसका मामले के विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका विषय कुछ भी हो सकता है। किन्तु यदि उसका प्रभाव जनसाधारण पर पड़ता हो अथवा उसका इसी प्रकार का कोई विशेष महत्त्व हो तो उच्च न्यायालय के यह प्रमाणित करने पर कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक है, वादी अथवा प्रतिवादी में से किसी को भी उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होगा। अनुच्छेद 111 के अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में भी उच्चतम न्यायालय को ''भारत राज्य-क्षेत्र में किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा दिये हुए किसी निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश की अपील'' के लिये विशेष इजाजत देने का अधिकार है। इससे उच्चतम न्यायालय को विस्तृत शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस सम्बन्ध में भी सब कुछ उच्चतम न्यायालय के स्वविवेक पर ही निर्भर रहेगा। वह मामला दांडिक मामला अथवा व्यवहार विषयक मामला अथवा कोई छोटा मामला या बड़ा मामला हो सकता है। किन्तु फिर भी अनुच्छेद 112 के अधीन किसी वादी अथवा प्रतिवादी को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा। यदि उस मामले का विशेष महत्त्व होगा तो कोई कारण नहीं है कि उच्चतम न्यायालय विशेष इजाजत न दे। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को सभी ऐसे मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें मूलाधिकारों का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। हमें अन्य किस रक्षा-कवच की आवश्यकता है। यदि न्यायालयों को वादी-प्रतिवादियों का क्रीड़ास्थल बनाना है तो बात दूसरी है अन्यथा अपील के अधिकारों को बढ़ाने का कोई अर्थ नहीं है। यदि मूलाधिकार किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त है तो आपको अपील करने का तथा उच्चतम न्यायालय से हस्तक्षेप करवाने का अधिकार प्राप्त है। आपको विशेष इजाजत लेकर हस्तक्षेप करवाने का अधिकार प्राप्त है।

मुझे विश्वास है कि बाद को दंड-विषयों के सम्बन्ध में यह संशोधन उपस्थित किया जायेगा कि संसद को दंड विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान करने की शक्ति दी जाये। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि उच्चतम न्यायालयों के सम्बन्ध में इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसे संसार के अन्य भागों के श्रेष्ठ न्यायालयों से अधिक विस्तृत क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं यह अन्य देशों के संविधानों को देखने से स्पष्ट हो जायेगा। इस स्थिति में सभी मामले, चाहे उनमें सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या न हो, उच्चतम न्यायालय के सम्मुख लाये जा सकते हैं और वादी तथा प्रतिवादी के विवाद का निर्णय हो सकता है।

अनुच्छेद 110 का सम्बन्ध सांविधानिक प्रश्नों से है। उसके अधीन किसी मामले में सांविधानिक के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होना चाहिये। उसके उद्देश्य के लिये यह पर्याप्त है। यदि कभी किसी सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में कोई अपील की जाये तो उच्चतम न्यायालय को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह केवल सांविधानिक प्रश्न को ही नहीं बल्कि पूरी अपील को सुने अर्थात् यदि लोकहित के लिये आवश्यक हो तो विवाद का महत्त्व देखकर सारे मामले पर विचार करे। वास्तव में संघ न्यायालय के अपने अनुभव से मैं कह सकता हूं कि कई मामलों में जिनके सम्बन्ध में केवल सांविधानिक प्रश्नों के आधार पर ही अपील की गई थी, उच्चतम न्यायालय ने मामलों के विषय पर विचर किया और अन्य ही प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय किया। कभी वादी अथवा प्रतिवादी सांविधानिक प्रश्न का केवल सहारा लेकर अपने मामले की अपील करना चाहता है। वह सांविधानिक प्रश्न को उठाता है, उच्च न्यायालय उसे इजाजत देता है और मामला उच्चतम न्यायालय के सामने आ जाता है। इसके बाद वकील यह अनुभव करता है कि सांविधानिक प्रश्न में अधिक बल नहीं है और वह सारा ध्यान अन्य प्रश्नों की ओर देता है। यह ठीक है किन्तु हमें इससे आगे बढ़ कर यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के किसी भी न्यायालय में यदि किसी मामले में कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो संघ न्यायालय में अपील की जा सकती है। इससे वकीलों का तथा धनी वादी प्रतिवादियों का हितसाधन हो सकता है किन्तु इससे देश का हितसाधन कदापि न होगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मुझे आशा है कि मैं ऐसे क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर रहा हूं जिससे देवदूतों को भी भय होता है। किन्तु अपने माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के भाषण से मुझे भ्रम हो गया और वह मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन से और भी बढ़ गया।

मैं यह सीधा सादा सवाल पूछना चाहता हूं कि क्या अब पहले के समान दांडिक मामले में सिद्धदोष किसी व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में अपील करने, पुनर्विचार कराने अथवा इसी प्रकार की कोई बात करवाने का अधिकार प्राप्त होगा या नहीं? मेरे विचार से इस सभा में जो सदस्य वकील हैं उनको अच्छी प्रकार स्मरण होगा कि कम से कम

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

दो महत्त्वपूर्ण मामलों में अभियुक्त अन्त में मृत्युदंड से मुक्त हो गये। मैं यह जानना चाहता हूं कि अनुच्छेद 110, 111, 112 आदि के उपबंधों में उच्चतम न्यायालय से इस प्रकार का उपचार प्राप्त करने की व्यवस्था है या नहीं? श्रीमान् हम यह देखते हैं कि किसी मामले में सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर ही हमें प्रमाण पत्र प्राप्त हो सकता है। किन्तु यदि अन्य किसी प्रकार बहुत अन्याय हो गया हो तो उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र प्राप्त करने अथवा उच्चतम न्यायालय से इजाजत लेने का कोई उपाय नहीं है। अपील तभी की जा सकती है जब यह प्रमाणित हो जाये कि सम्बन्धित विषय संविधान का है और उसके उपरांत ही आज्ञा मिलने पर अन्य प्रश्नों को भी उठाया जा सकता है। मूल अनुच्छेद के अधीन यदि यह दिखाया जा सके कि संविधान का अतिक्रमण हुआ है और उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय से इस आधार पर प्रमाण पत्र मिल सके तो अपील की जा सकती है और ऐसे अन्य प्रश्न भी उठाये जा सकते हैं जिनका सांविधानिक प्रश्न से कोई सम्बन्ध न हो।

अब पहली ही मंजिल पर दरवाजा बन्द कर दिया है। यह पता लगाना बहुत कठिन है कि किन मामलों में संविधान का अतिक्रमण हुआ हैं। जब संविधान के उपबंधों के विरुद्ध कोई विधि अथवा अध्यादेश स्वीकार किया गया हो तभी हम यह जान सकते हैं कि संविधान का अतिक्रमण हुआ है। किन्तु अधिकतर मामलों के सम्बन्ध में इस प्रकार की शिकायत न की जा सकेगी। तब क्या उस स्थिति में किसी ऐसे व्यक्ति के लिये, जिसे मृत्युदंड अथवा अन्य कोई दंड का निर्णय सुनाया गया हो, यह सम्भव होगा कि वह किसी बहाने से उच्चतम न्यायालय में अपील कर सके?

मेरी समझ में नहीं आता कि हम यह क्यों कहते हैं कि संविधान का अतिक्रमण होने पर न्यायाधिकरण के सम्मुख कोई भी प्रश्न उठाया जा सकता है। यह हो सकता है कि संविधान का बहुत कम अतिक्रमण हुआ हो और वास्तव में किसी साधारण विधि का अतिक्रमण हुआ हो। इन मामलों में भी उच्चतम न्यायालय उपचार करने के लिये सक्षम है। किन्तु यदि आप यह प्रमाणित न कर सकें कि संविधान का अतिक्रमण हुआ है तो चाहे कितना ही अधिक अन्याय क्यों न हुआ हो आपको उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार नहीं है। श्रीमान् मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 111 में व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। आखिर सम्पत्ति और धन की क्षति को उतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता जितना कि जीवन और स्वतंत्रता की क्षति को। जो लोग व्यवहार न्यायालय के निर्णय पर आपत्ति करते हों उनके लिये उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिये काफी गुंजाइश है। किन्तु उन लोगों के लिये आपने एक भी दरवाजा खुला नहीं रखा है जो स्वतंत्रता के अथवा जीवन के अपहरण के लिये दंड न्यायालय द्वारा सिद्धदोष अथवा दंडित हुआ हो। मेरे विचार से इससे हमें इस समय प्रिवी कौंसिल में अपील करने के जो अधिकार प्राप्त हैं उनका भी अपहरण हो जाता है।

इसके अतिरिक्त मैं यह देखता हूं कि उच्चतम न्यायालय में यह उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय को यह विश्वास हो जाने पर कि किसी निर्णय का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है

वह अन्य कारणों के आधार पर भी हस्तक्षेप कर सकता है अथवा अपील करने की इजाजत दे सकता है। अनुच्छेद 112 इस प्रकार है:

> ''उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से भारत राज्य-क्षेत्र के किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये हुये किसी निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा...

मैं यह जानना चाहता हूं कि यहां क्या ''निर्णय'' शब्द में दंड विषयक मामलों में दिया हुआ 'निर्णय' भी सन्निहित है?

अनुच्छेद 110 में ''दंड न्यायालयों'' का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। यह कहा गया है कि किसी व्यवहार अथवा दंड विषयक अथवा अन्य प्रकार की कार्यवाही में किसी राज्य के उच्च न्यायालय के निर्णय, आज्ञप्ति अथवा साधारण आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। अनुच्छेद 111 में केवल व्यवहार न्यायालयों का ही उल्लेख किया गया है और दंड न्यायालयों का उल्लेख नहीं किया गया है। अनुच्छेद 112 में केवल 'निर्णय' का उल्लेख है और इसका उल्लेख नहीं है कि वह निर्णय व्यवहार न्यायालय का है अथवा दंड न्यायालय का। अनुच्छेद 113 में स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि यदि उच्च न्यायालय की किसी कार्यवाही अथवा विधि के निर्वचन के सम्बन्ध में कोई सन्देह हो तो मामला उच्चतम न्यायालय के सामने रखा जा सकता है। उसमें भी दंड तथा व्यवहार विषयक तथा अन्य प्रकार की कार्यवाही का स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रकार इन अनुच्छेदों के अध्ययन के उपरांत यह निर्वचन किया जा सकता है कि जब तक कि शोकाकुल पक्ष यह प्रमाणित न करे कि उसके मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तब तक दंड न्यायालय के निर्णय के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। अनुच्छेद 111 के सम्बन्ध में इस प्रकार का कोई निर्बन्धन नहीं रखा गया है और न अनुच्छेद 113 के सम्बन्ध में ही इस प्रकार का कोई निर्बन्धन है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा प्रश्न बहुत सरल है। इस समय प्रिवी कौंसिल उन दंड विषयक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है जिनमें विधि के आदेश-मूलक उपबंधों का अतिक्रमण हुआ हो। इन अनुच्छेदों में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है और यदि इस प्रकार के उपबंध को स्थान दिया गया तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, डा. अम्बेडकर के संशोधन के संबंध में मुझे एक शिकायत है। अनुच्छेद 110 के खंड (3) में, उसके पूर्व रूप में, यह कहा गया है:

> ''जहां ऐसा प्रमाण-पत्र अथवा ऐसी इजाजत दे दी गई हो वहां मामले में कोई पक्ष, ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर ही नहीं बल्कि अन्य आधार पर भी उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा।''

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन के आशय की तुलना में अपने पहले रूप में इस खंड का आश्रय अधिक उदारतापूर्ण है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, मि. नजीरुद्दीन के समान मुझे भी यह शिकायत है कि उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में जो उपबंध रखे गये हैं वे इतने पेचीदे हैं कि उन्हें मेरी जैसी साधारण बुद्धि का मनुष्य नहीं समझ सकता है। जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं वे इतने स्पष्ट नहीं हैं कि वे संविधान के निर्माताओं के आशय को पूर्णतया व्यक्त कर सकें।

श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया है कि अनुच्छेद 110 के खंड (1) और (2) में संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में जो शब्द रखे गये हैं वे निकाल दिये जायें। इस पर यह आपत्ति की गई है कि यदि ये शब्द निकाल दिये जायेंगे तो दरवाजा बहुत खुल जायेगा और मुकदमेबाजी इतनी बढ़ जायेगी कि न्यायालय उसका भार न उठा सकेंगे। श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं नम्रतापूर्वक यह आपत्ति करना चाहता हूं कि हम प्रतिदिन यह घोषित करते रहे हैं कि हम सभी लोगों को समान स्थान तथा समान अवसर देना चाहते हैं और यह कि विधि के समक्ष सभी लोग समान समझे जायेंगे। श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि ऐसे मामलों में, जिनका सम्बन्ध 20,000 रु. अथवा इससे अधिक रुपये की सम्पत्ति से होगा, उच्चतम न्यायालय में सीधे-सीधे अपील की जा सकेगी और ऐसे मामलों में भी जिनमें कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे तो उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती हैं। उन गरीब लोगों का क्या होगा जिनके पास इतनी बहुमूल्य सम्पत्ति नहीं है? किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके पास केवल 5,000 रु. की सम्पत्ति हो किसी मुकदमे के सम्बन्ध में अपील करने का अधिकार क्यों न हो? मेरे मतानुसार संविधान के निर्वचन-सम्बन्धी शब्दों में अनुच्छेद 110 का लाभप्रद प्रभाव इतना कम हो जायेगा कि बहुत कम मामलों में अपील की जा सकेगी।

दंड विषयक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में भी मुझे आपत्ति है और मुझे तो यह दिखाई देता है कि यह सभा व्यवहार वेत्ता वकीलों से ही परिपूर्ण है और उन्हें उच्चतम न्यायालय के दंड विषयक क्षेत्राधिकार की कोई चिन्ता नहीं है। अनुच्छेद 110 में 'दंड' शब्द का उल्लेख है किन्तु दंड-विषयक ऐसे बहुत कम मामले होंगे जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होगा। ऐसे सारवान विधि-प्रश्न उठ सकते हैं जिनका लोगों के जीवन पर तथा उनकी स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़े किन्तु जब तक इनका सम्बन्ध संविधान के निर्वचन से न होगा तब तक ये अनुच्छेद 110 की परिधि से बाहर रहेंगे। इसी प्रकार अनुच्छेद 111 भी व्यवहार-विषयक मामलों तक ही सीमित हैं। यह कहा जायेगा, और यह कहा भी गया है, कि अनुच्छेद 112 का सम्बन्ध कुछ सीमा तक उच्चतम न्यायालय के दंड-विषयक क्षेत्राधिकार से है। इसके अतिरिक्त डा. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में कहा है कि संसद उच्चतम न्यायालय के दंड-विषयक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में विधि निर्मित कर सकती है। मुझे यह आशंका है कि इसमें वर्षों लग जायेंगे। हम प्रिवी कौंसिल से तो शक्ति लेने जा रहे हैं परन्तु संसद को अभी विधि निर्माण करना है। इस बीच क्या होगा? बहुत से लोग इच्छा होने पर भी उच्चतम न्यायालय में अपील न कर सकेंगे। मैं यह चाहता हूं कि जो व्यक्ति अपने जीवन अथवा अपनी सम्पत्ति से वंचित किया जा रहा हो उसे अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये और उसे इसकी आवश्यकता न रहनी चाहिये कि वह विशेष इजाजत ले। हमें यह विदित है कि साधारण मामलों में

प्रिवी कौंसिल हस्तक्षेप नहीं करती है किन्तु ऐसे कई मामलों का अभिलेख है जिनमें प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीशों को अन्तर्वेदना का अनुभव हुआ और उन्होंने साधारण प्रश्नों को भी विधि-प्रश्नों का रूप दे दिया।

श्रीमान्, मेरा तर्क यह है कि जब हम इस देश के लिये एक नवीन संविधान का निर्माण कर रहे हैं तो हमें क्षेत्राधिकार को विस्तृत बनाना चाहिये और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे साधारण लोगों के प्रति सभी ऐसे मामलों में न्याय हो सके जो पुनर्विचार के लायक हों। यह ठीक है कि अपील के लिये विशेष इजाजत लेने की व्यवस्था है। किन्तु यह इजाजत दी भी जा सकती है और नहीं भी दी जा सकती है। यह स्वविवेक का प्रश्न है। मैं यह चाहता हूं कि यदि किसी व्यक्ति को मृत्युदंड दिया गया हो अथवा सरकार के अपील करने पर मुक्ति के आदेश का खंडन करके उच्च न्यायालय ने उसे सिद्धदोष घोषित किया हो तो किसी उपबंध के अधीन उसे अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह कहा है कि यदि अनुच्छेद 110 को अधिक विस्तृत आशय का बनाया गया तो विधि के अशुद्ध निर्वचन के सम्बन्ध में बहुत से मामले उठ खड़े होंगे और मुकदमेबाजी बढ़ जायेगी। परन्तु क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि यह 'सारवान विधि-प्रश्न' शब्द आये हैं? जब तक कि भारत के सभी राज्यक्षेत्रों में समान विधि प्रवर्त्तन में लाने का उद्देश्य न हो तब तक उच्चतम न्यायालय को ये शक्तियां दी ही क्यों जाये क्योंकि निर्णयों में जो विधि-सम्बन्धी घोषणा होगी उसका प्रभाव विधि के समान ही होगा? इसलिये मेरा यह निवेदन है कि किसी विधि प्रश्न को हल करने से मुकदमेबाजी बढ़ेगी नहीं। इसके विपरीत यदि वह प्रश्न हमेशा के लिये हल कर दिया गया तो मुकदमेबाजी समाप्त हो जायेगी।

यह भी कहा गया है कि यदि मृत्युदंड के मामलों में इस प्रकार का अवसर दिया गया तो अपीलों के कारण इतना काम बढ़ जायेगा कि अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। यह हो सकता है। मैं यह नहीं कहता कि काम नहीं बढ़ेगा। किन्तु देश को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है कि किसी एक व्यक्ति को 20,000 रु. की सम्पत्ति का अधिकार हो या किसी अन्य व्यक्ति को। केवल उच्च न्यायालय को हमेशा के लिये इसका निर्णय कर देना होगा कि किसका उस पर अधिकार है। व्यवहार-सम्बन्धी अधिकारी की रक्षा के लिये इतना पर्याप्त है। किन्तु जीवन और दैहिक स्वातन्त्र्य का प्रश्न दूसरे प्रकार का है। जिन लोगों को गलती से मृत्यु-दंड दे दिया जाता है उनको पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। चाहे कितनी ही व्यवहार सम्बन्धी स्वतंत्रतायें क्यों न हो किन्तु उनसे अधिक महत्त्व है जीवन का। मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि ऐसे व्यवहार-वादों में, जिनमें लगभग 20,000 रु. की राशि अन्तर्ग्रस्त हो, दो या तीन अपीलों की व्यवस्था की गई है किन्तु मृत्यु दंड के मामलों में केवल एक बार अपील की जा सकती है। बहुत समय से यह शिकायत की जाती रही है और यह सभी वकीलों को विदित है कि न्यायालयों में कई मामलों में अन्याय होता है। यदि हम दोषसिद्धियों की तुलना में अपीलों की संख्या की तुलना करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि बहुत से मामलों में अपील अस्वीकार कर दी जाती है। यह सच है कि प्रारम्भिक न्यायालयों में यह आवश्यक नहीं है कि न्याय ही हो।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मैं जिला न्यायालयों पर आपत्ति नहीं कर रहा हूं। दंगे-फसाद के मामलों में, जिनमें पांच से अधिक व्यक्ति दोषी ठहराये जाते हैं, कई निर्दोष व्यक्ति भी फ्रांस लिये जाते हैं। इस विषय में मैं अधिकृत रूप से मत प्रकट कर सकता हूं। मैं एक वकील हूं और बहुत वर्षों से दंड-विषयक मामलों की वकालत करता रहा हूं। यदि हमें लोगों के प्रति न्याय करना है तो हमें यह उपबंध रखना चाहिये कि मृत्यदंड के सभी मामलों में लोगों को अपील करने का अधिकार होना चाहिये। जब हम अन्य अनुच्छेदों पर विचार करेंगे तो हमें स्मरण रखना होगा कि यदि इस अनुच्छेद में परिवर्तन नहीं किया गया तो उसके अधीन जिन अपीलों की मैंने चर्चा की है वे न की जा सकेंगी।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन का विरोध करने के लिये उठा हूं। इस अनुच्छेद की योजना वही है जो भारत सरकार के अधिनियम की धारा 205 की है। उसकी भाषा इस प्रकार है, ''यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे कि मामले में इस अधिनियम के निर्वचन के सम्बन्ध में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है।'' अनुच्छेद 111 भारत सरकार के अधिनियम की धारा 206 की पुनरुक्ति है मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जिन मामलों का उल्लेख किया है वे अनुच्छेद 111 (ग) के अंतर्गत आ जाते हैं। जिसमें यह कहा गया है कि ''मामला उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लायक है।''

इसके अतिरिक्त मैं यह बताना चाहता हूं कि दंड-विषयक मामले अनुच्छेद 112 में आ जाते हैं। जो मामले उच्चतम न्यायालय के सामने उपस्थित किये जाने लायक होंगे उनको उच्चतम न्यायालय उठायेगा और उनके सम्बन्ध में अपना अन्तिम निर्णय देगा। मेरा यह निवेदन है कि यह असम्भव है कि मृत्युदंड विषयक प्रत्येक मामला उच्चतम न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया जाये क्योंकि यदि यह किया गया तो उच्चतम न्यायालय में कम से कम सौ न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। हमारी न्याय प्रणाली अंग्रेजों की न्याय प्रणाली पर आधृत है। 1908 के पूर्व इंग्लैंड में दंड-विषयक मामलों में अपील नहीं की जा सकती थी। 1908 में ही वहां अपील के सम्बन्ध में एक उपबंध रखा गया था। अपील के विरोध में यह तर्क उपस्थित किया गया था कि पंच (जूरी) तथा न्यायाधीश मामलों का निर्णय करते हैं, पंच (जूरी) निर्णय देते हैं और न्यायाधीश उसकी संपुष्टि करते हैं और इसलिये निर्णय में कोई त्रुटि रह जाने की सम्भावना नहीं रहती। भारत में हत्या-विषयक मामलों में न्याय-सहकारी (एसेसर) तथा एक न्यायाधीश होता है। वे इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में निर्णय करते हैं यह उपबंध भी है कि उच्च न्यायालय मृत्युदंड की संपुष्टि करेगा और उच्च न्यायालय में ही अपील भी की जा सकती है। मेरे विचार से प्रत्येक ऐसे मामले में किसी अन्य उपचार की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि मैं कह चुका हूं इस स्थिति में उच्चतम न्यायालय के लिये विभिन्न उच्च न्यायालयों से आये हुये अपील के मामलों का निर्णय करना असम्भव हो जायेगा। इसलिये संविधान में जो उपबंध रखे गये हैं वे न्याय की दृष्टि से पर्याप्त हैं और किसी अन्य उपबंध की आवश्यकता नहीं है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं इस अनुच्छेद का विरोध करना चाहता हूं और वह एक वकील के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के दृष्टिकोण से जिसको लोगों की व्यवहार सम्बन्धी स्वतंत्रताओं से प्रेम है। मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद और श्री भार्गव ने 'संविधान का निर्वचन' शब्दों को निकालने के लिये बहुत ही पुष्ट तर्क उपस्थित किया है। श्री अल्लादी ने भी अभी हमें मुकदमेबाजी बढ़ जाने की चेतावनी दी है और वास्तव में उनके तर्क से सहमत न होना कठिन है। यह सभी की इच्छा है कि लोग मुकदमेबाजी में न पड़े रहें। मुझे पूरी आशा है कि वर्तमान न्याय-प्रणाली को तुरन्त ही बदल दिया जायेगा और उसका स्थान ऐसी प्रणाली लेगी जिससे लोगों को थोड़ा सा धन व्यय करने पर, तुरन्त ही न्याय प्राप्त हो जायेगा। मैंने उन उपबंधों को सावधानी से पढ़ा है, जो उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के सम्बन्ध में हैं और इस सम्बन्ध में इस सभा में दिये हुये भाषणों को भी ध्यानपूर्वक सुना है। मुझे एक भी उपबंध ऐसा नहीं दिखाई दिया जिससे किसी ऐसे नागरिक को, जिसे मृत्युदंड सुनाया गया हो अथवा जिसकी व्यवहार-स्वतंत्रताओं का अपहरण हुआ हो, यह प्रत्याभूति मिलती है कि उसे उच्चतम न्यायाधिकरण में अर्थात् उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त है। मुझे कई ऐसे मामलों की जानकारी है जिनमें लोगों को मृत्युदंड मिला था। दुर्भाग्य से 1942 में मैं मृत्युदंड पाने वाले अपराधियों के कारागार में छब्बीस महीने तक बन्द रहा और लगभग सैंतीस व्यक्ति मेरे सामने फांसी पर चढ़ाये गये। इमारत के एक हिस्से में मृत्युदंड पाने वाले बन्दियों की आठ कोठरियां थीं और उनमें से एक में मैं बन्द था। इसलिये मुझे मृत्युदंड पाने वाले बन्दियों के साथ रहने, उनसे मिलने और उनसे बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन सैंतीस लोगों में से सात मुक्त हो गये, दस के दंड कम होकर उन्हें कालेपानी का दंड मिला और बीस को फांसी पर चढ़ा दिया गया। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि जो लोग मुक्त हुये थे उनमें से अधिकांश वास्तव में हत्यारे थे और जिनको कालेपानी का दंड मिला था उनमें से भी अधिकांश हत्यारे थे और जिनको फांसी पर चढ़ाया गया था उनमें से अधिकांश निर्दोष थे। कम से कम सात व्यक्तियों के बारे में मुझे विश्वास था कि वे निर्दोष थे। किन्तु फिर भी उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया। मैं यह नहीं कहता कि उच्चतम न्यायालय को हमेशा दैवी प्रेरणा से यह ज्ञात हो जायेगा कि सत्य क्या है? इसीलिये मैं यह चाहता हूं कि मृत्युदंड को बिल्कुल समाप्त कर दिया जाये। किन्तु जब तक हम मृत्युदंड को समाप्त नहीं करते हैं, मेरे विचार से मृत्युदंड पाने वालों को उच्च से उच्च न्यायाधिकरण में अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। यह अधिकार स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त होना चाहिये और यह किन्हीं शर्त्तों के अधीन न होना चाहिये। अन्य विषयों के सम्बन्ध में मैं श्री अल्लादी के परामर्श को पूर्णतया स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। व्यवहार-वादों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के प्रकार्यों को सीमित करने के लिये मैं तैयार हूं किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि जो लोग मृत्युदंड पाने वाले हों उन्हें उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त होना चाहिये और जब तक उच्चतम न्यायालय मृत्युदंड की संपुष्टि न करे तब तक कोई व्यक्ति फांसी पर न चढ़ाया जाना चाहिये। एक दिन मेरे विद्वान मित्र बख्शी टेकचन्द ने अन्य प्रसंग में हमसे यह कहा था कि जब वे लाहौर के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे तो प्रत्येक वर्ष मृत्युदंड के तीन सौ मामले अपील के लिये उनके पास आते थे। हत्याओं

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

की संख्या को देखते हुए यह प्रकट होता है कि अविभक्त पंजाब में बड़ी अशांति रहती थी किन्तु पूर्वी पंजाब तथा अन्य प्रान्त इतने हिंसात्मक नहीं हैं। मेरे विचार से सारे भारत में हत्या-सम्बन्धी अपीलों के मामले सात या आठ सौ से अधिक न होंगे। मेरी यह धारणा है कि मृत्युदंड पाने वाले लोगों को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार स्वाभाविक रूप से प्राप्त होना चाहिये और उन्हें कम से कम इसका तो संतोष होना चाहिये कि उनके मामलों पर देश के उच्चतम न्यायाधिकरण में विचार हो चुका है। मैंने यह देखा है कि बहुत गरीब लोग अपील नहीं कर सकते हैं क्योंकि वे वकील को धन नहीं दे सकते हैं। मैं यह देखता हूं कि अनुच्छेद 112 में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय किसी निर्णय के सम्बन्ध में अपील करने की विशेष इजाजत दे सकता है किन्तु केवल धनी लोग ही, जो सब कुछ करने में समर्थ हैं, ऐसा कर सकेंगे और साधारण लोग, निर्धन होने के कारण, इस अनुच्छेद से लाभ न उठा सकेंगे। इसलिये उन लोगों को स्मरण करके जो निर्दोष होने पर भी मेरी उपस्थिति में फांसी पर चढ़ा दिये गये, मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस अनुच्छेद में अथवा वाद में आने वाले किसी अनुच्छेद में यह उपबंध रखा जाये कि मृत्युदंड पाने वाले लोगों को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा।

***श्री फ्रैंक ऐन्थानी** (मध्य भारत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं इस वादानुवाद में भाग नहीं लेना चाहता था किन्तु अपने मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के भाषण को सुनकर मेरी भी इच्छा हुई कि मैं भी कुछ कहूं। मेरे विचार से उनके दृष्टिकोण पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है और यदि हम इन उपबंधों को यथेष्ट रूप देना चाहते हैं तो हमें उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। मैंने अभी 110 से लेकर 112 तक के अनुच्छेदों के उपबंधों को देखा और मुझे ज्ञात हुआ कि व्यवहार विषयक मामलों में वादी प्रतिवादियों के लिये पर्याप्त सुरक्षा है। मेरी यह धारणा है कि इस सभा के बाहर लोग यह कहेंगे कि ये उपबंध व्यवहार-विषयक मामलों को ध्यान में रख कर बनाये गये हैं और व्यवहार-विषयक मामलों में वकालत करने वाले वकीलों ने बनाये हैं जो मुकदमेबाजी बढ़ाना चाहते हैं। हमने व्यवहार-विषयक मामलों की अपीलों के सम्बन्ध में कोई निर्बन्धन नहीं रखे हैं। अनुच्छेद 111 के अनुसार ऐसे सभी वादो में, जिनमें बीस हजार रुपये की धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो, उच्चतम न्यायालय में अपील करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है और वह स्वत: प्राप्त हो जाता है। मेरे विचार से इस सीमा को निर्धारित करना एक अनर्गल बात है। यदि हम एक लाख रुपये अथवा दो लाख रुपये की सीमा रखें तो व्यवहार-विषयक मामलों में पड़े हुये लोगों को क्या कष्ट होगा? यह मेरी समझ में नहीं आता कि विधि-मंत्री तथा उनकी विचारधारा के अन्य लोगों की यह धारणा क्यों है कि ऐसे व्यवहार विषयक मामलों में पड़े हुये लोगों के प्रति, जिनमें बीस हजार या इससे अधिक रुपये की धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो, इस प्रकार का न्याय होना ही चाहिये जब कि वे यह कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति मृत्युदंड अथवा कालेपानी की सजा पाने वाला हो तो उसका यह अर्थ नहीं है कि स्वतंत्रता अथवा न्याय का इतना उल्लंघन हुआ है कि उसे अपील का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाता है। मेरे मित्र यह कह सकते हैं कि अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से अपराध-विषयक मामलों में अपील करने की इजाजत दे सकता है किन्तु यह

स्वविवेक का प्रश्न है और इस शर्त्त के अधीन है कि उस मामले में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने चाहिये। श्रीमान्, मुझे बहुत से अपराध-विषयक तथा हत्या-विषयक मामलों का अनुभव है और मेरे विचार से हम अपराध-विषयक मामलों के सम्बन्ध में, विशेषतया उन मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें मृत्युदंड अथवा कालेपानी की सजा दी जाने वाली हो, अधिक प्रत्याभूति नहीं दे सकते। जैसा कि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव कह चुके हैं, जिस किसी व्यक्ति को व्यवहार-विषयक मामलों का विशेषतया हत्या-विषयक मामलों का अनुभव है वे अपने अनुभव से यह प्रामाणिक रूप से कह सकते हैं कि स्थिति के मिथ्या निर्वचन के कारण और विधि का अत्यधिक परस्पर-विरोधी निर्वचन होने के कारण बहुत अन्याय हो जाता है। भारत में किसी उच्च न्यायालय में किसी ऐसे मामले में, जिसमें एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को घातक चोट पहुंचाई हो और एक अन्य व्यक्ति ने चोट खाने वाले व्यक्ति को पकड़ा हो, दोनों व्यक्ति मृत्युदंड पा सकते हैं और किसी उच्च न्यायालय में एक व्यक्ति को हत्या के लिये मृत्युदंड दिया जा सकता है और दूसरे व्यक्ति को साधारण चोट पहुंचाने के लिये केवल जुर्माना हो सकता है। न्याय सम्बन्धी निर्णयों में इतना विभेद होने पर भी मेरे मित्र कहते हैं कि भले ही किसी व्यक्ति को मृत्युदंड अथवा कालेपानी की सजा सुनाई गई हो, किन्तु केवल इस कारण उसे अपील करने का अधिकार स्वत: प्राप्त नहीं हो जाता। यह तर्क उपस्थित किया गया है कि यदि हम प्रत्येक ऐसे मामले में अपील करने का अधिकार प्रदान करेंगे जिसमें मृत्युदंड सुनाया गया हो तो हमें बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता पड़ेगी। श्रीमान्, यह युक्तियुक्त तर्क नहीं है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इस देश में जितने अपराध-विषयक मामले होते हैं उससे दस या पन्द्रह गुना व्यवहार-विषयक मामले होते हैं। किन्तु ऐसे व्यवहार-विषयक मामलों में, जिनमें बीस हजार या इससे अधिक रुपये की धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो, अपील करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। सम्पत्ति को मनुष्य-जीवन से अधिक पवित्र समझा गया है। यदि हम यह चाहते हैं कि न्यायाधीशों की संख्या कम हो और उच्चतम न्यायालय में कम मामले जायें तो व्यवहार-विषयक अपीलों के सम्बन्ध में सम्पत्ति के विषय में निर्बन्धन रखा जाये। यदि मोटे पूंजीपतियों को और चोरबाजारियों को तीन लाख या चार लाख से कम के मामलों में अपील का अधिकार नहीं दिया गया तो उन्हें क्या कष्ट हो जायेगा? क्या न्याय की दृष्टि से इतना भी आवश्यक नहीं है कि मृत्युदंड पाने वाले व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो, चाहे उसके मामले में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या न हो? मेरे विचार से यदि सभा ने कोई भी अन्य निर्णय किया तो उससे न्याय के आधारभूत सिद्धांत का हनन ही होगा। पीछे की जगहों में बैठे हुये मेरे माननीय मित्रों ने कहा है कि संसार के अन्य देशों में मृत्युदंड की आज्ञा हो जाने पर अपील करने का अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाने की कोई व्यवस्था नहीं है। क्या अपने मार्ग प्रदर्शन के लिये हमें अन्य देशों के उदाहरण खोजने चाहियें? यदि यह स्वीकार किया जाता है कि हमारे देश में स्थिति वही है जो पंडित ठाकुरदास भार्गव ने बताई है तो अपराध विषयक मामलों में वकालत करने वाला कौन वकील यह प्रमाणित न कर सकेगा कि दंगे के दस मामलों में से नौ मामलों में दो, तीन, चार, पांच या छ: निर्दोष लोग लपेट में आ जाते हैं? दंगे के मामलों में प्राय: निर्दोष व्यक्तियों को हत्या के अपराध के लिये मृत्युदंड भी दिया गया हैं। मैं अपने उन माननीय मित्रों के तर्क को

[श्री फ्रैंक ऐन्थानी]

नहीं समझ पाता हूं जो यह कहते हैं कि चूंकि उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 112 के अधीन यह शक्ति प्राप्त है कि वह कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर स्वविवेक से मामले को अपने सामने रखवाये, इसलिये उन लोगों को पर्याप्त रक्षण हो जाता है जिनकी स्वतंत्रता का अपहरण हुआ हो। मैं अपने माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के इस कथन से सहमत हूं कि इसे उच्चतम न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ देना बहुत ही निम्न कोटि की उपेक्षा है। सम्भावना इसकी है कि हमारे विधि-मंत्री के समान प्रभावशाली लोगों पर इस प्रकार के खंड का कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। यह सम्भव है कि जिन लोगों को मृत्युदंड सुनाया गया हो अथवा जिनकी स्वतंत्रता का अपहरण हुआ उनको यह आश्वासन देने के लिये कि उन्हें उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्राप्त है, संसद कुछ भी न करे। श्रीमान्, इस कारण मेरे विचार से यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और इसके सम्बन्ध में विधि-मंत्री से मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आवश्यक हो तो इस पर विचार-विमर्श स्थगित किया जाये ताकि बाद को सभा इस पर पूर्ण रूप से पुनर्विचार कर सके।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, इन अनुच्छेदों का उद्देश्य स्पष्ट है। अनुच्छेद 110 उन विशेष मामलों के सम्बन्ध में है जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अंतर्ग्रस्त हो। अनुच्देद 111 की यह विशेषता नहीं है और यह व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध में है। इन दो अनुच्छेदों की भावना तथा इनकी शब्दावली के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। मैं सभा के सम्मुख केवल अनुच्छेद 112 के सम्बन्ध में अपने विचार नम्रतापूर्वक उपस्थित करना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने इस सभा के सम्मुख जो दृष्टिकोण उपस्थित किया है उससे मुझे बहुत सहानुभूति है। यद्यपि अनुच्छेद 112 में विशेष इजाजत के लिये कोई उपबंध है किन्तु उससे मृत्युदंड की अपील के प्रश्न पर उतना जोर नहीं पड़ता जितना कि पड़ना चाहिये। मैं नही जानता कि यह व्यवस्था किस प्रकार की जा सकती है और की जानी चाहिये। यह हो सकता है कि संसद को इसकी स्वतंत्रता हो कि वह केवल मृत्युदंड के मामलों में अपील स्वीकार करने के लिये उपबंध बनाये अथवा केवल मृत्युदंड के ही मामलों में नहीं बल्कि अपराध-सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों में भी अपील स्वीकार करने के लिये उपबंध बनाये। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात के बारे में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है और वह यह है कि इस विषय में हम अंग्रेजों की प्रथा का अनुसरण न करें। दंड के विषय में तथा दंड-सम्बन्धी विधि के विषय में इंग्लैंड अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही पिछड़ा हुआ तथा कट्टरपंथी देश रहा हैं। हम देखते हैं कि यद्यपि पश्चिम के अधिकांश देशों में और अन्य बड़े-बड़े राज्यों में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया गया है किन्तु इंग्लैंड में अभी इसकी चर्चा ही हो रही है और अत्यधिक प्रयत्न होने पर भी लोकमत इसके पक्ष में नहीं हुआ है कि मृत्युदंड पाने वाले अपराधियों को किसी अन्य प्रकार दंडित किया जाना चाहिये अर्थात् उनको किसी काम का न रखना चाहिये अथवा समाज से उनका बहिष्कार कर देना चाहिये ताकि वे समाज-विरोधी कार्य न कर सकें। चाहे और कुछ भी किया जाये किन्तु मृत्युदंड न देना चाहिये। अधिकांश देशों ने इसी विचारधारा को अपनाया है। श्रीमान्, मैं इस सभा में उस विचारधारा को व्यक्त करने नहीं जा रहा हूं बल्कि केवल यह कहना चाहता हूं कि

इंग्लैंड ने इसे बहुत देर करके स्वीकार किया कि बहुत से अपराधों को मृत्युदंड की श्रेणी में न लेना चाहिये। हेनरी अष्टम के समय से ही इस विषय के सम्बन्ध में बहुत संकोच दिखाया गया। उस समय 263 प्रकार के अपराधों के लिये मृत्युदंड दिया जाता था। 1797 में भी 160 प्रकार के अपराधों के लिये मृत्युदंड दिया जाता था। 1883 में कुछ अपराधों को मृत्युदंड की सूची से निकालने की ओर कदम उठाया गया। उदाहरणार्थ, दुकानों से चीजें उठा लेने और चोरी के छोटे-छोटे मामले और इसी प्रकार के अन्य अपराधों को उस सूची से निकाल देने का प्रस्ताव किया गया। इन अपराधों के करने वाले लोगों को मृत्युदंड दिया जाता था। एक सोलह वर्ष के लड़के के उदाहरण का उल्लेख मिलता है जो किसी दुकान की खिड़की से एक खिलौने को उठा लेने के प्रलोभन को न रोक सका और इस अपराध के लिये फांसी पर चढ़ा दिया गया। उस समय के अंग्रेज इतने कट्टरपंथी थे कि उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि इस प्रकार के मामलों में सुधार के, बहिष्कार के अथवा दंडित करने के किसी अन्य मार्ग का भी अनुसरण किया जा सकता था। 1833 में जब मृत्युदंड की सूची में से इन अपराधों में से कुछ को निकालने का प्रश्न फिर उठा तो लार्ड एडिनवरा ने लार्ड सभा को यह चेतावनी दी थी: ''आदरणीय महोदयों, आपको इस प्रकार के विधेयक के लिये सोच समझ कर सहमत होना चाहिये क्योंकि इससे निजी सम्पत्ति हमेशा के लिये खतरे में पड़ जायेगी।'' मैं इन उदाहरणों को यह दिखाने के लिये दे रहा हूं कि दंड-विषयक मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों की अपील को सुनने के लिये प्रिवी कौंसिल अभी तक क्यों बड़ी कठिनाई से तैयार होती रही है। कुछ ही मामलों में, जिनमें उसने देखा कि 'प्राकृतिक न्याय' का हनन हुआ है, वह अपील सुनने के लिये तैयार हुई है। 'प्राकृतिक न्याय' शब्दों की व्याख्या अथवा परिभाषा करना बहुत कठिन है। मेरा यह निवेदन है कि भारत की नवीन स्थिति में हमें इंग्लैंड के उदाहरण का अनुसरण न करना चाहिये। इसके विपरीत मृत्युदंड विषयक मामलों को उन मामलों की सूची में रखने के लिये, जिनके सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, आज जो अनुरोध किया गया है उस पर हमें सहानुभूतिपर्वूक विचार करना चाहिये। मैं इस समय इस सम्बन्ध में कोई सुझाव नहीं दे रहा हूं कि इन मामलों के विषय में किस प्रकार के उपबंध रखे जायें। इनको संविधान में स्थान देने के पूर्व इन पर सावधानी से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता होगी और सम्भवत: संसद को विस्तृत प्रक्रिया के सम्बन्ध में उपबंध बनाने होंगे। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि संविधान में कोई उपबंध ऐसा रखना चाहिये जिसके आधार पर संसद इस प्रश्न को यथोचित महत्त्व दे सकेगी।

धनराशि के सम्बन्ध में भी कुछ कहा गया है। भारत जैसे विशाल देश में बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी और यदि इस प्रकार की अपीलों की इजाजत दी गई...

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उच्च न्यायालयों के निर्णयों की अपील के इस प्रकार के मामलों के आंकड़े हमें प्राप्त नहीं हैं। हम यह नहीं कह सकते कि यह संख्या कहीं बहुत बड़ी तो नहीं है।

***श्री फ्रैंक ऐन्थानी:** ऐसे मामलों की संख्या व्यवहार-विषयक मामलों की संख्या से बहुत ही कम होगी।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** हमें हत्या के उन मामलों के आंकड़े प्राप्त नहीं हैं जो उच्च न्यायालयों के सामने उपस्थित किये जाते हैं।

***डा. पी.के. सेनः** उन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई न होगी। मेरा निवेदन यह है कि आधुनिक काल में मनुष्य जीवन की पवित्रता को अधिकाधिक स्वीकार किया जाने लगा है। यह अप्रासंगिक है कि अतीत काल में मनुष्य जीवन क्यों इस प्रकार पवित्र नहीं समझा जाता था। वास्तव में अतीत काल में संसार के देश युद्धग्रस्त ही रहे और युद्धकाल में मनुष्य-जीवन की किसे चिंता रहती है? किन्तु अब यह स्थिति नहीं है और पश्चिम में तथा पूर्व में अर्थात् दोनों गोलार्धों में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को बहुत पवित्र समझा जाता है। क्या हम भारत के नवीन संविधान में इसे स्वीकार करने नहीं जा रहे हैं? वास्तव में मूलाधिकारों के अध्याय में हमने इसे कई रूप में स्वीकार किया है। किन्तु जब उच्चतम न्यायायल में मृत्युदंड की अपील करने का प्रश्न उठता है तो हम कहते हैं, ''हमारे पास धन नहीं है और हम इतने न्यायाधीशों को नहीं रख सकते।'' क्या हमारा पथप्रदर्शन ऐहिक बातों से होना चाहिये? क्या हमें यह अनुभव न करना चाहिये कि इस विषय में एक नैतिक सिद्धांत सन्निहित है और उसी से हमारा पथप्रदर्शन होना चाहिये? क्या हमें इस नैतिक सिद्धांत को स्वीकार न करना चाहिये और उसे कार्यान्वित करने के लिये यथोचित साधन प्राप्त न करने चाहिये?

श्रीमान्, मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं न कोई संशोधन उपस्थित कर रहा हूं और न किसी संशोधन का समर्थन कर रहा हूं। इस विषय पर जो सामान्य वादानुवाद हो रहा है उसी के सिलसिले में मैं अपने विचार व्यक्त कर रहा हूं और मैं यह बताना चाहता हूं कि इन विचारों के प्रति मेरी पूरी निष्ठा है। इसलिये मैं सभा से बिना किसी संकोच के यह कह सकता हूं कि इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये और इसे एक साधारण विषय समझ कर इस पर ऊपरी तौर से विचार न किया जाये। इस समय मैं यह प्रश्न नहीं उठा रहा हूं कि मृत्युदंड ठीक है या नहीं। इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रश्न पर हम इस समय विचार कर भी नहीं सकते। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि हमें संविधान में यथोचित रूप से यह उपबंध रखना चाहिये कि मृत्युदंड के सभी मामलों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी।

श्रीमान्, अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये आपने मुझे जो अवसर दिया उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***डा. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं इस वादानुवाद में भाग नहीं लेना चाहता था किन्तु मैंने यह देखा कि इस प्रश्न के एक अंग पर जोर नहीं दिया गया है और इसीलिये मैं भी इसमें सम्मिलित हो रहा हूं।

मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने जो तर्क उपस्थित किया था उसका मेरे माननीय मित्र मि. फ्रैंक ऐन्थानी और डा. पी.के. सेन ने बड़ी योग्यता के साथ समर्थन किया है। मैं भी उसका सच्चे हृदय से समर्थन करता हूं। मैं केवल अपराध-विषयक मामलों

के दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि भारत में दैहिक स्वातंत्र्य के दृष्टिकोण से भी उसका समर्थन करता हूं। निःसंदेह एक उपबंध इस प्रकार है कि....।

***श्री बी. दासः** यह वकालत की वृत्ति के लिये लाभप्रद सिद्ध होता है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** यदि मेरे माननीय मित्र केवल वकालत की वृत्ति को ही लाभ होने के कारण चिंतित हैं और यही उनकी एक शिकायत है, तो यह निर्धारित किया जा सकता है कि कुछ प्रकार के मामलों में वकीलों को उपस्थित न होने दिया जायेगा। यदि उनका यह विचार है कि हम इस विषय में केवल इस कारण दिलचस्पी ले रहे हैं और इसका समर्थन केवल इस कारण कर रहे हैं कि वकीलों की आय बढ़ जायेगी तो मैं अपनी ओर से इसके लिये तैयार हूं कि इनमें कुछ मामलों में वकीलों को उसी प्रकार उपस्थित न होने दिया जाये जैसे कि ग्राम पंचायत के न्यायालयों में उन्हें उपस्थित नहीं होने दिया जाता।

हम इस समय यह देख रहे हैं कि भारत के कई स्थानों में दैहिक स्वतंत्रताओं में बहुत हस्तक्षेप किया जा रहा है। उदाहरणार्थ यदि हम यह देखें कि प्रान्तीय सरकारें कई स्थानों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 को प्रयोग में लाकर किस प्रकार शासन कर रही हैं और उस धारा को कितने समय के लिये प्रयोग में रहने दिया जाता है तो हम चकित हो जायेंगे। यदि हम इस विषय के आंकड़ों की अंग्रेजी के काल के आंकड़ों से तुलना करें तो जो परिणाम निकलेगा उससे भी हम विस्मित ही होंगे। कम से कम जहां तक बम्बई के प्रान्त का सम्बन्ध है, मेरे पास इस सम्बन्ध में बहुत सी शिकायतें आई हैं कि बम्बई की सरकार बहुत से लोगों को एक जिले से निकाल कर दूसरे जिले में भेज देती है। यह उन लोगों के मार्ग में बाधा डालने का बहुत अच्छा उपाय है जो अन्यथा बन्दी-प्रत्यक्षीकरण के लिये आवेदन-पत्र देते। इसलिये यह कोई ऐसी बात नहीं है जो समझ में न आ सके कि भले ही संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण न हुआ हो किन्तु लोगों की उन व्यवहार-सम्बन्धी स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप हो सकता है जो मूलाधिकारों के अधीन नहीं आती अथवा जिनके सम्बन्ध में मूलाधिकारों का सहारा नहीं लिया जा सकता। भारतीय राज्यों के भविष्य के विधि-मंत्रियों की बुद्धि प्रखर होगी ही, इसलिये मेरे विचार से लोगों की स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिये यह उपबंध बहुत आवश्यक है कि ऐसे मामलों में भी उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अथवा मूलाधिकारों के अतिक्रमण का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो। इस दृष्टि से भी इस सुझाव पर विचार किया जाना चाहिये कि जिस प्रकार व्यवहार-विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने की सुविधा है उसी प्रकार अपराध-विषयक मामलों में भी अपील करने की सुविधा होनी चाहिये। मुझे आशा है कि यह दृष्टिकोण स्वीकार किया जायेगा और तदनुसार एक उपबंध रखा जायेगा।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** अध्यक्ष महोदय, संविधान के इस भाग के फलस्वरूप कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं जिन पर सभा को सावधानी से विचार करना चाहिये।

अनुच्छेद 110 और 111 में हमने व्यवहार-विषयक मामलों में अपीलों के सम्बन्ध में उपबंध रखे हैं। प्रश्न यह है कि हम अपराध-विषयक मामलों में सम्बन्ध में क्या करने

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

जा रहे हैं। एक वकील होने के नाते मैं यह समझता हूं कि यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सभा को यह बताऊं कि अधिकांश वकीलों का भी यही मत है कि यद्यपि व्यवहार-विषयक मामलों में हमने अपील का अधिकार दिया है किन्तु अपराध-विषयक मामलों में अभियुक्त को इस प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार का अधिकार प्रदान करने के लिये हमें संविधान में कोई उपबंध रखना चाहिये? एक संशोधन द्वारा यह सुझाव रखा गया है कि एक अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 112 (ख) प्रविष्ट किया जाये जिसका आशय यह हो कि संसद को इस विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और इस विधि के अधीन निर्धारित शर्तों और परिसीमाओं के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपने अपराध-विषयक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये भारत के राज्य क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय के दिये हुये दंड या निर्णय की अपील सुनने का अधिकार होगा। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि इस अनुच्छेद से यह आधारभूत प्रश्न उठता है कि क्या हम सम्पत्ति के प्रश्न को मनुष्य-जीवन के प्रश्न से अधिक महत्त्व नहीं दे रहे हैं? यदि आप सम्पत्ति के विषय में लोगों को अपील करने का अधिकार अपने संविधान द्वारा देने जा रहे हैं तो क्या मृत्युदंड के मामलों में आप उन्हें इस अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं? इस प्रकार के मामले दो प्रकार उठ खड़े होते हैं। या तो न्यायाधीश पंचों (जूरी) से अथवा न्याय सहकारियों (एसेजरों) से सहमत होकर मृत्युदंड का निर्णय करता है अथवा कोई व्यक्ति सत्र-न्यायालय द्वारा तो मुक्त कर दिया जाता किन्तु उसकी मुक्ति के विरुद्ध सरकार अपील करती है और अन्त में उच्च न्यायालय अधीन न्यायालय के निर्णय को उलट देता है और उसे मृत्युदंड देने का निर्णय करता है।

दूसरी दशा में, अर्थात् मुक्त होने पर फिर सिद्धदोष ठहराये जाने पर अभियुक्त उस निर्णय की अपील कहां करेगा? इस सम्बन्ध में संविधान में कोई उपबंध नहीं है। सम्भवत: बहुत ही विशेष स्थिति में विशेष इजाजत लेकर ही अपील की जा सकती है किन्तु इसका अधिकार स्वत: प्राप्त नहीं है। सम्भवत: यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि यदि देश में इसके पक्ष में प्रबल लोकमत हो तो संसद उसकी ओर ध्यान देगी और आवश्यक विधि का निर्माण करेगी। जो लोग इस विचारधारा के हैं उनसे मैं यह सीधा-सादा प्रश्न पूछना चाहता हूं कि इस बीच क्या होगा? हो सकता है कि पांच या छ: वर्ष तक और दस वर्ष तक भी संसद इस ओर कोई कदम न उठाये। हम कह नहीं सकते कि भविष्य में संसद में किस प्रकार के सदस्य आयेंगे। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि अधिकार का संविधान में ही उल्लेख हो जाना चाहिये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस समय अनुच्छेद 112 (ख) को स्थगित रखा जाये। हमें चाहिये कि हम अपने मित्रों से इस दृष्टिकोण को स्वीकार कराने के लिये एक बार फिर प्रयत्न करें कि मनुष्य जीवन की पवित्रता को स्वीकार करना ही चाहिये। यह तर्क उपस्थित किया गया है और कार्यपालिका की ओर से यह तर्क हमेशा ही उपस्थित किया जायेगा कि यदि मृत्युदंड की अपील करने का लोगों को अधिकार दिया गया और साधारण रूप से ही इस प्रकार की अपीलें की जायें, तो मृत्युदंड के मामलों का निर्णय करने के लिये हमें बहुत से न्यायाधीशों को नियुक्त करना पड़ेगा। मैं वास्तविक स्थिति से परिचित नहीं हूं और न मेरे पास तत्सम्बन्धी आंकड़े ही हैं और न मेरे विचार से मसौदा-समिति को ही ये-आंकड़े उपलब्ध हैं, जिनके आधार

पर वह यह बता सकती कि प्रत्येक प्रान्त में उच्च न्यायालयों के सामने कितने ऐसे मामले आये जिनमें मृत्युदंड का निर्णय किया गया। इस सम्बन्ध में आंकड़े प्राप्त नहीं हैं। हमें केवल अस्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि भारत के उच्च न्यायालयों के सामने इतने मामले आयेंगे कि बहुत से न्यायाधीशों को नियुक्त करने की आवश्यकता होगी। मैं यह भी माने लेता हूं कि यह तर्क ठीक है और काम बहुत बढ़ जायेगा, किन्तु साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि यह ठीक ही है कि वह बढ़े क्योंकि इन मामलों में बहुत लोग संकटग्रस्त रहेंगे। श्रीमान्, हमने अभी तक अंग्रेजों के अपराध विषयक विधि-सम्बन्धी न्यायदर्शन के सिद्धांतों का ही अनुसरण किया है। हम उन्हीं की भावना को स्वीकार करते आये हैं और उनसे हमने यह शिक्षा ग्रहण की है कि भले ही एक दर्जन बदमाश मुक्त हो जायें किन्तु एक भी निर्दोष व्यक्ति का बलिदान न होना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, 'बदमाश' शब्द संसदोचित नहीं है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मेरे मित्र को यह ज्ञात होना चाहिये कि इस शब्दमात्र के लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि इस संसदोचित नहीं है। जब यह किसी सदस्य के लिये प्रयोग किया जाये तभी यह कहा जा सकता है कि यह संसदोचित नहीं है।

संदेह के लाभ के सम्बन्ध में जो विधि है वह इसी पर आधृत है। जब स्थिति के सम्बन्ध में दोनों तरह की बातें समान रूप से कही जाती हैं और अभियुक्त के पक्ष में और विपक्ष में भी समान रूप से तर्क उपस्थित किया जा सकता है तो उसे इस सन्देह से लाभ उठाने दिया जाता है। जब न्याय की तुला बहुत कुछ संतुलित हो तो उसे अभियुक्त के पक्ष में ही झुकना चाहिये और न्यायाधीश को एक पलड़े में दया के कुछ कण डाल कर उसका पासन बढ़ा देना चाहिये। अपराध सम्बन्धी न्यायदर्शन का यही आधारभूत सिद्धांत रहा है और इस देश में यह न्यायदर्शन एक सौ वर्ष तक प्रवर्त्तन में रहा है। हम जानते हैं कि अभियुक्तों को मृत्यु-दंडों की अपील का अधिकार न देकर उनके प्रति अन्याय करके कितनी हत्यायें की जाती हैं। क्या यह कोई ऐसा विषय है जिस पर केवल इस कारण ऊपरी तौर पर विचार करके संतुष्ट हो जाना चाहिये कि कुछ अधिक न्यायाधीशों को नियुक्त करने की आवश्कयता पड़ेगी। हमने इस संविधान में सभी प्रकार के विषयों के लिये उपबंध रखे हैं क्या इस महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में हम अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझेंगे? क्या अधिक न्यायाधीयाों की नियुक्ति की सम्भावना से ही डर कर संविधान निर्माता अपने उत्तरदायित्व को पूरा न करेंगे? मेरे विचार से उन्हें इसकी अधिक चिंता न करनी चाहिये। मैं उनसे आदरपूर्वक निवेदन करना चाहता हूं और अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर के सामने यह सुझाव रखना चाहता हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में एक दो दिन तक निर्णय न किया जाये हमें फिर समवेत होकर इस पर अन्तिम रूप से विचार करना चाहिये कि हम उन लोगों के लिये कुछ कर सकते हैं या नहीं जो मृत्युदंड पाने वाले हों और जिनकी अन्त तक भी कोई सुनवाई न होगी। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है और मेरा यह निश्चित मत है कि संविधान में ही अपील करने के अधिकार का समावेश होना चाहिये और हमें इस प्रश्न को संसद पर छोड़ना चाहिये। मैं इस विचार से पूर्णतया सहमत हूं विशेषतया इसलिये कि अधिकांश वकीलों का भी

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

यही मत है मुझे अभी तक अपराध-विषयक मामलों में वकालत करने वाला कोई भी ऐसा वकील नहीं मिला जिसकी यह धारणा हो कि इस विषय में राज्य की विधि दोषपूर्ण है, क्योंकि राज्य सम्पत्ति को न कि मनुष्य जीवन को अधिक महत्त्व देता है। मेरे विचार से इस तर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस विषय पर विचार किया जाये।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र मि. ऐन्थानी ने यह कहा है कि यह अनुच्छेद उन लोगों को लाभ पहुंचाने के लिये उपस्थित किया गया है जो व्यवहार विषयक मामलों में वकालत करते हैं। मुझ पर इस कारण दिलचस्पी रखने का दोष नहीं लगाया जा सकता क्योंकि व्यवहार-विषयक तथा अपराध-विषयक दोनों प्रकार के मामलों में पड़े हुए लोग मेरे पास समान रूप से आते रहे हैं। हमें इस प्रश्न पर केवल सैद्धांतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी विचार करना है। यदि सभा कृपा करके अनुच्छेद 112 की ओर ध्यान दे जिसके अनुसार विशेष इजाजत से उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है तो उसे ज्ञात होगा कि अपराध-विषयक मामलों में अन्याय होने पर प्रिवी कौंसिल को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त है वह जैसे का तैसा रहने दिया गया है। इस प्रकार इस सम्बन्ध में सुनवाई हो सकती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या अपराध-विषयक मामलों की अपील होनी चाहिये और यदि होनी चाहिये तो किन शर्तों के अधीन। इस सम्बन्ध में मसौदा-समिति की ओर से एक संशोधन है जिसे मेरे मित्र डा. अम्बेडकर उपस्थित करने वाले हैं। वह संशोधन संख्या 154 है और एक नवीन अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 112 (ख) को प्रविष्ट करने के सम्बन्ध में है। वह इस प्रकार है:

> ''संसद, विधि द्वारा, ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो ऐसी विधि से उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्चतम न्यायालय के दंड-कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय अथवा दंडादेश की अपील लेने और सुनने की शक्ति दे सकेगी।''

इस खंड के सम्बन्ध में एक संशोधन और उपस्थित किया जाने वाला है और उसका आशय यह है कि दंड-विषयक मामलों में दिये हुये अन्तिम आदेशों की भी अपील की जा सकती है। इस प्रकार यह संशोधन अधिक विस्तृत हो जायेगा। इसलिये प्रश्न यह है कि क्या हमें इस प्रकार का एक उपबंध संविधान में ही प्रविष्ट कर देना चाहिये अथवा यह संसद पर छोड़ देना चाहिये कि वह इस सम्बन्ध में विधि बनाये और उसमें इस विषय के सभी अंगों का समावेश करे। दंड-विषयक मामलों में उच्चतम-न्यायालय में अपील करने का अधिकार प्रदान करने का अर्थ यह है कि उच्चतम न्यायालय में कम से कम एक सौ न्यायाधीश नियुक्त करने होंगे। यह अधिकार मृत्युदंड के मामलों के सम्बन्ध में ही क्यों न हो किन्तु फिर भी बहुत से न्यायाधीशों को नियुक्त करना होगा।

पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः क्या आपके पास आंकड़े हैं।

***श्री के.एम. मुन्शीः** जी हां, हमारे पास हैं। एक ही प्रान्त में कम से कम सौ या डेढ़ सौ ऐसे मामले होंगे और देश में लगभग पन्द्रह प्रान्त होंगे। इसका अर्थ यह है कि मृत्युदंड के मामलों के सम्बन्ध में प्रत्येक वर्ष एक हजार से कम अपीलें न होंगी। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी उठता है कि क्या ये अपीलें प्राथमिक अपीलें होंगी या किसी विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में होंगी। अथवा क्या वे मृत्युदंड के सम्बन्ध में होंगी अथवा किसी उत्पीड़न के सम्बन्ध में। इस प्रश्न पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि क्या ऐसे मामलों के सम्बन्ध में भी अपील की जा सकती है जिनमें मुक्ति के विरुद्ध सरकार के अपील करने पर उच्च न्यायालय ने दंडादेश दिया हो। इन मामलों पर पूर्ण रूप से विचार करने की आवश्यकता है। यही नहीं, हमें इस पर भी विचार करना है कि किन शर्तों के अधीन इस प्रकार की अपील करने की इजाजत देनी चाहिये। इन सब बातों के लिये बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् विधि के उपबंध बनाने की आवश्यकता है और संसद ही इस प्रकार की विधि बना सकती है। जहां तक मैं समझ पाया हूं, कोई भी सदस्य दंड-विषयक यथोचित मामलों में अपील करने की इजाजत देने के विरुद्ध नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि कुछ निर्बन्धनों और शर्तों के अधीन अपील सुनी जानी चाहिये और तद्विषयक उपबंध संविधान में नहीं बल्कि किसी अधिनियम में ही समाविष्ट किये जा सकते हैं।

मैं इस दोष की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। केवल अन्याय के सम्बन्ध में ही, अर्थात् केवल साक्ष्य अथवा प्रक्रिया के सम्बन्ध में ही, प्रिवी कौंसिल विशेष इजाजत देती है। अनुच्छेद 112 में इस क्षेत्राधिकार का समावेश है। किन्तु अपराध-विषयक मामलों में किसी विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में अपील करने का अधिकार नहीं दिया गया है। परन्तु संसद इस विषय पर अवश्य ही विचार करेगी। यदि व्यवहार विषयक मामलों में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर अथवा किसी मामले को अपील के लायक समझने पर अपील की जा सकती है तो अपराध-विषयक मामलों में इसी आधार पर अपील क्यों नहीं की जा सकती? मेरे विचार से बिना किन्हीं परिसीमाओं अथवा निर्बन्धनों के उच्चतम न्यायालय पर अपराध-विषयक मामलों में अपील सुनने का दायित्व रखने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि ये सब विषय संसद के विचारार्थ छोड़ दिये जायें।

मेरा यह भी निवेदन है कि यह अनुच्छेद 110 और 111 के अधीन नहीं आता और इसलिये यह समय इस पर विचार-विमर्श करने का नहीं है। इस पर तो उस समय विचार-विमर्श होना चाहिये जब हम अनुच्छेद 112 (ख) सम्बन्धी संशोधन को उठायेंगे। अनुच्छेद 110 में केवल सांविधानिक विषयों का और अनुच्छेद 111 में केवल व्यवहार-सम्बन्धी विषयों का उल्लेख है। जब हम अनुच्छेद 112 को उठायेंगे तभी इस प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है कि उस अनुच्छेद में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है अथवा उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिस रूप में मसौदा समिति ने उसे उपस्थित किया है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस विषय पर विचार करने में जल्दी न दिखानी चाहिये। यही मेरा निवेदन है।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, मैं पहले बोलने वाले कई वक्ता महोदयों से सहमत हूं जिन्होंने यह विचार प्रकट किया है कि उच्चतम-न्यायालय को दंड-विषयक मामलों में अपील सुनने का अधिकार होना चाहिये। इस सभा के कई माननीय सदस्यों ने इस मत के समर्थन में बहुत ही सशक्त समाधानकारी तथा अकाट्य तर्क उपस्थित किया है। उससे प्रत्येक व्यक्ति के संदेहों का समाधान हो जाना चाहिये। यह बात दूसरी है कि कोई व्यक्ति समाधान का इच्छुक ही न हो। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि अनुच्छेद 110, 111 और 112 को यथोचित रूप से संशोधित करके उसमें वे सुझाव समाविष्ट कर देने चाहिये जो इस सभा के कई ऐसे सदस्यों ने दिये हैं जो ख्यातनामा वकील हैं।

इस मत के विरोधियों का मुख्य तर्क यह है कि इससे उच्चतम न्यायालय का कार्य बहुत बढ़ जायेगा और इस प्रकार के मामलों पर विचार करने के लिये बहुत से न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। मैं कह नहीं सकता कि हमारे पास ठीक या बहुत कुछ ठीक आंकड़े हैं या नहीं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपील के अधिकार को मृत्युदंड के मामलों तक ही सीमित करने पर भी काम बहुत बढ़ जायेगा। यदि इस मत के विरोधियों के इस तर्क को सबल भी कहा जाये कि कार्य बहुत बढ़ जायेगा तो मेरा यह निवेदन है कि इसे कम से कम सीमित रूप से स्वीकार किया जाये। मेरा यह निवेदन है कि यह अधिकार केवल मृत्युदंड के मामलों तक ही सीमित रखा जाये; यह कहा जा सकता है कि फिर भी मामलों की संख्या बहुत अधिक होगी। मेरे माननीय मित्र मि. ऐन्थानी ने एक बहुत अच्छा सुझाव उपस्थित किया है और वह यह है कि यदि आपको इसका भय है कि काम बहुत बढ़ जायेगा तो व्यवहार-विषयक अपीलों की संख्या को कम करने का कोई उपाय ढूंढ निकालना चाहिये। यदि हम बहुत से न्यायाधीशों को नहीं रख सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम अपील के लायक व्यवहार-विषयक मामलों में अन्तर्ग्रस्त धनराशि को सीमित न कर दें। हमें उसे बढ़ा कर 50,000 रु. अथवा एक लाख रुपया कर देना चाहिये। हम आज कल मुद्रा स्फीति के बारे में बहुत कुछ सुनते हैं और यह भी देखते हैं कि मुद्रा का मूल्य गिर गया है। इसके लिये कोई कारण नहीं है कि हम अपील के लायक व्यवहार विषयक मामलों में अन्तर्ग्रस्त धनराशि को बढ़ा कर उसे पचास हजार रुपया अथवा एक लाख रुपया न करें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी व्यक्ति के स्वातन्त्र्य अथवा उसके जीवन का मूल्य 20,000 रु. अथवा 50,000 रु. अथवा एक लाख रुपये से कहीं अधिक होता है। वास्तव में किसी व्यक्ति का जीवन धनराशि के रूप में नहीं आंका जा सकता।

इसके अतिरिक्त इसमें एक बहुत आधारभूत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और वह यह है। क्या किसी अपराध के सम्बन्ध में सिद्धदोष व्यक्ति को कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये या नही? मैं दो या तीन बार अपील करने के अधिकार की चर्चा नहीं कर रहा हूं यद्यपि हमने व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की है। प्रश्न यह है कि क्या किसी सिद्धदोष व्यक्ति को एक बार अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये या नहीं। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह एक मूलाधिकार है और इसके सम्बन्ध में संविधान में एक उपबंध होना चाहिये और इसका निर्णय संसद

पर न छोड़ देना चाहिये। हम जानते हैं कि कई मामलो में अभियुक्त अधीन-न्यायालयों द्वारा मुक्त कर दिया जाता है और ऐसे कुछ मामलों के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय में अपील की जाती है। स्थानीय सरकार या तो मुक्ति-सम्बन्धी आदेश के विरुद्ध अपील करती है या उस आदेश के विरुद्ध अपील करती है जिससे दंड का न्यूनन हुआ हो। विचारणीय प्रश्न यह है कि जब इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय में अपील की जाये और वह प्रथम बार मुक्त व्यक्ति को दोषसिद्ध ठहराये और अधीन-न्यायालय के मुक्ति-आदेश का खंडन कर दे तथा उस व्यक्ति को मृत्युदंड प्रदान करें तो प्रश्न यह उठता है कि ऐसे व्यक्ति को, जिसे प्रथम बार मृत्युदंड सुनाया गया हो, अपील करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये या नहीं? क्या उच्च न्यायालय के मृत्युदंड के आदेश के विरुद्ध उसकी एक बार भी सुनवाई न होनी चाहिये? यह एक आधारभूत प्रश्न है और मेरा यह निवेदन है कि यदि आपको हमारा मत पूर्णतया स्वीकार न भी हो तो आपको कम से कम इस आशय का एक उपबंध तो रखना ही चाहिये कि जिन मामलों में उच्च न्यायालय ने अधीन-न्यायालय के मुक्ति-आदेश के विरुद्ध अपील होने पर प्रथम बार मृत्युदंड प्रदान किया हो उनमें उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी। मेरा यही निवेदन है। मेरे विचार से कम से कम इसका तो संविधान में उल्लेख होना चाहिये।

श्रीमान्, मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना है और वह इसलिये कि इतने प्रख्यात वकीलों ने, जो इस विषय में अधिकृत रूप से बोल सकते हैं और जो तीस चालीस साल से अपराध-विषयक मामलों में वकालत करते आये हैं, एकमत कर यह अनुरोध किया है कि संविधान में इस प्रकार का उपबंध रखा जाना चाहिये। जब इतने विशेषज्ञों की यह धारणा है तो मेरी समझ में नहीं आता कि माननीय डा. अम्बेडकर अपनी बात पर इतने अड़े हुये क्यों हैं और सीमित परिवर्तन करने के लिये भी क्यों तैयार नहीं हैं? श्रीमान्, उनका दृष्टिकोण हमेशा तर्कपूर्ण रहा है और वे हमेशा महत्त्वपूर्ण बातों को समाविष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं। इसीलिये मुझे आश्चर्य है कि वे इस अवसर पर इतने अड़े हुये क्यों हैं? मुझे आशा है कि वे यह प्रमाणित नहीं करना चाहते हैं कि कुछ अवसरों पर वे अपने दृष्टिकोण का स्वयं खंडन कर सकते हैं। श्रीमान्, मुझे आशा है कि वे इस दृष्टिकोण पर विचार करेंगे। मेरा तो यह सुझाव है कि वे इस सभा के ऐसे सदस्यों से जो प्रख्यात वकील हैं विचार-विमर्श करें और एक ऐसा उपबंध बनायें जो सभी को मान्य हो।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** इस लम्बे वादानुवाद को देखते हुये मैं सभा के विचारार्थ कुछ ही बातें उपस्थित करना चाहता हूं। मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रश्न के तीन अंग हैं और उन्हें स्पष्ट रूप से पृथक रखना चाहिये था तथा उन पर यथोचित समय पर अलग-अलग विचार होना चाहिये था।

अनुच्छेद 110 में, जिसके सम्बन्ध में मि. नजीरुद्दीन अहमद ने संशोधन उपस्थित किया है, उन अनेक विषयों का समावेश नहीं है जिन पर पहले बोलने वाले वक्ताओं ने अपने विचार प्रकट किये हैं। वह अनुच्छेद भारत सरकार के अधिनियम की धारा 205 के आशय की पूर्ति करता है जो उन मामलों की अपीलों के सम्बन्ध में है, जिनमें संविधान के

[डा. बक्शी टेकचन्द]

निर्वचन के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों। ऐसे मामलों में अपील का पूर्ण अधिकार दिया गया है, चाहे वे मामले व्यवहार-विषयक हों या अपराध-विषयक अथवा किसी अन्य कार्यवाही के सम्बन्ध में उठे हों और चाहे उनका विषय कुछ भी हो। यह एक बहुमूल्य अधिकार है और इसका संविधान में समावेश होना चाहिये किन्तु साथ ही यह शर्त भी रखी जानी चाहिये कि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करे कि विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और वह सारवान प्रश्न है। इसलिये सभा से मेरा यह निवेदन है कि डा. अम्बेडकर ने जिस शाब्दिक परिवर्तन का सुझाव रखा है उसको स्थान देकर अनुच्छेद 110 स्वीकार कर लिया जाये। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कुछ भी मतभेद नहीं हो सकता है। यदि माननीय सदस्यों की यह इच्छा है कि इस विषय पर विचार किया जाये कि साधारण व्यवहार-विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार को सीमित किया जाये या न किया जाये अथवा साधारण अपराध-विषयक मामलों में (जिनके सम्बन्ध में इस समय बिना विशेष इजाजत लिये हुये अपील नही की जा सकती है), कम से कम कुछ मामलों में अपील करने का अधिकार होना चाहिये, तो इन विषयों पर उस समय विचार-विमर्श होना चाहिये जब कि सभा अनुच्छेद 111 और नवीन अनुच्छेद 112 (ख) पर विचार करे। यह एक आश्चर्य की बात है कि अनुच्छेद 110 के सम्बन्ध में अभी तक किसी वक्ता महोदय ने आपत्ति नहीं की। बिना किसी निरादर की भावना से प्रेरित हुये मैं यह कहना चाहता हूं कि पंडित ठाकुरदास भार्गव ने अनुच्छेद 111 और 112 (ख) से सम्बन्धित प्रश्नों को परोक्ष रूप से उपस्थित करने का प्रयास किया है। इसलिये मैं यह अनुरोध करता हूं कि अन्य प्रश्नों को उठा कर अनुच्छेद 110 के विषय को भ्रामक न बनाया जाये। मैं इसे फिर कहना चाहता हूं कि अनुच्छेद 110 से एक बहुमूल्य अधिकार प्राप्त होता है। पिछले बारह वर्षों के अनुभव से यही प्रमाणित होता है। माननीय सदस्यों को विदित है कि 1937 से, जब कि भारत सरकार का 1935 का अधिनियम प्रवर्त्तन में आया था, गवर्नर जनरल अथवा प्रान्तों के गवर्नरों ने जो अध्यादेश निकाले थे और केन्द्रीय सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों ने जो विधियां बनाई थीं उनके सम्बन्ध में विधि-प्रश्न किन मामलों में अन्तर्ग्रस्त था। प्रत्येक मामले में संघ-न्यायालय में अपील की गई थी जिसने इसका निर्णय किया था कि विचाराधीन विधि-न्यायसंगत है या नहीं और इस प्रकार उसने कई महत्त्वपूर्ण और सारवान प्रश्नों को हल किया था। ये प्रश्न ऐसे व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध में उठे थे जिनमें 1,000 रु. से बहुत कम धनराशि अन्तर्ग्रस्त थी। इसी प्रकार कुछ अपराध-विषयक मामलों में यद्यपि दंडादेश केवल थोड़े काल के कारावास के सम्बन्ध में थे किन्तु उनमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त थे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस समय ऐसे मामलों में, जिनमें सारवान सांविधानिक प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, अबाध रूप से अपील करने का जो अधिकार प्राप्त है उसे स्वतंत्र भारत के भावी संविधान में बनाये रखना चाहिये। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि इस विषय के इस अंग को ध्यान में रखा जाये। जहां तक अनुच्छेद 110 का सम्बन्ध है, मैं यह चाहता हूं कि मि. अहमद का संशोधन स्वीकार न किया जाये और अनुच्छेद को मूल रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

अब मैं इस प्रश्न के दूसरे अंग के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं, जो साधारण व्यवहार-विषयक मामलों के बारे में है और जिसके विषय में अनुच्छेद 111

में उपबंध रखा गया है। मि. ऐन्थानी और कुछ अन्य माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि इस संविधान के निर्माता व्यवहार-विषयक मामलों में वकालत करने वाले वकील हैं और व्यवहार-विषयक मामलों को ध्यान में रखते हुये उन्होंने उच्चतम न्यायालय के व्यवहार सम्बन्धी क्षेत्राधिकार को पहले के समान रहने दिया है अथवा अधिक विस्तृत कर दिया है। सौभाग्य से मैं इस संविधान का निर्माता नहीं हूं और यह आरोप मुझ पर नहीं लगाया जा सकता। किन्तु मैं मि. ऐन्थानी और कुछ अन्य वक्ताओं का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि साधारण व्यवहार-विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार को बहुत सीमित कर दिया गया है। वर्तमान व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील के लायक व्यवहार-विषयक मामले में 10,000 रु. की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होनी चाहिये किन्तु संविधान के मसौदे में यह धनराशि बढ़ा कर 20,000 रु. कर दी गई है। यदि आप आंकड़ों को देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि प्रिवी कौंसिल में अपील के लिये जो मामले जाते हैं उनमें से तीन-चौथाई मामलों में 10,000 रु. से लेकर 20,000 रु. तक की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होती है और केवल 25 प्रतिशत मामले ही ऐसे होते हैं जिनमें 20,000 रु. से अधिक की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होती है। इस प्रकार अनुच्छेद 111 के मसौदे के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील के लायक मामले 75 प्रतिशत कम हो जायेंगे। डा. अम्बेडकर और उनके सहकारियों पर जो आरोप लगाया गया है वह निराधार है। इसके अतिरिक्त जिन संशोधनों की सूचना मिली है किन्तु जो अभी उपस्थित नहीं किये गये हैं, उनको देखते हुये यह प्रतीत होता है कि कई माननीय सदस्यों की यह धारणा है कि 10,000 रु. की धनराशि को बढ़ा कर 20,000 रु. की धनराशि न निर्धारित करनी चाहिये। कुछ सदस्यों ने इस आशय के संशोधनों की सूचना दी है कि सीमा 15,000 रु. पर निश्चित की जाये। यह नहीं कहा जा सकता है कि व्यवहार-विषयक मुकदमों को बढ़ाने के लिये ही इस प्रकार के उपबंध संविधान में रखे गये हैं अथवा उद्देश्य यह है कि प्रिवी कौंसिल में इस समय जितने मुकद्दमे जाते हैं उनकी संख्या बनाये रखी जाये। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मि. ऐन्थानी का मत, सभा में इस समय विचाराधीन अनुच्छेद 110 से तो असंगत है ही किन्तु साथ ही, किसी का निरादर न करते हुये, मैं यह कहना चाहता हूं कि वह बिना समझे बूझे उपस्थित किया गया है।

अनुच्छेद 111, धनराशि के परिवर्तन के अतिरिक्त, केवल व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता की धारा 110 और धारा 109 की पुनरुक्ति है। ये धारायें 1861 से विधि के रूप में प्रवर्त्तन में रही हैं। उनके कुछ उपबंध कलकत्ते के उच्चतम न्यायालय के अधिकार पत्र में (अथवा उसके अधीन बनाये हुये नियमों में) मिलेंगे, जो 1773 में सम्राट की आज्ञा से प्रवर्त्तन में आया था। आपको इसी प्रकार के उपबंध मद्रास और बम्बई के उच्चतम न्यायालयों के अधिकार पत्रों में भी मिलेंगे, जो 19वीं शताब्दी के आरंभ में प्रवर्त्तन में आये थे। किन्तु अभी उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में, जब 1861 में उच्च न्यायालय विषयक अधिनियम स्वीकार किया गया और कलकत्ता, मद्रास, बम्बई और इलाहाबाद के उच्च न्यायालयों के एकस्व-पत्र जारी किये गये तो इसी प्रकार के उपबंध रखे गये और उसी वर्ष से व्यवहार प्रक्रिया संहिता में समाविष्ट किये गये और तब से प्रवर्त्तन में हैं। इसलिये जहां तक उन मामलों का सम्बन्ध है, जिनमें व्यवहार सम्बन्धी अपील का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है, अनुच्छेद

[डा. बक्शी टेकचन्द]

111 में तत्सम्बन्धी पहले के अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है। साथ ही उसमें धनराशि का प्रश्न भी उठाया गया है और परोक्ष रूप से व्यवहार-विषयक मुकदमों की संख्या 60, 70 अथवा 75 प्रतिशत कम कर दी गई है। आठ वर्ष पूर्व जब मैंने आंकड़ों को देखा था तो इस प्रकार के मुकदमों की संख्या 75 प्रतिशत थी और मेरे विचार से इस समय भी यह संख्या बहुत कुछ वही है। वास्तव में पूर्वी पंजाब, उड़ीसा और मध्यप्रान्त जैसे छोटे प्रान्तों में अब बहुत कम ऐसे व्यवहार-विषयक मामले होंगे जो उच्चतम न्यायालय के सामने लाये जायेंगे। बम्बई, पश्चिमी बंगाल और मद्रास जैसे धनी प्रान्तों में कुछ अधिक मामले हो सकते हैं संयुक्त प्रान्त और बिहार के बहुत व्यवहार-विषयक मामले प्रिवी कौंसिल के सामने जाते थे क्योंकि वहां बड़ी-बड़ी तालुकदारियां और जमींदारियां थी किन्तु इन मामलों में से अधिकांश 20,000 रु. से अधिक की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होती थी। परन्तु अब तालुकदारियों और जमींदारियों का उन्मूलन हो जाने पर इन प्रान्तों में भी इस प्रकार के मामलों की संख्या कम हो जायेगी। इसलिये व्यवहार-विषयक मुकदमेंबाजी के बढ़ जाने की कोई आशंका नहीं है।

अब मैं अपराध के विषय को उठाता हूं। मैं आपको बताऊंगा कि जिन व्यवहार-विषयक मामलों की अपील प्रिवी कौंसिल में होती है उनके सम्बन्ध में स्थिति क्या है। वर्तमान विधि के अधीन यह अधिकार-रूप में समाविष्ट नहीं है कि किसी मामले में प्रिवी कौंसिल में अवश्य ही अपील की जा सकती है चाहे वह मामला मृत्युदंड के सम्बन्ध में हो अथवा कालेपानी के दंड के सम्बन्ध में अथवा थोड़े समय के लिये कारावास-दंड के सम्बन्ध में अथवा चाहे उस मामले में कोई अत्यन्त सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। किसी उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह प्रमाणित करे कि अमुक मामला प्रिवी कौंसिल में अपील करने के लायक है।

प्रिवी कौंसिल में उसकी विशेष इजाजत से ही किसी अपराध-विषयक मामले में अपील की जा सकती है। इस प्रकार की इजाजत साधारणतया नहीं दी जाती है भले ही कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो अथवा अन्याय हुआ हो। परन्तु यदि किसी मामले में 'प्राकृतिक-न्याय' के सिद्धांतों का खंडन हुआ हो तो प्रिवी कौंसिल हस्तक्षेप कर सकती है। इसकी परिभाषा कहीं भी नहीं की गई है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत क्या हैं? प्रिवी कौंसिल के निर्णयों में भी इनकी स्पष्ट व्याख्या नही की गई हैं। यदि आप उन विभिन्न मामलों की परीक्षा करें जिनके सम्बन्ध में विशेष इजाजत से अपील होने पर निर्णय हुआ है, तो आप देखेंगे (मैं बहुत आदरपूर्वक यह कह रहा हूं) कि उनमें कोई सुसंगति नहीं है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कब प्रिवी कौंसिल इजाजत देगी और कब नहीं देगी। मैं ऐसे मामलों की चर्चा करके सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता जिनमें एक विशेष प्रश्न उठाया गया था किन्तु प्रिवी कौंसिल ने इजाजत नहीं दी थी। कुछ वर्षों बाद जब वही प्रश्न फिर उठाया गया तो इस आधार पर इजाजत दे दी गई थी कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का खंडन हुआ है। यह सारी व्यवस्था बहुत ही अनिश्चित है। मैं कह नहीं सकता कि उच्चतम न्यायालय प्रिवी कौंसिल का अनुसरण करेगा अथवा अनुच्छेद 112 के अधीन विशेष इजाजत देने के लिये एक भिन्न प्रथा को निश्चित करेगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** क्या संविधान के अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर न्याय करने का वही अवसर प्राप्त होगा जो प्रिवी कौंसिल को प्राप्त होता था अथवा क्या उससे यह शक्ति ले ली गई है?

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अनुच्छेद 112 इस प्रकार है:

> ''उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से किसी वाद या विषय में दिये हुये किसी निर्णय, आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश की अपील के लिये विशेष इजाजत दे सकेगा, इत्यादि।''

इस प्रकार इस विषय का निर्णय उच्चतम न्यायालय के स्वविवेक पर छोड़ दिया गया है और यह कहा नहीं जा सकता कि वह इस सम्बन्ध में किस प्रथा को सुनिश्चित करेगा। यदि उसने प्रिवी कौंसिल की ही प्रथा का अनुसरण किया, जैसा कि वह अभी तक व्यवहार-विषयक मामलों में करता आया है तो उसी मामले के उदाहरण को (अर्थात् डिलेट के मामले को) सामने रखा जायेगा और सब कुछ अनिश्चित रहेगा। विशेष अपील की 99 प्रतिशत याचिकायें अस्वीकार होंगी जिससे व्यर्थ में बहुत समय और धन नष्ट होगा।

श्रीमान्, अब मैं मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन के सम्बन्ध में एक-दो बातें कहूंगा। यदि यह संशोधन स्वीकार किया गया तो व्यवहार-विषयक मामलों में इसका अनुच्छेद 111 पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। प्रत्येक व्यवहार-विषयक मामले में, चाहे उसमें कितनी ही धनराशि अन्तर्ग्रस्त क्यों न हो, उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी, भले ही उच्च न्यायालय से प्रमाण-पत्र प्राप्त न हुआ हो। मेरे विचार से मि. नजीरुद्दीन अहमद नहीं चाहते कि ऐसा हो और न उनके संशोधन का समर्थन करने वाले माननीय सदस्य चाहते हैं कि ऐसा हो।

जो विभिन्न संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनको दृष्टि में रखते हुये मसौदा-समिति ने उचित यह समझा कि डा. अम्बेडकर इस आशय का एक संशोधन उपस्थित करें कि संसद विधि द्वारा, उच्चतम न्यायालय को, उन शर्त्तों और परिसीमाओं के अधीन जो इस विधि में उल्लिखित हों, भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दंड-क्षेत्राधिकार के अधीन दिये हुये निर्णय अथवा दंडादेश की अपील लेने और सुनने की शक्ति प्रदान कर सकती है। मेरे विचार से यह पर्याप्त नहीं है। मेरे विचार से संविधान में कुछ ऐसे उपबंधों का समावेश करना आवश्यक है जिनसे वर्णित स्थिति में अपील करने का सीमित अधिकार मिल जाये। यदि आप सब कुछ संसद पर छोड़ देते हैं तो यह कहा नहीं जा सकता कि इस प्रकार की विधि कब बनेगी और उसका स्वरूप क्या होगा। इसका परिणाम यह होगा कि तीन वर्ष तक अथवा इससे अधिक समय तक इस प्रकार के मामलों में किसी भी उपबंध के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील न की जा सकेगी। इस प्रश्न के इस पहलू से माननीय सदस्यों को बहुत चिन्ता हुई है और उनमें से कुछ ने यह सुझाव रखा है कि कुछ प्रकार के मामलों में अपील करने के सम्बन्ध में संविधान में ही उपबंध रखा जाना चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रश्न पर अनुच्छेद 110 पर विचार करते समय वादानुवाद न होना चाहिये बल्कि अनुच्छेद 112 (ख) के उपस्थित किये जाने पर ही उस पर विचार किया जाना चाहिये।

[डा. बक्शी टेकचन्द]

कई मामलों में उच्च न्यायालयों ने मुक्ति-आदेश को उलट कर मृत्युदंड दिया है और माननीय सदस्यों के इनके सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसमें बहुत सार है। दो बातें और है। एक बात यह है, जैसा कि पंडित ठाकुरदास और अन्य कुछ माननीय सदस्यों ने कहा है, कि क्या हत्या के लिये सिद्धदोष प्रत्येक अभियुक्त को, चाहे उसे मृत्युदंड का अथवा कालेपानी का आदेश सुनाया गया हो, अपील करने का अधिकार आबाध रूप से प्राप्त होना चाहिये अथवा अपील का अधिकार केवल उन्हीं मामलों में होना चाहिये जिनमें मृत्युदंड सुनाया गया हो अथवा जिनमें कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। दूसरी बात यह है कि ऐसे अन्य प्रकार के मामले हो सकते हैं जिनमें साधारण दंडादेश दिया गया हो किन्तु जिनमें बहुत महत्त्वपूर्ण तथा सार्वभौम विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। इसके अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी के मामले भी हो सकते हैं जिनमें विधि के उपबंधों के निर्वचन के सम्बन्ध में, उदाहरणार्थ साक्ष्य-अधिनियम अथवा दंडप्रक्रिया-संहिता की कुछ धाराओं के सम्बन्ध में, उच्च न्यायालय में मतभेद हुआ हो। उदाहरणार्थ साक्ष्य-अधिनियम की धारा 27 के निर्वचन के सम्बन्ध में विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश वर्ग ने परस्पर विरोधी निर्णय किये हैं यद्यपि साक्ष्य-अधिनियम 1872 से प्रवर्त्तन में रहा है किन्तु इन 75 वर्षों में भी इस विषय का निर्णय नहीं हो सका है, लोकहित की दृष्टि से उच्चतम न्यायालय में इन प्रश्नों को अन्तिम रूप से हल कर देना चाहिये। इस प्रकार के मामले अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत न आ सकेंगे। इस समय प्रिवी कौंसिल ऐसे मामलों के सम्बन्ध में विशेष इजाजत नहीं देती है, जिनमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का खंडन न हुआ हो। यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालय के यह प्रमाणित करने पर कि अमुक मामला अपील के लायक है, अपील की इजाजत दी जानी चाहिये। मेरे विचार से ऐसे मामलों में अपील की इजाजत देने के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। प्रश्न केवल यह है कि इसका संविधान में समावेश होना चाहिये अथवा संसद को इस सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति दी जानी चाहिये। इस विषय पर उसी समय विचार करना उचित होगा जब अनुच्छेद 112 (ख) उठाया जाये चूंकि वह आज नहीं उठाया जा सकता है इसलिये मेरा यह सुझाव है कि मसौदा-समिति इस पूरे विषय पर फिर विचार करे और इसे यथोचित रूप में बाद को उपस्थित करे।

अनुच्छेद 110 इस विषय के सम्बन्ध में नहीं है और मेरा यह निवेदन है कि इसे डाक्टर अम्बेडकर के शाब्दिक संशोधन द्वारा संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस वादानुवाद में विषयान्तर हो गया है और मि. नजीरुद्दीन अहमद ने अपने संशोधन संख्या 1904 ओर 1907 में जो प्रश्न उठाया है उससे असम्बद्ध कई अन्य विषयों की चर्चा सदस्यों ने की है। हमारे सम्मुख केवल संशोधन संख्या 1904 है। उस संशोधन द्वारा मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद यह सुझाव रखना चाहते हैं कि अनुच्छेद 110 के उपखंड (1) के अन्त के कुछ शब्द अर्थात् ''इस संविधान का निर्वचन'' शब्द निकाल दिये जायें। मुझे खेद है कि ''इस संविधान का निर्वचन'' शब्दों को निकालने के लिये उन्होंने जो तर्क उपस्थित किया था उसे मैं ठीक-ठीक नहीं सुन सका। यद्यपि मैंने उनके शब्दों को

सुनने का बहुत प्रयास किया परन्तु मैं केवल इतना सुन पाया कि वे संशोधन संख्या 1904 को इस कारण उपस्थित कर रहे हैं कि पूर्वोक्त शब्दों से परिसीमित होता है और यदि इन्हें रहने दिया जायेगा तो किसी उपबंध के अधीन उच्चतम न्यायालय में ऐसे मामलों में अपील नहीं की जा सकेगी; जिनमें संविधान-सम्बन्धी विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मुझे विश्वास है कि मेरा तर्क ठीक है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** प्रमाण-पत्र का प्रश्न नहीं उठता।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** कल आप उसे निकाल देना चाहते थे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद उच्चतम न्ययालय विषयक इन अनुच्छेदों की योजना को सम्भवतः नहीं समझ पाये हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** यह आपका पुराना तर्क है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हमने संविधान के मसौदे में ऐसे मामलों के लिये, जिनमें संविधान सम्बन्धी विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो और ऐसे मामलों के लिये, जिनमें इस प्रकार का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो, अलग-अलग उपबंध रखे हैं। संविधान का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर अपील करने के सम्बन्ध में अनुच्छेद 110 में उपबंध हैं। और ऐसे प्रश्नों के सम्बन्ध में जिनमें संविधान का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो अनुच्छेद 111 में उपबंध है। सम्भवतः मि. नजीरुद्दीन अहमद यह भी नहीं समझ पाये हैं कि इन दो प्रकार की अपीलों के लिये पृथक व्यवस्था क्यों की गई है। इसलिये मैं इसे स्पष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 121 के सम्बन्ध में संशोधन उपस्थित किया जाने वाला है जो उन नियमों के सम्बन्ध में है जिन्हें उच्चतम न्यायालय बनायेगा। मैंने अनुच्छेद 121 के खंड (2) के सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना दी है जिसमें यह कहा गया है कि जब कभी उच्चतम न्यायालय में किसी ऐसे मामले की अपील की जाये, जिसमें कोई सांविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, तो कम से कम पांच न्यायाधीश उस पर विचार करेंगे किन्तु उस अपील के मामलों के सम्बन्ध में हमने उच्चतम न्यायालय को इसकी स्वतंत्रता दी है कि वह उन पर विचार करने के लिये न्यायाधीश मंडली को स्थापित करे और यह भी निश्चित करे कि नियमों के अधीन कितने न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। यह एक महत्त्वपूर्ण विभेद है अर्थात् उच्चतम न्यायालय के सम्मुख रखे जाने वाले किसी सांविधानिक मामले का निर्णय कम से कम पांच न्यायाधीश करेंगे और अन्य प्रकार के अपील के मामलों का निर्णय जो न्यायाधीश करेंगे उनकी संख्या नियम द्वारा विहित होगी। इसलिये मेरे मित्र की समझ में आ जायेगा कि यह बात नहीं है कि 'संविधान का निर्वचन' शब्द रहने से ऐसे मामलों की अपील न हो सकेगी जिनमें सांविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो और उनकी समझ में यह भी आ जायेगा कि हमने इन दो प्रकार की अपीलों के सम्बन्ध में दो पृथक् अनुच्छेदों में उपबंध क्यों रखे हैं। इन दो प्रकार के मामलों का निर्णय जो न्यायाधीश करेंगे उनकी संख्या में भी अन्तर है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

अब मैं इस प्रश्न को उठाता हूं कि उच्चतम न्यायालय को दंड-विषयक क्षेत्राधिकार प्राप्त होना चाहिये या नहीं, जिस पर बहुत वादानुवाद भी हो चुका है। मैं कह चुका हूं कि जहां तक अनुच्छेद 110 का और तद्विषयक मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन का सम्बन्ध है यह वादानुवाद अप्रासंगिक ही रहा है और इसका अनुच्छेद 110 के सम्बन्ध में हमारे निर्णय पर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिये। किन्तु चूंकि बहुत वादानुवाद हुआ है, इसलिये मैं भी कुछ शब्द कहना चाहता हूं। सदस्य यह देखेंगे कि अनुच्छेद 110 में उच्चतम न्यायालय के सामने आने वाले ऐसे दंड विषयक मामलों के लिये उपबंध है, जिसमें संविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। इसलिये इस प्रकार भी दंड-विषयक मामलों की अपील की जा सकती है और अनुच्छेद 110 के अधीन जिन दंड-विषयक मामलों की अपील की जायेगी वे बहुत साधारण मामले होंगे।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रिवी कौंसिल का क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। इस समय मैं माननीय सदस्यों का ध्यान केवल इन शब्दों की ओर दिलाना चाहता हूं–''किसी व्यवहार-विषयक अथवा दंड-विषयक वाद या विषय में दी हुई आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश,'' इन शब्दों के अनुसार अनुचछेद 112 के उपबंधों के अधीन उच्चतम-न्यायालय, विशेष इजाजत के आधार पर, किसी अपराध-सम्बन्धी विषय पर भी विचार कर सकता है। मैंने यह देखा है कि आपराधिक वकीलों की यह प्रबल धारणा है कि एक उपबंध इस आशय का होना चाहिये कि...।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** अपराध-वेत्ता वकील।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे खेद है। अपराध-वेत्ता वकीलों की यह प्रबल धारणा है कि जिस प्रकार अनुच्छेद 111 से उच्चतम न्यायालय को व्यवहार-विषयक मामलों की अपील सुनने की शक्ति मिलती है उसी प्रकार उसे अपराध-विषयक मामलों की अपील सुनने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और यदि इस प्रकार की सभी अपीलों को सुनने की शक्ति न भी मिले तो कम से कम मृत्युदंड विषयक मामलों की अपील सुनने की शक्ति तो मिलनी ही चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि उच्चतम न्यायालय को दंड विषयक क्षेत्राधिकार प्रदान करने के सम्बन्ध में जो तर्क उपस्थित किया गया है उसमें कुछ बल नहीं है परन्तु प्रश्न यह है कि उसे यह क्षेत्राधिकार प्रदान किस प्रकार किया जाये? क्या हमें संविधान में ही इस आशय का एक खंड रख देना चाहिये कि अमुक विषय के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकेगी अथवा हमें संसद को यह अधिकार देना चाहिये कि वह उच्चतम न्यायालय को अपराध विषयक मामलों में अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्रदान करे। इस समय मेरा यही मत है यद्यपि मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कहना चाहता। मैं अपने मस्तिष्क को खुला रखता हूं किन्तु मैं यह कहूंगा कि वह खाली नहीं है। इस समय यह व्यवस्था पर्याप्त होगी कि संसद को इसकी शक्ति दी जाये कि वह उच्चतम न्यायालय को अपराध-विषयक अपीलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्रदान कर सके। संसद इस सम्बन्ध में विचार कर सकती है और अनुसंधान भी कर सकती है कि उच्चतम न्यायालय

को अपराध विषयक मामलों में क्षेत्राधिकार प्रदान करने से वह कितना कार्य कर सकेगा। विशेषतया इसे ध्यान में रख कर कि यह देश कितने न्यायाधीशों के लिये धन-व्यय कर सकता है। मेरे विचार से अच्छा नहीं होगा कि इस विषय को संसद के निर्णय के लिये छोड़ दिया जाये क्योंकि इस सम्बन्ध में आंकड़ों के अनुसंधान का कार्य भी कुछ सीमा तक आवश्यक होगा। मेरा यह भी मत है कि मृत्युदंड के मामलों की अपील सुनने की शक्ति उच्चतम न्यायालय को प्रदान करने के लिये उपबंध रखने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि मृत्युदंड को ही समाप्त कर दिया जाये (*वाह वाह*) मेरे विचार से इसी मार्ग का अनुसरण करना उचित होगा क्योंक इससे इस विवाद का अन्त हो जायेगा। आखिर इस देश की बहुत कुछ अहिंसा के सिद्धांत के प्रति ही निष्ठा है। अहिंसा की परम्परा इस देश के प्राचीन काल की देन है। भले ही इस देश के लोग उसे व्यवहार में चरितार्थ न कर सकें किन्तु वे उसे एक नैतिक आदर्श समझते आये हैं ओर उसके अनुसार आचरण करने का यथाशक्ति प्रयास करते रहे हैं। इसे दृष्टि मे रखते हुये इस देश के लिये उचित यही होगा कि वह मृत्यु-दंड का उन्मूलन ही कर दे।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** क्या सभी दंड-सम्बन्धी न्यायालयों का भी उन्मूलन कर दे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से हमें, अनुच्छेद 110 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं और मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे आगे न बढ़ना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में 'a State' (किसी राज्य) शब्दों के स्थान में 'the territory of India' (भारत-राज्यक्षेत्र) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (1) में as to the interpretation of this Constitution' (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (2) में 'as to the interpretation of this Constitution' (इस संविधान का निर्वचन) शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110 के खंड (3) में 'not only on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided, but also' (जैसे किसी

[अध्यक्ष]

पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर ही नहीं बल्कि) शब्दों के स्थान में 'on the ground that any such question as aforesaid has been wrongly decided and with the leave of the Supreme Court' (ऐसे किसी पूर्वोक्त प्रश्न के अशुद्ध निर्णय हो जाने के आधार पर, तथा उच्चतम न्यायालय की इजाजत से) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 110, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 110 संशोधित रूप में, संविधान की अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 111

***अध्यक्ष:** पहला संशोधन, संशोधन संख्या 1911 है जो श्रीमती दुर्गाबाई के नाम से है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): चूंकि उसका आशय डा. अम्बेडकर के संशोधन से पूरा हो गया है इसलिये मैं उसे उपस्थित नहीं करना चाहती।

***श्री राजबहादुर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) 'except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule' (उन राज्यों के अतिरिक्त जो इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित है) शब्दों को निकाल दिया जाये।''

श्रीमान्, इन संशोधनों के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय की शक्ति तथा क्षेत्राधिकार-विषयक अनुच्छेदों का मसौदा उस समय तैयार किया गया था जबकि भारतीय राज्यों को समाविष्ट का तथा उनमें जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने का कार्य आरम्भ ही किया गया था और देश के सामने तथा मसौदा-समिति के सामने उनका वर्तमान स्वरूप नहीं था। इसलिये इस देश के सबसे ऊंचे अपील न्यायालय अर्थात् उच्चतम न्यायालय को कुछ मामलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार नहीं दिया गया था। अनुच्छेद 109 के अधीन उच्चतम न्यायालय को राज्यों के आपस के विवाद के मामलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। किन्तु प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में यह क्षेत्राधिकार सीमित तथा निर्धारित कर दिया गया है। अनुच्छेद 111 में भारतीय प्रान्तों के उच्च न्यायालयों तथा भारतीय राज्यों के उच्च न्यायालयों की व्यवहार कार्यवाही में दिये हुये निर्णयों, आज्ञप्तियों और अन्तिम आदेशों में विभेद किया गया है। इसी प्रकार अनुच्छेद 112 के अधीन भी भारतीय राज्यों के लोगों के विरुद्ध विभेद की व्यवस्था की गई है। यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय देश में अन्तिम अपील न्यायालय

होने के कारण उसे भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र के समान क्षेत्राधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। नि:संदेह उचित नहीं होगा कि भारतीय राज्यों को, जिनकी न्यायपालिका भारतीय प्रान्तों की न्यायपालिका के समान विकसित नहीं है, उच्चतम न्यायालय के अधीक्षता में अपनी न्यायपालिका के संगठन तथा विकास का अवसर मिलना चाहिये। यह सभी को विदित है कि भारतीय राज्यों के लोगों को अभी तक अपनी न्यायपालिकाओं से जो न्याय-प्रशासन प्राप्त रहा है वह भारतीय प्रान्तों के न्याय-प्रशासन की कोटि का नहीं रहा है। यह भी सभी को विदित है कि भारतीय राज्यों के लोग उस दिन की बाट जोह रहे हैं जब कि उच्चतम न्यायालय को भारतीय राज्यों के उच्च न्यायालयों के मामलों की अपीलें सुनने की शक्ति हो प्राप्त हो जायेगी। जब भारतीय राज्यों के जनसाधारण की यही इच्छा है तो अनुच्छेद 111 और 112 तथा अनुच्छेद 109 में भी किसी ऐसे विभेद को स्थान न देना चाहिये जिसका कुफल भारतीय राज्यों को भोगना पड़े। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इन शब्दों को अर्थात् ''उन राज्यों के अतिरिक्त जो इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित है'' शब्दों को समाविष्ट करने से भारत के राज्य-क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार तथा प्राधिकार सीमित ही नहीं हो जाता किन्तु इनसे हमारे देश की एकता तथा भारतीय राज्यों के लोगों की जनतंत्रात्मक स्वतंत्रता भी खंडित हो जाती है। कुछ हद तक इनसे भारतीय राज्यों पर भारतीय राष्ट्र की सर्वसत्ताधारिणी संसद की सर्वसत्ता भी सीमित हो जाती है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि यदि सम्बन्धित अनुच्छेदों में हम इन शब्दों को रहने देते हैं तो इनके फलस्वरूप हमारे संविधान में पुरानी व्यवस्था के असह्य अवशेष बने रहेंगे। यह सभा तथा भारत-सरकार भारतीय राज्यों में जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने के लिये वचनबद्ध है। हम भी इन राज्यों को प्रान्तों के स्तर पर लाने के लिये वचनबद्ध हैं। इसलिये सभी प्रकार के रूप में दो और विभेदों को मिटाना आवश्यक है। हम नहीं चाहते कि भारत के नक्शे में लाल धब्बे बने रहें। हम चाहते हैं कि हमारा देश शीघ्रातिशीघ्र एक सूत्र में बंध जाये। मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि संविधान द्वारा जो मूलाधिकार प्राप्त होंगे अथवा देश के अन्य भागों के लोगों को जो अधिकार इस समय प्राप्त हैं उनके संरक्षण की भारतीय राज्यों के लोगों को अधिक आवश्यकता है। यह सभी को विदित है कि सामंतवाद की तथा अन्य प्रकार की शक्तियां जो भारतीय राज्यों के लोगों के पूर्ण स्वातंत्र्य के लिये घातक है, अभी समाप्त नहीं हुई है और इसलिये वहां के लोगों को आवश्यकता पड़ने पर अपने अधिकारों तथा अपनी स्वतंत्रताओं के संरक्षण के हेतु उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का अवसर मिलना चाहिये। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि यदि ये शब्द रहने दिये जायेंगे तो ''प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों'' को भारतीय संघ के अन्य राज्यों की अपेक्षा भिन्न तथा उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। उनका स्तर भारतीय प्रान्तों के स्तर से भी भिन्न हो जायेगा। इन राज्यों के लोग अन्तिम अपील अपने यहां के उच्च न्यायालय में ही कर सकेंगे न कि उच्चतम न्यायालय में। किन्तु इस स्थिति को बनाये न रखना चाहिये। चूंकि हमने देश में एकता स्थापित करने के सिद्धांत को स्वीकार किया है और उसके अनुसार देश के विभिन्न भागों में विभेद न होना चाहिये, इसलिये मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1913 से लेकर 1916 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

***डा. बक्शी टेकचन्द:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'not less than twenty thousand rupees' (कम से कम बीस हजार रुपये) शब्दों के बाद 'or such amount as may be fixed by law by Parliament' (अथवा ऐसी धनराशि जिसे संसद विधि द्वारा निश्चित करे) शब्द रखे जायें।''

इस संशोधन के उद्देश्य के समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। अनुच्छेद 111 (1) (क) और (ख) के अधीन जो मामले आते हैं उनके सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल में अपील करने के लिये इस समय 10,000 रु. की जो धनराशि निश्चित है उसे इस अनुच्छेद के मसौदे में बढ़ा कर 20,000 रु. कर दिया गया है। यदि यह अनुच्छेद इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया और संविधान का अंग बना लिया गया तो जब तक संविधान को ही संशोधित न किया जायेाग तब तक यह धनराशि उसी प्रकार बनी रहेगी और बाधक सिद्ध होगी। देश की स्थिति में परिवर्तन होने पर यह अनुभव किया जा सकता है कि या तो यह धनराशि बहुत अधिक है या बहुत कम है और इसे बढ़ाने अथवा कम करने की आवश्यकता है। किन्तु बिना संविधान को संशोधित किये हुये उसमें परिवर्तन करना सम्भव न होगा। इसमें बहुत समय लगेगा और कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। सम्पत्ति का मूल्य बढ़ जाने से ही यह धनराशि बढ़ाई जा रही है क्योंकि बीस वर्ष पूर्व जिस सम्पत्ति का मूल्य 10,000 रु. था वह अब 20,000 रु. हो गया है। किन्तु स्थिति में परिवर्तन हो सकता हैं। कई कारणों से यह मूल्य घट सकता है और तदनुसार धनराशि को भी कम करने की आवश्यकता पड़ सकती है। अथवा मूल्य बढ़ भी सकता है और इस धनराशि को बढ़ा कर 20,000 रु. से लेकर 30,000 रु. तक अथवा 40,000 रु. या इससे अधिक निश्चित करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिये स्थिति के अनुसार कार्य करने के लिये संसद को इस अनुच्छेद में विधि द्वारा आवश्यक परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इसी कारण इस संशोधन का प्रस्ताव उपस्थित किया गया है कि इस अनुच्छेद में ''अथवा ऐसी धनराशि जिसे संसद विधि द्वारा निश्चित करे'' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची की संख्या 1916 से लेकर 1919 तक के संशोधनों के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'twenty thousand rupees' (बीस हजार रुपये), शब्दों के बाद 'or such other sum as may be specified in this behalf by Parliament by law' (अथवा ऐसी धनराशि जो संसद विधि द्वारा इस सम्बन्ध में निश्चित करे) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

(संशोधन संख्या 1918 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'twenty thousand' (बीस हजार) शब्दों के स्थान में 'fifteen thousand' (पन्द्रह हजार) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, इस समय दस हजार रुपये की धनराशि निश्चित है, किन्तु संविधान के मसौदे में बीस हजार रुपये की धनराशि निश्चित करने का प्रस्ताव है। मैंने बीच के मार्ग का अनुसरण किया है और पन्द्रह हजार रुपये की धनराशि निश्चित करने का प्रस्ताव रखा है। मैं पहले की धनराशि को बढ़ाना चाहता हूं क्योंकि मुद्रा का मूल्य गिर गया है। मेरा यह निवेदन है कि किसी मामले के अपील के लायक होने के लिये उसमें अधिक धनराशि अन्तर्ग्रस्त होने की आवश्यकता न होनी चाहिये। इससे मनमाने ढंग से न्याय होता है क्योंकि वह धनी और निर्धनों के विभेद के आधार पर किया जाता है। यदि विभेद की आवश्यकता ही है तो केवल पहले की धनराशि को कुछ बढ़ा देना चाहिये। उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से कुछ मामलों में अपील करने की विशेष इजाजत दे सकता है। किन्तु इस विषय को संसद को सौंपने के उद्देश्य से डा. बक्शी टेकचन्द और डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे मैं पूर्णतया असहमत हूं। मेरा यह निवेदन है कि अपने संविधान में हम कई बातों का विस्तृत विवरण दे रहे हैं। मैं डा. अम्बेडकर के समान यह नहीं कहता कि यह विवरण तर्कसंगत नहीं है किन्तु है वह विस्तृत विवरण ही जिसके फलस्वरूप संविधान किसी विभाग के प्रतिवेदन का रूप धारण कर लेगा। इसलिये इस महत्त्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में, जिसके अधीन अपील करने का अधिकार प्राप्त होगा अथवा न होगा, हमें अपने उत्तरदायित्व की उपेक्षा करके उसे संसद को न सौंपना चाहिये। कठिनाई यह होगी कि सभा की भावना के आधार पर अथवा सभा के सदस्यों की अभिरुचि के अनुसार आये दिन यह कहा जायेगा कि मूल्य बढ़ रहा है अथवा गिर रहा है। हम इसे नहीं मान सकते कि यह सभा इसी प्रकार बनी रहेगी अथवा इसके विभिन्न दलों की सदस्य-संख्या हमेशा वही रहेगी जो इस समय है। इसलिये इस धनराशि में किसी समय की भावना के कारण परिवर्तन होने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि इसे संविधान में ही निश्चित कर दिया जाये। आप उसे दस हजार रुपये रखे अथवा पन्द्रह हजार अथवा बीस हजार परन्तु उसे संविधान में अवश्य निश्चित कर देना चाहिये ताकि उसे प्रायः परिवर्तित न किया जा सके और यदि परिवर्तित करने की आवश्यकता हो तो संविधान को ही संशोधित करके परिवर्तित किया जा सके। इस धनराशि का आधार सुदृढ़ होना चाहिये। इसी कारण मैं इस संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 1920 और 1921 उपस्थित नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 111 के खंड (1) में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the Judgment, decree or order of one Judge of a High Court or of one judge of a Division Court thereof, or two or more Judges of a High Court or of a Division Court constituted by two or more Judges of a High Court where such judges are equally divided in opinion and do not amount in number to a majority of the whole of the Judges of the High Court at the time being.'

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

(परन्तु उच्चतम न्यायालय में किसी ऐसे उच्च न्यायालय अथवा कमिश्नरी के न्यायालय के एक न्यायाधीश के निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश की अपील न हो सकेगी, जिसमें उच्च न्यायालय के दो या दो से अधिक न्यायाधीश हों और इन न्यायाधीशों का मत दोनों पक्षों में समान रूप से विभाजित हो और किसी एक पक्ष के न्यायाधीशों की संख्या उच्च न्यायालय के उस समय के कुछ न्यायाधीशों के बहुमत से अधिक न हो।)''

***अध्यक्षः** इसके सम्बन्ध में एक संशोधन है, अर्थात् संशोधन संख्या 151, जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है। क्या आप उसे उपस्थित कर रहे हैं?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** जी नहीं, श्रीमान्, मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** अब हम समाप्त करते हैं और सभा सोमवार के आठ बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, 6 जून 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 4. VIII-16.49
320

अंक 8
संख्या 16

सोमवार
6 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 111 से 114, 119, 121 से 123 तथा
191 से 193 पर विचार] ...943-1005

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 6 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 111—(*जारी*)

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 111 पर अब हमें बहस जारी करनी है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में आए हुए संशोधनों में एक बड़ी तादाद ऐसे संशोधनों की भी है जो वस्तुतः इससे सम्बन्ध नहीं रखते हैं। गत शुक्रवार को अनुच्छेद 110 पर मैंने एक लम्बी बहस यहां चलने दी थी। उस बहस का सही-सही सम्बन्ध इस अनुच्छेद से तो नहीं था पर उसे यहां इसी उद्देश्य से मैंने चलने दिया था कि इससे आगे के अनुच्छेदों पर बहस संक्षेप में ही समाप्त हो जायेगी। अनुच्छेद 111 में उन अपीलों के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है जो व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखी जायेंगी। मैं यह चाहता हूं कि इस पर विचार करने में, ऐसे संशोधनों को लाकर जिनका सम्बन्ध व्यवहार विषयक मामलों की अपीलों से हो, आप उस मसले को कृपया जटिल न बनाइयेगा। आपराधिक मामलों की अपीलों की चर्चा न करते हुए, केवल इस अनुच्छेद से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों पर विचार करके पहले हमें इस अनुच्छेद पर निर्णय कर लेना चाहिये। आपराधिक अपीलों के सम्बन्ध में जो संशोधन हैं उन सब पर विचार करने की अनुमति मैं आगे चल कर दे दूंगा। मेरा ख्याल है, इससे वाद-विवाद में समय कम लगेगा और सभा का ध्यान बटेगा नहीं बल्कि एक मसले की ओर रहेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): संशोधन नं. 12 पर मेरा एक संशोधन है श्रीमान्।

***अध्यक्षः** और भी बहुत से संशोधन मेरे पास हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** पर उनको तो आप निबटा चुके हैं।

***अध्यक्षः** अपने संशोधन को अगर आप पेश करना चाहते हैं तो पेश कर सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1912 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) में 'An appeal' शब्दों के पहले 'Subject to any law made by Parliament' शब्द रखे जायें''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

व्यवहार विषयक मामलों में अगर वह ऐसे हैं कि उनकी अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है, इस अनुच्छेद से उच्चतम न्यायालय में अपील करने का पूरा अधिकार मिल जाता है। कल हमने यहां यह देखा कि आपराधिक मामलों में यहां तक ऐसे मामलों में जहां मृत्यु दंड दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय को अपील करने का अधिकार नहीं दिया गया। मैं केवल यही चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय में व्यवहार विषयक अपीलों को भरमार न हो जाये। इसलिये मैं चाहता हूं कि व्यवहार विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील करने का जो अधिकार है उसकी संसद समय-समय पर समीक्षा कर लिया करे।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** (मद्रास : जनरल): संशोधन क्या है?

***अध्यक्ष:** संशोधन है संशोधन सूची के संशोधन नं. 1912 के सम्बन्ध में संशोधन का रूप यह है:

> ''कि खंड (1) में 'An appeal' शब्दों के पहले 'Subject to any law made by Parliament' शब्द जोड़े जायें।''

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मेरा अभिप्राय इतना ही है। श्रीमान् कि उच्च न्यायालयों के व्यवहार विषयक मामलों से निर्णयों के विरुद्ध, उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार न होने पाये।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन वैसा ही है जैसा कि संशोधन नं. 1911 जिसकी सूचना श्रीमती दुर्गाबाई ने दे रखी थी। श्रीमती दुर्गाबाई ने अपना संशोधन पेश नहीं किया। एक-दूसरे संशोधन पर यह संशोधन आप पेश कर रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह चाहता हूं श्रीमान्, कि उच्चतम न्यायालय को उन्हीं मामलों से सम्बन्ध रखने वाली अपीलों पर सुनवाई करने का अधिकार हो जिनके सम्बन्ध में संसद विधि द्वारा निर्णय करे। इससे यह होगा कि व्यवहार विषयक मामलों को अपीलें उच्चतम न्यायालय में कम संख्या में पहुंचेगी। मान लीजिए आज संसद यह अनुभव करती है कि व्यवहार विषयक मामलों की अपीलें उच्चतम न्यायालय में जा सकती हैं पर सम्भव है कुछ दिनों बाद संसद इसे अनावश्यक समझने लगे। इसलिये इस संशोधन से संसद को यह शक्ति रहेगी कि कुछ दिनों बाद उच्चतम न्यायालय के इस अधिकार को वह वापस ले ले। अगर संसद को यह शक्ति नहीं प्राप्त रही है तो उच्चतम न्यायालय को व्यवहार विषयक मामलों में जो अधिकार क्षेत्र प्राप्त है उसमें परितर्वन करने के लिये विधान में संशोधन करना पड़ेगा।

मैं कह चुका हूं कि व्यवहार विषयक छोटे-मोटे मामलों की अपीलें अगर उच्चतम न्यायालय में सुनी जा सकती हैं तो खून सम्बन्धी मामलों की अपीलें वहां क्यों नहीं सुनी जायें। इसलिये मेरे ख्याल में इसकी कोई वजह नहीं है कि अमीर लोग तो अपने व्यवहार विषयक मामलों को लेकर उच्चतम न्यायालय में पहुंच जायें और उससे लाभ उठायें और गरीब मौत की सजा के खिलाफ भी अपनी अपील वहां न ले जा सके। इसलिये व्यवहार विषयक

मामलों की अपीलों को उच्चतम न्यायालय में भेजने के सम्बन्ध में अगर संसद को अनियमन की शक्ति दे दी जाये तो बहुत अच्छा होगा। मूल अनुच्छेद में जो व्यवस्था है उससे तो यह कहीं उत्तम होगा। अगर मूल अनुच्छेद यों ही रहने दिया जाता है तो इसका दुरुपयोग होगा और अपना संविधान वकीलों के लिये एक अखाड़ा बन जायेगा। वे लोग सभी तरह की व्यवहार विषयक अपीलों को उच्चतम न्यायालय में ले जायेंगे। अमीरों के मुकदमों की बहस के लिये जब बडे-बड़े वकील उच्च न्यायालयों में खड़े होंगे तो उच्च न्यायालय भी अपील को उच्चतम न्यायालय में ले जाने की उन्हें अनुमति दे देंगे जिसका नतीजा यह होगा कि उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार हो जायेगी; अभी उस दिन यह दलील यहां दी गई थी कि अगर मृत्यु दंड प्राप्त व्यक्तियों को अपीलें भी उच्चतम न्यायालय में जायेंगी तो हमें वहां करीब 20 या 30 न्यायाधीश रखने होंगे। अगर यह अनुच्छेद ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है और व्यवहार विषयक मामलों को सभी अपीलों को उच्चतम न्यायालय में ले जाने की अनुमति रहती है तो उस हालत में तो हमें बहुत से न्यायाधीश 20 या 30 से कहीं ज्यादा न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में रखने पड़ेंगे। इसलिये यह एक बड़ा ही सरल संशोधन है जो संसद को यह शक्ति देना चाहता है कि व्यवहार विषयक मामलों की अपीलें जो उच्चतम न्यायालय में जायेंगे उनके सम्बन्धों में समय-समय पर विधि-निर्माण का संसद को अधिकार रहेगा।

***श्री एम. थीरूमल राव** (मद्रास : जनरल): यह संशोधन आखिर संशोधन नं. 1911 से कैसे संगत होता है।

***अध्यक्ष:** जो भी हो, सूचना में यही कहा गया है।

हमारे सामने इस अनुचछेद पर तीन और अन्य संशोधन भी हैं जिनमें आपराधिक मामलों की अपीलों का उल्लेख नहीं है।

(संशोधन नं. 1924 और 1925 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान्:

> ''कि अनुच्छेद 111 के खंड (2) में इसमें संविधान के निर्वाचन का सारवद विधि-प्रश्न अन्तर्हित है जिसक अशुद्ध निर्णय किया गया है। (the case involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution which has been wrongly decided) शब्दों की जगह 'संविधान के निर्वचन के एक सारवद विधि प्रश्न का अशुद्ध निर्णय किया गया है' (a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution, has been wrongly decided)' शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद अथवा संशोधनों के सम्बन्ध में कोई बोलना चाहते हैं?

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): संशोधन के सम्बन्ध में कोई संशोधन पेश करने का आखिरी वक्त क्या है? प्रो. शिब्बनलाल ने अपना संशोधन बड़ी देर से पेश किया है।

***अध्यक्ष:** बैठक शुरू होने से पहले ऐसा संशोधन पेश हो जाना चाहिये। परन्तु यह संशोधन किसी संशोधन सम्बन्धी संशोधन पर नहीं है। यह केवल एक संशोधन पर रखा गया है।

डा. अम्बेडकर के नाम से एक और दूसरा संशोधन भी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1916 से 1919 तक के संशोधनों के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में, 'बीस हजार रुपये' शब्दों के बाद 'या ऐसी किसी अन्य राशि से जो इसके बारे में संसद विधि द्वारा निर्धारित करे' शब्द रखे जायें।''

***श्री एम. थीरूमल राव:** इस खंड पर गत दिन जो बहस हुई वह सभा की बैठक के आखिरी दिन हुई और वह दिन वकीलों का दिन रहा। हम तो यह समझते थे कि संघ न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों पर शायद केवल वकीलों को ही वाद-विवाद में भाग लेने दिया जायेगा। यहां इन प्रावधानों पर होने वाली बहस की जो रिपोर्ट समाचार-पत्रों में निकली है उसको पढ़ने से तो ऐसा मालूम होता है कि इस बहस में उन्हीं लोगों को मौजूद रहने की गुंजाइश है जो किसी दीवानी मामले में वादी या प्रतिवादी अथवा जो किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त या अपराधी की हैसियत से आवें। पर मैं आपके सामने खड़ा हो रहा हूं चन्द बातें कहने के लिये केवल एक अनभिज्ञ नागरिक और करदाता की हैसियत से जिसे विधि प्रशासन में कुछ दिलचस्पी है।

मुझे इस बात से अवश्य ही कुछ आश्चर्य हो रहा है कि डा. अम्बेडकर जैसे प्रशान्त गम्भीर एवं समझदार व्यक्ति, जो एक प्रख्यात वकील होने के साथ ही कानून शास्त्र का एक प्रकाण्ड वेत्ता भी है। आखिर कैसे फुसलाने में आकर राजी हो गये और उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के बारे में विस्तार की बातों को विधान में रखना उन्होंने मंजूर कर लिया। शायद श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और माननीय मित्र श्री मुंशी जैसे प्रख्यात वकीलों के कहने पर ही आपने ऐसा किया है। सर अल्लादी व्यवहार के एक प्रख्यात वकील हैं। श्री मुंशी ने अपनी बाबत खुद मंजूर किया है कि वह व्यवहार और आपराधिक (दीवानी और फौजदारी) दोनों ही मामलों में वकील हैं। इन धुरंधर वकीलों की राय कुछ भी हो, पर एक अनाड़ी नागरिक तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकता कि संघ न्यायालय की शक्तियों के बारे में इतनी विस्तार की बातों को विधान में लिपिबद्ध करने की कोई जरूरत है। विधान में, उस सम्बन्ध में क्या प्रावधान रखे जायें, इसके बारे में अभी उस दिन जो वाद-विवद हुआ है, जिसमें विशेषज्ञों ने भाग लिया है, वह अवश्य ही बड़ा पांडित्यपूर्ण रहा है, विस्तार की बातों पर इतना अधिक विचार किया गया कि उच्चतम न्यायालय में व्यवहार विषयक मामले किस रकम तक के लिये जायें इसकी भी लोगों ने एक सीमा निर्धारित कर दी और श्री ठाकुरदास भार्गव के इस संशोधन पर कि आपराधिक मामलों की हर अपील उच्चतम न्यायालय में जा सकती है, बड़ा ही मनोरंजक वाद-विवाद हुआ था। यह नहीं समझ में आ रहा है कि आखिर हमारी प्राचीन सभ्यता

में जो न्याय की व्यवस्था थी जो प्रथा थी, उससे हटना क्यों हमारे लिये जरूरी है। दुनिया के विभिन्न विधानों की नकल करके तो हमने अपना विधान तैयार किया है। किस तरह का विधान और किस तरह की न्याय व्यवस्था रखना देश की परम्परा और प्रकृति के अनुकूल होगी, इसका कोई सही चित्र किसी के दिमाग में भी नहीं उपस्थित दिखाई देता है।

गत शताब्दि में जब यहां अंग्रेजों की हुकूमत थी, न्याय पाने में इतना समय लगता था कि वह न पाने के ही बराबर था। देश में जो खूब धनी होते थे वही लोग न्याय खरीद सकते थे। गरीब आदमी तो इन्साफ पा ही नहीं सकता था। उसकी कोई सुनने वाला न था। ग्राम पंचायतों की व्यवस्था अब समाप्त कर दी गई है। न्याय फौरन मौके पर मिल जाये, अब यह बात ही नहीं रह गई है। अब तो न्यायालयों का एक बड़ा जाल बिछ गया है पर इन न्यायालयों में वे ही जा सकते हैं जो धनी हैं। आप जितने ही धनी होंगे उतना ही अधिक मौका आपको मिलेगा कि इन न्यायालयों में जाकर गरीबों के खिलाफ लड़ें और सफलता प्राप्त करें।

मद्रास हाईकोर्ट में कई बड़े दिलचस्प मामलों को देखने का मौका हमें खुद मिला है। एक जमींदार के जन्म को लेकर एक मामला चला। मामला शुरू हुआ था उस समय जबकि वह 6 वर्ष का था। पर वह व्यक्ति छोटी से छोटी अदालत से लेकर बड़ी से बड़ी अदालत, यहां तक कि प्रिवी कौंसिल तक इस मामले को लेकर दौड़ता रहा पर उसका फैसला न हो पाया यानी इस बात का फैसला कहीं भी न हो पाया कि पिता का वही जायज और वास्तविक पुत्र है या नहीं। 50 साल तक वह जमींदार मामला लड़ता रहा और यह निर्णय न हो सका कि वास्तविक और जायज सन्तान वह था या नहीं और अन्ततोगत्वा न्यायालय को पिता के वसीयत-नामे पर ही निर्भर करना पड़ा जिसमें उसने सारी सम्पत्ति उस जमींदार को दे रखी थी। सौभाग्य से कांग्रेस सरकार ने जमींदारी प्रथा उठा कर उसे अब इन झगड़ों से मुक्त कर दिया है। ऐसे भी परिवार आपको मिलेंगे जिसमें एक मुकदमा तीन-तीन पीढ़ियों तक चलता रहा। पिता ने मुकदमा शुरू किया और उसका पुत्र उसे लड़ता रहा और अब उसका पौत्र मामले को लड़ रहा है। परिवार मामले को लड़ते-लड़ते कंगाल हो गया। यही तो है अपनी प्रचलित न्याय-व्यवस्था जिस पर यहां कानूनी पंडित लोग बहस कर रहे हैं। आप लोग यहां यह बहस कर रहे हैं कि अपने विधान का स्वरूप क्या है।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अवश्य ही एक मनोरंजक वक्तृता दे रहे हैं पर विचाराधीन अनुच्छेद से तो इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री एम. थीरूमल रावः** अनुच्छेद का विरोध करने का मुझे अधिकार प्राप्त है पर मैं उस अधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहता हूं। विधान में जिस तरह की बातों का समावेश किया जा रहा है और उसमें विस्तार की जो सभी बातें भरी जा रही हैं उस पर मैं अपना असंतोष मात्र व्यक्त करने के लिये खड़ा हुआ हूं। दुनिया के अनेक विधान हम सबने देखे हैं। आयरिश विधान बड़ा ही संक्षेप में है और उस में न्याय व्यवस्था और प्रशासन के सम्बन्ध में उतने अधिक प्रावधान नहीं रखे गये हैं जितना कि आप अपने विधान में भर रहे हैं और उसे...

***अध्यक्ष:** इस समय हम इस प्रश्न पर नहीं विचार कर सकते हैं कि विधान उसी रूप में रखा जाये जिसमें कि इसका प्रारूप तैयार किया गया है अथवा अन्य किसी रूप में।

***श्री एम. थीरूमल राव:** मेरा मंतव्य यह है श्रीमान्, कि अपने विधान को हमें विस्तार की इन बातों से बोझिल न बना देना चाहिये। इन विस्तार की बातों को संघ न्यायालय और विभिन्न न्यायालयों को क्या-क्या शक्तियां प्राप्त रहेंगी, इसे हमें देश के विधान-मंडल पर छोड़ देना चाहिये। वही इसके सम्बन्ध में व्यवस्था करेंगे। बस यही मेरा कहना है।

***अध्यक्ष:** इस आशय का कोई संशोधन तो नहीं पेश हुआ है।

***श्री एम. थीरूमल राव:** डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है उसमें कहा गया है कि संघ न्यायालय को क्या शक्ति प्राप्त रहेंगी। इसका निश्चय संसद विधि द्वारा करेगी। विधान में इन शक्तियों को लिपिबद्ध करना आवश्यक नहीं है इसी बात का मैं समर्थन करना चाहता हूं।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं। मैं उसका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि न केवल सभा के अन्दर बल्कि सभा के बाहर भी, बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका मत यह है—अवश्य ही उन्होंने अपने मत को व्यक्त नहीं किया है, उसे मूक रखा है—कि अपने देश का विधान यथासम्भव सरल होना चाहिये और न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में इतनी कानूनी बारीकियां न रख देनी चाहिये कि उसके परिणामस्वरूप गरीब न्याय पाने से ही वंचित रह जायें। मैं यह आग्रह करूंगा कि सभा को कानूनी विस्तार की बातों में न पड़ना चाहिये। उन्हें विधानमंडल पर छोड़ देना चाहिये कि जैसा जरूरी समझे निश्चय करे।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमती जी. दुर्गाबाई के संशोधन के प्रति मेरी सहानुभूति है और उसका मैं समर्थन करना चाहूंगा। यद्यपि उन्होंने अपने संशोधन को यहां पेश नहीं किया है पर श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने उसके सम्बन्ध में संशोधन रख कर उनकी ही बात सभा के समक्ष रख दी है।

अनुच्छेद 111 अगर ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है और उसमें यह उल्लेख नहीं कर दिया जाता है कि संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन रहते हुए उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है तो विधान के अनुसार अपील करने का अधिकार मिल जायेगा और अगर आगे चलकर अपील विषयक प्रक्रिया में या तत्सम्बन्धी अधिकार में कोई परिवर्तन करना हो तो वह तभी किया जा सकेगा जबकि विधान में संशोधन किया जाये। इसलिये ऐसी व्यवस्था का रखना वांछनीय नहीं हो सकता है। व्यवस्था कठोर न होकर लचीली होनी चाहिये जब तक संसद इस सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करेगी अपीलों के सम्बन्ध में जो वर्तमान व्यवस्था है वही चलती रहेगी पर इस बात का कोई भी कारण नहीं है कि सभी अपीलों के संबंध में एक सी व्यवस्था कर दी जाये और विधान में इसको लिपिबद्ध किया जाये। इस अंश में अपना यह अनुच्छेद 111 अवश्य ही प्रतिगामी है। उस आरम्भिक काल से, जब से कि उच्च न्यायालयों की स्थापना के लिये राजाज्ञा निकाली गई थी, अब तक के अपने विधि निर्माण सम्बन्धी अधिकारों के इतिहास का अवलोकन कीजिये तो पता चलेगा

कि भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार उस समय भी जबकि विधानमंडल के लिये निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्था नहीं की गई थी, सपरिषद् गवर्नर जनरल के विधि निर्माण विषयक सामान्य क्षेत्राधिकार के अधीन था। आज भी व्यवहार प्रक्रिया-संहिता (Civil Procedure Code) के उपबंधों के अनुसार, प्रिवी कौंसिल में की जाने वाली अपील भारत के केन्द्रीय विधानमंडल के क्षेत्राधिकार के अधीन है, धारा 109 के अनुसार, प्रिवी कौंसिल को अपील, सम्राट की सरकार द्वारा निकाले गये परिषद् के आदेश के अधीन होगी। अवश्य ही डोमिनियन एक्ट के पास होने के पहले की बात मैं कह रहा हूं। सम्राट की सरकार द्वारा निकाले गये परिषद् के आदेश के अधीन वाली व्यवस्था भी एक लचीली व्यवस्था है और संसद के हस्तक्षेप के बिना भी, उसमें परिवर्तन किया जा सकता है क्योंकि प्रिवी कौंसिल को उस पर क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उसी के अधीन परिषद् के आदेश निकाले जाते हैं।

डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है वह अवश्य ही एक समुचित संशोधन है, यद्यपि, मेरे मत से वह उतना आगे नहीं जाता है जितना कि जाना चाहिये। पर उससे कम से कम एक दोष अवश्य दूर हो जाता है। विवादग्रस्त विषय की राशि या मूल्य की एक सीमा मूल अनुच्छेद 111 (क) में निर्धारित कर दी गई थी और उससे कम राशि के मामलों की अपील उच्चतम न्यायालय में न हो सकती थी। पर संशोधन के अनुसार संसद विधि द्वारा जो भी राशि निर्धारित करेगी उस राशि तक के मामलों पर अपील की जा सकती है। पर मेरी अनुभूति यह है कि समूचा अनुच्छेद भारत के भावी संसद के अधिकारक्षेत्र के अधीन रहना चाहिये और कोई कारण नहीं है कि इस सम्बन्ध में संसद के विवेक पर आप कोई प्रतिबंध लगा दें। इस सम्बन्ध में मेरी अपनी अनुभूति तो यही है पर यह मैं अवश्य अनुभव करता हूं कि अगर सर्वस्व जाता हो तो आधे पर ही संतोष कर लेना चाहिये। इसलिये डा. अम्बेडकर जो प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (क) को संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रखने पर राजी हो गये हैं। यह अच्छा है। पर मैं चाहता यह था कि वह कुछ और आगे बढ़ते और इस समूचे अनुच्छेद को भारत के भावी संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन कर देते। न्याय शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश प्रणाली से ही हमने बहुत कुछ अपनाया है अत: मैं उन लोगों में एक हूं जो यह समझते हैं कि न्याय प्रशासन सम्बन्धी व्यवस्थाओं को अधिक लचीली बना कर ताकि वह देश की आर्थिक अवस्था के अनुकूल हो सकें, न्याय प्रशासन में काफी सुधार किया जा सकता है। इंग्लैंड में अपीलों का श्रेणी विभाजन कर दिया गया है और वहां के कानून विज्ञान के अनुसार यह एक स्वाभाविक बात हैं पर इंग्लैंड एक बड़ा धनी देश है और वहां की जनसंख्या कुल चार करोड़ है। तीस करोड़ की आबादी वाले हमारे गरीब देश से कहीं अधिक सम्पत्ति उस देश में हैं अवश्य ही इस बात की गारंटी होनी चाहिये कि हर व्यक्ति की न्याय मिलेगा, हर आदमी के साथ ठीक-ठीक इन्साफ किया जायेगा और उसकी ठीक-ठीक सुनवाई होगी पर समुचित न्याय प्रशासन के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि अपीलों का श्रेणी विभाजन किया जाये। अगर गलत न्याय हो गया है, अगर कोई प्रक्रिया सम्बन्धी गम्भीर त्रुटि रह गई है और अगर न्याय के सम्बन्ध में कोई बुनियादी गलती हो गई है तो अवश्य ही देश के उच्चतम

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

न्यायालय को उसमें दखल देना ही चाहिये। प्रान्तों में आखिर कालेजियट कोर्टों की स्थापना क्यों न कर दी जाये जिससे उच्च न्यायालयों का दखल कम हो जाये और उच्चतम न्यायालय केवल ऐसा न्यायालय रहे जहां वही मामले जायें जिनके निर्णय में पहले कहीं गलती रह गई है और वहां वह ठीक कर दी जाये। पर मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह सारे सुधार अभी शीघ्र ही कर दिये जायें। मैं जो चाहता हूं वह यह है कि अपीलों के सम्बन्ध में जो वर्तमान उपबंध हैं उनको रहने दीजिये पर उन्हें संसद के अधिकार क्षेत्र के अधीन कर दीजिये ताकि अगर कोई विशेष समिति नियुक्त की जाये और वह न्याय प्रशासन सम्बन्धी व्यवस्था के प्रश्न पर विचार करे तो सभी आवश्यक सुधार देश की न्याय प्रशासन व्यवस्था में चालू किये जा सकें।

माननीय मित्र श्री थीरूमल राव ने वकीलों के विरुद्ध यहां एक कटाक्ष किया है। उनका ऐसा करना सर्वथा अनावश्यक था क्योंकि ऐसे भी वकील हैं जो उदार दृष्टिकोण रखते हैं और स्वहित से अधिक ख्याल रखते हैं समाज के हित का और अनाड़ी लोगों में ऐसे भी आदमी आपको मिलेंगे जो वकीलों से भी ज्यादा कानूनी दांव पेच रखते हैं। मैं तो यह देखता हूं कि जो अनाड़ी हैं कानून नहीं जानते हैं उनमें कानूनी दांव पेच पर भरोसा रखने की प्रवृत्ति जितनी अधिक मात्रा में वर्तमान है उतनी वकीलों में नहीं जो समाज के हित का स्वहित से अधिक ख्याल रखते हैं और दुनिया के समुन्नत विचारों के आधार पर ही चलने का ख्याल रखते हैं इसलिये उनका यह भाषण सर्वथा अनावश्यक था। अनुच्छेद 111 को जो दुर्भाग्यवश हमें यहां लिपिबद्ध करना पड़ा है उसका कारण यह है। अपीलों की बाबत विस्तार की बातों का बिना उल्लेख किये, फेडरल न्यायालय या प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार का यहां सामान्य उल्लेख किया जा सकता था और उसे संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रखा जा सकता था। पर सभा को मालूम ही है कि जब यहां संसद विषयक विशेषाधिकारों की चर्चा चली तो किस तरह का वाद-विवाद चल पड़ा था। अगर आप उस क्षेत्राधिकार पर दृष्टिपात करें जो अब तक भारत के अथवा इंग्लैंड के विभिन्न कानूनों के अधीन प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थे, तो सम्भव है आप यह महसूस करें कि इससे सभा की मर्यादा में कमी आ जाती है। इस प्रश्न को लेकर कि इस संविधान में संसद के क्षेत्राधिकार का, उसकी शक्तियों और विशेषाधिकार का उल्लेख करना क्या ठीक है, अभी समाचार पत्रों में और सभाओं के द्वारा बड़ा गंभीर वाद-विवाद चल चुका है पर यह बात मेरी समझ में नही आती है कि आखिर उन्हें और सरल कैसे बनाया जा सकता हैं। अनुच्छेद 111 में वर्तमान व्यवस्था का उल्लेख किया जा सकता है और यह उपबंध रखा जा सकता है कि संसद निर्मित विधि द्वारा इस व्यवस्था में सुधार, संशोधन या परिवर्तन किया जा सकता है। यही कारण है जिनसे प्रेरित होकर डा. अम्बेडकर के संशोधन को मैं स्वीकार कर रहा हूं क्योंकि मैं चाहता यही हूं कि डा. अम्बेडकर कुछ और आगे बढ़ कर यहां यह लिखते कि यह सभी बातें संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रहेगी।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): गत तीन दिनों से श्रीमान्, जब से कि यहां संघीय न्याय मंडल सम्बन्धी अध्याय पर बहस चल रही है मैं एक बड़ी खिन्नता का अनुभव कर रहा हूं। बहस की प्रतिक्रिया मुझ पर यह हुई कि मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन का पहले तो विरोध करना चाहता था पर अब श्री अल्लादी कृष्णास्वामी की वक्तृता

सुनकर तो दिमाग और भी उलझन में पड़ गया और मेरी खिन्नता बढ़ गई। हमारे विदेशी शासकों ने हमारे लिये कुछ भी न छोड़ा। हमारा सारा खून उन्होंने चूस लिया और चन्द वकील हम लोगों में छोड़ गये जो यहां या बाहर न्याय प्राप्ति के लिये कानून का भाष्य करते हैं। बचपन में अक्सर मैं कलकत्ता से गुजरा करता था और वहां के पुराने सचिवालय, राइटर्स बिल्डिंग में न्यायतुला (Scales of Justice) को देखता था। पर यही एक न्यायतुला ही विदेशी शासक यहां छोड़ गये हैं ऐसी कोई व्यवस्था वह नहीं छोड़ गये हैं जिससे वास्तविक न्याय प्राप्त हो सके। मैं नहीं समझ पाता कि मेरे वकील मित्र क्यों ब्रिटिश प्रणाली के अधीन होने वाले न्याय निर्वचन के प्रति इतने मुग्ध हैं। न्याय के सम्बन्ध में जो भारतीय कल्पना है उसके अनुसार इस मध्यवर्त्ती परिवर्तन काल में हम सद्यः सोचना न शुरू कर पाये इसे मैं एक दुर्भाग्य की बात समझता हूं। न्याय के सम्बन्ध में भारतीय कल्पना यह है कि न्याय सत्य पर आधृत होना चाहिये। हमारे पुराने ब्रिटिश शासक, जो न्याय सम्बन्धी निर्वचन यहां विरासत के रूप में छोड़ गये हैं वही अब, चाहे उच्च न्यायालय हो या उच्चतम न्यायालय हो, सर्वत्र प्रयुक्त होंगे। उन सब बातों के कारण श्रीमान्, मैं बड़ी ही खिन्नता का अनुभव कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि इस अध्याय में केवल तीन या चार अनुच्छेद रखे जाते और उनमें ही डाक्टर अम्बेडकर, न्याय व्यवस्था सम्बन्धी सभी बातें इस तरह से रख देते कि हर आदमी को न्याय पाना सुलभ हो जाता। पर हमने जो उपबंध रखे हैं उनके अनुसार तो एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में अपील की जायेगी और अन्ततोगत्वा उच्चतम न्यायालय में पहुंच कर ही उसका अन्तिम निर्णय हो सकता है। अब माननीय मित्र डा. अम्बेडकर एक या दो और अनुच्छेद जोड़ने का प्रस्ताव रख रहे हैं जिनके अनुसार आपराधिक मामलों की अपील भी उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है। ऐसी हालत में जन साधारण को आखिर न्याय कैसे सुगमता से मिल सकता है? जो व्यवस्था यहां रखी जा रही है उनमें क्या किसी को न्याय प्राप्त होगा? इससे तो यही होगा कि एक का पैसा दूसरे के पॉकेट में पहुंच सकेगा। यह कमाई ऐसी नहीं होगी जो उत्पादन मूलक कही जा सके। अगर हमारा पैसा श्री अल्लादी या डा. अम्बेडकर की जेब में चला जाये तो यह कमाई उत्पादन मूलक थोड़े ही कही जायेगी? यह तो अनुत्पादक धन होगा, प्रिवी कौंसिल में अपीलें करके न जाने कितने ही परिवार बरबाद हो गये। उनकी सारी सम्पत्ति उन वकीलों की जेब में पहुंच गई जो प्रिवी कौंसिल में उनके मामले की वकालत कर रहे थे।

आशा है माननीय मित्र डा. अम्बेडकर तथा सभा के अन्य विधि विशारद लोग यहां ऐसी व्यवस्था करेंगे जिसमें बिना खर्च लोगों को न्याय प्राप्त हो सके। ऐसा कीजिये कि मुकदमों में पक्ष प्रतिपादन के लिये वकीलों को आवश्यकता ही न रह जाये और आप देखेंगे कि मुकदमेबाजी बिल्कुल ही कम हो जायेगी। पर मैं नहीं समझता कि इसके लिये कोई भी व्यक्ति प्रयास करेगा। वकीलों का हमारे देश में प्राबल्य है। हम उस वर्ग के प्रति कृतज्ञ है क्योंकि देशभक्तों की प्रथम पंक्ति में यही वर्ग था जिसने हमें यह बतलाया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये हमें किस तरह आन्दोलन चलाना चाहिये। अवश्य ही हम इस वर्ग के प्रति कृतज्ञ हैं। यह विचारकों और विद्वानों का वर्ग है। किन्तु आज मैं इससे इस बात की अपील करूंगा कि सोच विचार कर वह एक ऐसा उपाय सुझावें जिससे न्याय प्राप्ति में खर्च कम लगे। इस विधान में कहीं भी यह प्रावहित नहीं किया गया है कि मुकदमें के खर्च में कमी लानी चाहिये। उस दिन यहां जिस तरह से बहस हुई और जिम्मेदार सदस्यों ने जो यह कहा कि अगर हर आपराधिक ममाले को अपील की

[श्री बी. दास]

उच्चतम न्यायालय में सुनवाई होगी तो उसके लिये सैकड़ों न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी, उससे मुझे बड़ी बेचैनी हुई। अगर सत्य के आधार पर ही न्याय होना है तो प्रथम न्यायालय में अथवा दूसरे न्यायालय में जहां उसकी अपील की गई हो, मामले का फैसला हो जाना चाहिये और उससे आगे मामला जाना ही न चाहिये। उच्च न्यायालय के निर्णय पर सन्देह क्यों किया जाये और बार-बार अपील करने का प्रावधान हम क्यों करें? उच्च न्यायालयों में महिलायें भी अब शीघ्र ही न्यायाधीश के रूप में काम करने लग जायेंगी। यह सभी व्यवस्थायें मुझे अशांत कर रही है। एक साधारण नागरिक की हैसियत से मैं यह महसूस करता हूं कि यह न्याय न्याय नहीं है जिसको पाने में परिवार के परिवार बर्बाद और तबाह हो जायें, जो एक ऐसे नये वर्ग का सृजन कर दे जो भारतीय जनता की रोटियों पर जीवन निर्वाह करे। यहां मेरा इशारा वकील-वर्ग की ओर है। न्याय सबको सुगमता से प्राप्त हो सके उसके लिये कुछ न कुछ व्यवस्था करनी ही चाहिये। आज राष्ट्रपिता हमारे बीच नहीं हैं। अगर वकील वर्ग राष्ट्रपिता के प्रति सच्ची वफादारी रखता है तो उसे यहां कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे न्याय प्राप्ति में कम से कम खर्च बैठे।

मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि उच्चतम न्यायालय के काम में संसद को दखल न देना चाहिये। जब हमने उच्चतम न्यायालय रखने का फैसला कर लिया है यद्यपि मैं इसके विरुद्ध हूं कि वहां न्याय पाने में अधिक खर्च बैठे पर इस न्यायालय के पक्ष में हूं। तो हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि इस न्यायालय के न्याय का स्तर उच्चतम रहे और संसद उसके कार्य में हस्तक्षेप न करे। आखिर न्याय प्रशासन की हमें क्या जानकारी है, जो उच्चतम न्यायालय के नियंत्रण के लिये हम विधि बनावें? उच्च और उच्चतम न्यायालय के प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों का निर्माण हम क्यों करें? फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन के प्रतिक्रिया सम्बन्धी नियमों को तो हम लोग नहीं बनाते हैं। इस बात के लिये तो हम लोग नियम नहीं बनाते हैं कि भारतीय संसद द्वारा स्वीकृत व्यय को महालेखा-परीक्षक किस तरह नियंत्रित रखेंगे? मेरा कहना यह है कि संसद को आवश्यकता से अधिक संदिग्ध न होना चाहिये और उच्च तथा उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों पर उसे किसी अधिकार का प्रयोग न करना चाहिये।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 1912 का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): यह संशोधन तो अभी पेश ही नहीं हुआ है।

***अध्यक्ष:** शुक्रवार को ही यह पेश हो चुका है।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** उस संशोधन में यह कहा गया है कि ''except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule'' शब्दों को हटा दिया जाये। अपनी बातें केवल इसी संशोधन तक ही मैं सीमित रखना चाहता हूं। खंड का जो

वर्तमान स्वरूप है उसमें यह अनुच्छेद केवल प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में लागू हो सकेगा। पर अगर ये शब्द हटा दिये जाते हैं तो प्रदेश सम्बन्धी जो नियंत्रण है वह उठ जायेगा। पर इस सम्बन्ध में मैं बताना चाहता हूं कि केवल इन शब्दों को हटा देना ही अपने प्रयोजन के लिये पर्याप्त नहीं है। इतने से ही उच्चतम न्यायालय को भारतीय रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की सुनवाई की शक्ति न प्राप्त हो सकेगी। अपने अभिप्राय को समझाने के लिये, संक्षेप में, मैं भारतीय रियासतों की वर्तमान स्थिति कर यहां दिग्दर्शन करा देता हूं। कभी-कभी यह कहा जाता है कि रियासतें बड़ी पिछड़ी हुई हालत में हैं वहां प्राय आज भी आदिम स्थिति ही वर्तमान है। वहां न्याय प्रशासन की कोई व्यवस्था नहीं है—इत्यादि इत्यादि। आमतौर पर सभी रियासतों के सम्बन्ध में जो यह बात कह दी जाती है वह बिल्कुल गलत है और इससे रियासतों की स्थिति के सम्बन्ध में एक गलत धारणा पैदा हो जाती है। प्रथम अनुसूची के भाग तीन में उल्लिखित अधिकांश रियासतों में एक सुव्यवस्थित उच्च न्यायालय वर्तमान है और न्याय प्रशासन की एक सुन्दर व्यवस्था काम कर रही है, परन्तु भारतीय रियासतों का जो विधान है उसके अनुसार रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध कोई अपील प्रिवी कौंसिल में नहीं की जा सकती है। अधिकांश रियासतों में एक न्यायिक समिति नियुक्त कर दी गई थी जो वहां के उच्च न्यायालय से आई हुई अपीलों पर सुनवाई करती थी। यह सच है कि छोटी-मोटी रियासतों में न्याय प्रशासन की वैसी कोई व्यवस्था नहीं वर्तमान है जैसी कि प्रान्तों में है और वहां हाईकोर्ट भी नहीं है। पर वहां नागरिक आसानी से शासक के पास प्रवेश पा जाते थे और इस व्यवस्था से अधिशासी वर्ग पर एक आयंत्रण बना रहता था। अधिकांश मामलों में शासक से फौरन न्याय प्राप्त हो जाता था और इस व्यवस्था से उन प्रदेशों का काम चल जाता था और कुछ प्रदेशों में जहां शासक का अधिकार क्षेत्र सीमित प्रदेश पर था, वस्तुत: इस व्यवस्था से उत्तम न्याय प्राप्त हो जाता था क्योंकि न्याय प्राप्ति में देर नहीं लगती थी। कहा भी है कि न्याय प्राप्ति में देर होना न्याय न मिलने के बराबर है। प्रान्तों में विशेष करके व्यवहार विषयक मामलों में जिस तरह से न्याय किया जाता है उसमें इतना विलम्ब लगता है और इतनी जटिलतायें आती हैं कि उसको लेकर हिन्दी में यह कहावत चल पड़ी है:

जो दिवानी में जाता है वह दीवाना हो जाता है।

इस कहावत से आपको वस्तुस्थिति का सही अन्दाज मिल जायेगा। पर जब से रियासतों को मिला कर संघ बना दिये गये हैं, वहां की हालत बदल गई है। छोटी-मोटी रियासतें तो अब समाप्त कर दी गई हैं और यह होना ही चाहिए था पर यह जरूर है कि जनता को पहले वहां तुरन्त न्याय मिल जाता था और अब न्याय-प्रशासन की कोई भी कार्यकारी व्यवस्था उनके लिये नहीं रह गई है। राज्यों में न्यायिक समितियां स्थापित भी की गई थी पर अधिकांश राज्यों में यह समितियां भी समाप्त हो गई हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वहां प्रिवी कौंसिल में अपील नहीं की जा सकती है और उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की कोई व्यवस्था नहीं है। सो यह त्रुटि जरूर रह गई है। अधिकांश रियासती संघों के विचारशील लोग यह चाहते हैं कि वहां उनके उच्च न्यायालय प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के स्तर पर ला दिये जायें और उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था कर दी जाये। अभी हाल में उन्हीं रियासती संघों में से एक में वकीलों

[श्री वी.एस. सर्वटे]

की एक कांफ्रेंस हुई थी जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा इसकी सिफारिश की गई थी संघवर्ती उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील की व्यवस्था होनी चाहिए और उच्च न्यायालयों को कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्र कर देना चाहिये। अब मेरा कहना यह है कि इन शब्दों को हटा देने से यह होगा कि इस अनुच्छेद के आधार पर, प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध तो अपील करने की गुंजाइश हो जायेगी पर भारतीय संघ में प्रविष्ट होने वाली रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील न की जा सकेगी। मेरी समझ से तो उसके लिये एक और उपबंध रखना होगा जिससे इन रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके और इस उपबंध को रखने के तीन रास्ते हैं। अधिकांश रियासती संघों के संघी-पत्रों में एक खंड इस आशय का है कि वहां एक संविधान सभा संगठित की जायेगी। संविधान सभा संविधान में यह प्रावधान कर सकती है कि उनके उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। एक रास्ता तो यह हो सकता है। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि नये संधि-पत्र के अनुसार, जिसके आधार पर रियासतें संघबद्ध हुई है। संसद को ऐसी विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है जो सूची 1 में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में रियासतों के लिये लागू होंगे। इस सूची में एक विषय ऐसा भी है जिससे न्यायिक न्यायालयों की शक्ति के सम्बन्ध में कानून बनाने का संसद को अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस तरह, इस संधिपत्र के अधीन संसद ऐसा कानून बना सकती है जिसके आधार पर भारतीय संघ में प्रविष्ट होने वाली रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके। तीसरा उपाय यह हो सकता है कि विधान में ही इसके लिये आप एक प्रावधान रख दीजिये। पर भाग 6, जिसमें कि प्रान्तीय उच्च न्यायालयों की रचना के बारे में व्यवस्था की गई है, वह रियासतों के लिये लागू नहीं होता है। यह कठिनाई जरूर है। इसके लिये भाग 6 के प्रारम्भिक अंश में अर्थात् अनुच्छेद 128 में ''यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में 'राज्य' का अर्थ प्रथम अनुसूची में भाग 1 में उस समय उल्लिखित रहा राज्य होगा'' इस पद संहति में आवश्यक सुधार कर देना होगा ताकि प्रविष्ट राज्यों के उच्च न्यायालयों पर यह भाग लागू हो सके या फिर एक नया भाग रख कर इसी आशय का प्रावधान वहां कर देना होगा।

मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि इस संशोधन नं. 1912 के फलस्वरूप अनुच्छेद 113 को हटा देना होगा क्योंकि इसमें, भारतीय संघ में प्रविष्ट होने वाले राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था रखी गई है और प्रस्तुत संशोधन के पास होने पर इस अनुच्छेद की फिर कोई आवश्यकता न रह जायेगी। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 112 में ''except the States for the time being specified etc.'' जो शब्द आये हैं उन्हें भी हटा देना होगा इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि हमें एक ऐसा प्रावधान रखना ही होगा जिसके द्वारा भारतीय संघ में प्रविष्ट रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार मिलता हो क्योंकि अनुच्छेद 112 से इन शब्दों को हटा देने मात्र से उच्चतम न्यायालय को ऐसी अपीलों की सुनवाई का अधिकार न प्राप्त हो जायेगा। और अनुच्छेद 113 को हमें हटा देना होगा और उसी तरह का संशोधन हमें अनुच्छेद 112 में भी कर देना होगा।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का मैं समर्थन करती हूं और उसे स्वीकार करती हूं पर इस सिलसिले में विचाराधीन विषय के बारे में मैं चन्द बात कह देना चाहती हूं। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन में जो सिद्धांत सन्निहित है उससे मेरा पूर्णत: मतैक्य हैं। इसी आशय के एक संशोधन की सूचना मैंने भी दे रखी थी पर उसे मैंने पेश नहीं किया। पर जैसा कि मैंने कहा है, उस संशोधन के पीछे जो सिद्धांत है उससे मैं सर्वथा सहानुभूति रखती हूं। विचाराधीन इस अनुच्छेद में उन सभी शर्तों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है जिनके पूरा होने पर ही उच्च न्यायालयों के निर्णयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। अवश्य ही सभा जानती है कि इस अनुच्छेद में क्या बातें रखी गई हैं। अनुच्छेद 111 के उपखंड (क), (ख) और (ग) में उन सभी शर्तों का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद का प्रभाव यह होता है कि अपील के सम्बन्ध में जो शर्तें रखी गई है। वह संविधान का अंग बन जाती हैं। मुझे विश्वास है कि सभी इससे सहमत होंगे कि अपील के लिये जो व्यवस्था रखी जाये वह ऐसी हो जो लचीली हो। पर इन शर्तों को अगर हम विधान में लिपिबद्ध कर देते हैं, जैसा कि प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखंड (क), (ख) और (ग) के द्वारा हमने किया है, तो उससे व्यवस्था में कठोरता आ जाती है और केवल उन शर्तों की पूर्त्ति पर ही अपीलें उच्चतम न्यायालय में की जा सकती हैं। इसलिए मेरे संशोधन का, जिसे कि मैंने पेश नहीं किया, अथवा प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का अभिप्राय यही है कि इस व्यवस्था में लोच रहने दिया जाये और शर्त्त सम्बन्धी बातों को भावी संसद पर छोड़ दिया जाये और वह अगर नितान्त आवश्यक समझे तो इनके सम्बन्ध में विधि बनावे। इन शर्त की बातों को अगर हम विधान में लिपिबद्ध कर देते हैं और आगे चल यदि इनमें कोई परिवर्तन करने की जरूरत पड़ी तो वह परिवर्तन विधान में संशोधन करके ही किया जा सकता है। इसलिये, मुझे विश्वास है कि सभा कठिनाई को अब समझ गई होगी और उसके ध्यान में यह बात आ गई होगी कि प्रस्तुत संशोधन में जो यह कहा गया है कि इस मसले को भावी संसद पर छोड़ दिया जाये वह इसी अभिप्राय से है कि व्यवस्था में लोच आ जाये और शर्तों के बारे में आगे परिवर्तन किया जा सके।

फेडरल कोर्ट इंलार्जमेंट आफ जुरिसडिक्शन एक्ट, के पास होने के पूर्व, अपील सम्बन्धी शर्तों का अनियमन व्यवहार प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) द्वारा अथवा सपरिषद् सम्राट द्वारा निकाले गये आदेशों के द्वारा हुआ करता था। व्यवहार प्रक्रिया संहिता में संसद द्वारा संशोधन किया जा सकता था। इसलिये जिन मित्रों ने यह कहा है कि संसद का हस्तक्षेप इसमें न होना चाहिये, उनको, उत्तर में मैं यह कहूंगी कि यह कोई नई बात नहीं रखी जा रही है और संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन जो इन सब बातों को रखा जा रहा है वह कोई नई बात नहीं है, क्योंकि संसद तो पहले भी हस्तक्षेप कर सकती थी और व्यवहार-प्रक्रिया संहिता में जिसके अनुसार कि अपील सम्बन्धी शर्तों का अनियमन होता है, कानून द्वारा संशोधन कर सकती थी। इसलिये यह बहुत ही अच्छा होता श्रीमान्, अगर ऐसी ही व्यवस्था यहां भी अपनाई जा सकती। और फिर मुझे यह भी विश्वास है कि सभा के ध्यान में यह तथ्य भी अवश्य आ गया है कि आज जो स्थिति वर्तमान है वह उससे कहीं भिन्न है जो कुछ साल पहले यहां थी। आज अवस्था सर्वथा बदल गई है क्योंकि हम देख ही रहे हैं कि बहुसंख्यक रियासतें अब भारतीय प्रशासन के अधीन

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

आती जा रही हैं और यह भी प्रश्न हमारे सामने है कि उच्चतम न्यायालय को एक ऐसा न्यायालय का रूप क्यों न दे दिया जाये जहां देश भर के न्यायालयों की अपीलें अन्तिम रूप से विचारार्थ आवें और फिर यह भी विचार हो रहा है कि इनके अधिकार क्षेत्र को तथा राज्यों के अधिकार क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया जाये। माननीय मित्र श्री राजबहादुर सिंह ने जो संशोधन रखा है उससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है और मुझे विश्वास है सभा उनके संशोधन को स्वीकार करेगी। इस संशोधन का प्रभाव यह होगा कि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को जो केवल प्रान्तों तक सीमित रखा गया है, वह बात न रह जायेगी और रियासतें भी उसके अधिकार क्षेत्र के अन्दर आ जायेंगी। इसके पीछे मूल विचार यह है कि उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को और विस्तृत कर दिया जाये और अपील सम्बन्धी शर्तों को संसद पर छोड़ दिया जाये। जो भी हो, डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता है क्योंकि इसमें मेरे संशेधन के विशेषांश को स्वीकार कर लिया गया है अर्थात् उपखंड (क) और (ख) के सम्बन्ध में मेरी बातें मान ली गई हैं पर केवल (ग) को, विधान में लिपिबद्ध करके व्यवस्था को कुछ कठोर बनाया जा रहा है। इस बात को भी भावी संसद पर छोड़ा जा सकता था। किन अवस्थाओं में अपील उच्चतम न्यायालय के पुनर्विचार के समुपयुक्त हो सकती है, इसके सम्बन्ध में व्यवस्था बनाने का भार संसद पर छोड़ा जा सकता था। जो भी हो डा. अम्बेडकर ने ऐसा करना वांछनीय नहीं समझा। आपने दो बातों को संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन रखना तो स्वीकार किया है पर तीसरी बात को संसद के क्षेत्राधिकार से सर्वथा बाहर रखा है। जैसा कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा है कि अगर सर्वस्व जाता है तो आधे पर ही संतोष कर लेना चाहिये। मैं भी उनके इस दृष्टिकोण से सहमत हूं और डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करती हूं।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा रियासतें): अध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्य श्री राजबहादुर सिंह के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं जिसमें अनुच्छेद 111 से उस पदसंहति को हटाने की बात कही गई है जिसके रहने से, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील न की जा सकेगी।

इस संशोधन के समर्थन में संशोधनकर्ता ने जो तर्क पेश किये हैं, उनका मैं समर्थन करता हूं। इसके अलावा, इस सम्बन्ध में एक और बात मैं सभा के सामने उसके विचारार्थ रखता हूं। अगर यह अनुच्छेद इसी रूप में रहता है और भारतीय रियासतों को उच्चतम न्यायालय में पहुंचने पर प्रतिबंध रहता है तो इससे उन रियासतों की स्थिति, जो प्रान्तों में विलीन हो गई, अर्थात् संयुक्त प्रांत, बम्बई, मद्रास, मध्य प्रांत और उड़ीसा आदि प्रदेशों के रियासतों की स्थिति बड़ी विषम हो जायेगी। ये रियासतें पड़ोस के प्रान्तों में मिला दी गई हैं और शासन के प्रयोजन के लिये प्रान्तों का अंग बन गई हैं। वे प्रान्तीय उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है। विधान के मसौदे में ये प्रथम अनुसूची के भाग तीन में रखी गई हैं और साथ ही मसौदे में यह भी प्रावधान कर दिया गया है कि प्रशासन के लिये ये प्रान्तों का अंग समझी जायेगी। ऐसी हालत में इस अनुच्छेद 111 के रखने से यह होगा कि ये रियासतें उच्चतम न्यायालय में अपील न कर सकेंगी या कम से कम वहां की जनता के दिमाग में इससे गुजंलक तो पैदा होगी ही। इस कठिनाई को दूर करने

के लिये यह जरूरी है कि अनुच्छेद 111 से इन शब्दों को हटा दिया जाये। इसलिये माननीय मित्र श्री राजबहादुर सिंह के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यहां कई मित्रों ने वकीलों के वर्ग के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है।

***अध्यक्ष:** उन बातों के जवाब देने की जरूरत नहीं है। उनको आप छोड़ दीजिये। आप अपनी वक्तृता को कृपया अनुच्छेद और संशोधनों तक ही सीमित रखिये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** बहुत बहुत अच्छा, श्रीमान्, मैं जो कहना चाहता था वह यह है। संविधान बनाने की जिम्मेदारी वकीलों पर नहीं है बल्कि वह जिम्मेदारी है अनाड़ी नागरिकों पर, संविधान सभा के सदस्यों पर जिनमें ऐसे ही लोगों का बाहुल्य है जो वकील नहीं हैं। सभा के सदस्यों को संविधान विषयक बातों का निर्णय करना है, अपनी सहज बुद्धि के आधार पर। वकील सदस्य तो इसलिये हैं कि वह हमें राय दें। जब किसी मुकदमे का फैसला होता है पंच यानी जुरी के जरिये तो उसमें फैसले की जिम्मेदारी न्यायाधीश और वकील पर नहीं रहती है बल्कि पंच लोग अपनी सहज बुद्धि से जो ठीक समझते हैं निर्णय देते हैं। इसी तरह यहां भी संविधान निर्माण की सारी जिम्मेदारी सभा के सदस्यों की है जिनमें बहुसंख्यक सदस्य ऐसे हैं जो वकालत पेशा के नहीं हैं। इसलिये सभा से मैं कहूंगा कि इस प्रश्न पर वह एक अनाड़ी नागरिक के दृष्टिकोण से ही विचार करे।

अब, एक अनाड़ी नागरिक की हैसियत से जब आप उस प्रश्न पर विचार करते हैं तो क्या पाते हैं? आप यह पाते हैं कि इस अनुच्छेद में एक बहुत बड़ा प्रतिबंध रख दिया गया है और वह प्रतिबंध यह है कि अपील करने के लिये उच्चतम न्यायालय से प्रमाण पत्र प्राप्त करना जरूरी है। आप किसी न्यायालय से सीधे कोई अपील उच्चतम न्यायालय को नहीं कर सकते हैं। जिला न्यायाधीश की अदालत या किसी सब-जज की अदालत के निर्णय के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय को आप अपील नहीं कर सकते हैं। आपको मामले को पहले उच्च न्यायालय में ले जाना ही होगा और उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे दे कि मामला आगे जा सकता है तभी आप उच्चतम न्यायालय में मामले को ले जा सकते हैं। ऐसी सूरत में कोई भी व्यक्ति, चाहे वह अनाड़ी हो या वकील, क्या कभी भी यह कल्पना कर सकता है कि उच्च न्यायालय, जिसके निर्णय के विरुद्ध अपील करनी है वह खुशी से, बिना अपनी जिम्मेदारी का ख्याल किये ऐसा प्रमाण पत्र दे देगा? यह प्रतिबंध एक बहुत बड़ा प्रतिबंध है। मेरी समझ से तो इसके बाद और कोई प्रतिबंध रखना जरूरी नहीं होगा। पर नहीं, इस अनुच्छेद में आपने यह भी रख दिया है कि किन स्थितियों में उच्च न्यायालय प्रमाण पत्र दे सकता है और उच्च न्यायालय पर यह प्रतिबंध लगा दिया है कि इन्हीं अवस्थाओं में वह प्रमाण पत्र दे सकता है। पहला प्रतिबंध तो यह रख दिया गया है कि बिना उच्च न्यायालय से तदर्थ एक प्रमाण पत्र पाये कोई अपील उच्चतम न्यायालय में की नहीं जा सकती और फिर आपने दूसरी पाबंदी यह भी लगा दी है कि मामला अगर अमुक श्रेणियों में आता हो तभी उसकी अपील के लिये प्रमाण पत्र उच्च न्यायालय से मिल सकता है। उतने सारे प्रतिबंधों के रख देने के बाद भी, मैं पूछता हूं, अब जो एक और यह प्रतिबंध आप रख रहे हैं कि अपीलें संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन की जा सकती है, वह क्या समुचित है?

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

ऐसे मामलों में कोई प्रबल आग्रह करूं, इसमें मुझे संकोच बोध होता है क्योंकि श्रीमती जी. दुर्गाबाई जैसे विशिष्ट सदस्य ने उस विचार को यहां अग्रसर किया है और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह कह दिया है कि उनकी उससे पूरी सहानुभूति है। फिर भी मैं इस मसले को सभा के सामने रखने का साहस करता हूं कि वह इस पर विशेष रूप से विचार करे। सभा में ऐसे ही सदस्यों का बहुमत है जो वकील नहीं हैं। सहज बुद्धि से इस प्रश्न पर विचार भी कीजिए और सोचिए तो कि कोई भी न्यायालय जिसके निर्णय के विरुद्ध आप अपील करना चाहेंगे वह क्या कभी बिना समझे बूझे यों ही अपील के लिये प्रमाणपत्र दे देगा? अगर आप यही चाहते हैं कि सब बातें संसद पर छोड़ देनी चाहिये तो फिर इस अनुच्छेद 110, 111 और 112 पर इतना समय क्यों बर्बाद कर रहे हैं? बस इतना ही लिख दीजिये कि प्रक्रिया के सम्बन्ध में और इस बात के बारे में किन-किन सूरतों में उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, संसद विधि द्वारा प्रावधान कर सकती है। इतना कह देने से ही तो सारी बातें खत्म हो जाती हैं। फिर इन सब अनुच्छेदों–110, 111, 112 और 113 आदि–पर विचार करने में क्यों इतना समय लगा रहे हैं। बस इस आशय का एक अनुच्छेद रख लीजिये कि किन अवस्थाओं में उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, इसके सम्बन्ध में संसद विधि द्वारा प्रावधान कर सकती है। प्रमाण पत्र के सम्बन्ध में भी आप वैसा ही उल्लेख कर दीजिये जैसा कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में किया हुआ है। दस हजार के मूल्य का भी उल्लेख वहां है। पर अनुच्छेद 110 और 111 आदि पर विचार करने में इतना समय लगा देने के बाद, मैं तो यह सोचता था कि सभा यह विचार करेगी कि इस प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करना क्या जरूरी भी है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस सरल अनुच्छेद 111 पर, जिसके गुणावगुण पर कोई गंभीर मतभेद नहीं दिखाई देता है, यहां काफी बहस हो चुकी है। उसके रचयिताओं के सम्बन्ध में कुछ भी कहा गया हो पर इस अनुच्छेद में जो व्यवस्था है उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा गया है इसलिये मैं सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि, जब इसके गुणावगुण पर कोई मतभेद नहीं है तो इस पर और समय वह न लें।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): इस प्रश्न पर मैं सभा का दो या तीन मिनट से ज्यादा समय नहीं लूगा। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने जो संशोधन रखा है, जिसका समर्थन श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्रीमती दुर्गाबाई ने किया है, वह इतना निर्दोष नहीं है जितना कि वह दिखाई देता है। वस्तुत: इसका बड़ा ही क्रांतिकर प्रभाव पड़ेगा। और यह पास हो जाता है तो संसद को यह अधिकार मिल जायेगा कि जब चाहे व्यवहार विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त है, उसे वह छीन ले। इस स्थिति या आशंका को दूर करने के लिये ही तो मसौदा-समिति ने विधान में इस अनुच्छेद को रखना आवश्यक समझा था। अगर इसके आरंभ में आप ''Subject to any law made by Parliament'' ये शब्द जोड़ देते हैं, जैसा कि संशोधन में सुझाया गया है, तो इसका प्रभाव यह होगा कि, संसद जब भी चाहे, प्रिवी कौंसिल के क्षेत्राधिकार को जो कि उसे प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (क) या (ख) अथवा (ग) के या इन तीनों के अंतर्गत आने वाले व्यवहार विषयक मामलों को निबटाने का अधिकार

प्राप्त है, छीन सकती है। मैं कहूंगा यह एक बड़ी ही गम्भीर बात होगी। प्रस्तुत अनुच्छेद 111 के, जिस रूप में कि वह सभा के सामने रखा गया है, प्राय: वही बातें रखी गई हैं जो कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में रखी हुई है। सच तो यह है कि इसी तरह के प्रावधान यहां प्राय: शताब्दि से अधिक समय तक वर्तमान रहे हैं, उसी समय से जब से कि 1933 का जुडिशियरी एक्ट पास हुआ और प्रिवी कौंसिल उन सभी मामलों की सुनवाई करने लगी जो कलकत्ता, बम्बई या मद्रास के सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों के सम्बन्ध में उसके पास जाते थे या आगे चल कर जो मामले कि राजाज्ञा या 1861 के हाईकोर्ट एक्ट के अधीन स्थापिन अन्य विभिन्न हाईकोर्टों के निर्णयों के सम्बन्ध में उसके पास जाने लगे थे। मूल अनुच्छेद 111 में तथा व्यवहार-प्रक्रिया संहिता की 109 और 110 की धाराओं में अन्तर केवल इतना ही है कि प्रस्तुत उपखंड (क) में मूल्य विषयक रकम दस हजार से बढ़ा कर बीस हजार कर दी गई है। डा. अम्बेडकर का संशोधन यहां इतना और बढ़ा देने को कहता है–

''राशि या मूल्य 20 हजार रुपये से या ऐसी राशि से जो संसद इस बारे में विधि द्वारा उल्लिखित करे कम न हो।'' इससे संसद को मूल्य सम्बन्धी राशि को बढ़ाने घटाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। पर इन मामलों में अपील का जो अधिकार है, जिसका प्रावधान कि विधान में किया गया है उसे संसद नहीं छीन सकती है। विधान के प्रावधान के अनुसार, वह शक्ति जो अब तक कि प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थी, अब उच्चतम न्यायालय में निहित कर दी गई है। मैं यह कहूंगा कि उच्चतम न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को छीनने की शक्ति संसद को देना समुचित न होगा। यह क्षेत्राधिकार बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है और जैसा कि श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा है, नये विधान में यह क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को प्राप्त रहना ही चाहिये। माननीय सदस्य देखेंगे कि अपील का जो अधिकार दिया गया है वह ऐसा नहीं है कि उसमें कोई प्रतिबंध न रखा गया हो ओर जो भी चाहे किसी भी व्यवहार विषयक मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में कर दे। इस में कई प्रतिबंध रख दिये गये हैं। पहला प्रतिबंध तो यह है कि उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र मिलने पर ही किसी मामले की अपील आगे की जा सकेगी। जिस मामले में विवाद ग्रस्त विवय की राशि या मूल्य 20 हजार है या उतना है जितना कि संसद द्वारा निर्धारित कर दिया है और उच्च न्यायालय तथा प्रथमवार के न्यायालय में मतभेद है, उसी मामले में अधिकार के रूप में अपील की जा सकती है। फिर उपखंड (ख) द्वारा यह प्रावधान कर दिया गया है, कि जिस मामले में उच्च न्यायालय ने नीचे के न्यायालय के निर्णय का अभिपोषण किया है उसके सम्बन्ध में बतौर अधिकार के अपील नहीं कर सकेगी बल्कि तभी की जा सकेगी जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि मामले में कोई सारवान् विधि प्रश्न निहित है। पर विधि प्रश्न ऐसा नहीं हो जो अप्रासंगिक या आनुषंगिक हो। उन मामलों में अपील न की जा सकेगी। ऐसी हालत में खंड (ग) को विधान में शामिल करने का विरोध क्यों किया जा रहा है, यह मैं नहीं समझ पाता हूं। इसके अंतर्गत तो वही मामले आयेंगे जिनमें कोई ऐसा आम महत्त्व का प्रश्न सन्निहित है कि उसके निर्णय का प्रभाव बहुत से मामलों पर पड़ता हो या ऐसा कोई मामला है जिसमें कोई विविध प्रश्न अंतर्ग्रस्त है जिसके सम्बन्ध में विभिन्न उच्च न्यायालयों में मतभेद है और उस विवाद के निपटारे के लिये उच्चतम न्यायालय का निर्णय लेना आवश्यक है। और फिर यह भी है कि जिस विशेष उच्च न्यायालय ने उसके सम्बन्ध में पहले निर्णय दिया है, उससे इस आशय का प्रमाणपत्र प्राप्त रहना चाहिये कि

[डा. बक्शी टेकचन्द]

मामला अपील के समुपयुक्त है उतना होने पर ही मामले की अपील उच्चतम न्यायालयों में की जा सकेगी। इस खंड के अधीन बहुत ही कम मामले उच्चतम न्यायालय को जायेंगे। जहां तक मैं जानता हूं वर्तमान में आठ या दस से अधिक मामले यहां के उच्च न्यायालयों से प्रिवी कौंसिल को इस खंड के अधीन नहीं जाते हैं। यह एक बड़ा ही हितकर प्रावधान है और इसे विधान में रहने देना चाहिये। मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद को डा. अम्बेडकर के संशोधन के साथ, हमें स्वीकार कर लेना चाहिये और प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का जो संशोधन है उसे हमें अस्वीकार कर देना चाहिये।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): अगर अनुमति हो तो चन्द बातें मैं कहूं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** उन बातों का कहना क्या जारी है?

***डा. पी.के. सेन:** बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें हैं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** इस मामले में एक न्याय की बात तो मुझे माननी ही होगी। आपका ख्याल है कि आप जो कुछ कहने जा रहे हैं वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

***डा. पी.के. सेन:** मैं संक्षेप में ही बोलूंगा और केवल उन्हीं चन्द बातों के सम्बन्ध में बोलूंगा जिन्हें मैं वस्तुत: महत्त्वपूर्ण समझता हूं। माननीय मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का विरोध करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं। इसका समर्थन श्रीमती दुर्गाबाई तथा अन्य कई माननीय सदस्यों ने किया है और फिर श्री अल्लादी कृष्णास्वामी जैसे अधिकारी कानून विशारद ने भी इसका समर्थन किया है। आप लोगों ने इस बात पर जोर दिया है कि अनुच्छेद 111 को लचीला बनाना चाहिये। पर जिस उपाय द्वारा आप लोग उसमें लचीलापन लाना चाहते हैं उससे तो इस अनुच्छेद का सम्पूर्ण स्वरूप ही बदल जायेगा। लचीली चीज को भी अगर झटके के साथ खींचा जायेगा तो वह टूट जायेगी। यहां इस मसले में जिस रूप में लचीलापन लाने की कोशिश की जा रही है उससे तो इस अनुच्छेद का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। उच्चतम न्यायालय को, कतिपय खास तरह के मामलों की अपील की सुनवाई का अधिकार देने के लिये यह अनुच्छेद 111 रखा जा रहा है। अब जैसा कि संशोधन में कहा जा रहा है, अगर "subject to such provisions of law as the Parliament may lay down" ये शब्द अनुच्छेद के प्रारम्भ में जोड़ दिये जाते हैं तो इससे अनुच्छेद का समस्त स्वरूप ही बदल जायेगा। इस संशोधन से संसद को यहां तक शक्ति मिल जायेगी कि वह जब चाहे इस अनुच्छेद को ही हटा दे। अगर इस अनुच्छेद की रचना इस ढंग से की गई होती कि इसमें बहुत अनावश्यक शब्द होते तो एक और बात थी पर इसमें तो वही व्यवस्थायें रखी गई हैं जो व्यवहार प्रक्रिया संहिता (Civil Procedure Code) में हैं और अब तक अमल में रही हैं। इतने लम्बे अर्से तक यह अमल में रही है, इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि यह उपयुक्त और हितकर है। इस सम्बन्ध में एक मात्र प्रश्न उठाया जा सकता था विवाद ग्रस्त मामले की अधिकतम राशि या मूल्य के सम्बन्ध में। पर माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने यह संशोधन रख

करके कि अधिकतम राशि बीस हजार की हो या ऐसी कोई राशि हो जो भावी संसद विधि द्वारा प्रावहित करे, उस प्रश्न की भी गुंजाइश नहीं रहने दी। इस दृष्टिकोण से, मुझे तो यही प्रतीत होता है—यद्यपि आपने इसे एक सरल मसला ही बताया है श्रीमान्—कि यह प्रश्न महत्त्व शून्य नहीं हैं कुल मिला कर मूल बात यह आती है कि अपने नये संविधान में जो शक्तियां उच्चतम न्यायालय को दी गई हैं उन्हें आप रहने देना चाहते हैं या उन्हें भावी संसद के ऊपर छोड़ देना चाहते हैं? अगर इस संशोधन को हम आज स्वीकार कर लेते हैं तो यहां अनुच्छेद के आरम्भ में जो शब्द जोड़े जा रहे हैं उनसे वस्तुतः संसद को यह शक्ति प्राप्त हो जायेगी कि आगे जब चाहें वह इसमें कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दें। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि संशोधन का समर्थन करने से पूर्व सभा को इस प्रश्न पर सावधानी से विचार करना चाहिये। मेरी राय में हर व्यक्ति को, जिसे अपने देश की और उसके उच्चतम न्यायालय की भलाई की फिक्र है, इस संशोधन का विरोध करना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं आरम्भ में यही बता देना चाहता हूं कि वह मूल बात क्या है जिस पर सभा को विचार करना है और निर्णय करना है। वह मूल बात उठती है दो संशोधनों को लेकर जिनमें से एक को प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने पेश किया है और जो संशोधन नं. 1911 का ही प्रतिरूप है ओर दूसरा संशोधन है मेरा जो चौथे सप्ताह की सूची नं. 1 में 25 नम्बर का आता है। इन संशोधनों में जो बातें उठाई हैं उन पर कुछ कहने के पहले मैं एक या दो बातें बता देना चाहता हूं।

पहली बात तो यह कहना चाहता हूं कि यह अनुच्छेद 111 व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 109 और 110 की हूबहू नकल है। सिवाय उस बात के जिसका कि अपने संशोधन द्वारा सुझाव दे रहा हूं। अनुच्छेद 111 में और व्यवहार प्रक्रिया संहिता की इन दो धाराओं में कोई भी अन्तर नहीं है। इसलिये सभा को स्मरण रहना चाहिये कि जहां तक कि इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है इससे उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील करने की व्यवस्था में कोई भी खास या बुनियादी फर्क नहीं आता है। उस सम्बन्ध में स्थिति वही रहती है जैसी कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की इन दो धाराओं में दी हुई है।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की 109 और 110 को धाराओं में ठीक वही शक्तियां ज्यों की त्यों रख दी गई हैं जो शाही सनद के पैरा 39 में दी हुई हैं जिस सनद के आधार पर सम्राट द्वारा प्रेसिडेंसी नगरों के विभिन्न उच्च न्यायालयों की संस्थापना हुई है। उक्त पैराग्राफ 39 में जो कुछ कहा गया है ठीक वही बातें उतार कर ज्यों की त्यों धारा 109 और 110 में रख दी गई हैं।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है, यह शाही सनद जारी की गई थी सन् 1862 में। इसमें विधान मंडल को यह अधिकार दिया गया है कि वह शाही सनद द्वारा दी गई शक्तियों में परिवर्तन कर सकता है। जब से शाही सनद जारी की गई तभी से विधान मंडल को उक्त अधिकार प्राप्त रहा है पर केन्द्रीय या प्रान्तीय विधान मंडलों

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

ने उच्च न्यायालयों के निर्णय प्रादेश या अंतिम आदेश के सम्बन्ध में अपील करने के अधिकार में कोई भी परिवर्तन करना कभी उचित नहीं समझा। इसलिये सभा देखेगी कि ये धारायें जिनमें उच्च न्यायालय के निर्णय, प्रादेश या अन्तिम आदेश के विरुद्ध आगे अपील करने का प्रावधान है वह आज प्रायः 75 या 80 वर्षों से अस्तित्व में हैं। उनमें कभी कोई रद्दोबदल नहीं किया गया है और उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। इसलिये अगर कोई यह कहता है कि उच्चतम न्यायालय की रचना के सम्बन्ध में प्रावधान तैयार करते समय हमें अब उस स्थिति को बदल देना चाहिये जो उतने लम्बे अरसे तक समय की कसौटी पर सदा खरी उतरी है तो मेरी राय में उसे अपने पक्ष प्रतिप्रादन में कोई बहुत ही प्रबल तर्क उपस्थित करना होगा।

मुझे स्मरण है कि अभी कुछ समय पहले जब यह सभा विधान सभा के रूप में समवेत हुआ करती थी, वहां इस बात पर बड़ा जोर दिया जाता था कि भारत शासन अधिनियम के अधीन जिन शक्तियों का प्रयोग प्रिवी कौंसिल करती है, वह अब ज्यों की त्यों बिना किसी कमी के, फेडरल न्यायालय को प्रदत्त कर दी जायें। इसलिये अब जबकि हमने उच्चतम न्यायालय की स्थापना कर ली है, जो फेडरल न्यायालय का ही स्थान ग्रहण करेगा और प्रिवी कौंसिल की शक्तियों का उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त कर देने का हमें यह अवसर मिला है, तो इस मौके पर अगर यह कहा जाता है कि शक्तियां ज्यों की त्यों इसी रूप में जिस रूप में कि अब तक थी, उच्चतम न्यायालय को न प्रदत्त कर दी जानी चाहिये, तो यह मुझे बड़ा ही बेतुका मालूम पड़ता है। इसलिये पहली बात तो मैं यह बता देना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद से स्थिति में कोई भी खास परिवर्तन नहीं होता है। उच्च न्यायालय और प्रिवी कौंसिल के बीच जो सम्बन्ध अब तक था वही सम्बन्ध, इस अनुच्छेद के द्वारा अब उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के बीच स्थापित कर दिया जा रहा है।

अब श्रीमान्, मैं उन संशोधनों को लेता हूं जिनका जिक्र मैंने आरंभ में किया था अर्थात् प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन नं. 27 को और अपने संशोधन को। अब अगर मेरा संशोधन पास होता है तो उसका नतीजा यह होगा। उच्चतम न्यायालय पुनर्विचार प्रार्थना की सुनवाई करने वाला न्यायालय बना रहेगा और संसद उसकी इस स्थिति में कमी न कर सकेगी। हां संसद को यह अधिकार जरूर रहेगा कि उच्चतम न्यायालय के पास जाने वाली अपीलों की संख्या में वह कमी कर दे या उन अपीलों के स्वरूप में कोई परिवर्तन कर दे। हर हालत में अनुच्छेद 111 का उपखंड (ग) ज्यों का त्यों बना रहेगा और संसद को उसमें कोई रद्दोबदल करने का अधिकार न होगा। मेरा अपना मत यह है कि प्रिवी कौंसिल के पास जाने वाले विवादग्रस्त मामलों की राशि या मूल्य क्या हो, इसे तो हम संसद पर छोड़ सकते हैं, पर अनुच्छेद 111 के खंड (1) का जो अन्तिम पैरा है यानी उपखंड (ग) वह ज्यों का त्यों रहना चाहिये और उसमें कोई रद्दोबदल करने का अधिकार संसद को न प्राप्त रहना चाहिये क्योंकि इसमें विधि का प्रश्न उतना महत्त्व नहीं रखता जितना अधिकार क्षेत्र का प्रश्न। अगर कोई उच्च न्यायालय, उन कारणों के आधार जिन्हें कि हर वकील पेश किया करता है, कि किसी विवादग्रस्त विषय के सम्बन्ध में यह प्रमाणित करता है कि वह विषय उपखंड (क) या (ख) के अन्दर तो नहीं

आता है क्योंकि इसमें सम्पत्ति सम्बन्धी राशि उतनी नहीं जितनी कि अनुच्छेद में निर्धारित है पर फिर भी यह विषय ऐसा है जो उच्च न्यायालय के समक्ष इस कारण से जाना चाहिये कि उसमें जो प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है उसका प्रभाव उस वादी विशेष पर ही नहीं पड़ता है जो कि मामले को लेकर उच्चतम न्यायालय में पहुंचा है बल्कि उसका प्रभाव आम जनता पर पड़ता है। तो मेरे ख्याल में यह क्षेत्राधिकार तो उच्च न्यायालय में सन्निहित रहना ही चाहिये। इसलिये मैं समझता हूं कि उपखंड (ग) को संसद के क्षेत्राधिकार के अधीन हमें न रखना चाहिये।

अगर, प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन पास हो जाता है उससे दो बातें होंगी। एक बात तो यह हो सकती है, जिसकी चर्चा अभी माननीय मित्र बक्शी टेकचन्द ने की है, कि व्यवहार विषयक मामलों में अपीलों की सुनवाई का जो क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया है उसे संसद सर्वथा छीन ले सकती है। मेरी समझ से, अगर यह बात होती है तो यह एक बड़ी ही घातक बात होगी। आप देश के लिये एक उच्च न्यायालय की स्थापना करें और संसद को ऐसी शक्ति दे दें जिससे वह, उस न्यायालय के क्षेत्राधिकार को जोकि अपीलों की सुनवाई के सम्बन्ध में उसे प्राप्त है, सर्वथा ही न ले या उसमें कमी कर दे, तो यह बात मेरी समझ से एक बड़े धोखे की बात होगी। इससे अच्छा तो यह होगा कि हम ही साहसपूर्वक यहां व्यवस्था कर दें उच्चतम न्यायालय, व्यवहार विषयक मामलों की अपीलों की सुनवाई करने वाले न्यायालय के रूप में न काम करेगा और फेडरल न्याायालय को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त थे वही इसको हम दे दें।

दूसरी बात उनके संशोधन के पास होने से यह होगी कि संसद को अधिकार मिल जायेगा कि वह उपखंड (ग) में रखी हुई व्यवस्था को हटा सकती है, जो कि वहां स्थायी रूप से रहनी चाहिये, जैसा कि मैंने कहा है, क्योंकि वस्तुतः यह क्षेत्राधिकार उच्च न्यायालय में निहित रहना ही चाहिये। इसलिये मेरी समझ से, यहां यह जो दलील दी गई है कि उच्चतम न्यायालय को अपीलों की सुनवाई के क्षेत्राधिकार के लिये जो प्रावधान रखा जाये वह लचीला होना चहिये, वह मेरे संशोधन नं. 25 से पूरी हो जाती है क्योंकि मेरे संशोधन के अनुसार संसद को यह अधिकार प्राप्त रहेगा कि उच्चतम न्यायालय के अपील क्षेत्राधिकार को किसी तरह बिना छीने या उपखंड (ग) में दिये हुए प्रावधान पर बिना असर डाले, वह उपखंड (क) और (ख) के प्रावधानों को अनियमन कर सकेगी। इसलिये श्री सक्सेना के संशोधन का मैं विरोध करता हूं श्रीमान्।

***अध्यक्षः** अब मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 111 के खंड (1) में 'An appeal' शब्दों के पहले 'Subject to any law made by Parliament' शब्द रखे जायें।''

संशोधन अस्वीकृत रहा।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड (1) में 'प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के अतिरिक्त' (except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule) शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1916 से 1919 तक के संशोधनों के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'बीस हजार रुपये' शब्दों के बाद 'या ऐसी किसी अन्य राशि से जो इसके बारे में संसद विधि द्वारा निर्धारित करे' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड के साथ निम्नलिखित परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'परन्तु उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के, अथवा उसके खंड न्यायालय के एक न्यायाधीश के, अथवा उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों के, अथवा उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों से बने खंड न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों के किसी निर्णय, आज्ञप्ति या आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील न होगी, जहां ऐसे न्यायाधीश अपनी राय में बराबर बंटें हुए हैं तथा उच्च न्यायालय के तत्समय के सम्पूर्ण न्यायाधीशों में से बहुसंख्यक न हों।''

Provided that no appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment, decree or order of on judge of a High Court or of one judge of a Division Court, thereof, or of two or more judges of a High Court or of a Division Court constituted by two or more judges of a High Court, where such judges are equally divided in opinion and do not amount in number to a majority of the whole of the judges of the High Court at the time being.)

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड (2) में, 'इसमें संविधान के निर्वचन का सारवद् विधि प्रश्न अन्तर्हित है जिसका अशुद्ध निर्णय किया गया है' (the case involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution

which has been wrongly decided) शब्दों की जगह 'संविधान के निर्वचन के एक साखद् विधि प्रश्न का अशुद्ध निर्णय किया गया है' (A substantial question of law as to the interpretation of this Constitution has been wrongly decided) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111, अपने संशोधित रूप में, विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 111, संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** आपराधिक अपीलों के संबंध में जो संशोधन आये हैं उनके बारे में सर्वोत्तम यह होगा कि पं. भार्गव अपने संशोधन नं. 27 को पहले पेश करें और शेष संशोधन, उस पर संशोधन मान लिए जायेंगे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 27 और 28 के संबंध में एक संशोधन की सूचना कल रात को डा. अम्बेडकर ने दी और उनका संशोधन है नं. 190। इस संशोधन में 112-क और ख दोनों ही आ जाते हैं। इसी तरह और अन्य भी बहुसंख्यक संशोधन हैं जो अपील संबंधी प्रश्न से संबंध रखते हैं इन सब पर एक साथ विचार किया जा सकता है ताकि इस प्रश्न का फैसला एक ही बार हो जाये अगर डा. अम्बेडकर इस मसले को बाद में लेना चाहते हैं तो इस संशोधन को अभी स्थगित रखा जा सकता है, मुझे इसमें कोई आपत्ति न होगी। आप इस बात पर विचार कर लें, श्रीमान्, ताकि सभी संशोधनों पर एक साथ विचार किया जा सके और...

***अध्यक्ष:** यही पद्धति तो मैं यहां बरतना चाहता हूं। पर आपको अपना संशोधन तो पेश कर ही देना होगा ताकि और जो संशोधन हैं वह पेश किये जा सकें।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** पर मैं नहीं जानता कि डा. अम्बेडकर कहीं इसे स्थगित तो नहीं रखना चाहते हैं ताकि सभी संशोधनों को देखकर उनके आधार पर एक संशोधन सभा के सामने रखा जा सके। मैंने सभी संशोधनों को पढ़ा है और मैं समझता हूं कि इन सबके पीछे मूल विचार यही है कि एक ऐसा संशोधन रखा जाये जिस पर सभी राजी हो जायें। अगर आप कृपया इन्हें अभी रोक लें तो इस सबका सार लेकर एक संशोधन तैयार कर लिया जायेगा और उसे सभा के समक्ष वाद-विवाद में रख दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है पर संशोधन नं. 28 में एक दूसरी बात कही गई है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** हां, उसमें एक सर्वथा भिन्न बात कही गई है पर जैसा कि आपने आदेश दिया है वह रुका रहेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): विधान के मसौदे में जो वर्तमान योजना रखी गई है उससे बिल्कुल भिन्न योजना इन संशोधनों में दी गई है। इसलिये इनको समझने के लिए सभा को कुछ न कुछ समय मिलना चाहिये।

***अध्यक्षः** मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह रुका रह सकता है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): संशोधन नं. 37 भी इसी के संबंध में है।

***अध्यक्षः** वह भी रुका रहेगा। आपराधिक मामलों के निर्णयों के विरुद्ध अपील के संबंध में जो संशोधन आये हैं वह सब अभी रुके रहेंगे।

अनुच्छेद 112

***अध्यक्षः** अब अनुच्छेद 112 को क्या लिया जा सकता है? मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद पर भी कई संशोधन अपीलों के संबंध में आये हैं। इसे भी शायद अभी रोके रखना होगा। और इस अनुच्छेद के उन अंशों पर हम विचार प्रारम्भ कर सकते हैं जिनका आपराधिक अपीलों से संबंध नहीं है।

श्री राम सहाय (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, मेरा अमेंडमेंट यह है:

> ''कि अनुच्छेद 112 में 'except the States for the time being specified in Part III of the First Schedule in case where the provisions of article 110 or article 111 of this Constitution do not apply' शब्दों को हटा दिया जाये।''

मेरी इस तरमीम के दो भाग हैं यह मेरी तरमीम उन तरमीमों में से एक है जो कि मैंने प्रांतों और स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स में जो तफरीक रखी गई है, उनको दूर करने की गरज से पेश की है। इस तरमीम के दो हिस्से हैं।

एक हिस्सा तो वह है जिसमें, सुप्रीम कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से यूनियन आफ स्टेट्स और स्टेट्स को बाहर रखा गया है, उसको दूर करने की बात कही गई है। दूसरा हिस्सा वह है जिसमें सुप्रीम कोर्ट के अधिकार को धारा 110 और 111 के संबंध में महदूद् किया गया है। दूसरे हिस्से में, मैं समझता हूं वही बात है जिसे डा. अम्बेडकर ने ड्राफ्टिंग कमेटी की तरफ से 1932 नम्बर को पेश की है। इसलिये मैं समझता हूं कि मेरे इस हिस्से की तरमीम को स्वीकार करने में उनको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। वह उसको स्वीकार कर लेंगे। मैं समझता हूं कि हाउस इस बात से मुत्तफिक होगा कि इस तरह सुप्रीम कोर्ट के अधिकार को सीमित रखना उचित नहीं है। मेरा ख्याल है, हाउस मेरी इस तरमीम को स्वीकार करेगा।

तरमीम के पहले हिस्से के बारे में मुझे खास तौर से हाउस के सामने अपने ख्यालात रखने हैं और वह इस तरह से हैं। ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन में स्टेट्स यूनियन आफ स्टेट्स को प्रांतों से बिल्कुल अलग रखा गया है और उनको प्रांत की शक्ल में नहीं माना गया है। डाक्टर अम्बेडकर साहब ने नवम्बर में जब रिड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन का मोशन मूव किया था तो उस वक्त उन्होंने अपना यह ख्याल इजहार किया था कि प्रांतों और स्टेट्स तथा यूनियन्स आफ स्टेट्स में कोई अन्तर नहीं रहना चाहिये। बल्कि उन्होंने यह बात भी कही थी कि स्टेट्स में या यूनियन आफ स्टेट्स में जो कान्स्टीट्यूशन असेम्बली बनने जा रही है, उनको अगर बन्द कर दिया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। मैंने उस समय भी यह बात कही थी कि यह अच्छी चीज है। जिस तरह से यह हाउस बना है और जिस तरह से यह प्रांतों के लिए विधान बना रहा है उसी तरह यह स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के लिये भी विधान बना सकता है। कोई वजह नहीं है कि हम लोग यहां पर बैठकर स्टेट्स के लिए कान्स्टीयूशन में जो जरूरी बातें हम चाहते हैं, वह न रख सकें।

ऐसी तरमीम में कुछ दिक्कतें इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेसन को या जो गारंटी गवर्नमेंट आफ इंडिया ने कोवनेट आफ स्टेट में की है, उनके संबंध में महसूस की जा सकती है। लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है वहां तक ऐसी कोई भी दिक्कत नहीं आ सकती है। इसलिये जहां तक प्रांतों और स्टेट्स यूनियन आफ स्टेट्स को बराबर में लाने का सवाल है, वहां तक इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेसन से कोई दिक्कत पैदा नहीं होती। खास तौर से सुप्रीम कोर्ट के अधिकार के बारे में तो कोई दिक्कत पेश नहीं होती। क्योंकि जो इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेसन यूनियन आफ स्टेट्स ने लिखे हैं, उनमें सिवाय टैक्सेशन के तमाम विषयों को केन्द्र के हवाले कर दिया गया है। जब ऐसी शक्ल पैदा हो गई है तो फिर मैं नहीं समझता कि स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के हाई कोर्टों को सुप्रीम कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के बाहर रखने का क्या मतलब हो सकता है।

मैंने पहले भी यह निवेदन किया था कि स्टेट्स में भी इस तरह के हाई कोर्ट्स मौजूद हैं जहां पर बहुत काबिल जजेज हैं और प्रांतों के बराबर ही अच्छा काम कर रहे हैं। कोई वजह नहीं मालूम होती है कि वहां की अपील सुप्रीम कोर्ट में न जाये। इसलिये मेरा निवेदन है कि जहां तक इस बात का ताल्लुक है कि स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स में जो हाई कोर्टस हैं उन सब की अपील सुप्रीम कोर्ट में आये कोई मतभेद नहीं होना चाहिये और यह बात वहां की जनता के लिये बहुत अच्छी होगी। इस तरह से सुप्रीम कोर्ट का स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स की हाई कोर्टों के ऊपर नियंत्रण हो जायेगा तो वहां की जनता के लिए बहुत लाभदायक होगा। अब तक प्रिवी कौंसिल ने इंसाफ से स्टेट्स की जनता को महरूम रखने का जो तरीका था वह भी खत्म हो जायेगा।

जैसा मैंने पहले अर्ज किया, डाक्टर अम्बेडकर साहब ने पहले यह कहा था कि स्टेट्स में कास्टीट्यूयेंट असेम्बली की जरूरत नहीं है। मेरा इस संबंध में निवेदन है कि अभी पिछले नवम्बर में कांस्टीट्यूयेंट असेम्बली के स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के सदस्यों का एक कनवेंशन हुआ था, मैं उसका चैयरमैंन था। उस कनवेंशन ने एक ब्यान (स्टेटमेंट)

[श्री राम सहाय]

दिया था कि प्रांत और स्टेट्स तथा यूनियन आफ स्टेट्स में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। उन लोगों ने इस बारे में स्टेट मिनिस्ट्री से भी गुजारिश की थी और इसके बाद स्टेट मिनिस्ट्री ने ''मॉडल कन्स्टीट्यूशन फार स्टेट्स'' और यूनियन के लिए एक कमेटी बना दी थी। मैं उसका भी एक सदस्य था। उस कमेटी ने स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स का उसी तरह से विधान बनाया है जिस तरह से प्रांतों का विधान बनाया गया है। उसमें ऐसा कोई अन्तर नहीं रखा गया है जिससे वह प्रांतों से अलग रह सके। मैं यह भी निवेदन करता हूं कि उसमें धारा एक 63 ऐसी रखी गई है जैसी कि यहां पर धारा 111 है जैसे कि धारा 111 में अपील करने का प्रोवीजन रखा गया है उसी तरह से स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के हाई कोर्ट को भी, सुप्रीम कोर्ट में अपील करने का प्रोवीजन रखा गया है। प्रांतों के गवर्नरों को, प्रेजीडेंट को नोमीनेट करने का अधिकार दिया गया है। यूनियन आफ स्टेट्स में जो राजप्रमुख होंगे उनको प्रेसीडेंट रिकोगनाइज करेगा। मैं समझता हूं कि इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। मैं समझता हूं कि इस बारे में कोई दो मत नहीं होने चाहिए। यहां रियासतों के जितने प्रतिनिधि आये हैं, वे उसी आधार पर चुने गये हैं जो करीब-करीब प्रांतों के लिए है और फिर वह यहां बैठकर स्टेट्स के और यूनियन आफ स्टेट्स के लिए कानून क्यों नहीं बना सकते? मेरा भी यही मतलब है, जैसा कि मिस्टर अम्बेडकर ने पहले सजेशन में दिया था, कि जो कांस्टीट्यूयेंट असेम्बलियां स्टेट्स में बन रही हैं वह बिल्कुल बेमानी चीज है। मैं यह महसूस करता हूं कि यह बिना वजह पब्लिक मनी को वेस्ट करना है और साथ ही टाइम और इनरजी को वेस्ट करना भी है। क्योंकि जब हम यहां कांस्टीट्यूशन बनाने के लिए बैठे है, तो हम स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के लिए भी कांस्टीट्यूशन बनाने के लिये काम्पीटेंट हैं, और जब हम इस तरह कांस्टीट्यूशन बनायेंगे तो मैं समझता हूं कि इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन की कोई दिक्कत आने वाली नहीं है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि हमारे राजप्रमुख जिस तरह काम कर रहे हैं उससे मालूम होता है कि वह हमारी यानी देश की प्रोग्रेस में रोड़ा नहीं बनना चाहते और वह बिल्कुल स्टेट्स मिनिस्ट्री की राय के ही मुताबिक काम करना चाहते हैं। मैं समझता हूं कि अगर स्टेट्स मिनिस्ट्री उनको यह राय देगी कि स्टेट्स में कोई भी कांस्टीटृयूयेंट असेम्बली बनाना बेकार होगा तो वह उस राय से अच्छी तरह इत्तफाक करेंगे और उसे बखूबी स्वीकार कर लेंगे और वहां की जनता तो उसे स्वीकार करने के लिए तत्पर रही है और रहेगी। तो बिना वजह हर एक स्टेट में अलग-अलग कांस्टीट्यूयेंट असेम्बली बनें, इसकी कोई जरूरत नहीं मालूम होती। और खास तौर पर जब कि स्टेट्स मिनिस्ट्री ने स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स के लिए माडल कांस्टीट्यूशन का ड्राफ्ट स्टेट्स के नुमायन्दों और एक्सपर्ट के द्वारा तैयार करा लिया है। फिर इसकी कोई जरूरत बाकी नहीं रह जाती।

इस वक्त हाउस के सामने जो सवाल है वह यह है कि आर्टिकल 112 में जो स्टेट्स और यूनियन आफ स्टेट्स को एक्सक्लूड करने के लिए शब्द है और सुप्रीम कोर्ट के अधिकार धारा 110 और 111 के संबंध में सीमित करने के लिये जो शब्द हैं, वे शब्द इस धारा से निकाल देने चाहिये और इसके निकाल देने के बाद जो बाकी धारा रहती है, उसी को हाउस में पास करना चाहिए।

मैं इस विषय में हाउस का ज्यादा वक्त न लेकर सिर्फ इतना ही निवेदन करूंगा कि इसी तरह मेरे अमेंडमेंट के दोनों ही हिस्से काबिल मंजूरी हैं और मैं समझता हूं कि हाउस मेरी पूरी तरमीम को स्वीकार करेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** नं. 31 का क्या हुआ?

***अध्यक्ष:** पर अब तो निर्णय हो चुका है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह संशोधन दूसरा है। यह है चौथे सप्ताह की सूची 1 का संशोधन नं. 31।

***अध्यक्ष:** पर यह निर्भर करता है नं. 1930 पर जो पेश ही नहीं किया गया। नं. 1932 भी पेश नहीं किया गया है। पर वाद-विवाद के सिलसिले में आप अनुच्छेद पर बोल सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, विधान का यह अनुच्छेद एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। अगर उच्चतम न्यायालय की आप व्यवस्था करते हैं तो उसे उच्चतम शक्तियां भी प्राप्त रहनी चाहियें। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है।

''उच्चतम न्यायालय स्वविवेक से भारत राज्य क्षेत्रान्तर्वर्ती किसी न्यायालय अथवा धर्माधिकरण द्वारा किसी वाद अथवा विषय में दिए हुए किसी निर्णय, प्रादेश अथवा अन्तिम आदेश की अपील के लिए विशेष अनुमति अनुदान कर सकेगा।'' इस अनुच्छेद के अनुसार उच्चतम न्यायालय, किसी भी निर्णय के विरुद्ध की गई किसी अपील पर विचार कर सकता है। मैं इतना ही चाहता हूं कि अपीलों की सुनवाई की जो शक्ति उसे दी जा रही है उसमें और वृद्धि कर दी जाये। जो वर्तमान व्यवस्था है उसके अनुसार उच्चतम न्यायालय अपीलों की सुनवाई तो कर सकता है पर उनके संबंध में उसे निर्णय करना होगा देश के कानून के अनुसार। निर्णय देने में इन कानूनों की हद से आगे वह नहीं जा सकता है। पर मैं चाहता यह हूं कि उन मामलों में जहां प्राकृतिक न्याय का प्रश्न निहित हो, उच्चतम न्यायालय को ऐसा निर्णय देने की शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये जो भले ही विधि-संगत न हो पर न्यायसंगत हो। ऐसे मामलों में न्याय की दृष्टि से जो भी निर्णय अपेक्षित हो, वैसा निर्णय देने की शक्ति उसे प्राप्त रहनी चाहिये। आज भी, इस तरह की अपीलों की प्रिवी कौंसिल सुनवाई करती है। उन मामलों की अपील पर जहां प्राकृतिक न्याय का प्रश्न निहित है, प्रिवी कौंसिल सुनवाई करती है और ऐसा निर्णय देती है जो देश के कानून से संगत नहीं होता है। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद 112 में, जहां हम उच्चतम न्यायालय को किसी भी अपील की सुनवाई की शक्ति देते हैं, हमें उसे यह भी शक्ति देनी चाहिये कि विधि शास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों की दृष्टि से, प्राकृतिक न्याय की दृष्टि से, उन अपीलों पर निर्णय अपेक्षित हो वह दे। इसीलिये मैंने अपने संशोधन की सूचना दी थी जिसे अब मैं पेश नहीं कर सकता। पर मैं आशा करता हूं सभा इस बात पर भी विचार करेगी। मैं यह भी बता देगा चाहता हूं कि अनुच्छेद 111 पर जो संशोधन मैंने रखा है वह इसी विचार से रखा था कि उच्चतम न्यायालय को हर तरह की अपील पर, चाहे वह व्यवहार विषयक मामलों के संबंध में हो या आपराधिक

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मामलों के संबंध में हो, सुनवाई की शक्ति रहनी चाहिये। अगर यह शक्ति उसे अनुच्छेद 112 के द्वारा मिलती है तो फिर अनुच्छेद 111 (1) (ग) की कोई जरूरत नहीं रह जाती है क्योंकि उच्चतम न्यायालय को स्वविवेक से अपीलों पर सुनवाई करने की शक्ति प्राप्त है। आशा करता हूं कि डा. अम्बेडकर उच्चतम न्यायालय की शक्ति के दायरे को और भी बढ़ा देंगे ताकि जिन मामलों में प्राकृतिक न्याय का प्रश्न निहित हो, उनमें विधि-व्यवस्था से आगे जाकर न्यायसंगत निर्णय दे सके।

***काका भगवन्त राय** (पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ): सदर मोहतरम, मैं अपने मोहतरम साथी श्री राम सहाय जी की तरमीम की ताईद करने आया हूं। आज जो छोटी रियासतों को मिलाकर बड़ी यूनियन्स की शक्ल दे दी गई है तो अब वह एक सूबा की हैसियत रखती है और ऐसा करने से रियासतों के लोग राजाओं के शख्स राज से छुटकारा पा गये हैं।

अब रियासतों की दु:खी जनता बहुत उम्मीद और फख्र से इस आगस्ट असेम्बली की तरफ देखती है कि जब कि एक आज़ाद हिन्दुस्तान का विधान बनाया जा रहा है, इस वक्त रियासतों की आम जनता में और हिंदुस्तान के सूबों की जनता में कोई फर्क नहीं रखा जायेगा। मगर यह जो फर्क रखा गया है कि सुप्रीम कोर्ट में रियासतों की जनता को अपील करने की इजाजत नहीं होगी, मैं समझता हूं कि यह रियासतों के लोगों के साथ बड़ी बेइन्साफी होगी। जब कि तमाम सूबों को यह हक दिया जा रहा है, मेरे ख्याल में रियासतों की जनता को भी यह हक होना चाहिए। और मेरा तो यह ख्याल है और यह राय है कि जो यूनियन्स नई बनी हैं यह हिंदुस्तान का एक अहम हिस्सा है और जब तक यह रियासती यूनियन्स मजबूत नहीं होगी हिंदुस्तान मजमूई तौर पर मजबूत नहीं होगा।

इसलिए हिंदुस्तान को मजमूई तौर पर मजबूत करने के लिए रियासतों को वही हक होने चाहिए, जो कि दीगर सूबों के आम लोगों को दिये जा रहे हैं। इसलिये मैं तो यह समझता हूं कि आप जो एक आजाद हिंदुस्तान का विधान बना रहे हैं तो इसमें कोई भी क्लाज ऐसा नहीं होना चाहिये कि रियासत के लोगों को अलहिदा हैसियत दी जाये। रियासतों के लोग इस आगस्त असेम्बली की तरफ बहुत उम्मीद से देखते हैं। रियासती यूनियनों की जनता और सूबों की जनता के हकूक एकसा होंगे और कोई फर्क न रखा जायेगा। और मुझे उम्मीद है कि आप इस अमेंडमेंट को कबूल फरमायेंगे।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्त प्रांत): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 112 के प्रावधान बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और व्यापक हैं। इसमें एक महत्त्वपूर्ण सांवैधानिक सिद्धांत लिपिबद्ध किया गया है जो यह है। भारत-शासन अधिनियम की योजना में कार्यपालिका (Executive) ही सर्वेसर्वा थी, विधान मंडल और न्यायपालिका उसके अधीन थे। पर इस अनुच्छेद के द्वारा न्यायपालिका को, विधान मंडल और कार्यपालिका के समान ही गौरव, उससे किसी भी तरह कम नहीं किया गया है। इस तरह का प्रावधान, भारत शासन अधिनियम 1935 में रखा ही नहीं गया है। इसलिये, विधान के यह जो प्रावधान हैं वह व्यापक है और आवश्यक

भी हैं। इससे देशवासियों की बड़ी भलाई होगी; इससे उनको यह अधिकार मिल जाता है कि कार्यपालिका की कार्रवाइयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालयों में अपील कर सकते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध वहां अपील कर सकते हैं। इस अनुच्छेद में प्रावधानों का मैं समर्थन करता हूं, श्रीमान्, इस अनुच्छेद के द्वारा उच्चतम न्यायालय को न्याय करने की बड़ी शक्ति प्राप्त हो जाती है। विधान में ऐसे प्रावधानों के रहते हुए मैं इस बात का कोई औचित्य या आवश्यकता नहीं देखता कि आपराधिक मामलों की अपील का भी प्रावधान कर दिया जाये। मृत्यु दंड के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार रहना चाहिये इस प्रश्न को लेकर यहां बहुत कुछ कहा गया है। पर मैं सादर यह बात कहूंगा कि इस संबंध में यहां जो कुछ भी कहा गया है उसमें एक आधारभूत सिद्धांत की सर्वथा उपेक्षा की गई है। वह सिद्धांत यह है कि मृत्युदंड के निर्णय के विरुद्ध अपील का जो विषय है उसमें न केवल अपराधी या मृत्युदंड प्राप्त व्यक्ति की स्वतंत्रता का ही प्रश्न निहित है बल्कि एक और भी प्रश्न निहित है और वह प्रश्न है राज्य के स्थायित्व तथा देश में शांति का। राज्य के विरुद्ध किये गये अपराधों में निर्णय को आप एक दीर्घकाल तक नहीं टालते जा सकते। ऐसा करना राज्य के लिए घातक होगा। राज्य की स्थिरता और देश की शांति का बिना कोई ख्याल रखे, व्यक्ति के जीवन और उसकी स्वतंत्रता को ही सर्वोपरि समझने का जो सिद्धांत है वह बड़ा ही हानिकारक है। ये दोनों ही बातें जरूरी हैं। व्यक्ति के स्वातंत्र्य का, उसके जीवन का हमें ख्याल रखना ही होगा, उसकी फिक्र करनी होगी पर उसी हालत में जबकि उसने राज्य की स्थिरता में और देश की शांति में आघात न पहुंचाया हो, कोई संकट न पैदा होता हो। और अगर इन दोनों बातों—राज्य का स्थैर्य और व्यक्ति स्वातंत्र्य—का ख्याल रखना है और उनका ख्याल रखते हुए हमें आपराधिक विधियों का प्रशासन करना है तो मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि अपने इस अनुच्छेद में, इन दोनों के लिए ही पर्याप्त संरक्षण की व्यवस्था है। चाहे व्यवहार विषयक मामला तो या आपराधिक मामला हो, दोनों में व्यक्ति के प्रति समुचित न्याय हो सके, इसकी पूर्ण सुनिश्चित व्यवस्था इस अनुच्छेद में है। मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं, श्रीमान्।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 112 के संबंध में मैं एक या दो बातें कहना चाहता हूं। यह अनुच्छेद असाधारण रूप से व्यापक है। इसमें 'किसी वाद अथवा विषय' (in any cause or matter) शब्द रखे गये हैं और मैं समझता हूं कि यह व्यवस्था उससे सर्वथा भिन्न है जो कि देश के प्रचलित कानून के अनुसार अब तक बरती जाती थी। इस समय तो शायद राजस्व-विषयक क्षेत्राधिकार, सभी प्रांतों में एक मात्र उच्च न्यायालयों तक ही सीमित हैं और प्रिवी कौंसिल का इससे कोई संबंध नहीं है। पर हमारा उच्चतम न्यायालय तो सर्वशक्ति सम्पन्न होगा, जहां तक कि एक माननीय न्यायालय हो सकता है और इसके समक्ष सभी तरह के मामले पहुंचेंगे। मैं समझता हूं अन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त जो दूसरे न्यायालय होंगे उनके मामले भी इसके पास पहुंचेंगे। उदाहरणार्थ अगर यहां कोई अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय बैठा तो उसका मामला, या यहां के फौजी न्यायालय, उद्योग-धंधा संबंधी न्यायालय, आयकर संबंधी न्यायालय और रेलवे पंचायत, इन संबंधी न्यायालयों के विभिन्न मामले उच्चतम न्यायालय के सामने पहुंचेंगे। इसलिए यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि उसके क्षेत्राधिकार की क्या परिधि होगी और इस तरह के मामलों में उच्चतम

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

न्यायालय क्या करेगा। मेरा अपना विनम्र मत तो यह है कि यह अनुच्छेद 112 हमें इस अप्रिय एवं बहुनिंदित राजनैतिक सिद्धांत का कि ''राजा को ईश्वरीय अधिकार प्राप्त है'' स्मरण दिला देता है। पर साथ ही यह भी बात है कि इस अनुच्छेद के क्षेत्राधिकार का जो स्वरूप है वह ईश्वरीय है क्योंकि मैं समझता हूं उच्चतम न्यायालय ऐसा कोई भी निर्णय दे सकेगा जिससे राज्यों के पारस्परिक मामलों में या नागरिकों के मामलों में पूर्ण न्याय मिल जाता हो। अनुच्छेद 118 को अगर आप देखें तो उसमें यह कहा हुआ है:

> ''अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय ऐसा प्रादेश अथवा ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा कि इसके समक्ष लम्बमान किसी वाद अथवा विषय में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो, और इस प्रकार दिया हुआ प्रादेश अथवा आदेश भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में ऐसी रीति से प्रवर्तनीय होगा जैसी कि संसद किसी विधि द्वारा अथवा अधीन, विनिधान करे।''

यह बहुत उत्तम है। मेरा विनम्र कथन यह है कि प्रिवी कौंसिल अंग्रेजों की चीज थी, हम पर अंग्रेजों की जो न्यायिक प्रभुता थी उसकी वह एक जीती जागती तस्वीर थी। पर उसे भी बड़ी व्यापक शक्तियां प्राप्त थी और वह भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के आधार पर न्याय किया करती थी। यह नैसर्गिक न्याय क्या है? प्रिवी कौंसिल का कहना है कि नैसर्गिक न्याय कानून से ऊंची चीज है, उसका महत्त्व विधि से बड़ा है। अपने उच्चतम न्यायालय के संबंध में मैं यही सोचना चाहता हूं कि वह विधि से बड़ा है। इस अर्थ में कि उसे इसका पूरा अधिकार रहेगा कि जैसा कि आदेश देना वह समुचित समझे दे। इस दृष्टिकोण से, सभा के समक्ष मैं यह कहूंगा कि यह अनुच्छेद एक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और इससे उच्चतम न्यायालय को असीम शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। हमें राजनैतिक स्वराज्य प्राप्त हो चुका है और साथ ही अब न्यायिक स्वराज्य भी अवश्य ही प्राप्त है। अनुच्छेद 110 और 111 में अपील सुनने का सर्वांगीण अधिकार उसे प्राप्त है पर विशेष मामलों में उसे एक विशेष क्षेत्राधिकार भी स्वत: प्राप्त है। अपील-विषयक अधिकार न रहने पर भी, उच्चतम न्यायालय उसमें हस्तक्षेप कर सकता है अगर न्याय के लिए यह अपेक्षित हो। इसलिये मैं यही समझता हूं कि उच्चतम न्यायालय इन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा और किसी नियम या विधि के कहने पर अथवा कार्यपालिका की किसी प्रथा या उसके आदेश के कारण वह न्याय करने से डिगेगा नहीं। इस तरह इस अर्थ में उच्चतम न्यायालय विधि से ऊपर रहेगा। मैं यह चाहता हूं जो क्षेत्राधिकार प्रिवी कौंसिल को प्राप्त था वही क्षेत्राधिकार और विस्तृत रूप में उच्चतम न्यायालय को प्राप्त रहना चाहिये और विधि की किसी व्यवस्था के कारण उसका क्षेत्राधिकार कदापि किसी तरह सीमित नहीं होना चाहिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के द्वारा उच्चतम न्यायालय को जो व्यापक और प्रचुर क्षेत्राधिकार दिया जा रहा है उसे समझ लेना जरूरी है। भारत राज्य क्षेत्रान्तर्गत किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में

पास किये गये हर आदेश पर विचार करने का उसे अधिकार है। और फिर अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उसे यह स्वतंत्रता है कि वह अपने नियम और रूढ़ियों को चलन में लाये। जब हम किसी अनुच्छेद की रचना में अन्य किसी विधि में प्रयुक्त की हुई भाषा को बिठाते हैं तो उसमें हमें एक बड़ी कठिनाई आती है। न्यायिक समिति ने तो कुछ विभिन्न ऐतिहासिक कारणों से अपने ऊपर कुछ प्रतिबंध आरोपित करने के लिए इस पद-संहति विशेष का प्रयोग किया था। पर इन शब्दों को अपने अनुच्छेद में बिठाने से, प्रयोजन न रहने पर भी प्रतिबंध का आशय आ जाता है।

जहां तक कि इस देश का संबंध है, उच्चतम-न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार के अनियंत्रित प्रयोग के लिए जैसा चाहे, नियम या रूढ़ियां चलने में ला सकता है, उसे कोई रुकावट नहीं है। न्यायिक समिति (Judicial Committee) ने अपने ऊपर जो प्रतिबंध आरोपित कर रखा था उसके पीछे यह सिद्धांत था कि सम्राट ही न्याय का प्रधान स्रोत है। पर हर आपराधिक मामले में वह न्याय करे ऐसी व्यवस्था समाज के लिए हितकर न होगी। इस अनुच्छेद 112 के अधीन, उच्चतम न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग के संबंध में ऐसे किसी प्रतिबंध को आरोपित करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, किसी भी आपराधिक मामले में जहां अन्याय हो गया है या न्यायालय ने भ्रमवश गलत निर्णय दे दिया है, या विधि-विषयक कोई गंभीर भूल हो गई है वहां उच्चतम न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है और उसके ऐसा करने पर कोई रोक नहीं है, विधान के रचियताओं ने जान बूझकर यह सावधानी बरती है कि आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई प्रतिबंध उच्चतम न्यायालय पर इस अनुच्छेद द्वारा न आरोपित होने पावे। उच्चतम न्यायालय में कोई विशेष आपराधिक क्षेत्राधिकार निहित किया जाये या नहीं, जब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो उस पर, इस वर्तमान बहस का, आशा है, महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। इस अनुच्छेद 112 द्वारा कितना व्यापक क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को प्राप्त हो जाता है, उसे अगर हम समझ भर लें और उच्चतम न्यायालय केवल इतना कर सके, जिसका कि मुझे पूरा विश्वास है वह अवश्य करेगा, कि देश की अवस्था के अनुरूप, जैसा उसे समुचित प्रतीत होता हो अपनी न्याय व्यवस्था को यहां चलन में लावें तो उच्चतम न्यायालय अपनी एक न्याय व्यवस्था इस तरह से प्रचलित कर सकता है कि उससे हर तरह के वाद या मामले में पूर्ण न्याय वह कर सकेगा। उच्चतम न्यायालय को ऐसा करने में कोई रुकावट नहीं आ सकती है।

इन शब्दों के साथ, अनुच्छेद 112 का, जिस रूप में कि यह है, मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, उच्चतम न्यायालय को विशेष क्षेत्राधिकार देने के उद्देश्य से ही, अनुच्छेद 112 को विशेषरूप से संविधान में लिपिबद्ध किया गया है। माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव से यह शिकायत सुनकर कि इस अनुच्छेद द्वारा आवश्यकता से अधिक विस्तृत क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया जा रहा है, मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। अनुच्छेद में कहा गया है कि: ''उच्चतम न्यायालय, स्वविवेक से किसी न्यायालय या न्यायधिकरण द्वारा किसी वाद अथवा विषय में दिये हुए किसी निर्णय, प्रादेश अथवा अन्तिम आदेश,... इत्यादि।''

[श्री एच.वी. पातस्कर]

अवश्य ही यहां, 'किसी वाद अथवा विषय' शब्द ऐसे हैं कि कोई भी मामला चाहे वह व्यवहार विषयक हो, आपराधिक हो, राजस्व संबंधी हो अथवा और किसी तरह का हो इसके अन्दर आ जाता है। राजस्व विषयक क्षेत्राधिकार का विशेष रूप से जो उल्लेख पं. भार्गव ने किया है, इससे मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि वह यह आवश्यक नहीं समझते हैं कि उच्चतम न्यायालय ऐसी स्थिति में हो कि खास-खास सूरतों में भी राजस्व संबंधी मामलों के निर्णय पर वह पुनर्विचार करे। राजस्व के संबंध में अपने पूर्ववर्ती शासन ने जो अधिनियम पास किये हैं और जो कि अभी चालू हैं उनके प्रशासन के इतिहास पर अगर आप ध्यान दें और उन ममालों को देखें जिनमें कि बड़ा अन्याय हुआ है तो आपकी समझ में यह आ जायेगा कि जब हम देश में उच्चतम न्यायालय जैसे महान न्यायालय की स्थापना करने जा रहे हैं तो विधान में हमें ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये कि उस न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त रहे कि राजस्व विषयक मामलों में भी जहां कि अन्याय हुआ है, वह अपील करने की विशेष रूप से अनुमति दे सके। हमारे अपने प्रांत में राजस्व क्षेत्राधिकार अधिनियम (Jurisdiction Revenue Act) प्रवर्तन में है, जिसके विरुद्ध वर्षों सभाओं और समाचार पत्रों द्वारा बड़ा आंदोलन चल चुका है क्योंकि यह अधिनियम ही कार्यपालिका ने इस उद्देश्य से बनाया था कि न्यायालय को राजस्व विषयक क्षेत्राधिकार न प्राप्त रह जायें। अवश्य ही अब हम देश को उच्चतम न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था कर रहे हैं तो उसे यह विशेष क्षेत्राधिकार भी दें कि सभी मामलों में चाहे वह व्यवहार विषयक हों, आपराधिक हों, राजस्व संबंधी हों, वह अपील की अनुमति दे सकती है। यह हम इसलिए कह रहे हैं कि उच्चतम न्यायालय का हमारे देश में वही स्थान होगा और उसके वही प्रकार्य होंगे जो कि और देशों में सम्राट का हुआ करता है। जिसे न्याय का प्रधान स्रोत माना जाता है। हमारे देश में कोई सम्राट है नहीं, इसलिए हमें एक न एक ऐसा कोई स्वतंत्र निकाय रखना ही होगा जो न्याय प्रशासन का संरक्षक रहे और यह देखे कि व्यवहार विषयक आपराधिक या राजस्व संबंधी सभी मामलों में नागरिकों को पूर्ण न्याय प्राप्त हो रहा है। इस दृष्टि से, श्रीमान्, जब हम उच्चतम न्यायालय के लिए प्रावधान कर रहे हैं तो यह भी जरूरी है कि इस अनुच्छेद द्वारा उसे विशेष शक्तियां प्रदत्त कर दी जायें।

ऐसा करने का एक और कारण है। उच्चतम न्यायालय किसी भी मामले में अपील की विशेष अनुमति तभी देगा जब कि उसे यह निश्चित हो जाये कि उसमें न्याय प्रशासन संबंधी किसी सिद्धांत को भंग किया गया है या किसी ऐसे सिद्धांत को भंग किया गया है जिससे न्याय-प्रशासन के मूल उद्देश्य पर ही कुठाराघात होता है। मेरी समझ से अनुच्छेद 112, जिस रूप में कि यह है, बहुत ही समुचित अनुच्छेद है और इसे विधान में स्थान मिलना ही चाहिए।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नही समझता हूं कि मेरे लिए कुछ अब भी कहना जरूरी है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 112 के 'except the States for the time being specified,

in Part 3 of the First Schedule, in cases where the provision of articles 110 and 111 of this constitution do not apply' इन शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 112 को, संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112, संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 112-क

***अध्यक्ष:** एक नवीन अनुच्छेद को प्रस्तावित करने की सूचना डा. अम्बेडकर ने दे रखी है। उनका संशोधन नं. है 191-क।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन में 1932 के संबंध में, अनुच्छेद 112 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

''*112-क निर्णय या आदेश पर उच्चतम न्यायालय का पुनरीक्षण का अधिकार:-* संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के बंधनों के अथवा इस संविधान के अनुच्छेद 121 के अधीन बनाये गये किसी नियम के अधीन रहते हुये उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश पर पुनरीक्षण करने का अधिकार होगा।''

विधान का मसौदा, जिस रूप में कि वह हमारे सामने है, श्रीमान्...

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, संशोधन नं. 1932 तो पेश ही नहीं किया गया है।

***अध्यक्ष:** हां, वह नही पेश हुआ है। इसे मैं एक नये अनुच्छेद के रूप में ले रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह बता दूं, श्रीमान्, कि संशोधन नं. 1933 ठीक वैसा ही है जैसा कि संशोधन नं. 1928। अगर संशोधन नं. 1928 पेश हो चुका है तो संशोधन नं. 1932 पेश ही नहीं किया जा सकता।

***अध्यक्ष:** मैं कह चुका हूं कि इसे एक नये अनुच्छेद के रूप में लिया जा रहा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** विधान के मसौदे में ऐसा कोई प्रावधान नहीं रखा गया है जिसके आधार पर उच्चतम न्यायालय अपने दिये गये निर्णयों पर पुनरीक्षण कर सके। यह एक बहुत बड़ी कमी रह गई थी। इसलिए, इस नये अनुच्छेद द्वारा पुनरीक्षण की शक्ति उच्चतम न्यायालय को देने का प्रस्ताव किया गया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मुझे यह आशंका है, श्रीमान्, कि इसकी रचना वैसी नहीं है जैसी कि होनी चाहिए थी। पहली बात तो यह है कि मेरी समझ से यह ठीक नहीं है कि संविधान में कोई अनुच्छेद रखकर उसके द्वारा उच्चतम न्यायालय को एक शक्ति दी जाये और फिर यह भी कहा जाये कि वह शक्ति स्वत: उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन सीमित रहेगी। उच्चतम न्यायालय को अगर आप कोई शक्ति दे रहे हैं वह ऐसी होनी चाहिये जो वास्तविक हो। शक्ति प्रदान करके फिर आप यह नहीं कह सकते कि वह शक्ति खुद न्यायालय द्वारा परिसीमित की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय को निर्णयों के पुनरीक्षण की जो शक्ति प्राप्त है उसका आनियमन संसद निर्मित विधि द्वारा किया जायेगा। मेरा ख्याल है कि यह व्यवस्था तो अनुच्छेद 112 के सर्वथा विपरीत है जिसे कि हमने अभी-अभी पास किया है और जिसके द्वारा उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि किसी भी निर्णय या आदेश का, चाहे वह कहीं से भी आया हो, वह पुनरीक्षण कर सकेगा। संसद को तो पुनरीक्षण संबंधी सामान्य शक्ति के बारे में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

***अध्यक्ष:** यहां उच्चतम न्यायालय के ही निर्णयों पर पुनरीक्षण की बात कही गई है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं उस बात की ओर आ ही रहा हूं। मैं तो समझता हूं कि चूंकि उसके ही निर्णयों पर उसे पुनरीक्षण का अधिकार दिया जा रहा है इसलिए यह और जरूरी है कि अपने निर्णयों के पुनरीक्षण करने में उस पर कोई प्रतिबंध न रहना चाहिये। जब आप उसे ऐसे मामलों में संबंध में भी अबाध स्वतंत्रता प्रदान कर रहे हैं जिनका निपटारा साधारण संसद या राज्यों के विधान मंडल करते हैं, तो फिर उस पर यह प्रतिबंध क्यों लगा रहे हैं कि अपने ही निर्णयों पर पुनरीक्षण वह संसद निर्मित विधि के अधीन करेगा? इन दो बातों के संबंध में यह अनुच्छेद बड़ा ही त्रुटिपूर्ण है। डा. अम्बेडकर को मैं यह सुझाव दूंगा कि वह इस पर गौर करें कि आया इस अनुच्छेद को यों ही रहने दिया जाये या इसके स्वरूप पर विचार किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझता हूं कि माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने जो बातें कहीं हैं किसी बिल्कुल गलत धारणा के आधार पर कहीं हैं। पहली बात तो यह है कि हम इस अनुच्छेद द्वारा उच्चतम न्यायालय को ऐसी कोई शक्ति नहीं प्रदान कर रहे हैं जिससे वह नियम बनाये। नियम बनाने की शक्ति उसे अनुच्छेद 121 के द्वारा दी जा रही है। अनुच्छेद 121 में, वह देखेंगे कि यह कहा गया है:

> ''संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, उच्चतम न्यायालय समय-समय पर, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, उस न्यायालय के आचार और कार्यप्रणाली के सामान्यत: आनियमन के लिए, नियम बना सकेगा और इन नियमों में निम्न नियमों का भी समावेश होगा इत्यादि, इत्यादि।''

इसलिए यह कहना कि उच्चतम न्यायालय को हम यहां शक्ति दे रहे हैं, सही नहीं है। उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति तो प्राप्त ही है पर उसका प्रयोग वह राष्ट्रपति का

अनुमोदन पाने पर ही कर सकेगा। दूसरी बात, जिसके कारण उन्हें गलतफहमी हुई है वह यह है कि उन्होंने इस बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया कि सूची 1 के संशोधन नं. 42 के द्वारा मैंने अनुच्छेद 121 के आगे एक और अनुच्छेद 121 (ख ख) जोड़ने का प्रस्ताव किया था जिसमें पुनरीक्षण के लिए बनाये जाने वाले नियमों के बारे में व्यवस्था है। इसलिए, इन दो बातों को देखते हुए यह जरूरी है कि उच्चतम न्यायालय के पुनरीक्षण संबंधी अधिकार को अनुच्छेद 121 तथा संशोधन नं. 42 के प्रावधानों के अधीन ही रखा जाये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 112-क को विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112-क विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 113

***अध्यक्षः** अब लिया जाता है अनुच्छेद 113 को।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** सभा ने प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों के उल्लेख को इन सभी अनुच्छेदों से हटा दिया है, इसलिए अब इस अनुच्छेद की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। रस्मी तौर पर इस अनुच्छेद को पेश कर दिया जाये और सभा उसे अस्वीकार कर दे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, बात तो ऐसी ही है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 113 को विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 113 को विधान से हटा दिया गया।

अनुच्छेद 114

***अध्यक्षः** अब अनुच्छेद 114 को लिया जाता है। इस पर एक संशोधन है श्री गुप्ते का।

(संशोधन पेश नहीं किया।)

कोई सदस्य इस अनुच्छेद के संबंध में बोलना चाहता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के संबंध में जो

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

भी अनुच्छेद मसौदे में रखे गये हैं उनमें आयकर विषयक मामलों की अपीलों के बारे में कोई भी स्पष्ट प्रावधान नहीं हैं इस संबंध मैं यह कहना चाहता हूं कि इस मसले पर मैं विचार कर रहा हूं और छानबीन के बाद अगर यह पाया गया कि आयकर संबंधी मामलों की अपीलों के बारे में उच्चतम न्यायालय को अधिकार प्रदान करने के प्रयोजन के लिए इन अनुच्छेदों में से किसी का उपयोग नहीं किया जा सकता है, तो मैं एक विशेष अनुच्छेद जोड़ने का विचार कर रहा हूं जो खासतौर से ऐसे मामलों के लिए ही होगा। पर यह अनुच्छेद इसी तरह रहने दिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 114 को विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 114 विधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 115, 116 और 117 को हम पहले ही निपटा चुके हैं।

अनुच्छेद 119

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अनुच्छेद 119 पर हमने अभी विचार नहीं किया है।

***अध्यक्षः** हां, अब इस पर विचार किया जायेगा। इस पर एक संशोधन की सूचना श्री कामत की ओर से आई है। उनका संशोधन है नं. 1952 का।

(नं. 1952 से 1955 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

एक दूसरा संशोधन है नं. 41 का।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अगर अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं यह बता दूं कि संशोधन नं. 41 सारतः वैसा ही है जैसा कि संशोधन नं. 1953। अगर 1953 को कोई नहीं पेश करता है और श्री कामत अपने संशोधन नं. 1955 को पेश करते हैं तभी यह नं. 41 पेश किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** न तो संशोधन नं. 1953 पेश हुआ है और न श्री कामत ही अपने संशोधन 1955 को पेश करने की स्थिति में हैं। वह किसी और काम में व्यस्त हैं। मैं समझता हूं कि यह 27 मई को पेश किया जा चुका है। इसलिए हम नं. 41 को ले सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1955 के संबंध में, अनुच्छेद 119 के खंड (2) को हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1955 के संबंध में, अनुच्छेद 119 के खंड (2) को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 119 को इसके संशोधित रूप में विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत रहा।

अनुच्छेद 119 को, संशोधित रूप में, विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 121

***अध्यक्ष:** 120 को हम स्वीकार कर चुके हैं। अब आता है अनुच्छेद 121। इस पर कई संशोधन आये हैं। पहले लिया जाता है संशोधन नं. 1958 को।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) में 'राष्ट्रपति के अनुमोदन से (with the approval of the President)' शब्द हटा दिये जायें।''

इस अनुच्छेद द्वारा कतिपय ऐसे नियमों या प्रावधानों की व्यवस्था की गई है जिनका अपने कर्त्तव्यों और प्रकार्यों के पालन में बनाना, उच्चतम न्यायालय के लिए आवश्यक होगा। अगर आप इस अनुच्छेद पर गौर करें तो आप देखेंगे कि इस अनुच्छेद का मूल प्रयोजन ही यह है कि ऐसे कुछ नियम बनाये जायें जो, न्यायालय के समक्ष वकालत करने वाले व्यक्तियों के संबंध में, विशेष तरह के मामलों में सुनवाई करने वाले न्यायाधीशों की संख्या के बारे में, जामिन संबंधी नियमों के बारे में और उसी तरह की अन्य बातों के बारे में व्यवस्था निर्धारित करते हों यह सभी बातें ऐसी हैं कि उन्हें सर्वथा उच्चतम न्यायालय के विवेक पर छोड़ देना चाहिये। राष्ट्रपति के अनुमोदन को इनके लिये अगर जरूरी बना दिया जाता है तो यह एक तरह से न्यायपालिका के कार्यों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप ही समझा जायेगा। मैं समझता हूं इन सब मामलों में जो वस्तुत: अन्दरूनी इंतजाम से संबंध रखते हैं और जिनकी व्यवस्था उच्चतम न्यायालय करेगा राष्ट्रपति का कोई हाथ न होना चाहिये। इसलिए मैं समझता हूं कि ये शब्द यहां सर्वथा अनावश्यक हैं। उच्चतम न्यायालय इसके लिए बिल्कुल सक्षम है कि आवश्यक नियमों को वह स्वत: बनाये। इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं है।

[श्री जैड.एच. लारी]

यह संशोधन वस्तुतः इसी अभिप्राय से रखा जा रहा है कि उच्चतम न्यायालय कार्यपालिका के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहे। आशा है सभा इसको स्वीकार करेगी।

(नं. 1959 से 1961 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** चूंकि डा. अम्बेडकर अभी बाहर चले गये हैं, अगर अनुमति हो तो मैं उसे पेश कर दूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** पेश कीजिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आपकी अनुमति से श्रीमान् मैं संशोधन नं. 1961 को पेश कर रहा हूं जो माननीय डा. अम्बेडकर के नाम में हैं। संशोधन यह है:

> ''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'और वह समय भी जो उस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं को तत्संबंधी अपने निवेदन करने के लिये दिया जायें। (and the time to be allowed to advocate appearing before the Court to make their submissions in respect thereof) शब्दों को हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** इस संशोधन के संबंध में एक और संशोधन है। वह है संशोधन नं. 42।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1959, 1960 और 1962 के संबंध में, अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) के बाद निम्नलिखित नया उपखंड जोड़ दिया जाये:
>
> 'न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश के पुनरीक्षण की कार्यप्रणाली के संबंध में नियम में उस समय के जिसके अन्दर ऐसे पुनरीक्षण के लिये न्यायालय को आवेदन पत्र दे देना है।' ''

यह संशोधन इसलिये जरूरी है कि सभा ने डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये नये खंड को स्वीकार कर लिया है जिसमें, निर्णयों पर पुनरीक्षण के प्रयोजन के लिये नियम बनाने का उच्चतम न्यायालय को अधिकार दिया गया है। सभा द्वारा स्वीकृत उस संशोधन के फलस्वरूप अब यह संशोधन आवश्यक है।

(संशोधन नं. 1963 पेश नहीं किया गया।)

इस संशोधन (नं. 1964) को बाकायदे पेश कर देना इसलिये जरूरी है कि अन्य संशोधन यानी संशोधन 42 और 43 जिनकी कि सूचना आ चुकी है पेश किये जा सकें।

इसलिए मैं इसे बाकायदे पेश कर देता हूं। संशोधन यह है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित परन्तुक रखा जाये।

'पर उक्त प्रयोजनों के लिए बैठना प्रत्येक न्यायाधीश का कर्तव्य होगा जब तक कि वह रुग्णता के कारण बैठने में असमर्थ न हो या वैयक्तिक हित अथवा अन्य पर्याप्त कारण से वह यह न समझता हो कि उसे न बैठना चाहिये।' ''

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान्।

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1964 के संबंध में अनुच्छेद 129 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'121. (2) निकट अनुवर्ती खंड के बन्धानों के अधीन रहते हुये इस अनुच्छेद के अधीन बनाये गये नियम उन न्यायाधीशों की न्यूतनम संख्या निश्चित कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिये बैठेंगे तथा अकेले न्यायाधीशों तथा खंड न्यायालयों की शक्ति के लिये भी बन्धान कर सकेंगे।

121 (2) (क) इस संविधान के अर्थ बोध विषयक सारवान विधि प्रश्न जिस मामले में अंतर्ग्रस्त है उसका निर्णय करने के लिये अथवा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन भेजे हुए प्रश्न के सुनने के लिये बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या पांच होगी:

परन्तु जहां वह न्यायालय, जो इस संविधान के अनुच्छेद 111 के अधीन अपील सुन रहा है, पांच से कम न्यायाधीशों का बना है और उसे अपील को सुनते समय समाधान हो जाये कि इस संविधान के अर्थबोध का ऐसा सारवान विधि प्रश्न अपील में अन्तर्ग्रस्त है जिसका निर्णय करना उस अपील के निर्णय के लिये आवश्यक है वहां ऐसा न्यायालय इस खंड के अधीन बनाये गये न्यायालय को राय के लिये उस प्रश्न को सौंप देगा तथा राय मिलने पर उस अपील का उस राय के अनुसार निबटारा करेगा।' ''

मैं नहीं समझता कि इस उपखंड (2) और (2क) के संबंध में कुछ भी कहना जरूरी है क्योंकि उनमें जो कुछ भी कहा गया है उससे उनकी आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है। हां, केवल परन्तुक के संबंध में कुछ प्रकाश डालना जरूरी है। परन्तुक में मुख्य बात यह है कि न्याय मंडल का समय निष्प्रयोजन नष्ट न होना चाहिये। जब किसी मामले की अपील हो तो शुरू में ही अपील करने वाली पार्टी को और अन्य प्रश्नों के साथ संवैधानिक प्रश्न को रख देना चाहिये। न्यायालय, जो इस मामले की सुनवाई करता है, अगर इस निर्णय पर पहुंचता है कि अपील पर निर्णय देने के लिये उठाये गये संवैधानिक प्रश्न पर विचार आवश्यक नहीं है और उस पर बिना विचार किये, अन्य जो बातें मामले के संबंध में कही गई हैं उनके आधार पर आसानी से फैसला किया जा सकता है तो ऐसी सूरत में यह केवल समय की बर्बादी होगी अगर वह मामला पांच न्यायाधीशों के एक

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

पूर्ण न्यायासन के पास भेजा जाये जबकि उसका निर्णय नियम के अधीन तीन न्यायाधीशों का न्यायासन ही कर सकता है। इसीलिये यह प्रावधान रखा जा रहा है। अगर मामले की सुनवाई करने वाले न्यायासन को पूर्ण संतोष हो जाये कि संवैधानिक विधि संबंधी कोई वास्तविक प्रश्न उठता है जिसका निर्णय हो जाना फैसला देने के लिये आवश्यक है तो वह प्रश्न पांच न्यायाधीशों के पूर्ण न्यायासन के समक्ष उपस्थित कर दिया जायेगा। पांचों न्यायाधीश उस संवैधानिक प्रश्न पर विचार करेंगे और उनकी राय पुनः उन तीनों न्यायाधीशों के पास या जायेगी जो मूल अपील पर तथा अन्य उठाये गये विधि संबंधी प्रश्नों पर सुनवाई करते हैं और तब वह न्यायासन उसका निर्णय करेगा। उन मामलों में, जिनके संबंध में किसी प्रश्न को उच्च न्यायालय पूर्ण न्यायासन के पास विचारार्थ भेजता है, साधारणतः यही पद्धति बरती जाती है। इसी पद्धति को अपनाने के विचार से यह सुझाव दिया गया है।

एक और बात है जिसका मैं यहां उल्लेख कर देना चाहता हूं ताकि आगे चलकर सभा यह न समझे कि मैं इस प्रश्न को देर से उठा रहा हूं और मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इससे सहमत होंगे। वह बात यह है कि इस परन्तुक में अनुच्छेद 111 का लिखित हवाला दिया गया है। अब बात यह है कि उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार के विस्तार के लिये कई संशोधन लोगों ने भेजे हैं जिन पर विचार अभी रुका हुआ है। अगर उच्चतम न्यायालय में आपराधिक क्षेत्राधिकार निहित रखा जाता है तो, आपराधिक अपील में संवैधानिक प्रश्न उठाया जा सकता है। इसलिए इस पदसंहति को ''An appeal under article III of this Constitution'' सम्भवतः हटा देना होगा अन्यथा विशेष अपील के सिलसिले में भी संवैधानिक प्रश्न उठाया जा सकता है और अगर न्यायालय को यह संतोष हो जाता है कि संवैधानिक प्रश्न उठाया है तो इस खंड के अधीन बने हुए न्यायालय के पास वह बात भेज दी जायेगी। मैं यह इसलिये कहे देता हूं कि आगे चलकर यह न समझा जाये कि हम हर समय नये सशोधनों को ही लाने की कोशिश करते हैं।

इन शब्दों के साथ इस संशोधन को उपस्थित करता हूं। श्रीमान्, जो डा. अम्बेडकर और मेरे नाम से यहां आया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन नं. 44 की अब आवश्यकता नहीं रह जाती है। श्रीमान्, अगर अभी अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का संशोधन मंजूर हो जाता है जो कि मेरा ख्याल है मंजूर होगा।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

> ''कि अनुच्छेद 121 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:
>
> '(3) उच्चतम न्यायालय कोई निर्णय खुले न्यायालय के अतिरिक्त न सुनायेगा, तथा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन कोई प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय से अन्यथा न दिया जायेगा।' ''

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकरः** संशोधन नं. 1966 को भी मैं पेश करता हूं, श्रीमान्, वह यों है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (4) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'121. (4) कोई ऐसा निर्णय तथा कोई ऐसी राय उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई में उपस्थित न्यायाधीशों में से बहुसंख्यक की सहमति से अन्यथा न दी जायेगी किन्तु इस खंड की कोई बात किसी सहमत न होने वाले किसी न्यायाधीश को अपने विमत निर्णय या राय को देने से न रोकेगी।' ''

***डा. पी.एस. देशमुखः** (मध्यप्रांत व बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कई संशोधनों के फलस्वरूप जिनमें से कुछ तो डा. अम्बेडकर की ओर से और कुछ श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा उपस्थित किये गये हैं, अनुच्छेद 121 का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। इसको देखते हुए ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' इन शब्दों की यहां रखने की आवश्यकता और भी जाती रहती है। इसलिये श्री लारी के संशोधन के प्रति जिसकी सूचना श्री शंकर राव देव और अन्य कई सदस्यों ने दी थी, मुझे पर्याप्त सहानुभूति है। जो परिवर्तन इस अनुच्छेद में कर दिये गये हैं, उनको देखते हुए, नियमों के लिए राष्ट्रपति का अनुमोदन लेना जरूरी नहीं रह जाता है क्योंकि अधिकांश मामलों के बारे में सारी बातों का स्पष्ट प्रावधान यहां ही कर दिया गया हैं। किस-किस तरह के मामलों की सुनवाई कितने न्यायाधीश करेंगे, इसको यहां प्रावहित कर दिया गया हैं। अनुच्छेद 109 के अन्दर आने वाले मामलों के संबंध में भी यहां व्यवस्था कर दी गई है। नये संशोधनों के द्वारा हमने यह स्वीकार कर लिया है कि निर्णय खुले न्यायालय में ही दिया जायेगा। उच्चतम न्यायालय के पास इस अनुच्छेद के अनुसार जो अधिकार अब बच जाते हैं वह ऐसे हैं जिनके आधार पर वह केवल उन्हीं बातों के संबंध में नियमादि बना सकता है जो अधिकतर रोजमर्रा के जाप्ते से संबंध रखती है। ये नियम कुछ इतने महत्त्वपूर्ण या आवश्यक नहीं होंगे कि प्रवर्तन में लाने के पहले राष्ट्रपति के समक्ष इनका रखा जाना जरूरी हो। जो शक्तियां यहां प्रावहित की जा रही हैं वे उनसे बहुत भिन्न नहीं हैं जोकि प्रांतीय उच्च न्यायालयों को प्राप्त हैं उच्च न्यायालय को, इन तमाम बातों के बारे में, जिनका यहां क्रमबद्ध उल्लेख किया गया है, नियम बनाने का व्यापक अधिकार प्राप्त है और किसी भी नियम या पद्धति के अधीन यह अपेक्षित नहीं है कि ये नियम गवर्नर की स्वीकृति के लिए उसके पास भेजे जायें। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं कि राष्ट्रपति का अनुमोदन इनके लिए अनावश्यक है और अच्छा होगा कि सभा इसके लिए पेश किये गये संशोधन को स्वीकार कर ले।

***श्री बी. दासः** मैं यह चाहता हूं, श्रीमान्, कि डा. अम्बेडकर इन शब्दों के संबंध में कि ''इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन कोई प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय से अन्यथा न दिया जायेगा'' खुलासा कर दें। इससे समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर आंच आती है। मान लीजिये कि किसी समाचार पत्र को कहीं से वह राय मिल जाती है जो उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति को दी है और उसे वह छाप देता है। क्या सरकार उस पत्र के विरुद्ध गुप्त बात प्रकाशित करने के आधार पर कार्यवाही करेगी? समाचार

[श्री बी. दास]

पत्र तो गुप्त बातों को संघा करते हैं। ऐसे भी तीक्ष बुद्धि पत्रकार हैं जो इनका अन्दाज लगा लेंगे कि उच्चतम न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश राष्ट्रपति को क्या राय देंगे। इस अनुच्छेद का अभिप्राय यह तो नहीं है कि समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर अंकुश रखने की शक्ति संसद को प्राप्त हो जाये? प्रश्न इसमें यही है कि समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर तो इससे आंच न आयेगी और पत्रकारों को तो न प्रामियुक्त किया जायेगा?

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अध्यक्ष महादेय, श्री लारी के इस संशोधन का (संशोधन नं. 1958) कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खंड (1) से ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों को हटा दिया जाये, मैं समर्थन करता हूं। अनुच्छेद 121 उच्चतम न्यायालय को इन बातों के संबंध में नियम निर्माण का अधिकार देता हैं। न्यायालय के समक्ष अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों के संबंध में अपीलों की सुनवाई के लिए पद्धति के अनियमन के संबंध में और इस बात को निश्चित करने के बारे में कि किस तरह के मामलों की सुनवाई एक न्यायासन या खंड न्यायालय अथवा अनेक संख्यक न्यायाधीशों के न्यायासन के समक्ष होगी। इससे उच्चतम न्यायालय को यह भी शक्ति प्राप्त होती है कि वह खर्च और अन्य आनुषंगिक बातों के बारे में, जामिन मंजूर करने के बारे में, कार्यवाही को रोकने के बारे में, किसी अपील पर जो न्यायालय को तुच्छ या तंग करने वाली अथवा विलम्ब करने के प्रयोजन के लिए की हुई प्रतीत होती हो, संक्षेपत: निर्णय देने के बारे में, नियम बना सकता है। ये सब ऐसी बातें हैं, श्रीमान्, जो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों के ही क्षेत्राधिकार के अधीन होनी चाहिये और कोई कारण नहीं है कि इनके लिए राष्ट्रपति का अनुमोदन आवश्यक बनाया जाये। अगर आप इन उच्च न्यायालयों के विधान को देखें और गौर करें कि किस तरह इन सब बातों के बारे में गत अस्सी या अधिक ही कुछ वर्षों से इन्होंने अपने प्रकार्य संपादित किये हैं और किस तरह 1915 के और 1935 के भारत शासन अधिनियम के अधीन काम हुआ है तो आपको मालूम होगा कि ये सब बातें उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति एवं उसके न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार के ही अधीन रही हैं। अधिवक्ता और न्यायवादियों को प्रवेशाधिकार देने के संबंध में या न्यायासनों की रचना के संबंध में नियमादि बनाने का काम मुख्य न्यायाधिपति या न्यायाधीशों के ही क्षेत्राधिकार के अन्दर था। इन नियमों के प्रस्थापन के लिए गवर्नर जनरल या गवर्नर की स्वीकृति नहीं ली जाती थी। इस संबंध में उस राज पत्र (Letters patent) के खंड 9 और 10 की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा जिसके आधार पर कलकत्ता हाईकोर्ट की स्थापना हुई या इसी तरह के प्रावधान जो उन अन्य सभी हाईकोर्टों की स्थापना के संबंध में निकाले गये राज पत्रों में हैं अर्थात् प्रेसिडेंसी के हाईकोर्टों और इलाहाबाद, पटना, नागपुर, पूर्वी पंजाब, उड़ीसा और असम के हाईकोर्ट जो कि हाल में स्थापित किये गये हैं, इनसे सम्बन्धित राजपत्रों में है, उनकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा।

खंड 9 में कहा गया है:

''और एतद् द्वारा हम बंगाल के फोर्ट विलियम स्थित उक्त हाईकोर्ट को यह अधिकार और शक्ति प्रदान करते है कि वह ऐसे और इतने संख्यक अधिवक्ताओं, वकीलों और

न्यायवादियों को जैसी और जितनों को वह आवश्यक समझेगी, अनुमोदित प्रविष्ट और रजिस्टर पर नामबद्ध करेगी और ऐसे अधिवक्ताओं, वकीलों और न्यायवादियों को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का अधिकार होगा और एतद् द्वारा दिया जाता है तथा इत्यादि, इत्यादि।

खंड 10 में कहा गया है:

> ''और एतद् द्वारा हम यह आदेश निकालते हैं कि बंगाल के फोर्ट विलियम स्थित उक्त हाईकोर्ट को, समुचित व्यक्तियों को उक्त न्यायालय के अधिवक्ता, वकील या न्यायवादी बनने के लिये योग्यता तथा प्रवेश सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार होगा और उसे यह शक्ति प्राप्त होगी कि वह समुचित कारण के आधार पर उनको हटा दे या उनको वकालत करने से रोक दे या इत्यादि, इत्यादि।''

इन सब बातों के लिये गवर्नर या गवर्नर जनरल की स्वीकृति जरूरी नहीं ठहराई गई है। हां, यह बात जरूर है कि अन्य कई विषयों के संबंध में जैसे कि नये न्यायालयों की स्थापना के संबंध में कर्मचारियों के वेतनादि निर्धारित करने के बारे में और इसी तरह की अन्य बातों के बारे में हाईकोर्ट द्वारा बनाये गये नियमों के लिये गवर्नर जनरल तथा प्रांतीय सरकारों की स्वीकृति जरूरी रखी गई है। कलकत्ता हाईकोर्ट द्वारा बनाये नियमों के लिये गवर्नर जनरल की स्वीकृति तथा अन्य हाईकोर्ट द्वारा बनाये इन नियमों के लिये संबंधित प्रांतीय सरकार की स्वीकृति अपेक्षित रखी गई हैं। पर जहां तक कि वकीलों और अधिवक्ताओं आदि के प्रवेशाधिकार के बारे में नियम बनाने का संबंध है, वह हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति और न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार की बात है। उसके लिये गवर्नर जनरल या गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक नहीं ठहराई गई है।

खंड न्यायासनों की रचना के संबंध में, भारत शासन अधिनियम 1915 की धारा 108 में यह प्रावधान रखा गया है:

> ''प्रत्येक उच्च न्यायालय स्वनिर्मित नियमों द्वारा जैसा वह ठीक समझे, एक या अधिक न्यायाधीशों द्वारा, या उच्च न्यायालय के दो या अधिक न्यायाधीशों से बने खंड न्यायालयों द्वारा, न्यायालय में निहित प्रारम्भिक तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिये प्रावधान कर सकता है।
>
> (2) प्रत्येक उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति यह निश्चित करेगा कि हर मामले में कौन न्यायाधीश अकेले बैठेगा और न्यायालय के कौन न्यायाधीशों से, और मुख्य न्यायाधिपति को लेकर अथवा उसके बिना, विभिन्न खंड न्यायालय बनेंगे।''

भारत शासन अधिनियम की धारा 223 में यही प्रावधान, संक्षिप्त शाब्दिक परिवर्तन के साथ रखा गया है। अगर उच्च न्यायालयों के संबंध में यह स्थिति है तो फिर उच्चतम न्यायालय के संबंध में, जो कि देश का सर्वश्रेष्ठ न्यायालय होगा, आप एक भिन्न नियम क्यों रख रहे हैं? यहां राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति को क्यों अनिवार्य किया जाये? व्यवहार

[डा. बक्शी टेकचन्द]

में इसका मतलब यह होगा कि प्रधानमंत्री की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होगी। मैं कहूंगा कि इन मामलों में जिनका संबंध उच्चतम न्यायालय के अन्दरूनी प्रशासन से है राष्ट्रपति का हस्तक्षेप सर्वथा अनावश्यक है।

अधिवक्ताओं, वकीलों एवं न्यायवादियों को प्रवेशाधिकार देने तथा न्यायासनों की रचना से संबंध रखने वाले दो खंडों का तो मैंने यहां उदाहरण दे ही दिया है। अन्य विषय जिनका उल्लेख 121 में आया है वे सामान्य महत्त्व के हैं। खर्च एवं अन्य आनुषंगिक मामलों से ही उनका संबंध है। स्पष्ट है कि इनके निर्णय के लिए उच्चतम न्यायालय ही समुचित निकाय है।

फिर जामिन की मंजूरी का सवाल आता है। यह विषय तो केवल न्यायपालिका से संबंध रखता है। इनके लिए बनाये गये नियमों को कार्यपालिका के पास क्यों भेजा जाये? ये नियम मुख्य-न्यायाधिपति एवं न्यायाधीशों पर ही छोड़ देने चाहिए। कार्यवाही रोकने के नियमों के लिए भी यही बात होनी चाहिये। जब किसी लम्बित वाद या अपील के संबंध में न्यायालय कार्यवाही रोक देते हैं तो साधारणत: यही होता है कि इस बात के लिए प्रतिभूति ले ली जाती है कि जो आदेश अन्ततोगत्वा न्यायालय देगा उसका समुचित पालन किया जायेगा। प्रतिभूति को उच्चतम न्यायालय के रजिस्ट्रार के समक्ष प्रमाणीकृत किया जायेगा। इसका निर्णय न्यायालय द्वारा बनाये गये नियम ही करेंगे।

ऐसा मालूम होता है कि प्रश्न के इस पहलू पर मसौदा समिति का ध्यान नहीं गया है कोई कारण नहीं है कि इस अनुच्छेद में ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों को क्यों रखा जाये। श्री लारी द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** माननीय मित्र श्री लारी ने जो संशोधन रखा है, श्रीमान्, उसके संबंध में सभा में साधारणत: लोगों का यही ख्याल है कि उच्चतम न्यायालय के काम में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप की व्यवस्था विधान में कर दी गई है। उच्चतम न्यायालय के संबंध में राष्ट्रपति को या यों कहिये कि प्रधानमंत्री को आवश्यकता से अधिक अधिकार दे दिये गये हैं छोटी-छोटी बातों के बारे में भी, जैसे कि उच्च न्यायालय की शक्तियों के संबंध में नियम बनाने आदि के बारे में भी, यही कहा गया है कि राष्ट्रपति का अनुमोदन उनके लिए आवश्यक होगा। अवश्य ही ऐसे सामान्य विषय संबंधी नियमों के लिये राष्ट्रपति का अनुमोदन जरूरी कर देना आपत्तिजनक ही है। हमें अपने उच्चतम न्यायालय को कार्यपालिका के प्रभाव से सर्वथा स्वतंत्र रखना चाहिये। उच्चतम न्यायालय की रचना हो जाये और राष्ट्रपति स्वयं उसके न्यायाधीशों को मनोनीत कर दे। फिर उसके बाद राष्ट्रपति को और कोई हस्तक्षेप उसके सम्बन्ध में न करना चाहिये। इस अनुच्छेद में जिन नियकों की चर्चा है उनको तो उच्चतम न्यायालय ही, विधि शास्त्र के नियमों के अनुसार और देश हित का ख्याल रखते हुए, बनायेगा। श्री लारी के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं, श्रीमान्।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** एक ज्ञातक है, श्रीमान्। वक्ता महोदय से मैं यह पूछता हूं कि अनुच्छेद 111 के सिलसिले में आपने जो कुछ यहां कहा था उससे क्या आपकी

राय अब बदल गई है? उस अनुच्छेद के संबंध में तो आपने यह चाहा था कि उसके प्रावधान संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन हों।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** प्रश्न को मैं सुन नहीं पाया, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** श्री कृष्णमाचारी ने आप से एक प्रश्न किया है। पर उसे आप समझ नहीं रहे हैं, सुतरा उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्री लारी के संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। जैसा कि डा. टेकचन्द ने, अपने अपूर्व न्यायिक अनुभव के आधार पर अधिकृत रूप से यहां साफ-साफ समझाया है, अनुच्छेद 121 के अधीन जो नियम बनेंगे वह ऐसे ही विषयों के संबंध में होंगे जिनका संबंध न्यायालयों में बरती जाने वाली कार्य पद्धति से ही होगा। वस्तुत: पक्ष प्रतिपादन के लिए न्यायालय में उपस्थित होने वाले वकीलों के संबंध में या ऐसी ही अन्य बातों के संबंध में नियम बनाने का जो प्रश्न है वह न्यायालयों के आन्तरिक प्रशासन की बात है। ऐसी हालत में, न्यायालय के लिये यह एक बड़ी असाधारण बात होगी कि बनाये जाने वाले नियमों को वह राष्ट्रपति के पास उसकी स्वीकृति के लिये भेजे। यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है और मैं उसे ठीक भी समझता हूं कि आप ऐसा प्रावधान रखिये कि नियमों के संबंध में राष्ट्रपति का परामर्श अपेक्षित होगा। वह बात तो मानने लायक बात होगी। मुझे इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि इन शब्दों को हटा दिये जाने पर भी उच्चतम न्यायालय सरकार से परामर्श अवश्य ही लेगा। पर नियमों की मान्यता के लिये राष्ट्रपति के अनुमोदन को आवश्यक ठहरा देना तो एक साधारण सी ही बात होगी। मेरा कहना यह है कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रपति के अनुमोदन का मतलब यही होगा कि तत्कालीन मंत्रिमंडल या सरकार का अनुमोदन लेना। यह और भी आपत्ति की बात है। उच्चतम न्यायालय में तो न्यायपालिका की सर्वोच्च शक्ति सन्निहित रहेगी और उसे कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्र रहना चाहिये। अगर उसके लिये यह आवश्यक ठहरा दिया जाता है कि न्याय प्रशासन संबंधी अन्दरूनी मामलों के लिए यह जो नियमादि बनाये उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति ले तो यह एक बड़ी आपत्ति की बात होगी। जामिन की मंजूरी के बारे में नियमादि बनाने का जो प्रश्न है, अर्थात् जामिन मंजूर किया जाये या नहीं इन सब बातों का संबंध, अवश्य ही, विधान मंडल से है। पर जामिन संबंधी नियमों का आनियमन करना, उसके लिये आवेदन किया जा सकता है या नहीं, किसी जामिनदार को मंजूर किया जाये या नहीं इत्यादि जो बातें हैं वह ऐसी हैं कि उनका संबंध उच्चतम न्यायालय के ही आन्तरिक प्रशासन से है। कार्यवाही को रोकने की जो बात है वह सर्वथा न्यायालय के विवेक पर निर्भर करती है और इसके लिए पहले से ही कोई खास नियम बना दिया जाये यह असम्भव है। ये मामले ऐसे हैं कि न्यायालय के विवेक पर ही निर्भर करते हैं और प्रत्येक मामले की परिस्थिति के साथ बदलते रहते हैं। इनके लिये पहले से कोई नियम नहीं बनाये जा सकते हैं। इसलिये इन नियमों को तो न्यायालय के विवेक पर ही छोड़ देना चाहिये। और फिर कार्यवाहियों से संबंध रखने वाली बातें और संक्षेपत: निर्णय दे देने की जो बात है वह शुद्धत: न्यायिक मसले हैं। मैं विस्तार की बातों में नहीं जाना चाहता। उनको डा. बख्शी टेकचन्द ने यहां

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

खूब अच्छी तरह, योग्यतापूर्वक समझा दिया है। मैं यही कहता हूं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप का न होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि हस्तक्षेप का आभास तक न होना चाहिए। इन कारणों से इन शब्दों को यहां रखना सर्वथा आपत्तिजनक है और इन्हें हटा ही देना चाहिये। इसमें मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है, जैसा कि मैंने अभी कहा है, कि उच्चतम न्यायालय सरकार से सदा परामर्श कर लिया करेगा और यहां इतना ही काफी होना चाहिए। बजाय इसके कि इसके संबंध में कोई कानून बनाया जाये, अच्छा होगा कि उसे रूढ़ि पर छोड़ दिया जाये। इन शब्दों के साथ, श्री लारी के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अध्यक्ष महोदय, ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों के हटाने का जो समर्थन किया जा रहा है उस पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। इनको हटाने का परिणाम यह नहीं होगा कि उच्चतम न्यायालय को कार्यपालिका से सर्वथा स्वतंत्रता मिल जायेगी। इससे तो यही होगा कि विधि द्वारा नियम निर्माण संबंधी शक्ति को सीमित करने का कार्यपालिका को अधिकार प्राप्त हो जायेगा। जब तक कि अनुच्छेद का पहला अंश यानी ये शब्द ''संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के बन्धानों के अधीन रहते हुए'' वहां है, ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों के रहने से उच्चतम न्यायालय के लिए एक सुरक्षा ही रहती है। यह इसलिए कि संसद को ऐसी विधि बनाने का अधिकार रहेगा ही जिससे उच्चतम न्यायालय का नियम-निर्माण विषयक अधिकार सर्वथा छिन जाता हो और संसद इन में से हर बात के लिये विधि द्वारा खुद प्रावधान कर सकती है। इसलिये अगर नियम निर्माण विषयक अन्तिम अधिकार आप संसद में ही निहित रखते हैं तो अच्छा यही होगा कि सभी नियम राष्ट्रपति के अनुमोदन से ही बनाये जायें।

और फिर यह एक ऐसा विषय है जिसका संबंध आम नीति से है। उदाहरण के लिए आप उन नियमों को ही ले लीजिये जो न्यायालय के समक्ष वकालत करने वाले व्यक्तियों के संबंध में बनाये जायेंगे। क्या उच्चतम न्यायालय को ऐसा कहने का अधिकार रहेगा कि अमुक विश्वविद्यालय की ही उपाधि को तो वह मान्यता देगा और अन्य किसी विश्वविद्यालय की उपाधियों को नहीं? कानून विषयक शिक्षा का समूचा प्रश्न और अन्य कई अंतर्प्रांतीय प्रश्न भी खड़े होंगे और सम्भवत: यह ऐसी बातें होंगी जिनके संबंध में, किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये उच्चतम न्यायालय के पास पर्याप्त सामग्री ही न होगी और उसे कार्यपालिका से परामर्श करना ही होगा। न केवल केन्द्रीय कार्यपालिका से बल्कि प्रांतीय कार्यपालिकाओं से भी उसे परामर्श लेना आवश्यक होगा। केन्द्रीय मंत्रिमंडल का शिक्षा विभाग ही यह बताने का अधिकारी होगा कि कौन विद्यालय समुचित रूप से उपाधि प्रदान कर रहा हैं। अन्यथा फिर उच्चतम न्यायालय को एक ऐसे आयोग की नियुक्ति करनी पड़ेगी जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षा स्तर की जांच कर यह बतायेगा कि किस की उपाधियों को मान्यता दी जाये। मैं नहीं समझता कि इस बात को सर्वथा उच्चतम न्यायालय के हाथ में छोड़ना ठीक होगा। उसी तरह खर्च और शुल्क से संबंध रखने वाले और कई प्रश्न हैं जो आम नीति से संबंध रखते हैं। यह बिल्कुल सही है कि उच्चतम न्यायालय को कार्यपालिका का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। यह विचार कि उच्चतम न्यायलय को ऐसे

निकाय के रूप में रहना चाहिए जो संविधान में प्रावहित अन्य सभी संस्थाओं से सर्वथा भिन्न हो, बिल्कुल गलत है और हानिकर है। उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था सुरक्षा के लिए की जा रही है। पर इसे अगर आप ऐसी स्थिति में रख देते हैं कि कार्यपालिका एवं संसद का इसके प्रति वैर भाव बना रहे तो उच्चतम न्यायालय की सारी शक्ति जाती रहेगी क्योंकि, अन्ततोगत्वा इसे संसद एवं कार्यपालिका की सद्भावना पर ही निर्भर करना पड़ेगा। इसलिए मैं यही सुझाव दूंगा कि उच्चतम न्यायालय को सर्वथा स्वतंत्र रखने का जो विचार है उन पर ही कुठाराघात न होने दीजिये जैसा कि यहां कई सदस्य अपने प्रयास द्वारा कर रहे हैं।

अब एक ही और छोटी सी बात रह गई है जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा। नये खंड में, जिसको कि माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने अपने संशोधन नं. 42 के द्वारा प्रस्तावित किया है, यह कहा गया है:

''न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश के पुनरीक्षण की कार्य प्रणाली के संबंध में नियम में उस समय के जिसके अन्दर ऐसे पुनरीक्षण के लिये न्यायालय को आवेदन-पत्र दे देना है।'' इसके संबंध में मेरा यह कहना है कि यह अनुच्छेद 112-क से सर्वथा असंगत है जिसे कि हम पास कर चुके हैं। 112-क में कहा गया है कि न केवल पुनरीक्षण की कार्य प्रणाली बल्कि पुनरीक्षण की शक्ति, या पुनरीक्षण संबंधी शर्तें नियमों के अधीन सीमित रहेगी। उस प्रावधान के विरुद्ध मैंने खुद आपत्ति की थी पर जबकि वह पास हो चुका है तो अब जो दूसरे संशोधन इस संबंध में रखे जाये वह मेरा ख्याल है, स्वीकृत प्रावधान से संगत होने चाहिये। इस संबंध में मेरा सुझाव यह है कि ''पुनरीक्षण की कार्य प्रणाली के संबंध में नियम'' शब्दों की जगह केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ''पुनरीक्षण के संबंध में नियम''। आप अगर यह चाहते हैं कि 'कार्य प्रणाली' शब्द रहे ही तो यों रखिये ''पुनरीक्षण की शर्तों और उसकी कार्यप्रणाली के संबंध में नियम''। उस रूप में रखने से यह अनुच्छेद पूर्व के अनुचछेद से संगत हो जायेगा जिसे हम पास कर चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि माननीय मित्र श्री लारी के संशोधन को मैं नहीं स्वीकार कर सकता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस संशोधन में जो बात अन्तर्ग्रस्त है उसे समझने में उन्होंने बिल्कुल भूल की है।

उच्चतम न्यायालय की नियम-निर्माण संबंधी शक्ति को राष्ट्रपति के अनुमोदन के अधीन रखने का कारण यह है कि अगर नियम निर्माण को सर्वथा उच्चतम न्यायालय की मरजी पर छोड़ दिया जाता है तो हो सकता है कि उसके बनाये नियमों के कारण देश के राजस्व पर काफी भार पड़ जाये। मैं एक उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किये देता हूं। मान लीजिये इस आशय का वह एक नियम बनाता है कि इस तरह के मामलों की सुनवाई दो न्यायाधीश करेंगे। उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाया गया ऐसा नियम एक सरल सा नियम हो सकता है पर इसमें खक नहीं कि इससे सरकारी राजस्व पर भार बढ़ जायेगा। इसी तरह के अन्य प्रावधान भी नियमों में आयेंगे, जिनसे राजस्व पर भार पड़ सकता है। देयों (fees) के आनियमन के जो नियम होंगे उनका भी सरकारी राजस्व से ही संबंध होगा। इसे

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

बनाने का काम उच्चतम न्यायालय की मरजी पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिये मेरा निवेदन यही है कि अनुच्छेद 121 में जो यह रखा गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियम राष्ट्रपति के अनुमोदन के अधीन होंगे वह एक समुचित व्यवस्था है और इस पर हमें चलना चाहिये। ऐसे विषय, जिनसे सरकारी राजस्व पर भार पड़ता हो जिसकी पूर्ति के लिए विधान मंडल या कार्यपालिका को कर लगाने की व्यवस्था करनी पड़ेगी, उन्हें कार्यपालिका की हद से बाहर नहीं रखा जा सकता।

मैं यह भी बता दूं कि अनुच्छेद 121 में जो प्रावधान रखे गये हैं वह ठीक वही हैं जो भारत शासन अधिनियम 1935 के अनुच्छेद 214 और 224 में हैं जिनका संबंध क्रमशः फेडरल न्यायालय तथा हाईकोर्टों से है। इसलिए, जो व्यवस्था आज वर्तमान है, उससे कोई भिन्न व्यवस्था इस अनुच्छेद में नहीं प्रावहित की गई है। माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन नं. 42 के संबंध में माननीय मित्र श्री के. सन्तानम् ने जो कुछ टीका टिप्पणी की है उसके संबंध में मुझे यह कहना है कि मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पाया कि वह क्या बात कहना चाहते है; इसलिए, इसके संबंध में इतना ही कह सकता हूं कि मसौदा समिति जब विधान की आवृत्ति के लिए बैठेगी तो इन सभी बातों पर विचार करेगी और अगर किसी नई पदसंहति रखने का सुझाव होगा जो उस अनुच्छेद के प्रावधानों से संगत है जिसे हम, उच्चतम न्यायालय पुनरीक्षण संबंधी अधिकार देने के बारे में पास कर चुके हैं, तो उस पर निःसंदेह वह विचार करेगी।

एक और बात है जिसका मैं यहां जिक्र कर देना चाहता हूं और वह है संशोधन नं. 43 के संबंध में। संशाधन नं. 43 में, जिसे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने पेश किया है और जिसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं। एक परन्तुक है जिसमें यह कहा गया है कि, अनुच्छेद 110 में प्रावहित विषय को छोड़कर अन्य किसी विषय के बारे में अगर संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न उठता है तो अपील को पांच न्यायाधीशों के एक न्यायासन की भेजा जायेगा और उस प्रश्न का निपटारा हो जाने पर मामलों को पुनः प्रारम्भिक न्यायासन के पास वापस लौटा दिया जायेगा। परन्तुक में अनुच्छेद 111 का हवाला दिया गया है पर मैं समझ रहा हूं कि अगर आगे चल कर उच्चतम न्यायालय को आपराधिक अपीलों की सुनवाई का क्षेत्राधिकार देने का सभा निश्चय करती है तो उस हालत में इस परन्तुक में भी तदनुरूप परिवर्तन कर देगा होगा ताकि उच्चतम न्यायालय, आपराधिक मामलों के संबंध में उठने वाले ऐसे प्रश्नों के बारे में भी इस तरह की अपीलों की सुनवाई कर सके। इसलिए मेरा कहना यह है कि अगर सभा इस बात को मंजूर कर लेती है कि उच्चतम न्यायालय को आपराधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिये, जिसका सुझाव कई क्षेत्रों से दिया जा रहा है, तो उस सूरत में इस परन्तुक में भी तदनुसार परिवर्तन कर देना होगा।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

> ''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) में ''राष्ट्रपति के अनुमोदन से'' शब्दों को हटा दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1958, 1960 और 1962 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) के बाद निम्नलिखित नया उपखंड रखा जाये:

'न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय या आदेश के पुनरीक्षण की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में नियम, मय उस समय के जिसके अन्दर ऐसे पुनरीक्षण के लिये न्यायालय को आवेदन पत्र दे देना है।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'और वह समय भी जो उस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं को तत्सम्बन्धी अपने निवेदन करने के लिये दिया जाये' शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 1964 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'121-(2). निकट अनुवर्ती खंड के बन्धानों के अधीन रहते हुए इस अनुच्छेद के अधीन बनाये गये नियम उन न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या निश्चित कर सकेंगे जो किसी प्रयोजन के लिये बैठेंगे तथा अकेले न्यायाधीशों तथा खंड न्यायालयों की शक्ति के लिये भी बन्धान कर सकेंगे।

121 (2) (क). इस संविधान के अर्थबोध विषयक सारवान विधि-प्रश्न जिस मामले में अन्तर्ग्रस्त है, उसका निर्णय करने के लिये अथवा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन भेजे हुए प्रश्न के सुनने के लिये बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या पांच होगी:

परन्तु जहां वह न्यायालय, जो इस संविधान के अनुच्छेद 111 के अधीन अपील सुन रहा है, पांच से कम न्यायाधीशों का बना है और उसे अपील को सुनते समय समाधान हो जाये कि इस संविधान के अर्थबोध का ऐसा सारवान विधिप्रश्न अपील में अन्तर्ग्रस्त है जिस का निर्णय करना उस अपील के निर्णय के लिये आवश्यक

[अध्यक्ष]

है, वहां ऐसा न्यायालय इस खंड के अधीन बनाये गये न्यायालय को राय के लिये उस प्रश्न को सौंप देगा तथा राय मिलने पर उस अपील का उस राय के अनुसार निबटारा करेगा।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 121 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(3) उच्चतम न्यायालय कोई निर्णय खुले न्यायालय के अतिरिक्त न सुनायेगा, तथा इस संविधान के अनुच्छेद 119 के अधीन कोई प्रतिवेदन खुले न्यायालय में सुनाई गई राय से अन्यथा न किया जायेगा।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

कि अनुच्छेद 121 के खंड (4) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(4) कोई ऐसा निर्णय तथा कोई ऐसी राय उच्चतम न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई में उपस्थित न्यायाधीशों में से बहुसंख्यक की सहमति से अन्यथा न दी जायेगी। किन्तु इस खंड की कोई बात सहमत न होने वाले किसी न्यायाधीश को अपने विमत-निर्णय या राय को देने से न रोकेगी।' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 121 को, इसके संशोधित रूप में, विधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

अनुच्छेद 121 अपने संशोधित रूप में विधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 122-क

***डा. बक्शी टेकचन्द:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1909 और 1926 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 122 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'122-(क). इस अध्याय में, इस संविधान में निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के बारे में जो निर्देश है, उसका अर्थ ऐसा किया जायेगा कि मानो उसके अन्तर्गत

भारत शासन अधिनियम 1935 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी परिषदादेश या आदेश के, अथवा भारतीय-स्वतंत्रता-अधिनियम 1947 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी आदेश के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के निर्देश भी हैं।' ''

इस नये अनुच्छेद को जोड़ने की जरूरत इसलिये आती है, श्रीमान्, कि इस अध्याय के कई अनुच्छेदों में जो उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के सम्बन्ध में रखे गये हैं यह पदसंहति कि ''संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के बारे में'' प्रयुक्त हुई है। उदाहरण के लिये आप अनुच्छेद 110 को ही ले लीजिये जो भारत शासन अधिनियम की धारा 205 का स्थानीय है। इसके द्वारा किसी पक्ष को यह अधिकार प्राप्त है कि किसी भी मामले के सम्बन्ध में चाहे वह व्यवहार विषयक हो, या आपराधिक हो, या अन्य कार्यवाही के सम्बन्ध में दिये गये निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है; उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता हो कि उस मामले में संविधान के निर्वचन को लेकर कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। पर ऐसे भी मामले आ सकते हैं जिन में भारत शासन अधिनियम, या सम्राट द्वारा निकाले गये परिषदादेश, या भारत शासन अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अधीन गवर्नर जनरल द्वारा निकाले गये आदेश के निर्वचन के सम्बन्ध में कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। इसी तरह, हो सकता है किसी मामले में, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के निर्वचन के किसी सारवान विधि प्रश्न के अन्तर्ग्रस्त होने का प्रश्न उठाया जाये। प्रस्तुत अनुच्छेद में, ऐसे मामलों की अपील की कोई गुंजाइश नहीं हैं। हो सकता है कि जिस दिन अपना यह संविधान प्रवर्तन में आवे उस दिन उच्च न्यायालय के समक्ष या अन्य अधीन न्यायालयों के समक्ष लम्बित मामलों के सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न उठाये जायें। उन मामलों के बारे में आखिर क्या किया जायेगा? ''इस संविधान'' इस पद-संहति के अर्थ की परिधि को जब तक कि उस रूप में और विस्तृत नहीं किया जाता है जैसा कि इस संशोधन में सुझाया गया है, ऐसे मामलों पर उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील हो ही नहीं सकती है। हो सकता है कि ऐसे जो मामले हों वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण हों और केन्द्रीय या प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधान के सम्बन्ध में अथवा गवर्नर जनरल या गवर्नर द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश के सम्बन्ध में उठाये गये हों। उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित मामलों में अगर ये प्रश्न उठाये गये हों और संविधान के प्रारम्भ के दिन वह मामले प्रिवी कौंसिल के समक्ष लम्बित हों तो वे मामले अनुच्छेद 308 (2) में दिये हुए संक्रमण सम्बन्धी प्रावधान के अधीन स्वत: उच्चतम न्यायालय को स्थानान्तरित हो जायेंगे। यह अनुच्छेद 308 (2) आगे चल कर समय पर सभा के समक्ष विचारार्थ आयेगा ही। इसी तरह के प्रश्न अन्य और मामलों में उठाये गये होंगे जिनका निर्णय न तो अधीन न्यायालयों ने किया होगा और न उच्च न्यायालयों ने किया होगा या ऐसे प्रश्न संविधान के प्रवर्तन में आ जाने के बाद दायर किये जाने वाले मामलों में उठाये जायेंगे। ऐसे मामलों के लिये विधान में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। वर्तमान विधि के अनुसार ऐसे मामलों की अपील फेडरल न्यायालय में होनी चाहिये पर फेडरल न्यायालय तो उस दिन अस्तित्व में ही न रह जायेगा जिस दिन कि संविधान प्रवर्तन में आयेगा ऐसे मामलों के संबंध

[डा. बक्शी टेकचन्द]

में भी, अनुच्छेद 110 या 111 अथवा अन्य किसी अनुच्छेद के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सके, उसके लिए संविधान में एक न एक प्रावधान रखना ही होगा। इसीलिये, बजाय इसके कि हम अनुच्छेद 110, 111(2), 116 या दो एक और अनुच्छेदों में इन शब्दों को बार-बार लायें, एक स्वतंत्र निर्वचन-मूलक खंड रखना यहां जरूरी समझा गया है।

इस संशोधन का प्रभाव यह होगा कि ''इस संविधान'' शब्द जहां कहीं भी इस अध्याय में प्रयुक्त है, उसमें अपने इस पास होने वाले संविधान के निर्वचन का प्रश्न तो शामिल ही माना जायेगा पर साथ ही वह प्रश्न भी इसमें शामिल माने जायेंगे जो भारत शासन अधिनियम 1935 के, या किसी परिषदादेश या उसके अधीन निकाले गये किसी आदेश के या भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम या उसके अधीन निकाले गये किसी आदेश के निर्वचन के सम्बन्ध में उठाये गये हों।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं यहां एक बड़ा ही नाजुक सवाल उठाना चाहता हूं। जिस दिन अपना यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा उसी दिन से भारत शासन अधिनियम और उसके अधीन जारी किये सभी आदेश तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 और उसके अधीन निकाले गये सभी आदेश सर्वथा व्यपगत हो जायेंगे। उनकी कोई भी वैध मान्यता न रह जायेगी। और अगर उनके अधीन निर्मित कोई विधि प्रभावी बनी रहती है तो यह तभी सम्भव है जब कि संविधान में इस आशय का कोई प्रावधान हो कि सभी विधियां जो संविधान के प्रारंभ के समय प्रभावी हैं, वह प्रभावी बनी रहेंगी बशर्ते कि वह इस संविधान के विरुद्ध न हों। संविधान के प्रावधानों पर ही उनकी विधि सम्बन्धी मान्यता निर्भर करती है। इसलिये प्रश्न तो इस संविधान के अधीन ही उठाये जा सकते हैं। मेरी समझ से तो यह सुझाव—न्यायिक अनर्गलता इसे मैं नहीं कह सकता—एक न्यायिक अनुपयुक्तता ही है। यह सर्वथा निरर्थक है। आखिर हम उच्चतम न्यायालय को ऐसे संविधानों के निर्वचन पर विचार करने के लिये नहीं कह सकते हैं जो सर्वथा मृत्त हो चुके हैं और कानून की दृष्टि से जिनकी कोई मान्यता ही न रह गई हो। क्या यह संभव है कि इस संविधान के प्रवर्तन में आ जाने के बाद भी कोई व्यक्ति, भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन किसी न्यायालय में कोई मुकदमा दायर कर सकता है? निर्वचन के आधार पर तर्क उपस्थित किये जायें, यह तो हो सकता है पर भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 211 पर विचार करने के लिये और यह बताने के लिये कि इसका यह निर्वचन है, उच्चतम न्यायालय बैठे, यह क्या ठीक होगा? या उच्चतम न्यायालय क्या भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के किसी धारा के निर्वचन के सम्बन्ध में निर्णय दे सकता है? भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को बनाया था ब्रिटिश पार्लियामेंट ने। फिर भारत का उच्चतम न्यायालय यह कैसे कह सकता है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई अमुक धारा का निर्वचन यह है? उच्चतम न्यायालय इतना ही कह सकता है कि भारत शासन अधिनियम के अधीन बनाई गई विधियां कहां तक इस संविधान से संगत हैं या यह कि इस संविधान के अधीन उनका प्रवर्तन में रहना कहां तक संगत है। संविधान के निर्वचन के जो भी प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित किये जायेंगे वह सब इसी प्रस्तुत संविधान के निर्वचन विषयक प्रश्न ही माने जायेंगे। इस संविधान का निर्वचन

देने के प्रसंग में उच्चतम न्यायालय यह तो कह सकता है कि भारत शासन अधिनियम या पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई किसी विधि पर विचार करे। मैं यह भी बता दूं कि इस सम्बन्ध में मैंने श्री अल्लादी कृष्णास्वामी से विचार विमर्श किया था और उनका भी यही ख्याल है कि मेरी इस राय पर यहां विचार होना चाहिये। मैं समझता हूं कि यह ऐसा मामला है जिस पर वकीलों का समुचित ध्यान अपेक्षित है क्योंकि इस विषय के सम्बन्ध में वह हमसे ज्यादा जानकार हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने, मेरा ऐसा ख्याल है कि इस संशोधन का विरोध करने में और उसे उपहासास्पद बताने में बड़ी उजलत से काम लिया है।

आप जो कुछ कह रहे हैं वह एक कोरे सैद्धान्तिक प्रस्ताव के रूप में तो ठीक हो सकता है पर यदा कदा उत्पन्न होने वाली आकस्मिक स्थितियों के लिये संविधान में कोई व्यवस्था ही न रह जायेगी अगर आप इस तरह का एक अपवाद-वाक्य-खंड नहीं रखते हैं। बहुत सी बातें ऐसी होंगी जो पुराने विधान के अधीन की गई होंगी और आपके इस नये संविधान में बहुत सी व्यवस्थायें ऐसी होंगी जो पुराने विधान की व्यवस्थाओं से न केवल भिन्न ही होंगी बल्कि हो सकता है कि उनके सर्वथा विपरीत हों राज्य द्वारा किये गये बहुत से कार्य ऐसे हो सकते हैं जो पुराने विधान के लिये तो अवैध हों पर इस नवीन संविधान के लिये सर्वथा वैध हों। अगर ऐसे किसी कार्य की वैधानिकता पर कोई प्रश्न उठाया जाता है तो उस सूरत में क्या किया जायेगा? उदाहरण के लिये एक मिसाल आप के सामने रखता हूं। मान लीजिये पुराने विधान में प्रान्तीय सरकार को सम्पत्ति के मूल्य वर्धन पर कर लगाने का या बड़े-बड़े लाभों पर कर लगाने का अधिकार नहीं प्राप्त है पर इस नवीन संविधान की अनुसूची में समुचित स्थान पर हम यह प्रावधान रख देते हैं कि इन करों को आरोपित करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को होगा। अब ऐसी सूरत में अगर कोई व्यक्ति, जिसे प्रान्तीय सरकार द्वारा लगाये गये कर के विरुद्ध यह शिकायत है कि जब वह कर आरोपित किया गया था उस समय पुराने विधान के अनुसार यह नहीं आरोपित किया जा सकता था। सुतरा प्रान्तीय सरकार की वह कार्रवाई अवैध थी, इस सम्बन्ध में न्याय के लिये कोई कार्रवाई करता है तो उसका फैसला कैसे हो सकेगा? अवश्य ही यह समस्या एक नाजुक समस्या है। ऐसी स्थिति की जो कल्पना की जा रही है वह कोरी कल्पना ही नहीं रहेगी बल्कि वह स्थिति तथ्य के रूप में हमारे सामने आ सकती है क्योंकि नवीन संविधान में ऐसे प्रावधान रखे जा सकते हैं जिनसे लोगों की वह दिक्कत दूर हो जायेगी जो भारत शासन अधिनियम में दी हुई केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच शक्ति वितरण सम्बन्धी व्यवस्था को लेकर लोग महसूस करते हैं। वस्तुत: इस नवीन खंड को इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि जिन बातों के बारे में, नये संविधान में काफी परिवर्तन कर दिया गया है, उनको लेकर उठने वाले विवाद भी इसके अन्दर आ जाये और परिवर्तनों के फलस्वरूप जिन लोगों के हितों पर आघात पहुंचता हो उनके हितों की रक्षा की जा सके। यह कहना कि चूंकि हम नया संविधान पास कर रहे हैं इसलिये वही संविधान अब सभी अतीत में होने वाली बातों के लिये लागू होगा, कहने के लिये तो आसान है पर अमल में यह बात उतनी आसान नहीं है। इस मसले

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

पर काफी मतभेद की गुंजाइश है। अगर इस आशय का प्रावधान संविधान में नहीं रखा जाता है तो उससे बहुतों को बड़ा नुकसान पहुंचेगा। मसौदा समिति में इस मसले पर काफी वाद-विवाद हुआ था और उसीके फलस्वरूप यह प्रस्तुत प्रावधान आपके सामने रखा गया है। आदरणीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस सम्बन्ध में जो भी मत व्यक्त किया हो उसकी आलोचना करने में मुझे विरक्ति का ही बोध होना चाहिये पर...

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** इस सम्बन्ध में मैंने कोई भी राय व्यक्त नहीं की है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अगर इस सम्बन्ध में आपको कोई जबरदस्त आपत्ति रही हो तो हो सकता है आपने अपना विचार व्यक्त किया हो। ऐसा करने में क्षति ही क्या है?

मेरा कहना यह है कि संविधान में एक कमी रह गई है जिसके लिये यह खंड रखना जरूरी है। या यों कहिये कि इस आशय का प्रावधान अगर संविधान में नहीं रहता है तो उससे बहुतों के हितों पर आघात पहुंचेगा और उनके हितों को बचाने के लिये इस व्यवस्था का रखना जरूरी है। माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने जो कुछ कहा है उसके महत्त्व को घटाने के लिये मैं यहां कुछ नहीं कहना चाहता पर मेरा यह ख्याल है कि गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर माननीय मित्र श्री सन्तानम् यही पायेंगे कि यह नवीन अनुच्छेद अनावश्यक नहीं है। खूब बुद्धिमत्तापूर्वक और सावधानी से विचार करने के बाद ही इस नवीन अनुच्छेद को संविधान में रखने का प्रस्ताव किया गया है और यह बात नहीं है कि संविधान में केवल एक निष्प्रयोजन अनुच्छेद रखने के लिये ही यह प्रस्तावित किया गया है। डा. टेकचन्द बख्शी द्वारा रखे गये इस प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मेरा तो यह ख्याल है कि एक साधारण सी बात को लेकर वहां इतना तूल खड़ा किया जा रहा है। यह अनुच्छेद एक ऐसी स्थिति के निराकरण के लिये रखा जा रहा है जो बहुत सम्भव है हमारे सामने आयेगी और न्यायालय में वह स्थिति प्रतिदिन उत्पन्न हो सकती है। एक निश्चित तिथि पर ही यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा पर इसके प्रवर्तन में आने के पूर्व भी बहुत से काम हमें करने पड़ेंगे। विधेयक पास करने होंगे, तथा और भी बहुत सी बातें की जायेंगी जो भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन अथवा वर्तमान में प्रवृत्त भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन ही की जायेंगी। यह जरूरी नहीं है कि इन अधिनियम के अधीन किये गये कार्यों पर, अधिनियमों के विलम्बन काल में कोई प्रश्न उठाया ही जाये। इस संविधान के पास हो जाने के बाद या आगे चल कर दस या बीस वर्ष बाद भी इन पर सवाल किया जा सकता है। मुगल सम्राटों या ईस्ट इंडिया कम्पनी के दस्तावेजों और बख्शीसों की वैधानिकता पर आज भी प्रश्न किये जाते हैं। इसलिये यह एक महत्त्वपूर्ण मसला है। अगर हम इस खंड को नहीं पास करते हैं तो यहां खामी रह जायेगी और अतीत कालीन लेनदेन को लेकर मामले चल सकते हैं। ऐसे मामलों के निपटारे के लिये इस व्यवस्था का रहना आवश्यक है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्री सन्तानम् के दृष्टिकोण का समर्थन करना मैं अवश्य पसन्द करता पर मेरा यह ख्याल है कि आप जो चाहते हैं अगर यह जरूरी ही है तो उसके लिये संसद द्वारा एक अधिनियम पास किया जा सकता है। संविधान में इसको क्यों रखा जाये। संविधान में सदा के लिये यह बात क्यों रखी जाये कि भारत शासन अधिनियम तथा उसके अधीन जारी किये गये आदेशों के निर्वचन के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय जो निर्णय करे वही उनके निर्वचन माने जायेंगे? अगर किसी एक खास अवधि के लिये जब तक कि ये आदेश प्रवृत्त हैं या भारत शासन अधिनियम के अधीन कतिपय वादों का निर्णय होना बाकी है, तभी तक के लिये अगर हमें इस प्रावधान की आवश्यकता है तो इसके लिये हम संसद में एक अधिनियम पास कर सकते हैं या जिस दिन यह संविधान प्रवर्तन में आये उसी दिन एक अध्यादेश इसके लिये निकाल सकते हैं ताकि इस स्थिति का निराकरण किया जा सके पर संविधान में इस को रख कर उसे क्यों बोझिल बनाया जाये। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि डा. अम्बेडकर को संविधान से इस प्रावधान को हटा देना चाहिये और संसद पर या तो यह बात छोड़ देनी चाहिये कि वह एक यथावश्यक अधिनियम बना ले जिसके अधीन निलम्बित मामलों का निर्णय किया जा सके या जब तक कि ऐसा अधिनियम नहीं बनता है तब तक के लिये एक अध्यादेश द्वारा इसकी व्यवस्था कर ली जाये।

***डा. पी.एस. देशमुख:** सभा के समक्ष जो नवीन अनुच्छेद विचाराधीन है उसे संविधान में रखने का प्रयोजन क्या है इसे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने यहां समझा दिया है। इसे रखने का प्रयोजन यह बताया गया है कि अगर यह अनुच्छेद नहीं रखा जताा है तो इन विभिन्न अधिनियमों और कानूनों को लेकर उठने वाले मामलों पर निर्णय देना उच्चतम न्यायालय के अधिकार में न रह जायेगा। परन्तु इस समूची स्थिति के सम्बन्ध में अपना मेरा मत कुछ भिन्न है। मेरी राय में इस नवीन अनुच्छेद का सारा प्रयोजन इतना ही है कि भारत शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के निर्वचन के प्रश्न को लेकर जो मामले खड़े हों उनको वही मर्यादा प्राप्त रहे जो कि प्रस्तुत संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के निर्वचन को लेकर उठने वाले वादों को प्राप्त हो। मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह माना जा सकता है कि संविधान में इसी के द्वारा पहली बार और केवल इस स्थल पर ही इसकी व्यवस्था की जा रही है कि संविधान के प्रवर्तन में आने के पहले, इस अनुच्छेद में उल्लिखित विभिन्न अधिनियमों को लेकर उठने वाले मामलों का निपटारा किया जा सके। इसको रखने का मुख्य प्रयोजन मेरी समझ में तो यही प्रतीत होता है कि भारत शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के निर्वचनों के सम्बन्ध में उठने वाले वादों का वही महत्त्व रहे जो इस संविधान के निर्वचन को लेकर उठने वाले वादों को प्राप्त हो। मेरी राय में इस अनुच्छेद की वाक्य रचना ऐसी नहीं है जो सन्तोषजनक कही जा सके। पहली बात तो यह है कि इसमें सभी बातें उलटे क्रम में रखी गई हैं। जिन बातों को नीचे रखना चाहिये था उन्हें ऊपर रख दिया गया है और जिन्हें ऊपर रखना चाहिये था उन्हें नीचे। इसमें बजाय यह कहने के भारतीय शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के निर्वचन को लेकर उठने वाले मामलों का निर्णय यह मान कर किया जायेगा कि मानों वह मामले संविधान के

[डा. पी.एस. देशमुख]

ही निर्वचन को लेकर उठे हों, सभी बातें उलटे ढंग से कही गई हैं। और फिर दूसरी बात यह है कि स्वतंत्रता—अधिनियमादि को लेकर उठने वाले मामलों के निपटारे की व्यवस्था के लिये अगर कोई प्रावधान रखना जरूरी है तो हमारा प्रयोजन, मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद की जो वाक्य रचना है उससे पूरा हो पायेगा। माननीय डा. अम्बेडकर के विचारार्थ, यही चन्द बातें मैं यहां इस सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। अपनी बात को और स्पष्ट कर देने के ख्याल से मैं उनको यहां दुहराये देता हूं। इस अनुच्छेद में दो त्रुटियां हैं। पहली तो यह कि इसकी रचना संतोषप्रद नहीं है। और दूसरी त्रुटि यह है कि अगर इस अनुच्छेद का अभिप्राय यही है कि इसके न रखने से भारत शासन अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को लेकर उठने वाले मामलों का निर्णय उच्चतम न्यायालय न कर सकेगा तो मेरी राय में इस अनुच्छेद के द्वारा भी इस बात की समुचित व्यवस्था न हो सकेगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या सभा को श्री अल्लादी कृष्णास्वामी का मत जानने का भी मौका मिल सकेगा?

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय मित्र श्री टेकचन्द बख्शी के संशोधन को मैं स्वीकार करता हूं, श्रीमान्। बात सीधी सी है। भारत शासन अधिनियम 1935 को तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को और उसके अधीन पास किये गये आदेशों को, उस दिन से जिस दिन कि यह संविधान प्रवर्तन में आयेगा, हम अवश्य ही निरसित कर देने जा रहे हैं। पर इस सम्बन्ध में यह मालूम रहना चाहिये कि इन अधिनियमों को तो हम अवश्य ही प्रभाव-शून्य बना दे रहे हैं पर इसका मतलब यह नहीं है कि भारत शासन अधिनियम के अधीन जो भी अधिकार या कर्त्तव्य प्राप्त रहेंगे उनको भी हम समाप्त कर दे रहे हैं सुतरा अगर ऐसे लोग हैं जिन्हें भारत शासन अधिनियम के प्रावधानों के अधीन कतिपय अधिकार प्राप्त हो गये हैं और अब परिसीमन सम्बन्धी नियमों द्वारा उनके अधिकारों की समाप्ति हो जाती है तो स्पष्टत: यह आवश्यक है कि उनके इन अधिकारों के सम्बन्ध में निर्णय देने के लिये एक न एक व्यवस्था होनी ही चाहिये। इसी स्थिति के निराकरण के लिये, अर्थात् जिन लोगों ने वर्तमान भारत शासन अधिनियम के अधीन कुछ अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, जिनके सम्बन्ध में किसी न्यायालय में फैसला नहीं हुआ है, उन पर फैसला देने की व्यवस्था करने के लिये इस अनुच्छेद का रखना आवश्यक है। मैं मानता हूं कि इसकी व्यवस्था हम अन्य दो और उपायों के द्वारा भी कर सकते थे। पहला उपाय तो हम यह अपना सकते थे कि अनुच्छेद 110 में, जहां हमने ''इस संविधान'' शब्दों का प्रयोग किया है, जो भाषा प्रयुक्त हुई है उसमें इतना संशोधन कर देते कि इतना ही वहां लिखते कि ''any law regarding the Constitution relating to the Constitution of the country'' उतने ही से सम्भवत: हमारा काम चल जाता पर बात यह है कि ऐसा करने में हमें इसी शब्दावली को तीन या चार स्थलों पर दुहराना पड़ता। बजाये उसे बार-बार दुहराने के तय यह पाया कि सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि

''इस संविधान'' का मतलब क्या है इसे बताने के लिये एक स्वतंत्र खंड ही रख दिया जाये। मेरी समझ में यह खंड नितांत आवश्यक है और इसे विधान में हमें रखना ही चाहिये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1909 और 1926 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 122 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'122-(क). इस अध्याय में इस संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के बारे में जो निर्देश है उसका अर्थ ऐसा किया जायेगा कि मानो उसके अन्तर्गत भारत शासन अधिनियम 1935 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी परिषदादेश या आदेश के, अथवा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के, अथवा उसके अधीन बनाये गये किसी आदेश के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न के निर्देश भी है।' ''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 122-(क) को विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 123

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 123 लिया जाता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 123 का सम्बन्ध संविधान के ऐसे अंशों से है जिन्हें हम बराबर हटाते आ रहे हैं। इसलिये इस अनुच्छेद को केवल सभा के समक्ष उपस्थित मात्र कर देना चाहिये और सम्भवत: सभा उसे अस्वीकार कर देगी क्योंकि अब यह अनावश्यक है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 123 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 123 को संविधान से हटा दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम पुन: उन अनुच्छेदों की ओर आते हैं जो राज्यों के सम्बन्ध में हैं। हमने अनुच्छेद 170 तक विचार कर लिया है। उसके आगे के अनुच्छेद में प्रान्तीय विधानमंडलों में बरती जाने वाली कार्यप्रणाली की चर्चा है।

अनुच्छेद 191

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह सुझाव दूंगा कि अब हमें अनुच्छेद 191 को तथा उसके आगे के अनुच्छेदों को लेना चाहिये। इसमें तथा इसके आगे के अनुच्छेदों में, राज्यों

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के उच्च न्यायालयों से सम्बन्ध रखने वाली बातों की चर्चा की गई है। इसलिये इन पर विचार करना सभा के लिये आसान होगा क्योंकि हमने उच्चतम न्यायालय से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे ही अनुच्छेदों पर अभी-अभी विचार किया है।

***अध्यक्ष:** अगर ऐसी बात है तो मैं 191 और उसके बाद के अनुच्छेदों को ही लेता हूं। ये सभी उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में हैं और उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों पर हम अभी-अभी विचार कर चुके हैं। उच्च न्यायालय सम्बन्धी प्रावधान उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी प्रावधानों से बिल्कुल मिलते जुलते हैं, इसलिये सदस्यों को इन पर विचार करने में कोई कठिनाई न होगी। इसलिये हम अब अनुच्छेद 191 को ही लेते हैं।

(संशोधन नं. 2563, 2564, 2565 तथा 2566 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** रस्मी तौर पर मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 191 के खंड (1) के उपखंड (क) में 'पूर्वी पंजाब का उच्च न्यायालय और अवध का मुख्य-न्यायालय' शब्दों की जगह 'पूर्वी पंजाब, आसाम और उड़ीसा के उच्च न्यायालय' शब्द रखे जायें।''

मैं यह भी प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान् कि:

''संशोधन सूची के संशोधन नं. 2567 और 2570 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 191 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'191-(1) प्रत्येक राज्य के लिये एक उच्च न्यायालय होगा।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ होने से ठीक पहले किसी प्रान्त में वर्तमान उच्च न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजन के लिये, तत्स्थानीय राज्य के लिये होने वाला उच्च न्यायालय समझा जायेगा।

(3) इस अनुच्छेद में निर्दिष्ट प्रत्येक उच्च न्यायालय पर इस अध्याय के प्रावधान लागू होंगे।''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** हम पहले इसी संशोधन पर विचार कर लें तो ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि अगर सभा इसे स्वीकार कर लेती है तो इस सम्बन्ध में आये और अन्य संशोधन अनावश्यक हो जायेंगे। इसमें शक नहीं कि इस संशोधन से इस अनुच्छेद की पूरी रूपरेखा ही उलट-पुलट हो जाती है पर इससे अनुच्छेद में सरलता भी आ जाती है।

***अध्यक्ष:** कुछ और संशोधन हैं जिनकी सूचना मुझे दी गई है। मैं उनको पढ़कर देखे लेता हूं।

(संशोधन नं. 2568 और 2577 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अब डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के सिवाय और कोई संशोधन नहीं रह जाते हैं। क्या कोई सदस्य संशोधन अथवा अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहते हैं?

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2567 और 2570 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 191 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'191-(1) प्रत्येक राज्य के लिये एक उच्च न्यायालय होगा।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ होने के ठीक पहले किसी प्रान्त में वर्तमान उच्च न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजन के लिये, तत्स्थानी राज्य के लिये होने वाला उच्च न्यायालय समझा जायेगा।

(3) इस अनुच्छेद में निर्दिष्ट प्रत्येक उच्च न्यायालय पर इस अध्याय के प्रावधान लागू होगे।' ''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 191 को, इसके संशोधित रूप में, विधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 191 को, अपने संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** एक बात मैं छोड़ गया। प्रो. शाह का एक प्रस्ताव है—संशोधन नं. 2562—कि एक नया अनुच्छेद 191 (क) जोड़ दिया जाये। मैं नहीं कह सकता कि इस समय यह लिया जा सकता है या नहीं। क्या प्रो. शाह इसे पेश करना चाहते हैं?

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): हां मैं उसे पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** उच्चतम न्यायालय के प्रसंग में क्या इस प्रश्न पर हम विचार नहीं कर चुके हैं?

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं जानता हूं, इस प्रश्न पर विचार किया जा चुका है।

***अध्यक्ष:** फिर उस सूरत में उस पर पुन: विचार करने में कोई लाभ है?

***प्रो. के.टी. शाह:** ऐसी हालत में मैं उसे नहीं पेश करूंगा।

(संशोधन नं. 2562 पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 192

(संशोधन नं. 2578 और 2580 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 2581 डा. अम्बेडकर के नाम से है। इसे रस्मी तौर पर पेश कर देना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** रस्मी तौर पर मैं यह प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 192 के परन्तुक में 'और इस अध्याय के आगामी प्रावधानों के अनुसार प्रधान द्वारा नियुक्त किन्हीं अपर न्यायाधीशों को मिला कर उन' शब्दों को हटा दिया जाये और 'निश्चित करे' के पहले 'समय-समय पर' शब्द जोड़ दिये जायें।''

मैं यह भी प्रस्ताव पेश करता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2581 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 192 के स्थान पर निम्नलिखित नये अनुच्छेद रखे जायें:

'अनुच्छेद 192, उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होंगे—प्रत्येक उच्च न्यायालय और अभिलेख न्यायालय होगा तथा उसे अपने अवमान के लिये दंड देने की शक्ति के सहित, ऐसे न्यायालय की सब शक्तिया होंगी।

192-(क) उच्च न्यायालयों का गठन—प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिल कर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति, समय-समय पर, नियुक्त करना आवश्यक समझे:

परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीश, उस अधिकतम संख्या से अधिक न होंगे जिसे राष्ट्रपति, समय-समय पर, उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा, नियत करे।' ''

संशोधन 2582 पेश नहीं किया गया।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं केवल एक बात की और सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 192 में कहा गया है कि:

''प्रत्येक उच्च न्यायालय उल्लेख न्यायालय होगा और वह एक मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों को मिलकर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति, समय-समय पर, नियुक्त करना आवश्यक समझेगा।''

और परन्तुक में यह कहा गया है:

''परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीशों और इस अध्याय के आगामी प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किन्हीं अवर न्यायाधीशों को मिला कर उनकी संख्या किसी भी समय

उस अधिकतम संख्या से अधिक न होगी जो राष्ट्रपति उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा निश्चित करे।''

यहां 'राष्ट्रपति' शब्द रखने पर मेरी आपत्ति सिर्फ यही है कि यह प्रकार्य है उच्चतम न्यायालय का। अगर न्यायालय यह अनुभव करता है कि अगर न्यायालय में अमुक संख्यक न्यायाधीश नहीं रहते हैं तो न्याय समुचित रूप से न किया जा सकेगा तो उतने संख्यक न्यायाधीशों को रखने की सिफारिश करना उनके बस की बात है। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि राष्ट्रपति न्यायाधीशों की संख्या जब निश्चित करे तो उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सलाह पर या उससे परामर्श करके ही करे ताकि राष्ट्रपति को यह परामर्श देने में कि प्रत्येक उच्च न्यायालय के लिये न्यायाधीशों की क्या संख्या अपेक्षित है, उच्चतम न्यायालय को ही प्रेरणा प्राप्त रहे। मैं समझता हूं कि संविधान में ऐसी ही व्यवस्था होनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2581 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 192 के स्थान पर निम्नलिखित नये अनुच्छेद रखे जायें:

'192. उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होंगे—प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा तथा उसे अपने अवमान के लिये दंड देने की शक्ति के सहित, ऐसे न्यायालय की सब शक्तियां होंगी।''

192(क)—उच्च न्यायालयों का गठन—प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिल कर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे:

परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीश उस अधिकतम संख्या से अधिक न होंगे जिसे राष्ट्रपति समय-समय पर उस न्यायालय के सम्बन्ध में आदेश द्वारा नियत करे।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 192 अपने संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 192 को, उसके संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

***अध्यक्ष:** माननीय श्री जी.एस. गुप्ते के संशोधन को, जो कि भाषा के सम्बन्ध में है हम अभी नहीं लेंगे।

अनुच्छेद 193

(संशोधन नं. 2584 पेश नहीं किया गया।)

***श्री बी. पोकर साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(1) सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य-न्यायाधिपति के अभिस्तवन पर, सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर लेने के बाद तथा भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह तिरेसठ साल की आयु न प्राप्त कर ले।' ''

इस संशोधन में दो बातें निहित हैं। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के नियुक्ति विषयक अनुच्छेद पर बोलते समय भी मैंने फेडरल न्यायालय और प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों द्वारा दिये गये स्मृतिपत्र में उल्लिखित सिफारिशों का जिक्र किया था। इसलिये मैं उन बातों को यहां दुहराना नहीं चाहता जिनका उल्लेख मैं यहां पहले कर चुका हूं। मैं सदस्यों से अनुरोध करूंगा कि वह उन बातों पर गौर करें जो फेडरल न्यायालय और प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के मुख्य-न्यायाधिपतियों के स्मृतिपत्र में दी हुई हैं। मैं यहां इस समय उन तर्कों की आवृत्ति न करूंगा जो मैं यहां पहले रख चुका हूं।

इस अनुच्छेद में तथा मेरे संशोधन में महत्त्वपूर्ण अन्तर इतना ही है कि संशोधन में अपेक्षित यह रखा गया है कि उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर लेने के बाद और भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से ही होगी, पर सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश को ही प्रधानता दी जायेगी। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश के अनुसार ही नियुक्ति की जाये और प्रान्त के गवर्नर से केवल परामर्श कर लिया जाये। मेरे संशोधन में इस बात पर आग्रह किया गया है कि भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से ही नियुक्ति की जाये और यह बात महत्त्वपूर्ण है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में केवल गवर्नर से परामर्श किया जाना चाहिये। इन नियुक्तियों में प्रान्तीय मंत्रिमंडल का कोई खास हाथ न होना चाहिये और राजनैतिक कारणों का तो इनमें कतई हाथ न होना चाहिये।

दूसरी बात जो इस संशोधन में है वह है आयु के सम्बन्ध में। इसके सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान फेडरल न्यायालय और उच्च न्यायालयों के मुख्य-न्यायाधीशों के स्मृतिपत्र में दी हुई सिफारिशों की ओर आकृष्ट करूंगा। इस स्मृतिपत्र में यह कहा गया है:

> ''यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु में तीन से पांच वर्ष का अन्तर अवश्य रखा जाये। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश की निवृत्ति-आयु की हद पैंसठ कर देनी चाहिये और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु की हद अड़सठ साल कर देनी चाहिये।''

उनकी सिफारिश यहां तक है कि निवृत्ति-आयु की हद पैंसठ नियत कर देनी चाहिये। हम लोग ऐसे निवृत्ति-न्यायाधीशों को भी जानते हैं जो निवृत्त होने पर भी काफी शक्ति रखते थे और उन्होंने दायित्वपूर्ण पदों पर काम किया है। ऐसी हालत में मैं कोई कारण नहीं देखता कि क्यों उनको कम उम्र में ही निवृत्त होने पर बाध्य किया जाये। इसलिये माननीय सदस्यों से मैं अनुरोध करूंगा कि वे फेडरल न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों की सिफारिशों पर पर्याप्त रूप से विचार करें। उन्होंने निवृत्ति-आयु की हद पैंसठ रखी है और मेरे संशोधन में वह तिरेसठ रखी गई है। इस सम्बन्ध में जो कुछ कह चुका हूं उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

इसके बाद सभा मंगलवार, 7 जून सन् 1949 ई. के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 4. VIII-17.49
320

अंक 8
संख्या 17

मंगलवार
7 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 193 से 204 पर विचार] ...1007-1066

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 7 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 193—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** कल हम अनुच्छेद 193 पर वाद-विवाद कर रहे थे। अब हम उस अनुच्छेद पर बहस जारी रखेंगे। एक संशोधन पेश हुआ था पर बहुत से और संशोधन भी हैं। हम उन्हें अब लेंगे। संशोधन संख्या 2586, 2587, 2588 और 2589 एक से हैं। इन संशोधनों में न्यायाधीशों की पदनिवृत्ति की आयु के सम्बन्ध में अन्तर है। एक और संशोधन संख्या 2592 डाक्टर अम्बेडकर के नाम में है, जिनमें ये सब संशोधन आ जाते हैं, केवल आयु का प्रश्न नहीं आता। अतः मेरे विचार में यदि डाक्टर अम्बेडकर अपना संशोधन पहले पेश कर देते हैं तो आयु के अतिरिक्त अन्य किसी संशोधन के पेश करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। आयु के सम्बन्ध में, हम उस प्रश्न को अलग से ले सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं अपने संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** तो फिर हमें अन्य संशोधन लेने होंगे। श्री के.सी. शर्मा, संशोधन संख्या 2586।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:
>
> '(1) राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को भारत के मुख्य न्यायाधिपति से तथा, मुख्य न्यायाधिपति को छोड़ अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में, उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह साठ वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।' ''

श्रीमान् उस अनुच्छेद में राज्यपाल से परामर्श करने की अतिरिक्त शर्त है। मेरा सविनय निवेदन है कि राज्य में उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के विषय में मुख्य न्यायाधिपति

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

से परामर्श करना पर्याप्त है। राज्यपाल का किसी प्रकार प्रश्न ही नहीं उठता और उसके साथ परामर्श करना अवांछनीय होगा। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

(संशोधन संख्या 2585, 2588 और 2589 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस संशोधन संख्या 2590 पर संशोधन पेश करना चाहता हूं, जिसकी मैंने सूचना दी थी। श्रीमान मैं प्रस्ताव करता हूं :

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2590 के स्थान पर, निम्न शब्द रख दिये जायें:
>
> ''(1) कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) में, 'Chief Justice of India' इन शब्दों के अनुवर्त्ती शब्दों के स्थान पर खंड के अन्त तक, निम्न शब्द रख दिये जायें:
>
> 'And such of the judges of the Supreme Court and of the High Court of the State concerned as the President may deem necessary for the purpose and shall hold office until he attains the age of sixty years:
>
> Provided that in the case of appointment of a judge, other than the Chief Justice, the Chief Justice of the High Court of the State shall always be consulted.' "
>
> ''(2) कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) के पश्चात् निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(e) is a distinguished jurist.' "

श्रीमान्, मैंने इस खंड को उस खंड के समान बनाने का प्रयत्न किया है जो हमने उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में पारित किया है। मैंने उसी भाषा का प्रयोग किया है जो वहां प्रयुक्त हुई थी। केवल यही बात है कि मैंने राज्य के राज्यपाल का संदर्भ हटा दिया है। मैं अनुभव करता हूं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श कर लेना ही पर्याप्त है। मेरे विचार में राज्य के राज्यपाल से परामर्श करना उचित नहीं होगा। मैं यह भी अनुभव करता हूं कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों से भी परामर्श लेना चाहिये। मैं नहीं समझ पाता कि उच्चतम न्यायालय के विषय में हमने अनुच्छेद 103 में जो भाषा प्रयोग की है उससे यह भाषा भिन्न क्यों हो।

मैंने एक सुविख्यात विधिवेता की नियुक्ति का भी उपबंध रखा है। जब हमने उच्चतम न्यायालय के विषय में यह उपबंध रखा है तो मैं नहीं समझता कि हम यह उपबंध क्यों

न करें कि एक सुविख्यात विधिवेता उच्च न्यायालय का न्यायाधीश भी होना चाहिये। मेरे विचार में, श्रीमान्, यह संशोधन सदन को स्वीकार्य होगा, क्योंकि हम इस सिद्धांत को पहले ही स्वीकार कर चुके हैं।

(संशोधन संख्या 2591, 2593, 2594 और 2595 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): संशोधन संख्या 2596। इस मामले पर पहले बहस हो चुकी है। उस समय यह अस्वीकृत हो गया था। क्या मैं इसे अब पेश करूं?

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि उन्हीं युक्तियों को फिर दोहराने से कोई लाभ होगा।

(संशोधन संख्या 2597, 2598, 86, 2599, 2600, 2601 और 2602 पेश नहीं किये गये।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 2603 को औपचारिक रूप से पेश करता हूं और मैं सूची 2 का संशोधन संख्या 194 भी पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2603 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) में 'or such higher age not exceeding sixty five years as may be fixed in this behalf by law of the Legislatures of the State' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, दोनों संशोधनों का सारांश एक ही है, केवल यही अन्तर है कि मेरे संशोधन में उन शब्दों का स्पष्ट उल्लेख है जिन्हें कि हटाया जाना है। इन शब्दों के हटा देने से यह प्रभाव पड़ेगा कि उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश केवल साठ वर्ष की आयु तक ही पद धारण करेगा और इस संशोधन का उद्देश्य विद्यमान स्थिति को स्पष्ट कर देना है। श्रीमान्, मेरे विचार में मेरे लिये कोई तर्क उपस्थित करना अपेक्षित नहीं है, विशेषत: जबकि मेरे संशोधन का उद्देश्य वर्तमान स्थिति को ही सुनिश्चित कर देना है। किन्तु मेरे संशोधन में जिस उपबंध को हटा देने का सुझाव रखा गया है, उसके विरुद्ध नि:संदेह अनेक और भारी युक्तियां हैं; और न्यायाधीशों की पद-निवृत्ति की आयु को बदलने की शक्ति चाहे राज्य के विधानमंडल में हो अथवा संसद में हो, संविधान में यह एक असुन्दर और अलाभदायक उपबंध ही है। सदन के कई सदस्य नि:संदेह मुझसे सहमत होंगे कि एक विशेष आयु निश्चित कर देना सबसे अच्छा है, चाहे कुछ भी आयु रखी जाये और यह काम स्थायी पक्षों के प्रयत्नों पर न छोड़ा जाये, अन्यथा या तो कोई गैर-सरकारी सदस्य कोई विधेयक उपस्थित करेगा या उस समय जो सरकार होगी उस पर दबाव डाला जायेगा कि वह न्यायाधीशों को निवृति आयु में परिवर्तन कर दे, क्योंकि हो सकता है कि जिन लोगों को आयु सीमा बढ़ जाने में दिलचस्पी हो उनका ऐसे क्षेत्रों में प्रभाव हो जो शायद सरकार को उस दिशा में चला सकते हैं अत: एक विशेष आयु निश्चित कर देने में ही लाभ है, और किसी के प्रयत्नों या कोशिशों की कोई गुंजाइश रखने में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

नहीं है, ताकि लोग यह निश्चय से जान जायें कि संविधान में संशोधन किये बिना यह परिवर्तन नहीं हो सकता। श्रीमान्, इस समस्या के गुणावगुण पर विचार किया जाये तो साठ की आयु के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यह नि:संदेह सत्य है कि इस देश में गत बीस वर्षों में प्रत्याशित आयु बहुत बढ़ गई है। हम देखते तो हैं कि सार्वजनिक जीवन में और वकीलों में ऐसे व्यक्ति हैं जो मेरे इस उपबंध द्वारा निश्चित अधिकतम आयु पार कर चुके हैं किन्तु अपनी संपूर्ण योग्यता से परिपूर्ण हैं; और इस देश के भाग्य पर नियंत्रण कर सकते हैं और सुचारू ढंग से कर सकते हैं; किन्तु, श्रीमान्, वे व्यक्ति अपवाद-स्वरूप है और नियम यह है कि हमारे जैसे देश में शायद लगभग 30 प्रतिशत मामलों में, साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले लोग सक्रिय कर्म के लिये अयोग्य हो जाते हैं। मेरे विचार में यह अधिक सुरक्षायुक्त है कि हम ऐसा उपबंध बना दें कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का एक भाग भी अपने कार्य के लिये अयोग्य न हो इसकी बजाय कि हम न्यायालयों के बाहर और सार्वजनिक जीवन में जो कुछ होता है उस पर निर्भर करें जहां कि साठ वर्ष की आयु को पार करने के बहुत समय पश्चात् भी लोग ठीक प्रकार कार्य करते रहते हैं और देश की असाधारण रूप में सेवा करते रहते हैं। श्रीमान, मैं अनुभव करता हूं कि इस प्रस्ताव के विषय में अधिक युक्तियां देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि इसमें केवल वर्तमान स्थिति को स्पष्ट कर दिया है जो कि सदन को स्वीकार्य है; और यदि दस पन्द्रह वर्ष पश्चात् इस देश में जीवनमान बदल जाता है और चिकित्सा विज्ञान बहुत उन्नति कर जाता है जिससे कि साठ वर्ष की आयु के पश्चात् साधारणत: लोगों को जरावस्था से बचाया जा सकता है तो संविधान में आयु बड़ा देने का शायद वही उचित समय होगा। मेरे विचार में इस समय तो साठ वर्ष की आयु पर्याप्त है और जोखम रहित है। इन कारणों से मुझे आशा है कि सदन मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगा।

(संशोधन संख्या 2604 और 2605 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, खंड (1) (क) में कहा गया है कि ''कोई न्यायाधीश राज्यपाल को सम्बोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपने पद को त्याग सकेगा।'' मैं चाहता हूं कि वह केवल राष्ट्रपति या भारत के मुख्य न्यायाधिपति को सम्बोधित करके ही अपना पद त्याग सके। अतएव मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के उपखंड (क) में, 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'भारत का मुख्य न्यायाधिपति' ये शब्द रख दिये जायें।''

राष्ट्रपति ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करता है और वे संसद के दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से ही पदच्युत हो सकते हैं। इसलिये श्रीमान्, यदि वह अपने पद का त्याग करना चाहता है तो उसे राष्ट्रपति को सम्बोधित करना चाहिये जिसने उसे नियुक्त किया है, अथवा भारत के मुख्य न्यायाधिपति को सम्बोधित करना चाहिये जो देश में सर्वोच्च न्याय प्राधिकारी है और राज्यपाल को सम्बोधित करने का कोई अर्थ ही नहीं है और मैं नहीं समझता कि राज्यपाल इस मामले में कैसे पड़ सकता है। या

तो राष्ट्रपति या भारत का मुख्य न्यायाधिपति होना चाहिये और श्रीमान्, मुझे आशा है कि इसे शुद्ध कर दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त यदि 'राज्यपाल' शब्द यहां रखा गया, तो यह अनुचित ही नहीं, न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये भी क्षतिपूर्ण होगा।

(संशोधन संख्या 2607 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के उपखंड (ख) में 'Supreme Court' इन शब्दों के पश्चात् 'the State Legislature being substituted for Parliament in that article' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस संशोधन से मैं यह उपबंध करना चाहता हूं कि राज्य का विधानमंडल उस राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सके। इस समय इस खंड में यह उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के हटाने के हेतु उपबन्धित रीति से किसी राज्य के उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को राष्ट्रपति उसके पद से हटा सकेगा। इसका अर्थ यह है कि जब संसद के दोनों सदन, उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई मत द्वारा समर्थित समावेदन राष्ट्रपति के समक्ष रखें, तब राष्ट्रपति सम्बद्ध न्यायाधीश को हटा सकता है। यदि इसी रूप में यह उपखंड पारित हो जायेगा तो मैं अनुभव करता हूं कि ऐसे पदच्युतकरण में राज्य के विधान मंडल का कोई हाथ नहीं होगा। मुख्य बात यह है। क्या न्यायाधीश को हटाने के मामले में संसद एक मात्र प्राधिकारी हो या हम इस मामले में राज्य विधान मंडल को भी शक्ति दे दें? मेरी सुझाई गई प्रक्रिया के विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि संसद उच्चतर प्राधिकारी है अत: वह अधिक सक्षम है। क्या यह बात ठीक है? मेरे विचार में, संसद और राज्य विधान मंडल दोनों निर्वाचित होते हैं, प्रथम सदन पूर्णत: निर्वाचित होता है और द्वितीय सदन अंशत: नाम निर्देशित होता है; दोनों के प्रथम सदन वयस्क मताधिकार के अनुसार निर्वाचित होते हैं यदि हम संसद पर भरोसा कर सकते हैं तो क्या हम राज्य के विधान मंडल पर नहीं कर सकते? अन्ततोगत्वा यह जनता में विश्वास करने का प्रश्न है। क्या हम जनता और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों पर विश्वास करेंगे, या नहीं, चाहें वे केन्द्र में हों या राज्य में हों? इसके अतिरिक्त, जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का सम्बन्ध है, यह सर्वथा सम्भावित है कि संसद उस स्थान से दूर होने के कारण उस प्रश्न से सम्बद्ध विविध मामलों को पूरी तरह समझ न सके और राज्य का विधान मंडल उसी स्थान पर होने के कारण उस मामले का अधिक अच्छा निबटारा कर सके। जब हमने वयस्क मताधिकार स्वीकार किया है तो हमें राज्य विधान मंडल का भी इतना ही विश्वास करना चाहिये, जितना कि हम केन्द्र में संसद का करते हैं। आखिर यदि सदन अनुच्छेद 193 के खंड (1) को देखे, तो पता लगेगा कि जहां तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति का सम्बन्ध है, उसमें केन्द्रीय प्राधिकारियों का ही हाथ नहीं है, वरन् राज्य के कुछ प्राधिकारियों का भी हाथ है, जिनका उल्लेख अनुच्छेद 193 के

[श्री एच.वी. कामत]

खंड (1) में है। राज्य के राज्यपाल से जो कि प्रान्तीय प्राधिकार है—परामर्श लिया जाता है; दूसरे उस राज्य विशेष के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श किया जाता है—वह भी प्रान्तीय प्राधिकारी है। अतएव, यदि न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में, केवल केन्द्र ही नहीं, अपितु प्रान्तों के प्राधिकारियों का भी सम्बन्ध है, तो प्रश्न यह उठता है कि उसे हटाने के सम्बन्ध में भी हम राज्य विधान मंडल का विश्वास क्यों न करें, या उसे ही जांच पड़ताल या महाभियोग का काम क्यों न सौंप दें? यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिये केन्द्र की संसद को यह क्षमता है कि वह राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रख सके, तो मेरे विचार में यह सर्वथा तर्कसंगत है और स्पष्ट है कि जहां राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का सम्बन्ध है राज्य के विधान मंडल को यह क्षमता होनी चाहिये और उसे यह शक्ति दी जानी चाहिये कि वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के हटाने के बारे में राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रख सके। हो सकता है कि मेरे संशोधन की रचना को बदलना पड़े। मेरे सुझाये हुए संशोधन का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 193 में संसद के स्थान पर राज्य का विधान मंडल रख दिया जाये। एक बार यह सिद्धांत स्वीकृत हो जाये कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के विषय में राज्य के विधान मंडल को अधिकार होना चाहिये कि वह राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रखे, तो मैं इस संशोधन की रचना मस्विदा समिति की इच्छानुसार बनाने के लिये उद्यत हूं। मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2609। इसका प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 2610 को औपचारिक रूप में पेश करना चाहता हूं जिससे कि डा. अम्बेडकर संशोधन संख्या 195 को पेश कर सकें।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक की कंडिका (ग) में 'Supreme Court of' इन शब्दों के पश्चात् 'the Chief Justice' ये शब्द रख दिये जायें।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2610 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के खंड (ग) में 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

इस संशोधन का उद्देश्य प्रान्तों और देशी राज्यों के बीच सब विभेदों को हटा देना है, जिससे कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के पदाधिकारियों में पूर्णत: अदला-बदली हो सके।

श्रीमान्, मैं संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 को औपचारिक रूप में पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'State' शब्द के स्थान पर 'State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (क) में, 'in any State in or for which there is a High Court' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में, 'High Court' शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के उपखंड (ख) में 'in a State for the time being specified in Part I or Part II of the First Schedule' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के खंड (2) में 'British India' शब्दों के स्थान पर 'India' शब्द रख दिया जाये।''

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2622 के संदर्भ से...

***अध्यक्ष:** इसे उपस्थित करने से पहले आप औपचारिक रूप से संशोधन संख्या 2622 का पेश कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं औपचारिक रूप से प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 2 के स्थान पर निम्न अंश रख दिया जाये:

'व्याख्या 2–इस खंड के उपखंड (क) और (ख) में, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित राज्य के सम्बन्ध में 'उच्च न्यायालय' का अर्थ ऐसे न्यायालय से है जिसे अनुच्छेद 123 के अंतर्गत राष्ट्रपति ने, इस संविधान के अनुच्छेद 103 और 106 के प्रयोजनों के लिये, उच्च न्यायालय घोषित कर दिया हो।' ''

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 2622 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 2 को हटा दिया जाये।''

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इन सब संशोधनों, संख्या 196 से 200 तक, का उद्देश्य ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के बीच सब विभेदों को हटाना है। कुछ संशोधन, विशेषत: संशोधन 199 और 200 मुख्य संशोधन के परिणामस्वरूप ही है।

(संशोधन संख्या 2611, 2612, 2613, 2615 और 2616 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संख्या 2617 का प्रश्न नहीं उठता। 2618।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में, 'in succession' शब्दों के पश्चात् 'or has been a pleader practising for at least twelve years' ये शब्द रख दिये जायें।''

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (क) में, 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'or has practised as a Pleader' ये शब्द रख दिये जायें, और 'which a person' इन शब्दों के स्थान पर 'which such person' ये शब्द रख दिये जायें और अन्त में 'or a pleader' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (ख) में, 'First Schedule or' इन शब्दों के पश्चात् 'has' शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये, और 'Court' शब्द के पश्चात् जहां कहीं भी वह हो, 'or a pleader' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

श्रीमान्, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में भी मैंने ऐसे ही संशोधन पेश किये थे। मैं 'प्लीडर' कहलाने वाले वकीलों को भी वही पद देना चाहता हूं जो हम अधिवक्ताओं को दे रहे हैं, क्योंकि मेरे मतानुसार, जहां तक योग्यता का सम्बन्ध है, वे समान रूप से अर्ह होते हैं और तीसरे संशोधन में, यदि वह स्वीकृत हो गया तो वह इस प्रकार बन जायेगा:

> ''इस कालावधि की संगणना के अन्तर्गत, जिसमें कि कोई व्यक्ति प्रथम सूची के भाग 1 या भाग 2 में उस समय के लिये उल्लिखित किसी राज्य में न्यायिक पद धारण कर चुका है अथवा किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता या प्लीडर रह चुका है, इस संविधान के आरम्भ में पूर्व की वह कोई कालावधि भी होगी, आदि, आदि।''

व्याख्या 1 में खंड (1) इस प्रकार बन जायेगा:

''किसी उच्च न्यायालय के अधिवक्ता रहने की या प्लीडर के रूप में काम करने की संगणना के अन्तर्गत वह कोई कालावधि भी होगी, जिसमें किसी व्यक्ति ने अधिवक्ता होने के पश्चात् न्यायिक पद धारण किया हो।''

इन शब्दों के साथ मैं इन संशोधनों को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 2619 और 2623 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** समस्त संशोधन पेश हो चुके हैं और अब अनुच्छेद तथा संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति पर छोड़ दी गई है और भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा राज्य के राज्यपाल से केवल परामर्श करने का उपबंध रखा गया है। मैं सर्वथा सहमत हूं कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये, न्यायाधीशों को नियुक्त करने वाले प्राधिकारी यथासम्भव उच्चतम होने चाहियें, किन्तु मुझे अधिक अच्छा लगता यदि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और राज्यपाल दोनों की मंत्रणा पर करते। किन्तु यह अब सम्भव नहीं है, पर उसके बाद मैं चाहता हूं कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के विषय में कुछ अन्तर रखा जाये और मैं अपने मित्र श्री कामत के संशोधन पर आता हूं, जिसका मैं बलपूर्वक समर्थन करता हूं। प्रस्तावित उपबंध के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना इतना ही कठिन होगा, जितना कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना है और केवल संसद द्वारा ही जो कि समस्त गणराज्य में सर्वोच्च विधान निकाय है, हटाने के सवाल पर बहस की जा सकती है और वही यह काम कर सकती है। अत: यदि यह उपबंध रहने दिया जाये, तो राज्यों के विधान मंडलों को उच्च न्यायालय और उसके न्यायाधीशों के विषय में कुछ भी कृत्य नहीं करने होंगे, सिवाय इसके कि वे उनके लिये अधिकतम आयु निश्चित कर देंगे, जो कि 60 और 65 के बीच होगी और उनके वेतन निश्चित करेंगे और ऐसी अन्य तुच्छ बातें कर सकेंगे। मैं नहीं समझता कि राज्यों के विधान मंडलों पर इतना अविश्वास किया जाना चाहिये कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के विषय में वे कुछ बोल ही न सकें या ऐसी कल्पना की जानी चाहिये कि वे न्यायाधीशों को तुच्छ कारणों से हटा देंगे। दूसरी बात यह है, कि विधान मंडलों द्वारा न्यायाधीशों का हटाना कठिन बनाने के लिये यह उपबंध किया जा सकता है कि अन्तिम आदेश स्वयं राष्ट्रपति ही देगा, किन्तु फिर भी राज्य विधान मंडलों को इतनी क्षमता होनी चाहिये कि वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के लिये राज्यपाल द्वारा, राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन तो पेश कर ही सकें। मेरे विचार में यह एक अच्छा उपबंध होगा जिसका प्रभाव कार्यक्षमता के रूप में होगा और जिससे कि राज्य की न्यायपालिका और विधान मंडल और कार्यपालिका के मध्य अधिक अच्छे सम्बन्ध हो जायेंगे। हम यह भी उपबंध बना सकते हैं कि न्यायाधीश को केवल सीमित और परिमित कारणों से ही हटाया जा सकता है और हम इसे स्वविवेक पर न छोड़ें। कारण वे ही हो सकते हैं जो पिछले 1935 के अधिनियम की धारा 220 में लिखे हैं जहां यह उपबन्धित है कि न्यायाधीश को बादशाह अपनी राजकीय मुद्रा के द्वारा उसके पद से हटा सकता है यदि

[डा. पी.एस. देशमुख]

प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति बादशाह द्वारा पूछे जाने पर, यह प्रतिवेदन दे कि उस कारण से न्यायाधीश हटाया जाना चाहिये। अतएव ये कारण उस धारा में से लिये जा सकते हैं और उन आधारों पर जो कि समुचित रूप से परिवर्तित हों, राज्य के विधान मंडल को यह क्षमता होनी चाहिये कि वह राष्ट्रपति को समावेदन दे सके और न्यायाधीश को हटाया जा सके। मैं नहीं समझता कि राज्यपाल के अतिरिक्त कोई अन्य साधन है जिससे कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यता, कार्यक्षमता या आचरण का पता लग सके। प्रान्तीय राज्यपाल और प्रान्तीय विधान मंडल ही इन सब बातों को जान सकते हैं और यदि उन्हें विश्वास हो जाये कि कोई न्यायाधीश हटाया जाना चाहिये तो मेरे विचार में उन्हें ऐसा करने के लिये अपेक्षित शक्ति मिलनी चाहिये।

जहां तक कि श्री ताहिर के संशोधन का सम्बन्ध है, यह सिद्धांत स्वीकृत नहीं हुआ है कि प्लीडर भी उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह होने चाहियें और मेरे विचार में यह बिल्कुल ठीक है; क्योंकि कोई भी प्लीडर जिसका जरा काम चलता हो और जो जरा योग्य हो अपने आपको अधिवक्ता के रूप में पंजीबद्ध करवा ही लेता है—और अधिवक्ता पंजीबद्ध होने में कोई अधिक कठिनाई नहीं होती और कुछ वर्षों पश्चात् जब उसे अपेक्षित अनुभव हो जाये तब उसे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह समझा जायेगा। अतः मेरे विचार में उस संशोधन में कोई सार नहीं है।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मुझे श्री कामत के संशोधन पर कुछ शब्द कहने हैं, जिसका समर्थन डा. देशमुख ने किया है। इस अनुच्छेद में, इस समय, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के लिये प्रक्रिया और उन्हें हटाने का प्राधिकार वही है जो अनुच्छेद 103 खंड (4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के हटाने के लिये उपबंधित है, अर्थात् कि संसद के दोनों सदनों द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन पेश होगा और उसे प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत का और जिस अधिवेशन में उस पर बहस तथा मतदान हो उसमें उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा। संशोधन का यह आशय है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में संसद के स्थान पर प्रान्तीय विधान मंडल रख दिया जाये। सदन को इसी बात पर विचार करना है। मेरा निवेदन है कि संविधान के मस्विदे में जो उपबंध है वह ठीक है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण मामला है—उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना और इसकी जांच उन लोगों द्वारा बहुत तटस्थ तरीके से की जानी चाहिये, जिन पर स्थानीय पक्षपातों का कोई प्रभाव न पड़े और जो उस मामले पर पक्षपातहीन होकर विचार कर सकें। प्रान्तों में विशेषतः उनमें जहां कि सदस्य संख्या बहुत कम है अथवा जहां दलों का सुनिश्चित विभाजन है—सदस्यों पर स्थानीय पक्षपातों और अन्य विचारों का प्रभाव पड़ सकता है। अतः इसी कारण, मस्विदा समिति ने इस परन्तुक के खंड (ख) में यह सुझाव रखा है कि यह मामला संसद के दोनों सदनों के मत पर छोड़ देना चाहिये। कहा जाता है कि संसद के सदस्य घटनास्थल से बहुत दूर होंगे और स्थानीय मामलों को पूरी तरह समझ नहीं

सकेंगे। हां, यही कारण है कि यह मामला प्रान्तीय विधान मंडल पर नहीं छोड़ना चाहिये। उड़ीसा, असम, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रान्त जैसे प्रान्तों में, जहां कि विधान मंडल के सदस्यों की संख्या कम है और उनमें से कइयों में केवल एक ही सदन होगा। केवल कुछ सदस्यों के मत से ही ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव निश्चित हो सकता है। यदि कोई ऐसा न्यायाधीश हो, जिसे सत्तारूढ़ दल का नेता न चाहता हो या जिसने अपने न्यायिक विनिश्चयों से अथवा अन्यथा उस दल को अप्रसन्न कर दिया हो, तो स्थानीय पक्षपातों के आने की संभावना है। ऐसे मामले में न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बहुत हद तक धक्का पहुंचेगा। इसी कारण संविधान के मस्जिदे में यह उपबंध है कि यह मामला संसद पर छोड़ देना चाहिये। पहले, भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन, उच्च न्यायालय का न्यायाधीश तभी हटाया जा सकता था जबकि, बादशाह के पूछने पर, प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति यह प्रतिवेदन दे देती कि वह कदाचार अथवा मस्तिष्क या शरीर की दुर्बलता के कारण उस पद को धारण करने के लिये अयोग्य है। संविधान के मस्विदे के अंतर्गत, संसद के दोनों सदनों के समावेदन पर ही राष्ट्रपति कार्यवाही करेगा। यह बहुत अच्छा उपबंध है। मैं सदन से कहूंगा कि वह परन्तुक के खंड (ख) के उपबंध को न छेड़े और श्री कामत द्वारा प्रस्तावित संशोधन को रद्द कर दे।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यख महोदय, मैं श्री एच.वी. कामत द्वारा प्रस्तावित संशोधन का विरोध करना चाहता हूं, जिसके द्वारा वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना, संविधान के मस्विदे में उपबन्धित तरीके से अधिक सरल बनाना चाहते हैं। ऐसा करना और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की शक्ति प्रान्तीय विधान मंडल को देना बहुत जोखिम की बात होगी। जब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिये अनुच्छेद 103, खंड (4) में उपबंध रख दिया गया है तो मुझे कोई कारण समझ में नहीं आता कि प्रान्तीय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना हम सरलतर क्यों बनायें।

जैसा कि पूर्ववर्ती वक्ता, डा. बक्शी टेकचन्द कह चुके हैं प्रान्तीय विधान मंडल पर राजनैतिक विचारों और स्थानीय बातों का आसानी से प्रभाव पड़ सकता है, जबकि उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश ने कोई ऐसे विनिश्चय किये हों जो सत्तारूढ़ दल को या विधान मंडल में बहुमत वाले दल को स्वीकार्य न हों या पसंद न हों। अत: उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाना सरल नहीं बनाना चाहिये। आखिर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सच्चाई और स्थायित्व पर बहुत कुछ निर्भर होता है और यदि उसकी स्थिति को ऐसा अस्थिर बना दिया जाये कि वह प्रान्तीय विधान मंडल के मतदान से हटाया जा सके तो यह जोखिम की बात होगी और इसका प्रभाव उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता पर पड़ेगा। अत: मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करता हूं। मैं माननीय डा. अम्बेडकर के संशोधनों का समर्थन करता हूं जिनसे कि सारे उच्च न्यायालयों के लिये, चाहे वे राज्यों में हों अथवा प्रान्तों में, एक से उपबंध रख दिये गये हैं।

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे अनुच्छेद 193 के उपबंधों पर व्यापक वाद-विवाद में भाग लेने का जो यह अवसर मिला है उसके लिये मैं आपका

[डा. पी.के. सेन]

आभारी हूं। इस प्रकार के अन्य अनुच्छेदों के सम्बन्ध में मैंने बहुत से संशोधनों की सूचना दी थी, किन्तु मैं उन्हें पेश नहीं कर रहा हूं। मैं अनुभव करता हूं कि अनुच्छेद 193 के उपबंधों पर विचार करने में कई बातें आ जाती हैं। वे बातें 196, 197 आदि अन्य अनुच्छेद में बिखरी हुई हैं। जब तक हम उन पर विचार न करें, या अनुच्छेद 193 के रूप को निश्चित करते समय उन्हें ध्यान में न रखें, तो मुझे भय है कि हम ठीक विनिश्चय करने मे सफल नहीं हो सकते।

आइये, हम इन बातों को एक-एक करके लें। अनुच्छेद 193 में आवश्यक बात उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति-आयु की है कि वह साठ वर्ष हो या पैंसठ वर्ष हो। कुछ लोग ऐसा अनुभव करते हैं—मैं यह नहीं कहता कि उनके अनुभव का कोई आधार ही नहीं है कि साठ वर्ष की आयु पर एक व्यक्ति सक्रिय काम करने और देश-सेवा के कार्य में अंशदान करने के योग्य नहीं रहता, कि वह न्यायाधीश मंडली में इतने ध्यान से कार्य नहीं कर सकता कि जितना कि आवश्यक है और कि इसलिये निवृत्ति के लिये साठ वर्ष की आयु उचित है। दूसरी ओर यह अनुभव किया जाता है और उस विचारधारा का भी आधार बहुत ठीक है—कि इस समय निवृत्ति की आयु अधिक होनी चाहिये क्योंकि लोग साठ वर्ष के बहुत बाद में भी प्रायः सार्वजनिक जीवन में अत्यन्त सक्रिय भाग लेते हुए देखे गये हैं। हमारे पास ऐसे लोगों के बहुत से उदाहरण हैं जो कि राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्यों में बहुत शक्ति लगा सकते हैं और बहुत ध्यान लगा कर कार्य कर सकते हैं ऐसा होते हुए कोई कारण नहीं है कि न्यायिक कार्य में कोई साठ वर्ष की आयु के पश्चात् अयोग्य और अक्षम हो जायें। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं इस बात को छिपाना नहीं चाहता कि मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिये 60 वर्ष से अधिक आयु रखने के पक्ष में हूं—कम से कम 62 वर्ष तो होनी ही चाहिये। अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि आयु सीमा पर अन्य बातों का प्रभाव क्या पड़ता है। न्यायाधीश के दृष्टिकोण से सोचिये। एक व्यक्ति को जब नियुक्त होना हो और उसे निर्णय करना पड़े कि उसे जो पद दिया जा रहा है, उसे स्वीकार करे या ना कर दे, तब वह किन बातों पर विचार करता है? वेतन का प्रश्न आता है, उत्तर वेतन का भी प्रश्न उठता है और एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या उस पद पर एक विशेष अवधि तक रहने के पश्चात् उसे अन्य न्यायालयों में वकालत करने की अनुमति होगी, चाहे उसी उच्च न्यायालय में, या उसके क्षेत्राधिकार के अधीन न्यायालयों में न सही। अब जो व्यक्ति नियुक्त होना होगा, उसके लिये हम सोच सकते हैं कि वह प्रान्त में उस कार्य के लिये बहुत ही पारंगत रूप में योग्य होगा। स्वभावतः उस व्यक्ति को चुना जायेगा जो विधि सम्बधी योग्यता में उस प्रान्त में सर्वाधिक सुविख्यात होगा। अब उसे अपना निर्णय करना होगा: यदि वह देखे कि केवल पांच वर्ष शेष हैं, और साठ वर्ष का हो जाने पर कोई उत्तर वेतन भी नहीं मिलेगा और उसे अपने साधनों पर ही निर्भर रहना होगा अथवा उत्तर वेतन नाममात्र का ही होगा और ब्रिटेन के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान उसे उदारता से निवृत्ति वेतन नहीं मिलेगा, जो कि ब्रिटेन में उनके वेतन का 75 प्रतिशत होता है; और जब वह यह देखेगा कि रुपया कमाने का कोई और उपाय भी नहीं है: कि वह किसी अन्य उच्च न्यायालय में भी या उसके अधीनस्थ न्यायालयों में भी जाकर महत्त्वपूर्ण वादों वकालत

नहीं कर सकेगा: यदि उसे वकालत से बिल्कुल वंचित कर दिया जायेगा, तो वह क्या करेगा? उसे इसी निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि यद्यपि वह बहुत सम्मान और प्रतिष्ठा का पद है पर उसे अनिच्छा से उसे अस्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ेगा। इसका यही परिणाम होगा। मेरा निवेदन है कि इससे हानि होगी, क्योंकि राज्य को उन व्यक्तियों की सेवायें प्राप्त नहीं होंगी जो वास्तव में योग्य हों और उनके स्थान में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद के लिये दूसरी श्रेणी या तीसरी श्रेणी के लोगों को चुनना होगा। अतएव मेरा निवेदन है कि यह बहुत गम्भीर समस्या है। यह तुच्छ सी बात बिल्कुल नहीं है—यह आयु का प्रश्न है। इसका अन्य बातों पर प्रभाव और प्रतिप्रभाव पड़ता है। यदि उसे साठ पर ही निवृत्त हो जाना है, तो ठीक है, अच्छा है। किन्तु क्या उसे अच्छा उत्तर वेतन मिलेगा? क्या उसे वकालत करने का अधिकार है, यदि उसे उत्तर वेतन न भी मिले? क्या वह विधि की वकालत से अपनी आजीविका कमा सकता है, उस उच्च न्यायालय में न सही जहां उसने पद धारण किया था, वरन् किसी अन्य न्यायालय में, किसी अन्य उच्च न्यायालय में, अथवा उस अन्य उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय में ही सही?

श्रीमान्, मैंने एक और संशोधन की सूचना दी थी, जिसे मैं औपचारिक रूप में पेश तो नहीं कर रहा हूं, किन्तु जिसका इस प्रश्न से बहुत सम्बन्ध है। मान लीजिये एक व्यक्ति को अट्ठावन वर्ष की आयु पर अस्वस्थता के कारण निवृत्त होने के लिये बाध्य होना पड़ता है। यह मान लिया जाना चाहिये, कि उस उच्च पद पर कोई व्यक्ति नहीं रहना चाहेगा यदि स्वास्थ्य, के कारणों से वह अनुभव करे कि उसे जो कार्य सौंपा गया है, वह उसे ठीक प्रकार नहीं निभा सकता। स्वभावत: वह कह देगा ''मुझे खेद है, मैं अब काम नहीं चला सकता। मैं निवृत होना चाहता हूं।'' अब उस विषय में, मैं निवेदन करता हूं कि उसे पूरा उत्तर-वेतन देने का उपबंध होना चाहिये, चाहे वह साठ वर्ष की आयु तक काम नहीं कर सका। इससे कुछ खर्च बढ़ सकता है, किन्तु उस खर्च से अधिक लाभ हो जायेगा क्योंकि उसके स्थान पर एक स्वस्थ व्यक्ति के लग जाने से कार्यक्षमता बढ़ेगी। अत: आप देखेंगे कि केवल सामान्य स्थिति में उत्तर वेतन के ही प्रश्न पर विचार नहीं करना है, वरन् उस स्थिति में उत्तर वेतन पर भी विचार करना है जब कोई व्यक्ति अस्वस्थता के कारण निवृत्त होने के लिये बाध्य हो जाता है।

अब, हम अभी तक नहीं जानते कि क्या कोई अतिरिक्त न्यायाधीश होना चाहिये या कोई अस्थायी न्यायाधीश होना चाहिये या नहीं, क्योंकि हमने अभी सम्बद्ध अनुच्छेद पर विचार नहीं किया है। संविधान के मस्विदे में उनकी नियुक्ति के विषय में कई अनुच्छेद रखे हुए हैं उन अनुच्छेदों का क्या होगा, यह कोई नहीं जानता कि सदन उन्हें स्वीकार करेगा या नहीं। किन्तु यह मानते हुए कि अस्थायी न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे, अथवा अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त किये जायेंगे अतिरिक्त न्यायाधीश दो वर्षों से अनधिक पद धारण करेंगे। दो वर्ष तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहने के पश्चात् क्या अतिरिक्त न्यायाधीश वकालत कर सकेंगे? अस्तु, यदि दो वर्ष तक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहने के पश्चात् वह वकालत न कर सके, तो फल यह होगा कि अतिरिक्त न्यायाधीश का पद बहुत कम लोग स्वीकार करना चाहेंगे। यह कहा जा सकता है कि अतिरिक्त न्यायाधीशों को नियुक्त करना अपेक्षित नहीं होगा, क्योंकि यदि आपके पास पूरे न्यायाधीश हों, जो

[डा. पी.के. सेन]

कि अस्थायी या अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के बिना ही समस्त कार्य संतोषजनक रूप से कर सकें, तो फिर वह प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु यदि सदन का विचार हो कि अतिरिक्त न्यायाधीशों या अस्थायी न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाये, तो मेरा निवेदन है कि उनके विषय में भी वकालत करने या उसमें रुकावट होने के प्रश्न पर विचार करना होगा।

मैं इन बातों की ओर इसलिये संकेत कर रहा हूं, श्रीमान्, कि मुझे विश्वास है कि इन बातों पर विचार किये बिना कोई व्यक्ति उस पद को स्वीकार नहीं कर सकेगा, यदि वह 54-55 वर्ष का हो, क्योंकि वह पूरे उत्तर वेतन का अधिकारी नहीं हो पायेगा। अतः उसे विनिश्चत करते समय इन्हीं बातों पर विचार करना होगा।

मेरा निवेदन है कि निवृत्ति की आयु-सीमा पर विचार करते समय इस बातों को ध्यान में रखना होगा और आयु के प्रश्न को ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वह उन बातों से बिल्कुल असम्बद्ध है जो संविधान के मस्विदे के इस अध्याय की विविध धाराओं में दी हुई हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, जिस आयु पर उच्च न्यायालय का न्यायाधीश निवृत्त होगा, उसके विषय में बहुत मतभेद है और साठ वर्ष की आयु निश्चय करने वालों ने विस्तृत जांच पड़ताल करके ही इसे रखा है। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि मस्विदा-समिति ने जो विनिश्चय किया है वह और जो संशोधन पेश होने हैं और स्वीकृत होने हैं, वे वर्तमान परिस्थिति में सर्वोत्तम हैं।

सर्वप्रथम हमें व्यक्तिगत रूप में न्यायाधीशों की नहीं, वरन् समस्त न्यायपालिका के दृष्टिकोण पर विचार करना चाहिये और उसकी स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार करना चाहिये, जिसे बनाये रखने और जिसकी रक्षा करने के लिये हम इतने उत्सुक हैं। पहली बात यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आयु-सीमा साठ वर्ष रखी गई है। विद्यमान अनुच्छेद में अधिक आयु का, जो पैंसठ वर्ष से अनधिक होगी, उपबंध हटाना होगा। ऐसा इसलिये किया गया है कि यह सिद्धान्ततः गलत है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश उस अवधि को बढ़ाने के लिये प्रयत्न कर सके अथवा 62 या पैंसठ वर्ष की आयु पर उनकी पदावधि को बढ़ाना विधान मंडल की इच्छा पर निर्भर रहे—चाहे वह प्रान्तीय हो या केन्द्रीय। एक बार एक व्यक्ति न्यायाधीश नियुक्त हो जाये, तो उसके सद्व्यवहार के होते हुए उनकी पदावधि निश्चित होनी चहिये और उनकी पदावधि घटनी या बढ़नी नहीं चाहिये। इस बात को ध्यान में रखते हुए वह खंड हट जाना चाहिये। तत्पश्चात्, एक अन्य संशोधन अतिरिक्त न्यायाधीशों और अस्थायी न्यायाधीशों को हटाने के विषय में पेश होगा और मुझे आशा है कि स्वीकार हो जायेगा। यह देखा गया है कि भारत में अस्थायी और अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति कोई संतोषजनक प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि इससे हम उस पक्षपातहीनता और स्वतंत्रता से दूर हो जायें जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अपेक्षित है।

तत्पश्चात् दूसरा अनुच्छेद आता है, जिसकी चर्चा मेरे मित्र डा. सेन ने की है। अनुच्छेद 196 के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को भारत के किसी न्यायालय में वकालत

करने का निषेध होगा। अत: स्वभावत: इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में ऐसे योग्य व्यक्तियों को आकृष्ट करना संभव होगा, जैसे कि न्याय के समुचित प्रशासन के लिये अपेक्षित है। हमें वर्तमान व्यवस्था में रहने की आदत पड़ गई है। किन्तु हमें यह देखना है कि इस संविधान द्वारा हमें किस प्रकार की न्यायपालिका का निर्माण करना हैं। सर्वप्रथम, सब इस बात को स्वीकार करते हैं कि साठ वर्ष की आयु पर उच्च न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीश—मैं सबके लिये नहीं कहता—न्यायाधीश मंडली में रहने के अयोग्य हो जाते हैं। जब ऐसी बात है तो संविधान में अधिक आयु सीमा रखना जोखिम की बात होगी। न्यायाधीशों को निवृत्ति के पश्चात् वकालत नहीं करने दी जायेगी; अन्यथा उनकी सेवावधि के अन्तिम वर्षों में यह प्रलोभन हो सकता है कि ऐसी तरह काम किया जाये जिससे कि निवृत्ति के पश्चात् उनके पास वकालत का काम आये।

उत्तर वेतन का प्रश्न भी उठाया गया है। मैं जानता हूं कि न्यायाधीशों को पर्याप्त उत्तर वेतन नहीं मिलता; किन्तु उस प्रश्न पर तो विधान मंडल ही विचार करेगा। अत: इतना ही प्रश्न शेष रहता है कि उन योग्य व्यक्तियों का क्या किया जाये जो साठ वर्ष की आयु पर पर्याप्त रूप से स्वस्थ हों और जिनकी सेवाओं की देश के लिये आवश्यकता हो। जो न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु पर निवृत्त हो जायें उनके लिये संविधान में दो रास्तों का उपबंध है। उच्चतम न्यायालय की निवृत्ति की आयु पैंसठ वर्ष है। जो न्यायाधीश प्रतिभाशील और अच्छे होंगे और स्वस्थ होंगे वे उच्चतम न्यायालय में नियुक्त हो सकेंगे। अनुच्छेद 200 में उच्च न्यायालय के लिये विशिष्ट प्रयोजनार्थ न्यायाधीशों के रखने का भी उपबंध है। जो न्यायाधीश निवृत होने के पश्चात् शारीरिक तथा मानसिक रूप में स्वस्थ हों उन्हें उस अनुच्छेद के अधीन न्याय प्रशासन में भाग लेने के लिये सदा आमंत्रित किया जा सकेगा। अत: जो न्यायाधीश निवृत्त होने के पश्चात् अपना कार्य करने के योग्य होंगे, उनके लिये सदा मार्ग खुला रहेगा किन्तु कठिनाई यह रही है, जैसा कि अनुभव से ज्ञात हुआ है, कि अधिकांश न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु से पूर्व ही अपने कार्य के योग्य नहीं रहते। न्यायाधीश मंडली में अपनी पदावधि के अन्तिम एक दो वर्षों में वे अधिकतर न्याय-प्रशासन में बाधास्वरूप ही बन जाते हैं और कुछ नहीं। अत: साठ वर्ष की निश्चित आयु सीमा रख दी गई हैं। समस्त स्वीकृत योजना ही वर्तमान व्यवस्था से भिन्न है। अंततोगत्वा इसकी सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि क्या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की मान प्रतिष्ठा इतनी है कि उसमें योग्य व्यक्ति आकृष्ट हों। दुर्भाग्यवश इस देश में वह परम्परा नहीं है जो कि इंग्लिस्तान में है। वहां, योग्यतम वकील के लिये भी, जिसकी आय बहुत ज्यादा हो, न्यायाधीश मंडली में आमंत्रित होना सम्मान की बात है और यदि वह सम्मान उसे दो बार प्रदान किया जाये तो, परम्परानुसार, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। न्यायाधिपति ग्रीन जैसे वकील ने भी, जिसकी वकालत इंग्लिस्तान में सर्वाधिक थी, न्यायाधीश का पद मिलने पर उसे स्वीकार कर लिया था: यदि हम उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की ऐसी प्रतिष्ठा बना दें जैसी कि उन्हें इंग्लिस्तान में मिलती है, तो मुझे विश्वास है कि योग्य व्यक्ति इस पद पर आ जायेंगे, चाहे निवृत्ति आयु साठ हो या पैंसठ और चाहे निवृत्ति वेतन कम हो या अधिक।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये आयु सीमा निश्चित करने के विरुद्ध हूं। मैं अनुभव करता हूं कि यह कहना मनमानी है कि 60 वर्ष की आयु पर न्यायाधीश बेकार हो जाते हैं इसलिये उन्हें निवृत्त हो जाना चाहिये। यह राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये कि वह राज्यपाल तथा मुख्य न्यायाधिपति की मंत्रणा पर न्यायाधीश से निवृत्त होने के लिये कहे। यह सर्वथा संभव है कि पचास वर्ष की आयु पर ही वह अपने कृत्यों का कुशलतापूर्वक और समुचित रूप से निर्वहन करने में असमर्थ हो।

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि खंड 2 (क) को भी हटा देना चाहिये, जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अर्हताएं रखी गई हैं। यह राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये कि वह जिसे चाहे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद के लिये चुन ले। ऐसा कोई अनुभव या घटना नहीं हुई जिसके आधार पर राष्ट्रपति, राज्यपाल और मुख्य न्यायाधिपति का अविश्वास किया जा सके। यह स्पष्ट है कि किसी ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश नहीं बनाया जायेगा जो अनुभवशील व्यक्ति न हो, जिसने किसी न्यायालय में दस वर्ष तक वकालत न की हो अथवा जो कम से कम दस वर्ष के लिये न्यायिक अधिकारी न रहा हो। किन्तु ऐसे प्रतिभासम्पन्न लोगों के उदारहण भी हैं जिनमें ये सब अर्हताएं नहीं हैं। आखिर, एक व्यक्ति के जीवन में सृजन का काल तीस पैंतीस वर्ष की आयु के आस पास ही होता है। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि कोई नवयुवक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश क्यों नहीं बन सकता।

मुझे एक बात और कहनी है। मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करता हूं। वे चाहते हैं कि प्रान्तीय विधान मंडल के प्रथम सदन द्वारा समावेदन पेश होने पर न्यायाधीश को हटाया जा सके। मैं अनुभव करता हूं कि जब प्रान्तीय विधान मंडलों का वयस्क मताधिकार के आधार पर पुनर्निर्माण होगा, तब प्रान्तीय विधान मंडलों के हाथों में ऐसी शक्ति सौंपना सुरक्षित नहीं होगा। प्रान्तों में पहले ही पक्षपात और आवेश बहुत है। प्रान्तीयता और सम्प्रदायवाद का बोलबाला है। जहां राजनैतिक अपरिपक्वता हो वहां यह सम्भव है कि राजनैतिक दल किसी न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय का गलत अर्थ समझ लें और उलटा अर्थ निकाल लें। अतः, श्रीमान्, कार्यक्षमता के लिये यह ठीक है, मैं अनुभव करता हूं कि समस्त शक्ति राष्ट्रपति में और संसद में निहित होनी चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मुझे कुछ बातें कहनी हैं। प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन के सम्बन्ध में, मेरा ख्याल है कि उसमें कुछ अच्छी बातें हैं। उनका संशोधन यह है कि राज्यों में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को नियुक्त करने में, राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से और उच्चतम न्यायालय या सम्बद्ध राज्य के उच्च न्यायालय के ऐसे अन्य न्यायाधीश से परामर्श करेगा, जिससे राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये परामर्श करना आवश्यक समझे और न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अपने पद पर आसीन रहेगा। उनका परन्तुक इस प्रकार है: किन्तु मुख्य न्यायाधिपति के अतिरिक्त किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से अवश्य परामर्श किया जायेगा। श्रीमान्, मैं देखता हूं कि यह संशोधन

बिल्कुल अनुच्छेद 103 के समान है, जिसे हम पहले ही पारित कर चुके हैं। उस अनुच्छेद के खंड (2) में उपबन्धित है कि:

> ''उच्चतम न्यायालय के तथा राज्यों के उच्च न्यायालयों के, ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करके, जिनसे कि इस प्रयोजन के लिये परामर्श करना राष्ट्रपति आवश्यक समझे राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।''

यह सिद्धांत पहले ही स्वीकार हो चुका है कि उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से भी, जिनसे राष्ट्रपति परामर्श करना उचित समझे परामर्श किया जाना चाहिये। यह संशोधन अनुच्छेद 103 के खंड (2) के समान ही है। वास्तव में इस संशोधन का उद्देश्य केवल इस अनुच्छेद को उस स्वीकृत सिद्धांत के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करना ही है। रचना की दृष्टि से और उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों से परामर्श करने की आवश्यकता की दृष्टि से यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

उनके संशोधन का दूसरा भाग यह है कि एक सुविख्यात विधिवेत्ता भी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त हो सकता है। वास्तव में हमने इसे अनुच्छेद 103 के सम्बन्ध में जिसकी मैंने अभी चर्चा की है, स्वीकार किया है। अनुच्छेद 103 के खंड (3) के उपखंड (ग) में हमने उपबन्ध किया है कि एक सुविख्यात विधिवेत्ता को उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। अत: प्रोफेसर सक्सेना के विद्यमान संशोधन का मूलभूत सिद्धांत सदन में पहले ही स्वीकृत हो चुका है।

साठ वर्ष की आयु पर अनिवार्य निवृत्ति के उपबंध के विषय में, मेरा ख्याल है कि यह बहुत अच्छी बात नहीं होगी। मेरे विचार में हमारे देश में लोगों की आयु और कार्य करने की आयु बढ़ जायेगी। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश साधारण लोग नहीं होते। वे सर्वोत्तम कानूनी लोगों में से छांटे जाते हैं और उन्हें विधि-सम्बन्धी साहित्य से सम्पर्क रखना होता है। मैं नहीं समझता कि एक न्यायाधीश का उपयोगी जीवन साठ पर ही व्यतीत हो चुकता हो। यह उपबन्धित है कि वह साठ पर ही निवृत्त हो जायेगा जब तक कि वह उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त न हो जाये, जिस अवस्था में कि वह पैंसठ पर निवृत्त होगा। अनुच्छेद 196 के अनुसार वह निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय के समक्ष या किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकेगा। आयु-सीमा को साठ पर नियत करने का और अनुच्छेद 196 का प्रभाव अच्छा नहीं होगा। इंग्लिस्तान में यह उपबंध तो अवश्य है कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश किसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता; किन्तु वहां आयु सीमा बहत्तर की है और बहत्तर के पश्चात् भी सुविख्यात न्यायाधीशों को कानूनी लार्ड नियुक्त कर दिया जाता है और वे हाउस आफ लार्डस की न्यायिक समिति के सदस्यों के रूप में, लार्ड आफ अपील के रूप में आदि पद धारण करते हैं और वे जीवनपर्यन्त पद पर रहते हैं। अत: पहले न्यायाधीश के रूप में और फिर लार्ड के रूप में वे लम्बा उपयोगी जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु बहत्तर वर्ष की

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

आयु के पश्चात् वे अवैतनिक रूप में कार्य करते हैं। अंग्रेज न्यायाधीश के समक्ष इतने अवसर हैं किन्तु भारतीय न्यायाधीश के समक्ष कोई अवसर नहीं होता। साठ पर निवृत्त हो जाने के पश्चात् वह किसी न्यायालय में वकालत करने के अयोग्य होगा, सरकार के अधीन किसी पद को धारण करने के लिये भी कार्यरूप में अयोग्य ही होगा, क्योंकि वह सिद्धान्ततः गलत है। इस प्रकार वह बुरा से बुरा राजनैतिक अछूत हो जायेगा। मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि आयु-सीमा पर समुचित अवसर आने पर ही विचार होना चाहिये। इन थोड़े से शब्दों के साथ, मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधनों के साथ इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान, मैं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति की आयु-सीमा निश्चित करने के विषय में कुछ बातें कहना चाहता हूं। अनुच्छेद 193 के मस्विदे में वह आयु साठ पर निश्चित की गई थी, किन्तु उसमें एक और उपबंध था कि न्यायाधीश अधिक आयु तक भी पद धारण कर सकता है, जो कि पैंसठ वर्ष से अधिक न हो, जैसा कि इस प्रयोजन के लिये राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा निश्चित कर दे। अब, सामान्यतः यह ख्याल मालूम होता है कि यह बाद का भाग इस अनुच्छेद में से हटा दिया जाये, और सबकी सम्मति इस पर केन्द्रित हो गई प्रतीत होती है कि हमें आयु-सीमा साठ पर निश्चित कर देनी चाहिये। 1935 के अधिनियम में आयु-सीमा साठ पर निश्चित थी और उसे बढ़ाने का उपबन्ध नहीं था। क्योंकि उसे बढ़ाने का कोई उपबंध नहीं था, अतः मस्विदा समिति ने संविधान के मस्विदे के पृष्ठ 87 पर इस अनुच्छेद के नीचे यह लिख दिया था कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थितियों को ध्यान में रख कर, मस्विदा समिति ने अनुच्छेद 193 में रेखांकित शब्द जोड़ दिये हैं जिससे कि प्रत्येक राज्य का विधान मंडल 65 वर्ष से अनधिक कोई भी आयु सीमा निश्चित कर सके। जब यह मस्विदा बना था, उस समय शायद मस्विदा समिति की यह सम्मति थी कि ऐसा कोई उपबंध बनाना चहिये, जिससे कि आयु-सीमा बढ़ा कर पैंसठ वर्ष की जा सके और इसे संभव बनाने के लिये उन्होंने ये शब्द जोड़ दिये ''अथवा उससे अधिक उतने वर्ष की आयु को प्राप्त कर ले जो पैंसठ वर्ष से अधिक न हो और जिसे राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा एतदर्थ निश्चित करे।'' तत्पश्चात्, श्रीमान्, संविधान के मस्विदे के कुछ उपबंधों के विषय में गृह मंत्रालय ने अपनी कुछ सिफारिशें भेजीं। इस सम्बन्ध में उनके स्मृतिपत्र में उन्होंने कहा कि उनका यह मत था कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की निवृत्ति के लिये साधारण आयु-सीमा साठ वर्ष की होनी चाहिये, किन्तु अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में, नियुक्त करने वाला प्राधिकारी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की पदावधि तरेसठ वर्ष से अनधिक आयु की कालावधि तक बढ़ा सकता है और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के विषय में अड़सठ वर्ष तक बढ़ा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि अनुभव से पता चलता है कि उच्च न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीश साठ वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते अपनी उपयोगिता की सीमा को पार कर चुकते हैं और आयु-सीमा को स्वतः बढ़ाना सार्वजनिक हित में नहीं होगा। अतः उन्होंने यह सुझाव रखा था कि राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की सेवावधि को अधिकतम तीन वर्ष के लिये बढ़ा सकता है। उनका यही सुझाव था। अब श्रीमान्, लोगों का यह मत प्रतीत होता है कि

कोई वृद्धि नहीं होनी चाहिये। मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी ने, जो कि मस्विदा-समिति के भी सदस्य हैं, कहा है कि अधिकांश न्यायाधीश अपनी पदावधि के अन्तिम एक दो वर्षों में कुशलता से कार्य करने के योग्य नहीं रहते। अब, श्रीमान्, इस अनुच्छेद का सम्बन्ध एक अन्य अनुच्छेद 200 से भी है। मस्विदा समिति का पहले यह विचार था कि विधान मंडल इस अवधि को बढ़ाये; गृह मंत्रालय ने कहा कि यह काम राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये और अनुच्छेद 200 में एक उपबंध है कि:

> ''इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी, इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी व्यक्ति से, जो कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस राज्य के न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना पर सकेगा, आदि...।''

जब एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को साठ की आयु में निवृत्त करना है, तो मैं नहीं समझ सकता कि इसका क्या औचित्य है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश से प्रार्थना करे कि वह आकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कृत्यों को पूरा करे; और यह भी कि यदि वह आ जाये, तो वह, समस्त विशेषाधिकारों आदि के साथ, अपरिमित समय के लिये, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य करता रह सकता है। वास्तव में इसका यह अर्थ है कि एक ओर तो हम अनुच्छेद 193 में यह उपबंध कर रहे हैं कि उसे साठ वर्ष की आयु पर निवृत्त हो जाना चाहिये और राष्ट्रपति या विधान मंडल द्वारा किसी व्यक्ति का अवधि बढ़ाने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये, पर दूसरी ओर हम यह भी रख रहे हैं कि मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश से कह सकता है कि वह आकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य चलाये और गृह मंत्रालय का मत यह है कि इस अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति वैयक्तिक मामलों में करे। मेरे विचार में यह विसंगतिपूर्ण है। शायद हम इस कठिनाई में इसलिये पड़ गये हैं कि हम अपर अस्थायी न्यायाधीशों के विरुद्ध थे, जिसकी कि चर्चा मेरे माननीय मित्र श्री के.एम. मुंशी ने की है। नि:संदेह ऐसे मामले भी हो चुके हैं जबकि उन लोगों ने जो अस्थायी न्यायाधीश नियुक्त हुये थे इस बात से लाभ उठाया हो कि वे न्यायाधीश मंडली में बैठते थे, किन्तु ऐसे सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के ही उदाहरण भी हैं जो केवल अस्थायी न्यायाधीशों के रूप में ही कार्य करते रहे, किन्तु जिन्होंने बाद में इस बात से कोई लाभ नहीं उठाया कि वे न्यायाधीश मंडली में थे; उन्हें उसमें कोई लाभ नहीं हुआ वरन आर्थिक और वित्तिक हानि हुई। मुझे कुछ व्यक्तियों का पता है जो अस्थायी न्यायाधीश रहे थे और उनके विषय में कोई भी ऐसा नहीं कह सकता कि उन्होंने अपनी स्थिति से लाभ उठाया हो। साथ ही विद्यमान दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि अस्थायी न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में अनिच्छा होती है, जिसके उचित कारण हो सकते हैं, किन्तु यह बात अपेक्षित हो गई है कि अवशिष्ट कार्य को समाप्त करने के लिये कुछ प्रबंध होना ही चाहिये। किसी उच्च न्यायालय में न्यायिक कार्य बढ़ सकता है और विविध कारणों से हम अस्थायी या अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति के विरुद्ध हैं, अत: हमने अनुच्छेद 200 को रखना आवश्यक समझा। ऐसी मंशा मालूम होती है कि ऐसे मामले में किसी निवृत न्यायाधीश को मुख्य

[श्री एच.वी. पातस्कर]

न्यायाधिपति पुराने कार्य के अवशिष्ट को या नये कार्य को निबटाने के लिये, बुला सकता है। जहां तक न्यायाधीशों की आयु-सीमा का सम्बन्ध है, हम गृह मंत्रालय की इस सिफारिश को नहीं मानने जा रहे हैं कि राष्ट्रपति को नियुक्त करने वाला प्राधिकारी होने की हैसियत से, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की कालावधि को बढ़ाने का प्राधिकार होना चाहिये, हम उसे बढ़ाने की शक्ति विधान मंडल को भी नहीं दे रहे हैं, हम प्रमुख न्यायाधिपति को यह शक्ति दे रहे हैं कि वह निवृत न्यायाधीश को आकर न्यायाधीश के रूप में काम करने के लिये कह सके; दो तीन वर्ष के लिये यह व्यवस्था हो सकती है। परिणाम यह होता है कि एक अनुच्छेद में तो हम यह रख देते हैं कि वह साठ वर्ष की आयु पर निवृत्त हो जायेगा और दूसरे अनुच्छेद (200) में यह बात है कि मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश को बुलाकर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का कार्य दे सकेगा। इस प्रकार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की कालावधि में वृद्धि करने का काम हम लगभग मुख्य न्यायाधिपति के ही हाथ में छोड़ने जा रहे हैं और एक मुख्य न्यायाधिपति किसी विशेष व्यक्ति को इसीलिये नियुक्त कर सकता है कि वह इतने वर्षों से कार्य करता आ रहा है और कई ऐसे कारण हो सकते हैं जिनसे लोगों को इस अनुच्छेद 200 के अधीन अधिक समय मिल ही जायेगा। अतएव, मेरे विचार में साठ वर्ष की कालावधि का समूचा प्रश्न अब तो पहले से भी अधिक उलझन में पड़ गया है और इसमें इतने परिवर्तन भी हो गये हैं। एक बार मस्विदा समिति का यह विचार में था कि वैयक्तिक मामलों में साठ वर्ष से अधिक समय बढ़ाने का उपबंध होना चाहिये और वह इस चीज को विधान मंडल पर छोड़ना चाहती थी। गृह मंत्रालय ने कहा था कि यह राष्ट्रपति पर छोड़ देना चाहिये और अन्त में हमारा यह निश्चय प्रतीत होता है कि वह साठ की आयु पर निवृत हो जायें किन्तु एक अन्य प्रकार की युक्ति द्वारा और इस कारण कि हम कोई अस्थायी या अपर न्यायाधीश रखना नहीं चाहते, अतः हम फिर इस अवधि को बढ़ाने के लिये उपबंध कर रहे हैं। कार्य रूप में किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अपने मुख्य न्यायाधिपति से यह कहलवाना सरल होगा कि बहुत सा कार्य बाकी है अतः उसे अधिक समय तक रखना चाहिये और इस अवधि को बढ़ाने की कोई सीमा ही नहीं है। यह एक विसंगति है जिस पर ध्यान से विचार करना चाहिये।

***अध्यक्षः** डाक्टर अम्बेडकर क्या आप इस पर बोलना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं श्रीमान्। मैं नहीं समझता कि कोई उत्तर अपेक्षित है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्न अंश रख दिया जाये:

'सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल के परामर्श के पश्चात् सम्बद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की सिफारिश पर और भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा उसके हस्ताक्षर और मुद्रा सहित

अधिपत्र द्वारा नियुक्त होगा, और वह तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह 63 वर्ष की आयु प्राप्त न कर ले।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से तथा मुख्य न्यायाधिपति को छोड़ अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में, उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके, नियुक्त करेगा तथा वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह साठ वर्ष की आयु प्राप्त कर ले।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2590 के स्थान पर, निम्न शब्द रख दिये जायें:

(1) कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) में, 'Chief Justice of India' इन शब्दों के अनुवर्ती शब्दों के स्थान पर खंड के अन्त तक, निम्न शब्द रख दिये जायें:

'And such of the judges of the Supreme Court and of the High Court of the State concerned as the President may deem necessary for purpose and shall hold office until he attains the age of sixty years:

Provided that in the case of appointment of a judge, other than the Chief Justice, the Chief Justice of the High Court of the State shall always be consulted.' ''

''(2) कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) के पश्चात् निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:

'(e) is a distinguished jurist.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2603 के सदंर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) में, 'or such higher age not exceeding sixty five years as may be fixed in this behalf by law of the Legislature of the State' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के उपखंड (क) में, 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'भारत का मुख्य न्यायाधिपति' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के उपखंड (1) के परन्तुक के उपखंड (ख) में 'Supreme Court' इन शब्दों के पश्चात् 'the State Legislature being substituted for Parliament in that article' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

'कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2610 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (1) के परन्तुक के खंड (ग) में, 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'in any State in or for which there is a High Court' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के प्रसंग से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में 'High Court' शब्दों के पश्चात् 'in any State for the time being specified in the First Schedule' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के संदर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के उपखंड (ख) में, 'in a State for the time being specified in Part I or Part II of the First Schedule' इन शब्दों के स्थान पर 'in the territory of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2614 के सदंर्भ से, अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या (1) के खंड (2) में 'British India' शब्दों के स्थान पर 'India' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) के उपखंड (ख) में, 'in succession' शब्दों के पश्चात् 'or has been a pleader practising for at least twelve years' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (क) में, 'High Court' इन शब्दों के पश्चात् 'or has practised as a pleader' ये शब्द रख दिये जायें और 'which a person' इन शब्दों के स्थान पर 'which such person' ये शब्द रख दिये जायें और अन्त में 'or a pleader' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 1 के उपखंड (ख) में 'First Schedule or' इन शब्दों के पश्चात् 'has' शब्द प्रविष्ट कर दिया जाये और 'court' शब्द के पश्चात् जहां कहीं भी वह हो, 'or a pleader' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 193 के खंड (2) की व्याख्या 2 को हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** यह प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 193 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 193 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 193-क

***अध्यक्ष:** प्रोफेसर के.टी. शाह ने एक संशोधन संशोधन संख्या 2624 की सूचना दी है कि एक नवीन अनुच्छेद, अनुच्छेद 193-क रख दिया जाये।

***प्रो. के.टी. शाह:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं।

''कि निम्न नवीन अनुच्छेद 193-क, अनुच्छेद 193 के पश्चात् जोड़ दिया जाये:

'193-क-कोई व्यक्ति जो पांच वर्ष तक लगातार उच्चतम न्यायालय अथवा फेडरल न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो। भारत सरकार अथवा राज्य की सरकार के अधीन किसी पद पर नियुक्त नहीं किया जायेगा, जिसमें राजदूत, मंत्री, प्लेनीपोटेन्शरी, उच्च आयुक्त, वाणिज्य आयुक्त, वाणिज्य दूत, तथा भारत में या संघ के किसी राज्य की सरकार में मंत्री का पद भी सम्मिलित है।' ''

श्रीमान् मैं न्यायपालिका को कार्यपालिका से सर्वथा पृथक तथा स्वतंत्र करने के जिस सिद्धांत का समर्थन करता रहा हूं, यह भी उसी का एक अंग है। कार्यपालिका ने सर्वोच्च न्यायिक अधिकारियों को लुभाने के लिये विगत में जो विविध उपाय अपनाये हैं उनमें से एक यह भी है कि जो कार्यपालिका के सुझाव को अधिक सरलता से स्वीकार करेंगे या उनके लिये अधिक सुविधाजनक होंगे उन्हें कार्यपालिका में अधिक सुहावने अवसर देने की सम्भावना होगी।

इस सम्बन्ध में मैं पूर्ववर्ती सरकार के आचरण का हवाला दे सकता हूं? तत्कालीन भारत सरकार का यह तरीका था या परम्परा थी कि, कम से कम, जहां तक व्यवहार-वादों के न्यायाधीशों का सम्बन्ध है, उन्हें सेवाकाल में बहुत पहले ही, कार्यपालिका या न्यायपालिका दोनों में से एक प्रकार की सेवा पसंद करने के लिये कहा जाता था। एक बार पसंद कर लेने के पश्चात् सामान्यत: वह उसी में रहता था। उन दिनों कार्यपालिका और न्यायपालिका इतनी पृथक नहीं थी जितनी हम आज चाहते हैं; किन्तु फिर भी यह परम्परा उस समय चालू थी। यदि कोई परिवर्तन होता है तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर पहुंचने पर ही होता है। सरकार उस समय जो पद दे सकती थी वे सीमित थे अत: कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर प्रभाव डालने का क्षेत्र भी सीमित था। किन्तु अब की नई स्थिति में जब प्रभुता के प्राधिकार भी हमें प्राप्त हैं उच्चतम कोटि के न्यायिक अधिकारी को जो लाभदायक या सुविधाजनक सिद्ध हो प्रलोभन के लिये जो पद दिये जा सकते हैं उनकी संख्या बहुत होगी; अत: इस संशोधन में यह सुझाव है कि कम से कम उन लोगों के लिये इसका वर्जन होना चाहिये जिन्होंने कम से कम पांच वर्ष के लिये ऐसा उच्च न्यायिक पद धारण किया हो। हम जिस संक्रमण काल में से गुजर रहे है उसमें यह भी बहुत कठिन है कि ऐसी परम्परा या रीतियां स्थापित हो सकें जो कि सांविधानिक उपबंधों का स्थान ले लें। क्योंकि यदि इस समय कोई परम्परा स्थापित की जाये तो वह असाधारण परिस्थितियों में असाधारण वस्तु समझी जायेगी, अत: शायद वह बाध्यकारी न हों। अत: इस संशोधन में यह सुझाव दिया गया है कि संविधान में ही ऐसा उपबंध होना चाहिये कि न्यायिक अधिकारियों को इस संशोधन में उल्लिखित न्यायिक पद पर स्थानान्तरित नहीं करना चाहिये। मैं मानता हूं कि यह मामला इतना सीधा है और इसका जो सिद्धांत है वह इतना स्पष्ट है कि इस पर कोई मतभेद ही नहीं हो सकता जब तक कि आप अपनी न्यायपालिका को कार्यपालिका के, किसी प्रकार अधीन, या प्रभाव में न रखना चाहते हों।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं उस संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं जो मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने अभी सदन के समक्ष रखा है। इस संशोधन का उद्देश्य न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सच्चाई का अनुसेवन करना है। मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर शाह यह नहीं चाहते कि निवृत्त न्यायाधीशों को इस संशोधन में उल्लिखित पदों की आकांक्षा करने से रोक दिया जाये किन्तु उनका उद्देश्य यह है कि ऐसे न्यायाधीशों को, जो उस समय उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश-मंडली या किसी अन्य उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में हो सरकार की कार्यपालिका में कोई पद प्राप्त न हो।

***डा. बक्शी टेकचन्दः** भाषा तो ऐसी नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** हां, पांच वर्ष के लिये। न्यायाधीश 65 वर्ष तक सेवा कर सकता है। यहां पर संशोधन में लिखा है कि ऐसा न्यायाधीश, जो 5 वर्ष तक अनवरत सेवा कर चुका है, इस संशोधन में उल्लिखित किसी पद पर नियुक्ति नहीं होनी चाहिये। मेरे मतानुसार यह बहुत अच्छा सिद्धांत है। अन्य देशों में ऐसा हुआ है कि न्यायाधीश को 5 वर्ष या अधिक कार्य करने के पश्चात् किसी कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य पर लगा दिया गया, जब कि उसके विचार, या मस्तिष्क अथवा निर्णय की स्वतंत्रता ऐसी तीक्ष्ण हो गई कि वह कार्यपालिका के लिये सह्य न रही। मेरे विचार में अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की ही बात है—मुझे याद नहीं है कि उसने इस तरीके से किस अवसर पर काम लिया, किन्तु इस शताब्दी की तीसरी दशाब्दी में, जब उसने देखा कि उच्चतम न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों के विचार असह्य है, तो उसने अधिक न्यायाधीश नियुक्त करके उसे हल करना चाहा, जिससे कि उस विशेष बात के लिये जिसे कि वह पारित करना चाहता था उसे अपेक्षित बहुमत प्राप्त हो सके। यह भी एक उपाय है कि ऐसे न्यायाधीशों की संख्या को बढ़ा दिया जाये जो कि एक विशेष विचारधारा के पक्ष में हों। क्योंकि आपको स्मरण होगा कि देश में उच्चतम न्यायालय को विवादों का निर्णय करना होगा—सांविधानिक विवादों का, जो केन्द्र और एककों के बीच हों तथा एकक और एकक के बीच में हों। कार्यपालिका को इनमें से कई प्रश्नों में दिलचस्पी होती है और यह बहुत सम्भव है—अधिकांश में संभव है—कि कोई विशेष मामला जो उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश हो ऐसे महान महत्त्व का हो और राष्ट्रपति तथा कार्यपालिका को उसमें ऐसी दिलचस्पी हो कि वे शायद उस पर उच्चतम न्यायालय से एक विशेष प्रकार का निर्णय करवाना चाहें। उन्हें यह देख कर असुविधा हो सकती है कि उच्चतम न्यायालय की इच्छा वैसा करने की नहीं है और इसका एक उपाय यह भी हो सकता है कि असुविधाकारी न्यायाधीशों को हटा कर कम सुविधाकारी स्थानों पर भेज दिया जाये। न्यायाधीश भी आखिर मनुष्य ही होता है और राजदूत पद जैसा प्रलोभन...

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): इस अध्याय में केवल उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों पर ही हम विचार कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि पंडित भार्गव ने प्रोफेसर शाह के संशोधन को पढ़ा नहीं हैं। उसमें उच्चतम न्यायालय की भी चर्चा है और वह उस रूप में पेश हुआ है, अतः मुझे उस संशोधन में उल्लिखित न्यायाधीशों के विषय में भी बोलने का

[श्री एच.वी. कामत]

अधिकार है—मुझे आशा है, श्रीमान् कि इसमें आपकी अनुमति है। यदि कोई न्यायाधीश, राजदूत, उच्च आयुक्त, मंत्री आदि के पद के लिये आकांक्षा रखता है या उसे इसकी आशा दिलाई जाती है—तो वह मनुष्य ही है और आखिर हमारी अपनी निर्बलताएं हैं और यह मान लेना मानवता के अनुरूप ही है कि कार्यपालिका उसके समक्ष जो प्रलोभन रखे, वह उससे परे नहीं होगा—मेरा निवेदन है कि उससे उसकी न्यायिक स्वतंत्रता और ईमानदारी पर प्रभाव पड़ेगा और मुझे विश्वास है कि इस सदन में कोई यह नहीं चाहता कि ऐसा परिणाम निकले। हमारे न्यायाधीश, चाहे वे कहीं भी हों—राज्यों में या केन्द्र में—न्यायिक स्वतंत्रता के आदर्श नमूने होने चाहियें, जो अपने निर्णयों और कार्यों में निर्भय हों, केन्द्रीय प्राधिकारियों या राज्यिक प्राधिकारियों से उन्हें भय न हो और उनकी कृपा की भी चिन्ता न हो। यदि न्यायाधीशों के लिये ऐसी शर्त नहीं रखी जाती है, तो यह सम्भव है कि हम उन्हें यथेष्ट सबल और यथेष्ट सच्चे नहीं पायेंगे। किन्तु मुझे आशा है कि यह शर्त निवृत्त न्यायाधीशों पर लागू नहीं होगी। यदि वे राजदूत जैसे किसी पद के लिये योग्य है तो निःसंदेह उन्हें नियुक्त कर देना चाहिये, किन्तु जो न्यायाधीश के पद पर हों उनके लिये मेरे विचार में इस सदन को यह सिद्धांत निश्चित कर देना चाहिये कि अपने पद पर रहते हुये उन्हें कार्यपालिका में किसी पद की आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये। मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मेरा भी ख्याल है कि प्रो. शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर हमें ध्यान से विचार करना चाहिये। कुछ लोग कह सकते हैं कि इस समय इस देश में योग्य व्यक्तियों की कमी है और यदि हम यह उपबंध कर देंगे, तो शायद इन उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये व्यक्तियों का अभाव हो जाये। किन्तु यहां हम इस देश के भविष्य के लिये एक संविधान का निर्माण कर रहे हैं और यह केवल सीमित कालावधि के लिये नहीं होगा, किन्तु बहुत लम्बे समय तक चलेगा और इसलिये इस प्रकार का उपबंध हमारे विचार के योग्य है। हमने पहले ही यह रख दिया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय में वकालत न करने दी जायेगी। हां, वह बहुत ठीक उपबंध है और बहुत अच्छा है, किन्तु यदि निवृत्ति के पश्चात् अन्य उच्च पदों पर नियुक्त होने का प्रलोभन न हटाया गया, तो संभव है कि कार्यपालिका या कोई सत्तारूढ़ दल उसका दुरुपयोग कर सकता है और वह ऐसे प्रलोभन दिखा सकता है जिससे कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़े। मैं स्वयं अनुभव करता हूं कि यह संशोधन बहुत अच्छा है और लाभदायक है। चाहे भाषा भिन्न रखनी पड़े, पर मुझे आशा है कि संविधान में कहीं न कहीं यहां उल्लिखित सिद्धांत को रख दिया जायेगा, जिससे कि न्यायपालिका प्रलोभन से परे रहे और कोई उस पर प्रभाव न डाल सके।

***अध्यक्षः** डाक्टर अम्बेडकर, क्या आप प्रोफेसर शाह के संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मैं प्रोफेसर शाह के इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। यदि मैं उनको ठीक समझता हूं तो उन्होंने कहा था कि उनके संशोधन का उद्देश्य न्यायपालिका और कार्यपालिका के पार्थक्य के

सिद्धांत को पूरा करना नहीं बल्कि सफल बनाना है। मैं नहीं समझता कि इस पर कोई विवाद है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका में पार्थक्य होना चाहिये और वास्तव में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों सम्बन्धी सब अनुच्छेदों में इस बात को ध्यान में रखा गया है। किन्तु जो प्रश्न उठता है, वह तो यह है: इससे न्यायपालिका और कार्यपालिका में पार्थक्य कैसे स्थापित हो सकेगा। जहां तक न्यायपालिका के कार्यपालिका से पार्थक्य के सिद्धांत को मैं समझ पाया हूं इसका अर्थ यह है कि जब कोई व्यक्ति न्यायपालिका पद को धारण कर रहा हो, तब वह किसी ऐसे पद पर नहीं होना चाहिये जिससे कि उसे कार्यपालिका की शक्ति प्राप्त हो; इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति कार्यपालिका का पद धारण किये हुए हो, तब वह उनके साथ न्यायपालिका का पद धारण न करे। किन्तु इस संशोधन में बिल्कुल दूसरा ही सिद्धांत है, जहां तक कि मैं इसे समझ सका हूं। इसमें तो यह निश्चित कर दिया गया है कि जो व्यक्ति कुछ वर्ष न्यायपालिका में कुछ वर्ष सेवा कर चुका है, वह तत्पश्चात् कैसी सेवा में लगे। मेरे विचार में इससे तो बिल्कुल अलग ही समस्या उत्पन्न होती है। इससे वही समस्या पैदा होती है जिस पर हम लोक सेवा आयोग के सम्बन्ध मे विचार करेंगे, कि क्या लोक सेवा आयोग का सदस्य अपनी पदावधि पूरी करने के पश्चात् किसी अन्य पद पर नियुक्त होने का अधिकारी है। मुझे यह प्रतीत होता है कि न्यायपालिका के सदस्यों की स्थिति लोक सेवा अयोग के सदस्यों की स्थिति से भिन्न है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं लोक सेवा आयोग के सदस्यों का प्रशासनीय सेवाओं की नियुक्ति के विषय में कार्यपालिका से गूढ़ सम्बन्ध होता है। बहुत हद तक न्यायपालिका का कार्यपालिका से कोई सम्बन्ध नहीं होता: इसका तो सम्बन्ध जनता के अधिकारों का और कुछ हद तक भारत सरकार और एकक सरकारों के हकों का न्याय करने से है। बहुत हद तक, मेरे विचार में, इसका सम्बन्ध जनता के हकों से ही होगा, जिसमें कि उस समय की सरकार को मुश्किल से ही कोई दिलचस्पी होगी। परिणामत: कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर प्रभाव डालने की संभावना बहुत कम होगी, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवल सैद्धांतिक आधार पर किसी व्यक्ति को अन्य पद धारण करने के अनर्ह बना देना तो मामले को बहुत बढ़ाना होगा। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हम अपनी न्यायपालिका के लिये जो उपबंध रख रहे हैं वे उन पदों को धारण करने वाले लोगों की दृष्टि से बहुत असंतोषजनक हैं। हम उन्हें साठ वर्ष की आयु पर पद त्याग करने के लिये कह रहे हैं जब कि इंग्लिस्तान में एक व्यक्ति सत्तर वर्ष तक पद धारण कर सकता है। यह भी स्मरण रखना होगा कि संयुक्त राज्य अमरीका में उच्चतम न्यायालय का पद लगभग जीवन पर्यन्त चलता है, इसलिये अमरीका या इंग्लिस्तान में किसी व्यक्ति के निवृत्ति उपरांत अन्य पद ढ़ंढने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसी प्रकार संयुक्त राज्य में, जहां तक निवृत्ति-वेतन का सम्बन्ध है, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का निवृत्ति वेतन वही होता है जो उसका वेतन हो; दोनों में कोई भी अन्तर नहीं है। इंग्लिस्तान में भी, जहां तक मैं समझता हूं, निवृत्ति वेतन उस वेतन का लगभग 70, 80 प्रतिशत होता है, जो कि न्यायाधीशों को मिलता है। जैसा कि मैंने कहा है, निवृत्ति विषयक हमारे नियम व्यक्ति पर भार स्वरूप होते हैं क्योंकि उसके लिये साठ पर निवृत्त होना अपेक्षित हो जाता है। हमारे निवृत्ति-वेतन विषयक नियम बहुत कड़े हैं क्योंकि हम

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

बहुत कम ही निवृत्ति वेतन देते हैं इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मेरे विचार में प्रोफेसर के.टी. शाह का संशोधन उनके प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये, जो न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करना है, अनावश्यक है और इस दृष्टि से भी अनावश्यक है कि इससे न्यायपालिका में पद स्वीकार करने वालों पर बहुत भार पड़ जाता है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं कह सकता हूं कि यह संशोधन निवृत्त न्यायाधीशों पर लागू नहीं होता, वरन् उस समय न्यायाधीश मंडली में काम करते हुए न्यायाधीशों पर लागू होता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो यह संशोधन गड़बड़ वाला है। उसमें लिखा है कि वह उस व्यक्ति पर लागू होगा जो लगातार पांच वर्षों की कालावधि के लिये सेवा कर चुका हो। इसका अर्थ यह है कि यदि राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश को पांच वर्ष से कम के लिए नियुक्त कर दे, तो उस पर यह लागू नहीं होगा, जिससे कि प्रो. शाह के मन का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। राष्ट्रपति को किसी विशेष मामले में पूरा अधिकार होगा कि वह किसी न्यायाधीश को पांच वर्ष से न्यून कालावधि के लिये नियुक्त कर दे और बाद में उसे राजदूत अथवा वाणिज्य दूत या वाणिज्य आयुक्त आदि का पद प्रदान कर दे। मुझे तो इस समूची बात में गड़बड़ दिखाई देती है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि निम्न नवीन अनुच्छेद 193-क, अनुच्छेद 193 के पश्चात् जोड़ दिया जाये:

'193-क कोई व्यक्ति जो पांच वर्ष तक लगातार उच्चतम न्यायालय, अथवा फेडरल न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका हो, भारत सरकार अथवा राज्य की सरकार के अधीन किसी पद पर नियुक्त नहीं किया जायेगा, जिसमें राजदूत, मंत्री, प्लेनीपोटेन्शरी, उच्च आयुक्त, वाणिज्य आयुक्त, वाणिज्य दूत तथा भारत में या संघ के किसी राज्य की सरकार में मंत्री का पद भी सम्मिलित है।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 194

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 194 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 194 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 195

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 195 में 'a declaration' इन शब्दों के स्थान पर 'an affirmation or oath' ये शब्द रख दिये जायें।''

यह बहुत औपचारिक संशोधन है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 195 में 'a declaration' इन शब्दों के स्थान पर 'an affirmation or oath' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 195 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 195 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 196

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 196 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'196. *किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि-वृत्ति करने का प्रतिषेध*—कोई व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के न्यायाधीश के पद पर प्रारम्भ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र के किसी रह चुके व्यक्ति द्वारा न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत या न्यायालयों में अथवा कार्य न करेगा।''

यह केवल भाषा का ही फेरफार है।

(संशोधन संख्या 87 और 2627 से 2631 तक पेश नहीं किये गये।)

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहकाः** डा. अम्बेडकर ने अभी जो संशोधन पेश किया है उसे देखते हुए मेरा संशोधन (संख्या 2632) अपेक्षित नहीं है।

(संशोधन संख्या 2633 से 2637 तक पेश नहीं किये गये।)

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 196 में, ''within the territory of India' इन शब्दों के स्थान पर ''within the jurisdiction of that High Court' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मुझे कोई वक्तृता देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह संशोधन स्वयं स्पष्ट है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मस्विदा समिति के सभापति के समक्ष संशोधित रूप में अनुच्छेद 196 को पेश किया है। मेरे विचार में संशोधित अनुच्छेद से भी उन व्यक्तियों पर बहुत ज्यादा प्रतिबंध लग जाते हैं जो कि उच्च न्यायालय में न्यायाधीश का पद धारण कर चुके हों। हमने यह सोचा था कि कोई व्यक्ति लम्बी कालावधि के लिये या बहुत छोटी कालावधि के लिये भी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त हो सकता है। मैं समझता हूं कि डा. अम्बेडकर के संशोधन से यह संभावना नहीं मिट जाती कि कोई व्यक्ति कुछ मासों के लिये ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण करे या उस रूप में कार्य करे। मान लीजिये, एक व्यक्ति कुछ मासों के लिये उस पद पर रहता है, छः मासों या नौ मासों के लिये, क्या हमारा उद्देश्य उस पर भी निर्बन्धन लगाना है, जोकि थोड़े से समय के लिये अस्थायी न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो? क्या हम उसे किसी न्यायालय में ही नहीं, वरन् भारत के प्रदेश में किसी प्राधिकारी के समक्ष भी वकालत करने या कार्य करने से रोकना चाहते हैं? यह मेरी समझ में नहीं आता कि किसी व्यक्ति को, जो थोड़े से समय के लिये उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में बैठ चुका है, समस्त भारत के किसी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष पेश होने से क्यों रोका जाये। जैसा कि मेरे मित्र सरदार हुकमसिंह ने सुझाव दिया है इसमें कुछ युक्तिसंगत बात होगी, यदि उस न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय में, जहां वह पद धारण कर चुका है, पेश होने से रोका जाता या उसके क्षेत्राधिकार में, या उसके अधीन किसी न्यायालय में पेश होने से रोका जाता। किन्तु मेरे विचार में यह पूर्ण सांविधानिक निषेध अनावश्यक है और मैं कह सकता हूं, अलोकतंत्रात्मक है। मैं अपने मित्र सरदार हुकमसिंह के संशोधन का समर्थन करना चाहता हूं और मुझे आशा है कि सदन इस पर गम्भीर रूप से विचार करेगा और अनुच्छेद तदनुसार संशोधित हो जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद के विषय में मुझे अपने माननीय मित्र श्री कामत की वक्तृता पर बहुत आश्चर्य है। इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन होना चाहिये। वास्तव में मैं तो यह समझता हूं कि इस संविधान के आरम्भ होने के पश्चात्, ये शब्द भी हटा दिये जाने चाहिये। मैं नहीं समझता कि ये शब्द क्यों रखे जायें। प्रत्येक व्यक्ति को, जो न्यायाधीश रह चुके, वकालत न करने देना चाहिये। आप अब जो निषेध लगा रहे हैं उसके पीछे बहुत युक्तियुक्त आधार है। वास्तव में ब्रिटेन में ऐसा कोई व्यक्ति वकालत नहीं कर सकता जो कि न्यायाधीश-मंडली में रह चुका हो। यह तो सुविख्यात सिद्धांत है। यह भी सुविदित है कि एक बार जब कि लार्ड वर्कनहैड और कुछ अन्य व्यक्ति फिर वकालत आरम्भ करना चाहते थे, तब लोकमत इतना विरुद्ध था कि उन्होंने

अपने संकल्प को पूरा करके वकालत करने का साहस ही नहीं किया। आप पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों होना चाहिये। सर्वप्रथम उच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा ऐसी होनी चाहिये कि कोई पूर्ववर्त्ती न्यायाधीश पुनः वकालत आरम्भ न करे। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पास चाहे धन न हो पर उसका सम्मान किसी से भी अधिक होता है। अतः यदि वह पुनः वकालत आरम्भ करेगा तो उसके पद की प्रतिष्ठा गिर जायेगी। इसी कारण जो व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुके उसे वकालत पुनः आरम्भ नहीं करनी चाहिये। मैं तो और भी आगे बढ़ना चाहता हूं। मैं तो यह कहता हूं कि जो न्यायमंत्री रह चुका हो उसे भी वकालत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। मैंने कुछ अधिवक्ता देखे हैं जो न्यायमंत्री रह चुके हैं पर पुनः वकालत आरम्भ करके अपने पद की प्रतिष्ठा को घटाते हैं। शायद अपने पद पर रहते हुए उन्होंने मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों के साथ विशेष सम्बन्ध बना लिये होंगे, क्योंकि उन्हें पता था कि शायद उन्हें फिर वकालत करनी पड़ जाये। इस बात की अनुमति नहीं होनी चाहिये।

यह कहा गया है कि अस्थायी न्यायाधीशों को वकालत की मनाही नहीं होनी चाहिये। मुझे आशा है कि अनुच्छेद 198 और 199 को इस प्रकार संशोधित कर दिया जायेगा कि हमारे उच्च न्यायालयों में अस्थायी न्यायाधीश रहेंगे ही नहीं और जो भी न्यायाधीश मंडली में एक बार नियुक्त हो जायेंगे वे संविधान के अनुसार निश्चित कालावधि के लिये, वहीं रहेंगे। अतः अस्थायी न्यायाधीशों को वकालत न करने से रोकने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः यह बहुत अच्छा उपबंध है कि एक बार जो न्यायाधीश मंडली में पहुंच जायें उसे फिर वकील मंडली में शामिल नहीं होना चाहिये। मुझसे पूछा जा सकता है कि इसके विरुद्ध क्या क्रियात्मक कारण है। सर्वप्रथम, जो व्यक्ति न्यायाधीश रह चुका हो और वकालत आरम्भ करना चाहेगा, वह अधिक मुवक्किलों की सम्भावना की आशा करेगा। कई मुवक्किल उसकी ओर आकृष्ट होंगे, जो कि अन्य वकीलों के प्रति अन्याय होगा। यह भी सम्भव है कि वह सम्पर्क बनाने का प्रयत्न करे। यह कोई अच्छी बात नहीं होगी यदि वकालत पुनरारम्भ करके वह मुवक्किलों पर यह कह कर प्रभाव डाले कि मुख्य न्यायाधिपति उसका मित्र है। इन कारणों से मेरे विचार में उच्च न्यायालय के एक निवृत न्यायाधीश को पुनः वकालत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। उसे अन्य उच्च न्यायालयों में भी वकालत करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। मैं मानता हूं कि उसे पूरी निवृत्ति वेतन मिलना चाहिये, ऐसी राशि जो उसके वेतन के लगभग समान ही हो, जिससे कि वह उस पद की प्रतिष्ठा बनाये रख सके। किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता बनाये रखने के लिये यह अपेक्षित है कि हम उसे पूरा निवृत्ति वेतन दें, यह देखते हुए कि हम उसे फिर वकालत करने की अनुमति नहीं दे रहे हैं और कोई पद ऐसा नहीं ढूंढने दे रहे हैं जिससे कि उसकी प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता में हस्तक्षेप हो।

डाक्टर अम्बेडकर ने जो संशोधन प्रस्तुत किया है उसके लिये मैं उनका आभारी हूं। मैं तो केवल इन शब्दों को ही हटाना चाहता हूं कि ''संविधान के आरम्भ होने के पश्चात्''। मेरा उद्देश्य यह है कि जो व्यक्ति संविधान के पूर्व भी न्यायाधीश रह चुके हों, उन्हें भी वकालत करने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने का साहस करने पर मुझे क्षमा किया जाये। मैं सामान्य व्यक्ति हूं और इसलिये

[श्री महावीर त्यागी]

यह कुछ अनाधिकार चेष्टा सी दिखाई दे सकती है कि मैं विधि-सम्बन्धी शास्त्रीय बातों पर बोलने लगूं। किसी अवसर पर डाक्टर अम्बेडकर ने मेरे इस कथन पर आपत्ति की थी कि मेरी अमुक भावना है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मुझे अपना मत प्रकट करना चाहिये, भावनाएं नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्यिक लोगों की सम्मति उनकी भावना से भिन्न होती है। मेरे लिये तो भावनाओं और मत का एक ही अर्थ है। मेरा निवेदन है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के विषय में यह बात है कि उनके आसन ईश्वर के आसन है। ग्रामों में लोग ऐसा ही कहते हैं। ग्रामीण कहते है ''न्याय का आसन भगवान का आसन होता है।'' अत: किसी देश में किसी व्यक्ति की सर्वोपरि आकांक्षा यही हो सकती है कि वह उस आसन पर प्रतिष्ठित हो जो भगवान का कहा जाता है। इसको बहुत पवित्र मानते हैं यह वास्तव में न्याय विधि पर निर्भर नहीं करता। यह बहुत विचित्र बात है कि अंग्रेजों ने लोगों के मन में न्याय के विषय में भ्रांति उत्पन्न कर दी है। लोगों की यह धारणा बना दी गई है कि विधि का सच्चा अर्थ निकालना ही वास्तविक न्याय है। यह बात नहीं है। वास्तव में न्याय तो एक अनन्त सत्य है; यह विधि से बहुत उच्च है। इस समय तो वकील यही करते हैं कि वे ईश्वरीय न्याय के स्वतंत्र प्रवाह में बाधा डालते हैं। श्रीमान्, पिछले अनुच्छेद में जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह ऐसी है कि ईश्वरीय गुणों से युक्त जनसामान्य के भी न्यायाधिपति नियुक्त होने की संभावना है। हम सदा वकीलों को ही न्यायाधीश क्यों रखें? मैं नहीं जानता। हम यह पहले से ही क्यों मान लें कि भविष्य में केवल वकील ही न्यायाधीश के पद पर आसीन होंगे? न्यायाधीशों की नियुक्ति के उपबंध में लिखा है कि राष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके, उन्हें नियुक्त करेगा। हम यह क्यों समझ लें कि न्यायाधीश सदा विधि स्नातक ही होगा? मेरे विचार में इसकी बहुत संभावना है कि ऐसे व्यक्ति, जो न्याय करने के लिये अन्यथा बहुत योग्य हों, न्यायाधीश के पदों पर प्रतिष्ठित हो सकते हैं और अपने जीवन की सर्वोच्च आकांक्षा को पूरी कर सकते हैं यह सोचना गलत होगा कि ज्यों ही एक व्यक्ति जो वकील न हो न्यायाधीश नियुक्त हो जायेगा, त्यों ही उस पद की प्रतिष्ठा समाप्त हो जायेगी। मेरा विश्वास यह है कि सामान्य व्यक्ति से उस आसन की गरिमा ही नहीं बढ़ेगी बल्कि उससे वह पद परम पवित्र बन जायेगा। यदि इस उच्च पद से निवृत्त होने के पश्चात् लोगों की सांसारिक धन के लिये आकांक्षा करने की अनुमति दी जाये जब कि वे भगवान का कार्य कर चुके हों, न्याय का कार्य कर चुके हों, तो वे अपने पद का और अपने आप का महत्त्व खो देंगे। श्रीमान्, मैं यह कह देना चाहता हूं कि मैं वकीलों की वृत्ति के ही विरुद्ध हूं। वे कोई मूल्य या धन की उत्पत्ति नहीं करते। वे विधि का ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपनी योग्यता को नीलाम पर या किराये पर लगा देते हैं। श्रीमान्, यदि वकीलों को न्यायाधीश नियुक्त किया जाये और उन्हें निवृत्ति के पश्चात् न्यायालय में वकालत भी करने दी जाये, तो परिणाम यह होगा कि वे 'न्याय' के महान पद का महत्त्व घटा देंगे; वे उन पदों को सीढ़ी मान कर निवृत्ति के पश्चात् वकालत कर अधिक पैसा कमाने का तरीका बनायेंगे। अत: मेरा निवेदन है कि वकीलों को न्याय में न्यायाधीश मंडली से हटने के पश्चात् किसी विधि न्यायालय

में वकालत न करने दी जाये। मैं इस बात के किये आतुर हूं कि न्याय की विद्यमान पद्धति के विषय में अपने विचारों को प्रकट करूं। मुझे भय है मैं कुछ विषयान्तर कर रहा हूं। किन्तु मुझे इतनी छूट दे दी जाये।

***अध्यक्ष:** मुझे प्रसन्नता है कि माननीय सदस्य यह समझ गये हैं कि वे विषयान्तर कर रहे हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** आप भी वकील हैं, श्रीमान् और आप मुझे क्षमा करेंगे जब मैं यह कहता हूं कि वे असली न्याय का महत्त्व कम कर देते हैं, क्योंकि वे दैवी न्याय को मनुष्य द्वारा निर्मित विधि के कृत्रिम मार्ग में से गुजारना चाहते हैं। वकील लोग यही तो करते हैं। सच्चा न्याय विधि या युक्ति के जाल से बद्ध नहीं है। ब्रिटिश विधि-शास्त्र के व्यवहार के अनुसार न्याय उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है जो कि चतुर वकील को कर सके, क्योंकि सच्चाई पर ध्यान नहीं दिया जाता। जिस न्यायाधीश को घटना के विषय में वैयक्तिक ज्ञान हो वह उस मामले का न्याय करने के सर्वथा अयोग्य होता है। जब तक कि वह आगे आकर साक्षी के रूप में गवाही न दे और उसके साथ जिरह न की जाये, तब तक तथ्यों के विषय में उसका ज्ञान निरर्थक है। न्याय की विद्यमान कल्पना मुझे अच्छी नहीं लगती। इस समय विधि न्यायालय समस्त भ्रष्टाचार, बेईमानी और असत्य के केन्द्र और मूल हैं, अत: न्यायाधीशों के आसन अब भारत में ईश्वर के आसन नहीं है हमारे भावी ढांचे में हैं ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि हमारे न्यायालय अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को प्राप्त करें और विधि के दास या इससे बद्ध न बनें। न्याय सत्य है और विधि अनंत हैं। न्याय यथार्थता है और विधि केवल इसकी अभिव्यक्ति का उपाय मात्र है। जो व्यक्ति एक बार न्यायाधीश हो जाये, उसे सत्यमय आनंद का जीवन व्यतीत करने दिया जाये। एक बार जो न्यायाधीश बन जाये वह सदा न्यायाधीश ही रहेगा। उसे निवृत्ति के पश्चात् अपने निवृत्ति-वेतन से संतुष्ट रहना चाहिए। यदि वकील कभी न्यायाधीश नियुक्त हो जायें तो उन्हें पुन: वकालत नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यह निश्चित है कि यदि वे ऐसा करेंगे तो वे अपने पदों का प्रयोग अधिक वकालत के लिये सीढ़ी के रूप में करेंगे।

मैं मूल प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं अपने मित्र श्री कामत की इस बात से सहमत हूं कि यह परन्तुक इतना व्यापक और सख्त है कि हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। वर्तमान स्थिति के अनुसार उच्च न्यायालयों के निवृत्त न्यायाधीशों को उस न्यायालय में तथा उसके अधीनस्थ न्यायालयों में वकालत नहीं करने दी जाती। इससे अधिक कोई वर्जन नहीं है। मैं पूछना चाहता हूं कि हमारा अनुभव क्या है? हम यह परिवर्तन क्यों करना चाहते हैं? क्या इस उपबंध में कोई त्रुटियां दिखाई दी हैं? क्या इससे कोई हानि हुई है? यदि ऐसा नहीं है तो मैं नहीं समझता कि उसमें कोई परिवर्तन क्यों किया जाये। क्या निवृत्त न्यायाधीशों से वकीलों की बाढ़ आ गई है? नहीं, ऐसी कोई बात नहीं हुई है और न हो ही सकती है, क्योंकि वकालत में सफलता पाना ऐसी आसान बात नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति उसमें हाथ डाल सके। प्रतिष्ठा का प्रश्न भी उठ सकता है। मैं यह समझ सकता हूं कि जो व्यक्ति न्यायाधीश मंडली में बैठ चुका हो उसे उसी

[श्री बी.एम. गुप्ते]

न्यायालय में वकालत शुरू नहीं करनी चाहिये। किन्तु इसके अतिरिक्त क्या यह सत्य है कि आज कोई शिष्ट विचारों का व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता, क्योंकि प्रस्तावित प्रतिषेध लागू नहीं है? इसके विपरीत उस पद की प्रतिष्ठा इतनी उच्च है कि बहुत योग्य वकील इसे स्वीकार करने और इसकी आकांक्षा करने के लिये तैयार हैं। अत: मेरा निवेदन है कि इस प्रश्न का उत्तर 'ना' ही हैं। तब यह बात उठ सकती है कि शायद निवृत्त न्यायाधीश न्यायालय में अनुचित प्रभाव का प्रयोग करे। उस हद तक मैं मानता हूं कि प्रतिषेध समूचे प्रदेश भर में सब अधीनस्थ न्यायालयों पर लागू होना चाहिये। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि उसे उच्चतम न्यायालय में भी आने की मनाही हो। उच्चतम न्यायालय किसी न्यायालय के अधीन नहीं है। उसे अन्य उच्च न्यायालयों में वकालत करने से भी नहीं रोकना चाहिये। अत: मेरा निवेदन है विद्यमान प्रणाली को बदलने का कोई कारण नहीं है।

मुझे कहा जा सकता है कि इंग्लिस्तान में जो पद्धति है उससे यह सिद्ध होता है कि इस समय जो नई पद्धति बनाई जा रही है। वह ठीक है किन्तु, मैं पूछता हूं कि जब हमारे पास अपना अनुभव है तो फिर इंग्लिस्तान या अमरीका या रूस में हम क्यों जायें? मेरा निवेदन है कि हमारे अनुभव से सिद्ध होता है कि यह परिवर्तन ठीक नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह परिवर्तन केवल अनावश्यक है; यह अवांछनीय है। मस्विदा समिति ने अनुच्छेद 193 के नीचे एक नोट में लिख दिया है: 'इसका परिणाम यह है कि वकीलों में से सर्वोत्तम व्यक्ति बहुधा न्यायाधीश बनने से इंकार कर देते हैं, क्योंकि 60 वर्ष की विद्यमान आयु सीमा के अंतर्गत उन्हें पूरा निवृत्ति वेतन पाने का समय नहीं मिलेगा।'' अत: इस आयु सीमा के कारण सर्वोत्तम व्यक्ति नहीं आते हैं मस्विदा समिति ने इसे स्वीकार किया है। फिर समिति ने यह प्रस्ताव किया है कि वेतन तथा निवृत्ति वेतन घटा दिये जायें। मैं समझता हूं कि श्री महावीर त्यागी ने ठीक कहा है कि यदि इंग्लिस्तान के समान पर्याप्त निवृत्ति वेतन हो तो प्रश्न ही नहीं उठता; किन्तु मस्विदा समिति ने वेतन घटाने का सुनिश्चित सुझाव दिया है। मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि इसे स्वीकार कर लिया जाये। किन्तु यह वेतन कम करने का सुझाव तो है ही, इसके साथ यह प्रतिषेध भी है कि वे कहीं वकालत नहीं करेंगे। इन सब बातों का इकट्ठा प्रभाव क्या होगा? मेरा निवेदन है कि परिणाम यह होगा कि उच्च न्यायालय के या अधीनस्थ न्यायालयों के वकीलों में सर्वोत्तम व्यक्ति पद को स्वीकार करने के लिये तैयार न होंगे। मैं चोटी के वकीलों के हितार्थ इस पर बल नहीं दे रहा हूं। वे अपनी चिंता स्वयं कर सकते हैं। उन्हें हमारी सहानुभूति या कृपा की अपेक्षा नहीं। उनकी तो शानदार वकालत चलेगी। किन्तु इन सब बातों का हमारी न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर क्या प्रभाव होगा? यही समस्या है। चोटी के व्यक्तियों के न मिलने पर, हमें कम योग्यता के लोगों को चुनना होगा और जिसकी वकालत नहीं चली हो उन्हें न्यायाधीश बना दिया जायेगा। या अन्यथा सारे उच्च न्यायालय में जिला न्यायाधीश तथा अधीनस्थ न्यायाधीश ही भर जायेंगे। मैं आप से पूछता हूं कि क्या यह अभीष्ट है? हम सदा न्यायपालिका की स्वाधीनता के

लिये शोर करते रहे हैं किन्तु यह बात इतना उपबंध ही कर देने से पूरी नहीं हो जाती कि एक न्यायाधीश को तब तक अपने पद से हटाया नहीं जा सकता जब तक कि विधान मंडल के सदन समावेदन पेश न करें, या कि उसके भत्ते तथा वेतन राज्य के राजस्व पर भार होंगे। न्यायपालिका इसी प्रकार स्वतंत्र हो सकती है कि उनकी सेवा की शर्तों को ऐसा बना दिया जाये कि सच्चे स्वतंत्रात्मा व्यक्ति उन पदों पर आकृष्ट हों। मेरा निवेदन है कि स्वतंत्र उन्नतिशील व्यक्ति आकृष्ट नहीं होंगे यदि हम ऐसा पूर्ण प्रतिबंध रख देंगे। यह कहा जा सकता है कि सर तेज बहादुर सप्रू इसके पक्ष में थे। हो सकता है सप्रू का नाम सम्माननीय है और उनके विचारों पर हमें सादर विचार करना चाहिये; किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके गुणावगुण पर ध्यान दिये बिना ही हम उनके विचारों पर अंधविश्वास कर लें। ऐसा करने का अर्थ यह होगा कि हम मृत्यु के पश्चात् उन्हें तानाशाह का पद दे देते हैं, जिससे उन्हें स्वयं घृणा होती।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव का समर्थन करने वाले किसी सदस्य ने सर तेज बहादुर सप्रू के नाम का प्रयोग नहीं किया था। माननीय सदस्य उनका नाम बीच में ले आते हैं और उनके कल्पित मत की आलोचना आरम्भ कर देते हैं मेरे विचार में यह ठीक नहीं है।

***श्री बी.एम. गुप्ते:** श्रीमान्, मैं युक्ति का पूर्वाभास कर रहा हूं। खैर, मैं यही निवेदन करना चाहता हूं कि हमें इस प्रस्ताव के समर्थन में सब संगत युक्तियों पर विचार करना चाहिये। और हम इस प्रकार विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि प्रस्तावित उपबंध ऐसा नहीं है कि इन अत्यंत महत्त्वपूर्ण पदों पर उपयुक्त व्यक्ति को आकृष्ट कर सकें। अत: मेरा निवेदन है कि यह विचार करने योग्य बात है कि क्या हम इसे उसी रूप में रहने दें जिस रूप में कि यह पेश किया गया है।

***एक माननीय सदस्य:** अब प्रश्न पर मत ले लिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि अभी इस पर आधा दर्जन सदस्य और बोलना चाहते हैं। मैंने देखा है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय संबंधी अनुच्छेदों पर वाद-विवाद करते समय बहस को लम्बा करने की ओर झुकाव होता है, चाहे वाद-विवाद अनावश्यक ही हो। मैं सदस्यों से कहना चाहता हूं कि केवल वाद-विवाद के ही लिये वाद-विवाद न करें, जैसा कि मैं अनुभव करता हूं, हम कभी-कभी करते हैं। मेरे विचार में अच्छा हो यदि हम इस अनुच्छेद पर मत लेना आरम्भ करें। सदन के समक्ष दोनों पक्षों के विचार रखे जा चुके हैं।

प्रश्न यह है:

''कि अब प्रश्न पर मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका:** मैं माननीय प्रस्तावक का ध्यान संशोधन संख्या 2627 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसमें लिखा है कि कोई व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका हो' किसी न्यायालय के समक्ष वकालत करने का अधिकारी नहीं

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

होना चाहिये। इस समय कई उच्च न्यायालयों में बहुत से अस्थायी न्यायाधीश हैं। ज्योंही यह संविधान लागू होगा...

***अध्यक्ष:** मैं मत लेने वाला हूं और आप बोलना आरम्भ कर देते हैं।

(कुछ माननीय सदस्य बोलने के लिये खड़े हुए।)

***अध्यक्ष:** मैं समाप्ति प्रस्ताव पर पुन: मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** डाक्टर अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि कुछ कहना आवश्यक है।

***अध्यक्ष:** मैं पहले सरदार हुकमसिंह के संशोधन पर मत लेता हूं। यदि वह स्वीकृत हो जाये तो डा. अम्बेडकर का संशोधन उससे संशोधित हो जायेगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 196 में 'within the territory of India' इन शब्दों के स्थान पर 'within the jurisdiction of that High Court' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 196 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'196. *न्यायाधीश के पद पर रह चुके व्यक्ति द्वारा न्यायालयों में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष विधि वृत्ति करने का प्रतिषेध*—कोई व्यक्ति, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद इस संविधान के प्रारम्भ के बाद धारण कर चुका है, भारत राज्यक्षेत्र के किसी न्यायालय में अथवा किसी प्राधिकारी के समक्ष वकालत का कार्य न करेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''संशोधित रूप में अनुच्छेद 196 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 196 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 196-क

(संशोधन संख्या 2639 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** ऐसा ही एक संशोधन संख्या 1870 पेश किया गया था जिस पर लम्बी बहस हुई थी और वह स्थगित कर दिया गया था।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा सुझाव है कि अनुच्छेद 196-क भी स्थगित कर दिया जाये। ऐसा ही एक अनुच्छेद (103 क) स्थगित किया गया था।

***अध्यक्ष:** मैं सहमत हूं। फिर यह अनुच्छेद स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 197

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुच्छेद 197 भी स्थगित कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं सहमत हूं। यह अनुच्छेद भी स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 198

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 198 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'198. *कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति*—जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का पद रिक्त हो अथवा जब मुख्य न्यायाधिपति अनुपस्थिति या अन्य कार्य से अपने पद के कर्त्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो तब न्यायालयों के अन्य न्यायाधीशों में से एक जिसे राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिये नियुक्त करे, उस पद के कर्त्तव्यों का पालन करेगा।' ''

(संशोधन संख्या 2649 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, संशोधन संख्या 1650 डा. अम्बेडकर के संशोधन में आ जाता है, क्योंकि वह खंड (2) के संबंध में है। डा. अम्बेडकर का संशोधन सारांश में वही है; इससे खंड (2) हट जाता है और केवल खंड (1) रह जाता है।

***डा. पी.के. सेन:** मैं उस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता।

(संशोधन संख्या 2651, 2652 और 2653 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 198 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'198. *कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति*—जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति का पद रिक्त हो अथवा जब मुख्य न्यायाधिपति, अनुपस्थिति या अन्य कारण से अपने पद के कर्त्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो तब न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से ऐसा एक जिसे राष्ट्रपति उस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे, उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 198 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 198 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 199

***अध्यक्ष:** कुछ संशोधन ऐसे हैं जो अनुच्छेद को हटाने के विषय में हैं। मैं उन्हें संशोधन नहीं मानता। संशोधन संख्या 2656 वाक्य-रचना संबंधी है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 199 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 199 संविधान में से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 200

(संशोधन संख्या 2657 पेश नहीं किया गया।)

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 200 में, ''The Chief Justice of a High Court' (उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति) इन शब्दों के स्थान पर 'The President' (राष्ट्रपति) ये शब्द रख दिये जायें।''

इस संशोधन पर, श्रीमान् मैं एक और संशोधन पेश करना चाहता हूं और वह यह है:

> ''कि अनुच्छेद 200 में, 'at any time' इन शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधित होने के पश्चात्, अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

> ''इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय भी, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, किसी व्यक्ति से, जो उस न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर चुका है, उस न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में बैठने और कार्य करने की प्रार्थना कर सकेगा तथा इस प्रकार प्रार्थिक प्रत्येक व्यक्ति को, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के काल में उस न्यायालय के न्यायाधीश के सब क्षेत्राधिकारों, शक्तियों और विशेषाधिकारों का हक होगा, किन्तु वह अन्यथा उस न्यायालय का न्यायाधीश न समझा जायेगा।''

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** क्या आप परन्तुक को छोड़ रहे हैं?

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं अभी वहां तक नहीं पहुंचा हूं। मेरे लिये उसे पढ़ना आवश्यक नहीं है। अभी तो मैं अनुच्छेद 200 की प्रथम कंडिका के संशोधन पर ही बोलना चाहता हूं। परन्तुक को हटाने के प्रश्न को मैं बाद में लूंगा।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद के अन्तर्गत, उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश को उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में वापस बुलाया जा सकता है, यदि मुख्य न्यायाधिपति उसे वापस बुलाना अपेक्षित समझे। अब निवृत्त न्यायाधीश को उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में बैठने के लिये पुन: बुलाना लगभग नई नियुक्ति के ही समान है, चाहे वह थोड़े ही समय के लिये हो, और क्योंकि नियुक्त-कर्त्ता प्राधिकारी स्वयं राष्ट्रपति है, अत: मेरे विचार में, यह उचित और वांछनीय है कि मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश से ऐसी प्रार्थना करने से पूर्व राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त कर ले। इस समय इस अनुच्छेद में ये शब्द हैं:

> ''कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति किसी समय किसी व्यक्ति से...प्रार्थना कर सकता है...''

अर्थात् राष्ट्रपति ने बिना पूछे ही। यह उचित प्रतीत नहीं होता। अतएव, मेरे विचार में, श्रीमान्, मेरा संशोधन अवश्य स्वीकार हो जाना चाहिये, जिससे कि किसी निवृत्त न्यायाधीश को, राष्ट्रपति

[श्री जयपतराय कपूर]

की लिखित अनुमति अग्रिम में प्राप्त किये बिना, वापस न बुलाया आ सके। अब, श्रीमान्, मैंने एक और संशोधन की सूचना दी है जो इस प्रकार है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2658 और 2659 के प्रसंग से, अनुच्छेद 200 में, परन्तुक हो हटा दिया जाये।''

परन्तुक यह है:

> ''परन्तु जब तक पूर्वोक्त कोई व्यक्ति उस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में बैठने तथा कार्य करने की सम्मति न दे तब तक इस अनुच्छेद की कोई बात उससे ऐसा करने की अपेक्षा करने वाली न समझी जायेगी।''

मैं इस संशोधन को औपचारिक रूप से पेश नहीं करना चाहता, क्योंकि मैं चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर इस बात पर विचार करें कि क्या इस परंतुक को रखना अपेक्षित है। मुझे प्रतीत होता है, श्रीमान्, कि यह परन्तुक न केवल अनावश्यक है, किन्तु यह सम्मानयुक्त भी नहीं है। इस प्रकार यह अनावश्यक है। यह धारणा कर ली गई है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश से वापस आकर न्यायाधीश मंडली में बैठने के लिये कह देगा और ऐसा करने से पूर्व उस निवृत्त न्यायाधीश से पूछेगा ही नहीं। हमें यह मान लेना चाहिये कि मुख्य न्यायाधिपति सामान्य ज्ञान वाले विवेकशील व्यक्ति के समान कार्य करेगा और वह किसी व्यक्ति से नकारात्मक उत्तर प्राप्त करने के ही उद्देश्य से प्रार्थना नहीं करेगा। वह नि:संदेह उस निवृत्त न्यायाधीश से बात कर लेगा, उससे पूछ लेगा कि क्या वह न्यायाधीश मंडली में वापस आकर कुछ कृत्य विशेष का निर्वहन करने के लिये तैयार है और तभी वह राष्ट्रपति से उसकी सम्मति मांगेगा। इसलिये, श्रीमान्, यह परन्तुक, मेरे विचार में, नितांत अनावश्यक है। यहां यह परन्तुक रखना गौरव की बात नहीं दिखाई देती, क्योंकि इसका यह अर्थ है कि मुख्य न्यायाधिपति प्रार्थना करेगा और निवृत्त न्यायाधीश को हक होगा कि वह 'ना' कर दे। हां, निवृत्त न्यायाधीश को सदा यह अधिकार है कि वह उस प्रार्थना को स्वीकार करने में अपनी अयोग्यता अभिव्यक्त कर दे। एक बार उससे प्रार्थना करना और बाद में यह पूछना कि वह उस प्रार्थना को स्वीकार करता है या नहीं, उल्टी गंगा बहाने के समान है। अत: यह परन्तुक अनावश्यक भी है और इससे यह अनुच्छेद गौरवहीन भी प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त मैंने एक संशोधन की सूचना दी है जो तृतीय सूची में संख्या 212 है। वह इस प्रकार है:

> ''विशेषाधिकार' शब्द में वेतन प्राप्त करने का अधिकार समाविष्ट नहीं होगा।''

मैं इस संशोधन को भी औपचारिक रूप में पेश नहीं कर रहा हूं। किन्तु मैं चाहता हूं कि माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर सदन में यह बात स्पष्ट कर दें कि 'विशेषाधिकार' शब्द में वेतन प्राप्त करने का हक भी समाविष्ट है या नहीं। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि मस्विदा-समिति की यह मंशा कभी नहीं थी कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को

जब उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में सेवा करने के लिये पुनः बुलाया जाये, तब उसे फिर वही वेतन दिया जाये जो कि उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश को मिलता है। मुझे विश्वास है कि उनकी यह इच्छा नहीं है। किन्तु मैं निःसंदेह यह चाहता हूं कि इस मामले में कोई अस्पष्टता न रहने दी जाये और बाद में इस शब्द का ऐसा अर्थ न निकाल लिया जाये कि जिन न्यायाधीशों को निवृत्ति के पश्चात् वापस बुलाया जाता है उन्हें वेतन भी मिलना ही चाहिये। यदि इस शब्द में वेतन पाने का हक भी समाविष्ट हो, तो इससे पिछला अनुच्छेद बेकार हो जाता है, जो अभी हमने पारित किया है और जिसमें लिखा है कि न्यायाधीश साठ पर निवृत्त हो जायेगा, क्योंकि इस अनुच्छेद के अनुसार साठ वर्ष की आयु में निवृत्त होने के पश्चात् भी एक न्यायाधीश को वापस बुलाया जा सकता है चाहे वह इकसठ का हो, चाहे बासठ का और चाहे पिचहत्तर का हो; यदि मुख्य न्यायाधिपति या राष्ट्रपति चाहे तो वे निवृत्त न्यायाधीश को साठ की आयु के बाद भी वापस बुला सकते हैं और उसे उच्च न्यायालय की न्यायाधीश मंडली में कितने भी वर्ष बैठने दे सकते हैं और उसे उच्च न्यायालय के स्थायी न्यायाधीश के समान पूरा वेतन भी दे सकते हैं। यह तो ऐसी बात है जिसे हमें स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होना चाहिये। यदि यह कहा जाये कि राष्ट्रपति और मुख्य न्यायाधिपति पर भरोसा किया जा सकता है और वे कभी पिछले अनुच्छेद का उल्लंघन करना नहीं चाहेंगे, तो मैं यह कहना चाहता हूं कि जब हम संविधान बना रहे हैं और उसे बहुत विस्तार से बना रहे हैं तो हमें ये बातें मुख्य न्यायाधिपति या राष्ट्रपति की सद्भावना मात्र पर नहीं छोड़ देनी चाहिये, वरन् सब बातों के लिये सुनिश्चित उपबंध रखने चाहिये। हां, मेरा अभिप्राय पूरा हो जायेगा, यदि माननीय डा. अम्बेडकर आज यह स्पष्ट कर दें कि 'विशेषाधिकार' शब्द में वेतन प्राप्त करने का अधिकार समाविष्ट नहीं है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 201 की सूचना डा. अम्बेडकर ने दी है, पर वह बिल्कुल वही है, जो श्री जसपतराय कपूर ने पेश किया है। उस संशोधन को रखने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 200 में 'इस अनुच्छेद के उपबंधों के अधीन रहते हुए' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

***अध्यक्षः** दो संशोधन पेश हो चुके हैं। क्या कोई बोलना चाहता है?

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 200 में वह प्रणाली लिखी है, जिसके अनुसार उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को वापस आकर अस्थायी रूप से न्यायाधीश के कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिये कहा जा सकता है। इसमें कहा गया है कि उस उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति ही उससे प्रार्थना कर सकता है कि वह आकर न्यायाधीश मंडली में बैठें यदि वह सहमत हो जाये, तो हां, उसे उस समय के लिये नियुक्त कर दिया जायेगा। मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर का एक संशोधन है, जिसमें कहा गया है कि उस न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के

[मि. तजम्मुल हुसैन]

स्थान पर राष्ट्रपति को उसे बुलाना चाहिये। मेरे ख्याल में दोनों में बहुत कम अन्तर है, चाहे मुख्य न्यायाधिपति प्रार्थना करे चाहे राष्ट्रपति करे। किन्तु वैयक्तिक रूप से मेरा ख्याल है कि ऐसे मामलों में जबकि एक निवृत्ति न्यायाधीश को वापस बुलाया जाना है, जो संघ के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया था और जिससे कि मुख्य न्यायाधिपति सुपरिचित है, तो कोई कारण नहीं है कि दिन प्रतिदिन के मामले में हम राष्ट्रपति से यह काम करने के लिये कहें। मुख्य न्यायाधिपति प्रत्येक निवृत्त न्यायाधीश को जानता है, उनके गुणावगुण को जानता है। मेरा निवेदन है कि श्री जसपतराय कपूर का यह संशोधन ठीक नहीं है और इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं। मेरे विचार में विद्यमान रूप में अनुच्छेद स्वीकार कर लेना चाहिये और मुख्य न्यायाधिपति को ही प्रार्थना करनी चाहिये और राष्ट्रपति को नहीं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का, मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर द्वारा संशोधित रूप में, स्वागत करता हूं। परन्तुक को हटाने के विषय में उन्होंने जो कुछ कहा है, मैं उसका पूरा समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि यह परन्तुक बिल्कुल निरर्थक और अनावश्यक है। मुख्य न्यायाधिपति की प्रार्थना कोई सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति की आज्ञा नहीं है और उसकी प्रार्थना को इस रूप में समझना भी नहीं चाहिये। इस बात को सब जानते हैं। आखिर प्रार्थना तो प्रार्थना ही है। अर्थात् जब मुख्य न्यायाधिपति अपने भूतपूर्व सहयोगी से कोई प्रार्थना करे, तो उस प्रार्थना में आज्ञा का बल नहीं होता और कोई इसे निष्ठाहीनता नहीं समझेगा, यदि वह उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं करता। मेरे विचार में ऐसा अवसर शायद ही आये जबकि इस प्रार्थना की अवहेलना कर दी जाये, यदि वह भूतपूर्व न्यायाधीश रुग्णता अथवा किसी अन्य गंभीर कारण से लाचार न हो जाये तो वह उस पद को सहर्ष स्वीकार कर लेगा। हम देख चुके हैं कि जिला दंडाधीश निवृत्ति के पश्चात् किस प्रकार अवैतनिक दंडाधीश के पद के लिये दौड़ते हैं। अत: इस बात की कल्पना करना बहुत आसान नहीं है जब कि भूतपूर्व न्यायाधीश उस पद को अस्थायी रूप में धारण करने से इंकार कर दे, या जब कि वह बिना मजबूत कारणों के उस पद को स्वीकार करने का अनिच्छुक हो।

मेरे ख्याल में अनुच्छेद 200, मेरे माननीय मित्र श्री जसपतराय कपूर द्वारा संशोधित रूप में, हमारे लिये बहुत अच्छा है। उसकी सहायता से हम उस घेरे में से निकल जाते हैं जिसमें आज मेरे माननीय मित्र डाक्टर अम्बेडकर ने हमें अपने संशोधन द्वारा डाल दिया है। डा. अम्बेडकर के संशोधन के अनुसार, कोई भी व्यक्ति जो एक दिन के लिये भी न्यायाधीश के पद पर रह चुका हो, वह भारत के किसी न्यायालय में वकालत करने के अयोग्य होगा अर्थात् वह बिल्कुल बेकार हो जायेगा, जब तक कि सरकार उसे राजदूत या मंत्री प्लेनीपोटेन्शरी न बना दे या वह निर्वाचनों में सफलता पाकर किसी राज्य का मंत्री न बन जाये, क्योंकि प्रोफेसर शाह के संशोधन को सदन ने स्वीकार नहीं किया है। मुख्य न्यायाधिपति या न्यायाधीश निवृत्त होने के पश्चात् भी राजदूत या उच्च आयुक्त अथवा कोई मंत्री या ऐसे ही किसी कार्यपालिका के पद की आशा कर सकता है। मैं नहीं समझ पाता कि एक व्यक्ति, जो पांच वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में बैठ चुका

हो और जिसका न्यायिक स्वभाव बन गया हो उसे उच्च आयुक्त या राजदूत का पद कैसे स्वीकार करने के लिये कहा जा सकता है, यह मेरी समझ के बाहर है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य अब उस बात पर बहस कर रहे हैं, जिसे हम पहले ही निबटा चुके हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं तो उसी स्थिति की बात कर रहा हूं, जो प्रोफेसर शाह के संशोधन के अस्वीकृत होने तथा माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन के स्वीकृत होने के पश्चात् पैदा हो गई हैं। उस स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय हमारे पास अनुच्छेद 200 है, जिससे हम उन भूतपूर्व न्यायाधीशों को नौकरी देने का उपबंध कर सकते हैं जो काफी अच्छी आयु पर नौकरी छोड़ गये हैं। वे मंत्री या उच्च आयुक्त या राजदूत के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर रहने योग्य है और फिर भी वह भारत के किसी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता और उस व्यक्ति की, जो सौभाग्य से या दुर्भाग्य से उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बन गया था और उस पद को एक वर्ष या ऐसी ही कालावधि के लिये धारण किया था, हम केवल यही सहायता कर सकते हैं कि उसकी अवस्था को विविध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति ध्यान में रखें कि ऐसे भूतपूर्व न्यायाधीशों को कार्य देने का जब भी अवसर आये, तो उन्हें याद किया जाये और उनसे सेवा करने के लिये प्रार्थना की जाये। अत: मैं इस उपबंध का स्वागत करता हूं, क्योंकि इसमें कोई आयु-सीमा नहीं है; केवल यदि भारत के विविध उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपति अपने भूतपूर्व सहयोगियों का ध्यान रखेंगे और प्रत्येक अवसर पर उन्हें काम पर लगाने का प्रयत्न करेंगे, तो भूतपूर्व न्यायाधीशों की नौकरी दिलाने की समस्या कम से कम कुछ हद तक तो हल हो ही जायेगी।

मैं एक और बात भी कहना चाहता हूं, जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। क्या उन भूतपूर्व न्यायाधीशों को, जिनसे कि न्यायाधीशों के रूप में कार्य करने के लिये कहा जायेगा, कोई उपलब्धियां मिलेंगी? अनुच्छेद में लिखा है कि उन्हें उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। क्या इस 'विशेषाधिकार' शब्द में वेतन या उपलब्धियां या पारिश्रमिक समाविष्ट है? मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वे अवैतनिक न्यायाधीश होंगे या वेतनभोगी न्यायाधीश होंगे, क्या वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश मंडली के अन्य न्यायाधीशों के समान पद-प्रतिष्ठा से युक्त होंगे और क्या उन्हें कोई वेतन मिलेगा या नहीं, और क्या उनके पद की कोई अवधि है या वे दो वर्ष से अधिक किसी कालावधि के लिये पद धारण कर सकते हैं? क्योंकि एक अनुच्छेद में मैंने देखा है कि पहले यह विचार था कि किसी भी दशा में एक अस्थायी न्यायाधीश को दो वर्ष से अधिक समय के लिये नियुक्त नहीं किया जायेगा। इस बात पर स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मैं यह भी जानना चाहता हूं कि उनका पद-नाम क्या होगा, क्या वे अपने कार्य-काल में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश कहलायेंगे या नहीं? किन्तु अनुच्छेद में लिखा है कि वे न्यायाधीश के रूप में बैठने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिये उस न्यायालय के न्यायाधीश न समझे जायेंगे। उनका पद-नाम क्या होगा, क्या वे उस उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होंगे, अथवा

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

उनका कोई पद-नाम नहीं होगा और उनसे केवल सात-आठ दिन काम करने के लिये प्रार्थना की जायेगी? मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर इन दो बातों का स्पष्टीकरण करेंगे, अर्थात्, उनका पद-नाम क्या होगा, उनका वेतन कुछ होगा या नहीं और यदि होगा तो कितना और उनकी पदावधि क्या होगी।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, इस अनुच्छेद के वाद-विवाद में भाग लेने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी, क्योंकि श्री जसपतराय कपूर और श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने जो वक्तृताएं दी हैं, उनके कारण मुझे बोलना पड़ रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि संविधान में अनुच्छेद 200 को रखने के समूचे अभिप्राय और उद्देश्य के विषय में ही भ्रांति हो गई है। ऐसा समझा जाता है कि इस अनुच्छेद का उद्देश्य उस अनुच्छेद को अवैध बनाना है, जो इस सदन ने पहले ही पारित कर दिया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश अनिवार्यत: साठ वर्ष की आयु में निवृत्त हो जायेंगे। यह माना जाता है कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति, अनुच्छेद 200 में प्रदत्त शक्तियों के अधीन कार्य करते हुए, एक निवृत्त न्यायाधीश से, जो कि उसका मित्र या कृपापात्र हो, कह सकता है कि वह आकर न्यायाधीश बन जाये और उसे बहुत समय के लिये वहां रख सकता है। श्री चौधरी को यह संदेह है कि यह कालावधि दो वर्ष या अधिक भी हो सकती है, अर्थात् एक न्यायाधीश को, जो कि साठ वर्ष की आुय पर निवृत्त हुआ हो, दो वर्ष पश्चात्, जब वह 62 वर्ष का हो, वापस बुलाया जा सकता है और उसे एक-दो वर्ष या अधिक समय के लिये रखा जा सकता है। नि:संदेह यदि यही इसका आशय है, तो माननीय सदस्यों ने जो कुछ कहा है, वह बहुत कुछ ठीक है। किन्तु मैं बहुत सम्मान से कह सकता हूं कि इस अनुच्छेद का यह उद्देश्य नहीं है और मस्विदा समिति का यह उद्देश्य नहीं हो सकता।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** प्रश्न यह है कि क्या इस अनुच्छेद का यह अर्थ भी निकाला जा सकता है या नहीं?

***डा. बक्शी टेकचन्द:** यह अनुच्छेद इसलिये रखा गया है, जिससे कि मुख्य न्यायाधिपति के लिये यह संभव हो सके कि वह यहां वह प्रणाली लागू कर सके, जो कि बहुत समय से इंग्लिस्तान और अमरीका में प्रचलित है। वहां निवृत्त न्यायाधीशों को वापस बुलाकर न्यायालय में 6 मास या 8 मास भी नहीं रखा जाता। केवल किसी विशेष मामले के या कठिन और महत्त्वपूर्ण मामलों के विनिश्चय के लिये मुख्य न्यायाधिपति उनको सहायता के लिये बुलायेगा, जबकि यह समझा जाये कि उन व्यक्तियों का, जो कि निवृत्त हो गये हैं किन्तु उपलब्ध हैं, परिपक्व अनुभव और विशेष ज्ञान बहुत लाभदायक रहेगा। इंग्लिस्तान में एक निवृत्त न्यायाधीश को जब इस प्रकार बुलाया जाता है, तो उसे कोई वेतन नहीं मिलता। उसे केवल थोड़ा सा भत्ता मिलता है, जो प्रतिदिन दो गिन्नी तथा सफर खर्च होता है—लगभग 85 रुपये प्रतिदिन, जो इस सदन के सदस्यों को सदन में बैठने पर मिलता है। निवृत्त न्यायाधीश के लिये 6 मास के लिये या अधिक समय के लिये न्यायालय के

नियमित सदस्य के रूप में सेवा करना अपमानजनक समझा जाता है और यह बहुत ही अनुचित है। यह तो सोचा ही नहीं जा सकता कि न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति न्यायाधीश मंडली में अपने ''कृपापात्रों'' को वापस लाने के लिये इस उपाय का आश्रय लेगा, जिससे कि वह किसी वाद में विशेष विनिश्चय कराना चाहता हो जब कि वह यह देखें कि उसके अन्य सहयोगी उसकी इच्छानुसार विनिश्चय न करते हों। ऐसी बात तो कल्पनातीत है। नि:संदेह, अनुच्छेद 200 का यह उद्देश्य नहीं हो सकता। इंग्लिस्तान में सुप्रसिद्ध न्यायाधीश, उदाहरणार्थ लार्ड डार्लिंग से 82 वर्ष की आयु पर एक विशेष मुकदमे में आने के लिये कहा गया था, जिसमें विधि के कठिन प्रश्न उठ गये थे और विधि की उस शाखा में उनकी योग्यता तथा विशेष ज्ञान से लाभ उठाना अपेक्षित समझा गया था। उस वाद विशेष या वादों को निबटाने के पश्चात् न्यायाधीश पुन: निवृत्ति अवस्था में चले जाते हैं। वे लंदन आते हैं, कुछ समय के लिये वहां ठहरते हैं और ढाबे का व्यय पूरा करने के लिये थोड़ा भत्ता लेते हैं। दस वर्ष पूर्व उन्हें दो गिन्नी प्रतिदिन और टैक्सी व्यय मिलता था जो कुछ 12 शिलिंग या तीस चालीस रुपये प्रतिदिन पड़ता था, अधिक नहीं।

न्यायाधीश भी इसे एक सम्मान की बात समझता है कि मुख्य न्यायाधिपति समझता है कि यद्यपि वह निवृत्त हो गया है, पर मुकदमों के विनिश्चय में उसकी योग्यता लाभप्रद होगी। अत: वह हर्षपूर्वक अपनी सेवाएं न्यायालय को समर्पित करता है। लार्ड चांसलर सदस्यों को न्यायिक समिति में बैठने के लिए बुलाता है और मुख्य न्यायाधिपति उच्च न्यायालय में निवृत्त न्यायाधीशों की सहायता मांगता है। मैं समझता हूं कि यही इस अनुच्छेद का उद्देश्य है और जो आशंकायें तथा भय व्यक्त किये गये हैं वे सब निराधार हैं। इसी प्रकार यह अवांछित होगा कि जब काम का ढेर हो जाये तो मुख्य न्यायाधिपति किसी निवृत्त न्यायाधीश को 63, अथवा 65 या 67 अथवा अधिक आयु पर बुलाकर उस एकत्र काम को समाप्त करने के लिये कहे। यह निवृत्त-न्यायाधीश के लिये भी अत्यन्त अपमानजनक होगा तथा मुख्य न्यायाधिपति के लिये ऐसा करना बहुत अनुचित होगा। यदि न्यायाधीश को कोई भत्ता नहीं मिलेगा, तो उच्च न्यायालय में अवैतनिक न्यायाधीश रखने की प्रणाली चल पड़ेगी, जैसे कि वे शानदार आनरेरी मजिस्ट्रेट होते हैं और उस पद्धति के समस्त अवगुण आ जायेंगे। यह उद्देश्य नहीं है। संविधान में इस अनुच्छेद को रखने का यह उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता। उद्देश्य यह है कि भारत में पुरानी प्रथा को प्रचलित किया जाये जो इंग्लिस्तान और अमरीका में कई वर्षों से प्रचलित है और जिसका बहुत कम आश्रय लिया जाता है—वर्ष में एक-दो ही बार कुछ सप्ताह के लिये जबकि कठिनाई और महत्त्व के विवादों का या किसी विवाद विशेष का निर्णय करना हो। अनुच्छेद में यही कहा गया है। अत: मेरा निवेदन है कि यह अनुच्छेद, विद्यमान रूप में, बिना संशोधनों के, स्वीकृत हो जाना चाहिये और जैसी आशंकायें प्रकट की गई हैं, वैसी आशंकायें सदस्यों को नहीं रखनी चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं। मुझे भय है कि यदि हम इस अनुच्छेद को वर्तमान रूप में, डा. अम्बेडकर के संशोधन सहित या मेरे मित्र श्री कपूर के संशोधन सहित स्वीकार कर लें, तो किसी समय इसके ऐसे परिणाम हो सकते हैं, जो यहां एकत्रित बुद्धिमान व्यक्तियों ने नहीं सोचे हैं; मुझे पता नहीं है कि

[श्री एच.वी. कामत]

संसार के किस लिखित संविधान से यह अनुच्छेद लिया गया है। इस अनुच्छेद में न उन परिस्थितियों का वर्णन है, जिनके अंतर्गत न्यायाधीश कार्य कर सकता है और न यह ही लिखा है कि वह किस समय कार्य करेगा। मेरे पंडित मित्र डा. बक्शी टेकचन्द ने कहा है कि न्यायाधीश को केवल एकत्रित कार्य के निबटाने के लिये ही नहीं रखा जायेगा। मैं उनसे सहमत हूं कि यह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये अपमानजनक बात होगी कि उसे कुछ एकत्रित कार्य को समाप्त करने के लिये बुलाया जाये। यदि वह बात नहीं है तो उसकी योग्यताओं को किस काम में लाया जायेगा? स्पष्टतः मेरे विचार में एक अन्य श्रेणी के विवाद हैं, और वे हो सकते हैं महत्त्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्नों के विवाद, वे विवाद जो कि केन्द्र और एककों में या एकक तथा एकक में उठ सकते हैं। यहां जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यह हो सकता है कि कार्यपालिका एक विशेष प्रकार का निर्णय करवाना चाहे और हम यहां यह विनिश्चय पहले ही कर चुके हैं कि न्यायपालिका कार्यपालिका से पूर्णतः पृथक् नहीं होगी। हम बाद में कभी ऐसी कार्यवाही कर सकते हैं, किन्तु...

***डा. पी.एस. देशमुखः** क्या मैं यह बता सकता हूं कि यह धारा उच्च न्यायालय के विषय में है और उच्चतम न्यायालय के विषय में नहीं है?

***श्री एच.वी. कामतः** हमने यह रखा है कि न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतंत्र नहीं होगी और जब तक ऐसा है, तब तक इस बात की संभावना से हम बच नहीं सकते और इसके विरुद्ध कोई प्रत्याभूति नहीं है कि न्यायपालिका कार्यपालिका की दासी ही होगी: या यदि वह बहुत तीक्ष्ण शब्द है, तो यूं कहिये कि न्यायपालिका कार्यपालिका का अनुसरण करेगी, सब अवसरों पर न सही, पर कुछ अवसरों पर तो ऐसा होगा ही, क्योंकि अब सदन ने प्रोफेसर शाह के इस सुझाव को नहीं माना है कि कार्यपालिका के पद किसी पदासीन न्यायाधीश को नहीं मिलने चाहिये। अतः इस बात की कोई प्रत्याभूति नहीं है कि न्यायपालिका सर्वांग सच्चाई और स्वतंत्रता की भावना से कार्य करेगी।

डा. अम्बेडकर ने दूसरा एक संशोधन रखा है, जिसका आशय यह है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या कार्यवाहक न्यायाधीश को नियुक्त करने की शक्ति मुख्य न्यायाधिपति और राष्ट्रपति के बीच विभाजित कर दी जाये। मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति से परामर्श करेगा। इससे यह दुगुना आश्वासन मिल जाता है कि ठीक व्यक्ति को ही बुलाया जायेगा। किन्तु हमें सदा यह विश्वास नहीं हो सकता—वास्तव में यहां हमें किसी को भी विश्वास नहीं हो सकता—कि वे व्यक्ति कितने योग्य होंगे जो भविष्य में इन पदों पर आसीन होंगे और भविष्य में हमारे राज्य के उच्च प्रतिष्ठित व्यक्ति होंगे। जब तक संविधान न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथकत्व और उसकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित नहीं करता, तब तक यदि राष्ट्रपति न्यायपालिका में हस्तक्षेप करना चाहे या यह चाहे कि न्यायपालिका उसके कथनानुसार चले या उसकी इच्छा की दास बन कर रहे, या कार्यपालिका के हाथ की कठपुतली बन कर रहे, तो कुछ विषयों में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति को अपने इंगित पर चला सकता हैं। किन्तु यह भी सर्वथा संभावित है कि वास्तव में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति से कह देगा कि वह अमुक कार्य करे...

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 107 की भाषा भी, जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं, इस अनुच्छेद जैसी ही है और उच्चतम न्यायालय में ऐसे ही न्यायाधीशों को आमंत्रित करने के विषय में है, और अब यह सब युक्तियां मुझे प्रसंगानुकूल नहीं दिखती।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या हमने राष्ट्रपति के विषय में इस संशोधन को शामिल कर लिया है?

***अध्यक्षः** हां।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं समझा कि वह शामिल नहीं है मैंने सोचा था कि यह नया संशोधन है जिससे उच्च न्यायालय के कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को बीच में लाया गया हैं। अतः मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जहां तक उच्च न्यायालय का संबंध है, केवल एकत्रित कार्य को ही निबटाने का प्रश्न नहीं है, प्रयुक्त कुछ मामलों को निबटाने का प्रश्न है, जिनमें पारिभाषिक या सांविधानिक प्रश्न निहित हों। कुछ भी हो, मेरा ख्याल है कि जहां तक कार्यकारी न्यायाधीशों का संबंध है, मुख्य न्यायाधिपति सक्षम प्राधिकारी है और उसे राष्ट्रपति से परामर्श करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। जहां तक कार्यकारी कालावधि का संबंध है, डा. बख्शी टेकचन्द ने चार, पांच, छः सप्ताह की चर्चा की है और उन्होंने न्यायाधिपति डार्लिंग का दृष्टांत दिया है। एक और महान् न्यायाधीश, न्यायाधिपति हल्डेन भी थे। किन्तु ऐसे न्यायाधीश बहुत कम हैं और मुझे आशा है कि कार्यकारी न्यायाधीश नियुक्त करने की यह प्रणली इस देश में नहीं चलेगी।

***अध्यक्षः** ''नियुक्ति'' शब्द तो अनुच्छेद में है ही नहीं। नियुक्ति नहीं, वरन् विशेष अवसरों पर प्रार्थना की जायेगी।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद में लिखा है कि वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करेगा। पारिभाषिक रूप में यह चाहे नियुक्त न हो।

***डा. बक्शी टेकचन्दः** उसे 'कार्य करना' है क्योंकि उसे विवादों का विनिश्चय करना है।

***एक माननीय सदस्यः** वह कार्यकारी न्यायाधीश नहीं होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** निःसंदेह वह कार्यकारी न्यायाधीश है। वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करता है और निःसंदेह वह उच्च न्यायालय का कार्यकारी न्यायाधीश हुआ। हमें यहां बाल की खाल नहीं उतारनी चाहिये।

मेरे ख्याल में यदि दस-पंद्रह दिन की ही बात हो, जैसा कि डा. बक्शी टेकचन्द ने हमें बताया है, तो मैं नहीं समझ पाता कि इसमें राष्ट्रपति का प्रश्न ही क्यों उठना चाहिये। मुख्य न्यायाधिपति को इतनी क्षमता है कि वह किसी समय किसी वाद के निपटाने के लिये किसी न्यायाधीश से प्रार्थना कर सकता है। मेरे विचार में राष्ट्रपति को बीच में नहीं आना चाहिये और यह कार्य मुख्य न्यायाधिपति पर छोड़ देना चाहिये कि वह किसी अवसर विशेष पर किसी निवृत्त न्यायाधीश से न्यायाधीश के रूप में कार्य करने की प्रार्थना कर सके।

[श्री एच.वी. कामत]

अन्ततः श्रीमान्, यह परन्तुक बिल्कुल निरर्थक, प्रयोजनहीन, व्यर्थ और बेकार है। मैं नहीं समझता कि मसविदा-समिति के बुद्धिमान लोगों ने इस परन्तुक को यहां रखना क्यों ठीक समझा है। मैं कह सकता हूं कि शायद संविधान में कुछ व्यर्थ शब्द भरने की सनक में ऐसा किया गया है। किसी भी व्यक्ति को यह काम करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता, जब तक कि हम बेगार-प्रणाली लागू न करें। हमने बेगार को मिटा दिया है और मेरे ख्याल में न्यायाधीशों से तो हम बेगार नहीं लेंगे। यदि न्यायाधीश काम करने के लिये उद्यत हो जाये तो वह मुख्य न्यायाधिपति की प्रार्थना को मान लेगा। अतः यह परन्तुक बिल्कुल निरर्थक और व्यर्थ है और मुझे आशा है कि मसविदा-समिति के बुद्धिमान लोग इस परन्तुक को हटाने के लिये तैयार हो जायेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इस खंड के साथ सूचना में कहा गया है कि निवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रणाली संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) और संयुक्त राज्य अमरीका की प्रणाली के अनुसार रखी गई है। यही बात इस धारा को रखने के समर्थन में कही गई है। अमरीका में न्यायाधीशों को लगभग अपने वेतन के बराबर निवृत्ति वेतन मिलता है और इंगलिस्तान में उन्हें अपने वेतन का 80 प्रतिशत निवृत्ति वेतन के रूप में मिलता है, जैसा कि मसविदा-समिति के सभापति ने स्वयं बताया है। यदि निवृत्ति होने के पश्चात् उन्हें न्यायाधीश मंडली में बुलाया जाता है, तो यह उनके लिये धन-लाभ का प्रश्न नहीं है, यह केवल प्रतिष्ठा की बात है और राज्य के लिये कर्त्तव्य के पालन का प्रश्न है। इस खंड का मैं शर्त के साथ समर्थन करता हूं। यदि हम यह भी उपबंध रख दें कि उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीशों को पूरा वेतन निवृत्ति वेतन के रूप में मिलेगा, या कम से कम 80 प्रतिशत मिलेगा जैसा कि इंगलिस्तान में होता है, तो न्यायाधीश मुख्य न्यायाधिपति की कृपा प्राप्त करना नहीं चाहेंगे, ताकि वह उन्हें न्यायाधीश मंडली में वापस बुला ले। मेरे मित्र बख्शी टेकचन्द ने कहा है कि यह केवल विशेष अवसरों के लिये और विशेष कालावधि के लिये है, किन्तु अनुच्छेद की भाषा से यह अर्थ नहीं निकलता। अनुच्छेद 189 के अंतर्गत हमें कोई अतिरिक्त या अस्थायी न्यायाधीश नहीं रखना हैं। यह बिल्कुल संभव है कि एकत्रित कार्य हो जाये और मुख्य न्यायाधिपति इस उपाय द्वारा निवृत्त न्यायाधीशों को वापस बुला ले और एकत्रित कार्य को निबटाने के लिये कहे। अनुच्छेद में यह नहीं लिखा है कि प्रार्थित व्यक्ति दो या तीन वर्षों के लिये काम नहीं करता रहेगा। वास्तव में मैं तो अनुभव करता हूं कि यह तो न्यायाधीशों को परोक्ष रूप से वापस बुलाने के समान है। मैं तो वैयक्तिक रूप से न्यायाधीशों के लिये अधिक ऊंची आयु रखना पसन्द करता हूं—उच्च न्यायालयों के लिये 66 वर्ष और उच्चतम न्यायालय के लिये सत्तर वर्ष की आयु होनी चाहिये। हम फिर यह कह सकते थे कि इन न्यायाधीशों को बुलाने की आवश्यकता नहीं होगी। आप उन्हें साठ वर्ष की आयु में निवृत्त कर देते हैं और उन्हें वापस बुला सकते हैं। इसका यही अर्थ है कि आप कुल-पोषण और पक्षपात की संभावनाएं पैदा कर रहे हैं। न्यायाधीश यह ध्यान रखेंगे कि वे मुख्य न्यायाधिपति को नाराज न कर दें अन्यथा उनके वापस बुलाये जाने की कोई संभावना नहीं रहेगी। मेरा सुझाव यह है

कि सर्वप्रथम, न्यायाधीशों का निवृत्ति वेतन उनके वेतन के लगभग बराबर या 80 प्रतिशत होना चाहिये और दूसरी बात यह है कि उन्हें विशेष वादों में ही बुलाया जायेगा और कथित कालावधि के लिये ही बुलाया जायेगा। वे परोक्ष रूप से बुलाये गये कार्यकारी न्यायाधीश न हों।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं नहीं समझता था कि इस अनुच्छेद पर इतना लम्बा वाद-विवाद होगा, यह देखते हुये कि ऐसा ही अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय के विषय में पारित हो चुका है। किन्तु क्योंकि बहस हो गई है और कुछ सदस्यों ने मुझसे कुछ सुनिश्चित प्रश्न पूछे हैं, अतः मैं उनका उत्तर देने आया हूं।

मेरे मित्र श्री कामत ने कहा कि उन्हें पता नहीं है कि किसी अन्य देश में अनुच्छेद 200 के समान कोई उपबंध है या नहीं। मुझे विश्वास है कि उन्होंने संविधान का मसविदा पढ़ा नहीं है, क्योंकि स्वयं फुटनोट में लिखा है कि ऐसा ही उपबंध अमरीका और ग्रेट ब्रिटेन में है। (*श्री कामत द्वारा अश्रोतव्य बाधा*)। वास्तव में अनुच्छेद 200 शब्दशः इंगलिस्तान के उच्चतम न्यायालय अधिनियम की धारा 8 से लिया गया है। भाषा में कुछ भी अन्तर नहीं है। जहां तक उदाहरण का प्रश्न है, मेरा यही उत्तर है।

किंतु, श्रीमान्, उदाहरण के अतिरिक्त भी अनुच्छेद 200 के समान उपबंध रखने के कई कारण हैं। जैसा कि सदन को स्मरण होगा अब हमने अस्थायी या अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में सब उपबंधों को हटा दिया है और इस विषय के खंड संविधान से निकाल दिये गये हैं। उच्च न्यायालय के सब न्यायाधीश स्थायी ही होंगे। मुझे प्रतीत होता है कि यदि आप अस्थायी या अपर न्यायाधीश नहीं रखना चाहते हैं, तो आपको कुछ विशेष कार्य के निबटाने के लिये कुछ उपबंध बनाना चाहिये, जिसके लिये कि कोई अस्थायी न्यायाधीश रखना संभव न हो सके। और इसलिये अनुच्छेद 200 का उपबंध ही अनुच्छेद 196 से (जिसमें कि यह उल्लिखित है कि निवृत्त होने के पश्चात् कोई न्यायाधीश वकालत नहीं कर सकता) संगत होगा। जैसा कि मेरे मित्र डा. टेकचन्द ने कहा है, इस अनुच्छेद के अभिप्राय या प्रयोजन के विषय में काफी भ्रांति या गलतफहमी प्रतीत होती है। इस अनुच्छेद का यह अभिप्राय नहीं है कि परोक्ष रूप से उच्च न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीशों को बुलाया जाये। अतः किसी को इस विषय में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिये।

दूसरा प्रश्न जो मुझसे पूछा गया है परन्तुक के विषय में है। बहुत से व्यक्तियों ने, जोकि इस परन्तुक पर बोले थे कहा कि यह बिल्कुल व्यर्थ और निरर्थक दिखाई देता है। मैं उनसे सहमत नहीं हूं। मैं समझता हूं कि यह परंतुक बिल्कुल आवश्यक है। यदि यह परन्तुक न रखा जाये तो सम्बद्ध प्राधिकारियों को अधिकार होगा कि वे आमंत्रण को अस्वीकार करने वाले न्यायाधीश पर एक प्रकार से शास्ति लगा सकते हैं। यह भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति, जो आमंत्रण को स्वीकार न करे, न्यायालय-अपमान का दोषी ठहराया जा सकता है। हम नहीं चाहते कि न्यायालय के निवृत्त न्यायाधीश के विरुद्ध ऐसी शास्तियां लगे जो कि रुग्णता, अपंगता या अन्य किसी कारोबार में व्यस्त होने के कारण मुख्य न्यायाधिपति के आमंत्रण को स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तुक के पक्ष में यही युक्ति है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरा प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या अनुच्छेद 200 में विशेषाधिकार शब्द के कारण निवृत्त न्यायाधीश को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन के बराबर पूरा वेतन मांगने का अधिकार है। मेरा उत्तर यह है कि इस विषय में निवृत्ति वेतन के जो नियम हैं वे लागू होंगे। इस समय यह नियम है कि जब एक निवृत्त व्यक्ति को किसी सरकारी पद स्वीकार करने के लिये आमंत्रित किया जाता है, तब उसे उस पद का वेतन मिलता है जिसमें से निवृत्ति वेतन घटा दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यही सामान्य नियम है। हो सकता है कि मैं गलती पर होऊं। अस्तु, यह ऐसा मामला है जिस पर निवृत्ति वेतन के नियम लागू होंगे। इसी प्रकार यह मामला भी निवृत्ति वेतन संबंधी नियमों से शासित होने के लिये छोड़ दिया जाये, और हमें इस विषय में अनुच्छेद में कुछ विशेषत: कहना अपेक्षित नहीं है। बहस में जो आलोचना की गई है, उसके विषय में मुझे केवल इतना ही कहना है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या संयुक्त राज्य के संविधान में ऐसा कोई उपबंध है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे समक्ष उसका मजमून नहीं है। संयुक्त राज्य में यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वहां वेतन और निवृत्ति वेतन लगभग एक से हैं।

मैं श्री कपूर के संशोधन संख्या 89 को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं, क्योंकि कुछ लोगों की यह भावना है कि अनुच्छेद 200 का मुख्य न्यायाधिपति दुरुपयोग कर सकता है और अपने मित्र को जो निवृत्त न्यायाधीश हो, अनेक बार बुला सकता है। अत: मैं श्री कपूर के इस सुझाव को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि राष्ट्रपति की सम्मति प्राप्त करके ही निमंत्रण भेजा जाये।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या मैं जान सकता हूं कि क्या यह उद्देश्य है कि 'विशेषाधिकार' शब्द का अर्थ निकालने का कार्य संसद पर ही छोड़ दिया जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** शायद इसे परिभाषित करना पड़े। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसद को एक अधिनियम पारित करना होगा, जिसे न्यायपालिका अधिनियम कह सकते हैं, जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों पर लागू होगा और उसमें 'विशेषाधिकार' शब्द को निश्चित और परिभाषित किया जायेगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** किंतु वापस बुलाये गये न्यायाधीश के और स्थायी न्यायाधीश के विशेषाधिकार एक ही होंगे। अनुच्छेद 200 में यही लिखा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, किंतु विशेषाधिकार का अर्थ पूरा वेतन नहीं है।

***अध्यक्ष:** श्री जसपतराय कपूर के संशोधन संख्या 89 को डा. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। मैं इस पर अब मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 200 में 'at any time' इन शब्दों के पश्चात् 'with the previous consent of the President' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 2659 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 200 में 'subject to the provisions of this article' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 200 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 200 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 201

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 201 पर कोई संशोधन नहीं है। यदि इस पर कोई भी बोलना नहीं चाहता है तो मैं इस पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''अनुच्छेद 201 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 201 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 202

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 202 पर बहस हो सकती है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'to issue directions or orders in the nature of the writs of *Habeas corpus, mandamus,* prohibition, *quo*

[श्री एच.वी. कामत]

warranto and certiorari' इन शब्दों के स्थान पर 'to issue such directions or orders as it may consider necessary or appropriate' ये शब्द और 'and for any other purposes' इन शब्दों के स्थान पर 'or any other purpose' ये शब्द क्रमशः रख दिये जायें'।''

यदि संशोधन संख्या 2660 स्वीकृत हो जायेगा, तो अनुच्छेद 202 का खंड (1) निम्न प्रकार बन जायेगा:

''इस संविधान के अनुच्छेद 25 में किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन क्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, इस संविधान के भाग (3) द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिये अथवा किसी अन्य प्रयोजन के लिये ऐसे निदेश या आदेश दे सकता है जैसे वह समुचित या अपेक्षित समझे।''

दूसरा भाग तो केवल शाब्दिक है, किन्तु मेरे विचार में यह परिवर्तन आवश्यक है। इस खंड का संबंध भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने से और किसी अन्य प्रयोजन से भी है। यदि 'तथा' शब्द के स्थान पर 'अथवा' शब्द रख दिया जाये, तो आशय बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा, अर्थात्, यह कि उच्च न्यायालय को दोनों के प्रभावित होने पर ही नहीं, वरन् दोनों में से किसी एक कारण से भी आदेश निकालने की शक्ति है। मेरे विचार में सदन को इस संशोधन का दूसरा भाग स्वीकार करने में तो कोई कठिनाई नहीं होगी। मैंने दो पृथक संशोधन भेजे थे, इसीलिये मैं उन पर पृथक-पृथक बोल रहा हूं।

संशोधन के प्रथम भाग के विषय में मेरा विश्वास है कि संक्षिप्तता के निमित और स्पष्टता अथवा सुनिश्चितता को कम किये बिना, हम विविध लेखों के उल्लेख को हटा सकते हैं। न्यायालय को क्षमता होनी चाहिये कि वह जो भी लेख या आदेश, भाग 3 के किसी अधिकार को, अर्थात् मूलाधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये अपेक्षित समझे, निकाल दे। इस लेख का उल्लेख न करने से इस खंड के आशय पर किसी प्रकार बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। हम भाग 3 के खंड 25 में पहले ही उन लेखों का उल्लेख कर चुके हैं जो कि विभिन्न मूलाधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिये निकाले जा सकते हैं। मुझे स्मरण है कि उस समय डा. अम्बेडकर तथा सदन ने एक संशोधन स्वीकार कर लिया था, जिससे इसमें जरा सा संशोधन कर दिया गया था और यह कहा गया था कि 'उच्चतम न्यायालय को आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बंदी-प्रत्यक्षीकरण आदि प्रकार के लेख भी हैं निकालने की शक्ति होगी।' अथवा कुछ ऐसे ही था; किंतु कुछ भी हो, मुझे विश्वास है कि यह खंड विद्यमान रूप में अनावश्यक और व्यर्थ शब्दाडम्बर से भरा हुआ है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश जानता है कि किसी मामले विशेष में क्या विशेष लेख या आदेश या निदेश निकालने चाहिये। हमें संविधान में यह लिखने की अपेक्षा नहीं है कि विशेष अवसरों पर कौन सा विशेष लेख या आदेश समुचित होगा। काल के क्रम से या विधि दृष्टान्तों के विकास से कुछ अन्य प्रकार के लेखों या आदेशों की उत्पत्ति हो सकती है।

हम इस खंड में उल्लिखित इन विशेष लेखों से ही उच्च न्यायालय को क्यों बांध दें? 'तथा' शब्द के स्थान पर 'अथवा' शब्द रखने के संशोधन से आशय स्पष्ट हो जायेगा। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***डा. बक्शी टेकचन्द:** अध्यक्ष महोदय, मैं औपचारिक रूप से प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'in the nature of' इन शब्दों के पूर्व 'including those' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

एक और संशोधन है, जिसे मैं आपकी अनुमति से इस संशोधन पर संशोधन के रूप में पेश करना चाहता हूं, जो कि शाब्दिक ही है और उससे स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। यह संशोधन पर संशोधन इस प्रकार है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2661 के प्रसंग से, अनुच्छेद 202 के खंड (1) में, 'or orders in the nature of the writs' इन शब्दों के स्थान पर 'orders or writs including writs in the nature' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस संशोधन पर संशोधन से इस अनुच्छेद की भाषा वैसी ही हो जाती है, जैसी अनुच्छेद 115 की है, जिसे हम उच्चतम न्यायालय के विषय में पहले ही पारित कर चुके हैं और जैसी अनुच्छेद 25 की हे, जिसमें उच्चतम न्यायालय को मूलाधिकारों के विषय में ऐसी ही शक्तियां दी गई हैं। अत: यह संशोधन बिल्कुल शाब्दिक ही है और मैं सदन से प्रार्थना करूंगा कि वह इसे स्वीकार कर ले। ऐसा करते समय मैं अपने मित्र श्री कामत की बातों के संबंध में एक-दो बातें कहना चाहता हूं। उन्होंने यह सुझाव दिया है कि अनुच्छेद में बन्दी प्रत्यक्षीकरण आदि लेखों का विशिष्ट उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। बहुत आदर के साथ मैं अपने माननीय मित्र से सर्वथा असहमत हूं। मेरे मतानुसार यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन लेखों के नाम से उल्लिखित किया जाये। हमने अनुच्छेद 25 में मूलाधिकारों के संबंध में भी उनका उल्लेख किया है; और हमने अनुच्छेद 115 में उच्चतम न्यायालय के संबंध में भी उनका उल्लेख किया है और जिन कारणों से उनका वहां उल्लेख किया गया है उन्हीं कारणों से यहां भी उसका उल्लेख होना चाहिये। मैं सदन को स्मरण कराना चाहता हूं कि यही लेख महानतम रक्षण-कवच है जो कि ब्रिटिश न्यायिक प्रणाली ने जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिये अपनाये हैं और यह बहुत आवश्यक है कि वे हमारे संविधान में रखे जाने चाहिये। इस समय प्रेसीडेंसी उच्च न्यायालयों के अतिरिक्त अन्य उच्च न्यायालयों के पास इनमें से कोई भी शक्ति नहीं है, जैसे कि इलाहाबाद, पूर्वी पंजाब, पटना, नागपुर, उड़ीसा, असम आदि के उच्च न्यायालय हैं। इनमें से कोई भी उच्च न्यायालय उत्प्रेषण लेख नहीं निकाल सकता । बंगाल, बंबई और मद्रास के प्रांतों में भी यह लेख विशेष उनके सामान्य प्रारंभिक क्षेत्राधिकार की सीमाओं के अन्तर्गत ही निकाला जा सकता है। उदाहरणार्थ, मद्रास प्रांत में यदि कोई मुकदमा

[डा. बक्शी टेकचन्द]

त्रिचरापल्ली अथवा मदुरा के न्यायालय में लम्बित है, तो मद्रास के उच्च न्यायालय को लेख निकालने की कोई शक्ति नहीं है। केवल मद्रास नगर या उसके आसपास कुछ मीलों से आने वाले मुकदमों के विषय में ही उच्च न्यायालय को यह शक्ति है। इन सीमाओं के बाहर उसे केवल यूरोपीय प्रजाजनों के विषय में यह शक्ति है। इसका कारण यह था कि इन उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालयों के आज्ञा-पत्रों से प्राप्त होता था और वे उच्चतम न्यायालय इन प्रांतों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय इंगलिस्तान के बादशाह द्वारा निकाले गये आज्ञा-पत्रों द्वारा स्थापित हुए थे, और यह कहा जाता था कि उनका क्षेत्राधिकार केवल प्रेसीडेंसी नगरों तक अथवा ब्रिटिश मूल वंश के प्रजाजनों तक ही सीमित था, चाहे वे प्रजाजन कहीं भी हों। नये संविधान में प्रत्येक उच्च न्यायालय को ये लेख निकालने की शक्ति दी जायेगी और वह उसका प्रयोग अपने समस्त क्षेत्राधिकार में करेगा और इस मामले को संदेह से परे बनाने के लिये यह अपेक्षित है कि ये लेख विशिष्ट रूप से उल्लिखित हों। श्रीमान्, हम जानते हैं कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख इन सब लेखों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस लेख के विषय में, जब तक आपराधिक प्रक्रिया संहिता में धारा 491 जोड़ी नहीं गई थी, तब तक इलाहाबाद, पटना, लाहौर और नागपुर के उच्च न्यायालयों को यह लेख भी निकालने की शक्ति नहीं थी। धारा 491 से यह शक्ति इन उच्च न्यायालयों को आंशिक रूप में मिली थी। अभी हाल ही में पूर्वी पंजाब उच्च न्यायालय में यह प्रश्न उठा था कि क्या धारा 491 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को शक्तियां और प्रक्रिया वही हैं जो कि इस मामले में इंग्लिस्तान के उच्च न्यायालय की हैं। जैसा कि आप जानते हैं, श्रीमान्, यदि एक न्यायाधीश लेख निकालने से इंकार कर दे तो व्यक्ति दूसरे न्यायाधीश के पास जा सकता है, तीसरे के पास, चौथे के पास इस तरह जा सकता है कि जब तक कि वह सारे न्यायाधीशों के पास जा न चुके। पूर्वी पंजाब उच्च न्यायालय में 6-7 मास पूर्व यह प्रश्न उठा था कि क्या किसी व्यक्ति को इसी प्रकार यह अधिकार है कि यह क्रमशः प्रत्येक न्यायाधीश के पास जा सके और वहां यह निर्णय हुआ था कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि उनके पास इंगलिस्तान के उच्च न्यायालय के समान बन्दी-प्रत्यक्षीकरण के लेख निकालने की शक्ति है। भारत में प्रेसीडेंसी के अतिरिक्त अन्य उच्च न्यायालयों की शक्ति धारा 491 के अधीन है, जिसके अनुसार आप एक ही बार लेख निकाल सकते हैं। इससे पता लग जायेगा कि इन लेखों का नाम लिखना क्यों अपेक्षित है, ताकि कोई संदेह न रहे कि यहां भी इंगलिस्तान में प्रचलित प्रक्रिया और शक्तियां लागू होंगी। मुझे आशा है कि मेरे संशोधन को डा. अम्बेडकर स्वीकार कर लेंगे और संशोधित रूप में अनुच्छेद को सदन पारित कर देगा।

***अध्यक्षः** डा. अम्बेडकर क्या आप संशोधन संख्या 2663 को पेश करना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्, मैं बख्शी टेकचन्द के संशोधन को स्वीकार करता हूं। मैं नहीं समझता कि कोई उत्तर अपेक्षित है।

***श्री एच.वी. कामतः** 'तथा' के स्थान पर 'अथवा' रखने का एक संशोधन था।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इससे अनुच्छेद के सार के विषय में कोई अन्तर नहीं होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** इससे आशय में अन्तर पड़ जाता है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'to issue directions or orders in the nature of the writs of *habeas corpus, mandamus,* prohibition, *quo warranto* and certiorari' इन शब्दों के स्थान पर 'to issue such directions or orders as it may consider necessary or appropriate' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'and for any other purpose' इन शब्दों के स्थान पर 'or for any other purpose' ये शब्द रख दिये जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2661 के प्रसंग से, अनुच्छेद 202 के खंड (1) में 'or orders in the nature of writs' इन शब्दों के स्थान पर 'orders or writs including writs in the nature' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 202 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 202 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 203

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 203 को स्थगित रखा जाये।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 203 स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 203-क

(संशोधन संख्या 2673 को पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 204

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 204 में 'shall' शब्द के स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधित रूप में अनुच्छेद इस प्रकार होगा:

''यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो वह उस मामले को अपने पास मंगा सकेगा।

व्याख्या–इस अनुच्छेद में, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित किसी राज्य में उस लम्बित मामले के संबंध में अन्तिम क्षेत्राधिकार का न्यायालय भी 'उच्च न्यायालय' में समाविष्ट है।''

***अध्यक्षः** वह मामले को अपने पास मंगा सकता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** मैं यह नहीं चाहता कि मामले को मंगाना अनिवार्य या आदेशमूलक हो, वरन् कुछ स्वविवेक छोड़ देना चाहिये, और न्यायाधीश चाहे तो उस मामले को मंगाया जा सकता है, किन्तु यह अपेक्षित नहीं होना चाहिये, जैसा कि इस अनुच्छेद के अनुसार है।

उसमें विधि-प्रश्न या अन्य प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं; और विशिष्ट कारणों या आधारों की अनुपस्थिति में, जिनसे उसके लिये मामले को मंगाना आदेश-मूलक बनाया जा सकता है, मेरे विचार में इसे अनुमति-मूलक बनाना भी ठीक रहेगा और यदि न्यायाधीश चाहे तो मामले को मंगा सकता है, पर यह आवश्यक नहीं है। यदि कोई कारण उल्लिखित होते कि अनुवर्ती अवस्थाओं में अथवा कोई राजनैतिक या अन्य बात अन्तर्ग्रस्त होने पर इस प्रकार उसे मंगाना अनिवार्य होगा, तो मैं विद्यमान रूप में अनुच्छेद पर आपत्ति नहीं करता। 'shall' के स्थान पर 'may' रख देने से न्यायालयों को वास्तव में सहायता मिलेगी और उनके कार्य में बाधा नहीं पड़ेगी। अतः मैं अपना संशोधन सदन में स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 204 में 'it shall' इन शब्दों के पश्चात् 'after taking the opinion of such court in writing' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है, तो खंड इस प्रकार बन जायेगा:

''कि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस विधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो वह, उस न्यायालय का मत लिखित रूप में पूछने में पश्चात्, उस मामले को अपने पास मंगा लेगा तथा निबटा देगा।''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि यदि इस संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अधीन न्यायालय में उत्पन्न हो जाता है, तो इस पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगाकर उसे निबटा सकता है। मेरे विचार में यह अधिक अच्छा है कि उस न्यायालय में उस मामले के निर्वचन का जहां तक संबंध है, उस न्यायालय का मत लिखित रूप में मांग लेना चाहिये, क्योंकि हम देखते हैं कई मामलों में उच्च न्यायालय अधीन न्यायालयों के निर्णयों से सहमत होता है। अत: श्रीमान्, इसका यह अर्थ नहीं है कि जहां तक सांविधानिक मामले का संबंध है, अधीन न्यायालय अपना मत नहीं दे सकते, पर क्योंकि उन्हें ऐसे मामले को निबटाने की शक्ति नहीं दी गई है और मामला उच्च न्यायालय में मंगा लिया जायेगा और जब ऐसा हो तब यह केवल वांछनीय ही नहीं युक्तियुक्त भी है कि जहां संविधान के निर्वचन के प्रश्न उठ खड़े हों, वहां उन न्यायालयों का मत भी जान लेना चाहिये और फिर उच्च न्यायालय को उसे निबटाना चाहिये। श्रीमान्, इन कुछ शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 204 की व्याख्या को हटा दिया जाये।''

श्रीमान्, वह अनावश्यक है।

***डा. बख्शी टेकचन्द:** श्रीमान्, प्रोफेसर के.टी. शाह और श्री मोहम्मद ताहिर के संशोधनों का विरोध करने में मुझे कुछ शब्द कहने हैं। प्रोफेसर शाह के संशोधन का यह आशय है कि अनुच्छेद 204 के प्रथम भाग में 'shall' शब्द के स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये। यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाये तो समस्त अनुच्छेद 204 अनावश्यक हो जायेगा, क्योंकि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 24 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 526 के अधीन उच्च न्यायालय को अधिकार है कि वह अपने अधीन किसी न्यायालय में लम्बित कोई व्यवहार वाद या आपराधिक मुकदमे को अपने पास मंगा सकता है। अनुच्छेद 204 में 'shall' शब्द रखने का कारण यही है कि उच्च न्यायालय के लिये यह बाध्यकारी कर दिया जाये कि वह ऐसे मामले को अपने पास मंगा ले, यदि उसका समाधान हो जाये कि अधीन न्यायालय के लम्बित मामले में इस संविधान के निर्वचन के संबंध में सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि ऐसा प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और निबटा देगा। यह बहुत आवश्यक है कि संविधान के निर्वचन के संबंध में समस्त प्रश्नों का विनिश्चय यथासंभव शीघ्र हो

[डा. बख्शी टेकचन्द]

जाये। अधीन न्यायालय में मुकदमें को एक-दो वर्ष या अधिक लग सकते हैं। फिर जिला न्यायाधीश को अपील की जा सकती है और वह मामला बहुत लम्बे समय के पश्चात् पहली या दूसरी अपील में उच्च न्यायालय के पास आयेगा। इस बीच में सांविधानिक विधि संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रश्न अनिश्चित रह जायेगा। यह तो बहुत ही अवांछित है।

दूसरा कारण यह है। इन प्रश्नों पर यथासंभव शीघ्र प्रांत के सर्वोच्च न्यायालय का प्राधिकार युक्त विनिश्चय होना चाहिये। अन्यथा यह हो सकता है कि कोई विशेष प्रश्न किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त हो जो कि एक जिले में लम्बित हो; वही प्रश्न तीन-चार अन्य मामलों में अन्तर्ग्रस्त हो जो अन्य जिलों में लम्बित हों, और ये विभिन्न अधीन न्यायालय परस्पर विरोधी विनिश्चय दे सकते हैं और इससे बहुत गड़बड़ हो जायेगी। यदि हम चाहें कि महत्त्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्नों पर शीघ्रातिशीघ्र विनिश्चय हो, और साथ ही इन प्रश्नों पर प्रांत के सर्वोपरि न्यायालय द्वारा प्राधिकारयुक्त विनिश्चय दिया जाये तो 'shall' शब्द रहना ही चाहिये। इसी उद्देश्य से यह विशिष्ट उपबंध इस संविधान में रखना चाहते हैं। संविधान के प्रवर्तित होते ही उसके निर्वचन संबंधी प्रश्न पैदा हो सकते हैं। इसीलिये यह अपेक्षित है कि शीघ्र और प्राधिकारयुक्त विनिश्चय किये जायें। उच्च न्यायालय के ऐसे निर्णय से, यदि आवश्यक हो तो, उच्चतम न्यायालय में अपील जा सकती है और मामले का अन्तिम विनिश्चय समूचे देश के लिये किया जा सकता है। अत: यह अभीष्ट है कि संविधान में इसके लिये कुछ उपबंध रख दिया जाये।

श्री ताहिर ने एक और संशोधन पेश किया है कि जिस न्यायालय में वह मामला लम्बित हो, उसका मत लिखित रूप में मांग लेना चाहिये। मैं नहीं जानता कि इन प्रश्नों पर अधीन न्यायालय का मत पूछने से क्या लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि अनुच्छेद में यह नहीं लिखा है कि प्रत्येक मामला, जिसमें संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, स्वत: उच्च न्यायालय को चला जायेगा। दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शर्तें हैं जो पूरी होनी चाहिये। एक यह कि अन्तर्ग्रस्त प्रश्न इस संविधान के निर्वचन संबंधी सारवान विधि-प्रश्न होना चाहिये, और ऐसा प्रत्येक प्रश्न नहीं हो जिसमें ऐसा निर्वचन अन्तर्ग्रस्त, हो, चाहे वह घटना उत्पन्न हो या उस वाद से सम्बद्ध हो। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न होना चाहिये जो मामले के मूल तक जाता हो। फिर भी यह अपेक्षित नहीं है कि वह मामला उच्च न्यायालय में चला ही जाये। अनुच्छेद में शब्द ये हैं कि ''उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये।'' जब वह प्रश्न उच्च न्यायालय के ध्यान में आयेगा, तब वह उसका परीक्षण करेगा। यदि न्यायाधीशों का समाधान हो जाये कि अन्तर्ग्रस्त प्रश्न इस संविधान के निर्वचन संबंधी सारवान विधि-प्रश्न है, केवल तभी वह मामला उच्च न्यायालय में मंगाया जायेगा। ऐसे मामले में इसकी क्या आवश्यकता है कि उच्च न्यायालय में जाने से पूर्व अधीन न्यायालय का मत लिया जाये? इस संशोधन का तो यह असर होगा कि उन प्रश्नों पर निर्णय देर मे होगा और कार्यवाही अनावश्यक रूप में रुकी रहेगी। अत: मेरा निवेदन है कि इस अनुच्छेद के मसविदे को स्वीकार कर लेना चाहिये और इस पर डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करके व्याख्या को हटा देना चाहिये। यह संशोधन इसलिये आवश्यक

हो गया है कि पहले व्याख्या के अनुसार यह अनुच्छेद केवल प्रांतीय उच्च न्यायालयों पर लागू होता था। अब नई व्यवस्था के अन्तर्गत देशी राज्यों के उच्च न्यायालयों को प्रांतीय उच्च न्यायालयों के समान बना दिया गया है, अतः यह व्याख्या अनावश्यक हो गई है। व्याख्या के बिना इस अनुच्छेद में बहुत अच्छा और महत्त्वपूर्ण उपबंध है, जो स्वीकार हो जाना चाहिये।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे डा. अम्बेडकर को एक छोटा सा ही सुझाव देना है। यह अनुच्छेद बहुत आवश्यक है। जब उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि संविधान के निर्वचन संबंधी कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो उसे निःसंदेह अपने पास मंगा लेना चाहिये और निर्णय कर देना चाहिये। किंतु जैसा कि अनुच्छेद में लिखा है उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और उसे निबटा देगा। मस्विदा-समिति को इस पर विचार करना है कि क्या उस समूचे मामले को अपने पास मंगाना और निबटाना अपेक्षित है। मुन्सिफों के न्यायालयों में कई ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें ऐसा प्रश्न उठ सके। मेरे विचार में उच्च न्यायालय के लिये यह सर्वथा अपेक्षित नहीं है कि उच्च न्यायालय समूचे मामले को अपने पास मंगा ले और उसे स्वयं निबटाये। यही पर्याप्त है कि यह संविधान के निर्वचन संबंधी इस प्रश्न का विनिश्चय कर दे और फिर उसे उस न्यायालय को लौटा दे, जिससे कि वह संविधान के निर्वचन संबंधी विनिश्चय के अनुसार उसका निर्णय कर दे। हमने उच्चतम न्यायालय के संबंध में भी ऐसा ही उपबंध बनाया है। जब भी संविधान के निर्वचन के प्रश्न का उल्लेख हो, तब उच्चतम न्यायालय उसे पांच न्यायाधीशों की पूरी मंडली में भेजने के लिये बाध्य नहीं है। यदि उनका समाधान हो जाये कि यह एक सारवान प्रश्न है, तो वे उसे पूरे न्यायालय में भेजकर उसकी सम्मति जान सकते हैं और तत्पश्चात् वही पहला न्यायालय उस मत के अनुसार उस मामले का विनिश्चय करेगा। अतः मेरे विचार में हमारे लिये यह कहना पर्याप्त होगा कि वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा उच्च न्यायालय उसे निबटाने के लिये बाध्य नहीं होना चाहिये। उच्च न्यायालय के लिये सब प्रकार के मामलों को निबटाना बहुत कठिन होगा। उदाहरणार्थ, एक निषेधाज्ञा के मामले में प्रश्न उठ जाता है। उच्च न्यायालय के लिये समूचे प्रश्न की सुनवाई करना अपेक्षित नहीं है। अतः मैं चाहता हूं कि उच्च न्यायालय संविधान के निर्वचन संबंधी प्रश्न को ही अपने पास मंगा ले और फिर उसे पहले न्यायालय को लौटा दे जिससे कि वह उसे उस मत के अनुसार निबटा सके। मैं इस मामले का निर्णय डा. अम्बेडकर पर छोड़ देता हूं।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** अध्यक्ष महोदय, उच्च न्यायालय के पास किसी मामले के अभिलेख को मंगाने और उसे निबटाने की शक्ति तो स्वयं ही प्राप्त है। अनुच्छेद 204 में कहा गया है कि यदि किसी मामले में संविधान के निर्वचन संबंधी कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, तो उच्च न्यायालय उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और निबटा देगा। मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह चाहते हैं कि 'shall' शब्द के स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये। यदि आप 'may' शब्द चाहते हैं, तो उसमें स्वयं वह शक्ति है ही और उस शक्ति के अनुसार वह किसी मामले को अपने पास मंगाकर निबटा सकता है, चाहे

[मि. तजम्मुल हुसैन]

उसमें सारवान विधि-प्रश्न हो या कोई विधि-प्रश्न नहीं हो। अत: 'may' शब्द से हमें कुछ भी लाभ नहीं होगा। इस प्रश्न की मेरे माननीय मित्र डा. बख्शी टेकचन्द ने विस्तार से विवेचना की है और मैं उन युक्तियों को दुहराना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही बात कहना चाहता हूं कि मान लीजिये एक सारवान विधि-प्रश्न निहित है, तो प्रो. शाह के अनुसार उच्च न्यायालय अभिलेख को मंगा भी सकता है और चाहे न भी मंगाये। उच्च न्यायालय के लिये अभिलेख मंगाना अपेक्षित नहीं होगा। मान लीजिये कि उच्च न्यायालय अभिलेख नहीं मंगाता, देखिये कितना समय बरबाद होता है। एक मामला अधीन न्यायालय में विनिश्चित होकर उच्च न्यायालय में जायेगा तब तक तीन चार वर्ष लग सकते हैं। यह भी देखिये कि निम्न न्यायालय में और फिर अपीलीय न्यायालय में कितना व्यय होगा। इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण विधि-प्रश्न लम्बित रहेगा और किसी को पता नहीं होगा कि क्या विनिश्चय होना है। सारवान विधि-प्रश्न जितना जल्दी उच्च न्यायालय में निश्चित हो जाये उतना ही अच्छा है। अत: मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

श्री मोहम्मद ताहिर के संशोधन में उन्होंने कहा है कि अधीन न्यायालय का मत भी पूछ लेना चाहिये। उच्च न्यायालय जब भी अभिलेख मंगाता है, वह निम्नतर न्यायालय का मत सदा पूछ लेता है। ये शब्द नितांत अनावश्यक और व्यर्थ हैं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का भी विरोध करता हूं।

डा. अम्बेडकर का संशोधन बिल्कुल ठीक है। मैं उसका समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं चाहता हूं कि हम उठने से पहले इस अनुच्छेद को निबटा दें। बारह बज चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** मुझे भय है कि मुझे बारह बजे तो मंत्रिमंडल की एक बैठक में जाना है।

***अध्यक्ष:** तो मैं समझता हूं कि संशोधन के पक्ष-विपक्ष में अधिक कुछ कहने के लिये नहीं है। जो कुछ कहा जा सकता था, कहा जा चुका है। अधिक वक्तृताएँ नहीं होंगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे मित्र श्री भारती ने जो बातें कहीं थीं, उनके विषय में...

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, आपने मुझे बोलने के लिये कहा है। मैं दो-तीन मिनट से अधिक नहीं लूंगा। मैं अभी बोलूं या कल?

***अध्यक्ष:** कल।

अब सदन कल प्रात:काल के आठ बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सभा बुधवार तारीख 8 जून, 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VIII-18.49
320

अंक 8
संख्या 18

बुधवार,
8 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 204 से 206, 90 से 92 पर विचार] ...1067-1127

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 8 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि कल सभा की बैठक हो रही है या नहीं?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से कल सार्वजनिक छुट्टी है।

***श्री बी. दासः** चूंकि मैं गणराज्यवादी हूं इसलिये मैं इंग्लिस्तान के सम्राट के जन्म दिवस की छुट्टी नहीं चाहता।

***अध्यक्षः** आपको इसकी स्वतंत्रता है कि आप किसी जनसमारोह में भाग न लें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या हम कल की छुट्टी के एवज में शनिवार को कार्य कर रहे हैं?

***अध्यक्षः** यदि सभा को कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): शनिवार को समितियों की बैठकें हैं।

माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा (बिहार : जनरल): हम शनिवार के लिये कई कार्य निश्चित कर चुके हैं।

***अध्यक्षः** यह प्रतीत होता है कि सदस्य शनिवार को समवेत होने के लिये तैयार नहीं हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह स्मरण रखना चाहिये कि करदाता को इस सभा के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक दिन के लिये 85 रु. देने पड़ते हैं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यदि हम शनिवार को समवेत होंगे तो सम्राट यह अनुभव करेंगे कि हमने उन्हें चकमा दिया है।

अनुच्छेद 204 (*जारी*)

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 204 पर विचार-विमर्श करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, में अनुच्छेद 204 के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। मैंने यह कहा था कि मैं स्थिति पर

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

विचार करूंगा। मैं स्थिति पर विचार कर चुका हूं और इस सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2674 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 204 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:
>
> '204. Transfer of certain cases to High Court—If the High Court is satisfied that a case pending in a court subordinate to it involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution the determination of which is necessary for the disposal of the case, it shall withdraw the case and may—
>
> (a) either dispose of the case itself, or
>
> (b) determine the said question of law and return the case to the court from which the case has been so withdrawn together with a copy of its judgement on such question, and the said court shall on receipt thereof proceed to dispose of the case in conformity with such judgement.
>
> (204 विशेष मामलों का उच्च न्यायालय को हस्तान्तरण—यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, जिसका निर्धारित होना मामले को निबटाने के लिये आवश्यक है, तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा तथा—
>
> (क) या तो मामले को स्वयं निबटा सकेगा; या
>
> (ख) उक्त विधि-प्रश्न का निर्धारण कर सकेगा तथा ऐसे प्रश्न पर अपने निर्णय की प्रतिलिपि सहित उस मामले को उस न्यायालय को, जिससे मामला इस प्रकार मंगा लिया गया है, लौटा सकेगा तथा उसके प्राप्त होने पर उक्त न्यायालय ऐसे निर्णय का अनुसरण करते हुए उस मामले को निबटाने के लिये आगे कार्यवाही करेगा।)

संशोधन इस प्रकार है। श्रीमान्, यदि आप कहें तो मैं इसके सम्बन्ध में कुछ कहूंगा किन्तु मैं दो बार नहीं बोलना चाहता और अन्त में ही बोलना चाहता हूं ताकि समय की कुछ बचत हो जाये।

***अध्यक्ष:** जैसी आपकी इच्छा है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आरम्भ में ही यह बताना चाहता हूं कि यह अनुच्छेद उस अनुच्छेद माला के अन्त में आता है

जो प्रक्रिया-सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में है। पहले तो मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे संविधान में प्रक्रिया सम्बन्धी इतने नियम क्यों रखे गये हैं। मैंने संसार के कई देशों के संविधानों को पढ़ा है और हमारे सचिवालय ने भी हमारे सामने जो सांविधानिक उदाहरण रखे हैं उनमें भी उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में इतने प्रक्रिया विषयक नियम नहीं हैं। कल भी मैंने यह प्रश्न उठाया था कि संविधान में अनुच्छेद 200 का विषय क्यों प्रविष्ट किया जा रहा है। किन्तु डा. अम्बेडकर ने मुझ पर यह कटाक्ष किया है कि मैंने संविधान के मसौदे का अध्ययन नहीं किया है। यदि उन्हें इससे प्रसन्नता होती है तो वे यही समझें और मैं इसे निसंकोच स्वीकार कर लेता हूं कि सम्भवत: मैंने संविधान के मसौदे को उतने ध्यान से नहीं पढ़ा है जितने ध्यान से उन्होंने पढ़ा है। किन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि जो प्रश्न मैंने उठाया था वह इससे भिन्न था। जैसा कि वे हमेशा करते आये हैं, उन्होंने मेरे प्रश्न की उपेक्षा की और कुछ दूसरा ही उत्तर दे दिया। मैंने उनसे निश्चित तथा स्पष्ट शब्दों में पूछा था कि क्या संसार के किसी अन्य देश के लिखित संविधान में इस प्रकार के अनुच्छेदों को स्थान दिया गया हैं। डा. अम्बेडकर ने पृष्ठपाद पर अंकित लेख की ओर संकेत किया और मुझ पर यह कटाक्ष किया कि मैंने संविधान के मसौदे का अध्ययन नहीं किया है। मैंने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा है, भले ही उतनी सावधानी से न पढ़ा हो जितनी सावधानी से उन्होंने पढ़ा है। कल शाम जब मैं घर वापस गया तो मैंने संसार के कई देशों के संविधान निकाले और उन सबको पढ़ा। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि जितने प्रक्रिया विषयक नियमों को हमने उपबन्धित किया है।

***अध्यक्ष:** क्या आप कल के वादानुवाद का उत्तर दे रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामत:** मैं इसे स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूं कि इस अनुच्छेद को अन्य अनुच्छेदों के समान संविधान में प्रविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** तब आप इसी विषय पर बोलें और कल के वादानुवाद की ओर संकेत न करें।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं दुविधा में पड़ गया हूं। कल आपने कहा था कि जब डा. अम्बेडकर बोलेंगे तो आप लोगों को उनसे प्रश्न पूछने के लिये प्रोत्साहित न करेंगे। यदि बाद को किसी अन्य अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी हमें स्थिति को स्पष्ट न करने दिया जायेगा तो हम दुविधा में पड़ जायेंगे।

अब मैं अनुच्छेद 204 को उठाता हूं। चूंकि यह अनुच्छेद प्रक्रिया विषयक पूर्व स्वीकृत अनुच्छेदों के समान ही है इसलिये मैंने यह विचार किया कि पहले के अनुच्छेदों की ओर संकेत करना अनुचित न होगा।

कल डा. बक्शी टेकचन्द ने यह कहा था कि उच्च न्यायालयों को ऐसे मामलों को निबटाने का भार उठाना पड़ेगा जिनमें सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों। इसलिये मेरे विचार से इस विषय के सम्बन्ध में, अर्थात् इसके सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि जब कभी किसी अधीन न्यायालय में ऐसे मामले लम्बित होंगे, जिनमें सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होगा तो उच्च न्यायालय ऐसे मामलों को वापस ले लेगा।

***अध्यक्ष:** केवल विधि के ही निर्वचन के सम्बन्ध में नहीं। वास्तव में संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में।

***श्री एच.वी. कामतः** जी हां, श्रीमान्। उच्च न्यायालयों पर इसका दायित्व होगा कि वे इस प्रकार के मामलों को वापस लेकर उन पर स्वयं विचार करें। प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन उपस्थित किया है और जो मेरे नाम से भी है उसमें यह सुझाव रखा गया है कि इस सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को स्वविवेक से निर्णय करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। मेरे मित्र श्री भारती ने एक बहुत ही युक्तियुक्त तर्क उपस्थित किया था और मेरे विचार से उसका आशय यदि पूर्णतः नहीं तो अंशतः मेरे संशोधन से पूरा हो जाता है। श्री भारती ने यह युक्तियुक्त तर्क उपस्थित किया था कि यदि किसी उच्च न्यायालय को उन सभी मामलों को निबटाना पड़े, जिनमें संविधान विषयक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है और जो अधीन-न्यायालय के सामने आते हैं, तो उसे ऐसे हजारों मामलों को निबटाना पड़ेगा और इस प्रकार यह आरम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त न कि अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त न्यायालय हो जायेगा। उदाहरण के लिये मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तीसरे अध्याय अर्थात् मूलाधिकार विषयक अध्याय पर विचार-विमर्श हो रहा था तो प्रायः यह आलोचना की गई थी कि हम प्रत्येक अनुच्छेद में वर्णित अधिकारों को निर्बन्धित करके और एक हाथ से एक अधिकार अथवा स्वतंत्रता को देकर तथा दूसरे हाथ से उसे छीन कर, वकीलों के लिये एक स्वर्ग का निर्माण कर रहे हैं मेरे विचार से जब इन अधिकारों को प्रवर्त्तन में लाने के लिये न्यायालयों को परिचालित किया जायेगा तो अधिक सम्भावना इसी की है कि संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में सारवान विधि प्रश्न उठाये जायेंगे क्योंकि इतनी त्रुटियां रह गई हैं और इतने उपबंध रखे गये हैं कि बुद्धिमान वकील उनसे लाभ उठायेंगे, यद्यपि मैं यह नहीं कहता कि वे अनुचित रूप से लाभ उठायेंगे, वे संविधान के इन अनुच्छेदों के निर्वचन के सम्बन्ध में विधि-प्रश्न उठायेंगे। इसलिये अपने संशोधनों द्वारा मैंने यह सुझाव रखा है कि 'करेगा' शब्द के स्थान पर 'कर सकता है' शब्द रखे जायें। इस सम्बन्ध में सभी एकमत हैं कि चूंकि उच्च न्यायालय एक सक्षम निकाय है इसलिये उसे इसका निर्णय करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये कि किस प्रश्न को संविधान के निर्वचन का सारवान विधि-प्रश्न समझा जाये और किसे न समझा जाये। यदि वह यह समझे कि उस प्रश्न को उसे ही निबटाना चाहिये तो वह उस मामले को वापस ले सकता है और स्वयं निबटा सकता है। अन्यथा उच्च न्यायालय उसे अधीन न्यायालय के पास भेज सकता है और उससे उसे निबटाने के लिये कह सकता है। यदि कोई पक्ष उस न्यायालय के निर्णय से असंतुष्ट हो तो वह उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है और वह न्यायालय उसकी अपील पर विचार करेगा।

डा. अम्बेडकर के संशोधन में मैं देखता हूं कि पहले भाग का आशय यह है कि यदि उच्च न्यायालय की यह धारणा हो कि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्गस्त है तो वह उसे स्वयं निबटा सकता है। इसलिये अनावश्यक शब्दों को निकालने के उद्देश्य से मैंने यह सुझाव रखा है कि 'कर सकता है' शब्द प्रविष्ट किये जायें ताकि उच्च न्यायालय अपनी स्वेच्छा से निर्णय कर सके। मेरी यह धारणा है कि 'करेगा' के स्थान पर 'कर सकता है' शब्द प्रविष्ट करने के लिये जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह कई प्रकार से कार्य साधक प्रमाणित होगा।

अन्त में मुझे एक बात और कहनी है। यह अनुच्छेद इस सम्बन्ध में मौन है कि किसी मामले के सम्बन्ध में संविधान के निर्वचन के सारवान विधि-प्रश्न को किसी अधीन न्यायालय ने उठाना चाहिये अथवा विवाद-पीड़ित पक्षों ने। यदि विवाद-पीड़ित पक्षों को उच्च न्यायालय का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का अधिकार है तो कोई कठिनाई नहीं होती, किन्तु यदि हमारा उद्देश्य यह है कि किसी अधीन-न्यायालय के किसी ऐसे मामले को उठाने पर जिसमें संविधान के निर्वचन का कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, उसे उस मामले की ओर उच्च न्यायालय का ध्यान आकृष्ट करना चाहिये और उसे उच्च न्यायालय के पास भेज देना चाहिये, तो हमें इस अनुच्छेद को अधिक स्पष्ट करना चाहिये और यह कहना चाहिये कि अधीन न्यायालय का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने पास लम्बित ऐसे मामले को, जिसमें संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, उच्च न्यायालय के पास भेजे। किन्तु यदि हम विवादग्रस्त पक्षों को इसकी स्वतंत्रता दे रहे हैं तो यह प्रश्न नहीं उठता। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर अथवा श्री मुंशी वादानुवाद का उत्तर देते समय इस प्रश्न पर प्रकाश डालेंगे। मेरी अपनी यह धारणा है कि 'करेगा' शब्द के स्थान में 'कर सकता है' शब्द रखने से इस अनुच्छेद का आशय पूरा हो जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (मध्यप्रान्त : जनरल): मेरे मित्र श्री कामत ने इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह आलोचना की है कि इसमें जो विस्तृत विवरण दिया गया है वह संविधान में स्थान पाने योग्य नहीं है। किन्तु इस संविधान के अन्य भागों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की आलोचना की जा सकती है। हमने एक विस्तृत संविधान की रचना की है और इसलिये इस अवसर पर उसके कुछ अंगों को निकाल देने से उसकी सारी योजना खंडित हो जायेगी। इस समय इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया जा सकता है।

इस अनुच्छेद में जिस विषय का उल्लेख है वह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। हमने अनुच्छेद 110 में यह उपबन्धित किया है कि संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में सभी प्रश्न उच्चतम न्यायालय के सामने रखे जायेंगे और वह उनका निर्णय करेगा। इसलिये यदि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उचित यही होगा कि पहले उच्च न्यायालय उसका निर्णय करे और यदि विवाद पीड़ित पक्षों को उच्च न्यायालय के आदेश से संतोष न हो तो वे उच्चतम न्यायालय में अपील करें और वह उसका निर्णय करे। अन्यथा सारे मामले पर पहले अधीन न्यायालय में, फिर अपीलीय न्यायालय में और फिर उच्चतम न्यायालय में विचार करना होगा और इसमें बहुत धन व्यय होगा। अच्छा तो यह होगा कि किसी मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होने पर पहले उच्च न्यायालय उस पर विचार करे और अपील होने पर उच्चतम न्यायालय विचार करे। यह बात अवश्य रह जाती है कि उस मामले के सम्बन्ध में निर्णय कौन करेगा।

डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें यह उपबंधित है कि या तो उच्च न्यायालय ऐसे मामले को वापस लेकर उस पर स्वयं विचार करेगा अथवा उसे निर्णय के लिये अधीन-न्यायालय के पास भेज देगा। मेरे विचार से इसमें दोनों प्रकार के प्रस्तावों का यथोचित समावेश है। मेरी अपनी धारणा यह है कि अच्छा यह होता यदि इस प्रकार

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

के मामले आरम्भ में उच्च न्यायालय के सम्मुख रखे जाते। उसका अर्थ यह होगा कि विवाद-ग्रस्त लोगों को पहले अधीन न्यायालय में और फिर उच्च न्यायालय में अपने मामले को रखने के लिये धन व्यय न करना पड़ेगा। मेरे विचार से मामले को पहले उच्च न्यायालय के सामने रखना चाहिये और संविधान के प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय को उसे अधीन न्यायालय के पास भेज देना चाहिये। यदि कोई बड़ा मामला हो, क्योंकि पहले पूना के ताईजी के मामले के समान बड़े मामले हुए हैं, तो मेरे विचार से उसे उच्च न्यायालय को नहीं बल्कि आरम्भिक न्यायालय को निबटाना चाहिये। इस प्रकार का मामला आरम्भ में ही उच्च न्यायालय के सामने रखा जाना चाहिये और उसे सांविधानिक प्रश्न का निर्णय करके यह तय करना चाहिये कि वह स्वयं उस पर विचार करे अथवा आरम्भिक न्यायालय के पास उसे भेज दे। इसमें सभी विवाद पीड़ित लोगों के प्रति न्याय हो सकेगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मेरी यह धारणा है कि अनुच्छेद 204 को व्यवहार में लाने में बहुत कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। वास्तव में किसी मुन्सिफ अथवा दण्डाधीश के न्यायालय में भी किसी छोटे मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाया जा सकता है। उपबन्ध इस प्रकार है कि जैसे ही उच्च न्यायालय को यह ज्ञात हो कि किसी मामलें में संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाया गया है, तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा और संविधान के निर्वचन के प्रश्न का निर्णय करेगा। यह विषय इतना सरल नहीं है। किसी मामले के तथ्यों का निर्णय होने पर ही संविधान के निर्वचन के प्रश्न का निर्णय हो सकता है। यह हो सकता है कि लिखित वक्तव्य में किसी प्रश्न का उल्लेख हो किन्तु साक्षियों की परीक्षा करने पर, अथवा तथ्यों का निर्णय करने पर वह प्रश्न उठे ही नहीं। इसलिये यह हो सकता है कि उच्च न्यायालय के लिये संविधान के निर्वचन के प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करना समयोचित न हो। यह प्रश्न किसी अपील में अथवा प्रस्ताव में अथवा सत्र-न्यायालय में पंच-निर्णय के समय उठ सकता है। उस समय कार्यवाही बन्द करनी होगी, क्योंकि उस प्रश्न का निर्णय उच्च न्यायालय को करना होगा और मामले को स्थगित करना होगा। उच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् नये पंचों को बुलाने की आवश्यकता होगी। कई तरह की पेचीदगियां पैदा होंगी।

इसके अतिरिक्त यदि संविधान के निर्वचन के लिये उच्च न्यायालय किसी मामले को अपने पास मंगाता है और उसके निर्णय के पश्चात् वह तथ्य के निर्णय के लिये उसे वापस भेजा जाता है तथा न्यायालय कार्यवाही करता है और तथ्य का निर्णय करता है, तो मैं पूछता हूं कि वह व्यक्ति क्या करेगा जो उच्च न्यायालय के आरम्भिक निर्णय से असंतुष्ट हो? क्या वह उच्चतम न्यायालय में अपील करेगा अथवा तब तक रुका रहेगा जब तक कि आरम्भिक न्यायालय तथ्य का निर्णय न कर ले? इस अनुच्छेद से ये पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी।

इसके अतिरिक्त जब उच्च न्यायालय के आरम्भिक निर्णय के पश्चात् वह न्यायालय अथवा पंच अपना निर्णय करेंगे तो क्या उनके निर्णय की अपील हो सकेगी। क्या मैं यह

भी जान सकता हूं कि क्या संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय के निर्णय की भी अपील हो सकेगी? क्या उच्च न्यायालय का निर्णय आरम्भिक न्यायालय का निर्णय समझा जायेगा अथवा उच्च न्यायालय का निर्णय? इस बीच आरम्भिक न्यायालय बड़ी दुविधा में पड़ जायेगा। हस्तान्तरण का प्रश्न केवल संविधान के निर्णय पर निर्भर होना चाहिये। कोई ऐसी विधि जिसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, चित्ताकर्षक नहीं होती। अधिकांश विधि-प्रश्नों का संविधान के निर्वचन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस अनुच्छेद में यह नहीं कहा गया है कि हस्तान्तरण की कसौटी यह होगी कि संविधान के निर्वचन का प्रश्न पेचीदा और कठिन हो। मेरा यह निवेदन है कि केवल कठिन और महत्त्वपूर्ण प्रश्न ही हस्तान्तरित होने चाहिये। यह हो सकता है कि संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाया गया हो वह बहुत ही सरल और साधारण हो। यदि उच्च न्यायालय प्रत्येक ऐसे मामले पर विचार करेगा जिसके सम्बन्ध में यह सन्देह हो कि उसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, तो उसे असंख्य अत्यन्त साधारण मामले निबटाने पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त इससे जिलों में न्याय प्रशासन कुंठित हो जायेगा। इसलिये मेरा वह निवेदन है कि यह खंड ही निकाल दिया जाये। इस खंड के कारण बहुत पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता की धारा 24 और दंड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 528 के अधीन उच्च न्यायालय को किसी अधीन न्यायालय में लम्बित मामले को अपने पास मंगाने अथवा किसी अन्य न्यायालय को हस्तान्तरित करने का अधिकार अबाध रूप से प्राप्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कभी संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि उसका प्रभाव भारत के सारे राज्य क्षेत्र पर पड़े। जिन मामलों में ऐसा प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो उन्हें स्वविवेक से उच्च न्यायालय बिना किसी कठिनाई के अपने पास मंगा सकता है अथवा किसी अन्य न्यायालय को हस्तान्तरित कर सकता है। चूंकि अधीन न्यायालय ही साधारणतया सभी विधि-प्रश्नों का निर्वचन करते हैं इसलिये साधारण मामलों में संविधान के निर्वचन का प्रश्न भी उन्ही के निर्णय के लिये छोड़ा जा सकता है। अन्यथा इस प्रकार के कृत्रिम श्रम-विभाजन से कठिनाइयां उत्पन्न होंगी।

भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में इस प्रकार की एक धारा है और जहां तक मैं समझता हूं यह विचार उसी से लिया गया है। किन्तु उस धारा के कई महत्त्वपूर्ण अंगों की उपेक्षा की गई है। मेरे विचार से उस धारा का निदेश करना आवश्यक है। वह उस अधिनियम की 225वीं धारा है। वह इस प्रकार है:

> ''225. (1) यदि इस धारा के उपबंधों के अधीन आवेदन-पत्र देने पर उच्च न्यायालय को इस सम्बन्ध में संतोष हो जाये कि अधीन न्यायालय में लम्बित कोई मामला ऐसा है जिसे उच्च न्यायालय सुनवाई के लिये अपने पास हस्तान्तरित करवाने की शक्ति रखता है और उसमें किसी संघीय अथवा प्रान्तीय अधिनियम के वैध होने का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, अथवा अन्तर्ग्रस्त होने की सम्भावना है, तो वह उस शक्ति को प्रयोग में लायेगा।
>
> (2) इस धारा के उद्देश्य के लिये आवेदन-पत्र तब तक न दिया जायेगा जब तक कि उसका सम्बन्ध किसी संघीय अधिनियम से न हो और संघ का महाधिवक्ता

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

उसे प्रस्तुत न करे अथवा जब तक उसका सम्बन्ध किसी प्रान्तीय अधिनियम से न हो और संघ का महाधिवक्ता अथवा प्रान्त का महाधिवक्ता उसे प्रस्तुत न करे।''

इस प्रकार का उपबन्ध तो समझ में आ सकता है क्योंकि इसमें किसी अधिनियम के वैध होने का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। इस प्रकार के प्रश्नों का महत्त्व होगा क्योंकि इनके सम्बन्ध में जो निर्णय होंगे उनका प्रभाव जनसाधारण पर पड़ेगा। जिन मामलों में इस प्रकार के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों उनके सम्बन्ध में भारत के महाधिवक्ता अथवा प्रान्त के महाधिवक्ता का आवेदन-पत्र आने पर उच्च न्यायालय को उन्हें अपने पास हस्तान्तरित करवा लेना चाहिये। यह वांछनीय भी है और आवश्यक भी। भारत के अथवा प्रान्त के महाधिवक्ता के आवेदन-पत्र का ही यह अर्थ है कि वह मामला महत्त्वपूर्ण है। ऐसे बहुत कम मामले होंगे। किन्तु वर्तमान खंड के अधीन उच्च न्यायालय को स्वविवेक से कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं है। उसे अनिवार्य रूप से उस मामले को अपने पास मंगाना होगा। यदि हम यह कहते हैं कि साधारण मामले भी, जिनमें संविधान के निर्वचन के साधारण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों, उच्च न्यायालय के निर्णय के लिये उसके पास हस्तान्तरित किये जाने चाहिये तो हम बहुत आगे बढ़ा जायेंगे। मुझे इस विषय की अधिक विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि इस खंड को निकाल देना चाहिये और यदि किसी उपबंध को प्रविष्ट करने की आवश्यकता ही हुई है तो उसे भारत सरकार के 1935 के अधिनियम की 225वीं धारा के आधार पर निर्मित करना चाहिये। इस व्यवस्था को तो स्वीकार किया जा सकता है। यदि हम इस खंड को संशोधित रूप में भी स्थान देते हैं तो उससे भी पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। यह हो सकता है कि कुछ मामलों में विवाद-पीड़ित पक्ष निर्धन हों। यदि ऐसे मामलों को उच्च न्यायालय अपने पास मंगा लेगा तो उसे एकतरफा निर्णय करना होगा। यह बहुत ही अनुचित होगा कि ऐसे मामलों में भी, जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, निर्णय एकतरफा किया जाये और कोई विवाद-ग्रस्त पक्ष संकट में पड़ जाये। जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, किसी विधि के सम्बन्ध में अथवा उसके निर्वचन के सम्बन्ध में निर्णय तथ्य के आधार पर ही किया जा सकेगा। मामला तथ्य का ही होता है और इसलिये पहले तथ्य के प्रश्न का ही निर्णय करना चाहिये और फिर संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाना चाहिये। अन्यथा इसका अर्थ उल्टी गंगा बहाना ही होगा। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए मेरा यह निवेदन है कि इस खंड को निकाल दिया जाये।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैंने दो संशोधनों की सूचना दी है। उनमें से एक का उद्देश्य यह है कि 'करेगा' शब्द के स्थान में 'कर सकता है' शब्द रखे जाये और दूसरे का यह है कि यह खंड निकाल दिया जाये। श्रीमान्, मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि इस खंड को स्वीकार न करना चाहिये और चूंकि मैं अपने संशोधन की सार्थकता को समझता हूं इसलिये मेरी यही धारणा है कि इस अनुच्छेद को स्वीकार करना उचित न होगा। यह खंड इस प्रकार है:

''यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त

जिसका निर्धारित होना मामले को निबटाने के लिये आवश्यक है तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा...''

वास्तव में इस प्रकार के मामलों में अन्तिम प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय है। तर्कसंगत तो यही है कि यदि किसी न्यायालय को संविधान के निर्वचन का एकाधिकार प्राप्त हो तो उच्चतम न्यायालय को ही प्राप्त हो। उच्च न्यायालय को तो यह अधिकार प्राप्त ही नहीं हो सकता। मेरा यह नम्र निवेदन है कि जहां तक इस देश के पिछले सौ वर्ष के विधि के प्रशासन का सम्बन्ध है सभी न्यायालयों को संविधान के निर्वचन का अधिकार प्राप्त रहा है और मेरे विचार से इस क्षेत्राधिकार को ले लेने में किसी सिद्धांत का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है। इसके विपरीत मेरे विचार से हमारे सारे संविधान का आधार यही है कि प्रत्येक न्यायालय इस प्रकार के प्रश्न का निर्णय करने के लिये सक्षम है। मैं यह जानता हूं कि कुछ देशों में संविधान के सम्बन्ध में तथा प्रशासन आदि के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये अलग-अलग न्यायालय हैं। उदाहरणार्थ, फ्रांस में प्रशासन सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के न्यायालय हैं। भारत में ऐसे न्यायालय हैं जो सभी प्रकार के प्रश्नों का निर्णय करने के लिये सक्षम हैं। वास्तव में मुझे यह आपत्ति है कि हम अभी तक प्रचलित तथा इस संशोधन के स्वीकार होने तक प्रचलित न्याय प्रशासन के आधारभूत सिद्धांत का परित्याग करने जा रहे हैं। मैं धन पर आधृत क्षेत्राधिकार तथा विशेषाधिकार प्राप्त न्यायालयों में सन्निहित सिद्धांत का विरोध करता हूं। इस गलत सिद्धांत को कैसे कोई तर्कसंगत कह सकता है कि यदि किसी मामले में अधिक धनराशि अन्तर्ग्रस्त हो तो, जो न्यायालय उस पर विचार करे, उसे अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्राधिकार तथा क्षमता प्राप्त होनी चाहिये? मेरे विचार से यह बहुत ही दूषित सिद्धांत है। हमने इस देश में प्रत्येक व्यक्ति को अवसर समता तथा विधि के समक्ष समता की प्रत्याभूति दी है और इसलिये समुचित व्यवस्था यही होगी कि इस देश के प्रत्येक विवाद-पीड़ित व्यक्ति को पूर्णतया सक्षम न्यायालय में पूर्ण न्याय प्राप्त हो। यह कहा जाता है कि अधीन-न्यायालय इस संविधान के निर्वचन के लिये सक्षम नहीं है परन्तु हमने यह प्रत्याभूति दी है और यह सिद्धांत निश्चित किया है कि प्रत्येक न्यायालय सक्षम न्यायालय होगा और प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्राप्त करने का पूर्ण अवसर मिलेगा। इस दशा में यह कहना उचित नहीं है कि उच्च न्यायालय में ही संविधान का निर्वचन हो सकेगा। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, संविधान के निर्वचन का प्रश्न दो प्रकार के मामलों में उठेगा। कुछ मामले तो ऐसे होंगे जिनमें एक सरकार का दूसरी सरकार से विवाद होगा किन्तु इन मामलों में वे अच्छे से अच्छे वकीलों को रख सकेंगी और जितना धन चाहेंगी व्यय कर सकेंगी। इन मामलों का निर्णय उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय कर सकता है। दूसरे प्रकार के मामले साधारण लोगों के होंगे। यदि कोई छोटा मामला होगा, जिसमें केवल सौ रुपये की या इससे कम की धनराशि अन्तर्ग्रस्त होगी, तो वादी और प्रतिवादी न्यायालय के समक्ष तो जायेंगे किन्तु उन्हें यह ज्ञात न होगा कि संविधान के उपबंध क्या हैं अथवा सारवान विधि-प्रश्न क्या होता है। किन्तु उस मामले में कोई पक्ष विपरीत पक्ष के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित कर सकता है कि उस मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अथवा सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। इस दशा में उच्च न्यायालय के पास उस मामले को भेजने के अतिरिक्त उस न्यायालय के लिये कोई चारा न रह

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

जायेगा। यदि वह पक्ष यह प्रश्न न भी उठायेगा तो न्यायालय स्वयं इस प्रश्न को उठा सकता है और मामले को उच्च न्यायालय के पास भेज सकता है। भले ही कोई पक्ष उस मामले को उच्च न्यायालय में ले जाना चाहता हो या न ले जाना चाहता हो, किन्तु उसे उसके समक्ष उपस्थित होना ही पड़ेगा। इस प्रकार वकीलों को रखने में और अन्य प्रकार से साधारण न्यायालयों में इन पक्षों को जो धन व्यय करना पड़ता उससे कहीं अधिक धन उच्च न्यायालय में व्यय करना पड़ेगा। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुये, मेरे विचार से, उच्च न्यायालय के समक्ष मामलों को अनिवार्य रूप से भेजने की व्यवस्था से विवाद पीड़ित जनसाधारण का व्यय कम न होगा।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मामलों में अन्य प्रकार के भी कई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होंगे। पहले तो दो प्रश्नों का अर्थात् सारवान विधि-प्रश्न का और संविधान के निर्वचन के प्रश्न का निर्णय करना होगा। मेरे विचार से श्रीमान्, ये प्रश्न ऐसे नहीं हैं कि इन्हें तथ्य से अलग किया जा सके। विधि-प्रश्न कोई ऐसा प्रश्न न होगा जिसे तथ्य का निर्देश किये बिना हल किया जा सकेगा। तथ्यों पर विचार करना ही होगा। शुद्ध विधि-प्रश्न कभी न उठेंगे। इसके अतिरिक्त किसी प्रश्न का केवल विधि-प्रश्न होना ही पर्याप्त नहीं है। उसे सारवान विधि-प्रश्न होना चाहिये। यह एक और कठिनाई होगी। भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में ये शब्द प्रयुक्त हैं: ''किसी अधिराज्य अथवा प्रान्त के अधिनियम के वैध होने का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो अथवा अन्तर्ग्रस्त होने की सम्भावना हो।'' यहां ''संविधान का निर्वचन'' शब्द प्रयुक्त हैं जिनका, ''किसी अधिराज्य अथवा प्रान्त के अधिनियम के वैध होने का प्रश्न'' शब्दों की तुलना में, कहीं अधिक विस्तृत अर्थ है। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, आज भी उच्च न्यायालय किसी मामले को मंगाने अथवा हस्तान्तरित करने के लिये सक्षम हैं। यह मेरी समझ में आता है कि यदि पांच सौ मामलों में किसी विधि के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उच्च न्यायालय उन्हें मंगा सकता है और उनके सम्बन्ध में निर्णय कर सकता है। किन्तु एक या दो मामलों को मंगाने का कोई प्रश्न ही न उठेगा। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हमारे सूत्रधार, जो संविधान को इस रूप में स्वीकार करना चाहते हैं, गरीब लोगों की कठिनाइयों से पूर्णतया परिचित नहीं हैं। मेरी यह धारणा है कि वे न्याय की प्राप्ति के मार्ग में गरीब लोगों के लिये बाधा डाल रहे हैं। श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि संविधान के निर्वचन का प्रश्न इतना पवित्र क्यों समझा जा रहा है कि साधारण न्यायालयों को उस पर विचार करने का अधिकार ही नहीं है? जब यह साधारण न्यायालय व्यवहार-वादों का निर्णय कर सकते हैं तो किस कारण वे संविधान के निर्वचन के प्रश्न पर निर्णय न कर सकेंगे? एक गरीब आदमी को, एक देहाती को, उच्च न्यायालय के खर्च को उठाने के लिये क्यों विवश किया जा रहा है? हम साधाारण न्यायालयों की प्रतिष्ठा को कम कर रहे हैं ओर उन्हें एंग्लो-सैक्शन संस्थाओं के स्तर पर ला रहे हैं श्रीमान्, हम एक बहुत ही संकटापन्न प्रयोग करने जा रहे हैं और अधीन न्यायालयों की प्रतिष्ठा तथा कार्यसाधकता को कम करने जा रहे हैं और न्याय प्रशासन को विलम्बकर, कष्टकर और खर्चीला बनाने जा रहे हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रस्तावित अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मुझे इस अनुच्छेद की उपयोगिता तथा औचित्य

पर सन्देह है और मेरे विचार से, वर्तमान व्यवस्था का परित्याग करना उचित न होगा। यदि किसी मामले में कोई ऐसा स्पष्ट सांविधानिक प्रश्न उठे, जिसके आधार पर उस मामले को निबटाया जा सकता हो, तो कोई कठिनाई न होगी। उस मामले को उच्च न्यायालय अपने पास मंगा सकता है और उसके निर्णय पर आपत्ति होने पर उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय में अपील विषयक अनुच्छेद में उपबन्धित है। कठिनाई उन मामलों में होगी जिनमें अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न महत्त्वपूर्ण होने पर भी वह कई प्रश्नों में से एक प्रश्न होगा। ऐसे किसी मामले के सम्बन्ध में यद्यपि उच्च न्यायालय को यह शक्ति होगी कि वह साक्ष्य लेने अथवा अन्य प्रश्नों को निबटाने के लिये उसे अधीन न्यायालय के पास भेज सके किन्तु यदि वह उसे अपने पास मंगायेगा तो प्रश्न यह उठता है कि क्या इस अवसर पर उसके निर्णय की अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी? यह हो सकता है कि सांविधानिक प्रश्न के निर्णय का अन्तिम निर्णय पर कोई प्रभाव न पड़े और जो पक्ष सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में अन्तिम न्यायालय में हार गया हो वह अन्य तथ्यों और साक्ष्य के आधार पर अन्त में जीत जाये। यदि यह मान लिया जाये कि आप सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अपील करने के बारे में उपबन्ध रख रहे हैं तो क्या सांविधानिक प्रश्न का निर्णय होने तक वह मामला लम्बित रहेगा? हमारे संविधान के अधीन सांविधानिक विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार बहुत विस्तृत है। वह किसी आदेश के निर्वचन के संबंध में प्रश्न उठा सकता है तथा केन्द्र और एककों के बीच शक्ति वितरण के सम्बन्ध में भी प्रश्न उठा सकता है। इसलिये इस न्यायालय में सभी प्रकार के सांविधानिक प्रश्न उठाये जा सकते हैं, भले ही अन्त में मामले को निबटाने के लिये वे सारवान प्रमाणित हों अथवा न हों। यदि वह सारवान भी प्रमाणित हो तो जो पक्ष सांविधानिक प्रश्न के आधार पर हार गया हो वह अन्त में उस मामले में जीत भी सकता है। क्या उच्च न्यायालय सांविधानिक प्रश्नों पर वकीलों के लड़ने के लिये एक अखाड़ा होने जा रहा है? सभा को इस प्रश्न पर विचार करना होगा और इसके सम्बन्ध में निर्णय करना होगा।

इसके अतिरिक्त किसी व्यवहार-वाद में भी कोई सांविधानिक प्रश्न उठ सकता है और वह किसी दण्ड-वाद में भी उठ सकता है। सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में जो निर्णय होगा वह या तो अभियुक्त के पक्ष में होगा या सम्राट के पक्ष में। ऐसे दण्ड-विषयक मामलों का क्या होगा? एक अन्य बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है। किसी सांविधानिक प्रश्न पर बिना किसी मामले के तथ्यों पर विचार किये हुए, अकेले विचार नहीं किया जा सकता। संयुक्त राज्य अमरीका का उच्चतम न्यायालय इस कारण भी ''परामर्श-विषयक क्षेत्राधिकार'' की उपेक्षा करता है। हमने इस सिद्धांत को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में इस संशोधन का यह प्रभाव होता है कि विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में ''परामर्श-विषयक क्षेत्राधिकार'' अधिक विस्तृत हो जाता है, यद्यपि यह प्रश्न किसी मामले में उठने वाले कई प्रश्नों में से एक होगा। किसी एक प्रश्न के निर्णय के लिये किसी मामले को मंगाना एक नई प्रथा है। आस्ट्रेलिया के संविधान में एक उपबंध इस प्रकार है कि यदि राष्ट्रमंडल और राज्यों की शक्तियों के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठे तो, जिस मामले में यह प्रश्न उठे, उस मामले को आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय अपने पास मंगा

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

सकता है। इसलिये किसी विशेष प्रश्न अथवा निर्णय पर विचार करने के लिये मामले को मंगाने का कोई प्रसंग नहीं रहता बल्कि सारे मामले को मंगा लिया जाता है। इसलिये मेरे विचार से इस आशय का एक सामान्य उपबंध रखना चाहिये कि यदि किसी मामले के तर्कों अथवा अभिलेखों को देखने से उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि कोई सारवान सांविधानिक विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और उसी के आधार पर मामले को निबटाया जा सकता है तो वह उस मामले का अपने पास मंगा सकता है। वह न्यायालय उस दशा में उस मामले को नहीं मंगायेगा जबकि उसे विश्वास हो जाये कि सांविधानिक प्रश्न कई प्रश्नों में से एक है, भले ही वह सारवान प्रश्न हो। मैं इस सभा से पूछता हूं कि यदि हम अन्य बातों की ओर ध्यान न भी दें तो क्या यह विवाद पीड़ित लोगों के हित में है अथवा क्या यह सांविधानिक न्याय के हित में है अथवा क्या इससे अन्तिम न्यायाधिकरण का अन्तिम निर्णय शीघ्रता से प्राप्त हो सकता है अथवा क्या इस प्रकार की प्रक्रिया से यथोचित रूप से न्याय हो सकता है? इस नवीन प्रस्ताव की सार्थकता के सम्बन्ध में मुझे बहुत सन्देह है और सभा के सम्मुख मैं अपने विचारों को नम्रतापूर्वक प्रकट करना चाहता हूं। मुझे किसी विशेष विचारधारा से प्रेम नहीं है। मैं इसका विरोध नहीं कर रहा हूं कि सांविधानिक प्रश्न का यथाशीघ्र निर्णय हो जाना चाहिये किन्तु अन्तिम निर्णय की अवस्था भी आनी चाहिये। यदि सांविधानिक प्रश्न के निर्णय से मामले का अन्तिम रूप से निर्णय हो जाता हो तो अवश्य ही उसका निर्णय होना चाहिये। किन्तु यदि वह मामला अन्य बातों तथा तथ्यों पर आधृत हो और कई प्रश्नों में से सांविधानिक प्रश्न भी एक हो, तो उच्च न्यायालय को सारे मामले पर स्वयं विचार करना चाहिये। यदि केवल सांविधानिक प्रश्न का ही निर्णय होना हो तो क्या उसके सम्बन्ध में अपील की जा सकेगी या न की जा सकेगी? यदि अपील हो सकेगी तो मामला लम्बित रहेगा। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि कोई अपील न की जा सकेगी क्योंकि हम यह उपबंध रख चुके हैं कि कोई आदेश अन्तिम आदेश तभी समझा जायेगा जब किसी वादी के पक्ष में विनिश्चय होने पर ''वह उस मामले को निबटाने के लिये पर्याप्त हो''। उच्चतम न्यायालय विषयक अध्याय में हमने ''अन्तिम आदेश'' की यही परिभाषा की है।

श्रीमान्, मुझे इतना ही कहना है और मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इन तथ्यों पर विचार करेंगे और इस विषय पर अधिक विचार करने के पश्चात् सभा के सम्मुख यथोचित संशोधन उपस्थित करेंगे। मैं यह कह देना चाहता हूं कि मुझे किसी विशेष विचारधारा से प्रेम नहीं है और मैं किसी भी तर्कयुक्त विचार को ग्रहण करने के लिये तैयार हूं। परन्तु मेरी यह धारणा है कि इस उपबंध से कार्यवाही में विलंब होगा, विवाद बहुत लंबे जायेंगे और निरर्थक व्यय होगा। मैं यह बताना चाहता हूं कि ''अन्तिम आदेश'' की कोई परिभाषा न होने के कारण कई मामलों में इस प्रकार की बातें होती रही हैं। ऐसा प्रत्येक मामला संघ-न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किये जाने पर वह यह निर्णय करता था कि इस सम्बन्ध में विनिश्चय नहीं हो सकता क्योंकि विनिश्चय के लिये अधिक तथ्यों की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि इस खंड का आज विचार करने के पूर्व डा. अम्बेडकर तथा इस सभा के अन्य सदस्य इन बातों की ओर ध्यान देंगे।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह अनुरोध किया है कि विवाद-पीड़ित लोगों के हितों को ध्यान में रख कर इस अनुच्छेद पर विचार किया जाये। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि यदि आपको विवाद-पीड़ित लोगों के हितों का ध्यान है तो आपको सन्देहयुक्त होकर इस अनुच्छेद को अस्वीकार कर देना चाहिये। यह अनुच्छेद उन थोड़े से अनुच्छेदों में से है जो भारत सरकार के अधिनियम से नहीं लिये गये हैं। पहले की किसी विधि में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं है, इसलिये इस अनुच्छेद के रचयिताओं से मेरा यह अनुरोध है कि वे सभा को इस अनुच्छेद की उपयोगिता से परिचित करायें और बतायें कि किस परिस्थिति में यह अनुच्छेद बनाया गया था तथा पहले क्या कठिनाइयां थीं और इस अनुच्छेद से कौन सी कठिनाइयां दूर हो जायेंगी।

श्रीमान्, इस समय स्थिति यह है कि जिस किसी व्यक्ति पर भी इस संविधान का प्रभाव पड़ेगा वह किसी भी ऐसे अधीन न्यायालय में वाद उपस्थित कर सकता है जिसे उस वाद पर विचार करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। विवाद पीड़ित पक्ष आरम्भ में ही राजीनामा कर सकते हैं और उन्हें उच्च न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ सकती है। इस प्रकार उनका बहुत धन बच सकता है। बहुत से मामलों में अधीन न्यायालय में राजीनामा और समझौता हो जाता है। उच्च न्यायालय में मामले को ले जाने में जो खर्च होता है, तथा जो देर हो जाती है, उसकी कल्पना करके प्रत्येक व्यक्ति उच्च न्यायालय में उपस्थित होने से डरता है। उदाहरणार्थ यदि किसी पक्ष को ऐसी शिकायत हो जिसका सम्बन्ध संविधान के निर्वचन से हो तो वह विपक्षी पर दावा करता है और क्षतिपूर्ति की मांग करता है। यदि मामला जिला न्यायालय में ही तय हो सकता है तो आप उसे उच्च न्यायालय के सम्मुख जाने के लिये क्यों विवश कर रहे हैं? मेरे ध्यान में पहले यही प्रश्न आता है।

इसके अतिरिक्त इस समय भी यह व्यवस्था है कि यदि कोई मुन्सिफ अथवा अधीन न्यायाधीश अनुचित विनिश्चय करता है तो जिस पक्ष पर उसका प्रभाव पड़ता है वह हमेशा उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है और मामले का निर्णय कराता है। वर्तमान व्यवस्था के अधीन प्रत्येक मामला अवश्य ही उच्च न्यायालय में जायेगा। जहां तक मैं समझ पाता हूं इस प्रकार के वादों में एक पक्ष राज्य होगा। इस उपबंध के अधीन इस प्रकार के सभी मामलों में सरकार प्रतिवादी होगी और चूंकि उसे न देरी की चिन्ता होगी और न व्यय की इसलिये वह उस मामले को तुरन्त ही उच्च न्यायालय में ले जायेगी। इस स्थिति में, अनुच्छेद 204 के अधीन, प्रत्येक पक्ष को उच्च न्यायालय के सामने जाना ही होगा। मैं यह कहता हूं कि उच्च न्यायालय को मामले पर ही विचार करने का अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त क्यों न हो? इस स्थिति में कम से कम यह तो न होगा कि पहले मामला अधीन न्यायालय में उपस्थित किया जायेगा और फिर कुछ समय के पश्चात् उच्च न्यायालय में उपस्थित किया जायेगा। मेरा आशय यह है कि यदि इस प्रकार के मामलों को उच्च न्यायालय में उपस्थित करना ही हो तो उन्हें आरम्भ में ही उच्च न्यायालय में उपस्थित किया जाये। उच्च न्यायालय यदि चाहे तो मामले को स्वयं निबटा सकता है अथवा क्षति को आंकने के लिये, अथवा जो सहायता देनी हो उसे आंकने के लिये, वह उस मामले

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

को अधीन न्यायालय के पास भेज सकता है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि अधीन न्यायालय में भेजने की यह लम्बी प्रक्रिया क्यों अपनाई जा रही है? प्रत्येक विवाद पीड़ित व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिये कि उसके मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। यदि उसे यह ज्ञात न होगा और उस मामले में एक पक्ष सरकार होगी तो वह अवश्य ही उच्च न्यायालय में जायेगा। यदि आप उस अनुच्छेद को रखना ही चाहते हैं तो विवाद पीड़ित व्यक्ति को दुहरे खर्च से बचाने के लिये संविधान में यह उपबंध होना चाहिये कि इस प्रकार के मामलों में उच्च न्यायालय को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा। मेरे विचार से तो इस अनुच्छेद की कोई उपयोगिता नहीं है। भारत सरकार का अधिनियम कई वर्षों तक प्रवर्तन में रहा है और उसमें इस अनुच्छेद के न होने से लोगों को कोई हानि नहीं उठानी पड़ी है। किसी भी सार्वजनिक मंच से अथवा किसी भी समाचार पत्र में यह शिकायत नहीं की गई कि इस अनुच्छेद के अभाव का विवाद पीड़ित पक्षों पर अनुचित प्रभाव पड़ा है और अन्याय हुआ है। आखिर यह सभी जानते हैं कि इस प्रकार के मामले बहुत कम होंगे। यदि वे बहुत कम ही होंगे तो इनके सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को ही अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त क्यों न हो? संविधान के निर्वचन के प्रश्न पर निर्णय करके उच्च न्यायालय या तो मामले को स्वयं निबटा देगा या क्षति के निर्णयों के लिये, अथवा यह जानने के लिये कि क्या सहायता दी जानी चाहिये, उसे अधीन न्यायालय के पास भेज देगा। अपने माननीय मित्र से मेरी यह प्रार्थना है कि वे प्रश्न के इस अंग पर विचार करें। मैंने इस सभा के बाहर उन्हें यह समझाने का प्रयास किया किन्तु मैं असफल रहा। मेरी यह प्रबल इच्छा रहती है कि उनसे कई प्रश्नों का स्पष्टीकरण करवाऊं किन्तु मेरी हमेशा उपेक्षा ही की जाती है और कभी तो अवमान करके उपेक्षा की जाती है। मेरा एक छोटी सी कविता में विश्वास है जिसे मैंने अपने स्कूल में पढ़ा था। वह इस प्रकार है:

''निष्फल रहे हों हम दो-एक बार
कोशिश करें मगर बार-बार।''

मैं कई बार कोशिश कर चुका हूं किन्तु निष्फल रहा हूं। मैं हमेशा यह कहते रहता हूं ''कोशिश करें मगर बार-बार'' और यह भी मेरी एक कोशिश है। मैं आगे भी कोशिश करूंगा।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रश्न को हल करने में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। सभा ने इस पर विचार करना है कि इन कठिनाइयों को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय क्या है?

मैं यह देखता हूं कि इस अनुच्छेद पर अथवा मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन पर तीन आपत्तियां की गई हैं। पहली बात यह कही गई है कि इस प्रकार का कोई अनुच्छेद रखना ही नहीं चाहिये। दूसरी बात यह है कि यदि उच्च न्यायालय को इस प्रकार की शक्ति देनी ही है तो उसे पूरे मामले पर न कि सांविधानिक विधि पर, विचार करना चाहिये। तीसरी बात यह है कि यदि सांविधानिक प्रश्न आरम्भिक प्रश्न हो तो उसे उच्च न्यायालय के सामने रखा जाये अथवा उच्च न्यायालय उसे अपने पास मंगवाये

किन्तु यदि विधि-प्रश्न तथ्य प्रश्न से संलग्न हो तो वह ऐसा न करें। अभी तक जो वादानुवाद हुआ है उसमें यही तीन बातें कही गई हैं।

इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिये कि सांविधानिक प्रश्न क्या है? यदि किसी विधि का प्रभाव किसी नागरिक की स्वतंत्रता पर पड़ता हो और उससे उसके मूलाधिकारों का हनन होता हो तो उसे यह सांविधानिक अधिकार प्राप्त है कि वह या तो उच्चतम न्यायालय में या उच्च न्यायालय में वाद उपस्थित करे। इसलिये अधिकांश दण्ड-विषयक मामलों में नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सांविधानिक प्रश्न के निर्णय के लिये इन दो न्यायालयों में से किसी न्यायालय में वाद उपस्थित करे। यह पहला तर्क है।

दूसरा तर्क यह है कि अनुच्छेद 110 और 112 के अधीन किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण के निर्णय अथवा आज्ञप्ति अथवा अन्तिम आदेश के सम्बन्ध में अपील होने पर अथवा विशेष इजाजत मिलने पर उच्चतम न्यायालय को सांविधानिक प्रश्नों का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसलिये सभी सांविधानिक विषयों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में अन्तिम अपील हो सकती है।

कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनको किसी एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इसके सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता है कि अन्य तथ्य-सम्बन्धी अथवा विधि-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने के पूर्व क्या इन मामलों में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न का निर्णय करने के लिये कोई उपाय ढूंढ निकाला जाये अथवा पहली बार या दूसरी बार अपील होने पर जब वह मामला उच्च न्यायालय में पहुंचे तब उस प्रश्न का निर्णय होने दिया जाये। हमें दो प्रकार की कठिनाइयों पर विचार करना है। एक प्रकार की कठिनाई का वर्णन मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर तथा इस सभा के कुछ अन्य माननीय सदस्यों ने किया है। किन्तु इससे भी बड़ी कठिनाइयां हैं जिन पर हमें विचार करना है। किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न उस मामले का आधारभूत प्रश्न होता है और यदि उसके सम्बन्ध में आरंभ में ही निर्णय नहीं किया गया तो विधि के प्रसंग में उस मामले के बारे में बहुत सन्देह उत्पन्न हो जायेगा। उदाहरण के लिये इसी प्रश्न को लीजिये कि कोई विधि राज्य की विधायिनी शक्ति की परिधि में है या केन्द्र की विधायिनी शक्ति की परिधि में। यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है कि यदि इसका शीघ्र ही निर्णय न किया गया तो हितों का हस्तान्तरण हो सकता है, अधिकारों का शून्यन हो सकता है और प्रदत्त अधिकारों का अपहरण हो सकता है। यह कई वर्षों के लिये अर्थात् चार या पांच वर्ष के लिये होगा और फिर उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय यह घोषित करेगा कि वह विधि न्यायसंगत नहीं है। इसलिये इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये क्या यह अच्छा न होगा कि संविधान के तत्सम्बन्धी उपबंध का आरम्भ में ही निर्वचन किया जाये?

इसी प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये यह अनुच्छेद रखा जा रहा है। पहले से जो कुछ होता आया है उसे मैं बताऊंगा। एक अधीन-न्यायालय का न्यायाधीश किसी विधि प्रश्न का एक प्रकार का निर्वचन करता है और दूसरे जिला-न्यायालयों में उसका

[श्री के.एम. मुन्शी]

दूसरे प्रकार का निर्वचन किया जाता है और वह विभेद उस समय तक चलता रहता है जब तक कि उच्च न्यायालय उस प्रश्न का निर्णय नहीं करता। क्या यह उचित है कि न्यायाधीश किसी सांविधानिक विषय का इस प्रकार विभिन्न निर्वचन करें? यदि यह उचित नहीं है तो किसी ऐसे उपाय को ढूंढ निकालने की आवश्यकता है जिससे कोई विवाद-पीड़ित व्यक्ति, यदि वह चाहे तो, इस विषय का निर्णय यथाशीघ्र करा सकता है।

यह कोई नई बात नहीं है। सभा को स्मरण होगा कि व्यवहार-प्रक्रिया संहिता के 46वें आदेश के अन्तर्गत अधीन न्यायालयों को यह शक्ति प्राप्त है कि वे विधि प्रश्न के महत्त्वपूर्ण सिद्ध होने पर उसे निर्णय के लिये उच्च न्यायालय के समक्ष रखे। इसके अतिरिक्त, जैसा कि मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद सभा को बता चुके है, भारत सरकार के अधिनियम की धारा 225 के अधीन उच्च न्यायालय इसके लिये सक्षम है, अथवा वास्तव में उस पर यह दायित्व है, कि वह सब ऐसे मामलों को अपने पास मंगा ले जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न उठाया गया हो। ऐसे उदाहरण हैं जिनमें उच्च न्यायालय में अधीन न्यायालयों से कुछ मामलों को मंगा कर उनमें अन्तर्ग्रस्त विधि-प्रश्नों तथा सांविधानिक प्रश्नों का निर्णय किया है। जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसमें यह उपबंध रखा गया है कि यदि किसी अधीन न्यायालय में सांविधानिक औचित्य का कोई प्रश्न उठाया गया हो तो कोई भी विवाद-ग्रस्त पक्ष उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर उसे दो बातों के बारे में संतुष्ट करेगा अर्थात् वह यह प्रमाणित करेगा कि उसके मामले में संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है और यह भी प्रमाणिक करेगा कि उसका निर्णय मामले को निबटाने के लिये न कि उससे सम्बद्ध किसी अन्य प्रश्न के हल के लिये आवश्यक है। इन दो शर्तों के पूरे होने पर ही उच्च न्यायालय मामले को अपने पास मंगायेगा। उसे मंगाने में उच्च न्यायालय वही कार्यवाही करेगा जो वह भारत सरकार के अधिनियम की धारा 225 के अधीन करता, किन्तु वह इस परिसीमा से निर्बन्धित न होगा कि उसे सारे मामले को ही निबटाना होगा। इस अनुच्छेद में दो विकल्प हैं। एक यह है कि उच्च न्यायालय उस मामले को स्वयं निबटा सकता है और दूसरा यह है कि यदि वह उचित समझे तो केवल विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में ही निर्णय कर सकता है। दूसरी दशा में वह केवल विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करेगा और अन्य प्रश्नों के निर्णय के लिये मामले को अधीन न्यायालय के पास भेज देगा। यदि किसी मामले में तथ्य के और विधि के प्रश्न एक दूसरे से सम्बद्ध हों तो उच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करेगा कि सांविधानिक प्रश्न को अलग करना सम्भव है या नहीं और यदि उसे अलग करना सम्भव न हुआ तो वह पूरे मामले को उसी प्रकार निबटायेगा जैसे वह धारा 225 के अधीन निबटाता अथवा वह आरम्भिक न्यायालय से ऐसे तथ्य प्रश्न का निर्णय करने के लिये कह सकता है जो विधि-प्रश्न के निर्णय के लिये आवश्यक हो। जो असुविधा होगी उसे दूर करने का कोई स्पष्ट उपाय नहीं है परन्तु सभी बातों पर विचार करने के उपरांत सुविधाजनक यही प्रतीत होता है कि सांविधानिक प्रश्नों के निर्वचन में एकरूपता हो और अधीन न्यायालयों में विभिन्न न होने दिया जाये?

मुझे इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में यह आपत्ति सुनकर आश्चर्य हुआ कि सभा ने उच्चतम न्यायालय को सांविधानिक लेखों को जारी करने की अत्यधिक शक्ति प्रदान की

है जिसके कारण जब तक उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय बहुत से मामलों में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक औचित्य प्रश्न का निर्णय न कर लेगा तब तक उन सबमें कुछ भी न हो सकेगा। मेरे मित्र पंडित भार्गव ने दो आपत्तियां की हैं जिनमें से एक खर्च के सम्बन्ध में है और दूसरी निर्णय में देरी के सम्बन्ध में। यदि सारी स्थिति का विश्लेषण किया जाये तो ये दोनों तर्क निराधार प्रतीत होंगे। जहां तक खर्च को सम्बन्ध है, क्या इसमें धन की बचत न होगी कि किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त ऐसे सांविधानिक प्रश्न को, जो उस मामले का आधारभूत प्रश्न हो, पहले हल किया जाये और उस मामले में किसी पक्ष के सांविधानिक प्रश्न के सम्बन्ध में अपील करने के पूर्व साक्ष्य न ली जाये? यदि पहले साक्ष्य ली गई तो अधिक धन व्यय होगा। कई मामलों का तो सांविधानिक प्रश्नों के निर्णय से ही निबटारा हो जायेगा। जहां तक देरी का सम्बन्ध है। यह सभी को विदित है कि अधीन न्यायालयों में प्रत्येक मामले को निबटाने में बहुत देर लगती है। इस दशा में जो पक्ष सांविधानिक प्रश्न उठाना चाहेगा वह मामले का निर्णय होने के पूर्व ही उसे अवश्य ही उच्च न्यायालय में उपस्थित करेगा और जहां तक अधीन न्यायालय के निर्णय का सम्बन्ध है उसमें इस कारण कुछ देर न होगी। जब तक उस मामले की अधीन न्यायालय में सुनवाई होगी तब तक उच्च न्यायालय उस प्रश्न का निर्णय कर चुकेगा।

दूसरी बात यह है कि आरम्भ में ही इस प्रकार का निर्णय होने से उसका महत्त्व सारे भारत के लिये होगा। नये संशोधन का खंड (ख) इस प्रकार है:

> ''(ख) उक्त विधि-प्रश्न का निर्धारण कर सकेगा तथा ऐसे प्रश्न पर अपने निर्णय की प्रतिलिपि सहित उस मामले को उस न्यायालय को, जिससे मामला इस प्रकार मंगा लिया गया है, लौटा सकेगा तथा उसके प्राप्त होने पर उक्त न्यायालय ऐसे निर्णय का अनुसरण करते हुए उस मामले को निबटाने के लिये आगे कार्यवाही करेगा।''

''निर्णय'' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यही शब्द अनुच्छेद 110 में भी प्रयुक्त हुआ है। इसलिये यदि आवश्यक हो तो विवाद-ग्रस्त पक्ष विधि-प्रश्न के सम्बन्ध में सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इससे इस प्रश्न के सम्बन्ध में सारे देश के निर्णयों में एकरूपता आ जायेगी। वह बहुत कुछ परामर्श विषयक क्षेत्राधिकार के अनुरूप ही है और जब संविधान में सांविधानिक औचित्य प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार न्यायपालिका को दिया गया है तो इसकी बहुत आवश्यकता है कि किसी प्रश्न पर यथाशीघ्र ऐसा निर्णय सुनाया जाये जो सारे देश के लिये नही तो कम से कम सारे प्रान्त के लिये बन्धनकारी हो। अनुच्छेद 25, 110 और 112 में जो व्यवस्था की गई है उसका उद्देश्य यही है कि निर्णयों में एकरूपता हो और वास्तव में इस अनुच्छेद द्वारा उस सांविधानिक व्यवस्था को अधिक विस्तृत बना दिया गया है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि कठिनाइयों को हल करने का यह सर्वोत्तम उपाय है और मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, इस सभा में पिछले कई दिनों से कई वकील सदस्यों के विधि-सम्बन्धी व्याख्यानों को एक साधारण जन के नाते सुनकर मैंने यह अनुभव किया कि जिस प्रकार संशोधन उपस्थित किये जाते है, परिवर्तन किये

[श्री टी.टी कृष्णमाचारी]

जाते हैं और जिस प्रकार केवल काल्पनिक मामलों के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार विस्तृत किया जाता है और इन काल्पनिक मामलों के सम्बन्ध में, जो काल्पनिक होने के कारण एक समान ही होते हैं, जिस अनिश्चितता का प्रदर्शन किया जाता है उसके सम्बन्ध में चेतावनी देने का समय आ गया है। आज भी हमने कई वकील सदस्यों के परस्पर विरोधी विचारों को सुना है। कुछ ने उस स्थिति का वर्णन किया जिसमें वे आकस्मिक परिस्थितियां, जिनके सम्बन्ध में हम एक अनुच्छेद में उपबंध रखना चाहते हैं उत्पन्न ही नहीं हो सकती अथवा उत्पन्न होने पर निराकृत हो जायेंगी। इन वक्ताओं के सम्बन्ध में यही कहना उचित होगा कि प्रत्येक का तर्क एक सीमा तक ठीक है। यदि इन सभी बातों का आधार काल्पनिक ही है तो यह नहीं कहा जा सकता कि श्री मुन्शी के ही विचार पवित्र हैं अथवा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के ही विचार पवित्र हैं।

श्रीमान्, मेरा यह उद्देश्य नहीं है कि सभा के सम्मुख जो अनुच्छेद है और मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसे मैं निरर्थक सिद्ध करूं। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उनके सम्बन्ध में संसद कोई विधि बनाये अथवा उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के सहयोग से उच्चतम न्यायालय नियम बनाये और यदि आवश्यक हो तो संसद उन नियमों का अनुमोदन करे। वास्तव में क्या हम उन सभी आकस्मिक स्थितियों की कल्पना करने में समर्थ हैं जो आगे चल कर उत्पन्न हो सकती हैं? मेरे विचार से हम समर्थ नहीं है। यद्यपि मुझे उन लोगों के विधि-ज्ञान के प्रति बहुत श्रद्धा है, जिन्होंने इस सभा द्वारा स्वीकृत पूर्ववर्त्ती अनुच्छेदों का मसौदा तैयार किया है, किन्तु साथ ही मुझे इस सभा के कुछ सदस्यों के इस तर्क का खंडन करने में संकोच का अनुभव होता है कि इस व्यवस्था से देश में विवादों के बढ़ने की आशंका है।

न्याय सम्बन्धी उपबंधों पर जब विचार-विमर्श हो रहा था तो उस समय उच्चतम न्यायालय के कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने का प्रयास किया गया था। यह कहा गया है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिये यही एकमात्र उपाय है। बाद में यदि मुझे अवसर मिला तो मैं इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने का प्रयास करूंगा कि क्या अपीलों के लिये अधिक अवसर देने से ही स्वतंत्रताओं की सर्वोत्तम रूप से रक्षा हो सकती है। अनुच्छेद 204 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया हे, तथा उसके पहले जो संशोधन उपस्थित किये गये थे उनके सम्बन्ध में श्री मुन्शी का यह कहना है कि एक ही बन्धनकारी विनिश्चय हो और उसी के अनुसार भविष्य में सभी मामलों के सम्बन्ध में निर्णय हो। क्या यह संभव है? यदि एक ही निर्णय बन्धनकारी हो सकता तो क्या संसार में न्यायालयों के निर्णयों पर आधृत इतनी विधियां होती? श्री मुन्शी नि:संदेह अमेरिका की न्याय प्रक्रिया से परिचित होंगे। वहां इस कारण उस देश के निवासियों को बहुत अनिश्चितता का सामना करना पड़ा है कि वहां के संविधान के उपबंध सूत्र-रूप में हैं और विस्तृत रूप में नहीं हैं जिसके फलस्वरूप उनसे उन सभी आकस्मिक स्थितियों के सम्बन्ध में निर्णय नहीं हो सकता है जिनकी कल्पना मनुष्य का मस्तिष्क उसी प्रकार कर सकता है जैसे सभा के सम्मुख उपस्थित इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में की जा रही है।

साथ ही मेरी यह भी धारणा है कि श्री मुन्शी के निर्वचन में कोई ऐसा जादू नहीं है कि उसे श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के निर्वचन से श्रेष्ठ कहा जा सके। एक मित्र ने मुझसे पूछा है कि यदि अनुच्छेद 110 प्रवर्त्तन में रहा और किसी मामले में संविधान के निर्वचन का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त रहा तो उसका क्या होगा? क्या वह उच्चतम न्यायालय के सम्मुख रखा जायेगा? हम कह नहीं सकते। श्री मुन्शी के इस कथन का कोई अर्थ नहीं है कि अमुक-अमुक बातें होंगी और अन्त में सब कुछ ठीक हो जायेगा। सब कुछ ठीक कैसे हो जायेगा? उन मामलों का सम्बन्ध केवल उन आकस्मिक स्थितियों से न होगा जिनकी कल्पना हम कर रहे हैं बल्कि मनुष्यों से भी होगा। कोई न्यायाधीश अपनी सम्मति के अनुसार कोई विशेष प्रकार का निर्णय कर सकता है और कोई अन्य न्यायाधीश अन्य प्रकार का निर्णय कर सकता है। किसी न्यायाधीश-वर्ग का निर्णय उसी प्रकार के मामलों का निर्णय करने वाले अन्य न्यायाधीशों के लिये बन्धनकारी नहीं हो सकता है। इसकी सम्भावना हमेशा बनी रहती है कि कोई निर्णय किसी अन्य निर्णय के प्रकाश में अनियमित घोषित हो जाये।

यह संशोधन थोड़े समय के लिये भले ही प्रविष्ट कर लिया जाये परन्तु मेरी यह धारणा है कि इस संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध होना चाहिये, जिसके अधीन इस प्रकार की सभी कमियां संसद निर्मित विधि द्वारा दूर हो सकें। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जिनका यह विश्वास है कि हमें संसद की ज्यादतियों से देश की, विवाद-ग्रस्त व्यक्तियों की, वकीलों की और वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा करनी चाहिये। मैं उन चार या पांच व्यक्तियों की अपेक्षा जो अपने को सुयोग्य समझते हों किन्तु विद्वेष के भाव से मुक्त न हुए हों, साधारण बुद्धि वाले पांच सौ लोगों पर विश्वास रखना अधिक पसन्द करता हूं। संयुक्त राज्य अमेरिका की घटनाओं से मेरा विश्वास और भी सुदृढ़ हो जाता है। वहां के न्यायाधीश राजनैतिक बातों से प्रभावित हो जाते हैं और वास्तव में 1936 तक दिये हुए बहुत से निर्णयों को 1936 के पश्चात् उलटना पड़ा और कुछ मामलों में तो उन्हीं न्यायाधीशों ने संविधान का भिन्न निर्वचन किया। इसलिये मेरे विचार से इस संविधान में किसी स्थल पर कोई ऐसा उपबन्ध होना चाहिये जिसके अधीन ये सब कठिनाइयां संसद निर्मित विधि द्वारा दूर हो सकें भले ही इसका अर्थ यह हो कि न्यायालयों का क्षेत्राधिकार कुछ अंश में संसद को प्राप्त हो जायेगा क्योंकि उतने ही अंश में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार भी कम हो जायेगा। इसी उपाय से हम विवादों की संख्या को तथा न्यायालयों के भार को कम कर सकते हैं।

अपनी जगह पर जाने के पूर्व मैं इस सभा के सदस्यों से केवल यह कहना चाहता हूं कि आज हम जो कुछ करने जा रहे हैं वह लोकमत के विरुद्ध है क्योंकि लोग यह नहीं चाहते हैं कि विवाद बढ़े। हम इस व्यवस्था से अधिकाधिक विवाद का अवसर प्रदान कर रहे हैं। मैंने पहले एक अवसर पर किसी विशेष बुद्धि से प्रेरित होकर यह नहीं कहा था कि यह संविधान वकीलों के लिये एक स्वर्ग का निर्माण करेगा। उस समय के प्रसंग में यह ठीक हो या न हो, किन्तु उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के लिये जो उपबन्ध रखे गये हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए आज के प्रसंग में तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह ठीक है। हम विवादों के बढ़ने के लिये अधिकाधिक अवसर दे रहे हैं। मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी ने एक अन्य प्रसंग में यह कहा था कि

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

लोगों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने का बहुत अवसर मिलेगा। यदि यह सच है तो विवाद बढ़ने ही चाहिये। इन विवादों में धन व्यय कौन करेगा? इनसे लोगों का धन व्यर्थ में नष्ट होगा क्योंकि इन विवादों में अधिकतर ऐसे लोग पड़े रहते हैं जो अधिक धन व्यय नही कर सकते। विवाद पीड़ित लोग लड़ते-लड़ते अन्त में बिल्लियों के समान लड़ने लगते और केवल उनकी दुमें ही शेष रह जाती हैं। इससे वकीलों को लाभ हो सकता है, न्यायाधीशों को लाभ हो सकता है और राजस्व धन भी बढ़ सकता है, किन्तु हानि उठानी पड़ेगी लोगों को। इसलिये इस सभा को तथा इन उपबंधों के लिये जो लोग उत्तरदायी हैं उनको यदि केवल तात्कालिक स्थिति का ही ध्यान नहीं है और केवल इसी का ध्यान नहीं है कि अमुक स्थिति का निराकरण इन उपबंधों से हो सकेगा या नहीं तो उन्हें देश के हित को ध्यान में रख कर किसी स्थल पर एक ऐसा व्यावृत्ति-खंड रखना चाहिये जिसके अधीन इन विषयों का निर्णय संसद निर्मित विधि द्वारा अथवा न्यायालयों द्वारा निर्मित तथा संसद द्वारा अनुमोदित नियमों द्वारा हो सकेगा ताकि विवादों की संख्या अत्यधिक न होने पावे।

मैं उपस्थित संशोधन के सम्बन्ध में केवल इतना कह सकता हूं कि वह उन अन्य संशोधनों से अधिक सरल प्रतीत होता है जो कल सभा के स्थगित होने के पश्चात् प्रस्तावित किये गये थे और अपेक्षाकृत अधिक लम्बे और इस कारण दुर्बोध हैं। इसलिये सम्भवत: इस संशोधन में कुछ सार तो है ही और सभा उस पर विचार कर सकती है। मेरा केवल यह निवेदन है कि यह न समझा जाये कि यही इस विषय पर अन्तिम बात है और इसलिये सभा को मसौदा समिति को तथा इन खंडों के लिये उत्तरदायी लोगों को यह शक्ति प्रदान करनी चाहिये कि वे इस विषय के सम्बन्ध में स्वीकृत सभी अनुच्छेदों पर विचार करें और कोई ऐसा व्यावृत्ति खंड रखे जिसके आधार पर संसद हस्तक्षेप कर सके और विवादों की संख्या न बढ़ने दें।

अपने इस मत के साथ मैं डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरे विचार से मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसके निर्णय के लिये अधिक विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। सभा को स्मरण होगा कि कल जब हम अनुच्देद 204 पर विचार कर रहे थे तो मेरे मित्र श्री भारती ने उस अनुच्छेद के अन्तिम वाक्य के सम्बन्ध में अर्थात् इसके सम्बन्ध में कि उच्च न्यायालय उस मामले को मंगा लेगा और उसे स्वयं निबटायेगा, एक प्रश्न उठाया था । श्री भारती का प्रश्न बहुत तर्कपूर्ण था। वह इस प्रकार था। जब अनुच्छेद 204 में केवल यही उपबन्धित है कि उच्च न्यायालय को संविधान के निर्वचन के सम्बन्ध में सारवान विधि-प्रश्न पर विचार करना चाहिये तो उससे यह आशा क्यों कि जाये कि वह पूरे मामले को अपने पास मंगाये और उसे निबटाये? उनका यह तर्क था कि किसी मामले में कई प्रकार के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं उनमें से एक प्रश्न संविधान के निर्वचन का विधि-प्रश्न भी हो सकता है। अन्य प्रश्न संसद द्वारा निर्मित साधारण विधि के निर्वचन के प्रश्न हो सकते हैं। इस प्रकार के किसी मामले में, जिसमें मिश्रित प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, अर्थात् एक प्रश्न संविधान के निर्वचन का हो और अन्य प्रश्न साधारण विधि के निर्वचन

के हों, यह ठीक है कि उच्च न्यायालय को विधि के निर्वचन के सम्बन्ध में निर्णय करने की शक्ति प्राप्त हो, किन्तु उससे यह अपेक्षा क्यों की जाये कि वह पूरे मामले को अपने पास मंगाये और संविधान के निर्वचन विषयक प्रश्न का ही निर्णय नहीं करे बल्कि साधारण विधि के निर्वचन विषयक प्रश्नों का भी निर्णय करे। मैं यह कह चुका हूं कि वह बहुत ही तर्कपूर्ण प्रश्न था और जब मैंने उनके तर्क को सुना तो मैंने उसके वजन को समझा और इसीलिये आपसे इन अनुच्छेद को स्थगित रखने की अनुमति मांगी।

मैं यह बताना चाहता हूं कि जब हम अनुच्छेद 121 पर विचार कर रहे थे तो मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इसी प्रकार का एक प्रश्न उठाया था। वह भी उच्चतम न्यायालयों में ऐसी अपीलों के सम्बन्ध में था जिनमें मिश्रित प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होते हैं, अर्थात् जिनमें सांविधानिक विधि-प्रश्न के साथ संसद द्वारा निर्मित साधारण विधि के निर्वचन के प्रश्न भी अन्तर्ग्रस्त होते हैं। प्रारम्भिक मसौदे में यह उपबध था कि ऐसे सभी मामलों के सम्बन्ध में, जिनमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होता है, इस प्रकार की अपील का निर्णय पांच न्यायाधीशों की एक मंडली करेगी। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह प्रश्न उठाया था कि कोई पक्ष, दुष्टता से प्रेरित होकर तथा पांच न्यायाधीशों की मंडली से लाभ उठाने के हेतु अपनी अपील में सांविधानिक विधि के निर्वचन का प्रश्न भी उठा सकता है यद्यपि विचार करने पर अन्त में वह सारहीन ही सिद्ध हो। उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीश किसी ऐसी अपील पर विचार करने में अपना समय नष्ट क्यों करें, जिसमें वास्तव में संविधान के निर्वचन का कोई भी प्रश्न अन्तर्ग्रस्त न हो? सभा को स्मरण हेगा कि उनका तर्क स्वीकार कर लिया गया था। यदि सभा के सदस्यों के पास चौथे सप्ताह की संशोधन सूची संख्या 1 हो तो वे संशोधन संख्या 43 में देखेंगे कि हमने इस आशय का एक उपबन्ध रखा है कि किसी ऐसे मामले में जिसमें उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई हो और जिसमें विधि के निर्वचन का प्रश्न तो नहीं किन्तु अन्य प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हों तो उच्चतम न्यायालय के नियमों के अधीन निर्मित एक साधारण न्यायाधीश मंडली उस अपील पर विचार करे। मैं कह नहीं सकता कि उस न्यायाधीश मंडली में दो न्यायाधीश होंगे अथवा तीन। यदि अपील को सुनने के पश्चात् वह न्यायाधीश मंडली यह प्रमाणित करे कि यह सच है कि संविधान के निर्वचन का सारवान प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो ही वह अपील पांच न्यायाधीशों की मंडली के सम्मुख रखी जा सकती है। पांच न्यायाधीशों की मंडली भी उस मामले में अन्तर्ग्रस्त सांविधानिक प्रश्न पर ही विचार करेगी और अन्य प्रश्नों पर विचार नहीं करेगी। सांविधानिक प्रश्नों पर निर्णय करने के उपरांत न्यायाधीश निर्देश करेंगे कि वह मामला उच्चतम न्यायालय की प्रारम्भिक न्यायाधीश मंडली के सम्मुख रखा जाये। उस न्यायाधीश मंडली में दो या तीन न्यायाधीश होंगे और वे मामले को निबटायेंगे।

मेरा पहला निवेदन यह है कि आज प्रातः मैंने अनुच्छेद 204 के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया है उसे यदि हम स्वीकार कर लेंगे तो हम केवल संशोधन संख्या 42 में उल्लिखित अनुच्छेद 121 के खंड (2क) के परंतुक के सार की स्वीकार करेंगे। उसमें भी यह कहा गया है कि यदि उच्च न्यायालय को संतोष हो जाये तो वह मामले

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

को अपने पास मंगा सकता है, सांविधानिक विधि के सम्बन्ध में निर्णय कर सकता है और उसे ऐसे विषयों के निर्णय के लिये अधीन न्यायालय के न्यायाधीश के पास भेज सकता है, जिनमें केवल संसद निर्मित साधारण विधि के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो। मेरे विचार से हम कोई ऐसी असाधारण अथवा नवीन बात नहीं करने जा रहे हैं जो हमने उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में न की हो। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जिस प्रकार हमने अनुच्छेद 121 के खंड (2क) का परंतुक स्वीकार किया है उसी प्रकार यदि हम इसे भी स्वीकार कर लेंगे तो हम कोई बड़ी भारी त्रुटि अथवा पूर्व-निश्चय का खंडन न करेंगे...।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण चाहता हूं। कृपा करके मुझे यह बताया जाये कि क्या आपकी धारणा यह है कि अपील के समय किसी प्रश्न के उठने में और आरम्भिक न्यायालय मामले के लम्बित होने पर उस प्रश्न के उठने में कोई अन्तर नहीं है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं केवल संशोधन की रूप-रेखा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर रहा हूं। मेरा यह निवेदन है कि मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है वह उसी परन्तुक के समान है, जिसे हमने अनुच्छेद 121 के खंड (2क) में प्रविष्ट किया है। इसलिये मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि हम अपने पूर्व निश्चय के विपरीत कोई बात नहीं करने जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त दो प्रश्न और उठाये गये हैं। उनमें से एक 'निर्णय' शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में है। यह कहा गया है कि 'निर्णय' शब्द का विभिन्न प्रकार से निर्वचन हुआ है और यह भी कहा गया है कि जिस पक्ष के मामले को उच्च न्यायालय ने सांविधानिक प्रश्न के निर्णय के लिये अपने पास मंगाया हो वह उच्चतम न्यायालय के सम्मुख उपस्थित ही न हो सकेगा क्योंकि अनुच्छेद 110 में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की ही अपील की जा सकेगी। तर्क यह है कि कोई निर्णय अनुच्छेद 110 के आशय के अनुसार निर्णय अथवा अन्तिम आदेश ही न समझा जाये। जब हमने अनुच्छेद 110 में 'निर्णय' शब्द को एक विशेष अर्थ में प्रयोग किया है अर्थात् इस अर्थ में प्रयोग किया है कि वह ऐसा निर्णय होगा जिसकी अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस संशोधन में 'निर्णय' शब्द का वही निर्वचन क्यों नहीं किया जाता? यदि यह तर्क ठीक है तो 'निर्णय' शब्द के स्थान में 'विनिश्चय' शब्द रखने से इस आपत्ति का निराकरण हो सकता है। यह व्याख्या भी प्रविष्ट की जा सकती है कि ''अनुच्छेद 110 के उद्देश्य के लिये ''विनिश्चय'' से 'अन्तिम आदेश' का बोध होगा।'' मेरे विचार से यह कोई ऐसी कठिनाई नहीं है जो दूर नहीं हो सकती।

जहां तक अपील के प्रश्न का सम्बन्ध है, जिस पक्ष का मामला मंगाया जायेगा उसे अवश्य इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह जो कुछ चाहेगा करेगा। यदि किसी ऐसे मामले में, जिसे उच्च न्यायालय ने सांविधानिक प्रश्न के निर्णय के लिये अपने पास मंगाया हो उसने

अपना निर्णय सुना दिया हो तो वह पक्ष सीधे उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता है और उस प्रश्न का निर्णय करा सकता है अथवा वह उस समय तक प्रतीक्षा कर सकता है जब तक अधीन न्यायाधीश सभी प्रश्नों का निर्णय न कर ले और उन प्रश्नों से सम्बन्धित तथ्य विषयक निर्णयों की अपील उच्च न्यायालय में न हो जाये और उसके सम्बन्ध में निर्णय न सुना दिया जाये और तब वह उस मामले को उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित कर सकता है। यदि संविधान के निर्वचन का प्रश्न आरम्भिक प्रश्न के समान ही हो और उसके सम्बन्ध में निर्णय होने पर सारे मामले के सम्बन्ध में निर्णय हो जाता हो तो किसी पक्ष के लिये यह बन्धन नहीं है कि वह किसी विशेष प्रक्रिया को ही स्वीकार करे। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन बातों का जिस पक्ष पर प्रभाव पड़ेगा वह सांविधानिक प्रश्न के अतिरिक्त अन्य प्रश्नों का निर्णय अधीन न्यायाधीश से कराने के स्थान पर तुरन्त ही उच्चतम न्यायालय में जायेगा और संविधान का निर्वचन करायेगा। इसमें मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं दिखाई देती।

दूसरा प्रश्न यह है। मेरे मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने वहां बैठ कर कुछ कहा था। मैं उन्हें सुन नहीं पाया परन्तु उनसे बातचीत करने पर उन्होंने बताया कि उच्च न्यायालय को संविधान के निर्वचन विषयक प्रश्नों को और अन्य प्रश्नों को पृथक करने में कठिनाई का अनुभव हो सकता है और यह भी हो सकता है कि अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये और संविधान के निर्वचन के प्रश्न के सम्बन्ध में भी निर्णय करने के लिये उच्च न्यायालय को अन्य प्रश्नों पर भी विचार करना पड़े। यह भी कहा गया था कि यदि कोई छोटा मामला हो, किन्तु उसमें संविधान के निर्वचन का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो तो उच्च न्यायालय को उस छोटे मामले को अधीन न्यायालय के पास भेजने के स्थान पर उसे स्वयं उस मामले को निबटाने की शक्ति क्यों न दी जाये? इन दोनों प्रश्नों को हल करने के उद्देश्य से संशोधन में उच्च न्यायालय को मामले को स्वयं निबटाने की शक्ति प्रदान की गई है। मेरे विचार से जो कठिनाइयां बताई गई है उन्हें दूर करने के लिये यह व्यवस्था अपर्याप्त नहीं है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन से अवश्य ही हमारे उद्देश्यों की पूर्त्ति होती है। इससे यह होगा और यही हम चाहते भी हैं कि जब उच्च न्यायालय मामले पर विचार करेगा तो उसे सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय न करना होगा। वह केवल एक प्रश्न के सम्बन्ध में, अर्थात् संविधान के निर्वचन के प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करेगा।

क्या मैं एक बात और कह सकता हूं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 24 के अधीन उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी मामले को अपने पास मंगाये और उसका निर्णय करे। किन्तु इस धारा 24 के अधीन यह कठिनाई उत्पन्न होती है कि यदि न्यायालय ने किसी मामले को अपने पास मंगाने का निश्चय किया तो उसे पूरे मामले को अपने पास मंगाना होता है। वह मामले के किसी अंश को अपने पास नहीं मंगा सकता किन्तु हमारा उद्देश्य यह है कि उच्च न्यायालय को मामले के उस अंश को मंगाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये, जिसका सम्बन्ध संविधान के निर्वचन से हो। मेरा यह निवेदन है कि जब तक आप ऐसा ही कोई उपबन्ध नहीं रखते जैसा हम अनुच्छेद 204 के अधीन रख रहे हैं तब तक उच्च न्यायालय को संविधान के निर्वचन के प्रश्न को भी हल करने के लिये पूरे मामले को अपने पास मंगाना होगा।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं एक बात और कहना चाहता हूं। आप यह अनुभव करेंगे कि मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसकी शब्दावली पर ध्यानपूर्वक विचार करने के लिये कल से आज तक का समय पर्याप्त न था। इसीलिये मैं यह संशोधन उपस्थित कर रहा हूं क्योंकि मेरे विचार से, अनेक अनुच्छेदों को थोड़ी सी त्रुटियों के शोधन के लिये स्थगित रखना उचित नहीं है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि यद्यपि मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है किन्तु मेरे विचार से उचित यह होगा कि मसौदा समिति को इसके लिये अवसर दिया जाये कि वह इस अनुच्छेद में जो दोष बताये गये हैं उनमें से यदि कोई हो तो उन्हें दूर कर सके और उसे इस सभा द्वारा स्वीकृत अन्य अनुच्छेदों के अनुरूप बना सके।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन संख्या 2674 पर मत लूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मेरे विचार से डा. अम्बेडकर के संशोधन से इस संशोधन का निराकरण हो जाता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा प्रस्ताव पहले के अनुच्छेद के स्थान में एक अन्य अनुच्छेद प्रविष्ट करने का है। आप संशोधन संख्या 2674 को वापस ले सकते हैं।

***अध्यक्ष:** आपके संशोधन का उद्देश्य पहले के अनुच्छेद के स्थान में एक अन्य अनुच्छेद प्रविष्ट करना है। तब मैं आपके संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 204 के स्थान में निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'204. *Transfer of certain cases to High Court*—If the High Court is satisfied that a case pending in a court subordinate to it involves a substantial question of law as to the interpretation of this Constitution the determination of which is necessary for the disposal of the case, it shall withdraw the case and may—

(a) either dispose of the case itself, or

(b) determine the said question of law and return the case to the court from which the case has been so withdrawn together with a copy of its judgment on such question, and the said court shall on receipt thereof proceed to dispose of the case in conformity with such judgment.' ''

[204]. *विशेष मामलों का उच्च न्यायालय को हस्तांतरण*—यदि उच्च न्यायालय का समाधान हो जाये कि उसके अधीन न्यायालय में लम्बित किसी मामले में

इस संविधान के निर्वचन का कोई सारवान विधि प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है जिसका निर्धारित होना मामले को निबटाने के लिये आवश्यक है तो वह उस मामले को अपने पास मंगा लेगा तथा—

(क) या तो मामले को स्वयं निबटा सकेगा, या

(ख) उक्त विधि-प्रश्न का निर्धारण कर सकेगा तथा ऐसे प्रश्न पर अपने निर्णय की प्रतिलिपि सहित उस मामले को उस न्यायालय को, जिससे मामला इस प्रकार मंगा लिया गया है, लौटा सकेगा तथा उसके प्राप्त होने पर उक्त न्यायालय ऐसे निर्णय का अनुसरण करते हुये उस मामले को निबटाने के लिये आगे कार्यवाही करेगा।'

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब यह मूल अनुच्छेद हो जाता है। इससे जितने भी संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनका निराकरण हो जाता है।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 204, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 204, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 205

***अध्यक्ष:** अब सभा अनुच्छेद 205 पर विचार करेगी। इसके सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर का एक संशोधन है अर्थात् संशोधन संख्या 2676।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 205 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'205. (1) Officers and servants and the expenses of the High Court—Appointments of officers and servants of a High Court shall be made by the Chief Justice of the Court or such other judge or officer of the Court as he may direct:

Provided that the Governor of the State in which the High Court has its principal seat may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the Court shall

be appointed to any office connected with the Court save after consultation with the State Public Service Commission.

(2) Subject to the provision of any law made by the legislature of the State the conditions of service of officers and servants of a High Court shall be such as may be prescribed by rule made by the Chief Justice of the Court or by some other judge or officer of the Court authorised by the Chief Justice to make rules for the purpose:

Provided that the salaries, allowances and pensions payable to or in respect of such officers and servants shall be fixed by the Chief Justice of the Court in consultation with the Governor of the State in which the High Court has its principal seat.

(3) The administrative expenses of a High Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the Court and the salaries and allowances of the judges of the Court, shall be charged upon the revenues of the State, and any fees or other moneys taken by the Court shall form part of those revenues.' ''

[205. (1) *उच्च न्यायालयों के पदाधिकारी और सेवक और व्यय*—उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा निर्दिष्ट उस न्यायालय का अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा:

परन्तु उस राज्य का राज्यपाल जिसमें न्यायालय का मुख्य स्थान है, नियम द्वारा यह अपेक्षा कर सकेगा कि ऐसी किन्हीं अवस्थाओं में, जैसी कि नियम में उल्लिखित हों, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले ही न्यायालय में लगा हुआ नहीं है, न्यायालय से सम्बन्धित किसी पद पर राज लोक-सेवा-आयोग से परामर्श किये बिना नियुक्त न किया जायेगा।

(2) राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसा कि उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उस न्यायालय का ऐसा न्यायाधीश

या पदाधिकारी जिसे मुख्य न्यायाधिपति ने उस प्रयोजन के लिये नियम बनाने को प्राधिकृत किया है, नियमों द्वारा विहित करे:

परन्तु इन पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके, जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, निश्चित किये जायेंगे।

(3) उच्च न्यायालय के प्रशासनीय व्यय जिनके अन्तर्गत उस न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में, दिये जाने वाले सब वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन हैं और न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते भी हैं, राज्य के राजस्व पर भारित हों तथा उस न्यायालय द्वारा ली गई फीसें और अन्य धन उस राजस्व का भाग होंगी।]

***अध्यक्ष:** एक संशोधन श्री कपूर का भी है।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, इस संशोधन पर मेरा एक संशोधन है। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं उसे उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** आप उसे उपस्थित कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

''संशोधन की सूची के संशोधन संख्या 2676 के सम्बन्ध में, प्रस्तावित अनुच्छेद 205 के खंड (2) के परन्तुक के स्थान में निम्नलिखित परन्तुक रखा जाये–

'Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the Governor of the State in which the High Court has its principal seat.' ''

(परन्तु इस खंड के अधीन बनाये गये नियमों के लिये, जहां तक कि वेतनों, भत्तों, छुट्टी या निवृत्ति-वेतनों से सम्बद्ध है, उस राज्य के राज्यपाल के जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी।)

श्रीमान्, ये उपबंध उच्चतम न्यायालय सम्बन्धी उपबंधों के समान ही हैं।

***अध्यक्ष:** श्री कपूर, इससे आपके संशोधन का आशय पूरा हो जाता है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): जी, हां, श्रीमान्, इससे अब मेरे संशोधन की आवश्यकता नहीं रह गई है।

***अध्यक्ष:** मि. महबूब अली वेग के नाम से इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में दो संशोधन अर्थात् संशोधनों पर संशोधनों की छपी हुई सूची के संशोधन संख्या 141 और 142।

(संशोधन उपस्थित नहीं किये गये)

अब इस अनुच्छेद पर सामान्य वादानुवाद हो सकता है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह नहीं चाहता कि उच्च न्यायालयों की शक्तियां किसी प्रकार कम की जायें। श्रीमान्, मेरे विचार से वेतन, छुट्टी, निवृत्ति-वेतन आदि के सम्बन्ध में राज्यपाल से परामर्श करना आवश्यक है। यदि यहां राज्यपाल का अर्थ सपरिषद् राज्यपाल से नहीं है तो प्रधानमंत्री से परामर्श करना आवश्यक है। इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है—यद्यपि अच्छा तो यह होता कि इसका उल्लेख होता—कि राज्यपाल के स्वविवेक का ध्यान रखते हुए उससे उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा अन्य सेवकों के वेतनों, भत्तों और निवृत्ति-वेतनों के सम्बन्ध में परामर्श करना चाहिये। श्रीमान्, एक अन्य उपबन्ध इस प्रकार है कि राज्य के विधान मंडल की तद्विषयक किसी विधि के अधीन सेवा की शर्तों को मुख्य न्यायाधिपति को विहित करना चाहिये। मैं नहीं चाहता कि राज्यपाल अथवा राज्यों के विधान मंडल प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के कार्य में किसी प्रकार हस्तक्षेप कर सकें। वास्तव में इस देश में एक ही सुगठित न्यायपालिका होनी चाहिये। सभी उच्च न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अंग होने चाहिये। मैं नहीं चाहता कि उच्च न्यायालयों का प्रान्तीकरण हो। मैं यह भी नहीं चाहता कि कार्यपालिका के प्राधिकारी तथा राज्यपाल और विधान मंडल न्यायपालिका के कार्य में हस्तक्षेप कर सकें। यह सभी को विदित है कि प्रान्तीय सरकारों के विरुद्ध मेरी भावनाएं क्या हैं? यदि इन प्राधिकारियों का उच्च न्यायालय के प्रशासन में कुछ भी हाथ रहा तो प्रान्तीय उच्च न्यायालय स्वतंत्र न रह सकेंगे। इस सम्बन्ध में इस समय भी उत्तेजना है और यह अभियोग लगाया गया है कि कई मामलों में न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप हुआ है। श्रीमान्, मेरी यह निश्चित धारणा है कि राज्यों के विधान मंडलों और राज्यपालों से परामर्श करने के स्थान पर हमें संसद तथा राष्ट्रपति से परामर्श करने के लिये उपबंध रखना होगा। मैं यह जानता हूं कि इन उच्च न्यायालयों के प्रशासन व्यय प्रान्तीय राजस्व पर भारित होंगे किन्तु इस व्यय को केन्द्रीय राजस्व पर भारित करने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रस्ताव को कार्यरूप में लाने के लिये केन्द्रीय और प्रान्तीय राजस्वों के साधनों के समायोजन की आवश्यकता होगी। किन्तु कार्यसाधक प्रशासन के हित में और देश में एक ही न्यायपालिका स्थापित करने हेतु जो भी कठिनाइयां उपस्थित हों उन्हें दूर करना ही होगा। इस दृष्टि से उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा अन्य सेवकों के निवृत्ति-वेतनों, वेतनों, छुट्टी आदि के प्रश्नों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की जाये कि संसद और राष्ट्रपति उनको उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके हल करे।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर क्या आप कुछ कहना चाहते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी नहीं, श्रीमान्।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित इस संशोधन का विरोध करना चाहता हूं। बाहर से यह बहुत ही निर्दोष दिखाई देता है किन्तु जहां तक न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सम्बन्ध है इसका कई बातों पर प्रभाव पड़ेगा। यदि हम इस मसौदे के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को ओर ध्यान दें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि हम लोकतंत्र के सिद्धांतों से विमुख हो रहे हैं और

सारी शक्ति कार्यपालिका और विधान मंडल में संकेन्द्रित कर रहे हैं अर्थात् हमारे प्रयत्नों के फलस्वरूप एक आरक्षी राज्य विकसित होने जा रहा हैं। इस अनुच्छेद का इतिहास भी अन्य अनुच्छेदों के समान ही है और आगे आने वाली पीढ़ियां ही इसका निर्णय करेंगी कि हम दिन प्रतिदिन बुद्धिमान होते जा रहे हैं अथवा हम सर्वमान्य लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों की उपेक्षा कर रहे हैं और विधान मंडल को अधिकाधिक शक्ति प्रदान करते जा रहे हैं। यदि हम मूल मसौदे को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि फरवरी 1948 में अनुच्छेद 205 का जो मसौदा तैयार किया गया था उसमें यह उपबंध था कि उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों के वेतन, भत्ते, निवृत्ति-वेतन आदि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके निश्चित करेगा, जिसमें उस उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान हो। किन्तु नवम्बर में जब संशोधनों की यह सूची प्रकाशित हुई तो इसमें कुछ अन्तर था और इस अनुच्छेद का परन्तुक इस प्रकार था:

> ''परन्तु इन पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में, दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और निवृत्ति-वेतन उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके, जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, निश्चित किये जायेंगे।''

मेरे विचार से यहां तक कोई हानि नहीं हुई है क्योंकि इसे परामर्श तक ही सीमित रखा गया है। किन्तु वर्तमान संशोधन इस प्रकार है:

> ''परन्तु इस खंड के अधीन बनाये गये नियमों के लिये, जहां तक कि वे वेतनों, भत्तों, छुट्टी या निवृत्ति-वेतनों से सम्बद्ध हैं, उस राज्य के राज्यपाल के जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी।''

इस प्रविष्टि का गहरा प्रभाव पड़ेगा यद्यपि ऊपर से यह बहुत ही साधारण प्रतीत होती है। लोगों की स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप होने पर उनकी रक्षा न्यायपालिका ही कर सकती है, इसलिये यदि उसकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप हो रहा हो तो वह चाहे कितने ही अंश में क्यों ने हो उसकी देख-रेख होनी चाहिये और उसे रोकने के लिये यथेष्ठ व्यवस्था करनी चाहिये। यह सभी स्वीकार करते हैं कि न्यायपालिका इतनी सशक्त नहीं है कि वह कार्यपालिका और विधान मंडल के हस्तक्षेप से अपनी रक्षा कर सके और इसलिये यदि विधान मंडल अथवा कार्यपालिका से उसका सम्बन्ध जोड़ा गया अथवा उसे उनके अधीन रखा गया तो उसकी स्वतंत्रता का अपहरण हो जायेगा। इसका हमेशा ही खतरा बना रहता है कि कार्यपालिका अथवा विधान मंडल उसे पंगु बना दे। मैं यह कह चुका हूं कि इस परिवर्तन के फलस्वरूप विधान मंडल को अधिक शक्ति प्रदान करने से न्यायालयों की स्वतंत्रता पर आघात होगा। मेरी यह धारणा है कि इस संशोधन में जिस परिवर्तन का सुझाव रखा गया है उससे प्रतिदिन साधारण विषयों के सम्बन्ध में न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच संघर्ष होता रहेगा। मुख्य न्यायाधिपति से राज्यपाल से अनुमोदन प्राप्त करने की अपेक्षा करने से वह हतप्रभ तो होगा ही किन्तु साथ ही उसे राज्यपाल से अधीन स्थिति स्वीकार करनी होगी। कम से कम मनोविज्ञान की दृष्टि से तो इस प्रक्रिया का यही प्रभाव होगा। यह उपबंध ही कि मुख्य न्यायाधिपति को राज्यपाल का अनुमोदन प्राप्त

[सरदार हुकुम सिंह]

करना होगा इसका प्रमाण है नियम एक दूसरे का ध्यान रखकर बनाये जायेंगे। क्या उसका इस सम्बन्ध में विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह अनावश्यक व्यय करके राजकोष का धन नष्ट न करेगा? इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजकीय का रक्षक राज्यपाल ही है किन्तु साथ ही न्यायपालिका भी नागरिकों की स्वतंत्रताओं की संरिक्षका है और इसलिये कोई ऐसी बात न करनी चाहिये जिससे उसकी स्वतंत्रता पर आघात हो। केवल परामर्श करना ही पर्याप्त है। मेरे विचार से यह संशोधन खतरनाक सिद्ध होगा और इसलिये मैं इसका विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 205 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'205. *Officers and servants and the expenses of High Courts*—(1) Appointments of officers and servants of a High Court shall be made by the Chief Justice of the Court or such other judge or officer of the Court as he may direct:

Provided that the Governor of the State in which the High Court has its principal seat may by rule require that in such cases as may be specified in the rule, no person not already attached to the Court shall be appointed to any office connected with the Court save after consultation with the State Public Service Commission.

(2) Subject to the provisions of any law made by the Legislature of the State, the conditions of service of officers and servants of a High Court shall be such as may be prescribed by rules made by the Chief Justice of the Court or by some other judge or officer of the Court authorised by the Chief Justice to make rules for the purpose:

Provided that the rules made under this clause shall, so far as they relate to salaries, allowances, leave or pensions, require the approval of the Governor of the State in which the High Court has its principal seat.

(3) The administrative expenses of High Court, including all salaries, allowances and pensions payable to or in respect of the officers and servants of the Court and the salaries and allowances of the judges of the Court, shall

be charged upon the revenues of the State, and any fees or other moneys taken by the Court shall form part of those revenues.'

(1) [229. *उच्च न्यायालयों के पदाधिकारी और सेवक और व्यय*—उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियां न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा निर्दिष्ट उस न्यायालय का अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा:

परन्तु उस राज्य का राज्यपाल जिसमें न्यायालय का मुख्य स्थान है, नियम द्वारा यह अपेक्षा कर सकेगा कि ऐसी किन्हीं अवस्थाओं में, जैसी कि नियम में उल्लिखित हो, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले ही न्यायालय में लगा हुआ नहीं है, न्यायालय से सम्बन्धित किसी पद पर राज्य लोक-सेवा-आयोग से परामर्श किये बिना नियुक्त न किया जायेगा।

(2) राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुये उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसे कि उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उस न्यायालय का ऐसा अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी जिसे मुख्य न्यायाधिपति ने उस प्रयोजन के लिये नियम बनाने को प्राधिकृत किया है, नियमों द्वारा विदित करे:

परन्तु इस खंड के अधीन बनाये गये नियमों के लिये, जहां तक कि वे वेतनों, भत्तों, छुट्टी या निवृत्ति वेतनों से सम्बद्ध है, उस राज्य के राज्यपाल के जिसमें उच्च न्यायालय का मुख्य स्थान है, अनुमोदन की अपेक्षा होगी।

(3) उच्च न्यायालय के प्रशासनीय व्यय जिनके अन्तर्गत उस न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों को, या के बारे में, दिये जाने वाले सब वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन हैं और न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते हैं, राज्य के राजस्व पर भारित होंगे तथ उस न्यायालय द्वारा ली गई फीसें और अन्य धन उस राजस्व का भाग होंगी।]''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 205, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 205, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 206

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि यह अनुच्छेद निकाल दिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 206 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव गिर गया।

अनुच्छेद 206 संविधान से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 90–(*जारी*)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि अब वित्त-सम्बन्धी अनुच्छेद उठाया जाये। हम अनुच्छेद 90 पर विचार-विमर्श कर रहे थे और उसे अब उठा सकते हैं।

***अध्यक्ष:** जिस दिन हमने इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श स्थगित किया था उस दिन इसके सम्बन्ध में कई संशोधन थे। वे संशोधन 3, 4 और 6 हैं जो डा. अम्बेडकर के नाम से हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ग) और (घ) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रखे जायें:

'(c) the custody of the Consolidated Fund or the Contingency Fund of India, the payment of moneys into or the withdrawal of moneys from any such fund;

(d) The appropriation of moneys out of the Consolidated Fund of India;

[(ग) भारत की संचित-निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

(घ) भारत की संचित-निधि में से धन का विनियोग;]''

श्रीमान् संशोधन संख्या 4 का आशय संशोधन संख्या 3 से हो जाता है और इसलिये मैं उसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (घ) और (ङ) में 'Revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित-निधि) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान् इससे पंडित कुंजरू के संशोधन संख्या (5) का आशय भी पूरा हो जाता है और इसलिये उसकी अब आवश्यकता नहीं रह जाती।

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस अवसर पर एक परिचयात्मक भाषण देना चाहता हूं ताकि सभा उन कतिपय परिवर्तनों से परिचित हो जाये जिनका सन्निवेश इन संशोधनों में तो नहीं है किन्तु जिनका सम्बन्ध उस वित्त-सम्बन्धी प्रक्रिया से है, जिसका अनुसरण वित्त-सम्बन्धी विषयों में करना होगा।

इस विषय के सम्बन्ध में जिन विभिन्न संशोधनों का मैंने प्रस्ताव किया है उनसे ये परिवर्तन होंगे। पहला परिवर्तन यह है कि बिना किसी विधि को प्रवर्तन में लाये हुये कोई कर नहीं लगाया जायेगा। यदि लोगों पर कोई कर लगाना होगा तो इसके लिये यह आवश्यक होगा कि उसकी संपुष्टि किसी विधि द्वारा हो। इस प्रकार का उपबंध अनुच्छेद 248 में है, जिस पर आगे चल कर विचार किया जायेगा। सभा के सम्मुख पूर्ण चित्र उपस्थित करने के लिये ही मैंने उसकी चर्चा की है। संविधान के वर्तमान मसौदे में इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं था। दूसरी नई बात संचित-निधि का उल्लेख हैं। यह अनुच्छेद 248(क) द्वारा किया जायेगा और इस पर भी आगे चल कर विचार होगा। सम्भव है संसद एक आकस्मिकता निधि को भी स्थापित करना चाहे और इसलिये हम उसके सम्बन्ध में भी उपबंध रखना चाहते हैं। ये उपबंध नवीन अनुच्छेद 248-(ख) में रखे जायेंगे।

मेरे विचार से प्रथम उपबंध की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात् इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है कि कोई कर बिना विधि को प्रवर्त्तन में लाये हुये नहीं लगाया जायेगा। यह बहुत ही उपयुक्त उपबंध है। वास्तव में बिना संसद की स्वीकृति प्राप्त किये हुये कार्यपालिका को लोगों पर कर लगाने की शक्ति प्राप्त न होनी चाहिये। जहां तक संचित-निधि का सम्बन्ध है, यह कोई नया विचार नहीं है, केवल शब्दावली गई है। वर्तमान शब्दावली इस प्रकार है–''भारत के गवर्नर जनरल का लोक-लेखा''। यदि माननीय सदस्य ''कम्पाइलेशन आफ ट्रेजरी रूल्स, अंक 1'' नाम की पुस्तक को देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि ''संचित-निधि'' को भी ''लोक-लेखा' कहा गया है। मैं उसमें दी हुई परिभाषा को पढ़ कर सुनाता हूं: ''केन्द्रीय सरकार के लोक-लेखे से अभिप्रेत है संचित निधि, जिसमें अधिनियम की धारा 136 में परिभाषित गवर्नर जनरल का राजस्व-धन जमा किया जाता है और रखा जाता है और जिससे धन निकाल कर सरकार व्यय करती है अथवा उसकी ओर से व्यय किया जाता है।''

इसलिये ''संचित-निधि'' शब्दों के प्रयोग से केवल नाम में परिवर्तन हुआ है, क्योंकि इससे केन्द्रीय सरकार का लोक-लेखा ही अभिप्रेत है।

संचित-निधि की कल्पना एक महत्त्वपूर्ण धारणा पर आधृत है। इस सभा के सदस्यों की यह विदित ही होगा कि इंग्लिस्तान में संचित-निधि को स्थापित करने का विचार प्रथम बार 1777 में उठा था। उसे स्थापित करने का उद्देश्य क्या था इसे मैं बताऊंगा। आरंभ में संसद करों के लिये स्वीकृति देती थी और उन्हें सम्राट लगाता था। वही करों को संगृहीत करता था और जिस काम के लिये भी उचित समझता था व्यय करता था। प्राय: यह होता था कि सम्राट किन्हीं कामों के लिये कर लगाने की मांग करता था किन्तु भिन्न कामों में उसे व्यय कर देता था। करों के लिये स्वीकृति प्रदान करने के पश्चात् संसद का उन पर कुछ भी नियंत्रण नहीं रह जाता था। कुछ समय के पश्चात् संसद ने एक भिन्न प्रक्रिया का अनुसरण किया अर्थात् वह कर लगाने लगी और उसका विनियोग एक विशेष कार्य के लिये करने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब आय व्ययक को स्वीकार करने का समय आता था तो कुछ भी धन शेष नहीं रह जाता था, क्योंकि विभिन्न करों का विनियोग विभिन्न कार्यों के लिये पहले ही से हो जाता था। इस प्रकार आय-व्ययक में उल्लिखित सामान्य कार्यों के लिये कुछ भी धन शेष नहीं रह जाता था।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इस प्रकार विभिन्न करों के विभिन्न कार्यों के लिये विनियोग से जो धन नष्ट हो जाता था उसे बचाने के लिये इसकी आवश्यकता दिखाई दी कि करों से अथवा अन्य प्रकार से जो राजस्व प्राप्त हो उसका विशेष कार्यों के लिये विनियोग न करके उसे एक निधि में संचित किया जाये ताकि आय-व्ययक पर निर्णय करते समय संसद को एक निधि प्राप्त हो जिसे वह व्यय कर सके। अर्थात् ऐसी व्यवस्था करने के लिये कि संसद-निर्मित विधि द्वारा विशेष कार्यों में ही करों से प्राप्त सब धन बिना लोगों की सामान्य आवश्यकताओं का ध्यान रखे हुये ही व्यय न हो, यह आवश्यक है कि एक संचित-निधि स्थापित की जाये। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा संचित-निधि सम्बन्धी उपबन्ध स्वीकार करने में किसी कठिनाई का अनुभव न करेगी क्योंकि उसो स्थापित करना बहुत आवश्यक है। मेरा तो यह कहना है कि कोई भी संविधान ऐसा नहीं है जिसमें संचित-निधि के सम्बन्ध में उपबंध न हों। यदि आप आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, आयरलैंड तथा अन्य देशों के संविधानों की परस्पर तुलना करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि उनमें से प्रत्येक में इस आशय का एक उपबन्ध है कि करों से अथवा अन्य प्रकार संगृहीत सब निधियों का समावेश संचित-निधि में होगा। इसलिये हम कोई नई बात करने नहीं जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त एक अन्य उपबंध हम राष्ट्रपति द्वारा प्रमाणित अनुसूची के लिये न रख कर विनियोग अधिनियम के लिये रख रहे हैं। यदि माननीय सदस्य संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 94 को देखेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि वर्तमान प्रक्रिया क्या है? इस समय इस प्रकार कार्य किया जाता है। राष्ट्रपति अर्थात् शासनारूढ़ सरकार अनुच्छेद 92 के अधीन संसद के सम्मुख एक वित्त-विषयक विवरण विशेष रूप में उपस्थित करती है। इस विशेष रूप का वर्णन अनुच्छेद 94 के उपखंड (2) में है। व्यय ही श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। एक श्रेणी उस व्यय की होती है जो भारत-राजस्व पर भारित होता है और एक श्रेणी उस व्यय की होती है जो भारत-राजस्व पर अर्थात् संचित-निधि पर भारित नहीं होता है। इसके पश्चात् अनुच्छेद 93 में विहित कार्यप्रणाली के अनुसार कार्य होता है। अनुच्छेद 93 में विहित कार्यप्रणाली इस प्रकार है। संसद वित्त-विषयक विवरण के एक-एक शीर्षक, एक-एक उपशीर्षक तथा एक-एक विषय पर विचार करती है और कार्यपालिका द्वारा उपबन्धित धनराशि को स्वीकार करती है अथवा उसे कम करती हैं। यह किसी कर्त्तन-प्रस्ताव पर आधृत सभा के संकल्प द्वारा किया जाता है। इतना हो जाने पर वर्तमान प्रक्रिया के अधीन अनुच्छेद 94 का अनुसरण किया जाता है अर्थात् राष्ट्रपति यह प्रमाणित करता है कि संसद के सम्मुख जो विभिन्न शीर्षक रखे गये थे उनके सम्बन्ध में सभा ने क्या उपबन्धित किया है। नवीन उपबंध इस प्रकार है कि राष्ट्रपति के प्रमाणीकरण के स्थान में विधान मंडल एक समुचित विनियोग अधिनियम स्वीकार करे।

संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 94 में विहित उपबंधों के स्थान में विनियोग-विधेयक की प्रक्रिया को रखने के पक्ष में यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है। विधान मंडल प्रदायों पर मत देकर उन्हें स्वीकार करता है और इसलिये यह उचित ही है कि उसने जो कुछ

स्वीकार किया है उसे अधिनियम का रूप दिया जाये। प्रदायों पर मत देकर उन्हें स्वीकार करने का जो कार्य विधान मंडल ने किया हो उसका प्रमाणीकरण राष्ट्रपति अर्थात् कार्यपालिका के लिये क्यों छोड़ा जाये? हमें मुख्यत: इसी प्रश्न पर विचार करना है। वित्त के सम्बन्ध में संसद सर्वशक्तिसम्पन्न है क्योंकि अनुच्छेद 93 के उपबंधों के अधीन बिना संसद की स्वीकृति के धन व्यय नहीं किया जा सकता। यदि किसी शीर्षक के अधीन किसी व्यय को संसद ने स्वीकार किया हो तो उसे प्रमाणित करने के लिये समुचित प्राधिकारी संसद ही है न कि राष्ट्रपति। इसलिये संविधान के इस मसौदे के अनुच्छेद 94 में विहित प्रक्रिया के स्थान में विनियोग-अधिनियम की प्रक्रिया रखी जा रही है।

मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत सरकार के 1935 के अधिनियम के अनुच्छेद 94 का समुचित स्थान था क्योंकि गवर्नर जनरल को इसे प्रमाणित करने का अधिकार था कि वह स्वविवेक से इसका निर्णय करे कि अपने कृत्यों के पालनार्थ उसे कितने धन की आवश्यकता होगी। जिन कृत्यों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल स्वविवेक से धन व्यय करना चाहता था वे संसद के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आते थे। उसे धनराशि में परिवर्तन करने का अथवा उसे बढ़ाने का अधिकार प्राप्त था। इसलिये यह आवश्यक था कि प्रमाणीकरण के लिये अन्तिम प्राधिकारी गवर्नर जनरल ही हो क्योंकि उसे स्वतंत्र रूप से यह शक्ति प्राप्त थी कि वह अपने विशेष कृत्यों के निर्वहन के लिये आय-व्ययक में अपनी इच्छानुसार उपबंध रखे। हमारे नवीन संविधान के अधीन राष्ट्रपति को अपने व्यक्तिगत निर्णय से, अथवा स्वविवेक से, किन्हीं भी कृत्यों का निर्वहन न करना होगा। इसलिये कतिपय सेवाओं के व्यय के लिये धन प्रदान करने में उसका कोई हाथ न होगा। इस दशा में नवीन संविधान के अधीन प्रमाणीकरण की प्रक्रिया बिल्कुल अनावश्यक है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि जिन देशों में भी संसदात्मक शासन है वहां, अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और इंग्लिस्तान में विनियोग-प्रक्रिया प्रयोग में है। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि जब 1935 में भारत सरकार के अधिनियम पर विचार-विमर्श हो रहा था तो भारत-मंत्री ने स्वयं यह प्रस्ताव किया था कि विधान सभा द्वारा स्वीकृत व्यय का वैधकरण विनियोग अधिनियम द्वारा होगा न कि प्रमाणीकरण द्वारा। किन्तु उस समय की भारत सरकार को विनियोग अधिनियम का विचार मान्य न हुआ और उसका कारण यह था कि गवर्नर जनरल को अपने कृत्यों के निर्वहन के लिये आय-व्ययक में धनराशि उपबन्धित करने की शक्ति प्राप्त थी। जैसा कि मैं कह चुका हूं अन्यथा भारत मंत्री स्वयं इस प्रस्ताव के पक्ष में था किन्तु उसके प्रस्ताव को भारत सरकार ने 1935 में अस्वीकार कर दिया। मेरा यह निवेदन है कि अब इस प्रकार के कृत्य को बनाये रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इससे कार्यपालिका को धनराशि उपबन्धित करने तथा व्यय करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेरे विचार से हमें अपनी प्रक्रिया को उन सभी देशों की प्रक्रिया के अनुरूप बनाना चाहिये जहां संसद धन-व्यय करने की स्वीकृति प्रदान करने के सम्बन्ध में सर्वशक्ति सम्पन्न है।

एक अन्य नवीन अनुच्छेद, जो हमने प्रविष्ट किया है, लेखानुदान के सम्बन्ध में है। इसकी व्याख्या करना आवश्यक है कि हमने उसे क्यों प्रविष्ट किया है। इस सम्बन्ध में भी मैं सभा का ध्यान मसौदे के अनुच्छेद 93 की ओर दिलाता हूं। अनुच्छेद 93 के अधीन

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

किसी भी सेवा के लिये तब तक धन न दिया जा सकता है और न व्यय किया जा सकता है जब तक कि संसद आय-व्ययक के पूरे विवरण को स्वीकार न कर ले। यदि आप अनुच्छेद 93 को पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि उसका आशय यही है। आय-व्ययक को शीर्षकों, उपशीर्षकों ओर विषयों के अधीन रखना होता है। संसद को इन शीर्षकों, उपशीर्षकों और विषयों की स्वीकार करके आय-व्ययक को स्वीकार करना होता है। आय-व्ययक को स्वीकार करने का यही अर्थ है। यह सभी को विदित है कि आय-व्ययक का आकार वृहत् होता है और उसमें 250 करोड़ जैसी धनराशि का विवरण होता है और वह विभिन्न विषयों के अधीन वितरित होती है। यदि अनुच्छेद 93 को वर्तमान रूप में रहने दिया जायेगा, अर्थात् यदि यह उपबंध रहने दिया जायेगा कि जब तक संसद पूरे विवरण को स्वीकार न कर ले तब तक किसी प्रकार का धन व्यय नहीं किया जा सकता और यदि यह उपबंध भी रहने दिया गया कि प्रत्येक राजकीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व आय व्ययक स्वीकार कर लिया जाना चाहिये, तो आय व्ययक पर विचार-विमर्श के लिये बहुत कम समय रह जायेगा। मुख्यत: इसलिये बहुत कम समय रह जायेगा कि अनुच्छेद 93 के उपबंधों के अधीन जब तक आय व्ययक का पूरा विवरण स्वीकार न कर लिया जाये तब तक धन व्यय नहीं किया जा सकता। इसलिये या तो आप पूरे आय-व्ययक पर विचार-विमर्श करने के अपने अधिकार को त्याग दीजिये अथवा अनुच्छेद 93 में परिवर्तन कीजिये अथवा अनुच्छेद 93 में अपवादार्थ एक अन्य उपबंध रखिये। एक संशोधन द्वारा लेखानुदान की जिस प्रक्रिया को प्रस्तुत करने का विचार है, उसके अधीन संसद उस वर्ष की सेवाओं पर कुछ समय के लिये, उदाहरणार्थ दो महीने के लिये, धन व्यय करने के लिये कार्यपालिका को एकमुष्ट अनुदान के रूप में स्वीकृति प्रदान कर सकेगी ताकि इन दो महीनों में संसद सरकार के आय व्ययक सम्बन्धी तथा वित्त सम्बन्धी उपबंधों पर यदि पूर्ण रूप से नहीं तो कम से कम विस्तृत रूप से, विचार कर सके। यदि आप लेखानुदान के लिये, अर्थात् विपक्षी दल के नेता और सरकार के बीच किसी करार के आधार पर दो या तीन महीने के व्यय के लिये कार्यपालिका को दी जाने वाली धनराशि के लिये लेखानुदान अर्थात् एकमुष्ट अनुदान के लिये, उपबंध नहीं रखेंगे तो आपको आय व्ययक पर विचार-विमर्श करने के लिये उतना ही समय मिल सकेगा जितना कि इस समय मिलता है। सभा को स्मरण होगा कि पिछली बार इस सभा के कई सदस्यों की यह धारणा थी कि आय-व्ययक को स्वीकार करने में बहुत जल्दी दिखाई गई थी और लोगों को विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिये सात-आठ दिन से अधिक समय नहीं दिया गया था और मुखबंध के साधन का भी उपयोग किया गया था। इसलिये यदि सभा यह चाहती है कि उसे आय व्ययक के विवरण पर तथा वित्त-सम्बन्धी उपबंधों पर विचार-विमर्श के लिये अधिक समय मिले तो संविधान में कोई ऐसा उपबंध रखना होगा जिसके अधीन वह कार्यपालिका को संचित-निधि से निकाल कर एक मुष्ट धन दे सके ताकि वह उसे दो तीन महीने तक व्यय कर सके और इस बीच सभा आय व्ययक के विवरण पर विचार-विमर्श कर सके। चूंकि अनुच्छेद 93 के उपबंध बहुत निर्बन्धक है और वह इस कारण कि जब तक आय व्ययक के पूरे विवरण को स्वीकार न कर लिया जाये तब तक किसी प्रकार का धन व्यय नहीं किया जा सकता है, इसलिये हमें अनुच्छेद 93 के उपबंधों के सम्बन्ध में कुछ अपवाद रखने होंगे। ये अपवाद ''लेखानुदान-सम्बन्धी उपबंधों'' को स्थान देकर ही

किये जा सकते हैं। संविधान में मसौदे में हमने यही तीन मुख्य परिवर्तन किये हैं। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधनों को उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या कोई सज्जन बोलना चाहते हैं?

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, अभी तो भाषण दिया गया है, उसमें जिन नये नामों को हम अपनाने जा रहे है। उनकी कुछ व्याख्या की गई थी तथा उन उपबंधों की भी चर्चा की गई थी जिनके सम्बन्ध में इस समय तक विचार नहीं किया गया था। श्रीमान्, हमारे सामने जिन अनुच्छेदों का मसौदा है, उसकी रूपरेखा 1935 के अधिनियम के आधार पर निश्चित की गई थी। अब माननीय डा. अम्बेडकर उनमें कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं ताकि वित्त-विषयक प्रक्रिया, इंग्लिस्तान की संसद की प्रक्रिया तथा विभिन्न अधिराज्यों की तद्रूप प्रक्रिया के अनुरूप हो सके। इसलिये हमसे ऐसे नामों तथा शब्दों को स्वीकार करने के लिये कहा जा रहा है जिनसे सभा परिचित नहीं है। विद्वान् डाक्टर महोदय ने अपने प्रस्तावों की बहुत ही संक्षिप्त तथा विशुद्ध व्याख्या की है किन्तु यदि इस सभा के कई सदस्य उसके पूरे अर्थ को नहीं समझ पाये हैं तो मैं उनकी बुद्धि को दोष नहीं देता हूं। (*हंसी*) पहली बार हम भारत राजस्व जैसी सुबोध, सुस्पष्ट तथा सुपरिचित पदावलि के स्थान में (क्योंकि अभी तक यही पदावलि विभिन्न प्रयोजनों के लिये प्रयोग में आती रही है और इसे सभी समझते रहे हैं) 'संचित-निधि' पदावलि प्रयोग करने जा रहे हैं। श्रीमान्, जो भाषण दिया गया है उससे यह समझना बहुत कुछ असम्भव ही है कि इस नाम को बदलना क्यों आवश्यक है। प्रयोजन तो बताया गया है किन्तु मेरा समाधान नहीं हुआ है। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि हम ''भारत राजस्व'' पदावलि का ही प्रयोग करते रहेंगे तो इससे क्या हानि होगी क्योंकि इस पदावलि को रहने देने से भी वित्त-विषयक प्रक्रिया में जिन कठिनाइयों को अनुभव किया गया है उन्हें दूर किया जा सकता है। मुझे विश्वास नहीं होता कि इस प्रयोजन के लिये नाम बदलना आवश्यक है। नि:संदेह डा. अम्बेडकर इसके लिये चिन्तित हैं कि आय व्ययक को एक निश्चित तिथि तक पारित करने में कोई निर्वचन हो। यह कहा गया है कि इस सम्बन्ध में कुछ ढील मिलनी चाहिये और भारतीय संसद को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि यदि वह चाहे तो पहली अप्रैल से पश्चात् भी आय-व्ययक पर तथा व्यय पर महीनों तक विचार-विमर्श करती रहे क्योंकि वर्तमान प्रणाली के अधीन उस तिथि तक आय व्ययक का अनुमोदन हो जाना चाहिये। परन्तु यदि केवल यही कठिनाई दूर करनी है तो मेरे विचार से इसके लिये इन सभी अनुच्छेदों की रूपरेखा को ही बदलना आवश्यक नहीं है। केवल इस उपबन्ध के कारण कि चाहे आय-व्ययक पर विचार-विमर्श हुआ हो या न हुआ हो और चाहे वह पारित हुआ हो या न हुआ हो कार्यपालिका को प्रतिदिन का प्रशासन-कार्य करते रहना चाहिये, मेरे विचार से, इतने अनुच्छेदों में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि हम इसके लिये चिन्तित हैं कि हम उसी लीक पर चलें जिस पर इंग्लिस्तान की कामन्स सभा और विभिन्न अधिराज्यों की संसदें चलती हैं तो नि:संदेह प्रस्तावित परिवर्तनों को स्वीकार करना आवश्यक होगा।

नाम को बदलने से और ''भारत की संचित-निधि'' शब्दों को प्रविष्ट करने से एक साधारण व्यक्ति यह निर्वचन करेगा कि यह कोई ऐसी निधि होगी जो भारत-राजस्व से

[डा. पी.एस. देशमुख]

भिन्न होगी उससे उपर के स्तर में स्थित होगी। मुझे तो ''भारत की संचित-निधि'' शब्दों को प्रविष्ट करने का कोई अर्थ नहीं दिखाई देता। इसके अतिरिक्त डा. अम्बेडकर को इसी समय या आगे चल कर ''लेखानुदान'', ''प्रत्ययानुदान'' जैसी पदावलियों को भी स्वीकार करना होगा क्योंकि इन्हें राज्य के वित्त-सम्बन्धी कारोबार तथा आदान-प्रदान के सम्बन्ध में स्वीकार करना होगा। मैं कामन्स सभा की प्रक्रिया का निदेश कर रहा हूं जहां संचित-निधि के अतिरिक्त अन्य भी कई बातें हैं जिन्हें हमें किसी न किसी समय अवश्य ही स्थान देना होगा। डा. अम्बेडकर ने लेखानुदान की यह व्याख्या की है कि वह किसी विभाग के वार्षिक व्यय की पूर्ण तथा विस्तृत विवरता के साथ दी जाने वाली मंजूरी के पहले उसके व्यय के प्राक्कलन के आधार पर दिया जाने वाला अग्रिम धन है। इसके अतिरिक्त प्रत्यानुदान के लिये भी उपबंध रखना होगा। यद्यपि अभी उसकी व्याख्या नहीं की गई है किन्तु आगे चल कर उसे भी प्रविष्ट करना होगा। इंग्लिस्तान की संसद ने उसकी इस प्रकार परिभाषा की है कि ''वह एक अप्रत्याशित मांग होगी जो इंग्लिस्तान के राजस्व पर भारित होगी जैसे कि साम्राज्य की प्रतिरक्षा अथवा सैनिक सेवा के प्रयोजन के लिये।'' ''सेवा की महत्ता तथा उसके अनिश्चित रूप के कारण यह मांग उस विवरण के साथ नहीं की जा सकती जो अपेक्षित कुछ धन की मांग के आवेदन-पत्र पर आधृत तथा संसद के सम्मुख उपस्थित की जाने वाली साधारण प्राक्कलन में दी जाती है, इत्यादि।''

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, हम बहुत कुछ उसी प्रक्रिया को स्थान देंगे जो इंग्लिस्तान संसद में प्रयुक्त है। मुझे अभी इस सम्बन्ध में पूर्णतया समाधान नहीं हुआ है कि हमें अपनी वित्त-विषयक आदान-प्रदान की प्रणाली को बदल देना चाहिये क्योंकि वह समय की कसौटी पर कसी जा चुकी है। इस कठिनाई के अतिरिक्त अप्रैल तक विचार-विमर्श समाप्त नहीं हो पाता अभी तक हमारे सामने और कोई कठिनाई उपस्थित नहीं हुई है। यदि विद्वान डाक्टर महोदय यह कह सकते हैं कि जब तक हम इस व्यवस्था में परिवर्तन नहीं करते तब तक हमें ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा जिन्हें हल ही नहीं किया जा सकता और भारत की स्वाधीन संसद के लिये कार्य करना ही असम्भव हो जायेगा, तभी हम उनकी प्रार्थना को तथा उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते हैं। श्रीमान्, यह मेरी समझ में नहीं आता कि बिना संचित निधि को स्थापित किये हुये, बिना प्रत्ययानुदान के लिये उपबंध रखे हुये और बिना लेखानुदान के लिये उपबंध रखे हुये भारत के वित्त का प्रबंध करना असम्भव हो जायेगा। जो पदावलियां प्रचलित हैं वे सभी को विदित हैं और जो प्रक्रिया चलन में है वह भी सुस्थापित है। मैं बिल्कुल ही नई पदावलियों को स्वीकार करने की अपेक्षा पहले की पदावलियों को ही तथा पहले के उपबंधों को ही प्रयोग में लाना अधिक पसन्द करूंगा। मैं यह इस कारण कह रहा हूं कि प्रस्तावक महोदय के भाषण को ध्यानपूर्वक सुनने पर भी मैं यह नहीं समझ पाया हूं कि इन अनुच्छेदों की रूपरेखा को ही बदलना क्यों आवश्यक है। मैं यह कह चुका हूं कि एक कठिनाई के अतिरिक्त हमारे सामने कोई भी ऐसी कठिनाई नहीं है जो वर्तमान उपबंधों से अथवा मसौदे

के उपबंधों से दूर नहीं हो सकती है। इसलिये, श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि उचित यही होगा कि हम सुपरिचित पदावलि तथा प्रक्रिया को रहने दें। आखिर इस प्रक्रिया में कोई ऐसी पेचीदा बात तो नहीं है। आधारभूत सिद्धांत यह है कि जब तक संसद की मंजूरी न मिल जाये किसी राज्य के राजस्व का विनियोग न हो। इस उपबंध के सम्बन्ध में मेरे मित्र श्री सिधवा ने भी इस पर जोर दिया कि महालेखापरीक्षक को भी धन के किसी भी आदान-प्रदान को तब तक स्वीकार न करना चाहिये जब तक उसे यथोचित स्थान न दिया गया हो और संसद द्वारा उसका अनुमोदन न हो गया हो। इन सब बातों का अर्थात् इसका कि बिना संसद की मंजूरी के किसी व्यय के लिये अनुदान न दिया जायेगा और धन व्यय नहीं किया जायेगा, वर्तमान उपबंधों से हनन नहीं होता है और इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यदि संभव हो तो हम इन नई पदावलियों को स्वीकार न करें क्योंकि भले ही वे इंग्लिस्तान की संसद के लिये उपयोगी हों किन्तु हमारे लिये उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। एक विदेशी सरकार के अधीन भी हम अपने वित्त का समुचित प्रबन्ध कर सके हैं। उस काल का एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दिया जा सकता जैसा कि भारत की स्वाधीन संसद के सम्मुख रखा गया था, जब कि बिना संसद को बताये हुये अथवा अन्यत्र उल्लेख किये हुये करोड़ो रुपया का विनियोग किया गया था। इस प्रकार की आकस्मिकता का सामना अंग्रेजों के काल में भी नहीं करना पड़ा था यद्यपि इन्हीं उपबंधों के अधीन सारे देश का वित्त-सम्बन्धी प्रशासन होता था। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यदि पुरानी पदावलि को रखना सम्भव हो और हम अपने को उन्हीं तक सीमित रखें तो अपरिचित उपबंधों को प्रविष्ट करने की अपेक्षा पुराने उपबंधों को ही रहने देना श्रेयस्कर होगा। मेरा यह विचार है कि संसद के कई वकील सदस्यों के विभिन्न निर्वचनों तथा व्याख्याओं से भी हम बहुत कठिनाई में पड़ जायेंगे। जिस कठिनाई की मैं चर्चा कर चुका हूं, यदि उसके अतिरिक्त और कोई कठिनाई नहीं है तो मुझे इसका समाधान नहीं हो पाया है कि पूर्ण रूप-रेखा को ही बदलना आवश्यक है।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं अपने तीस वर्ष के संसद के अनुभव के आधार पर बिना किसी अतिशयोक्ति के यह कह सकता हूं कि धन-विधेयकों तथा आय-व्ययकों पर विचार-विमर्श करने के लिये विभिन्न विधान मंडलों में जिस प्रक्रिया तथा प्रणाली का अनुसरण किया जाता है वह हास्यास्पद तो है ही परन्तु साथ ही उससे लोगों का समय भी नष्ट होता है। मुझे ज्ञात नहीं है कि किसी भी विधान मंडल में कोई सदस्य अभी तक आय-व्ययक पर विचार-विमर्श होते समय किसी शीर्षक के अधीन व्यय की किसी धनराशि को कम कर सका है। 1935 के अधिनियम के अधीन और उसके पूर्व भी जहां तक राज्य के वित्त का सम्बन्ध था, सारी शक्ति कार्यपालिका में निहित होती थी। केवल संसार को दिखाने के लिये ही मांगें और आय विधान मंडल के सामने रखे जाते थे और कुछ दिन के विचार-विमर्श के उपरांत विधान मंडल को व्यय के सम्बन्ध में अथवा आय के सम्बन्ध में सभी शीर्षकों को स्वीकार कर लेना होता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दो आय-व्ययकों के सम्बन्ध में संसद में हमने पहले की ही प्रक्रिया को स्वीकार किया। यद्यपि पिछले सत्र में बहुत शिकायत करने पर विचार-विमर्श के लिये कुछ दिन दिये गये थे किन्तु हम आय-व्ययक में वर्णित आय के सम्बन्ध में अथवा व्यय के सम्बन्ध में कुछ भी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके और न कोई सुझाव

[श्री आर.के. सिधवा]

ही को प्रविष्ट करा सके। इसलिये मैं डा. अम्बेडकर के उपस्थित संशोधन का स्वागत करता हूं। यह बहुत ही उपयुक्त संशोधन है और वास्तव में मुझे अपने मित्र डा. देशमुख के इस कथन से आश्चर्य हुआ कि वर्तमान प्रणाली में अथवा नामावली में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बिना विधान मंडल के कुछ कहे सुने ही करोड़ों रुपये संगृहीत किये गये और करोड़ों व्यय किये गये। इस अनुच्छेद के प्रारम्भिक मसौदे के अधीन भी, मैं यह कह सकता हूं कि सदस्यों को धन-विधेयकों अथवा आय-व्ययक पर निर्णय करने का कोई अवसर नहीं मिलता। इसलिये यह संशोधन उचित अवसर पर ही उपस्थित किया गया है।

डा. देशमुख ने अपना तर्क उपस्थित करते हुये यह कहा था कि ये सब बातें संसद के लिये छोड़ देनी चाहिये। इस प्रकार के विषय संसद के लिये नहीं छोड़े जाने चाहिये बल्कि इनका संविधान में ही समावेश होना चाहिये। डा. अम्बेडकर के संशोधन उपस्थित करने के पश्चात् एक मंत्री महोदय ने खुली तौर से यह कहा कि वर्तमान प्रक्रिया दोष मुक्त है और डा. देशमुख के समान उन्होंने भी कहा कि किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता नहीं है। मुझे यह ज्ञात है कि यदि सदस्यों को कुछ छूट अथवा विशेषाधिकार दिये जायेंगे तो मंत्री आपत्ति करेंगे ही क्योंकि दो सत्रों के अपने अनुभव से मैं यह कह सकता हूं कि मंत्री तो यह चाहते हैं कि जितनी जल्दी आय-व्ययक पर विचार-विमर्श समाप्त हो जाये उतना अच्छा हो क्योंकि इस अवसर पर उनकी आलोचना होती है। यदि यह संसद के निर्णय के लिये छोड़ दिया गया तो मुझे इसका विश्वास है कि सब मंत्री एक हो कर अथवा तत्कालीन सरकार संगठित होकर इस प्रयोजन के लिये जो भी विधि बनाई जायेगी उसका विरोध करेगी। इसलिये यह समुचित ही है कि इस प्रकार का उपबंध संविधान में प्रविष्ट किया जाये। जहां तक राज्य के वित्त का सम्बन्ध है कोई ऐसी कमी न रहने दी जानी चाहिये जिससे आगे की कोई सरकार लाभ उठाये।

आय-व्ययक पर विचार-विमर्श होते समय क्या होता है? किसी महत्त्वपूर्ण वित्त-सम्बन्धी विषय पर विचार प्रकट करने के लिये एक सदस्य को पांच या दस मिनट मिलते हैं। इतने समय में वह अपने विचार सभा के सम्मुख समुचित रूप से तथा स्पष्ट रूप से नहीं रख सकता है। कई सदस्य बोलना चाहते हैं और मांगों पर विचार करने के लिये जो सात दिन दिये जाते हैं उस समय में कुछ भी नहीं हो पाता। पिछले सत्र में सदस्यों के चीख पुकार करने पर तीन दिन और दिये गये किन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता हूं कि ये तीन दिन भी सदस्यों को केवल अपने विचार व्यक्त करने के लिये दिये गये और कोई ठोस काम नहीं हो पाया। हम यह चाहते हैं कि कार्यपालिका जिस शीर्षक के अधीन भी धन व्यय करती है उसके सम्बन्ध में सदस्यों को मतप्रकाश का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये। दुर्भाग्य से बहुत कम सदस्य आय-व्ययक में दिलचस्पी रखते हैं। सम्भवत: वे उसे समझ नहीं पाते हैं। वित्त का विषय बहुत पेचीदा विषय होता है और सदस्य स्पष्टत: कुछ नहीं समझ पाते। कार्यपालिका आकस्मिकता से शीर्ष के अधीन और अन्य शीर्षकों के अधीन लाखों रुपयों का व्यय दिखाती है और उसका कोई विवरण नहीं देती है। सभा को उसे स्वीकार करना होता है। क्या अब भी आप कार्यपालिका को इस प्रकार की शक्ति देना चाहते हैं। जब तक सदस्यों को सभा के सम्मुख अपने विचार व्यक्त

करने का अवसर न दिया जायेगा तब तक हम सरकार को किस प्रकार प्रभावित कर सकेंगे? किसी भी सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने विचारों को तथा अपने निर्वाचक मंडल के विचारों को सभा के सम्मुख रखे अन्यथा वह विधान सभा के लिये निर्वाचित होने की पात्रता नहीं रखता। हमारे देशवासी यह जानना चाहते हैं कि किस प्रकार के कर लगाये जा रहे हैं, उनकी क्या आवश्यकता है और उनसे संगृहीत धन को किस प्रकार व्यय करेगी। यदि सदस्यों को अपने तथा अपने निर्वाचकों के विचारों को व्यक्त करने का अवसर न दिया जायेगा तो उनके विधान मंडल के सदस्य होने का कोई अर्थ न होगा। यह समझ में आने वाली बात थी कि कार्यपालिका विधान मंडल को शक्ति नहीं देना चाहती थी। आज हम अपने प्रभु स्वयं हैं किन्तु डा. देशमुख ने यह करके धृष्टता की है ''कि वे यह सब कुछ नहीं चाहते हैं, वर्तमान प्रक्रिया बहुत अच्छी है, नामावली को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है और संसद अपना कर्त्तव्य निभायेगी।'' यह सुन कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मेरी तो यह धारणा थी कि सभा का प्रत्येक सदस्य एक ऐसे प्रस्ताव का स्वागत करेगा जिसके अनुसार वह अपने अधिकार यथोचित रूप से प्रयोग कर सकेगा। मैं स्वागत करता हूं और इसे फिर कहना चाहता हूं कि यदि आप इस विषय को संसद के निर्णय के लिये छोड़ देंगे तो सब मंत्री एक हो जायेंगे और आपको आय-व्ययक के विवरण पर विचार न करने देंगे। इसलिये जिस उपबंध का डा. अम्बेडकर ने सुझाव रखा है उसे संविधान में समाविष्ट करना बहुत आवश्यक है। संसद के पिछले दो सत्रों के अनुभव के आधार पर, मुझे विश्वास है कि सभा मसौदा समिति की इसलिये प्रशंसा करेगी कि उसने ठीक निर्णय किया है यद्यपि देर करके किया है। राज्य के वित्त की महालेखापरीक्षक देखरेख करेगा ही किन्तु सदस्यों को भी उसकी देखरेख करनी चाहिये। कर्मचारियों के वेतन आदि के लिये हम कुछ धनराशि प्रत्ययानुदान के रूप में 31 मार्च के पूर्व दे सकते हैं। उसके उपरान्त सभा को प्रत्येक विषय पर विचार करने के लिये तथा मांगों की राशि को कम करने या बढ़ाने के लिये पर्याप्त समय मिलेगा। तब कार्यपालिका के लिये सभा के सुझावों को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा न रह जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुखः** क्या आपका उद्देश्य यही है?

***श्री आर.के. सिधवाः** मेरी दृष्टि में कई अन्य बातें भी हैं किन्तु उन सबका संविधान में समावेश नहीं हो सकता है। आपका इस उपबंध के आधारभूत सिद्धांत से ही विरोध है। आपका भाषण सुनकर मेरी यह धारणा हुई कि आप वर्तमान स्थिति को बनाये रखना चाहते हैं। मुझे इस पर बहुत आपत्ति है।

***डा. पी.एस. देशमुखः** मेरा यह विचार नहीं था।

***श्री आर.के. सिधवाः** यदि आप अपने विचारों को स्पष्टतया नहीं व्यक्त कर सकते हैं तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। यदि आपका यह विचार नहीं था तो मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई है।

[श्री आर.के. सिधवा]

इस महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव का यह भाग पिछली बार स्थगित कर दिया गया था। सभा को डा. अम्बेडकर के उपस्थित किये हुये संशोधन को एकमत से स्वीकार कर लेना चाहिये। मैं इस संशोधन का स्वागत करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने जिस संशोधन का प्रस्ताव उपस्थित किया है उससे पिछले कई वर्षों से हम आय-व्ययक सम्बन्धी जिस प्रक्रिया तथा प्रथा से परिचित हैं उसमें कुछ नवीनता उत्पन्न होती है। मैं यह कहूंगा कि संसद में आय-व्ययक को पारित कराने के लिये यह एक तंत्र है और इसलिये इसका सम्बन्ध प्रक्रिया से है न कि किसी सिद्धांत से।

इसके पूर्व कि मैं इस संशोधन द्वारा होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में बोलूं मैं इसमें सन्निहित संविधान के आधारभूत सिद्धांतों के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं, क्योंकि यदि उन्हें स्पष्ट न किया गया तो उनके सम्बन्ध में भ्रम हो सकता है।

मेरे विचार से यह बहुत ही उपयुक्त सिद्धांत है कि जब तक किसी विधि द्वारा कोई कर आरोपित न हो तब तक वह न लगाया जायेगा। संविधान में इसी प्रकार इस उपयुक्त उपबंध को भी संविधान में समाविष्ट करना चाहिये कि जब तक विधान मंडल से प्राधिकार प्राप्त न हो तब तक कोई कर आरोपित न किया जायेगा। यह हमारे संविधान का एक आधरभूत सिद्धांत है। यह एक समुचित सिद्धांत है और संविधान में इसका समावेश होना ही चाहिये।

इसके अतिरिक्त जब तक संसद अधिनियम द्वारा प्राधिकार प्रदान न करे तब तक कोई धन व्यय नहीं किया जा सकता और वह केवल विधान मंडल के संकल्प के आधार पर व्यय नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ यह है कि दो अधिनियम आवश्यक होंगे एक वित्त अधिनियम और दूसरा विनियोग अधिनियम और दोनों को पृथक् रूप से स्वीकार करना होगा। एक के द्वारा वार्षिक राजस्व को संग्रह करने के लिये प्राधिकार तथा मंजूरी प्राप्त होगी और दूसरे से विधान मंडल के अधिनियम के आधार पर धन-व्यय करने की मंजूरी प्राप्त होगी।

इस संशोधन में ये समुचित सिद्धांत सन्निहित है। प्रस्ताव के अन्य भाग अर्थात् लेखानुदान और प्रत्यानुदान प्रक्रिया-सम्बन्धी प्रक्रिया के विवरण सम्बन्धी अथवा संसद की समय सारिणी सम्बन्धी विषय हैं जिनके आधार पर आय-व्ययक संसद में निश्चित समय में पारित हो सकेगा। मेरे विचार से सुविधाजनक यही होगा कि इन विषयों का निर्णय संसद के लिये छोड़ देना चाहिये और इन्हें संविधान का अंग न बनाना चाहिये।

मुझे इस सभा में कभी संविधान में अत्यधिक विवरण प्रविष्ट करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जिसका अनुसरण करना इस समय की परिवर्तनशील स्थिति में तथा इस परिवर्तनशील संसार में बहुत कठिन हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त यदि इस व्यवस्था को स्वीकार किया जाये कि लेखानुदान तथा प्रत्ययानुदान को तथा प्राक्कलनों को जब कभी और जहां कहीं आवश्यक हो, प्रविष्ट किया

जा सकता है है तो इससे न संसद की प्रभुत्ता पर आघात होता है और न उसके देखरेख करने के तथा वित्त-सम्बन्धी प्रशासन के अधिकारों पर ही आघात होता है। इसे हम सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु वास्तव में अनुभव यह रहा है कि सदस्य देखरेख करने की अपेक्षा चर्चा ही अधिक करते हैं। चर्चा करने के अतिरिक्त अन्य बातों के लिये कोई उपबन्ध नहीं है। वर्तमान समय-सारिणी के अधीन देश के वित्त की देखरेख तथा परीक्षा करने के लिये उपबन्ध रखना बहुत कुछ असम्भव ही है। संविधान को सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न लोग अपनी प्रभुता को प्रवर्त्तन में लाते हुये निर्माण करते हैं और मेरे विचार से उसमें उन विभिन्न अनुदानों और प्रक्रियाओं का समावेश करना अनावश्यक है जिनके आधार पर विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में उपबंध रखे जा सकते हैं।

किन्तु संसद के अधिनियम द्वारा विधान मंडल का प्राधिकार बड़ी गम्भीरतापूर्वक प्रदान किया जाता है और वह इस विषय के सम्बन्ध में परमावश्यक है। किन्तु इस विषय के सम्बन्ध में संसद द्वारा निर्मित नियमों में भी उपबंध रखे जा सकते हैं ताकि आय-व्ययक की विभिन्न अवस्थाओं का और सभा के सम्मुख वित्त-अधिनियम तथा विनियोग-अधिनियम के रूप में उपस्थित आय-व्ययक के परिणामों का विनियमन हो सके और देश की आवश्यकताएं पूरी हो सकें तथा इस प्रकार की विधि के निर्माण के सम्बन्ध में संसद की प्रभुता बनी रह सके।

मेरे विचार से कुछ सदस्य इस संशोधन के स्वरूप को तथा इसके उद्देश्य को यथोचित रूप से नहीं समझ पाये हैं क्योंकि उन्होंने यह विचार व्यक्त किया है कि जिस उपबंध पर हम इस समय विचार कर रहे हैं उससे कार्यपालिका की शक्ति कम हो जायेगी और विधान मंडल की शक्ति बढ़ जायेगी। इस संशोधन में इस प्रकार का कोई सुझाव नहीं है। इस संशोधन द्वारा संसद को वित्त प्रशासन के सम्बन्ध में अधीक्षण, परीक्षण, विनियमन तथा विनिश्चयन की जो शक्ति प्राप्त हो जाती है उससे राष्ट्रीय वित्त का समुचित प्रशासन सुनिश्चित हो जायेगा। किन्तु मैं इसे फिर दुहराना चाहता हूं कि संविधान में इतना विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि डा. अम्बेडकर ने कहा है कि ये बात इंग्लिस्तान की प्रणाली से ली जा रही है परन्तु वहां की व्यवस्था में और इस व्यवस्था में भेद हैं। वहां की प्रणाली की पूरी तौर से नकल भी नहीं की जा रही है क्योंकि प्रत्ययानुदान और प्राक्कलनों को स्थान नहीं दिया गया है। आपात की दशा में ही नहीं बल्कि साधारण वाणिज्यिक और आर्थिक संकट के उपस्थित होने पर भी उनकी बड़ी आवश्यकता पड़ सकती है। इसका उल्लेख नहीं किया गया है कि जब आय-व्ययक विधान मंडल में विभिन्न अवस्थाओं में होगा तो प्राक्कलनें उन अवसरों पर किस रूप में उपस्थित की जायेंगी क्योंकि उनके आधार पर सभा धन व्यय करने वाले विभागों की नीति पर विचार कर सकती है।

संशोधन में दो निधियों को अर्थात् संचित-निधि को और आकस्मिकता निधि को जिस रूप में स्थान दिया गया है उसके कारण उनकी व्याख्या करना आवश्यक है। संचित-निधि की स्थापना कुछ ऐसे व्ययों के कारण आवश्यक हो गई है जिन पर संसद प्रत्येक वर्ष अपनी इच्छानुसार मत नहीं दे सकती है जैसे कि असैनिक सूची का व्यय, न्यायाधीशों का वेतन, राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज इत्यादि। यद्यपि संशोधन में यह कहा गया है कि संचित-निधि

[प्रो. के.टी. शाह]

केवल राजस्व का संग्रह मात्र है और यह समुचित भी कहा जा सकता है किन्तु साथ ही संचित-निधि के उद्‌भव तथा स्वरूप को भी दृष्टि से ओझल न होने देना चाहिये।

आकस्मिकता निधि के सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता हूं। मुझे स्मरण नहीं है कि इंग्लिस्तान की प्रणाली के अधीन इसके अनुरूप कोई निधि है या नहीं। यदि है भी तो कई स्थितियों में, जो हम सभी को विदित है, उसका दुरुपयोग हो सकता है। इसलिये मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की निधि के लिये हम संविधान में उपबंध क्यों रखे जा रहे हैं। किसी विशेष आवश्यकता के पड़ने पर अथवा आपात के उपस्थित होने पर संसद यदि आवश्यक समझे तो इस प्रकार की निधि स्थापित कर सकती है। मेरे विचार से इन विषयों के सम्बन्ध में संसद को पूर्ण सत्ता प्राप्त है और यह यथोचित व्यवस्था कर सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि इस देश की आधारभूत विधि में कोई ऐसा सांविधानिक प्राधिकार उपबन्धित किया जाये जिसके अधीन संसद यह व्यवस्था कर सके क्योंकि संसद को वित्त सम्बन्धी उच्चतम प्राधिकार प्राप्त होगा ही। प्रक्रिया तथा समय-सारिणी के सम्बन्ध में सभी विषयों का विनियमन संसद को करना चाहिये चाहे वह आकस्मिकता निधि को स्थापित करने का विषय हो अथवा तात्कालिक आपात के सम्बन्ध में उपबंध रखने का विषय हो। मेरे विचार से यह कोई समझदारी की बात न होगी कि भविष्य की संसद को ऊपर से सुविधाजनक प्रतीत होने वाले उपबंधों से बांध दिया जाये। मेरे विचार से इनका दुरुपयोग होगा और इसलिये मेरी यह इच्छा होती है कि मैं इनका विरोध करूं।

सभी बातों का विचार करने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि इन परिवर्तनों से यद्यपि प्रक्रिया में सुधार होता है किन्तु संविधान में अत्यधिक विवरण प्रविष्ट हो जाता है जिनके कारण आधारभूत तथा समुचित सिद्धांतों से ध्यान हट जायेगा और भले ही हम इस चेतावनी की ओर ध्यान न दें परन्तु भविष्य में कई अवसरों पर इनका दुरुपयोग किया ही जायेगा।

***श्री जगतनारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने इस संशोधन के पक्ष में जो तर्क उपस्थित किये हैं, तथा श्री सिधवा ने जो जोरदार भाषण दिया है, उसे समझने का मैंने प्रयास किया है। मेरे विचार से डा. अम्बेडकर ने हमें बताया कि इंग्लिस्तान में संचित-निधि किस प्रकार स्थापित की गई और उसका क्या इतिहास रहा है। मैं कह नहीं सकता कि हमारे देश में कई वर्षों से व्यय की तथा आय-व्ययक के व्यय की जिस प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है उससे उस इतिहास की संगति है या नहीं। मेरे विचार से यहां कभी भी वैसी कठिनाई अथवा असुविधा का अनुभव नहीं किया गया जैसी कठिनाई का अनुभव इंग्लिस्तान में संचित-निधि स्थापित करते समय किया गया था। उन्होंने बताया कि इस निधि का उद्‌भव वहां किस प्रकार हुआ, अर्थात् उन्होंने यह बताया कि उसे स्थापित करने का कारण यह था कि सम्राट धन का दुरुपयोग करता था। मुझे इस परिवर्तन के समर्थन में श्री सिधवा के जोरदार तर्क को सुनकर आश्चर्य हुआ विशेषतया जब उन्होंने यह कहा कि इससे आय-व्ययक पर लोग देख-रेख कर सकेंगे। यदि वे वास्तव में यह समझते होते कि संचित-निधि और आकस्मिकता-निधि क्या है तो मेरे

विचार से वे इसके विरोध में तर्क उपस्थित करते। मैं कामन्स सभा के ''मैनुअल आफ प्रोसीड्यूअर फार पब्लिक बिजिनेस'' नाम के एक प्रकाशन के पृष्ठ 164 में इस विषय के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसे सभा को पढ़ कर सुनाऊंगा:

> ''संचित-निधि का उद्देश्य यह है कि सरकार की संचित-निधि से, उन विभागों की सेवा के लिये जिनके व्यय के लिये धन अनुदान के रूप में दे दिया गया हो, ऐसी धनराशियां निकालने की शक्ति प्राप्त हो जाये जिनकी विनियोग-अधिनियम द्वारा अन्तिम मंजूरी मिलने के पहले आवश्यकता पड़े।''

यह वर्णन उनकी कल्पना के विपरीत है। संशोधन का उद्देश्य यही है कि अनुच्छेद 90 के खंड (1) में ''भारत राजस्व'' शब्दों के स्थान में ''संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि'' शब्द प्रविष्ट किये जायें। भारत राजस्व के स्थान पर, जिससे धन निकाल कर मंजूर किये हुये आय-व्ययक के अनुसार ही धन व्यय किया जा सकता था संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि स्थापित की जा रही है और उद्देश्य यह है कि सरकार बिना किसी कठिनाई के इससे धन निकाल कर व्यय करती रहे। मुझे आश्चर्य है कि इसकी आवश्यकता आ पड़ी है। मैं डा. अम्बेडकर से पूछता हूं कि ऐसा क्यों किया जा रहा है। पहले तो, जैसा कि डा. देशमुख कह चुके हैं 'संचित-निधि'' शब्दों से लोगों को भ्रम होगा विशेषतया जब कि उनका यह भी निर्वचन हो सकता है कि बिना विनियोग-अधिनियम के पारित हुये भी धन व्यय करने का अधिकार होगा। इस पदावली का गलत निर्वचन ही न होगा बल्कि इसकी कड़ी आलोचना भी की जायेगी। इसलिये मैं चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर इस पर विचार करें कि क्या इस पदावली को समाविष्ट करना आवश्यक है और क्या इस अनुच्छेद को तद्रूप स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता हूं और मुझे आशा है कि मैने जो कुछ कहा है उस पर विचार किया जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, अपने उन दो मित्रों के भाषणों को सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ है जिन्होंने डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर कुछ सन्देह प्रकट किया है। जिन संशोधनों की सूचना दी गई है उनको मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा और इंग्लिस्तान की संसद में जो प्रक्रिया व्यवहार में है उसका भी अध्ययन किया। श्रीमान्, मैं संयुक्त प्रान्त की विधान सभा का लगभग दस वर्ष तक सदस्य रहा हूं और इस सभा का पिछले तीन वर्ष से सदस्य हूं और मेरे सामने कई आय-व्ययक पारित हुये हैं किन्तु मुझे स्मरण नहीं है कि प्रान्त में अथवा केन्द्र में आय-व्ययक के प्रस्तावों में किसी भी अनुदान के अधीन किसी भी विषय में कभी भी कोई परिवर्तन हुआ था। होता यह है कि वित्त मंत्रणालय एक छपी हुई पुस्तक उपस्थित करता है जिसमें सभी प्राक्कलनों का विवरण होता है। जब आय-व्ययक को प्रान्तीय विधान सभा में अथवा केन्द्रीय विधानसभा में उपस्थित किया जाता है तो प्राक्कलनों की छपी हुई प्रतियां सदस्यों में वितरित की जाती हैं और उन्हें अपनी आपत्तियों को प्रकट करने का तथा प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में कुछ कहने का अवसर दिया जाता है और तब उन्हें एक निश्चित तिथि तक आय-व्ययक को पारित कर देना होता है। मैं सभा से पूछता हूं कि क्या हमें, जिन्हें देश ने यहां अपने धन की देखरेख करने के लिये भेजा है, केवल वित्त-मन्त्रणालय द्वारा उपस्थित प्राक्कलनों की पुस्तिका का अनुमोदन करके संतुष्ट हो जाना चाहिये? श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यद्यपि इसके लिये देर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

हो गई थी परन्तु इस समय भी प्रक्रिया के सम्बन्ध में इन संशोधनों को उपस्थित करके, जिनके फलस्वरूप वह इंग्लिस्तान की प्रक्रिया के अनुरूप हो जायेगी डा. अम्बेडकर ने बहुत बड़ी सेवा की है। सम्भवत: अभी तक यहां जिस प्रक्रिया का अनुसरण होता रहा है उसके हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें अब वही प्रिय लगती है। हम अभी इतने वर्षों के दासत्व से छुटकारा नहीं पा सक रहे हैं और यह विचार करते हैं कि जो कुछ होता आया है वही होता रहे। यदि हमने इसका पुनर्विलोकन किया होता कि इंग्लिस्तान की संसद में किस प्रकार प्राक्कलनों के प्रत्येक शीर्षक की परीक्षा की जाती है तो हम अनुभव करते कि डा. अम्बेडकर के संशोधनों का क्या महत्त्व है। सभा को चाहिये कि वह इन संशोधनों का हृदय से अनुमोदन करे। श्रीमान्, इंग्लिस्तान की संसद में वर्ष के आरम्भ में सम्राट के भाषण के पश्चात् कामन्स सभा अपने को सम्भरण समिति के रूप में परिणत करने के लिये तथा उसके सम्मुख उपस्थित प्राक्कलनों पर विचार करने के लिये एक तिथि निश्चित करती है। प्राक्कलनें चार भागों में उपस्थित की जाती हैं अर्थात् नौ-सेना के लिये प्राक्कलनें, थल-सेना के लिये प्राक्कलनें, वायु-सेना के लिये प्राक्कलनें तथा असैनिक विषयों के लिये प्राक्कलनें, ताकि सभा उन पर अलग अलग विचार कर सके। वहां इस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। सभा सम्भरण-समिति में परिणत हो जाती है और यह प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है कि ''अध्यक्ष महोदय पीठासीन न रहे''। इस प्रस्ताव पर प्रत्येक प्राक्कलन के सम्बन्ध में एक-दो दिन तक वाद-विवाद होता है और फिर सभा सभी प्राक्कलनों पर सामान्य रूप से विचार-विमर्श करती है। इस प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने पर सारी सभा सम्भरण-समिति का रूप धारण कर लेती है।

***डा. पी.एस. देशमुख:** क्या मेरे माननीय मित्र ने प्रस्तावित संशोधनों पर इस प्रकार के संशोधनों को देखा है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं आपसे कहता हूं कि संविधान में केवल उन्हीं संशोधनों को उपबन्धित करने की आवश्यकता है जिनके फलस्वरूप संसद इंग्लिस्तान की संसदीय प्रक्रिया को स्वीकार कर सके। यह आवश्यक नहीं है कि इंग्लिस्तान में जो कुछ किया जाता है उसका प्रत्येक ब्यौरा संविधान में रखा जाये। ये प्रक्रिया-सम्बन्धी विषय संसद के नियमों में उपबन्धित किये जा सकते हैं। किन्तु प्रक्रिया के वे अंश जिन्हें संविधान के अधिनियम में प्रविष्ट करना आवश्यक है इन संशोधनों में उपबन्धित हैं। इसलिये, श्रीमान्, यदि हम इंग्लिस्तान में प्रयुक्त प्रणाली को स्वीकार करना चाहते हैं तो यह संशोधन आवश्यक है।

इसके पश्चात् सम्भरण-समिति में विचार-विमर्श के लिये 20 दिन की अवधि निश्चित की जाती है। इस बीच प्राक्कलनों पर विचार-विमर्श होता है और उनकी सावधानी से परीक्षा की जाती है। समिति में प्रत्येक सदस्य जितनी बार चाहे बोल सकता है। हमारे यहां इस समय आय-व्ययक के उपस्थित होने पर कोई भी सदस्य एक बार से अधिक नहीं बोल सकता है। किन्तु यदि वास्तव में हम प्राक्कलनों में परिवर्तन करना चाहते हैं तो हमें कई बार बोलने का अवसर मिलना चाहिये। इस प्रकार जब सभा सम्भरण समिति का रूप धारण कर लेती है तो सारे विषय के प्रत्येक अंग पर विचार किया जाता है। यह

स्मरण रखना चाहिये कि इस बीस दिनों में कामन्स सभा की बैठक प्रत्येक दिन नौ-दस घंटे तक समवेत रहती है। इस समय में प्रत्येक प्राक्कलन की सावधानी से छानबीन तथा परीक्षा की जाती है और बीसवें दिन सब कुछ स्वीकार कर लिया जाता है और अध्यक्ष के समक्ष तत्सम्बंधी एक प्रतिवेदन उपस्थित किया जाता है। प्रतिवेदन पर विचार करने के लिये सभा फिर समवेत होती है और फिर वादानुवाद होता है। इस प्रकार प्रत्येक प्राक्कलन पर आरम्भ में एक-दो दिन तक वादानुवाद होता है और फिर समिति सभी प्राक्कलनों पर विस्तृत रूप से विचार करती है। प्रतिवेदन पर विचार करते समय फिर वाद-विवाद हो सकता हैं। इस प्रकार सारे आय-व्ययक पर विस्तृत रूप से विचार किया जाता है और प्राक्कलनों में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि संसद के सदस्य उन सभी बातों को स्वीकार कर लें जिन्हें सरकार उनके सामने रखे। वे उनमें देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर परिवर्तन करते हैं। सम्भरण समिति के अतिरिक्त एक साधन-समिति भी होती है। सम्भरण-समिति व्यय स्वीकार करती है और साधन-समिति आय-कर-सम्बन्धी विधियों आदि को बदल कर उस व्यय के लिये धन प्राप्त करने का उपाय करती है। इसके लिये भी दस दिन की निश्चित अवधि रहती है और इस बीच नये करों की प्रस्थापनाओं की सावधानी से परीक्षा की जाती है और सम्भरण समिति के प्रतिवेदन उपस्थित करने के पश्चात् साधन-समिति समवेत होती है और उन प्राक्कलनों को स्वीकार करती है। इस प्रकार, श्रीमान्, पारित होने के पूर्व सभी बातों की यथोचित छानबीन होती हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं, चार प्रकार की प्राक्कलनें होती हैं और सभा में खुली तौर पर बारह बार वाद-विवाद होता है। इसके अतिरिक्त सम्भरण-समिति तथा साधन-समिति में विस्तृत रूप से छानबीन होती है। इस प्रकार यह समझ में आ गया होगा कि संसद बिना सावधानी से विचार किये हुये अथवा बिना संसद के सदस्यों के मतदान के एक कौड़ी भी व्यय नहीं करती है। यह सभी को विदित है कि इस समय भारत में पूरा सामान्य वादानुवाद और कर्त्तन-प्रस्तावों पर वादानुवाद सात दिन में समाप्त हो जाता है और फिर पूरा आय-व्ययक अन्तिम रूप से पारित हो जाता है और हमें प्राक्कलनों पर फिर से विचार करने का कभी अवसर ही नहीं मिलता। अन्त में मुखबन्ध का प्रयोग किया जाता है और सब कुछ पारित हो जाता है। वास्तव में इसका अर्थ यह है कि सभा को अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने का अवसर ही नहीं मिलता और वित्त-मन्त्रणालय जो कुछ कहता है उसे स्वीकार कर लिया जाता हैं। इसलिये मैं इन संशोधनों के लिये डा. अम्बेडकर का अत्यन्त कृतज्ञ हूं और मेरे विचार से आने वाली पीढ़ियां भी उनकी कृतज्ञ होंगी क्योंकि उनके द्वारा संविधान में यह उपबन्धित हो जायेगा कि कोषाधिकारी संसद की शक्ति के अधीन रहेगा। अब संसद प्राक्कलनों की छानबीन कर सकेगी और अपने मतों द्वारा उनमें परिवर्तन भी कर सकेगी। श्रीमान्, इस विस्तृत प्रक्रिया में समय लगता है और इसलिये लेखानुदान की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि जब तक संसद व्यय की छानबीन न कर ले तब तक सरकार अपना कार्य कर सके। लेखानुदान इसी उद्देश्य से पारित किये जाते हैं। मेरे विचार से लेखानुदान की व्यवस्था कठोर न होनी चाहिये। इस दोष को दूर करने के लिये डा. अम्बेडकर के संशोधन में उपबंध है। यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है और इसे संविधान में स्थान मिलना चाहिये। मैं प्रोफेसर शाह के इस विचार से सहमत नहीं हूं कि इसका सम्बन्ध केवल विवरण से है। इसलिये मैं संशोधन के इस अंश का पूर्णतया समर्थन करता हूं।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इसके अतिरिक्त, श्रीमान, जब कामन्स सभा समवेत होती है तो पहले वर्ष के अनुपूरक अनुदान उपस्थित किये जाते हैं और उन पर लेखानुदानों के साथ विचार-विमर्श होता है। 31 मार्च तक कामन्स सभा संचित-निधि-अधिनियम पारित कर देती है जिसके फलस्वरूप विनियोग-अधिनियम के पारित होने तक सरकार को शासन-कार्य चलाने के लिये प्राधिकार प्राप्त हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस समय संसद में लगभग डेढ़ सौ सदस्य ही हैं। यह संख्या उन सदस्यों की है जो सभा में उपस्थित होते हैं। नवीन लोक सभा में पांच सौ सदस्य होंगे और यदि संसद में आय-व्ययक पर वादानुवाद करने के लिये केवल सात या आठ दिन दिये गये तो उसके सम्बन्ध में किसी व्यक्ति को भी अपने विचार प्रकट करने का अवसर नहीं मिलेगा। इसलिये मेरे विचार से प्रस्तावित उपबंधों को स्वीकार करने से हमारी प्रक्रिया इंग्लिस्तान की संसद की प्रक्रिया के अनुरूप हो जायेगी और इस प्रकार सदस्य अपनी सहमति प्रदान करने के पूर्व आय-व्ययक की विस्तृत रूप से परीक्षा कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं, एक होता है संचित-निधि अधिनियम और एक होता है विनियोग-अधिनियम। वास्तव में विनियोग-अधिनियम के दस्तावेज में वे राशियां भी सम्मिलित की जाती हैं जो संचित-निधि से निकाल कर व्यय की जाती हैं। इस प्रकार विनियोग-अधिनियम वास्तव में संसद द्वारा प्रदत्त प्राधिकार है जिसके आधार पर सरकार धन व्यय कर सकती है।

डा. अम्बेडकर ने जो योजना सभा के सम्मुख उपस्थित की है उसका स्वरूप, जहां तक उसे मैं समझ पाया हूं, इसी प्रकार है। उन्होंने इस सम्बन्ध में जो श्रम किया है और जिस अद्‌भुत प्रकार से इस योजना को हमारे संविधान में समाविष्ट किया है उसके लिये मुझे आशा है कि सभा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगी। यद्यपि अभी तक अपने यहां लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास में हम इंग्लिस्तान की प्रणाली की नकल कर रहे थे किन्तु अभी तक हमने उसकी एक आधारभूत पद्धति की ओर ध्यान नहीं दिया था। इंग्लिस्तान के लोकतंत्र का एक आधारभूत सिद्धांत यह भी है कि लोक-प्रतिनिधि वित्त पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं। डा. अम्बेडकर की योजना के आधार पर अब हम अपनी संसद की प्रक्रिया को इंग्लिस्तान की प्रणाली के अनुरूप बना सकेंगे।

इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि इंग्लिस्तान में वित्तीय वर्ष अप्रैल से आरम्भ होता है। मैं यह कहना चाहता हूं कि मई और जून के महीनों में बहुत गरमी पड़ती है। हम भी वित्तीय वर्ष को 1 नवम्बर से आरम्भ न करके 31 अक्तूबर से आरम्भ कर सकते हैं ताकि मार्च के आरम्भ तक अथवा अप्रैल तक हम विनियोग-अधिनियम को पारित कर सकते हैं और सभी विषयों पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श कर सकते हैं। इसलिये यथोचित अवसर पर मैं एक संशोधन द्वारा इस सुझाव को सभा के सामने रखूंगा। मेरे विचार से हमारे देश में बहुत प्राचीनकाल से वित्तीय वर्ष को दीपावली से आरम्भ करने की प्रथा चली आई है जो लगभग पहली नवम्बर को होती है।

मैं डा. अम्बेडकर के प्रस्तावों का हृदय से समर्थन करता हूं और मुझे आशा है कि उनके लिये सभा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगी।

***श्री बी. दास:** अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर पर जिन बधाइयों की वर्षा की जा रही है उनमें मैं भी अपना योग देना चाहता हूं। श्रीमान्, यह सभा तथा हम सभी लोग डा. अम्बेडकर के, मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के तथा मसौदा-समिति के अन्य सदस्यों के आभारी हैं जिन्होंने एक ऐसा मसौदा तैयार करके हमारे सामने रखा है जो संसद की पिछले दो वर्षों की गतिविधि के अनुरूप है। आय-व्ययक जिस ढंग से उपस्थित किये जाते थे तथा पारित किये जाते थे उससे हम बहुत असंतुष्ट थे। हमें इससे भी बहुत असंतोष था कि पिछली विधान सभा में विदेशी शासकों ने जिन आय-व्ययकों को उपस्थित किया था उन्हीं की बहुत कुछ नकल की जाती थी। डा. अम्बेडकर ने हमें बताया कि 1948-49 के अन्तिम दिन अनुपूरक प्राक्कलनों के रूप में 118 करोड़ रुपये की धनराशि पारित की गई थी। इस सूचना के लिये मैं उनका आभारी हूं।

भारत के प्रति विश्वास बनाये रखने तथा भारत के राष्ट्रीय वित्त की स्थिति सुदृढ़ बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि कुछ धन भारत की संचित निधि पर ''भारित'' धन के रूप में रहे। अनुच्छेद 92 में इस प्रकार के कई विषयों का वर्णन है और यदि संसद अपने मत द्वारा उनकी धनराशि कम करना चाहेगी तो उससे कुछ लाभ न होगा। संसद को इस भारित विषयों की धनराशि को, जिसे राष्ट्रपति अथवा वित्त मंत्री उसके सम्मुख रखेगा, कम न करना चाहिये। इन भारित विषयों में से कुछ विषय हमें विदेशी शासकों की देन के रूप में प्राप्त हुये। उन्होंने हमें एक बहुत बड़ा ऋण सौंपा और उसके ब्याज को हम इन समय चुका रहे हैं। यदि संसद धन नष्ट करने के लिये तथा देश पर एक बहुत बड़े लोक ऋण का भार डालने के लिये पिछले शासकों की निन्दा करती है तो ठीक ही करती है। किन्तु चूंकि अब ये ऋण राष्ट्रीय ऋण है इसलिये इनके ब्याज को चुकाना ही होगा। इसी प्रकार राष्ट्रपति के कर्मचारियों पर, उच्चतम न्यायालय पर, उच्च न्यायालयों पर, महालेखापरीक्षक पर तथा अन्य एक दो विषयों पर व्यय होने वाला धन संचित निधि पर भारित होना चाहिये। यदि भारित शीर्षकों के अधीन दिखाये हुये विषयों पर अत्यधिक व्यय हुआ तो भविष्य को संसद उसकी आलोचना करेगी और उसकी आलोचना युक्तियुक्त होगी किन्तु यदि हम इस समय उस व्यय को कम करे अथवा उसे ऐसा व्यय समझे जिस पर मत दिया जा सकता है तो यह अनुचित होगा। इसलिये हमारे राष्ट्रीय वित्त की वर्तमान स्थिति को देखते हुये मेरे विचार से इस प्रकार की वित्तीय नियंत्रण की प्रणाली आवश्यक है।

यह मेरी समझ में नहीं आया कि 'संचित-निधि' और 'आकस्मिकता-निधि' शब्दों पर मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शाह और श्री जगतनारायण लाल ने क्यों आपत्ति की। पहले हम बहुत मूलधन-व्यय के लिये वचनबद्ध थे। धन पर मत लिया जाता है किन्तु वह उसी वर्ष व्यय नहीं किया जाता। यदि भारत की आकस्मिकता निधि को स्थापित किया गया तो मूलधन व्यय सम्बन्धी विषयों के लिये, चाहे ये विषय बहुलक्षी आयोजन हों अथवा

[श्री बी. दास]

बड़े-बड़े उद्योग मतदान द्वारा प्रदत्त धन संचित रखा जा सकता है और अगले वर्ष अथवा आने वाले वर्षों में व्यय किया जा सकता है। मेरे विचार से आकस्मिकता-निधि का उद्देश्य यही है। संसद के विचाराधीन वर्ष के लिये स्थापित संचित निधि से आकस्मिकता-निधि भिन्न है और उससे धन निकाल कर आगे चल कर व्यय किया जा सकता है।

श्रीमान्, हमें अपनी परम्परा का विकास स्वयं करना है। पहले मैंने इंग्लिस्तान की संसद अथवा कनाडा की संसद अथवा डोमिनियन की संसद पर इस सभा मे भले ही आपत्ति की हो किन्तु आज मुझे भारत में वित्तीय नियंत्रण की इंग्लिस्तान की प्रणाली का अनुसरण करने में कोई संकोच नहीं है। विदेशी शासकों के अधीन हमने उसका अनुसरण किया और हमें उसका अनुसरण करने के लिये बाध्य किया गया। आज हम उसे अपनी नवीन प्रतिष्ठा के अनुरूप बनाने तथा साथ ही अपने वित्त पर पूर्ण नियंत्रण रखने का प्रयास कर रहे हैं। डा. अम्बेडकर इसकी चर्चा कर चुके हैं कि संसद को आय-व्ययक पर विचार-विमर्श करने के लिये निश्चित कालावधि को बढ़ाने की शक्ति दी जा रही है। इस विषय पर श्री सिधवा ने भी अपने विचार व्यक्त किये। किन्तु इस सबका सम्बन्ध संसद के वादानुवाद अथवा साधारण विषयों पर विचार-विमर्श से नहीं है और हमें यह न भूलना चाहिये कि हम वित्त मंत्री द्वारा उपस्थित प्राक्कलनों पर विचार करेंगे। यह संसद का एक मुख्य कर्त्तव्य है। अच्छा तो यह होगा कि जब आय-व्ययक संसद के सम्मुख उपस्थित किया जाये तो सभा प्राक्कलन-समिति में परिणत हो जाये। मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना यही मत प्रकट कर चुके हैं। प्राक्कलन समिति में बिना वित्त-सम्बन्धी अथवा व्यय-सम्बन्धी सिद्धांतों पर विचार-विमर्श किये हुये हम प्रत्येक मंत्रणालय के व्यय-सम्बन्धी विषयों पर ही विचार कर सकते हैं ताकि आय-व्ययक में जो अत्यधिक व्यय दिखाया गया हो अथवा पहले अव्यावहारिक योजनाओं पर जो व्यय किया गया हो उस पर नियंत्रण रखा जा सके। मुझे आशा है कि भविष्य में किसी मन्त्रणालय की अव्यावहारिक योजनाओं पर धन व्यय न करने दिया जायेगा। उस प्राक्कलन समिति में, जो वास्तव में सभा ही अन्य रूप में होगी, (मुझे इंग्लिस्तान की प्रणाली का उल्लेख करने के लिये क्षमा किया जाये) अध्यक्ष को हट जाना होगा और मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के समान किसी व्यक्ति को सभापति-आसन ग्रहण करना होगा। उस समिति में हम व्यय के प्रत्येक विषय पर, विचार-विमर्श कर सकते हैं, जिससे विभिन्न विभाग धन निकाल कर अथवा दुबारा धन निकाल कर व्यय न कर सकेंगे। अभी तक वे इसी प्रकार व्यय करते आये हैं। यदि अगले वर्ष भारतीय गणराज्य के घोषित होने के पश्चात् ही वह समिति अस्तित्व में आ जाये तो बहुत धन की बचत हो सकती है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। आज मैं इसे फिर दुहराना चाहता हूं कि यदि 1949-50 के साधारण व्यय के लिये सरकार को 26 से लेकर 28 करोड़ तक का ऋण लेना पड़ रहा है तो उसका दिवाला ही निकल गया है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक वर्ष ब्याज की धनराशि 1 करोड़ रुपया बढ़ती जा रही है और इस अनुच्छेद के अधीन ब्याज का धन भारत की संचित-निधि पर भारित व्यय है। सभा को अपने वर्तमान वित्त मंत्री को अथवा अगले वर्ष से कार्य करने वाले वित्त मंत्री को साधारण व्यय के लिये ऋण लेने की आज्ञा सावधानी से देनी चाहिये। हमें ज्ञात है कि भारत सरकार के आय-व्ययक में पिछले दो वर्षों से यदि हम मूल धन व्यय

को भी सम्मिलित करें, तो 150 से लेकर 200 करोड़ तक का घाटा दिखाया गया है। यदि मूल-धन व्यय की सुव्यवस्था की जाये तो इस मद का घाटा स्वतः पूरा हो सकता है। किन्तु इस समय सरकार बहुत बड़े कर्मचारी-वर्ग को रखे हुये है और विभिन्न मंत्रणालयों में अत्यधिक धन व्यय किया जाता है। वास्तव में ये मंत्रणालय एक सुगठित सरकार के रूप में कार्य नहीं करते। प्रत्येक मंत्रालय स्वायत्तशासी मंत्रणालय के रूप में कार्य करता है और वित्त-मंत्रणालय अथवा महालेखा-परीक्षक की बात नहीं मानता। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि संविधान में महालेखा-परीक्षक की स्थिति को सुदृढ़ बनाया गया है। यह भारत सरकार के मंत्रिमंडल के देखने की बात है कि वित्त मंत्रालय का भी विभिन्न मंत्रणालयों पर यथेष्ट नियंत्रण हो। इस समय नियंत्रण ठीक प्रकार नहीं रखा जाता और इसलिये प्रत्येक वर्ष भारत का ऋण 20 अथवा 30 करोड़ बढ़ जाता है और उससे कोई लाभ नहीं हो पाता। 1938-39 में यह ऋण 288 करोड़ रुपये था और आज बढ़ कर 900 करोड़ रुपये हो गया है। यह हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात है कि हम ऋण लें और उससे अपना निर्वाह करें और स्वतंत्र भारत के शासन की शान देश भर में अथवा संसार भर में बघारते रहें। श्रीमान्, चूंकि राष्ट्रीय वित्त पर और भारत सरकार के व्यय पर यथोचित वित्तीय नियंत्रण रखने में मेरी हमेशा से दिलचस्पी रही है इसलिये मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इन संशोधित अनुच्छेदों से पर्याप्त सुरक्षा हो सकेगी और मंत्री चोरी छिपे व्यर्थ में धन व्यय न कर सकेंगे। मैं इसके लिये डा. अम्बेडकर को फिर बधाई देता हूं।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, बोलने के पूर्व मैं डा. अम्बेडकर से कुछ बातों के स्पष्टीकरण के लिये आग्रह करना चाहता हूं। क्या इस संशोधन के फलस्वरूप भारत सरकार इसके लिये बाध्य हो जाती है कि वह एक निधि स्थापित करे जो संचित-निधि के नाम से कही जाये? अथवा क्या यह संशोधन केवल क्षमता प्रदायक संशोधन है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यह निधि स्थापित ही है। केवल उसका नाम बदल दिया गया है।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** तब विधान मंडल में विनियोग अधिनियम को पारित करने की आवश्यकता होगी और उसे उसी सत्र में पारित करना होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** इसमें निःसंदेह समय लगेगा। श्रीमान्, इसे ध्यान में रखते हुये मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं। भारत सरकार के मंत्रणालयों द्वारा अथवा प्रान्तीय सरकारों द्वारा जो धन व्यर्थ में व्यय होता है अथवा नष्ट होता है उसकी बहुत आलोचना की गई है। मेरे विचार से अनुच्छेद 90 के सिद्धांतों का अनुसरण प्रान्तीय सरकारों को भी करना होगा क्योंकि यही सिद्धांत अनुच्छेद 174 में भी सन्निहित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** जी हां।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** इस सभा में यह आपत्ति की गई है कि विधान मंडलों में कर्त्तन-प्रस्तावों पर अथवा अनुदानों की मांगों पर विचार-विमर्श करने के लिये कुछ भी समय नहीं दिया जाता। यह आपत्ति तर्कयुक्त कही जा सकती है परन्तु विधान मंडलों में अधिक समय देने से यह दूर हो सकती है। विधान मंडलों में कर्त्तन-प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करने के लिये अधिक समय क्यों नहीं दिया जाता? कर्त्तन-प्रस्तावों और मांगों पर अधिक समय तक विचार-विमर्श करने के लिये विधान मंडलों के नियमों को बदला जा सकता है। अनुदानों की मांगों पर विचार-विमर्श करने के लिये अधिक समय देने के उद्देश्य से उस प्रथा का क्यों परित्याग किया जाये जिसका अनुसरण हम पिछले कई वर्षों से करते आये हैं? विनियोग अधिनियम को पारित करने में कुछ समय लगेगा, जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय विधान मंडल असुविधा का अनुभव करेंगे। कुछ प्रान्तों के लिये इस अधिनियम को एक ही सत्र में पारित करना कठिन हो जायेगा। किन्तु लेखानुदानों द्वारा यह उपबन्धित किया गया है कि विधान मंडल कुछ समय तक व्यय करने के लिये एक मुष्ट धन दे सकता है। किन्तु इससे भी कुछ प्रान्त असुविधा का अनुभव करेंगे। असम में हमें कभी आय-व्ययक सत्र के समय को कम भी करना पड़ा है कई सदस्य अपने काम से वापस जाना चाहते थे। पिछले आय-व्ययक-सत्र में विधान मंडल के सदस्यों के समझौते से हमें कुछ दिन कम करने पड़े।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): यदि उनकी टिकने की इच्छा न हो तो उन्हें सभा का सदस्य न बने रहना चाहिये।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** विधान मंडलों के कार्य के लिये जो समय रखा गया है उसे हमें असम में कम करना पड़ा। विभिन्न प्रान्तों की विभिन्न स्थिति है। इसलिये यह अनावश्यक प्रतीत होता है कि कर्त्तन प्रस्तावों तथा अनुदानों की मांगों पर विचार-विमर्श करने के लिये विधान मंडलों को अधिक समय देने के उद्देश्य से एक भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया जाये। केवल इस कारण परिवर्तन न किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त मंत्रिमंडलों के व्यर्थ धन नष्ट करने की भी कुछ आलोचना की गई है। मेरे विचार से यह आलोचना निराधार है। कम से कम हमारे प्रान्त के मंत्रिमंडल की इस कारण आलोचना नहीं की जा सकती और मेरे विचार से अन्य प्रान्तों के मंत्रिमंडलों की भी इस कारण आलोचना नहीं की जा सकती। विधान मंडल में यह मांग की जाती है कि प्रान्त के लोगों के हित साधन के लिये अधिक धन व्यय किया जाये और वास्तव में धन के अभाव के कारण हम प्रांतों में विधान मंडल की मांगों को पूरा नहीं कर सकते। मेरे विचार से यह कहना तर्कसंगत नहीं है कि मंत्रिमंडल धन नष्ट कर रहे हैं, इस आधार पर हमारे किसी कार्य के सम्बन्ध में धारणा बनाना बिल्कुल गलत है। अभी तक हम जिस प्रणाली का अनुसरण करते आये हैं उसके अधीन प्रान्त के राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति को प्रमाण-पत्र देने की आवश्यकता है और मेरे विचार से इस प्रथा से देश के राजस्व के प्रशासन पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु यदि किसी प्रान्त को इस विनियोग-विधेयक को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा रहा है और यह केवल क्षमता-प्रदायक अधिनियम है और प्रान्तों को इसकी स्वतंत्रता है कि वे इस अधिनियम को पारित करें अथवा प्रचलित प्रथा का ही अनुसरण करें तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि

क्या स्थिति यही है अथवा प्रत्येक प्रान्त को व्यय के लिये धन निकालने के उद्देश्य से विनियोग अधिनियम को अवश्य ही पारित करना होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** विनियोग अधिनियम को तो अनिवार्य रूप से पारित करना होगा किन्तु लेखानुदान के सम्बन्ध में प्रत्येक मंत्रिमंडल को इसकी स्वतंत्रता रहेगी कि वह उनकी मांग करे अथवा न करे। यदि कोई मंत्रिमंडल लेखानुदान के रूप में धन प्राप्त करना चाहे तो वह विधान मंडल से इसकी मांग कर सकता है।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** यदि असम का अथवा किसी प्रान्त का मंत्रिमंडल उसी प्रथा का अनुसरण करना चाहता है जिसका अनुसरण वह अभी तक करता आया है और राज्यपाल से प्रमाण-पत्र प्राप्त करना चाहता है तो क्या उसे इसकी स्वतंत्रता होगी?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अब राज्यपाल से प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** इससे प्रक्रिया में कोई अन्तर न आयेगा।

***माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकोल्सराय:** अन्तर यह आयेगा कि अधिक समय लगेगा। मेरे विचार से इसकी आवश्यकता न पड़ेगी। समय अधिक लगने से लोकधन नष्ट होगा क्योंकि विधान मंडल ऐसे समय में भी सत्रस्थ रहेगा जब उसके सत्रस्थ रहने की कोई आवश्यकता न होगी। केन्द्र में इस व्यवस्था की आवश्यकता हो सकती है परन्तु मेरे विचार से सभी प्रान्तों को इसकी आवश्यकता न होगी। प्रान्तों को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे वर्तमान प्रणाली का अनुसरण करें अथवा केन्द्र के लिये प्रस्तावित प्रणाली का अनुसरण करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि सभा ने डा. अम्बेडकर से एक संकेत पाया और केन्द्र के तथा प्रान्तों के वित्तीय उपबंधों में मसौदा समिति ने जो परिवर्तन किये हैं उन पर उनकी स्पष्ट व्याख्या सुनकर उसने सारी योजना पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श किया है। अभी हमने उन उपबंधों को नहीं उठाया है जिनमें अधिक सारभूत परिवर्तन किये गये हैं और मुझे आशा है कि जब विभिन्न खंडों पर विचार किया जायेगा तो इन तर्कों को फिर नहीं दुहराया जायेगा क्योंकि अब सभा इस योजना के सभी अंगों पर पूर्ण रूप से विचार कर चुकी है। मुझे यह देख कर भी प्रसन्नता हुई कि इस तथाकथित नई योजना का मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा तथा प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने बड़े उत्साह से समर्थन किया है। मेरी यह धारणा है कि उन्होंने इन नये संशोधनों के आशय को ठीक-ठीक समझा है और वे जानते हैं कि उनमें वे तत्त्व सन्निहित हैं जिनका संसद चाहे तो विकास हो सकता है और इसके फलस्वरूप लोक-प्रतिनिधि कार्यपालिका के व्यय पर प्रभावपूर्ण ढंग से नियंत्रण रख सकते हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि इन परिवर्तनों को करने में मसौदा-समिति का उद्देश्य यही था।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

मेरे माननीय मित्र डा. देशमुख ने जो भाषण दिये तथा पंडित जगतनारायण लाल ने जो छोटा सा भाषण दिया उसे भी मैंने ध्यानपूर्वक तथा आदरपूर्वक सुना। जहां तक डा. देशमुख की आलोचना का सम्बन्ध है उससे पूर्व स्थिति से उनके प्रेम तथा डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित नवीन उपबन्धों के विरुद्ध उनकी आपत्ति का परिचय मिलता है। वे समझते हैं कि पूर्व स्थिति को बनाये रखने में कोई हानि न होगी और यह चाहते हैं कि भारत सरकार का राजस्व भारत का लोक-राजस्व ही कहा जाये। वे समझते हैं कि नवीन उपबंधों में कोई विशेष लाभप्रद बात नहीं है। इसके विपरीत उनका विचार यह है कि ''संचित-निधि'' और ''आकस्मिकता-निधि'' शब्दों को प्रविष्ट करने से बहुत हानि होगी। यदि डा. अम्बेडकर की व्याख्या के पश्चात् भी उनकी यही धारणा है तो मैं उनके मत को परिवर्तित करने का प्रयास न करूंगा। यदि वे डा. अम्बेडकर के आशय को ठीक समझे होते तो वे यह अनुभव करते कि 'संचित-निधि' शब्दों को स्थान देकर केवल नाम में परिवर्तन किया गया है क्योंकि इस समय जब कि हम अपने लिये एक संविधान का निर्माण कर रहे हैं इस नये नाम को रखना आवश्यक है। डा. अम्बेडकर ने इसे स्पष्ट करने के लिये सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था कि अन्य संविधानों में भी इस प्रकार के उपबंध हैं जैसे कि कनाडा के संविधान में इसी निधि के समान एक संचित राजस्व निधि का उल्लेख है और आस्ट्रेलिया के संविधान के अनुच्छेद 81बी में भी संचित राजस्व निधि का उल्लेख हैं। दक्षिण अफ्रीका के संविधान में भी इस निधि का उल्लेख है यद्यपि इसका उल्लेख भिन्न प्रकार से किया गया है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति संचित निधि के इतिहास को, जैसा कि वह इंग्लिस्तान में रहा है, देखना चाहे तो मैं उसे यह बताना चाहता हूं कि हम वहां की संचित निधि के आशय को स्वीकार करने नहीं जा रहे हैं। इंग्लिस्तान में संचित निधि लगभग 1787 में स्थापित की गई और वहां उस समय केवल पूर्व प्रचलित प्रथा में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर दिया गया। उसके स्थापित होने के पूर्व अमुक-अमुक करों के धन को अमुक अमुक व्यय शीर्षकों के अधीन जमा किया जाता था। उस समय सारे लोक-लेखे को एक ही योजना के अधीन, अर्थात् संचित-निधि की योजना के अधीन लाया गया और यह निश्चय किया गया कि करों को तत्सम्बन्धी व्यय शीर्षकों के अधीन न दिखाया जाये बल्कि पूरे व्यय को संचित-निधि से धन निकाल कर पूरा किया जाये और विभिन्न शीर्षकों के अधीन दिखाया जाये। इसलिये इसका ऐतिहासिक महत्त्व है किन्तु हमें यह मान्य नहीं है।

डा. अम्बेडकर ने यह ठीक ही कहा है कि जहां तक विधान मंडल का सम्बन्ध है, हमारे शासकों ने लेखे की प्रक्रिया और वित्तीय उपबंधों में परिवर्तन करना चाहा किन्तु उस समय की कार्यपालिका ने इसका बहुत विरोध किया। 1935 के अधिनियम के पारित होने के पूर्व विभिन्न अवसरों पर जो वादानुवाद हुआ था उसे मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा और मैंने यह देखा कि जब कभी प्रक्रिया में परिवर्तन करने की बात कही जाती थी तो उसी प्रकार का तर्क उपस्थित किया जाता था जैसा कि डा. देशमुख ने उपस्थित किया है, अर्थात् यह कि वर्तमान उपबन्धों का प्रयोग ठीक हो रहा है और किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्रान्तीय आय-व्ययक और केन्द्रीय आय-व्ययक के अपने

अनुभव के आधार पर मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है वह संसार में सबसे अधिक विलम्बकारी प्रक्रिया है। जहां तक केन्द्र का सम्बन्ध है, मांगों को विधान मंडल स्वीकार करता है। कुछ पर विचार-विमर्श होता है और कुछ के सम्बन्ध में मुखबन्ध का प्रयोग किया जाता है। इन मांगों का समन्वय एक प्राधिकृत अनुसूची में किया जाता है जो गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप के साथ सभा के सम्मुख उपस्थित की जाती है। डा. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा है कि नवीन संविधान के अधीन विनियोग विधेयक के लिये उपबंध रख कर इस उत्तरदायित्व को संसद स्वयं स्वीकार करेगी और विभिन्न मांगों को स्वीकार करते समय उस विधेयक में समविष्ट अपने निर्णयों के संक्षिप्त विवरण अथवा समन्वय को प्रामाणिक बनायेगी। प्रान्तों में भी इसी के समान एक प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है और विधान मंडल के सम्मुख एक प्राधिकृत अनुसूची उपस्थित की जाती है। केन्द्र में वित्त-विधेयक पर विचार-विमर्श करते समय वित्तीय प्रशासन तथा सामान्य प्रशासन पर भी विचार-विमर्श किया जाता है क्योंकि केन्द्र में वार्षिक वित्तीय विधेयक उपस्थित किया जाता है और वह इस कारण कि प्रत्येक वर्ष आय कर के प्रस्तावों को प्रस्तुत करना होता है और विधान मंडल को दरों की अनुसूची स्वीकार करनी होती है किन्तु प्रान्तीय विधान मंडलों में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है। इन नवीन प्रस्तावों में जब मैंने एक प्रान्तीय मंत्री महोदय को दिलचस्पी लेते हुये देखा तो मुझे प्रसन्नता हुई। जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है वहां सरकार की सामान्य नीति पर उस प्रकार वादानुवाद नहीं होता जैसे कि केन्द्र में वित्त विधेयक पर विचार-विमर्श करते समय होता है। यह हो सकता है कि यदि कोई नवीन कर लगाना हो तो कर सम्बन्धी कोई विधि बनाई जाये और प्राय: इस प्रकार की विधि बनाई जाती है। किन्तु यह प्रान्तीय सरकार के लिये किसी विशेष वर्ष के सम्बन्ध में साधन प्रदान करने के लिये एक समन्वित विवरण के रूप में नहीं होती और इसलिये प्रान्त के वित्तीय प्रशासन अथवा वित्तीय व्यवस्था पर सामान्य रूप से विचार-विमर्श करने के लिये अवसर नहीं मिलता। यदि श्री निकोल्सराय के मतानुसार इन उपबंधों को आवश्यकता पड़ने पर केवल केन्द्र में ही प्रयोग में लाया जाये, और प्रान्तों में प्रयोग में न लाया जाये, तो प्रान्तों में यह बहुत बड़ी कमी बनी रहेगी, जो एक अनुचित बात होगी। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने बताया है, हम एक विनियोग विधेयक को स्थान दे रहे हैं। प्रान्तों के लिये हमने वित्त विधेयक की व्यवस्था नहीं की है। यदि कोई प्रान्त चाहे तो यह व्यवस्था कर सकता है।

श्री जगतनारायण लाल की इस आपत्ति के सम्बन्ध में कि सूची संख्या 1 के संशोधन संख्या 5 के शब्दों में, जो पंडित कुंजरू के नाम से है और डा. अम्बेडकर के संशोधन के शब्दों में अन्तर है, मैं उनसे यह कहना चाहता हूं कि वे इन संशोधनों को संदर्भ सहित पढ़ें। हमने प्रस्तावित योजना के प्रत्येक अंग पर विचार किया है परन्तु वास्तव में उसके बहुत थोड़े से विषयों पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। केवल अनुच्छेद 90 के उपखंड 1(ग) और 1(घ) में धन-विधेयक की परिभाषा को परिवर्तित किया गया है। धन-विधेयक की परिभाषा करते समय यह कहना उपयुक्त ही है कि उसका सम्बन्ध संचित-निधि अथवा आकस्मिकता-निधि के धन की सुरक्षा से भी है क्योंकि अन्य कई विषयों की भी गणना की गई है। ''या'' शब्द का प्रयोग संदर्भ को देखते हुए उपयुक्त है तथा ''और'' शब्द को स्थान देने की आवश्यकता नहीं है।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

इस अवसर पर मैं एक ही बात पर जोर देना चाहता हूं। इस योजना में दो बातों के अतिरिक्त अन्य कोई बात बन्धनकारी नहीं है। एक भारत के लोक-राजस्व के नाम को बदलने के सम्बन्ध में है। जहां तक लोक-राजस्व का सम्बन्ध है, यदि उसका नाम केन्द्र में बदला जाता है तो प्रान्तों में भी उसका नाम बदलना होगा। दूसरी बात यह है कि इस व्यवस्था के स्थान पर कि गवर्नर जनरल अथवा राष्ट्रपति केन्द्रीय विधान मंडल में अथवा प्रान्तीय विधान मंडल में राज्यपाल एक प्राधिकृत अनुसूची उपस्थित करे कि हम विनियोग विधेयक की व्यवस्था को स्वीकार कर रहे हैं। इस विधेयक को संसद अथवा कोई विधान मंडल पारित करेगा। अन्य उपबंधों को स्वेच्छा से स्वीकार किया जा सकता है। यदि कोई प्रान्तीय सरकार विधान मंडल की सहमति से 31 मार्च तक अपने आय-व्ययक को पारित करना चाहे तो इन संशोधनों में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे उसके मार्ग में बाधा पड़े। यदि श्री निकोल्सराय चाहते हैं कि उनका प्रान्त वर्तमान प्रथा का ही अनुसरण करे तो उसे इसकी स्वतंत्रता है। उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह इस प्रणाली को अवश्य ही बदले। यदि उनके प्रान्त के विधान मंडल का यह मत हो कि वह इन क्षमता प्रदायक उपबंधों से लाभ नहीं उठायेगा और आय-व्ययक को 31 मार्च तक स्वीकार कर लेगा तथा सरकार से यह आशा करेगा कि वह विनियोग-विधेयक उपस्थित करे और उसे भी 31 मार्च तक स्वीकार कर लेगा, तो उसे इसकी स्वतंत्रता है। अनुच्छेद 95 के सम्बन्ध में हमने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें लेखानुदान की व्यवस्था को स्थान दिया है, जिससे यदि संसद अथवा किसी राज्य का विधान मंडल चाहे तो आय-व्ययक को किसी एक दिन पारित न करके कुछ समय पश्चात् पारित कर सकता है।

सभा यह प्रश्न उठा सकती है कि आय-व्ययक पर कितने दिन तक विचार-विमर्श होता रहेगा। यह प्रश्न उठाया जा सकता है। किन्तु हम संसद को अथवा विधान मंडल को इसकी स्वतंत्रता देना चाहते हैं कि वह इसका निर्णय करे कि वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के पश्चात् आय-व्ययक पर विचार-विमर्श करने के लिये कितने दिन अलग रखे जायें। इस उद्देश्य से हमने एक क्षमता प्रदायक उपबंध अर्थात् अनुच्छेद 98 (क) रखा है, जिसकी चर्चा डा. अम्बेडकर कर चुके हैं। उसमें यह उपबन्धित किया गया है कि संसद वित्तीय प्रक्रिया के सम्बन्ध में कोई भी विधि बना सकती है। वह अगस्त में आय-व्ययक को पारित करने की किसी विधि को निश्चित करके इंग्लिस्तान की प्रणाली का अनुसरण कर सकती है, अथवा इस समय को एक महीने बढ़ा सकती है। भविष्य की संसद को इसकी स्वतंत्रता दी गई है कि वह इस परिवर्तन को करे अथवा न करें और वर्तमान व्यवस्था को रहने दे। प्रान्तों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। इसलिये लेखानुदान के सम्बन्ध में जो उपबंध है वह क्षमता-प्रदायक उपबंध हैं और यह अनिवार्य नहीं हैं कि इसे स्वीकार ही किया जाये। इससे संसद के लिये वह आवश्यक नहीं रह जाता कि निश्चित तिथि तक ही कार्य समाप्त कर दिया जाये। इस सभा के सदस्यों को विदित होगा कि फ्रांस की संसद में आय-व्ययक की प्रक्रिया के सम्बन्ध में इसी प्रकार की सख्ती है और पिछले वर्ष कुछ राजनैतिक कठिनाइयों के उपस्थित हो जाने के कारण उन्हें संसद भवन की घड़ी को निश्चित समय के पूर्व बन्द कर देना पड़ा। अन्तिम दिन रात के

बारह बजने के कुछ मिनट पूर्व घड़ी बन्द कर दी गई। यह एक अनर्गल सी बात है कि चूंकि किसी की घड़ी बन्द हो जाये इसलिये वह यह समझने लगे कि संसार की गति भी रुक गई है। इस प्रकार के उपायों को अपनाने की आवश्यकता न होगी और नई योजना इतनी लचीली होगी कि संसद उपयुक्त प्रबंध कर सकेगी। लेखानुदान के सम्बन्ध में बहुत कुछ उसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जायेगा जिसका कि विनियोग विधेयक के सम्बन्ध में अनुसरण किया जायेगा। संसद विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रक्रियाओं को विधि द्वारा निर्धारित कर सकती है। वह यह निर्धारित कर सकती है कि कार्यपालिका को दो महीने के व्यय के लिये लेखानुदान की अथवा संचित विधेयक संख्या 1 को पारित करने की मांग करनी चाहिये। उसमें आय-व्ययक की मांग के सभी शीर्षकों का उल्लेख होना चाहिये और निश्चित अवधि के लिये उसी के अनुपात से धनराशि की मांग करनी चाहिये। उसमें यह कहा जा सकता है कि इस अवधि में कोई नया व्यय नहीं किया जायेगा। संसद इन सभी शर्त्तों को निर्धारित कर सकती है अथवा वह यह निर्णय कर सकती है कि वह नई योजना को स्वीकार न करेगी और वर्तमान प्रथा का ही अनुसरण करेगी।

अन्य आपत्तियों के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि इस नई योजना के लिये जो लोभ उत्तरदायी हैं उनमें से अधिकांश ने किसी भी ऐसे परिवर्तन को करने में बहुत सावधानी दिखाई जिसका विस्तृत प्रभाव हो सकता था। इसलिये हमारी यह धारणा है कि हमने कोई ऐसी बात प्रविष्ट नहीं की है जो पहले समाविष्ट न थी। केन्द्र में संसद अथवा प्रान्तों में विधान मंडल अपनी पहले की प्रक्रिया में कोई नई बात प्रविष्ट करने के लिये बाध्य नहीं है और यदि वे चाहे तो अपनी वर्तमान योजना का ही अनुसरण कर सकते हैं। यदि संसद नियंत्रण रखना चाहे, और उसे तथा राज्यों के विधान मंडलों को नियंत्रण रखना ही चाहिये तो इन संशोधनों द्वारा संसद का तथा राज्य के विधान मंडलों को जो शक्ति प्रदान की गई है उससे वे लाभ उठा सकते हैं और इस प्रकार का नियंत्रण रख सकते हैं। किसी सुचारु लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली में इस प्रकार का नियंत्रण होना ही चाहिये। मुझसे पहले बोलने वाले सदस्यों ने जो प्रश्न उठाये थे उनका पूर्ण रूप से नहीं तो कम से कम आंशिक रूप से मैंने उत्तर देने का प्रयास किया है। अवशिष्ट प्रश्नों का उत्तर सम्भवत: डा. अम्बेडकर अपने भाषण में अन्त में देंगे। इसके पश्चात् जहां तक इस योजना में सन्निहित सामान्य सिद्धांतों का सम्बन्ध है उन पर मेरे विचार से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता न रहेगी। श्रीमान्, मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो कुछ कहा है उससे अधिक और कुछ कहने से कुछ लाभ न होगा। विभिन्न संशोधनों पर मैं अपने विचार उसी समय व्यक्त करूंगा जब वे उपस्थित किये जायेंगे, क्योंकि मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वही तर्क फिर दुहराये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) में से 'only' (केवल) शब्द निकाल दिया जाये।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (क) के अन्त में 'duty, charge, rate, levy or any other form of revenue, income, or receipt by Governments or of expenditure by Government' (शुल्क, भारित व्यय, दर, उद्गृहीत राशि अथवा अन्य किसी प्रकार का राजस्व, आय अथवा सरकारों की पावती अथवा सरकार का व्यय)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ङ) में 'the increasing of this amount of' (की धनराशि को बढ़ाना) शब्दों के स्थान में 'varying the amount of or abolishing' (की धनराशि को परिवर्तित करना अथवा उसका उत्सादन करना) शब्द रखे जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (ग) और (घ) के स्थान में निम्नलिखित उपखंड रखे जायें:

'(c) the custody of the Consolidated Fund or the Contingency Fund of India, the payment of moneys into or the withdrawal of moneys from any such fund;

(d) the appropriation of moneys out of the Consolidated Fund of India;'

[(ग) भारत की संचित निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

(घ) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग;]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 6 पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90 के खंड (1) के उपखंड (घ) और (ङ) में 'revenues of India' (भारत का राजस्व) शब्दों के स्थान में 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 90 पर, संशोधित रूप में, मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 90, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 90, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 91 पहले पारित हो चुका है। इसलिये अब सभा अनुच्छेद 92 पर विचार करेगी।

अनुच्छेद 92

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'President' (राष्ट्रपति) शब्द के बाद निम्नलिखित रखा जाये:

'or the Finance Minister acting under the authority of the President, specially given for the purpose' (अथवा वित्त-मंत्री जो राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त प्राधिकार से, जो इस उद्देश्य से विशेष रूप से प्रदान किया जायेगा, कार्य करेगा); तथा 'both Houses' (दोनों सभाओं) शब्दों के स्थान में 'People's House (लोक सभा) शब्द रखे जायें और 'estimated receipts' (प्राक्कलित पावती) शब्दों के बाद निम्नलिखित प्रविष्ट किया जाये:

'On revenue account as well as from borrowed moneys, or transfer of sums from other accounts 'to Revenue Account' (राजस्व लेखे से अथवा उधार लिये हुये धन से, अथवा अन्य लेखों से धन-राशियों का राजस्व लेखें में संक्रमण।)''

श्रीमान्, इस संशोधन में दो बातों का उल्लेख है और मैं उन्हें सभा के सामने रखना चाहता हूं। पहले तो जिस रूप में यह खंड है, इसके अनुसार आय-व्ययक राष्ट्रपति द्वारा ही अथवा राष्ट्रपति की ओर से ही संसद में उपस्थित किया जायेगा। सभा ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि भारत सरकार के सभी कार्य हमेशा राष्ट्रपति के नाम से किये जायेंगे। इसे स्वीकार करते हुये भी यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है कि राष्ट्रपति के प्राधिकार से संसद में आय-व्ययक उपस्थित किया जाये। इस विषय के सम्बन्ध में उसी मंत्री को कार्य करना चाहिये, जिसने देश के वित्त की व्यवस्था करने का भार उठाया हो। वह सभा में उपस्थित रहेगा और सभा के तथा देश के वित्तीय प्रशासन के सम्पर्क में रहेगा। मेरे विचार से यह उचित नहीं है कि इस अनुच्छेद में इस विकल्प को स्थान दिया जाये कि कोई अन्य मंत्री इस कार्य को लेकर सभा के सम्मुख उपस्थित हो सकता है। इसकी आज्ञा न होनी चाहिये।

[प्रो. के.टी. शाह]

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में पहले जिस सिद्धांत को स्वीकार किया गया है और जिसके अनुसार देश का शासन राष्ट्रपति के नाम से किया जायेगा, उसके आशय को स्वीकार करते हुये भी मैंने इस अनुच्छेद में कुछ सुधार करने का प्रयास किया है और यह प्रस्ताव किया है कि यद्यपि वित्त मंत्री प्राधिकार प्राप्त करके कार्य करे किन्तु आय-व्ययक का भार वह स्वयं वहन करे। मेरी अपनी सम्मति यह है कि इस प्रकार के कार्यों से राष्ट्रपति का कोई सम्बन्ध न होना चाहिये। वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद को ही पूर्ण प्रभुत्व तथा प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। किन्तु मैं पहले के अनुच्छेद में सन्निहित सिद्धांत अथवा उसके आशय का खंडन नहीं करना चाहता और इसलिये मैंने यह उपबंध रखा है कि इस विषय के सम्बन्ध में वित्त मंत्री को राष्ट्रपति से स्पष्ट शब्दों में प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये और उसके पश्चात् उसे लोक सभा में इस सम्बन्ध में जो भी आवश्यक कार्य हो करना चाहिये।

यह समझा जा सकता है कि यह विषय प्रक्रिया से अथवा नाम रखने से सम्बन्ध रखता है। किन्तु मेरी यह धारणा है कि इसमें संसदात्मक लोकतंत्र तथा उत्तरदायी शासन का सिद्धांत सन्निहित है क्योंकि इसमें इसका प्रतिषेध है कि कार्यपालिका के प्रमुख का परोक्ष रूप से भी इस प्रकार के विषयों में हाथ हो।

मेरे संशोधन में जो दूसरा सिद्धांत सन्निहित है उसका महत्त्व अधिक है और वह आय-व्ययक के सम्बन्ध में...।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। इसे दृष्टि में रखते हुये कि संघ की कार्यपालिका के कृत्य राष्ट्रपति के नाम से होंगे, क्या यह संशोधन व्यवस्था संगत कहा जा सकता है? वित्त मंत्री का कोई उल्लेख नहीं है। संशोधन का आशय यह है कि वित्त मंत्री संसद के सम्मुख विवरण उपस्थित करेगा। यह संविधान की योजना के विरुद्ध है, क्योंकि उसके अधीन सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किये जायेंगे। जिस संशोधन का यह आशय हो कि वित्त मंत्री को आगे बढ़ना चाहिये वह निरर्थक ही है। अनुच्छेद 42 में यह कहा गया है कि राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख राष्ट्रपति होगा।

***अध्यक्ष:** उन्होंने यह कह कर अपना भाषण आरम्भ किया कि वे इस सिद्धांत से परिचित हैं किन्तु उसके रहते हुये भी वित्त मंत्री को भी इस विषय के सम्बन्ध में स्थान मिलना चाहिये।

***प्रो. के.टी. शाह:** दूसरी बात का महत्त्व अधिक है क्योंकि मेरे विचार से इसका निश्चित शब्दों में उल्लेख हो जाना चाहिये कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में लोक-सभा का प्रभुत्व है और इन विषयों के सम्बन्ध में दोनों सभाओं को समान शक्ति प्राप्त नहीं है। जिस रूप में यह अनुच्छेद है इससे यह आशय प्रकट होता है कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में संसद की दोनों सभाओं की समान स्थिति है, किन्तु यह संविधान के आधार पर ही आघात करता है। इसलिये इस संशोधन द्वारा मैंने यह सुझाव रखा है कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में केवल लोक-सभा को ही निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो दूसरी सभा को उनके सम्बन्ध में केवल सूचित किया जाये और उसी प्रकार सूचित किया जाये जैसे जनसाधारण को तथा सरकार के विभिन्न विभागों को

सूचित किया जाता है और आय-व्ययक की प्रतियां दी जाती हैं। सांविधानिक अधिकार की दृष्टि से तथा सांविधानिक आवश्यकताओं अथवा नीति की दृष्टि से मेरे विचार से केवल लोक सभा का ही वित्त से सम्बन्ध होना चाहिये और उसी को उसमें दिलचस्पी दिखानी चाहिये। यही उचित व्यवस्था होगी। यदि आप यह चाहते हैं कि वित्तीय विषयों में लोक प्रतिनिधियों का ही असंदिग्ध रूप से प्रभुत्व हो, तो इस संशोधन का विरोध न होना चाहिये क्योंकि इसके अनुसार आय-व्ययक केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किया जायेगा। साधारण विधि के सम्बन्ध में दूसरी सभा संयुक्त रूप से अथवा समान रूप से कार्य कर सकती है और वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में भी कुछ रूप भेद का सुझाव रख सकती है परन्तु यह न होना चाहिये कि उसी का निर्णय अन्तिम निर्णय हो। इस सम्बन्ध में कोई भी सन्देह न रखना चाहिये कि वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में लोक सभा का ही प्रभुत्व होगा और मुख्यत: लोक प्रतिनिधियों को ही उनके सम्बन्ध में निर्णय करने का प्राधिकार प्राप्त होगा।

इसलिये मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं और यह बताना चाहता हूं कि इसका प्रभाव केवल राजस्व पर ही न पड़ेगा बल्कि देश की सेवा पर व्यय किये जाने वाले सभी प्रकार के धन पर पड़ेगा, चाहे वह उधार ली हुई निधि से निकाला जाये अथवा अन्य निधियों से संक्रमिक किया जाये।

मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जिस संशोधन को मैं उपस्थित कर रहा हूं वह संविधान के उन सिद्धांतों के अनुरूप ही है जिन्हें हमने विकसित किया है और इसलिये सभा को उसे स्वीकार कर लेना चाहिये।

***अध्यक्ष:** क्या आप अन्य संशोधनों को भी उपस्थित करने जा रहे हैं? संशोधन संख्या 1694 सम्मिलित किया जा चुका है।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'expenditure' (व्यय) शब्द के बाद 'whether charged upon the revenue of India's, or on other account' (चाहे वह भारत के राजस्व पर भारित हो अथवा किसी अन्य लेखे पर) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

श्रीमान्, यह संशोधन की संगति उसी तर्क से है जिसे मैंने उपस्थित किया है। देश की सेवाओं में व्यय होने वाले धन के लेखों में लोक सभा में प्रस्तुत करते समय कोई विभेद न किया जाना चाहिये चाहे वे राजस्व पर भारित हों अथवा संचित निधि पर अथवा साधारण राजस्व लेखे पर। मुझे आशा है कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** आपके नाम से दो संशोधन और हैं अर्थात् संशोधन संख्या 1697 और 1698।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं उन्हें उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** आप उन्हें शुक्रवार को उपस्थित कर सकते हैं। सभा शुक्रवार के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार, 10 जून 1949 के प्रात: आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VIII-19.49
320

अंक 8
संख्या 19

शुक्रवार
10 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

कारों की संख्या-तख्तियों पर हिन्दी अंक ...1129-1131
काउंसिल हाउस पर यूनियन जैक का फहराना ...1131
संविधान का प्रारूप—(*जारी*)
[अनुच्छेद 92 से 98 और 173 से 186 पर विचार] ...1131-1192

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 10 जून सन् 1949

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

कारों की संख्या-तख्तियों पर हिन्दी अंक

***सेठ गोविन्ददास** (मध्यप्रांत एवं बरार : जनरल): सभापति जी, आप आज की कार्यवाही प्रारंभ करें इससे पहले मैं आपका ध्यान हिन्दुस्तान टाइम्स के 9 तारीख के अंक की ओर दिलाता हूं, जिसमें कि उन्होंने मोटर प्लेट्स के जिस प्रश्न को मैंने यहां उठाया था उस सम्बन्ध में दिल्ली पुलिस ने जो कुल होम डिपार्टमेंट को लिखा है, उसका जिक्र किया है। वे लिखते हैं:

*[पता लगा है कि गृह मंत्रालय का ध्यान 1949 के भारतीय मोटर वेहीकल्स अधिनियम 1949 की ओर आकृष्ट किया गया है, जिसके अनुसार संख्या-तख्तियों पर गाड़ी की संख्या अंग्रेजी अक्षरों तथा अंकों में होनी चाहिये। पत्र में आगे चल कर यह लिखा है कि भारतीय मोटर वेहीकल्स अधिनियम, समस्त देश में लागू है और दिल्ली प्रशासन को इसमें संशोधन करने की शक्ति नहीं है।']

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि संयुक्त प्रान्त में और मेरे मध्य प्रांत में भी इसी कानून के अनुसार सब कार्यवाही होती है। इतने पर भी वहां की मोटरों के नम्बर, मिनिस्टरों की मोटरों तक के नवम्बर, हिन्दी में है। और यह भी आप जानते हैं कि पार्लियामेंट के नियमों के मुताबिक पार्लियामेंट में जो भाषण होते हैं वे भी अंग्रेजी में होने चाहिए, पर हमारी पार्लियामेंट के स्पीकर श्री मावलंकर साहब ने अनेक बार यह कहा है कि वर्तमान परिस्थिति जब बदल गई है तब इस प्रकार के नियमों को लागू क्यों किया जाये। पार्लियामेंट में बराबर हिन्दी में भाषण होते हैं। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि दिल्ली पुलिस एडमिनिस्ट्रेशन की जो दलील है वह कामनसेन्स और वर्तमान परिस्थिति के प्रतिकूल है और बड़ी बेहूदी दलील है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि कोई खास परिस्थिति उत्पन्न न होने पाये इसलिये इस सम्बन्ध में आपको कुछ न कुछ करने की कृपा करनी चाहिये।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, साधारणतः कोई प्रस्ताव होना चाहिये, जिस पर हम बोलना प्रारम्भ करें और मैं जानना चाहता हूं कि सेठ गोविंद दास का ऐसी बात आरम्भ कर देना, जो सदन के समक्ष नहीं है, कैसे नियमानुकूल है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

यदि नियमानुकूल है। यदि कोई शिकायत है तो यह कहीं अधिक अच्छा है कि के माननीय अध्यक्ष महोदय से जाकर मिल लें और इन सब मामलों की यहां चर्चा न करें। किसी सदस्य के बोलने के लिये प्रस्ताव होना चाहिये; क्या मैं जान सकता हूं कि वे किस प्रस्ताव पर बोल रहे हैं? क्या सदन के समक्ष कोई प्रस्ताव है, श्रीमान्?

***अध्यक्ष:** सदन के समक्ष कोई प्रस्ताव नहीं है। माननीय सदस्य ने उस दिन मेरा ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया था कि एक माननीय सदस्य की कार की संख्या तख्ती हिन्दी में होने के कारण उसको कुछ कहा गया था। मैंने कहा था कि मैं मामले की छानबीन करूंगा। माननीय सदस्य ने मेरा ध्यान उन बातों की ओर आकर्षित किया है जो कि इस विषय में हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित हुई हैं। उसे ही वे पढ़ कर सुना रहे थे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, साधारण तरीका यह है कि वे आपसे आप के कमरे में मिल लेते और मेरे विचार में उन्हें ये सब मामले सदन के समक्ष पेश नहीं करने चाहिये। श्रीमान्, यह अच्छा उदाहरण नहीं बनेगा।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह सदस्यों के विशेषाधिकार का प्रश्न है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** मैं इस विषय के महत्त्व को कम नहीं कर रहा हूं।

पं. बालकृष्ण शर्मा: मैं आपके विचारार्थ निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे माननीय मित्र इस सारे मामले के विषय में कुछ गम्भीर मालूम नहीं होते हैं क्योंकि यह सदस्यों के विशेषाधिकार का प्रश्न है जिससे वे कुछ महत्त्व देते प्रतीत नहीं होते। किसी माननीय सदस्य को ऐसा मामला सूचना देकर या बिना सूचना के ही सदन के समक्ष लाने का अधिकार है। मेरे माननीय मित्र ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है वह यह है कि कोई प्रस्ताव नहीं है। ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं और मैं स्वयं ऐसी ही स्थिति में था और आपने कृपा करके मुझे उन मुद्राओं का प्रश्न उठाने की अनुमति दे दी थी जो कि चलाई जाने वाली थी, और स्वभावत: हमें सांसद होने के नाते, यहां प्रश्न उठाने का पूरा अधिकार है चाहे सूचना न भी दी गई हो।

***अध्यक्ष:** मैंने इस मामले की जांच की थी क्योंकि यह मामला उस दिन उठाया गया था और मैं विशेषाधिकार सम्बन्धी प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं दूंगा और मैं इस मामले को सरकार के पास भेज दूंगा।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** मैं भी उनमें से हूं जो कि इस मामले में दिल्ली प्रशासन द्वारा सताये गये हैं। पहली अप्रैल को मेरी कार का चालान कर दिया गया था और मैंने जल्दी करके प्रेस को सूचना नहीं भेजी। मैंने उपायुक्त को लिखा था और यदि मैं कोई भेद नहीं खोल रहा हूं—मुझे आशा है मैं कोई भेद नहीं खोल रहा हूं—तो मुझे उस दिन माननीय प्रधानमंत्री के यहां प्रीतिभोज में उपायुक्त से मिलने का आनन्द प्राप्त हुआ और मैंने हिन्दी मैं संख्या-तख्तियों के होने के प्रश्न की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और उपायुक्त ने कहा कि मोटर वेहीकल्स ऐक्ट में एक खंड है जिसके अनुसार समस्त कारों पर संख्या-तख्तियां अंग्रेजी अंकों में होनी चाहिये। उन्होंने आगे चल कर यह भी कहा कि अधिनियम के वर्तमान रूप के होते हुए दिल्ली प्रशासन को अन्यथा अनुदेश नहीं दे सकते।

और कि दिल्ली प्रशासन उन सभी कारों का ध्यान रखता है, जिनकी संख्या-तख्तियां अंग्रेजी में नहीं होती। मेरा उनसे सदा यही निवेदन रहा है कि दिल्ली प्रान्त सब ओर ऐसे प्रान्तों से घिरा हुआ है जिन्होंने हिन्दी की अपनी राजभाषा और देवनागरी को अपनी राजलिपि घोषित कर दिया है।

***अध्यक्षः** शांति, शान्ति। आप मुझे जो सूचना देना चाहते थे, वह मुझे पता है। जैसा कि मैंने कहा है, माननीय सदस्य विशेषाधिकार के प्रश्न पर निर्णय देने के लिये मुझ पर जोर न डालें यह शायद उनके हित में न हो। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह मामला सरकार को भेज दिया जायेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** (बम्बई : जनरल): विधि का उल्लंघन करने को कोई विशेषाधिकार नहीं है।

काउंसिल हाउस पर यूनियन जैक का फहराना

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि कल इस काउंसिल हाउस के भवन पर यूनियन जैक लहरा रहे थे, यद्यपि इस महान संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न चैम्बर पर नहीं थे। मैं चाहता हूं कि आप आदेश दे दें कि जब तक संविधान-सभा इस स्थान पर बैठती है, तब तक इस काउंसिल भवन पर कोई यूनियन जैक न फहराया जाये।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य को चाहे अच्छा न लगे पर इसका कोई उपाय नहीं है, कम से कम अभी तो नहीं।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): क्या मैं आपका तथा इस सभा का ध्यान एक अत्यंत गम्भीर मामले की ओर दिला सकता हूं? भारत सरकार सिक्किम राज्य में एक प्रकार की पुलिस कार्यवाही कर रही है; वह अभी भारत संघ में मिला नहीं है और ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार उन्हें मिलने के लिये बाध्य कर रही है।

***अध्यक्षः** शान्ति, शान्ति। मुझे भय है कि मैं ऐसे मामलों की ओर ध्यान नहीं दे सकता ये मामले संविधान सभा के लिये नहीं हैं, बल्कि विधायिनी सभा के लिये हैं, जब भी वह बैठे।

***माननीय सदस्यगणः** साधु साधु।

संविधान का प्रारूप (*जारी*)

अनुच्छेद 92—(*जारी*)

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 92 पर बहस जारी रहेगी।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि खंड (1) के अंत में, निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'परन्तु एक बार जब वार्षिक वित्तीय विवरण संसद में पेश हो जाये और संसद उस पर विचार आरम्भ कर दे, तो राष्ट्रपति को, या उसके नाम से कार्य करने वाले किसी मंत्री को, या अन्य किसी व्यक्ति को, यह क्षमता नहीं होगी कि वे

[प्रो. के.टी. शाह]

उसमें किसी प्रकार कोई परिवर्तन या रूपभेद कर सके, अथवा समस्त विवरण को वापस ले सके; और कि केवल लोक सभा ही उस प्रस्तुत वित्तीय विवरण को अंशत: या पूर्णत: परिवर्तित या संशोधित कर सकेगी या उसमें रूपभेद कर सकेगी या उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी; और यह भी शर्त है कि केवल लोक सभा या संसद को ही वित्तीय विवरण में रूपभेद, वृद्धि या हेरफेर करने की या उस अंश में या पूर्ण रूप में स्वीकार करने या अस्वीकार करने की क्षमता होगी।' ''

श्रीमान्, इसका उद्देश्य वित्तीय मामलों में लोक सभा की प्रभुता का सिद्धांत निश्चित करना है। एक बार वित्तीय विवरण तैयार करके संसद को पेश कर दिया जाये, तो फिर उसे, निबटाने का एक छत्र प्राधिकार संसद को ही होना चाहिये; और कोई व्यक्ति या प्राधिकारी ऐसा नहीं कर सकता, जब तक कि लोक सभा उसे पारित न कर दे।

इस संशोधन द्वारा मैं यह चाहता हूं कि लोक वित्त के संबंध में संसद की प्रभुता और उसमें लोक सभा की प्रभुता, को संसद-विहीन रूप से सर्वथा स्पष्ट कर दिया जाये। अत: यह उपबंध बनाना चाहिये कि एक बार वित्तीय विवरण को सदन के समक्ष रख दिया जाये, और सदन उस पर विचार करना आरम्भ कर दे, तो न राष्ट्रपति और न उसकी ओर से किसी मंत्री का ही उस विवरण में कोई परिवर्तन अथवा रूपभेद करने अथवा उसमें से कोई मद वापस लेने की क्षमता होगी। यदि कोई परिवर्तन किया जाना हो, तो वह परिवर्तन केवल लोक सभा द्वारा उस निकाय के मतदान द्वारा ही हो सके और दोनों सदनों अर्थात् संसद द्वारा भी न हो सके।

जो संसदीय जनतंत्रराज्य यह चाहता है कि प्रथम सदन एकमात्र संरक्षक होना चाहिये, वित्तीय मामलों का प्रहरी होना चाहिये, उसमें यह मामला इतना स्वस्पष्ट है कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रस्ताव ऐसा है जिस पर चुनौती नहीं दी जा सकती। यह ब्रिटिश संविधान की भावना या स्वीकृत अभिसमय से भिन्न नहीं है, जिसका हम इस मस्विदे में नमूने के रूप में अनुसरण कर रहे हैं। उसमें यह अभिसमय से स्पष्ट है, क्योंकि ब्रिटेन में लिखित संविधान तो है ही नहीं कि लोक वित्त के मामलों में हाउस आफ कामन्स ही सर्वोच्च प्राधिकारी है। हममें से जो उस नमूने का अनुसरण करते हैं और लिखित संविधान बनाना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि उस सुविख्यात अभिसमय को कार्यान्वित करें जिससे कि संसद या लोक सभा ही ऐसे वित्तीय उपबंधों में परिवर्तन करने में सक्षम हो, चाहे वे व्यय संबंधी हों चाहे राजस्व संबंधी, अथवा वे किसी वर्ष के वित्तीय उपबंधों को बदलने या अन्यथा निबटाने के सम्बन्ध में हों। इन मामलों में केवल लोक सभा का मत ही सर्वोपरि होना चाहिये, और किसी अन्य प्राधिकारी का उसमें दखल नहीं होना चाहिये। एक बार वित्तीय विवरण लोक सभा के समक्ष पेश हो जाये तो किसी प्राधिकारी को उससे कुछ मतलब नहीं होना चाहिये और न हो ही सकता। अत: मैं इसे सदन में पेश करता हूं।

क्या मैं अगला संशोधन भी पेश कर सकता हूं, श्रीमान्?

***अध्यक्ष:** हां।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, अगला संशोधन यह है:

''अनुच्छेद 92 के खंड (1) के पश्चात्, निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(1क) जब संसद की लोक सभा में वार्षिक वित्तीय विवरण पेश किया जाता है तब राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के सदस्यों को संसद की लोक सभा में उपस्थित होने के लिये आमंत्रित कर सकता है।' ''

मैंने जो सिद्धांत रखा है, उसके परिणामस्वरूप ही यह बात पैदा होती है कि केवल लोक सभा ही वित्तीय मामलों को निबटाने में सक्षम है और उसके विषय में उसे सर्वोपरि प्राधिकार है। दूसरी सभा को वित्तीय मामलों में बिल्कुल अलग रखना चाहिये, चाहे अन्य कानूनों के विषय में उसकी शक्तियां और प्राधिकार कुछ भी हो।

इसे कार्यान्वित करने के लिये, केवल मैं यही सुझाव नहीं दूंगा कि वित्तीय विवरण लोक सभा के समक्ष रखा जा सकता है, मैं तो आगे बढ़ कर यह भी कहूंगा कि यदि इस विषय में दूसरी सभा को कोई सूचना भेजनी हो तो उस सदन को आय-व्ययक के प्रस्तुत करने के समय उपस्थित होने के लिये कह दिया जाये। आयव्ययक अथवा वित्तीय विवरण की औपचारिक पेशी और उसे निबटाने का काम केवल लोक सभा ही करे।

इस संशोधन में उस सामान्य सिद्धांत को केवल स्पष्ट कर दिया गया है कि जिसकी मैं सदा चर्चा करता रहा हूं, कि राज्य-परिषद का वित्तीय मामलों में कोई दखल न हो।

मैं इन संशोधनों को सदन में पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1699 और 1700 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (ख) में 'emoluments' शब्द के स्थान पर 'salaries' शब्द रख दिया जायें।''

हम साधारणत: इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (ख) के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

''(खख) मंत्रियों और संसद के सदस्यों के वेतन और भत्ते।' ''

श्रीमान्, मैं इस संशोधन पर बिल्कुल बोलना नहीं चाहता। मैं तो केवल यही जानना चाहता हूं कि, जब राष्ट्रपति, राज्य-परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की उपलब्धियों को भारत के राजस्व पर भारित व्यय माना गया है तो मंत्रियों और संसद के सदस्यों के वेतनों और भत्तों को भी ऐसे ही क्यों न समझा जाये?

***अध्यक्ष:** मंत्रियों के वेतनों पर सदन में मत लिया जाता है क्योंकि मंत्री लोग उत्तरदायी होते हैं।

***श्री. एच.वी. कामतः** राज्य-परिषद् का सभापति और उपसभापति, लोक सभा का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष....

***अध्यक्षः** वे उस माने में उत्तरदायी नहीं हैं, जिस माने में मंत्री होते हैं।

श्री एच.वी. कामतः एक कठिनाई है, श्रीमान्। इस संविधान में किसी अनुच्छेद में यह नहीं लिखा है कि राज्य-परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन उनकी पदावधि में घटाये नहीं जायेंगे। किन्तु राष्ट्रपति के वेतनों और भत्तों के विषय में ऐसा उपबंध है। अतः यह प्रतीत होता है कि पूवोक्त व्यक्तियों के वेतन भत्तों को संसद बदल सकती है।

***अध्यक्षः** मुझे भय है कि आपका संशोधन तो उत्तरदायी मंत्रियों के समूचे सिद्धांत पर ही सीधा कुठाराघात है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं संशोधन को औपचारिक रूप में पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1703, 1704 और 1705 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (ङ) में 'or by Parliament by law' ये शब्द हटा दिये जायें।''

संशोधित प्रस्ताव फिर इस प्रकार बन जायेगा:

''any other expenditure declared by this Constitution to be so charged.''

यह मेरे विचार में देश के वित्तीय प्रशासन के संबंध में और व्यापक रूप से उसकी आर्थिक स्थिति के विषय में अतीव मूलभूत महत्त्व की बात है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत, संविधान में भारत के राजस्व पर भारित बहुत सी मदें उल्लिखित हैं—अब वह संचित निधि पर भारित होंगी, और इस प्रकार प्रत्येक वर्ष उन पर मतदान नहीं होना हैं। मेरे मतानुसार विभिन्न मदें एक तुल्य नहीं हैं। यदि इनमें से कुछ मदों को दलीय राजनीतिक झगड़ों से अलग रखना हो, यदि उन्हें कम से कम कुछ निश्चित समय के लिये सुनिश्चित और अपरिवर्तनशील रखना हो, जैसा कि राष्ट्रपति की पदावधि में उसके वेतन या भत्ते, या विधान मंडल के दोनों सदनों में पीठासीन प्राधिकारियों के वेतन और भत्ते या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, उत्तर वेतन या भत्ते तो यह ठीक ही है कि हम इन मदों को सीमित रखें या संख्या में यथासंभव कम रखें और आकार में कम रखें।

मेरे विचार में ऐसी कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये कि ऐसी मदों को बढ़ाया जा सके या उनकी राशियों को बढ़ाया जा सके, जो कि सदन के वार्षिक मतदान से परे होंगी। यहां ही उल्लिखित बहुत सी मदें हैं जो मुझे अत्यधिक अनावश्यक दिखाई देती हैं और भारित सूची अथवा संचित निधि में उन्हें रखना बुद्धिहीनता दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ मद (ग) को ही लीजिये जो उस ऋणभार के सम्बन्ध में है जिसके लिये भारत सरकार का दायित्व है। उसमें निक्षेप निधि के भार, विमोचन भार, अन्य व्यय जो ऋण उगाहने

से संबंध हो और ऋण संबंधी कार्य शामिल हैं जैसे ब्याज देना, आदि। यह ऐसी मद है जिसको भारत के राजस्व पर या संचित निधि पर भार बनाने की उपयुक्तता पर विवाद हो सकता है। मैं अच्छी तरह समझता हूं कि राष्ट्रीय प्रत्यय और उसके स्थायित्व के निमित्त यह बिल्कुल उचित है कि सामान्य ऋणभार पर प्रतिवर्ष मतदान न हो। साथ ही लोक वित्त के प्रत्येक विद्यार्थी को पता होगा कि प्राय: देशों को बार-बार अत्यन्त उच्च प्रत्यय-युक्त देशों को भी उनके स्थायी ऋण पर ब्याज की दर को बदलने या कम करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। विगत में जितनी ऋण परिवर्तन योजनाओं को स्वीकार किया गया है और आज लागू किया जा रहा है, उनसे ब्याज की दर को और संविदे को एक पक्ष की ओर से ही बदल दिया गया है। यदि उन मदों पर मतदान न हो सकेगा, तो मुझे भय है कि समय-समय पर हमारे साधनों के अनुसार हमारे दायित्व को घटाने, बढ़ाने और खर्च में कमी करने की संभावना काफी कम हो जायेगी।

किन्तु यह देखते हुए कि हम संक्रमण काल में से गुजर रहे हैं और अपने राष्ट्रीय प्रत्यय का प्रयोग करने तथा विदेशों में उधार लेने के विषय में जो घरेलू तथा विदेश-संबंधी उलझनें पैदा हो सकती हैं उन्हें देखते हुए मैंने इस मद विशेष के संबंध में कोई संशोधन नहीं भेजा, यद्यपि मैं मानता हूं कि मैं इसे इस अनुच्छेद में समाविष्ट होते देखना नहीं चाहता।

यदि ब्याज और निक्षेप निधि भार को प्रतिवर्ष मतदान से अलग भी रखा जाये, तो भी मैं यह नही समझता कि दलाली या ब्याज के प्रशासन के लिये रिजर्व बैंक को दिये जाने वाले प्रबंध भार आदि भारों को भी इस प्रकार क्यों समाविष्ट किया जाये। मेरे विचार में ऐसा करना सचमुच अनुपयुक्त है। किन्तु मैंने अभी जो कारण बताया है, अर्थात् वर्तमान की नाजुक सी वित्तीय स्थिति को ध्यान में रख कर मैं चुप रह गया, अन्यथा इन मामलों पर भी मैं संशोधन पेश कर ही देता।

किन्तु जब आप ऐसे अव्यवस्थित उपबंध पर आते हैं जैसा कि उपखंड (ङ) में समाविष्ट है जिससे कि संसद को अधिकार मिल जाता है कि वह बाद में किसी भी खर्च की मद को ऐसी सूची में शामिल कर सकती है जिस पर मत नहीं लिये जा सकते तो मुझे भय है कि संविधान प्रथम सभा की शक्तियों के कम करने के लिये, उसके वित्तीय प्राधिकार को घटाने के लिये मार्ग खुला छोड़ देता है, जो कि मेरे मतानुसार अत्यन्त नासमझी की बात है और अस्वीकार्य है। यदि आप हमारे लोगों पर विश्वास करें, यदि आप यह विश्वास करें कि भावी संसद इन सब प्रयोजनों के लिये सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न है, तो हमारे लिये इस अनुच्छेद में यह बात रखना अनावश्यक होगा, कि संसद उन मदों में परिवर्तन कर सकती है, जिन पर प्रतिवर्ष मतदान नहीं हो सकता। जब आप मतदान के योग्य सूची को बढ़ाने की शक्ति नहीं देते, तो फिर आप मतदान न होने वाली सूची को बढ़ाने की शक्ति क्यों देते हैं?

दूसरी ओर, यदि आप इस संविधान को एक प्रकार का निर्बंधकारी साधन ही बनाना चाहते हैं, यदि आप इस संविधान में यही बातें रखना चाहते हैं कि अमुक-अमुक बात ही संसद के मतदान से अपवर्जित होंगी, जैसा कि मेरे संशोधन में उपबंधित है, तो मेरा सुझाव है कि सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि उन्हें संख्या में बहुत कम रखा जाये और परिमाण में भी यथासंभव छोटा ही रखा जाये। किन्तु आप जो उपबंध बना रहे हैं उसके द्वारा आप वित्तीय मामलों में संसदीय प्राधिकार को प्रभावहीन और निर्बन्धनयुक्त बना देना

[प्रो. के.टी. शाह]

चाहते हैं। क्योंकि एक बार किसी व्यय को वार्षिक मतदान से मुक्त कर दिया जाये तो जितना चाहे दुरुपयोग हो सकता है। कम से कम किसी वर्ष-विशेष में या संविधान के पुनरीक्षण तक संसद तो उसमें परिवर्तन नहीं कर सकती।

अत: मेरा सुझाव है कि यह बहुत गम्भीर मामला है जिस पर इस संविधान के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों को ध्यान देना चाहिये। मैंने जो संशोधन पेश किया है उसमें लोक आंकलन को बनाये रखने के लिये आवश्यक किसी रक्षण कवच पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस अनुच्छेद से यह शक्ति मिल जाती है कि संचित निधि में अथवा राजस्व पर भार के रूप में कुछ मदों को शामिल किया जा सके जिन्हें वार्षिक मतदान से बाहर रखना आवश्यक और उपयुक्त हो। यह भावी संसद को प्रतिषिद्ध करता है कि वह विधि बना कर, अपने उत्तराधिकारियों की क्षमता से वित्तीय विवरण की कुछ मदों पर मतदान के अधिकार को हटा सके। स्मरण रखिये कि यह तो किसी प्रभुता सम्पन्न निकाय को अपने उत्तराधिकारी की शक्ति को कम करने का अधिकार देना है जो कि इस खंड में निहित उपाय द्वारा किसी संसद को अपने उत्तराधिकारी के विरुद्ध नहीं मिलना चाहिये। इससे बार-बार परिवर्तनों के लिये और दलीय प्रभावों अथवा उस प्रकार की अन्य संक्रमणकालीन बातों के लिये मार्ग खुल जायेगा, जो कि कम से कम अत्यधिक अवांछित है। अत: मैं यह संशोधन सदन में पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर, प्रथम सूची की संख्या 7।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) में 'Revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) में 'Revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (घ) के पश्चात्, निम्न उपखंड रख दिया जाये:

(dd) The salary, allowances and pension payable to or in respect of the Comptroller and Auditor General of India.' ''

9 के विषय में, मुझे इतना ही कहना है कि सदन ने अनुच्छेद 124, खंड (5) पहले पारित कर दिया है, जिसमें विद्यमान संशोधन निहित है। अत: इसे यहां रखा गया है, क्योंकि यह अनुमान किया गया कि भार की संचित निधि पर भारित समस्त मदों को एकत्र कर देना अच्छा रहेगा, इसकी बजाय कि वे संविधान में यत्र तत्र बिखरी रहें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने एक रोचक संशोधन पेश किया है, जिसके अनुसार, 'संसद के सदस्यों के और मंत्रियों के वेतन और भत्ते' ये शब्द इस उपखंड में जोड़ दिये जायें जिससे कि वे भी भारत के राजस्व पर भारित हो जायें। इसका आशय यह है कि उन पर भी मतदान नहीं होगा, जिसका परिणाम यह होगा कि कार्यपालिका को हटाया नहीं जा सकेगा। इस

पर मुझे तो कुछ आश्चर्य सा है। भारत के राजस्व पर तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश तथा महालेखापरीक्षक के वेतन ही भारित व्यय होंगे। वे अनुच्छेद 93 के अंतर्गत मतदान से विमुक्त हो जायेंगे। मैं नहीं कह सकता कि इन उच्च सम्मानित व्यक्तियों के वेतनों पर भी मतदान के अधिकार से राष्ट्र की सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद को वंचित क्यों किया जाये। शायद श्री कामत इस अनुच्छेद के उपबंधों को बिल्कुल बेहूदा ही बना डालना चाहते हैं; अन्यथा उनके संशोधन का कोई अर्थ नहीं है। मैं मानता हूं कि इन उपबंधों द्वारा हम संविधान में एक भयानक चीज समाविष्ट कर रहे हैं। प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन रखा है कि अंतिम खंड को हटा दिया जाये, जिसमें लिखा है कि संसद किसी व्यय को मतदान से विमुक्त कर सकती है। उस संशोधन का मैं हृदय से समर्थन करता हूं। मेरे विचार में, संसार भर के संविधानों में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता और मैं चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर हमें बतायें कि अनुच्छेद 93 का उपखंड (च) लोकतंत्रात्मक प्रक्रिया के अनुसार अनुरूप कैसे है। मेरा ख्याल है कि राष्ट्र की सम्पूर्ण-प्रभुत्व संपन्न संसद को व्यय की प्रत्येक मद पर मतदान का अधिकार होना चाहिये। यह युक्ति तो समझ में आ सकती है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, महालेखापरीक्षक और अध्यक्ष के वेतन राज्य के राजस्वों पर भारित हों। यह संभव है कि सत्तारूढ़ दल बहुमत द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतनों को मतदान में अस्वीकृत कर दे, जिससे कि न्यायाधीश सत्तारूढ़ दल को प्रसन्न करना चाहेंगे और इससे उनकी स्वतंत्रता पर प्रभाव पड़ेगा। किन्तु यह तो खींचातानी करना है और कोई दल उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों आदि के वेतनों को कम करने का साहस नहीं कर सकता। किन्तु अन्य लोगों के वेतनों को भी मतदान से मुक्त कर देना न्याययुक्त नहीं है। खंड (च) को तो हटा ही देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मैं प्रो. शाह के संशोधन (1693) की प्रत्येक मद पर अलग अलग मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'President' शब्द के पश्चात् निम्नलिखित पद जोड़ दिया जाये।
>
> 'or the Finance Minister acting under the authority of the President specifically given for the purpose.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'both the Houses' इन शब्दों के स्थान पर 'People's House' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'estimated receipts' इन शब्दों के पश्चात् निम्नलिखित शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें:
>
> 'on revenue account as well as from borrowed moneys, or transfer of sums from other accounts to Revenue Account.'

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (1) में 'expenditure' शब्द के पश्चात्, 'whether charged upon the revenues of India or on other account' ये शब्द जोड़ दिये जायें।

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (1) के अंत में, निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'किन्तु एक बार जब वार्षिक वित्तीय विवरण संसद में पेश हो जाये और संसद उस पर विचार आरंभ कर दे, तो राष्ट्रपति को या उसके नाम से कार्य करने वाले किसी मंत्री को, या अन्य किसी व्यक्ति को, यह क्षमता नहीं होगी कि वे उसमें किसी प्रकार कोई परिवर्तन या रूपभेद कर सके, अथवा समस्त विवरण को वापस ले सके; और कि केवल लोक सभा ही उस प्रस्तुत वित्तीय विवरण को अंशत: या पूर्णत: परिवर्तित या संशोधित कर सकेगी, या उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकेगी; और यह भी शर्त है कि केवल लोक सभा या संसद को ही वित्तीय विवरण में रूपभेद, वृद्धि या हेरफेर करने की या उसे अंश में या पूर्णरूप में स्वीकार करने या अस्वीकार करने की क्षमता होगी।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (1) के पश्चात् निम्नलिखित नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(1क) जब संसद की लोक सभा में वार्षिक वित्तीय विवरण पेश किया जाता है तब राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के सदस्यों को संसद की लोक सभा में उपस्थित होने के लिये आमंत्रित कर सकता है।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (ख) में 'emoluments' शब्द के स्थान पर 'salaries' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, क्या मैं अपने संशोधन संख्या 1702 को वापस लेने के लिये सदन की अनुमति मांग सकता हूं?

संशोधन सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है;

''अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (ङ) में 'or by Parliament by law' ये शब्द हटा दिये जायें''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) में 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) में 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 92 के खंड (3) के उपखंड (घ) के पश्चात्, निम्न उपखंड प्रविष्ट कर दिया जाये:

'(dd) the salary, allowances and pension payable to or in respect of the Comptroller and Auditor-General of India.' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 92 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 92 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 93

(संशोधन संख्या 1707 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 93 के खंड (1) में 'Parliament' शब्द के पश्चात् 'unless Parliament has by law previously passed in any year for that purpose enacted that any expenditure under article 92 (3) shall be deemed not to be charged on the revenues of India' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

यहां भी वित्तीय मामलों में, संसद की प्रभुता, वरन् लोक सभा की प्रभुता के सिद्धांत को ही मैं स्थापित करना चाहता हूं। अत्यधिक लोक व्यय को एकमात्र करके संचित निधि में डाल देना और फिर उसे संसद के मतदान से परे रख देना, मेरे विचार में, आपत्तिजनक है, इससे व्यय पर संसदीय नियंत्रण कम हो जायेगा, चाहे यह भी मान लिया जाये कि ये राशियां संचित निधि में रखना अपेक्षित है। आज की विशेष परिस्थितियों में ऐसा आचरण

[प्रो. के.टी. शाह]

चाहे अपेक्षित हो पर मैं नहीं चाहता कि संसद को संविधान के अधीन जरा भी यह अधिकार न रहे कि वह इन मतदान के विमुक्त मदों में से कुछ भी कम कर सके, चाहे वह विधि द्वारा यह चाहे कि उन्हें समाविष्ट न किया जाये।

अत: मैं चाहता हूं कि आगे से यह शक्ति संसद को दे दी जाये कि वह पूर्ववर्त्ती वर्ष में ऐसा विधान बना सके कि अनुवर्ती वर्ष में एक विशेष मद को उस समय से भारत के राजस्व पर या संचित निधि पर भार नहीं समझा जायेगा, जिससे कि उस पर सदन को मत देने का अधिकार हो जायेगा। भारत की विशेष परिस्थितियों में जिन राशियों को संचित निधि में समाविष्ट किया जाये, संसद को उन्हें विधि द्वारा उस निधि में से निकाल लेने का अधिकार होना चाहिये।

मत योग और मत विमुक्त मदों में अन्तर करने की प्रणाली पर अथवा उन राशियों में जिन पर संसद प्रतिवर्ष मत देगी और उन राशियों में जिन पर मतदान नहीं हो सकता, वाद-विवाद हो सकता है, विभेद करने का आचरण पूर्ववर्ती शासन की देन है, जिस पर मेरे विचार में, प्रबल आपत्ति हो सकती थी और आज और भी प्रबलतर आपत्ति हो सकती है। उस शासन सत्ता के विषय में, नि:संदेह, यह समझा जा सकता है कि ऐसी कई व्यय की मदें थी, जिन्हें वह भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के समक्ष लाने की चिंता नहीं करती थी, साहस नहीं करती थी। उदाहरणार्थ उसका वृहद प्रतिरक्षा-व्यय, अथवा उसके गृह प्रभार, आदि पर यदि संसद को मत देने का अधिकार होता तो कभी आयव्ययक पारित ही नहीं हो सकता। किन्तु उसी प्रकार आचरण करने के लिये आज के प्राधिकारी तो ऐसा बहाना नहीं बना सकते। वर्तमान संसद अथवा इस संविधान के अंतर्गत संसद सर्वोपरि वित्तीय प्राधिकारी होगी। वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न विधान-निकाय होगा जिसे व्यय की प्रत्येक मद पर विचार करने और मतदान करने का अधिकार होना चाहिये। इस विषय में, विद्यमान अनुच्छेद में उपबन्धित है कि वाद-विवाद हो सकता है; किन्तु पूर्ववर्त्ती अनुच्छेद में वर्णित कुछ मदों पर, जो कि राजस्व पर या संचित निधि पर भारित कही जाती हैं, कोई मतदान नहीं होगा।

मेरे विचार में यह तो जले पर नमक छिड़कना है। आप विधान मंडल से कहते हैं ''तुम्हें ऐसी मदों पर बहस करने का हक है, पर तुम्हें मत देने का हक नहीं है।'' ऐसे व्यर्थ वाद-विवाद से क्या लाभ है जो निराशा उत्पन्न करने वाला हो, जिसका परिणाम केवल अनुत्तरदायी, विनाशकारी, नकारात्मक आलोचना ही हो सकती है, जो हमारे नेताओं को बहुत नापसंद है।

अत: मुझे इस अनुच्छेद के लिये कोई औचित्य दिखाई नहीं देता, सिवाय इस युक्ति के, जो आजकल प्राय: दी जाती है, कि असाधारण परिस्थितियां हैं, या आजकल हमारे आंकलन और वित्त की नाजुक स्थिति है। अत: यदि आप आज की असाधारण स्थिति में उस चीज को स्वीकार करने के लिये राजी भी हो जायें जो कि मेरे विचार में मूलत: आपत्तिजनक है, तब भी मेरे विचार में कम से कम भविष्य के लिये तो संसद के लिये गुंजाइश रखनी चाहिये जिससे कि वह विधि द्वारा, अर्थात् उस विधि विशेष के उपबंधों तथा सिद्धांत पर गम्भीर विचार करने के पश्चात् यह विधान निर्मित कर सके कि भारित सूची में से, अथवा मतदान से विमुक्त सूची में से कोई मद हटा दी जायेगी और उस पर संसद को मतदान का हक हो जायेगा।

यह सर्वथा संभव है, उदाहरणार्थ, राष्ट्र ऋण के विषय में जो कि राजस्व पर भारित है, अथवा उस ऋण के प्रबंध के भार के विषय में जो कि बड़ी राशि बन सकता है, संसद द्वारा जांच करने और मतदान करने की मांग की जा सकती है और यह शायद उस पर वाद-विवाद से ही संतुष्ट न हो। ऐसे मामले में, मैं यह तो नहीं कह रहा कि संसद मूलभूत संविधान को बदल दे, किन्तु संविधान के अधीन, राष्ट्रीय विधान मंडल को यह अधिकार होना चाहिये कि वह किसी पूर्ववर्त्ती वर्ष में कोई विधि बना सकती है, कि अनुवर्त्ती वर्ष में उसे भारित या मतदान से विमुक्त सूची में उल्लिखित कुछ निर्दिष्ट मदों पर वाद-विवाद करने तथा मत देने का भी हक होगा।

अत: यह मांग करते समय मैं इस अनुच्छेद की योजना में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल यही सुझाव दे रहा हूं कि संसद की शक्ति सदा के लिये कार्यपालिका के पास रहने नहीं देनी चाहिये, जैसा कि इस संविधान में किया जा रहा है; और विधान मंडल को भारित सूची में से कोई-कोई मद वापस लेने का अधिकार होना चाहिये, जो इस समय राजस्व पर भारित है और उसे सदन के मतदान के लिये खुला छोड़ देने का अधिकार होना चाहिये। मैं यह प्रस्ताव सदन में पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1709 और 1710 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 93 के खंड (1) में 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 93 के खंड (1) में 'Parliament' शब्द के पश्चात् 'unless Parliament has by law previously passed in any year for that purpose enacted that any expenditure under article 92 (3) shall be deemed not to be charged on the revenues of India' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 93 के खंड (1) में 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 93 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 93 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 94

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

कि अनुच्छेद 94 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये—

'94. *विनियोग विधियेक* (1) लोक सभा द्वारा अनुच्छेद 113 के अधीन अनुदान किये जाने के बाद यथासंभव शीघ्र भारत की संचित निधि में से–

(क) लोक सभा द्वारा इस प्रकार किये गये अनुदानों की, तथा

(ख) भारत की संचित निधि पर भारित, किंतु संसद के समक्ष पहले रखे गये विवरण में दी हुई राशि से किसी भी अवस्था में अनधिक व्यय की पूर्त्ति के लिये अपेक्षित सब धनों के विनियोग के लिये विधेयक पुर:स्थापित किया जायेगा।

(2) इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की राशि में फेरफार करने अथवा अनुदान के लक्ष्य को बदलने, अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि पर फेरफार करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, ऐसे किसी विधेयक पर, संसद के किसी सदन में प्रस्थापित न किया जायेगा तथा कोई संशोधन इस खंड के अधीन अप्रवेश्य है या नहीं इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अंतिम होगा।

(3) अगले दो अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत की संचित निधि में से इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन निकाला न जायेगा।' ''

जैसा कि मैंने कल स्पष्टीकरण किया था, इस नये अनुच्छेद 94 का उद्देश्य पुराने अनुच्छेद के उपबंधों का स्थान लेना है जो कि गवर्नर-जनरल द्वारा एक अनुसूची के प्रमाणीकरण के विषय में था।

(संशोधन संख्या 1711 से 1716 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य नये प्रस्तुत किये गये नये अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहता है?

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, पुराने अनुच्छेद के स्थान पर इस नये अनुच्छेद को रखने में चाहे कुछ बड़ी आपत्ति न हो, पर मेरा यह ख्याल तो हो ही जाता है कि हमारी प्रक्रिया पर यह एक अनावश्यक औपचारिकता थोपी जा रही है। नि:संदेह डा. अम्बेडकर ने स्पष्ट कर दिया था कि हम अपनी प्रक्रिया को हाउस आफ कामन्स की प्रक्रिया के अनुरूप बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु एक सारवान अन्तर है जिसको उन्होंने नहीं लिया है। हाउस आफ कामन्स में, प्राकल्लनों पर मतदान समिति में होता है, समस्त सदन समिति के रूप में बैठता है। वहां जो मतदान होता है, उसकी कानूनी वैधता नहीं होती। अत: उन्हें उस मतदान को कानूनी वैधता प्रदान करने के लिये एक विशेष विनियोग विधेयक पेश करना पड़ता है। किन्तु हमारी प्रक्रिया यह है कि

अनुदानों की मांगों पर भरे सदन में मतदान होता है जब कि अध्यक्ष पीठासीन होते हैं। अत: वह मतदान उतना ही वैध होता है जितना कि वह विनियोग अधिनियम होगा। एक बार सदन में मतदान होने के पश्चात् किसी के लिये उसे बदलना संभव नहीं है। अत: मैं नहीं समझ पाता कि हम पुन: विधेयक की प्रक्रिया क्यों करें और मतदान क्यों लें? आखिर, यह तो उपबंधित है ही कि आप विधेयक में कुछ भी परिवर्तन कर ही नहीं सकते। जब सदन ने विधि रूप में कुछ कर दिया हो, तब मैं नहीं समझता कि उसे पुन: विधेयक के रूप में लाकर और वक्तृताएं करवाने तथा विधान मंडल के दो तीन दिन बरबाद करने का क्या अभिप्राय है।

डा. अम्बेडकर ने कहा कि राष्ट्रपति को प्रमाणीकरण करने की शक्ति देना सांविधानिक रूप से आपत्तिजनक है। यदि यह आपत्ति हो, तो मेरा निवेदन है कि जो कुछ पारित हो उसका अध्यक्ष ही प्रमाणीकरण करे। अत: समस्त औपचारिकता को हटाया जा सकता है।

मंच पर आने का मेरा उद्देश्य इस पर बोलना इतना नहीं है, जितना कि खंड (3) पर बोलना है—मैं सदन का ध्यान इस अनुच्छेद के खंड (3) की ओर आकृष्ट करता हूं, मैं चाहता हूं कि इसके पूर्ण आशय को समझ कर ही इस पर मत दें। इसमें कहा गया है:

> ''अगले दो अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत की संचित निधि से इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन निकाला न जायेगा।''

अनुच्छेद 93 में अनुपूरक या अपर अनुदानों का उपबंध है। अत: खंड (3) का अर्थ यह है कि अनुपूरक या अपर अनुदानों के प्रयोजन के लिये संसद के मतदान के बिना भी धन निकाला जा सकता है। क्या यही प्रयोजन है? मैं यह समझ सकता हूं कि सरकार अपनी जोखिम पर व्यय कर दे, किन्तु संसद में मतदान होने तक रकम का भुगतान रुका रहना चाहिये। किन्तु खंड में लिखा है कि संसद द्वारा मतदान के बिना ही संचित निधि में से रुपया दिया जा सकता है। मेरे विचार में, मतदान बिना धन न दिया जाये, इस बात के लिये हमारे समस्त प्रयत्न इससे व्यर्थ हो जाते हैं। अत: मेरा सुझाव है कि खंड (3) हटा दिया जाना चाहिये और अनुच्छेद 95 में अपेक्षित उपबंध बना देना चाहिये। मेरा सुझाव है कि विधि को प्रभावी बनाने के लिये यह अत्यावश्यक है।

मैं मानता हूं कि वित्त पर संसद की शक्ति प्रभावी होनी चाहिये। इसे प्रभावी रखने के विषय में मैं इतना ही सख्त हूं जितने कि श्री सिधवा हैं। किन्तु हमें प्रभावी होने का ढोंग करके इसे अन्य एक उपबंध द्वारा प्रभावशून्य नहीं बना देना चाहिये। यदि खंड (3) रहे, तो एक अरब रुपये अनुरूपक या अधिकाई अनुदानों के रूप में व्यय किये जा सकते हैं और फिर सारी चीज संसद के समक्ष केवल अनुसमर्थन मात्र के लिये आयेगी। अत: नये अनुच्छेद का खंड (3) हट जाना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री सन्तानम् ने सुझाव दिया है कि डा. अम्बेडकर के संशोधन में से खंड (3) को निकाल दिया जाये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** समूचा खंड (3) नहीं। मैं तो इन शब्दों को ही हटाना चाहता हूं कि ''Subject to the provisions of the next two succeeding articles'' अनुच्छेद 95 होना चाहिये। मुझे तो 'two succeeding articles'' पर ही आपत्ति है। मुझे यहां खंड (3) में अनुच्छेद 96 के रहने पर कोई आपत्ति नहीं है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं आपकी बात को ठीक-ठीक समझ गया हूं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि अनुच्छेद 92 में जो नये उपबंध रखे गये थे कि धन-विधेयकों के प्रश्न पर अधिक गौर किया जाये, उन पर सदन ने कितना हर्ष प्रकट किया था। मेरे मित्र श्री सन्तानम् भी यही चाहते हैं वे भी उसे अधिक प्रभावी बनाना चाहते हैं। किन्तु उनका तर्क यह है कि दूसरा विधेयक लाकर सदन को दो तीन दिन और भी वक्तृताएं देने और युक्तियों को दोहराने का वक्त देकर, समय क्यों बरबाद करते हैं? उनका ख्याल यह है कि ऐसी अनावश्यक प्रक्रिया में सदन का समय व्यर्थ जायेगा। इस मामले में मैं उनसे सहमत नहीं हूं। इसके विपरीत इस उपबंध से पहले किये गये कार्य की एक बार और जांच हो जायेगी। अत: इसमें कोई गलती नहीं है। अनुच्छेद 92 के अन्तर्गत, जो कि हमने पारित किया है, हम चाहते हैं कि हमारी सारी वित्तीय प्रक्रिया प्रभावी होनी चाहिये। इस कारण, यह खंड नितांत आवश्यक है। जैसा कि मैंने उस दिन कहा था, वित्त संबंधी मामलों में समय का प्रश्न विचारणीय नहीं होता। केवल इसी प्रकार के उपबंध से उस व्यय की पूरी और व्यापक जांच हो सकती है जो कार्यपालिका समय-समय पर करती है। यदि आप इसे हटा देते हैं तो हम जिस उद्देश्य पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं, वही असफल हो जायेगा। अत: मैं अनुभव करता हूं कि विद्यमान रूप में संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये। यदि आप इसमें से कुछ कम कर देंगे, तो इसका महत्त्व घट जायेगा। मैं नहीं समझता कि श्री सन्तानम् ने अपने सुझाव को युक्तियों से प्रमाणित कर दिया है। मुझे विश्वास है कि वे मंत्री न होते तो इस अनुच्छेद का समर्थन ही करते। अब वे यह अनुभव करते हैं कि आय-व्ययक तथा धन विधेयक यथासंभव शीघ्र निबटा दिये जाने चाहिये। मैंने उनकी यह भावना देख ली है, किंतु मैं उनसे कहता हूं कि वे सदस्यों की भावना का भी ध्यान रखें, क्योंकि उन्हें भी कर्त्तव्यों का निर्वहन करना है। जब सदस्य कार्यपालिका के काम पर नजर रखना चाहें, तब उन्हें रोड़ा नहीं अटकाना चाहिये। मंत्रियों के कामों पर संसद में सदस्य ही प्रश्न कर सकते हैं। अत: यह संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये, जो सदन को संतुष्ट करने की इच्छा से पूरे विचार के पश्चात् पेश किया गया है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं इस संशोधन के गुणावगुण पर कुछ नहीं कहना चाहता। अनुभवी विशेषज्ञ इस संशोधन के कुछ उपबंधों से असहमत हैं। पर मैं सदन का ध्यान संविधान में नये संशोधन रखने की बढ़ती हुई और भयानक प्रवृत्ति की ओर आकर्षित करना चाहता हूं।

आप पहले ही निर्णय कर चुके हैं कि संशोधनों पर संशोधन दिये जा सकते हैं पर संविधान पर नये संशोधन पेश नहीं किये जाने चाहिये। प्रथम सूची का संशोधन संख्या 11 अनुच्छेद 94 का पूरा स्थान ले लेता है; संशोधन संख्या 12 अनुच्छेद 95 का स्थान

तथा संशोधन सं. 13 अनुच्छेद 96 का स्थान पूरी तरह ले लेता है। ये संशोधन नये हैं और वे संविधान पर संशोधन हैं। मैं केवल नियम-संबंधी आपत्ति नहीं उठा रहा हूं, पर इनमें अत्यन्त गम्भीर परिवर्तन निहित हैं। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि हम संविधान के मस्विदे पर जिस प्रकार विचार कर रहे हैं, हम जिस प्रकार आगे और पीछे जा रहे हैं, कभी एक अनुच्छेद यहां ले लेते हैं और फिर उछल कर उस अनुच्छेद पर वहां पहुंच जाते हैं, मेरे विचार में, इससे ऐसी विसंगतियां तथा असंगतियां उत्पन्न हो जायेंगी, ठीक वक्त पर जिनका पता नहीं लगाया जा सकता। इसी कारण मैंने सुझाव रखा था कि हमारे पास मस्विदा समिति से अन्तिम मस्विदा आ जाना चाहिये। आप जो कुछ रखना चाहते हैं उसका एक पूरा चित्र सदन के समक्ष होना चाहिये। इसके स्थान पर, हमारे ऊपर प्रतिदिन सर्वथा नये संशोधनों, नये भावों और नये विचारों की वर्षा की जाती है। यह अत्यन्त कठिन और असुविधाजनक तो है ही, चाहे बहुत गड़बड़ की बात न हो, मेरा निवेदन है कि, श्रीमान्, मैंने कुछ दिन पूर्व जो सुझाव दिया है कि कुछ दिन तक कार्य स्थगित कर देना चाहिये, जिससे कि मस्विदा समिति को अपने विचारों का पूरा चित्रण देने का पूरा समय मिल सके और हम पूरी तरह तैयार हो कर आ सकें। दुर्भाग्यवश उस समय मेरे सुझाव का अर्थ विलम्बकारी कार्यवाही लगाया गया। मेरे मन में ऐसी कोई भी बात नहीं थी। मुझे संविधान के मस्विदे में, जैसे कि वह स्वीकृत हुआ है, बहुत सी असंगतियां दिखाई दी हैं और मैं नहीं जानता कि इन निर्दोष दिखाई देने वाले नये संशोधन में कितनी भूले रह गई हैं। श्रीमान्, मैं कहता हूं कि आप इस पर विचार करें कि दिन प्रतिदिन जो संशोधन संविधान में भेजे जाते हैं उन पर विचार करना क्या सदस्यों के लिये सरल या सुगम हो सकता है। मैं मानता हूं कि मेरे में ऐसी दिमागी शक्ति नहीं है जैसी कि कुछ अन्य सदस्यों में है। मैं इन चीजों को कुछ धीरे-धीरे समझ पाता हूं, अतः मैं चाहता हूं कि इस तरह काम हो कि मेरे जैसा धीरे-धीरे चलने वाला सदस्य उसे आसानी से समझ सके। मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस कठिन स्थिति के समाधान के लिये कुछ न कुछ किया जाना चाहिये। इस समय तो यह हालत है कि जब माननीय डा. अम्बेडकर खड़े होकर कोई नया खंड पेश करते हैं तो सदन को लकवा सा मार जाता है। अधिकांश उसे समझ नहीं पाते और उसे यों ही पारित कर देते हैं। कई बार सामान्य वाद-विवाद आरम्भ होने के पश्चात् भी डा. अम्बेडकर ने संशोधन का सुझाव रख दिया और वह स्वीकृत हो गया। यदि यही इच्छा है कि सदस्यों को केवल उनकी बात सुन कर शिष्टाचार के नाते उसे मान ही लेना चाहिये, तो फिर ठीक है। किन्तु मैं यह कहता हूं कि प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह यहां की कार्यवाही को समझे।

***अध्यक्षः** मुझे भय है कि माननीय सदस्य की यह शिकायत उचित नहीं है। इस संशोधन विशेष की सूचना 28 मई को ही दे दी गई थी, जिसे अब लगभग एक पखवाड़ा हो गया है, और इसे काफी लम्बी बहस के पश्चात् लिया गया है जो कल इन संशोधनों के बारे में हुई थी। मैं नहीं समझता कि कोई सदस्य आश्चर्यचकित रह गया हो, विशेषतः इन अनुच्छेदों के विषय में, जिनमें कि प्रक्रिया संबंधी आधारभूत परिवर्तनों का सुझाव रखा गया है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मैंने तो इन अनुच्छेदों का हवाला उदाहरण के रूप में ही दिया है। हमारे समक्ष प्रतिदिन बिल्कुल नये विचार पेश किये जाते हैं। हमारे समक्ष ऐसे संशोधन आते हैं जो नये विचारों के अतिरिक्त कुछ नहीं होते। मैं इस प्रवृत्ति के विरुद्ध

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

हूं, जो कि सदस्यों के लिये गड़बड़ पैदा करने वाली है और असुविधाजनक है। सब सदस्यों के लिये इन परिवर्तनों को समझना आसान नहीं है। विद्यमान संशोधनों के विरुद्ध ही मेरी शिकायत नहीं है, वरन् प्रतिदिन नये विचार रखे जाते हैं और उन्हें दिन प्रतिदिन बदला जाता है और अन्तिम समय में कुछ सुझाव रखा जाता है और हमें उस पर स्वतः सहमत होना पड़ता है। मैं कहता हूं कि मेरी बातें विलम्ब करने वाली नहीं होती, बल्कि मामले को सरल बनाने वाली होती हैं। यही असुविधायें कुछ अन्य सदस्यों को होती हैं और मैंने उन्हें यहां आकर आपके समक्ष पेश करने का साहस किया है।

***अध्यक्षः** जब हम संविधान पर विचार कर रहे हैं तो हम नये विचारों को सर्वथा आने से रोक नहीं सकते। समय-समय पर परिवर्तन होने आवश्यक हैं और जब भी परिवर्तन होंगे, हमें उनके अनुसार कार्य करना होगा। अतः सभापति ने देर में भी संशोधनों के पेश होने की अनुमति देने का अधिकार सुरक्षित रखा है, यदि वह यह समझे कि संशोधन ऐसा है कि उस पर विचार करना चाहिये। यदि किसी सदस्य से कोई शिकायत आये कि किसी संशोधन विशेष पर विचार करने के लिये समय दिया जाना चाहिये, तो उस पर सदा विचार किया जायेगा। जहां तक इन संशोधनों का संबंध है, मेरे विचार में, हमें उन पर विचार करने के लिये पर्याप्त समय मिल चुका है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** मेरा निवेदन तो केवल यही है कि इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये कुछ कार्यवाही करनी चाहिये, या सदस्यों को कम से कम उन्हें समझने के लिये समय मिलना चाहिये। यह तो एक सामान्य शिकायत के रूप में है। आजकल नये संशोधन पेश करने की प्रवृत्ति है जो संविधान को ही बदलने के लिये होते हैं। इस प्रवृत्ति से गड़बड़ होती है और सदस्यों को असुविधा होती है। आपके निर्णय के विषय में मैंने कुछ नहीं कहा था। परिवर्तनों की आवश्यकता को तो मैं मानता हूं, किंतु जिस प्रकार ये संशोधन आ रहे हैं, उसे देखकर मुझे सचमुच निराशा होती है। यदि एक दो मामले ही होते, तो अलग बात होती, किंतु संविधान में नये संशोधन बहुत ही आ रहे हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 94 के स्थान पर नया अनुच्छेद रखने के संशोधन पर डा. अम्बेडकर ने परसों पूरा प्रकाश डाला था, जब कि वे वित्तीय नियंत्रण के विषय में परिवर्तन करने की मस्विदा समिति की योजना के विषय में बोल रहे थे। उन्होंने यह काफी स्पष्ट कर दिया था कि विनियोग विधेयक का सुझाव राष्ट्रपति द्वारा प्रमाणीकरण करने की प्रणाली का स्थान लेने के लिये रखा गया था, जो कि अब तक प्रचलित थी और उसके कारण ऐसे थे जो कि हम देश में जो ढांचा बनाना चाहते हैं उससे बिल्कुल भिन्न थे। श्रीमान्, यह भी समझ लेना चाहिये कि प्रक्रिया में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है। डा. अम्बेडकर ने बहुत प्रयत्न करके सदन को स्पष्ट किया था कि ये परिवर्तन केवल क्षमता प्रदान करने वाले हैं, जो संसद को शक्ति देते हैं कि वह चाहे तो वित्तीय नियंत्रण की योजना में परिवर्तन कर सकती है और आयव्ययक के वाद-विवाद तथा उसकी प्रक्रिया में परिवर्तन कर सकती है और उन्होंने नये प्रस्तावित अनुच्छेद अर्थात् 98-क की ओर ध्यान आकर्षित करके भी ठीक ही किया था, जिससे कि संसद को पूरा हक और स्वतंत्रता होगी कि वह अपनी इच्छानुसार प्रक्रिया

निश्चित करने के विषय में जो कुछ चाहे कर सकती है। सदन के समक्ष अनुच्छेद में सार के विषय में नहीं, केवल नाम संबंधी परिवर्तन अन्तर्गत है। इसकी बजाय कि सदन में अनुदानों पर मतदान के पश्चात् राष्ट्रपति विनिश्चयों का प्रमाणीकरण करे, सदन अपना यह कर्त्तव्य बना लेता है कि वह कार्यपालिका से उन सब विनिश्चयों को ठोस रूप में पेश करवाये और बाद में उनका अनुमोदन करे और ऐसे विनियोग विधेयक के विषय में वाद-विवाद के नियम भी संसद ही बनायेगी या जब तक वह स्वयं नहीं बनायेगी तब तक के लिये सदन का अध्यक्ष बनायेगा। श्रीमान्, मैं अपने माननीय मित्र, श्री सन्तानम् की शिकायत का आधार उसकी वैधता को समझने में असफल हूं, जो कि उनके पूर्ववर्त्ती वक्ताओं के कथनानुसार, संविधान के तथा सदन की प्रक्रिया के सर्वाधिक सुविज्ञ आलोचकों में से हैं और जो कि मंत्री पद पर नियुक्त होने से पूर्व संसद में आय-व्ययक की कार्यवाही में पर्याप्त रुचि रखते थे। स्पष्ट है कि उनकी आपत्ति आधारभूत नहीं थी, यद्यपि इस प्रकार के संशोधन की आवश्यकता को वे अनुभव नहीं कर सके। मस्विदा समिति द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन पर उन्होंने कोई मूल आपत्ति नहीं उठाई। श्रीमान्, उन्होंने अनुच्छेद 94 के खंड (3) पर, जो आगे आने वाले अनुच्छेदों 95 और 96 के प्रवर्तन को संभव बनाने के लिये है, जो आपत्ति उठाई है, वह मेरे विचार में, इस योजना को ठीक न समझने के कारण है।

श्रीमान्, अनुच्छेद 95 में कार्यपालिका के दो कृत्य समाविष्ट हैं, जिनमें से एक संसद द्वारा बाद में, अर्थात् घटना के पश्चात्, अनुमोदित हो जायेगा—मैं यह संक्षेप में स्पष्ट कर देता हूं यदि मुझे सदन अनुमति दे, क्योंकि यह बात डा. अम्बेडकर इस पर अपना संशोधन पेश करते समय समझायेंगे। वास्तव में अनुपूरक अथवा अधिकाई अनुदानों का अनुमोदन करते समय, संसद अथवा कोई विधान मंडल सदा एक काम के हो जाने के पश्चात् उस पर विचार करता है। यह निश्चय ही घटना के पश्चात् का विनिश्चय होता है। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् कहते हैं: ''आप प्रक्रिया को तंग बनाना चाहते हैं। आप ऐसा क्यों होने देते हैं कि कार्यपालिका व्यय कर दे और तत्पश्चात् संसद के पास अनुमोदन के लिये आये, प्राक्कलनों में, पारित अनुदानों में, और सदन द्वारा अनुमोदित आंकड़ों से हट जाये और फिर बाद में अनुमोदन के लिये संसद के पास आये?''

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं व्यय पर नहीं वरन्, संचित निधि में से अनुदान पर आपत्ति कर रहा था।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं उस बात पर आ रहा हूं। वास्तव में यह तो सरल तथ्य को विद्वतापूर्ण ढंग से देखने का तरीका है। व्यय की मंजूरी, कोई प्रतिज्ञा करना और उस वचन को पूरा करने के लिये धन देना, सब एक ही बातें हैं। आप सरकार से यह नहीं कह सकते कि वह प्रतिज्ञा तो कर ले और फिर आप कह दें कि संसद धन नहीं देगी, जब कि सरकार प्रतिज्ञा कर चुकी है। इसका अर्थ यह है कि यदि कोई सरकार संसद को उस प्रतिज्ञा के पूरा करने के लिये धन देने के लिये राजी नहीं कर सकती जो वह कर चुकी है, तो उस सरकार को पदच्युत होना पड़ेगा क्योंकि वह इस प्रकार संसद का विश्वास खो चुकी है। मुझे आश्चर्य सा है कि सरकार के मंत्री को प्रतिदिन इस स्थिति का सामना करना पड़ेगा और उसकी बड़ी विचित्र स्थिति होगी जब कि वह किसी व्यय के लिये वचन दे देता है, जिसे कि संसद पूरा करने दे या न करने दे, इससे

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

तो अच्छा है कि यही कह देना चाहिये कि तब तक व्यय करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये जब तक कि संसद योजना को स्वीकार करके उसे उस प्रयोजन के लिये धन व्यय करने की अनुमति न दे दे। इसका असल में यह अर्थ हो गया कि सरकार के किसी सदस्य द्वारा किया गया कोई वायदा बिल्कुल व्यर्थ है, और यदि संसद सचमुच धन देने से इंकार कर दे तो इसका अर्थ है कि वह संसद का विश्वास पात्र नहीं रहा। किंतु उसके अतिरिक्त, इस नई योजना में असली भावना यह है कि वर्तमान योजना में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया जाये जिसकी कि डा. अम्बेडकर पहले ही चर्चा कर चुके हैं और मैंने परसों इसे दोहराया था। हम सरकार को कठिनाई में डालना नहीं चाहते; हमने अनेक बार सदन को आश्वासन दिया है कि अब की प्रणाली में गम्भीर परिवर्तन करके सरकार को कठिनाई में डालने की हमारी इच्छा नहीं है; किन्तु साथ ही हम पर्याप्त उपबंध करना चाहते हैं जिससे कि यदि भावी संसद अधिक नियंत्रण करना चाहे तो कर सके। खंड (3) में जिन नये अनुच्छेदों की चर्चा है उनमें 95 और 96 में, जो कि आगे चलकर डा. अम्बेडकर पेश करेंगे, उनका एक खास पहलू यह है कि इस मामले में कार्यपालिका के पास कुछ पहल करने का अधिकार रह जायेगा। वह अधिकार इस तरह कम हो जाता है कि संसद की बैठकें बार-बार हों, कार्यपालिका अपने उत्तरदायित्व को समझे और यदि उन्हें किसी कारण भारी राशियां व्यय करनी पड़ जायें, तो अनुपूरक आय व्ययक के रूप में संसद के समक्ष मांग उपस्थित करे। श्रीमान्, इस सदन के सदस्यों ने कहा है कि एक अरब से अधिक राशि के अनुपूरक अनुदान इस सदन ने दूसरी सभा में बैठकर पिछले आय व्ययक के सत्र में पारित कर दिये। मैं सर्वथा सहमत हूं कि यह बात ठीक नहीं है। हमारे समस्त सरकारी व्यय के अनुपात में एक अरब बहुत ज्यादा है। सदन के लिये एक ही तरीका है जिससे कि वह सरकार को बाध्य कर सकता है कि वह व्यय करने के पूर्व सदन के समक्ष आये, और वह तरीका यही है कि सरकार से अनुपूरक आयव्ययक पेश करने के लिये कहा जाये—यदि कोई ऐसी बात हो गई है कि व्यय के विषय में सरकार के अनुमानों से अधिक खर्च हो गया है। यहां भी, अनुच्छेद 96 में वर्णित प्रक्रिया, अर्थात् लेखानुदान भविष्य में संसद में अनुसमर्थन प्राप्त करने का साधन अंशत: सिद्ध हो सकता हैं यदि सरकार यह अनुभव करे कि उन्हें ऐसा कोई व्यय करना पड़ रहा है, जिसका वे अनुमान नहीं लगा सके थे, जैसा कि कोई नया युद्ध हो जाये या जो युद्ध चल रहा हो उसमें व्यय बढ़ जाये तो वे सदा सदन में जाकर लेखानुदान मांग सकते हैं। नये संशोधनों से जो कि पेश होने वाले हैं यह प्रक्रिया संभव हो जायेगी और संसद केवल इसी प्रकार का नियंत्रण कर सकती है। खंड (3) में उल्लिखित उपबंध, अर्थात् अनुच्छेद 95 और 96, वित्तीय उपबंधों की सभी योजनाओं में रखे जाते हैं, यदि उद्देश्य यह हो कि सरकार दिन प्रतिदिन का शासन चलाये और संसद जो नियंत्रण करे वह कार्यपालिका के साथ इसी समझौते के आधार पर हो कि कार्यपालिका अपने व्यय को एक विशेष राशि तक सीमित रखेगी और अधिक व्यय के लिये यह अभिसमय स्थापित करना होगा कि सरकार अनुपूरक आयव्ययक बना कर संसद के समक्ष पेश करेगी। यदि खंड (3) को हटा दिया जाये तो अनुच्छेद 95 अप्रवर्तनीय बन जाता है, मैं तत्काल अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् को बताना चाहता हूं कि इससे तो शासन चलाना ही असंभव हो जायेगा, जब तक कि संसद लगभग प्रतिदिन न बैठे जिससे कि सरकार जब भी आवश्यक

हो संसद के पास जाकर कह सके कि ''हमने यह अधिक व्यय कर दिया है; यह ऐसा है जिसका पहले अनुमान नहीं लगाया जा सका था, कृपया इसे स्वीकार करिये, अन्यथा हम पद त्याग कर देंगे।'' माननीय श्री सन्तानम् की आपत्ति शायद इसलिये हो कि इस योजना का परिणाम यह होगा कि संसद को अधिक लम्बे समय तक बैठना होगा, शायद तीन, चार या छः मास अधिक तक, जोकि उन्हें पसन्द नहीं है। श्रीमान्, मुझे भय है कि यद्यपि श्री सन्तानम् ने जो कुछ कहा है उसकी वैधता को गलत सिद्ध करना मेरा उद्देश्य नहीं है, फिर भी क्योंकि सदन के समक्ष वित्तीय ढांचे में परिवर्तन करने के जो सुझाव पेश हुए हैं उनको बनाने में मेरा हाथ था, अतः मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि.....

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** एक वैयक्तिक स्पष्टीकरण करना चाहता हूं; मैंने ऐसी कोई वक्तृता नहीं दी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** और जन साधारण को यह आश्वासन देना ही होगा कि इन संशोधनों का उद्देश्य सरकार को परेशान करना नहीं है, शासन को असंभव बना देना नहीं है, किंतु अभिसमयों द्वारा और कार्य-संचालन के नियमों द्वारा संसद को व्यय पर नियंत्रण अधिक कड़ा करने का अधिकार देना है। श्रीमान्, मुझे भरोसा है कि अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है और सदन डा. अम्बेडकर के संशोधन को अधिक वाद-विवाद के बिना ही पारित कर देगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं तो सदन का ध्यान केवल अनुच्छेद 94 के खंड (2) की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, और मैं डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस अनुच्छेद में इस खंड की आवश्यकता को स्पष्ट करें। इस खंड (2) में लिखा है–

> ''इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की राशि में फेरफार करने, अथवा अनुदान के लक्ष्य को बदलने, अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, ऐसे किसी विधेयक पर, संसद के किसी सदन में प्रस्थापित न किया जायेगा तथा कोई संशोधन इस खंड के अधीन अप्रवेश्य है या नहीं इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा।''

इंग्लिस्तान के संविधान में ऐसा खंड नहीं है; हां, उनका संविधान अलिखित है। मैं देखता हूं कि यह बात सदन के अभिसमयों पर या संसद अपने लिये जो नियम बनाये, उन पर छोड़ देनी चाहिये। किंतु यदि इस बात को संविधान में रख दिया जाये तो इससे संसद की प्रभुता परिसीमित हो जायेगी। यद्यपि योजना यह है कि प्राक्कलनों की सप्लाइज समिति में और वेज एंड मीन्स समिति में जांच की जायेगी और उन समितियों के विनिश्चयों पर विनियोग विधेयक तैयार किया जायेगा, किंतु वास्तव में, विनियोग विधेयक की मदों में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। किन्तु मान लीजिये कि कोई सरकार उन समितियों की सिफारिशों के अनुसार विनियोग विधेयक को नहीं बनाती, तो फिर सदन के सदस्यों के लिये कोई उपबंध नहीं है जिससे कि वे संशोधन पेश करके उसे इन समितियों के विनिश्चयों के अनुरूप बना दे। अतः मेरे विचार में संविधान में यह उपबंध

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

नहीं होना चाहिये वरन् यह बात संसद के नियमों अथवा अभिसमयों पर छोड़ देनी चाहिये, जिससे कि ऐसे अवसरों पर, सदन सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सके कि उन्होंने दोनों समितियों द्वारा अनुमोदित सुझावों को क्रियान्वित नहीं किया है। मुझे आशा है कि वह अधिक अच्छा रहेगा। मैं डाक्टर अम्बेडकर से यह स्पष्ट करने की प्रार्थना करूंगा कि संविधान में इस खंड को रखने की क्या अपेक्षा है।

***श्री महबूब अली बेग साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 94 पर और नये अनुच्छेद पर डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर ही बोलूंगा।

प्रस्तावित संशोधन और मौलिक अनुच्छेद में यह अन्तर है: मौलिक अनुच्छेद के अनुसार तो लोक सभा द्वारा स्वीकृत अनुदानों का प्रमाणीकरण राष्ट्रपति द्वारा किया जायेगा, किंतु संशोधन के अनुसार लोक सभा में एक विनियोग विधेयक प्रस्तुत किया जायेगा और पारित किया जायेगा। मुझे तो केवल यही अन्तर दिखाई देता है। डा. अम्बेडकर ने, अपनी भूमिका स्वरूप वक्तृता में, कहा था कि विगत में तो सभा द्वारा स्वीकृत व्यय का प्रमाणीकरण गवर्नर जनरल करता था, जिसके कई कारण थे। उसे अपने स्वविवेक से कार्य करना पड़ता था और अपने वैयक्तिक विचारानुसार काम करना पड़ता था, अत: यह आवश्यक था कि सभा द्वारा स्वीकृत व्यय विवरणी उसके पास जाती, जिसमें कि वह अपनी इच्छानुसार परिवर्तन कर सकता। अब वे परिस्थितियां उपस्थित नहीं हैं; यद्यपि कार्यपालिका का प्रधान राष्ट्रपति है, किंतु यह अधिक समुचित और लोकतंत्रात्मक उपाय है कि लोक सभा जो व्यय स्वीकृत करे उसके विवरण को वही अनुमोदित भी करे। उन्होंने इस विषय में यही युक्ति पेश की है। मैं उनसे सर्वथा सहमत हूं कि राष्ट्रपति को या किसी कार्यपालिका अधिकारी को व्यय का प्रमाणीकरण नहीं करना चाहिये, वरन् लोक सभा को ही ऐसा करना चाहिये। प्रश्न यह है कि क्या विनियोग विधेयक आवश्यक है और विनियोग विधेयक का क्या उद्देश्य है। यदि उसका उद्देश्य केवल यही है कि लोक सभा द्वारा स्वीकृत विविध अनुदानों का प्रमाणीकरण कर दिया जाये, तो विनियोग विधेयक की क्या आवश्यकता है? जैसा कि इस संशोधन के खंड (2) में उल्लिखित है, विधेयक पर कोई संशोधन पेश नहीं किया जायेगा, और संचित निधि पर भारित व्यय के विषय में कोई परिवर्तन का सुझाव पेश नहीं किया जायेगा। फिर मैं पूछता हूं कि लोक सभा के समक्ष विनियोग विधेयक को रखने का क्या उद्देश्य है? यदि आप चाहते हैं कि सदन द्वारा अनुदान करने के पश्चात् उन अनुदानों की एक तालिका सदन के समक्ष पेश होनी चाहिये, तो मैं सहमत हूं। व्यय की अनुसूची को तो सदन स्वयंमेव अनुमोदित कर ही देगा। वह तो केवल एक औपचारिकता ही है। गवर्नर-जनरल के होते हुए तो उसे स्वविवेक से तथा वैयक्तिक निर्णय के अनुसार हस्तक्षेप करने का अधिकार था, पर अब उसकी कोई गुंजाइश ही नहीं है। यह तो केवल एक औपचारिकता है कि सदन द्वारा दिन प्रतिदिन स्वीकृत अनुदानों की सूची को पेश करके मंजूर कराया जाये। सदन तो उस अनुसूची को स्वयंमेव पारित कर ही देता है। अत: मुझे कोई कारण नजर नहीं आता कि वह विनियोग विधेयक सदन में पेश नहीं क्यों किया जाये? यदि आप इसे विनियोग विधेयक कहना चाहते हैं, क्योंकि कुछ दूसरी सरकारों ने इसका नाम विनियोग विधेयक रखा है, तो यह अनावश्यक वस्तु ही है। इसके लिये इतना ही कह देना पर्याप्त है कि राष्ट्रपति के स्थान पर लोक सभा व्यय की अनुसूची का

किसी विशेष तिथि तक प्रमाणीकरण करेगी; यह पर्याप्त है। अत: श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि इससे कोई लाभ नहीं होगा, जैसा कि श्री सन्तानम् ने कहा था। इससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि जब विनियोग विधेयक सदन के समक्ष पेश होगा, तब सदन उस पर कोई संशोधन पेश नहीं कर सकता और संचित निधि पर भारित व्यय को बदल नहीं सकता। अत: मैं कहता हूं कि सदन के समक्ष विनियोग विधेयक रखने का उपक्रम क्यों किया जाये? इतना ही कहना पर्याप्त है कि लोक सभा द्वारा स्वीकृत व्यय की अनुसूची लोक सभा के समक्ष उपस्थित की जायेगी, और प्रमाणीकृत समझी जायेगी। यदि अपेक्षित हो तो लोक सभा का अध्यक्ष यह हस्ताक्षर करके प्रमाणीकरण कर दे कि ये मदें लोक सभा द्वारा पारित कर दी गई हैं यह काफी है। अत: मेरा निवेदन है कि जिस तरह से इस अनुच्छेद की पुनर्रचना की गई है वह अनावश्यक है और इस मामले में समुचित परिवर्तन कर देने चाहियें और यह कहना बिल्कुल पर्याप्त होगा कि सदन द्वारा स्वीकृत व्यय की अनूसूची को लोक सभा के समक्ष पेश कर देना चाहिये और उसे प्रमाणीकरण की हुई समक्ष लेना चाहिये। श्रीमान्, मैं अभी उन मामलों पर नहीं बोल रहा हूं, जो अनुच्छेद 95 और 96 के पेश होने पर उठेंगे। मैं उन पर बाद में बोलने का अधिकार रक्षित रखता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार में मेरे मित्र श्री सन्तानम् द्वारा उठाये गये प्रश्न पर नि:संदेह स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। खंड (3) में लिखा है:

> ''अगले दो अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत की संचित निधि में से इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन निकाला न जायेगा।''

अनुच्छेद 96 में तीन प्रकार के अनुदान हैं, लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान। इन तीनों के विषय में संसद उस व्यय को प्राधिकृत करती है; अत: जहां तक अनुच्छेद 96 का संबंध है, मेरे विचार में, उसका यहां उल्लेख करने पर हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। अनुच्छेद 95 में अनुपूरक अनुदान और अधिकाई अनुदानों की चर्चा है। उनकी युक्तियों का सार यह है कि हम कार्यपालिका को संसद द्वारा स्वीकृत राशियों के अतिरिक्त कुछ भी खर्च करने की अनुमति देना नहीं चाहते। अनुच्छेद 95 के खंड (1) में लिखा है:

> ''यदि बाद में किसी समय कार्यपालिका यह देखे कि स्वीकृत राशि अपर्याप्त प्रतीत होती है—यह पहली बात है—और भी यदि आयव्ययक के पारित होने के समय अपेक्षित न की गई कोई नई सेवा है—तो ऐसी आकस्मिकता में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित की गई राशि की दिखाने वाला दूसरा विवरण दिखायेगा, आदि।''

'प्राक्कलित व्यय' इन शब्दों से पता लगता है, कि व्यय चाहे वास्तव में न किया गया हो, किन्तु वे व्यय की सम्भावना का पूर्व अनुमान कर सकते हों, तो यह संभव है कि वे संसद के समक्ष आकर कहेंगे ''आपने जो राशि मंजूर की है वह पर्याप्त नहीं है और हमें न्यूनाधिक की आवश्यकता है और आयव्ययक को पारित करते समय जिसका ध्यान नहीं था वह नई सेवा भी अब आरंभ की गई है और इसलिये हमें और धन की आवश्यकता है।'' वह अनुपूरक अनुदान हुआ जिसकी अनुमति दे देनी चाहिये। श्री सन्तानम् को तो संख्या 95 के खंड (ख) पर आपत्ति है, अर्थात् जब किसी वित्तीय वर्ष में किसी

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

सेवा के लिये स्वीकृत राशि से अधिक व्यय कर दिया जाये। वास्तव में गत वर्ष विधान सभा में काफी तर्क हुआ था कि एक अरब से अधिक रुपया बिना प्राधिकृत किये ही खर्च कर दिया गया। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या कार्यपालिका के लिये यह संभव नहीं है कि संसद की विशेष स्वीकृति के बिना वह पिछले वर्ष के समान कोई राशि खर्च कर सके और इसलिये क्या यह कार्यपाकिा को खुली छूट देना नहीं है कि वह किसी वर्ष संसद द्वारा उस वर्ष के लिये स्वीकृत राशि से कितना ही अधिक धन व्यय कर दे? क्या कार्यपालिका को ऐसी शक्ति देना लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों के विरुद्ध नहीं है? मुझे पता लगा है कि इंग्लिस्तान में इस प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया जाता। जब कार्यपालिका अधिक रुपया खर्च करना चाहती है, त्यों ही भुगतान करने वाला भार-साधक अधिकारी कार्यपालिका को सूचित कर देता है, ''आपका अनुदान समाप्त होने को आ गया है और आपको उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये।'' उन्हें संसद द्वारा स्वीकृत राशि से एक पाई भी अधिक खर्च नहीं करने दी जाती। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि हम उससे भिन्न व्यवस्था क्यों रखें। यह संभव है कि संसद का अधिवेशन न हो और उन्हें खर्च करना पड़ जाये। यह भी उतना ही सम्भव है कि वे करोड़ो-अरबो-खर्च कर दें, इसलिये मुझे तो यह बात इस मूल सिद्धांत के विरुद्ध दिखाई देती है कि जो भी राशि व्यय की जाये वह संसद की मंजूरी से की जाये; और 95 के खंड (ख) को वर्तमान रूप में स्वीकार करके हम उस सिद्धांत के विरुद्ध जाते प्रतीत होते हैं। अत: अनुच्छेद 96 के अनुसार तो संसद अपने विवेक और बुद्धि का प्रयोग करके अनुदानों पर मत देती है पर यह बात ऐसी है जिसमें कार्यपालिका को निरकुंश शक्ति है मै चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर इस मामले का स्पष्टीकरण करें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैंने तो सोचा था कि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो बातें कही थीं उनसे मेरे मित्र श्री सन्तानम् की आपत्तियों का काफी उत्तर मिल गया होगा, किन्तु मेरे मित्र श्री भारती ने अपनी वक्तृता में यह संकेत किया है कि कम से कम उनके संदेह दूर नहीं हुए हैं, अत: मैं कुछ शब्द कहना आवश्यक समझता हूं। मेरे मित्र श्री सन्तानम् ने कहा था कि हम विनियोग विधेयक की प्रक्रिया को व्यर्थ ही अपने यहां लागू कर रहे हैं और कि हमारे प्रयोजन के लिये प्रमाणीकृत अनुसूची की वर्तमान प्रक्रिया ही पर्याप्त है। यदि मैं ठीक समझा हूं तो उनकी युक्ति यह है कि हाउस ऑफ कामन्स में विनियोग विधेयक इसलिये आवश्यक है कि प्राक्कलनों के अनुदानों को समस्त सदन की समिति स्वीकार करती है, सदन स्वयं नहीं करता। परिणामत: उनके मतानुसार, विनियोग विधेयक, आवश्यक प्रक्रिया बन जाती है, क्योंकि प्राक्कलनों पर सदन में को समिति विचार करती है। वैयक्तिक रूप में मेरा ख्याल है कि हाउस ऑफ कामन्स की समिति प्रक्रिया और विनियोग विधेयक की आवश्यकता में कोई सम्बन्ध नहीं हैं। मैं सदन को बता देता हूं कि प्राक्कलनों के विषय में हाउस ऑफ कामन्स के समिति रूप में बैठने की प्रक्रिया कैसे आरंभ हुई थी। सदन को याद होगा कि इंग्लिस्तान के राजनैतिक इतिहास में एक समय था जबकि बादशाह और हाउस ऑफ कामन्स दोनों में वैमनस्य था। आज हाउस आफ कामन्स और बादशाह में भरोसे और विश्वास की जो सुखद

भावना विद्यमान है वह उस समय नहीं थी। बादशाह को अत्याचारी समझा जाता था, अन्यायी समझा जाता था, जिसे केवल कर आरोपण करके धन इकट्ठा करने और उसे अपनी इच्छानुसार व्यय करने से ही मतलब था। यह भी समझा जाता था कि हाउस ऑफ कामन्स का अध्यक्ष, सदन द्वारा निर्वाचित तथा उसका विश्वास पात्र होने के स्थान पर बादशाह के गुप्तचर के समान था। इसके फलस्वरूप हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों को सदा यह आशंका रहती थी कि यदि सारा सदन प्राक्कलनों पर विचार करेगा, तो अध्यक्ष को ही वहां अध्यासीन होने का अधिकार होगा और शायद वह, बादशाह का कृपापात्र बनने के लिये बादशाह से उन सदस्यों की शिकायत कर देगा, जो कि बादशाह के आचरण, उसकी फजूल खर्ची और अत्याचार के कार्यों की आलोचना करें। अत: अध्यक्ष से पीछा छुड़ाने के लिये, जिसे कि जैसा कि मैं आरंभ में ही कह चुका हूं, बादशाह का गुप्तचर समझा जाता था जो कि हाउस ऑफ कामन्स की कार्यवाही के समाचार बादशाह को देता था, उन्होंने समिति के रूप में बैठने का यह उपाय निकाला; क्योंकि जब सदन समिति रूप मे बैठता है तब अध्यक्ष को पीठासीन होने का कोई हक नहीं होता। इसी मुख्य उद्देश्य को लेकर हाउस ऑफ कामन्स सप्लाई समिति के रूप में बैठता है। जैसा कि मैंने कहा है, यदि सदन सप्लाई समिति के रूप में न भी बैठता तब भी सदन के लिये विनियोग विधेयक पारित करना आवश्यक होता। जैसा कि मेरे मित्रों—कम से कम वकील मित्रों को स्मरण होगा, एक समय था जबकि हाउस ऑफ कामन्स जब वेज एंड मीन्स समिति के रूप में केवल प्रस्ताव पारित कर देता था कि कौन से कर लगाये जायें और तत्पश्चात् उन प्रस्तावों के आधार पर काफी समय तक कर वसूल किये जाते रहे—मेरे ख्याल में 1913 तक। सन् 1913 में यह प्रश्न न्यायालय में चला गया, कि क्या वेज एंड मीन्स समिति के प्रस्तावों के ही आधार पर कर लगाये जा सकते हैं और उच्च न्यायालय ने निश्चय कर दिया कि हाउस ऑफ कामन्स को केवल प्रस्तावों के आधार पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। संसद को कर लगाने के लिये अधिनियम पारित करना चाहिये। परिणामत: संसद ने प्रान्तीय कर एकत्रण अधिनियम नामक विधि बनाई। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है कि यदि सप्लाई समिति में व्यय पर मतदान होता और हाउस ऑफ कामन्स के संकल्पों को अंतिम प्राधिकार समझा जाता तो न्यायालय उनकी भी निंदा करते, क्योंकि यह एक सुनिश्चित सिद्धांत है कि विधि प्रवर्तन में आती है, संकल्प नहीं। अत: मेरा पहला निवेदन यह है कि मेरे मित्र श्री सन्तानम् की यह युक्ति सर्वथा निराधार है कि विनियोग विधेयक हाउस ऑफ कामन्स की समिति प्रक्रिया का ही अभिन्न अंग है। मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं कि गवर्नर-जनरल द्वारा प्रमाणीकृत अनुसूची की प्रक्रिया क्यों अनावश्यक है, यह देखते हुए कि परिवर्तित स्थिति में राष्ट्रपति के स्वविवेक संबंधी कोई कृत्य नहीं होंगे और वित्तीय मामलों में संसद की शक्ति सर्वोपरि होगी और राष्ट्रपति या कार्यपालिका की नहीं। इस विषय पर मुझे और कुछ नहीं कहना है।

फिर यदि मैं ठीक समझा हूं तो मेरे मित्र श्री सन्तानम् ने कहा, कि अनुच्छेद 95—मुझे पता नहीं कि उन्होंने अनुच्छेद 96 की चर्चा की थी या नहीं—पर उन्होंने नि:संदेह अनुच्छेद 95 की चर्चा की थी—उन्होंने कहा था कि अनुच्छेद 95 से नये अनुच्छेद 94

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

का खंड (3) प्रभावहीन हो जायेगा। खंड (3) में लिखा है कि विधि द्वारा बनाये गये विनियोग के अतिरिक्त कोई धन खर्च नहीं किया जायेगा। उनका यह ख्याल मालूम होता था कि नये अनुच्छेद 95 में उल्लिखित अनुपूरक, अपर अथवा अधिकाई अनुदान और नये अनुच्छेद 96 में उल्लिखित लेखानुदान, प्रत्ययानुदान अथवा अपवादानुदान पर विनियोग विधि के बिना ही मतदान हो जायेगा। मेरे ख्याल में उन्होंने अनुच्छेद को पूरा नहीं पढ़ा है। यदि वे नये अनुच्छेद 95 के उपखंड (2) को पढ़ते और नये अनुच्छेद 96 के अंतिम भाग को भी पढ़ते और आगे चल कर एक और अनुच्छेद को भी पढ़ते जो कि बाद में पेश किया जायेगा—अर्थात् अनुच्छेद 248-क को—तो वे देखेंगे कि एक उपबंध बनाया गया है कि अनुपूरक अथवा अपर अनुदानों के लिये या लेखानुदान के लिये या किसी और प्रयोजन के लिये, कोई धन नहीं निकाला जा सकता, जब तक संचित निधि में से धन निकालने के लिये या किसी और प्रयोजन के लिये विधि द्वारा कोई उपबंध न बना दिया जाये। मैं यह अच्छी तरह समझ सकता हूं कि इस बात से कई सदस्यों के समझने में गड़बड़ हो गई है कि किसी स्थान पर हम संचित निधि का उल्लेख करते हैं तो अन्य स्थान पर हम विनियोग अधिनियम की चर्चा करते हैं। बात यह है; संचित निधि अधिनियम और विनियोग अधिनियम में मूलत: कोई अन्तर नहीं है। दोनों का एक ही उद्देश्य है, कि नियमित रूप से नियुक्त प्राधिकारी को संचित निधि में से धन निकालने के लिये प्राधिकृत करना। संचित निधि अधिनियम और विनियोग अधिनियम में केवल यही अन्तर है। संचित निधि अधिनियम में एकमुश्त राशि का उल्लेख होता है, पर विनियोग अधिनियम में सब विस्तृत विवरण होता है—मुख्य शीर्षक, उप शीर्षक और मदें। स्पष्टत: विनियोग विधेयक की प्रक्रिया को संचित निधि विधेयक के समय पूरा नहीं किया जा सकता, क्योंकि संसद ने शीर्षकों, उपशीर्षकों और उपशीषकों की मदों के लिये धन का विनियोग करने के पूरे उपक्रम को पूरा नहीं किया है। परिणामत: जब संचित निधि अधिनियम में धन पर मतदान होता है तो इसका अर्थ यह है कि कार्यपालिका संचित निधि में से इतनी एकमुश्त राशि निकाल सकती है, जो बाद में अंतिम विनियोग अधिनियम में दिखाई जायेगी। यदि माननीय मित्र यह याद रखेंगे कि कार्यपालिका को संचित निधि अधिनियम या विनियोग अधिनियम के अतिरिक्त धन निकालने का कोई प्राधिकार नहीं है, तो वे समझ जायेंगे कि यथासंभव इन उपबंधों को ऐसा बनाया गया है कि धोखा करना या चालाकी करना संभव न हो सके।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 94 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'94. *विनियोग विधेयक*—(1) लोक सभा द्वारा अनुच्छेद 113 के अधीन अनुदान किये जाने के बाद यथासंभव शीघ्र भारत की संचित निधि में से–

(क) लोक सभा द्वारा इस प्रकार किये गये अनुदानों की, तथा

(ख) भारत की संचित निधि पर भारित, किन्तु संसद के समक्ष पहले रखे गये विवरण में दी हुई राशि से किसी भी अवस्था में अनधिक व्यय की, पूर्त्ति के लिये अपेक्षित सब धनों के विनियोग के लिये विधेयक पुर:स्थापित किया जायेगा।

(2) इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की राशि में फेरफार करने, अथवा अनुदान के लक्ष्य को बदलने, अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, ऐसे किसी विधेयक पर, संसद के किसी सदन में प्रस्थापित न किया जायेगा तथा कोई संशोधन इस खंड के अधीन अप्रवेश्य है या नहीं इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अंतिम होगा।

(3) अगले दो अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए भारत की संचित निधि में से इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन निकाला न जायेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 94 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 94 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 95

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 95 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'95. *अनुपूरक अपर या अधिकार अनुदान*—(1) यदि–

(क) अनुच्छेद 114 के उपबंधों के अनुसार निर्मित किसी विधि द्वारा किसी विशेष सेवा पर चालू विशेष वर्ष के लिये व्यय किये जाने के लिये प्राधिकृत कोई राशि उस वर्ष के प्रयोजनों के लिये अपर्याप्त पाई जाती है अथवा जब उस वर्ष के वार्षिक वित्त विवरण में अपेक्षित न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक अथवा अपर व्यय की चालू वित्तीय वर्ष में आवश्यकता पैदा हो गई है, अथवा

(ख) किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर उस सेवा और उस वर्ष के लिये, अनुदान की गई राशि से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राष्ट्रपति यथास्थिति संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित की गई राशि को दिखाने वाला दूसरा विवरण रखवायेगा अथवा लोक सभा में ऐसी अधिकाई के लिये मांग उपस्थित करायेगा।

(2) ऐसे किसी विवरण और व्यय या मांग के सम्बन्ध में तथा भारत की संचित निधि में से ऐसे व्यय अथवा ऐसी मांग के बारे में अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली किसी विधि के सम्बन्ध में भी, अनुच्छेद 112, 113 और 114 के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण तथा उसमें वर्णित व्यय अथवा अनुदान की किसी मांग तथा भारत की संचित निधि में से ऐसे किसी व्यय या मांग से सम्बन्धित अनुदान की पूर्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली विधि के सम्बन्ध में प्रभावी है।' ''

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि प्रथम सूची (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 95 के खंड (1) में:

(1) उपखंड (क) में, अंत का 'or' शब्द हटा दिया जाये;

(2) उपखंड (ख) हटा दिया जाये; तथा

(3) खंड (1) के अंत में, निम्न शब्द जोड़ दिये जाये:

'and until both the Houses of Parliament pass such a demand, the expenditure shall not be incurred, and if incurred payment shall not be made.' ''

श्रीमान्, डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है वह पिछले पारित अनुच्छेदों के परिणामस्वरूप ही है। मैं संशोधन का स्वागत करता हूं, किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि एक कमी है जो दूर होनी चाहिये। संशोधन अनुच्छेद फिर इस प्रकार बन जायेगा:

'The President shall.....cause to be laid before both the Houses of Parliament another statement showing the estimated amount of that expenditure of cause to be presented to the House of People a demand for such excess, as the case may be and until both the Houses of Parliament pass such a demand, the expenditure shall not be incurred, and if incurred payment shall not be made."

इस बात पर हम सब सहमत हैं कि नई व्यवस्था में, नई पद्धति का समावेश करना चाहिये, जिससे कि वित्त के सम्बन्ध में संसद द्वारा पूरी जांच हो। इस समय संसद की प्रक्रिया बहुत आपत्तिजनक है, क्योंकि एक अरब रुपया से अधिक की अनुपूरक मांगें पेश होती है, जो आयव्ययक की राशि का एक तिहाई होता है। यह अत्यन्त असाधारण बात हैं और कार्यपालिका को यह शक्ति प्राप्त है, इसीलिये वे आयव्ययक को बहुत असावधानी से तैयार करते हैं।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूं। गत आयव्ययक में प्राक्कलित आय से वास्तविक आय लगभग 50 करोड़ बढ़ गई और व्यय भी 80 करोड़ बढ़ गया, प्राक्कलित आयव्ययक की राशि के अतिरिक्त वह सब साठ करोड़ कार्यपालिका ने व्यय कर दिया, फिर भी घाटा रह गया और नये करों का सुझाव दिया गया। यह तो धोखा पैदा करने वाले आयव्ययक संबंधी विवरणों को पेश करके सदन की आंख में धूल झौंकने से कम नहीं है। मुझे खेद है कि मैं कम तीक्ष्ण भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता। मुद्रास्फीति-आयव्ययक जानबूझ कर सदन के समक्ष रखे जाते हैं, जिससे कि कम राजस्व दिखाया जाये, जिससे कि वस्तुस्थिति का हिसाब लगता है और आयव्ययक संतुलित नहीं होता तब वह नये करों का सुझाव दे सकते हैं। जैसा कि मैंने कहा है पिछले वर्ष राजस्व से 60 करोड़ अधिक उगाहे गये थे, फिर भी उस पर 80 करोड़ खर्च कर दिये गये और आयव्ययक में घाटा रहा तथा नये करों का सुझाव दिया गया। इस पर कोई रोक नहीं है। कार्यपालिका समझती है कि उसे लम्बी छूट मिली हुई है और वह चाहे जो कर सकती है। आज भी महालेखा-परीक्षक

को यह हक नहीं है कि सदन ने आयव्ययक में जो कुछ स्वीकार किया है उससे अधिक कोई भी मद पारित कर दे। फिर भी जब अधिक व्यय किया जाता है तब महालेखा-परीक्षक मंत्री के पास जाता है जो उसे कह देता है कि उन मदों को पारित कर दिया जाये, और महालेखा-परीक्षक अपना 'आपत्ति नहीं है' यह मुद्रांक लगा देता है और रकमें भुगता दी जाती हैं। यह बहुत आपत्तिजनक है। कार्यपालिका सदन के प्रति कोई आदर प्रदर्शन नहीं करती। क्या यह न्याय है? आयव्ययक का कोई मूल्य नहीं है। आयव्ययक का विवरण सदन के समक्ष आता है, सदन उसकी जांच करता है और कार्यपालिका से कह देता है कि सदन ने जितनी राशि स्वीकार की है उससे अधिक खर्च नहीं किया जाये अैर फिर भी कार्यपालिका सदन के विनिश्चय की चिन्ता न करके रुपया खर्च करती जाती है.....

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य यह समझते प्रतीत होते हैं कि वे आयव्ययक पर वाद-विवाद के समय विधान-सभा के समक्ष कोई भाषण दे रहे हैं। वे संशोधन पर बोल रहे हैं, और मैं चाहता हूं कि वे अपने भाषण को उसी तक सीमित रखें, अर्थात् संशोधन के सिद्धांत पर ही बोले और पिछले आयव्ययक सम्बन्धी वाद-विवाद में क्या हुआ उस पर न जायें।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं तो केवल उदाहरण ही दे रहा हूं।

***अध्यक्ष:** यही उदाहरण माननीय सदस्य अनेक बार दे चुके हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** यह संशोधन इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि हमारे उत्तरदायित्व को समझा न जायेगा, तो श्रीमान्, हमारे इस संविधान से हमारा समस्त उद्देश्य ही अपूर्ण रह जायेगा।

***अध्यक्ष:** यदि संशोधन को संविधान में रख दिया जायेगा, तो यही पर्याप्त रक्षण कवच होगा और माननीय सदस्य की वक्तृता को कोई स्मरण नहीं रखेगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं तो संविधान में इस संशोधन को समाविष्ट करने के औचित्य को सिद्ध कर रहा था। यदि यह मामला कार्यपालिका पर छोड़ दिया जाये तो किसी भी सुधार की संभावना है ही नहीं।

मैं डैंजिग के स्वतंत्र नगर के संविधान का निर्देश कर रहा था। वहां मैंने लगभग ऐसे ही उपबंध देखे हैं। जब तक सदन प्राधिकृत न कर दे तब तक कोई भी अनुपूरक राशियां खर्च नहीं की जा सकती। यह तर्क किया जा सकता है कि आपात की स्थिति में क्या होगा? मैं चाहता हूं कि कार्यपालिका समूचे वर्ष का चिट्ठा बांधे। आपात इसलिये नहीं होता कि अरबों रुपये तक खर्च कर दिये जायें। कुछ लाख तक उसमें अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं, किन्तु अरबों रुपये के अनुपूरक अनुदानों पर मुझे सख्त आपत्ति है। यदि मेरा संशोधन स्वीकृत नहीं हुआ तो इस अनुच्छेद का उपबंध करने में हमारा जो अत्यन्त अच्छा उद्देश्य है, वह उस हद तक अपूर्ण ही रह जायेगा। ये अनुच्छेद अच्छे और ठीक हैं और उनसे भविष्य में हमारा पथप्रदर्शन होगा। किन्तु अनुपूरक मांगों के सम्बन्ध में यदि मेरे प्रस्तावित संशोधन के समान कोई संशोधन संविधान में न रखा गया तो कमी रह ही जायेगी और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं (मैं इसे फिर दोहराता हूं यद्यपि मैं कार्यपालिका के विचारों को जानता हूं) कि जहां तक अनुपूरक मांगों का सम्बन्ध है, कोई सुधार नहीं होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि सूची (1) (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में, नये अनुच्छेद 95 के खंड (2) के पश्चात्, निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(3) After the first Parliament elected under this Constitution comes into being, the financial year, shall commence on the first November and end with the 31st of October."

[(3) इस संविधान के अंतर्गत निर्वाचित अगली संसद के बन जाने के पश्चात्, वित्तीय वर्ष प्रथम नवम्बर से आरंभ होगा और 31 अक्टूबर को समाप्त होगा।]

श्रीमान्, इस नये संशोधन में प्रस्तावित नई प्रक्रिया का उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश संसद के समान हमारी संसद को भी प्राक्कलनों की जांच के लिये अधिक समय दिया जाये। ब्रिटिश संसद में विनियोग विधेयक अगस्त के अन्त तक पारित होना चाहिये। इसका आशय यह है, कि 31 मार्च के पश्चात् 5 महीने लग जाते हैं। इंग्लिस्तान में अप्रैल, मई, जून, जुलाई और अगस्त के मास वर्ष में सर्वोत्तम होते हैं। यदि हमारी संसद को दिल्ली में मई, जून-जुलाई के मासों में बैठना पड़े तो बहुत कठिनाई हो जायेगी। अत: मैं चाहता हूं कि हमारे देश में आय व्ययक पर विचार के लिये वर्ष के सर्वोत्तम मास रखे जाये। जैसे कि संसद को 31 मार्च के पश्चात् विनियोग विधेयक को पारित करने के लिये पांच मास दिये जाते हैं, इसी प्रकार मैं चाहता हूं कि वित्तीय वर्ष के आरंभ के पश्चात् हमें भी विनियोग अधिनियम को पारित करने के लिये कम से कम पांच मास मिलने चाहिये। इसका अर्थ है—नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी और मार्च। इससे हमारी प्रक्रिया बिल्कुल ब्रिटिश संसद की प्रक्रिया के समान हो जायेगी, श्रीमान्, हमारे देश में भी वित्तीय वर्ष नवम्बर के आरंभ में दीपावली पर आरंभ होता है। अत: नया वित्तीय वर्ष हमारी प्राचीन परम्परा के अनुरूप होगा। अत: इस संशोधन के उद्देश्य को पूरा करने के लिये, अर्थात् सदन को समस्त प्राक्कलनों की जांच करने के लिये अधिक समय देने के लिये यह आवश्यक है कि आय व्ययक पर दीपावली से होली तक, अर्थात् प्रथम नवम्बर से 31 मार्च तक वाद-विवाद होना चाहिये। मेरे विचार में यदि ये दिन निश्चित कर दिये जायें तो आयव्ययक पर वाद-विवाद के लिये तथा विनियोग अधिनियम को पारित करने के लिये हमारे पास वर्ष का सर्वोत्तम भाग रहेगा। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर संशोधन को स्वीकार कर लेंगे और नई संसद के सदस्यों को अब के समान मई और जून के मासों के बैठने से बचा देंगे।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, डा. अम्बेडकर द्वारा दिये हुए स्पष्टीकरण पर विचार करने के पश्चात् भी मैं इस अनुच्छेद के उपबंध का विरोध करना चाहता हूं, जहां तक कि अधिकाई अनुदानों का सम्बन्ध है। मैं नहीं समझता कि हमने पिछले अनुच्छेद में जो सिद्धांत रखा है उसे देखते हुए ऐसे अनुदान के लिये अवसर कैसे उपस्थित हो सकता है। मुझे यह भी कुछ विसंगत सा दिखाई देता है कि एक अनुच्छेद में एक आदेश मूलक सम्बन्ध रखने के पश्चात् अगले अनुच्छेद में हम उस आदेशमूलक उपबन्ध के उल्लंघन

का विनियमन करने का उपबन्ध करें। यहां यही बात की गई है। शायद इस संशोधन के प्रस्तावक ने परिस्थितियों की अवहेलना कर दी है, जोकि बदल गई हैं। मैं समझता हूं कि अधिकाई अनुदान का यह उपबन्ध उस विशेषज्ञ समिति की सिफारिश पर किया गया है जो कि वित्तीय उपबन्धों पर विचार करने के लिये नियुक्त हुई थी। नीचे के नोट में यही उल्लिखित है। अत: विशेषज्ञ समिति ने ही यह सुझाव दिया है कि ऐसा उपबन्ध बनाना चाहिये। मेरा निवेदन है कि हमने अब जो प्रस्ताव स्वीकार कर लिये हैं उनसे विशेषज्ञ समिति की सिफारिश का समस्त आधार ही बदल गया है, मैं आपका ध्यान प्रतिवेदन की कंडिका 79 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं:

> ''लोकतंत्रात्मक संविधानों में प्राय: ऐसा उपबन्ध होता है कि खजाने से कोई धन नहीं निकाला जा सकता, जब तक कि विधान मंडल एक विनियोग अधिनियम बना कर प्राधिकार न दे, किन्तु इस देश में ऐसा आचरण रहा है कि रुपये का भुगतान करने के पश्चात् सरकार के संकल्पों द्वारा व्यय प्राधिकृत होता है विधि द्वारा नहीं। इस देश में यह प्रणाली ठीक काम करती रही है, अत: विधि द्वारा विनियोग आवश्यक जान नहीं पड़ता।''

इस प्रकार उन्होंने विनियोग अधिनियम के विचार को निश्चय से अस्वीकार कर दिया था, जिसे हमने अब स्वीकार कर लिया है। हमने यह मूलभूत परिवर्तन कर दिया है। पहले महालेखा-परीक्षक राशि को निकाल सकता है, चाहे संसद ने उसकी मंजूरी न दी हो, क्योंकि अनुसूची का प्राधिकरण कार्यपालिका द्वारा किया जाता था। अब हमने एक कठोर उपबन्ध बना दिया है जिसके अनुसार यह काम संसद के अधिनियम द्वारा किया जायेगा। अत: अब महालेखापरीक्षक को संसद के अधिनियम का उल्लंघन करना पड़ेगा।

हमने दूसरा मूल परिवर्तन यह किया है: विशेषज्ञ समिति ने सोचा था कि पुरानी व्यवस्था जारी रहेगी। उन्होंने यह भी मान लिया था कि भारत-शासन-अधिनियम के शब्द ही रखे जायेंगे। मैं सदन का ध्यान, अनुकूलित, भारत शासन अधिनियम 1935 के तत्स्थानी उपबंध की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। धारा 35 में लिखा है:

> ''किन्तु अगली धारा के अधीन रहते हुए, अधिराज्य के राजस्व में से कोई व्यय समूचित रूप से प्राधिकृत नहीं समझा जायेगा, जब तक कि यह बात इस प्रकार प्राधिकृत अनुसूची में उल्लिखित न हो।''

अत:, वर्तमान भाषा यह है कि केवल यही व्यय प्राधिकृत समझा जायेगा—यह नहीं है कि 'कोई धन निकाला न जायेगा।' हमने अनुच्छेद 94 में भाषा को विशेषत: सख्त बना दिया है। अत:, भारत-शासन-अधिनियम के अंतर्गत जब तक महालेखा-परीक्षक को यह विश्वास हो कि कार्यपालिका को बाद में संसद की मंजूरी मिल सकती है, तब तक राशि निकालने पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु यहां अनुच्छेद 94 (3) के अधीन, उसे ऐसा करने की शक्ति नहीं होगी, जब तक कि वह संसद के विनियोग अधिनियम का उल्लंघन न करे। मेरा निवेदन है कि यह अधिकाई अनुदान का उपबंध अनुच्छेद 94 के खंड (3) से असंगत ही नहीं है, बल्कि देश के वित्त पर संसद के नियंत्रण के सिद्धांत के विरुद्ध भी है। अत: मेरा निवेदन है कि इस बात पर पुनर्विचार करना चाहिये कि अधिकाई अनुदान सम्बन्धी यह उपबंध रखा जाये या नहीं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं देखता हूं कि सदन के समक्ष जो वित्तीय प्रस्ताव रखे गये हैं उनसे सदस्य बहुत चिन्तित हैं। मैं इसे समझता हूं, क्योंकि मुझे स्मरण है कि जब श्री चर्चिल के पिता लार्ड चांसलर बने थे, तब उनके समक्ष आयव्ययक रखा गया था जिसमें अंकों को दशमलव तथा उनके बिन्दुओं के साथ दिखाया गया था। स्पष्टत: वे गणित के विद्यार्थी नहीं थे, और समझ नहीं सके कि अंकों के बीच में उन दशमलव बिन्दुओं का क्या अर्थ था। अत: उन्होंने फाइल पर लिख दिया ''इन बिन्दुओं का क्या आशय है?'' यह स्पष्टीकरण वित्त विभाग के सचिव से मांगा गया। श्री चर्चिल के पिता जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी समझने में कठिनाई हुई थी, इस बात को ध्यान में रखते हुए मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं है यदि इस सदन के सदस्यों को इन उपबंधों के समझाने में ऐसी ही कठिनाई हो। इसलिये मैं सदन को ठीक तरह समझाने के लिये प्रारंभिक सिद्धांतों की व्याख्या करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मैं सदन को अनुच्छेद 92, अनुच्छेद 93 (2) और अनुच्छेद 94 के उपबंधों का प्रभाव बताना चाहता हूं। अनुच्छेद 92 राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य नियत करता है कि वह इस वर्ष के लिये एक वित्तीय विवरण संसद के समक्ष पेश करे—मैं, 'वर्ष के लिये' इन शब्दों पर जोर देना चाहता हूं—जिसमें कुछ श्रेणियों के व्यय दिखाये जाते हैं, जो भारत के राजस्वों पर भारित हों और जो भारत के राजस्वों पर भारित न हों। ऐसा करने के पश्चात् अनुच्छेद 93 (2) पर अमल होता है जिसमें लिखा है कि उन प्राक्कलनों पर कार्यवाही कैसे होगी। उसमें उल्लिखित है कि प्राक्कलनें सदन में अनुदानों के रूप में पेश की जायेगी और उन पर लोक सभा में मतदान होगा। वह कार्य हो चुके, तब अनुच्छेद 94 प्रवर्तन में आ जाता है, नये अनुच्छेद 94 में उल्लिखित है कि लोक सभा में पेश किये गये सब अनुदान विनियोग अधिनियम के रूप में रखे जायेंगे तथा विनियमित होंगे। अब मैं चाहता हूं कि सदस्य इस पर विचार करें कि अनुच्छेद 92, 93 (2) और 94 का क्या प्रभाव है। फर्ज किया हम कोई और अनुच्छेद नहीं बनाते, तो क्या प्रभाव होगा? मेरे विवेकानुसार अनुच्छेद 92, 93(2) और 94 में समाविष्ट उपबंधों का प्रभाव यह होगा कि राष्ट्रपति वर्ष के मध्य में संसद में अन्य प्राक्कलनें पेश नहीं कर सकेगा। राष्ट्रपति विधि के अनुसार वे ही प्राक्कलनें पेश कर सकता है। इसका यह अर्थ होगा कि अनुपूरक मांगों, अनुपूरक अनुदानों, अधिकाई अनुदानों अथवा अन्य अनुदानों के लिये कोई उपबन्ध नहीं होगा, जिनका उल्लेख लेखानुदान आदि के रूप में किया गया है। यदि अनुपूरक अनुदानों और अन्य अनुदानों को, जिनका मैंने उल्लेख किया है, पेश करने के लिये कोई उपबंध नहीं किया जायेगा, तो कार्यपालिका का सब काम ही रूक जायेगा। अतएव, यह सामान्य उपबंध बना कर कि राष्ट्रपति उस वर्ष विशेष के व्यय की प्राक्कलनों को संसद के समक्ष पेश करने के लिये बाध्य होगा, उसे यह भी प्राधिकार दे दिया गया है कि यदि आवश्यकता पड़ जाये तो वह अन्य प्राक्कलनें भी पेश कर सकता है। अत: यदि हम संविधान में, अनुपूरक और अधिकाई अनुदानों के लिये कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं करते, तो अनुच्छेद 92, 93(2) और 94 के कारण वे पेश नहीं हो सकेंगे। अब सदन यह समझ जायेगा कि इन अनूपूरक अनुदानों को पेश करने के लिये यह उपबंध रखना क्यों अपेक्षित है।

अधिकाई मांगों के विषय में प्रश्न उठा है। मेरे विचार में कठिनाई स्वाभाविक है। सदस्यों ने कहा है कि जब यह उल्लेख कर दिया गया है कि विनियोग अधिनियम द्वारा निश्चित

सीमा के अलावा कार्यपालिका कोई धन व्यय नहीं कर सकेगी, तो अधिकाई अनुदानों का प्रश्न कैसे उठ सकता है? मेरे विचार में यही बात है। उसका उत्तर यह है: मेरे मित्र, पंडित कुंजरू द्वारा पेश किये गये संशोधन के अनुसार ही हम उपबंध बना रहे हैं, जो कि सूची 1 के पृष्ठ 27 पर नया अनुच्छेद 248 बी है, जिसमें कि भारत की संचित निधि में से एक आकस्मिकता निधि स्थापित करने का उपबंध है। वैयक्तिक रूप से मैं नहीं समझता कि ऐसा उपबंध अपेक्षित हो, क्योंकि यही प्रश्न आस्ट्रेलिया में उठा था, न्यू साउथ वेल्स के राज्य और कामनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया के मध्य मुकदमें में उठा था और उसमें प्रश्न यह था कि आया कामनवैल्थ को एक आकस्मिकता निधि स्थापित करने का अधिकार है, जबकि विधि में यह उल्लेख है कि समस्त राजस्व को संचित निधि में एकत्र कर दिया जाये और आस्ट्रेलियन कामनवैल्थ उच्च न्यायालय ने यह उत्तर दिया कि संचित निधि की स्थापना से संसद के विधान मंडल को यह वर्जन नहीं हो जाता कि वह संचित निधि में से कोई अन्य निधि स्थापित कर सके, चाहे वह निधि विशेष उसी वर्ष में खर्च न की जाये, क्योंकि यह तो केवल विनियोग है, चाहे दूसरे रूप में हों। किन्तु ये अनुच्छेद 248 ख को रखने के विषय में मैं अपने मित्र पंडित कुंजरू के संशोधन को स्वीकार कर लूंगा, जिससे कि इस विषय में कोई संदेह न रहे कि संचित निधि के उपबंध के रहते हुए क्या संसद को आकस्मिकता निधि स्थापित करने का अधिकार है। अत: यह संभव है कि कार्यपालिका को विनियोग अधिनियम के आधार पर जो निधि दी जाती है, उसके अतिरिक्त भी कार्यपालिका के पास संचित निधि होगी और ऐसी अन्य निधि भी होगी जो कि विधि द्वारा समय-समय पर बनाई जाये। अतएव, विनियोग अधिनियम का उल्लंघन किये बिना भी कार्यपालिका के लिये सर्वथा संभव होगा कि वह संसद द्वारा मतदान से स्वीकृत धन से अधिक व्यय कर सके और उस राशि को आकस्मिकता निधि या किसी अन्य निधि से निकाल सके। इसलिये अधिनियम का उल्लंघन तो हो ही गया, और ऐसा होना संभव है, क्योंकि कार्यपालिका किसी आपात में यह सोच सकती है कि ऐसा करना चाहिये और उनके लिये ऐसा करने के लिये निधि का भी उपबंध है। अत: प्रश्न यह है: जब ऐसा कार्य हो जाये, तो क्या आप उस कार्य के विनियमन के लिये उपबंध नहीं करेंगे? वास्तव में, यदि मैं कह दूं तो, अधिकाई अनुदान का पारित होना तो केवल ऐसा ही है कि जैसे संसद कोई अधिनियम पारित करके सरकार के कुछ अधिकारियों को, जिन्होंने कि नेकनियती से कोई ऐसा कार्य किया हो जो कि उस समय विधि के विपरीत हो, विमुक्त कर दे। अधिकाई अनुदान के विचार में कोई और बात नहीं है, और मैं सदन के सदस्यों के समक्ष 'हाउस ऑफ कामन्स के सार्वजनिक कार्य की प्रक्रिया की संहिता की कंडिका 230 को पढ़कर सुनाना चाहता हूं। कंडिका 230 में यही लिखा है:

> ''अधिकाई अनुदान की आवश्यकता तब पड़ती है जबकि कोई विभाग असैनिक आकस्मिकता निधि अथवा ट्रेजरी चैस्ट निधि में से अथवा अन्य प्राप्तियों में से अग्रिम लेकर अथवा अन्यथा किसी प्रकार कोई धन किसी सेवा पर व्यय कर दे, जो कि उस वर्ष में उस सेवा के लिये स्वीकृत राशि से अधिक हो।''

इसलिये इसमें कोई विचित्रता नहीं है। केवल यही बात है कि जब कोई अनुपूरक प्राकक्लन होती है, तब अधिक व्यय किये बिना ही मंजूरी प्राप्त कर ली जाती है। अधिकाई अनुदान

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

के बारे में अधिक व्यय पहले ही हो चुकता है और कार्यपालिका उस व्यय की मंजूरी के लिये संसद के पास आती है। अत: मेरे विचार में कोई कठिनाई नहीं है; कोई कठिनाई तो है ही नहीं, वरन् इसकी आवश्यकता है, जब तक कि आप इतना उपबंध करने के लिये तैयार न हो कि जब भी कोई कार्यपालिका अधिकारी विनियोग अधिनियम द्वारा स्वीकृत धन के अतिरिक्त कोई धन व्यय करता है, तो उसे अपराधी समझा जायेगा और उस पर मुकदमा चलाया जायेगा, तब तक आपको अधिकाई अनुदान की इस प्रक्रिया को स्वीकार करना होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या नये अनुच्छेद 95 (2) में उल्लिखित विधि के उपबंधों के अधीन पिछले तीन अनुच्छेद प्रभावी होंगे? क्या इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक अनुपूरक अनुदान के पश्चात् एक अनुपूरक विनियोग अधिनियम पेश किया जायेगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, यही तो होगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** विनियोग समस्त वर्ष के लिये नहीं होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अनुपूरक विनियोग भी हो सकता है। हाउस ऑफ कामन्स में सदा ऐसा ही होता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मेरे संशोधन का क्या हुआ, श्रीमान्?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे बहुत खेद है। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना कहते हैं कि वित्त वर्ष को बदल दिया जाये। खैर, मुझे तो केवल यही कहना है कि मुझे संदेह है कि उनका उद्देश्य साफ नहीं हैं। वे शायद शरद् सत्र चाहते हैं जिससे कि वे जितना चाहे उतना कात सकें। यदि वे लम्बे सत्र चाहते हैं तो उन्हें गर्मी के मासों में बैठना चाहिये, जैसा हम आजकल कर रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** फिर आप ही पहाड़ पर आराम के लिये जाना चाहेंगे मैं नहीं। गर्मी से मेरी वक्तृताओं पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ेगा।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि प्रथम सूची (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 95 के खंड (1) में–
>
> (1) उपखंड (क) में, अंत का 'or' शब्द हटा दिया जाये;
>
> (2) उपखंड (ख) हटा दिया जाये; तथा
>
> (3) खंड (1) के अंत में, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:
>
> 'and until both the Houses of Parliament pass such a demand, the expenditure shall not be incurred, and if incurred payment shall not be made.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 95 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'95. *अनुपूरक, अपर या अधिकाई अनुदान*—(1) यदि—

(क) अनुच्छेद 94 के उपबंधों के अनुसार निर्मित किसी विधि द्वारा विशेष सेवा पर चालू वित्तीय वर्ष के लिये व्यय किये जाने के लिये प्राधिकृत कोई राशि उस वर्ष के प्रयोजनों के लिये अपर्याप्त पाई जाती है अथवा जब उस वर्ष के वार्षिक वित्त वितरण में अपेक्षित न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक अथवा अपर व्यय की चालू वित्तीय वर्ष में आवश्यकता पैदा हो गई है, अथवा

(ख) किसी वित्तीय वर्ष के किसी सेवा पर, उस सेवा और उस वर्ष के लिये, अनुदान की गई राशि से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राष्ट्रपति यथास्थिति संसद के दोनों सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित की गई राशि को दिखाने वाला दूसरा विवरण रखवायेगा अथवा लोक सभा में ऐसी अधिकाई के लिये मांग उपस्थित करायेगा।

(2) ऐसे किसी विवरण और व्यय या मांग के सम्बन्ध में तथा भारत की संचित निधि में ऐसे व्यय अथवा ऐसी मांग के बारे में अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली किसी विधि के सम्बन्ध में भी, पिछले तीन अनुच्छेदों के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण तथा उसमें वर्णित व्यय अथवा अनुदान की किसी मांग तथा भारत की संचित निधि में से ऐसे किसी व्यय या मांग से सम्बन्धित अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग' प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली विधि के सम्बन्ध में प्रभावी है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि प्रथम सूची (चतुर्थ सप्ताह) के संशोधन संख्या 12 में, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 95 के पश्चात्, निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(3) After the first Parliament elected under this Constitution comes into being, the financial year, shall commence on the first November and end with the 31st of October.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 95 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 95 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 96

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 96 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'96. *लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान*—(1) इस अध्याय में पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी लोक सभा को—

(क) किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिये प्राक्कलित व्यय के बारे में किसी अनुदान को, ऐसे अनुदान के लिये मतदान करने के लिये अनुचछेद 93 में विहित प्रक्रिया की पूर्त्ति के लम्बित रहने तक, तथा उस व्यय के सम्बन्ध में अनुच्छेद 94 के उपबंधों के अनुसार विधि के पारण के लम्बित रहने तक, पेशगी देने की,

(ख) जबकि किसी सेवा की महत्ता या अनिश्चित रूप के कारण मांग वैसे ब्यौरे के साथ वर्णित नहीं की जा सकती जैसा कि वार्षिक वित्त विवरण में साधारणतया दिया जाता है तब भारत के सम्मति स्रोतों पर अप्रत्याशित मांग की पूर्त्ति के लिये अनुदान करने की,

(ग) किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का जो अनुदान भाग न हो ऐसा कोई अपवादानुदान करने की शक्ति होगी तथा उक्त अनुदान जिन प्रयोजनों के लिये किये गये हैं उनके लिये भारत की संचित निधि में से धन निकालना विधि द्वारा प्राधिकृत करने की शक्ति होगी।

(2) खंड (1) के अधीन किये जाने वाले किसी अनुदान तथा उस खंड के अधीन बनाई जाने वाले किसी विधि के सम्बन्ध में अनुच्छेद 93 और 94 के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण में वर्णित किसी व्यय के बारे में किसी अनुदान के करने के तथा भारत की संचित निधि में से ऐसे व्यय की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाये जाने वाली विधि के सम्बन्ध में प्रभावी है।' ''

(संशोधन संख्या 1720 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मैं व्यापक सिद्धांत का विषय फिर नहीं उठाना चाहता, क्योंकि वह स्वीकृत हो चुका है किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद की रचना कुछ त्रुटिमय है।

उदाहरणार्थ खंड (1) में लिखा है, ''लोक सभा की शक्ति होगी'', और इसके पश्चात् उपखंड (ग) में लिखा है, ''और विधि द्वारा प्राधिकृत करने की...'' मेरे विचार में संविधान के अनुसार, लोक सभा विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं कर सकती।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं कहना चाहता हूं कि मस्विदा समिति उपखंड (ग) के बाद की तीन पंक्तियों की भाषा को बाद में बदलने की स्वतंत्रता चाहती है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मैं इस बात को समझ नहीं पाया। सदन में हम ऐसी चीज पारित कर दें जो कि स्पष्टत: गलत है और संविधान के विपरीत है और फिर मस्विदा समिति पर उसे छोड़ दें। मैं नहीं समझता कि हम जो उपबंध बना रहे हैं उनको छेड़ने की आजादी हम मस्विदा समिति को दे सकते हैं, जब तक कि कोई भूल चुक न हो। हम नहीं चाहते कि हमारे समक्ष बिल्कुल एक नया संविधान रख दिया जाये और हम उसके प्रत्येक अनुच्छेद को पुन: देखने का कष्ट करें। मैं नहीं समझता कि स्पष्टत: गलत खंड को पारित कर देना सदन के लिये ठीक होगा। या तो उन्हें यह कहना चाहिये कि संसद को शक्ति होगी.....

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं, अभी इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। आप उसका सुझाव पेश कर सकते हैं। 'संसद को विधि द्वारा प्राधिकृत करने की शक्ति होगी.....'

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, संशोधन यह हो सकता है ''and Parliament shall have power to authorise by law the withdrawal of money from the Consolidated Fund of India for the purpose for which the said grants are made.''

खंड (2) को लेते हैं, तो उसमें लिखा है ''that the provisions of articles 93 and 94 of this Constitution shall have effect in relation to the making of any grant.....'' मैं जानना चाहता हूं कि क्या इसका यह मतलब है कि इसके लिये विनियोग अधिनियम रखना होगा और उस विनियोग अधिनियम में समस्त विभाग दिखाये जायेंगे, भारित और अभारित, मतदान योग्य और मतदान से विमुक्त, जैसा कि पिछले अनुच्छेद में लिखा है। यदि इसका यही आशय है.....

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ऐसा नहीं हो सकता है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अनुच्छेद 93 में लिखा है.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यदि इससे माननीय सदस्य के समझ में बात आ जाये, तो हम ऐसे कह सकते हैं कि विनियोग अधिनियम से पूर्व एक संचित निधि विधेयक अधिनियम संख्या 1 होगा, जिसमें मुख्य रूपरेखा होगी।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या संचित निधि विधेयक संख्या 1 में भी भारित और अभारित राशियां और मतदान के योग्य तथा मतदान से विमुक्त राशियां सब समाविष्ट होंगी, या मतदान के योग्य राशियां भी होंगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** भारित राशियां तो केवल अंतिम विनियोग अधिनियम में ही होती हैं। मतदान के योग्य लेखे में वे चीजें होती हैं, जिन्हें हाउस ऑफ कामन्स की पारिभाषिक भाषा में 'सप्लाई सेवाएं' कहा जाता है जो राजस्व पर भारित सेवा सेवाओं से भिन्न होती है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** अनुच्छेद में लिखा है कि अनुच्छेद 93 और 94 के उपबंधों की पूर्ति करनी होगी।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः अनुच्छेद 93 और 94 का अर्थ है, विनियोग अधिनियम पर मतदान।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** अनुच्छेद 93, प्रथम भाग, में लिखा है कि भारित राशियां को वहां दिखाया जायेगा और दूसरे भाग में लिखा है कि मतदान के योग्य राशियों को सदन में उपस्थित किया जायेगा। मैं जानना चाहता हूं कि क्या ये दोनों प्रकार की राशियां मतदान के लेखे पर लागू होंगी।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः अनुच्छेद 93 में लिखा है कि भारत के राजस्व पर भारित सेवाओं पर सदन का मत लेना अपेक्षित नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** किन्तु, उन्हें विनियोग अधिनियम में तो दिखाना ही होगा।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः जब यह पारित हो जायेगा। उसे ही संचित निधि अधिनियम प्रथम कहते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** अनुच्छेद 94 तो संचित निधि अधिनियम के बारे में नहीं है।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः वही विनियोग अधिनियम भी है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, इनमें कोई अन्तर नहीं है। विनियोग अधिनियम में विस्तृत विवरण होता है, और संचित निधि में नहीं होता।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं नहीं समझता कि डा. अम्बेडकर के स्पष्टीकरण का मूल्य किसी अनुच्छेद के उपबंधों से भी बढ़ सकता है। अनुच्छेद के वर्तमान रूप से तो यही प्रकट है कि अनुच्छेद 93 और 94 के समरत उपबंध इस संचित निधि पर तथा अन्य पर भी लागू होंगे। अतः आय व्ययक की समस्त प्रक्रिया को दोहराना होगा।

माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः यदि माननीय सदस्य उपखंड (2) को ध्यान से पढ़ेंगे तो उन्हें पता लग जायेगा कि उसमें किस उपखंड की चर्चा है। उसमें लिखा है, ''The provisions of articles 93 and 94 of this Constitution shall have effect in relation to the making of any grant under clause (1)''

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** पढ़े जाइये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसा कि मैंने कहा था, राजस्व पर भारित सेवाओं के विषय में अनुदान का कोई प्रश्न नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** .....'and to any law to be made under that clause that they have effect in relation to the making of a grant with regard to any expenditure.....' अतः संचित निधि अधिनियम प्रथम तो अंतिम संचित निधि

अधिनियम की प्रतिलिपि ही होगी, हां वह लघुरूप हो सकता है। उसमें भारित और अभारित, मतप्रदेय और अमतदेय आदि सब कुछ ही होगा। मेरे विचार में यदि हम इस उपबंध को स्वीकार कर लेंगे, तो यही परिणाम होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं बिल्कुल मानता हूं कि इसकी भाषा से कुछ भ्रांति की गुंजाइश पैदा हो गई है; किन्तु मैं अपने माननीय मित्र श्री के. सन्तानम् को आश्वासन दे सकता हूं कि सारी आयव्ययक प्रक्रिया को तो पूरा करना होगा, चाहे बहुत सरसरी तौर पर ही सही। उदाहरणार्थ, जहां तक संसद में संचित निधि विधेयक संख्या 1 का सम्बन्ध है, अभिसमय यह है कि कार्यपालिका उन सप्लाई सेवाओं के लिये धन की मांग नहीं करती जो पिछले वर्ष की राशि से बहुत भिन्न हो। आखिर संसद तो केवल तीन चार मास के लिये ही अनुदान करती है। नि:संदेह यदि कोई विधेयक होगा तो अनुसूची भी होगी ही और अनुसूची में विस्तृत विवरण भी होगा ही, शायद उसी प्रकार जैसे कि विनियोग विधेयक की अनुसूची में होता है। यदि मेरे माननीय मित्र अनुच्छेद 94 को फिर पढ़ें जिसे सदन ने स्वीकार कर लिया है, तो वे देखेंगे कि संचित निधि में से धन देने की चर्चा वहां की गई है और उससे वे डाक्टर अम्बेडकर द्वारा दी गई व्याख्या को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे कि विनियोग विधेयक भी वही है जो कि संचित निधि विधेयक है। प्रारंभिक विधेयक तो संचित निधि विधेयक संख्या 1 होगा और मुख्य विधेयक के साथ जो अनुसूची होगी उसमें संचित निधि विधेयक संख्या 1 की सब बातें होंगी। ज्यों ही मुख्य विधेयक पारित हो जायेगा प्रारंभिक विधेयक की कोई वैधता नहीं रहेगी। यह बात संसद की इच्छा पर है तथा मांग के प्रकार पर निर्भर है कि किस प्रक्रिया को अपनाया जायेगा। यदि वे एक सांकेतिक अनुसूची को ही पर्याप्त मान लें, जिसमें कि मोटे तौर पर कुल राशि दी हुई हो तो उसमें अन्तर्ग्रस्त श्रम बहुत कम होगा। किन्तु यदि वे चाहे कि इस समय मांगों की पुस्तक में जितनी मदें होती हैं वे सब दी जायें तो वह भी संभवत: हो सकता है, किन्तु उसमें कुछ हिसाब का काम करना होगा; यह तो सब संसद की मांग पर निर्भर हैं। यह तो केवल प्रक्रिया सम्बन्धी प्रश्न है और यदि मेरे माननीय मित्र ने सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है, तो मेरे विचार में इस प्रस्तावित प्रक्रिया को स्वीकार करने में कोई और कठिनाई नहीं होनी चाहिये। मेरे विचार में तो केवल इसी बात से कोई असाध्य कठिनाई उत्पन्न नहीं हो जाती कि अनुच्छेद 93 और 94 का उल्लेख कर दिया गया है और उसमें लिखी प्रक्रिया पर चलना होगा। मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् को आश्वासन दे देता कि प्रारंभ से हमारा यही उद्देश्य रहा है कि ऐसी प्रक्रिया के सृजन को रोका जाये, जिस पर चलना संसद के लिये कठिन होगा, और साथ ही ऐसी स्थिति भी पैदा नहीं होगी, जिससे वर्तमान वस्तुस्थिति अकस्मात ही बदल जाये। यदि संसद चाहेगी तो बाद में इन चीजों को बदल सकती है। शायद, श्रीमान्, इस संविधान के पारित होने के पश्चात् प्रथम आयव्ययक सत्र में, जबकि अस्थायी संसद बैठेगी, यह अपेक्षित हो कि उसे थोड़ी स्वतंत्रता देनी होगी कि वह इन अनुच्छेदों में उल्लिखित कठोर उपबंधों का अनुसरण करे या उनमें परिवर्तन कर दे। संक्रमण काल को आसान बनाने के लिये बहुत प्रयत्न किया जायेगा। यह तो केवल प्रक्रिया सम्बन्धी बात है और मैं समझता हूं कि इस विषय में समय-समय पर संसद की इच्छा को पूरा करना कठिन नहीं होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि कुछ और कहना आवश्यक है। मैं केवल एक संशोधन पेश करता हूं:

''कि खंड (1) में उपखंड (ग) के पश्चात्, 'and' शब्द के बाद और 'to' शब्द के पहले निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'Parliament shall have power.' ''

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 96 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'96. *लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान*—(1) इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी लोक सभा को–

(क) किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिये प्राक्कलित व्यय के बारे में किसी अनुदान को, ऐसे अनुदान के लिये मतदान करने के लिये अनुच्छेद 93 में विहित प्रक्रिया की पूर्त्ति के लम्बित रहने तक तथा उस व्यय के सम्बन्ध में अनुच्छेद 94 के उपबंधों के अनुसार विधि के पारण के लम्बित रहने तक पेशगी देने की,

(ख) जबकि किसी सेवा की महत्ता या अनिश्चित रूप के कारण मांग वैसे ब्यौरे के साथ वर्णित नहीं की जा सकती जैसा कि वार्षिक वित्त विवरण में साधारणतया: दिया जाता है तब भारत के सम्पति स्रोतों पर अप्रत्याशित मांग की पूर्त्ति के लिये अनुदान करने की,

(ग) किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का जो अनुदान भाग न हो ऐसा कोई अपवादानुदान करने की, शक्ति होगी तथा उक्त अनुदान जिन प्रयोजनों के लिये किये गये हैं उनके लिये भारत की संचित निधि में से धन निकालना विधि द्वारा प्राधिकृत करने की शक्ति संसद को होगी।

(2) खंड (1) के अधीन किये जाने वाले किसी अनुदान तथा उस खंड के अधीन बनाई जाने वाली किसी विधि के सम्बन्ध में अनुच्छेद 93 और 94 के उपबंध वैसे प्रभावी होंगे जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण में वर्णित किसी व्यय के बारे में किसी अनुदान के करने के तथा भारत की संचित निधि में से ऐसे व्यय की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाये जाने वाली विधि के सम्बन्ध में प्रभावी है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 96 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 96 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह ने एक नया अनुच्छेद 96-क जोड़ने के संशोधन की सूचना दी है। संख्या 1721।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्री सक्सेना के इसी प्रकार के संशोधन पर मतदान हो चुकने के पश्चात्, मैं नहीं जानता कि इसे पेश करना उचित होगा। किन्तु यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं एक निवेदन करना चाहता हूं जो डा. अम्बेडकर के उत्तर के प्रत्युत्तर में है, जिसमें उन्होंने यह लांछन लगाया है कि ऐसे संशोधन उन लोगों द्वारा पेश किये जाते हैं जो लम्बे सत्र चाहते हैं। मैंने इन्हीं विचारों को अपनी पुस्तकों में 25 वर्ष पूर्व प्रकट किया है और यदि डा. अम्बेडकर कहते हैं कि यह एक बुरा उद्देश्य है, तो मेरे विचार में यह बात अनुचित है।

***अध्यक्षः** मेरे ख्याल में उन्होंने यह बात गम्भीर होकर नहीं कही थी। हम अनुच्छेद 97 को लेते हैं। श्री कामत–1722।

अनुच्छेद 97

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

> ''कि अनुच्छेद 97 के खंड (1) में, 'and a Bill making such provision shall not be introduced in the Council of States' ये शब्द हटा दिये जायें।''

संविधान में स्थान-स्थान पर जो पुनरावृत्तियां हैं, यह खंड भी उसका एक दृष्टांत है। यदि सदन अनुच्छेद 89 और 90 को पढ़े तो इसे पता लग जायेगा कि इस खंड की कोई आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 89 खंड (1) में लिखा है कि धन-विधेयक राज्य-परिषद में पेश नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 90 में धन विधेयक को इस अध्याय के प्रयोजनार्थ परिभाषित कर दिया गया है। इन दोनों को साथ पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि इसे यहां दोहराना अनावश्यक है। इस उपबंध को इस अनुच्छेद में दोहराने का कोई युक्तियुक्त कारण है ही नहीं। श्रीमान्, मैं इसे प्रस्तावित करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** तो फिर राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई विधेयक लोक सभा में भी पेश नहीं हो सकता।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं नहीं समझता कि मेरे संशोधन का यह निर्वचन किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** संख्या 1723।

प्रो. के.टी. शाहः श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 97 के खंड (3) में, 'India' शब्द के पश्चात् 'outside the frontiers of India in war-like operations' शब्द रख दिये जायें; और 'passed' शब्द के पहले 'considered or' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें; और खंड के अन्त में निम्न उपबंध जोड़ दिया जाये:
>
> 'Provided that whenever the President makes any such recommendation he shall give his reasons for the same in writing.' ''

संशोधित रूप में खंड इस प्रकार बन जायेगा:

> A bill which, if enacted and brought into operation, would involve expenditure from the revenues of India out side the frontiers of India

[प्रो. के.टी. शाह]

> in war-like operations shall not be considered or passed by either House of Parliament unless the President has recommended to that House the consideration of the Bill
>
> ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत अपने पिछले अनुभव से मुझे इस संशोधन को पेश करने की प्रेरणा मिली है। भारत के धन की सबसे बड़ी बरबादी पिछली सरकार के युद्ध संबंधी कार्यों पर होती थी और उन कार्यों पर होती थी जो ब्रिटेन के साम्राज्यवादी या आक्रमणात्मक युद्धों के समर्थन में भारत की सीमा के बाहर किये जाते थे। पिछले भारत-शासन-अधिनियम 1915 में एक उपबंध था, जो उस समय की सरकार को, सीमान्त के बाहर युद्ध संबंधी कार्यों पर एक पाई भी खर्च करने से रोकता था, जब तक कि संसद का प्राधिकार प्राप्त न हो जाये, जो कि उस समय भारतीय लोगों के कल्याण के लिये, मानो, न्यासधारी थी, या बन गई थी। यह बात नहीं है कि उसने इस प्रकार भारत के धन का प्रयोग होने पर कभी आपत्ति की हो; पर फिर भी वह एक उचित रोक थी।

वर्तमान उपबंध में मैं वैसा ही रक्षण कवच प्रविष्ट करके भारत के सीमान्त के बाहर युद्ध सम कार्यों में भारतीय राजस्व के अनावश्यक प्रयोग या दुरुपयोग को रोकना चाहता हूं। यह अनुच्छेद अधिकाई अनुदानों के संबंध में है और यदि यह धन भारत के सीमान्त के बाहर प्रयुक्त हो, तो मैं किसी न किसी प्रकार का संरक्षण रखना चाहता हूं। मेरा यह आशय नहीं है कि उस धन का प्रयोग नहीं होगा और यह भी आशय नहीं है कि भारत अपने सीमान्त के बाहर रक्षात्मक या आक्रमणात्मक युद्ध न कर सकेगा, और उस संबंध में रुपया खर्च नहीं कर सकेगा, पर मेरा आशय यह है कि ऐसी आवश्यकता होने पर राष्ट्रपति को यह मामला सदन के समक्ष रखना चाहिये और लिखित रूप में अपने कारण देने चाहिये। लोक सभा को यह सोचने का अवसर मिलना चाहिये कि क्या अपेक्षित व्यय भारत के हित में उचित है और फिर पूरी स्थिति समझ कर उसे उस व्यय के लिये प्राधिकार प्रदान करना चाहिये।

मैं फिर यह बात दोहराना चाहता हूं कि इस संशोधन के पेश करने में मेरा यह इरादा नहीं है कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के मामले में कार्यपालिका द्वारा आवश्यक कार्यवाही करने में रोड़ा अटकाया जाये। किंतु पिछले अनुभव को ध्यान में रखकर, मेरे विचार में, कुछ रखण-कवच होना चाहिये, जिससे कि हमारी खुला खर्च करने की प्रवृत्ति से हमारी हानि न हो। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना, संशोधनों पर संशोधनों की सूची का संख्या 231।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन संख्या 231 के अन्तिम भाग को ही पेश करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 97 में, खंड (3) को हटा दिया जाये।''

***अध्यक्षः** आप दूसरा संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** नहीं श्रीमान्।

श्रीमान्, मुझे इस अनुच्छेद में इस खंड की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। यह पहले ही कहा जा चुका है कि धन-विधेयकों के लिये एक विशेष प्रक्रिया होगी। उसके बाद मुझे इस खंड की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। वास्तव में, यदि इसका कठोरता से निर्वचन किया जाये तो सदन द्वारा पारित या सदन द्वारा पारित कोई भी विधेयक ऐसा नहीं हो सकता जिससे सरकार किसी व्यय में अंतर्ग्रस्त न हो जायेगी। यदि वह साधारण विधेयक भी हो तब भी, यदि उसे प्रवर्तन में लाया जाये या क्रियान्वित किया जाये, तो उससे भारत के राजस्व से कुछ व्यय हो ही जायेगा, जब तक कि यह इरादा न हो कि वह व्यय अनुच्छेद 92 के अनुसार मतदान से मुक्त होगा। हां, फिर तो दूसरी बात है; किंतु विद्यमान रूप में तो, मेरे ख्याल में इसका यही अर्थ है कि कोई भी विधेयक, जिसमें कोई व्यय अन्तर्ग्रस्त हो, सदन में पेश नहीं किया जा सकता। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** सब संशोधन पेश हो चुके हैं, और अब इस खंड तथा संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मुझे प्रोफेसर सक्सेना के अन्तिम संशोधन पर एक ही शब्द कहना है। वे कार्यपालिका की पहल करने की शक्ति को कम करना चाहते हैं, जिसे इन सब वित्तीय उपबन्धों संबंधी अनुच्छेदों में बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है, जहां तक व्यय और करारोपण का संबंध है। वास्तव में यह एक परम्परा है, जिस पर हम इस देश में चलते रहे हैं और जिसे हमने अंग्रेजी प्रणाली से लेकर संविधान के मस्विदे में रख दिया है, जिसके अनुसार शताब्दियों से यह कार्यपालिका का उत्तरदायित्व माना गया है कि वह उन प्रस्तावों को पेश करे जिनमें कि कर लगाने के या व्यय करने के सुझाव अन्तर्ग्रस्त हों। यदि ऐसा हो कि एक गैर सरकारी सदस्य ऐसे विधेयकों को पेश कर सके, जिनमें कर लगाने या व्यय करने का सुझाव अन्तर्ग्रस्त हो, तो कार्यपालिका का उत्तरदायित्व कम हो जायेगा और उनके लिये उस व्यय को पूरा करने के उपाय ढूंढना कठिन हो जायेगा। इस सिद्धांत को सब संविधानों में अच्छी तरह स्वीकार किया गया है कि उपक्रमण का कार्य कार्यपालिका ही पर रहे। हां, मैं यह देखता हूं कि प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने दूसरे संशोधन पेश नहीं किये हैं जिनमें वे विधान मंडल को ऐसे संशोधन पेश करने की यह शक्ति देना चाहते थे, जिनका प्रभाव यह होता कि संसद को नये कर लगाने के विधेयकों में करों की दरें बढ़ाने की अथवा विद्यमान कर-व्यवस्था को बदलने की अनुमति हो जाये। स्पष्ट है कि उन्होंने उस प्रकार के संशोधन के अनौचित्य को समझ लिया और उसे छोड़ दिया किंतु मैं अनुभव करता हूं कि वे इसी प्रकार विचार करेंगे तो उन्हें पता लग जायेगा कि वे जिस उपबंध को संशोधित करना चाहते हैं, वैसा ही उपबंध आजकल भारत शासन अधिनियम में है और ब्रिटिश संसद के स्थायी आदेशों में है और संसदीय शासन प्रणाली के लगभग प्रत्येक विधान मंडल में है कि उपक्रमण की शक्ति पूर्णत: कार्यपालिका के हाथ में ही होती है। अत: किसी अधिराज्य विधान मंडल ने कार्यपालिका की इस शक्ति को ले लेने का प्रयत्न नहीं किया। मेरे विचार में प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन को इस कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता और खंड वर्तमान में ही रहना चाहिये।

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जहां तक प्रोफेसर शाह के संशोधन का संबंध है, मैं नहीं समझता कि मुझे डा. अम्बेडकर के बोलने से पहले ही उस पर कुछ कहना चाहिये। उन्होंने जो कारण बताये हैं, वे काफी स्पष्ट हैं, कि वे राष्ट्रपति या कार्यपालिका को कोई ऐसा विधेयक पेश करने की शक्ति नहीं देना चाहते, जिसमें भारत के बाहर किया जाने वाला व्यय अंतर्ग्रस्त हो, क्योंकि वे यह नहीं चाहते कि भारत की भावी सरकार किसी साम्राज्यवादी युद्धों में भाग ले। यह सर्वथा संभव है कि भावी भारत सरकार को भारत के सीमान्त प्रतिरक्षा के निमित्त कुछ ऐसे पग उठाने पड़ें जिसके संबंध में भारत के सीमान्त से जरा परे जाकर कुछ कार्यवाही करना अपेक्षित हों, और भविष्य में सरकार की अखंडता को बनाये रखने का उनका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जाये, यदि प्रो. शाह के संशोधन को स्वीकार करके इस प्रकार के उपबंध के द्वारा कार्यपालिका के हाथ बांध दिये जायें। यदि कोई इस विचार का हो कि सब ही युद्ध साम्राज्यवादी होते हैं, तो उसके अनुसार यह बात बिल्कुल उचित है। कभी-कभी देशों को शुद्धतः प्रतिरक्षात्मक प्रयोजनों के लिये युद्धों में भाग लेना पड़ता है और प्रो. शाह के संशोधन को स्वीकार करने से तो वह प्रयोजन भी पूरा नहीं हो सकेगा। अतएव मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद विशेष के संबंध में इस दोनों संशोधनों का कोई महत्त्व नहीं है और उन्हें रद्द कर देना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं नहीं समझता कि कोई उत्तर आवश्यक है, किंतु श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं स्वयं एक संशोधन पेश करना चाहता हूं। मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 1723 के निदेश से, अनुच्छेद 97 के खंड (3) में 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

***श्री एच.वी. कामतः** खंड के अन्त के शब्द को व्यर्थ दोहराया गया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा ऐसा ख्याल नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 97 के खंड (1) में 'and a Bill making such provision shall not be introduced in the Council of States' ये शब्द हटा दिये जायें।'''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 1722 अथवा 1723 के स्थान पर निम्न संशोधन रख दिया जाये:
>
> 'कि अनुच्छेद 97 में खंड (3) को हटा दिया जाये।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 97 के खंड (3) में 'India' शब्द के पश्चात् 'outside the frontiers of India in war-like operations' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 97 के खंड (3) में 'Passed' शब्द के पहले 'considered or' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 97 के खंड (3) के अन्त में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that whenever the President makes any such recommendations he shall give his reasons for the same in writing.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 1723 के निदेश से अनुच्छेद 97 के खंड (3) में 'revenues of India' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 97 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 97 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 98

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 98 के खंड (1) में 'Each House of Parliament may make rules for regulating, subject to the provisions of this Constitution' इन शब्दों के स्थान पर 'Subject to the provisions of this Constitution, either House of Parliament may make rules for regulating' ये शब्द रख दिये जायें।''

इसमें दो संशोधन हैं: एक तो यह है कि एक वाक्यांश को एक खंड में स्थानांतरित कर दिया जाये और दूसरा यह है कि 'each' शब्द के स्थान पर 'either' रख दिया जाये। ये रचना संबंधी संशोधन है, किन्तु मेरे तुच्छ मतानुसार मेरा विश्वास है कि यह अधिक अच्छी अंग्रेजी है और यह वाक्य-विन्यास के नियमों के अधिक अनुकूल है। मैं

[श्री एच.वी. कामत]

नहीं समझता कि इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई या आपत्ति होगी और मुझे आशा है कि सदन मेरे सुझाव का समर्थन करेगा। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 1725 और 1726 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मुझे संशोधन संख्या 1727 पेश करना है, इसलिये नहीं कि मैं इसे पेश करना चाहता हूं, वरन् इसलिये कि इस पर एक अन्य माननीय सदस्य का संशोधन निर्भर है। मैं माननीय सदस्य के लिये सुविधा प्रदान करना चाहता हूं। मैं प्रस्ताव करना चाहता हूं:

''कि अनुच्छेद 98 का खंड (4) हटा दिया जाये।''

श्री जसपतराय कपूर (संयुक्तप्रांत : जनरल): अपना संशोधन पेश करने से पूर्व मैं अपने माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद को धन्यवाद देना चाहता हूं कि उन्होंने अपना संशोधन पेश किया है, क्योंकि उसी के कारण मैं इस संशोधन पर अपना संशोधन पेश करने में समर्थ हो सका हूं।

श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 14 को पेश नहीं कर रहा हूं। मैं केवल संशोधन संख्या 15 पेश करता हूं।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

''संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 1727 के निर्देश से, अनुच्छेद 98 के खंड (4) में 'absence' शब्द के पश्चात् 'the Chairman of the Council of States, or in the absence of both' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

तत्पश्चात् खंड (4) इस प्रकार बन जायेगा:

''At a sitting of the two Houses the Speaker of the House of the People, or in his absence the Chairman of the Council of States or in the absence of both such person as may be determined by rules of procedure made under clause (3) of this article, shall preside.''

मस्विदा-समिति ने पृष्ठ 44 के नीचे इस खंड (4) के विषय में एक टिप्पणी दी है, जिसमें लिखा है कि संसद के अध्यक्ष को पीठासीन होना चाहिये क्योंकि लोक सभा अधिक संख्या का निकाय है। यह बात तो ठीक है कि लोक सभा में अध्यक्ष को दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में अध्यासीन होना चाहिये किन्तु जब लोक सभा का अध्यक्ष अनुपस्थित हो, तब मेरे विचार में राज्य-परिषद के सभापति को पीठासीन होने देना समुचित प्रक्रिया होगी। राज्य-परिषद् का सभापति निर्वाचित व्यक्ति होता है, जिसे संसद के दोनों सदन चुनते हैं, इसलिये वह संसद के दोनों सदस्यों का विश्वासपात्र होता है, और श्रीमान्, मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि जब लोक सभा का अध्यक्ष अनुपस्थित हो तब राज्यपरिषद के सभापति को पीठासीन होने के लिये प्राधिकृत क्यों न किया जाये। विद्यमान रूप में खंड (4) में लिखा है: ''कि लोक सभा के अध्यक्ष की अनुपस्थिति में ऐसा व्यक्ति पीठासीन होगा, जिसका खंड (3) के अधीन बनाई गई प्रक्रिया के नियमों के अनुसार निर्धारण हो।''

अब इससे राज्यपरिषद् के सभापति के अध्यासीन होने का प्रश्न ही लगभग समाप्त हो जाता है, क्योंकि मेरे विचार में कोई इस प्रश्न को गम्भीरता से नहीं उठायेगा कि खंड (3) के अन्तर्गत जो नियम बनाये जायें उनके अनुसार राज्य-परिषद् के सभापति को पीठासीन होने दिया जाये। जब राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के सभापति के परामर्श से नियम बनायेगा तब, मुझे विश्वास है कि, राज्यपरिषद् का सभापति स्वयं यह प्रस्ताव नहीं रखेगा कि लोक सभा के अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसे पीठासीन होने दिया जाये, क्योंकि वह राज्यपरिषद् का गौरवर्ण सभापति होगा, छोटी-छोटी बातों का इतना ख्याल नहीं करेगा कि वह ऐसा दुस्साहस करे कि वह ऐसा सुझाव रख दे कि उसे ऐसी आकस्मिकता में पीठासीन होने का प्राधिकार दे दिया जाये अतएव, मेरे विचार में यह आवश्यक है कि हम खंड (4) में यह उपबंध रख दें कि जब लोक सभा का अध्यक्ष अनुपस्थित हो तब राज्य-परिषद् का सभापति पीठासीन हो।

श्रीमान्, मैं सविनय यह प्रस्ताव करता हूं।

(संशोधन संख्या 1728 और 1729 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** हमारे पास जितने संशोधनों की सूचना आई थी, वे सब पेश हो चुके हैं। क्या अब कोई बोलना चाहता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं श्री कपूर के संशोधन की युक्तियों को तो सर्वथा स्वीकार करता हूं—मैं नहीं जानता कि डा. अम्बेडकर इस विषय में क्या करेंगे, पर मेरी अपनी भावना यह है कि खंड को वर्तमान रूप में ही रहने दिया जाये और श्री जसपतराय कपूर के सुझाव के अनुसार संशोधित न किया जाये, क्योंकि उपयुक्त व्यवस्था यह होगी कि या तो राज्य-परिषद् का सभापति ही पीठासीन हो और उसकी अनुपस्थिति में अध्यक्ष पीठासीन हो; अथवा वर्तमान प्रबंध ही रखा जाये, क्योंकि राज्यपरिषद् का सभापति भारत का उपराष्ट्रपति भी होगा और उसकी स्थिति विशेष होगी, राष्ट्रपति से दूसरे नम्बर पर होगी। और शायद प्रधानमंत्री के समान होगी या ऐसे ही कुछ होगी। उसे अध्यक्ष से नीचे की स्थिति में रखने का अर्थ विभेद करना होगा—एक व्यक्ति को लोक सभा के अध्यक्ष के नीचे रखना होगा, जो राष्ट्रपति का स्थान ले सकता है या विशेष परिस्थितियों में उसके कर्त्तव्यों का निर्वहन कर सकता है।

इसमें भी यह आपत्ति हो सकती है कि अध्यक्ष को परिषद् के सभापति के नीचे क्यों रखा जाये, क्योंकि उससे दोनों सदनों में प्रतियोगिता हो सकती है कि किस सदन को प्रथम स्थान मिले। यह बहुत नाजुक और कठिन स्थिति होगी, और मेरे विचार में मस्विदा-समिति ने राज्य-परिषद् के सभापति को, जो कि उपराष्ट्रपति होता है चित्र से बिल्कुल ही हटाकर समस्या का निराकरण कर दिया है, और सब तरह यही अच्छा है कि जब दोनों सदन साथ समवेत हों तब उपराष्ट्रपति, जो कि राज्य-परिषद् का सभापति होता है, मंच पर बिल्कुल रहे ही नहीं और अध्यक्ष पीठासीन हो जाये। श्री जसपतराय कपूर के सुझाव को स्वीकार करने से, चाहे वह तर्कसंगत दिखाई देता हो, मेरे ख्याल में नाजुक स्थिति पैदा हो सकती है, जिसे हटाने के लिये अनुच्छेद को विद्यमान रूप में ही रहने देना अच्छा होगा।

श्री के.एम. मुन्शी (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मेरे विचार में दूसरी सभा के सभापति को बीच में न लाकर अनुच्छेद को वर्तमान रूप में ही रहने देना सर्वोत्तम रहेगा। इसका कारण सीधा है। द्वितीय सदन का सभापति उपराष्ट्रपति भी होगा, अत: यदि हम अध्यक्ष को पहले रखें तो सभापति को उसके बाद रखना ठीक नहीं होगा; और हो सकता है कि ऐसे व्यक्ति को संयुक्त बैठक का अध्यक्ष या सभापति बनाना ठीक भी न हो, जो कि अस्थायी रूप से या अन्यथा राष्ट्रपति के स्थान पर कार्य कर रहा होगा। उसी दृष्टिकोण से मैं इसे अनुपयुक्त समझता हूं और यह नियमों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिये कि वह पीठासीन होगा या नहीं किंतु उसे इस प्रकार स्पष्टत: रख देना उसकी स्थिति को संघ के उपराष्ट्रपति के रूप में कठिन बनाना होगा और इसे ऐसे ही रहने देना वांछनीय है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं तो केवल यही कह सकता हूं कि मैं श्री जसपतराय कपूर के संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। यह अधिक अच्छा है कि इस मामले को नियमों द्वारा उपबन्धित होने के लिये ढीला ही छोड़ दिया जाये। श्री कामत के संशोधन के संबंध में मैं नि:संदेह उसकी ओर आकृष्ट अनुभव करता हूं। किंतु इस समय मैं वचन नहीं दे सकता, किन्तु मैं उन्हें आश्वासन दे सकता हूं कि मस्विदा समिति इस मामले पर विचार करेगी।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं श्री कामत के संशोधन पर मत नहीं लूंगा। मैं इसे रचना संबंधी संशोधन समझता हूं जिस पर मस्विदा-समिति विचार करेगी।

श्री जसपतराय कपूर के संशोधन संख्या 15 के संबंध में मैं डा. अम्बेडकर का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 98 के खंड (2) में निम्न शब्द हैं:

''भारत डोमिनियन के विधान मंडल के बारे में।''

दूसरे स्थान पर हमनें 'भारत की संविधान सभा' ये शब्द रखे हैं। मेरे ख्याल में डा. अम्बेडकर यहां भी वही पद रखना पसंद करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हां।

***अध्यक्ष:** मैं कह रहा था कि यहां इस खंड (2) में ''भारत डोमिनियन का विधान मंडल' ये पद है। शायद 'भारत की संविधान सभा' ये पद अच्छा रहेगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अब हमारे यहां दो सभाएं हैं। संविधान सभा, जो संविधान सभा के रूप में बैठती है और एक संविधान सभा जो विधान मंडल के रूप में बैठती है। दोनों के लिये हमारे यहां नियम हैं। अत: मेरे विचार में 'भारत डोमिनियन' इन शब्दों को ही रहने देना अभीष्ट होगा, जिससे कि हम उन नियमों को स्वीकार कर सकें जो कि दूसरी सभा में लागू हैं।

श्री जसपतराय कपूर: मेरा निवेदन यह है कि 'भारत डोमिनियन के विधान मंडल' के स्थान पर हम 'संविधान सभा' रखकर कोष्टक में 'विधायिनी' शब्द रख सकते हैं। इसी नाम से हम अपनी संविधान-सभा को पुकारते हैं, जब कि वह 'विधान मंडल के रूप में कार्य करती है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हमें भारत स्वतंत्रता अधिनियम की भाषा का प्रयोग करना है। हमें उस अधिनियम की शब्दावली तक ही निर्बन्धित रहना है।

***अध्यक्ष:** यदि इससे कोई कठिनाई नहीं होगी, तो मैं इसका ख्याल नहीं करता। मैं श्री जसपतराय कपूर के संशोधन पर मत लूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं इसे वापस लेने के लिये सदन की अनुमति चाहता हूं। मैं नहीं चाहता हूं कि यह पराजित संशोधन बने।

***अध्यक्ष:** यदि सदन उन्हें अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति दे तो वे वापस ले सकते हैं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 98 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 98 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 98-क

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर ने नया अनुच्छेद रखने के संशोधन की सूचना दी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 98 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'98-क. *संसद् में वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन*—वित्तीय कार्य को समय के अन्दर समाप्त करने के प्रयोजन से संसद विधि द्वारा किसी वित्तीय विषय से अथवा भारत को संचित निधि में से धन का विनियोग करने वाले किसी विधेयक से संबंधित संसद के प्रत्येक सदन की प्रक्रिया और कार्य संचालन का विनियमन कर सकेगी तथा यदि और जहां तक, इस प्रकार बनाई हुई किसी विधि का उपबंध पिछले अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन संसद के किसी सदन द्वारा बनाये गये नियम से अथवा उस अनुच्छेद के खंड (2) के अधीन संसद के संबंध में प्रभावी किसी नियम या स्थायी आदेश से असंगत है, तो ऐसा उपबंध अभिभावी होगा।' ''

***अध्यक्ष:** इस संशोधन पर कोई सदस्य बोलना नहीं चाहता, अत: मैं प्रस्ताव पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'98-क. संसद में वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन—वित्तीय कार्य को समय के अन्दर समाप्त करने के प्रयोजन के संसद विधि द्वारा किसी वित्तीय विषय से अथवा भारत को संचित निधि में से धन का विनियोग करने वाले किसी विधेयक से संबंधित संसद के प्रत्येक सदन की प्रक्रिया और कार्य-संचालन का विनियमन कर सकेगी, तथा यदि और जहां तक, इस प्रकार बनाई हुई किसी विधि का उपबंध पिछले अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन संसद

[अध्यक्ष]

के किसी सदन द्वारा बनाये गये नियम से अथवा उस अनुच्छेद के खंड (2) के अधीन संसद के संबंध में प्रभावी किसी नियम या स्थायी आदेश से असंगत है, तो ऐसा उपबंध अभिभावी होगा।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 98-क संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 173

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि सदन ने संघ के वित्तीय उपबंधों पर जो विचार किया है, उसके बाद हम राज्यों संबंधी वित्तीय उपबंधों पर विचार आरंभ कर दें? यदि ऐसा किया गया तो धारा बनी रहेगी।

***अध्यक्ष:** मैं स्वयं वही सुझाव रखने वाला था। अब हम संविधान के राज्यों संबंधी भाग के वित्तीय अनुच्छेदों को ले सकते हैं।

अब सदन अनुच्छेद 173 पर विचार करेगा।

संशोधन संख्या 2461 और 2462 पेश नहीं किये गये हैं अब डा. अम्बेडकर अगले संशोधन संख्या 2464 को पेश कर सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 173 के खंड (4) में 'deemed to have been passed' इन शब्दों के पश्चात् 'by both Houses in the form in which it was passed' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं औपचारिक रूप से प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 173 के खंड (2) में 'तीस' शब्द के स्थान पर 'इक्कीस' शब्द रख दिया जाये।''

***श्री बी.एम. गुप्ते:** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2463 के निर्देश से, अनुच्छेद 173 में 'तीस दिन' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'चौदह दिन' ये शब्द रख दिये जायें।''

हम केन्द्रीय विधान मंडल के विषय में इस उपबंध को पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। राज्यों का उपबंध भी वैसा ही बनाने के लिये यह संशोधन स्वीकार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2463 के निर्देश से, अनुच्छेद 173 में 'तीस दिन' इन शब्दों के स्थान पर, जहां भी वे हों, 'चौदह दिन' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 173 के खंड (4) में 'deemed to have been passed' इन शब्दों के पश्चात् 'by both Houses in the form in which it was passed' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''संशोधित रूप में अनुच्छेद 173 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 173 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 174

(संशोधन संख्या 2465 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर, आपके नाम से दो संशोधन हैं, सूची 1 के संख्या 69 और 70। उनका उद्देश्य केवल यही है कि इस अनुच्छेद को उन उपबंधों के समान बना दिया जाये, जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 174 के खंड (1) के उपखंड (ग) और (घ) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिये जायें:

'(ग) राज्य की संचित निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना अथवा उसमें से धन निकालना;

(घ) राज्य की संचित निधि में से धन का विनियोग;' ''

और भी–

''कि अनुच्छेद 174 के खंड (1) के उपखंड (ङ) और (च) में 'revenues of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of India' ये शब्द रख दिये जायें।''

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम में दो संशोधन हैं, संख्या 2466 और 2467। संख्या 2467 को तो मैं औपचारिक रूप में ही पेश करता हूं, क्योंकि वह केवल रचना संबंधी है। संशोधन संख्या 2466 को मैं पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 174 के खंड (1) के उपखंड (ङ) में 'the increasing of the amount of' इन शब्दों के स्थान पर 'varying amount of, or abolishing' ये शब्द रख दिये जायें।''

संघीय संसद के संबंध में तत्स्थानी अनुच्छेद पर वाद-विवाद के समय भी मैंने ऐसा ही प्रश्न उठाया था और मेरे विचार में अब भी मेरा यही ख्याल है कि मेरे प्रश्न का

[श्री एच.वी. कामत]

संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया था। सदन ध्यान दे कि अनुच्छेद 177 में बहुत सी मदें हैं जो राज्य की संचित निधि पर भारित होंगी, इन विविध मदों में विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की उपलब्धियां और भत्ते भी हैं और परिषद् वाले राज्य में विधान परिषद् के सभापति और उपसभापति की भी उपलब्धियां और भत्ते होते हैं। इस संविधान में ऐसा उपबंध नहीं है कि उनकी उपलब्धियों और भत्तों को उनके पदकाल में कम नहीं किया जायेगा, जैसा कि राज्य के राज्यपाल के लिये रखा गया है। अतः यह संभव है कि विधान मंडल किसी समय विधि द्वारा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति और उपसभापति की उपलब्धियों को कम करे दे।

***श्री बी. दासः** किन्तु अनुच्छेद 177 के अधीन वे सब भारित व्यय है।

***श्री एच.वी. कामतः** किन्तु ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि उन्हें उनकी पदावधि में कम नहीं किया जायेगा, और यदि कोई ऐसा प्रस्ताव उठे कि उन भत्तों और उपलब्धियों को कम कर दिया जाये, तो क्या हम परिषद् को ऐसा विधेयक पेश करने की अनुमति दे दें? श्री अनन्तशयनम आयंगर ने पिछली बार इसका उत्तर देते समय कहा था कि जहां तक राशि को बढ़ाने का संबंध है, वह धन विधेयक के क्षेत्र में आ जायेगा, और इसलिये ऐसे धन-विधेयक केवल प्रथम सदन में ही पेश होंगे, किन्तु मैं जो प्रश्न उठाना चाहता था वह यह हैः मान लीजिये कि विधान मंडल अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति और उपसभापति की उपलब्धियों को और भत्तों को घटाना चाहता है। तो क्या हम उसे भी अनुच्छेद 174 के प्रयोजन के लिये धन-विधेयकों में न समझें? क्या हम द्वितीय सदन को उस मामले के संबंध में विधेयक उपस्थित करने की शक्ति दे दें? क्या हमें उसे भी अनुच्छेद 174 के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाला नहीं समझना चाहिये, और प्रथम सदन को ऐसा प्रस्ताव करने की पूरी शक्ति नहीं देनी चाहिये।

तत्पश्चात् श्रीमान्, समाप्त करने का प्रश्न है। अनुच्छेद 177 में एक व्यापक खंड है, खंड (ङ), जिसमें लिखा है कि कोई अन्य व्यय जो कि इस संविधान द्वारा या राज्य के विधान मंडल द्वारा इस प्रकार भारित घोषित कर दिया जाये, वह भी राज्य की संचित निधि पर भारित समझा जायेगा। यहां भी मैं नहीं जानता कि क्या कभी विधान मंडल के कार्यकाल में ऐसा अवसर आ सकता है जब कि वह ऐसा विचार कर सकता है कि कोई व्यय, जो पहले राज्य की संचित निधि पर भारित घोषित किया गया था, अब राज्य को हानि पहुंचाये बिना समाप्त किया जा सकता है। उस अवस्था में भी, प्रश्न यह है कि क्या द्वितीय सदन को भी ऐसा प्रस्ताव करने की अनुमति दी जाये या केवल प्रथम सदन को ही वह शक्ति प्राप्त हो। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

संशोधन 2467 को तो मैं औपचारिक रूप से पेश करता हूं, पर इस मामले को मैं मस्विदा समिति की बुद्धिमत्ता पर छोड़ देता हूं।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कोई और संशोधन नहीं है। अब मैं इस पर मत लूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या डा. अम्बेडकर इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहते?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं तो केवल यही कह सकता हूं कि जब हम संविधान का पुनरीक्षण करेंगे तब मैं इस पर विचार कर लूंगा।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 174 के खंड (1) के उपखंड (ग) और (घ) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिये जायें:

'(ग) राज्य की संचित निधि अथवा आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन डालना या उसमें से धन निकालना;

(घ) राज्य की संचित निधि में से धन का विनियोग;' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 174 के खंड (1) के उपखंड (ङ) और (च) में 'revenues of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***श्री एच.वी. कामत:** क्योंकि डा. अम्बेडकर ने इस पर विचार करने का वचन दिया है, अत: मैं इसे उनकी बुद्धिमत्ता पर छोड़ देता हूं। वे बाद में उसका प्रयोग कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** दोनों संशोधन?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** केवल एक ही संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं पूछ सकता हूं कि उन्होंने किस संशोधन पर विचार करने का वचन दिया है? शायद वे इसे स्पष्ट कर देंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** संख्या 2466।

***अध्यक्ष:** ठीक है, फिर मैं उन पर मत नहीं लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 174 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 174 संविधान में जोड़ दिया गया।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 175 स्थगित रहे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मेरा सुझाव है कि अनुच्छेद 175 और 176 को उठा रखा जाये, क्योंकि वे ऐसी समस्याओं पर प्रभाव डालते हैं जिन पर मस्विदा-समिति अभी विचार कर रही है। संशोधन 177 को ले लिया जाये।

***अध्यक्ष:** तो फिर हम अनुच्छेद 177 को ले लेंगे।

अनुच्छेद 177

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 177 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) के स्थान पर 'revenues of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' ये शब्द रख दिये जायें।''

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 177 के खंड (3) 'revenues of each State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of each State' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान् मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 177 के खंड (3) के उपखंड (ख) में 'emoluments' शब्दों के स्थान पर 'salaries' शब्द रख दिया जाये।''

(संशोधन संख्या 2486, 2487 और 2489 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 177 के खंड (2) के उपखंड (क) और (ख) में 'revenues of each State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of each State' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 177 के खंड (3) में 'revenues of each State' शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of each State' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 177 के खंड (3) के उपखंड (ख) में 'emoluments' शब्द के स्थान पर 'salaries' शब्द रख दिया जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 177 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 177 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 178

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 178 के खंड में 'revenues of each State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of each State' ये शब्द रख दिये जायें।''

(संशोधन संख्या 2490 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 178 के खंड (1) में 'revenues of each State' शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of each State' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 178 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 178 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 179

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 179 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

179. *विनियोग विधेयक*—(1) विधान सभा द्वारा अनुच्छेद 203 के अधीन अनुदान किये जाने के बाद यथासंभव शीघ्र राज्य की संचित निधि में से–

(क) सभा द्वारा इस प्रकार किये अनुदानों की; तथा

(ख) राज्य की संचित निधि पर भारित किंतु सदन या सदनों के समक्ष पहले रखे गये विवरण में दी हुई राशि से किसी भी अवस्था में अनधिक व्यय की पूर्त्ति के लिये अपेक्षित सब धनों के विनियोग के लिये विधेयक पुर:स्थापित किया जायेगा।

(2) इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की राशि में फेरफार करने अथवा अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन ऐसे किसी विधेयक पर राज्य के विधान मंडल के सदन में या किसी सदन में प्रस्थापित न किया जायेगा तथा कोई संशोधन इस खंड के अधीन अप्रवेश्य है या नहीं, इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा।

(3) अगले दो अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य की संचित निधि में से इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन निकाला न जायेगा।' ''

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर कोई और संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 179 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

179. *विनियोग विधेयक*—(1) विधान सभा द्वारा अनुच्छेद 203 के अधीन अनुदान किये जाने के बाद यथासंभव शीघ्र राज्य की संचित निधि में से–

(क) सभा द्वारा इस प्रकार किये अनुदानों की; तथा

(ख) राज्य की संचित निधि पर भारित किंतु सदन या सदनों के समक्ष पहले रखे गये विवरण में दी हुई राशि से किसी भी अवस्था में अनधिक

[अध्यक्ष]

व्यय की पूर्त्ति के लिये अपेक्षित सब धनों के विनियोग के लिये विधेयक पुर:स्थापित किया जायेगा।

(2) इस प्रकार किये गये किसी अनुदान की राशि में फेरफार करने अथवा अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा राज्य की संचित निधि पर भारित व्यय की राशि में फेरफार करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन ऐसे किसी विधेयक पर राज्य के विधान मंडल के सदन में या किसी सदन में प्रस्थापित न किया जायेगा तथा कोई संशोधन इस खंड के अधीन अप्रवेश्य है या नहीं, इस बारे में पीठासीन व्यक्ति का विनिश्चय अन्तिम होगा।

(3) अगले दो अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य की संचित निधि में से इस अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसार पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन निकालने के अतिरिक्त और कोई धन निकाला न जायेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 179 संविधान का अंग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 179 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 180

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 180 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'180. *अनुपूरक अपर या अतिरिक्त अनुदान*—(1) यदि–

(क) अनुच्छेद 204 के उपबंधों के अनुसार निर्मित किसी विधि द्वारा किसी सेवा पर चालू वित्तीय वर्ष के वास्ते व्यय किये जाने के लिये प्राधिकृत कोई राशि उस वर्ष के प्रयोजन के लिये अपर्याप्त पाई जाती है अथवा उस वर्ष के वार्षिक वित्त विवरण में अपेक्षित न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक अथवा अपर व्यय की चालू वित्तीय वर्ष में आवश्यकता पैदा हो गई है, अथवा

(ख) किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर, उस सेवा और उस वर्ष के लिये अनुदान की गई राशि से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राज्यपाल यथास्थिति राज्य के विधान मंडल के सदन अथवा सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित की गई राशि को दिखाने वाला दूसरा विवरण

रखवायेगा अथवा यथास्थिति राज्य की विधान सभा में ऐसी अधिकाई के लिये मांग उपस्थित करायेगा।

(2) ऐसे किसी विवरण और व्यय या मांग के संबंध में, तथा राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय अथवा ऐसी मांग से संबंधित अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली किसी विधि के संबंध में भी पिछले तीन अनुच्छेदों के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे, जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण तथा उसमें वर्णित व्यय अथवा अनुदान की किसी मांग तथा राज्य की संचित निधि में से ऐसे किसी व्यय या अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली विधि के संबंध में प्रभावी है।' ''

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 180 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'180. *अनुपूरक अपर या अतिरिक्त अनुदान*—(1) यदि—

(क) अनुच्छेद 204 के उपबंधों के अनुसार निर्मित किसी विधि द्वारा किसी विशेष सेवा पर चालू वित्तीय वर्ष के वास्ते व्यय किये जाने के लिये प्राधिकृत कोई राशि उस वर्ष के प्रयोजन के लिये अपर्याप्त पाई जाती है अथवा उस वर्ष के वार्षिक वित्त विवरण में अवेक्षित न की गई किसी नई सेवा पर अनुपूरक अथवा अपर व्यय की चालू वित्तीय वर्ष में आवश्यकता पैदा हो गई है, अथवा

(ख) किसी वित्तीय वर्ष में किसी सेवा पर, उस सेवा और उस वर्ष के लिये अनुदान की गई राशि से अधिक कोई धन व्यय हो गया है, तो राज्यपाल यथास्थिति राज्य के विधान मंडल के सदन अथवा सदनों के समक्ष उस व्यय की प्राक्कलित की गई राशि को दिखाने वाला दूसरा विवरण रखवायेगा अथवा यथास्थिति राज्य की विधान सभा में ऐसी अधिकाई के लिये मांग उपस्थित करायेगा।

(2) ऐसे किसी विवरण और व्यय या मांग के संबंध में, तथा राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय अथवा ऐसी मांग से संबंधित अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली किसी विधि के संबंध में भी पिछले तीन अनुच्छेदों के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे, जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण तथा उसमें वर्णित व्यय अथवा अनुदान की किसी मांग तथा राज्य की संचित निधि में से ऐसे किसी व्यय या अनुदान की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली विधि के संबंध में प्रभावी है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 180 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 180 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 181

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

'कि अनुच्छेद 181 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'181. *लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान*—(1) इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य की विधान सभा को—

(क) किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिये प्राक्कलित व्यय के बारे में किसी अनुदान को, उस अनुदान के लिये मतदान करने के लिये अनुच्छेद 203 में विहित प्रक्रिया की पूर्त्ति लम्बित रहने तक तथा उस व्यय के संबंध में अनुच्छेद 204 के उपबंधों के अनुसार विधि के पारण के लम्बित रहने तक, पेशगी देने की;

(ख) जब कि किसी सेवा की महत्ता या अनिश्चित रूप के कारण मांग ऐसे ब्यौरे के साथ वर्णित नहीं की जा सकती, जैसा कि वार्षिक वित्त विवरण में साधारणतया दिया जाता है, तब राज्य के सम्पत्ति स्रोतों पर अप्रत्याशित मांग की पूर्त्ति के लिये अनुदान करने की;

(ग) किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का जो अनुदान भाग न हो ऐसा आपवादिक अनुदान करने की शक्ति होगी तथा उक्त अनुदान जिन प्रयोजनों के लिये किये गये हैं उनके लिये राज्य की संचित-निधि में से धन निकालना विधि द्वारा प्राधिकृत करने की शक्ति राज्य के विधान-मंडल को होगी।

(2) खंड (1) के अधीन किये जाने वाले किसी अनुदान तथा उस खंड के अधीन बनाई जाने वाली किसी विधि के संबंध में अनुच्छेद 178 और 179 के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे, जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण में वर्णित किसी व्यय के बारे में किसी अनुदान के करने के तथा राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली विधि के संबंध में प्रभावी है।' ''

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

'कि अनुच्छेद 181 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'181. *लेखानुदान, प्रत्ययानुदान और अपवादानुदान*—(1) इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य की विधान सभा को—

(क) किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिये प्राक्कलित व्यय के बारे में किसी अनुदान को, उस अनुदान के लिये मतदान करने के लिये अनुच्छेद 203 में विहित प्रक्रिया की पूर्त्ति लम्बित रहने तक तथा उस व्यय के संबंध में अनुच्छेद 204 के उपबंधों के अनुसार विधि के पारण के लम्बित रहने तक, पेशगी देने की;

(ख) जब कि किसी सेवा की महत्ता या अनिश्चित रूप के कारण मांग ऐसे ब्यौरे के साथ वर्णित नहीं की जा सकती, जैसा कि वार्षिक वित्त विवरण में साधारणतया दिया जाता है, तब राज्य के सम्पत्ति स्रोतों पर अप्रत्याशित मांग की पूर्त्ति के लिये अनुदान करने की;

(ग) किसी वित्तीय वर्ष की चालू सेवा का जो अनुदान भाग न हो ऐसा आपवादिक अनुदान करने की शक्ति होगी तथा उक्त अनुदान जिन प्रयोजनों के लिये किये गये हैं उनके लिये राज्य की संचित-निधि में से धन निकालना विधि द्वारा प्राधिकृत करने की शक्ति राज्य के विधान-मंडल को होगी।

(2) खंड (1) के अधीन किये जाने वाले किसी अनुदान तथा उस खंड के अधीन बनाई जाने वाली किसी विधि के संबंध में अनुच्छेद 178 और 179 के उपबंध वैसे ही प्रभावी होंगे, जैसे कि वे वार्षिक वित्त विवरण में वर्णित किसी व्यय के बारे में किसी अनुदान के करने के तथा राज्य की संचित निधि में से ऐसे व्यय की पूर्त्ति के लिये धनों का विनियोग प्राधिकृत करने के लिये बनाई जाने वाली विधि के संबंध में प्रभावी है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 181 संविधान का अंग बने।'

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 182

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 182 संविधान का अंग बने।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं एक छोटा सा संशोधन पेश करना चाहता हूं:

''कि अनुच्छेद 182 में 'revenues of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' ये शब्द रख दिये जायें।''

***अध्यक्ष:** कोई और संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 182 में 'revenues of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Consolidated Fund of the State' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 182 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 182 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 183

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 183 संविधान का अंग बने।

इस अनुच्छेद पर कुछ संशोधन हैं।

(संशोधन संख्या 2496 पेश नहीं किया गया।)

श्री आर.के. सिधवा: श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 183 के खंड (1) में 'may' शब्द के स्थान पर 'shall' शब्द रख दिया जाये, और अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'within six months from the date of the first session of the Assembly.' ''

श्रीमान्, मेरे संशोधन में कहा गया है कि ''इस संशोधन के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य का विधान मंडल अपनी प्रक्रिया के तथा कार्य-संचालन के विनियमन के लिये सभा के प्रथम सत्र के छ: मास के भीतर नियम बनायेगा।'' इस अनुच्छेद में लिखा है कि जब तक नियम नहीं बनाये जाते—जो कि सदन के अध्यक्ष की इच्छा पर छोड़ दिया गया है—तब तक इस संविधान के आरम्भ से ठीक पहले जो प्रक्रिया के नियम और

स्थायी आदेश प्रवृत्त थे, वे प्रभावी रहेंगे। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि कोई निश्चित अवधि नियत होनी चाहिये और अध्यक्ष को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि नियम छः मास के भीतर ही बन जायें। छः मास की अवधि काफी लम्बी है। नई व्यवस्था और नये संविधान को ध्यान में रखते हुए यह बहुत संभव है कि पुराने नियम उपयुक्त न हों। हम अध्यक्ष को इतनी ढील नहीं देना चाहते कि नियम अनिश्चित काल के लिये बने ही नहीं। श्रीमान्, मैने देखा है कि कुछ प्रांतों में, लगभग 18 मासों तक नियम नहीं बनाये गये। मेरे विचार में यह बहुत ठीक संशोधन है। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

(संशोधन संख्या 2498 और 2499 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** कोई और संशोधन नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने सदन के समक्ष जो संशोधन रखा है, मैं उसका समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं।

श्रीमान्, यह अत्यावश्यक है, जैसा कि श्री सिधवा ने कहा है कि प्रक्रिया के नियम और कार्य-संचालन के नियम यथासंभव शीघ्र बनाये जाने चाहिये। इस सदन को ज्ञात है कि इसी सदन में, विधान मंडल के रूप में समवेत होकर, हमने अभी तक भी अन्तिम रूप में उस सदन के प्रक्रिया के और कार्य-संचालन के नियम नहीं बनाये हैं। हमने केवल स्थायी रूप में स्वीकार किये हैं, और मैं नहीं समझता कि यह अभीष्ट वस्तुस्थिति है कि प्रक्रिया के नियम बनाने में ऐसा अत्यधिक विलम्ब हो। इस छः मास की निश्चित अवधि को रख देने में कुछ भी कठिनाई नहीं होनी चाहिये—यह काफी उदार अवधि-सीमा है और कोई विधान मंडल, जो काम करना चाहे और जो सचमुच द्रुतगति से कार्य करे, उसे छः मास के भीतर नियम बना लेने चाहिये। मैं तो तीन मास रखना चाहता हूं पर क्योंकि संशोधन में छः मास का उल्लेख है, अतः मैं उसका विद्यमान रूप में समर्थन करना चाहता हूं और मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर और यह सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

खंड (1) के विषय में मैं एक बात कहना चाहता हूं और वह यह है। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर को याद होगा कि ऐसे ही एक संशोधन के विषय में उन्होंने क्या करने का वचन दिया था, जो कि मैंने संघीय संसद के विषय में पेश किया था, और मैंने पहले जो संशोधन रखा था उसको ध्यान में रख कर खंड (1) की रचना को बदल दिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** क्या कोई कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 183 के खंड (1) में 'may' शब्द के स्थान पर 'shall' शब्द रख दिया जाये, और अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:
>
> 'within six months from the date of the first session of the Assembly.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 183 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 183 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 183-क

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर का एक नया अनुच्छेद 183-क है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 183 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'183. *राज्य के विधान मंडल में वित्तीय कार्य संबंधी प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन*— (क) वित्तीय कार्य को समय के अन्दर समाप्त करने के प्रयोजन से किसी राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा, किसी वित्तीय विषय से अथवा राज्य की संचित निधि में से धन का विनियोग करने वाले किसी विधेयक से संबंधित राज्य के विधान मंडल के सदन या सदनों की प्रक्रिया और कार्यसंचालन का विनियमन कर सकेगा तथा यदि, और जहां तक इस प्रकार बनाई हुई किसी विधि का कोई उपबंध अनुच्छेद 208 के खंड (1) के अधीन राज्य के विधान मंडल के सदन या किसी सदन द्वारा बनाये गये नियम से, अथवा उस अनुच्छेद के खंड (2) के अधीन राज्य के विधान मंडल के संबंध में प्रभावी किसी नियम या स्थायी आदेश से, असंगत है तो, और वहां तक, ऐसा उपबंध अभिभावी होगा।' ''

***अध्यक्ष:** क्या कोई कुछ कहना चाहते हैं?

प्रश्न यह है:

''कि नया अनुच्छेद 183-क संविधान में जोड़ दिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 183-क संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 184

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 184 को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, हमने अनुच्छेद 99 पर विचार नहीं किया है, जो कि इसके समान ही है। इसे उठा रखा जाये। अनुच्छेद 185 और 186 पर अधिक संशोधन नहीं हैं, उन्हें ले लिया जाये।

अनुच्छेद 185

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 184 को छोड़ देते हैं। अब हम अनुच्छेद 185 को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 2518 और 2519 पेश नहीं किये गये।)

क्या कोई बोलना चाहता है?

***श्री बी. दासः** श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि प्रांतीय विधान मंडल को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के आचरण पर प्रश्न उठाने का हक होना चाहिये। उच्चतम न्यायालय के लिये तो संसद है ही, जो बहुत जागरूक रहेगी और यदि वे देखेंगे कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश कदाचार करते हैं तो संसद उन्हें ठीक करने का मार्ग निकाल लेगी और सरकार, राष्ट्रपति तथा मंत्रिमंडल की आलोचना करेगी जिससे कि वे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर ठीक तरह नियंत्रण रखें। मैं अनुच्छेद 185 (1) पर खुश नहीं हूं। मैं समझता हूं और डा. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं—मस्विदा समिति ने सब कुछ ठीक किया है, फिर वे प्रांतीय विधान मंडलों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के विषय में वाद-विवाद को क्यों बंद करना चाहती है? मुझे तो यही कहना है।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 100 में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के विषय में ऐसा ही उपबंध पारित हुआ है। क्या इस पर कोई और बोलना चाहता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, यदि सभापति की अनुमति हो तो और सदन सहमत हो तो मैं प्रस्ताव करना चाहता हूं:

''कि इस अनुच्छेद का खंड (2) हटा दिया जाये।''

कारण यह है कि राज्यों संबंधी अध्याय में हम सब स्थानों पर प्रथम अनुसूची के भाग 3 के राज्यों का निर्देश हटाते जा रहे हैं और इससे उसी आचरण का अनुसरण होगा, जिसके अनुसार हम अब तक करते आ रहे हैं। मुझे आशा है कि सदन इस पर सहमत होगा और खंड (2) को हटा देगा। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, मैं जानता हूं, जैसा कि आपने ठीक कहा है कि पिछले खंडों में उच्चतम न्यायालय के संबंध में हमने ऐसा ही खंड पारित किया है। पर मैं नहीं समझता कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश आलोचना से परे क्यों हो, जहां तक कि उसके आचरण का संबंध है। कभी-कभी वह कदाचार करता है, और वह देवता नहीं होता, उसके आचरण पर भी कहीं न कहीं आलोचना होनी चाहिये और यदि आप सदन को उसके आचरण पर वाद-विवाद करने की अनुमति नहीं देते तो आपको पता है कि कभी-कभी क्या हो जाता है। हमें पता ही है कि अभी हाल ही के एक मामले में क्या हुआ है। यह तो मैं कहता हूं कि उसके निर्णय पर सदन में बहस नहीं होनी चाहिये, पर उसके आचरण पर तो निःसंदेह बहस होनी ही चाहिये। इसमें कोई बुराई नहीं है और इससे उसकी स्थिति में कोई फर्क नहीं आता। यदि आप न्यायाधीश पर किसी प्रकार का निर्बन्ध रखें, तो मेरे विचार में वह बहुत अच्छी प्रक्रिया होगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह कह सकता हूं कि हम संसद के संबंध में 101 को स्वीकार कर चुके हैं, जो लगभग ऐसा ही है और हम उसी उपबंध को राज्यों के विधान मंडलों पर लागू कर रहे हैं?

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 185 के खंड (2) को हटा दिया जाये।

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 185 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 185 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 186

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 186 को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 2520 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 186 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 186 संविधान में जोड़ दिया गया।

इसके पश्चात् सभा सोमवार, तारीख 13 जून 1949 के 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VIII-20.49
320

अंक 8
संख्या 20

सोमवार
13 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 216 से 247 तथा 111-क और 111-घ पर विचार] ...1193-1267

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 13 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 216

***अध्यक्ष:** हमने उस दिन अनुच्छेद 186 पर विचार समाप्त कर दिया था। मुझसे कहा गया है कि आज हम अनुच्छेद 216 से प्रारम्भ करें।

(संशोधन संख्या 2739 और 2740 पेश नहीं किये गये।)

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 216 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 216 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 217

(संशोधन संख्या 2741 और 2742 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 217 के खंड (2) में 'next succeeding clause' (आगामी अनुवर्ती खंड) शब्दों के स्थान में 'clause (3)' [खंड (3)] शब्द, कोष्ठक और संख्या तथा 'preceding clause' (पूर्ववर्ती खंड) शब्दों के स्थान में 'clause (1)' [खंड (1)] शब्द, कोष्ठक और संख्या रखे जायें।'

इस संशोधन के पेश करने का केवल यह कारण है कि इस पर एक बड़ा महत्त्वपूर्ण संशोधन निर्भर करता है और इसी कारण मैंने यह उपक्रम किया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): क्या मैं संशोधन संख्या 87-ख और 87-ग पेश कर सकता हूं? वे केवल औपचारिक हैं। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 217 के खंड (2) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जायें।''

''कि अनुच्छेद 217 के खंड (3) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जायें।''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैंने भी एक संशोधन की सूचना दी है।

***अध्यक्ष:** मुझे कोई संशोधन दिखाई नहीं दिया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैंने उसकी सूचना आज प्रात:काल दी थी। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं.....

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उनके संशोधन की प्रतियां हमें नहीं मिली हैं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): हम यह नहीं समझ सकते हैं कि वे क्या पेश कर रहे हैं।

***अध्यक्ष:** हमारे बैठने के कुछ मिनट पूर्व ही उन्होंने संशोधन की सूचना दी है। परन्तु मुझसे कहा गया है कि वह न्यूनाधिक रूप में अक्षरश: वैसा ही है जैसा कि संशोधन संख्या 2741 है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस विषय के समान महत्त्वपूर्ण विषय में मैं नहीं समझता हूं कि बिना समुचित सूचना के किसी को संशोधन पेश करने दिया जाये। हम संशोधन संख्या 2741 को पेश करने की प्रस्थापना नहीं करते हैं और मैं नहीं समझता हूं कि हमारे संशोधन को पेश करने का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** यदि आप सदस्यों को इस प्रकार संशोधन पेश करने का अधिकार देंगे तो इसका कभी अन्त नहीं होगा और केवल समय की बरबादी होगी।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): जिस संशोधन को सदस्य पेश करना चाहते हैं, वह वैसा ही है जिसको उन सदस्यों द्वारा पेश नहीं किया जा रहा है, जिन्होंने उसकी सूचना दी थी। वे उस संशोधन को पेश करना चाहते हैं जिसको उन्होंने पेश नहीं किया है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, आप जो कुछ विनिश्चय करेंगे उस पर मैं आपत्ति नहीं करता हूं। परन्तु मैं उस संशोधन की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, जिसकी मैंने गत सप्ताह सूचना दी थी और जिसको आपने पेश नहीं होने दिया था। मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस विषय में अपवाद क्यों किया जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** नियमों के अन्तर्गत हमें संशोधनों पर संशोधन पेश करने की आज्ञा है, यदि हम सभारम्भ से पूर्व सूचना दे दें। इस संशोधन में केवल उस विचार का समावेश है जो श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर की विमति टिप्पणी में दिया हुआ है, जो संविधान के मसौदे के अन्त में दी गई है। चूंकि यह महत्त्वपूर्ण विषय है और वे सदस्य, जिन्होंने ऐसे संशोधनों की सूचना दी थी, उन संशोधनों को पेश कर रहे हैं, इस कारण मैं समझता हूं इस अनुच्छेद को बिना चर्चा के और बिना उसके संशोधन पर प्रयत्न के पारित न किया जाये।

***अध्यक्ष:** आपने समय पर सूचना क्यों नहीं दी?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैंने समय पर सूचना दी, अर्थात् ''सभारम्भ से पूर्व''। और फिर वह संशोधन संख्या 2741 का ही रूप है, जिसको संशोधन संख्या 2743 पर संशोधन के रूप में पेश करना प्रस्थापित किया गया है।

***अध्यक्ष:** ठीक है। सभारम्भ के पूर्व मेरे पास इसकी सूचना आ गई थी। कार्यालय को इसकी प्रतियां बनाने में कुछ समय लगा। अत: इसको पेश न करने की आज्ञा मैं न दे सका।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि ऐसे मौलिक महत्त्व के अनुच्छेदों को केवल इस आधार पर इस सभा में बिना ध्यान दिये नहीं आने देना चाहिये कि कुछ संशोधन जिनकी सदस्यों ने सूचना दी थी वे पेश नहीं किये गये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इस सम्बन्ध में मैं एक दो बातें रखना चाहूंगा। यह कदाचित महत्त्वपूर्ण विषय प्रतीत होता है। सर्वप्रथम मैं यह जानना चाहता हूं कि यह संशोधन है अथवा किसी संशोधन पर संशोधन है। यदि यह संशोधन पर संशोधन है तो इसको तब तक पेश नहीं किया जा सकता जब तक कि मूल संशोधन पेश न किया जाये।

***अध्यक्ष:** यह संशोधन संख्या 2743 पर संशोधन है जिसको श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया जा चुका है। माननीय सदस्य अपनी सूचना में कहते है कि उनका संशोधन संशोधन संख्या 2741, 2742, 2743, 2744 और 2745 पर है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि इसको संशोधन संख्या 2743 पर संशोधन के रूप में माना जाता है तो यह स्पष्ट है कि चूंकि वह संशोधन संख्या 2743 के क्षेत्र से बहुत परे है इसको तब तक पेश नहीं किया जा सकता जब तक कि सदस्य आपको इस बात का संतोष न करा दे कि वह मूल संशोधन का सार रूप में परिवर्तन नहीं कर रहा है। जिस रूप में यह है उस रूप में यह उस संशोधन की सही-सही पुनरावृत्ति है जो सर्वश्री सन्तानम्, अनन्तशयनम आयंगर तथा अन्य सदस्यों के नाम से है।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि इस विषय में डा. अम्बेडकर बहुत संकीर्ण विचार अपना रहे हैं। स्थिति यह है कि अनुच्छेद 217 पर चर्चा हो रही है। एक सदस्य चाहता है कि इस अनुच्छेद का एक विशिष्ट रूप में संशोधन किया जाये। श्री नजीरुद्दीन अहमद चाहते हैं कि इस अनुच्छेद का किसी अन्य रूप में संशोधन किया जाये और वे उसके खंड (2) पर ही सीमित है। बात यही है कि अनुच्छेद 217 पर संशोधन है। मेरे मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना नियमानुकूल समझे जायेंगे यदि वह यह कहें कि श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा सुझाई गई रीति की अपेक्षा इस अनुच्छेद का जिस प्रकार वे चाहते हैं उस प्रकार संशोधन किया जाये। वह स्पष्ट रूप में श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन पर संशोधन है। यदि इन बातों पर डा. अम्बेडकर इतने संकीर्ण विचारों को अपनायेंगे तो उनको स्वयं अपने कई संशोधन पेश करने में बहुत कठिनाई होगी। उन्होंने पहले भी ऐसा किया है और आगे भी उनको ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होगा।

***अध्यक्ष:** मैं इसे संशोधन संख्या 2743 पर संशोधन के रूप में लेता हूं। मैं आदेश देता हूं कि यह नियमानुकूल है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं आपकी बात न समझ सका।

***अध्यक्ष:** यदि श्री दास छपी हुई सूची के पृष्ठ 285 को पलटें तो उनको संशोधन संख्या 2741 मिलेगा। यह संशोधन न्यूनाधिक रूप में उसी की प्रतिलिपि है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है, आप उसे समझ सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं।

''कि अनुच्छेद 217 के स्थान में निम्न प्रविष्ट किये जायें:

'217. (1) The Legislature of the States in Part I, Schedule I, shall have exclusive power to make laws for the States or for any part thereof in relation to matters falling within the classes of subjects specified in List I (corresponding to Provincial Legislative List).

(2) The Legislature of any State in Part I, Schedule I, shall in addition to the powers under clause (1) have power to make laws for the State or any part thereof in relation to matters falling within the classes of subjects specified in List II, provided however, that the Union Parliament shall also have power to make laws in relation to the same matter within the interior area of the Union or any part thereof and an Act of the Legislature of the State shall have effect in and for the State as long as and as far only as it is not repugnant to any Act of the Union Parliament.

(3) In addition to the powers conferred by the previous subsection, the Union Parliament may make laws for the peace, or order and good government of the Union or any part thereof in relation to all matters not falling within the classes of subjects enumerated in List I and in particular and without prejudice to the generality of the foregoing, the Union Parliament shall have the exclusive power to make laws in relation to all matters falling within the classes of subjects enumerated in List III.

(4) (a) The Union Parliament shall have power to make laws for the peace, order and good government of the States in Part II, Schedule I.

(b) Subject to the general powers of Parliament under sub-section (a) the legislature of the States in Part II, Schedule I, shall have the powers to make laws in relation to matters coming within the following classes of subjects:

Provided however that any law passed by that Unit shall have effect in and for that Unit so long and as far only as it is not repugnant to any law of the Union Parliament.

(5) The power to legislate either of the Union Parliament or the Legislature of any State shall extend to all matters essential to the effective exercise of the legislative authority vested in the particular legislature.

(6) When a law of a State is inconsistent with a law of the Union Parliament or to any existing law with respect to any of the matters enumerated in List I or (List II), the law of the Parliament or as the case may be, the existing law shall prevail and the law of the State shall to the extent of repugnancy be void.' ''

[217. (1) अनुसूची 1 के भाग (1) में के राज्यों के विधान-मंडल को राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिये सूची 1 (प्रान्तीय विधायी सूची सम्बन्धी) में उल्लिखित विषयों की श्रेणियों में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त होगी।

(2) खंड 1 के अधीन शक्तियों के साथ-साथ अनुसूची 1 के भाग (1) में के किसी राज्य के विधान मंडल को राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिये सूची 2 में उल्लिखित विषयों की श्रेणियों में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति होगी, परन्तु संघ-संसद को भी उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में संघ के समस्त क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होगी और राज्य के विधान मंडल का अधिनियम राज्य में तथा राज्य के लिये तब तक और केवल वहीं तक प्रभावी होगा जहां तक वह संघ-संसद के किसी अधिनियम के विरुद्ध नहीं है।

(3) पूर्व उपधारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों के साथ-साथ संघ-संसद संघ अथवा उसके किसी भाग की शान्ति अथवा व्यवस्था और सुशासन के लिये सूची 1 में गिनाये गये विषयों की श्रेणियों में आने वाले समस्त विषयों के सम्बन्ध में विधि बना सकेगी और विशेषकर तथा उपरोक्त (खंड) की साधारणतया का विरोध किये बिना संघ-संसद की सूची 3 में गिनाये गये विषयो की श्रेणियों में आने वाले समस्त विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त होगी।

(4) (क) संघ-संसद को अनुसूची 1 के भाग (2) में के राज्यों की शान्ति, व्यवस्था तथा सुशासन के लिये विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होगी।

(ख) उपधारा (क) के अन्तर्गत संसद की साधारण शक्तियों के अधीन अनुसूची 1 के भाग 2 में के राज्यों के विधान मंडल को विषयों की निम्न श्रेणियों में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति होगी।

परन्तु उस एकक द्वारा पारित की गई कोई विधि उस एकक में अथवा उसके लिये तब तक और केवल वहीं तक प्रभावी होगी जहां तक वह संघ-संसद की किसी विधि के विरुद्ध नहीं है।

(5) संघ-संसद अथवा किसी राज्य के विधान मंडल की विधि निर्माण करने की शक्ति का विस्तार उन सब विषयों तक होगा जो उस विशिष्ट विधान मंडल में निहित विधायी प्राधिकार के प्रभावी प्रयोग के लिये नितान्त आवश्यक है।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(6) सूची 1 अथवा (सूची 2) में गिनाये गये किसी विषय के सम्बन्ध में राज्य की विधि यदि संघ-संसद की विधि अथवा किसी वर्तमान विधि से असंगत है, तो संसद की विधि अथवा वर्तमान विधि, जैसी भी स्थिति हो, प्रचलित रहेगी और विरोध की मात्रा तक राज्य की विधि शून्य होगी।]

श्रीमान्, मुझे बहुत खेद है कि इस संशोधन को पेश न होने देने के लिये प्रयत्न किया गया था। मैं केवल यह बता देना चाहूंगा कि यह संशोधन अक्षरशः वही है जिसका सुझाव श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान के मसौदे के परिशिष्ट में पृष्ठ 212-213 पर दिया है।

वास्तव में परिशिष्ट में श्री अल्लादी ने कहा है कि वे मसौदा-समिति के बहुमत से विभिन्न मत रखते हैं और उन्होंने कहा कि उनकी सम्मति में संसद और राज्यों के विधान मंडलों में शक्तियों के विभाजन की योजना इस संशोधन में दिये हुये रूप में होनी चाहिये। जिस संशोधन की सूचना माननीय के. सन्तानम् द्वारा दी गई थी, वह परिशिष्ट में श्री अल्लादी द्वारा सुझाये गये आधार पर थी। मैं सुझाव रखता हूं कि यह विषय बड़े महत्त्व का है जिस पर कि देश का एक प्रसिद्ध स्मृतिज्ञ मसौदा-समिति से भिन्न मत रखता है और इस अनुच्छेद को बिना उचित विचार किये इस सदन द्वारा पारित नहीं होने देना चाहिये। अतः इस संशोधन को पेश करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। यदि स्वयं श्री सन्तानम् इसको पेश करते तो मैं उसे ज्यादा अच्छा समझता। मैं यह समझता हूं कि सदन को यह जानने का हक है कि श्री अल्लादी द्वारा दिये गये सुझाव को क्यों नहीं माना गया। श्री अल्लादी द्वारा दिया गया सुझाव बहुत ही महत्त्वपूर्ण सुझाव है। वास्तव में विधान के मसौदे में भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की अक्षरशः पुनरावृत्ति है। परिशिष्ट में श्री अल्लादी ने यह सिद्ध करने के लिये तर्क प्रस्तुत किये हैं कि जिन परिवर्तनों को उन्होंने सुझाया है वे क्यों आवश्यक हैं। उन्होंने कहा है कि जिस समय भारतीय सरकार का अधिनियम पारित किया गया था, यह विनिश्चय नहीं किया गया था कि अवशिष्ट शक्तियां किस में निहित की जायेंगी, वे केन्द्र में होनी चाहिये अथवा प्रान्त में। अतः जिस रूप में धारा बनाई गई है उस रूप में उसका बनाना आवश्यक था। उन्होंने यह भी बताया था कि फैडरल न्यायालय ने 'notwithstanding' (इस बात के होते हुए) शब्द के अर्थ पर बहुत मुकदमेबाजी हो चुकी है। उन्होंने यह भी कहा है कि चूंकि यह अन्तिम रूप में विनिश्चित किया जा चुका है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र की होंगी, इस अनुच्छेद का भिन्न रूप में फिर से मसौदा बनाया जाये और वह उस रूप में हो जिस रूप में उन्होंने सुझाव दिया है और जिस रूप में मेरे संशोधन में दिया गया है। सर्वप्रथम हमें भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की अक्षरशः नकल नहीं करनी चाहिये, जो कि हमारी दासता का एक विलेख है। अब चूंकि हम नया संविधान बना रहे हैं, हमें केवल पुराने संविधान से हर एक बात अक्षरशः नहीं लेनी चाहिये। इसका एक लाभ यह है कि भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की धारा 100 की अक्षरशः नकल करने से पूर्वकालीन दासता का जो स्मरण हमें होगा, वह उसमें परिवर्तन कर देने से नहीं होगा। श्रीमान्, दूसरी बात यह है कि यह कहना अधिक तर्कयुक्त है कि विभिन्न राज्यों को

सूची 1 में उल्लिखित विषयों की श्रेणियों में आने वाले विषयों से सम्बन्धित विधि बनाने की अनन्य शक्ति होगी और यह कि सूची 2 में ऐसे विषय होंगे, जिन पर राज्यों और संघ दोनों को विधि बनाने की समवर्ती शक्ति होगी और फिर इसके बाद यह कहना कि जो कुछ शेष रहता है उस पर संघ की शक्ति होगी। इस समय सूची 1 पर संघ-संसद को शक्ति है। श्री अल्लादी ने सुझाव दिया है कि संघ-सूची में जो कुछ दिया हुआ है, वह केवल उदाहरण के रूप में होना चाहिये और जो कुछ शेष रहे वह केन्द्र का हो। यह रूप अधिक तर्कसंगत होगा कि अमुक-अमुक शक्तियां राज्य की होंगी, अमुक-अमुक शक्तियां राज्य और संघ दोनों की होंगी और फिर यह कहना कि जो कुछ शेष रह जाती हैं वे संघ की होंगी। श्री अल्लादी द्वारा दिया गया इस प्रकार का विभाजन हर प्रकार से अधिक तर्कयुक्त तथा अच्छा विभाजन है। जो सुझाव उन्होंने दिया है वह महत्त्वपूर्ण सुझाव है और सदन को उनके तर्कों पर ध्यान देना चाहिये कि वे मसौदे में इस प्रबन्ध को क्यों अधिमान देते हैं, जिसमें कि भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 100 की नकल मात्र है। संविधान के मसौदे में मसौदा समिति पृष्ठ 100 पर स्वयं यह कहती है–

> ''श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का यह मत था कि विधायी विभाजन के पुराने उपक्रम के अनुसरण करने के स्थान में इस खंड का, इस कारण कि अवशिष्ट शक्ति संसद को होगी, प्रारम्भ राज्य की विधायी शक्तियों से किया जाये और फिर समवर्ती शक्ति संव्यवहृत हो और इसके बाद संसद को विधायी शक्तियां हों। चूंकि यह प्रश्न केवल रूपरेखा सम्बन्धी था, सदस्यों के बहुमत ने वर्तमान प्रबन्ध में परिवर्तन न करने को अधिमान दिया।''

मैं नहीं समझ सकता हूं कि मसौदा समिति यह क्यों नहीं अनुभव करती है कि यह अधिक तर्कयुक्त रूप है। केवल यही तथ्य कि भारतीय सरकार का अधिनियम इस रूप में है इस कारण इसे इसी रूप में रखना कोई तर्क नहीं है। अतः मैं सुझाव रखता हूं कि श्री अल्लादी द्वारा सुझाया गया रूप इससे अच्छा रूप है, उसमें कम मुकदमेबाजी है और इससे अधिक स्पष्ट है।

इसके बाद, श्रीमान्, खंड (5) में यह कहा गया है–

> ''संघ-संसद अथवा किसी राज्य के विधान मंडल की विधि-निर्माण करने की शक्ति का विस्तार उन सब विषयों तक होगा, जो उस विशिष्ट विधान मंडल में निहित विधायी प्राधिकार के प्रभावी प्रयोग के लिये नितान्त आवश्यक है।''

श्री अल्लादी ने यह बताया है कि यह खंड आस्ट्रेलिया तथा अमरीका के संविधानों के अनुसार है। उन्होंने कहा है कि संविधान के मसौदे में इस प्रभाव का कोई उपबन्ध नहीं है कि विधि बनाने की शक्ति के साथ किसी उपबन्ध को विधायी प्राधिकार के प्रभावी प्रयोग के लिये नितान्त आवश्यक बनाने की शक्ति है। यह खंड (5) उस शक्ति को देता है। इस खंड से यह अनुच्छेद पूर्ण हो जाता है और यह आस्ट्रेलिया और अमरीका के संविधानों के उपबंधों की एकरूपता ले आता है। जिस रूप का श्री अल्लादी ने सुझाव रखा है वह रूप उत्तम है तथा उसका विषय भी उत्तम है और उससे अनुच्छेद के मसौदे की कमी पूरी हो जाती है। श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और सदन की स्वीकृति के लिये इसे प्रस्तुत करता हूं।

(संशोधन संख्या 2744 और 2745 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** क्या कोई कुछ कहना चाहता है?

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** कोई नहीं, श्रीमान्।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** हम इस संशोधन को पेश करना नहीं चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 217 के स्थान में निम्न प्रविष्ट किया जाये:

'217. (1) The Legislature of the States in Part I, Schedule I, shall have exclusive power to make laws for the States or for any part thereof in relation to matters falling within the classes of subjects specified in List I (corresponding to Provincial Legislative List).

(2) The Legislature of any State in Part I, Schedule I, shall in addition to the powers under clause (1) have power to make laws for the State or any part thereof in relation to matters falling within the classes of subjects specified in List II, provided however, that the Union Parliament shall also have power to make laws in relation to the same matter within the interior area of the Union or any part thereof and an Act of the Legislature of the State shall have effect in and for the State as long as and as far only as it is not repugnant to any Act of the Union Parliament.

(3) In addition to the powers conferred by the previous subsection, the Union Parliament may make laws for the peace, or order and good government of the Union or any part thereof in relation to all matters not falling within the classes of subjects enumerated in List I and in particular and without prejudice to the generality of the foregoing, the Union Parliament shall have the exclusive power to make laws in relation to all matters falling within the classes of subjects enumerated in List III.

(4) (a) The Union Parliament shall have power to make laws for the peace, order and good government of the States in Part II Schedule I.

(b) Subject to the general powers of Parliament under sub-section (a) the legislature of the States in Part II, Schedule I, shall have the powers to make laws in relation to matters coming within the following classes of subjects:

Provided however that any law passed by that Unit shall have effect in and for that Unit so long and as far only as it is not repugnant to any law of the Union Parliament.

(5) The power to legislate either of the Union Parliament or the Legislature of any State shall extend to all matters essential to the effective exercise of the legislative authority vested in the particular legislature.

(6) When a law of a State is inconsistent with a law of the Union Parliament or to any existing law with respect to any of the matters enumerated in List I or (List II), the law of the Parliament or as the case may be, the existing law shall prevail and the law of the State shall to the extent of repugnancy be void.' ''

[217. (1) अनुसूची 1 के भाग (1) में के राज्यों के विधान-मंडल को राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिये सूची 1 (प्रान्तीय विधायी सूची सम्बन्धी) में उल्लिखित विषयों की श्रेणियों में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त होगी।

(2) खंड 1 के अधीन शक्तियों के साथ-साथ अनुसूची 1 के भाग (1) में के किसी राज्य के विधान मंडल को राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिये सूची 2 में उल्लिखित विषयों की श्रेणियों में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति होगी, परन्तु संघ-संसद को भी उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में संघ के समस्त क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होगी और राज्य के विधान मंडल का अधिनियम राज्य में तथा राज्य के लिये तब तक और केवल वहीं तक प्रभावी होगा जहां तक वह संघ-संसद के किसी अधिनियम के विरुद्ध नहीं है।

(3) पूर्व उपधारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों के साथ-साथ संघ-संसद संघ अथवा उसके किसी भाग की शान्ति अथवा व्यवस्था और सुशासन के लिये सूची 1 में प्रमाणित विषयों की श्रेणियों में आने वाले समस्त विषयों के सम्बन्ध में विधि बना सकेगी और विशेषकर तथा उपरोक्त (खंड) की साधारणतया का विरोध किये बिना संघ-संसद की सूची 3 में गिनाये गये विषयो की श्रेणियों में आने वाले समस्त विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त होगी।

(4) (क) संघ-संसद को अनुसूची 1 के भाग (2) में के राज्यों की शान्ति, व्यवस्था तथा सुशासन के लिये विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होगी।

(ख) उपधारा (क) के अन्तर्गत संसद की साधारण शक्तियों के अधीन अनुसूची 1 के भाग 2 में के राज्यों के विधान मंडल को विषयों की निम्न श्रेणियों में आने वाले विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति होगी।

परन्तु उस एकक द्वारा पारित की गई कोई विधि उस एकक में अथवा उसके लिये तब तक और केवल वहीं तक प्रभावी होगी जहां तक वह संघ-संसद की किसी विधि के विरुद्ध नहीं है।

(5) संघ-संसद अथवा किसी राज्य के विधान मंडल की विधि निर्माण करने की शक्ति का विस्तार उन सब विषयों तक होगा जो उस विशिष्ट विधान मंडल में निहित विधायी प्राधिकार के प्रभावी प्रयोग के लिये नितान्त आवश्यक है।

[अध्यक्ष]

(6) सूची 1 अथवा (सूची 2) में गिनाये गये किसी विषय के सम्बन्ध में राज्य की विधि यदि संघ-संसद की विधि अथवा किसी वर्तमान विधि से असंगत है, तो संसद की विधि अथवा वर्तमान विधि, जैसी भी स्थिति हो, प्रचलित रहेगी और विरोध की मात्रा तक राज्य की विधि शून्य होगी।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 217 के खंड (2) में 'next succeeding clause' (आगामी अनुवर्त्ती खंड) शब्दों के स्थान में 'clause (3)' [खंड (3)] शब्द, कोष्ठक और संख्या तथा 'preceding clause' (पूर्ववर्ती खंड) शब्दों के स्थान में 'clause (1)' [खंड (1)] शब्द, कोष्ठक और संख्या रखे जाये।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 217 के खंड (2) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 217 के खंड (3) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 217 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 217 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 218

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मसौदा-समिति द्वारा बाद में पुनरीक्षण करने से यह अनुच्छेद आवश्यक नहीं समझा गया। अत: इस अनुच्छेद पर सदन में मत लिया जा सकता है और यदि सदन चाहे तो यह अस्वीकार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 218 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 218 संविधान से अपमार्जित किया गया।

अनुच्छेद 219

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 219 को लेंगे।

(संशोधन संख्या 2749 पेश नहीं किया गया।)

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 219 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 219 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 220

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि अनुच्छेद 220, 221 और 222 पर साथ-साथ मत लिया जाये, क्योंकि मसौदा-समिति इन्हें आवश्यक नहीं समझती है।

***अध्यक्ष:** मैं इन पर अलग-अलग मत लूंगा।

(संशोधन संख्या 2751 और 2752 पेश नहीं किये गये।)

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 220 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 220 संविधान से अपमार्जित किया गया।

अनुच्छेद 221

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 221 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 221 संविधान से अपमार्जित किया गया।

अनुच्छेद 222

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर भी कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 222 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 222 संविधान से अपमार्जित किया गया।

अनुच्छेद 223

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कई संशोधन हैं।

(संशोधन संख्या 2754 से 2759 तक पेश नहीं किये गये।)

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 223 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 223 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 224

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं चाहता हूं कि अनुच्छेद 224 और 225 स्थगित रखे जायें।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 224 और 225 स्थगित किये जाते हैं।

अनुच्छेद 226

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं औपचारिक रूप में संशोधन संख्या 2775 को पेश करता हूं।

इसके बाद मैं उस पर एक संशोधन पेश करता हूं।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 2775 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 226 का पुनरांकन अनुच्छेद 226 के खंड (1) के रूप में किया जाये, और

(क) इस प्रकार पुनरांकित उपर्युक्त खंड के अंत में 'while the resolution remains in force' (जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है) शब्द प्रविष्ट किये जायें; तथा

(ख) इस प्रकार पुनरांकित उपुर्यक्त अनुच्छेद 226 के खंड (1) के पश्चात् निम्न खंड प्रविष्ट किये जायें:

(a) at the end of the said clause as so renumbered the words 'while the resolution remains in force' be added; and

(b) after clause (1) of article 226, as so renumbered, the following clauses be added:

'(2) A resolution passed under clause (1) of this article shall remain in force for such period not exceeding one year as may be specified therein :

Provided that if and so often as a resolution approving the continuance in force of any such resolution is passed in the manner provided in clause (1) of this article, such resolution shall continue in force for a further period of one year from the date on which under this clause it would otherwise have ceased to be in force.

(3) A law made by Parliament which Parliament would not but for the passing of a resolution under clause (1) of this article have been competent to make shall to the extent of the incompetency cease to have effect on the expiration of a period of six months after the resolution has ceased to be in force, except as respects things done or omitted to be done before the expiration of the said period.' ''

[(2) खंड (1) के अधीन पारित संकल्प एक वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिये प्रवृत्त रहेगा जैसा कि उसमें उल्लिखित हो:

परन्तु यदि और जितनी बार, किसी ऐसे संकल्प को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प खंड (1) में उपबन्धित रीति से पारित हो जाये तो ऐसा संकल्प उस तारीख से आगे, जिसको कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवृत्त न रहता, एक वर्ष की और कालावधि तक प्रवृत्त रहेगा।

(3) संसद द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे संसद खंड (1) के अधीन संकल्प के पारण के अभाव में बनाने में सक्षम न होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने से छः मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के अतिरिक्त प्रभावी न होगी, जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई है।]

(संशोधन संख्या 2776 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, यह बड़े झगड़े का अनुच्छेद है और डा. अम्बेडकर ने अपने संशोधन से झगड़े की कुछ मात्रा को कम करने का प्रयत्न किया है परन्तु मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस संशोधन ने इस अनुच्छेद को उस प्रयोजन के लिये लगभग व्यर्थ सा कर दिया है जिसके लिये यह रखा गया था। इस अनुच्छेद का यह उद्देश्य था कि यदि प्रान्तों की एक बड़ी संख्या ने यह चाहा कि कुछ विषयों में उनमें परस्पर मेल हो और चूंकि उन्हें अकेले उन प्रान्तों में मेल के लिये कोई ऐसी विधि बनाने का अधिकार नहीं है, वे राज्य-परिषद् में अपने प्रतिनिधियों से दो-तिहाई के बहुमत से संसद को इस विषय पर विधि बनाने की शक्ति देने वाला संकल्प पारित

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

करने के लिये कहें। उदाहरण के रूप में हम यह मान लें कि चार या पांच प्रान्तों में खाद्य पदार्थ के सम्बन्ध में आपात है। यदि इन प्रान्तों में खाद्य-नियंत्रण अथवा वितरण सम्बन्धी कोई विधि नहीं है, तो आपात का सामना करने के लिये किसी एक प्रान्त द्वारा कोई विधि पारित करने से कोई लाभ न होगा, क्योंकि खाद्य तो प्रान्तीय विषय है और इस कारण केन्द्र को उसके बारे में विधान बनाने का अधिकार नहीं होगा। अत: यह अनुच्छेद केवल उत्तर सदन को संसद से कोई ऐसी विधि पारित करने हेतु निवेदन करने के लिये दो तिहाई बहुमत से संकल्प पारित करने की शक्ति देता है, जो आपात को दूर कर सके और इन चार या पांच प्रान्तों की सहायता कर सके।

श्रीमान्, मूल रूप में इस अनुच्छेद से समय की बिना किसी परिसीमा के यह शक्ति देने का अभिप्राय था और उसका यह अर्थ हुआ कि जब तक आपात रहे, तब तक वह रह सकता था। परन्तु कुछ लोगों ने इस अनुच्छेद में प्रान्तीय स्वायत्त शासन की शक्तियों का परिसीमन देखा और इस कारण उन्होंने पुराने अनुच्छेद का विरोध किया और डा. अम्बेडकर का यह संशोधन उस विचार बिन्दु की पूर्ति के लिये है। कालावधि को कम करके एक वर्ष तक की रखने से मैं नहीं समझ पाता हूं कि आपात का वास्तव में किस प्रकार सामना किया जायेगा। अत: प्रत्येक वर्ष राज्य-परिषद् का मत लेना पड़ेगा और यदि परिषद् दूसरी वर्ष के लिये अवधि विस्तार करने के लिये सहमत है तो संसद द्वारा गत वर्ष का उपक्रम किया हुआ विधान लागू रहेगा। मतदान की अनिश्चितता के कारण मैं नहीं समझ पाता हूं कि कोई बड़ी योजना का उपक्रम किया जा सके। अत: मैं समझता हूं कि यह कहने से कि प्रतिवर्ष एक नया संकल्प पारित किया जाये, यह कहना बहुत अच्छा होगा कि कम से कम सर्वप्रथम तो राज्य-परिषद् का संकल्प तीन वर्ष के लिये शक्ति प्रदान करेगा और उसके बाद उसका विस्तार एक-एक वर्ष के लिये हो सकेगा जब तक कि आपात समाप्त न हो जाये। अत: मैं समझता हूं कि यदि उस प्रयोजन की पूर्ति करना है जिसके लिये यह अनुच्छेद रखा गया है तो एक वर्ष की अवधि को सर्वप्रथम तीन वर्ष की अवधि में परिवर्तित किया जाये और फिर बाद में एक वर्ष के लिये। यह बहुत कुछ सम्भव है कि दूसरी वर्ष एक तिहाई सदस्यों का नव निर्वाचन हो जाये और वे उस विधि को पारित न करें और ऐसा हो सकता है कि प्रथम वर्ष खर्च किया हुआ धन व्यर्थ जाये। एक वर्ष की अवधि नियत करने से बड़ी हानि हो सकती है। अत: मैं डाक्टर अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि वे स्वयं यह कह कर कि प्रथम तीन वर्ष जो, यदि अपेक्षित हो तो एक-एक वर्ष के लिये और बढ़ाया जा सकेगा, इस संशोधन में संशोधन करेंगे। अमरीका में, वास्तव में जहां कि संसद को उन विषयों पर विधान बनाने का कोई अधिकार नहीं है जो राज्यों के क्षेत्राधिकार में हैं, वहां यह अनुभव किया गया है कि ऐसे आपात का सामना करने में बड़ी कठिनाई होती है और वे अपनी योजनाओं को, जिनके लिये राज्यों की सहमति अपेक्षित है, उन योजनाओं में वित्तीय सहायता देने के प्रलोभन द्वारा सफल बना सकते हैं। यह अनुच्छेद इस कठिनाई को दूर करने के लिये रखा गया था। अत: मैं सदन से निवेदन करता हूं कि इतनी देर के बाद भी इस अवधि को तीन वर्ष की अवधि के रूप में नियत किया जाये, क्योंकि जिस रूप में यह अनुच्छेद वर्तमान है उस रूप में यह निरर्थक है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और मैं समझता हूं कि जहां तक राज्य की शक्तियों के प्रश्न का सम्बन्ध है वहां तक इस पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

जिन उपबन्धों को हम पारित कर चुके हैं उनके निर्देश से हमारे पास तीन सूचियां— (1) संघ-सूची जिसमें वे विषय हैं जिनको अनियमित करने के लिये विधि पारित करने का क्षेत्राधिकार पूर्णतया संसद को है (2) समवर्ती सूची जिसके लिये राज्य तथा संसद दोनों विधान बना सकते हैं और इस संबंध में संसद का विधान राज्य द्वारा पारित विधान के समक्ष अधिक माना जायेगा (3) राज्य-सूची अर्थात् वह जिसके लिये विधान पारित का क्षेत्राधिकार केवल राज्यों को होगा। मैं इस बात की ओर भी सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा कि इन सूचियों में से किसी सूची के क्षेत्र से जो बाहर रह जाते हैं वे विषय संघ-संसद को दिये जा रहे अर्थात् समस्त अवशिष्ट शक्तियां संघ-संसद को हैं। अत: राज्यों के लिये जो शक्तियां रह जायेंगी वे हैं, जिनका उन सूची में समावेश किया जायेगा, जो बाद में राज्य सूची के नाम से विनिश्चित की जायेंगी।

देश की परिस्थिति पर ध्यान देते हुए सदन को यह अधिकार होगा कि वह राज्य-सूची में समाविष्ट किये जाने वाले विषयों की संख्या कम कर दे। विभिन्न कारणों वश ऐसा करना पड़ेगा। खाद्य की विकट समस्या है जो केवल हमें ही नहीं वरन संसार के अनेक अन्य देशों को भी भयभीत किये हुये है। यह आवश्यक हो सकता है कि इस विषय को संघ-संसद अपने हाथ में ले ले। इसी प्रकार ऐसे और भी विषय हो सकते हैं जो देश की शान्ति और सुरक्षा के लिये आवश्यक हों। और यह आवश्यक हो सकता है कि कुछ विषय जो प्रारंभ में राज्य-सूची में समाविष्ट थे, उनको संघ सूची में समाविष्ट करना पड़े। इन परिस्थितियों के अधीन यह गंभीर विचार का विषय है कि क्या हम इस समय इस अनुच्छेद 226 का अधिनियम बनायें।

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि ऐसी अवस्थाएं हैं जिनमें राज्य केवल उस क्षेत्र के लिये विधान बना सकता है जो उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत है और ऐसी समस्या उत्पन्न हो सकती है जिसके लिये यह अपेक्षित हो कि विधान ऐसा होना चाहिये, जो एक राज्य से अधिक के लिये प्रयोज्य हो तो इस दशा में वास्तव में यह आवश्यक हो जाता है कि संघ-संसद उस विधान को पारित करे क्योंकि राज्य को ऐसे विधान पारित करने की कोई शक्ति नहीं है। पर इसके लिये हम अनुच्छेद 229 में उपबंध बना रहे हैं और यदि राज्य सभा और परिषद, यदि परिषद् है तो, दोनों इस प्रकार का विनिश्चय करती हैं तो संघ-संसद को राज्य के विषय के सम्बन्ध में भी विधान बनाने की शक्ति दी जायेगी। मेरे विचार से यह भी आवश्यक है पर इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार करना है कि क्या अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति आवश्यक है और उसकी क्या-क्या उलझनें हैं। अनुच्छेद 226 में यह कहा गया है: ''इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी यदि राज्य परिषद् न उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो तिहाई से अनन्य संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक तथा इष्टकर है कि संसद.....।'' जिस मुख्य आधार पर इस शक्ति का

[श्री एच.वी. पातस्कर]

देना प्रस्थापित किया गया है वह यह है कि राष्ट्रीय हित में संसद राज्यों के लिये विधि बनाये। यदि वास्तव में राष्ट्रीय हित का विषय है, तो मैं नहीं समझ पाता हूं राज्य स्वयं विधान पारित क्यों नहीं करेगा अथवा संसद द्वारा विधान बनाये जाने के लिये सम्मति देने के लिये क्यों इच्छुक न होगा। हम यह क्यों सोच लें कि राज्य इस प्रकार के अराष्ट्रीय रुख को अपनायेगा? संविधान में ऐसे अन्य प्रावधान हैं जिनके अधीन राष्ट्रीय हित, आपात इत्यादि के आधार पर संसद हस्तक्षेप कर सकती है। अनुच्छेद 226 में विशेषकर ये शब्द ''राष्ट्रीय हित में संसद विधि बनाये'' कुछ ऐसे हैं जिनसे यह बोध होता है कि केन्द्र के लिये यह अपेक्षित है कि राष्ट्रीय हित के विषय में संसद विधि बनाये जिसको पारित करने के लिये राज्य तैयार नहीं है। थोड़े से विषय जो राज्य द्वारा विधान बनाने के लिये छोड़े गये हैं उनके प्रति मैं समझता हूं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की बहुत कम सम्भावना है। मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 226 की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, जैसा कि मैंने कहा था किसी विशेष परिणाम पर पहुंचने के पूर्व इस पर वाद-विवाद होना चाहिये। मैं यह नहीं कहता हूं कि मैं इसके विपक्ष में हूं, मैं इसे मानने के लिये तैयार हूं क्योंकि कोई व्यक्ति भिन्न परिणाम तक पहुंच सकता है। दूसरे पक्ष के विचारों पर सोचने के बाद मैं केवल यह बता देना चाहता हूं कि किसी भी विचार बिन्दु से यह सुखकर नहीं होगा कि सब पहलुओं पर विचार किये बिना इस अनुच्छेद को पारित होने दिया जाये।

***श्री ओ.वी. अलगेसन** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे इस अनुच्छेद में बड़ी दृष्टता दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर यह कहा जाता है कि यह आगे आने वाले अनुच्छेद 229 का विस्तृत तथा परोक्ष कथन है। यदि यह उतना ही निष्पाप है जितना कि अनुच्छेद 229 तो मेरा विचार यह है कि यह व्यर्थ है। राज्य-सूची के विषयों में राज्य-परिषद् के अभिकरण से केन्द्रीय सरकार द्वारा हस्तक्षेप करने की व्यवस्था इस अनुच्छेद में की गई है। यह कहा जाता है कि रक्षात्मक बात यह है कि राज्य-परिषद् में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि बैठेंगे और वे सम्बद्ध राज्य की कदाचित् उपेक्षा न करें और इसकी पुष्टि के लिये खाद्य का चित्र प्रस्तुत किया गया है। खाद्य जैसे विषयों में यदि केन्द्र हस्तक्षेप करता है और राज्यों की सहायता करता है, तो यह सम्बन्ध राज्यों के हित की बात होगी। ऐसी दशाओं में राज्य अवश्य अनुच्छेद 229 में दिये हुए उपबन्धों से लाभ उठायेंगे। उनमें केन्द्र से यह निवेदन करने की सद्भावना होगी कि केन्द्र हस्तक्षेप करे और ऐसे विषयों पर विधान बनाये, जिनको संव्यवहृत करना उनकी शक्ति अथवा सामर्थ्य से परे है। मैं डा. अम्बेडकर के सम्मुख एक सीधा सा प्रश्न रखूंगा। उदाहरणार्थ इस समय हैदराबाद के राज्य और मद्रास प्रेसीडेंसी में कोई परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। इन दोनों राज्यों के कुछ सीमा क्षेत्रों की लोक शान्ति में विघ्न पड़ता है। तो मैं यह पूछना चाहूंगा कि क्या यह समुचित होगा कि ऐसी परिस्थितियों के अधीन केन्द्र हस्तक्षेप करे और सम्बद्ध दोनों राज्यों से विधि और व्यवस्था का कार्य ले ले। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि यदि ऐसी बात होती है तो वह प्रान्तीय स्वायत्त शासन का उपहास होगा। अत: मेरा यह कहना है कि यह अनुच्छेद

यदि अनुच्छेद 229 का विस्तृत कथन मात्र है तो यह व्यर्थ है और यदि इसके पीछे कोई रहस्य है और यदि यह विचार है कि केन्द्र अनुच्छेद 229 में जो कुछ दिया गया है उससे और आगे बढ़े तो यह वास्तव में दुष्टतापूर्ण है और इसको यहां नहीं रखना चाहिये। डा. अम्बेडकर के मूल संशोधन में तीन वर्ष के लिये व्यवस्था की गई है। मैं अपने उन मित्रों से जिनके ये विचार हैं कि यह आवश्यक है कि तीन वर्ष का उपबन्ध रखा जाये यह जानना चाहूंगा कि क्या किसी आपात को आपात कहा जा सकता है, यदि वह तीन वर्ष अथवा इससे अधिक समय के लिये रहे। वह आपात न रहेगा वह तो एक स्थायी रूप हो जायेगा। अत: वर्तमान अनुच्छेद में इस धारा की शक्ति में रूप मद करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें प्रांतीय स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप करने की दृष्टता के लिये महान शक्ति है। इतने समय के पश्चात् इस स्थिति में भी मैं डा. अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि यदि वे ले सके तो उस अनुच्छेद को वापस ले लें और यह आश्वासन दें कि प्रान्तीय स्वायत्तता में हस्तक्षेप नहीं होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 226 पर डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के लिये कुछ व्याख्या नि:संदेह रूप में अपेक्षित हैं। मैंने अपने माननीय मित्र श्री पातस्कर की तथा मित्र श्री अलगेसन की बातें ध्यानपूर्वक सुनी। सदन यह अनुभव करेगा कि डा. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में यह अनुच्छेद उस अनुच्छेद से सर्वथा भिन्न है जो मूल रूप में मसौदा में था और यह अनुच्छेद जिस रूप में मसौदे में मूलत: था, उससे यह आशय था कि वह किसी भी कमी को जो शक्तियों के वितरण में विद्यमान हो उसे पूरी करे। जिन शक्तियों में कि यह आवश्यक था कि अनुच्छेद 229 द्वारा सूचित आदेशिका का पालन किये बिना केन्द्र प्रान्तों की कार्यवाहियों को शीघ्र समान रूप में लाये तथा उन दशाओं को भी ले ले जहां कि कुछ अच्छादन की मात्रा हो। मूलत: जिस रूप में संशोधन था उसमें यह भी लाभ था कि उसके द्वारा उस खास विषय पर शक्ति प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया था, जिसको केन्द्र अपनी और राज्य-परिषद् द्वारा पारित संकल्प द्वारा आकर्षित किये हुए था; यह उसका मुख्य दोष था। जब कोई खास कार्यवाही की जाती थी और प्रान्तीय स्वायत्तता के क्षेत्र का अपहरण किया जाता था, कदाचित यह बहुत ही आवश्यक है कि ऐसी कार्यवाही के प्रवृत्त बने रहने के लिये कोई समय-सीमा होनी चाहिये। समवर्त्ती सूची में स्थायी रूप से उस विषय को रख देने से कोई लाभ नहीं। इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि विषय के इस पहलू पर ही डा. अम्बेडकर ने अपने पहले संशोधन की सूचना दी थी; अर्थात् उस कार्यवाही के क्षेत्र को परिसीमित करना, जिसको संसद अनुच्छेद 226 में दी हुई रीति के अनुसार विहित प्राधिकरण द्वारा तीन वर्ष के लिये कर सकती थी। उस योजना के अनुसार तीन वर्ष के लिये अवधि को बढ़ाने पर तथा इसके पश्चात् और भी बढ़ाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी यदि उस विशिष्ट संकल्प के समाप्त होने तथा उन्हीं आधारों पर नये संकल्प के पेश होने में कुछ समय व्यतीत होने दिया जाता। इस अनुच्छेद की योजना पर मेरे माननीय मित्र श्री पातस्कर तथा उनसे पूर्व वक्ता ने जो आपत्ति उठाई है उनमें मुझे कोई तर्क की शक्ति नहीं दिखाई देती है। मैं उन लोगों में से हूं जो यह विश्वास रखते हैं, दृढ़ विश्वास रखते हैं कि प्रान्तों को कार्य करने के लिये जो कुछ भी क्षेत्र हम सौंपे, हम उनको उस क्षेत्र में पूर्ण भार दे दें—यह उन सैद्धांतिक कारणों के

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

प्रति किसी दृढ़ अनशक्ति के आधार पर नहीं है कि जिस फैडरल प्रणाली को हमने ग्रहण किया है वह पवित्र हो और हमारे यहां कनाडा के समान मिश्रित प्रकार की फैडरल प्रणाली न हो, वरन् केवल इसलिये कि मैं समझता हूं कि प्रान्तीय मंत्रियों के उत्तरदायित्व उन पर स्पष्ट रूप से रखे जायें और उनको ऐसा अवसर न दिया जाये कि वे केन्द्र और प्रान्तों में विभक्त उत्तरदायित्व की आड़ में शरण ले लें। श्रीमान्, इस विशिष्ट विषय पर मेरे दृढ़ विचार हैं और मैं यह समझता हूं कि शक्तियों के बंटवारे के इस समूचे अध्याय पर जिस समय हम विचार करें, उस समय हम सदैव इस खास तथ्य को ध्यान में रखे। यह कोई बात नहीं है कि जो शक्तियां प्रान्तों को दी जाती हैं उनका क्षेत्र अधिक विस्तृत नहीं है। इससे वास्तव में प्रान्तों में सुचारू रूप से कार्यवाही करने में हस्तक्षेप नहीं होता है, जब तक कि प्रान्तों को बांट में दी जाने वाली शक्तियों की योजना के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप नहीं होता। इस दृष्टिकोण से देखने पर मूलत: जिस रूप में अनुच्छेद 226 था, वह वास्तव में आपत्तिजनक था कि इस बात के होते हुए भी कि केन्द्र को उस राज्य-परिषद् से शक्ति मिलती थी, जिसमें अंगभूत राज्यों का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व है और संसद को शक्ति प्रदान करने वाला अधिनियम दो तिहाई के बहुमत से है, जिसका यह अर्थ था कि राज्य इस बात से सहमत है कि केन्द्र उस प्रान्तीय शक्ति को अपनी ओर आकर्षित करे। मैं यह समझता हूं कि शायद केन्द्र को प्रांतों से अधिक शक्तियां आकर्षित कराने के लिये प्रोत्साहन देने का यह एक किंचित मात्र साधन माना जा सकता है, जिससे कि वास्तविक महत्त्वपूर्ण विषयों पर कार्यवाही की समनुरूपता के प्रयोजनार्थ केन्द्र में शक्तियों के केन्द्रित करने की आदेशिका में यह साधारण विचार कि केन्द्र को अधिक महान् शक्तियां मिले, स्वीकार कर लिया जाये। दूसरे दृष्टिकोण से विचार करने पर अर्थात् आर्थिक उद्देश्य के दृष्टिकोण से, जिसके लिये हम वचनबद्ध हैं—केन्द्र का आर्थिक विषयों में हस्तक्षेप औपचारिक आवश्यकता से अधिक आवश्यक हो जाता है—ये सब बातें मिल कर अवश्य ही राज्यों से छीन कर केन्द्र में अधिक शक्तियां केन्द्रित करने की ओर अग्रसर होंगी और यह भी सत्य है कि आज जिस रूप में अन्य संघ-शासन अथवा अर्ध संघ-शासन व्यवस्थायें विद्यमान हैं जैसे कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका, आस्ट्रेलिया और कनाडा में जैसे जैसे समय बीतता जाता है, वैसे वैसे चाहे सांवैधानिक रूप से अथवा न्यायपालिका की उद्घोषणओं के आधार पर अथवा काल की आवश्यकता के कारण हम देखते हैं कि केन्द्र अपनी ओर अधिक से अधिक शक्ति आकर्षण करने की ओर शीघ्रता से बढ़ रहा है। यहां तक कि युद्धोत्तर कालीन उपक्रमों की पूर्ति हेतु फेडरल मंत्रिमंडल द्वारा केन्द्र के लिये अधिक शक्तियों की मांग के सम्बन्ध में आस्ट्रेलिया के लोगों का जनमत में विरोध मत पारित होने से हमें केन्द्र के शक्ति आकर्षण करने के आन्दोलन में अवरोध दिखाई दिया है। आस्ट्रेलिया में जो कुछ हुआ उससे हमें सबक सीखना चाहिये, जब कि जनमत के पक्ष में केवल एक ही पक्ष नहीं वरन दोनों पक्ष थे। दोनों पक्ष केन्द्र के लये अधिक शक्ति चाहते थे परन्तु दुर्भाग्य से जनमत ने उसे अस्वीकार किया। अत: मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति वितरण की इस योजना में जिसको परिवर्द्धन इसके बाद के अध्याय मे आने वाली वित्तीय शक्तियों से किया जायेगा और अन्त में अनुसूची 3 के तीनों भागों की योजना द्वारा किया जायेगा, हमको प्रान्तों के लिये अथवा जिनको अब राज्य कहा जाता है उनके लिये कुछ शक्तियां पूर्ण रूप में छोड़

देनी चाहिये। उचित समय आने पर मैं यह सुझाव रखूंगा कि मुख्य कारणवश जहां विभिन्न एककों की कार्यवाही में समानता लाने की शक्तियां केन्द्र के लिये आवश्यक हों वहां यह अच्छा होगा कि उस विषय को राज्य सूची में रखने और इस क्षेत्र में अनेक अन्य प्रकारों से हस्तक्षेप करने की सुविधा देने की अपेक्षा समवर्ती सूची में रखा जाये। केवल इसी प्रकार नहीं जिसका विचार इस अनुच्छेद में रखा गया है वरन् और भी प्रकार हैं और समय आने पर उन प्रकारों पर विचार व्यक्त करने और उनके प्रयोग के विरुद्ध रक्षा कवचों का सुझाव देने के लिये काफी वक्त मिलेगा। अत: यद्यपि मैं भी यह मानता हूं, कि मूल रूप में यह अनुच्छेद आपत्तिजनक था और यदि मैं पूर्व वक्ता का शब्द प्रयोग में ला सकता हूं, तो वह दुष्टतापूर्ण भी था और ऐसा था जो राज्य के पास उत्तरदायित्व जितनी पूर्ण मात्रा में रहना चाहिये था उसे वह राज्य से अलग करने वाला था, पर मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 226 के विरुद्ध इस आपत्ति के सार का यह संशोधन अपहरण करता है। हां, मैं अपने मित्र श्री पातस्कर के तर्क को समझ सकता हूं, जो कदाचित् अनुच्छेद 226 के उपबन्ध की आवश्यकता को तो समझ सकते हैं, परन्तु संशोधन में जिस उपबन्ध पर विचार है उसकी आवश्यकता की नहीं समझ पाते हैं; विशेषकर अनुवर्ती अनुच्छेद 229 के होने के कारण। श्रीमान्, शायद श्री पातस्कर ने अनुच्छेद 229 के क्षेत्र को नहीं समझा है जो कि एक ऐसी ही धारा का पुनरूप है; अर्थात् भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 103 का। और चूंकि अनुच्छेद 226 और 229 में तुलना की गई है, अत: इस दशा में भी यह मालूम करना ठीक है कि भारतीय सरकार के अधिनियम की ऐसी धारा का कितनी बार उपयोग किया गया था। मुझे याद आता है कि कभी सन् 1939 में केन्द्र को औषधि नियंत्रण के सम्बन्ध में विधान का उपक्रम करने के लिये शक्ति प्रदान करने के संकल्प विभिन्न प्रान्तों में पेश किये गये थे। मुझे यह भी याद है कि दो साल पूर्व जब कि केन्द्र ने दामोदर घाटी निगम के लिये अधिनियम बनाया था बिहार और बंगाल की दोनों सरकारों को धारा 103 के अधीन दी हुई शक्तियों के अन्तर्गत विधान पारित करना पड़ा था अत: अनुच्छेद 229 उन विषयों में कार्यवाही करने की व्यवस्था करता है जिनमें प्रान्तों की मुख्य अभिरुचि है और कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि केवल दो प्रान्तों की ही अभिरुचि हो और इसके लिये शक्तिदायक उपबन्ध विहित किया जाता है, जिससे कि केन्द्र द्वारा समनरूपता का विधान बनाया जा सके और यह भी स्मरण रखना है कि यह आदेशिका बहुत समय लेती है। प्रान्त से पेश कराने के लिये आपको कार्यपालिका के सहयोग की आवश्यकता है, आपको विधान मंडल के सदस्यों के सहयोग की आवश्यकता है, और इसमें बहुत समय लग जाता है, और यदि ऐसा हो जाये कि केवल उस आवश्यक विषय के सम्बन्ध में अधिक शक्तियां चाहे, जिसमें कि आपात की धाराओं के उपबंध अन्तर्ग्रस्त नहीं किये जा सकते या नहीं करने चाहिये तो वास्तव में केन्द्र के कार्यवाही करने के लिये कोई रीति होनी चाहिये। यह हो सकता है कि कोई वकील यहां यह कहे कि चूंकि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र को है; ओन्टोरियो के महान्यायवादी बनाम कनाडा की मद्य-निषेध संस्था के अभियोग में कनाडा के निर्णय के उदाहरण का उपयोग किया जा सकता है क्योंकि कनाडा के संविधान के समान इस संविधान में अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र पर निर्भर की गई है। परन्तु फिर भी एक कठिनाई है जैसा कि फैडरल शासन व्यवस्था के माने हुए विद्वान प्रो. के.सी. वेयर ने बताया है कि शक्तियों को बिल्कुल ठीक-ठीक बांटने का विचार, जिसका उपक्रम भारतीय सरकार के अधिनियम

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

की अनुसूची 7 में किया गया है और जिस अधिनियम का हमने पूरा-पूरा अनुसरण किया है और संविधान के मसौदे की अनुसूची 7 में हमने उसमें और भी सुधार किये हैं, अब अवशिष्ट शक्तियों के निर्वचन का यह अर्थ लगाने के लाभ की गुंजाइश न देगा कि केन्द्र उस विषय में हस्तक्षेप कर सकता है, जो पूर्णतया राज्य के क्षेत्र के अन्तर्गत है और जिसमें राज्य का सिवाय लोकहित के कोई सम्बन्ध नहीं है। अत: मैं तो यह विश्वास करता हूं कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 226 में कुछ उपयोगिता है, जो मूल अनुच्छेद में अथवा डा. अम्बेडकर के मूल संशोधन द्वारा परिवर्तित रूप में जितनी भी तेजी है उस सब को दूर कर देता है। यदि वर्तमान रूप में अनुच्छेद स्वीकार किया जाता है तो स्थिति यह होगी कि विषय को संकल्प के रूप में प्रति वर्ष राज्य-परिषद् के समक्ष लाना पड़ेगा जिससे कि सांसदिक अधिनियम को संकल्प के रूप में प्राधिकार के अधीन जीवित रखा जा सके और हमने कोई समय-सीमा रखी नहीं है। सारी स्थिति का तीन वर्ष अथवा 6 वर्ष के अन्त में समाप्त होने का कोई प्रश्न नहीं है। यदि आपात बना रहता है तो कोई भी इस बात को मान सकता है कि राज्य-परिषद् इस संकल्प की आड़ में अधिनियमित विधान को जीवित रखने की आवश्यकता का अनुभव करने में यथेष्ट रूप से सतर्क रहेगी और प्रति वर्ष नये संकल्प द्वारा ऐसे अधिनियम के जीवन को बढ़ाती रहेगी। इस सदन के दूसरे पक्ष का हमें अनुभव है कि कुछ अधिनियम जिनमें आर्थिक उलझनें थीं, सदन के संकल्प द्वारा प्रतिवर्ष विस्तृत कर दिये जाते हैं और मैं नहीं समझता हूं कि प्रश्न पूछने के अतिरिक्त सरकार को इन शक्तियों के देने पर कोई कटु विरोध हुआ हो, यदि सरकार ने इन शक्तियों को रखने की आवश्यकता का सदन को विश्वास करा दिया हो। साथ ही साथ राज्य के लिये कार्यवाही में कुछ स्वतंत्रता का वह परिरक्षण करती है यदि एक वर्ष के पश्चात् कदाचित् एकाध मत के अन्तर से अथवा किसी ऐसे ही प्रकार से केन्द्र किसी ऐसे विधान के उपक्रम करने में सफल हो जाता है, जो स्पष्ट तथा प्रकट रूप से प्रान्तीय स्वायत्तता के क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है, तो राज्य-परिषद् के अपने प्रतिनिधियों से प्रान्त अथवा राज्य को यह कहने की काफी गुंजाइश है कि जब वह आगामी वर्ष पुनर्नवीकरण के लिये फिर से प्रस्तुत हो, तो वह उसका पुनर्नवीकरण न करें। और यदि कोई दृष्टता होती भी है तो वह केवल एक वर्ष के लिये होगी। जब शक्तियों को इतना निर्बन्धित किया जाता है और एक वर्ष के लिये प्रदान किया जाता है और प्रतिवर्ष राज्य-परिषद् के संकल्प द्वारा उसका पुनर्नवीकरण करना पड़ता है तो ऐसा नहीं हो सकता कि संसद अथवा केन्द्रीय कार्यपालिका आपात कार्यवाही की आवश्यकता के प्रति पूर्ण संतोष प्राप्त किये अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत किसी कार्यवाही को करे और इसके साथ-साथ राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों तथा राज्य की कार्यपालक सरकार के दिल दुखने की व्यवस्था करे। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 194 द्वारा संशोधित प्रकार के उपबन्ध के रखने में लाभ ही अधिकतर प्रतीत होता है। यदि कोई दुष्टता है भी तो वह बहुत सीमित अवधि के लिये निर्बन्धित हो जाती है, और यही बात कि वह बहुत अल्प समय के लिये सीमित है, केन्द्र को इसे अपनी शक्तियों के बढ़ाने के साधन के रूप में प्रयोग करने के लिये कोई प्रलोभन नहीं मिलता है। और यदि इसका प्रयोग किया भी जाता है

तो मान्य तथा निश्चित रूप से उपयोगी प्रयोजन के लिये किया जायेगा, जिसके प्रति अंगभूत राज्यों को सम्भवत: कोई आपत्ति नहीं होगी। श्रीमान्, यद्यपि मैं एक ऐसे विषय पर सभा का समय ले रहा था जिस पर इस समय अधिक वाद-विवाद के लिये उत्तेजना नहीं प्रतीत होती थी, पर मैंने समझा कि ऐसे भ्रमात्मक विचारों को रोकने के लिये यह आवश्यक है, जो इस रूप में राज्यों में उत्पन्न हो जायें कि इस संविधान के मसौदे की ऐसी रचना की गई है कि यह केन्द्र की ओर समस्त शक्तियों के आकर्षण कराने में सहायता देता है और यह कि प्रान्तीय स्वायत्तता के लिये जो क्षेत्र छोड़ा गया है, वह बहुत निर्बन्धित है। इस विचार का विरोध करने के लिये ही इस विशिष्ट अनुच्छेद पर सावधानीपूर्वक विचार किया गया है, उसकी ऊंच-नीच पर पूर्ण विचार कर लिया गया है और यह एक ऐसा संशोधन पुरस्थापित किया जा रहा है, जो प्रान्तीय स्वायत्तता में न्यूनतम हस्तक्षेप करने की व्यवस्था करता है और वह भी केवल उन दशाओं में, जबकि आपातकाल हो तथा किसी दृष्टता के लिये रक्षाकवच स्वयं इस संशोधन के उपबन्धों में है। मैं आशा करता हूं कि यह सदन डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करेगा और इस देश के लोग इस सदन में हमारी सद्भावनाओं के प्रति विश्वास करेंगे, जिनका उद्देश्य यह है कि यथासंभव और उस सीमा तक जहां तक हमने इन शक्तियों को बिना किसी अनुचित हस्तक्षेप के अक्षुण्ण रखने के लिये प्रान्तीय स्वायत्तता प्रदान की है, प्रान्तीय स्वायत्तता का परिरक्षण किया जाये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, जिस रूप में यह अनुच्छेद है, उसी रूप में दो या तीन कारणों के आधार पर मैं इसका समर्थन करने के लिये खड़ा होता हूं। मैं इस अनुच्छेद को ऐसा नहीं समझता हूं कि यह किसी आपात काल के लिये बनाया गया है उस प्रयोजन के लिये संविधान में आपात के लिये अन्य उपबन्ध हैं। यह स्पष्ट है कि जब कोई विषय राष्ट्रीय महत्त्व के अनुपात को ग्रहण कर लेता है, तो केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिये। कोई प्रान्तीय विषय जबकि राष्ट्रीय महत्त्व के अनुपात को ग्रहण कर लेता है तो वह केन्द्रीय विषय बन जाता है। जब हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था उन्नति की प्रारम्भिक दशा में है, उस समय हम प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय विषयों में इतना कड़ा तथा पूर्ण पृथकता का भेद-विभेद नहीं कर सकते हैं सब विषय परस्पर मिले जुले रहने चाहिये। मसौदा-समिति के सदस्यों के चाहे जो कुछ विचार रहे हों, पर मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद का उपयोग सांवैधानिक संशोधनों के प्रयोजनार्थ किया जाये।

केन्द्र के लोग जब यह समझें कि किसी विषय को प्रान्तीय सूची में रखना अब आगे उचित तथा ठीक नहीं है, तो वे सांवैधानिक संशोधन की कठिन कार्यप्रणाली का पालन किये बिना उस विषय को केन्द्रीय विषय बना सकते हैं। यह कार्यप्रणाली निर्धारित है कि राज्य-परिषद् दो तिहाई बहुमत से उस विषय के प्रशासन को अपने हाथों में लेने के लिये सरकार से सिफारिश कर सकती है। मैं नहीं समझता हूं कि यह कार्यप्रणाली ठीक है। मैं समझता हूं कि इस बात को विनिश्चित करने का कार्य केन्द्र के नेताओं पर छोड़ना चाहिये न कि राज्य-परिषद् के सदस्यों के हाथों में। इन विषयों पर निस्पृह विचार करने के लिये वे अच्छी स्थिति में हैं। प्रान्तीय राजधानी और दिल्ली में जमीन आसमान का

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

फर्क है। दिल्ली में लोग यह जान सकते हैं कि आया किसी विषय में राष्ट्रीय महत्त्व का अनुपात ग्रहण किया है अथवा नहीं। प्रान्तों में रहने वाले लोग प्रान्तीय समस्याओं में उलझे रहते हैं, उनका दृष्टिकोण सीमित तथा संकुचित होता है। अत: राज्य-परिषद् में बैठने वाले प्रान्तीय विधान मंडल के प्रतिनिधियों पर ऐसे संकल्प का पेश करना छोड़ देना वास्तव में केन्द्र के उस हित का रद्द करना है, जो उस रूप में प्राप्त किया जा सकता है, जबकि इस प्रकार के संकल्प को पेश करने की शक्ति लोक सभा में निहित की जाये।

मैं समझता हूं कि इस संशोधन में जो कालावधि विनिहित की गई है अर्थात् यह कि ऐसा कदम केवल एक वर्ष के लिये उठाया जा सकता है वह समुचित नहीं है। कोई विषय जिसने राष्ट्रीय महत्त्व के अनुसार अनुपात को ग्रहण कर लिया है वह एक वर्ष के पश्चात् फिर कैसे प्रान्तीय विषय हो सकता है? आज वह राष्ट्रीय महत्त्व का विषय है और कल वह प्रान्तीय महत्त्व का विषय हो जाता है। मैं समझता हूं कि लोग जो कुछ कर रहे हैं उसके बारे में उनको कोई ज्ञान नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उन्नतिशील अर्थव्यवस्था में बहुत से विषय जो प्रान्तीय सूची में रखे गये हैं केन्द्रीय हो जायेंगे। केन्द्रीय सरकार को विफल करने तथा उसके मार्ग में रोड़े अटकाने से कोई लाभ नहीं है। विकेन्द्रीयकरण की वृत्तियों पर हमें अधिक जोर नहीं देना चाहिये।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, कल मसौदे तथा डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन, दोनों का विरोध करने का मेरा विचार है। हां, मैं यह बात मानता हूं कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया संशोधन मूल प्रस्थापना के जोर को कुछ कम कर देता है पर मेरी सम्मति में वह अब भी आपत्तिजनक है।

मेरी पहली आपत्ति यह है कि केवल एक सदन को अर्थात् उत्तर सदन को इस संविधान में संशोधन करने देना, जिसकी अपनी निराली पवित्रता है, ठीक नहीं है। संविधान में कुछ निश्चित बहुमत से संशोधन करने के लिये अनुच्छेद 304 है जिसमें विशिष्ट उपबन्ध निर्धारित किये गये हैं हां, यह सत्य है कि कुछ लचीलापन रखना वांछनीय है। अत: यदि संकल्प का जारी रखना सम्बद्ध राज्य के विधानमंडलों के मत द्वारा प्राप्त कर लिया गया होता, तो मैं ध्यान नहीं देता। अन्य प्रसंग में प्रयुक्त हुई पदावली को उधार लेकर जिस रूप में वह है उस पर मैं यह कह सकता हूं कि यदि संकल्प वास्तव में राज्य के विधान मंडल के मत को प्रतिबिम्बित नहीं करता है तो वह दृष्टता पूर्ण हैं यदि उसके द्वारा राज्य के विधान मंडलों का मत प्रतिबिम्बित हुआ तब तो विभिन्न राज्य के विधान मंडलों से उसे पारित कराने में कोई कठिनाई नहीं थी। दूसरी ओर यदि उसने उनके मतों को प्रतिबिम्बित नहीं किया तब तो वास्तव में हम उन लोगों की इच्छाओं के विरुद्ध जा रहे हैं जो इस संविधान के अनुसार इन विषयों के प्रति उत्तरदायी हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि ऐसा कोई समय आ सकता है जब केन्द्र के लिये ऐसी शक्ति अपेक्षित हो। तो फिर वैसे निश्चित आपात के लिये व्यवस्था करिये। परन्तु किसी आपात की अनुपस्थिति में इस प्रकार के संकल्प द्वारा संविधान का संशोधन करना ठीक नहीं है। राज्य-परिषद् का संकल्प एक वर्ष तक के लिये रहता है। इस निश्चित शर्त्त पर उसका पुनर्नवीकरण क्यों नहीं करते कि

उस कालावधि के अवसान के पूर्व राज्य के विधान मंडल का बहुमत उस संकल्प को दो या तीन वर्ष के लिये जारी रखने के लिये निवेदन करने का संकल्प पारित करे? उसके पश्चात् यदि इस संशोधन को जारी रखना है तो उसको अनुच्छेद 304 में निर्धारित सामान्य रीति के अनुसार किया जाये। संसद के तथा राज्य के विधानमंडलों के इस विषय में बिना कुछ कहे केवल उत्तर सदन को ऐसा करने की आज्ञा देने पर इन मूल आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए मैं सुझाव रखता हूं कि यह बात विचारणीय है कि क्या इस अनुच्छेद को इस रूप में रखा जाये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मूल अनुच्छेद की शब्दावली संशोधन की शब्दावली से कहीं अधिक उत्तम तथा अधिक उपयोगी थी। संशोधन अर्थ अथवा उद्देश्य में कोई सारभूत परिवर्तन नहीं करता है, जिस प्रयोजन के लिये हम व्यवस्था कर रहे हैं उसके लिये मूल अनुच्छेद यथेष्ट रूप में पर्याप्त था। देश में तथा इस सदन में भी यह प्रवृति फैली हुई है और लोग अब भी यह समझते हैं कि प्रांत स्वायत्तता का उपयोग करेंगे और राज्य स्वायत्तशासी राज्य अथवा कुछ ऐसे ही प्रकार के होंगे। विगत कुछ काल से वे इस भावना का आनन्द उठाते रहे हैं। यद्यपि अब समस्त देश स्वायत्तशासी हो गया है, वे इस अखिल भारतीय स्वायत्तता तथा अपनी सत्ता को इस अखिल भारतीय स्वायत्तता में विलीन कर देने के आंनद की लहर को अभी स्पर्श नहीं कर रहे हैं। अत: कुछ शक्तियों को अपनाये रहने की एक प्रकार की कट्टर भावना वर्तमान है, मानो कि प्रान्त अधिक अच्छी कार्यवाही कर सकते हैं।

राज्य शरीर के विभिन्न अंगों के समान है। प्रत्येक अंग पूर्ण रूप से पृथक नहीं हो सकता है तथा स्वायत्तशासी नहीं बन सकता है; वे सबके सब परस्पर मिल कर एक हैं। जिस रूप में अब तक हम अपने संविधान का निर्माण कर रहे हैं उससे भी यह सिद्ध होता है कि हम अपने राज्य को एक शरीर के समान बनाने के विचार से सहमत है और इस शरीर के अंगों के रूप में इन विभिन्न प्रान्तों तथा राज्यों का निर्माण करने से सहमत हैं। यही बात कि जब भी जिस किसी प्रान्त के लिये केन्द्र से विधि अधिनियमित कराना आवश्यक हो, तब उस प्रांत के लिये संसद विधि बनायेगी, सिद्ध करती है कि इस शैली में अपवाद तभी किया जायेगा जब कोई आवश्यकता हो और वह भी तब जब कि राज्य-परिषद् स्वयं इसके पक्ष में दो तिहाई बहुमत से विनिश्चित करे। मान लीजिये, किसी प्रान्त में एक बहुत ही संकटास्पद अथवा घोर वित्तीय संकट है। मान लीजिये, संकल्प में तत्सम्बन्धी विषय के लिये छ: माह के लिये विधि बनाने की संसद से प्रार्थना की जाती है। डा. अम्बेडकर के संशोधन के अनुसार छ: माह के बाद विधि प्रवर्त्तन में न रहेगी। अत: छ: माह के बाद राज्य-परिषद् को फिर बैठक करनी पड़ेगी और अवधि को विस्तृत करना होगा, जिससे कि संसद विधि का विस्तार कर सके। यह कष्टदायक रीति है।

हानि क्या है, हम इस धारणा के प्रति सन्देह क्यों करें? चाहे छ: माह अथवा एक वर्ष की कालावधि का बिल्कुल ही उल्लेख न हो, कोई निकाय जो विधि अधिनियमित कर सकता है वह उसे रद्द भी कर सकता है। विशेषकर जब कि इस बात में विशेष सावधानी की जाती है कि प्रजा के अधिकारों का अपहरण न हो, तो फिर यह सोचने

[श्री महावीर त्यागी]

के लिये कोई कारण नहीं है कि हस्तक्षेप करने का अवसर आयेगा। यदि कोई पड़ोसी राज्य यह समझता है कि उससे मिले हुए राज्य की परिस्थिति उसके प्रशासन पर विपरीत प्रभाव डाल रही है, तो उसे केन्द्र से ऐसे विधान द्वारा, जो समस्त भारत की कुशल क्षेत्र की वृद्धि करे, हस्तक्षेप करने के लिये कहना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन की अपेक्षा मूल खंड अच्छा प्रतीत होता है। डा. अम्बेडकर का संशोधन अनुच्छेद के अर्थ अथवा संविधान सभा के उद्देश्य में सुधार नहीं करता है। यदि अवधि प्रथम 6 माह और फिर आगामी 6 माह के लिये है, तो वह अनावश्यक रूप से अधिक खर्च कराने वाली होगी और कार्यवाही में विलम्ब करेगी।

श्रीमान्, कुछ बड़े-बड़े प्रान्तों में जिनकी वित्तीय स्थिति अच्छी है यह भावना है कि उन्हें पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त हो तथा केन्द्र द्वारा कोई हस्तक्षेप न हो। कुछ ऐसे प्रान्त हैं जिनमें किसी एक विशेष वर्ग के लोगों का बहुमत है। वे केन्द्र से स्वतंत्र होना चाहते हैं। यह वही मुस्लिम लीग कालीन पुरानी विचारधारा है। कोई विशिष्ट सम्प्रदाय जिसका किसी प्रान्त में बहुमत था, पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त करना चाहता था जिससे कि कोई उसके कार्यों में हस्तक्षेप न कर सके, चाहे वह हस्तक्षेप समस्त भारत के हित में हो। यही पुरानी प्रवृत्ति थी। मैं उनकी आलोचना नहीं करना चाहता हूं। परन्तु यह सत्य है कि कुछ प्रान्त, जिनके हाथ में काफी राजस्व है, केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप का विरोध करते हैं। चाहे वह समस्त भारत के हित के लिये आवश्यक ही क्यों न हो। रूस में भी केन्द्र को हस्तक्षेप करने की ऐसी शक्तियां हैं, यद्यपि गांवों को न्याय सम्बन्धी विषयों तक में भी स्वायतशासी शक्तियां हैं। परन्तु फिर भी इन शक्तियों के प्रयोग की स्वीकृति देने की पूरी शक्ति केन्द्रीय सरकार पर निर्भर है। सर्वोच्च नीति का निदेशन केन्द्र में निहित है। हमारा संघ तभी शक्तिशाली हो सकता है जबकि केन्द्र को समस्त भारत में समान रूप से प्रयुक्त होने वाली विधि बनाने की पूर्ण शक्ति हो। इन शब्दों में मैं मूल अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री बी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि जिस रूप में अनुच्छेद है वह प्रांतों की शक्तियों का अपहरण करता है। यह अच्छा होता यदि आपात की दशाओं में केन्द्र को समस्त भारत के लिये विधान बनाने की शक्ति होती। परन्तु शब्दों का जिस रूप में प्रयोग किया गया है वे आपात के लिये जितनी व्यापकता की आवश्यकता है उससे अधिक व्यापक है। उसमें कहा गया है: 'जब राष्ट्रीय हित के लिये वह आवश्यक तथा इष्टकर हो।' आपात की अपेक्षा राष्ट्रीय हित के लिये अधिक व्यापक क्षेत्र है। अत: आपात के लिये केन्द्र द्वारा विधान बनाने के पक्ष के तर्क प्रयुक्त नहीं होते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यहां जो शक्ति दी गई है वह आवश्यकता से अधिक व्यापक है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'आपत्ति' पर आगामी अनुच्छेद में विचार किया गया है।

***श्री बी.एस. सर्वटे:** यदि यही बात है तो यह यहां अनावश्यक है। मैं यह और निवेदन करूंगा कि राज्य परिषद् को संकल्प पारित करने की शक्ति देने के पीछे यह

विचार प्रतीत होता है। मान लीजिये, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब यह आवश्यक है कि केन्द्र विधान बनाये। यदि यह उपबन्ध न हो तो यही विकल्प होगा कि समस्त प्रान्त और राज्य संकल्प पारित करें कि उस विशिष्ट आपात के लिये विधान बनायें। इस भद्दी रीति से बचने के लिये राज्य-परिषद् को संकल्प पारित करने की शक्ति दे दी गई है जो अधिकतर राज्य के प्रतिनिधियों से बना है। इस संकल्प के आधार पर पहले अवसर पर केन्द्र के लिये उपयुक्त कार्यवाही करना समुचित हो सकता है।

परन्तु दूसरे अवसर पर अर्थात् जब कि उस संकल्प को दुहराने का अवसर आता है, उसको प्रान्तों पर छोड़ा जा सकता था कि वे संकल्प पारित करें। प्रान्तों पर यह छोड़ दिया जाता कि वे यह विनिश्चय करें कि आपात वर्तमान है अथवा नहीं। यदि प्रान्तों को यह संतोष हो जाता है कि आपात वर्तमान है तो वे यह संकल्प पारित कर लेंगे कि केन्द्र समस्त भारत के लिये विधान बनाये। अत: मेरे विचार में ऐसा आता है कि ऐसे संकल्प पारित करने की शक्ति राज्य-परिषद् को देना अन्यायपूर्ण है। पहली बार तो वह न्याय युक्त हो सकता है। ऐसी दशाओं में यह समुचित हो सकता है। परन्तु यदि वस्तुस्थिति वैसी ही रहती है, तो प्रान्तों पर उन परिस्थितियों का निर्णय करना तथा पुन: संकल्प पारित करना छोड़ देना चाहिये। मेरे कहने का यह आशय है: राज्य-परिषद् को केवल एक बार संकल्प पारित करने की शक्ति होनी चाहिये। उसे दुबारा संकल्प पारित करने की शक्ति नहीं होनी चाहिये। ऐसी दशा में संकल्प पारित करना प्रान्तों पर छोड़ देना चाहिये। इस पर्यवेक्षण के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एस.बी. कृष्णामूर्ति राव** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 226 का समर्थन करता हूं। अनुच्छेद 223 संसद को अवशिष्ट शक्तियां प्रदान करता है। अनुच्छेद 227 राष्ट्रीय आपात की दशा में संसद को शक्तियां प्रदान करता है जबकि आपात की उद्घोषणा प्रवृत्त है और अनुच्छेद 229 प्रान्तों को अपने विधान मंडलों में केन्द्र से कार्यवाही करने के लिये निवेदन करने के संकल्प को पारित करने की शक्तियां प्रदान करता है। जब कोई प्रश्न राष्ट्रीय महत्त्व का रूप ग्रहण कर लेता है अथवा राष्ट्रीय हित का विषय हो जाता है, तो अनुच्छेद 229 में दी गई कार्यप्रणाली से अनुच्छेद 226 की कार्यप्रणाली अधिक वेगयुक्त है। मूल अनुच्छेद में जो दुष्टता थी उसको अधिकांश डा. अम्बेडकर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा अभी पेश किये गये संशोधन द्वारा दूर कर दी गई हैं यदि प्रति वर्ष संसद द्वारा संकल्प पारित किया जाता है तो क्या हानि है? आखिरकार राज्य-परिषद् के सदस्य कौन हैं? वे प्रान्तों के प्रथम सदन द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। यदि ऐसा संकल्प वास्तव में राज्यों के हित के विरुद्ध हो तो राज्य के विधान मंडल केन्द्र को यह कह सकते हैं कि वह संकल्प राज्यों के हित के विरुद्ध है। वास्तव में यहां प्रान्तों की शक्तियों के अपहरण करने का कोई प्रश्न नहीं है। वास्तविक राष्ट्रीय आपात की दशा में जब कि किसी प्रश्न ने राष्ट्रीय महत्त्व का रूप ग्रहण कर लिया है, एक वेगवान उपचार की व्यवस्था अनुच्छेद 226 के अधीन की गई है। यदि राज्य-परिषद् द्वारा पारित संकल्प किसी राज्य के हित के विरुद्ध है तो उस राज्य से यह आशा की जा सकती है कि वह अपने सदस्यों को सावधान करे और यह विश्वास कर ले कि वह संकल्प एक वर्ष के पश्चात् आगामी सत्र में पारित नहीं होगा। अनुच्छेद 226 के अधीन पारित किया हुआ संकल्प

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति राव]

सामान्यतया एक वर्ष के लिये जारी रहेगा और जब कि राष्ट्रीय आपात वर्ष प्रति वर्ष जारी रहता है तो आगे और वह संकल्प एक वर्ष के लिये पारित हो सकता है। इन परिस्थितियों के अधीन राज्य-परिषद् को ऐसी शक्ति देना आवश्यक है और मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अब इस विषय पर मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है ''कि अब इस विषय पर मत लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** संशोधन पर मत लेने के पूर्व डा. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** बहुत कुछ कहा जा चुका है। जब तक आप न चाहें कि मैं कुछ कहूं तो कदाचित मैं कुछ नहीं कहूंगा।

***अध्यक्ष:** यह आपकी इच्छा है।

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधनों की सूची में संशोधन संख्या 2775 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 226 का पुनरांकन अनुच्छेद 226 के खंड (1) के रूप में किया जाये, और

(क) इस प्रकार पुनरांकित उपर्युक्त खंड के अन्त में 'while the resolution remains in force' (जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है) शब्द प्रविष्ट किये जायें; तथा

(ख) इस प्रकार पुनरांकित उपर्युक्त अनुच्छेद 226 के खंड (1) के पश्चात् निम्न खंड प्रविष्ट किये जायें:

(2) A resolution passed under clause (1) of this article shall remain in force for such period not exceeding one year as may be specified therein :

Provided that if and so often as a resolution approving the continuance in force of any such resolution is passed in the manner provided in clause (1) of this article, such resolution shall continue in force for a further period of one year from the date on which under this clause it would otherwise have ceased to be in force.

(3) A law made by Parliament which Parliament would not but for the passing of a resolution under clause (1) of this article have been competent to make shall to the extent of the incompetency cease to have effect on the expiration of a period of six months after the resolution has ceased to be in force, except as respects things done or omitted to be done before the expiration of the said period.

[(2) खंड (1) के अधीन पारित संकल्प एक वर्ष से अनधिक ऐसी कालावधि के लिये प्रवृत्त रहेगा जैसा कि उसमें उल्लिखित हो:

परन्तु यदि और जितनी बार, किसी ऐसे संकल्प को प्रवृत्त बनाये रखने का अनुमोदन करने वाला संकल्प खंड (1) में उपबन्धित रीति से पारित हो जाये तो ऐसा संकल्प उस तारीख से आगे जिसको कि वह इस खंड के अधीन अन्यथा प्रवृत्त न रहता, एक वर्ष की और कालावधि तक प्रवृत्त रहेगा।

(3) संसद द्वारा निर्मित कोई विधि, जिसे संसद खंड (1) के अधीन संकल्प के पारण के अभाव में बनाने में सक्षम न होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने से छः मास की कालावधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के अतिरिक्त प्रभावी न होगी, जो उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व की गई या की जाने से छोड़ दी गई है।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 226 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 226 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 227

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 227 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 227 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 228

***अध्यक्षः** एक संशोधन है जिसकी सूचना अनेक सदस्यों ने दी है, संशोधन संख्या 2779।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, उसका पेश करना आवश्यक नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 228 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 228 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 229

(संशोधन संख्या 2781 और 2782 पेश नहीं किये गये।)

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 229 के खंड (2) में 'but shall not' शब्दों के स्थान में 'and may also' शब्द रखे जायें।''

अनुच्छेद 229 के खंड (1) में यह दिया हुआ है कि यदि किसी प्रांतीय विधान-मंडल को यह प्रतीत हो कि किसी विषय पर प्रांत के लिये विधि बनाने की शक्ति संसद को है, तो उस विषय का विनियम उस प्रांत में संसद को विधि द्वारा करना चाहिये और यदि इस प्रभाव का संकल्प प्रांतीय विधान मंडल द्वारा पारित कर दिया जाता है तो संसद के लिये तदनुसार उस विषय को विनियमित करने के लिये अधिनियम पारित करना विधिवत् होगा और वह अधिनियम सम्बद्ध प्रांत पर लागू होगा। अनुच्छेद 229 के खंड (2) में यह कहा गया है कि खंड (1) में उल्लिखित रीति द्वारा पारित किया गया अधिनियम का संसद के अधिनियम द्वारा संशोधन अथवा निरसन किया जा सकता है, परन्तु प्रांतीय विधान मंडल के अधिनियम द्वारा उसका संशोधन अथवा निरसन नहीं होगा। मेरे संशोधन में यह प्रयास किया गया है कि संसद द्वारा इस प्रकार पारित किये गये किसी अधिनियम का संसद द्वारा संशोधन अथवा निरसन किया जा सकता है। सम्बद्ध प्रांतीय विधान मंडल द्वारा भी उसका संशोधन तथा निरसन किया जा सकता है। भारतीय सरकार के सन् 1935 के अधिनियम की धारा 103 में दिया है कि प्रांत के लिये बनाये गये संसद के अधिनियम का संशोधन अथवा निरसन सम्बद्ध प्रांतीय विधान मंडल द्वारा किया जा सकता है। मेरा संशोधन भारतीय सरकार की धारा 103 पर पूर्णतया आधृत है। पहले यह हुआ करता था कि प्रांत केन्द्रीय विधान मंडल को संकल्प भेजा करता था और उस प्रांत के लिये उसके अनुसार भारतीय सरकार अधिनियम बनाती थी और भारतीय सरकार के अधिनियम की धारा 103 के अधीन सम्बद्ध प्रांत द्वारा इस अधिनियम अथवा विधि में संशोधन अथवा निरसन किया जा सकता था। परन्तु अब इस अनुच्छेद 229 (2) के अनुसार वह संशोधन नहीं कर सकता है। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यह एक बड़ी कठिनाई है। यद्यपि मुझे विश्वास है कि मेरा संशोधन बहुत ही युक्तियुक्त है परन्तु फिर भी यह सदन मेरे संशोधन से सहमत नहीं है, तो मैं उसके स्थान में इस अनुच्छेद का इस प्रकार संशोधन करने के लिये सदन से प्रार्थना करूंगा कि उन उपबन्धों में जिनको केन्द्रीय विधान मंडल ने निवेदन करने पर पारित किया था, प्रांतों को उस अधिनियम में संशोधन करने की शक्ति हो। शायद मैं इस बात को समझ सकूं कि भविष्य में यह सदन यह चाहता है कि यदि प्रांत संबंधी कोई नियम प्रांत के निवेदन पर पारित किया जाता है, तो उस अधिनियम का संशोधन उस प्रांत द्वारा नहीं किया जा सकता तथा केन्द्र द्वारा ही उसका संशोधन किया जा सकता है। शायद मैं इस बात को समझ सकूं, यद्यपि समझ नहीं पाता हूं, पर मैं यह प्रार्थना करूंगा कि उन अधिनियमों के संबंध में जिनका पारण सम्बद्ध विशिष्ट प्रांत के निवेदन पर केन्द्रीय सभा तथा राज्य-परिषद् द्वारा किया गया हो कोई ऐसा उपबंध, जिसको मैंने अभी-अभी विचारा है, होना चाहिये कि सम्बद्ध प्रांत को उस अधिनियम का संशोधन अथवा निरसन करने दिया जाये। मैं आशा करता हूं कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने मुझे ध्यानपूर्वक सुन लिया है और जो कुछ मैंने कहा है उसे वे समझ लेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मै प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2781 और 2783 के निर्देश से, अनुच्छेद 229 के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:

'(1) If it appears to the Legislatures of two or more States to be desirable that any of the matters with respect to which Parliament has no power to make laws for the States except as provided in articles 226 and 227 of this Constitution should be regulated in such States by Parliament by law, and resolutions to that effect are passed by the House or, where there are two Houses, by both the Houses of the Legislature of each of the States, it shall be lawful for Parliament to pass an Act for regulating that matter accordingly and any Act so passed shall apply to such State and to any other State by which it is adopted afterwards by resolution passed in that behalf by the House or, where there are two Houses, by each of the Houses of the Legislature of that State.' ''

[(1) यदि किन्ही दो अथवा अधिक राज्यों के विधान मंडलों को यह वांछनीय प्रतीत हो कि उन विषयों में से, जिनके बारे में संसद को, इस संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त, उन राज्यों के लिये विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे तथा यदि उन राज्यों में से प्रत्येक विधान मंडल के सदन अथवा जहां दो सदन हों वहां दोनों सदनों ने उस लिये संकल्पों का पारण किया है, तो उस विषय का तदनुकूल विनियमन करने के लिये किसी अधिनियम का पारण करना संसद के लिये विधि-संगत होगा, तथा इस प्रकार पारित कोई अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा तथा किसी अन्य राज्य को, जो तत्पश्चात् अपने विधान मंडल के सदन अथवा जहां दो सदन हों वहां दोनों सदनों में से प्रत्येक से उस लिये पारित संकल्प द्वारा उसको अंगीकार करे, लागू होगा।]

थोड़े से संक्षिप्त वाक्यों में मैं इस संशोधन की व्याख्या करना चाहूंगा। जिस रूप में मूल अनुच्छेद था उसमें कहा गया था: ''यदि एक अथवा अधिक राज्यों के विधान मंडल अथवा विधान मंडलों को यह वांछनीय प्रतीत हो, इत्यादि इत्यादि।'' नये संशोधन में कहा गया है: ''यदि किन्हीं दो अथवा अधिक राज्यों के विधान मंडलों को यह वांछनीय प्रतीत हो, इत्यादि इत्यादि।'' नये संशोधन के अधीन विधि बनाने के लिये संसद की सहायता प्राप्त करने का अधिकार होगा, यदि केवल दो या अधिक राज्य मिल जाते हैं और संकल्प भेजते हैं। अनुच्छेद 229 के उपखंड (1) में अन्य परिवर्तन इस मुख्य संशोधन के आनुषंगिक मात्र है; अर्थात् शक्ति को केवल तभी सहायतार्थ काम में लिया जा सकता है जब कि दो अथवा अधिक राज्य चाहें न कि एक राज्य।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मुझे बड़ी खुशी है कि इस खंड को संविधान में रखा गया है। दो प्रांत संयुक्त प्रांत और बिहार में शक्कर के विधान का मैं उदाहरण दूंगा। इन दो प्रांतों में समस्त देश के लगभग 80 प्रतिशत कारखाने हैं और सन् 1937 में यह

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

अनुभव किया गया जबकि यह उद्योग प्रायः मिटने वाला था, कि यदि दोनों प्रांत मिलकर कार्यवाही नहीं करेंगे तो दोनों स्थानों में उद्योग का नाश हो जायेगा। उन्होंने क्या किया? संविधान में ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जिसके द्वारा केन्द्र केवल दो प्रांतों के लिये विधि बना सकता था, अतः उन्होंने यह किया कि दोनों प्रांतों ने एक ही विधि बनाई और परस्पर करार तथा अभिसमयों के द्वारा वे मिलकर कार्यवाही करने लगे और उन्होंने एक संयुक्त नियंत्रण मंडली बनाई, इत्यादि इत्यादि। परन्तु मैं समझता हूं कि संविधान में इस खंड के अधीन अनेक राज्यों के लिये मिलकर संयुक्त कार्यवाही करना संभव है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण दामोदर घाटी प्राधिकरण का लीजिये। संसद ने एक विधि बनाई है, जो वास्तव में समस्त देश को लागू है, परन्तु इस विषय में वास्तव में बिहार और बंगाल के प्रांतों का संबंध है। ऐसे उदाहरण भी हो सकते हैं जहां तीन या चार प्रांत अन्तर्ग्रस्त हों और यदि वे संकल्प पारित कर लेते हैं तो संसद उस विधि का पारण कर सकती है। मैं समझता हूं कि संविधान में यह अनुच्छेद एक बड़ा ही कल्याणकारी उपबन्ध है, जिसके द्वारा अनेक राज्यों में सहयोग हो सकता है और वे उन योजनाओं की पूर्ति कर सकते हैं, जो संयुक्त रूप में समस्त प्रांतों के लिये हितकर है तथा संसद को उन राज्यों के विधान मंडलों की सिफारिश के अनुसार विधान बनाने की शक्ति दे दी गई है। श्रीमान्, मैं इसका सम्पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, केवल सभा का ध्यान इस अनुच्छेद के खंड (2) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। भारतीय सरकार के अधिनियम में मूल अनुच्छेद से इसमें एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है। जिस रूप में भारतीय सरकार के अधिनियम में धारा 103 अनुकूलित की गई है उसके पीछे के भाग में यह पाठ है: ''कि खंड (1) के अनुसार पारित अधिनियम का निरसन अथवा संशोधन राज्य विधान मंडल अथवा प्रांतीय विधान मंडल कर सकेगा।'' अब खंड (2) का उपबंध यह है: ''संसद द्वारा इस प्रकार पारित कोई अधिनियम इसी रीति से पारित या अंगीकृत संसद के अधिनियम से संशोधित या निरसित किया जा सकेगा, किन्तु किसी राज्य के संबंध में, जहां कि वह लागू होता है, उस राज्य के विधान मंडल के अधिनियम द्वारा संशोधित या निरसित न किया जायेगा।'' यह अन्तर जान बूझकर ग्रहण किया गया है क्योंकि जब किसी एक राज्य द्वारा निर्मित किसी विधि के अनुसरण में दो अथवा अधिक राज्यों ने अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों को अपने ऊपर ले लिया है, तो एक राज्य का उन आभारों तथा उत्तरदायत्वों से विमुख होना स्पष्टतया संभव नहीं होना चाहिये। साथ ही साथ मुझे भय है कि खंड (2) की उपस्थिति सब राज्यों को इस धारा के प्रयोग में लाने से रोक देगी अथवा निरुत्साहित करेगी। मैं चाहता हूं कि किसी प्रकार से यह रखना संभव होता कि यदि समस्त सम्बद्ध राज्य-विधि में संशोधन अथवा निरसन करना चाहें तो संसद को तदनुकूल कार्य करना चाहिये। वस्तुस्थिति जैसी है उसके अनुसार समस्त खंड अप्रवृत्त हो सकता है क्योंकि कोई भी राज्य उस फंदे में नहीं फंसना चाहेगा, जिससे वह बाहर नहीं निकल सकता है। जैसी वस्तुस्थिति है उसके अनुसार वे संसद को शक्ति दे तो सकते हैं; पर एक बार अधिनियम के पारित होने पर राज्य लगभग शक्तिविहीन हो जायेंगे, चाहे वह विषय ऐसा ही हो, जिस पर कि राज्य

को शक्ति प्राप्त है। मैं समझता हूं कि जिस रूप में खंड (2) उपस्थित है, उस रूप में उसकी उलझनों पर विचार करने का कुछ अवसर होना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने जो प्रश्न उठाया है उसको मैंने ठीक-ठीक समझ लिया है, पर मेरा विचार है कि उन्होंने उपखंड (2) को सावधानी से नहीं पढ़ा। महत्त्वपूर्ण शब्द 'in like manner' (उसी प्रकार) हैं, जिससे कि राज्य के विधान मंडल, जिनके हित में यह विधान उसी रूप में पारित किया जाता है, अर्थात् संकल्प द्वारा यदि इस बात में सहमत है कि उस विधान का संशोधन अथवा निरसन किया जाये तो संसद को ऐसा करना पड़ेगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'May be amended' (संशोधित किया जा सकता है)।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** 'May' का अर्थ 'shall' है। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2781 और 2783 के निर्देश से अनुच्छेद 229 के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:
>
> '(1) If it appears to the Legislatures of two or more States to be desirable that any of the matters with respect to which Parliament has no power to make laws for the States except as provided in article 226 and 227 of this Constitution should be regulated in such States by Parliament by law, and resolutions to that effect are passed by the House or, where there are two Houses, by both the Houses of the Legislature of each of the States, it shall be lawful for Parliament to pass an Act for regulating that matter accordingly and any Act so passed shall apply to such States and to any other State by which it is adopted afterwards by resolution passed in that behalf by the House or, where there are two Houses, by each of the Houses of the Legislature of that State.' ''
>
> [(1) यदि किन्ही दो अथवा अधिक राज्यों के विधान मंडलों को यह वांछनीय प्रतीत हो कि उन विषयों में से, जिनके बारे में संसद को, इस संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त, उन राज्यों के लिये विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे तथा यदि उन राज्यों में से प्रत्येक विधान मंडल के सदन अथवा जहां दो सदन हों वहां दोनों सदनों ने उस लिये संकल्पों का पारण किया है, तो उस विषय का तदनुकूल विनियमन करने के लिये किसी अधिनियम का पारण करना संसद के लिये विधि-संगत होगा, तथा इस प्रकार पारित कोई

[अध्यक्ष]

अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा तथा किसी अन्य राज्य को, जो तत्पश्चात् अपने विधान मंडल के सदन अथवा जहां दो सदन हों वहां दोनों सदनों में से प्रत्येक से उस लिये पारित संकल्प द्वारा उसको अंगीकार करे, लागू होगा।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 229 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 229 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 230

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 230 संविधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 2784 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 230 में 'for any State or part thereof' (किसी राज्य अथवा उसके भाग के लिये) शब्दों के स्थान में 'for the whole or any part of the territory of India' (भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये) शब्द रखे जायें।''

(संशोधन संख्या 2786 और 2787 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 230 में 'for any State or part thereof' (किसी राज्य अथवा उसके भाग के लिये) शब्दों के स्थान में 'for the whole or any part of the territory of India' (भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिये) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 230 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 230 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 231

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 231 संविधान का अंग बने।''

(संशोधन संख्या 2789 और 2790 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** एक और संशोधन संख्या 196 है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं औपचारिक रूप में संशोधन संख्या 2789 को पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 231 के खंड (2) को अपमार्जित किया जाये।''

श्रीमान्, यह न्यूनाधिक रूप में उसी संशोधन के आधार पर है जिसको हम स्वीकार कर चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2788 के निर्देश से अनुच्छेद 231 के खंड (2) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जायें।''

***श्री ए. थानू पिल्ले** (तिरुवांकुर राज्य): अध्यक्ष महोदय, जब इस मसौदे को आरम्भ में तैयार किया गया था, उस समय भाग 3 के राज्यों को उसी आधार पर रखने का कोई विचार न था, जिस पर प्रथम अनुसूची के भाग 1 के राज्य हैं। वास्तव में यह बिल्कुल नया विचार है कि संसद के विधान बनाने के सम्बन्ध में भाग 3 के राज्यों को भाग 1 के राज्यों के समान आधार पर लाया जाये, और इसके लिये विभिन्न अनुच्छेदों ने जिन पर हम विचार कर रहे हैं, आवश्यक संशोधन किये जा रहे हैं जब हम अनुच्छेद 225 पर आये तो उसे स्थगित कर दिया गया। वह भाग 3 के राज्यों के लिये संसद के विधान बनाने के अधिकार के संबंध का है और इस कारण विचार स्थगित किया गया है कि यह स्पष्ट है कि केन्द्र अथवा संसद और भाग 3 के राज्यों के संबंध अभी पूर्णतया निश्चित नहीं किये गये हैं यह ठीक है, पर मैं जिस बात की ओर संकेत करना चाहता हूं वह यह है अब तक विधि बनाने के संबंध में केन्द्रीय विधान मंडल का अधिकार भाग 3 के राज्यों तक विस्तृत न था। तिरुवांकुर और मैसूर जैसे राज्यों में स्थानीय विधान मंडल द्वारा विधि बनती चली आ रही है। इस सदन की सूचना में मैं यह बात लाना चाहता हूं कि राज्यों की विधि और शेष भारत की विधि में बहुत अन्तर है। मैं यह कहूंगा कि तिरुवांकुर में हत्या के लिये हमने मृत्यु दंड को हटा दिया है। अब यह विषय समवर्ती सूची में आयेगा। ऐसे ही अन्य अनेक विषय हैं। इस बात का सामंजस्य आप अनुच्छेद 231 के उपबंधों से किस प्रकार कर रहे हैं; अर्थात् यह कि समस्त वर्तमान विधियां, केवल वे ही नहीं जिनका अधिनियम भविष्य में संसद करेगी वरन् वे वर्तमान विधियां भी जिनका केन्द्रीय विधान मंडल ने अब तक अधिनियम कर दिया है, प्रचलित रहेंगी जब कभी भी यदि राज्य की विधियों और केन्द्रीय विधियों में परस्पर विरोध हो तो इन दो प्रकार की विधियों को एक आधार पर लाना और उन में सामंजस्य करना बड़ा भारी कार्य होगा। जब तक यह नहीं होता तब तक भाग 3

[श्री ए. थानू पिल्ले]

के राज्यों में अनुच्छेद 231 का प्रवर्तन अधिकांश रूप में असंभव होगा। मुझे इस रूप का कोई उपबंध नहीं मिलता है जिसमें इस कठिनाई का निराकरण प्रस्थापित किया गया हो। मैं केवल इस बात की सभा को सूचना देना चाहता था जिससे कि इस बड़ी कठिनाई को दूर किया जा सके और संविधान में उपयुक्त उपबंध रखे जा सकें। समानुरूपता लाने के लिये बहुत सा कार्य करना पड़ेगा। साधारणतया भारतीय विधियों को राज्यों में ग्रहण करना होगा परन्तु कुछ विषयों में राज्यों के नियमों का समस्त देश में पुरस्थापन करना होगा। उदाहरणार्थ, मृत्यु दंड के संबंध में तिरुवांकुर से पुरानी व्यवस्था को अंगीकार करने और हत्या के लिये मृत्युदंड पुनः आरोप करने के लिये नहीं कहा जा सकता। प्रांतों की अपेक्षा राज्यों में जहां कहीं भी हमें अधिक प्रगतिशील विधान मिले उसे भारतीय संसद को स्वीकार करना होगा और समानुरूपता लानी होगी। मैं डा. अम्बेडकर से यह जानना चाहता हूं कि इस कठिनाई को किस प्रकार दूर किया जायेगा। मैं आशा करता हूं कि समानुरूपता लानी होगी और जो इस समय इसके लिये प्रयत्नशील हैं वे उन लोगों को प्रेरित करने में सफल होंगे जो राज्यों में प्रशासन तथा विधान के प्रति उत्तरदायी हैं कि वे समस्त देश पर प्रभाव डालने के विषयों में समान विधान अपनाने के लिये सहमत हों। यदि हम इस विषय में जो कठिनाई हमारे सामने है उनकी गुरुता का अनुभव किये बिना इस अनुच्छेद 231 को पारित करते हैं तो यह एक गलत कदम होगा। इस सदन तथा विशेषकर डा. अम्बेडकर की सूचना के लिये मैं इस विषय को रखना चाहता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं इस बात से सहमत हूं कि श्री थानू पिल्ले के प्रश्न के लिये व्याख्या अपेक्षित है। वह व्याख्या यह है। मुझे विश्वास है कि वे इस बात से सहमत होंगे कि विरोध के संबंध में अनुच्छेद 231 में जिस नियम का उल्लेख किया गया है, उसका पालन केवल वहीं तक करना होगा जहां तक कि संसद द्वारा निर्मित भावी विधि का संबंध है। वे देखेंगे कि अनुच्छेद 231 में ''चाहे पहले अथवा बाद में पारित'' शब्द हैं। निःसंदेह इस संविधान के प्रारम्भ होने के पश्चात् संसद द्वारा निर्मित विधि के संबंध में विरोध के नियम का दोनों भाग 1 के राज्यों तथा भाग 3 में उल्लिखित राज्यों द्वारा निर्मित विधियों के संबंध में समान रूप से प्रयुक्त होगा। संविधान के पारित होने से पूर्वकालीन निर्मित विधियों के संबंध में विरोध के प्रश्न की स्थिति यह है। जैसा कि मैने कई बार इस सदन में कहा है कि यह हमारी इच्छा है और मुझे विश्वास है कि सदन की भी यही इच्छा है कि भाग 1 और भाग 3 के राज्यों में परस्पर कोई विशिष्ट भेद किये बिना समस्त राज्यों में संविधान के समस्त अनुच्छेदों को साधारणतया प्रयुक्त करना चाहिये। यह अच्छी बात नहीं है कि जब कभी आप कोई अनुच्छेद पारित करें तो भाग 3 के राज्यों को कुछ बचत की सुविधा देने के लिये उस अनुच्छेद के साथ एक परन्तुक प्रविष्ट करें, यद्यपि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भाग 3 के राज्यों द्वारा निर्मित विधियों के संबंध में कुछ बचत करनी होगी। जैसा कि मैंने कहा था, एक नये भाग अथवा एक नई अनुसूची में, जिसमें भाग 3 के राज्यों के संबंध में रक्षण का अधिनियम बनाया जायेगा, इस कार्य का करना प्रस्थापित किया गया है जिससे कि जहां तक इस संविधान से पूर्व की निर्मित विधियों के प्रवर्त्तन में आने का संबंध है, उनकी रक्षा उस विशेष प्रपत्र अथव विशेष अनुसूची में किसी

अधिनियमित प्रावधान द्वारा की जायेगी। इस विषय में मैं एक बात और कहना चाहूंगा, वह यह है कि यद्यपि भाग 3 में राज्यों के लिये उस विशेष भाग में रक्षण देना प्रस्थापित किया गया है, फिर भी वह रक्षण अनन्य नहीं हो सकता क्योंकि उसमें दिया गया रक्षण का, कम से कम उस विशेष भाग में कुछ उपबंधों का अनुच्छेद 307 के अनुसार पालन किया जायेगा, जो राष्ट्रपति को अनुकूलन करने का अधिकार देता है। वह अनुकूलन भाग 1 में तथा भाग 3 में राज्यों को लागू होगा। अतः जहां तक संसद द्वारा अथवा भाग 3 के राज्यों के विधान मंडलों द्वारा इस संविधान के प्रारंभ के पूर्व निर्मित विधि का संबंध है, उनकी सर्वप्रथम अनुच्छेद 231 के प्रवर्त्तन से रक्षा की जायेगी, परन्तु वे अनुकूलन पर विचार करने वाले अनुच्छेद 307 के अधीन रहेंगी।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2788 के निदेश से अनुच्छेद 231 के खंड(1) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जायें।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 231 संविधान का अंग बने।'

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 231 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 232

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 232 को लेते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 232 के शीर्षक 'Restriction on Legislative Powers' (विधायिनी शक्तियों पर निर्बन्धन) को निकाल दिया जाये।''

आपकी अनुमति से मैं अपना नया संशोधन पेश करता हूं:

''(1) कि 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जायें; और

(2) अनुच्छेद 232 के खंड (क) के पश्चात् निम्न खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(aa) where the recommendation required was that of the Ruler, either by the Ruler or by the President.' ''

[(कक) जहां शासक की सिफारिश अपेक्षित थी, वहां शासक या राष्ट्रपति ने]

श्रीमान्, मैं यह समझ गया हूं कि 'शासक' शब्द के प्रयोग पर कुछ भावुक आपत्ति है। मैं इस भावुकता को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं और इस कारण मैं यह प्रस्थापित

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

करना चाहता हूं कि सदन इस संशोधन को इस समय स्वीकार कर ले और 'शासक' शब्द के स्थान में कोई दूसरा अच्छा शब्द खोजने के कार्य को मसौदा-समिति पर छोड़ दिया जाये। अन्यथा केवल इसी कारण के आधार पर कि इस समय हम 'शासक' शब्द के स्थान में कोई अधिक उपयुक्त शब्द नहीं खोज सकते हैं, इस पूरे के पूरे अनुच्छेद को व्यर्थ ही स्थगित रखना पड़ेगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''कि अनुच्छेद 232 के शीर्षक 'Restriction on Legislative Powers' (विधायिनी शक्तियों पर निर्बंधन) को निकाल दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 232 में—

(1) 'Part I' (भाग 1) शब्द और संख्या के पश्चात् 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और संख्या प्रविष्ट की जायें; और

(2) अनुच्छेद 22 के खंड (क) के पश्चात् निम्न खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(aa) where the recommendation required was that of the Ruler, either by the Ruler or by the President.' ''

[(कक) जहां शासक की सिफारिश अपेक्षित थी, वहां शासक या राष्ट्रपति ने]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 232 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 232 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 233

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 233 को लेते हैं।

(पंचम सप्ताह की सूची के संशोधन संख्या 2794 और 2795 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 233 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 233 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 234

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 234 को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 2796, 2797 और 2798 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 234 में निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(3) Where by virtue of any direction given to a State as to the construction or maintenance of any means of communication under the last preceding clause of this article costs have been incurred in excess of those which would have been incurred in the discharge of the normal duties of the State if such direction had not been given, there shall be paid by the Government of India to the State such sum as may be agreed or, in default of agreement, as may be determined by an arbitrator appointed by the Chief Justice of India in respect of the extra costs so incurred by the State.' ''

[(3) जहां इस अनुच्छेद के पूर्ववर्ती खंड के अधीन संचार साधनों के निर्माण अथवा उनको बनाये रखने के बारे में, किसी राज्य को दिये गये किसी निदेश के पालन में उससे अधिक खर्च होता है जो, यदि ऐसा निदेश नहीं दिया गया होता तो, राज्य के मामूली कर्त्तव्यों के पालन में खर्च होता, वहां उस राज्य द्वारा किये गये अतिरिक्त खर्चों के बारे में भारत सरकार द्वारा उस राज्य को ऐसी राशि दी जायेगी जो करार पाई जाये अथवा करार के अभाव में, जिसे भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।]

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 234 में निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(3) Where by virtue of any direction given to a State as to the construction or maintenance of any means of communication under the last preceding clause of this article costs have been incurred in excess of those which would have been incurred in the discharge of the normal duties of the State if such direction had not been given, there shall be paid by the Government of India to the State such sum as may be agreed or, in default of agreement, as may be determined by an arbitrator appointed by the Chief Justice of India in respect of the extra costs so incurred by the State.' ''

[(3) जहां इस अनुच्छेद के पूर्ववर्ती खंड के अधीन संचार साधनों के निर्माण अथवा उनको बनाये रखने के बारे में, किसी राज्य को दिये गये किसी निदेश के पालन में उससे अधिक खर्च होता है जो, यदि ऐसा निदेश नहीं दिया गया होता तो, राज्य के मामूली कर्त्तव्यों के पालन में खर्च होता, वहां उस राज्य द्वारा किये गये अतिरिक्त खर्चों के बारे में भारत सरकार द्वारा उस राज्य को ऐसी राशि दी जायेगी जो करार पाई जाये अथवा करार के अभाव में, जिसे भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।]

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 234 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 234 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 235

(संशोधन संख्या 2800 और 2801 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 235 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 235 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 236 और 237 स्थगित किये जाते हैं।

अनुच्छेद 238

(संशोधन संख्या 2805 और 2806 पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं औपचारिक रूप में संशोधन संख्या 2807 को पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 238 के परन्तुक में 'under the terms of any agreement entered into in that behalf by such State with the Union' शब्दों के स्थान में 'under the terms of any instrument or agreement entered into in that behalf by such State with the Government of the Dominion of

India or the Government of India or of any law made by Parliament under article 2 of this Constitution' शब्द रखे जायें।''

मैं और आगे प्रस्ताव पेश करता हूं:

''(1) कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2807 के निर्देश से अनुच्छेद 238 के खंड (2) में 'by law' शब्दों के पश्चात् 'made by Parliament' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

(2) कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2807 के निर्देश से अनुच्छेद 238 का परन्तुक अपमार्जित किया जाये।''

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''(1) कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2807 के निर्देश से अनुच्छेद 238 के खंड (2) में 'by law' शब्दों के पश्चात् 'made by Parliament' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

(2) कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2807 के निर्देश से अनुच्छेद 238 का परन्तुक अपमार्जित किया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 238 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 238 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 239

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 239 में 'State' शब्द के पूर्व, जहां कि वह पंक्ति 29 में दूसरी बार आता है, 'other' शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

(संशोधन संख्या 2810 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 239 में 'State' शब्द के पूर्व, जहां कि वह पंक्ति 29 में दूसरी बार आता है, 'other' शब्द प्रविष्ट किया जाये।''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 239 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 239 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 240

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 240 के खंड (1) के स्थान में निम्न नये खंड रखे जायें,

'(1) If the President receives such a complaint as the aforesaid, he shall, unless he is of opinion that the issues involved are not of sufficient importance to warrant such action, appoint a Commission to investigate in accordance with such instructions as he may give to them, and to report to him on the matters to which the complaint relates, or that of those matters as he may refer to them.

(1a) The Commission shall consist of such persons having special knowledge and experience in irrigation, engineering, administration, finance or law as the President may deem necessary for the purposes of such investigation.' ''

[(1) यदि राष्ट्रपति के पास कोई उपरोक्त शिकायत आती है और यदि उसकी यह सम्मति नहीं है कि अन्तर्ग्रस्त वाद पर इस प्रकार की कार्यवाही करने के लिये यथेष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं है तो वह अपने अनुदेशों के अनुसार, जिनको वह देगा, अनुसंधान करने के लिये एक आयोग नियुक्त करेगा जो उन विषयों पर, जिनका शिकायत से संबंध है, या उन विषयों पर, जिनका राष्ट्रपति निर्देश करे, राष्ट्रपति के पास प्रतिवेदन भेजेगा।

(1क) आयोग में ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इस अनुसंधान के प्रयोजनार्थ सिंचन, यंत्रकला, प्रशासन, वित्त अथवा विधि का उतना विशिष्ट ज्ञान तथा अनुभव हो जितना राष्ट्रपति आवश्यक समझे।]

(संशोधन संख्या 2812 से 2815 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 240 के खंड (1) के स्थान में निम्न नये खंड रखे जायें,

'(1) If the President receives such a complaint as the aforesaid, he shall, unless he is of opinion that the issues involved are not of sufficient importance to warrant such action, appoint a Commission to investigate in accordance with such instructions as he may give to

them, and to report to him on the matters to which the complaint relates, or that of those matters as he may refer to them.

(1a) The Commission shall consist of such persons having special knowledge and experience in irrigation, engineering, administration, finance or law as the President may deem necessary for the purposes of such investigation.' ''

[(1) यदि राष्ट्रपति के पास कोई उपरोक्त शिकायत आती है और यदि उसकी यह सम्मति नहीं है कि अन्तर्ग्रस्त वाद पर इस प्रकार की कार्यवाही करने के लिये यथेष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं है तो वह अपने अनुदेशों के अनुसार, जिनको वह देगा, अनुसंधान करने के लिये एक आयोग नियुक्त करेगा जो उन विषयों पर, जिनका शिकायत से संबंध है, या उन विषयों पर, जिनका राष्ट्रपति निर्देश करे, राष्ट्रपति के पास प्रतिवेदन भेजेगा।

(1क) आयोग में ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इस अनुसंधान के प्रयोजनार्थ सिंचन, यंत्रकला, प्रशासन, वित्त अथवा विधि का उतना विशिष्ट ज्ञान तथा अनुभव हो जितना राष्ट्रपति आवश्यक समझे।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 240 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 240 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 241

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 241 में 'in any State' (किसी राज्य में) शब्दों के स्थान में 'in any other State' (किसी अन्य राज्य में) शब्द रखे जायें।''

मैं समझता हूं कि उसी कारण के आधार पर यह संशोधन आवश्यक है जिसके आधार पर डा. अम्बेडकर ने पूर्ववर्ती अनुच्छेद पर संशोधन पेश किया था। मैं उनको एक अवसर यह विचार करने के लिये देना चाहता हूं कि क्या यह आवश्यक नहीं है। यदि इसको आवश्यक नहीं समझा जाता है तो मैं इस पर जोर नहीं देता हूं।

(कुछ परामर्श के पश्चात्) श्रीमान्, यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता है और इस संशोधन को वापस लेने के लिये अनुज्ञा प्राप्त करने की मैं प्रार्थना करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या अपने संशोधन को वापस लेने के लिये इस सदन की माननीय सदस्य को अनुमति है?

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 241 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 241 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 242

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 242 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 242 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 243 से 245

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम अनुच्छेद 243 पर आते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** किसी दशा में भी अनुच्छेद 244 को तो स्थगित रखना ही पड़ेगा क्योंकि केन्द्र और राज्यों में परस्पर वित्तीय संबंधों पर शासन करने वाले उपबंधों के अध्याय पर हमने विचार नहीं किया। मुझसे श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह कहा है कि अनुच्छेद 243 की भाषा का भी पुनरीक्षण अपेक्षित है। अत: हम अनुच्छेद 243, 244 और 245 को स्थगित रखें।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अनुच्छेद 245 के स्थगित रखने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** वह अनुच्छेद 243 और 244 के संबंध का है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** अन्य दो अनुच्छेदों का चाहे किसी रीति से संशोधन किया जाये, हम अनुच्छेद 245 को तो ले सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** शायद हम अनुच्छेद 245 को भी स्थगित रखना पसंद करें। जब हमने अनुच्छेद 243 और 244 पर विनिश्चिय नहीं किया है तो इस अनुच्छेद को भी स्थगित किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि उसको स्थगित रखना अच्छा है।

एक संशोधन की सूचना है कि अनुच्छेद 243 के पश्चात् एक नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये। यह सूचना श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका द्वारा दी गई है। उसे भी हम स्थगित करेंगे।

अनुच्छेद 246

(संशोधन संख्या 2828, 2829 और 2830 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 246 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 246 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** हम अब दूसरे भाग पर आते हैं। क्या हम उसे ले सकते हैं?

***श्री महावीर त्यागी:** हमने बड़ी द्रुतगति से कार्य किया है—जितनी हमने आशा की थी उससे भी अधिक द्रुतगति से। मैं नहीं समझता हूं कि लोगों ने उन उपबन्धों का अध्ययन कर लिया हो—कम से कम मैंने तो अपने आप को इसके लिये तैयार नहीं किया है।

***अध्यक्ष:** तो फिर हम पीछे लौटें और पुराने सबकों को दुराहयें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** उच्च न्यायालय संबंधी अध्याय में हम जिन उपबन्धों को छोड़ आये हैं उनको ले सकते हैं।

***अध्यक्ष:** क्या हम दंड के अभियोगों में उच्चतम न्यायालय को अपील के प्रश्न को ले लें जिसको हमने छोड़ दिया था—अर्थात् अनुच्छेद 112-ख? इस पर संशोधनों का ढेर है उस दिन हमने इसको इस आशा में स्थगित कर दिया था कि शायद कोई सर्वमान्य हल निकल आये और केवल एक ही संशोधन रहे। पर मैं देखता हूं कि दिन प्रतिदिन संशोधनों की संख्या बढ़ रही है। क्या हम इस विषय को ले लें?

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): उच्च न्यायालय संबंधी उपबन्ध अनुच्छेद 207 से लिये जा सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मुझे इस बात का डर है कि और अधिक संशोधन आ जायेंगे क्योंकि मेरे पास इस समय भी संशोधन आ रहे हैं।

अनुच्छेद 111-क और 111-ख

***अध्यक्ष:** श्री भार्गव संशोधन संख्या 12 को पेश कर सकते हैं जिसकी सूचना पंचम सप्ताह की प्रथम सूची में दी जा चुकी है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, इस संशोधन को पेश करने से पूर्व मैं उसके पूर्व इतिहास को संक्षेप में निर्देशित करूंगा। अनुच्छेद 111 के खंड (2) के एक नवीन खंड को प्रविष्ट करने के लिये जब मैंने छपी सूची में संशोधन संख्या 1927 की सूचना दी थी उस समय स्थिति भिन्न प्रकार की थी। उसके बाद जब अनुच्छेद 110 पर चर्चा हुई.....

***श्री महावीर त्यागी:** कृपया उस अनुच्छेद को पढ़ दीजिये जिसका आप उल्लेख कर रहे हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** जिस संशोधन को श्री त्यागी मुझसे पढ़वाना चाहते हैं वह इस प्रकार है:

''कि अनुच्छेद 111 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(3) An appeal shall lie to the Supreme Court against the judgments of the High Courts in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction in the following cases:

(a) convicting accused persons as a result of acceptance of appeals against their acquittal,

(b) sentencing to or confirming the sentence of death or transportation for life,

(c) in respect of other matters when the High Court grants a certificate that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[(3) भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी निर्णयों की निम्न अभियोगों में अपील उच्चतम न्यायालय में होगी:

(क) अभियुक्त व्यक्तियों को उनकी विमुक्ति के विरुद्ध अपील की स्वीकृति के फलस्वरूप दोष सिद्ध करने वाले,

(ख) मृत्यु दंडादेश देने अथवा आजन्म निर्वासन करने वाले अथवा इनकी सम्पुष्टि करने वाले,

(ग) अन्य विषय संबंधी जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाणपत्र दे दे कि वे उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक हैं।]

यह मूल संशोधन था जिसके आधार पर अनुच्छेद 110 के अधीन बहुत समय चर्चा हुई और उस समय प्रश्न उपस्थित था कि 'इस संविधान के निर्वचन के संबंध में' शब्दों को निकाला जाये या नहीं। उसके बाद इस सदन में यह कहा गया था कि यदि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया गया और मृत्युदंडादेश की अपील उपबन्धित कर दी गई तो उच्चतम न्यायालय पर बहुत अधिक कार्य हो जायेगा। इसके बाद मृत्यु दंडादेश की अपील के अधिकार को छीनने के संशोधन आने लगे और इसके पश्चात् पासा पलट गया और संशोधन के क्षेत्र को बहुत अधिक संकुचित कर दिया गया। अन्त में नये संशोधन भेजे गये जिनमें यह प्रयास किया गया था कि अभियोगों की संख्या कम करके 50 या 60 तक के लगभग रखी जाये। अब सदन का यह विचार है कि कम से कम उन मामलों की अपील की व्यवस्था इस संविधान में की जानी चाहिये जिनमें उच्च न्यायालय ने अपने अपीलीय अथवा मूल क्षेत्राधिकार में सर्वप्रथम मृत्यु दंडादेश दिया हो।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह कौन सा संशोधन है जिसे आप पेश कर रहे हैं?

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** पंचम सप्ताह की सूची 1 का संशोधन संख्या 15।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि एक ही विषय संबंधी बहुत से संशोधन हैं? अत: सब संशोधनों को पहले औपचारिक रूप में पेश किया जाये और उसके बाद उन पर साधारण चर्चा आरम्भ हो। ऐसा करना अधिक सुविधाजनक होगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैं भी यह चाहूंगा कि सब संशोधन 14 से लेकर 41 तक शीघ्र ही इस सदन के समक्ष रख दिये जायें।

***अध्यक्ष:** उस दिन इस विषय पर हमने सदस्य के कुछ समझौता करने के लिये चर्चा स्थगित कर दी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश अब तक समझौता न हो सका। अत: केवल यही सूरत रह गई है कि सब संशोधनों को एक साथ लिया जाये और उन पर मत लिया जाये और इसका फल यही होगा कि वह एक ऐसी वस्तु होगी जिसे कोई नहीं चाहेगा।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, डा. अम्बेडकर का संशोधन पेश होने दिया जाये और उसके बाद अन्य संशोधनों को पेश होने दिया जाये। यदि ऐसा होगा तो हम डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 24 पर ध्यान संकेन्द्रित कर सकेंगे।

***अध्यक्ष:** फिर भी अन्य संशोधन तो पेश किये ही जायेंगे जब तक कि सदस्य उन्हें न पेश करने की इच्छा प्रकट न करें।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** वे डा. अम्बेडकर के संशोधन पर भाषण दे सकते हैं जिससे ध्यान उस ओर संकेद्रित हो अपेक्षाकृत इसके कि प्रत्येक सदस्य केवल अपने ही संशोधन पर बोले। उनको बोलने से न रोका जाये। सब संशोधन पेश होने दिये जायें और वे सब बोलें।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): क्या मैं यह कह सकता हूं कि यदि श्री कृष्णास्वामी भारती द्वारा दिये गये सुझाव का हम पालन करें तो बड़ी सुविधा होगी? उसके द्वारा दांडिक क्षेत्राधिकार के साधारण प्रश्न पर चर्चा हो सकेगी। इसके साथ-साथ यदि किसी खास मामले में कोई सदस्य यह चाहे कि दंड-क्षेत्राधिकार को अभी उपबन्धित किया जाये तो उसकी बाद में चर्चा हो सकती है और उससे डा. अम्बेडकर के इस संशोधन का विरोध नहीं होगा कि उच्चतम न्यायालय को दंड-क्षेत्राधिकार सौंपने की शक्ति संसद को दी जायेगी। संक्षेप में इस प्रश्न की चर्चा की जा सकती है कि भविष्य में संसद को यह शक्ति सौंपनी चाहिये या नहीं। यदि यहां अभी हम कुछ विशिष्ट शक्तियां चाहते हैं तो उस पर डा. अम्बेडकर के संशोधन के साधारण विषय से पृथक रूप में बाद में विचार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** तो फिर मैं सब संशोधनों को पेश करने के लिये कहूंगा और उसके बाद साधारण चर्चा होगी। पंडित भार्गव औपचारिक रूप में अपने सब संशोधनों को पेश कर सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** वे बहुत अधिक हैं और इस विषय के विभिन्न पहलुओं से संबंध रखते हैं। खैर, मैं उन्हें पेश करता हूं।

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1927 के स्थान में निम्न रखा जाये:

''कि निम्न अनुच्छेद को नवीन अनुच्छेद 112-ख के रूप में प्रविष्ट किया जाये;

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

112-B. An appeal shall lie in the following cases to the Supreme Court in the exercise of its criminal jurisdiction:

(a) convicting accused persons as a result of acceptance of appeals against their acquittal,

(b) sentencing to or confirming the sentence of death or transportation for life,

(c) in respect of other matters when the High Court grants a certificate that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.'

[112-ख. निम्न मामलों की अपील उच्चतम न्यायालय में उसके दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग

(क) अभियुक्त व्यक्तियों को उनकी विमुक्ति के विरुद्ध अपील की स्वीकृति के फलस्वरूप दोष सिद्ध करने वाले,

(ख) मृत्यु दंडादेश देने अथवा आजन्म निर्वासन करने वाले अथवा इनकी सम्पुष्टि करने वाले,

(ग) अन्य विषय संबंधी जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाणपत्र दे दे कि वे उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

''कि संशोधन संख्या 1927 और 1923 के निर्देश से अनुच्छेद 111 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'111-A. An appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction in the following cases:

(a) When the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.

(b) When the High Court convicts any person as a result of acceptance of appeal by the Government against his acquittal and sentences him to more than five years' imprisonment or ten thousand rupees fine, or when the High Court enhances the sentence awarded by the lower court by more than five years' imprisonment or ten thousand rupees fine.

(c) When the High Court sentences to or confirms the sentence of death and the judges of the High Court are not unanimous in their findings of fact or law.'

[111-क. भारत राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी निर्णय की निम्न अभियोगों में अपील उच्चतम न्यायालय में होगी:

(क) जब उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।

(ख) जब उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति पर उसकी विमुक्ति के विरुद्ध सरकार द्वारा की गई अपील की स्वीकृति के फलस्वरूप दोष सिद्ध करता है और उसको पांच वर्ष से अधिक के कारावास का अथवा दस हजार रुपया जुर्माने का दंडादेश देता है या जब उच्च न्यायालय अवर न्यायालय द्वारा दिये गये दंडादेश को बढ़ाकर पांच वर्ष से अधिक के कारावास अथवा दस हजार रुपया जुर्माने में कर देता है।

(ग) जब उच्च न्यायालय मृत्युदंड का दंडादेश देता है अथवा उसकी सम्पुष्टि करता है और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथ्य अथवा विधि के निर्णय पर एकमत नहीं है।]

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 16 (चतुर्थ सप्ताह) में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के स्थान में निम्न रखा जाये:

'111-A. (1) An appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction—

(a) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal;

(b) if the High Court sentences any person to death on appeal from an order of acquittal or in its revisional powers of enhancement or in the exercise of its original jurisdiction;

(2) The Parliament may by law confer on the Supreme Court further powers to entertain and hear appeals from any judgment or sentence or final order of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction subject to such conditions and limitations as may be specified in such law.'

[111-क. (1) भारत राज्य क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी निर्णय की अपील उच्चतम न्यायालय में होगी—

(क) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला अपील किये जाने लायक है;

(ख) यदि उच्च न्यायालय विमुक्ति के आदेश की अपील में अथवा दंडादेश बढ़ाने की अपनी पुनरीक्षणीय शक्तियों से अथवा अपने मूल क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी व्यक्ति को मृत्यु का दंडादेश देता है;

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

(2) संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी निर्णय अथवा दंडादेश अथवा अन्तिम आदेश की, उन शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो उस विधि में उल्लिखित हों, अपील स्वीकार करने और सुनने की और भी अधिक शक्तियां प्रदान करेगी।]

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 16 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 111 के खंड (ख) में से 'and sentences him to more than five years' imprisonment or ten thousand rupees fine' (और उसको पांच वर्ष से अधिक के कारावास का अथवा दस हजार रुपये जुर्माने का दंडादेश देता है) शब्दों को अपमार्जित किया जाये और 'by more than five years' imprisonment or ten thousand rupees fine' (पांच वर्ष से अधिक के कारावास अथवा दस हजार रुपया जुर्माने में कर देता है) शब्दों के स्थान में 'and sentences the person so convicted or whose sentence is so enhanced to death' (इस प्रकार दोष-सिद्ध व्यक्ति को दंडादेश देता है अथवा जिसका दंडादेश इस प्रकार बढ़ाकर मृत्युदंड में कर दिया जाता है) शब्द रखे जायें।

''कि संशोधन संख्या 1927 और 1923 के निर्देश से अनुच्छेद 111 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद रखा जाये:

'111-A. An appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction in the following cases:

(a) When the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.

(b) When the High Court convicts any person as a result of acceptance of appeal by the Government against his acquittal and sentences him to more than five years' imprisonment or ten thousand rupees fine, or when the High Court enhances the sentence awarded by the lower court by more than five years' imprisonment or ten thousand rupees fine.'

[111-क. भारत राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी निर्णय की निम्न अभियोगों में अपील उच्चतम न्यायालय में होगी:

(क) जब उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।

(ख) जब उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति पर उसकी विमुक्ति के विरुद्ध सरकार द्वारा की गई अपील की स्वीकृति के फलस्वरूप दोष सिद्ध करता है और उसको पांच वर्ष से अधिक के कारावास का अथवा दस हजार रुपया जुर्माने का दंडादेश देता है या जब उच्च न्यायालय अवर न्यायालय द्वारा दिये गये दंडादेश को बढ़ाकर पांच वर्ष से अधिक के कारावास अथवा दस हजार रुपया जुर्माने में कर देता है।

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 19 में निम्न खंड, खंड (ग) के रूप में प्रविष्ट किया जाये:

'(c) When the High Court sentences to or confirms the sentence of death.'

[(ग) जब उच्च न्यायालय मृत्यु दंड का दंडादेश देता है अथवा उसकी संपुष्टि करता है।]

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 20 में निम्न शब्दों को प्रस्तावित खंड (ग) के अन्त में प्रविष्ट किया जाये:

'or transportation for life.'

(हिन्दी रूपान्तर में मृत्युदंड के पश्चात् 'आजन्म कारावास'।)

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के खंड (1) के उपखंड (ख) में–

(1) 'acquittal' (विमुक्ति) शब्द के पश्चात् 'or enhancement' (अथवा परिवृद्धि) शब्द, और

(2) 'original' (मूल) शब्द के पश्चात् 'appellate or revisional' (पुनरीक्षणीय अथवा अपीलीय) शब्द प्रविष्ट किये जायें।

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 में प्रस्थापित नये अनुचछेद 111-क के खंड (1) के उपखंड (2) के पश्चात् निम्न नवीन उपखंड प्रविष्ट किया जाये:

'(c) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supremem Court.' ''

[(ग) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 24 में प्रस्थापित अनुच्छेद 112-ख के स्थान में निम्न रखा जाये:

'112-B. (1) An Appeal shall lie to the Supreme Court from the judgment of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction in the following cases:

(a) When the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

(b) When the High Court convicts any person as a result of acceptance of appeal by the Government against his acquittal or when the High Court enhances the sentence awarded by the lower court.

(c) When the High Court sentences to or confirms the sentence of death and the judges of the High Court are not unanimous in their findings of fact or law.' ''

(2) Parliament may by law confer on the Supreme Court further powers to entertain and hear appeals from any judgment or sentence or final order of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction subject to such conditions and limitations as may be specified in such law.' ''

[112-ख. भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी निर्णय की निम्न अभियोगों में अपील उच्चतम न्यायालय में होगी:

(क) जब उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।

(ख) जब उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति पर उसकी विमुक्ति के विरुद्ध सरकार द्वारा की गई अपील की स्वीकृति के फलस्वरूप दोष सिद्ध करता है अथवा जब उच्च न्यायालय अधीन न्यायालय द्वारा दिये हुये दंडादेश को बढ़ाता है।

(ग) जब उच्च न्यायालय मृत्युदंड का दंडादेश देता है अथवा उसकी सम्पुष्टि करता है और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश तथ्य अथवा विधि के निर्णय पर एकमत नहीं है।

(2) संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की, उन शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो उस विधि में उल्लिखित हों, अपील स्वीकार करने और सुनने की और भी अधिक शक्तियां प्रदान करेगी।]

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 34 में प्रस्थापित नये अनुचछेद 112-ख के खंड (1) के उपखंड (ख) में 'acquittal' (हिंदी रूपांतर में 'सिद्ध करता है') शब्द के पश्चात् 'and sentences him to a period of more than 5 years' imprisonment or to a fine of Rs. 10,000' (और उसे पांच वर्ष से अधिक कारावास का अथवा 10,000 रुपया जुर्माने का दंडादेश देता है) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 34 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 112-ख के खंड (1) के उपखंड (ख) के अन्त में शब्द निम्न प्रविष्ट किये जायें:

'by more than 5 years' imprisonment or Rs. 10,000 fine' ''

[5 वर्ष से अधिक का कारावास अथवा 10,000 रुपया जुर्माना।]

इसके बाद, श्रीमान्, कोई 15 मिनट पूर्व मैंने एक और संशोधन की सूचना दी है।

***अध्यक्ष:** वह कौन सा है?

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 14 से 41 तक के निर्देश से निम्न अनुच्छेद को अनुच्छेद 111-क के रूप में रखा जाये:

'111-A. (1) An appeal shall lie to the Supreme Court from a judgment or final order in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal.

(2) The Supreme Court shall have appellate criminal jurisdiction to hear appeals from any judgment, sentencee or final order of a High Court or such other court as may be prescribed by law by the Parliament subject to such conditions and limitations as may be prescribed by such law.'

[111-क. (1) भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के किसी दंड-कार्यवाही में दिये हुये निर्णय या अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।

(2) उच्चतम न्यायालय को किसी उच्च न्यायालय अथवा ऐसे किसी अन्य न्यायालय के, जो संसद की विधि द्वारा उन शर्त्त और परिसीमाओं के अधीन जो उस विधि में विनिहित हैं विनिहित की गई हो, किसी निर्णय, दंडादेश अथवा अन्तिम आदेश की अपील सुनने का अपीलीय क्षेत्राधिकार होगा।]

अत: श्रीमान्, मैं निवेदन करूंगा कि इन संशोधनों का क्षेत्र उन मामलों में भी अपील की व्यवस्था करने से लेकर जिनमें प्रारम्भ में पांच वर्ष अथवा उससे अधिक का दंड दिया गया हो इस अन्तिम संशोधन तक है जिसको मैंने अभी पेश किया है कि केवल उन मामलों की, जिनमें उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है, अन्य मामलों के साथ, जिनके लिये संसद उच्चतम न्यायालय को अपील स्वीकार करने और सुनने का विधि द्वारा क्षेत्राधिकार देती है, उच्चतम न्यायालय में अपील होगी। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि जिस रूप में मैं विधि के सिद्धांत को समझता हूं उसके अनुसार यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय के संपूर्ण क्षेत्र को निर्बन्धित कर दिया गया है। मैं यह मानता हूं कि जहां तक उच्च न्यायालयों का संबंध है किसी विशिष्ट राज्यों की जनता की संपत्ति और जीवन के संबंध में उनके शब्द अन्तिम हैं। इस बात को मैं समझ सकता हूं।

***अध्यक्षः** साधारण चर्चा के समय आप बोल सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 16 और 19 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'111-A. An appeal shall lie to the Supreme Court from a final order of High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction–

(a) if by such final order any person has been sentenced to death for the first time in the case; or

(b) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[111-क. भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में दिये हुये अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में होगी:

(क) यदि उस अन्तिम आदेश द्वारा कि व्यक्ति को उस मामले में प्रथम बार मृत्युदंड दिया गया है; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधन संख्या 23 के स्थान में निम्न संशोधन रखा जाये।

'कि नये अनुच्छेद 112-क के पश्चात् निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'112-B. Conferment on the Supreme Court of Appeallate jurisdiction with regard to criminal matters—Parliament may by law confer on the Supreme Court power to entertain and hear appeals from any judgement, final order or sentence of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction subject to such conditions and limitations as may be specified in such law.

[112-ख. दंड विषयों में उच्चतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार—संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी निर्णय अथवा अन्तिम आदेश अथवा दंडादेश की, उन शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो उस विधि में उल्लिखित हों, अपील स्वीकार करने और सुनने की शक्तियां प्रदान करेगी।]

***अध्यक्षः** क्या 112-क कोई अनुच्छेद है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** 112-क इस सदन द्वारा पहले ही पारित हो चुका है।

***श्री एच.वी. पातस्करः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 के स्थान में निम्न अनुच्छेद रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 112-क के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद रखा जाये:

'112-B. The Supreme Court shall with such exceptions and subject to such regulations as may be prescribed by law of the Parliament have appellate jurisdiction to hear appeals from any judgment, final order or sentence of a High Court or such other Court as may be prescribed by law of the Parliament in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction.' ''

[112-ख. उच्चतम न्यायालय को उन अपवादों के सहित तथा उन विनियमों के अधीन जो संसद की विधि द्वारा विनिहित किये गये हो भारत राज्य क्षेत्र में की किसी उच्च न्यायालय अथवा ऐसे अन्य न्यायालय के, जो संसद की विधि द्वारा विनिहित की गई हो, अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी निर्णय, अन्तिम आदेश अथवा दंडादेश की अपील सुनने का अपीलीय क्षेत्राधिकार होगा।]

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मेरे नाम से तीन संशोधन हैं। पहला संशोधन संख्या 26 है, दूसरा 27 है और तीसरा संशोधन पर संशोधन है जिसकी सूचना मैंने सचिव को आज प्रातःकाल ही दी है। आपकी अनुज्ञा से मैं तीनों संशोधनों को पेश करूंगा।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:

'(1) an appeal shall lie to the Supreme Court from a judgement or final order in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India–

(a) if the High Court has, on appeal or revision, reversed the acquittal of an accused person and sentenced him to death; or

(b) if the High Court certifies that the case involved a substantial question of law or is otherwise a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[(1) भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के किसी दंड कार्यवाही में दिये हुए निर्णय या अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी:

[डा. बक्शी टेकचन्द]

(क) यदि अपील अथवा पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति को उलट दिया हो और उसको मृत्युदंड दिया हो; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामले में विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है या वह अन्यथा उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

इसके पश्चात् संशोधन संख्या 27 है जिसकी सूचना डा. पी.के. सेन, डा. पी.एस. देशमुख, श्री के.एम. मुंशी और मैंने दी है और वह इस प्रकार है:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:

'(1) An appeal shall lie to the Supreme Court from a judgement or final order in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India:

(a) if the High Court has, on appeal or revision reversed the order of acquittal of an accused person and sentenced him to death, or has in any other case enhanced the sentence passed on an accused person and sentenced him to death; or

(b) if the High Court certifies that the case involves a substantial question of law or is otherwise a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[(1) भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के किसी दंड कार्यवाही में दिये हुए निर्णय या अन्तिम आदेश की अपील उच्चतम न्यायालय में होगी:

(क) यदि अपील अथवा पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया हो और उसको मृत्युदंड दिया हो या किसी अन्य मामले में किसी अभियुक्त व्यक्ति पर पारित दंडादेश को बढ़ा दिया हो और उसको मृत्युदंड दिया हो; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामले में विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है या वह अन्यथा उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

इसके पश्चात् तीसरा संशोधन है जिसकी सूचना मैंने आज प्रात:काल दी थी। उसका रूप अधिक विनीत है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 23 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:

'An appeal shall lie to the Supreme Court from a judgement or an order in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India:

(a) if the High Court has, on appeal, reversed the order of acquittal of an accused person and has sentenced him to death; or

(b) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[भारत राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के किसी दंड कार्यवाही में दिये हुये निर्णय अथवा आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी:

(क) यदि अपील अथवा पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया हो और उसको मृत्युदंड दिया हो; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

श्रीमान्, मैं नहीं समझता हूं कि इस समय इस अन्तिम संशोधन के समर्थन में मैं भाषण दूं, पर बाद में जब साधारण चर्चा होगी उस समय मैं कुछ कहूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन 23 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:

'(1) An appeal shall lie to the Supreme Court from an order of a High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction—

(a) if such order involves a sentence of death on any person and such order has been passed against him for the first time in the case of the High Court either in appeal or reversion from any order passed by High Court to any other Court; or

(b) if the HIgh Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[(1) भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी—

(क) यदि उस आदेश में किसी व्यक्ति का मृत्यु दंडादेश अन्तर्ग्रस्त है और वह आदेश उच्च न्यायालय द्वारा अपील में या किसी अन्य न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा पारित किये गये किसी आदेश के पुनरीक्षण में उस व्यक्ति के विरुद्ध पहली बार उस मामले में पारित किया गया है; अथवा

[श्री जसपतराय कपूर]

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

***अध्यक्ष:** क्या आप इसके विकल्प को पेश नहीं कर रहे हैं?

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान्, मैं इसके विकल्प को पेश करता हूं, पर उसके पढ़ने की मुझे आवश्यकता नहीं है। यह समझ लेना चाहिये कि वह पढ़ दिया गया।

''(1) An appeal shall lie to the Supreme Court from an order of a High Court in the territory of India in the exercise of its criminal jurisdiction—

(a) if the High Court either on appeal reversing the order of acquittal or in revision enhancing the sentence, or in a trial by itself under Chapter 44 of Criminal Procedure Code (Act V of 1898) has sentenced any person to death;

(b) or if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[(1) भारत राज्य-क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी—

(क) यदि उच्च न्यायालय में अपील में विमुक्ति के आदेश को उलट कर अथवा पुनरीक्षण में दंडादेश को बढ़ाकर अथवा दंड प्रक्रिया संहिता (1898 के भाग 5) के अध्याय 44 के अधीन स्वयं अपनी जांच में किसी व्यक्ति को मृत्युदंडादेश दिया हो।

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रांत और बरार : मुस्लिम): क्या मेरे संशोधन संख्या 29 का पढ़ा जाना आवश्यक है क्योंकि संशोधन संख्या 28 और 29 एक से हैं?

***अध्यक्ष:** कोई आवश्यक नहीं है।

***काजी सैयद करीमुद्दीन:** मैं उसे औपचारिक रूप में पेश करूंगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 111-क के खंड (1) के स्थान में निम्न खंड रखा जाये:

'(1) An appeal shall lie to the Supreme Court from an order of a High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction—

(a) if such order involves a sentence of death on any person and such order has been passed against him for the first time in the case by the High Court either in appeal or revision from any order passed by the High Court to any other Court; or

(b) if the HIgh Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[(1) भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी–

(क) यदि उस आदेश में किसी व्यक्ति का मृत्यु दंडादेश अन्तर्ग्रस्त है और वह आदेश उच्च न्यायालय द्वारा या तो अपील में या किसी अन्य न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा पारित किये गये किसी आदेश के पुनरीक्षण में उस व्यक्ति के विरुद्ध पहली बार उस मामले में पारित किया गया हो; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

(संशोधन संख्या 32 पेश नहीं किया गया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 23 के निर्देश से अनुच्छेद 111 के पश्चात् निम्न अनुच्छेद 111-क प्रविष्ट किया जाये:

'111-A. (1) An appeal shall lie to the Supreme Court from a judgement or final order in any criminal proceeding in a High Court in the territory of India or in any criminal proceeding in any tribunal in the said territory from which no appeal, revision or other proceeding lies to the High Court—

(a) against any sentence of death passed or confirmed by the High Court in appeal or revision, or passed by such tribunal; or

(b) if the High Court or the tribunal certifies that the case involves a substantial question of law or that it is otherwise a fit case for appeal to the Supreme Court.

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

(2) Parliament may by law confer on the Supreme Court any further powers to entertain and hear appeal from any judgment or final order of a High Court or other tribunal in the exercise of its criminal jurisdiction subject to such conditions and limitations as may be specified in such law.' ''

[111-क. (1) भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के किसी दंड कार्यवाही में दिये हुये निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की अथवा उक्त राज्यक्षेत्र के किसी न्यायाधिकरण के किसी दंड कार्यवाही में दिये हुये निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की जिसके संबंध में उच्च न्यायालय में अपील पुनरीक्षण अथवा अन्य कार्यवाही नहीं होती है, अपील उच्चतम न्यायालय में होगी—

(क) अपील अथवा पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा पारित अथवा संपुष्ट या उस न्यायाधिकरण द्वारा पारित किसी मृत्यु दंडादेश की, अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण प्रमाणित करता है कि मामले में विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा अन्यथा मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।

(2) संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को किसी उच्च न्यायालय अथवा अन्य न्यायाधिकरण के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की, उन शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो उस विधि में उल्लिखित हों, अपील स्वीकार करने और सुनने की शक्तियां प्रदान करेगी।]

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान, संशोधन संख्या 37 के स्थान में मैं एक और संशोधन पेश करना चाहूंगा जिसकी मैंने आज प्रात:काल सूचना दी है। उसमें संशोधन संख्या 37 के स्थान में इस संशोधन को रखने का प्रयास किया गया है। जो इस प्रकार है:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 24 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 112-ख में 'Parliament may' शब्दों के स्थान पर 'Parliament shall within a year of the commencement of this Constitution' (इस संशोधन के प्रारम्भ होने से एक वर्ष के अन्तर्गत संसद) शब्द रखे जायें।''

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 38 भी आपके नाम से है।

***श्री जसपतराय कपूर:** उसे मैं पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान्।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 24 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 112-ख में निम्न नवीन परन्तुक जोड़ दिये जायें:

'Provided, however, that an appeal shall lie to the Supreme Court from a *final order* of a High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction—

(a) if *by such final order* any person has been sentenced to death for the *first time* in the case; or

(b) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[परन्तु भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी—

(क) यदि उस अन्तिम आदेश में किसी व्यक्ति को उस मामले में पहली बार मृत्यु दंडादेश दिया गया है; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

इसके पश्चात्, श्रीमान्, तीन विकल्प हैं:

''Provided, however, that an appeal shall lie to the Supreme Court from a *final order* of a High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction, if *by such final order* any person has been sentenced to death *for the first time* in the case;"

or, alternatively,

''Provided, however, that an appeal shall lie to the Supreme Court from a *final order* of a High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction, *if by such final order* any person has been sentenced to death in reversal of the order of acquittal.''

or, alternatively,

''Provided, however, that an appeal shall lie to the Supreme Court for a *final order* of a High Court in the territory of India made in the exercise of

[श्री जसपतराय कपूर]

its criminal jurisdiction, if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.''

[''परन्तु भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि उस अन्तिम आदेश में किसी व्यक्ति को उस मामले में पहली बार मृत्यु दंडादेश दिया है।''

अथवा इसके विकल्प में,

[''परन्तु भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि उस अन्तिम आदेश में विमुक्ति के आदेश को उलटकर किसी व्यक्ति को मृत्यु दंडादेश दिया है।''

अथवा इसके विकल्प में,

[''परन्तु भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

***काजी सैयद करीमुद्दीनः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि उपरोक्त संशोधन संख्या 24 में प्रस्तावित नये अनुच्छेद 112-ख में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided, however, that an appeal shall lie to the Supreme Court from a *final order* of a High Court in the territory of India made in the exercise of its criminal jurisdiction—

(a) if *by such final order* any person has been sentenced to death for the *first time* in the case; or

(b) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court.' ''

[परन्तु भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग संबंधी किसी अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी—

(क) यदि उस अन्तिम आदेश में किसी व्यक्ति को उस मामले में पहली बार मृत्यु दंडादेश दिया गया है; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।]

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, आपकी अनुज्ञा से, मैं अनुच्छेद 112-क को अनुच्छेद 111-क के रूप में पुर:स्थापन करने वाले प्रथम सूची के संशोधन संख्या 41 को पेश करना चाहूंगा। मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 112 के बाद में रखने के बदले में उसे अनुच्छेद 111 के पश्चात् प्रविष्ट किया जाये। परिवर्तन केवल विवरण के विषय में है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 1932 के निर्देश से अनुच्छेद 111 के पश्चात् निम्न नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'111-A. Any person against whom any judgment, sentence or order has been passed by a High Court in the territory of India in any criminal proceeding or any proceeding relating to contempt of Court, or from any judgment, sentence or order of any other tribunal exercising criminal jurisdiction which judgment, sentence or order is not liable to be set aside or modified in appeal or revision by any such High Court shall have a right of appeal in the following case, namely—

(a) against any sentence of death;

(b) against any other judgment, sentence or order of such High Court or tribunal as the case may be, where the judgment, sentence or order involves a substantial question of law; or

(c) in any other case where the High Court or the tribunal as the case may be, certifies that it is a fit case for appeal.' ''

[111-क. किसी व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा किसी दंड कार्यवाही में अथवा न्यायालय अवमान संबंधी किसी कार्यवाही में कोई निर्णय, दंडादेश अथवा आदेश पारित किया गया है उसकी या दांडिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले किसी अन्य न्यायाधिकरण के निर्णय, दंडादेश अथवा आदेश की, जिसको अपील अथवा पुनरीक्षण में किसी ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा रद्द अथवा जिसमें रूपभेद नहीं किया जा सकता है, निम्न मामलों में अपील करने का अधिकार होगा:

(क) किसी मृत्यु दंडादेश के विरुद्ध;

(ख) उस उच्च न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण के, जैसी भी स्थिति हो, किसी अन्य निर्णय, दंडादेश अथवा आदेश के विरुद्ध जिस निर्णय, दंडादेश अथवा आदेश में विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है; अथवा

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

(ग) किसी अन्य मामले में जिसके लिये उच्च न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण, जैसी भी स्थिति हो, प्रमाणित करता है कि मामला अपील किये जाने लायक है।]

***अध्यक्ष:** एक संशोधन है जिसकी सूचना मुझे प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना से प्राप्त हुई है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** कौनसा श्रीमान्?

***अध्यक्ष:** आपने इस संशोधन की सूचना दी है:

''निम्न अनुच्छेद को 111-क के स्थान में रखा जाये:

'भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के किसी दंड कार्यवाही में दिये हुये निर्णय अथवा अन्तिम आदेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला अपील किये जाने लायक है.....' ''

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह वह है जिसको आपकी अनुज्ञा से मैं पेश कर चुका हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** वह पेश हो चुका है।

***अध्यक्ष:** तो मैं समझता हूं कि संशोधन इतने ही हैं। विभिन्न अनुच्छेदों पर कुछ और संशोधन हैं और मैं समझता हूं कि जो संशोधन पेश हो चुके हैं वे सब इनमें आ जाते हैं और मैं छपी हुई सूची के किसी भी संशोधन को नहीं लेता हूं। अब सब संशोधन पेश हो चुके हैं और समूचे प्रश्न पर चर्चा की जा सकती है। मैं समझता हूं कि संशोधन की इस बाढ़ में से हमें कुछ न कुछ मिल ही जायेगा।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, सदन के समक्ष कदाचित एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यह आवश्यक है कि जो विभिन्न संशोधन पेश किये गये हैं उन पर सदन बहुत ध्यान देकर विचार करे। प्रश्न यह है कि क्या दांडिक मामलों की उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार होना चाहिए या नहीं, और यदि हो तो किन परिस्थितियों में?

मैं समझता हूं कि बहुमत इस पक्ष में है कि कुछ मामलों में अपील की शक्ति उच्चतम न्यायालय को होनी चाहिए। यहां तक कि डा. अम्बेडकर ने संशोधन संख्या 24 पेश किया है जिसमें कहा गया है कि संसद दांडिक मामलों की अपील के लिए उपबन्ध बनायेगी। अन्य संशोधन, जो पेश किये गए हैं, वे कुछ और आगे बढ़ते हैं और कहते हैं कि कुछ उल्लिखित मामलों में संविधान में भी अपील के लिये उपबन्ध होने चाहिये और हमारे सामने यही वास्तविक प्रश्न है कि क्या इस विषय को पूर्णतया संसद पर छोड़ा जाये या क्या स्वयं संविधान में कुछ मामलों की अपील के लिये उपबन्ध रखे जायें। सदन के समक्ष यह पहला प्रश्न है।

दूसरा प्रश्न यह है: यदि सदन इस सिद्धांत को स्वीकार कर लेता है कि दांडिक मामलों की अपील के लिये इस संविधान में व्यवस्था होनी चाहिये तो वे कौन से मामले हैं जिनकी अपील होगी? यदि हम विभिन्न संशोधनों का विश्लेषण करें तो हमें विदित

होता है कि सब संशोधन सर्वप्रथम यह सुझाव देते हैं कि जिन मामलों में स्वयं उच्चतम न्यायालय को यह संतोष हो जाता है कि अपील होनी चाहिये तो उनकी अपील होगी। जब इस सदन में व्यवहार विषयक मामलों के उपबन्धों पर चर्चा हो रही थी उस समय डा. अम्बेडकर ने यह बिल्कुल ठीक कहा था कि उच्च न्यायालय को यह कहने का नैसर्गिक अधिकार है कि कोई मामला अपील किये जाने लायक है या नहीं और यदि इस प्रभाव का कोई प्रमाणपत्र है तो व्यवहार विषयक अपील होने दी जायेगी। मेरा निवेदन है कि यही सिद्धान्त उतने ही बलपूर्वक दांडिक अपीलों पर लागू होता है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित की गई कोई अपील है और स्वयं उच्च न्यायालय का यह विचार है कि मामला अपील किये जाने लायक है तो क्यों कर उस अपील को न होने दिया जाये, इसके विरुद्ध कोई तर्क नहीं है। इस विषय पर मैं समझता हूं कि दो राय नहीं हो सकती हैं कि स्वयं संविधान में उन मामलों की अपील की व्यवस्था की जाये जिन के लिये उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला अपील किये जाने लायक है। यह उन उपबन्धों में से एक उपबन्ध है जिसके प्रविष्ट करने का कुछ संशोधनों द्वारा प्रयास किया गया है। मेरी खुद की यह राय है कि ऐसा उपबन्ध होना चाहिये।

दूसरा सुझाव यह है कि अधिकार के रूप में, यदि मामले में विधि का सारवत् प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है तो अपील होगी। यह स्पष्ट है कि इस सुझाव में भी बहुत बल है। परन्तु अभी यह कहा जा सकता है कि हम यह नहीं जानते कि ऐसे उपबन्ध की जो अपीलें प्रस्तुत की जायेंगी उनकी संख्या पर क्या प्रभाव पड़ेगा? अत: मैं स्वयं यह सोचता हूं कि इस प्रश्न को हम संसद पर छोड़ दें।

तीसरा सुझाव यह है कि जहां उच्च न्यायालय द्वारा पहली बार मृत्यु दंडादेश पारित किया है उसकी अधिकार के रूप में, अपील करने का अधिकार होना चाहिये। मैं समझता हूं कि यह बड़ा ही युक्तियुक्त सुझाव है। व्यवहार-विषयक मामलों में हमने अनेक अपीलों की व्यवस्था की है; और यह स्वाभाविक है कि यहां कम से कम एक अपील तो हो। यदि एक न्यायालय अभियुक्त को विमुक्त करता है और अपील में उच्च न्यायालय जांच को उलट देता है और उसको मृत्युदंडादेश देता है तो मैं समझता हूं कि विवेक यह चाहता है कि अभियुक्त को उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार देना चाहिये। कम से कम एक न्यायालय ने उसे निरपराध पाया है। दो न्यायाधीशों में निर्णय की त्रुटि हो सकती है मैं आपको बहुत से दृष्टान्त दे सकता हूं जिनमें सरकार ने अपील की है और दोनों माननीय न्यायाधीश इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि वास्तव में वह व्यक्ति अपराधी है। यह दूसरा मामला है जिसके लिये मैं समझता हूं कि अपील का उपबन्ध अधिकार के रूप में होना चाहिये।

अन्त में संशोधन में यह सुझाव दिया गया है कि उन मामलों की भी अपील का अधिकार हमें देना चाहिये जिनमें अभियुक्त पर प्रथम बार पांच वर्ष से अधिक का दंडादेश आरोपित किया गया है। इस संशोधन के पक्ष में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु मेरा निजी विचार यह है कि यदि वह अन्य खंड बना रहता है कि संसद अन्य अपीलों के लिये उपबन्ध बना सकती है तो उसके लिये हम प्रतीक्षा कर सकते हैं।

[श्री जैड.एच. लारी]

अत: मैं समझता हूं कि इस संविधान में तीन बातों की व्यवस्था होनी चाहिये। सर्वप्रथम उन मामलों में जिनका विनिश्चय करते हुये उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला अपील किये जाने लायक है, अधिकार रूप में उन मामलों की अपील होनी चाहिये; दूसरे, एक ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिसके द्वारा अपील या पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा पहली बार पारित किये गये मृत्यु दंडादेश की अपील का अधिकार हो; तीसरे, संसद को अन्य मामलों की अपील के लिये उपबन्ध बनाने का अधिकार होगा। यदि डा. अम्बेडकर का संशोधन संख्या 24 श्री जसपतराय कपूर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 39 तथा श्री करीमुद्दीन द्वारा पेश किये गये वैसे ही संशोधन संख्या 40 और डा. बक्शी टेकचन्द द्वारा पेश किये गये अन्तिम संशोधन के साथ-साथ स्वीकार किया जाता है तो मैं समझता हूं कि जनता संतुष्ट हो जायेगी और संविधान में दंड सम्बन्धी अपीलों के लिये काफी प्रावधान हो जायेंगे। मैं स्वयं यह समझता हूं कि इन दो मामलों में, जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा सर्वप्रथम मृत्यु दंडादेश दिया जाता है और जिनमें उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला अपील किये जाने लायक है, अपील होने दी जाये, इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता है। जो लोग दंड विषयक अपीलों को संसद पर छोड़ना चाहते हैं उन लोगों का तर्क यह है कि इस विषय पर विवरण पूर्वक चर्चा अपेक्षित है तथा यह सदन इस स्थिति में नहीं है कि उन मामलों की पूर्णतया संगणना कर सके जिनकी उच्चतम न्यायालय में अपील होगी। इस तर्क में कुछ सार है, पर वह सार पूर्ण रूप में नहीं है। क्योंकि जिन मामलों की अपील की आवश्यकता या वांछनीयता तक में कोई संदेह नहीं हो सकता उसके लिये इस पक्ष का कोई तर्क नहीं है कि उनको क्योंकर संसद पर छोड़ा जाये कि वह बाद में अधिनियम पारित करे। मेरा निवेदन यह है कि जहां तक इन दो मामलों का सम्बन्ध है, जहां कि प्रथम बार उच्च न्यायालय द्वारा मृत्युदंडादेश दिया है और जहां किसी मामले को उच्च न्यायालय द्वारा लायक प्रमाणित कर दिया है तो इन मामलों की अपील होने देने में कोई सन्देह नहीं हो सकता है और ऐसी कोई बात नहीं है कि इन मामलों में संविधान चुप साध बैठे जब कि उसमें व्यवहार-विषयक मामलों के सम्बन्ध के उपबन्ध है। मेरा निवेदन यह है कि यह सदन मेरे माननीय मित्रगण सर्वश्री करीमुद्दीन, जसपतराय कपूर और बक्शी टेकचन्द द्वारा पेश किये गये तीनों संशोधनों और संशोधन संख्या 24 को स्वीकार करे।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि मुझे मेरे माननीय मित्र बक्शी टेकचन्द द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करना चाहिये। वे दो काम कराना चाहते हैं। सर्वप्रथम वे कहते हैं कि यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्च न्यायालय में सुने जाने के लायक है तो उस मामले को वहां भेजा जाये। मैं इससे पूर्णतया सहमत हूं। जब स्वयं उच्च न्यायालय आदेश पारित करता है और उसकी यह राय है कि आदेश में परिवर्तन किया जा सकता है और उच्चतम न्यायालय उस आदेश में परिवर्तन कर सकता है तो वह आदेश उच्चतम न्यायालय को जाना चाहिए। इस विषय पर दो राय नहीं हो सकती हैं। दूसरी बात यह है कि उच्च न्यायालय आदेश को उलट देती है अर्थात् यदि सत्र न्यायालय द्वारा विमुक्ति पारित कर दी गई है और सरकार के अपील करने पर

उच्च न्यायालय ने मृत्युदंडादेश पारित किया है अथवा सत्र न्यायाधीश के पहले आदेश को उलट दिया है और अभियुक्त की अपराधी पाया है तो इस मामले में उच्चतम न्यायालय को अपील जानी चाहिये। मैं एक कदम और आगे बढ़ूंगा। मैं कहता हूं कि किसी भी मामले में जिसमें अधीन न्यायालय की विमुक्ति का आदेश हुआ है और उस आदेश को उच्च न्यायालय ने उलट दिया है तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है। मेरा तर्क यह है कि आपके समक्ष दो विनिश्चय हैं, एक सत्र न्यायाधीश का जो जूरी की सहायता से मामले की जांच करता है। जूरी की यह राय है कि मामला विमुक्ति के लायक है और यदि न्यायाधीश सहमत हो जाता है तब तो मामला वहीं समाप्त हो जाता है। विमुक्ति की अपील नहीं हो सकती है। यह साधारण विधि है परन्तु यदि अपील की भी जायेगी तो स्वयं सरकार द्वारा वह होनी चाहिये न किसी व्यक्ति विशेष द्वारा। सरकार की ओर से कार्यकारी महाधिवक्ता ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति है जो अपील कर सकता है। जब वह अपील ऊपर जाती है तो नि:सन्देह जूरी और न्यायाधीश ने एक होकर यह कहा है कि वह व्यक्ति अपराधी है। मेरी राय में जब आपके सामने दो राय हैं तो एक तीसरी अन्तिम राय और होनी चाहिये। अत: सब मामलों को, जिनमें विमुक्ति उलट दी गई है, उच्चतम न्यायालय में जाने देना चाहिये। विधि का एक सिद्धान्त है कि यदि एक बार किसी व्यक्ति को विमुक्त कर दिया जताा है तो उसी दोषारोप के लिये उस पर मामला नहीं चलना चाहिये। इंग्लैंड में आपको विमुक्ति के विरुद्ध अपील बहुत कम मिलेंगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि हत्या सम्बन्धी सब मामलों की, जिनमें दोनों विधि तथा तथ्य के प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हैं, उच्च न्यायालय से उच्चतम न्यायालय में अपील होनी चाहिये। हत्या के मामले बड़े महत्वपूर्ण मामले हैं और यदि अपील है तो इनका अन्तिम विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा होना चाहिये।

मेरा तीसरा प्रश्न यह है कि उन सब मामलों को जिनमें विधि का महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा देश को विधि के किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न के विनिश्चय की आवश्यकता है, उच्चतम न्यायालय के पास भेजना चाहिये और मेरा अन्तिम प्रश्न यह है कि जब सत्र न्यायाधीश द्वारा कोई दंडादेश पारित किया जा चुका है और वह उच्च न्यायालय में जाता है और उच्च न्यायालय उसे बढ़ा देता है तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय में होनी देनी चाहिये। ऐसा हुआ है और एक मामले का मेरा अनुभव है कि चार अभियुक्तों में से प्रत्येक को दो वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश हुआ। तीन ने अपील की और एक ने नहीं की। उच्च न्यायालय ने उनसे इस बात का कारण पूछा कि उनका दंड क्यों न बढ़ाया जाये और वास्तव में दंडादेश बढ़ा दिया गया। उच्च न्यायालय ने उस व्यक्ति से भी जिसने अपील नहीं की थी कहा कि वह कारण बताये कि उसका दंड भी क्यों न बढ़ाया जाये और अन्त में सबके दंड को आजन्म निर्वासन में बढ़ा दिया गया। इस प्रकार के मामले में जिनमें सत्र न्यायाधीश द्वारा दंडादेश पारित किया जा चुका है और वह उच्च न्यायालय में जाता है जो दंड को बढ़ा देता है तो अभियुक्त को तीसरे न्यायालय में—भारत के उच्चतम न्यायालय में—अपील करने देना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं और मैं इन बातों को भी जोड़ना चाहता हूं कि इन बातों पर डा. अम्बेडकर विचार करें।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय मैंने कई संशोधन पेश किये हैं, पर मैं अपने विचारों को केवल संशोधन संख्या 39 पर ही सीमित रखना चाहूंगा। जो इस प्रकार है:

''कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 24 में प्रस्थापित नवीन अनुच्छेद 112-ख में निम्न नये परन्तुक जोड़ दिये जायें:

'परन्तु भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के अपने दांडिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग सम्बन्धी किसी अन्तिम आदेश की उच्च न्यायालय में अपील होगी—

(क) यदि उस अन्तिम आदेश में किसी व्यक्ति को उस मामले में पहली बार मृत्युदंडादेश दिया गया है; अथवा

(ख) यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है।' ''

श्रीमान्, उस दिन अनुच्छेद 110 पर विचार करते समय इस विषय की बड़ी देर तक विस्तृत चर्चा रही कि उच्चतम न्यायालय को दंड विषयक मामलों की अपील सुनने का अधिकार होना चाहिये या नहीं। वह चर्चा अनुच्छेद 110 की चर्चा से कुछ अधिक सुसंगत नहीं थी, पर इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई और आपने भी उस चर्चा पर कोई आपत्ति नहीं की। यह स्पष्ट है कि इसका कारण यह था कि हममें से प्रत्येक ने यह अनुभव किया कि उस प्रश्न की चर्चा बहुत आवश्यक थी और अनुच्छेद 112-ख के आने के पूर्व, जिसको आज इस समय डा. अम्बेडकर ने पेश किया है, हम उस विषय पर प्रारम्भिक चर्चा कर लें जिससे कि कोई ऐसा हल निकल आये जिसमें उन अनेक दृष्टिकोणों का समावेश हो जो उस दिन रखे गये थे। जिस प्रयोजन के लिये उस चर्चा का उपक्रम किया गया था उसकी लाभदायक रूप में पूर्ति हुई और हमने देखा कि दूसरे दिन जब हम अनुच्छेद 112-ख पर आये तो हमें यह देख कर संतोष हुआ कि डा. अम्बेडकर ने एक संशोधन की सूचना दी है जो इस समय संशोधन संख्या 23 के रूप में है। केवल यही नही वरन् दूसरे दिन यह देख कर हम और भी अधिक प्रसन्न हुये कि श्री मुंशी ने भी एक और संशोधन की सूचना दी जो अब संशोधन संख्या 27 के रूप में प्रस्तुत है जिसके अनुसार डा. अम्बेडकर के नाम के संशोधन संख्या 23 के क्षेत्र का कुछ सीमा तक विस्तार किया गया है अर्थात् जब कि डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 23 में केवल उन मामलों में अपील का अधिकार दिया गया है जिनमें उच्च न्यायालय ने अपील में विमुक्ति के विरुद्ध मृत्युदंडादेश पारित किया है तो श्री मुंशी के संशोधन में इस क्षेत्र को और भी अधिक उन मामलों तक विस्तृत किया है जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण तक में मृत्युदंडादेश पारित किया है।

दूसरे, श्री मुंशी के संशोधन में यह भी दिया गया है कि यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामले में विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा वह अन्यथा उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है तो उसकी अपील होगी।

परन्तु यकायक हम देखते हैं कि संशोधन संख्या 23 में जिस स्थिति को डा. अम्बेडकर ने ग्रहण किया था उसका वे परित्याग करना चाहते हैं और आरम्भ में जो स्थिति उन्होंने ग्रहण की थी कि सिवा उस विधान के अनुसार जिसको संसद पारित करेगी अन्य प्रकार

से उच्चतम न्यायालय में अपील नहीं होगी उस स्थिति पर फिर वापस चले गये हैं। श्रीमान्, उस दिन अनुच्छेद 110 के वाद-विवाद का उत्तर देते हुये डा. अम्बेडकर ने कहा था कि उनका दिमाग खुला हुआ है पर खाली नहीं है। मैं यह मानने के लिये तैयार हूं कि उनका दिमाग केवल खुला हुआ ही नहीं है वरन् ग्रहणशील है। मैं केवल यह चाहता हूं कि उनका दिमाग स्मरणशील भी होता। क्योंकि उन्होंने वाद-विवाद के समय अनेक सुझावों को ग्रहण किया और एक या दो दिन तक वे उनके दिमाग में भी रहे और जिन्होंने उनको संशोधन संख्या 23 की सूचना देने के लिये प्रेरित किया, पर ये सब सुझाव उनके दिमाग से दो दिन के पश्चात् गायब हो गये; अत: उनका दिमाग केवल खुला हुआ ही नहीं है वरन् बहुत अधिक खुला हुआ है और कुछ समय तक ही बातों को रख सकता है।

प्रस्थापित संशोधन 24 में यह सुझाव दिया गया है कि संसद विधि द्वारा उच्चतम न्यायालय को दंड विषयक अपीलीय शक्तियां सौंप सकती है। यह नहीं स्वीकार किया गया है कि संसद दंड विषयक मामलों में अपील सुनने का अधिकार उच्चतम न्यायालय को अवश्य सौंपे क्योंकि 'may' शब्द का प्रयोग किया गया है, न कि 'shall' शब्द। अत: मंशा यह है कि संसद पर यह छोड़ देना चाहिये कि दंड विषयक अपीलों के अधिकार को उच्चतम न्यायालय को सौंपने के विधान को यह पारित करे या न करे। इस संशोधन की पेचीदगी यह भी है कि यदि विधान द्वारा एक बार यह अधिकार उच्चतम न्यायालय को सौंप दिया जाता है तो वाद किसी तिथि को, यदि संसद चाहती है तो, उस विधान का संशोधन उसको रद्द अथवा उसका प्रतिसंहरण कर सकती हैं इसका आशय यह है कि जब तक संसद यह देखती है कि अपील में उच्चतम न्यायालय ऐसे निर्णय पारित कर रही है जो संसद के पक्ष में हैं, संसद का अभिप्राय शक्ति प्राप्त दल से है और जिसका अभिप्राय उस समय के मंत्रिमंडल से है तो उच्चतम न्यायालय उस अधिकार का प्रयोग करती रहेगी। परन्तु जब उस न्यायालय के निर्णय संसद द्वारा पसन्द नहीं किये जाते हैं तो उस अधिकार को वापस ले लिया जायेगा। यह एक खतरनाक प्रस्थापना है; इसका अभिप्राय यह है कि उस अधिकार को बनाये रखने के लिये उच्चतम न्यायालय को इस प्रकार से कार्यवाही करनी चाहिये कि जिससे संसद अप्रसन्न न हो। हम न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिये चीखते रहे हैं और इस स्वतंत्रता के डा. अम्बेडकर एक वीर योद्धा रहे हैं परन्तु जब हम उच्चतम न्यायालय की शक्ति सम्बन्धी विधान का निर्माण करने पर आये, जो उच्च न्यायालय देश की सर्वोच्च न्यायपालिका है, तो हम ऐसे उपबन्ध रखने का प्रयत्न कर रहे हैं जो केवल न्यायपालिका ही नहीं वरन् देश के उच्चतम न्यायालय धर्माधिकरण की अप्रत्यक्ष रूप से जड़ काटेगा। मैं निवेदन करता हूं कि हमको इस पक्ष में नहीं होना चाहिये। व्यवहार विषयक मामलों में उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता कोई अधिक फलदायक नहीं है; दंड विषयक मामलों में उसकी स्वतंत्रता प्रमुख महत्त्व की है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि 20,000 रुपये की एक तुच्छ राशि के किसी मामले का पक्ष या विपक्ष में विनिश्चय हो, परन्तु यदि किसी दंड विषयक मामले का विनिश्चय करने में उच्चतम न्यायालय को अपील सुनने के अधिकार को बनाये रखने के लिये संसद की इच्छानुसार कार्यवाही करनी पड़ती है तो यह उच्चतम न्यायालय की स्वतंत्रता का बड़ा भारी अपहरण है। इन सब बातों पर विचार करते हुये मैं निवेदन करता हूं कि हमें यहां और अभी यह

[श्री जसपतराय कपूर]

विधान बनाना चाहिये कि उच्चतम न्यायालय को अपील सुनने की शक्ति होगी और इस विषय के विधान बनाने या न बनाने को हम संसद की सदिच्छा पर न छोड़े। हम इस संविधान में उच्चतम न्यायालय के लिये, न्यायालय के स्थान के लिये, न्यायाधीश के वेतनों के लिये और अन्य बातों के लिये विवरण पूर्ण व्यवस्था कर रहे हैं। परन्तु दंड विषयक अपीलों को सुनने के अधिकार के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को हम संसद पर छोड़ रहे हैं कि वह जैसा चाहे विनिश्चय करे। और कौन सी संसद इस विषय पर विचार करेगी? क्या यह वर्तमान संसद है अथवा वह संसद जो इसके बाद नये संविधान के प्रवर्तन में आने के पश्चात् बनेगी? यदि दूसरी संसद है तो इसका अभिप्राय है कि अभी दो वर्ष और। यदि यह मंशा है कि वर्तमान संसद इस उपबन्ध को पारित करे तो उसे हम अभी यहां क्यों नहीं कर लेते? वर्तमान संसद में वे ही सदस्य हैं जो आज यहां उपस्थित हैं। या मैं यह कहूंगा कि जो अभिसमय हमने स्थापित किया है उसके अनुसार तो वह उन सदस्यों की भी बनी हुई नहीं है जो यहां इस समय उपस्थित हैं और जिन्हें इन विचार-विमर्शों में भाग लेने का हक है। अत: मेरा विचार है कि यह संविधान सभा संविधान निर्माण करने वाले निकाय के रूप में वर्तमान संसद की अपेक्षा अधिक प्रतिनिध्यात्मक है और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय को उस निकाय पर, जो संसद के रूप में प्रकार्य करता है, छोड़ने के अलावा इस निकाय द्वारा विनिश्चित किया जाना चाहिये। यदि कोई अपूर्त्त होना चाहे तो यह निष्कर्ष निकाल सकता है—यद्यपि मैं आशा करता हूं कि वह तथ्य नहीं है—कि कुछ सदस्य जो इस निकाय के सदस्य हैं, पर अभिसमय के अधीन संसद में उपस्थित नहीं होते हैं उनके बारे में यह असुविधाजनक समझा जा सकता है कि इस विधान को संसद में लिया जाये यहां कि वे उपस्थित नहीं होंगे। हमने यह अभिसमय स्थापित कर लिया है कि प्रान्तीय विधानमंडलों के सदस्य संसद में उपस्थित नहीं होंगे। अब हम उनसे यह कहना चाहते हैं कि वे इस बात से सहमत हो जायें कि वे इस विषय में कुछ न कहें और अपनी अनुपस्थिति में संसद द्वारा इस विषय के विनिश्चित किये जाने से सहमत हों।

पर मंशा यह है कि यह संसद नहीं वरन् निर्वाचन के पश्चात् जो संसद बनेगी वह इस विधान पर विचार करेगी, इसका अभिप्राय यह है कि इस पूरे के पूरे विषय को कम से कम दो वर्ष तक रोके रखा जायेगा। उस संसद को बनने पर भी उसके समक्ष विचार करने के लिये सद्य महत्त्व के कई विधान होंगे और उसका समय उन अधिक महत्त्व के विधानों के अधिनियम बनाने में लगेगा। इसका यह अभिप्राय हुआ कि आने वाले तीन या चार वर्षों तक यह पूरा विषय रुका पड़ा रहेगा। प्रश्न यह उठता है कि उन अभागे लोगों का क्या होगा जिनको प्रथम बार उच्च न्यायालय के अन्तिम आदेश द्वारा मृत्युदंड दिया गया है। मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर तथा अन्य उनके जैसे विचार वाले शायद यह कहें कि इन थोड़े से अभागे व्यक्तियों की हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यदि उनकी ऐसी इच्छा हो तो शायद वे नृशंसतापूर्वक ऐसा कह दें। पर मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर और उनके अन्य मित्र जो उच्चतम न्ययालय दंड विषयक अपीलों के सुनने के अधिकार से वंचित कराने की कार्यवाही में हिस्सेदार हैं—मेरा अभिप्राय श्री टी.टी. कृष्णमाचारी तथा श्री मुंशी से है—उनमें कोई भी इतनी नृशंसतापूर्वक ऐसा सुझाव देने के लिये इच्छुक न होगा। मैं जानता हूं कि डा. अम्बेडकर जो कभी-कभी बाहर से रूखापन प्रकट

कर देते हैं पर उनका हृदय बड़ा कोमल है और यदि मैं कह सकता हूं, यह कहूंगा कि उनका हृदय स्नेहशील भी है। श्री कृष्णमाचारी तो मृदुलता के भंडार ही हैं और श्री मुंशी तो वास्वत में कोमलता की खान हैं। अत: मुझे विश्वास है कि इनमें से कोई भी हमसे मानवजीवन और स्वातन्त्र्य पर इतने सरल रूप में विचार करने के लिये न कहेगा। अत: मैं निवेदन करता हूं कि हमें यहां और अभी इस संविधान में उच्चतम न्यायालय को दंड विषयक अपीलों को सुनने का अधिकार सौंपने का एक निश्चित उपबन्ध बनाना चाहिये।

परन्तु मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि डा. अम्बेडकर और श्री मुंशी के उन तर्कों से यथेष्ट सार है जिनको उन्होंने किसी पूर्व अवसर पर प्रस्तुत किया था कि यदि उच्चतम न्यायालय को अपील के अनिर्बन्धित अधिकार सौंपे जायेंगे तो मामलों का काम बहुत बढ़ जायेगा। यह सच है। न मैं यह सुझाव देना चाहता हूं, न मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव दिया है और न शायद किसी अन्य व्यक्ति ने अपने संशोधन में यह सुझाव दिया है कि उच्चतम न्यायालय को अपील का अनिर्बन्धित अधिकार होना चाहिये। हम जो कुछ चाहते है वह यह है कि उसको कुछ विशिष्ट मामलों तक सीमित किया जाये जिनकी संख्या बहुत अधिक नहीं होती। शायद उनकी संख्या साठ या सत्तर से आगे नहीं जायेगी या अधिक से अधिक सारे देश में एक वर्ष में सौ। अपील के अधिकार को सीमित होने दीजिये सर्वप्रथम तो उन मामलों तक जिनमें उच्च न्यायालय ने प्रथम बार अपने अन्तिम आदेश द्वारा मृत्युदंडादेश पारित किया हो जिसका आशय केवल इससे अधिक और कुछ नहीं है कि किसी व्यक्ति को प्रथम बार मृत्युदंड दिया जाता है तो उसे अपील का एक छोटा सा अधिकार होगा। मेरे संशोधन का यही अर्थ है और कुछ नहीं। उन मामलों में जिनमें या तो उस व्यक्ति को अधीन न्यायालय द्वारा विमुक्त कर दिया गया है या उच्च न्यायालय अथवा सत्र न्यायालय के प्रथम आदेश द्वारा उसे मृत्युदंडादेश नहीं दिया गया है वरन् इससे कुछ कम दंडादेश दिया गया है तो उस अभियुक्त के पक्ष में एक निर्णय है चाहे वह विमुक्ति का हो अथवा मृत्यु से कम दंडादेश का हो; और वह निर्णय प्रथम मामले में सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया है जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की समूची अर्हता रखता हो और जिसको यदि भाग्य उसके पक्ष में है तो निर्णय की उद्घोषणा के दूसरे दिन की उच्च न्यायालय में पदोन्नति पर भेज दिया जाये। अन्य परिस्थिति में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा विमुक्ति का आदेश पारित हो सकता है— एक ऐसे न्यायाधीश द्वारा जो बहुत सक्षम हो, विद्वान हो, बहुत विश्वस्त हो तथा विश्वसनीय हो। प्रश्न यह है कि जब अभियुक्त के पक्ष में पहला निर्णय है तो उसे उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम बार पारित किये गये मृत्युदंडादेश की अपील करने का अधिकार होना चाहिये या नहीं? मैं निवेदन करता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत होगा कि उस अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा अधिकार होना चाहिये और ऐसे आदेश की अपील सुनने का उच्चतम न्यायालय को अधिकार होना चाहिये।

मेरे संशोधन का दूसरा भाग यह है कि यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने के लायक है तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय में होनी चाहिये। आप और किसी में विश्वास न करें पर कम से कम अपने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में तो विश्वास करें और आप यह न सोचें कि वे आसानी से ऐसा प्रमाण पत्र दे देंगे यदि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की ऐसा प्रमाण पत्र देने की इच्छा है

[श्री जसपतराय कपूर]

तो आपके पाय यह कहने के लिये ऐसा कौन सा तर्क है कि ऐसे मामलों की भी उच्चतम न्यायालय में अपील करने का कोई अधिकार नहीं होगा? मैं निवेदन करता हूं कि इन विचारों को दृष्टि में रखते हुये यह आवश्यक तथा वांछनीय है कि ऐसी शक्ति उच्चतम न्यायालय को सौंपी जाये।

यदि मेरा कोई भी सुझाव स्वीकार्य नहीं है तो कम से कम एक सुझाव तो स्वीकार्य होगा ही और वह सुझाव एक अन्य संशोधित रूप में मेरे संशोधन संख्या 37 में है जिसमें कहा गया है:

> 'कि उपरोक्त संशोधन संख्या 24 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 112-ख में 'Parliament may' शब्दों के स्थान में 'संसद इस संविधान के प्रारम्भ ही से एक वर्ष के अन्तर्गत अवश्य' शब्द रखे जायें।''

या तो हमारा यह उद्देश्य है कि संसद ऐसे विधान को अवश्य अधिनियमित करे और या हमारी यह मंशा है कि वह ऐसे विधान को यदि न चाहे तो न अधिनियमित करे। यदि आज हम इसके प्रति संशय में पड़े हुये हैं तो बात दूसरी है। परन्तु यदि हमारा सदुद्देश्य यह है कि दंडविषयक अपीलों का मार्ग न रोका जाये और उद्देश्य केवल यही है कि इन बातों पर संसद द्वारा विचार किया जाये तो संसद के लिये यह आभारस्वरूप बना दीजिये कि वह ऐसा विधान अधिनियमित करे और ऐसा विधान इस संविधान के प्रवर्तन में आने से एक वर्ष के अन्तर्गत बन जाये। क्योंकि, अन्यथा जैसा कि मैं निवदेन कर चुका हूं यदि आप 'may' शब्द को यहां बना रहने देते हैं तो संसद को यह अधिकार होगा कि वह उस विधान को बनाये या न बनाये और उस विधान को अधिनियमन करने के बाद भी उसका निरसन या संशोधन करे। इसका फल यह होगा कि यह तलवार सदैव उच्चतम न्यायालय के सिर पर लटकती रहेगी और उनको यह चेतावनी देती रहेगी कि वह ऐसा व्यवहार करे जो संसद को प्रिय हो। जीवन और स्वातन्त्रय की शुद्धता और रक्षा लोकतंत्र का सार है और उनको उच्चतम न्यायालय की रक्षा से वंचित करके इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, जितने संशोधन पेश किये गये हैं वे सब एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर केन्द्रित हैं कि क्या दंड विषयक मामलों की देश की उच्चतम न्यायालय में अपील होने दी जाये। यदि होने दी जाये तो किन-किन मामलों की। मैं निवेदन करता हूं कि यह विषय एक बड़े सांवैधानिक महत्त्व का हैं हम एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के लिये एक संविधान अधिनियमित कर रहे हैं। हम संसार में एक सर्वोत्तम लोकतंत्र बना रहे हैं। लोकतंत्र की समस्याओं का चारों ओर से भली प्रकार सामना करना चाहिये। लोकतंत्र का अर्थ है विधि मूलक शासन जो बलपूर्ण शासन का विरोधी है। एकतंत्र तथा सर्वशक्तितंत्र राज्यों में विधि सर्वोच्च नहीं होती है। परन्तु लोकतंत्र का आशय विधि की सर्वोच्चता से है जिसमें कोई भी व्यक्ति चाहे वह सबसे ऊंचा ही क्यों न हो विधि से ऊपर नहीं है। अत: हम सबको विधि का सम्मान करना चाहिये और विधि पालन की भावना उत्पन्न करने के लिये हम सब को विधिपालक नागरिक होना चाहिये और इसी में लोकतंत्र की रक्षा है। हमको स्वयं लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों का, लोकतंत्रात्मक

रीतियों का पालन करना चाहिये और विधि का सम्मान करना चाहिये। उस दिन जब कि अनुच्छेद 110, 111 और 112 के सम्बन्ध में इस विषय की चर्चा हुई थी, मैंने यह संकेत किया था कि जहां तक दंड विषयक अपीलों का उच्चतम न्यायालय से सम्बन्ध है, इसमें कमी है। इस बात के खुल जाने से सदन उच्चतम न्यायालय में दंडविषयक अपीलों के अधिकार सम्बन्धी विषय की चर्चा करने के लिये प्रेरित हुआ। आपने उस चर्चा को होने दिया। अत: मेरी तुच्छ सम्मति में उस चर्चा को असंगत कहना पूर्णतया गलत है। सच बात यह है कि उस चर्चा से इस संविधान के मसौदे की कुछ कमजोरियां प्रकट हुई और उसके कारण इतने संशोधन आये।

श्रीमान्, सभा में पेश किये गये संशोधनों की झंझट में कुछ बातें सब संशोधनों में हैं जो मौलिक महत्त्व रखती हैं। अनुच्छेद 111 के अधीन हमने उन व्यवहार-विषयक मामलों की अर्थसम्बन्धी परिसीमाओं के अधीन अपीलें होने दी हैं जिनमें विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। प्रश्न यह है कि लोगों के जीवन और स्वातन्त्र्य पर कोई परिसीमा लगाना क्या हमारे लिये ठीक होगा। क्या राज्य के एक तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति के जीवन और स्वातन्त्रय में और किसी धनाड्य व्यक्ति के जीवन और स्वातन्त्रय में हम भेद विभेद कर सकते हैं? किसी सभ्य राज्य में दंड सम्बन्धी विधि में धनी और निर्धन, महान् और तुच्छ में कोई अन्तर नहीं हो सकता है। व्यवहार विषयक मामलों में यदि गलत विनिश्चय पारित कर दिया जाता है तो समाज को अधिक हानि नहीं होती है। परन्तु यदि आपने किसी एक निर्दोष व्यक्ति के स्वातन्त्रय का हरण कर लिया तो अकथनीय दुष्टता होगी। केवल विधि के उच्चतम न्यायालय में उस मामले के जाने देने से ही विधि की सर्वोच्चता पूर्ण रूप से स्थापित की जा सकती है। राज्य की रक्षा विधि मूलक शासन में लोक विश्वास में निहित है। अन्तिम न्यायालय को अन्तिम न्यायाधिकरण होना चाहिये जो दंड विषयक मामलों में वैध अधिकारों के प्रश्नों का विनिश्चय करे। इस सम्बन्ध में जो प्रश्न उठते हैं वे यह है: (1) क्या अपील का कोई अधिकार दिया जाये, और (2) यदि दिया जाये तो किन परिस्थितियों के अधीन और किन रक्षाकवचों सहित। इसके बाद में यह सवाल उठता है कि क्या इस उपबन्ध को संविधान में प्रविष्ट किया जाये या नहीं। मैं निवेदन करता हूं कि यह विषय बड़े सांवैधानिक महत्त्व का है। यदि मनुष्य का जीवन और स्वातन्त्रय इस सभा के लिये गंभीर विषय नहीं है तब तो मैं समझता हूं कि फिर कोई भी बात विचारणीय नहीं हैं इन संशोधनों में जो प्रश्न उठाये गये हैं वे मौलिक महत्त्व के है, इसलिये मैं समझता हूं कि अन्तिम अपील के अधिकारों को स्वयं संविधान में रखा जाये चाहे वे जो कुछ भी हो। जब कि इस आदरणीय सदन ने बड़ी सावधानी से व्यवहार-विषयक मामलों की अपील के अधिकारों की व्याख्या की है तो यह कोई न्याय नहीं होगा कि वही सदन दंड विषयक मामलों की अपील के अधिकारों की व्याख्या न करे। मेरे विचार से इस विषय को संसद पर न छोड़ा जाये। वास्तव में उसका यह अर्थ है कि इसके बाद बनने वाली संसद वह सभा नहीं जो किसी अन्य स्थान पर विधान सभा के रूप में बैठती है, वरन् आगे बनने वाली संसद साधारण निर्वाचनों के पश्चात् अथवा उससे भी बाद की संसद। अपनी कार्यवाहियों को स्थगित करना और कार्य को एक अपरिचित रचना तथा प्रवृत्ति की भावी संसद द्वारा पूर्ति के लिये छोड़ देना न्याययुक्त नहीं है। दंड विषयक मामलों में सारवत न्याय का आश्वासन देने के लिये विधि की व्याख्या न करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अत: स्वयं संविधान में हमें विधि

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

की व्याख्या करनी चाहिये। हमने संविधान में कितने ही विषयों को प्रविष्ट कर दिया है जो तुलना में महत्त्वपूर्ण नहीं है और हमें इस महत्त्वपूर्ण उपबन्ध को संविधान में रखने से नहीं हिचकिचाना चाहिये।

पहला प्रश्न है कि क्या आप उच्चतम न्यायालय में दंड विषयक मामलों की अपील करने का कोई अधिकार देंगे या नहीं? मैं इस सदन का ध्यान विधि की वर्तमान दशा की ओर आकर्षित करना चाहूंगा। उन दंड-विषयक मामलों की, जिनमें विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा उन मामलों को, जिनमें अन्य प्रकार से यह दर्शा दिया गया है कि उनमें घोर अन्याय किया गया है, सपरिषद् सम्राट को अपील करने का अधिकार वास्तव में है। इन परिस्थितियों में मैं निवेदन करता हूं कि यदि हम दंड-विषयक मामलों की अपनी उच्चतम न्यायालय में उन्हीं शर्तों के अधीन अपील का कोई अधिकार नहीं देते हैं तो हम एक अधिकार तो छीन लेंगे जो अब दंडविषयक मामलों में वर्तमान है। श्रीमान्, विगत चालीस वर्ष तक की प्रिवी कौंसिल की दंड-विषयक अपीलों के अध्ययन से यह प्रकट होगा कि अपील का यह अधिकार बहुत ही आवश्यक है क्योंकि बहुत से निश्चित रूप से गलत दोषारोपण के मामले रद्द कर दिये गये। विशेषकर हत्या के मामले में यह बहुधा होता है कि साक्ष्य के स्थान में स्थानीय विरोध और शक के कारण किसी व्यक्ति पर दोषारोपण किया जाता है। इस प्रकार कभी-कभी निर्दोष व्यक्ति भी फांसी पर लटका दिये जाते हैं कभी-कभी हमारे न्यायालय के विनिश्चयों पर बाह्य विचारों का प्रभाव पड़ता है। यदि ऐसे विनिश्चयों की उच्चतम न्यायालय में अपील की जाती है तो वे उस पर निष्पक्ष विचार करेंगे और औचित्य तथा साक्ष्य के समुचित विचार के आधार पर उसका विनिश्चय करेंगे। अत: मैं निवेदन करता हूं कि दंड विषयक मामलों में उपयुक्त आधार पर अपील का अधिकार होना चाहिये। वे उपयुक्त मामले कौन-कौन से हैं? मैं निवेदन करता हूं कि उपयुक्त मामले वे हैं जिनमें विधि का सारवत प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। हम वास्तव में विधिमूलक शासन या लोकतंत्र की स्थापना कर रहे हैं। अत: यदि किसी पर विधि की सारवत त्रुटि के कारण दोषारोपण किया गया है तो मैं समझता हूं कि अपील के लिये यह एक अच्छा आधार होना चाहिये। प्रिवी कौंसिल द्वारा हस्तक्षेप करने के लिये विधि के सारवत प्रश्नों का सदैव यथेष्ट आधार समझा गया है और इस अधिकार को कम से कम हम न छीने अथवा उसका स्थगन न करें जो एक शताब्दी से भी अधिक काल से वर्तमान और महत्त्वपूर्ण रहा है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि विधि का सारवत प्रश्न एक अच्छा आधार होना चाहिये। इस सदन के कुछ लोगों को यह भय है कि यदि विधि के सारवत प्रश्न पर हम अपील होने देंगे तो सरकार का प्राधिकार, कार्यपालिका का प्राधिकार दुर्बल हो जायेगा। मैंने वास्तव में यह कानाफूंसी सुनी कि दोषारोपण बहुत से होने चाहिये जिससे कि कार्यपालिका के प्राधिकार की रक्षा हो सके और यह कि यदि हम बहुत अपील होने देंगे तो कार्यपालिका का प्राधिकार जर्जर हो जायेगा और राज्य का क्षेम संकट में पड़ जायेगा। पर मैं इसका बिल्कुल उल्टा समझता हूं। यदि हम एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण द्वारा विधि की सर्वोच्चता का पोषण होने रहने दे तो इस राज्य के क्षेम का वह आधार होगा। लोगों का संतोष, न्याय के प्रशासन में उनका विश्वास राज्य को सुरक्षित बनाने में

मुख्य रूप से सहायक होंगे। दंड विषयक मामलों में हमारे उच्चतम न्यायालय के अन्तिम क्षेत्राधिकार को यदि ले लिया जाता है तो उससे जो अंसतोष होगा वह गुप्त होगा और राज्य के लिये घातक होगा। यह सहज सम्भाव्य है कि कभी-कभी न्यायालय द्वारा कार्यपालिका की भी उपेक्षा की जायेगी, और इसी के लिये न्यायालय होते हैं अर्थात् राजनैतिक विचारों पर ध्यान दिये बिना न्याय का प्रशासन करने के लिये। यदि कार्यपालिका यह समझती है कि मामलों की किसी विशिष्ट श्रेणी में, जो चाहे राजनैतिक हों अथवा अन्य प्रकार के, कोई अपील न हो, अथवा किसी प्रकार की कोई संक्षिप्त प्रक्रिया हो, अथवा साक्ष्य के कोई विशेष नियम हों तो इसके लिये वह सदैव विधान मंडल से निवेदन कर सकती है। यह विधान मंडल के कहने की बात है कि कौन सी विधि पारित की जायेगी। विधान मंडल की स्वतंत्रता की भी प्रत्याभूति करनी होगी और एक स्वतंत्र विधान मंडल एक विशिष्ट रीति से दंड विषयक मामलों में प्रयोज्य साक्ष्य की विधि, शास्ति की विधि और प्रक्रिया की विधि निहित कर सकती है। उच्चतम न्यायालय में अपील को रोकने के लिए कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। विधि के सारवत प्रश्नों पर उच्च न्यायालय में अपील करने का यदि हम अधिकार दे दें तो वह विधान मंडल के लिये जैसा वह चाहे वैसी विधि बनाने की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति होगी। यदि विधान मंडल कोई ऐसा नियम पारित करता है जो विधि के आधार पर अपील करने के अधिकार में रुकावट डाले तो ऐसा कहने का अधिकार विधान मंडल को है। बहुमत होने के कारण कार्यपालिका सदैव विधान मंडल के पास अपने दृष्टिकोण को ले कर उपस्थित हो सकती है और इस प्रकार कार्यपालिका की सर्वोच्चता अथवा स्वतंत्रता का पोषण किया जा सकता है परन्तु उस विधि की सीमा के अन्तर्गत जिसको विधान मंडल निर्धारित करे, परन्तु उच्चतम न्यायालय को अपने सर्वोत्तम ज्ञान के अनुसार सारवत न्याय करने की शक्ति होनी चाहिये। इस तर्क के आधार पर मैं कहता हूं कि विधि के सारवत प्रश्न पर अपील का अधिकार देना चाहिये। इस प्रस्थापना से बचने के लिये कोई तर्कयुक्त बात नहीं है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि आगे बनने वाली संसद पर हम इस विषय को न छोडें। मान लीजिये उच्च न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को फांसी लगाने का आदेश प्रथम बार दिया जाता है और मान लीजिये कि उच्च न्यायालय का वह विनिश्चय गलत है। यह बहुधा होता है कि स्थानीय विरोध के कारण उस अभागे व्यक्ति के लिये मृत्यु का आदेश पारित कर दिया जाता है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि वह व्यक्ति क्या करे? क्या हम उससे तब तक के लिये धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने के लिये कहें जब तक आगे बनने वाली संसद द्वारा उपयुक्त विधि पारित की जाती है। क्या इस अरसे में वह फांसी पर चढ़ जाये? क्या इस आशा में वह फांसी पर चढ़ जाये कि आगे बनने वाली संसद द्वारा समुचित विधि पारित की जा रही है? मेरे विचार से इसमें टालमटोल होने देने से परिणाम बहुत भयंकर तथा बड़ा ही विद्रोहात्मक होगा। अत: मैं निवेदन करता हूं कि किसी अभियुक्त व्यक्ति को विधि के सारवत प्रश्न पर दंड-विषयक मामले में उच्चतम न्यायालय को अपील करने का अधिकार यहां और अभी दिया जाये। एक बहुत तुच्छ विषय का मामला अभी प्रिवी कौंसिल में ले जाया गया। किसी व्यक्ति पर उपदंडाधिकारी द्वारा एक छोटे से अपराध का दोषारोपण किया गया। अपील में सत्र-न्यायाधीश द्वारा उसको विमुक्त कर दिया गया। सरकार ने उच्च न्यायालय

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

में अपील की जिसने उसे दोषारोपित किया। अभियुक्त ने प्रिवी कौंसिल में अपील की। प्रिवी कौंसिल ने असामान्य स्पष्टता सहित साक्ष्य में सारवत दौर्बल्य बताया और उसको विमुक्त कर दिया। यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि वह एक छोटा मामला है, अत: प्रिवी कौंसिल के हस्तक्षेप के योग्य नहीं है। प्रिवी कौंसिल के न्यायाधिपतियों ने बताया कि वह अनुचित दोषारोपण का मामला है और उसको विमुक्त कर देना चाहिये। अत: यदि हम विधि के सारवत प्रश्नों पर अपील नहीं होने देंगे तो हम अपने उत्तरदायित्व से हट रहे हैं। लोगों को जेल में सड़ाने या बाद में लम्बित विधान के आधार पर फांसी देने में कोई न्याय नहीं होगा। अत: हमें यहां और अभी एक ऐसा अनुच्छेद पुर:स्थापित करना चाहिये जो मनुष्यों पर गलत दोषारोपण किये जाने से उनको बचा सके।

श्रीमान्, विधि के सारवत प्रश्न पर दंड सम्बन्धी मामलों की उच्चतम न्यायालय में अपील होने देने से एक और प्रकार का क्षेम भी है। अभी उच्चतम न्यायालय में विधि के विषयों पर मतभेद है। यह अनिवार्य है क्योंकि विधान साधारण सिद्धांत पर विचार व्यक्त करता है और विशेष मामलों में उसके प्रयोग से विभिन्न उच्च न्यायालयों में परस्पर मतभेद की गुंजाइश हो जाती है। मेरा निवेदन यह है कि यदि विभिन्न न्यायालय विधि के प्रश्नों पर विरोधी विचार रखते हैं तब तो उच्चतम न्यायालय में अपील होने देने के लिये यह एक आधार होगा क्योंकि इसी प्रकार से विधि को एकरूप तथा सुसंगत बनाया जा सकता है। यह कई बार हुआ है कि प्रिवी कौंसिल में अभियुक्त व्यक्तियों को उच्च न्यायालयों में विरोधी मत के आधार पर विशेष अनुमति मिल गई है जिनका सही रूप में निश्चय होना चाहिये। न्यायाधिपतियों ने ऐसे मामलों में विशेष अनुमति दे दी है यद्यपि प्रारम्भ में उनको यह पूर्ण विश्वास नहीं था कि किसी विशिष्ट मामले के तथ्य का कोई विरोध वास्तव में हुआ है, पर उन्होंने संशय से लाभ उठाने दिया और अधिक विवरण पूर्वक विचार कर लेने के लिये विशेष अनुमति दी। अन्तत: प्रिवी कौंसिल के उन मामलों के विनिश्चयों ने दंड सम्बन्धी मामलों में विधि के महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों पर नया प्रकाश डाला है। दंड-सम्बन्धी विषयों में प्रिवी कौंसिल के पिछले तीस या चालीस वर्ष के निर्णयों के पढ़ने से यह विदित होगा कि बहुत से मामलों ने विधि के अनेक कठिन तथा जटिल प्रश्नों को सुलझाया है और विधि को एकरूपता दी है। यदि विधि को एकरूप बना दिया जाता है तो इसका फल यह होगा कि सत्र न्यायालयों और उच्च न्यायालयों में दंड-विषयक अपीलों की संख्या में कमी हो जायेगी और आगे चल कर मितव्ययता होगी। इन परिस्थितियों मे मैं निवेदन करता हूं कि विधि के प्रश्न का कुछ सम्मान करना चाहिये और कम से कम विधि के सारवत प्रश्न पर हमें किसी व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में हस्तक्षेप करने के लिये निवेदन करने देना चाहिये। उच्चतम न्यायालय का मूल्य है यदि वह दंड विषयक मामलों में उच्चतम नहीं है तो? मेरे विचार से उच्चतम न्यायालय को इस विषय में वास्तव में सर्वोच्च बना कर विधि की सर्वोच्चता की प्रत्याभूति सच्चे रूप में करनी चाहिये। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि हम अनुच्छेद 112 तो पारित कर ही चुके हैं। वह उच्चतम न्यायालय को दंड सम्बन्धी मामलों सहित सब मामलों में विशेष अनुमति देने की शक्ति प्रदान करता है।

***एक माननीय सदस्य:** समय समाप्त हो गया।

***अध्यक्ष:** क्या आप अधिक समय लेंगे?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मुझे कुछ अधिक समय लगेगा।

***अध्यक्ष:** तो फिर सदन कल प्रात:काल आठ बजे तक के लिये स्थगित हुआ।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, 14 जून सन् 1949 ई. के प्रात:काल आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 4. VIII-21.49
350

अंक 8
संख्या 21

मंगलवार,
14 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[नवीन अनुच्छेद 111-क, 103-क, अनुच्छेद 164, नवीन अनुच्छेद 167-क, अनुच्छेद-171, 175, 187, 196, 203, 208, 209 तथा नवीन अनुच्छेद 209-क] ...1269-1329

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 14 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 111 (क)—(*जारी*)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, कल मैंने सभा का ध्यान अनुच्छेद 112 की ओर आकृष्ट किया था जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं। मेरा कहना है कि उस अनुच्छेद को स्वीकार करके हमने अपने को एक नीति विशेष को बरतने के लिये वचनबद्ध कर दिया है।

अनुच्छेद 112 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को यह क्षमता मिल जाती है कि विशेष अनुमति प्रदान करके आपराधिक मामलों की अपील को वहां लाने की अनुज्ञा दे सकता है। इसका मतलब यह होता है कि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं कि आपराधिक मामलों की अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है, अगर इसके लिये सम्बन्धित उच्च न्यायालय प्रमाणपत्र दे दे। सभा को कृपया इस स्थिति पर विचार करना चाहिये। वर्तमान में आपराधिक मामलों की अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती है, अगर सम्बन्धित उच्च न्यायालय इसके लिये प्रमाण पत्र देता है और अगर प्रमाणपत्र वह नहीं देता है तो प्रिवी कौंसिल विशेष अनुमति द्वारा मामले की अपील को अपने न्यायालय में लाने की आज्ञा दे सकती है। विशेष अनुमति का प्रावधान एक अवशिष्ट प्रावधान है और इस संरक्षण के लिये है कि उच्च न्यायालय अपेक्षित प्रमाणपत्र देना अस्वीकार करता है, तो उसका ऐसा करना सकारण हो न कि वह ऐसा स्वेच्छाचारिता से करता हो। मेरा यह कहना है कि अनुच्छेद 112 को स्वीकार करने का मतलब यह है कि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिये वचनबद्ध हो जाते हैं कि आपराधिक मामलों की अपील भी सम्बन्धित उच्च न्यायालय के एतदर्थ प्रमाणपत्र देने पर उच्चतम न्यायालय में पेश की जा सकती है। उच्च न्यायालय प्रमाणपत्र दे या अस्वीकार करे, यह जो व्यवस्था है वह बड़ी सुविधाजनक है। इसमें क्या सुविधा है यह स्पष्ट है। जिस उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र मांगा जायेगा वह उस मामले पर अपीलीय तथा पूर्ण विचारमूलक न्यायालय की हैसियत से उस मामले पर पूरी तरह विचार कर चुका रहेगा और उसी के निर्णय के विरुद्ध अपील के लिये आवेदन किया जायेगा। यह उस मामले के और उससे सम्बन्ध रखने वाले सारे तथ्यों से पूरी तरह परिचित रहेगा। प्रान्तों में पहले ही अनेक उच्च न्यायालय हैं और संघबद्ध राज्यक्षेत्र के

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अन्तर्गत अब प्राय: 1 दर्जन से भी अधिक उच्च न्यायालय हो जायेंगे। इन सभी न्यायालयों के लिये यह बड़ी सुविधा की बात होगी, अगर उनको ही पहले यह अधिकार रहे कि उनके निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने की अनुमति वह चाहे दें या न दें। और उनके न देने पर ही उच्चतम न्यायालय विशेष अनुमति द्वारा अपील को लाने की अनुमति दे। इसलिये इस सुविधाजनक प्रावधान को हमें अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये। अगर उच्च न्यायालय अपील के लिये प्रमाणपत्र नहीं देता है, तो अधिकांश मामलों के सम्बन्ध में हम यही मानेंगे कि उच्च न्यायालय ने प्रमाण देने से ठीक ही अस्वीकार किया है। ऐसी सूरत में अगर विशेष अनुमति के लिये उच्चतम न्यायालय से आवेदन किया जायेगा, तो दस में नौ मामलों में तो वह विशेष अनुमति देना अस्वीकार ही कर देगा, क्योंकि उच्च न्यायालय ने प्रमाणपत्र देना अस्वीकार करते समय विधि सम्बन्धी प्रश्न पर या अपील की उपयोगिता पर सम्यक् रूप से विचार कर लिया होगा। ऐसी दशा में इस व्यवस्था के अधीन विशेष अनुमति के उच्चतम न्यायालय को जो आवेदन किये जायेंगे उनकी संख्या बहुत ही कम हो जायेगी, क्योंकि इससे प्रिवी कौंसिल में एतदर्थ किये जाने वाले आवेदनों की संख्या बिल्कुल कम हो चुकी है। इसलिये मेरा यह कहना है कि उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र की जो व्यवस्था है वह न केवल एक तर्कसंगत व्यवस्था ही है, बल्कि सुविधाजनक भी है और अन्ततोगत्वा समयादि की दृष्टि से यह व्यवस्था मितव्ययी भी सिद्ध होगी। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि समुचित मामलों में भी उच्च न्यायालय अपील ले जाने के लिये प्रमाणपत्र देना अस्वीकार कर बैठता है, पर उन सीमित मामलों में देश के सर्वोच्च न्यायालय को यह विशेष अधिकार रहना चाहिये कि वह विशेष अनुमति प्रदान करके उनको पेश करने की आज्ञा दे। उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार हो जायेगी, इस सम्भावना से आशंकित हो कर कई सदस्यों ने यहां इस संशोधन के प्रावधानों का विरोध किया है। यह कहा गया है कि पता नहीं, इस व्यवस्था के रखने से उच्चतम न्यायालय में कितनी अपीलें पहुंच जायेंगी। इस संशोधन का इस भय के कारण विरोध किया जा रहा है कि इससे उच्चतम न्यायालय का काम बहुत बढ़ जायेगा और उसको निपटाने के लिये हमें बहुत से न्यायाधीश नियुक्त करने पड़ेंगे। पर मेरा कहना यह है कि यह आशंका सर्वथा निराधार है। जहां तक विधि विषयक प्रश्न का सम्बन्ध है, केवल ऐसे ही मामलों में जहां कि कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, किसी पक्ष को अपील ले जाने के लिये प्रमाणपत्र पाने में या विशेष अनुमति पाने में सफलता मिल सकती है। सारवान विधि-प्रश्न की जो बात कही गई है उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। ऐसे मामले की अपील न की जा सकेगी, जहां कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, बल्कि जहां कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, उसी मामले के अपील की गुंजाइश इस प्रावधान द्वारा हो सकेगी और सारवान विधि-प्रश्न वाले मामलों की परिधि बड़ी सीमित होती है। जहां विधि सम्बन्धी कोई गम्भीर गलती या अनियमितता हुई हो वहीं सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त समझा जायेगा। प्रक्रिया सम्बन्धी कोई कानूनी त्रुटि का होना, मसलन दोषारोपण में कोई गलती रह गई हो या इसी तरह दंड-प्रक्रिया-संहिता के अनुसार कार्रवाई न हुई हो और जाप्ते की गलती रह गई हो, या प्रक्रिया सम्बन्धी किसी विधि का उल्लंघन हुआ हो—इस सब बातों को

उच्च न्यायालय या किसी अपीलीय न्यायालय में भी, कानून की दृष्टि से, शिकायत का पर्याप्त कारण नहीं माना जाता और इनके आधार पर उच्चतम न्यायालय में भी किसी मामले की अपील न हो सकेगी, क्योंकि दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 537 के अनुसार प्रक्रिया सम्बन्धी किसी त्रुटि को आपराधिक मामलों में हस्तक्षेप के लिये पर्याप्त कारण नहीं समझा जा सकता है, जब तक कि यह बात भी न हो कि ऐसी त्रुटि के परिणामस्वरूप पक्ष को क्षति पहुंचती हो। इसलिये सारवान विधि-प्रश्न की परिधि इतनी सीमित है कि केवल प्रक्रिया सम्बन्धी त्रुटि का होना ही मामले की अपील की अनुमति के लिये पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि उस त्रुटि का प्रभाव उस मामले में इतना गम्भीर पड़ता हो कि उससे पक्ष को वास्तविक और गम्भीर क्षति पहुंचती हो, तभी उसको अपील की अनुमति मिल सकेगी। इसलिये 'सारवान विधि-प्रश्न' की जो शर्त्त रख दी गई है उससे प्रक्रिया-सम्बन्धी भूल के आधार पर अपील की अनुमति न मांगी जा सकेगी और लोगों की जो यह आशंका है कि प्रक्रिया सम्बन्धी भूल के आधार पर अपीलों की उच्चतम न्यायालय में भरमार हो जायेगी वह सर्वथा निराधार है। फिर प्रक्रिया सम्बन्धी और भी भूलें हैं। मसलन सेशन के मुकदमे में जूरी को गलत संकेत दिया जा सकता है। इसके सम्बन्ध में भी यह मान लिया गया है कि किसी मामले के निर्णय के सम्बन्ध में हस्तक्षेप के लिये गलत संकेत को ही पर्याप्त आधार न समझा जायेगा, बल्कि हस्तक्षेप तभी किया जायेगा जब कि उसके फलस्वरूप सही न्याय न हो सका हो। इसलिये यह जो आशंका है कि सारवान विधिप्रश्न के अन्तर्ग्रस्त रहने के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपीलों के जाने की जो व्यवस्था रखी जा रही है उससे वहां अपीलों की भरमार हो जायेगी, वह बिल्कुल निराधार है। और फिर अभी-अभी जो अन्तिम मामला श्री रामअनुसिंह का प्रिवी कौंसिल में चल रहा था, उसमें दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 306 के अधीन जूरी के फैसले के विरुद्ध सेशन जजों को राय देने का जो हक है, उसके सम्बन्ध में 1946 में यह फैसला हुआ है कि जब तक कि जूरी का निर्णय स्पष्टतः ऐसा असंगत न हो कि तर्कसंगत व्यक्तियों का कोई निकाय ऐसे निर्णय पर न पहुंचता हो और अपील में यही कारण न दिखाया गया हो, तब तक किसी भी मामले में चाहे उसमें जूरी को गलत संकेत क्यों न दिया गया हो या साक्ष्य कानून (Evidence Act) के विपरीत कोई पक्की गवाही ही क्यों न गुज़ारी गई हो, उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप का पर्याप्त कारण न समझा जायेगा। और उच्चतम न्यायालय भी, मेरा कहना है कि ऐसे कारणों के आधार पर ही किसी मामले की अपील की अनुमति देगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि सारवान विधि-प्रश्न के अन्तर्ग्रस्त होने की जो शर्त यहां रखी गई है, वह एक ऐसी व्यवस्था है जो अनावश्यक अपीलों को उच्चतम न्यायालय में आने से रोकने के लिये एक पर्याप्त संरक्षण रहेगी। सिर्फ उसी हालत में जब कि प्रक्रिया सम्बन्धी गलती के कारण या अनियमित रूप से गवाही गुजारने के कारण मामले पर फैसला देने में गम्भीर अन्याय होगा, तभी मामले की अपील के लिये प्रमाणपत्र या विशेष अनुमति मिल सकेगी। अपराध के विनिश्चयन के सम्बन्ध में जो सवाल उठता है, वह वस्तुतः एक गम्भीर बात होती है। अभी हाल में प्रिवी कौंसिल ने 1947 में एक मामले में यह फैसला दिया है कि दण्ड-संहिता की धारा 34 के अधीन, जो कि उन सभी मामलों में लागू मानी जाती है, जहां कई आदमियों ने मिल कर एक ही इरादे से कार्रवाई की हो, ऐसी कार्रवाई को अपराध का रूप नहीं दिया जा सकता है। वस्तुतः इस मामले को लेकर, इस सम्बन्ध में जो स्पष्टीकरण प्रिवी कौंसिल ने किया है

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

उससे दण्ड-संहिता की धारा 34 के अन्दर आने वाले अनेक अपराध अब इस धारा के अन्दर अपराध नहीं रह जाते हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जो इस सम्बन्ध में अभी प्रिवी कौंसिल में 1947 में निर्णीत हुआ है, वह श्री निवासमल के मामले के सम्बन्ध में है। प्रिवी कौंसिल का निर्णय यह रहा है कि यद्यपि सम्बन्धित दण्ड-विधि में यह बात न कही गई हो, पर कोई कार्रवाई अपराध तभी मानी जायेगी जब अपराध के इरादे और ज्ञान से वह की गई हो। जब तक कि दण्ड-विधि में साफ तौर पर अन्यथा न कहा गया हो अपराधी मन का होना, यानी अपराध के इरादे से कार्रवाई का करना ही अपराध माना जायेगा और इसके लिये यह सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त ने अपराध के इरादे से ही कार्रवाई की थी। इस सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल ने अपराध सम्बन्धी उन मूल तथ्यों पर जोर दिया है, जिनके आधार पर किसी कार्रवाई को अपराध माना जा सकता है और यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सारवान विधि-प्रश्न अधिकतर उठेंगे, अपराध सम्बन्धी मूल तत्वों को लेकर या प्रक्रिया सम्बन्धी या साक्ष्य सम्बन्धी त्रुटि को लेकर। इसलिये मेरा कहना यह है कि यह आशंका सर्वथा निराधार है कि इस व्यवस्था से उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार हो जायेगी। प्रिवी कौंसिल ने ऐसे मामलों में जहां कोई गम्भीर भूल न हुई हो या पक्ष के साथ अन्याय न हो गया हो, अपीलों के लिये विशेष अनुमति के निमित्त आये हुये आवेदनों को सदा अस्वीकार ही किया है। साल में दो या तीन मामलों में ही या अधिक से अधिक 6 मामलों में कह लीजिये, उसने हस्तक्षेप किया होगा। मुझे इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि उच्च न्यायालय अपील के लिये प्रमाणपत्र देने में अधिक से अधिक सावधानी बरतेगा और सिर्फ उन्हीं मामलों में अपील की अनुमति देगा जहां दण्ड-विधि को गलत प्रयोग में लाया गया है या प्रक्रिया या साक्ष्य सम्बन्धी नियमों का ऐसा उल्लंघन हुआ है कि उसके फलस्वरूप पार्टी को वस्तुतः क्षति पहुंची हो। मुझे इसमें भी रंचमात्र सन्देह नहीं है कि अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय भी पर्याप्त सावधानी से ही काम लेगा ताकि व्यर्थ की अपीलों के लिये अनुमति न मांगी जाये। फिर इसके अलावा यह भी प्रतिबन्ध रखा गया है कि उच्च न्यायालय या प्रिवी कौंसिल में अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों को यह प्रमाणपत्र देना होगा कि मामले की अपील के लिये पर्याप्त कारण है। और अगर अपील विशेष अनुमति या प्रमाणपत्र के लिये अनावश्यक आवेदन पत्र कोई वकील देता है, तो उसकी बड़ी ही तीव्र आलोचना होगी जिससे अनावश्यक अपीलों के आवेदन पत्र देने पर काफी रोकथाम आ जायेगी। उच्चतम न्यायालय में भी अवश्य ही इस उपयोगी व्यवस्था का अनुगमन किया जायेगा और इन सभी बातों को हमें उच्चतम न्यायालय पर ही छोड़ देना चाहिये। फैडरल न्यायालय ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि बिना पर्याप्त एवं संगत कारणों के अपीलों को मन्जूर करना वह पसन्द नहीं करता है। इस दृष्टि से देखते हुये हम कहेंगे कि अपीलों के बाहुल्य की जो आशंका प्रकट की जा रही है वह बिल्कुल बेबुनियाद और केवल काल्पनिक है। मैं नहीं सोचता कि कुछ दर्जन से अधिक मामले उच्चतम न्यायालय में पहुंचेगे और इन चन्द मामलों के पहुंचेंगे के भय से हमें ऐसा निष्क्रिय न हो जाना चाहिये कि इस मसले पर कोई निर्णय ही न करें। हर कल्पनीय दृष्टिकोण से आप इस पर विचार करें और इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि गम्भीर मामलों में जहां वस्तुतः उच्च न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय के निर्णय द्वारा अन्याय हुआ हो, उनकी अपील उच्चतम न्यायालय में आनी ही

चाहिये और सारवान विधि-प्रश्न की जो कठिन शर्त्त रखी गई है उसके अधीन ही आनी चाहिये। इस शर्त के अधीन अनावश्यक अपीलों के आने की कोई गुंजाइश ही न रहेगी। मैंने अपने संशोधन में दो और बातों पर भी जोर दिया है जिन पर विचार करना आवश्यक है। मैंने यह भी कहा है कि उच्च न्यायालय के अलावा और अन्य जो न्यायालय हैं जिनके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है, उनके निर्णयों के विरुद्ध भी उच्चतम न्यायालय में अपील की व्यवस्था यहां रहनी चाहिये। विधान मण्डल को अधिकार है कि वह कोई न्यायाधिकरण नियुक्त करे और उसे यह भी प्रावधान करने का अधिकार है कि उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय में अपील न होगी। इन मामलों में यह होना चाहिये कि न्यायाधिकरण, अगर उन्हीं कारणों के आधार पर जिनका कि जिक्र ऊपर किया गया है, अपील को उच्चतम न्यायालय में लाने के लिये प्रमाण पत्र देता हो तो उसकी सुनवाई वहां होनी चाहिये। ऐसे मामलों की अपील के लिये उच्च न्यायालय तो प्रमाणपत्र देगा नहीं क्योंकि वह तो अपने ही निर्णय के विरुद्ध अपील के लिये प्रमाण पत्र दे सकता है। इसलिये ऐसे न्यायाधिकरणों के निर्णय के विरुद्ध भी अपील का प्रावधान होना चाहिये, जिनके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था न हो। ऐसे मामलों में सम्बन्धित न्यायाधिकरण से अपील के लिये प्रमाणपत्र लेना आवश्यक होगा। बाकी व्यवस्था के लिये अनुच्छेद 112 है ही। इसलिये आपराधिक मामलों में ऐसे न्यायाधिकरणों के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की व्यवस्था होनी चाहिये, जिसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था नहीं है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो यहां एक बड़ी कमी रह जायेगी।

और फिर ऐसे भी कई मामले होंगे जो न आपराधिक होंगे और न व्यवहार विषयक। व्यवहार विषयक मामलों के अपील की व्यवस्था हमने अनुच्छेद 111 द्वारा कर दी है और आपराधिक मामलों के अपील की व्यवस्था अनुच्छेद 111-(क) के द्वारा की है, पर कभी-कभी ऐसे भी मामले होंगे जो न आपराधिक होंगे और न व्यवहार विषयक। उदाहरण के लिये न्यायालय के अवमान के मामले को ही लीजिये, जिसमें किसी पक्ष ने या किसी गवाह ने या किसी वकील ने या अन्य किसी ने न्यायालय का अवमान या अनादर किया हो। ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि अवमान करने वाली पार्टी पर अर्थ-दण्ड लगा कर या उसे कारावास दण्ड देकर मामले का सद्यः निपटारा कर दे। ऐसे अवमान सम्बन्धी महत्त्व के मामलों में भी जहां कोई सारवान विधि-प्रश्न निहित हो, उच्चतम न्यायालय में अपील की व्यवस्था होनी चाहिये। अभी-अभी न्यायालय के अवमान से सम्बन्ध रखने वाले दो मामले—एक तो उपनिवेश से और दूसरा इलाहाबाद हाईकोर्ट से—प्रिवी कौंसिल में पहुंचे थे जिनमें यह पाया गया कि विधि का गलत अर्थ लगा कर पक्षों को दण्डित किया गया था। प्रिवी कौंसिल का निर्णय देते हुए लार्ड ऐटकिंस ने न्यायालय के अवमान का सही अर्थ समझने में क्या-क्या भयंकर गलतियां की गई थीं, उसको खोल कर बताया था। ऐसे मामलों में विधि सम्बन्धी महत्त्व के प्रश्न और सिद्धान्त उठते हैं। इन मामलों में भी अपील की व्यवस्था होनी चाहिये, अगर उसमें कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या जब कि मामला अपील के काबिल हो। अतः इन दो श्रेणियों के मामलों

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

को भी—न्यायालय के अवमान मामले और ऐसे मामले जिनमें न्यायाधिकार के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था न हो—यहां इस खण्ड में शामिल कर लेना चाहिये ताकि कोई कमी न रह जाये। हम अपना यह संविधान एक लम्बी अवधि के लिये बना रहे हैं इसलिये उसमें ऐसी कोई त्रुटि न रहने पाये जिसके लिये संविधान में शीघ्र ही संशोधन करना पड़े। व्यवहार विषयक मामलों में हमने तय कर रखा है कि बीस हजार की राशि के या मूल्य के मामलों की अपील हो सकेगी, पर आपराधिक मामलों के बारे में हम मनुष्य के जीवन या स्वातंत्र्य का कोई मूल्य नहीं निर्धारित कर सकते हैं। एक निर्दोष व्यक्ति को बिना अपील का मौका दिये हम फांसी पर नहीं लटका सकते हैं अगर एक भी निर्दोष व्यक्ति फांसी पर लटकाया जाता है या कारावास दण्ड पाता है, जो उसके अनाथ बच्चों की और उसके बेवा की आह न्याय के लिये क्रन्दन करेगी। मैं कहूंगा कि सभा को इस स्थिति का सामना करना चाहिये और गरीब आदमी को न्याय प्रदान करना चाहिये, जिसके जीवन का मूल्य सनकी लोग या अवधूत शायद बीस हजार से भी कम समझते हैं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर अब अपना संशोधन पेश करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

> ''कि सूची 1 (पांचवें सप्ताह) के संशोधन नं. 23 और 24 के सम्बन्ध में, नवीन अनुच्छेद 111-क के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:
>
> '111-क (1) भारत राज्य-क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय द्वारा, दण्ड कार्यवाही में दिये हुये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश या दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि–
>
> (क) उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया है तथा उसको मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा
>
> (ख) उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण हेतु अपने पास मंगा लिया है तथा ऐसे परीक्षण में अभियुक्त व्यक्ति को दोष-सिद्ध ठहराया है और मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा
>
> (ग) उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है:
>
> परन्तु इस खण्ड के उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील, ऐसे नियमों के अधीन रह कर जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जाये, ही होगी।

(2) संसद विधि द्वारा ऐसी शर्त्तों और परिसीमाओं के अधीन, जो ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय को भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के दण्ड कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश अथवा दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी।' ''

[That with reference to amendment Nos. 23 and 24 of List I (Fifth Week) for the new article 111-A, the following be substituted:

''111-A. Appellate jurisdiction of Supreme Court with regard to criminal matters.—(1) The Supreme Court shall have power to entertain and hear appeals from any judgment, final order or sentence in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India—

(a) if the High Court has on appeal reversed the order of acquittal of an accused person and sentenced him to death; or

(b) if the High Court has withdrawn for trial before itself any case from any court subordinate to its authority and has in such trial convicted the accused person and sentenced him to death; or

(c) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court :

Provided that an appeal under sub-clause (c) of this clause shall lie subject to such rules as may from time to time be made by the Supreme Court and to such conditions as the High Court may establish or require.

(2) Parliament may by law confer on the Supreme Court any further powers to entertain and hear appeals from any judgement, final order or sentence in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India subject to such conditions and limitations as may be specified in such law.'']

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इसके सम्बन्ध में इस समय मैं कुछ नहीं कहना चाहता। इस संशोधन पर जो बहस होगी उसे सुन लेने के बाद, बहस खत्म होने पर जो कुछ कहना होगा कहूंगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो संशोधन अभी डा. अम्बेडकर ने पेश किया है, उसे आशा है, सभा के सभी सदस्यों का समर्थन प्राप्त होगा। दण्डवृद्धि की पुनरीक्षण सम्बन्धी शक्तियों को छोड़ कर और अन्य सब बातों के सम्बन्ध में यह संशोधन सारत: वैसा ही है जैसा कि मेरा संशोधन (नं. 17) जिसकी सूचना मैंने दी थी। और सब बातों के सम्बन्ध में यह संशोधन बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मेरा संशोधन था और डा. अम्बेडकर को मैं बधाई देता हूं कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में बतौर समझौते के ऐसा उत्तम संशोधन लाने में वह समर्थ हुये हैं। संशोधन के गुणदोष की समीक्षा करते हुये मैं यह कहूंगा कि यह संशोधन सन्तोषजनक अवश्य है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखते हुये कहना होगा कि यह संशोधन न तो तर्कसंगत है और न सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक ही है। पहली बात तो यह है कि आपराधिक कानून-शास्त्र में अगर इस बात को आप एक स्वत: सिद्ध सिद्धान्त मानते हैं कि हर व्यक्ति को, जो किसी न्यायालय में दोष-सिद्ध ठहराया गया हो, कम से कम एक अपील का मौका मिलना ही चाहिये, तो अपने इस संशोधन से यह बात नहीं पूरी होती है। प्रस्तुत संशोधन के भाग (क) में सिर्फ उसी हालत में अपील का प्रावधान किया गया है, जबकि अभियुक्त की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया गया हो या उसे मृत्यु-दण्डादेश दिया गया हो। मैं विनम्रतापूर्वक यह पूछता हूं कि अगर कोई व्यक्ति विमुक्त कर दिया गया है, पर बाद की अपील में उसे आजीवन निर्वासन का या पांच साल के या एक ही दिन के कारावास का दण्ड मिला है, अथवा अर्थ-दण्ड मिला है, उसके लिये उच्च न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय में अपील की व्यवस्था यहां है? क्या हम यही मान लें कि जिन लोगों को मृत्यु-दण्डादेश मिलता है, केवल उन्हीं को निर्णय के विरुद्ध आपत्ति रहती है और केवल उन्हीं के लिये अपील का अधिकार आवश्यक होता है? मेरी तुच्छ राय में तो हर व्यक्ति को जिसे विमुक्ति पाने के बाद फिर अपील में कोई दण्डादेश प्राप्त हुआ है, निर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार स्वत: प्राप्त रहना चाहिये। मैं इस बात को मंजूर करता हूं कि अगर हजारों अपीलें उच्चतम न्यायालय के पास पहुंचती हैं, तो वहां अपीलों की भरमार हो जायेगी और उनको निपटाने में बड़ी कठिनाई होगी। पर साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि सभा को इस बात का ख्याल रहना चाहिये कि यहां एक न एक ऐसा प्रावधान अवश्य हो, जिसके आधार पर प्रत्येक दोष-सिद्ध व्यक्ति, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में कहीं भी, अपील कर सकता हो।

प्रस्तुत अनुच्छेद 111-क वैसा ही है जैसा कि व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 111 है। गत बार अनुच्छेद 110 पर बोलते हुये मैंने यह शिकायत की थी कि अनुच्छेद 111 के प्रावधान सन्तोषजनक नहीं है। क्योंकि जिस सिद्धान्त पर यहां इनको लिपिबद्ध किया गया है, वह सिद्धान्त न मुझे मान्य है और न सभा को ही। हमने लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया है। अनुच्छेद 8 के द्वारा मूल अधिकारों को स्वीकार किया है और अनुच्छेद 85 में हमने यह स्वीकार किया है कि विधि के समक्ष हर व्यक्ति को

समान अधिकार प्राप्त रहेंगे और सबको समान अवसर प्राप्त रहेंगे। अब इस अनुच्छेद 111 में जो प्रावधान रखे जा रहे हैं तथा जो प्रावधान 111-क में रखे जा रहे हैं वह सबके सब उस मूलभूत भावना के ही सर्वथा विपरीत हैं, जिसके आधार पर लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को मूलाधिकारों को यहां लिपिबद्ध किया गया है, क्योंकि न्याय के मामले में या सबके प्रति समान व्यवहार प्रदान करने में, मृत्यु-दण्डादेश पाये हुये व्यक्ति में और उस व्यक्ति में जिसे कि एक ही दिन के कारावास का दण्ड मिला हो, हम उसी तरह कोई भेदभाव या अन्तर नहीं बरत सकते हैं जैसे कि व्यवहार विषयक मामले में बीस हजार की रकम का वाद खड़ा करने वाले अमीर और दो सौ रुपये की रकम का वाद खड़ा करने वाले गरीब में कोई अन्तर नहीं बरत सकते हैं। न्याय दोनों को ही पाना है, गरीब को दो सौ रुपये के बारे में और अमीर को बीस हजार के बारे में। सिद्धान्ततः इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मैं यह अवश्य कहूंगा कि इन प्रावधानों को रखने में हमारा दृष्टिकोण सही नहीं है। जहां तक कि अवसर साम्य या व्यवहार साम्य देने का प्रश्न है, हमारे कानून ऐसे आदर्श पर आधृत होने चाहिये जिसके अनुसार हर व्यक्ति को विधि के समक्ष पहुंचने का और अपने वाद में न्याय पाने का समान अधिकार प्राप्त रहे। जैसा कि मैंने कहा है, प्रस्तुत अनुच्छेद में जो व्यवस्था रखी गई है वह न तो तर्कसंगत है और न सिद्धान्ततः सही है।

यहां खण्ड (ग) का जो परन्तुक है वह ऐसा है कि उसे यहां न रखना चाहिये था। व्यवहार विषयक मामले के सम्बन्ध में अनुच्छेद 111 में केवल इतना ही प्रतिबन्ध रखा गया है कि उच्च न्यायालय का यह प्रमाणित करना आवश्यक है कि मामला अपील के लायक है। पर आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील के लिये बहुत से प्रतिबंध—और मेरी समझ से आवश्यक प्रतिबन्ध—रख दिये गये हैं। यह कहा गया है कि उसके लिये उच्चतम न्यायालय कई नियम बनायेगा और उच्च न्यायालय कई शर्तें रखेगा, और इन नियमों और शर्त्तों के अधीन ही आपराधिक मामलों की अपील की जा सकेगी। व्यवहार विषयक मामलों की अपील के लिये तो ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा गया है। फिर मेरी समझ में नहीं आता है कि आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में ही ये सारे प्रतिबन्ध क्यों रखे जा रहे हैं। जब उच्च न्यायालय ही यह कह देता है कि मामला अपील के लायक है तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय को लेनी चाहिये। हम कौन हैं जो ऊपर से और शर्तें रखें? क्या हम अपने उच्च न्यायालय पर विश्वास नहीं कर सकते हैं, जो हम यह प्रावधान कर रहे हैं कि उच्च न्यायालय के यह कहने पर भी कि मामला अपील के लायक है, यह जरूरी होगा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये नियमों के अधीन और उच्च न्यायालय द्वारा रखी गई शर्त्तों के अधीन ही अपील की जा सकेगी? आखिर यह कोई ऐसा प्रश्न तो है नहीं कि इसमें किसी नागरिक को अधिकार देने की बात निहित हो। मैं उन लोगों के तर्क को समझ सकता हूं जो यह कहते हैं कि किसी आम-आदमी को यह अधिकार न प्राप्त रहना चाहिये कि उच्चतम न्यायालय में अपील लेकर जाये। मैं इस बात को भी समझ सकता हूं कि जहां तक कि प्रान्तीय स्वायत्त शासन का सम्बन्ध है, किसी नागरिक की सम्पत्ति एवं स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम निर्णय होना चाहिये। अगर कोई आदमी उच्चतम न्यायालय में अपने मामले को ले जाना ही चाहता है तो ऐसे मामलों की संख्या बड़ी ही सीमित होगी जिनकी अपील वह आगे ले जाना चाहता हो। उन सभी बातों को मैं समझ सकता हूं। पर साथ ही यह भी कहूंगा कि जब हमने व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अपील का अधिकार दिया है तो यह स्वाभाविक है कि आपराधिक मामलों में भी अपील का, अगर ज्यादा नहीं तो उतना ही अधिकार, जितना कि व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में प्राप्त है, हमें देना चाहिये। आखिर हमें यह नहीं देखना है कि प्रावधान ऐसा हो कि उसके अधीन ज्यादा से ज्यादा अपील की जा सकें, बल्कि देखना यह है कि प्रावधान ऐसा हो कि न्याय प्राप्त हो सके और न्याय का समुचित प्रशासन हो सके।

मुझे अब एक बात और कहनी है और वह है उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के सम्बन्ध में। अनुच्छेद 109, 110, 111, 111-क और 112—यही पांच अनुच्छेद हैं जिनके द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील की सारी व्यवस्था प्रावहित की गई है। अनुच्छेद 25 के द्वारा यह प्रत्याभूति दी गई है कि हर नागरिक को मूल अधिकार प्राप्त रहेंगे और इन मूल अधिकारों का संरक्षक बनाया गया है उच्चतम न्यायालय को। पर अपने संविधान में हम ऐसा कोई भी प्रावधान नहीं देखते हैं जिसको यह कहा गया हो कि अमुक रीति से और अमुक पद्धति के अनुसार उच्चतम न्यायालय इन शक्तियों का प्रयोग करेगा और नागरिकों को यह अधिकार दिलायेगा। अनुच्छेद 112 पर बहुत कुछ कहा जा चुका है और उस पर और कुछ कह कर मैं सभा का समय नहीं लूंगा, क्योंकि यह अनुच्छेद अब पास हो चुका है। पर इस प्रश्न के एक पहलू को मैं आपके सामने अवश्य रखूंगा और वह भी अपने ढंग से और विनम्रतापूर्वक ही। अगर उच्चतम न्यायालय को यह क्षेत्राधिकार दिया गया है और नागरिकों को उसके पास पहुंचने का अधिकार है और उनके अधिकारों को उच्चतम न्यायालय के द्वारा अवाप्त कराना है तो हमें इसके लिये उच्चतम न्यायालय को पूर्ण शक्तियों से सुसज्जित कर देना होगा। मैं नागरिकों को अधिकार देने की बात नहीं कह रहा हूं बल्कि उच्चतम न्यायालय को ही अधिकार देने की बात कह रहा हूं ताकि वह न्याय कर सके। अनुच्छेद 118 में हमने यह कहा है कि पूर्णत: न्याय करने के लिये जो भी आदेश निकालना आवश्यक होगा उसे उच्चतम न्यायालय निकाल सकता है। पर मैं यह भी जानता हूं कि प्रक्रिया सम्बन्धी बातों के बारे में उच्चतम न्यायालय अब भी वास्तविक रूप में उच्चतम न्यायालय नहीं है। यह सच है कि कुछ मामलों में जहां विधि द्वारा सर्वोच्च दण्ड दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय को अपील की सुनवाई का क्षेत्राधिकार दिया गया है। पर बहुत से मामलों में अपना तरीका बड़ा ही दोषपूर्ण है। उदाहरण के लिये जिस व्यक्ति को आजीवन निर्वासन का दण्ड मिला हो, उसे अपील का अधिकार नहीं है, पर उसकी विमुक्ति के विरुद्ध अपील का अधिकार दिया गया है।

अगर आप अनुच्छेद 15 को पढ़ें जिसे कि हम पास कर चुके हैं, तो देखेंगे कि जहां तक कि प्रक्रिया का सम्बन्ध है, यह विधान मण्डल के ही अधिकार की बात है कि वह जो चाहे प्रक्रिया निश्चित करे और इस मामले में उच्चतम न्यायालय को कोई दखल नहीं है। जब तक यह बात स्पष्ट रूप से यहां नहीं लिपिबद्ध कर दी जाती है कि जहां तक मनुष्य के जीवन का प्रश्न है, जहां तक कि नागरिक के अधिकार के अन्तिम रूप से विनिश्चित करने का प्रश्न है, उच्चतम न्यायालय को विधान मण्डल पर शक्ति प्राप्त रहेगी, तब तक हम यह नहीं कह सकते हैं कि नागरिकों को नवे अधिकार निश्चित रूप से अवाप्त ही रहेंगे। जहां तक कि नागरिक के स्वातन्त्र्य का सम्बन्ध है, उसकी रक्षा

तो होनी ही चाहिये, चाहे इसमें विधान मण्डल की मरज़ी के खिलाफ ही क्यों न जाना पड़े।

अनुच्छेद 109-क, 113-क और 114-क के सम्बन्ध में मैंने संशोधनों की सूचना यहां दी है और उस प्रसंग में इन संशोधनों पर भी अवश्य विचार होना चाहिये क्योंकि अन्ततोगत्वा जो अधिकार हम उच्चतम न्यायालय को देंगे उन्हीं पर जनता के अधिकारों का अस्तित्व निर्भर करेगा। जबकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के आधार पर अब तक प्रिवी कौंसिल को यह सारी शक्तियां धारा 112 के अधीन प्राप्त रही हैं, तो यही शक्तियां उच्चतम न्यायालय तक को भी, जहां तक कि नैसर्गिक अधिकार का सम्बन्ध है, प्राप्त रहनी चाहिये ताकि वह पूर्णतः न्याय कर सके और किसी विशेष विधि या विशेष प्रावधान अथवा विनिमय का अनुगमन करके नहीं बल्कि उन सिद्धान्तों का अनुगमन करके जो सर्वविदित हैं, जो सर्वत्र मान्य हो चुके हैं और जो अपने महत्त्व की दृष्टि से बुनियादी सिद्धान्त माने जाते हैं। अपने सभी अधिकारों को हम तभी सुरक्षित रख सकते हैं जबकि हम उच्चतम न्यायालय के अधिकारों की परिधि को यथासम्भव पूर्णतः चढ़ा दें। जहां तक इस प्रस्तुत संशोधन का सम्बन्ध है मुझे इसके सिवाय और कुछ नहीं कहना है कि मुझे खुशी है कि हम लोगों का प्रयास सफल हुआ और उसके फलस्वरूप समझौते के रूप में यह प्रावधान सामने आया जो हम सबको स्वीकार्य है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है उससे व्यवहार विषयक अपीलें और आपराधिक अपीलें दोनों ही समान स्तर पर आ जाती हैं। मैंने अभी उस दिन यह दलील पेश की थी कि मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि फांसी पाने के पहले वह अपने मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय से करा सके। मृत्यु-दण्ड प्राप्त निर्धन व्यक्ति की क्या कठिनाइयां होती हैं यह मुझे अच्छी तरह याद है। मृत्यु-दण्ड प्राप्त कैदियों के साथ कोठरी में मैं रह चुका हूं और उनकी अनुभूतियों से मैं अच्छी तरह परिचित हूं। मुश्किल से कोई मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति ही अपने मामले की अपील उच्चतम न्यायालय के समक्ष ले जा सकेगा। यहां यह कहा गया है कि अगर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता हो कि मामला अपील के लायक है तो उच्चतम न्यायालय उसकी सुनवाई कर सकता है। पर मामले की अपील बिना उच्च न्यायालय के ऐसा कहे उच्चतम न्यायालय के पास नहीं पहुंच सकती है। मैं यह अनुभव करता हूं कि मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति जो गरीब है और जिसके पास ऐसा साधन नहीं है कि अपने मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में कर सके या उच्च न्यायालय से एतदर्थ प्रमाण-पत्र पा सके, उसे भी अपील की उच्चतम न्यायालय से सुनवाई कराने का अधिकार रहना ही चाहिये। किसी को भी फांसी पर न लटकाया जाये, जब तक कि उसके मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय न कर ले। डा. अम्बेडकर का जो वर्तमान संशोधन है उसके अनुसार तो हजार में सिर्फ सौ ही यानी केवल 10 प्रतिशत हत्या सम्बन्धी अपीलों की सुनवाई अधिकारतः अभियुक्त करा सकेंगे और वह भी उस हालत में जब कि अभियुक्त उनका खर्च उठाने में सक्षम हो। इसलिये होगा यह कि सम्पन्न लोग ही आपराधिक मामलों की अपीलें उच्च न्यायालय में ले जा सकेंगे और गरीबों को तो उच्चतम न्यायालय से सुनवाई पाये बिना ही फांसी मिल

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

जायेगी। इसलिये गरीब आदमी तो इस संशोधन के पास हो जाने पर भी न्याय न प्राप्त कर सकेगा। अत: यद्यपि यह संशोधन समझौते के रूप में ही आया है, पर मेरा ख्याल यह है इसके अधीन भी मृत्यु-दण्ड प्राप्त निर्धन व्यक्ति न्याय नहीं पा सकेगा।

संशोधन के दूसरे हिस्से में यह कहा गया है कि: ''संसद विधि द्वारा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय को किसी निर्णय अथवा दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी इत्यादि, इत्यादि।' आशा है कि इस अनुच्छेद में व्यवहृत शब्दों से विधान-मण्डल यह शीघ्र ही समझ जायेगा कि हर मृत्यु दण्ड प्राप्त व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में बिना किसी खर्च के अपील ले जाने का अधिकार प्राप्त रहना चाहिये। जब तक कि उच्च्तम न्यायालय उसकी अपील को नामंजूर न कर दे उसे फांसी न मिलनी चाहिये। मुझे इस पर और कुछ नहीं कहना है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों की अपील की सुनवाई का अधिकार दिये जाने के प्रश्न पर अब तक जो लम्बी बहस चलती रही है वह अन्ततोगत्वा अब इतने लम्बे अरसे के बाद समाप्त होती दिखाई दे रही है। आपने यहां यह बात कह रखी है कि उस मसले पर काफी बहस हो चुकी है और अब यहां उन्हीं तर्कों को दुहरा कर, जो कि एक बार पेश किये जा चुके हैं, सभा का समय न बर्बाद किया जाना चाहिये। डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं चन्द बातें ही कहना चाहता हूं और इस सिलसिले में आपके उक्त कथन का ख्याल रखूंगा।

सभा को मालूम होगा कि बहुत से सदस्यों में इस प्रश्न को लेकर कि आपराधिक मामलों की अपीलों की सुनवाई का अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया जाये या नहीं, बड़ा चांचल्य है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में सभा में स्पष्टत: मतभेद है और यहां दो राय है। एक वर्ग का कहना यह है कि संविधान द्वारा उस अधिकार को देना आवश्यक नहीं है बल्कि इसे संसद पर छोड़ देना चाहिये और वह विधि द्वारा, आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में जो भी अधिकार देना आवश्यक समझे, दे। पर हम जैसे सदस्यों का यह दृढ़ मत है कि जबकि व्यवहार-विषयक मामलों की अपील के लिये खुद संविधान में प्रावधान रखा जा रहा है तो फिर इसके लिये कोई औचित्य नहीं रह जाता है कि आपराधिक मामलों की अपीलों के बारे में ऐसा ही प्रावधान संविधान में न रखा जाये। हम लोग यह अनुभव करते हैं कि हमें ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे देश को यह ख्याल हो कि हम सम्पत्ति को मानव जीवन से अधिक महत्त्व देते हैं।

अब इस तमाम बहस-मुबाहिसे से जो निचोड़ निकलता है, वही मेरी समझ से इस संशोधन में रखा गया है जिसे डा. अम्बेडकर ने यहां पेश किया है। यहां के बहुसंख्यक सदस्यों की यही प्रधान मांग थी कि जिन मामलों में मृत्यु दण्ड का प्रश्न निहित हो, उनकी अपील का अधिकार तो संविधान में रहना ही चाहिये। मेरी भी अपनी पक्की राय ऐसी ही थी, पर इसमें आपत्ति यह थी कि इससे मृत्यु दण्ड सम्बन्धी अपीलों की उच्चतम न्यायालय में इतनी भरमार हो जायेगी कि हमें उनको निपटाने के लिये बहुत से न्यायाधीश नियुक्त करने होंगे। मैंने खास तौर पर मृत्यु दण्ड सम्बन्धी दो श्रेणियों के मामलों की ओर

सभा का ध्यान आकृष्ट किया था। एक व्यक्ति जिसे सेशन अदालत ने हत्या के अपराध से बरी कर दिया है, पर सरकारी वकील उस फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील करता है और वह न्यायालय सेशन अदालत के फैसले को उलट देता है और उसे मौत की सजा देता है। उस आदमी को अपील का अधिकार मिलना चाहिये। ऐसे हत्या सम्बन्धी मामलों में जहां उच्च न्यायालय ने अपने निचले न्यायालय के निर्णय को उलट दिया हो, अभियुक्त को उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार मिलना ही चाहिये।

मुझे खुशी है कि इस अनुच्छेद पर जो संशोधन डा. अम्बेडकर ने रखा है, उसमें मेरी इस बात का स्पष्ट प्रावधान कर दिया गया है। माननीय मित्रों से मैं यह अनुरोध करूंगा कि इस सम्बन्ध में जो पद-संहति व्यवहृत हुई है उसे वह अच्छी तरह पढ़ें। अगर उसे ठीक-ठीक समझ लिया जाये तो इस अनुच्छेद पर और अधिक बहस की कोई गुंजाइश नहीं रह जायेगी। इस प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 111-क में यह कहा गया है:

> ''भारत राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा दण्ड कार्यवाही में दिये हुये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश, या दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि–
>
> (क) उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की नियुक्ति के आदेश को उलट दिया है तथा उसको मृत्यु दण्डादेश दिया है, अथवा''

इसके अन्दर वह सभी मामले आ जाते हैं जिनके अपील के अधिकार पर हमने जोर दिया था। प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड 1(ख) में वह सभी मामले आ जाते हैं, जिनके सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को यह अधिकार रहना चाहिये कि परीक्षण के लिये अपने अधीन न्यायालय से वह मामले को अपने पास मंगा कर उस पर स्वत: निर्णय दे सके। उच्च न्यायालय में तो यह अधिकार स्वत: निहित है और अभिलेख न्यायालय के रूप में उसको इसका अधिकार प्राप्त है ही। ऐसे मामले में अगर अभियुक्त को मृत्यु दण्ड दिया जाता है, तो वस्तुत: यह पहला फैसला ही समझा जायेगा और ऐसी स्थिति के लिये अपील का जो प्रावधान यहां किया गया है वह ठीक ही है। प्रस्तुत अनुच्छेद के तीसरे पैरा में आपराधिक मामलों के बारे में यह कहा गया है कि अपीलें, ऐसे नियमों के अधीन रह कर जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जाये, होंगी। अगर इन नियमों और शर्तों के अनुसार अपील की जाती है, तो उच्चतम न्यायालय उसकी सुनवाई जरूर करेगा। इस व्यवस्था के अधीन ऐसे सभी मामलों की अपील की जा सकेगी, जिनके सम्बन्ध में हम संविधान में प्रावधान करना चाहते थे। और फिर इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में उच्चतम न्यायालय को इसके अलावा और अन्य शक्तियों को देने का भी प्रावधान किया गया है। यानी यह व्यवस्था कर दी गई है कि देश की भावी संसद विधि द्वारा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो कि ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय, किसी उच्च न्यायालय के निर्णय, अन्तिम आदेश या दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी। इसके द्वारा आशा है उसे पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार भी प्राप्त हो जायेगा, जो उच्च न्यायालय को अभी प्राप्त है। इसलिये मैं तो यही समझ रहा हूं कि प्रस्तुत संशोधन एक व्यापक संशोधन है और मुझे सन्तोष है कि विरोधी पक्षों में उससे समझौता हो गया।

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

मेरा ख्याल है कि कानून पेशा के लोग, जिस पेशे से सम्बन्ध रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है, डा. अम्बेडकर के प्रति कृतज्ञ होंगे कि उन्होंने इस सम्बन्ध में समझौते की ऐसी भावना यहां प्रदर्शित की है। मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान्, कि संशोधन का जो स्वरूप है उससे हमारी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं और उसे सभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना चाहिये।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जैसा कि मैंने अभी उस दिन कहा है, अनुच्छेद 110 और 112 के प्रावधानों को देखते हुये, जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं, अब कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है कि उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील के लिये और प्रावधान रखे जाये। व्यक्ति के जीवन तथा स्वातन्त्रय के सम्बन्ध में यहां बहुत कुछ कहा गया है। मेरा ख्याल है कि व्यवहार विषयक मामलों की अपील के लिये जो प्रक्रिया रखी गई, वही प्रक्रिया आपराधिक मामलों की अपील के बारे में रखने की जो बात यहां कही जा रही है वह किसी गलतफहमी की वजह से ही कही जा रही है। आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में तो ऐसा होता है कि जो मामले संगीन होते हैं वह पहले दौरा सुपुर्द करने वाले मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये जाते हैं। मजिस्ट्रेट शहादत लेता है और बचाव पक्ष का वकील गवाहों के बयानों को पुलिस की डायरी से उतार सकता है और गवाहों से पुलिस के सामने दिये हुये उनके बयानों के बारे में जिरह कर उनके बयानों को झूठा सिद्ध कर सकता है। एक सीढ़ी तो यह होती है जहां अभियोग पक्ष के गवाहों से जिरह की जाती है, उनके बयानों की सच्चाई परखी जाती है और गवाह सच्चा है या झूठा, इसके बारे में जिरह की जाती है। यहां बचाव पक्ष को यह बताने का काफी मौका मिलता है कि मामला बिल्कुल झूठा है, बेबुनियाद है और प्रामाणिक प्रमाण न मिलने पर वह अभियुक्त को बरी करने की मांग कर सकता है। और उसके बाद उस मजिस्ट्रेट के पास से मामला आता है, सेशन न्यायाधीश के समक्ष यहां भी बचाव पक्ष को गवाहों से जिरह करने का अधिकार रहता है। बचाव पक्ष यहां भी गवाहों ने जो बयान पुलिस के सामने और जो बयान मजिस्ट्रेट के सामने दिये हों उनको मांग सकता है और गवाहों से जिरह कर सकता है जो कुछ कहना हो कह सकता है। बचाव पक्ष को पूरा मौका यहां दिया जाता है कि अदालत के सामने अपने बचाव के लिये जो कुछ भी कहना हो, कहे। मुकदमे की सुनवाई वहां पंच करते हैं या अन्य सहायक लोग जिन्हें न्यायाधीश नियुक्त करता है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य के कहने का मूल निचोड़ यह है कि अपील का अधिकार न देना चाहिये। सभा के समक्ष इस आशय का तो कोई संशोधन पेश नहीं है कि अपील का अधिकार न होना चाहिए इसलिये मैं नहीं समझता कि वक्ता के इस भाषण से सभा को कोई भी सहायता मिल सकती है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** मेरा कहना यह है कि प्रस्तुत संशोधन के उपखण्ड (ग) और खण्ड (2) का तो मैं समर्थन करता हूं, पर उसके उपखण्ड (क) और (ख) के मैं विरुद्ध हूं। मैं यह कह रहा हूं कि अभियुक्त को काफी मौका दिया जाता है कि पहले तो वह सेशन अदालत में विरोधी पक्ष के गवाहों से पूरी तरह जिरह कर सके और

अपनी सारी बातें उस अदालत के सामने कहे और उसके बाद उसे यह भी हक है कि उच्च न्यायालय में अपील करे और वहां भी अपने बचाव के लिये जो कुछ भी कहना हो कहे। यहां उपखण्ड (क) में यह कहा गया है कि जिस मामले में कि अधीन न्यायालय ने अभियुक्त को बरी कर दिया हो, पर अपील करने में उच्च न्यायालय उस फैसले को उलट दे, उनमें उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिए अभियुक्त को अधिकार रहेगा। मेरा कहना यह है कि न सिर्फ अभियुक्त को ही निर्णय के विरुद्ध शिकायत हो सकती हे, बल्कि दूसरे पक्ष को भी उसके विरुद्ध शिकायत हो सकती है। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि एक बच्चे को कोई आम रास्ते पर कत्ल कर देता है। बच्चे की मां को भी अभियुक्त के बरी करने के फैसले के खिलाफ शिकायत होगी। अगर अभियुक्त को यह अधिकार दिया जाता है कि दोषी करार दिये जाने पर वह फैसले के खिलाफ अपील कर सकता है, तो बच्चे की मां को भी यह अधिकार है कि वह न्यायालय के समक्ष जाकर यह निवेदन करे कि: ''इस हत्याारे ने मेरे बच्चे की हत्या की है। उसके खिलाफ मुझे शिकायत है। राज्य की स्थिरता के लिये और ऐसे अपराधों को रोकने के लिये यह जरूरी है कि उसे फांसी पर लटकाया जाये।'' यह कहना बिल्कुल गलत है कि केवल अभियुक्त को ही निर्णय के विरुद्ध शिकायत हो सकती है इसलिये उसे अपील का अधिकार मिलना चाहिये। बच्चे की मां के पक्ष में भी यह दलील पेश की जा सकती है और उतने ही जोर के साथ जितने कि अभियुक्त के पक्ष में, कि बच्चे की मां की शिकायत सही है और उसे उच्चतम न्यायालय में जाकर यह कहने का अधिकार होना चाहिये कि इस हत्यारे को फांसी मिलनी ही चाहिये।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** अधीन न्यायालय द्वारा अभियुक्त के बरी करने के फैसले के खिलाफ की गई अपील की सुनवाई का अधिकार उच्च न्यायालय को प्राप्त है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** मृत बच्चे की मां को राज्य से यह मांग करने का कि हत्यारे के बरी करने के फैसले के खिलाफ अपील का उसे हक होना चाहिये, उतना ही अधिकार है, जितना कि अभियुक्त को दण्ड के फैसले के विरुद्ध अपील की मांग का। इसलिये यह कहना सही नहीं है कि अभियुक्त को, दोषसिद्धि के बाद कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार तो मिलना ही चाहिये और अगर वह पहली बार हत्या का अपराधी सिद्ध किया गया है, तो प्रस्तुत उपखण्ड (क) के अनुसार उसे निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार होना चाहिए। इस तर्क में मुझे तो कोई तथ्य या बल दिखाई नहीं देता है। इस सम्बन्ध में मुझे एक और भी बात कहनी है जो यह है। व्यक्ति के जीवन और स्वातन्त्र्य को लेकर बहुत सी बातें कही जा रही हैं। जब यहां संसद द्वारा उच्चतम न्यायालय को अधिकार दिये जाने के प्रश्न पर बहस चल रही थी, तो माननीय मित्र श्री लारी ने यह फरमाया था: ''संसद पर छोड़ने का तो मतलब होता है कि आप इसे अधिकारारूढ़ दल पर छोड़ते हैं, मन्त्रिमण्डल पर छोड़ते हैं या प्रधानमंत्री पर छोड़ते हैं।'' एक ऐसे देश में जहां आम सड़क पर स्त्रियों पर बलात्कार किया जाता है, जहां दो चार रुपयों के आभूषण के लिये निरीह बच्चों की हत्या कर दी जाती है, जहां बेचारा मोची इसलिये कत्ल कर दिया जाता है कि दो पैसा उसे ग्राहक देता है पर वह आग्रह करता है कि चार पैसा पाने पर; यहां खेतों की सिंचाई के पानी को लेकर खून का होना स्वाभाविक बात है, आप ऐसी ऊंची बातें कहें यह कुछ अच्छा नहीं लगता।

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

यहां की वास्तविक स्थिति की आप उपेक्षा नहीं कर सकते, उसको ध्यान में रख कर हमें आगे बढ़ना होगा। आखिर न्याय का सम्बन्ध हमारे जीवन-दशा से ही तो है। जनता की इच्छा ही न्याय है और संसद तो जनता की इच्छा को व्यक्त करने का एक माध्यम मात्र है। मैं यह भी कहूंगा कि ऐसे लोगों को लेकर एक स्थिर समाज की रचना कभी नहीं की जा सकती, जो या तो आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान है या फिर आवश्यकता से अधिक बुद्धू है। ऐसे ही लोग जो ऊंचे सिद्धान्तों की बातें करते हैं, समाज के स्थैर्य की, राज्य के स्थैर्य की कभी परवाह नहीं करते। उदाहरण के लिये आप आस्ट्रिया की दशा को ही लीजिये। यहां कितने ही वैज्ञानिक हैं, कितने ही कानून विशेषज्ञ हैं, कितने ही दार्शनिक हैं, कितने ही विद्वान् हैं और प्रतिभासम्पन्न लोग है; पर ये लोग आपस में किसी बात में सहमत ही नहीं होते, सदा इनमें मतभेद ही रहता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि तमाम इतिहास में यही एक ऐसा देश रहा है जहां कभी एक स्थिर समाज न बन सका, जहां कभी शांति न रही, गोकि इस देश को कुछ ऐसे व्यक्तियों को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है, जो विज्ञान एवं दर्शन के क्षेत्र में दुनिया के श्रेष्ठतम पुरुष माने गये हैं। और ऐसे भी लोग आपको मिलेंगे जो इतने बुद्धिशून्य हैं कि इसे नहीं समझ पाते हैं कि स्थिति का तकाजा क्या है।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है, माननीय सदस्य मूल बात से बहुत दूर चले जा रहे हैं।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** सो, मेरा कहना यह है कि न्याय का जो प्रश्न है, व्यक्ति के जीवन या स्वातन्त्र्य का जो प्रश्न है, उसका देश की वस्तुस्थिति से, जीवन-दशा से बहुत गहरा सम्बन्ध है और इस प्रश्न पर विचार करते समय आप इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (2) के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि अधीन न्यायालयों से जो मामले उच्च न्यायालय अपने पास मंगाता है, उनमें अधिकांश मामले अभियुक्त के आवेदन करने पर ही वह मंगाता है। विरले ही मामलों में ऐसा होता है कि अभियोग-पक्ष के आवेदन पर उच्च न्यायालय कोई मामला अपने पास मंगाता हो। इस सम्बन्ध में हमेशा दलील पेश की जाती है कि अधीन न्यायालय में अगर मामले की सुनवाई होती है तो डर है कि वहां न्याय न हो सकेगा। आवेदन पर मामला अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय के पास पहुंचता है। वह मामला इसी आधार पर वहां मंगाया जाता है कि अधीन न्यायालय वाले इलाके में या उस न्यायालय में स्थिति ऐसी है कि वहां न्याय न हो सकेगा, यह आशंका सही है। इसलिये उच्च न्यायालय जो मामले को अपने पास मंगाता है, वह इसीलिये कि सम्बन्धित पक्ष को विश्वास-भाव पैदा हो कि मामले में वहां न्याय होगा। मैं यह कहता हूं कि जब मामला उच्च न्यायालय में इसीलिये मंगाया जाता है कि वहां मामले में न्याय हो सकेगा और सम्बन्धित पक्ष में न्यायालय के प्रति विश्वास भावना उत्पन्न होगी और जब उच्च न्यायालय का न्यायाधीश उस मामले की हर बात को अच्छी तरह देख लेता है, सभी प्रश्नों पर वहां बहस हो जाती है, गवाहों से जिरह कर ली जाती है, उनको ठोक बजा कर देख लिया जाता है तो फिर उस मामले को पुन: उच्चतम न्यायालय में सुनवाई हो इसका मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता। आखिर उच्चतम न्यायालय उस मामले में करेगा ही क्या? वह न्याय के सिद्धान्त पर ही विचार करेगा। पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, जीवन एक गतिशील वस्तु है। उसमें और कोरे सिद्धान्त में बड़ा अन्तर है। अभियुक्त

के लिये ही न्याय आवश्यक नहीं है बल्कि प्रति-पक्षी को भी, जिसे अभियुक्त से शिकायत है, न्याय पाने की वैसी ही आवश्यकता है जैसी कि अभियुक्त को। न्याय की आवश्यकता सब को है; राज्य न्याय इसलिये चाहता है कि उसकी स्थिरता बनी रहे, प्रतिपक्षी न्याय चाहता है, बदला पाने के लिये और समाज न्याय चाहता है इसलिये कि न्याय के भय से लोग अपराध न करें। यह सभी बातें महत्त्व रखती हैं और न्याय व्यवस्था पर विचार करने में हमें इनका ध्यान रखना होगा। देश की वर्तमान स्थिति के अनुसार इन सभी बातों का ख्याल रखते हुये, मैं यह कहूंगा कि आपराधिक अपीलों को उच्च न्यायालय से आगे ले जाने की जरूरत नहीं है और इन मामलों में इस न्यायालय के फैसले को ही हमें आखिरी फैसला करार देना चाहिये।

प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखण्ड (ग) का मैं समर्थन करता हूं। यह एक महत्त्वपूर्ण उपखण्ड है। इसके अन्दर बहुत से मामले आ जायेंगे जिनकी अपील आगे हो सकेगी। मैं कहूंगा कि संशोधन के उपखण्ड (ग) को रखने में बड़ा औचित्य है। इस उपखण्ड का तथा अनुच्छेद के खण्ड (2) का समर्थन कोई भी करेगा। इसके पक्ष समर्थन में मैं अमेरिकन विधान के एक प्रावधान को पेश करूंगा जो वहां के उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में है। वह यों है:

> ''अनुच्छेद 3—उपखण्ड (2)—उन सब मामलों में जिनका प्रभाव राजदूतों, सरकारी मन्त्रियों और वैदेशिक प्रतिनिधियों पर पड़ता हो, तथा उन मामलों में जहां राज्य एक पक्ष के रूप में होगा, उच्चतम न्यायालय को आरम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा। अन्य सब मामलों में, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, उच्चतम न्यायालय को विधि एवं तथ्य दोनों के ही सम्बन्ध में, ऐसे अपवादों के साथ तथा ऐसे आवेदनों के अधीन जो इस सम्बन्ध में न्यायालय करे, अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा।''

अमेरिकन विधान में यह कहा गया है श्रीमान्, कि न्यायपालिका ही वहां सर्वप्रधान है, पर ब्रिटिश विधान में संसद को प्रधानता दी गई है और अपने वर्तमान संविधान में कार्यपालिका को प्रधानता दी गई है। इसलिये अगर अमेरिका में, जहां कि न्यायपालिका को प्रधानता प्राप्त है, ऐसा प्रावधान है कि उच्चतम न्यायालय की शक्तियां संसद निर्मित विधि के अधीन प्रभावी होंगी, तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि यहां हम अमेरिकन विधान से आगे क्यों जायें। वर्तमान समय में अमेरिका में उच्चतम न्यायालय को किस तरह का अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है, इस पर प्रो. जिंक की एक पुस्तक से, जो कि उन्होंने वहां के विधान के सम्बन्ध में लिखी है, मैं एक अंश पढ़ कर सुनाता हूं:

''अमेरिकन इतिहास के विभिन्न कालों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का विस्तार भिन्न-भिन्न रहा है, पर साधारणत: प्रवृत्ति यही रही है कि इस क्षेत्राधिकार को और सीमित किया जाये। जब श्री डब्ल्यू.एच. टैफ्ट वहां मुख्य न्यायाधीश थे तो उन्होंने यह देखा कि न्यायालय का काम बहुत पिछड़ा हुआ था और उन्होंने मामले को और शीघ्रतापूर्वक निपटाने के लिये उपाय निकाले। उनकी सिफारिशों पर अमल करते हुए कांग्रेस ने उन मामलों का दायरा और भी घटा दिया, जिनकी अपील अधिकारत: वहां के नागरिक कर सकते थे और इस व्यवस्था से वहां के वकीलों को बड़ी मायूसी हुई थी, जिनका कहना यह था कि प्रत्येक

[श्री कृष्णचन्द शर्मा]

ऐसा मामला जो साधारण से अधिक महत्त्व रखता हो उसकी सुनवाई देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कराने के लिये अपील का अधिकार मिलना ही चाहिये। इस समय दो ही तरह के मामलों की अपील अमेरिकन राज्यों के उच्चतम न्यायालयों या वहां के सर्किट कोर्टों से बाहर किसी अन्य न्यायालय में अधिकारत: की जा सकती है। (1) एक तो ऐसे मामले जिनमें यह कहा गया हो कि देश के संविधान के किसी प्रावधान की या उसके अधीन किये गये संधिपत्रों की अथवा किसी कानून की अवहेलना की गई है या उनके अनुसार जो वादी को अधिकार प्राप्त है उससे वह वंचित किया गया है। (2) ऐसे मामले जिनमें यह कहा गया हो कि वहां के किसी राज्य के संविधान का कोई प्रावधान या विधि ऐसी जो राष्ट्रीय संविधान के, या उसके अधीन की गई सन्धियों या, उसके अधीन पास की हुई किन्हीं विधियों से विपरीत जाती है।''

अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में यह स्थिति है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। जैसा कि मैंने कहा है यह एक मानी हुई बात है कि अमेरिकन विधान में न्यायपालिका को प्रावधान दिया गया है। जिस देश के विधान में न्यायपालिका को प्राधान्य दिया गया है, वहां की है यह वस्तुस्थिति, जिसका किताब से मैंने उद्धरण दिया है। इसलिये, हमारे देश में श्रीमान्, जहां की हालत ऐसी है कि उसमें यह अपेक्षित है कि मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाये और अपराधों की रोकथाम की जाये, किसी अपीलीय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को वह सब शक्तियां क्यों दी जायें जो संशोधन के उपखण्ड (क) तथा (ख) में प्रावहित की गई हैं। हां, संशोधन के उपखण्ड (ग) और खण्ड (2) के प्रावधानों का मैं खुशी से समर्थन करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सभा के सभी वर्गों ने इस संशोधन का इतना गुणगान किया है कि मेरी इच्छा नहीं होती है कि उसके सम्बन्ध में मैं कोई भी ऐसी बात कहूं जो उसका विरोध करने वाली प्रतीत हो। कुल मिला कर यह स्वीकार करना होगा कि इसके सम्बन्ध में दी हुई वक्तृतायें यही संकेत देती हैं कि डा. अम्बेडकर के इस संशोधन को सभा का समर्थन प्राप्त है। फिर भी मैं यह अनुभव करता हूं कि यह मेरा कर्त्तव्य है कि दो एक बातों की मैं यहां चर्चा करूं ताकि यह मालूम हो जाये कि इस अनुच्छेद 111-क का ठीक-ठीक दायरा क्या है।

संशोधन का जो अन्तिम अंश है वह दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411-क की प्रतिलिपि मात्र है, जो उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील से सम्बन्ध रखता है। प्रस्तुत अनुच्छेद के इस खण्ड के अनुसार ऐसे नियमों के अधीन जिन्हें उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जायें, की जा सकेगी। प्रस्तुत उपखण्ड (ग) के अधीन उच्चतम न्यायालय को अधिकार होगा कि अपील के लिये जो भी प्रतिबन्ध या शर्त चाहे वह प्रावहित करे। उसी तरह उच्च न्यायालय को भी इस सम्बन्ध में यह अधिकार होगा कि अपील के

बारे में जो भी शर्त आरोपित करना वह ठीक समझे, आरोपित कर सकता है। मैं यह समझ पाता हूं, श्रीमान्, यह खण्ड आखिर संविधान के अनुच्छेद 112 से आगे हमें किस तरह ले जाता है। अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को इसका अवाध अधिकार प्राप्त है कि किसी आपराधिक मामले की अपील के लिये वह स्वविवेक से विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है। अनुच्छेद 112 में आपराधिक मामलों की अपील के बारे में विशेष अनुमति प्रदान करने का जो अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया है, उसमें ऐसे कोई प्रतिबन्ध नहीं रखे गये हैं जैसा कि इस खण्ड में हैं। अब मान लीजिये, अपने अधिकारों के प्रयोग के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय कुछ शर्तें रख देता है और उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र प्रदान करने के अधिकार के बारे में कुछ प्रतिबन्ध आरोपित कर देता है। यहां क्या यह अभिप्राय है कि उच्च न्यायालय उन शर्तों के अधीन ही प्रमाणपत्र देगा जिन्हें उच्चतम न्यायालय आरोपित करेगा? मामला अपील के लायक है ऐसा प्रमाण पत्र देने का अधिकार दिया गया है उच्च न्यायालय को, पर अपील के सम्बन्ध में क्या शर्तें अपेक्षित होंगी, इसे उच्चतम न्यायालय निश्चित करेगा। हम यही मानते हैं कि उच्चतम न्यायालय इसी आशय का नियम बनायेगा कि उच्च न्यायालय उन्हीं मामलों की अपील के लिये प्रमाणपत्र देगा जहां कोई खास अन्याय हो गया हो या जूरी को गलत संकेत दिया गया हो या ऐसी गवाही गुजरने दी गई हो, जो नियमतः मान्य नहीं हो सकती थी या ऐसी ही अन्य कोई त्रुटि रही हो। अब सवाल यह है कि क्या हम ऐसा समझ लें कि अनुच्छेद 112 के अधीन प्राप्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय पर इन नियमों की कोई बंदिश न होगी, जो उच्च न्यायालय के लाभ के लिये यहां उपखण्ड (ग) में रखे गये हैं? यह एक ऐसी बात है, जिस पर आशा है, डा. अम्बेडकर अवश्य सभा को प्रकाश देंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखण्ड (ग) और अनुच्छेद 112 इन दोनों के प्रावधानों को लेकर क्या स्थिति रहेगी, इस पर वह कृपया प्रकाश डालेंगे। अगर इन दोनों में अन्तर केवल यही है कि एक के अनुसार उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र के आधार पर अपील की जा सकती है और दूसरे के अनुसार उच्चतम न्यायालय विशेष अनुमति प्रदान करने पर मामले की अपील की जा सकती है, तो मेरी समझ से यह सर्वथा निष्प्रयोजन है। यह बात तो कल्पना से परे है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र दिये जाने के सम्बन्ध में तो उच्चतम न्यायालय यह कहे कि इन-इन शर्तों के पूरा होने पर ही वह न्यायालय प्रमाणपत्र दे सकेगा और अपने खुद अनुच्छेद 112 के अधीन विशेष अनुमति प्रदान करने का अनियंत्रित अधिकार रखे। यह एक ऐसी बात है जिसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कठिनाई मालूम पड़ती है।

और फिर उपखण्ड (क) और (ख) के सम्बन्ध में भी स्थिति यह है। उपखण्ड (क) में कहा गया है:

''उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया है या उसको मृत्यु दण्डादेश दिया है।'' यह खण्ड लागू होगा ऐसे मामले के लिये, जिसमें उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायासन ने जूरी द्वारा सुनवाई किये गये मामले में सेशन न्यायालय के निर्णय को उलट दिया है। अभी हाल में ठीक ऐसा ही एक मामला मद्रास के उच्च न्यायालय में चला था। उसमें वहां के एक पूर्ण न्यायासन ने हस्तक्षेप करने

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

से इन्कार कर दिया था और प्रिवी कौंसिल ने निर्णय को उलट दिया और मामला फिर उच्च न्यायालय के पास आया और अन्ततोगत्वा वहां अभियुक्त व्यक्ति को बरी कर दिया गया। यह एक ऐसा मसला है कि इसमें उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था रखी जा चुकी हैं। जहां तक कि उपखण्ड (ख) का सम्बन्ध है, उसके अधीन ऐसे ही मामलों की अपील होगी जिन्हें अपने अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय ने सुनवाई के लिये अपने पास मंगवाया हो। जहां तक कि इस उपखण्ड के अन्दर आने वाले मामलों का सम्बन्ध है, उनमें ऐसे की अपील, जिनका निर्णय एक न्यायाधीश ने किया हो, सीधे उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी पर अन्य मामलों में शायद अपील की सुनवाई पहले उच्च न्यायालय करेगा और उसके बाद ही उनकी अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी।

यही चन्द विचारणीय बातों द्वारा जिनसे प्रेरित होकर डा. अम्बेडकर द्वारा कल उपस्थित किये गये संशोधन का समर्थन करना मुझे उपयुक्त प्रतीत हुआ। यह बात नहीं है कि मैं अपराधियों के प्रति बहुत निर्मम हूं या मुझे ऐसे व्यक्तियों के मामले के प्रति कोई सहानुभूति ही नहीं है, जिन पर हत्या का अभियोग लगाया गया है। जब इन सभी बातों की व्यवस्था संसद आपराधिक विधियों का पुनरीक्षण करते समय कर सकती है, तो यहां संविधान में भी एक अनुच्छेद के द्वारा उन सभी बातों की पर्याप्त व्यवस्था की जा सकती है। यही एकमात्र कारण है कि जब कुछ दिन पूर्व एक अन्य अनुच्छेद पर विचार हो रहा था तो मैं उतना ही कह कर बैठ गया कि उस मसले पर सम्भवत: संसद आगे विचार कर लेगी। अस्तु जो भी हो, जिस व्यवस्था के सम्बन्ध में यहां यह समझा गया हो कि इससे देश के अपराधियों का भला होगा, उस पर मैं कोई असहमतिसूचक बात नहीं कहना चाहता और फिर हमारे पास इसके ठीक-ठीक आंकड़े भी उपलब्ध नहीं हैं कि ऐसे कितने मामले हैं, जिनमें प्रथम न्यायालय के विमुक्ति आदेश को उच्च न्यायालय ने उलटा है। इन सभी बातों पर संसद आम विधान बनाते समय औचित्यपूर्वक विचार कर सकती है।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य राज्यसंघ): अध्यक्ष महोदय, मेरे कतिपय मित्रों को मेरी इस अभिव्यक्ति से सम्भवत: आश्चर्य और निराशा होगी कि इस समय समाज की वर्तमान स्थिति में, संविधान में इस आशय का प्रावधान रखना वांछनीय एवं बुद्धिसंगत होगा इसमें मुझे सन्देह ही है।

मैं जानता हूं कि लोगों का यह दृष्टिकोण कि अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय में अपने बचाव का पूरा मौका मिलना चाहिये, पर्याप्त औचित्य रखता है। उसके अपील सम्बन्धी अधिकार पर किसी तरह का प्रतिबन्ध न लगना चाहिये और न उस पर कोई क्षति ही पहुंचनी चाहिये। मैं यह भी समझता हूं कि यह सिद्धान्त एक ठोस और सही सिद्धान्त है कि अभियुक्त व्यक्ति को तब तक हमें सर्वथा निर्दोष ही समझना चाहिये कि जब तक समुचित साक्ष्य के आधार पर उसकी निर्दोषिता अन्यथा न प्रमाणित कर दी गई हो। परन्तु इस सम्बन्ध में एक दूसरा पक्ष भी है जिसका सम्बन्ध वादी से है। अगर आप वादी की निगाह से इस पर विचार करें, उस परिवार की निगाह से उस पर विचार करें, जो हत्यारे के कुकृत्य के फलस्वरूप अपने किसी प्रिय परिजन से हाथ धो बैठा है, तो अवश्य ही यह व्यवस्था आप को सर्वथा क्रूर ही प्रतीत होगी कि अपील की आड़ में अभियुक्त

व्यक्ति को न्याय टालने का और न्याय के निष्ठुर हाथों से बचते रहने का मौका दिया जाये। यह सभी जानते हैं कि गांधी हत्या-काण्ड के मुकदमे में निर्णय सुनाने में जो विलम्ब हो रहा है उसको लेकर देश की आम जनता में क्या अनुभूति है। यह मामला अभी भी विचाराधीन है। इस मामले के गुण-दोष के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह रहा हूं। पर इस सम्बन्ध में यह कहते हुये मैं आम आदमी की अनुभूति ही व्यक्त कर रहा हूं कि एक ऐसे मामले में जहां दिन दहाड़े सैकड़ों व्यक्तियों के सामने हत्या हुई, आज बरसों से मुकदमा चल ही रहा है, अब तक उसका फैसला न हो पाया। आपराधिक मामलों में हमें इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि न्याय का होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि जल्द न्याय होना चाहिये और यह प्रतीत भी होना चाहिये कि न्याय किया गया है।

मैं यह निवदेन करूंगा कि आपराधिक मामलों में न्याय के तीन उद्देश्य होते हैं। न्याय इस अभिप्राय से किया जाता है कि एक तो अपराधी को दण्ड मिले, दूसरे इसलिये कि अपराध की रोक हो और तीसरा इसलिये कि अपराधी में सुधार हो। मेरा यह कहना है कि जहां तक कि अपील सम्बन्धी अधिकार का सम्बन्ध है, इसके बारे में एक विचारधारा यह भी है कि अपील का अधिकार देने का यह मतलब होता है कि न्याय में विलम्ब करने का अधिकार दिया जा रहा है। यह अधिकार तो कुछ वैसा ही अधिकार है जिसका उपयोग संसदीय सदस्य करते हैं। उन्हें संसद में बोलने का, प्रस्तावादि पेश करने का अधिकार प्राप्त है, जिसके द्वारा वह कभी-कभी कानून निर्माण में अड़ंगा लगा कर विलम्ब पैदा करते हैं। मैं यह बताऊं कि अपील विषयक अधिकार से न्याय के दण्ड-मूलक प्रयोजन की पूर्ति में भले ही अंततोगत्वा कुछ अंतर न पड़े, पर न्याय के सुधारमूलक या निवारण-मूलक प्रयोजनों की पूर्ति में इससे अवश्य ही कुछ हद तक क्षति पहुंचती है। इसलिये उचित यही है कि हमें प्रश्न के इस पहलू की अपेक्षा न करनी चाहिये। हम जानते हैं कि वर्तमान न्याय-प्रशासन व्यवस्था, जिसे हमने विरासत के रूप में प्राप्त किया है, वह देश पर अंग्रेजों के द्वारा जबरदस्ती लादी गयी थी। इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है पर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इसमें तीन बड़े दोष हैं। पहला तो यह कि यह व्यवस्था बड़ी ही खर्चीली है, दूसरा यह कि इसमें न्याय पाने में देर बहुत लगती है और तीसरा यह कि इसमें झूठी और नकली गवाही की बड़ी गुंजाइश रहती है। इसलिये बुनियादी सवाल, मूलभूत सवाल जो हमारे सामने है वह सिर्फ यही नहीं है कि अभियुक्त व्यक्ति को, जिसे मौत की सजा दी गई हो, उच्चतम न्यायालय में अपने मामले की अपील का अधिकार मिलना चाहिये, पर एक बुनियादी सवाल यह भी है कि एक न एक मौके पर—वह मौका आ चुका है या आगे चल कर आयेगा, यह भी एक विवादास्पद विषय है—हमें अपने कानूनों में सुधार के काम को, समूची न्याय-प्रशासन व्यवस्था में सुधार के काम को हाथ में लेना ही होगा। यह एक बड़ा ही संगीन सवाल है। अब, अगर हम सरकारी संशोधन—इसे हम इसी नाम से पुकारना पसन्द करेंगे—का विवेचन करते हैं तो यह पाते हैं कि नवीन अनुच्छेद के उपखण्ड (क) और (ख) में अपीलों का अधिकार बड़ा सीमित रखा गया है—क्योंकि हम जानते हैं कि विमुक्ति के आदेश को उच्च न्यायालय कभी-कभी ही उलटता है और बिरले ही मामले को उच्च न्यायालय अपने पास मंगाता है और उस पर निर्णय देता है। इसलिये बहुसंख्यक मामले, जिनमें कि अपील का अधिकार रहेगा, वह ऐसे ही होंगे जो उपखण्ड (ग) के अन्दर आतें हों। सुतरां इस

[श्री राजबहादुर]

अनुच्छेद का लागू होना उन नियमों पर निर्भर करता है जो प्रस्तुत उपखण्ड के परन्तुक के अधीन बनाये जायेंगे। इसलिये सारी बातें निर्भर करेंगी इन नियमों पर। पर इस सम्बन्ध में एक बात और भी है। मेरे माननीय एवं विद्वान् मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव ने आज अपने भाषण के सिलसिले में यह कहा कि न केवल मृत्यु दण्ड सम्बन्धी मामलों में ही अपील का अधिकार देना औचित्यपूर्ण है बल्कि अन्य मामलों में भी अपील का अधिकार मिलना चाहिये और इस प्रश्न को भी हमें हाथ में लेना चाहिये। माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव के पांडित्य एवं अनुभव के प्रति आदरभाव रखते हुये भी यह कहूंगा कि ऐसा करने में फिर वही पुरानी बात आ जाती है कि ''न्याय में विलम्ब करना न्याय न करने के बराबर है''। और यह भी स्पष्ट है कि अगर प्रत्येक आपराधिक मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में ले जाने की अनुमति दी जाती है तो इसका लाजिमी नतीजा यह होगा कि मामलों के निपटाने में बड़ी देर लगेगी। इससे, न्याय-प्रशासन व्यवस्था के प्रति लोगों के विश्वास-भाव पैदा होने में कोई मदद नहीं मिल सकती है। उसी काल से जब से कि प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर ने 'हैमलेट' लिखा, यह कहावत सी चल गई है कि ''न्याय में देर होती ही है''। हमें अपने कानून में कुछ न कुछ ऐसी व्यवस्था करनी ही होगी जिससे कम से कम हम अपने देश में एक ऐसी प्रणाली निकाल सकें कि न्याय पाने में विलम्ब न हो। मैं यह भी कहूंगा कि हमें इस तथ्य को भी न भूलना चाहिये कि इधर कुछ दिनों से देश में अपराधों में काफी वृद्धि हो गई है। हर दिन प्रान्तों से देश में अपराधों की खबरें मिलती हैं और समाचार पत्रों में हम अपराधों के समाचार पाते हैं। देश के कुछ हिस्सों में तो अपराधों की एक लहर सी आ गई है। जो घटनायें आज हमारी पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओं पर हो रही हैं, हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। आज कलकत्ता में और उसके इर्द-गिर्द जो घटनायें हो रही हैं, हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। हमें इस तथ्य का भी ध्यान रखना होगा कि हमारे पड़ौसी देशों में रक्तपात और उपद्रव का बाजार गर्म है। आज ही प्रातः हमें समाचार पत्रों में यह देखने को मिला कि हमारे पूर्वी सीमा के देशों में तो लड़ाइयां चल ही रही हैं पर हमारी पश्चिमी सीमा के एक पड़ौसी देश में भी बम गिराये गये हैं। ऐसे संगीन मौके पर उचित यही है कि हम इस बात का ख्याल रखें कि हमारे देश में न्याय-प्रशासन में और मामलों का फैसला होने में ज्यादा देर न होने पाये। मैं यह निवेदन करूंगा कि जो स्वतंत्रता हमने प्राप्त की है उसके अभिभावक के रूप में हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारी यह स्वतन्त्रता कहीं अपराध-जन्य अवस्था और अराजकता के कारण हाथ से निकल न जाये। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि आपराधिक मामलों के अपील विषयक अधिकार को हमें संसद पर छोड़ देना चाहिये। वह उस सम्बन्ध में जैसा ठीक समझे व्यवस्था करे।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): डा. अम्बेडकर द्वारा आज प्रातः उपस्थित किये गये संशोधन के फलस्वरूप यह अनुच्छेद 111-क अब जिस रूप में हमारे सामने आता है, उस पर मुझे चन्द ही शब्द कहने हैं, श्रीमान्। मैं सादर यह कहूंगा कि यह संशोधन सारतः बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मेरा संशोधन जिसे मैंने कल यहां, अपने अन्य संशोधन नं. 26 और 27 की उपेक्षा करके, जिनकी सूचना मैं पहले ही दे चुका था, पेश किया था। मेरे संशोधन में और डा. अम्बेडकर के इस संशोधन में अन्तर केवल

इतना ही है कि उनके संशोधन में उपखण्ड (ख) का प्रावधान और जोड़ किया गया है जिसके अधीन एक तरह के कुछ और मामलों की भी अपील की जा सकेगी। पर ये मामले बहुत ही कम होंगे और बिरले होंगे, पर मेरे संशोधन में ऐसे मामलों की अपील की व्यवस्था नहीं थी। अर्थात् ऐसे मामलों में, जहां उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले की सुनवाई के लिये अपने पास मंगवा लिया हो और अभियुक्त को मौत की सजा दे दी हो, प्रस्तुत संशोधन में अपील की व्यवस्था है, पर मेरे संशोधन में इसकी व्यवस्था नहीं थी। मैं समझता हूं कि इस तरह के मामले समूचे देश में साल में दो या तीन से ज्याादा न होंगे। फिर भी, मैं यह मंजूर करूंगा कि मेरे संशोधन में यह कमी रह गई थी और मैं पूर्णत: सहमत हूं कि उपखण्ड (ख) को इस अनुच्छेद में रखना ही चाहिये।

जिन सदस्यों ने आज बहस मुबाहिसे में हिस्सा लिया है, उन्होंने इस संशोधित अनुच्छेद पर भिन्न-भिन्न विचार सभा के समक्ष रखे हैं। एक तरफ तो कुछ सदस्यों ने यह कहा है कि संशोधन में जो अपील का अधिकार दिया गया है वह बड़ा ही सीमित है और उसकी परिधि और बड़ी कर देनी चाहिये ताकि उन सभी मामलों में अपील की जा सके जिनमें उच्च न्यायालय ने विमुक्ति-आदेश को उलट कर अभियुक्त व्यक्ति को चाहे आजीवन निर्वासन का या उससे भी कम कोई दण्ड दिया हो। इसी विचार पर माननीय मित्र पं. भार्गव ने उस दिन जोर दिया था और आज भी जोर दिया है। मैं सादर यह निवेदन करूंगा कि ऐसा करने से इस अनुच्छेद की परिधि एक अनुचित सीमा तक बढ़ जायेगी। इसे सभी स्वीकार करेंगे कि उच्चतम न्यायालय को एक ऐसे आपराधिक न्यायालय के रूप में बदलना जहां सभी तरह के आपराधिक मामलों की अपील आ सके, कभी भी वांछनीय नहीं हो सकता है। अगर ऐसा ही है कि सभी तरह के मामलों की अपील आवे तो फिर देश में आपराधिक कानूनों की संख्या इतनी ज्यादा है—हत्या एवं अन्य गम्भीर आपराधिक कानून ही उतने अधिक हैं—कि उच्चतम न्यायालय में आपराधिक अपीलों की भरमार हो जायेगी। यहां कहा गया है कि खर्च और उच्चतम न्यायालय में कर्मचारियों की वृद्धि का प्रश्न ऐसा नहीं है कि आपराधिक मामलों में जो अभियुक्त किये हों उनको सहाय्य प्रदान करने में वह बाधक हो क्योंकि मानव प्राणियों का जीवन और स्वातन्त्र्य सम्पत्ति से अधिक महत्त्व रखता है जिसके सम्बन्ध में व्यवहार-विषयक अपीलों के लिये अनुच्छेद 111 में प्रावधान रखा गया है। पर इस सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण मुश्किल से ही ठीक कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन और स्वातन्त्र्य का सम्पत्ति से अधिक महत्त्व है पर आप अगर व्यवहार-विषयक या आपराधिक मामलों में अपील का अनियंत्रित अधिकार देते हैं तो उससे समाज को बहुत बड़ा नुकसान पहुंचेगा। साधारण हत्या सम्बन्धी मामले को ही लीजिये। प्रेसिडेन्सी शहरों में हत्या सम्बन्धी मामला उच्च न्यायालय में चलता है जहां सहायता के लिये पंच भी रहते हैं पर और अन्य बड़े शहरों में तथा प्रान्तों में जहां उच्च न्यायालय को आरम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त है, मुकदमे की सुनवाई सेशन न्यायाधीश करते हैं और उनकी सहायता के लिये जूरी या पंच रहते हैं। अधिकांश मामलों में निर्णय किया जाता है कि शुद्धत: तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों के आधार पर और गवाहों की बात सुन लेने के बाद सेशन न्यायाधीश अभियुक्त को दोष-सिद्ध घोषित कर देता है और उसे सज़ा सुनाता है जो मौत की सजा भी हो सकती है। उस निर्णय के विरुद्ध अधिकारत: उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है और अगर अभियुक्त व्यक्ति अपील न भी

[डा. बक्शी टेकचन्द]

करे तो भी सेंशन न्यायाधीश द्वारा किये गये मृत्यु-दण्डादेय का समर्थन जब उच्च न्यायालय कर देगा तभी सजा दी जायेगी। हर हालत में उच्च न्यायालय को सारी गवाहियों को और अन्य बातों को फिर से देख जाना पड़ता है और तब अगर उच्च न्यायालय उस नतीजे पर पहुंचता है कि अभियुक्त व्यक्ति को साक्ष्य के आधार पर ठीक ही सजा दी गई है तो दोनों ही न्यायालयों की राय एक होती है। ऐसे मामलों में, उच्चतम न्यायालय में फिर अपील करने की अनुमति देना वांछनीय न होगा। ऐसा दुनिया के किसी देश में नहीं होता है। आखिर बार-बार अपील करने की कोई हद भी तो होनी चाहिये। जिन मामलों में, उच्च न्यायालय सेशन न्यायालय के निर्णय से सहमत हो, भले ही वह मामला कत्ल का ही हो और उसमें मौत की सजा ही दी गई हो, उनके लिये उच्चतम न्यायालय में पुनः अपील का अधिकार देना बड़ा गलत होगा। ऐसे मामलों की संख्या हिन्दुस्तान में, मय उन रियासतों के जो उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्दर होंगी, साल में एक हजार से भी ज्यादा होगी। ऐसे हर मामले में अपील का अनियंत्रित अधिकार देना बड़ी ही खतरे की बात होगी। सभा को यह याद होगा कि व्यवहार-विषयक मामलों में प्रिवी कौंसिल ने यह नियम सा बना रखा था कि जिन मामलों में उच्च न्यायालय तथा अन्य अधीन न्यायालय के निर्णय एक होते थे उनमें वह दखल ही नहीं देता था। अगर यही बात आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में बरती जाये तो समय और पैसों की बर्बादी रुक जायेगी क्योंकि ऐसे मामलों में आगे अपील का अधिकार देना केवल समय और धन को बर्बाद करना है। इस बात की सम्भावना ही नहीं है कि उच्चतम न्यायालय शुद्धतः तथ्य सम्बन्धी प्रश्न पर ऐसे मामलों के सम्बन्ध में कभी असहमत होगा, जहां उच्च न्यायालय तथा सेशन न्यायालय दोनों ही साक्ष्य को ठीक तरह से देख लेने पर, किसी एक नतीजे पर पहुंचे हो। यदि खास-खास मामलों में ही अपील का अधिकार देना चाहिये और यही बात डा. अम्बेडकर के संशोधन में रखी गई है। प्रस्तुत उपखण्ड (क) के द्वारा एक महत्त्वपूर्ण अधिकार दिया गया है और कानून में जो अभी एक खामी है उसे दूर कर दिया गया है। यह उपखण्ड ऐसे मामलों के सम्बन्ध में है जहां बड़े शहरों में सेशन न्यायालय द्वारा या प्रेसिडेन्सी शहरों में उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति का आदेश दिया जताा है पर प्रान्तीय सरकार द्वारा विमुक्ति आदेश के विरुद्ध अपील करने पर अपील सुनने वाले न्यायासन ने अभियुक्त व्यक्ति को पुनः दोष-सिद्ध ठहरा दिया हो। ऐसे मामलों में अपील का अधिकार इस उपखण्ड द्वारा दिया गया है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि कानून यही कल्पना करता है कि हर व्यक्ति निरपराध है जब तक कि वह दोषी न प्रमाणित हो जाये; और फिर जब सेशन न्यायाधीश अभियुक्त व्यक्ति को निर्दोष बता देता है तो उस कल्पना की और भी पुष्टि हो जाती है। तो फिर इस आधारभूत कल्पना और उसकी पुष्टि के बाद भी अगर अपील सुनने वाला न्यायासन अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराता है और उसे मृत्यु दण्ड देता है तो अवश्य ही ऐसे मामलों में यह अपेक्षित हो जाता है कि उसकी और आगे छानबीन की जाये। प्रस्तुत संशोधन द्वारा ऐसे ही मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार दिया गया है। वस्तुतः यह प्रावधान अनुच्छेद 111 से सादृश्य रखता है जिसमें ऐसे व्यवहार-विषयक मामलों की अपील का प्रावधान किया गया है जिनमें विवाद-ग्रस्त विषय

की राशि या मूल्य बीस हजार या उससे अधिक है और अपीलीय न्यायासन ने अपने निर्णय में पहले के न्यायालय के निर्णय को उलट दिया है।

उपखण्ड (ख) द्वारा, जैसा कि मैं कह चुका हूं और भी सीमित मामलों के सम्बन्ध में अपील का अधिकार दिया गया है और उपखण्ड (क) के फलस्वरूप इस उपखण्ड का यहां लिपिबद्ध किया जाना आवश्यक है।

उपखण्ड (ग) के सम्बन्ध में यहां माननीय सदस्यों ने कई आशंकायें व्यक्त की है। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का यह ख्याल है कि इस अनुच्छेद का, अनुच्छेद 112 से मेल नहीं खायेगा जिसमें उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों में अपील की विशेष अनुमति देने का अधिकार दिया गया है। मैं सादर यह कहूंगा कि मेरी समझ में नहीं आता कि इन दोनों में क्या परस्पर विरोध हो सकता है। उच्चतम न्यायालय को अपील के लिये विशेष अनुमति प्रदान करने की जो शक्ति दी गई है वह एक विचित्र तरह का अधिकार है। वर्तमान समय में इस अधिकार का प्रयोग, सम्राट, अपने शाही विशेषाधिकार के प्रयोग में, प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के मार्फत करते हैं। प्रस्तुत संविधान में, यही अधिकार, अनुच्छेद 112 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को दिया गया है। जैसा कि मैंने अभी उस दिन अनुच्छेद 112 के सम्बन्ध में कहा था, इसका दायरा बड़ा ही सीमित रहेगा। उच्चतम न्यायालय को विशेष अनुमति प्रदान करने का अधिकार रहेगा और उसका प्रयोग वह जिस तरह चाहे, हर तरह के मामले में चाहे वह व्यवहार-विषयक हो, या आपराधिक हो, या अन्य किसी कार्यवाही में जिसका निर्णय उसके अधीन अधीनस्थ किसी न्यायालय ने किया हो, कर सकता है। वर्तमान समय में प्रिवी कौंसिल अपील की अनुमति बिरले ही मामलों में प्रदान करती है, जहां उसका यह मत हो कि उसमें नैसर्गिक न्याय सम्बन्धी सिद्धान्तों की अवहेलना की गई है। ''नैसर्गिक न्याय'' क्या है, यह बड़ा अस्पष्ट है और कहीं भी इसकी परिभाषा नहीं दी गई है। इसके अन्दर वह मामले नहीं आते हैं जिनमें विधि-विषयक कोई गम्भीर और महत्त्वपूर्ण त्रुटि रह गई हो या जिनमें अन्याय हो गया हो। इसलिये, यह आवश्यक है कि ऐसे मामलों की अपील के लिये, जहां कि उच्चतम न्यायालय यह कहता हो कि मामला अपील के लायक है, प्रावधान किया जाये। उपखण्ड (ग) के द्वारा यही प्रावधान किया गया है और इसका जो परन्तुक है वह दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411-क की उपधारा (4) से अक्षरशः ज्यों का त्यों ले लिया गया है, जो 1942 के अधिनियम 25 के द्वारा उक्त संहिता में रखी गई थी। परन्तु इस उपधारा की परिधि बड़ी ही सीमित है और इसके अधीन ऐसे ही मामलों के सम्बन्ध में अपील की जा सकती है जिनमें प्रेसिडेन्सी-हाईकोर्ट ने अपने आरम्भिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी व्यक्ति को दोषी बताया हो। 1943 के पहले ऐसे मामलों में तब तक अपील नहीं की जा सकती थी जब तक कि महाधिवक्ता यह न कह दे कि मामला आगे अपील के लायक है, सुतरां मामला वहीं खत्म हो जाता था। बहुत से मामलों के बारे में यह अनुभव किया गया कि बावजूद इस बात के कि उसमें अन्याय हो गया है पर अपील एक में भी नहीं की गई है। 1943 में संशोधनकारी अधिनियम (Amending Act) के द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई थी कि अभियुक्त व्यक्ति विधि-विषयक प्रश्न के आधार पर या तथ्य संबंधी प्रश्न के आधार पर मामले की अपील कर सकता है अगर सेशन न्यायाधीश यह कहता हो कि मामला अपील के लायक है या अपीलीय

[डा. बक्शी टेकचन्द]

न्यायासन इस नतीजे पर पहुंचा हो कि मामला ऐसा है जिसमें तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों पर और विचार करने की आवश्यकता है।

और फिर उपधारा (4) में यह भी प्रावधान रखा गया है कि अगर अपीलीय न्यायासन को इसका सन्तोष हो जाये कि मामला ऐसा है कि उसकी आगे प्रिवी कौंसिल में अपील होनी चाहिये तो वह एतदर्थ प्रमाण-पत्र दे सकता है और उसके आधार पर प्रिवी कौंसिल में उसकी अपील की जा सकती है। पर इस प्रावधान की परिधि भी बड़ी सीमित है और इसके अधीन केवल वही मामले आ सकेंगे जिनकी सुनवाई उच्च न्यायालय ने अपने आरम्भिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में की है। उदाहरण के लिये मद्रास प्रान्त को ही ले लीजिये। अगर अपराध मद्रास शहर की सीमा के अन्दर किया गया है तभी धारा 411-क लागू हो सकती है पर अगर अपराध मद्रास की सीमा से बाहर, या अन्य किसी शहर में, मसलन त्रिचनापली या तंजोर में किया गया है तो उसमें न अपीलीय न्यायासन में अपील की जा सकती है और न उसकी अपील प्रिवी कौंसिल में ही की जा सकती है, भले ही उसमें उच्च न्यायालय ने यह प्रमाण पत्र ही क्यों न दे दिया हो कि मामला अपील के लायक है। प्रस्तावित अनुच्छेद 111-क के उपखण्ड (ग) द्वारा जो व्यवस्था की जा रही है वह यह है कि बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के प्रेसिडेन्सी शहरों के बाहर के लोगों को भी अपील के सम्बन्ध में वही विशेषाधिकार पास हो जाये जो प्रेसिडेन्सी शहरों के निवासियों को प्राप्त है। मैं कहूंगा कि यह एक ऐसा प्रावधान है जिसके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है।

मेरे सुयोग्य मित्र श्री राजबहादुर का यह ख्याल है कि इस अनुच्छेद से अपीलों का तांता लग जायेगा और हर मामले में, चाहे उसमें अपराध का स्वरूप कुछ भी हो और उसमें कैसा भी दण्ड क्यों न दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार मिल जायेगा। सादर, इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि बात ऐसी नहीं है। केवल सीमित मामलों में ही उच्च न्यायालय के यह कहने की सम्भावना है कि मामला अपील के लायक है। जिन न्यायाधीशों ने मामले की सुनवाई की होगी और उस पर निर्णय दिया होगा, वह खुद यह सम्भव नहीं है कि आसानी से यह कह देंगे कि मामला अपील के लायक है। ऐसा तो वह बिरले ही मामलों में करेंगे। जहां तक कि मैं जानता हूं, सन् 1943 के बाद से जबकि धारा 411-क पास की गई थी, तीन या चार से ज्यादा ऐसे मामले नहीं हुये होंगे जिनमें अपील प्रिवी कौंसिल में की गई हो। मैं समझता हूं कि समूचे देश से साल में आठ या दस से ज्यादा मामलों की अपील, इस उपखण्ड के अधीन उच्चतम न्यायालय में कभी न होगी। केवल चन्द मामले ही ऐसे होंगे जिनमें कोई ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होंगे कि उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय से यह कहेगा कि वह उस पर एक प्रामाणिक निर्णय दे दे। मैं यह कहूंगा कि ये प्रावधान बड़े ही हितकर हैं और इन्हें संविधान में स्थान देना ही चाहिये।

माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद ने न्यायालय के अवमान-विषयक मामलों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसके बारे में मुझे केवल एक ही बात कहनी है। आपने कहा है कि इन मामलों में भी अपील का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। कोई कितना भी क्यों

न चाहता हो कि ऐसे मामलों में भी, जहां कोई व्यक्ति न्यायालय के अवमान के लिये दोषी ठहराया गया हो, पुनर्विचार होना चाहिये। पर मेरा ख्याल है कि ऐसे मामलों में अपील का अधिकार देना आवश्यकता से ज्यादा आगे बढ़ना होगा। अगर किसी ऐसे मामले में कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है तो अनुच्छेद 111-क के उपखण्ड (ग) के अधीन उसमें अपील की कोशिश की जा सकती है।

डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन नं. 198 के द्वारा अब प्रस्तुत अनुच्छेद 111-क, जिस रूप में हमारे सामने आता है, वह ऐसा है कि उससे उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है जो इस सम्बन्ध में अपेक्षित है। माननीय सदस्यों से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह उसे स्वीकार करें। जो लोग यह आशंका करते है कि उससे अपराध को प्रोत्साहन मिलेगा, उनसे मैं यह निवेदन करूंगा कि उनकी यह आशंका सर्वथा निराधार है। इसी तरह यह आशंका भी सर्वथा निराधार है कि इस अनुच्छेद की परिधि अनुचित रूप से सीमित है। यह प्रावधान एक सुसंतुलित एवं हितकर प्रावधान है जिसे हमें संविधान में स्थान देना ही चाहिये।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): इस प्रश्न पर अब मत लिया जाना चाहिये, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।'

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, चन्द बातें कहने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं ताकि सभा को इस बात का ठीक-ठीक पता चल जाये कि इस नवीन अनुच्छेद 111-क को किसलिये रखा जा रहा है। इस सम्बन्ध में पहली बात मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि अनुच्छेद 111-क को इस अभिप्राय से नहीं रखा जा रहा है कि उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों की सुनवाई का आम क्षेत्राधिकार दे दिया जाये जो क्षेत्राधिकार उसे इस अनुच्छेद द्वारा दिया जा रहा है वह बड़ा ही सीमित है।

उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में वह अपीलीय क्षेत्राधिकार देना, जो कि अनुच्छेद 111-क के उपखण्डों में उल्लिखित है, मैं क्यों वांछनीय समझता हूं इसे समझाने के लिये उपखण्ड (क), (ख) को उपखण्ड (ग) से मैं पृथक कर देना चाहता हूं क्योंकि दोनों का प्रयोजन भिन्न है। जैसा कि सभा को मालूम है, उपखण्ड (क) और (ख) के अनुसार उच्चतम न्यायालय को अपीलीय क्षेत्राधिकार केवल उन्हीं मामलों में होगा जहां मृत्युदण्ड दिया गया हो और अन्य मामलों में नहीं। यह बात यहां ध्यान में रखनी होगी।

अब मैं संक्षेप में यह बताऊंगा कि उच्चतम न्यायालय को यह सीमित अपीलीय क्षेत्राधिकार देना क्यों आवश्यक है वह सिर्फ उन्हीं मामलों में जहां मृत्यु-दण्ड दिया गया है, अपील की सुनवाई कर सकता है। सभा को यह मालूम होना चाहिये कि जहां तक कि अपने अपराध विषयक कानून-विज्ञान का सम्बन्ध है, जैसा कि दण्ड-प्रक्रिया-संहिता में दिया हुआ है, इस बात को एक सिद्धान्त के रूप में मान लिया गया है कि अगर अभियुक्त

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश दिया जाता तो उस दण्डादेश के विरुद्ध अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम एक अपील का अधिकार उसे मिलना ही चाहिये।

***अध्यक्ष:** पर यहां मैं आपको एक बात बताऊंगा और वह यह कि आपके संशोधन के अन्दर ऐसा मामला नहीं आता है जहां दण्डादेश को बढ़ा कर मृत्यु-दण्डादेश दिया गया हो।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** बात यह है कि ऐसे मामलों को हम यहां नहीं रखना चाहते। उन मामलों में जहां दण्डादेश को बढ़ा कर मृत्यु-दण्डादेश दिया गया है उच्चतम न्यायालय को हम अपीलीय क्षेत्राधिकार नहीं देना चाहते हैं। हम ऐसा जानबूझकर कर रहे हैं और सभा को भी सम्भवत: यह मालूम होगा। यह एक मानी हुई बात है कि जिस ममाले में, अभियुक्त व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश दिया गया है, वहां अभियुक्त को कम से कम उस दण्डादेश के विरुद्ध एक अपील का अधिकार मिलना ही चाहिये। यह बात एक सिद्धान्त के रूप में मान ली गई है और इस सिद्धान्त को देखते हुये तथा दण्ड-प्रक्रिया-संहिता के प्रावधानों पर गौर करते हुये हम यह देखते हैं कि यहां तीन तरह के मामलों में इस सिद्धान्त की अवहेलना की गयी है या इसे अमल में नहीं लाया गया है। एक तो ऐसा मामला जिसमें जिला न्यायाधीश सेशन न्यायाधीश के रूप में प्रकार्य करते हुये अभियुक्त व्यक्ति को बरी कर देता है पर हुकूमत, जब उसके विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करती है, क्योंकि उसे ऐसी अपील का अधिकार प्राप्त है और फिर उच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये अभियुक्त व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश देता है। ऐसे मामले में अपील का अधिकार नहीं दिया गया है। उक्त सिद्धान्त के सम्बन्ध में यहां एक अपवाद तो यह रखा गया है।

दूसरे मामले वे हैं जिनमें कलकत्ता, बम्बई या मद्रास के उच्च न्यायालय के सेशन न्यायाधीश, सेशन-न्यायालय के रूप में बैठ कर अभियुक्त व्यक्ति को बरी कर देते हैं। पर हुकूमत जब विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करती है तो उच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के अधीन उस मामले की सुनवाई करके अभियुक्त व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश दे देता है। ऐसे मामलों में भी अपील की व्यवस्था नहीं रखी गयी है। और फिर तीसरी श्रेणी में वह मामले आते हैं जिनको उच्च न्यायालय दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 526 के अधीन अपने पास मंगा कर सुनवाई करता है और अभियुक्त व्यक्ति को मौत की सजा दे देता है। ऐसे मामलों के सम्बन्ध में भी अपील की व्यवस्था यहां नहीं रखी गई है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** ऐसे मामलों में तो अपील का अधिकार है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, ऐसे मामलों में अपील का अधिकार नहीं दिया गया है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411-क के अधीन ऐसे मामलों में अपील की जा सकती है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** धारा 411-क केवल कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में ही लागू होती है। और वहां भी सभी मामलों के सम्बन्ध

में या ऐसे मामले के सम्बन्ध में नहीं लागू होती है, जहां उच्च न्यायालयों ने धारा 506 के अधीन सुनवाई की हो। धारा 411-क का दायरा केवल उन्हीं मामलों तक सीमित है जिन पर उच्च न्यायालय ने आरम्भिक न्यायालय के रूप में बैठकर निर्णय दिया है। ऐसे निर्णयों के विरुद्ध अपील की जा सकती है। इसलिये, श्रीमान्।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** धारा 526 में साधारणत: मामलों के एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में भेजे जाने के बारे में व्यवस्था है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ऐसा मामला जो अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय के पास जाता है और वहां उसकी सुनवाई होती है, उसमें अपील का अधिकार नहीं दिया गया है। प्रस्तुत अनुच्छेद के द्वारा एक असाधारण क्षेत्राधिकार की व्यवस्था की गई है। सो इन तीन तरह के मामलों में, उस सिद्धान्त की कि जिस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड मिला हो उसे कम से कम एक अपील का अधिकार होना ही चाहिये, सर्वथा उपेक्षा की गई है। मैं समझता हूं कि इस बात को देखते हुये कि वर्तमान युग तथा भारतीय जनता पर्याप्त रूप से विवेक सम्पन्न हो गई है, ऐसा प्रावधान होना ही चाहिये। उपखण्ड (क) और (ख) का उद्देश्य यही है कि ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त व्यक्ति को प्रथम बार के न्यायालय में तो विमुक्त कर दिया गया हो पर उच्च न्यायालय ने उसे मृत्यु-दण्डादेश दिया हो, अपील का अधिकार प्राप्त रहे। मैं नहीं समझता कि सद्विवेक या मानवता का ख्याल रखते हुये कोई भी व्यक्ति ऐसा होगा जो उपखण्ड (क) और (ख) में रखे गये प्रावधानों के विरुद्ध कोई आपत्ति उठायेगा।

अब मैं उपखण्ड (ग) को लेता हूं। सभा को यह स्मरण होगा कि दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411 के अधीन, जहां तक कि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के उच्च न्यायालयों का सम्बन्ध है, आज भी यह प्रावधान प्रवर्त्तन में है। यह जो अधिकार है कि प्रिवी कौंसिल में मामले की अपील की जा सकती है अगर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता हो कि मामला अपील के लायक है, 1943 में विधान मण्डल द्वारा प्रदत्त किया गया था—जानबूझ कर प्रदत्त किया गया था। इसलिये, दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411 में जो प्रावधान है उसके सम्बन्ध में हमारे सामने दो ही प्रश्न हैं। या तो उस प्रावधान को बिल्कुल ही हटा दिया जाये या इसे अन्य उच्च न्यायालयों के लिये भी लागू कर दिया जाये। धारा 411 के प्रावधानों को, जिनके अनुसार उच्च न्यायालय के यह प्रमाणित करने पर कि मामला अपील के लायक है किसी मामले की अपील की जा सकती है, अगर हटा दिया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि आप एक चालू अधिकार को जिसको जनता तीन भिन्न प्रान्तों में प्रयोग में लेती आई है जानबूझकर हटा रहे हैं। एक ऐसे न्यायिक अधिकार को वापस लेना जो अरसे से जनता को प्राप्त रहा है, कुछ असंगत सा प्रतीत होता है। इसलिये दूसरा उपाय यही रह जाता है कि इसके प्रावधानों के दायरे को इस तरह बढ़ा दिया जाये कि अन्य सभी न्यायालयों पर वह लागू हो सकें। मेरे संशोधन में यही उपाय अपनाया गया है, अर्थात् इसे अन्य उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में भी लागू कर दिया गया है। माननीय मित्रगण जो इस आशंका से विचलित हो रहे हैं कि इससे उच्चतम न्यायालय में आपराधिक अपीलों की बाढ़ आ जायेगी, वह, मेरी समझ से, इस सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण बातों को भूल जाते हैं। एक तो इस बात को वह भूल रहे हैं

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कि नवीन अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) और (ख) के द्वारा अपील का जो अधिकार दिया जा रहा है वह, किसी भी समय जबकि विधान मंडल मृत्यु-दण्ड को उठा देगा, स्वतः समाप्त हो जायेगा। मृत्यु-दण्ड के सम्बन्ध में आज दुनिया के सभी भागों में जो कुछ कहा जा रहा है, उसका ख्याल करते हुये तथा अपनी परम्परा का ख्याल करते हुये अगर विधान-मण्डल मृत्यु-दण्ड को उठा देता है तो फिर उच्चतम न्यायालय में अपील करने की कोई आवश्यकता ही न रह जायेगी और उस हालत में यह उपखण्ड (क) और (ख) स्वतः प्रवर्त्तन शून्य हो जायेंगे और उच्चतम न्यायालय का कार्यभार, जहां तक कि आपराधिक मामलों का सम्बन्ध है, अगर बिल्कुल ही नहीं तो बहुत कुछ कम हो जायेगा।

जहां तक कि उपखण्ड (ग) का सम्बन्ध है, आप यह देखेंगे कि इसके साथ एक परन्तुक रखकर इसके प्रावधान को सीमित कर दिया गया है। परन्तुक में कहा गया है ''परंतु इस खण्ड के उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील, ऐसे नियमों के अधीन रह कर जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये, तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जाये, ही होंगी''। इसलिये प्रमाण-पत्र सम्बन्धी जो व्यवस्था है वह ऐसी नहीं है कि प्रमाण-पत्र की मांग करते ही वह उपलब्ध हो जायेगा और उसके आधार पर अपील की खुली सुविधा मिल जायेगी। इस सम्बन्ध में, उच्च न्यायालय जो शर्त और प्रतिबन्ध रखेगा तथा उच्चतम न्यायालय जो नियम बनायेगा उनके अधीन रह कर ही, उपखण्ड (ग) के अधीन कोई अपील की जा सकेगी। इसलिये यह मालूम होना चाहिये कि उपखण्ड (ग) एक बड़ा कठोर प्रावधान है। यह लचीला नहीं है और न उतना व्यापक ही है जैसा कि लोग समझ रहे हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** परन्तुक जोड़ देने पर यह प्रावधान लचीला नहीं रह जाता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, मैं भी यही कह रहा हूं। परन्तुक के साथ यह प्रावधान लचीला नहीं रह जाता है।

अब मैं अपने संशोधन के खण्ड (2) को लेता हूं। इसके द्वारा उच्चतम न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार को और विस्तृत करने की शक्ति संसद को दी गई है और संशोधन में दिये गये तीन तरह के मामलों के अलावा अन्य मामलों के सम्बन्ध में भी संसद उसको और आपराधिक क्षेत्राधिकार प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में एक विचारधारा यहां यह रही है कि जो तीन तरह के मामले संशोधन के खण्ड (1) में उल्लिखित किये गये हैं वह काफी हैं और अब इस बात के लिये रास्ता खुला न रखना चाहिये। संसद चाहे तो उच्चतम न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार को और विस्तृत कर दे। उपखण्ड (क) और (ख) द्वारा जो आपराधिक क्षेत्राधिकार यहां दिया गया है वह इस अधिकार के सम्बन्ध में अन्तिम सीमा होनी चाहिये। इसका एकमात्र उत्तर जो मैं दे सकता हूं वह यह है। यह समझना और सोचना बड़ा कठिन है कि आगे चल कर क्या स्थिति हो सकती है। पर अगर कोई व्यक्ति यह कहता है कि आगे चल कर ऐसी कोई स्थिति ही नहीं उत्पन्न होगी जिसमें यह अपेक्षित हो कि संसद उच्चतम न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार को और विस्तृत करे तो मेरी समझ से तो हमें इस बात पर विश्वास और

भरोसा कर लेना चाहिये। पर यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही हो जाये तो खण्ड (2) के प्रावधान के अभाव में यहां क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि उस हालत में हमें, उस प्रक्रिया के अनुसार जिसे एतदर्थ हम किसी आगामी भाग में रखना चाहते हैं, इस संविधान में संशोधन करना पड़ेगा। इसलिये सवाल यह उठता है कि क्या करना ठीक होगा? क्या यह ठीक होगा कि इस प्रावधान को ऐसा कठोर बनाया जाये कि संविधान में बिना संशोधन किये संसद को भी यह अधिकार न रहे कि इस सम्बन्ध में वह कोई परिवर्तन कर सके या यह ठीक होगा कि संसद को इस सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति देकर—समय, स्थिति और कैसा कानून बने इस सब बातों को संसद पर छोड़ दीजिये—इस प्रावधान को लचीला बनाया जाये?

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं यह बताऊं कि अनुच्छेद 114 के अधीन, उच्चतम न्यायालय को क्षेत्राधिकार देने की शक्ति संसद को है।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** अनुच्छेद 114, मेरा ख्याल है, उस विषय से सम्बन्ध नहीं रखता है। मेरे पास उसकी प्रति नहीं है वरना मैं उत्तर में सब कुछ बता देता। यह अनुच्छेद तो संघ-सूची के सम्बन्ध में है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** संघ-सूची में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में जो क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है, उसी की चर्चा इस अनुच्छेद में है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, यह अनुच्छेद उक्त क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में ही है। पर मान लीजिये सहगामी सूची या सूची 3 के सम्बन्ध में यदि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को विस्तृत करना हो तो इसके लिये अनुच्छेद 114 का उपयोग तो नहीं किया जा सकता है।

अब, श्रीमान्, मैं उन बातों को लेता हूं जो माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने इसके सम्बन्ध में कही है। उनकी आलोचनायें अधिकतर उपखण्ड (ग) के सम्बन्ध में है। पहली आपत्ति उनकी यह है कि उपखण्ड (ग) की उपयोगिता ही क्या रह जाती है जबकि उसके प्रावधानों पर परन्तुक रख कर इतना ज्यादा प्रतिबंध लगा दिया गया है। उनका मतलब यह है कि जब उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन ही अपील की जा सकती है तो फिर इस उपखण्ड (3) को रखने में लाभ ही क्या है?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** जिस उपखण्ड का जिक्र है यह उपखण्ड (ग) है न कि उपखण्ड (3)।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** भूल के लिये मुझे खेद है। उपखण्ड (ग) का ही जिक्र है। आपका कहना यह है कि उपखण्ड (ग) को रखने में कोई लाभ नहीं है अगर परन्तुक में दिये गये प्रतिबन्धों से उसे आप जकड़ देते हैं। इस सम्बन्ध में पहली बात उन्हें यह याद दिलाऊंगा कि इस उपखण्ड का जो परन्तुक है वह अक्षरश: उन परन्तुकों से मिलता है जो दण्ड-प्रक्रिया-संहिता का धारा 417 के साथ तथा जो व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता की धारा 109 के साथ रखे गये हैं। माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी को स्मरण होगा कि उच्चतम न्यायालय के व्यवहार-विषयक अपीलीय क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

में हमने एक खण्ड ऐसा रखा है जो अनुच्छेद 111 (क) के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) से अक्षरशः मिलता हुआ है। अब मेरा कहना यह है कि अगर अनुच्छेद 111 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) को रखने में कोई लाभ है, जब कि वहां भी उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियमादि के प्रतिबन्ध रखे गये हैं तो मेरी समझ से सहजबुद्धि यही कहती है कि प्रस्तुत उपखण्ड (ग) को रखने में भी अवश्य ही लाभ है, भले ही परन्तुक के प्रावधानों द्वारा उसे भी सीमित ही क्यों न कर दिया गया हो। माननीय मित्र ने यह भी कहा है कि अनुच्छेद 112 में एक प्रावधान ऐसा है जो उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार देता है कि विशेष अनुमति प्रदान करके वह किसी भी मामले की अपील को ग्रहण कर सकता है और यह अनुच्छेद व्यवहार-विषयक अपीलों तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह एक व्यापक अनुच्छेद है और जिसमें किसी वाद या विषय की अपील को विशेष अनुमति द्वारा ग्रहण करने की बात कही गई है। उनका कहना यह था कि अब अनुच्छेद 112 है ही तो इस उपखण्ड (ग) को रखने से क्या लाभ? उसके सम्बन्ध में भी मेरा वही जवाब है जो पहले दे चुका हूं। जब अनुच्छेद 112 में यह बता ही दिया गया है कि उच्चतम न्यायालय को उच्च न्यायालय पर व्यवहार विषयक मामलों में क्या क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा तो फिर अनुच्छेद 111 के उपखण्ड (ग) को ही रहने की क्या जरूरत है? अगर अनुच्छेद 112 में रहते हुये भी व्यवहार विषयक अपीलों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 111 के उपखण्ड (ग) को हम रखते हैं तो फिर अनुच्छेद 111 (क) के उपखण्ड (ग) को रखने में आपको क्या आपत्ति है? यहां जो बात ध्यान में रखने की है वह यह है कि अनुच्छेद 112 के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को यह स्वतंत्रता दे दी गई है कि अपीलों को ग्रहण करने के बारे में जो भी शर्तें वह रखना चाहे रख सकता है। इस सम्बन्ध में उसके क्षेत्राधिकार पर कोई प्रतिबंध नहीं रखा गया है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** व्यवहार-विषयक अपीलों के सम्बन्ध में तो वहां एक शर्त रख दी गई है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, यह सच है। मैं नहीं जानता कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इस अनुच्छेद का निर्वचन किस रूप में किया जायेगा। यह बात उच्चतम न्यायालय पर छोड़ दी गई है कि वही इसका निर्वचन करे। हो सकता है, उच्चतम न्यायालय उसका निर्वचन उसी रूप में करे जिस रूप में कि प्रिवी कौंसिल ने किया है या वह जैसा भी चाहे उसका निर्वचन कर सकता है। हो सकता है कि उच्चतम न्यायालय इसका ऐसा निर्वचन करे जो सीमित हो या यह भी हो सकता है कि उसका निर्वचन अधिक व्यापक हो। अगर सीमित रूप में इसका निर्वचन किया जाता है तो इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि यह उपखण्ड (ग) कुछ काम का सिद्ध होगा। इसलिये मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि मेरा संशोधन ऐसा है कि इससे हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और उन लोगों की अन्तरात्मा को भी सन्तोष पहुंच जाता है जिनको यह आपत्ति है कि बिना एक अपील का मौका दिये किसी भी अभियुक्त व्यक्ति को कभी फांसी न मिलनी चाहिये। मैं समझता हूं कि यह संशोधन इस रूप में शब्दबद्ध किया गया है कि आपराधिक अपीलों के कारण, प्रशासन की दृष्टि से या किसी तरह, उच्चतम न्यायालय पर कभी अधिक कार्य-भार न पड़ेगा। आशा है मित्रगण अपने संशोधनों को अब वापस ले लेंगे और मेरे संशोधन को स्वीकार करेंगे।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम** (मद्रास : जनरल): एक स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान्। भाषा सम्बन्धी अन्तर का प्रभाव.....

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अब कोई प्रश्न करने का मौका नहीं रह गया है। इसके लिये काफी देर हो चुकी है।

***अध्यक्ष:** माननीय डा. अम्बेडकर ने अपने जवाब में यह नहीं बतलाया कि इन दो तरह के मामलों में, एक तो उनमें जिनमें कि उच्च न्यायालय ने पहले के न्यायालय द्वारा दिये हुये दण्डादेश को बढ़ा कर मृत्यु का दण्डादेश दे दिया हैा और उनमें जिनमें विमुक्ति-आदेश को उलट कर उसने मृत्यु-दण्डादेश दिया है, आपने यहां क्या अन्तर रखा है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** दण्डादेश की वृद्धि के विरुद्ध अपील में तथा विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध अपील में दो बातों का अन्तर है। जब उच्च न्यायालय किसी अभियुक्त-व्यक्ति को अधीन न्यायालय द्वारा दिये गये दण्डादेश में वृद्धि करता है तो वहां वह अभियुक्त को प्रथम बार सिद्ध-दोष नहीं ठहराता है बल्कि वह व्यक्ति तो पहले से सिद्ध-दोष ठहराया हुआ रहता हैं। पर विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध की गई अपील की सुनवाई में उच्च न्यायालय पहले वाले न्यायालय के निर्णय को उलट देता है और अभियुक्त व्यक्ति को सिद्ध-दोष ठहरा देता है। दूसरा अन्तर इन दोनों में यह है कि दण्डादेश की वृद्धि में कार्यवाही उस रूप में चलाई जाती है मानों कोई नियमित अपील का मामला हो और ऐसे मामले में अभियुक्त व्यक्ति को दण्ड-प्रक्रिया-संहिता के अधीन अपील का सांवैधानिक अधिकार प्राप्त रहता है। वह यह बता सकता है कि न केवल दण्डादेश की वृद्धि ही अनुचित है बल्कि मामले के तथ्यों को देखते हुये उसे दोषी ठहराना भी औचित्य शून्य है। दण्डादेश की वृद्धि के मामलों में एक अपील का अधिकार पहले ही से प्राप्त है। ऐसी हालत में उसमें और आगे अपील की व्यवस्था अनावश्यक है। तीसरी बात यह है कि संशोधन में दोषसिद्धि या विमुक्ति को अपील का आधार माना गया है। दण्डादेश किस तरह का है या सजा कैसी दी गई है, इसे संशोधन में अपील-विषयक अधिकार का आधार नहीं माना गया है।

***अध्यक्ष:** मान लीजिये किसी मामले में सेशन अदालत की राय यह हो कि मामला संगीन चोट का है। पर चोट के फलस्वरूप मृत्यु होने पर भी उस मामले में अदालत कारावास का दण्ड देती है। अब फर्ज कीजिये अदालत के इस फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील होती है और उसकी राय यह होती है कि मामला हत्या का है संगीन चोट का नहीं और वह मृत्यु-दण्डादेश देता है। अब यहां उच्च न्यायालय ने हत्या के लिये पहली बार अभियुक्त को दोषी ठहराया और मृत्यु-दण्डादेय भी यहां पहली बार ही दिया गया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** संशोधन में जो योजना रखी गई है, फिलहाल मैं उससे आगे जाने के लिये तैयार नहीं हूं। आगे चल कर अगर संसद यह समझे कि ऐसे मामले में अपील का अधिकार होना चाहिये तो खण्ड (2) के अधीन उसे ऐसी व्यवस्था करने की पूरी स्वतंत्रता रहेगी।

***अध्यक्ष:** यह तो दूसरी बात है और इसके बारे में फैसला देना सभा का काम है। पर जहां तक कि मेरा सम्बन्ध है मैं नहीं समझ सका कि दोनों में क्या अन्तर है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): डा. अम्बेडकर के मूल संशोधन नं. 24 पर मैंने एक संशोधन पेश किया है जो है संशोधन नं. 25। एक नया संशोधन आज आया है उसका नम्बर है 108। इसके शब्द ये हैं–''संसद विधि द्वारा...उच्चतम न्यायालय को. .. और भी शक्ति दे सकेगी।'' (Parliament may by law confer on the Supreme Court any further power to entertain, etc.) उच्चतम न्यायालय के अपील-विषयक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में मेरा भी संशोधन सिद्धान्ततः ऐसा ही था। पर जिस रूप में यह संशोधन शब्दबद्ध किया है उससे सम्भव है इसका भिन्न ही अर्थ लगाया जाये और मेरी समझ से यह अनुच्छेद 112 से टक्कर खाता है क्योंकि 112 में उच्चतम न्यायालय को ऐसा क्षेत्राधिकार दिया गया है।

***अध्यक्षः** अब इसके लिये समय नहीं रह गया है। मैं समझता हूं कि इस बात को उठाने में बड़ी देर कर दी है। अब इस मौके पर हम इस प्रश्न को उठाने की अनुमति नहीं दे सकते हैं।

अब मैं विभिन्न संशोधनों पर राय लूंगा। जो सदस्य यह समझते हों कि डा. अम्बेडकर के इस नये संशोधन में उनके संशोधन की बातें आ जाती हैं, वे आशा है, कृपया अपने संशोधनों को वापस ले लेंगे।

प्रस्ताव यह है–

''कि सूची 1 (पांचवें सप्ताह) के संशोधन नं. 23 और 24 के सम्बन्ध में, नवीन अनुच्छेद 111-क के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये–

'111-क दण्ड विषयों में उच्चतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार—(1) भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा दिये हुये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश या दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि–

(क) उच्च न्यायालय ने अपील किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया है तथा उसको मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा

(ख) उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण हेतु अपने पास मंगा लिया है तथा ऐसे परीक्षण में अभियुक्त व्यक्ति को दोष-सिद्ध ठहराया है और मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा

(ग) उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है:

परन्तु उस खण्ड के उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील, ऐसे नियमों के अधीन रहकर, जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जायें, ही होंगी।

(2) संसद विधि द्वारा ऐसी शर्तों और परिस्थितियों के अधीन, जो ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य-क्षेत्र के किसी

उच्च न्यायालय के दण्ड कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश अथवा दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी।' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं दूसरे संशोधनों को लूंगा। मैं यह देख लूंगा कि दूसरे संशोधनों में से कौन-कौन से संशोधन इस संशोधन के अन्दर आते हैं। संशोधन कई पेश किये गये हैं, इसलिये मैं एक-एक को लूंगा और यह देखूंगा कि कौन संशोधन इस स्वीकृत संशोधन के अन्दर आ जाता है और उसकी जो-जो बातें इस संशोधन के अन्दर नहीं आती हैं उन्ही पर मैं सभा की राय लूंगा।

पं. ठाकुरदास भार्गव: मैं अपने सभी संशोधनों को वापस लेना चाहता हूं श्रीमान।

सभा की अनुमति के सभी संशोधन वापस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** इस पद्धति से हमारा काम सरल हो जायेगा। संशोधन भी बहुत से आये हैं।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मेरा समूचा संशोधन ही (नं. 22) डा. अम्बेडकर के नये संशोधन के अन्दर नहीं आता है। उनके संशोधन के अन्दर वह मामले नहीं आते हैं जिनकी ओर अभी-अभी आपने उनका ध्यान आकृष्ट किया था। मेरा मतलब है ऐसे मामलों से जहां पुनरीक्षण में मृत्यु-दण्डादेश दिया गया है। फिर भी मैं अपने संशोधन को वापस लेता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** संशोधन नं. 25 को मैं वापस लेना चाहता हूं जो कि मेरे नाम में है।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** संशोधन नं. 33 को वापस लेने की मैं अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से यह संशोधन भी वापस ले लिया गया।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मेरा एक संशोधन है जो डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्दर नहीं आता है। यह है संशोधन नं. 41। इसमें तीन बातें ऐसी हैं जो डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्दर नहीं आती हैं।

***अध्यक्ष:** तो आप उसे वापस नहीं लेना चाहते हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी हां, मैं उसे वापस लेना नहीं चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** तो मैं संशोधन नं. 41 पर, जो डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्दर नहीं आता है, मत लिये लेता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1932 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

'111-A. Any person against whom any judgment, sentence or order has been passed by a High Court in the territory of India except the

[अध्यक्ष]

States for the time being specified in Part III of the First Schedule, in any criminal proceeding or a proceeding relating to contempt of court, or from any judgement, sentence or order of any other tribunal exercising criminal jurisdiction which judgment, sentence or order is not liable to be set aside or modified in appeal or revision by any such High Court, shall have a right of appeal in the following cases, namely—

(a) against any sentence of death;

(b) against any other judgement, sentence or order of such High Court or tribunal, as the case may be, that the judgement, sentence or order involves a substantial question of law; or

(c) in any other case where the High Court or the tribunal, as the case may be certified that it is a fit case for appeal.' "

[111क-किसी भी व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध, प्रथम अनुच्छेद के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के अतिरिक्त भारत के और किसी भी राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा, किसी दण्ड-कार्यवाही या न्यायालय-अवमान सम्बन्धी कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध या दाण्डिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले अन्य किसी न्यायाधिकरण द्वारा दिये गये किसी निर्णय, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध, जिनको कि अपील पर या पुनरीक्षण में किसी ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा रद्द या रूपान्तरित न किया जा सकता हो, निम्नलिखित मामलों में अपील का अधिकार होगा, अर्थात्–

(क) किसी मृत्यु-दण्डादेश के विरुद्ध;

(ख) किसी ऐसे उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा जैसी भी स्थिति हो, दिये गये किसी निर्णय, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध जिनमें कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो; अथवा

(ग) या किसी मामले में, जिसमें उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण ने, जैसी भी स्थिति हो, यह प्रमाणित किया हो कि मामला अपील के लायक है।]

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111-क, संशोधित रूप में, संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 111-क को, संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 103-क

***अध्यक्ष:** यह एक नया अनुच्छेद है जिसे डा. पी.के. सेन अपने संशोधन नं. 1870 के द्वारा संविधान में जोड़ना चाहते हैं। उनका संशोधन, संशोधन सम्बन्धी पुस्तक के भाग 1 में पृष्ठ 190 पर दिया हुआ है। यह माननीय सदस्य यद्यपि इस समय यहां उपस्थित नहीं हैं पर इस संशोधन को वह पहले पेश कर चुके हैं। इसलिये उस पर इस समय या तो मत लेना होगा या विचार करना होगा। कोई सदस्य इसके सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं। (*कोई नहीं उठा।*)

मैं उस पर अब राय लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 103 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'103-A. A person who is holding or has held the office of Judge of the Supreme Court shall not be eligible for appointment to any office of emolument under the Government of India or a State, other than that of the Chief Justice of India or the Chief Justice of a High Court:

Provided that the President may, with the consent of the Chief Justice of India, depute a judge of the Supreme Court temporarily on other duties:

Provided further that this article shall not apply in relation to any appointment made and continuing while a Proclamation of Emergency is in force, if such appointment is certified by the President to be necessary in the national interest:' ''

[103-क वह व्यक्ति, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर रहा है या कर चुका है, भारत-शासन के या उसके किसी राज्य के अधीन, भारत के मुख्य न्यायाधिपति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद के अतिरिक्त अन्य किसी परिलाभ पद पर नियुक्त किये जाने का पात्र न होगा:

परन्तु राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को अस्थायी रूप से अन्य कर्त्तव्यों पर लगा सकता है:

परन्तु यह और भी कि यह अनुच्छेद किसी ऐसी नियुक्ति के सम्बन्ध में, जो सद्यस्कृत्यता की उद्घोषणा के प्रभावी रहने के काल में की जाये या जारी रखी जाये, न लागू होगी यदि राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति को राष्ट्रीय हित में आवश्यक प्रमाणित करता हो।]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 164

***श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मुझे एक सुझाव देना है। इस अनुच्छेद में, राज्य के विधान सभा या विधान मण्डल में बरती जाने वाली मतदान पद्धति तथा वहां रिक्तियों के होते हुये भी सदनों के कार्य करने की शक्ति का जिक्र है। इस अनुच्छेद 164 में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की भी प्रसंगात एक चर्चा आ गई है। मेरा सुझाव यह है, श्रीमान्, कि हमें अनुच्छेद 172 पर उसके पहले विचार करना चाहिये जिसमें 'संयुक्त बैठक' सम्बन्धी प्रश्न की अधिक विस्तार से चर्चा की गई है और जिसमें कतितय ऐसे सिद्धान्त अन्तर्ग्रस्त हैं जिनमें हम सब की दिलचस्पी है। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि इस अनुच्छेद पर विचार करने से पहले हमें अनुच्छेद 172 पर विचार कर लेना चाहिये क्योंकि संयुक्त बैठक सम्बन्धी प्रश्न की चर्चा करने वाले इस अनुच्छेद को पास कर लेने के बाद तो हम उस सिद्धांत को मानने के लिये वचनबद्ध हो जायेंगे और इस समस्या से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर हम यहां विचार ही न कर सकेंगे।

***अध्यक्ष:** इसलिये आपका सुझाव यह है कि इस अनुच्छेद पर अभी न विचार किया जाये?

***श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी:** हां, श्रीमान्, मेरा यही सुझाव है।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 172 के बाद हमें इसको लेना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी के सुझाव को मैं समझ रहा हूं पर यहां 'संयुक्त बैठक' शब्द केवल प्रसंगात आ गये हैं। अगर हम समुचित अनुच्छेदों को बदल कर दूसरे रूप में रखना तय करते हैं तो मसौदा समिति यहां से भी इन शब्दों को हटा देगी। अगर उन अनुच्छेदों में इन शब्दों का कोई हवाला न रहेगा तो यहां से ये शब्द अपने आप हट जायेंगे। जहां तक कि इस अनुच्छेद विशेष का सम्बन्ध है, यहां इन शब्दों के हवाले के पीछे कोई खास बात नहीं हैं। यह बात आप पर छोड़ दी जाती है। अगर मसौदा समिति को यह अनुमति दे दें कि वह इस अनुच्छेद में आगे इसका वक्त आने पर परिवर्तन कर दे तो अभी इस पर विचार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद का वस्तुत: इस प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम 'संयुक्त बैठक' करें या न करें। यदि संविधान के दूसरे भागों में संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं किया जा सकता है तो यह अनुच्छेद जहां तक कि संयुक्त बैठ का सम्बन्ध है प्रवर्त्तन शून्य हो जायेगा और फिर इस पदसंहिता को हम आगे चलकर हटा भी सकते हैं। इस अनुच्छेद को रोके रखने का कोई कारण नहीं है। इस पर विचार करके हम इसे अभी निपटा सकते हैं।

डा. अम्बेडकर, आप अपने संशोधन नं. 2389 को पेश कर सकते हैं, जो कि महज रस्मी ही है।

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): तो मैं माने लेता हूं कि आपका आदेश यह है कि इस अनुच्छेद के पास हो जाने पर भी इसका जहां तक कि अनुच्छेद 172 का सम्बन्ध है उस पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ेगा।

***अध्यक्ष:** हां, यही तो मैं भी कह रहा हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'save as provided' (संविधान में प्रावहित) शब्दों की जगह 'save as otherwise provided' (संविधान में अन्यथा प्रावहित)' शब्द रखे जायें।''

(2390 से 2396 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2389 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'in a House' (किसी आगार में) शब्दों की जगह 'in any sitting of a House' (किसी आगार की किसी बैठक में) शब्द रख जायें।''

इस पर एक मेरा दूसरा संशोधन यह है:

''कि उपर्युक्त संशोधन नं. 61 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'in a House or a' शब्दों की जगह 'at any sitting of a House or' शब्द रखे जायें।''

स्पष्ट है कि इस संशोधन का अभिप्राय यही है कि इस अनुच्छेद की भाषा में आवश्यक परिवर्तन हो जाये। आशा है डा. अम्बेडकर इसकी प्रशंसा ही करेंगे और इसे तुरन्त स्वीकार कर लेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'save as provided' शब्दों की जगह 'save as otherwise provided' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं. 62 पर मत लेता हूं जिसके अन्दर और अन्य सभी संशोधन भी आ जाते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'in a House or' शब्दों की जगह 'at any sitting of a House or' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''अनुच्छेद 164 को इसके संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 164 अपने संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 167-क

***अध्यक्ष:** अब हम नवीन अनुच्छेद 167-क को लेते हैं। संशोधन नं. 2441 पर आये हुये संशोधन 65 पर अब विचार शुरू किया जायेगा। इसमें यह कहा गया है कि अनुच्छेद 167 के बाद प्रस्तुत नवीन अनुच्छेद 167-क रखा जाये।

***श्री बी.ए. मांडलोई** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन नं. 2441 को पेश करता हूं जो संशोधन-पुस्तिका के भाग 1 में पृष्ठ 247 पर छपा है। संशोधन यों है:

''कि अनुच्छेद 168 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद 168-क जोड़ दिया जाये:

'168-A. On a question being raised or having arisen whether a member has incurred the penalty for the breach or breaches mentioned in article 168, the Chairman of the Legislative Council or the Speaker of the Legislative Assembly, as the case may be shall refer the matter to the Committee of Privileges or to a sub-committee appointed by him for its report. The Chairman or the Speaker shall give his decision after the report has been discussed in the House or Council and the decision of the Chairman or Speaker, shall be final.' "

[168-क. इस प्रश्न के उठने या उठाये जाने पर कि आया कोई सदस्य अनुच्छेद 168 में उल्लिखित अवहेलना या अवहेलनाओं के लिये शक्ति का भागी बना है या नहीं, विधान-परिषद का सभापति या विधान सभा का अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, उस मामले को, विशेषाधिकार-समिति या अपने द्वारा नियुक्त उपसमिति के पास प्रतिवेदन के लिये भेजेगा। समिति रूप में उपविष्ट सभा में प्रतिवेदन पर विचार हो जाने के बाद, उस प्रश्न पर सभापति या अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा।]

सदस्यता सम्बन्धी अनर्हता के सम्बन्ध में, तथा अनुच्छेद 165 में प्रावहित घोषणा के पूर्व या अनर्ह होने या अनर्ह कर दिये जाने पर भी सभा में बैठने या मतदान करने की शास्ति के सम्बन्ध में यहां हम अनुच्छेद 167 तथा 168 को पास कर चुके हैं। इन अनुच्छेदों को पास कर देने पर, इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक ही है कि कौन व्यक्ति इस प्रश्न का निर्णय करेगा कि आया सदस्य सभा में बैठने और मतदान के लिये अनर्ह है या नहीं। इसलिये इस बात की जरूरत आती है कि संविधान में एक नवीन अनुच्छेद रखा जाये, जिसके अधीन किसी खास व्यक्ति या अधिकारी को इन प्रश्नों के उठने पर निर्णय देने की शक्ति प्राप्त हो।

अब अगर हम इस उपाय को स्वीकार करते हैं तो हमें दो बातों का ख्याल रखना होगा। एक तो यह है कि उस व्यक्ति या अधिकारी का निर्णय जिसे कि इसकी शक्ति दी गई हो, अन्तिम होगा। अर्थात जिस व्यक्ति या अधिकारी को इस प्रश्न पर निर्णय देने की शक्ति दी गई है उसका निर्णय अन्तिम होगा और उसके निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि ऐसा होने से जरूरी है कि मामला अरसे तक चलता रहेगा और जिस अभिप्राय से इन अनुच्छेदों को रखा जा रहा है उसकी ही हत्या हो जायेगी। इसलिये जिसे भी इस प्रश्न पर निर्णय देने की शक्ति दी जाये, उसका निर्णय अन्तिम होना चाहिये। दूसरी बात जो ध्यान में रखने की है वह यह है कि ऐसा प्रश्न उठने पर उसका फैसला यथासम्भव शीघ्र हो जाना चाहिये क्योंकि अनुच्छेद में यह प्रावधान रखा गया है कि अनर्ह होने पर अगर कोई सदस्य सभा में बैठता है या उसकी कार्यवाही में भाग लेता है या किसी विशेष प्रस्ताव पर मतदान करता है तो उसे प्रतिदिन पांच सौ रुपये के हिसाब से शास्ति के रूप में देना होगा। ज्यों ही ऐसा कोई सवाल उठेगा कि अमुक सदस्य अनर्ह हो गया है, वह सदस्य स्वभावतः यही चाहेगा कि इस प्रश्न पर यथासम्भव शीघ्र निर्णय दे दिया जाये। अगर वह सभा की कार्यवाही में भाग लेता है और निर्णय उसके विरुद्ध होता है तो उसे शास्ति की रकम देनी होगी और अगर वह बुद्धिमान आदमी की तरह सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लेता है निर्णय उसके पक्ष में होता है तो सभा की कार्यवाही में भाग लेने का जो बहुमूल्य अधिकार उसे प्राप्त है उससे वंचित रह जाता है। इसलिये इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। एक तो यह कि निर्णय अन्तिम होना चाहिये और दूसरा यह कि यथा-सम्भव शीघ्र उस पर निर्णय होना चाहिये। मेरा कहना यह है विधानसभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद् का सभापति, उस प्रश्न पर निर्णय देने के लिये सर्वथा सक्षम व्यक्ति हैं और इनको ऐसे प्रश्नों पर निर्णय देने की शक्ति हमें यहां देनी चाहिये। हम यह जानते ही हैं, श्रीमान्, कि सभापति या अध्यक्ष को सभा में उठाये गये आवश्यक प्रश्नों पर तुरन्त और महत्त्वपूर्ण निर्णय देना होता है। सुतरां इस प्रश्न पर निर्णय देने के लिये कि कोई सदस्य सदस्यता के लिये अनर्ह हो गया है या नहीं, ये व्यक्ति सर्वथा सक्षम है। मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव दिया है कि अगर ऐसा कोई प्रश्न उठता है तो उसे विशेषाधिकार समिति या एक उपसमिति के पास तुरन्त भेज देना चाहिये और ज्योंही उस समिति का प्रतिवेदन उस प्रश्न पर प्राप्त हो जाये, उस पर सभा में शीघ्र ही विचार होना चाहिये जिस पर सभापति या अध्यक्ष इस स्थिति में आ जायेंगे कि वह उस पर शीघ्र ही अपना निर्णय दे देंगे। मैं कहूंगा कि यह संशोधन सभा को स्वीकार करना चाहिये।

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन नं. 65 को भी पेश कर सकते हैं।

***श्री बी.ए. मांडलोईः** मैंने अपने मूल संशोधन नं. 2441 को पेश कर दिया है। संशोधन नं. 65 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं। यह नं. 2441 के सम्बन्ध में है। इस संशोधन नं. 65 को मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी पेश करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अगर वह इसे नहीं पेश कर रहे हैं तो मैं पेश कर दूंगा। मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्:

> '167-A. *Decisions on questions as to disqualification of members*—(1) If any question arises as to whether a member of House of the Legislature of a State has become subject to any of the disqualifications mentioned in clause (1) of the last preceding article the question shall be referred for the decision of the Governor and his decision shall be final.
>
> (2) Before giving any decision on any such question, the Governor shall obtain the opinion of the Election Commission and shall act according to such opinion.' "
>
> [167-क (1) *सदस्यों की अनर्हताओं के प्रश्नों पर विनिश्चयन*—यदि कोई प्रश्न उठता है कि राज्य के विधान मण्डल का सदस्य गत पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खण्ड (1) में वर्णित अनर्हताओं का भागी होता है या नहीं, तो वह प्रश्न राज्यपाल को विनिश्चय के लिये सौंपा जायेगा और उसका विनिश्चयन अन्तिम होगा।
>
> (2) ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चयन देने से पूर्व राज्यपाल निर्वाचन आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।]

मैं सभा से अनुरोध करूंगा श्रीमान्, कि वह माननीय श्री मांडलोई द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन के इस संशोधित रूप को स्वीकार करे क्योंकि उनके संशोधन नं. 2441 को अगर स्वीकार किया जाता है तो उसे अमली प्रयोग देने में कई कठिनाइयां पैदा होंगी। अनुच्छेद 167 में वर्णित अनर्हताओं को प्रयोग में लाने की शक्ति अगर हम अध्यक्ष को देते हैं तो उसमें एक कठिनाई यह आती है कि ऐसी भी अवधि आयेगी जिसमें अध्यक्ष का निर्वाचन ही न हुआ रहेगा और दूसरी कठिनाई यह है कि, जो व्यक्ति अध्यक्ष निर्वाचित हो, सम्भव है वही किसी अनर्हता का भागी हो गया हो और प्रस्तुत योजना के अनुसार भी राज्य का स्थायी प्रमुख ही ऐसा व्यक्ति होगा जो इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई कर सकता है। यहां यह आपत्ति की जा सकती है कि जब एक बार अध्यक्ष का निर्वाचन हो जाता है तो फिर उसके अधिकारों पर अतिक्रमण नहीं होना चाहिये। मैं समझता हूं कि एक पहले मौके पर भी संसद सम्बन्धी अनुच्छेद को लेकर यहां यही प्रश्न उठा था पर उसका निराकरण यह प्रावधान रख कर किया गया था कि सभा में किये गये सभी कामों के सम्बन्ध में, जो शक्तियां राष्ट्रपति को प्राप्त रहेंगी वे सब एक समुचित अधिकारी को सौंप दी जायेगी जो अधिकारी सम्भवत: अध्यक्ष होगा। यहां इस बात की संभावना नहीं है कि राज्यपाल बिल्कुल अपनी ही मरजी से काम करेगा। वह अपने मंत्रियों की राय से चलेगा और यह स्वाभाविक है कि मंत्री वर्ग बिना अध्यक्ष से परामर्श किये कुछ भी न करेगा। प्रस्तुत संशोधन के दूसरे खण्ड में एक निर्वाचन-आयोग की स्थापना की पहले से ही कल्पना कर ली गई है और इसका उल्लेख यहां पहली बार हुआ है। इसका सम्बन्ध निर्वाचन सम्बन्धी अध्याय के अनुच्छेद 289 और उसके आगे के अनुच्छेदों से है और मसौदा-समिति ने समुचित संशोधनों के द्वारा एक निर्वाचन-आयोग की स्थापना का प्रस्ताव रखा है जिसका निर्णय निर्वाचन सम्बन्धी प्रश्नों में अन्तिम होगा। इसलिये, इस बात को बचाने के लिये कि राज्यपाल अपनी ही मरजी से इस सम्बन्ध

से न काम करे या मन्त्रियों की राय पर अनुचित अभिप्रायों से प्रेरित होकर न काम करे, यहां दूसरे खण्ड के द्वारा राज्यपाल और उसके सलाहकारों पर यह दायित्व डाल दिया गया है कि वे निर्वाचन-आयुक्त की, या जो भी व्यक्ति उसकी ओर से इस प्रश्न का निर्णय करता हो उसकी राय अवश्य ले लेंगे। मेरा विश्वास है कि माननीय मित्र मांडलोई अपने संशोधनं. 2441 के द्वारा जिस त्रुटि को दूर करना चाहते थे वह इसके द्वारा दूर हो जाती है। यहां अध्यक्ष की प्रतिष्ठा का कोई प्रश्न अन्तर्निहित नहीं है क्योंकि हम अध्यक्ष के किसी अधिकार को नहीं छीन रहे हैं बल्कि हम सिर्फ यही प्रावधान कर रहे हैं कि अध्यक्ष के अस्तित्व में न आने तक क्या व्यवस्था काम में लाई जायेगी। आशा है सभा श्री मांडलोई के संशोधन नं. 2441 को इस संशोधित रूप में स्वीकार करेगी।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): मैं संशोधन नं. 68 को पेश करना चाहता हूं श्रीमान्, जो मेरे नाम में है। मेरा प्रस्ताव यह है:

''कि उपर्युक्त संशोधन नं. 65 में, नवीन प्रस्तावित अनुच्छेद 167-क में:

(1) खण्ड (1) में, 'Governor and his' शब्दों के स्थान पर 'Election Commission and its' शब्द, तथा

(2) खण्ड (2) को और खण्ड (1) के प्रारम्भ में रखे हुये अंक '(1)' को हटा दिया जाये।''

श्री मांडलोई की बात मैंने सुनी है श्रीमान्। उनका कहना यह है कि अध्यक्ष ही इस सम्बन्ध में समुचित अधिकारी होगा और उसके द्वारा नियुक्त समिति के प्रतिवेदन पर अध्यक्ष जो निर्णय दे वह अन्तिम माना जायेगा। उनके संशोधन के सम्बन्ध में मुझे दो आपत्तियां हैं। पहली आपत्ति यह है कि सदस्य की अनर्हता का प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न होता है और इसकी छानबीन विस्तारपूर्वक होनी चाहिये। अवश्य ही इस सम्बन्ध में जो समिति नियुक्त की जायेगी उसके सदस्य किसी राजनैतिक पार्टी के ही सदस्य होंगे और सदस्यों की अनर्हता का प्रश्न किसी राजनैतिक पार्टी के सदस्यों पर न छोड़ा जाना चाहिये। इसलिये अच्छा यह होगा कि इस मसले को निर्वाचन-आयोग को सौंपा जाये। पर जो संशोधन श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया है उसके खण्ड (2) में यह कहा गया है कि राज्यपाल इस प्रश्न पर कोई निर्णय देने से पहले निर्वाचन-आयोग की राय जरूर ले लेगा और उस राय के अनुसार काम करेगा। इस उपखण्ड (2) के अनुसार राज्यपाल पोस्ट आफिस के रूप में केवल एक मध्यवर्ती व्यक्ति रह जायेगा क्योंकि जब आप यह कहते हैं कि राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा और इसके साथ ही यह भी कहते हैं कि राज्यपाल निर्वाचन-आयोग की राय के अनुसार ही इस सम्बन्ध में निर्णय देने के लिये बाध्य है तो फिर आप निर्वाचन आयोग की राय को ही क्यों न मंजूर करें और सीधे यही क्यों न कहें कि निर्वाचन-आयोग का निर्णय अन्तिम होगा? इन्हीं कारणों से मैंने अपना यह संशोधन रखा है और सभा से सिफारिश करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री मांडलोई का संशोधन, श्री कृष्णमाचारी के संशोधन से बिल्कुल भिन्न है और इसमें एक ही बात का खास तौर पर उल्लेख किया गया है। श्री मांडलोई का संशोधन केवल अनुच्छेद 108 के सम्बन्ध में है और उनका कहना यह है कि अनुच्छेद 108 में वर्णित अवहेलना का

[श्री आर.के. सिधवा]

जो प्रश्न है उसका निर्णय सभापति या अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति करे। श्री कृष्णमाचारी का संशोधन एक व्यापक संशोधन है जिसमें अनर्हता सम्बन्धी सभी बातों का एक आम उल्लेख है। निर्वाचन विषयक दुराचरण या भ्रष्टाचार का प्रश्न, निश्चय ही निर्वाचन-आयोग के पास जाना चाहिये। अनुच्छेद 108 में कहा गया है कि:

> ''यदि कोई व्यक्ति..... अनुच्छेद 165 की अपेक्षाओं की पूर्ति करने से पूर्व..... बैठता या मतदान करता है तो..... इत्यादि।''

अनुच्छेद 165 सदस्य की शपथ के सम्बन्ध में है और यदि शपथ लेने से वह इनकार करता है तो उस मामले को निर्वाचन-आयोग के पास भेजना ठीक न होगा। अतीत में अध्यक्ष ने ऐसे सदस्य को सभा में बैठने या बोलने की अनुमति देने से इनकार किया है। श्री मांडलोई यह चाहते हैं कि अध्यक्ष का यह अधिकार बना रहना चाहिये। पर श्री कृष्णमाचारी का संशोधन एक ऐसा संशोधन है जिसमें अनर्हता सम्बन्धी सभी बातों का एक आम उल्लेख है।

***अध्यक्ष:** यह केवल अनुच्छेद 165 के सम्बन्ध में नहीं है बल्कि आगे चल कर इसमें अन्य बातों का भी उल्लेख है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरी बात शपथ लेने से इनकार करने के सम्बन्ध में ही है। पर इस सम्बन्ध में और भी बातें हो सकती हैं जैसे किसी सदस्य का विकृत मस्तिष्क हो जाना। अगर कोई सदस्य विकृत मस्तिष्क का हो जाता है तो उसे सभा की कार्यवाही में भाग लेने दिया जाये या नहीं इसका निर्णय अध्यक्ष ही करेगा।

***अध्यक्ष:** उस सूरत में क्या होगा अगर निर्वाचित हो जाने पर वह कोई परिलाभ का पद स्वीकार कर लेता है या दिवालिया हो जाता है?

***श्री आर.के. सिधवा:** ऐसे मामलों की तो जांच होनी चाहिये। पर अगर कोई सदस्य शपथ लेने से इनकार करता है तो क्या आप उसे सभा में बैठने देंगे? मेरा कहना है कि संशोधन में बड़ी अस्पष्टता है और इसे स्पष्ट बना देना चाहिये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्री सिधवा की इस बात से मैं सहमत हूं श्रीमान्, कि माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी के संशोधन में कुछ अस्पष्टता है। श्री मांडलोई ने अनुच्छेद 168 की एक खामी की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया है। उनका कहना है कि कोई व्यक्ति शास्ति का भागी हुआ है या नहीं इसका निर्णय अध्यक्ष को करना चाहिये। इसमें दो प्रश्न निहित हैं। एक तो यह कि कोई व्यक्ति सभा में बैठने के लिये अनर्ह हो गया है या नहीं। दूसरा यह कि वह आस्ति का भागी हो गया है या नहीं। किन-किन बातों के कारण कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अनर्ह होगा इसका उल्लेख अनुच्छेद 167 में है। कोई व्यक्ति अनर्ह हुआ है या नहीं, इसका निर्णय अनुच्छेद 167 के आधार पर किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि ऐसे प्रश्न का फैसला केवल निर्वाचन-आयोग ही कर सकता है। पर शपथ आदि बातों के सम्बन्ध में सीधे अध्यक्ष ही फैसला दे सकता है। इसलिये हमें दो नये खण्ड रखने चाहिये। एक 167-क और दूसरा 168-क। 167-क में यह उल्लिखित होना चाहिये कि कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अनर्ह हो गया है या

नहीं इसका फैसला निर्वाचन-आयोग ही करेगा। और अनुच्छेद 168-क में यह रहना चाहिये कि कोई सदस्य शास्ति का भागी हुआ है या नहीं उसका फैसला अध्यक्ष करेगा। राज्यपाल को यहां लाने से स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा और उसे इस मसले में कोई अधिकार भी न होना चाहिये। निर्वाचन-आयोग यह बतायेगा कि कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अनर्ह हुआ है या नहीं, और अध्यक्ष यह फैसला करेगा कि सदस्य शास्ति का भागी हुआ है या नहीं। प्रस्तावित अनुच्छेद में कुछ असंगति जरूर है इसलिये इसे हमें दो भागों में बांट देना चाहिये जैसा कि मैंने सुझाया है। एक भाग 167-क जिसमें यह होना चाहिये कि सदस्यता से कोई व्यक्ति अनर्ह हुआ है या नहीं इसका निर्णय निर्वाचन-आयोग करेगा और दूसरा 168-क जिसमें यह होना चाहिये कोई सदस्य शास्ति का भागी हुआ है या नहीं इसका फैसला अध्यक्ष करेगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं समझता हूं कि इस प्रश्न को राज्यपाल को सौंपने के विरुद्ध जो आपत्ति की जा रही है वह गलती से की जा रही है क्योंकि इस समूचे खण्ड में अनुच्छेद 167(1) में वर्णित अनर्हताओं की ही चर्चा है। शपथ न लेना कोई अनर्हता नहीं है। जब तक कि सदस्य शपथ नहीं लेता है वह सदस्य के रूप में सभा में भाग नहीं ले सकता और कुछ दिनों के बाद अपने आप उसका स्थान रिक्त हो जायेगा। शपथ न लेना कोई अनर्हता नहीं है और माननीय मित्र श्री सिधवा को मैं विश्वास दिलाता हूं कि इस मसले से निर्वाचन-आयोग या राज्यपाल का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु बहुत सी अनर्हतायें ऐसी हैं जिनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक हमें जांच करनी होगी। कोई व्यक्ति किसी विदेशी शक्ति से निष्ठा तो नहीं रखता इत्यादि इत्यादि बातों को हमें सावधानी से देखना होगा। ऐसे मामले में हमें अभिलेख और साक्ष्य आदि को देखना होगा और अवश्य ही इस प्रयोजन के लिये हम अध्यक्ष को न्यायिक प्राधिकारी नहीं बना सकते हैं। फिर दूसरा एक बुनियादी सवाल इस सिद्धान्त को लेकर उठता है कि अध्यक्ष का किसी सदस्य से संघर्ष में आना ठीक नहीं है। कोई नहीं जानता है कि अनुसंधान का फल क्या होगा, पर अनुसंधान करने का काम अध्यक्ष करता है तो उस काम के सिलसिले में सदस्य और अध्यक्ष के पारस्परिक सम्बन्ध में अवश्य तनातनी आ जायेगी इसलिये अध्यक्ष में ऐसा प्रकार्य निहित करना कभी ठीक न होगा। कुछ संसदों में यह होता है कि खुद संसद ही ऐसे मामलों की जांच के लिये और उन पर फैसला देने के लिये एक समिति नियुक्त कर देती है या अन्य कोई व्यवस्था कर देती है। अवश्य ही हम भी ऐसी ही कोई प्रणाली अपना सकते हैं पर जब हमने निर्वाचन-आयोग की स्थापना कर ली है जो ऐसे मामलों का निपटारा करने के लिये एक सर्वथा सक्षम निकाय होगा, तो ऐसी व्यवस्था का अपनाना आवश्यक नहीं रह जाता है। जहां तक कि राज्यपाल का सम्बन्ध है, उसे तो यह काम इसलिये सौंपा जा रहा है कि वह कार्यपालिका का प्रमुख है और इस कार्य के लिये उसे एक सुविधा-सम्पन्न साधन बनाया जा सकता है। उसे इस सम्बन्ध में अपनी मरजी से निर्णय देने की शक्ति न रहेगी बल्कि निर्वाचन-आयोग की राय के अनुसार चलने के लिये वह बाध्य होगा। एक संशोधन में यह कहा गया है कि इस प्रश्न को सीधे निर्वाचन-आयोग को क्यों न सौंपा दिया जाये? ऐसा इसलिये नहीं किया जा सकता कि नियमत: ऐसे मसले का निपटारा राज्य के कार्यपालिका प्रमुख के द्वारा ही होना चाहिये। सही प्रक्रिया के ख्याल से ही यह व्यवस्था यहां की जा रही है अन्यथा तथ्य तो यह

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है कि निर्वाचन-आयोग में ही ऐसे मामलों के अनुसंधान का पूरा क्षेत्राधिकार निहित रहेगा और वस्तुतः वही यह निर्णय देगा कि कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अर्ह है या अनर्ह।

दूसरी आपत्ति यह उठाई गई है कि जबकि सदस्य की अर्हता का प्रश्न, अनुच्छेद 168 के अधीन, एक लम्बी अवधि तक निलम्बित रह जाता है तो उस सूरत में सभा की कार्यवाही में शामिल होने वाले सदस्य को एक लम्बी रकम शास्ति के रूप में देनी पड़ जायेगी। यह सच है पर जिस सदस्य पर अनर्हता का आरोप किया गया हो उसके लिये यह अनिवार्य तो है नहीं कि वह सभा में बैठे ही। अगर वह सभा में बैठता है इसकी जिम्मेदारी उस पर है। यदि उसे इसका पक्का विश्वास है कि वह अनर्ह नहीं है तो अवश्य ही वह सभा में बैठने का जोखिम उठा सकता है और उसकी कार्यवाही में शामिल हो सकता है। पर अनर्हता सम्बन्धी आरोप के दौरान में अगर सभा में बैठता है और आगे चलकर यह प्रमाणित होता है कि वह वस्तुतः अनर्ह है तो यह कहना होगा कि उसने जानबूझ कर जोखिम उठाई है और उसे शास्ति की रकम देनी ही होगी। मैं नहीं समझता कि इस हालत में, वह सहानुभूति का पात्र माना जा सकता है। मेरी समझ से माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने जो संशोधन पेश किया है उसका हमें समर्थन करना चाहिये।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): एक ऐसा व्यक्ति श्रीमान्, जो सरकारी नौकर है, या जो विकृत मस्तिष्क है या अनुन्मुक्त दिवालिया है, या विदेशी है अथवा जो विधि द्वारा अनर्ह ठहरा दिया गया हो, वह प्रान्तीय विधान-मण्डल का सदस्य नहीं बन सकता है। अब सवाल यह उठता है कि इस बात की घोषणा कौन करेगा कि सदस्य अनर्ह है। इस सम्बन्ध में यहां दो संशोधन आये हैं। एक में यह कहा गया है कि अध्यक्ष उस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेज देगा। यदि विधान सभा के सदस्य का प्रश्न है तो उसका अध्यक्ष और विधान-परिषद् के सदस्य का प्रश्न है तो उसका सभापति उसे भेजेगा और समिति में उस प्रश्न पर विचार किया जायेगा और समिति का प्रतिवेदन पाने पर अध्यक्ष या सभापति उस पर निर्णय देगा। एक दूसरे संशोधन में यह कहा गया है कि निर्वाचन-आयोग से परामर्श लेकर उसका निर्णय राज्यपाल करेगा।

पहले संशोधन में एक त्रुटि है जो यह है। मान लीजिये कोई विशेषाधिकार समिति ही न हो तो क्या होगा? जहां तक कि संविधान के मसौदे का सम्बन्ध है उसमें विशेषाधिकार समिति के लिये कोई प्रावधान नहीं है। ऐसी सूरत में क्या किया जायेगा? दूसरा सवाल यह उठता है कि अगर सभा की बैठक न हो रही हो तो क्या किया जायेगा? सभा की बैठक बुलाई जाये और तब उसमें उस पर विचार किया जाये। उसमें काफी देर लग जायेगी। ऐसे मामले में तो फौरन फैसला होना चाहिये। इसलिये इस काम के लिये राज्यपाल ही सर्वोत्तम-व्यक्ति हो सकता है। राज्यपाल पर यह काम सौंपा जाये। उसके विरुद्ध एकमात्र आपत्ति यह है कि राज्यपाल को पथप्रदर्शन करायेंगे मन्त्रिमण्डल और प्रधानमंत्री। परन्तु इस मसले में प्रधानमंत्री का कोई सरोकार न होगा और राज्यपाल उससे परामर्श न करेगा। राज्यपाल परामर्श लेगा निर्वाचन-आयोग से जो इस सम्बन्ध में एकमात्र प्रामाणिक अधिकारी होगा। निर्वाचन

आयोग का जो भी निर्णय होगा वह अन्तिम होगा और उसी पर राज्यपाल को चलना होगा। इसलिये, मेरा ख्याल है कि इन दो संशोधनों में दूसरा संशोधन अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है और इसी को हमें स्वीकार करना चाहिये।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** संशोधन नं. 65 और 2441 के पढ़ने पर मेरे मन में रंच मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता है कि दोनों में दो भिन्न बातों की कल्पना की गई है। संशोधन नं. 65 में यह साफ तौर पर कहा गया है कि अनुच्छेद 167 के भाग (1) में दी हुई अनर्हताओं को लेकर अगर कोई प्रश्न उठता है तो वह निर्वाचन-आयोग के क्षेत्राधिकार के अन्दर होगा और इस आयोग की राय के अनुसार ही राज्यपाल उस सम्बन्ध में निर्णय देगा। अनुच्छेद 168 के सम्बन्ध में यह संशोधन रखा गया है कि अध्यक्ष को उस मसले पर फैसला देने का अधिकार होना चाहिये। मैं विनम्रतापूर्वक यह कहूंगा कि जहां तक अनुच्छेद 168 का सम्बन्ध है, उसमें उन अपराधों का वर्णन है जिनके सम्बन्ध में देश के कानून के अनुसार दण्ड की व्यवस्था होगी अब अपराध क्या होगा। उसकी हम समीक्षा कर लें। अगर कोई सदस्य यह जानता है कि वह अपराध कर रहा है फिर भी वह सभा में बैठने पर आग्रह करता है तो वह अपराधी है। जिस सदस्य ने शपथ नहीं ली है उसे सभा में बैठने का अधिकार नहीं है। वह जानता है कि उसने शपथ नहीं ली है फिर भी वह सभा में बैठ रहा है। इसी तरह जब उसे यह मालूम हो कि सदस्यता के लिये अर्ह नहीं रह गया है फिर भी अगर वह.....

***अध्यक्षः** यदि सदस्य ने शपथ नहीं ली है तो भी क्या वह सभा में बैठ सकता है?

***श्री आर.के. सिधवाः** सभा में वह बैठ सकता है पर उसकी कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता है। वह मतदान नहीं कर सकता है। ऐसा वह शपथ लेने के बाद ही कर सकता है।

***अध्यक्षः** पर शपथ लेने के पहले ही क्या वह सदस्य माना जा सकता है?

***श्री आर.के. सिधवाः** हां, पूर्ववक्ताओं ने इसे मंजूर किया है।

***अध्यक्षः** मैं देखता हूं कि अनुच्छेद 165, इस सम्बन्ध में, बिल्कुल स्पष्ट है। उसमें कहा गया है किः

> ''राज्य की विधान सभा या विधान-परिषद् का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, राज्यपाल के अथवा..... के समक्ष तृतीय अनुसूची में उस प्रयोजन के लिये दिये हुये प्रपत्र के अनुसार शपथ लेगा'' इत्यादि, इत्यादि।

इसलिये बैठने के पहले उसके लिये शपथ लेना जरूरी है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** इसलिये जो व्यक्ति शपथ नहीं लिया है वह अच्छी तरह जानता है कि वह अपराध कर रहा है। सुतरां उस व्यक्ति पर देश का आम कानून लागू होता है और उसी के अनुसार उसके अपराध का दण्ड मिलना चाहिये। इसमें अध्यक्ष के हस्तक्षेप का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। यह तो एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति को मालूम है कि उसका ऐसा करना अपराध है फिर भी वह वैसा करता है। उसे तो देश के आम कानून के अनुसार दण्ड मिलना चाहिये; उस पर अर्थदण्ड लगना चाहिये

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

और राज्य उस रकम को बतौर ऋण के वसूल करेगा। इसलिये मैं समझता हूं कि श्री मांडलोई के संशोधन को, सभा को न स्वीकार करना चाहिये। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** बहस मुबाहिसे के सिलसिले में यहां बहुत से प्रश्न उठाये गये हैं और मैं चाहूंगा कि उनका एक-एक करके उत्तर दूं। माननीय मित्र श्री सिधवा की बात को अगर मैंने ठीक-ठीक सुना है तो उन्होंने अनुच्छेद 165 का जिक्र किया है जिसमें शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की बात कही गई है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में तो यही बात है कि अगर इसके प्रावधानों की पूर्ति नहीं की जाती है तो इससे सदस्य का स्थान रिक्त नहीं हो जाता है। इस अनुच्छेद में सिर्फ यही कहा गया है कि कोई व्यक्ति सभा की कार्यवाही में न भाग ले सकेगा और न मतदान कर सकेगा जब तक कि वह शपथ न ले ले। बस, इतना ही इसमें कहा गया है। इसलिये, इसको लेकर मेरी समझ से यहां कोई कठिनाई नहीं पैदा होती है।

***श्री आर.के. सिधवाः** तो ऐसा मामला, आखिर निर्वाचन-आयोग के पास ही क्यों भेजा जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उस बात की ओर आ ही रहा हूं। जहां तक अनुच्छेद 165 का सम्बन्ध है, मेरा ख्याल है कि इसमें और 167 में क्या बुनियादी फर्क है इसे वह समझते होंगे। अनुच्देद 165 के सम्बन्ध में तो यही है कि शपथ न लेने पर सदस्य का स्थान नहीं रिक्त हो जाता है। उस पर केवल यह निर्योग्यता लागू हो जाती है कि वह सभा की कार्यवाही में भाग न ले सकेगा।

अब मैं मुख्य संशोधन को लेता हूं जिसे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया है। उनका संशोधन है नवीन अनुच्छेद 167-क को रखने के बारे में। सिवाय एक बात के, जिसका कि मैं अभी-अभी उल्लेख करूंगा, अन्य सभी बातों के ख्याल से यह संशोधन बिल्कुल सही है। राज्यपाल पर फैसला देने का काम सौंपने का कारण यह है कि आम कायदे के अनुसार ऐसी अनर्हता के सम्बन्ध में निर्णय देने का भार, जिसको लेकर सदस्य का स्थान रिक्त होता हो, उसी खास अधिकारी को सौंपा जाता है जिसे उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये निर्वाचन कराने की शक्ति प्राप्त रहती है। यद्यपि यह बात लिखित रूप में नहीं कही गई है पर इसे सभी अच्छी तरह समझते हैं कि अनुच्छेद 167 में वर्णित किसी अनर्हता के कारण सदस्य का स्थान रिक्त हो गया है या नहीं उसका निर्णय वही अधिकारी करेगा, जिसे उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये निर्वाचकों से यह कहने की शक्ति प्राप्त रहेगी कि वह उस स्थान के लिये अपना प्रतिनिधि चुने। इसके बारे में कोई सन्देह नहीं है कि अपने नवीन संविधान में राज्यपाल को ही यह शक्ति दी गई है कि निर्वाचकों से अपना प्रतिनिधि चुनने को वह कहे। ऐसी दशा में अनर्हता सम्बन्धी कारण के आधार पर स्थान रिक्त घोषित करने की शक्ति, लाजिमी है, कि राज्यपाल को ही प्राप्त रहनी चाहिये। इसलिये जहां तक कि अनुच्छेद 167-क के खण्ड (1) का सम्बन्ध है, उसे स्वीकार करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है।

अब मैं खण्ड (2) को लेता हूं। यह खण्ड कुछ अधिक व्यापक हो गया है। इसमें यह कहा क्या है कि अनर्हता सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय राज्यपाल करेगा पर शर्त यह है

कि इसमें यह निर्वाचन-आयोग की राय जरूर ले लेगा और उसकी राय के अनुसार ही निर्णय करेगा। यदि अनुच्छेद 167 पर सदस्यगण दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि जहां तक कि (क) से (घ) तक के उपखण्डों में वर्णित अनर्हता का सम्बन्ध है वस्तुतः आयोग ऐसी स्थिति में नहीं है कि उनके सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई राय दे सके क्योंकि सभी बातें उसमें ऐसी हैं जो निर्वाचन आयोग के दायरे से बाहर की है। उदाहरण के लिये, कोई व्यक्ति परिलाभ का कोई पद धारण करता है या कोई सदस्य विकृत मस्तिष्क है अथवा वह अनुन्मुक्त दिवालिया है या वह किसी विदेशी शक्ति के प्रति निष्ठा रखता है, यह-सब ऐसे मसले हैं जो निर्वाचन-आयोग की परिधि से सर्वथा बाहर की चीजें हैं। इसलिये उन प्रश्नों के सम्बन्ध में राज्यपाल को राय देने के लिये निर्वाचन-आयोग को समुचित निकाय कभी नहीं कहा जा सकता है। पर जहां तक कि उपखण्ड (ङ) का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं उसके बारे में निर्वाचन-आयोग राय दे सकता है क्योंकि उपखण्ड (ङ) के अधीन तो अनर्हता का प्रश्न किसी भ्रष्टाचार के या वृत्ति के अनुरूप काम करने के कारण उठ सकता है जिसमें निर्वाचन सम्बन्धी कानून के अनुसार सदस्य अनर्ह करार दिया जा सकता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या निर्वाचन-आयोग आवश्यक अनुसंधान नहीं कर सकता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यहां अनुसंधान का प्रश्न ही कहां उठता है? इस बात का निश्चय करने के लिये कि कोई व्यक्ति अनुन्मुक्त दिवालिया है या नहीं अनुसंधान की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 167-क का खण्ड (2) है तो ठीक पर यह उन्हीं स्थितियों तक सीमित रहना चाहिये जिनका उल्लेख उपखण्ड (ङ) में किया गया है। इसलिये आपकी अनुमति से श्रीमान्, मैं खण्ड (2) में यह संशोधन रखना चाहता हूं:

> ''गत पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ङ) में दी हुई अनर्हताओं को लेकर उठने वाले किसी प्रश्न पर विनिश्चय देने से पूर्व राज्यपाल निर्वाचन-आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।''

***अध्यक्ष:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तावित संशोधन में, जैसा कि मैं समझ पाता हूं, निर्वाचन के पहले या निर्वाचन काल में उत्पन्न होने वाली अनर्हता का प्रश्न नहीं रखा गया है। उसमें तो निर्वाचन के बाद विधान मण्डल का सदस्य हो जाने पर अगर कोई व्यक्ति किसी अनर्हता का भागी हो जाता है तो उसके सम्बन्ध में उठने वाले प्रश्न की बात कही गई है। ऐसे प्रश्नों का निपटारा निर्वाचन आयोग करेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** स्थिति यों है श्रीमान्। किसी अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई याचिका (petition) आने पर आयोग उसकी जांच करेगा और हो सकता है निर्वाचन काल में किये गये कुछ अपराधों के लिये वह अभ्यर्थी को दोषी पाये पर इस बीच निर्वाचन समाप्त हो चुका रहेगा और अभ्यर्थी सदस्य के रूप में सभा में अपना स्थान ग्रहण कर चुका रहेगा।

***अध्यक्ष:** क्या ऐसे मामलों को निपटाने का अधिकार निर्वाचन-आयोग को नहीं है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** है, पर होता यह है कि ज्यों ही कोई व्यक्ति निर्वाचित हो जाता है उसे शपथ लेने और प्रतिज्ञान करने पर सभा में बैठने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह सभा में बैठता है और बाद में उसका प्रतिद्वंद्वी अभ्यर्थी निर्वाचन के सम्बन्ध में याचिका (Petition) दाखिल करता है और न्यायालय के इस निर्णय पर कि निर्वाचन कानून के अधीन वह कतिपय अपराधों का दोषी है वह व्यक्ति अपने स्थान से हटा दिया जाता है। यह मामला भी उपखण्ड (ङ) के अन्दर आयेगा। जब किसी व्यक्ति ने सदस्य के रूप में सभा में स्थान ग्रहण कर लिया है उसके बाद.....

***अध्यक्षः** मुझे ऐसा मालूम होता है कि यहां दो तरह की अनर्हताओं का उल्लेख है। कोई सदस्य सदस्य होने के पूर्व या निर्वाचन-काल में, किसी अनर्हता का भागी हो सकता है ऐसे मामलों को निपटाने का अधिकार निर्वाचन-न्यायधिकरण होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह तो निर्भर करता है इस बात पर कि आगे चल कर क्या प्रक्रिया इसके लिये निर्धारित करते हैं।

***अध्यक्षः** पर सभा में स्थान ग्रहण करने के बाद भी हो सकता है कोई सदस्य किसी अनर्हता का भागी हो जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसी का प्रावधान तो उपखण्ड (ङ) में किया गया है।

***अध्यक्षः** फिर अन्य अनर्हतायें भी किसी पर लागू हो सकती हैं। कोई व्यक्ति विकृत मस्तिष्क हो जा सकता है या अनुन्मुक्त दिवालिया हो जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इन सबका प्रावधान यहां किया गया है। यह सब अनर्हतायें सदस्यों के लिये लागू होती हैं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** कृपया संशोधन को पढ़िये तो।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अनर्हतायें दो तरह की हैं। एक तो वह अनर्हतायें हैं जो अभ्यर्थी के लिये लागू होती हैं जिन लोगों पर यह अनर्हतायें लागू होती हैं वह निर्वाचन के लिये उम्मीदवार ही नहीं बन सकते। दूसरी अनर्हतायें वह हैं जो सदस्यों के लिये लागू होती हैं। चुने जाने के बाद अगर कोई अनुच्छेद 167 में उल्लिखित अनर्हता का भागी हो जाता है वह सभा में न बैठ सकेगा। दोनों अनर्हतायें भिन्न हैं। दोनों को मिला कर गुंजलक न पैदा कीजिये।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** 167-क के अन्दर दोनों ही आ जाती हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** ऐसा हो सकता है। मैं मसले को समझाये देता हूं। सब कुछ निर्भर करता है, इस बात पर निर्भर करता है कि किस तरह की प्रक्रिया हम इसके लिये निर्धारित करते हैं। अगर हम यह प्रक्रिया बरतना तय करते हैं कि अभ्यर्थी चुनाव के लिये अर्ह है या नहीं इसे हम आरम्भिक प्रश्न यानी चुनाव से पहले उठने वाला प्रश्न मानेंगे तो उस हालत में अनुच्छेद 167 नहीं लागू होगा। पर इसके प्रतिकूल अगर हम यह वर्तमान प्रक्रिया बरतते हैं कि चुनाव सम्बन्धी सभी प्रश्नों पर मय इस प्रश्न के कि अभ्यर्थी चुनाव के लिये अर्ह है या नहीं, विचार किया जा सकता है, तो उस

हालत में अनुच्छेद 167 लागू होगा। मेरा तथा मसौदा-समिति का इरादा यही है कि एक ऐसा प्रावधान कर दिया जाये जिसके अनुसार निर्वाचन-आयोग कतिपय आरम्भिक प्रश्नों का निपटारा कर दे ताकि चुनाव के सम्बन्ध में जो विवाद उठे वह केवल इसी प्रश्न को लेकर कि चुनाव ठीक-ठीक तरह से हुआ था या नहीं। पर यहां यह सारी बातें एक ही जगह रख दी गई हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): सदस्य चुने जाने के विरुद्ध तथा चुने जाने पर सदस्य बने रहने के विरुद्ध अलग-अलग अनर्हतायें रखी गई हैं। और दोनों ही अनर्हताओं के सम्बन्ध में उठने वाले प्रश्न अनुच्छेद 167(1) के अन्दर आ जाते हैं। इसे और स्पष्ट करने के लिये यहां यह लिख देना जरूरी है कि ऐसा ऐसा होने पर अभ्यर्थी निर्वाचन के लिये अनर्ह हो जायेगा और ऐसा होने पर सदस्य, विधान मण्डल का सदस्य बने रहने के लिये अनर्ह हो जायेगा। इसे और साफ कर देना जरूरी है और हम ऐसा कर सकते हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): बहस समाप्त करने का प्रस्ताव पेश किया गया था और उसे आपने स्वीकार भी कर लिया था। इसलिये मैं यह समझ रहा था कि डा. अम्बेडकर के उत्तर के बाद, इस प्रश्न पर बहस खत्म हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** मुझे खेद है, मैं इसे भूल ही गया था।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यदि अनुमति हो तो एक बात कहूं श्रीमान्, मैं वक्तृता नहीं दूंगा। आपके आदेश को मैं शिरोधार्य करता हूं। बात यह है कि डा. अम्बेडकर ने उत्तर में एक संशोधन रखने का प्रयास किया है। अन्यथा, यदि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लिया जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं अब यह सुझाव देना चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर को अपना यह संशोधन वापस ले लेना चाहिये कि जिसे वह उत्तर देने के सिलसिले में पेश करना चाहते थे।

***अध्यक्ष:** आप जो कुछ कहना चाहते थे कह चुके। मुझे खेद है कि मैं इस बात को भूल गया कि बहस समाप्त करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है।

***श्री आर.के. सिधवा:** डा. अम्बेडकर के संशोधन के बारे में आपका क्या निर्णय है। उनके संशोधन को अब इस मौके पर हम नहीं स्वीकार कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** अगर मूल संशोधन रखने वाले सज्जन उसे स्वीकार कर लेते तो और बात थी पर अब वह पेश नहीं हो सकता है। प्रस्ताव यह है:

> ''कि सूची 1 के संशोधन नं. 65 में, प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 167-क में:
>
> '(1) खण्ड में 'Governor and his' शब्दों की जगह 'Election Commissioner and its' शब्द रखे जायें, तथा
>
> (2) खण्ड (2) को और खण्ड (1) के प्रारम्भ में रखे हुये अंक '(1)' को हटा दिया जाये।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब आता है श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का संशोधन।

***कई माननीय सदस्य:** डा. अम्बेडकर के संशोधन के साथ या उसको छोड़ कर के?

***अध्यक्ष:** उसे छोड़ कर। प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2441 के स्थान पर निम्नलिखित नया संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 167 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

167-क सदस्यों की अनर्हताओं के प्रश्नों पर विनिश्चयन—(1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि राज्य के विधान मण्डल का सदस्य गत पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खण्ड (1) में वर्णित अनर्हताओं का भागी हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न राज्यपाल को विनिश्चयन के लिये सौंपा जायेगा और उसका विनिश्चयन अन्तिम होगा।

(2) ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चयन देने से पूर्व राज्यपाल निर्वाचन-आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** चूंकि यह संशोधन स्वीकृत हुआ है इसलिये श्री मांडलोई का संशोधन अपने आप गिर जाता है। अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167-क को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 167-क संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 171

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर केवल एक ही संशोधन है और वह है संशोधन नं. 67।

***श्री सतीश चन्द्र** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं इस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं। मैं इस बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं कि अनुच्छेद 164 के सम्बन्ध में आपने जो निर्णय दिया है वह क्या इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी लागू होता है? राज्य के विधान-मण्डल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का जो सिद्धान्त है वह अगर आगे चल कर मंजूर नहीं होता है तो मसौदा-समिति इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में सभी आनुषंगिक संशोधन खुद कर लेगी तो?

***अध्यक्ष:** हां, मेरा ख्याल है कि वह निर्णय यहां भी लागू होगा। प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 171 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 171 संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 175

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कई संशोधन हैं। इनमें एक संशोधन सरदार भूपेन्द्रसिंह मान का है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अनुच्छेद 175 और 176 पर विचार अभी रुका रहेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** अनुच्छेद 172 का क्या होगा?

***अध्यक्षः** यह रुका रहेगा। इस पर आज विचार नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 187

(नं. 2524 से 2529 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्ः

> ''कि अनुच्छेद 187 खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'विधान मण्डल के पुनः अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह के अवसान पर' शब्दों की जगह 'अध्यादेश के प्रवर्तित किये जाने से दो सप्ताह के अवसान पर' शब्द रखे जायें।''

आपकी अनुमति से श्रीमान्, मैं एक और संशोधन पेश करना चाहूंगा जो मेरे उपयुक्त संशोधन के फलस्वरूप आवश्यक हो जाता है। मेरा दूसरा संशोधन यह हैः

> ''कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) की व्याख्या को हटा दिया जाये।''

अभी उस दिन गवर्नर-जनरल द्वारा जारी किये गये अध्यादेश की अवधि के सम्बन्ध में यहां इसी तरह की बहस चल पड़ी थी। उस दिन भी इस प्रश्न पर मेरा मंतव्य वही था जो आज है। पर मैं यह अनुभव करता हूं कि राज्य के विधान-मण्डल के सभी सदस्य एक ऐसे क्षेत्र में रहते हैं जो उस क्षेत्र से कहीं छोटा है जहां से कि केन्द्रीय विधान मण्डल के सदस्य लिये जाते हैं और इसलिये उनका अधिवेशन के लिये समवेत हो जाना आसान है। अतः गवर्नर द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश को, विधान मण्डल के समक्ष उपस्थित करने के लिये हमें 14 दिनों की अवधि पर्याप्त है और यही अवधि रखनी चाहिये।

अनुच्छेद का जो वर्तमान है उसके अनुसार, गवर्नर द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश उस अवधि तक प्रवर्तन में रहेगा जब तक कि प्रान्त का विधान मण्डल अधिविष्ट नहीं होता है। विधान मण्डल के अधिविष्ट होने के बाद भी अध्यादेश विधान मण्डल के पुनः अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह की अवधि तक प्रवर्तन में रहेगा। और यदि इसके पूर्व ही उसकी प्रतिनिन्दा का संकल्प विधान सभा से पारित और यदि विधान परिषद् है तो उससे स्वीकृत हो जाता है तो ऐसे संकल्प के पारित या स्वीकृत होने पर वह प्रवर्तन शून्य होगा। अब विधान मण्डल के अधिवेशनों में 5 माह से अधिक का व्यवधान हो सकता है। इसलिये इसका मतलब यह हुआ कि अध्यादेश 6 महीने और 6 सप्ताह की अवधि तक प्रवर्तन में रह सकता है।

खण्ड (2) की व्याख्या में यह कहा गया है कि अगर राज्य के विधान मण्डल के दो सदन हैं और वे भिन्न-भिन्न तिथियों पर पुनः अधिविष्ट होते हैं तो उस खण्ड के

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

प्रयोजनार्थ 6 सप्ताह की अवधि की गणना उन तिथियों में से पिछली तिथि से की जायेगी। अब मान लीजिये कि राज्य का दूसरा सदन बैठता है विधान-सभा की बैठक के एक महीने बाद। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्यादेश प्रवर्तन में रहेगा। 6 महीने से कुछ कम दिन की अवधि, धन एक महीने की अवधि जिसमें कि दूसरा सदन अधिविष्ट न हो पायेगा, धन 6 सपतह की अवधि तक। और यदि 6 सप्ताह की अवधि के पूर्व ही अध्यादेश की प्रतिनिन्दा का संकल्प विधान सभा द्वारा पारित और विधान-परिषद् द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो उतनी अवधि इसमें से घट जायेगी। मुझे यह बिल्कुल अनावश्यक प्रतीत होता है कि एक अध्यादेश को, जो कार्यपालिका द्वारा प्रवर्तित एक कानून होगा, इतनी लम्बी अवधि तक प्रवर्तन में रहने दिया जाये। यदि ऐसी कोई आकस्मिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें अध्यादेश का प्रवर्तन में लाना जरूरी हो जाता है, जिसमें कार्यपालिका के लिये यह अपेक्षित हो जाता है कि वह बिना विधान मण्डल की अनुमति लिये कोई कानून लागू कर दे तो ऐसी स्थिति में यह परमावश्यक है कि विधान मण्डल को अविलम्ब समाहूत किया जाये। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि अध्यादेश के प्रवर्तन की जो अवधि है उसे हमें बहुत कम कर देना चाहिये।

अब सवाल यह उठता है कि अध्यादेश के प्रवर्तित किये जाने के बाद किस अवधि के अन्दर उस पर विचार करने के लिये विधान मण्डल को आहूत किया जाये? मैं समझता हूं कि बड़े से बड़े प्रान्त के लिये भी दो सप्ताह की अवधि इसके लिये काफी है। यह तो स्पष्ट है श्रीमान्, कि विधान मण्डल अगर बैठा हुआ है तो चाहे कैसी भी गम्भीर और गहन सद्यस्कृत्यता की स्थिति क्यों न उत्पन्न हो गई हो, और कार्यपालिका की राय में चाहे यह कितना भी आवश्यक क्यों न हो कि उसके सम्बन्ध में शीघ्र कोई कार्रवाई की जाये, पर बिना विधान मण्डल द्वारा कोई कानून पास कराये, कार्यपालिका कुछ नहीं कर सकती है। पर अगर विधान मण्डल अधिवेशन में न हो और उस समय सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति उत्पन्न हो जाये तो उस अवस्था में कार्यपालिका का कोई ऐसा अध्यादेश प्रवर्तन में लाना, जिसको कि वही प्रभाव और बल प्राप्त हो जो कि विधान मण्डल द्वारा निर्मित कानून को प्राप्त रहता है, उचित कहा जा सकता है। पर सद्यस्कृत्यता की कैसी भी स्थिति क्यों न हो, अध्यादेश का आवश्यकता से एक दिन भी अधिक प्रवर्तन में रखना ठीक नहीं कहा जा सकता है और उसे यथाशक्ति विधान मण्डल के समक्ष उपस्थित कर ही देना चाहिये। किसी संकटकालीन स्थिति के अस्तित्व के आधार पर श्रीमान्, यह कभी भी उचित नहीं माना जा सकता है कि कार्यपालिका ऐसी गतिविधि रखे कि उसके द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश जितनी अधिक अवधि तक हो सके इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन प्रवर्तन में बना रहे। कार्यपालिका का दृष्टिकोण यह न होना चाहिये कि विधान मण्डल को आहूत करने में विलम्ब किया जाये ताकि अध्यादेश अधिक से अधिक अवधि तक प्रवर्तन में बना रहे। बल्कि उसका दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि विधान मण्डल को यथाशीघ्र आहूत कर अध्यादेश को उसके समक्ष रख दिया जाये। कार्यपालिका अगर इस तरह काम करती है जैसा कि मैंने सुझाया है तभी तो उसके कार्य संविधान की भावना के अनुरूप हो सकते हैं और तभी विधान मण्डल की यह शक्ति सार्थक समझी जा सकती है कि कार्यपालिका के कार्यों के लिये विधान मण्डल की स्वीकृति होनी चाहिये। इसलिये मैं

यह समझता हूं श्रीमान्, कि मेरा संशोधन सर्वथा समुचित एवं तर्कसंगत है। इससे कार्यपालिका को यह शक्ति मिल जाती है कि सद्यस्कृत्यता की स्थिति उत्पन्न होने पर आवश्यक उपाय का अवलम्बन कर सके और जनता के प्रतिनिधियों को भी यह शक्ति मिल जाती है कि ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर क्या करना ठीक होगा इस पर विचार कर वह आवश्यक उपाय का अवलम्बन कर सके।

जैसा कि मैंने अभी उस दिन कहा है, इस अनुच्छेद में ऐसी व्यवस्था रखने के विरुद्ध आपत्ति सिर्फ यह नहीं है कि इससे अध्यादेश की अवधि बिना जरूरत बढ़ जाती है बल्कि आपत्ति यह है कि इससे यह रुकावट पैदा हो जाती है कि विधान मण्डल उस पर विचार नहीं कर पाता है कि अध्यादेश में रखी गई शर्तें स्थिति को देखते हुये ठीक हैं या नहीं। विधान मण्डल बैठने पर क्या करेगा? या तो वह अध्यादेश पर असहमति प्रकट कर सकता है या अगर वह कार्यपालिका के इस विचार से सहमत भी होता है कि ऐसी विशेष स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें विशेष कार्रवाई करना ही जरूरी है तो सम्भव है वह यह अनुभव करे कि अध्यादेश द्वारा कार्यपालिका को अत्यधिक अधिकार मिल जाते हैं और वह उसमें ऐसा संशोधन कर दे कि उपस्थित स्थिति के अनुरूप जनसाधारण के हित संरक्षित रहें। संकटकालीन स्थिति का मतलब यह नहीं है कि जनता के अधिकारों को ही पूर्णतः निलम्बित कर दिया जाये। ऐसी भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें ऐसा ही करना जरूरी हो पर ऐसी असाधारण स्थिति कभी-कभी ही उत्पन्न हो सकती है। अन्य किसी साधारण आकस्मिक स्थिति के उत्पन्न होने पर, जिसमें विशेष कार्रवाई करना जरूरी हो, जनता के साधारण अधिकारों की जहां तक सम्भव हो अवश्य रक्षा होनी चाहिये। इसलिये यह जरूरी है कि कार्यपालिका द्वारा पास किया हुआ प्रत्येक अध्यादेश यथासम्भव शीघ्र जन प्रतिनिधियों के समक्ष विचारार्थ रख दिया जाये।

(संशोधन नं. 2531, 2533 और 2534 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह प्रस्ताव करता हूं: श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2523, 2525, 2526, 2527, 2529, 2530 या नं. 2532-2534 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

(1) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (1) में 'for him to take immediate action he may promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्दों के स्थान पर 'that immediate action be taken, he shall report the matter to the President who may then promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्द रखे जायें और खण्ड (क) का परन्तुक हटा दिया जाये।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(2) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) में, 'assented to by the Governor' शब्दों की जगह 'which has been reserved for the consideration of the President and assented to by him' शब्द रखे जायें।

(3) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) के उपखण्ड (b) में, 'Governor' शब्द की जगह 'President' शब्द रखा जाये।

(4) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (3) में, 'assented to by the Governor' शब्दों के आगे 'or by the President' शब्द रखे जायें और खण्ड का परन्तुक हटा दिया जाये।' ''

इन संशोधनों के बाद श्रीमान्, अनुच्छेद का रूप यह होगा–

''187. (1) If at any time, except when the Legislative Assembly of a State is in session, or where there is a Legislative Council in a State, except when both Houses of the Legislature are in session, the Governor is satisfied that circumstances exist which render it necessary that immediate action be taken, he shall report the matter to the President who may then promulgate such ordinances as the circumstances appear to him to require.

(2) An Ordinance promulgated under this article shall have the same force and effect as an Act of the Legislature of the State which has been reserved for the consideration of the President and assented to by him, but every such Ordinance—

(a) shall be laid before the Legislative Assembly of the State, or where there is a Legislative Council in the State, before both the Houses, and shall cease to operate at the expiration of six weeks from the re-assembly of the legislature, or if before the expiration of that period a resolution disapproving it is passed by the Legislative Assembly and agreed to by the Legislative Council, if any, upon the passing of the resolution or, as the case may be, on the resolution being agreed to by the Council; and

(b) may be withdrawn at any time by the President.

Explanation–Where the Houses of the Legislature of a State having a Legislative Council are summoned to reassembly on different dates, the period of six weeks shall be reckoned from the latter of those dates for the purposes of this clause.

(3) If and so far as an Ordinance under this article makes any provision which would not be valid if enacted in an Act of the Legislature of the State assented to by the Governor or by the President, it shall be void."

[187. (1) उस समय को छोड़ कर जब, राज्य की विधान सभा और जिस राज्य में विधान-परिषद् है वहां, विधान-मण्डल के दोनों आगार, सत्रस्थ हैं, यदि किसी समय शासक को यह निश्चय हो जाये कि ऐसी स्थितियां विद्यमान हैं जिनमें यह अपेक्षित है कि तुरंत कार्रवाई की जानी चाहिये तो वह मामले की सूचना राष्ट्रपति को देगा जो ऐसे अध्यादेश प्रवर्तन कर सकेगा जो परिस्थितियां की ओर से उसे अपेक्षित प्रतीत हों।

(2) इस अनुच्छेद के अधीन प्रवर्तित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो राज्य के विधान मण्डल के ऐसे अधिनियम का होता है जो राष्ट्रपति के विचारार्थ आया हो और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत हो गया हो—

(क) राज्य की विधान सभा के समक्ष और जहां राज्य में विधान-परिषद् है वहां दोनों आगारों के समक्ष रखा जायेगा और विधान-मण्डल के पुनः अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह के अवसान पर अथवा यदि उस कालावधि के अवसान से पूर्व उसकी प्रतिनिन्दा का संकल्प विधान सभा से पारित और यदि विधान-परिषद् है तो उससे स्वीकृत हो जाता है तो संकल्प पारण होने पर अथवा संकल्प स्वीकृत होने पर, जैसी स्थिति को, प्रवृत्त न रहेगा; और

(ख) राष्ट्रपति द्वारा किसी समय भी प्रत्याहूत किया जा सकता है।

व्याख्या—जब विधान-परिषद् वाले राज्य के विधान मण्डल के आगार भिन्न-भिन्न तिथियों में पुनः एकत्रित होने के लिये बुलाये जाते हैं तो इस खण्ड के प्रयोजनार्थ 6 सप्ताह की अवधि की गणना उन तिथियों में से पिछली तिथि से की जायेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन प्रवर्तित अध्यादेश, यदि और जिस मात्रा तक ऐसा प्रावधान करता है जो विधान-मण्डल द्वारा निर्मित और शासक द्वारा अथवा राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के रूप में अमान्य होता है तो वह अध्यादेश उस मात्रा तक शून्य होगा।]

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं यह नहीं चाहता, श्रीमान् कि अपना संविधान ऐसे किसी प्रावधान को रख कर असुन्दर बनाया जाये जिसके द्वारा राष्ट्रपति या अन्य किसी प्राधिकारी को अध्यादेश प्रवर्तित करने की शक्ति मिलती हो। किन्तु जब सभा इस बात को स्वीकार ही कर चुकी है कि कई अवसरों पर राष्ट्रपति को अध्यादेश निकालने की शक्ति रहेगी तो मैं यही चाहता हूं कि अध्यादेश प्रवर्तित करने की शक्ति यदि दी ही जाती है, वह केवल राष्ट्रपति को ही दी जानी चाहिये और राज्यपालों को यह शक्ति न प्राप्त रहनी चाहिये। मैं चाहता हूं कि यह असाधारण शक्ति केवल भारतीय संघ के राष्ट्रपति को प्राप्त रहे। इसलिये मैं यह कहता हूं कि यदि सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति उत्पन्न हो जाये तो, बजाय इसके कि राज्यापाल स्वयं अध्यादेश निकाले, उसे परिस्थिति की सूचना राष्ट्रपति को दे देनी चाहिये और वह जैसा भी अध्यादेश आवश्यक समझेगा प्रवर्तित करेगा। हां राज्यपाल को इस बात का औचित्य दिखलाना होगा कि उत्पन्न स्थिति में ऐसे असाधारण उपाय का अवलम्बन करना आवश्यक है। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री उस पर विचार करके आवश्यक कार्रवाई करेंगे। अध्यादेश का अमली अर्थ यह होता है कि विधान मण्डल की सारी शक्ति उसके द्वारा छिन जाती है। इसलिये ऐसे असाधारण उपाय का अवलम्बन कभी-कभी ही होना चाहिये। स्वतंत्र भारत के लिये जो संविधान हम बना रहे हैं उसमें हम अभी भी पराधीनता-कालीन बातों को रख रहे हैं जिनसे हम गुजर चुके हैं। मैं तो आशा करता हूं कि जल्द ही अब जमाना बदल जायेगा और जनता इस बात पर जोर देने लगेगी कि कोई भी अध्यादेश न प्रवर्तित किया जाये और जो कुछ भी किया जाये वह विधान मण्डल में जन प्रतिनिधियों द्वारा ही किया जाये। उस समय गवर्नर के अध्यादेश प्रवर्तित करने पर हम स्वयं आक्रोश करेंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि अध्यादेश सम्बन्धी शक्ति अगर देनी ही है तो राज्यपालों को न दी जानी चाहिये बल्कि केवल राष्ट्रपति को ही दी जानी चाहिये। यदि किसी प्रान्त विशेष को अध्यादेश की आवश्यकता हो तो उसका राज्यपाल स्थिति की सूचना राष्ट्रपति को दे देगा और अध्यादेश प्रवर्तित करना आवश्यक है या नहीं इस पर राष्ट्रपति ही विचार करेगा। इससे यह भी होगा कि प्रान्त की स्थिति से केन्द्र को परिचय मिलता रहेगा और जो अध्यादेश प्रवर्तित किया जायेगा वह समुचित रूप से विचार करने के बाद ही प्रवर्तित होगा।

इस सम्बन्ध में मेरे अन्य जो संशोधन हैं वह केवल आनुषंगिक मात्र हैं। मेरे मूल संशोधन के फलस्वरूप उन अन्य संशोधनों का होना भी आवश्यक है। आशा है सभा इस संशोधन को पसन्द करेगी और उसे स्वीकार करेगी।

***श्री जसपतराय कपूर:** मेरा संशोधन नं. 74 बहुत कुछ इबारत के बारे में है इसलिये उसे मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। मैं यही चाहता हूं कि मसौदा-समिति जब संविधान की इबारत में अन्तिम रूप से संशोधन करे तो मेरे इस संशोधन पर भी वह विचार जरूर करे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** अपने संशोधन नं. 75 के सम्बन्ध में मैं भी यही कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद एवं संशोधन पर विचार किया जा सकता है।

(कोई सदस्य बोलने के लिये नहीं उठा।)

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2523, 2525, 2526, 2527, 2529, 2530 या नं. 2532-2534 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

(1) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (1) में 'for him to take immediate action he may promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्दों की जगह 'that immediate action be taken, he shall report the matter to the President who may then promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्द रखे जायें और खण्ड (क) का परन्तुक हटा दिया जाये।

(2) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) में, 'assented to by the Governor' शब्दों की जगह 'which has been reserved for the consideration of the President and assented to by him' शब्द रखे जाये।

(3) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) के उपखण्ड (b) में, 'Governor' शब्द की जगह 'President' शब्द रखा जाये।

(4) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (3) में, 'assented to by the Governor' शब्दों के आगे 'or by the President' शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव है:

''कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'विधान मण्डल के पुन: अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह के अवसान पर' शब्दों की जगह 'अध्यादेश के प्रवर्तित किये जाने से दो सप्ताह के अवसान पर' शब्द रखे जायें; तथा

कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (3) की व्याख्या हटा दी जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हुये।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 187 संविधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 187 संविधान में शामिल किया गया।

नया अनुच्छेद 196-क

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 196-क को लेते हैं। इस नवीन अनुच्छेद को रखने का सुझाव संशोधन नं. 2639 में दिया गया है जिसकी सूचना डा. पी.के. सेन ने दी है। इसी तरह का एक संशोधन उन्होंने उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में रखा था पर वह अस्वीकार कर दिया गया था।

(संशोधन नं. 2639 पेश नहीं किया गया)

तो यह अनुच्छेद हटा दिया जाता है।

अनुच्छेद 203

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 203 को लेते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इस पर अभी विचार रुका रहेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 203 (2) (ख) के सम्बन्ध में यह प्रश्न है कि इसे यों ही रखा जाये या इसमें कुछ संशोधन कर दिया जाये। इस पर विचार कर लेने के लिये हमें कुछ समय चाहिये। कल तक, इस पर विचार कर हम तैयार हो जायेंगे।

अनुच्छेद 208

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 208 को लेते हैं इस पर कोई संशोधन नहीं आया है? प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 208 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 208 संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 209

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 209 को लिया जाता है। इस पर कोई संशोधन नहीं आया है। सुतरां प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 209 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 209 संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 209-क

***अध्यक्ष:** नवीन अनुच्छेद 209-क को रखने के बारे में कई संशोधन आये हैं।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** 209-क पर विचार अभी रुका रहेगा।

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने दे रखी है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** उस पर विचार अभी रुका रह सकता है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** संविधान पर विचार करने में जो मनमानी पद्धति हम अपना रहे हैं उसे देखते हुये अन्य अनुच्छेदों पर बहस आज मुल्तवी कर देनी चाहिये और हमें यह साफ-साफ मालूम हो जाना चाहिये कि कल किन-किन अनुच्छेदों पर यहां बहस होगी। जो पद्धति यहां बरती जा रही है—अवश्य ही इसमें आपकी कोई गलती नहीं है श्रीमान्—वह बहुत ही असुविधाजनक है।

***अध्यक्ष:** जहां तक कि आज की कार्यावली का सम्बन्ध है उसमें वह सभी अनुच्छेद दिये गये हैं जिन पर यहां विचार हुआ है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** आपने जो कहा है वह बिल्कुल सही है। पर अगर आप कार्यावली में यह दे देते हैं कि संविधान पर विचार किया जायेगा तो उसका मतलब यह नहीं है कि सभा का कोई भी सदस्य संविधान के सभी अनुच्छेदों पर एक ही दिन विचार करने के लिये तैयार होकर आ सकेगा।

***अध्यक्ष:** जहां तक कि आज की कार्यावली का सम्बन्ध है, उसमें वह सभी अनुच्छेद दिये हुये हैं जिन पर आज विचार किया गया है और उनको मैंने उसी क्रम से लिया है जिसमें वह कार्यावली में दिये हुये हैं। अभी उस दिन इस बारे में किसी ने शिकायत की थी इसलिये मैंने यह दे दिया था कि कार्यावली में उन अनुच्छेदों का उल्लेख हो जाना चाहिये जिन पर विचार किया जायेगा।

मैं समझता हूं कि अच्छा यह होगा कि अब हम कल प्रात: 8 बजे तक के लिये बैठक स्थगित कर दें।

इसके पश्चात् सभा बुधवार, 15 जून सन् 1949 के प्रात: 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VIII-22.49
320

अंक 8
संख्या 22

बुधवार,
15 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[अनुच्छेद 203, 270 से 274 तथा 289 पर विचार] ...1331-1386

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 15 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 203

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 203 में, हाशिये के शीर्षक के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Power of superintendence over all courts by the High Court.' "

(सब न्यायालयों के अधीक्षण की उच्च न्यायालय की शक्ति)

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 203 के खण्ड (2) में 'The High Court may' (उच्च न्यायालय) शब्दों के पूर्व 'Without prejudice to the generality of the foregoing provisions' (पूर्वगामी उपबन्धों की व्यापकता पर बिना प्रतिकूल प्रभाव हुए) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2664 के सम्बन्ध में–

(1) अनुच्छेद 203 के खण्ड (1) में 'all courts' (सब न्यायालयों) शब्दों के बाद 'and tribunals' (और न्यायाधिकरणों) शब्द प्रविष्ट किये जायें।

(2) अनुच्छेद 203 के खण्ड (2) से उपखण्ड (ख) निकाल दिया जायें।''

(संशोधन संख्या 2665 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 203 के खण्ड (2) में 'Every High Court' (प्रत्येक उच्च न्यायालय) शब्दों के पहले 'In particular' (विशेषकर) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

यदि यह सभा इस अनुच्छेद के सभी खण्डों को साथ पढ़े तो उसे विदित होगा कि खण्ड (1) में कुछ सामान्य शक्तियों का उल्लेख है जो इस अनुच्छेद के अधीन प्रत्येक

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एच.वी. कामत]

उच्च न्यायालय को दी जा रही हैं। इसलिये मेरे विचार से जहां तक इस अनुच्छेद के खण्ड (2) का सम्बन्ध है, जिसमें कुछ निश्चित शक्तियों का उल्लेख है अथवा उच्च न्यायालय को कुछ मामलों में शक्तियां प्रदान की गई हैं, उसमें इन उपबन्धों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता है। खण्ड (1) में कुछ सामान्य उपबन्ध हैं। खण्ड (2) में, जो खण्ड (1) के बाद आता है और जिसमें कुछ विशेष बातों का उल्लेख है, यह उपबन्धित होना चाहिये कि उच्च न्यायालय को विशेष रूप से अमुक-अमुक कार्य करने चाहिये।

जहां तक डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 2664 का सम्बन्ध है, जो इस अनुच्छेद के हाशिये के शीर्षक के बारे में है, इस सभा में पहले हाशिये के शीर्षकों के सम्बन्ध में एक प्रश्न उठाया गया था और डा. अम्बेडकर ने स्वयं कहा था कि कुछ लोग हाशिये के शीर्षकों को संविधान का अंग मानते हैं और कुछ लोग नहीं मानते हैं इसलिये मैं कह नहीं सकता कि इस सम्बन्ध में किसी संशोधन को विधिवत् उपस्थित करने की आवश्यकता है या नहीं। इसके अतिरिक्त मुझे इस सम्बन्ध में सन्देह है कि उनके संशोधन की शब्दावली उपयुक्त है या नहीं। संशोधन में कहा गया है 'सब न्यायालयों के अधीक्षण की उच्च न्यायालय की शक्ति'। इस अनुच्छेद में अधीक्षण की कतिपय शक्तियों और तत्सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में ही उपबन्ध हैं। मेरे विचार से इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है कि 'सब न्यायालयों के' शब्द प्रविष्ट किये जाये। अनुच्छेद में अधीक्षण की शक्तियों के सम्बन्ध में उपबन्ध है। यदि हाशिये के शीर्षक में 'सब न्यायालयों के शब्द न भी रखे जायें तो फिर भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस अनुच्छेद में अधीक्षण की शक्तियों का उल्लेख है। 'उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्तियां' कहना पर्याप्त है और अनुच्छेद में 'सब न्यायालयों के' आदि का उल्लेख होगा। इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह है कि उच्च न्यायालयों को अधीक्षण की शक्तियां प्रदान की जायें। किन न्यायालयों के सम्बन्ध में ये शक्तियां प्रदान की गई हैं इसका उल्लेख अनुच्छेद में हो सकता है। आरम्भ में हाशिये के शीर्षक में केवल उच्च न्यायालयों के प्रशासन सम्बन्धी कृत्य' शब्द थे। हाशिये के उस शीर्षक को देखते हुये मेरे विचार से 'उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्तियां' शब्द पर्याप्त हैं और हम 'सब न्यायालयों के' शब्दों को निकाल सकते हैं। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को उपस्थित करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसके सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि वह संशोधन संख्या 2666 के उपस्थित किये जाने के पश्चात् अनावश्यक हो जाता है। उसमें कहा गया है कि ''पूर्वगामी उपबन्ध की व्यापकता पर बिना प्रतिकूल प्रभाव हुए उच्च न्यायालय।'' यह श्री कामत के संशोधन की शब्दावली से अच्छी शब्दावली है जो 'विशेषकर आदि' शब्दों से आरम्भ होता है। इसलिये मुझे आशा है कि श्री कामत अपने संशोधन पर मतदान के लिये जोर न देंगे।

मुझे डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 209 को देख कर प्रसन्नता हुई है जिसमें ये शब्द हैं कि ''प्रत्येक उच्च न्यायालय सब न्यायालयों और न्यायाधिकरणों का अधीक्षण करेगा।'' मैं माननीय डाक्टर महोदय का ध्यान श्रम न्यायाधिकरणों की ओर आकृष्ट करना चाहता

हूं। श्रम न्यायाधिकरणों का महत्त्व प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हमें इन न्यायाधिकरणों का कटु अनुभव हुआ है। वे अभी न्यायालयों की परम्परा का अनुसरण नहीं करने लगे हैं। मुझे आशा है कि अब चूंकि उच्च न्यायालय को उनके सम्बन्ध में शक्तियां प्राप्त हो जायेंगी इसलिये वे उसके अधीक्षण तथा नियंत्रण के अधीन आ जायेंगे। इस प्रकार ये श्रम न्यायाधिकरण समुचित रूप से स्थापित हो जायेंगे और उनमें यथोचित प्रक्रिया का अनुसरण हो सकेगा।

मुझे इसकी भी प्रसन्नता है कि खण्ड (2) का उपखण्ड (ख) निकाल दिया गया है। इस प्रकार उच्च न्यायालय की शक्ति अधिक विस्तृत हो गई है। आरम्भ में उसे केवल व्यवहार विषयक मामलों में वादों को तथा अपीलों को अपने सामने उपस्थित कराने की शक्ति प्रदान थी। अब यह सभी प्रकार के मामलों को अपनी इच्छानुसार मंगा सकता है। इसलिये मैं इस संशोधन का पूरे जोर से समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 203 में, हाशिये के शीर्षक के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Power of superintendence over all courts by the High Court.' "

(सब न्यायालयों के अधीक्षण की उच्च न्यायालय की शक्ति।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 203 के खण्ड (2) में 'The High Court may' (उच्च न्यायालय) शब्दों के पूर्व 'Without prejudice to the generality of the foregoing provisions' (पूर्वगामी उपबन्धों की व्यापकता पर बिना प्रतिकूल प्रभाव हुए) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 203 के खण्ड (2) में 'Every High Court' (प्रत्येक उच्च न्यायालय) शब्दों के पहले 'In particular' (विशेषकर) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2664 के सम्बन्ध में–

(1) अनुच्छेद 203 के खण्ड (1) में 'alll courts' (सब न्यायालयों) शब्दों के बाद 'and tribunals' (और न्यायाधिकरणों) शब्द प्रविष्ट किये जायें।

(2) अनुच्छेद 203 के खण्ड (2) से उपखंड (ख) निकाल दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 203, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 203, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 209-क, 209-ख, 209-ग, 210 और 211 स्थगित रखे जायें। अभी हमने इनके वैकल्पिक मसौदे तैयार नहीं किये हैं।

***माननीय सदस्य:** जी हां, वे स्थगित रखे जाये।

अनुच्छेद 270

***अध्यक्ष:** तब हम अनुच्छेद 270 को उठाते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''अनुच्छेद 270 से, 'the Dominion of' (का अधिराज्य) शब्द निकाल दिये जायें।''

'अधिराज्य' शब्द आजकल के भारत के लिये प्रयुक्त होता है। हमारे संविधान में जो रूप रेखा निश्चित की जा रही है उसमें 'अधिराज्य' शब्द के लिये अथवा इस शब्द के आशय के लिये कोई स्थान न रहेगा। मैंने यह प्रस्ताव इसी कारण उपस्थित किया है कि इस शब्द को निकाल दिया जाये। यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया तो केवल 'भारत सरकार' रह जायेगा न कि 'भारत अधिराज्य की सरकार'।

(संशोधन संख्या 2976 उपस्थित नहीं किया गया।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> ''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2975 और 2976 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 270 में 'assets and liabilities' (आस्तियां और दायित्व) शब्दों के स्थान में 'assets, liabilities and obligations' (आस्तियां, दायित्व और आभार) शब्द रखे जायें।''

जहां तक मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन का सम्बन्ध है, क्या मैं यह कह सकता हूं कि वे यह भूल गये हैं कि इस संविधान के अधीन जो सरकार अस्तित्व में आयेगी उसे हमने 'भारत सरकार' कहा है और इस समय की सरकार को 'भारत अधिराज्य की सरकार' कहा है इसलिये, यदि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो उसका अर्थ यह होगा कि भारत सरकार, भारत सरकार के दायित्वों, आभारों और आस्तियों की उत्तराधिकारिणी होगी। यह बहुत बेढंगा पाठ होगा। इसलिये जो शब्द रखे गये हैं वे उपयुक्त हैं और उन्हें रहने देना चाहिये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मेरे विचार से हम इस अनुच्छेद को स्वीकार करने में बहुत जल्दी कर रहे हैं हम भारतीय राज्यों को प्रान्तों के अनुरूप ही बनाने का प्रयास करते रहे हैं किन्तु हम यहां केवल यह उपबन्धित कर रहे हैं कि पहले के प्रान्त उसी प्रकार रहेंगे किन्तु राज्यों के लिये इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** आपके संशोधन का आशय क्या है?

***माननीय श्री के. सन्तानमः** मैं किसी संशोधन की उपस्थित नहीं कर रहा हूं। मैं इस अनुच्छेद पर ही अपने विचार प्रकट कर रहा हूं। मेरे विचार से 270 और 271 अनुच्छेदों में भी वही भाव है जो उन अन्य अनुच्छेदों में है जिनका सम्बन्ध केवल प्रान्तों से है और राज्यों से नहीं है। इसलिये भविष्य के संविधान के हित में यह होगा कि इन दोनों को एक समान बना दिया जाये और इस अनुच्छेद की परिधि इतनी विस्तृत की जाये कि उसमें राज्य भी स्थान पा सके। जिन राज्यों को राज्यों के ही रूप में रखा गया है उन्हें पुराने राज्यों का उत्तराधिकारी समझा जाये और जहां कहीं वे संघांग बना लिये गये हैं अथवा प्रान्तों में समाविष्ट कर लिये गये हैं, उनका यथोचित रूप से उल्लेख होना चाहिये। उदाहरणार्थ बड़ोदा, बम्बई में समाविष्ट कर दिया गया है। यदि आप अनुच्छेद 270 को वर्तमान रूप में स्वीकार करते हैं तो उसका अर्थ यह होगा कि बम्बई का पुराना प्रान्त ही, जिसमें बड़ोदा नहीं है, अनुसूची में उल्लिखित राज्य समझा जायेगा। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी यथोचित उपबन्ध को स्थान देना चाहिये। यहां केवल ये शब्द हैं ''.....क्रमशः भारत सरकार अथवा प्रान्तों के उत्तराधिकारी होंगे।'' भारत सरकार के अधिनियम के अधीन बम्बई प्रान्त में बड़ोदा राज्य सम्मिलित नहीं था। आज उस प्रान्त में बड़ोदा राज्य समाविष्ट कर दिया गया है। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि अनुच्छेद 270 को वर्तमान रूप में स्वीकार करने का क्या प्रभाव होगा। यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि भविष्य में बम्बई में बड़ोदा और कोल्हापुर सम्मिलित न होंगे। इन सब बातों का विचार करना आवश्यक है। मेरे विचार से उचित यह होगा कि इस समय अनुच्छेद 270 पर विचार-विमर्श स्थगित किया जाये ताकि उसका स्वरूप उन उपबन्धों के अनुरूप हो सके जो आगे बताये जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** इस अनुच्छेद के फलस्वरूप कई प्रश्न उठते हैं। मेरे मित्र श्री सन्तानम ने अभी यह मत प्रकट किया कि इस अनुच्छेद को स्वीकार करने में शीघ्रता न दिखानी चाहिये। कुछ कारणों से मैं उनसे सहमत हूं और वे ये हैं: पहले जैसा कि श्री सन्तानम कह चुके हैं, प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित प्रान्तों में बहुत से परिवर्तन हो गये हैं और इस समय भी उनमें बहुत से परिवर्तन हो रहे हैं। इस समय हम कह नहीं सकते कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर क्या स्थिति होगी। बम्बई प्रान्त का उदाहरण दिया गया है। इस अनुच्छेद के अन्त में भी पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब का उल्लेख है। उसमें इन नये प्रांतों की स्थापना को स्वीकार किया गया है। इसलिये क्या यह तर्कयुक्त नहीं है कि जो राज्य तथाकथित राज्यपालों के प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं उन्हें भी स्वीकार किया जाये? केवल बम्बई में ही नहीं बल्कि मद्रास में, मध्य प्रान्त में और मेरे विचार से बिहार में भी बहुत से परिवर्तन हो गये हैं। कई राज्य इन प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं। इस प्रकार समाविष्ट होने से बहुत से सारवान परिवर्तन हुये हैं और इनके आधार पर प्रथम अनुसूची के भाग 1 में तथा प्रथम अनुसूची के भाग 3 में परिवर्तन करना आवश्यक है। भाग 3 के कई राज्य अब भारत के मानचित्र से लुप्त हो गये हैं। उदाहरणार्थ यदि आप प्रथम अनुसूची के भाग 3 को देखें तो आपको ज्ञात होगा कि बड़ोदा का अब उसमें स्थान नहीं रह गया है। वह बंबई में समाविष्ट हो गया है। कोल्हापुर का भी कोई स्थान नहीं रह गया है और वह भी बंबई में सम्मिलित हो गया है। इसलिये जब तक इस अनुसूची को नहीं

[श्री एच.वी. कामत]

बदला जाता और भाग 1 और 3 में आवश्यक परिवर्तन नहीं किये जाते, मेरे विचार में यह कोई बुद्धिमानी की बात न होगी कि संविधान के प्रवर्तन में आने के समय जो आस्तियां, दायित्व और आभार हो उनका उल्लेख किया जाये। हमें यह स्पष्टतया समझ लेना चाहिये कि भाग 1 में उल्लिखित प्रान्त तथा भाग 3 में उल्लिखित राज्य पहले क्या थे और अब क्या हो गये हैं।

***अध्यक्षः** क्या अनुसूची स्वीकार कर ली गई है?

***श्री एच.वी. कामतः** अभी नहीं, इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि जब तक अनुसूची स्वीकार नहीं कर ली जाती तब तक हम इस अनुच्छेद को स्थगित रखे।

दूसरी बात यह है कि मैं यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि इस अनुच्छेद की दूसरी पंक्ति में 'भारत सरकार' शब्द आने चाहिये या नहीं, जबकि आगे चल कर इसी अनुच्छेद में 'भारत अधिराज्य की सरकार' शब्द प्रयुक्त है। इन दोनों में स्पष्ट रूप से विभेद करने की दृष्टि से मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद की दूसरी पंक्ति में 'भारतीय गणराज्य की सरकार' अथवा 'भारतीय संघ की सरकार' शब्द रखे जायें। सभा को स्मरण होगा कि संविधान के अनुच्छेद 1 में यह उल्लिखित है कि भारत एक राज्य संघ होगा। भारत अधिराज्य और भविष्य की भारत सरकार में विभेद करने के लिये हमें या तो 'भारतीय गणराज्य की सरकार' शब्द रखने चाहिये या 'भारतीय संघ की सरकार'। केवल 'भारत सरकार' शब्द रखने से काम न चलेगा।

जहां तक 'भारत अधिराज्य' पदावली के प्रयोग का सम्बन्ध है, मुझे अभी इस सम्बन्ध में समाधान नहीं हुआ है कि सांविधानिक स्थिति क्या है? यदि मुझे ठीक स्मरण है तो इस सत्र के आरम्भ में माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस सभा के सम्मुख राष्ट्रमंडल से हमारे भावी सम्बन्धों के बारे में एक संकल्प उपस्थित किया था। संकल्प के मसौदे के आरम्भ में 'लंदन में अधिराज्यों के प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन आदि' शब्द थे परन्तु बाद में माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें स्वयं बदल दिया और 'राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन आदि' शब्द रखे। उस समय समाचार-पत्रों के संवादों में यह कहा गया था कि सम्मेलन ने यह निश्चय किया है कि 'अधिराज्य' शब्द निकाल दिया जाये। मैं कह नहीं सकता कि यह परिवर्तन कब किया जायेगा सम्भवतः जब तक हम अपने देश को गणराज्य घोषित न करें, यह शब्द प्रयोग में रहेगा। इस दशा में यह प्रश्न नहीं उठता। किन्तु राष्ट्रमंडल के प्रधान मंत्रियों के लंदन के सम्मेलन में पिछली अप्रैल को जो निश्चय किया गया था उसे दृष्टि में रखते हुए यदि हम चाहें तो 'अधिराज्य' शब्द को निकाल सकते हैं। राष्ट्रमंडल के नाम के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। मि. एटली ने कहा था ''आप उसे जो भी नाम देना चाहें दें किन्तु आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री ने कुछ समय पहले आस्ट्रेलिया के हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिवस में बोलते हुए कहा कि वे उसे ब्रिटिश राष्ट्रमंडल ही कहेंगे क्योंकि वे 'ब्रिटिश' विशेषण को पसंद करते हैं। यदि ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रमंडल भी इस पर जोर नहीं देता है कि भारत 'अधिराज्य' कहा जाये तो हम 'अधिराज्य' शब्द का इसी समय क्यों न परित्याग कर दें। सम्मेलन में मि. एटली ने यह कहा था कि राष्ट्रमंडल के देश अपना जो नाम चाहे रखें। इसलिये मेरे विचार में हमें

इसकी स्वतंत्रता है कि हम अपने देश का जो नाम चाहें रखें। मेरे विचार से हम आज भी 'अधिराज्य' शब्द का परित्याग कर सकते हैं और अपने देश का नाम 'भारतीय संघ' अथवा कुछ और रख सकते हैं। यदि हम राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की कार्यवाही को तथा इस सभा में हमारे प्रधानमंत्री ने जो कुछ कहा है उसे ठीक समझ पाये हैं तो हमारे सामने कोई ऐसा सांविधानिक प्रतिबन्ध नहीं है जिसके अधीन हम अपने देश को अधिराज्य ही कहें। इसलिये श्रीमान्, सांविधानिक औचित्य की दृष्टि से अथवा भाषा को सुस्पष्ट बनाने के लिये मेरे विचार से लाभप्रद यही होगा और बुद्धिमानी भी इसी में होगी कि इस अनुच्छेद में संशोधन किया जाये। राष्ट्रमंडल सम्मेलन की कार्यवाही के अनुसार ही इसमें संशोधन होना चाहिये। हम आज भी अपने देश का नाम भारत रख सकते हैं अथवा सभा जिस नाम के सम्बन्ध में निश्चय करे वह नाम रख सकते हैं। इसलिये सभी बातों पर विचार करने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि इस अनुच्छेद के कारण बहुत सी कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। मेरे विचार से समझदारी की बात यही है कि इस समय सभा इसे स्थगित रखे और आगे चल कर किसी उपयुक्त अवसर पर इस पर विचार करे। उस समय हम इस पर अधिक विस्तार से विचार कर सकेंगे। इसलिये श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि इस अनुच्छेद को तथा इस संशोधन को स्थगित रखा जाये और आगे चल कर किसी समय इन पर विचार किया जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह समझ नहीं पाया हूं कि इस अनुच्छेद को अपने संविधान में प्रविष्ट करना आवश्यक है या नहीं। उसमें यह कहा गया है कि नवीन भारत सरकार और राज्यों की सरकारें भारत अधिराज्य की सरकार की उत्तराधिकारिणी होंगी। श्रीमान्, प्रस्तावना में हमने यह कहा है कि हम भारत के लोग इस संविधान को अपने को आत्मार्पित करते हैं। इस दशा में मेरी समझ में नहीं आता कि यह कहना किस प्रकार आवश्यक है कि हम भारत अधिराज्य की सरकार के उत्तराधिकारी हैं मेरे विचार से हमारे संविधान में इस अनुच्छेद की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि मेरे मित्र बता चुके हैं, इस अनुच्छेद की शब्दावली में परिवर्तन करने की तथा इस अनुच्छेद पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। जैसा कि श्री सन्तानम् ने कहा है प्रान्तों में बहुत परिवर्तन हो गये हैं और इसलिये इन परिवर्तनों को यथोचित स्थान देने के लिये कोई उपबन्ध होना चाहिये। मैं इस अनुच्छेद की अन्तिम पांच पंक्तियों का उद्देश्य भी नहीं समझ पाया जिनमें कहा गया है ''किये हुए अथवा किये जाने वाले समायोजन के अधीन आदि''। यदि इस पदावली से कोई अतिरिक्त विधि सम्बन्धी अधिकार प्रदान होता है तो मैं कह नहीं सकता किन्तु मैं यह चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर यह बतायें कि यदि यह अनुच्छेद निकाल दिया जाये तो इसका क्या प्रभाव होगा। क्या इसका अर्थ यह होगा कि इस संविधान के अधीन जो नई सरकार अस्तित्व में आयेगी वह वैध होगी और वह भारत अधिराज्य की वर्तमान सरकार की उत्तराधिकारिणी न होगी? मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद के आशय की यथोचित रूप से व्याख्या की जाये। मेरा अपना यह विचार है कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है और इसे संविधान में समाविष्ट न करना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यद्यपि मेरी यह इच्छा रही है कि मैं इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में अपने मित्र श्री कामत और

[श्री आर.के. सिधवा]

प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना की आपत्तियों को समझूं किन्तु जब उन्होंने इस अनुच्छेद के संविधान का अंग बनाने के सम्बन्ध में ही आपत्ति की तो मैं उनके तर्क को ठीक-ठीक नहीं समझ पाया। यह अनुच्छेद सुस्पष्ट है और इसमें यह कहा गया है कि आगामी भारत सरकार इस समय की भारत अधिराज्य की सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी। मेरे मित्र श्री कामत चाहते हैं कि 'अधिराज्य' शब्द न रहने दिया जाये और उसके स्थान में 'राष्ट्रमंडल' शब्द रखा जाये।

***श्री एच.वी. कामत:** मैंने कहा था, ''भारतीय गणराज्य की अथवा भारतीय संघ की सरकार'', मेरे मित्र श्री सिधवा उसे ठीक नहीं सुन पाये।

***श्री आर.के. सिधवा:** किन्तु आप बराबर राष्ट्रमंडल की ही चर्चा कर रहे थे और यह कह रहे थे कि राष्ट्रमंडल सम्बन्धी संकल्प पर भाषण देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने क्या कहा। आगे चल कर चाहे जो कुछ भी हो किन्तु इस समय भारत अधिराज्य ही है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिये इस अनुच्छेद में कहा गया है कि वर्तमान सरकार की जो भी सम्पत्ति होगी वह नवीन सरकार को स्वत: प्राप्त हो जायेगी। यह आवश्यक है कि इसका उल्लेख हो अन्यथा विधि सम्बन्धी आपत्तियां की जा सकती हैं। यही अन्तिम पंक्तियों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। सब बातें स्पष्ट कर दी गई है। यह दूसरी बात है कि इस अनुच्छेद को प्रविष्ट करना आवश्यक समझा जाये या अनावश्यक। मेरी अपनी यह धारणा है कि अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान दिया जाये। इसलिये मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, हमने राष्ट्रमंडल में रहने का करार किया है और इसलिये मेरे विचार से ''अधिराज्य'' शब्द पर कोई आपत्ति न होनी चाहिये। मेरे माननीय मित्र श्री कामत उस नारी की कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं जो विवाहित होने पर भी कुंवारी ही कहलाना चाहती है। यदि आप राष्ट्रमंडल में सम्मिलित हो गये हैं तो ''अधिराज्य' शब्द से पीछा छुड़ाने से क्या लाभ होगा? इस स्थिति में मैं तो यह चाहता हूं कि हमारा देश सच्चे अर्थ में अधिराज्य कहा जाता। यह निश्चय कहीं अच्छा होता। किन्तु अब हम यह निश्चय कर चुके हैं कि हम राष्ट्रमंडल में रहेंगे और इसलिये हमें अपने देश को अधिराज्य कहने में लज्जा का अनुभव न करना चाहिये। अपने देश को ''अधिराज्य'' कहना उस स्थिति से कहीं अच्छा है जबकि वह न तो अधिराज्य ही रहे और न स्वतंत्र ही। इसलिये मेरे विचार से इन शब्दों पर आपत्ति न की जानी चाहिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सिद्धान्तत: न तो अनुच्छेद 270 पर आपत्ति की जा सकती है और न प्रस्तावित संशोधन पर। पहले की सरकार के पूरे दायित्व को उत्तराधिकारिणी सरकार को ग्रहण करना ही होगा। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूं कि इसका अवसर तब आयेगा जब समाविष्ट होने वाले राज्य प्रान्तों में अथवा राज्यों में समाविष्ट हो जायें। उस समय अधिकारों तथा आभारों के समायोजन के लिये अनुच्छेद 270 में कुछ रूपभेद करने की आवश्यकता होगी क्योंकि किसी एकक के सम्बन्ध में उत्तराधिकारिणी सरकार केवल पुराने प्रान्त की सरकार नहीं होगी किन्तु उस प्रान्त को तथा समाविष्ट होने वाले प्रदेश को मिलाकर जो राज्य बनेगा उसकी सरकार

होगी। इसलिये पहले के आभारों के सम्बन्ध में बाद को आवश्यक समायोजन करना होगा। अनुच्छेद 270 में जो सिद्धान्त सन्निहित है उसके सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है, भले ही हमारी योजना के फलीभूत होने पर अथवा एककों और समाविष्ट राज्यों की स्थिति के सम्बन्ध में निर्णय करने के पश्चात् उसमें कुछ रूपभेद करने की आवश्यकता पड़े। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का तथा तत्सम्बन्धी संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय मैं इस अनुच्छेद को केवल इस कारण स्थगित रखने के पक्ष में नहीं हूं कि राज्यों की स्थिति अभी सुस्पष्ट नहीं हुई है। वास्तव में उपबन्ध इस प्रकार है, ''इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित .....''। सभा ने अभी प्रथम अनुसूची को स्वीकार नहीं किया है और जब तक वह इस अनुसूची को स्वीकार करेगी तब तक यह स्पष्ट हो जायेगा कि प्रत्येक राज्य की रूप रेखा क्या है? जैसा कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर कह चुके हैं; केवल इस कारण इस अनुच्छेद को स्थगित न किया जाना चाहिये। इसलिये मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद को इस समय स्वीकार करने के सम्बन्ध में इस सभा के मेरे माननीय मित्रों ने जो आपत्तियों की हैं उन्हें मैंने ध्यानपूर्वक सुना है और यह भी देखा है कि इसे किस प्रकार उपस्थित किया गया है। श्रीमान्, यद्यपि ये आपत्तियां तर्कसंगत थी किन्तु मेरे विचार से हम न इन्हें स्वीकार कर सकते हैं और न इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श स्थगित कर सकते हैं, क्योंकि इस अनुच्छेद में तथाकथित भारतीय राज्यों की आस्तियों, ऋणों, अधिकारों और दायित्वों के सम्बन्ध में जो उपबन्ध हैं वे अभी सुनिश्चित नहीं हो पाये हैं क्योंकि इनमें से कई राज्य प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं अथवा समाविष्ट होने वाले हैं अथवा प्रान्तों के समान संघ में समाविष्ट होना चाहते हैं। यह हो सकता है कि परीक्षा करने पर यह ज्ञात हो कि जो राज्य संघ में एककों के रूप में समाविष्ट हो रहे हैं उनकी आस्तियों तथा दायित्वों को ग्रहण करने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। यह भी हो सकता है कि जो राज्य प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं उनकी सरकारों की स्थिति ऐसी न हो कि हम उनके दायित्वों को ग्रहण करना पसंद करें क्योंकि हम यह न जान पायेंगे कि वे दायित्व क्या हैं? हम किसी ऐसे प्रशासन की आस्तियों तथा दायित्वों को स्वीकार नहीं कर सकते हैं, जिसका समुचित रूप से संचालन न होता रहा हो क्योंकि उनके सम्बन्ध में हम यह न जान सकेंगे कि हमारा उत्तरदायित्व क्या है? इसलिये जिस समय देशी राज्यों को भारत के मानचित्र में स्थान दिया जायेगा उस समय पूर्ण स्थिति पर फिर से विचार करना होगा। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, यह भी संभव है कि जब तक संविधान प्रवर्त्तन में आयेगा तब तक कुछ अन्य राज्य इस समय प्रांत कहे जाने वाले प्रदेशों में समाविष्ट हो जायेंगे। भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह कहने से कोई लाभ नहीं है कि ऐसे मामलों में जिनके सम्बन्ध में हमें निश्चित सूचना प्राप्त है और हम पहले के प्रशासन को तथा उसकी आस्तियों और दायित्वों को अपने हाथ में लेने के लिये कार्यप्रणाली निर्धारित कर सकते हैं, केवल इस कारण कोई कदम नहीं उठायेंगे कि कुछ अन्य राज्यों के सम्बन्ध में हमें पूर्ण सूचना प्राप्त नहीं हैं। इसके साथ मैं इस सभा के माननीय सदस्यों को यह भी बताना चाहता हूं कि हमें सविधान के निर्माता होने के नाते राज्यों के प्रश्न से बहुत सर दर्द है। यह हो सकता है कि हमें प्रथम अनुसूची

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

के भाग 3 के राज्यों के अध्याय को इस समय छोड़ देना पड़े और उसे संविधान के अन्तिम रूप देने के एक सप्ताह अथवा पन्द्रह दिन पूर्व उठाने का निश्चय करना पड़े क्योंकि उसी समय हम उस अध्याय में उस समय की स्थिति का समावेश कर सकेंगे और प्रान्तों के समान जो राज्य संघ में समाविष्ट हुए हैं उनके लिये विनियम बना सकेंगे तथा जो राज्य प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं उनकी यथोचित व्यवस्था कर सकेंगे और प्रासंगिक तथा आनुषंगिक उपबन्धों को संविधान में स्थान दे सकेंगे। इस पर भी यह सम्भव है कि हमें कुछ राज्यों को छोड़ना पड़े। जो कठिनाइयां हमारे सम्मुख उपस्थित हैं उनका वर्णन करने से कोई लाभ न होगा क्योंकि जो कोई व्यक्ति विभिन्न प्रसंविदाताओं को तथा राज्य मंत्रणालय से इन राज्यों की स्थिति के सम्बन्ध में समय-समय पर प्रकाशित दस्तावेजों की देखेगा उसे ज्ञात हो जायेगा कि ये कठिनाइयां क्या हैं। किन्तु मेरे विचार से केवल इसी कारण ऐसे अनुच्छेदों पर विचार स्थगित न करना चाहिये जो उनमें उल्लिखित प्रदेशों के प्रयोजन के लिये सम्पूर्ण है। आगे जो परिवर्तन करने हों उन्हें एक विशेष अध्याय में विशेष उपबन्धों द्वारा समाविष्ट किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि परिवर्तन दिन प्रतिदिन होंगे और संविधान जब तक पूरा होगा तब तक कई परिवर्तन हो जायेंगे। मुझे इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि डा. अम्बेडकर उन माननीय सदस्यों के आभारी हैं जिन्होंने इस अनुच्छेद की कमी की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और मुझे विश्वास है कि उन्हें भी इसका ध्यान है। संविधान को अन्तिम रूप से स्वीकार करने के पूर्व स्थित्यनुकूल कार्य करने के लिये यथोचित उपबन्ध रखे जायेंगे और इसलिये श्रीमान्, मेरे विचार से इस अनुच्छेद को इस समय स्वीकार कर लेना चाहिये।

***श्री महबूब अली बेग साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मुख्य प्रश्न यह है कि क्या इस अनुच्छेद से भावी भारत सरकार को तथा प्रान्तों को पुराने संविधान के अधीन, अर्थात् 1935 के संविधान के अधीन, ब्रिटिश भारत की आस्तियों तथा दायित्वों को ग्रहण करने का ही नहीं बल्कि राज्यों का अथवा तथाकथित देशी राज्यों के उत्तराधिकारी होने का भी अधिकार प्राप्त हो जायेगा या नहीं?

श्रीमान्, यहां यह शब्दावली प्रयुक्त है कि भावी भारत सरकार तथा राज्यों की सरकारें भारत अधिराज्य की तथा भारत सरकार के 1935 के अधिनियम में उल्लिखित राज्यपालों के प्रान्तों की उत्तराधिकारिणी होंगी। भारत सरकार के 1935 के अधिनियम के अधीन राज्यों को अलग रखा गया था और भारत अधिराज्य तथा राज्यपालों के प्रान्तों में कोई भी देशी राज्य सम्मिलित नहीं थे। इसलिये यदि आप अनुच्छेद 270 को केवल इतने ही तक सीमित रख रहे हैं कि भावी भारत सरकार और राज्यों की सरकारें भारत अधिराज्य की तथा राज्यपालों के प्रांतों की उत्तराधिकारिणी होंगी तो यह स्पष्ट है कि भावी भारत सरकार तथा राज्यों की सरकारें समाविष्ट तथा समाविष्ट होने वाले राज्यों की उत्तराधिकारिणी न होंगी। अनुच्छेद 270 का यही स्पष्ट निर्वचन किया जा सकता है। इसलिये इस अनुच्छेद 270 में कोई ऐसा वाक्य अथवा पदावली प्रविष्ट की जानी चाहिये जिसके अधीन भावी भारत सरकार को तथा राज्यों की सरकारों को न केवल 1935 के अधिनियम के अधीन

ब्रिटिश भारत का बल्कि उस राज्य अथवा राज्यों का भी उत्तराधिकार प्राप्त हो सके जो संघ में समाविष्ट होंगे। अन्यथा भारत सरकार को और भावी प्रान्तों को राज्यों का उत्तराधिकार प्राप्त न होगा। इसलिये इस अनुच्छेद को यथोचित रूप से संशोधित करना आवश्यक है और जब तक उसे संशोधित न किया जायेगा, उसमें यह बहुत बड़ा दोष बना रहेगा।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, हम उस अध्याय पर विचार कर रहे हैं, जिसमें पहले की भारत सरकार के, वर्तमान भारत सरकार के तथा इस संविधान द्वारा अस्तित्व में आने वाली भावी भारत सरकार की सम्पत्ति, संविदाओं, दायित्वों और व्यवहार-वादों का वर्णन है। इसलिये जब मेरे मित्र श्री कामत ने 'राष्ट्रमंडल' शब्द का उच्चारण किया तो मैं कुछ असमंजस में पड़ गया। श्रीमान्, मुझे स्वयं राष्ट्रमंडल से कोई प्रेम नहीं है। किन्तु जहां तक मैं राष्ट्रमंडल के निर्वचन को समझ पाया हूं, उसका कोई अस्तित्व नहीं है, उसकी कोई सम्पत्ति नहीं है, उसका कोई सचिवालय नहीं है। उसका एक काल्पनिक, अस्पष्ट प्रमुख है जो इंग्लिस्तान का सम्राट है। इसलिये राष्ट्रमंडल का कोई प्रश्न नहीं उठता।

स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन वर्तमान सरकार भारत-अधिराज्य की सरकार है और सम्भवत: उसे पुरानी ब्रिटिश सरकार की सब सम्पत्ति दायभाग के रूप में मिली है और सम्पत्ति तथा आस्तियों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल ने उसे स्वविवेक से प्रयोग में आने वाली कुछ शक्तियां प्रदान की हैं किन्तु मैं देखता हूं कि इंग्लिस्तान की सरकार से हमारे सम्बन्धों का इसमें कोई उल्लेख नहीं है। इंग्लिस्तान की सरकार ने अभी भारत अधिराज्य की सरकार को सब सम्पत्ति नहीं सौंपी है। यह कहा जा सकता है कि एक समिति की बैठक हो रही है और वह पहले के इंडिया आफिस की आस्तियों का बंटवारा कर रही है। किन्तु इस संविदा के वित्तीय अंग का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। क्या इंडिया आफिस की इमारत भारत को दे दी जायेगी? इंग्लिस्तान को भारत का 6 करोड़ का पौंड पावना चुकाना है। यह कहा जा सकता है कि हम उसे किसी दिन भी ले सकते हैं। किन्तु मुझे इसका विश्वास नहीं हैं यदि हम 6 करोड़ पौंड पावने की पूरी धनराशि इंग्लिस्तान से वसूल करना चाहते हैं तो उसका हमारे संविधान में उल्लेख क्यों नहीं किया गया है? अमेरीका में तथा इंग्लिस्तान में भी पौंड के अवमूल्यन पर बहुत मत प्रकाशित हो रहा है। यदि पौंड का अवमूल्यन हुआ तो हमें अपने धन के कुछ अंश से हाथ धोना पड़ेगा। हम अपने संविधान में उन आस्तियों के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद प्रविष्ट क्यों न करें जो इंग्लिस्तान को भारत को चुकानी है? क्या इस धन के सम्बन्ध में जिसे इंग्लिस्तान ने बहुत कुछ बलपूर्वक प्राप्त किया है और जिसे वह किसी न किसी प्रकार हजम कर जाना चाहता है, क्या इंग्लिस्तान और भारत के बीच कोई संविदा हुई है? इस समय विश्व स्थिति ऐसी है कि इंग्लिस्तान यह घोषित नहीं कर सकता कि उसने यह ऋण समाप्त कर दिया है। संविधान की इस कमी की ओर मसौदा-समिति को ध्यान देना चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि इंग्लिस्तान के विषय में वह केवल इस कारण संकोच का अनुभव क्यों करती है कि कुछ समय पूर्व सम्राट की सरकार भारत पर शासन करती थी अथवा इसलिये कि अगली जनवरी तक हमारा देश परिस्थितिवश अधिराज्य रहेगा? मेरे विचार से इंग्लिस्तान ने जो 6 करोड़ पौंड की धनराशि चुकानी है उसकी गणना रुपयों में करके उसका संविधान

[श्री बी. दास]

में उल्लेख होना चाहिये। यदि पौंड का 20 प्रतिशत अवमूल्यन हुआ तो हम 12 करोड़ पौंड की धनराशि खो बैठेंगे। इसलिये मेरा यह कहना है कि इंग्लिस्तान को हमें जो ऋण चुकाना है उसका इस संविधान में किसी स्थल पर उल्लेख होना चाहिये, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि इसका उल्लेख 270 से लेकर 274 तक के अनुच्छेदों में ही हो। केवल इसलिये कि इंग्लिस्तान पहले आक्रमणकारी रहा है और आगे भी आक्रमणकारी हो सकता है, हमें उससे किसी प्रकार का भय न होना चाहिये और न उसके सम्बन्ध में संकोच का ही अनुभव करना चाहिये।

***श्री वी.एस. सर्वटे** (मध्य भारत): अध्यक्ष महोदय, उन राज्यों के सम्बन्ध में, जो प्रांतों में समाविष्ट हो गये हैं, मेरे विचार से कोई कठिनाई नहीं है। जो शब्दावली प्रयुक्त है वह इस प्रकार है, ''इस संविधान के प्रवर्तन में आने पर''। यदि संविधान 26 जनवरी, 1950 को प्रवर्तन में आया तो उस तिथि को राज्यपालों के प्रान्त समाविष्ट भारतीय राज्यों के साथ प्रान्तों के रूप में अस्तित्व में आयेंगे। ये प्रान्त 26 जनवरी, 1950 को जो प्रान्त अस्तित्व में थे, उनके उत्तराधिकारी होंगे। बंबई में बड़ोदा भी सम्मिलित रहेगा इसलिये संविधान के प्रवर्तन में आने के पूर्व जो राज्य समाविष्ट हो चुके हैं उनके सम्बन्ध में कोई कठिनाई न होगी।

मेरे विचार से तो एक अन्य प्रकार की कठिनाई उपस्थित होगी। इस अनुच्छेद में तथ्य को विधिसंगत भाषा में व्यक्त किया गया है। जब भारत स्वतंत्र घोषित किया गया था तो उसे पहले की सरकार की सम्पत्ति, आस्तियां और दायितव उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हो गये थे। यह एक तथ्य है। मैं यह पूछता हूं कि क्या इस तथ्य को विधि की भाषा में व्यक्त करना आवश्यक है? मैं यह प्रश्न इसलिये उठा रहा हूं कि शब्दावली इस प्रकार है कि 'वह सभी दायित्वों और आस्तियां की उत्तराधिकारिणी होगी।' यदि पहले की सरकार ने किसी व्यक्ति को, 1942 के दंगे में उसकी सेवा करने के लिये कोई निवृत्ति वेतन दिया हो अथवा जागीर के रूप में कुछ भूमि दी हो और आने वाली सरकार का यह विचार हो कि यह जागीर न दी जानी चाहिये थी अथवा इस प्रकार के उपहार से राष्ट्रीय हितों का हनन हुआ है तो क्या इस अनुच्छेद के अधीन उस सरकार पर इसका दायित्व होगा कि वह इस प्रकार के उपहार को रहने दे? मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस खण्ड के कारण आने वाली सरकारों पर, उन सभी बातों को बनाये रखने का दायित्व होगा, जिनसे राष्ट्रीय हितों का हनन हुआ है। तो क्या इस अनुच्छेद के अधीन उस सरकार पर इसका दायित्व होगा कि वह इस उपहार को रहने दे। इसलिये मैं यह जानना चाहता हूं कि इन दायित्वों की गणना में क्या आने वाली सरकार बन्धन में तो नहीं पड़ जायेगी? यदि यह अनुच्छेद निकाल दिया जाये तो इसका क्या प्रभाव होगा? मेरे विचार से इस समय सरकार की जो प्रतिष्ठा है वह इससे कम न होगी, भले ही विधिवेत्ताओं का भिन्न विचार हो। तथ्य यह है कि वर्तमान सरकार पहले की सरकार की उत्तराधिकारिणी है। अन्य अनुच्छेदों की बात दूसरी है। यदि कोई सम्पत्ति सम्पदा (जागीर) का रूप धारण कर ले तो क्या होगा? मेरे विचार से संविधान में इस तथ्य के उल्लेख की आवश्यकता नहीं है कि कोई सरकार पहले की सरकार की उत्तराधिकारिणी है।

दूसरी बात, जो मैं सभा के सम्मुख रखना चाहता हूं, यह है कि क्या यह आवश्यक है कि संविधान जिन सिद्धान्तों पर आधृत हो उन सब का उल्लेख संविधान में हो? यह केवल विधि सम्बन्धी बुद्धिवाद ही है। क्या इन सब बातों को संविधान में स्थान देने की आवश्यकता है? संसद एक ऐसी पृथक विधि स्वीकार कर सकती है, जिसमें यह कहा गया हो कि वर्तमान सरकार पहले की सरकार के दायित्वों को ग्रहण करती है। मैं चाहता हूं कि इसे भी स्पष्ट कर दिया जाये कि दायित्व और आभार में क्या अन्तर है। एक साधारण व्यक्ति तो यह समझता है कि दायित्वों में आभार भी सम्मिलित है। इसलिये 'आभार' शब्द को प्रयोग करना कहां तक उचित है? इन कतिपय बातों को मैं सभा के सम्मुख रखना चाहता हूं और मैं यह चाहता हूं कि इनका स्पष्टीकरण किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझता था कि इस अनुच्छेद पर इतना वाद-विवाद होगा। किन्तु चूंकि वाद-विवाद हुआ है, इसलिये मैं यह आवश्यक समझता हूं कि जिस भ्रम अथवा संदेह की ओर संकेत किया गया है, अथवा जो कठिनाइयां बताई गई हैं, उन्हें दूर करने के उद्देश्य से मैं कुछ शब्द कहूं।

पहला प्रश्न यह उठाया गया है कि अनुच्छेद 270 को संविधान में प्रविष्ट करने की आवश्यकता ही क्या है? इसका बहुत सीधा-सादा उत्तर है। माननीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि 1935 के अधिनियम के प्रवर्तन में आने के पूर्व भारत सरकार की आस्तियों, दायित्वों तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में प्राधिकार एक निगम को प्राप्त था जो सपरिषद्-सचिव के नाम से कहा जाता था। सपरिषद्-सचिव को ही भारत का सब राजस्व तथा सम्पत्ति प्राप्त थी और उस पर भारत सरकार के सभी आभारों का दायित्व भी था। 1935 के पहले भारत सरकार एक सत्तात्मक सरकार थी। भारत सरकार की अथवा प्रान्तों की कोई सम्पत्ति नहीं थी। सब सम्पत्ति उस निगम की थी जो सपरिषद्-सचिव के नाम से कहा जाता था। उसके विरुद्ध व्यवहार-वाद उपस्थित किया जा सकता था और वह स्वयं व्यवहार-वाद उपस्थित कर सकता था। 1935 के भारत सरकार के अधिनियम द्वारा एक बहुत सारभूत परिवर्तन किया गया अर्थात् उसके अधीन भारत सरकार की ओर से सपरिषद्-सचिव को प्राप्त आस्तियां और दायित्व दो भागों में विभाजित किये गये अर्थात् भारत सरकार को बांट में दी हुई और उसके नाम पर अलग रखी हुई आस्तियां और दायित्व और प्रान्तों के नाम पर अलग रखी हुई आस्तियां और दायित्व। यह सच है कि चूंकि भारत सरकार पर भारत सचिव का अधिकार पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ था इसलिये भारत सरकार को तथा विभिन्न प्रान्तों को बांट में दी हुई सम्पत्ति भारत सरकार के अधिनियम की तद्विषयक धारा में इस प्रकार वर्णित की गई थी कि उसका स्वामित्व भारत सरकार की ओर से तथा विभिन्न प्रान्तों की ओर से सम्राट को प्राप्त होगा। इसके साथ ही तथ्य यह है कि दायित्व, आस्तियां और सम्पत्ति विभाजन की गई और विभिन्न एककों तथा केन्द्र में भारत सरकार के नाम पर रखी गई। अब हमें यह समझना है कि इस संविधान को पारित करने का क्या प्रभाव होगा। इस संविधान के पारित होने से 1935 के भारत सरकार के अधिनियम का विरसन तथा निराकरण हो जायेगा। यदि आप निरसित अधिनियमों

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

की अनुसूची को देखें तो आपको ज्ञात होगा कि उसमें 1935 के भारत सरकार के अधिनियम का भी उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि जब आप भारत सरकार के अधिनियम का निरसन करने जा रहे हैं; जिसमें आस्तियों, दायित्वों और सम्पत्ति के लिये उपबन्ध हैं, तो आपको संविधान में किसी स्थल पर इसका उल्लेख करना होगा कि भले ही भारत सरकार के अधिनियम का निरसन हो गया हो किन्तु विभिन्न प्रान्तों की जो आस्तियां हैं वे उन्हीं की रहेंगी। अन्यथा 1935 के भारत सरकार के अधिनियम के निरसित होने पर आस्तियों और दायित्वों के सम्बन्ध में कोई उपबन्ध न रह जायेगा। वास्तव में हम वही कर रहे हैं जो किसी अधिनियम को निरसित करने पर साधारणतया किया जाता है। साधारणतया यही कहा जाता है कि यद्यपि अमुक-अमुक अधिनियम निरसित हो गये हैं किन्तु अमुक-अमुक कार्य उसी रूप में होते रहेंगे जैसे कि वे पहले होते थे। बस इतना ही किया जा रहा है। अनुच्छेद 270 में केवल यह कहा गया है कि यद्यपि 1935 के भारत सरकार के अधिनियम का निरसन हो गया है किन्तु केन्द्रीय सरकार के विभिन्न एककों की आस्तियां तथा दायित्व पहले के समान ही रहेंगे। दूसरे शब्दों में 1935 के अधिनियम के अधीन जो भारत सरकार थी और जो प्रान्त थे उनके ये एकक उत्तराधिकारी होंगे। मुझे आशा है कि अब सभा की समझ में आ गया होगा कि इस खण्ड को प्रविष्ट करना क्यों आवश्यक है।

अब मैं दूसरे प्रश्न को उठाता हूं। यह कहा गया है कि अनुच्छेद 270 में भारतीय राज्यों के दायित्वों, आस्तियों और सम्पत्ति का कोई उल्लेख नहीं है। दो मामले ऐसे हैं जिनमें विभेद करना आवश्यक है। पहले हमें उन भारतीय राज्यों को अलग श्रेणी में रखना है जो संविधान में तदरूप समाविष्ट किये जा रहे हैं और उनके क्षेत्र तथा उनके सम्बन्ध में किसी अन्य विषय के बारे कोई परिवर्तन नहीं किया जा रहा है। उदाहरणार्थ मैसूर राज्य को लीजिये, जो आज एक स्वतंत्र राज्य है। वह संविधान में सम्भवत: बिना किसी रूप भेद के समाविष्ट किया जायेगा। दूसरी श्रेणी उन राज्यों की है जो निकटवर्ती भारतीय प्रांतों में समाविष्ट हो गये हैं। तीसरी श्रेणी उन राज्यों की है जिन्होंने मिल कर बड़े संघ स्थापित कर लिये है परन्तु जो भारतीय प्रान्तों में समाविष्ट नहीं हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैसूर राज्य के संविधान में अनुच्छेद 270 के अनुरूप एक इस आशय का उपबन्ध होगा कि मैसूर की वर्तमान सरकार की आस्तियां, दायित्व और सम्पत्ति नवीन सरकार को प्राप्त होंगी। इसलिये इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 270 में उपबन्ध रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार उन राज्यों की प्रसंविदा में, जिन्होंने संघ स्थपित किये हैं, अनुच्छेद 270 के समान ही उपबन्ध होगा। उनकी प्रसंविदा में यह कहा जा सकता है कि जिन राज्यों ने मिल कर एक नवीन राज्य का निर्माण किया है उनकी आस्तियां तथा दायित्व संघटित राज्य की आस्तियां और दायित्व होंगे।

अब अन्त में हम उन राज्यों के प्रश्न को उठाते हैं, जो प्रान्तों में समाविष्ट हो गये हैं उनके सम्बन्ध में अनुच्छेद 270 के कारण कोई कठिनाई नहीं उपस्थित हो सकती है। एक उदाहरण लीजिये। यदि कोई राज्य किसी भारतीय प्रान्त में समाविष्ट हुआ है तो यह स्पष्ट है कि समाविष्ट राज्य और निकटवर्ती प्रान्त के बीच इस सम्बन्ध में कोई करार हुआ होगा कि समाविष्ट राज्य के दायित्वों और आस्तियों के सम्बन्ध में क्या किया जायेगा।

उस करार में यह अवश्य तय किया जायेगा कि ये दायित्व समाप्त हो जायेंगे अथवा समाविष्ट राज्य या वह भारतीय प्रान्त, जिसमें वह राज्य समाविष्ट हुआ हो, इन दायित्वों का निर्वहन करेगा। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर (ये शब्द महत्त्वपूर्ण है और इस समय मैं यह माने लेता हूं कि वह 26 जनवरी को प्रवर्तन में आयेगा) उस प्रान्त का, जिसमें कोई राज्य समाविष्ट हुआ हो, यह दायित्व होगा कि वह उस करार का निर्वहन करे जो उसके तथा समाविष्ट राज्य के बीच हुआ हो यदि संविधान के प्रवर्तन में आने के पूर्व कोई करार न हुआ हो तो केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वे उस एकक अथवा समाविष्ट राज्य अथवा किसी अन्य एकक के सम्बन्ध में जो भी नये आभार चाहे स्वीकार करे। इसलिये संविधान के प्रवर्तन में आने के पश्चात् जो भी आदान-प्रदान होगा वह उस करार के अनुसार होगा, जिसे प्रान्त संविधान के अधीन स्वतंत्रता से कर सकेंगे। इसलिये इस सम्बन्ध में कोई उपबन्ध रखने की आवश्यकता नहीं है। अन्य राज्यों के सम्बन्ध में, जैसा कि मैं मैसूर के बारे में कह चुका हूं, उन्हें इसकी स्वतंत्रता होगी कि वे अपना प्रबन्ध स्वयं करें। जब वह प्रबन्ध कर लिया जायेग तो हम निस्संदेह उसका उस विशेष भाग में उल्लेख करेंगे जिसे हम भाग 3 के राज्यों के विशेष उपबंधों के संबंध में संविधान में प्रविष्ट करने वाले हैं इसलिये जहां तक अनुच्छेद 270 का सम्बन्ध है, मेरे विचार से उसके कारण कोई कठिनाई न होगी। मेरे विचार से उसे उसके वर्तमान रूप में ही स्वीकार कर लेना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि जिस करार का निर्देश किया गया है वह केवल वित्तीय करार ही है अथवा क्षेत्र सम्बन्धी करार भी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उसका सम्बन्ध आस्तियों, दायित्वों और आभारों से है। उदाहरणार्थ यदि किसी प्रांत ने किसी राज्य को समाविष्ट किया है और वहां के नरेश को कोई निवृत्ति वेतन देने का आभार स्वीकार किया है तो अनुच्छेद 270 के अधीन वह आभार समझा जायेगा। क्षेत्र के संक्रमण के सम्बन्ध में अन्य उपबन्ध होंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं जान सकता हूं कि हाशिये के उपशीर्षक में 'अधिकार' शब्द को रखने पर भी अनुच्छेद से उसे क्यों निकाल दिया गया है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मसौदा समिति इसकी ओर ध्यान देगी।

***श्री बी. दास:** भारत की विदेशों में विशेषकर इंग्लिस्तान में जो सम्पत्ति है, क्या उनके सम्बन्ध में मैं यह जान सकता हूं कि उन्हें अनुच्छेद 270 के अधीन वर्णित सम्पत्ति में क्यों नहीं सम्मिलित किया गया है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से उस सम्पत्ति का, उदाहरणार्थ इंडिया आफिस के पुस्तकालय आदि का, भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजन होना है और मेरे विचार से इस सम्बन्ध में बातचीत हो रही है।

***श्री बी. दास:** पौंड पावने का क्या होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे माननीय मित्र को उसके सम्बन्ध में मुझ से अधिक जानकारी है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधित संख्या 2975 और 2976 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 270 में 'assets and liabilities' (आस्तियां और दायित्व) शब्दों के स्थान में 'assets, liabilities and obligations' (आस्तियां, दायित्व और आभार) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 270, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 270, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 271

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 271 में–

(1) दो स्थलों पर जहां 'for the purposes of the Government of that State' (उस राज्य की सरकार के प्रयोजनों के लिये) शब्द प्रयुक्त हैं, वे निकाल दिये जायें)

(2) दो स्थलों पर जहां ''for the purposes of the Government of India' (भारत सरकार के प्रयोजनों के लिए) शब्द प्रयुक्त हैं, वे निकाल दिये जायें।''

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, मैं एक प्रश्न उठाना चाहता हूं कि जिसे एक साधारण प्रश्न कहा जा सकता है किन्तु मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर तथा उसके साथ काम करने वाली बुद्धिमानों की मंडली संविधान का अन्तिम मसौदा बनाते समय उसकी ओर ध्यान देगी। उपस्थित संशोधनों के साथ इस अनुच्छेद में प्रथम अनुसूची के भाग 3 में इस समय वर्णित राज्यों के अतिरिक्त भारत के अन्य राज्य क्षेत्र की सम्पत्ति का उल्लेख है। पहले मैंने जो प्रश्न उठाया था वह इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है इसीलिये मैं यह सुझाव उपस्थित करना चाहता हूं कि जब तक हम प्रथम अनुसूची पर विचार-विमर्श न कर लें तब तक इन अनुच्छेदों को स्थगित रखें। इन अनुच्छेदों को स्वीकार करके फिर अनुसूची में परिवर्तन करने का कोई अर्थ न होगा। प्रथम अनुसूची से हमें ज्ञात हो सकता है कि उसके भाग 3 में कौन से राज्य उल्लिखित हैं जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, कई राज्यों का भारत के मानचित्र से लोप हो गया है और वे भारत राज्य क्षेत्र के अंग नहीं रह गये हैं। बड़ोदा, कोल्हापुर और मयूरभंज का अब प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लेख नहीं है। यदि हम इस अनुच्छेद को वर्तमान रूप में पारित करते हैं और विभिन्न राज्यों के सम्बन्ध में 'अनुसूची में रूप-भेद के अधीन' शब्दों का उल्लेख नहीं करते हैं तो बड़ोदा, कोल्हापुर और मयूरभंज जैसे राज्यों की सम्पत्ति का क्या होगा क्योंकि वे प्रान्तों में समाविष्ट हो चुके हैं? इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद को उस समय तक स्थगित रखा जाये जब तक कि प्रथम अनुसूची और तत्सम्बन्धी संशोधनों पर विचार न कर लिया जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, श्री कामत महोदय ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनमें मैं सहमत नहीं हूं। हम इन अनुच्छेदों को इस आशा से पारित कर रहे हैं कि अनुसूचियों में केवल वे बातें रखी जायेंगी, जिनके सम्बन्ध में ये अनुच्छेद प्रयुक्त होंगे। इन अनुसूचियों को हम अपनी इच्छा अनुसार बनायेंगे और उनमें केवल उन बातों को स्थान देंगे जो हमारे स्वीकार किये हुए इन अनुच्छेदों से सुसंगत होंगी। इसलिये मेरे विचार से अनुच्छेद 270 को संविधान का अंग बना लेना चाहिये। यह अनुच्छेद भी महत्त्वपूर्ण है। पहले हमारा देश कई राज्यों में विभक्त था। अब इस संविधान के अधीन देश के प्रत्येक भाग का शासन एक ही सरकार द्वारा होगा। इसलिये इस अनुच्छेद को केवल इस कारण स्थगित न रखना चाहिये कि अनुसूची में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 271 में–

(1) दो स्थलों पर जहां 'for the purposes of the Government of that State' (उस राज्य की सरकार के प्रयोजनों के लिये) शब्द प्रयुक्त हैं, वे निकाल दिये जायें)

(2) दो स्थलों पर जहां ''for the purposes of the Government of India' (भारत सरकार के प्रयोजनों के लिए) शब्द प्रयुक्त हैं, वे निकाल दिये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 271, संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 271, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 271-क

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 271 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद रखा जाये–

'271-A. All lands, minerals and other things of values lying within teritorial waters vest in the Union—All lands, minerals and other things of value underlying the ocean within the territorial waters of India shall vest in the Union and be held for the purposes of the Union.' "

(271-क. भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें स्वयं में निहित होंगी—भारत के जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य भूमियां, खनिज तथा जल-प्रांगण में स्थित मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी तथा संघ के प्रयोजन के लिये धारण की जायेंगी।)

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। हम भारत के राज्य-क्षेत्र में कई ऐसे राज्यों को समाविष्ट करने जा रहे हैं जो समुद्र तटवर्ती हैं। यह सम्भव है कि ये राज्य यह प्रश्न उठायें कि उनके जल-प्रांगण में समुद्र के नीचे की वस्तुएं उन्हीं की सम्पत्ति है। इस प्रकार के तर्क का खण्डन करने के लिये इस अनुच्छेद को प्रविष्ट करना आवश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र को इस अनुच्छेद को स्पष्ट करना चाहिये था और उसके आशय तथा महत्त्व को समझाना चाहिये था। कम से कम मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के लिये इस अनुच्छेद का अर्थ स्पष्ट नहीं है। उसमें भूमियों, खनिजों तथा अन्य मूल्यवान चीजों का उल्लेख है। प्रश्न यह है कि खनिजों के अतिरिक्त जिन चीजों को समुद्र के नीचे की मूल्यवान चीजें कहा गया है, वे ही सब चीजें भारत के जल-प्रांगण में स्थित हैं?

***अध्यक्षः** इसका सम्बन्ध केवल उन चीजों से है जो जल-प्रांगण में स्थित भूमि में पाई जायें।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद में उल्लेख है भूमियों, खनिजों तथा अन्य मूल्यवान चीजों का। प्रश्न यह है कि 'अन्य मूल्यवान चीजें' क्या हैं? क्या ये शब्द किसी अन्य संविधान से लिये गये हैं अथवा ये शब्द हमारे संविधान में बिना अधिक विचार किये हुए ही प्रविष्ट किये गये हैं? यदि ये बात अस्पष्ट रखी गई तो उच्चतम न्यायालय को इनके सम्बन्ध में निर्णय करना होगा। एक व्यक्ति जिस चीज को मूल्यवान समझता है उसे दूसरा व्यक्ति मूल्यवान नहीं समझ सकता है। क्या इस पदावली में मूल्यवान रत्न अथवा खनिज अथवा समुद्र की सतह के नीचे जो कुछ भी मिले, जैसे मछली इत्यादि, भी सम्मिलित है? कुछ लोग मछलियों को भी मूल्यवान समझ सकते हैं, किन्तु निरामिष लोग उनका कोई भी मूल्य न लगायेंगे। इस अनुच्छेद के मसौदे को फिर से लिखा जाना चाहिये और उसमें यह स्पष्ट करना चाहिये कि वे मूल्यवान चीजें क्या हैं जो प्राप्त होने पर संघ में निहित होंगी। यदि आप इस अनुच्छेद की वर्तमान शब्दावली को रहने देते हैं तो उनके आधार पर भी वकील कई प्रकार के विवाद उपस्थित करेंगे।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद में कहा गया है, ''भारत के जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें।'' प्रथम अनुसूची में हमने राज्यों की तथा भारत राज्यक्षेत्र की परिभाषा की है। किन्तु इस अनुच्छेद में कहीं भी 'भारत के जल-प्रांगण' की परिभाषा नहीं की गई है। संविधान इस सम्बन्ध में मौन है।

***अध्यक्षः** अन्तर्राष्ट्रीय विधि में यह पदावली सुस्पष्ट है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसकी पृथक रूप से परिभाषा करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि आप अनुसूची में भारत राज्य-क्षेत्र को परिभाषा करना आवश्यक समझते हैं तो संविधान में जल-प्रांगण की भी परिभाषा क्यों नहीं करते हैं? अन्तर्राष्ट्रीय

विधि के अधीन किसी देश के तट से तीन मील तक का समुद्र जल-प्रांगण समझा जाता है। जैसा कि अनुसूची के चार भागों में वर्णित है, हमारे कुछ क्षेत्रों को मिलाकर ही हमारे राज्य-क्षेत्र का निर्माण हुआ है। पूर्वी तट पर तथा पश्चिमी तट पर जल-प्रांगण की कोई सीमा होगी। हमारे तट से तीन मील से आगे का समुद्र जल-प्रांगण नहीं कहा जा सकता। यदि आप अंडमान और निकोबार द्वीपों को भारत के राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत समझते हैं तो उनसे तीन मील से लेकर पांच मील तक का समुद्र हमारा जल-प्रांगण कहा जायेगा। समझदारी की बात यही होगी कि संविधान में स्पष्ट शब्दों में इसका उल्लेख किया जाये कि जल-प्रांगण का अर्थ क्या है? आजकल संसार मे नई-नई भूमियां खोज निकाली जा रही हैं। इन खोजों के कारण पेचीदगियां उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिये हमें अपने जल-प्रांगण की परिभाषा कर देनी चाहिये।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं इसे कोई नहीं समझ सकता है कि 'अन्य मूल्यवान चीजें' क्या हैं? अच्छा यह होगा कि उनका स्पष्ट शब्दों के उल्लेख किया जाये। अन्यथा समुद्र के नीचे जो कोई भी चीजें होंगी, उनके बारे में समझा जायेगा कि ये संघ में निहित है। सीधे सीधे यह कहना चाहिये 'समुद्र की तह में मिलने वाली सब चीजें' यही करने में बुद्धिमानी है और यही ईमानदारी की बात भी है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): 'सब अन्य चीजें' शब्द प्रयुक्त हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** एक व्यक्ति जिसे मूल्यवान समझता है उसे दूसरा व्यक्ति मूल्यवान नहीं समझता। मेरी दृष्टि में मूल्यवान रत्नों का कोई मूल्य नहीं है। मैं यह चाहता हूं कि इसे स्पष्ट शब्दों में लिखा जाये।

अन्त में मैं डा. अम्बेडकर तथा उनके बुद्धिमान साथियों से पूछता हूं कि क्या 'समुद्र के नीचे' पदावली का अर्थ समुद्र की सतह के नीचे जो कुछ मिले उससे है अथवा समुद्र की तह में जो कुछ मिले उससे है अथवा समुद्र की तह के नीचे जो कुछ मिले उससे है। सम्भवत: वकील इस पदावली का अर्थ स्पष्टतया समझते हों। किन्तु चूंकि मैं वकील नहीं हूं इसलिये मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं इससे अनभिज्ञ हूं कि 'समुद्र के नीचे' का अर्थ क्या है? मुझे आशा है कि इसके पूर्व कि इस अनुच्छेद पर मत लिया जाये, डा. अम्बेडकर स्थिति को स्पष्ट करेंगे।

***श्री ए. थानू पिल्ले** (त्रावणकोर राज्य): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। उसमें कहा गया है: ''भारत के जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी।'' यह मेरी समझ में आता है कि जल-प्रांगण के सम्बन्ध में किसी सीमा तक नियंत्रण का अधिकार संघ को प्राप्त होना चाहिये किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता कि जल-प्रांगण में स्थित सम्पत्ति और मूल्यवान चीजें संघ में क्यों निहित हों। मेरी समझ में नहीं आता कि जल-प्रांगण के निकटवर्ती राज्यों को खनिजों आदि पर उनके अधिकार से क्यों वंचित किया जा रहा है। इन जल-प्रांगणों पर इस समय इन राज्यों का अधिकार है और उनसे उन्हें कुछ राजस्व भी प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ त्रावणकोर राज्य में समुद्र से शंख निकाले जाते हैं। ये खनिज

[श्री ए. थानू पिल्ले]

है और इनके सम्बन्ध में उस राज्य को अधिकार प्राप्त है। मेरी समझ में नहीं आता कि वह अधिकार क्यों छीना जा रहा है। इस विषय पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है और मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर सभा को बतायेंगे कि इस अनुच्छेद को इन शब्दों में रखने की क्या आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त 'अन्य मूल्यवान चीजें' शब्द भी है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि मुझे किन बातों की व्याख्या करनी है?

***श्री ए. थानू पिल्ले:** मछलियां मूल्यवान चीजें हैं। इस अनुच्छेद में 'सब भूमियां, खजिन तथा अन्य मूल्यवान चीजें' शब्द प्रयुक्त हैं। समुद्र तटवर्ती राज्य होने के कारण त्रावणकोर में बहुत मछली पकड़ी जाती है? यदि मछलियों को भारत के जल-प्रांगण में समुद्र के नीचे की मूल्यवान चीजें समझा गया तो इस अनुच्छेद के अधीन वह राज्य मछली पकड़ने के अधिकार से वंचित हो जायेगा। सब बातों को देखते हुए इस अनुच्छेद पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि जल-प्रांगण के सम्बन्ध में राज्यों के वर्तमान अधिकारों में केवल उतनी ही कमी की जायेगी जितनी कि संघ की रक्षा के लिये आवश्यक हो।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, जब हम अनुच्छेद 31 पर विचार-विमर्श कर रहे थे तो हमने देखा कि उसके खण्ड (2) में ये शब्द प्रयुक्त थे:

> ''समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप साधन हो।''

उस समय मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने यह संशोधन उपस्थित किया था कि देश के प्राकृतिक साधनों, अर्थात खानों, खनिजों, जंगलों, नदियों और प्रवाहित जल और तटवर्ती समुद्र का नियंत्रण तथा स्वामित्व देश में सामूहिक रूप से निहित होगा तथा उसे प्राप्त होगा, इत्यादि। उस समय इसे स्वीकार नहीं किया गया था। इसलिये मुझे इसकी प्रसन्नता है कि डा. अम्बेडकर ने संविधान में इस उपबन्ध को रखने का निश्चय किया है कि भारत के जल-प्रांगण में समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी तथा संघ के प्रयोजन के लिये धारण की जायेंगी। किन्तु मैं डा. अम्बेडकर से यह पूछना चाहता हूं कि क्या आकाश का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय संचार में आकाश का भी बहुत महत्त्व है अर्थात इसका निर्णय करने की आवश्यकता है कि हमारे आकाश में कौन उड़ सकेगा और कौन नहीं; इत्यादि। इसलिये मैं डा. अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या संविधान में आकाश का उल्लेख करने की आवश्यकता है या नहीं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से अनुच्छेद 271-क एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और इस अनुच्छेद को संविधान में प्रविष्ट करने के लिये हममें डा. अम्बेडकर को बधाई देनी चाहिये। दो बातों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। एक आलोचना यह की गई है कि जल-प्रांगण के विस्तार की कोई परिभाषा नहीं

की गई है। मेरे विचार से वास्तव में यह अनुच्छेद का गुण है, दोष नहीं क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय विधि जल-प्रांगण के विस्तार के सम्बन्ध में मौन है। उसका विस्तार किसी एक राज्य की घोषणा से निश्चित न होगा, बल्कि एक ऐसे सिद्धान्त के अधीन निश्चित होगा, जिसे सभी राष्ट्र स्वीकार करेंगे। आज भी यह देखा जाता है कि जल-प्रांगण के विस्तार के सम्बन्ध में इंग्लिस्तान और अमरीका का एक दृष्टिकोण है तो अन्य राष्ट्रों का दूसरा दृष्टिकोण है। इसलिये यह उचित ही है कि अनुच्छेद 271-क में जल-प्रांगण के विस्तार का उल्लेख नहीं किया गया है।

दूसरी बात यह है कि क्या यह उचित है कि सामान्य शब्दों द्वारा जल-प्रांगण का अधिकार संघ को प्रदान किया जाये। अमरीका में भी जब कैलिफोर्निया राज्य का मामला उच्चतम न्यायालय के सम्मुख आया तो उसने यह निर्णय किया कि यद्यपि राज्य का आरम्भ से जल-प्रांगण पर अधिकार है, परन्तु उचित यही है कि यह अधिकार संघ सरकार को प्राप्त हो, इसलिये इस अनुच्छेद में, जहां तक इसका सम्बन्ध है कि जल-प्रांगण पर संघ का अधिकार हो, यह उपबन्ध अमरीका के संविधान जैसे अन्य संघीय संविधानों में सन्निहित प्रगतिशील विचारधारा के अनुरूप है। जहां तक राज्यों के तथा राज्यों के न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के प्रश्न का सम्बन्ध है, उस पर पृथक रूप से विचार करना होगा।

अब इस अनुच्छेद की इस पदावली पर विचार करने की आवश्यकता है कि ये 'संघ के प्रयोजन के लिये धारण की जायेगी।' यह भय प्रकट किया गया है कि इससे जो कुछ भी लाभ होगा वह संघ को होगा और तटवर्ती राज्यों को हानि ही उठानी होगी। मेरे विचार से अनुच्छेद के पहले भाग की अपेक्षा जिसमें कहा गया है कि ''संघ में निहित होगी'', ''संघ के प्रयोजनों के लिये धारण की जायेगी'' पदावली का अर्थ अधिक व्यापक है। हाल में आस्ट्रेलिया में यह प्रश्न उठाया गया था और यह निर्णय किया गया था कि ''राष्ट्रमंडल के प्रयोजनों के लिये'' पदावली ''राष्ट्रमंडल'' से भी अधिक व्यापक अर्थ रखती है। इसलिये मेरे विचार से ''संघ के प्रयोजनों के लिये'' पदावली से तटवर्ती राज्यों के हितों पर आघात नहीं होता और इसलिये उन्हें यह भय न करना चाहिये कि उनके वर्तमान अधिकारों पर आघात होगा।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि ''समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें'' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विधि का एक विवादाग्रस्त विषय यह भी है कि सतह सम्बन्धी अधिकारों, खनिज सम्बन्धी अधिकारों और मिट्टी सम्बन्धी अधिकारों में कोई अन्तर है या नहीं। वास्तव में मुझे अनुच्छेद में ''समुद्र की नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी'' शब्दों को देख कर प्रसन्नता हुई है।

इन सब कारणों से अनुच्छेद 271-क को संविधान में प्रविष्ट करने के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

***श्री वी.एस. सर्वटे:** अध्यक्ष महोदय, जैसा कि मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता महोदय कह चुके हैं, इस नवीन अनुच्छेद से एक आधारभूत प्रश्न उठता है। इससे संघ में समाविष्ट तटवर्ती राज्यों के संघ सरकार से सम्बन्धों का प्रश्न उठता है। इसके पूर्व कि हम इस

[श्री वी.एस. सर्वटे]

अनुच्छेद को स्वीकार करें, इन राज्यों ने तथा भारत सरकार ने जिन प्रसंविदाओं पर हस्ताक्षर किये हैं, उनकी परीक्षा करने की आवश्यकता होगी। मैं कह नहीं सकता कि इन प्रसंविदाओं की परीक्षा करने के उपरांत ही इस अनुच्छेद को संविधान में प्रविष्ट करने का निश्चय किया गया है या नहीं। यदि प्रसंविदा के अधीन ये अधिकार भारत सरकार को नहीं सौंपे गये हैं तो एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यदि थोड़ी देर के लिये हम यह मान लें कि प्रसंविदा द्वारा इस प्रकार का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है तो प्रश्न यह उठता है कि क्या संविधान के इस अनुच्छेद के अधीन वह अधिकार प्राप्त हो जायेगा? यदि वह अधिकार प्राप्त नहीं है तो मेरे विचार से केवल इस अनुच्छेद को प्रविष्ट कर देने से वह प्राप्त नहीं हो जायेगा। जहां तक मैं समझता हूं इस अनुच्छेद को प्रविष्ट करने का केवल यह प्रभाव होगा कि यदि अधिकार प्राप्त है तो उसका संविधान में स्पष्टतया उल्लेख हो जायेगा। यदि अधिकार प्राप्त नहीं है तो इस अनुच्छेद के कारण वह भारत सरकार को प्राप्त न हो जायेगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि जब तक प्रसंविदाओं की सावधानी से परीक्षा नहीं की जाती और यह पता नहीं लगा लिया जाता कि भारत सरकार को यह अधिकार प्रदान किया गया है या नहीं, इस अनुच्छेद को स्वीकार न करना चाहिये।

***श्री ए. करुणाकार मैनन** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 271-क पर मैं केवल यह बताने के लिये बोलना चाहता हूं कि हाशिये के शीर्षक में तथा अनुच्छेद की शब्दावली में अन्तर है। हाशिये का शीर्षक इस प्रकार है, ''जल-प्रांगण में स्थित भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी।'' इसका अर्थ यह है कि जल-प्रांगण में स्थित सब चीजें संघ में निहित होंगी। इसलिये प्रत्येक मूल्यवान चीजें यदि वह जल-प्रांगण में लटकी भी रहे, हाशिये के शीर्षक के अनुसार संघ की सम्पत्ति होगी। किन्तु हम अनुच्छेद में क्या देखते हैं? उसकी शब्दावली भिन्न है। उसमें कहा गया है: ''भारत के जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी,'' मेरे विचार से, ''जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे'' शब्दों का अर्थ ''जल-प्रांगण में स्थिति मूल्यवान चीजों'' शब्दों से भिन्न है। समुद्र के नीचे की मूल्यवान चीजों से उन चीजों का बोध होता है जो समुद्र की तह के नीचे हों। इस प्रकार उसका अर्थ सीमित है। मूल्यवान चीजों का अर्थ 'समुद्र के नीचे की' कहने से सीमित हो जाता है, किन्तु 'जल-प्रांगण में स्थित मूल्यवान चीजें' कहने से उनका अर्थ विस्तृत हो जाता है। मैं यह चाहता हूं कि हाशिये के शीर्षक में जो शब्द प्रयुक्त हैं वे अनुच्छेद के शब्दों से सुसंगत हों अन्यथा इनसे भविष्य में पेचीदगियां उत्पन्न हो सकती हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं एक छोटा सा सुझाव सभा के सामने रखना चाहता हूं। जल-प्रांगण के सम्बन्ध में ही क्या कहा जा सकता है? इस नवीन अनुच्छेद 271-क के अधीन जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी। सारा जल-प्रांगण संघ का होगा, कहा यह गया है ''सब भूमियां, खनिज तथा अन्य चीजें।'' चाहे हम इस प्रश्न को न उठायें कि किसी जल-प्रांगण में किसी एक देश का ही क्षेत्राधिकार है या नहीं अथवा उसका उस जल प्रांगण पर स्वामित्व का अधिकार है या नहीं और चाहे हम इस अन्तर्देशीय

प्रश्न को भी न उठायें कि कोई जल-प्रांगण किसी तटवर्ती प्रान्त का है अथवा संघ का किन्तु हमें जल-प्रांगण के सम्बन्ध में तो सब कुछ स्पष्ट शब्दों में कहना चाहिये। इसलिये मेरे विचार से यह कहना आवश्यक है कि जल प्रांगण संघ का है और संघ में निहित है और यह संघ के प्रयोजनों के लिये धारण किया जायेगा। मेरे विचार से समुद्र के नीचे की चीजों में मछली आदि सम्मिलित होंगी। यदि वे सम्मिलित नहीं हैं तो इसे भी यह कहकर स्पष्ट कर देना चाहिये कि ''समुद्र के अन्दर की सब उपज, दो चीजों के अतिरिक्त अर्थात् खनिजों और भूमि के अतिरिक्त संघ में निहित होंगी।'' किसी जल-प्रांगण के सम्बन्ध में प्रान्तों के तथा संघ के बीच विवाद न होने देने के लिये और इसे भी निश्चित रूप से कह देने के लिये कि चाहे अन्तर्राष्ट्रीय विधि कुछ भी हो किन्तु अपने देश के जल प्रांगण पर हमारा अधिकार है, इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इस विषय के सम्बन्ध में जो अन्तर्राष्ट्रीय विधि है उसके बारे में भी मतभेद है। इन सन्देहों के निराकरण के लिये हमें इस निश्चित आशय के एक अनुच्छेद को प्रविष्ट करना चाहिये कि जल प्रांगण तथा उसकी किसी प्रकार की भी उपज संघ में निहित होगी और संघ के प्रयोजनों के लिये धारण की जायेगी।

***श्री ए. थानू पिल्लेः** जल का क्या होगा?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** जल-प्रांगण संघ का होना चाहिये। हमें जल प्राप्त होना चाहिये तथा उस पर हमारा अधिकार होना चाहिये और हमें जल पर तथा मछलियों आदि पर स्वामित्व का अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

***श्री ए. थानू पिल्लेः** मेरे माननीय मित्र का राज्यों द्वारा नमक के उत्पादन के सम्बन्ध में क्या मत है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** जल पर संघ का स्वामित्व होना चाहिये। जल-प्रांगण पर अपने अधिकार को हमें घोषित करना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागीः** इस अनुच्छेद में 'जल' का भी उल्लेख क्यों नही कर दिया जाता है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं तो यह चाहता हूं कि ये शब्द रखे जायें ''जल-प्रांगण में समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें तथा भारत का जल-प्रांगण संघ में निहित होगा तथा संघ के प्रयोजनों के लिये धारण किया जायेगा।''

***एक माननीय सदस्यः** वायु का क्या होगा?

***एक अन्य माननीय सदस्यः** आकाश का क्या होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, संशोधन को उपस्थित करते समय मैंने यह बताया था कि हमने इस प्रकार के अनुच्छेद को प्रविष्ट करना क्यों आवश्यक समझा। इस सम्बन्ध में मेरे माननीय मित्र श्री पिल्ले ने यह सन्देह प्रकट किया है कि इसमें मीन-क्षेत्र सम्बन्धी अधिकार भी सम्मिलित हो सकता है। मैं उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि मीन-क्षेत्र सूची 2 की प्रविष्टि संख्या 29 में अंकित है।

***श्री ए. थानू पिल्लेः** मैंने अन्य विषयों के संबंध में भी आपत्ति की थी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उनके सम्बन्ध में भी बोलूंगा। इस समय मैं इसी विषय पर अपने विचार प्रकट कर रहा हूं। मीन-क्षेत्रों के सम्बन्ध में सूची 2 में स्पष्ट शब्दों में प्रविष्टि का अर्थ यह है कि केन्द्रीय सरकार का जल-प्रांगण के सम्बन्ध में जो भी क्षेत्राधिकार होगा वह सूची 2 की प्रविष्टि संख्या 29 के अधीन होगा। इसलिये भारत के जल-प्रांगण में भी जो मीन-क्षेत्र हों, वे भी प्रान्तीय विषयों के अन्तर्गत आते हैं। मेरे माननीय मित्र श्री पिल्ले अब इसे स्पष्टतया समझ गये होंगे।

पहले प्रश्न के सम्बन्ध में स्थिति इस प्रकार है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने बताया है, अमरीका में यह प्रश्न उठाया गया था कि जल-प्रांगण पर संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार का अधिकार है अथवा विभिन्न राज्यों का, क्योंकि यह आपको विदित ही है कि अमरीका के संविधान के अधीन केन्द्रीय सरकार को केवल वही शक्तियां प्राप्त हैं जो उसे स्पष्ट शब्दों में प्रदान की गई हैं। इसलिये अमरीका में, मेरे विचार से, अभी यह विवादग्रस्त प्रश्न ही है कि जल-प्रांगण राज्यों का है अथवा केन्द्र का। हमने यह विचार किया कि यह इतना महत्त्वपूर्ण विषय है कि हमें इसे छोड़ न देना चाहिये क्योंकि आगे चलकर इसके सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है अथवा विवाद उठ खड़े हो सकते हैं अथवा दावे उपस्थित किये जा सकते हैं। साधारणतया यही समझा जाता है कि किसी राज्य का क्षेत्र उसकी भूमि तक ही सीमित नहीं होता किन्तु उसके आगे समुद्र में तीन मील तक विस्तृत होता है। यह सामान्यतः अन्तर्राष्ट्रीय विधि में सन्निहित है। भय यह है और मैं इसे छिपाना नहीं चाहता कि यदि कुछ तटवर्त्ती राज्य, जैसे कोचीन, त्रावणकोर अथवा कुछ भारतीय संघ में समाविष्ट होंगे तो यदि संविधान में इस प्रकार का कोई उपबन्ध न होगा तो वे यह कह सकते हैं कि उनके समाविष्ट होने से केन्द्रीय सरकार को उनके भौतिक क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्राप्त होता है किन्तु उनका वह क्षेत्र जिसमें उनका जल-प्रांगण भी सम्मिलित है केन्द्रीय सरकार के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता और उनके क्षेत्र तथा जल-प्रांगण पर, जो अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन और समाविष्ट के पूर्व उनको ही प्राप्त था, उनका ही क्षेत्राधिकार रहेगा। इसलिये संविधान में हम इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख कर देना चाहते हैं कि यदि कोई तटवर्ती राज्य भारतीय संघ में समाविष्ट होगा तो उस तटवर्ती राज्य का जल-प्रांगण केन्द्रीय सरकार के अधिकार में आ जायेगा। इस प्रकार के प्रश्न के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं उठाया जा सकेगा और न उसे न्यायालय में ही उपस्थित किया जा सकेगा। इसी कारण हम अनुच्छेद 271-क में इस प्रकार का उपबन्ध रख रहे हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** जल-प्रांगण के स्वामित्व का क्या होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** आप जल-प्रांगण पर स्वामित्व का अधिकार क्यों चाहते हैं? इसके पश्चात् आपकी यह इच्छा हो सकती है कि आवश्यक आकाश पर भी आपका अधिकार हो।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** हम नमक के उत्पादन आदि के लिये उस पर दायित्व चाहते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उस क्षेत्र में आपकी विधियां प्रवर्तन में रहेंगी, आप चाहे जो विधियां भी निर्मित करें, उनका विस्तार भूमि से तीन मील तक के क्षेत्र पर रहेगा। इसी की आवश्यकता है और यह आपको इस अनुच्छेद से प्राप्त हो जाता है।

***श्री महावीर त्यागीः** जल-प्रांगण को सम्मिलित नहीं किया गया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अर्थात् किसी राज्य के राज्य क्षेत्र में केवल भूमि ही नहीं बल्कि तीन मील आगे तक का क्षेत्र सम्मिलित होता है। आप जो भी विधि निर्मित करेंगे उसका प्रवर्तन उस क्षेत्र में भी होगा।

***श्री महावीर त्यागीः** अवशिष्ट जल-प्रांगण का क्या होगा?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** आकाश के नीचे जो कुछ भी होगा वह आपका होगा।

***श्री महावीर त्यागीः** तीन मील से आगे के जल-प्रांगण का क्या होगा?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** क्या मैं डा. अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि क्या उन्हें यह विदित है कि जल-प्रांगण भी अन्य प्रकार की सम्पत्ति के समान ही है और अन्य सम्पत्ति से श्रेष्ठ सम्पत्ति भी कही जा सकती है और जल-प्रांगण के सम्बन्ध में बहुत विवाद होते हैं? किसी प्रान्त और संघ के बीच विवाद न होने देने के लिये क्या यह आवश्यक नहीं है कि जल-प्रांगण को भी भारतीय संघ की सम्पत्ति में सम्मिलित किया जाये?

***अध्यक्षः** इसका उत्तर दिया जा चुका है। उनका यह विचार है कि इसके उल्लेख की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** भूमि के ऊपर जो कुछ हो वह भूमि में ही सम्मिलित किया जाता है। यदि भूमि के ऊपर कोई पेड़ हों तो वह भूमि में ही सम्मिलित किया जायेगा। जल भूमि के ऊपर होता है, इसलिये भूमि का ही भाग होगा।

***एक माननीय सदस्यः** श्रीमान्.....

***अध्यक्षः** मेरे विचार से हम काफी वादानुवाद कर चुके हैं और डा. अम्बेडकर उत्तर भी दे चुके हैं। अब अधिक वादानुवाद करने की आवश्यकता नहीं है। अब मैं इस अनुच्छेद पर मत लूंगा।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर राज्य): श्रीमान्, मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं। यदि डा. अम्बेडकर के कथनानुसार जल-प्रांगण, अर्थात् तट से तीन मील तक की भूमि संघ की होगी, तो इस अनुच्छेद की आवश्यकता ही क्या है?

***अध्यक्षः** वे इस प्रश्न का उत्तर दे चुके हैं।

***श्री के. हनुमन्थय्याः** यदि डा. अम्बेडकर का निर्वचन ठीक है.....

***अध्यक्षः** अब इस पर वादानुवाद की आवश्यकता नहीं है। डा. अम्बेडकर को जो कुछ कहना था, वे कह चुके हैं। सदस्यों को उसे स्वीकार करना हैं। अब मैं इस अनुच्छेद पर मत लूंगा।

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 271 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद रखा जाये–

'271-A. *All lands, minerals and other things of value lying within territorial waters vest in the Union*—All lands, minerals and other things of value underlying the ocean within the territorial waters of India shall vest in the Union and be held for the purposes of the Union.' "

(271-क. *जल-प्रांगण में स्थित भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी*—भारत के जल-प्रांगण में, समुद्र के नीचे की सब भूमियां, खनिज तथा अन्य मूल्यवान चीजें संघ में निहित होंगी तथा संघ के प्रयोजन के लिये धारण की जायेंगी।)

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 271-क संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 272

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 272 संविधान का अंग बना लिया जाये।''

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 272 में 'Part I' (भाग 1) शब्द और अंक जिन दो स्थानों पर आये हैं, वहां 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।''

***श्री एच.वी. कामत:** सभा के विचाराधीन इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मैं केवल एक बात कहना चाहता हूं। इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह है कि संघ की तथा प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा भाग 3 में इस समय उल्लिखित प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति किसी ऐसी सम्पत्ति के अनुदान, विक्रय, व्ययन अथवा बंधक तक ही विस्तृत न होगी, जो यथास्थिति संघ के अथवा ऐसे राज्य के प्रयोजनों के लिये धारण की हुई हो, बल्कि संविदाकरण तक भी विस्तृत होगी। मैं कह नहीं सकता कि क्या यह उचित होगा कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पत्ति बिना केन्द्रीय संसद को बाद में अनुसमर्थन करने का अधिकार दिये हुए कार्यपालिका को संविदाकरण की शक्ति प्रदान की जाये। अनुच्छेद 2 और अनुच्छेद 3 को देखने से सभा को विदित हो जायेगा कि संसद को बहुत ही विस्तृत आधारभूत शक्तियां प्रदान की गई हैं। यदि इस अनुच्छेद को उसके वर्तमान रूप में ही स्वीकार कर लिया गया और किसी प्रकार का स्पष्टीकरण अथवा प्राधिकृत रूप से व्याख्या न की गई तो इससे (मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि डा. अम्बेडकर और उनके बुद्धिमान सहकारियों ने इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा है) कार्यपालिका को संविदाकरण की शक्ति तथा विशेषाधिकार प्राप्त हो जायेंगे।

***अध्यक्ष:** ''समुचित विधान मंडल की किसी विधि के अधीन रहते हुए।''

***श्री एच.वी. कामत:** जी हां, श्रीमान्। पहले भाग में यह अवश्य कहा गया है कि ''समुचित विधान-मंडल की किसी विधि के अधीन रहते हुए।'' किन्तु दूसरे भाग में कहा

गया है; ''क्रमशः उन प्रयोजनों के लिये सम्पत्ति के क्रय या अर्जन तक, तथा संविदाकरण तक, विस्तृत होगी।'' हमें अनुच्छेद में इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख कर देना चाहिये कि संविदाकरण का अधिकार इसके अधीन होगा कि संसद को अथवा विधान मंडल को संविदा के शून्यन का अधिकार होगा। अन्यथा किसी राज्य में अथवा केन्द्र में कोई मंत्रिमंडल किसी अनुचित संविदा को कर सकता है। इसलिये संसद को अथवा विधान मंडल को उसके शून्यन का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। अनुच्छेद में केवल 'किसी अधिनियम के अधीन' शब्द प्रयुक्त है। मैं कह नहीं सकता कि अधिनियम का अर्थ किसी ऐसे अधिनियम से है जो प्रयुक्त है, अथवा उसका अर्थ बाद में विधानमंडल के उसके शून्यन करने के अधिकार से है। मैं यह चाहता हूं कि संसद और विधान-मंडल को यह अधिकार स्पष्ट शब्दों में प्रदान किया जाना चाहिये कि सम्पत्ति के सम्बन्ध में केन्द्र में अथवा राज्यों में कार्यपालिका ने जो भी संविदा की हो, उसके शून्यन की शक्ति उनको प्राप्त है। यदि इस अनुच्छेद में इस रक्षा-कवच को स्थान नहीं दिया गया तो हम आगे चल कर कठिनाई में पड़ सकते हैं। इसलिये मेरे विचार से इस सम्बन्ध में इस प्रकार के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है कि संसद को तथा राज्यों के विधान मंडलों को केवल विभिन्न प्रकार से सम्पत्ति के व्ययन तथा उसके सम्बन्ध में संविदाकरण का ही अधिकार प्राप्त नहीं है, किन्तु राज्य अथवा संघ की इस सम्बन्ध में की हुई संविदा के शून्यन का भी अधिकार है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मेरे विचार से श्री कामत ने जो मत तथा भय प्रकट किया है वह निराधार है, क्योंकि अनुच्छेद में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है:

> ''संघ की, और इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति, समुचित विधान मंडल की किसी विधि के अधीन रहते हुए यथास्थिति संघ के अथवा ऐसे राज्य के प्रयोजनों के लिये धारण की हुई किसी सम्पत्ति के अनुदान, विक्रय, व्ययन या बंधक तक विस्तृत होगी, तथा क्रमशः उन प्रयोजनों के लिये सम्पत्ति के क्रय या अर्जन तक, तथा संविदाकरण तक, विस्तृत होगी।
>
> (2) संघ के, अथवा इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्य के प्रयोजनों के लिये अर्जित सब सम्पत्ति, यथास्थिति, संघ में या ऐसे किसी राज्य में निहित होगी।''

इसका अर्थ यह है कि इस अनुच्छेद का सब संविदाओं के सम्बन्ध में प्रयोग होगा। इसका कोई भय नहीं है कि विधान मंडलों के अधिनियमों की उपेक्षा करके संविदाएं की जायेंगी। किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में सन्देह है कि इस अनुच्छेद की आवश्यकता है या नहीं और क्या बिना इस अनुच्छेद को संविधान में प्रविष्ट किये हुए संसद में यह शक्ति निहित नहीं हैं। संसद हमेशा संघ की सम्पत्ति के क्रय, व्ययन तथा बन्धक के सम्बन्ध में विधि बना सकती है। संविधान में इस प्रकार के अनुच्छेद को स्थान ही क्यों दिया जाये? संसद सर्वशक्तिसम्पन्न है और वह संघ की सम्पत्ति के क्रय तथा व्ययन के सम्बन्ध में विधि बना सकती है। मेरे विचार से इस अनुच्छेद को संविधान में स्थान देने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, यदि मेरे माननीय मित्र कामत ने इस अनुच्छेद पर पूर्ण रूप से विचार किया होता तो उनको विदित हो जाता कि संसद

[श्री के.एम. मुंशी]

के अधिकार पूर्णतया सुरक्षित हैं। उसमें जिस आदान-प्रदान का अर्थात् जिस अनुदान, विक्रय व्ययन अथवा बन्धक का उल्लेख किया गया है वे विधान मंडल के कार्य नहीं हैं बल्कि कार्यपालिका के कार्य हैं और इसीलिये कार्यपालिका में समुचित रूप से निहित भी हैं। वे समुचित विधान मंडल के किसी भी अधिनियम के अधीन होंगे। इसलिये संसद अथवा राज्यों के विधान मंडल विधि बनायेंगे और उनमें इस प्रकार के आदान-प्रदान को करने की रीति की तथा जिस प्राधिकारी में इस आदान-प्रदान को करने की शक्ति निहित होगी, उसकी यथोचित रूप से परिभाषा की जायेगी। यदि इस अनुच्छेद में उल्लिखित कार्यपालिका शक्ति संसद अथवा विधान मंडलों को प्रदान की गई तो सरकार पूर्णतया पंगु हो जायेगी। उदाहरणार्थ सम्पत्ति के विक्रय के प्रश्न को ही लीजिये। किसी सुदूर सैनिक कटक में एक कील भी सरकार की सम्पत्ति है, यदि कोई अधिकारी उसे बेचना चाहे तो क्या इस मामले को संसद के सम्मुख रखा जाना चाहिये? राज्य के दो अंग हैं, अर्थात् कार्यपालिका और विधान मंडल के निर्माण का अर्थ यही है कि कार्यपालिका के कार्य कार्यपालिका ही करेगी किन्तु वह इन कार्यों को विधान-मंडल द्वारा निर्धारित योग्यताओं, प्राधिकार तथा रीति के अधीन करेगी। इस प्रकार इस आदान-प्रदान के सम्बन्ध में संसद को कोई कार्यपालिका शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है, इसलिये मेरे विचार से, इस अनुच्छेद को जो भारत सरकार के अधिनियम से लिया गया है, विचारपूर्वक रखा गया और इसे रहने देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर, क्या आप बोलना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से श्री मुंशी ने सब बातें स्पष्ट कर दी हैं, और अब अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 272 में 'Part I' (भाग 1) शब्द और अंक जिन दो स्थानों पर आये हैं वहां 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 272, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 272, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 273

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 273 को उठाते हैं। डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 273 के खण्ड (1) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और अंक के बाद 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।

उपरोक्त संशोधन संख्या 201 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 273 के खण्ड (1) में जिन दो स्थानों पर 'Governor' (राज्यपाल) शब्द आया है, वहां 'or the Ruler' (अथवा राजप्रमुख) शब्द प्रविष्ट किये जायें।

उपरोक्त संशोधन संख्या 201 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 273 के खण्ड (2) में 'Governor of a State' (राज्य के राज्यपाल) शब्दों के स्थान में 'the Governor or the Ruler' (राज्यपाल अथवा राजप्रमुख) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद को उसके वर्तमान रूप में पढ़ने से यह पता नहीं चलता कि यदि कोई गलत आदान-प्रदान हुआ तो उसके लिये अन्ततोगत्वा कौन उत्तरदायी होगा। अनुच्छेद इस प्रकार है:

''संघ की अथवा इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में की गई सब संविदाएं, यथास्थिति राष्ट्रपति द्वारा अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा की गई कही जायेंगी तथा वे सब संविदाएं और सम्पत्ति सम्बन्धी हस्तान्तरण-पत्र, जो उस शक्ति के पालन के लिये किये जायें, राष्ट्रपति या राज्यपाल की ओर से उसके द्वारा निदेशित या प्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा और रीति के अनुसार लिखे जायेंगे।''

''की ओर से..... लिखे जायेंगे आदि'' शब्दों से मैं यह समझता हूं कि 'लिखे जायेंगे' शब्दों पर जोर नहीं दिया गया है किन्तु राष्ट्रपति के नाम पर जोर दिया गया है। मैं चाहता हूं कि इसे स्पष्ट कर दिया जाये ताकि भविष्य में इस अनुच्छेद का यह अर्थ न लगाया जा सके कि राज्यपाल अथवा उच्च पदस्थ अधिकारी एक बार जो भी करार कर दें वह कार्यान्वित करना ही होगा। यह मेरी समझ में आता है कि वह राज्यपाल के नाम से कार्यान्वित होगा, परन्तु प्रश्न यह है कि राज्यपाल के नाम से अथवा उन लोगों द्वारा, जो राज्यपाल के नाम से कार्य करें, जो भी करार किया जाये, चाहे वह हमारे हित में हो या न हो, क्या वह किसी भी दशा में भी कार्यान्वित किया जायेगा? उदाहरणार्थ ऐसे भी अवसर उपस्थित हो सकते हैं, जैसा कि हाल में उपस्थित हुआ था, जब कि भारत अधिराज्य अथवा मंत्रिमंडल के मंत्रियों ने एक वक्तव्य दिया था और कश्मीर के सम्बन्ध में कहा था कि वे जनमत संग्रह करेंगे और उस जनमत संग्रह के आधार पर.....

***अध्यक्ष:** यह विषय संविदा का है और इसका किसी ऐसे राजनैतिक कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है जिसकी चर्चा आप कर रहे हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** जी हां, संविदाओं के सम्बन्ध में भी यदि पदारूढ़ व्यक्ति सरकार की आस्तिओं का संविदाकरण करें तो क्या उनके लिये कोई रुकावट न होगी? क्या संसद उन संविदाओं का अनुसमर्थन करेगी अथवा वे केवल इस कारण कार्यान्वित की जायेंगी कि किसी पदारूढ़ व्यक्ति ने वचन दिया है? क्या संसद को अनुसमर्थन का अधिकार प्राप्त होगा या नहीं? राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में जो वचन दिये जाते हैं उनका प्रभाव आर्थिक मामलों पर भी पड़ता है। मैं कश्मीर की चर्चा नहीं करना चाहता। कई अन्य प्रकार के आदान-प्रदान भी हैं। मैं पहले की अथवा इस समय की सरकार के कार्यों

[श्री महावीर त्यागी]

के उदाहरण नहीं देना चाहता, किन्तु केवल काल्पनिक उदाहरणों को सभा के सम्मुख रखना चाहता हूं। किसी अवसर पर ऐसी भी कोई बड़ी आर्थिक संविदा की जा सकती है जिससे देश के हितों पर आघात हो, किन्तु इस अनुच्छेद में कहा गया है:

> ''संविदाएं और सम्पत्ति सम्बन्धी हस्तान्तरण पत्र जो उस शक्ति के पालन में किये जायें, राष्ट्रपति की ओर से लिखे जायेंगे।''

यदि अर्थ केवल यह हो कि संविदाएं राष्ट्रपति के नाम से कार्यान्वित की जायेंगी, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु यदि अर्थ यह हो कि उन्हें किस भी दशा में कार्यान्वित किया जायेगा, तो मुझे अवश्य आपत्ति है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** दायित्व तो है ही।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या आप बिना दायित्व की परिभाषा किये हुए ही दायित्व को स्वीकार करने जा रहे हैं? बात केवल इतनी नहीं है कि इसका उल्लेख हो कि दायित्व का निर्वहन राज्यपाल के नाम से अथवा अन्य व्यक्तियों के नाम से हो, क्योंकि वह राज्य का प्रमुख होगा और कार्यपालिका के सब कार्य उसके नाम से होंगे। किन्तु खण्ड (2) में कहा गया है कि न राष्ट्रपति न राज्य का राज्यपाल और न अब राजप्रमुख ही इस संविधान के प्रयोजनों हेतु की गई अथवा लिखी गई किसी संविदा या हस्तान्तरण पत्र के बारे में वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होगा। राज्यपाल के सम्बन्ध में तो यह बात समझ में आती है क्योंकि उसके नाम का उल्लेख रस्मी तौर से किया जाता है किन्तु उन पदाधिकारियों और मंत्रियों को क्षमा नहीं किया जा सकता, जो उसके नाम से गलत कार्य करते हैं। ऐसा पदाधिकारी अपने गलत कार्य के लिये वैयक्तिक तथा नैतिक रूप से उत्तरदायी होगा। इसके द्वारा यह विमुक्ति प्रदान की जा रही है कि जो कुछ भी किया जाये, उसके लिये न तो जिसके नाम से कार्य किया जायेगा, वह उत्तरदायी होगा और न जो कार्य करेगा वह उत्तरदायी होगा। जब तक कि संसद दायित्व का अनुसमर्थन न करे, किसी न किसी व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराना ही चाहिये। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इसका स्पष्टीकरण किया जाये क्योंकि बहुत बड़ी बातों के सम्बन्ध में वचन दिये जा सकते हैं, भले ही राष्ट्र इस प्रकार के वचन न देना चाहे। वचनों को कार्यान्वित करना होगा, किन्तु कोई भी व्यक्ति उनके लिये उत्तरदायी न होगा। मेरे विचार से राज्य के कार्यों को जो कोई भी व्यक्ति करे, उनके लिये उसे उत्तरदायी होना चाहिये, वैयक्तिक रूप से भी उत्तरदायी होना चाहिये। विदेशी शासन से हमें इस विचारधारा की देन मिली है कि सरकारी कार्य करने में यदि कोई व्यक्ति गलती करे तो वह उसके लिये वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी न होगा, जैसे कि सम्राट के समान कोई पदाधिकारी कोई गलत कार्य कर ही नहीं सकता। मैं इस विचारधारा से असहमत हूं और मेरी दृष्टि से वह निन्दनीय है। मेरी यह धारणा है कि यदि कोई व्यक्ति गलती करे अथवा राज्य के वित्त का गलत उपयोग करे अथवा कोई ऐसा कार्य करे, जिससे राष्ट्र के हित को हानि पहुंचे, तो उसे हमेशा यह ज्ञात रहना चाहिये कि उसका दायित्व उस पर है और उसी को उसका जवाब देना होगा तथा दायित्व को चुकाना होगा। आखिर दायित्व किसी का तो होना चाहिये, अन्यथा पदाधिकारी

सभी प्रकार के दायित्वों से विमुक्त होंगे और संविदाएं तथा करार स्वतंत्र रूप से किये जायेंगे और वचन भी स्वतंत्र रूप से दिये जायेंगे और उनके औचित्य का कोई ध्यान न रखा जायेगा। यदि राज्यपाल उत्तरदायी न हो तो जिन लोगों ने उसकी ओर से वचन दिया हो अथवा राष्ट्र को वचनबद्ध किया हो, उत्तरदायी ठहराये जाने चाहिये। मैं डा. अम्बेडकर के सम्मुख इस प्रश्न को रखता हूं और मुझे आशा है कि वे स्थिति को स्पष्ट करेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से मेरे मित्र श्री त्यागी की आपत्ति तर्कसंगत नहीं है। यदि वे अनुच्छेद 64(1) को तथा तद्विषयक भाग के राज्यपाल सम्बन्धी अनुच्छेद को देखने का कष्ट करें तो उन्हें विदित होगा कि भारत सरकार की अथवा किसी राज्य की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम से अथवा राज्यपाल के नाम से की हुई कही जायेगी। इस अनुच्छेद में भी बहुत कुछ अनुच्छेद 64 की शब्दावली प्रयुक्त है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में की गई सब संविदाएं राष्ट्रपति द्वारा की गई कही जायेंगी, इत्यादि।

''राष्ट्रपति द्वारा की गई कही जायेंगी'' शब्द प्रयुक्त है। वास्तव में न तो राष्ट्रपति न राज्यपाल और न नये संशोधन के अधीन राज्य का राजप्रमुख संविदा को करता हैं। जो भी संविदा संघ द्वारा अथवा राज्य द्वारा की जाती है वह राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा राजप्रमुख के नाम से की हुई कही जाती है।

***श्री महावीर त्यागीः** उसे वास्तव में करता कौन है?

***श्री एच.वी. कामतः** संघ अथवा राज्य उसे करता है।

***श्री महावीर त्यागीः** लोग उसे करते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि मेरे मित्र का यह विचार हो कि सम्पूर्ण प्रभुत्व का प्राधिकार लोगों में निहित है तो संघ में अथवा राज्य में जो कुछ होता है उसके लिये लोग उत्तरदायी हैं। यह इस पर निर्भर है कि संघ के अथवा राज्य के प्राधिकार को निहित करने को मेरे मित्र किसी प्रकार व्यक्त करना चाहते हैं। यदि वह लोगों में निहित है तो लोग उत्तरदायी हैं। हमारा संविधान लोकतंत्रात्मक संविधान है, इसीलिये सब कुछ लोगों के नाम से किया जाता है। संघ में अथवा राज्य में जो कुछ किया जाता है, अथवा लोगों के लिये अथवा लोगों द्वारा किया जाता है। किन्तु जो कुछ किया जाता है वह यथास्थिति राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा राजप्रमुख के नाम से किया हुआ कहा जाता है। यह कुछ संविदाओं को प्रभावी बताने के लिये अथवा प्रभाव में लाने के लिये केवल सांविधानिक अथवा विधानिक सूत्र है। अन्यथा यदि प्रत्येक संविदा पर संघ के लोगों को अथवा राज्य के लोगों को हस्ताक्षर करने पड़ें, तो सांविधानिक विधि के अधीन उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय उसका कुछ भी अर्थ न लगा सकेगा। किसी न किसी व्यक्ति को उस पर हस्ताक्षर करने होंगे। उदाहरणार्थ संधियों पर विदेश मंत्री के अथवा प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर होते हैं।

***श्री महावीर त्यागीः** मुझे राज्यपाल के नाम के प्रयोग पर कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु इस पर अवश्य आपत्ति है कि जो लोग इन उपक्रमों को करेंगे और देश को वचनबद्ध करेंगे, उन्हें विमुक्ति प्रदान की गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इसके सम्बन्ध में अभी बोलूंगा। खंड (2) में कहा गया है कि न तो राष्ट्रपति और न राज्यपाल इत्यादि वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह युक्तियुक्त तथा तर्कयुक्त है और साथ ही विधिसंगत भी है, जिसका ज्ञान सभा को पूर्ण रूप से है, कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा राजप्रमुख जिस कार्य को स्वयं न करें और जो उसके नाम से किया हुआ कहा जाये, उसके सम्बन्ध में केन्द्र में अथवा राज्य में मंत्रिमंडल संविदाकरण करेंगे और संघ का अथवा राज्य का औपाधिक प्रमुख संविदा पर हस्ताक्षर करेगा। वह वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इस अनुच्छेद का अर्थ केवल इतना ही है।

किन्तु मैं यह चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर अपने उत्तर में, यदि वे उत्तर दें तो एक अन्य बात को स्पष्ट करें। उसका सम्बन्ध इस अनुच्छेद की भाषा से है। मेरे विचार से कई अन्य अनुच्छेदों के समान इसे भी तदरूप भारत सरकार के अधिनियम से लिया गया है। इस अनुच्छेद के आरम्भ में ''संघ की अथवा राज्य की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में की गई सब संविदाएं'' शब्द हैं। किन्तु आगे चलकर ''वे सब संविदाएं और सम्पत्ति सम्बन्धी हस्तान्तरण-पत्र'' शब्द हैं संविधान की अथवा विधि की शब्दावली में इसका क्या अर्थ है, मैं कह नहीं सकता क्योंकि मैं वकील नहीं हूं। ''संविदा'' शब्द के अर्थ को मैं अच्छी तरह समझता हूं। किन्तु सम्पत्ति सम्बन्धी आश्वासन का क्या अर्थ है, मैं कह नहीं सकता। कथित अथवा लिखित आश्वासन क्या होंगे और सम्पत्ति के सम्बन्ध में क्या आश्वासन दिये जायेंगे, मैं कह नहीं सकता। चूंकि अनुच्छेद के आरम्भ में 'संविदा' शब्द आया है, क्या बाद को भी केवल 'संविदा' शब्द रखना पर्याप्त न होगा? मेरे विचार से केवल इसी शब्द को प्रयोग में लाना उचित होगा। जो शब्द प्रयुक्त है उनसे प्रथम उत्पन्न होने की तथा अनुच्छेद के सुबोध न होने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त डा. अम्बेडकर के संशोधन में राजप्रमुख शब्द आया है। मैं कह नहीं सकता कि आगे चल कर राज्यपाल और राजप्रमुख में विभेद करके हमसे उसे स्वीकार करने को कहा जायेगा या नहीं। आज यह विभेद है, इसीलिये मैंने यह सुझाव रखा था कि इन अनुच्छेदों को इस समय स्थगित रखा जाये। हमें सरदार पटेल और प्रधानमंत्री महोदय ने यह आश्वासन दिया है कि वे राज्यों को प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों अथवा राज्यपालों के प्रान्तों के अनुरूप बनाने का प्रयास कर रहे हैं और मुझे आशा है कि उनको सफलता प्राप्त होगी। मेरे विचार से जब संविधान प्रयोग में आयेगा तो भाग 1 और भाग 3 के राज्यों का विभेद न रह जायेगा और केवल एक ही वर्ग के राज्य हो जायेंगे तथा राज्यपाल और राजप्रमुख में जो अन्तर है वह भी विलुप्त हो जायेगा। शब्दावली के सम्बन्ध में मेरे विचार से नरेश को नरेश नहीं कहा गया है बल्कि राजा अथवा राज्यप्रमुख आदि कहा गया है।

***अध्यक्षः** यह प्रश्न कल उठाया गया था और डा. अम्बेडकर ने कहा था कि वे किसी अन्य उपयुक्त शब्द के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है कि मैं कल यहां उपस्थित नहीं था। इसीलिये मेरे ध्यान में यह आया कि राज्य की कार्यपालिका के प्रभुत्व के लिये ''राज्य का राजप्रमुख''

पदावली उपयुक्त न होगी। मुझे आशा है कि इन सभी को राज्यपाल कहा जायेगा और राजप्रमुख शब्द अब प्रयोग न किया जायेगा। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर इन बातों को स्पष्ट करेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मेरे विचार से मेरे माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी ने आपत्ति इस कारण की है कि उन्होंने अनुच्छेद 272 को सावधानी से नहीं पढ़ा है। उसके अधीन संविदाकरण की शक्ति प्रदान की गई है और वह विधान मंडलों के अधिनियमों के अधीन प्रदान की गई है। उन्होंने पाकिस्तान का उदाहरण दिया और यह बताया कि उसके साथ सम्पत्ति के सम्बन्ध में कौन सी संविदाएं आदि की गई हैं। मुझे विश्वास है कि जो कुछ भी किया गया है वह संसद की सहमति से किया गया है। इसलिये इस अनुच्छेद के अधीन जो भी संविदाएं की जायेंगी वे विधान मंडल की विधियों के अनुसार ही की जायेंगी और इन विधियों का खण्डन करके कोई व्यक्ति संविदा न कर सकेगा।

किन्तु मेरे विचार से अनुच्छेद 272 के दूसरे खण्ड की आवश्यकता नहीं है। यह सभी को विदित है कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल सरकार की ओर से कार्य करता है और इसलिये वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं हो सकता। इसलिये इस उपबन्ध को रखने की क्या आवश्यकता है?

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह बताना चाहता हूं कि अनुच्छेद 272 में ''सम्पत्ति के अनुदान, विक्रय, व्ययन या बंधक'' का उल्लेख है। अनुच्छेद 273 का आशय भिन्न है और उसमें ''संविदाओं और हस्तान्तरण-पत्रों'' आदि का उल्लेख है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि विधान-मंडल की विधियों के अधीन रहते हुए ही संविदाकरण हो सकता है। किन्तु अनुच्छेद 273(2) में जो छूट दी गई है उसका अर्थ मैं नहीं समझ पाया। यदि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल विधियों का खण्डन करेगा तो उस पर महाभियोग लगाया जा सकता है और किसी अन्य अधिकारी को इस दोष के लिये दंडित किया जा सकता है। इस उपधारा में जो छूट विशेष प्रकार से दी गई है उसका कारण मैं जानना चाहता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री कामत ''हस्तान्तरण-पत्रों'' के सम्बन्ध में कुछ कह रहे थे और मेरे विचार से इनका तर्क यह था कि हम एक स्थान पर ''संविदा'' शब्द प्रयोग कर रहे हैं और दूसरे स्थान पर ''हस्तान्तरण-पत्र''। ''हस्तान्तरण-पत्र'' बहुत पुरानी पदावली है और वह सभी प्रकार के हस्तान्तरण के अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। इसलिये ''हस्तान्तरण-पत्र'' शब्द में 'संविदा'' शब्द का आशय सम्मिलित है। इसलिये यदि ये दोनों शब्द भी प्रयोग किये जायें तो कोई कठिनाई न होगी, क्योंकि सम्पत्ति के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में हस्तान्तरण-पत्र का अर्थ संविदा ही है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैंने भाषा के सम्बन्ध में आपत्ति की थी। अनुच्छेद के आरम्भ में ''सब संविदाएं'' शब्द आये हैं और बाद को ''वे सब संविदाएं और सम्पत्ति सम्बन्धी हस्तान्तरण-पत्र'' आदि शब्द आये हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि भाषा के सम्बन्ध में कोई कठिनाई होगी, तो उस पर मसौदा समिति विचार करेगी। मैं यह बता रहा था कि विधि की दृष्टि से हस्तान्तरण-पत्र और संविदा में क्या अन्तर है।

इसके अतिरिक्त श्री त्यागी ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी संविदा पर हस्ताक्षर करता है तो वह उसके दायित्व से विमुक्त क्यों किया जाये। मेरे विचार से यदि श्री त्यागी को मंत्रिमंडल का सदस्य बना दिया जाता तो उनकी आपत्ति के बहुत अंश का निराकरण हो जाता। मैं उनसे यह पूछता हूं कि यदि वे भारत सरकार की ओर से कोई संविदा करते तो उसका दायित्व क्या उन पर होता? मुझे विश्वास है कि वे साधारण वाणिज्य सम्बन्धी प्रक्रिया से परिचित हैं। एक प्रधान अपनी ओर से कुछ कार्य करने के लिये एक अभिकर्त्ता नियुक्त करता है। जब तक कि अभिकर्त्ता ने प्रधान द्वारा उसे दिये हुए प्राधिकार का उल्लंघन न किया हो, तब तक प्रधान के हितसाधन के लिये उसने जो भी संविदा की हो, उसका दायित्व व्यक्तिगत रूप से उस पर न होगा। यहां भी इसी सिद्धांत का अनुसरण किया गया है। मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी को यह विदित नहीं है कि भारत सरकार में बहुत काल से इसी प्रथा का अनुसरण होता आया है कि किसी निश्चित प्रतिष्ठा के अधिकारी के निकाले हुए किसी दस्तावेज अथवा पत्र द्वारा ही भारत सरकार वचनबद्ध होती है। किसी अन्य अधिकारी द्वारा जारी किया हुआ दस्तावेज अथवा पत्र भारत सरकार के लिये बन्धनकारी नहीं होता। इसलिये इसे नियमों में स्पष्ट शब्दों में कहने की आवश्यकता होती है कि उपसचिव को अथवा संयुक्त सचिव को अथवा अतिरिक्त सचिव को अथवा केवल सचिव को ही भारत सरकार को वचनबद्ध करने की शक्ति प्राप्त होगी। इसलिये यह मेरी समझ में नहीं आता कि जो व्यक्ति भारत सरकार की ओर से केवल हस्ताक्षर कर रहा हो, उस पर व्यक्तिगत रूप से दायित्व क्यों, हो, क्योंकि वह भारत सरकार के प्राधिकार से अथवा उसके अन्तर्गत कार्य करेगा, यदि भारत सरकार किसी आदान-प्रदान के लिये स्वीकृति देती है, किन्तु विधान मंडल उस पर आपत्ति करता है और यह समझता है कि वह अनावश्यक है अथवा हानिकारक है अथवा कार्यपालिका सरकार को संसद द्वारा प्रदत्त विधायी प्राधिकार के अन्तर्गत नहीं है, तो यह मामला सरकार और संसद के आपस में तय करने का है। संसद या तो सरकार को पदच्युत कर सकती है या संविदा का शून्यन कर सकती है या जो भी चाहे कर सकती है। किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता कि किसी ऐसे व्यक्ति को, जो अन्य पक्ष को केवल यह विश्वास दिलाने के लिये नियुक्त किया गया हो कि वह भारत सरकार की ओर से हस्ताक्षर कर रहा है, किस प्रकार उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। मेरे मित्र श्री त्यागी की आपत्ति में कोई सार नहीं है।

***अध्यक्ष:** अब मैं इन विभिन्न संशोधनों पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 273 के खण्ड (1) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और अंक के बाद 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''उपरोक्त संशोधन संख्या 201 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 273 के खण्ड (1) में जिन दो स्थानों पर 'Governor' (राज्यपाल) शब्द आया है, वहां 'or the Ruler' (अथवा राजप्रमुख) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''उपरोक्त संशोधन संख्या 201 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 273 के खण्ड (2) में 'the Governor of a State' (राज्य के राज्यपाल) शब्दों के स्थान में 'the Governor or the Ruler' (राज्यपाल अथवा राजप्रमुख) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 273 संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 273 संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 274

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 274 पर विचार-विमर्श हो सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में दूसरी जगह जहां पर 'Government of India' (भारत-सरकार) शब्द आये हैं, उनके स्थान पर 'Union of India' (भारतीय संघ) शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में अपने अन्य संशोधनों को भी उपस्थित करना चाहता हूं।

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 274 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'Government of India' (भारत-सरकार) शब्दों के स्थान पर 'Union of India' (भारतीय संघ) शब्द रखे जायें।''

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2980 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और अंक के बाद 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।''

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2980 और 2981 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में 'by the Legislature' (विधान मंडल द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'of the Legislature' (विधान-मंडल का) शब्द रखे जायें।''

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''उपरोक्त संशोधन संख्या 204 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में 'corresponding Provinces' (तत्स्थानी प्रान्तों) शब्दों के बाद 'or the corresponding Indian States' (अथवा तत्स्थानी देशी राज्य) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''उपरोक्त संशोधन संख्या 206 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में–

(1) 'a Province' (कोई प्रान्त) शब्दों के बाद 'or an Indian State' (अथवा कोई देशी राज्य) शब्द प्रविष्ट किये जायें; और

(2) 'the Province' (प्रांत) शब्दों के बाद 'or the Indian State' (अथवा देशी राज्य) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं अपने संशोधन संख्या 2981 और संशोधन संख्या 2984 को उपस्थित नहीं कर रहा हूं। किन्तु यदि उचित समझा जाये, तो उन्हें मसौदा समिति के सामने उसके विचारार्थ रखा जाये।

(संशोधन संख्या 2982 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** क्या कोई सदस्य महोदय इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में बोलना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, संशोधन संख्या 2980 का उद्देश्य यह है कि जहां तक व्यवहार वाद उपस्थित करने अथवा अपने विरुद्ध व्यवहार वाद के उपस्थित होने का सम्बन्ध है 'भारत सरकार' शब्दों के स्थान में 'भारतीय संघ' शब्द रखे जायें। मैं कह नहीं सकता कि इस शब्द परिवर्तन का क्या प्रभाव होगा। अनुच्छेद 270 में कहा गया है कि भारत सरकार भारत अधिराज्य की उत्तराधिकारिणी होगी। जब मैंने यह सुझाव उपस्थित किया था कि इन शब्दों के स्थान में ''भारतीय संघ'' अथवा ''भारतीय गणराज्य'' शब्द रखे जायें, तो उसे सभा ने स्वीकार नहीं किया था। इसलिये जहां तक आस्तियों, दायित्वों और आभारों का सम्बन्ध है, हमने अनुच्छेद 270 के अधीन यह स्वीकार किया है कि भारत सरकार भारत अधिराज्य की उत्तराधिकारिणी है। किन्तु अनुच्छेद 274 में यह कहा गया है कि व्यवहारवाद उपस्थित करने और अपने विरुद्ध उपस्थित होने का सम्बन्ध है भारत सरकार से न होगा, बल्कि भारतीय संघ से होगा। जब तक भारत सरकार का अधिनियम प्रवर्तन में था, जब कभी भारत सरकार के विरुद्ध व्यवहारवाद उपस्थित किया जाता था,

अथवा उसे व्यवहार-वाद उपस्थित करना होता था, तो यह भारत मंत्री के नाम से किया जाता था। मैं यह कह नहीं सकता कि संघ के विरुद्ध व्यवहार वाद क्यों उपस्थित किया जाये और भारत सरकार के विरुद्ध क्यों न उपस्थित किया जाये। आखिर, भारतीय संघ है क्या? अनुच्छेद 2 में कहा गया है कि भारत एक राज्य-संघ होगा। विधि के अन्तर्गत जब व्यवहार-वाद उपस्थित किया जाता है, तो पूरे निकाय के विरुद्ध, संघीय सरकार के पूरे निगम-निकाय के विरुद्ध उपस्थित किया जाता है। विधि के अन्तर्गत संघ कोई ऐसा निगम नहीं है, जो व्यवहार-वाद उपस्थित कर सकता है अथवा जिसके विरुद्ध व्यवहार-वाद उपस्थित हो सकता है। केवल संघीय सरकार ही व्यवहार-वाद उपस्थित कर सकती है और उसके विरुद्ध व्यवहार-वाद उपस्थित हो सकता है। अनुच्छेद 1 के प्रकाश में यदि विधि की दृष्टि से हम ठीक-ठीक और उपयुक्त शब्दावली प्रयोग करना चाहते हैं, तो हमें इस अनुच्छेद में ''भारतीय संघ की सरकार'' शब्द रखने चाहिये। किन्तु वर्तमान शब्दावली से भी आशय स्पष्ट हो जाता है और इसलिये समझदारी इसी में है कि ''भारत सरकार'' पदावली को रहने दिया जाये, न कि उसके स्थान में ''संघीय सरकार'' पदावली रखी जाये, जैसा कि संशोधन संख्या 2980 द्वारा प्रस्ताव किया गया है।

जहां तक डा. अम्बेडकर के अन्य संशोधनों का सम्बन्ध है, उनमें कुछ बातें अस्पष्ट हैं। यदि डा. अम्बेडकर अनुच्छेद 270 को देखें तो उन्हें विदित होगा कि वह राज्यपालों के प्रान्तों के सम्बन्ध में है। इस अनुच्छेद में हमने प्रान्तों का उल्लेख किया है। मेरे विचार से यह एक गलती है। जहां तक विधि की शब्दावली का सम्बन्ध है, मेरे विचार से प्रान्तों का उल्लेख राज्यपालों के प्रान्तों के रूप में होना चाहिये और केवल प्रान्तों के रूप में न होना चाहिये। यदि हम प्रथम अनुसूची के भाग 1 को देखें तो हमें विदित होगा कि उसमें प्रांतों का उल्लेख राज्यपालों के प्रान्तों के रूप में है।

श्रीमान्, अब मैं इस अनुच्छेद के खण्ड (2) को उठाता हूं। इस खण्ड के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है, उसकी संख्या 207 है। हम कह नहीं सकते कि जिस समय संविधान प्रवर्तन में आयेगा उस समय स्थिति क्या होगी। खण्ड (2) का उपखण्ड (ख) राज्यपालों के प्रान्तों के सम्बन्ध में है और डा. अम्बेडकर के संशोधन के अधीन उसका सम्बन्ध देशी राज्यों से भी हो जायेगा। यह एक काल्पनिक उदाहरण है, किन्तु यदि किसी ऐसे देशी राज्य के सम्बन्ध में, जो संविधान के प्रवर्त्तन में आने के समय भारतीय संघ का एकक हो, कोई ऐसी न्यायिक कार्यवाही लम्बित हो जिसमें वह देशी राज्य एक पक्ष हो और यदि बाद में अनुच्छेद 3 के अधीन अथवा किसी अन्य प्रकार संसद विधि द्वारा, इस राज्य को किसी प्रान्त में समाविष्ट करने अथवा उपखण्ड (ख) के अधीन तत्स्थानी किसी देशी राज्य में समाविष्ट करने के सम्बन्ध में उपबन्ध रखे, तो उस राज्य का क्या होगा, जिसका निकटवर्ती प्रांत में समाविष्ट होने के कारण लोप हो जायेगा? इस प्रकार का कोई तत्स्थानी राज्य न रह जायेगा।

ये सब बातें इस समय अस्पष्ट हैं और इसी कारण मेरे विचार से समझदारी इसी में है कि इस अध्याय पर विचार-विमर्श उस समय तक स्थगित रखा जाये जब तक कि सब बातें स्पष्ट न हो जायें और राज्यों तथा संघ के भी सम्बन्ध स्पष्ट न हो जायें। किन्तु

[श्री एच.वी. कामत]

कुछ अनुच्छेद उपस्थित किये जा चुके हैं और उन्हें सभा स्वीकार कर चुकी है। मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में कुछ बातें अस्पष्ट हैं और मुझे आशा है कि इसके पूर्व कि यह अनुच्छेद स्वीकार किया जाये डा. अम्बेडकर अथवा उनके कोई सहकारी महोदय सभा के सम्मुख इन बातों को स्पष्ट करेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मुझे केवल एक ही विषय के सम्बन्ध में कुछ कहना है। अनुच्छेद 274(1) में 'इस संविधान से दी हुई शक्तियों के आधार पर' शब्द बिल्कुल अनावश्यक और निरर्थक हैं क्योंकि न तो संसद और न किसी राज्य का विधान-मंडल बिना इस संविधान से दी हुई शक्तियों के कार्य कर सकते हैं। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि ये शब्द निकाल दिये जायें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, उचित यह होगा कि मैं सभा के सम्मुख इस अनुच्छेद को उस रूप में पढ़ कर सुनाऊं जैसा कि यह मेरे विभिन्न संशोधनों को समाविष्ट करने से ही जायेगा। अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

> ''भारत संघ के नाम से, भारत सरकार व्यवहार-वाद ला सकेगी अथवा उसके विरुद्ध व्यवहार-वादी लाया जा सकेगा तथा इस समय प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य के नाम से, उस राज्य की सरकार व्यवहार-वाद ला सकेगी अथवा उसके विरुद्ध व्यवहार-वाद लाया जा सकेगा, तथा इस संविधान से दी हुई शक्तियों के आधार पर, संसद द्वारा ऐसे राज्य के विधान मंडल द्वारा, जो अधिनियम बनाया जाये, उसके उपबंधों के अधीन रहते हुए वे अपने अपने कार्यों के बारे में उसी प्रकार व्यवहार-वाद ला सकेंगे, अथवा उनके विरुद्ध उसी प्रकार व्यवहार-वाद लाया जा सकेगा, जिस प्रकार भारत अधिराज्य और तत्स्थानी प्रान्त अथवा तत्स्थानी देशी राज्य व्यवहार-वाद ला सकते अथवा उनके विरुद्ध व्यवहार-वाद लाया जा सकता, यदि इस संविधान को अधिनियम का रूप न दिया गया होता।
>
> (2) यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर—
>
> (क) कोई ऐसी विधि कार्यवाहियां लम्बित हैं जिसमें भारत अधिराज्य एक पक्ष है, तो उन कार्यवाहियों में उक्त अधिराज्य के स्थान में भारत संघ समझा जायेगा, तथा
>
> (यह एक नई बात है–)
>
> (ख) कोई ऐसी विधि-कार्यवाहियां लम्बित हैं, जिनमें कोई प्रान्त या कोई देशी राज्य एक पक्ष है, तो उन कार्यवाहियों में उस प्रान्त या देशी राज्य के स्थान में तत्स्थानी राज्य समझा जायेगा।''

यह स्पष्ट है कि इस अनुच्छेद में यह निर्धारित किया गया है कि व्यवहार-वाद और कार्यवाहियां किस प्रकार आरम्भ की जायेंगी, इसका और कोई महत्त्व नहीं है। आरम्भ में ये शब्द थे कि भारत सरकार के नाम से व्यवहार-वाद लाया जायेगा। यह स्पष्ट है कि

भारत सरकार अर्थात् कार्यपालिका सरकार एक अस्थायी निकाय होगी। एक समय जो सरकार पदारूढ़ होगी वह आगे चल कर लुप्त हो जायेगी और कुछ अन्य लोग आयेंगे जो कार्यपालिका का भार सम्भालेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** सरकार अस्थायी न होगी, सरकार के पदाधिकारी भले ही अस्थायी हो सकते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** भारत सरकार और भारतीय संघ में अन्तर है। भारत सरकार, विधि की दृष्टि से एकक नहीं है, भारतीय संघ विधि की दृष्टि से एकक है। वह एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न एकक है और उसके अधिकार तथा आभार हैं। इसलिये यह उचित ही है कि केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध जो कोई व्यवहार-वाद लाया जाये वह संघ के नाम से लाया जाये अथवा संघ के विरुद्ध लाया जाये।

''तत्स्थानी राज्य'' पदावली के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति की गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कहना कठिन होगा कि कौन राज्य पुराने राज्य का तत्स्थानी राज्य होगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिये अनुच्छेद 303 (1) (6) में उपबंध रखा गया है, जो संविधान के मसौदे के पृष्ठ 145 पर देखा जा सकता है। वह इस प्रकार है कि तत्स्थानी प्रान्त अथवा तत्स्थानी राज्य से संशयात्मक दशाओं में अभिप्रेत है ऐसा प्रान्त या राज्य जिसे प्रश्नास्पद विशिष्ट प्रयोजन के लिये राष्ट्रपति यथास्थिति तत्स्थानी प्रान्त अथवा तत्स्थानी राज्य निर्धारित करे। चूंकि क्षेत्र आदि में कुछ परिवर्तन होंगे और यह कहना कठिन है कि पुराने प्रान्त अथवा राज्य का तत्स्थानी प्रान्त अथवा राज्य कौन होगा इसलिये यह कठिनाई राष्ट्रपति को यह निर्धारित करने की शक्ति देने से ही दूर हो सकती है कि किसी पुराने राज्य का तत्स्थानी राज्य कौन है। इसी कारण यह उपबंध रखा गया है।

उपखण्ड (2) लम्बित कार्यवाहियों के सम्बन्ध में है और उसमें केवल यह सुझाव रखा गया है कि जब कभी कोई कार्यवाहियां लम्बित हों और जब व्यवहार-वाद लाने वाले पक्ष अथवा जिनके विरुद्ध व्यवहार-वाद लाया जाये वे पक्ष उन पक्षों से भिन्न हों जिनके सम्बन्ध में हमने उपखण्ड (1) में उपबन्ध रखे हैं, तो पुरानी कार्यवाहियों में भारतीय संघ अथवा तत्स्थानी राज्य शब्द प्रविष्ट किये जायेंगे ताकि राज्यों के विरुद्ध अनुच्छेद 274 (1) के अधीन व्यवहार-वाद लाया जा सके। मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने यह आपत्ति की है कि 'इस संविधान से दी हुई शक्तियों के आधार पर' शब्द बिल्कुल अनावश्यक हैं और इसके सम्बन्ध में मुझे केवल यह कहना है कि मैं उनके कथन से सहमत नहीं हूं और मेरे विचार से ये शब्द बहुत आवश्यक हैं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

> ''अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में दूसरी जगह जहां पर 'Government of India' (भारत सरकार) शब्द आये हैं उनके स्थान पर 'Union of India' (भारतीय संघ) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 274 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'Government of India' (भारत सरकार) शब्दों के स्थान पर 'Union of India' (भारतीय संघ) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2980 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खंड (1) में 'Part I' (भाग 1) शब्द और अंक के बाद 'or Part III' (अथवा भाग 3) शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2980 और 2981 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में 'by the Legislature' (विधान मंडल द्वारा) शब्दों के स्थान पर 'of the Legislature' (विधान-मंडल का) शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''उपरोक्त संशोधन संख्या 204 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (1) में 'corresponding Provinces' (तत्स्थानी प्रान्तों) शब्दों के बाद 'or the corresponding Indian States' (अथवा तत्स्थानी देशी राज्य) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''उपरोक्त संशोधन संख्या 206 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 274 के खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) में–

(1) 'a Province' (कोई प्रान्त) शब्दों के बाद 'or an Indian State' (अथवा कोई देशी राज्य) शब्द प्रविष्ट किये जायें; और

(2) 'The Province' (प्रांत) शब्दों के बाद 'or the Indian State' (अथवा देशी राज्य) शब्द प्रविष्ट किये जायें।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''अनुच्छेद 274, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया गया।

नवीन अनुच्छेद 274-क

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श स्थगित किया जाये।

***अध्यक्ष:** इसके अतिरिक्त श्री सिधवा का एक लम्बा संशोधन है जिसका उद्देश्य एक नवीन भाग प्रविष्ट करना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं यह सुझाव रखता हूं कि सभा भाग 13 निर्वाचन विषयक अध्याय को उठाये, अर्थात् जैसा कि कार्यावली में अंकित है अनुच्छेद 289 पर और उसके आगे के अनुच्छेद पर विचार किया जाये।

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं जिस नवीन अनुच्छेद को उपस्थित करना चाहता हूं उसका सम्बन्ध स्थानीय क्षेत्रों अर्थात् सारे भारत के राज्य क्षेत्र के शहरी और देहाती क्षेत्रों के परिसीमन से है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इसे स्थगित किया जा रहा है।

***श्री आर.के. सिधवा:** तब श्रीमान्, मैं उसे उस समय उपस्थित करूंगा जब कि तत्सम्बन्धी अनुच्छेद उठाया जायेगा।

अनुच्छेद 289

***अध्यक्ष:** अब हम भाग 13-अनुच्छेद 289 को उठाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि संशोधन संख्या 99 को पहले उठाया जाये क्योंकि उससे पूरे अनुच्छेद के स्थान पर दूसरा अनुच्छेद प्रविष्ट हो जाता है? अन्य सभी संशोधनों पर उसके बाद विचार किया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

''अनुच्छेद 289 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'289. *Superintendence, directions and control of elections to be vested in an election commission*—(1) The superintendence, direction and control of preparation of the electoral rolls for, and the conduct of, all elections to

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

Parliament and to the Legislature of every State and of elections to the office of President and Vice-President held under this Constitution, including the appointment of election tribunals for the decision of doubts and disputes arising out of or in connection with elections to Parliament and to the Legislatures of States shall be vested in a Commission (referred to in this Constitution as the Election Commission) to be appointed by the President.

(2) The Election Commission shall consist of the Chief Election Commissioner and such number of other Election Commissioners, if any, as the President may, from time to time appoint, and when any other Election Commissioner is so appointed, the Chief Election Commissioner shall act as the Chairman of the Commission.

(3) Before each general election to the House of the People and to the Legislative Assembly of each State and before the first general election and thereafter before each biennial election to the Legislative Council of each State having such Council, the President shall also appoint after consultation with the Election Commission such Regional Commissioners as he may consider necessary to assist the Election Commission in the performance of the functions conferred on it by clause (1) of this article.

(4) The conditions of service and tenure of office of the Election Commissioners and the Regional Commissioners shall be such as the President may by rule determine:

Provided that the Chief Election Commissioner shall not be removed from office except in like manner and on the like grounds as a judge of the Supreme Court and the conditions of the service of the Chief Election Commissioner shall not be varied to his disadvantage after his appointment:

Provided further that any other Election Commissioner or a Regional Commissioner shall not be removed from office except on the recommendation of the Chief Election Commissioner.

(5) The President or the Governor or Ruler of a State shall, when so requested by the Election Commission, make available to the Election Commission or to a Regional Commissioner such staff as may be necessary for the discharge of the functions conferred on the Election Commission by clause (1) of this article.' "

[289. *निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण निर्वाचन आयोग में निहित होंगे*— (1) इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल के लिये नामावली तैयार कराने का तथा उन समस्त निर्वाचनों के संचालन का तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, जिसके अन्तर्गत संसद के तथा राज्यों के विधानमंडलों के निर्वाचनों से उदभूत या संसक्त सन्देहों और विवादों के निर्णय के लिये निर्वाचन-न्यायाधिकरण की नियुक्ति भी है, एक आयोग में निहित होगा (जो इस संविधान में "निर्वाचन आयोग" के नाम से निर्दिष्ट है।)

(2) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा, यदि कोई हो तो, अन्य उतने निर्वाचन आयुक्तों से, जितने कि राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिल कर बनेगा और जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया गया हो तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन-आयोग के सभापति के रूप में कार्य करेगा।

(3) लोक-सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पूर्व, तथा विधान-परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान-परिषद् के लिये पहले साधारण निर्वाचन तथा तत्पश्चात् प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पूर्व राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग से परामर्श करके खंड (1) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिए गये कृत्यों के पालन में आयोग की सहायता के लिये ऐसे प्रादेशिक आयुक्त भी नियुक्त कर सकेगा जैसे वह आवश्यक समझे।

(4) संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए निर्वाचनों आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे:

परन्तु मुख्य निर्वाचन-आयुक्त पद से वैसे कारणों और वैसी रीति के बिना न हटाया जायेगा जैसे कारणों और रीति से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है तथा मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की अपनी नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा की शर्तों में उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन न किया जायेगा:

परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन-आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

(5) जब निर्वाचन आयोग ऐसी प्रार्थना करे तब, राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्त को ऐसे कर्मचारी वृन्द प्राप्य करायेगा जैसे कि खंड (1) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिये गये कृत्यों के लिये आवश्यक हो।]

***अध्यक्ष:** मुझे कई संशोधनों की सूचना दी गई है। कुछ का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 289, 290 और 291 के स्थान पर अन्य अनुच्छेद प्रविष्ट किये जायेंगे और कुछ संशोधन उन संशोधनों पर हैं जो उपस्थित किये जायें। मेरे विचार से मुझे उन संशोधनों को पहले उठाना चाहिये जिनका उद्देश्य यह है कि इन अनुच्छेदों के स्थान पर अन्य अनुच्छेद रखे जायें। डा. अम्बेडकर एक संशोधन उपस्थित कर चुके हैं। एक अन्य संशोधन पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि डा. अम्बेडकर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसके सम्बन्ध में क्या वे कुछ कहने नहीं जा रहे हैं? उसका सम्बन्ध एक महत्त्वपूर्ण विषय से है। क्या यह उचित नहीं है कि अनुच्छेद 289 के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसके सम्बन्ध में वे कुछ कहें? मेरे विचार से उचित यही होगा कि वे सभा को यह बताने का कष्ट करें कि वे अनुच्छेद 289 के स्थान पर एक नवीन अनुच्छेद को किस कारण प्रविष्ट करना चाहते हैं। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है और यह खेद की बात है कि इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने कुछ भी कहना उचित नहीं समझा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, इस प्रस्ताव के समर्थन में मैंने दो कारणों से कुछ कहना उचित नहीं समझा। एक कारण यह है कि यदि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में वादानुवाद हुआ, जो अवश्य ही होगा, तो उस समय कुछ प्रश्न उठाये जायेंगे और मैंने यही उचित समझा कि मैं उनका अन्त में उत्तर दूं ताकि मेरे भाषण में उन्हीं तर्कों की पुनरुक्ति न हो। एक कारण यह है।

दूसरा कारण यह है कि मैंने यह विचार किया कि प्रत्येक सदस्य ने मेरा संशोधन पढ़ लिया होगा और चूंकि वह बहुत सरल है, इसलिये उसका आशय हर एक समझ गया होगा। यह स्पष्ट है कि मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू जल्दी में इस अनुच्छेद के मेरे नये मसौदे को नहीं पढ़ पाये हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैंने उसकी प्रत्येक पंक्ति पढ़ी है। मैं केवल यह चाहता हूं कि माननीय सदस्य महोदय सभा के प्रति कुछ आदर भाव दिखायें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** सभा को स्मरण होगा कि बहुत पहले संविधान सभा ने अपनी कार्यवाहियों में मूलाधिकारों पर विचार करने के लिये एक समिति नियुक्त करने का आयोजन किया था। उस समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह लिखा था कि यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि निर्वाचनों को स्वतंत्र रूप से करना तथा विधान-मंडल

के निर्वाचनों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप न होने देना एक मूलाधिकार है और इसे मूलाधिकार विषयक अध्याय में समाविष्ट करना चाहिये। जब यह विषय सभा के सामने रखा गया तो सभा ने यह मत प्रकट किया कि यद्यपि इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि यह एक आधारभूत महत्त्व का विषय है किन्तु इसे संविधान के किसी अन्य भाग में स्थान देना चाहिये न कि मूलाधिकार विषयक अध्याय में। सभा ने बिना किसी प्रकार की असहमति प्रकट किये हुए इसकी पुष्टि की कि विधान मंडलों के लिये स्वतंत्र तथा शुद्ध रूप से निर्वाचनों को करने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि उनमें तत्कालीन कार्यपालिका का किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। सभा के इस निर्णय को देखते हुए मसौदा समिति ने इस विषय को मूलाधिकारों के अध्याय से निकाल दिया और उसे एक पृथक भाग में, जिसमें अनुच्छेद 289, 290 आदि है स्थान दिया। इसलिये जहां तक इस आधारभूत प्रश्न का सम्बन्ध है कि निर्वाचन-संगठन पर कार्यपालिका सरकार का कोई नियंत्रण न होना चाहिये, किसी प्रकार का मतभेद नहीं था। अनुच्छेद 289 में संविधान-सभा के उसी निर्णय का समावेश है। उसके द्वारा संसद के तथा राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण तथा उनके लिये नामावली तैयार करने का अधिकार कार्यपालिका के अतिरिक्त एक निकाय को सौंपा गया है जो निर्वाचन-आयोग कहा जायेगा। उपखण्ड (1) में यही उपबन्ध है।

उपखण्ड (2) में कहा गया है कि एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा उतने अन्य निर्वाचन आयुक्त होंगे जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करे। मसौदा समिति के सामने दो विकल्प थे, अर्थात् या तो एक स्थायी निकाय को स्थापित करना जिसमें निर्वाचन आयोग के चार या पांच सदस्य हों जो बराबर पदासीन रहें, या निर्वाचन काल में एक तदर्थ निकाय को स्थापित करने की शक्ति राष्ट्रपति को देना। समिति ने मध्य के मार्ग का अवलम्बन किया। उपखण्ड (2) द्वारा मसौदा समिति ने यही प्रस्ताव किया है कि एक व्यक्ति को, अर्थात् मुख्य निर्वाचन आयुक्त को, स्थायी रूप से पदासीन रखा जाये ताकि निर्वाचन संगठन सूक्ष्म रूप में हमेशा उपलब्ध रहे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि साधारणतया प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात् निर्वाचन होंगे किन्तु यह प्रश्न भी है कि उप निर्वाचन किसी समय हो सकते हैं पांच वर्ष समाप्त होने के पूर्व ही विधान सभा विघटित हो सकती है। इसलिये निर्वाचन नामावली को हर समय तैयार रखना होगा ताकि नया निर्वाचन बिना किसी कठिनाई के हो सके। इसलिये इन आकस्मिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह पर्याप्त होगा कि एक पदाधिकारी, जो मुख्य निर्वाचन आयुक्त के नाम से कहा जायेगा, स्थायी रूप से पदासीन रहे और जब निर्वाचन हों तब राष्ट्रपति अन्य लोगों को नियुक्त करके निर्वाचन आयोग में सम्मिलित कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, आरम्भ में अनुच्छेद 289 के अधीन यह आयोजन था कि केन्द्रीय विधान मंडल के उत्तर और अवर दोनों सभाओं के निर्वाचनों के लिये एक आयोग हो और प्रत्येक प्रान्त तथा राज्य के लिये एक पृथक निर्वाचन आयोग हो जिसे राज्यपाल अथवा राज्य का राजप्रमुख नियुक्त करे। उसमें तथा अनुच्छेद 289 के वर्तमान रूप में निस्संदेह आधारभूत अन्तर है। इस अनुच्छेद के अधीन यह प्रस्ताव रखा गया है कि निर्वाचन संगठन एक ही आयोग के हाथ में रखा जाये और उसकी सहायता प्रादेशिक आयुक्त करे जो

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रान्तीय सरकार के अधीन रह कर कार्य न करे बल्कि केन्द्रीय निर्वाचन आयोग के अधीक्षण तथा नियंत्रण में कार्य करे। जैसा कि मैं कह चुका हूं यह एक आधारभूत परिवर्तन है। किन्तु यह परिवर्तन आवश्यक हो गया है क्योंकि हम यह देखते हैं कि इस समय भारत के कुछ प्रान्तों में मिश्रित जन समुदाय है। उनमें एक तो वे लोग बसते हैं जो आरम्भ से वहां के निवासी हैं उनके साथ ऐसे लोग भी रहते हैं जिनका मूलवंश तथा जिनकी भाषा तथा संस्कृति उन बहुसंख्यक लोगों से भिन्न है जो वहां के निवासी हैं। मसौदा समिति तथा केन्द्रीय सरकार के ध्यान में यह बात लाई गई है कि ऐसे प्रान्तों में कार्यपालिका सरकार इस प्रकार से प्रबन्ध कर रही है अथवा इस प्रकार से प्रबन्ध करने का आदेश दे रही है कि ये लोग जिनका मूलवंश तथा जिनकी भाषा और संस्कृति वहां के निवासियों से भिन्न है, निर्वाचन नामावलियों में स्थान नहीं दिये जा रहे हैं। मैं आशा करता हूं कि सभा यह समझती है कि मताधिकार ही जनतंत्र का आधार स्तम्भ है। हमारे संविधान के अधीन वर्णित अवस्थाओं में 21 वर्ष की आयु का यदि कोई वयस्क मतदाता के रूप में निर्वाचन नामावली में स्थान दिया जा सकता है तो उसे किसी स्थानीय सरकार के विद्वेष के कारण अथवा किसी पदाधिकारी की सनक के कारण इस अधिकार से वंचित न किया जाना चाहिये। यदि यह हुआ तो इससे जनतंत्रात्मक सरकार के मूल पर ही आघात होगा। इसलिये ताकि किसी प्रान्त के ऐसे लोगों के प्रति जिनका मूलवंश तथा जिनकी भाषा और संस्कृति वहां के निवासियों से भिन्न हो प्रान्तीय सरकारें अन्याय न कर सकें। यह उचित समझा गया कि उस मूल प्रस्ताव को स्वीकार न किया जाये जिसके अधीन प्रत्येक प्रान्त के लिये तक पृथक निर्वाचन आयोग स्थापित किया जाता और उसका पथप्रदर्शन राज्यपाल और स्थानीय सरकार द्वारा होता। इसी कारण इस अनुच्छेद में परिवर्तन किया गया है और अब इसके अधीन यह आयोजन है कि निर्वाचन का पूरा संगठन केन्द्रीय निर्वाचन आयोग के हाथ में हो और वह आयोग निर्वाचक-पदाधिकारियों, मतग्राही पदाधिकारियों और निर्वाचक- नामावली के पर्यावलोकन में लगे हुए अन्य लोगों को निदेश दे ताकि भारत के किसी ऐसे नागरिक के प्रति अन्याय न हो सके, जिसे संविधान के अधीन निर्वाचक-नामावली में अपना नाम प्रविष्ट कराने का अधिकार हो। संविधान के मसौदे के वर्तमान उपबन्धों में यही एक आधारभूत परिवर्तन किया गया है।

जहां तक खण्ड (4) का सम्बन्ध है, हमने यह राष्ट्रपति पर छोड़ दिया है कि वह निर्वाचन आयोग के सदस्यों की सेवा की शर्तें तथा पदावधि निश्चित करे किन्तु एक दो शर्तें भी रख दी हैं और इसका उल्लेख कर दिया है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त उन्हीं दशाओं में हटाया जा सकेगा जिन दशाओं में उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश हटाया जा सकता है। यदि इस सभा का उद्देश्य यह है कि निर्वाचन-सम्बन्धी मामलों पर तत्कालीन कार्यपालिका सरकार का नियंत्रण न रहे तो यह अत्यंत आवश्यक है कि हम जिस नवीन संगठन को, अर्थात् निर्वाचन-आयोग को, स्थापित करने जा रहे हैं उसे कार्यपालिका स्वेच्छा से विघटित न कर सके। इसलिये जहां तक पदच्युत होने का प्रश्न है, हमने उसके सम्बन्ध में मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की वही प्रतिष्ठा निश्चित की है जो उच्चतम न्यायालय के

न्यायाधीशों की है। किन्तु हम इस आयोग के अन्य सदस्यों को यह प्रतिष्ठा प्राप्त कराने नहीं जा रहे हैं। हमने यह राष्ट्रपति पर छोड़ दिया है कि वह जिन दशाओं में भी उचित समझे, निर्वाचन-आयोग के अन्य सदस्यों को पदच्युत करे, हमने केवल एक शर्त रखी है और वह यह है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त को इस आशय की सिफारिश देनी होगी कि अमुक व्यक्ति को पदच्युत करना उचित तथा न्यायपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त हमें यह प्रश्न भी हल करना था कि जो कार्य निर्वाचन आयोग को सौंपा गया है उसे पूरा करने के लिये उसे स्वतंत्र रूप से अपने कर्मचारी रखने का प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये अथवा नहीं। यह अनुभव किया गया कि यदि निर्वाचन आयोग को, निर्वाचक-नामावली तैयार करने, निर्वाचक नामावलियों का पर्यावलोकन करने और निर्वाचनों के संचालन आदि का कार्य करने के लिये स्वतंत्र रूप से कर्मचारी वर्ग रखने का प्राधिकार दिया गया तो दो स्थानों पर कर्मचारी-वर्ग एक ही कार्य करेंगे जिससे प्रशासन-व्यय व्यर्थ में बढ़ जायेगा। यह धन बड़ी आसानी से बचाया जा सकता है क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, निर्वाचन-आयोग के पास कभी तो बहुत काम होगा और कभी कुछ भी काम न होगा। इसलिये खण्ड (5) में हमने यह उपबन्धित किया है कि निर्वाचन-आयोग को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह प्रान्तीय सरकारों से, दफ्तर के काम के लिये ऐसे कर्मचारियों को ले जिनकी उसे अपने काम को पूरा करने के लिये आवश्यकता हो। जब काम पूरा हो जायेगा तो ये कर्मचारी प्रान्तीय सरकार को वापस कर दिये जायेंगे। किन्तु जब तक ये लोग निर्वाचन आयोग के अधीन कार्य करेंगे तब तक उसी के प्रशासन के अधीन रहेंगे और कार्यपालिका सरकार के प्रशासन के अधीन नहीं रहेंगे। इस अनुच्छेद में यही उपबन्ध है। मुझे आशा है कि सभा की समझ में अब यह आ गया होगा कि उनका अर्थ क्या है और उनमें तथा संविधान के मसौदे के मूल अनुच्छेदों में कितना अन्तर है।

***अध्यक्षः** पंडित ठाकुरदास भार्गव, क्या आप अपने संशोधन उपस्थित कर रहे हैं?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** जी नहीं, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** श्री कपूर अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर रहे हैं। अब इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श हो सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैंने अनुच्छेद 289 के सम्बन्ध में एक संशोधन पर एक संशोधन की सूचना दी है।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

> ''सूची 1 (पांचवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 99 में निम्नलिखित संशोधन समाविष्ट किये जायें:

(1) खण्ड (1) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़े जायें:

'Subject to confirmation by 2èk3rd majority in a joint session of both the Houses of Parliament.'

(संसद के दोनों सदनों के संयुक्त सत्र में सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत के समर्थन के अधीन।)

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(2) खण्ड (2) में 'appoint' (नियत करे) शब्द के बाद निम्नलिखित शब्द प्रविष्ट किये जायें:

'Subject to confirmation by 2èk3rd majority in a Joint Session of both the Houses of Parliament.'

(संसद के दोनों सदनों के संयुक्त सत्र में सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत के समर्थन के अधीन।)

(3) खण्ड (3) में 'after consultation with' (से परामर्श करके) शब्दों के स्थान पर 'in concurrence with' (से सहमति प्राप्त करके) शब्द रखे जायें।

(4) खण्ड (4) में 'President may by rule determine' (राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे) शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law determine' (संसद विधि-द्वारा निर्धारित करे) शब्द रखे जायें।

(5) खण्ड (4) के परन्तुक (1) में 'Chief Election Commissioner' (मुख्य-निर्वाचन-आयुक्त) शब्द जिन दो स्थानों पर आये हैं उनके स्थान पर 'Election Commissioner' (निर्वाचन-आयुक्त) शब्द रखे जायें।

(6) खण्ड (4) के परन्तुक (2) में 'any other Election Commissioner or' (अन्य निर्वाचन-आयुक्त या) शब्द निकाल दिये जायें।''

अध्यक्ष महोदय, मैं डा. अम्बेडकर को उनके संशोधन के लिये बधाई देता हूं। जैसा कि वे कह चुके हैं, उनके संशोधन में मूलाधिकार-समिति की सिफारिशों को ही समाविष्ट किया गया है। वास्तव में यह विषय इतना महत्त्वपूर्ण है कि एक समय इसका उल्लेख मूलाधिकारों के ही अध्याय में करने का विचार किया गया था। उद्देश्य यह है कि संविधान में वयस्क मताधिकार की ही प्रत्याभूति न दी जाये बल्कि उसे यथोचित रूप से व्यवहार में लाने की भी प्रत्याभूति दी जाये। उन्होंने हमें बताया कि उन्होंने निर्वाचन-आयोग को कार्यपालिका से बिल्कुल पृथक करने का प्रयास किया है और इसलिये उन्हें आशा है कि इस प्रणाली के अधीन सभी लोगों को मत देने का न केवल मूलाधिकार प्राप्त हो जायेगा। बल्कि उसका यथोचित रूप से प्रयोग भी हो सकेगा, जिससे निर्वाचित सदस्य सच्चे अर्थ में देश के लोगों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करेंगे। इस संशोधन को ध्यानपूर्वक पढ़ने के पश्चात् मैंने अपने उपरोक्त संशोधनों का सुझाव रखा है ताकि डा. अम्बेडकर के संशोधन का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो सके।

मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि निर्वाचन-आयोग कार्यपालिका से बिल्कुल पृथक हो। इसमें सन्देह नहीं कि प्रान्तीय कार्यपालिकाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा किन्तु यदि राष्ट्रपति इस आयोग को नियुक्त करेगा तो इसका अर्थ यही है कि प्रधानमंत्री ही इस आयोग को नियुक्त करेगा। उसी की सिफारिश के आधार पर अन्य निर्वाचन आयुक्त नियुक्त किये जायेंगे। इस कारण वे स्वतंत्र रूप से कार्य न कर सकेंगे। इसमें कोई सन्देह

नहीं कि मुख्य निर्चाचन-आयुक्त के एक बार नियुक्त होने पर उसे केवल दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से पदच्युत किया जा सकता है अन्यथा नहीं। इससे नि:संदेह वह स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकता है किन्तु यह भी सम्भव है कि कोई पदारूढ़ दल, जो आने वाले निर्वाचन में सफल होना चाहेगा, अपने दल के प्रति पक्की निष्ठा रखने वाले किसी व्यक्ति को मुख्य निर्वाचन-आयुक्त नियुक्त कर दे। बहुत गम्भीर आरोप लगाने पर ही उसे दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से पदच्युत किया जा सकता है, जिसका अर्थ है कि उसे पदच्युत करना बहुत कुछ असम्भव ही है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि जो व्यक्ति नियुक्त किया जाये वह सभी दलों का विश्वास-भाजन हो और उसकी नियुक्ति का समर्थन केवल बहुमत से ही न हो बल्कि दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से हो। यदि केवल साधारण बहुमत ही आवश्यक समझा गया तो पदारूढ़ दल से ही उसे बहुमत प्राप्त हो जायेगा। मैंने दो-तिहाई बहुमत का प्रस्ताव रखा है और उसका अर्थ यह है कि अन्य दल भी उसकी नियुक्ति के लिये सहमत हों। इससे आयोग स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकेगा और विपक्ष उसके विरुद्ध कुछ न कह सकेगा। आयुक्तों तथा मुख्य निर्वाचन-आयुक्त को राष्ट्रपति को नियुक्त करना चाहिये किन्तु उसे उन लोगों के नाम प्रस्तावित करने चाहिये जिन्हें विधान-मंडलों के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। इस प्रकार कोई ऐसा व्यक्ति नियुक्त नहीं हो सकता जो किसी दल-विशेष के प्रति निष्ठा रखता हो। मुख्य निर्वाचन आयुक्त केवल एक दल का विश्वास पात्र न होगा बल्कि विधान मंडल के अधिकांश सदस्यों को उस पर विश्वास होगा। तभी वह अपनी की हुई नियुक्तियों के लिये दो तिहाई बहुमत का समर्थन प्राप्त कर सकेगा। इसलिये, जैसी कि डा. अम्बेडकर ने अपना संशोधन उपस्थित करते हुए अपनी इच्छा प्रकट की है, यदि मूलाधिकार समिति की सिफारिशों के वास्तविक उद्देश्य को पूरा करना है तो मेरे विचार से उन्हें यह उपबन्धित करना चाहिये कि राष्ट्रपति नियुक्ति करेगा किन्तु संसद के दोनों सदन संयुक्त सत्र में, उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से उस नियुक्ति का समर्थन करेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या आप यह नहीं समझते कि दल की ओर से किसी विशेष व्यक्ति को निर्वाचित करने के लिये आदेश निकाले जायेंगे? वह किसी दल विशेष का कोई व्यक्ति होगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैंने केवल यह कहा है: वह संसद का सदस्य न होगा। वह कोई भी व्यक्ति हो किन्तु जो कोई भी चुना जाये उसे संसद के दोनों सदनों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत का विश्वास प्राप्त होना चाहिये ताकि पदारूढ़ दल अपने ही किसी आदमी को देश को स्वीकार करने के लिये बाध्य न कर सके।

***श्री महावीर त्यागी:** बहुसंख्यक दल अपने ही किसी आदमी को उस पद के लिये खड़ा करेगा और यह आदेश निकालेगा कि सब लोगों को उस अभ्यर्थी के लिये मत देन चाहिये। चाहे वह व्यक्ति उस दल का ही सदस्य हो अथवा बाहर का कोई आदमी हो किन्तु होगा वह उस दल का नामनिर्देशित व्यक्ति ही।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** बहुमत का अर्थ केवल 51 प्रतिशत बहुमत से है किन्तु मैं चाहता हूं कि दो-तिहाई सदस्यों का बहुमत हो।

***श्री महावीर त्यागी:** आपको दो-तिहाई से अधिक सदस्यों का बहुमत इस समय भी प्राप्त है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** इस समय तो इस मामले में कुछ नहीं हो सकता। आप जिसे भी खड़ा करेंगे वह निर्वाचित हो जायेगा। किन्तु हम संविधान को केवल इस समय के लिये नहीं बना रहे हैं। हम उसे हमेशा के लिये बना रहे हैं। नि:संदेह आज यह स्थिति है कि मंत्रिमंडल की सिफारिश के आधार पर राष्ट्रपति जिस व्यक्ति को भी नियुक्त करेगा उसकी नियुक्ति का समर्थन हो जायेगा। सौभाग्य से हमारे प्रधानमंत्री महोदय स्वतंत्र विचार रखते हैं और निरपेक्ष हैं। इसलिये वे किसी उपयुक्त व्यक्ति को ही नियुक्त करवायेंगे। किन्तु हम कह नहीं सकते कि हमें हमेशा इसी प्रकार का प्रधानमंत्री प्राप्त होगा या नहीं। मैं यह चाहता हूं कि भविष्य में कोई प्रधानमंत्री इस अधिकार का दुरुपयोग न करे और इसलिये मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति के नामनिर्देशन का समर्थन दो-तिहाई बहुमत द्वारा हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि किसी एक दल का अत्यधिक बहुमत होगा तो संकट उपस्थित हो सकता है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह सम्भव है कि यदि प्रधानमंत्री चाहें तो वे अपने दल के ही किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकते हैं किन्तु मुझे विश्वास है कि वे यह नहीं करेंगे। यदि वे अपने ही दल के किसी व्यक्ति को नियुक्त करेंगे और यदि संयुक्त सत्र में समर्थन के लिये उस मामले को उपस्थित किया जायेगा तो थोड़ा सा विरोध होने पर भी अथवा स्वतंत्र सदस्यों के असहमति प्रकट करने से भी संसार के जनमत के सम्मुख प्रधानमंत्री का सर झुक जायेगा। चूंकि हमारा बहुमत है इसलिये सैद्धान्तिक रूप से हम किसी बात को भी पारित करा सकते हैं। इसलिये समर्थन की शर्त रखने से उपयुक्त व्यक्ति चुना जा सकेगा। मुझे आशा है कि बहुमत का उपयोग इस प्रकार न होगा कि उससे देश के हितों को हानि पहुंचे अथवा निर्वाचन आयोग की निरपेक्षता और स्वतंत्रता पर आघात हो। मैं चाहता हूं कि संविधान में इस आशय का एक उपबन्ध हो ताकि यदि भविष्य में यदि कोई प्रधानमंत्री पक्षपात करना भी चाहे तो न कर सके। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह उपबन्धित किया जाये, कि जब कभी इस प्रकार की नियुक्ति करनी हो, नियुक्त व्यक्ति का नाम-निर्देशन राष्ट्रपति तो करे ही किन्तु साथ ही वह संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत का विश्वास भी प्राप्त करे।

डा. अम्बेडकर ने दूसरी बात यह कही थी कि चूंकि इस आयोग के पास हमेशा काम नहीं रहेगा इसलिये केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त को ही स्थायी रूप से नियुक्त किया जाना चाहिये और जब कभी आवश्यकता हो अन्य लोगों को उसकी सिफारिश के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिये। हमारे संविधान में यह निर्धारित नहीं किया गया है कि चार वर्ष के उपरान्त अवश्य ही निर्वाचन होगा जैसा कि अमरीका में होता है। सम्भवत: किसी न किसी प्रान्त में हमेशा निर्वाचन होते रहेंगे। राज्यों के समाविष्ट होने पर हमारे लगभग तीस प्रांत हो जायेंगे। हमारे संविधान में यह उपबन्धित है कि अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने पर विधान मंडल का विघटन हो जायेगा, इसलिये यह भी सम्भव है कि केन्द्र के लिये तथा प्रान्तों के विभिन्न विधान मंडलों के लिये निर्वाचन एक ही समय में न हों। हर समय कहीं न कहीं निर्वाचन होता रहेगा। यह हो सकता है कि आरम्भ में अथवा

पांच या दस वर्ष तक ऐसा न हो। किन्तु दस बारह वर्ष के पश्चात् हर समय किसी न किसी प्रांत में निर्वाचन होता रहेगा। इसलिये उपयुक्त यही होगा और कमखर्ची भी इसी में होगी कि एक निर्वाचन-आयोग स्थायी रूप से स्थापित किया जाये। केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त को ही स्थायी रूप से नियुक्त न किया जाये बल्कि आयोग के तीन से लेकर पांच तक अन्य सदस्यों को भी स्थायी रूप से नियुक्त किया जाये और वही निर्वाचनों का संचालन करें। मेरे विचार से काम की कमी न होगी क्योंकि, जैसा मैं कह चुका हूं, हमारे संविधान के अधीन निर्वाचन एक साथ न होगा। जब कभी विभिन्न विधान-मंडलों में अविश्वास प्रस्ताव पारित होंगे और उनके फलस्वरूप विधान मंडलों का विघटन होगा, उनके लिये निर्वाचन भी होंगे। इसलिये मेरे विचार से काम की कमी न होगी। यह आयोग एक स्थायी आयोग होना चाहिये और सभी आयुक्तों को उसी प्रकार नियुक्त किया जाना चाहिये जिस प्रकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त नियुक्त किया जायेगा। वे सब विधान मंडल के दो-तिहाई बहुमत से नियुक्त होने चाहिये और इसी प्रकार पदच्युत भी किये जाने चाहिये।

खण्ड (3) में यह कहा गया है कि निर्वाचन आयोग से परामर्श करके राष्ट्रपति प्रादेशिक आयुक्तों को नियुक्त कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि वह मुख्य निर्वाचन आयुक्त से परामर्श करेगा। केवल परामर्श करने का अर्थ यह है कि राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्तों के मत की उपेक्षा भी कर सकता है और अपनी इच्छानुसार नियुक्तियां कर सकता है। इसलिये मैं चाहता हूं कि 'से सहमति प्राप्त करके' शब्द प्रविष्ट किये जायें ताकि यदि कोई असहमत हो, अर्थात् यदि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में निर्वाचन आयेाग और राष्ट्रपति के बीच मतभेद हो तो वह नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

खण्ड (4) में कहा गया है कि ''प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' मेरे विचार से यह उचित नहीं है। निर्वाचन-आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि निर्धारित करने की शक्ति राष्ट्रपति को नहीं प्राप्त होनी चाहिये। यदि उसे यह शक्ति प्राप्त हुई तो वह अपने प्रभाव से उनकी स्वतंत्रता का अपहरण कर सकता है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इन बातों को संसद विधि द्वारा निश्चित करे और यह आयुक्त स्थायी रूप से रखे जायें ताकि कोई भी व्यक्ति उन्हें पदच्युत करके उनके स्थान पर दूसरे लोगों को नियुक्त न कर सके और किसी भी निर्वाचन-आयुक्त को राष्ट्रपति की कृपा की अपेक्षा न रहे।

मेरे ये सुझाव हैं और मैंने ये इसी उद्देश्य से उपस्थित किये हैं कि निर्वाचन आयोग सच्चे अर्थ में एक स्वतंत्र आयोग हो सके और वयस्क मताधिकार के मूलाधिकार का यथोचित रूप से प्रयोग हो सके। डा. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है उससे मैं सहमत हूं किन्तु मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिये उनके प्रस्ताव पर्याप्त न होंगे।

***श्री एस.वी. पातस्कर** (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे आदरणीय मित्र डा. अम्बेडकर ने जो नवीन संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 99 उपस्थित किया है उसे मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है और उनके तर्कों को भी मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। यद्यपि मैं उसके

[श्री एच.वी. पातस्कर]

इस विचार से पूर्णतया सहमत हूं कि किसी भी लोकतंत्रात्मक सरकार के अधीन जो निर्वाचन हों उनमें कार्यपालिका को हस्तक्षेप न करना चाहिये किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आता कि निर्वाचन-व्यवस्था का हमेशा के लिये केन्द्रीकरण क्यों हो। यही एक विचारणीय बात है। मैं अब इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करूंगा कि संविधान के मसौदे में मूल अनुच्छेद 289 किस प्रकार था और संशोधन संख्या 99 द्वारा उसके स्थान पर जो नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट होगा वह किस प्रकार है, विशेषत: उसका खण्ड (3) किस प्रकार है। अब मैं संक्षेप में इस अनुच्छेद का इतिहास बताना चाहता हूं। पहले 4 जुलाई, 1947 को संघीय संविधान समिति का प्रतिवेदन उपस्थित किया गया था। उसके पृष्ठ 55 पर यह कंडिका थी:

> ''इस संविधान के अधीन होने वाले सभी निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण, चाहे वे संघीय निर्वाचन हो या प्रान्तीय, जिसके अन्तर्गत इन निर्वाचनों से उद्धृत या संयुक्त सन्देहों और विवादों के निर्णय के लिये निर्वाचन-न्यायाधिकरण की नियुक्ति भी है, एक आयोग में निहित होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।''

इस प्रकार इस खण्ड (24) में यह उपबन्धित था कि निर्वाचन चाहे संघीय हो अथवा प्रान्तीय, उसका अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण एक ही आयोग में निहित होगा। इसके पश्चात् यह विषय सभा के सम्मुख 29 जून, 1947 को रखा गया, उस समय मैंने इस आशय का एक संशोधन उपस्थित किया था कि इसका सम्बन्ध केवल संघीय निर्वाचन से हो। विचार यह था कि प्रांतों के लिये भी इसी प्रकार के स्वतंत्र निर्वाचन-न्यायाधिकरण स्थापित किये जाने चाहिये। उस समय भी उद्देश्य यही था कि निर्वाचन स्वतंत्र रूप से होने चाहिये। केवल प्रश्न यह था कि प्रांतों अथवा राज्यों के लिये पृथक तथा स्वतंत्र निर्वाचन आयोग होने चाहिये या नहीं। यह समझा गया था कि दिल्ली में अथवा किसी अन्य स्थान पर स्थित किसी आयोग के लिये सारे भारत के निर्वाचनों का प्रबन्ध करना कठिन हो जायेगा। उस समय तदविषयक खण्ड के प्रस्तावक श्री गोपालास्वामी आयंगर ने उस संशोधन को स्वीकार कर लिया था। उस समय सभी का, और डा. अम्बेडकर का भी, विचार यह था कि निर्वाचनों में कार्यपालिका का हस्तक्षेप न होना चाहिये। केवल विचारणीय प्रश्न यह था कि विभिन्न आयोग होने चाहिये या नहीं क्योंकि यह समझा गया था कि एक आयोग इस कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ न होगा। उसके पश्चात् 29 अगस्त को मसौदा-समिति नियुक्त की गई, जिसने सभा के निर्णय पर विचार किया और अनुच्छेद 289 (1) और (2) का मसौदा तैयार किया। मसौदे के प्रतिवेदन में कहा गया है:

> ''समिति के विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है कि संविधान में निर्वाचन के विवरण का समावेश हो, जिसमें निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन आदि भी सम्मिलित है।''

उसने यह उचित समझा कि यह तदविषयक विधि द्वारा उपबन्धित किया जाये। इस प्रकार उसने इस सभा के 29 जुलाई के निर्णय पर विचार किया और वास्तव में अनुच्छेद 289 उस निर्णय के अनुरूप ही है। सभा को इस पर विचार करना चाहिये कि अनुच्छेद

289 के खण्ड (1) और (2) से हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है या नहीं। इसे स्वीकार करते हुए भी कि निर्वाचन लोकतंत्र का आधार है और उसमें कार्यपालिका का हस्तक्षेप न होना चाहिये, हमें इस पर विचार करना चाहिये कि क्या अनुच्छेद 289 के खण्ड (1) और (2) पर्याप्त नहीं है। जहां तक संघीय निर्वाचनों का सम्बन्ध है, वर्तमान संशोधित अथवा नवीन अनुच्छेद और अनुच्छेद 289 का खण्ड (1) एक समान है। यदि हमें संघीय आयोग को नियुक्त करना होगा तो केन्द्रीय सरकार, जो कार्यपालिका है, उसे नियुक्त न कर सकेगी। खण्ड (2) के सम्बन्ध में मसौदा समिति ने यह विचार किया कि यदि प्रान्तों के लिये निर्वाचन आयोग स्थापित करने होंगे तो यदि उन्हें सरकार स्थापित न करेगी और राज्यों के राज्यपाल स्थापित करेंगे तो वे भी उसी प्रकार स्वतंत्र होंगे। मसौदा तैयार करते समय उद्देश्य यह था कि राज्यपाल निर्वाचित राज्यपाल हो। इस समय कोई भी राज्यपाल निर्वाचित राज्यपाल नहीं है और अब हमने यह उपबन्धित किया है कि राज्यपालों का नामनिर्देशन राष्ट्रपति करेगा। इसलिये जब आयोग को नामनिर्दिष्ट राज्यपाल स्थापित करेगा तो वास्तव में उसे राष्ट्रपति ही स्थापित करेगा। राष्ट्रपति संघीय विधानमंडल के निर्वाचनों के लिये जिस आयोग को स्थापित करेगा वह स्वतंत्र होगा। किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता कि प्रान्तों में राज्यपालों द्वारा स्थापित आयोग भी इसी प्रकार स्वतंत्र क्यों न हो। राज्यपाल अपने पद के अस्तित्व के लिये राष्ट्रपति पर निर्भर रहेगा। इस सम्बन्ध में यदि यह आवश्यक समझा जाये तो प्रान्तीय आयुक्त की नियुक्त करने की शक्ति राष्ट्रपति को ही दी जा सकती थी, किन्तु क्या यह आवश्यक है कि, चाहे जितनी भी असुविधाएं हों किन्तु एक ही केन्द्रीय आयोग स्थापित किया जाये? इसके अतिरिक्त खण्ड (3) में प्रादेशिक आयुक्तों के लिये कोई स्थान नहीं है। केवल एक केन्द्रीय आयोग की व्यवस्था की गई है और प्रादेशिक आयुक्तों को उस आयोग की सहायता करनी है। क्या यह उचित है कि भारत के एक कोने में स्थापित किसी आयोग को यह काम सौंपा जाये और प्रादेशिक आयुक्त उस आयोग की केवल सहायता ही करे? मैं इसका कोई भी कारण नहीं समझ पाया हूं। इसके अतिरिक्त हमारे सम्मुख संविधान के प्रस्तुत होने के पश्चात् मई, 1949 के मध्य में हमें एक विवरण दिया गया था जिसमें यह कहा गया था कि 29 जुलाई, 1947 को जो निर्णय किया गया था उसे किन कारणों से बदला गया है। मैं अब इन कारणों का विश्लेषण करूंगा। पहला कारण यह बताया गया कि इस विषय पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है, और कुछ समाचार पत्रों में यह संकेत किया गया कि कुछ प्रान्तों में सरकार अपने ही समर्थकों को पंजीबद्ध कराने में सहायता कर रही हैं यह डा. अम्बेडकर ने भी कहा था। श्रीमान्, इस सभा का प्रत्येक सदस्य ऐसी कार्यवाहियों की निन्दा ही करेगा जिनसे संविधान द्वारा लोगों को प्रदत्त मताधिकार का अपहरण होता हो, किन्तु इसका उपचार क्या है? यथोचित उपचार तो यही है कि जो लोग इस प्रकार के कार्यों को करें उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाये। केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार के कार्यों की रोकथाम के लिये पूर्ण शक्ति तथा प्राधिकार प्राप्त है। यह जनतंत्र के हित में है। इसके अतिरिक्त हमसे यह भी कहा गया कि कुछ समाचार-पत्रों ने यह संकेत किया है कि कुछ प्रान्तीय सरकारें कुछ अनियमित कार्य कर रही हैं। श्रीमान्, यदि केवल संकेत ही किया गया है तो विचलित होने की क्या आवश्यकता है? सम्भवत: डा. अम्बेडकर को इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त

[श्री एच.वी. पातस्कर]

है कि प्रान्तों में क्या हो रहा है। मंत्रिमंडल में रहते हुए उन्हें इसकी जानकारी प्राप्त होगी। यदि ये बातें सच हैं तो उन लोगों के विरुद्ध कार्यवाही की जाये जो भाषा और मूलवंश के आधार पर अथवा अन्य कारणों से लोकतंत्र की उपेक्षा करते हैं।

दूसरा कारण यह बताया गया कि प्रांतीय विधान-सभाओं के उपनिर्वाचनों के सम्बन्ध में हारने वलो पक्षों ने यह आरोप लगाया है कि प्रान्तीय सरकारें अपनी स्थिति से अनुचित लाभ उठाती हैं। यह एक बुरी बात है। किन्तु यह मेरी समझ में नहीं आता कि केवल प्रक्रिया में परिवर्तन करने से इस दोष का परिहार किस प्रकार होगा। यदि किसी सरकार में ऐसे लोग हैं जो इस प्रकार के कार्य करते हैं तो वे किसी भी लोकतंत्रात्मक सरकार में रहने योग्य नहीं हैं। यदि इस प्रकार के एक दो उदाहरणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है तो इनको मिटाने का उपाय यह नहीं है कि जिन बातों का किसी अन्य स्थल पर उल्लेख नहीं है, उसका उल्लेख संविधान में किया जाये। प्रतिवेदन में इन दो कारणों को बताया गया है किन्तु मेरे विचार से ये युक्तियुक्त नहीं है।

इसके अतिरिक्त यह कहा गया है कि कनाडा के 1920 के निर्वाचन-अधिनियम को देख कर ही मसौदा समिति ने अनुच्छेद 289 के मसौदे को बदलने का विचार किया। श्रीमान्, मैंने यह देखा कि उस अधिनियम में केवल उस अधिराज्य की संसद के निर्वाचनों के लिये एक मुख्य आयुक्त की नियुक्ति का उल्लेख है। डा. डासन ने हाल में कनाडा की सरकार पर जो पुस्तक लिखी है उसके पृष्ठ 380 पर वे यह कहते हैं कि मुख्य आयुक्त अथवा मुख्य निर्वाचन पदाधिकारी इसलिये नियुक्त किया गया कि अधिराज्य के निर्वाचनों का प्रबन्ध एक पदाधिकारी स्वतंत्र रूप से कर सके। केवल संघीय निर्वाचनों के सम्बन्ध में ही मुख्य पदाधिकारी कार्य करता है। इस सम्बन्ध में इस सभा को भी कोई आपत्ति नहीं है। हमारे संविधान में इस आशय का एक अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 289 (क) है। यह एक आश्चर्य की बात है कि केन्द्रीय प्राधिकारी प्रान्तीय निर्वाचनों के लिये भी इस प्रकार की नियुक्त को आवश्यक समझते हैं।

मेरे विचार से ये सब परिवर्तन इस कारण किये जा रहे हैं कि अब हम धीरे-धीरे संघीय शासन का विचार छोड़ते जा रहे हैं। यद्यपि इस सभा में कार्यारम्भ के समय हमने संघीय शासन स्थापित करने का विचार किया था किन्तु कुछ प्रान्तीय घटनाओं के कारण और आन्तरिक तथा वैदेशिक स्थिति के कारण भी अब हम उस विचार को बदलने का अधिकाधिक प्रयास कर रहे हैं। इस सभा ने जो प्रथम संकल्प स्वीकार किया था, और जो लक्ष्य सम्बन्धी संकल्प के नाम से विख्यात है, उसमें यह कल्पना की गई थी कि स्वायत्तशासी एककों का एक संघ होगा जिसे अवशिष्ट शक्तियां भी प्राप्त होंगी। अब हम उस विचार का परित्याग कर रहे हैं। आरम्भ में हमने यही विचार किया था कि स्वायत्तशासी एककों का एक संघ होगा। सम्भवत: अब स्वायत्तशासी एककों को स्थापित करने की आवश्यकता न हो। प्रान्तों का भी नाम बदल दिया गया है और उन्हें अब राज्य कहा जाता है। इसके अतिरिक्त देश विभाजन की दुर्घटना के कारण एकात्मक शासन के पक्ष में ही मतपरिवर्तन हो गया। इन्हीं कारणों से हम सभी कार्य इस प्रकार कर रहे हैं जिससे कोई संकट उपस्थित न हो सके। हम संघ शासन की छाया को तो पकड़े हुए हैं किन्तु उसके

आकार में हमने आमूल परिवर्तन कर दिया है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप ही यह संशोधन सभा के सम्मुख रखा गया है। इस प्रक्रिया की मुख्य बातें यह हैं कि हमने निर्वाचित राज्यपालों के स्थान में नामनिर्देशित राज्यपालों को रखा है और हम यह भी चाहते हैं कि केन्द्र को ऐसे विषयों के सम्बन्ध में भी विधि-निर्माण की शक्ति प्राप्त हो, जो प्रान्तों को सौंपे गये थे। अब हमारे सामने यह प्रस्ताव है कि प्रान्तीय विधानमंडलों के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी केवल केन्द्र को ही शक्ति प्राप्त हो। वास्तव में इस संशोधन संख्या 99 का अर्थ यह है कि हम प्रान्तों के निर्वाचन आयुक्तों के पदों को समाप्त कर रहे हैं। मैं कह नहीं सकता कि यह क्यों किया जा रहा है। यदि राष्ट्रपति केन्द्र के लिये एक आयोग स्थापित कर सकता है तो वह विभिन्न प्रान्तों के लिये निर्वाचन-आयुक्तों को भी क्यों नियुक्त नहीं कर सकता? हम हमेशा प्रान्तीय निर्वाचनों में हस्तक्षेप करके लोकतंत्र के मार्ग में बाधा क्यों डालें? मेरा यह निवेदन है कि इसका यह अर्थ है कि हम केन्द्र और प्रान्तों के बीच मतभेद उत्पन्न होने के लिये अधिक अवसर दे रहे हैं। क्या इसकी आवश्यकता है? यदि आपका यह विचार हो कि राज्यपाल पर प्रान्तीय सरकार का प्रभाव पड़ सकता है और उस पर आपका विश्वास न हो तो निर्वाचनों के लिये राष्ट्रपति ही प्रान्तीय आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों को नियुक्त करे। आप यह क्यों माने लेते हैं कि प्रांतों में प्रशासन दोषरहित न होगा और लोकतंत्र की प्रथाओं का अनुसरण न किया जायेगा? यह उचित नहीं है। मेरे विचार से इस प्रकार के उपबन्ध का अर्थ यही है कि हम संघीय प्रणाली के सिद्धान्तों का परित्याग कर रहे हैं। नामनिर्देशित राज्यपालों पर भी हमें विश्वास नहीं है। हम वयस्क मताधिकार को प्रयोग में लाने जा रहे हैं। निस्सन्देह संक्रान्ति काल के लिये हमें कुछ विशिष्ट उपबन्धों को स्थान देना पड़ेगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस प्रकार के उपबन्ध को स्थान दिया जाये। आखिर अब केन्द्र के लिये अथवा किसी प्रान्त के लिये निर्वाचन होगा तो वह वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा और लगभग एक ही प्रकार के प्रतिनिधि निर्वाचित होंगे। इसलिये यह मेरी समझ में नहीं आता कि इन दो निर्वाचनों में विभेद क्यों किया गया है। इससे केवल विरोध की भावना जागृत होगी, जिसे किसी प्रकार भी हितकर नहीं कहा जा सकता है। श्रीमान्, मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इस समय की स्थिति ऐसी है कि हमें एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता है। परन्तु केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाने का क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय सरकार इतनी शक्तिशाली हो कि प्रान्तों की उन शक्तियों का भी अपहरण हो जाये जो उन्हें प्राप्त होनी चाहिये? आज कल यह प्रथा चल पड़ी है कि यदि कोई व्यक्ति प्रान्तों की चर्चा करता है तो वह चर्चा राष्ट्र विरोधी कही जाती है। यह एक बहुत गलत बात है।

***अध्यक्षः** क्या आप अधिक देर तक बोलना चाहते हैं?

***श्री एच.वी. पातस्करः** जी हां, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** तब आप कल बोल सकते हैं।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): इसके पूर्व कि आप सभा को स्थगित करें, मैं यह कहना चाहता हूं कि चूंकि हमने समाचारपत्रों में पढ़ा है कि सभा.....

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य महोदय यदि प्रतीक्षा कर सकें तो सभा को स्थगित करने के पूर्व मैं स्वयं एक वक्तव्य देना चाहता हूं।

हम इस अनुच्छेद पर कल भी विचार-विमर्श करते रहेंगे। आज सभा के स्थगित होने के पूर्व मैं कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक वक्तव्य देना चाहता हूं। हम संविधान के लगभग तीन चौथाई अंश को समाप्त कर चुके हैं। कुछ अनुच्छेद तथा कुछ भागों पर अभी विचार नहीं किया गया है किन्तु इस समय हम इस स्थिति में नहीं हैं कि उन पर विचार-विमर्श कर सकें। उदाहरण के लिये कुछ मामलों के सम्बन्ध में देशी राज्यों की स्थिति अभी बिल्कुल स्पष्ट नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त संघ और एककों के बीच राजस्व के वितरण का प्रश्न भी है। इसके लिये केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों से परामर्श करना होगा। कई कारणों से इसके लिये तुरंत ही सम्मेलन न हो सकेगा। उनमें से एक यह भी है कि एक अत्यावश्यक राष्ट्रीय कार्य के लिये वित्तमंत्री महोदय को कुछ समय के लिये विदेश जाना है। इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि संविधान के अवशिष्ट अनुच्छेद पर कुछ समय के लिये विचार-विमर्श स्थगित किया जाये ताकि इस बीच परामर्श किया जा सके और इन अनुच्छेदों को उस समय उठाया जा सके अब उन पर अन्तिम रूप से विचार करने के लिये पूरी तैयारी हो जाये। इसलिये यह सुझाव रखा गया है कि संविधान के अन्य अनुच्छेदों पर कल के बाद विचार विमर्श स्थगित किया जाये और लगभग पांच सप्ताह पश्चात् फिर समवेत हो और दूसरे पठन में संविधान के अवशिष्ट अनुच्छेदों को स्वीकार करें। जब दूसरा पठन समाप्त हो जायेगा तो मसौदा समिति को विभिन्न अनुच्छेदों को यथास्थान रखने, मसौदा की दृष्टि से उनकी परीक्षा करने तथा यह देखने में कुछ समय लगेगा कि उनमें कोई कमी तो नहीं रह गई है। इसमें नि:संदेह कुछ समय लगेगा किन्तु जब यह कार्य समाप्त हो जायेगा तो हम तीसरे पठन के लिये समवेत होंगे। मेरे विचार से वह सत्र अल्पकालीन होगा, क्योंकि दूसरे पठन में सभी बातों पर पूर्ण रूप से विचार कर लिया जायेगा और तीसरे पठन में अधिक देर नहीं लगेगी मैंने यह कार्यक्रम निश्चित किया है और इसलिये सदस्य महोदय यही समझे कि कल के बाद पांच सप्ताह के लिये सभा-स्थगित रहेगी। सभा के समवेत होने की निश्चित तिथि मैं बाद को घोषित करूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या निश्चित तिथि बताई जा सकती है?

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं, निश्चित तिथि बाद को घोषित की जायेगी।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** नियमों के अनुसार अध्यक्ष महोदय को तीन दिन से अधिक समय के लिये सभा स्थगित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): कल सभा स्थगित होने के पूर्व एक रस्मी प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** अब सभा स्थगित होगी तो वह नियमानुसार ही स्थगित होगी।

अब कल प्रात: आठ बजे तक के लिये सभा स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार, 16 जून 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. VIII-23.49
320

अंक 8
संख्या 23

बृहस्पतिवार,
16 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर ...1387
संविधान का प्रारूप ...1387-1448
[अनुच्छेद 289 से 301 पर विचार]
सदन का स्थगन ...1448-1450

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 16 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्यों ने प्रतिज्ञा ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये:

(1) शेख मोहम्मद अब्दुल्ला
(2) मिर्जा मोहम्मद अफजल बेग
(3) मौलाना मोहम्मद सईद मसूदी
(4) श्री मोतीराम बागदा

[कश्मीर]

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि शेख मोहम्मद अब्दुल्ला और तीन अन्य सदस्यों का सप्रेम स्वागत करने में आप मेरा साथ देंगे, जिन्होंने सभा में आज प्रवेश किया है और जो आज प्रथम बार अपना स्थान ग्रहण कर रहे हैं। अब सदन में उन राज्यों के पूरे प्रतिनिधि आ चुके हैं, जो भारत में प्रविष्ट हुए हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): भोपाल और हैदराबाद?

***अध्यक्ष:** मुझे विश्वास है कि उनकी उपस्थिति से संविधान के निर्माण में बहुत सहायता मिलेगी, जो समूचे देश पर लागू करने के उद्देश्य से बन रहा है और मुझे विश्वास है कि उसे समस्त अंगभूत सदस्यों का पूर्ण समर्थन प्राप्त होगा। उनके आने में विलम्ब हो गया, किन्तु इसमें उनका दोष नहीं है और मैं समझता हूं कि हमारा भी दोष नहीं है। परिस्थितियां ऐसी रही हैं कि उन्हें विलम्ब हो गया और मुझे विश्वास है कि वे अब भी हमारे संविधान में अत्यंत उपयोगी अंशदान कर सकेंगे।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 289

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 289 पर वाद-विवाद जारी रखेंगे। श्री पातस्कर!

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इस प्रश्न पर सांविधानिक दृष्टिकोण से विचार करने जा रहा हूं। जहां तक मुझे पता है, ऐसा कोई संविधान नहीं है, जहां निर्वाचन और उसके विस्तृत विवरण के सम्बन्ध में ऐसे व्याख्यापूर्ण उपबन्ध हों। यहां तक कि कनाडा निर्वाचन अधिनियम, जिसके आधार पर विद्यमान संशोधन और आगे

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एच.वी. पातस्कर]

आने वाले संशोधनों की रचना की गई है, कनाडा विधानमंडल का ही अधिनियम है, और जैसा कि मैंने कल कहा था, वह भी कनाडा की अधिराज्य संसद पर लागू है, जहां तक उपलब्ध अभिलेखों से मैं पता लगा पाया हूं। पर्याप्त प्रयत्नों के बावजूद भी मैं उसकी कोई प्रति विधानमंडल के पुस्तकालय या इस पुस्तकालय में प्राप्त नहीं कर सका हू। फिर भी उपलब्ध विलेखों से मुझे यह विश्वास हो गया है। मेरा तो कहना यह है कि क्या यह वास्तव में अपेक्षित अथवा अभीष्ट है कि संविधान में निर्वाचन की प्रणाली के विषय में, निर्वाचन-आयोग आदि के विषय में ये सब विस्तृत बातें रखी ही जायें। जैसा कि हमें पता लगा है, शायद इसका कुछ औचित्य इसलिये हो कि मस्विदा समिति को पता लगा हो कि इस समय निर्वाचनों की तैयारी का काम चल रहा है और वे इसके लिये कुछ उपबन्ध बनवाना चाहते हैं, पर सर्वोत्तम उपचार यह नहीं है कि उन्हें यहां संविधान में समाविष्ट किया जाये, वरन् यह है कि संविधान-सभा की विधायिनी शाखा से कोई अधिनियम पारित करवा दिया जाये। मुझे बताया गया है कि वह अगले सितम्बर में समवेत होगी और इसमें कोई बात नहीं होती कि कनाडा-निर्वाचन अधिनियम के समान एक अधिनियम केन्द्रीय विधानमंडल से पारित करा दिया जाता। यह वांछनीय नहीं है कि इसका उपबन्ध संविधान में ही किया जाये, जो कि सदा के लिये बन रहा है। हम नहीं जानते कि दस-बीस वर्ष पश्चात् क्या स्थिति होगी। देश के कुछ भागों में जो कुछ हो रहा है, उसे देखते हुए यह अभीष्ट नहीं है कि हमारे संविधान में ये सब विस्तृत बातें लिखी जायें। अत: मैं अब भी यह अनुरोध करता हूं—शायद इसका अधिक प्रभाव न पड़े—कि ये सब बातें और अनुवर्ती उपबंध, जो कि पेश किये जाने वाले हैं, एक अधिनियम में रखे जा सकते हैं जो कि केन्द्रीय विधान मंडल पारित करे। अब हमारा अपना विधानमंडल है और हम उसे पारित कर सकते हैं।

श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि ऐसे मामलों में यह वांछनीय है कि हम पहले के निर्णयों को समय-समय पर बदलें, जब तक कि कोई विशेष कारण न हो कि उन निर्णयों को कुछ मास पश्चात् उलटा जाये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, जहां तक कि मैं देख सकता हूं, इस प्रयोजन के लिये अनुच्छेद 289(2) पर्याप्त है। अनुच्छेद 289(2) के अधीन भी हम कुछ सरकारी अधिकारियों को केवल निर्वाचन आयुक्त ही नियुक्त नहीं कर सकते, प्रत्युत उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों जैसे व्यक्तियों को भी नियुक्त कर सकते हैं; हम उन्हें स्थायी भी बना सकते हैं; हम उन्हें इतना ही स्वतंत्र बना सकते हैं जैसा कि हम केन्द्रीय आयोग को बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। भारत शासन अधिनियम 1935 के अन्तर्गत भी धारा 201 में निर्वाचन सम्बन्धी उपबन्ध थे, यद्यपि उसमें इस हद तक संघीय ढांचा नहीं रखा गया था और एकात्मक ढांचा ही था। उसमें यह उल्लिखित था ''यहां आगे उल्लिखित मामलों के विषय में जहां तक इस अधिनियम द्वारा उपबन्ध नहीं किया जाता, वहां तक सपरिषद् सम्राट् समय-समय पर इन मामलों या इनमें से किसी के विषय में उपबन्ध बना सकता है—इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्वाचन करने तथा उनमें मतदान के विषय में'' तब भी यह काम कार्यरूप में प्रान्तीय सरकारों पर छोड़ दिया गया था। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम संविधान में ही इन सब बातों के लिये उपबन्ध क्यों रखें और जहां तक मैं पता लगा सका हूं, किसी अन्य संविधान में इस प्रकार का उपबन्ध नहीं है।

अत: मुझे एक-दो ठोस सुझाव देने हैं। हम अनुच्छेद 289 को उसी रूप में रहने दे सकते हैं। उसके अनुपूरण के लिये हम केन्द्रीय विधानमंडल का एक अधिनियम बना सकते हैं, जिसमें उन सब बातों का उपबन्ध हो जिन्हें इस समय संविधान में रखने का प्रयत्न किया जा रहा है, कि इन प्रादेशिक और अन्य आयुक्तों का क्या ओहदा होगा जब कि वे नियुक्त किये जायें, क्या वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समान स्वतंत्र व्यक्ति होंगे, उन्हें कैसे हटाया जाये, आदि। मैं मानता हूं कि वे कार्यपालिका के प्रभाव से स्वतंत्र होने चाहिये। हम यह सब काम आसानी से विद्यमान केन्द्रीय विधानमंडल पर तो छोड़ ही सकते हैं।

अन्तत: मुझे अनुरोध करना है कि अभी भी समय है कि हम वास्तव में गम्भीरता से विचार करें कि क्या अनुच्छेद 289 (2) पर्याप्त नहीं है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, मेरे विचार में इस संशोधन से प्रान्तीय स्वतंत्रता का अन्तिम चिह्न ही नहीं मिट जायेगा, वरन् इससे प्रकट हो जायेगा कि हमें प्रांतों के लोगों पर राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यपाल से लेकर छोटे से छोटे स्थानीय प्राधिकारी पर अविश्वास है। मैं नहीं समझता कि इस प्रकार के दृष्टिकोण का कोई औचित्य है। अत: मेरा सुझाव है कि हमें इन सब बातों को संविधान में रखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जहां तक निर्वाचनों का सम्बन्ध है, मैं संविधान में इस अनुच्छेद को बहुत महत्त्वपूर्ण समझता हूं। मैं नहीं समझता कि इस विषय में इस सदन में या बाहर दो मत हैं कि निर्वाचन न्यायपूर्ण, शुद्ध, ईमानदारी से और निष्पक्षता से होने चाहिये। यदि यह अभिप्राय है तो यह बात तभी पूरी हो सकती है जब कि इस अनुच्छेद में उपबन्धित निष्पक्ष अभिकरण बने। हम चाहते हैं कि निर्वाचन संदेह से परे हों। जो भी व्यवस्था की जाये वह सर्वथा स्वतंत्र होनी चाहिये और कार्यपालिका या किसी भी शक्ति के प्रभाव से भी स्वतंत्र होनी चाहिये। अत: श्रीमान्, मैं हृदय से इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं जो कि मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया है।

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि जहां तक निर्वाचनों में पूर्णता लाने का सवाल है, यह अनुच्छेद भी काफी नहीं है। अभी मैं आपको यह सिद्ध करके बताता हूं कि इस अनुच्छेद में भी कुछ त्रुटि है। उसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद में प्रत्येक प्रयत्न किया गया है कि हम जो उद्देश्य पूरा करना चाहते हैं यह पूरा हो जाये।

यह कहा गया है कि आप यह कार्य एक विशेष आयोग को सौंप कर प्रान्तों के अधिकारों को कम क्यों करना चाहते हैं? अब, श्रीमान्, मैं यह समझ नहीं पाता कि प्रान्तों के अधिकारों को कम करने का प्रश्न ही कैसे पैदा होता है। यह आयोग केवल प्रान्तों के विधानमंडलों के ही निर्वाचन नहीं करायेगा, अपितु केन्द्रीय विधानमंडल के भी निर्वाचन करायेगा। यदि वह प्रांतों के अधिकारों का अपहरण करेगा, तो वह केन्द्र के अधिकारों का भी अपहरण करेगा और इसलिये यह कहना अनुचित है कि यह प्रान्तों के अधिकारों का अपहरण करेगा।

इस अनुच्छेद के अन्तर्गत निर्वाचन के प्रयोजनों के लिये व्यवस्था की गई है। उसे प्रशासन के प्रयोजनों के लिये स्वाधीन तो बना दिया गया है, पर खंड (5) में कहा गया

[श्री आर.के. सिधवा]

है कि निर्वाचन के लिये आवश्यक कर्मीवृन्द प्रान्तों से बुलाया जा सकता है। यही एक त्रुटि है जिससे कि, जैसा मैने कहा था, यह योजना अपूर्ण रह जाती है। यदि आप इस योजना को पूर्ण बनाना चाहते हैं तो आपको प्रान्तों से कर्मीवृन्द नहीं मंगाने चाहिये। यद्यपि निर्वाचन की कालावधि में वह कर्मीवृन्द आयोग के नियंत्रण में होगा, तदापि यह बात केवल अस्थायी काल के लिये होगी। वे स्थायी व्यक्ति होंगे जो कि कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी होंगे और यदि कार्यपालिका शरारत करना चाहे, तो वह उस कर्मीवृन्द को गुप्त अनुदेश दे सकती है कि वे उनके अनुसार चलें। कर्मीवृन्द यह अनुभव कर सकता है कि उनको स्थायी कार्य कार्यपालिका से है, आयोग के साथ तो थोड़े ही दिनों का कार्य है और इसलिये वे स्थायी अधिकारियों के कथनानुसार ही चलेंगे। अत: श्रीमान्, मैं इसे अच्छा समझता कि समूचा कर्मीवृन्द बाहर से ही भर्ती किया जाये, किन्तु मैंने स्वयं यह सोचा कि उसका क्या प्रभाव होगा। इसके लिये तो लोगों की एक सेना चाहिये। जिन्होंने निर्वाचन होते देखे हैं और जिन्हें इसमें रुचि है, वे जानते हैं कि समूचे देश के निर्वाचन करवाने के लिये बहुत लोगों की—लोगों की एक सेना की आवश्यकता पड़ेगी। यह बहुत खर्चीली बात होगी; अत: यद्यपि उस हद तक यह अपूर्ण है पर मैं इसे इसलिये स्वीकार करता हूं कि यह पूर्णता के सन्निकट है। यदि हमें नया कर्मीवृन्द रखना हो, तो खर्च बहुत होगा और वह नया अप्रशिक्षित कर्मीवृन्द होगा और शायद प्रशासन में वह इतना प्रभावी न हो जितनी कि हम उससे आशा करते हैं। दूसरा उपबन्ध आयोग के स्थायित्व के विषय में है। यह कहा गया है कि स्थायी आयोग रख कर इतना व्यय क्यों करते हैं। मुझे कराची नगर-निगम के निर्वाचन का कुछ अनुभव है—मेयर के रूप में भी और स्थायी समिति के अध्यक्ष के रूप में भी। कराची नगरपालिका अधिनियम में एक उपबन्ध है कि एक स्थायी निर्वाचन कर्मीवृन्द होगा और उसके अनुसार दस वर्षों से हमने यह स्थायी रूप में रख दिया है और निर्वाचन उचित और पूर्ण होते हैं, यद्यपि कराची में बहुत कम मतदाता है, पर इस तरीके से मत देना पूर्णत: बंद हो गया है। मुझे विश्वास है कि हम जो स्थायी आयोग स्थापित करने जा रहे हैं, उससे ये सब त्रुटियां दूर हो जायेंगी और यह कहना अशुद्ध होगा कि साधारण निर्वाचन समाप्त हो जाने के पश्चात् इस आयोग के पास कोई कार्य नहीं रहेगा। अब सारे प्रान्तों में लगभग 4,000 सदस्य होंगे और उप-चुनाव भी होंगे। नि:संदेह प्रति मास दो-तीन निर्वाचन होंगे—कुछ सदस्यों की मृत्यु हो सकती है, कुछ उच्च पदों पर नियुक्त हो जायेंगे—कुछ इधर उधर चले जायेंगे। संविधान-सभा में कुछ काल में ही कई उप-चुनाव हो चुके हैं, यद्यपि हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु जहां से वे लोग आये हैं वहां बहुत से निर्वाचन हो चुके हैं। अत: आवश्यकता और निष्पक्षता के अतिरिक्त भी इस आयोग के पास पर्याप्त कार्य होगा। इसके अतिरिक्त यदि आयोग स्थायी हुआ तो वह क्या करेगा? समय-समय पर वह निर्वाचन-नामावलियों का परीक्षण करेगा और प्रान्तों के आंकड़ों को देख कर उन लोगों के नाम हटा देगा जो कि मर चुके हैं तथा यथासंभव नामावलियों को समयानुकूल बनायेगा। निर्वाचन-नामावली का उद्देश्य शुद्ध निर्वाचन करवाना है, पर मैं जानता हूं कि इस समय उनमें से 50 प्रतिशत त्रुटिपूर्ण होती हैं। कुछ लोग मर चुके होते हैं, पर कोई दल विशेष जानबूझ कर उनके नाम रख देता है, क्योंकि वह

अपनी इच्छानुसार नाम रख कर निर्वाचन लड़ना चाहता है; मैंने नगरों के रहने वाले ऐसे व्यक्तियों का नाम सुना है जो कि कार्यपालिका से सम्पर्क बना कर प्रभाव डालना चाहते हैं। मैं आपको अपने वैयक्तिक अनुभव से बता सकता हूं और मैं अनुभव करता हूं कि यदि हम पूरी तरह ठीक नामावली चाहते हैं—और निर्वाचनों में नामावली ही मुख्य वस्तु है—तो मुझे विश्वास है कि हमारे यहां स्वतंत्र आयोग होना चाहिये और यदि हम स्थायी आयोग स्थापित कर देंगे तो अवश्यमेव स्थायी नामावली भी बन जायेगी तथा अच्छी निर्वाचन नामावली बनेगी। इस विषय में मेरे मन में कोई संशय नहीं है, अतएव यद्यपि आप कहते हैं कि यह खर्चीली चीज है और आवश्यक नहीं है, पर मैं बलपूर्वक अपने अनुभव से कहता हूं कि मैंने जिस परिस्थिति का उल्लेख किया है, उसमें यह आयोग बहुत आवश्यक है।

अब हम न्यायाधिकरण के प्रश्न पर आते हैं, तो जो लोग निर्वाचन के लिये कोई आवेदन पत्र देते हैं उनके लिये अथवा निर्वाचन याचिकाओं के लिये न्यायाधिकरण आवश्यक है। मुझे भी न्यायाधिकरणों का कुछ अनुभव है। पहले भी राज्यपाल न्यायाधिकरण नियुक्त करते थे और वे कार्यपालिका के कहने पर, अपने कृपापात्रों के कहने पर न्यायाधिकरण नियुक्त करते थे और वे कभी भी निष्पक्षता से कार्य नहीं करते थे। अत: मेरा सुझाव है कि न्यायाधिकरण में ऊंचे न्यायालयों के न्यायाधीश होने चाहिये और उन्हें ही निर्वाचन सम्बन्धी याचिकायें जानी चाहिये। मैं इस बात के विरुद्ध हूं कि ऐसे मामले किसी न्यायाधिकरण को सौंप दिये जायें। इससे तो हमारा उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायेगा, जिसके लिये हम प्रयत्नशील है—कि हमारे निर्वाचन न्याययुक्त और निष्पक्ष हों—इससे वही उद्देश्य अपूर्ण रह जायेगा, यदि न्यायाधिकरण में, जो कि नियुक्त किया जायेगा, कोई शरारत हो जाये। मैं कह सकता हूं कि इंग्लिस्तान में भी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की सांविधानिक विधि में यह उपबन्ध है कि यह कार्य ऊंचे न्यायालयों को सौंपा जाये। अत: मेरा सुझाव है, कि यद्यपि संविधान में कुछ उपबन्धित नहीं हो सकता, मैं यह नहीं चाहता कि ये सब बातें संविधान में ही भर दी जायें—पर जब निर्वाचन अधिनियम बनाया जायेगा—जिसमें बहुत सी बातें रखी जानी है, यथा गूढ़ शलाका पेटिका आदि—तब के लिये मैं डा. अम्बेडकर को सुझाव देता हूं कि वे इस बात का ध्यान रखें कि उसमें यह स्पष्ट कर दिया जाये कि न्यायाधिकरण की नियुक्ति राष्ट्रपति पर या किसी और पर न छोड़ी जाये—मैं नहीं चाहता कि पहले जो चालाकियां होती रही हैं वे आगे भी हों। इसके अतिरिक्त मैं अनुभव करता हूं कि ऐसे विवादों में केवल स्थायी ऊंची न्यायपालिका ही न्याय और निष्पक्षता से कार्य कर सकती है और वही जनता की विश्वासपात्र हो सकती है। जो सार्वजनिक लोगों या वकीलों में से नियुक्त होंगे वे चाहे सर्वोत्तम वकील हों पर वे अस्थायी लोग होंगे और उन पर प्रभाव पड़ सकता है। यदि अधिकरणों में उत्तरदायी स्थायी लोग नहीं होंगे तो मुझे विश्वास है कि वे प्रभावी नहीं होंगे। मेरे मित्र श्री पातस्कर चाहते थे कि संविधान में निर्वाचन की योजना क्यों भरी जाये, नियम बना दिये जायें; किन्तु मैं उन्हें निश्चय से कह सकता हूं कि यदि हम अपने संविधान में ऐसा अनुच्छेद नहीं रखेंगे तो शुद्ध निर्वाचन करने का हमारा समूचा अभिप्राय ही असफल रहेगा; अत: यह आवश्यक है कि यहां इसका उपबन्ध कर दिया जाये। मैं नहीं चाहता कि यह बात निर्वाचन अधिनियम में रखी जाये। मैं तो वास्तव में यह चाहता हूं कि कुछ अन्य उपबन्ध भी, जैसे कि गूढ़ शलाका पेटिका आदि का उपबन्ध है, इसी संविधान में रख दिये जायें, क्योंकि वे निर्वाचन के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भविष्य में सब कुछ निर्वाचनों पर निर्भर होगा,

[श्री आर.के. सिधवा]

अत: यदि हम इसे संविधान में न रख कर संसद पर छोड़ देंगे, तो इसमें बहुत जोखिम है। इन परिस्थितियों में मैं इस अनुच्छेद का पूरे हृदय से स्वागत करता हूं और इसका बलपूर्वक समर्थन करता हूं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने डा. अम्बेडकर के तर्कों को बहुत ध्यान से सुना है, जो कि संविधान के रचियता है और जिनके उद्यम और परिश्रम से हम सब आश्चर्यचकित हैं। फिर भी उनकी युक्तियों से वह विश्वास उत्पन्न नहीं हुआ जो कि प्राय: उनसे होता है। उनका मुख्य उद्देश्य यह है कि कार्यपालिका के अलावा कोई निकाय होना चाहिये जो कि निर्वाचन करवाये—उन्होंने पहले यह युक्ति पेश की थी कि वे इसे मूलाधिकारों में रखवाना चाहते थे किन्तु जैसा कि उन्होंने कहा कि वे इसके लिये पृथक् अनुबंध चाहते थे, अत: निर्वाचकगण के हितों का रक्षण करने के लिये यह अनुच्छेद जोड़ा गया है—पर कार्यपालिका के अलावा वह निकाय कौन-सा है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को भी तो राष्ट्रपति ही चुनेगा और चाहे कुछ भी हो वह भी दल का व्यक्ति होगा और किसी दूसरे के समान वह भी पक्षपाती ही होगा, अत: यह युक्ति बहुत ठीक नहीं जंचती। दूसरी बात वे कहते हैं और स्वीकार करते हैं कि यह एक मूलभूत परिवर्तन है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि ऐसा मूलभूत परिवर्तन क्यों किया जाये। क्या वे हमें उदाहरण दे सके हैं कि प्रान्तों में निर्वाचन अधिकरणों में कितना भ्रष्टाचार और कुलपोषण होता है? प्रान्तों में राज्यपालों द्वारा नियुक्त निर्वाचन अधिकरणों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग का कोई उदाहरण नहीं दिया गया है। फिर भी वे मूलभूत परिवर्तन चाहते हैं। हां, बड़े रोग के लिये बड़ा ही उपचार चाहिये, किन्तु डा. अम्बेडकर तो इन निर्वाचन अधिकरणों द्वारा शक्ति के दुरुपयोग या भ्रष्टाचार का एक भी उदाहरण नहीं दे सके हैं। इसके विपरीत हम जानते हैं कि सिंध में एक निर्वाचन अधिकरण को जांच के फलस्वरूप पीर इलाहीबक्स को उसी के दल वालों ने हटा दिया था, जिससे पता चलता है कि हमारे लोगों में निष्पक्ष रहने की योग्यता है। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह मूलभूत परिवर्तन क्यों किया जाये।

तब यह कहा जाता है कि प्रान्तों में अल्पसंख्यक हैं जिन्हें रक्षण की आवश्यकता है। पर क्या हमें उनको गर्व से पृथक् रहने देना चाहिये और जनसाधारण के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने के लिये रास्ता साफ नहीं करना चाहिये? ऐसा करके तो आप इन प्रान्तों के लिये बड़ी समस्यायें पैदा कर रहे होंगे। यह कहा जाता है कि वे जातीय रूप में और भाषा के सम्बन्ध में भिन्न हैं। पर आप उन अन्तरों को स्थायी बना देंगे या आपको उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये? मेरा निवेदन है कि इस मूल परिवर्तन के लिये कोई औचित्य सिद्ध नहीं किया गया है। डाक्टर अम्बेडकर ने कनाडा के निर्वाचन अधिनियम 1920 के समान इसे पेश किया है। किन्तु वहां तो बहुत कम जनसंख्या है और हमारे यहां 34 करोड़ जनसंख्या है, अत: इस देश के लिये एक निर्वाचन आयोग शायद ही पर्याप्त हो। वे नहीं जान सकेंगे कि मद्रास में कोई क्या कर रहा है और आसाम में क्या कर रहा है। मेरा निवेदन है कि वह काम प्रान्तों से नहीं ले लेना चाहिये। यदि आपको प्रान्तों पर संदेह है और केन्द्र के लिये आप अधिक शक्ति रखना चाहते हैं, तो इसके परिणाम अवांछनीय

ही होंगे। यदि आप सर्वश्री पंत, खेर और शुक्ल तथा उनके अधीन काम करने वाले लोगों का विश्वास नहीं कर सकते तो आप जनतंत्र को मुश्किल से ही सफल बना पायेंगे। आप ऐसी बात कर रहे हैं जिसका विघटनशील प्रभाव होगा और अन्तर मिटने के स्थान पर बढ़ जायेंगे। यदि आप केन्द्र को अत्यधिक शक्ति दे देंगे तो प्रान्त आप अलग होने का प्रयत्न करेंगे। मद्रास में कोई व्यक्ति आसाम या बंगाल में रहने वाले किसी व्यक्ति की भावना को क्या समझ सकता है? आपका यह ख्याल प्रतीत होता है कि केन्द्र के लोग ही सर्वोत्तम गुणों से विभूषित है। पर प्रान्त आप पर यह दोषारोपण करते हैं कि आपने अत्यधिक शक्ति ग्रहण कर ली हैं और उन्हें केवल नगर-पालिकाओं के समान बना दिया है जिनमें कि कोई उपक्रमण शेष नहीं रहा। आप समझते हैं कि आप में प्रान्तों के लोगों से अधिक गुण हैं, पर मुझे पता है कि वहां बहुत से ऐसे लोग हैं जो आप से अच्छे हैं यदि आप अपने ही लोगों की ईमानदारी पर विश्वास नहीं कर सकते तो आप लोकतंत्र को कभी सफल नहीं बना सकते। आप सदा संदेह करते हैं और समझते हैं कि प्रान्त अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय करेंगे। किन्तु यदि उन्हें पृथक रखा जायेगा और सदा राष्ट्रपति के या केन्द्रीय कार्यपालिका के संरक्षण में रखा जायेगा, तो वे कभी अपने गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे और इससे गड़बड़ तथा विप्लव को प्रोत्साहन मिलेगा। यह सुझाव दिया गया है कि अनुसूचित श्रेणी के लोगों को प्रान्तों की निष्पक्षता पर संदेह है। किन्तु वे अपने ही आदमी हैं और वे केन्द्र के लोगों के समान न्यायपूर्ण, निष्पक्ष तथा सच्चे हो सकते हैं। आपको यह क्यों सोचना चाहिये कि आपने ऐसे सद्गुणों का विकास कर लिया है जो किसी और में नहीं है? श्रीमान्, मैं यह नहीं समझ पाता कि इस उपबन्ध को संविधान में रखने का प्रयत्न क्यों किया जा रहा है।

श्रीमान्, राज्यपाल को केन्द्र नियुक्त करता है और वह निर्वाचक अधिकरण बनायेगा, जैसा कि पहले होता था। श्री सिधवा के कथन के बावजूद मैं यह कहता हूं कि इनमें से किसी अधिकरणों के विरुद्ध कोई पक्षपात का मामला सिद्ध नहीं हुआ है। एक मामले में जिसमें मुझे रुचि थी, मुझे पता है कि यद्यपि कांग्रेस सरकार की विरोधी थी, फिर भी अधिकरण ने कांग्रेस के पक्ष में निर्णय किया था, यद्यपि अम्यर्थी के विरोधी राय बहादुर और अन्य बड़े व्यक्ति थे। इससे पता लगता है कि वे निष्पक्ष रह सकते हैं। आप अपने ही लोगों को पक्षपाती, अन्यायी और बेईमान कह कर नीचा क्यों बताते हैं? यदि हम अपने ही लोगों पर विश्वास नहीं कर सकते तो हम स्वाधीनता के योग्य नहीं हैं। श्रीमान्, प्रान्तों के साथ अन्याय करने का प्रयत्न किया जा रहा है और उन पर व्यर्थ ही संदेह किया जाता है, इसलिये मैं इस सुझाव का विरोध करता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, संविधान के मस्विदे के अनुच्छेद 289 के स्थान पर मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने कल एक नया अनुच्छेद पेश किया है। यह अनुच्छेद एक महत्त्वपूर्ण मामले के विषय में है और संविधान के मस्विदे के तत्स्थानी अनुच्छेद से मूलत: भिन्न है। फिर भी वे इस संशोधन को पेश करके ही संतुष्ट हो गये और जरा भी यह स्पष्ट नहीं किया कि नया मसौदा क्यों रखा गया है। जब मैंने यह कहा कि सदन के प्रति यह न्याय नहीं है कि एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामले के विषय में कोई अनुच्छेद सदन के समक्ष रखा जाये और उसके उपबंधों का पूरा स्पष्टीकरण न किया जाये तो उन्होंने सफाई पेश करने की आवश्यकता समझी। किन्तु

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

यह देख कर कि उसकी स्थिति बहुत विषम थी, वे असावधान होकर कहने लगे कि मैंने इसीलिये स्पष्टीकरण मांगा था कि मैंने संशोधन को पढ़ा नहीं था। यह स्पष्ट है कि उनके इन अनुत्तरदायी कथन से सदन संतुष्ट नहीं हुआ और इसलिये उन्हें पुराने मस्विदे और नये मस्विदे में अन्तर को स्पष्ट करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

श्रीमान्, इस प्रश्न के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न सिद्धान्त का है। क्या यह ठीक है कि इस प्रकार के मामले में प्रान्तीय सरकारों को, जिन्हें कि पूर्ण उत्तरदायी शासन दिया जा रहा है, सब शक्ति से वंचित कर दिया जाये? मैं इस विषय पर अधिक नहीं बोलूंगा क्योंकि इसे मेरे माननीय मित्र श्री पातस्कर ने बहुत योग्यता और पूर्णतया से समझा दिया है। डा. अम्बेडकर ने नई प्रक्रिया के पक्ष में सफाई पेश की है, जिससे कि केन्द्रीय सरकार को निर्वाचन नामावलियों को तैयार करने और निर्वाचन करने के सम्बन्ध में सब मामलों के अधीक्षण, नियंत्रण तथा पथ-प्रदर्शन के लिये उत्तरदायी बना दिया गया है और यह इस आधार पर किया गया है कि मंत्रियों के अनुदेशों के अन्तर्गत जातीय, भाषा सम्बन्धी अथवा सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को मतदाताओं की सूचियों से अपवर्जित किया जा रहा है। मैं नहीं जानता कि उन्हें या भारत सरकार को प्राप्त होने वाली शिकायतों की कहां तक जांच की गई है और वे किस हद तक ठीक पाई गई हैं। मान लीजिये कि वे ठीक सिद्ध हुई हैं, तो सब को यह सोचना पड़ेगा कि यह विस्तृत संविधान क्यों बनाया जा रहा है। यदि उच्च से उच्च स्थिति पर आसीन व्यक्तियों से उनके कर्त्तव्यों के निर्वहन में साधारण ईमानदारी की आशा नहीं की जा सकती, तो उत्तरदायी शासन के आधार का भी अभाव है, और वास्तव में भविष्य अन्धकारमय है। मुझे ऐसे किसी संधानीय संविधान का पता नहीं है जिसमें कि केन्द्र पर यह भार डाला गया हो कि वह निर्वाचन नामावलियां तैयार करवायेगा और निर्वाचनों को न्यायपूर्वक करवायेगा, जिससे कि किसी अल्पसंख्यक पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े—हो सकता है कि ऐसे संविधान हो जिन में कि ऐसा उपबन्ध हो, पर मुझे उसका पता नहीं है। शायद हमारा ही एक संधानीय या अर्ध-संधानीय संविधान होगा, जिसमें कि प्रान्तों को निर्वाचन नामावलियों की तैयारी और सम्बद्ध मामलों के विषय में भाग लेने से अपवर्जित कर दिया जाये, सिवाय उस अवस्था के जब कि राष्ट्रपति द्वारा निर्वाचित निर्वाचन आयुक्तों को उनकी सहायता की आवश्यकता हो।

पर यदि यह भी मान लिया जाये कि प्रान्तीय सरकारों के हाथों से निर्वाचन का नियंत्रण ले लेना अपेक्षित है, तब भी हमें देखना है कि क्या नये मस्विदे में आवश्यक रक्षण-कवच है। प्रान्तों की राजनैतिक शक्ति को कम करना ठीक हो सकता है; पर क्या कोई ऐसी जोखिम नहीं है कि यदि इस अनुच्छेद को इसी प्रकार रहने दिया गया तो केन्द्रीय सरकार का राजनैतिक पक्षपात सब जगह प्रभावी हो जायेगा, जहां अन्यथा प्रान्तीय सरकारों का राजनैतिक पक्षपात प्रभावी होता? नये मस्विदे में सब कुछ राष्ट्रपति पर ही छोड़ दिया गया है; निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा; वह मुख्य निर्वाचन आयुक्त को नियुक्त करेगा और यह निश्चित करेगा कि कितने निर्वाचन-आयुक्त नियुक्त किये जायें, निर्वाचन-आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की, जो कि नियुक्त किये जायेंगे, सेवा की शर्तों और पदावधि को भी वही निश्चित करेगा। फिर यद्यपि यह उपबन्ध है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त को केवल उसी प्रकार हटाया जायेगा, जिस प्रकार कि उच्चतम न्यायालय

के न्यायाधीश को हटाया जाता है पर निर्वाचन-आयुक्तों को हटाने की शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में ही रहने दी गई है। वह जिस आयुक्त को चाहे, उसे ही मुख्य निर्वाचन-आयुक्त से परामर्श करके हटा सकता है। इस अनुच्छेद का खंड (4), जो इस विषय में है, इतना महत्त्वपूर्ण है कि मेरे विचार में यह वांछनीय है कि मैं इसे सदन में पढ़ दूं। इसमें लिखा है:

> ''निर्वाचन-आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे:
>
> परन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त अपने पद से वैसे कारणों और वैसी रीति के बिना न हटाया जायेगा, जैसे कारणों और रीति से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की अपनी नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा की शर्तों में उसको अलाभकारी कोई परिवर्तन न किया जायेगा:
>
> परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन-आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।''

मैं देखता हूं, श्रीमान्, कि मैंने यह कह कर गलती की थी कि अन्य निर्वाचन आयुक्तों तथा प्रादेशिक आयुक्तों को मुख्य निर्वाचन-आयुक्त से परामर्श करके हटाया जा सकता है। उन्हें केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही हटाया जा सकता है, यहां की बातें स्पष्ट हैं। पहली यह है कि केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त ही ऐसा व्यक्ति है, जो कार्यपालिका की नाराजगी का जरा भी भय न मान कर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकता है और दूसरी बात यह है कि अन्य निर्वाचन आयुक्तों को हटाना एक ही व्यक्ति, अर्थात् मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही निर्भर होगा। चाहे वह कितना भी उत्तरदायी क्यों न हो पर मुझे यह बहुत अवांछनीय दिखता है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के समान उत्तरदायी व्यक्तियों का हटाना एक ही व्यक्ति के अभिप्राय पर निर्भर हो। श्रीमान्, हम इस बात के लिये आतुर हैं कि निर्वाचन नामावलियों की तैयारी और निर्वाचन करने का काम ऐसे व्यक्तियों पर छोड़ा जाये, जो कि राजनैतिक पक्षपात से स्वतंत्र हों और जिनकी निष्पक्षता पर सब परिस्थितियों में विश्वास किया जा सके। किन्तु, बहुत-सी राजनैतिक शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में छोड़ कर हमने मुख्य निर्वाचन-आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन-आयुक्तों और अफसरों की नियुक्ति में केन्द्रीय सरकार द्वारा राजनैतिक प्रभाव के प्रयोग की गुंजाइश छोड़ दी है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त करना होगा और यदि प्रधानमंत्री किसी दलीय व्यक्ति की नियुक्ति का सुझाव रखे तो राष्ट्रपति के पास प्रधानमंत्री के नामनिर्देशित व्यक्ति को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय न रहेगा, चाहे वह सार्वजनिक कारणों से कितना भी अनुपयुक्त क्यों न हो। (*बाधा*)। किसी ने मुझे पूछा कि ऐसा क्यों होगा। क्योंकि केन्द्र में पूर्णत: उत्तरदायी सरकार होगी, अत: राष्ट्रपति से आशा नहीं की जा सकती कि वह जैसे चाहे स्वविवेक से कार्य करे। वह केवल मंत्रिमंडल की मंत्रणानुसार कार्य कर सकता है और जब सिफारिश सम्बन्धी मामलों में उसे प्रधानमंत्री की सिफारिशें प्राप्त हों तो वह इच्छा होने पर गणराज्य का प्रधान होने के नाते उन्हें स्वीकार करने से इंकार नहीं कर सकता। अत: श्रीमान्, मेरे विचार में डा. अम्बेडकर ने हमारे समक्ष

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

जो मस्विदा रखा है, उसमें कई परिवर्तनों की आवश्यकता है, जिससे कि निर्वाचन आयोग में वास्तव में निष्पक्ष व्यक्ति हों और जिससे कि निर्वाचन-आयुक्त अपने उत्तरदायी कर्त्तव्यों का निर्भय होकर पालन कर सकें।

मैंने जो त्रुटियां बताई हैं, उनके लिये मेरा उपचार तो यह है कि संसद को इन मामलों के लिये विधि द्वारा उपबन्ध बनाने का प्राधिकार होना चाहिये। फिर, श्रीमान्, इस अनुच्छेद में उन लोगों की अर्हताओं की चर्चा नहीं है जो कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त अथवा निर्वाचन आयुक्त नियुक्त होंगे और जैसा कि मैं कह चुका हूं, पदच्युत करने के विषय में निर्वाचन आयुक्तों की वही स्थिति नहीं होगी जो कि मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की होगी। मेरा ख्याल है, श्रीमान्, कि मैंने सदन के समक्ष जो अभिप्राय रखा है वही किसी समय डा. अम्बेडकर का भी मत था। संशोधन सूची में एक संशोधन 103 है, जिसे डा. अम्बेडकर ने पेश नहीं किया है, पर उन्होंने उसकी सूचना दी थी। जिन माननीय सदस्यों ने यह संशोधन पढ़ा है, उन्होंने देखा होगा कि खंड (2) में यह उपबन्ध है कि ''आयोग के सदस्य को अपने पद से केवल उसी प्रकार और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिन पर कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है, और आयोग के किसी सदस्य की सेवा की शर्ते उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके अहित में परिवर्तित नहीं की जा सकती है'' अत: यह स्पष्ट हो जायेगा कि मैंने जो सुझाव दिया है, वह डा. अम्बेडकर के अधिक उत्तम विवेक के अनुरूप है, जिसे दुर्भाग्य से कार्यान्वित नहीं होने दिया गया।

मुझे पता है, श्रीमान्, कि कल डा. अम्बेडकर ने हमें बताया था कि स्थायी निर्वाचन-आयोगों को रखना अनावश्यक है और केवल इतना ही पर्याप्त है कि निर्वाचन-आयोगों को उसी समय नियुक्त किया जाये जब कि उन के लिये पर्याप्त कार्य हो। यदि ऐसा है तो स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया निर्वाचन आयुक्तों के लिये लागू नहीं की जा सकती। यह सच है, किन्तु फिर कोई कारण नहीं है कि सारे मामले को राष्ट्रपति के हाथों में ही छोड़ दिया जाये, और निर्वाचन आयुक्तों की सेवा की शर्ते और अवधि उसके द्वारा नियमानुसार निश्चित की जायें। ये भी संसद द्वारा बनाई गई विधि से निश्चित होनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, हमें प्रादेशिक आयुक्तों की स्थिति पर विचार करना है, जोकि निर्वाचन-आयोग की सहायता करने के लिये प्रान्तों में नियुक्त किये जा सकते हैं, जिससे कि वह अपने कर्त्तव्यों का सच्चाई और कुशलता से पालन कर सके। यह स्पष्ट है कि ये व्यक्ति जब तक अपने पदों पर रहेंगे, तब तक वे उच्च उत्तरदायी कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। यह मुख्यत: उन पर निर्भर रहेगा कि निर्वाचन नामावलियों की तैयारी से और निर्वाचनों सम्बन्धी मामलों से जनता का संतोष होता है या नहीं। डा. अम्बेडकर ने जो मस्विदा सदन के समक्ष पेश नहीं किया है, उसमें प्रादेशिक आयुक्तों और निर्वाचन अधिकारियों आदि के विषय में यह उपबन्ध था कि ऐसा कोई प्राधिकारी या अधिकारी राष्ट्रपति के आदेश के बिना किसी प्रकार हटाया नहीं जा सकता। जैसा कि मैंने बताया है, अब एक परिवर्तन कर दिया गया है और अब उन्हें हटाना मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की सिफारिश पर निर्भर कर दिया गया है। शायद यह इसलिये किया गया है कि निर्वाचन-आयुक्त स्थायी अधिकारी होंगे और यदि केवल एक ही स्थायी अधिकारी हो, तो स्पष्टत: विधि में ऐसा उपबन्ध नहीं हो सकता कि प्रादेशिक आयुक्तों और निर्वाचन अधिकारियों को हटाना समस्त आयुक्तों

के विनिश्चय पर निर्भर होना चाहिये। किन्तु इसी कारण, श्रीमान्, यह मामला राष्ट्रपति की इच्छा पर ही नहीं छोड़ देना चाहिये, वास्तव में उस समय के प्रधानमंत्री पर ही नहीं छोड़ना चाहिये, वरन् विधि द्वारा निश्चित होना चाहिये।

मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कल डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये नये मस्विदे पर कई संशोधन पेश किये थे। उनमें से कुछ को स्वीकार करना शायद क्रियात्मक न हो, पर मेरे विचार में उन्होंने विचाराधीन मस्विदे की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके सार्वजनिक सेवा की है। मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर का यह कर्त्तव्य है कि वे इस मामले पर ध्यानपूर्वक विचार करें और ऐसे रक्षणकवच रखें जिससे व्यापक रूप में यह संतोष हो जाये कि हमारी निर्वाचन व्यवस्था केवल प्रान्तीय राजनैतिक प्रभावों से ही नहीं वरन् केन्द्रीय राजनैतिक प्रभावों से भी स्वतंत्र रहेगी। हम वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र स्थापित करना चाहते हैं। अत: यह आवश्यक है कि निर्वाचन व्यवस्था के ठीक कार्य करने का विश्वास उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक संभव उपाय करना चाहिये। यदि निर्वाचन-व्यवस्था में दोष है अथवा वह व्यवस्था कुशल नहीं है अथवा उसे ऐसे व्यक्ति चला रहे हैं जिनकी सच्चाई पर हम निर्भर नहीं रह सकते, तो लोकतंत्र का स्रोत ही विषाक्त हो जायेगा; इतना ही नहीं, लोग निर्वाचनों से यह सीखने के बजाये कि उन्हें अपना मत कैसे देना चाहिये, कि वे अपने मत का विवेकपूर्ण प्रयोग करके किस प्रकार संविधान में परिवर्तन कर सकते हैं और प्रशासन में सुधार कर सकते हैं, वे यही सीखेंगे कि किस प्रकार षड़यन्त्रों पर आधारित दलों का निर्माण हो सकता है और वे जो कुछ चाहते हैं उन्हें प्राप्त करने के लिये वे कौन से अनुपयुक्त उपायों का प्रयोग कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में सदस्यों को पता है कि हमें आज कार्यावली समाप्त करनी है। अन्यथा हमें शायद कल भी बैठना पड़े।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करने यहां आया हूं। आरम्भ में जब मैं प्रथम बार इस सभा में आया था तो मेरा ख्याल था कि प्रान्तों को शक्तिशाली बनाना चाहिये और उस हद तक केन्द्र को झुक जाना चाहिये। किन्तु बहुत ज्यादा अनुभव के पश्चात् और प्रान्तों तथा राज्यों में जो कुछ हो रहा है उस पर काफी विचार करने के पश्चात्, अब मेरा यह विचार है कि आगामी कई वर्षों के लिये केन्द्र को देश के व्यापक कल्याण से सम्बद्ध सब महत्त्वपूर्ण मामलों का भार अपने ऊपर ले लेना चाहिये और प्रान्तीय क्षेत्र को कम कर देना चाहिये। लोकतंत्रीय व्यवस्था में निर्वाचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीज है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनका नियंत्रण और देखभाल किसी अत्यधिक कुशल, स्वतंत्र और निष्पक्ष निकाय के हाथ में हो। कुछ प्रान्त जिस प्रकार अपना कार्य चला रहे हैं उससे पता चलता है कि प्रान्तों में दलबन्दी का जोर है और तत्समय सत्तारूढ़ दल अथवा गिरोह की सदा ही यही इच्छा होगी कि अपने मतलब के निर्वाचन न्यायाधिकरण तथा अधिकारी नियुक्त करें जिससे कि वे निर्वाचनों पर नियंत्रण करके उनसे अपने लिये लाभ उठा सकें। परिणाम यह होगा कि निर्वाचन अधिकरण और अधिकारी भ्रष्टाचार और पक्षपात से स्वतंत्र नहीं होंगे। इसी कारण मैं केन्द्र द्वारा निर्वाचनों पर नियंत्रण रखने के आयोजन का स्वागत करता हूं

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

जिससे कि निर्वाचन व्यवस्था की निष्पक्षता तथा कार्यकुशलता पर भरोसा किया जा सके। हमें पश्चिमी बंगाल और अन्य प्रान्तों का अनुभव है। पश्चिमी बंगाल में दलबन्दी का बोलबाला है। कलकत्ते की कांग्रेस में और जिलों में भी कई गिरोह और गुट हैं जो एक दूसरे पर स्वाभाविक भ्रष्टाचार आदि का दोषारोपण करते हैं। वे अत्यन्त बेहूदे तरीके से परस्पर लड़ते रहते हैं जिससे देश के व्यापक हितों को हानि पहुंचती है। कई राज्यों में भी यही हो रहा है। वृहद् राजस्थान में कैसा बेहूदा झगड़ा चल रहा है और कई अन्य राज्यों में भी यही हाल है। यदि हम यह नहीं चाहते कि प्रान्तों और राज्यों में अराजकता और अव्यवस्था फैले, तो हमें पहली बात यह करनी चाहिये कि निर्वाचनों पर नियंत्रण करना चाहिये। विविध दलों की नीतियों और कार्यवाहियों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, वरन् चुनावों के करने में निष्पक्षता और कुशलता का विश्वास पैदा करना चाहिये। आयोग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य निर्वाचन अधिकारियों की नियुक्ति करना होगा जिनकी निष्पक्षता, कार्यकुशलता और स्वाधीनता पर बहुत कुछ निर्भर रहेगा, और मुझे विश्वास है कि इन निर्वाचनों पर केन्द्रीय नियंत्रण का गम्भीर क्षेत्रों में स्वागत किया जायेगा। जैसा कि एक वक्ता ने कहा है और जैसा कि सुविदित है मतपेटिका की गूढ़ता निर्वाचनों में बहुत महत्त्व की वस्तु है क्योंकि इसमें मत-स्वातन्त्र्य की रक्षा होती है और इस गूढ़ता की पूरी तरह और प्रभावी रूप में रक्षा होनी चाहिये। हमने शिकायतें और प्रति शिकायतें सुनी हैं कि दक्षिणी कलकत्ता के अर्वाचीन निर्वाचन में मतपेटिका की गुप्तता और मतशलाका की अखंडता का उल्लंघन किया गया था। मुझे पता नहीं है कि इन शिकायतों में कितना तथ्य है, किन्तु उनसे कुरुचि उत्पन्न हो जाती है। मुझे विश्वास है कि यदि इन मामलों पर केन्द्र का नियंत्रण रहे, तो इस प्रकार की शिकायतें आदि करने की भावना दूर हो जायेगी। जो अधिकारी इन निर्वाचनों का प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त हों वे सब संदेहों से परे होने चाहिये और उनको ऐसे चुनना चाहिये कि प्रान्तीय गुट या दलबन्दी का प्रभाव हट जाये। श्रीमान्, मैं सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैं इस अनुच्छेद के लिये अपना नम्र और हार्दिक समर्थन प्रदान करता हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 99 का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। इस संशोधन पर दो ओर से आक्रमण हुए हैं, एक मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू की ओर से इस आधार पर कि यह संशोधन पर्याप्त नहीं है, इससे निर्वाचन-आयोग काफी स्वतंत्र नहीं बनता, केन्द्रीय सरकार उस पर ऐसा प्रभाव डाल सकती है कि न्यायपूर्ण निर्वाचन न हो। यह एक आधार है। दूसरा आधार, जिसके समर्थक मेरे माननीय मित्र श्री पातस्कर और कुलाधर चालिहा आसाम वाले हैं, पेश किया गया है। वह यह है कि यह प्रान्तीय स्वशासन पर अनाधिकार प्रवेश है। मैं इन दोनों बातों पर पृथक् पृथक् बोलूंगा।

श्रीमान्, मस्विदा समिति की ओर से जो संशोधन आया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्वाचनों से न केन्द्रीय सरकार का ही और न प्रान्तीय सरकारों का ही कोई सम्बन्ध होगा। जैसा कि सदन देखेगा मुख्य निर्वाचन-आयुक्त लगभग स्वतंत्र है। नि:संदेह वह राष्ट्रपति

अर्थात् केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होगा। इस अधिकरण को नियुक्त करने के लिये भारत में राष्ट्रपति के सिवाय राष्ट्रपति से उच्चतर कोई प्राधिकारी नहीं हो सकता। आप इस महत्त्वपूर्ण बात को हटा नहीं सकते।

इस संशोधन के विरुद्ध अगली युक्ति यह है कि यह संशोधन पुराने संशोधन संख्या 103 से भिन्न है जो कि मस्विदा-समिति की ओर से पेश होना था, जिसके अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त के अतिरिक्त अन्य आयुक्त केवल उसी प्रकार हटाये जा सकते थे जिस प्रकार कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हटाये जा सकते हैं। बिल्कुल ठीक। किन्तु इस परिवर्तन का एक अत्यन्त अच्छा कारण हैं। दो निर्वाचनों के बीच साधारणत: पांच वर्ष का अन्तर होगा। हम ऐसा निर्वाचन-आयोग नहीं रख सकते जो इन पांच वर्षों तक बेकार बैठा रहे। मुख्य निर्वाचन आयुक्त एक स्थायी अधिकारी होगा जो अपने पद का कार्य करेगा और दिन प्रतिदिन के कार्य की देखभाल करेगा, किन्तु जब देश में बड़े चुनाव होंगे—केन्द्रीय या प्रान्तीय—तब काम को सम्हालने के लिये आयोग को बढ़ाना पड़ेगा। अत: आयोग में अधिक सदस्य जोड़ दिये जायेंगे। नि:संदेह उन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करेगा, पर सदन देखेगा कि वे समय समय पर नियुक्त होने हैं एक बार वे किसी अवधि के लिये नियुक्त कर दिये जायेंगे तो उन्हें राष्ट्रपति की इच्छानुसार नही हटाया जा सकता। अत: उस हद तक उनकी स्वतंत्रता निश्चित रहेगी। अत: यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि ये अस्थायी निर्वाचन आयुक्त आवश्यकतानुसार स्वतंत्र नहीं होंगे। कुछ भी हो मुख्य निर्वाचन आयुक्त जो कि स्वतंत्र होगा, उनका सभापति होगा और उसे सारे आयोग पर निदेशन और देखभाल की शक्ति होगी। अत: यह कहना ठीक नहीं है कि किसी हद तक आयोग की स्वाधीनता को कम कर दिया गया है।

हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि आखिर निर्वाचन विभाग न्यायपालिका के समान शासन का अर्थ-स्वतंत्र अंग नहीं है। निर्वाचन करवाना तत्कालीन सरकार का कर्त्तव्य तथा कृत्य है। हम अब जो वृहद् निर्वाचन गण रख रहे हैं, मत-नामावली जो कि कई करोड़ों तक पहुंच जायेगी—इन सबके लिये अवश्यमेव निर्वाचन अधिकारियों, लिपिकों निर्वाचन स्थानों पर नियंत्रण करने वाले व्यक्तियों की लम्बी चौड़ी सेना अपेक्षित होगी। अब यह सेना ऐसी व्यवस्था के रूप में नहीं रखी जा सकती जो सरकार से स्वतंत्र हो। इसका प्रबन्ध केवल केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार अथवा अब के समान स्थानीय प्राधिकारी ही कर सकते हैं। यह संभव अथवा अभीष्ट नहीं है कि एक राजतंत्र के भीतर दूसरा राजतंत्र स्थापित करके निर्वाचन सम्बन्धी मामलों को शासन के पूर्णत: स्वतंत्र अंग पर छोड़ दिया जाये। इस प्रकार की स्वतंत्र सत्ता को उच्चतर शासन के रूप में बैठने नहीं दिया जा सकता जो कि यह निश्चय करे कि कौन सी सरकार सत्तारूढ़ होगी। यह बहुत राजनैतिक जोखिम की बात होगी यदि निर्वाचन अधिकरण देश में ऐसी राजनैतिक सत्ता बन जाये। यही काफी नहीं है कि वह स्वतंत्र रहे, यह भी अपेक्षित है कि वह निष्पक्ष रहे। अत: निर्वाचन आयोग को बहुत हद तक सरकार का सहयोगी होना चाहिये; केवल इतना ही नहीं, वरन् उसे काफी हद तक सरकार का सहायक होना चाहिए, सिवाय उन कृत्यों के निर्वहन के विषय में जोकि उसे विधि द्वारा प्रदत्त हैं।

[श्री के.एम. मुन्शी]

कुछ निर्देश किया गया है कि संसद की शक्तियों को सुरक्षित नहीं रखा गया है। मैं कह सकता हूं कि संशोधन संख्या 123 में, जो कि डा. अम्बेडकर पेश करने वाले हैं, संसद को शक्ति दी गई है कि वह विधानमंडलों के निर्वाचनों के सम्बन्ध में उपबन्ध बना सकती है। हां, वे इस संविधान के उपबन्धों के अधीन होंगे। इसी प्रकार श्रीमान्, आप देखेंगे कि संशोधन संख्या 128 में राज्य के विधानमंडलों को शक्ति दी गई कि वे विधानमंडलों के निर्वाचन के सम्बन्ध में उपबन्ध बना सकें। अतः संसद तथा राज्यों के विधानमंडल निर्वाचनों के विषय में उपबंध बना सकते हैं, पर हां, इस संशोधन विषय के अधीन रह कर अर्थात् निर्वाचन अधिकरण के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन। उदाहरणार्थ, आज कल निर्वाचनों पर उन अधिकारियों का नियंत्रण होता है जो कि केन्द्र अथवा प्रान्तों द्वारा नियुक्त होते हैं। अब यह प्रयोजन है कि वे सरकार के दिन प्रतिदिन के प्रभाव के अधीन न रहें और न वे सरकार से पूर्णतः स्वतंत्र ही रहें और इसलिये दोनों अवस्थाओं के बीच एक प्रकार का समझौता कर दिया गया है; किन्तु मैं अपने माननीय मित्र श्री कुंजरू से सहमत हूं कि, स्पष्टता के लिये ही सही, संदेहों को दूर करने के उद्देश्य से खंड (2) में कुछ संशोधन की आवश्यकता है। खंड (2) के आरम्भ में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें: ''इस सम्बन्ध में संसद द्वारा बनाई गई विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।'' इसी प्रकार खंड (4) में भी जहां कि निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्ते और पदावधि निर्धारित है, वहां ये शब्द रखना उपयुक्त होगा: 'इस विषय में संसद द्वारा बनाये गये उपबन्धों के अधीन रहते हुए।' हां, वह संशोधन संख्या 123 का परिणाम होगा, किन्तु हम इस विषय में कोई संदेह नहीं चाहते, अतः यह अच्छा होगा यदि ये शब्द रख कर सेवा की शर्तों और पदावधि पर संसदीय नियंत्रण रख दिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** आप संशोधन में इन शब्दों को कैसे प्रविष्ट करेंगे?

***श्री के.एम. मुन्शीः** मुझे संदेह नहीं है कि डा. अम्बेडकर मेरे सुझाव को स्वीकार कर लेंगे और इन संशोधनों को पेश करेंगे।

यह प्रश्न प्रादेशिक आयुक्तों की अर्हताओं के विषय में उठाया गया था। उनका उपबंध संसदीय विधान द्वारा अनुच्छेद 113 के अधीन अथवा नये पद के अधीन, जोकि खंड (2) और (4) में जोड़ देना चाहिये, आसानी से किया जा सकता है। इस प्रकार इन विस्तार की बातों पर संसद की शक्ति निश्चित हो जायेगी। अतः इस संशोधन द्वारा निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता तथा स्वातन्त्र्य को जहां तक कि वे इन परिस्थितियों में आवश्यक है और विस्तार की बातों पर संसद की प्रभुता को बनाये रखा गया है।

अब मैं आलोचना के दूसरे अंग को लेता हूं। और वह है यह तर्क कि यह उपबंध तथाकथित प्रांतीय स्वायत्तता को कम करता है अथवा छीनता है। यह तर्क बारम्बार प्रत्येक अनुच्छेद के विषय में पेश किया जाता है, और मेरे विचार में अब समय आ गया है कि इस तर्क को पेश करने वाले माननीय सदस्य इस स्थिति को स्वीकार कर लें कि सदन ने देश के लिये अधिक उपयुक्त उपाय को अपनाया है और संघवाद पर सैद्धांतिक लेखकों के आदर्शवादी विचारों की नहीं माना है। डा. अम्बेडकर ने अपनी प्रारम्भिक वक्तृता

में यह स्पष्ट कर दिया था कि निर्वाचन आयोग के विचार को तो जनवरी या फरवरी 1947 में ही स्वीकार कर लिया गया था, जब कि देश के विभाजन का प्रश्न निश्चित नहीं हुआ था। मूलाधिकार समिति ने यह सुझाव रखा था। इसे परामर्शदात्री समिति ने एकमत से स्वीकार कर लिया था और फिर सदन ने भी इसे एकमत से स्वीकार कर लिया था। अत: इसे समस्त सदन का और समूचे देश का अभिप्राय समझना चाहिये कि वस्तुस्थिति को देखते हुए निर्वाचन सम्बन्धी मामलों को केन्द्र और प्रान्तों के क्षेत्र से निकाल देना चाहिये। ऐसी अवस्था में केवल यही प्रश्न रह जाता है कि यह काम कैसे किया जाये।

उदाहरण के विषय में, कनाडा के अधिराज्य निर्वाचन अधिनियम की धारा 19 की ओर निर्देश किया जा चुका है। अधिनियम में लिखा है कि समस्त कनाडा के लिये एक मुख्य निर्वाचन अधिकारी, हमारे समान आयोग नहीं रखा गया है, समस्त निर्वाचनों का अधीक्षण नियंत्रण और निदेशन करेगा। उसकी पदावधि ठीक वही है जो हमने मुख्य निर्वाचन आयुक्त के लिये स्वीकार की है।

इस बहस के मध्य एक और तर्क पेश किया गया था कि यह अलोकतंत्रात्मक है। मैं यह नहीं समझ पाता कि इस उपबन्ध का लोकतंत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह संविधान सभा, यदि यह देश के लिये संविधान बनाती है, यह भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न जनता की प्रतीक ही है, प्रान्तों के विभिन्न लोगों की प्रतीक नहीं है जो कि संविधान का निर्माण करने के लिये संघ में समवेत हुए हों। हमें यह प्रमुख तथ्य भूल नहीं जाना चाहिये। सदन को यह अधिकार है कि वह देश की स्थिति को देखकर, वस्तुस्थिति को देखकर, कुछ शक्ति केन्द्र को दे दे, कुछ शक्ति प्रान्तों को दे दे, एक से दूसरे को शक्ति हस्तांतरित कर दे। उससे संविधान-सभा के प्रतिनिधित्व में कमी नहीं आती और न सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न भारतीय जनता की लोकतंत्रात्मक शक्ति ही कम होती है। इस विषय में सदन किसी सैद्धान्तिक विचारों के बंधन में नहीं रह सकता। अनुच्छेद 226 पर बहस के समय भी मैंने देखा था कि इसी प्रकार का तर्क उपस्थित किया गया था। किन्तु हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि यह संविधान-सभा भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता की, जो कि एक ही एकक है, प्रतीक के रूप में ही यह विनिश्चय करने जा रही है कि देश की वास्तविक स्थिति को देखते हुए केन्द्र और प्रान्तों के क्या कृत्य होंगे। अब, श्रीमान्, यदि ऐसा है तो सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता और उनके अभिकर्ता के रूप में संविधान-सभा क्रियात्मक रूप में निर्वाचनों की शुद्धता को बनाये रखने के लिये बाध्य है। यह काम इस संशोधन में प्रस्तावित व्यवस्था स्थापित करके ही किया जा सकता है। इसे अलोकतंत्रात्मक बताना सर्वथा निराधार है। यदि लोकतंत्र स्थापित होना है तो भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनता को अपने प्रतिनिधि ऐसी प्रणाली से चुनने का अधिकार होना चाहिये, जो कि संदेह से परे हो, पक्षपात से परे हो। भ्रष्टाचार केवल अभ्यर्थियों की ही ओर से नहीं होता, तत्कालीन सरकार की ओर से भी भ्रष्टाचार हो सकता है। अत: यह आवश्यक है कि हम इस प्रश्न पर किसी सैद्धान्तिक प्रान्तीय स्वायत्तता के दृष्टिकोण से विचार न करें जिस बात को कि इस सदन में बार-बार उठाया जा रहा है।

[श्री के.एम. मुन्शी]

मेरे माननीय मित्र श्री कुलाधर चालिहा ने, जो कि असम से आये हैं, कहा कि इससे प्रान्तीय सरकारों की शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। उन्होंने आगे चल कर यह दृष्टिकोण रखा कि कार्यकुशलता और ईमानदारी के हिसाब से केन्द्र प्रान्तों से अधिक ऊंचा नहीं है। यदि मैंने ठीक सुना है तो उन्होंने कहा कि इस विषय में प्रान्त केन्द्र से अधिक अच्छे हैं। यदि ऐसा है तो मैं चाहता हूं कि हम जितनी जल्दी अपने लोकतंत्र की समाप्ति कर दें उतना ही अच्छा रहेगा। मेरे असम वाले मित्र को पता होना चाहिये कि असम से शिकायत पर शिकायत आती रही है कि असम में जो लोग बस गये हैं उन्हें निर्वाचन नामावलियों से दूर रखने के लिये कई प्रकार के उपाय किये जाते हैं। वे शिकायतें गलत हो सकती है; मैं यहां उनका निर्णय नहीं कर रहा। पर शिकायतें हैं अवश्य.....

***श्री कुलाधर चालिहा:** मैं इस पर आपत्ति करता हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** प्रत्येक विभाग को, जिसका कि उनसे सम्बन्ध है, उन शिकायतों का पता है। वे शिकायतें आती हैं, यही बात एक कारण है कि हमारी वर्तमान स्थिति में प्रान्तीय सरकारों पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि वे निर्वाचनों में यथेष्ट निष्पक्ष होंगी।

***श्री कुलाधर चालिहा:** मैं इस कथन का कड़ा विरोध करता हूं।

***अध्यक्ष:** बहस में गर्मी लाने की आवश्यकता नहीं है। हम केवल एक निरे सांविधानिक प्रश्न पर विचार कर रहे हैं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं गर्मी नहीं ला रहा हूं। मेरे माननीय मित्र ने कहा कि प्रान्त केन्द्र से अथवा इस संविधान-सभा से बहुत ऊंचे हैं। मैंने उन्हें स्मरण कराया कि असम के नेता के रूप में आने पर यह एक आश्चर्यजनक कथन है। यह बात किसी अन्य प्रान्त की ओर से उठ सकती है; वह अलग बात है।

जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने कहा है, विगत में कई निर्वाचन अधिकरण प्रान्तीय सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये थे। वे कांग्रेस सरकारें नहीं थीं. वे अन्य सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये थे। वे एक उद्देश्य विशेष को पूरा करने के लिये नियुक्त किये गये थे। जैसा कि माननीय सदस्य जानते हैं, इस सदन का एक प्रमुख सदस्य, जो अपने प्रान्त की कांग्रेस संस्था का प्रधान था, गत शासन काल में अन्याय का शिकार हुआ था और विधान-मंडल का सदस्य बनने से अपवर्जित हो गया था। मुख्यमंत्री के लिये यह बहुत आसान है कि वह मनमाना निर्वाचन अधिकरण बना दे और एक सबल प्रतिद्वन्द्वी को पांच-सात वर्ष के लिये क्षेत्र से हटा दे। अत: यह आवश्यक है कि इन मामलों को प्रान्तों के अस्थायी आवेशों से मुक्त रखना चाहिये।

श्रीमान्, एक बात और है। हमें यह समझ लेना चाहिये—और मैं माननीय मित्रों श्री पातस्कर और श्री चालिहा को यह सामान्य उत्तर देना चाहता हूं—कि आजकल हमारे सामने जो अवस्था है उसी को देखकर हम समस्याओं पर विचार कर सकते हैं हम इस

बात को भूल नहीं सकते कि कोई दस ग्यारह देशी राज्य, जो प्रान्तों में उपलब्ध साधारण से लोकतंत्रात्मक वातावरण से भी परिचित नहीं हैं, समान अधिकारों के साथ संघ में प्रवेश कर रहे हैं। हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि भारत में ऐसे स्थान हैं जहां प्रान्तीय स्वायत्तता को अधिक पक्की तरह स्थापित करना आवश्यक है। इन परिस्थितियों में, विश्व की स्थिति के अतिरिक्त भी, यह स्वाभाविक ही है कि केन्द्र का उन मामलों पर अधिक नियंत्रण होना चाहिये जिनका समूचे राष्ट्रीय अस्तित्व पर ही प्रभाव पड़ता है। अमरीका में भी, जहां केन्द्र के विकेन्द्रीकरण का प्रश्न नहीं था, वरन् तेरह स्वाधीन राज्य पहले एक प्रकार के संगठन में समवेत हुए थे और बाद में संघ बनाया था, हम वहां भी क्या देखते हैं। 1929 के आर्थिक संकट के पश्चात् कृषि, शिक्षा, उद्योग, बेकारी, असुरक्षा सब शनैः शनैः कई प्रकार से केन्द्र के नियंत्रण तथा प्रभाव में चले गये। वहां संविधान लचकीला नहीं है अतः उन्हें इस परिणाम को प्राप्त करने के लिये कई चक्कर काटने पड़े। राष्ट्र से छोटा एकक आजकल कोई नहीं हो सकता, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में राष्ट्र भी एक छोटा सा एकक ही है। यह विचार भ्रममूलक है कि प्रांतीय स्वायत्तता प्रान्तों का जन्मजात अधिकार है। अमरीका के एक मुख्य राजनैतिक विचारक चार्लस मेरियम ने अपनी पुस्तक ''सांविधानिक सुधार की आवश्यकता'' में संयुक्त राज्य अमरीका के राज्यों के निर्देश से लिखा है: ''अब अधिकांश राज्य आर्थिक और सामाजिक इकाइयां नहीं रहे है और संगठन और प्रतिनिधित्व के एककों के रूप में उनकी स्थिति को गम्भीर चुनौती दी जा चुकी है।'' हमारे देश में स्थिति भिन्न है। 1833 के परिषद् अधिनियम से लेकर भारत शासन अधिनियम 1935 तक प्रान्तों पर केन्द्रीय नियंत्रण रहा है और वह अच्छा सिद्ध हुआ है। भारत ने गत सौ वर्षों में जो शक्ति, ताकत और सार्वजनिक जीवन की एकता प्राप्त की है, वह मुख्यतः देश के केन्द्रित प्रशासन के कारण ही है। जो सदस्य उसी विषय का राग अलाप रहे हैं मैं उन्हें चेतावनी देना चाहता हूं कि वे एक सर्वोपरि बात को स्मरण रखें कि भारत के स्वर्ण दिवस वही थे जब कि देश में प्रबल केन्द्रीय प्राधिकार था चाहे वे मौर्य राज्य में हों चाहे मुगल राज्य में और सबसे अधिक दुःखद दिन वही थे जबकि केन्द्रीय प्राधिकार ढीला पड़ गया था और प्रान्त उसका विरोध करते थे। हम यह चाहते हैं कि प्रान्तीय क्षेत्र अखंड रहे, वे काफी स्वायत्तता का आनन्द ले, किन्तु राष्ट्रीय सत्ता के अधीन होकर ही वे ऐसा करे। जब राष्ट्रीय संकट आये, तब हमें समझ लेना चाहिये कि केवल केन्द्र ही बीच में आकर उस अराजकता के विरुद्ध हमारी रक्षा कर सकता है जो कि अन्यथा उत्पन्न हो जायेगी। अतः मेरा निवेदन है कि प्रान्तीय स्वायत्तता विषयक युक्ति का कोई प्राथमिक सैद्धांतिक मूल्य नहीं है। हमें प्रत्येक विषय पर या मामले पर इसी दृष्टिकोण से विचार करना है कि वर्तमान परिस्थितियां क्या हैं और अधिकतम राष्ट्रीय कुशलता प्राप्त करने के लिये हम केन्द्रीय या प्रान्तीय नियंत्रणों का हिसाब ठीक कैसे जमा सकते हैं। उसी दृष्टिकोण से मेरा निवेदन है कि मेरे मित्र डा. अम्बेडकर का संशोधन अच्छा है, बहुत अच्छा है और देश के लिये बहुत लाभदायक है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, अब प्रश्न पर मत लिये जायें।

***अध्यक्षः** समाप्ति का प्रस्ताव रखा गया है। मैं सदन की भावना को जान लेना चाहता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे इस संशोधन पर कई दृष्टिकोणों से आलोचना की गई है। किन्तु अपने उत्तर में मेरा यह विचार नहीं है कि बहस में जितनी बातें उठाई गई हैं उन सबका उत्तर दूं। मेरा विचार केवल उन्हीं बातों का उत्तर देने का है जो मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने उठाई हैं और जिन पर मेरे मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू ने बल दिया है। मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना ने जो संशोधन पेश किया है उसमें असल में दो बातें हैं जिन पर हमें विचार करना है। एक बात तो इस निर्वाचन आयोग में आयुक्तों की नियुक्ति के विषय में है और दूसरी बात निर्वाचन आयुक्तों को हटाने के विषय में है। जहां तक हटाने के प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा वैयक्तिक रूप से यह ख्याल है कि मेरे प्रस्ताव में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सदन देखेगा कि जहां तक निर्वाचन आयोग के सदस्यों को हटाने का सम्बन्ध है, मुख्य आयुक्त की वही स्थिति है जो कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की है। और मैं नहीं जानता कि हमने खंड (4) के परन्तुक में जितनी सुरक्षा की व्यवस्था की है उससे अच्छी व्यवस्था किसी भी अन्य संविधान में विद्यमान हो।

अन्य आयुक्तों के विषय में यह उपबन्ध है कि उन्हें हटाने की शक्ति तो राष्ट्रपति के पास रहने दी गई है, पर उस शक्ति पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सीमा है कि अन्य आयुक्तों को हटाने के मामले में राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही कार्यवाही कर सकता है। अत: मेरा कहना यह है कि जहां तक हटाने के प्रश्न का सम्बन्ध है मेरे संशोधन में जो उपबंध रखे गये हैं वह पर्याप्त हैं और उस प्रयोजन के लिये अधिक कुछ भी आवश्यक नहीं है।

अब नियुक्ति के सम्बन्ध में मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना के कथन में काफी बल है कि निर्वाचन आयुक्त की पदावधि को निश्चित और सुरक्षित करने से कोई लाभ नहीं है, यदि संविधान में ऐसे व्यक्ति को वर्जित करने का कोई उपबंध न हो जो कि मूर्ख या दुष्ट या ऐसा व्यक्ति हो जो कि कार्यपालिका की मुट्ठी में रह सकता हो। मुझे स्वीकार करना है कि मेरे उपबन्ध में कोई ऐसी बात नहीं है कि जिससे कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त या अन्य निर्वाचन आयुक्तों के पद पर किसी अनुपयुक्त व्यक्ति को नामनिर्देशित होने से रोका जा सके। मैं यह भी स्वीकार करना चाहता हूं कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिससे मुझे बहुत सरदर्द रहा है और मुझे इस पर संदेह नहीं है कि इससे सदन को बहुत सरदर्दी होगी। संयुक्त राज्य अमरीका में उन्होंने इस प्रश्न का हल अपने संविधान के अनुच्छेद 2 धारा (2) के उपबन्ध द्वारा कर लिया है जिससे कि अनुच्छेद 2 की धारा (2) में उल्लिखित कुछ नियुक्तियां राष्ट्रपति द्वारा सीनेट से पूछे बिना नहीं की जा सकती; जिससे कि जहां तक नियुक्ति की शक्ति का सम्बन्ध है यद्यपि वह राष्ट्रपति में निहित है तदापि इस पर सीनेट को देखभाल का अधिकार है, जिससे कि सीनेट किसी समय जब कोई नाम प्रस्तावित किया जाये, पूछताछ करके आपको संतुष्ट

कर सकती है कि प्रस्तावित व्यक्ति समुचित व्यक्ति है। परन्तु यह भी समझ लेना चाहिये कि यह बहुत विलम्बकारी तरीका है। जब नियुक्ति की जाये तब शायद संसद समवेत न हो और नियुक्ति करना तत्काल आवश्यक हो सकता है। दूसरे अमरीकी आचरण से नियुक्तियां करने में राजनैतिक विचार प्रविष्ट हो सकते हैं और वास्तव में ऐसा होता भी है। परिणामत: मैं यह तो समझता हूं कि अमरीकी संविधान के उपबंध नियुक्तियां करने में राष्ट्रपति पर अत्यन्त ठीक रोक है पर इससे प्रशासनिक कठिनाइयां हो सकती हैं और इसीलिये मैं हिचकिचा रहा हूं कि क्या मुझे आगे चल कर अपने संविधान में अमरीकी उपबन्धों के रखने की सिफारिश करनी चाहिये। मस्विदा समिति ने इस प्रश्न पर अत्यधिक विचार किया है, क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह हमारे लिये सबसे बड़ा सरदर्द है, और मध्यवर्ती उपाय के रूप में यह विचार किया गया था कि यदि यह सभा राष्ट्रपति के लिये तथाकथित अनुदेश पत्र बना दे और दे दे और उसमें कोई ऐसी व्यवस्था रख दे जिससे परामर्श करना, नियुक्तियां करने से पूर्व, राष्ट्रपति के लिये आवश्यक हो तो मेरे विचार में अमरीकी संविधान से जो कठिनाइयां पैदा होती प्रतीत होती हैं वे हट सकती हैं और उसमें जो लाभ है वह प्राप्त हो सकता है। इस समय मेरे लिये यह कहना असंभव है कि जब सदन के समक्ष उन अनुदेशों का मस्विदा आयेगा तब सदन का क्या दृष्टिकोण होगा। यदि सदन मस्विदा समिति के इस सुझाव को ठुकरा दे कि राष्ट्रपति के लिये एक अनुदेश पत्र होना चाहिये, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त नियुक्तियां करने के विषय में भी एक उपबन्ध होना चाहिये, तो फिर यह समस्या उस प्रकार सुलझ जायेगी। किन्तु जैसा कि मैंनें कहा है, मेरे लिये यह कहना कठिन है कि क्या होगा। अत: अपने माननीय प्रो. सक्सेना की आलोचना को मान कर, जो मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू की आलोचना से समर्थित हुई है, मैं संशोधन संख्या 99 में कुछ संशोधन करने के लिये तैयार हूं। मुझे अफसोस है कि मुझे इन संशोधनों को घुमाने का समय नहीं मिला, किन्तु मैं उन्हें पढ़ दूंगा तो सदन को पता लग जायेगा कि मैं क्या प्रस्ताव कर रहा हूं।

मेरा प्रथम संशोधन यह है:

> ''कि खंड (1) के अन्त में 'to be appointed by the President' ये शब्द हटा दिये जायें।''
>
> ''खंड (2) की पंक्ति 4 में 'appoint' शब्द के स्थान पर 'fix' शब्द रख दिये जायें, तथा उसके पश्चात् निम्न प्रविष्ट कर दिये जायें:

'The appointment of the Chief Election Commissioner and other Election Commissioners shall, subject to the provisions of any law made in this behalf by Parliament be made by the President.' "

'' 'When any other Election Commissioner is so appointed'

आदि, इन शब्दों के पश्चात् शेष खंड की संख्या खंड (2-क) कर दी जाये।''

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है नई बातें पेश की जा रही हैं जिनके लिये इस समय अनुमति नहीं मिलनी चाहिये, अन्यथा इस पर और वाद-विवाद आवश्यक होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे आशा है कि सभापति अन्य सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने की अनुमति देंगे।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में ऐसी अवस्था में सर्वोत्तम उपाय इस अनुच्छेद पर विचार को स्थगित कर देना होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ये संशोधन बिल्कुल आपत्तिजनक नहीं है; उनमें यही लिखा है कि जो कुछ किया जाये वह संसद द्वारा निर्मित विधियों के अधीन होना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): मेरा सुझाव है कि इन संशोधनों की प्रतिलिपियां तैयार करवाकर सदस्यों को दे दी जायें और उन्हें बाद में लिया जाये।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मेरा सुझाव है कि इन पर मस्विदा समिति विचार करे। चाहे वे पारिभाषिक ही हों, पर हमें उन पर विचार करने का अवसर मिलना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इन संशोधनों को मस्विदा-समिति से परामर्श करके ही पेश किया गया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** संशोधनों में केवल यही कहा गया है कि राष्ट्रपति की शक्तियां संसदीय विधान के अधीन होंगी। वे अनुच्छेद के विषय को नहीं बदलते और हमें प्रक्रिया के विषय में इतना कठोर होने की आवश्यकता नहीं है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** इस पर अधिक बहस हो, तब भी मेरे विचार में हमें यह जान लेना चाहिये कि जो कठिनाइयां बताई गई हैं, उन्हें डा. अम्बेडकर कैसे दूर करना चाहते हैं। अत: उन्हें अपने सुझाव रखने दिये जायें।

***अध्यक्ष:** इसीलिये मैंने उन्हें इस संशोधन को पेश करने दिया है। पेश होने के पश्चात् हम निश्चय करेंगे कि उन पर अभी बहस की जाये या किसी और दिन।

***श्री के.एम. मुन्शी:** संशोधनों में केवल यही कहा गया है कि जो काम किया जाये वह संसद की विधियों के अधीन हो। यह संशोधन 123 में पहले ही आ जाता है।

***अध्यक्ष:** संशोधनों को पेश होने दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा अगला संशोधन यह है:

''कि खंड (4) के आरम्भ में यह प्रविष्ट कर दिये जायें:

'इस विषय में संसद द्वारा बताई गई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।''

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, यह सारवान संशोधन है क्योंकि राष्ट्रपति के स्वविवेक पर संसदीय विधि का बन्धन पड़ सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि अधिक बहस आवश्यक है; इन्हें पेश होने दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** आप संविधान पर पारिभाषिक बातों से विचार नहीं कर सकते। अत्यधिक पारिभाषिक बातों से संविधान-निर्माण नष्ट हो जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** आपने उस दिन निर्णय किया था कि सारवान संशोधन स्थगित कर दिये जायेंगे।

***अध्यक्षः** यदि इन्हें सारवान संशोधन समझा जाता है तो वे स्थगित कर दिये जायेंगे। सदन में काफी लोग स्थगन के पक्ष में प्रतीत होते हैं अतः बहस स्थगित रहेगी।

नया अनुच्छेद 289-क

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 110 के निर्देश से प्रस्तावित अनुच्छेद 289-क के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'289क *धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति निर्वाचक नामावलि में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा तथा किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा*—संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचन हेतु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र के लिये एक साधारण निर्वाचक नामावली होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा अथवा ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिये किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।''

श्रीमान्, इस अनुच्छेद का उद्देश्य सदन के उस विनिश्चय को कार्यान्वित करना है कि आगे चलकर पृथक् निर्वाचकगण नहीं होंगे। वास्तव में यह खंड अनावश्यक है क्योंकि बाद के संशोधनों द्वारा हम संविधान के मस्विदे के उन उपबंधों को हटा देंगे जिनमें मुस्लिमों, सिखों, आंग्ल भारतीयों आदि के प्रतिनिधित्व का उपबन्ध बनाया गया हैं। परिणामतः यह अनावश्यक है। पर लोगों की यह भावना है कि हमने ऐसा महत्त्वपूर्ण विनिश्चय किया है जो विगत को लगभग समाप्त कर देता है, अतः यह अच्छा है कि संविधान में इसकी स्पष्ट चर्चा हो। इसी कारण मैंने यह संशोधन रखा है।

***अध्यक्षः** क्या मैं इसका यह अर्थ समझूं कि केवल वाद-विवाद के प्रयोजन के लिये ही आपने यह पेश किया है और इसे आप पारित करवाना नहीं चाहते?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान्, यह बात नहीं है। मैंने संशोधन पेश किया है। मैं केवल कारण बता रहा था कि मैंने इसे पेश क्यों किया है।

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

मैं दूसरा संशोधन भी पेश करूंगा कि नया अनुच्छेद 289-ख प्रविष्ट कर दिया जाये। मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 3087 के स्थान पर निम्न संशोधन रख दिया जाये:
>
> 'कि अनुच्छेद 289-क के पश्चात् निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:
>
> '289-ख *लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिये निर्वाचन का वयस्क मताधिकार के आधार पर होना*—लोक सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है, तथा जो ऐसी तारीख पर, जैसी कि समुचित विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन इसलिये नियत की गई हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम नहीं है, तथा इस संविधान अथवा समुचित विधानमंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अनर्ह नहीं कर दिया गया है, ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में पंजीबद्ध होने का हकदार होगा।' ''

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुच्छेद 289-ख का विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। मैं सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों कारणों से वयस्क मताधिकार के विरुद्ध हूं। मैं वयस्क मताधिकार के विरुद्ध इसलिये हूं कि यह लोकतंत्र के सिद्धान्तों का गम्भीर उल्लंघन है। वयस्क मताधिकार में यह पूर्व धारणा होती है कि निर्वाचकगण समझदार हैं जहां निर्वाचकगण विवेकशील न हो वहां संसदमूलक लोकतंत्र नहीं हो सकता।

***अध्यक्ष:** क्या उस पर अब आपत्ति हो सकती है? हम अनुच्छेद 149 को पहले ही पारित कर चुके हैं जिसमें स्पष्ट लिखा है कि निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। वह शरद्-सत्र में पारित हुआ था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं आपके निर्णय को शिरोधार्य करूंगा। जब वह अनुच्छेद पारित हुआ था तब मैं उपस्थित नहीं था।

***अध्यक्ष:** फिर आप इसका इस समय विरोध नहीं कर सकते।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह नया अनुच्छेद वास्तव में निरर्थक है। हो सकता है कि मस्विदा समिति को फिर इसे वापस लेना पड़े।

***अध्यक्ष:** यही उन्होंने कहा है। जब धाराओं की पुन: व्यवस्था करने का समय आयेगा, तब इस धारा को इस रूप में रखना शायद आवश्यक न हो। किन्तु यह पेश हो चुका है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह सिद्धान्त तो सदन द्वारा स्वीकृत हो चुका है।

***अध्यक्ष:** यही मैं कहता हूं। सिद्धान्त तो स्वीकृत हो चुका है।

प्रश्न यह है:

''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 110 के निर्देश से, प्रस्तावित नये अनुच्छेद 289-क के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

289-क. *धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर कोई व्यक्ति निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा तथा किसी ऐसे विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा*—(क) संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचन हेतु प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिये एक साधारण निर्वाचन नामावलि होगी तथा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति ऐसी किसी नामावली में सम्मिलित किये जाने के लिये अपात्र न होगा अथवा, ऐसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिये किसी विशेष निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 289-क संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 289-क संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 3087 के स्थान पर, निम्न संशोधन रख दिया जाये:

'कि अनुच्छेद 289-क के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

'289-ख *लोक सभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिये निर्वाचन का वयस्क मताधिकार के आधार पर होना*—लोक सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिये निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है तथा जो ऐसी तारीख पर, जैसी कि समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन इसलिये नियत की गई हो, इक्कीस वर्ष की अवस्था से कम नहीं है, तथा इस संविधान अथवा समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी ऐसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त-विकृति, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचार के आभार पर अनर्ह नहीं कर दिया गया है ऐसे किसी निर्वाचन में मतदाता के रूप में पंजीबद्ध होने का हकदार होगा।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 289-ख संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 289-ख संविधान में जोड़ दिया गया।

(नया अनुच्छेद 289-ग पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 290

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 290 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'290. *विधानमंडलों के लिये निर्वाचन के विषय में उपबंध बनाने की संसद की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संसद, समय-समय पर विधि द्वारा संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध में जिनके अन्तर्गत निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन तथा ऐसे सदन या सदनों का सम्यक गठन कराने के लिये आवश्यक विषय भी है, उपबन्ध कर सकेगी।' ''

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं दूसरे संशोधन को भी पेश करना चाहता हूं जो इसमें संशोधन करता है। मैं प्रस्ताव करता हूं:

'कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 123 के निर्देश से नये अनुच्छेद 290 में, 'including' शब्द के पश्चात् 'the preparation of electoral rolls and all other' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'' (हिन्दी में 'अन्तर्गत' शब्द के पश्चात् निर्वाचन नामावलियों का तैयार कराना तथा' ये शब्द प्रविष्ट होंगे।)

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैंने संशोधन संख्या 100 तथा 129 की सूचना इस विचार से भेजी थी कि निर्वाचनों के विषय में विधियां बनाने का समूचा उत्तरदायित्व तथा क्षेत्राधिकार केन्द्रीय विधानमंडल पर छोड़ दिया जाना चाहिये और निर्वाचन सम्बन्धी मामलों के विषय में विधियां अधिनियमित करने की शक्ति केवल केन्द्रीय विधानमंडल को ही दी जानी चाहिये। अब भी जब कि संशोधन संख्या 99 पर वाद-विवाद हो रहा था तब मैंने यह अनुभव किया कि यदि मेरे संशोधन संख्या 100, 127 और 129 स्वीकृत हो जाते तो इन नये संशोधनों को रखने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि, मेरे मतानुसार, यह ठीक नहीं है कि कार्यपालिका को ऐसे उच्च अधिकारियों को नियुक्त करने की शक्ति दी है जिनमें कि निर्वाचनों के विषय में समस्त अधिकार और शक्तियां केन्द्रित हैं। संसद को अन्तिम शक्ति होनी चाहिये। इसी प्रकार मेरे संशोधन संख्या 127 के विषय में, जो कि मैंने पेश नहीं किया है, जब मैंने देखा कि संशोधन संख्या 123 के शब्द ये हैं ''इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद समय-समय पर, विधि द्वारा, निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध

में... उपबन्ध कर सकेगी।'' जब संसद को यह शक्ति दे दी गई है तो मेरी समझ में नहीं आता कि प्रान्तों द्वारा प्रयोग के लिये इस अनुच्छेद के अधीन क्या शक्ति शेष रह जाती है। यदि हम चाहते हैं कि निर्वाचनों में एकरूपता हो तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि केवल संसद को ही यह शक्ति प्राप्त हो।

अनुच्छेद 289 के अन्तर्गत, ये शक्तियां प्रान्तों के स्थान पर केन्द्र को देने के लिये युक्तियां पेश की गई थी। यदि वे युक्तियां ठीक हैं तो हमारे लिये यह कहना ठीक नहीं लगता कि जो शक्ति अवशिष्ट रह जाये उसका प्रयोग प्रान्तीय विधानमंडल कर सकते हैं। संशोधन संख्या 123 सर्वव्यापक है और इसलिये संशोधन संख्या 128 की कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान् मैं अनुच्छेद 291 पर पेश किये गये संशोधन संख्या 128 को रखने का समर्थन करता हूं। मैं अपने मित्र श्री भार्गव से सहमत नहीं हूं। हमने निर्वाचनों को प्रान्तीय विधानमंडलों और राज्यपालों के क्षेत्र से निकाल दिया है। हमने निर्वाचन आयोग की नियुक्ति को लगभग केन्द्र के अधीन ही कर दिया है। यह ऐसा परिवर्तन है जिसके विषय में शिकायतें हुई है कि प्रान्तीय सरकारों को शून्यवत् बना दिया गया है। भ्रष्टाचार को हटाने के लिये हम समस्त शक्ति को संसद में निहित करना चाहते थे। संशोधन 128 में इतना ही कहा गया है कि जिन मामलों के लिये संसद उपबन्ध न बनाये, उनके लिये प्रान्तीय विधान मंडलों को शक्ति होगी। मेरे मित्र श्री भार्गव इतना भी नहीं चाहते। उनके मतानुसार, या तो संसद विधि बनाये, या विधि बनाने वाला कोई प्राधिकारी हो ही नहीं। कुछ ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें एकरूपता के लिये संसद विधि बना सकती है और राज्यों के विधानमंडल अवशिष्ट विधियां बना सकते हैं। संशोधन संख्या 128 में यही उपबन्ध है। मैं नहीं जानता कि इस थोड़ी सी हद तक भी राज्यों के विधान मंडलों को शक्ति क्यों न दी जाये। हम राज्यों के विधान मंडलों पर इतना संदेह क्यों करें कि हम उनसे सब कुछ ही छीन लें? मैं संशोधन संख्या 128 का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं देखता हूं कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने अनुच्छेद 290 पर एक संशोधन की सूचना दी है। जब संशोधन पेश हुए थे तब वे यहां नहीं थे। पर यह सारवान संशोधन नहीं है।

यदि डा. अम्बेडकर उत्तर में कुछ नहीं कहना चाहते तो मैं इस संशोधन पर मत लूंगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे कुछ भी नहीं कहना है, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 290 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'290. *विधान मंडलों के लिये निर्वाचनों के विषय में उपबन्ध बनाने की संसद की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद समय-समय पर, विधि द्वारा संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध

[अध्यक्ष]

में जिनके अंतर्गत निर्वाचक नामावलियों का तैयार कराना तथा निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन तथा ऐसे सदन या सदनों का सम्यक् गठन कराने के लिये अन्य सब आवश्यक विषय भी हैं, उपबन्ध कर सकेगी।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 290 संविधान का अंग बने।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में, अनुच्छेद 290 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 291

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 291 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'291. *किसी राज्य के विधान मंडल की ऐसे विधान मंडल के लिये निर्वाचनों के सम्बन्ध में उपबन्ध बनाने की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए तथा जहां तक संसद इसलिये उपबन्ध नहीं बनाती वहां तक, किसी राज्य का विधानमंडल, समय-समय पर, विधि द्वारा, उस राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत ऐसे सदन या सदनों का सम्यक् गठन कराने के लिये आवश्यक विषय भी है, उपबन्ध कर सकेगा।' ''

श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं छठी सूची, पंचम सप्ताह, के संशोधन संख्या 211 को भी पेश करता हूं।

संशोधन इस प्रकार है:

''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 128 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291 में, 'including' शब्द के पश्चात् 'the proparation of electoral rolls and all other' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'' (हिन्दी में 'अन्तर्गत' शब्द के पश्चात् 'निर्वाचक नामावलियों का तैयार कराना तथा' ये शब्द प्रविष्ट होंगे।)

***अध्यक्ष:** अन्य संशोधन भी हैं। संशोधन संख्या 129 नकारात्मक है, अत: वह पेश नहीं हो सकता। संशोधन संख्या 130 और 131 पेश नहीं हो रहे हैं।

क्या कोई सदस्य संशोधन या अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहता है?

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, यह अनुच्छेद 291, अनुच्छेद 290 के पश्चात् जाता है और उसका निष्कर्ष है। अनुच्छेद 291 बिल्कुल अनुच्छेद 290 के समान ही है, केवल अनुच्छेद 290 की अन्तिम बात, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के विषय में अन्तर है। प्रश्न यहां यह उठता है कि संसद में और राज्य के विधान मंडल में क्या-क्या शक्ति निहित होगी। अनुच्छेद 290 में यह लिखा है कि संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्वाचन

सम्बन्धी सब मामलों के विषय में उपबन्ध बना सकती है—वहां यह पद प्रयुक्त हुआ है 'सब मामलों के विषय में।' यहां फिर, वे ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं, अर्थात् अनुच्छेद 291 में लिखा है कि राज्य का विधान मंडल समय-समय पर निर्वाचन सम्बन्धी सब मामलों के विषय में उपबन्ध बना सकता है। अर्थात् विधान मंडल के किसी सदन के निर्वाचन सम्बन्धी सब मामले संसद के भी क्षेत्र में आते हैं और राज्यों के विधान मंडल के क्षेत्र में भी आते हैं। क्या हम संसद को और राज्य विधान मंडल की प्रदत्त शक्तियों की सीमा को परिभाषित करने जा रहे हैं या उन शक्तियों को सीमांकित करने जा रहे हैं? क्या हम दूसरी अनुसूची रखने जा रहे हैं? यही मेरा प्रश्न है। क्या हम इस संविधान के मस्विदे में एक नई अनुसूची रखने जा रहे है जिसमें हम राज्यों के निर्वाचनों सम्बन्धी मामलों में विधान बनाने की संसद की शक्तियों और राज्य के विधान मंडल की शक्तियों को परिभाषित करेंगे? यदि हम कृत्यों को परिभाषित नहीं करेंगे और उनका सुनिश्चित वितरण नहीं करेगे तो मुझे भय है कि इससे किसी न किसी समय संसद और राज्य विधान मंडल में किसी प्रकार का संघर्ष या खींचातानी हो सकती है। नि:संदेह 291 में इसके लिये खंड है कि: ''जहां तक इस विषय में संसद द्वारा कोई उपबन्ध न बनाया जाये।'' श्रीमान्, यदि राज्यों के निर्वाचनों के सम्बन्ध में सब मामलों पर संसद विधि बना दे—ऐसा करने की शक्ति 290 के अधीन उसे प्राप्त है; केन्द्रीय संसद को राज्यों में निर्वाचनों सम्बन्धी सब मामलों में विधि बनाने की शक्ति है जिनमें निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन भी समाविष्ट है जो कि राज्य से ले लिया गया है—मैं उस पर आपत्ति नहीं करता—पर फिर राज्यों के लिये क्या बचेगा? निर्वाचन सम्बन्धी विधि मामलों के विषय में, मैं नहीं समझता कि राज्य विधान मंडल को सब क्षेत्राधिकार से वंचित करना बुद्धिमानी होगी। मेरे विचार में, उनके पास कुछ शक्ति छोड़ देना अच्छा होगा और बुद्धिमानी होगी, जिससे कि अधिक सामंजस्य की वृद्धि हो। मुझे आशंका है कि हम यहां कृत्यों का अत्यधिक केन्द्रीयकरण करना चाहते हैं। मेरे विचार में अत्यधिक केन्द्रीयकरण संघ और एककों के बीच सामंजस्य को नहीं बढ़ाता। नि:संदेह हम शक्ति चाहते हैं, पर शक्ति के साथ सामंजस्य भी चाहते हैं। सामंजस्य के बिना, संघ और एककों के बीच सद्भावना के बिना शक्ति निरर्थक है। यह तो केवल कठोरता हुई। अत:, श्रीमान्, मैं तो वैयक्तिक रूप में यही अच्छा समझता हूं कि राज्यों में निर्वाचनों सम्बन्धी कुछ मामलों को राज्य विधान मंडल पर ही छोड़ दिया जाये और राज्य विधान मंडल के किसी सदन के निर्वाचनों सम्बन्धी सब मामलों के विषय में विधि बनाने की समस्त शक्ति संसद को ही नहीं दे देनी चाहिये। मेरे ख्याल में राज्य के विधान मंडल को भी कुछ सुनिश्चित शक्तियां दे दी जानी चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे ख्याल में श्री कामत ने दोनों अनुच्छेदों 290 और 291 को ठीक प्रकार से पढ़ा नहीं है या ठीक प्रकार समझा नहीं है। अनुच्छेद 290 में संसद को शक्ति दी गई है, पर 291 में लिखा है कि यदि कोई ऐसा मामला है जिस पर संसद ने उपबन्ध नहीं बनाया है तो राज्य विधान मंडल को उस पर उपबन्ध बनाने का अधिकार होगा। यह एक प्रकार का अवशेष है जो संसद राज्य विधान मंडल के लिये छोड़ सकती है। यह तो शेषाधिकार सम्बन्धी अनुच्छेद है। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ नहीं है।

श्री ए. थानू पिल्ले (ट्रावनकोर राज्य): जब समय अनुसूची के अनुसार काम करना हो, तब क्या स्थानीय विधान मंडल को प्रतीक्षा करनी होगी और यह देखना होगा कि केन्द्रीय संसद क्या करती है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** प्रधानतया: 290 के अधीन उपबन्ध बनाना संसद का कर्त्तव्य होगा। यह उत्तरदायित्व पूर्णत: संसद पर डाल दिया गया है। संसद का यह कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व होगा कि वह 290 में समाविष्ट मामलों के विषय में विधि द्वारा उपबन्ध करे, यदि किसी मामले पर संसद द्वारा स्पष्ट और विशिष्ट उपबन्ध न बनाया गया हो, तो 291 में लिखा है कि संसद 290 में समाविष्ट जिस मामले पर उपबन्ध न बना सकी है उस पर कोई उपबन्ध बनाने का राज्य का विधान मंडल को अपवर्जन न होगा।

***श्री ए. थानू पिल्ले:** क्या मैं डा. अम्बेडकर से जान सकता हूं कि क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस मामले में केन्द्रीय विधान मंडल या स्थानीय विधान मंडल पर ही समस्त उत्तरदायित्व डाल दिया जाये, जिससे कि निर्वाचन समय अनुसूची के अनुसार हो सकें?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं सहमत नहीं हूं। कई मामले महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं और जिन पर संसद यह समझ सकती है कि वह स्वयं ही उपबन्ध करे। कई अन्य मामलों पर संसद समझ सकती है कि वे स्थानीय महत्त्व के हैं अत: उन पर प्रान्त प्रान्त में भिन्नता हो सकती है अत: उन्हें संसद स्थानीय विधान मंडल पर छोड़ना अच्छा समझ सकती है। इसी कारण 290 और 291 में अन्तर रखा गया है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि प्रथम सूची (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 128 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291 में, 'including' शब्द के पश्चात् 'the preparation of electoral rolls and all other' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 291 के स्थान पर निम्न नया अनुच्छेद रख दिया जाये:
>
> '291. *किसी राज्य के विधान मंडल की ऐसे विधान मंडल के लिये निर्वाचनों के संबंध में उपबंध बनाने की शक्ति*—इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए तथा जहां तक संसद इस लिये उपबन्ध नहीं बनाती वहां तक, किसी राज्य का विधान मंडल, समय-समय पर, विधि द्वारा उस राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिये निर्वाचनों से सम्बद्ध या संसक्त सब विषयों के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत निर्वाचक नामावलियों का तैयार कराना तथा ऐसे सदनों का सम्यक् गठन कराने के लिये अन्य सब आवश्यक विषय भी हैं, उपबन्ध कर सकेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 291 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 291 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 291-क

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 291 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

291-क. *निर्वाचन विषयों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक*—इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी—

(क) अनुच्छेद 327 या अनुच्छेद 328 के अधीन निर्मित या निर्मातुमभिप्रेत किसी विधि की, जो निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के बांटने से सम्बद्ध है, मान्यता पर किन्हीं न्यायालयों में आपत्ति न की जायेगी;

(ख) संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के किसी निर्वाचन पर ऐसी निर्वाचन याचिका के बिना कोई आपत्ति न की जायेगी पर ऐसे प्राधिकारी को तथा ऐसी रीति से उपस्थित की गई है जो समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन उपबंधित है;

(ग) ऐसे किसी निर्वाचन या ऐसे निर्वाचन की किसी स्थिति के सम्बन्ध में या उसके विषय में कार्यवाही की अन्तता के लिये उपयुक्त विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन या द्वारा उपबन्ध किया जा सकेगा।' ''

श्रीमान्, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 132 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291-क में, खंड (ग) हटा दिया जाये।''

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि सूची 1 (पंचम सप्ताह) के संशोधन संख्या 132 के निर्देश से, नये अनुच्छेद 291-क में खंड (ग) हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 291 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:

'329. *निर्वाचन विषयों में न्यायालयों के हस्तक्षेप पर रोक*—इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी—

(क) अनुच्छेद 327 या अनुच्छेद 328 के अधीन निर्मित या निर्मातुमभिप्रेत किसी विधि की, जो निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन या ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को स्थानों के बांटने से सम्बद्ध है, मान्यता पर किन्हीं न्यायालयों में आपत्ति न की जायेगी;

[अध्यक्ष]

(ख) संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के किसी निर्वाचन पर ऐसी निर्वाचन याचिका के बिना कोई आपत्ति न की जायेगी पर ऐसे प्राधिकारी को तथा ऐसी रीति से उपस्थित की गई है जो समुचित विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि के द्वारा या अधीन उपबन्धित है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 291-क संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 291-क संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** तब हम दूसरे अनुच्छेद 296 को लेते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 292 से 295 तक एक पूर्ण योजना के अंग हैं और अनुच्छेद 296 उनके साथ है, अत: हम अनुच्छेद 297 को ले सकते हैं और अभी 296 को छोड़ सकते हैं।

***अध्यक्ष:** क्या यह विचार है कि हम अनुच्छेद 296 पर वाद-विवाद को भी स्थगित कर दें? तो फिर हम अनुच्छेद 297 को लेंगे।

अनुच्छेद 297

(संशोधन संख्या 3197 पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 297 के खंड (2) में, 'if such members are found qualified for appointment on merit as compared with the members of other communities' इन शब्दों के स्थान पर 'provided that such appointment is made on ground only of merit as compared with the members of other communities' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मेरे विचार में यह संशोधन तो लगभग रचना सम्बन्धी है। मैं इसे मस्विदा समिति के संयुक्त विवेक पर छोड़ देता हूं कि इस पर समुचित अवसर पर विचार कर लें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं देखता हूं कि यह रचना सम्बन्धी नहीं है पर हम इस पर बाद में विचार करेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 297 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 297 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 298

(संशोधन संख्या 3172 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद 298 पर भी कोई संशोधन नहीं है।

***श्री फ्रेंक एन्थानी** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, मेरा इरादा भाषण देने का नहीं है। मैंने अनुच्छेद 298 पर एक संशोधन की सूचना दी थी कि उसे मैसूर राज्य पर भी लागू कर दिया जाये, किन्तु जब मैंने अपने संशोधन के विषय में डा. अम्बेडकर और श्री मुंशी से बात की तो मुझे बताया गया कि यदि वे मेरा संशोधन स्वीकार करने के लिये तैयार भी हो तब भी वे इस समय ऐसा करने में असमर्थ हैं क्योंकि अभी यह विनिश्चित नहीं हुआ है कि यह संविधान सभा मैसूर राज्य के लिये भी विधान बनायेगी या नहीं, इस कारण, श्रीमान्, मैं इस समय अपने संशोधन को स्वीकार करने के लिये नहीं कहूंगा। यदि और जब यह सभी मैसूर के सम्बन्ध में विधान बनाये, तब मेरे ख्याल में मुझे उस समय इस संशोधन को पेश करने की अनुमति दे दी जाये। इस सम्बन्ध में मैं केवल कुछ ही शब्द कहना चाहता हूं और उन सब सदस्यों को धन्यवाद देना चाहता हूं जिन्होंने कई संशोधनों की सूचना देने पर भी एक बार और अपनी उदारता दिखाई है और इकट्ठे ही अपने संशोधनों को वापस ले लिया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, जब मैंने अनुच्छेद 297 और 298 पर कुछ संशोधन भेजे थे तब मेरी यह भावना नहीं थी कि अपने नेताओं के वचनों की अवहेलना करूं जिन्होंने आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को कुछ आश्वासन दिये थे, किन्तु मुझे यह कहना पड़ेगा कि मैंने इन संशोधनों की सूचना एक दूसरे दृष्टिकोण से दी थी। जब ये रियायतें आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को दी गई थी तब 1947 था और दस वर्ष का समय काफी समझा गया था। सामान्यतः वे दस वर्ष 1957 में समाप्त हो जाते। अब संविधान 1950 में आरम्भ होगा। अतः मैंने सोचा कि रियायत केवल दस वर्ष के लिये देनी चाहिये थी। किसी जाति को कोई रियायत देने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर हमें यह समझ लेना चाहिये कि दलित और पीड़ित वर्गों को दी गई रियायतों का आधार भिन्न है। हम चाहते हैं कि इन रियायतों पर अमल हो। स्थान-रक्षण के अतिरिक्त जो कि केवल दस वर्ष के लिये है अन्य रियायतें, जैसे कि शिक्षा सम्बन्धी रियायतें हैं, जो कि अनुच्छेद 301 के अधीन उपबन्धित हैं, शायद दस वर्ष से भी अधिक समय तक के लिये देनी पड़े। किन्तु इस मामले में यह सम्प्रदाय दलित सम्प्रदाय नहीं है। इस सम्प्रदाय को किसी हद तक यह रियायत इसलिये दी गई है कि इसका जीवनस्तर शेष भारतीय समाज से भिन्न था और वह उच्चतर था। अतः मैंने अपने संशोधन इस ख्याल से भेजे थे कि जब श्री एन्थानी ने पिछली बार अल्पसंख्यकों के विषय में कहा था कि समिति ने अनुपम उदारता दिखाई है, मैंने सोचा था कि उनका सम्प्रदाय भी उत्तर में अनुपम न्याय का प्रदर्शन करेगा और यह कह देगा कि वे इन रियायतों को केवल दस वर्ष के लिये ही चाहते हैं, क्योंकि मुझे पता है कि आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय के जितने लड़कों को यह रियायत दी जाती है उतने ही उच्च वर्ग के लड़कों को भी देनी होती है क्योंकि उन विद्यालयों में जिन्हें कि ये अनुदान दिये जाते हैं लगभग 40 प्रतिशत आंग्ल-भारतीय लड़के होते हैं तथा अवशिष्ट साठ प्रतिशत उच्च वर्गों के लड़के होते हैं। अतः यदि हम ये रियायतें देते हैं तो हम केवल आंग्ल-भारतीयों को ही नहीं वरन् उच्च वर्गों को भी देते हैं। आखिर हमारे साधन सीमित हैं और हम

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

एक रुपये के सतरह आने तो कर ही नहीं सकते और यदि आप ये रियायतें बहुत समय तक उन लोगों को देते हैं जिनका जीवनस्तर अच्छा है तो अवशिष्ट जनता को साधारण अधिकारों से भी वंचित करना पड़ेगा। अत: इन व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिये आप अन्य जातियों के लड़कों को भूखा मार रहे हैं। मेरे विचार में इस संशोधन की सूचना देने पर मेरे माननीय मित्र श्री एन्थानी मेरी बात पर भ्रान्त धारणा नहीं बना लेंगे। मैंने इन संशोधनों की सूचना इस आशा से दी थी कि वे, देश प्रेम के कारण, सबके लिये समान व्यवहार के सिद्धान्त को मानने के कारण, यह स्वीकार कर लेंगे कि केवल दस वर्ष तक ही रियायत ली जाये, अधिक नहीं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, ये दो अनुच्छेद 297 और 298, जिन में से एक हम पहले ही पारित कर चुके हैं, आंग्ल भारतीयों को कुछ रियायतें देते हैं। मैं आरम्भ में ही कह देता हूं कि मैं किन्हीं ऐसी रियायतों के विरुद्ध नहीं हूं जो ये लोग चाहें। मैं यह भी कह देता हूं कि मैं चाहता हूं कि वे इन रियायतों का सर्वोत्तम उपयोग करे। किन्तु एक शब्द चेतावनी के तौर पर कह देता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि ये रियायतें ऐसे सिद्धान्त पर आधारित हैं जिसे अन्यत्र किसी संविधान में स्थान नहीं दिया गया है। हमने पिछड़े हुए लोगों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया है। किन्तु इस मामले में स्थिति भिन्न है। अब तक आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय शेष लोगों से भिन्न प्रकार का जीवन बिताता रहा है। शायद वे नये परिवर्तन के अनुसार अपने आप को ढालने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं अत: वे ये रियायतें चाहते हैं। मैं केवल यही चाहता हूं कि उस सम्प्रदाय के प्रतिनिधि, जो कि यहां उपस्थित हैं और जो बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और जो मेरे बहुत अच्छे मित्र हैं, इस बात पर शांति से विचार करें कि इन रियायतों से क्या उनके सम्प्रदाय को सचमुच लाभ होगा। मेरा अनुभव यह है कि गत कई वर्षों में यह सम्प्रदाय शेष जनता से अलग रखा गया और अंग्रेज, जो हमें अपने अधीन रखे हुए थे, उन्हें पूर्णत: पृथक रखने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने उन्हें एक भिन्न प्रकार की शिक्षा दी और भिन्न प्रकार की आदतें सिखाई। मुझे तो केवल आश्चर्य ही होता है कि वे अब भी शिक्षा के अपने पुराने तरीकों पर ही चलना चाहते हैं। मुझे यही आशा है कि चाहे ये रियायतें दे दी जायें, फिर भी उस सम्प्रदाय के लड़के सारे भारतीय लड़कों को दी जाने वाली शिक्षा से लाभ उठायेंगे, और आगे भी अपने पार्थक्य को बनाये नहीं रखेंगे जो कि ब्रिटिश लोगों ने अपने प्रयोजनों के लिये उन पर थोपा था। रेलों और डाक तथा तार के मजदूरों से सम्पर्क होने के कारण मेरा इन मित्रों से परिचय हुआ है। वे अत्यन्त कार्यशील लोग होते हैं; वे राष्ट्र में जवांमर्द तत्व हैं और मुझे पता है कि उन्हें किसी बैशाखी की आवश्यकता नहीं है। पारसियों के समान वे सामान्य निर्वाचन में भी अपने लिये यथेष्ट से अधिक भाग प्राप्त कर लेंगे और सामान्य प्रतियोगिता में भी यही होगा। अत: मेरे विचार में ये दो अनुच्छेद इस भय पर आधारित हैं कि शायद वे इन परिस्थितियों में अपना यथेष्ट अंश प्राप्त न कर सकें। मैं यह मैत्रीपूर्ण मन्त्रणा देना चाहता हूं, यदि इसका कोई मूल्य हो। मैं चाहता हूं कि यह सम्प्रदाय शेष जनता से मिल कर एक हो जाये और अंग्रेज शासकों ने जो भीत इस सम्प्रदाय और शेष जनता के बीच खड़ी थी उसे हटा दे, जिससे कि समय आने पर, कम से कम दस वर्ष बाद, उनके लिये ये सब रियायतें मांगना आवश्यक न रहे—

मुझे आशा है कि ये समझ जायेंगे कि उनके लिये सामान्य जनता में समा जाना श्रेयस्कर होगा। हम सब यह अनुभव करना चाहते हैं कि वे सब हममें से ही हैं। मैं यह भी जानता हूं कि वे यह समझ गये हैं कि अंग्रेजों ने उन्हें अपने खेल में मौहरों की तरह बना लिया था। मुझे आशा है कि वे अपनी पुरानी आदतों और परंपराओं को छोड़ देंगे। मुझे आशा है कि इन अनुच्छेदों का, जिन्हें हम सब एकमत से स्वीकार कर रहे हैं, यह अर्थ नहीं लगाया जायेगा कि वे पुराने पार्थक्य को स्थायी बनाने के लिये बनाये गये हैं, वरन् यह समझा जायेगा कि वे उनकी इस बात में सहायता करने के लिये बनाये गये हैं जिससे कि वे शेष जनता में सम्मिलित हो सकें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष: महोदय, मैं अनुच्छेद का वर्तमान रूप में विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। मैं जानता हूं कि इससे मेरे बहुत बड़े मित्र श्री एन्थानी अप्रसन्न हो जायेंगे। वे इतने मनोहर हैं कि सदन में कोई भी उन्हें खिजाना नहीं चाहता; किन्तु मैं तो उन्हें एक मंत्रणा देना चाहता हूं।

वे देख चुके हैं कि भारत में कितने अल्पसंख्यकों ने विशेष अधिकारों के दावे किये; और उन्होंने यह भी देख लिया है कि उनका क्या परिणाम हुआ। मान लीजिये कि हम इस अनुच्छेद पर सहमत हो जाते हैं। मुझे पता नहीं है कि श्री एन्थानी इस पर सहमत हैं या नहीं। यदि उनका इस अनुच्छेद में हाथ है तो मुझे भय है कि वे अपने सम्प्रदाय की कुसेवा कर रहे हैं जैसा कि इस अनुच्छेद में उल्लिखित है, हम उन्हें जितने अनुदान दे रहे हैं उनसे अधिक नहीं दे सकते। मैं नहीं जानता कि हम इसके लिये कैसे सहमत हो सकते हैं। आखिर यह प्रगतिशील सम्प्रदाय है; यह विशेषाधिकार प्राप्त सम्प्रदाय है। यह भारत तथा इंगलिस्तान दोनों का स्नेहपात्र हैं। वे एक उज्ज्वल सम्प्रदाय है; जहां भी वे हैं वे उन्नति करते हैं; वे सबसे कम साम्प्रदायिक हैं। वे बहुत विवेकशील तथा उज्ज्वल लोग हैं भारत में उन्हें कोई भय नहीं होना चाहिये, उन्हें तो उन्नति करना है। मैं पूछता हूं कि यदि वे इस योग्य हों तो उन्हें अधिक अनुदान या अधिक सहायता क्यों न दी जाये? अनुच्छेद में कहा गया है कि इस संविधान के आरम्भ से प्रथम तीन वर्ष तक संघ और प्रत्येक राज्य की ओर से वे ही अनुदान दिये जायेंगे। मैं पूछता हूं अधिक अनुदान क्यों नहीं यदि उनके छात्र अधिक अनुदान योग्य हों तो उतने ही अनुदान क्यों दिये जायें? मैं नहीं जानता कि आप इसे सहानुभूति कहते है क्या, यह गलत प्रकार की सहानुभूति है। मैं नहीं जानता कि मेरे माननीय और विवेकशील मित्र श्री एन्थानी उतने ही अनुदानों के लिये कैसे सहमत हैं। हो सकता है मूल्य बढ़ते जायें पर स्कूल के लड़कों को उतने ही अनुदान मिलें। अधिक क्यों नहीं? यह न कोई सहायता है और न रक्षा ही है। मैं अनुच्छेद को आगे पढ़कर सदन का समय नष्ट नहीं करना चाहता, उसमें लिखा है कि प्रत्येक तीसरे वर्ष दस प्रतिशत की कटौती हो जायेगी। हम कटौती की कल्पना ही क्यों करें? मेरा विचार तो यह है। ऐसे छोटे सम्प्रदाय को यदि आप सम्प्रदाय के रूप में, अल्पसंख्यक के रूप में स्वीकार करे जायेंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वह सम्प्रदाय अन्ततः घाटे में रहेगा। उन्हें अपने आप को समस्त राष्ट्र में विलय कर देने दीजिये और उन्हें किसी भी प्रकार के विभेद के बिना राष्ट्र का बन जाने दीजिये। उनका सौंदर्य और वर्ण का भेद ही उन्हें हमसे अलग पहचानने के लिये पर्याप्त है; वह अच्छी पहचान है। उन्हें अपने वर्ग के, अपने सौंदर्य के और अपने विवेक के आधार पर खड़ा होने दीजिए।

[श्री महावीर त्यागी]

उन्हें 'अल्पसंख्यक' आदि विशेषणों की क्या आवश्यकता है? यह तो उस सम्प्रदाय का अपमान है। यह सम्प्रदाय तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है और साहस के साथ खड़ा हो सकता है। इस सम्प्रदाय के सदस्य जिस मित्रतापूर्ण ढंग से व्यवहार कर रहे हैं, उसे देखते हुए मेरे ख्याल में यह कहना उनके सौजन्य का अपमान है कि उन्हें रक्षा की आवश्यकता है। उन्हें किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। उनका व्यवहार ही उनकी रक्षा है। मेरे ख्याल में हमें उनको उस प्राकृतिक रक्षा पर छोड़ देना चाहिये जो भगवान ने उन्हें दी है। फिर, जब हमने एक बार यह विनिश्चय कर दिया है कि हम कोई अल्पसंख्यक या सम्प्रदाय को मान्यता नहीं देते, तो क्या यह ठीक है कि एक छोटे से सम्प्रदाय को मान्यता दी जाये? इससे वे बाकी सम्प्रदायों की ईर्ष्या के लक्ष्य बन जायेंगे। केवल थोड़ा सा धन ही प्रत्याभूत किया जा रहा है, पर इस छोटे से विशेषाधिकार के लिये वे अन्य छोटे सम्प्रदायों की ईर्ष्या, घृणा और जलन के कारण क्यों बनें? मेरे विचार में इतनी छोटी सी रियायत पाकर वे फलफूल नहीं सकेंगे, क्योंकि इससे जो हानि होगी वह कहीं अधिक होगी। और यदि सम्प्रदायों पर ही विचार करना है तो मेरा सुझाव है कि उस सम्प्रदाय पर ध्यान दिया जाये जो नया ही बना है—वह स्थानच्युत लोगों का सम्प्रदाय है। इन शरणार्थियों की रक्षा क्यों न की जाये जो कि बेघर हैं? हमें यह प्रत्याभूत कर देना चाहिये कि दस वर्ष तक उन्हें अमुक रियायतें मिलेंगी और वे ही वास्तव में ऐसा अल्पसंख्यक सम्प्रदाय है जो सहायता के योग्य है। आज प्रान्तों में किसी ने उन्हें कोई विशेषाधिकार या सहायता देने पर विचार नहीं किया क्योंकि वे हिन्दू हैं, किन्तु हिन्दू होने और धार्मिक बहुसंख्यक सम्प्रदाय में होने पर भी, आज भारत में बहुत दलित छोटे से अल्पसंख्यक हैं। यह दयनीय बात है कि एक वर्ष हो गया है पर उनके लिये कुछ नहीं किया गया है; और अब समय आ गया है कि उनकी रक्षा हमारा पहला ख्याल होना चाहिये था और हमें उनकी शिक्षा, निवासस्थान और अन्य अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये थी। यदि इस संविधान में सम्प्रदायों पर विचार करना है, तो सर्वाधिक उत्पीड़ित सम्प्रदाय, जिस पर कि पहले विचार होना चाहिये, शरणार्थी हैं, किन्तु शरणार्थियों को तो सम्प्रदाय भी नहीं समझा जाता। और हम सम्प्रदायों को धार्मिक विभेदों अथवा रक्त विभेदों के अनुसार ही क्यों मानें? सम्प्रदाय तो एक जनवर्ग है जिस पर सामान्य रूप से कोई प्रभाव पड़ता हो—अच्छा या बुरा। चाहे कोई स्थिति हो, जो एक साथ समान परिस्थितियों से समानरूपेण प्रभावित हो वही सम्प्रदाय बन जाता है; और इस कारण यदि कोई सम्प्रदाय है जिसे रक्षा कवच या संरक्षण की आवश्यकता है तो वह शरणार्थी सम्प्रदाय है। किन्तु वे कभी हमारे समक्ष विशेष अनुदान मांगने नहीं आये। मेरा सुझाव है कि हमें इस अनुच्छेद को संविधान में नहीं रहने देना चाहिये। इसमें साम्प्रदायकिता के कीटाणु हैं। आप समस्त संविधान को इस रोग से मुक्त क्यों नहीं कर देते हैं और कीटाणुओं को क्यों रखते हैं? उनका विकास हो सकता है और फिर एक बार हमारे समक्ष साम्प्रदायिकता की एक और महान समस्या आकर खड़ी हो सकती है और मुस्लिम लीग के दिनों का वही पुराना इतिहास फिर दोहराया जा सकता है। मैं बलपूर्वक यह सुझाव देना चाहता हूं कि या तो इस अनुच्छेद पर भी विचार स्थगित कर दिया जाये या, यदि सदन या आप इसे आगे विचारार्थ स्थगित नहीं करना चाहते तो, मैं सदन से अनुरोध करूंगा कि इस अनुच्छेद को यहां ही और अभी ठुकरा दिया जाये,

और अपने दलों के निजी विनिश्चयों की चिन्ता न की जाये। हमें अपने दलों से स्वतंत्रता ले लेनी चाहिये और यह कह देना चाहिये कि यह एक भयानक वस्तु है, अतः यदि इसे रहने देंगे तो हम इस राजनैतिक जीवन को सदा के लिये व्याधियुक्त रहने देंगे। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का विरोध करता हूं।

***श्री के.एम. मुंशी:** अध्यक्ष महोदय, मुझे विश्वास है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले पर हमें विगत की घटनाओं को समझना चाहिये और उस बहस को पुनः आरम्भ नहीं करना चाहिये जो कि कई स्थितियों में से गुजर चुकी है। जो दो धारायें विचाराधीन हैं वे बहुत लम्बे वाद-विवाद के फलस्वरूप निश्चित हुई थीं, और तदर्थ नियुक्त विशिष्ट समिति ने इनका सुझाव दिया था, मंत्रणा समिति ने इन्हें स्वीकार कर लिया था और अन्त में सदन ने भी स्वीकार कर लिया था। अब इतना सब कुछ होने के पश्चात् इससे कोई लाभदायक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है कि उन तर्कों को दोहराया जाये जो कि सदन के कुछ विभागों ने भिन्न-भिन्न समयों पर पेश किये थे। सदन ने अल्पसंख्यक समिति के विनिश्चयों को सदा लगभग अन्तिम निर्णयों के रूप में स्वीकार किया है। हमें दो बातों के महत्व को समझना चाहिये जो कि मेरे मित्र श्री त्यागी ने कही है। जब सदन द्वारा यह विनिश्चय किया गया था तब सदन को एक इस बात पर भी विचार करना पड़ा था कि यह छोटा सा सम्प्रदाय पुरानी सरकार के रक्षा छत्र के नीचे ऐसी तरह रहा था कि इसके लिये अपने पैरों पर खड़ा होना असंभव है जब तक कि थोड़े से समय के लिये इसे रियायतों के रूप में चम्मच से दूध न पिलाया जाये। इसके 60 प्रतिशत से कुछ अधिक प्रौढ़जन कुछ खास सेवाओं में हैं। हमें इस स्थिति के विभिन्न कारणों पर जाने की आवश्यकता नहीं है, पर आकस्मिक परितर्वन से तो यह सम्प्रदाय तत्काल ही बेरोजगार हो जायेगा। दूसरी बात यह थी कि उनकी शिक्षा संस्थाओं को कुछ विशेष अनुदान दिये जाते थे। जैसा कि अब विभिन्न प्रान्तों में हमारे शिक्षा प्राधिकारी प्रमाणित कर रहे हैं, उन शिक्षा संस्थाओं में बहुत उच्चस्तर की शिक्षा दी जाती है और अब, जब कि वे शिक्षालय अन्य सम्प्रदायों के छात्रों को भी ले रहे हैं, कई प्रान्तीय सरकारों की नीति यह है कि वह उच्चस्तर सब शिक्षालयों में बनाये रखा जाये। उदाहरणार्थ बम्बई के आंग्ल-भारतीय विद्यालयों में 70 प्रतिशत विद्यार्थी आंग्ल-भारतीय नहीं हैं वरन् अन्य जातियों के हैं अतएव इन अनुच्छेदों पर सब दृष्टिकोणों से विचार किया गया था। वे एक सीमित कालावधि के लिये ही है। अतः सदन से मेरा अनुरोध है कि जो विनिश्चय काफी सोच विचार के बाद किया गया है उसमें मतदान द्वारा तो क्या ऐसे वाद-विवाद द्वारा भी कोई दखल नहीं देना चाहिये, जिसका देश में अच्छा प्रभाव शायद न पड़े। मुझे आशा है कि सदस्य यह समझ जायेंगे कि वाद-विवाद या आलोचना से शायद उस उदारता का मूल्य कम हो जायेगा जो कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय ने इस छोटे से अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के प्रति दिखाई है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं समझौते और मेल की भावना की बहुत सराहना करता हूं और जनता के किसी विभाग को दी गई सहायता पर मुझे ईर्ष्या नहीं है, पर मेरे सामने यही कठिनाई है कि मूलाधिकारों के अनुच्छेद 9 में लिखा है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, नस्ल, जाति अथवा लिंग आदि के आधार पर विभेद नहीं करेगा। अब, राज्य निधि सारे नागरिकों की शिक्षा के लिये होती है। 'क' मुस्लिम सम्प्रदाय का है, 'ख' हिन्दू सम्प्रदाय का है और 'ग' पारसी या आंग्ल भारतीय सम्प्रदाय का है, अतः उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये प्रतिक्षण भिन्न

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

राशियां मिलेंगी, वे केवल इसीलिये भिन्न होंगी कि उनका धर्म या सम्प्रदाय भिन्न है, मेरा निवेदन है कि यह इस अनुच्छेद की भावना के विरुद्ध है। मुझे दूसरी बात यह कहनी है कि अनुदान तो संस्था को दिया जाना है। यह धनराशि इस आधार पर दी जा सकती है कि उस संस्था में शिक्षा का उच्चतर स्तर है, वह अधिक खर्चीली संस्था है अथवा ऐसे स्थान पर स्थित है कि साधारण अनुदान पर्याप्त नहीं होगा, आदि। अलीगढ़ के मुस्लिम विश्वविद्यालय या नैनीताल की आंग्ल-भारतीय शिक्षा संस्था को अधिक अनुदान देने का यह आधार हो सकता है। मुझे अनुदान पर कोई आपत्ति नहीं है पर उसका आधार युक्तियुक्त होना चाहिये।

एक और आपत्ति यह है कि ये विस्तार की छोटी-छोटी बातें हैं जो कि शिक्षा विभाग पर तथा विश्वविद्यालय पर छोड़ दी जानी चाहियें, और संसद द्वारा संविधान में नहीं रखी जानी चाहियें। मुझे ऐसी बात संसार के किसी संविधान में दिखाई नहीं देती और मैं नहीं समझता कि इसे यहां रखना वांछनीय होगा।

***माननीय सदस्यगण:** प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** मैं यह कह देना चाहता हूं कि वह अनुच्छेद अल्पसंख्यकों सम्बन्धी मंत्रणा समिति के विनिश्चयों के अनुसार और दलों में एक प्रकार के समझौते के फलस्वरूप पेश किया गया है। अत: मैं नहीं समझता कि जो विनिश्चय हो गया था उस पर पुन: वाद-विवाद करने की क्या आवश्यकता है। यह इस सभा के एक पिछले सत्र में भी पेश हुआ था और स्वीकृत हो गया था। अत: मैं नहीं समझता कि प्रश्न पर पुन: विचार करना अपेक्षित है।

प्रश्न यह है:

''कि अब प्रश्न पर मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 298 संविधान का अंग बनें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 298 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 299 स्थगित रहेगा।

अनुच्छेद 300

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधन सूची के संशोधन संख्या 3186 के निर्देश से, अनुच्छेद 300 के खंड (1) में, 'भाग 1' इस शब्द और अंक के पश्चात् 'और भाग 3' ये शब्द तथा अंक प्रविष्ट कर दिये जायें।''

***श्री एच.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): श्रीमान्, मुझ प्रसन्नता है कि इस संशोधन से आदिमजातीय लोगों के कल्याण-कार्य के लाभ सब राज्यों को प्राप्त होंगे जहां भी वे इस समय रहते हों। आदिमजातीय लोगों का संविधान में अब पहली बार उल्लेख आया है। यदि ये लाभ केवल प्रान्तों के आदिमजातीय लोगों के लिये ही होते और देशी राज्यों के लिये नहीं होते तो यह काम अधकचरा ही रह जाता। किन्तु अब संशोधित रूप में यह समस्त पिछड़े हुए आदिमजातिय लोगों पर लागू होगा। अनुच्छेद 301 में उल्लिखित लाभ समस्त पिछड़े हुये लोगों के लिये हैं, और यह भी बड़ा कारण है कि अनुच्छेद 300 भी इसी प्रकार सब पर लागू हो।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन करता हूं। मैं उस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करूंगा जो कि आदिमजातीय क्षेत्रों में हमारे समक्ष उपस्थित हैं। वे देश में सर्वाधिक पिछड़े हुए लोगों में हैं। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें अलग रखना चाहा था और ईसाई प्रचारकों ने कभी-कभी उनका धर्म-परिवर्तन करने का प्रयत्न किया था। मैंने उनमें से कुछ लोगों को देखा है और मैं कह सकता हूं कि वे एक प्रकार का अर्धमानवों का सा और दु:खद जीवन व्यतीत करते हैं। इस अनुच्छेद का उद्देश्य ऐसे उपायों और साधनों को निश्चित करना है जिससे कि उन्हें सामान्य स्तर पर लाया जा सके। उनके विषय में सर्वप्रथम लोगों का ध्यान तब गया था जबकि 1931 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें पृथक प्रतिनिधित्व देना चाहा। सुधारक निकायों ने और हमारे सम्मानीय ठक्कर बापा ने उनके बीच काम किया है किन्तु अभी काफी काम बाकी है और हमें देखना चाहिये कि उन लोगों को समाज में उनका उचित स्थान दिलाया जा सके।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, अनुसूचित क्षेत्रों की सहायता करने की दृष्टि से यह अनुच्छेद बहुत अधूरा है। इसमें तो इतना ही लिखा है कि समय-समय पर या जब कि राष्ट्रपति चाहे एक आयोग नियुक्त हो सकता है जो इन क्षेत्रों की अवस्थाओं के बारे में पड़ताल करेगा और प्रतिवेदन देगा, और ''संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार ऐसे किसी राज्य को उस प्रकार के निदेश देने तक होगा जो उस राज्य की अनुसूचित आदिमजातियों के कल्याण के लिये निदेश में परमावश्यक बताई हुई योजनाओं के बनाने और कार्यान्वित करने से सम्बन्ध रखते हों।'' मुझे आश्चर्य है कि इसमें क्या सांविधानिक बात है। हम संविधान में अनुसूचित क्षेत्रों का उल्लेख करके उसे भारी क्यों बनायें? वे पिछड़े हुए क्षेत्र हैं अब तक राज्य उन्हें जानबूझ कर पिछड़ा हुआ रखता रहा है और इन क्षेत्रों में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई है। मेरे निर्वाचन क्षेत्र का आधा भाग अंशत: अपवर्जित क्षेत्र है, जिसे जौनसार बावर कहते हैं। मैं जानता हूं कि इन क्षेत्रों में क्या हालत है। कई वर्षों पहले समितियां नियुक्त हुई थी जिन्होंने उनकी हालत देखी। पर हालत देखना तो कोई काम नहीं है। असली काम तो हालत सुधारने का है। हालत सुधारने के मामले में यह अनुच्छेद कुछ नहीं कहता। इससे तो आशा की किरण भी दृष्टि नहीं पड़ती कि क्या किया जायेगा। यह जानने के लिये कि वहां क्या हालत है एक आयोग नियुक्त होगा। यह काफी नहीं है। इस अनुच्छेद को तो संविधान से हटा दिया जाता तो ही ठीक रहता क्योंकि इससे अनुसूचित क्षेत्रों को वुछ भी सहायता नहीं मिलती। इस अनुच्छेद में कुछ भी काम करने की बात नहीं है। संघ को आयोग नियुक्त करने का प्राधिकार न भी हो तब भी आयोग नियुक्त

[श्री महावीर त्यागी]

हो सकते हैं। आयोग या समितियां नियुक्त करने से अथवा पड़ताल करने से उन्हें कौन रोक सकता है? अत: मेरे विचार में इस अनुच्छेद में कोई काम की बात नहीं है। यदि इन शब्दों या पंक्तियों में कोई महत्त्वपूर्ण बात है या कोई आशा छिपी हुई है, तो मैं चाहता हूं कि मस्विदा समिति के सभापति महोदय उसे प्रकाश में लायें, जिससे कि इन क्षेत्रों में रहने वाले लोग भी यह जान सकें कि इन पंक्तियों की आड़ में उनके लिये क्या सुन्दर भविष्य छिपा हुआ है। मुझे तो उनके लिये कोई आशा दिखाई नहीं देती। मैंने इसी विचार से यह प्रश्न उठाया है कि जिससे डा. अम्बेडकर या उनकी ओर से कोई व्यक्ति आदेश में आ जायें और हमें यह बतायें कि यहां अनुसूचित क्षेत्रों को लाने का क्या अर्थ है और इससे क्या आशा पैदा होती है। यदि इसमें कुछ नहीं है और यदि उनका उल्लेख ही करना है, तो मैं यह अच्छा समझता हूं कि यह अनुच्छेद हटा दिया जाये।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 3186 के निर्देश से, अनुच्छेद 300 के खंड (1) में 'भाग 1' इस शब्द और अंक के पश्चात् 'और भाग 3' ये शब्द और अंक रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 300 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 300 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 301

(संशोधन संख्या 3187 और 3190 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 3191, 3195, 3196, 3197, 3198 और 3200 को पेश करता हूं जो मेरे नाम में है।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'consisting of such persons as he thinks fit' ये शब्द हटा दिये जायें।''

मेरे विचार में ये शब्द बिल्कुल बेकार हैं मैं तो यहां तक कह सकता हूं कि वे राष्ट्रपति के विवेक पर भी कटाक्ष के रूप में है। जब राष्ट्रपति कुछ लोगों को नियुक्त करता है तो वह नि:संदेह ऐसे ही लोगों को नियुक्त करता है जिन्हें वह उस काम के लिये

ठीक समझता है जिसका भार वह उस पर डालता है। यह कहना सर्वथा व्यर्थ और निरर्थक है 'कि वह ऐसे व्यक्तियों को मिला कर, जैसे वह उचित समझे, आयोग बना सकेगा।' केवल यही कहना काफी है कि वह आयोग बना सकेगा। इससे पर्याप्त रूप में वह अर्थ निकल जाता है जो कि अनुच्छेद के इस भाग का उद्देश्य है।

तत्पश्चात्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में 'difficulties' शब्द के स्थान पर 'disabilities' यह शब्द रख दिया जाये।''

अब तक हमने सदन में जो कुछ बातें स्वीकार की हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए, मेरा ख्याल है कि 'difficulties' शब्द के स्थान पर 'disabilities' शब्द से विचार अधिक स्पष्ट होता है। यदि हम मूलाधिकार के अध्याय को देखें तो हमें पता लगता है कि अनुच्छेद 9 के दूसरे भाग में 'निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्ध, शर्त' आदि की चर्चा है। उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद में, जो कि धर्म, मूलवंश, जाति या लिंग के आधार पर विभेद को समाप्त करता है, कहीं भी 'कठिनाई' शब्द नहीं आता। मेरे विचार में 'कठिनाई' शब्द मुश्किल से ही सांविधानिक शब्द है। मैंने संसार के कई संविधान पढ़े हैं, पर मैं देखता हूं कि यह सांविधानिक शब्दावली या भाषा में कहीं नहीं है। 'निर्योग्यता' शब्द 'कठिनाई' शब्द से कहीं ज्याादा उपयुक्त है। मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर, जो कि सांविधानिक ज्ञान में बहुत ही पारंगत हैं, इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे।

मैं अपना अगला संशोधन पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'grants should be given' इन शब्दों के स्थान पर 'grants should be made' ये शब्द रख दिये जायें।

यह केवल शाब्दिक संशोधन है मैं इस पर जोर नहीं देना चाहता, वरन् मैं इसे मस्विदा समिति के संयुक्त विवेक पर छोड़ देता हूं जो कि, मुझे विश्वास है, समुचित समय पर प्रयुक्त होगा।

तत्पश्चात् मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'और' शब्द (पंक्ति 10 में) के स्थान पर 'as well as' ये शब्द रख दिये जायें।''

सदन के समक्ष अनुच्छेद का वह भाग इस प्रकार है:

''The President may by order appoint a Commission.....to remove such difficulties and to improve their condition and as to the grants that should be given for the purpose by the Union or any State and the conditions subject to which such grants should be given.....''

मेरे विचार में 'as well as' यह पद अकेले शब्द 'and' से अधिक ठीक-ठीक इसके अर्थ को व्यक्त करेगा। यह भी मैं बुद्धिमान लोगों की टोली के विवेक पर छोड़ देता हूं जो कि इस सदन ने संविधान का मस्विदा बनाने के लिये नियुक्त किये हैं।

[श्री एच.वी. कामत]

मैं अपने अगले संशोधन संख्या 3198 को भी पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (2) में, 'a report setting out the facts as found by them and' इन शब्दों के स्थान पर 'a report thereon' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस समय खंड इस प्रकार है:

''A Commission so appointed shall investigate the matters referred to them and present to the President a report setting out the facts as found by them and making such recommendations as they think proper.''

यदि मेरा संशोधन सदन में स्वीकृत हो जाये तो खंड इस प्रकार बन जायेगा:

''A Commission so appointed shall investigate the matters referred to them and present to the President a report thereon making such recommendations as they think proper.''

इसका यही उद्देश्य है कि उलझी हुई भाषा और शैली न रखी जाये और संक्षिप्तता हो तथा ठीक-ठीक अर्थ निकले, किन्तु किसी सारवान आशय का बलिदान न हो।

अन्त में मैं अपना संशोधन संख्या 3200 पेश करता हूं जो इस प्रकार है:

''That in clause (3) of article 301, the words 'together with a memorandum explaining the action taken thereon' be deleted and the following words be added at the end:

'for such further action as may be necessary.' ''

इस समय इस अनुच्छेद का खंड इस प्रकार है:

''The President shall cause a copy of the report so presented, together with a memorandum explaining the action taken thereon to be laid before Parliament.''

मेरे संशोधन का उद्देश्य इसका रूपभेद करना है और यदि यह सदन द्वारा स्वीकृत हो जायेगा, तो खंड इस प्रकार बन जायेगा:

''The President shall cause a copy of the report so presented to be laid before Parliament for such further action as may be necessary.''

यह रचना सम्बन्धी संशोधन है और सारवान संशोधन भी है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में उस तरीके का उल्लेख है जिससे कि राष्ट्रपति इस प्रतिवेदन की एक प्रति संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखवायेगा। इस समय इस खंड में राष्ट्रपति के लिये अनिवार्य कर दिया गया है कि वह संसद के समक्ष रखी जाने वाली प्रति के साथ एक ज्ञापन लगा दे। यह बुद्धिमानी दिखाई नहीं देती कि उस तरीके का भी उल्लेख कर दिया जाये जिससे कि राष्ट्रपति संसद के समक्ष प्रतिवेदन रखेगा। यदि राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन पेश करना आवश्यक समझेगा तो वह निःसंदेह पेश कर देगा। राष्ट्रपति विवेकशील व्यक्ति होगा। मुझे विश्वास है कि हमारा राष्ट्रपति ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो कि बुद्धिमान न हो अथवा जो राष्ट्र के हित में अपना कर्त्तव्य करने में अक्षम हो। यदि राष्ट्रपति प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन लगाना आवश्यक समझेगा तो वह लगा देगा। हम संविधान में ऐसी छोटी-छोटी बातें क्यों रखें? यह कहना तो बहुत ही तुच्छ बात है कि उसे प्रतिवेदन के साथ ज्ञापन भी लगाना होगा। मेरे संशोधन का यह पहला पहलू है।

मेरे संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध इस बात से है कि आयोग के इस प्रतिवेदन को राष्ट्रपति द्वारा संसद में पेश किये जाने का परिणाम क्या हो? मेरे विचार में, श्रीमान्, इस बात पर सदन सहमत है कि संसद को, भारत की हमारी सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न संसद को इस बात का निश्चय करने का काफी अधिकार होगा कि हमारे देश के सामाजिक रूप में और शिक्षा में पिछड़े हुए वर्गों के कल्याणार्थ क्या कार्यवाही की जाये या क्या नीति अपनाई जाये। इस अनुच्छेद का सम्बन्ध भारतीय संघ के सामाजिक रूप में और शिक्षा में पिछड़े हुए वर्गों से है। मुझे विश्वास है कि संसद को यह कहने का अधिकार होगा कि पिछड़े हुए लोगों के कल्याणार्थ जो कार्यवाही की जाये वह संसद द्वारा सूत्रित नीति के अनुकूल हो। अतः मैं चाहता हूं कि इसे क्रियान्वित करने के लिये जब वह प्रतिवेदन संसद के समक्ष आये, तब आगे की कार्यवाही संसद करे और राष्ट्रपति न करे। यदि आवश्यक हो तो राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन पर अपनी प्रतिक्रिया संसद को पहुंचा सकता है, पर उस पर कार्यवाही करने का अन्तिम प्राधिकारी वह नहीं होना चाहिये। उस प्रतिवेदन पर क्या कार्यवाही की जाये इस मामले में अन्तिम बात संसद को ही कहनी चाहिये। अतः मेरा यह अन्तिम संशोधन इस बात को बिल्कुल स्पष्ट और पूर्णतः संदेहहीन बना देना चाहता है, जैसा कि डा. अम्बेडकर कह सकते हैं, और राष्ट्रपति के लिये यह असंभव हो जाता है कि वह संसद को इस जन्मजात अधिकार से वंचित कर सके कि राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत की गई आयोग की रिपार्ट पर वह कार्यवाही करेगी। अतः मैंने इन शब्दों के रखने का सुझाव दिया है ''for such further action as may be necessary'। हो सकता है कि दस वर्ष पश्चात् हमारे देश में कोई भी ऐसे वर्ग न रहें जो कि सामाजिक रूप में या शिक्षा में पिछड़े हुए हों। मैं तो आशा करता हूं कि वह दिन दस वर्ष से पहले ही आ जायेगा। हमारे समक्ष सोवियत रूस का उदाहरण है। रूस ने दस पंद्रह वर्ष में निरक्षरता का अन्त कर दिया और जनता के निम्नतर लोगों को भी काफी उच्च स्तर पर ले आया। क्या हम अपनी प्राचीन महानता और अपने सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान की पृष्ठभूमि के होते हुए यह आकांक्षा नहीं रख सकते कि हम उससे अच्छा काम करके दिखायेंगे और दस वर्ष से भी कम समय में इन सब पिछड़े हुए वर्गों को सामाजिक रूप में और

[श्री एच.वी. कामत]

शिक्षा में ऊंचे स्तर पर ले आयेंगे? मुझे आशा है, श्रीमान्, कि हम दस वर्ष के भीतर ही इन पतित और तथाकथित् पिछड़े हुए लोगों का उद्धार करने में बहुत आगे बढ़ सकेंगे और हमें प्रतिवेदन देने के लिये आयोग नियुक्त करने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यदि वह दिन दस वर्ष से कम समय में ही आ जाये, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। किन्तु, इस समय तो, संविधान में आयोग बनाने का उपबन्ध है। तो फिर आयोग द्वारा राष्ट्रपति को पेश किये गये प्रतिवेदन पर संसद को विचार करने दीजिये और इस मामले में संसद को ऐसी कार्यवाही करने दीजिये जो कि वह उपयुक्त या अपेक्षित समझे, जिससे कि दस वर्ष की ही कालावधि में, जब कि एक आयोग नियुक्त हो चुका हो और उसका प्रतिवेदन संसद के समक्ष आये, तो संसद इन शिक्षा में पिछड़े हुए लोगों के उत्थान और उद्धार के लिये योजना बना सके और उसे कार्यान्वित कर सके। मुझे विश्वास है कि पहले दस-वर्षीय अवधि की समाप्ति के पश्चात् संसद के लिये इस प्रकार का आयोग नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं रहेगी जो कि हमारे देश के पिछड़े हुए वर्गों की स्थिति की पड़ताल करे। श्रीमान्, मैं इन विविध संशोधनों को पेश करता हूं और उन्हें सदन की स्वीकृति के लिये रखता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 301 के खंड (3) में, 'संसद' शब्द के स्थान पर 'संसद का प्रत्येक सदन' ये शब्द रख दिये जायें।''

***अध्यक्ष:** दो संशोधन हैं जिनकी सूचना पंडित ठाकुरदास भार्गव ने दी है, वे हैं प्रथम सूची के संख्या 180 और 181।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैं संशोधनों को पेश नहीं करना चाहता किन्तु मैं अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं।

(संशोधन संख्या 3192, 3193, 3194, 3199 और प्रथम सूची की संख्या 181 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद और संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 301 संविधान के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेदों में से है। मुझ पर छोड़ दिया जाये तो मैं इसे संविधान की आत्मा कहूंगा। जहां तक पीड़ित जातियों का सम्बन्ध है हमने उनके लिये कुछ स्थान ही रक्षित किये हैं शेष काम हमने नहीं किया है और अनुच्छेद 301 का उद्देश्य उन्हें सामान्य स्तर पर लाने के कार्य को पूरा करना है। यह अनुच्छेद समस्त राष्ट्र का यह कर्त्तव्य निश्चित करता है कि वह देखे कि पीड़ित वर्गों की सब निर्योग्यतायें और कठिनाइयां दूर हो जायें, और इसलिये यह वास्तव में पिछड़ी हुई जातियों की स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है, और एक प्रकार से यह सदन की शपथ है, यह शपथ है कि आगामी वर्षों में ही वे सारी सुविधायें देंगे, जो भी सुविधायें राष्ट्र द्वारा दी जा सकती हैं, और इस प्रकार अपने पिछले

पापों को धोयेंगे। अब, श्रीमान्, इस देश में पिछड़ी हुई जातियां हैं जिनमें से कुछ को प्रतिनिधित्व के विषय में स्थान-रक्षण मिल गया है, किन्तु अन्य वर्गों को स्थान-रक्षण नहीं मिला है पर वे भी उतने ही पिछड़े हुए हैं। इसलिये मैं चाहता था कि सब पिछड़े हुए वर्गों की, जिसमें दलित वर्ग भी सम्मिलित हों, एक पंजी बनाई जाती और बाद में आयोग यह मालूम करता कि उनकी निर्योग्यतायें तथा कठिनाइयां क्या हैं और इन पिछड़े हुए वर्गों के प्रत्येक सदस्य को सुविधायें प्रदान करने के लिये एक योजना बनाई जाती। यदि कोई वर्ग विशेष आर्थिक रूप में बहुत पिछड़ा हुआ हो तो गांवों में उनके मकानों के विषय में उपबन्ध कर दिया जाता, उन्हें केवल निवास सम्बन्धी अधिकार ही नहीं वरन् अपनी जायदादों को हस्तान्तरित करने का भी अधिकार दिया जाता। यदि आयोग द्वारा उनकी निर्योग्यताओं की पड़ताल करने के पश्चात् हम कोई योजना बनायें तो यह उनकी निर्योग्यताओं को दूर करने में एक महान् कदम होगा। उनके सम्बन्ध में बहुत सी निर्योग्यतायें हैं जिनका सदन को ज्ञान है और इस समय मुझे उनका वर्णन करने की अपेक्षा नहीं है। मैं तो यही कहना चाहता हूं कि जहां तक इन वर्गों का सम्बन्ध है, हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि सामान्य स्तर पर आने के पश्चात् वे वर्ग पिछड़े हुए वर्गों की श्रेणी में ही न रहें जिससे कि उनका पिछड़ापन निश्चित और स्थायी न बन जाये। जब वे सामान्य स्तर पर पहुंच जायें तब उन्हें इस श्रेणी से हटा दिया जाये। यदि कोई जाति सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक रूप में पिछड़ी हुई रहती है, तो फिर दस-पंद्रह वर्ष का कोई प्रश्न नहीं होना चाहिये, बल्कि जब तक वे सामान्य स्तर पर न ले आया जायें तब तक उन्हें सुविधायें देते रहना चाहिये।

मेरा अगला निवेदन यह है कि अनुच्छेद में लिखा है ''राष्ट्रपति आदेश द्वारा..... नियुक्त कर सकता है, आदि'। मैंने इस सम्बन्ध में एक संशोधन भेजा है कि 'may' (कर सकता है) शब्द के स्थान पर 'shall' (करेगा) यह शब्द रख दिया जाये, और यदि 'may' शब्द ही प्रयुक्त हो, तब भी मेरे विचार में ऐसा आयोग नियुक्त करना राष्ट्रपति के लिये बाध्यकारी होना चाहिये। चाहे 'may' शब्द रहे पर उसका अर्थ 'shall' के समान समझा जाये। अतः मुझे संदेह नहीं है कि राष्ट्रपति ऐसा आयोग नियुक्त करेगा और वह आयोग इन वर्गों की स्थितियों की पड़ताल करने के पश्चात् यह सुझाव देगा कि किस उपाय विशेष द्वारा उसके सुझाये गये तरीकों को कार्यान्वित किया जाये। यहां तो अनुच्छेद में केवल यही लिखा है कि वह प्रतिवेदन की एक प्रति संसद के समक्ष रखवायेगा। अनुच्छेद 301 में संसद के कर्त्तव्य नहीं लिखे हैं। मुझे ख्याल है कि उनके लिये 299 में उपबन्ध है, जोकि स्थगित रखा गया है। इस समय मैं उस अनुच्छेद पर बोलना नहीं चाहता, पर मैं तो यह निवेदन करना चाहता हूं: अब अल्पसंख्यकों के रक्षणकवच हटा दिये गये हैं, जैसे कि मुसलमानों और सिखों के। संसद का उत्तरदायित्व केवल पिछड़े हुये वर्ग और अनुसूचित जातियां ही हैं। इन वर्गों के सम्बन्ध में विशेष अधिकारी नियुक्त होंगे जो यह देखेंगे कि आया उन्हें इस संविधान के अधीन प्रदत्त मूलाधिकार, और आयोग द्वारा पड़ताल के बाद उनको दी गई सुविधाओं का ये लोग उपभोग करते हैं या नहीं। ये वर्ग केवल केन्द्रीय का ही नहीं प्रत्युत राज्यों के विधान मंडलों का भी उत्तरदायित्व है। यह अनुच्छेद 301 तो लक्ष्यमूलक प्रस्ताव का कार्यरूप ही है। इस अनुच्छेद में तो केवल यह उपाय दिया हुआ है जिससे कि लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जा सके। हमें इस अनुच्छेद में यह उपबन्ध

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

रख देना चाहिये कि यह केवल उन्हीं जातियों पर लागू नहीं होगा जिनके लिये स्थान-रक्षण रख दिया गया है, अपितु उन पर भी लागू होगा जिनके लिये कि स्थान-रक्षण तो नहीं रखा गया है पर जोकि पिछड़ी हुई है।

मुझे अनुच्छेद 301 का समर्थन करने में बहुत हर्ष का अनुभव हो रहा है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद का हार्दिक समर्थन करता हूं। मैं इस सम्बन्ध में केवल दो बातें बताना चाहता हूं। पहली बात यह है कि इस संविधान की योजना के अनुसार, यह आयोग इस संविधान के प्रारम्भ पर ही नियुक्त हो जायेगा। इसका यह अर्थ है कि ज्योंही यह संविधान लागू होगा, त्योंही राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करेगा जोकि सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक रूप में पिछड़े हुए वर्गों की हालत का पता लगायेगा और तत्पश्चात् यह प्रतिवेदन देगा कि उनके पिछड़ेपन को कैसे हटाया जाये। हम संविधान में कई स्थानों पर 'पिछड़े हुए वर्ग' इस पद का प्रयोग कर रहे हैं, किन्तु हमने संविधान में कहीं भी इस पद की परिभाषा नहीं की है। मुझे आशा है कि यह आयोग, जोकि देश भर में पिछड़े हुए वर्गों की हालत का खास अध्ययन करेगा, हमें यह बता सकेगा कि 'पिछड़े हुए वर्गों' पद का क्या आशय है। जब यह आयोग संसद को प्रतिवेदन देगा, तब मुझे आशा है कि वे अपनी रिपोर्ट में 'पिछड़े हुए वर्ग' और 'दलित वर्ग' इन पदों की परिभाषा कर देंगे।

मैं श्री कामत के इस संशोधन का भी समर्थन करता हूं कि 'for such further action as may be necessary' ये शब्द जोड़ दिये जायें। इसका अर्थ यह है कि जब प्रतिवेदन आ जाये, तब संसद को इन लोगों के पिछड़ेपन को दूर करने के उपायों और साधनों पर विचार करना चाहिये। अत: मेरे विचार में यह संशोधन आवश्यक है।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** श्रीमान्, अब प्रश्न पर मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** मुझे अब विविध संशोधनों पर मत लेने हैं।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** यदि कोई और कार्य न हो तो सदन को स्थगित कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में, 'consisting of such persons as he thinks fit' ये शब्द हटा दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (1) में 'difficulties' शब्द के स्थान पर 'disabilities' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में संशोधन संख्या 3196 और 3197 रचना सम्बन्धी हैं। उन्हें छोड़ देना अच्छा होगा। प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (2) में, 'a report setting out the facts as found by them and' इन शब्दों के स्थान पर 'a report thereon' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (3) में, 'together with a memorandum explaining the action taken thereon' ये शब्द हटा दिये जायें और अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'for such further action as may be necessary.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 301 के खंड (3) में 'Parliament' (संसद) शब्द के स्थान पर 'each House of Parliament' (संसद का प्रत्येक सदन) ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 301 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 301 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब वे सब अनुच्छेद समाप्त हो गये हैं जो हमने आज विचारार्थ रखे थे। एक अनुच्छेद पर जो हमने स्थगित कर दिया था, अनुच्छेद 289 पर विचार करना शेष है। उस पर कुछ संशोधन थे और कुछ सदस्यों ने कहा था कि उन्हें अचानक पेश किया गया था और वे इस पर विचार करने के लिये समय चाहते थे। यदि सदन की इच्छा हो तो हम मध्याह्नान्तरीय सत्र कर सकते हैं जिससे कि हमें कल न बैठना पड़े।

***एक माननीय सदस्य:** हम इस पर अभी विचार करने के लिये तैयार हैं।

***अध्यक्ष:** छ: बजे।

***श्री के.एम. मुन्शी:** कल के लिये बैठक नहीं रखनी चाहिये क्योंकि, मुझे पता है, कुछ सदस्यों ने जाने के लिये स्थान रक्षित करवा लिये हैं।

***अध्यक्ष:** इसीलिये तो मैं 6 बजे का सुझाव दे रहा हूं।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** या तो हम इसे स्थगित कर दे या आप सायंकाल एक अधिवेशन करके इसे समाप्त कर दीजिये।

***अध्यक्ष:** मेरे ख्याल में कुछ सदस्य यह अनुभव करते हैं कि उन्हें संशोधनों पर विचार करने के लिये समय मिलना चाहिये और इसलिये उन्हें समय देना कहीं अच्छा रहेगा और यदि आप सहमत हों तो मैं संध्या को 6 बजे तक मध्याह्नान्तरीय अधिवेशन करना चाहता हूं।

***माननीय सदस्यगण:** छ: बजे।

***अध्यक्ष:** अत: सदन आज सायंकाल के छ: बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सभा मध्याह्नान्तर के 6 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

संविधान सभा, मध्याह्नान्तर में 6 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में पुनर्समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 289—(*जारी*)

***अध्यक्ष:** अब हम उस संशोधन को लेते हैं जोकि डा. अम्बेडकर ने प्रात:काल पेश किया था। मेरे ख्याल में मूल अनुच्छेद पर, जोकि डा. अम्बेडकर ने पेश किया था, यही एक संशोधन है।

मेरे पास अभी-अभी दो सदस्यों, श्री महावीर त्यागी तथा श्री जसपतराय कपूर के संशोधनों की सूचना आई है। मुझे पता नहीं है कि ये संशोधन इस समय कैसे आ गये हैं। वे संशोधन पर संशोधन नहीं हो सकते; वे केवल संशोधनों के संशोधनों पर संशोधन हो सकते हैं। मैं संशोधनों के संशोधनों पर संशोधनों की अनुमति देना नहीं चाहता।

***श्री जसतपराय कपूर** (संयुक्तप्रांत : जनरल): तो क्या श्रीमान्, मुझे अनुमति है कि मैं इस संशोधन में निहित अपने दृष्टिकोण को पेश कर सकूं या व्यापक वाद-विवाद के समय ही पेश कर सकूं?

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद और संशोधन पर वाद-विवाद होगा। कोई भी सदस्य जो चाहे कह सकता है। उसे अधिकार है कि वह अपने कथनानुसार मत दे या अन्यथा।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं निवेदन कर सकता हूं, श्रीमान्, कि यदि किसी समय कोई गंभीर असंगति पाई जाये और बता दी जाये तो मुझे आशा है कि उस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में आपका संशोधन उसके अन्तर्गत नहीं आता। आपके मामले में, आपने जो संशोधन भेजा है वह ऐसी बात के बारे में नहीं है जो अभी पाई गई हो।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं समझ नहीं सका, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** आपका संशोधन यह है: कि प्रस्तावित अनुच्छेद 289 के खंड (1) में, 'and Vice-President' ये शब्द हटा दिये जायें। अर्थात् आप उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को निर्वाचन आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखना चाहते हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** हां, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें वाद-विवाद के फलस्वरूप कोई ऐसी बात पाई गई हो और उससे कठिनाई उत्पन्न हो गई हो और यह संशोधन आवश्यक हो गया हो। यह बात तो पहले सोची जा सकती थी और यदि आप संशोधन की सूचना देना चाहते थे तो आपको पहले देनी चाहिये थी। मैं इसकी अनुमति अब नहीं दे सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** क्या मैं प्रार्थना कर सकता हूं, श्रीमान्...

***अध्यक्ष:** मैंने श्री त्यागी के संशोधन पर निर्णय दे दिया है। अब मैं दूसरे संशोधन को लेता हूं।

***श्री एम.वी. कामत:** कम से कम भविष्य के लिये क्या मैं जान सकता हूं, श्रीमान्, कि संशोधनों के संशोधनों पर संशोधनों के संबंध में क्या स्थिति है?

***अध्यक्ष:** मैं भविष्य के लिये कोई वचन नहीं दूंगा। मैं प्रत्येक मामले को, जब वह उठेगा, निबटा दूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं जानना चाहता हूं कि नियम क्या है, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** सदस्य महोदय निश्चित रहें, मैं नियमों का अनुसरण करूंगा।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं इस पर उत्तर नहीं मांग रहा हूं। इस विषय पर क्योंकि नियमों में कुछ नहीं है, अत: मैं जानना चाहता हूं, कि संशोधनों के संशोधनों पर संशोधनों के संबंध में क्या स्थिति है?

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं मैं प्रत्येक मामले का, जबकि वह उठेगा, विनिश्चय करूंगा।

श्री जसपतराय कपूर के संशोधन का जहां तक संबंध है, वे उस पर बोल सकते हैं। अनुच्छेद और संशोधन पर बहस हो सकती है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): क्या मैं जान सकता हूं श्रीमान्, कि वाद-विवाद केवल संशोधन पर ही होगा या अनुच्छेद पर भी?

***अध्यक्ष:** सब चीज पर।

***श्री जसपतराय कपूर:** अध्यक्ष महोदय, यदि मैं अनुच्छेद 289 के संबंध में संशोधन संख्या 99 पर बोलने खड़ा हुआ हूं तो इसका यह मतलब नहीं है कि मुझे बहुत बार बोलने का शौक है। जब मैं मंच पर आ रहा था तो मेरे माननीय मित्र डा. अम्बेडकर ने मुझे यह सुझाव दिया कि आज दर्शकगण नहीं हैं, और मुझे इस अनुच्छेद पर बोलने के लिये अधिक उत्सुक होने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपने माननीय मित्र डा. अम्बेडकर को आश्वासन देता हूं कि मैं कभी भी दर्शकों के लिये या पन्नों में ख्याति प्राप्त करने के लिये नहीं बोलता। मैं तो केवल तभी बोलता हूं जबकि मुझे बोलना सर्वथा आवश्यक प्रतीत होता है और इस अवसर पर, श्रीमान्, मेरी यही भावना है और इसीलिये मैं आपके समक्ष अनुच्छेद 289 पर बोलने के लिये आया हूं।

मुझे यह मानना पड़ेगा, श्रीमान्, कि इस अधिवेशन के अन्तिम दिन अनुच्छेद 289 कुछ असुविधाजनक सिद्ध हुआ है। कल इस पर लम्बी बहस हुई है और आज मैं देखता हूं कि इस पर जितनी बहस होती है, इसमें उतनी ही त्रुटियां दिखाई देती हैं और मैं देखता हूं कि इस पर हम जितनी बार गौर करते हैं उतनी ही इसकी त्रुटियां प्रकाश में आती हैं। इस अनुच्छेद पर ध्यान से विचार करने पर मैं देखता हूं कि इसकी तो सारी रचना को ही फिर से बदलना आवश्यक है। यहां वहां थोड़े से संशोधन, थोड़े से परिवर्तन या अदलबदल पर्याप्त नहीं होंगे: इसकी तो पुनर्रचना ही आवश्यक है। मेरा यह सुझाव नहीं है कि इसकी पुनर्रचना इसलिये आवश्यक है कि उन लोगों की बात को पूरा किया जाये जोकि केन्द्र को निर्वाचन करने की शक्ति नहीं देना चाहते। मैं यह मानता हूं कि हममें से सब या कम से कम हममें से अधिकांश इस विचार के हैं, निश्चय से इस विचार के समर्थक हैं, कि निर्वाचन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी के नियंत्रण, निदेश तथा देखभाल में होने चाहियें, मेरा मतलब राष्ट्रपति से है और वे निर्वाचन संसद द्वारा अधिनियमित किसी विधि के अधीन होने चाहिये। किन्तु, श्रीमान्, मेरे विचार में इस अनुच्छेद की पुनर्रचना करना आवश्यक है जिससे कि इस अनुच्छेद 289 में रखी गई प्रक्रिया वास्तव में क्रियात्मक और प्रभावी बन जाये जिससे कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त निकाय में—मेरा मतलब निर्वाचन आयोग से है—तथा केन्द्र अथवा प्रांतों के अन्य निकायों में संघर्ष न हो, किन्तु वर्तमान रूप में, मेरा ख्याल है कि यदि अनुच्छेद 289 को विद्यमान रूप में रहने दिया गया तो इससे निर्वाचन आयोग तथा विभिन्न विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं में संघर्ष उत्पन्न होगा। देखिये, इसमें लिखा है:

> ''संसद और विधान मंडल आदि के समस्त निर्वाचनों के लिये नामावली तैयार कराने का तथा उन समस्त निर्वाचनों के संचालन का तथा निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण।''

अब ये विभिन्न कृत्य हैं जोकि इस निर्वाचन आयोग की सौंपे जायेंगे। किन चीजों का अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण, सर्वप्रथम संसद के राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचनों के लिये निर्वाचन नामावलियां तैयार करने का, और राष्ट्रपति के अथवा राष्ट्रपति के पदों के लिये सारे निर्वाचनों का। इन निर्वाचनों की निर्वाचन-नामावलियां इस निर्वाचन आयोग की देखभाल, निर्देश और नियंत्रण में होगी। दूसरे, इसका कृत्य इन निर्वाचनों का संचालन

करना है। निर्वाचन आयोग को ये ही दो कृत्य सौंपे जायेंगे। अब हम देखें कि राष्ट्रपति का निर्वाचन कैसे होगा, उपराष्ट्रपति का निर्वाचन कैसे होगा, राज्य परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन कैसे होगा और अन्ततः राज्यों की विधान परिषदों के सदस्यों का निर्वाचन कैसे होगा। अनुच्छेद 43 के अधीन, जोकि हम पहले ही पारित कर चुके है। राष्ट्रपति संसद वे दोनों सदनों द्वारा और विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जायेगा। अब प्रश्न यह है कि इन सब सदस्यों की निर्वाचन नामावलियां क्या होंगी? क्या डा. अम्बेडकर की यह इच्छा है कि आयोग इस प्रश्न का विनिश्चय करेगा कि वे कौन से निर्वाचक होंगे जो इन निर्वाचन संस्थाओं में शामिल होंगे? अब निर्वाचक लोग वे सदस्य होंगे जो पहले ही समुचित रूप से लोकसभा, राज्य-परिषद् और विभिन्न विधान सभाओं के लिये चुने जा चुके होंगे। वे तो पहले ही समुचित रूप से निर्वाचित सदस्य होंगे। अतः केवल इन्हीं सदस्यों की निर्वाचन नामावली तैयार करने का प्रश्न तो उठता ही नहीं है। मेरे विचार में यह बात तो शीघ्र ही मान ली जायेगी कि निर्वाचन आयोग को यह विनिश्चय करने का अधिकार नहीं होना चाहिये कि उन सदस्यों में से कौन अनर्ह है। हां, एक बार समुचित रूप से निर्वाचित होने पर भी सदस्य सदस्यता पर रहने के लिये निर्योग्य हो सकता है; और जहां तक राज्यों की विधान सभा का संबंध है, उस दिन हमने अनुच्छेद 167-क अधिनियमित किया है जिसमें उपबन्धित है कि यदि ऐसा कोई प्रश्न उठे तो उसका विनिश्चय राज्यपाल ही करेगा और उसका आदेश या विनिश्चय अन्तिम होगा। अब राज्यपाल का विनिश्चय या आदेश अंतिम होते हुए, निर्वाचन आयोग का यह निश्चय करने के मामले में क्या कृत्य रह जाता है कि कौन से सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने के अधिकारी थे और कौन अधिकारी नहीं थे? यहां तक निर्वाचन नामावलियों के तैयार करने का संबंध है, निर्वाचन आयोग को किसी कृत्य का निर्वहन नहीं करना होगा। दूसरा काम है निर्वाचन का संचालन करने का। अब यह प्रश्न उठता है कि लोकसभा के सदस्यों को कहा जायेगा कि वे राष्ट्रपति को चुनें और इसी प्रकार राज्य परिषद् के सदस्यों से कहा जायेगा और इसी प्रकार विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से कहा जायेगा। वे व्यक्ति विभिन्न विधान मंडलों के सदस्य होने के नाते अपने मत देंगे, अतः उन्हें यह मतदान का कृत्य सम्बद्ध विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं की देखरेख, निदेश और नियंत्रण में करना चाहिये। क्या यह इच्छा है कि उन विधि विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं को इन निर्वाचनों का संचालन करने के सामान्य और जन्मजात अधिकार से भी वंचित कर दिया जाये? मेरे विचार में ऐसा नहीं है। अतः, जहां तक राष्ट्रपति के निर्वाचन का संबंध है, निर्वाचन नामावली तैयार करने के मामले में और निर्वाचन का संचालन करने के मामले में, दोनों में निर्वाचन आयोग के करने के लिये कोई काम नहीं है, यदि है, तो स्पष्टतः उसका विभिन्न विधान मंडलों के अधिष्ठाताओं से संघर्ष हो जायेगा। अब उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के प्रश्न को लीजिये। वहां तो मामला और भी उलझा हुआ है। उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के विषय में हमें यह बताया गया था—इसका श्रेय मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी को मिलना चाहिये—उन्होंने सदन के बाहर यह बताया था कि अनुच्छेद 55 में लिखा है ''कि उपराष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा व्यवस्थानुसार संयुक्त अधिवेशन में निर्वाचित होगा, आदि।'' यहां भी हम देखते हैं कि उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये कौन मत देगा, यह प्रश्न तो अनुचछेद 55 द्वारा सुनिश्चित

[श्री जसपतराय कपूर]

कर दिया गया है और इस विषय में निर्वाचन आयोग को कुछ नहीं करना पड़ेगा। निर्वाचन के संचालन का तरीका भी अनुच्छेद 55 में रख दिया गया है। सारे सदस्य संयुक्त अधिवेशन में समवेत होंगे जिसका सभापतित्व, जैसा कि उपबन्ध किया गया है, लोकसभा का अध्यक्ष करेगा। उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में निर्वाचक आयोग कहां आता है? तीसरा प्रश्न राज्य-परिषद् के सदस्यों के निर्वाचन का है। अनुच्छेद 67 के अनुसार वे विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे। यहां भी यह सुविख्यात है कि निर्वाचन में कौन लोग भाग लेंगे; निर्वाचन नामावली के तैयार करने का कोई प्रश्न नहीं है। फिर निर्वाचनों का संचालन और मतदान, वह काम विगत के समान विविध विधान मंडलों के अध्यक्षों के निदेशन और नियंत्रण में होगा; और निर्वाचन आयोग द्वारा हस्तक्षेप का परिणाम अध्यक्षों से संघर्ष होगा। वही आपत्ति राज्यो की विधान-परिषदों के सदस्यों के निर्वाचन के विषय में उठेगी, जो कि विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे। अत: अनुच्छेद 289 में अन्तर्ग्रस्त भावना सराहनीय है, और हमें केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त केन्द्रीय प्राधिकारी की देखरेख और नियंत्रण में निर्वाचनों के संचालन का उपबन्ध करना चाहिये, पर हमें अनुच्छेद की ऐसी रचना करनी चाहिये कि जिससे निर्वाचन आयोगों और विभिन्न राज्यों के अधिष्ठाताओं के बीच संघर्ष की कोई संभावना ही न रहे, और ऐसी बातों को हटा देना चाहिये जिससे कि ऐसे संघर्ष हो सके। हमें अनुच्छेद 55 पर भी ध्यान देना चाहिये जिसमें हमने उपराष्ट्रपति के निर्वाचन का उपबन्ध रखा है। अत: मेरा निवेदन है कि इस खंड की पुनर्रचना होनी चाहिये जिससे कि यह लोकसभा और विधान सभाओं के प्रत्यक्ष निर्वाचनों पर ही लागू हो। आज हम इस सिद्धांत को निश्चय से स्वीकार कर सकते हैं कि समस्त निर्वाचन केन्द्रीय प्राधिकारी के निदेश, देखरेश तथा नियंत्रण में होंगे, पर हां यह सब कुछ ऐसे परिवर्तनों के अधीन रहते हुए होगा जोकि अनुच्छेद 55 को देखते हुए और मैं जो निवेदन कर चुका हूं उसे देखते हुए स्पष्टत: आवश्यक दिखाई दें। मुझे यही निवेदन करना है और मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी वह भी इन्हीं बातों के विषय में था। यदि मेरी बताई हुई कठिनाइयां तथा आशंकाये किसी ऐसे निर्वाचन से दूर हो सकती हों जो डा. अम्बेडकर अनुच्छेद 289 के विषय में बतायें, तो यह और बात है।

***अध्यक्ष:** मैं बता देता हूं कि इसमें स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है। आप यह समझ रहे हैं कि इन सब निर्वाचनों में सदस्यगण संसद में बैठकर मत देंगे। किन्तु वे संसद में बैठे हुए नहीं होंगे; वे उस निर्वाचन-क्षेत्र विशेष के मतदाताओं के रूप में मत देंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** विवादों और अध्यक्ष के समक्ष नाम-निर्देशन के प्रपत्रों को भरने के विषय में क्या स्थिति होगी।

***अध्यक्ष:** यह तो निर्वाचन आयोग विनिश्चित करेगा कि इस निर्वाचन के लिये निर्वाचन अधिकारी कौन होगा। सारा तर्क इस धारणा पर आधारित है कि जब विधान मंडलों के सदस्य, जोकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में मत देने के अधिकारी हों, बैठेंगे तो वे सभा के सत्ररूप में बैठेंगे। वे ऐसा नहीं करेंगे। वे एक निर्वाचन मंडल के सदस्य होंगे और वे उस नाते मत देंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में, माननीय सदस्य सदन में नाम प्रस्तावित करेंगे, फिर उसका अनुमोदन होगा और नाम-निर्देशन पत्र भेजे जायेंगे, इत्यादि।

***अध्यक्ष:** आप फिर यही धारणा बना रहे हैं कि वह सदन का सत्र होगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** नि:संदेह मैंने जो कुछ निवेदन किया था वह इसी धारणा पर था किन्तु मैं नहीं जानता कि इसका और भी कुछ अर्थ निकल सकता है। हम हर स्थान पर देखते हैं कि सदस्यगण राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा राज्य-परिषद् के सदस्यों को वे विधान मंडल के सदस्य होने के नाते निर्वाचित करेंगे, किसी और हैसियत से नहीं। उदाहरण के लिये, अनुच्छेद 55 में लिखा है कि उपराष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा एक मीटिंग (अधिवेशन) में निर्वाचित होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** शब्द ये है ''संयुक्त अधिवेशन (मीटिंग) में'' 'बैठक (सिटिंग)' में नहीं।

***श्री जसपतराय कपूर:** यह ठीक होगा यदि इस बात को सदन में प्राधिकार से कह दिया जाये, जिससे कि इस अनुच्छेद की भिन्न प्रकार से अर्थ निकालने की संभावना न रहे, क्योंकि अनुचछेद 80 (3) ओर 164 (3) में 'मीटिंग' शब्द का प्रयोग स्पष्टत: विधान मंडल की बैठक (सिटिंग) के आशय से हुआ है, सदस्यों की भीड़ मात्र के अर्थ में नहीं। एक ही शब्द का भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में भिन्न-भिन्न अर्थ नहीं लगाया जा सकता, जब तक कि वहां उसका स्पष्ट उल्लेख न कर दिया जाये। मुझे तो यही निवेदन करना है।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): श्रीमान्, अनुच्छेद 289, जो बाद में संशोधित हुआ है, सांस्कृतिक, मूलवंशीय तथा भाषा संबंधी अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिये नि:संदेह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपबन्ध है। यह अत्यन्त सराहनीय भावना से बनाया गया है कि यह उनकी प्रांतीय पक्षपातों तथा अधिकारियों की भ्रांतियों से रक्षा करेगा। किन्तु एक बात है जिसकी मुझे आशंका है। यद्यपि मूलवंशीय, सांस्कृतिक तथा भाषा संबंधी अल्पसंख्यकों की प्रांतीय पक्षपातों से रक्षा की गई है, पर यह धारणा बना ली गई है कि केन्द्र में कभी कोई भ्रष्टाचार हो ही नहीं सकता। शायद इस भावना ने हमारे हृदयों में घर कर लिया है। कितने हमारे विद्यमान नेता, जोकि योग्य तथा उत्तरदायी व्यक्ति हैं और जो इस समय सत्तारूढ़ हैं, वे ही सदा रहेंगे अथवा उनके अनुवर्ती व्यक्ति भी इतने ही उत्तरदायी होंगे जितने कि ये हैं। मुझे भय है कि भविष्य में शायद ऐसा न हो और उस समय थोड़े से पक्षपात या असहानुभूति से अल्पसंख्यक महान् जोखिम में पड़ सकते हैं। मैं शक्ति के केन्द्रीयकरण के नि:संदेह विरुद्ध हूं और मैं अनुभव करता हूं कि हम इस संविधान में शक्ति को यहां केन्द्रित करके प्रांतीय सरकारों को जिला मंडलों की तरह बना रहे हैं। किन्तु मैं विद्यमान संशोधन का विरोध नहीं कर रहा हूं क्योंकि हमें यह आश्वासन दे दिया गया है कि यह इन अल्पसंख्यकों की रक्षा करने के लिये बनाया जा रहा है। मैं तो इसका स्वागत करता हूं। किन्तु मुझे इस विषय में एक बात कहनी है और वह यह है कि इस आयोग को बहुत महत्त्वपूर्ण कृत्यों का निर्वहन करना है जिनमें एक काम

[सरदार हुकम सिंह]

निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन है। हां, यह कार्य सब निर्वाचनों की आत्मा होगी। यदि निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन अल्पसंख्यकों के साथ पूरी सहानुभूति के साथ किया जाये, तो इसमें विश्वास फिर पैदा हो सकता है और उन्होंने जो कुछ किया है—मेरा मतलब स्वेच्छा से स्थान-रक्षण छोड़ देने से है—उसके लिये उन्हें पछतावा नहीं होगा। जहां तक बहुसंख्यकों का संबंध है उन्हें किसी बात की चिंता करने की अपेक्षा नहीं है। जहां तक अनुसूचित जातियों का संबंध है वे बिल्कुल सुरक्षित है क्योंकि उन्हें स्थान-रक्षण मिल गया है। जहां तक आंग्ल-भारतीयों का संबंध है, यदि उनको समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा तो उनको मनोनीत कर दिया जायेगा। किन्तु अन्य अल्पसंख्यकों जैसे मुस्लिमों और सिक्खों के विषय में मैं अनुभव करता हूं कि यदि उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा तो संभव है कि उन्हें बहुसंख्यकों पर भरोसा न रहे। जब निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करना होगा तब इस मामले में इस आयोग को एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना होगा। जैसा कि हमारा उद्देश्य है, यदि आयोग यह उत्तरदायित्व अनुभव करता है और अपने कर्त्तव्य को पूरे उत्तरदायित्व के साथ पूरा करता है तो मुझे विश्वास है कि अल्पसंख्यकों को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन में जरा सी अनुदारता तथा अव्यवस्था करके आयोग निःसंदेह बहुत गड़बड़ कर सकता है और वे अल्पसंख्यक इतना भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे जितना कि उन्हें सामान्यतः अपनी जनसंख्या के अनुसार मिल जाता। अतः इस बात के कहने से मेरा प्रयोजन यह है कि कम से कम आरम्भ में सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह आयोग ऐसे बनाया जाये कि उसमें प्रत्येक हित को प्रतिनिधित्व मिले और यह काम सरकार आसानी से कर सकती है। इससे वे अल्पसंख्यकों में सब विश्वास पुनः पैदा कर सकेंगे। इससे वह उद्देश्य बहुत हद तक सिद्ध हो जायेगा जो हमारे सामने है, कि हमारा राष्ट्र एक हो, सब व्यक्ति मिल जायें। यदि सरकार यह आश्वासन दे दे कि वह मेरी इस प्रार्थना पर सहानुभूति के साथ विचार करेगी, तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा और अल्पसंख्यक अपने भविष्य के विषय में आशंकित न होंगे। इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का, जिस रूप में कि यह सदन में अब प्रस्तावित हुआ है, स्वागत करता हूं।

***श्रीमती एनी मैस्करीन** (ट्रावनकोर राज्य): अध्यक्ष महोदय, दो दिन पूर्व डा. अम्बेडकर का स्पष्टीकरण सुनकर मैंने सोचा था कि मैं इसे स्वीकार कर सकती हूं। पर आज प्रातः श्री मुंशी की वक्तृता सुनने के पश्चात् मुझे इस विषय पर पुनः बोलने और अपनी पुरानी बात को पुनः पेश करने की उत्तेजना हुई हैं श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि प्रांत के लोगों को अपने प्रतिनिधि आप ही चुनने का अधिकार है और इस बात में वे संसार की किसी शक्ति के नियंत्रण, देखभाल, तथा निदेशन के अधीन नहीं होने चाहिये। मैं उसे लोकतंत्र समझती हूं। यदि केन्द्र का यह ख्याल हो कि इस बात की आवश्यकता है कि वे निर्वाचनों की देखभाल और नियंत्रण करें, तो प्रांतीय विधान मंडल में बैठी हुई मैं उनमें उतने ही दोष देख सकती हूं जितने कि वे हममें देखते हैं। इस अनुच्छेद से यह प्रतीत होता है कि जैसे केन्द्र अपने आप को न्याय का संरक्षक समझता हो। न्याय किसी की संपत्ति नहीं है, केवल उनकी है जोकि सत्य के प्रेमी हैं। श्री मुंशी ने आज प्रातः कहा कि अनुच्छेद 289 का उद्देश्य प्रांतों की जनता के अधिकारों की रक्षा करना है क्योंकि इसमें ही सहूलियत है और यही वास्तविकता है। क्या मैं उन्हें स्मरण कराऊं कि प्राचीनकालों

में राष्ट्रों की सहूलियतें और वास्तविकतायें क्या थीं—रोम की संसद और इंग्लिस्तान की लम्बी संसद की सहूलियतें क्या थी? क्रोमवेल समझता था कि एक सदन के विधान मंडल द्वारा प्रशासन चलाने में ही सहूलियत थी। नैपोलियन के वीरों का भी यही ख्याल था कि एक सदन के विधान मंडल द्वारा प्रशासन चलाने में सहूलियत थी। किन्तु समय ने उन सहूलियतों के प्रभाव को सिद्ध कर दिया है। आज जो वास्तविकता और सहूलियत है वे कल वैसी न रहेंगी। हम तो यहां लोकतंत्र के सिद्धांत–मोटे-मोटे सिद्धांत–रख रहे हैं, जो केवल आगामी निर्वाचनों के ही लिये नहीं होंगे, वरन् भविष्य के लिये होंगे, पीढ़ियों के लिये, राष्ट्र के लिये होंगे। अतः यहां सहूलियत के सिद्धांतों के स्थान पर नैतिकता के सिद्धांतों पर विचार करना अधिक ठीक होगा। मेरा तो विश्वास है कि राजनीति भी केवल नैतिकता ही है। मैं राजनीति को योग, शेष तथा गुणन के हिसाब का सिद्धांत नहीं समझती। यदि इस धारा को स्वीकार कर लिया जायेगा तो हमें यह विश्वास करना होगा कि आगे से प्रांतीय निर्वाचन केन्द्र के स्थायी दासत्व के अन्तर्गत होंगे। इसका यह आशय है, श्रीमान्, कि प्रांतीय जनता की ईमानदारी पर संदेह किया जाता है। मैं सारा अपराध केन्द्र पर मंढना चाहती हूं। श्रीमान्, क्या हमें इस अवसर पर कोई निर्बन्ध लगाने चाहियें, जबकि भारत की जनता अपने मोटे से अधिकार को मांग रही है कि उसे संसार के किसी प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार हो? यदि लोकतंत्रीय सिद्धांतों को स्वीकार करना है, तो इस अनुच्छेद को संविधान से हटा देना चाहिये।

अब मैं अन्तिम संशोधन पर आती हूं, जिसके द्वारा ऐसी धारा को संसद की वैधता प्रदान की जा रही है जोकि पहले एकतंत्रवाद की धारा समझी जाती थी। श्रीमान्, चाहे संशोधन कुछ भी हो पर उसकी छाया अथवा रंग तो हट नहीं सकता और यह पितृ कुल प्रणाली के प्राचीन रोमन दासत्व के समान अब भी दिखाई देती है। यदि प्रांतों या राज्यों के लोगों का पथ-प्रदर्शन होना है तो अनुभव से ही होने दीजिये। यदि हम गलती करते रहे हैं तो हम कुछ समय अथवा कुछ कालावधि के लिये ही गलती करेंगे। वे कहते हैं कि यह लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों से दूर है। मैं पूछती हूं कि राष्ट्र और युगों के अनुभव से दूर हटने की आवश्यकता ही क्या है? क्या आप सिद्ध कर सकते हैं कि हमने लोकतंत्रीय सिद्धांतों में गलती की है? उस हालत में मैं इस खंड को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। किन्तु बात यह है कि हमने प्रयोग करने का प्रयत्न भी नहीं किया है। हम तो उसकी तैयारी ही कर रहे हैं। यदि प्रयोग के समय हम असफल हो जायें तो संविधान में उपबन्ध है कि समय तथा परिस्थितियों के अनुसार संशोधन किया जा सकता है। किन्तु हमें पहले ही यह धारणा बनाकर कि प्रांतों के लोग सत्य और न्याय के सिद्धांतों पर नहीं चलेंगे और न्यायपूर्ण निर्वाचनों के लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों पर नहीं चलेंगे, राष्ट्र की ख्याति को धब्बा नहीं लगाना चाहिये। स्थायी प्रशासन के लिये शक्ति का केन्द्रीयकरण अच्छा है पर यह शक्ति का केन्द्रीयकरण बाद में शनैःशनैः विकास द्वारा होना चाहिये और लोकतंत्र के प्रारंभ से ही नहीं होना चाहिये। लोकतंत्र के प्रारम्भ में ही केन्द्रीयकरण जनतंत्र नहीं वरन् निरंकुशता ही दिखाई देगा। हम ऐसे युग में रह रहे हैं जबकि कई राष्ट्र लोकतंत्रात्मक प्रयोग कर रहे हैं। डा. अम्बेडकर ने 1920 के कनाडा अधिनियम के उदाहरण दिया है पर वे कनाडा से संयुक्त राज्य अमेरीका तक क्यों नहीं गये? वे आस्ट्रेलियन कामनवैल्थ

[श्रीमती एनी मैस्करीन]

पर दृष्टिपात क्यों नहीं करते? यदि कनाडा ने एक उपाय अपनाया है, तो क्या यह आवश्यक है कि भारत भी जिसकी जनसंख्या कनाडा से 25 गुनी है और आकार यूरोप से आधा है, अपने संविधान में उन्हीं सिद्धांतों को रखे, तथा लोकतंत्र के प्रयोग का उसे ही एकमात्र आदर्श माने? यदि इस खंड के बिना संयुक्त राज्य में लोकतंत्र सफल हो सकता है, इंग्लिस्तान में भी वह सफल हो सकता है, तो वह भारत में इसके बिना सफल क्यों नहीं होना चाहिये? खैर, श्रीमान्, मुझे आशा है कि सदन इस अनुच्छेद पर विचार करेगा और लोकतंत्र के सिद्धांतों पर चलेगा, सहूलियत के सिद्धांतों पर नहीं।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, हमारे संविधान के मस्विदे के अनुच्छेद 289 से जोकि निर्वाचनों तथा निर्वाचन संबंधी है, स्वभावत: सदन में काफी दिलचस्पी पैदा हो गई थी, और मुझे विश्वास है कि इससे सदन के बाहर भी इतनी ही दिलचस्पी पैदा हो गई है या हो जायेगी। यदि, अनुच्छेद 289 के मस्विदा-समिति द्वारा तैयार किये मस्विदे और आज जिस रूप में यह सदन के समक्ष पेश हुआ है उस मस्विदे में तुलना की जाये तो बड़े-बड़े अन्तर दिखाई दिये बिना रह नहीं सकते, मुख्य अन्तर यह है कि राज्यों के विधान मंडलों के सारे निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के विषय में इस अनुच्छेद को डा. अम्बेडकर के नये मस्विदे में मूलत: बदल दिया गया है। संविधान के मस्विदे के पृष्ठ 138 पर इस अनुच्छेद के विषय में पृष्ठ के नीचे जो नोट दिया गया है उसमें लिखा है:

> ''समिति का यह अभिप्राय है कि प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के विधान मंडलों के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण करने वाला निर्वाचन आयोग राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त हो।''

स्पष्ट है कि यह मस्विदा-समिति का मौलिक विचार था। किन्तु बाद में उस विचार में कुछ परिवर्तन हो गया और जहां तक राज्य के निर्वाचन आयोग का संबंध है, राज्यपाल को बिल्कुल हटा दिया गया है। मैं समझ नहीं पाता कि राज्यपाल को उस निर्वाचन आयोग विषय में शक्ति क्यों न दी जाये जो कि राज्य विधान मंडल के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण करेगा, अब जबकि राज्यपाल को राष्ट्रपति नाम-निर्देशित करेगा। यदि माननीय सदस्य अनुच्छेद 193 (1) को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल को कुछ प्राधिकार दिया गया है। सम्बद्ध खंड में लिखा है:

> ''उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा तथा मुद्रा द्वारा, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से तथा राज्य के राज्यपाल से परामर्श करके, नियुक्त करेगा.....।''

मेरी समझ में नहीं आता कि प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त अथवा राज्य के निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के बारे में राज्य के राज्यपाल का जरा भी हाथ क्यों न हो। डा. अम्बेडकर ने जिस रूप में अनुच्छेद को संशोधित किया है उससे राज्यपाल को सामान का प्रबंध

करने के विषय में ही शक्ति दी गई हैं, जैसे कि उसे कर्मीवृन्द, फर्नीचर और पता नहीं क्या-क्या चीजों का प्रबन्ध करना होगा। जहां तक इन चीजों का सम्बन्ध है राज्य का नरेश या राज्य का राज्यपाल निर्वाचन आयुक्तों की प्रार्थना पर, निर्वाचन आयोग को या प्रादेशिक आयुक्त को ऐसा कर्मीवृन्द देगा जो कि उन कृत्यों के निर्वहन के लिये आवश्यक हो जोकि इस अनुच्छेद के खंड (1) द्वारा निर्वाचन आयोग को दिये गये हैं। मेरे विचार में श्रीमान्, यह चीज इस अनुच्छेद की सारी योजना के ही बिल्कुल विपरीत है। मेरी तुच्छ सम्मति में कोई वैध कारण नहीं है कि राज्यपाल को इस अधिकार से भी वंचित कर दिया जाये कि वह उस राज्य के निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के विषय में कुछ कह भी न सके और अपनी सम्मति भी न दे सके। संघ का कार्यपालक प्रमुख राष्ट्रपति है और राज्य का कार्यपालक प्रमुख राज्यपाल है। क्या मैं सदन से पूछ सकता हूं कि यदि हम राष्ट्रपति को, जोकि संघ का सांविधानिक प्रधान है, समस्त भारत के लिये निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त करने की ऐसी महान् शक्तियां देना चाहते हैं, तो हम राज्यपाल को उसके राज्य के निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के मामले में अपनी सम्मति भी देने का अधिकार क्यों नहीं देते? मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि राज्यपालों को इसके सिवाय कोई शक्तियां क्यों न दी जायें कि वह कर्मीवृन्द के, निर्वाचन आयुक्तों को जितने लिपिक चाहिये, जितने अधीक्षक चाहिये और जितने असिस्टेंट चाहिये, वह दें। जहां तक निर्वाचन आयोग का संबंध है, राज्यपाल एक बड़ा बाबू बन गया है। आप उसे और कुछ नहीं बना रहे। मेरा निवेदन है कि यह तो राज्य के राज्यपाल की प्रतिष्ठा के सर्वथा प्रतिकूल है। मैं नहीं समझ पाता कि राज्यपाल को कर्मीवृन्द देने के लिये क्यों कहा जा रहा है जबकि निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति में उसका कोई हाथ नहीं है। जहां तक निर्वाचन आयोग का संबंध है, मुझे राज्यपाल के प्राधिकार को समाप्त करने पर कठोर आपत्ति है। फिर, मेरा वैयक्तिक रूप से यह ख्याल है कि खंड (5) सर्वथा अनावश्यक है। हम संविधान में व्यर्थ विवरण, प्रयोजनहीन और निरर्थक विवरण रखकर उसे भारी बना रहे हैं। नि:संदेह प्रत्येक कार्यालय को आवश्यक कर्मीवृन्द की आवश्यकता होगी। पर इसे संविधान में क्यों रखा जाये? भारतीय संघ के राष्ट्रपति को और राज्यों के राज्यपालों को नि:संदेह अपने कार्यालयों के लिये कर्मीवृन्द की आवश्यकता होगी, पर हमने संविधान में इसकी चर्चा नहीं की है। फिर यह उल्लेख क्यों किया जाये कि केन्द्र में निर्वाचन आयुक्तों या प्रांतों में प्रादेशिक आयुक्तों को आवश्यक कर्मीवृन्द दिया जायेगा। मैं तो यही पूछता हूं। क्या यह बात हमारे संविधान की प्रतिष्ठा के अनुरूप है कि उसमें ऐसी अनावश्यक बातों को रखा जाये, ऐसी तुच्छ बातों को रखा जाये?

अब मैं उस संशोधन को लेता हूं जो डा. अम्बेडकर ने, सदन में कल और आज के वाद-विवाद को सुनने के पश्चात् आज पेश किया है। मैं अनुभव करता हूं कि आज सदन के समक्ष जो संशोधन पेश किया गया है, वह सदन में रखे गये दृष्टिकोणों को आधे दिल से पूरा करने का प्रयत्न है। हम निर्वाचनों और निर्वाचन संबंधी मामलों पर विचार कर रहे हैं। संसद भारतीय संघ में सर्वोच्च निर्वाचित निकाय है, अत: संसद का निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के मामलों में अधिक हाथ होना चाहिये। इस प्रयोजन को पूरा करने के उद्देश्य से मेरे मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कल कुछ

[श्री एच.वी. कामत]

संशोधन पेश किये थे।। डा. अम्बेडकर ने आज जो संशोधन पेश किया है उससे इन संशोधनों की, इन दृष्टिकोणों की आधी बात पूरी होती है। वैयक्तिक रूप से मेरा ख्याल है—इस कथन में मैं गलत हो सकता हूं—पर मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर स्वयं तो सारी बात को मानना चाहते हैं इस विषय में। मैं कुछ कहने का साहस नहीं कर सकता और मुझे संशोधन पर उसी रूप में विचार करना है जिस रूप में कि वह सदन के समक्ष रखा गया है। डा. अम्बेडकर ने कल जो अनुच्छेद प्रस्तावित किया था उसके खंड (4) में लिखा है कि ''निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' आज सदन के समक्ष जो संशोधन पेश किया गया है उसमें लिखा है कि ''संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' इसमें दो चीजें है, संसद की विधि और राष्ट्रपति का नियम। क्या मैं इस सदन और भविष्य में भारत संघ की संसद के प्रति न्याय के नाते यह पूछ सकता हूं कि हम यह क्यों न रखें कि सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि संसद विधि द्वारा निर्धारित करे? यह बात साथ में क्यों रखी जाये ''जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे।'' राष्ट्रपति संघ का कार्यापालक प्रधान है, जबकि संसद सर्वोच्च निर्वाचित निकाय है। फिर इस विषय में नियम बनाने का कार्य राष्ट्रपति पर क्यों छोड़ा जाये?

अगली बात यह है, कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तें और पदावधि इतनी सुरक्षित क्यों बना दी गई हैं कि वह लगभग स्थायी ही बन गया है—सिर्फ संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमतों से ही हटाया जा सकता है। उसे लगभग स्थायी क्यों बना दिया गया है जबकि उसके सहयोगी निर्वाचन आयुक्तों को, इस अनुच्छेद के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त की इच्छा और मर्जी के अनुसार हटाया जा सकता है। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि इस अनुच्छेद को यूं ही रहने दिया जाये तो निर्वाचन आयुक्तों का अधिकांश समय खुशामद ही करने में व्यतीत हो जायेगा, मुख्य निर्वाचन आयुक्त को प्रसन्न करने में ही सारा समय लग जायेगा, क्योंकि यह स्वाभाविक ही है, मानव स्वभाव ही यह है, उन्हें यही चिंता रहेगी कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त बुरी चिट न दे दे। हम इस अनुच्छेद द्वारा यही उपबन्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं स्वयं जानता हूं कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ को बुरी चिट दे देता है, इसलिये नहीं कि उसका काम खराब है वरन् इसलिये कि वह स्वतंत्र विचारों का है, दृढ़ विचारों का है या अपने स्वामी को खुश नहीं करता। ऐसी बात को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये, पर मुझे भय है कि इस अनुच्छेद से तो यही हो सकता है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिम बंगाल : जनरल): निर्वाचन आयुक्त सदस्यों को कैसे हटा सकता है मैं समझ नहीं सकता।

***श्री एच.वी. कामत:** सदस्यों को नहीं, निर्वाचन आयुक्तों को। आप ठीक तरह सुन नहीं रहे हैं। मेरे ख्याल में मेरे माननीय मित्र को घर जाने की जल्दी है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मैं आपकी बात सुन रहा हूं, पर ज्यों-ज्यों आप बोलते जाते हैं मैं अधिकाधिक उलझन में पड़ता जाता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** कल डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद के खंड (4) के दूसरे परन्तुक में लिखा है कि ''परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।'' क्या अब यह स्पष्ट है? मैं चाहता हूं कि निर्वाचन आयुक्तों की स्थिति मुख्य निर्वाचन आयुक्त के समान कर दी जाये। हमने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से संबद्ध अनुच्छेद को स्वीकार करके उन्हें एक दूसरे के बराबर स्थान दिया है। मुख्य न्यायाधिपति और उसके सहयोगियों में कोई अन्तर नहीं हैं। इसलिये, मैं पूछता हूं श्रीमान्, कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों के बीच यह विभेद क्यों रखा गया है?

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** मुख्य आयुक्त के विषय में यह बात रख दी गई है। वे मुख्य आयुक्त की सिफारिश पर हटाये जायेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** शायद अनुच्छेद की भाषा स्पष्ट नहीं है। हां, यदि इस अनुच्छेद का यह अर्थ है कि मुख्य आयुक्त और उसके सहयोगी निर्वाचन आयुक्त और प्रादेशिक आयुक्त, इन सबको उसी प्रकार से और उन्हीं आधारों पर हटाया जा सकता है जिन पर कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है, तो यह बिल्कुल ठीक है। निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों को हटाने का तरीका, उनकी सेवा की शर्तें और पदावधि इतनी नाजुक बना दी गई है कि इन शर्तों के सामने होते हुए कोई योग्य व्यक्ति, सक्षम व्यक्ति और बुद्धिमान व्यक्ति निर्वाचन आयोग में आकर शायद काम न करना चाहे (*बाधा*)। यदि अपेक्षित हो तो मुझे रोकने के लिये अध्यक्ष महोदय हैं। मुझे आशा है कि सदन में केवल एक ही अध्यक्ष है। मैं उनके निर्णय को शिरोधार्य करूंगा, किसी और के को नहीं। अध्यक्ष का आदेश मैं सदा मानूंगा।

फिर, श्रीमान्, एक दो और बातें हैं जिन पर मैं सदन में जोर देना चाहता हूं। मैं अनुभव करता हूं कि जहां तक प्रादेशिक आयुक्तों का संबंध है, अर्थात् किसी राज्य विशेष के आयुक्तों का सम्बन्ध है, मैं पहले ही कह चुका हूं कि राष्ट्रपति को चाहिये कि उस राज्य के निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त करने से पूर्व वह उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श करे। स्थिति ऐसी है कि हम संविधान में प्रांतीय स्वायत्तता को काफी हद तक कम कर रहे हैं, पर निःसंदेह इसमें कोई हानि नहीं है यदि किसी राज्य के लिये निर्वाचन आयुक्तों को नियुक्त करते समय उस राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर लिया जाये। आखिर अब राज्यपाल निर्वाचित व्यक्ति नहीं होगा। वह राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होगा; वह राष्ट्रपति का मनोनीत व्यक्ति होगा तथा वह लगभग उसीका बनाया हुआ होगा। राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल में पूरा विश्वास होगा; राज्यपाल निर्वाचित बिल्कुल नहीं होगा, वरन् वह मनोनीत राज्यपाल होगा। यदि राष्ट्रपति अपने मनोनीत व्यक्ति पर भी विश्वास नहीं कर सकता तो पता नहीं वह और किस पर विश्वास करेगा। अतः मेरा अनुमान है कि इस विषय में कुछ समुचित सा परिवर्तन कर दिया जायेगा जिससे कि राष्ट्रपति राज्यपाल से परामर्श करेगा, विशेषतः यह देखते हुए कि राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के विषय में, हमने व्यवस्था की है कि राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल से परामर्श करेगा। मैं

[श्री एच.वी. कामत]

नहीं समझ पाता कि राज्यपाल को प्रादेशिक आयुक्त की नियुक्ति के विषय में भी ऐसी ही शक्ति क्यों न दी जाये।

और, जहां तक प्रादेशिक आयुक्तों को हटाने का संबंध है, इस काम को इतना सरल सौम्य नहीं रहने देना चाहिये जैसा कि इस अनुच्छेद में रखा गया है। मैं अनुभव करता हूं कि पदावधि तथा सेवा की अधिक सुरक्षापूर्ण शर्तें होनी चाहिये। यदि प्रादेशिक आयुक्तों के हटाने में संसद का कोई हाथ नहीं हो सकता—केन्द्र की संसद और राज्य के विधान मंडल का हाथ नहीं हो सकता—तो कम से कम मैं यह अनुभव करता हूं कि वे समस्त निर्वाचन आयोग द्वारा हटाये जायें और केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त द्वारा ही न हटाये जायें और समस्त निर्वाचन आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उसके सहयोगी होंगे। एकल व्यक्ति नाटक तो समाप्त होना ही चाहिये। इस समय तो एकल-व्यक्ति-नाटक ही है। अब हम एक संशोधन स्वीकार करने जा रहे हैं जिसका आशय है 'संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन रहते हुए', किन्तु जहां तक हटाने का संबंध है, अनुच्छेद के अनुसार वह एकल व्यक्ति नाटक ही होगा—चाहे निर्वाचन आयुक्तों को हटाना हो चाहे प्रादेशिक आयुक्तों को हटाना हो। ऐसा नहीं होना चाहिये। हटाना अधिक कठिन बना देना चाहिये अन्यथा मैं सदन को चेतावनी देता हूं कि सेवा की शर्तें इतनी असुरक्षित हैं कि सिद्ध योग्यता, क्षमता अथवा लियाकत का कोई व्यक्ति निर्वाचन आयोग पर काम करने नहीं आयेगा।

फिर, श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने एक बात कही है और वह यह है कि प्रादेशिक आयुक्तों को राष्ट्रपति, निर्वाचन आयोग से परामर्श करके नहीं, वरन् उसकी सहमति से नियुक्त करे। मेरे विचार में यह बात ठीक है कि राष्ट्रपति को ही अन्तिम अधिकार हो, किन्तु वह मुख्य आयुक्त की राय पर चले जिसकी सहमति से वह अपने सहयोगियों को नियुक्त करे। आखिर, जब राष्ट्रपति मुख्य आयुक्त को नियुक्त कर चुके, तब मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि राष्ट्रपति को ऐसे योग्य व्यक्ति क्यों न मिलें, जिनके विषय में दोनों सहमत हों। नि:संदेह भारत बहुत वृहद् देश है और वह भविष्य के प्रत्येक पद के लायक व्यक्तियों को पैदा कर सकता है; और मुझे विश्वास है कि इस निर्वाचन आयुक्त के पद के लिये नि:संदेह ऐसे व्यक्ति उपलब्ध होंगे, जिनके विषय में राष्ट्रपति और निर्वाचन आयोग सहमत हो, दोनों एक दूसरे की सहमति से प्रादेशिक आयुक्तों को नियुक्त कर सकते हैं। ये ही कमियां और भूलें इस अनुच्छेद में है जोकि माननीय डा. अम्बेडकर ने सदन के समक्ष पेश किया है। मुझे इस अनुच्छेद की सफलता के विषय में बहुत संदेह है। मुझे संदेह है कि यह किस तरह सफल होगा, जब तक कि इसमें कुछ और समुचित परिवर्तन न कर दिये जायें। जब तक कि इसमें ऐसा संशोधन न कर दिया जाये, मुझे विश्वास है कि केन्द्र में और राज्यों में निर्वाचन आयोग ऐसी अच्छी तरह काम नहीं करेगा जैसा कि हम चाहते हैं वह करे, और मैं कह सकता हूं कि सदन की एकमत से यही इच्छा है कि, अब जबकि निर्वाचन सन्निकट है, तब पहला सामान्य निर्वाचन योग्यता से, निष्पक्षता से तथा कुशलता से कराया जाये। इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। पर मैं अनुभव करता हूं कि वह उद्देश्य इस अनुच्छेद से पूरा नहीं हो सकता।

मैं तो इस संभावना की कल्पना भी नहीं करना चाहता। मैं चाहता हूं कि राज्यों और केन्द्र में निर्वाचनों का संचालन करने के लिये अधिक योग्य, निष्पक्ष तथा कार्यकुशल निर्वाचन आयुक्तों को रखने के लिये समुचित उपाय किया जाये। मुझे भय है कि डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस अनुच्छेद से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर और मस्विदा-समिति के विवेकशील व्यक्ति इस मामले पर विचार करेंगे, यदि अभी नहीं तो शायद बाद में कभी, और इस अनुच्छेद में समुचित संशोधन करने का प्रयत्न करेंगे। मुझे विश्वास है कि सदन इस मामले पर अधिक ध्यान से विचार करेगा, क्योंकि यह यूं ही हंसी में उड़ाने का मामला नहीं है। उन्हें किसी दिन शायद रोना पड़ सकता है। यदि हमें घर जाने की जल्दी है तो मेरे विचार में इस अनुच्छेद को स्थगित कर दिया जाये। यह हंसी की बात नहीं है और यदि सदस्य हंसना चाहते हैं तो खुश हो लें। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि मेरे कथनानुसार अनुच्छेद में उपयुक्त संशोधन कर दिये जायेंगे।

***कुछ माननीय सदस्य:** प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***अध्यक्ष:** समाप्ति का प्रस्ताव पेश है। प्रश्न यह है:

''कि प्रश्न पर अब मत लिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** पहले मैं उस संशोधन पर मत लेता हूं जो डा. अम्बेडकर ने अन्त में पेश किया था।

प्रश्न यह है:

''कि प्रस्तावित अनुचछेद 289 में सूची 1 के संशोधन संख्या 99 में–

(1) खंड (1) में, 'to be appointed by the President' ये अन्त के शब्द हटा दिये जायें।

(2) खंड (2) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'(2) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा, यदि कोई हो तो, अन्य उतने निर्वाचन आयुक्तों से, जितने कि राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिल कर बनेंगे तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा उस लिये बनाई हुई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी।

(2क) जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया गया हो तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के सभापति के रूप में कार्य करेगा।'

(3) खंड (4) में The conditions of service' इन शब्दों से पूर्व 'subject to the provisions of any law made by Parliament' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।'

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** मैं प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मत लूंगा। मेरे विचार में नये प्रबंध के कारण कुछ परिवर्तन हो जायेगा।

प्रश्न यह है:

''कि खंड (1) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'Subject to confirmation by two-thirds majority in a joint session of both the Houses of Parliament.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (2) में 'appoint' शब्द के पश्चात् निम्न शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें:

'Subject to confirmation by two-thirds majority in a joint session of both the Houses of Parliament.' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (3) में, 'after consultation with' इन शब्दों के स्थान पर 'in concurrence with' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (4) में 'President may by rule determine' इन शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law determine' ये शब्द रख दिये जायें।

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (4) के परन्तुक (1) में, 'Chief Election Commissioner' इन शब्दों के स्थान पर 'Election Commissioners' ये शब्द दोनों स्थानों पर, रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि खंड (4) के परन्तुक (2) में 'any other Election Commissioner or' इन शब्दों को हटा दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 289 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

289. *निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण निर्वाचन आयोग में निहित होंगे*— (1) इस संविधान के अधीन संसद और प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल के लिये निर्वाचन के लिये नामावली तैयार कराने का तथा उन समस्त निर्वाचनों के संचालन का तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण, जिसके अन्तर्गत संसद के तथा राज्यों के विधानमंडलों के निर्वाचनों के उदभूत या संसक्त सन्देहों और विवादों के निर्णय के लिये निर्वाचन-न्यायाधिकरण की नियुक्ति भी है, एक आयोग में निहित होगा (जो इस संविधान में '''निर्वाचन आयोग'' के नाम से निर्दिष्ट है।)

(2) निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा, यदि कोई हो तो, अन्य उतने निर्वाचन आयुक्तों से, जितने कि राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, मिल कर बनेंगे तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा उस लिये बनाई हुई किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जायेगी।

(2क) जब कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त इस प्रकार नियुक्त किया गया हो तब मुख्य निर्वाचन आयुक्त निर्वाचन आयोग के सभापति के रूप में कार्य करेगा।

(3) लोक-सभा, तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन से पूर्व, तथा विधान-परिषद् वाले प्रत्येक राज्य की विधान-परिषद् के लिये पहले साधारण निर्वाचन तथा तत्पश्चात् प्रत्येक द्विवार्षिक निर्वाचन से पूर्व राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग से परामर्श करके खंड (1) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिए गये कृत्यों के पालन में आयोग की सहायता के लिये ऐसे प्रादेशिक आयुक्त भी नियुक्त कर सकेगा जैसे वह आवश्यक समझे।

(4) संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जैसी कि राष्ट्रपति नियम द्वारा निर्धारित करे:

परन्तु मुख्य निर्वाचन-आयुक्त अपने पद से वैसे कारणों और वैसी रीति के बिना न हटाया जायेगा जैसे कारणों और रीति से उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है तथा मुख्य निर्वाचन-आयुक्त की अपनी नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा की शर्तों में उसको अलाभकारी कोई परितर्वन न किया जायेगा:

परन्तु यह और भी कि किसी अन्य निर्वाचन-आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के बिना पद से हटाया न जायेगा।

[अध्यक्ष]

(5) जब निर्वाचन आयोग ऐसी प्रार्थना करे तब, राष्ट्रपति या किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख निर्वाचन आयोग या प्रादेशिक आयुक्त को ऐसे कर्मचारी वृन्द प्राप्य करायेगा जैसे कि खंड (1) द्वारा निर्वाचन-आयोग को दिये गये कृत्यों के निर्वहन के लिये आवश्यक हो।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 289 संविधान का अंग बने।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 289 संविधान में जोड़ दिया गया।

सदन का स्थगन

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** अध्यक्ष महोदय, इस सदन के प्रक्रिया के नियमों के नियम 19 में एक उपबन्ध है कि अध्यक्ष सदन को तीन दिन से अधिक समय के लिये स्थगित नहीं कर सकता, जब तक कि सदन उसको इसका प्राधिकार न दे। अत: मैं यह औपचारिक प्रस्ताव पेश करता हूं:

''यह संकल्प किया जाता है कि सदन जुलाई 1949 की उस तारीख तक के लिये स्थगित रहे जो कि अध्यक्ष नियत करे।''

कोई तारीख निश्चित नहीं की गई है; उसे अध्यक्ष महोदय नियत करेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** महीना क्यों रखा जाये?

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** मास निश्चित है; अध्यक्ष तारीख निश्चित करेंगे।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): इसका यह अर्थ है कि मास के विषय में अध्यक्ष कुछ नहीं कर सकेंगे।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा:** प्रस्ताव केवल यही है कि सदन उस तारीख तक के लिये स्थगित रहे जोकि अध्यक्ष नियत करें। वे मास को नहीं बदल सकते; वे तारीख नियत कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** इस प्रस्ताव पर सदन का मत लेने से पहले मैं चाहता हूं कि जैसा मेरा विचार है इस स्थिति को तथा कार्यक्रम को स्पष्ट कर दूं। मेरा अपना विचार यह है कि हमें दूसरे वाचन को 15 अगस्त तक समाप्त कर देना चाहिये। तत्पश्चात् हमें कुछ समय के लिये स्थगित होना पड़ेगा जिससे कि मस्विदा-समिति तीसरे वाचन के लिये संविधान को अन्तिम रूप में तैयार कर सके। उसमें कुछ सप्ताह लग सकते हैं। अत: हमें सितम्बर

में किसी समय समवेत होना पड़ेगा। उस पर यह शर्त होनी चाहिये कि हम तीसरे वाचन को 2 अक्टूबर तक पारित कर सकें। यह मेरी इच्छा है। यदि सदन इस अनुमानित कार्यक्रम पर सामान्यतः सहमत हो, तो मैं मस्विदा-समिति से परामर्श करके, और शायद सरकार के सदस्यों से भी परामर्श करके, जिनका इससे मुख्यतः संबंध है, तारीख निश्चित कर दूंगा।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या आप हमें कुछ बता सकते हैं कि आप हमें जुलाई में कितने समय तक बैठने के लिये कह सकते हैं?

***अध्यक्षः** मैं आपको बता सकता हूं। सभा 15 जुलाई से पहले समवेत नहीं हो सकती, क्योंकि, जैसा कि मैंने उस दिन कहा था, यह स्थान इसलिये आवश्यक हो गया है कि कई ऐसे उपबन्ध हैं जिन पर प्रांतीय मंत्रियों से परामर्श करके विचार करना है और इस बातचीत के समय वित्त मंत्री को भी उपस्थित होना है। वित्त मंत्री पौंड पावना विषयक वार्ता के संबंध में इंग्लिस्तान जा रहे हैं, और वे जुलाई के आरम्भ में कभी वापस आयेंगे। हम यह आशा नहीं कर सकते कि प्रांतीय मंत्रियों का यह सम्मेलन 15 जुलाई से पहले हो सकेगा। अतः सदन 15 जुलाई से पूर्व समवेत नहीं हो सकता। प्रश्न यह है कि 15 जुलाई के पश्चात् किस तारीख को हम समवेत हो सकेंगे। जैसा कि मैंने कहा है, मैं मस्विदा-समिति और सरकार से परामर्श करके वह तारीख निश्चित कर दूंगा।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं जानना चाहता हूं कि हमें कितने समय तक बैठना पड़ेगा।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैं कह चुका हूं, जिस दिन हम आरम्भ करेंगें उस दिन से लेकर 15 अगस्त तक, यही मेरा ख्याल है।

***श्री महावीर त्यागीः** 15 तो संभावित तारीख है जिस दिन आप शायद सत्र बुलायेंगे। मैं तो यह जानना चाहता हूं कि वह सत्र कितने दिन चलेगा।

***अध्यक्षः** मैं इस प्रश्न का उत्तर दे चुका हूं। मैं कह चुका हूं कि जिस दिन सत्र आरम्भ होगा उस दिन से 15 अगस्त तक चलेगा, यदि मेरा अनुमानित कार्यक्रम सफल हुआ।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** क्या मैं आपको याद दिला सकता हूं, श्रीमान्, कि यह कहना हमारे लिये कठिन होगा कि हम किस तारीख विशेष को समाप्त कर सकेंगे। यह कार्य पर निर्भर है और इस बात पर निर्भर है कि हम कितना समय लेते हैं।

***अध्यक्षः** जैसा कि मैंने कहा है, यह मेरा काम चलाऊ सुझाव ही है। यह अच्छी तारीख है और इसलिये मैं उस तारीख तक इसे समाप्त करना चाहता हूं। यदि सदस्य अधिक समय लगाना चाहें तो हां वे ऐसा कर सकते हैं।

***श्री आर.के. सिधवाः** मेरा यह कहना है, हमने कई खंड स्थगित कर दिये हैं और जब तक हम जरा जल्दी यानी 20 जुलाई से पहले समवेत न हों, तो हम स्थगित की हुई बातों को 15 अगस्त 1949 तक समाप्त नहीं कर सकेंगे।

***अध्यक्षः** मैं इस बात का ध्यान रखूंगा।

***माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हाः** श्रीमान्, अब हमें उठ जाना चाहिये।

***अध्यक्षः** क्या मैं यह समझ लूं कि सदन श्री सिंह द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव को स्वीकार करता है?

***माननीय सदस्यगणः** हां।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''यह संकल्प किया जाता है कि सदन जुलाई 1949 की उस तारीख तक के लिये स्थगित रहे जोकि अध्यक्ष नियत करे।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

तत्पश्चात् सभा जुलाई 1949 की उस तारीख तक के लिये स्थगित हो गई जोकि अध्यक्ष नियत करे।